* ज्ञान सागर *

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

गिरि से गिरकर जो गिरे, गिरे एक ही बार। जो चरित्र गिरि से गिरे, बिगड़े जन्म हजार।
गिरि से गिरा सो गिर गया, उठा हजारों बार। जो चरित्र गिरि से गिरा, उठा न एकउ बार॥

- विषयसूची -

१)	विज्ञान और अध्यात्म	२	११)	ज्ञान सागर	७३ - ३७४
२)	गीता समीक्षा	३ - ४	१२)	ज्ञान गंगा	३७५ - ५०८
३)	प्रथम पूज्य आदिदेव गणेश	५ - १५	१३)	ज्ञान गुरु	५०९ - ५३४
४)	प्रार्थना	१६ - २२	१४)	ज्ञान सरिता	५३५ - ७७८
५)	स्वजनों की स्मृति में	२३ - २४	१५)	मेरे दोस्तों की प्रेरणा	७७९ - ७८१
६)	संग्रहकर्ता की कलम से	२५ - २७	१६)	सत्साहित्य और यह पुस्तक	७८२ - ७८६
७)	भूमिका	२८ - ३३	१७)	उर्दू शब्दकोश	७८७ - ७९४
८)	सत्य	३४ - ४६	१८)	राम अमृत वाणी	७९५ - ७९८
९)	विश्व ज्ञान गुरु शिव	४७ - ६६	१९)	उपसंहार	७९९ - ८००
१०)	सौंदर्य	६७ - ७२			

गिरकर भी मैं उठ न सकूंगा, ऐसी कोई बात नहीं। रात बीते प्रभात न आए, ऐसी कोई रात नहीं।

विज्ञान और अध्यात्म

विज्ञान से चतुराई विकसित होती है और अध्यात्म से चरित्र विकसित होता है।
योग्य स्थल पर विवेक व अविवेक शब्दों का विचार कर प्रयोग करना चाहिए।
विज्ञान प्रयोग से विकसित होता है, अध्यात्म योग से प्राप्त होता है।
विज्ञान विवरण पर है, अध्यात्म तप और शील पर है।
विज्ञान में पराक्रम है, अध्यात्म में आत्म संयम है।
विज्ञान में साधन का प्रयोग होता है, अध्यात्म में साधना का प्रयोग होता है।
विज्ञान में शोध है, अध्यात्म में बोध है।
विज्ञान हमारा विश्वास है, अध्यात्म हमारा श्वास है।
विज्ञान से कार्य संचालन होता है, अध्यात्म से धर्म का संचालन होता है।
विज्ञान से हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है, अध्यात्म से अहिंसा को प्रोत्साहन मिलता है।
विज्ञान से नव सृष्टि का निर्माण होता है, अध्यात्म से नव दृष्टि का निर्माण होता है।
विज्ञान से भौतिक विकास है, अध्यात्म से आत्मिक विकास है।
विज्ञान में तत्व परीक्षा है, अध्यात्म में सत्त्व परीक्षा है।
विज्ञान में व्यासंग है, अध्यात्म में सत्संग है।
विज्ञान में बाह्य सुख है, अध्यात्म में आंतरिक सुख है।
विज्ञान में कर्तृत्व है, अध्यात्म में दासृत्व है।
विज्ञान में अनेक प्रश्नों का निर्माण है, अध्यात्म में सभी प्रश्नों का उत्तर है।
विज्ञान से स्वार्थ निर्माण होता है, अध्यात्म से परमार्थ निर्माण होता है।
विज्ञान की हलचल सर्वनाश की ओर ले जाती है, जबकि अध्यात्म की हलचल सर्वोदय की ओर ले जाती है।
विज्ञान से नैसर्गिक साधन-संपत्ति नष्ट होते हैं, जबकि अध्यात्म से नैसर्गिक साधन-संपत्ति पुष्ठ होते हैं।
विज्ञान से पर्यावरण का नुकसान होता है, अध्यात्म से पर्यावरण का रक्षण होता है।
विज्ञान से भौतिक सुधार होता है, अध्यात्म से नैतिक सुधार होता है।
विज्ञान में शक्ति है, अध्यात्म में भक्ति है।
विज्ञान में प्रकल्प है, अध्यात्म में संकल्प है।
विज्ञान उपभोग पोषक है, जबकि अध्यात्म त्याग पोषक है।
विज्ञान से धन बनता है और अध्यात्म से समाधान होता है।
विज्ञान के लिए उपकरण की आवश्यकता है, अध्यात्म के लिए अंत:करण की आवश्यकता है।
विज्ञान में तंत्रज्ञान है, अध्यात्म में आत्म ज्ञान है।
विज्ञान से पुरुषार्थ बनता है, अध्यात्म से परमार्थ बनता है।
विज्ञान से क्षणिक आनंद प्राप्त होता है, अध्यात्म से स्थिर नित्य-आनंद प्राप्त होता है।
विज्ञान से जीवन को गति मिलती है, अध्यात्म से जीवन को योग्य दिशा मिलती है।
विज्ञान से मस्तिष्क का विकास होता है, जबकि अध्यात्म से सर्वांगीकरण विकास होता है।
विज्ञान से प्रतिष्ठा बढ़ती है, अध्यात्म से निष्ठा बढ़ती है।
विज्ञान से परिस्थिति बदली जाती है, अध्यात्म से मन:स्थिति बदल जाती है।
विज्ञान से संपन्नता प्राप्त होती है, अध्यात्म से प्रसन्नता प्राप्त होती है।
विज्ञान से प्रसिद्धि मिलती है, अध्यात्म से सिद्धि मिलती है।

HHH(२)HHH

गीता समीक्षा

दरबार में वंशीबारे के दु:ख दर्द मिटाये जाते हैं, दुनियाँ के सताये लोग यहाँ सीने से लगाये जाते हैं।

गीता के १८ अध्यायों का सार इसप्रकार है-

उठो। समस्त दुर्बलताओं को त्यागकर अपना कर्तव्य करने के लिये सिद्ध हो जाओ। सावधान रहो। अपने मनको संतुलित तथा बुद्धि को स्थिर रखो। ध्यान रखो। कर्तव्यपालन करना ही प्रथम धर्म है। किसी भी स्थिति में कर्तव्य का त्याग न करो। सजग रहो। कर्तव्य करने में सावधानता और परिणामत: जो हो जाय उसमें प्रसन्नता आपका स्वभाव बन जाय। विश्वास रखो। सज्जनों की रक्षा तथा दुष्टों का निग्रह भगवान अवश्य करके रहेंगे। याद रखो। मनसे सदाचारी बनने का प्रयास ही साधना है, साधुता का बाह्य आडंबर दांभिकता है। अभ्यास करो। छोटे-छोटे नियम तथा व्रतों का प्रामाणिकता से पालन करते-करते आप महान् बन सकते हैं। पता है ? आपका उद्धार आपके द्वारा ही हो सकता है। आप ही अपने सर्वश्रेष्ठ मित्र है, तथा असंयमी होने पर शत्रु के समान स्वयं के विनाशकर्ता हो सकते हैं। स्मरण रहे। मानसिक संतुलन को ही योग कहते हैं- और सामाजिक संतुलन को धर्म। स्वयं को पहचानो। आप नश्वर शरीर नहीं, अमर आत्मतत्त्व हैं। प्रसन्न रहो। सुख और दु:ख आते-जाते ही रहते हैं। उनसे अतीत साक्षी रहकर देखना सीखो। डरो मत। किसी भी अवस्था में धीरज न त्यागते हुए तेजस्वी धर्मवीर बने रहो। प्रयास रहे कि भगवान की भक्ति में सकामता न रहे। निष्काम भक्त को भगवान सब कुछ तो क्या, स्वंय को भी प्रदान कर देते हैं। प्रेम करो। प्राणिमात्र में परमात्मा का दर्शन करते हुए सभी के प्रति अपना प्रेमपूर्ण और सेवामय व्यवहार हो। शरणागति। यही सबसे महान् तत्त्व हैं। सर्वदा भगवान की संपूर्ण शरणागति का भाव बना रहे, यही इह-परलोक में सर्वोत्तम लाभ है। गीता पढ़ो। औरों को पढ़ाओ। जीवन में लाने का प्रयास करो। भगवान के सर्वाधिक प्रिय होने का यही सर्वोत्तम उपाय है।

गीता एक विशेष अर्थ में अद्‌भुत है कि उसमें सब तरह के व्यक्तियों के मार्गों की चर्चा हो गई है, उसमें सब तरह की संभावनाओं पर चर्चा हो गई है, क्योंकि अर्जुन से कृष्ण ने सभी तरह की संभावनाओं की बात की। एक-एक संभावना बेकार होती गई और वे दूसरी संभावनाओं की बात करते चले गए। कृष्ण कहते हैं कि जो मार्ग किसी के लिए ठीक है, वह उसके लिए परम रूप से ठीक है, बाकी उसके लिए सभी गलत हैं। दूसरा मार्ग किसी के लिए ठीक है, तो वह उसके लिए परिपूर्ण रूप से ठीक है।

मैं अजर हूं, मैं अमर हूं, मैं ईश्वर हूं, मैं प्रत्यगात्मचैतन्य हूं, मैं परमानंद-पूर्ण हूं, मैं परमशिव हूं, मैं अनन्त हूं। आत्मसाक्षात्कार करनेवाले पुरुषों में मैं सर्वश्रेष्ठ हूं। मैं आत्मानन्द का भोक्ता हूं। अशिक्षित बालक अथवा अन्य सभी प्राणी जिस अपने मैं की गरिमा का अनुभव करता है, वह मैं हूं। मैं आनन्दमय हूं, ज्ञानमय हूं, आत्मानुभूतिमय हूं। मैं बाह्य वस्तु के विचार तक के कोसों दूर हूं। मेरा हृदय उस आनन्द में मग्न है, जो इन्द्रियों का विषय नहीं है। केवल मैं ही जगत् का मूल हूं। उपनिषदों के उद्यान में विहार करनेवाला मैं ही हूं। मैं वह बड़वाग्नि हूं जो दु:खों के उफनाते हुए सागर को सुखा देगी। मैं अपनी उत्कृष्ट महिमा से ऊपर, नीचे, सर्वत्र अधिष्ठित हूं। वाद-विचार, तर्क-वितर्क एवं जिज्ञासा से जिसका स्वरूप निश्चित होता है, वह मैं हूं। मैं एकत्व का उद्‌घाटक हूं। वेदान्त-सिद्धान्त के सम्यक् ज्ञान से जिनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी है, उनके लिए एकमात्र मैं परमसत्ता हूं। रात्रि के अन्धकार की तरह अज्ञान को नष्ट करनेवाला सूर्य मैं ही हूं। मैं समस्त अशुभों का निदान हूं। मैं समस्त आरोपित उपाधियों से रहित, औदार्य की पराकाष्ठा हूं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान कर सभी की इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला मैं ही हूं। मैं समस्त औषधियों में ओज हूं। सारे जगत् का ताना-बाना मैं ही हूं। मैं पवित्र ॐ मन्त्ररूपी पंकज से नि:सृत आत्माभिव्यक्ति की आनन्दमय सुरभि से उन्मत्त भ्रमर हूं। मैं इन्द्रिय-सुखों से विरक्त हूं। परमानन्द, ज्ञान और आत्मानुभूति से पूर्ण हूं। मैं इन्द्रिय-जगत् की कामनाओं से सर्वत्र पृथक हूं। जो अतीन्द्रिय है, उसी में आनन्दित हूं। मैं एक हूं, अभेद हूं। यह, इस प्रकार, अथवा ऐसे के भेद से पृथक हूं। मैं नि:स्पृह पुरुषों का वन्दनीय हूं। मैं गुणदोष की आन्तरिक भावनाओं से रहित हूं। मैं ज्ञान हूं। मैं ज्ञेय हूं। मैं ज्ञाता हूं। मैं सभी प्रकार के ज्ञान का साधन हूं। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय से परे शुद्ध अस्तित्व मात्र मैं ही हूं। मैं भक्ति हूं, मैं उपासना हूं और मैं मुक्ति हूं। एकमात्र मैं ही मुक्ति का साधन हूं। समस्त प्राणियों का मैं नियन्ता हूं। भूत में जो हो गया, वर्तमान में जो विद्यमान है और भविष्य में जो होगा उन सब का मैं मूल कारण हूं। मैं हव्य यानी देवताओं को

दी जानेवाली आहुति हूं। मैं कव्य यानी पितरों को दी जानेवाली आहुति हूं। मैं त्याज्य और ग्राह्य भाव से रहित हूं। मैं विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा हूं। उनका कारण भी मैं ही हूं। मैं ऋषि हूं। ऋषियों का समूह मैं ही हूं। सृष्टिसृजन की क्रिया मैं हूं और मैं स्वयं ही सृष्टि हूं। मैं समृद्धि हूं। मैं प्रगति हूं। मैं तृप्ति हूं। तृप्तिरूपी दीप का प्रकाश मैं ही हूं। मैं देह से भिन्न हूं, अत: मैं जन्म, जरा, क्षीणता, क्षय तथा मृत्यु आदि के आवर्तन से मुक्त हूं। शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गन्ध आदि इन्द्रिय-विषयों से मैं निर्लिप्त हूं। क्योंकि मैं इन्द्रियरहित हूं। मैं मन नहीं हूं अत: दुख, मोह, द्वेष और भय से मुक्त हूं। उपनिषदों में उल्लेख है, वह प्राणरहित, मनरहित शुद्ध उच्च से भी उच्च और अविनाशी है। मैं समस्त अपवित्रताओं से मुक्त हूं। मैं अचल, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध, अजर, अमर हूं। मैं यह देह नहीं हूं जो स्वयं असत् है। इसे ज्ञानी सत्य ज्ञान कहते हैं। मैं किसी भी व्याधि का विषय नहीं। मैं सभी प्रकार के संकल्प-विकल्प से रहित, सर्वव्यापी हूं मैं यह देह नहीं हूं जो स्वयं असत् है। इसी को ज्ञानी सत्य ज्ञान कहते हैं। मुझमें कोई परिवर्तन नहीं होता। मैं निराकार हूं। मैं निर्विकार और दोषरहित हूं। मैं यह शरीर नहीं हू जो स्वयं असत् है। यही सत्य ज्ञान है। मैं निरुपाधि हूं, मैं निष्क्रिय हूं, मैं नित्यमुक्त, चिरन्तन और अविनाशी हूं। मैं देह नहीं हूं जो स्वयं असत् है। इसी को ज्ञानी सत्य ज्ञान कहते हैं।

पूरी मानवता के कल्याण के लिए परमात्मा के द्वारा दिया गया यदि कोई शास्त्र है तो वह भगवद्गीता है। भगवद्गीता एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसलिए हमारे शास्त्रकारों ने कहा है कि अन्य ग्रन्थों को पढ़ने की आवश्यकता भी क्या है ? जितने अच्छे अच्छे विचार संसार में अन्यत्र कहीं पर भी होंगे वे सभी के सभी विचार आपको एक भगवद्गीता के पढ़ने से अपने आप प्राप्त हो जायेंगे। अन्य शास्त्रों का विस्तार करने की क्या आवश्यकता है ? भगवद्गीता को अच्छी तरह से जान लीजिएगा। जिसने भगवद्गीता को जाना उसने समस्त उत्तमोत्तम विचारों के सार को जान लिया। भवगद्गीता में वेदों का सार है। भगवद्गीता में मूल्यों का सार है। भगवद्गीता में समस्त शास्त्रों का सार है। भगवद्गीता का प्रामाण्य मानकर हम लोग चलते हैं। भगवद्गीता में समस्त वेदशास्त्रों का सार आया हुआ है और अखिल मानवमात्र के उद्धार के लिए भगवद्गीता है। मानव जीवन में विवेक का जागरण भगवद्गीता द्वारा होता है।

गीता जबानी जमा खर्च का शास्त्र नही है अपितु आचरण शास्त्र है। गीता विश्वधर्म की एक पुस्तक है। वह हमारे लिये अद्भुत गुरु है, माता रूप है। गीता हमारे धर्म ग्रन्थों मे एक अत्यन्त तेजस्वी निर्मल हीरा है।

गीता को भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अन्त:करण में धारण कर लेना चाहिये जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान विष्णु के मुखारविन्द से उद्भुत हुई है फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार का तो कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता।

गीता विवेक रूपी वृक्षों का एक अपूर्व बगीचा है। यह सब सुखों की नींव है। सिद्धान्त रत्नों का भंडार है। नव रस रूपी अमृत से भरा हुआ समुद्र है और खुला हुआ परम धाम है।

कर्मक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाने के लिये पुरुषोत्तम ने मनुष्य को जो सन्देश दिया है वही गीता है। गीता सन्यासी को श्रेष्ठ सन्यासी बनाती है। वानप्रस्थ को श्रेष्ठ वानप्रस्थी बनाती है और गृहस्थी को श्रेष्ठ गृहस्थी बनाती है, ब्रह्मचारी को श्रेष्ठ ब्रह्मचारी बनाती है। हमारा धर्म क्या है ? हमारा कर्तव्य क्या है ? यह सब भगवत गीता ही समझाती है। गीता भागना नहीं जागना सिखाती है। सम्पूर्ण विश्व की मानवता के लिये गीता है इसलिये हम कृष्ण को कृष्ण वन्दे जगदगुरूं कहते है। कृष्ण को तीन से प्रेम है गीता, गाय और गोपी।

जो गीता अर्जुन को भी दुबारा सुनने को नहीं मिली, वही गीता हमें प्रतिदिन सुनने पढने को मिल रही है। यह भगवान की कितनी विलक्षण कृपा है। गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि उसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति-तीनों योगों की न्याययुक्त व्याख्या है; अन्य किसी भी ग्रन्थ में इनका सामंजस्य नहीं हैं।

बुद्ध की करुणा, महावीर की अहिंसा, ईसा की सेवा, मोहम्मद का भाईचारा,
कृष्ण की शरणागति का मन्तव्य भिन्न पर, गन्तव्य अभिन्न है।

जमाने के हर सवाल पर पूर्ण विराम था, मेरे हर जवाब पर प्रश्न चिन्ह था ?
किसी को अमलों का हिसाब क्या देते, सवाल ही सारे गलत थे जवाब क्या देते।

HHH(४)HHH

प्रथम पूज्य आदि देव गणेश

भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न अवतारोंकी लीला-कथाएँ-

जब-जब आसुरी शक्तियों के प्रबल होने से जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दयी दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरण कर निरन्तर उन्हें पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्म की वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाशकर देवताओं का अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्म की स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियों को सुख-शान्ति की अनुभूति होती है।

प्रत्येक युग में उन महामहिम प्रभु के नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्यों का संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुग में ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ महोत्कट विनायक के नाम से प्रख्यात हुए, त्रेता में ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ मयूरेश्वर के नामसे प्रसिद्ध हुए; द्वापर में मूषकवाहन शिवपुत्र की गजानन या गौरीपुत्र के नाम से ख्याति हुई; तथा कलिके अन्त में ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही धूम्रकेतु के नाम से प्रसिद्ध होंगे।

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार- मुद्गलपुराण में कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेश के अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षों में भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारों में भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

वक्रतुण्डावतार देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। एकदन्तावतार देहि ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है। महोदर नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक वाहन बताया गया है। जो गजानन नामक अवतार है, वह सांख्यब्रह्म-धारक है। उसको सांख्ययोगियों के लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुर का संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। लम्बोदर नामक अवतार क्रोधासुर का उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। विकट नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है। वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। विघ्नराज नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्म का वाचक (धारक) तथा ममतासुर का विनाशक है। धूम्रवर्ण नामक अवतार अभिमानासुर का नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपति के अवतारों की अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी है। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन- जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारों का पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्मा श्रीगणपति सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। संग और प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदय में समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम ममता एवं अहंता-इन आन्तरिक दोषोंका उद्‌बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्ति के प्रतीक होनेसे इनको असुर कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है- भगवान् गणपतिका चरणाश्रय। गीतामें भी भगवान्‌ने यही कहा है- मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। अत: इन आसुरी वृत्तियों के दमन तथा दैवी सम्पदाओं के संवर्धन के लिये परम प्रभु गणपति का मङ्गलमय स्मरण करना सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है।

अग्रपूज्य गणेश त्रिभुवन में गणराज है और ब्रह्म स्वरूप तो है ही किन्तु इनकी गणना नहीं हो सकती क्योंकि गणों की संख्या अनन्त अनगिनतहै। गणों की गणना करने वाले ऋषि गणक थे, जिन्होंने सबसे पहले गणपति गणेश की पूजा वन्दना की थी।

गण का अर्थ समूह है और इनके नायक गणेश है। गणेश का बीजाक्षर **ग** है जो सकल और निष्फल भी है। **ग** वर्ण साकार है जिसके कारण इस वर्ण की आकृति सूंड जैसी है। पौराणिक ग्रन्थों में गणेश को आदि देव, प्रथमेश माना है और इन्हें उमासुत, पार्वती पुत्र होने का भी गौरव प्राप्त है। गणेश के जन्म की खबर सुनकर शनि देव जब कैलास पर्वत पर दर्शन करने के लिये आये तो उनकी दृष्टि

पडने से गणेश का मस्तक कट गया फिर उडकर चन्द्र लोक चला गया, जिसके तेज से २७ नक्षत्रों समेत चन्द्रमा प्रकाश दे रहे है।

सृष्टि के आरम्भ काल में समुद्र मंथन के समय कूर्म पृष्ठ से मंदर पर्वत के फिसल जाने पर विघ्नेश विधि विष्णु भगवान ने सभी विघ्नों को दूर करने के लिये गणेशजी की आराधना की थी। मंदराचल पर्वत भारत वर्ष के मध्य भाग मे स्थित है। यहां के भोपाल नामक स्थान में सरकारी संग्रहालय में गणेश की पंचमुखी प्रतिमा रक्खी हुई है। जो हेरम्ब नाम से कही गई है। यह प्रतिमा सफेद रंग की है और बलुआ पत्थर से निर्मित है, जिसमे गणेश के पांचो मुख सूंड्युक्त है और अपने दोनों हाथों में लड्डू लिये हुये है जिनको उनकी सूंड छू रही है। मुख्य सूंड अक्षय माला धारण किये हुये है और ललाटपर चन्द्रमा विराजमान है जो इनके शिव पुत्र होने का परिचय देता है।

गणपति गणेश विघ्नहर्ता है। इनका विवाह प्रजापति की रिद्धि-सिद्धि नामक दो कन्याओं से हुआ जिनसे शुभ एवम लाभ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। गणेश अन्य नामों से भी लोकप्रसिद्ध हुये जैसै विघ्नेश, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, सूर्यकर्ण, विनायक इत्यादि। गणेश वाणी विनायक है और विघ्नों के नाशक भी है। गणेश के गजानन होने और एकदन्त होने के सम्बन्ध मे पौराणिक ग्रन्थों मे कई कथायें प्रचलित है।

भगवान गणेश अनादि ब्रह्म है। इनका स्वरूप सतयुग में अष्टबाहु सिंह पर स्थित विनायक रुप था। त्रेता युग में मोर वाहन तथा कलियुग में मूषक वाहन है। काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को गणेश जी दमन कर देते है और दृढ साधना करने की प्रेरणा देते है। शुभ कार्यों मे सर्वप्रथम इनका पूजन अनिवार्य रहा है।

यों तो गणेश पूजा प्रत्येक महिने में चतुर्थी के दिन होती है मगर भादो महिने के शुक्ल पक्ष में गणेश चतुर्थी के पर्व को गणेश महोत्सव के रुप में मनाया जाता है। इस महोत्सव का आरम्भ गणेश भगवान की मूर्ति स्थापित करके झांझ, मजीरे बजाकर शुरू किया जाता है और फिर **गणपती बप्पा मोरया** कह कर नारे लगाये जाते है। गणेश पूजा की रौनकदार धूमधाम सबसे अधिक महाराष्ट्र प्रदेश में देखने को मिलेगी। मुंबई, पुणे, हैदराबाद जैसे शहरों मे गणेश अनुष्ठान के दिनो में रंगीन पंडाल सजाये जाते है, विभिन्न झाकियाँ प्रस्तुत की जाती है और नाच गाने का आयोजन होता है।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भी गणेश पूजा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है क्योंकि उन दिनों ब्रिटिश सरकार के द्वारा सभी त्योहारों पर रोक लगा दी गई थी, मगर गणेश उत्सव पर रोक नहीं लग पाई और इसी बहाने से देश भक्त बाल गंगाधर तिलक ने लोगों को एकत्रित कर राष्ट्र भक्ति की प्रेरणा दी और यह गणेशोत्सव प्रारम्भ किया।

हर भारतीय परिवार में गणेश जी की श्रद्धापूर्वक पूजा होती है। प्रतिदिन पूजा के अतिरिक्त विशेष पूजा या किसी संकट विशेष निदान के लिये चतुर्थी तिथि और बुधवार गणपति पूजन के लिये सर्वोत्तम होता है। विघ्नहारी मंगलकारी गणेश जी की महिमा अपरम्पार है। गणेशजी माता पार्वती के पुत्र है इसलिये जो भी चीज माता पार्वती को प्रिय होती है, उसे हंसी खुशी से वह स्वीकार कर लेते है। श्री गणेश को दुर्वांकर यानी दूब, लाल (रक्त) चन्दन, मोदक लड्डू और ताम्र पत्र में बनाये गये अर्ध्य बहुत पसन्द है। गणपति सहस्त्र नामावली, अष्टोत्तर नामावली या द्वादश नामावली या गणेश स्तोत्र का पाठ कर व्यक्ति गणेश जी को प्रसन्न कर सकता है। इनके द्वादश नामावली इस प्रकार है :- सुमुखाय नमः एकदन्ताय नमः कपिलाय नमः गजकर्णाय नमः लम्बोदराय नमः विकटाय नमः विघ्न नाशाय नमः विनाशकाय नमः धूम्रकेतवे नमः गणाध्यक्षाय नमः भालचन्द्राय नमः गजाननाय नमः आदि नामों से दूब गणेश जी पर चढानेवाला अपने सारे मनोरथ पूर्ण कर लेता है। इन बारह नामों का बहुत ही महत्व है। विद्यारम्भ, विवाह, गृहप्रवेश एवम् यात्रा पर जाते समय या किसी संकट के समय उक्त बारह नामों का श्रद्धापूर्वक पाठ अवश्य करना चाहिये। गणेश जी सारे संकट दूर कर चारो तरफ से मंगल ही मंगल कर देते है।

अभिष्ट सिद्धि के लिये प्रथम गणेश पूजन ही किया जाता है। क्योंकि श्री गणेश विघ्न विनाशक है, रिद्धि-सिद्धि के दाता है, सौभाग्य वृद्धि के देवता है। अतः अभिष्ट सिद्धि के लिये प्रथम गणेश जी की पूजा की जाती है।

भगवान गणेश का दिन बुधवार है। गणेश जी बुद्धि एवम वैभव के प्रदाता है। विघ्न विनाशक गणेश सर्वप्रथम हर शुभ कार्य के प्रारम्भ में पूजे जाते है। गणेश प्रतीक है उस दिव्य शक्ति के, जो जीवन से सारी बाधाये दूर कर सफलता प्रदान करती है। शायद यही कारण है कि भारतीय दर्शन में आज भी किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में सर्वप्रथम गणेश जी की पूजा की जाती है।

पौराणिक कथाओं की मान्यतानुसार भगवान शिव और देवी पार्वती के प्रथम पुत्र गणेश है। मानव शरीर और हाथी के मस्तक से बना गणेशजी का यह समावेश प्राचीन ऋषि मुनियों द्‌वारा आदर्शों का प्रतीक और गहरे दार्शनिक मूल्यों की प्रतिमूर्ति मानी जाती है।

गणेश जी का हाथी जैसा सिर, चौडा मुंह और बडे-बडे कान प्रतीक है तीक्ष्ण बुद्धि, सांसारिक सुख भोग करने की इच्छा और अपने ज्ञान चक्षु खोलने के लिये तीव्र श्रवण क्षमता के। हाथी की सूंड इतनी शक्तिशाली होती है कि वह किसी भी प्रकार का भार आसानी से उठा लेती है, उसी तरह हमे प्रेरित करती है, जीवन में पैदा होने वाली बाधाओं से लडने के लिये खुद को सशक्त बनाने की ओर। गणेश जी के दोनों दांत प्रतीक है चातुर्य और भावनात्मकता के। उनका टूटा हुआ बायां दांत इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि मनुष्य यदि अपनी भावनाओं को वश मे कर ले, तो वह मुश्किल से मुश्किल लक्ष्य भी हासिल कर सकता है।

गणेश जी की दिव्य दृष्टि में सारा संसार समाया हुआ है। कहते है हर इन्सान की दृष्टि मे ऐसी ही विशेषता होनी चाहिये, ताकि वह इस संसार की हर वस्तु को अपने से बडा देख सके। गजानन के चारों हाथ इस बात के प्रतीक है कि वे सर्वव्यापी है।

उनके शरीर का वाम भाग भावनात्मकता का सूचक है और दायां भाग बुद्धिमत्ता का। बांये हाथ मे कुल्हाडी और दाये हाथ मे कमल का फूल इस बात के द्योतक है कि यदि भौतिक संसार से छुटकारा पाकर आध्यात्मिकता के रास्ते पर चलना हो, तो अपनी सारी भावनाओं को वश में करना होगा। जिस तरह कमल का फूल पानी में रहते हुये भी पानी को तरलता से आर्द्र नहीं होता, प्रभावित नहीं होता, ठीक वैसे ही हम इस संसार मे रहते हुये भी उसके प्रलोभनों से अछूते रह सकते है। भगवान के चरणों में रक्खे लड्डुओं की थाली हम पर उसकी कृपा से बरसनेवाली सुख और समृद्धि का संकेत है। वे अपने भक्त जनोंपर कभी भी दुःख का साया मंडराने नहीं देते है। उनका निचला दायां हाथ हम लोगों को आशीर्वाद देने की मुद्रा में नजर आता है।

गणेश जी का विशाल पेट उदर मनुष्य के हृदय के विस्तार और उसके मन में उत्पन्न होती हुई दया के भाव को दर्शाता है। लाल पीले वस्त्रों में गणेश जी की छटा देखते ही बनती है। पीला रंग शुद्‌धता, शान्ति, सच्चाई का प्रतीक है। लाल रंग प्रतीक है सांसारिक सक्रियता का। एक अच्छे इन्सान में ये सारे गुण मौजूद होने चाहिये, ताकि वह अपने सांसारिक दायित्वों का निर्वाह अच्छी तरह कर सके। उनका विशाल पेट इस बात की ओर इशारा करता है कि हर इन्सान मे जीवन के कटु तथा मीठे अनुभवों को समान रूप से झेलने की क्षमता होनी चाहिये। गणेश जी के पैरों के नीचे बैठा लड्डुओं को निहारता उनका वाहन चूहा प्रतीक है इस परिपूर्णता का, जो हम अपने लालच को तोड कर हासिल कर सकते है। गणेशजी की कृपा स्वार्थ और अहं का विनाश करती है, शायद यही कारण है कि सभी वर्ग किसी भी साम्प्रदायिक सोच से परे गणपति की अर्चना, पूजा करते है।

गणेश जी के अस्त्र असंख्य है जिनका उन्होंने समय-समय पर असुरों और विघ्न बाधाओं को नष्ट करने के लिये उपयोग किया, फिर भी उनके प्रमुख अस्त्र दस माने जाते है।

१) वज्र, २) शक्ति, ३) दण्ड, ४) गदा, ५) त्रिशूल, ६) चक्र, ७) पदम, ८) पाश, ९) खडग, १०) अंकुश इन दस प्रमुख अस्त्रों के अलावा गणेश जी के हाथों मे धनुष्यबाण, इक्षुदण्ड, एवम् मुगद्दर भी होते है। गणेश जी के सभी स्वरूपों में अंकुश अवश्य पाया जाता है, उनका दूसरा मुख्य अस्त्र पाश है जो सर्पाकार है।

गणेश परमात्मा विघ्न विनाशक है इसलिये सभी कार्यों के आरम्भ में श्री गणेश का स्मरण और पूजन किया जाता है। विघ्न के दो प्रकार है दैवी विघ्न और ऐहिक विघ्न। दैवी विघ्न दैवी कोप से उत्पन्न होते है और ऐहिक विघ्न मनुष्य आलस, द्वेष-मत्सर, मूर्खता से उत्पन्न करता है। दैवी विघ्न से लौकिक विघ्न अधिक होते है। व्यक्ति अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे, सुबुद्धि सहित कर्म करे तो वे कर्म यथारीति पूरे होते है। उसमें बाधायें वगैरेह नहीं आती लेकिन बुद्धि में अच्छी धारणा के अभाव में ये कैसे सम्भव है ? और सुबुद्धि आयेगी किधर से ? उसके लिये उपाय है श्री गणेश के बारह नामों का प्रतिदिन पठन करना उससे बुद्धि और निर्मल होती है और विघ्न निवारण की शक्ति और प्रेरणा मिलती है।

प्रत्येक देवता का विशिष्ठ वाहन निर्धारित है। उसमें सूक्ष्म या ध्वनित अर्थ छिपा है। उसे समझना आवश्यक है। जैसे गायत्री देवी का वाहन गौमाता है जो सत्व गुणों से युक्त है इस तरह शेर रजोगुण और सर्प, महिष ये तमोगुण के वाहन है। श्री गणेश बुद्धि के देवता है। बुद्धिवान लोग आमतौर पर तर्कवादी होते है। बुद्धि वैभव के बलपर संसार में बडे से बडा और श्रेष्ठ कार्य किया जा सकता है, लेकिन

बुद्धिवान की तर्क बुद्धि शंकालु होती है। चूहा जैसे अच्छी चीजे भी कुतरता है वैसे ही तर्क संदेश युक्तिवाद उत्पन्न कर अच्छे कार्य का नाश करता है। ऐसे छोटे मगर नाशकारी तर्करुपी मूषक पर श्री गणेश ने नियंत्रण स्थापित किया है।

गणपति बुद्धि के अग्रगण्य देवता है, लम्बोदर है। गजवंदन हाथी का शरीर है। ऐसे भारी भरकम देवता का वाहन छोटा चूहा हो? यह बात कुछ अटपटी सी लगती है। कई बार इस विषय मे लोग प्रश्न भी करते है। जैसे सत्वगुण का प्रतीक गौमाता है। रजोगुण का प्रतीक शेर, सिंह बाघहै तमोगुण का प्रतीक सूर्य, सांप है। ठीक उसी प्रकार से तर्क का प्रतीक चूहा रहा है।

अहर्निश काट-छांट करना, अच्छी से अच्छी वस्तुओं को निष्प्रयोजन कुतर डालना यह चूहे का स्वभाव है परन्तु तर्क को स्वतंत्र विचरने देना चाहिये। उसपर भारी भक्कम बुद्धिवाला अंकुश होना चाहिये। लम्बोदर का अर्थ बडे पेट से है। बडी से बडी को पचानेवाले गम्भीर व धैर्यशाली पुरूष को लम्बोदर कहा जाता है। तभी व्यक्ति गणपति बन सकता है। गणपति गणाध्यक्ष अर्थात मनुष्यों से सबसे श्रेष्ठ सबका लोकप्रिय नेता बन सकता है। वेद पुराणों के आख्यान समाधि भाषा में लिखे गये है। इनके प्रतीकात्मक रहस्य को समझने के लिये भी सकारात्मक एवम् तीक्ष्ण बुद्धि का होना आवश्यक है।

गणपति की पूजा केवल मनुष्य मात्र तक ठीक नही है। वह ऐसे देव है जिनकी पूजा अनादि काल से होती आयी है और आदिकाल तक होती रहेगी। गणेश जी ऐसे ही देव है जिनकी पूजा करने का लोभ देवता भी नही छोड सके। भगवान शंकर और पार्वतीजी का विवाह संस्कार भी गणेशजी की पूजा के साथ ही सम्पन्न हुआ था। वही गणेश कालान्तर में उनके पुत्र बने। ऐसा कौनसा देव है जिसने इतना महान कार्य किया होगा। पहले जिसकी पूजा हुई और बाद में वही उनका पुत्र बन गया। पुराण तो यहां तक कहते है कि भगवान गणपति की पूजा करने से ही पार्वतीजी को शंकरजी की प्राप्ति हुई थी।

शिव और पार्वतीजी के विवाह संस्कार में गणेशजी की पूजा के विधान से ही विवाह संस्कारों में गणेशजी की पूजा होने लगी। ऐसी मान्यताये है। जो प्रश्न सबके दिल में है वही प्रश्न नारदजी के मन में विचार आया और उन्होने ब्रह्माजी से प्रश्न किया कि क्या ऐसा सम्भव है पुत्र के जन्म से पहले ही उसकी आराधना होने लगे? ब्रह्माजी ने उत्तर दिया हे नारद गणेशजी विष्णु भगवान के ही समान है, उनही का एक रुप है। वे अलग-अलग पाँच देवताओं में बटें हुये है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र और राशियां है सब गणेशजी के ही अंश है। गणेशजी की पूजा मानस पूजा है। मन, वचन, और कर्म से पवित्र होकर अनुष्ठान करने से गणेश की असीम अनुकम्पा होती है।

गणेशजी की उत्पत्ति के विषय मे कई कथाये है लेकिन इन सभी में ही गणेश जी को आदि देव कहा गया है। उनकी गणना माता-पिता के आज्ञाकारी पुत्र के रूप में होती है। कथा आती है कि एक बार पार्वतीजी स्नान करने के लिये गई और गणेशजी को द्वारपाल के रूप में तैनात कर दिया। पार्वतीजीने उनसे कहा कि चाहे कोई भी आये, उसको मना कर देना, अन्दर प्रवेश मत देना। गणेशजी ने अपनी मां के आदेश का पालन किया। इसी बीच शंकरजी वहां आये और उनको भी गणेशजी ने भीतर प्रवेश करने से रोक दिया। गणेशजी ने कहा कि देव माता का आदेश है कि किसी को भी अन्दर प्रवेश नहीं देना। इसलिये अब आप भी नहीं जा सकते। शंकरजी इस बात से कुपित हुये और बोले कि जानते नहीं हो तुम किसको रोक रहे हो। गणेशजी ने उनकी एक नहीं सुनी। शंकरजीने क्रोधावेश में उनका मस्तक छेदन कर दिया। पार्वतीजी जब स्नान करके बाहर आई तो उन्होंने गणेशजी के मस्तक छेदन पर हाहाकार मचा दिया। तीनों लोक कांप उठे। देवगणों ने भी शंकरजी के नाना प्रकार से स्तुति की। देवी पार्वतीने कहा यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाये तो संहार नहीं होगा। त्रिलोकी को सुख मिले, इस कामना के साथ सभी देवों ने भगवान शंकरजी की आराधना की। त्रिलोकों के स्वामी शंकरजी ने देवताओं को उत्तर दिशा की ओर भेजा। देवताओं को एकदन्त हाथी मिला और उसके सिर को ही गणेशजी को जोड दिया गया। इसके बाद वे एकदन्त कहलाये। उसके बाद से ही सभी देव अनुष्ठान में गणेशजी की अग्रणी पूजा होने लगी। देवी पुराण मे गणेशजी की उत्पत्ति पार्वतीजी के शरीर के मैल से हुई बताई गई है। देवी के वह मानस पुत्र थे जबकि कार्तिकेय प्रसूत जन्य।

शिव-पुराण के अनुसार जब माता पार्वती ने अपने मैल से गणेशजी को उत्पन्न करके द्वारपाल के पद पर नियुक्त किया तो द्वारपाल होने के कारण गणेशजी ने भगवान शंकर को अन्दर जाने से रोक दिया जिसके फलस्वरूप दोनों का भयंकर संग्राम हुआ। उस संग्राम में शंकरजी ने गणेश का सिर काट दिया। माँ पार्वती ने भगवान शंकर से प्रार्थना की और शंकर के आदेश से देवताओं द्वारा हाथी के बच्चे के सिर को लाकर लगाने पर गणेशजी को पुन: जीवित कर दिया गया तथा सर्वाध्यक्ष का पद प्रदान किया गया और आशीर्वाद

दिया कि संसार में सबसे पहले आपकी पूजा होगी जिसके फलस्वरूप सभी विघ्नों का नाश होगा।

माता पार्वती ने संग्राम के बाद जब गणेश को देखा तो उनका चेहरा सिन्दूर के समान दिखाई दिया। उसको देख कर माता ने वरदान दिया कि आज के बाद मनुष्य तेरी सिन्दूर से पूजा करेंगे। यह पूजा सम्पूर्ण देवताओं में अग्रपूजा होती रहेगी।

जो मनुष्य पुष्प, चंदन, सिंदूर, इत्र, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दान देकर परिक्रमा करके क्षमा-प्रार्थना इत्यादि विधिपूर्वक गणेशजी की पूजा करेगा उसे भारी सिद्धियां हस्तगत हो जायेंगी और उसके सभी प्रकार के विघ्न नष्ट हो जायेंगे। गणेश जी का जन्म भाद्रपद मास कृष्ण पक्ष चतुर्थी के दिन रात्रि के पहर में हुआ था। इसलिए गणेश की पूजा व व्रत चतुर्थी से शुरू करना चाहिए यह व्रत धन लाभ तथा सम्पूर्ण सिद्धियों को प्रदान करता है।

गणेश और कार्तिकेय में एक बार बहस हुई कि कौन श्रेष्ठ? माता-पिता ने दोनों को दौड लगाने के लिये कहा। कार्तिकेय तो दौड पडे लेकिन गणेशजी ने अपने छोटे से वाहन चूहे पर सवारी करके माता-पिता की ही परिक्रमा कर ली। गणेशजी बोले माता-पिता की सेवा से बढकर कोई धाम नही है। मां से बडा कोई नहीं। पिता से बढकर कोई पालनकर्ता नहीं। इससे प्रसन्न होकर शंकरजीने उनकी पूजा को अग्रणी कर दिया। प्रजापति विश्वरूप की दो कन्याये ऋद्धि-सिद्धि से गणेशजी का विवाह हुआ। सिद्धि से क्षेम और ऋद्धि से लाभ नामक दो पुत्र हुये। ऋद्धि-सिद्धि, शुभ-लाभ आदि शब्द वस्तुतः गणेशजी की आराधना के मंत्र है, यानि गणेश परिवार की ही स्तुति।

जिसके घर में सन्तान नहीं होती वे लोग यदि सन्तान गणपति की विशिष्ट प्रतिमा अपने द्वार पर लगाये तो उन्हे पूर्ण लाभ होगा। पूर्ण भक्तिभाव एवं आस्था, श्रद्धा के साथ गणपति का पूजन शुभ मुहूर्त मे करके उन्हें घर में स्थापित करना चाहिये अथवा मुख्य द्वार पर लगाना चाहिये। जिसने भी यह प्रयोग किया है उनके घर में एक वर्ष मे ही बच्चों की किलकारियां गूंजने लगती है। गणपति १००८ नामों में से सन्तान गणपति की मंत्र पूरित प्रतिमा पर **सन्तान गणपतये नमः गर्भदोहो नमः पुत्र पौत्राय नमः** अंकित हो तो उत्तम है। इस मंत्र का पति-पत्नी दोनों सन्तान गणपति की प्रतिमा के सामने जाप भी कर सकते है।

भगवान शिव तथा जगदम्बा पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र गणेशजी संसार के सभी शुभ कार्यों में प्रथम पूजनीय है। यहां तक कि इनके पिता भगवान शिव तथा माता पार्वती की पूजा से पहले अगर इनकी पूजा नहीं की जाय तो वह इसे स्वीकार नहीं करते। भगवान श्रीकृष्ण जब सत्यभामा से विवाह करके रथ पर सवार हुये तो उन्होंने गणेश पूजन नहीं किया था। इस पर क्रुद्ध हो गणेशजी ने अपने वाहन चूहों द्वारा मार्ग की सारी भूमि में बिल बनवा कर जमीन पोली करवादी। इससे रथ जमीन से धंस गया। कृष्ण भगवान को जब अपनी भूल ज्ञात हुई तब उन्होंने गणेश वन्दना की, तब ही उनकी बारात जा पाई।

गणेशजी के हाथों में पासा (रस्सी का फंदा), परशु (फरसा), अंकुश (हाथी को नियंत्रण करने का यंत्र) विद्यमान रहते है। एक हाथ आशीर्वाद की मुद्रा में होता है या उसमे मोदक (लड्डू) शोभायमान रहता है। ये सर्पों का जनेऊ पहनते है। ये भगवान शिव के समस्त गणों के राजा होने से गणपति कहलाते है। ये सर्वदा लाल वस्त्र धारण करते है। इनके आसनपर लाल कमल पुष्प बिछे है जिसे पर ये विराजमान रहते है। इनका सिर हाथी का है और केवल एक ही दांत है अतः ये एकदन्त है। इनकी उपासना सम्पूर्ण देशभर में की जाती है। उपासक हर माह की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को व्रत व इनकी पूजा करते है। वैसे तो गणेशजी के सैकडों अवतार हुये है पर मुदगल पुराण के अनुसार ब्रह्मशक्ति सम्पन्न आठ अवतार प्रमुख है।

१) वक्रतुण्डः- इस अवतार में गणेशजी की बांकी सूंड, मानव देह, ब्रह्म के धारक, मत्सुरा नामक आसुर को मारनेवाले तथा सिंहपर सवारी करनेवाले देव के रूप में विराजमान है।

२) एकदन्तः- इस अवतार में गणेशजी का एक दांत स्पष्टरूप से दिखाई देता है। इस अवतार में उन्होंने मदासुर नामक असुर का वध किया।

३) महोदरः- इस अवतार में गणेशजी का पेट बडा विशाल है। वे ज्ञान रुपी ब्रह्म के उपासक है। उन्होंने मोहासुर नामक असुर का वध किया।

४) गजाननः- इस अवतार में भी गणेशजी का वाहन मूषक ही है। ये लोभासुर के संहारक तथा सांख्य ब्रह्म के धारक है। इस अवतार मे इनका गजमुख विशेष प्रकट है।

HHH(९)HHH

५) लम्बोदरः- यह अवतार क्रोधासुर का नाशक है। मूषक, वाहनवाला, शक्ति स्वरूप सत्य स्वरूप ब्रह्म के धारक है। इस अवतार में गणेश का उदर विशाल है।

६) विकटः- इस अवतार में गणेश सूर्य के धारक है। ये कामासुर का संहार करते है। इनका वाहन मोर है। ये परम तेजस्वी देवाधि देव है।

७) विघ्ननाशकः- इस अवतार में गणेशजी का वाहन शेषनाग है। ये विष्णु ब्रह्म (विष्णु शक्ति) के धारक तथा ममतासुर नामक राक्षस का संहार करते है।

८) धूम्रवर्णः- इस अवतार मे गणेशजी का वाहन मूषक है। ये शिव रूपी ब्रह्म को धारण करनेवाला तथा अभिमानासुर का संहार करनेवाला अवतार है।

इस प्रकार इन आठ अवतारों में गणेशजी ने मानव मन के दोष मत्सर, मद, मोह, लोभ, क्रोध, काम, ममता तथा अभिमान रूपी असुरों को नष्ट किया है। गणेश जी के यों तो सहस्त्रों नाम पर है पर उनमे से यह बारह नाम प्रमुख माने गये है। यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन इन नामों का स्मरण करे, तो उसके संकट समाप्त होकर समस्त कार्य सिद्ध होते है। ये नाम इस प्रकार है - सुमुख, एकदन्त, कपिल, गजकर्ण, लम्बोदर, विकट, विघ्ननाशक, विनायक, धूम्रकेतू, गणाध्यक्ष, भालचन्द्र, गजानन।

श्री गणेश के बारह नाम प्रसिद्ध हैं। उनसे श्रीगणेश का व्यक्तिरुप स्पष्ट होता है। वह है-

१) समुख- श्रीगणेश सभी इन्द्रियों में मुख्य हैं तथा उनका मुख सुंदर हैं, यह अर्थ है। २) एकदन्त- एक दांतवाले, एकभाव दिखानेवाले, भेदभाव न करनेवाले। ३) कपिल- कलि अर्थात् वानररूपी चंचल मन को नियंत्रित करनेवाले। ४) गजकर्ण- गुप्त बातें भी जाननेवाले, बड़े कानवाले। ५) लंबोदर- अपने उदर में सबको समाविष्ट करनेवाले। ६) बिकट- शक्ति, बुद्धि, गुणों से प्रचंड जिनके सामने सभी नतमस्तक होते हैं। ७) विघ्ननाश- अपने भक्तों के विघ्न नष्ट करनेवाले। ८) विनायक- सबका नायक, नेतृत्व करनेवाले। **९) धूम्रकेतु-** सभी भ्रम, कल्पना, संशय नष्ट करनेवाले। १०) गणाध्यक्ष- सभी इन्द्रिय गणों अथवा देवताओं के अध्यक्ष। ११) भालचंद्र- मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले, यानी जिनका मस्तक शांत व शीतल रहता है। १२) गजानन- जिसका मस्तक हाथी का है, हाथी की तरह जो शांत, सूक्ष्म एवं दूरदर्शी है।

पूर्व कल्प की घटना है कि ग्रहों में भारी ग्रह शनि देव अपने इष्ट के ध्यान में निमग्न थे। उसी समय शनि देव की पत्नी ऋतु स्नान के बाद अपना ऋतु काल सफल करने की आकांक्षा से शनि देव के समक्ष याचक बन कर आई किन्तु इष्ट में ध्यान मग्न शनि महाराज का ध्यान भंग नही हुआ इससे निराशा से क्रोध उपजा और क्रोध में उन्होने अपने पति को श्राप दिया कि आज आपने मुझे देखा तक नहीं अत: आप अब पहली बार ध्यान अवस्था के बाद जिस किसी पर भी दृष्टि पात करेंगे उसका मस्तक धड से अलग हो जायेगा। यह दारूण श्राप सुनकर देवतागणों ने उन्हें क्षमा करने के लिये याचना की तब शनि पत्नी ने कहा मेरा श्राप तो मिथ्या नहीं होगा किन्तु अब पहली बार जब शनि किसी को समग्र निहारेंगे या देखेंगे तब उसका मस्तक कटेगा तब से शनि देवता अपनी दृष्टि बन्द रखने या नीचे की ओर दृष्टि (आने वाले का मुख नहीं देखते हुये) रख कर बात करते।

एक बार अपनी प्रिय दासियां सखी भाव रखनेवाली जया विजया के आग्रह पर मां उमा ने एक सुन्दर मानसी पुत्र की उत्पत्ति की और उन्हें अपना विशेष द्वार रक्षक पद पर रख दिया। इस दिव्य पुत्र को देखने हेतु मां उमा ने सभी देवी देवताओं को आमंत्रित किया। लेकिन इस आमंत्रण में सभी आये लेकिन शनि देव नहीं पधारे। इस पर मां पार्वती ने विशेष दूत भेज कर शनि को बुलाने का आदेश दिया और न आने पर परिणाम भुगतने को तैयार रहे यह चेतावनी पूर्ण आदेश दिया। मां आदि शक्ति जगदम्बा पार्वती के आदेशानुसार शनि उस महान उत्सव सभा में पधारे किन्तु अपना सिर झुका कर बैठे रहे। भगवती मां गौरी ने प्रभु सर्वेश्वर शिवजी से पूछा हे जगदात्मा शनि मेरे इस सुन्दर पुत्र की और न देख कर अपना मुंह फेर कर क्यो बैठे ? लीलामय महादेव ने उत्तर दिया हे गौरी इसे आप ही पूछ लें। तब मां गौरी ने शनि देव से कहा हे शनि सब देवी देवता, यक्ष किन्नर, नाग सभी मेरे पुत्र को देख रहे है लेकिन क्या कारण है जो आप दृष्टि चुराये उदास स्वरूप बैठे है। शनि ने उतर दिया हे माता मुझे मेरी पत्नी का श्राप है कि ध्यान के उपरान्त मैं जिसका भी मुंह देखूंगा उसका मुख अपने शरीर से अलग हो जायेगा, इसलिये मैं आपके इस पुत्र को नहीं देख रहा हूं, तब मां ने कहा तुम इसके मुख को निहारो अन्यथा मैं तुम्हें श्राप देदूंगी। मेरे प्रभाव से इसका मुख नहीं गिरेगा। सर्व शक्तिमान शिव शिवा के प्रभाव को ध्यान में

रखते हुये शनि ने शिवा पुत्र की और दृष्टिपात किया और श्रापवश उस बालक का मस्तक अलग हो गया तब चारों और हाहाकार मच गया ।भगवान शिव को जंगल में ढूंढने पर सबसे पहले एक गज मिला उसका मुख काटकर भगवान शिव ने वह गजमुख संजीवनी मन्त्र से उस बालक के धड से जोडा और उसे जीवित कर दिया तब से उस कल्प में भगवान गणेश देवताओं स्व ईश्वरों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) के वरदान से प्रथमेश प्रथम पूज्य हो गये।

चतुर्थी व्रत के विधान में प्रात: सूर्यदेव के समक्ष व्रत का संकल्प किया जाना चाहिये तथा रात्रि चन्द्रमा दर्शन करते समय ही पूर्वकल्प में शनि दृष्टि से पृथक हुये और चन्द्रमा में समाये श्री गणेश जी के मुख पर का हमें अभिनन्दन करना चाहिये। प्रणाम कर पूजा अर्ध नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। अपनें मुख्य द्वार पर गणेशजी की प्रतिमा लकडी या पाषाण धातु की प्राचीन समय से भवनों एवं मन्दिरों मे लगाते रहे है। यह वास्तु दोषों एवं विघ्नों का हरण करती है। इस श्वेत वराह कल्प के मन्वन्तर के २८ वी चतुर्युगी की कथा में शिवजी ने गौरी के आग्रह पर गणेशजी को सभी के गणाध्यक्ष पद पर विभूषित किया।

पिता की परिक्रमा करनेवाले गणेश जी प्रथम सर्वपूज्य बने। एक सुपारी में मौली बांध कर हल्दी गांठ रख कर या पीली मिट्टी की ढली अथवा मिट्टी की प्रतिमा पर आवाहन कर पूजन करने से मोदक, भोग, हवन या हवन मे दुर्वांकुर १०८ गंगण पाये, अर्पण करे। गुड, भोग, गुगुल के हवन से गणेश प्रसन्न होते है।

गणेशजी ने माहासुर, भदासुर, मत्सासुर आदि का वध किया है। भगवान गणेशजी ऋद्धि-सिद्धि के पति एवं शुभ लाभ के पिता शिव शिवा के पुत्र (कल्याण के पुत्र) है। मनुष्य में छुपे काम, क्रोध, मद, मत्सर, लोभादि, असुरों, कामासुर, मदासुर आदि के हन्ता है। अत: गणेशजी की कृपा हेतु चतुर्थीव्रत, दुर्वांकुर, गुड से पूजन एवं मन आत्मा बुद्धि से प्रयत्नपूर्वक मद, मोह, मत्सरादि कुप्रवृतियों को निकलने पर ही हमे शुभ लाभ परम कल्याण की ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त होकर सिद्ध जीवन, ऋद्ध जीवन बद्ध हो सकेगा।

गुणीजन, ज्ञानीजन और योगियों के गुरु श्रीगणेश जिनका ध्यान समस्त देवता करते है। जो ऐश्वर्यदाता, सम्पूर्ण विघ्नहर्ता, शान्त तथा भक्त वत्सल है ऐसे उमापुत्र श्रीगणेश की पूजा अर्चना करने से निश्चित ही मनुष्य के समस्त दु:खों व कष्टों का निवारण हो जाता है। हिन्दू संस्कृति में विघ्नेश्वर कहा जाता है। वे भगवती उमा के कनिष्ठ पुत्र है। भाद्रपद मास की शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि को भगवान गणेश का प्राकट्य हुआ। एक दिन भगवती उमा गणेश को द्वार पर सुरक्षा के लिये बिठा कर स्नान कर रही थी सहसा शिवजी की समाधि टूटी, वे जब अपनी कुटी मे प्रवेश करने लगे तो गणेश ने दृढ़ता पूर्वक शिवजी को रोक लिया। शिवजी के बार-बार समझाने बुझाने पर भी जब गणेश नहीं माने और अडे रहे तो उन्होंने क्रोधावेश में गणेश जी के मस्तक को अपने त्रिशूल से उच्छेदित कर दिया। शिवजी से भगवती उमा ने जब अपने पुत्र गणेश के शिरोच्छेदन की बात सुनी तो क्रोध मे प्रलयंकर रूप धारण कर संसार के विनाश हेतु उदत्त हो गई, तब भगवान विष्णु और शिवने प्रयत्न करके गज शिशु का शिरोच्छेदन कर गणेशजी के शरीर में जोडकर उन्हे पुनर्जीवन प्रदान किया। गजमस्तक धारण करने से गणेश गजानन कहलाये। भगवती उमा का क्रोध फिर भी शान्त नहीं हुआ तब भगवान शिव ने अपने समस्त गुणों का अधिपति बनाकर देवों में उन्हे परमपूज्य बनाया। गणेशजी को गणपति या गणाधिपति कहा गया है। उन्हे विघ्नेश्वर या विघ्नविनाशक भी कहा जाता है। गण का तात्पर्य है शिष्य गणेश का तात्पर्य है शिष्यों का स्वामी अर्थात गणेश से तात्पर्य है गुरु। गुरु ही समस्त देवों में प्रथमपूज्य है। गुरु की ही पूजा समस्त देवों से पूर्व होती है। शिष्य अपने समस्त कर्मों का शुभारम्भ गुरु की पूजा करके करता है। गुरु ही शिष्य के समस्त विघ्नों में नाश करने में समर्थ है। गुरु ही अध्यात्मज्ञान प्रदान कर शिष्य के समस्त शोकों का हरण करता है।

महाराष्ट्र राज्य मे गणेश चतुर्थी से अनन्त चतुर्दशी तक गणेश उत्सव की विशेष धूम रहती है। हर गल्ली मोहल्ले मे बडे-बडे पंडाल सजते है तथा गणपति की विशालकाय प्रतिमायें स्थापित की जाती है। इस उत्सव की शुरुआत बाल गंगाधर तिलक ने सन १८९३ ई में लोगों को एकत्र करने के लिये की थी। अनन्त चतुर्दशी का दिन प्रतिमा विसर्जन का होता है। अत: इस दिन अन्तिम प्रसाद के रूप में गणेशजी का सबसे प्रिय मिष्ठान मोदक उन्हें भेट किया जाता है तथा सिन्दूर से अभिषेक कर पीताम्बर अर्पित किया जाता है।

देश मे शायद ही ऐसा कोई हिन्दू परिवार होगा जहां गणेशजी की पूजा न होती हो। सभी हिन्दू परिवार में हर शुभकार्य में गणेशजी की पूजा होती है। बच्चे को पाठशाला भेजते है तब उससे गणेशजी का पूजन करवाया जाता है ताकि बच्चा शिक्षा मे सफल हो इच्छानुसार

विद्या प्राप्त कर परीक्षा में उत्तीर्ण हो, श्रेष्ठ विद्वान बने। इसी तरह विवाह के समय भी पग-पग पर गणेश का स्मरण होता है जिससे कि भविष्य में दोनों का जीवन सुखी हो और योग्य सन्तान प्राप्त करे। घर से जब व्यक्ति बाहर जाता है तब भी वह गणेश का ही स्मरण करता है जिससे उसकी यात्रा सानन्द सम्पन्न हो। व्यापार व्यवसाय करने के पूर्व गणेशजी की वन्दना की जाती है ताकि व्यापार में लाभ हो। किसान तो गणेश जी को याद करना भूलते ही नहीं, गणेश चतुर्थी के दिन किसान मन्दिर मे जाकर घंटा घडियाल बजा कर गणेशजी का पूजन करते है। एक तरह से अगर देखा जाये तो गणेशजी का जन्म राष्ट्र के अभ्युदय की भी प्रेरणा देता है। गणेशजी ने १० वर्ष की आयु में सबको संगठित किया था एवं धूम्राक्ष, नरान्तक, देवान्तक आदि राक्षसों का नाश किया था जो राज्य करते समय सज्जन तथा प्रजानन को पीडित करते थे। इन्ही कारणों से गणेशजी विघ्न नाशक भी माने गये। गणेशजी का चरित्र राष्ट्रीय उन्नति के लिये भी आदर्श है। इनकी सारी योजनाये गुप्त रहा करती थी। काम हो जाने पर ही इनकी योजना की भनक किसी को लगती थी। इनका उपनयन संस्कार कश्यप ऋषि के आश्रम में हुआ था। यज्ञोपवीत की भिक्षा में वरूण देव ने इनको पाश दिया था। पाश से शत्रुओं को किस तरह से बांधा जाता है इसकी विधि भी इनको बतायी थी। भगवान शंकर ने इनको त्रिशूल प्रदान किया था एवं उसके संचालन की विधि की जानकारी दी थी। परशुराम जी की मां रेणुकादेवी ने इन्हें फरसा प्रदान करके यह आशीर्वाद दिया था कि तू शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ होगा। इसी तरह वहां उपस्थित अनेक देवताओं ने विनायक को अस्त्र शस्त्र प्रदान करके सामूहिक रूप से आशीर्वाद दिया था कि तू शस्त्रों से शीघ्र दूसरों का नाश करेगा। इस तरह विनायक को सारे विश्व में आलौकिक स्थान प्राप्त हो गया।

गणपति का राष्ट्र संघटन तत्व बडा ही सरल और बौद्धप्रद्ध है तथा उन्नति में सहायक है। हिन्दुओं के घर-घर में गणेशजी की पूजा होती है परन्तु गणेशजी के द्वारा किये हुये कार्यों की ओर किसी का भी ध्यान नही जाता तथा उनको समझने का प्रयत्न भी नहीं किया जाता फिर उनके कार्यों से व्यक्ति कैसे प्रेरणा लेकर के आचरण करेगा किन्तु जो राष्ट्र गणेशजी की नीतियों का अनुसरण करेगा वह राष्ट्र अवश्य उन्नति के शिखरों को छुयेगा। गणेश शब्द का विग्रह है गण+ईश। गण का अर्थ होता है देवताओं का समूह और ईश शब्द का अर्थ होता है उसका स्वामी जो परमपिता परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नहीं सकता। अतएव गणेशजी की पूजा करके हम उस ईश्वर की ही पूजा करते है परन्तु गणेशजी को सिर्फ पूजा तक ही सीमित नहीं करना चाहिये बल्कि उनके किये हुये कार्यों से हम शिक्षा ग्रहण करें एवं सदआचरण करे तभी सच्चे अर्थों में गणेश पर्व की सार्थकता है।

गणेश जी की आकृति रहस्यमयी है। उनके देह के हर एक भाग से महत्वपूर्ण तथ्यों का रहस्योद्घाटन होता है। इनका सिर हाथी का है, हाथी पशुओं में बुद्धिमान माना जाता है, सिर पर अर्धचन्द्र शीतलता और शान्ति प्रदान करने वाला है। हाथी के नेत्र भी दूसरे जीवों से भिन्न हैं, वह हर वस्तु को अपने वास्तविक आकार से बड़ा देखता है, इससे यह शिक्षा मिलती है कि दूसरों को अपने से बड़ा समझ उनका आदर करो। यह नम्रता का दैवी गुण है जिसे सभी को अपनाना चाहिये। छोटे नेत्रों का यह भी अर्थ है कि हर वस्तु का निरीक्षण-परीक्षण सूक्ष्मता से करना चाहिये। बड़े कान हैं, लम्बी नाक हैं, बड़ा पेट है। मनुष्य जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये जिन गुणों की आवश्यकता होती है, उन्हें गणेश जी के रहस्यमय आकार से समझाया गया है।

गणेश का स्वरूप शक्ति और शिवतत्व का साकार स्वरूप है, और इन दोनों तत्त्वों का सुखद स्वरूप ही किसी कार्य में पूर्णता ला सकता है, गणेश शब्द की व्याख्या अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, गणेश का ग मन के द्वारा, बुद्धि के द्वारा ग्रहण करने योग्य, वर्णन करने योग्य, संपूर्ण भौतिक जगत को स्पष्ट करता है, बुद्धि और वाणी से परे, ब्रह्म विद्या स्वरूप-परमात्मा को स्पष्ट करता है और इन दोनों के ईश अर्थात् स्वामी गणेश कहे गये हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और पूर्णता ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा संपादित की जाती है, लेकिन सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही यह व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे और विघ्न न आये यह गणेश के जिम्मे है, आसुरी प्रकृति के अभक्तों के लिए विघ्नहर्ता ऋद्धि-सिद्धि के प्रदाता हैं, इसीलिए श्री गणेश को सर्व विघ्नैकरहरण, सर्वकामना फलप्रद, अनन्तानन्तसुखद और सुमंगल कहा गया है।

महागणपति का लोक जीवन में लोक कथाओं में जो विवरण एवं स्थान है, उतना विवरण किसी अन्य देव शक्ति का नहीं होता, सामान्य बातचीत में किसी कार्य का शुभारंभ करो करने, कार्य का श्री गणेश कहा जाता है।

गणेशजी भगवान के ही एक विशिष्ट रूप हैं। वे गौरीनंदन, गणपति, गजानन, एकदंत व लंबोदर आदि अनेक नाम व रूपों में जाने

जाते हैं। हर शुभ कार्य के आरंभ में उनकी पूजा की जाती है। गणेशजी की वंदना प्राय: सभी हिंदू प्रत्येक शुभ कार्य के आरंभ में करते हैं। यहां तक कि किसी कार्य आरंभ के लिए श्रीगणेश करना एक मुहावरा ही बन गया है। गणेशजी की यह वंदना इसलिए की जाती है ताकि कार्य निर्विघ्न पूरा हो। गणेशपूजा केवल भारत में ही सीमित नहीं है। बृहत्तर भारत यानी नेपाल, तिब्बत, सिंगापुर, चीन तथा जापान तक में गणेश की उपासना की जाती रही है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार जन्म के कुछ देर बाद शनैश्वर की दृष्टि पड़ने से उनका सिर कट गया था। इस पर विष्णु ने एक हाथी का सिर काटकर उनके धड़ पर जोड़ दिया। इसी कारण उनका नाम गजानन पड़ा। इसी पुराण के अनुसार एक बार परशुराम जी शिव-पार्वती के दर्शन के लिए कैलास गए। उस समय वे सोए थे और गणेश जी पहरा दे रहे थे, अत: उन्होंने परशुराम को रोका। इसी बात पर युद्ध हो गया और अंतत: परशुराम जी ने अपने फरसे से उनका एक दांत काट लिया। इस कारण वे एकदंत है।

माघकाव्य के अनुसार उनका एक दांत रावण ने उखाड़ लिया था। गणेश जन्म की लोक में एक कथा यह भी प्रचलित है कि एक बार पार्वती जी स्नान करने गई। वहां उनका मन उबने लगा और समय काटने के लिए उन्होंने मिट्टी का एक एक गजमुख बालक बना डाला और पीछे से उसी पिंड में जान डाल दी, जो गणेश हुए। गणेश संबंधी कथाओं में एक मुख्य कथा यह भी है कि उन्होंने महाभारत का लेखन कार्य किया था। भगवान वेदव्यास जब महाभारत की रचना का विचार कर चुके तब उन्हें उसे लिखवाने की चिंता हुई। इस कार्य के लिए उन्हें ब्रह्मा जी ने गणेश को लेने का परामर्श दिया। गणेशजी इस शर्त पर लिखने को राजी हुए कि यदि व्यासजी कहीं रुकेंगे तो मैं लेखन कार्य बंद कर दूगा।

व्यासजी ने इसे समझ-समझकर लिखने के अनुरोध के साथ स्वीकार किया। जब उन्हें रुकना होता था तो वे कूट श्लोकों की रचना करके बोल देते थे। इनके अर्थ समझने के लिए गणेश को रुकना पडता था। इस बीच व्यास अनेक श्लोकों की रचना कर डालते थे। गणेशजी विद्या-बुद्धि विधायक हैं। इस रूप में भी उनकी बहुत वंदना की गई है। वैदिक बृहस्पति भी बुद्धि के देवता हैं। गणेशजी के आयुधों में परशु प्रधान है और उनका नाम गणपति है।

महायान बौद्ध संप्रदाय और तांत्रिक संप्रदायों में भी गणेश पूजन के विविध प्रकार और क्रिया कलाप मिलते हैं। हठयोग में शरीर के भीतर जो अनेक चक्रों की कल्पना की गई है, उसमें मूलाधार चक्र के देवता गणेश हैं।

प्रतिवर्षानुसार गौरी-सुत गणपति हमारे मध्य पूरे दस दिनों के लिए विराजमान रहेंगे। ये गिरिजानंदन ऐसे मेहमान हैं, जो हैं तो एक ही रूप परंतु सबके घरों में अलग-अलग स्वरूपों के साथ पधारते हैं। किसी मूर्ति में हाथ में लड्डू है तो किसी में सिर पर सुंदर पगड़ी है। किसी प्रतिमा में चूहे पर बैठे हैं तो किसी में आराम से पालथी मारे बैठे हैं। इन बप्पा मोरया के आने की खुशी में बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सभी में एक जैसा उत्साह रहता है।

अनेक नामों से विभूषित किए जाने वाले गणेशजी हर शुभ कार्य के पहले पूजे जाते हैं। ये ऐसे आराध्य हैं, जिनका आह्वान किए बगैर आप वास्तु पूजन, जनेऊ, विवाह, किसी व्रत का उद्यापन नहीं कर सकते। चमत्कार की बात तो यह है कि इनके पिता श्री महादेवजी का पूजन तथा शंकरजी के ही व्रत सोलह सोमवार का उद्यापन इनकी स्थापना के बाद ही संपन्न होता है। यहां तक कि कलयुग में महापूजा समझी जाने वाली श्री सत्यनारायण व्रत कथा में भी विनायक ही प्रथमत: पूजे जाते हैं।

गणपतिजी का सबसे विशिष्ट गुण इनका विघ्न-विनाशक होना है। इनकी जितनी भी स्तुति की जाए कम है। हम सुंदरता के कायल होते हैं। सुंदर चेहरों के पीछे दुनिया भागती है पर हमारे गणपति की नाक हाथी की है। पेट बेडौल-सा है तथा सवारी करते भी हैं तो चूहे की। इतनी सारी असामान्य बातों के बाद भी वे सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे दु:ख देते नहीं, हरते हैं। ये सब बातें मानव जीवन के लिए अनुकरणीय है।

उनकी नाक टेढ़ी है, इसीलिए वे वक्रतुंड हैं। उनका उदर बड़ा है, इसलिए वे लम्बोदर हैं। उनकी सवारी चूहा है, जाहिर है वे मूषकवाहन हैं। उनकी सूंड के पास एक दांत परिलक्षित होता है, इसलिए वे एकदंत भी हैं। वे सहज हैं, सरल हैं। वे जन-जन के प्रिय देवता हैं। उनका हर घर में आना शुभ है। इन दस दिनों में उत्सव-सा वातावरण रहता है। जैसे समूचा जनमानस ऊर्जावान हो जाता है। दोनों समय गणपतिजी की आरती होती है। जहां सब देवता फूलों से प्रसन्न होते हैं, वहीं गजानन दुर्वा और केवड़ा पसंद करते हैं।

उनकी पसंदीदा वस्तुएं मोदक और लड्डू हैं। भरपेट खाने वाले ये मंगलमूर्ति जब अपने भक्तों को चतुर्थी का उपवास करवाते हैं, तब बिना चंद्रोदय (चंद्रदर्शन) के उपवास छोड़ना वर्ज्य माना जाता है। अष्ट विनायक की यात्रा और विभिन्न गणेश प्रतिमाओं के दर्शन भी अपने आपमें एक अनूठा और मन को विभोर कर देने वाला अनुभव है। अष्ट विनायक के सभी आठों गणपति महाराष्ट्र में हैं, जहां जाने के लिए पुणे से आसानी से साधन उपलब्ध हैं। यहां भी सभी गणेश प्रतिमाओं के विभिन्न नाम हैं तथा प्रत्येक गणपति के उस विशिष्ट स्वरूप का अपना अलग महत्व है। मोरगांव में मयूरेश्वर है। पाली क्षेत्र में बल्लाळेश्वर हैं। ओझर तीर्थ के श्री विघ्नेश्वर तथा रांझणगांव के श्री महागणपति। थेऊर में चिंतामणि गणेश और लेण्याद्रि में गिरिजात्मज गणेशजी हैं। सिद्धटेक स्थान पर सिद्धि विनायक तथा महाड़ में वरदविनायक विद्यमान हैं।

लम्बोदरावतारो वै, क्रोधासुरनिबर्हण:। शक्तिब्रह्माखुग: सद् यत् तस्य धारक उच्यते।।

लम्बोदर नामक अवतार क्रोधासुर का उन्मूलन करने वाला है, वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषक वाहन ही है।

श्री विष्णु के महामोहप्रद अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न मोहिनी रूप को देखकर कामारि कामविह्वल हो गए थे। जब हंसते हुए श्री विष्णु ने मोहिनी रूप को त्यागकर पुरुष रूप धारण किया, तब शिव खिन्न हो गए, किन्तु उनका शुक्र स्खलित हो गया। उससे एक परम शक्ति सम्पन्न असुर पैदा हुआ। उस परम प्रतापी असुर का वर्ण श्याम था। उसके नेत्र तांबे के समान चमक रहे थे।

उक्त असुर ने शुक्राचार्य के समीप जाकर उनके चरणों में अत्यंत विनयपूर्वक प्रणाम किया, फिर विनीत स्वर में कहा- प्रभो। आप मुझ शिष्य का पालन कीजिए।

शुक्राचार्य कुछ देर के लिए ध्यानमग्न हुए। फिर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा- शिव के क्रोध के समय सहसा उनके शुक्र का स्खलन हो गया और उसी से तुम्हारी उत्पत्ति हुई, इस कारण तुम्हारा नाम क्रोधासुर होगा।

शुक्राचार्य ने उक्त क्रोधासुर का संस्कार कर उसे प्रत्येक रीति से योग्य बनाया। फिर उन्होंने शम्बर की अत्यंत लावण्यवती पुत्री प्रीति के साथ उसका विवाह करा दिया। अत्यन्त प्रसन्न होकर आचार्य चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ असुर ने निवेदन किया- मैं आपकी आज्ञा प्राप्त ब्राह्मण विजय करना चाहता हूं, अतएव आप मुझे यश प्रदान करने वाला मंत्र देने की कृपा कीजिए।

दैत्यों के हितचिंतक शुक्राचार्य ने उसे सविधि सूर्य मंत्र (घृणि सूर्य आदित्य ओम्) प्रदान किया। क्रोधासुर ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया और वह अरण्य में चला गया।

वहां वह एक पैर पर खड़ा होकर उक्त सूर्य मंत्र का जप करने लगा। उसकी दृष्टि ऊपर उठी हुई थी। वह निराहार रहकर वर्षा, शीत और आतप का दु:ख सहता हुआ सूर्य देव को प्रसन्न करने के लिए दारुण तप कर रहा था।

असुर के दिव्य सहस्त्र वर्षों तक तप करने के अनन्तर भगवान सूर्यदेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और बोले वरं वृणु।

क्रोधासुर अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने तिमिरारि के चरणों में प्रणाम कर उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया। फिर उसने विनयपूर्वक वर की याचना की- उत्पत्ति स्थिति संहारयुक्त देवनायक। मेरी मृत्यु न हो। मैं संपूर्ण ब्रह्माण्ड पर विजय प्राप्त कर लूं। आप मुझे चराचर का राज्य प्रदान कीजिए, आरोग्य दीजिए। मैं अद्वितीय सिद्ध होऊं।

क्रोधासुर के भयोत्पादक वचन सुन अत्यंत विस्मित सूर्यदेव ने उसे वर दे दिया- तुम्हारा अभीष्ट सफल होगा।

क्रोधासुर अत्यंत प्रसन्न होकर लौटा। उस सफल मनोरथ महायशस्वी को देखकर उसके सुहृद् आनंदित हुए। उसने पहले गुरु के चरणों की वंदना की, फिर अपने घर गया। उसकी सहधर्मिणी प्रीति ने दो पुत्र उत्पन्न किए- हर्ष और शोक। वह विविध प्रकार के भोग भोगने लगा।

क्रोधासुर ने परम नीतिज्ञ शुक्राचार्य को आदरपूर्वक बुलाकर उनकी पूजा की। शुक्राचार्य ने उसे अत्यंत सुंदर आवेशपुरी में दैत्याधिपति के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। असुर अपने महादारुण प्रधानों के साथ शासन करने लगा।

कुछ दिनों बाद उसने असुरों के सम्मुख अपनी ब्रह्माण्ड विजय की इच्छा व्यक्त की। असुर बड़े प्रसन्न हुए। विजय यात्रा प्रारंभ हुई। उसने सहज ही पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। फिर वह अमरावती पर दौड़ा। उसके डर से देवगण भागे। इससे स्वर्ग असुर के अधीन हो गया। इसी प्रकार वैकुण्ठ और कैलास पर भी उस महादैत्य का राज्य स्थापित हुआ। अन्तत: क्रोधासुर ने अपना दूत भगवान

सूर्यदेव के पास भेजा। सूर्यदेव वर प्रदान कर चुके थे, अतएव दु:खी हृदय से उन्होंने सूर्यलोक त्याग दिया। वहां क्रोधासुर का शासन होने लगा। अत्यंत दु:खी देवताओं और ऋषियों ने गणेश की आराधना की। इससे संतुष्ट होकर लम्बोदर प्रकट हुए। उन्होंने कहा- देवताओं और ऋषियों। मैं क्रोधासुर का अहंकार चूर्णकर उसे नष्ट कर दूंगा। आप लोग निश्चिंत हो जाए।

आकाशवाणी से यह संवाद क्रोधासुर ने भी सुना। वह भयाक्रान्त हो मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटने पर उसके वीर सैनिकों ने उसे समझाया- संपूर्ण ब्रह्माण्ड हमारे अधीन है। आप आज्ञा प्रदान करें, हम किसी भी शत्रु का नाश करने में समर्थ और प्रतिक्षण प्रस्तुत है।

अपने वीर सैनिकों के वचन सुन क्रोधासुर अत्यंत प्रसन्न हुआ। वह अपनी अजेय सेना के साथ समरांगण में पहुंचा। वहां उसने मूषकारूढ़ गजमुख, त्रिनयन, लम्बोदर को देखा। उनकी नाभि में शेष लिपटे थे। लम्बोदर के इस विचित्र स्वरूप को देखकर क्रोधासुर अत्यंत कुपित हुआ। भीषण संग्राम होने लगा। लम्बोदर के साथ देवगण भी असुरों का सर्वनाश करने लगे। क्रोधासुर के बलि, रावण, जृम्भ, माल्यवान, कुंभकर्ण और राहु आदि महाबलवान योद्धा अत्यंत आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। वे मृतप्राय हो गए। क्रोधासुर दु:ख से अत्यंत व्याकुल हो गया। उसने लम्बोदर को सम्मुख देखकर कहा- मूर्ख लम्बोदर। तू ब्रह्माण्ड विजयी शूर के सम्मुख युद्ध करना चाहता है। तेरी बुद्धि मारी गई है। तू शीघ्र ही मेरी शरण में आ जा, अन्यथा मैं तेरा लम्बा उदर एक ही शर से फोड दूंगा। भगवान लम्बोदर ने उत्तर दिया- अरे दैत्य। तू व्यर्थ क्यों बकता है ? मैं तुझ जैसे खल का वध करने के लिए ही यहां आया हूं। तूने सूर्य के वर के प्रभाव से बड़ा अधर्म किया, पर तेरे अत्यंत पाप से वे सारे शुभ कर्म निष्फल हो गए। अब मैं तेरा और तेरे अधर्मों का नाश कर धर्म की स्थापना करूंगा। मैं मन-वाणी से, परे, आनन्दस्वरूप और संपूर्ण भूतों में वास करता हूं, फिर तू मुझ पर कैसे विजय प्राप्त कर सकेगा ?

असुर ने तुरंत पूछा- ब्रह्म का जन्म नहीं होता और मन-वाणी से अगोचर को मैं देख कैसे रहा हूँ ?

लम्बोदर बोले- मेरे वामांग में जो यह सिद्धि है, वह भ्रान्तिस्वरूपा है। सब लोग सिद्धि के लिए भटकते हैं और भ्रम में पड़े रहते है। दाएं भाग में स्वयं बुद्धि विराजमान है, जो भ्रान्ति को धारण करती है। बुद्धि से विचार करके फिर उस विषय में मनुष्य भ्रान्त होता है। स्वयं बुद्धि चित्तरूपा है और वह पांच प्रकार की बताई गई है। सिद्धि पंच भ्रांतिमयी है और मैं इन दोनों बुद्धि और सिद्धि का पति हूं। नाना प्रकार का विश्व और ब्रह्म सदा मेरे उदर में स्थित है, इसलिए मैं लम्बोदर कहा गया हूं। सारा जगत मेरे उदर से उत्पन्न हुआ है, मुझसे ही पालित होता है और अन्त में सबको अपने उदरस्थ करके मैं निरंतर क्रीड़ा करता रहता हूं। अतएव यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो मेरी शरण में आ जाओ। शुक्राचार्य मुझे जानते हैं। तुम तो समझाने पर भी मेरे तत्व को नहीं समझ सकते। न तो मैं दैत्यों के वध का अभिलाषी हूं और न देवताओं का ही वध मुझे प्रिय है। अपने-अपने धर्म में लगे हुए सब लोगों का मैं पालन करता हूं, इसमें संशय नहीं है। क्रोधासुर की शंकाओं का समाधान होते ही वह प्रभु के चरणों में गिर पड़ा। उसने भक्तिभाव से उनकी पूजा कर गद्‌गद कण्ठ से स्तुति की। सहज कृपालु लम्बोदर ने उसे क्षमा तो कर ही दिया, उसे अपनी भक्ति भी प्रदान कर दी।

क्रोधासुर ने परम प्रभु लम्बोदर के चरण कमलों में पुन: प्रणाम कर उनकी पूजा की। फिर वह उनकी आज्ञा प्राप्त कर शान्त जीवन व्यतीत करने के लिए पाताल को चला गया। प्रसन्न देवगण देवदेव लम्बोदर का स्तवन करने लगे।

निश्चित ही दस दिनों के पश्चात गणेशजी की बिदाई मन को उदास कर देगी पर जाकर बार-बार वापस आने की यह सुखद श्रृंखला ऐसे ही युगों-युगों तक जारी रहेगी। आज भी कई परिवारों में गणपतिजी के विसर्जन के समय उनके साथ एक पोटली में (शिदोरी) चावल-गुड़ और पैसा (सिक्का) बांधकर देने का रिवाज है। इसका उद्देश्य है, वे जितने दिन हमसे दूर रहें, जिस भी यात्रा पर रहें, भूखे न रहें। हम इन दस दिनों में एक लय-ताल में बद्ध होकर इस कलानिधि की हर तरह से पूजा करें। इनके गूढ़ चरित्र को समझें। इनके गुणों से कुछ सीखें। विघ्नहर्ता बनें।

होनहार होकर रहे, मिटे नहि विधि के अंक, राई घटे न तिल बढ़े, रह रे जीव निशंक।

दुनिया बदलने वालों के इरादे बदल गये, वे ही सही निकले जो खुद को बदल गये।
नजाकते वक्त को भांप कर बदल ले खुद को, वरना यह दौर आपको भी बदल देगा।।

प्रार्थना

प्रार्थना करता नहीं, होना है, प्रार्थना स्व के लिए नहीं, पर के लिये है, प्रार्थना याचना नहीं, कृतज्ञता ज्ञापन हैं।

पवित्रता जीवन का मूल है और प्रार्थना यहां तक पहुंचने का रास्ता। प्रार्थना को हम चाहे जिस नाम से पुकारे, पूजा उपासना, स्तुति, बन्दगी या कुछ और लेकिन सबमे एक ही सार्वभौम सत्य निहित है और वह है शाश्वत मूल्यों की पहचान और स्वीकार। प्रार्थना का विधान सभी धर्मों में है। हिन्दू गीता का पठन करता है मुसलमान कुरान, सिख गुरु ग्रन्थ साहिब, ईसाई बाईबल, बौद्ध धम्मपद, और जैन आगम। नाम, रूप, शब्द, सिद्धान्त, शाख, संस्कृति, संस्कार की भिन्नताओं के बाबजूद साध्य सबका एक है, भीतर का बदलाव, स्वयम् की पहचान और शाश्वत मूल्यों का स्वीकारना।

अनेक धर्म पन्थों मे सुबह की मंगल बेला में ईश्वर स्तुति, प्रशंसा के व्यक्तिगत या सामूहिक पठन किया जाता है। उससे अन्त:करण पवित्र बनता है। साथ ही महात्माओं, वीरों की नामावली कही जाती है उससे उनके उदात्त चरित्र का गुणगान गाकर हमे प्रेरणा मिलती है। एकाग्र मन से शुभचिन्तन करने से मन सात्विक और शुद्ध होता है। दिन भर का बीज समय सुबह में होने से उस समय अच्छे विचार कहने से सुसंकल्प करने से पूरे दिन के क्रिया कलापों पर अच्छा प्रभाव होता है। ईश्वरी शक्ति की कृपा भी मिलती है। पूरा दिन निर्बंध रूप से बीतता है इसलिये प्रात: समय में देवता वन्दन करे।

महात्मा गांधी ने भी प्रार्थना को जीवन में अनिवार्य माना है। उनके अनुसार स्तुति, उपासना, प्रार्थना वहम नहीं है बल्कि हमारा खाना-पीना, चलना-बैठना, जितना सच है, प्रार्थना का सच उससे भी कही अधिक है।

प्रार्थना भावात्मक चेतना का एहसास है। इसे हम जाति धर्म, सम्प्रदाय, देश भाषाओं की सीमाओं में नही बांध सकते। यहां हर उस व्यक्ति का स्वभाव है जो स्वयं द्वारा स्वयं को पाने का पुरुषार्थ करता है। प्रार्थना है तो व्यक्तित्व है, आदर्श है, उद्देश्य है, विचार है, कर्म है, पहचान है अन्यथा तो मनुष्य संस्कारों की भीड में भटकाव है, एक निरूद्देश्य चेहरा है जो जीता तो है मगर जीने का अर्थ नहीं जानता।

अक्सर लोग प्रार्थना को अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति की एक हथियार बना लेते है। कुछ लोग कहते है कि प्रार्थना मांग का एक बहाना है। भौतिक सुख पाने की चाह में मनौतिया मानी जाती है। पाप छिपाने के लिये धार्मिकता का आडम्बर किया जाता है इससे साफ जाहिर है कि ऐसे में हर प्रार्थना, नमाज, उनकी प्रस्तुति, प्रयत्न और परिणाम सब एक धोखा बन जाता है।

इस तरह से तो हम प्रार्थना के मर्म को नहीं जान सकते और न उसके साध्य तक पहुंच सकते है। प्रार्थना तो भीड़ के भय से बिना संत्रस्त हुये ईश्वर के सुर से सुर मिलाने का तरीका और माध्यम है। मांग के साथ राग जुडा है और राग के साथ द्वेष। ऐसे में तो ईश्वर हमे नहीं दिखेगा क्योंकि ईश्वर तो सदैव राग-द्वेष से मुक्त चेतना शिखर पर आरूढ़ है। प्रभु तो एक सन्देश है। अपने सुख-दु:ख के लिये आप स्वयं जिम्मेदार है, क्योकि एक को सुखी बनाना, दूसरे को दु:खी करना ईश्वर का स्वभाव नहीं है। इसलिये, गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ज्ञान की वृद्धि और आन्तरिक शुद्धता का विकास खुद व खुद हमारे कार्य कलापों को सुधारता है। अच्छे कर्म करके हम जीवन को खुशाल बना सकते है और अच्छे कर्मों से ही अहम का नाश होता है।

प्रार्थना सिर्फ मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा का ही हिस्सा नही है। वह जब भी, जहां भी और जिसके साथ भी हो अपने पवित्र उद्देश्य व आचरण के साथ होगी। सच्ची प्रार्थना के लिये तन और मन का एकीकरण आवश्यक है। किसी किसी का कहना है कि अपना काम ही प्रार्थना है। यदि ऐसा होता तो हम अपने काम के प्रति निष्ठावान हो जाते। प्रार्थना के लिये आस्तिक होने की भी अनिवार्यता नही है। प्रार्थना के क्षणों में नास्तिक भी उतना ही नैतिक और पवित्र हो सकता है जितना कि आस्तिक। असल में तो यह आत्म दर्शन की एक कठिन साधना है, स्वयं से साक्षात्कार की एक प्रक्रिया।

प्रार्थना हृदय से संबंधित रहती है। यह तो मानव हृदय के व्यक्तिगत अहं की कारा को तोड कर अनन्त आकाश में उडने, उस परमात्मा शक्ति के वरण की क्रिया है। यह तो मानव के प्रभु से मिलन की कामना की सूचक होती है और जब सच्चे हृदय से प्रार्थना होती है, तो लगता है कि वह परमात्मा सभी प्राणियों में विद्यमान है। धर्म के आचरण द्वारा हम इसी दिव्यता को प्राप्त करने की कोशिश करते है, पर होता है कि प्राय: मील के पत्थर को ही मंजिल मान बैठते है ऐसी स्थिति मे प्रार्थना सिर्फ शब्दों का एक संग्रह रह जाती है और उसे दुहराना हमारी आदत सी बन जाती है।

प्रार्थना करे और परिवर्तन न आये तो फिर न उपदेश आचरण बनेगा और न आदर्श जीवन का मानक। प्रार्थना तो वह शक्ति है, जो अन्धेरों में रोशनी ढुंढ़ने का माध्यम बनती है, बाधाओं के बीच विवेक जगाती है, भीड में अकेले रहने का सामर्थ्य देती है, दु:ख में सुख के संवेदन लाती है और घर मे मन्दिर नहीं बल्कि घर को ही मन्दिर बना देती है। प्रार्थना की एक शक्ल है परोपकार। परोपकार यानि दीन दु:खियों की सेवा। ऐसी संवेदना जो अपने आसपास के दु:ख दर्द को महसूस कर सके। स्वामी विवेकानन्द ने इस दृष्टि से परोपकार को ही प्रार्थना माना है। वे कहते है कि प्रार्थना विभिन्न प्रकारों से की जा सकती है। हाथों से की गई प्रार्थना, होठों से की गई प्रार्थना की अपेक्षा ऊंची होती है और उससे त्राण भी अधिक होता है। इस दृष्टि से प्रार्थना आत्म दर्शन के साथ साथ जन दर्शन का सशक्त माध्यम है। इसलिये जब भी प्रार्थना में हमारे हाथ उठे, हम आरोग्य, बोधि, समाधि और जनसेवा का संकल्प करे। आखें जब भी बन्द करे प्रभु का ध्यान करे। प्रभु दर्शन के सिवाय और कोई दृश्य न देखे। प्रभु दर्शन का अर्थ अच्छे कर्म से है, अच्छी सोच और अच्छे विचार अच्छा दर्शन।

प्रार्थना और याचना मानव जीवन के अंग है लेकिन प्रार्थना क्या है ? अन्तर मन की अकुलाहट को विश्व व्यापी सत्ता के समक्ष प्रकट कर देना ही प्रार्थना है। परमात्मा से जुडना हो तो समर्पण भाव चाहिये। इसके होते ही भगवान और भक्त एक हो जाते है। यूं तो प्रार्थना तब की जाती है जब किसी के समक्ष विकट समस्या खडी हो और जिसका कोई समाधान न सूझता हो। तब ईश्वर की याद आती है और गुहार से लेकर मनुहार तक सब कुछ किया जाने लगता है। जबकि मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही प्रार्थनामय होना चाहिये। उससे कुछ मांगना नहीं पडता, वरन् जीवन को परमात्मा का परम प्रसाद समझना पडता है और आशा करनी पडती है कि हमारे कष्ट, कठिनाइयों में भी उसका मंगल विधान है। परम पिता परमेश्वर किसी को भी पीडा नहीं देते वे तो सभी का कल्याण करते है। जो दु:ख दर्द हम भोग रहे है उसे स्वीकार करने में कैसा डर ?

चार वेद है- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमे पहला वेद है ऋग्वेद। इसे प्रार्थना-वेद भी कहते है क्योंकि उसमें सबसे पहले भगवान की प्रार्थना की गई है तथा पूरा ऋग्वेद अनेक देवताओं की प्रार्थना से भरा हुआ है। प्रार्थना में ईश्वर के साथ संबंध जुड़ता है। यदि प्रभु की प्रार्थना में थोड़ा समय लगाना लाभप्रद होगा। इससे जीवन में परम आनन्द, शांति, मधुरता और विश्वास का प्रवेश होता है। भगवान की प्रार्थना करते-करते मनुष्य स्वयं समझने लगता है कि उसकी परिस्थितियों में परिवर्तन होने लगा और कोहरे की तरह कठिनाइयाँ छटने लगती है। सच्ची प्रार्थना जिसमें कठिनाई में भी ईश्वर दिखलाई देता है और कठिनाई से लड़ने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है तथा धीरे-धीरे मन मे सुख-शांति होने लगती है और सफलता का मार्ग प्रशस्त करती है। आत्मिक शक्ति एवं मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए ध्यान और प्रार्थना श्रेष्ठ है। सुबह और शाम प्रार्थना का समय निश्चित होना चाहिए क्योकि समय ही जीवन का सार है।

बहुत से लोग किसी न किसी अदृश्य शक्ति में विश्वास रखते है और वक्त जरूरत पर उस शक्ति से माँगा करते है। इसी माँगने को प्रार्थना कहते है। जो लोग प्रार्थना की विधि जानते है, उन्हे मिलता है।

जब कोई समस्या सामने आ जाए और प्रार्थना करना जरूरी हो जाये, तो कुछ देर के लिए समस्या को मन से बाहर कर दे। ऐसा करने से मन समस्या के विभिन्न पहलूओं को स्पष्ट देखने लगता है। ऐसे समय में जो विचार आये, प्रेरणा मिले वैसा ही करना चाहिए।

अपनी प्रार्थना को कागज पर उतारे। मिसाल के तौर पर जैसे रेल आरक्षण के लिए फार्म भरते है। लिखने से प्रार्थना स्पष्ट हो जाती है।

लिखी हुई प्रार्थना को पूजा स्थल पर या पूजनीय चित्र के नीचे रखें या अपनी श्रद्धा की पुस्तक के अंदर रख दे। ऐसा करने का अर्थ होता है कि हमने अपनी प्रार्थना उस अदृश्य शक्ति को सौप दी है, जिससे हम प्रार्थना कर रहे है।

अपनी प्रार्थना को कम से कम शब्दों में लिखे। क्योकि जिस बात को हम जान जाते है तो उसे कम शब्दों में लिख भी सकते है। अधिक शब्दों का इस्तेमाल करना इंगित करता है कि हम अपनी प्रार्थना को ठीक से नहीं जानते है और जब हम ठीक से जानेंगे नहीं तो ठीक से उत्तर भी नहीं पायेंगे। यह आवश्यक नहीं है कि प्रार्थना को हमेशा लिखा जाये। प्रार्थना मौन रूप से भी बखूबी की जा सकती है। प्रार्थना को यदि रोकर व्यक्त कर सके तो इससे बढ़कर और कोई तरीका नही हो सकता। क्योकि जो भाव आँसू व्यक्त कर देते है, उन्हे शब्द व्यक्त नहीं कर सकते।

प्रार्थना ऐसी बात के लिए करनी चाहिए जो हमारे लिए आवश्यक हो। महज आराम या ऐश के लिए प्रार्थना करना ठीक नही।

बेहतर हो कि एक समय में एक ही प्रार्थना करें। हां, प्रार्थना का क्रम जारी रख सकते है। यदि एक साथ कई प्रार्थनाएँ करनी पड़े तो उनका क्रम निर्धारित करें। अर्थात् पहली, दूसरी इत्यादि-इत्यादि।

प्रार्थना को रोज तब तक दोहराते रहें जब तक कि उसका उत्तर प्राप्त नहीं हो जाता। प्रार्थना को सोने के ठीक पूर्व विशेष रूप से दोहराना चाहिए। प्रार्थना हमेशा सकारात्मक ही होनी चाहिए। किसी के विरुद्ध कभी कुछ न माँगे। ज्ञातव्य हो कि जब किसी एक उद्देश्य के लिए कई लोग साथ-साथ प्रार्थना करते है तो प्रार्थना की गुणवत्ता उसी अनुपात में बढ़ जाती है।

जब परिस्थितियाँ इजाजत दे तो प्रार्थना स्वयं के साथ-साथ दूसरों के लिए भी करे। जैसे हमे अपनी पुत्री के लिए योग्य वर ढूंढना है। तो हम अपनी प्रार्थना में कहे कि जिस परिवार को अपने पुत्र की शादी हेतु हमारी जैसी पुत्री की आवश्यकता हो, उस परिवार को हमसे मिला दे। जैसे कुछ बीज तो जल्द उग आते है और कुछ बहुत देर से उग पाते है। ठीक उसी प्रकार कुछ प्रार्थनाओं का उत्तर शीघ्र प्राप्त हो जाता है और कुछ का देर से। हमारी प्रार्थना का उत्तर सदैव हाँ में ही नहीं मिलेगा। कभी न में भी मिलेगा और जब उत्तर न में मिले तो समझ लेना चाहिए कि हमारी भलाई उसी में है।

प्रार्थना करने वाले का उस शक्ति में जिससे कि वह प्रार्थना कर रहा है, अटूट विश्वास होना बहुत जरूरी है। अन्यथा प्रार्थना का कोई परिणाम नहीं निकलेगा। अविश्वास अवरोध का काम करता है। जिसके कारण प्रार्थना और उसके उत्तर का मिलना रुक जाया करता है।

जिस शक्ति से प्रार्थना करनी है उससे संबंध रखना श्रेयस्कर होता है। ऐसा संबंध जैसा कि हम अपने किसी करीबी से रखते है। जिससे जब चाहा बिना किसी औपचारिकता के, दिल की बात कर ली।

तुम मेरी रखो लाज हरी। तुम जानत सब अंतरजामी, करनी कछु न करी।

औगुन होते बिरसत नाहिं, पल छिन छरी छरी। सब प्रपंच की पोट बँधि के, अपने सीस धरी।।

दारा-सुत-धन मोह लिये हैं, सुधि-बुधि सब बिसरी। सूर पतित को बेग उधारो, अब मेरी नाव भरी।।

तुम तो अन्तर्यामी हो करनी तो खुद की नहीं है हमने, पुण्य तो कमाए नहीं हैं लेकिन फिर भी यह तो कहते हैं न कि तेरे बेटे हैं हम। तो अपने बेटे होने की लाज ही रख लो, कि हम तुम्हारी सन्तान हैं परमात्मा-यही मानकर के हमारी लाज रख लो। अवगुण तो मुझसे छूटते नहीं, हर पल हर घडी अवगुणों का ध्यान है। सभी पापों की गठरी बाँधकर सिर पर रखी हुई है, घर-परिवार का मोह बडा भारी है, वस्तुओं का मोह बडा भारी है और जो अपनी होश थी, न वो खो बैठे हूं। सारा दिन अगर बातचीत कोई करे, हमसे पूछे कोई क्या हाल है तो कभी परिवार की बात करेंगे। कभी रिश्तेदारों की, कभी व्यवसाय की बात करेंगे और लगे हाथ थोडी बहुत राजनीति की बात कर देंगे।

भारत में धार्मिक, आध्यात्मिक रूप से प्रार्थना का बड़ा महत्व है। उसे ईश्वरी भक्ति और कृपा का पवित्र प्रतीक माना जाता है। भारत में इसका प्रचलन प्राचीन समय से है। इसमें तीन तरह से प्रार्थना की जाती है। स्तुति के पहले प्रकार में उपासक अपनी उपास्य देवता की प्रशंसा कर उसका गुणगान गाकर उसकी प्रसन्नता अनुभव करता है। दूसरे प्रकार आत्मनिवेदन में उपासक अपना तन, मन, धन देवता को प्रार्थना से अर्पण कर शरण लेता है। तीसरे प्रकार याचना में उपासक याचक बनकर अपना दु:ख दैन्य दूर करने के लिए याचना करता है। इस तरह आस्तिक जीवन में प्रार्थना का बड़ा मोल है।

हर सुबह एक छोटी सी प्रार्थना जरूर करें। कहें: हे प्रभु। मेरे पैर अपंगों के पैर बन जाएं, मेरी आँखें अंधों की आँखें बन जाएं। मेरे हाथ बेसहारों के लिए सहारे बन जाएं। दु:ख और शोक में संतप्त आँसू बहाते लोगों के लिए सांत्वना देने में मेरी जीभ हमेशा काम आए। किसी गरीब और रोगी की सेवा में मेरा पसीना बहे, कोई अतिथि कभी भी मेरे दरवाजे से भूखा-प्यासा न जाए। हे प्रभु: अपने इस बालक को हमेशा इस लायक बना कर रखना। प्रभु। मेरे प्रणाम स्वीकारें।

हे शिव। हे पशुपति। हे भवानीपति। मुझ पर कृपा करो। दु:खों से भरे इस भवारण्य में मैं नितान्त असहाय हूं। मेरी रक्षा करो। हे शिव। मैंने हाथों से, पांवों से, कानों और नेत्रों से, मन, बुद्धि, वाणी, देह या कर्म से जो भी पाप किए हों अथवा जो पाप होने वाले हों उन्हें क्षमा कर दो। हे शिव। आप दया के सागर हैं, महादेव हैं, कल्याण के आगार हैं- आपकी जय हो।

युवावस्था में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दादि के विषाक्त सर्पों ने मेरे मर्मस्थलों पर आघात करके मेरे विवेक को नष्ट कर दिया। खेद है, शिव की भक्ति से रहित मेरा अन्त:करण गर्व और हृदय के आवेग से भरा रहा। अत: हे शिव। हे महादेव। हे शम्भो। मुझे क्षमा करो। मैं अपने पापों के लिए प्रार्थना करता हूं।

मैं वृद्धावस्था को प्राप्त हूं। मेरी इन्द्रियां शिथिल और विवेकशक्ति कुण्ठित हो गयी है। अनेक दु:खों क्लेशों, सन्तापों, भोगों और रोगों से मेरा शरीर जर्जर और दुर्बल हो गया है, किन्तु पश्चाताप है कि आज भी मेरा मन शिव का ध्यान न करके कामनाओं और व्यर्थ के

मोह के पीछे दौड़ता है। अत: हे शिव। हे महादेव। हे शम्भो। मैं आर्त हूं- मेरे पापों को क्षमा करो।

मैं कोई मन्त्र नहीं जानता, यन्त्र भी नहीं जानता, न कोई स्त्रोत ही जानता हूं। मुझे वन्दना और ध्यान करना भी नहीं आता और न मैं तेरी महिमा की कोई कथा ही जानता हूं। मैं कोई मुद्रा नहीं जानता, न विलाप करना ही। हे मां। मैं केवल तेरा अनुसरण जानता हूं। मुझे विश्वास है तू मेरे सारे पापों का नाश कर देगी।

शास्त्रविधि न जानने से, निर्धनता या आलस्य के कारण मैं तेरे चरणों से हट गया। कल्याणमयी मां। मुझे क्षमा कर। तू सबका उद्धार करती है। कभी-कभी दुष्ट पुत्र जन्म ले सकता है किन्तु माता कभी भी अकृपालु नहीं हो सकती।

हे दुर्गामाता। तू करुणा की सागर है। मैं जब संकट में होता हूं तभी तेरा स्मरण करता हूं। इसे कपटता मत मानना। स्वभावत: भूख-प्यास से पीड़ित होने पर ही बालक को मां की याद आती है।

हे मां। यहां इस जगत् में तेरे अगणित निर्दोष पुत्र हैं, किन्तु उन सबमें अस्थिरचित्त मैं ही हूं। अत: यह कोई आश्चर्य नहीं कि मैं तेरे प्रति विमुख हो जाऊं- किन्तु फिर भी मां, मेरे प्रति तेरा विमुख होना कदापि योग्य नहीं।

हे मां। मैं तुझसे मुक्ति नहीं चाहता, धन-सम्पत्ति, सुख या ज्ञान भी नहीं चाहता। मेरी केवल यह प्रार्थना है कि जब तक शरीर में प्राण रहे, मैं तेरा नाम-स्मरण करता रहूं।

मनुष्य वरदान प्राप्त करने के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं और भगवान भी उस प्रार्थना को स्वीकार कर कभी न थकते हुए उदार मन से देते रहते हैं। जब सर्वस्व भगवान का ही है तो उनके चरणकमलों पर भला हम क्या समर्पित कर सकते हैं, उनका प्रेम प्राप्त करने के लिए भला हम क्या कह सकते हैं ?

जब तू प्रार्थना करे, तो कपटियों के समान न हो, क्योंकि लोगों को दिखाने के लिए सभाओं में और सड़कों की मोड़ों पर खड़े होकर प्रार्थना करना उनको अच्छा लगता है। परन्तु जब तू प्रार्थना करे तो अपनी कोठरी में जा और द्वार बन्द करके अपने पिता से जो गुप्त में हैं प्रार्थना कर और तब तेरा पिता, जो गुप्त मे देखता है, तुझे प्रतिफल देगा। प्रार्थना करते समय अन्य विश्वासहीनों की तरह बकबक न करो, क्योंकि वे समझते हैं कि उनके बहुत बोलने से उनकी सुनी जाएगी। सो तुम उनकी तरह न बनो, क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे मांगने से पहले ही जानता है कि तुम्हारी क्या-क्या आवश्यकता है। सो तुम इस रीति से प्रार्थना किया करो- हे हमारे पिता, तू जो स्वर्ग में है, तेरा नाम पवित्र माना जाए। तेरा राज्य आए, तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है, वैसे ही पृथ्वी पर भी हो। हमारी दिनभर रोटी हमें दे। और जिस प्रकार हमने अपने कर्जदार को क्षमा किया है, वैसे ही तू भी हमारे कर्ज को क्षमा कर। और हमें परीक्षा में न बिठा, परन्तु बुराई से बचा, क्योंकि स्वर्ग, पराक्रम और महिमा सदा तेरी ही है।

सन्ध्या वंदन प्रार्थना का क्षण है। रात्रि के अन्तिम क्षणों में सन्ध्या, प्रार्थना करो। ध्यान और सन्ध्या करने से मनुष्य का हृदय पवित्र होता है। ईश्वर के प्रति आस्था जगती है, मनुष्य का चित्त शान्त रहता है और उसे शान्ति मिलती है। प्रार्थना और ध्यान से अपने आत्मिक जीवन की शक्ति बढाओ तब निश्चय ही ईश्वर के नाम पर सांसारिक कर्म भी सर्वोत्तम रीति से कर सकोगे।

कामना पूर्ति के लिये हमें पुरुषार्थ करना आवश्यक है। जहां सब मनुष्य के पुरुषार्थ निष्फल हो जाते है वहां पर प्रभु प्रार्थना ही काम आती है। प्रार्थना सबसे आखिरी और सबसे पहला हथियार है। प्रार्थना से यकीन हो जाता है कि ईश्वर हमारी मदद को अवश्य आयेगा।

जब भी हम कोई प्रार्थना करते हैं तो सामान्यत: हम ईश्वर से शक्ति ही तो मांगते हैं ताकि हम हर दुख को सहन कर सकें। हमारी अशक्तता दूर हो सके। हम निर्बल, अशक्त, असहाय लोगों का सहारा बन सकें, उनकी रक्षा कर सकें।

प्रार्थना पश्चाताप का एक चिन्ह है जो हमारे अधिक अच्छे और अधिक शुद्ध होने की आतुरता को सूचित करती है। प्रार्थना द्वारा कुछ मांगना है तो ऐसी कोई चीज मत मांग जो विनाशी है। धैर्य ही सबसे बडी प्रार्थना है।

असहाय अवस्था में प्रार्थना के सिवाय और कोई दूसरा उपाय नही है। वर्षा का परिणाम शरीर पर और उसके द्वारा मन पर होता है किन्तु प्रार्थना का परिणाम हृदय के द्वारा आत्मा पर होता है।

मनुष्य जब प्रार्थना करता है तो चाहता है की कोई अजूबा हो जाये। जब मन और वाणी एक होकर कोई चीज मांगते है तो उस प्रार्थना का जवाब जरूर मिलता है। यदि हम अपनी प्रार्थना में कहें कि भगवान् ही हम सबके पिता हैं और अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक मनुष्य को अपना भाई न समझें, तो फिर उसकी सार्थकता ही क्या ? जब मनमें आर्ति आती है, तब हृदयकी गम्भीर सम्वेदना प्रकट

होती है। जब आर्त पुकार भगवन्नामसे मिल जाती है, तब आर्त प्रार्थनाका प्रभाव अद्‌भुत होता है। संकट तुरन्त मिट जाता है और चमत्कार ही हो जाता है। गजेन्द्रकी आर्त पुकार सुनकर गोविन्दकी कृपा-अनुग्रह की कथा है। द्रौपदीकी आर्त पुकारने कृष्णको वस्त्रावतारमें प्रकट कर दिया। प्रार्थनामें बड़ी भारी शक्ति है। अनहोनीको होनी कर देना, प्रार्थनाका चमत्कार है। हृदयके अन्तरतम सूक्ष्मतम प्रदेशसे निकली हुई सच्ची पुकार को सुनकर भगवान्‌का आसन भी डोलने लगता है। यदि हमें प्रार्थना का उत्तर न मिले तो समझ लो कि ईश्वर से मांगने की विधि में कहीं-न-कहीं भूल हो रही हो। असफलता भगवान में नहीं हममें है। हमें अपनी प्रार्थनाओं से सामान्य मंगलकामना करनी चाहिए, क्योंकि परमेश्वर ही भली-भांति जानता है कि हमारी किस में भलाई है ? यह प्रार्थना हमेशा याद रखें- हे ईश्वर। जिसे बदला जा सकता है उसे बदलने की शक्ति दे और जिसे बदला नहीं जा सकता उसे स्वीकार करने की शक्ति दे।

१)

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारें हाथों में। है जीत तुम्हारे हाथों में और हार तुम्हारे हाथों में।।
मेरा निश्चय बस एक यही एक बार तुम्हें पा जाँऊ मैं। अर्पण कर दूँ दुनिया भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में।।
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ ज्यों जल में कमल का फूल रहे। मेरे सब गुण-दोष समर्पित हो भगवान तुम्हारे हाथों में।।
यदि मानुष का मुझे जन्म मिले, तब-तब चरणों का पुजारी बनूँ। इस पूजक की इक-इक रग-रग का हो तार तुम्हारे हाथों में।।
जब-जब संसार का कैदी बनूँ, निष्काम भाव से कर्म करूँ। फिर अन्त समय में प्राण तजूँ, निराकार तुम्हारे हाथों में।।
मुझमें तुझमें बस भेद यही मै नर हूँ तुम नारायण हो। मै हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।। अब सौंप दिया.....

२)

मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान तुम्हारे चरणों में, यह विनती है पल-पल छिन-छिन रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
चाहै बैरी सब संसार बने, चाहे जीवन मुझ पर भार बने। चाहे मौत गले का हार बने रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में। मिलता है सच्चा.....
चाहे अग्नि में मुझे जलना हो, चाहे काँटों पे मुझे चलना हो, चाहे छोड के देश निकलना हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो, पर मन नहीं डगमग मेरा हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
जिह्वा पर तेरा नाम रहे, तेरा ध्यान सुबह और शाम रहे, तेरी याद में आठों धाम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में। मिलता है सच्चा.....

३)

हमको मन की शक्ति देना, मन विजय करें। दूसरों की जय से पहले, खुद को जय करें।। हमको मन की शक्ति.....
भेद-भाव अपने दिल से, साफ कर सकें। दूसरों से भूल हो तो, माफ कर सकें।।
झूठ से बचे रहें, सच का दम भरे।। दूसरों की जय से पहले.....
फासले बढे तो हम पे, इतना कर्म कर। साथ दे तो धर्म का, चलें तो धर्म पर।
खुद पे हौंसला रहे, बदी से हम डरे। दूसरों की जय से पहले.....

४)

इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना। हम चले नेक रस्ते पर हम से, भूलकर भी कोई भूल हो न।। इतनी...
दूर अज्ञान के हो अंधेरे, तू हमें ज्ञान की रोशनी दे। हर बुराई से बचके रहे हम, जितनी भी हमे जिन्दगी दे
बैर हो न किसी का किसी से, भावना मन में बदले की हो ना।। हम चले...
हम न सोचे हमें क्या मिला है, हम यह सोचे किया क्या है अर्पण, फूल खुशियों के बाँटे सभी को, सबका जीवन ही बन जाये मधुवन
अपनी करुणा का जल तू बहाके, करदे पावन हर एक मन का कोना।। हम चले नेक रास्ते पर हमसे, भूलकर भी कोई भूल हो ना...

५)

पूजनीय प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए। छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए।।१।।

वेद की बोले ऋचायें सत्य को धारण करें। हर्ष में हो मग्न सारे शोक-सागर से तरें।।२।।
अश्वमेघादिक रचायें यज्ञ पर- उपकार को। धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को।।३।।
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें। रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें।।४।।
भावना मिट जाय मन से पाप- अत्याचार की। कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर नारि की।।५।।
लाभकारी हों हवन हर जीवधारी के लिए। वायु-जल सर्वत्र हो शुभ गन्ध को धारण किये।।६।।
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा, प्रेम-पथ-विस्तार हो। इदम् न मम का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो।।७।।
प्रेमरस में तृप्त होकर वन्दना हम कर रहे। नाथ करुणारुप करुणा आपकी सब पर रहे।।८।।

६)

हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए, शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हम को शरण में, हम सदाचारी बनें, ब्रह्मचारी, धर्म रक्षक, वीर व्रत्तधारी बनें।।
निन्दा किसी की हम किसी से भूल कर भी न करें, सत्य बोलें, झूठ त्यागें, मेल आपस में करें।
हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए, प्रेम से हम गुरुजनों की नित्य सेवा करें।।
दिव्य जीवन हो हमारा तेरी यश गाथा करें। हे प्रभु आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।।

७)

गोविन्द मेरी यह प्रार्थना है, भूलूँ न मैं कभी नाम तुम्हारा। निष्काम होकर दिन रात गाऊँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।।
देहान्तकाले तुम सामने हो, बंशी बजाते मन को लुभाते। गाते यही मैं तन नाथ त्यागूँ, गोविन्द दामोदर माधवेति।।
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।
निर्बल के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे। श्वासों के स्वर झनकार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे।।
आकाश, हिमालय, सागर में, पृथ्वी, पाताल, चराचर में। यह मधुर बोल गुंजार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे।।
जब दया दृष्टि हो जाती है, जलती खेती हरयाती है। इस मति पर जन उच्चार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे।।
सुख दु:खों की चिन्ता है ही नहीं, भय है, विश्वास न जाय कहीं। टूटे न, लगा यह तार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे।।
तुम हो करूणा के धाम सदा, सेवक हैं राधेश्याम सदा। बस, इतना सदा विचार रहे, जगदीश हरे, जगदीश हरे।।

८)

तेरे पूजन को भगवान बना मन मन्दिर आलीशान।
किसने जानी तेरी माया, किसने भेद तुम्हारा पाया। हारे ऋषि-मुनि कर ध्यान, बना मन मन्दिर आलीशान।
तू ही जल में तू ही थल में, तू ही मन में तू ही वन में। तेरा रूप अनूप महान, बना मन मन्दिर आलीशान।
तू हर गुल में तू बुलबुल में, तू हर डाल के हर-पातन में। तू हर दिल में मूर्तिमान, बना मन मन्दिर आलीशान।
तूने राजा रंक बनाये, तूने भिक्षुक राज बैठाये। तेरी लीला ऐसी महान, बना मन मन्दिर आलीशान।
झूँठे जग की झूँठी माया, मूर्ख इसमें क्यों भरमाया। कर कुछ जीवन का कल्याण, बना मन मन्दिर आलीशान।

९)

उठ जाग मुसाफिर भोर भई। अब रैन कहाँ जो सोवत है।। जो जागत है सो पावत है। जो सोवत है सो खोवत है।।
उठ नींद से अँखिया खोल जरा। और अपने प्रभु से ध्यान लगा।। यह प्रीति करन की रीत नहीं। प्रभु जागत है तू सोवत है।।
जो कल करना है आज करले। जो आज करना है अब करले।। जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया। फिर पछताये क्या होवत है।।
नादान भुगत अपनी करनी। ऐ पापी पाप में चैन कहाँ।। जब पाप की गठरी शीश धरी। फिर शीश पकड़ क्यों रोवत है।।
उठ जाग मुसाफिर भोर भई। अब रैन कहाँ जो सोवत है।।

१०)

झाँकी उमा महेश की, आठों पहर किया करूँ। नैनों के पात्र में सुधा, भर-भर के मैं पिया करूँ।।
वाराणसी का वास हो, और न कोई पास हो। गिरजापति के नाम का, सुमरन भजन किया करूँ।।
जयति जय महेश हे, जयति नन्दिकेश हे। जयति जय उमेश है, प्रेम से मैं जपा करूँ।।
अम्बा कहीं श्रमित न हों, सेवा का भार मुझको दो। जी भरके तुम पिया करो, घोट के मैं दिया करूँ।।
जी में तुम्हारी है लग्न, खींचते हैं उधर व्यसन। हर दम चलायमान मन, इसका उपाय क्या करूँ।।
भिक्षा में नाथ दीजिए, अपनी शरण में लीजिये। ऐसा प्रबन्ध कीजिए, सेवा में मैं रहा करूँ।।
तुम तो जगत के नाथ हो, सब पर दया का हाथ हो। मैं ही निराश हो प्रभु, द्वारे से, क्यों फिरा करूँ।।
बेकल हूँ नाथ रात दिन, चैन नहीं है आप बिन। दास तो सब्र करभी ले, दिल का उपाय क्या करूँ।।

११)

भरोसा कर तू ईश्वर पर, तुझे धोखा नहीं होगा। ये जीवन बीत जायेगा, तुझे रोना नहीं होगा।।
कहीं सुख है कहीं दु:ख है, यह जीवन धूप-छाया है। हरी में ही बिता डालो, बितानी ही ये माया है।।
जो सुख आये तो हँस देना, दु:ख आये तो सह लेना। न कहना कुछ कभी जग से, प्रभु से ही तू कह लेना।।
ये कुछ भी तो नहीं जग में, फिरे सब कर्म की माया। तू खुद ही धूप में बैठा, लखे निज तप की छाया।।
कहाँ ये था ? कहाँ तू था ? प्रभु बन्दे ! प्रभु बन्दे !

१२)

नर देह हड्डी माँस का, कच्चे घड़े समतुच्छ है। फिर भी दिलाता मोक्ष पद, जो स्वच्छ से भी स्वच्छ है।।
दुर्लभ पाकर देह यह, हो मिल आत्माराम रे। सत भोग में आसक्त हो भजले रमापति राम रे।।१।।
शब्दादि पाँचों सर्प हैं, बहु जन्म तक हैं मारते। जो मूढ़ इनके हिये बशे बहु बार हैं वे हारते।।
अभिमान तजदे देह का, भजले रमापति राम रे।।२।।
संसार के जो भोग हैं, सब योनियों में प्राप्त हैं। आहार, मैथुन, नींद, भय, श्वॉनादि में भी व्याप्त हैं।।
शूकर बने, कूकर बने ऐसा मती कर काम रे। आशा सभी की छोड़ दे, भजले रमापति राम रे।।३।।
खाना पहिनना कृष्ण हितकर, कृष्ण हित दे दान रे। फल चाह फाँसी डाल कर, अपनी फँसा मत जान रे।।
निर्द्वन्द रह नि:शंक रह, निर्भय तथा निष्काम रे। संसार में सुख मोड़कर, भजले रमापति राम रे।।४।।
धनदार में आसक्त नर, सुख से कभी ना सोय है। लेते जहाँ ही जन्म तहँ, माथा धुने है रोयँ है।।
रामानुरागी हरि नर, पाते परम विश्राम रे। आशा सभी ही त्याग दे, भजले रमापति राम रे।।५।।
सब के हृदय में रम रहा है, राम सब के पास हैं। ना देख सकता मूढ़ जो, माया मरी का दास है।।
मैं कौन हूँ ना जानता, माया इसी का नाम रे। पहिचान अपने आपको, भजले रमापति राम रे।।६।।
तू देह तीनों जानता है, देह तीनों है नहीं। तीनों अवस्थाएँ हैं नहीं, जीव तीनों है नहीं।।
अज्ञान नाहीं वायु ना, ना रक्त तू ना चाम रे। कर्ता नहीं भोक्ता नहीं, भजले रमापति राम रे।।७।।
जो हो चुका है सो राम है, जो हो गया सो राम है। जो हो रहा सो राम है, जो ना हुआ सो राम है।।
सब राम, सब में राम, सबका राम ही सुखधाम रे।।८।।
सुन रे सदा ही राम तू, गा रे सदा ही राम रे। जप कर निरन्तर राम का, प्यारे सदा ही राम रे।।
चलते खड़े बैठे हुये, भज नित्य सीताराम रे। दे छोड़ सब दया पाले तू, भजले रमापति राम रे।।९।।
ज्यों पल, घड़ी, घण्टा, पहर, दिन नाम है सब काल के। रवि, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर नाम दशरथ लाल के।।
है नाम का ही भेद जो है, धूप सो ही धाम रे। तज भेद भोला दूसरे, भजले रमापति राम रे।।१०।।

स्वजनों की स्मृति में

जमाना बड़े शौक से सुन रहा था, हमीं सो गए दास्तां कहते-कहते।

वही है जिंदा जिस की आस जिंदा, वही है जिंदा जिस की प्यास है जिंदा।

श्वास लेने का नाम ही जिंदगी नहीं, जिंदा वह है, जिस का विश्वास है जिंदा।

पलकों में कैद कुछ सपने होते है, कुछ बेगाने कुछ अपने है,

न जाने क्यों कशिश है इन खयालों में आप हमसे दूर होके भी कितने अपने है।

* चल रे हंसा अमर लोक को, यहां कोई नहीं तेरा है। जगवालों का हुआ अंधेरा, अपना हुआ सबेरा है।
* याद करते है तुमको, यादों से दिल भर आता है, कभी साथ जिया करते थे,
  तब उन पलों की याद आती है तो मिलने को दिल तरस जाता है।
* जिन्दगी नाम है वक्त की मार का, एक दिन जीत का और एक दिन हार का।
* तुम्हारी यादों को रोक पाना मुश्किल है रोते हुये दिल को मनाना मुश्किल है
  यह दिल तुम्हें कितना प्यार करता है, यह पैगामों से बताना मुश्किल है
  आते रहोगे याद बार बार तुम्हें कैसे भुलाऊ, जिस दिल में तुम्हारी याद ना हो ऐसा दिल कहां से पाऊं।
* मानते है कि भूल जाना आपकी फितरत ही सही लेकिन मुझे भूल पाना आपकी किस्मत में नहीं।
  चाहो तो आजमा कर देख लो, खुद को भूल जाओगे पर मुझे नहीं।।
* बस इतना ही मान लो, जन्म मृत्यु का फर्क जान लो। किसी की आँख खुल गई, और किसी को नींद आ गई।
* बडी मुद्दत से चाहा है तुझे, बडी दुआओं से पाया है तुझे, तुझे भुलाने की सोचू भी तो कैसे,
  बडी मुश्किल से किस्मत की लकीरों से चुराया है तुझे।
* अब ये भी नहीं ठीक कि हर दर्द मिटा दें, कुछ दर्द कलेजे से लगाने के लिये हैं।
* कौन पत्नी कौन पुत्र, कौन मां और बाप। अन्त समय जाना है, साथ चले पुण्य व पाप।
* कर ले जीवन में सुकृत नहीं तो फिर पछताना है। खिला-पिला कर देह बढ़ाई, उसे भी अग्नि में जलाना है।
* दुनिया की मौजे कभी कम नहीं होगी। मगर अफसोस यह कि आखिर हम नहीं होंगे।
* पीपल पान खरंतो इम कहे, सुन तरुवर वन राय। अबके बिछुडे कब मिलेंगे, दब पडेंगे जाय।
  तब तरुवर यह कहे, सुन पात एक बात। इस घर ऐसी रीत है, एक आवत एक जात।
* मेहंदी रंग लाती है, पिस जाने के बाद। बडों की बात याद आती है, चले जाने के बाद।
* झूठी माया, झूठी काया, झूठा यह संसार। स्वप्नवत् सब कुछ है, यह तथ्य करो स्वीकार।
  क्षणभंगुर है तेरी काया, क्षणभंगुर है जग की माया। खूब खिलाया खूब पिलाया, फिर भी है नश्वर काया।
* वैभव में मतवाला होकर, घूम रहा जैसे मद मस्ती। रावण जैसे चले गये, फिर तेरी कौन बता हस्ती।।
* विचार जो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी, मरो परन्तु यों मरो कि याद करें सभी।
* हुई न सुमृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये, मरा नहीं वही जो जिया न आपके लिए।।
* धर्म मृत्यु को अटल मानता है अत: उससे आकुल-विकल होने की सलाह वह नहीं देता।
* वो मिले हमें कहानी बनकर, दिल में रहे प्यार की निशानी बनकर।
  हम जिन्हे जगह देते है आखों के अन्दर, वो अकसर निकल जाते है आंसू बनकर।
* अपना चेहरा जुबान होता है, सुख-दु:ख का प्रमाण होता है। घाव भर जाये भीतर से, फिर भी बाहर निशान होता है।।

* जिन्दगी तो बेवफा है धोखा देकर जायेगी, मौत तो महबूबा है वो साथ लेकर जायेगी।
* एक दिन आसूओं ने हमसे पूछा, रोज रोज हमें क्यों बुलाते हो,
  तो हमने कहा हम याद उन्हें करते है, तुम बीच में क्यों चले आते हो।
* वह आज भी मेरे पास है, जिसके बिना मेरा दिल उदास है, भले ही औरों के लिये कुछ न हो, लेकिन मेरे लिये बहुत खास है।
* सागर जैसा प्यार तुम्हारा, कल्पतरू की छाया। दया, धर्म प्रेम करूणा व मानव सेवा का प्रकाश फैलाया।
* जो खुदकी पहचान खुद से करे वही सुखी होता है। अन्यथा जीवन के रहस्य को समझे बिना जगत से विदा होता है।
* जन्म जरा मृत्यु के भय से भयभीत बन पामर प्राणी। कुकृत्यों को नहीं छोड़ता, पिल रहा दु:ख की घाणी।
* तीन खंड के स्वामी थे पर, मिला नहीं मरते पानी। पुरजन-परिजन पास न आये, बीती थी जब जिन्दगानी।
* अपना अपना किसे पुकारे, जग जीवन तो है सपना। छोड़ कल्पना अपने मन की, सत्य प्रभु का है जपना।
* जो दिल से मेरा नाम गाता रहेगा, मुझको भी वो याद आता रहेगा।
* रहते नहीं सब दिन एक समान, कभी धूप कभी छांव, यही विधि विधान।
* सदियों की इबादत से बेहतर है, वह एक लम्हा, जो तूने बिताया किसी इन्सान की खिदमत में।
* वक्त कभी एक सा रहता नही, ये वक्त का मिजाज है, गमें रात भी ढल जायेगी, तुम पाक दिल से दुआयें करो।
* मेरी जिन्दगी में कहां होती रोशनी, अगर उसमें तुम्हारी मुस्कुराहट न होती।
  मेरा दिल इतना हरा भरा कहां तो, अगर उसमें तुम्हारी चाहत न होती।।
* दूर हो जाने से रिश्ते टूटते नहीं, न ही सिर्फ पास रहने से जुडते है। यह तो दिल के बन्धन हैं, इसलिये हम तुम्हें और तुम हमें भूलते नहीं।।
* बरहा जाने क्यों याद आ जाते हो, दर्द मे गीत जो ढ़ल जाते हैं। रंग और तूलिका भी भूल जाता हूं, जब तेरी कोई तस्वीर बनाता हूं।।
* मोमबती के अन्दर का धागा बोला मै जलता हूँ तो तूं क्यो पिघलती है।
  मोमबती ने कहा जिसको दी जगह दिल में, वो बिछडे तो आंसू बहते है।।
* खयालों को किसी आहट की आस रहती है, निगाहों को किसी सूरत की प्यास होती है।
  तेरे बिना किसी चीज की कमी तो नहीं, फिर भी तेरे बिना तबियत उदास रहती हैं।।
* भरी दुनिया में जी नहीं लगता, जाने किस चीज की हैं कमी। अभी शहर की बे-चराग गलियों में, जिन्दगी तुझको ढूंढती है अभी।।
* हजारों मंजिले होंगी, हजारों कारवां होंगे, बहारे हमें ढुंढेगी, पता नहीं जाने हम कहां होंगे।
* गम मिला तो रो ना सके, खुशी मिली तो हंस ना सके, यह जिन्दगी का दस्तूर है,
  जिसे चाहा उसे पा ना सके और जिसे पाया उसे चाह ना सके।
* जो मिलते रहते है वो दिल में समा जाते है, जो मिल कर नहीं मिलते वो बहुत याद आते हैं।
* जीवन की राहें फूल जैसी कोमल हो जाये, कि जीवन में इतनी खुशियां मिले आपको, कि हर पल जीवन यादगार बन जाये।
* लहर आती है किनारों से पलट जाती है, तेरी याद आती है और दिल में सिमट जाती है।
  दोनों में फर्क सिर्फ इतना है, कि लहर बेवक्त आती है और तेरी याद हर वक्त आती है।।
* कभी बदली हुई तकदीर नजर आती है, यादों की बस एक जंजीर नजर आती है।
  पढ़े तो भी क्या पढ़े यार मुझे हर किताब में भी तेरी तस्वीर नजर आती है।।
* ख्वाबों में ही आ जाते, सूरत अपनी दिखा जाते, क्यों रूठे हो तुम हमसे, इतना तो बता जाते।
* रोयेंगी आंखे मुस्कराने के बाद, आयेगी रात दिन ढल जाने के बाद।
  ओ जाने वाले जरा मुड के तो देख, शायद यह जिन्दगी ना रहे तेरे जाने के बाद।
* फरियाद कर रही है ये तरसी हुई निगाहें, देखे हुये तुम्हें कितने दिन गुजर गये।
* चले तो जमाना साथ कदम कदम पर आया, जो रुक गये कदम तो कोई करीब ना आया।

* संग्रहकर्ता की कलम से *

तमन्ना ने जिंदगी के आँचल में सिर रखकर पूछा- मैं कब पूरी होऊँगी ?
जिंदगी ने हँसकर जवाब दिया- जो पूरी हो जाये वो तमन्ना ही क्या ?

श्रीमद्भागवत गीता ग्रन्थ का लेखन मेरा पहला ही प्रयास था और उस परात्पर प्रभु की असीम अनुकम्पा से मेरा यह प्रयास सर्वाधिक सफलता प्राप्त कर पाया जिसको मैने कभी सोचा भी नहीं था। यह एक असाधारण अपूर्व ग्रन्थ बना जिसे लोगों ने अत्यधिक सराहा। इससे मुझे जीवन में मान, कीर्ति, यश प्राप्त हुआ। मेरा तो सिर्फ प्रयास ही था लेकिन इसकी रचना मात्र में उस अदृश्य शक्ति का ही विलक्षण रूप है जिसने यह महान ग्रन्थ मुझसे लिखवाया वरना मेरी क्या सामर्थ्य है जो मैं यह कर पाता। प्रसिद्ध उद्योगपति, पद्मभूषण श्री राहुलजी बजाज के कर कमलोंद्वारा इस ग्रन्थ का विमोचन १८ फरवरी, २००५ को हुआ। कोई भी कार्य प्रभु कृपा और उसकी प्रेरणा से ही सफल हो सकता है।

बढती हुई कामनायें, आकांक्षायें और तमन्नायें जब शमित नही होती है तब कोई ना कोई प्रेरणा कुछ करने को जन्म लेती है। इसी से मेरे अध्ययन और ज्ञान ने मुझे प्रेरित किया कि अब मै अगला यह ग्रन्थ लिखूं। जब तक मैं अपने इस अल्प अर्जित ज्ञान को वाणी से व्यक्त न करूं या उसका लेखन कर व्यक्त न करूं तो इस अर्जित ज्ञान धन को जंग, (Rusty) कुंठित होने का डर है। इसी प्रेरणा से मैने यह अपने मातृ-पितृ के आशीर्वाद से, कुलगुरु का आशीर्वाद शिरोधार्य कर इस महान ग्रन्थ ज्ञान सागर जिसमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की कल्पना कर इसकी रचना प्रारम्भ की। मैने इस ग्रन्थ के द्वारा सत्य का, शिवतत्व का, सुन्दरता का इन तत्वों का निरूपण किया है इसके साथ ही १०,००० से भी अधिक जीवन दर्शन सिद्धान्त दिये है जो सत् प्रतिशत सत्य है और प्रत्येक व्यक्ति को जितना हो सके पढकर अपने जीवन में उतारना चाहिए तो ही इस ज्ञान सागर की सार्थकता सिद्ध होगी। जीवन का कोई ऐसा पहलू शेष नहीं रह जाता जो इस जीवन दर्शन के सिद्धान्त के बाहर हो। इस जीवन दर्शन के सिद्धान्त, सद्बोधन वाक्य, उद्बोधन प्रेरणा वाक्य मैने बहुत से महान ग्रन्थों से लिये है जैसे चाणक्यनीति, विदुर नीति, मनुस्मृति, कुराने शरीफ, शुक्राचार्य नीति, ज्ञानेश्वरी, गीता, रामायण, महाभारत, भागवत्, बाईबल, गुरुग्रन्थ साहब, कादंबरी इत्यादि। इसके अलावा सन्तों की वाणी जैसे परम पूज्य श्री रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज, स्वामी रामसुखदासजी, शंकराचार्य, महाकवि कालिदास, कबीर की साखियां, रविन्द्रनाथ टैगोर, दादा वासवानी, गुरूनानक, मुनि तरूण सागर, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, शेख सादी, उमर खैयाम, लुकमान, हजरत महमूद, अलजर, हदीस, खलील जिबरान, नजीर, सुदर्शन, समर्थ गुरु रामदास, महर्षि दयानंद सरस्वती, सुधांशु महाराज, आसारामजी, मुरारी बापू, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, ओशो, स्वामी विवेकानंद, स्वामी अरविंद, संत तुलसीदासजी, वाल्मिकी, वेदव्यास, संत ज्ञानेश्वर, रामकृष्ण परमहंस, विनोबा भावे, स्वामी रामतीर्थ, डॉ. सम्पूर्णानन्द, वीर सावरकर, राजर्षि भर्तृहरि, जो ये सब ज्ञानगुरु है उनकी वाणी को उद्धृत किया है। मैने राष्ट्रकवि मैथिली, शरण गुप्त रामधारी सिंह दिनकर, शरदचन्द्र, महादेवी वर्मा, रहीम, मुंशी प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, बृन्द, सुमित्रानन्दन पन्त, इत्यादि कविओं की भी सूक्तियां ली है। मैने विदेशी साहित्यकार व लेखकों की भी उक्तियां इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है- जैसे शेक्सपीयर, कन्फ्यूशस, राबर्ट बर्न्स, स्वेट मार्डेन, गेटे, आस्कर, सिसरो, प्लेटो, टैरेस, सुकरात, अल्फ्रेड आइन्स्ट्रीन, लांग फेलो, इमर्सन, फ्रांसिस बेकन, आगस्टीन, चेम्सफर्ट, एडलर, सायरस, मार्टिन लूथर, फ्रैंकलिन, बाल्टेयर, रस्किन, टेनीसन, बर्कले, कार्लाइल, लेनिन, सर बनार्ड शा, डैल कार्नेगी, विक्टर ह्यूगो, बायरन, लिटन, कैम्प वेल, रूसो, सिसिल, हावी, कालरिज, कोल्टन, मिल्टन, नैपोलियन, हर्बट हुवर, सेनेका, सिडनी स्मिथ, वेइज, टांमस मूर, टेलर, जेम्स् स्टीफन, प्लेटो, फेलर, डान्ते, थोरो, कीटस्, माघ, बाल्जाक, होम्स, टिकेल, क्रोमवेल, लूथर, जीन ऐंजिलो, हेनरी, गैरी बाल्डी, लिब्रेटर, चिलो, एडविन, हार्वेर, डिक्सन, लेसिंग, ब्रूएर, डावर, चार्ल्स बक्सटन, डिजराइली, हेवर, अरस्तु, अनाम, गिबन, एडम स्मिथ, पोप, सर फिलिफ सिडनी, अरंडेल, शेली, इंजील, वरले, कोलियर, आलीवर

गोल्ड स्मीथ, चार्ल्स किंगस्ले, प्लूटार्क, डेविनैट, जार्ज इलियट, टालस्टांय, रेनाल्ड, एडवर्ड कोक, ग्लैंडस्टोन, कोल्टन, लांवेल, लिवी, हैजलिट, उइदा, सोफोक्लीज, अरबूथ नॉट, फ्रेक कासले, कैटो, जेम्स एलन, पेट्रिसन, अब्राहम लिंकन, हर्बट स्पेन्सर, हैगल, बर्क, मैसिन्जर, वैटी, वर्डस् वर्थ, यंग, लार्ड डासन, गैलेन, ड्रमंड, जेफर सन, मैनिंग, गोयकी, चेस्टर फील्ड, आर्नल्ड, चैनिंग, गोल्डोनी, मेरी गॉडविन, फ्रेडरिक हेगेल, लुडविग, जेम्स मोनरो और गोर्की। मैने प्रयास किया है कि विषयों की पुनरावृत्ति न हो। यह मेरा शाब्दिक ज्ञान है, वाणी और पुस्तक विलास है।

मनुष्य के जीवन को प्रकाशमान बनाने के लिये तथा उन्नति की और ले जाने के लिये प्रेरित करने वाले ये जीवन दर्शन सिद्धान्त, ये अमर वचन सर्व सामान्य सबके लिये उपयोगी व महत्वपूर्ण है। इन्हें अपने आचरण में उतार कर जीवन पथ पर चलना चाहिये जो कि जीवन में उन्नति के लिये प्रेरणा स्तोत्र है। देश-विदेश के महान विद्वानों व सन्तो सज्जनों के गहन चिन्तन मनन द्वारा उद्‌भूत हुई ये जीवन सूक्तियां है जो इस महाग्रन्थ में सुभाषित और समाहित है। ये हर घर गृहस्थी, परिवार के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

यह ग्रन्थ आपको सिखाता है कि आप खुद ही अपने भाग्य के विधाता है। यह आपको महसूस कराता है कि खुशी, सफलता, प्यार आदि के लिये आपको सकारात्मक सोचना है और खुद को बान्धे रखने वाली सीमाओं को तोडना है।

आप जिन्दगी में पढने में, उतारने में और समझ में आसानी से आने वाले विचारों का संग्रह आपको बुद्धिमत्ता की पुरानी सोच के ढांचे से आधुनिकता के दौर में ले जायेगा। आपकी जिन्दगी की रोजाना की परेशानियों से उबरने और नैतिक मूल्यों को स्पष्ट करने मे यह ग्रन्थ सहायक सिद्ध होगा। आप जिन्दगी में आई किसी परिस्थिति का बहुत आसानी से सामना कर सकते है। इसलिये पहले आपको उस परिस्थिति पर सकारात्मक सोचना होगा और फिर अपने उद्देश्य को सफलता और आसानी से हासिल करने के लिये आपको सकारात्मक क्रिया करनी होगी।

ये जीवन दर्शन सिद्धान्त आपकी जिन्दगी में अद्‌भुत परिणामों से आपका परिचय करायेंगे। इनसे आप अपनी किस्मत खुद लिख सकते है। ये आपको सिखाते है कि एक पूरक और सम्पूर्ण जिन्दगी कैसे जिये। ईमानदारी एक सर्वश्रेष्ठ नीति है और धैर्य तथा संयम जिन्दगी में कैसे धारण करे। अनुशासन जीवन में कितना महत्वपूर्ण है। दिमाग की बजाय दिल की बातों का अनुसरण कर आध्यात्मिक और सफल बने। सकारात्मक सोच और सकारात्मक क्रियायें आपकी जीत हासिल करते है और सफलता को तय करते है।

आज का जीवन बड़ा विकट, व्यस्त और संघर्षमय है। हमें पग-पग पर कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनके समाधान पर हमारे जीवन की सफलता निर्भर होती है। ऐसे सु-समाधान के लिए हमें प्राचीन तथा अर्वाचीन गुरुजनों, प्रतिभाशाली चिन्तकों तथा विद्वज्जनों के मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होती है। यदि हम उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें, तो अपने जीवन मार्ग में हमें कुछ सहायता और सफलता प्राप्त हो सकती है। महाजनो येन गत: स: पन्था:। सौभाग्य से हमारे पूर्वगामी मनीषियों, कवियों तथा गद्य-लेखकों ने प्रचुर सामग्री रख छोड़ी है। उनके काव्याध्ययन से हमें अलौकिक रसानुभूति होती है और हम जीवन के सामान्य स्तर से ऊंचे उठकर अवर्णनीय आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। इस सरस साहित्य के अतिरिक्त, हमें उपयोगी साहित्य की भी प्रचुर मात्रा उपलब्ध है, जैसे दर्शन, नीति-शास्त्र, लोक-नीति, आरोग्य शास्त्र, आचार-शास्त्र, मनोविज्ञान, बाल-विज्ञान, गृह-विज्ञान आदि। ये शास्त्र हमारे जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हैं और हमें अपने सम्यक जीवन-दर्शन के निर्माण में सहायक होते हैं। अपने सीमित जीवन और स्वल्प-बुद्धि के कारण किसी भी व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक शास्त्र का अध्ययन कर सके। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि वह पूर्वगामी मनीषियों के अनुभवों से लाभ उठावे जो विभिन्न ग्रन्थों में लिपिबद्ध हैं।

प्रत्येक देश का अपना साहित्य होता है और उसकी नीजि अभिव्यंजन प्रणाली होती है। अतएव यह अत्यावश्यक है कि हम संसार के विभिन्न साहित्यकारों के उदार भावों और उच्च विचारों से परिचय प्राप्त करें। यह पल्लवग्राहि पाण्डित्य उसकी रसानुभूति एवं जीवन-यापन कला में सहायक हो सकता है। इसी केन्द्रीय विचार की दृष्टि में रखकर हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू आदि के कुछ सुभाषितों का भी इस ग्रन्थ में समावेश किया है।

सुभाषित कोशों की रचना हमारे देश में वैदिक काल से होती चली आ रही है। अथर्ववेद में ऋक्, यजु और सामवेद के चुने मंत्रों को एकत्र कर दिया गया। प्रत्येक प्रकार के कर्मकांडी, ज्ञानोपासक, भक्त, कर्मयोगी, राष्ट्र-प्रेमी, समाज-सुधारक, प्रकृति पुजारी, गृहस्थ,

संन्यासी, तांत्रिक, अभिचार प्रेमी सबके उपयोग के लिए मंत्र संकलित कर दिये गये और उपनिषद् काल में विविध उपनिषदों का सार लेकर गीता उपनिषद् की रचना हुई। राजनीति, अर्थनीति, इतिहास, दर्शन, साहित्य, नीतिशास्त्र, संस्कृति, सभ्यता, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, जीवन-मूल्य, विविध साहित्यिक वाद, विश्व के विभिन्न धर्म और मत-मतान्तरों पर उद्धरण मिल जाते हैं। यह कोश-ग्रंथ समस्त सूक्तियों को एक स्थान पर सुसज्जित करने का श्रेय प्राप्त करेगा। यह कोश विद्यार्थियों के लिए बड़ा ही उपयोगी है। जिन्हें वाद-विवाद में भाग लेना हो, किसी प्रतियोगिता में जाना हो, कोई निबन्ध लिखना हो, किसी मौखिक परीक्षा में बैठना हो या किसी समाचार-पत्र में लेख लिखना हो तो उन्हें अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रचुर सामग्री, विद्वानों के उद्धरणों के साथ एक ही स्थान पर सरलता से मिल जायेगी।

इस ग्रन्थ में समृद्ध जीवन का रहस्य है। इसमें आप देखेंगे कि आप ही नर्तक है और नृत्य भी, आप स्वयं ही सर्जक है और सर्जन भी। बेशुमार समृद्धि से युक्त यह सरल और स्पष्ट भाषा में समृद्धि चेतना का पूरे अर्थ के साथ समृद्ध जीवन बिताने का यह एक महान ग्रन्थ है। समृद्धि तो हमारी प्राकृतिक अवस्था है। सम्भावना का सम्पूर्ण क्षेत्र जो कि अन्तहीन और बंधन रहित है उसी का परिणाम है सारी विपुलताओं से भरा यह भौतिक जगत। प्रतिदिन व्यवहार में लाये जाने वाले सरल उपाय समृद्धि के प्रति चेतना को प्रोत्साहित करते है।

इस ग्रन्थ के अध्ययन से आप अपना जीवन सुन्दर बना सकते है। मनुष्य जन्म लेता है, उम्र की दहलीज पार होते ही शादी-विवाह होते है, गृहस्थ बनता है। गृहस्थ पालने की चिन्ता में व्यापार, धंधे, उद्योग, नौकरी करता है। आर्थिक संकटों से उबरने का सतत प्रयत्न करता है, उदरपूर्ति के लिये खाना-पीना दिनचर्या है। घर गृहस्थी परिवार का बोझा ढोते-ढोते और बुढ़ापे का दु:ख भोगते-भोगते किसी दिन इस संसार से चल बसता है। बस यही कहानी है हरमानव की जन्म से मृत्यु तक। क्यों नहीं जब तक जीवन जिये अपनी जिन्दगी को खुशहाल, रंगीन व शान्तिपूर्वक जिया जाये। हाय तौबा करने से जीवन का सुख और शान्ति भंग होगी और न ही जीवन जीने के आनन्द आयेगा। परिस्थितियों को बदलना आपके बस में नहीं है फिर प्राप्त परिस्थितियों को स्वीकार कर उसमें ही आनन्द लेकर शान्तिपूर्वक अपने जीवन को सुन्दर बनाते हुये जिये। यह ग्रन्थ आपको यह सिखाता है कि आप अपना जीवन सुन्दर ढंग से जिये। हर परिस्थितिमें, हर रंग में आनन्द लें, हर वस्तु में सौन्दर्य की दृष्टि से देखे तो ही जीवन का जीने का सही और सत्य अर्थ होगा। कहते हैं कि मनुष्य का स्वभाव बदलना कठिन है लेकिन ऐसी बात नही है। इस ग्रन्थ के अध्ययन से, उस पर विचार करने से आप अपने स्वभाव और व्यक्तित्व में फलिभूत परिवर्तन ला सकते है। इस पर आचरण करने से आप अपना सुन्दर व्यक्तित्व निखार सकते है व उत्तम चरित्र को गढ़ सकते है और इसी से योग्य आदरणीय पात्र बन सकते हैं।

इस ग्रन्थ में मैंने उर्दू के शब्दों और वाक्यों का जगह-जगह पर प्रयोग किया है। इन शब्दों और वाक्यों का आशय समझने हेतू उर्दू-हिन्दी शब्द कोश इस ग्रन्थ में संलग्न किया है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में, मुद्रण में, व्याकरण की, शब्दों के रचना में किसी प्रकार की त्रुटि रह गई है उन सबका पूर्ण दायित्व मेरा है और ऐसी सभी गलतियों का मैं आपसे क्षमा प्रार्थी हूँ। मैंने इस ग्रन्थ के द्वारा अपने आप को आप तक पहुंचने का, जानने का प्रयास किया है। मेरा यह अल्प ज्ञान यदि आपके जीवन जीने में थोडा बहुत भी कहीं काम आ जाये तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा, मेरा लिखना सार्थक होगा यही मेरी मन से आकांक्षा है और आपकी ढेर सारी शुभेच्छाओं से मेरा यह प्रयास सफल होगा। मैं मेरे परिवार व सहयोगी साथियों का तहे दिल से पूर्ण रूप से आभारी हूं जिन्होंने मेरे साथ पूरे मन से इस ग्रन्थ को एक अद्‌भुत कृति बनाने में सहयोग दिया। यह ग्रन्थ मैंने अपने परिवार जन व स्वजनों की मेरी दादी- माधीदेवी, मेरे दादाजी- रामकुमारजी, मेरे ताऊजी- बसन्तीलालजी व ताईजी- जेठीबाई, मेरी भतीजी- पूनम, मेरे अजीज दोस्त श्री संतोष राजगढिया व मेरे बचपन के गुरु- श्री गंगाप्रसाद मोरारका की पुण्य स्मृति में समर्पित किया है।

आपका स्नेही

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

जो कलम सरीखे टूट गये पर झुके नहीं, उनके आगे यह दुनिया शीश झुकाती है,
जो कलम किसी कीमत पर बेची नहीं गई, वह तो मशाल की तरह उठाई जाती है।

भूमिका

जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती वह सुन्दर नहीं हो सकती और जो सुन्दर नहीं हो सकती वह सत्य भी नहीं हो सकती। जहां आनन्द है वहीं सत्य है।

सत्यम् शिवम सुन्दरम की जिस सुन्दर कल्पना को प्रसिद्ध फिल्म निर्माता, दिग्दर्शक, अभिनेता, कलाकार व महान दार्शनिक, संगीत प्रेमी सौंदर्य उपासक मरहूम स्वर्गीय श्री राजकपूरने अपनी फिल्म सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के माध्यम से साकार किया है और समाज को जो सन्देश दिया है उसी को मैने अपने शब्दों और वाणी से प्रेषित करने का प्रयास किया है। सारगर्भिता सत्य व शाश्वत है, सदैव है और जो नष्ट नही होता, परिवर्तन नहीं होता, एकदेशीय है वो शिव है। जीव ही शिव है। यह आत्मा ही जीव है। यह शिव ही सुन्दर है जिसने इतने सुन्दर संसार और प्रकृति की इतनी सुन्दर रचना की है वो स्वयं में कितना सुन्दर होगा। श्री राजकपूर ने संगीत, प्रेम और सौंदर्य को अपने जीवन का प्रतिक बनाया। यही उस सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की साकार कल्पना है।

विष्णु सत्य है, शिव जीव है और ब्रह्मा सुन्दर है। जिसने इस सृष्टि को, प्रकृति को निर्माण किया है। दिन की यह तीन अवस्थायें सुबह, दोपहर और शाम यह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है। प्रात:काल सुबह सत्य का स्वरूप है, चिलचिलाती धूप की दोपहर ही शिव है और अस्त होते सूर्य की लालिमा की शाम असीम सुन्दर है जो सौन्दर्य का प्रतीक है। जीवन की तीन अवस्थायें बचपन, (शिशु ही सत्य का स्वरूप है) जवानी (तडफती, मचलती, इठलाती, रंगीन जवानी ही शिव स्वरूप है) और बुढ़ापा (ढलते जीवन की सांझ ही सुन्दर है) यह सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के प्रतीक है। इन कल्पनाओं में जीवन का गहरा अर्थ और रहस्य छुपा है। जो इसे यथार्थ रूप में जान लेगा वही मनीषी मानने योग्य है। जीव का बाह्य सौन्दर्य तो दैहिक काम वासना है। जीव का सत्य सौन्दर्य तो आन्तरिक है वो है सिर्फ आत्मा से। आन्तरिक सौन्दर्य वही है जिसमें करुणा, सत्व, सुन्दर मनमें, चित्त, भावना और दृष्टि सुन्दर हो तो सब कुछ सुन्दर ही दिखेगा।

रंगों के बिना संसार कितना फीका और अधूरा होता है, इसकी कल्पना भी अत्यंत दुरुह व दु:खद है। जिस परमात्मा ने प्रकृति में चहुं ओर अनगिनत रंग बिखेरे, उसी ने मनुष्य को इन रंगों को देखने वाली आंखें और पहचानने व इनसे आनंदित हो सकने वाली चेतना प्रदान की। यह तय करना मुश्किल है कि उसने विविध रंगों को देखने के लिए आंखें दीं या आंखों की रचना के बाद उनके रास्ते मन को अवर्णनीय सुख पहुंचाने के लिए प्रकृति में रंग बिखेरे। आजकल सजावटी रंग बनाने वाली कंपनियां अत्याधुनिक संगणीकीकरण के माध्यम से जितने रंग या शेडस् अपने ग्राहकों को पेश कर रही हैं या भविष्य में प्रस्तुत कर सकती हैं, उनसे कहीं ज्यादा व विभिन्न लुभावने रंग उस परम कलाकार के ब्रश ने अस्तित्व के कण-कण में भर दिए हैं। संसार रचने वाले ने चाहा कि आदमी फूलों में, तितलियों में, मोर में, सूरज-चांद के साथ कदम से कदम मिलाकर पल-पल चेहरा बदलते आकाश के चित्ताकर्षक रंगों में, इंद्रधनुष इत्यादि के सौंदर्य में सृष्टि के रचयिता की सुंदरता की झलक पा सकें, उसे सत्यं शिवम सुंदरम का ज्ञान प्राप्त करने का मौका मिल सके। रंगों की अनुभूति करने वाला, खूबसूरती से आनंदित होने वाला मन खुदा ने इंसान को बख्शा है। कई पशु-पक्षी अलग-अलग रंग देखने, पहचानने में अक्षम होते हैं। ये गलत धारणा आम प्रचलित है कि गाय या सांड लाल रंग से भड़कते हैं, मारने को दौड़ते हैं और इसीलिए सांडों के साथ लड़ाई में उन्हें क्रोध दिलाने के लिए लड़ाका लाल कपड़ा दिखाता है। वास्तविकता यह है कि ये चौपाए सिर्फ दो रंग काला व सफेद देख पाते हैं, उन्हें सब चीजें ब्लैक एंड व्हाइट यानी कि श्वेत-श्याम ही दिखती हैं अर्थात वे कलर-ब्लाइंड होते है। हालांकि खुद पशु-पक्षियों को विभिन्न रंग, पैटर्न, डिजाइन, रंग संयोजन इत्यादि विरासत में मिलते है। दूसरी ओर विडंबना है कि रंगों से सृजित होने वाले सौंदर्य का पुजारी होने के बाद भी मनुष्य खुद रंगीन मिजाज तो हो सकता है लेकिन रंगीला नहीं।

वह कम या ज्यादा गोरा-काला, सांवला, गेहुंआ आदि हो सकता है लेकिन तितलियों जैसे अलौकिक रंग नहीं पा सकता। वह अपने चारों ओर अवर्णनीय खूबसूरती वाली रंगीन वस्तुएं, रंगीले प्राणी देखता है और उसके अंदर खुद रंगीन होने की अन महसूसी इच्छा दबी होती है यद्यपि उसकी यह छटपटाहट बाहर प्रत्यक्षत: नजर नहीं आती। वर्षों से इंसान द्वारा शरीर पर गोदने, गुदवाने और नए जमाने में देह को रंगवाने, नख से शिखा तक रंगीन आकृतियां बनवा डालने के पीछे और क्या मनोविज्ञान हो सकता है।

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था वित विततो देवयान: सत्य की विजय और असत्य के पराजय से ही मार्ग प्रशस्त होता है। सत्य के लिए एको ऽ सद् विप्रा: बहुधा वदन्ति कहा गया है। सत्य एक ही है, उसे विद्वान अलग-अलग तरह से कहते हैं। सबका

अनुभव अलग है, तो वे उसकी अलग तरह से व्याख्या करते हैं; लेकिन यह अंतिम सच है कि सच एक ही है। चाहे इसे एकोऽ ब्रह्म द्वितीयो नास्ति कहकर बताया जाए या एक ईश्वर की घोषणा की जाए। इन सबके बजाय युधिष्ठिर ने यह कहना उचित समझा महापुरुष जिस मार्ग पर चले, वही धर्म है। यह अत्यंत सरल परिभाषा उन्होंने दी; लेकिन यहां विवाद व तर्क खड़े हो सकते हैं। धारयति इति धर्म: धारण करने योग्य जो है, जो सब जगत को धारण करता है, वह धर्म है। यह एक परिभाषा दी गई। सत्य केवल एक है, अनेक नहीं। उस तक पहुंचने के द्वार जरूर अनेक हो सकते हैं, लेकिन जो द्वार के आकर्षण में उलझकर उसी के मोह में पड़ जाता है, वह द्वार पर ही ठहर जाता है। ऐसे में सत्य की समीपता उसके लिए कभी भी सुलभ नहीं होती है। हालांकि सत्य हर कहीं है। जो कुछ भी है सभी कुछ सत्य है। उसकी अभिव्यक्तियां अनंत हैं। वह तो सौंदर्य की ही भांति है। सौंदर्य अगणित रूपों में प्रकट होता है, पर इससे क्या वह भिन्न-भिन्न हो जाता है, जो रात्रि में तारों में झलकता है, जो सूर्य में प्रकाश बन चमकता है, जो फूलों में सुगंध बनकर महकता है, जो हरे-भरे पहाड़ों से झरनों के रूप में झरता है, जो हृदय में भाव बन उमगता है और जो आंखों में प्रेम बनकर प्रकट होता है, वह भला क्या अलग-अलग है? इनके रूप अलग-अलग हो सकते हैं पर इन सभी में जो एकता स्थापित है, जो सबका सार है, वह तो एक ही है।

किंतु जो रूप पर मोहित हो जाता है, जो गंध और दृश्य की मादकता में स्वयं को भूला देता है, वह तो बस रूप पर ही ठहर जाता है। वह उसके सारतत्व, उसकी आत्मा को नहीं जान पाता। ठीक भी है, भला जो सुंदर पर रुक गया हो, वह सौंदर्य तक पहुंचेगा भी कैसे? ऐसे ही हो, जो शब्दों से बंध जाते हैं, उन्हें तो सत्य से वंचित रहना ही पड़ेगा। अब ये शब्द संस्कृत के हों या फिर अरबी के, हिब्रू के हों या फिर लैटिन के, शब्द तो शब्द ही हैं। सत्य उनकी लिखावट में नहीं, उनमें निहित भावों में है। जो भावों में पैठते हैं और गहराई से पैठते हैं, वे सत्य पा ही लेते हैं कि अपने साररूप में हर कहीं एक ही सत्य विद्यमान है। जो इस सच्चाई को जानते हैं, वे राह के अवरोधों को भी सीढ़ियां बना लेते हैं और जो नहीं जानते उनके लिए सीढ़ियां भी अवरोध बन जाती है। भारत में अनादिकाल से ही सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की अवधारणा रही है। इसका तात्पर्य है सत्य ही शिव है और वही सुन्दर है अर्थात् जो कुछ भी है वह सत्य ही है। हमारे यहां कहा जाता है कि सत्यम ब्रूयात। इसका मतलब है प्रिय लगनेवाला सत्य बोलना चाहिए। युधिष्ठिर यदि मौखिक सत्य कहते हैं कि अश्वत्थामा हाथी मारा गया तो वह वास्तव में असत्य के करीब होता है जबकि शिकारी द्वारा पूछे जाने पर महात्मा मौखिक असत्य बोलें कि उन्होंने हिरण को नहीं देखा तो यह प्राण-रक्षा की उदात्त भावना के चलते हितकारी सत्य की परिधि में आएगा।

यदि दर्शन का प्रयोजन दुख की निवृत्ति और सुख प्राप्ति है तो इसका यह अर्थ हुआ की दुखमय संसार को देखकर मनुष्य के मन में दर्शन के लिए जिज्ञासा होती है। इसी दुख की जिज्ञासा और सुख की लिप्सा ने दर्शन को जन्म दिया।

दर्शन मनुष्य के समग्र जीवन का प्रतिबिम्ब है। देशकाल की दृष्टि से हर मनुष्य का आचार-विचार बदलता रहता है, लेकिन तत्वरूप में देखें तो निष्कर्षत: सभी मानवता के लिए हैं। सभी महापुरुषों का विचारों और उपदेशों में एक ही उद्देश्य निहित होता है। वह उद्देश्य है- मानव कल्याण। इसलिए यह कहा गया है कि सभी जातियों और मनुष्यों का दर्शन अनेकता में एकता के लिए हुए हैं। कालिदास ने रघुवंश में लिखा है- भगवती भागीरथी के भिन्न-भिन्न प्रवाहों का परम लक्ष्य एक ही है- वह है समुद्र। वे सब वहां पहुंचकर एक हो जाते है। इसी प्रकार ईश्वर प्राप्ति के लिए अलग-अलग शास्त्रों एवं दर्शनों के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग भले ही भिन्न-भिन्न हों, किंतु उन सब का एक ही लक्ष्य आत्मा की प्राप्ति है।

उपनिषदों में जो तत्वमसि वाक्य है, उसमें भारतीय दर्शन की आत्मा निवास करती है। एकांत दुख और एकांत सुख जिसने जान लिया, वही तत्वज्ञानी है।

यदि दर्शन का प्रयोजन दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति हो तो इसका यह अर्थ हुआ कि दुखमय संसार को देखकर मनुष्य के मन में दर्शन के लिए जिज्ञासा होती है। इसी दुख की जिज्ञासा और सुख की चाह ने दर्शन को जन्म दिया। सब मानते हैं कि भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल उसके वेद हैं। वेदों के ऋषि दिव्यदृष्टि से सम्पन्न थे। उन्होंने सृष्टि लय दोनों के निसर्ग प्रवाह का ज्ञान प्राप्त किया। जीव धर्म के बंधन मे बंधे हुए इस विश्व को सद्गति के लिए वेदों के ऋषियों ने गंभीरता पूर्वक विचार किया। उन्होंने पाया कि एक की कारण, नाना नाम और नाना रूपों में इस जगत की तह में प्रछन्न रूप में विद्यमान है। वह है दुख। इस दुख से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है ज्ञान और आत्मज्ञान। इसी आत्मज्ञान को पाने के लिए देवर्षि नारद साधारण दुखी मनुष्य की भांति आत्मज्ञानी सनतकुमार के पास गए और उनसे उस आत्मविद्या को जानने की प्रार्थना की थी। इस आत्मविद्या से दुखों का नाश होता है और परमेश्रय की प्राप्ति होती है। कठोपनिषद की एक कथा के अनुसार बालक नचिकेता मृत्युभय की जिज्ञासा के लिए ब्रह्मज्ञानी यमराज के पास गया और यमराज से

वेदांतविद्या, आत्मविद्या तथा मोक्षशास्त्र का उपदेश सुनकर उसने अमरता प्राप्त की। ज्ञानी याज्ञवल्क्य ने अपनी सहधर्मिनी मैत्रियी को उस परविद्या का ज्ञान दिया, जिससे अमरत्व प्राप्त होता है और संसार के समस्त दुखों से छुटकारा मिल जाता है।

महावीर स्वामी के वैराग्य और परमार्थ का उद्देश्य, संसारी जीवों को जन्म-मरण तथा बंधन से छुटकारा दिलाकर मोक्ष का मार्ग बताना था। इसी मोक्ष मार्ग की प्राप्ति के लिए उन्होंने सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक कर्म और सम्यक चरित्र का उपदेश दिया।

सत्य भले ही परेशान हो, कभी पराजित नहीं होता। सत्यमेव जयते की बात वर्षों से समाज में प्रचारित होती रही है, इतना ही नहीं सत्य को हम सभी ने अपनी आखों से हर बार जीतते हुये देखा है, फिर भी न जाने क्यों आज भी अधिकांश लोग असत्य के बल पर सब कुछ पा लेना चाहते है। न तो किसी को राम की मर्यादा का ख्याल है और न ही कोई असत्य की जीत पर शर्मिंदा है।

खुद को अभिव्यक्त करने की कोशिश में जब हम शारीरिक हाव-भाव की जगह शब्दों की सहायता लेने लगते हैं तो समझो हमने साहित्य-सृजन की ओर कदम बढ़ा लिया है। लय और ताल के प्रति हमारा सहज आकर्षण हमें कई बार कविता के लिए अपनी लेखनी उठाने को प्रेरित करता है। साहित्य के पूरे इतिहास को देखें, तो पाते हैं कि प्रत्येक भाषा के साहित्य में उनके विकासकाल का बीच का कुछ सौ सालों का हिस्सा अपनी गेयता, छंद और अलंकार को लेकर काफी धनी होता है। उनकी प्रसिद्धि के कारण हमें कई बार लगता है कि कविता वही है, जो गाई जा सके। पर ऐसा नहीं होता। लय में होना कविता की एकमात्र शर्त नहीं होती।

आपको यह जानकर अच्छा लगेगा कि वाल्मीकि और कालिदास जैसे महान संस्कृत कवियों की कविताओं में कविता के इस गुण को लेकर मोह नहीं दिखलाया गया है। वहां भावनाओं की गहराई या प्रगाढ़ता और सुंदरता को लेकर गहरी दृष्टि झलकती है। प्रसिद्ध कवि गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों के माध्यम से जानते हैं कि एक कवि या लेखक को कैसा होना चाहिए-

सच्चे संवेदनशील कलाकार (कला का सृजन करने के कारण कवि भी कलाकार ही होता है) को जीवन और संसार के प्रभावों को ग्रहण करने के लिए खुद को खुला छोड़ देना चाहिए।

कलाकार चाहे जितना भी महान क्यों न हो, जीवन-जगत की तुलना में उसका अंतर्मन छोटा ही होता है, इसीलिए उसे जीवन-जगत के बिंबों, प्रेरणापूर्ण दृश्यों, भावों, विचारधाराओं की जानकारी प्राप्त करते रहना होता है।

अभिव्यक्ति का अभ्यास कलाकार का मुख्य कर्तव्य है। नए विचार और अनुराध नवीन कथन लेकर आते हैं, जिन्हें अभिव्यक्त करना आसान नहीं होता। ऐसे में उन्हें कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए अनुकूल अभिव्यक्ति पद्धति विकसित करनी होती है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह आसान और सुगम रास्तों को अपनाता है, पर जीवन के मूल्यवान अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए नए श्रमसाध्य तरीके अपनाने पड़ते हैं। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो पहले से ही हजारों लाखों बार की जा चुकी अभिव्यक्ति में ही अपना समय नष्ट करते रहते हैं।

आदर्श समाज की कामना, अमीरी-गरीबी जैसी तमाम मानवीय विषमताओं के खिलाफ आवाज उठाने की चाहत, बेहतर भविष्य का स्वप्न और कल्पनाशीलता जैसी भावनाएं कवि को एक बेहतर आधार प्रदान करता है, जहां से वह कुछ अभिव्यक्त करने को विवश होता है। आज सर्वत्र स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अनैतिकता का बोलबाला है। जिसके चलते आदर्शों, मान्यताओं, सिद्धान्तों, नैतिक मूल्यों और मर्यादा को सुरक्षित रख पाना बहुत ही मुश्किल होता जा रहा है। इन विकृतियों को दूर करने के लिए प्रज्ञावान एवं विवेकवान लोगों को ही आगे आना होगा। इन विकृतियों और विसंगतियों की जड़े दिन प्रतिदिन गहराई की ओर निरन्तर बढ़ती जा रही है। किन्तु हमें अपना सामाजिक ढाँचा हर हाल मे स्वस्थ व स्वच्छ रखना होगा। इस काम के लिए प्रतिबद्धता के साथ हमे संकल्प लेना होगा। इसके लिए हमे अपनी प्रज्ञा व विवेक को प्रखर करना होगा।

अधिकाधिक निखरें पर टूटे नहीं- वरिष्ठों द्वारा काम को मान्यता न देना कई लोगों की हताशा का प्रमुख कारण होता है। क्या यह इतना महत्वपूर्ण हैं ? कतई नहीं। काम करते रहना ज्यादा महत्वपूर्ण है। काम को तो खुद-ब-खुद प्रशंसा मिलेगी। फिर आप दूसरों के द्वारा मान्यता प्राप्ति का इंतजार क्यों करें ? आपके काम को प्रोत्साहन देना आपके वरिष्ठ के स्वभाव पर भी निर्भर करता है। हो सकता है कि उसकी शब्दावली में सम्मान शब्द हो ही नहीं। आपकी मेहनत को यदि प्रोत्साहन मिलता हो बहुत अच्छा, परंतु यदि नहीं मिलता हो तो भी अपना काम जारी रखों। संस्था की जरूरतों के हिसाब से अपनी योग्यता बढ़ाएँ यह एक बहस का प्रश्न है। कई लोग बहुत ही योग्य होते हैं, लेकिन उनका दावा रहता है कि उनकी योग्यता के हिसाब से उनको हिस्सेदारी नहीं मिल पाती।

मनुष्य अपने वर्तमान से कभी सुखी नहीं रहता। भागमभाग जिंदगी, भवितव्य के लिए गलाकाट प्रतियोगिता और आपाधापी में

अक्सर वह नहीं मिल पाता, जिसे हम चाहते हैं। इसके बाद शुरू होता है एक कुंठा का दौर। बहुत से डॉक्टर कहते नजर आएंगे कि वास्तव में वे एक थिएटर कलाकार बनना चाहते थे, लेकिन किस्मत ने उन्हें यहाँ ला पटका। किसी कार्यालय में लेखा-जोखा देख रहे किसी व्यक्ति को यह कहते हुए सुना जा सकता है कि वे इस तरह का काम कभी नहीं चाहते थे, वास्तव में वे एक क्रिकेट खिलाड़ी बनना चाहते थे। ऐसा भी हो सकता है कि दुखडा सुनाते-सुनाते इस तरह के लोगों का गला भर आए और आवाज भर्राने लगे। यह एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पहलू है, जिसका समग्रता से अध्ययन जरूरी है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि यदि उसके साथ नहीं रह सके, जिसे तुम प्यार करते थे तो उसको प्यार करो तुम जिसके साथ रह रहे हो। यही बात हमारे काम पर भी लागू होती है। जैसे-जैसे अवसरों में कमी आती है और असुरक्षा की भावना बढ़ी है। यह उक्ति और भी प्रासंगिक हो गई है। जरूरी नहीं है कि वर्तमान में जो लोग जिस किसी व्यवसाय में लगे हों, वह उनकी मनपसंद का हो। परंतु अपनी कुशलता को निखारने के लिए यह जरूरी है कि अपने वर्तमान काम को उचित महत्व दें और उसे प्यार करें। माना कि यह काम आसान नहीं, परंतु असंभव भी नहीं है। जो लोग अपने काम से प्यार करते हैं, उन्हें फर्राटे से गुणा-भाग लगाने में वैसा ही आनंद आता है, जैसा सचिन को चौका मारने में। असल चीज है अपने काम से प्यार करना, न कि उसे कोसना। क्या करते हो ? से ज्यादा जरूरी है कैसे करते हो ? एक ही रास्ता एक ही मौसम और एक ही बस। लेकिन कुछ ड्राइवर ऐसे होते हैं जो रोज अपने सफर का आनंद लेते हैं। ऐसे लोग यदा-कदा अपनी सवारियों का हाल-चाल लेना नहीं भूलते। खुद हँसते हैं और दूसरों को भी हँसाते हैं। दूसरों का सम्मान करते हैं। बदले में दूसरों से हजारों से हजार गुना सम्मान प्राप्त करते हैं। इसके उलट ऐसे ड्राइवरों को याद कीजिए जिन्हें पहुँचने की इतनी जल्दी रहती है कि वे अपना आपा खोए रहते हैं। ऐसे लोग बेतहाशा हार्न बजाते हैं, मुँह से अपशब्द भी निकालते हैं और सबसे बडी बात कि ऐसा करने के बाद भी उन्हें कुछ हासिल नहीं हो पाता। भवितव्य की यात्रा भी कुछ ऐसी ही होती है। सफर का आनंद लेना बहुत जरूरी होता है, तरक्की तो खुद-ब-खुद होती है।

नई-नई चीजें सीखें, आनंद लें- माना कि आपका काम वैसा नहीं है, जैसा आपने पहले देखा-सुना था। पर क्या पता यह काम पहले से ज्यादा रोमांचकारी हो। इसलिए पूर्वाग्रहों से बचें और नई चीजें सीखें। कई कंपनियाँ अपने कर्मचारियों के लिए नए-नए पाठ्यक्रम और ट्रेनिंग कोर्स चलाती हैं। यदि ऐसे अवसर मिले तो चूकिए नहीं, उनको सीखिए। हो सकता है आपका आनंद यहीं-कहीं छिपा हो।

अवसर की तलाश करें- यह एक बहुत ही रचनात्मक कार्य है, परंतु इसके लिए स्वीकार करना होगा कि कुछ ऐसे कार्य भी हैं जिनमें हम दक्ष नहीं है। स्वीकार करना होगा कि हम जहाँ भी हैं, उसके लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। धीरे-धीरे वह काम तलाशिए जिसमें आप ज्यादा अच्छी भूमिका अदा कर सकते हैं। अपने सहयोगियों का विश्वास जीतें। वरिष्ठ को काम की प्रगति के बारे में सूचित करते रहें। धीरे-धीरे वह अवसर भी आने शुरू हो जाएँगे, जिनकी आपको तलाश थी।

अवसर एक बार आता है, यह बहुत बड़ी मिथ्या है। यह डर पर टिका हुआ अविश्वास है। लोग विश्वास करते हैं कि थोड़ी कमी के साथ रहना एक समझदारी का काम है। जब कोई आप से यह कहे कि अवसर केवल एक बार दरवाजा खटखटाता है, वे लोग किस दुनिया में हैं ? अवसर तो हर जगह हजारों हैं। जहां नजर दौड़ाइए, हर जगह नया अवसर है। हर कोने पर नए धंधे के अवसर हैं। हजारों नए आविष्कार के अवसर हैं। हर दिन नए प्रकल्प शुरू होते हैं, नए धंधे शुरू होते हैं। नई किताबें लिखनी हैं, नए बच्चों को पढ़ाना है। दरअसल हम अपनी कल्पना से सीमित हैं। अगर आप यह मान कर चलें कि अवसर केवल एक बार आता है तो आप सही अवसर के पहले ही कूद पड़ेंगे। आप ऐसी नौकरी पकड़ लेंगे जिसमें आपका मन नहीं लगेगा। दूसरी ओर, डर के कारण किसी अच्छे अवसर को हाथ से निकल जाने देंगे। डर हमारा दोनों तरफ से अवसर निकालता है।

दुनिया स्वप्न है, हमें स्वप्न में नही अपने में जीना है। प्रदर्शन में नहीं, आत्मदर्शन में जीना है। आत्मदर्शन की कला सिखाता है प्रतिक्रमण, जो जीवन के दर्पण में अपने पाप और गुनाहों का प्रतिबिम्ब दिखाता है। जो पर-अवलोकन नहीं स्व-अवलोकन की विधि बताता है, जो वक्रता नहीं अपितु सरल से सरल जिन्दगी जीना सिखाता है। जो सरल जीवन जीता है वह दूसरों पर आक्रमण नहीं स्वयं में स्वयं के द्वारा आक्रमण करना सिखाता है वह प्रतिक्रमण शब्द नहीं है, आचरण की शिक्षा, आत्म जागरण की दीक्षा है।

यदि यह भाव अपने मन में आ गया तो एक बात तुरन्त होगी। हम कितनी भी समस्याएँ आए, विचलित नही होंगे। समाज के लोग कभी-कभी आलोचना करते हैं। जिनके लिए हम काम करते हैं, वे ही कभी-कभी हमारी आलोचना करते हैं। संसार के हर सन्त को इस स्थिति से गुजरना पड़ा है। ऐसा किसके साथ नहीं हुआ ? लेकिन ऐसा होने पर भी, हमारा चित्त उससे विचलित नहीं होगा। क्योंकि हमें विश्वास है कि हमनें जो किया उस प्रभु के लिए किया और वही मेरे कार्य का मूल्यांकन कर सकता है। नहीं तो होता क्या है ? हम

कहते हैं समाज के लिए हमने इतना किया लेकिन समाज को उसकी मूल्य नहीं।

अरे समाज क्यों हैं ? मैने उस समाज के लिए किया ही नहीं। मैंने उस प्रभु के लिए किया। इस समाज को मेरा मूल्य है कि नहीं? समाज मेरे मूल्यांकन को करने जितना योग्य है कि नहीं ? प्रभु ही जानता है। लेकिन वह परमात्मा तो जानता है कि मैंने किस दृष्टिकोण से किया। मुझे समाज से किसी पुरस्कार की आवश्यकता नहीं, मुझे समाज अच्छा कहे, इसकी भी आवश्यकता नहीं। मैंने जो कुछ किया है, परमात्मा की भक्ति के रूप में किया है यह भावना होगी तो चाहे समाज मेरी आलोचना करें, या मेरा अभिनन्दन करें। न अभिनन्दन से मैं प्रफुल्लित हो जाऊँगा और न आलोचना से मैं डिगूँगा। मैं अपना काम करता रहूँगा। मैं अपना काम करता रहूँ इस प्रकार की, एकनिष्ठ भावना, ईश्वरनिष्ठा से, ईश्वर भक्ति से ही अपने आप अपने अन्त:करण में धैर्य एवं स्थिरता के कारण आती है। अन्यथा थोड़ीसी आलोचना होते ही तुरन्त हम डिग जाएँगे हम तो इतना अच्छा कार्य कर रहे हैं और वे ऐसा बोलते है अब क्या करें? हम घर में ही भले हैं। यह तुरन्त आरम्भ हो जाता है, क्यों? और फिर कहीं से प्रेरणा पाने के लिए हमें किसी की ओर देखना पड़ता है। दूसरे से मैं प्रेरणा पाऊँ ? नहीं, उसकी मुझे आवश्यकता न रहे। मैं स्वयं के भीतर से ही प्रेरणा प्राप्त करूँ क्योंकि आखिर हम जब तक किसी के ऊपर निर्भर रहेंगे, तब तक हमारा, हमारे कार्य में पूरा मन नहीं लगेगा, पूरा विश्वास नहीं जगेगा।

जीव जन्म लेता है, अपने इंद्रियों के माध्यम से विश्व का अनुभव लेता है और एक दिन संसार से चला जाता है। प्रतिदिन यह सब देखकर भी क्या हम इन बातों पर गौर करते हैं ? इसका स्वरूप समझ लेना आवश्यक है। संसार में ऐसे अनेक महापुरुष, तत्वज्ञानी, संशोधक हुए हैं जिन्होंने जीवन दर्शन के विषय में गहन विचार प्रकट किए हैं। अनेक विचार ग्रंथों में हैं जिसे हमें ध्यानपूर्वक समझ लेना चाहिए।

संत वह है, जिसका मनरूपी दर्पण स्वच्छ हो। जब दर्पण साफ-सुथरा होगा, तो उसमें दिखने वाला प्रतिबिम्ब भी बिल्कुल स्पष्ट होगा। क्योंकि संत में किसी के प्रति राग-द्वेष नहीं होता, बल्कि सहज रूप में उसके हृदय से करुणा प्रवाहित होती है, इसलिए उसके द्वारा कहा गया किसी के अहंकार को चोट नहीं पहुंचाता, बल्कि वह तो उसे पिघला देता है।

संत की अनुभूतियां जब वाणी पाती हैं, तो उनमें संसार के दुखों की चर्चा होती है, स्पष्ट और साफ-सुथरे आपसी संबंधों की बात होती है। दुख के कारणों का खुलासा करते हुए उसका समाधान भी सुझाते हैं संत।

संतों की वाणी में राम, कृष्ण, अल्लाह, सद्गुरु, भगवान या सत्पुरुषों की जो बात कही जाती है, उसका संकेत सत्य से होता है। उनका संदेश होता है कि सत्य सबके आचरण में आए, क्योंकि इसके बिना न तो व्यवहार में उन्नति संभव होती है और न ही परमार्थ की साधना संभव हो पाती है। संत व्यवहार और अध्यात्म के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण करते हैं, जिससे मानव अपनी गरिमा को पहचान कर उस परम स्थिति का अनुभव करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है, जिसके बारे में वेद-वाणी नेति-नेति कहती है। संतोंने समय-समय पर व्यक्ति और समाज को शाश्वत सत्य की राह सुझाई, जिन्होंने निष्पक्ष भाव से जहां समस्याओं को उसके मूल से पकड़ा, वहीं उनके अचूक समाधान भी सुझाए।

भारत के संत कवियों के नीतिपरक दोहों में भारतीय-संस्कृति का सम्पूर्ण निचोड़ विद्यमान है। उनकी वाणी के एक-एक शब्द में, मानव-मन को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता है। सच तो यह है कि संसार में संतगण न होते और उनकी अनुभवजन्य वाणी में मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने की विलक्षण काव्य-शक्ति न होती, तो इस संसार से मानवता, आस्तिकता, संवेदनशीलता, सरसता और लोकहित भावना कभी की समाप्त हो गई होती।

संत कवियों की वाणी में सर्वत्र विचारों की एकसूत्रता परिलक्षित की जा सकती है। वहां किसी तरह की कृत्रिमता नहीं होती। इस संसार में वे जैसा अनुभव करते हैं, उसे बिना लाग-लपेट के ज्यों का त्यों लोगों को उनके कल्याण हेतु अर्पित कर देते हैं। उनकी वाणी में सम्पूर्ण विश्व-कल्याण की भावना, बिना किसी भेद-भाव, ऊंच-नीच के सभी के लिए समाहित होती है।

भारत के ये संत कवि जानते थे कि हृदय को हृदय से ही जीता जा सकता है। इसलिए उन्होंने अपने हृदय को पूर्णत: निर्दोष, निष्कपट और सरल बनाया तथा उसमें सरसता का अमृत भरा। तभी उनके हृदय की व्यंजना, मनुष्य के हृदय पर मंत्र-शक्ति का सा प्रभाव डालने में सक्षम हुई।

शब्द आकाश का गुण है। इसमें ब्रह्माण्ड के सर्जन-विसर्जन की शक्ति विद्यमान होती है। परंतु यही शब्द, ब्रह्म के आराध्य देव के रूप में संत कवियों का साध्य बना और वाणी का विषय बनकर समाज के मध्य चेतन-शक्ति के रूप में फूट पड़ा। निष्काम भावना से युक्त इस शब्द में लोकहिताय भावनाओं का ही प्रस्फुटन हुआ। तभी इसमें विश्वमोहिनी शक्ति का अविर्भाव संभव हो सका।

शान्त रस से परिपूर्ण यह संत वाणी, सर्वेश्वर प्रभु की सर्वांगीण शक्ति से भरपूर है। ईश्वर की वाणी तो दुष्टों का निग्रह और शिष्टों पर अनुग्रह करने वाली होती है, परंतु संतों की वाणी सभी पर समान रूप से अनुग्रह करती है। भगवान की वाणी में शासन का भाव होता है, पर संत की वाणी में प्रेम का स्वभाव होता है। भगवान की वाणी में सत्ता का गुण है तो संत की वाणी में सत्य का सौंदर्य विद्यमान है। संत, प्रभु के प्रभाव को सद्भाव में परिवर्तित करता है। यह वाणी परमात्मा की कृपा का फल है। इसका उपभोग करने से मानव जीवन को अमृतमय आनन्द का लाभ होता है।

मिठास और कड़वाहट में अधिक दूरी नहीं होती। प्रेम और घृणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कब एक दूसरे में बदल जाते हैं, हमको पता ही नहीं चलता। मिठास का चक्कर कई बार, या यूं कहें कि अधिकतर, हमको रोगग्रस्त कर देता है। बाद में चिकित्सा के लिए कड़वी औषधियां ही लेनी पड़ती है। जीवन दर्शन के यह सिद्धान्त जीवन को निरोग रखने के लिए औषधियों का कार्य करते हैं।

जीवन दर्शन सिद्धांत शाश्वत जीवन मूल्योंका प्रतिपादन करते हैं। जो जीने की कला सिखना चाहते हैं उनके लिये जीवन में बहुत ही उपयोगी है।

महानता का अर्थ ही है तुच्छता से ऊपर उठना। ऐसा तभी होता है, जब जाति, वर्ण, धर्म यहां तक कि जड़-चेतन की सीमाएं भी टूट जाती हैं। यह सभी सीमाओं से पार होना। अर्थात् असीम होना है। और जो ऐसा असीम हो जाता है, उसकी अनुभूति किसी एक की नहीं, सबकी होती है। उसकी करुणा तेरा-मेरा से परे जन-जन के लिए प्रवाहित होती है। यही कारण है कि महापुरुष चाहे किसी प्रदेश, भाषा या संप्रदाय से जुड़ा क्यों न हो सभी को अपना-सा लगता है। इनकी वाणियों को सुन-पढ़कर भ्रम होता है कि कहीं किसी एक ही बात को तो अलग-अलग भाषाओं में नहीं कहा जा रहा।

कुछ बातों की सार्थकता का अहसास उम्र की दहलीजों को पार करने के बाद होता है। अनुभवों से समझ आती है कि कौन-सी बात जीवन में कितनी महत्वपूर्ण है।

वाणी सिर्फ शब्दों व वाक्यों द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति का नाम नहीं है। वह तो जीवन की गहरी अनुभूतियों का सार रूप हुआ करती है। जो ऐसी वाणियों को पढ़ता-सुनता, जानता-समझता है, वह जीवन के परम रहस्य को जान जाता है।

करुणा जब सहज रूप में बाहर की ओर बहती है तो बन जाती है वाणी। वह ऐसा कुछ कहती है, जिसे पहले कभी सुना नहीं गया, वह चमत्कारी होती है इसी मायने में। जो भी उसका हल्का-सा स्पर्श कर लेता है, कृतकृत्य हो जाता है। महान लक्ष्यों को जो पाना चाहता है, उसे चाहिए कि वह महान लोगों की इन वाणियों को आत्मसात करे। महापुरुषों का प्रत्येक शब्द अनमोल होता है। महापुरुषों के बोल निढाल व निराश जीवन में चेतना का संचार करते हैं, मुर्दे में भी जान डाल देते हैं। ऐसा कई के साथ हुआ है। महापुरुषों की वाणी से कौन सा शब्द आपकी जीवनधारा को बदल दे। महान लोगों की वाणी पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि एक ही बात को, सच को, सबने अपने-अपने तरीके से और अपनी-अपनी भाषा में कहा है। अनेकता में एकता के सूत्र को समझाती है यह महान लोगों की वाणी।

जब-जब समाज में अधर्म का प्रचार और लोगों में अनाचार का उत्कर्ष होता है तो ऐसे में समाज के उत्थान एवं लोगों को पतोन्मुख होने से रोकने के लिए शासक व विद्वानों की मण्डली विचार-विमर्श के उपरान्त अनेक सुनीतियों को बनाती है। ये नीतियाँ समाज को एक नई दिशा देती हैं।

क्षण-क्षण नवीनता धारण करने वाला रूप, कविर्मनीषियों द्वारा परिकल्पित, जीवन-जगत के रहस्यों का उद्घाटन करने वाली पौराणिक कथाएं, सन्त-भक्त कवियों के अमृत मंत्र-पद, केसर, परंपरागत कुशल शिल्पियों द्वारा निर्मित महीन वस्त्र, स्वर्णाभरण, अमित भाव भरे दोहा, छंद तथा दीप्त मणि-माणिक्य- ये सब सरसरी निगाह से देखने के लिए नहीं होते। चलती दृष्टि से देखने पर ये बड़े साधारण लगते हैं। लेकिन जब कोई पारखी या तद्विषय-विशेषज्ञ सूक्ष्मता से देखता है तो पता चलता है कि वह क्या है और उसका क्या मूल्य है। अर्थात् वैसे-वैसे इनका मूल्य बढ़ता जाता है।

गुणी व्यक्ति गुणवान वस्तु या काव्य का गुण सूक्ष्मता से परखकर समझता है। जो अगुणी है, उसके लिए तो हीरा भी पत्थर के समान होता है। अगुणी से गुण की परख कराना मूर्खता कहलाएगी। यही सब भाव इस ज्ञान सागर में उद्धृत किये गये है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

सत्य

जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं हो सकता
जहां वासना जीवित है, वहां सत्य का निवास नहीं हो सकता।

अपनी सभ्यता के प्रति वफादार रहें। सत्य की खोज करें, सत्य बोलें, सत्य का आचरण करें। सत्य तो बलप्रद है, पवित्रता-स्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। सत्य तो वह है, जो शक्ति दे, जो हृदय के अन्धकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे।

यथार्थ वचन ही सत्य है। सत्य कथन ही ब्रह्म है। सत्य ही ब्रह्म विद्या का विशेष साधन है। सत्य ही परब्रह्म है। सत्य ही श्रेष्ठ धर्म है। सत्य के बिना कोई धर्म ही नहीं है। पुण्य सदा सत्य पर ही अडिग है। सत्य द्वारा ही मनुष्य निस्सन्देह सब कुछ प्राप्त कर सकता है। सत्यहीन कार्य करना सदैव निष्फल है। सत्य का खून करने वाले को शान्ति कहां से प्राप्त होगी ?

सत्यमेव जयते (सत्य की ही जय होती है)- हमारे राष्ट्रचिंह में अशोक स्तंभ के नीचे उद्दृत यह वाक्यांश मुंडकोपनिषद से लिया गया है। सन १९४७ में हमारे तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन और राष्ट्रनेता पंडित जवाहरलालजी ने सत्य को सर्वोपरि मानकर स्वतंत्र भारत के सामने इसे राष्ट्रमंत्र के रूप में रखा था। गांधीजी ने इसे विशाल अर्थ में लेते हुये लिखा है कि विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है और सत्य ही परमेश्वर है का नया सिद्धांत विकसित किया। सत्य का अर्थ है मन, वचन व कर्म की एकता।

जैन वचन सच्चं लोगम्हि सारभूयं इस दुनिया में सार रूप तो सत्य है, बाकि सब नि:सार है, सत्य की महिमा को ज्यादा उजागर करते है। सत्यपालन से हमारा तेज बढ़ता है, चारित्र्य उन्नत होता है, सत्य से धैर्य की सिद्धि होती है, जिसके पास सत्य है उसका धीरज कभी खत्म नहीं होता और सत्य से जो आंतरिक संतोष मिलता है उसकी बराबरी कर सकने वाली कोई दूसरी चीज दुनिया में है ही नहीं।

भगवान महावीर सत्य के महान साधक थे। सत्य के बारे में उनकी अनुभव वाणी के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत है-

सच्चं भयर्व सत्य ही भगवान है। सच्चं लोयण्मि सारभूर्य-सत्य लोक में सारभूत है। सच्चमेव समभिजाणाहि-सत्य का ही अनुशीलन करो। सच्चसि घितिं कुव्वह-सत्य में धैर्य रक्खो। सच्चस्स आणाए उवटिठए से मेहावी मारं तरति-जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित है, वह मेधावी मृत्यु को तर जाता है।

सत्यनिष्ट व्यक्ति निश्चिन्त रहता है। लोक में प्रतिष्ठा पाता है। आदेय वचन बनता है- उसकी आज्ञा का कोई अतिक्रमण नहीं कर पाता और उसे वचनसिद्धि की उपलब्धि भी हो सकती है। इसी दृष्टि से हर विवेक सम्पन्न व्यक्ति को सत्य से सम्बन्धित आस्था वाक्यों अथवा आदर्श वचनों को सामने रखना है और एकनिष्ठ होकर सत्य का अनुशीलन और अनुपालन करना है, किन्तु जय-पराजय की भावना से ऊपर उठकर आत्मशुद्धि या जीवन की पवित्रता का उद्देश्य ही मुख्य हो।

महाभारत के कवि ने सत्य को मार्मिक रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया है- नासो धर्मो यत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छ लेनानुविद्धम, अर्थात जिसमें सत्य नहीं होता वह धर्म नहीं है और जिसमें छल होता है वह सत्य नहीं हैं।

सत्य के साथ सौंदर्य है, सत्य के साथ शिवत्व है, सत्य के साथ आनंद है, सत्य के साथ अमृत है। आज सत्य सूली पर और असत्य सिंहासन पर दिखायी देता है परन्तु ऐसा अल्पकालिक रहता है।

ओशो ने कहा है कि जीवन के असत्यों का दर्शन, सत्य की पहली किरण का जन्म बनता है, और जहां प्रकाश की एक भी किरण है वहां से सूर्य तक की यात्रा भी हो सकती हैं।

श्री विजयेन्द्रजी स्नातक ने सत्य को धर्म की धूरी बताया है। यह अहिंसा की मर्यादा है, शुचिता और आस्था का संबल है, अस्तेय, अपरिग्रह, तप, श्रद्धा ओर शील का रक्षक है। सत्य का मानव जीवन में सर्वोच्च उदात्तगुण मानकर चलना चाहिये जो कि व्यक्ति के जीवन को आदर्शोन्मुख बनाये।

सत्य वह धुरी है, जिस पर मानव की समस्त गुणवत्ता निर्भर करती है। सत्य का अर्थ है हृदय की निर्मलता, हृदय की विशालता। कह सकते हैं कि हृदय वह उदगम है, जहाँ से विचार और कर्म की धाराएँ प्रवाहित होती है। जैसा उदगम होता है वैसे ही उसकी धाराएँ होती हैं।

सत्य इंसान को निर्भीकता प्रदान करता है, उसके आचरण को शुद्ध रखता है और समाज को मूल्याधार बनाता है। सत्य वह

पारसमणि है, जिसके स्पर्श से सब कुछ कंचन बन जाता है।

सत्य को समझने की बड़ी सुगम कसौटी है। हम जो भी काम करें उसमें इस बात का ध्यान रखें कि उससे किसी का अहित तो नही होता। हम मुंह से कोई शब्द निकाले उससे पहले यह देखें कि उससे किसी को चोट तो नहीं लगेगी। यदि हमारे काम से किसी का अहित होता हो, यदि हमारे शब्द से किसी को चोट लगती हो तो निश्चित मानिये वह सत्याचरण नहीं है।

धर्म और सत्य का अटूट सम्बन्ध है। जिसकी धर्म (संकीर्ण धर्म नही व्यापक) में निष्ठा नहीं है, वह कभी सत्यानुगामी नहीं हो सकता। इसी से हमारे पूर्वजों तथा ऋषि-मुनियों ने धर्म की इतनी प्रभावना की। धर्म मनुष्य को आत्मा से सम्पृक्त करता है और सत्य उसे ईश्वर की ओर ले जाता है। सत्य जीवन के अस्तित्व का और उसकी संगीतमय अभिव्यक्ति का उद्‌गार है। वह मूलाधार है और प्राकट्य का सूत्रधार भी। इसी से जीवन का विशेष रूप से मानव जीवन का वह साध्य भी है और साधना भी। जीवन की सभी अभिव्यक्तियाँ सत्य से अभिमंत्रित हैं और सत्य की आराधना भी।

धर्मेध धारयते प्रजा प्रामाणिकता, कर्तव्यनिष्ठा, संयम, क्षमा, समता, बंधुता इत्यादि सत्य के विविध रूप जिन्हे महाभारत ने सत्य के त्रयोदश आकार कहा, पराभूत हुए-से लगते हैं। भोगवादी संयम-शून्य जीवन समाजोन्नति का आधार नहीं बन सकता। जीवन की एकान्त भक्ति की राह है रचना की, संयम की, संगीत की, सत्य की जय इसी में निहित है।

महर्षि पतंज्जलि ने कहा है- सत्य प्रतिष्ठित व्यक्ति को वाक् सिद्धि प्राप्त होती है। यदि कोई व्यक्ति बारह वर्ष तक पूर्ण रूप से सत्यवादि रहे तो उसकी प्रत्येक बात यथार्थ होगी। सत्य ही परमेश्वर है।

सत्य इसे बुद्धि नहीं समझ सकती। बुद्धि से परे का विषय है। क्योकि सत्य असीम है और बुद्धि सीमित है। जो लोग सत्य की अनुभूति कर लेते है उनका दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। उसका चिन्तन सर्वे भवन्तु सुखीन: के लिये होता है और बुद्धि से परे होता है। सत्य को जानना मतलब जीवन की असलियत, वास्तविकता को पहचानना है समझना है। आदमी को पैर टिकाने के लिये धरती की आवश्यकता होती है। विचार के आकाश में कुछ समय के लिये विचरण कर लेगा लेकिन सही अर्थ में जीवन को सार्थक बनाने के लिये सत्य की अनुभूति आवश्यक है।

व्रत से दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा, दक्षिणा से श्रद्धा तथा श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है। अत: सत्य ही सर्वोपरि धर्म है।

असत्य में शक्ति नहीं होती। उसे अपने अस्तित्व के लिये सत्य का ही आश्रय लेना पडता है। जहाँ हर समय सुख का अनुभव होता है उसे स्वर्ग कहते है। क्या जीवन में ही उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता? उसे पाने का साधन कौनसा है? मनुष्य अपने जीवन मे ही स्वर्ग का अनुभव ले सकता है और उसका साधन है सत्य। आज के समय में सत्य का कोई आश्रयदाता नहीं रहा। सत्य मृत प्राय और असत्य अमर जैसे लग रहा है। फिर भी सत्य ही सच्चा सुख दे सकता है यह एक सच्चाई है। गलत, असत्य मार्गों से प्राप्त सुख आखिर दु:ख मे बदल जाता है। हम सम्पूर्ण सत्य का पालन भले ही न कर सके लेकिन हो सके तो उतने सत्य आचरण की ओर अग्रसर हो।

सत्य आचरण धर्म है और झूठा आचरण अधर्म है। असत्य के बाजार में सत्य का सिक्का चल नही पा रहा है इसी से सब जगह अधर्म फैल रहा है। झूठ झूठ ही होता है वह कभी भी सत्य की समानता नहीं कर सकता। सत्य अथवा धर्म कभी भी नष्ट नहीं होता है।

संसार में तीन चीजे नश्वर है वह टिकती नहीं। संसार लगातार गतिशील है, वह रूकता नहीं है उसमे कोई चीज स्थायी नहीं रहती, टिकती नहीं, लगातार परिवर्तित हो रही है। जो मिल कर बिछड जाये, पाकर खो जाय, वह सत्य नही है। सत्य वह है जो सदा रहे, जिसमे निरन्तरता है। संसार मिथ्या है, यह दिखाई दे रहा है। मगर टिकेगा नहीं। शरीर, सत्ता, सम्पत्ति, सुख भोग के साधन आदि सब मिथ्या तत्व है और यह टिकने वाले नही। ओस होती है प्रतिदिन लेकिन उसका अस्तित्व क्षणिक है। संसार में भी क्षणिकता है। जो पाया है उसे छोडना भी पडेगा। रेल में सफर करते समय रेल के आगे बढ़ने पर लगता है घर, नगर पीछे छूटते जा रहे है, जिन्दगी का सफर भी ऐसा ही है।

संसार संयोग-वियोग का प्रवाह है। हर पल कुछ न कुछ घट रहा है। जो सदा से है, सदा था, सदा रहेगा, उस सत्य को जानो पहचानो। परमात्मा शाश्वत है, नित्य है, उससे मिलने वाला आनन्द कभी क्षीण नहीं होता है। दुनिया का कोई भी आनन्द टिकनेवाला नहीं। शरीर, मकान, वस्त्र सब त्यागने पडेंगे। वस्त्र पहना आनन्द मिला, मगर बदलने का मन होते रहेगा। नये वस्त्र प्राप्त करते ही, पुराने छोडते हुये खुशी होती है, लेकिन जब वह नये थे तो कितना आकर्षण था। ऐसे ही इस देह को छोडना होगा, फिर कोई नई देह को पाकर खुश हो जावोगे। देह इतनी पुरानी हो जायेगी कि अपनी शुद्धि का भी ध्यान नहीं। चादर इतनी पुरानी हो जायेगी कि त्यागने का समय

आयेगा मगर मन कहता हैं अभी और जीना है। पुरानी बातें याद आती है। हालात से समझौता कर लेना चाहिये कि सब चीजों में बदलाव आयेगा। सत्य से जुडे रहना, सत्य का बल अपने आप मे अद्‌भुत है। सच्चा सरल व्यक्ति भगवान की शरण में जाये तो उसके मुख का सूर्य अवश्य ही उदय होता है। भगवान के पास जाने में सरलता व सत्य की आवश्यकता है। सत्य ही धर्म है, और धर्म ही सत्य है। सत्य का पारखी वो जो सत्य का दर्शन कर ले वही संत कहलाता है। अपने को मिटा कर ही सत्य का दर्शन होता है। सत्ता और सम्पति अहम देने वाले है और सत्य अहम को तोडता है। सत्य और चरित्र की रक्षा के लिये सर्वस्व भी त्यागना पडे तो त्याग दे किन्तु, सत्य और चरित्र ही जीवन की अनमोल निधि है।

सत्य जो कभी भी कष्ट नही होता, जो नित्य है शाश्वत है और जिसके स्वीकार से व्यक्ति शाश्वत सुख प्राप्त कर सकता है उस सत्य के तीन रूप है। १) जिज्ञासा :- उचित और जीवन के अनुकूल सुख का स्वरूप क्या है यह जानने का नाम ही जिज्ञासा है। इस जिज्ञासा को सतत बढ़ाना ही सत्य की आराधना है। २) ज्ञान :- सुख प्राप्त करने के मार्ग का ज्ञान होते ही सत्य उपस्थित होता है। सत्य के अस्तित्व मे ही शाश्वत सुख प्राप्ति का ज्ञान होता है। ३) विश्वास :- जिज्ञासा से ज्ञान मिलता है, यानि सत्य की उपासना कर सत्य का ज्ञान होता है लेकिन उस ज्ञान पर विश्वास होते ही वह सत्य सुख का रूप लेकर जीवन में अवतीर्ण होता है।

निर्भीक का धर्म सत्य है, और सत्य का शोध ही मानव स्वतन्त्रता है। सत्य को अपना दीपक मानकर दृढ़तापूर्वक स्वयम् से प्रकाश ग्रहण करो। बाहरी किसी सत्ता पर निर्भर न रह कर सत्य में ही अपनी मुक्ति की खोज करो। ज्ञान को उच्चतम शिखर पर पहुंचने के लिये इस सूत्र को स्वीकार कर लेना चाहिये।

किसी एक का सत्य सबका सत्य नहीं हो सकता। हमारे यहा सनातन धर्म, सनातन सत्य जैसी मान्यताये है। यही सनातन धर्म व सनातन सत्य है कि "प्रत्येक का सत्य उसके द्वारा प्रकट किये गये शोध से प्रकट होता है। एक व्यक्ति का सत्य दूसरे का सत्य कदापि नहीं हो सकता। सत्य ही धर्म है। अत: प्रत्येक व्यक्ति का धर्म वही है जो उसके द्वारा आंतरिक शोध से प्रकट होता है।

स्पष्ट है कि जो सत्य या धर्म सनातन घोषित किये जाते है अर्थात एक के द्वारा दूसरे पर या समूहों पर लादे जाते है वे सत्य या धर्म नही है। वह उस एक के सत्य या धर्म हो सकते है। उसके बारे में सिर्फ वही जान सकता है। वही उनकी घोषणा भी कर सकता है कि यही सत्य है, मैने पाया यही धर्म है मैने जाना लेकिन यह उसका अनुभव है। दूसरों के किसी अन्यों का नही, चाहे वह सुख हो या आनन्द। एक व्यक्ति का अनुभव दूसरे का अनुभव नहीं होता। व्यक्ति का सम्पूर्ण अस्तित्व ही स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र इकाई है। इसलिये उसे उस दु:ख, पीडा या आनन्द का अनुभव स्वयम् करना होता है। एक को कांटा चुभने पर दूसरा संवेदना वश उससे जुडाव महसूस कर सकता है मगर वह उसकी वह पीडा जान नहीं सकता, अनुभव में नहीं जान सकता। जब साधारण सुख-दुख को लेकर के व्यक्ति में यह स्वाभाविकता विद्यमान है तो सत्य-धर्म या सच्चिदानंद या परमानन्द को लेकर कैसे एक ही सत्य या परमानन्द की एक को हुई अनुभूति सबको हो सकती है।

हम देखते है कि हम जिन संगठित समाजों में रहते है, उन समाजों द्वारा स्वीकृत पारंम्परिक संगठित धर्म इसके विपरीत यह बताते है कि उनके प्रवर्तक या आदर्श या पूज्य जिसने जिस सत्य या धर्म का प्रवर्तन किया, जो सत्य बताया या कहा कि यही धर्म है वही उसके सभी अनुयायियों का सत्य व धर्म है। क्या यह अमानवीय नही है? क्या यह मनुष्य के साथ छल या षडयंत्र नही है? क्या यह दुष्टता नहीं है? क्या यह जड मृत वाद या इज्म नही है? क्या यह मनुष्य को निर्जीव बना देने की साजिश नहीं है?

इसके विपरीत जो तर्क के द्वारा अपने गुरु डम अपनी कथित सत्य व धर्म की दूकानों को जारी रखना चाहते है उन कुरीतियों के कारण ही संगठित समाज संगठित धर्मों का गुलाम बन गया है। हकीकत यही है कि कोई भी धर्म संगठित या सामूहिक नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक का धर्म उसके भीतर प्रकट सत्य का परिणाम होता है। लेकिन क्या कहा जाये उन्हे जो व्यर्थ में अपनी जिद्द के कारण स्वयम् व दूसरों के जन्म जन्म बर्बाद करने पर विवश हुये है। जो लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता व निजता का अपहरण करके उन्हें संगठित धर्मों व दूसरे के सत्य का गुलाम बनाना चाहते है, बना देते है।

हमारे देश मे कुछ उपनिषद है वे मनुष्य की प्रतिभा का चरम प्रकटीकरण है क्योकि वे परमात्मा या परम सत्य की खोज के लिये मनुष्य को प्रेरित करते है। उस चैतन्य मात्र की खोज जो इस सम्पूर्ण जीवन के पीछे है। वह क्षेत्रज्ञ जो इस देह क्षेत्र का शुद्ध चैतन्य है।

यही जो चैतन्य मात्र का शोध है यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्वतन्त्र है, सत्य है। यही सत्य जब वह अनुभव से जानता है तभी

उसका धर्म प्रकट होता है इसलिये एक का सत्य या धर्म सबका सत्य या धर्म नहीं हो सकता।

सनातन आर्य धर्म के ऋग्वेद में कहा गया है कि सत्य के आधार पर ही आकाश, संसार, सम्पूर्ण प्राणि जगत आधारित है। सत्य के प्रभाव से दिन उगता है और डूबता है। वही सत्य मनुष्य को जीवन में उतारना चाहिये। सत्य व्यक्ति का पालन करता है और असत्य विनाश करता है। इसलिये बुद्धिमान लोगों को सत्याचरण ही करना चाहिये। जैन धर्म कहता है कि सच्ची बात यदि कडवी हो, किसी का मन दुखाने वाली हो, प्राणी हिंसा करने वाली हो तो बिल्कुल बोलने नही चाहिये। कटु सत्य भी एक तरह से पाप ही है। इसलिये सत्य को ही सार समझे लेकिन वह प्रिय सत्य हो। मधुर, प्रिय और हितकर सत्य का आचरण मृत्यु जीत सकता है। बौद्ध धर्म कहता है जो सत्य का त्याग करता है और असत्य भाषण करता है वह धर्म के विरुद्ध आचरण करता है। जिसे परलोक की चिन्ता नहीं वह असत्य आचरण का पाप करता है।

सत्य को अपना दीपक मानकर दृढ़तापूर्वक स्वयम् से प्रकाश ग्रहण करो। बाहरी किसी सत्ता पर निर्भर न रह कर सत्य में ही अपनी मुक्ति की खोज करो। इस सूत्र को संकल्प के साथ अपना लेने से ज्ञान के उच्चतम शिखर तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होती।

साधारण जगत में कभी ऐसा लगता है कि सत्य हारता है और असत्य जीतता है। वास्तव में यूँ करना चाहिये कि असत्य जीतता नहीं है बल्कि जीता है। सत्य के आधार से असत्य जीता है जैसे परजीवी वृक्ष पर जीता है। सत्य के काफी उदार और व्यापक होने के कारण ये असत्य उसके सहारे जीते है। ऊपर से देखने पर भले ही लगे मानो वे जीत रहे है। बादल चाहे जितना भी सूरज को ढ़ंक दे वह केवल एक आभास होता है पर वह सत्य नहीं है। उसी तरह सत्य रूपी तेजस्वी और सूर्य अपने तेज से चमकता है और असत्य के बादल मिट जाते है।

सत्य अन्त में जीतता है, असत्य नहीं। सोना आखिर तक सोना ही रहता है, वह लोहा नहीं बन सकता। सोनेपर मिट्टी का लेप चढ़ा देने से वह मिट्टी नहीं बनता। हर कसौटी पर जांच के बाद भी सोना कसौटी पर खरा उतरता है, उसे आग मे तपाते है मगर अग्नि परीक्षण के बाद वह और चमकता है, उसमें निखार आता है। सत्य की राह पर चलने वालों को कई बार अग्नि परीक्षा देनी पडती है। लौकिक जगत मे सत्य पराजित होते दिखता है लेकिन जीत होती ही सत्य की है। सत्य शूरवीरों का शस्त्र है, कायरों का नहीं। सत्य शूरवीरों का भूषण है। सत्य पर जिसकी मन:पूर्व निष्ठा है अन्त मे विजयश्री उसी को वरण करती है।

धर्म के चार पद हैं- सत्य, तप, दया और पवित्रता। इन चार चरणों में सत्य सर्वोपरि है। महाभारत में सत्यदेव राजा की कथा आती है। चंचला होने के कारण लक्ष्मी अमुक समय में आवेगी।

एक दिन सुबह जब सत्यदेव उठे तो उन्होंने घर में से एक सुन्दर स्त्री को निकलते देखा। राजा ने आश्चर्य में उस स्त्री से पूछा कि आप कौन है ? जवाब मिला - मेरा नाम लक्ष्मी है। अब मैं इस घर से जा रही हूँ। तब राजा ने कहा कि आप जा सकती हैं।

लक्ष्मीजी चली गईं। उनके पीछे एक सुन्दर पुरूष को बाहर जाते देखकर राजा ने उनसे पूछा कि आप कौन हैं ? उत्तर मिला - मेरा नाम दान है। लक्ष्मी के जाने के बाद आप दान नहीं कर सकेंगे, इसलिये मैं आपका घर छोड़ रहा हूँ। राजा ने कहा कि आप भी जा सकते हैं।

इसके बाद तीसरा सदाचार और चौथा यश पुरूष के रूप में बाहर आये। राजा के पूछने पर लक्ष्मी तथा दान के साथ जाने की कहने पर राजा ने दोनों को जाने दिया। पर पांचवाँ सत्य जब पुरूष रूप में इसी प्रकार जाने लगा, तो राजा ने हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहा- मैंने तो आपका कभी त्याग नहीं किया। आप मेरे को किसलिये छोड़ रहे है ? आपके लिये लक्ष्मी, दान आदि सबका त्याग किया है। मैं आपको नहीं जाने दूँगा- आपके जाने पर मेरा सब कुछ चला जायेगा। इसलिये सत्य रह गया। सत्य घर में से बाहर नहीं आया, इसलिये बाहर गई हुई लक्ष्मी, दान, सदाचार और यश भी वापस आ गये। सत्य ही सर्वस्व है। सत्य बिना सदाचार, दान, कीर्ति, लक्ष्मी किस काम के? इसलिये घबराओ मत- जहाँ सत्य होगा, वहाँ इन सबको रहना ही पड़ेगा। सत्य परमात्मा है। सत्य प्रभु से भिन्न नहीं है। सत्य के द्वारा मनुष्य नारायण के समीप जा सकता है। सत्यमेव जयते।

सत्य एक विशाल वृक्ष है, उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है, त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए नजर आते हैं, उसका अन्त ही नहीं होता। सत्य में ही नारायण हैं।

लोग यही मानते हैं कि झूठ बोलने वाला आखों में आंख डालकर बात नहीं कर सकता या घबराया सा रहता है परंतु शोध कहते हैं कि झूठ बोलने वाले सच्चा दिखने के लिये ज्यादा दम से बातें करते हैं और सामान्य दिखने की कोशिश में लगे रहते हैं। झूठ और सच की लड़ाई शायद उतनी ही पुरानी है जितनी यह मानव सभ्यता। सच की तलाश में गीता-कुरान पर हाथ रखवा कर कसम भी खिलवाई जाती

है, इंसानियत का वास्ता भी दिया जाता है और बच्चों के सर पर हाथ भी रखवाया जाता है लेकिन सब बेकार। झूठा झूठ बोलता ही है।

झूठ पर काबू पाना मनुष्य के लिये हमेशा से चुनौती रहती है। कहते हैं, झूठ सच को परेशान तो कर सकता है लेकिन परास्त नहीं कर सकता। पर आदमी का सोचना रहा है कि खामख्वाह की परेशानी किसलिए ? क्या सच की तकदीर में परेशानी ही लिखी है ? क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं जिससे झूठ को धर-दबोचा जाए और सारी की सारी झंझट वहीं की वहीं खत्म कर दी जाए। सभी यह चाहते हैं ! पर करें भी तो क्या ? जाएं भी तो कहां ? इस प्रश्न का कुछ हिस्सा अभी भी अनुत्तरित है। झूठ के साथ सबसे बड़ी दिक्कत है कि इसकी न तो अपनी खुशबू होती है, न रंग, न ही इसके बोलने वाले की अचानक नाक ही लंबी हो जाती है। पूरा करिश्मा इस पर निर्भर करता है कि जांच का तरीका क्या है ? शोधकर्ताओं ने माना कि झूठ बोलने के लिये जिम्मेदार है दिमाग। इसके लिये एक नशीला शरबत अस्तित्व में आया जिसमें कुछ रसायन होते थे। माना जाता था कि इसके पीने के बाद अपराधी का दिमाग पर अतिरिक्त नियंत्रण जाता रहता है और वह सच-सच उगलने लगता है। किंतु परीक्षणों के बाद पाया गया ऐसा करने पर अपराधी सच कम उगलता था ऊल-जलूल ज्यादा बकता था। बाद में मानवाधिकारों की वकालत करने वालों ने घोषणा की यह प्रक्रिया उत्पीड़न का ही एक प्रकार है और इस पर रोक लगा दी गई। झूठ को धर दबोचने का ख्वाब पाले तमाम शोधकर्ता जुगत निकालते रहे हैं। इनमें मनुष्य की शारीरिक परिभाषा से लेकर उसके शरीर की स्वाभाविक क्रियाओं में आया बदलाव भी शामिल होता है जो साधारण तरीके से तो समझ में नहीं आता लेकिन बारीक अध्ययन से उसे ताड़ा जा सकता है। झूठ पकड़ने के जो सबसे पुराने वैज्ञानिक प्रयास हैं उसमें लाई डिटेक्टर टेस्ट पॉलीग्राफ भी है। हालांकि इसे घिसा-पिटा कहा जा सकता था लेकिन इसकी खासियत है इसमें नए शोधों और तकनीकियों का समावेश है। शोध कहते हैं कि झूठ बोलने वाले सच्चा दिखने के लिये ज्यादा दम से बातें करते हैं और सामान्य दिखने की कोशिश में लगे रहते हैं। शोधकर्ताओं का मानना है कि झूठ को पकड़ने के लिये प्रश्न पूछे जाने और उत्तर दिए जाने के बीच अंतर पर बारीकी से ध्यान दिया जाना चाहिए। झूठ बोलने वाले उत्तर देते समय अपेक्षाकृत अधिक समय लेते हैं। अब शोधकर्ता तमाम संवेदनशील तकनीकों के साथ सामने आ रहे हैं। इसमें २ उपायों की खास चर्चा की जा रही है। ऊष्मा के संवेदनशील कैमरे चेहरे के तापक्रम को आधार मानकर काम करते हैं। प्रयोग में पाया गया है कि झूठ बोलने वाले व्यक्ति के चेहरे और खासकर आंखों के नीचे का तापक्रम बढ़ जाता है। हालांकि यह आंखों से दिखाई नहीं पड़ता लेकिन ऊष्मा के प्रति संवेदनशील कैमरे की मदद से इन्हें पकड़ा जा सकता है। इस तकनीक की सबसे बड़ी खासियत यह है कि प्रयोग करते समय न तो हाथ में पट्टे ही बांधने पड़ते हैं और न ही व्यक्ति को किसी कुर्सी में बैठाना पड़ता है। इस प्रक्रिया में थर्मल इमेजिंग कैमरा प्रयुक्त होता है। दूसरा उपाय है कि पूछताछ के दौरान दिमाग का स्केन करना। इस तकनीक का आधार है कि झूठ बोलने वाले व्यक्ति की दिमागी हलचल अचानक बढ़ जाती है। इस परियोजना में लगे विशेषज्ञों का दावा है कि दूसरी अन्य तकनीकियों की अपेक्षा यह कहीं अधिक कारगर है क्योंकि दिमागी हलचल को बस में करना अपराधी के लिये लगभग नामुमकिन होता है। माना कि यह सच है कि १०० प्रतिशत कोई भी उपाय ऐसा नहीं है कि जिससे झूठ का पर्दाफाश होने का दावा किया जा सके लेकिन यह भी सच है कि इन उपायों से उन गुत्थियों को भी सुलझा लिया गया है जो पहले लगभग असंभव लग रही थी। जब अपराधियों को झूठ पकड़ने वाली मशीन पर बैठाने की बारी आती है तो तमाम लोग इसी डर की वजह से वह सारा कुछ उगल देते हैं जो पहले सौ लाठियां खाकर भी नहीं उगल रहे थे।

ईमानदारी एक ऐसा गुण है, जिसे जीवन में उतार लेने पर जीवन की सार्थकता पूर्ण हो जाती है। इससे न केवल मानव मात्र का बल्कि संपूर्ण समाज और राष्ट्र का परिवर्तन हो सकता है। मानव जीवन में ईमानदारी आते ही व्यक्ति अपनी गलतियों को छिपाने के लिए असत्य का बहाना नहीं लेता है। समाज में खुलेपन के परिवेश से कोई किसी से भी बिना हिचकिचाहट के बाते कर लेगा। किसी से कभी कोई अनबन हो जाने पर बिना छोटे-बड़े की ग्रंथि पाले स्वतंत्र रूप से एक दूसरे से शिकायतों की चर्चा सार्थक बन जाती है। अंतत: एक समाधान आ निकलता है। सारी बात ईमानदारी की लोक मर्यादा में हो जाती है। ईमानदारी से काम करने पर सर्वत्र प्रसन्नता जन्मेगी। इससे समाज समृद्ध होने के साथ-साथ देश आगे बढ़ता है। ईमानदारी से रामराज्य की कल्पना साकार हो सकती है। अपनी भूले न मानने के कारण ही पूर्ण परिवार का आपसी सद्भाव और प्रेम सूखने लगता है। परिवार में की गई ईमानदारी ही राष्ट्र और विश्व को शक्ति प्रदान करती है। ईमानदारी यदि ईमानदारीपूर्वक अपनाई जाए तो मानव जीवन अत्यंत पावन, सात्विक और महानता का पुंज बन सकता है। परन्तु मन की ईमानदारी प्रतिदिन जीवन में उतारनी पड़ेगी। सत्य वचन मात्र शब्दों का ही सत्य नहीं

अपितु भावों को सच्ची ईमानदारी से रखना सार्थक होता है। अपने संकुचित स्वार्थ से पृथक जगत के कल्याण के लिए आवश्यकता पड़ने पर झूठ बोलने का पाप नहीं लगता। अपने कलुषित स्वार्थ में छल से सत्य वचन भी अमंगलकारी बन जाता है। यदि शब्दों द्वारा सत्य वचन से भावनाएं झूठी लगे तो वह सत्य भी असत्य ही रहता है। जो व्यक्ति स्वयं को परिपूर्णता से पहचान जाता है वह जीवन में कभी भयभीत नहीं रहता। अपनी सारी अनुभूतियों और भावनाओं को स्वीकार करना वह जान जाता है। दु:ख, सुख, प्रेम या अपराध के प्रति वह चिंतित होता रहता है।

सत्य का पालन किये बिना मनुष्य संसार रूपी सागर से पार नहीं हो सकता है। भगवान राम ने रामायण में स्पष्ट रूप से कहा कि मोही कपट छल छिद्र न भावा, अर्थात मुझे वो मनुष्य प्रिय नहीं है जिसके हृदय में छल-कपट इत्यादि भरा हुआ है। अर्थात वह मनुष्य कभी संसार सागर से पार नहीं हो सकता जिसके हृदय में छल-कपट विराजमान है। चाहे सन्यासी हो या गृहस्थी हो उसे सत्य को धारण करना चाहिए। भगवान से कभी भी भूल कर अपने स्वार्थ के लिए छल-कपट से प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य साफ मन से भगवान की शरण में जाते है उन पर भगवान अपनी दया दृष्टि सदैव रखते हैं।

सतयुग के उलट होता है कलियुग। इसमें लोगों का आचरण सतयुग के लोगों से ठीक विपरीत होने लगता है कि असत्य की विजय और सत्य की पराजय हो रही है। मनुष्य के जीवन में कई बार सत्य-असत्य, जय-पराजय का घनघोर संघर्ष होता है।

सत्य या न्याय की विजय हो यह हम कितना ही चाहें, अन्याय न्याय को घायल करते हुए, असत्य सत्य को कुचलते हुए दिखता है। यह विपरीत दृश्य सत्य एवं न्यायी मन उपास करता है, लेकिन ऐसे समय में मनुष्य को धीरज से काम लेना चाहिए, क्योंकि यही तो कलियुग की असली महिमा है। असत्य असत्य ही होता है। वह सत्य का स्थान कभी नहीं ले सकता देर से ही सही, पर अंतिम विजय सत्य और न्याय की होती है। जब सच्चाई बोलती है तब और कोई नहीं बोलता।

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:। धीर्विद्या सत्यमक्रोध: दशकं धर्मलक्षणम्।। धर्म के दस लक्षणों मे सत्य का नवम् स्थान है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि सत्य कल्याणकारी और सुन्दर होना चाहिए। तभी वह लोकोपकारी होगा। शास्त्रों मे उल्लेख है-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्म: सनातन:।। मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य बोले, प्रिय बोले, अप्रिय सत्य को न बोले और असत्य प्रिय को भी न बोले। यही सनातन धर्म है।

सच कडवा होते हुए भी वह अप्रिय नहीं होना चाहिए। कडवा सच कहते हुए मीठे शब्दों का प्रयोग करेंगे तो सच और प्रिय कह सकते हैं। वैसेही दूसरों को अच्छा लगता है, प्रिय लगता है इसी कारण झूठ नहीं बोलना। सच हमेशा कहना झूठ कभी भी नहीं। इस तरह से संभाषण करना इसे वाक्चातुर्य कहते है। सच कहते हुए भाषा में बदलाव लाना। किसी के दोष अथवा दुर्गुण बताते समय भी गुणों का वर्णन करना। अक्षर में सुधार हो तो दूध में शक्कर ऐसा कहने से अक्षर खराब है इस बात का परिचय देते हुए अप्रिय नहीं लगता।

अच्छे मित्रों की पहचान है कि वह हमें सत्य की ओर ले जाये और असत्य से हमारी रक्षा करे। ऋग्वेद के अनुसार- ऋतं पिपर्ति अनृतं नि तारीत्। सत्य को ऋत भी कहते है और सत्य को बढ़ाने वाली वाणी ऋतम्भरा कहलाती है। मनुस्मृति में उल्लेख है-

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठ से बड़ा कोई पाप नहीं है। हिन्दी के कवि ने भी इन्ही भावों को इन शब्दों में प्रकट किया है- सांच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप। जाकै हृदय सांच है ताकै हृदय आप।।

सारा विज्ञान और अध्यात्म सत्य की खोज मे लगा है। आदि शंकराचार्य ने लिखा है- ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या।

दर्शन शास्त्र के अनुसार ब्रह्म अर्थात ईश्वर सत्य है और यह जगत् माया जाल है। विज्ञान भी इसी अनुसन्धान में रत है कि सत्य क्या है? विज्ञान ने भी ईश्वर की सत्ता को नकारा नही है। परन्तु उसकी संज्ञा भिन्न-भिन्न प्रकार से बताई है। शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है-

सत्यं वै चक्षु:। सत्यं हि प्रजापति:। सत्य ही चक्षु है और सत्य ही भगवान है। उपनिषद मे स्पष्ट उल्लेख है-

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन पन्था विततो देवयान:। सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं। कई बार एक असत्य को छुपाने के लिए कई असत्य बोलने पड़ते है। सत्य में शक्ति और आस्था होती है। लेकिन ऐसा सत्य जिससे किसी को पीड़ा हो उसे बोलने की शास्त्रों ने मर्यादा सिखाई है।

भगवान् श्रीराम सत्य और मर्यादा के पूर्ण परिपालक है। इसका भाव यही है कि उन्होंने सत्य के साथ भी मर्यादा का पालन किया है। वे कभी भी अपने शत्रु को अपशब्द या ऐसा सत्य नहीं कहते। जिससे उसे पीड़ा/कष्ट हो। इसीलिए श्री राम शत्रु के भी मित्र रहे।

वे रावण, बाली आदि दुष्टों को भी पूरा सम्मान देते है और उनके अपशब्द बोलने पर भी कभी उत्तेजित नहीं होते। सत्य बोलने वाले सहनशील भी होते है। सहनशीलता सत्य का आभूषण है।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र अपने सत्य के साथ अपने कर्तव्य का पालन भी करते है। इसलिए वे सर्वोत्कृष्ट है। सत्य के साथ परिस्थितियां भी जुड़ी रहती है। व्यक्ति केवल सत्य बोलने का अभिमान करके अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाये तो वह न समाज के लिए, न देश के लिए उपयोगी कहलायेगा। सत्य को सापेक्ष कहा गया है। महाभारत के युद्ध मे युधिष्ठिर ने एक बार असत्य कहा था- अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा? मृत्यु के बाद जब यमराज के समक्ष युधिष्ठिर उपस्थित होते है तो उन्हें असत्य का परिणाम नर्क दर्शन के रूप में मिलता है। यद्यपि उन्होंने असत्य युद्ध में और श्रीकृष्ण के कहने से बोला था। परन्तु असत्य तो असत्य ही था।

आख्यानक के अनुसार चौराहे पर कसाई गाय के पीछे भाग रहा था। मार्ग में खड़ा व्यक्ति गाय और कसाई को देखता है। कसाई व्यक्ति से पूछता है कि गाय किधर गई। व्यक्ति ने गाय को जाते देखा है। अब वह किंकर्तव्यविमूढ़ है। यदि वह सत्य बोलता है तो उसे गौ-हत्या का पाप लगता है। यदि असत्य बोलता है तो भी उसे झूठ बोलने का पाप लगेगा। इस परिस्थिति में व्यक्ति विशेष का विवेक उसकी सहायता करेगा क्योकि न वहां कोई शास्त्र है न कोई आचार्य न कोई परामर्शदाता। इसीलिए सत्य को सापेक्ष कहा गया है।

वस्तुत: सत्य एक आराधना है, तपस्या है और उसके पालन से ही व्यक्ति क्रमश: आगे बढ़ता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सत्य भिन्न-भिन्न होता है। जैसे विद्यार्थी के लिए अध्ययन ही सत्य है। कर्मचारी और अधिकारी के लिए कर्तव्यपालन से बड़ा कोई सत्य नहीं है। सत्य का मार्ग कांटो भरा अवश्य है। परन्तु उन्नति के शिखर तक ले जानेवाला है। वास्तविक सत्य को जानने के लिए शास्त्रों एवं सन्तों का आश्रय लेना चाहिए। सन्त की परिभाषा कवियों ने इस प्रकार दी है- प्रेम जब अनन्त हो गया तो रोम रोम सन्त हो गया। अर्थात् जो सबसे प्रेम करता हो, सब मे ईश्वर का दर्शन करता हो वही सच्चा सन्त है और सत्य का मार्ग दिखा सकता है।

मनुष्य जब सब ओर से हार जाता है, जब उसे चारों ओर निराशापूर्ण अन्धकार-ही-अन्धकार दिखाई देता है तब वह सत्य से विचलित हो जाता है। उस समय वह सोचने लगता है कि थोडा अनुचित कार्य करके भी असत्य बोलने पर यदि मेरा यह कार्य सिद्ध हो जाता है तो थोडा-सा असत्य बोलने में क्या हानि है। उस समय वह सत्य से विचलित हो जाता है। वह यह नहीं समझता कि असत्य से उपार्जित वस्तु क्षण भर के ही लिये मन को सुखकर प्रतीत होती है, परिणाम में तो वह दुखप्रद ही है। विजय सदा सत्य की ही होती है।

तुच्छ व्यक्ति की जबान बदलती रहती है। वह आज किसी व्यक्ति के लिए जो कुछ कहता है, कल उससे विपरीत ही कहने के लिए तैयार हो जाएगा। वह अपने रंग बदलते ही रहता है क्योंकि उसका निर्णय सोच-समझ पूर्वक का नहीं है, जबकि गंभीर व्यक्ति खूब सोच-समझकर ही अपना अभिप्राय देगा, अत: उसे अपनी जबान बदलने की जरूरत ही नहीं पड़ती है।

दुनिया में जो कुछ सत्य है वह सब कुछ बोलने के लिए नहीं होता है। कई बातें ऐसी होती है, जिनको जान लेना ही पर्याप्त है, उसे बोलने की कोई जरूरत नहीं होती है। सब कुछ सत्य प्रकट कर दिया जाए तो भयंकर नुकसान की संभावना हो जाती है। अत: जितना बोले, उतना सत्य बोले (झूठ न बोलें) किंतु जितना सत्य है, उतना ही संपूर्ण बोलने का आग्रह न रखें। सत्य हमेशा प्रिय व हितकारी होना चाहिए। जो हितकारी न हो वह सत्य, सत्य भी नहीं है। अत: जो कुछ बोलें वह खूब सोच-समझकर, विवेकपूर्वक सत्य, प्रिय व हितकारी ही बोलें। प्रभु सदा सर्वदा सत्यस्वरूप में उनके अंतस में विद्यमान रहते है। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का यथार्थ और उसका मूल्यांकन सत्य के आधार पर ही होना संभव है। सत्य सदैव विजयी एवं झूठ सदैव पराजित होता है। सत्य जीवन की मधुरता है। आत्मीयता का विस्तार करता है सत्य, यह जीवन के हर क्षेत्र की प्रगति का आधार है। असत्य से किसी प्रकार की सुख या संतुष्टि अथवा किसी अनुकूल परिस्थिति की आशा करना अपने आपको भ्रम में डालना होगा। इससे किसी का भी हित होने वाला नही है। अत: इसे सदैव बचना चाहिए। सत्य से श्रद्धा उत्पन्न होती है, इससे सहारा लेना, प्रभु से सहारा लेने के समान है। आत्मा के साथ श्रद्धा न होने से आत्मबल कमजोर होता है।

इंद्रियां ऐसी यात्रा पर मनुष्य को ले जाती हैं जिसका कोई अंत नहीं है और जिसका कभी कोई अन्त नहीं है तो पूर्णता कहां से आएगी। आदमी आनंद को पाने की कोशिश में लगा रहता है। मनुष्य सत्य को भी खोजता है। जब तक हम अपने आप से नहीं पूछेंगे तो इनकी खोज करेंगे कहां ? जो लोग इसे अपने भीतर ही खोज लेते हैं, उनको बाहर खोजने की जरूरत नहीं होती। यह सब हमें अपने ध्यान से मिलता है।

सृष्टिगत जितने भी चराचर जीव हैं सभी ईश्वर के सनातन अंश हैं। अगर मानव अपने भीतर झांके तो उसे सभी तीर्थ, देव, मंदिर,

मस्जिद, गिरजाघर दृष्टिगोचर हो जाएंगे। इस सत्य की अनुभूति हमारे ऋषि-मुनियों ने कंदराओं में रहकर सदियों पूर्व कर ली थी जो आज भी सत्य है और सदा-सर्वदा सत्य ही रहेगा। उसी सत्य का उन्होंने प्रचार-प्रसार भी किया। लोग मंदिर-मस्जिदों में जाकर अपने दुष्कर्मों के प्रायश्चितस्वरूप प्रार्थना या सिजदा करके इतिश्री कर लेते हैं। लेकिन उस सत्य स्वरूप को जानने का प्रयास नहीं करते जिसे आत्मप्रकाश, नूर या दैवी प्रकाश कहते हैं। वही दिव्य प्रकाश सभी जीवों में व्याप्त है, विभ्रांतता का त्याग कर निष्ठा भाव से इसके बोध का प्रयास किया जाए तो उसी नूर के आज भी मानव दर्शन कर सकता है। वह विभ्रांतता की स्थिति से उबरकर उस सत्य का साक्षात्कार करे जिसका वह अंश है और जो सत्य सनातन है। सत्य की पहचान आडंबरों से नहीं होती, उसके लिए तो वास्तविक ज्ञान (आत्मज्ञान) की परख होनी चाहिए।

सत्य क्या है ? ऐसा ही प्रश्न सदियों पूर्व आत्मज्ञानी अष्टावक्र से ज्ञान-पिपासु जनक ने भी किया था। तब उन्होंने जनक को सत्य से साक्षात कराया था। वस्तुत: सत्य वह है जो इस चराचर जगत के कण-कण में तथा जीवों के घट-घट में सर्वदा व्याप्त है। जीवन का आधार भी सत्य ही है। सत्य आत्मस्वरूप है, सत्य वह है जो सामान्यजन या मूढ़मति को कभी भासता नहीं, उसे तो यह जगत ही सत्य भासता है। लेकिन जो कुछ भी दृश्यमान है वह सत्य नहीं है। इसके विपरीत जो अदृश्यमान है वही सत्य है।

ब्रह्म सत्य है। ज्ञान है। अनन्त है। परमात्मा सत्य है। ज्ञानस्वरूप है। अपरिच्छिन्न अखण्ड है। सत्य क्या है ? लोक-व्यवहारमें ऐन्द्रियक सत्यको सत्य कहते हैं। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध शरीरादिको सत्य कहते हैं। जिसको इन्द्रियोंसे देखते हैं और काममें लेते हैं, उसको सत्य कहते हैं। सत्यकी परिभाषा करते हुए हमारे अनेकानेक आचार्योंके अपने-अपने दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं। किसीने कहा कि अन्तमें, परमाणुके रूपमें, जो एक छोटा-से-छोटा कण रह जाता है, वह सत्य है। किसीने कहा कि यह बात ठीक नहीं है। सत्य बाहर नहीं होता है। जिस चित्तसे यह सारी सृष्टि मालूम पड़ती है, वह चित्त सत्य है। किसीने कहा कि बीज सत्य है। किसीने कहा कि वृक्ष सत्य है। किसीने कहा कि बदलता हुआ सत्य है। किसीने कहा कि देखता हुआ सत्य है। जैन धर्म में ऐसा मानते हैं कि फैलता-सिकुड़ता हुआ सत्य है। हाथीमें जानेपर हाथी हो गया और चींटीमें जाने पर चींटी हो गया। जो एक दिन हाथी हो गया, वही एक दिन चींटी हो गया। कभी फैल गया, तो कभी सिकुड़ गया। बौद्धोंने कहा कि परमार्थ तो शून्य ही है। वेदान्तियोंने कहा कि त्रिकालाबाधित वस्तु ही सत्य है। त्रिकालमें जिसका बाध न हो, वह आत्मा ही सत्य है।

आप सत्यको कहाँ ढूँढते हैं ? कण-कणमें ? वहाँ ढूँढनेसे नहीं मिलेगा। क्षण-क्षणमें ? वहाँ ढूँढनेसे भी सत्य नहीं मिलेगा। कोण-कोणमें ? वहाँ भी सत्य नहीं मिलेगा। जो कण-कणको, क्षण-क्षणको, कोण-कोणको प्रकाशित करनेवाला इनका अधिष्ठान है, वहाँ सत्य मिलेगा। सर्वाधिष्ठान सर्वावभासक स्वयंप्रकाश आत्मा ही है। तुम स्वयं ही हो। तुम ही एकमात्र सत्य हो। अपनेमें, अपनेसे, अपने आपको देखो। तुम त्रिकालाबाधित आत्म सत्य हो।

वेदान्त माने उपनिषद्। उपनिषद् माने अपौरुषेय ज्ञान। यह अपौरुषेय ज्ञानकी माया भी विलक्षण है। ज्ञानका असली रूप वह है, जो बनाया नहीं जाता। जो पैदा नहीं होता और जो मरता नहीं। जो ज्ञान पैदा होता है, घटता-बढ़ता है, बदलता है, मिट जाता है, वह असली ज्ञान नहीं है। वेदान्तियोंने सत्यका लक्षण किया- अबाधित। जिसका जो असली स्वरूप है, उसका वह परित्याग नहीं करता है। यदि ज्ञान अपने स्वरूपका परित्याग करे और ज्ञानमें परिवर्तन हो, प्रवर्तन हो, परिवर्द्धन हो, तो उस ज्ञानसे भी अलग उसका एक साक्षी होगा। यहाँ तक कि ईश्वरने भी ज्ञानका निर्माण नहीं किया। जब ईश्वरने ही सारी दुनिया बनायी है, तब ज्ञान भी बनाया ही होगा। जब ईश्वरने दुनिया बनायी होगी, तब ज्ञानसे बनायी होगी कि अज्ञानसे? ज्ञान पहलेसे ही था। ज्ञान उसको कहते हैं, जिसके न होनेका निश्चय कभी किया ही न जा सके। सत्य उसको कहते हैं, जिसके न होनेका निश्चय कभी किया ही न जा सके। नास्तिक बहुत- से होते हैं और वे कह देते हैं कि ईश्वर नहीं है। कोई यह मुँहसे बोलकर बतावे तो सही कि मैं नही हूँ। कोई अपने मनमें यह सोचे तो सही कि मैं नहीं हूँ। यह आप न बोल सकते हैं और न सोच ही सकते हैं; क्योंकि, आप हैं।

सत्य क्या है ? अबाधितत्वं सत्यत्वं। जो कभी बाधित न हो, उसको सत्य बोलते हैं। जिसके मिथ्यात्वका निश्चय कोई माईका लाल, कोई विद्वान् कोई ज्ञानी, कोई तत्त्वज्ञ न कर सके, उसको सत्य बोलते हैं। यदि सत्य ज्ञानसे अलग होगा, तो सत्य जड़ हो जायेगा। यदि ज्ञान हो और सत्य न हो, तो ज्ञान क्षणिक होगा। क्षण-क्षणमें टूटता रहेगा। यदि सत्य ज्ञान नहीं होगा, तो जड़ होगा। यदि ज्ञान सत्य नहीं होगा, तो क्षणिक होगा। सत्य और ज्ञान ये दोनों लक्षण एक साथ होने चाहिए। उपनिषद्में यही बात कही- सत्यं

ज्ञानं। ज्ञानं सत्यं। अनन्तं दोनोंका है।

अनन्तं सत्यं। अनन्तं ज्ञानं। सत्यका न आदि है, न अन्त है। आदि-अन्त नहीं है, तो मध्य भी नहीं है। ज्ञानका न आदि है, न अन्त है। अत: मध्य भी नहीं है। आदि-मध्य-अन्तसे वर्जित जो चित्स्वरूप अधिष्ठान है, वह सत्य ज्ञान है। अनन्तका अर्थ है- देश-काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न। वस्तुके बिना देश-कालका बोध नहीं होता है। जब कोई चीज है, तब उसकी लम्बाई-चौड़ाई है। लम्बी-चौड़ी चीजमें देशकी कल्पना हो गयी। जब वस्तुमें परिवर्तन है, तब क्रम हो गया। क्रमसे कालकी कल्पना हो गयी। यदि कोई दृश्य-वस्तु न हो, तो देश और काल भी नहीं होंगे। वेदान्तमें देश और कालको द्रव्य नहीं माना जाता है। नैयायिक-वैशेषिक देश-कालको द्रव्य मानते हैं ही। पदार्थ मानते हैं। द्रव्य-गुण-कर्म सामान्यादि हैं। उसमें पृथिवी-अप-तेज-वायु-आकाश-दिक्-काल-आत्मा और मनांसि। वेदान्तमें देश और कालको द्रव्य नहीं मानते हैं। लम्बाई-चौड़ाईको देश बोलते हैं। एकके बाद एक, एकके बाद एक, एकके बाद एक-इस क्रमको काल बोलते हैं। ह्रस्व-पारिमाण्डल्यकी संविद्को देश कहते हैं। क्रम संविद्का नाम काल है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। यदि सत्य अपनेसे अलग होगा, तो बेहोश होगा। यदि अपनी छटपटाहट दूर करनी हो, तो अपना आत्मा ही सत्य और ज्ञान-स्वरूप है। सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप, देश-काल-वस्तु अपरिच्छिन्न आत्मा ब्रह्म है।

सत्पुरुषों में सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा सिर झुकाना चाहिए, क्योंकि सत्य ही जीव की परमगति है। सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है।

सत्य की तपिश को सह पाना आसान नहीं होता। अक्सर लोग नहीं जानते कि सत्य का सेंक जीवन की सारी मैल को निकाल बाहर करता है, उसे फूंक देता है। सत्य बोलना सुगम है। कहना हो तो कह दिया, अनावश्यक हो तो चुप हो गये। जो बोलकर हम अपना और सुननेवालेका समय नष्ट करते हैं उसका कुछ उपयोग भी है कि नहीं ? श्रोताका वह क्या हित करेगा ? अपने मनकी भड़ाँस भले ही निकाल लीजिये। सत्यका मस्तिष्कपर कोई भार नहीं होता। ज्यों-का-त्यों बोल दीजिये, मत बोलिये। जब आवश्यकता होगी, बोल देंगे। सत्यका कोई बोझ, भार सिरपर नहीं रहता है। असत्य बोले तो किससे, कब, क्या बोला है- कहीं उसके विपरीत न बोल दें, इसका बोझा बुद्धिमें रखना पड़ता है। सत्य अप्रयत्न-सिद्ध है एवं असत्य कृत्रिम तथा अनेक रूप है। सत्य अपने स्वरूपमें रहता है और असत्य बनावटमें। क्या कोई सर्वदा असत्य भाषण कर सकता है ? यदि वह अपनी भाषा के नियम और शब्द निश्चित कर लेगा, तो वह भी सत्य हो जायेगा। लोग यह समझने लग जायेंगे कि यह थालीको लोटा कहता है या लोटाको थाली कहता है। बार-बार अपनी भाषा भी बदलनी पड़ेगी। असत्य जीवन में एक भार हो जायेगा। सत्य हल्का-फुल्का है। अपने स्वरूपमें स्थितिका मार्ग है।

सत्य में तप, संयम और शेष समस्त गुणों का वास होता है। जैसे समुद्र मत्स्यों का कारण (उत्पत्तिस्थान) है, वैसे ही सत्य समस्त गुणों का कारण है। सत्ता और सम्पति अहम देते हैं और सत्य अहम का नाश करता है। सत्य और चरित्र की रक्षा के लिये सर्वस्व भी त्यागना पडे तो त्याग देना चाहिये किन्तु सत्य और चरित्र ही जीवन की अनमोल निधि है।

सत्य परेशान था अत: मन्दिर से निकल कर उसने आश्रय का दरवाजा खटखटाया। आश्रय ने कहा पिछले दरवाजे पर आओ। सत्य पिछले दरवाजे पर पहुँचा तो आश्रय ने सत्य के सामने कुछ शर्ते रक्खी और कहा इन शर्तों को मानोगे तो ही मन्दिर मे प्रवेश मिलेगा। सत्य ने शर्ते मानने से इन्कार कर दिया। पर यह बात सत्य है कि मन्दिर से सत्य चला गया। कुछ समय के लिये सत्य दब सकता है लेकिन पराजित नही हो सकता। सूर्य बादल आने पर छिप जाता है लेकिन बादल हट जाने पर पूरी शक्ति के साथ प्रकाशित होता है। असत्य की दशा ठीक इसके विपरीत होती है। इसलिये सदा सत्य का सहारा लो, सत्य से ही विजय निश्चित है।

एक वचन सत्य है, तो काफी है। असत्य वचन कितने भी हो निकम्मे है। सत्य वचन की शक्ति तो इतनी अधिक है कि मनुष्य को स्वार्थ से परमार्थ में ले जाती है। संसार में सत्य को छोड कर पवित्र कहलाने वाला कोई धर्म नहीं है। सत्य शाश्वत है और वह न बोल कर ही बोला जाता है। जो स्वयं को सुन लेता है, बिना बोले ही दूसरों को उपदेश देता है। स्वयं का श्रोता होना सफल वक्ता होने का हेतु है ऐसा वक्ता तो बिना बोले ही बोलता है और बोलने वालों से कही अधिक बोलता है। सत्य शाश्वत है और वह न बोलकर ही बोला जाता है। सच न कभी घटता न ही बढता है नहीं तो सच सच नहीं रहेगा और झूठ की तो कोई मर्यादा (सीमा) ही नहीं। सत्य पर दृढ रहने वालों का कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता है।

सच्चाई की मशाल जहां भी दिखाई दे उससे फायदा उठाओ। यह मत देखो कि मशाल उठाने वाला कौन है। सच्चे इन्सान का थोडा सा माल भी झूठे की बहुत सारी दौलत से कही बेहतर है। सच्चाई तेल की तरह सतह पर आजाती है।

सत्य जो नित्य है उसका दर्शन नहीं होता उसका कारण लौकिक सुख की वासना और कामना है। सत्य सभी के लिये है। सभी को सत्य की उपासना व आराधना करनी चाहिये। परम सत्य के हम अंश है इसलिये अंश मे अंशी का आकर्षण अवश्य होता ही है।

जीवन का एक सत्य होता है प्रदर्शन के लिये और एक सत्य होता है सही अर्थों मे किसी की रक्षा के लिये। वो सत्य किस काम का जो किसी निर्दोष की, गरीब की, असहाय की, निर्बल की सहायता न कर सके।

अर्द्ध सत्य कभी नहीं होता क्योकि सत्य तो अखण्ड है। सत्य को सत्य होने के लिये शत प्रतिशत सत्य होना अनिवार्य है, अन्यथा वो सत्य नहीं हो सकता। जहां सत्य का प्रकाश हो वहां बुद्धि का मोह नहीं हो सकता।

मृत्यु तो जीवन का अनिवार्य व अन्तिम सत्य है। केवल सत्य ही हमारी रक्षा कर सकता है। शब्दों में सत्य, क्रिया मे सत्य, संकल्प मे सत्य और संवेदना में सत्य।

जब तक व्यक्ति के हृदय में झूठ का अस्तित्व रहता है तब तक सत्य का संचार संभव नहीं है। सत्य का प्रकाश तभी होता है जब झूठ अपना वास्तविक रूप दिखा देता है। जो मनुष्य अपने भीतर सत्य की ज्योति जलाना चाहता है तो उसे अपने हृदय को स्वच्छ करना पड़ेगा। जब तक हृदय में असत्य का किंचित् भी अस्तित्व रहता है, सत्य प्रकट नहीं होता।

यथार्थ वचन ही सत्य है। सत्य कथन ही ब्रह्म है। सत्य ही ब्रह्म विद्या का विशेष साधन है। सत्य ही परब्रह्म है। सत्य ही श्रेष्ठ धर्म है। सत्य के बिना कोई धर्म ही नहीं है। पुण्य सदा सत्य पर ही अडिग है। सत्य द्वारा ही मनुष्य निस्सन्देह सब कुछ प्राप्त कर सकता है। सत्यहीन कार्य करना सदैव निष्फल है। सत्य का खून करने वाले को शान्ति कहां से प्राप्त होगी ?

सत्य के जैसा तप, अनासक्ति के समान योग्यता और त्याग के समान कभी सुख नहीं होता है। नम्रता से योग्यता आती है, योग्यता से धन प्राप्त होता है। जिन्होंने सत्य को ही अपना व्रत बना रखा है, जो कीर्ति और अस्तेय की अपेक्षा मृत्यु को तुच्छ समझते हैं, वे सत्य की रक्षा के लिये अपनी निर्मल शाश्वत कीर्ति के लिये सब कुछ कर सकते हैं।

सत्य को ही सच्चा तत्त्व समझ। जो बुद्धिमान सत्य की ही आज्ञा में रहता है, वह मृत्यु को तैरकर पार कर जाता है।

सबसे अच्छा है सच्चा रास्ता। सत्य पर चलने वाला व्यक्ति किसी दुख-द्वंद्व में नहीं पड़ता, निश्चिंत होकर जीवन जीता रहता है।

जो मनुष्य सत्य के करीब है और झूठ से सदा दूर रहता है, उसके दिल में उस परमपिता का जलवा ही दिखाई पड़ता है। अत: सत्य का आचरण करना जीवन में परमात्मा के प्रकाश को भरना है। सदा असत्य का त्याग करें। सच बोलें। हितकर बोलें। सदा ऐसा सत्य बोलना कठिन होता है। न तो अपने लाभ के लिए झूठ बोलें, न दूसरे के लाभ के लिए। न तो क्रोध में पड़कर झूठ बोलें न भय में पड़कर। दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाला न तो खुद असत्य बोले, न दूसरे से बुलवाए।

सच बात भी यदि कड़वी हो, उससे किसी को दु:ख पहुँचता हो उससे प्राणियों की हिंसा होती हो, तो वह नहीं बोलनी चाहिए। उससे पाप का आगमन होता है। काने को काना कहना, नपुंसक को नपुंसक कहना, रोगी को रोगी कहना, चोर को चोर कहना ये सब है तो सत्य, पर ऐसा कहना ठीक नहीं। इन लोगों को दु:ख होता है।

सत्य से बढ़ जीवन का दूसरा कोई आराध्य नही। जो अपने जीवन की नौका की डोर सत्य के हाथों सौपता है उसकी नौका इस संसार रूपी समुद्र के किसी भी अन्धड या तूफान में नही डुबती है और न ही क्षतिग्रस्त नहीं होती। जीवन मे जब सत्य का साक्षात्कार हो जाता है तब भगवान का आत्मा के पूर्ण स्वरूप से साक्षात्कार हो जाता है। सत्य की उपासना ज्ञान के छोटे छोटे कणों में और आचरण के छोटे छोटे क्षणों में भी करनी पडती है। सत्य खंड खंड में होता है और उन खंडों को जोडकर उसकी पूर्णता होती है।

असत्य अधोगति, अपयश व जन्म-मृत्यु की श्रृंखला की ओर जब कि सत्य सफलता, उन्नति, मोक्ष की ओर ले जाने वाला होता है। सुसंस्कारों का अभिषेक होने पर ही सत्य स्त्रोत निकलता है। सत्य के पालन से कर्मबन्धनों का क्षम तथा क्रोध मोह आदि दुर्गणों का नाश होता है। सत्य का अपना ही नियम है और अपनी ही प्रसन्नता, वह स्वत: प्रकट हो उठेगा।

सत्ता और सम्पत्ति अहम देते हैं और सत्य अहम को तोड़ता है। सत्य और चरित्र की रक्षा के लिए सर्वस्व भी त्यागना पड़े तो त्याग देना चाहिए, किंतु सत्य और चरित्र ही जीवन की अनमोल निधि है। जो प्रतीत होता है, वह सदा सत्य नहीं होता।

सत्य को हमेशा सूली पर लटकाए जाते देखा और असत्य को हमेशा सिंहासन पाते। यह बात तो सत्य है, किंतु आधी ही सत्य है, क्योंकि सत्य सूली पर लटका हुआ भी सिंहासन पर होता है और असत्य सिंहासन पर बैठकर भी सूली पर लटका रहता है।

सत्य ही सत्य का पुरस्कार है। कीमती से कीमती वस्तु बेचने वाले को जैसे उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, वैसे ही सत्यवादी भी सत्य से बढ़कर और क्या चीज चाहेगा। जीवन जानने और जीने के लिए जागना आवश्यक है जो जगा हुआ नहीं है वह जीने के भ्रम है जी नहीं रहा। इसी तरह सत्य वह है जो दिखाई पड़ता है जैसा दिखाई पड़ता है उसे वैसा ही देखना वैसा ही जानना वैसा ही अभिव्यक्त करना सत्य है। लेकिन जब तक हमारी आत्मा परतंत्र है हम सत्य की खोज कैसे कर सकते है। आत्मा को स्वतंत्र कीजिए, सत्य के मंदिर की पहली सीढ़ी आपके सामने होगी। सत्य स्वयम्भू है। झूठ के निर्माता हम है। हर झूठ को सत्य का ही आश्रय लेना पडता है। झूठ कभी श्रेष्ठ पद या प्रतिभा प्राप्त नहीं कर सकता। मनुष्य झूठ बोलने वाले से उसी प्रकार भयभीत रहते है जैसे सांप से। विश्व मे सत्य ही महान धर्म है, वही सबका मूल कहा जाता है। झूठ बोलने के अनेक संयोग होते है परन्तु सत्य का केवल एक रूप होता है। जिसने सचाई को पहचान लिया और सत्य के सार को अपने जीवन में अपना लिया, वह झूठ की डोर को पकड़कर उसके पीछे क्यों चलेगा ? कुल, जात-पात के पक्षपात में चलनेवाले सत्यवादी नहीं कहलाते।

संसार में सचाई के समान कोई तप नहीं है। अर्थात सत्य का पालन करना ही सबसे बड़ी तपस्या है और झूठ सबसे बड़ा पाप है। जिसका हृदय सचाई की भावना से परिपूर्ण है उस हृदय में स्वयं परमात्मा बसते हैं। अर्थात सचाई की राह पर चलनेवालों का साथ भगवान भी देते हैं। सत्य से अधिक शक्तिशाली कोई भी नहीं है। सत्य मर्यादाओं में बन्धा है और असत्य की तो कोई मर्यादा ही नहीं होती। सत्य की सुनहरी रश्मियों को कोई काला पर्दा नहीं रोक सकता और जो रोकते है वो भ्रम में रहते है।

जीवन में कभी भी झूठ मत बोलो। जब तक जीओ केवल सच्चाई के मार्ग पर ही चलो। पल के चौथे भाग में भी न जाने कब क्या हो जाए और झूठ के कारण दुखों का सामना करना पड़ जाए। अत: सदैव सत्य का पालन करो। सत्य-असत्य से अनन्तगुना प्रभावशाली है और ऐसे ही भलाई भी बुराई से। यदि ये बातें तुममें हों, तो वे अपने प्रभाव से ही अपना रास्ता बना लेंगी।

बच्चों को सबसे पहले साहसी होना चाहिए। किसी भी दशा में सत्य के साथ थोड़ा-सा भी समझौता न करो। उच्चतम सत्यों का प्रचार करो- उन्हें दुनिया भर में बिखेर दो। मान खो बैठने अथवा अप्रिय संघर्ष उत्पन्न हो जाने का भय मत करो। यह निश्चित जान लो कि यदि तुम नाना प्रकार के प्रलोभनों के बावजूद सत्य से लगे रह सको, तो तुममें ऐसी दैवी शक्ति आ जाएगी, जिसके समक्ष लोग तुमसे वे बातें कहते डरेंगे, जिन्हें तुम सत्य नहीं समझते। यदि तुम लगातार चौदह वर्ष तक अखण्ड रूप से कठोरता के साथ सत्य का पालन कर सको, तो तुम जो कुछ कहोगे, लोग उसी पर पक्का विश्वास कर लेंगे।

यह सत्य है कि बकवादियों, बाहरी नामरूपों में विश्वास करने वालों और लज्जाजनक प्रतिष्ठा के निर्लज्ज दासों की संगत के समान और कोई विषैला पदार्थ नहीं है। परन्तु यह भी सत्य है कि जहां पर प्रेम का डेरा जम जाता है, वहां पर कोई भी गुस्ताख आवारा पर नहीं मार सकता। यदि तेरे हृदय में सत्य है तो तू बाहर से कुछ मत दिखा। जो जानने वाला (ईश्वर) है, वह सब तेरे अंदर की गति को, तेरे मन के भाव को जानता है। प्रभु अंतर्यामी हैं, उसे सब मालूम है कि कौन किस भाव से उसे मानता है। सत्य में इतनी शक्ति होती है कि उस पर सांसारिक बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सच्चे मनुष्य को न तो शाप लगता है और न उसे काल ही खाता है। सच्चे (जीवात्मा) को जब सच्चे (परमात्मा) से मिलना होता है तो सच्चा (जीवात्मा) सच्चे (परमात्मा) में ही समा जाता है। परमात्मा छल-कपट रहित को इतना प्रेम करता है कि उसे अपने अंदर ही समा लेता है।

सत्य स्वयं प्रकाश रूप है उसे छिपाना असंभव है। सत्य कभी छिपता नहीं है। चाहे कितना ही उसे छिपाओ, सच एक दिन सामने आ ही जाता है। इसलिए शेषनाग के पाताल लोक से प्रभु के लोक तक सत्य ही कहना चाहिए। मन में जैसा भाव हो उसी को प्रकट करना चाहिए। मिथ्या आडंबर से कोई लाभ नहीं है।

सत्य का रास्ता कठिन है इस रास्ते पर हजार चलने की सोचते हैं मगर सौ ही चल पाते हैं। नौ सौ तो सोचकर ही रह जाते हैं और जो सौ चल देते हैं, उनमें केवल दस ही पहुँच पाते हैं। नब्बे तो रास्ते में ही भटक जाते हैं। और जो दस पहुँचते हैं, उनमें भी सिर्फ एक ही सत्य को उपलब्ध हो पाता है, नौ फिर भी किनारे पर आकर डूब जाते हैं। इसलिए सत्य एक है।

वही सुखी है, जिसने स्वार्थपरायणता को जीत लिया है; वही सुखी है, जिसने शान्ति प्राप्त कर ली है और वही सुखी है, जिसने सत्य

को पा लिया है। सत्य आर्य और मधुर है, सत्य ही तुम्हें अशुभ से मुक्त कर सकता है। संसार में सत्य के अतिरिक्त कोई दूसरा मुक्तिदाता नहीं है। सत्य पर आस्था रखो, भले ही तुम उसकी धारणा न कर सको, भले ही तुम उसकी मधुरता को कटु समझो, भले ही तुम पहले इससे विमुख हो जाओ। सत्य पर दृढ़ आस्था रखो। सत्य जैसा है, वह वैसे ही सर्वोत्कृष्ट है। कोई इसमें परिवर्तन नहीं कर सकता, न कोई उसमें सुधार ही कर सकता है। सत्य पर आस्था रखो और उसे जीवन में उतारो।

आत्मभाव एक ज्वर है, आत्मभाव एक क्षणिक दृश्य है, एक सपना है, किन्तु सत्य पूर्ण होता है, सत्य उदात्त होता है, सत्य चिरन्तर होता है। सत्य के अतिरिक्त अमरता कहीं नहीं होती। क्योंकि सत्य ही सार्वकालिक होता है।

असत्य से बढ़कर बडा कोई अधर्म नहीं होता और सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं होता। इसलिए जीवन में ज्यादा से ज्यादा सत्य बोलने का संकल्प लें। यही जीवन का सार है, यही जीवन का परमतत्त्व है।

सत्य सदा अप्रिय है, विकट है। सत्य का मार्ग सुगम है। सत्य ही श्री है, सत्य ही ज्योति है। हर सत्य सापेक्ष है। सत्य प्रभु की तलवार है। उसका प्रहार चूकता नहीं।

जब शिष्य यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ना आरम्भ करता है, तब आचार्य उसे पहला उपदेश यह देता है; सत्य बोलो। धर्म पर चलो। सत्य से कभी विचलित मत हो।

जान बचाने के लिए या किसी का भला करने के लिए तो क्या, हिन्दुस्तान के स्वराज्य के लिए भी मैं सत्य को नहीं छोडूंगा। सत्य का द्रोह करने से किसी का भी भला नहीं होगा अगर कुछ लाभ हुआ तो वह सचमुच लाभ नहीं, हानि ही होगी। जिस सत्य का मुझे दर्शन हुआ, उसके पालन के लिए मुझको ही कष्ट सहन करने चाहिए।

जिस प्रकार सूर्य की किरणें किसी पदार्थ से अपवित्र नहीं की जा सकती, उसी प्रकार सत्य को भी बाह्य स्पर्श से पवित्र करना असम्भव है।

जो सत्य जानता है, मन से, वचन से और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहचानता है। इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देह में मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जो सच बोलना नहीं जानता वह खोटा सिक्का है, उसकी कुछ कीमत नहीं है।

जो सत्य है, उसी को सब समय, सब अवस्थाओं में ग्रहण करने की चेष्टा करनी चाहिए। इससे चाहे वेद ही मिथ्या हो जायें। वे सत्य से बढ़कर नहीं हैं। सत्य की तुलना में उनका कोई मूल्य नहीं है।

तलवार का मुंह ताकने वाला सत्य ही मिथ्या है। नन्हें-नन्हें हाथों से समुद्र के प्रवाह को रोकने वाले साहस का एक ही स्रोत हो सकता है और वह है सत्य पर अटल विश्वास।

दुर्लघ्य मार्गों को लाँघो, क्रोध को अक्रोध से, असत्य को सत्य से जीतो। प्रजापति ने सत्यासत्य को देखकर उन्हें विचारपूर्वक पृथक्-पृंथक् स्थापित किया। असत्य में अश्रद्धा और सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया। सत्य एक ही है, विद्वान उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। परमेश्वर सत्य है; यह कहने के बजाय सत्य ही परमेश्वर है यह कहना अधिक उपयुक्त है। सत्य और अहिंसा से तुम संसार को अपने सामने झुका सकते हो।

सत्य के तीन भाग हैं, प्रथम, जिज्ञासा जो उसकी आराधना है; द्वितीय, ज्ञान जो कि उसकी उपस्थिति है, और तृतीय, विश्वास, जो कि उसका उपभोग है।

सत्य के लिए सब कुछ त्यागा जा सकता है, पर सत्य को किसी भी चीज के लिए छोड़ा नहीं जा सकता, उसकी बलि नहीं दी जा सकती।

सत्य को प्रकट कर सकना ही सत्य की ऊंची शिक्षा है। सत्य को यदि दबा भी दिया जाये, तो वह स्वत: प्रकट हो जायेगा। सत्य को स्वीकार करने में कायरता, दुविधा और संशय हमारे मन को ऐसे घेर लेते हैं कि उस व्यूह से बाहर निकलना हमारे बूते के बाहर हो जाता है।

सत्य चाहे सिर कटा दे, लेकिन कदम पीछे नहीं हटता। सत्य पर विश्वास रखना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। जिस मनुष्य के चित्त से विश्वास जाता रहता है, उसे मृतक समझना चाहिए।

सत्य-परायणता, न्यायवर्तिता, आत्मसंयम, आडंबरहीनता, क्षमा, नम्रता, सहिष्णुता, अनसूया, दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मजय, दया और अहिंसा-ये तेरहों सत्य के रूप हैं।

सत्य मिथ्या के साथ कभी मैत्री नहीं कर सकता। चाहे सारी दुनिया मेरे विरुद्ध हो जाये, अन्त में सत्य ही जीतेगा। सत्य हजार ढंग से कहा जा सकता है, और फिर भी हर ढंग सच हो सकता है।

सत्य से ही धरा अधर में स्थित है, अर्थात् सत्य से ही पृथ्वी धान्य एवं शस्यादि से फलित है। सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्य का ही वह मार्ग है, जिस पर देव अर्थात् विद्वान लोग चलते हैं। इसी मार्ग पर चलकर, अपनी सब कामनाओं को पूर्ण कर चुकने वाले ऋषि उस ब्रह्म में लीन होकर मुक्त हो जाते हैं, जो सत्य का परम विधान है।

अपनी स्वयं की आत्मा के द्वारा सत्य का अनुसन्धान करो। ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए जो हित, मित और ग्राह्य हो।

ब्राह्मण, डोम, जैन या ईसाई होने का कोई महत्त्व नहीं है। जो सत्य बात पर अडिग रहता है, संसार में वही महान है।

जब तक जीवित रहो, सत्य बोलो और शैतान को लज्जित करो। जिसके साथ सत्य है वह अकेला होते हुए भी बहुमत में है।

जिसके हृदय में सत्य है, उसे डरने की आवश्यकता नहीं है, भले ही उसकी वाणी में लुभाने का अभाव हो।

जो दूसरों का सहारा ढूंढता है, वह सत्य स्वरूप भगवान् की सेवा नहीं कर सकता। न सत्य अनेक हैं, न नाना हैं।

जो मेधावी साधक सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहता है, वह मृत्यु के प्रवाह को तैर जाता है। सत्य कभी वृद्ध नहीं होता।

जो सत्य की खोज में रहता है, उसे किसी एक देश का नहीं होना चाहिए। प्रभु सत्य है और प्रकाश उसकी छाया।

जो सत्य पर जान देता है, उसे अपनी कब्र के लिए पवित्र भूमि हर जगह मिल जाती है। सत्य का सर्वोत्कृष्ट अलंकार नग्नता है।

सत्य एक जलते हुए दीप की भांति है जो अंधकार में छिपाया नहीं जा सकता, क्योंकि वह अपना प्रकाश स्वयं लेकर चलता है।

सत्य एक है, उसकी उपासना करने वाले उसे अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। सत्य गोपनीयता से घृणा करता है।

सत्य का ज्ञान धार्मिक विश्वास का फल नहीं होता, वरन् गम्भीर नैतिक आचरण का अनुभव होता है।

सत्य का सर्वश्रेष्ठ अभिनन्दन यह है कि हम उसे आचरण में लायें। सत्य किसी से बहिर्गत नहीं है, न सत्य से कुछ बहिर्गत है।

सत्य का सबसे बड़ा मित्र समय है। इसका सबसे बड़ा शत्रु पक्षपात और इसका अचल साथी नम्रता है।

सत्य का हर एक उल्लंघन मानव समाज के स्वास्थ्य में छुरी भोंकने के समान है। सत्य सहस्त्रों अश्वमेधों से भी श्रेष्ठ है।

सत्य किरणों की किरण, सूर्यों का सूर्य, चन्द्रमाओं का चन्द्रमा तथा नक्षत्रों का नक्षत्र है- सच सबका सारभूत तत्व है।

सत्य की एक चिनगारी असत्य के पहाड़ को भस्म कर सकती है। सत्य की कभी हार नहीं होती। सत्य के मित्र कम होते हैं।

सत्य की साधना करने वाला साधक सब ओर दु:खों से घिरा रह कर अभी घबराता नहीं है, विचलित नहीं होता है।

सत्य के ऊपर और कोई ईश्वर नहीं है, सत्य ही सर्वप्रथम खोजने की वस्तु है। सत्य चिर-नवीन होता है, उसका रस अक्षय है।

सत्य को नकारना वैसी ही मूर्खता होगी जैसे घर बढ़ने के डर से बच्चों की हत्या करना। सत्य से आत्मा भी बलवान हो जाती है।

सत्य कोई ऐसी सुलभ वस्तु नहीं है, जिसे मूल्य चुकाए बिना सुगमता से हर व्यक्ति प्राप्त कर सके।

सत्य प्रभु की आत्मा और प्रकाश उसकी देह है। सब रसों में सत्य का रस ही श्रेष्ठ है। सत्य हमारे जीवन का नियम है।

सत्य या ज्ञान पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। दुनिया का संपूर्ण धर्म, जगत का सम्पूर्ण सत्य तुम्हारा है।

सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है और सत्य को अन्य सभी वस्तुओं से पवित्र मानना चाहिए। सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है।

सत्य ही भगवान है। सत्य ही श्री है, सत्य ही प्रकाश है। सत्य ही सर्वोत्तम नीति है। सदा हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिए।

समय मूल्यवान है, परन्तु सत्य समय की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है। सरल सत्य विश्व की सर्वोत्कृष्ट वस्तुओं में से एक है।

सत्य को अपना कर ही जीना सीखो। सत्य ही ईश्वर है। सत्य ही धर्म है। सत्य ही शक्ति है। सत्य ही सर्वप्रथम है और सत्य ही अन्त है और अन्त में रहेगा। सत्य ही सदैव आपके साथ रहेगा व आपकी सुरक्षा करेगा। इसी सत्य को पाने के लिये हमेशा प्रयत्न करना चाहिये। सत्य को जीवन में उतारना चाहिये। सत्य ही टिकता है। असत्य कभी टिकता नही, न ही सत्य में परिवर्तित हो सकता। असत्य नश्वर है। इसलिये सम्बन्ध सत्य से जोड़ो जो अपरिवर्तित है वही सच्चा पुण्य है। सम्पूर्ण सत्य ही तो ज्ञानी का एकमात्र लक्ष्य है और सत्य का निर्माण नहीं होता है, नहीं वह बदलता है और वह चिरंतन काल के लिए अपने नित्य स्वरूप में, बिना कोई भी फेरबदल के सदैव उपस्थित रहता है और प्राप्त करने के लिए समस्त अज्ञान का लोप होना आवश्यक है।

सत्य ही सौन्दर्य और सौन्दर्य ही सत्य है

कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा वक्त अखण्ड सत्य है।

विश्व ज्ञान गुरू शिव

शिव के समान कोई देवता नहीं है, शिव के समान कोई गति नहीं है, शिव के समान कोई दानी नहीं है तथा शिव के समान कोई योद्धा नहीं है। बिन्दु स्वरूपा देवी उमा माता हैं और नाद स्वरूप भगवान शिव पिता हैं।

सृष्टि की संरचना शिवशक्ति के संकल्प से हुई है। प्रकृति और पुरुष का साक्षी केवल परमात्मा है न कि कोई समाज या व्यक्ति। अहं की पुष्टि के लिये स्वयं की प्रतिष्ठा करने की प्रवृति समाज को दिशाहीन कर रही है। आज आवश्यकता है स्वयं शिव शक्ति का संकल्प मान कर जागृत होने की तभी समाज को जागृत करने का संकल्प पूरा हो सकता है।

जो समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके समस्त पाप और त्रितापके नाश करने में सदैव समर्थ हैं उनको शिव कहते हैं। समस्त विद्याओंके मूलस्थान भगवान शिव ही हैं। वे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, सबके मूलकारण, मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एवं ईश्वरके भी ईश्वर होने के कारण महामहेश्वर कहे जाते हैं। वे सभी देवताओं के भी परम दैवत या आराध्यदेव, सभी स्वामियोंके भी स्वामी, नित्य, अनादि, अजन्मा और परब्रह्म पूर्णप्रकाशयुक्त परमात्मा हैं। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषित, श्मशानवासी कहे जानेपर भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित्, अंज होते हुए भी अनेक रूपमें आविर्भूत, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। यह उनकी लीला-विभूतिका ही वैशिष्ट्य है।

भगवान् शंकरकी समस्त जीवोंपर परम अनुकम्पा है। अशेष ब्रह्माण्ड उन्हीका स्वरूप है, शिवमय ही है। अन्तर्यामी-रूपसे सर्वत्र वे ही व्याप्त हैं। यह सम्पूर्ण संसार भगवान् शिव और उनकी शक्ति शिवाका ही लीला-विलास है। उनकी व्यक्त एवं अव्यक्त सभी लीलाओंमें अनन्त कल्याण एवं अनन्त मङ्गल परिव्याप्त है। उनकी संहारलीला भी जीवोंके हितके लिये ही होती है। यद्यपि उनका न कोई नाम है न कोई रूप है, तथापि जितने नाम हैं और जितने भी रूप हैं वे सब भगवान् शिवके ही हैं। जितनी भी क्रियाएँ हैं वे सब शिवलीलापरक ही हैं। इसलिये उनके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त कल्याणकारिणी चेष्टाएँ और अनन्त आनन्ददायिनी लीलाएँ हैं। इसीलिये वे लीलानट भी कहलाते हैं। प्रकृति-नटीके सूत्रधार, सर्वाधार, लीलावपुधारी भगवान् शंकर ही हैं। उनकी लीलाएँ बड़ी ही विलक्षण और मनोरम हैं। उनका स्वरूप ही लीलामय है।

भगवान शिव भक्ति के आचार्य माने गये हैं। शिव के तांडव नृत्य से ही जिन शब्दों की उत्पत्ति हुई उन्हीं शब्दों से व्याकरण का सर्जन हुआ। संस्कृत भाषा व द्रविड तमिल भाषा का उद्भव इन्हीं शब्दों से हुआ। इन शब्दों का ज्ञान महामुनि अगस्त्य ऋषि को दिया। उससे द्रविड तमिल भाषा की उत्पत्ति हुई। जो शब्द आकाश में परिणित हुये वे देव भाषा संस्कृत बनी और इन्हीं शब्दों का ज्ञान महामुनि पाणिनी को दिया जो व्याकरण के प्रख्यात प्रचंड विद्वान हुये। अवध नरेश महाराज दशरथ के सुपुत्र, शत्रुघ्न को साक्षात शिव का ही अवतार मानते हैं। भगवान् शिव तथा भगवान् शिव के नाम और उनकी लीलाएँ समस्त संसारके मङ्गलोंके मूल हैं। वे कल्याणमय हैं, मंङ्गलमय हैं और परम शान्तमय हैं।

मूर्ख लोग महात्मा पुरुषोंके उस अलौकिक चरित्रकी निन्दा ही करते हैं, जिसके रहस्यको जानने या समझनेकी उनमें क्षमता नहीं होती। जो लोग अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति दूर करना चाहते हैं अथवा धनके लिये उत्सुक रहते हैं, वे ही ढूंढ-ढूंढकर माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुओंका सेवन करते हैं; परंतु जो सम्पूर्ण जगत्को शरण देनेवाले हैं; जिनके मनमें कोई इच्छा ही नहीं है, उन महेश्वरको ऐसी वस्तुओंसे क्या लेना है ? कहते हो उनके पास कुछ नहीं है, वे श्मशानमें घूमते हैं और उनका रूप भयंकर है; किन्तु सच बात यह है कि अकिंचन होते हुए भी वे ही सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। श्मशानमें विचरनेवाले होकर भी वे तीनों लोकोंके रक्षक है; भयानक रूपवाले होनेपर भी वे ही शिव (कल्याणकारी) कहलाते हैं। पिनाकपाणि महादेवजीके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले इस संसारमें नहीं है।

भगवान् शंकरको पुराणोंमें रुद्र कहा गया है; क्योंकि वे प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। भगवान् शंकरका नृत्य शाश्वत हैं; क्योंकि उनमें कल्याणकी मंगलमयी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बडी-से बडी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नादका ही परिणाम है। स्वयं भगवान् शंकरने स्वीकार किया है-

नृत्यसे भगवान् शंकर ब्रह्माण्डमें गति लाते हैं और जीव-निर्जीवकी सृष्टि करते हैं। उनके नृत्यकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर - अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर। उनका नृत्य भयंकर है, लेकिन शिवतत्वसे शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्डका कभी भी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करनेवाले हैं। उन्हें संहार कदापि प्रिय नहीं; लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थितिको प्राप्त कर लेता है तो उनका नर्तन विवश होकर प्रलयंकारी रूप ग्रहण कर लेता है, परंतु शिवकी यह क्रिया भी नि:संदेह जगत्की रक्षाके लिये ही होती है- जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

नर्तनके समय शंकरके पदाघातसे पृथ्वी डोलने लगती है। परिधिकी तरह परिपुष्ट भुजाओंके घूमनेसे आकाश संत्रस्त हो उठता है। लेकिन उस समय भी शंकरके मनमें संहारकी नहीं, निर्माणकी भावना ही होती है।

शंकरका नृत्य यथार्थमें ईशकी पञ्चक्रियाओं (सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह) का द्योतक है। अलग-अलग ये क्रियाएं हैं। इन समस्त क्रियाओंकी निष्पत्ति शिवसे है- यही नटराजकी प्रतिमाका संकेत है।

भगवान् शिवका नटराज-नृत्य उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति करता हुआ सत्यं शिवं सुन्दरम् का अमर संदेश देता-सा प्रतीत होता है। नटराजके रूपमें शिवकी कल्पना भारतीय संस्कृति और धर्मकी एक ऐसी समन्वयात्मक विशेषता है, जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चतुर्भुज नटराजके एक हाथमें रजोगुणका प्रतीक डमरू है, जो द्यावा, पृथ्वी, अनन्तलोक और जीव-जगतकी सृष्टि करता है और उनके दूसरे हाथमें है तमोगुणकी प्रतीक अग्नि, जिससे वे उन बन्धनोंका संहार करते हैं जो मानवात्माको बाँधे रहते हैं। भूमिपर आरोपित एक चरणसे वे माया, मोह और अविद्याको दबाये रहते हैं और उठे हुए दूसरे पैरसे संकटोंसे त्रस्त प्राणियोंको मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक्का प्रतीक है और भुजाओंपर लिपटा हुआ सर्प कालका प्रतीक है।

यद्यपि ब्रह्माण्ड नटराजकी नाट्यशाला है, लेकिन उनकी व्याप्ति अनन्त है। आकाश उनका शरीर है। आठों दिशाएँ उनकी भुजाएँ हैं। तीनों ज्योति (सूर्य, चन्द्र अग्नि) उनके तीन नेत्र हैं। शिवका प्रथम नेत्र धरातल, द्वितीय आकाश, तृतीय बुद्धिके अधिदैव सूर्य एवं ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। शिवकी निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती है और द्विधाको तिरोहित कर स्थैर्य और निश्चितता प्रदान करती है।

नटराज सर्वांगमे विभूतिसे अनुलिप्त- आच्छन्न रहते हैं। भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। शिवपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि भस्मसे ही शंकरजी सृष्टिकी रचना करते हैं। नटराजकी कुछ प्रतिमाएँ त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु:खोंका सूचक है। त्रिशूल ही उनका परम प्रिय अस्त्र है।

भगवान शंकरकी दयासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। महाभारतमें व्यासदेवने कहा है कि शिवजीके समान संसारमें कोई देवता नहीं। वे ही समस्त सांसारिक जीवोंको सद्गति देते हैं। कल्याण और सुख देनेमें शिवजीसे बढ़कर कोई दयालु नहीं। युद्ध करनेमें भी उनसे बढ़कर कोई पराक्रमी नहीं।

जिस प्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सद्वैद्य उत्तम प्रकारकी महौषधियों और अनुभूत प्रयोगोंसे संसारियोंके समस्त शारीरिक रोगोंको दूर करते हैं, उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे संसारियोंको भवरोगसे छुड़ाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रोंमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेक प्रकारकी अद्भुत, अलौकिक और चमत्कृत औषधियोंके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेक प्रकारकी महौषधियाँ प्राप्त हो सकती हैं और वे मनुष्योंके अतिरिक्त पशु-पक्षी और कीट -पतङ्गादि ही नहीं, स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसको दूर करनेवाले भी हैं। इसीलिये वे संसारवैद्य सिद्ध हुए हैं।

महाशिव तो कल्याणी है। उनकी शरण में जो भी गया उसी का बेड़ा पार हो गया। वे सदाशिव हैं। महाकाल हैं। कालों के काल हैं। काल को वश में करने के कारण ही उनको जीवन का कल्याणकारी तत्व माना गया है। जिस किसी ने भी उनका स्तवन किया, वह

भवसागर से पार हो गया। शिव को रिझाना हो, तो रिझा लीजिए। शंकर जी का मास है सावन। सावन है क्या ? सावन केवल उत्साह और उमंग का ही प्रतीक नहीं है, वह जीवन के तत्व को जानने का भी नाम है। जीवन के तत्व को जानना हो, तो शंकर जी की शरण में जाएं। वे तो अविनाशी हैं। संसार में क्या कोई अविनाशी है ? नहीं। फिर शंकर क्या संदेश देते हैं ? शंकर जी कहते हैं कि जगत में केवल शिव का नाम ही अविनाशी है। कल्याण का भाव ही शाश्वत और सत्य है। सत्य सनातन यदि कोई है, तो केवल शिव ही है। शिव का भाव ही कल्याण है। कल्याण का भाव हर युग और हर काल में रहता है। वह कभी नहीं मरता। न ही समाप्त होता है। न उसको कोई कमजोर कर सकता है और न ही किसी के कमजोर करने के प्रयास से वह होही पाता है। जिसके हृदय में दया और कल्याणभाव है, भला उसको कौन मार सकता है। इसी को अभिव्यक्त करने के लिए तो शंकर जी का सावन माह आता है। शंकर जी का इस माह निराला ही स्वरूप देखने को मिलता है। वे निराकारी स्वरूप को त्यागकर जगत के कल्याण के लिए विवाह रचाने निकलते हैं। फाल्गुन की महाशिवरात्रि को शंकर जी ने रुद्र तांडव किया था और जगत को बताया था कि मृत्यु तो शाश्वत है। उससे न तो कोई बचा है और न ही बच सकता है। सावन की शिवरात्रि को शंकर जी ने विवाह रचाकर कहा कि जगत में रहना है तो कल्याण के भाव से रहो। शिव संस्कृति ही तुम्हारे साथ जाएगी। और कोई साथ नहीं जाएगा। यात्रा यही है।

भगवान शिव कल्याणमय है, उनके स्वरूप, लीला और साधन में सर्वत्र परम कल्याण ही भरा है। अत्यंत प्राचीनकाल में शिव का रूद्र नाम था। वैसे वेद, शास्त्र और पुराणों में शिव के अनेक नाम मिलते हैं। ये सब कुछ कर्म आदि के द्वारा निर्दिष्ट किये गये हैं। भगवान शिव सत्य, ज्ञान तथा अनन्त रूप हैं और मूलाधार भी। शिव के वाम अंग से हरि, दक्षिण से ब्रह्मा तथा हृदय से रूद्र की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार तीनों के उदय का मूलाधार शिव हैं। त्रिदेवी में शिव महादेव हैं।

भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ प्रदान करने वाली तथा सबका मंगल करनेवाली ये अष्ट मूर्तियां विद्यमान हैं।

१) भगवान शिव की पृथ्वी मूर्ति एकाग्रनाथ-एकाग्रेश्वर का क्षितिर्लिंग शिवकांची में है। इस पर जल नहीं चढ़ाया जाता है। इस पर चमेली के तेल से अभिषेक किया जाता है। २) जल मूर्तिजम्बुकेश्वर महादेव मद्रास के त्रिचिनापल्ली में श्रीरंगम्र से एक मील दूरी पर जल प्रवाह के ऊपर स्थित है। ३) अग्नि मूर्ति-तेजोलिंग अरुणाचलम् में तिरुवण्णमर्ले में शिव का दिव्य अग्निस्वरूप तेजोलिंग है। ४) वायु मूर्ति श्री तिरुपति बालाजी के पास उत्तर आर्कट जिले में स्वर्णमुखी नदी के तट पर कालहस्तीश्वर वायुर्लिंग है। ५) आकाशमूर्ति-कावेरी नदी के तट पर समुद्र तट से तीन मील दूर चिदम्बरम् में आकाशलिंग है। ६) मूर्ति-शास्त्रों एवं धर्मग्रंथों के अनुसार सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। प्रत्येक सूर्य मंदिर शिव मंदिर है। ७) चंद्र मूर्ति काठियावाड़ के सोमनाथ एवं बंगाल में चटगांव के पास चंद्रनाथ एवं सोमनाथ विराजित है। ८) शिव यजमान मूर्ति पशुपतिनाथ नेपाल में है।

भगवान शंकर का नाम है पशुपति नाथ। उनके पास नंदी के रूप मे पशु है उनके वे पति यानी स्वामी है। वास्तव मे पशु कौन है। जीव ही पशु है। यह पशु चार पाशों से (रस्सियों) बंधा है। वे है मलपाश, कर्मपाश, मायापाश और रोध पाश। जब तक शिव परमात्मा का ज्ञान नही होता तब तक ये पाश रहते है। शारीरिक एवम् मानसिक पाप की वासना यानी मलपाश है। धर्म-अधर्म में फर्क न समझना और मनचाहा कर्म करना यह कर्मपाश है। जन्म मृत्यु से न छूटना यह माया पाश है। और अपना ही कर्म अपनी आत्मिक प्रगति में बाधक बनना रोधपाश है। भगवान शंकर की उपासना करने पर मनुष्य के चारों पाश टूट कर उसकी पशुता नष्ट होकर वह ज्ञानी होता है। पाप कर्म नष्ट होकर पुण्य कर्म होता है और शिव कृपा से मोक्ष प्राप्त होती है। यह शिव के कारण होता है इसलिये उसे पशुपति नाथ कहते है।

भोलेनाथ यानि भगवान शंकर भोले भक्तों के देवता है। वे संकटों से भक्तों को बचाते है। सत्य, रज, तम इन तीन गुणों पर विजय पाने वाले शिव ने त्रिगुणातीतता का प्रतीक त्रिशूल धारण किया है। डमरू के नाद से उन्होंने अनेक भाषाओं और संगीत को जन्म दिया। उनकी जटाओं से ज्ञान गंगा का प्रवाह निकलता है, जो भक्तों को ज्ञान के जल से तृप्त करता है। शंकर त्रिलोचन है। सूर्य, चन्द्र, और अग्नि ये तीन शक्तियां उनकी आखों में निवास करती है। अग्नि नेत्र से उन्होंने मदन दहन किया था। वे पशुपति है भूतनाथ है। उनकी भक्ति देव, दानव, मानव कोई भी कर सकता है। शिव का अर्थ है कल्याण। इसलिये शिवशंकर के पंचाक्षर मन्त्र के जाप से व्यक्ति का सम्पूर्ण कल्याण होता है इसलिये हलाहल विष पचाकर जगत को तारने वाले नीलकंठ भोलेनाथ की शुद्ध भावना से भक्ति करनी चाहिये इससे कल्याण होता है।

शिव सृष्टि का अजन्मा, चेतन व मूल तत्व है। इनका वार सोमवार है। शिव का अभिषेक दूध और गंगाजल से करना चाहिये। शिवरात्रि फाल्गुन वदी १३ को आती है इसी दिन शिव-पार्वती का पाणिग्रहण समारोह हुआ।

महत्वपूर्ण होती है श्रावण मास में सोमवार की शिवपूजा। परमपिता परमात्मा शिव भगवान तो सदा पूजनीय है फिर भी विशेष श्रावण मास में, वो भी श्रावण सोमवार का पूजन उपवास महत्वपूर्ण माना जाता है। भगवान शिव को विशेष रूप से याद महाशिवरात्रि के दिन भी किया जाता है। विचार कर देखे शिव के पहले महा और बाद में रात्रि शब्द क्यो जुडे हुये है। महाशिवरात्रि और श्रावण सोमवार के शिव पूजन से किस प्रकार का कोई सम्बन्ध है ? रात्रि का अर्थ है अन्धकार। जब सारी सृष्टि दु:खों और विकारों से भर जाती है, तमो प्रधान अवस्था में पहुँच जाती है तब ही परमपिता परमात्मा शिव का अवतरण होता है। जिनकी पवित्र ज्ञान-गुणों-शक्तियों की तेजोमय किरणों से सृष्टि पर सुख शान्ति पवित्रता का उजाला फैलता है और पांच तत्व सृष्टि पर रहने वाली सभी आत्मासें पावन बनती है। जैसा कि हम जानते है जो भी सन्त महात्मा, महान आत्माये, देव आत्माये, महापुरुष इस सृष्टि पर अवतरित होकर श्रेष्ठ कार्य करके जाते है उनकी यादगार या स्मृति स्वरूप उन्हे हम विशेष अवसरों पर याद करते रहते है, सम्मान देते है, उनकी प्रतिमाओं को पूजते है। सन्त महात्माओं की तुलना में देवात्माओं के कार्य श्रेष्ठ थे, इसलिये उनके मन्दिर अधिक है, उनकी पूजा अर्चना अधिक होती है। देवताओं को भी अभय दान देने वाले, दैवीय गुणों से सम्पन्न करनेवाले, स्वर्ग का मालिक बनाने वाले भोलेनाथ शिव बाबा की महिमा भी कुछ निराली ही है। भगवान शिव के लिये तो गायन भी है। समुद्र मन्थन से जो हलाहल विष निकला उसे उनके अतिरिक्त इस सृष्टि में किसी में भी पान करने की शक्ति या सामर्थ्य नहीं थी, जो भोलेनाथ ने कर दिखाया और सभी को संकट से बचाया। इस तरह उनकी महिमा-कार्यों-शक्तियों की सूची का कही अन्त ही नहीं होगा इसलिये पूरा एक महिना यानि श्रावण मास भगवान शिव की आराधना, उपासना के लिये चुना जाना कोई आश्चर्य नही है। इस एक मास की भक्ति का प्रभाव पूरे वर्ष तक असरदायक सिद्ध होता है। जैसे किसान अभी बारिस के मौसम में खेत में जो कुछ भी डालता है उसका फल पूरे वर्ष के लिये सिद्ध या उपयोगी हो जाता है। इसी श्रावण मास का अन्तिम दिन रक्षा बन्धन के रूप में माना जाता है जो पवित्र बन्धन मे बन्धे रहने की प्रतिज्ञा करने के लिये होता है। इस पवित्रता की प्रतिज्ञा की वर्ष भर स्मृति रहने पर ही श्रावण मास की उपासना का प्रत्यक्ष फल निर्भर करता है। सूक्ष्म रूप से यह बन्धन हमारी दृष्टि-भावनाओं कार्य व्यवहारों में भी बना रहे तो ही सार्थक सिद्ध होता है। इसी पवित्र बन्धन का दृढ़ता से व्यवहार में पालन करने से भगवान शिव की कृपासे जीवन में सच्ची सुख-शान्ति खुशी मिलती है।

वैसे रुद्राभिषेक कुल १००८ प्रकार से किया जा सकता है। इनमे जल, पुष्प, दूध, दही, शहद, घी, शक्कर कई पदार्थ और संकल्पनाएं सम्मिलित है। वैसे महाकाल का मुख्य पर्व तो महाशिवरात्रि है, किंतु रुद्राभिषेक कभी भी किया जा सकता है। प्रत्येक वर्ष का श्रावण मास, अधिक मास, मास शिवरात्रि और सोमवार इसके लिए मुख्य रूप से विहित है। रुद्राभिषेक करके मनुष्य तमाम तरह के कष्टों से मुक्त हो सकता है। यह संसार की समस्त विपत्तियों से मुक्त करने वाला ही नही, मृत्यु पर विजय देने वाला भी है।

परमपिता परमात्मा शिव भगवान तो सदा पूजनीय हैं फिर भी विशेष श्रावणमास में, वो भी श्रावण सोमवार का पूजन उपवास महत्वपूर्ण माना जाता है। भगवान शिव को विशेष रूप से याद महाशिवरात्रि के दिन भी किया जाता है।

जरा शंकर जी की बारात तो देखिए। कांवड़ियों को देख लीजिए। किसी के हाथ में खड़ी कांवड़ है, तो पूरे लाव-लश्कर के साथ आ रहा है। महिलाएं हों या वृद्ध सभी के हाथ में कांवड़ है। कोई पूरे रास्ते लेटकर- उठकर आ रहा है, तो कोई विकलांग होते हुए भी कांवड कंधों पर उठाए ला रहा है। किसी के चेहरे पर थकान नहीं। केवल वाणी पर बम-बम की जयनाद है। शंकर जी की इस बारात का स्वरूप ही निराला है। जहां देखो वहां कांवड। जहां देखो वहां मस्ती। जहां देखो भोले शंकर। कोई छोटा तो कोई बडा। नाचते-गाते हंसी लुटाते भक्ति से सराबोर। क्या शंकर जी की यही बारात थी ? इसको शंकर जी की बारात से जोड़कर देखते हैं। सांसारिक दूल्हे और जगत के दूल्हे में काफी अंतर है। सांसारिक दूल्हा बर्षालिप में शादी नहीं करता। शंकर जी करते हैं। सांसारिक दूल्हा जगत के कल्याण के लिए विवाह नहीं करता। शंकर जी जगत के कल्याण के लिए विवाह करते हैं। एक रात का दूल्हा इठलाता है, इतराता है। जगत का दूल्हा न तो इतराता है और न ही इठलाता है। सांसारिक दूल्हे के शरीर पर हजारों रुपए के वस्त्र और आभूषण होते हैं। जगत का दूल्हा नंग-धड़ंग ही विवाह रचाने पहुंच जाता है। सांसारिक दूल्हा हल्दी-उबटन लगाकर शरीर को चमकाता है, शंकर जी भभूत

लगाकर बान की रस्म पूरी करते हैं। शंकर जी के गले में सर्प है, यानी संसार का विष उनके गले में हैं। सांसारिक दूल्हा संसार का क्या, अपने घर के झंझावातों का विष पीने को भी तैयार नहीं होता। शंकर जी बैल की सवारी पर बारात निकालते हैं, सांसारिक दूल्हा घोड़ी पर चढ़त करता है। एक ओर धर्म है, तो दूसरी ओर काम। है कहीं मेल ? नहीं। विष पीकर ही कल्याण उत्पन्न होता है। यही शंकर जी करते हैं। इसीलिए तो गोस्वामी तुलसीदास ने पूरी रामचरितमानस केवल र, म और स से रच डाली। ऐसी कोई चौपाई नहीं, जिसमें र और स नहीं हैं। र से राम और स से शंकर। एक ओर राम की संस्कृति और दूसरी ओर शिव की संस्कृति। यही वास्तव में रुद्र है। शंकर जी जब विवाह रचाने पहुंचे और उनकी सास मैना ने दूल्हे को देखा, तो वह गश खाकर गिर पडी। आरती का थाल जैसे ही शंकर जी के माथे पर पहुंचा, सर्प ने फुंफकार मारी और थाल गिर गया। मेना ने उलाहना दिया कि यह कैसा दूल्हा नारद ने देखा है। नारद जी समझते है कि यह तो जगत का दूल्हा है। तुम पार्वती का विवाह इनसे करने से रोकती हो। अरे, इनका तो जन्म-जन्म का साथ है। रुद्र ही रुद्राणी को ब्याहने आए हैं। शंकर जी का विवाह पूर्ण होता है। यही शिवरात्रि है।

भगवान शंकर मंगलदाता, कल्याणप्रद सौभाग्य को देने वाले है। आशुतोष, जो शीघ्र प्रसन्न हो जाएं। भगवान शंकर ने अपने माथे पर चन्द्रमा को धारण किया है, जो प्रतीक है शीतलता का। जीवन में आगे बढ़ने के लिए आवश्यक है कि माथे पर शीतलता रहे, लेकिन भगवान शंकर ने गले में सर्पों की माला पहनी है। गले में सर्प उनका आभूषण है। यह इस बात का प्रतीक है कि जीवन में वे लोग भी हैं जो विषैले लोग हैं। प्रेम ही एक ऐसी चीज है जो संसार को बांध सकता है, प्रेम का व्यवहार अगर संसार में किया जाय तो विषैले लोग भी आपके गले का आभूषण बन सकते हैं।

भगवान शंकर का एक रूप और भी है, जब उन्हें महादेव कहा गया। समुद्र-मन्थन के अवसर पर समुद्र से चौदह रत्न निकले, जिनमें विष भी और अमृत भी निकला। अमृत लेने तो सभी लोग आ गये, सब देवी-देवता, सुर-असुर। पर विष लेने के लिए कोई आगे नहीं आया। दूसरों के हिस्से की कड़वाहट पीने के लिये कोई भी आगे नहीं आया करता, लेकिन भगवान शंकर ने विष पिया। वे देव नहीं महादेव कहलाये, भगवान शंकर ने विष पिया लेकिन उसे गले में ही रखा, गले से नीचे नहीं जाने दिया। भगवान यह समझाना चाहते है कि दुनिया की कड़वाहट को पीना, कड़वी बातों को सुन लेना, दुनिया के अपशब्द भी सुन लेना पर गले तक ही रखना, नीचे नहीं जाने देना। दुनिया की बातें ऐसी नहीं, जिन्हें दिल से लगाया जाय। पर अगर दिल से लगा बैठोगे तो फिर जीना मुश्किल हो जायगा, संसार की बातों को तो गले तक ही रखना अच्छा है।

भगवान शंकर सबके कल्याण की कामना करते हैं, सबको समृद्धि देते हैं लेकिन स्वयं त्याग से युक्त हैं। इसलिए बस्ती से अलग जाकर बाहर रहते हैं। इस जीवन की ऊंचाई यही है। जितने-जितने ऊंचे होते चले जाओ, त्याग को अपनाते जाना, अनासक्त भाव से संसार में रहना, तभी यह शरीर रूपी शिव हो सकता है। इसलिए उस मंगलमय प्रभु को याद करते हुए, श्रद्धा-भाव से हमेशा उनका नाम उच्चारण कीजिये।

प्राचीन समय से भारत मे शिवोपासना शिव लिंग के माध्यम से की जाती है। उस समय संसार मे भारतीय संस्कृति का प्रसार हर तरफ हो चुका था। तभी शिवलिंग उपासना का भी प्रचार हो चुका था। इस बारे मे फ्रान्सिसी संशोधक लूई ने अध्ययन किया है, उनके मत में मिस्र में मैफिस और आसिरस इन जगहों पर नंदी पर आरूढ़ त्रिशूलधारी और व्याघ्रचर्म पहले शिव की कई मूर्तियां मिलती है। तुर्किस्तान मे बाबिलन नगर मे १२०० फुट ऊंचा विशाल शिवलिंग है। मक्का में मक्केश्वर लिंग है वहां जम जम नामक कुये मे एक शिवलिंग है। जिसकी पूजा खजूर के पतों से की जाती है। हेड्रापालिस के एक विशाल मन्दिर मे ३०० फुट ऊंचा शिवलिंग है। ब्राजील में बहुत प्राचीन शिवलिंग है। ईरान के अब्बास नगर मे एक विशाल मन्दिर और गुरुद्वार है और मन्दिर में शिव, हनुमान, कृष्ण, योगमाया की मूर्तियां है, इसे हिन्दुबाग के नाम से जाना जाता है। ग्लासगो, स्कालैण्ड, काबुल, बल्टब-बुखार आदि देशों में भी शिवलिंग है। झसे भारत की शिवोपासना विश्वमान्य थी यह सिद्ध होता हें

धार्मिक मान्यताओं के अनुसार देव भूमि हरिद्वार पुरी तरह शिवभूमि अर्थात भगवान शिव नगरी है और भगवान शंकर स्वयं इसके रक्षक व द्वारपाल है। हरिद्वार माया नगरी, माया पुरी इत्यादि नामों से जाना जाता है। मायापुरी के चारों दिशाओं के अधिष्ठापित प्राचीन सिद्ध पीठों मे विराजमान भगवान शिव द्वारपाल की भाति इस नगरी का कल्याण करते है। हरिद्वार द्वारावती नाम से भी जाना जाता है।

दक्ष कन्या सती से ब्याहे भगवान शिव का सम्बन्ध तो इस पावन भूमि से अनादि काल से रहा है। शिव को माया की अनन्त शक्ति से

सम्पन्न होने के कारण मायापति, समुद्र मन्थन से निकले विष को विश्व कल्याणार्थ ग्रहण करने के कारण नीलकंठ, उमा का पति होने के कारण उमापति, विष पचाने के कारण मृत्युंजय और दयालु तथा शीघ्र प्रसन्न होने के कारण आशुतोष इत्यादि नामों से कहा जाता है।

पूरे विश्व का हिन्दू समाज देवाधि देव भगवान शिव की पूजा, आराधना करता है। शिव शीघ्र ही प्रसन्न होन वाले देव है। उनको प्रसन्न कर अपने घर परिवार और इष्ट मित्रों की मंगल कामना के लिये श्रद्धालुओं द्वारा यूंतों वर्षभर भगवान शिव का जलाभिषेक कर उनकी पूजा की जाती है, किन्तु अभीष्ट कार्य की सिद्धि और मंगल कामना के मंतव्य से श्रावण मास में किया गया पूजन अधिक कल्याणकारी बताया गया है।

भूमंडल में अगणित शिवलिंग हैं। मुख्य रूप से बारह ज्योतिर्लिंग हैं, जिन्हें द्वादश ज्योतिर्लिंग के नाम से जाना जाता है। सौराष्ट्र में सोमनाथ, श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी (उज्जैन) में महाकाल, ओंकार (ओंकारेश्वर) में परमेश्वर ममलेश्वर, हिमालय में केदार, डाकिनी में भीमाशंकर, वाराणसी (काशी) में विश्वनाथ, गौमतीघाट पर त्र्यंबक, चिताभूमि में वैद्यनाथ, दारुकावन में नागेश, सेतुबंध में रामेश्वर और शिवालय स्थित घुष्णेश ये बारह प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग हैं। इनके स्मरण मात्र से पापों से मुक्ति हो जाती है।

भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंग देश के अलग-अलग भागों में स्थित हैं। इन्हें द्वादश ज्योतिर्लिंग के नाम से जाना जाता है। इन ज्योतिर्लिंग के दर्शन, पूजन, आराधना से भक्तों के जन्म-जन्मातर के सारे पाप व दुष्कृत्यसमाप्त हो जाते हैं। वे भगवान शिव की कृपा के पात्र बनते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्रम्

सौराष्ट्रदेशे विशदेऽतिरम्ये ज्योतिर्मयं चंद्रकलावसंतम्। भक्ति प्रदानाय कृपावतीर्णं तं सोमनाथं शरणं प्रपद्ये ।।१।।

श्री शैलश्रृंगे विबुधातिसंगे तुलाद्रितुंगेऽपि मुदा वसंतम्। तमर्जुनं मल्लिकापूर्वमेकं नमामि संसारसमुद्रसेतुम् ।।२।।

अवन्तिकायां विहितावतारं मुक्तिप्रदानाय च सज्जनानाम्। अकालमृत्यो: परिरक्षणार्थं वन्दे महाकालमहासुरेशम् ।।३।।

कावेरिकानर्मदयो: पवित्रे समागमे सज्जनतारणाय। सदैव मान्धातृपुरे वसंतमोंकागरमीशं शिवमेकमीडे ।।४।।

१) सोमनाथ- ज्योतिर्लिंग, काठियावाड़ (गुजरात) प्रदेश के प्रभास क्षेत्र में स्थित है। यह गर्भगृह में एक गुफा है, जो सोमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। यहां पूजन करने से क्षय और कुष्ठरोग का नाश हो जाता है तथा चंद्रकुंड में स्नान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। गुजरात प्रांत के काठियावाड़ क्षेत्र में समुद्र के किनारे सोमनाथ नामक विश्वप्रसिद्ध मंदिर में यह ज्योतिर्लिंग स्थापित है। पहले यह क्षेत्र प्रभासक्षेत्र के नाम से जाना जाता था। यहीं भगवान श्रीकृष्ण ने जरा नामक व्याध के बाण को निमित्त बनाकर अपनी लीला काप संवरण किया था। यहाँ के ज्योतिर्लिंग की कथा का पुराणों में इस प्रकार से वर्णन है-

दक्ष प्रजापति की सत्ताइस कन्याएँ थीं। उन सभी का विवाह चंद्रदेव के साथ हुआ था। किंतु चंद्रमा का समस्त अनुराग व प्रेम उनमें से केवल रोहिणी के प्रति ही रहता था। उनके इस कृत्य से दक्ष प्रजापति की अन्य कन्याएँ बहुत अप्रसन्न रहती थीं। उन्होंने अपनी यह व्यथा-कथा अपने पिता को सुनाई। दक्ष प्रजापति ने इसके लिए चंद्रदेव को अनेक प्रकार से समझाया। किंतु रोहिणी के वशीभूत उनके हृदय पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा। अंतत: दक्ष ने कुद्ध होकर उन्हें क्षयग्रस्त हो जाने का शाप दे दिया। इस शाप के कारण चंद्रदेव तत्काल क्षयग्रस्त होते ही पृथ्वी पर सुधा-शीतलता वर्षण का उनका सारा कार्य रूक गया। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। चंद्रमा भी बहुत दुखी और चिंतित थे। उनकी प्रार्थना सुनकर इंद्रादि देवता तथा वसिष्ठ आदि ऋषिगण उनके उद्धार के लिए पितामह ब्रह्माजी के पास गए। सारी बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा- चंद्रमा अपने शाप-विमोचन के लिए अन्य देवों के साथ पवित्र प्रभासक्षेत्र में जाकर मृत्युंजय भगवान् शिव की आराधना करें। उनकी कृपा से अवश्य ही इनका शाप नष्ट हो जाएगा और ये रोगमुक्त हो जाएँगे।

२) मल्लिकार्जुन- यह आंध्र में कृष्णा नदी के तट पर श्रीशैल पर्वत पर स्थित है। महाभारत में वर्णन है कि श्रीशैल पर शिवपूजन करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त होता है। आंध्रप्रदेश में कृष्णा नदी के तट पर दक्षिण का कैलास कहे जाने वाले श्रीशैलपर्वत पर श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग स्थित है। महाभारत, शिवपुराण तथा पद्मपुराण आदि धर्मग्रंथों में इसकी महत्ता का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुराणों में इस ज्योतिर्लिंग की कथा इस प्रकार से वर्णन है। एक समय की बात है, भगवान शंकरजी के दोनों पुत्र श्रीगणेश और श्रीकार्तिकेयस्वामी विवाह के लिए परस्पर झगड़ने लगे। माता-पिता की यह बात सुनकर श्रीकार्तिकेयस्वामी तो अपने वाहन मयूर पर विराजित हो तुरंत पृथ्वी-प्रदक्षिणा के लिए दौड़ पड़े। लीकिन गणेशजी के लिए तो यह कार्य बड़ा ही कठिन था। एक तो उनकी काया स्थूल

थी, दूसरे उनका वाहन भी मूषक-चूहा था। भला, वे दौड़ में स्वामी कार्तिकेय की बराबरी किस प्रकार कर पाते ? लेकिन उनकी काया जितनी स्थूल थी बुद्धि उसी के अनुपात में सूक्ष्म और तीक्ष्ण थी। उन्होंने अविलंब पृथ्वी की परिक्रमा का एक सुगम उपाय खोज निकाला सामने बैठे माता-पिता का पूजन करने के पश्चात उनकी सात प्रदक्षिणाएँ कक्षरवके उन्होंने पृथ्वी-प्रदक्षिणा का कार्य पूरा कर लिया।

३) श्री महाकालेश्वर - यह क्षिप्रा नदी के तट पर उज्जैन में स्थित है। महाकवि कालिदास से लेकर संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में इस मंदिर का भावपूर्ण उल्लेख किया है। शुंग, कुषाण, सातवाहन, गुप्त, परिहार, परमान और आधुनिक मराठा काल में इस मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ। महाकालेश्वर की प्रतिमा दक्षिणामूर्ति है। तांत्रिक परंपरा में दक्षिण मूर्ति पूजा का महत्व बारह ज्योतिर्लिंगों में केवल महाकालेश्वर में ही प्राप्त है। यह परम पवित्र ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर में है। पुण्यसलिला क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित उज्जैन प्राचीनकाल में उज्जयिनी के नाम से विख्यात था, इसे अवन्तिकापुरी भी कहते थे। यह भारत की परम पवित्र सत्पपुरियों में से एक है। महाभारत, शिवपुराण एवं स्कन्दपुराण में महाकाल ज्योतिर्लिंग की महिमा का पूरे विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

इस ज्योतिर्लिंग की कथा पुराणों में इस प्रकार वर्णित है- प्राचीनकाल में उज्जयिनी में राजा चंद्रसेन राज्य करते थे। वह परम शिव-भक्त थे। एक दिन श्रीकर नामक एक पाँच वर्ष का गोप-बालक अपनी माँ के साथ उधर से गुजर रहा था। राजा का शिवपूजन देखकर उसे बहुत विस्मय और कौतूहल हुआ। वह स्वयं उसी प्रकार की सामग्रियों से शिवपूजन करने के लिए लालायित हो उठा। सामग्री का साधन न जुट पाने पर लौटते समय उसने रास्ते से एक पत्थर का टुकड़ा उठा लिया। घर आकर उसी पत्थर को शिव रूप में स्थापित कर पुष्प, चंदन आदि से परम श्रद्धापूर्वक उसकी पूजा करने लगा।

४) श्री ओंकारेश्वर श्री ममलेश्वर- परमेश्वर और ममलेश्वर भी कहते हैं। यह स्थान नर्मदा नदी के तट पर स्थित है, मोरटक्का से १० कि.मी. दूरी पर स्थित है। यहां ओंकारेश्वर और ममलेश्वर नामक दो अलग-अलग लिंग हैं किन्तु दोनों का स्वरूप एक ही है। यह ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश में पवित्र नर्मदा नदी के तट पर स्थित है। इस स्थान पर नर्मदा के दो धाराओं में विभक्त हो जाने से बीच में एक टापू-सा बन गया है। इस टापू को मान्धाता-पर्वत या शिवपुरी कहते हैं। नदी की एक धारा इस पर्वत के उत्तर और दूसरी दक्षिण होकर बहती है। दक्षिण वाली धारा ही मुख्य धारा मानी जाती है। इसी मान्धाता-पर्वत पर श्री ओंकारेश्वर-ज्योतिर्लिंग का मंदिर स्थित है। पूर्वकाल में महाराज मान्धाता ने इसी पर्वत पर अपनी तपस्या से भगवान शिव को प्रसन्न किया था। इसी से इस पर्वत को मान्धाता-पर्वत कहा जाने लगा। इस ज्योतिर्लिंग-मंदिर के भीतर दो कोठरियों से होकर जाना पड़ता है। भीतर अंधेरा रहने के कारण यहाँ निरंतर प्रकाश जलता रहता है। ओंकारेश्वर लिंग मनुष्य निर्मित नहीं है। स्वयं प्रकृति ने इसका निर्माण किया है। इसके चारों ओर हमेशा जल भरा रहता है। संपूर्ण मान्धाता-पर्वत ही भगवान शिव रूप माना जाता है। इसी कारण इसे शिवपुरी भी कहते हैं लोग भक्तिपूवर्क इसकी परिक्रमा करते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिंगों में प्रमुख महाकालेश्वर कई दृष्टियों से विलक्षण है। इनका दर्शनमात्र समस्त प्रकार के क्लेश नष्ट करने, समस्त प्रकार की सिद्धियां और सुख प्रदान करने और संसार सागर से पार लगानेवाला है। महाकाल का नाम सुनने मात्र से ही महामृत्युंजय मंत्र के जप का फल मिलता है। मध्य प्रदेश मे उज्जैन स्थित अवंतिका मे विराजमान भूतभावन भगवान महाकालेश्वर मंदिर के बारे मे तमाम किंवदतियां भी है।

उज्जैन स्थित मंदिर में महाकाल का ज्योतिर्लिंग दक्षिणायन है। सामान्यतया हिंदू समाज मे यह धारणा है कि दक्षिणाभिमुख होकर कोई शुभ कार्य नहीं करना चाहिए। किंतु मुख्यत: तंत्रपीठ होने के कारण यह शुभ और अशुभ जैसी धारणाओं से मुक्त है। कहा जाता है कि महाराजा विक्रमादित्य के सभी नवरत्नों ने महाकाल की विशेष पूजा की थी। महाकवि कालिदास को महाकाल की विशेष कृपा प्राप्त थी। त्रेता में भगवान श्रीराम और द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण ने भगवान महाकालेश्वर की पूजा की थी। वस्तुत: मृत्युलोक मे भगवान शिव का महाकाल रूप ही मुख्य रूप से पूज्य है। कहा गया है- आकाशे तारकालिंगम पाताले हाटकेश्वरम।

मृत्युलोके महाकालम लिंगमत्रय नमोस्तुते ।।

भस्म न होने वाली महाकाल की आरती के मूल में भी संभवत: यही कारण है। हालांकि दूर-दराज के तमाम लोगों का विश्वास है कि यह भस्म किसी चिता की होती है, परंतु वास्तव में ऐसा है नहीं। बहुत पहले कई हजार साल पहले शायद ऐसा होता था, लेकिन अब वास्तविक चिता-भस्म का उपयोग नहीं किया जाता। अब भगवान महाकालेश्वर के अभिषेक के लिए जिस भस्म का उपयोग किया

जाता है वह उपलो से तैयार की गई होती है।

वस्तुत: यह माना जाता है कि समूचा संसार ही चितामय है। इस धरती पर एक अंगुल भूमि भी ऐसी नहीं है, जिस पर किसी की मृत्यु न हुई हो। इस तरह यह संपूर्ण धरा ही श्मशान भूमि है। इसीलिए इस लोक को मृत्यु लोक कहा जाता है। करोड़ो वर्ष पूर्व जब उज्जैन में भगवान महाकाल प्रकट हुए तब भी यह धरा श्मशान ही थी। भगवान शिव ने इसे सभी जीवों के लिए मंगलमय करके दिया। इसीलिए यहां भस्म से भूतभावन भगवान शिव का अभिषेक किया जाता है। भस्म वस्तुत: पंचभूतों का प्रतीक है।

५) श्री केदारनाथ या केदारेश्वर- हिमालय में केदार नामक शिखर पर स्थित है। पूर्व में अलकनंदा और पश्चिम में मंदाकिनी के किनारे केदारनाथ विराजमान है। यह स्थान हरिद्वार से लगभग २४० कि.मी. दूरी पर स्थित है। यह ज्योतिर्लिंग पर्वतराज हिमालय की केदार नामक चोटी पर स्थित है। पुराणों एवं शास्त्रों में श्री केदारेश्वर-ज्योतिर्लिंग की महिमा का वर्णन बारंबार किया गया है। यहाँ की प्राकृतिक शोभा देखते ही बनती है। इस चोटी के पश्चिम भाग में पुण्यमती मंदाकिनी नदी के तट पर स्थित केदारेश्वर महादेव का मंदिर अपने स्वरूप से ही हमें धर्म और अध्यात्म की ओर बढ़ने का संदेश देता है। चोटी के पूर्व में अलकनंदा के सुरम्य तट पर बद्रीनाथ का परम प्रसिद्ध मंदिर है। अलकनंदा और मंदाकिनी- ये दोनों नदियाँ नीचे रुद्रप्रयाग में आकर मिल जाती हैं। दोनों नदियों की यह संयुक्त धारा और नीचे देवप्रयाग में आकर भागीरथी गंगा से मिल जाती हैं। इस प्रकार परम पावन गंगाजी में स्नान करने वालों को भी श्री केदारेश्वर और बद्रीनाथ के चरणों को धोने वाले जल का स्पर्श सुलभ हो जाता है।

६) भीमाशंकर- बंबई से पूर्व और पूना से उत्तर भीमा नदी के किनारे उसके उद्‌गम स्थल सह्य पर्वत पर स्थित यह नासिक से लगभग २१३ कि.मी. दूरी पर स्थित है। शिवपुराण की एक कथा के अनुसार भीम शंकर ज्योतिर्लिंग आसाम के काम रूप जिले में गौहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर स्थित बताया जाता है। यह ज्योतिर्लिंग गोहाटी के पास ब्रह्मपुर पहाड़ी पर स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना के विषय में शिवपुराण में यह कथा वर्णित है- प्राचीनकाल में भीम नामक एक महाप्रतापी राक्षण था। वह कामरूप प्रदेश में अपनी माँ के साथ रहता था। वह महाबली राक्षस, राक्षसराज रावण के छोटे भाई कुंभकर्ण का पुत्र था। लेकिन उसने अपने पिता को कभी देखा न था। उसके होश संभालने के पूर्व ही भगवान राम के द्वारा कुंभकर्ण का वध कर दिया गया था। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ तब उसकी माता ने उससे सारी बातें बताईं। भगवान विष्णु के अवतार श्रीरामचंद्रजी द्वारा अपने पिता के वध की बात सुनकर वह महाबली राक्षस अत्यंत संतप्त और क्रुद्ध हो उठा। अब वह निरंतर भगवान श्री हरि के वध का उपाय सोचने लगा। उसने अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए एक हजार वर्ष तक कठिन तपस्या की। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने उसे लोक विजयी होने का वर दे दिया।

७) श्री विश्वनाथ- यह मंदिर वाराणसी में स्थित है, जो सर्वप्रसिद्ध है। यह ज्योतिर्लिंग उत्तर भारत की प्रसिद्ध नगरी काशी में स्थिति है। इस नगरी का प्रलयकाल में भी लोप नहीं होता। उस समय भगवान अपनी वासभूमि इस पवित्र नगरी को अपने त्रिशूल पर धारण कर लेते हैं और सृष्टिकाल आने पर पुन: यथास्थान रख देते है। सृष्टि की आदि स्थली भी इसी नगरी को बताया जाता है। भगवान विष्णु ने इसी स्थान पर सृष्टि-कामना से तपस्या करके भगवान् शंकरजी को प्रसन्न किया था। अगस्त्य मुनि ने भी इसी स्थान पर अपनी तपस्या द्वारा भगवान शिव को संतुष्ट किया था। अगस्त्य मुनि ने भी इसी स्थान पर अपनी तपस्या द्वारा भगवान शिव को संतुष्ट किया था। इस पवित्र नगरी की महिमा ऐसी है कि यहाँ जो भी प्राणी अपने प्राण त्याग करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। भगवान् शंकर उसके कान में तारक मंत्र का उपदेश करते हैं। इस मंत्र के प्रभाव से पापी से पापी प्राणी भी सहज ही भवसागर की बाधाओं से पार हो जाते हैं।

८) त्र्यंबकेश्वर- यह ज्योतिर्लिंग नासिक जिले में पंचवटी से ३० कि.मी. दूर गोदावरी के उद्‌गम स्थल ब्रह्मगिरि के पास गोदावर तट पर स्थित है। यहां कुंभ का मेला भी लगता है। यह ज्योतिर्लिंग महाराष्ट्र प्रांत में नासिक से ३० किलोमीटर दूर पश्चिम में स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना के विषय में शिवपुराण में यह कथा वर्णित है- एक बार महर्षि गौतम के तपोवन में रहने वाले ब्राह्मणों की पत्नियाँ किसी बात पर उनकी पत्नी अहिल्या से नाराज हो गईं। उन्होंने अपने पतियों को ऋषि गौतम का अपकार करने के लिए प्रेरित किया। उन ब्राह्मणों ने इसके निमित्त भगवान् श्रीगणेशजी की आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने को कहा उन ब्राह्मणों ने कहा- प्रभो। यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो किसी प्रकार ऋषि गौतम को इस आश्रम से बज्ञासहर निकाल दें। उनकी यह बात सुनकर गणेशजी ने उन्हें ऐसा वर माँगने के लिए समझाया। किंतु वे अपने आग्रह पर अटल रहे। अंतत: गणेशजी को विवश होकर उनकी बात

माननी पड़ी। अपने भक्तों का मन रखने के लिए वे एक दुर्बल गाय का रूप धारण करके ऋषि गौतम के खेत में जाकर रहने लगे।

९) वैद्यनाथ- यह स्थान संथाल परगने में ई.आई.रेलवे के जेसीडीह स्टेशन के पास वैद्यनाथधाम के नाम से प्रसिद्ध है। पुराणों के अनुसार यही चिंताभूमि है। परल्यां वैद्यनाथं च ऐसा वर्णन भी मिलता है। इसके अनुसार परली में वैद्यनाथ स्थित है। दक्षिण हैदराबाद से परभनी नामक जंक्शन लगा हुआ है। वहां से परली स्टेशन से थोड़ी दूर परली गांव के निकट श्री वैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिंग है। यह ज्योतिर्लिंग बिहार प्रांत के सन्थाल परगने में स्थित है शास्त्र और लोक दोनों में उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। इसकी स्थापना के विषय में यह कथा कही जाती है- एक बार राक्षसराज रावण ने हिमालय पर जाकर भगवान शिव का दर्शन प्राप्त करने के लिए बड़ी घोर तपस्या की। शीश काटने को उद्यत रावण का हाथ पकड़कर उन्होंने उसे ऐसा करने से रोक दिया। उसके नौ सिर भी पहले की तरह जोड़ दिए और अत्यंत प्रसन्न होकर उससे वर माँगने को कहा। रावण ने वर के रूप में भगवान शिव से उस शिवलिंग को अपनी राजधानी लंका में ले जाने की अनुमति माँगी। भगवान् शिव ने उसे यह वरदान तो दे दिया लेकिन एक शर्त भी उसके साथ लगा दी। उन्होंने कहा, तुम शिवलिंग ले जा सकते हो किंतु यदि रास्ते में इसे कहीं रख दोगे तो यह वहीं अचल हो जाएगा, तुम फिर इसे उठा न सकोगे। रावण इस बात को स्वीकार कर उस शिवलिंग को उठाकर लंका के लिए चल पड़ा। चलते-चलते एक जगह मार्ग में उसे लघुशंका करने की आवश्यकता महसूस हुई। वह उस शिवलिंग को एक अहीर के हाथ में थमाकर लघुशंका की निवृत्ति के लिए चल पड़ा। उस आहीर को शिवलिंग का भार बहुत अधिक लगा और वह उसे सँभाल न सका। विवश होकर उसने शिवलिंग को वहीं भूमि पर रख दिया। रावण जब लौटकर आया तब बहुत प्रयत्न करने के बाद भी उठा न सका। अंत में थककर उस पवित्र शिवलिंग पर अपने अँगूठे का निशान बनाकर उसे वहीं छोड़कर लरंका को लौट गया। तत्पश्चात ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं ने वहाँ आकर उसे शिवलिंग का पूजन किया।

१०) श्री नागेश- बडौदा में गोमती द्वार से ईशानकोण में १८ कि.मी. की दूरी पर नागेश नामक ज्योतिर्लिंग स्थित है। द्वारकावन इसी इसी का नाम है- इसे द्वारकावन भी कहा जाता है। भगवान शिव का यह प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गुजरात प्रांत में द्वारकापुरी से लगभग १७ मील की दूरी पर स्थित है। इस पवित्र ज्योतिर्लिंग के दर्शन की शास्त्रों में बड़ी महिमा बताई गई है। कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक इसकी उत्पत्ति और माहात्म्य की कथा सुनेगा वह सारे पापों से छुटकारा पाकर समस्त सुखों का भोग करता हुआ अंत में भगवान् शिव के परम पवित्र दिव्य धाम को प्राप्त होगा।

सुप्रिय नामक एक बड़ा धर्मात्मा और सदाचारी वैश्य था। वह भगवान् शिव का अनन्य भक्त था। वह निरंतर उनकी आराधना, पूजन और ध्यान में तल्लीन रहता था। अपने सारे कार्य वह भगवान् शिव को अर्पित करके करता था। मन, वचन, कर्म से वह पूर्णत: शिवार्चन में ही तल्लीन रहता था। उसे भगवान् शिव की यह पूजा किसी प्रकार भी अच्छी नहीं लगती थी। वह निरंतर इस बात का प्रयत्न किया करता था कि उस सुप्रिय की पूजा-अर्चना में विघ्न पहुँचे। एक बार सुप्रिय नौका पर सवार होकर कहीं जा रहा था। उस दुष्ट राक्षस दारुक ने यह उपयुक्त अवसर देखकर नौका पर आक्रमण कर दिया। उसने नौका में सवार सभी यात्रियों को पकड़कर अपनी राजधानी में ले जाकर कैद कर लिया। सुप्रिय कारागार में भी अपने नित्यनियम के अनुसार भगवान् शिव की पूजा-आराधना करने लगा।

यह शिवलिंग ओढ्या नागनाथ महाराष्ट्र में जिंतूर के पास परभणी जिल्हे में ओढ्या नागनाथ नाम से भी प्रसिद्ध है। यह विवादास्पद हैं कि यह शिवलिंग नागेश्वरनाथ महाराष्ट्र के इस ग्राम में है या गुजरात में द्वारकापुरी के पास।

११) रामेश्वर - श्री रामेश्वर तीर्थ को ही सेतुबंध रामेश्वर के नाम से जाना जाता है। यह स्थान मद्रास के रामानाथपुरम जिले में स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग की स्थापना मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचंद्रजी ने की थी। स्कंदपुराण में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।

इसके विषय में यह कथा कही जाती है- जब भगवान् श्रीरामचंद्रजी लंका पर चढ़ाई करने के लिए जा रहे थे तब इसी स्थान पर उन्होंने समुद्र की बालू से शिवलिंग बनाकर उसका पूजन किया था। ऐसा भी कहा जाता है कि इस स्थान पर ठहरकर भगवान राज जल पी रहे थे कि आकाशवाणी हुई कि मेरी पूजा किए बिना ही जल पीते हो ? इस वाणी को सुनकर भगवान श्रीराम ने बालू से शिवलिंग बनाकर उसकी पूजा की तथा भगवान् शिव से रावण पर विजय प्राप्त करने का वर माँगा। उन्होंने प्रसन्नता के साथ यह वर भगवान् श्रीराम को दे दिया। भगवान् शिव ने लोक-कल्याणार्थ ज्योतिर्लिंग के रूप में वहाँ निवास करने की सबकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली। तभी से यह ज्योतिर्लिंग यहाँ विराजमान है।

१२) श्री घुष्मेश्वर - यह हैदराबाद के अंतर्गत दौलताबाद स्टेशन से २० कि.मी. दूर बेरूल गांव के निकट है। इस स्थान को ही शिवालय कहते हैं। उपर्युक्त ज्योतिर्लिंगों की उत्पत्ति की कथाएं पुराणों में वर्णित हैं। शिवरात्रि पर इन प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिंगों पर विशाल धार्मिक आयोजन होते हैं और लाखों नर-नारी भीतभावन भगवान मृत्युंजय की पूजा-अर्चना कर दर्शनों का लाभ लेते हैं। इन ज्योतिर्लिंगों के उपलिंग भी हैं। सोमनाथ का अन्तकेश्वर, मल्लिकार्जुन का रूद्रेश्वर, महाकाल का दुग्धेश्वर (दूधनाथ), ओंकारेश्वर का कर्दमेश्वर, केदारेश्वर का भूतेश्वर, भीमाशंकर का भीमेश्वर, नागेश्वर का भूतेश्वर, रामेश्वर का गुप्तेश्वर और घुष्मेश्वर का व्याघ्रेश्वर है। द्वादश ज्योतिर्लिंगों में यह अंतिम ज्योतिर्लिंग है। इसे घुमेश्वर, घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहा जाता है। यह महाराष्ट्र प्रदेश में दौलताबाद से बारह मील दूर वेरुलगाँव के पास स्थित है। इस ज्योतिर्लिंग के विषय में पुराणों में यह कथा वर्णित है- दक्षिण देश में देवगिरिपर्वत के निकट सुधर्मा नामक एक अत्यंत तेजस्वी तनोनिष्ट ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नी का नाम सुदेहा था दोनों में परस्पर बहुत प्रेम था। किसी प्रकार का कोई कष्ट उन्हें नहीं था। लेकिन उन्हें कोई संतान नहीं थी। ज्योतिष-गणना से पता चला कि सुदेहा के गर्भ से संतानोत्पत्ति हो ही नहीं सकती। सुदेहा संतान की बहुत ही इच्छुक थी। उसने सुधर्मा से अपनी छोटी बहन से दूसरा विवाह करने का आग्रह किया। पहले तो सुधर्मा को यह बात नहीं जँची। लेकिन अंत में उन्हें पत्नी की जिद के आगे झुकना ही पड़ा। वे उसका आग्रह टाल नहीं पाए। वे अपनी पत्नी की छोटी बहन घुश्मा को ब्याह कर घर ले आए। घुश्मा अत्यंत विनीत और सदाचारिणी स्त्री थी।

शिवलिंग रूप में तो वे सर्वत्र व्याप्त ही हैं। द्वादश-ज्योतिर्लिंगोंके रूप में वे ही प्रतिष्ठित हैं। एकादश रुद्र भगवान् शिवके ही विविध लीलारूप हैं। विभिन्न युगोंमें प्रादुर्भूत होकर योगका उपदेश देनेवाले योगाचार्योंके रूप में भगवान् शिव ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करके शिव मार्गको प्रशस्त करते हैं।

प्रभुकी लीला अपरम्पार है। उसकी लीलाका आदि, मध्य और अन्त खोजना मानव-शक्तिके लिये असम्भव है। प्रभु जब भी कोई लीला रचते हैं, तब वह केवल लीलामात्र नहीं होती, अपितु उसके पीछे बड़ा भारी रहस्य, महान तत्व, कोई शिक्षा तथा कोई आदर्श विद्यमान रहता है। शैव, वैष्णव, शाक्त आदि देव एक ही हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। शिव ही विष्णु है और विष्णु ही शिव। जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् रुद हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं। शंकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छोड दो। दोनों एक ही हैं जो लोग साक्षात् विष्णु भगवान्को शिवशंकर से पृथक् मानते हैं, वे मनुष्य नरकके भागीदार होते हैं। जो रुद्रदेव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, वे मुक्तिपदके भागी होते हैं। पृथ्वीपर रहनेवाला यह मानव ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर बडे सुखसे इस लोक में निवास करते हैं और उधर स्वर्ग में निवास करनेवाले इन्द्रादि देवगण, गन्धर्व आदि भी सुखोपभोगमें मस्त रहते हैं।

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में भगवान् शिव देवाधिदेव रूप में पूज्य हैं। वे महादेव हैं, क्योंकि उनके अन्त: और बाह्य दोनों पक्ष शुद्ध-सत्त्व प्रधान हैं। वे शंकर हैं - शम = कल्याणं करोति इति शंकर:। वे आशुतोष हैं, भक्तजनोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव अनायास ही आराधककी शुद्ध भावनाको जानकर उसे अभिलषित वर दे देते हैं। भावमिच्छन्ति देवता:। इस वचनके अनुसार भक्त के शुद्ध भावका आभास पाते ही बिना परीक्षा लिये ही वे प्रकट होकर उसकी मन:कामना पूरी करते हैं। इसीलिये वे औढरदानी भी कहे जाते हैं। विष्णु आदि अन्य देवोंकी अपेक्षा शिव सुर-असुर, दानव-मानव सबके निर्विवाद आराध्य हैं। शिवके आशुतोषत्व, महादेवत्व और सर्वकल्याणकारकत्व ही उनकी सर्वप्रियताके हेतु हैं। ऐसे सर्वप्रिय भक्तवत्सल, सर्वसुलभ शिवकी मंगलमयी मूर्ति सर्वथा नमस्य है।

समस्त विश्वको रुद्ररूप कहा गया है। शिवका अर्धनारीश्वर रूप तो अत्यन्त विलक्षण है। उनका यह यामल विग्रह सृष्टितत्त्वके सम्पूर्ण आयामको समेटे है। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत्का रहस्य इस विग्रहमें अनुस्यूत है। स्त्री-पुंभावकी एकरूपताका यह प्रतीक है। परम शुभंकर शिव तथा शक्तिके अभिन्न युग्मरूपके द्योतक परम शिवकी निग्रह-अनुग्रह-लीलाका दिग्दर्शन विषय इसप्रकार है।

लीला शब्दका अर्थ है- खेल, क्रीडा, विनोद, मनोरंजन, आनन्द। लीलाका एक अर्थ प्रीतिविषयक विनोद- केलिक्रीडा भी होता है। प्रकृत प्रसंगमें लीलाका अर्थ हम आनन्द लेते हैं। भगवान् शिव आनन्दरूप हैं। वे स्वत: आनन्दानुभूतिके लिये तथा विश्वको आनन्दित करनेके लिये क्रीडा करना चाहते हैं, किंतु एकाकी न रमते, अकेले कैसे खेलें, किसके साथ खेलें ?

अत: स्वाभिन्ना शिवाशक्तिको लीला- विग्रह देकर उसी आद्यशक्तिके साथ क्रीडा करते है। उसी अर्धनारीश्वर शिवाऽभिन्न शिवका यह समस्त प्रपंच खेल है। यह विश्व उसी शिवशक्तिकी लीलामयी परिणति है। विश्व कल्याण तथा लोकसंग्रहके लिये परम शिवकी

निग्रह-अनुग्रहरूपा लीला होती है। परम शिवकी वह लीला निग्रहदृष्टिसे नियन्त्रणपरक है और अनुग्रह-दृष्टिसे मोक्षपरक। संसार-भावमें व्यवस्था एवं मर्यादारक्षणके लिये संयमन तथा प्राणियोंके परम पुरुषार्थ- मोक्षके लिये प्रसाद-कृपाकी अपेक्षा होती है। सृष्टिकर्ता शिव नियन्त्रण और प्रसाद दोनों भावोंसे अपनी संवित्-शक्तिके साथ निग्रह और अनुग्रह-लीला करते है।

लीलाका आध्यात्मिक पक्ष- काश्मीरी शैवोंकी आध्यात्मिक दृष्टिके अनुसार केवल परम शिव-उपनिषदोंका परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। वह सर्वशक्तिमान है और उसमें उसकी शक्ति के रूप में समस्त अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं। वह परम शिव अनन्त और पूर्व चित्त है। उस पारमेश्वरी चित्तका स्वभाव आनन्द है। उस आनन्दसे प्रभावित वह चित्-शक्ति जब झूमने लगती है, तो आनन्द लीलाके रूपको धारण करता है। उस लीलारूप स्वभावकी अभिव्यक्ति ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें होनेवाले सर्जन-संहार आदि सबके सब परम शिवकी शक्तियोंके बहिर्मुखी आभास हैं, जो प्रतिबिम्ब-न्यायसे आभासित होते रहते हैं। उन पारमेश्वरी शक्तियोंके इस अद्भुत आभासके होते रहनेपर भी परम शिवमें कोई विकार नहीं आता, जैसे दर्पणमें मुख प्रतिबिम्बित होते रहने पर भहीमुख और दर्पण विकारशून्य ही बने रहते हैं।

पूर्ण शुद्ध तथा असीम चिद्रूप परम शिवका स्वभाव आनन्द है। वह सदैव स्पन्दमान होता हुआ स्व-स्वभावसे ही क्रीडानशील होता है। अत: प्रतिबिम्बात्मक सर्जन-संहार आदिकी ऐसी लीलाएँ परम शिवके असीम चिदानन्दमें चलती रहती हैं। इन लीलाओंका इस प्रकार चलते रहना ही परमेश्वरकी परमेश्वरता या परमशिवकी परशिवता है। आत्मस्वरूप संसारको अपनेसे भिन्न रूप में और अभेदको भी भेदरूप में परिवर्तित करनेवाली माया भी उस परमेश्वरकी ही एक शक्ति है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में परमेश्वर शिवकी शक्तिको माया कहा गया है।

बन्धन और मोक्ष भी उसीकी लीलाएँ हैं। सब कुछ वही परम शिव है। शैव साधक विश्वकी प्रत्येक वस्तुको शिवरूप में अनुभव करते हैं। परमेश्वर शिव ही स्वयंको नटके समान बद्ध जीवों के रूप में प्रकट करता हुआ बन्धन-लीलाका स्वधयं अभिनय मात्र करता है। वह योग, ज्ञान और भक्तिके समन्वित साधना-पथपर अग्रसर होता हुआ मुक्ति-लीलाका अनुभव करता है। बन्धनका आभास परम शिवकी निग्रह-लीला है और मोक्षकी प्राप्ति उसकी अनुग्रह-लीलाका परिणाम है।

पूर्ण चेतन परम शिव तथा परा शिवताकी लीलाका जो अभिनय सतत चलता रहता है, उसके भीतर ही विज्ञजन उसका दर्शन और विमर्शन दो रूपों में किया करते हैं। उसके अनुसार वे साधक एक मात्र पूर्ण और असीम तथा विश्वातीत चिदानन्दघन-रूप में उसका साक्षात्कार करते हैं, उस रूप में उसे शिव कहते हैं, साथ ही वे समग्र विश्वके रूप में तथा इस विश्वमयी लीलाके रूप में भी उसीका साक्षात्कार करते हैं, इस रूप में उसे शक्ति कहते हैं। इस प्रकार एक ही परम शिव एक ओरसे शिवतत्त्व है और दूसरी ओरसे शक्तितत्त्व है। परमेश्वर शिव की यही स्वाभाविक पराशक्ति प्रयोजनवश दस महाविद्याओंके रूप में प्रकट होकर भक्तोंद्वारा आराधित-पूजित होती हैं।

परमशिवकी वह अनादि-स्वातन्त्र शक्ति दो रूपों में अभिव्यक्त होती है- जड शक्ति और संवित्शक्ति। परम शिव जडशक्तिसे बन्धनकी लीला और संवित् शक्तिसे मोक्षकी लीला करते हैं। शिवकी यह स्वातन्त्र-शक्तिकी लीला ही भवबन्धन और भवमुक्तिका हेतु है-

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ।। संसारबन्धहेतुश्च सर्वेश्वरेश्वरी ।।

शक्तिविशिष्ट शिवसे ही समस्त प्रपंचकी सृष्टि होती है, अत: प्रत्येक वस्तु यत्किंचित् शक्ति विशिष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही हैं। यथा पृथिवीमें धारण, जलमें आप्यायन, अग्निमें ज्वलन, वायु में स्पन्दन, आकाशमें व्यापन आदि शक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। ये सारी शक्तियाँ शिवकी स्वतन्त्र-शक्तिकी मूर्तियाँ हैं, जो यथासमय यथास्थान अपनी लीलाएँ दिखाती हैं।

शिव और शक्तिका कभी वियोग नहीं होता। शिव इसी अवियुक्त शक्तिसे विश्वकी सृष्टि करता है। यह सृष्टि शिवशक्तिकी यामल-लीला ही है। शक्तितत्त्वके उपासक भगवती शिव-शक्तिकी सकल शब्दमयी मूर्तिकी उपासनामें ही अपने जीवन के प्रत्येक क्षणको सार्थक मानते हैं- तव च का किल न स्तुतिरम्बिके ! सकलशब्दमयी किल ते तनु:।

परम शिव अपने प्रसादसे प्राणियोंके कल्याणके लिये नाना लीलाएँ करते हैं। उनकी आदिशक्ति लीलामयी है। उसी लीलात्मिका शक्तिके सहयोगसे परम शिव विश्व-रंगमंचपर नर्तनलीला करते हैं, अतएव वे नटराज भी कहे जाते हैं।

व्यावहारिक पक्ष- परम शिवकी लीलाके आध्यात्मिक पक्षकी भाँति ही व्यावहारिक पक्ष भी स्पृहणीय है। यजुर्वेद, पुराणों और काव्योंमें वर्णित शिवचरितके आधारपर शिवकी लीलाके व्यावहारिक पक्षके अन्तर्गत उनका दाम्पत्य-जीवन, भगवत्प्रेम, सती-संशय,

दक्षयज्ञ-विध्वंस, मदन-दहन, पार्वती-परीक्षा, विवाह-लीला, गरलपान और त्रिपुरसंहार प्रमुख हैं। इन प्रसंगोंसे सम्बद्ध लीलाओंमें दाम्पत्य-प्रेम, भगवत्प्रेम, पार्वती-परीक्षा और विवाह कौतुक तो परम शिवकी अनुग्रह-लीला है और सती-सवंशय, दक्षयज्ञ-ध्वंस, मदन-दाह, गरलपान और त्रिपुरसंहार निग्रह-लीला है। शिवचरितसे सम्बन्धित व्यावहारिक लीलाका उद्देश्य लोकसंग्रह है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवन का क्या कहना ! दक्षसुता सती, जो शिवकी आद्यशक्ति हैं वे अवतरित होकर पिता दक्षके विरोध करनेपर भी शिव को पतिके रूप में सहर्ष वरण करती है। शिवके प्रति सतीका नैसर्गिक निर्व्याज प्रेम दाम्पत्य-जीवनकी मधुरिमामें चार चाँद लगा देता है। परंतु शिव और शक्तिको लीला अभीष्ट है। अत: दोनों मिलकर ही लीला करते हैं। यह लीला दोनों विभूतियोंकी मिली भगत है।

भगवान शिवके दाम्पत्य-जीवन के पूर्वचरितमें सती और उत्तर-चरितमें पार्वतीकी अहं भूमिका है। सतीके साथ दाम्पत्य-प्रेम में शिवकी निग्रह-लीलाकी प्रमुखता है और पार्वतीके साथ अनुग्रह-लीला की। शिवकी पत्नीके रूप में जहाँ सतीने अपने शरीरकी आहुति देकर परमाराध्य शिवजीके प्रति अपनी अनन्य पतिपरायणताका उदाहरण प्रस्तुत किया है, वहीं पार्वतीने अपनी फूल-सी सुकुमार कायाको तपस्यामें लगाकर शिवके प्रति अपनी प्रेमा भक्तिका परिचय दिया है। सती और पार्वती दोनोंने ही परम शिवकी परमशक्क्रीतके रूरूळप में उनकी उभयविध लीलाओंको लोकमंगलकारी बनाया है। संसार-भावके व्यावहारिक पक्षमें सती-प्रसंगकी लीला विश्व-मानवको यह संदेश देती है कि दाम्पत्य-जीवनमें स्वजन-पति पत्नीके बीच संदेह, अविश्वास, झूठ और और कपटका कोई स्थान नहीं है। अतएव दाम्पत्य-प्रेममें उपर्युक्त संशय आदि नहीं करने चाहिये। आत्मीय जनमें परस्पर स्नेह, विश्वास और निष्कण्टक भावमें ही मंगल है। पार्वतीके साथ शिवजीका दाम्पत्य-प्रेम तो सफलतम गार्हस्थ्य जीवनका प्रशस्त उदाहरण है। इसीलिये प्रत्येक विवाहादि मांगलिक कार्योंके आरम्भमें गौरी-गणेशकी पूजा की जाती है। भगवान् शिवकी दक्षयज्ञ-ध्वंस-लीला भी सतीसे जुडी है। वे अपने ही पिताद्वारा अपने आराध्य पति शिवजीका अपमान सहन न कर योगाग्निमें अपना शरीर उत्सर्ग कर देती हैं।

दक्ष-प्रसंगमें शिवजीकी निग्रह-लीला दक्षको प्राण-दण्ड देकर समाप्त होती है। परंतु वहीं पर देवताओंके हितको ध्यानमें रखकर शिवजीने दक्षको पुनर्जीवन और वरदान देकर अपनी अनुग्रह-लीला भी दिखायी है।

परम शिवकी मदन-दहन-लीला उनके निग्रह और पर्यवसानमें अनुग्रह-लीलाका उदाहरण है। मदन-दहनका यह प्रसंग परम शिवकी निग्रह-लीलाका निदर्शन है। परंतु इस प्रसंगकी परिणति तो शिवजीकी अनुग्रह-लीलामें हुई है और वह अनुग्रह-लीला है कामदेवकी पत्नी रतिपर कृपा। आशुतोष शिवकी यह लीला अद्भुत है। कामके देहको जलाकर भी-निग्रह-लीला करके भी उसके अस्तित्वकी अनंगरूपमें रक्षा तथा कृष्णपुत्र प्रद्युम्नके रूप में अवतरण शैवी अनुग्रह-लीला ही तो है।

पार्वती-प्रेम-परीक्षा और उनके साथ विवाहोल्लासका संदर्भ तो प्रकारान्तरसे सतीके प्रति शिवजीकी अनुग्रह-लीलाका प्रतीक है। पार्वतीके साथ सफल और सुखी दाम्पत्य-जीवनका प्रसंग सतीके प्रति पुरातन प्रीतिका निर्वाह है। वस्तुत: सती ही तो पार्वतीके रूप में पर्वतराज हिमालयके घर अवतरित हुईं, अत: सती और पार्वती दोनों ही शिवजीकी परमा शक्ति हैं। ऋग्वेद (१०।१२५।६) में देवीने स्वयं कहा है - अहं रुद्राय धनुरा तनोमि।

गरलपानका प्रसंग शिवजीकी अनुग्रह-लीलाकी चरम परिणति है। देवासुरके सम्मिलित समुद्रमन्थनसे जो चौदह रत्न निकले, उनमें एक हलाहल भी था। अच्छे-अच्छे रत्नोंको तो देवताओंने आपसमें बाँट लिया, परंतु विषको कौन ले ? अगर कोई विष न ले तो उसके कुप्रभावसे विश्व ही विपद्ग्रस्त हो जायगा। विष फैलकर संसारको नष्ट कर देगा। देवताओंमें सबसे वृद्ध और सम शिव ही थे, इसीलिये वे देवताओंके मुखिया भी थे। महादेवने विश्व-कल्याणके लिये उस हलाहलको पी लिया, किंतु उसे कण्ठगत ही रखा। शिव तो परम भक्त थे। उन्होंने सोचा कि गरल यदि उदरतक पहुँचेगा तो हृदयमें विराजमान परमात्माको कष्ट होगा, अत: उन्होंने गरलको कण्ठसे नीचे जाने ही नहीं दिया। तभीसे उनका एक नाम नीलकण्ठ भी हो गया। यही है शिवजीकी विश्वमंगल भावना और भगवद्भक्तिकी पराकाष्ठा। शिवजीके गरलपानसे व्यावहारिक जीवन में यह तथ्य सामने आता है।

शिवजी के गले मे विष है। शिवजी ने विष पेट मे नही उतारा और न ही निगला। यदि विष उतार लेते तो अन्तर जल जाता। बाहर निकालते तो जगत जल जाता। उन्होने विष को कंठ मे ही रखा। आदमी इस प्रकार से न बोले कि बोलने से परिवार ही जल उठे। ऐसा

भी मत बोलो कि तुम्हारा अन्तर जल उठे। शिवजी की तरह संसार के कटु बचनों को पीते रहो।

विश्व-नाटकका चतुर खिलाडी-शिव - काश्मीर शैव-दर्शनके अनुसार अनुत्तर प्रकाशस्वरूप परमशिवसे अभिन्न महाशक्तिके विकासका उल्लेख करते हुए श्रीआद्यनाथ अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका के आरम्भमें भगवान् शिवके लीला लावण्यकी क्रीडाका सांकेतिक विवरण देते हुए कहते हैं- अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघन: शिव:। शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्युरूपया।।

शिवादिक्षितिपर्यन्तं विश्वं वपुरदश्चयन्। पञ्चकृत्यमहानाट्यरसिक: क्रीडति प्रभु:।। अर्थात् केवल प्रकाश ही स्वरूप है जिसका ऐसा वह महान् तेज परप्रमाता विश्वोत्तीर्ण शिव (काश्मीर शैव-दर्शनमें जो विश्वोत्तीर्ण परमशिव हैं, वही वेदान्तदर्शनमें कारण ब्रह्म परब्रह्म हैं) स्वाभाविक पूर्णाहन्तारूप अपनी अभिन्न विमर्शशक्तिद्वारा सदाशिवके रूपमें प्रकट होकर ईश्वर-रूपसे प्रसरोन्मुख होता है।

इस प्रकार पञ्चकृत्यसरूप (सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह) ये शिवके पञ्चकृत्य हैं। महानाटकका रसिक प्रभु (विश्वमय शिव। कार्यब्रह्म। परमात्मा।) शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वी तत्त्वतक (शैव तथा शाक्त-प्रक्रिया के अनुसार जगत्का वर्णन छत्तीस तत्त्वोंमें होता है। वे हैं - १) शिव, २) शक्ति, ३) सदाशिव, ४) ईश्वर, ५) शुद्धविद्या, ६) माया, ७) कला, ८) विद्या, ९) राग, १०) काल, ११) नियति, १२) पुरुष, १३) प्रकृति, १४) बुद्धि, १५) अहंकार, १६) मन, (१७-२१) श्रोत्रादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय, (२२-२६) वागादि पञ्चकर्मेन्द्रिय, (२७-३१) शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ और (३२-३६) पृथ्वीपर्यन्त पञ्चमहाभूत उपर्युक्त गणनामें सांख्यदर्शनके चौबीस तत्त्वोंको भी अन्तर्भुत कर लिया गया है।) विश्वमयताको ग्रहणकर स्वतन्त्र लीला अर्थात् लावण्यमय क्रीडा करता है।

भगवान् शिवकी यह विश्वलीला अलौकिक है। केवल चिच्चमत्कारका चर्वणानन्द साधारण जनके लिये सहज बात नहीं है। शास्त्रोंने उस लीलामय शिवकी विचित्र और लावण्यमयी क्रीडाको सत्त्वगुण-सम्पन्न साधकके लिये समझानेका प्रयास किया है।

जगत् त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्रिवर्गात्मक विकास है। ये तीन वर्ग हैं- जाग्रत्-जगत्, स्वप्न-जगत् और सुषुप्ति-जगत्। यही त्रिवर्गात्मक विश्व भगवान् शिवकी नृत्य-क्रीडाका स्थल बना है। इस नाटककी व्यवस्था भी कितनी विचित्र है।

जगत्त्रयं शाम्भवनर्तनस्थली, नटाधिराजोऽत्र पर: शिव: स्वयम्। सभानटो रङ्ग इति व्यवस्थिति: स्वरूपात शक्तियुतात् प्रपञ्चित:।

अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप यह जगत् भगवान् शिवका नर्तन-स्थल है। स्वयं परम शिव इस नाटकके प्रधान नट हैं। दर्शकोंकी सभा, नट तथा नाटक करने के लिये रंगमंच-यह सब वास्तवमें शक्तिसम्पन्न शिवसे ही प्रपञ्चित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विश्व-सर्जनकी इस अलौकिक लीलामें कर्ता-कर्म-क्रिया, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भोक्ता-भोग्य- भोग आदि सब प्रकारकी त्रिपुटी शिव-शक्तिकी ही विकास- मुद्रा है। इसमें भगवान्के सृष्टि-क्रम तथा स्थिति-क्रम-इन दोनोंका अन्तर्भाव है। इसी प्रकार विसर्ग-लीला भी शक्तियुक्त शिवकी ही संकोच-मुद्रा है।

भगवान् शिवसे अभिन्न भगवती शक्तिकी संकोच-मुद्रा तथा विकास-मुद्रा रूप लीलाकी स्तुति भक्तोंने इस प्रकार की है-

संकोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं, वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा। यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं, त्वन्नामरूपगणनां सुकरीकरोषि।।

अर्थात हे गिरिजे ! जब आप उस भूमा-अवस्था (विश्वोत्तीर्ण-भाव) में प्रवेशकर स्वरूप-संकोचकी इच्छा करती हैं, तब आप शब्द-संसार तथा विकल्प-संसारसे परे अर्थात् वाणी और मनसे अगोचर दिखती हैं और जब आप विश्वरूपतामें प्रसार करती हैं अर्थात् अपने स्वरूपके विकासकी क्रीडा रचाती हैं, तब आप स्वयं ही जगत्की नाना-रूपता-विश्वमय भावमें प्रकट होती हैं।

भगवत् शक्तिकी इस विकासमय अनुपम लीलासे भक्तजनोंका उत्तम अभिप्राय सिद्ध होता है। भगवती शक्तिके नानारूपोंमें प्रकट होनेकी लीलामें भक्तजन भगवन्नाम-कीर्तन-जप और ध्यानके सरल उपाय पाते हैं। इससे वे साधना-पथपर अडिग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपको पहचान लेते हैं। इससे जीव-ईश्वरका अद्वैत-स्वरूप सिद्ध होता है। अत: भगवान् शिवके विश्वमय होनेकी यह लीला भक्तजनके लिये बडा वरदान है। यतिवरी भोलेबाबाजीने ठीक ही कहा है- विश्वेशका यह विश्व होता भक्तपर उपकार है।

दक्षेश्वर महादेव :- प्राचीन काल मे हरिद्वार के निकट ही कनरवल मे ब्रह्मा के मानस पुत्र और प्रजापतियों के स्वामी महाराजा दक्ष की राजधानी बनी थी। जहां शिव दक्षेश्वर रूप मे विद्यमान है। कनखल के दक्षेश्वर महादेव मन्दिर मे स्वयंभू शिव लिंग है। पौराणिक वर्णन के अनुसार शिव पत्नी सती ने ब्रह्मा की आज्ञा से महाराज दक्ष के यहां पुत्री के रूप मे जन्म लिया और देव इच्छा से ही भगवान शिव ने सती का वरण करना स्वीकार किया। भगवती सती ने आश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन उपवास कर भक्तिपूर्वक शिव की आराधना की।

बिल्वकेश्वर महादेव :- हरिद्वार मे शिवालिक पर्वत श्रृंखला के आंचल मे भगवान शिव का प्राचीन मन्दिर बिल्वकेश्वर मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है, यहां दो शिवालय है, एक मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा की गई इसी के सामने स्थित दूसरा मन्दिर है। यहां शिव भक्तों ने भव्य मन्दिर बनाने के कई बार प्रयास किये लेकिन देव शक्ति के कारण सफलता नही मिली जिसके कारण इसके उपर अभी तक टीन शेड (पतरे) पडा हुआ है।

गौरी शंकर :- हरिद्वार-नजीबाबाद मार्ग पर नील पर्वत की तलहटी मे जहां से चंडी देवी मन्दिर के लिये रोप वे (उडन खटोला) चलता है वही पर प्राचीन गौरी शंकर मन्दिर स्थित है। हरिद्वार की पूर्व दिशा मे स्थित यह प्राचीन मन्दिर पार्वती के प्रेम का प्रतीक माना जाता है। लोक मान्यता के अनुसार भगवान शंकर को यह स्थल अत्यन्त प्रिय था और वे अपने भ्रमण के दौरान अक्सर यहां आया करते थे। यह स्थल शिव भक्तों की परम आस्था का केन्द्र है। हरिद्वार पर्यटकों के लिये भी एक पूजनीय व रमणीय आराधनीय स्थल है।

पारदेश्वर शिवलिंग की महिमा अद्भुत, चमत्कारी है। पारद के सात नाम हैं। रसेन्द्र, पारद, सूत, सूतराज, सूतक, शिवतेज और रस। इस पारा से शिवलिंग बनाया जाए तो वह अपने आप में एक अद्भुत शिवलिंग बनता है। पारद यानी पारा! पारा क्या है ? पारा का पर्यायवाची शब्द है- शिव का वीर्य। पारदेश्वर शिवलिंग जिसके घर में स्थापित होता है उस घर में लक्ष्मी, अन्नपूर्णा और कुबेर भी स्थापित हो जाते हैं। उसके जीवन में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। धन, धान्य, भवन, कीर्ति, आयु, यश, पुत्र, वाहन संपूर्ण सिद्धियों के साथ लक्ष्मी उस घर में वास करती है। स्वयं भगवान शिव ने कहा है- जिसके घर में षोडश संस्कार युक्त पारद से निर्मित पारदेश्वर बन कर स्थापित होता है, उसके घर में मेरे साथ-साथ कुबेर, लक्ष्मी सौभाग्य निश्चित मिलता है।

वरिष्ठ ने अपने ग्रंथ में कहा है- चाहे व्यक्ति ने कितने ही पाप किए हों, चाहे उसके जीवन में पूर्ण जीवन कृतदोष हों, चाहे विधाना ने उसके जीवन में पूर्ण सौभाग्य लिखा ही नहीं हो। फिर भी यदि वह अपने घर में पारदेश्वर को स्थापित करता है, तो पूर्ण सौभाग्यशाली बन जाता है। एक अन्य स्थान पर महर्षि याज्ञवल्क्य ने भगवान पारदेश्वर के बारे में कहा है।

मुझे समझ में नहीं आता है कि मनुष्य के जीवन में दरिद्रता क्यों है ? वह दुखी संतप्त और पीड़ित क्यों है ? उसके जीवन में अभाव व बाधाएं क्यों हैं ? जबकि सांसारिक प्राणियों के पास आठों संस्कार युक्त पारद से निर्मित भगवान पारदेश्वर की प्राप्ति सहज सम्भव है।

स्वयं महर्षि वशिष्ठ का अनुभव- मैंने जीवन में जो भी सिद्धियां प्राप्त की हैं। अणु क्षेत्र में भी विज्ञान हस्तगत किया या मैं जो भी हूँ, जो कुछ पूर्णतया की है उसका एकमात्र श्रेय एकादश रूद्रों का पूजन व पारदेश्वर की स्थापितता व उसका नित्य पूजन है।

एक अन्य स्थान पर भगवती लक्ष्मी ने कहा है- कलियुग में जीवन की पूर्णता, श्रेष्ठता और सफलता का एकमात्र उपाय सिद्धिप्रद पारदेश्वर शिवलिंग प्राप्त करना है। रावण ने पारदेश्वर का निर्माण कर उस से अपनी नगरी को स्वर्ण बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि पारदेश्वर की साधना से सब कुछ सम्भव है।

रावण ने कहा है कि मैंने यह अनुभव किया है कि पारदेश्वर के स्थापन से पूजन और साधना के आगे सभी साधनाएं प्रयोग और उपाय तुच्छ हैं। मैने केवल पारदेश्वर स्थापन व पारद के माध्यम से स्वर्ण वर्षा, निर्माण और स्वर्ण नगरी की प्रक्रिया सम्भव की है।

संक्षेप में संसार में जितने भी शिवलिंग है, उन सबकी पूजा का फल एक पारद शिवलिंग के पूजन से हो जाता है। पारद शिवलिंग का प्राप्त होना संपूर्ण सौभाग्य का सूचक है। इसके नित्य पूजन व दर्शन से पूर्वजन्म कृत पाप नष्ट हो जाते हैं तथा व्यक्ति के जीवन में नए सौभाग्य का उदय होने लगता है।

पारद, पाराद्ध से निर्मित शिवलिंग अलौकिक, लौकिक साक्षात भगवान परम पूजनीय शंकर हैं। वह भगवान शंकर का तेज एवं स्वरूप होने से ब्रह्म स्वरूप परम पूजनीय हैं। पारदेश्वर की पूजा से समस्त फल और ऋद्धि-सिद्धि की प्राप्ति होती है जो त्रिलोक के शिवलिंग तथा समस्त ज्योतिर्लिंगों के पूजन से प्राप्त होते हैं। पारे की गोली धारण करने से विशेष अनुभूति होती है। उससे विचार योग एवं अध्यात्म में विशेष अभिरुचि जागृत होती है तथा जीवन-मरण के झंझावत से छुटकारा दिलाने में संबल का काम करती है। जिस प्रकार आत्मा को अग्नि जला नहीं सकती, शस्त्र काट नहीं सकते। उसी प्रकार पारे का रूप बदला नहीं जा सकता है।

इसका विधिवत अभिषेक करना हितकर है। सैकड़ों अश्वमेघ यज्ञों से करोडों गौ के दान से हजारों स्वर्ण मुद्राओं से दान और प्रयाग काशी आदि पवित्र स्थानों में स्नान करने से जो पुण्य होता है, वही फल केवल मनुष्य को पारद शिवलिंग का नाश करनेवाला है।

इसके दर्शन मात्र से पराजित व्याधियां शांत हो जाती हैं। पारद शिवलिंग अर्थात साक्षात शिव सांसरिक मनुष्यों के लिए एक अद्वितीय वरदान है। मंत्र सिद्ध प्राणप्रतिष्ठायुक्त रस सिद्ध पारे से निर्मित पारद शिवलिंग प्राप्त होना अतिसौभाग्य का सूचक है। इसके दर्शनमात्र से समस्त पूर्व जन्मों के पापों का नाश होता है तथा सौभाग्य का उदय होने लगता है।

जिस घर में व्यापारिक शिवलिंग रहता है उसमें उत्तरोतर ऋद्धि-सिद्धि व स्थायी लक्ष्मी का वास होता है। जीवन में कष्ट और समस्याओं का क्रमश: निरंतर नाश होता है। आर्थिक, व्यापारिक और भौतिक दृष्टि से पूर्ण सुख प्राप्त होता है। जिस घर में पारद शिवलिंग की स्थापना विधिवत की जाती है वहां संसार के सभी सुख उपलब्ध रहते हैं।

रावण रससिद्धि योगी या उसने शिवलिंग की पूजा करके शिवजी को पूर्ण प्रसन्न किया और अपनी नगरी को स्वणर्मयी बना दिया था। यह लेख रुद्र संहिता में मिलता है। पारद शिवलिंग दुर्लभ है और विरले लोगों के घर में ही इस प्रकार के शिवलिंग मिलते हैं।

जिन व्यक्तियों के घर पर पारद शिवलिंग विद्यमान हैं वहां आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। साधकों को अपनी साधना में पूर्ण सफलता प्राप्त होती है, जो आश्चर्यचकित करती है। पारद शिवलिंग के पूजन से जीवन में मोक्ष प्राप्ति भी निश्चित रूप से सुलभ होती है।

इसी प्रकार योग शिखोनिषद, वायतीय संहिता आदि ग्रंथों में भी पारद शिवलिंग की पूजा का महत्व बताया गया है। पारद शिवलिंग जिस घर में भी होता है वह स्वयं तीर्थ स्थान से कम पवित्र नहीं होता, क्योंकि वहां स्वयं साक्षात शिवजी पारदेश्वर शिव के रूप में विराजते हैं। ऐसे घरों में सभी सुखों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है तथा जीवन में किसी भी प्रकार की कोई कमी नहीं रहती। इससे जीवन की सभी बाधाएं दूर होती हैं तथा मृत्युपरांत मोक्ष की प्राप्ति होती है।

जगत में सृष्टि और प्रलय का क्रम अनवरत ही घटित होता रहता है। प्रत्येक वस्तु एवं पदार्थ अपना रूप बदलते ही रहते हैं। जगत प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं। पदार्थ के नवीन रूप धारण करने को सृष्टि तथा उसके विनाश को प्रलय कह सकते हैं। इसी प्रकार जगत का सामूहिक प्रलय प्रत्येक रात्रि में तथा सृष्टि सूर्योदय के साथ घटित होती है। निद्रा सृष्टि का प्रलय है एवं जागृत अवस्था जगत की सृष्टि हैं। साधना के द्वारा सृष्टि को अपनी सृष्टि से विलीन करने का प्रयत्न किया जाता है। चित्त जो कि ज्ञान-तंत्र है, उसकी कार्यशीलता के साथ जगत का ज्ञान चित्त में प्रतिबिंबित हो जाता है, जो कि जगत की सृष्टि का द्योतक है। इसी प्रकार चित्त की निरुद्ध अवस्था प्राप्त होने पर चित्त रूपी ज्ञानयंत्र की कार्यशीलता समाप्त हो जाती है, जिससे चित्त पर जगत का ज्ञान भी प्रतिबिंबित होना बंद हो जाता है। अर्थात साधक का उद्देश्य जगत को रात्रि अवस्था में प्रतिष्ठित कर जगत को विलीन करता है। यही मायातीत अवस्था है। जागृत अवस्था में जीव की वृत्तियां मन एवं बुद्धि, इंद्रियां आदि अंतर्मुखी होकर विलीन हो जाती हैं एवं जीव की अवस्था आत्मा के समीप स्थित हो जाती है। अत: महाशिवरात्रि का पूजन रात्रि में ही चित्त में किया जाता है, जो कि जगत के विलीनीकरण का द्योतक है। शिवपूजन बिल्व पत्र से किया जाता है। अथवा शिव को अर्पण किया जाता है। इस पूजा पद्धति को कर्मकांड की दृष्टि से एक धार्मिक प्रथा मात्र के रूप में लिया जाता है, किंतु आध्यात्मिक दृष्टि से बिल्व पत्र के ३ पत्ते, तीनों गुणों के द्योतक हैं, जिसे शिव को अर्पित कर त्रिगुणात्मक जगत को शिव अथवा आत्म तत्व में विलीन कर बाह्य पूजा से आंतरिक आध्यात्मिक पूजन में ध्यान के द्वारा तीनों गुणों को प्रति प्रसव क्रम से अपने अहं भाव सहित जीवात्मा को आत्मा में विलीन किया जाता हैं। यही कैवल्य अवस्था है। उपरोक्त तथ्यों पर यदि गंभीर व गहन विचार किया जाता तो यह बात स्पष्ट हो जाती है व शिवरात्रि अनुष्ठान अथवा पूजन का वास्तविक एवं विशेष लक्ष्य जगत के विषयों एवं भोगों के प्रति उपराम अथवा अनासक्त होकर आत्मा अथवा परमात्मा में युक्त होना है। विषयों से उपरामता को ही इंद्रिय निग्रह, मनोनिग्रह अथवा शम या दम कहा जाता है तथा भगवान के प्रति युक्त होने को योग, आत्मस्थिति समाधिया केवल्य कहा जाता है। शक्तिपात परंपरा में दीक्षित हम सब साधक अत्यंत भाग्यशाली हैं कि हमें एक ऐसी साधन पद्धति उपलब्ध है, जो सहज स्वाभाविक साधक को उपरोक्त स्थिति में ला खड़ा करती है, किंतु उसके लिए आवश्यक एवं अनिवार्य शर्त यह है कि वह गंभीरता, निष्ठा एवं समर्पण भाव युक्त नित्य प्रति निरंतर साधना में संलग्न रहे तथा शुभ कर्मानुष्ठान करता रहे।

महाशिवरात्रि केवल शिवभक्तों के लिए ही नहीं, अपितु सभी इष्ट उपासकों के लिए इसका महत्व है तथा उत्तर से दक्षिण तक संपूर्ण भारत में सर्वत्र श्रद्धा, प्रेम एवं उत्साह से मनाई जाती है, जिसके अंतर्गत शिव पूजन, रात्रि जागरण, उपवास आदि के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कीर्तन, प्रवचन आदि कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इन सबमें उपवास का विशेष महत्व है। इस प्रसंग में शिव क्या है?

अमावस्या क्या है ? उपवास क्या है ? शिवरात्रि का अनुष्ठान रात्रि में क्यों होता है ? आदि प्रश्न उपस्थित होते हैं।

वेदों में शिव को रुद्र कहा गया है। शिव ब्रह्म का पर्यायवाची है, जो शक्ति माया से पूर्णत: अतीत अपने शुद्ध स्वरूप में अवस्थित होती है एवं जगत की आधारभूत है, जिसको कहकर उसका उल्लेख किया गया है। वास्तव में शिव तांत्रिक शब्द है। इसकी व्याख्या पौराणिक ढंग से शंकर कहकर की गई है। भाव यह है कि वेदों का ब्रह्म अथवा रुद्र तंत्रों में आकर शिव नाम ग्रहण करता है तथा पुराणों में शंकर हो जाता है। परब्रह्म परमेश्वर आत्मरूप में सभी जीवों में अवस्थित होता है, जिसके स्वाभाविक गुण अथवा कार्य नित्य: शुद्ध, बुद्ध, मुक्त तथा सत् चित् और आनंद है। समस्त साधक वर्ग आत्मस्थिति में होने के लिए ही कई प्रकार की साधनाएं, उपासनाएं, ध्यान, प्राणायाम, भक्ति, भाव अथवा निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करता है। इस प्रकार शिव ही ब्रह्मवादियों का ब्रह्म है। सांख्य मतानुसार पुरुष तथा योगियों का सहस्रार में स्थित प्रणव की अर्धमात्रा के रूप में प्रसिद्ध है। शिव ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणपति, भगवती, इंद्र आदि सभी देवों का कारण रूप है। चित्त से माया अथवा अविद्या का आवरण उतार कर उसी में स्थित होना अंतिम लक्ष्य है। जहां तक अमावस्या क्या है ? तो अमावस्या का अर्थ एक साथ वास करता है। अर्थात जिस तिथि को सूर्य और चंद्र एक साथ वास करते हैं, उसे अमावस्या कहते हैं। अमावस्या का उपरोक्त अर्थ ज्योतिष सम्मत है। अध्यात्म दृष्टि से इड़ा और पिंगला अर्थात सूर्य नाड़ी चंद्र नाड़ी में प्रवाहित होने वाली प्राणवायु का निरुद्ध होकर एक साथ एक स्थान पर वास करना अमावस्या कहलाता है। एक अन्य प्रकार से सूर्य, परमात्मा या आत्मा का एवं चंद्र, जीवात्मा का द्योतक है, जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशित है, किंतु चंद्र सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। इसी प्रकार आत्मा स्वयं प्रकाशित होता है।

उपवास क्या है?- सामान्यतया अन्न, फलादि उपाहार माने जाते हैं, किंतु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए या विचार किया जाए तो किसी वस्तु को ग्रहण करना स्थूलतम आहार की कोटि में आता है। मन का चित्त में संस्कारों को ग्रहण करना, अर्थात संचित करना सूक्ष्म आहार है तथा इससे स्थूल इंद्रियों का जगत के विषयों का आहार ग्रहण करना है। उपवास करने का अर्थ, किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करना है। अनासक्त कर्मयोग के अभ्यास से संस्कार संचय के क्रम को रोकना, इंद्रिय निग्रह द्वारा जगत के विषयों से संबंध विच्छेद करना तथा अन्न फलादि स्थूल आहार ग्रहण नहीं करना उपवास का पूर्ण रूप है। पहला उपवास का अर्थ समीप बैठना है। जब जीव का मन जागतिक विषयों से हटकर भगवान का सामीप्य ग्रहण करता है तब अपने आप चित्त में ईश्वर के प्रति अनुराग एवं विषयों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। इसे उपवास कहा जाता है। इसी दृष्टि से महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर उपवास कहा जाता है। इसी दृष्टि से महाशिवरात्रि के पावन पर्व पर उपवास का अत्यधिक महत्व है। आजकल उपवास मात्र मनोरंजन का विषय रह गया है। प्राय: लोग सामान्य भोजन नहीं ग्रहण कर फल, साग-सब्जियों के अतिरिक्त भांति-भांति के पकवान बनाकर ग्रहण करते हैं तथा उसे उपवास का नाम देते हैं। वास्तविक उपवास चित्त में आसक्ति का त्याग कर तथा वैराग्य वृत्ति धारण कर भगवान की सेवा समझकर करना, जिससे चित्त में संस्कार संचय रुक जाता है। दूसरा-इंद्रिय संयम द्वारा इंद्रियों को अपने वश में कर इंद्रियों से मनोनुकूल विवेकयुक्त कार्य लेने की क्षमता प्राप्त करना तथा उन्हें जगत के विषयों और भोगों से दूर रखकर जीवन को पवित्र करना और तीसरा स्थूल आहार केवल अपने स्वाद के लिए ग्रहण नहीं कर, जीवन रक्षा के लिए ग्रहण करना, जिससे चित्त चंचलता से बचा रहे। इसके साथ भजन, भाव एवं साधना का अभ्यास करना, जिससे चित्त में ईश्वर के प्रति अनुराग पैदा हो, उपवास कहलाता है। उपवास का पर्यायवाची वृत्ति भी कहलाता है या प्रयुक्त किया जाता है, जिसका अर्थ यह है कि त्याज्य को छोड़कर गृहणीय अथवा वरैण्य को प्राप्त करने का संकल्प एवं प्रयत्न है तथा जगत के विषय और भोग्य त्याज्य है। नित्य, शुद्ध, बुद्ध एवं आनंदप्रद आत्मतत्व गृहणीय हैं। उसे प्राप्त करने का संकल्प तथा प्रयत्न व्रत की कोटि में आता हैं।

हिन्दुओं के लिए कैलाश शिव का सिंहासन है और बौद्धों के लिए एक प्राकृतिक मंडल, लेकिन दोनों इसे तांत्रिक शक्तियों का भंडार मानते हैं। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से यह चीन में स्थित है तो भी यह हिन्दुओं, बौद्धों, जैनियों तथा तिब्बती लामाओं के लिए अत्यंत प्राचीन तीर्थस्थल रहा है।

हिन्दुओं का विश्वास है कि इसके चारों ओर ३२ मील की परिक्रमा करने से जीवन के सभी पाप मिट जाते हैं। कैलाश को गणपर्वत और रजतगिरि भी कहते हैं। इस प्रदेश को मानसखंड भी कहा जाता है। प्राचीन साहित्य में उल्लिखित मेरू भी यही है। पौराणिक

अनुश्रुतियों के अनुसार शिव और ब्रह्मा, देवगण मरीच आदि ऋषि एवं रावण, भस्मासुर आदि ने यहां तप किया था। युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ में इस प्रदेश के राजा ने उत्तम घोडे, सोना, रत्न और याक के पूंछ के बने काले और सफेद चामर भेंट किए थे। इस प्रदेश की यात्रा व्यास, भीम, कृष्णा, दत्तात्रेय आदि ने की थी। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ऋषियों-मुनियों के यहां निवास करने का उल्लेख प्राप्त होता है। कुछ लोगों का कहना है कि आदि शंकराचार्य ने इसी के आसपास कहीं अपना शरीर त्याग किया था यह विश्वास किया जाता है कि यह सिंधु, सतलज, ब्रह्मपुत्र तथा करनाली, चार नदियों का उद्गम क्षेत्र था। हिन्दुओं का विश्वास है कि गंगा स्वर्गलोक से यहीं पर उतरती है और चार नदियों में विभाजित हो जाती है, जो धरती के एक बड़े भूभाग का जीवन आधार है।

जैन धर्म में भी इस स्थान का महत्व है। वे कैलाश को अष्टापद कहते हैं। कहा जाता है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव ने यहीं निर्वाण प्राप्त किया था। बौद्ध साहित्य में मानसरोवर का उल्लेख अनवतप्त के रूप में हुआ है। बौद्ध अनुश्रुति है कि कैलाश पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है। कैलाश पर्वतमाला कश्मीर से लेकर भूटान तक फैली हुई है। ल्हाचू और झोंगचू के बीच कैलाश पर्वत है, जिसके ऊपरी, शिखर का नाम कैलाश है। इस शिखर की आकृति विराट शिवलिंग की तरह है। पर्वतों से बने षोडशदल कमल के मध्य यह स्थित है। यह सदैव बर्फ से आच्छादित रहता है। तिब्बती (भोटिया) लोग कैलाश मानसरोवर की तीन अथवा तेरह परिक्रमा का महत्व मानते हैं और अनेक यात्री दंड प्राणिपात करके परिक्रमा पूरी करते हैं। उनकी धारणा है कि एक परिक्रमा करने से एक जन्म का और दस परिक्रमा करने से एक कल्प का पाप नष्ट हो जाता है, जो १०८ परिक्रमा पूरी करते हैं, उन्हें जन्म-मरण से मुक्ति मिल जाती है।

कैलाश मानसरोवर जाने के अनेक मार्ग हैं, लेकिन अल्मोड़ा से अस्कोट, नार्विंग, लिपूलेह, खिंड तकलाकोट होकर जाने वाला मार्ग अपेक्षाकृत सुगम है। यह भाग ६९० मील लंबा है। इसमें अनेक उतार-चढ़ाव है। तकलाकोट तिब्बत स्थित पहला गांव है, जहां प्रतिवर्ष ज्येष्ठ से कार्तिक तक बड़ा बाजार लगता है। तकलाकोट से तारचैन आने के मार्ग में मानसरोवर पड़ता है। कैलाश की परिक्रमा तारचैन से आरंभ होकर वहीं समाप्त होती है।

तरकोटा से २५ मील पर मंधाता पर्वत स्थित गुलैला का दर्रा १६,२०० फुट की ऊंचाई पर है। इसके मध्य में पहले बाईं ओर मानसरोवर और दाईं ओर राक्षस ताल है। उत्तर की ओर दूर ही से कैलाश पर्वत के हिमाच्छादित धवल शिखर का रमणीय दृश्य दिखाई देता है।

दर्रा समाप्त होने पर तीर्थपुरी नामक स्थान है, जहां गर्म पानी के झरने हैं। इन झरनों के आसपास चूनखड़ी के टीले हैं। कहा जाता है कि यहां भस्मासुर ने तप किया और यहीं वह भस्म भी हुआ था। इसके निकट ही गौरीकुंड है। मार्ग में स्थान-स्थान पर तिब्बती लामाओं के मठ हैं। इस प्रदेश में एक सुवासित वनस्पति होती है, जिसे कैलाश धूप कहते हैं। लोग इसे प्रसाद स्वरूप लाते हैं।

शिव का अर्थ है- कल्याणकारी, मंगलकारी अथवा शुभकारी। कई लोगों का कहना है कि शि का अर्थ पापनाशक और व का अर्थ मुक्तिदाता है। इसलिए शिव परमपिता परमात्मा ही का कर्तव्य वाचक नाम है क्योकि परमात्मा ही कल्याणकारी, मुक्तिदाता और सद्गतिदाता है। शिव के जो अन्य नाम मुक्तेश्वर, पापकटेश्वर, विश्वेश्वर, त्रिभुवनेश्वर, अमरनाथ, सोमनाथ पशुपति इत्यादि है, उनसे भी सत्यता सिद्ध है कि शिव शब्द परमपिता परमात्मा का वाचक है। शिव का नाम पशुपति इसलिए है, क्योकि कर्म रूपी पाशो मे बंधी आत्मा को पशु कहा जाता है, और शिव आत्माओं को उन बंधनों से छुड़ाने वाले त्रितापहारी और भवभयहारी है।

शिव को विश्व का माता-पिता और सृष्टि का कालातीत एवं आदि गुरू माना गया है। जिसने कि आगमन-निगम के भेद खोले और जिसने ज्ञान-गंगा से भारत के नर-नारियों को पावन किया और मनुष्यात्माओं को ज्ञान रूपी सोम अर्थात अमृत पिलाया।

शिव की प्रतिमा शिवलिंग- शिव की पूजा भारत मे चिरातीत से शिवलिंग के रूप मे की जाती है, और एक समय ऐसा भी था जबकि सारे विश्व मे परमात्मा की इसी रूप मे पूजा की जाती थी।

रात्रि और महारात्रि- सभी जानते है कि रात्रि के अंधकार मे मनुष्य को चीजों का ठीक-ठाक पता नही चलता और रात्रि को सामाजिक तथा नैतिक अपराध भी बहुत होते है। अत: साधारण तौर पर रात्रि शब्द अज्ञान अंधकार, पाप और तमोगुण का वाचक है। कृष्ण पक्ष की रात्रि मे तो और भी अधिक अंधकार होता है। फिर चौदहवी की रात को तो घोर अंधकार होता है। अत: कृष्ण पक्ष की चौदहवी रात घोर अज्ञानता, पापाचार और दुराचार का प्रतीक है।

फाल्गुन मास देशीय गणना के अनुसार वर्ष का १२ वां अर्थात अंतिम मास है। अत: फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की चौदहवी रात्रि

तो महारात्रि है। वह कल्प के अंत मे होनेवाली घोर अज्ञानता और अपवित्रता का द्योतक है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से द्वापर युग और कलियुग को रात्रि अथवा कृष्णपक्ष तो कहा ही गया है। इसमे कलियुग का पूर्णान्त होने से कुछ वर्ष पहले का जो समय है सह उपरांत कृष्ण पक्ष की चौदहवी रात्रि के समान है। अत: शिवरात्रि फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की अंतिम रात्रि से एक दिन पहले मनाई जाती है। क्योकि परमपिता परमात्मा शिव का अवतरण इस लोक मे कलियुग के पूर्णान्त से कुछ वर्ष पहले हुआ था जबकि सारी सृष्टि अज्ञान अंधकार मे थी। इसलिए शिव का संबंध रात्रि से जोड़ा जाता है।

शिव कर्तव्य कैसे करते हैं- प्रश्न उठता है कि शिव तो अशरीरी है और ज्योति बिंदु रूप है, वे इस मनुष्य लोक मे कल्याण करने का कर्तव्य कैसे करते है ? वे इस लोक मे दिव्य जन्म कैसे लेते है ? इस विषय मे जानने योग्य बात यह है कि शिव तो अजन्मा और मृत्युंजय माने गए है, वे तो देवों के भी देव अथवा सर्वेश्वर है, अत: उनका जन्म किसी देवता अथवा मनुष्य के पुत्र के रूप मे नही होता। शिव तो कर्मातीत और सदा मुक्त है इसलिए वे नस-नाड़ी के बंधन मे नही आते। वे तो महाकालेश्वर है, इसलिए वे बाल, युवा, वृद्ध अथवा जन्म-मरण-रूप-काल के वश मे भी नही होते।

हां, संसार भरी के नर-नारियों को मुक्त करने के लिए भक्तों को अपना परिचय देने के लिए लोगों को पापों तथा दु:खों से छुटकारा दिलाने के लिए, अर्थात सतयुगी पावन तथा सुखमय सृष्टि रचने के लिए वे कलियुग के अंत मे एक साधारण मनुष्य के तन मे प्रवेश अथवा सन्निवेश करते है जिसका नाम से प्रजापिता ब्रह्मा रखते है। उनके मुख से ईश्वरीय ज्ञान ओर सहज राजयोग की शिक्षा देकर वे मनुष्य को देवता बनाते है। इस प्रकार ही वे भारतवासियों का चारित्रिक नव-निर्माण कक्षरवके सतयुगी देवी सृष्टि की पुन: स्थापना करते है।

देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का पूजन भी इसलिये होता है, क्योंकि उन्होंने कभी तो सृष्टि पर अवतरित होकर श्रेष्ठ कार्य किये ही होंगे, जो हम उन्हें याद करते हैं, सम्मान देते हैं, उनकी प्रतिमाओं को पूजते हैं। संत-महात्माओं की तुलना में देवात्माओं के कार्य श्रेष्ठ थे, इसलिये उनके मंदिर ज्यादा हैं, उनकी पूजा-अर्चना ज्यादा होती है। देवताओं को भी अभय दान देने वाले, दैवीय गुणों से संपन्न करने वाले, स्वर्ग का मालिक बनाने वाले भोलेनाथ शिव बाबा की महिमा भी कुछ निराली ही है। भगवान शिव के लिये तो गायन भी है।

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्। सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि।।

महाशिवरात्रि का पर्व निराकार परमपिता परमात्मा शिव के दिव्य आलौकिक जन्म का स्मरण दिवस है। इस संसार मे जिस किसी का भी जन्मोत्सव मनाते हैं, उसे जन्म दिवस कहते है। यदि रात्रि के बारह बजे भी कोई जन्म होता है तो भी उसके जन्मोत्सवको जन्मरात्री के रूप मे नही जन्मदिवस के रूप मे ही मनाते है। तो प्रश्न उठता है कि शिव के जन्म दिवस को शिवरात्रि क्यो कहते है ? रात्रि शब्द इस अंधकार का वाचन नही जो पृथ्वी के सूर्य के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने से चौबीस घंटे मे एक बार आता है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यदि इसका विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट है कि फाल्गुन मास की प्राय: अंतिम अंधेरी रात होने के कारण वस्तुत: कल्प के अन्त के समय व्याप्त घोर अज्ञान अंधकार और तमोप्रधानता का प्रतीक है। जब सृष्टि पर अज्ञान व अंधकार छाया होता है, काम-क्रोध आदि विकारों के वशीभूत होकर मानव दु:खी और अशांत हो जाते है, धर्म अधर्म का रूप ले लेता है, भ्रष्टाचार का बोलबाला होता है तब ज्ञान सूर्य परमात्मा शिव अंधेरे के विनाश के लिए प्रकट होते है और ज्ञान रूपी उषा की लालिमा अज्ञान रूपी कालिमा पर छाकर रात को दिन मे परिवर्तित कर देती है। अपवित्र दुनिया को निर्विकारी पावन दुनिया बनाना, कलियुग दु:खधाम के बदले सतयुग सुखधाम की स्थापना करना केवल सर्वसमर्थ परमपिता परमात्मा शिव का ही कार्य है। अब कल्प के वर्तमान संगमयुग मे अवरित होकर फिर से वही कर्तव्य पालन परमपिता परमात्मा शिव कर रहे है।

चूंकि वह हैं अजन्मा अर्थात अन्य आत्माओं के सदृश्य माता के गर्भ से जन्म नही लेते और उन्हे पुन: दैवी राज्य की स्थापना का कर्तव्य भी करना है, वे इस कर्तव्य की पूर्ति हेतु परकाया प्रवेश करते है अर्थात स्वयं भू परमात्मा शिव प्रकृति को वश मे करके साधारण तन मे प्रविष्ट होते है और फिर उस तन का नाम रखते है प्रजापिता ब्रह्मा। प्रजापिता ब्रह्मा के साकार माध्यम द्वारा वे ज्ञान यज्ञ रचते है जिसमे सारी आसुरी सृष्टि की आहुति पड़ जाती है। शिवलिंग के अतिरिक्त तपस्वीमूर्त, गले मे सर्प धारण किए एक देव प्रतिमा भी देखने को मिलती है, जिन्हे शंकर नाम से जाना जाता है। यह जानना नितांत आवश्यक होगा कि शिव और शंकर मे कर्तव्यों के आधार पर महान अंतर है।

परमपिता परमात्मा जिन्हे निराकार व ज्योति बिंदु कहा जाता है, का प्रतीक शिवलिंग है जबकि शंकर प्रकाशमय आकारी देवता है। शिव योगेश्वर है- शंकर योगेश्वर योगीमूर्ति हैं। शिव रचयिता हैं- शंकर रचना हैं। शिव पिता हैं- शंकर उनके पुत्र हैं। हम शिवरात्रि मनाते है न कि शंकर रात्रि। क्यो चढ़ाते है दूध, बेल और फूल चूंकि परमपिता परमात्मा शिव बिंदु रूप हैं इसलिए भक्तजन विशाल शिवलिंग बनाते हैं, उस पर पानी मिश्रित दूध लस्सी, बेल-पळो फूल आक चढ़ाते है। शरीर की स्वच्छता के लिए दिन मे कई बार स्नान करते है, और साथ ही प्राय: जागरण करते तथा व्रत भी रखते है। यह कैसी स्थिति है कि समयांतर से धारण योग्य बातों ने कर्म कांड का रूप धारण कर लिया है। लस्सी चढ़ाने की क्रिया वह भी धीरे-धीरे आत्मा का ध्यान परमात्मा की ओर-आकर्षित तथा एकाग्र करने के समान है। बेल चढ़ाना आत्मा अथवा शालिग्राम का प्रतीक है जिसका अर्थ है कि हम आत्मा व परमात्मा पर बलि चढ़ें अर्थात उन्ही द्वारा बताए गए मार्ग का अनुकरण करे। आक के फल एवं धूतरा चढ़ाने का रहस्य वह है कि अपने विकारों को उन्हे देकर निर्विकारी बनकर पवित्रता के व्रत का पालन करे। शारीरिक स्वच्छता के साथ-साथ आत्मिक स्वच्छता धारण करे। भांग आदि नशीली वस्तुओं का उपयोग तो इस पुनीत पर्व को कलुषित करता है। वास्तव मे वह हमे बताता है कि त्रिमूर्ति शिव से दुनिया मे हमे जो नारायण समान प्राप्त होता है, उसी के नारायणी नशे मे रहें ताकि सच्ची-सच्ची मन की शांति तथा अतींद्रिय सुख का अनुभव हो सके।

मैं न मन हूं, न बुद्धि, न अहंकार, न चित्त, कान, नाक, जीभ और आंख भी नहीं, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी भी मैं नहीं हूं। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं। मैं शिव हूं। मैं प्राण नहीं हूं, पंच वायु, सप्ततत्त्व, पंचकोश, हाथ, पांव, जिह्वा या अन्य कर्मेन्द्रिय भी नहीं हूं। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं। मुझे न लोभ है न मोह, न द्वेष है न राग, न मद है न मत्सर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की भी मुझे कामना नहीं है। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं। मैं सुख-दु:ख, पाप-पुण्य कुछ भी नहीं जानता। मन्त्र, तीर्थ, वेद, यज्ञ भी मैं नहीं जानता। मैं न भोक्ता हूं, न भोग्य और न भोग। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं। मुझे मृत्यु नहीं, किसी प्रकार का भय नहीं, मुझमें जातिभेद नहीं है, न मेरे पिता है न माता, मैं अजन्मा हूं, न मेरे मित्र हैं न सुहृद, न शिष्य हैं न गुरु। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं। मैं शिव हूं। मैं निराकार हूं, निर्विकल्प हूं, मैं सर्वव्यापी हूं, सर्वत्र हूं फिर भी इन्द्रियातीत हूं। मैं न मोक्ष हूं न ज्ञेय। मैं चिदानन्दस्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं। कौन है आपका ? परिवार, घर, मित्र या शरीर। इनमे से कौन आपके साथ हमेशा रहता है ? सच है कोई भी नश्वर पदार्थ किसी के भी साथ हमेशा रह नही सकता। उसको पहचानो, उससे रिश्ता जोडो जो शाश्वत है, नित्य प्रतिदिन है। वह शक्ति जो इस संसार की कारण है, जिसकी कृपा मात्र से सर्वत्र शुभ होने लगता है, उस दयावान, सर्वव्यापी शिव को जानो, जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष नही रह जाता।

जिनका नाम शिव है, वे अशिव कार्य कैसे कर सकते हैं ? जो मंगलभवन हैं उनके द्वारा अमंगल की कल्पना की ही कैसे जा सकती है। जो आनन्द स्वरूप हैं उनकी क्रीड़ा निरानन्द हो ही नहीं सकती। इसलिये सुख-दुख और लाभ-हानि में सन्तुष्ट रहना ही सच्चे वीरों का काम है।

जो शिव की सेवा करना चाहता है, उसे पहले उनकी सन्तानों की- इस संसार के सारे जीवों की सेवा करनी चाहिए। शास्त्रों में कहा है कि जो भगवान् के सेवकों की सेवा करते हैं, वे भगवान के बड़े सेवक हैं। नि:स्वार्थता ही धर्म की कसौटी है। जिसमें इस नि:स्वार्थता की मात्रा अधिक है, वह अधिक आध्यात्मिकता सम्पन्न है और शिव के अधिक निकट है और यदि कोई स्वार्थी है, तो फिर चाहे उसने सारे मन्दिरों के ही दर्शन क्यों न किए हों, सारे तीर्थों में ही क्यों न घूमा हो, अपने को चीते के समान क्यों न रंग डाला हो, परन्तु फिर भी वह शिव से बहुत दूर है। सारी उपासना का सार है- पवित्र होना और दूसरों की भलाई करना। जो शिव को दीन-हीन में, दुर्बल में और रोगी में देखता है, वही वास्तव में शिव की उपासना करता है और जो शिव को केवल मूर्ति में देखता है, उसकी उपासना तो केवल प्रारम्भिक है।

भगवान शिव को औघडदानी कहते है। क्योंकि भगवान शिव बहुत ही सरल है और थोड़ी सी भक्ति में प्रसन्न हो जाते हैं। सिर्फ जल अभिषेक करने मात्र से शिव को प्रसन्न किया जा सकता है। इस बारे में एक दन्तकथा प्रचलित है। एक बार शिवजी कैलास पर समाधिस्थ होने जा रहे थे, उस समय उन्होंने अपनी पूरी सम्पत्ति उसी दिन पूरे विश्व के समस्त प्राणियों में बाँट दी। किसी को कुछ मिल गया, किसी को कुछ मिल गया और समाधिस्थ होकर भूमि पर एक गद्दी बिछाकर उस पर मृगछाला रखकर समाधिस्थ होने जा रहे थे। उस दिन एक बनिया प्रात: बड़ी देर से उठा और उसे जब मालूम हुआ कि शिवजी ने आज विश्व के समस्त प्राणियों को अपनी

सम्पत्ति बाँटी है तो बनिया भी जल्दी-जल्दी दौड़कर शिवजी के पास कैलास पहुँचा और विनंती करी कि उसे भी कुछ दे। शिवजी ने कहा अब तो बहुत देर हो चुकी और मेरे पास जो कुछ था वो मैंने सब बाँट दिया अब मेरे पास कुछ भी नहीं बचा। बनिया भी बड़ा जिद्दी और हठीला था और वही बैठ गया तथा शिवजी से बोला मैं भी यहा से बिना कुछ लिये नही जाऊँगा। शिवजी बनियो के इस हठीले और जिद्द से बड़े प्रसन्न हुये और बोले मेरे पास अब तो कुछ बचा नहीं है सिर्फ एक यह गद्दी और मृगछाला है। यह मृगछाला तो मुझे इस पर बैठकर समाधि लेने के लिये लगेगी लेकिन यह गद्दी तू ले जा। मै तुझे वरदान देता हूँ, यह गद्दी व्यापार की गद्दी कहलायेगी। यह अपनी गद्दी कभी किसी को मत देना। इस पर सिर्फ तू ही बैठकर व्यापार करेगा। इस गद्दी पर और किसी को बैठने मत देना। तब से यह व्यापार की गद्दी शिव गद्दी के नाम से जानी जाती है। बनिया बड़ी खुशी-खुशी, प्रसन्नता से यह गद्दी लेकर घर लौटा। तब से सभी बनिये अपनी दुकानों में, व्यापार, उद्योग प्रतिष्ठानों में यह शिव गद्दी स्थापित रखते है और स्वयम् उस पर बैठकर व्यापार करते है। यही उस शिव गद्दी की महिमा है।

एक बार पृथ्वीने आततायी शक्तियों से भू-भार पीड़ित होकर गौ-रूप धारण कर भगवान शिव की आराधना की और अपने दूध से शिवलिंग का अभिषेक किया। इस पर प्रसन्न होकर शिव ने आशीर्वाद दिया- आततायी शक्तियों से भू-भार हरण करने इस पृथ्वी लोक में विभिन्न हरि रूपों में अवतार धारण करेंगे और अति पापों का शमन करने हेतु हर समय पृथ्वी की रक्षा करेंगे।

आशुतोष एवं औढरदानी होने के कारण वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तोंको सर्वस्व- यहाँ तक कि स्वयंको भी प्रदान कर देते हैं। केवल देवता ही नहीं, अपितु ऋषि-मुनि, ज्ञानी-ध्यानी, योगी-सिद्ध-महात्मा, विद्याधर, असुर, नाग, किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिवके लीला-चरित्रोंका ध्यान, संस्तवन, स्मरण, चिन्तन करके आनन्दित होते रहते हैं और उनकी कृपा-लीलाकी अनुभूति करते हुए सदाके लिये उन्हींके हो जाते हैं।

धन धन भोलेनाथ बाट दियो तीन लोक, एक पलभर में ऐसे दिन दयाल मेरे दाता, भर खजाना पल भर में.....
प्रथम वेद ब्रह्मा को दे दिया बने वेद के अधिकारी, विष्णु को दे दिया चक्र सुदर्शन लक्ष्मी सी सुंदर नारी
इंद्र को दे दिया कामधेनु ऐरावत सा बलकारी, कुबेर को कर दिया आपने सारी धन संपत्ति का अधिकारी
अपने पास पात्र नही रखा, रखा खप्पर घर भर में, ऐसे दिन दयाल मेरे दाता.....
अमृत तो देवताओं को दे दिया आप हलाहल पान किया, ब्रह्मज्ञान दे दिया उसीको, जिसने आपका ध्यान किया
भागीरथ को गंगा दे दी सब जग ने स्नान किया, बडे-बडे पापियों को तुमने पलभर में तार दिया
अपने तन पर वस्त्र ना रखा खप्पर घर भर में, ऐसे दिन दयाल मेरे दाता.....
रावन को तो लंका देदी बीस भुजा दस शीश, दिये रामचंद्र को धनुष बाण हनुमंत को जगदीश दिये
मनमोहन को मोहिनी दे दी मोर मुकुट जगदीश दिया, मुक्ति के हेतु काशी के वाशी भक्ति को विश्वास दिया
आप नशे में मस्त रहो शिव संग पिओ नीत खप्पर में ऐसे दिन दयाल मेरे दाता.....
नारद को तो वीणा दे दी हरी भजन को राग दिया, ब्राह्मणों को कर्म कांड और संन्यासी को त्याग दिया
जिसने गाया उसीने पाया महादेव तुम्हारे वर में ऐसे दिन दयाल मेरे दाता, भर खजाना पल भर में.....

सांसारिकता से बच निकले वही संत होता है। जो चमन में बहार लादे, वही बसन्त होता है।
खोखले आडम्बरों को यह जग पहचान जाता है। कथनी व करनी एक न हो तो, वह मायावी माना जाता है।
देखा है तुम्हें कही लेकिन याद आता नही करता रहा जिसका इन्तजार कहो कि तुम कही वही तो नही।

* * *

सौन्दर्य

रूप का ऐसा जादू जिन पर नहीं चलता, वे अभागे हैं।

सौन्दर्य का वही अंश सर्वोत्कृष्ट है जिसे चित्र अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

हुस्न सदैव जवान ही अच्छा लगता है। जीवन के तीन रंग बचपन, जवानी और बुढ़ापा लोग इसे सुबह, दोपहर और सांझ कहते है। सुबह और सांझ बडी मनोहारी होती है। सुबह का सौन्दर्य अद्‌भुत होता है और सांझ का आनन्द अपने ढंग का अनोखा होता है। जवानी दोपहर है तडफती है और तपती है, इसका रंग तो अलग ही है। आशिक को दिखाती है अजब रंग जवानी।

जो इस जगत में सौन्दर्य प्रिय नहीं है वह मनुष्य ही नहीं है। मनुष्य सदा से सौन्दर्य का पुजारी रहा है। सुन्दरता किसी रमणी की भी हो सकती हे, किसी खिले हुये फूल की, चटकी हुई कली की, कल-कल बहते हुये झरने की, उफनती नदी की, खडे हुये वृक्ष या पहाड, घुमडते हुये बादल, निरभ्र आकाश, हिलोरे लेता हुआ सागर, मुस्कराती हुई मजदूरनी, पसीना बहाता हुआ मजदूर, खिलखिलाते हुये बच्चे, सुनहरी शाम, रात में दिखाई देते टिमटिमाते तारे, नदी में मन्थर गति से जाती हुई नौका विहार, सौन्दर्य के इस तरह कई रूप है। अगर सौन्दर्य तो विविधताओं में है। यह संसार सुन्दर है इसलिये यह विविधताओं से भरा हुआ है।

प्रकृति के इस संचार को धन्यवाद है, इस ईश्वर के हम ऋणी है जिसने हम सबको जन्म दिया, अपने अंक में रखा। समग्र अस्तित्व का धन्यवाद कर उस परमात्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करे जिसे छोड कर इस जीवन जगत में दूसरा कोई नही है। चूकि वह सुन्दर है इसलिये यह सारा संसार सुन्दर है, उसकी सर्व रचना सुन्दर है, हम सुन्दर है। हमारे भीतर का सौन्दर्य सुन्दर है। सौन्दर्य की पूजा सुन्दर है। सुन्दरता से हमारा प्रेम सुन्दर है। मां सुन्दर है, स्त्री सुन्दर है इसलिये वह कुछ सब सुन्दर है जिसमे सौन्दर्य विद्यमान है। किसी भी वस्तु-प्राणी या प्रकृति को, जीवन को किसी भी कोण से देखे, सिर्फ निरीक्षण करे। निरीक्षण ही पर्याप्त है और आप पायेंगे कि उसमे से सौन्दर्य प्रकट हो रहा है। उसकी विशेषतायें प्रकट हो रही है। यह देखना भर ही आपके जीवन के पहलू, सोच बदल देगा। यही जीवन का असली सौन्दर्य है। सुंदरता आपकी आंखों में होती है, न कि वस्तु में। यदि आपकी आंख पवित्र है, स्वच्छ है एवं सत्य को उपलब्ध है तो सर्वत्र सुंदरता ही दिखाई पड़ेगी। इस संदर्भ में हमारी कहावत ज्यादा यथेच्छ है। और वो है कि सत्यम शिवम् सुंदरम् अर्थात जिसने अपनी आंख को पारदर्शी बनाया है उसे सर्वत्र सुंदरता दिखाई पड़ेगी। अर्थात यदि आप क्रोध से भरे हुए हों तो आपको दूसरे भी क्रोधी दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि आपने क्रोध के लाल चश्मे पहन रखे हैं। तो क्या beauty को परखने का मापदंड ? आप प्रथम purity को उपलब्ध होओ। जैसे कि बच्चों की आंख स्वच्छ और सच होती है। इसके विपरीत आपकी आंख पथरा गई है। तो प्रथम योग से अपनी आंख को स्वच्छ एवं पवित्र बनाओ।

एक शिशु के लिये उसकी माता से बढकर कोई सुन्दर नहीं है। एक शिष्य के लिये उसके गुरु से बढ़कर कोई सुन्दर नहीं है। एक मोहग्रस्त पुरुष के लिये स्त्री से बढकर कोई सुन्दर नहीं है। सुन्दर वह नहीं है जिसे सुन्दर कहा जा रहा है। सुन्दरता एक भाव है जो सौन्दर्य के प्रति अपने दृष्टिकोण को उजागर करता है। एक माली की दृष्टि से कोई फूल सुन्दर हो सकता है। एक प्रकृति प्रेमी के लिये प्रकृति के दृश्य सुन्दर होते है। कोई आवश्यक नहीं है कि एक की दृष्टि में कोई वस्तु या घटना सुन्दर है तो दूसरे की दृष्टि में भी वही सुन्दर होगा। सुन्दरता का एक भाव है जो मन में उठता है और मस्तिष्क में विचार बन कर फिर दृष्टि में प्रकट होता है। सुन्दरता मन की एक अवस्था है, व्यवस्था है। यदि आपके मन में यह अवस्था नही है, आप किसी कारण से उदास व दु:खी है तो संसार की सबसे सुन्दर स्त्री या स्वयं की सन्तान भी सुन्दर नजर नहीं आयेगी। सुन्दरता क्षणिक है और मन का भाव है जो मन की अवस्था पर निर्भर करती है।

सौन्दर्य तुलनात्मक नहीं हो सकता। मेरी मां सुन्दर है क्योकि जगत में कुछ असुन्दर है ही नहीं। सबको परमात्मा ने सुन्दर बनाया है। किसी का कुछ सुन्दर है तो किसी में कोई अलग सौन्दर्य है। यदि बचपन और यौवन सुन्दर है तो बुढापा भी अपना अलग सौन्दर्य लिये हुये है। यह कैसे सम्भव है कि प्रभु किसी को कम, किसी को अधिक सुन्दर बनाये ?

सौन्दर्य दैहिक हो, देह हो तो वह छिछला है, ऊपरी है, त्वचा के आवरण का खेल है। दैहिक सौन्दर्य हमें सौन्दर्य के प्रति यांत्रिक बनाता

है इसलिये दैहिक प्रेम, प्रेम न होकर वासना है जो यन्त्र की तरह काम करती है और पूरी हो जाये तो न तो प्रेम रहता और न ही दैहिक सौन्दर्य का वह भाव। सौन्दर्य मानसिक हो तो कम से कम सौन्दर्य का सम्मान तो होगा, आदर भाव होगा। इतनी क्षुद्रता नहीं होगी। कुछ प्रेम होगा। प्रेम जैसा होगा। यह वही है जिसे हम प्रेम मान लेते है। जब सौन्दर्य मानसिक हो तो मन और देह दोनों सौन्दर्य की गहराई में उतरेंगे। मन की अवस्था कुछ गहन होगी सौन्दर्य के प्रति और यदि सौन्दर्य आत्मिक हो यानि आत्मा का सौन्दर्य तो तब सर्वत्र परमात्मा का सौन्दर्य प्रकट होने लगेगा। जब लगने लगे कि कुछ असुन्दर है ही नहीं, परमात्मा की लीला कभी असुन्दर हो ही नहीं सकती तो परमोच्च अवस्था प्रकट हो गई। तब सौन्दर्य खिल उठा। तब देह भी सुन्दर, मन भी सुन्दर और आत्मा में भी सौन्दर्य। सौन्दर्य तो पहले से ही था पर अब दृष्टि में आया। जगत में व्यवस्था ही परम है। यह परम भाव, यह परम व्यवस्था, यह परम सौन्दर्य जिसमें सम्पूर्ण जगत अत्यन्त दिव्य सौन्दर्य में है। एक अनगढ पत्थर में भी परमात्मा के सौन्दर्य को देख पाने वाला ही सौन्दर्य को जानता है।

सौन्दर्य की पहचान क्या है ? हम स्त्री को सौन्दर्य का प्रतीक मान लेते है। फूल चन्द्रमा आदि प्रतीक है जबकि सौन्दर्य सर्वत्र है। उसका कोई प्रतीक हो तो यह सौन्दर्य के प्रति नजर का दोष है। हम अपने ही घर-परिवार परिवेश में फैले विराट सौन्दर्य से अनभिज्ञ है। सौन्दर्य देखे प्रकृति में कि आपके आसपास कितना सौन्दर्य बिखरा पडा है जो आपके मन को लुभावना बना रहा है पर फिर भी हम ढूंढ रहे है सौन्दर्य को। स्वयं को हमने इतना व्यस्त बना लिया है कि सडकों पर से गुजरते वक्त भी हमारे मन में हमारा गणित चल रहा होता है कि इतना धन आयेगा और इतना धन व्यय होगा, कुछ ऐसा करेंगे, कुछ वैसे करेंगे, अधिकारी वर्ग को कैसे खुश करेंगे इत्यादि इत्यादि ऐसे में आपके पास की दुनिया का सौन्दर्य कैसे आपको दिखेगा ? हम सभी तो दु:ख वादी है, बिना दु:ख के जी नहीं सकते। यह वाद हजारों सालों से जारी है। यहां तो दु:ख की स्पर्धा सी बनी हुई है कि कौन अधिक दु:खी है। किसे अधिक तनाव व दु:ख है। और कोई दु:खी कभी सौन्दर्य को देख नहीं सकता, उसका अनुभव नहीं कर सकता। उसके लिये तो सौन्दर्य मरा हुआ ही है। वह तो समस्त जगत को कुरुप, बदसूरत ही देख पाता है। दूसरी तरफ होता है सौन्दर्य का अहंकार और इस अहंकार में भी साफ साफ कुछ दिखाई नही पडता है। स्त्रियां सदैव नव यौवना बनी रहने का प्रयास करती रहती है। यह एक मान्यता सी बन गई है वे सदैव १६ से ३० वर्ष की आयु में ही बना रहना चाहती है कारण कि अपने सौन्दर्य के अहंकार को बनाये रखने का प्रयास। एक स्त्री के लिये इससे अधिक कुछ प्रिय नहीं कि कोई उसे यह कह दे तुम बहुत सुन्दर दिखती हो भले ही वह यह जानती हो कि यह झूठ है।

सौन्दर्य की पहचान इन्ही सब भ्रमों व अहंकारों-कृत्रिम उपायों में दब कर रह गई है। वह सौन्दर्य जो निसर्ग या प्रकृति प्रदत्त है, प्राकृतिक है, निरागस है, स्वाभाविक है वह पता नहीं कहां खो गया है ? सौन्दर्य वही है जो आपके दिल को शान्त करता है जो आपको व्यवस्था में लाता है। आपकी अव्यवस्था-बिखराब को समेटता है, आपके अन्दर आनन्द पैदा करता है वही सौन्दर्य है। अशान्ति, उत्तेजना, बिखराब सौन्दर्य नहीं बल्कि शान्ति-व्यवस्था-आनन्द ही सौन्दर्य की पहचान है।

हम देखते है कि हमारे चारो और बिखरी सम्पूर्ण प्रकृति अत्यन्त सुन्दर है, मोहक है ताजी हे। चाहे वे पहाड पर्वत हो, चाहे समुद्र व नदी। चाहे झरने व पेड वन हो चाहे वे बादल, तारे या निरभ्र नभ हो। आकाश में उडते परिन्दे हो या सुबह व शाम का सूरज और रात में तारों से घिरा चांद। हम पाते है सर्वत्र सौन्दर्य बिखरा पडा है यह पृथ्वी यह जगत सचमुच कितना सुन्दर है ? इसे हम शब्दों मे व्यक्त नहीं कर सकते सिर्फ अनुभव कर सकते है। हम जो मनुष्य है वे तो सौन्दर्य के प्रति मोह, जिज्ञासा और उसे पाने के इच्छा से, महत्वकांक्षा से भरे है। सौन्दर्य में स्पर्धा सम्भव ही नहीं है। जो ब्रह्म ज्ञानी है वह अज्ञानियों से सदा हारता आया है। सौन्दर्य स्पर्धाओं से सौन्दर्य पराजित होता रहा है। सच तो सौन्दर्य तुलना का विषय है ही नहीं बल्कि दृष्टि का, दर्शन का विषय है। किसी सौन्दर्य को अपने में समेट लेना आखों की विवशता है और सौन्दर्य की विशेषता भी है। वक्त का अन्दाज बदल जाता है, उम्मीदों के रूझान बदलते है, पलकों के बेचैनी बदलती है ऐसे में बदलते सौन्दर्य को आखें ही कैद कर सकती है।

रंग-बिरंगी तितलियाँ, चहचहाते पंछी जीवन संगीत के प्रतीक है। भोर के समय कू-कू करती कोयल की आवाज मानो प्रभु की महिमा का गुणगान कराती हुई संदेश देती है कि, मनुष्य तू भी अपनी मधुरवाणी से अपने जीवनदाता की महिमा का गुणगान कर। जिस चित्रकार की रचनाएँ इतनी प्यारी और न्यारी हैं, वह स्वयं कितना सुंदर होगा। तुम भी अपने गुणों की सुगंध से संसार को और सुगंधित बनाओ। खिला हुआ फूल सबको सुंदर लगता है, ऐसे ही प्रसन्नता से भरा जीवन सबको अच्छा लगता है। फूल गर्मी-सर्दी में

मुस्कुराना जानते हैं। वह छोटी-सी जिंदगी लेकर आया है, बस एक मुस्कुराहट के लिये खिलता है। फूल काँटों में भी मुसकराता है। इसिलिए फूल को प्रसून कहा गया है। जीवन भी ऐसा होना चाहिए कि कठिनाइयों को हँसकर लिया जाए। जिंदगी लंबी हो या छोटी, इससे फर्क नहीं पड़ता फर्क पड़ता है कि तुम जीवन जीये किस तरह से हो। जो हर ठोकर से सबक लेता है, वह ठोकर को ठोकर लगाकर हंसते हुए आगे बढ़ जाता है।

फूल के हृदय में सुगंध है। अच्छे गुणों में भी सुगंध होती है। जैसे फूल खिलता है तो उसकी खुशबू को तुम रोक नहीं सकते। ऐसे ही अच्छाई की सुगंध होती है। ऐसे ही अच्छाई की सुगंध अपने आप फैलती है। फूल को जहाँ भी ले जाएँ, वह वहाँ की शोभा बन जाता है, आप भी जहाँ जाएँ अपने गुणों से वहाँ की शोभा बढ़ाएँ। दुनिया में प्रसन्नता बाँटते-बाँटते यह जीवन पूरा हो जाए और हवा में उस की सुगंध फैलती रहे ? मीठी यादें बाकी रह जाए। फूल जीवन का प्रतीक है। गुलदस्ता पूर्ण और सुंदर तब लगता है जब, उसमें फूल के साथ पत्ते, काँटे और हरियाली सब कुछ है। ऐसे ही संसार में चाहा-अनचाहा साथ-साथ मिलता है। परमात्मा ने जो दिया उसके लिए उसका धन्यवाद करो, शिकायत नहीं। यह छोटे-छोटे शब्द सागर में गागर हैं। ये वे बीज हैं जो बो दोगे तो कोमलता, सुंदरता और सुगंध जरूर पैदा होगी। लोक की परिकल्पना ही है लोक कलाएं। हमारे यहां सब प्रकार की कलाएं मानी गई हैं। ये कलाएं जिन्दगी को सौन्दर्य देती हैं। कला विहीन मनुष्य को पूंछ और सींग विहीन जानवर कहा गया है। हर मनुष्य के अन्दर एक कला अवश्य होती है, जिसके सहारे वह जिन्दगी को सरस बनाता है।

यूं तो स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े, जवान ही नहीं, घर की दीवारों, आंगन और दरवाजों को भी सजाया संवारा जाता है। परन्तु चित्रकला हो या लोकगीत, नृत्य हो या चित्रकथा, सबका अन्तिम लक्ष्य लोक को सौंदर्य की अनुभूति कराना ही है। इन कलाओं में नारी को विशेष सौन्दर्य प्रदान किया जाता है। औरत के नख से शिख तक का वर्णन कलात्मक होता है। लोक मन स्त्री का सौन्दर्य प्रसाधन भी अपने आस-पास बिखरी वस्तुओं से ही कर देता है। एक जच्चा गीत में सास बहू से वार्तालाप करती है जिसका अर्थ है- पान के समान बहू पतली है, और फूल के समान महक रही है। ऐसी बहू को बच्चा हुआ है। बालक बहुत सुन्दर है। संस्कार गीतों में नारी के सौन्दर्य का वर्णन है। पहनावे, ओढ़ावे, जेवर-जेवरात के साथ सोलह श्रृंगार और भावों का भी। लियोनार्डो द वीन्ची की प्रसिद्ध चित्रकारी ने मोनालीसा की मुस्कान को जगत विख्यात कर दिया। परन्तु हमारे गांव में विभिन्न लोक कलाओं में नारी का मुस्कुराना, हंसना, रोना, विसूरना और रुठना मनाना भी सजीव है। मानो दीवारों पर पेंटिंग नहीं, कोई महिला खड़ी हो। विभिन्न शैलियों के लोक चित्रों में नारी को प्रकृति के संग साथ दिखाया गया है। तोता-मैना, पेड-पौधों, नदी-तालाब या पहाड़ के साथ भी। इनसे भी उसका सौन्दर्य निखरता है। लोक कहावतों में भी नारी सौन्दर्य को महत्वपूर्ण माना जाता है। मैथिली भाषा की एक प्रसिद्ध कहावत है- पेन्हले ओढले मेहरी, निपले पोतले देहरी। अर्थात लिपी पुती हुई देहरी (ओसरा) अच्छी लगती है। और पहन ओढ़ कर सजी नारी। लोक कलाओं के अनुसार नारी को सुन्दर ही दिखाना है। प्रकृति ने यदि किसी नारी को काला रंग दिया है, अथवा नाक नक्श सुन्दर नहीं दिया, फिर भी उसे लोक कलाओं में सौन्दर्य प्रदान किया गया। सांवरे रंग को लोक-गीतों में सुन्दर ही माना जाता है। लोक गीतों में पति-पत्नी के साथ नोक-झोंक का कारण पति द्वारा गहना-जेवर, वस्त्र या श्रृंगार के प्रसाधन नहीं खरीदने पर होता है। पति भी बार-बार अपने प्रेम का इजहार पत्नी के लिए श्रृंगार के सामान लाकर ही करता है।

औरत की सुंदरता चाहे प्रकृति प्रदत्त हो चाहे बनाई हुई, हर कोई उससे प्रभावित जरूर होता है। उस सुंदरता को निहारना, उसे महसूस करना सबको अच्छा लगता है। सुंदरता के प्रति संवेदनशील होने और उसके करीब रहने की अनुभूति से हर कोई गुजरना चाहता है। सुंदरता, देश, काल, आयु, वर्ण, जाति, हर चीज से सर्वोपरि है। न तो वह किसी एक की धरोहर है, न ही इसे कोई किसी से चुरा सकता है। स्त्री की सुंदरता किसी के लिए ईर्ष्या का सबब भी बन जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योकि वह उस पर अपना एकाधिकार चाहता है। खूबसूरती को कौन नकार सकता है ? कौन खूबसूरती के साथ नहीं रहना चाहता ? कौन खूबसूरती को नहीं अपनाना चाहता? अंतर सिर्फ इतना होता है कि सौंदर्य को मापने का पैमाना सबका अलग-अलग होता है। कहा भी जाता है ब्यूटी लाइज इन द आइज ऑफ द बीहोल्डर।

स्वाभाविक है आसक्ति- यह एक सर्वमान्य और सर्वविदित तथ्य है और कोई इस बात को अस्वीकार भी नहीं करता है कि हर स्त्री

चाहती है कि पुरुष उसकी सुंदरता की प्रशंसा करे। खासकर कोई भी ऐसी स्त्री जो अत्यधिक खूबसूरत और आकर्षक है वह ऐसा कभी नहीं चाहेगी कि पुरुष उसकी ओर ध्यान न दे। चाहे अपनी ओर ध्यान खीचने के लिए चाहे उसे अनेक प्रयत्न क्यों न करने पड़ें। इसके विपरीत किसी आकर्षक स्त्री की ओर देखना, उसके प्रति आसक्त होना पुरुष की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

बाहरी आकर्षण- फिर भी स्त्री का सौन्दर्य, उसकी नजर और शालीनता (प्रचण्डता) ही आगे बढ़ने या सफलता पाने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, यह बात पूर्णतया सच नही है। हां, कुछ हद तक ठीक अवश्य हो सकती है। लेकिन ऐसी स्त्रियां जिन्हें कुदरत ने शारीरिक आकर्षण दिया है उन्हे यह समझ लेना चाहिए कि उसके माध्यम ही उन्हे पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। बाह्य सौंदर्य जो उन्हे वंशानुगत कारणों से प्राप्त होता है उसको लेकर उन्हे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह किसी भी पुरुष को लुभा सकती हैं। बाहरी आकर्षण संयोग की बात है पर भीतरी आकर्षण मेहनत और प्रयास का परिणाम होता है। पुरुष इस बात को जानता है और एक बार जब वह उसके आरंभिक आकर्षण से बाहर आ जाता है तो उसके भीतर की विशेषताएं तलाशने लगता है।

सुंदर दिखने की चाह- चाहे वह स्त्री हो या पुरुष प्रत्येक व्यक्ति अपनी तरह से सुंदर और आकर्षक होता है। वैसे भी ऐसा कौन है जो सुंदर नहीं लगना चाहता है ? बाहर से अच्छा दिखने का अर्थ है भीतर से भी अच्छा महसूस करना। यह सच है कि सुंदरता पर बहुत जल्दी ध्यान जाता है पर अंतत: व्यक्ति का व्यवहार मायने रखता है। निगाह वह है जो लोगों का ध्यान आपकी ओर खीचता है, सम्मान वह है कि लोग आपके बारे में क्या सोचते है, व्यक्तित्व वह है जो आप स्वयं दर्शाते है और चरित्र वह है जो आप वास्तव में है। कोई भी व्यक्ति अपने आप से पूर्णतया संतुष्ट नही होता। यह मानव का स्वभाव है। कहा जाता है कि सौंदर्य तो मात्र बाहरी होता है, दिमाग के बिना उसका कोई महत्व नही है। काफी हद तक यह बात सही है। खूबसूरत लडकियों की एक मुस्कान उनकी मुश्किलों को हल कर देती है। वह मुस्कान या उनकी अदा एक प्रभाव छोड़ती है लेकिन बिना बुद्धिमत्ता के कुछ समय बाद वह सुंदरता बनावटी लगने लगती है।

योग्यता की अहमियत- आकर्षण के साथ बेशक स्त्री में हुनर या प्रतिभा होना पुरुष को लुभाता है फिर भी ऐसी स्त्रियां जो सुंदर होने के खाके मे फिट नहीं बैठती उन्हे अपनी क्षमताओं से ज्यादा स्वयं को प्रमाणित करना पड़ता है। क्योकि उनके पास सुंदरता का अतिरिक्त गुण नहीं होता जिसको आधार बनाकर वे ऊंचाइयों को छू सके। उन्हे अपनी योग्यता के बल पर ही आगे बढ़ना होता है। खूबसूरत औरत अपने आकर्षण से कुछ भी काम करवा सकती है यह एक अटूट सच्चाई है। जबकि कम खूबसूरत या साधारण स्त्री अपने प्यार और स्नेह से पुरुष का दिल जीतने की कोशिश करती है। शारीरिक आकर्षण रखने वाली औरते पुरुष को अपनी ओर खींचने का प्रयास भी करती है ताकि उन्हे एक सीढ़ी के रूप में इस्तेमाल कर सके।

यदि आंखें देखने के लिए बनाई गयी हैं, तो सौंदर्य अपने अस्तित्व के लिए स्वयं बहाना है। सौंदर्य को देखने वाले में भी अंशत: सौंदर्य होता है। अच्छा स्वभाव सदा सौंदर्य के अभाव को पूरा कर देगा, किंतु सौंदर्य अच्छे स्वभाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकता। योग्य मनुष्यों के आचरण का सौंदर्य ही उनका वास्तविक सौंदर्य है।

यदि सुंदरता के साथ सद्गुण हैं तो वह हृदय का स्वर्ग है, यदि उसके साथ दुर्गुण हो तो वह आत्मा का नरक है- वह ज्ञान की होली और मूर्ख की भट्टी है।

सौन्दर्य-प्रेमी विश्व के सौन्दर्य-हाट में घूम रहा है। रूप ही रूप दिख रहे हैं- एक से बढ़कर एक। प्रेमी को अकस्मात एक अनिंद्य सुन्दरी दिखती है। देखते ही वह विमोहित हो जाता है। वह बिना मोल ही बिक गया। मोहिनी उसका मन उड़ा ले गई। मानो किसी जलाशय के अचल जल के फैलाव पर किसी के शरीर से निकलकर उसकी छाया अंकित हो गई हो। ऐसे देवी विधाता का अनमोल उपहार होती है। उसका दर्शन करने वाला बहुत सौभाग्यशाली होता है।

हे आदिपुरुष परमेश्वर। तेरी कांति बहुत अधिक है जो हर जगह समाई है। वह कण-कण में बसी हुई है। तेरा रूप पर्वतों में, वनों की हरियाली में, पक्षियों के राग में, पशुओं की सुन्दरता में, फूलों की सुगन्ध व रंगों में, पुरुषों-स्त्रियों में यानी हर जगह दृष्टिगोचर होता है।

इस रूप की सुन्दरता को समझने के लिए मेरी बुद्धि और मन बहुत छोटा है। तेरे रूप की महिमा का वर्णन करने के लिए मेरी जिह्वा पर जितने भी शब्द आ सकते हैं, वह बहुत कम हैं। हे ईश्वर। तेरे विराट रूप की कान्ति इस संसार के हर कोने में विद्यमान है, जिसे देखकर संसार सुख पाता है और मेरे नैनों को भी तृप्ति मिलती है।

वह ईश्वर के रूप का आनन्द वैसा ही न अनुभव करे, जैसे जगत के अन्य सारे जीव करते हैं। वह तो नैनों की पूर्ण तृप्ति के लिए उसके विराट रूप आनन्द की कामना करता है। परमेश्वर के रूप की कान्ति से वह जहां भी दृष्टि डालता है, वहीं आनन्द पाता है।

मनुष्य की उत्तमता उसके ज्ञान और गुण से होती है। ब्रह्मज्ञानी व्यक्ति को देखने मात्र से ही चित्त को आनन्द की प्राप्ति होती है। उसके चरणों में शीश झुकाने से जीवनभर के बड़े से बड़े पाप पल में धुल जाते हैं। ब्राह्मनी शब्द से आशय है-ब्रह्मा की शक्ति। ब्रह्मा जगत पिता हैं, साथ ही ज्ञान के अधिष्ठाता भी। इस तरह ब्राह्मनी का तात्पर्य हुआ ब्रह्मविद्या। यही ब्रह्मा की शक्ति है। उसका विराट रूप चित्त को लुभाने वाला होता है। उसकी चरण-वन्दना से मन को शान्ति मिलती है और पाप नष्ट हो जाते हैं।

संसार के जीवों का पालन करने वाली परमेश्वरी, आराध्य देवी, इष्ट देवी। तेरा रूप गंगा के समान पावन है। जिस तरह मां गंगा अपनी शरण में आने वाले पापियों का पाप धोकर निर्मल रहती है, उसी प्रकार इष्टदेवी के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पित करने वाले मानव का कल्याण होता है। हे मां। तेरा रूप इतना पावन, निर्मल और मन को शान्ति देने वाला है कि तेरे दर्शन मात्र से ही नैनों को तृप्ति होती है। हे दुर्गा देवी, तेरे अंग-अंग की सुन्दरता मन को मोहने और शान्ति प्रदान करने वाली है।

मन को मजबूत रखो, मन को निर्मल रखो, मन को प्रसन्न रखो, मन को तरो ताजा रखो। मन में हीनता की भावना मत आने दो। बात-बात में उदास हो जाना, निराश हो जाना, हताश हो जाना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम नहीं जानते तुम कितने सुंदर हो, कितने स्वस्थ हो, कितने सरल हो, कितने सच्चे हो, कितने अच्छे हो, कितने-प्यारे हो, कितने मीठे हो।

फिर क्यों, हर समय मुंह लटकाए रहते हो ? क्यों हर समय गमगीन रहते हो ? क्यों हर समय खोए-खोए रहते हो ? खूब हंसो, खूब नाचो, खूब कूदो ? खूब खेलो, खूब खाओ, खूब कमाओ, खूब गुन-गुनाओ।

देखो जीवन कितना सुंदर है, कितना सुखद है, कितना संगीतमय है, कितना आनंदपूर्ण है। तुम, इसे थोड़ा सोचो, थोड़ा विचारो, थोड़ा समझो। याद रखो-रोग और शोक, भय और चिन्ता पहले मन में आते हैं। बाद में शरीर पर इनका प्रभाव पड़ता है। अगर मन न माने, मन न स्वीकार करे तो न बीमारी का प्रभाव पड़ेगा शरीर पर और न बुढ़ापे का।

मानसिक रूप से शांत रहना चाहिए। मन पर ही सब कुछ निर्भर रहता है। प्रभात ही सुन्दर नहीं होता, संध्या भी सुंदर होती है। जवानी ही सुंदर नहीं होती, बुढ़ापा भी सुंदर होता है।

संसार सुन्दर नहीं संसार की रचना जिस प्रभुने की है वे परमात्मा सुन्दर हैं। संसार का सौन्दर्य क्षणिक है, मन की कल्पना मात्र है। सौन्दर्य के आंसू उसकी मुस्कुराहट की अपेक्षा अधिक प्यारे होते हैं। आंसू आत्मा की ग्रीष्मकालीन बर्षा फुहार है।

सुन्दरता अभिशाप विश्व का, सुन्दरता वरदान प्रिये। इस क्षण भंगुर सुन्दरता पर, मत करना अभिमान प्रिये।
जिस दिन आयेगा माझी, ले चलने उस पार प्रिये। उस दिन यह मोहक यौवन, देना होगा उपहार प्रिये।।

सुन्दरता मनोभावों पर निर्भर रहती है। माता अपने कुरूप बालक को भी सुन्दर समझती है।

तुम्हारे वस्त्र तुम्हारे बहुत से सुंदर अंशों को छिपा लेते हैं, लेकिन असुंदर को नहीं। सुंदर वह है, जो सुंदर कार्य करे। सौंदर्य पवित्रता में रहता है, गुणों में चमकता है। भीतर का सौंदर्य देख लिया, तो बाहर का फीका लगेगा।

सुन्दर पशु-पक्षी परमात्मा की दृष्टि का ये सौन्दर्य है, उसे हम जीवन नहीं दे सकते तो उसे मारने का हमारा क्या अधिकार है?

सौंदर्य वह पथ है, जो आत्मजयी मानव को स्व की ओर ले जाता है। कला का सत्य जीवन की परिधि मे सौन्दर्य के माध्यम से व्यक्त अखंड सत्य है। भक्ति या प्रेम रोने-धोने और मांगने-जांचने की अभावात्मक दशा नहीं है। वह एक ऐसी अनिर्वचनीय समता दिलानेवाली अवस्था है, जहां माधुर्य, मौज और लापरवाही अपने आप फूट निकलती है। यह अवस्था सबमें सर्वात्मा प्रभु को देखने की है। यह अवस्था जहां कहीं दृष्टि पड़े उसी में अपने आत्मदेव को देखने की है। इस अवस्था में यह अनुभव करना है कि सर्वात्मा सब स्वयं सौंदर्य है, और यही मैं हूं, वही तू है, तत्वमसि।

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और सदाचार उसकी बाह्य अभिव्यक्तियां हैं। अहंकारपूर्ण जीवन को छोड़ देना ही त्याग है, और वहीं सौंदर्य है। जो धार्मिक वाद-विवाद और दार्शनिक तर्क-वितर्क। भाग जाओं मैं जानता हूं कि सुन्दरता ही प्रेम है, और प्रेम ही सुन्दरता है और दोनों ही त्याग हैं। यह संसार परमात्मा का एक विशाल शास्त्र है। यह ऐसी खुली पुस्तक है, जिसके हर पन्ने

पर कुछ-न-कुछ शिक्षाएँ लिखी हैं। खुली आँखों से और तेजस्वी शक्ति से अगर हम प्रकृति के नजारे देखें तो बहुत शिक्षा मिलेगी और उससे राहत भी मिलेगी। प्रभात का उजाला, पहाड़ी शिखरों पर चमकती धूप की सुनहरी किरणें, पत्तों पर पडी ओस की बूंदे सौन्दर्य बोध कराते हुए तरह-तरह के रंग-बिरंगे खिले हुए सुंदर फूल यह सब देखकर मन में एक हिलोर उठती है। ये बर्फीले पहाड़, दूर-दूर तक फैली घास की हरियाली हरी चुनरी लेकर प्रकृति की महिमा का वर्णन करती है। हवाओं की ठंडक अपनी अनुभूति कराती हुई जीवन संदेश देती है। प्रकृति सौंदर्य और सन्देश से भरपूर है। प्रकृति के अनुसार जीवन जीने में आनंद है, शांति है। जो कुछ सुंदर और कल्याणमय है, उसके साथ यदि हम हृदय की समीपता बढ़ाते रहें तो संसार सत्य और पवित्रता की ओर अग्रसर होगा।

अच्छाई सौंदर्य को कितना ऊंचा उठा देती है। इस संसार में केवल दो ही तत्त्व हैं- सुन्दरता और सत्य। वह सौन्दर्य जो प्रेमियों के हृदय में निवास करता है और वह सत्य जो कृषकों के बाहुओं में निवास करता है। दुनिया का सारा सौन्दर्य स्वस्थ शरीर में है।

चित्त की शांति ही वास्तविक सौन्दर्य है। ज्ञानी के लिए सत्य है, भावुक हृदय के लिए सौन्दर्य। वास्तविक सौन्दर्य हृदय की पवित्रता में है।

मनुष्यों की गति सुन्दर वस्तुओं से सुन्दर मनोभावों की ओर, सुन्दर मनोभावों की सुन्दर जीवन की ओर, और सुन्दर जीवन से पूर्ण सौन्दर्य की ओर होती है। किसी परिचय-पत्र की अपेक्षा व्यक्तिगत सौन्दर्य स्वयं एक बड़ी सिफारिश है।

मैंने कभी सौन्दर्य को वासना की दृष्टि से नहीं देखा। मैं सौन्दर्य की उपासना करता हूं, उसे अपने आत्म-निग्रह का साधन समझता हूं, और उससे आत्म-बल ग्रहण करता हूं। सत्य, अच्छाई और सौन्दर्य उसी एक (परमात्मा) के विभिन्न रूप है।

सुन्दरता की तलाश में चाहे हम सारी दुनिया का चक्कर लगा आयें, अगर वह हमारे अन्दर नहीं है तो कहीं न मिलेगी।

सौन्दर्य ईश्वर के ऐश्वर्य का रूप है, सौन्दर्य शक्ति है, सौन्दर्य आदर्श है। वह स्फूर्ति देता है, पवित्रता देता है, बलि की प्रेरणा देता है।

सौन्दर्य और पवित्रता का संयोग कभी ही होता है। सौन्दर्य सौन्दर्य से आकर्षित करता है। सौन्दर्य गूंगी ठगनी है।

सौन्दर्य कहां नहीं है ? सौन्दर्य परम सत्य है, परम सत्य की अभिन्न विभूति है, सत्य की भांति सर्वत्र व्याप्त है। जिसकी जहां आंख है, वहां ही उसे वह देख लेगा। सौन्दर्य का सर्वोत्तम भाग वह है, जिसको कोई चित्र चित्रित न कर सके। सौन्दर्य ही प्रेमी का उपहार है।

सौन्दर्य का अस्तित्व ही सौन्दर्य का समर्थ है। सौन्दर्य का आदर्श सादगी और शान्ति है। सौंदय तो दर्शक के नेत्रों में वास करता है।

सौन्दर्य की सर्वव्यापी सत्ता है। सौन्दर्य जब सो जाता है, तब और भी मादक होता है। सौन्दर्य शक्ति है और मुस्कान उसकी कृपाण।

सौन्दर्य जीवन-सुधा है। मालूम नहीं इसका असर इतना घातक क्यों होता है। सौन्दर्य से परे न तो धर्म है और न विज्ञान।

सौन्दर्य तथ्य की सीमा को लांघ जाता है, उसके हिसाब में कोई आदर्श नहीं है, कोई परिमाण नहीं है। सौन्दर्य मीठा पक्षपात है।

सौन्दर्य-प्रेमी को प्रबल भावुकता में ही पूर्ण सन्तोष मिल जाता है। सौन्दर्य के प्रशंसक में भी आंशिक सौन्दर्य होता है।

सौन्दर्य स्त्रियों को प्राय: अभिमानी बनाता है, सद्‌गुण उन्हें अति प्रशंसनीय बनाते हैं और विनय से वे देवतुल्य हो जाती हैं।

सुंदरता की सृष्टि ही इसलिए हुई है कि उसे अपलक नयनों से निहारा जाए। सच तो यह है कि सुंदरता की उपासना उस सौंदर्य का सृजन करने वाले की उपासना है, जिसे हम देख नहीं पाते।

सच्ची सुंदरता इंसान के मन में बसती है। यह बात कभी नहीं झुठलाई जा सकती है। यही कारण है कि आज दिमाख के साथ सौंदर्य की माँग है। यदि किसी का मन साफ नहीं हो तो उसकी सुंदरता कोई मायने नहीं रखती। मन की सुंदरता का कोई मुकाबला नहीं लेकिन यदि मन के साथ आप बाहर से सुंदर दिख सकती है तो बात कुछ अलग हटकर ही होगी। सुंदरता सिर्फ चेहरे से ही नहीं पूरी व्यक्तित्व से झलकती है। यही कारण हैं कि अब हर कोई अपनी बनावट शृंगार व दिखावे के प्रति सजग रहता है। सुंदरता पर किसी का एकाधिकार नहीं होता। यह तो इंसान के ऊपर निर्भर करता है कि अपने गुणों व व्यवहार कुशलता से कितनों को अपनी ओर आकर्षित कर पाता है। वास्तविक अर्थों में वही सच्ची सुंदरता है।

रूप बदल जाते है, आकार बदल जाते है, जब मन बदल जाते हैं तो व्यवहार बदल जाते हैं।

मेहनत की कमाई मिट नहीं सकती, पाप की दौलत कभी टिक नहीं सकती।

* ज्ञान सागर *

जीवन दर्शन सिद्धान्त

अपने हाथों की लकीरों को क्या देख रहे हो, नसीब तो उनके भी होते है जिनके हाथ नहीं होते।

बीस दिन की बुरी संगति रावण बना सकती है मगर राम बनने के लिये तो कई जन्म चाहिये।

धन्य वह कागज है, धन्य वह कलम है, धन्य वह दवात है, धन्य वह स्याही है।

धन्य वह लिखनहार है, जिसने उस ईश्वर के सत्य नाम को लिखा है।।

१) बेकार है वो आंसू जिसमें असर न हो। बेकार है वो दिल जिसमें तडफ न हो। बेकार है वह पर्दा जिसमे शर्म न हो और बेकार है वह सजदा जिसमें अमल न हो। बेकार है वो कौम जिसमे इत्तिफाक न हो और बेकार है वो रात जिसमें मुहब्बत की इबादत न हो। बेकार है वो इन्सान जिसमें जमीर न हो और बेकार है वो दौलत जिसमें सुकून न हो। बेकार है वो आंखे जिसमें हया न हो और बेकार है वो दिल जो मन से साफ न हो।

२) वो आंख ही क्या जिसमें कभी आंसू नहीं छलके और वह चेहरा ही क्या जिस पर कभी हंसी न आये।

३) आखों में चमक काजल के बिना भी पैदा की जा सकती है अगर आखों में हया हो होठ बिना लाली के भी सुर्ख हो सकते है अगर वक्त और जरूरत पर ही खोले जाये। कद बिना बैसाखी के भी लम्बा हो सकता है अगर शखसीयत में बुलन्दी हो। आदमी का दर्जा जब ही बुलन्द है जब तुमसे कोई रिश्ता तोडे और फिर भी तुम उसके साथ रिश्ता जोडने की कोशिश करो। जो तुम्हारा बुरा चाहे फिर भी तुम उसका भला चाहो। जब कोई तुमसे बदतमीजी से पेश आये और फिर भी तुम उसके साथ तमीज व नर्मी से पेश आओ।

४) दु:खों पर चीख उठना और अपनी हार पर पछताना तो आदमी की हार की दलील है। सिर्फ तमन्नाये रखने से कुछ नहीं होता। उसके लिये कठोर परिश्रम करना व निजात पाना अत्यधिक आवश्यक होता है। मुसीबतें आप पर बरसने लगे तो विचार करे कि कही इसकी वजह आप स्वयं तो नहीं है। इस तरह की सोच से हालात पर नियन्त्रण करना आसान होगा। मुश्किल घडी जिन्दगी को सबक देने के लिये अच्छी होती है। परेशानियों से घबरा कर हालात के आगे घुटने टेक कर बैठ जाना दिलेरी नहीं है।

५) हिदायत अन्धेरों में से निकाल कर रोशनी में लाती है। हिदायत इन्सान के भटके कदमों को रोक लेने की ताकत रखती है और दुनिया में कामयाबी दिलाती है। यह उन्ही लोगों के काम आती है जो ईमानदार व सच्चे है और जो सच्चाई को पसन्द करते है, दूसरों के हक को देना जानते है और उनके हकों की हिफाजत करते है तथा अपने बुरे हालात में भी अपने फर्ज को अदा करते है।

६) **औरत -** औरत सिर्फ मर्द का जज्बाती सहारा ही नहीं है बल्कि एक ऐसी रूहानी ताकत है कि जिसके सहारे मर्द कठिन से कठिन मंजिले तय कर लेता है। औरत वह पाक और पवित्र खुशबू है कि जिसे रूह की गहराई में उतार लेना ही मर्द की मर्दानगी है। मर्द के लिये सबसे बडी दौलत उसकी ईमानदार बीवी है। जो शख्स यह समझता है कि मुसीबत में औरत घबरा जाती है वह औरत की फितरत को ही नही जानता। औरत बडे से बडे तूफान को झेल जाती है। मुसीबतों की घटाये छा जाये, दौलत चली जाये, सेहत खराब हो जाये, बीमारियों से घिर जाये, चारों तरफ से तकलीफे और आफते आजाये मर्द फिर भी घबरा उठता है लेकिन यह सब देख कर औरत नही घबराती बल्कि अडिग चट्टान की तरह डटी रहती है। औरत रात का वह चमकता सितारा, सुबह का नूर और शबनम की बूंद है काटों में खिलता गुलाब का फूल और हमारे अन्धेरे दिलों मे रोशनी करने वाली होती है। औरत वह आंख है जो गम के आसुओं से भरी रहती है लेकिन किसी और को उन आँसुओं के आयने में झांकने भी नहीं देती है। सबसे अच्छा खजाना नेक बख्त बीबी होती है कि शौहर उसके देखने से खुश हो जाये और जब उसे कोई काम बताये तो वह हुक्म बजा लाये और जब शौहर घर में मौजूद न हो तो इज्जत आबरू थामे बैठी रहे। ऐसी ही वह नेक अच्छी और पाकीजा होती है जो घर को जन्नत बना सकती है। औरत एक बरकत है, इन्सान की खुशहाली और भलाई का जरिया है। सलीकेमन्द औरत वही है जो हर रिश्ते को बखूबी से निभाये। औरत एक जज्बा है जो जवानी और जिन्दगी को रंगीनियां देती है, अगर मिल जाये तो जिन्दगी को सुकून देती है वरना बिना औरत के जिन्दगी वीरान है।

७) औरत नाम है सलीके का लेकिन वह औरत अच्छी नहीं जो शौहर को देखकर बीमार होने का नाटक करने लगे। औरत एक बहुत बडी नैमत है। कितना भी मुंह फट और फूहड मर्द हो, औरत को सामने पाकर डाकू भी नर्म दिल और सलीकेमन्द हो जाता है। दिलदार बीबी हासिल करो। खूबसूरती देखकर निकाह मत करो। किसी भी औरत से निकाह उसके माल की वजह से मत करो।

८) जिन्दगी से नफरत मत करो। जब तक है उससे छुटकारा नहीं मिल सकता। जिन्दगी एक एहसास की तरह है जो खुशियों के साथ गम का समन्दर साथ लेकर आती है। जिन्दगी एक पेड है जिसे सांस की आरी काटती रहती है, न जाने कब कहां कौनसा पेड गिर जाये। दूसरों की जिन्दगी को घुन लगाने वाले खुद भी सुकून को तरसते रहते है।

९) जवानी दुनिया को लूटने की तमन्ना रखती है पर बुढ़ापा तो अपनी पारी खेल चुका होता है। वृद्ध आदमी एक विचारवान कोच, सलाहकार या समीक्षक ही बन सकता है। महत्वकांक्षी बुढ़ापा दु:खों का कारण ही बनता है। जिसकी जवानी ही भूखी रह गयी हो तो वह अपनी तृष्णा मिटाने बुढ़ापे में किसी रूप, यश और अर्थ के पीछे दौडता है।

१०) एक निकृष्ट स्त्री से बढ़कर कोई बुराई नहीं है और अच्छी स्त्री से अधिक कोई अच्छाई आज तक पैदा नहीं हुई। काम, क्रोध, लोभ, मद और मोह की धारा बहुत प्रबल है। उनमें माया रूपी स्त्री सबसे अधिक दु:खदायी है। जो स्त्री से अपने को बचाता है, वह सच से अपने को बचाता है। स्त्री झूठ नहीं है और पुरुष के लिए सच की चुनौती स्त्री के रूप में आती है। दुर्बलता तेरा ही नाम स्त्री है। देवताओं की पूजा और वन्दना से दूर रहने पर भी जो स्त्री अपने स्वामी की सेवा में लगी रहती है, वह उस सेवा के प्रभाव से उत्तम स्वर्ग-लोक को प्राप्त होती है। पुरुष के सारे तर्क स्त्री के एक भाव की तुलना नहीं कर सकते। पुरुष शस्त्र से काम लेता है, स्त्री कौशल से। पुष्टि-बल में मनुष्य को प्रबल मान भी लो, पर वाक्बल में स्त्री के आगे मनुष्य कोई भी चीज नहीं है। प्यार के खातिर स्त्री सब कुछ करने को तैयार हो जाती है, परन्तु प्रतिकार के लिए उससे भी अधिक भयानक कर्म कर बैठती है। प्रतिशोध लेने में और प्रेम में स्त्री पुरुष से अधिक निर्दयी होती है। बहुत छुटपन से ही मैं स्त्री का सम्मान करता हूं। साधारणत: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है, उनमें एक दैवी शक्ति भी होती है, यह बात लोग भूल जाते हैं। मैं नहीं भूलता। मैं स्त्री-शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ। मेरे मत में स्त्री को घर छोड़कर घर की रक्षा के निमित्त कंधे पर बन्दूक रखने के लिए आह्वान करने अथवा उसके लिए उसे प्रोत्साहित करने में स्त्री और पुरुष दोनों ही का पतन है। यह लौकिक पुरुष के अत्याचार का बहुत निर्बल बहाना है कि स्त्री का सद्गुण सच्चरित्रता और आज्ञाकारिता है। रूपवती स्त्री नयनाभिराम होती है, बुद्धिमती स्त्री हृदय को खुश रखती है। एक अनमोल रत्न है, तो दूसरी रत्न-राशि। सद्गुणी स्त्री जहां कहीं भी मिलती है, वहां आपको आनन्द मिलता है। उसकी चितवन में बहुत सुन्दर उद्यान है और उसका मन सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-पुस्तक है। सम्पूर्ण महान कार्य के आरम्भ में किसी स्त्री का हाथ रहा है। साध्वी स्त्री विश्व की सर्वोत्तम वस्तु है। सुन्दर और सच्चरित्र स्त्री ईश्वर की उत्कृष्ट कारीगरी, देवताओं की वास्तविक शोभा, पृथ्वी का अपूर्व चमत्कार तथा संसार का एकमात्र आश्चर्य है। सुयोग्य स्त्री परिवार की शोभा तथा गृह की लक्ष्मी है। स्त्रियां पूजा करने योग्य, बड़े भाग्यवाली, पुण्यात्मा, गृह का प्रकाश तथा साक्षात् लक्ष्मी होती हैं। इसलिये स्त्रियों की विशेष रक्षा करनी चाहिए। स्त्रियों का जीवन ऐसा होता है कि वे अपने स्वभाव की भयंकरता को छिपा सकती हैं और बाहर से अपनी तीखी वाणी को मधुर भी बना सकती हैं। स्त्रियों की मानहानि साक्षात् लक्ष्मी और सरस्वती की मानहानि है। स्त्रियों की संगति अच्छे स्वभाव की आधारशिला है। स्त्री इसलिए नहीं है कि वह पुरुष को अपनी ओट ले। उसकी कृतार्थता इसमें है कि वह पुरुष को उत्तरोत्तर आगे करे। वह पीछे रहने को है इसलिए कि किसी भांति पुरुष पीछे न रह जाये। स्त्री एक अनिवार्य आपत्ति, स्वाभाविक मोह, वांछनीय विपदा, घरेलू भय, प्राणघातक आकर्षण, बाहर से मधुर और भीतर से विषरस भरे स्वर्ण-घट के समान है। स्त्री और पुरुष का ध्येय एक है, वे साथ ही साथ प्रगति करते हैं अथवा प्रगति की ओर जाते हैं, छोटे अथवा देव-तुल्य बनते हैं, पराधीन अथवा स्वतंत्र होते हैं। स्त्री और पुरुष के मध्य जो आकर्षण है वह परस्पर उन्हें आत्मदान से मिलाये बिना रह नहीं सकता। यह आत्म-विसर्जन और आत्मदान की अनिवार्यता मूलगत और टिकने वाली है। यह सब मनुष्य पर है कि उसे अध्यात्मवृत्ति से लेकर उपयोगी करे या तिरस्कार के भाव से अवहेलित करे।

स्त्री और मदिरा नवयुवकों एवं वृद्धों को मदमत्त बना देती है। स्त्री का बल और साहस, मान और मर्यादा पति तक है। उसे अपने पति के ही बल और पुरुषत्व का घमण्ड होता है। स्त्री कांटेदार झाड़ी को फूल बनाती है, निर्धन से निर्धन व्यक्ति के घर को भी सुशीला स्त्री स्वर्ग बना देती है। स्त्री की लगन स्थूल की ओर विशेष रहती है। सूक्ष्म की लगन प्रतिभा कहलाती है। स्त्री के सम्मान से सभ्यता का परिचय मिलता है। स्त्री के हृदय में करुणा, अमृत बनकर बहा करती है। स्त्री को पराजित करना हो, तो उसकी प्रशंसा करो। स्त्री क्या है ? साक्षात् त्याग की मूर्ति। जब कोई स्त्री किसी काम में जी जान से लग जाती है, तो वह पहाड़ को भी हिला देती है। स्त्री जगत की एक पवित्र स्वर्गीय ज्योति है। वह पुरुष-शक्ति के लिए जीवन सुधा है। त्याग उसका स्वभाव, प्रदान उसका धर्म, सहनशीलता उसका व्रत और प्रेम उसका जीवन है। स्त्री-जाति में हर उम्र में मातृत्व का अंश रहता है, और वही अंश उनमें सहिष्णुता, क्षमा और स्नेह को प्रेरित करता है, दु:ख को कम करने की शक्ति लाता है, और इसी से उनका दिग्विजय इतना सरल हो जाता है। स्त्री तुम्हारी छाया के समान है। उसका पीछा करो, वह भागेगी। उससे भागो, वह आपका पीछा करेगी। स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण तो है। यह वैज्ञानिक तथ्य है। आप उससे नाराज हों और लड़ें या प्रसन्न हों और साराहें, यह आपके वश की बात नहीं है कि उसे मिटा दें। स्त्री-पुरुष दोनों अपने में अधूरे हैं। पूर्ण अर्ध-नारीश्वर हैं। इसलिए पुरुष स्त्री में न खोये, यह सम्भव नहीं है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। स्त्री प्रकृति की कन्या है। उसकी ओर कोप-दृष्टि से कभी मत देखो, उसका हृदय कोमल होता है, उस पर विश्वास करो। स्त्री प्रकृति की सुन्दर भूलों में है। स्त्री प्रेम करती है या घृणा, वह इनके बीच की स्थिति नहीं जानती। स्त्री सब कुछ कर सकती है, मगर अपनी इच्छा के विरुद्ध प्रेम नहीं कर सकती। स्त्री सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है, धैर्य का अवतार है।

रत्नजटित मखमली म्यान में जैसे तेज तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह में जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही रमणी का कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद में छिपाए रहता है। रमणी का अनुराग कोमल होने पर भी बड़ा दृढ़ होता है। वह सहज में छिन्न नहीं रहता। जब वह एक बार किसी पर मरती है, तब उसी के पीछे मिटती भी हैं। रमणी की कातर दृष्टि में जो बल, जो कर्तव्य-शक्ति है, वह मानव-शक्ति की संचालक है। रमणी। तेरे हास में जीवन-स्त्रोत का संगीत है।

११) भटकाव तो गति की पहचान है। गति वही सम्भव है जहां जीवन है। स्तब्धता, ठहराव, या स्थिरता मुर्दे के अतिरिक्त और कहां है ? शोख रंगों में लिपापुता मील का पत्थर आज भी जहां का तहां खडा है। दर दर की ठोकरे खानेवाला छोटा पत्थर न जाने इस अन्जान मंजिल पर वह कभी किसी सुन्दर मूर्ति में बदल कर अमूल्य धरोहर बन गया हो या कोई शिलालेख बनकर इतिहास का कोई चश्मेदीद गवाह।

१२) प्रसिद्धि होना भी अपनी कीमत मांगती है। ऐसा भी नही है कि मशहूर लोग सुखी रहते है। मशहूरी अपने साथ पचासों परेशानियां लेकर आती है। मशहूरी की कीमत किसी को दु:ख पहुंचाना भी हो सकती है। बरबादी भी कभी मशहूरी का सबक बन जाती है। औरों को सुख पहुंचाने में भी जुल्म का पहलू शामिल है, दुनिया में नाम कमाने में भी जुल्म का पहलू शामिल है और तो और खुश दानिश्ता मर जाने में भी जुल्म का पहलू शामिल है। दुनिया में जुल्म सिर्फ दौलत के लिये ही नहीं होते मशहूरी के लिये भी होते है। मशहूर होने के लिये कुछ लोग अपने दोस्तों का, अपने परिजनों का, अपने धन का यहां तक कि कुछ नराधम तो अपनी बीवियों का भी इस्तेमाल कर लेते है। मशहूरी भी एक नशा है लेकिन कभी कभी मशहूरी सजा भी हो जाती है। ऐसे मशहूर होने से तो गुमनाम जिन्दगी भली है।

१३) ऊंचे महल-चौबारे तो बहुत हैं जिन पर सजावट कर रखी है, पर इन्हें देखकर क्या लाभ। यह सब होते हुए भी व्यर्थ हैं यदि मानव सच्चे हृदय से गुरु का नाम नहीं लेता, उसकी साधना नहीं करता, उससे ज्ञान-ध्यान धारण नहीं करता। बिना गुरु ज्ञान के तो न जाने कब यम के ग्रास बन जाएं। रहने के लिए बहुत ही ऊंचा, सुंदर, आलीशान महल बनवाया। उसमें सुनहरी कलियां ढलवाईं (नक्काशी करवाई) किंतु यह सब व्यर्थ ही गया। वह महल अब खाली ही पड़ा है और उसको बनवानेवाले आज सभी श्मशान में पहुंच चुके हैं। अर्थात जो कुछ भी हमारे पास है वह सब यहीं रह जाता है। काल तो खाली हाथ ही ले जाता है। क्यों इतना सुन्दर महल बनवा रहे हो? क्यों चूना-मिट्टी लगाकर इतना श्रम कर रहे हो ? यह पापी काल कुछ नहीं छोड़ेगा। जब वह सुनेगा तो दौड़ता चला आएगा और तब सबकुछ नष्ट हो जाएगा। अत: वास्तविकता को पहचानो, सत्य में जीना सीखो और अपने कर्मों को सुधार लो। जहां संगीत के सात

स्वरों की लहरियां गूंजती थीं और घर-घर में इसके मधुर राग बजते थे, वह मंदिर (मानव, महल आदि) अब खाली हैं। वहां पर कौओं का वास है अर्थात सबकुछ काल के साथ समाप्त हो गया और वह मकान, महल आदि खण्डहर बन गए। संसार के सारे महल दुमहले बेकार हैं। मनुष्य ऊंची-ऊंची इमारतें क्यों बनवाता है। घर (कब्र) तो तेरा साढ़े तीन हाथ का ही रहेगा, अधिक से अधिक पौने चार हाथ का हो जाएगा। जब तक जीवन है तब तक इन भवनों में रह सकेगा, फिर तो कब्र ही तेरा घर होगा।

१४) अपने आपको कभी मत गिराओ; याद रखो कि गिरे हुए मकानों की ईट तक लोग ले जाते हैं, लेकिन खड़ी इमारत को कोई हाथ तक नहीं लगाता।

१५) प्यासों की आवाज सहायता के लिये पहाडों में गुंजती है लेकिन जिसने अपनी सूझबूझ और साहस द्वारा अपनी प्यास बुझाली, वह आगे बढ़कर चलने में समर्थ हो गया।

१६) गुरुकुल भारतीय मन्दिरों से भी पवित्र, ईश्वर से भी अधिक गरिमामय और सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल होने का दावा रखते है। गुरु-शिष्य की परम्परा को पल्लवित कर समाज को श्रेष्ठता से संवारने का कार्य करते है। राज्य रचे जाते है, कला पनपती है, व्यक्तित्व निखरता है, चरित्र गढ़े जाते है। इनमें कदम रखने से पहले राजाओं के ताज उतर जाते है। गुरुकुल वस्तुत: भारत की एक ऐतिहासिक सर्वोच्चता का प्रतीक है। लेकिन वर्तमान गुरुकुल ऐसे नहीं रहे और अपनी महिमा खोते जा रहे है।

१७) कभी कभी जाम छलकाने में तो कोई बुराई नहीं लेकिन पैमाने के साथ हद से अधिक मोहब्बत भी अच्छी नहीं। खास तौर पर अगर आप युवा अविवाहित है तो अंगूर की इस बेटी से तौबा करना ही बेहतर है। अधिक पीने से आप अपने अच्छे भले पारिवारिक जीवन और सन्तानों से वंचित रह जावोगे और खुशहाल परिवार को गंवा बैठोगे। ऐसी दुर्व्यसन आदत पुरुषों को नपुसंक बना सकती है। अधिक शराब का सेवन करने से पुरुष की प्रजनन क्षमता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

१८) यह सच है इस दुनिया के बाजार में सब कुछ बिकता है और जो बिक सकता है वो खरीददार नहीं हो सकता। इस बिकाऊ दुनिया में क्या नहीं बिक रहा है। आदमी बिक रहा है। आदमियत बिक रही है। माल बिक रहा है। नेता बिक रहा है, अधिकारी बिक रहा है, पति बिक रहा है, पत्नी बिक रही है। लडका बिक रहा है। लडकी बेची जा रही है। ईमानदारी तो बेचारी चीज ही क्या है, आज के जमाने में तो अस्मत बिक रही है। आज जरूरत है आदमी के पास रुपिया होने की। जिसके पास है रुपिया वह है दुनिया का सबसे बडा खरीददार।

१९) मैं अभी तक के सभी धर्मों को स्वीकार करता हूं और उन सब की पूजा करता हूं, मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ईश्वर की उपासना करता हूं, वे चाहे किसी भी रूप में उपासना करते हों। मैं मुसलमानों की मस्जिद में जाऊंगा, मैं ईसा मसीह के सामने घुटने टेककर प्रार्थना करूंगा, मैं बौद्ध मन्दिरों में जाकर बुद्ध और उनकी शिक्षा की शरण लूंगा। मैं जंगल में जाकर हिन्दुओं के साथ ध्यान करूंगा, जो हृदयस्थ ज्योतिस्वरूप परमात्मा को प्रत्यक्ष करने में लगे हुए। यदि ईश्वर है, तो हमें उसे देखना चाहिए, यदि आत्मा है, तो हमें उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति कर लेनी चाहिए, अन्यथा उन पर विश्वास न करना ही अच्छा है। ढोंगी बनने की अपेक्षा स्पष्ट रूप से नास्तिक बनना अच्छा है।

२०) किसी धर्म को इसलिए स्वीकार मत करो कि वह सबसे प्राचीन है। उसका सबसे प्राचीन होना उसके सच्चे होने का कोई प्रमाण नहीं है। कभी-कभी पुराने से पुराने घरों को गिराना उचित होता है और पुराने वस्त्र तो बदलने ही पड़ते हैं। यदि कोई नई से नई सूझ विवेक की कसौटी पर खरी उतरे, तो वह उस ताजे गुलाब के फूल के समान उत्तम है जिस पर चमकती हुई ओस के कण शोभायमान हो रहे हों। किसी धर्म को इसलिए स्वीकार मत करो कि वह सबसे नया है। सबसे नई चीजें समय की कसौटी पर परखी न जाने के कारण सदा श्रेष्ठ नहीं होतीं। किसी धर्म को इसलिए मत स्वीकार करो कि उस पर विपुल जनसंख्या का विश्वास है, क्योंकि विपुल जनसंख्या का विश्वास तो वास्तव में शैतान अर्थात अज्ञान के धर्म पर होता है। एक समय था कि जब विपुल जनसंख्या गुलामी की प्रथा को स्वीकार करती थी, परन्तु यह बात गुलामी की प्रथा के उचित होने का कोई प्रमाण नहीं हो सकती। किसी धर्म पर इसलिए श्रद्धा मत करो कि उसे थोड़े-से-इने-गिने लोगों ने स्वीकार किया है। कभी-कभी अल्प जनसंख्या किसी ऐसे धर्म को अंगीकार कर लेती है, जो अन्धकारमय और भ्रान्त होता है। किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि वह किसी त्यागी महात्मा द्वारा, ऐसे मनुष्य द्वारा चलाया गया है, जिसने सब कुछ त्याग दिया है। क्योंकि हमें कई ऐसे त्यागी मिलते हैं जो सब कुछ त्याग तो देते हैं, पर जानते कुछ भी नहीं। वे कट्टर धार्मिक मतवाले होते

हैं। किसी धर्म को इसलिए अंगीकार मत करो कि वह युवराजों और राजाओं द्वारा चलाया गया है। राजाओं में प्राय: आध्यात्मिक ज्ञान का काफी अभाव रहता है। किसी धर्म पर इस कारण श्रद्धा मत करो कि वह किसी बड़े भारी प्रसिद्ध मनुष्य का चलाया हुआ है। सर आइजक न्यूटन एक बहुत प्रसिद्ध मनुष्य हुए हैं तो भी उनकी प्रकाश-संबंधी निर्गम-कल्पना असत्य है।

२१) मनुष्य व्यर्थ ही घड़ी, मुहूर्त आदि के चक्कर में पड़े रहते हैं। इस संसार को जाता हुआ देखकर मैं कहता हूं कि घड़ी और मुहूर्त सबका निर्माता, सृष्टिकर्ता ईश्वर है, अन्य कोई नहीं। सारे वर्ष, महीने, दिन, पल, घड़ी, मुहूर्त प्रभु ने ही तो बनाए हैं।

२२) खुशी के फूलों से इतना भी प्यार मत करो कही उनकी पंखुडियों से गम के आंसू टपकने लगे।

२३) जो लोग बिल्लियों के साथ खेलते है तो उन्हें खरोचों के लिये भी तैयार रहना चाहिये।

२४) संगीत के पीछे पीछे खुदा चलता है। जिस दिल के दरिया को संगीत की बयां तरंगित कर देती है तो समझना चाहिये कि उस दिल से तो शैतान भी डरता है।

२५) आपदाये विकराल रूप में आती है और इन्सान के सब्र का इम्तिहान लेती है इस भीषण स्थिति में भी वह अपना हौसला कायम रखे तो फिर वीराने को चमन में बदल सकता है। विज्ञान की इतनी प्रगति के बावजूद प्रकृति की हलचलों पर उसका कोई वश या नियन्त्रण नहीं है। कुदरत के कहर के सामने मानव असहाय हो उठता है।

२६) जब मनुष्य का युद्ध अपने आप के साथ आरम्भ होता है, तब उसका मूल्य होता है। युद्ध ऐसा धन्धा है जिसमे मनुष्य सम्मानपूर्वक रहना भी चाहे तो नहीं रह सकता है। संसार में आज तक अच्छा युद्ध और बुरी शान्ति कभी नहीं हुई।

२७) जो कल किसी गुमनाम अंधियारे में दफन हो चुका है उसे जिंदा करने से क्या हासिल होगा ? प्राय: बीते कल की कड़वी-खराब बातें ही हर आदमी को याद आती हैं और वह उसी से दु:खी होता रहता है।

२८) गलत आदमियों को, गलत कामों को और गलत आदतों को हवा (तूल) मत दो। यह वो आग है जब फैलती है तो इसकी चपेट से तुम भी बच नहीं पावोगे। इसकी गिरफ्त इतनी तेज और मजबूत है कि तुम्हे भी नहीं छोडेगी और जला देगी।

२९) कोई कितना भी करीब क्यो न हो, समय के साथ सभी को चलना पड़ता है। अतीत भूलता नही, मगर वर्तमान तो है और उसकी अपनी जिम्मेदारियां है। यदि आपको आगे आने वाले अवसरों का निमंत्रण मिल रहा है तो उन्हे स्वीकारे और अवसरों का अनुभव ले। याद रखे यहां सिर्फ आप अकेले नहीं और भी है। संबंधों में कभी दर्द तो कभी खुशी मिलना लाजिमी है। आंसू कमजोरी का नहीं, ताकत का परिचायक होते है। इसका अर्थ है आप दुख का अनुभव कर सकते है और यह कम बड़ी बात नही। खुद को समय और स्थान दे ताकि अतीत को स्वीकार सके, उसे भूलाने के बजाय यथार्थ का सामना करने की कोशिश करे। क्योंकि जब आप सच्चाइयों से भागते है तो वे और तेजी से पीछा करती है।

३०) आदमी के दिन बदलते है, आदमी का दिल नहीं बदलता। हमारा फैशन बदलता है, हमारा जीवन नहीं बदलता। सुख के स्वांग बदलते हैं, सुख की मांग नहीं बदलती। हुस्न की रविश बदलती है, हुस्न की कशिश नहीं बदलती। धर्म के रस्म बदलते हैं, धर्म का मर्म नहीं बदलता। रस के लिबास बदलते है, रस की प्यास नहीं बदलती। प्रेम की राह बदलती है, प्रेम की चाह नहीं बदलती और समाज के पहलू लाख बदलें, जिंदगी की आरजू नहीं बदलती।

३१) अच्छी पत्नी जिसे मिल जाय तो समझो दुनिया की सारी भलाई उसे मिल गई। शौहर के ईमान की मदद करने वाली हो तो दुनिया जन्नत लगने लगती है। शौहर की बीवी ईमानदार और शौहर की मदद करनेवाली हो तो सबसे बडी दौलत है।

३२) जब कोई शौहर अपनी बीवी को बुलाये और वह न आये और शौहर रात भर उससे नाराज रहे तो फरिश्ते सुबह तक उस पर लानत और मलामत भेजते रहते है।

३३) जो औरत अपने शौहर से दिन ब दिन नई-नई फरमाईश करती है और इन्हे लेकर झगडती रहती है, उस पर खुदा भी लानत भेजता है।

३४) औरत एक खुदाई तोहफा है, जो जन्नत की कमी पूरी करने के लिये परवरे दिगार ने हमें दिया है।

३५) जो औरत घरवालों की खिदमत करे, वही उस घर की मालकिन होती है और शौहर के दिल की भी वही औरत मालकिन होती है।

३६) पत्नी के हाथ में रिश्तों के घर की वह कुंजी होती है जिससे रिश्तों के सभी बन्द दरवाजे भी खुल जाते है।

३७) अधिकतर औरतों को यही लगता है कि दुनिया में सबसे ज्यादा समझदार वह खुद है और अगर दुनिया में कोई सबसे कम समझदार व्यक्ति है तो उसका पति है।

३८) आसमान का हुस्न सितारों से है जबकि औरतों का हुस्न उसकी काली जुल्फों से। हुस्न खामोश भी हो तो बोलता है।

३९) अच्छी औरत सेहतमन्द बीबी आदमी की बेहतरीन दौलत होती है। दुनिया में शरीफ बीवी अपने शौहर के लिये कीमती नैमत है। मर्द का बेहतरीन खजाना पाक दामन बीबी होती है।

४०) औरत पुरुषों से अधिक बुद्धिमती होती है क्योकि वे जानती कम है और समझती अधिक है।

४१) शौहर को बीवी से ज्यादा खूबसूरत नहीं होना चाहिये या कम से कम औरत को मर्द के हुस्न के बराबर हसीन होना चाहिये।

४२) आंसू औरत का सबसे कीमती और अमूल्य आभूषण गहना है और मर्द उसके हाथ का सबसे सस्ता खिलौना है।

४३) किसी महिला की महज सुन्दरता नहीं बल्कि उसकी अच्छाई ही किसी के प्रेम को जीत सकती है। हर गोली का कोई न कोई लक्ष्य अवश्य होता है।

४४) जो शख्स पाक दामन औरत पर तोहमत लगाता है उसे सलाम मत करो।

४५) जिस घर की औरत दु:खी रहे वह घर जल्दी ही तबाह हो जाता है।

४६) औरतों का धन और हक राजी खुशी दे देना चाहिये। जो औरत खुद अपनी रजा मन्दी से यह छोड दे तो और बात है तब इसे शौक से खुश होकर मौज उडाओ। ना पाक और हराम का धन और हक अपने धन के साथ मिला कर मत खाओ नहीं तो यह बहुत बडा गुनाह होगा जो कभी भी खुदा की अदालत में मुआफ नही किया जायेगा।

४७) लानत है उस शख्स पर जो लडकी को जलील करता है और लडकी को लडके से कम समझने की भूल करता है।

४८) दौलत और औरत से किसी हद से अधिक मुहब्बत खुद की अक्ल को अन्धा कर देती है।

४९) औरत वहां पर मर्दों के पैर की जूती है जहां उसे पति या पिता की सख्ती मे उसे बन्द नजर मे कैद रहना पडता हो, वहां नारी विकास की कोई सम्भावना ही नहीं होती।

५०) लाख कोशिश व प्रतिबन्धों के बाबजूद भी दहेज रूपी दानव लडकियों का पीछा नहीं छोडता है। आये दिन नव-विवाहित लड़कियों के विषय में दिल-दहलाने वाली बातें सुनने को मिलती है। सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से विवाह करना लडकियों के लिये अनिवार्य है लेकिन इतना भी नहीं है कि सब कुछ जानते हुये भी दहेज लोभी लडके से शादी करवा कर उसे मौत के मुंह में डाल दे। आखिर लडकी को इतनी बेबस, लाचार, मजबूर, असहाय की संज्ञा क्यों दी जाती है ? शान्त रहना तो महिला का भूषण है लेकिन अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिये चण्डी बन जाना भी अनुचित नही है। अब तो दहेज की इस बिकट समस्या का निदान तभी सम्भव है, जब हर मां-बाप अपने बेटी को खूब पढ़ा लिखा कर इस योग्य बना दे कि वह अपने पैरों के बल खडे होने में समर्थ हो जाये। बेटी किसी पर आश्रित न हो बल्कि वह लोगों को आश्रय देने लायक बन जाये।

५१) समर्थ स्वामी के रहते नारी अपनी रक्षाका स्वयं उद्योग करे, यह स्वामीके पौरूषपर अविश्वास है।

५२) किसी महत्वपूर्ण या भेद भरी बात का उल्लेख स्त्रियों से नहीं करना चाहिये। उनके मन में गुप्त बात नहीं रह सकती। वे यह सब किसी न किसी से जरूर कह डालती है।

५३) प्रिय नारी वह है जो अपनी कमजोरियां को जानकर कुढ़ती नहीं है, उसमें वह सुधार का प्रयास करती है।

५४) एक लड़की, एक पत्नी, एक मां विविध रूपों से सजी है स्त्री की दुनिया, जिसका हर रूप वंदनीय है।

५५) नारी क्षण भर की पत्नी व उम्रभर की मां होती है।

५६) जो नारी पिता की भली बेटी नहीं है, वह किसी की भली पत्नी भी शायद ही बन सके।

५७) सती को वारित करने की शक्ति तो सृष्टि में भी किसी के पास नहीं होती।

५८) सतीत्व एक साधना है, आवेश नहीं है। आवेश क्षणिक होता है पर साधना तो सतत चल कर जीवन का निर्माण करती है। जिन लोकोत्तर नारियों के जीवन में यह सतीत्व की सतत साधना चलती रही है, पति का परलोक गमन उनमें शोक नहीं जगाता बल्कि

उनमे एक आत्मोसर्ग की दिव्य प्रेरणा देता है। उस समय उनका अन्त:करण अद्‌भुत स्थिरता और उज्ज्वलता प्राप्त कर लेता है, उनका देह तक दिव्य हो जाता है।

५९) नारी का सत्कार उसे पर्दे में रखना नही है। उसका शील, उसकी सच्चरित्रता ही उसका पर्दा है। कष्ट में, युद्ध में और स्वयंवर में पर्दे का त्याग दोष नहीं है।

६०) नारी की सफलता है मातृत्व प्राप्त करने में। जब उसके उदर में सन्तान गर्भाधारण कर लेती है उसका दोहद-उसके मन में उठने वाली हर इच्छा पूर्ण की जानी चाहिये। अन्यथा सन्तान में अतृप्त कामना की कुंठा उसमें अनेक विकृतियों का रूप ले सकती है। चिड़चिड़ापन से लेकर उन्माद तक तथा अनेक अस्वाभाविक असंयम इसके परिणाम होते है।

६१) नारी को शिक्षित व सुसंस्कृत बनाने से बडा कोई दूसरा धर्म नही है।

६२) झगड़े के दौरान स्त्री के संस्कारों का पता चलता है।

६३) स्त्रियों के सौन्दर्य की प्रशंसा करना आसान है लेकिन उनकी वेदना समझ पाना बहुत मुश्किल है।

६४) जगत की हर स्त्री के मन में दो मनोकामना होती है, एक तो अच्छे पति की पत्नि बनना व दूसरा संस्कारी पुत्र की जननी बनना।

६५) इन्सान की सबसे बडी दौलत है उसकी जुबान जो किसी को बुरा न कहती हो और उससे बढ़कर दौलत है उसकी नेक अखलाक बीबी जो ईमानदार और शौहर की मदद करने वाली हो।

६६) योग्य कन्या आकर आपके घर को स्वर्ग बना सकती है जबकि अयोग्य कन्या आजाये तो आपके स्वर्ग जैसे घर को नरक में तबदील करने में देर नहीं लगती है।

६७) पद्मिनी आदि रानियां जौहर व्रत में जलकर भस्म हो गई, किन्तु वे रूप लम्पट अलाउद्दीन खिलजी के स्पर्श से अपनी भस्म को भी अपवित्र नहीं करना चाहती थी, इसलिये वायुदेव से उन्होंने प्रार्थना की कि हे वायुदेव, हमारी राख पृथ्वी से आकाश में उडा दो जिससे हमारी राख को भी यह नराधम छू न सके और ब्रह्मा से जाकर कह दो कि यदि किसी नारी को रूप दो तो शक्ति भी दो और पति मिले तो पति के चरणों में अटूट भाव भक्ति दो।

६८) स्त्री भक्ति और शक्ति की प्रतीक होती है। शक्ति और भक्ति की प्रतीक तो स्त्री होती ही है साथ-साथ वह युक्ति की भी प्रतीक होती है। किसी के मन को कैसे वश में किया जाए, कैसे बदल दिया जाए, कभी प्यार से कभी फटकार से काम लेना यह कला पुरुषों में नहीं होती, लेकिन यह काम कैसे किया जाए यह महिलाएँ भली भाँति जानती हैं। उनका यह वात्सल्य परमात्मा की दी हुई अनमोल देन है। इस वात्सल्य का उपयोग यदि वह समस्त संसार के बालकों को संस्कार देने के लिए करेगी तो वह विश्वमाता कहलाएगी।

६९) नारी प्रकृति का ही दूसरा रूप है। नारी की रचना सृष्टि का सर्वोत्तम उपहार है। सृष्टि को उत्तम तरीके से संचालित करने के लिये नारी का होना अत्यन्त आवश्यक है। नारी और प्रकृति दोनों का आकर्षण करामाती है।

७०) पत्नी तो अपनी पसन्द से मिल सकती है लेकिन एक अच्छी मां पुण्य से और भाग्य से ही मिल सकती है।

७१) नर्म लहजे में बातचीत करना औरत को जेब देता है। औरत का ऊँची आवाज में या कठोर लहजे मे बातचीत करना ठीक नहीं, असभ्यता है। सेहतमन्द औरत ही सेहतमन्द मुआशरे की बुनियाद रख सकती है। औरत खुश मिजाज और खुश अखलाख होनी चाहिये। औरत ऐसी हो कि घर के लोग घर की औरत से मिलकर खुशी महसूस करे। औरतों की नर्म मिजाजी घर के अलावा घर से बाहर नुकसानदायी है।

७२) आर्य धर्म में नारी का अपहरण करने वाले के लिए मृत्युदण्ड की सजा है। यदि कोई नारी अपनी इच्छा से किसी पुरुष को अपना पति स्वीकार कर लेती है, उसे उस पुरुष के साथ जाने का पूरा अधिकार है।

७३) वह आदमी अवश्य ही मर जाएगा। वह संकट में भी अवश्य पड़ेगा जिसकी पत्नी चरित्रहीन होती है।

७४) प्राय: देखा गया है कि औरत चाहे कितनी ही सामर्थ्यवान हो, उसे हीनता की ही संज्ञा दी जाती है जो कदापि उचित नहीं है। प्रत्येक दृष्टि से स्त्रियों का विकास पुरुषों से अधिक होता है। जहां नारी का मान सम्मान होता है वहां देवताओं का वास होता है।

७५) भली स्त्री से ही घर की रक्षा होती है। घर सदा तीर्थ के समान है। गृहस्थाश्रम ही सब धर्मों का मूल है। वस्तुत: गृहिणी ही गृह है।

वास्तव में घर की इमारत को घर नहीं कहते। गृहिणी से ही घर होता है। जिस घर में गृहिणी न हो तो वह घर वन के ही समान है।

७६) नारियों की त्रुटियों के मूल में उनकी दुर्बलता है।

७७) लौकिक पुरुष का यह अत्यन्त निर्बल बहाना है कि नारी का सद्‌गुण सच्चरित्रता और आज्ञाकारिता है। नारी की उन्नति और अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति और अवनति निर्भर है। सम्पूर्ण महान वस्तुओं के मूल मे नारी का वास होता है।

७८) नारी या तो प्रेम करती है या फिर घृणा ही। इसके बीच का और कोई मार्ग होता है उसे ज्ञात ही नहीं। स्त्रियां महान आघातों को क्षमा कर देती है किन्तु तुच्छ चोटों तक को नहीं भूलती है। बदला लेने और प्रेम करने में नारी पुरुष से अधिक निर्दयी और भारी होती है।

७९) पति के लिये चरित्र, सन्तान के लिये ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया तथा जीव मात्र के लिये करुणा संजोनेवाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है। प्रेम किस प्रकार किया जाता है इसे केवल स्त्रियां ही बेहतर तरीके से जान सकती है।

८०) हर कामयाब मर्द के पीछे एक औरत का हाथ होता है।

८१) सौन्दर्य से नारी अभिमानिनी बनती है, उत्तम गुणों से उसकी प्रशंसा होती है और लज्जाशील होकर वह देवी बन जाती है। नारी अपने यौवन काल में गृह देवी, मध्यकाल में सच्ची साथी और वृद्धावस्था में परिचारिका का काम देती है।

८२) जिस समय स्त्री का हृदय पवित्रता का आगार बन जाता है, उस समय उससे कोमल कोई वस्तु संसार में नहीं रह जाती। काटों भरी शाख को फूल सुन्दर बना देते है गरीब से गरीब आदमी के घर को लज्जावती स्त्री सुन्दर और स्वर्ग बना देती है।

८३) केवल घर में रहने से कोई गृहस्थ नहीं होता। पत्नी के साथ रहने से मनुष्य गृहस्थ कहलाता है। जहां भार्या है वही घर है। भार्याहीन गृह तो वनतुल्य है।

८४) नारी पुरुष की छाया मात्र है। उसको पाने का प्रयास करो तो वह दूर भागती है और यदि उससे पलायन करो तो वह तुम्हारा अनुसरण करती है। नारी समाज की, सामाजिक जीवन की परम अपेक्षित अप्रसन्नता का कारण समझो और यथा सम्भव उससे बचने का प्रयास करो।

८५) ईश्वर के पश्चात हम सर्वाधिक ऋणी नारी के है प्रथम तो जीवन के लिये फिर उसको जीने योग्य बनाने के लिये। स्त्री और पुरुष विश्वरूपी अंकुर के दो पत्ते है। एक गुणवती नारी अपने पति के लिये किरीट के समान है।

८६) सुयोग्य पति पत्नी को सम्मान की अधिकारिणी बना देता है। पत्नी हर समय क्रोध करती रहे तो उसे छोड देना ही सुख कर है। पतिव्रता स्त्री के लिये उसका पति ही सब कुछ है, दूसरा उसको कुछ भी अच्छा नही लगता जैसे सिंह का शावक जन्म सेही घास नहीं खाता है।

८७) जहां नारी का सम्मान होता है वहां देवता भी प्रसन्न रहते है। जिस परिवार में नारी का सम्मान नहीं होता, वह पतन और विनाश के गर्त में लीन हो जाता है। जिस घर में स्त्रियों को सम्मान होता है वहां देवताओं का वास होता है। जहां उनका सम्मान नही होता है, वहां समस्त यज्ञ, कर्मकाण्ड आदि निष्फल होते है। स्त्रियों की अवस्था में सुधार न होने तक विश्व के कल्याण का कोई मार्ग नहीं।

८८) अच्छे आदमियों के लिये मन वांछित मित्र की प्राप्ति ही सबसे बड़ी उपलब्धि होती है। जीवन में एक सच्चा मित्र मिल गया तो बहुत है, दो अधिक है और तीन तो मिल ही नहीं सकते। पत्नी से बढ़कर सच्चा और सदाबहार मित्र कोई होता ही नहीं है।

८९) स्त्रियां घर की लक्ष्मी कही गई हैं, वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, पूजा के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं अत: इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

९०) सुन्दर रूप और यौवन वाली नारी अबूझ पहेली के समान होती है। उसके प्रेम में पड़कर जब विरही अपनी व्यथा उसके सामने प्रकट करता है तो वह इस तरह के भाव दर्शाती है, जैसे कुछ समझती ही न हो।

९१) प्रेम की तानी बहकने यानी टूटने न पाए, इसके लिए नारी अपने यौवन की सारी मधुरता और लावण्य मुख पर समेटकर प्रियतम का मन बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

९२) नारी पर आसक्त व्यक्ति को उसके रूप के सिवा इधर-उधर का कुछ भी दिखाई नहीं देता। रूप-गर्विणी नवयौवना के लिए किसी पुरुष को अपने वश में कर लेना कोई बड़ी बात नहीं है।

HHH(८०)HHH

९३) जब व्यक्ति स्त्री के सौन्दर्य से भ्रमित हो जाता है और मन चौंधिया जाता है, तब काम मनुष्य के हृदय पर बादलों सा छा जाता है।

९४) अच्छी स्त्री से विवाह करना जीवन के तूफान में बंदरगाह की तरह है जबकि ठीक इसके विपरीत बुरी स्त्री से विवाह करना बंदरगाह में तूफान की तरह है।

९५) यदि कोई नारी परिवार की कटु परिस्थितियों का आघात चुपचाप झेलती जा रही है और मन ही मन सुलगती रहती है तो भीतर सुलगता हुआ धुंआ भी कभी किसी विशेष क्षण में भयानकता के साथ विस्फोटक रूप में प्रकट होता है और गहरा दूषित प्रभाव अंकित कर जाता है।

९६) मृदुल स्वभाव की गृहिणियां ही परिवार के सभी सदस्यों से उत्तम व्यवहार करती है। प्रेम का शासन सदा कठोर शासन से अधिक शक्तिशाली होता है। कठोरता से तो विरोध और दुर्भाव ही पनपता है।

९७) संसार में बिना परिश्रम के प्रगति सम्भव नहीं है। आलसी पुरुष और आलसी स्त्री समाज के लिये हर प्रकार से हानिकारक है। आलस्य का विष शरीर को तो विनिष्ट करता ही है मन मस्तिष्क को भी प्रमादी व पंगु बना देता है।

९८) परिश्रम के गुण से वंचित युवती कभी भी सुयोग्य गृहिणी नहीं बन सकती उसे परिवार बसाने की कल्पना छोड ही देनी चाहिये। गृह कला एवं गृह व्यवस्था में नारी की प्रवीणता देखी जाती है। जो नारी गृह प्रबन्ध में रुचि न रखती हो व पारिवारिक दायित्वों को सम्भाल नहीं पायेगी। पति की आर्थिक कठिनाईयों को भी गृह कला में निपुण नारी ही समझ और समझा सकती है।

९९) गुण सम्पदाओं में सन्तुलन और सहिष्णुता दाम्पत्य जीवन की आधारभूत आवश्यकता है, रूपगर्विता या ज्ञान-गर्विता नारी भी गृहस्थ जीवन में सफल नहीं हो पाती है।

१००) अत्यन्त क्रोधी, नपुंसक, सदा दण्ड देनेवाले, अनुराग-रहित, अधिक प्रवास में रहने वाले, अत्यन्त दरिद्र रोगी, सदा पर स्त्री में आसक्त रहने वाले पति को देखकर स्त्री विरक्त हो जाती है अथवा अन्य पुरुष का आश्रय पकड़ लेती है। अत: इन दुर्गुणों को यत्नपूर्वक छोड़कर मनुष्यों को सदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये।

१०१) अपनी तरुणी स्त्री को स्वतन्त्र करके (इच्छानुसार रहने की आज्ञा देकर) अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहिये क्योंकि पर पुरुषों के साथ रहने से साधारण स्त्रियां भी अनर्थ का कारण होती हैं फिर तरुणी स्त्रियों के विषय में क्या कहना है अर्थात् वे सबसे अधिक अनर्थ का कारण है।

१०२) झूठ बोलना, साहस, (सहसा कोई कार्य कर बैठना), माया (ढोंग रचना), मूर्खता, अत्यन्त लोभ, अपवित्रता, निर्दयता, दर्प, (अहंकार)- ये आठ स्वाभाविक दुर्गुण स्त्रियों के होते हैं।

१०३) गुणवती रूपवान भार्या (पत्नी) के संग मित्रता का आचरण करने में जो सुख है, वह उसे पत्नी या प्रेमिका बनाकर रखने में कदापि नहीं है। (सुन्दर गुणवती पतिव्रता स्त्री से जो सुख मित्रता करने मात्र से मिल जाता है, वह सुख उसे पत्नी या प्रेमिका बनाने में नहीं मिलता यह स्मरण करने योग्य बात है।)

१०४) जो स्त्रियां बात एक से करती हैं, कटाक्ष से दूसरों को देखती हैं और हृदय से किसी तीसरे को चाहती हैं। ऐसी स्त्री की प्रीति या प्रेम किसी एक से नहीं होता। जो मूर्ख पुरुष मोहवश यह समझता है कि अमुक कामिनी मुझ पर मोहित हो गयी है, वह उसी के वश में होकर खिलौने की चिड़िया के सामने नाचने लगता है।

१०५) बुद्धिमान पुरुष रूपवती न होने पर भी कुलीन कन्या से विवाह करना श्रेष्ठ समझता है, किन्तु नीच कुल की रूपवती तथा सुशील कन्या से विवाह नहीं करता। क्योंकि विवाह अपने समान कुल में ही करना उचित होता है।

१०६) अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध उपवास-व्रत करने वाली पत्नी अपने पति की आयु को कम करती है। ऐसी स्त्री अन्त में घोर नरक में जाती है।

१०७) वही स्त्री सचमुच स्त्री है, जो पवित्र और कुशल हो। जो पतिव्रता हो, जिसे अपने पति से प्रेम हो, जो पति से सत्य बोले। ऐसी स्त्री पत्नी बनने योग्य तथा प्रिय होती है।

१०८) संकट के लिए धन की, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। धन और स्त्री से हर समय सावधान रहना चाहिए। यह कभी

भी धोखा दे सकते हैं।

१०९) कोई भी स्त्री चाहे कितनी भी वृद्ध क्यों न हो जाए, वह सदैव अपने को युवा ही समझती है तथा सदैव युवा बने रहने का यत्न करती है।

११०) स्त्री रजस्वला होने के पश्चात् कंवारी की भांति पवित्र हो जाती है। अत: स्त्री से रजस्वला होने के बाद ही सम्बन्ध बनाना उचित है। कुसमय बनाया गया सम्बन्ध पुरुष की आयु कम कर देता है।

१११) संसार के सारे पाप, लोमहर्षक घटनाएं, युद्धादि स्त्री के कारण ही हुए हैं। इसी कारण बुद्धिमान व्यक्ति स्त्री के प्रपंच में नहीं पड़ते हैं। परिवार के समस्त झगड़ों की जड़ केवल स्त्री है। अत: बुद्धिमान पुरुष कभी भी स्त्री के कहने पर नहीं चलते।

११२) मूर्ख पुरुष स्त्री के चेहरे की सुन्दरता और शरीर की बनावट देखकर उस पर आसक्त हो जाता है। परन्तु वह इस बात को भूल जाता है कि हर स्त्री का सुख एक-सा ही होता है। भ्रम में रहकर समझदार व्यक्ति एक ही स्त्री से सम्बन्ध रखना उचित समझते हैं।

११३) रूपवती स्त्री सच में क्या है ? मांस, चर्बी, रक्त और हड्डियों का समूह मात्र है और मूर्ख पुरुष यौवन के इसी महानर्क में गोते लगाता है। अत: इससे अपनी रक्षा करना उचित है।

११४) स्त्री परमेश्वर से भी अधिक शक्तिशाली और भार उठाने वाली हैं।

११५) स्त्री की प्रीति की डोरी का बंधन बहुत मजबूत होता है। संसार का सबसे बड़ा आकर्षण, सबसे बड़ा चुम्बक, पुरुष को विवेकहीन और पतित बना देने की शक्ति केवल रूपवान स्त्री में होती है।

११६) स्त्रियों का नाम लेना ही आह्लाद पैदा करके चित्त को काम-विकार से युक्त कर देता है। फिर विलास पूर्वक भौहों को नचाने वाली उन स्त्रियों का दर्शन करना क्यों नहीं मन को काम-विकार युक्त कर सकता है। एकान्त में भेट करने में कुशल, कोमल तथा गद्‌गद वचन बोलने वाली एवं अनुराग युक्त कटाव करने वाली स्त्री सभी मनुष्यों को वशीभूत कर सकती है। मन को सदा अपने अधीन रखने वाले मुनियों के भी मन को स्त्रियां कामवासना से युक्त कर देती हैं। बहुत से लोग सदा परस्त्रियों में प्रेम करके नाश को प्राप्त हुये हैं जैसे- इन्द्र, दण्डक्य, नहुष और रावण आदि का उदाहरण प्रसिद्ध है। स्त्रियों में आसक्ति न रखने वालों के लिये ही स्त्री सदा सुख देने वाली होती है, क्योंकि गृह-कार्यों में उसके अलावा अन्य कोई दूसरी सहायता पहुँचाने वाली नहीं हो सकती है।

११७) गृहस्थ को विशेष कठोर और विशेष नरम नहीं होना चाहिए। स्त्री के अधीन रहना महापाप है। ऐसे आदमी का दर्शन भी पाप है। स्त्री पर विशेष विश्वास मत रखो। स्त्री की अधिक बातें न मानो।

११८) ब्रह्मचर्य पालना हो तो स्त्री के केश और मुख की तरफ मत देखो। स्त्री के मुख और केश में काम बसता है। इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि अच्छे विद्वानों को भी विचलित कर देती हैं।

११९) पति को परमात्मा के मार्ग में प्रवृत्त करे, पति के हाथ से सत्कर्म कराये वही सच्ची पत्नी है। पति को केवल भोग विलास मे फँसाये रखे वह पत्नी पति की शत्रु होती है।

१२०) वृद्ध, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन ऐसे पति का अपमान करनेवाली स्त्री यमपुर से भांति-भांति के दु:ख पाती है।

१२१) परायी स्त्री का अपहरण आयु और यश का नाशक होता है।

१२२) नारी सब कुछ सह सकती है, दारूण से दारूण दु:ख, बडे से बडे संकट झेल जाती है, यदि नहीं सह सकती है तो अपने यौवन काल की उमंगों का कुचला जाना। नारी उस नर कुल के समान है जो प्रत्येक वायु वेग के साथ नत हो जाता है किन्तु विशाल झंझावत भी उसे तोड नहीं सकते।

१२३) नारी के रूप-लावण्य को ललचाई नजरों से देखना पुरुष की कमजोरी होती है। ऐसी कमजोरी से बचना चाहिए अन्यथा व्यर्थ में अपमान सहना पड़ेगा।

१२४) दिन मे कम से कम एक बार अपनी पत्नी की तारीफ करना एक अच्छी आदत है इसका कारण भले आप न जानते हो लेकिन पत्नी को गौरव महसूस होता है।

१२५) घर विवाहिता पत्नी (नारी) से ही बनता है, किन्तु केवल नारी ही पर्याप्त नही, उसमें कुछ गुण भी होने चाहिये। उसका स्वच्छ, कुशल और पवित्र होना वाच्छनीय है। पतिव्रता होना भी अनिवार्य है। पति के प्रति प्रेम-भाव न होगा तो वह पत्नी के कर्तव्यों

का निर्वाह नहीं कर सकेगी। मन वचन से सत्य बोलने वाली, अच्छा व्यवहार करने वाली होना भी श्रेष्ठ गुणवती पत्नी के लिये बहुत आवश्यक है। ऐसे उक्त गुणों से सम्पन्न पत्नी को पा कर पति धन्य हो जाता है।

१२६) इस संसार में दो ही क्षमा निष्ठ है एक पृथ्वी और दूसरी स्त्री। क्षमा वीरों का आभूषण है। लेकिन षडयंत्रकारी शत्रु को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिये। स्त्री और पृथ्वी के पास अथाह क्षमाशीलता होती है। मनुष्य और अन्य प्राणी पृथ्वी पर ही रहते है, उसे तोडते है, जोतते है, जलाते है, खोदते है, फोडते है। सभी यातनाये सह करके भी व अन्न अनाज रूप में अपने ऊपर रहने वालों का पालन पोषण करती है। स्त्री भी उतनी ही क्षमावान है। अपने पुत्रों के हजारो अपराध सह कर उसके लिये कष्ट भरा जीवन व्यतीत करती है। पत्नी, मां, बहन के विभिन्न रिश्तों का निर्वाह करती है और यह सब करते हुये कितने ही अपमानों को उदार मन से क्षमा करती है।

१२७) संसार में एक नारी को जो कुछ करना है वह पुत्री, बहन, पत्नी और माता के पावन कर्तव्यों के अन्तर्गत आता है। जीवन में जो कुछ पवित्र और धार्मिक है स्त्रियां उसकी विशेष संरक्षिकाये होती है और बडे जतन से रखती है। पुरुषों मे दृष्टि होती है और नारियों में अन्तर्दृष्टि।

१२८) अहंकार अपने आप में नशा है। अहंकार एक झूठा गर्व है जो जिद और अड़ियलपने में बदलता है। गर्व आनंद और संतुष्टि का वह भाव है जो सही रूप में किसी काम को विनम्रता से किए जाने को कहते हैं। अहंकार से दिमाग चढ़ जाता है जबकि गर्व के भाव से सिर ऊंचा होता है।

१२९) स्त्रियों में किसी बात को छुपाना हो, तो झूठ बोलने से पाप नहीं लगता। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा माताओं का हृदय ज्यादा कोमल होता है। किसी बात को हृदय में छुपा नहीं पातीं।

१३०) यदि पति के जीवन में संकट आवे, तो पत्नी को ज्यादा सज-धज कर किसी उत्सव में सम्मिलित नहीं होना चाहिए। ये प्रोत्सित भर्तृका स्त्री का लक्षण है।

१३१) ये ईंट पत्थर के मकान का नाम घर नहीं है बल्कि गृहणी का नाम ही घर है। स्त्री चाहे तो घर को स्वर्ग बना दे, स्त्री चाहे तो घर को मंदिर, घर को बैकुण्ठ बना दे और स्त्री चाहे तो घर को नरक का अड्डा बना दे। गृहिणी को ही गृह कहते हैं। अपना घर और अच्छी नारी स्वर्ण और मुक्ता के समान हैं।

१३२) मुहब्बत खुदा की दी हुई अमूल्य नैमत है जो सरल सहज हर किसी के नसीब में नहीं होती।

१३३) जिस तरह कडे परिश्रम का नाम कामयाबी है उसी तरह मुहब्बत का नाम इन्सानियत है।

१३४) जिन्दगी के रंग महल में अगर मुहब्बत का रंग न हो तो वह महल वीरान है।

१३५) दुनिया की मुहब्बत सब गुनाहों की जड है।

१३६) मुहब्बत की कश्ती में पहला सुराख शक का होता है।

१३७) मुहब्बत और शक दोनो एक साथ एक दिल में कभी भी नहीं रह सकते।

१३८) मुहब्बत की कश्ती शक के एक तिनके से टूट जाती है।

१३९) मुहब्बत का मातम और मुहब्बत की खुशियों का इजहार आँसुओं से ही होता है।

१४०) दुनिया की मुहब्बत में गिरफ्तार इन्सान को दुनिया दु:ख भी बहुत देती है।

१४१) मुहब्बत आखों से नहीं दिल से देखी जाती है।

१४२) मुहब्बत छीनी या वसूली नहीं जाती है बल्कि अच्छे रवय्यों और चाल चलन से जीती जाती है।

१४३) दिलों को जीतने के लिये तलवारों की जरूरत नहीं पडती बल्कि मुहब्बत की जरूरत है।

१४४) वह दिल जो मोहब्बत और प्यार से खाली है वह उस सीपी की तरह है जिसमें मोती न हो।

१४५) हिसाब किताब करने वाले तो किराये पर मिल सकते है लेकिन सच्ची मुहब्बत करने वाले नहीं।

१४६) मुहब्बत भरी नजरों से देखने वाले जरूरी नहीं है कि शुभ चिन्तक ही हो।

१४७) मुहब्बत एक ऐसी चीज है जो न तो सीखी जाती है और न ही किसी को बताई।

१४८) दौलत की मुहब्बत, मुहब्बत की दौलत को कम कर देती है।

१४९) बात मुहब्बत की हो या नफरत की मौका, वक्त देख कर ही पहल करनी चाहिये।

१५०) दिल मे मुहब्बत का जज्बा पैदा न करो और करो तो उस जज्बे से पूरी दुनिया को अपना बना लो।

१५१) हालात और वाक्यात मुहब्बत पर कभी भी असर नहीं डालते।

१५२) किसी से यह मत पूछो कि वह तुमसे कितनी मुहब्बत करता है बल्कि यह जानो कि तुम किसी से कितनी मुहब्बत करते हो।

१५३) मुहब्बत करो लेकिन उस मुहब्बत को हासिल करने के बारे में कभी न सोचो।

१५४) मुहब्बत वह खुशबू है जो सिर्फ मुहब्बत करने वालों को महसूस होती है।

१५५) मुहब्बत किसी से करो तो सच्ची करो वरना मुहब्बत के नाम को बदनाम मत करो न ही मुहब्बत के दामन पर दाग लगाओ।

१५६) मुहब्बत ही वह कुन्जी है जो दिल और दौलत के दरवाजे खोलती है।

१५७) मुहब्बत मजबूत दिलों को कमजोर बना सकती है। पत्थर दिल पिघला सकती है। मां और बच्चे की मुहब्बत यकीन करने लायक व पुख्ता होती है जबकि मर्द और औरत की मुहब्बत कमजोर और भरोसे मन्द नहीं होती। मुहब्बत एक ऐसा चिराग है जो अन्धेरे से रोशनी की तरफ और रोशनी से अन्धेरे की तरफ ले जा सकता है।

१५८) मुहब्बत पहाडों के दामन से फूटने वाले झरने की तरह अपनी दिशा और अपना रास्ता खुद बना लेती है लेकिन कुछ मुहब्बते दरगाह पर बंटने वाली नियाज की तरह होती है जिन्हे खाली हाथों से अपने कदमों पर खुद चल कर हासिल करना पडता है।

१५९) मुहब्बत की पाकीजगी के लिये शराफत का वुजूद जरूरी है वरना मुहब्बत नफरत में बदल जाती है।

१६०) जो इन्सानों से मुहब्बत करता है वह कभी नहीं मरता। एक हसीन याद बनकर जिन्दा रहता है।

१६१) हम अपनी मर्जी से किसी को चाह तो सकते है लेकिन किसी की आखों में आंखे डालकर यह नहीं कह सकते कि तुम भी हमसे मुहब्बत करो।

१६२) खामोश मुहब्बत उस बहते हुये पुर सुकून दरिया की तरह है जिसकी मौजों में कोई हलचल नहीं होती लेकिन मुहब्बत में इजहार मौजों में हलचल पैदा कर देता है और लहरें बेकाबू हो जाती है।

१६३) हर चीज का खंडहर होना तय है सिवाय मुहब्बत के।

१६४) मुहब्बत खुद अपनी गहराइयों से उस वक्त तक वाकिफ नहीं होती जब तक जुदाई का वक्त ना आ पहुंचे। मुहब्बत कुछ नही देती मुहब्बत के सिवा और न ही कुछ लेती है मुहब्बत के सिवा। मुहब्बत न तो किसी को अपनी मिल्कियत ही बनाती है और न ही किसी की मिल्कियत बन सकती है क्योकि मुहब्बत अपने लिये स्वयं में ही अपने लिये काफी है।

१६५) मुहब्बत हुस्न, जवानी और दौलत से पैदा नहीं होती बल्कि मुहब्बत तो मुहब्बत से पैदा होती है।

१६६) प्यार को परवान चढ़ाने वाले आशिक भूगोल की दीवार फांद जाते है कारण मुहब्बत उम्र की दीवार भी नहीं मानती चाहे वह कितनी ही बडी और ऊंची क्यों न हो।

१६७) कुदरत के नियमों करमों से ढेरों बदलाव हर मोड पर हर मुकाम पर आये है, सब कुछ बदला है मगर आशिकों की मोहब्बत की पहली नजर कभी नहीं बदली। पहली नजर का एहसास सदियों से चलते आ रहा है और आगे भी रहनेवाला है, वक्त के मिजाज के साथ यह नहीं बदलता है।

१६८) माता के सामने मनुष्य को कभी चिन्ता नहीं होती। बुढापा उसे अपनी और नहीं खींच सकता। जो व्यक्ति मां को पुकारता हुआ घर आता है वह निर्धन होने पर भी मानो माता अन्नपूर्णा के पास चला आता है। मां ही सर्वोपरि है।

१६९) स्त्री और पुरुष दोनों को ही पूर्णता की तलाश है। पुरुष पिता बन कर और स्त्री माता बनकर पूर्ण होते है। सम्पूर्ण संसार का वैभव एक ओर और दूसरी तरफ मां। बिना मां के व्यक्ति के लिये तो यह संसार भी गरीब है, भिखारी है।

१७०) मां अपने बच्चे को ईमानदारी व सच्चाई के रास्ते पर चलना सिखाने के लिये कितना ही महान त्याग व बलिदान कर सकती है।

१७१) पिता का फर्ज तो बेटे के फर्ज से बहुत बडा और मुश्किल फर्ज है। वह अपनी औलाद के लिये नेक और अच्छी मां की तलाश

करे। ऐसी शरीफ औरत से शादी करे ताकि उसकी वजह से बेटे को शर्मिन्दगी न उठानी पडे।

१७२) मां जिन्दगी की अन्धेरी राहों मे मीनार की तरह खडी रहती है। मां एक पवित्र हस्ती और वुजूद है। मां ही अपनी ठंडी ठंडी छांव मे औलाद (सन्तान) के सारे गमों को मीठी नींद में बदल देने वाली कुर्बानी और मुहब्बत की महान बेहतरीन मिशाल है।

१७३) माता-पिता के वात्सल्य का विश्वास ही बालक से औद्धत्य करा देता है।

१७४) माताओं के लिये पुत्र के मुख दर्शन के समान संसार में और कोई भी सर्वोत्तम सुख नहीं।

१७५) माता और पिता दोनों में सन्तान के प्रति पिता की अपेक्षा माता का प्रेम अधिक होता है। पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाय, किन्तु माता प्राय: कुमाता नहीं होती।

१७६) पिता के संस्कारहीन होनेपर भी, प्रहलाद जैसे उत्तम संस्कार सम्पन्न बालकों का जन्म हम देखते हैं। लेकिन माता संस्कारहीन हो और पुत्र में संस्कार आ जायें ऐसा उदाहरण इतिहास में नहीं।

१७७) हमारी संस्कृति में माता यह शब्द अत्यंत गौरवपूर्ण है। माता को ही पहला गुरु माना गया है। आज हमारा कर्तव्य यह है कि हम केवल अपने बालक की माता न रहकर अपने आस-पास के बालकों की भी माता बनें। समाज के बालकों को संस्कार प्रदान करने का कार्य करें।

१७८) मानवता और संस्कृति का महाविद्यालय मां के चरणों में ही है। इस जहांन के सारे तीर्थ मां की गोद में है। जो पुत्र के आने की बाट जोहती रहती है, इन्तजार में बेसब्र रहती है वह सिर्फ मां ही है।

१७९) मां से बढ़कर कोई गुरु नही है। पिता से ऊंचा कोई शिक्षक नहीं है। परिवार जैसी कोई पाठशाला नहीं है। समाज से अधिक कोई शिक्षालय नहीं, राष्ट्र से सर्वोत्कृष्ट कोई विश्व विद्यालय नहीं है और प्रकृति से बेहतर कोई विद्यापीठ नहीं है।

१८०) माता का हृदय दया का आगार है, उसे जलाओ तो उसमें से दया की ही सुगंध निकलती है। पीसो तो दया का ही रस निकलता है। यह देवी है, विपत्ति की क्रूर लीलाएं भी उस स्वच्छ निर्मल स्त्रोत को मलिन नहीं कर सकती। पृथ्वी के सारे समुद्र मिलकर आत्मरस रूपी उस निर्झर को नहीं पा सकते जो माता का हृदय चीर कर आँसुओं के रूप में निस्सृत होता है।

१८१) आप मां की सेवा में स्वयं को कुर्बान करके भी अपनी माँ की कोख का नौ महीने का भाड़ा नहीं चुका सकते। जो माँ तुम्हें नौ माह गर्भ में लेकर तथा जन्म देने के बाद तुम्हें हर तकलीफ से बचाती रही, उसके एहसानों को चुकाने के लिये तुम्हें और सौ जन्म भी कम पडेंगे।

१८२) माता का आदर भूमंडल के समस्त तीर्थों की परिक्रमा का फल देता है। जिसने माता का आदर किया समझो, उसने पृथ्वी के सभी तीर्थों का आदर कर लिया। जिसने पिता का आदर किया समझो, उसने ब्रह्मलोक तक के सभी लोकों का आदर कर लिया।

१८३) मानवता और संस्कृति का महाविद्यालय माँ के चरणों में है। दुनिया के सारे तीर्थ माँ के चरणों में है। जो राह देखती है, वह माँ है।

१८४) माँ:- माँ एक खुशबू है जिससे जहां महक उठता है, एक पेड है जिसके नीचे बैठ जाने से जिन्दगी भर की थकान दूर हो जाती है। मां एक दुआ है जो सदा सिर पर छांव बनकर तनी रहती है, एक आह है जो सीधी आसमान की ऊंचाई तक ले जाती है। मां वह रोशनी है जो सीधा रास्ता दिखाती है और एक नगमा है जिसकी गूंज जिन्दगी का एहसास दिलाती है।

१८५) मां वटवृक्ष की जमीन में छिपी जड़ की तरह महान है। वह अपनी संतानों की सफलता के विशाल वटवृक्ष की नींव की तरह होती है। वह खुद सामने नहीं आती बल्कि अपना सर्वस्व होम करके अपने बच्चों को सफल बनाती है।

१८६) मां ममता का जीवित मन्दिर है। जिस घर मे मां है उस घर से किसी को तीर्थयात्रा पर जाने की आवश्यकता नहीं है। मां अपने शरीर, खून, सौन्दर्य व सभी प्रकार की सुख सुविधाओं की बलि देकर बच्चे को जन्म देती है।

१८७) श्रवणकुमार बनो जीवन सफल हो जाएगा। ऐसी पारिवारिक रचना करो कि हर कोई तुम पर गर्व करे और तुम्हारे बाद भी जमाना तुम्हें याद रखे, वरना, एक दिन आतिशबाजी के प्रकाश की तरह पल भर में काल के गर्त में समा जाओगे और क्षणभर में जमाना तुम्हें भूला देगा, बिना किसी गम के।

१८८) यदि प्रतिभा होगी तो उसे उसकी मंजिल अवश्य ही मिलेगी। यदि कोई इस हेतु समझौते की बात कहे तो लात मार देनी

चाहिए ऐसे व्यवहार या समझौते कों। स्वयं अपने जीवन दर्पण को तोडकर अय्याशी के टुकड़ों पर चरित्र का समझौता करके शोहरत हासिल करनेवाले अपनी ही नजरों में गिर जाते है एक दिन।

१८९) जब पक्षी अपना घोंसला छोड़कर चला जाए तो समझ जाना चाहिए कि आंधी आनेवाली है, चीटियां अगर कतार में अन्न ढो रही हों तो इसका मतलब है बरसात होनेवाली है। समुद्र में अगर मछली न हो तो समझ लेना चाहिए कि तूफान आनेवाला है लेकिन हम प्रकृति को ज्यादा महत्व नहीं देते।

१९०) अगर किसी फकीर के पास एक रोटी है तो वह आधी रोटी खुद खा लेता है और आधी किसी गरीब को दे देता है। लेकिन अगर किसी बादशाह के पास एक मुल्क है तो भी वह एक और पडोसी मुल्क की चाह करता है।

१९१) बेटा माँ के आँचल में रहे या आँगन में, माँ की ममता कम नहीं होती। ध्यान या धन घट-बढ़ सकता है पर ममता एक समान रहती है।

१९२) जब तुम्हारे अपने दरवाजे की सीढ़ियां मैली हो तो अपने पडोसी की छत पर पडी गन्दगी का उलाहना देने का तुम्हे अधिकार नहीं। जब तुम्हारे अपने मकान शीशे के हो तो दूसरों के महलों पर पत्थर नहीं फेंकते। किसी की आलोचना करने का तुम्हे अधिकार नहीं है जिससे तुम्हारी भी कोई आलोचना न करे।

१९३) मां-बाप की आँखों में दो बार ही आंसू आते हैं। एक तो लड़की घर छोड़े तब और दूसरा लड़का मुँह मोड़े तब। पत्नी पसंद से मिल सकती है। मगर मां तो पुण्य से ही मिलती है। इसलिए पसंद से मिलने वाली के लिए पुण्य से मिलने वाली को मत ठुकरा देना। जब तू छोटा था तो मां की शय्या गीली रखता था, अब बड़ा हुआ तो मां की आँख गीली रखता है। आपने जब धरती पर पहला सांस लिया, तब मां-बाप आपके पास थे। अब आपका फर्ज है कि माता-पिता जब अंतिम सांस लें, तब आप उनके पास रहे।

१९४) आवश्यकता लाभ प्रद कलाओं की जननी है और विलासिता ललित कलाओं की। आवश्यकता तर्क के सामने कभी नही झुकती।

१९५) दूसरे के पैर की बैसाखियों के सहारे चल कर जीवन नहीं जीया जाता है। जिन्दगी का सफर तो अपने कदमों से ही चल कर मंजिल तक पहुंचा जाता है।

१९६) अश्रु प्रवाह तर्क और शब्द योजना के लिये निकलने का कोई मार्ग नहीं छोडता। आंसू दर्द की मौन भाषा है। सदा यही हसरत करो कि हर आंख का हर आंसू पोंछ सको।

१९७) माँ चाहे तो बालक को सन्त बना दे, माँ चाहे तो उसे ज्ञानी बना दे, माँ चाहे तो उसे भक्त बना दे और माँ चाहे तो उसे जेबकतरा चोर, डाकू बना दे।

१९८) पुत्र के जीवन में संकट आता है, तो सबसे ज्यादा कष्ट होता है माँ को, माँ से बढ़कर और किसी को कष्ट नहीं होता। माँ का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है, वो किसी का किसी के प्रति नहीं हो सकता।

१९९) जिन्दगी एक गहरा समन्दर है और कामयाबी के मोती उसकी तह में होते है। जिन्दगी में जो कामयाब होना चाहते है वे उसकी गहराईयों में उतरकर खुशियां और कामयाबी के मोती तलाश करते है। किनारे पर खडे रहकर मोतियों की उम्मीद करनेवाला जिन्दगी में कभी भी कामयाब नहीं हो सकता। जो गहराइयों में उतरने का हौसला रखते है वही कामयाब व कमामरान रहते है।

२००) एक प्यास काफी है सागर तक जाने के लिए, एक नजर काफी है प्रभु दर्शन पाने के लिए, एक किरण काफी है सूरज तक जाने के लिए, एक कदम काफी है मंजिल को पाने के लिए, एक गंध काफी है बगिया तक जाने के लिए, एक शब्द काफी है स्वयं तक जाने के लिए, एक लगन काफी है जंजीर को तोड़ने के लिए, एक संवाद काफी है मानव-हृदय मोड़ने के लिए, एक सम-भाव काफी है मोक्ष को पाने के लिए, एक चिराग काफी है अंधेरे को मिटाने के लिए।

२०१) एक माँ ही दूसरी माँ की अंतर हृदयवेदना को समझ सकती है।

२०२) जिस माता के अन्तर्हृदय में ये भावना हो कि वृद्धावस्था में बालक हमारी सेवा करे, तो बचपन में बालक को अपना दूध पिलाना चाहिये। मातृदुग्ध में जो ताकत है, वो और किसी चीज में नहीं है।

२०३) मां का दूध शिशु के लिये सर्वोत्तम आहार है। कोई दूसरा आहार इसका पूरक नही हो सकता। मां के दूध का कोई विकल्प नही है।

२०४) नारी मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है। वह उसके अधूरे जीवन की पूरक होती है। उसे पाकर सभी अभाव स्वयंमेव भर

जाते हैं। वह उसके अंधकारमय जीवन को आलोक देती है। यदि वह न हो, तो मनुष्य का जीवन शुष्क हो जाय। नारी स्वतंत्रता की बात आज बहुत कही सुनी जाने लगी हैं पर शायद उसके समर्थक और विरोधी दोनों ही इसका सही अर्थ अब तक समझ नहीं पाए है।

२०५) सिपाही निर्माण करने की खातिर तबाही करता है, लेकिन पिता केवल निर्माण ही करता है, तबाही कभी नहीं करता।

२०६) मर्द की व्याख्या- पूरा मर्द वह है, जो हर हाल में खुश है। मिल गया माल तो, उस माल में खुश है। खो गया माल तो उस माल में खुश है। कभी हो गये बेहाल तो, उस हाल में खुश है। राम से करे ममता, संसार में रखे समता, वही हर हाल में खुश है।

२०७) वह मर्द खुशनसीब है और खुशनसीबी की दलील है कि नेक शौहर या नेक बीवी का मिलना, नेक औलाद का होना, नेक दोस्त और नेक माता-पिता का होना और हलाल धन्धा का करना।

२०८) रेशमी लिबास मर्दों के लिये जायज नहीं है। रेशम मुलायम व नर्म है और मर्द के सुपुर्द फितरत ने जो काम किये है वो सख्त मेहनत की मांग करते है। इसलिये मर्दों के लिये रेशम पहनना ठीक नहीं है।

२०९) गलती करना मनुष्य का स्वभाव है। की हुई गलती को मान लेना और ऐसा आचरण रखना कि गलती फिर से न होने पाये ही सच्ची मर्दानगी है।

२१०) पुरुषार्थ खेत है और देव को बीज बताया गया है। खेत और बीज के संयोग से ही फलरूपी अन्न उत्पन्न होता है। लक्ष्य को पूरा करने के लिये अपनी समस्त शक्तियों द्वारा परिश्रम करना ही पुरूषार्थ है।

२११) औरत होने की समझ और अहसास जब तक नहीं होगा तब तक किसी मर्द का साथ नहीं मिलता। इसलिये मर्द से प्रेम करो वे बहुत ही दिलचस्प और आश्चर्य से भरे होते है।

२१२) स्त्री पुरुष की जननी है और पुरुष नारी का पुत्र है। यह सद्विचार, सद्ज्ञान जिस मनुष्य के मन में हो जाता है। वह नारी का भोग्या रूप छोड़ देता है।

२१३) अपनी गरीबी के विचार दूर फेंक दो। भला तुम किन बातों में गरीब हो ? क्या तुम इसलिए सोचा करते हो कि तुम्हारे पास गाड़ी-घोड़े आदि नहीं हैं अथवा दस-बीस नौकर नहीं हैं, जो तुम्हारे पुकारते ही दौड़कर हाजिर हो जाएं ? यदि तुम अपने हृदय का खून बहाते हुए दूसरों के लिए दिन-रात कार्य करते रहो, तो जीवन में ऐसा कुछ भी न रह जाएगा, जो तुम न कर सको।

२१४) किसी भी प्रकार के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। मनुष्य की परख उसके कर्तव्य की उच्चता या हीनता की कसौटी पर नहीं होनी चाहिए, वरन् देखना यह चाहिए कि वह कर्तव्यों का पालन किस ढंग से करता है। एक मोची, जो कि कम से कम समय में बढ़िया और मजबूत जूतों की जोड़ी तैयार कर सकता है, अपने व्यवसाय में उस प्राध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जो दिन भर थोथी बकवास ही करता रहता है। प्रत्येक कर्म पवित्र है और कर्तव्य-निष्ठा भगवत्पूजा का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

२१५) थोड़ा सा व्यापार बढ़ा, अहंकारी हो गये। थोड़ा सा धन मिला, बेकाबू हो गये। थोड़ा सा ज्ञान मिला, उपदेश की भाषा सीख ली। थोड़ा सा सम्मान मिला, पागल हो गये। थोड़ा सा अधिकार मिला, दुनिया को तबाह कर दिया। थोड़ा सा यश मिला, दुनिया पर हंसने लगे। थोड़ा सा रूप मिला, दर्पण ही तोड़ डाला।

२१६) अहंकार- मान को खा जाता है। रिश्वत- इंसाफ को खा जाती है। लालच- ईमान को खा जाता है। चिंता- आयु को खा जाती है। गुस्सा अकल को खा जाता है। दुनिया का सबसे बढ़िया जेवर अपनी मेहनत है। दुनिया में सबसे अच्छा साथी तुम्हारा अपना निश्चय है। ईश्वर और मौत को मत भूलो।

२१७) घर तो हमारे बडे हो गए हैं, पर परिवार छोटे। सुविधाएं बढ़ गई है, लेकिन समय कम। हमारे पास उपाधियां तो बहुत हैं, पर समझदारी नहीं है। जानकारी ज्यादा है, लेकिन अक्ल कम। दवाएं तो बहुत है, लेकिन स्वास्थ्य नहीं। हम चांद पर तो हो आए हैं, पर सड़क पार के नए पड़ोसियों से मिलने में हमें कठिनाई होती है। संगणक तो हम अधिकाधिक बनाते जा रहे है, अधिक और अधिक; लेकिन लोगों से हमारा संपर्क संवाद घटता जा रहा हैं। वस्तुओं का परिमाण बढ़ता जा रहा है, पर गुणवत्ता नहीं। भोजन तो तुरंत-फुरंत उपलब्ध है, पर पाचन बहुत धीरे होता है। मनुष्य खुद तो लंबा पूरा है, लेकिन चरित्र उसका ओछा हैं। मुनाफा खूब बढ़ रहा है, लेकिन

संबंध छिछले होते जा रहे हैं। खिड़की से तो बहुत कुछ दिखता है, पर कमरा खाली है।

२१८) संत सेवा करते है और धूर्त सेवा कराते है। धूर्त का व्यवहार अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये होता है, चापलूसी, चतुराई और कपट से भरा होता है। धूर्त सदैव मांगता है और असन्तुष्ट रहता है जबकि संत अज्ञानी सम निष्कपट रह कर सेवा करता है तथा देकर सन्तुष्ट है।

२१९) हमारा प्रेम हमेशा चिन्ता, ईर्ष्या और भय से घिरा रहता है। इसका अर्थ है कि हम आंतरिक रूप से दूसरों पर आश्रित है। हम चाहते है कि कोई हमे प्रेम करे और उस चाहने में ही हम पराधीन बन जाते है। प्रेम का अर्थ है हम बदले में कुछ न चाहे और हमे इस बात का विचार तक न रहे कि हमने कुछ दिया है।

२२०) जिंदगी में कभी दु:ख और पीड़ा आये तो उसे चुपचाप पी जाना। अपने दु:ख और दर्द दुनिया के लोगों को मत दिखाते फिरना क्योंकि वे वैद्य, चिकित्सक नहीं हैं, जो तुम्हारी समस्या का समाधान कर दें। यह दुनिया बडी जालिम है, तुम्हारे दु:ख-दर्द को रो-रो कर पूछेगी और हंस-हंस कर दुनिया को बतायेगी। अपने जख्म उन लोगों को न दिखाओ जिनके पास मरहम न हो। वे खुदगर्ज लोग मरहम लगाने की बजाय जख्मों पर नमक छिडक देंगे।

२२१) पानी के पास सब कुछ है, पर एक चीज नहीं है। क्या ? पानी के पास छुआ-छूत की भावना नहीं है। धरती के पास सब कुछ है, पर एक चीज नहीं है। क्या ? धरती के पास घमंड नहीं है। धर्म-शास्त्रों में सब कुछ है, पर एक चीज नहीं है। क्या ? धर्म-शास्त्र में झूठ नहीं है। मनुष्य के पास सब कुछ है, पर एक चीज नहीं है। क्या ? मनुष्य के पास सब्र नही हैं। जिन्दगी में अगर सब्र न हो फिर अपनी कब्र खोद लेनी चाहिए। क्योंकि सब्र के बिना मौत के अलावा और कोई चारा नहीं है।

२२२) मनुष्य सारे इन्तजाम करता है लेकिन मरने की तैयारी नहीं करता। तैयारी करने से शान्ति से मृत्यु होगी। मनुष्य कुटुम्ब, परिवार की चिन्ता करते हुये मरता है पर मृत्यु के बाद स्वयं का क्या होगा इसका कभी विचार नहीं करता। मानव जीवन की अन्तिम परीक्षा मृत्यु है। जिसका जीवन सुधरा है उसकी मृत्यु भी सुधर जाती है।

२२३) जन्म देने वाले माता-पिता की सेवा न करने वाला तो चोर है। माता-पिता की आज्ञा का पालन करना व उनकी सेवा करना। यदि आप उनकी सेवा करेंगे तो बुढापे में आप की सन्तान आप की सेवा करेगी। माता, पिता, गुरु और अतिथि ये ४ प्रत्यक्ष देव है। इनकी सेवा अवश्य करे। मां का स्थान सर्वोच्च है। माता-पिता परमेश्वर के प्रत्यक्ष स्वरूप है। जिनको माता-पिता में भगवद् भाव नहीं जागता, उनको तो मूर्ति में भगवान कभी नहीं मिलते। एक बार भगवान की भक्ति न करो तो चलेगा किन्तु माता-पिता की सेवा करना अत्यन्त आवश्यक है।

२२४) मनुष्य को दूसरे की गलती जल्दी दीख जाती है लेकिन अपनी गलतियों को नहीं देखता है। जो अपने को निर्दोष मानता है, उसके जैसा मूर्ख, पापी कोई नहीं। पाप का प्रायश्चित न करना, या अपना पाप स्वीकार नहीं करना, प्रकट नहीं करना सबसे बडा अपराध है। अपने को निर्दोष समझना सबसे बडा दुर्गुण है।

२२५) घर के आंगन मे आने वाले का सत्कार करना ही चाहिये, भले वह वैरी ही क्यों न हो। यदि उसे कुछ नही मिलता है तो वह घर का पुण्य ले जाता है।

२२६) आज खजाने को चोरों से नहीं, पहरेदारों से खतरा है। देश को दुश्मनों से नहीं, गद्दारों से खतरा है और धर्म को दुश्मनों से नहीं ठेकेदारों से खतरा है।

२२७) भगवान ने संसार में पिता पुत्र का सम्बन्ध कैसा ममता-पूर्ण बनाया है। पिता को पुत्र के प्रति इतना मोह, ऐसा ममत्व न हो तो यह संसार नरक हो जाय। पिता चाहे कैसा भी पतित हो उसकी इच्छा रहती है- पुत्र यशस्वी हो। सच्चा पिता अपने पुत्र का निरन्तर कल्याण ही सोचता रहता है। वह अपने मोह को, अपने हृदय के स्नेह को पुत्र पर प्रगट नहीं होने देता, किन्तु उनकी आन्तरिक अभिलाषा सदा उसके मंगल के ही लिये रहती है। पुत्र के मुख में कितना आकर्षण है, बेटे का मुख दर्शन कितना सुखद है, पुत्र को शिक्षा देने में, डाँटने-डपटने और उसे कर्तव्य बताने में कितना रस, कैसा महान आनन्द आता है इसे बिना पिता बने कोई अनुभव नहीं कर सकता।

२२८) इस जगत में कर्मसत्ता ने किसके अहंकार को टिकने दिया है ? करोड़ों की संपत्ति के मालिक को करोड़पति बना दिया। छ: खंड के अधिपति को नरक का अतिथि बना दिया। सत्ता के नशे में चकचूर व्यक्ति को दाने दाने के लिए भटकता कर दिया।

वातानुकूलित में ही सोने वाले व्यक्ति को फुटपाथ पर लाकर फेंक दिया। हजारों को लाकर हंसने वाले व्यक्ति रात-दिन रोता कर दिया। सौंदर्य का अभिमान करने वाले व्यक्ति को वीभत्स रूप प्रदान कर दिया कि जिसके सामने कोई देखने को भी तैयार नहीं।

२२९) शराब के मालिक बन कर शराब पियो तो अधिक नुकसानदायक नहीं है लेकिन इसके गुलाम बनकर पीवोगे तो जीवन का नाश हो जायेगा।

२३०) स्त्रियों की बुद्धि ओछी होती है। वे विवेकहीन बातें करती हैं। रानी कैकेयी के कहने से राजा दशरथ ने भी रामचन्द्र जी को बनवास दे दिया। स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमंच है। संसार में चतुर होकर भी जो स्त्री से प्रेम करता है, हृदय में विचार करके उसे महामूर्ख समझना चाहिए।

२३१) माँ-बाप होने के नाते अपने बच्चों को खूब पढ़ाना-लिखाना और पढ़ा-लिखाकर खूब लायक बनाना। मगर इतना लायक भी मत बना देना कि वह कल तुम्हें ही नालायक समझने लगे। अगर तुमने आज यह भूल की तो कल बुढ़ापे में तुम्हें बहुत रोना-पछताना पड़ेगा।

२३२) बच्चों के झगड़ों में बड़ों को और सास-बहू के झगड़ों में बाप-बेटे को कभी नहीं पड़ना चाहिए। संभव है कि दिन में सास-बहू में कुछ कहा-सुनी हो जाए तो स्वाभाविक है वे इसकी शिकायत रात घर लौटे अपने पति से करेंगी। पतियों को उनकी शिकायत गौर से सुननी चाहिए, सहानुभूति भी दिखानी चाहिए। मगर सुबह जब सोकर उठे तो आगे पाठ-पीछे सपाट की नीति ही अपनानी चाहिए, तभी घर की एकता कायम रह सकती है।

२३३) लक्ष्मी पुण्याई से मिलती है। मेहनत से मिलती हो तो मजदूरों के पास क्यों नहीं ? बुद्धि से मिलती हो तो पंडितों के पास क्यों नहीं? जिंदगी में अच्छी संतान, सम्पत्ति और सफलता पुण्य से मिलती है। अगर आप चाहते हैं कि आपका इहलोक और परलोक सुखमय रहे तो पूरे दिन में पुण्य जरूर करिये। क्योंकि जिंदगी में सुख, सम्पत्ति और सफलता पुण्याई से मिलती है।

२३४) संत को गाय जैसा होना चाहिए, हाथी जैसा नहीं। गाय घास खाती है, इसके बावजूद घी-दूध, मक्खन और छाछ देती है। गाय का गोबर भी काम आता है। जबकि हाथी गन्ना, गुड़ और माल खाता है तो भी समाज को कुछ नहीं देता। संत-मुनि को घास अर्थात् हल्का और सात्विक भोजन करना चाहिए। मतलब संत-मुनि वे हैं, जो समाज से अंजुलि-भर लेते हैं और दरिया भर लौटा देते हैं।

२३५) संसार में अड़चन और परेशानी न आएं। यह कैसे हो सकता है। प्रकृति का नियम ही ऐसा है कि जिंदगी में जितना सुख-दु:ख मिलना है, वह मिलता ही है। मीठे के साथ नमकीन जरूरी है तो सुख के साथ दु:ख का होना भी लाजमी है। दु:ख बड़े काम की चीज है। जिंदगी में अगर दु:ख न हो तो कोई प्रभु को याद ही न करे।

२३६) सुख बिखेरता है, दु:ख बटोरता है। सुख मे लम्बाई चौडाई है लेकिन दु:ख मे गहराई है। भोग मे सुख है, त्याग मे शान्ति है। जितनी सुख की इच्छा प्रबल होती है दु:ख उतना ही हमे प्रभावित करता है। संसार के सुख मे आसक्त बुद्धि हमारी आत्मा को छलती है। सुख स्वप्न है उसमे कभी भी रमण मत करो यह टूटने वाला है। दु:ख तो मेहमान है रोओ मत यह तो जानेवाला है। सुख भोगने के लिये स्वर्ग है और दु:ख भोगने के लिये नरक है और सुख-दु:ख दोनों से उपर उठ कर अपना कल्याण करने के लिये मनुष्य शरीर है।

२३७) पहले के लोग घड़ी नहीं पहनते थे, इसके बावजूद उनका जीवन समयबद्ध था, उनका सोना-जागना, खाना-पीना, सब कुछ समय पर होता था। इसके विपरीत आज हर घर और हाथ में घड़ी है, बावजूद इसके आदमी की दिनचर्या एकदम अस्त-व्यस्त है। आज आदमी की कलाई में बंधी घड़ी, महज एक शोभा की वस्तु बनकर रह गई है जबकि घड़ी आदमी को घड़ी-घड़ी चेताती है कि जिंदगी घड़ी-दो-घड़ी से ज्यादा कुछ नहीं है। अत: तू शांत-चित्त हो, घड़ी भर बैठकर प्रभु का स्मरण कर ले वरना हाथ की घड़ी हाथ में बंधी रह जायेगी और जीवन की घड़ी खत्म हो जाएगी।

२३८) दुनिया में असंभव जैसा कार्य कुछ भी नहीं है, अगर आपने उसे पाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है तो। घुटने के बल चलते-चलते पाँव खड़े हो जाते हैं और छोटे-छोटे नियम एक दिन बहुत बड़े हो जाते हैं। कार्य जितना बड़ा होगा श्रम, सब्र और समय भी उतना ही अधिक मांगेगा। हम अपने ध्येय में केवल इस कारण से सफल नहीं होते हैं कि हमारे सपने तो बड़े-बड़े होते हैं किंतु उन सपनों को साकार करने के लिये हम न तो बड़ा श्रम करते हैं, न बड़ा समय देते हैं और न ही हम में बड़ा सब्र होता है।

२३९) स्वर्ग मेरी मुट्ठी में हो- इसके लिए मैं क्या करूं ? कुछ मत करो। बस इतना ही करो कि दिमाग को ठंडा रखो, जेब को गरम रखो, आंखों में शरम रखो, जुबान को नरम रखो और दिल में रहम रखो। अगर तुम ऐसा कर सके तो फिर तुम्हें किसी स्वर्ग तक जाने

की जरूरत नहीं है। स्वर्ग खुद तुम तक चलकर आयेगा। विडंबना तो यही है कि हम स्वर्ग तो चाहते हैं, मगर स्वर्गीय होना नहीं चाहते।

२४०) भले ही लड़ लेना-झगड़ लेना, पिट जाना-पीट देना, मगर बोल-चाल बंद मत करना क्योंकि बोल-चाल के बंद होते ही सुलह के सारे दरवाजे बंद हो जाते हैं। गुस्सा बुरा नहीं है। गुस्से के बाद आदमी जो वैर पाल लेता है, वह बुरा है। गुस्सा तो बच्चे भी करते हैं। मगर बच्चे वैर नहीं पालते। वे इधर लड़ते-झगड़ते हैं और उधर अगले ही क्षण फिर एक हो जाते हैं।

२४१) दुनिया में रहते हुए दो चीजों को कभी नहीं भूलना चाहिए। न भूलने वाली चीज एक तो परमात्मा तथा दूसरी अपनी मौत। भूलने वाली दो बातों में से एक है- तुमने किसी का भला किया तो उसे तुरन्त भूल जाओ। और दूसरी किसी ने तुम्हारे साथ अगर कभी कुछ बुरा भी कर दिया तो उसे तुरन्त भूल जाओ।

२४२) डॉक्टर और गुरु के सामने झूठ मत बोलिए क्योंकि यह झूठ बहुत महंगा पड़ सकता है। गुरु के सामने झूठ बोलने से पाप का प्रायश्चित और डॉक्टर के सामने झूठ बोलने से रोग का निदान नहीं होगा। डॉक्टर और गुरु के सामने एकदम सरल और तरल बनकर पेश हों। आप कितने ही होशियार क्यों न हों तो भी डॉक्टर और गुरु के सामने अपनी होशियारी मत दिखाइए, क्योंकि यहां होशियारी बिल्कुल भी काम नहीं आती।

२४३) जिन्दगी के केवल चार दिन हैं और वे चार दिन भी दो आरजू और दो इंतजार में कट जाते हैं। इससे आगे बढ़ें तो इंसान की सिर्फ दो दिन की कुल जिन्दगी है और उन दो दिनों में एक दिन मौत का भी होता है। अब बचा केवल एक दिन और पता नहीं, इस एक दिन की जिंदगी पर आदमी इतना क्यों अकड़ता है ? जिंदगी की हैसियत एक मुट्ठी राख से ज्यादा कुछ भी नहीं है।

२४४) मौत दो बातों पर हँसती है। एक, तब जब डॉक्टर मरीज को कहता है कि तुम निश्चिंत रहो। मैं हूँ ना। और दो, तब जब किसी के मरने पर कोई आदमी कहता है बेचारा चल बसा। बेचारा चल बसा-यह कहने वाला इस अंदाज में कहता है जैसे वह कभी नहीं मरेगा। मौत उसके इस अंदाज पर हँसती है और कहती है तूने उसको बेचारा कहा तो अब तेरा ही क्रम है। यहां कौन है ? जो मृत्यु की पंक्ति में न खड़ा हो ?

२४५) बुजुर्गों की संगति करो। क्योंकि बुजुर्गों के चेहरे की एक-एक झुर्री पर हजार-हजार अनुभव लिखे होते हैं। उनके कांपते हुए हाथ, हिलती हुई गर्दन, लड़खड़ाते हुए कदम और मुरझाया हुआ चेहरा संदेश देता है कि जो भी शुभ करना है, वह आज, अभी और इसी वक्त कर लो। कल कुछ नहीं कर पाओगे।

२४६) लक्ष्मी पूजा के काबिल तो है लेकिन भरोसे के काबिल कभी नहीं है। लक्ष्मी की पूजा तो करना मगर लक्ष्मी पर भरोसा मत करना और भगवान की पूजा भले ही मत करना लेकिन भगवान पर भरोसा हर-हाल में रखना। दुनिया में भरोसे के काबिल सिर्फ भगवान ही हैं। लक्ष्मी का क्या भरोसा ? वह तो चंचला है। आज यहां और कल वहां। जिस-जिस ने भी इस पर भरोसा किया आखिर में वह रोया है।

२४७) अपने होश-हवास में कुछ ऐसे सत्कर्म जरूर कर लेना कि मृत्यु के बाद तुम्हारी आत्मा की शांति के लिए किसी और को भगवान से प्रार्थना ना करनी पड़े क्योंकि औरों के द्वारा की गई प्रार्थनाएं तुम्हारे बिल्कुल भी काम आने वाली नहीं हैं। क्या तुम्हें पता नहीं कि अपना किया हुआ और अपना दिया हुआ ही काम आता है ? आज मन की भूमि पर ऐसे बीज मत बोना कि कल उनकी फसल काटते वक्त आँसू बहाने पड़ें।

२४८) कोई मंदिर गिर जाए तो बहुत ज्यादा घबराने की जरूरत नहीं है, कोई मस्जिद टूट जाये तो भी शोर-शराबा मचाने की जरूरत नहीं है। मंदिर और मस्जिद तो सैकड़ों बार बनेंगे-टूटेंगे लेकिन इंसानियत का मंदिर एक बार खण्डित हो गया तो फिर किसी में इतना दम नहीं है कि उसे फिर दुबारा से खड़ा कर सके। क्या मिट्टी की ईंट, चूना और सीमेंट का मूल्य इंसानियत की ईंट, चारित्र्य के चूना और सत्य के सीमेंट से ज्यादा हो सकता है ?

२४९) कुत्ता-संस्कृति समाज तेजी से बढ़ रहा है। पहले लोग गाय पालते थे, अब कुत्ते पालते हैं। एक समय हमारे घर के बाहर लिखा होता था- अतिथि देवो भव:। फिर लिखा जाने लगा-शुभ-लाभ। समय आगे बढ़ा, तो इसके बाद लिखा गया-स्वागतम्। और अब लिखा जाता है- कुत्ते से सावधान। यह सांस्कृतिक-पतन है। कुत्ते को रोटी देना, मगर उससे प्रेम मत करना। प्रेम करोगे तो मुँह चाटेगा, लाठी मारोगे तो पैर काटेगा। उसका चाटना और काटना दोनों बुरे हैं।

HHH(९०)HHH

२५०) पसीना बहाना सीखिए। बिना पसीना बहाए जो हासिल होता है, वह पाप की कमाई है। ब्याज मत खाइए। ब्याज पाप की कमाई है क्योंकि इसमें पसीना नहीं बहाना पड़ता। आज हमने प्याज खाना तो छोड़ दिया लेकिन ब्याज खाना जारी है। ब्याज खाना प्याज खाने से भी बड़ा पाप है। पसीने की रोटी खाइए। पाप की कमाई से आप पत्नी को सोने का कंगन तो पहना सकते हैं मगर यह भी संभव है कि इसके लिए आपको लोहे की हथकड़ियां पहननी पड़ जाएं।

२५१) मनुष्य जाति में दो पुरानी बुराईयां हैं। एक ताने मारने की और दूसरी आँख मारने की। पुरुष अगर ताने मारना और महिलाएं आंखे मारना बंद कर दें, तो जीवन और समाज के आधे-संघर्ष खत्म हो जायें। अस्त्र-शस्त्र से अब तक जितने लोग नहीं मरे होंगे उससे भी अधिक लोग ताने और आँख मारने से मर चुके हैं। बस, अपनी आँखों और जुबान को संभाल लो, सब कुछ संभल जायेगा। आँख और जुबान बड़ी नालायक है, क्योंकि सारी गड़बड़ियां इन्हीं से शुरू होती हैं।

२५२) क्रोध का अपना पूरा खानदान है। क्रोध की एक लाड़ली बहन है- जिद। वह हमेशा क्रोध के साथ-साथ रहती है। क्रोध की पत्नी है- हिंसा। वह पीछे छिपी रहती है लेकिन कभी-कभी आवाज सुनकर के बाहर आ जाती है। क्रोध के बड़े भाई का नाम है- अहंकार। क्रोध का बाप भी है, जिससे वह डरता है। उसका नाम है-भय। निंदा और चुगली क्रोध की बेटियां हैं। एक मुंह के पास रहेगी तो दूसरी कान के पास। वैर बेटा है। ईर्ष्या इस खानदान की नकचढ़ी बहू है। इस परिवार में पोती है- घृणा। घृणा हमेशा नाक के पास रहती है। नाक-भौं सिकोड़ना काम है इसका। उपेक्षा क्रोध की माँ है।

२५३) जिंदगी में माँ, महात्मा और परमात्मा से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। जीवन में तीन आशीर्वाद जरूरी हैं- बचपन में माँ का, जवानी में महात्मा का और बुढ़ापे में परमात्मा का। माँ बचपन को संभाल देती है, जवानी में नियत बिगड़े तो उपदेश देकर महात्मा सुधार देता है और बुढ़ापे में मौत बिगड़े तो परमात्मा संभाल लेता है। माँ, महात्मा और परमात्मा ही जिंदगी है। धर्म, पुराण और इतिहास मेंसे अगर ये तीन शब्द निकाल दें तो वे महज कागजों के पुलिंदें मात्र रह जाते हैं।

२५४) सूर्योदय के साथ ही बिस्तर छोड़ देना चाहिए, ऐसा न करने से सिर पर पाप चढ़ता है। महिलाएं जो कि घर-की लक्ष्मी हैं, इन लक्ष्मियों को सूर्योदय के साथ ही उठ जाना चाहिए। लक्ष्मण थोड़ी देर से उठे तो एक बार चल जायेगा पर लक्ष्मी का देर से उठना बिल्कुल नहीं चलेगा। जिन घर-परिवारों में लक्ष्मण के साथ लक्ष्मी भी देर सुबह तक सोई पड़ी रहती है, उन घरों की धन-लक्ष्मी रूठ जाया करती है, और घर छोड़कर चली जाया करती है।

२५५) दुनिया में तुम्हारा अपना कोई नहीं है। जो कुछ भी तुम्हारा है, तुम्हारे पास है वह बतौर अमानत है। बेटा है तो वह बहू की अमानत है। बेटी है तो वह दामाद की अमानत है। शरीर श्मशान की और जिंदगी मौत की अमानत है। एक दिन बेटा बहू का हो जायेगा, बेटी को दामाद ले जायेगा, शरीर श्मशान की राख में मिल जायेगा और जिंदगी मौत से हार जायेगी। तो अमानत को अमानत समझकर ही उसकी सार-संभाल करना, उस पर अपनी माल्कियत का ठप्पा मत लगा देना।

२५६) पानी पर खींची गई लकीर की कोई उम्र नहीं होती। जीवन भी लगभग ऐसा ही है। पता नहीं कब कूच करने का नगाड़ा बज जाए। अत: सौ काम छोड़कर सत्संग में बैठो और हजार काम छोड़कर धर्म-ध्यान करो। अगर आज ऐसा नहीं किया तो कल बहुत बुरा होगा। सोमवार को जन्म हुआ, मंगलवार को बड़े हुए, बुधवार को विवाह हुआ, गुरुवार को बच्चे हुए, शुक्रवार को बीमार पड़ गये, शनिवार को अस्पताल गए और रविवार को चल बसे। बस यही जिंदगी है।

२५७) आप घर से बाहर भले ही डॉक्टर, वकील, व्यापारी और बुद्धिजीवी बनें रहें लेकिन शाम को जब घर पहुँचें तो अपने पेशे को बाहर छोड़कर ही घर में प्रवेश करें। कारण कि वहाँ तुम्हारे दिमाग की नहीं, दिल की जरूरत है। घर पर कोई मरीज, मुवक्किल, ग्राहक थोड़ी न तुम्हारा इंतजार कर रहा है, जो तुम डॉक्टर, वकील या व्यवसायी बनकर घर लौट रहे हो। वहां तो एक माँ को अपने बेटे का, पत्नी को अपने पति का और बच्चों को अपने पिता का इंतजार है। शाम को अपने घर पिता, पति और पुत्र की हैसियत से ही लौटना चाहिए।

२५८) बड़ा आदमी वह नहीं जिसके यहां चार नौकर काम करते हैं बल्कि वह है जो चार नौकरों का काम खुद अकेला कर लेता है। निठल्ला बैठा आदमी जल्दी बूढ़ा होता है। जब आदमी थक कर बैठ जाता है तो उस पर बीमारियां आकर बैठ जाती हैं। सेवा-निवृत्त होने के बाद भी खाली मत बैठिए। अपने तन और मन को किसी नेक और अच्छे कार्य में लगाए रखिए। थक कर बैठ जाने से तो

इंसान की किस्मत भी बैठ जाती है।

२५९) शांतिमय जीवन जीने के लिए क्या करें ? कुछ मत करो, बस काम के समय काम करो और जब काम न कर रहे हो तो आराम करो। शाम को दुकान से घर लौटो तो दुकान घर मत लाओ और सुबह जब घर से दुकान जाओ तो घर को घर पर ही छोड़कर जाओ। जहां हो वहां अपनी १००% उपस्थिति दर्ज कराओ। आधे-अधूरे मन से कोई भी काम मत करो, इससे काम भी बिगड़ेगा और तनाव भी बढ़ेगा।

२६०) दस भूत मरते हैं तो एक पलीत पैदा होता है और दस पलीत मरते हैं तो एक कलयुगी नेता पैदा होता है। वैसे नेता और भूत में काफी सामंजस्य है। नेता भी पद से उतरते ही भूत हो जाता है, जैसे भूतपूर्व मुख्यमंत्री। भूत होता है, पर दिखाई नहीं देता है। नेता भी चुनाव जीतने के बाद कहां दिखाई देता है ? भूत को वश में करना है तो भभूत चाहिए और नेता को वश में करना है। तो कोई अवधूत चाहिए। इस देश को बोलने वाला नहीं, बल्कि कुछ करके दिखाने वाला नेतृत्व चाहिए।

२६१) लाटरी का नम्बर डाला और नहीं खुली तो कहते हो कि किस्मत फूट गई। बच्चा पैदा हुआ। सोचा था- लड़का होगा मगर लड़की हुई तो कहते हो कि किस्मत फूट गई सौदा किया और घाटा हो गया तो कहते हो कि किस्मत फूट गई। आपकी किस्मत दिन में कितनी बार फूटती है ? इंसान की किस्मत उस दिन फूटती है जिस दिन वह सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट हो जाता है। किस्मत उस दिन फूटती है जिस दिन आदमी के हृदय से प्रेम और विश्वास निकल जाता है।

२६२) आदत कैसी भी हो, बुरी है। मंदिर जाना, मंत्र-जाप करना, सत्संग सुनना-इन्हें भी आदत मत बनने देना क्योंकि जिस दिन ये आदत बन जायेंगी, तो फिर जीवन-रूपान्तरण की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। अगर चाय पीना तुम्हारी आदत बन गई है तो वह शराब पीने जैसी खतरनाक है। और अगर शराब पीना आदत नहीं है, महज शौक से पीते हो तो वह चाय पीने जैसी है। क्योंकि अभी भी तुम्हारी खुद पर मिल्कियत कायम है। शराब मालिक बन कर पियो तो ज्यादा खतरनाक नहीं है, इसके गुलाम हुए तो विनाश ही है।

२६३) सफल जीवन के लिए एक प्रेरक-सूत्र है-छोटों को देखकर जिओ, बड़ों को देखकर बढ़ो, अच्छे के लिए प्रयास करो और बुरे के लिए तैयार रहो। तुम्हारे पास स्कूटर है तो अपनी नजर छोटी साइकिल पर रखना, बड़ी कार पर नहीं, बस तुम सुखी रहोगे। बड़ों से आगे बढ़ने की प्रेरणा लेना, क्योंकि दुनिया में जो महापुरुष हैं वे केवल पूजने के लिए नहीं है, प्रेरणा लेने के लिए भी हैं। अच्छे के लिए प्रयास करना, क्योंकि प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता है और बुरे के लिए तैयार रहना, क्योंकि बेटा कभी भी मुँह मोड़ सकता है और दोस्त कभी भी साथ छोड़ सकता है।

२६४) धर्म के दुश्मन नास्तिक नहीं बल्कि तथाकथित धर्म के ठेकेदार हैं। ईश्वर को जितना बदनाम इन तथाकथित ठेकेदारों ने किया है, उतना नास्तिकों ने नहीं। वैसे भी हीरे के दुश्मन कंकर-पत्थर नही होते है बल्कि नकली हीरे होते हैं। यह सच है कि आज खजाने को चोरों से नहीं पहरेदारों से खतरा है, देश को दुश्मनों से नहीं, गद्दारों से खतरा है और धर्म को दुश्मनों से नहीं ठेकेदारों से खतरा है। वे लोग जो धर्म की आड़ में अपना स्वार्थ सीधा करते हैं, वे धर्म के असली-दुश्मन हैं।

२६५) सद्गृहस्थ का शाश्वत्-धर्म यही है कि यदि संत-मुनि तुम्हारे घर-नगर आ रहे हैं तो उनकी अगवानी करो, उनका स्वागत और अभिनंदन करो। यदि संत-मुनि तुम्हारे घर-नगर में ठहरते हैं तो उनके प्रवास की समुचित व्यवस्था करो और यदि संत-मुनि तुम्हारे नगर से विहार कर रहे हैं तो उन्हें रोको मत, सहज व प्रसन्न-मन से विदा करो क्योंकि वे तुम्हारे ही किसी भाई के कल्याण और मुक्ति के लिए जा रहे हैं। सद्गुरु एक दीप है। दीप का काम दीयों की बाती को प्रज्ज्वलित करना, उन्हें जगाना और आगे बढ़ जाना है।

२६६) बीड़ी और सिगरेट तो केवल मानव के लिए जहर हैं लेकिन शराब तो पूरी मानवता के लिए जहर है। नदी, तालाब और समुद्रों में डूबकर अब तक जितने लोग नहीं मरे होंगे उससे भी कहीं अधिक लोग शराब के छोटे से प्याले में डूबकर मर चुके हैं। इस अंगूर की बेटी ने पता नहीं कितनी माँ के बेटों का बेड़ा-गर्क कर रखा है। दुनिया में अगर शराब नाम की चीज न होती तो दुनिया का नक्शा ही कुछ और होता। इस नशे ने व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और दुनिया की दशा और दिशा दोनों बिगाड़ रखी है। शराब पिये तो यह सोचकर पिये कि अब मैं आत्म-हत्या कर रहा हूँ।

२६७) आलू-बड़ा, मिर्ची-बड़ा, दही-बड़ा के अलावा आज एक और बड़ा का नाम समाज में आया है और वह है- मैं-बड़ा। गृहस्थ कहता है- मैं बड़ा। साधु कहता है- मैं बड़ा। न गृहस्थ बड़ा है और न साधु बड़ा है बल्कि जो इस मैं बड़ा के लफड़े से दूर खड़ा है; वह

बड़ा है। गृहस्थ और साधु दोनों अधूरे हैं क्योंकि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। २३ घंटे गृहस्थ को साधु की जरूरत पड़ती है तो १ घंटे साधु को भी (आहार के समय) गृहस्थ की जरूरत पड़ती है। गृहस्थ और साधु धर्म-रथ के दो पहिएं है और कोई भी रथ एक पहिए से नहीं चलता।

२६८) हिन्दू और मुसलमान इस देश की दो आँखें हैं और ये दोनों कौमें खूब प्यार और मुहब्बत के साथ सदियों से कंधे से कंधा और कदम से कदम मिलाकर रहती आ रही हैं। साम्प्रदायिकता इस देश के मिजाज में नहीं है। जब आप Ramzan लिखते हैं तो Ram से शुरुआत करते हैं और जब आप Deewali लिखते हैं तो Ali से समाप्त करते हैं। यो रमजान में बसे राम और दिवाली में छिपे अली हमें मुहब्बत से रहने का पैगाम देते हैं। अगर राम के भक्त और रहीम के बंदे थोड़ी अक्ल से काम लें तो यह मुल्क स्वर्ग से भी सुंदर है।

२६९) श्मशान गांव के बाहर नहीं बल्कि शहर के बीच चौराहे पर होना चाहिए। श्मशान उस जगह होना चाहिए जहां से आदमी दिन में दस बार गुजरता है। ताकि जब-जब वह वहां से गुजरे तो वहां जलती लाशों और अध-जले मुर्दों को देखकर उसे भी अपनी मृत्यु का ख्याल रहे। और अगर ऐसा हुआ तो दुनिया के ८० प्रतिशत पाप और अपराध स्वयं समाप्त हो जायेंगे। आज का आदमी भूल गया है कि कल उसे मर जाना है। पर उन मरने वालों में हम अपने को कहां गिनते है ?

२७०) पशु-मांस का निर्यात देश के अर्थ तंत्र का कत्ल करना है। मांस-निर्यात भारत की ऋषि और कृषि की परम्परा के माथे पर एक काला कलंक है। सरकार मांस-निर्यात अविलम्ब बंद करे और यदि इससे उसे कोई घाटा लगता है तो संत-मुनि अपने भक्तों से पूरा करवायेंगे। देश से निर्यात ही करना है तो करुणा और अहिंसा का निर्यात करें, दूध और घी का निर्यात करे और यदि यह संभव न हो तो देश में जितने भी भ्रष्ट नेता है, उनका ही निर्यात कर दिया जाये तो यह देश स्वत: ही भ्रष्टाचार से मुक्त हो जाएगा।

२७१) जीना है तो पूरे जीओ और मरना है तो पूरी तरह से मरो क्योंकि ये जो अध-जिया और अध-मरा आदमी है। वह तो धोबी के उस गधे जैसा है, जो न तो घर का होता है और न घाट का। हममें से कई लोग दिन में काम के वक्त उंघते-सोते हैं और रात में जब आराम का समय होता है, तब तरह-तरह की उधेड़ बुन में रहते हैं। आज हमारा न तो जागरण पर नियंत्रण रहा और न ही नींद पर। अब हमें नींद के लिए गोली खानी पड़ती है और जागने के लिए अलार्म भरना पड़ता है। भारत जैसे धर्मप्राण देश के लिए यह कोई शुभ-संकेत नहीं है।

२७२) सूरज के उगने और डूबने का समय निश्चित है। गाड़ी के आने और जाने का समय भी निश्चित है। मगर जिंदगी के विषय में कुछ भी निश्चित नहीं है। जीवन की गाड़ी कभी भी छूट सकती है। अत: चलने की पूरी तैयारी रखें। तैयारी नहीं होगी तो मामला गड़बड़ हो जायेगा। स्कूल जाने से वही बच्चा डरता है जिसने होम-वर्क नहीं किया है। आयकर-अधिकारी को देखकर वही व्यापारी घबराता है जिसके बही-खाते ठीक नहीं होते और मौत को अपने करीब आते देख वही व्यक्ति रोता-चिल्लाता है जिसकी चलने की तैयारी पूरी नहीं होती है।

२७३) भगवान के सामने दीप जलाओ तो इस बात का अहंकार मत करना कि मैंने दीप जलाया। भगवान के समक्ष कुदरती दो दीप तो जलते ही रहते हैं। दिन में तो सूरज जलता है और रात में चंद्रमा जलता है। आपका दीया सूरज और चांद का मुकाबला तो नहीं करेगा। फिर अहंकार किसलिए ? बस इतना ही विचार करना कि हे प्रभु। मैं नदी के जल से सागर को पूज रहा हूं, दीप से सूरज की आरती उतार रहा हूं। हे प्रभु। तेरा ही तुझको अर्पण कर रहा हूं।

२७४) ५० वर्ष के बाद भोजन बदल देना चाहिए। १०० वर्ष के बाद मकान को गिरा देना चाहिए, ५०० वर्ष के बाद मंदिर और मस्जिद ढहा देना चाहिए और १००० वर्ष के बाद धर्म में आग लगा देनी चाहिए। सौ वर्ष के बाद मकान की रचना पुरानी हो जाती है। पांच सौ वर्ष बाद मंदिर और मस्जिद अपने मूल-उद्देश्य से भटक जाते हैं और हजार वर्ष के अन्तराल के बाद धर्म में भी कूड़ा-कचरा समा जाता है। आज हर धर्म के साथ लगभग यही हुआ है और यही कारण है कि वह समस्याओं का समाधान नहीं ढूंढ पा रहा है।

२७५) आज एकरूपता का जमाना है। ऊपर से नीचे और आगे से पीछे सब ओर एकरूपता चल रही है। वस्त्रों और गहनों के एकरूपता के इस दौर में आज एक और एकरूपता जरूरी हो गई है। वह है स्वभाव की एकरूपता। अगर तुम परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार अपने आपको नहीं ढाल सकते तो फिर तुम्हें आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए क्योंकि यह दुनिया तुम्हारे रहने के

लायक नहीं है। तुम्हारे सामने दो ही विकल्प हैं: या तो अपने को बदलिए या फिर आत्म-हत्या के लिए तैयार हो जाइए।

२७६) भारत उस माँ की तरह है जो अपनी संतान को अपने खून से सींचकर और अपने आंचल का दूध पिलाकर पालती-पोसती है और यही कारण है कि दुनिया ने भारत को माता कहा। भारत-माता। दुनिया में सिर्फ भारत को ही माता कहा है। लंदन-माता है, अमेरिका माता है- ऐसा आपने कभी नहीं सुना होगा। माता और बहनों से गुजारिश है कि वे अपनी कोख से दो की जगह तीन बच्चे पैदा करें। दो बच्चे अपने लिए रखें और तीसरे बच्चे को राष्ट्र और धर्म के लिए भारत-माता को समर्पित कर दें।

२७७) अगर तुम चाहते हो कि मरने के बाद तुम्हें भुला न दिया जाये तो इसके लिए दो में से कोई एक काम जरूर करो। या तो पढ़ने लायक कुछ लिख डालो या लिखने लायक कुछ कर डालो। दुनिया में कोई भी इंसान या तो अपने कृत्यों के लिए याद किया जाता है या फिर अपनी बहुमूल्य कृतियों के लिए। जो व्यक्ति समय की धारा के साथ चलते रहते हैं, उन्हें इतिहास समय के साथ भुला देता है लेकिन जो व्यक्ति समय की धारा को मोड़ देता है। इतिहास भी उनके साथ हो लेता है। गंगोत्री से गंगा-सागर की यात्रा तो मुर्दा भी कर लेता है। भुजाओं का बल तो गंगा-सागर से गंगोत्री की यात्रा पर निकल पड़ना है।

२७८) अगर आप गृहस्थ हैं, शादी-शुदा हैं तो आपके घर एक लड़की तो होनी ही चाहिए। लड़का ना भी हो तो चलेगा, मगर लड़की तो होनी ही चाहिए क्योंकि जिसके लड़की नहीं होती उसके पास दिल भी नहीं होता। ऐसा आदमी प्राय: अहंकारी होता है। कहता है: हमारे तो कोई लड़की है ही नहीं। अत: हमें किसी के सामने झुकने और हाथ फैलाने की जरूरत ही नहीं है। लड़की तुम्हारे अहंकार के लिए एक चुनौती है। लड़की मंगल है।

२७९) कोई धर्म बुरा नहीं है, बल्कि सभी धर्मों में कुछ बुरे लोग जरूर हैं जो अपने स्वार्थों की खातिर धर्म की आड़ में अपने गोरख-धंधे और नापाक इरादे जाहिर करते रहते हैं। अगर हम इन थोड़े से बुरे लोगों के दिलों को बदल सकें, उन्हें सही राह पर चला सकें और नेक इंसान बनाकर जीना सिखा सकें तो यकीनन सच मानिए यह पूरी पृथ्वी स्वर्ग में तब्दील हो जायेगी। धर्म मरहम नहीं, बल्कि टॉनिक है। इसे बाहर मलना नहीं, बल्कि पी जाना है। कितना बड़ा आश्चर्य है कि हम धर्म के लिए लड़ेंगे-मरेंगे, लेकिन उसे जीयेंगे नहीं।

२८०) धर्म पगड़ी नहीं, जिसे घर से दुकान के लिये चले तो पहन लिया और दुकान पर जाकर उतार कर रख दिया। धर्म तो चमड़ी है; जिसे अपने से अलग नहीं किया जा सकता। धर्म तो आत्मा का स्वभाव है। धर्म के माने प्रेम, करुणा और सद्भावना है। उसका प्रतीक फिर चाहे राम हो या रहीम, बुद्ध हो या महावीर, कृष्ण हो या करीम, सबकी आत्मा में धर्म की एक ही आवाज होगी। धर्म दीवार नहीं, द्वार है। लेकिन दीवार जब धर्म बन जाती है तो अन्याय और अत्याचार को खुलकर खेलने का अवसर मिल जाता है। फिर चाहे वह दीवार मंदिर की या मस्जिद की ही क्यों न हो ?

२८१) तुम एक परदेसी हो। एक दिन तुम्हें अपने देश वापस लौटना है। अभी तुम यहां पर्यटन पर आये हुए हो। पर्यटक संभल-संभल कर रहता है। वह किसी से झगड़ता नहीं है, सबकी मीठी-यादें साथ रखता है क्योंकि उसे पता है कि उसे वापस जाना है। और हां, वह सुबह-शाम अपने घर फोन जरूर करता है, घर-परिवार के समाचार जरूर ले लेता है, तुम भी तो भगवान के घर से आये हो न। जरा सुबह-शाम फोन करके अपने घर के समाचार लेते रहो। सुबह-शाम प्रभु की प्रार्थना करना फोन करके अपने घर के हाल-चाल पूछने जैसा है।

२८२) जिस घर में और सब कुछ हो मगर प्रेम न हो वह घर घर नहीं, श्मशान है। श्मशान में भी बहुत मुर्दे होते हैं मगर वे आपस में न तो कभी मिलते हैं और न ही कभी बात करते हैं। जिस घर में पति-पत्नी, सास-बहू और बाप-बेटे साथ रहते हों मगर एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराते न हों तो क्या वह घर भी श्मशान नहीं हैं ? परिवार में प्रेम और समर्पण है तो जीवन स्वर्ग है। प्रेम से भी बड़ा दुनिया में कोई स्वर्ग नही है। घृणा और नफरत से भी बड़ा दुनिया में कोई नर्क नही है।

२८३) चलते रहना संत जीवन की चर्या है। संत कहीं से चलता है और कहीं पहुँच जाता है। मगर इस चलने और पहुँचने में एक घटना घटती है जो संत के महत्व को दर्शाती है और वह घटना है कि संत जहां से चल देता है वहां सब सूना-सूना हो जाता है और जहां पहुँच जाता है वहां सब सोना-सोना हो जाता है। संत और संसारी में इतना ही तो फर्क होता है कि संसारी का मन कहीं नहीं टिकता ओर संत के पैर कहीं नहीं टिकते। बहता हुआ जल और चलता-फिरता संत हमेशा पवित्र होता है।

२८४) दुनिया में सज्जन और दुर्जन दो तरह के मनुष्य होते हैं। दोनों जीते हैं मगर दोनों में अंतर केवल इतना ही है कि सज्जन दूसरों

को हंसकर और दुर्जन रुलाकर जीता है, और जब दोनों दुनिया से विदा लेते हैं तो सज्जन लोगों को रुलाकर और दुर्जन हंसाकर जाता है। जीवन ऐसा जीना कि जब आप दुनिया से जाओ तो लोग आपके लिए रोयें, आपको याद करें। ऐसा जीवन मत जीना कि लोग कहें कि अच्छा हुआ, एक और पाप कटा। दुनिया से जाओ तो लोगों के दिलों में मीठी-यादें और आँखों में प्यार के आंसू छोड़कर जाएं।

२८५) मौत का सफर भी बड़ा लम्बा है। इस सफर में अंधेरे रास्तों से गुजरना पड़ता है और रास्ते में दाएँ-बाएँ मुड़ने के न तो कोई निशान होते हैं और न ही किसी मोड़ पर हरी-लाल बत्ती जल रही होती है। इतना ही नहीं; चीख-पुकार करने पर भी कोई सुनने वाला नहीं मिलता। यहां तुम्हारे घर में चाहे अन्न के भंडार भरे पड़े हों, पर वहां सफर में आटे की एक चुटकी भी साथ नही ले जा सकते। भीषण गर्मी में जान सूखती है, पर नीम का एक पत्ता तक सिर ढकने को नहीं मिलता। संकट की इस घड़ी में सिर्फ भगवान का नाम ही सहारा होता है।

२८६) गुस्सा और जिद-आज के जीवन में ये दो जबर्दस्त बुराइयां हैं। पुरुष गुस्से से परेशान हैं तो महिलाएं जिद से दु:खी हैं। पुरुष लोग गुस्सा करना थोड़ा कम कर दें और महिलाएं जिद करने से बाज आ जायें तो नर्क बना यह जीवन आज और अभी स्वर्ग बन जाए। जिद एक ऐसी दीवार है, जो अगर पति-पत्नी, बाप-बेटे, सास-बहू के बीच में आ जाये तो फिर यह दीवार तोड़ना मुश्किल है। यह दीवार तो नहीं टूटती है लेकिन रिश्ते जरूर टूट जाते हैं, जिद क्रोध की लाड़ली बहन है।

२८७) यह आँख बड़ी नालायक है, किसी से लड़ जाये तो दु:ख देती है, किसी से भिड़ जाये तो दु:ख देती है। अगर यह आ जाये (eye-flu) तो दु:ख देती है और चली जाये तो दु:ख देती है। जिंदगी में अधिकतर गड़बड़ियां इसी आँख से शुरू होती है। तभी तो डंडे भले ही पीठ पर पड़ें, तो भी आँसू तो आँख को ही बहाने पड़ते हैं। यह आँख झुक जाये तो हया बन जाती है, उठ जाये तो दुआ बन जाती है। आँख के बड़े कारनामे हैं। बाहर की आँख मुंदे, इससे पहले भीतर की आँख खुल जानी चाहिए वरना इतिहास में आपका नाम अंधों की सूची में दर्ज होगा।

२८८) मनुष्य की चूसने की आदत बहुत पुरानी है। जब वह पैदा हुआ तो पैदा होते ही माँ का स्तन चूसने लगा। फिर थोड़ा बड़ा हुआ तो अंगूठा चूसने लगा। फिर थोड़ा और बड़ा हुआ तो आम और गन्ना चूसने लगा। और जब पूरा बड़ा हुआ तो मनुष्य का खून चूसने लगा। मच्छर और मनुष्य दोनों काटते हैं। फिर भी मच्छर से मनुष्य ज्यादा खतरनाक है। कारण कि मच्छर काटता है तो सिर्फ खून पीता है, लेकिन मनुष्य जब काटता है तो पूरा खानदान तक पी जाता है। मनुष्य को अगर ऊंचा उठना है तो चूसने और काटने की आदत छोड़नी होगी।

२८९) आज कुछ लोगों के द्वारा धर्म और मजहब के नाम पर, जाति और भाषा के नाम पर; देश और दुनिया को बाँटा जा रहा है। ऐ बांटने वाले इंसानों। तुमने लकीर खींच कर जमीन को तो बांट दिया लेकिन मैं तुम्हारी शक्ति उस दिन मानूँगा जिस दिन तुम आसमान में लकीर खींच कर दिखाओगे। जिस दिन तुम हवा बाँटकर दिखाओगे कि यह हिंदू की हवा है और यह मुसलमान की हवा है, अगर तुममें ताकत है तो जरा समय को हिंदू और मुसलमान के बीच बांटकर दिखाओ।

२९०) अब संत-मुनियों को अपने प्रवचन साधारण जनता के बीच करने की अपेक्षा लोकसभा और विधानसभाओं में करने चाहिए क्योंकि खतरनाक लोग वहीं मौजूद हैं। अगर देश और प्रदेश की राजधानियों में बैठे करीब १० हजार लोग सुधर जाएं तो देश की १०० करोड़ जनता अपने-आप रात भर में सुधर जायेगी। सुधार की प्रक्रिया नीचे से नहीं, ऊपर से शुरू होनी चाहिए। क्योंकि भ्रष्टाचार की गंगोत्री ऊपर से नीचे की ओर बहती है। अगर ऋषिकेश में गंगा का शुद्धिकरण किया जाये तो हरिद्वार और उसके नीचे के तमाम घाट स्वत: शुद्ध हो जायेंगे।

२९१) संत लोग आपसे नोट नही माँगते, वोट और सपोर्ट नहीं माँगते वे तो सिर्फ तुमसे तुम्हारी खोट मांगते है। वह खोट, जो तुम्हें रात को सोने नहीं देती वह खोट, जो तुम्हें दीन-हीन बनाये हुए हैं। वह खोट, जो तुम्हारे माता-पिता को, तुम्हारी पत्नी और बच्चों को सिर उठाकर चलने नहीं देती। वह खोट व जीवन की तमाम बुराइयां संतों की झोली में डाल दो। बस यही संतों की गुरु-दक्षिणा होगी।

२९२) बच्चों के पैर चंचल होते हैं। जवान व्यक्ति का रोम-रोम चंचल होता है और बूढ़े व्यक्ति की जुबान चंचल होती है। बूढ़े आदमी को नपा-तुला बोलना चाहिए। अपने बहू-बेटों को अनावश्यक सलाह नहीं देना चाहिए। बूढ़े व्यक्ति को अपने मुख से या तो आशीर्वाद के शब्द निकालना चाहिए या फिर मौन रहना चाहिए। तुम्हारा बेटा-बहू, पोता-पोती कुछ भी अच्छा करे तो उन्हें शाबाशी

दो। बार-बार टोका-टाकी मत करो।

२९३) किसी की अर्थी को सड़क से गुजरते हुए देखकर यह मत कहना कि बेचारा चल बसा। अपितु उस अर्थी को देखकर सोचना कि एक दिन मेरी अर्थी भी इन्हीं रास्तों से यों ही गुजर जायेगी और लोग सड़क के दोनों ओर खड़े होकर देखते रह जायेंगे। उस अर्थी से अपनी मृत्यु का बोध ले लेना क्योंकि दूसरों की मौत तुम्हारे लिए एक चुनौती है। अर्थी उठने से पहले जीवन का अर्थ समझ लेना, वरना बड़ा अनर्थ हो जायेगा। गधे को कभी नहीं लगता कि उसका जीवन व्यर्थ है।

२९४) दुनिया में ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसने जिंदगी में दो-चार बार आत्म-हत्या का विचार न किया हो और ऐसी पत्नी खोजना भी मुश्किल है, जिसने एकाध बार अपने पति को चकमा देकर उसकी जेब से पैसे न चुराये हों। दरअसल दुनिया में सब चोर हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि जिन्होंने बड़ी-बड़ी चोरियां की, वे बड़े उद्योगपति बन गये और उन्होंने छोटी-छोटी चोरियां की; वे छोटे व्यापारी हो गये और जिन्हें चोरी करने का मौका नहीं मिला वे तथाकथित ईमानदार हो गये। हम मजबूरी में ईमानदार हैं और ऐसे मजबूर-ईमानदारों से देश का भला होने वाला नहीं है।

२९५) कभी भी दूरदर्शन देखते हुए भोजन न करें और अखबार पढ़ते हुए चाय न पीये। आज के जीवन में ये दो जबर्दस्त बुराइयां हैं। आप इन्हें अविलम्ब सुधार लें क्योंकि जब आप दूरदर्शन देखते हुए खाना खाते हैं और अखबार पढ़ते हुए चाय पीते हैं तो आप सिर्फ खाना और चाय नहीं खाते-पीते बल्कि उस दूरदर्शन और अखबार में जो हिंसा, अश्लीलता और भ्रष्टाचार की खबरें होती है, उन्हें भी खा-पी जाते है। और फिर वे खबरें आपको अपने से बे-खबर कर देती हैं। अगर आम आदमी अपनी ये दो आदतें सुधार ले तो पूरे समाज व देश की आबो-हवा बदल सकती है।

२९६) जिंदगी में डोली दो बार सजती है। एक दुल्हन के लिए और दूसरी मुर्दे के लिए। डोली सजा के रखने वालों। जिंदगी में अपनी अर्थी को भी सजा के रखना। कारण कि पता नहीं कब मौत आ जाये और अर्थी पर चढ़ना पड़ जाये। जो जीते जी अपनी अर्थी को सजा लेते हैं, केवल वे ही जीवन का अर्थ समझ पाते हैं, लोग तो चूंकि अभी सांस चल रही है इसलिए जी रहे हैं, चूंकि आत्म-हत्या नहीं कर सकते इसलिए जी रहें हैं।

२९७) जिंदा रहने के लिए भोजन जरूरी है। भोजन से भी ज्यादा पानी जरूरी है, पानी से भी ज्यादा वायु जरूरी है और वायु से भी ज्यादा आयु जरूरी है। मगर मरने के लिए कुछ भी जरूरी नहीं है। आदमी यों ही बैठे-बैठे मर सकता है। आदमी केवल दिमाग की नस फटने और दिल की धड़कन रुकने से नहीं मरता बल्कि उस दिन भी मर जाता है जिस दिन उसकी उम्मीदें और सपने मर जाते हैं; उसका विश्वास मर जाता है। इस तरह आदमी मरने से पहले भी मर जाता है और फिर मरा हुआ आदमी दोबारा नही मरता है।

२९८) अतिथि देवता है। घर में अतिथि आया हुआ हो तो अमृत ही क्यों न हो, अकेले नहीं पीना चाहिए। जिस घर में अतिथि-सत्कार नहीं होता, वह घर घर नहीं, श्मशान है, उस घर की चौखट पर भूलकर भी पैर पड़ जाये तो स्नान करना चाहिए और जिस घर में अतिथि-सत्कार में कभी चूक नहीं होती, वह घर घर नहीं, तीर्थ है। उस घर की चौखट को छूने मात्र से तीर्थ दर्शन का फल मिलता है। जो गृहस्थ अतिथि को खिलाकर फिर खुद खाता है, वह कभी भूखा नहीं सोता। जो व्यक्ति जाने वाले अतिथि की सेवा कर चुका है और आने वाले अतिथि का इंतजार करता है; वह खुद देवताओं का अतिथि बनता है।

२९९) अगर आप बाप हैं तो आपका अपने बेटे के प्रति बस एक ही फर्ज है कि आप अपने बेटे को इतना योग्य बना दें कि वह संत-मुनि और विद्वानों की सभा में सबसे आगे की पंक्ति में बैठने का हकदार बने और अगर आप बेटे हैं तो आपका अपने बाप के प्रति बस यहीं एक कर्तव्य है कि आप ऐसा आदर्शमय जीवन जीएँ कि जिसे देखकर दुनिया तुम्हारे बाप से पूछे कि किस तपस्या और पुण्य के फल से तुम्हें ऐसा होनहार बेटा मिला है।

३००) आपने सुना होगा कि ईश्वर की मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। आपके हिले बिना भी एक पत्ता नहीं हिलता। ईश्वर की इस मर्जी के नाम पर आज दुनिया में बड़े-बड़े पाप और संगीन अपराध हो रहे हैं। एक आदमी शराब पीता है, उससे पूछो: तू ऐसा क्यों करता है ? तो वह कहता है: मैं कहां करता हूँ, यह सब तो ऊपर वाले की मर्जी है। सब उसी की मर्जी से हो रहा है। मैं कहता हूँ ऊपर वाले की मर्जी से कुछ नहीं होता। जो होता है वह तुम्हारी अपनी मर्जी से होता है। उस ऊपर वाले के नाम पर इस नीचे वाले ने

दुनिया को नर्क बना रखा है।

३०१) राम और कृष्ण दोनों महापुरुष हैं मगर दोनों के जीवन में यह बुनियादी फर्क है कि राम तो एकदम सीधे और सरल हैं जबकि कृष्ण कठिन और गूढ़ हैं। राम का नाम भी सरल है, स्वभाव भी सरल है, और चरित्र भी सरल है, जबकि कृष्ण का नाम, स्वभाव और लीला तीनों कठिन हैं, राम-राम जपने से आपको कष्ट नहीं होगा लेकिन कृष्ण-कृष्ण जपने से जबड़े दु:खने लगते हैं। राम का जीवन और कृष्ण का कथन तुम्हारे लिए अनुकरणीय है। राम ने जो किया, वह तुम्हें करना है और कृष्ण ने जो कहा, वह तुम्हें करना है। कृष्ण ने जो किया वह तुम मत करने लगना, वरना जीवन में कष्ट भोगना पड़ेगा।

३०२) बड़ा आदमी वह नहीं जिसके पास कई नौकर, गाड़ी और बंगले हैं बल्कि बड़ा आदमी वह है, जो किसी का कर्जदार नही है, जो जितना कमाता है उतने से ही संतुष्ट रहता है। बड़ा आदमी वह है, जिसकी सेहत अच्छी और जो अपना काम खुद कर लेता है। बड़ा आदमी वह है, जो किसी जरूरतमंद की सेवा को तैयार रहता है और किसी गरीब का हक नहीं छीनता। बड़ा आदमी वह है, जो कठिन परिस्थितियों में भी मुस्कुराता है और जिसे कोई उदासी कभी उदास नहीं कर पाती। बड़ा आदमी वह है, जिसे तकिये पर सिर रखते ही नींद आ जाती है और सुबह उठने के लिए किसी अलार्म की जरूरत नहीं पड़ती।

३०३) दान देना उधार देने के समान है। देना सीखो क्योंकि जो देता है वह देवता है और जो रखता है वह राक्षस। ज्ञानी तो इशारे से ही देने को तैयार हो जाता है मगर नीच लोग गन्ने की तरह कुटने-पिटने के बाद ही देने को राजी होते हैं। जब तुम्हारे मन में देने का भाव जागे तो समझना पुण्य का उदय आया है। अपने होश-हवास में कुछ दान दे डालो क्योंकि जो दे दिया जाता है वह सोना हो जाता है और जो बचा लिया जाता है वह मिट्टी हो जाता है। भिखारी भी भीख में मिली हुई रोटी तभी खाये जब उसका एक टुकड़ा कीड़े-मकोड़े को डाल दे। अगर वह ऐसा नहीं करता तो कई जन्मों तक भिखारी ही रहेगा। जो दे दिया वह अपना है बाकी सब सपना है।

३०४) अगर जिंदगी को स्वर्ग बनाने की तमन्ना है तो पति और पत्नी, सास और बहू, बाप और बेटे को आपस में यह समझौता करना होगा कि अगर एक आग बने तो दूसरा पानी बन जायेगा। अपने घरों में थोड़े से पानी की व्यवस्था करके रखिएं, पता नहीं कब किसके दिल में क्रोध की आग भड़क उठे। क्रोध आग है। अपने घरों में सहनशीलता और शांति का जल तैयार रखिएं। पता नहीं, कब तुम्हारा घर क्रोध की लपटों से घिर जाए। पति कभी क्रोध में आग बने तो पत्नी पानी बन जाये और पत्नी कभी अंगार बने, तो पति जलधार हो जाये।

३०५) आप भले ही गाली का जवाब थप्पड़ से दें। थप्पड़ का जवाब लात से और लात का जवाब ए.के.-४७ से दें। लेकिन आप क्रोध और गाली का जवाब तुरन्त न दें। थोड़ा विलम्ब करें, बस १० मिनट का सब्र रखें। क्रोध और गाली का जवाब १० मिनट बाद दें। इस १० मिनट में क्रोध के कारणों और परिणामों पर विचार कर लें फिर अगर उचित लगे तो जवाब दें और सच्चाई तो यह है कि १० मिनट बाद आप क्रोध का जवाब क्रोध से दे ही नहीं सकते।

३०६) आदमी का तन तो बूढ़ा हो जाता है मगर मन तब भी युवा बना रहता है, शरीर के बूढ़ा होने से मन की वासनाएँ बूढ़ी नहीं हो जाती बल्कि बुढ़ापे में वासनाएँ और अधिक उग्र हो जाती हैं। जैसे पके आम को पहले लोग धीरे-धीरे चूसते हैं मगर ज्यों-ज्यों उसका रस समाप्त होने लगता है तो लोग उसे और कसकर चूसते हैं। असली समस्या शरीर और इन्द्रियां नहीं बल्कि मन है। इन्द्रियां तो केवल स्विच है।

३०७) अपना ऊंचा मकान ओर ऊची दूकान देखकर अभिमान मत करना क्योंकि वह दिन दूर नहीं जब तुम इन्हीं मकान और दूकान की मिट्टी के नीचे दबे पड़े होंगे। तुम्हारी मिट्टी पर घास उग आई होगी और कोई गधा उस घास को चर रहा होगा। इस शरीर की हैसियत मिट्टी से ज्यादा कुछ नहीं है। अत: मिट्टी, मिट्टी में मिले। मिट्टी की अन्त्येष्ठि हो, इससे पहले परमेष्ठि की शरण ले लेना वरना मौत के समय सिट्टी-पिट्टी गोल हो जायेगी। उपलब्धियों का उत्सव तो मनाना, लेकिन उनका अहंकार मत करना।

३०८) वक्त तेजी से बदल रहा है और इस बदलते वक्त में अगर तुमने नई पीढ़ी को संस्कारित नहीं किया तो कल जब यह पीढ़ी अंगड़ाई लेकर मैदान में आएगी और तुम बुढ़ापे की चौखट पर खड़े होंगे तो आपका युवा-बेटा वृद्धाश्रमों का एलबम लाकर आपको दिखाएगा और पूछेगा कि पिताजी। यह एलबम देखिए, इसमें देश के चुनिंदा वृद्धाश्रम दर्ज है, जिनकी अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। आप इनमें से कोई भी एक अपने लिए पसंद कर लीजिए ताकि मैं आपको वहाँ भिजवाकर अपना पुत्र-धर्म निभा सकूँ।

३०९) पितृ देवो भव: । पिता देव है । माँ की ममता धरती से भी भारी और पिता का स्थान आकाश से भी ऊंचा है क्योंकि बेटे के लिए पिता के अरमान आकाश से भी ऊंचे होते हैं । दुनिया में कोई किसी को अपने से आगे बढ़ता और ऊँचा उठता नहीं देख सकता । एक पिता ही है, जो अपनी संतान को अपने से सवाया होता हुआ देखकर खुश होता है । अपने जेब में रुपये की जगह अपने पिता की तस्वीर रखिए क्योंकि उस तस्वीर ने ही तुम्हारी तकदीर संवारी है । पेड़ बूढ़ा ही सही, आंगन में लगा रहने दो । फल न सही, छांव तो देगा ।

३१०) समय अमूल्य है । जिंदगी में एक वर्ष का क्या महत्व है ? यह इसी वर्ष अनुत्तीर्ण हुए विद्यार्थी से पूछिए । एक माह का महत्व जानना है तो उस माँ से मिलिए जिसने आठ-मासिया बच्चे को जन्म दिया है । सात दिन का महत्व जानना है तो कसी साप्ताहिक-पत्र के सम्पादक से मिलिए । एक दिन का महत्व वह दिहाड़ी-मजदूर ही बता सकता है जिसे आज मजदूरी नहीं मिली है । एक घंटे का महत्व जानना है तो सिकंदर से पूछिए जिसने आधा राज्य देकर एक घंटे मौत को टालने का आग्रह किया था । एक मिनिट का महत्व उस भाग्यशाली से पूछिए, जो वर्ल्ड-ट्रेड-सेन्टर की इमारत गिरने से ठीक एक मिनिट पहले ही बाहर सुरक्षित निकल गया । एक सैकंड का महत्व उस धावक से पूछिए जो इसी एक सैकंड की वजह से स्वर्ण-पदक पाते-पाते रजत-पदक पर रह गया है ।

३११) आज समाज और देश, कुंभकर्ण की भाँति गहरी नींद सोया हुआ है और सोते समाज व देश को जगाने के लिए लोरी काम नहीं आती, इसके लिए तो शेर-हाथी जैसी दहाड़ और चिंघाड़ चाहिए । इसीलिए मैं दहाड़ता और चिंघाड़ता हूँ । कड़वा बोलना मेरी प्रकृति नहीं, कर्तव्य है । अगर वैद्य, संत और सचिव मीठा बोलने लगें, तो समझना सेहत, समाज और देश का सत्यानाश होने वाला है ।

३१२) सुनने की आदत डालो क्योंकि दुनिया में कहने वालों की कमी नहीं है । कड़वे घूंट पी-पीकर जीने और मुस्कुराने की आदत बना लो क्योंकि दुनिया में अब अमृत की मात्रा बहुत कम रह गई है । अपनी बुराई सुनने की खुद में हिम्मत पैदा करो क्योंकि लोग तुम्हारी बुराई करने से बाज नहीं आयेंगे । आलोचक बुरा नहीं है । वह तो जिंदगी के लिए साबुन-पानी का काम करता है । गली में दो-चार सूअर हों तो गली साफ रहती है ।

३१३) मरने वाला मर कर स्वर्ग गया है या नरक ? अगर कोई यह जानना चाहता है तो इसके लिए किसी संत या ज्योतिषी से मिलने की जरूरत नहीं है, बल्कि उसकी शव-यात्रा में होने वाली बातों को गौर से सुनने की जरूरत है । यदि लोग कह रहे हों कि बहुत अच्छा आदमी था, अभी तो उसकी देश व समाज को बड़ी जरूरत थी, जल्दी चल बसा तो समझना कि वह स्वर्ग गया है । और यदि लोग कह रहे हों कि अच्छा हुआ, धरती का एक पाप तो कम हुआ तो समझना कि मरने वाला नरक गया है ।

३१४) राजा का ताज जिसमे प्राणों का भय रहता है दिल को लुभावने वाला तो होता है पर सिर के दर्द के बराबर भी उसकी कीमत नही की जाती ।

३१५) हर समय राम-भरोसे बैठे रहना उचित नहीं है । अपने पर भी भरोसा रखिए । यह राम-भरोसे से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है । हम यह मान लें कि जो होना लिखा है वही होगा तो यह ठीक नहीं है । अगर आपका अपने पर भरोसा नहीं है तो राम भरोसा क्या कर लेगा? अगर रामजी का भी खुद पर से भरोसा उठ जाये तो उनकी भी नैया डुबक-डुबक हो जाया करती है । सच तो यह है कि राम खुद आपके भरोसे बैठे है कि शायद आप राम-राज्य की स्थापना के लिए कुछ करोगे ।

३१६) बच्चे पर माँ का प्रभाव पड़ता है । लेकिन आज बच्चा माँ से कम, मीडिया से ज्यादा प्रभावित हो रहा है । कल तक कहा जाता था कि यह बच्चा अपनी माँ पर गया है और यह बाप पर । मगर आज जिस तरह से देशी-विदेशी चैनल हिंसा और अश्लीलता दिखा रहे हैं । उसे देखकर लगता है कि कल यह कहा जायेगा कि यह बच्चा जी टीवी पर गया है और यह स्टार टीवी पर और यह जो निखट्टू है, यह तो पूरी फैशन टीवी पर गई है । आज विभिन्न चैनलों द्वारा देश पर जो सांस्कृतिक-हमले हो रहे हैं, वे ओसामा-बिन-लादेन जैसे आतंकवादियों के हमले से भी ज्यादा खतरनाक हैं ।

३१७) आज हमारी जिंदगी से हंसी ऐसी गायब हो गई जैसे कि चुनाव जीतने के बाद नेता गायब हो जाता है । सेहत के लिए जितना हंसना जरूरी है, उतना रोना भी जरूरी है । आज हमारा दिलो-दिमाग इसलिए भारी हो गया है क्योंकि हमने हंसना और रोना बंद कर दिया है । हंसी आये तो हंस लेना- इससे आंतें खुल जाती हैं, और रोना आए तो रो लेना इससे आँखे धुल जाती हैं । लेकिन विडंबना है कि हमने अपनी हंसी या तो फेफड़ों में कैद कर रखी है या फिर उसकी किसी बैंक में सावधि जमा राशि करा रखी है ।

३१८) आज तुम्हारे मंदिर बूढ़े हो गये क्योंकि उनमें युवाओं ने जाना बंद कर दिया है। जब युवाओं का मंदिरों में प्रवेश बंद हो जाता है तो मंदिर भी बूढ़े हो जाते हैं। धर्म उनकी सम्पदा है जो युवा हैं, युवा-चित्त हैं। यौवन और धर्म का गहन-मेल है। धर्म यात्रा में ऊर्जा चाहिए। धर्म की पहली पसंद युवा है। जब तुम्हीं बूढ़े व्यक्ति को गोद लेना पसंद नहीं करते तो भला धर्म बूढ़े इंसान को गोद लेना क्यों पसंद करेगा।

३१९) जवानी पर ज्यादा मत इतराना क्योंकि जवानी सिर्फ चार दिनों की है। अत: कानों में बहरापन आवे, इससे पहले ही जो सुनना है, उसे सुन लेना। पैरों में लंगड़ापन आवे, इससे पहले ही दौड़-दौड़ कर तीर्थ यात्रा कर लेना। आंखों में अंधापन आवे, इससे पहले ही अपने स्वरूप को निहार लेना। वाणी में गूंगापन आवे, इससे पहले ही कुछ मीठे-बोल बोल लेना। हाथों में लूलापन आवे, इससे पहले ही दान-पुण्य कर डालना। दिमाग में पागलपन आवे, इससे पहले ही प्रभु के हो जाना।

३२०) पैसा कमाने के लिए कलेजा चाहिए। मगर दान करने के लिए उससे भी बड़ा कलेजा चाहिए। दुनिया कहती है कि पैसा तो हाथ का मैल है। जीवन और जगत में पैसे का अपना मूल्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। मगर यह भी सही है कि जीवन में पैसा कुछ हो सकता है, कुछ-कुछ भी हो सकता है, और बहुत-कुछ भी हो सकता है मगर सब-कुछ कभी नहीं हो सकता। और जो लोग पैसे को ही सब कुछ मान लेते हैं वे पैसे के खातिर अपनी आत्मा को बेचने के लिए भी तैयार हो जाते हैं।

३२१) बचपन में माँ सबसे अच्छी लगती है, जवानी में पत्नी सबसे अच्छी लगती है, बुढ़ापे में पोता सबसे अच्छा लगता है; और मौत के समय भगवान सबसे अच्छे लगते हैं। पर सिर्फ मौत के समय भगवान अच्छे लगे-यह कोई अच्छी बात नहीं है। भगवान तो हर हाल में अच्छे हैं, सच्चे हैं। वो हमारे पिता हैं और हम उनके बच्चे हैं, वो परिपक्व और हम अभी कच्चे हैं। भगवान तो हर हाल में अच्छे हैं, सच्चे हैं।

३२२) दु:ख बड़ा ढीठ-मेहमान है। अगर यह तुम्हारे घर के लिए निकल पड़ा है तो पहुँचेगा जरूर। अब अगर तुम इस मेहमान को घर आता हुआ देखकर सामने का दरवाजा बंद कर लो तो यह पीछे के दरवाजे से आ जाएगा। पीछे का दरवाजा भी बंद कर लो तो यह खिड़की में से आ जाएगा। खिड़की भी बंद कर लो तो छप्पर फाड़कर नहीं तो फर्श उखाड़कर आ जाएगा। अत: जीवन में सुख की तरह दु:ख का भी स्वागत करो। दु:ख की मेजबानी के लिए भी तैयार हो। यह सोचकर कि वे दिन नहीं रहे तो ये दिन भी नहीं रहेंगे।

३२३) मेरे घर के सामने एक गधा रहता है, सुबह उठते ही उसके दर्शन होते हैं, यह शुभ है या अशुभ ? गधे के लिए तो अशुभ ही है क्योंकि तुम्हारे दर्शन होने के बाद बेचारे को दिन-भर घास खाकर बोझ ढोना पड़ता है। आत्म-दर्शन शुभ है। प्रदर्शन अशुभ है। क्योंकि प्रदर्शन में बनावट है, बनावट में दिखावट है, दिखावट में सजावट है, सजावट में मिलावट और मिलावट में गिरावट है।

३२४) यदि कोई अभियांत्रिक भ्रष्ट होता है तो कुछेक पुल, भवन ही असमय में धराशायी होते हैं। यदि कोई चिकित्सक भ्रष्ट होता है तो कुछेक ही लोगों की अकाल-मौत होती है। लेकिन यदि कोई शिक्षक भ्रष्ट होता है तो आने वाली समूची पीढ़ी बर्बाद हो जाती है। देश का भविष्य आज शिक्षक के हाथ में है क्योंकि उसके द्वार पर नई पीढ़ी कुछ सीखने बैठी है। यदि देश के एक करोड़ अस्सी लाख शिक्षक तय कर लें तो हम २०२० तक भारत को विकसित राष्ट्र क्या विश्व-राष्ट्र बना सकते हैं।

३२५) दुनिया में दो तरह के लोगों को दु:खी माना गया है। एक, जिसके घर कुंवारी-कन्या हो तथा दो, जिसके सिर पर कर्ज हो। कन्या और कर्ज वालों की नींद हमेशा उड़ी रहती है। कन्या और कर्ज को बड़ा होने में वक्त नहीं लगता। ये दोनों देखते ही देखते बड़े हो जाते हैं। कन्या के हाथ पीले हो जाए और कर्ज से हाथ ढीले हो जाए तो ही आदमी चैन-की-नींद सो सकता है। कर्ज लेने से डरो लेकिन कन्या देने से मत डरो क्योंकि कन्या अमानत है, देनी ही पड़ेगी।

३२६) पुत्र तुम्हारी सेवा करे तो यह कोई आश्चर्य नहीं। वह तो करेगा ही। क्योंकि वह आखिर तुम्हारा ही खून है। लेकिन यदि पुत्र-वधू सेवा करे तो यह आश्चर्य है। वह खून तो दूर खानदान तक की भी नहीं है; फिर भी सेवा कर रही है तो निश्चित ही यह तुम्हारे किसी जन्म का पुण्य फल है। आज के समय में और सब तरह के पुण्य भोगना बहुत सारे लोगों की किस्मत में है, लेकिन पुत्र और पुत्र-वधू की सेवा के पुण्य को भोगना विरले ही माँ-बाप के भाग्य में है।

३२७) पड़ोस धर्म को निभाइए। पड़ोस धर्म क्या है ? यही कि आप भोजन अवश्य करें मगर इस बात का ख्याल रखें कि कहीं आपका पड़ोसी भूखा न रह जाय। पड़ोसी के साथ कभी बिगाड़ न करें। पड़ोसी के सुख-दु:ख में सहभागी बनिए। कारण कि पड़ोसी

के घर में आग लगी है, तो समझना तुम्हारी अपनी सम्पत्ति भी खतरे में है। अगर तुम आज पड़ोसी के यहाँ नमकीन भेजते हो तो कल वहाँ से मिठाई जरूर आयेगी।

३२८) संत लोग चौकी पर बैठते है। लोग जमीन पर बैठते है। अर्थात संत बडे और लोग छोटे समझे जाते है। संतों का चौकी पर बैठता मजबूरी है। एक व्यवस्था के तहत चौकी पर बैठना पड़ता है। चौकी पर बैठने वाला चौकीदार है और जमीन पर बैठने वाला जमीनदार कहलाता है। कहने का संतों का भाव यह है कि संत छोटे है और जनता बड़ी होती है।

३२९) दस गाय दान करना बड़ा पुण्य है। मगर इससे भी बड़ा पुण्य कत्लखाने में जाती हुई एक गाय को बचा लेना है। दस मंदिरों का निर्माण करना बड़ा पुण्य है मगर इससे भी बड़ा पुण्य एक प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार करना है। दस-प्राचीन मंदिरों का जीर्णोद्धार करना बड़ा पुण्य है मगर इससे भी बड़ा पुण्य एक आतंकवादी को अहिंसावादी बना देना है। अगर आप अपनी प्रेरणा से एक मांसाहारी व्यक्ति को शाकाहारी बना देते हैं तो समझना अपने घर बैठे ही चार-धाम की यात्रा करने का पुण्य अर्जित कर लिया।

३३०) अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारे घर-परिवार में शांति बनी रहे तो अपने घर में ज्योतिषी और तांत्रिक को कभी मत घुसने देना। इन्हें घर के दरवाजे से ही सलाम करके विदा कर देना। कारण कि जिन घरों में इनका आना-जाना शुरू हो जाता है; उन घरों की शांति भंग हो जाती है। महिलाएं सबसे पहले इनका शिकार होती हैं। अगर एक बार पंडित जी का पत्रा खुल गया तो फिर पत्रा खुलता ही चला जाता है और खतरा बढ़ता ही जाता है।

३३१) पुत्र चार तरह के होते हैं। एक लेनदार-पुत्र। पिछले जन्म का लेनदार था, पुत्र होकर आ गया। अब उसे पढ़ाओ-लिखाओ, विवाह करो, उसका लेन-देन पूरा होगा और वह चल बसेगा। दूसरा, दुश्मन-पुत्र। पिछले जन्म का दुश्मन भी पुत्र होकर आ जाता है। ऐसा पुत्र कदम-कदम पर दु:ख देता है। तीसरा, उदासीन-पुत्र। ऐसा पुत्र माँ-बाप को ना सुख देता है ना दु:ख। बस कहने को पुत्र होता है। चौथा, सेवक-पुत्र। पिछले जन्म में तुमने किसी की सेवा की, वही तुम्हारा पुत्र बनकर आ गया। ऐसा पुत्र माँ-बाप को बड़ा सुख देता है।

३३२) पैर से अपाहिज एक भिखारी सदा प्रसन्न और खुश रहता था। किसी ने पूछा: अरे भाई। तुम भिखारी हो, लंगड़े भी हो, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। फिर भी तुम इतने खुश रहते हो। क्या बात है ? वह बोला: बाबूजी। भगवान का शुक्र है कि मैं अंधा नहीं हूँ। भले ही मैं चल नहीं सकता; पर देख तो सकता हूँ। मुझे जो नहीं मिला-मैं उसके लिए प्रभु से कभी कोई शिकायत नहीं करता। बल्कि जो मिला है उसके लिए धन्यवाद जरूर देता हूँ। यही है दु:ख में से सुख खोजने की कला।

३३३) अपनी मेहनत और गाढ़े पसीने की कमाई को अपनी धर्म-पत्नी के हाथों में सौंप देना क्योंकि घर की असली लक्ष्मी तो वही है। जो लक्ष्मी तिजोरी में बैठी है, वह तो हमेशा खड़ी है। मगर घर की लक्ष्मी तो जीवन भर साथ देने वाली है। जो व्यक्ति बाजार की लक्ष्मी (धन-लक्ष्मी) से शराब पीता है और घर आकर गृह-लक्ष्मी (पत्नी) का अपमान करता है। उसे साथ गाली-गलोज, मारपीट करता है, तो वह जिन्दगी में दोनों लक्ष्मी से वंचित हो जाता है। उसकी तिजोरी की लक्ष्मी तो सामने के दरवाजे से निकल जाती है और घर की लक्ष्मी पीछे के दरवाजे से चली जाती है।

३३४) आज देश के संत-महात्मा, महामंडेश्वर और शंकराचार्य अकूत सम्पत्ति के मालिक बने बैठे हैं। उनके बड़े-बड़े आश्रम, महंगी गाड़ियां और भव्य जीवन शैली को देखकर लगता ही नहीं कि ये भारत के विरक्त-संत हैं। जैसे नेताओं की सम्पत्ति की कभी जाँच नहीं होती वैसे ही साधु-संतों की सम्पत्ति की भी जाँच नहीं होती। आज वे साधना में कम साधनों में ज्यादा जी रहे हैं।

३३५) भारत दुनिया का सबसे बड़ा युवा-राष्ट्र है। ५४ करोड़ युवा इस देश में रहते हैं। फिर भी भारत बुढ़ापे की दहलीज पर खड़ा है। कारण कि हमें आज भी अतीत की घटनाओं और कथाओं को सुनने-सुनाने में आनंद आता है। जब मनुष्य बीते हुए समय को सुनाने में आनंद लेने लगे तो समझना चाहिए बुढ़ापा शुरू हो गया है।

३३६) पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ लम्बे समय तक जीती हैं। आंकड़े बताते हैं कि दुनिया में विधुर से ज्यादा विधवाएं हैं। कारण कि स्त्रियाँ समर्पण में और पुरुष अकड़ में जीते हैं। जो अकड़ में जीता है वह जल्दी टूटता है। दाँत जल्दी टूटते हैं। जिह्वा कहां टूटती है? यह भी सच है कि पागल खानों में महिलाओं से ज्यादा संख्या मर्दों की है। महिलाएं थोड़ा-थोड़ा पागल रोज हो लेती हैं। दु:ख और क्रोध आया तो रो लिया, बच्चे को पीट दिया लेकिन मर्द मूछों के चक्कर में रोता तक नहीं है, दु:ख-पीड़ा को अंदर ही अंदर दबाता

जाता है। फिर एक दिन विस्फोट होता है और वह पूरा पागल हो जाता है, और फिर पागल खाना ही उसका ठिकाना होता है।

३३७) व्यक्ति हर साल अपना जन्म दिन मनाता है। मनाना भी चाहिए क्योंकि उम्र कभी कम नहीं होती। लगातार बढ़ती ही जाती है। आपने भी अपना जन्म दिन कई बार बनाया होगा। कभी घर और होटल में तो कभी मंदिर और तीर्थ पर। अपना एक जन्म-दिन मरघट में जाकर मनाओ कारण कि बस्ती में रहकर जीवन कभी समझ में नहीं आता। मरघट में रहकर ही जीवन को समझा जा सकता है।

३३८) कुत्ते दो प्रकार के होते हैं। एक पालतू और दूसरा फालतू। जो पालतू कुत्ता होता है, उसके गले में एक पट्टा पड़ा होता है। उस पट्टे की वजह से उसे ना तो कोई छेड़ता है, न पकड़ता है और न ही मारता है। मगर जो फालतू कुत्ता होता है, उसके गले में कोई पट्टा ना होने की वजह से हर कोई उसे छेड़ता और मारता है। अगर तुमने भी अपने गले में प्रभु नाम और सद्गुरु के आशीर्वाद का पट्टा डाल लिया तो फिर तुम्हें भी दुनिया की कोई भी आसुरी व तामसिक शक्ति नहीं छेड़ सकता।

३३९) जब मन में कोई खोट होती है, तभी तन पर लंगोट होती है। दिगम्बर मुनि के मन में कोई खोट नहीं है, इसलिए उसके तन पर लंगोट भी नहीं है। वस्त्र तो विकारों को ढकने के लिए होते हैं। जो विकारों से परे है ऐसे शिशु और मुनि को वस्त्रों की जरूरत नही होती है। दरअसल इस कलयुग में दिगम्बर-मुनि होना आश्चर्यों में आश्चर्य है जो समाज की नग्नता को ढकने के लिए अपने तन के वस्त्र तक उतार फेंकता है वहीं होता है दिगम्बर मुनि।

३४०) जन्म-दाता माँ-बाप तो कुत्ते के पिल्लों और गधे के बच्चों को भी मिल जाते हैं। लेकिन संस्कार-दाता माँ-बाप तो किसी खुश नसीब औलाद को ही मिलते हैं। वे पुत्र बड़े खुश-नसीब हैं जिन्हें बचपन में माँ-बाप ने उनकी अंगुली पकड़कर सिर्फ चलना ही नहीं सिखाया बल्कि मंदिर ले जाना भी सिखाया। अपने बच्चों को सिर्फ कंधों और गोद में मत बिठाइये बल्कि उन्हें संस्कार की पाठशाला में भी दाखिल कराइए। अपने पिल्ले के सुख की चिन्ता तो कुतिया भी कर लेती है।

३४१) अगर आप माँ-बाप हैं तो अपने बच्चों को ज्यादा मत समझाइए क्योंकि आजकल बड़े समझदार बच्चे पैदा हो रहे हैं। अब बेवकूफ बच्चे पैदा होने बंद हो गये हैं। आज के बच्चे सिखाने से कुछ नहीं सीखते, वे सिर्फ दिखाने से सीखते हैं। उन्हें आप जो कुछ भी सिखाना चाहते हैं। उसे खुद जीकर दिखाना शुरू कर दीजिए। बस। वे सीख जायेंगे। बतौर उदाहरण अगर आप चाहते हैं कि सुबह उठकर बच्चे आपको धोक दें तो इसके लिए हर सुबह आप अपने बूढ़े माँ-बाप को धोक देना शुरू कर दीजिए।

३४२) दुनिया में बुराइयाँ हैं। मगर क्यों ? क्योंकि अच्छे लोग अपनी जिम्मेदारी नहीं निभा रहे हैं। अच्छे लोग एकांतवासी होते जा रहे हैं। अपनी प्रतिष्ठा और नाम को बचाये रखने के लिए लोग बुरे लोगों के लिए कुर्सी खाली कर रहे हैं। कुर्सी कभी खाली नहीं रहती। अच्छे लोग उस पर नहीं बैठेंगे तो स्वाभाविक है बुरे लोग उस पर कब्जा कर लेंगे। और फिर संचालन की डोर उनके हाथों में होगी। इस देश में आज यही हो रहा है। परिणाम सबके सामने है।

३४३) अब शादी के समय लड़का और लड़की की कुंडली मिलाने की जगह लड़की और उसकी होने वाली सास की कुंडली मिलानी चाहिए। कारण कि इन दोनों का ही दिन भर आमना-सामना होता है। लड़के-लड़की की कुंडली क्या मिलाना, वे तो यों ही मिल जायेंगे। सुखी-गृहस्थी के लिए वर-वधू को शादी के समय सिर्फ यही एक संकल्प लेना चाहिए कि कभी मौं आग बनूँ तो तू पानी बन जाना और कभी तू अंगार बनेगी तो मैं जलधार बन जाऊँगा।

३४४) भूख लगे तो खाना प्रकृति है। भूख न लगे तब भी खाना विकृति है और स्वयं भूखे रहकर किसी भूखे को खिला देना संस्कृति है। भोजन यह सोचकर मत करो कि मैं खा रहा हूँ बल्कि यह सोचकर करो कि मेरे भीतर जो मेरा प्रभु विराजमान है, उसे मैं अर्घ्य चढ़ा रहा हूँ। तुम जब यह सोचकर भोजन करोगे तो फिर कभी मांस, मदिरा और जर्दा आदि नहीं खा सकोगे। आप कभी भी परमात्मा को इनका भोग नही लगा सकते तो फिर अपने पेट में डालकर अपने भीतर बैठे प्रभु को अपमानित क्यों कर रहे हो ?

३४५) दुनिया का एक सीधा-सा नियम है- यहां इंसान को कुछ मिल सकता है। जोर लगाओ तो कुछ-कुछ भी मिल सकता है। किस्मत साथ दे तो बहुत-कुछ भी मिल सकता है। लेकिन सब कुछ कभी भी और किसी को भी नहीं मिलता। इसलिए सब कुछ पाने और सब कुछ होने के पीछे पागल मत बनो। जो तुम्हारे पास है उसका आनंद लो, जो पड़ोसी के पास है उसे देखकर दु:खी मत होओ। दु:खी होने से आखिर पड़ोसी तुम्हें कुछ भी नही देगा।

३४६) एक छोटी सी कहानी है एक बुढ़िया थी; वह बचपन में ही मर गई। जब कभी मैं यह कहानी कहता हूँ, तो लोग हँसते हैं और पूछते हैं कि बुढ़िया थी, तो बचपन में कैसे मर गई और बचपन में मर गई, तो बुढ़िया कैसे हुई ? जन्म को जीवन मत समझ लेना। जो उम्र केवल खाने, पीने और सोने में निकल गई, उसका क्या मूल्य है ? व्यक्ति का असली जन्म तो उस दिन होता है जब उसे अपने अस्तित्व का बोध होता है और जीवन में धर्म-ध्यान शुरू हो जाता है। केवल माँ के पेट से बाहर आ जाना ही जन्म नहीं है।

३४७) आपने सुना होगा कि भगवान महावीर जहां बैठकर तप करते थे। वहां उनके तप-प्रभाव से गाय और शेर एक घाट पर एक साथ पानी पिया करते थे। सज्जनों का इतना प्रभाव तो नहीं है कि गाय और शेर एक घाट पर पानी पीने लगे पर इनके प्रवचनों के प्रभाव से सास और बहू एक साथ रहने को राजी हो जाएँ, बाप और बेटा एक साथ चलने को राजी हो जाएँ, भाई और बहन एक साथ बैठकर भोजन करने को राजी हो जाएँ, देवरानी और जेठानी एक साथ मंदिर जाने को राजी हो जाएँ।

३४८) अगर आप सास हैं और अपने परिवार में सुख-शांति चाहती हैं तो बहू और बेटी में फर्क मत डालिए। बहू को ही बेटी मानिए। कभी बहू से झगड़ा हो जाये तो बहू के पीहर वालों को भला-बुरा मत कहिए। इसे बहू बर्दाश्त नहीं करेगी। मंदिर या घर में बैठकर बहू की बुराई मत करिए। इससे सुलह के सारे दरवाजे बंद हो जायेंगे। हमेशा ध्यान रखिए कि एक बहू की चाहत क्या होती है, क्योंकि सास भी कभी बहू थी।

३४९) सुखी-जीवन का राज है कि जो तुम्हारे पास है, उसका आनंद लो, जो नहीं है, उसके पीछे पागल मत बनो। आपकी जेब में ९० रुपये हैं तो उसका आनंद लो। १०० रुपये में जो १० कम हैं; इसका दु:ख मत करो। १०० करने के चक्कर में मत पड़ो क्योंकि १०० तो पूरे कभी होंगे नहीं, मगर यह हो सकता है कि जो ९० हैं, वे भी चले जायें। सम्राट सिकंदर के भी १०० पूरे नहीं हुए तो फिर आप तो बहुत ही मामूली हो।

३५०) मकानों में जिस प्रकार कई कमरों के साथ एक शौचालय भी होता है, और शौचालय में जितना समय एक व्यक्ति देता है। इतना ही समय एक व्यक्ति को राजनीति में देना चाहिए। दर-असल जीवन में राजनीति का महत्व शौचालय से ज्यादा कतई नहीं होना चाहिए। कारण कि फ्रिज में ज्यादा देर तक राख हुआ पानी बर्फ बन जाता है। और रात-दिन राजनीति में रचा-पचा आदमी भी घाघ हो जाता है।

३५१) अगर आप माँ-बाप हैं तो बच्चों के साथ आत्मीयता पैदा कीजिए। बच्चों से दूरियां नहीं होनी चाहिए। अपने बच्चों के लिए थोड़ा समय जरूर निकालिए, उनके साथ बैठिए और बाते करें। क्योंकि आपकी सबसे बड़ी सम्पत्ति तो वही हैं। पैसा कमाने में इतने मशगूल मत हो जाना कि बच्चे हाथ से निकल जायें। बच्चे बिगड़ गये तो फिर पैसा कमा कर भी क्या करोगे? बच्चे को बच्चा इसलिए कहते हैं क्योंकि उसे बचाना पड़ता है। वह स्वयं बचना नहीं जानता। उसे बुरी नजर और बुरी संगत से बचाइये, वरना कल तुम्हारा बड़ा बुरा होगा।

३५२) दुनिया में तीन चीजें हैं, जो मृत्यु के बाद भी पीछा नहीं छोड़ती। एक, पुण्य। पुण्य मृत्यु के बाद व्यक्ति को स्वर्ग ले जाता है। दो, पाप। पाप मृत्यु के बाद व्यक्ति को नरक ले जाता है। तीन, गुरुमंत्र। समर्थ-गुरु के द्वारा प्रदत्त गुरु-मंत्र को अगर श्रद्धा-भक्ति से जपा जाये तो वह ईश्वर के पास ले जाता है। वह कार्य जो मन को स्थायी प्रसन्नता दे, पुण्य है। वह कार्य जो मन को स्थायी पश्चाताप दे, पाप है। और महापुरुष के जिस शब्द या वाक्य से तुम्हारी जिन्दगी बदल जाये, बस। वह शब्द और वाक्य ही गुरु-मंत्र है।

३५३) क्रोध करना है, किसी से बदला लेना है, तो इसमें जल्दबाजी मत करना बल्कि किसी ज्योतिषी के पास जाना और कहना कि मुझे क्रोध करना है, एक आदमी है, जिससे बदला लेना है- इसके लिए आप अच्छा सा मुहूर्त निकालकर दीजिए। जब तुम हर शुभ कार्य के लिए मुहूर्त दिखाते हो तो अशुभ कार्य बिना मुहूर्त के क्यों कर लेते हो ? वैसे क्रोध के लिए पुष्य नक्षत्र में अमृत योग का मुहूर्त सबसे बढ़िया है, मगर यह साल में दो ही बार आता है।

३५४) तुम जब छोटे थे और खुद कमाते नहीं थे। तब तुम्हारे पिता तुम्हें खर्चे के लिए जेब खर्च दिया करते थे। अब जबकि तुम बड़े हो गये, खुद कमाने लगे और तुम्हारे पिता बूढ़े हो गये तो अब तुम्हें अपने पिता को जेब खर्च देना चाहिए। तुम जो कुछ भी कमाओ, उसका एक हिस्सा अपने पिता के हाथ में रख दो और कहो: पूज्य पिताश्री। यूं तो सब कुछ आपका ही है लेकिन यह भावना-पुष्प स्वीकार करें और हमें आशीर्वाद दें।

३५५) अगर तुम्हारा बेटा अपने ड्राइंग रूम में तुम्हारी सुन्दर सी तस्वीर टांग कर रखता है, तो इसमें खुश मत होना बल्कि यह सोचना

कि फोटो तो दीवार पर लटक ही गयी है, अब पता नहीं कब इस पर माला चढ़ जाये। अत: तस्वीर पर माला चढ़े इससे पहले प्रभु की शरण में आ जाना और प्रभु नाम की माला फेरने बैठ जाना। माला ही माल है, बाकी का माल काम आने वाला नहीं है। प्रभु अच्छे लगे व सच्चे लगे, इतना ही काफी नहीं है, बल्कि प्रभु अपने लगे, यह भी जरूरी है।

३५६) गालियों में भी गीत होते हैं, बस उन्हें खोजने की कला आनी चाहिए। अगर यह कला आ गई तो फिर कोई गाली तुम्हें क्रोधित नहीं कर सकती। यही है गाली में से गीत खोजने की कला।

३५७) अगर आप पत्नी हैं तो आप अपने पति की आय से अधिक व्यय मत करिए। कारण कि आय और व्यय में संतुलन बनता है तो ही दाम्पत्य-जीवन में संतुलन बनता है। पत्नी की जिम्मेदारी है कि वह पति पर अनावश्यक बोझ और चिन्ता का कारण न बनने दे। जितनी बड़ी चादर हो पैर उतने ही फैलाने चाहिए। मगर आजकल की पत्नियां भी कमाल की हैं। वे पति की आय नहीं देखती और नई-नई मांग करती रहती हैं। सच है पति के मरने के बाद ही पत्नी समझदार होती है। कारण कि तब उसे कमाई का महत्व पता चलता है।

३५८) बिल्ली और शेखचिल्ली की तरह अब दिल्ली भी भरोसे के काबिल नहीं रही। हज करके लौटी बिल्ली पर अगर चूहे यह भरोसा कर लें कि अब वह सुधर गई है, उसने चूहे खाने छोड़ दिए है तो यह उनकी बड़ी भूल होगी। जो सिर्फ सपनों में जीना जानता है, ऐसा शेखचिल्ली भी भरोसे के काबिल कैसे हो सकता है ? और दिल्ली ? जहाँ सिर्फ बातों के बादशाहों का जमावड़ा हो और आचरण के आचार्य दूर-दूर तक दिखाई न देते हो ऐसी दिल्ली से भी आखिर क्या उम्मीद की जा सकती है ?

३५९) गाय आज धर्मनीति और राजनीति के बीच पिस रही है। जब तक गाय धर्मनीति और राजनीति के जाल से मुक्त नहीं होगी तब तक गौ-हत्या को रोका नहीं जा सकता। अगर हम गाय को धर्मनीति और राजनीति के जंजाल से बाहर निकाल दें और उसे पूरी तरह से अर्थनीति से जोड़ दें तो स्वत: ही देश में गौ-रक्षा आंदोलन सफल हो जायेगा।

३६०) अगर आप माँ-बाप हैं और अपने बेटे के विवाह के बारे में सोच रहें हैं तो आप अपने घर बहू लाना, बहुरानी मत लाना। बहू घर आयेगी तो वह संस्कार लेकर आयेगी और बहूरानी घर आयेगी तो वह कार लेकर आयेगी। जो कार लेकर आयेगी, तय है वह अपनी सरकार चलायेगी और जो संस्कार लेकर आयेगी वह तुम्हारे बुलाने पर सर के बल चली आयेगी। बहू आयेगी तो वह तुम्हारे बेटे को हर-रोज एक ऐसा पाठ पढ़ायेगी जो तुम्होर जीवन को स्वर्ग बना देगा और बहूरानी आयेगी तो वह बेटे को ऐसी पट्टी पढ़ायेगी जो तुम्हें जीते-जी स्वर्गीय बना देगी।

३६१) आज तुम्हारा जन्म दिन है तो एक काम करें। सबसे पहले उस माँ को प्रणाम करें जिसने तुम्हें जन्म दिया है। फिर उस महात्मा को प्रणाम करें जिसने तुम्हें जीवन दिया है। और फिर उस परमात्मा को प्रणाम करें जो तुम्हें मुक्ति देगा। जन्म दिन अवश्य मनाएं किन्तु माँ, महात्मा और परमात्मा को भुलाकर और रुलाकर नहीं बल्कि उन्हें बुलाकर। जन्म दिन अवश्य मनाएं लेकिन इस बात को न भूलें कि दो दिन की जिन्दगी में एक-दिन मौत का भी होता है।

३६२) संत और पुलिस दोनों ही समाज-सुधार का काम करते हैं। फर्क केवल इतना है कि संत संकेत की भाषा में समझाते हैं और पुलिस बेंत की भाषा में। दर-असल जो संत के संकेत को नहीं समझते हैं उन्हें ही पुलिस के बेंत की जरूरत पड़ती है। पुलिस की वर्दी किसी संन्यासी के भगवा वस्त्रों से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

३६३) जरूरत से ज्यादा मत बोलिए। बिन माँगे बहू-बेटे को सलाह मत दीजिए। साठ साल की उम्र हो जाए तो अधिकार का सुख छोड़ दीजिए। बेटा-बहू से कहिए : अब तुम्हीं इस घर के मालिक हो, अपने ढंग से जिओ- रहो। हमें तो बस मेहमान ही समझो। बेशक। तिजोरी की चाबी भी बेटे को दे देना। अपने लिए इतना जरूर बचा लेना कि कल को बेटा-बहू के सामने हाथ फैलाना न पड़े।

३६४) मंदिर और मस्जिद की हैसियत स्नानगृह से अधिक कुछ नहीं है। दरअसल मंदिर और मस्जिद एक आध्यात्मिक स्नानगृह है। जिस तरह घर के स्नानगृह में हम तन की गंदगी को धोते हैं, वैसे ही मंदिर और मस्जिद में मन की मलिनताओं को धोना चाहिए। स्नानगृह से तुम नहा-धोकर बाहर निकलते हो तो एकदम तरोताजे होकर निकलते हो। ऐसी ही ताजगी, विनम्रता और शांति मंदिर-मस्जिद से बाहर निकलने के बाद तुम्हारे चेहरे पर झलकनी चाहिए।

३६५) दान और पुण्य एकान्त में होना चाहिए। जैसे तुम स्नान सड़क या चौराहे पर नहीं वरन बंद स्नानगृह में करते हो, वैसे ही

दान-पुण्य गुप्त होना चाहिए। पुण्य की किसी को खबर नहीं लगने देना चाहिए, क्योंकि पुण्य छिपाने से बढ़ता है और बताने से मरता है। पुण्य बड़ा शर्मीला है। पुण्य और दान छपाकर नहीं, छिपाकर करना चाहिए।

३६६) संत-मुनि का अपना कोई घर नहीं होता है। वह तो भक्तों के दिलों में वास करता है। यह कितना बड़ा आश्चर्य है कि जिनका अपना कोई पता नहीं है, वही लोगों को उनकी जिन्दगी की असली मंजिल का पता बताते हैं।

३६७) मृत्यु की सब सामग्री तैयार है। कफन भी तैयार है, बस। बाजार से लाने की देर है। बांस और मूंज भी तैयार है, बस। आज्ञा देने की देर है। उठाने व जलाने वाले भी तैयार हैं, बस खबर करने की देर है। जलाने की जगह भी तैयार है। बस। अर्थी उठने की देर है। रोने वाले भी तैयार हैं। बस। चल-बसे की खबर सुनने की देर है। मृत्यु की सब सामग्री तैयार है। बस। श्वास बंद होने की देर है। श्वास बंद होते ही आधा घंटे में सब सामग्री जुट जायेगी और घंटा भर में तो अस्थियाँ बिखर जायेंगी। अत: अस्थियां बिखरने से पहले जीवन में आस्था पैदा कर लेना और चिता जलने से पहले अपनी चेतना को जगा लेना। बस। जीवन सार्थक हो जायेगा।

३६८) समय सबसे कीमती होता है उसे समझ कर ही व्यतीत करे। मानव के लिये स्वास्थ्य और बुद्धि ही आशीर्वाद है। व्यथा की उपयोगिता कोई नही जानता इसे जानना चाहिये। खेल खेल में मेंढक को सभी पत्थर मारते है लेकिन मेंढ़क पलट कर कब गहरी मार मारेगा यह कोई नही जानता है।

३६९) समय का अनुशासन राजाओं की शिष्टता का द्योतक है। किसी ने ठीक कहा है एक मिनट की देर होने की बजाय समय से १५ मिनट पहले पहुँचना बेहतर है। कभी देर न करना और भी बेहतर है। वक्त की पाबन्दी से अच्छे प्रशिक्षण, अच्छे तौर तरीके तथा दूसरों की भावनाओं के प्रति सम्मान की भावना जाहिर होती है। जो आदमी समय पर काम करता है वह समय और शक्ति दोनों की बचत कर लेता है। वक्त की पाबन्दी की कमी ईमानदारी की कमी का सूचक है। निर्धारित समय पर वायदा पूरा न कर सकना बेईमानी है। किसी व्यक्ति से समय मांगना उससे पैसे मांगने के समान जैसे ही है।

३७०) ठीक समय वही है जिसका हम सब इन्तजार करते है। वास्तव मे दोष कभी भी समय का नही होता बल्कि हमारे निर्णय के अभाव का होता है। उचित कार्य करने के लिये कोई भी समय अच्छा है। इसी प्रकार स्वयम् को एक अच्छे मार्ग पर जो ईश्वरोन्मुख है पर लाने के लिये कोई भी समय अच्छा ही होता है। जब शुरू हो जाय वही ठीक है। क्योकि तारे व नक्षत्र आपकी स्वयं की आत्मा मे छिपे पडे है। गहरे स्वप्न देखो, प्रत्येक स्वप्न लक्ष्य का पूर्वगामी है।

३७१) आप समय को नही बदल सकते, महसूस करे कि यह परिवर्तन का समय है।

३७२) समय का अनुशासन एक नैतिक गुण है। जो लोग समय की पाबन्दी नही कर पाते उनमे नैतिकता का अभाव हो सकता है। नियमों को मानना हम अपनी शान के खिलाफ समझते है। हम एक थोडे से समय मे बहुत से काम एक साथ करना चाहते है। लेकिन कर पाते नही है इसलिये देर के बाद देर होती जाती है। इसलिये हर काम देरी से ही होता है और बहुत सारे तो बिना किये हुये ही छूट जाते है। समय की पाबन्दी न करना अहंभाव से पैदा होता है। हम समझते है समय हमारी गुलामी मे रहेगा और हम जैसा चाहे करेंगे लेकिन समय आगे निकल जाता है और हम अपने उद्देश्यों मे विफल हो जाते है।

३७३) समय किसी का इन्तजार नहीं करता। इससे खिलवाड करनेवाला कही का नहीं रहता। वक्त को अपने लक्ष्य प्राप्ति मे लगाये तथा दृढ प्रतिज्ञा कर आगे बढे कि मनुष्य नहीं समय बलवान है, मूल्यवान है परन्तु मनुष्य चाहे तो स्वयं को मूल्यवान बना सकता है। छोटे रास्ते तलाशने के बजाय पूरे उमंग व उत्साह से किया हुआ काम सब विघ्न बाधाओं को पार कर शिखर पर पहुंचने का सपना औश्र साहस बुलन्द होता है।

३७४) समय बहुमूल्य है, अमूल्य है। समय तो जीवन है। समय को व्यर्थ खोना मरने के समान है। समय तो किसी का इन्तजार करता है और न ही किसी से इकरार। समय कभी पीछे मुड कर भी नही देखता है बल्कि अपनी गति से बहते जाता है।

३७५) बुरे वक्त को अपने वक्त पर ही गुजरना है आपके रोने चिल्लाने, शोर शराबा करने से वक्त कोई जल्दी नही गुजरने वाला है।

३७६) जीवन मे समय का बहुत बडा महत्त्व है। समय व मृत्यु किसी का इन्तजार नही करते। यदि हम समय का सदुपयोग करे तो जीवन मे सफल व्यक्ति बन सकते है। समय निकल जाने के बाद लाख प्रयत्न करने पर भी बिगडा हुआ कार्य किसी भी किमत पर

सम्भव नही होता। सभी महापुरुष समय के बडे पाबन्द रहे इसीलिये समय के साथ चलनेवाले व्यक्ति ही जीवन मे सफल हो पाये है।

३७७) जो समयानुसार मित्र से व्यवहार नही करता उसका सर्वस्व छिन्न जाता है। समय व्यतीत हो जाने पर किया गया कार्य अपना महत्व खो देता है।

३७८) इस दुनिया मे अपना हर दिन यह समझ कर गुजारो कि यह उसका अपना आखिरी दिन और समय है।

३७९) कौन कहता है कि वक्त गुजरता है। वक्त तो वही रहता है मगर हम गुजर जाते है।

३८०) हर आदमी अपने बीते हुये कल को खो चुका है। कामयाब वह है जो अपने आज को न खोये।

३८१) जिन्होंने समय का सदुपयोग करना नहीं सीखा उसके सामने कठिनाईयाँ और असफलतायें ही आती रहती है। समय का उपयोग धन के उपयोग से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि उस पर मनुष्य की सुख सुविधा के सभी पहलू अवलम्बित है। हमें अर्थ अनुशासन के साथ नियमित जीवन जीने का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य ने जो समय व्यर्थ ही खो दिया उसमे क्रियाशील रहता तो धनार्जन की प्राप्ति होती। समय खराब करने वाले लोग तो देश पर बोझ ही है।

३८२) नदी की धारा आगे बह कर वापिस नहीं लौटा करती, पेडों से टूट कर पत्ते बिखर जाये तो फिर डाल पर नहीं लगा करते। बीता हुआ समय कभी वापिस नहीं लौटता। जो क्षण गुजर गया सो गुजर गया। इसलिये जो समय आपके पास है उसे प्यार से बिताओ। जिस क्षण में आनन्द मान कर प्रेम पूर्ण स्थिति मे जीवन बिताया वो क्षण ही स्मृति योग्य है। जो पुण्य किये है वे ही साथ जायेंगे। जो ज्ञान अर्जित किया वो ज्ञान ही शक्ति है।

३८३) "सच है नारी कर सकती है विधि-विधान के भी प्रतिकूल, सच है प्रमदा भर सकती है, सुमन-राशि में अगणित शूल,
बिजली-सी वह गिर सकती है घन के सजल हृदय को त्याग। आग लगा सकती पानी में भर सकती जग में अनुराग,
हो सकती वह शक्ति सृष्टि की, हो सकती विनाश का मूल, दृढ़ व्रत कर वन अचल हिमाचल, हो सकती इसके प्रतिकूल।"

३८४) मुश्किल वक्त मे अपने ईमान को सच करके दिखने का मौका मिलता है। सब्र करने वालों मे ऐसे ईमानदार लोग भी शामिल है जो मुसीबते देखकर घबराते नही है बल्कि अपने दिल की सच्चाई के साथ उनका मुकाबला करते है।

३८५) वक्त कभी नही बदलता है, आदमी बदल जाता है।

३८६) हवा से वृक्ष के एक एक करके पत्ते झरते चले जाते है। इसी प्रकार काल भी एक एक करके हर प्राणी को संसार के वृक्ष से बटोर कर ले जाता है। इसलिये अपने जीवन का पत्ता झरने के पहले हम इतना कर ले कि दूसरों को दु:ख न दे, दुष्टों के सामने झुके नही और सत्य का मार्ग छोडे नही।

३८७) जैसा होना होता है, वैसे ही संयोग बन जाते हैं। समय आने पर शत्रु मित्र बन जाते हैं, मित्र शत्रु हो जाते हैं। काल की महिमा अपार है। समस्त संसार के नियम को काल चला रहा है। बिना काल के असमय में कोई कुछ नहीं कर सकता। जिस समय जो काम करने का जिसका काल होगा, वह उसी समय उस कार्य को करेगा। प्रयत्न करने पर भी, इच्छा रहने पर भी, उससे पहिले वह नहीं कर सकता।

३८८) काल बली से कौन वीर बच सकता है ? एक दिन सभी को काल का ग्रास बनना है। एक दिन सभी इस धरोधाम को त्यागकर चले जायेंगे। शरीरधारियों का शरीर सदा नहीं रहता केवल यश अपयश शेष रह जाते हैं।

३८९) बहुत पुण्य संचय होने के बाद मनुष्य जीवन मिलता है। यह जीवन एक सुनहरा अवसर है जो निकल जाने के बाद पुन: लौट कर नही आता। व्यक्ति अपने पुरुषार्थ के बलबूते पर अपनी खोई हुई सम्पत्ति, वैभव यश प्राप्त कर सकता है परन्तु जो समय जीवन से चला गया वह पुन: लौटकर नही आता। जो अवसर को पहचान लेता है वह जीवन मे जागा हुआ है।

३९०) काल डंडा या तलवार लेकर किसी का सिर नहीं काटता। काल का बल इतना ही है कि वह प्रत्येक वस्तु के विषय में मनुष्य की बुद्धि विपरीत कर देता है।

३९१) काल ऐसा कठोर और शक्तिशाली है कि वह राजा महाराजाओं को महल के भीतर से उठा कर लेकर चल देता है और कोई उसे रोक नही पाता। हमारे जीवन मे एक न एक दिन ऐसा आता है जब कोई किसी का नही होता। घर की नारी (पत्नी) की बात ही नही, इस तन की नाडी (नब्ज) भी साथ छोड देती है।

३९२) गया हुआ धन पुन: प्राप्त हो सकता है, पर गया हुआ समय पुन: प्राप्त नहीं होता। धन की तरह समय को तिजोरी में बंद करके भी नहीं रख सकते। अत: हर समय सावधान रहकर समय का सदुपयोग करना चाहिए।

३९३) जो समय हमारे हाथ में नहीं रहा, उसके बारे में ज्यादा सोचकर हम अपना आज और आनेवाला कल क्यों बिगाडें? बेहतर है कि वर्तमान के बारे में सोचकर अपना भविष्य सुधारें।

३९४) वक्त और समुद्र की लहरे किसी का इन्तजार नही करती है। वक्त को नष्ट मत करो क्योकि जीवन इसी से बना है। वक्त सबसे अधिक बुद्धिमान परामर्शदाता है।

३९५) जब काल चाहता है (आता है) तभी इस संसार में प्राणी का जन्म होता है और काल आने पर ही सबकुछ चला जाता है (मृत्यु होती है)। काल के साथ सभी वस्तुओं और जीवों को नष्ट होना ही है। सबकुछ काल में समा जाना है। समय चलता रहेगा, वह नहीं रुकेगा वह तो बस, अपना रूप दिखाता रहेगा।

३९६) वक्त जिन्दगी का ताना बाना है। अगर बचपन की भाग दौड मे इसको तोडो तो फिर उम्र भर इसे जोड न सकोगे। जितने नंगे, भूखे और गरीबी जी रहे इस दुनिया मे है उन सबने बचपन मे अपने वक्त को बर्बाद किया है। कामयाबी चाहते हो तो वक्त की कदर करना सीखो और वक्त की हर मंजिल को हिम्मत और होशियारी से बुलन्द करो।

३९७) समय की गति बदलने के साथ स्वयं का स्वभाव बदल लेना बुद्धिमत्ता कहलाती है। जो इस बुद्धिमत्ता को नहीं अपनाता, उसे पछताना ही पड़ता है।

३९८) समय लौटना नहीं जानता। समय देवता है। समय का स्वागत करो। कार्य करने के लिए वर्तमान से अच्छा और कोई समय नहीं होता।

३९९) समय-चक्र गतिमान है। ऋतुएं क्रम से आ-जा रही हैं। वृक्ष का जीवन-क्रम चल रहा है। वह समय पर फलता है और समय पाकर फल-विहीन हो जाता है। उसमें समय पर फूल आते हैं और वह समय पर पत्तों का त्याग करता है। अच्छा हो या खराब, समय अवश्य बदलेगा। ऋतु परिवर्तन होगा।

४००) समय-लाभ जैसा कोई लाभ नहीं, समय-हानि जैसी कोई हानि नहीं। समय-देवता को सम्मानित करो। समय विजेता बनो। समय को बांध लो और स्वयं बंध जाओ। चतुर सुजानों से भी प्राय: समय की चूक हो जाती है, जिसकी हूक उनके हृदय में उठती रहती है। ऐसी चूक फिर वे नहीं करते। अपनी भूल सुधार लेते हैं।

४०१) समय के जो आगे भागते हैं वह समय से पहले थक जाते हैं। जो समय के साथ-साथ चलते हैं वह खुश रहते हैं तथा औरों को भी खुश रखते हैं। जो समय के पीछे चलते हैं वह दौड़ में पीछे रह जाते हैं। जो समय को यूँ ही जाने देते हैं, वह बाद में पछताते हैं।

४०२) काल (समय) बलवान है। वही प्राणधारियों का भक्षण कर डालता है। वही प्रजा तथा पृथ्वी का विनाश कर डालता है। सभी कुछ समाप्त हो जाने पर भी काल (समय) वर्तमान रहता है। पर काल सदैव जागृत रहता है। सोते (शयन) तो हम करते रहते हैं दृष्टि होने पर भी। काल को (समय) ईश्वर भी परास्त नहीं कर सकता है।

४०३) समाज मेरे लिये है, समाज ने मुझे क्या दिया यह सब न मान कर, मै समाज के लिये हूं, मैने समाज को क्या दिया यह सब सोच कर समाज सेवा करनी चाहिये।

४०४) देश की सबसे बडी समस्या सीमा पार का आतंकवाद है और उसको मिटाने का पूरा प्रयत्न जारी है लेकिन उस आतंकवाद का क्या जो हमारे देश के भीतर पनप रहा है। आज समाज मे भ्रष्टाचार, शोषण आदि फैले हुये आतंकवाद ही है जो सीमा पार आतंकवाद से ज्यादा गहरे और खतरनाक है। यह धीरे धीरे समाज को दीमक की तरह खा रहा है।

४०५) समाज मे सत्प्रवृतियों के प्रसार के लिये अपने समय, प्रभाव, ज्ञान पुरुषार्थ और धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहे।

४०६) राजनीति के सूक्ष्म रहस्य जान लिये जाये तो व्यक्ति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। राजनीति के सूक्ष्मज्ञान से कुछ लोग काफी कुछ प्राप्त करने मे समर्थ होते है।

४०७) लोग स्वयम् की शान्ति इतनी अधिक चाहते है कि सरकार व प्रशासन को इसके रास्ते से हट जाना चाहिये और लोगों को स्वयं इसके लिये पहल करने की व जिम्मेदार बनने की अनुमति देनी चाहिये।

४०८) आज समाज मे दान है, तप है पर आडम्बर के कारण उनके वास्तविक अर्थ ही लुप्त हो रहे है। कोई भी धार्मिक क्रिया आडम्बर रहित होनी चाहिये। धर्म चाहे थोडा ही करे पर इमानदारी और निष्कपटता से करे।

४०९) धिकार है ऐसे समाज पर जिसमे लोगों को पेट की आग को बुझाने के लिये चोरी करनी पडती है। समाज मे पनपी ऐसी स्थिति मे लोगों ने एक ऐसे समाज मे रहने का जुर्म है जिसमे एक भूखे मानव को रोटी चुराने के लिये विवश होना पडता है ऐसे लोगों को और समाज को धिक्कार है।

४१०) समानता से सम्मान, सम्मान से स्नेह, स्नेह से सहयोग, सहयोग से सहिष्णुता, सहिष्णुता से धर्म निरपेक्षता, धर्म निरपेक्षता से एकता, एकता से राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयता से कर्त्तव्य परायणता, कर्तव्य परायणता से निष्ठा, निष्ठा से विकास, विकास से शान्ति, शान्ति से ईश्वर शक्ति, और ईश्वर शक्ति से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

४११) कहीं कोई ऐसा कार्य तो नही कर रहे जो समाज के अनुकूल न हो। विषम परिस्थितियों में धैर्य खो देने का अर्थ स्वयं को पराजित मान लेना है। धैर्य की पूंजी को बचाये रखते हुये सत्य और लोकोपकारिता का आचरण ही सच्ची विजय है। सदाचार की भाषा सदैव मौन होती है दूसरों को उपदेश देने से पूर्व, स्वयं को आदर्श रूप मे प्रस्तुत करो। जो आचरण में न आ सके वह ज्ञान किसी भी काम का नही होता।

४१२) हर व्यक्ति के निर्माण मे उसके देश तथा समाज का योगदान अवश्य होता है। अत: प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह बदले मे समाज व देश को कुछ न कुछ अवश्य प्रतिदान करे।

४१३) हम सभी जन्म जात सुन्दर, पवित्र और खुशमिजाज होते है। यह बहुत अफसोस की बात है कि हमे समाज में रहने के लिये सभ्य बनना पडता है।

४१४) यदि संवेदनशीलता का विकास नहीं है तो नये समाज के निर्माण की कल्पना नहीं हो सकती। जब तक स्वार्थ विसर्जन की चित्तवृति नहीं है तो नये समाज के निर्माण का संकल्प सार्थक नहीं है और यदि नैतिकता में निष्ठा नहीं है तो नये समाज के निर्माण की प्रवृति प्रबल नही हो सकती।

४१५) जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है। जनता जनार्दन है। जनता अलग अलग हो तो उसे संगठित कर अच्छे ध्येय की ओर ले जाने की जिम्मा सामाजिक कुशल नेताओं का है। साधारण जनता हमेशा बडों का अनुकरण करती है। सामाजिक नेता जनता की आवाज पहचान कर उसके अनुकूल कार्य करे तो जनता उसे विभूषित करती है। यदि कोई नेता जनता के साथ विश्वासघात कर प्रतिकूल व्यवहार करे तो आसमान दिखाने की सामर्थ्य भी जनता जनार्दन मे है। इसलिये जनता की ईश्वरीय आवाज की उचित दखल व सम्मान सदैव करना चाहिये।

४१६) जब सब्र और धैर्य का बांध टूट जाये तो अनहोनी अचरज पैदा ही नहीं करती, समय व तात्कालिक परिस्थिति की एक स्वाभाविक प्रक्रियामान इसके पात्र को स्वत: ही व्यापक सहानुभूति प्राप्त हो जाती है। नियम, कानून के जाल से मुक्त कर उसे क्षमा भी कर दिया जाता है। उदार समाज की पहचान के रूप मे भी इसे चिन्हित किया जाता है।

४१७) समाज की दृष्टि में मनुष्य हीन भावना से दबा रहता है, आत्मा की पुकार के अनुरूप ही मनुष्य को कर्म करना चाहिए, न कि तीव्र चंचल मन और अस्थिर बुद्धि के अनुसार।

४१८) मनुष्य एवं समाज जब भी आत्मा की पुकार को अनदेखा करता है, तब-तब विपत्ति-ग्रस्त होकर छटपटाता है। ऐसही ही अवसर पर कोई वरेण्य पुरुष जन्म लेकर समाज को, मनुष्य को नीति-मार्ग की ओर उन्मुख करता है।

४१९) आत्मा की आवाज को सुनो। चंचल मन और अस्थिर बुद्धि के बहकावे में मत आओ। इसी में तुम्हारा और वर्तमान समाज का हित तिरोहित है, छिपा हुआ है।

४२०) समत्त्व ऐसा तत्त्व है, जो प्राणिमात्र को एक सूत्र में पिरोता है, फिर मनुष्य समाज में यदि साम्य-भावना प्रबल हो तो युद्ध, दमन तथा शोषण, अलगाव आदि मानवता विघाती तत्त्व उत्पन्न होने का प्रश्न ही नहीं। आज सम्पूर्ण विश्व में राष्ट्रों के मध्य तनाव, शत्रुता तथा ईर्ष्या आदि का कारण समता का अभाव ही है। गोरा और काले में भेद, राष्ट्र-भेद तथा जाति-भेद, प्रान्त भेद, वर्ग-भेद,

संस्कृति भेद आदि आज जितने भी भेद हैं, उनका कारण समता का अभाव होना है।

४२१) न केवल अकर्मण्य मनुष्य नष्ट हो जाता है अपितु समाज तथा राष्ट्र भी यदि अकर्मण्य हो जाता है, तो वह भी नष्ट हो जाता है, अत: कर्म के बिना किसी का भी अस्तित्व सम्भव ही नहीं।

४२२) धर्म की परिभाषा है कि धर्म वह है जो मनुष्य का आत्मिक उत्कर्ष करे, मनुष्य के जीवन का ध्येय आत्मिक विकास करना है। धर्म के प्रति आस्था मनुष्य को दुराचरण से निजात दिलाती है तथा मानसिकता का निर्माण करती है। स्वस्थ मानसिकता वाला व्यक्ति ही राष्ट्र, एवं समाज की सेवा करने योग्य होता है।

४२३) धर्म का अभिप्राय है श्रेष्ठतम कर्म करना। अच्छे कर्मों से ही अच्छा समाज बनता है। धर्म या नैतिक नियमों का अनुसरण कर हम अपने विचार और दृष्टिकोण को उदस्त बनाते है। अत: धर्म का पालन प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है, इसी से मनुष्य का आत्मिक उत्कर्ष होता है।

४२४) मनुष्य बिना सोचे समझे विकारों के पीछे दौड़ लगा रहा है। मनुष्य के जीवन मे परिवर्तन करने के लिये केवल एक क्षण पर्याप्त है। वह क्षण आने पर इन्सान बदल जाता है। अपनी गुणवत्ता के बलबूते पर आगे बढ़ने वाले व्यक्ति समाज मे आदर्श सिद्ध होते है, उनका समाज मे आदर होता है।

४२५) अतिथि समाज का एक प्रतिनिधि है। अतिथि के रूप मे समाज हमसे सेवा चाहता है। अतिथि सत्कार के समय हमारी यह भावना होनी चाहिये कि हम प्रसन्नतापूर्वक उसका आतिथ्य सत्कार करे।

४२६) नारी को अबला कहना उसका अपमान करना है। नारी जाति का सम्मान करना चाहिए। नारी की चरम सार्थकता मातृत्व में है।

४२७) नारी के लिए इस लोक और परलोक में एकमात्र पति ही सदा आश्रय देने वाले है। पिता, पुत्र, माता और सखियां और न उसकी यह आत्मा ही उसकी सच्ची सहायक हैं। नारी के बिना पुरुष की बाल्यावस्था असहाय है, युवावस्था सुखरहित है और वृद्धावस्था सांत्वना देने वाले सच्चे और वफादार साथी से रहित है।

४२८) मन कहता है भूतल पर, सकल सुखों की नारी है निधि। इस संस्कृति के संचालन को, नारी रचकर धन्य हुआ विधि। किन्तु वहीं कोई कहता है। नारी है इस जग का बंधन। जीव ब्रह्म के बीच आवरण, विरचा है विधि ने नारी-तन।

४२९) विषाद और असहमति किसी भी क्रियाशील समाज की प्राण शक्ति है।

४३०) जिस क्षण हाथ बढ़ा कर अस्पृश्य का स्पर्श किया, समझो उसी क्षण यह समस्या अस्पृश्यता सदा सदा के लिये हल हो गई। अस्पृश्यता हमारे देश और समाज के मस्तक पर कलंक है।

४३१) जो जाति जब तक राष्ट्र के लिये मरना जानती रहेगी उसको तभी तक इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार होगा। जाति भेद राष्ट्र, के बल-संवर्द्धन और अभ्युदय के लिये अपरिहार्य आवश्यकता न होकर उल्टे बाधा स्वरूप है।

४३२) भारत के मस्तक का यह कलंक है कि यहां के लोग जाति पाति मे विभक्त है। जहां मनुष्य अछूत और पैर की धूल के समान है, वह राष्ट्र कैसे जीवित रह सकता है।

४३३) महान नेताओं मे कुछ ऐसे गुण होते है जो सम्पूर्ण राष्ट्र को प्रेरणा देते है और उन्हे महान कार्य करने को प्रेरित करते है। लोगों के लिये सही रास्ता बनाना नेताओं का काम है।

४३४) प्रजातन्त्र का अपना संगठन और शासन होना चाहिये, परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही उसका प्राण है। प्रजातन्त्र का अर्थ है कि इससे नीचे से नीचे और ऊंचे से ऊंचे आदमी को आगे बढने का समान अवसर प्राप्त हो।

४३५) प्रजातन्त्र का अर्थ प्रजा का, प्रजा के द्वारा, प्रजा के लिये शासन है। प्रजातन्त्र ने साधारण श्रमिक को पहले से कही अधिक गौरव प्रदान किया है।

४३६) लोग चाहते हैं कि जीते जी ऐसा कोई मंगल कार्य कर जाएं ताकि दुनिया से विदा होने के बाद भी लोग उन्हें याद करें। उनका यश रूपी शरीर यहां विद्यमान रहे। इसी भाव से प्रेरित होकर लोग सत्कार्य के लिए उत्साहित देखे जाते हैं। किन्तु परोपकार के छोटे-छोटे कार्य से यश नहीं मिलता। उपकार के ऐसे कार्य तो समाज में आए-दिन होते ही रहते हैं। समाज ऐसे उपकारी को तथा उपकार

के ऐसे कार्य को बहुत दिनों तक याद नहीं रखता।

४३७) सराहनीय है वह शासन, जिसमें छोटे से छोटा आदमी भी अपनी अस्मिता बनाकर रह सके, जिसमें सर्वसाधारण को चिन्तामुक्त जीवन-यापन का अवसर मिले और अपनी परिधि में चमकने-दमकने का अधिकार हो। छोटे-कमजोर लोगों का शोषण न हो। जो जहां हो, ठीक से हो। किसी को घुटन न महसूस हो। लोग थिरकें, झूमें, नाचें और गाएं। न कोई दीन हो, न कोई हीन हो। सभी निर्भय-निर्द्वंद्व हों। ऐसा तभी होगा, जब शासक और शासन तन्त्र मानवीय मूल्यों से सम्पन्न हो। ऐसा शासन चन्द्रमा के समान सुखद-शीतल होता है। तभी लोग शान्ति की नींद प्राप्त करते हैं।

४३८) जो बड़े घर का आदमी हो, अब तक समाज में जिसका मान-सम्मान रहा हो, जिसको अकेले दम पर बड़ा परिवार चलाना हो तथा जीवन-यापन के साधन समुचित रूप से न मिल रहे हों, वह कब तक अपनी विपन्नता सार्वजनिक होने से बचा पाएगा? बहुत दुख-संताप झेलना पड़ता है ऐसे आदमी को।

४३९) जिस देश में शिक्षा की उच्चतम उपलब्धि लोक सेवा आयोग की प्रतिद्वंद्विता से प्राप्त बड़ा वेतन, बड़ा पद और बड़ी सुविधा है, अधिकार से अहंकार है, अनुचित रूप से धन कमाने की प्रवृत्ति है, लोकहित के विरोध में व्यक्तिहित की साधना है, उस देश की अधोगति स्वयंसिद्ध है। जिस देश के तरुण विज्ञान विषय की शिक्षा लेकर वैज्ञानिक बनने की कामना नहीं करते, मासिक वेतन जिस देश के तरुणों का भगवान बन गया है, उस देश को भौतिक, नैतिक और सांस्कृतिक तीनों रूपों में दरिद्र रहना है। लोकसेवा आयोग की प्रतिद्वंद्विता में जहां १० हजार तरुण बैठते हैं, वहां सौ-सवा सौ भले ही सफलता प्राप्त करें, शेष असफल होकर कुंठित जीवन बिताते हैं, उनके कर्म की गंगा सूख जाती है। जिस राष्ट्र की प्रति वर्ष इतनी हानि हो रही है, वह राष्ट्र भी यदि जीवित है, तो मृत राष्ट्र किसे कहेंगे?

४४०) भारतीय राजा और भारतीय अमीर अपने सारे बहुमूल्य रत्नों और शक्ति को खोकर खाली लम्बी-चौड़ी उपाधियों, और बेमतलब की पदवियों से युक्त गलीचे के शेर मात्र रह गये हैं।

४४१) अपने राष्ट्र की वृद्धि व राष्ट्रकल्याण करना ही सच्ची ईश्वर पूजा है। अपना देश ही अपने लिये ईश्वर महिमा का साकार रूप है।

४४२) अधिक जनसंख्या होने से या दूसरे देशों को हडप कर कोई भी राष्ट्र, शक्तिशाली नहीं हो सकता। प्रेम और भ्रातृत्व को अपना कर एक विशाल कुटुम्ब की तरह अपनी वृद्धि करने मे ही राष्ट्र की सच्ची शक्ति विद्यमान है।

४४३) जिसमे फूट हो गई और पक्ष भेद हो गये है, ऐसा समाज किस काम का ? आत्म प्रतिष्ठा और आत्मा की एकता की मूर्ति का समाज होना चाहिये। अलग-अलग रह कर जितना काम होता है, उससे सौगुना काम संगठित संघ शक्ति से होता है।

४४४) समाज को दुर्जनों की दुर्जनता उतना नुकसान नहीं करती जितना नुकसान सज्जनों की निष्क्रियता करती है। एक तो व्यक्ति सज्जन बने, सज्जन सक्रिय बने और सक्रिय सज्जन। जब समाज में संगठित हो जाये तो समस्या रहेगी ही नहीं।

४४५) बुद्धि को विशुद्ध रखकर निर्णय कीजिएगा। वे निर्णय व्यक्ति से परिवार बड़ा, परिवार से समाज बड़ा, समाज से राष्ट्र बड़ा, राष्ट्र से धर्म बड़ा- इस बात को ध्यान में रखकर लीजिएगा। और यह निर्णय लेने के लिए, बुद्धि को शुद्ध करना है। तो उसे शुद्ध करने के लिए राग और द्वेष का त्याग कीजिएगा।

४४६) भारत की सेवा। हम लोग भारत के पुत्र हैं। भारत माता केवल भूमि के रूप में नहीं, इस भूमि की परम्परा, यहाँ की संस्कृति इसकी सेवा करने का लक्ष्य, हमारे जीवन में हमारे बालकों के सामने रहे, यह उद्देश्य परिपुष्ट करना संस्कार कार्य की एक मूल भूमिका है।

४४७) बड़प्पन भी एक बोझ है और वह समाज के लिए केवल अभिशाप है। हमारा बड़प्पन ऐसा बड़प्पन न हो। हमारा बड़प्पन ऐसा हो कि मैं दूसरों को भी बड़ा बनाऊँ, मैं दूसरों को भी अपने पास लूँ।

४४८) समाज को आगे बढ़ाना है और प्रगति करनी है तो नाम की नही काम की आवश्यकता है और प्रत्येक काम को विश्वास के साथ करने की आवश्यकता है न कि अन्धविश्वास के साथ।

४४९) समाज में रहना व इससे जुझना भी पडेगा और मान मर्यादा में भी रहना पडेगा, नहीं तो समाज उठा कर आपको बाहर फेंक देगा और अब ऐसी कोई जगह नही जहां समाज न हो।

४५०) जिस साहित्य से मन मे कामनायें जागृत हो, मन विषयों की और प्रवृत हो उसे मलिन साहित्य जान कर त्याग देना चाहिये, और जिस

साहित्य से कामनायें घटे, मन मे भगवान के प्रति प्रीति बढ़े, मन निर्मल हो उसे शुद्ध साहित्य मानकर उसका सतत् अध्ययन मनन करे।

४५१) किताब नाम कमाने का सबसे बडा साधन है। किताब, ग्रन्थ और इतिहास ही है जो हजारों सालों तक जीवित रहते है। ऐसा नही है कि इस विश्व मे किताबों के दुश्मन नही हुये हो। पुराने जमाने के आक्रमणकारी जब किसी देश पर विजय प्राप्त करते तो सबसे पहले वहां की उपलब्ध पुस्तकों इतिहास की होली जला दिया करते थे। पुस्तकालय मे रखी लाखें पुस्तकों को अग्नि मे स्वाह कर उस देश का इतिहास संस्कृति को बिलीन करते थे। लेकिन ऐसे भी लोग है विश्व में जिन्होने अपनी संस्कृति व इतिहास किताबे बचाने हेतु अपनी जान लडा दी।

४५२) साहित्य समाज का दर्पण है। बौद्धिक ज्ञान ही विज्ञान है।

४५३) अच्छा साहित्य लोगों मे ऊर्जा का संचार करता है और कविताये इस क्षेत्र की आत्मा होती है।

४५४) जब किसी अच्छी किताब को पहली बार पढता हूँ तो मुझे उतनी ही खुशी हासिल होती है जितनी एक नया दोस्त बनाने पर और जब कोई पढी हुई किताब पडता हूँ तो लगता है कि मै किसी पुराने दोस्त से मिल रहा हूँ।

४५५) साहित्यकार की सेवा भी समाज के लिये धन्य है। लेखनी (कलम) समाज को राह दिखाती है। लेखनी से इन्सान पथ विमुख की राह पर जा सकता है और निराश व्यक्ति को आत्महत्या करनेवाले प्रयास को भी रोक सकती है।

४५६) लिखने वाले के शब्द तो उसे जिन्दा ही जिन्दादिल बना दे तो उसकी तमाम किताबों पर वह भारी है। कपडे इन्सान चाहे पुराने ही कपडे क्यों न पहने लेकिन नई नई किताबों को जरूर खरीदें। किताबों से दोस्ती बढाओ जो अकेलेपन मे अपनी दोस्ती का सुबूत देती है।

४५७) खतरों से जिन्हे खेलने का शौक है तो साहित्य ही उनका स्वागत कर सकता है। लेखकों की कल्पना रचनात्मक व सृजनात्मक उद्देश्यों के लिये ही होती है।

४५८) सृजनात्मक साहित्य हमारी संस्कृति, परम्पराओं तथा आदर्शों को जीवन्त रखती है और ऐसे साहित्य का सृजन तपस्या से कम नही है।

४५९) साहित्य सिर्फ कल्पना-जगत् की चीज नहीं है, वह दुर्धष शक्ति है। वह कल्पना-जगत् की चीज मात्र भी रह सकता है यदि वह सिर्फ शून्य आकाश में ही घूमता रहे।

४६०) पुस्तकों का मूल्य रत्नों से भी अधिक है क्योकि रत्न बाहरी चमक दमक दिखाते है जबकि पुस्तके अन्त:करण को उज्ज्वल करती है। अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमे अपने मित्रों के साथ न रहने की कमी नही खटकती। जितना ही मै पुस्तकों का अध्ययन करता हूँ उतनी ही अधिक उनकी विशेषताये मालूम होती है।

४६१) पुस्तके वे विश्वस्त दर्पण है जो सन्तो और शूरों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती है। पुस्तक प्रेमी सबसे अधिक धनी और सुखी है।

४६२) मानव जाति ने जो कुछ किया, सोचा और पाया है, वह पुस्तकों के जादू भरे पृष्ठों में सुरक्षित है। पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है। अच्छी पुस्तक एक महान आत्मा का अमूल्य जीवन रक्त है।

४६३) जो पुस्तके हमे अधिक विचारने को बाध्य करती है, वे ही हमारी सबसे बडी सहायक है। सच्चे मित्रों के चुनाव के पश्चात सर्व प्रथम एवं प्रधान आवश्यकता है तो उत्कृष्ट पुस्तकों का चयन। विचारों के युद्ध मे पुस्तके ही अस्त्र है।

४६४) पुस्तक ही एकमात्र अमरत्व है। बुद्धिमान की रचनाये ही एकमात्र ऐसी अक्षय निधि है, जिन्हे हमारी सन्तति विनष्ट नही कर सकती। असभ्य राष्ट्रों को छोड कर शेष सम्पूर्ण विश्व पर पुस्तक का ही शासन है।

४६५) अधिक पुस्तके संजोने का कही अन्त नही। अधिक अध्ययन भी शरीर की थकावट है। मैने प्रत्येक स्थान पर विश्राम खोजा, किन्तु वह एकान्त कोने मे बैठ कर पुस्तक पढ़ने के अतिरिक्त कही प्राप्त नही हो सकता। पुस्तक जेब मे रखा हुआ बाग है।

४६६) बुरी पुस्तकों का पठन विष के समान है। आज के लिये और सदा के लिये सबसे बडा मित्र है अच्छी पुस्तके। पुरानें कोट पहनो और नई किताब खरीदो।

HHH(११०)HHH

४६७) मै नरक मे भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूंगा क्योंकि इनमे वह शक्ति है कि जहां भी ये होगी वहां अपने आप ही स्वर्ग बन जायेगा। कुछ पुस्तके चखने मात्र की होती है तो दूसरी निगल जाने योग्य और कुछ ही ऐसी होती है जिन्हे चबाया और पचाया जा सके।

४६८) लेखकों की मसी शहीदों के खून की बुंदों से भी अधिक पवित्र है। महान लेखक अपने पाठक का मित्र और शुभ चिन्तक होता है। बुरे लेखक वे है जो अपने अशक्त विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों की सुन्दर भाषा के माध्यम से करते है।

४६९) प्रत्येक लेखक कुछ अंशों मे अपने को ही अपनी कृतियों मे चित्रित करता है भले ही ऐसा करना उसकी इच्छा के विरुद्ध हो। अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करने वाला लेखक अपने बच्चों की प्रशंसा करने वाली माता के समान है।

४७०) कठिनाई और विरोध वह देशी मिट्टी है जिसमे शौर्य और आत्मविश्वास का विकास होता है। विरोध उत्साही व्यक्तियों को सदा उत्तेजित करता है, बदलता नही।

४७१) जो विद्या की ओर ध्यान नही देता और समय को व्यर्थ नष्ट करता है, वह सदा मनुष्य जन्म के फल से वंचित रहता है। बहुत सी पुस्तकों मे निर्मल आनन्द लेने का अटूट भंडार भरा है। वह विद्या के बिना हमे नही मिल सकता।

४७२) अच्छी पुस्तकों की संख्या इतनी कम क्यों है, इसका एकमात्र कारण यह है कि इतने विरले व्यक्ति ही लेखक है जो कि कुछ जानते है।

४७३) ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है। साहित्य वह है जिसे पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अपेन अन्तर्मन से सब कुछ खोल कर प्रस्फुटित कर दिया है। साहित्य सच्चिदानंद की प्यास और खोज का प्रत्यर्पण है।

४७४) महत साहित्य का गुण है अपूर्वता अर्थात मौलिकता। साहित्य जब अत्यन्त शक्तिमान रहता है, तब वह चिन्तन को ही नये रूप मे प्रकाशित कर सकता है। यही उसका काम है, इसी का नाम है मौलिकता।

४७५) साहित्य का अध्ययन नवयुवकों का पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का श्रृंगार करता है, मुसीबतों मे धीरज देता है, घर मे प्रमुदित करता है और बाहर विनम्र बनाता है।

४७६) साहित्य के अन्तर्गत सारा वाङ्गमय लिया जा सकता है जिसमे अर्थ-बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष तथा चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो तथा ऐसे वाङ्गमय की विचारात्मक समीक्षा व्याख्या हो।

४७७) प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतक है। पतन की ओर वे एक दूसरे का साथ देते है।

४७८) ज्ञानी को हंसी सबसे अधिक चक्कर मे डालनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह है मूर्ख की हंसी। जब मै स्वयं पर हंसता हूँ तो मेरे मन का बोझ हल्का हो जाता है।

४७९) गुरु मनुष्य का सच्चा मार्गदर्शक होता है, बिना गुरु के कोई भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नही कर पाता। गुरु राह मे आनेवाले रहस्यों की विवेचना करके उन्हे सुलझा देता है। जो ज्ञान केवल पुस्तके पढ़ कर नही हो पाता, उस ज्ञान को व्यवहारिक ढंग से समझाने के लिये गुरू का मार्गदर्शन आवश्यक है। गुरु के मार्गदर्शन के अभाव मे केवल किताबी ज्ञान प्राप्त करना ठीक वैसा ही है जैसा समाज मे व्यभिचारिणी स्त्री का रहना। अर्थात कि गुरु के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने से ज्ञान मे जो गहराई और निखार आता है वह स्वयं पुस्तके पढ़ने से नही आता।

४८०) धन को कभी मौज सोख में मत उडाओ। रावण ने अपने धन से मौज सोख करी, भोगविलास में दुरुपयोग किया जबकि राजा जनक ने अपने धन से पर सेवा की। धन सदा रहने वाला नहीं इसलिये जितने दिन अपने पास है उसका उपयोग सेवा के लिये करो, अपने उपर कम से कम में खर्च करो बाकी दीन दुखियों का दु:ख दूर करने में व्यय करो। धन शक्ति है और इस शक्ति के नशे में किसी के साथ अन्याय हो जाना सम्भव है। अपनी सन्तान के लिये भी यही उपदेश देकर जाये। यदि बच्चे ऐश आराम करने वाले होंगे तो पाप कर्म करेंगे और पूरे व्यापार को चौपट कर देंगे। ऐसे नालायकों को धन कभी न देना। उनके हाथ में जाये उससे पहले ही गरीबों में बांट कर जाना। सदा यह ध्यान रखो कि तुम्हारा धन जनता की धरोहर है। तुम उसे अपने स्वार्थ के लिये उपयोग मे नही लाना।

४८१) गलती मानना एक बडप्पन है। गलती करना मानव मात्र का एक गुण है। गलती करनेवाला ही मनुष्य है, यही सूत्र सर्वसामान्य, है लेकिन गलती क्यों होती है इस पर गौर करने की आदत होनी चाहिये। गलती यदि छोटों से भी हो तो भी उसे मान

लेना चाहिये और उसके पश्चात उसे सुधारना चाहिये। अपनी गलती अन्य कोई अवगत कराता है तो हमारा अहंकार आहत होता है लेकिन गलती सचमुच हुई हो तो क्रोध में नहीं आना चाहिये। अपनी गलतियों के अलावा अपनी बात सही करने की आदत सबमें होती है। इस तरह की दलील व बचाव से गलतियां मिटती नहीं बल्कि बढती है इसलिये हमारी गलतियों को बतानेवाले का आभार मान कर उन गलतियों को स्वीकार करें और उसे सतत सुधारने का प्रयत्न करे। इसलिये गलतियां मानने में ही बडप्पन है।

४८२) **इच्छाओं की गुलामी** :- इच्छायें कभी नहीं मरती। इच्छा करने वाला मर जाता है लेकिन इच्छा आखिरी दम तक नहीं मरती। अतृप्त इच्छायें जन्म-जन्म तक साथ रहती है। राजा भर्तृहरि ने कहा था "सिर के सभी बाल सफेद हो जाय, हाथ-पाँव काँपने लग जाय, कान सुनने से अशक्त हो जाय, पूरा शरीर जर्जर व वृद्ध हो जाय लेकिन आश्चर्य है कि इच्छायें अभी भी नौजवान रहती है इच्छा कभी बूढी नही होती। बचपन, यौवन और बुढ़ापा सब इच्छाओं का गुलाम है। कितना ही धन प्राप्त हो जाय लेकिन इससे अधिक की माँग रूकती नही इच्छा का एक पहलू यह है कि अपने लिये दु:ख या रोग या मृत्यु कोई नही चाहता यानि इच्छा सिर्फ सुख की ही की जाती है मगर उसे पूरी करने के मार्ग गलत होने से अच्छा खासा व्यक्ति इच्छा का गुलाम बन कर रह जाता है।

४८३) **एकता** - ढाई चावल के कणों से कभी खिचडी नहीं पकती। नदियों व सरिताओं के समन्वय से ही समुद्र बनता है और उसी विशालता के सहारे से ही वर्षा का उपक्रम और वनस्पति का उत्पादन होता है अर्थात मिल जुल कर ही कोई भी महान कार्य या लक्ष्य की पूर्ति की जासकती है।

४८४) **जीने की कला** - आँसुओं की सम्पदा हर किसी के पास होती है, दर्द से तो हर एक का रिश्ता होता है। किसी के सामने अपना रोना रोते बैठने से कुछ नहीं मिलता है। पहाड़ से जब नदी निकलती है तो वह चट्टानों और पत्थरों से टकराती है लेकिन उनकी परवाह नहीं करती। चट्टाने जितनी उसे रोकती है, उनके प्रवाह मे बाधा उत्पन्न करती है उतनी ही वे वेग से आगे बढ़ती है यही है नदी की जवानी और कहानी बाधाये रूकावट पैदा करती है लेकिन आप संघर्ष कर रूके नहीं । नहीं तो जीवन रूक जायेगा, जीवन का सौन्दर्य बिखर जायेगा। धन सम्पदा कभी टिकती नही इसे छल बल से चाहे जितनी भी इकट्ठी करलो यह देह जलाने के ही काम आती है। शान्ति, उत्साह, संतुष्टि, सहज रूप से सरलता के साथ जीना अपने स्वभाव में रहना ये सब टिकाऊ है। इन्हें अपनाओ और जीवन को पूर्णता के साथ जीओ।

४८५) **लोभ** :- माया मे फँसा हुआ जीव सदा बन्धन में फँस जाता है और विवेक खो देता है। लोभ के कारण जो व्यक्ति आज सिर्फ भोजन और वस्त्र चाहता है, कल मकान, धन इत्यादि की तलाश करते हुये लोभ के घेरे मे फँस जाता है और इसी में मनुष्य का जीवन बीत जाता है। फिर हजारों साल मानव योनि प्राप्त कर इन्सान पुराने संस्कारों के अनुसार कर्मों का संग्रह करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है इससे उसे अपने पराये का होश नही रहता है। प्रत्येक कामना जीव को अन्धा बना देती है।

४८६) लक्ष्यहीन जीवन या बिना किसी मक्सद, उद्देश्य की जिन्दगी से ज्यादा कष्ट देनेवाली चीज कोई दूसरी नहीं हो सकती। ऐसे जीवन की बदकिस्मती यह नहीं है कि उस आदमी के सामने कोई लक्ष्य नहीं रहता बल्कि यह कि उसका लक्ष्य हमेशा बदलते रहता है।

४८७) जिन्दगी में जो किसी नेक और ऊंचे इरादे को अपनी मंजिल बनाता है वही नेक और ऊंचा है। साधारण जीवन और ऊपर उठे जीवन मे फर्क उद्देश्य के ही कारण पड जाता है। जिस आदमी में शुरु से लेकर आखिर तक बुलन्द लक्ष्य की प्रेरणा रहती है चाहे वह कितना ही ज्यादा नाकामयाब हो जाय, चाहे उसमे प्राकृतिक प्रतिमाओं की कितनी कमी क्यों न हो वही सबसे बुलन्द जीवन जीता है।

४८८) बीज के धरती के भीतर समा जाने के फल स्वरूप ही उसका स्वरूप निखर उठता है। शील का विनय से ही हम पुरोगमन कर सकते है। अभिमान और अहंकार हम को नष्ट करते है। सबका दास बनने पर त्रिलोक भी हमारा दास बनेगा।

४८९) प्रकृति से बेहतर शिक्षक कोई नही हो सकता है। फूलों से मुस्कराना सीखो। सूरज से तप जाना, चाँद से शीतलता फैलाना, और नदी से गति में रहना सीखो शिला से धैर्य धारण करना, जड़ से गहराई में प्रवेश करना और पर्वत की चोटी से ऊपर उठना सीखो इतना ही नहीं, बादल से परहित के लिये मर मिटना तथा कुयें से सबकी प्यास बुझाना सीखो।

४९०) विजय के समान ही अपनी शिकस्त (पराजय) को स्वीकार करना सीखो जिससे आपकी आत्मा प्रभावित हो सके और आप का यश बाहर फैले।

४९१) जब तक गलत न छूटेगा ठीक कैसे मिल पायेगा। कभी तुमने कोशिश की है अंधेरे को हटाने की ? पहले अन्धेरा हट जाये, फिर तुम दिया जलाओगे तो तुम फिर कभी भी दिया जला नही पावोगे। तुम तुम्हारा दिया जलाओ, अंधेरे की बात ही मत करो, क्योकि दिया जलाते ही अंधेरा मिट जायेगा। तुम प्रकाश लाओ अंधेरे पर ध्यान मत दो। इस संसार में कोई अन्धेरे को कभी हटा नहीं पाया। बुराई कभी भी मिटाई नही जा सकती, भलाई की जा सकती है। संसार कभी भी नही छोडा जा सकता, पर आत्मा पायी जा सकती है। आत्मा के पाते ही संसार स्वत: छूट जाता है। हम उसे पकडे हुये है इसलिये हम उसे छोडना नही चाहते और उससे बेहतर हमे दिखाई नही पडता।

४९२) आज की भाग दौड वाली व्यस्त दुनिया में लोगों के जीने का ढंग बदल गया है। सब चीजे प्रकृति के नियमों के विरुद्ध होने लगी। पशु पक्षी आज भी दिन में विचरण करते है लेकिन आराम रात ही में करते है। सभी जीव जन्तु प्रभात के मंगल समय में जागते है। भोर का वातावरण मनुष्य को कुछ न कुछ संदेश देता है। कमल सुबह ही खिलता है, भँवरे गुन्जन करते है, पक्षियों का कलरव शुरू होता है। मंद शीतल पवन बहती है। मुर्गा भी तडके जाग कर बांग लगाता है। सुबह की यह पावन बेला बडी ही चेतनादायी, प्रेरणादायी, स्फूर्ति एवम स्वास्थ्यकर होती है। लेकिन दुर्भाग्यवश उसका लाभ न लेकर देर तक लोग बिस्तर में सोये रहते है। प्रात: जागरण का उद्देश्य है नवजीवन की प्राप्ति।

४९३) मनुष्य रहता है, जीता है वर्तमान में लेकिन रमता है भूतकाल मे। गुजरे हुये अच्छे बुरे अनुभवों की गठरी लेकर वह घूमता है। रास्ता पार करते हुये पहले दोनों तरफ देख कर पार करना पडता है, उसी तरह मनुष्य पिछला भूतकाल और आगामी आनेवाला भविष्य का अंदाजा लेकर कर्म का रास्ता पार करता है। यह कौशल जिसके पास है वही सफल हो सकता है, लेकिन सिर्फ भूतकाल में खोया रहना नही चाहिये। भूतकाल की अच्छी बाते भविष्य में और अच्छी बनाने और तब की गलतियों को भविष्य मे सुधारने भूतकाल का चिन्तन करना चाहिये। लेकिन हाथ से एक बार निकल चुके भूतकाल पर पछताने से कुछ नही होता है। इसलिये वर्तमान में जीने के लिये भूतकाल से प्रेरणा लेने के लिये चन्द पल उसके सान्निध्य में गुजारना ठीक है।

४९४) बाहर जो जगमगा रहे लाखों दीये यही संदेश दे रहे है कि आखिर में तुम अपना स्वयम् का दीपक जलाओ। बाहर लाखों दीये जल रहे है फिर भी संसार का अन्धेरा क्या दूर हो पाया ? आसमान में अरबो सितारें चमक रहे है क्या अन्धेरा दूर हुआ ? वह दिया जलाओ जो फूंक मारने से कभी न बुझे। जो उस परम ज्योति से लौ प्राप्त करे। वह दिया तुम्हारे भीतर अनवरत जलता रहे जिससे तुम्हारे भीतर रोशनी हो, आत्मा को जागृत करे, तुम्हारे हृदय के अन्धकार को मिटावे, ज्ञान से प्रकाश भरे, तुम्हारे भीतर के अहंकार का नाश करे वही सच्चा दीपक होगा।

४९५) कला भीतर का प्रस्फुटन है। विज्ञान बाहर का प्रस्फुटन है। कला बाजार का अन्त है विज्ञान बाजार का निर्माता है। यही कारण है कि विज्ञान जैसे-जैसे विकसित होता गया, वैसे वैसे बाजार का भी विस्तार सारे विश्व में होने लगा। उसी के साथ वह कला जो आन्तरिक आनंद के प्रस्फुटन से जन्म लेती है वह कला भी लोप होती गई।

४९६) रंग बहुत सारे है, काला, पीला, नीला, लाल, सफेद, हरा लेकिन इन सब रंगों से अलग एक रंग है जिसकी आवश्यकता हर प्राणी मात्र को है वह रंग है "आनन्द"। जीवन में रस और रंग होना अत्यन्त आवश्यक है। नीरस और रंगहीन जिन्दगी न खुद के लिये उपयोगी है और न समाज के लिये उसका महत्व है, भक्ति का रंग सबसे पक्का व सर्वश्रेष्ठ है।

४९७) कुटुम्ब में विघटन और वैमनस्य से नैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार का पतन होने लगता है।

४९८) भूत काल को दोष न देकर, भविष्य की चिन्ता न करते हुये वर्तमान मे जीना यही भावना हर स्थिति मे प्रसन्न रहना चाहिये। जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उसका समुचित उपयोग जीवन में करने से ही सच्चा विकास होगा। जो व्यक्ति परिणामों की चिन्ता किये बिना पूरी शक्ति और एकाग्रता से दिया गया कार्य करता है, यश उसके पीछे अपने आप चला आता है। नसीब को कोसना, या ईश्वर के प्रति कुभाव, लोगों से असन्तुष्टि, दुनिया से खिन्न इत्यादि कायरता और मानसिक दुर्बलता का प्रदर्शन है। इसलिये कभी भी नकारार्थी सोच और दोषारोपण से मुक्त होना चाहिये। हम जब भी अपने आप से नाराज होते है तो पूरा विश्व हमे रूठा हुआ लगता है और जब हम स्वयं पर प्रसन्न होते है तो सारी दुनिया हमें हसीन दिखती है। आजकल मनुष्य झूठ, पाखंड, दग्गेबाजी या धोखा धडी, ठगी में इतना प्रवीण हो गया है कि वह स्वयम् से डरने लग गया है, स्वयम् को ही ठग रहा है, धोखा दे रहा है, वह यह भी जानता है कि

मै जो कुछ कर रहा हूँ वह गलत है फिर भी प्रयत्नपूर्वक उसे सही बता रहा है, बाहर भी और अन्दर अपने आपको भी। अपने भीतर भी वह दोहरा रहा है कि नहीं यह गलत नहीं है, यही सही है इस तरह वह अपने आपको सम्मोहित कर रहा है। खुद को विश्वास दिला रहा कि यही सही है।

४९९) बिना दु:ख या तनाव के, बिना हिंसा के मनुष्य जी नहीं पा रहा है। खुद को बिना झूठा बनाये, दगा दिये, ठगे, छले वह एक क्षण नही रह पाता। अगर यह सब न हो तो समस्या ही नहीं रह जाती। हमने इस संसार को जब भी देखा है दु:ख या हिंसा ही देखा है यही कारण है कि हमारी दृष्टि और प्रतिक्रिया में हम दु:ख व हिंसा तक ही पहुंचे। दु:ख की प्रतिक्रिया मे हम सुख की खोज कर रहे है वह नये-नये व और बडे दु:खों को ही पैदा कर रहा है। हिंसा से निबटने हेतु जो व्यवस्थायें बना रहे है वो और अधिक हिंसक होती जा रही है।

५००) अग्नि को जंगल तोडकर रास्ता खोजना नही पडता है वह अपना रास्ता स्वयं खोज लेती है उसी प्रकार भगवन भक्त भी अपने जीवन की परिस्थिति के अनुकूल हो जाता है।

५०१) ज्ञानी वह है जो वर्तमान को ठीक प्रकार भली भाँति समझ ले और परिस्थिति के अनुसार आचरण करे। वे व्यक्ति कभी भी अकेले नही है जिनके साथ सुन्दर विचार है। कोई काम ऐसा मत करो जिससे बाद मे पश्चाताप करना पडे। अभिमानी व्यक्ति स्वयं का नाश कर डालता है।

५०२) अपनी उन्नति के लिये आवश्यक है कि पहले हम स्वयम् में विश्वास करे और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयम् पर विश्वास नही उसे ईश्वर में कभी भी विश्वास नही हो सकता।

५०३) वह नदी ही क्या जो चट्टानों से नहीं टकराये और जाकर जब तक वह अपार गहरे सागर में न मिल जाय और थपेडों को झेलती रहे। वह सागर ही क्या जिसमे ज्वार भाटा न हो। जीवन मे उतार-चढाव आते रहते है तो ही जीवन का रंग है।

५०४) एक नदी सागर को क्या दे सकती है सिवा इसके कि वह उसी में समा जावे, अपने अस्तित्व को उसमें लीन कर दे, पूरा समर्पण कर दे।

५०५) भावना के आवेग से भरा मनुष्य देवता भी बन सकता है और दानव भी। भावना का आवेग एक शक्तिशाली प्रेरणा है। उससे मनुष्य साक्षात काल बन सकता है या प्रभु, स्वामी भी बन सकता है। समाज मे ऊंचे स्थान पर पहुंचे हुये कई व्यक्तियों को भाव वेग में प्रेरणा मिली दिखती है। कोई दरिद्र मनुष्य अपमानित होने के बाद भाववेग से प्रेरित होकर धनवान, महान बनता है। मूर्ख कहकर अपनी पत्नी द्वारा उपहास किये जाने पर प्रेरित होकर साधारण बुद्धि का युवक महाविद्वान कालिदास बना तथा मूर्ख कह कर पत्नी द्वारा अपमानित तुलसी आगे संत तुलसीदास बनता है। तथापि भाव वेग कुछ प्रसंगों में घातक भी होता है जैसे रावण, दुर्योधन जैसे विनाशकारी हुये।

५०६) अधिकांश व्यक्ति पर निन्दा में लीन रहते। उन्हें परनिन्दा में ही आनन्द आता है पर जब अपनी निन्दा सुनते है तो परेशान हो जाते है। यदि हम जीवन का आनन्द लेना चाहे तो यह सब छोड देना चाहिये। जीवन आनन्द दायक बनेगा। हमे संसार, समाज में रह कर मोह आकर्षण छोडना पडेगा। इसी में आनन्द प्राप्त होगा। मेले मे घूम घूम कर आनन्द लिया जा सकता है। मेले की दुकानों में सजे सामान को खरीदने के मोह को मन मे न आने दे। आकर्षक सामान में स्वयम् को न डुबोये। यह ठीक उसी तरह है जैसे नदी, झील, सागर मे नाव पर बैठ कर आनन्द लेना। आनन्द के साथ नाव नदी के किनारे पहुँचा देगी लेकिन यदि हम नाव मे पानी आने देगे तो नाव हमे डुबो देगी। तब नदी मे घूमने का आनन्द दु:ख मे परिणित हो जायेगा। इससे प्राप्त वस्तु मे वह आकर्षण नही होता जो अप्राप्य मे है।

५०७) जीवन अनेक प्रकार के उतार चढ़ावों और बदलावों से परिपूर्ण रहता है। ऐसे मन, मस्तिष्क को हर स्तर पर बदलाव के अनुभवों से गुजरना पडता है। सुख-दुख एक ही सिक्के के दो पहलू है। मुश्किलों से घबराने की बजाय संघर्ष करना सीखें। आत्म विश्वास और आत्म सम्मान को बनाये रक्खे और अपने लिये नई सीमाओं और सम्भावनाओं की खोज करे।

५०८) भविष्य के बारे में जानने कि जिज्ञासा से अपने वर्तमान को खराब मत करो। भविष्य के चक्कर में न पड कर पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थी व्यक्ति बडे से बडे संकट पर विजय प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है।

५०९) मनुष्य का मन शंका उत्पन्न कर देता हे। जिस चीज पर शंका नही करनी चाहिये उस पर भी मन शंकित हो जाता है। यहां

तक कि ईश्वर के होने या न होने में भी शंका होती है फिर रहा ही क्या। इसलिये शंका का पूरी तरह से अंत करना जरूरी है। शक और शंका का अन्त ही शान्ति का प्रारम्भ है। जीवन मे स्पष्टता आनी चाहिये और शंका रहित होने के लिये ज्ञान अत्यधिक आवश्यक है। बिना ज्ञान के शंका, भ्रम और संशय रूपी अन्धकार-दु:ख का कारण है इसलिये ज्ञान का प्रकाश जीवन मे हो जिससे जीवन आलोकित होगा, सुखमय व आनन्दमय बनेगा। शंका अविश्वास का मूल है, यह आस्था और श्रद्धा का विनाश करती है। शंका से ग्रस्त व्यक्ति शक स्वभाव का बन जाता है, वह अपने पराये का भेद नही कर पाता उसके मन की शान्ति भंग हो जाती है और जीवन नरक के समान बन जाता है। इसलिये शक और शंका का निर्मूलन करो। आस्थावान लभते नर:।

५१०) निरन्तर प्रयास सफलता का निश्चित मूलमन्त्र है। गिरना सहज प्रक्रिया है लेकिन हार कर बैठ जाना जीवन की गति को अवरूद्ध कर देना है। उठ कर फिर दौड लगाना ही विकास का एक मात्र रास्ता है और यह निश्चय ही लक्ष्य तक पहुंचने मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

५११) ईश्वर की सत्ता प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से विद्यमान है, जो व्यक्ति जाति के आधार पर किसी को ऊंचा या नीचा समझता है वह धर्म का मर्म नही जानता है।

५१२) एक थोडी सी मुस्कुराहट घर में प्रसन्नता ला देती है, व्यापार में साख बढ़ाती है और मित्रता को आनन्दमयी कर देती है। मुस्कुराहट कभी कही से खरीदी नही जा सकती है, न उधार ली जा सकती है, न चुराई जा सकती है, क्योकि यह चीज ऐसी है जब तक दी न जाये तब तक किसी के काम भी नही आ सकती। देने मे ही इसकी खूबी है। यदि आप अपने जीवन में मुस्कुराहट और रोशनी लाना चाहते है तो सूर्योदय से पहले उठना चाहिये। हम जिन चीजों को चाहते है उन्ही को देखते है। जरा सी भी मुस्कान बेकार नही जाती है। सागर पर हर बुलबुला उछलता हुआ दूर तक जाता है इसी तरह जीवन की मुस्कान का प्रवाह दूर तक जाता है। मुस्कान मानव पीडा को कम करती है। मुस्कान एक उपहार है।

५१३) मुँह से निकले शब्द कभी वापिस नहीं लौटा सकते। गर्जन करनेवाले बादलों से कभी बारिश नहीं होती। किसी से भी कभी कटु शब्द मत कहो जो मन को पीडा पहुँचाये। संयम की सीमा का उल्लंघन मत करो, जो जीवन को बांध न पाये। अहम और अभिमान यहां पर किसी का भी नही रह पाया है। अपने मुंह मियां मिट्ठू बन कर किसने जग में नाम कमाया है ? इस संसार में बडा वही है जिसे दुनिया बडा बताती है। सम्मानित वही है। जो अपने पहले औरों का सम्मान करना जानता है, दौलत से बडी मनुजता मानवता, शराफत का धर्म सबसे ऊंचा, जिसके मन मे परहित की भावना उनका जीवन ही सही हकीकत यश की दौलत उनके संग जाती है। बीता वक्त न लौट सकता और न गई जवानी कभी वापिस आ सकती।

५१४) शान से रहो, मान से रहो, मस्ती से जियो जिससे हजारों साल जीना पसन्द करोगे। फिर भी आज की रात ही अगर मौत आजाये तो उसका भी स्वागत करो।

५१५) जिन्दगी के गहरे सदमे पर नजर मत डाल, यह देख कि हर क्षण का दु:ख कितना थोडा है। आनेवाले कल के लिये ईश्वर तेरी मदद करे, इसलिये बीते हुये कल का दु:खडा मत रो, और हर सुबह को नये दौर से नया शुरू कर शुरू कर।

५१६) ईश्वर को पाना कठिन नहीं है। मानव का बनना मुश्किल है। वह मानव सही मानों में मानव कहलाने योग्य नहीं है जिसने अपने आपको नहीं जाना और अपनी श्रेष्ठता को नहीं पहचाना। जिसको यह मालूम नहीं है कि इस शरीर की क्या कीमत है, मन की क्या कीमत है। आत्मा कौन जो दोनों को आधार दे रही है। इस आत्मा का अदृश्य सत्ता से, परमात्मा से क्या सम्बन्ध है उसका? मानव पहले मानव बने तो यही है पहली सीढ़ी परमात्मा व परमार्थ पाने को।

५१७) इन्सान की बडी दुर्बलता है, पाप करते जाता है और पाप से बचने के लिये प्रार्थना करता है कि भगवान पाप की सजा मत देना। पुण्य करता नही और पुण्य का फल पाने के लिये अपना पल्ला फैलाये रखता है। कि भगवान मेरी झोली मे सुख डाल दे। पर हर किसी प्रार्थना को स्वीकार नही किया जाता क्योंकि बहुत सारी प्रार्थनायें न जाने कितने कितने ईर्ष्या और द्वेष से भरी हुई है।

५१८) सच्चा इतिहास कार कभी झूठ कहने का साहस नही करेगा न ही सच्चाई कभी दबायेगा, छुपायेगा और उसकी लेखनी मे पक्षपात सम्बन्धी कोई आशंका नही होगी। मूर्खतापूर्ण हंसी से बडी मूर्खता और कोई नही होती है।

५१९) ईश्वर हमे जीवन में सिर्फ एक ही हुनर या प्रतिभा देता है वह चाहता है कि हम उसका कुशलतापूर्वक उपयोग करे। वह यह कभी भी नहीं चाहता है कि हम दूसरों को बेवकूफ बनाये और हमारा प्रभाव दिखाये कि हमारे पास अनेक हुनर है। एक युवक व्यापारी के बारे मे जो कुछ सीमाओं के बाबजूद आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ था किसी ने बडी बुद्धिमतापूर्ण बात कही है "वह अच्छी तरह जानता है कि वह क्या नही जानता"। प्रवंचना हमे अपने फंदे मे फंसा सकती है। अगर हम हमारे स्व को बढ़ा चढ़ा लेगे तो हमें यह बर्बाद कर सकती है। हमारे पास जो कुछ है वह हमारा तो है ही नही, वह सभी ईश्वर का है। जो ईश्वर प्रदत्त उपलब्धियों को अपनी ही मानता है वह तो आने वाले समय मे अपने आप से धोखा कर रहा है।

५२०) जो बढ़ता है वह घटता भी है, जो जलता है वो बुझता भी है, चढ़नेवाला उतरता है। सुबह का उदय हुआ सूरज शाम को अस्त भी होता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। क्या पशु क्या पक्षी, क्या मानव और क्या दानव, क्या सजीव और क्या निर्जीव सभी प्रकृति के बन्धन मे बंधे हुये है। हम मानवों को छोडकर कोई प्रकृति को चीज-प्रकृति के विरुद्ध जाने का कभी दुस्साहस नही करता और यदि इसमे कोई करता भी है तो प्रकृति अपने प्रभाव से उसे नष्ट कर देती है।

५२१) अभ्यास करते करते पूर्णता आती है। कोई दोष पूर्ण आदत किसी एक पल मे नही, एक क्षण मे नही बल्कि धीरे-धीरे प्राप्त हो जाती है। इसलिये महत्वपूर्ण है कि शीघ्रता से अपने जीवन मे से प्रत्येक बुराई को दूर करना शुरू कर दे नही तो वह हमारे चरित्र का अंग बन सकती है। जो छोटी छोटी बातों की उपेक्षा करेगा उसका तो सतत पतन होता रहेगा।

५२२) कुशल नेतृत्व सफलता का आधार है। नेतृत्व विकास की सफलता का मुख्य आधार है, जैसा नेतृत्व होगा वैसी ही विकास की गति होगी। ऐसे में उसी व्यक्ति को नेतृत्व सौपा जाना चाहिये जिसकी सोच सकारात्मक हो, जिसका मस्तिष्क उर्वर हो, किसी संस्था को कैसे प्रगतिशील बनाई जाये का सद्विचार करने वाला हो तो एक कुशल नेतृत्व हो सकता है।

५२३) जिसने बुरे दिन नही देखे वह अच्छे दिनों मे भी परेशान रहता है। आप एक स्वतन्त्र राष्ट्र रहना चाहते है तो जन सुरक्षा के लिये एकता स्थापित कीजिये।

५२४) कोई भी मनुष्य जान बूझ कर गलत चुनाव करना नही चाहता, वह ऐसा केवल अपनी खुशी के लिये करता है। वास्तव में उसे तलाश तो अच्छे की ही रहती है।

५२५) चौराहे पर एक ही रास्ता सही होता है, विवेक से काम लेकर सही निर्देशक द्वारा बताये गये सही दिशा का चुनाव करके पूर्ण एकाग्रता धारण करके आलस्य त्याग कर जीवन मे लक्ष्य की और बढते जाये तो सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

५२६) महापुरुष जिन सीढियों पर चढ़कर महानता तक पहुँचे है, उन सीढियों पर कोई भी चढ़ सकता है। आप की दुनिया है आप कैसे रहना चाहते है, कैसे जीना चाहते है, यह आपकी भावना पर निर्भर है। सीढ़ियां चढ़ना चाहते हो तो किसी महापुरुष को अपना आदर्श बनाये और उसके बताये हुये मार्ग पर चलते जावे।

५२७) स्त्रियों का स्वभाव सब प्रकार से अज्ञेय, गम्भीर और रहस्यमय होता है। चाहे कोई दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब पकड़ ले, परन्तु स्त्री के स्वभाव और आचरण को नहीं समझ सकता। यदि फूल अनबोला सौन्दर्य है, तो स्त्रियां बोलते हुए फूल हैं।

५२८) भविष्य चाहे कितना भी उज्ज्वल व सुन्दर हो पर विश्वास नही करो। भूतकाल की चिन्ता मत करो। कुछ करना है तो उसे स्वयं पर और ईश्वर पर विश्वास रख कर वर्तमान मे करो।

५२९) आदमी ही अकेला वह जीव है जो कुछ नही जानता। वह बताये, पढाये, सिखाये बिना कुछ भी नही जान सकता। वह बोल नही सकता, चल नही सकता, खा नही सकता। केवल प्रकृति से प्रेरित होकर रोने के सिवा और कुछ नही कर सकता।

५३०) प्रकृति को देखो, परिस्थिति को नही। परिस्थितियां बदलती रहती है पर प्रकृति स्थिर रहती है। मूल प्रकृति मन:स्थिति ही है, यदि वहां सुसंस्कारिता है तो बाहर की मलिनता सामयिक है।

५३१) धर्म से संस्कृति का निर्माण नही होता। संस्कृति तो संस्कारों से बनती है। धर्म तो तब पता चलता है जब हम सारे संस्कारों का त्याग कर देते है। धर्म से कोई परम्परा नही बनती। परम्परायें तो मनुष्य बनाता है।

५३२) कोई भी महान बुद्धिमान पागलपन के स्पर्श से वंचित नही रहता है। अगर तुम्हें आत्मा को जानना है, तो तुम्हे लोगों को

छोडना होगा। ईर्ष्या दिमाग का वह सर दर्द है जो हर सफल व्यक्ति अपने पडोसियों को देता है।

५३३) आंसू जरूरी रूप से सुख या दु:ख से जुडे नही है, अतिरेक से जुडे है। जिस चीज का भी अतिरेक हो जायेगा, आंसू उसी को लेकर बहने लगेंगे।

५३४) कोई भी नही चाहेगा कि दुनिया में बस एक संस्कृति हो, वह बडी बेहूदी, बेरौनक, बडी ही उबाने वाली होगी। दुनिया में हजारों संस्कृतियां होनी चाहिये। बगीचे में बहुत तरह के फूल होते है। एक ही तरह के फूल बगीचे को ऊब से भर देंगे।

५३५) हम लोग जब जोश मे होते है होश खो बैठते है, पीडा मे होते है गुस्से मे होते है न जाने क्या-क्या भगवान से मांगते है। भगवान ही दया करते है हमारे ऊपर कि हमारी हर प्रार्थना स्वीकार नही करते। इसलिये भगवान से तो यही कहना है कि भगवान मेरी जो भी शुभ प्रार्थना हो, हितकारी हो, जो मेरे लिये अच्छा हो, वही तू देना क्योंकि मै तो नादान हूँ, मांगने की आदत है, हर समय कटोरा लेकर आपके सामने खडा ही रहता हूँ, जो कुछ अच्छा हो वही देना, कुछ और मत दे देना। क्योंकि मेरा सोचना छोटा और तेरा देना बडा।

५३६) तत् सवितु: वरेण्यम् यहां शब्द तत् भगवान के लिये कहा गया है। तत् का अर्थ है वह। यह नही कहा, वह कहा। तो वह क्यों कहा गया ? वह भगवान जिसके बारेमें कहने वाले जानने के लिये साधना करते थे लेकिन फिर भी पूरा नहीं कह पाये, जिसके विषय मे लिखने वालों ने किताबें भर दी लेकिन तब भी उसकी महिमा पूरी लिख नही पाये। भगवान अनिर्वचनीय है जिसका शब्दों मे वर्णन नही किया जा सकता।

५३७) मुस्काने भी तरह-तरह की होती है एक तो बनावटी होती है जिसमे हमारे अन्दर का शैतान बोलता है। दूसरी इससे अधिक अच्छी और बहुत ऊंची होती है जिसके पीछे हमारा दिमाग काम करता है और तीसरी सबसे अच्छी और बहुत ऊंची और खूब गहरी होती है जो अन्तरात्मा से निकलती है जिसके लिये जितेन्द्रिय बोध और आध्यात्मिक चेतना की आवश्यकता है। यह तीनो गहरी मुस्काने अभ्यास मांगती है। जिस तरह हर अच्छी वस्तु को पाने के लिये कोशिश करते है उसी प्रकार इन मुस्कान के लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। एक गमगीन चेहरा अक्सर बिना चाहते हुये भी बैर भाव पैदा करता है और हंस मुख चेहरे वाले के प्रति बैर भाव पैदा हो ही नही सकता।

५३८) न्यायपूर्ण व्यक्ति अधिक दिन तक दुनिया में जीवित रहता है। रोने वाले को चुप कराना चाहिये। किसी विधवा को नही सताना चाहिये। किसी को भी उसके पिता की सम्पति से बेदखल मत करो। किसी भी योग्य व्यक्ति को कुर्सी खाली कराने का प्रयत्न मत करो। गलत तरीके से सजा देने से बचा जाये क्योकि यह सब करना यही नीति व न्याय है इसके विपरीत करने से कोई लाभ नही होगा।

५३९) वह व्यक्ति गरीब नही है जिसके पास कम धन है अपितु गरीब वह है जिसकी अभिलाषायें बढ़ी हुई है तथा जिसे अपने हाल मे सन्तोष नही है। प्रत्येक शब्द, विचार और कर्म आपके भाग्य का निर्माता है।

५४०) निन्दक दूसरों को गिराने की कोशिश करता है और उसमे कभी कभी सफल हो जाता है लेकिन ऐसा करके वह अपने को उनकी ऊंचाई तक नहीं उठा पाता। वह इतना ही कर सकता है कि उनको मिलने वाली बरकतों को जो उसे तो नसीब नहीं हो सकती पर उनसे छीनने का प्रयत्न करता है।

५४१) पद प्रतिष्ठा पाने पर भी जिसे गर्व, मद नहीं होता, उच्च स्थान पर पहुंच कर भी जिसे अहंकार नहीं है वही सच्चे अर्थों में मनुष्य है।

५४२) बुरा स्वभाव छोडने मे थोडे लगन की, थोडे उत्साह की आवश्यकता होती है। उत्तम स्वभाव डालने में थोडी आशा की, प्रतीक्षा की आवश्यकता होती है। मानवोचित उन्नत जीवन के लिये उत्तम स्वभाव डालना पडता है।

५४३) हमारे मन में प्राप्त वस्तु का तिरस्कार करके अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का जो संकल्प है, वही हमारे जीवन को दु:खी, अज्ञानी, और जड बनाये हुये है।

५४४) जहां एक में मौत की सम्भावनायें भरी होती है वहां दूसरे मे सृष्टि और जीवन होता है। माना कि मौत अधिक बलशाली है लेकिन जिन्दगी जीने की ताकत कही उससे अधिक है।

५४५) माता-पिता जिसे धन्य कहते हो, साधु महात्मा जिसे धन्य कहते है और सारे लोग और समाज जिसे धन्य कहते है वही सच्चे अर्थों मे धन्य है।

५४६) कोई आदमी चाहे तो अपने एक शब्द मात्र से, एक मुस्कान से, या एक जरासे इशारे से दूसरे की जिन्दगी को रोशन कर उसे बदल सकता है। जरूरत है अपने दिल को बडा बनाने की और सबको अपना समझने की। मेरे अन्दर दया का संचार हो तो अपने

चारों तरफ के लोगों के दोष नही देखुं।

५४७) दु:ख की काली घटाओं का मुझे कोई डर नही है, अंधेरा कितना भी गहरा हो, किन्तु एक छोटा सा दीपक अपने प्रकाश से अपने क्षेत्र मे उजाला कर देता है। हरेक के अन्त:करण मे प्रकाश का एक सूक्ष्म दीपक सदा से जलता रहा है। आवागमन का यह चक्र निरन्तर चल रहा है। मेरे प्रेम को इस चक्र ने चाहे थोडे समय के लिये ढ़क दिया हो, छुपा दिया हो, किन्तु मेरा प्रेम स्थायी प्रेम है क्योकि आत्मा प्रेम है, परमात्मा प्रेम है और परमात्मा की प्राप्ति भी प्रेम ही है।

५४८) निरन्तर प्रयास सफलता का निश्चित मूलमन्त्र है। गिरना सहज प्रक्रिया है लेकिन हार कर बैठ जाना जीवन की गति को अवरूद्ध कर देना है। उठ कर फिर दौड लगाना ही विकास का एक मात्र रास्ता है और निश्चय ही लक्ष्य तक पहुँचने मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

५४९) धन संग्रह करने वाला शैतान का मित्र होता है जबकि ज्ञान प्राप्त करने वाला ईश्वर का दोस्त होता है। धन ही सब अनर्थों की मूल जड होती है। धन से दुश्मनी बढ़ती है लेकिन ज्ञान से इज्जत प्राप्त होती है। धन खर्च करने से कम होता है ज्ञान बांटने से बढ़ता है। धन को हर वक्त चोरी की शंका व भय रहता है जब कि ज्ञान कभी चोरी नही होता। धन से व्यक्ति का दिल तंग और काला हो जाता है पर ज्ञान दिल को रोशन कर देता है।

५५०) संघर्ष और पीडा शक्तियों को विकसित करते है, मनुष्य बनाते है और उस कार्य के लिये सक्षम बनाते है। संघर्ष चरित्र का निर्माण करता है।

५५१) एक करना होता है और एक होना होता है, दोनो का विभाग ही अलग अलग है। करना पुरुषार्थ के अधीन है और होना प्रारब्ध के अधीन है। इसलिये मनुष्य करने अर्थात कर्त्तव्य में स्वाधीन है और होने मे अर्थात फलप्राप्ति मे पराधीन होता है।

५५२) अपने काम या अपने धर्म आदि में हमारे लगातार परिश्रम की कसौटी मे अनेक कठिनाईयों और मुसीबते आती है लेकिन अगर सातत्यपूर्वक अपने कर्म करे तो हमे हमारा लक्ष्य प्राप्त करने मे सफलता प्राप्त होगी।

५५३) हममे से कोई भी न तो केवल अपने सहारे जीता है और अपने लिये मरता है। जब हम सच्चाई के प्रति जानबूझकर आंखे मूद लेते है तो अन्त मे उससे घृणा करने लगते है।

५५४) अधिक संग्रह न करे। संग्रह करना व्यक्ति का स्वभाव है। कोई जन संग्रह कोई धन संग्रह, तो कोई ग्रन्थ संग्रह करता है। लेकिन अति संग्रह कभी कभी कष्टदायक होता है। जो अति धन संग्रह करता है वह अप्रत्यक्ष रूप से चोरों को आमंत्रित करता है। जन संग्रह अधिक होने पर विरोधियों की संख्या बढ़ती है। इसलिये अति संग्रह नही करना चाहिये।

५५५) उपलब्धियाँ हासिल करनी है तो संघर्ष से सामना करना ही होगा और आत्मविश्वास ही वह कवच है जो इस अस्तित्व युद्ध में सहायक होता है।

५५६) धर्म मनुष्य को उसी प्रकार शान्ति की अनुभूति कराता है जिस प्रकार मां की गोद मे पहुँचने पर बच्चा शान्ति और सुरक्षा का अनुभव करता है।

५५७) वे महापुरुष सदैव श्रद्धा से शीश नवाने योग्य होते है जो सारे लांछनों को बर्दाश्त करते हुये भी अपने निन्दकों की नैया पार लगाने की कोशिश करते है।

५५८) जो व्यक्ति ज्ञान रहित होकर भी उद्दंड है, दरिद्र रह कर भी बडी बडी अभिलाषायें रखता है और बिना कर्म किये ही ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है वह मूर्ख है।

५५९) उपवास ही सबसे बडी औषधि है। यह न भूमि से उत्पन्न हुई और न ही आकाश से, पथ्य और रस विसर्जित है और सब आचार्यों द्वारा सम्मत है।

५६०) कानून सर्वोपरि है। यदि सुविधा सम्पन्न लोग कानून की गिरफ्त से दूर रहेंगे तो साधारण जनता का कानून पर से विश्वास उठ जायेगा। कानून सबके लिये समान होता है।

५६१) शास्त्रों ने मनुष्य के विकास की सीमा निर्धारित की है। उस विशिष्ट सीमा से बाहर मनुष्य को जाना नही चाहिये। आहार-विहार,

व्यवहार, उच्चारण प्रचार-प्रसार सभी बातों की सीमा रेखा निश्चित की गई है। इन मर्यादाओं का उल्लंघन करने पर अनर्थ हो सकते है।

५६२) किसी भी काम को अधूरा मत छोडो। यह अस्थिरता अधीरता और चंचलता का सूचक होता है। सिर्फ प्रयत्न करना ही काफी नही होता है, बल्कि विवेक, धैर्य और साहस के साथ स्थिर मन से लगातार तब तक प्रयत्न करना जरूरी होता है जब तक आप मंजिल के करीब नही पहुंच जाते।

५६३) हमारे ऊपर हमारी जाति, वर्ण और गौत्र का आवरण है। जब तक यह आवरण हमारे संस्कार पर पडा रहता है, हम अपने वर्ण के बाहर सोच नही पाते, लेकिन उसके हंटते ही पूरी पृथ्वी हमे अपना परिवार लगने लग जाती है।

५६४) यदि तुम गलत रास्ते पर हो तो चाहे जितना भी आगे बढ़ गये हो, पीछे हटने मे कभी शर्म मत करो। जमाना हंसता है हंसने दो। कुछ देर बात वह हंसी समय के सागर मे विलीन हो जायेगी पर तुम्हे अपनी वांछित मंजिल मिल जायेगी।

५६५) वक्त की पाबन्दी से अच्छे प्रशिक्षण, अच्छे तौर तरीके तथा दूसरों की भावनाओं के प्रति सम्भाल की भावना जाहिर होती है। जो आदमी समय पर काम कर लेता है वह समय और शक्ति दोनों की बचत कर लेता है। वक्त की पाबन्दी की कमी ईमानदारी की कमी की सूचक है। निर्धारित समय पर वायदा पूरा न कर सकना बेईमानी है।

५६६) जो अपनी रक्षा करने में स्वयम् समर्थ होते है उन्हे न शत्रु का और न ही किसी ओर का भय रहता है और न ही उन्हे अपने लिये किसी रक्षक की ही आवश्यकता होती है।

५६७) क्रोध और राग को जीतने का नाम है शौर्य। शौर्य अन्तरात्मा का गुण है। यह चित्त की स्वभाविक प्रक्रिया पर विजय प्राप्त करने से मिलता है।

५६८) विध्वंसक हथियारों से अधिक शक्ति होती है मन और आत्मा की। जिस देश के नागरिक स्वाभिमान की रक्षा के लिये मर मिटने को तैयार हो उन्हें कोई गुलाम नही बना सकता।

५६९) विद्यावान व्यक्ति को विवेकशील बनना पडता है। उसकी वृति नीर-क्षीर विवेक की बन जाती है। लोग क्या कहते, क्या सोचते और क्या करते है, इससे वह तनिक भी विचलित नही होता। वह अपने बुद्धि विवेक से वही सोचता है जो उसे सोचना समझना चाहिये और वही करता है जो उसे करना चाहिये। करुणा सदैव निमित व बहाना ढूंढती है सेवा करने का।

५७०) किसी की भी आलोचना करने से पूर्व अपने आपको तौले, आलोचना वह अस्त्र है जो विष से भी तेज प्रहार करता है इससे बेहतर है आत्म विश्लेषण करे और फिर देखे कि आप स्वयं उससे दूर है जिसकी आप आलोचना कर रहे है।

५७१) नदी ही सागर की तरफ ले जाती है इसके लिये कुछ भी करना नही पडता है लेकिन यदि नदी के मूल स्त्रोत की तरफ उदगम की तरफ जाना हो तो फिर तैरना पडेगा, श्रम करना पडेगा। फिर एक संघर्ष होगा। नदी की धारा से संघर्ष होगा तो ही उदगम् की और जाना होगा।

५७२) जो न अपने को जानता है, न दूसरे को जानता है वह जड है। जो अपने को भी जानता है और दूसरों को भी जानता है उसका नाम चेतन है। जानने की शक्ति ही चेतनता है।

५७३) हमे दूसरों मे बुराइयां तलाशने के बजाय आत्ममन्थन कर अपने अन्दर छिपे दोषों को ढूंढना चाहिये। इससे हमारे व्यक्तित्व का परिमार्जन और सम्पूर्ण विकास होगा।

५७४) जिस सृजनात्मक प्रयोजन को सम्पन्न करना है उसके लिये आदर्शवादी बाते नही बल्कि भाव भरी साहसिकता की जरूरत होती है।

५७५) अच्छा पुत्र वही है जो मा बाप की आज्ञा का पालन करे। वही पिता योग्य और अच्छा है जो अपनी सन्तान का पालन पोषण ठीक से करे।

५७६) जो व्यक्ति नम्र है, झुकना जानता है, दुनिया उसे ऊंचा उठाती है मगर ठीक इसके विपरीत जो दम्भी है, अकडता है, दुनिया उसे उखाड फेकती है।

५७७) कांटे तो कांटे ही है चुभने पर इसका दु:ख तो अनिवार्य है। अनिवार्य दु:ख से प्रतिकार करना अत्यन्त दु:ख मयी होता है। उसकी जगह अपने अन्दर सज्जनता और सहिष्णुता पैदा करना अधिक श्रेयस्कर है।

५७८) अनुभव तब तक रोचन नही होता है जब तक यह दो बारा नही होता। वस्तुत: जब तक ऐसा नही होता, यह अनुभव है भी नही।

५७९) हर व्यक्ति की जरूरत के लिये तो इस संसार मे पर्याप्त चीजे है लेकिन हर व्यक्ति के लोभ को पूरा करने के लिये ऐसा सम्भव नही है।

५८०) बिना कोशिश प्रयत्न करे जीत विजय कभी भी सम्भव नही होती। आवश्यक कार्यों को अति आवश्यक होने से पहले ही कर डालना चाहिये।

५८१) लोग अन्ध विश्वास मे फंस कर निरीह पशुओं की बलि देने मे नही हिचकिचाते। इस पाप से डरना चाहिये। यदि बलि देनी ही है तो अपने दुर्गणों की बलि दो। सदैव अहिंसा व्रत का पालन करो।

५८२) ईमानदारी, संयमशीलता, सज्जनता, नियमितता और सुव्यवस्था से भरा पूरा जीवन जीने से ही मन शक्ति का सदुपयोग होता है।

५८३) असली असफलता तभी आती है जब हम अपने आदर्श, उद्देश्य, और सिद्धान्त भूल जाते है, और उस रास्ते से भटकने लगते है जिससे उनकी प्राप्ति की मंजिल तक पहुंच सकते है।

५८४) जीवन संघर्ष तथा निराशाओं का अविराम प्रवाह है। जीवन का रहस्य भोग मे नही, अनुभवजनित शिक्षा में है पर दु:ख इस बात का है कि जब हम वास्तव मे यह जानने लगते है तब तक हम इस संसार को छोड जाते है।

५८५) शैशव और बचपन में भूल होती है, युवा व तरुण अवस्था में संघर्ष तथा प्रौढ़ व वृद्ध अवस्था मे तो सिर्फ पछतावा ही हो सकता है।

५८६) जिसके पास धन, पैसा नही है वह गरीब है, जिसके पास इज्जत, यश, मान, कीर्ति नही है वह उससे भी अधिक गरीब है। सर्वाधिक गरीब तो वह है जिसके जीवन मे शान्ति नही है।

५८७) संसार के सभी शास्त्र मिलकर भी मानवीय एकता का विरोध नहीं कर सकते। मानवता एक तरफ और सारे शास्त्र एक तरफ फिर भी सबसे बडा शास्त्र और धर्म मानवता है इसलिये इस मानवता के धर्म पर जीवन के अन्तिम क्षण तक अडिग रहो।

५८८) पातिव्रत से विमुख स्त्रियों का स्त्रीत्व, क्षमाहीन तप, वर्धनशील करूणा से रहित धर्म, पूर्वजों के स्थापित क्रम से छूटा शासन यह सब कभी उन्नति नही कर सकते।

५८९) सन्मार्ग, सत्य, अन्वेषित न्याय, प्रशंसा योग्य गौरव और धर्म ये सब वेद शास्त्र सम्मत कर्मों के अनुगामी राजा की आज्ञा पर ही अवलम्बित रहता है। उसके वचन ही सर्वमान्य है।

५९०) जो पुत्र पैदा होते है वे उस पद के पात्र तभी योग्य होते है जब अपने कृत्यों द्वारा अपने माता-पिता को अविस्मरणीय, दीर्घ व प्रबल यश दिलाते है।

५९१) सदाचार शील महान पुरुषों हो, चाहे ज्ञानी आचार्य हो, चाहे अपने आदरणीय माता-पिता हो चाहे अपने प्राणों से अधिक प्यारे पुत्र हो उन्हे किसी भी प्रकार का वचन देकर उस स्वीकृति से मुकरना योग्य नही होता है।

५९२) प्रेम सुख देता है, काम हमेशा सुख पाना चाहता है। प्रेम सेवा करता है, काम का तात्पर्य है उपभोग और प्रेम का तात्पर्य है सेवा इसलिये कामुक और प्रेमी में समता हो ही नही सकती।

५९३) हम किसी भी देश विदेश के अभिमानी नही, किसी भी धर्म विशेष के आग्रही नही, किसी भी सम्प्रदाय या जाति विशेष से बद्ध नही, विश्व मे उपलब्ध सद्विचारों के उद्यान मे विहार करना यह हमारा स्वाध्याय है। सद्विचारों को आत्मसात करना-यह हमारा धर्म विविध विशेषताओं मे सामंजस्य स्थापित करना, विश्व वृति का विकास करना यह हमारी वैचारिक साधना है।

५९४) जिस एक शब्द का कम्पन सारे संसार मे कंपन करते हुये रचना, उत्पत्ति, प्रलय कर रहा है, जिसका दिव्य प्रकाश सर्व रूपों का कारण हो रहा है। जिस एक बिन्दु मे अनन्त आनन्द के समुद्र की लहर उठ रही है, जिस एक बीज में अनन्त आनन्द, अहिंसा, शान्ति, दया, क्षमा, सत्य, धैर्य की सद्गुणों की वाटिका लग रही है उस अक्षर ब्रह्म को नमन है।

५९५) गहरी निराशा के क्षणों मे आशा के दीप को जलाये रखना चाहिये। जब रात गहरी होती है तब सुनहरा सवेरा करीब होता है। वस्तुत: प्रतिकूल परिस्थितियाँ ही जीवन की कसौटी बन कर सामने आती है ऐसे समय मे धैर्य रखने वाले ही सच्चे विजेता होते है।

५९६) धर्म मनुष्य को उसी प्रकार शान्ति की अनुभूति कराता है जिस प्रकार मां की गोद में पहुँचने पर बालक शान्ति और सुरक्षा का

अनुभव करता है।

५९७) वे महापुरुष सदैव श्रद्धा से शीश नवाने योग्य है जो सारे लांछनों को बर्दाश्त करते हुये भी अपने निन्दकों की नैया पार लगाने के प्रयत्न करते रहते है।

५९८) हमारे शास्त्रों मे प्रकृति, परमात्मा का जितना सजीव वर्णन है उतना संसार के किसी साहित्य मे नही है। अत: हमारे शास्त्रों मे धर्म तत्व जितना महत्वपूर्ण है उतना ही, परमात्मा की रची इस प्रकृति का भी महत्व वर्णित है। अत: पर्यावरण सुरक्षा के लिये शास्त्रों की आज्ञा का पालन आवश्यक है।

५९९) बुद्धिमान मनुष्य हर कहानीकार को एकदम मान नही लिया करते क्योंकि वे जानते है कि आदमी कमजोर स्वभाव का होता है और दूसरी चीज उसके अन्दर जल्दी घर कर जाती है, जबान पर नियंत्रण नही रहता इसलिये किसी भी काम मे जल्दबाजी नही करनी चाहिये और न ही हठपूर्वक अपनी राय पर ही आग्रह रखा जाये।

६००) बुद्धिमान व्यक्तियों का तकाजा है कि आदमी जो सबसे कहते फिरते है उस पर आंख मिंच कर भरोसा न कर ले और दूसरों से सुनी सुनाई बाते हर किसी को कहते न फिरे। सही तथ्यों की जानकारी का निर्णय ले। अकलमंद व अन्तरात्मा पर चलने वाली व्यक्ति से सलाह करे और अपनी मन गढन्त भावनाओं के फेर में रहने के बजाय अपने से अधिक समझदार व्यक्ति से सम्मति लेने का प्रयत्न करे।

६०१) हम व्यक्तिगत रूप से नही, बल्कि राष्ट्रीय रूप से पागल है। हम हत्याओं और नर बलि को तो रोकते है लेकिन उन युद्ध या नर संहारों के बारे मे क्या जिनमे असंख्य लोग मारे जाते है।

६०२) संघर्ष कभी भी जाति या धर्म को लेकर नही होता, प्रत्युत अहंकार से पैदा होने वाले स्वार्थ और अभिमान को लेकर होता है।

६०३) कभी भी अपने आत्मविश्वास मे कमी न आने दे। आत्मविश्वास की छाया पूरे व्यक्तित्व मे झलकती है। आपका व्यक्तित्व कितना व्यवस्थित है, इसकी झलक आपके कार्य करने के ढंग से मालुम पडती है।

६०४) सारे के सारे शास्त्र कोई कागज है और कोरा कागज यदि पढ़ना आजाये तो सब शास्त्र पढने आगये, वेद, कुरान, बाइबल, गुरु ग्रन्थ, गीता, उपनिषद, धम्मोपद इत्यादि और जिसने कोरा कागज पढ़ लिया उसे सब कुछ आ गया।

६०५) इन्सान केवल महज इन्सान ही नही है, वही भगवान है, दयावान है, वही सहानुभूति का देवता है और वही सहयोग का प्रतीक।

६०६) हमेशा ऐसा नही होता आया है कि वे चीजे जिनके बारे मे हम समझते है कि हम उनके योग्य है और जिन्हे हम बहुत चाहते है, प्यार करते है, हमारे मानव बन्धुओं को सुख शान्ति देती है वे हमे मिल जाये। कभी कभी ऐसा हो जाता है कि जो चीजे हम करना नही चाहते उन्ही के द्वारा ईश्वर अपना प्रभाव सबसे अधिक प्रकट कराता है। उसकी इच्छा सदैव महान है। आत्म विश्वास सफलता का पहला रहस्य है।

६०७) आपका प्रत्येक दिन कुछ ऐसा व्यतीत होना चाहिये, जिसमे आपको लगे कि आपने पिछले दिन से कुछ आगे सीखा है इस प्रकार आप अपने कार्यक्रमों मे जितनी अधिक सक्रियता से शामिल होगे, सफलता के उतने ही करीब होगे।

६०८) दुनिया मे बहुत से लोग है जो स्वयं तो दूसरों के लिये कुछ करते नही और किसी दूसरे को भी करने देते नही। यह महापाप है। यदि दूसरा कोई परमार्थ या परोपकार का कार्य मन और लगन से कर रहा है तो उसे करने दे, उसके कार्य मे बाधा मत पहुंचाओ।

६०९) पेट भरने और कामेच्छा पूर्ण करने के पश्चात मनुष्य सदैव अमरत्व की और आकर्षित होता है। हर तुच्छ प्राणी के भी मन मे यह इच्छा होती है कि चाहे उसका भौतिक शरीर मृत्यु के बाद अंत्येष्टि हो जाये लेकिन उसकी ख्याति सदा के लिये अमर रहे।

६१०) किसी भी मनुष्य को केवल सुख या दु:ख मिले ऐसा सम्भव नही है। चक्के की परिधि के क्रम से भाग्य उपर-नीचे की ओर आता जाता है।

६११) भौतिकता की दौड में येन केन प्रकारेण संचय की प्रवृति ने नैतिकता के लिये संकट की परिस्थिति उत्पन्न कर दी। व्यक्ति यह जानता है कि वह अधिक से अधिक सौ साल तक जीयेगा फिर भी वह हजारों हजारों वर्षों का प्रबन्ध करने के लिये व्याकुल रहता है।

६१२) जब तक हम प्रयत्न ही नही करते तब तक हमे अपनी ताकत का पता नही चल सकता। यदि आत्म विश्वास और हिम्मत

से काम करे तो हम अपने आप को भी हैरत मे डाल सकते है। जब तक हम उत्थान की पुकार नहीं सुनते तब तक हम यह नहीं जान पाते कि हम कितने ऊंचे चढ़ सकते है।

६१३) ईश्वर इन्सान को माफ कर देता है। इन्सान इन्सान को भी माफ कर देगा। लेकिन इन्सान की भूल इन्सान को कभी माफ नही करती।

६१४) हमारा सबसे बडा सौभाग्य तब आता है जब गैर भी अपने हो जाते है और सबसे बडा दुर्भाग्य या संकट तब आता है जब अपने ही गैर हो जाते है।

६१५) उपदेश, उपदेशक और उसे ग्रहण करने की सार्थकता तभी है जब सभी पक्ष उस पर अमल करे। इसके बिना यह पुस्तक मे लिखी बातों के समान सिर्फ शोभा की वस्तु बन कर रह जाती है।

६१६) कथा या भजन भाव मे बह जाना, निष्काम भाव से कोई आशा, तृष्णा, चाह न होना ही सर्वश्रेष्ठ श्रोता की पहचान है।

६१७) स्वाधीन होना हम सबके लिये अनिवार्य है। स्वाधीन बनना किसी परिस्थिति के द्वारा नही हो सकते। हमारी परिस्थिति प्रारब्ध वश है उसके द्वारा स्वाधीनता नही प्राप्त होगी। मिली हुई कोई भी वस्तु, योग्यता, और सामर्थ्य तो प्रभु कृपा से ही प्राप्त होती है।

६१८) भविष्य वह मंजिल है जहां पहुंचने का मार्ग वर्तमान के रास्ते से ही होकर गुजरता है। अत: वर्तमान भविष्य से कही अधिक महत्वपूर्ण है। अर्थात कार्य वही महत्वपूर्ण है जो सामने है। उसे छोडकर भविष्य की ओर देखना दोनों की भी अनदेखी है। इसलिये अपने वर्तमान को सुधारो तो भविष्य अपने आप सुरक्षित हो जायेगा।

६१९) जीवन के प्रवाह को मोडने का प्रयत्न मत करो। धारा के प्रवाह के विपरीत तैरने मे कष्ट अधिक होता है और परिश्रम भी अधिक करना पडता है। अनेक जन्मों के कर्म अपना फल देने के लिये प्राणीमात्र तक आते है, सहज ही उनसे बचा नही जा सकता। अत: होगा वही जो होना है यह मान लेना हितकारी है।

६२०) यदि आप अच्छे विचार अपने जीवन मे उतार ले तो आप एक बडे पुस्तकालय से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

६२१) ईश्वर ही मेरी आशा का केन्द्र है वही मेरा आधार है, मेरा रहबर है और रास्ते का उजाला है। वह ईश्वर चिडियों की परवरिश करता है। खेतों और बगीचे के पौधों और फूलों को खुराक देता है।

६२२) ऐसी हर चिन्ता से बचे जो रोजमर्रा के मामलों पर इस हद तक हावी हो जाय कि वह शान्ति ही भंग कर दे। ऐसी हर चिन्ता से बचे जो आपको कायर बुझदिल और कमजोर बनाये। ऐसी चिन्ता से भी बचो जो नकारात्मक सोच को बढ़ावा देवे और यह विश्वास पैदा करादे कि भविष्य मे मुसीबत और तबाही के अलावा कुछ भी प्राप्त नही होनेवाला है।

६२३) काव्य और प्रेम दोनों नारी-हृदय की सम्पत्ति हैं। पुरुष विजय का भूखा होता है, नारी समर्पण की। पुरुष लूटना चाहता है, नारी लुट जाना। नारी जाति बलवान् पुरुष पर जान देती है। नारी की सहानुभूति हार को भी जीत बना सकती है।

६२४) उत्तर का प्रत्युतर देना अर्थात इंट का जबाब पत्थर से देना ही झगडे का मूल होता है, यदि किसी ने यदि अपशब्द कहे है और बदले मे दूसरे ने भी ऐसा ही किया है तो झगडे की शुरुआत हो जाती है क्योकि प्रत्युत्तर सदैव उग्र होता है और उग्रता झगडा बढ़ाने वाली होती है, झगडे का निराकरण तो मात्र मौन ही है।

६२५) हमेशा न्याय के हक में सच्ची बात करो फिर चाहे लोग तुम्हे पसन्द ना करे और तुम्हे कडक स्वभाव वाले व्यक्ति के रूप में पहचाने।

६२६) जिन्दगी मे कुछ अच्छे पाने की, बनने की तमन्ना रखते हो तो अपने मां-बाप का आदर करना सीखो। सच्चे मन से उनकी सेवा करो।

६२७) उत्साह-वर्द्धन और चापलूसी में अन्तर है। उत्साह वर्धन में ईमानदारी है चापलूसी में मन में बेईमानी। चापलूसी से नुकसान है, आदमी धोखे में रहता है और असलियत से वाकिब नहीं रहता। शरीर और आत्मा की दृष्टि से किसी आदमी को प्रोत्साहन देने से उसके विकास में मदद मिलती है। उसकी चापलूसी करने से उसकी प्रगति रूक जाती है। चापलूसी करने से दोनों का पतन होता है जिसकी करे उसका और जो करे उसका भी।

६२८) यदि किसी को गाली का उत्तर नही दिया गया तो उसका क्रोध शान्त हो जायेगा इसलिये मौन को सबसे बडा वरदान और सुख माना गया है।

६२९) कल्पना जीवन मे उपयोगी है लेकिन यदि उसे खुला छोड दिया गया तो न ठीक से गृहस्थी होती है और न ही परमार्थ।

कल्पना के संसार मे रहनेवाले व्यक्ति से ईश्वर का चिन्तन नही हो सकता। इसलिये कल्पना को छोड कर ईश्वर चिन्तन करना चाहिये। कल्पना करे भी तो अच्छी करें, उच्च, कल्याणात्मक कल्पनाये करे। हम जैसा सोचते है वैसा हमारा स्वभाव बनता है और स्वभाव के अनुसार आदत बदलती है। आदत के अनुसार व्यक्तित्व बदलता है और व्यक्तित्व के अनुसार भवितव्य बदलता है। इसलिये पहले विचार बदलने चाहिये। दुर्बल, असमर्थ विचारों को हटा कर अच्छे विचार, प्रयत्नपूर्वक अपनाने चाहिये। उससे मन की दिशा उन्नति की ओर होती है।

६३०) शान्ति सेवक होना कोई आसान नही है। इसमे अनेक असुविधाये व दु:ख उठाने पडते है किन्तु यह एक ऐसी तपस्या है जो सदा आपके काम आयेगी।

६३१) जीवन का एक क्षण करोडों मुद्रायें देने पर भी नहीं मिलता अत: प्रत्येक दिन एक नया दिन और नया जीवन का आरम्भ कर जिये।

६३२) जो हमारे से धन, सम्पत्ति, सुख-सुविधा, मान-आदर, पूजा सत्कार इत्यादि कुछ भी चाहता है वह हमारा कल्याण नही कर सकता।

६३३) रात्रि मे सोते समय अपनी सारी दिनचर्या का अवलोकन करो कि दिन भर मे मैने किसे हंसाया और किसे रूलाया और इसका दोषी कौन है इत्यादि। यदि आप स्वयं को दोषी महसूस करे तो दूसरे दिन प्रात: उसके पास जाकर क्षमा याचना करे। अपनी भूल स्वीकार करना एक गुण है।

६३४) बदले लेने की भावना, प्रतिशोध इत्यादि मे कुछ समय तक खुशी मिलती है लेकिन इससे बढ़ कर जो व्यक्ति क्षमाशील होता है उसे दीर्घ काल (लम्बे समय) तक आनन्द प्राप्त करने मे सफल होता है।

६३५) दूसरों के दरवाजों को मत खटखटाओं। स्वयं मेहनत करो। सदैव प्रसन्न रह कर मुस्कराहट दो। इस सागर तट पर केवल आप ही एक पत्थर के टुकडे नही हो आप अनेकों मे एक हो।

६३६) खुशी-खुशी अपना काम करो। अपनी मदद स्वयं करो और अपने दोस्तों को अपने साथ-साथ बढ़ाओ। जल्दी ही एक पूरा कारवां आपके साथ हो जायेगा।

६३७) कभी भी कोई आदमी लोगों को यह विश्वास दिला कर कि इस पृथ्वी पर केवल वही एक नेक और सच्चा इन्सान है और बाकी सब झूठ और नीच है, वह कभी भी समृद्ध नही हो सकता।

६३८) जीवन से भाग कर जो शान्ति मिलती है, वही झूठी है। वस्तुत: वह शान्ति ही नही है, वरन अशान्ति को प्रकट करने वाले अवसरों का अभाव मात्र है। इसलिये यदि वास्तविक शान्ति चाहते हो तो जीवन से मुख मोडने वाली भूल कभी मत करना।

६३९) जीवन के संघर्ष मे जो शान्ति सत्य है, बस वही सत्य है। जीवन युद्ध को छोड कर भागना नही है वरन उसमे खडा रह कर स्वयं को जीतना है। जीवन से भागना सन्यास नही है, वरन निपट कायरता है। सन्यास तो स्वयं का इतना आमूल परिवर्तन है कि फिर संसार रह ही नही जाता है। भागने मे तो संसार का भय है।

६४०) वस्तुओं के अस्तित्व के बारे मे दो मान्यताये है एक है प्रत्यक्षवादी। जो कहते है आखों से दिखने वाली और शरीर से अनुभव होने वाली चीजे ही सत्य है बाकी सब मिथ्या है। लेकिन अप्रत्यक्षवादी लोग कहते है कि जो दिखता है वह सब सच नही होता। नजरों के पार भी एक और संसार है। आखों देखा सच हर समय नहीं कहा जा सकता। जैसे पहाडियाँ दूर दराज से नीली दिखाई देती है पर वे नीली नही होती। आकाश का नीला रंग भी आभास ही होता है पर आकाश नीला नही है। भरी दोपहर में मार्गों पर पानी की लहरे दिखती है। रेगिस्तान में दोपहर मे बालू मिट्टी पानी की तरह दिखता है यह सब मृगमरीचिका होती है।

६४१) जो न्याय से नहीं चलता, जो सीमाओं, मर्यादाओं का उल्लंघन करता है वह शरीर और आत्मा को अपवित्र करता है।

६४२) मनुष्य पर जिन्दगी भर ईर्ष्या के हमले होते रहते है जिसकी वजह से इन्सान की भलाई और उसकी तरक्की के रास्ते बन्द हो जाते है।

६४३) किसी की भी आलोचना करने से पूर्व अपने आपको तोलना चाहिये। आलोचना वह अस्त्र है जो विष से भी तेज प्रहार करती है। बेहतर है पहले आत्म विश्लेषण किया जाय और फिर देखा जाय कि आप स्वयं उससे दूर है जिसकी आप आलोचना कर रहे है।

६४४) जो व्यक्ति परम पिता परमेश्वर मे ही जड चेतन, सुख-दु:ख और लाभ हानि का दर्शन करते है, ऐसा दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति दूसरों की स्त्रियों को माता के समान, किसी अन्य के धन को मिट्टी के समान, और हर प्राणी को अपने समान देखते व समझते है।

सच्चे अर्थों मे ऐसे व्यक्ति ही महान कहलाते है।

६४५) हम मे बहुतों की तो भेड चाल होती है। जहां एक जाय उसके पीछे-पीछे सब हो जाते है और ये नही देखते कि हमे कहां जाना है, हमारी मंजिल क्या है हमारा मकसद लक्ष्य क्या है। हम गलत राह पर न चले जाये और असंयमित जीवन के गड्ढे में न जा गिरे।

६४६) बिना सेवा के मिला अनुदान नही होता। बिना प्रयास के अर्जित विद्या भी सार्थक नही होती। बिना पात्रता विकसित किये, बिना सुसंस्कारों के जगाये प्राप्त उपहार भी शोभा नही देते। बिना प्रयास की उपलब्धि लम्बे समय तक साथ नही देती।

६४७) यदि बडा बनना चाहते हो तो बडे लोगों को पीछे मत धकेलो अपने आपको उनसे बडा बनाओ अपने कर्मों से, ताकि वे स्वयं तुमसे छोटे हो जायेंगे।

६४८) पुरुषार्थ करने वाले के पास दरिद्रता नही आती। लोग आलस और प्रमाद मे समय व्यतीत करते है। वास्तव मे परिस्थिति से अधिक दुर्गुण ही दरिद्रता के कारण बनते है, लेकिन प्रयत्न करने वालों के पास दरिद्रता नही आती।

६४९) अपने आदर्श और वफा पर दृढ़ रहने वाले ही संसार मे आदर्श पुरुष बनते है। और हर समय हर जगह उनके पद चिन्ह पाये जाते है।

६५०) संसार का प्यार और उसका गम, उसकी चिन्ता, अपने शरीर को बनाये रखने की चिन्ता, लोक लाज की चिन्ता और अपने मित्र से मिलने का गम ये संसार मे आत्मा को फंसाये रखते है।

६५१) जीवन संघर्ष तथा निराशाओं का अविराम प्रवाह है। जीवन का रहस्य भोग में नहीं अनुभव जनित शिक्षा में है। जब हम वास्तव में सीखने लगते है तभी हमे संसार से चल बसना होता है।

६५२) वफा के रास्ते पर चलने वाला स्वयं वफादार अथवा वफा की मूर्त्ति बन जाता है और जहां जहां पर वह अपने कदम रखता है, वह स्थान अपने आप में पूजनीय बन जाता है, सब तीर्थों का यही इतिहास है।

६५३) जो अपना घर है, जहां से हम आये है वह महा चेतन का देश है। वहां पर प्रेम और करुणा भरी आत्मा ही पहुंच सकती है। कठोर हृदय वाले पत्थर दिलों के लिये वहां पहुंचना कठिन है।

६५४) सच्चा जीवन वही है जिसमे प्रेम और करुणा भरा व्यक्तित्व है। प्रेम और करूणा जिनमे नही है वे तो चलते फिरते कब्रिस्तान है, करुणा और प्रेम ही जीवन की दो मूल शक्तियां है।

६५५) मीठे बोल में बडी ताकत है। नफरत और बैर के बडे-बडे तूफानों को यह शान्त कर देता है और आदमी को फरिश्ता या देवदूत बना देता है।

६५६) मुस्कुराहट एक अमूल्य सम्पत्ति है। इसे पाने वाला और देने वाला दोनों ही लाभान्वित होते है। पाने वाला अपने को मालामाल समझने लगता है और देने वाला कतई भी दरिद्र नहीं रहता।

६५७) गहरी निराशा के क्षणों में आशा के दीप को जलाये रखना चाहिये। जब रात गहरी होती है तब सुनहरा सवेरा करीब होता है। प्रतिकूल परिस्थितियां ही जीवन की कसौटी बन कर सामने आती है, ऐसे समय में धैर्य रखने वाले ही सच्चे विजेता होते है।

६५८) दुनिया मे कोई काम छोटा या बडा नही होता है। काम तो काम ही होता है। छोटे-छोटे कामों में ही महान बनने के बीज छिपे रहते है।

६५९) यदि कुछ लोग विनाश कर सकते है तो उसी तरह कुछ लोग शान्ति भी स्थापित कर सकते है। आप उन कुछ लोगों मे से एक हो सकते हो। यदि हर जाति और समुदाय अपने मनमाने ढंग से चलने लगे तो कोई भी व्यवस्थित सरकार टिक नही पायेगी।

६६०) विश्वास वह है जो दूसरो के द्वारा तय किया गया, थोपा गया, लादा गया है और श्रद्धा जो अपने अनुभव के सत्य प्रकट होने का नाम है।

६६१) प्रेम व्यक्ति से मत करो, उसकी आत्मा से करो, चेतनता से करो। व्यक्ति से प्रेम करोगे तो आसक्त हो जावोगे। उलझन पैदा होगी फिर उलझ जावोगे।

६६२) मानव जीवन मे भी विशिष्ट जगहों पर नियंत्रण न हो तो कई प्रकार की दुर्घटनाएं घट सकती है। शास्त्रों ने मनुष्य के विकास की सीमा निर्धारित की है। आहार-विहार, व्यवहार, आचरण, उच्चारण, प्रचार-प्रसार सभी बातों मे सीमा रेखा निश्चित की गई है।

इन सीमाओं को लांघने पर अनर्थ हो सकते है।

६६३) क्षमा सब कोई नही कर सकता। चाहकर भी कमजोर आदमी इस सद्‌गुण को नही अपना सकता। अगर वह ऐसा प्रयास करे तो भी वह समझौता ही होगा। केवल शक्तिशाली और समर्थ व्यक्ति ही क्षमा कर सकते है और यदि यह मानवीय सद्‌गुण उनमे नही तो उनके समर्थ होने की कोई सार्थकता नही होती।

६६४) अतीत से शिक्षा, वर्तमान से सतर्कता और भविष्य के प्रति चेतना के साथ किया गया कार्य असफल हो ही नही सकता।

६६५) हम राम जैसा सर्व त्यागी, कृष्ण जैसा क्रांतिकारी व बुद्ध जैसा सत्य शोधी न स्वयं बनना चाहते है और न ही अपने बच्चों को वैसा बनने देना चाहते है। हम सुविधाओं के साथ जीना चाहते है। हम सत्य के लिये, बोध के लिये सुविधायें छोडना चाहते नही। हम क्रान्ति तो चाहते है पर उसकी जिम्मेदारी लेना नही चाहते। क्या यही हमारा सत्य है ?

६६६) यदि संसार मे अनगिनत करोडो ईसा, बुद्ध, मोहम्मद या राम जन्म भी ले ले तो मनुष्य का उद्धार नही हो सकता है जब तक वह अपने अज्ञान को दूर करने के लिये कटिबद्ध नही होता। इसलिये अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का भरोसा करना व्यर्थ है।

६६७) छोटे रास्ते सबको पसन्द आते है और हम चाहे तो उन्हें अपना सकते है लेकिन जिस तरह इमली रात भर मे नही उगाई जा सकती उसी तरह मस्तिष्क और चरित्र निर्माण मे भी समय लगता है।

६६८) अपने घर के पराया होते ही एक जाना पहचाना, जिसमे रहे वो शहर भी पराया हो जाता है इसलिये आदमी की पहचान घर से ही होती है।

६६९) टूटे हुये को हौसला देना व धैर्य बंधाना सबसे बडा पुण्य और नेक कार्य है गरीब की हर वक्त मदद करो पर उसकी गरीबी का कभी भी मजाक मत उडाओं।

६७०) दूसरों को समझाना सबसे आसान काम है और इन्सान होने की पहचान है मुश्किल काम करके बताना। दुनिया का सबसे मुश्किल काम है खुद को समझाना।

६७१) हमारे शास्त्रों मे प्रकृति, परमात्मा का जितना सजीव वर्णन है उतना संसार के किसी भी साहित्य मे नही है। अत: हमारे शास्त्रों मे धर्म तत्व जितना महत्वपूर्ण है उतना ही, परमात्मा की रची इस प्रकृति का भी महत्व वर्णित है। अत: पर्यावरण सुरक्षा के लिये शास्त्रों की आज्ञा का पालन आवश्यक है।

६७२) विश्वास स्वयं मे एक सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्ति है, जो सदा सहयोग तथा पारस्परिक सेवा के फूल चुनती रहती है।

६७३) विश्वास के सहारे मनुष्य स्वयं विकसित होता है, नीति परायण बनना तथा दूसरों को वैसा ही अनुकरण करने की प्रेरणा देता है। इस तरह विश्वास के बल पर व्यक्ति और समाज दोनां का ही विकास होता है।

६७४) जितना अधिक संग्रह करोगे उतना ही तुम्हारा फंसाव और लगाव बढता जायेगा। भौतिक वस्तुओं से दूर रहो और जीवन आनन्द के साथ जियो।

६७५) इससे पहले कि लोग तुम पर हंसे तुम स्वयं अपने आप पर हंसों। हर व्यक्ति में कुछ हास्यास्पद अंश होता ही है। अपनी असफलताओं और कमजोरियों को मानने में कभी संकोच मत करना।

६७६) भविष्य वाणी के चक्कर में न पडकर हमे पुरुषार्थ करना चाहिये। पुरुषार्थी व्यक्ति बडे से बडे संकट पर अनायास ही विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य रखता है।

६७७) हम पूर्ण ईमानदारी व समर्पण भाव से किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति का संकल्प ले तथा उसे पूरा करने के लिये निरन्तर प्रयासशील रहे तो सफलता स्वत: चरण चूमेगी। किन्तु लक्ष्य अच्छा होना चाहिये। अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति अवश्य दैवी शक्ति से मिलती है। आसुरी प्रवृतियां तो अच्छे लक्ष्य की प्राप्ति मे बाधायें ही डालती है।

६७८) व्यक्ति बुढा होता है प्रकृति के कारण लेकिन सच्चे अर्थों मे वह बुढ़ा हो जाता है जब वह इच्छा शक्ति का त्याग कर देता है।

६७९) महापुरुषों के सदकार्यों से प्रेरणा, गोमुख से ही गंगाजल के संकलन जैसी बुद्धिमता है क्योकि इससे परिणति यानी सफलता तक पहुंचने का लम्बा व दुरूह रास्ता तय करने की आवश्यकता नही पडती।

६८०) कीर्तिवान मनुष्यों के लिये कीर्तिनाश की कल्पना भी मृत्यु से कही श्रेयस्कर है। काम, क्रोध और मोह आत्मा का पतन करने वाले होते है।

६८१) गई हुई प्रतिष्ठा एक बार खोने पर फिर से नहीं पाई जा सकती यह वह उस कांच के बर्तन के समान है जो टूट जाने पर बिखर जाता है।

६८२) बोला हुआ शब्द कभी लौटाया नहीं जा सकता। अपशब्दों के उच्चारण के लिये क्षमा याचना की जा सकती है लेकिन शब्द बोलने पर वापिस नहीं आते।

६८३) एक बार खोया हुआ अवसर, समय भी लौट कर नहीं आता। अवसर बिना बताये आता है और उसका सही उपयोग न किया जाये तो वह फिर नहीं मिलता। बीता हुआ जीवन भी फिर नहीं मिलता। जीवन क्षण-क्षण से खत्म हो जाता है, किसी भी कीमत देने पर, करोडों का धन देकर भी बीता हुआ जीवन और जवानी पुन: नही लौटती।

६८४) इन्सान महज अपनी गलतियों का पुतला है और अपनी इन्ही गलतियों का हिसाब चुकाने वह बार बार जन्म लेता है। इन्ही गलतियों के आंकलन अनुसार उसकी तकदीर लिखी जाती है।

६८५) आपसी मुहब्बत और प्रेम में, मेल मिलाप में उपहार देना लेना जायज है लेकिन स्वार्थ पूर्ति के लिये उपहार लेना देना जुर्म है, भ्रष्टाचार है।

६८६) देवता, जेठ, ससुर, पर पुरुष एवं आदरणीय व्यक्ति के पास तथा कडी धूप, बरसात तथा सर्दियों की रात (ओस मे) कभी खुले सिर नही जाना चाहिये। सिर पर सदैव, पगडी, टोपी, घूंघट, दुपट्टा, आंचल या रूमाल आदि से ढक कर जाना चाहिये।

६८७) गर्भवती स्त्री को, तत्काल भोजन किये हुये को, अभी अभी बीमारी से उठे हुये को तथा तीव्र बारिश मे, गहरी अंधेरी रात मे वाहन की सवारी व लम्बी यात्रा नही करनी चाहिये।

६८८) यह सृष्टि एक नाटक का विशाल रंगमंच है और हम सभी उस नाटक के पात्र है, अभिनेता है। हरेक अभिनेता अपना श्रेष्ठ अभिनय अदा कर रहा है। इसलिये किसी के भी अभिनय को देख कर चिंतित न हो।

६८९) धर्म तबदील करने से देश नहीं बदलता। अपने देश की रक्षा करना और विदेशी आक्रमण कारियों का मुकाबला करना हर व्यक्ति का कर्तव्य है।

६९०) निशाने पर जो लग जाये वह तीर है। दिल मे जो उतर जाये वह तस्वीर है और आप जैसे दोस्तों का साथ मिल जाये तो तकदीर है।

६९१) क्रोध एक नशा है, जहर है, लकवा है, जीवन के लिये अभिशाप है। जीवन मे यदि क्रोध पर नियन्त्रण कर लिया जाये तो जीवन स्वर्ग बन जाये।

६९२) ज्ञान पांडित्य पैदा कर सकता है मगर ज्ञान सम्बुद्ध नही बना सकता। ज्ञान अहंकार बढा सकता है लेकिन परमात्मा का साक्षात्कार नही करा सकता।

६९३) आग, घाव, कर्ज व क्रोध ये कभी भी छोटे और मामूली समझ कर इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इन सभी मे जीवन को नष्ट करने की शक्ति समाहित होती है।

६९४) जिन्दा बशर को कोई पूछता तक नही और लोग चादर चढाते है उसकी मजार पर। संसार मे मुश्किलों से मुकाबला करके ही विजय प्राप्त हो सकती है उनसे दूर भाग कर नही।

६९५) कानून की गिरफ्त ऐसा मकडजाल है जिसमे कीट पतंग तो फंस कर मर जाते है जबकि टिड्डे इसे तोड कर निकल जाते है।

६९६) हर ऐसी वस्तु जो स्वार्थ पर आधारित हो, प्रतियोगिता जिसका दाहिना हाथ हो और भोग ही जिसका लक्ष्य हो वह शीघ्र या कुछ विलम्ब से अवश्य नष्ट होगी।

६९७) बौद्धिक विनयशीलता वास्तव मे बडप्पन और ऊंचाई की निशानी है। जिनमे बौद्धिक विनयशीलता नही होती उनमे तो अपनी राय का बहुत ही अभिमान होता है। वे अपने मत के कट्टर होते है और इसके खिलाफ सबूत मिलने पर भी अडे रहते है। उनके फैसले

जल्द बाजी और नासमझी के होते है। उनके बयान इक तरफा और पक्षपात युक्त होते है।

६९८) किसी से कुछ मांगने से परहेज करो क्योकि कोई देता है और कोई नही देता है। मांगने पर न मिले तो मन बेचैन रहता है और न मिलने पर दिलों के बीच की दूरी बढती है। जो व्यक्ति कम मे गुजारने का सूत्र जान लेता है वह सुखी जीवन व्यतीत करता है। थोडी चीज पर गुजर बसर करना वह खजाना है जो कभी खाली नही होता।

६९९) जो आदमी दुनिया से बिरादरी, कुटम्ब से, परिवार से अलग अलग हो जाता है उसे कडा संघर्ष करके ही अपनी दुनिया आप बनानी पडती है।

७००) हमारा जीवन सदैव ही अतिक्रमण मय रहता है। हम अपनी मर्यादाओं का निरन्तर उल्लंघन करते रहते है। स्वतन्त्रता की सीमा वही तक है जहां से दूसरों की सीमा शुरू होती है। इस अतिक्रमण से लौटने का नाम ही प्रतिक्रमण है।

७०१) सबसे सर्वोतम सौन्दर्य श्रद्धा में है यदि सच्ची श्रद्धा हो तो भगवान पत्थर में भी प्रकट हो जाते है। प्रेम में सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य होता है। शान्ति ही सबसे सुन्दर है। ये तीनो श्रद्धा, प्रेम व शान्ति घर में मिल सकते है इसलिये अपना घर परिवार ही सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य है।

७०२) सुन्दर स्त्री प्रकृति का सबसे मनोहर चित्र है। पुरुषों के पास दृष्टि होती है और स्त्रियों के पास अन्तर्दृष्टि। यदि स्त्री के कारण संसार में पति की प्रतिष्ठा नष्ट हो, तो सचमुच स्त्री का शरीर घोर पाप का फल-रूप है।

७०३) लालची आदमी लोभ का प्याला पीकर बेअक्ल और दीवाना हो जाता है। वह पूरी दुनिया की दौलत पाकर भी भूखा बना रहता है। इन्सान यदि लालच को ठुकरा दे तो बादशाह से भी ऊंचा दर्जा हासिल कर सकता है।

७०४) अशुभ का विरोध नही करो, सदा शान्त रहो, जो कुछ सामने आये उसका स्वागत करो, वह चाहे आपकी इच्छा की धारा से विपरीत भी हो, तब आप देखेंगे कि प्रत्यक्ष बुराई, भलाई मे बदल जायेगी।

७०५) हर उत्थान के बाद पतन निश्चित है, गर्व व उल्लास के बाद शिथिलता व अवसाद आना निश्चित है। हम जीवन में होने वाली ऐसी विपदाओं से बच सकते है। आसक्ति व दु:ख दो ऐसी चीज है जिनके बीच मनुष्य डोलते रहता है। इन दोनों के बीच फंसे रहने व डोलते रहने से बचने का एकमात्र उपाय ईश्वर के प्रति आस्था रख कर उसके प्रति समर्पित होना है।

७०६) हम न चाहते हुये भी ऋण के जाल मे फंस ही जाते है और फिर इस दलदल में ऐसे फंसते है कि धंसते ही चले जाते है। जो एक बार ऋण के मकडजाल में फंस गया वह उसमे बार बार पहुंच जाता है। प्राय: व्यक्ति दिखावे में, अपनी हैसियत को ऊंचा दिखाने मे सामर्थ्य से अधिक खर्च करता है और यह शादी ब्याह के अवसर पर अधिक होता है।

७०७) आज के इस चकाचौध भरे संसार में सही व्यक्ति की परख करना वास्तव में कठिन है क्योकि इस रंग बिरंगी दुनिया मे इन्सान हर पल रंग बदलता नजर आता है। इसी वजह से लोग गलत व्यक्ति को सही और सही को गलत समझ बैठते है। ऐसे व्यक्ति पर लोग मन मे शंका रखते है, जो आपके लिये पूर्ण समर्पित है। इसी कारण हम उसके मन की भावनाओं को उसकी पवित्रता को गलत मान बैठते है। समय आते उसके मन मे आपके प्रति शंका उत्पन्न होने लगती है। वह आपको गलत समझने लगता है। शक आपके बीच मे दरार उत्पन्न कर देता है, एक अविश्वास अपने को अपनों से दूर कर देता है।

७०८) हर मंजिल तक पहुंचने की सीढियां होती है तथा हर किसी को मर्यादाओं का पालन करते हुये और आत्म सम्मान बनाये रखते हुये सीढी दर सीढी से उस मंजिल तक पहुंचना चाहिये। अगर आप मे प्रतिभा है तो हर कोई आपका सम्मान करेगा तथा आपके पास स्वयं चल कर आयेगा।

७०९) सभी समस्याओं को एक साथ सुलझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। एक समय पर एक ही समस्या का निदान करना चाहिये।

७१०) मनुष्य ही योग्य है, सर्व शक्तिमान विराट स्वरूप व उसकी शक्ति का बोध सबको व आनेवाली पीढियों को करा सकता है। केवल आत्म मंथन व सदैव उसकी ओर झुकाव से ही यह सम्भव है।

७११) जिन्दगी यादों की एक दिलचस्प कहानी है, शौक से जीयो, मौज से जियो, खुशहाली से जीयो, आनन्द से जीयो, जब तक आप पर मौत की मेहरबानी है।

७१२) जीयो तो ऐसे जियो कि जिन्दगी मे सरूर आजाये, प्यार करने वाले को आप पर गरूर आजाये। बहारों के दामन पर नूर

आजाये, जलने वालों पर कहर आजाये।

७१३) होते है जिनके हौसले बुलन्द, उनको मिलते है रास्ते दुनिया कभी किसी की होती नही बुजदिलों व कायरों के वास्ते

७१४) दुनिया मे पता नही क्या घटा और क्या बढा लेकिन इतना जरूर है कि इन्सान से इन्सान का डर बढा व भगवान का डर घटा।

७१५) प्रेम पूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदय से भगवान को स्मरण करने से वाणी कभी असत्य नही होतो, न ही मन कोई असत्य समल्प करता और न इन्द्रिया कभी मर्यादा का उल्लंघन करके कुमार्ग मे प्रशस्त होती।

७१६) आँधिया वो नही जिसमें उमंग भरती है, छातियाँ जहाँ संगीनों से डरती है। शोणित के बदले जहां आंसू बहता है वह देश कभी भी स्वाधीन नही होता है।

७१७) मनुष्य के आचरण व आहार से, व्यवहार से पता लग जाता है कि उसमे सच्चाई व आत्मविश्वास कहाँ तक है जो छोटी-छोटी बातों में अव्यवस्थित है, जिसमे न सदाचार है न सोने उठने का नियम है, न ही अनुशासन बद्ध है ऐसे मनुष्य के जीवन से बडी-बडी आशायें रखना व्यर्थ है। सफलता ऐसे लोगों के लिये नहीं है जो अव्यवस्थित है, असंयमी है, बिना चरित्र और बिना बल बाले हैं।
श्री घनश्यामदासजी बिडला।

७१८) आनन्द से जीओ और जीवन के समस्त रगों से जीओ सारे स्वरों को जीओ। कुछ भी निषेध मत करो। जो दिया है परमात्मा का है, शुभ है और अर्थपूर्ण है। आपके उपभोग के लिये है उसकी दी हुई किसी चीज को भी स्वीकार नही करना उसका अनादर है, नास्तिकता है। आपके जीवन मे किसी समय एक अपूर्व क्रान्ति घटती है, परिस्थितियाँ आपको बाध्य करती है आपके भीतर उथल पुथल से रूपांतरण की प्रक्रिया शुरू होती है। आपके भीतर का रसायन बदलता है। क्रोध करूणा बन जाता है। काम राम बन जाता है। आपके भीतर काटें फूल की तरह खिलते है। आपके हृदय मे प्रेम का संचार होता है। प्रेम ही प्रेम उमडने लगता है सो प्रेम से जीओ। **(ओशो वाणी)**

७१९) अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये जो हिंसा का सहारा लेते है वे धर्म का पालन नहीं करते। धर्म का पालन वे करते है जो अहिंसा के माध्यम से दूसरों को रास्ता दिखा दिये है।

७२०) स्वर्ग का साम्राज्य हमारे भीतर ही है। उसके लिये पुस्तकों में, तीर्थस्थलों मन्दिरों, गुफाओं और जंगलों में ढूंढने की आवश्यकता नही। आनन्द का स्त्रोत हमारे अंत:करण में ही है।

७२१) यदि कुछ लोग विनाश कर सकते है तो उसी तरह कुछ लोग शांति भी स्थापित कर सकते हैं। आप उन कुछ लोगों में से एक हो सकते हो। अगर हर जाति और समुदाय अपने मनमाने ढंग से चलने लगे तो कोई भी व्यवस्थित प्रतिष्ठान टिक नही सकेगा, सफल नही हो पायेगा।

७२२) कमाई के सम्बन्ध मे धर्म नीति न हो तो, चोरी, बेईमानी, रिश्वत, छल, जुआ, कपट आदि अनेक अनैतिक साधनों से बिना मेहनत मजदूरी इत्यादि से इकठ्ठा किया धन इससे जिन लोगों से ऐसा धन प्राप्त किया होगा वे मनुष्य दु:खी होकर उसे शाप दे रहे होंगे, जिस पैसे को कमाने मे कम परिश्रम लगता है, वह खर्च भी अपव्यय से ही होता है। अनीति से उपार्जित धन आमतौर से नशा खोरी, व्यभिचार, सट्टेबाजी जैसे कुमार्ग मे प्रशस्त करता है और अपव्यय होता है, चोरी, ठगी, बीमारी, राजदंड, गुंडागर्दी आदि माध्यमों से वह चला भी जाता है।

७२३) हर प्राणी देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, घटना, कर्म, प्रकृति, पूर्व संस्कारों तथा ग्रह और नक्षत्र के अधीन रहता है।

७२४) समस्त संग्रहों का अन्त विनाश है। लौकिक उन्नति का अन्त पतन है सयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण (मृत्यु) है।

७२५) कल के लिये टालना किसी काम को न करने की वृति को स्वयं से छिपाने के उपाय से अधिक नहीं है। कल पर टला हुआ काम सदा के लिये टल जाता है और उसके दुर्भाग्य का तो अन्त ही नहीं है जो जीवन को कल के लिये टाल देता है।

७२६) सबके चिन्तनका स्तर होता है। सौन्दर्यकी परिभाषा भी सबकी एक नहीं है। अपने देश, काल, सभ्यताके अनुसार सौन्दर्यकी परिभाषा पृथक-पृथक होती है।

७२७) आप ही यदि दु:ख सहनका आदर्श नहीं स्थापित करोगे तो सामान्य जीव कैसे दु:ख सह सकेंगे। किसीके जीवनमें कष्ट-

आपत्ति आवे ही नहीं, यह तो आपके विधानने ही असम्भव बना दिया है।

७२८) दोस्ती खूबसूरती से नही बल्कि चरित्र से होती है। दोस्ती उस वक्त मत करो जब तक उसको ठीक से आजमा ना लो।

७२९) नारी यौवन-काल में गृह-देवी, मध्यकाल में सच्चा साथी और वृद्धावस्था में परिचारिका का काम देती है।

७३०) ऐसा कोई इन्सान नही है जो पूरी तरह से सही हो और कभी कोई गल्ती न करे। यदि आप सीखना चाहे तो आप की हर गल्ती आप को कोई न कोई सबक सिखा सकती है।

७३१) बेचैनी बेसबब नही होती बल्कि यह वह भूला हुआ सबक, छोडी हुई मंजिल और नजर अन्दाज किये हुये फर्ज याद दिलाती है।

७३२) पूर्वजों की उपलब्धियों को हम अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा का साधन न बनायें, ऐसा करने से हम अपने कर्म के मार्ग को बाधित करते है। स्वयं के बल, बुद्धि, ज्ञान और कर्म से उपलब्धियां हासिल करने मे ही पुरुषार्थ है।

७३३) मुसीबतों से इन्सान को घबराना नहीं चाहिये। मुसीबते ही इन्सान को इन्सान बनाती है। आग में तपकर ही सोना, कुन्दन बनता है।

७३४) भावी सफलता के प्रति अत्यधिक व्यग्रता जहां असफलता का कारण बनती है। वही सफलता प्राप्त करनेवाला व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता व व्यवहार मे संतुलित होता है।

७३५) कर्तव्य पालन को जीवन के हर क्षेत्र मे श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। निर्णय के कठिन से कठिन क्षणों में जो लोग अपने कर्तव्य से च्युत नही हुये उन्ही को समाज व इतिहास मे मान्यता मिली है।

७३६) जो हमारे भाग्य मे है उसे कोई छीन नहीं सकता। अन्ध विश्वास में जीनेवाला पतन का मार्ग ही चुनता है। निरन्तर कर्म करके व भाग्य मे मिले को स्वीकार कर हम अधिक सुखी व प्रसन्न रह सकते है।

७३७) कामी यानी स्वार्थी इनकी प्रतिज्ञा या वचनों पर विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि वे कभी भी प्रतिज्ञा भंग कर सकते है।

७३८) जो लोग बिल्लियों के साथ खेलते है तो उन्हें खरोचों के लिये भी तैयार रहना चाहिये।

७३९) घर और मकान में फर्क है। घर बसाया जाता है जबकि मकान का ईंट गारे पत्थर से निर्माण होता है।

७४०) दुनिया से ईमानदारी नष्ट होते जा रही है। मिलावट केवल खाद्यानों तक ही सीमित नहीं रही बल्कि इन्सान के विचार व आदर्शों मे भी मिलावट झलकने लगी है। सत्ता के अहं मे व्यक्ति नीतियों को भूल जाता है इसलिये जीवन मे मर्यादा होना आवश्यक है।

७४१) पशु पक्षी भी स्वयं के लिये घर बनाते है परन्तु वे मन्दिर धर्मशाला नही बनाते। मनुष्य को पशुपक्षी के समान केवल घर नही बनाने है बल्कि मन्दिरों का निर्माण भी करना चाहिये। वह मन्दिर और धर्मशाला का निर्माण कर समाज, देश के लिये जितना सम्भव हो उतना सत्कार्य अवश्य करे।

७४२) जीवन का उद्देश्य कुल दीपक के रूप मे पैदा होना ही नही है बल्कि आकाश दीप की तरह अन्य लोगों के जीवन को प्रकाशित करे तभी जीवन सफल होगा। जो दूसरों के दु:खों से द्रवित होकर आंसू बहाता है वही आकाशदीप की तरह चमचमाते रहता है। आज भी हजारों वर्षों के बाद भी दुनिया महापुरुषों को भूली नही है।

७४३) आवश्यकता है इस देश मे कुछ करके दिखाने वाले नेतृत्व की, भाषण बाजी करनेवाले नेताओं से देश नही सुधरता।

७४४) मर्यादा का निर्माता यदि मर्यादा का पालन नही करता है तो वह मर्यादा टिकती नही है।

७४५) आनेवाले कल की चिन्ता मत करो और बीते हुये कल की घटनाओं का स्मरण मत करो। एक बार भी अगर जीवन और उसकी समस्याओं के विषय मे सोचना शुरू कर देंगे, भविष्य की चिन्ताओं मे डूब जाओगे या बीते हुये दिनों की घटनाओं के विषय मे खेद अनुभव करने लगोगे तो सचमुच उलझ जावोगे और परिणाम कुछ भी नही निकलेगा। कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्य का सही तौर पर पालन करता रहता है तो वर्तमान परिस्थितियों मे ही अधिक से अधिक आनन्द प्राप्त कर सकता है तो उसका जीवन इतना सुखी होगा कि उतने सुख की वह कल्पना भी नही कर सकता।

७४६) निष्क्रिय बैठकर समय बिताने से और व्यर्थ मे निरुपयोगी कामों मे अपनी रचनात्मक शक्तियों का दुरूपयोग करके हम चिन्ताओं के लिये अपनी कब्र स्वयं खोद रहे है।

७४७) मानव जीवन की नदी समस्याओं से जुझते हुये संघर्ष करते हुये चलती है तभी वह कर्तृत्व से शोभायमान होती है।

७४८) धनुर्धारी व्यक्ति के द्वारा छोडा गया बाण किसी एक को या अनेक को मार सकता है पर बुद्धिमान व्यक्ति द्वारा छोटा गया बुद्धि का तीर राजा सहित सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर सकता है।

७४९) भावनात्मक आघात से ध्येय की प्राप्ति - अनेक लोगों के हिस्से मे अपमान, तिरस्कार, आता है। इससे अनेक दिल को ठेस पहुंचती है और वे उच्च ध्येय की ओर बढते है। भगवान बुद्ध दु:खद घटनाओं को देख कर विचलित हुये और दु:खों का कारण खोजने घर से बाहर निकले और कठोर चिन्तन कर बोधिसत्व बने। सौतेली मां सुरूचि ने बालक ध्रुव को अपमानित किया और उसने उग्र तपश्चर्या से अटल स्थान प्राप्त किया। आघातों और दु:खद घटनाओं से मनुष्य की क्षमता बढकर उनका उज्ज्वल चरित्र उत्पन्न हुआ। पांडवों को द्यूतक्रीडा मे हरा कर कौरवों ने उन्हे सत्ता से वंचित कर दिया। पर पांडवों ने अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य से कौरवों का विनाश कर अपना राज्य पुन: प्राप्त किया। तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली से अपमानित होकर ही गोस्वामी तुलसीदास बने। रत्नाकर डाकु अपने परिवार वालों की संकीर्णता जानकर ही तपस्या से महर्षि वाल्मिकी बने। राजा भरथरी को पत्नी का छल कपट विदित होने पर ही संसार की क्षण भंगुरता का ज्ञान प्राप्त हुआ। भावना पर हुये आघातों से उच्च ध्येय प्राप्त करने वालों के ऐसे कई उदाहरण है।

७५०) सही मार्ग को जानने वाला भी अहंकार वश उस पर नही चलता है। सुई के छेद से ऊंट का निकल जाना सम्भव हो सकता है पर अहंकारी के लिये स्वर्ग का राज्य पाना कभी भी सम्भव नही है।

७५१) तीर्थों तक यात्रा तो दूसरों के कन्धों पर सवार होकर की जा सकती है लेकिन जीवन मे ऊंचाइयां अपने ही कदमों से तय करनी होती है। दूसरे के कन्धों पर चढ़कर श्मशान से आगे नहीं जाया जा सकता है।

७५२) अपने घर मे एक ऐसा पेड लगावो जिसकी छाया और महक पडोसी के घर जाती हो लेकिन अपने घर आंगन की दीवारे उतनी ऊंची भी मत उठाओ कि बाहर से जाता हुआ अपना भाई भी दिखाई न दे।

७५३) मनुष्य मे असीम सामर्थ्य है यदि वह उसको पहचान कर उसका उचित उपयोग करे तो जीवन अत्यन्त उन्नत, सफल और आनन्ददायक तथा समाज के लिये उपयोगी बन सकता है।

७५४) सुनने की आदत डालो क्योंकि दुनिया में कहने वालों की कमी नही है। कडवे घूंट पी पीकर जीने और मुस्कराने की आदत बनाओ। अपनी बुराई सुनने की स्वयं मे हिम्मत पैदा करो क्योकि लोग आपकी बुराई करने से बाज नही आयेंगे। आलोचक कभी भी बुरा नही है।

७५५) मार्ग दिखाने का काम शास्त्र करते है, लेकिन शास्त्र मे जो बताया गया है रह वह काल प्रवाह मे पुराना या गलत हो सकता है इसलिये अपने सत्य की खोज स्वयं करो। अपनी अंत: ज्योति को स्वयं प्रज्ज्वलित करो, स्वयं पर विश्वास करो।

७५६) जो व्यक्ति अपने परिवार को नही सिखा सकता, वह दूसरों को क्या सिखायेगा। परिवार ही सभ्यता की धुरी है।

७५७) कठिनाइयां मनुष्य के पुरुषार्थ को जगाने के लिये आती है, और आत्म निरीक्षण और आत्म निर्माण ही सबसे बडा पुरुषार्थ है। साधना न तो परावलम्बन है और न ही याचना। साधना को आत्मविष्कार का सुनियोजित आधार मात्र ही माना गया है। मानव जीवन का परम पुरुषार्थ अपनी निकृष्ट मानसिकता से त्राण पाना है। ऊंचा उठकर प्रसुप्त को जगाये और जो महान है उसका अवलम्बन करे।

७५८) मुबारक है वे लोग जो अपनी कोशिश उस वक्त भी जारी रखते है जब जमाना उनका मजाक उडा रहा होता है।

७५९) जो पृष्ठ गिन कर किताबों की कीमत अदा करते है उनका जहन किताब के नीचे दबकर कब्र में पहुंच जाता है।

७६०) किसी दूसरे के सहारे रह कर अथवा दूसरे के पुरुषार्थ के भरोसे बैठ कर आज तक कोई आत्मबोध लाभ प्राप्त नहीं कर सका। अपने पुरुषार्थ से ही अपना निर्माण किया जा सकता है।

७६१) जन्म लेते ही कुछ रिश्ते खुद-ब खुद बन जाते है जैसे मां-बेटे, बाप-बेटे, भाई-बहन, दादा-दादी इत्यादि। कुदरत का मनुष्य को दिया हुआ यह अनमोल तोहफा है इसके लिये इन्सान को खुद कोशिश नहीं करनी पडती। इन रिश्तों को रखने के लिये किसी अन्य प्रकार की कोशिशे भी नहीं करनी पडती क्योकि ये रिश्ते तो खून से होते है।

७६२) मौत और तकदीर के फैसले अटल है लेकिन नेकी करने से उम्र बढती है और दुआयें मांगने से मुसीबतों से मुकाबला करने की ताकत हासिल होती है।

७६३) हम जो कुछ कहना चाहते है वह कह नहीं पाते लेकिन हमे वो सब कुछ सुनना पडता है जिसे हम सुनना नहीं चाहते।

७६४) जिन्दगी का मकसद जरूर हो सकती है मगर जरूरत से ज्यादा जिन्दगी का मकसद नही होना चाहिये। जरूरत से अधिक की चाह जब किसी इन्सान के दिल मे पैदा हो जाये तो वह उसकी तबाही का रास्ता बन जाती है।

७६५) आज अभिजात्य और बडप्पन, उच्चता का प्रदर्शन उपरी टीम टाम और चमक दमक से होता है पर यह सब निस्सार है। व्यक्ति की असलली परख उसके सद्गुण, चारित्रिक विशेषताये है, वे ही समाज, परिवेश पर स्थायी स्वभाव छोडती है।

७६६) किसी भी व्यक्ति के महान बनने के पीछे उसके सदकर्म, सद्व्यवहार व अच्छे आचार विचार होते है। मानवीय दृष्टिकोण के सामने धन, पद, और यश का अहंकार नही रहता। पैसा, पद, सत्ता, सफलता आदि की व्यवहारिकता से कही अधिक व्यवहारिक प्रेम होता है।

७६७) मनुष्य अपनी शक्ति को विध्वंस को ही दिशा में मुक्त करता है। वह उसे विरुद्ध या नकारात्मक या विध्वंसात्मक दिशा में ही प्रयुक्त कर पाता है। वह अपनी शक्ति का उपयोग सही दिशा में सृजनात्मक रचनाओं में कार्यों में प्रयुक्त करेगा तो मनुष्य मे आमूल, आचूक परिवर्तन आयेगा।

७६८) हर शख्स सच्चा दोस्त तलाश करता है मगर सच्चा दोस्त बनने की कोशिश नहीं करता है। खुद से बढकर कोई सच्चा दोस्त नही होता है।

७६९) ज्ञान, शिक्षा, शिष्टता विद्यालय से हासिल होती है किन्तु इसका दायित्व विद्यालय से अधिक परिवार का होता है।

७७०) जो व्यक्ति ज्ञान रहित होकर भी उदंड है, दरिद्र रह कर भी बडी बडी अभिलाषाये करता है और बिना कर्म किये ही ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है वह निरा मूर्ख है।

७७१) सृष्टि के अस्तित्व के लिये शान्ति अपरिहार्य है। शान्ति मे ही सृजन होता है। संक्रमण की आवश्यकता सिर्फ परिवर्तन के लिये होती है। अत: उसकी अवधि अल्प होनी चाहिये।

७७२) भगवान को भूल कर अपने बलबूते पर भरोसा करने वालों पर ही मुसीबतों का कहर ढाता है। भले बुरे की तमीज से ही मनुष्य पुण्य या पाप का भागीदार होता है।

७७३) खुशी तो तब है जब बाहर शाम ढल रही हो और आपके अन्दर का सूरज निकल रहा हो। गड्ढों में अन्धेरे जल्दी फैलते है जबकि पर्वतों पर सूरज सबसे पहले निकलता है और सबसे आखिर मे डूबता है।

७७४) अगर जिन्दगी मे कामयाब होना चाहते हो तो अपने गमों से समझौता कर लो क्योकि लोग मुस्कुराहट के बदले मुस्कुराहट चाहते है आसूओं का मोल नही।

७७५) पैसा जिस्मानी राहत खरीद सकता है लेकिन रूहानी मर्सरत नही। पैसा जिन्दगी ले सकता है लेकिन दे नहीं सकता। दौलत से किताबे खरीदी जा सकती है लेकिन इल्म नही।

७७६) ईश्वर हमेशा क्षमा कर देता है, इन्सान कभी कभार क्षमा करता है लेकिन प्रकृति कभी माफ नहीं करती। प्रकृति के साथ किसी भी तरह की की गई लापरवाही की कीमत अदा करनी पडती है।

७७७) नष्ट हो चुकी वस्तुये, दूर चले गये या मृत व्यक्तियों का शोक लगातार करते रहना, इन सबसे अपनी व्यक्तिगत उपेक्षा करते रहना बुद्धिमानी नही है बल्कि मूर्खता है।

७७८) बाहर से अमीर दिखनेवाला आदमी कर्ज मे डूबा रहता है और बाहर से फटेहाल आदमी का जिगर इतना मजबूर होता है कि वह जो सोच ले कर गुजरता है। अमीर लोग भी लाचार, कमजोर और किसी न किसी से दबे हुये लोग होते है।

७७९) आत्मावलंबी और साहसी मनुष्य किसी अनुग्रह या वरदान की प्रतीक्षा नही करते, न ही याचना, वरन, प्रगति पथ स्वयं बनाते है और अपनी सहायता भी आप ही करते है।

७८०) गिरगिट के रंग बदलने से उसका स्वभाव नही बदल जाता और इन्सान के वस्त्र परिवर्तन करने से उसके विचारों मे लेशमात्र भी परिवर्तन नही आता।

७८१) लोग झूठे सच्चे बहाने और वचन कह कर कर्ज ले लेते है। कर्ज लेते समय तो बहुत सुख मिलता है परन्तु वह मुश्किल से भी वापस नही किया जाता।

७८२) जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होने पर भी अपने उत्पत्ति स्थान में शान्त हो जाता है।

७८३) जीतने वाले कोई अलग काम नहीं करते, वे हर काम अलग ढंग से करते है। सिर्फ एक चीज करने की होती है जिसे कहते है शुरूआत जो आदमी को सिकन्दर बनाती है। जो जीता वो ही सिकन्दर।

७८४) दान दाता होने का अहंकार तो दुनिया के उन लाखों-करोडों लोगों को है जिन्होने गरीबों का खून शोषण किया है लेकिन स्वागत है उन लोगों का जिन्होने अपनी परोसी हुई थाली की रोटी दी है।

७८५) हंसी के सुन्दर पृष्ठभूमि पर ही जवानी के प्रसून खिलते है। आज के तनाव भरे वातावरण और जीवन में बढती जटिलताओं ने व्यक्ति से उसकी हंसी छीन ली है। रोज रोज पैदा होती दुश्वारियों मे वह हंसना भूल गया है। इससे तनाव व परेशानियां कम होने के स्थान पर बढी है, क्योकि हंसी व्यक्ति के मस्तिष्क पर छाई तनाव की चादर को दूर हटाती है और उसमे जीने की उमंग तथा उत्साह पैदा होता है। हंसी जीवन का प्रभात है। यह शीतकाल की मधुर धूप है तो ग्रीष्म की तपती दुपहरी में सघन छाया इससे आत्मा खिल उठती है, इससे आप तो आनन्द पाते ही है दूसरों को भी आनन्द प्रदान करते है। हास परिहास पीडा का शत्रु है। निराशा और चिन्ता का इलाज तथा दु:खों के लिये रामबाण दवा।

७८६) बिना परिश्रम किये प्राप्त सम्पदा किसी काम की नहीं होती है। बिना स्वयं परिश्रम किये तो देवों की मैत्री भी प्राप्त नही होती इसलिये उद्यम व उद्योग करना नितान्त आवश्यक है।

७८७) बूंद नही जान सकती कि सागर क्या है ? जब तक कि बूंद अपना अस्तित्व नही मिटा दे, बूंद सागर मे खो न जाये। सागर मे लीन होना ही बूंद का मिट जाना है।

७८८) अगर ऐसे वृक्ष उगाने है जो सैकडों साल तक रहे और जिनके नीचे लाखों करोडों लोगों को विश्राम मिले तो ऐसे वृक्ष दो-चार सप्ताह मे उगनेवाले नही है। ऐसे वृक्षों को उगाने मे पूरा जीवन लग जाता है और कभी कभी तो यह जीवन भी कम पड जाता है। स्वर्ग, मोक्ष और परमात्मा के वृक्ष ऐसे ही होते है।

७८९) कोई गुलाब की नश्वरता देख कर उदास रहता है, कोई उसकी नित्य नवीनता मे अमरता के दर्शन कर के स्वयं गुलाब की तरह खिला रहता है।

७९०) उपदेश देना सरल है, अमल करना कठिन है। खर्च करना सरल है, कमाना कठिन है, शत्रु बनाना सरल है, मित्र बनाना कठिन है। वचन देना आसान है पर पालन करना मुश्किल है।

७९१) अपनी जबान पर काबू हो- खुशी उसी के लिए है, जो लोगों की बुराई न करे, खुशी उसके घर मौजूद रहती है और जो अपनी गलतियों पर पछताता हो, खुशी उसके साथ है।

७९२) सबसे बेहतर आदमी वह है जिसका दिल डाँवाडोल न होता हो, जो झगड़े से बचकर दूर कोने में जा बैठै, जिससे लोगों को कोई तकलीफ न पहुंचे, जो लोगों की पीठ पीछे बुराई न करे, जो अपने कुसूर पर रो देता हो। जिनके दिल हिदायत से रोशन हैं वे हर अंधेरे से बच निकलते हैं।

७९३) मंजिले उन्हीं को मिलती है, जिनके सपनो में जान होती है। पंख होने से कुछ नहीं होता, हौसलों से उड़ान होती है।

७९४) आज के युग के धृतराष्ट्र की व्यवस्था के रथ को संजय जैसे कुशल सारथी के संचालन की आवश्यकता नहीं है, क्योकि ऐसी व्यवस्था का रथ चलता नही है केवल चलने का आडम्बर करना पडता है।

७९५) आलोचना करना एक खतरनाक खेल है, यह ऐसी एक चिनगारी है जो दम्भ के शक्तिशाली गोले मे विस्फोट कर सकती है इससे व्यक्तित्व की समाप्ति हो सकती है। कोई भी बेवकूफ आलोचना, भर्त्सना और शिकायत कर सकता है और अधिकतर बेवकूफ ऐसा ही करते है परन्तु दूसरों को समझने और माफ करने की काबलियत रखने के लिये शक्तिशाली चरित्र और आत्म नियन्त्रण की

आवश्यकता होती है।

७९६) प्रशंसा और चापलूसी में अन्तर है। प्रशंसा वास्तव में अपनापन होता है जबकि चापलूसी में केवल दिखावा मात्र है। प्रशंसा हृदय के अन्दर से उपजती है और चापलूसी सिर्फ जबान से व्यक्त की जाती है। प्रशंसा का हर कोई सम्मान करता है परन्तु चापलूसी का हर कोई मजाक करता है। चापलूसी की संगत से बडा नुकसान हो सकता है। व्यक्ति को झूठी प्रशंसा सुनने और कहने की सीख मत दो। चापलूसी सुनने के अनेक नुकसान है पर लाभ एक भी नही जैसे नकली सिक्के के वजह से नुकसान का होना रोका नही जा सकता।

७९७) किसी के चेहरे की तरफ झांक कर उसके बारे मे अपनी राय मत बनाओ क्योकि हर चेहरा एक बन्द किताब की तरह होता है।

७९८) बहुत सारी अजीब खूबियां झोपडों मे पाई जाती है मगर महलों मे नही।

७९९) कुछ लम्हे (क्षण) चाकू की धार जैसे होते है। गलत फैसला हो जाने पर उसकी काट से न जान बचती है और न ही ईमान।

८००) धन दौलत से ज्ञान होना कभी भी सबसे बेहतर और श्रेष्ठ है। धन दौलत की हिफाजत करनी पडती है और ज्ञान सबकी हिफाजत करता है। ज्ञान खर्च करने पर घटता नही है और बढता है, तरक्की करता है जब कि दौलत खर्च हो जाती है, लम्बे अरसे तक विनाश हो जाती है। धन दौलत का चोरी हो जाने का डर रहता है। जबकि ज्ञान को कोई चुरा नही सकता। धन दौलत से सम्पन्न अमीर हमेशा ही कंजूस रहता है जबकि ज्ञान से सम्पन्न विद्वान बडे दिल वाला होता है।

८०१) ज्ञान से दिल को रोशनी मिलती है और दौलत से दिल तंग, अंधेरों मे होता है।

८०२) न्यायी कभी भी दु:खी नहीं होता और अन्यायी कभी भी सुखी नही होता। अन्याय करने की अपेक्षा अन्याय सहन करने वाले की क्षमता अधिक श्रेष्ठ है।

८०३) व्यक्ति कर्मवादी हो तो भाग्य की लकीरों से भी लड सकता है और एक सफल व्यक्ति बन कर जिन्दगी जी सकता है तथा भाग्य पर विजय पा सकता है।

८०४) प्रकृति के रहस्यों को समझना आसान नही है। वह कब करवट बदले और कहां अपनी विनाश लीला दिखाये इसका सुनिश्चित पूर्वानुमान नही लगाया जा सकता। मानव सतर्कता, धैर्य और आत्मबल से ही ऐसी आपदाओं का मुकाबला कर सकता है।

८०५) ईश्वर की कृपा से मनुष्य को सुन्दर सच्चरित्र स्त्री, आवश्यकता भर की पूर्ति के लिये पर्याप्त लक्ष्मी, चरित्रवान और गुणवान पुत्र, वंश वर्धक पौत्र प्राप्त हो जावे तो उसके लिये स्वर्ग इसी धरती पर है। स्वर्ग मे भी इससे अधिक सुख क्या मिलेगा ? सच्चरित्र खूबसूरत स्त्री, धन सम्पत्ति, गुणवान पुत्र तथा पौत्र आदि का मिलना अच्छे सौभाग्य का द्योतक है।

८०६) रास्तों की वीरानगी और जलती धूप से घबराने वाले कभी भी अपनी मंजिल तक नही पहुंच सकते।

८०७) कुदरत के बनाये हुये इन्सान की किस्मे दो प्रकार की है, औरत और मर्द। इन दोनों की फितरत भी अलग-अलग है। कुदरत का इरादा दोनों की पहचान अलग-अलग जाहिर करता है और जब कोई मर्द औरतों जैसा लिबास और जब कोई औरत मर्दों जैसा लिबास पहनना शुरू कर देता है तो इन्सान की इस हरकत से कुदरत के इरादे मे खलल पडने लगता है इससे वे अपनी खूबसूरती को ही नही ढक लेते बल्कि अपनी खुद की पहचान भी खो देते है। खुद की पहचान बनाने के लिये इन्सान को पूरी जिन्दगी संघर्ष करना पडता है लेकिन वो अपनी ना समझी और भूल से अपनी प्राकृतिक पहचान खो बैठता है। कुदरत ने इन दोनों की पहचान अलग-अलग जिस्म और लिबासों से बना कर इन्सान का काम आसान कर दिया लेकिन इन्सान स्वयं इससे बेखबर है।

८०८) लोग टूट जाते है एक आशियाना बनाने में और काफिर (जालिम) तरस नही खाते बस्तियां ढ़हाने मे।

८०९) जहां व्यक्तिगत भोग का संयम नही होगा, व्यक्ति चरित्रवान नही होगा, जहां भोग की सीमा नही होगी वहां स्वस्थ समाज का निर्माण नही हो सकता।

८१०) जो राजा, शासक, बडा धनवान, या बडा आदमी अकेला रोटी खाना जानता है तो वहां विद्रोह होगा, हत्याये होगी।

८११) परिवर्तनशील व्यवस्था को शाश्वत का रूप नहीं दिया जाता है वरना समस्यायें उत्पन्न होती है और उनका समाधान नहीं हो सकता।

८१२) मनुष्य अपने अधिकार मे सब कुछ ले लेना चाहता है उससे भी कही अधिक जिसे वह समा नहीं सकता, सम्भाल नहीं सकता इससे समाज में क्रूरता और हिंसा फैलती है। मनुष्य की इच्छा आकाश के समान अनन्त और व्याप्त है। इस धरती पर अरबों आदमी रहते

है तथा इस धरती में सभी आदमियों के पेट भरने की क्षमता है पर आदमी की इच्छा पूरी करने की क्षमता तो किसी मे भी नहीं है।

८१३) जहां चोरी होती हो असत्य बोला जाता हो वहां विश्वास नही होता है और विश्वास के बिना परिवार, समाज, राष्ट्र नही बनता है।

८१४) अहिंसा समाज व्यवस्था का सबसे मजबूत आधार है और विश्व शान्ति का मूलाधार पाठ है। मन, वचन और काया से स्वयं किसी की हिंसा नही करना, न ही किसी दूसरे से करवाना और यदि करे तो उसका अनुमोदन नही करना चाहिये तो यही सच्ची अहिंसा है।

८१५) जहां भय हो वहां समाज ठीक से नही चल सकता इसीलिये आज तक जहां हिंसक पशु है उनका समाज नही बना क्योकि वे एक दूसरे से भयभीत होते है। शेर दूसरे प्राणी को खा जाता है यह जंगल का कानून है। एक बडी मछली छोटी मछली को अपना आहार बना लेती है यह पानी का कानून है। जहां भय होगा वहां निर्भय समाज नही बनेगा।

८१६) विश्वास स्वयं में एक सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्ति है जो सदा सहयोग तथा पारम्परिक सेवा के फूल चुनती रहती है। विश्वास के सहारे मनुष्य स्वयं विकसित होता है, नीति परायण बनता है तथा दूसरों को वैसा ही अनुकरण करने की प्रेरणा देता है। इस तरह विश्वास के बल पर व्यक्ति और समाज दोनों का ही विकास होता है।

८१७) मनुष्य अपने लिये कम चाहे और दूसरों को अधिक देने का प्रयत्न करे तो समस्त संघर्षों की समाप्ति और स्नेह सौजन्य की स्वर्गीय परिस्थितियां सहज ही उत्पन्न हो सकती है।

८१८) जिसकी सोच में निष्कृष्टता और आचरण मे धृष्टता का समावेश होने लगे तो समझना चाहिये कि उसकी दुर्गति के लक्षण जागृत हो रहे है। जब कोई श्रेष्ठ गुणों को अपनाने के लिये अपने आपको सुधारने मे जुट जाये तो समझना चाहिये कि उसके उज्ज्वल भविष्य के लक्षण प्रस्फुटित हो रहे हैं।

८१९) आत्मविश्वास का अभाव ही जीवन मे पराजय का मूल है। यह अभाव मन में भय, अथवा संशय को जाग्रत करता है। जिसके पास आत्मविश्वास है उसके लिये असम्भव भी सम्भव हो सकता है। आत्मविश्वास की वृद्धि के लिये आत्मसम्मान की चाहत मे कमी न आने दे। आत्म सम्मान समस्त सद्गुणों की आधार शिला है।

८२०) सबके चिन्तन का स्तर होता है। सौन्दर्य की परिभाषा भी सबकी एक नही होती है वह भी अपने देश, काल, सभ्यता के अनुसार सौंदर्य की परिभाषा पृथक पृथक होती है।

८२१) सृष्टि के सुन्दरतम प्राणियों के चर्म, पंख इत्यादि को अपने मनोरंजन के लिये प्राप्त करने की यह वासना अत्यन्त निष्ठुर है।

८२२) ईश्वर ही यदि दु:ख सहन का आदर्श नहीं स्थापित करेंगे तो जन साधारण सामान्य जीव कैसे दु:ख सह सकेंगे। किसी के जीवन मे कष्ट, आपत्ति आवे ही नही यह तो ईश्वर के विधान ने असम्भव बना दिया है।

८२३) पृथ्वी में भूकम्प आते है। सूर्य-चन्द्र पर ग्रहण लगता है। समुद्र मे भीषण तूफान उठते है। नदियों मे उग्र बाढ़ आती है। दु:ख दुर्देव किसी को छोड़ते नही है अत: प्राकृत पुरुष के समान मनुष्य को शोकातुर नही होना चाहिये।

८२४) जाति को जाति से ही भय होता है। हाथी ही हाथी के बन्धन का कारण होता है। अपना कोई शत्रु से मिला हो तो वह महान भय का कारण होता है।

८२५) सर्प, वृश्चिक, दंश-मशक, व्याघ्र भेडियों इन प्राणियों को यदि स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाय तो सृष्टि मे कोई भी प्राणी सुरक्षित नही रहेगा। इनका शमन और संहार करना तो आवश्यक और सत्कार्य है। निर्बल, निरीह, निर्दोष प्राणियों को समर्थ ही सुरक्षा प्रदान कर सकता है।

८२६) जब देश में शान्ति रहती है, प्रजा पेट पालन की चिन्ता से परित्राण पा जाती है तब समृद्ध जनपद में भगवती सरस्वती की सम्यक आराधना होती है। कला के लिये उर्वर क्षेत्र है वे जो समृद्ध और संघर्षों से सुरक्षित है।

८२७) भोग-प्रवण, अर्थ प्रधान समाज की कला उच्छृंखल होती है। वह वासना को उत्तेजित करने वाली, मानव को पशु या दानव बना कर पतन के गर्त मे गिराने वाली होती है।

८२८) प्रतिभा तीक्ष्ण तलवार है। वह संयमी, सद्भावना सम्पन्न सत्पुरुषों के करों में होगी तो समाज के लिये सुरक्षा का आश्वासन बनेगी और उन्मत्त व्यक्ति के हाथो मे होगी तो उसका तथा औरों का नाश ही करेगी, उत्पात को ही उत्पन्न करेगी।

८२९) शासक समाज का होता है। उसका निजी जीवन उसके अधिकार मे नही होता है। उसका अचरण उसका मिथ्यावाद भी लोगों का आचरण बन सकता है। अत: शासक को समस्त प्रजा के हितार्थ आवश्यक होने पर आत्मोसर्ग के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये।

८३०) एकान्त सेवी आराधकों को अरण्य (वन) आशीर्वाद देता है। प्रबल पौरूष व्यक्ति को प्रमादहीन होना सिखाता है। अरण्य मे अनेक प्रकार के भय है तो अनन्त सद्गुण भी है। यह निश्चित है कि कितनी भी सुव्यवस्था कर ली जाय अन्तत: अरण्य तपस्थली ही है, वहां पहुंच कर सम्राटों को भी सहन करने का अभ्यास करना पडता है। काननवासी का अभय ही सहज स्वभाव है। संघर्ष एवं आशंका के मध्य सतत सतर्क रहना वह वन मे सीख जाता है। संकट व मृत्यु उसके लिये अर्थहीन हो जाते है। इन्ही के बीच मे रहकर हंसते खेलते रहना सीख लेता है।

८३१) असत् पुरुष शक्ति से वह उद्धत हो जाता है। उसकी शक्ति उसे निर्बलों को उत्पीडित करने के लिये उत्साहित करती है। वह उच्छृखल बन कर सभी मर्यादाओं की उपेक्षा करने लगता है। सत्पुरुष के समीप जो शक्ति होती है उससे वह अधिक विनम्र, सेवाशील बन जाता है। अबलों का संरक्षण उसे अपना कर्त्तव्य लगने लगता है। अत: वह इसी मे व्यस्त, संयमी तथा मर्यादाओं के मानने मे सदा सतर्क रहने वाला होता है।

८३२) सशरीर स्थायी रूप से स्वर्ग मे रहने की मानव की आकांक्षा अवैधनिक है और यह उस लोक की मर्यादा के प्रतिकूल है इससे सृष्टि का सन्तुलन बिगड जाने की पूरी आशंका है अत: यह अपराध है और सम्भव भी नही है।

८३३) मरणोन्मुखी पिपीलिकाओं के पंख निकल आते है और वे इस उत्साह से उडती है जैसे पूरे व्योम को क्षण भर मात्र मे ही पार कर लेगी।

८३४) अन्धविश्वास है भली प्रकार भौतिक कारणों पर विचार नहीं करना किन्तु जब कोई बाहरी कारण प्राप्त न हो तब अधि दैवत कारण को न मानना भी अज्ञता है। इन दोनो अतियों के मध्य विचारवान आस्तिक अपना मार्ग बनाते है।

८३५) राजा स्वयं कुछ भी समझ ले लेकिन उसे प्रजा के समझने को महत्व देना पडता है। उसे अपनी समझ को स्वीकार करके चलने का स्वत्व ही नही होता है।

८३६) अन्तर के आल्हाद का उत्स होता है काव्य। इसका उपयोग अन्तर को आल्हादित करने मे ही है। कला यदि लोक हृदय को रसालुप्त नही कर पाती तो वह वन्ध्या ही है।

८३७) शौर्य जब संयम तथा श्रद्धा शासित होता है, सम्पत्ति स्वयं सेवा करने दौडी आती है।

८३८) शक्ति के सहारे दूसरों को उत्पीडन व दु:खी करके जो कुछ किया जाता है वह शुद्ध और पाक नही है। इससे संघर्ष ही उत्पन्न होता है जो उसे विनाश कर देता है।

८३९) अप्रिय इतिहास को उलट कर देखना अनावश्यक है। देखना यह चाहिये कि एक स्थान पर सौहार्द्र, स्नेह सम्भव हुआ है तो अन्यत्र क्यों सम्भव नहीं है।

८४०) परिवारके मुखियाको परिवारके कलह, अशान्ति और स्वार्थ-भावनाके जहरको पीना पडता है। इतना उदार और समर्थ मुखिया ही परिवार चला सकता है।

८४१) सब दिन समान नहीं होते। सुख के बाद दुख और के दुख के बाद सुख का चक्र बराबर चलता रहता है। अंधेरे के बाद उजाला और उजाले के बाद अंधेरा आता रहता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन अनिवार्य रूप से आता रहता है। इसी प्रकार अकाल के बाद सुकाल और सुकाल के बाद अकाल।

८४२) ऐसा नहीं है कि कुछ आदतें अच्छी होती हैं और कुछ आदतें खराब होती हैं। सभी आदतें खराब होती हैं, क्योंकि सभी आदतें हमें गुलाम बनाती हैं।

८४३) जब जंगल में जन्मे पौधे विशाल वृक्ष बन सकते है तो कोई कारण नही मनुष्य जैसे विचारशाली प्राणी जगत मे जन्म लेकर उन्नति के लिये औरों का मुंह ताके, राह देखे। अपने पुरुषार्थ से अपनी सफलता का पथ स्वयं प्रशस्त कर सकता है। इसलिये प्रयत्न करना सर्वथा वांछनीय है।

८४४) खुदकिस्मती हर एक का दरवाजा खट खटा कर पूछती है क्या आपके घर के अन्दर समझदारी मौजुद है ?

८४५) सम्पन्न लोगों के साथ मुकाबला करने पर हर किसी को अपने अभावों का भान होता है किन्तु यदि अपने से गये गुजरे लोगों के साथ अपनी तुलना करने से सन्तोष के पर्याप्त आधार मिल जाते है और हमारी उद्विग्नता तथा लालसा का शमन हो जाता है।

८४६) प्यार ने दोस्ती से कहा मेरे होते हुये तुम्हारा यहां क्या काम है ? दोस्ती बोली मै उन होठों पर मुस्कान लाती हूँ जिन आखों में तुम आंसू दे जाते हो।

८४७) ताजमहल मे दो तरह के पत्थर लगे हुये है। एक तो वह है जिनकी चमक सारी दुनिया देखती है और दूसरे वे है जो ताजमहल की नींव मे लगे है, जिनके जीवन मे सिर्फ अन्धेरा है किन्तु ताज तो उन्ही के सहारे खडा है। इसलिये सदैव नींव के पत्थर बनने का प्रयास करो।

८४८) बरकत अच्छे आचरण से होती है न कि रंग से। दिल के रोग, शरीर की बीमारियां आचरण की कमजोरियां और आत्मा की खराबियां यह सब बुरे व्यवहार का नतीजा है। आपके बदचलन, बुरा व्यवहार दुसरों को दु:ख पहुंचा सकता है। बर्ताव अच्छा हो या बुरा उसका असर दूसरों के जिन्दगी को अवश्य प्रभावित करता है। इसलिये बर्ताव के प्रति लापरवाही उचित नही। इसके बुरे असर से दूसरे लोग भी इन बीमारियों की चपेट में आ सकते है। जमीर को जख्मी करने के वही लोग जिम्मेदार है जिनका बर्ताव बुरा है और दिलों को दु:खाने वाला है। अपने खुद के लाभ के लिये दूसरों को परेशानी और मुसीबत मे डालना गुनाह है।

८४९) भरोसा उस परिन्दे की तरह है जो झूठी सुबह मे ही रोशनी के एहसास से चहचहाने लगता है।

८५०) हर शख्स को अपनी अकल सबसे बडी और अपना बेटा सबसे खूबसूरत नजर आता है।

८५१) निर्भयता वह प्रकाश है जो मन के अंधियारे छोरों को आलोकित कर देता है और निर्भय व्यक्ति को मार्ग की कोई बाधा पथ से विचलित नहीं कर पाती।

८५२) तूफान के सामने चट्टान बने रहना ताकि वह अपना रूख मोडने पर मजबूर हो जाये।

८५३) भविष्य काल है ही नही जो महज एक कोरी कल्पना है। भविष्य के प्रति कभी भी निश्चित नही हुआ जा सकता। वह मात्र एक सम्भावना है जो हो भी सकती है और नही भी। भविष्य एक छलावा है, एक सूत्र है हमारी आशाओं का और उतना ही अनिश्चित।

८५४) प्रकृति स्थिर रहती है परिस्थितियां बदलती है। मूल मन:स्थिति है, यदि सुसंस्कारिता है तो बाहर की मलिनता सामायिक है। प्रकृति निश्चित रूप से प्रबल है और उसकी श्रेष्ठता उभर कर सामने आती है।

८५५) जिस इन्सान ने सत्य की रक्षा, न्याय का समर्थन, दुखी लोगों का साथ देकर उन्हे न्याय दिलाया, आततायियों के लिये विनाश और आसुरी शक्तियों के दमन के लिये अस्त्र उठा लिये है तो उसकी कीर्ति पताका विश्व में फहरेगी और विजय हासिल होगी। उसके मानस का मांगल्य अनन्त काल तक मानव मन का अन्धेरा दूर करता रहेगा।

८५६) मनुष्य धन के नशे मे उन्मत्त होकर बडे लोगों का अनादर करने लगता है। सम्पत्ति का धुंआ आखों मे जाते ही अन्य सब लोग फालतू नजर आने लगते है, लेकिन वक्त के बदलने की फटकार के साथ ही ऐसे लोग धराशायी भी हो जाते है।

८५७) जब हाथी आपस मे लडते है तो भुगतान घास को करना पडता है।

८५८) एक शरीफ इन्सान उस वक्त बेकाबू होता है जब भूखा हो और एक बुरा आदमी उस वक्त बेकाबू होता है जब पेट भरा हो और उसको किसी की जरूरत न हो।

८५९) जब किसी का सितारा चमकता है तो दूसरों की खूबियां भी उससे जोड दी जाती है और जब बुरा वक्त आता है तो उससे उसकी अपनी जाती खूबियों को भी झुठला दिया जाता है।

८६०) प्रत्येक प्रभात को बीती हुई संध्या से अधिक उत्तम बनाओ, आने वाले कल को बीते कल से समृद्ध बनाओ मनुष्य का मान सेवा और सद्गुणों मे निवास करता है न कि संपत्ति और वैभव के अन्य प्रदर्शन मे।

८६१) धर्म से ही राज्य प्राप्त करें और धर्म से ही उसकी रक्षा करें, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को न तो राजा छोड़ता है और न ही वह राजा को छोड़ती है।

८६२) सन्त साधुओं का दर्शन बडा पवित्र होता है, क्योकि साधु तीर्थ रूप होते है। तीर्थ तो काल विशेष पर फल देता है पर साधु समागम का फल तो तुरन्त मिल जाता है।

८६३) नैतिकता अपनी पैरवी खुद करती है। नैतिकता के लिए क्षमा मांगने की जरूरत नहीं पड़ती।

८६४) जब प्रगति होती है तब परिवर्तन स्वाभाविक है। यदि आप परिवर्तन से डरते हैं तो उन्नति कैसे हो सकती है।

८६५) जब तुममें हर्ष की लहरें उठें, तो अपने हृदय की तह में देखो, तुम्हें ज्ञात होगा कि जो तुम्हें हर्ष प्रदान कर रहा है, वह वही है, जिसने पहले तुम्हें शोक प्रदान किया था।

८६६) असत्यता पर आधारित सम्बन्ध रेत की नींव पर बने भवन के समान हैं। अगर हम सत्य से छिपते हैं तो इसका अर्थ है कि हम अवश्य ही असत्य का संग कर रहे हैं।

८६७) अगर आपको देखना ही है तो हर एक की विशेषताएं देखिए। अगर आपको कुछ छोड़ना ही है तो अपनी कमजोरियाँ छोड़िये।

८६८) ये सुख-दुख सब प्रारब्ध के कारण मिलते हैं। इनका फल तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को ही नहीं, अपितु मानव रूप में अवतार लेने वाले भगवान को भी भोगना पड़ता है। अत: खुशी-खुशी भोगने में ही कल्याण है।

८६९) हमारा दैनिक जीवन बड़ा विचित्र-सा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम प्रकाश में रहते हुए भी अंधेरों में भटक रहे हैं। इसका कारण केवल हमारी अज्ञानता है। ज्ञान ही जीवन का पथ प्रदर्शक है, ज्ञान ही प्रकाश है। ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है।

८७०) इज्जतदार वोही है जिसका चरित्र और आचरण ऊंचा हो। विश्वास और प्रेम करने लायक भी वो ही होता है और वो ही लोगों के दिलों पर राज करता है।

८७१) किसी को समझाने के लिये कडी दृष्टि का प्रयोग करना ठीक है परन्तु किसी पर हाथ उठाना आपकी अपनी कमजोरी को दर्शाता है। मन मे भय का अर्थ है स्वयं के लिये व दूसरों के लिये भी एक खतरा।

८७२) यदि कही पर भयंकर अकाल पड जाये तो ऐसे अवसर पर किसी बदमाश से मित्रता करने मे भी लाभ ही है क्योकि बदमाश अपनी ताकत के बल पर कही न कही से खाने का सामान जुटा लायेगा और वह मित्र के साथ मिलबांट कर खायेगा।

८७३) भविष्य मे क्या होगा इसकी चिन्ता मे जो सर्वदा रहता है उससे कोई कार्य नही हो सकता। अत: जिस बात को आप समझते हो कि वह सत्य है उसे तुरन्त अभी कर डालो। भविष्य मे क्या होगा और काय नही होगा, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नही है।

८७४) शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्निहित क्षमताओं को पूर्ण विकसित करना है। सभ्यता के विकास के साथ साथ शिक्षा व्यक्ति को अपने समाज के साथ जीना भी सीखाती है।

८७५) विकास जहां प्रकृति की प्रेरणा है वहीं उसकी कलाओं और क्षमताओं का योग्यता मे परिवर्तन समाज की देन है।

८७६) आदमी सही मायने में उसी दिन मर जाता है जिस दिन उसकी सारी उम्मीदें टूटे जाती है, सब सपने बिखर जाते है, उसका विश्वास टूट चुका होता है, वह मरने से पहले ही मर जाता है।

८७७) लक्ष्मी निन्दनीय नहीं है लक्ष्मी वन्दनीय है। लक्ष्मी में जो हमारी आसक्ति है वह निन्दनीय है। लक्ष्मी का भगवद् कार्य में व्यय करना लक्ष्मी जी का भगवान के साथ मंगल विवाह है। जो तिजौरी मे लक्ष्मी को बन्द करके रखता है वहां पर लक्ष्मी अधिक देर टिकती नहीं, भाग जाती है।

८७८) प्रतिज्ञा के साथ भीष्म का नाम जुडा हुआ है और प्रयत्न के साथ भागीरथ का नाम जुडा हुआ है। इसलिये भगीरथ प्रयास और भीष्म प्रतिज्ञा कहते है।

८७९) शान्ति के लिये दुनिया को जीतने की जरूरत नही है। अपने मन को जीतने की जरूरत है। साधन सुख देता है शान्ति नही। शान्ति साधना से आती है। जब तक भाव का अभाव है तब तक अशान्ति है। जहां शान्ति है वही सुख है और जहां अशान्ति है वहां दु:ख है।

८८०) व्यवस्था उसका नाम है जो जीवन की समस्याओं का समाधान करे। सर्जन में मोह मत करो। पालन में अहंकार मत करो। लय में शोक मत करो। फिर नित्य आनन्द, नित्य सुख, नित्य प्रसन्नता मिलेगी।

८८१) सम्पत्ति पाने के लिये यदि संस्कार खोया तो घाटे का सौदा है। संस्कार ही सम्पत्ति है। अति सम्पत्ति भी विपत्ति का दूसरा

नाम है। अनीति और अनाचार से कमाये हुये धन में कलि का वास होता है जो विनाशक है।

८८२) धर्म और विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं है। इसलिये जो सच्चा वैज्ञानिक होता है वह आस्तिक होता है। जो सच्चा आस्तिक होता है वह तो विज्ञान को मानता ही है।

८८३) सदाव्रत का कण, साधु सन्तों का क्षण बडा कीमती होता है। उसका कभी दुरुपयोग न करे। क्षण और कण को जो बर्बाद करता है वह कभी आबाद नही होता है।

८८४) हम क्या करते है क्या पढते है ? उससे विचार बनते है। जैसे विचार बनते है वैसी क्रिया या कर्म बनते है। जैसी क्रिया और कर्म बनते है वैसा ही हमारा जीवन बनता है।

८८५) प्रश्न जिज्ञासा पूर्ण होना चाहिये। जिज्ञासा के गर्भ मे ज्ञान पलता है।

८८६) अगर कोई व्यक्ति अपनी क्रोध की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में असमर्थ है, तो उसे नियन्त्रण न रख सकने वाले ऐसे दूसरे लोगों की आलोचना करने का क्या अधिकार है ?

८८७) शिक्षा जीवन में सौंदर्य प्रधान करती है। शिक्षित व्यक्ति की माँग सदैव समाज को रहती हैं। शिक्षा एक प्रकार की सामर्थ्य है परंतु शिक्षा के साथ दीक्षा अत्यंत आवश्यक है। अशिक्षित व्यक्ति से समाज को उतनी क्षति नही होती, जितनी दीक्षा रहित शिक्षित से होती है। एक दीक्षित व्यक्ति ही शिक्षा का सदुपयोग कर सकता है।

८८८) प्रभु के मंगलमय विधान से हमे सेवा की सामर्थ्य और उदारता की परिस्थिति मिली है। आज जितनी चेतना, सामर्थ्य और भावना हमारे पास है, यदि आगे नही बढे तो मिला हुआ अवसर हाथ से निकल जाएगा और हम पीछे ढकेल दिए जाएंगे। इसलिए जैसी परिस्थिति हो, उसी के अनुसार आगे बढे, वही से रास्ता मिल जाएगा। बस शर्त यही है आगे बढें।

८८९) संयोग निश्चित नहीं है, वियोग निश्चित है। जन्म निश्चित नही है मृत्यु निश्चित है। उत्पत्ति निश्चित नही है, विनाश निश्चित है।

८९०) यदि अनुकूलता का सुख न प्रतीत हो, तो प्रतिकूलता का दु:ख नहीं हो सकता। उस सुख का त्याग कर दो जो किसी के लिए दु:ख हो।

८९१) किसी भी मंजिल पर पहुंचने से पहले रास्ता तय करना होता है। कुछ भी हासिल करने के लिये मेहनत करना अत्यन्त आवश्यक होता है।

८९२) बीच राह मे खडा होना खतरनाक है, सही नही है क्योकि कोई भी कही से टक्कर मार सकता है, ऐसे में दुर्घटना का होना सम्भव है।

८९३) अपने कर्तव्य पथ का निश्चय न कर सकने वाले व्यक्ति को न तो घर मे सुख मिलता है और न ही वन मे। घर उसे आसक्ति के कारण काटता है और वन परिवार को छोडने और अकेलेपन की पीडा से व्यथित करता है। इसलिये सच्चा सुख न गृहस्थ मे है और न ही परिवार के त्याग मे, अपितु सच्चा सुख तो कर्तव्य पालन मे है।

८९४) बच्चे संसार के बेशकीमती तोहफे और आने वाले कल की उम्मीदे है। बच्चे से मन की निर्मलता सीखिये। बच्चे पवित्र आत्माये होती है। वे बडों को उनके असली रूप के दर्शन करवा सकते है।

८९५) हमारी सोच से हमारा स्वभाव बनता है। स्वभाव के अनुसार आदत बनती है। आदत के अनुसार व्यक्तित्व बनता है, और व्यक्तित्व के अनुसार भवितव्य बनता है इसलिये हमेशा स्वस्थ विचार आने चाहिये। दुर्बल, असमर्थ, विचारों को हटाकर अच्छे विचार प्रयत्नपूर्वक अपनाने चाहिये।

८९६) प्रारब्ध संचित कर्मों का वह हिस्सा है जो प्राणी को एक जन्म को भोगने के लिये समय प्रदान करता है। प्रारब्ध के अनुसार ही मनुष्य का जन्म किसी विशेष समय परिवार और स्थान पर होता है।

८९७) अपने कल्याण के लिये किसी नयी परिस्थिति खोजने की आवश्यकता नही है। प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग से ही कल्याण सम्भव है।

८९८) संसार मे मनुष्य जन्म दुर्लभ है और मनुष्य जन्म पाकर जिसने शरीर का दुरुपयोग किया वह पशु समान है। जिनके पास धन है, अच्छे साधन है उनका दूसरों की सेवा के लिये उपयोग किया जाय तब तो वे शुद्ध और पवित्र है अन्यथा वे शैतान के औजार है।

८९९) निर्दोष और सरल व्यक्ति सत्य का पैगाम जल्दी सुन लेता है लेकिन अपने को चतुर मानने वाला व्यक्ति यह पैगाम जल्दी से

सुन नही पाता है।

९००) दुनिया भर के गमों के संग जीना किसी के वश की बात नहीं। खुद इसलिए जी पा रहे हैं कि रात गुजरने के साथ ही पुराने दिन को भूल जाते है। हर दिन नया दिन, हर रात नई रात।

९०१) समुद्र के सामने जो सिर उठाकर खडा रहता है उसको समुद्र की लहरें उठाकर पटक देती है लेकिन जो सिर झुकाकर सह लेता है उसको किनारे ला देती है।

९०२) भय मनुष्य जीनव का कलंक है। ऐसा कोई गुण नही जो परम निर्भयता से पैदा न होता हो और ऐसा कोई दुर्गुण नही जो भय से पैदा न होता हो।

९०३) जो भाग्य में होगा वही मिलेगा इस प्रकार जो कहता है वह निरा मूर्ख है। पुरुषार्थ का ही नाम भाग्य है। भाग्य शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ शब्द है। मनुष्य पुरुषार्थ के लिये है।

९०४) अपने मन को दृढ़ बना लिया तो तुम पूर्ण रूप से मजबूत बन जाओगे। हिम्मत, दृढ़ संकल्प और प्रबल पुरुषार्थ से ऐसा कोई ध्येय नही है जो सिद्ध न हो सके।

९०५) जब तुम अपनी सहायता करते हो तो ईश्वर भी तुम्हारी सहायता करता ही है। फिर दैव (भाग्य) तुम्हारी सेवा करने के लिये स्वयं बाध्य हो जाता है।

९०६) साधना की राह पर हजारों विघ्न होंगे, लाखों काटें होंगे। उन सब पर निर्भयतापूर्वक पैर रखोगे तो वे ही कांटे फूल बन जायेंगे।

९०७) जीवन मे सत्य हल्का होता है और झूठ भारी। यह दुनिया एक व्यायामशाला है जहां हम अपने आपको बलवान बनाने के लिये आते है। इसलिये हमेशा अपनी और देखना, दूसरों की और नही। विनम्र बन कर जीना।

९०८) छल, कपट, जुआ और झूठ से अर्जित किया हुआ धन, सम्पत्ति अर्थ, ज्ञान और पद जीवन के कठिन समय में साथ छोड देते है।

९०९) शुद्ध चरित्र ही मनुष्य का परम धन है। चोरी करके क्या आज तक कोई धनी हुआ है ? दान करके क्या कोई आज तक कंगाल बन गया ? ईश्वर सतपथ के पथिक की ही सहायता करते रहो। तुम सत्य मे स्थित रहो और चरित्रवान बनो यही जीवन लाभ का स्वर्णिम अवसर है।

९१०) मानवता बहुत बडा अन्दाज है। व्यक्ति एक परिवार में रहता है और व्यवहार करता है। ऐसी स्थिति मे उसका कर्तव्य हो जाता है कि न तो स्वयं वह कोई ऐसा काम करे, न दूसरों को ही करने दे, जिससे घर, परिवार, सम्पत्ति और स्वाभिमान को ठेस लगे। उसे सबसे मिल कर इस प्रकार प्रयत्न करे कि घर, परिवार समृद्ध शक्तिशाली और समुन्नत हो। इसके लिये अगर कोई विरोध हो और उस विरोध के लिये जो भी कष्ट सहना पडे, उसके लिये भी सदा तत्पर रहना चाहिये।

९११) अनुशासन चरित्र मन्दिर की ईंट है। सच्चरित्रता का दूसरा मूल तत्व विनम्रता है। विनम्रता एक ऐसी निधि है जिसके आधार पर सफलता के शुभ्र मोती खरीदे जा सकते है, जिसके सहारे व्यवहार के कठोर से कठोर पत्थरों को मोम बनाया जा सकता है। राह की अगणित बाधाओं को झेला जा सकता है। जिसके सहारे विरोध के सागर, नाले नदियां पार की जा सकती है। नम्रता चरित्र का भूषण है। मानव के शील की पहचान है। नम्रता के बिना कठोरता वयस्त हो जाती है और तनाव की बुरी स्थिति मे आकर मनुष्य टूट जाता है।

९१२) मनुष्य को अर्थाजन, व्यापार आदि सत्कर्मों के द्वारा करना चाहिये, न कि चरित्र नाशक दुर्व्यसनों द्वारा। मनुष्य को दूसरों के द्रव्य की वांछा नही करनी चाहिये।

९१३) मनुष्य का स्थान सृष्टि मे सबसे ऊंचा है। पृथ्वी पर उसका उत्कृष्ट पद है। मनुष्य सृष्टिकर्ता परमेश्वर के अत्यन्त समीप है। अत: हमें मनुष्यता का गौरव बनाये रखना चाहिये और मनुष्यता का सम्मान करना चाहिये।

९१४) चरित्र की उदारता में वचन पालन एक महान गुण है। जो व्यक्ति अपने वचन का पालन नही करता है वह चरित्रशील नही बन सकता। वचन और कर्म मे एक रूपता होनी चाहिये।

९१५) दूसरों के हाथ पकडकर उनके साथ नही चले तो कोई बात नहीं लेकिन उन्हे धक्के मारने का हमारा अधिकार नहीं है। अगर बत्ती जलती है तो दूसरों को सुगन्ध देती है, सूरज स्वयं जलता है और दूसरों को प्रकाश देता है उसी प्रकार हम दूसरों के लिये कुछ करे।

यदि कुछ न करे तो कोई बात नहीं पर किसी का जीवन तोडने का हमारा कोई अधिकार नही है।

९१६) जो अपने माता पिता को नही मानते, या उनकी सेवा नही करते और देवी देवताओं को नही मानते तथा पूज्य जनों से उल्टे अपनी सेवा करवाते है, जिनके ऐसे आचरण है वे प्राणी निशाचर के समान ही है।

९१७) अब तक जो भूल हो गई सो हो गई, उसके लिये अब रोने से कोई लाभ नही है। जीवन के जितने दिन बाकी है, उनको दृढ़ संकल्प करके भगवान के भजन मे लगाकर जीवन सफल करो। ऐसा अवसर बार बार नही मिलेगा।

९१८) जीवन क्षण भंगुर है। अभी है, क्षण भर बाद रहेगा या नही, पता नही फिर किस मोह मे पडकर इस छोटे से जीवन के लिये इतनी गहरी नींव खोद रहे हो ?

९१९) कितने बडे बडे धनी मानी, राजा-महाराजा, ऐश्वर्यवान और कीर्तिमान पुरुष चले गये लेकिन एक भी यहां की वस्तु उनके साथ नही गई फिर क्यों इन नश्वर वस्तुओं के संग्रह की चिन्ता मे अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो ?

९२०) जिस तरह पानी और उसका बुलबला एक ही चीज है, उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा भी एक ही चीज है बस फर्क सिर्फ इतना है कि एक परिमित है तो दूसरा अनन्त है; एक परतन्त्र है दूसरा स्वतन्त्र।

९२१) तुम्हारे पिता, पितामह का घर मे कितना रोब दाब था। घर के सब लोग उनसे संकोच करते थे, डरते थे, उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई चूं-चपड़ भी नही करता था लेकिन आज कहां गया उनका प्रभुत्व। उनकी याद भी कोई नही करता। यही हाल और दशा तुम्हारी होगी फिर क्यो इस घर के पीछे पागल हो रहे हो ?

९२२) बालक का पहला विद्यालय उसका परिवार होता है। प्रारम्भिक जीवन में उसपर जो संस्कार पड जाते है उन्ही पर उसका जीवन भवन निर्मित होता है। मनुष्य का अधिक समय परिवार या घर मे व्यतीत होता है। यदि परिवार या घर मे शान्ति न हो तो कोई भी सुखी नही रह सकता। अत: परिवार मे जीवन व्यतीत करने की कुशलता मानव के लिये आवश्यक है।

९२३) हम क्या थे और क्या हो गये ? अब किस महापतन की और अग्रसर हो रहे है ? प्राय: देखा गया है कि संयुक्त परिवार मे बडे भाई के न रहने पर उसकी सन्तान से उसके चाचा वगैरह का व्यवहार अनुचित, असमुचित प्रकार का होता है। उसके परिणाम स्वरूप परिवार के व्यवहार छल, कपट, विश्वासघाआतें से परिपूर्ण एवं भयंकर होते जा रहे है। हमारे प्राचीन पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक एवं संस्कृति के गौरवमय महत्व का जो अभिमान रहा, वह सब आज के चरित्र सम्बन्धी भ्रष्टाचारों के कारण नष्ट हो गया है। हम महापतन की चरम सीमा की ओर जा रहे है। हमे अपने चरित्र निर्माताओं की व्यवस्थाओं को सुधारना चाहिये अन्यथा हमारा, हमारे बुजुर्गों का प्राचीन गौरव नष्ट हो जायेगा।

९२४) थोडे से प्रयत्नों से गयी प्रतिष्ठा लौट सकती है। बूंद से गई हुई प्रतिष्ठा तालाबों से नहीं निकाली जाती है।

९२५) भगवान न तो लकडी की मूर्ति में है और न ही पत्थर की मूर्ति में और न ही मिट्टी के मूर्ति में। भगवान तो भक्त की पवित्र भावना में विराजमान रहते है। श्रद्धा और विश्वास का नाम भगवान है।

९२६) अल्लाह की नाफरमानी से डरते रहना और रोजी की तलाश मे गलत तरीका कभी भी मत इख्तियार करना। हलाल रोजी हासिल करो और हराम रोजी के करीब न जाओ।

९२७) जो व्यक्ति ज्ञानरहित होकर भी उदंड है, दरिद्र रहकर भी बडी बडी अभिलाषाये रखते है और बिना कर्म किये ही ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है, वह तो निरा मूर्ख है।

९२८) गुजरा हुआ पल और सांस वापिस नहीं मिलते। बूंद बूंद से सागर बनता है वैसे ही पल पल के कर्मों से जीवन एक कर्मसागर बनता है। सभी पलों और प्राणों को जोडकर महाशक्ति बन सकती है।

९२९) अभाव, संघर्ष, दुष्चिंता और नैराश्य के प्रभाव से शायद ही कोई बच पाता हो, क्योंकि हर तरह की परिस्थिति जीवनचक्र का एक अभिन्न हिस्सा है, लेकिन जिन लोगों ने इन पर विजय प्राप्त करके अपने स्वभाव को आनंद प्रिय बना लिया और उपलब्ध साधनों का रचनात्मक उपयोग करना सीख लिया, उन्हें संसाधनों की कमी का रोना कभी नहीं रोना पड़ा।

९३०) प्रकृति के नियम अटल हैं। सृष्टि की श्रृंखला अनादि है। कर्मबन्धन सनातन है। द्वन्द्वों का प्रभाव सदा है। सृष्टि का स्वरूप

ही जोडा है। अद्वैत में सृष्टि कहाँ ?

९३१) ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त सभी प्रारब्ध के वश में हैं, सभी काल के वश होकर क्रियायें कर रहे हैं। सभी देवेच्छा के अधीन होकर व्यापार में प्रवृत्त हो रहे हैं।

९३२) भाग्य जन्म के साथ ही उत्पन्न होता है। भाग्य जिसकी रक्षा करता है वह अरक्षित भी रक्षित है, परन्तु भाग्य का मारा अच्छी तरह रक्षित होने पर भी विनष्ट हो जाता है।

९३३) जो हम करना चाहते हैं, वह नहीं होता। जिसकी हमें स्वप्न में भी सम्भावना नहीं, जिसे हम चाहते नहीं वह अकस्मात ही हो जाता है। अनिच्छा होने पर भी हमें भोगना पडता है। इसे भाग्य प्रारब्ध, दैवगति न कहें तो और क्या कहें। दैव की गति कौन टाल सकता है? विधाता के वाक्यों को कौन अन्यथा कर सकता है ? होनहार को कौन मेंट सकता है ?

९३४) भाग्य ही बलवान है। मनुष्य का सोचा सब कुछ हो जाता तो संसार में आज कोई भी निर्धन, रोगी, दुखी और वृद्ध दिखाई न देता। क्योंकि जान-बूझकर निर्धनता, रोग, दुख और वृद्धता को कौन चाहता है ? न चाहने पर भी जैसे ये आ ही जाती हैं।

९३५) जहाँ चोट लगी है, फिर-फिर वहीं चोट लगा करती है। जब तक घर में खूब अन्न भरा रहता है, तब तक भूख नहीं लगती। अन्न क्षय हो जाने पर बार-बार भूख लगती है। विपत्ति के ऊपर विपत्ति आती है जब दैव प्रतिकूल होता है तब सोना पकडने पर मिट्टी हो जाता है।

९३६) भाग्य को कैसे मिटाया जा सकता है। दैवी विपत्ति पुरुषार्थ से नहीं हटाई जा सकती उससे तो भोगने से ही छुटकारा होता है। हम करना चाहते है कुछ, हो जाता है कुछ। इसी का नाम भाग्य चक्र है। भाग्य चक्र पासे के समान है। पासे हमारे हाथ से छूटते हैं किन्तु दाँव हम नहीं चाहते वह आ जाते हैं। जिन्हें चाहते हैं, वे नही आते।

९३७) संसार में ईर्ष्या क्या नहीं कराती ? स्वार्थ मनुष्य के विवेक को कितना खो देता है। पक्षपात के वशीभूत होकर लोग कौन-सा अन्याय नहीं करते ? यशस्वी लोग अपना सर्वस्व निछावर करके कैसी अक्षय कीर्ति का लाभ करते हैं। ये बातें संसार में सदा से चली आई हैं सदा रहेगी। इसी का नाम तो माया है।

९३८) आशा ही दु:ख का कारण है। आशा कभी शान्त नहीं होती। जिन्होंने आशा का त्याग कर दिया है, उनके मन से दीनता चली जाती है। वे किसी के सामने गिडगिडाते नहीं और उन्हें किसी को प्रसन्न करने के लिये असत्य की शरण लेनी पडती है। दीनता, चापलूसी, भय, क्षुद्रता ये सब तो आशा में, याचना में, लोभ में ही है।

९३९) जय पराजय, संयोग-वियोग, सुख-दुख, मान-अपमान, ये रथ के पहिये की तरह सदा ऊपर नीचे आते जाते रहते हैं। सदा न कोई दुखी रहता है न सर्वदा सुखी। आत्मा को छोडकर सभी के साथ संयोग-वियोग का भय लगा हुआ है।

९४०) जब कोई बडा पुरुष किसी गुणी के पीछे पड जाता है और अकारण ही उसकी निन्दा करने लगता है, तब गुणवान पुरुष को बहुत ही बुरा लगता है। खुलकर उनका सामना भी नही कर सकते, सदाचार और मर्यादा का भी ध्यान रखना होता है। बडे तो बडे ही हैं, उनके हजार खून माफ हैं। वे जो कहें ठीक ही है। छोटों का अधिकार ही नहीं कि उनका उत्तर दें।

९४१) संसार में छोटा होना सबसे बडा पाप है। अपने से छोटा कितना भी बुद्धिमान गुणी क्यों न हो, किन्तु इन बूढ़ों की दृष्टि में वह चढ़ता ही नहीं। हर बात में उनकी एक ही टेक रहती है, हमने तुमसे अधिक संसार देखा है। यह ठीक है। अनुभव वृद्धों का ही काम आता है। चढ़ती-अवस्था में जोश अधिक होता है और परिणाम बिना सोचे ही उसे कर डालने की शीघ्रता होती है। वृद्ध लोग सब आगे-पीछे की सोचते हैं। इसी से सदा वृद्ध और युवकों में खटपट बनी रहती हैं।

९४२) संसार में परिस्थितियाँ मनुष्य को कैसे-कैसे बन्धनों में जकड़ देती है। जिनसे हम मिलना चाहते हैं, परिस्थिति से विवश होकर हम उनसे मिल नहीं सकते और जिनसे मिलना नहीं चाहते, उनसे स्वार्थवश हर समय मिलना पडता है।

९४३) सत्यप्रतिज्ञ मनुष्य अपने वाक्य का सदा स्मरण रखते हैं। वीर पुरुष विपत्ति आने पर भी धर्म के पक्ष से विचलित नहीं होते। जय-पराजय तो समय में होती है, प्रशंसा उसी की होती है जो समर में भी अपने धर्म की रक्षा करता है, अपनी प्रतिज्ञा का पूर्णरीत्या पालन करता है।

९४४) सिंह को बहुमत की आवश्यकता नहीं। उसे कोई राजसिंहासन पर बिठाकर राजतिलक नहीं करता। वह तो अपने पराक्रम से

मृगराज और अरण्यपति बन जाता है।

९४५) जो जिलाने वाला है, वही मार सकता है। जो जिलाने की शक्ति नहीं रखता, उसे मारने की सामर्थ्य नहीं। अर्जुन तो निमित्त मात्र थे। मारने वाले तो वे ही कालस्वरूप श्रीहरि हैं।

९४६) प्रोत्साहन से मनुष्य को बड़ी शक्ति प्राप्त होती है। प्रोत्साहन ही कार्य करने का मन्त्र है, विजय का जादू है। इसलिये जनता का और बड़े लोगों का प्रोत्साहन प्रत्येक कार्य में अनिवार्य समझा जाता है।

९४७) हजार चूहे खाकर बिल्ली भगतिनि बनी। जो स्वयं अधर्म का आचरण करता है, उसे दूसरों को धर्म का उपदेश देना शोभा नहीं देता।

९४८) वस्तुओं में गुण दोष नहीं होते। दोष-दृष्टि ही दुख का कारण है और गुण-दृष्टि ही सुख की जननी है। काँच के भ्रम में हीरे को गँवा दिया। दृष्टि में ही सृष्टि है। सृष्टि बदलने से सब कुछ बदल जाता है।

९४९) आज समाज, राष्ट्र व विश्व की सबसे जटिल समस्याओं का एकमात्र हल है चरित्र। चरित्र बिगड़ जाने पर कोई प्रतिष्ठा बाकी नहीं रहती।

९५०) अंधेरा केवल प्रतीत होता है, है नहीं। प्रकाश के न होने का नाम अंधेरा है। अंधेरे की अपनी कोई सत्ता नहीं है, अपना कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं। तो तुम अंधेरे से मत लड़ने लगना।

९५१) मकान बनाते हो, तो तुम दीवाल को मकान कहते हो ? तो गलती है। दीवाल के भीतर जो खाली जगह है, वही मकान है। रहते तो उसमें हो, दीवाल में थोड़े ही रहते हो। दीवाल तो एक सीमा है। असली में रहते, तो हम आकाश में ही हैं। दीवाल तो आज है, कल गिर जाएगी ? आकाश सदा है।

९५२) हम सब व्यापारी बन गए हैं। हम प्राणों का व्यापार करते हैं, गुणों का व्यापार करते हैं, धर्म का व्यापार करते हैं। आह, हम प्रेम का भी व्यापार करते हैं।

९५३) तृष्णा का कहीं ओर-छोर नहीं है। उसका पेट भरना कठिन होता है। वह सैकड़ों दोषों को ढोए फिरती है। उसके द्वारा बहुत से अधर्म होते हैं। अत: तृष्णा का परित्याग कर दें।

९५४) संस्कारों को अगली पीढ़ी में संक्रमित करना और मनुष्य की क्रियाशक्ति की दिशा निश्चित करना आज की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है।

९५५) अत्यन्त समृद्ध और विशाल वह राष्ट्र भी लगता है किसी ज्वालामुखी पर बैठा हो और इसका मूल कारण अच्छे संस्कारों की कमी ही है।

९५६) बच्चों को मांगलिक भावना जागृत करनी है, आत्मविश्वास निर्माण करना है, अनेक प्रतियोगिताओं में आगे बढ़ाना है तो उनको परिवार से प्रेम और संस्कार की आवश्यकता है।

९५७) संस्कार कार्य परिवारों को स्थिर करने का कार्य है। हमारी भारतीय विचार-धारा में परिवार एक सबसे अच्छी, श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण इकाई है। अगर परिवार सुखी और समाधानी है तो समाज और राष्ट्र सुखी होगा, क्योंकि इन्हीं परिवारों को मिलाकर राष्ट्र बनता है।

९५८) आज संसार में लोगों की कमी नहीं है लेकिन कुछ अच्छा कार्य करने वालों की कमी है। संख्या तो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। लेकिन गुणवत्ता नहीं बढ़ती है।

९५९) लोगों का समुद्र हमारे चारों और फैला हुआ है। लेकिन कोई भी अच्छे कार्य के लिऐ कार्यकर्ता उपलब्ध नहीं होते। पात्र मिलता नहीं और इस पात्र के निर्माण की विधि का नाम ही संस्कार कार्य है। पात्र का अर्थ बरतन भी है। मिट्टी में पानी रखकर हम पी नहीं सकते, लेकिन मिट्टी का यदि कुल्हड़ बनाया जाए तो उसमें रखा हुआ जल हम पी सकते हैं। उसे ही पात्र कहते हैं। हमारे घर और समाज में जन्मे ये बच्चे मिट्टी के जैसे हैं और उनको अगर समाज और राष्ट्र के लिए पात्र बनाना है तो हमें भी एक विधि की आवश्यकता है, और उसी प्रक्रिया का नाम संस्कार प्रक्रिया है।

९६०) लोगों को दिया हुआ प्रेम जब अनंत गुना होकर वापस आता है तब उससे जो समाधान होता है, उस समाधान की तुलना

संसार के किसी भी समाधान के साथ नहीं की जा सकती है।

९६१) हमारे जीवन में बड़प्पन की भी एक वरीयता, एक क्रम होना चाहिए। एक अत्यन्त श्रेष्ठ महापुरुष ने कहा है कि पैसा महत्वपूर्ण है, लेकिन पदार्थ उससे भी महत्वपूर्ण है। पदार्थ से भी अधिक व्यक्ति को महत्त्व दो और व्यक्ति से भी संस्था अधिक महत्त्वपूर्ण है। संस्था से भी सिद्धान्त अधिक महत्त्वपूर्ण है।

९६२) बुद्धि को विशुद्ध रखकर निर्णय कीजिएगा। वे निर्णय व्यक्ति से परिवार बड़ा, परिवार से समाज बड़ा, समाज से राष्ट्र बड़ा, राष्ट्र से धर्म बड़ा- इस बात को ध्यान में रखकर लीजिएगा। और यह निर्णय लेने के लिए, बुद्धि को शुद्ध करना है। तो उसे शुद्ध करने के लिए राग और द्वेष का त्याग कीजिएगा।

९६३) केवल व्यक्तिगत रूप में बड़े हो जाना जीवन को सुन्दर नहीं बनाता। जीवन में वह बड़ा है जो दूसरों को आगें लाता है। बड़ों का बडप्पन छोटों को आगे बढ़ाने में ही है।

९६४) यदि आप अपने कर्तव्य पर डटें रहते है और अपने मन का सन्तुलन कायम रखते हैं तो आप एक बात जीवन में देखेंगे कि आप जहाँ भी जाएंगे यश के द्वार आपके लिए खुलते रहेंगे क्योंकि यह बहुत बड़ा विज्ञान है। कर्तव्य के लिए जब हम निश्चय के साथ खड़े हो जाते हैं, तो बाधाएँ अपने-आप दूर हो जाती हैं।

९६५) जब तक राष्ट्रभक्त जीवन में अपने मातृभूमि के लिए इस प्रकार की सम्पूर्ण समर्पण की भावना निर्माण नहीं होती तब तक जीवन में उज्ज्वलता नहीं आती। जीवन को महान बनाना है तो जीवन को किसी महान लक्ष्य के साथ जोड़ दीजिएगा।

९६६) आदमी छोटा सा था लेकिन उसके भीतर की ज्वाला बहुत बड़ी थी। और उस ज्वाला ने उसको एक महान ध्येय के साथ एकाकार कर दिया। एक मुठ्ठी भर हड्डियों का वह आदमी पूरे संसार का एक अजेय योद्धा बन गया। शायद हम गांधीजी नहीं बन सकेंगे, हम विवेकानन्द नहीं बन सकेंगे, लेकिन हम कुछ तो बन सकते हैं।

९६७) पूरा संसार परमात्मा का आविष्कार है। पूरा संसार ही एक परिवार है। पूरा संसार एक है। इसलिए पूरे संसार की सेवा करना अभिप्रेत है।

९६८) जो दुनिया का गुरु बनता है, वह दुनिया का गुलाम हो जाता है और जो अपने-आपका गुरु बनता है, वह दुनिया का गुरु हो जाता है।

९६९) चमत्कारों को हम स्वीकार न करें। इस प्रकार के चमत्कार विज्ञान के साथ मेल नहीं खाते। संस्कारवर्ग में कभी एकाध बार हम किसी सत्पुरुष की बात का समर्थन करेंगे तो अगली बार हमे किसी पाखण्डी की बात का भी समर्थन करना पड़ेगा।

९७०) हम लोगों को श्रद्धा को तो बढ़ाना है ही लेकिन अन्धश्रद्धा का असावधानी से भी संवर्धन नहीं करना है, अन्धश्रद्धा की बाते असावधानी से भी करने से भविष्य में हम आलोचना के पात्र बन सकते हैं। संस्कारवर्गों में विषमता, अन्धश्रद्धा आदि का संगोपन तो नहीं किया जाता।

९७१) हम विज्ञान युग में जी रहे हैं इसलिए प्राचीन काल का आचार-विचार और आज का आचार-विचार इसमें कुछ तो अन्तर अवश्य होगा। पुरा संसार सिमट गया है, निकट आ गया है। ऐसी स्थिति में हम यदि सभी के सभी प्राचीन आचारों का आग्रह रखते रहेंगे तो बड़ी कठिनाई होगी।

९७२) एक ओर श्रद्धाहीनता का वातावरण निर्माण नहीं होना चाहिए दूसरी ओर अन्धश्रद्धा को भी बढ़ावा नहीं मिलना चाहिए। दोनों के बीच में से हम लोगों को चलना है। इसलिए किसी भी आचार- विचार की आलोचना करते समय बड़ी सावधानी हम लोगों को बरतनी है। क्योंकि, यह भी एक विज्ञान की दृष्टि है। आज तक इन बातों को हम लोग प्रयोगशाला में प्रमाणित न भी कर पायें हो लेकिन सम्भव है अगली पीढ़ी का विज्ञान इनकों प्रमाणित करेगा। विज्ञान तो एक प्रकट होनेवाली विचारधारा का प्रवाह है। आज के विज्ञान को इसकी जानकारी नहीं भी होगी, लेकिन हो सकता है, कल कोई वैज्ञानिक इस बात का महत्त्व सिद्ध कर दे।

९७३) जिन आचार-विचारों का पालन हमारे प्राचीन महापुरुष करते और कराते रहें, उन आचार-विचारों का समर्थन करनेवाला एकाध वैज्ञानिक जन्म भी ले सकता है। इसलिए हम लोग उनकी आलोचना करने का पाप नहीं करें।

९७४) हम विज्ञान युग में जी रहे हैं, इसलिए हम लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होना चाहिए। हम श्रद्धा का भाव बढ़ाएं। अन्धश्रद्धा एवं चमत्कारों का समर्थन भूल से भी नहीं करे।

९७५) कोई मनुष्य अपने जीवन में सफल होता है या असफल होता है ? लक्ष्य तक पहुँचता है या नहीं पहुँचता है ? इसमें कोई गलती भी नहीं है। किन्तु गलती यह है कि मानव जीवन की महत्ता को उसने समझा नहीं, जिसने अपने जीवन में कोई उदात्त संकल्प ही किया ही नहीं। भले ही उस संकल्प को साकार करने में वह सफल हो या न हो लेकिन संकल्प जागृत करना महत्त्वपूर्ण है।

९७६) कोरा कागज होना तो बड़ी अच्छी बात है, लेकिन कुसंस्कारों के कारण जिनका जीवन अन्धकारमय हो जाता है, उनका जीवन कोरा कागज नहीं अपितु काला कागज बन जाता है। और यह अन्धकार हमारे जीवन में न आयें, ऐसा लगता हो तो कार्य की दिशा यही हैं। यही कार्य आवश्यक है।

९७७) पण्डित कौन ? जो केवल अनेक ग्रन्थों को पढ़ लेता है वह पण्डित नहीं, लेकिन जो क्रियावान है, जिसने अपने ज्ञान का अनुवाद क्रिया में किया, कर्म में किया, वह वास्तव में पण्डित है।

९७८) कभी-कभी मेरे मन में खयाल आता है कि बच्चों के बिना यह संसार कितना उदास और बुजुर्गों के बिना कितना निष्ठुर हो जाएगा।

९७९) ज्ञान और विवेक के माध्यम से हमारी प्रज्ञा प्रखर होती है जो हमे शिक्षा के द्वारा प्राप्त होते है। अज्ञानता वह अंधकार है जो हमारी प्रज्ञा व विवेक को गहनता से आच्छादित किए रहता है। यह आवरण हटते ही हमारी सर्वतोमुखी प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। हम अपने अज्ञान रूपी अंधकार को दृढ़ता से हटाकर सत्य और शाश्वत जीवन को पहचाने। स्वर्णिम पथ हमारी राह देख रहा है।

९८०) अज्ञान हमे अपनों से दूर ले जाता है, कटुता पैदा करता है। जबकि ज्ञान हमे अपनों से जोड़ने मे मदद करता है। आज के समय वे वह व्यक्ति बहुत ही भाग्यशाली है जो सुख-समृद्धि मान-प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति अपनी प्रज्ञा और विवेक के बल पर संकलित करने और उसे सुरक्षित रखने मे सफल है।

९८१) शिक्षा और अशिक्षा में प्रकाश और अंधकार के समान अन्तर होता है। अपनी क्षमता की पहचान कर उसका समुचित दिशा मे उपयोग करने की सामर्थ्य विवेक से ही जागृत होता है।

९८२) स्वयं का शत्रु है अज्ञान। बुद्धि का भोजन है ज्ञान, जो हमे सत्साहित्य या सत्संगति से ही मिलता है। उन्नत विचार और उत्कृष्ट चिंतन ज्ञान और विवेक की पृष्ठभूमि निर्मित करते है।

९८३) एक सुखी और समृद्धिशाली परिवार के लिए परिवार के सभी सदस्यों का शिक्षित होना बहुत जरूरी है, अन्यथा आपस मे तालमेल बैठना कठिन हो जायेगा, जो अशांति का कारण भी हो सकता है।

९८४) अज्ञानी व्यक्ति के सोचने का दायरा संकुचित होता है। वह सोचता है कि जो कुछ मै कर रहा हूँ वही सर्वश्रेष्ठ है। अपने को ही सम्पूर्ण ज्ञाता मान लेना भी अज्ञानता है। शिक्षा या सीखने से ज्ञान का सीधा सम्बन्ध है। व्यक्ति जीवन भर सीख सकता है फिर भी वह अपने आप मे सम्पूर्ण नही हो सकता।

९८५) जब हम अपने को ज्ञान से खाली या शून्य समझेंगे तभी कुछ पा सकते है। पाठ्यपुस्तकों के आधार पर शिक्षित तो हम हो सकते है किन्तु ज्ञानी नही। ज्ञानी होने के लिए समर्पण भाव से अनुभूति ग्रहण करनी होगी। इसके लिए सुयोग्य गुरु की सहायता लेना श्रेयस्कर होगा। अधूरा ज्ञान हानिकारक हो सकता है, गुरु अपने अनुभवजन्य ज्ञान को हमारे सामने रखता है।

९८६) असल में संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ-साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं, इसलिए संस्कृति वह है जो हमारे सारे जीवन पर प्रभाव डालती है, जिसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।

९८७) जेल से बड़ा शिक्षण संस्थान और कलम से बड़ा कोई हथियार नहीं हो सकता। कुछ लोग विपत्ति के समय अपनी जान बचाने के लिए दौड़ते हैं, तो कुछ लोग दूसरों के लिए अपनी जान गंवाने दौड़ते हैं। दूसरों को खुशी देना सर्वोत्तम दान है। जेल

मुलाजिमों को चाहिए कि वे मुसीबत के समय कैदियों की मदद करें, ताकि उनमें भी दूसरों को खुशी देने की इच्छा पैदा हो सके।

९८८) यदि लोहे का काँटा चुभ जाए तो घड़ी दो घड़ी ही दु:ख होता है। वह आसानी से निकाला जा सकता है। पर व्यंग्य बाण, अशुभ वाणी का काँटा तो हृदय में एक बार चुभ जाए तो फिर कभी निकाला ही नहीं जा सकता। वह बरसों तक काटता रहता है। उससे वैरानुबंध होता है, भय पैदा होता है।

९८९) संस्कृति-कर्म का महत्व कम नहीं है। समाज की मूल्याधारित मानसिकता के निर्माण और लोगों को एक जागरूक नागरिक बनाने की दिशा में लेखकों/कलाकारों की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका सदैव रही है वे मूक रहकर समाज को संस्कार देने का कार्य करते रहते है।

९९०) योजनाये बनाकर काम करनेवाला महान व्यक्ति होता है, ऐसे लोग अपने जीवन मे बडे काम करते है लेकिन ऐसे लोग बहुत ही कम होते है।

९९१) ऋण रूपी ऊंट का बच्चा घर मे लाया जा सकता है लेकिन ब्याज की गति से वह इतना तेजी से बढ़ता है कि वह घर डूबाकर ही बाहर निकलता है। जिस पर किसी का ऋण नही हो वही सच्चा अमीर है। चुकाने की क्षमता हो तो ही ऋण लेना चहिये।

९९२) केवल धन का ही ऋण हो ऐसा नही है, किसी के उपकारों का भी कर्ज होता है। वे उपकार चुकाये बिना ऋण मुक्त नही होता है। लेनदार देनदार का शर्मिन्दा होता है जबकि देनदार लेनदार का शोषण करता है इससे मालूम होता है कर्जदारी कितनी कष्टदायी है। कर्जहीन जीवन ही वास्तविक सुखी जीवन है।

९९३) पथिक और पथिक की धैर्य कुशलता तभी जानी जाती है जब शूल पथ में बिखरे हो और नाविक की धैर्य कुशलता का परिचय तभी होता है जब धाराये प्रतिकूल हो।

९९४) कठिनाइयां मनुष्य के पुरुषार्थ को जगाने के लिये आती है और आत्म निरीक्षण और आत्म निर्माण ही सबसे बडा पुरुषार्थ है। साधना न तो परा अवलम्बन है और न ही याचना। उसे तो आत्मविष्कार का सुनिश्चित सुनियोजित आधार मात्र ही माना गया है। मानव जीवन का परम पुरुषार्थ अपनी निकृष्ट मानसिकता से त्राण पाना है। इसके लिये ऊंचा उठाना, प्रसुप्त को जगाना और जो महान है उनका अवलम्बन करना ही श्रेयस्कर पुरुषार्थ है।

९९५) डूबनेवाले से हमदर्दी करने का यह अर्थ कदापि नही है कि तुम भी उसके साथ डूब जाओ। उसे तैर कर बचाने की, बाहर निकालने की कोशिश करो।

९९६) सम्पन्न व्यक्तियों के साथ मुकाबला करने पर हर किसी को अपने अभावों का भान होता है लेकिन यदि गये गुजरों के साथ अपनी तुलना करने पर सन्तोष के पर्याप्त आधार मिल जाते है और हमारी उद्विग्नता तथा लालसा का शमन हो जाता है।

९९७) अधिकांश लोग उपरी आवरण या वेशभूषा से व्यक्ति के बारे में धारणा बना लेते है लेकिन किसी का भी मूल्यांकन बिना उसे ठीक से जाने, बिना परिचय के, किसी की वेशभूषा देखकर नही करना चाहिये।

९९८) बटवारे मे सब कुछ बंट सकता है लेकिन दिल नही बंटने चाहिये। दिल बंट जाते है तो जिन्दगी अजीर्ण हो जाती है। बंटवारे से दिलों मे दीवार जरूर खडी हो जाती है। बडे दिलवाले बंटवारा नहीं करते।

९९९) किसी भी अवस्था मे सभी घटनाये प्रकृति के नियम के अनुकूल ही घटती है, प्रकृति के सार्वभौम नियमों का उल्लंघन कही भी और कभी भी नही होता है। यह बात अलग है कि हम उन नियमों को न जानने के कारण अन्ध विश्वास मे उन्हे चमत्कार मान लेते है।

१०००) मनुष्य पैसे के पीछे पागल बनता है इसलिये वह भटकते रहता है। पैसा कमाना सरल है पर उसका सदुपयोग करना मुश्किल है। जीवन जीने के लिये पैसा होना जरूरी है लेकिन पैसा साध्य नही है, साधन है। साध्य तो जीवन की शान्ति और परमात्मा की प्राप्ति है।

१००१) मन को मर्यादा मे रखने से ही मन सुधरेगा। भरतजी के प्रेम की कथा समुद्र के समान है। चित्रकूट मे भरत मिलाप होने पर वहां के पत्थर भी पिघल गये थे।

१००२) चाय न मिलने पर जिसका सिर दर्द करने लगता है भले वह वेदान्त क्या समझेगा। जिसकी बुद्धि स्वर्ण में होती है वो तो रावण है।

१००३) जिस घर मे सायंकाल के समय क्लेश हो, स्त्री ताडना हो, वहां लक्ष्मीजी नहीं ठहरती। सायंकाल के समय सौभाग्यवती स्त्री को अपना मस्तक खुला नहीं रखना चाहिये। स्त्री का सिर सदैव ढका रहना चाहिये यही उसकी लाज है।

१००४) आगे बढ़ते समय रास्तें में तुम्हें कई लोग मिलेंगे। उन सबके साथ अच्छा बरताव करना, क्योंकि यही लोग तुम्हें लौटते समय भी मिलेंगे।

१००५) भाषा के विकास ने समस्त विचारों के विकास को मंच प्रदान किया है। आम मान्यता भी शायद यही है कि भाषा के बगैर आगे विचारों का विकास नामुमकीन है।

१००६) साकार और निराकार, ये दोनों किस प्रकार है ? जैसे जल और बर्फ। जब जल जम जाता है, तब बर्फ कहलाता है और साकार हो जाता है। और जब गलकर जल हो जाता है, तब निराकार कहलाता है।

१००७) असल में संस्कृति जीवन का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ-साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते है, इसलिए संस्कृति व है जो हमारे सारे-जीवन पर प्रभाव डालती है, जिसकी रचना एवं विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है।

१००८) यदि एक अवसर आपके हाथ से निकल गया है तो भी अपनी दृष्टि के आगे आँसुओं रूपी बादल न आने दें, अपनी दृष्टि साफ रखें ताकि अगला अवसर भी हाथ से न निकल जाये।

१००९) मनुष्य एक दुख की नदी पार करता नहीं कि दूसरी उसके सामने आ जाती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि दुख तो मनुष्य का सहयात्री है।

१०१०) कभी किसी मजबूर आदमी का मजाक मत उड़ाओ। ऐसा करने से पहले यह सोच लो कि ऐसा समय तो हम पर भी आ सकता है।

१०११) तुच्छ व्यक्ति लाभ में एकदम खुश हो जाता है और तुच्छ नुकसान के साथ ही एकदम नाराज हो जाता है। छोटी-छोटी बातों में लड़ना, छोटी छोटी बातों में आग्रहशीप बनना, छोटी-छोटी वस्तुओं के लिए महाभारत खड़ा कर देना आदि-आदि तुच्छता के ही लक्षण है।

१०१२) वृक्ष का अस्तित्व फल-फूल के आधार पर नहीं किंतु उसकी जड़ के ऊपर ही अवलंबित है। एक विराट भवन का अस्तित्व उसके बाह्य सौंदर्य के आधार पर नहीं किंतु उसकी मजबूत नींव के ऊपर ही अवलंबित है। नींव यदि कमजोर है तो मकान को धराशायी होते देर नहीं लगती है। नींव को मजबूत किए बिना ऊपर की मंजिलों का सर्जन भावी संकट को ही लाने वाला है।

१०१३) सागर गंभीरता का प्रतीक है। सागर का दूसरा नाम रत्नाकर भी है। सागर के तल भाग में अनेक कीमती रत्न रहे हुए होते है। अनेक रत्नों की खान होने पर भी वह सागर कितना गंभीर होता है। वह कभी उछलता नहीं है। अपने कीमती रत्नों को वह कभी प्रदर्शन नहीं करता है जबकि नदी तुच्छता का प्रतीक है। थोड़ा सा अधिक पानी आने के साथ ही वह उछलने लग जाती है। यहां तक कि मर्यादाओं को भी तोड़कर तट पर रहे अनेक वृक्षों को जड़-मूल से उखेड़ देती है। नदी में बाढ़ आने के साथ ही वह अनेक गांव-नगरों का विनाश कर देती है जबकि सागर में अनेक नदियां आकर मिलती हैं। उसकी गोद में अमाप जलराशि का संग्रह होने पर भी वह कभी उछलता नहीं है। नदियां अपने किनारों को भी तोड़ डालती है जबकि सागर हमेशा-हमेशा के लिए अपनी मर्यादा में बना रहता है। वह कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है।

१०१४) पीछे की लहर जैसे आगे की लहर को ढकेलती हुई आगे आती है, वैसे ही पिछला कारण अगले कारण को कार्य का रूप देता हुआ और स्वयं भी पिछले कारण का कार्य होता हुआ प्रवाहरूप से चला आता है।

१०१५) कोई यदि शास्त्र के विरुद्ध आचरण करे तो उसके विरुद्ध आन्दोलन करना लोगों का कर्तव्य ही है और इसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता।

१०१६) शास्त्राज्ञा हम मनुष्यों को पालन करनी ही चाहिए, शास्त्राज्ञा न मानें तो हमारा अध:पतन होगा; परन्तु वेद, शास्त्र और पुराण जिस के गुण गानेवाले चारण हो रहे हैं उस विश्वात्मा के लिए अथवा उसका सन्देशा लेकर आनेवाले महात्माओं के लिए भी हमारी ही तरह शास्त्र-निर्बन्ध प्रतिबन्धक हो सकते हैं, यह समझना भूल है।

१०१७) जो नीति-पथ पर चलता है, सत्य से धोई निर्मल वाणी ही जो बोलता है, जो कुछ देखता है शास्त्र-दृष्टि से ही देखता है, वेद जिसके हृदय में जागता रहता है, अपना आचार ही जिस का व्यवसाय है, निष्पक्ष-विचार जिसका मन्त्री है, जिसके कुल में चिन्ता ईश्वर की पतिव्रता हो चुकी है, ग्रह देवतादि जिसकी ऋद्धि हैं; ऐसा पुण्य जिसने जोडा हो, सर्वसुख का साधन जिसने बढ़ाया हो उसीके यहाँ योगच्युत जन्म लेता है।

१०१८) पितरों का वैराग्य, ज्ञान, पावित्र्य, तपाचरण और निर्विषयत्व लोकोत्तर कोटि का हुए बिना लोकोत्तर विभूतियों का जनकत्व नहीं प्राप्त हो सकता।

१०१९) किसी को बिरादरी से अलग करने की अपेक्षा कोई और गुरुतर दण्ड समाज नहीं दे सकता। सबसे बड़ा और सबसे अधिक असह्य दण्ड यही है। जाति-बहिष्कृत मनुष्य को उपहास, निन्दा और अन्य कष्ट नित्य ही सहने पड़ते है। सब प्रकार की रुकावटों का उसे सामना करना पड़ता है। जाहिलों की यह धारणा होती है कि ऐसे मनुष्य को कष्ट देना बुरा नहीं बल्कि बड़ा भारी पुरुषार्थ और बड़ी भारी धर्मसेवा है।

१०२०) शास्त्र जिस चीज को छोड़ देने को कहे, उसे, चाहे व राज्य ही क्यों न हो, तृणवत् त्याग दें। शास्त्र जिसे ग्रहण करने को कहे, चाहे वह विष ही क्यों न हो, उसे अवश्य ग्रहण करें।

१०२१) संसार के इतिहास में ऐसे अवसर प्राय: आते हैं और असामान्य कोटि के समर्थ साधु पुरुषों या विभूतियों के लिए विशेष विधान न होने से उन्हें इस संसार में अपार दु:ख भोगने पड़ते हैं। कोई स्त्री परपुरुष के यहाँ अल्पकाल भी रह जाए तो यह अपराध है और इसके लिए उसका त्याग समुचित दण्ड है।

१०२२) महान् पुरुषों का यह लक्षण है कि अलौकिक गुणों से सम्पन्न होने पर भी वे सामान्य जनों के समान ही विनयपूर्वक शास्त्राज्ञा मानकर चलते हैं।

१०२३) राजा का कानून तोड़नेवाले जैसे राजद्रोही कहलाते हैं वैसे ही धर्म और समाज के कानून तोडनेवाले आदमी धर्मद्रोही और समाजद्रोही ही समझे जाने योग्य हैं। कोई भी कानून हो उसे तोडनेवाले को बागी ही समझना चाहिए।

१०२४) कानून बार-बार बदले न जाएँ, यह बात नहीं; पर जब तक एक कानून बदलकर उसके स्थान में समाज के सभ्य, सुशील, नि:स्पृह विद्वानों के बहुमत से दूसरा कानून नहीं बन जाता तबतक पहले कानून के सामने सिर झुकाना, समाज के व्यक्तिमात्र का कर्तव्य है, और इसके लिए हर तरह की आपदा सहने के लिए तैयार होना और वह भी आनन्द के साथ सह लेना धीर-वीर पुरुषों का काम है और ऐसे धीर-वीर पुरुष सब समाजों और सब समयों में वन्दनीय होते हैं।

१०२५) सामान्य जनों के लिए जो नियम बनाए जाते हैं, अनेक बार असामान्य विभूतियों के लिए उन नियमों का बदला जाना आवश्यक होता है, पर आवश्यक होने पर भी प्राय: ऐसा नहीं होता और इस कारण विभूतियों को इसी संसार में अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं।

१०२६) सन्त वही है जो संसार के आघात सहता है। इन आघातों को सहने से ही उसका सन्तपन संसार पर प्रकट होता है। सन्त ऐसे आघातों से कुडबुड़ाया नहीं करते।

१०२७) अपने लिए कष्ट तो कोई भी नहीं चाहता, पर कष्टों से डरकर यदि महान पुरुष भी चलते तो सच्चे और झूठे का भेद भी संसार पर प्रकट न होता।

१०२८) विपत्ति की कसौटी पर ही बड़ों की बड़ाई कसी जाती है और इसलिए बड़ों की विपत्ति पर दु:ख करना भी निरर्थक होता है। वीर और भीरू, साहु और चोर, सच्चे और लुच्चे, सन्त और दम्भी का अन्तर विपत्ति में ही प्रकट होता है। अन्यथा संसार में अच्छे-बुरे में कोई अन्तर ही न रह जाता।

१०२९) लोकसंस्था सर्वथा रक्षणीय है। इसलिए रास्ते से ही चलना चाहिए और दुनिया को वह रास्ता दिखाना चाहिए। लोगों के साथ अलौकिक (लोकविरुद्ध) न होना चाहिए।

१०३०) चौदहों विद्या और चौसष्ठों कला भले ही किसी को प्राप्त हो पर उसमें यदि प्रेम कला न हो तो उसके बिना ये सब विद्या और कला विकलांग हो जाती हैं।

१०३१) संशय से अधिक भयंकर और कोई पाप नहीं; यह प्राणियों को पकड़कर मारनेवाला जाल है। जब अज्ञान का परदा गिरता है तब यह संशय मन में बढ़ता जाता है, इससे विश्वास का मार्ग ही नष्ट हो जाता है।

१०३२) तर्कपटु विद्वान हाथी बनकर अपने ही मस्तक पर धूल उड़ाते हैं, और श्रद्धालु प्रेमी पुरुष चींटी बनकर चीनी खाते हैं, यही तो संसार में सर्वत्र देखने में आता है।

१०३३) योग्यता जिसे कहते हैं वह प्राप्त कर लेने के अधीन है। कारण, योग्य होकर जो काम किया जाता है वह सफल होता है। योग्यता कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो माँगते ही मिल जाए और न योग्यता की कहीं कोई खान ही है। पलभर के लिए जो वैराग्य धारणा करता है और फिर देह के ही बन्धन में फँसा रहता है वह अव्यवस्थित पुरुष अधिकार पाने के योग्य नहीं है। जो अव्यवस्थित है उसमें कोई योग्यता नहीं।

१०३४) सूर्य जैसे किसीका मुँह देखकर नहीं उगता अथवा आकाश जैसे सारे विश्व के लिए एकमात्र अवकाश है। रत्न तो चमकते ही हैं पर साथ ही कुन्दन की चमक होती है।

१०३५) क्रोध में कहा गया वचन, क्रोध में कही गई बात कहने वालों को भी प्रभावित करती है और मित्रों एवं सम्बन्धियों से सम्बन्ध विच्छेद भी करा देती है।

१०३६) नम्रता स्वर्ग के दरवाजे की कुंजी है। आप नम्र और विनयी बनें, कारण नम्रता ही सच्ची मानवता है। महान व्यक्ति का पहला लक्षण नम्रता है।

१०३७) बीती पीढ़ी का अनुभव आगामी पीढ़ी के लिए उपलब्ध कराने का नाम ही शिक्षा है। फिर वह पुस्तकों से मिलती हो या अन्य किसी माध्यम से।

१०३८) सत्संग की तरफ जितने कदम बढाओ उतने यज्ञ हो गये। सत्संग महान यज्ञ है, इसीलिए द्रौपदी दुर्वासा ऋषि को यज्ञ के लिए लाई थी।

१०३९) सज्जनों के संपर्क से आधी अविद्या नष्ट हो जाती है। उसका चतुर्थांश शास्त्रों के विचार से नष्ट हो जाता है और शेष चतुर्थांश अपने यत्न से नष्ट होते हैं।

१०४०) जीतने के लिए कोई चीज है तो प्रेम, पीने के लिए कोई चीज है तो क्रोध, खाने के लिए कोई चीज है तो गम, देने के लिए कोई चीज है तो दान, दिखाने के लिए कोई चीज है तो दया, अक्ल को खा जाता है गुस्सा, मन को खा जाता है अहंकार, आयु को खा जाती है चिंता, इंसाफ को खा जाती है रिश्वत, ईमान को खा जाता है लालच, दुनिया का सबसे बढ़िया जेवर मेहनत है, दुनिया में सच्चा साथी निश्चय है।

१०४१) धर्म के मार्ग पर अनंत फल मिलते हैं। अनंत जन्मों से मुक्ति का मार्ग पता चलता है। धन संपत्ति व संतति यदि यही जीवित कार्य होते तो संत साहित्य निर्मित ही नहीं होता। धन संतति के साथ का अनुबंध अनंत जन्मों का, अनंत का अनुबंध है। मानव शरीर का कारखाना इनके अतिरिक्त शाश्वत सत्य को जानने के काम आए यह आवश्यक है।

१०४२) सभी धर्मों का मूलभूत काम लोगों के बीच दीवारें उठाना नही बल्कि प्यार के धागों से उनके हाथों को एक दूसरे से जोडना है।

१०४३) वन में, रण में, शत्रु, जल, अग्नि के बीच, समुद्र में अथवा पर्वत के शिखर पर असावधान अथवा संकट में पडे मनुष्य की रक्षा उसके पूर्व अर्जित पुण्य ही करते है।

१०४४) आप दूसरों की कमजोरियों को अपने मन में रखते हो तो शीघ्र ही वे कमजोरियां आपका अंग बन जायेगी। कोई आपकी निंदा या अपमान करे तो भी उस पर मुस्कान व शुभ कामनाये ही बिखेरे।

१०४५) आकाश मे घने बादल हो या समुद्र मे आंधी तूफान उस समय अपने जहाज की रफतार कम करके चलाते रहना जारी रखना चाहिये। मुसीबत मे फंस जावो तो उसमे से तेजी से बाहर निकलने का प्रयत्न मत करो, इससे परेशानियां और बढ़ेगी। यदि रफ्तार धीमी रहेगी तो थोडे समय में घने बादल या आंधी तूफान छंट जायेंगे।

१०४६) दुनिया मे अगर शराब नाम की कोई चीज न होती तो दुनिया तो दुनिया का नक्शा ही कुछ और होता। शराब के नशे ने

व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और दुनिया की दशा और दिशा दोनो ही बिगाड रखी है।

१०४७) स्वाभिमानी होना एक सीमा तक गर्व की बात है किन्तु स्वाभिमान जब सीमाओं और मर्यादाओं से बाहर चला जाये तो वह आत्मतुष्टि का सिर्फ छलावा मात्र रह जाता है।

१०४८) जिस घर के लोग धर्म, दान, यज्ञ, जप करते है वहां मुसीबते नहीं आती। जिस घर मे गरीबों को भोजन कराया जाता है, वस्त्र दान दिया जाता है वहां मुसीबते स्वयं टल जाती है।

१०४९) राष्ट्र, प्रेम मात्र एक कोमल और दृढ़ मानसिक भावना ही नहीं अपितु कर्तव्य है जिसे हर नागरिक को बखूबी अपना अधिकार समझना चाहिये। बडी बडी बातें करने मात्र से कोई बडा नहीं होता है। सच्चाई यह है कि हर बडी चीज या व्यक्ति के पीछे ईमानदारी, सच्चाई, कर्मठता एवम् त्याग का इतिहास छुपा होता है।

१०५०) चलचित्र जगत का भव्य गगन चुम्बी महल जो सामाजिक शिक्षा, सूचना एवं मनोरंजन के तीन स्तम्भों पर अवलम्बित है। अतीत का यह सामाजिक अपेक्षाओं का एवं सामाजिक शिक्षा का केन्द्र बिन्दु अपने वजूद की यथार्थता को नकारता हुआ महज मनोरंजन की ही अपना एक मात्र सामाजिक दायित्व मानता है। सभ्यता एवं संस्कृति के कुलीन एवं उच्च आदर्शों के बजाय यह अश्लीलता, आपराधिक प्रवृत्तियों के जरिये समाज की विकृत एवं जीर्ण-क्षीर्ण तस्वीर को दर्शाता है।

१०५१) दुनिया के साथ यह मुसीबत है कि मूर्ख व्यक्ति प्रत्येक मामले में सुनिश्चित होते है जबकि बुद्धिमान सदैव सन्देहशील रहते है।

१०५२) यदि आपके बच्चे आपसे नहीं मिलते हो, ना ही सम्वाद स्थापित करते हो तो अपने व्यवहार व रवैये की जांच पडताल, परीक्षण अवश्य करे।

१०५३) निरन्तर प्रयास सफलता का निश्चित मूलमन्त्र है। गिरना सहज प्रक्रिया है लेकिन हार कर बैठ जाना जीवन की गति को अवरुद्ध कर देना है। उठकर फिर दौड लगाना ही विकास का एक मात्र रास्ता है और यह निश्चय ही लक्ष्य तक पहुंचने मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

१०५४) हम सभी सुखी होना चाहते है। कोई भी व्यक्ति दु:खी होना नहीं चाहता। दु:खी होने का भाव है अस्त-व्यस्त होना। अभाव व पीडा का जीवन जीना। हम दु:ख से उबरने के लिये सब सम्भव उपाय करते है। बहुत कुछ मिलने पर भी मन नही भरता। हम वर्षों के साधन जुटाते है फिर भी आकांक्षाये, अभिलाषाये अधूरी की अधूरी रह जाती है। इसलिये कामनाओं को मत बढ़ाओ। कामनाये ही दु:ख की जड है।

१०५५) जिस घर में नीति के मार्ग से धन आता है वहां पर अन्य अनीति के मार्ग से पैसा नहीं आना चाहिये। जो परिश्रम से अर्जित रोटी खाता है, वही सच्चा धर्म और दान करने के लिये समर्थ होता है। वही योग्य व सत्पात्र होता है।

१०५६) अनीति से कमाया धन टिकता नहीं है वह पैसा आपके परिवार के लिये विनाशकारी है, हानिकारक है। अनीतिद्वारा आये धन से ही अशान्ति, कलह, परिवार मे बीमारी, व्यसनाधीनता में वृद्धि होती है। नीति के मार्ग से आया धन परिवार को अच्छा मार्ग दिखाता है, शान्ति प्रदान करता है। इसलिये कामना करो कि मेरे घर मे नीति का ही धन आये, मुझसे अनीति दूर ही रहे।

१०५७) जो व्यक्ति आत्मनिर्भर है, वह सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये समस्त व्यवस्था कर लेता है और ऐसे ही व्यक्ति चरित्रवान एवं बुद्धिमान कहा जाता है।

१०५८) आत्मविश्वास के धनी व्यक्ति ही आत्म निर्भरता को प्राप्त करते है। आत्म निर्भर बनने के लिए मुसीबतों का सामना करना पडता है लेकिन इससे मन को शान्ति मिलती है जो कि जीवन की सबसे बडी और अमूल्य निधि है जो स्वावलम्बन और सादगी से परिपूर्ण है।

१०५९) पुराने दर्दों को भूलने के लिये अतीत को भूला देना ही श्रेयस्कर है। बीते दिनों की यादों से बाहर निकलना ही ठीक होता है वरना वे यादे आपकी समस्यायें भी बन सकती है।

१०६०) अन्धेरे कमरे मे जलने वाला दीपक तेल पीता है और कालिख छोडता है, पात्र को गरम करता है लेकिन हमें कुलदीपक की तरह स्नेह का ईन्धन लेकर, विकारों को कालिख छोडकर सद्गुणों की बाती अखंड व अक्षय रखनी चाहिये जिससे परिवार प्रकाशित हो पाये।

१०६१) भगवान व पशु पक्षियों को परिवर्तन का सामना नहीं करना पडता परन्तु मनुष्य कभी देवतुल्य तो कभी पशुतुल्य व्यवहार करता है इसलिये मनुष्य को सुसंस्कारों का दामन थामना चाहिये।

१०६२) संस्कारित जीवन अमृत तथा असंस्कारित जीवन विष के समान होता है। संस्कार एक सीढ़ी है जिस पर चढ़ने से मनुष्य की उन्नति होती है पर विपरीत बर्ताव करने से अधोगति निश्चित है। मनुष्य को अगर सद्गति नही मिलती तब वह अधोगति की ओर अग्रसर होता है।

१०६३) हर जीव में आत्मा होती है। दया धर्म का मूल है इसलिये दु:खी पशु पक्षियों की वेदना पहचान कर उन पर रहम करना नितान्त आवश्यक है।

१०६४) शरीर के लिये मृत्यु का पैगाम काम भावना है। जब मन, वचन और तन काम की अग्नि की भेट चढ़ते है तब मनुष्य की दुर्दशा मृत्यु की पीडा से कम नहीं होती है। ऐसे समय मे कोई भी सद्विचार वहां नहीं रहता। काम वेग में मोहान्धता दारूण रूप ले लेती है परन्तु, काम वेग की पूर्ति के बाद शरीर की दशा दयनीय और जर्जर हो जाती है। काम के कुप्रभाव व वेग से आत्मा की क्षति बेहिसाब होती है।

१०६५) काम के कुप्रभाव से होने वाली तीक्ष्ण क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के आघात से स्वस्थ भावनाओं का संसार नष्ट हो जाता है। विचार शक्ति कुंठित हो जाने पर आत्मा की स्वसंज्ञा नही रहती। विकारों की काली मलिनता से आत्मा का स्वरूप ही रंग जाता है तथा निष्काषित पाप कर्मों का बन्दी हो जाना पडता है। वस्तुत: काम शरीर नाश और आत्म पतन के रूप मे मृत्यु का ही दूसरा नाम है।

१०६६) बच्चों के पास सम्भावनाओं का अनन्त आकाश है। आकाश भी इतना बडा कि हमारे विचारों की पूरी श्रृंखला उनमे समा सकती है। बच्चे अनन्त सम्भावनाओं के पुंज होते है।

१०६७) स्थापित नियम कानून की अनदेखी करना किसी गलत परम्परा की नींव डालकर भविष्य के लिये जटिलता का निर्माण घातक सिद्ध हो सकता है।

१०६८) व्यक्ति के जीवन मे आई विपरीत परिस्थितियों में धैर्य ही सबसे बडा शस्त्र होता है क्योकि एक दिन निश्चित ही परिस्थितियां आपके पक्ष में होगी।

१०६९) घृणा और ईर्ष्या मनुष्य को मानवता से वंचित करते है। मानवता तो गृहस्थ व्यक्ति का सच्चा धर्म है। आपसी सहयोग और प्रेम की सहायता से ईर्ष्या और घृणा पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। बुरी संगत और बुरी लतें गृहस्थी के बाहरी शत्रु है। बुरी संगत गृहस्थ को अध:पतित करती है जबकि बुरी लते मनुष्य को अमानुष बनाती है।

१०७०) किसी भी महापुरुष के आत्मचरित्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होने बहुत घोर परिश्रम किया, सहयोग प्रदान किया। मन मे मानवता का जतन करने से तथा सेवाभावी प्रवृत्ति से गरीबों की, जरूरतमन्दों की सेवा करने से ही अपार लोकप्रियता प्राप्त होकर आप महान बन सकते है व सम्मान के हकदार हो सकते है।

१०७१) प्रकृति से सीखो। फल से पेड लदा होता है तब वह झुक जाता है। बिना फल का पेड सीधा तनकर खडा रहता है। हम जीवन जीते समय अनेक लोगों के उपकार लेकर जीते है। जिसके भी उपकार, मार्गदर्शन से आपका जीवन सुखी हुआ उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिये।

१०७२) लोग थोड़ी देर के लिए तसवीर के सामने हाथ जोड़ते हैं और बदले में भगवान को सारे काम सौंप देते हैं। उन्हें मुकदमा भी जितवाना है, चुनाव भी जितवाना है, फैक्टरी भी ठीक चलवानी है, बच्चों का भी खयाल रखना है, जो बीमार है, उसे भी ठीक करना है। वस्तुत: यह भक्ति नहीं, यह तो सौदेबाजी है।

१०७३) गुरुदेवों के सानिध्य से मानव का मानवीयकरण हुआ। सारांश यह कि अनगढ़ पत्थर को संग तरास तरासकर उसे सरस, सुंदर सौम्यता सा स्वरूप दिया।

१०७४) पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ की बड़ी लम्बी और गहरी परिभाषाएं की गई हैं पर सरल परिभाषा यही है कि जिस काम को करने में भय और लज्जा का अनुभव हो उसे अशुभ समझो और मत करो। जिस काम को करने में आनंद, उत्साह और प्रीति का अनुभव

हो उस काम को शुभ समझो और ऐसे ही काम करो। इस प्रकार अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुनकर स्वयं निर्णय कर लेना चाहिए। अन्तरात्मा की आवाज अशुभ नहीं होती।

१०७५) जो मुझे करना चाहिए, वह मुझे मालूम है, लेकिन वह मैं करता नहीं और मुझे नहीं करना चाहिए, वह भी मुझे मालूम है, लेकिन वही मैं करता हूं।

१०७६) जीवन जीना भी एक युद्ध है। प्राकृतिक, समय और समाज द्वारा मनुष्य के जीवन-पथ में उपस्थित विपत्तियों का सामना करते हुए ही मनुष्य जीता है।

१०७७) सतयुग हो, त्रेतायुग अथवा द्वापर तथा कलियुग, सब युगों में सदा-सर्वदा, सर्वत्र क्रोधी मनुष्य, क्रोधी समाज तथा क्रोधी राजा, नेता अथवा राष्ट्र नष्ट हुआ है, नष्ट होता है और नष्ट होगा, यह सुनिश्चित है।

१०७८) साधारण ज्ञान के बिना जीवन की गति सम्भव नहीं। तदपि प्रगति के लिए विशिष्ट ज्ञान का होना आवश्यक है। जैसे मनुष्य द्वारा सर्दी, गर्मी तथा वर्षा से बचाव के लिए जमीन में गुफा बनाना साधारण ज्ञान का परिचायक है अथवा था, किन्तु भव्य और भिन्न-भिन्न कक्ष, उनमें गवाक्ष, वातायन और द्वार योजना विशिष्ट ज्ञान यानी विज्ञान का परिचय देता है।

१०७९) जो नहीं है, वह अस्तित्ववान नहीं हो सकता और जो विद्यमान है, वह नष्ट हो नहीं सकता। जो नहीं है, उसका अस्तित्व कैसे और कहां से। किन्तु जो अस्तित्व में है अथवा अस्तित्व वाला है, उसका नाश नहीं होता। हां, पदार्थ का दूसरे पदार्थ में परिवर्तन हो जाता है। पहला रूप दूसरे रूप में बदल जाता है किन्तु नष्ट नहीं होता है।

१०८०) यदि एक बार हम अधर्म से समझौता कर लें, तो फिर कभी उससे हमारा उद्धार नहीं हो सकता। अब से बहुत वर्षों के पश्चात् हमें उसका भारी मूल्य चुकाना पड़ता है।

१०८१) यदि सीखने वाले में गहरी लगन हो तो अति सामान्य शिक्षक से भी प्रकाश मिल जाता है। यही नहीं, प्राय: यह किसी बुद्धिमान व्यक्ति की अपेक्षा एक साधारण नारी से मिल जाता है।

१०८२) जब युद्ध आरंभ होता है। तो लोग सुध-बुध खो बैठते हैं। वे उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाते। विजेता के रूप में विशेषत: दुर्बलों के रूप में हमारा इतिहास अच्छा नहीं है। किन्तु यदि मैं आपको वचन दूं कि मैं इस सृष्टि के हर दुर्बल की रक्षा करूंगा तो जाति का कल्याण होगा।

१०८३) सत्य, धर्म, न्याय और नीति के लिए यदि किसी की मृत्यु भी आ जाती है तो वह अमर हो जाता है। सदा सत्य और धर्म का पालन करोगे। किसी निर्दोष प्राणी का खून नहीं करोगे। उस समय तक युद्ध नहीं करोगे, जब तक धर्म और सत्य को खतरा न हो।

१०८४) अधर्म से विजय प्राप्त करने वाले को वीर नहीं कहा जा सकता। धर्म के लिए झुकने में कोई अपमान भी नहीं है। वचन की रक्षा धर्म की रक्षा है।

१०८५) जो विद्याएं धर्म का सम्पादन करती हैं उन्हीं का कर्म फल दृष्टिगोचर होता है, विद्या का नहीं। प्राणी की प्यास तभी बुझती है जब वह जल पी लेता है। पानी को देखकर प्यास कभी नहीं बुझती। ज्ञान का विधान भी कर्म को साथ लेकर है, अत: ज्ञान से भी कर्म बलवान है।

१०८६) जो जन्म से ही निर्धन पैदा हुआ हो, उसे दरिद्रता के कारण उतना कष्ट नहीं होता, जितना की- कल्याणमयी सम्पत्ति को पाकर, फिर उससे वंचित होने पर होता है। निर्धन अवस्था में प्राणी को क्रोध आता है, ऐसे में वह अपने विवेक को खो बैठता है। फिर मोह के वशीभूत होकर वह क्रूर कर्म करने लगता है। इस प्रकार के पाप कर्म करने से वह नरक में जाता है।

१०८७) भाई-बन्धुओं में परस्पर फूट उत्पन्न होने पर, जो समय पर प्रयत्न करके, उनसे मेल करवाने के लिए मध्यस्थता नहीं करता, उसे विद्वान् मित्र नहीं मानते।

१०८८) युद्ध छिड़ने पर तो महान संहार होता है। दोनों पक्षों का विनाश होने से तो किसी को भी धर्म और सुख नहीं मिलता। आप अधर्म द्वारा धर्म का और सत्य असत्य द्वारा सत्य का गला मत घोंटिए। युद्ध से कभी किसी को लाभ नहीं होता, युद्ध का दूसरा नाम विनाश है।

१०८९) दैनन्दिनी रोजनामचा लिखना एक कला तो है ही पर यह एक तरह का नशा भी है। अच्छी दैनन्दिनी रोजनामचा वही है जो

बीते वक्त को भविष्य की ठोस बुनियाद बनाने का काम कर सकती है, जिसमे जीवन के हर रंग को समाहित किया गया हो तो वह सम्पूर्ण दैनन्दिनी रोजनामचा है।

१०८८) आदमी सोचता है कि यह संसार मेरा है। यह मेरा है, वह मेरा है दरअसल यह सब माया जाल ही है। झूठे मोह और भ्रम मे फंसा हुआ यह आदमी संसार के बोझ के नीचे दब गया है। बच्चे का जन्म होनेपर उसकी देखभाल, चिन्ता धाय करती है, उसका लालन-पालन कर अपना फर्ज निभाती है पर उसे यह मालूम है कि यह बच्चा उसका नही है। उसी प्रकार हम भी संसार में रहकर मोह माया का त्याग करे और संसार को अपना नहीं माने तो ही संसार का बोझ महसूस नहीं होगा।

१०८९) चुगलखोरी किसी का घर तोड सकती है। किसी की सामाजिक प्रतिष्ठा को दाग लगा सकती है, किसी के लिये अपमान का सबब बन सकती है। चुगलखोरी एक ऐसी लत है जो आसानी से पिंड नहीं छोडती है। किसी की कमजोर नस पर हाथ रखने से पूर्व अपनी भी कमजोरियों और उनके सार्वजनिक होने से पहुंचनेवाली पीडा का अहसास कर ले तो शायद चुगलखोरी से दूसरों की पहुंची पीडा की अनुभूति हो सके। अच्छा है कि इस इल्लत से बचे। जाने या अनजाने मे पडी चुगलखोरी की आदत आदमी को कही का नही छोडती। यो तो औरतों पर तो चुगलखोरी का लांछन लगाया ही जाता है मगर पुरुष भी अपनी कलाकारी दिखाने में पीछे नहीं रहते। दूसरों की छिछलेदार बातों में उन्हे आत्मिक आनन्द की अनुभूति होती है लेकिन ये क्षणिक सुख, गर्व और आनन्द चुगलखोर को ऐसे मोडपर ला खडा कर देते है कि वह सबके लिये अविश्वास का पात्र बन जाता है और देखते देखते वह अलोकप्रियता के गर्त मे डूब जाता है।

१०९०) महाभारत जैसा अद्‌भुत, अपूर्व और महान ग्रन्थ नही है जो हमे परिवार मे रहना सिखाता है। अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करना सिखाता है।

१०९१) हमारा जीवन रंग बदलता रहता है। आज सुख है तो कल दु:ख। आज अपने है तो कल पराये। आदमी जन्म के समय कुछ, मृत्यु के समय कुछ और होता है। इस संसार मे अपना कोई अपना नही होता है। समय आने पर अपनी पत्नी और पुत्र आदि भी साथ छोड़ देते है। सुख मे सभी साथ रहते है परन्तु दु:ख मे सभी दूर चले जाते है।

१०९२) जहां आदमी है वहां अतृप्ति, असन्तोष, विषाद, दु:ख आता ही है। सन्तोष का दूसरा किनारा उसकी पहुंच के बाहर है वह धुंध से घिरा हुआ है। उस पार किनारे की सही खबर देनेवाले, मुक्त व्यक्ति का सत्संग आवश्यक है और जो सही मार्गदर्शक है वह ही गुरु है।

१०९३) इच्छाये, आकांक्षाये अपरिमित व असीमित होती है। आवश्यकता शरीर की होती है जबकि आकांक्षाये मन की होती है। आकांक्षा रूपी भिक्षा पात्र मे चाहे जितना भर दिया जाये वह खाली ही रहेगा, कभी नही भरता।

१०९४) जीवन जीना सहज नही है। जीवन पथ में अनेक बाधायें आती है। आदमी बाधाओं से घबराता नहीं है, उनसे टकराता है परन्तु इस टकराहट में कभी वह टूट भी जाता है ऐसे लोगों को पुन: प्रोत्साहित कर प्रेरित करना सदकार्य है।

१०९५) लोभी मनुष्य स्वार्थी होता है। वह कभी भी नीति अनीति का विचार नहीं करता है। उसे पैसा ही सर्वाधिक प्रिय होता है। वह धन के पीछे भागता है और रिश्ते नातों की कदर नही करता। उसके धन का नशा कभी नहीं उतरता। न ही वह कोई सामाजिक कार्य करता। लोभी व्यक्ति सदैव अतृप्त रहता है, कभी भी सन्तुष्ट नहीं हो पाता। उसकी प्यास कभी भी नहीं बुझती। शरीर की भूख भोजन मिलने पर शान्त हो जाती है पर मन मे बसी लोभ की प्यास कभी कम नही होती। यह जीवन क्षणभंगुर है इसे सार्थक करने के लिये निर्लोभी जीवन जीने का संकल्प करना चाहिये।

१०९६) स्वर्ग, नर्क, लोक-परलोक को भले ही हम मानवीय कल्पनाएं कहें, लेकिन क्या हम नहीं जानते हैं कि मानव जीवन पानी के बुलबुलों की तरह है ? उस दिशा में क्या हम विचार और कृति करते हैं ?

१०९७) जीवन को नया आयाम देने के लिये सत्संगति की आवश्यकता होती है। इससे आसक्ति के बन्धन का छुटकारा, कर्म करने की प्रेरणा इत्यादि नया जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है। संगति जीवन परिवर्तन का कारण बनती है। दुष्ट, दुराचारी व्यक्ति की संगति सज्जन व शीलवान व्यक्ति को भी दुराचारी बना देती है।

१०९८) अन्धकार का समय विकृति का होता है। अन्धकार प्रकाश की और चलता है और अन्धापन मृत्यु की ओर। प्रभात होने से पहले घोर अन्धकार रहता है।

१०९९) जुगनु तभी तक चमकते है जब तक उडते रहते है। यही हाल मन का है। जब मन रूक जाता है तो अन्धकार के गर्त मे पडने लगता है।

११००) मुझे यह मानने मे कोई शर्म नहीं होनी चाहिये कि मुझे जो नहीं आता उसके सम्बन्ध मैं मैं अज्ञानी हूं। मुझे यदि कुछ ज्ञात है तो सिर्फ यही कि मेरे पास रंचमात्र भी ज्ञान नही है।

११०१) अज्ञानी व्यक्ति को तो सरलतापूर्वक प्रसन्न किया जा सकता है लेकिन अर्ध अज्ञानी व्यक्ति को तो ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता।

११०२) थोड़ा सा व्यापार बढ़ा, अहंकारी हो गये। थोड़ा सा धन मिला, बेकाबू हो गये। थोड़ा सा ज्ञान मिला, उपदेश की भाषा सीख ली। थोड़ा सा सम्मान मिला, पागल हो गये। थोड़ा सा अधिकार मिला, दुनिया को तबाह कर दिया। थोड़ा सा यश मिला, दुनिया पर हंसने लगे। थोड़ा सा रूप मिला, दर्पण ही तोड़ डाला।

११०३) अहंकार- मान को खा जाता है। रिश्वत- इंसाफ को खा जाती है। लालच- ईमान को खा जाता है। चिंता- आयु को खा जाती है। गुस्सा अकल को खा जाता है। दुनिया का सबसे बढ़िया जेवर अपनी मेहनत है। दुनिया में सबसे अच्छा साथी तुम्हारा अपना निश्चय है। ईश्वर और मौत को मत भूलो।

११०४) इन मकानों, हवेलियों और महलों में अपने मन को मत लगा। क्योंकि जब तेरे ऊपर बिन तोल मिट्टी पड़ेगी, तब वहां तेरा कोई मित्र नहीं होगा।

११०५) वासना इस संसार का सबसे बडा रोग हैं। यह इंसान के शरीर को अंदर ही अंदर खोखला कर देती है, इससे बुद्धि भ्रष्ट होती है। क्रोध इस संसार की सबसे भयंकर आग है, यह इंसान का विनाश करती है। ज्ञान जिस प्राणी के पास होगा, वह सदा सुखी रहेगा।

११०६) बुद्धिमान ज्ञानी सदा स्वर्ग पाने की आशा करते है, चोर को जीवन बहुत प्यारा होता है। भोग विलासी पुरुष जहाँ कभी भी सुंदर औरत को देखते है, वरन उसी के पीछे भागने लगते है। ज्ञानी और बुद्धिमान लोगों के लिए सुंदरता एक तिनके के समान है।

११०७) जीव के बिना शरीर, जल के बिना नदी जैसी व्यर्थ है इसी प्रकार स्त्री के बिना पुरुष का जीवन व्यर्थ है। नारी का मधुर सम्पर्क को जीवन के संघर्ष में एक प्रकार का रस प्रदान करता है।

११०८) लोभ प्रवृत्ति को छोड़कर अपनी चादर में अपने पांव को ढंककर अपनी कर्मठता के बल पर एक सशक्त जीवन जीना ही बुद्धिमानी है।

११०९) श्रद्धा जड है। जिनकी जड़ कट जाती है उनका व्यक्तित्व बौना रह जाता है, जिनकी जड़ नही कटती उसका व्यक्तित्व लहलहाने लगता है, जो अपनी जड़ें नहीं जमा पाता, वह बढ़ नही सकता। बढ़ता वही है जिसकी जड़ें आस्था की जमीन में गहरी चली गयी हैं।

१११०) अपनी बुराइयों को स्वीकार करना साहस का काम है, पर उससे भी बड़ी हिम्मत यह है कि उन्हें छोड़ने का निश्चय किया जाए।

११११) सृष्टि रूपी रंगमंच पर हर व्यक्ति की अपना-अपना अनुपम अदाकारी है। यह समझ लेने से सहनशक्ति निश्चित ही बढ़ाई जा सकती है।

१११२) जब आप महसूस करते हैं कि आपको बहुत सहन करना पड़ रहा है, तो इसका अर्थ हैं कि अभी भी सहन करने का प्रयास कर रहे हैं।

१११३) यदि परिस्थितियां अनुकूल हैं, तो सीधे अपने ध्येय की ओर चलो, लेकिन यदि परिस्थितियां अनुकूल न हों, तो उस मार्ग का अनुसरण करो, जिसमें सबसे कम बाधा आने की संभावना हो।

१११४) मात्र सैद्धांतिक ज्ञान काफी नहीं होता। विचार और विवेक की शक्ति जब कुंठित होती है तो संकीर्णता को पोषण मिलता है। जिसका परिणाम हितकारी नहीं अपितु विनाशकारी ही होता है।

१११५) हर दिन अपने जीवन का अंतिम दिन है ऐसा सोचा होगा तो फिर जिस भविष्य की हमें प्रतीक्षा नहीं होती वैसे भविष्य का एक-एक क्षण सुखद आश्चर्य बन जाती है। बीते हुए जीवन में आप कहां-कहां जा आये उसका महत्व नहीं है, परंतु अब कहां जा रहे हो यह महत्वपूर्ण है।

१११६) परिवर्तन ही जीवन है जहाँ परिवर्तन नही वहाँ गति अवरूद्ध हो जाती है वह देश मृतप्राय: हो जाता है। यह परिवर्तन ही जनता के जागृत, जीवित होने का संदेश है, प्रमाण है। परिवर्तन गतिशीलता का दूसरा नाम है यही प्रकृति का नियम है।

१११७) एक फूल खिलाने के पीछे कितने अनादि कामों का आयोजन छिपा रहता है ? कली के सीने में कितनी धूप, कितनी बरसात झरती है और कितनी रात्रियों का ठिठुरा देनेवाला स्पर्श होता है, तब कहीं कली कुसुम बनती है। प्रकृति के सौंदर्य में निखार आता है। दु:ख की कितनी लंबी रातों, प्रतीक्षा की अनंत घड़ियों और शुष्क वृक्ष पर लक्षलक्ष आशाओं के बाद ही जीवन का वह परम योग आता है, जब व्यथा की पूजा स्वीकार होती है, अश्रु मुसकाते है और मुखर होते है।

१११८) बड़े आसन पर बैठे हुए छोटे लोग भी गुणवान बन जाते हैं। विशिष्ट स्थान पर बैठने से मनुष्य की शोभा बढ़ती है। परंतु जब वे उस स्थान पर नहीं होते हैं तब उनकी प्रशंसा कोई नहीं करता है।

१११९) पत्थर हजारों साल तक पानी में पड़ा रहे तो भी उसके भीतर एक बूंद पानी नहीं घुसता, परंतु मिट्टी के ढेले में पानी लगते ही वह घुल जाता है। जिसके हृदयमें विश्वास का बल है, वह हजारों बाधा विघ्न की परीक्षा में से गुजरकर भी हताश नहीं होता, परंतु अविश्वासी व्यक्ति छोटी सी बात से ही विचलित हो जाता है।

११२०) पैसा कमाने में इतने मशगूल मत हो जाना कि बच्चे हाथ से निकल जायें। बच्चे बिगड़ गए तो फिर पैसा कमा कर भी क्या करोगे ? बच्चे को बच्चा इसलिए कहते हैं क्योंकि उसे बचाना पड़ता है। वह स्वयं बचना नहीं जानता। उसे बुरी नजर और बुरी संगत से बचाइए, वरना कल तुम्हारा बड़ा बुरा होगा।

११२१) जो बात दुश्मन से छिपा कर रखना चाहते हो दोस्त से भी छुपा कर रखना कही ऐसा न हो कि वह भी किसी दिन दुश्मन बन जाये।

११२२) सफलता की सीढ़ियां चढ़ना एक पर्वत पर चढने जैसा होता है। हर शिखर एक मंजिल होता है और आप एक समय में एक ही मंजिल तय करते है।

११२३) मूर्ख कहते हैं मैने अपना अतीत और वर्तमान बरबाद कर दिया जब कि बुद्धिमान और ज्ञानी कहते है लेकिन भविष्य अभी भी सुरक्षित है।

११२४) जीवन में कुछ भी स्थायी नहीं है इसलिये सौभाग्य पर असामान्य रूप से उत्फुल्ल मत हो तथा दुर्भाग्य पर अत्यधिक उदासीन मत बनो।

११२५) उस व्यक्ति से अधिक अभागा कोई नहीं है जिसने दुर्भाग्य नहीं देखा। जीवन की सबसे बडी पीडा यह है कि कभी पीडा न भुगतनी पडे।

११२६) जब प्रजा सिद्धान्त के लिये विद्रोह करती है तब राजा अपनी क्रूर नीति से अत्याचारी हो जाता है। वह शासक अत्याचारी है जो स्वेच्छा के अतिरिक्त कोई नियम नही जानता।

११२७) अत्याचारी के प्रति विद्रोह करना ईश्वरीय आदेश का पालन करना होता है। अत्याचार और अन्याय करने वाला उतना दोषी नहीं है जितना उसे सहन करने वाला।

११२८) अत्याचार करने वाले भूल जाते है, किन्तु जिनपर अत्याचार होता है वे उसे आसानी से नहीं भूल पाते है। हाथ से लाठी गिर जाने पर भी वे मन ही मन द्वेष करते है। अत्याचार और भय परस्पर हाथ मिलाते है।

११२९) अध्ययन हमें आनन्द प्रदान करता है, अलंकृत करता है और योग्यता प्रदान करता है। मस्तिष्क के लिये अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर को व्यायाम की।

११३०) अन्याय सह कर बैठ जाना यह महा दुष्कर्म है। न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना धर्म है। अन्याय को मिटाओ लेकिन अपने आपको मिटा कर नहीं।

११३१) अधिकार सुख कितना मादक और सार हीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। अधिकारों की सृष्टि और उनकी मोह माया सामाजिक वर्गों मे खाई बन गई है जो कभी पट नहीं सकती। शासन का आसान बहुत ही प्रिय होता है।

११३२) अन्याय और अत्याचार सहने वाला भी उतना ही दोषी है जितना अन्याय करने वाला। अन्याय सहने वाले की अपेक्षा अन्याय करने वाला अधिक दु:खी होता है। अन्याय सह लेने वाला भी अपराधी है। यदि वह न सहा जाये तो फिर कोई किसी से

अन्याय पूर्ण व्यवहार कर ही नहीं सकेगा। कोई भी इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकारेगा कि अन्याय को सहने की अपेक्षा अन्याय करना अधिक अच्छा है।

११३३) अनुभव बताता है कि आपात काल में दृढ़ निश्चय ही पूरी सहायता करता है। कष्ट सहने पर ही अनुभव होता है और दर्द को तभी जान पाओगे।

११३४) स्वयं अपने को लेकर प्रतिदिन यही अनुभव करो कि आपके भीतरी और बाहरी जीवन के निर्माण मे अगणित लोगों के श्रम और कृपा का हाथ रहा है। कम से कम इस दुनिया को उतना तो दो जितना कि आपने उससे अभी तक लिया है।

११३५) अपमान के साथ जीने की अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है क्योकि मरने से पहले केवल एक क्षण का दु:ख होता है परन्तु अपमान से तो प्रतिदिन दु:ख सहना पडता है।

११३६) संसार मे ऐसा व्यक्ति कोई नहीं जिसके पास जिन्दगी में एक बार भाग्योदय का अवसर न आता हो परन्तु जब वह देखता है कि वह व्यक्ति उसका स्वागत करने के लिये तैयार नहीं है तो वह उल्टे पैरों लौट जाता है।

११३७) असफलता का प्रधान कारण प्राय: धनाभाव नही अपितु शक्ति और सामर्थ्य का अभाव होता है। केवल जीवन की असफलतायें ही सद्गुणों से वंचित रखती है।

११३८) बगुले को तीर का निशाना बनाने की बजाय उसे उडते हुये देखना पसन्द करो और किसी बुलबुल को खा लेने की बजाय उसे गुनगुनाते हुये गीत गाते हुये, चह चहाते हुये चाहो।

११३९) समस्त महान गलतियों की तह में अभिमान ही होता है। किसी भी हालत में अपनी शक्ति पर घमंड मत करो। यह बहुरूपिया आसमान हर घडी हजारो रंग बदलता है।

११४०) अभिलाषाओं की पिपासा कभी नही बुझती और न ही वे पूरी तौर पर सन्तुष्ट ही होती है। अभिलाषाओं से उपर उठ जाओ तो वे पूरी होगी। मांगोगे तो उनकी पूर्ति तुमसे और दूर जा पडेगी।

११४१) असफलता की अवस्था तभी अनुभव होती है जब व्यक्ति को अतीत में गर्व करने योग्य कुछ न हो और भविष्य के लिये कोई आशा न बची हो।

११४२) अस्पृश्यता का कोई शास्त्रीय आधार नही। परमेश्वर का दरवाजा किसी के लिये बन्द नहीं होता और यदि वह बन्द हो जाये तो परमेश्वर परमेश्वर नही रहता।

११४३) पवित्र और दृढ़ अभिलाषाये सर्व शक्तिमान है। जिसकी हम अभिलाषा करते है और जिसकी सिद्धि के लिये सम्पूर्ण अन्त:करण से प्रयत्न करते है तो उसकी प्राप्ति हमे अवश्य होती है।

११४४) उद्योग तो मनुष्य को करना ही पडता है वह तो उसका कर्तव्य ही है बिना उसके उसकी जीवन यात्रा भी पूरी नहीं होती। बिल्ली दूध पीने के लिये गाय नहीं पालती लेकिन अपने उद्योग से नित्य दूध पीती है।

११४५) असफलता निराशा का सूत्र नही है, अपितु वह तो नई प्रेरणा है। वे कभी भी असफल नहीं होते जिनकी मौत महान उद्देश्य के लिये होती है।

११४६) अहंकारी मनुष्य केवल अपने ही महान कार्यों का वर्णन करता है, और दूसरों के केवल कुकर्मों का। अहंकार नरक का मूल है। पत्थर के खम्भे के समान जीवन में कभी न झुकनेवाला अहंकार आत्मा को नरक के गर्त में गिरा देता है।

११४७) जिसकी तुम आकांक्षा करते हो, यदि वह करना सम्भव नहीं है तो उसी की आकांक्षा करो जो तुम कर सकते हो। यदि तुम सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने के आकांक्षी हो तो सबसे नीचे से चढ़ना शुरू करो।

११४८) मनुष्य जब पशु तुल्य आचरण करता है तो उसी समय वह पशुओं से भी नीचे उतर जाता है। आचरण और सत्यता के लिये आर्य जाति पुरातन काल से प्रसिद्ध है।

११४९) आत्म गौरव खोकर जीवित रहना मृत्यु से भी बुरा है। जिसे अपने गौरव का मान रहता है, वह किसी चीज को मुफ्त पा जाने के बजाय उसे अपने पौरुष से प्राप्त करता है।

११५०) आत्म विश्वासी व्यक्ति ही समुद्र के बीचोबीच जहाज के नष्ट हो जाने पर भी समुद्र को तैर कर पार करने का हौसला रखता है। आत्मविश्वास सफलता का मूल रहस्य है।

११५१) बुरी आदतों से हमारी क्षुद्रता का आभास मिलता है। आदतों को यदि रोका न जाये तो यही आदते जरूरते बन जाती है। जीवन की तलब और लत बन जाती है। जिस आदत से आनन्द न मिले वह आदत मत डालो। आदतें उस रस्सी की तरह है जिसे रोज बल देने से अन्त में इसे तोडना बडा मुश्किल है।

११५२) असफलता के विचार से सफलता का उत्पन्न होना उतना ही असम्भव है जितना बबूल के पेड से किसी प्रकार के फूल का निकलना।

११५३) अस्पृश्यता एक ऐसा सर्प है जिसके सहस्त्रमुख है और जिसके प्रत्येक मुख मे जहरीले दांत दिखाई देते है। यह इतनी जबरदस्त फैली हुई है कि इसे अपने अस्तित्व कायम रखने के लिये किसी प्राचीन शास्त्रों व शास्त्रकारों की आवश्यकता नही पडती।

११५४) आखों के आंसू अमूल्य वस्तु है। प्रेम के, कृतज्ञता के, आनन्द के, दु:ख और पश्चाताप के आंसुओं से ही जीवन का बाग पनपता है।

११५५) महत्वकांक्षाये अपने स्वामी को नष्ट होने के कगार पर पहुंचा देती है। बहुत से व्यक्ति यदि अपनी महान आकांक्षाओं से आक्रान्त न होते तो छोटी बातों में वे अवश्य सफल हो जाते।

११५६) मनुष्य के आचरण से उसके कुल और धर्म का अनुमान लगता है। उसकी भाषा से उसके मूल देश का परिचय प्राप्त होता है। उसके द्वारा किये गये मान सम्मान से उसके हृदय की विशालता, उदारता और कृपणता का अनुमान लगता है।

११५७) आनन्द स्वत: मुक्त है, उस पर किसी का जोर नहीं चलता, न ही किसी प्रकार की गणित उस पर काम करती। आनन्द हर आदमी के अन्दर है और वह पूर्णता और सत्य की खोज से मिलता है। क्षणभर भी काम के बिना रहना ईश्वर की चोरी समझो। दूसरा कोई रास्ता भीतरी या बाहरी आनन्द का नहीं होता।

११५८) धैर्य, धर्म, मित्र और पत्नी इन सब की परीक्षा आपत्ति काल आने पर ही होती है। आपत्तियां हमे आत्मज्ञान कराती है कि हम किस मिट्टी से बने है। आपत्ति हमे मानव बनाती है और दौलत दानव।

११५९) आलस्य एक प्रकार की हिंसा ही है। आलस्य आपके लिये मृत्यु है केवल उद्योग ही आपका जीवन है। आलस्य, पत्नी सेवा, रोगी रहना, जन्मभूमि का मोह, सन्तोष कर लेना और भीरूता ये छ: बाते जीवन की प्रगति मे बाधक होती है।

११६०) आशा जीवन का लंगर है, उसका सहारा छोड देने से आदमी भवसागर से पार नहीं हो पाता। लेकिन हाथ पैर हिलाये बिना केवल आशा करने से ही काम नहीं चल सकता। प्रयत्नशील मनुष्य के लिये सदा आशा है।

११६१) इच्छाओं को त्यागनेवाले व्यक्तियों का गुणगान करना उतना ही असम्भव है जितना अब तक संसार मे मरे हुये लोगों की गिनती करना।

११६२) लगातार सफलता हमे संसार का एक पक्ष दिखाती है जब कि आपत्तियां उस चित्र का दूसरा पक्ष भी दर्शाती है। बुद्धिमान मनुष्य को आपत्तियों से घबराना नहीं चाहिये। अग्नि स्वर्ण को परखती है और आपत्ति वीर मनुष्य को।

११६३) आलस्य जीवित व्यक्ति की मृत्यु है। आलस्य में दरिद्रता का वास होता है। जो कुछ नहीं करता, केवल वही आलसी नही है बल्कि आलसी वह भी है जो अपने काम से भी अच्छा काम कर सकता है पर करता नहीं है।

११६४) आवश्यकता कभी मुनाफे का सौदा नहीं करती। आवश्यकता के लिये कोई कानून और नियम नहीं होता। आवश्यकता के समान कोई सद्‌गुण नहीं है।

११६५) निरर्थक आशा से बन्धा मानव अपना हृदय सुखा डालता है और आशा की कडी टूटते ही वह झट से विदा हो जाता है। आशा अमर है, उसकी आराधना कभी निष्फल नहीं जाती।

११६६) प्रतिदिन जीव मौत के मुंह के ग्रास बन रहे है किन्तु यह जानकर भी शेष लोग अमर रहना चाहते है इससे बढ़कर और कौनसा आश्चर्य होगा ? मनुष्य आश्चर्य पर मुग्ध होते है और यही तो हमारे सम्पूर्ण विज्ञान का मूलाधार है।

११६७) इच्छा की प्यास कभी नही बुझती, न ही पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होती है। इच्छाओं को शान्त करने से नही बल्कि उन्हे परिमित करने से ही शान्ति प्राप्त होती है।

११६८) वास्तव मे इतिहास परिवर्तन का एक लेखा मात्र ही है। जीवन कथाओं के अतिरिक्त और कुछ सत्य इतिहास में नहीं है। वास्तव मे इतिहास मानवता के अपराधों, मूर्खताओं एवं दुर्भाग्यों के लेखे से अधिक कुछ नहीं होता है।

११६९) आपत्ति का सामना करने में सहायता देने के लिये मुस्कान से बढ़कर कोई चीज नहीं है। आपत्तियों को पराजित करना ही जीवन के आनन्द की पराकाष्ठा है।

११७०) ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करता है। आलसी पुरुष को तो वह मरने देना ही अधिक पसन्द करता है क्योकि आलसी पुरुष तो भार है।

११७१) आशा उत्साह की जननी है। आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालक शक्ति है। आशा और आत्मविश्वास ही वे वस्तुये है जो हमारी शक्तियों को जागृत करती है और हमारी उत्पादन शक्ति को कई गुना बढ़ा देती है।

११७२) इतिहास की यत्नपूर्वक जतन और रक्षण करना चाहिये। धन के नष्ट हो जाने पर कुछ नष्ट नहीं होता परन्तु इतिहास के नष्ट कर देने पर सब तरह का विनाश निश्चित है। इतिहास स्वदेशाभिमान का साधन है। इतिहास के अनुभवों से हम सबक नहीं लेते इसी से इतिहास की पुनरावृत्ति होती है।

११७३) ईमानदार आदमी का सोचना लगभग हमेशा न्यायपूर्ण होता है। यदि आपका हृदय ईमान से भरा है तो एक शत्रु तो क्या, सारा संसार आपके सामने हथियार डाल देगा।

११७४) ऊंचे से ऊंचे शिखर पर पहुंचने का लक्ष्य हो तो अपना उद्योग निचली सतह से शुरू करो। अपने काम से जिस बात का वास्ता हो उसे व्यर्थ और अनुपयोगी मत समझो बल्कि उसका ज्ञान प्राप्त करो।

११७५) सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि व आकाश, पृथ्वी, पानी, हृदय, यम, दिन रात, रात दिन की सन्धि बेलाये और धर्म मनुष्य के आचरण को जानते है।

११७६) जो कोई यह कहता है कि ईमानदारी व्यक्ति नाम की कोई वस्तु है ही नहीं वस्तुत: वह स्वयं धूर्त है। यथार्थता और ईमानदारी दोनो सगी बहने है।

११७७) उत्साह मनुष्य की भाग्यशीलता का पैमाना है। उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिये संसार मे कोई भी वस्तु दुर्लभ नही है।

११७८) ईर्ष्या करने वाले का सबसे बडा शत्रु उसकी ईर्ष्या ही है, दूसरे शत्रु उसका अहित करने से भी रह जाये, परन्तु ईर्ष्या उसे हानि पहुंचा कर ही रहती है।

११७९) अपनी कमजोरियों को खूबियों में बदलकर सफलता हासिल करे। परिस्थितियों को अपने उपर हावी होने देने के बजाय उन पर नियन्त्रण करे। अपने आसपास के लोगों के साथ परस्पर मेल जोल बढ़ाकर आस्था और विश्वास को जागृत करे। अपनी रूकावटों से बाज आये।

११८०) उधार वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नही लेता। न उधार दो, न उधार लो क्योकि उधार देने से अक्सर पैसा और दोस्त दोनों ही गंवा बैठते है और उधार लेने से किफायतशारी कुंठित हो जाती है।

११८१) इच्छा का समुद्र अतृप्त रहता है। उसकी मांगे ज्यो-ज्यो पूरी की जाती है तब तब वह गर्जन करता है। पवित्र और दृढ़ इच्छा शक्ति सर्व शक्तिमान है।

११८२) ईर्ष्यालु व्यक्ति को मृत्यु तुल्य दु:ख भोगना पडता है। जिस प्रकार कीट वस्त्र को चुपचाप कुतर डालता है उसी प्रकार ईर्ष्या मनुष्य को नष्ट कर देती है।

११८३) यदि एक मनुष्य की उन्नति होती है तो उसके साथ पूरे संसार की उन्नति होती है। और यदि एक व्यक्ति का पतन होता है तो वह पूरे संसार का राष्ट्र का पतन होता है। प्रत्येक को अपनी उन्नति मे ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये बल्कि सबकी उन्नति में ही अपनी

उन्नति समझनी चाहिये।

११८४) वार्तालाप बुद्धि को मूल्यवान बनाता है किन्तु एकान्त प्रतिभा की पाठशाला है। एकान्त हमें बताता है कि हमें कैसे होना चाहिये जब कि समाज हमें बताता है कि हम क्या है।

११८५) जिसमें तुम्हारी प्रवृत्ति है उसी में लगे रहो। अपनी बुद्धि के मार्ग को मत छोडो। प्रकृति जो कुछ तुम्हे बनाना चाहती है वही बनो। तुम्हे विजय प्राप्त होगी और यदि इसके विपरीत कुछ बनना भी चाहोगे तो भी कुछ बन नही पाओगे।

११८६) ऐश्वर्य का मदिरा-विलास किसे स्थिर रहने देता है। ऐश्वर्य का अर्थ सुख विहार और विलास तो नहीं है यह तो ऐश्वर्य का दुरुपयोग है। ऐश्वर्य ईश्वर का एक विशेष गुण है।

११८७) सभी औषधियों में सर्वोत्तम है विश्राम और निराहार। सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक वो ही है जो अधिकांश औषधियों को व्यर्थ समझता है। सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक वही है जो तुम खोजते हो किन्तु पाते नहीं हो। चिकित्सक तो केवल चिकित्सा करता है लेकिन अच्छा करनेवाली तो प्रकृति है।

११८८) जिन उपहारों की बडी आस लगी रहती है वे भेंट नही किये जाते बल्कि अदा किये जाते है।

११८९) घास पृथ्वी पर अपने सहचरों की खोज करती है किन्तु वृक्ष आकाश में एकान्त का अनुसन्धान करते है। एकान्त प्राय: सर्वोत्तम संगति है।

११९०) आज का सम्पूर्ण चिकित्सा शास्त्र यदि समुद्र में डुबो दिया जाता है तो यह मनुष्यों का परम सौभाग्य होगा किन्तु मछलियों का परम दुर्भाग्य होगा।

११९१) जिस प्रकार समुद्र में बहते हुये लकडी के टुकडे अचानक आ मिलते है और कुछ देर बाद अलग हो जाते है, उसी प्रकार इस संसार मे लोगों का मेल और बिछोह होता आया है।

११९२) किसी के प्रदान करने का ढंग उपहार लेने से अधिक उपहार देने वाले के चरित्र को दर्शाता है। देने वाले का हृदय उपहार को प्रिय और मूल्यवान बना देता है।

११९३) कंजूस लोग न तो अपने धन को खाते है, न किसी अन्य कार्य मे खर्च करते है और न ही किसी को दान देते है। उनका धन आखिर चोर ही ले जाते है। कंजूस एक एक पाई के लिये उतना ही उत्तेजित हो जाता है जितना कि एक महत्त्वाकांक्षी पुरुष एक राज्य की जीत के लिये।

११९४) करूणा में शीतल अग्नि होती है जो क्रूर से क्रूर व्यक्ति का हृदय भी आर्द्र कर देती है। मनुष्य के अन्त:करण में सात्विकता की ज्योति जगाने वाली वही करुणा है।

११९५) कर्ज दी हुई पूंजी ही सारे अनर्थों की जड है और अन्यायमूलक युद्धों की जननी है। कर्ज देना ही पाप करना है। जो कर्ज लेने जाता है वह कष्ट मोल लेने जाता है।

११९६) मै परमात्मा हूं कहने भर से कोई परमात्मा नहीं बन जाता जैसे मै करोडपति हूं कहने मात्र से कोई करोडपति नहीं बन जाता इसलिये उसके पास करोडो रूपये का धन होना आवश्यक है।

११९७) अगर चिड़ियां एकता कर ले तो शेर की भी खाल खींच सकती है। सबको हाथ की पाँचों उंगलियों की तरह रहना चाहिये। अंगुलिया चाहे छोटी हो या बडी किसी चीज को उठाते समय पाचों इकट्ठी होकर काम करती है। है तो गिनती मे सिर्फ पांच लेकिन काम हजारों का कर लेती है क्योंकि उनमें एकता है।

११९८) जीवन का सबसे बडा पुरस्कार, जीवन की सबसे बडी सम्पत्ति है किसी विशेष बात की प्रवृत्ति लेकर जन्म लेना। मनुष्य को उसी प्रवृत्ति की पूर्ति मे सुख मिलता है।

११९९) कर्तव्य कठोर होता है भाव प्रधान नहीं। कर्तव्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो नाप-जोख कर देखा जाये। कर्तव्य कभी भी आग और पानी की परवाह नहीं करता। कर्तव्य पालन ही चित्त की शान्ति का मूल मन्त्र है।

१२००) केवल कर्महीन ही ऐसे होते है जो भाग्य को कोसते रहते है और जिनके पास शिकायतों का बाहुल्य होता है। इस संसार मे

सब पदार्थ सुलभ है किन्तु कर्महीन लोग ही उन्हे प्राप्त नही कर पाते। कुछ भी न बनने का सरल मार्ग है कुछ न करना।

१२०१) कलंक मृत्यु का कारण होता है। चन्द्रमा अपना प्रकाश सारे आकाश में फैलाता है परन्तु अपना कलंक अपने ही भीतर रखता है। दूसरों के सुयश का नाश करके जो आत्म यश चाहते है उन्हे ऐसा कलंक लगता है जो कभी नहीं मिटता।

१२०२) कल्पना विश्व पर शासन करती है। कल्पना का यह सुन्दर जगत कितना मोहक और मधुर होता है। छाया में सुख स्वपनों का समूह पुलकित होकर जागता-सोता रहता है।

१२०३) कवि का सबसे बडा गुण नई-नई बातों का सूझना है। कवि का काम है कि वह प्रकृति विकास को खूब ध्यान से देखे। कवि जिस समय कविता करता है वह अलौकिक मानव बन जाता है। कवि विश्व के अस्वीकृत व्यवस्थापक है। कवि केवल देखते ही नहीं प्रकाश भी करते है। कवि केवल सृष्टि ही नहीं करता साथ में सृष्टि की रक्षा भी करता है।

१२०४) इतिहास की अपेक्षा कविता सत्य के अधिक निकट आती है। कविता प्रसाद, पीडा और आश्चर्य का समझौता है जिसे लिखने के लिये शब्दकोश पर आश्रित रहना पडता है।

१२०५) आज के कष्टों का सामना करने वाले के पास आगामी कल के कष्ट आते हुये झिझकते है। कष्ट हमारे पापों का प्रायश्चित है। कष्ट हृदय की कसौटी है।

१२०६) कानून हमको गैर कानूनी आचरण से रोक सकता है लेकिन ऐसे अनाचार से नहीं रोक सकता जो कानून के दायरे से बाहर हो।

१२०७) मै एक आवाज को सुन रहा हूँ, उसे तुम नहीं सुन सकते। वह मुझसे कह रही है रूको मत। मुझे कोई हाथ उठाकर बुला रहा है परन्तु तुम उस हाथ को देख नहीं सकते वही एकाग्रता है।

१२०८) कर्ज मांगना भीख मांगने से अधिक श्रेयस्कर नहीं है। जो कर्ज आप पर है उसे चुका दीजिये और तभी आपको पता चलेगा कि आपके पास अपना क्या है।

१२०९) कर्म भले ही सदा सुख न ला सके, किन्तु कर्म किये बिना सुख भी प्राप्त नहीं होता। कर्म वही श्रेष्ठ है जिससे बहु संख्यक लोगों को अधिक से अधिक आनन्द की प्राप्ति हो। मनुष्य के कर्म ही उसके विचारों की सबसे बडी व्याख्या है।

१२१०) स्वयं को कल पर आश्वस्त मत करो क्योकि मालूम नहीं कि कौनसा दिन आपके लिये क्या लायेगा। गहन तमिस्रा में भी मुकुलित कल निहित है।

१२११) सम्पूर्ण कला केवल प्रकृति का ही अनुकरण है। प्रकृति ईश्वर का प्रकट रूप है और कला मनुष्य का। कला विचार को मूर्त रूप मे परिणत कर देती है।

१२१२) कल्पना में प्रिय और मोहक प्रतीत हुई भी इसकी बाते यथार्थ में सदा प्रिय नही होती है। पागल, प्रेमी और कवि कल्पना से परिपूर्ण होते है।

१२१३) हृदय से सभी व्यक्ति कवि होते है। प्रणय के समय प्रत्येक व्यक्ति कवि बन जाता है। कवि होने के पश्चात दूसरी महानता है काव्य को समझना।

१२१४) कविता ही मनुष्य हृदय को स्पर्श सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है जहां जगत की मान्य गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

१२१५) नियमों का विधान मनुष्य के लिये हुआ, मनुष्य का निर्माण नियम के लिये नहीं। कानून निर्धनों पर शासन करता है और धनी लोग कानून पर शासन करते है।

१२१६) बडप्पन, पांडित्य, कुलीनता और विवेक मनुष्य में उसी समय तक रहते है जब तक शरीर में काम वासना प्रज्ज्वलित नही होती। कामदेव बडा ही छली है जो उसका विश्वास कर लेता है वह धोखा खा जाता है।

१२१७) कीर्त्ति, कविता और वैभव वही अच्छा होता है जिससे गंगाजी के समान सबका कल्याण हो। जो लोग दूसरों का यश मिटा कर अपने लिये यश को प्राप्त करना चाहते है उनके मुंह पर ऐसी कालिख पुत जाती है जिसे धोते धोते मर जाने पर भी वह छूटती नही है।

१२१८) सम्पूर्ण संसार को एकता के सूत्र में बांधने की योजनाये बनाना सरल है किन्तु अपने हृदय में रहनेवाले क्रोध पर विजय पाना अत्यन्त कठिन है। जो मनुष्य अपने क्रोध को अपने उपर झेल लेता है वही दूसरों के क्रोध का शमन कर सकता है और अपने जीवन

को सुखी बना सकता है।

१२१९) ख्याति नदी की भांति अपने उद्गम् स्थान पर अति संकीर्ण और बहुत दूरी पर अति विस्तृत होती है। किसी पूर्व ख्याति का उत्तराधिकार प्राप्त करना एक संकट मोल लेने जैसा है। बहुतों को ख्याति अत्यन्त विलम्ब से प्राप्त होती है।

१२२०) गरीबी स्वयं में अपमानजनक नहीं है केवल उस गरीबी के अतिरिक्त जो आलस्य, व्यसन, फिजूल खर्ची या मूर्खता के कारण प्राप्त हुई।

१२२१) छोटा सा कर्ज किसी आदमी को आपका देनदार बना देता है और बडा कर्ज उसको आपका शत्रु बना देता है क्योकि वह कर्ज अदा नहीं कर पाता है।

१२२२) एक कर्तव्य की पूर्ति का पुरस्कार है और दूसरे कर्तव्य को पूर्ण करने की योग्यता होना। आत्म ज्ञान का सम्पादन करना और आत्म केन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य मात्र का परम कर्तव्य है।

१२२३) जो कला आत्मा को आत्म दर्शन की शिक्षा नहीं देती वह कला नहीं है। कला की कीमत परिणाम से नहीं, उसके कलात्मक गुणों से आंकी जाती है।

१२२४) ऐसा कोई व्यक्ति आज तक महान कवि नही हुआ जो कवि होने के साथ-साथ प्रकांड दार्शनिक न हुआ हो। आधुनिक कवि अपनी मसि में पानी अधिक मिश्रित कर देते है।

१२२५) कविता वह मनीषा है जो हृदय को आह्लादित कर देती है। मनुष्य ही एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द चित्र मात्र है, जिसमें उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है।

१२२६) अत्यन्त शिष्ट कानूनों का पालन प्राय: कम ही होता है जबकि अत्यन्त कठोर नियमों का उल्लंघन बहुत कम होता है। यदि कानून केवल शासकीय अधिकारियों के पास रहे तो कानून का शीघ्र ही अन्त और पतन आजायेगा।

१२२७) कार्य की अधिकता नहीं अनियमितता आदमी को मार डालती है। जिस कार्य के लिये पर्दे की आवश्यकता हो चाहे उसका उद्देश्य कितना ही पवित्र हो बिना परदे वह अपमानजनक है।

१२२८) स्नेह के धन को क्रोध, द्वेष तथा ईर्ष्या के तूफान में बहा कर अपने गर्व की रक्षा करना कायरता है। यह संसार कायर पुरुषों के लिये नहीं है इसलिये इससे पलायन करने का प्रयास मत करो।

१२२९) कुसंगति के कारण किसका नाश नहीं होता। नीच व्यक्ति की मति से चातुर्य का विनाश हो जाता है। जो मूर्ख दुष्टों का साथ करता है वह अपने हाथों से अपने पैरों मे कुल्हाडी मारता है।

१२३०) जो क्रोध पर उचित नियन्त्रण रख सकते है, वे ही स्वर्ग के सच्चे अधिकारी है। जो क्रोध मे विलम्ब कर सकता है वह महान विवेक से सम्पन्न है किन्तु जिसमें उतावलापन है वह मूर्खता का उपासक है। क्रोध की सर्वोत्तम औषधि है विलम्ब। क्रोध के सिंहासन पर बैठते ही बुद्धि वहां से प्रयाण कर जाती है।

१२३१) ख्याति केवल जनता की सांस है और प्राय: अस्वास्थ्यकर होती है। वह नाम कितना भार स्वरूप होता है जो अतिविख्यात हो जाता है। महत्त्वाकांक्षी के लिये प्रसिद्धि (ख्याति) खारे जल के समान है जिसे जितना वह पीता है, उसकी प्यास उतनी ही और अधिक बढ़ती जाती है।

१२३२) गरीब वह नहीं जिसके पास कम है बल्कि धनवान होते हुये भी जिसकी इच्छाये कम नही हुई वह सबसे गरीब है। उस मनुष्य से गरीब कोई नही जिसके पास केवल पैसा हो और नैतिकता कुछ भी न हो। जिसने अपने धन पर, अपने पर वर्ग किया उसका निश्चित पतन हुआ।

१२३३) तर्क ही कानून का जीवन है, यही नही, स्वयं सामान्य कानून ही तर्क के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कभी अपने आप को बहुत ऊंचा मत समझो। कानून तुमसे भी उपर है।

१२३४) अगर तुम गलतियों को रोकने के लिये दरवाजे बन्द करोगे तो सत्य भी बाहर ही रह जायेगा। गलती तो हर मनुष्य कर

सकता है लेकिन उसपर केवल मूर्ख व्यक्ति ही अडे रहते है।

१२३५) समकालीन व्यक्ति गुण की अपेक्षा मनुष्य की प्रशंसा करते है, आनेवाली पीढ़ियां मनुष्य की अपेक्षा उसके गुणों का सम्मान करेगी। गुण मनुष्य के वश में होता है, प्रतिभा के वश में मनुष्य स्वयं होता है।

१२३६) महान परिणामों की जन्मदात्री घटनाये प्राय: निरर्थक परिस्थितियों से उत्पन्न होती है। कभी कभी जीवन में ऐसी घटनाये हो जाती है, जो क्षण मात्र में मनुष्य का स्वरूप पलट देती है।

१२३७) घनिष्ठता एक जादू है जो कुरुपता के प्रति तो दयालु है लेकिन सौन्दर्य के प्रति कठोर। चाहे घनिष्ठता घृणा न भी उत्पन्न करे किन्तु प्रशंसा को खो बैठती है।

१२३८) कानून एक ऐसे गड्ढे के समान है जिसकी कोई थाह ही नही। कानून तो जैसे मकडी के जाले है। छोटे-छोटे जीव उनमे फंसकर प्राण खो बैठते है, जबकि बडे जीव तो उन्हे भी फाडकर फेंक देते है।

१२३९) कायर पुरुष अपनी मंजिल तक जाने मे डगमगा जाते है किन्तु साहसी पुरुष बहुधा आपदाओं पर विजय प्राप्त कर लेते है। जब किसी पर भयानक आपदा आ पडती है तब वह पैरों से भी सोचने का काम लेता है।

१२४०) यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मरते ही यह संसार तुम्हे भूल न जाये तो तुम या तो पढ़ने योग्य रचनाओं की सृष्टि करो या वर्णन करने योग्य कर्म कर जाओ।

१२४१) यदि आपमें अपनी माँ को, पत्नी को, अपने भाईको, बेटेको, पतिको क्षमा करने की सामर्थ्य नहीं है तो आप गृहस्थी चलाने के योग्य नहीं है। यह जो संयुक्त परिवार बनाने-चलानेकी योग्यता आपमें है, उससे आप क्षमाके बिना बिलकुल वंचित हो जायेंगे।

१२४२) पत्थर से मूर्ति बनने के लिए उस पत्थर को कई चोटें खानी पड़ती हैं। उसे तराशा जाता है, बहुत तराशने के बाद ही मूर्ति बन जाती है। उसे मंदिर में बिठाया जाता है और हजारों लोग उसकी पूजा करते हैं लेकिन मूर्ति बनने के लिए उस पत्थर को बहुत सारा सहन करना पडता है जिसे कुछ नहीं सहन करना पडता वह एक मामूली सीढ़ी बन जाता है, जिस पर लोग पैर देकर निकल जाते है।

१२४३) पाप में तुरंत सुधार न लाया गया तो वह कर्ज के ब्याज की तरह बढ़ता जाता है। क्रोध भी वैसा ही है। इसलिए क्रोध पर नियंत्रण करना जरूरी है।

१२४४) चरित्र के बिना ज्ञान बुराई की ताकत बन जाता है जैसे कि दुनिया के कितने ही चालाक चोरों और भलेमानुस बदमाशी के उदाहरण से स्पष्ट है। चरित्र की शुद्धि ही सारे ज्ञान का ध्येय होना चाहिये।

१२४५) विजय के पास पहुंच कर तो कायर भी वीर हो जाते है जैसे घर के समीप पहुंचकर थके हुये पथिक के पैरों में भी पर लग जाते है। कायर तभी धमकी देता है जब वह सुरक्षित होता है।

१२४६) दुर्बल चरित्र का व्यक्ति उस सरकंडे जैसा है जो हवा के हर झोके के साथ झुक जाता है। चरित्र तो वृक्ष है और प्रतिभा उसकी छाया। चरित्र ही केवल एक स्थायी भाव है।

१२४७) गुण एकान्त मे विकसित होता है। चरित्र का निर्माण संसार के भीषण भयानक कोलाहल में भी होता है। मानव की सबसे बडी आवश्यकता शिक्षा नहीं चरित्र है और यही उसका सबसे बडा रक्षक और काम आने वाला है।

१२४८) चिकित्सा विज्ञान असीमित, अगाध जलाधि के समान है तथा उसका वर्णन हजारो श्लोकों द्वारा भी नहीं किया जा सकता। मन की प्रसन्नता से समस्त मानसिक और शारीरिक रोग दूर हो जाते है।

१२४९) ईश्वर ने तुम्हे केवल एक चेहरा दिया है लेकिन तुम स्वयं दूसरा बना लेते हो। सभी मनुष्यों के चेहरे वास्तविक होते है उनके हाथ चाहे जैसे हो। हंसमुख चेहरा रोगी के लिये लगभग उतना ही अच्छा है जितनी कि स्वस्थ ऋतु।

१२५०) ठोकर लगे और दर्द हो तभी आदमी सीख पाता है। दूसरों के अनुभव से होशियारी सीखने की मनुष्य की इच्छा नहीं होती उसको तो स्वतन्त्र रूप से ठोकर लगनी चाहिये वरना तो ठोकरे केवल धूल ही उडाती है, धरती से फसले नहीं उगाती।

१२५१) चिकित्सक उपचार करते है, प्रकृति अच्छा करती है। वैद्य प्रकृति के सहायक है। चिकित्सक मृत्यु पर्यन्त विद्यार्थी ही रहता है और जब वह विद्यार्जन की इच्छा छोड देता है तभी उसकी मृत्यु समझना चाहिये।

१२५२) जहां डींग खत्म हो जाती है, वहीं से प्रतिष्ठा शुरू होती है। मुंह तक भरे घडे से आवाज नहीं निकलती, आधा भरा घडा ही आवाज करता है।

१२५३) अनुभव अच्छा है यदि उसका अधिक मूल्य न चुकाना पडे। अनुभव ज्ञान का पिता है और स्मरण शक्ति उसकी माता। कष्ट सहने पर ही अनुभव होता है।

१२५४) समाज की महती आशा का केन्द्र बिन्दु व्यक्तिगत चरित्र ही है। समाज के प्रचलित विधि विधानों के उल्लंघन का दु:ख केवल चरित्र के बल पर ही सहन किया जा सकता है। जीवन का तीन चौथाई आधार नेक चाल चलन है।

१२५५) जगत एक सुन्दर पुस्तक है लेकिन जो इसे नहीं पढ़ता उसके लिये यह निरर्थक है। सभी सम्भव संसारों में यह जगत सर्वोत्तम है और इसमे प्रत्येक वस्तु अच्छाई के लिये है।

१२५६) मनुष्य की आशा और तृष्णा कभी भी शान्त और समाप्त नहीं होती। तृष्णा सन्तोष की वैरिन है, वह जहां अपने पांव जमाती है, वहां से सन्तोष को भगा देती है। तृष्णा का प्याला पीकर आदमी अविचारी और पागल हो जाता है।

१२५७) दरिद्रता सब कलहों की जड है। दरिद्रता सब पापों की जननी है और लोभ उसकी सबसे बडी सन्तान है। दरिद्रता में जितना धैर्य रखा जाय, उतनी ही सहनशक्ति बढ़ती है।

१२५८) चरित्र एक ऐसा हीरा है जो अन्य सभी पाषाण खंडों को काट देता है। जो तुम जानते हो वही करो। विचार ही चरित्र मे परिणित हो जाते है। तुम्हे व्यक्ति की अन्दर भी उतना ही झांकना चाहिये, जितना उसके उपर।

१२५९) खाने और सोने का नाम जीवन नहीं है। जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ने की लगन का। जीवन विकास का सिद्धान्त है, स्थिर रहने का नही। लगातार विकसित होना स्थिर अवस्था में रहने की आज्ञा नहीं देता।

१२६०) दो अर्थोंवाले शब्द बोलकर, किसी विशेष शब्द पर जोर देकर या आंख के इशारे से भी झूठ बोला जाता है। इस प्रकार का झूठ स्पष्ट शब्दों में बोले गये झूठ से कई गुना बुरा है।

१२६१) अनन्त आलोकवान नक्षत्र तभी चमकते है जब अन्धकार पर्याप्त घनीभूत होता है। बिना झंझा और मेघ मालाओं के कभी इन्द्र धनुष नहीं बन सकता। यदि भोजन मिलता रहे तो सभी दु:ख सहे जा सकते है।

१२६२) हमारा चरित्र अच्छाई और बुराई के बीच किये गये जीवन मे स्वतन्त्र चुनाव की हमारी आत्मा पर मुद्रा-मात्र है। उत्तम व्यक्ति शब्दों में सुस्त और चरित्र में चुस्त होता है।

१२६३) जीवन का एक क्षण करोडो स्वर्ण मुद्राये देने पर भी नहीं मिलता। मूर्ति के समान मनुष्य का जीवन सभी ओर से सुन्दर होना चाहिये। अपना जीवन लेने के लिये नहीं देने के लिये बना है। मनुष्य जीवन अनुभव का शास्त्र है।

१२६४) दुर्भावना को मैं मनुष्यत्व का कलंक मानता हूँ। दुर्भावना अपने विष का आधा भाग स्वयं पीती है। आदमी की दुर्भावना उसके दुश्मन की बजाय उसे ही अधिक दु:ख देती है।

१२६५) हमारी कुछ दुर्बलताये पैदाइशी होती है और कुछ शिक्षा का परिणाम है लेकिन कौनसी हमे अधिक कष्ट देती है यही जानने योग्य है तभी उसका निवारण हो सकता है।

१२६६) दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण, पर स्त्री गमन और अपने हितैषी सुहृदों के प्रति घोर अविश्वास ये तीनों दोष जीवन का नाश करने वाले होते है। दोष से हम सब भरे है मगर दोष मुक्त होने का प्रयास करना हम सबका कर्तव्य है।

१२६७) यशपूर्ण जीवन का एक व्यस्त घंटा कीर्ति रहित युगों से कहीं अधिक है। जो दूसरों के जीवन के अन्धकार मे सूर्य का प्रकाश पहुंचाते है उनका इस मृत्युलोक में कभी नाश नहीं होगा।

१२६८) जब दया का देवदूत दिल से दुत्कार दिया जाता है और जब आँसुओं का फव्वारा सूख जाता है तो इन्सान रेगिस्तान के रेत मे रेंगते सांप की तरह हो जाता है।

१२६९) पुरूषार्थ करने से ही जीवन में सफलता प्राप्त होती है। आराम के साथ घर में बैठकर भाग्य के भरोसे सफलता प्राप्ति की आशा हथेली पर सरसों उगाने के समान है। सच पूछो तो बिना प्रयास के लक्ष्मी का वरण असंभव है। सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की

दुर्बलता के नाम है। मै तो पुरूषार्थ को ही सब का नियामक समझता हूँ। पुरूषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है।

१२७०) जीवन में अचानक ऐसे मोड आ जाते हैं जिन की हम कल्पना भी नहीं करते। मनुष्य की सभी योजनाएं सफल नहीं होती। प्रयास और प्रयत्न करने पर भी फलस्वरूप जो परिणाम आते है वे हमारी आशा और कल्पना के बिलकुल विपरीत होते है। हमारी वृत्तियां कुछ और होती है और परिस्थितियों के समीकरण में उलझकर हम उस के विपरीत कार्य कर बैठते है। कोई इसे संयोग कहकर संतोष कर लेता है, कोई भाग्य या विधि को दोष देता है, तो कोई यथार्थ की संज्ञा देकर रोता है।

१२७१) अनमोल मोती सागर की सतह पर ही नहीं मिल जाते। रात्रि के अंधकार में सूर्यकांत मणि तेज की किरणें नहीं फेंकती, चकमक पत्थर कोमल वस्तु की रगड पर चिंगारी उत्पन्न नहीं करता। इन सब को विरोध की अपेक्षा होती है। अन्याय से पिसे हुए मन को बेचैन बना दो, अंदर तक रक्त की एक-एक बूंद में ऊबाल आना चाहिए। अन्याय का इंधन प्रतिशोध की भट्टी में तपता रहे, ऐसी भट्टी में फिर सद्‌गुणों के कण चमकने लगते है।

१२७२) गुण न हो तो, रूप व्यर्थ है, विनम्रता न हो तो, विद्या व्यर्थ है। उपयोग न हो तो, धन व्यर्थ है, साहस न हो तो हथियार व्यर्थ है। भूख न हो तो भोजन व्यर्थ है, होश न हो तो जोश व्यर्थ है। स्व परोपकार न हो तो जीवन भी व्यर्थ है।

१२७३) जीवन में ऐसे भी क्षण आ जाते है जब समझ और सोच की शक्तियां शिथिल पड जाती है। जब मन के आगे मस्तिष्क का कोई बस नहीं चलता और मनुष्य सब कुछ सोचने पर भी वही करता है, जिसे मानने को साधारणतया बुद्धि तैयार नहीं होती।

१२७४) महत्वपूर्ण यह नहीं कि तुम काम में कितनी बार विफल हुए हो, बल्कि यह है कि तुम ने कितनी बार यत्न किया है। महत्वपूर्ण यह नहीं कि तुम कितनी बार गिरे हो, बल्कि यह है कि तुम गिर कर कितनी बार संभले हो। वही अनुभव, पुस्तक, आदेश अथवा विचार मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक महत्व रखता है जो उसके हृदय को छूकर उस में छिपी महानता, उसके सोए हुए सिंह को जगा दे। महत्वपूर्ण वह नहीं जो तुम आज हो, बल्कि वह है जो तुम कल बन सकते हो।

१२७५) वह व्यक्ति धन्य है, जो अपने पुराने अनुभवों के बल पर, विवेक, बुद्धि एवं निज शक्ति को देखकर अपने भविष्य की कल्पना करता है। भविष्य की आशा जरूर कीजिए, किंतु सावधान, ऐसी ऊँचीऊँची असंभव कल्पनाओं में मत डूब जाइए जो कभी पूर्ण न हों या जिन तक आप की शक्तियां न उठ सकें। अपने वर्ग, स्तर और योग्यताओं के अनुसार आप भविष्य को उज्ज्वलतर बनाने की शुभ कामनाएं करें।

१२७६) दुष्ट और सज्जन की मित्रता में अन्तर होता है। यह अन्तर दिन के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध की छाया के समान होता है। सज्जन की मित्रता धीरे-धीरे बढ़ती है परन्तु दुष्ट की मित्रता जल्दी ही घनिष्ठता का रूप धारण कर लेती है और जल्दी ही समाप्त हो जाती है। दुष्ट मनुष्य यदि विद्वान हो तो भी उसके संग से बचना चाहिये।

१२७७) नीति निपुण निन्दा करे या प्रशंसा करे, लक्ष्मी आवे चाहे चली जावे। मृत्यु चाहे आज ही हो जाये, चाहे एक युग के पश्चात, परन्तु धीर पुरुष न्याय मार्ग से एक पग भी विचलित नहीं होते।

१२७८) जिन दोषों को हम दूसरे में देखते है उन्हे अपने में न रहने दे। आपने उस आदमी के बारे में नहीं सुना जो सूर्य को इसलिये दोष देता था कि वह सिगरेट नहीं जलाता था।

१२७९) जो यह कल्पना करता है कि वह दुनिया के बगैर भी अपना काम चला लेगा, वह अपने आप को धोखा देता है, पर जो इस खयाल में डूबा रहता है कि दुनिया का काम उसके बगैर नहीं चल सकता, वह इससे भी और बडे धोखे का शिकार है।

१२८०) पशुता सुख की और खीचती है, मानवता आजादी की तरफ। मानव का ध्येय सुख नहीं समता है। ध्येय जितना महान होता है, उसका रास्ता उतना ही लम्बा और बीहड़ होता है।

१२८१) मानव नकल करनेवाला प्राणी है जो सबसे आगे बढ़ जाता है वही समूह का नेतृत्व करता है। जहां नकल है वहां खाली दिखावट होगी। जहाँ खाली दिखावट है वही मूर्खता होगी।

१२८२) संसार के विरुद्ध खडे रहने की शक्ति प्राप्त करने के लिये मगरूर या तुच्छ बनने की आवश्यकता नही। ईसामसीह दुनिया के खिलाफ खडा रहा। बुद्ध भी अपने जमाने के खिलाफ गया। प्रल्हाद ने भी अधिक घोर संघर्ष किया। ये सब नम्रता के पुतले थे। अकेले खडे रहने की शक्ति नम्रता के बिना असम्भव है।

१२८३) नशा करनेवाले मित्र से कोई कितना भी प्रेम क्यो न करता हो, पर जब किसी पर निर्भर करने का अवसर आता है तो वह केवल उसी पर भरोसा करता है। जो नशा न करता हो। नशे मे क्रोध की भाति ग्लानि का वेग भी सहज में उठ आता है।

१२८४) नसीहत बर्फ के समान है। जितना धीरे-धीरे गिरती है उतनी ही अधिक स्थायी होती है और उतनी ही गहराई से मन मे प्रवेश करती है। ऐसी भी नसीहत मत दो जो अति सुन्दर हो बल्कि ऐसी दो जो अतिलाभदायक हो। अच्छी नसीहत अमूल्य होती है। अच्छी नसीहत मानना अपनी ही योग्यता बढ़ाता है।

१२८५) हमें और कोई धोखा नहीं देता। हम स्वयं अपने आप को धोखा देते है। व्यक्ति जितना स्वयं के द्वारा छला जाता है दूसरों के द्वारा उतना आज तक नही छला गया। सब धोखों में प्रथम और सबसे खराब है अपने आपको धोखा देना।

१२८६) इससे बड़ी कोई घातक भूल नहीं कि हम मंजिल को ही मंजिले-मकसूद समझ ले या किसी पडाव पर अधिक देर तक ठहरे रहे। अपने लक्ष्य को कभी न भूलो अन्यथा जो कुछ मिलेगा, उसी में सन्तोष मानने लगोगे।

१२८७) नम्रता का अर्थ झुकने का कदापि नही है, इसका अर्थ है लचीलापन। लचीलापन में तनने की शक्ति भी है, जीतने की कला है और शौर्य की पराकाष्ठा। विनय पात्रता प्रदान करती है। नम्रता तो पत्थर को भी मोम कर देती है।

१२८८) मन स्वेच्छा से स्वयं में स्वर्ग को नरक, नरक को स्वर्ग बनाता है। नरक ईश्वर का न्याय है, स्वर्ग उसका प्रेम है और पृथ्वी उसकी दीर्घकालीन यातना। बुरे अन्त:करण की यातना आत्मा का जीवित नरक है।

१२८९) प्रकृति का यह एक साधारण शाश्वत नियम है जो कभी नही बदलेगा कि योग्य व्यक्ति अयोग्यों पर शासन करते रहेंगे। नियम यदि एक क्षण के लिये भी टूट जाये तो सारा सौर्य मन्डल का सन्तुलन अस्त व्यस्त हो जाये इसलिये नियम पालन करना सार्वभौम है।

१२९०) सभ्यता में उस मनुष्य के लिये कोई स्थान नही है जो उदास, खिन्न मन और निराश हो। निराशा से जीवन के बहुमूल्य तत्व नष्ट हो जाते है। इससे विजय के बहुत से अवसर खो जाते है।

१२९१) वेदना और भय के समय कोई भी नास्तिक नहीं होता। जब बुद्धि नहीं जानती कि कहां जाये तो ईश्वर की शरण में ही व्यक्ति दौडता है। किसी मूर्ख ने ही सोचा कि ईश्वर है ही नहीं लेकिन शक्ति के समय घोर नास्तिक भी ईश्वर में विश्वास करने लगता है।

१२९२) इसमे सन्देह नही कि बडे-बडे कारखानों के मालिकों ने अपना जीवन निर्धन लडकपन से ही आरम्भ किया था। इतिहास का सबसे महान व्यक्ति सर्वाधिक निर्धन था। निर्धन होना कोई पाप तो नही। जो हंस सकता है वह कदापि निर्धन नही है।

१२९३) अनुभव बताता है कि मुसीबत के समय में दृढ़ निश्चय पूरी सहायता करता है। जिसका निश्चय दृढ़ और अटल है वह दुनिया को अपने सांचे मे ढाल सकता है।

१२९४) जिनका पद तो ऊंचा है किन्तु करनी नीची है, वे दूसरे का धन वैभव नही देख सकते। नीच मनुष्य विपत्ति मे फंसने पर प्रारब्ध की ही निन्दा करते है अपने किये हुये कुकर्मों की नही।

१२९५) ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मन्त्र न हो, ऐसा कोई पौधा नही है जो औषधि न हो और इस जगत मे ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो किसी न किसी काम का न हो इनको यथा योग्य काम मे लगा कर इनका उपयोग करना चाहिये।

१२९६) नैतिकता एक बहुमूल्य एवं व्यक्तिगत विलासिता है। मानवता को नाक के बल चलाने के सभी साधनों में नैतिकता सर्वोत्तम साधन है। सामग्री द्वारा नही, अपितु नैतिकता के बल द्वारा ही मनुष्यों और उनके कर्मों पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

१२९७) मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उदार बनने से पूर्व न्यायशील बने। केवल न्याय ही वास्तविक सुख है, अन्यायी तो सर्वदा दु:खी है। बिना बुद्धिमत्ता के न्याय असम्भव है।

१२९८) अच्छे संस्कार के बिना व्यक्ति जीवन तो व्यतीत कर सकता है लेकिन इन्सान नहीं बन सकता। परिवार की नीव संस्कारों पर ही आधारित होती है, यह शिक्षा स्कूलों और विश्व विद्यालयों में नहीं दी जा सकती।

१२९९) संकट के समय धैर्य धारण करना ही मानो आधी लडाई जीत लेना है। धैर्य वीरता का अति उत्तम, मूल्यवान दुष्प्राप्य अंग है। धैर्य आशा करने की कला है। वे निर्धन है जिनके पास धैर्य नही। क्या आज तक कोई जख्म बिना धैर्य रखे ठीक हुआ।

१३००) व्यक्ति जिसको प्रेम करता है उसके द्वारा वह सरलता से धोखा खा जाता है। जो मनुष्य जान बूझकर अपने मित्र को धोखा देता

है वह अपने ईश्वर को भी धोखा देता है। व्यक्ति दूसरों के साथ विश्वासघात करते समय जितना धोखा खाता है उतना कभी नही खाता।

१३०१) हर चीज के विषय में निराश होने की अपेक्षा आशावान होना बेहतर है। निराशा जब चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब हमारी जीभ बन्द हो जाती है।

१३०२) मधुमक्खियां केवल अन्धेरे में काम करती है। विचार केवल मौन में काम करते है, नेक काम भी गुप्त रह कर ही कारगर होते है। बदी करने के अवसर दिन मे सौ बार आते है लेकिन नेकी करने का अवसर वर्ष में सिर्फ एक बार आता है। दुश्मन के साथ नेकी करना रोगियों की सेवा से छोटा काम नहीं है।

१३०३) अत्यधिक नैतिक मत बनो अन्यथा तुम धोखा खा सकते हो। अपने ध्येय को नैतिकता से भी ऊपर रखो। केवल अच्छे मत बनो, किसी उद्देश्य के लिये अच्छे बनो।

१३०४) न्याय करने में देर करना अन्याय है। न्याय में देरी न्याय को अस्वीकार करना है। न्याय की बात कहने के लिये हर समय सही है। न्याय के समान कोई गुण वास्तव में ईश्वर तुल्य नही है।

१३०५) धर्म एक भ्रमपूर्ण सूर्य है, जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है जब तक कि मनुष्य मनुष्यता के गिर्द नहीं घूमता। धर्म होने पर जब मनुष्य इतने नीचे है तो धर्म न होने पर वे क्या होंगे।

१३०६) मनुष्य अपने आप को धोखा देने में कितना कुशल और बुद्धिमान है। एक मूर्ख से भी अधिक आशा की जा सकती है लेकिन उस व्यक्ति से नहीं।

१३०७) कठिनाइयों और हानियों को सहन करने के पश्चात मनुष्य विनीत और बुद्धिमान हो जाता है। नम्रता मे महान व्यक्तियों का अनुसरण करो। अपनी नम्रता का घमन्ड करने से अधिक निन्दनीय और कुछ नही है।

१३०८) शक्तियों का एक नियम है जिसके कारण चीजे समुद्र में डूब कर एक खास गहराई से नीचे नहीं जा सकती। लेकिन नीचता के समुद्र में जितने गहरे हम जाये उतना ही नीचता में डूबना आसान है।

१३०९) आज का हमारा न्याय तो बुरी तरह बेजुबान और खुले आम अन्धा है, बेकसी की लम्बी मार से वह पीडित है। ईश्वरीय न्याय की चक्की यद्यपि धीमी गति से चलती है तथापि चलती अवश्य है।

१३१०) अच्छा पडोसी नियामत है, बुरा पडोसी अभिशाप। सच्चा पडोसी वह नहीं जो तुम्हारे साथ उसी मकान में रहता हो बल्कि वह है जो तुम्हारे विचार स्तर पर समान हो। अपने पडोसी के विरुद्ध झूठी गवाही मत दो।

१३११) जब तुम्हारे पडोसी के घर मे आग लगी हो तो तुम्हारी अपनी सम्पत्ति भी सुरक्षित नहीं है, खतरे में है। अपने पडोसी की निन्दा करना सनातन काल से मनुष्य के मनोरंजन का विषय रहा है।

१३१२) पराधीन जिन्दा नही बल्कि मुर्दा है। पराधीनता समाज के सभी मौलिक नियमों के विरुद्ध है। पराधीन मनुष्य को सपने मे भी कभी सुख नही मिलता। मनुष्य अपनी इच्छानुसार कुछ भी नही कर सकता क्योकि पराधीन होने के कारण वह असमर्थ है। काल उसे इधर-उधर खींचता रहता है।

१३१३) परिवर्तन काल और सृष्टि का नियम है। हर चीज अपने रूपान्तर में बदलती है, नष्ट कोई चीज नहीं होती। केवल परिवर्तन को छोडकर शेष सभी वस्तुये परिवर्तनशील है। सभी वस्तुयें नवीन और विचित्र रूपों में परिवर्तित होती रहती है। जो कुछ क्षण पहले था वह अब नहीं है, इसी को परिवर्तन कहते है।

१३१४) गम्भीर परिस्थितियां ही आदमी का विद्यालय है। मनुष्य की विशेषता इसी मे है कि वह जितना अधिक हो बाहरी परिस्थितियों पर शासन करे और जितना कम हो सके उनसे शासित हो। परिस्थितियां जीवन को बदल देती है।

१३१५) यदि मनुष्य परोपकारी नहीं है तो उसमे और दीवार में लगे चित्रों में कोई फर्क नही है। जो व्यक्ति परोपकार में प्रवृत्त रहता है, उसी का जीवन सफल माना जाता है। परोपकार ही धर्म है और पर पीडन ही पाप।

१३१६) नीति के विरुद्ध कोई काम करने का फल अपने तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि दूसरों पर भी उसका बुरा असर पडता है। ऐसी कोई कठिनाई नहीं होती जो आसान न हो जाये इसलिये मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये बल्कि सत्य नीति पर अडिग रहना चाहिये।

१३१७) मखमल के गद्दे पर सोनेवालों के सपने कोरी जमीन पर सोने वालों के सपनों से अधिक मधुर नहीं होते तब से मुझे ईश्वर के न्याय मे अधिक दृढ़ श्रद्धा हो गई।

१३१८) वास्तव में उन भले लोगों ने भूल की जिन्होने पतितों को फिर उठाकर खडा करने का प्रयत्न किया बजाय इसके कि जो पतनोंन्मुख है उन्हे सम्भालने का वे प्रयास करते। जिसने स्वयं गिर कर अपने को कीट के समान बना दिया है उन्हे यह अधिकार नही है कि कुचले जाने पर मुख से शिकायत का बोल भी निकाले।

१३१९) जब किसी पुरुष का एक स्त्री के साथ पति-पत्नी का सम्बन्ध हो जाये तो पुरुष का धर्म है कि जब तक स्त्री की ओर से कोई विरुद्ध आचरण न देखे तब तक उस सम्बन्ध को निबाहे।

१३२०) परिश्रम करने से पहले देख लेना चाहिये कि उसका प्रतिफल क्या है। प्राप्तव्य लाभ से बहुत अधिक परिश्रम हो तो परिश्रम का त्याग करना ही अभिष्ट है।

१३२१) दूसरों की परिस्थितियां हमें सुन्दर प्रतीत होती है जबकि स्वयं हमारी परिस्थितियां दूसरों को सुन्दर लगती है। मानव परिस्थितियों का खेल है जबकि परिस्थितियां ही मानव को खेल प्रतीत होती है।

१३२२) पाप पहले मजेदार लगता है, फिर वह आसान हो जाता है, फिर उससे हर्ष होने लगता है। फिर वह बार-बार किया जाता है अर्थात पुनरावृत्ति होती है। फिर वह स्वभाव बन जाता है। फिर आदमी गुस्ताख हो जाता है और कभी न पछताने का निश्चय कर लेता है। इसके पश्चात फिर वह तबाह हो जाता है।

१३२३) निन्दक को अपने घर के पास ही बसा कर रखना चाहिये क्योकि वह बिना पानी और साबुन के ही हमारा स्वभाव निर्मल कर देता है। यदि लोग हमारे बारे में कोई ऊटपटांग बाते करते है तो हमें उनका बुरा नहीं मानना चाहिये जिस प्रकार गिरजाघर की मीनारों के इर्द-गिर्द मंडराने वाली चीलों के चीखने से गिरिजाघर की दीवाले नहीं हिलती।

१३२४) गुलामी मे रहना इन्सान की शान के खिलाफ है। जिस गुलाम को अपनी दशा का भान है और फिर भी अपनी जंजीरों को तोडने का प्रयास नहीं करता, वह पशु से भी गया गुजरा है। अन्त:करण से प्रार्थना करनेवाला कभी गुलामी को बर्दाश्त नहीं कर सकता।

१३२५) यदि तुम किसी गोल छिद्र में जा गिरो तो तुम्हे स्वयं को गेंद बना लेना चाहिये। परिस्थितियों से गिरने वाला मनुष्य उन परिस्थितियों का त्याग करने से ही बच सकता है। मनुष्य परिस्थितियों का दास नही अपितु परिस्थितियां मनुष्य की दासी है।

१३२६) इस दुनिया में जीना है तो फरिश्ता बन कर जीओ, राक्षस बन कर नहीं। देवता जहाँ-जहाँ रहते हैं, वही देवलोक स्वर्गलोक होता है।

१३२७) आपत्ति सदा दुर्बलों के सामने आती है। हार कर कमजोर बैठते है। होनीहोनी चिल्ला कर उस के पंख काटने का प्रयत्न निष्फल है। मनुष्य चाहे तो भाग्य के लिखे को बदल सकता है।

१३२८) जिस तरह आग-आग को समाप्त नहीं कर सकती, उसी तरह पाप पाप का शमन नही कर सकता। जो दिल मे खटके वह पाप है। पाप के साथ ही दंड के बीज बो दिये जाते है। पाप छुपता नही है, इत्मीनान रख तेरा पाप तुझे ढूंढ निकालेगा।

१३२९) पापी पेट सब कुछ कर सकता है। मान और अभिमान, ग्लानि और लज्जा ये सब चमकते हुये तारे काली घटाओं की ओट में छिप जाते है।

१३३०) प्रकृति ईश्वर की कला है। प्रकृति और विवेक सदा एक ही बात कहते हैं। प्रकृति की आज्ञा मान कर ही हम उसका नेतृत्व करते है। प्रकृति के चरण चिन्हों पर चलो, उसका रहस्य है धैर्य।

१३३१) लगन के बिना किसी में भी महान प्रतिभा उत्पन्न नहीं हो सकती। प्रतिभा एक प्रकार का आवरण है और आवरण भी एक प्रकार का आवरण है। प्रतिभा का आवश्यक अंग है धैर्य। प्रतिभा जन्मजात होती है, वह सिखाई नही जाती।

१३३२) आदर्श को पकडने के लिये सहस्त्र बार आगे बढ़ो और यदि सहस्त्र बार भी असफल हो जाओ तो फिर भी एक बार नया प्रयास अवश्य करो। क्या आपने कभी ऐसे आदमी का नाम सुना है जिसने निष्ठापूर्वक जन्मभर प्रयास किया हो और किसी हद तक सफल नहीं हुआ हो।

१३३३) इन्सान अपने को आसानी से ईश्वर क्यो नहीं समझ पाता, इसका मुख्य कारण पेट है। जब पेट खाली होता है तो शरीर रूह बन जाता है और जब वह भरा होता है तो रूह शरीर बन जाती है।

१३३४) यदि हम प्रसन्न है तो सारी प्रकृति ही हमारे साथ मुस्कुराती प्रतीत होती है। हंसमुख और प्रसन्न रहने में जरा सा प्रयत्न करने की आवश्यकता है। अपने आप को प्रसन्न रखना भी एक कला है। प्रसन्नचित्त व्यक्ति कभी अपने कर्म में असफल नहीं होता।

१३३५) जो प्रेम अपने को नित्य नवीन नहीं रखता, वह पहले आदत का रूप धारण कर लेता है और फिर दासता मे परिवर्तित हो जाता है। खूब किया मैने दुनिया से प्रेम और दुनिया ने मुझसे। तभी तो मेरी सब मुस्कुराहटे उनके होठों पर थी और उनके आंसू और गम मेरी आंखो में।

१३३६) अभिप्राय में उदारता, कार्य सम्पादन में मानवता, सफलता में संयम इन्ही तीनों से व्यक्ति महान बनता है। छोटी-छोटी बातों में बडा होना ही सच्चा बडप्पन है।

१३३७) अग्नि सोने को परखती है और आपतियां बहादुरों को। विवेक बहादुरी का उत्तम भाग है। अन्याय न रहे तो बहादुरी का गुण ही समाप्त हो जाये। जो मनुष्य दु:ख को जीवन का सबसे बडा अभिशाप समझता है, वह कभी बहादुर नहीं हो सकता।

१३३८) मौन बातचीत की महान कला है। बातचीत प्रिय हो, पर ओछी न हो, चुहल हो तो बनावट लिये हुये न हो, स्वच्छन्द हो पर अश्लील न हो, विद्वतापूर्ण हो पर दम्भयुक्त न हो, अनोखी हो पर असत्य न हो।

१३३९) सच्चाई के प्रति स्नेह की प्रतिभा की पहली और आखिरी मांग है। जब कोई प्रतिभाशाली हस्ती इस दुनिया में आती है तो उसे इस लक्षण से पहचाना जा सकता है कि सभी मूर्ख लोग उसके विरुद्ध उठ खडे होते है।

१३४०) मूर्खों से प्रशंसा की रागिनी सुनने के बजाय बुद्धिमानों की फटकार सुनना अधिक बेहतर है। चापलूसी करना बहुत से लोग जानते है लेकिन प्रशंसा करना किसी किसी को ही आता है।

१३४१) क्या तुम जानते हो कि बालक क्या होता है। प्रेम में विश्वास करना, सौन्दर्य में विश्वास करना तथा विश्वास में विश्वास करना। यदि स्वर्ग में पहुंचने की इच्छा है तो पहले बालक बनो।

१३४२) बातचीत का पहला भाग है सत्य, दूसरा सुन्दर समझबूझ, तीसरा सुन्दर विनोद और चौथा वाक्चातुर्य। मनुष्य के चरित्र का पता उसकी बातचीत से चल जाता है।

१३४३) मृत अतीत को दफना दो, अनन्त भविष्य तुम्हारे सामने है। स्मरण रहे कि प्रत्येक शब्द, विचार और कर्म तुम्हारे भाग्य का निर्माण करते है।

१३४४) भाषा मनुष्य की बुद्धि के सहारे चलती है, इसलिये जब किसी विषय तक बुद्धि नहीं पहुंचती तो भाषा अधूरी रहती है। भाषा विचारों का लिबास है। भाषा एक शहर है जिसके निर्माण के लिये प्रत्येक व्यक्ति एक पत्थर लेकर आया है।

१३४५) पेट की आग बडवाग्नि से बडी होती है। भूखी स्त्री अपने पुत्र को छोड देती है। भूखी नागिन अपने ही अंडों को खा जाती है। भूखा व्यक्ति क्या-क्या पाप नहीं करता है ? दुर्बल व्यक्ति निर्दयी हो जाते है। भोजन के लिये सबसे अच्छी भूख है।

१३४६) मनुष्य के भाग्य में जितना धन पाना लिखा है, वह उसे रेगिस्तान में भी प्राप्त हो जायेगा, उससे अधिक स्वर्ण के पर्वत पर भी प्राप्त नहीं होगा। व्यक्ति को धैर्य रखना चाहिये। घडे में पानी उतना ही समायेगा जितने की उसकी क्षमता है, चाहे वह जल उसे किसी कुयें से भरा जाय अथवा सागर से।

१३४७) भावना दो तिहाई विश्व पर शासन करती है, भूत और भविष्य पर, जबकि यथार्थता केवल वर्तमान तक सीमित है। प्रसन्नता की भावना की तुलना झर झर, कल-कल बहते, चमकते जल के साथ हो सकती है।

१३४८) हमें सूर्य, अग्नि व नमक की तरह कर्तव्य परायण होना चाहिए। अगर सूर्य समय पर उदय न हो, अग्नि में ज्वलनशीलता न हो और नमक में स्वाद न हो तो क्या होगा ?

१३४९) सत्य जिनका मन है, तप जिनकी आत्मा है, विद्या जिनकी वाणी है, ज्ञान जिनका कर्म है, दया जिनका धर्म है, सेवा जिनकी माता और धर्म जिनका पिता है, सहयोग जिनका भाई और शान्ति जिनकी पत्नी है, पुरुषार्थ जिनका पुत्र और धैर्य जिनका मित्र है, भाग्य जिनका साथी और साहस जिनका शस्त्र है तथा प्रभु भक्ति जिनका जीवन है ऐसे महापुरुष विरले ही होते हैं। इन गुणों के बिना मनुष्य हुए भी तो क्या और नहीं हुए भी तो क्या ?

१३५०) जीवन में अचानक ऐसे मोड आ जाते है जिन की हम कल्पना भी नहीं करते। मनुष्य की सभी योजनाएं सफल नहीं होती। प्रयास और प्रयत्न करने पर भी फलस्वरूप जो परिणाम आते है वे हमारी आशा और कल्पना के बिलकुल विपरीत होते है। हमारी वृत्तियां कुछ और होती है और परिस्थितियों के समीकरण में उलझ कर हम उस के विपरीत कार्य कर बैठते है। कोई इसे संयोग कह कर संतोष कर लेता है, कोई भाग्य या विधि को दोष देता है, तो कोई यथार्थ की संज्ञा दे कर रोता है।

१३५१) तुम अभी तक कल में ही उलझे हुए हो। अतीत की गलतियों में उलझे रहने से कुछ भी हासिल होनेवाला नहीं है। बस एक ही बात याद रखो, प्रेम दो और प्रेम पाओ।

१३५२) आलस्य से विद्या की हानि होती है, पराये हाथ में जाने से धन की हानि होती है, धन की कमी से व्यापार की हानि होती है, झूठ बोलने से प्रतिष्ठा की हानि होती है, नेता के बिना दल की हानि होती है, एकता और अखंडता के बिना राष्ट्र की हानि होती है और ज्ञान के बिना सर्वत्र हानि होती है।

१३५३) वृद्धावस्था से बल और सौंदर्य का नाश होता है, लालसा से धैर्य का नाश होता है, मृत्यु से शरीर का नाश होता है, द्वेष भाव से प्रीति का और कामावेग से लज्जा का नाश होता है, कुसंगति से चरित्र का नाश होता है, क्रोध से विवेक का नाश होता है अभिमान से तो सर्वनाश होता है।

१३५४) सारी बुद्धिमत्ता बीते युगों की बुद्धिमत्ता का परिणाम है। हमारी पुरानी संस्थाओं के मूलाधारों के अवशेषों पर ही नई संस्थाये अंकुरित होती है। थोडा पढ़ना, ज्यादा सोचना, कम बोलना, ज्यादा सुनना यही बुद्धिमान बनने के उपाय है। यौवन और सौन्दर्य में बुद्धिमत्ता अत्यन्त विरल होती है।

१३५५) मनुष्य ही वह जन्तु है, जिससे मैं कायर की तरह डरता हूं। मनुष्य जिससे भय खाता है, उससे प्रेम नहीं करता। जिसे दु:ख का भय है, उसे भय का दु:ख है। जिसे हारने का भय हो वह अवश्य हारेगा। ईश्वर का भय ही ज्ञानका उदय है।

१३५६) इस जीवन संसार में भूलों का गर्द गुब्बार उठेगा ही। जो इतने नाजुक है कि इस गर्द गुब्बार को सहन नहीं कर सकते वे पंक्ति के बाहर निकल कर खडे हो जाये।

१३५७) केवल मनुष्य ही रोता हुआ पैदा होता है, जीवन भर शिकायतें करते हुये जीता है और निराश मरता है। संसार आश्चर्यजनक वस्तुओं से भरा पडा है। लेकिन मनुष्य से बडा कोई आश्चर्य नहीं। प्रत्येक मनुष्य वास्तव में ईश्वर है परन्तु मूर्खों जैसा अभिनय कर रहा है। मनुष्य की शक्ति का मूल उसके अहं की प्रतीति में है।

१३५८) दुर्बल शरीर मस्तिष्क को भी दुर्बल बना देता है। हमारा मस्तिष्क स्पंज की तरह है और हमारा हृदय जलधारा। यह विचित्र नहीं है कि हममे से अधिकांश चूसना पसन्द करते है, बहना नहीं। खाली मस्तिष्क शैतान का कारखाना बन जाता है।

१३५९) महत्वाकांक्षा मानव हृदय की इतनी तीव्र शक्तिशाली अभिलाषा है कि हम चाहे कितने ही उच्चपद पर पहुंच जाये, हम सन्तुष्ट नही होते। महत्वाकांक्षा लालसा का केवल निकृष्ट प्रतिबिम्ब है। महत्वाकांक्षी बनो और महत्वाकांक्षा की कोई सीमा न होने दो। निष्क्रियता के जीवन से यशस्वी जीवन और मृत्यु अधिक अच्छी है।

१३६०) कुछ जन्म से ही महान होते है, कुछ महानता प्राप्त करते है और कुछ लोगों पर महानता लाद दी जाती है। मनुष्य उतना ही महान होगा, जितना वह अपनी आत्मा में सत्य, त्याग, दया, प्रेम और शक्ति का विकास करेगा।

१३६१) मनुष्य को जिस वस्तु की प्राप्ति होती है, वह अवश्य होगी, उसमे भाग्य भी बाधा नहीं डाल सकता। जो हमारा है, वह अन्य किसी का नहीं हो सकता। केवल होनी और भाग्य की बाते हमे बताती है कि हम कार्य कारणों के सिद्धान्तों को कितना कम समझते है।

१३६२) मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो हास्य की शक्ति से सम्पन्न है। ईमानदार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। मनुष्य अपने को सुगमता से ईश्वर नहीं समझ पाता इसका कारण पेट है।

१३६३) महत्वाकांक्षी होना और यशस्वी होने की इच्छा तो स्वाभाविक है किन्तु अतिशय लोभ मनुष्य के पतन का कारण भी बन जाता है। एक निश्चित उपलब्धि, मुठ्ठी में आये लाभ को छोड़कर अनिश्चित लाभ की प्राप्ति के लोभ से वह मुठ्ठी में आये से भी वंचित रह जाता है।

१३६४) यह ज्यादा अकलमन्दी की बात है कि हम उस खुदा की बाते कम करे जिसे हम नहीं समझ सकते और इन्सानों की बाते

अधिक करे जिन्हे हम समझते है। मानवता का उचित अध्ययन ही मानवता है। कोई मनुष्य मानवता से बडा नहीं है।

१३६५) नीति कहती है कि मित्रता या शत्रुता बराबरीवालों से करनी चाहिये। उससे कभी मित्रता मत करो जो आपसे बेहतर नही है। हाथी पालने वालों से मित्रता मत करो या फिर ऐसा मकान बनाओ जहां उसका हाथी लाकर खडा कर सको।

१३६६) मनुष्य समाज से तिरस्कृत होने पर दार्शनिक, शासक ये तिरस्कृत होने पर विद्रोही, परिवार से उपेक्षित होने पर महात्मा और नारी से अनादरित होने पर देवता बनता है। मनुष्य के केवल तीन ही वर्ग हो सकते है। १) विपरीतगामी २) स्थिर ३) अग्रगामी।

१३६७) अपनी इच्छा शक्ति से ही तृण भक्षी हिरण अपने सामने आते सिंह को ललकार सकता है और गीदड़ वराह को जंगल से भगा सकता है।

१३६८) बिना सोच विचार किये किसी की बातों पर विश्वास मत करना और जो वस्तु या अवसर हाथ से निकल जाये उसके लिये कभी शोक या खेद मत प्रकट करना।

१३६९) समाज में मान सम्मान प्रतिष्ठा के लिये पाप से डरे और पुण्य के कार्य करे। समस्त मनुष्यों की क्रिया उसके पाप-पुण्यों पर आधारित होती है। पुण्य आत्मा को पवित्र बनाता है जबकि पाप आत्मा को मलिन बनाते है। पाप करके पुण्य की अपेक्षा करना सदा व्यर्थ होता है। पाप के कारण मनुष्य की जीवन राहों मे दु:ख के काँटें उगते है।

१३७०) पक्षियों की भांति हवा में उडना और मछलियों की तरह पानी मे तैरना सीखने आने के बाद हमे इन्सानों की तरह धरती पर चलना भी सीखना चाहिये। मानवता का खेल प्रात:कालीन के रवि के समान सुन्दर है।

१३७१) न्याय नहीं, बल्कि त्याग और केवल त्याग ही मित्रता का नियम है। संसार मे केवल मित्रता ही ऐसी चीज है जिसको उपयोगिता के सम्बन्ध मे दो मत नहीं है। जो मित्रता समानता की नहीं होती, हमेशा घृणा में समाप्त हो जाती है।

१३७२) जिन्हे सृजन और निर्माण करना नहीं आता उन्हे विध्वंस करने का भी कोई अधिकार नही। जिसे तुम जिन्दगी दे नही सकते, उससे उसका जीने का अधिकार छीनने का प्रयास मत करो। जन्म-मृत्यु नियति का नियम है, इन्सान का नही।

१३७३) साम्प्रदायिकता विष है - धर्म और सम्प्रदाय में जमीन आसमान का अन्तर है। महात्मा गांधी ने कहा है कि जीवन में साम्प्रदायिकता का कोई स्थान हो ही नहीं सकता क्योंकि साम्प्रदायिकता विष पैदा करती है, विष का रिश्ता मृत्यु से है जबकि धर्म का पथ जीवन है। यह हमें तय करना है कि हमें जीवन के पक्ष में है या मृत्यु के, चूंकि धर्म जीवन का मार्ग है इसलिये धर्म किसी से बैर या भेदभाव करना सिखा ही नहीं सकता। धर्म श्रद्धा है, प्रेम है, सहकार है और साम्प्रदायिकता इन सबका उल्टा है। धर्म का हृदय विशाल है, दृष्टिकोण में मानवता और प्रेम, सद्भावना, सहिष्णुता की प्रेरणा देता है जबकि सम्प्रदाय एक संकीर्ण दायरे में प्रतिबद्ध है नियम है जुनून होता है और एक अंधेरे में कैद है जहाँ रोशनी नही है इसलिये धर्म को जानो, समझो व धर्म की राह पर चलो और साम्प्रदायिकता का त्याग करो।

१३७४) पाप पुण्य का भेद - कौन सा कर्म पाप है और कौन सा पुण्य है इस विषय पर विभिन्न पंथों व समुदायों में मत भिन्नता है। फिर भी यह सही है कि पाप-पुण्य की संकल्पनाये सबको मान्य है। वह करो जो पुण्य है तथा वह मत करो जो पाप है। शास्त्र इन वचनों को ही धर्म कहता है। आज हम इसे कानून और व्यवस्था का नाम देते हैं, लेकिन पाप-पुण्य वास्तव में क्या है कि प्रकृति के प्रवाह में व्यवधान डालना पाप है जैसे किसी दुधारू या प्रजननक्षम गाय या बकरी की बिना कारण के हत्या कर देना उसके प्राकृतिक जीवन प्रवाह में बाधा डालना है। इसके विपरीत प्रकृति के प्रवाह के अनुकूल रहना पुण्य है जैसे भूख प्यास से तडफते व्यक्ति को अन्न जल देकर उसे प्राण दान देना पुण्य है।

१३७५) अनासक्ति मे सुख - आसक्ति देवताओं को भी दु:ख के गर्त में ढकेलती है। मानवों और दानवों को भी इसने नहीं छोडा। देवता कामासक्त, मनुष्य लोभासक्त और दानव क्रोधासक्त होने के कारण तीनों ही दु:खी होते हैं। देवताओं को आसरा, अमृत और स्वर्ग की कामना रहती है। मानव को धन की कामना होती है और दानवों को उपभोग की। इसी कारण से ये सब सच्चा सुख प्राप्त नहीं कर सकते। इन आसक्तियों में फंसकर मनुष्य तरह-तरह के बंधनों मे उलझ जाता है। दलदल मे फंसे आदमी की तरह, अपने हर कर्म के साथ लालच-मोह के दलदल में फंसता जाता है। आसक्ति यानि आत्यंतिक पिपासा जो बुद्धि का नाश कर देती है। विवेक भ्रष्ट कर देती है। धन

सम्मान कीर्ति प्रतिष्ठा यश मनुष्य जीवन का अंग है वे अवश्य प्राप्त करने योग्य है लेकिन वह सब कुछ स्वयं को मिले औरों को नहीं, यही आसक्ति मनुष्य वर्ग के दु:खों की जड है। आसक्ति से दूर रहना यानि अनासक्त रह ही जीवन सुखमय किया जा सकता है।

१३७६) ईश्वर को गवाह माननेवाला इन्सान पाप से नफरत करता है वह इन्साफ, शान्ति और सत्य के उद्देश्य पर चलेगा, दूसरों की भावनाओं को चोट नहीं पहुचायेगा उसकी नीति यही होगी कि अंधेरे को कोसने के बजाय एक मोमबती जलाकर रोशनी कर देना।

१३७७) जिसके पास कोई कला या कौशल नहीं, विद्या, शिक्षा व संस्कारों से रहित और अभिमान का विष कूट कूट कर भरा हुआ, जो अपने स्वार्थ के लिये जघन्य से जघन्य कार्य करने के लिये तैयार, ठोकर लगने पर भी सबक ग्रहण न करे ऐसा व्यक्ति शीघ्र पतन को प्राप्त होता है वृतियों से दानव वन जाता है। इसलिये अपने अन्दर कोई भी कला कौशल जागृत करो।

१३७८) अधिकार- कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अधूरा है। आज देश का दुर्भाग्य है कि लोगों को अपने अधिकारों का स्मरण तो आता है लेकिन अपने कर्तव्य व जिम्मेदारियों के उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं। किसी भी देश का प्रशासन वहाँ के नागरिकों के सहयोग के बिना नहीं चल पाता। लोकतन्त्र के लिये यह सोचो कि देश ने हमारे लिये क्या किया, हमेशा यह सोचो कि हमने देश के लिये क्या किया। सभी अधिकारों के साथ कर्तव्यों का ध्यान रक्खे।

१३७९) निस्संदेह किसी भी प्राणी में भय को आशंका का मूल अविश्वास और संदेह ही होता है, यदि परस्पर विश्वास की भावना जागृत है तो भय के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता। सिंह आदि वन्य प्राणी भी सद्भाव के वशीभूत स्वामी-भक्त व्यवहार करते देखे गये है।

१३८०) जिन्दगी की पहचान उसका मकसद, अखिरी निशान से ही होती है। लोगों के बारे में राय हम उनकी उपलब्धियों से नही बनाते बल्कि उनके जीवन के झुकाव से, आपस मे एक दूसरे को भी हम इस बात से नहीं आकते कि हम क्या है बल्कि इससे कि हम क्या होने जा रहे है। हमारा प्रयत्न क्या है ?

१३८१) जो व्यक्ति कठिनाइयों से जितनी दूर भागता है वह अपने आपको उतना ही निकम्मा बना लेता है। जो उन्हें जितना ही आमंत्रित करता है, वह अपने आपको उतना ही वीर और साहसी बनाता है।

१३८२) मधुर वाणी में बडी ताकत निहित है। नफरत और बैर के बडे बडे तूफानों को यह शान्त कर देता है और आदमियों को देवदूत या फरिश्ता बना देता है। सहृदयता और प्रसन्नता एक दूसरे के साथी है। एक ही सिक्के के दो पहलू है। मीठे बोल का लाभ तुरन्त मिलता है उससे दूसरों पर प्रसन्नता छा जाती है और अपने अन्दर भी स्थायी प्रसन्नता आती है। प्रेम सहन शील है, मृदुल है। प्रेम सभी दिलों की अचूक चाबी है।

१३८३) अगर भगवान की दया चाहते हो तो अपने से छोटों पर दया करना सीखो, तब भगवान तुम पर कृपा करेंगे। दया तुम चाहते हो पर करते नहीं हो यह सर्वथा अन्याय है अपने ज्ञान का तिरस्कार है। - स्वामी राम सुखदासजी

१३८४) छोटे रास्ते हम सबको पसंद आते हैं और हम चाहे तो उन्हें अपना सकते है लेकिन जिस तरह इमली रात भर में हथेली पर नहीं उगाई जा सकती, उसी तरह मस्तिष्क और चरित्र निर्माण में भी समय लगता है। जिसमे सब्र है उसके हर काम में होशियारी मिलेगी और जो बेसब्र है उसके हर काम में बेवकूफी जाहिर होगी।

१३८५) बुद्धिमान वही है कि उसे यह याद है जिसे एक दिन इस संसार से जाना है और मूर्ख वह है जो यह जानते हुये भी यह समझता है कि मुझे मरना ही नहीं है। मनुष्य जीवन में एक दिन उसका जन्म होता है और एक दिन मृत्यु। तो मृत्यु अनिवार्य है इसे कोई चाहे तो भी रोक नहीं पाता इसलिये बुद्धिमान वही है जो इस को याद रखकर अनमोल अवसर का सदुपयोग करे और जीवन को सफल बनाये। वरना समय बलवान होता है, उसे मनुष्य का अभिमान भंग करने में समय नहीं लगता, सर्वनाश कर देता है इसलिये विलम्ब न करते हुये जीवन के मूल्यों को आत्मसात कर लेना चाहिये वरना बाद में पछताना पडता है।

१३८६) अतिथि समाज का एक हिस्सा है। उसकी सेवा से समाज सेवा होती है। जिसके आने की कोई तिथि न हो वह अतिथि। कोई साधु या महात्मा जब अतिथि बन कर घर आता है तब उसका सम्मान करने से महान पुण्य मिलता है। इसलिये कहा गया है "अतिथि देवो भव"। कबीर कहते है कि जिस घर मे मेहमानों या साधुओं की आवभगत नही होती वह तो भूतों का निवास स्थान या स्मशान समझा जाना चाहिये। कबीर ने ईश्वर से वरदान मांगा है कि हे भगवान मुझे इतना धन दे कि मैं अपने परिवार का पोषण कर

सकू, मै भी भूखा नहीं रहूँ और मेरे घर पर आया हुआ अतिथि व साधु भी भूखा न लौटे। अच्छे अतिथि की आवभगत करनेवाले मनुष्य के घर लक्ष्मी प्रसन्नता से रहती है। हमारे पास कुछ हो न हो कम से कम दो मीठे वचन तो हम अतिथि को दे सकते हैं।

१३८७) आशावादी भविष्यकालीन अवसरों के बारे में सोचता है। अपनी सफलता का दृढ़ आत्म विश्वास होता है। प्रबल इच्छाशक्ति के कारण प्रयत्न करते रहता है। वह यह कहता है दो दिनों के बीच एक रात होती है उसे दिन दो दिखते है। प्रसन्न मन एव उत्साह भरा होता है। वैसे ही निराशावादी भूत काल में हुई गलतियों पर पछताता है। अपनी सफलता पर सन्देह करता है। इच्छा शक्ति प्रबल न होने से निष्क्रिय होते जाता है। वह यह कहता कि दो रातों के बीच एक दिन है उसे दो रातें दिखती है वह सदैव मायूस व दु:खी रहता है।

१३८८) महान लोगों के लिये विपत्तियाँ सम्पतियों के समान है, जिस प्रकार पतंग पवन के साथ नही वरना उसके विरुद्ध आसमान में ऊपर उठती है ठीक उसी तरह बुरी स्थिति का सामना उसका नियंत्रक बन कर करें। बडी सफलता की कीमत हर वक्त चुकाने के लिये तैयार रहे क्योंकि प्रयास ही सफलता की बडी आवश्यकता होती है। असफलता हमेशा दर्शाती है कि सफलता नजदीक है दूर नही है। विश्व मे उस व्यक्ति को पराजित करना कठिन है जो स्वयम् की पराजय पर हंस सकता है।

१३८९) आज जो मिला है उसमें सन्तोष करो, पर भावी विकास की आशा का त्याग मत करो। औरों में दोष देखने की बजाय स्वयं का आत्म परीक्षण करो। जीवन में चाहे संकटों के पहाड टूट पडे या निराशा की खाई आये-एक तो धैर्य मत खोना और साहस पूर्वक आगे-बढ़ते रहना। किसी भी व्यक्ति में सिर्फ अच्छी बाते देखो और उन्हे ही अपनाओ।

१३९०) जीवन में छोटी छोटी बातें बहुत अरूचिकर लगती है लेकिन इन छोटी छोटी बातों का नतीजा प्रभावशाली होता है। इन छोटी-छोटी बातों के गुण से सफलता प्राप्त हो सकती है।

१३९१) धैर्यशाली और साहसी व्यक्ति की मंजिल उनका लक्ष्य होता है और वे उसको प्राप्त करके ही शान्ति लेते है वैसे भी जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति ही शूरवीरों को अभीष्ट है।

१३९२) जिसने मन, मस्तिष्क पर नियंत्रण कर लिया है, वह उस व्यक्ति से कही महान विजेता है, जो शत्रुओं को पराजित कर राज्य पर अधिकार कर लेता है।

१३९३) संयम संस्कृति का मूल है। विलासिता, निर्बलता और अनुकरण के वातावरण में न संस्कृति का उद्‌भव होता है और न विकास ही।

१३९४) हमें प्रेम प्राप्त करना है क्योंकि हम अभी द्वेष और स्वार्थ का विचार करते है हमें ज्ञान चाहिये क्योकि हमें अभी भी आंकलन, अवलोकन और विचार शक्ति इतना ही प्राप्त हुआ है। हमें आनन्द की जरूरत है क्योकि हमें सिर्फ सुख दु:ख और उदासीनता ही मिली है। हमें जरूरत है शक्ति की क्योंकि हम अभी भी निर्बलता, प्रयत्न, जय-पराजय तक ही पहुँचे है। हमें जीवन चाहिये अर्थात प्राण क्योंकि मानव अभी तक जन्म-मृत्यु के पहलो में ही अटका हुवा है। अद्वैत चाहिये क्योंकि लोग अभी भी पूजा भाव, मेरा तेरा, युद्ध या घृणा-ईर्ष्या मे फंसा हुआ है। इसलिये प्रेम, ज्ञान, आनन्द, शक्ति, जीवन और अद्वैत जहां एक साथ मिलते है वही पर परमात्मा मिलता है।

१३९५) परमार्थ के लिये किसी से कुछ मांगने मे लज्जा मत करो लेकिन अपने लिये मांगने की बजाय मर जाना बेहतर है। जो मांगने के लिये निकलते है उनका जमीर तो मरा हुआ ही है पर वे लोग भी मरे हुये है जो होने पर भी मुंह से ना कर देते है। भीख मांगने से हांडी तो चढ़ जाती है परन्तु मनुष्य का गौरव गिर जाता है।

१३९६) जो व्यक्ति मूर्खों के सम्मुख विद्वान दिखलाई पडने या विद्वान बनने का प्रयास करते है वे विद्वानों के सम्मुख मूर्ख दिखलाई देंगे। एक शिक्षित मूर्ख एक अज्ञानी से कही अधिक मूर्ख होता है।

१३९७) मृत्यु आतंकमयी नहीं है बल्कि मृत्यु तो एक प्रसन्नतापूर्वक निद्रा है, जिसके पश्चात जागरण का आगमन होता है। मृत्यु केवल निद्रा और विस्मृति है। मृत्यु थकावट के समान है किन्तु सच्चा अन्त तो अनन्त की गोद में ही है। मृत्यु सोने की वह चाभी है जो अमरत्व के भवन के द्वार को खोल देती है।

१३९८) मौन सर्वोत्तम भाषण है अगर बोलना ही है तो कम से कम बोलो। एक शब्द से काम चले तो दो नहीं। मौन कभी-कभी वाणी से अधिक मुखर होता है।

१३९९) यश मित्र का काम करता है, वह सभा समाज में प्रधानता प्राप्त कराता है। इसको प्राप्त करके सभी प्रसन्न होते है क्योकि यश के द्वारा शक्ति मिलती है और सब प्रकार से लाभ प्राप्त होता है। त्याग से यश प्राप्त होता है धोखा धडी से नहीं।

१४००) यादें हमारे जीवन को हरा भरा रखने के लिये हमारे साथ प्रभु का पक्षपात है। यादें पंख है जो उडने को पुरुषार्थ प्रदान करती है। याद रखना भी मिलने का एक रूप है। दु:ख की यादें केवल खुशियों को मधुर बना देती है।

१४०१) युद्ध मनुष्यता के लिये सबसे भयानक महामारी है, यह धर्म को मिटा देता है, राष्ट्रों का विनाश कर देता है और परिवारों को विध्वंस कर देता है। युद्ध बर्बर लोगों का एक पेशा है। युद्ध विनाश विद्या का नाम है।

१४०२) परिवार की नींव संस्कारों पर ही होती है, यह शिक्षा स्कूलों और विश्वविद्यालयों में नहीं दी जा सकती। अच्छे संस्कार के बिना व्यक्ति जीवन तो व्यतीत कर सकता है लेकिन इंसान नहीं बन सकता है।

१४०३) जीवन की सफलता का पैमाना पैसा और प्रसिद्धि हो सकते हैं किंतु सार्थकता तो बस आत्मसंतुष्टि में है और यह संतुष्टि मूल्यों और आदर्शों के बिना संभव नहीं।

१४०४) मानव का दानव होना उसकी हार है, महामानव होना चमत्कार है और मनुष्य का मानव होना उसकी जीत है। प्रत्येक मनुष्य एक बरबाद परमात्मा है। इस विचार से मै अत्यन्त दु:खी हूँ कि मनुष्य ने मनुष्य को क्या बना डाला।

१४०५) मूर्ख स्वयं को बुद्धिमान समझते है, जबकि बुद्धिमान स्वयं को मूर्ख ही मानते है। जहां जाते हुये देवदूत भी भय खाते है, मूर्ख उसी ओर उधर ही जाते है। अभागों को देखो तुम उन्हे मूर्ख ही पाओगे।

१४०६) मृत्यु से क्या डरना, यह तो जीवन का सर्वोच्च साहसिक अभियान है। मृत्यु मनुष्य को रुला देती है और फिर भी अगला जीवन पुन: निद्रालीन ही व्यतीत होता है। अपकीर्ति भी मृत्यु ही है।

१४०७) मौन सर्वाधिक असह्य एवं कटु व्यंयोगित है। मौन ही मूर्खों का लेख है और बुद्धिमानों का एक सद्गुण। आपदा में मौन रहना सबसे अधिक श्रेयस्कर है।

१४०८) केवल निष्पक्ष व्यक्तियों के कार्य मधुर सुगन्ध देते है और धूल में खिलते है। यश के कपाट सदा खुले रहते है और उन पर भीड भी सदा बनी रहती है। कुछ लोग इसमे घुसपैठ करके जाते है और कुछ धकियाकर।

१४०९) युद्ध मानव जाति का विनाशक है अत: उससे बचने के सभी यथा सम्भव उपाय करने चाहिये। धर्म युद्ध में मरने के बाद भी बहुत कुछ बाकी रह जाता है। हार को पार करके मिलती है जीत और मृत्यु को पार करके मिलता है अमृत।

१४१०) उचित अवसर के अभाव में योग्यता का मूल्य बहुत कम रह जाता है। जिसमें सेवा की योग्यता है, वह कभी बुरा नहीं होता। हम ज्यों-ज्यों जीवन में प्रगति करते जाते है त्यों-त्यों हमे अपनी योग्यता की सीमा का ज्ञान होता जाता है।

१४११) राजनीति वेश्या के समान अनेक प्रकार से व्यवहार में लाई जाती है। वह कही झूठ, कही कठोर और कही प्रिय भाषिणी होती है, कही हिंसक और कही दयालु होती है, कही कृपण और कही उदार होती है और कही अधिक द्रव्य व्यय करने वाली तथा कही बहुत संचय करने वाली होती है। राजनीति के समान कोई दूसरा जुआ नही है।

१४१२) महान लोग महान उदारता के कार्य करने के समक्ष होते है। वस्तुत: महान पुरुष वही है जो न तो किसी का शासन मानता है और न ही किसी पर शासन करता है।

१४१३) मृत्यु जीवन में प्रथम हमारी प्रसन्नता नष्ट करती है और फिर हमारी आशा एवं भय भी चले जाते है। इनके समाप्त होने पर धरा अपना ऋण मांगती है और हम भी चिर निद्रा में लीन हो जाते है।

१४१४) विधाता ने मौन को ही अज्ञानता का ढक्कन बनाया है। यह मनुष्य के अधीन है और इसमे अन्य भी गुण है। यही ज्ञानियों की सभा में अज्ञानियों का आभूषण है।

१४१५) दूसरे व्यक्ति हमारी योग्यता की परख जो कुछ हम कह या कर चुके है, उसके आधार पर करते है, जबकि हम अपनी परख उससे करते है, जो कुछ करने की हममे सामर्थ्य है। जो अपने को योग्य समझते है, वे योग्य है।

१४१६) यौवन एक अनवरत मादकता है, यह चेतना का ज्वर है। प्रेम की सम्पूर्ण पेय मात्राओं में यौवन सर्वाधिक शक्तिशाली है।

युवा काल जीवन में एक बार आता है। अपने युवा काल के सपनों के प्रति वफादार रहो।

१४१७) आधुनिक राजनीति मूलत: मनुष्यों को नहीं अपितु शक्तियों का संघर्ष है। राजनीति कुछ व्यक्तियों के लाभार्थ अनेक व्यक्तियों का उन्माद है। राजनीति साधारण नाडी की धडकन मात्र है, और क्रान्ति ही इसका ज्वर है।

१४१८) अपनी आदतों के अनुसार चलने में इतनी मूर्खतायें नहीं होती, जितनी दुनिया का लिहाज रखकर चलने में होती है। एक की मूर्खता से दूसरे का भाग्य बनता है। तरूणों के विचार से वृद्ध पुरुष मूर्ख होते है जबकि वृद्ध तरूणों को मूर्ख समझते है।

१४१९) मृत्यु से नया जीवन मिलता है। जो व्यक्ति और राष्ट्र, मरना नहीं जानते, वे जीना भी नहीं जानते। अन्त सदा ही आदि से जुडा होता है। इसी प्रकार हम जन्म के समय से ही मृत्यु के ग्रास बनने लगते है।

१४२०) मौन रहो और अपनी सुरक्षा करो। मौन कभी तुम्हारे समय विश्वासघात नहीं करेगा। मौन और एकान्त आत्मा के सर्वोत्तम मित्र है। मौन मे शब्दों की अपेक्षा अधिक वाक् शक्ति होती है। मौन निद्रा के समान है क्योकि वह ज्ञान को ताजा कर देता है।

१४२१) हम दुर्ग तभी छोडते है जब उसकी रक्षा के लिये एक व्यक्ति भी शेष नहीं रह जाता। युद्ध हमसे हमारी इन्सानियत ही छीन लेता है।

१४२२) निस्सन्देह युवावस्था बहुत सुन्दर है परन्तु जहां जीवन की गहराई आंकी जाती है, वहां यौवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। यौवनकाल में हम शिक्षक प्राप्त करते है और वृद्धावस्था में उस ज्ञान की वास्तविकता थाह पाते है।

१४२३) जिस राष्ट्र का व्यापार असत्य पर चलता है, उसका शील समाप्त हुआ ही जानो। जिस राष्ट्र में चरित्रशीलता नहीं है, उसमें कोई योजना काम नहीं कर सकती। व्यक्तियों की तरह राष्ट्र का भी नाश और निर्माण होता है।

१४२४) चोर को अदालत में बेंत खाने से उतनी लज्जा महसूस नहीं होती, स्त्री को कलंक लगने से उतनी लज्जा नहीं आती जितनी किसी हाकिम, न्यायाधीश को अपनी रिश्वत का पर्दा खुल जाने पर आती है।

१४२५) असली रूप तो व्यक्ति का अपने गुणों से ही झलकता है। अपनी छाप गुणवान होकर डालनी चाहिये, रूपवान होकर नहीं। रूपतृष्णधा यदि पुरुषों के लिये निन्दाजनक है तो स्त्रियों के लिये विनाशकारक है।

१४२६) जीवन में बुद्धि का नहीं लक्ष्मी का साम्राज्य है। लक्ष्मी उन्ही की सहायता करती है, जिनका निर्णय विवेकशील होता है। लक्ष्मी के पास रहने में उतना आनन्द नहीं होता जितना कि उसके खो जाने, छिन जाने पर दु:ख होता है।

१४२७) सच्ची लगन को काटों की परवाह नहीं होती। मानव जीवन में लगन बडे महत्व की वस्तु है। जिसमे लगन है, वह बूढ़ा भी जवान है, जिसमे लगन नही है वह जवान भी मृतक है। बुद्धि द्वारा प्राप्त हुआ उत्साह ही लगन है।

१४२८) धनहीन प्राणी को जब कष्ट निवारण का कोई उपाय नहीं रह जाता तो वह लज्जा को त्याग देता है। लज्जा का आकर्षण सौन्दर्य से अधिक होता है। लज्जा सुन्दरता और सद्गुणशीलता का किला है।

१४२९) इन्सान यदि लालच को ठुकरा दे तो बादशाह से भी ऊंचा दर्जा हासिल कर सकता है क्योकि सन्तोष ही हमेशा इन्सान का सिर ऊंचा रख सकता है। लालच भी छूत की बीमारी जैसा है।

१४३०) जो लोकप्रिय, वह खुद का धनी है, किन्तु जो लोकप्रिय बनता है, उसकी दुर्दशा ही होती है। लोकप्रियता से बचो। इसमे बहुत से फन्दे है, मगर कोई सच्चा नही है।

१४३१) यौवन में दिन छोटे प्रतीत होते है किन्तु वर्ष बडे, जबकि वृद्धावस्था में वर्ष छोटे और दिन बडे। यौवन तेरी आशायें कितनी प्रेरक होती है। सूर्यमुखी फूलों की भाँति वे भी सदा आलोक पक्ष की ओर ही उन्मुख रहती है।

१४३२) यौवन, धन सम्पत्ति ऐश्वर्य, प्रभुत्व और अविवेक ये सभी अनर्थकारी होते है जहां ये चारो हो जाये तो वहां सर्वनाश की आशंका और अधिक बढ़ जाती है। यौवन विकारों को जितने को मिला है, उसे व्यर्थ मत जाने दो। युवावस्था आवेशमय होती है। यदि वह क्रोध से आग हो सकती है तो करुणा से पानी भी हो जाती है।

१४३३) जातियां व्यक्तियों से बनती है लेकिन राष्ट्र का निर्माण केवल संस्थाओं के द्वारा ही होता है। जिन्होंने राष्ट्रों का निर्माण किया, उनकी कीर्ति अमर हो गई।

१४३४) रिश्वत के धन से न्यायाधीश और सेनेट के सदस्य भी खरीदे गये है। रिश्वत देकर एक सच्चे आदमी का वोट खरीद लेने

के लिये सारे संसार की सम्पत्ति भी अपर्याप्त है।

१४३५) मनुष्य बूढा हो जाता है, परन्तु लोभ कभी बूढ़ा नहीं होता। जन्म से लेकर वृद्धावस्था तक किसी भी अवस्था मे लोभ का परित्याग करना कठिन है। यदि व्यक्ति में लोभ प्रवृत्ति है तो अन्य गुणों की कामना करने का कोई लाभ नहीं।

१४३६) अविनय कोई तर्क नहीं है। उपालम्ब का तीखापन कोई विवाद नही है। एक सुन्दर मुख से प्रस्तुत विवाद भी सुन्दर लगता है। विवाद अनेक मनुष्य कर सकते है किन्तु वार्तालाप अनेक नहीं कर सकते।

१४३७) परस्पर व्यवहार विकास की आत्मा है। मानव इतिहास का नियम है कि एक भी कदम पीछे न पडे। विकास परमात्मा का आगे की ओर बढ़ता कदम है। विकास ही जीवन है, संकोच ही मृत्यु है।

१४३८) महान विचार जब कार्य रूप में परिणित हो जाते है, तब महान कृतियां बन जाती है। मनुष्य जैसा अपने हृदय में विचारता है, वह वैसा ही बन जाता है।

१४३९) मनुष्य युद्ध में सहस्त्रों पर विजय पा सकता है लेकिन जो स्वयं पर विजय पा लेता है, वही सबसे बडा विजयी है। स्वयं अपने ऊपर विजय प्राप्त करना सबसे बडी विजय है। प्रलोभनों का प्रतिरोध कर, प्रत्येक क्षण ही एक महान विजय है।

१४४०) विद्वान वे व्यक्ति है जो अपने ज्ञान के अनुसार आचरण करते है। विद्वान ज्ञान के जलाशय है, स्त्रोत नहीं। अधिक विद्वान प्राय: बहुत संकीर्ण विचार के होते है। विद्वता से मनुष्य स्वयं अपना योग्य साथी बन जाता है।

१४४१) राष्ट्रीयता की सबसे खरी परीक्षा तो आखिर यही है कि हम उस समूह का हित, जिसे हम राष्ट्र कहते है, बिल्कुल इस तरह देखे, मानो वह हमारा अपना ही व्यक्तिगत हित है। एक हजार वर्ष में कठिनाई से एक राष्ट्र बन पाता है किन्तु वह राष्ट्र एक घंटे भर मे समाप्त हो सकता है।

१४४२) युक्तियुक्त वचन बालक का भी ग्रहण कर लो, युक्तिशून्य वचन ब्रह्मा का भी त्याग दो। हंसी मजाक में भी कडुवे वचन आदमी के दिल में चुभ जाते है।

१४४३) जो वर्तमान की उपेक्षा करता है वह अपना सब कुछ खो देता है। कर्तव्य और वर्तमान तो हमारा है, फल और भविष्य ईश्वर का है। भविष्य वर्तमान के द्वारा खरीदा जाता है। दस हजार गुजरे हुये कल आज की बराबरी नहीं कर सकते।

१४४४) वासना के आगे विवेक भी झुक जाता है और वासना उम्र के साथ बढ़ती जाती है। वासना पर आत्मा की विजय होने से घृणा के बादल एवं विषय वासना की चिनगारियां नष्ट हो जाती है।

१४४५) जीवन में आधी गलतियां तो केवल इसलिये होती है कि जहां हमें विचार से काम लेना चाहिये, वहां हम भावुक हो जाते है और जहां भावुकता की आवश्यकता होती है, वहां विचारों को अपनाते है।

१४४६) विपत्ति से बढ़कर अनुभव सिखानेवाला कोई विद्यालय आज तक नहीं खुला। कष्ट और विपत्ति मनुष्य को शिक्षा देनेवाले श्रेष्ठ गुण है। जो मनुष्य साहस के साथ उन्हे सहन करते है, वे अपने जीवन मे विजयी होते है।

१४४७) जैसे महासागर में बहते हुये दो काष्ठ कभी परस्पर मिल जाते है और कुछ काल के पश्चात एक दूसरे से अलग भी हो जाते है, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड जाते है। इनका वियोग अवश्यम्भावी है।

१४४८) जो विवाह को धर्म का बन्धन नहीं समझता है, उसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है तो वह तो पशु है। नारी खिलवाड़ की वस्तु नहीं है, न ही उसकी अपेक्षा की जा सकती है।

१४४९) श्रम का अन्त ही विश्राम है। परिश्रम का परिवर्तन ही विश्राम है, इसमें बहुत सत्य है। बहुत अधिक विश्राम स्वयं दर्द बन जाता है।

१४५०) जो उत्साही है, आलसी नहीं है, कार्य करने की विधि को जानता है, किसी भी प्रकार के व्यसन में आसक्त नही है, शूरवीर है, कृतज्ञ है, जिसकी मित्रता दृढ़ होती है ऐसे सज्जन के पास रहने के लिये लक्ष्मी स्वयं जाती है। लक्ष्मी उसी के लिये वरदान है जो उसे दूसरों के लिये वरदान बना देता है।

१४५१) सभी प्रिय वस्तुओं एवं प्रिय जनों से एक दिन अवश्य वियोग होगा। वियोग हृदय को और अधिक आसक्त बना देता है।

जैसे अग्नि के लिये आन्धी है वैसे प्रेम के लिये विरह है। वह तुच्छ को तो बुझा देता है और महान को प्रकाशमान बना देता है।

१४५२) जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं है, उसे हम विश्वास से उत्पन्न नहीं कर सकते। विश्वास जीवन है और अविश्वास मृत्यु केवल विश्वास ही हमारा एक ऐसा सम्बल है जो हमे मंजिल तक पहुंचाता है।

१४५३) आत्मविश्वास वीरता का सार है। कायरता की भांति वीरता भी संक्रामक होती है। संसार की माया के बीच में रहकर भी पूर्णता को प्राप्त करना ही सच्ची वीरता है। वीरता मारने में नही बल्कि मरने में है, किसी की इज्जत बचाने में है, इज्जत गंवाने में नही।

१४५४) यौवन एक भूल है, पूर्ण मनुष्यत्व एक संघर्ष और आयु वार्धक्य एक पश्चाताप है। जीवन के प्रथम चालीस वर्ष तो मूल पाठ है और अगले तीस वर्ष इस पर व्याख्या। वृद्ध व्यक्ति के लिये सीखने का समय सदैव रहता है।

१४५५) वेश्याये विचार शून्य नहीं, भाव शून्य नहीं, बुद्धिहीन नहीं लेकिन माया के हाथों मे पडकर उनकी सारी सद्वृत्तियां उल्टे मार्ग पर जा रही हैं, तृष्णा ने उनकी आत्माओं को निर्बल और निश्चेष्ट बना दिया है।

१४५६) वैभव गुण के पीछे उसकी छाया की भांति चलता है। वैभव का मार्ग केवल कब्र की ओर जाता है। इस जीवन का वैभव पागलपन के समान है। धर्म का भूषण वैराग्य है न कि वैभव।

१४५७) जब हम थोडा जानते है तभी ठीक ठीक जानते है। ज्ञान वृद्धि के साथ शंका बढती है। हमारी शंकाये विश्वासघातिनी है और हमे उन अच्छाइयों से वंचित रखती है जिन्हे हम प्रयत्न करके प्राप्त कर लेते है।

१४५८) दोस्त को मत आजमाओ। हो सकता है कि वह किसी मजबूरी के बिना आपकी आजमाइश पर पूरा न उतरे और आप दिल में शक को जगह दे बैठे।

१४५९) जैसे हमारे विचार होते है, वैसे ही हमारी शारीरिक स्थिति होती है। यदि हम चाहे कि हमारी शारीरिक स्थिति इसके विपरीत हो तो ऐसा होना बिल्कुल असम्भव है। विचार से अधिक ठोस वस्तु ब्रह्मांड मे नहीं है।

१४६०) प्रेम सबसे करो, विश्वास कुछ पर करो लेकिन बुरा किसी का मत करो। एक मनुष्य को उससे अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, जितना वह निभा सके। जिसे स्वयं मे विश्वास नहीं, उसे ईश्वर मे विश्वास नही हो सकता। विश्वास प्रेम की प्रथम सीढ़ी है।

१४६१) पैसे वाले कोढी और जरा जीर्ण को वेश्या (गणिका नारी) कामदेव के समान सुन्दर समझती है और बिना पैसे वाले निर्धन को चाहे वह कामदेव के समान ही सुन्दर क्यो न हो, कोढी और बुढापे से जीर्ण शीर्ण ही समझती है।

१४६२) कोई तलवार इतनी बेदर्दी से नही काटती, जितना कि कसा हुआ व्यंग। व्यंग तेज कृपाण की भाति अपने मालिक की अंगुलियों को ही काट देता है। व्यंगपूर्ण उक्तियों से बचने के लिये हंसमुख स्वभाव सर्वोत्तम ढाल है।

१४६३) शंकाओ की समाप्ति शान्ति का आरम्भ है। मानवीय ज्ञान शंका का उद्गम है। जब शंका हो, तो काम करने से रूक जाओ। शंका से शंका बढती है और विश्वास से विश्वास।

१४६४) अपनी शक्ति को प्रकट न करने से शक्तिशाली मनुष्य भी अपमान सहन करता है। काठ के भीतर रहनेवाली आग को लोग आसानी से लांघ सकते है लेकिन जलती हुई अग्नि को नहीं।

१४६५) जिसका विरह का रोग या बाण लग जाता है उस व्यक्ति के लिये कोई औषधि ही नहीं है वह कराह कराह उठता है और सिसक सिसक कर मरता है।

१४६६) प्रथम हम विश्वास करे कि न्याय ही में शक्ति का आवास है और फिर इसी विश्वास के आधार पर अन्त तक अपने कर्तव्य को समझकर चलते चले।

१४६७) प्रेम के शब्द चाहे कितने ही विलम्ब से और किसी प्रकार भी व्यक्त किये जाये सदैव सर्वश्रेष्ठ होते है। शब्द मानव समाज द्वारा प्रयोग किये जानेवाला सर्वोत्तम रसायन है।

१४६८) शान्ति सुख का सुन्दरतम रूप है। शान्ति ठीक वही से आरम्भ होती है जहां से महत्वकांक्षाओं का अन्त होता है। मनुष्य की शान्ति की परख समाज में ही हो सकती है, हिमालय की चोटी पर नहीं। शान्ति की विजय भी युद्धों की विजय से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

१४६९) जिन्होंने मनुष्य पर शासन करने की कला का अध्ययन किया है, उन्हे यह विश्वास हो गया है कि युवकों की शिक्षा पर ही

राज्य का भाग्य आधारित है। युवकों को यह शिक्षा मिलना बहुत आवश्यक है कि वे अपने सामने सर्वोत्तम आदर्श रखे।

१४७०) जिस व्यक्ति में शील का वास है, उसके लिये अग्नि जल के समान शीतल पड जाती है, समुद्र घडे के समान क्षुद्र बन जाता है, सुवर्ण का मेरू पर्वत एक छोटी सी शिला बन जाता है, सिंह हिरण के रूप मे और विष अमृत मे परिणित हो जाते है।

१४७१) शिशु ऊपर से देखने पर तो सभी पर आश्रित है, किन्तु वस्तुत: वही सम्पूर्ण परिवार का सम्राट होता है। विश्वास और निर्दोषिता शिशु के अतिरिक्त और किसी में नही पायी जाती।

१४७२) शिष्टाचार शारीरिक सुन्दरता के अभाव को पूर्ण कर देता है। केवल वही व्यक्ति सबसे अधिक सुन्दर है, जो अपने शिष्टाचार द्वारा दूसरों का हृदय जीत लेता है। शिष्टाचार के अभाव मे सौन्दर्य का कोई मूल्य नहीं होता।

१४७३) ऐसा कोई शोक नही, जिसे समय की गति कम और हल्का न कर दे। शोक की सर्वोत्तम औषधि कार्य मे संलग्न रहना है। शोक धैर्य का नाश करता है, शोक शास्त्र ज्ञान को भी नष्ट कर देता है। शोक सब कुछ नष्ट कर डालता है और शोक के समान कोई शत्रु नहीं है।

१४७४) वासना या विवेक दो में से एक का चुनाव करना ही पडता है। जिंदगी या तो वासना के पीछे भागती है अथवा फिर विवेक का अनुसरण करती है। वासना तृप्ति का भरोसा दिलाती है, लेकिन अतृप्ति को और अधिक गहरा करती है, वासना के पीछे भागने के लिए आंखों का बंद होना जरूरी है। जो आंखें खोलकर चलने का साहस करते हैं, वे अपने ही आप विवेक को पा जाते हैं और विवेक की आग में सारी अतृप्ति वैसे ही पाप बनकर उड जाती है, जैसे सूरज की तपन में ओसकण।

१४७५) जो वासनाओं के अंधकार में जी रहे हैं, उनके लिए मेरे हृदय में आंसू भर आते हैं, क्योंकि उन्हें अतृप्ति, असंतुष्टि और अशांति के सिवा कुछ नहीं मिलेगा। उस आदमी से बढ़कर रास्ते से भटका हुआ कौन है, जो कि वासनाओं के पीछे चलता है, इसलिए जीवन का यही एक संदेश है- वासना नहीं केवल विवेक।

१४७६) विनय गुण को जीवन में आत्मसात् करने के लिए भाषा पर नियंत्रण बहुत जरूरी है। जबान पर लगाम न हो तो वह व्यक्ति कभी भी वातावरण को बिगाड सकता है।

१४७७) आठ में से पांच काम करके तो कोई भी जी सकता है लेकिन सफलता तो पांच की बजाय आठ काम करके ही पाई जा सकती है।

१४७८) वे व्यक्ति कभी अकेले नहीं है जिनके साथ सुन्दर विचार है। अपने विचारों को अपना बन्दीगृह मत बनाओ। संसार में न कुछ भला है और न कुछ बुरा। केवल हमारे विचार ही उसे भला या बुरा बना देते है। विचार का दीपक बुझ जाने पर आचार अन्धा हो जाता है।

१४७९) हम विश्वास के आधार पर चलते है दृष्टि के आधार पर नहीं। विश्वास ही जीवन की प्रेरक शक्ति है। विश्वास अपने को ईश्वर की मर्जी पर पूरी तरह छोड देता है। बिना विश्वास के कार्य करना सतह हीन गड्ढे में गिरने के समान है।

१४८०) मेरे शब्द ऊपर उड जाते है किन्तु मेरे विचार पृथ्वी पर ही रह जाते है। शब्द बिना विचारों के कभी स्वर्ग नहीं जा सकते। एक बार निकले शब्द कभी वापिस नहीं आते। असम्भव शब्द मेरे कोश में है ही नहीं।

१४८१) जब संघर्ष अनावश्यक हो, तब शान्ति की कल्पना में तत्पर रहना, निश्चित रूप से शान्ति मिटाना है। यदि सम्मान के साथ शान्ति नही रह सकती तो वह शान्ति नहीं कहला सकती। जो कुछ मिले उसी में सन्तोष तथा दूसरों से ईर्ष्या न करना ही शान्ति की कुंजी है।

१४८२) शिक्षा का ध्येय चरित्र निर्माण है। शिक्षा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को निभाने की योग्यता है। शिक्षा का ध्येय मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि करना ही नहीं है बल्कि उसका ध्येय मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित करना भी है।

१४८३) अच्छे बच्चों के निर्माण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है उन्हे प्रसन्न रखना। जिस प्रकार प्रात:काल दिन का द्योतक होता है, उसी प्रकार शैशव भी मनुष्य का परिचायक होता है। छोटे बच्चे तो भगवान की, पर ब्रह्म की छोटी-छोटी मूर्तियां है।

१४८४) जो कुछ चाहिये उसे मुस्कुराहट के बल पर प्राप्त करो न कि तलवार के बल पर, शिष्टाचार के द्वारा कोई भी मनुष्य संसार मे उन्नति कर सकता है।

१४८५) शोक की सीमा कंठावरोध है पर शुष्क और दाहयुक्त। आनन्द की सीमा भी कंठावरोध है किन्तु आर्द्र और शीतल। किसी के बहुत सताने पर भी उसे सताने का प्रयास नहीं करना चाहिये क्योंकि दु:खी प्राणी का शोक ही सतानेवाले का नाश कर देता है। कम

शोक कथनीय है किन्तु महान शोक गूंगा होता है।

१४८६) बुद्धि पंगु है, श्रद्धा सर्व समर्थ है। बुद्धि बहुत नहीं चलती, वह थक कर कही न कही ठहर जाती है। श्रद्धा अघटित कार्य सिद्ध कर दिखाती है।

१४८७) संकट का काल ही मानव आत्मा की कसौटी है। महान संकट में और जब आशा बहुत कम हो, तब सबसे निडर सम्मति ही सबसे बडी सुरक्षा है। प्राय: संकट का काल विजय के साथ ही आता है।

१४८८) दृढ़ संकल्प एक गढ़ के समान है जो भयंकर प्रलोभनों से हमको बचाता है और दुर्बल एवं डांवाडोल होने से हमारी रक्षा करता है। संकल्प स्वतन्त्र नहीं होता। वह भी कार्य कारण से बन्धा एक तत्व है लेकिन संकल्प के पीछे कुछ है जो स्वतन्त्र है।

१४८९) संगठन मे अपार शक्ति है। संगठित होकर ही शक्तिशाली शत्रु पर विजय पाई जा सकती है। छोटी-छोटी वस्तुओं के संगठन से भी कार्य सिद्ध हो जाते है जैसे घास की बांटी हुई रस्सियों से मतवाले हाथी बांधे जाते है।

१४९०) विचारों का अजीर्ण भोजन के अजीर्ण से कही बुरा है क्योकि भोजन के अजीर्ण की तो दवा है, पर विचारों का अजीर्ण आत्मा को बिगाड देता है। आचरण रहित विचार कितने ही अच्छे क्यो न हो, उन्हें खोटे मोती की तरह समझना चाहिये।

१४९१) ईश्वर ने नक्षत्रों, मेघमालाओं और पक्षियों द्वारा सौन्दर्य का अपूर्व ताना तान दिया है। किन्तु शब्दों के समान सुन्दर कोई वस्तु नहीं बनाई।

१४९२) यदि मनुष्य सीखना चाहे, तो उसकी हर भूल उसे कुछ शिक्षा दे सकती है। शिक्षा मनुष्य की आत्मा के लिये उसी भांति है, जिस प्रकार संगमरमर के लिये शिल्प कला। संसार में जितनी प्रकार की प्राप्तियां है, शिक्षा उनमें सबसे बढ़कर है।

१४९३) प्रेरणा शक्ति के द्वारा शिशुओं की उन शक्तियों का विकास किया जा सकता है, जिन पर उनका स्वास्थ्य, सफलता और सुख निर्भर है। शिशु को वही शिक्षा दो जिस मार्ग पर उसे चलना चाहिये और वह वृद्ध हो जाने पर भी उसे भूलेगा नही।

१४९४) जिस श्रम से हमें आनन्द प्राप्त होता है, वह हमारी व्याधियों के लिये अमृत तुल्य है, हमारी वेदना की निवृति है। कोई भी व्यक्ति जब तक किसी वस्तु के लिये श्रम नहीं करेगा वह वस्तु उसे प्राप्त नहीं हो सकती। स्वच्छता और श्रम मनुष्य का सर्वोत्तम वैद्य है।

१४९५) पूंजी तो मृत श्रम है जो जीवित श्रम का शोषण करते हुये पिशाच की भाँति जीवित रहती है और जितना अधिक जीवित रहती है, उतना ही अधिक शोषण करती है।

१४९६) इस संसार मे प्रत्येक वस्तु संकल्प शक्ति पर निर्भर है। इतिहास, पुराण साक्षी है कि मनुष्य के संकल्प के सम्मुख देव, दानव सभी पराजित होते है।

१४९७) संगठन से हमारा अस्तित्व कायम रहता है, विभाजन से हमारा पतन होता है। संगठन द्वारा छोटे-छोटे राज्य भी उन्नत हो सकते है किन्तु विभेद होने से बड़े-बड़े राज्य और राष्ट्र भी विनष्ट हो जाते है।

१४९८) संगीत टूटे हुये हृदय की औषधि है। संगीत मानव की विश्व व्यापी भाषा है। संगीत में क्रूर हृदय को भी शान्त करने का जादू है। मधुर संगीत आत्मा के ताप को शान्त कर सकता है।

१४९९) संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति या समूह अपने विरोधी को प्रत्यक्ष रूप से हिंसा या हिंसा को चुनौती देकर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते है। इच्छाओं का संघर्ष यह प्रकट करता है कि जीवन व्यवस्थित होना चाहता है।

१५००) जन्म के बाद मृत्यु, उत्थान के बाद पतन, संयोग के बाद वियोग, संचय के बाद क्षय होना निश्चित है यह समझ कर ही ज्ञानी हर्ष और शोक के वशीभूत नहीं होते।

१५०१) अपने शब्दों को अल्पतम रखो। न्याय संगत शब्दों में कितनी शक्ति होती है। अलादीन के खजाने की तरह और भी कई खजाने है जो केवल शब्दों की कुंजी द्वारा खुल सकते है।

१५०२) मिट्टी, पानी, प्रकाश के साथ पूरा पूरा सम्बन्ध रहे बिना शरीर की शिक्षा सम्पूर्ण नहीं होती। देह और आत्मा में अधिक से अधिक जितने सौन्दर्य और जितनी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है, उसे सम्पन्न करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

१५०३) लोगों मे बल की नहीं, संकल्प शक्ति की कमी होती है। अच्छे काम के लिये धन की कम आवश्यकता पडती है, पर अच्छे

हृदय और संकल्प की अधिक।

१५०४) संगीत ऐसा होना चाहिये कि दिल पर असर पडे। जिस गायन से मन में भक्ति, वैराग्य, प्रेम और आनन्द की तरंगे न उठे, वह संगीत नही है। संगीत को देवदूतों की भाषा कही गयी है।

१५०५) मनुष्य बराबर वालों की हंसी नहीं सह सकता, क्योंकि उनकी हंसी मे ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन होती है। मुझे वह हंसी प्रिय है जो होठों और हृदय को खोल देती है तथा उसी समय आत्मा और दाँतों के दर्शन कराती है।

१५०६) एक शब्द से सुख मिलता है, एक शब्द दु:खी भी कर देता है। शब्द से मन की गाठें खुल जाती है, बन्धन कट जाता है और शब्द से ही गले में फन्दा लग जाता है।

१५०७) जंग लग कर नष्ट होने की अपेक्षा श्रम से घिस घिस कर खत्म होना कही बेहतर है। अरे आलसी चींटी के पास जाकर देख, उसके श्रम को देखकर बुद्धिमान बन।

१५०८) हंसी की सुन्दर पृष्ठभूमि पर यौवन के सुमन खिलते है। यौवन को तरोताजा रखने के लिये खूब हंसिये। हंसी छूत की बीमारी की तरह है।

१५०९) ज्ञानी को हंसी सबसे अधिक चक्कर मे डालनेवाली यदि कोई वस्तु है तो वह है मूर्ख की हंसी। जब मै स्वयं पर हंसता हूँ तो मेरे मन का बोझ हल्का हो जाता है।

१५१०) जो पुरुष अपने को न चाहनेवाले से प्रीति रखता है, और चाहने वालों से ईर्ष्या करता है, बलवानों से द्वेष रखता है, उसे मूर्ख कहते है। जो पुरुष अत्यधिक धन सम्पत्ति विद्या अथवा ऐश्वर्य को प्राप्त करने के बाद भी उदंड न होकर नम्रतापूर्ण व्यवहार करता है वह पंडित है।

१५११) यह सन्देह उठाना बुद्धिमान आदमी के लिये स्वाभाविक है क्योकि आदमी नासमझ नही है, समझदार है इसलिये वह सन्देह करता है कि मैने पाया तो कुछ भी नहीं। ये मेरे ४० साल क्रोध, काम, लोभ इनसे लडने में ही बीत गये। हासिल कुछ भी नहीं हुआ और क्रोध मिट गया हो ऐसा भी नहीं है, सिर्फ छिप गया है, दब गया है। तो तुम दूसरों से छिपा सकते हो लेकिन खुद से कैसे छिपाओगे। तुम्हे पता है तुम इसे दबा कर बैठे हो। अपने आपको सज्जन समझते हो, अपराध नहीं करते हो, लेकिन अपराधी आपके भीतर मौजूद है और वह अपराध कभी भी, किसी क्षण भी कर सकता है अवसर मिलने पर अवश्य करेगा।

१५१२) धनवान कौन है ? सुखी किसे माने ? मित्र कौन है ? पुरुष किसे कहे ? जिसे अहंकार नहीं है वह धनवान है। धन का अहंकार मनुष्य को उन्मत्त बनाता है इससे व्यक्ति अध:पतित होता है। जिसने तृष्णा और लोभ पर नियन्त्रण कर लिया वह सुखी है। जो मिला उसी में सन्तोष कर लिया। अधिक की इच्छा न करनेवाला सदैव सुखी है, कारण तृष्णा व्यक्ति को नियमित आहार नही करने देती। जिसने विश्वास बनाये रक्खा है वह मित्र कहलाने योग्य है इसलिये कहा कि कुटिल मित्र से बुद्धिमान शत्रु अच्छा होता है। विश्वास ही मित्रता की कसौटी होती है। जिसने इन्द्रियों पर संयम कर लिया वही पुरुष है। मन और इन्द्रियां जिसके अधीन नहीं है वह पुरुष नहीं सींग और पूंछ रहित पशु है।

१५१३) किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता तब समाप्त होती है जब वह पडोसी के लिये अभिशाप बन जाता है। दिन सदा एक जैसे नही रहते।

१५१४) लीला व अभिनय का रहस्य अत्यंत कठिन है। यह रहस्य का समाधान है। समाधान का समाधान कैसा ? भक्त लोग कहते है कि यह अनुभव से प्राप्त होता है। लीला ही लीला का मार्ग है। लीला ही साधन है और लीला ही साध्य है।

१५१५) जिन बातों की आप आशा नहीं करते वही अक्सर अधिक होती है और जिन चीजों की आप आशा करते है शायद वे पूर्ण नहीं होती है।

१५१६) मस्तिष्क नश्वर है, सम्पत्ति अचिर स्थायी है, जीवन अत्यन्त लघु है और यौवन क्षण भंगुर है केवल विमल यश चिर-स्थायी है।

१५१७) छोटी-छोटी गलतियां भी मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा दे सकती है इसलिये गलती कर के भी मनुष्य बहुत कुछ सीखता है।

१५१८) मूर्ख व्यक्ति बिना किसी के बुलाये भीतर प्रवेश कर जाता है, बिना पूछे बोलने लगता है और जिस पर विश्वास नहीं करना चाहिये उस पर विश्वास करने लगता है।

१५१९) अंधकार लडने से नहीं मिटता है, दीपक जलाओ और प्रकाश से अन्धेरे को दूर करो। किसी का बुरा नहीं करने वाले को जिन्दगी में कभी भी पछतावा नहीं होता है।

१५२०) यह आकाश स्थिर है। यह धरती स्थिर है, पर्वत स्थिर है और समग्र विश्व भी स्थिर है इसी तरह प्रजा का पालन करने वाला राजा भी सदा स्थिर रहना चाहिये।

१५२१) बदी करने के अवसर दिन में प्रतिपल मिलते है लेकिन नेकी करने का अवसर कभी कभार ही मिलता है तो नेकी करने के लिये अवसर ढूंढो और तत्पर रहो।

१५२२) कोई भी काम आरम्भ करने के पश्चात उससे डरना नहीं चाहिये, न ही उसे अधूरे मे छोडना चाहिये। काम तो मानव की सबसे बडी पूजा का दूसरा नाम है, जो मन प्राण से अपना काम करते है वे सदा सुखी है।

१५२३) बातचीत करने में न तो इतने संक्षिप्त बनो कि बात को कोई अर्थ ही न रह जाय और न ही इतनी बात करने वाले बनो कि सुननेवाला परेशान हो जाय।

१५२४) निष्कपट भाव से और बिना दिखावे के दिये हुए धन्यवाद घंटों के गुनगान से सदैव बेहतर है। आपका यह व्यवहार गणित के शून्य जैसा है। वह स्वयं में तो बहुत कीमत नहीं रखता किन्तु हर चीज का मूल्य बढा देने में समर्थ है।

१५२५) जो किसी की भी बात पर हमेशा विश्वास करने के लिये तैयार रहता है, वह कभी कुछ भी अच्छा नहीं कर पायेगा।

१५२६) सत्य को अपना दीपक मान कर दृढ़तापूर्वक स्वयं से प्रकाश ग्रहण करो। बाहरी किसी सत्ता पर निर्भर न रह कर सत्य में ही अपनी मुक्ति की खोज करो। इस सूत्र को संकल्प के साथ अपना लेने से ज्ञान के उच्चतम शिखर तक पहुंचने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

१५२७) युवाओं के दिमाग परिवर्तनशील होते है लेकिन जहां तक एक वृद्ध का सवाल है तो वह किसी भी विषय में आगे पीछे विचार करता है देखता है।

१५२८) किसी भी कार्य को करने के पहले देख लेना चाहिये कि उसका प्रतिफल क्या मिलेगा। यदि प्राप्त लाभ से बहुत अधिक परिश्रम करना पडे तो ऐसे परिश्रम को न करना ही अच्छा है। मनुष्य को वही कार्य करना चाहिये जो उसके लिये उचित व कम परिश्रम से अति फलदायक हो।

१५२९) सभी जीवों के प्रति सम्पूर्ण दया भाव या (वास्तविक आवश्यकता) निम्नतम क्रूरता पर आधारित जीवन ही सबसे ऊंची नैतिकता है।

१५३०) आगे बढ़ने के लिये आवश्यक है पहले हम स्वयम् में विश्वास रक्खे और फिर ईश्वर में। जिसे स्वयम् में विश्वास नही उसे ईश्वर में कभी भी विश्वास नहीं हो सकता।

१५३१) ज्यादा अपने को सम्भालने की अपेक्षा चुप रहना अधिक बेहतर है। बाहर अपने को सम्भालने की अपेक्षा घर पर शान्त बैठना अधिक बेहतर है। आम जनता के सामने कुशलता से वही आ सकता है जिसको एकान्त पसन्द हो और कुशलता से वही बोल सकता है जिसे मौन पसन्द हो, कुशलता से वही बडा बन सकता है जिसे ताबेदारी में रहना पसन्द हो, कुशलतापूर्वक वो ही सबको हुक्म दे सकता है जिसने हुक्म की पाबन्दी करना सीख लिया हो। कुशलता से वही मौज कर सकता है जिसके अन्दर से शुद्ध अन्त:करण गवाह देता हो।

१५३२) धर्म अंत: प्रकृति है वह सारी वस्तुओं का ध्रुव सत्य है। धर्म ही वह पूर्ण व चरम लक्ष्य है जो हमारे भीतर अन्त:करण मे काम करता है।

१५३३) यह सृष्टि एक लम्बे चौडे शहर जैसी है जिसमे रहने वाला इन्सान हो या देवता सभी एक दूसरे के प्यारे है और एक दूसरे के प्रेम से बन्धे है।

१५३४) हम अक्सर इस प्रकार की गलतियां कर बैठते है कि यह समझ कर चलना कि हमारा निजी हित इस में है कि हम किसी दूसरे को कुचल सकते है या नुकसान पहुंचावे। हम सदैव इस चिन्ता में पडे रहे कि अमुक चीजों में बदलाव या सुधार क्यों नही होता जब हम यह भी जानते है कि इसके लिये हम कुछ भी नही कर सकते। यह गलत धारणा बनाये रखना कि क्योंकि हम अमुक काम नही कर सकते इसलिये दूसरा भी कोई नहीं कर सकेगा।

१५३५) हमारा प्रेम हमेशा चिन्ता, ईर्ष्या और भय से घिरा रहता है। इसका अर्थ है हम आंतरिक रूप से दूसरों पर अवलम्बित है। हम चाहते है कि कोई हमे प्यार करे। और उस चाहने में ही हम पराधीन बन जाते है। प्रेम का अर्थ है हम बदले में कुछ न चाहें। हमे इस बात तक का विचार भी न आवे कि हमने कुछ दिया है।

१५३६) प्रशंसा योग्य शास्त्र अध्ययन से उत्पन्न ज्ञान, निर्मल प्राकृत ज्ञान, शील या सदाचार, कार्यों की उत्कृष्टता, वन्दनीय देवता लोग ये सभी हमारे गुरु है (राजा, आचार्य, माता-पिता, ज्येष्ठ भ्राता ये सब गुरु कहे जाते है)

१५३७) दूसरे को दु:ख देनेवाला क्षण भर ही अपने आप में सुख का अनुभव करता है परन्तु अगले क्षणों में ही वह पश्चाताप की आग में जलने के लिये विवश होता है।

१५३८) क्रोध से बचना चाहिये क्योकि यह क्षणिक पागलपन है, और सदा ही नुकसान दायक है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मन को शान्त रखकर धैर्य और विवेक के साथ ही कोई निर्णय करना चाहिये।

१५३९) बुरी इच्छायें बार-बार सताती है, बुरी इच्छाओं को घोडा समझो। जब गिर पडो तो उठ कर फिर सवार हो जाओ। ऐसा करते-करते अंतत: घोडा काबू मे आ जायेगा।

१५४०) कोई भी पुण्य कार्य कल पर टालना बहुत बडी भूल है। कल पर किसी का भी अधिकार नहीं होता है। सुनहरे अवसर बार-बार नहीं आते।

१५४१) कुछ चीजे दिखती नहीं है पर होती अवश्य है, जैसे हवा। उसी तरह ईश्वर होता है, पर वह ज्ञान के नेत्रों से ही दिखता है।

१५४२) सन्यास तो चित्त की वह दशा है, जब संसार स्वप्न की तरह रह जाता है। न तो भोगने योग्य और न ही भागने योग्य। उस समय संसार तो बस जानने योग्य होता है।

१५४३) अन्धकार को समाप्त करने का प्रयास व्यर्थ है। स्वयं को प्रकाशमय बनाने से अन्धकार स्वत: ही समाप्त हो जाता है।

१५४४) जो लोगों की तकलीफ में उनकी मदद नहीं करते और अपनी तकलीफ में लोगों से मदद व हमदर्दी की अपेक्षा करते है वे तो गल्ती करते है।

१५४५) किसी से भी इस तरह से बुरा व्यवहार मत करो कि फिर कभी जरूरत पडने पर अच्छा व्यवहार करने की कोई उम्मीद ही न बचे।

१५४६) उपवास ही सबसे बडी औषधि है। यह न भूमि से उत्पन्न हुई है न ही आकाश से। पथ्य और रस विसर्जित है तथा सब आचार्यों से सम्मत भी है।

१५४७) जिसमें सब्र और धैर्य है उसके हर काम मे बहुत होशियारी व सफलता मिलेगी लेकिन जो बेसब्र व अधीर है उसके हर काम में बेवकूफी ही जाहिर होगी।

१५४८) सृष्टि के अस्तित्व के लिये शान्ति अपरिहार्य है। शान्ति में ही सृजन होता है। संक्रमण की आवश्यकता सिर्फ परिवर्तन के लिये होती है जिसकी अवधि बहुत थोडे समय के लिये होती है।

१५४९) खुद को दीन हीन न समझे और अपनी इच्छा कामनाओं की उपेक्षा न करे। उच्च कल्पना करे और वे साकार होने पर होने वाले आनन्द की मानसिक अनुभूति करे। सकारात्मक विचार करे व अपनाये। निराशावादी या नकारात्मक कल्पनाओं का विचारों का शीघ्र ही त्याग करे। असफल लोगों के बारे में कतई चिन्तन न करे। हमारी इच्छायें जिन्होंने सफल करने में योग किया है उन व्यक्तियों का सदैव स्मरण करे। इस जगत मे असम्भव कुछ भी नहीं है। वर्तमान युग मे हिमालय के शिखर को लांघना या सागर की तलहटी को खोजना भी सम्भव है इसलिये उच्च ध्येय मन में रख कर व्यवहार के नियमों का पालन करे। अपनी इच्छा कभी न भूले, ध्येय का सतत स्मरण करे।

१५५०) महामानवों की असामान्यता उनके दैनिक व्यवहार से झलकती है। वे झूठ, दंभ और अहंभाव से मुक्त होते है। पर सेवा और परोपकार मे उन्हे सच्ची आनन्दानुभूति होती है। महामना, महात्मा का यही विशिष्ट लक्षण है।

१५५१) जिस तरह उजाड या बीहड में कही बडा पेड होता है। दूर-दूर से पक्षी आकर उस पर विश्राम करते है। कोई कोयल की तरह मीठा बोलता है तो कोई कौवे की तरह कर्कश। सुबह होने पर सभी अपनी-अपनी बोली बोल कर उड जाते है। इसी तरह परिवार,

रिश्तेदार जो कोई कहां से आ गया हो, कोई कहां से। जैसे जैसे उनका वक्त आता है, लेना देना समाप्त हो जाता है वैसे-वैसे वे चले जाते है। तुम इनके साथ अपना कर्म करो पर इनमे मोह मत डाल कर फंसो क्योकि यह तुम्हारा दीन धर्म ईमान नही है क्योंकि ये परमार्थ के मित्र नहीं है। ये स्वार्थी है।

१५५२) **संकल्प शक्ति :-** संकल्प शक्ति को उद्दीप्त, प्रखर एवं प्रभावशाली बनाने में जिन तत्वों की प्रमुख भूमिका होती है वे है आत्मबल, आत्मविश्वास, आत्म निष्ठा, आस्था, विचारशीलता, आत्मनिर्भरता, दृढ़ता, साहस आदि। संकल्प शक्ति के ये सहायक तत्व है। संकल्प शक्ति को विकसित करना और उसे किसी कार्य सिद्धि के लिये प्रयुक्त करना मनुष्य की स्वयं की क्षमता पर निर्भर होता है। संकल्प शक्ति के सहारे वह असम्भव कार्यों को भी संभव कर दिखाता है। उसके संकल्पों की दृढ़ता से प्राप्त होने वाली सफलता कभी कभी संकल्पकर्ता को भी आश्चर्य मे डाल देती है।

१५५३) आदत आराम देती है मगर आदमी की सबसे बडी दुश्मन आदत है जो आदमी के खिलाफ काम करती है और उसकी तरक्की में सबसे बडी रुकावट करती है।

१५५४) पूर्णता मानव का स्वभाव है। केवल उस पूर्णता के प्रकटीकरण का मार्ग अवरूद्ध रहता है। जो बाधाये दूर करता है उसकी स्वभाविक पूर्णता अपनी शक्ति से प्रकट होती है। पूर्णता के मार्ग में दुर्गुणों की बाधाये होती है। प्रयत्नपूर्वक दूर करने से पूर्णता का विकास होता है।

१५५५) यदि हम मन से हार गये तब लाख कोशिशों के बाद भी हमारी जीत हो भी नहीं सकती और यदि हम मन से जीत गये, तब हमारी हार नहीं हो सकती।

१५५६) हमेशा सच का साथी बनो। जो सोचो वह अच्छा ही सोचो और सदा अच्छा ही बोलो और अच्छाई पर ही चलो। ऐसी चीजों से हमेशा बचो जो शक पैदा करे और जो भी बोलो सदा उस पर अडिग रहो।

१५५७) दुनिया के लोग कोई आपके गुलाम नहीं है। दुनिया के हिसाब से सब को साथ लेकर चलने से ही इन्सान अपनी मंजिल तक पहुंच पाता है।

१५५८) यदि कोई होशियार, सन्मार्ग पर चलनेवाला, सही दिशा में नेतृत्व करनेवाला धैर्यवान साथी मिल जाये तो सारी विघ्न-बाधाओं को झेलते हुये भी उसका साथ देना चाहिये।

१५५९) धनहीन होकर राजमहल का सपना देखना और कमजोर होने पर भी बहुत अधिक क्रोध करना यह दोनों ही शरीर को घोर कष्ट देने वाले होते है।

१५६०) सन्मार्ग पर चलने वाले पुरुषों को याचना के सिवा और किसी भी उपाय से समर्थ पुरुष भी उन्हे अपने स्थान से, ऐश्वर्य से, नहीं च्युक्त कर सकते (वामन अवतार)

१५६१) प्रशंसा गुरुजनों की उनके सम्मुख की जाती है, मित्र की पीठ पीछे की जाती है, पुत्र की कभी नहीं की जाती और सेवकों की तब की जाती है, जब वह कार्य सम्पन्न करके आता है।

१५६२) आत्म मृत्यु कायरता है। व्यक्ति स्वयं का जीवन तो समाप्त करता है साथ ही खुद से जुडे लोगों को मृत प्राय: छोड जाता है।

१५६३) कोई भी मुश्किल इन्सान की जान से बडी नहीं होती। मुश्किल हमे पीछे छोड दे या हम मुश्किलों को पछाड दे। जो व्यक्ति मुश्किलों का सामना करके आगे बढ़ता है वही सच्चा इन्सान कहलाने योग्य है।

१५६४) उंगली उठाना बहुत आसान है पर उंगली पकड कर चलना बहुत मुश्किल है। अगर जल्दी कुछ सीखना है तो बुजुर्गों के पास बैठकर उनके अनुभव से सीखो।

१५६५) आत्म रक्षा के लिये सदैव सतर्क रहना चाहिये। अपनी असावधानी का लाभ शत्रु को नहीं उठाना देना चाहिये। औरों के आक्रमण से कभी नष्ट नहीं होना और औरों पर आक्रमण नहीं करना चहिये।

१५६६) किसी को नीचा दिखाने वाला या किसी को जमीन पर पटक देने वाला ताकतवर नहीं है। असली शक्तिशाली वीर तो वह है जो गुस्से की हालत में भी अपने आपको सम्भालने की क्षमता रखता हो। किसी गिरते आदमी को उठानेवाला ताकतवर होता है।

किसी को नीचा दिखाने के लिये ताकत का उपयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। ताकत का इस्तेमाल गलत कामों में नहीं बल्कि हमेशा अच्छे कामों में ही होना चाहिये।

१५६७) परिवार में प्रेम और समर्पण है तो जीवन स्वर्ग है। प्रेम से बडा दुनिया में कोई स्वर्ग नही है और घृणा और नफरत से बडा कोई नर्क नही है।

१५६८) दूसरों को प्रसन्न रखने की कला स्वयं प्रसन्न होने में है। सौम्य का अर्थ ही स्वयं से व दूसरों से सन्तुष्ट होना है। मनुष्य चाहे तो मुसीबत मे भी प्रसन्नता का आधार ढूंढ सकता है।

१५६९) संसारी का मन कही नहीं टिकता और सन्त के पैर कही नहीं टिकते। बहता हुआ जल और चलता फिरता सन्त हमेशा पवित्र होता है।

१५७०) अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति। जिसने इसे समझ लिया वही शान्तिमय जीवन बिताता है।

१५७१) कठोर शब्दों में कहे गये हितकर वचन भी मनुष्य को रूष्ट कर देते है। शब्दों के अर्थ समान होते हुये भी वे किसको किस प्रकार प्रसन्न व अप्रसन्न कर सकते है।

१५७२) जो दूसरे मनुष्यों को जानता है वह विवेकी है। जो अपने को जानता है वह ज्ञानी है। जो दूसरों को वशीभूत करता है वह बलवान है। जो अपने को वशीभूत करता है वह अत्यन्त शक्ति सम्पन्न है।

१५७३) देखने से, मिलने से प्रेम होता है, प्रेम से प्यार हो जाता है। प्यार से त्याग और फिर त्याग से समर्पण और समर्पण ज्ञान मे बदल जाता है।

१५७४) परिपूर्ण प्रेम विरज व विशुद्ध है उसमे न तो उच्छवास है, न अवसाद और न ही अतृप्ति। इस प्रकार का दिव्य प्रेम ही मनुष्य को पूर्णानन्द, प्रेमानन्द, और आत्मानन्द में प्रतिष्ठित करता है तथा उसे देवत्व प्रदान करता है।

१५७५) चतुर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। पथ्य भोजन करने वाला निरोग रहता है। रोग हीन व्यक्ति सुखी रहता है। विनम्रता व्यक्ति को धर्म, अर्थ और यश सब साथ में दिलाती है। विनम्रता जीवन में आखिरी समय तक साथ देती है और सदैव लाभकारी भी होती है। कठोर बीच ही में टूट जाता है।

१५७६) बात को इतना भी टूल मत दो जिससे बात बिगड जाये, हालात बिगड जाये और किसी का इससे दिल दु:ख जाये।

१५७७) शक्ति निरपेक्ष है, निष्पक्ष है उसका न तो कोई पक्षपात है और न ही विध्वंस के प्रति मोह। यह उस पर निर्भर है जो उसका उपयोग कर रहा है।

१५७८) अपनी जबान खोलने से पहले यह सोच लो कि दुनिया में और ऐसे भी लोग मौजूद है जो तुमसे अधिक बुद्धिमान है।

१५७९) जो व्यक्ति ज्ञान रहित होकर भी उदंड है, दरिद्र रह कर भी बडी बडी अभिलाषाये करता है और बिना कर्म किये ही ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है वह निरा मूर्ख है।

१५८०) प्रेमी प्रेमिका के सम्बन्ध दिव्य होते है पर घरेलू सम्बन्ध इन सम्बन्धों से कही अधिक दिव्य और पाक होते है। जिन्हें हम भौतिक कहते है वे ही दिव्य भी है।

१५८१) दो लोगों के बीच फूट डालना या झगडा करवाना मत करो। किसी बात से दो लोगों के दिल मे दूरियां, या नफरते पैदा होती हो तो ऐसी बातों से डरो और मत करो।

१५८२) दूसरों की खुशी और आराम पर ईर्ष्या, जलन मत करो क्योकि उनकी यह खुशहाल जिन्दगी बहुत थोडे दिनों की ही होती है। जिन्दगी के हर कदम पर फूल बिखेरते जाओ, किसी दिन तुम्हे भी बाग नसीब होगा।

१५८३) विषय भोग संसार के महाभोग है। विषयों की खोज मे दु:ख है। उनकी प्राप्ति होने पर तृप्ति नहीं होती। उनका वियोग होने पर शोक होना निश्चित है।

१५८४) यदि मानव की इच्छाओं पर नियन्त्रण न हो तो वह राक्षस बन सकता है। अत: इच्छाओं पर अंकुश रखना आवश्यक है। इच्छा तथा आवश्यकता में बहुत अन्तर है। जीने के लिये सर्वप्रथम उचित व अनुचित का निर्णय करे व अनुचित का त्याग करे यही

जीने का सर्वोत्तम उपाय है।

१५८५) अपनी खुशी हासिल करने के लिये इन्सान तमाम उम्र संघर्ष करता है लेकिन उसे खुशी नहीं मिलती। जिन्दगी का हर लम्हा औरों को खुशी देने में बिताने पर खुशियां आपके घर में नौकर बन कर रहेगी। दूसरों को खुश रखकर जो खुशी हासिल होती है उससे बढकर कोई दूसरी खुशी नही है।

१५८६) कुछ पाने के लिये कुछ खोना पडता है, कुछ देना पडता है। अपने कर्मों से ज्ञान की क्यारियों को सींचो। जीवन की आंच में ज्ञान की धातु सिद्ध करो और मार्ग में अपने को खोकर ज्ञान की मंजिल पाओं। ज्ञान किसी का सग्गा नही, जो उसे कमाता है वह उसी के पास आता है।

१५८७) भारत में सनातन धर्म की व्यापक और कल्याणकारी परिभाषा यही है कि लौकिक सुख शान्ति, मानसम्मान, उन्नति साथ ही परलोक मोक्ष प्राप्ति हो। जिस धर्म की यह परिभाषा रही है वह सनातन ही मानने योग्य है वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता।

१५८८) विश्व के सत्पुरुषों का विनाश करने को उद्यत दुष्टों को अभय कर देना घोर अधर्म और पाप है। उन्हे मिटा देना ही श्रेयस्कर और आवश्यक है।

१५८९) मर्यादा स्थापित करने के लिये, लोकादर्श की रक्षा के लिये शासक हो कितने ही बडे आत्मबलिदान के लिये सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये।

१५९०) शासक की अपनी रुचि और अपने सुख का कोई महत्व नहीं है। क्षत्रिय पुत्र दूसरों को शान्ति सुरक्षा देने के लिये ही उत्पन्न होता है।

१५९१) ईश्वर की सत्ता प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से विद्यमान है, जो व्यक्ति जाति के आधार पर किसी को ऊंचा या नीचा समझता है, वह धर्म का मर्म नहीं समझता है।

१५९२) उस खुशी से डरो जो किसी को दु:ख देकर हासिल की जाये। बांटने से खुशियां इस तरह बढती है जिस तरह जमीन मे बोया हुआ बीज फसल बनता है।

१५९३) किसी के प्रति अनुराग हो और उसके तहत जो व्यवहार हो उसे ईमानदारी कहते है। ऐसी व्यवहारिक ईमानदारी हर युग मे वक्त के साथ साथ बदलती रहती है।

१५९४) भविष्य काल है ही नहीं जो महज एक कोरी कल्पना है। भविष्य के प्रति कभी भी निश्चित नहीं हुआ जा सकता। वह मात्र एक सम्भावना है जो हो भी सकती है और नहीं भी। भविष्य एक छलावा है, एक सूत्र है हमारी आशाओं का और उतना ही अनिश्चित।

१५९५) बहुत से लोग आपकी महंगी गाड़ी में बैठना चाहते हैं। ऐसे स्वार्थी लोगों से नहीं बल्कि उनसे सम्बन्ध रखिए जो महंगी गाड़ी खराब होने पर आपको अपनी सस्ती गाड़ी में बैठा लें।

१५९६) संत तुलसी दास जी को उनकी पत्नी ने कहा- आप हाड़ और चाम के इस शरीर से जितना प्यार करते हो उतना यदि प्रभु से करते तो कहां से कहां पहुंच जाते। मैं सोया हुआ था जाग गया हूं। आज से तुम मेरी गुरु हो। तुलसी दास ने पत्नी से कहा।

१५९७) यदि आप अकेले हैं तो आपका कोई महत्त्व नहीं, परंतु यदि आप संगठन में स्नेहशील, रमणीक व सहयोगी होकर रहते हैं तो आप मूल्यवान हैं।

१५९८) लोगों की बुराई करना गुनाह से भी बढकर संगीन अपराध है जो बुराई उसमे है ही नही। ऐसी बुराई किसी पर इल्जाम लगाने के बराबर है। जिसकी कोई माफी नहीं होती। वह कामयाब है जिसने अपनी आदतों में और अपने बर्ताव में सुधार कर लिया।

१५९९) दीप प्रज्वलित होते ही प्रकाश होता है उसी तरह प्रेम ज्योति प्रकट होने पर ही त्याग और समर्पण होता है। त्याग और समर्पण प्रेम की शर्त नहीं स्वभाव है।

१६००) अधर्म और अनीति से कमाया हुआ अर्थ जीवन में बहुत अनर्थ करता है। अर्थ और काम, धर्म और मोक्ष की मर्यादाओं में रहे तो बहुत अच्छा।

१६०१) आपकी सोच सकारात्मक होनी चाहिये वह अच्छी है या बुरी इससे आपकी परिस्थिति दृढ़ बनेगी। नकारात्मक सोच तो

आपके जीवन को ही समाप्त कर देगी।

१६०२) मनुष्य ईर्ष्या के वशीभूत होकर जघन्य से जघन्य कर्म कर बैठता है। सर्वनाश का कारण द्वेष है। दूसरे के अभ्युदय से हृदय में जो ईर्ष्या उत्पन्न होती है, उससे कलह होती है और कलह ही सर्वनाश का कारण है।

१६०३) अक्षरों को प्रतिज्ञा नहीं कहते, प्रतिज्ञा का भाव देखा जाता है। फिर कहीं धर्म भी अधर्म हो जाता है और अधर्म प्रतीत होने वाला भी परिणाम में धर्म ही समझा जाता है।

१६०४) सबका वध एक-सा नहीं होता। सम्मानित पुरुष का अपमान कर देना ही वध है। सम्मानित पुरुष को अपमानित होकर जीना वध से भी निन्दनीय है।

१६०५) जिस संसार में मनुष्य, मनुष्य को निगलने को तैयार रहता है, जिसमें स्वार्थ बिना कोई किसी से बात नहीं करता, इन्द्रिय सुख के लिये पुरुष सब तरह के अनर्थ करता है, सगे सम्बन्धियों का जहाँ विश्वास नहीं, उस संसार में प्रेम ही एक ऐसी वस्तु है जो समस्त अनर्थों का नाश करके मनुष्य को पशु से उठाकर देवताओं से ऊँचा बना देता है।

१६०६) पालन-पोषण तो आकाश में विचरण करने वाले पक्षियों का भी होता है। दया, क्षमा, अहिंसा, सत्संग आदि ऐसे अनूठे धन हैं, जो हमेशा सुख देते हैं। गुप्त दान करने वाला हमेशा धनी रहता है।

१६०७) मानव की यह विशेषता है कि मानव अपने विवेक को जागृत करके महान् कार्य के साथ जुड़ सकता है। और जो जितने महान् कार्य के साथ जुड़ेगा, अपने आप वह उतना ही महान् कहलाएगा।

१६०८) सकारात्मक सोचवाला व्यक्ति ही बडी से बडी बाधा पार कर सकता है और स्वाभाविक रूप से सफलता के आयाम स्थापित कर सकते है।

१६०९) दु:ख और सुख तो आते-जाते ही रहेंगे, दोनों परिस्थितियों में एक से रहो। जैसी परिस्थितियाँ जीवन में आयें, उनका डटकर मुकाबला करो, उनसे घबराओ नहीं। जो परिस्थितियों से घबरा जाता है, वो मानव जीवन में कभी प्रगति नहीं कर सकता।

१६१०) यदि संसार में सत्य कोई चीज है, तो वो है मौत। मृत्यु के अलावा और कोई सच्चाई है ही नहीं। परमात्मा की सृष्टि का अपरिवर्तनीय सत्य केवल मौत है और ये मौत क्या है ? मृत्यु ही ध्रुव सत्य है। बाकी सब चीज बिगड़ने वाली हैं। केवल मौत ही अपरिवर्तनीय है, सत्य है और मरना सबको सुनिश्चित है।

१६११) यदि कोई सहारा दे तो अवसाद के यही क्षण सृजन के पलों की सृष्टि कर डालते हैं; अन्यथा समूचा व्यक्तित्व ताश के पत्तों की तरह बिखर जाता है।

१६१२) जिस आदमी में सन्तुलन है, उसके जीवन में प्रसन्नता होती है। जिस आदमी के चित्त में संतुलन नहीं है, जिसके मन और मस्तिष्क में समन्वय नहीं है, वह आदमी प्रसन्न नहीं हो सकता। सन्तुलन बनाओ तो प्रसन्नता आयेगी। सन्तुष्टि अपनाओ तो प्रसन्नता आयेगी। प्रसन्नता महसूस करोगे तो आपके अन्दर प्रसन्नता आयेगी। प्रकृति के संग रहने से प्रसन्नता आयेगी।

१६१३) पूर्ण रूप से प्रसन्नता पाने के लिये अपनी व्यवस्था को सुव्यवस्था में बदलो, अव्यवस्था में नहीं। व्यस्त रहना तो अच्छी बात है, पर अस्त-व्यस्त रहना अच्छी बात नहीं है।

१६१४) जीवन का कोई अनुभव स्थायी और चिरंतन नहीं। जीवन की स्थिति समय में है और समय प्रवाह है। प्रवाह में साधुअसाधु प्रिय-अप्रिय सभी कुछ आता है। प्रवाह ही सृष्टि और प्रकृति की नित्यता है। जीवन के प्रवाह में एक समय असाधु विरक्त होकर जीवन की तृष्णा को तृप्त न करना केवल हठ है। जीवन में दुर्घटनाओं और संकटों का भी स्थान है, किंतु मनुष्य में जितनी अकर्मण्यता और क्लांति इन से आती है वह अन्य कारणों की तुलना में अत्यंत अल्प है। कई व्यक्तियों का जीवन अधूरा होता है और यह अधूरापन जीवन में नहीं, उन में स्वयं होता है। अधूरेपन की भावना हमें अधूरा बनाती है।

१६१५) चिन्ताये, परेशानियां, दु:ख और तकलीफे परिस्थितियों से लडने से दूर नही हो सकती, वे दूर होगी अपनी अन्दर की कमजोरियों को दूर करने से जिनके कारण ही वे सचमुच पैदा हुई है।

१६१७) अपराध के दंड मे उपयोगिता होनी चाहिये। जब एक मनुष्य को फांसी दे ही दी गई तो इस दंड से उस अपराधी को कोई

लाभ नही। अपराध को दंड से नही रोका जा सकता। दंड अन्यायी के लिये न्याय है।

१६१८) दार्शनिक होने का अर्थ केवल सूक्ष्म विचारक होना नहीं है। यह केवल किसी दर्शन प्रणाली को चला देना नहीं है बल्कि यह है कि हम ज्ञान के ऐसे प्रेमी बन जाये कि उसके इशारों पर चलते हुये विश्वास, सादगी, स्वतन्त्रता और उदारता का जीवन व्यतीत करने लगे।

१६१९) यदि नेता चरित्रवान नहीं हो तो अनुयायियों में उसके प्रति श्रद्धा रखना सम्भव नहीं है। पूर्णतया शुद्ध चरित्र के आधार पर अटूट श्रद्धा और विश्वास टिक सकते है। तर्क और निर्णय ही एक नेता के अच्छे गुण होते है।

१६२०) जो व्यक्ति अकृतज्ञ है, निरंतर दूसरों के दोष देखता रहता है, उसे अगर सारी धरती का राजा बना दिया जाय तो भी वह प्रसन्न नहीं होगा।

१६२१) घर-परिवार की एकता को बनाए रखने के लिये अगर कभी-कभी अपमान का कड़वा घूंट पीना भी पड़ जाये तो आप छोटे नहीं होंगे, इससे आपका स्थान बड़ा बनेगा।

१६२२) अपने-आपको कठपुतली मत बनाना और न ही जीवनरूपी कठपुतली के धागे दूसरों के हाथ में देना अन्यथा इस संसार में लोग तुम्हें जीने नहीं देंगे।

१६२३) पहाड़ों की चोटी पर उगे देवदार के पेड़ नहीं बन सकते तो घाटी में उगे सुन्दर पौधों की तरह अपने को हरा-भरा रखो। घाटी में उगे सुन्दर पौधे की तरह नहीं बन सकते तो सड़क के किनारे उगने वाले सुन्दर पौधों की तरह बनो जो रास्ता चलने वालों को शान्ति देते हैं और रास्ते को सुन्दर बनाते हैं।

१६२४) आग सुन्दर लगती है जब प्रज्ज्वलित होती है, नहीं तो धुआँ तो घुटन ही पैदा करता है। क्रोध जहाँ आये वहाँ घुटन ही पैदा करता है और सबसे पहले करने वाले को ही हानि पहुँचाता है।

१६२५) सब अपना-अपना भाग्य लेकर दुनिया में आये हैं। बाप के कंधे पर बैठकर संसार को देखने की कोशिश नहीं करो, अपने पांव पर खड़े होकर देखने की कोशिश करो। खुद कमाओ, अपना रास्ता बनाओ।

१६२६) जिन्दगी लम्बी हो या छोटी इससे फर्क़ नहीं पड़ता है। मुख्य बात यह है कि तुम जीवन जीते किस तरह से हो। जो हर ठोकर से सबक लेता है वह ठोकरों को ठोकर लगाकर आगे बढ़ जाता है।

१६२७) आदमी की हत्या करने में पाप लगता होगा, लेकिन किसी के चरित्र की हत्या करने में जो पाप लगता है उससे बड़ा पाप दुनिया में कोई नहीं।

१६२८) कर्म इतने ऊँचे करो कि दुनिया में आपका नाम अमर हो जाय। लोगों के दिलों पर नाम लिखा जाय, पत्थर पर लिखा नाम तो मिट जायेगा।

१६२९) दुनिया के हर संविधान में परिवर्तन होता है, पर परमात्मा के संविधान में कोई परिवर्तन नहीं होता, न हुआ, न होगा। वह सदा एक जैसा है और दोष-रहित है।

१६३०) इन्सान लेकर भूल जाता है मगर देकर भूलता नहीं और परमात्मा देकर भूल जाता है मगर लेकर भूलता नहीं, अपितु कई गुणा बढ़ाकर वापस करता है।

१६३१) जीवन ऐसा विचित्र है कि काल और समय का चक्र मस्त चाल से आता है और सब सपने उजाड़कर चला जाता है। यह जीवन एक ऐसी यात्रा है कि चलना सबको पड़ता है, पर मंजिल सबको नहीं मिलती।

१६३२) वासना में जहां स्वार्थ सर्वोपरि होता है, वहीं प्रेम में परमार्थ या पुरुषार्थ। वासना का स्तर जहां लौकिक है, वहीं प्रेम अलौकिक होता है। यथार्थ प्रेम पाषाण हृदय को भी मोम कर देता है, जबकि वासनात्मक प्रेम का कोई धरातल नहीं होता। जब किसी चीज का आधार ही नहीं है तो उस पर सृष्टि कैसे संभव है ?

१६३३) जहां प्रेम होता है वहां नियमों के बंधन नहीं होते तथा अन्य किसी प्रकार के बौद्धिक व्यवहार भी नहीं होते। प्रेम तो उन्मुक्त होता है। जब भी प्रेमी का मन करता है वह प्रेम में मग्न हो जाता है। प्रेम दिन, तारीख और समय देखकर नहीं किया जाता।

१६३३) मनुष्य को, वह जितना नीचे जाता है जाने दो, एक समय ऐसा अवश्य आएगा, जब वह ऊपर उठने का सहारा पाएगा और

अपने आप में विश्वास करना सीखेगा। पर हमारे लिए यही अच्छा है कि हम इससे पहले से ही जान लें। अपने आप में विश्वास करना सीखने के लिए हम इस प्रकार के कटु अनुभव क्यों करें ?

१६३४) जो दान देता है उसे उसका फल अवश्य मिलता है। कोई भी दान निष्फल नहीं जाता। जैसे कर्ण (कुन्तीपुत्र) ने कंचन दान दिया, उसे उसका फल मिला और द्रौपदी ने चीर का दान दिया वह भी निष्फल नहीं गया और उसकी लाज बच गई।

१६३५) यह शाश्वत सत्य है कि जिसने भी अहंकार किया वह कही का भी नहीं रहा। परम ज्योतिर्विद लंकेश दशानन अपने गर्व और अहंकार से जड मूल से नष्ट हुआ। जीवन की चतुर्दिक सफलता और सुख शान्ति के लिये अहंकार का परित्याग कर सत्य को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है।

१६३६) हर हाल और हर समय हंसते मुस्कराते व्यक्ति के जीवन से तनाव कोसों दूर रहता है और वह प्रतिकूल विपरीत परिस्थितियों को भी आसानी से झेल जाता है। यदि वह तनाव मुक्त जीवन जीता है तो कोई बीमारी उसके पास फटकती नही। हंसी न केवल रोगों की दवा है बल्कि अनेक बीमारियों के विरुद्ध सुरक्षा कवच भी है। आपकी मुस्कान आपके दिल का दर्पण है।

१६३७) विद्वान कभी भी अपने अतीत के इतिहास को नही दोहराते है और न ही दूसरे के सामने अपनी मायूसियों का कच्चा चिठ्ठा खोलते है। न ही अपने बुरे दिनों को और न ही अपने भाग्य को कोसते है, बल्कि ज्ञान का दीप जला कर अपने अन्धेरे जीवन को रोशन करते है और सदा ही दीवाली मनाते है।

१६३८) कई बार साधन और सुविधाओं के अभाव में प्रतिभाये दम तोडने लगती है यदि हम स्वयं भी अपनी प्रतिमा को विकसित करना चाहे तो बहुत कुछ कर सकते है।

१६३९) बाहर निकली हुई कील को ठोक देना ही बेहतर है नहीं तो चुभ जाने का अन्देशा रहता है और यदि चुभ गई तो असह्य वेदना देती है।

१६४०) उदास पेड भी रोते है। उन्हे जब प्यास लगती है तो वे आखिरी सतह की नमी तक को सोख लेते है और उनकी आवाज भी होती है जो इतनी मध्यम होती है कि हम सुन भी नहीं सकते।

१६४१) पेट भरने और कामेच्छा पूर्ण करने के पश्चात मनुष्य सदैव अमरत्व की ओर आकर्षित होता है। हर तुच्छ प्राणी के मन मे यही इच्छा रहती है कि चाहे उसका भौतिक शरीर रहे या ना रहे लेकिन उसकी ख्याति उसके बाद भी अमर रहे।

१६४२) जिस आदमी में शुरु से लेकर अन्त तक बुलन्द लक्ष्य की प्रेरणा रहती है चाहे वह कितना ही अधिक नाकामयाब क्यो न हो जाये, चाहे उसमे प्राकृतिक प्रतिभाओं की कितनी कमी क्यो न हो वही सबसे बुलन्द व सुखी जीवन जीता है।

१६४३) सभी प्रेरणाये भिन्न-भिन्न विचारों का प्रतिनिधित्व करती है जो एक अच्छे आदमी के जीवन स्तर को ऊंचा उठा देने मे पूर्ण सक्षम है। इनके अनुसार आचरण करने से अधूरी मानवता पूर्णता प्राप्त कर सकती है और पूर्ण मानवता उस शिखर पर पहुंचकर उसे महामानव बना देती है।

१६४४) सूर्य का उदय पूर्व दिशा में ही होता है यह सत्य नहीं। सच तो यह है कि जिधर सूर्योदय होता है वही दिशा पूर्व होती है। पूर्व दिशा सूर्य का आधार नहीं है। सूर्य ही पूर्व दिशा का निर्धारण करता है।

१६४५) राजा महाराजाओं के लिये जनता से हट कर अलग से अतीव सुन्दर राजमार्ग होते है लेकिन शिक्षा के लिये तो राजपुत्रों राजकुमारों सबके लिये एक ही मार्ग से होकर गुजरना पडता है और वह मार्ग है एकाग्रता से अभ्यास का मार्ग।

१६४६) यदि श्रेष्ठता सुसंस्कारित है, सद्गुणों का समुच्चय है तो बहिरंग में दृश्यमान मलीनता सामयिक है। प्रकृति निश्चय रूप से प्रबल है, उसकी शक्ति से ही श्रेष्ठता स्वत: स्फूर्त हो उभर कर आजायेगी।

१६४७) समझदार सेठ कभी भी अपनी तिजौरी किसी गैर के सामने नहीं खोलता है। सच्चा जुआरी अपने पत्ते किसी को नही दिखलाता। बूढ़े अभिनेता बन्द गले की कमीज पहनकर अपने गले की झुरियों को छिपाता है। अपना गंजापन छिपाने के लिये लोग टोपी या पगडी पहनते है और मूर्ख व्यक्ति अपनी मूर्खता छिपाने के लिये मौन का आवरण धारण कर लेता है।

१६४८) अगर आपके पास अपने जीवन का कोई उद्देश्य ही नहीं है, तो आपके भाग्य में गडबड और उलझन के सिवाय कुछ नहीं

आता आप ईंटों के ढेर को इमारत नहीं कह सकते। जो व्यक्ति जीवन में एक लक्ष्य खोजता है वह आशा करता है कि जीवन समाप्त होने से पहले वह लक्ष्य उसे प्राप्त हो जाये।

१६४९) न अपने सपनों का पीछा करने से डरो और न ही प्रयोग करने से। हर उस चीज का अनुभव करो जो तुम करना चाहते हो क्योकि जीवन में कोई भी चीज पूरी तरह से सुहावनी नही है। जिन्दगी निरन्तर बदलाव का नाम है। जीवन एक बार ही मिलता है उसे अपनी तरह से जियो।

१६५०) स्वतन्त्र बनो, पैसा बडा महत्वपूर्ण है। कमाने की शक्ति ही तुम्हारा सबसे बडा गुण है। आर्थिक सुरक्षा के चलते आप अपने जीवन को अपनी शर्तोंपर जी सकोगे। स्वतन्त्र होने का अर्थ है कि अपने फैसलों की पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी हो।

१६५१) सौतवाली स्त्री, जूए में हारे हुए जुआरी और भार ढोने से व्यथित शरीरवाले मनुष्य की रात में जो स्थिति होती है, वही स्थिति उल्टा न्याय देनेवाले वक्ता की भी होती है।

१६५२) सोने के लिए झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियों को नरक में गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्री के लिए झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है, इसलिए तुम भूमि या स्त्री के लिए कभी झूठ न बोलना।

१६५३) कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावी को वेद पापों से मुक्त नहीं करते, किंतु जैसे पंख निकल आने पर चिड़ियों के बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकाल में उसे त्याग देते हैं।

१६५४) हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक-इन सातों को कभी भी गवाह नहीं बनाना चाहिए।

१६५५) जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं। जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।

१६५६) सज्जन पुरुष पच जाने पर अन्न की, निष्कलंक जवानी बीत जाने पर स्त्री की, संग्राम जीत लेने पर शूर की और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर तपस्वी की प्रशंसा करता है।

१६५७) बोलने से न बोलना अच्छा बताया गया है, किंतु सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, यानी मौन की अपेक्षा भी दूना लाभ-प्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचन की चौथी विशेषता है।

१६५८) सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचार से भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिए।

१६५९) जिसके कोप से भयभीत होना पड़े तथा शंकित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिस पर पिता की भांति विश्वास किया जा सके, दूसरे तो संगी मात्र हैं।

१६६०) जलती हुई लकड़ियां अलग-अलग होने पर धुआं फेंकती हैं और एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जाति-बन्धु भी फूट होने पर दु:ख उठाते हैं और एकता होने पर सुखी रहते हैं।

१६६१) यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़तम तथा बहुत बड़ा होने पर भी एक ही क्षण में आंधी के द्वारा बलपूर्वक शाखाओं सहित धराशायी किया जा सकता है। किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूह के रूप में खड़े हैं, वे एक-दूसरे के सहारे बड़ी-से-बड़ी आंधी को भी सह सकते हैं। इसी प्रकार समस्त गुणों से सम्पन्न मनुष्य को भी अकेला होने पर शत्रु अपनी ताकत के अंदर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्ष को वायु। किंतु परस्पर मेल होने से और एक से दूसरे को सहारा मिलने से जातिवाले लोग उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे तालाब में कमल। गाढ़े में आखिरकार अपने सगे-संबधी ही काम आते हैं। मुसीबत में अपने बन्धु-बांधव ही साथ देते हैं। ऐसे में उनका अपनत्व अपने आप ही फूट पड़ता है। वे प्राणपण से संकट से मुक्ति दिलाने में जुटे जाते हैं। इस विपिन्नावस्था में दूसरे लोग दूर ही खड़े रहते हैं। वट वृक्ष के सजातीय बन्धु बरोह वट को थाम लेते हैं और उसे जीर्ण-शीर्ण होने से बचा लेते हैं। वह और भी तेजस्वी एवं महिमावान बन जाता है। अपने सजातियों के बीच खड़ा भीष्म पितामह जैसा गौरवान्वित लगता है।

१६६२) जो आकाश पर मुष्टि से प्रहार करता है, न झुकाये जा सकनेवाले वर्षाकालीन इन्द्रधनुष को झुकाना चाहता है, पकड़ में न आनेवाली सूर्य की किरणों को पकड़ने का प्रयास करता है, शासन के अयोग्य पुरुष पर शासन करता है, मर्यादा का उल्लंघन करके संतुष्ट होता है, शत्रु की सेवा करता है, स्त्री-रक्षा के द्वारा अपनी जीविका चलाता है, याचना करने से अयोग्य पुरुष से याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है, अच्छे कुल में होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी बलवान् से वैर करता है, श्रद्धाहीन को उपदेश करता है, न चाहने योग्य वस्तुओं को चाहता है, श्वसुर होकर पुत्रवधू के साथ परिहास पसंद करता है तथा पुत्रवधू की सहायता से संकट से छूटकर भी पुन: उससे अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, परस्त्री में अपने वीर्य का आधान करता है, आवश्यकता से अधिक स्त्री की निन्दा करता है, किसी से कोई वस्तु पाकर भी याद नहीं है ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगने पर दान देकर उसके लिए अपनी डींग हांकता है और झूठ को सही साबित करने का प्रयास करता है। ऐसे सत्रह प्रकार के पुरुषों को पाश हाथ में लिये यमराज के दूत नरक में ले जाते हैं।

१६६३) व्याघ्रों के बिना वन की रक्षा नहीं हो सकती तथा वन के बिना व्याघ्र नहीं रह सकते, क्योंकि व्याघ्र वन की रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रों की।

१६६४) जिसको बुद्धि के बाण से मारा गया है, उस जीव के लिए न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई मांगलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभांति सिद्ध बूटी ही है।

१६६५) संसार में अग्नि एक महान् तेज है, वह काठ में छिपी रहती है, किंतु जब तक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें, तब तक वह उस काठ को नहीं जलाती। वही अग्नि यदि काष्ठ से मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है, तो वह अपने तेज से उस काठ को, जंगल को तथा दूसरी वस्तुओं को भी जल्दी ही जला डालती है।

१६६६) पर्वत की चोटी अथवा राजमहल पर चढ़कर, एकांत स्थान में जाकर या जंगल में तृण आदि से अनावृत स्थान पर मंत्रणा करनी चाहिए।

१६६७) बुद्धिमान पुरुष की बुराई करके इस विश्वास पर निश्चित न रहें कि मैं दूर हूं। बुद्धिमान् की बांहें बड़ी लंबी होती हैं। सताये जाने पर वह उन्हीं बाहों से बदला लेता है।

१६६८) जो विश्वास का पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं, किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है, वह मूल का ही उच्छेद कर डालता है।

१६६९) मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट मीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वश में कभी न हो।

१६७०) जहाँ का शासन स्त्री, जुआरी और बालक के हाथ है, वहाँ के लोग नदी में पत्थर की नाव पर बैठनेवालों की भांति विपत्ति के समुद्र में डूब जाते हैं।

१६७१) जुआरी जिसकी तारीफ करते हैं, चारण जिसकी प्रशंसा का गान करते हैं और वेश्याएं जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्दे के समान है।

१६७२) जो वृद्धि भविष्य में नाश का कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए और उस क्षय का बहुत आदर करना चाहिए, जो आगे चलकर अभ्युदय का कारण हो। वास्तव में जो क्षय वृद्धि का कारण होता है, वह क्षय ही नहीं है, किंतु उस लाभ को भी क्षय ही मानना चाहिए, जिसे पाने से बहुतों का नाश हो जाए।

१६७३) जीवनमें समस्याका आना स्वाभाविक है। समस्याके समाधानके लिए वृद्धोंकी उपयोगिता है। अत: जीवनमें वृद्धोंकी आवश्यकता है। वृद्ध गुरु हैं। अन्त:करण वृत्तिके नितान्त सात्त्विक होने पर ही ब्रह्माकारता होती है।

१६७४) हमारे मनकी निर्बलता ही हमें दु:ख देती है। पैसोंका आना-जाना, व्यक्तियोंसे मिलना-बिछुड़ना, घर-द्वारका अदलना-बदलना, इत्यादि दु:ख नहीं देते हैं। बाहर कहीं दु:ख नहीं होता है। यह केवल कल्पना ही है कि यहाँ दु:ख है और वहाँ जाने पर सुख मिलेगा। रोटी खानेमें दु:ख है और मालपुआ खानेमें सुख है। यह कल्पना मात्र है। जब हम परिस्थितिको बदलकर दु:ख मिटाना चाहते हैं, तब हमारी सारी-की-सारी दृष्टि कल्पनापर ही है। हमारी दृष्टि सच्चाई पर, भगवान् पर, आत्मा पर, परमात्मा पर नहीं है। आप दुनियाको बदलकर

अपना दु:ख मिटाना चाहते हैं और सुखी होना चाहते हैं, तब उसमें विवेक-विचार नहीं है। यदि आप अपने दिलको बदलकर सुखी होना चाहेंगे और सुखी रहना चाहेंगे, तो नि:सन्देह सुखी होंगे और रहेंगे। आप अपने दिलको बदलिये। अपनी बुद्धिको बदलिये। दुनियाँ को बदलनेका ख्याल अपने दिल-दिमागसे निकाल दीजिये। सुख-दु:ख, सफलता-विफलता, समता-विषमता, जीवन-मरण, जड़ता-चेतनता, समाधि-विक्षेपमें समत्वकी कलाका नाम योग है। यह वह कला है, जिससे आपको दु:ख स्पर्श नहीं करेगा।

१६७५) मृत्यु क्या है ? परमार्थ दृष्टिसे, मृत्यु नामकी कोई वस्तु नहीं है। न मिट्टी मरती है, न पानी मरता है, न आग मरती है, न हवा मरती है और न आकाश मरता है। तत्त्वकी मृत्यु कभी होती ही नहीं है। आकारकी ही मृत्यु होती है। आकार टूट-फूट जाता है। वस्तुकी मृत्यु होती ही नहीं है। भले ही, वैज्ञानिक लोग किसीकी आयु बढ़ाकर चार-पाँच सौ वर्ष कर दें अथवा हजार वर्ष कर दें; लेकिन, आकृति तो फूटेगी-ही-फूटेगी।

१६७६) जीवन वासनानुसारी नहीं होना चाहिए। जीवन शासनानुसारी होना चाहिए। गुरुमुखी होना चाहिए। श्रेष्ठ अनुभवी महापुरुषोंकी छत्रछायामें रहकर जीवन जीनेकी कला सीखनी-समझनी चाहिए। सत्पुरुषोंके जीवनके अनुभवोंका लाभ उठाना चाहिए और आनन्दसे भरपूर जीवन जीना चाहिए।

१६७७) समय बदलता है। स्थान बदलते हैं। कानून बदलते हैं। लोगोंकी धारणाएँ बदलती हैं। परिस्थितियाँ बदलती हैं। सामाजिक परिस्थिति है। राजनीतिक परिस्थिति है। पर्यावरणकी परिस्थिति है। सम्पूर्ण विश्वमें जो वैज्ञानिक उन्नति हो रही है, उसकी परिस्थिति है। उसको देख करके बच्चेके जीवनको बनाना चाहिए। बच्चोंके संग-साथकी परिस्थिति है।

१६७८) हम अपने दु:खकी सृष्टि स्वयमेव करते हैं। ईश्वरके आनन्दमय हाथोंसे दु:खका निर्माण नहीं होता है। अपना अहं ही टकराता है। अपना अहं ही संघर्षका हेतु है। अहंमें निरहं होते ही सारा-का-सारा संघर्ष समाप्त हो जाता है। प्रकृति कभी किसीको दु:ख नहीं देती है। इसमें जो मैं-मेरा-पनका सम्बन्ध है, वह दु:ख देता है। ईश्वर कभी किसीको दु:ख नहीं देता है। ईश्वर परमानन्दस्वरूप है। ईश्वरके द्वारा दु:खदायी कर्म हो ही नहीं सकते हैं। ईश्वर-सृष्टिमें दु:ख नहीं है। दु:ख जीवकी सृष्टि है। अविवेकके कारण जीव अपने लिए दु:ख बना लेता है। दु:ख अपनी ही नासमझीसे बना है। जो दु:खी है, वह अज्ञानी भी है। जो अज्ञानी है, वह दु:खी है और वह मृत्युके भयसे भी ग्रस्त है। जो अपनेको सच्चिदानन्द स्वरूप जानता है, उसे मृत्युका भय, अज्ञानका भय और दु:ख नहीं हो सकता है।

१६७९) जबतक तत्त्वज्ञान नहीं हो जाता, तबतक सब प्राणी कैदी हैं। कैदी का लक्षण है- पापकर्म करे अपनी मर्जी से और दु:ख भोगे दूसरे की मर्जी से।

१६८०) मनुष्य दूसरे के जिस कर्म की निंदा करे, उसको स्वयं भी न करे। जो दूसरों की निंदा तो करता है, किन्तु स्वयं उसी निंद्य कर्म में लगा रहता है, वह उपहास का पात्र होता है।

१६८१) इस संसार में सुख-दुख नदी के दो किनारों की भांति साथ-साथ मार्ग पर चलते हैं। आनंद में वे रहते हैं तो शांत नदी की भांति बनाये बिना टकराए सीधे मार्ग पर चलते जाते हैं, जो उस नदी की भांति चलते हैं, जो टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर चलती हुई किनारों से टकराती है, वे कभी तो कलकल कर प्रसन्न दिखाई देते हैं, कभी गिड़गिड़ाते हुए रोते प्रतीत होते हैं।

१६८२) सुख और तृप्ति की खोज में मनुष्य जीवन भर भटकता है, किंतु क्रांति और शांति का संघर्ष कभी नही रुका। सुख के लिए संघर्ष का अर्थ है दुख। दुख के बिना सुख नहीं मिलता, फिर व्यर्थ ही मनुष्य सुख की आकांक्षा करता है। दुख का महत्व सुख से अधिक है, जो दुख सहने का अभ्यासी है, उससे बड़ा तपस्वी क्या कोई हो सकता है, उससे बड़ा सुखी क्या कोई है?

१६८३) व्यक्तित्व है ही क्या ? तुम्हारे अपने विचारों, धारणाओं तथा भावनाओं का फल। स्वयं अपने विषय में जैसे तुम्हारे संकेत रहते हैं, वे ही तुम्हारे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। संभव है, तुम्हें प्रकृति ने एक आकर्षक व्यक्तित्व न प्रदान किया हो, किंतु इसमें संदेह नहीं कि तुम संकेत द्वारा अपने व्यक्तित्व को ऊंचा उठा सकते हों।

१६८४) व्यक्तित्व प्राप्ति का प्रश्न हर एक आदमी के वास्ते व्यक्तिगत सवाल है, इसका किसी दूसरे आदमी से संबंध नहीं है। दूसरा कोई भी आदमी आपके मन तथा व्यक्तित्व को बलवान तथा दृढ़ नहीं बना सकता। कोई भी व्यक्ति आपको दुर्बल से शक्ति संपन्न, असफल से सफल और कुछ नहीं से सब कुछ नहीं बना सकता। आप स्वयं ही सब कुछ बन सकते हैं और आप में सब कुछ करने की

शक्ति मौजूद है।

१६८५) संतान को पढ़ा-लिखा कर फिर अपनी इच्छा पर चलाना चाहने का मतलब है स्वयं अपनी दी हुई शिक्षा-दीक्षा को अमान्य करना, अपने को अमान्य करना क्योंकि २० वर्ष में मां-बाप संतान को स्वतंत्र विचार करना भी न सिखा सके तो उन्होंने उसे क्या सिखाया ?

१६८६) शिक्षा तो एक साधनमात्र है। यदि उसके साथ सच्चाई, दृढ़ता, शांति आदि गुणों का सम्मिश्रण नहीं हेाता तो वह शिक्षा रूखी रहती है और लाभ के बदले कभी-कभी हानि पहुंचाती है। शिक्षा का उद्देश्य पैसा कमाना नहीं, बल्कि अच्छा बनना और देश-सेवा करना है। यदि यह उद्देश्य सफल न हो तो शिक्षा पर किए गए खर्च को बेकार समझ सकते हैं।

१६८७) मेंढ़क, संभव है, बैलों की अपेक्षा अधिक शोर कर लें, किंतु वे न तो खेतों में हल खींच सकते हैं, न ही कोल्हू के चक्र को हिला सकते हैं और न उनकी चमड़ी के जूते बन सकते हैं।

१६८८) शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूंस दिया गया है और जो आत्मसात हुए बिना वहां आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन निर्माण, मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हों। यदि तुम केवल पांच ही परखे हुए विचार आत्मसात कर उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो।

१६८९) जो शिक्षा हमें प्राचीन संस्थाओं तथा प्राचीन विचारों में ही फांसे रखे, वह शिक्षा अर्वाचीन समय में शिक्षा कहलाने योग्य नहीं।

१६९०) बुद्धि में विकास होता है। बुद्धि विकारयुक्त मन पर नियंत्रण करती है और उसे भटकने नहीं देती। बुद्धि का विकास ही मनुष्य की शिक्षा का उद्देश्य है। जहां शिक्षा नहीं दी जाती अथवा मिथ्या दी जाती है, वहां मन का विकास अनियंत्रित हो कुपथ पर चलने लगता है।

१६९१) आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास सदा से मित्रता, वंश, सिफारिश और धन से अधिक प्रभावशाली रहे हैं। संसार में आत्मविश्वास सर्वोत्तम पूंजी है। इससे अधिकांश बाधाएं दूर हो जाती हैं, अधिकतर कठिनाइयों पर विजय प्राप्त होती है। आत्मविश्वास के द्वारा जितने महान् साहस के कार्य संपन्न होते हैं, उतने अन्य किसी भी मानवीय गुण के कारण नहीं होते।

१६९२) कर्म की सार्थकता फल में नहीं, कर्मण्यता में है, उस पुरुषार्थ में है, जो एक-एक कदम की गति एक-एक कदम की चढ़ाई का आनन्द लेता है। वास्तव में चढ़ाई के प्रयत्न का सुख अपने आप में इतना मीठा है कि उसकी तृप्ति की कोई सीमा नहीं।

१६९३) पत्र लिखना भी एक कला है। हमारी सभी कलाएं सत्य की पूजा से प्रारंभ होती है। मुझे पत्र लिखना है और उसमें सत्य ही लिखना है और उसमें प्रेम उड़ेल देना है ऐसा सोचकर लिखने बैठोगे तो सुन्दर पत्र ही लिखोगे।

१६९४) चरित्र बल पर ही मनुष्य दैनिक कार्य प्रलोभन और परीक्षा के संसार में दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहते हैं और वास्तविक जीवन की कमी क्षीणता को सहन करने योग्य होते हैं।

१६९५) जीवन के यह लम्बे रास्ते इन्सान ने इसलिये विकसित किये कि इनको तय करते पहाड सी लम्बी उम्र कट जाये और पता तक भी न चले। समय के साथ-साथ ये रास्ते जीवन से भी लम्बे हो गये। उम्र निकल जाती है, रास्ता तय नही हो पाता।

१६९६) जीवन को संवारे, नई सोच, नई योजनाओं के साथ नया अध्याय शुरू करे। नई शुरूआत ताजगी देगी। दु:ख में सुख का अनुभव करना सीख लोगे तो कुछ भी कठिन नही लगेगा।

१६९७) बच्चों की दुनिया भविष्य में है और बुजुर्गों की अतीत में। दोनो दो छोर पर खडे है और वही से सारे सम्बन्धों का निर्धारण करने का प्रयास करते है। जाहिर है ऐसे में दूरिया ही बढ़ती है। बुजुर्ग अकेले रह जाते है और बीच की पीढ़ी की नियति ही अलग है। परिणामत: आज के दम्पतियों के पास स्वयं के लिये भी समय नही है। इससे बच्चे और बुजुर्ग दोनों को ही वे पर्याप्त समय नहीं दे पाते है, और वे इससे अपने आपको उपेक्षित समझते है।

१६९८) प्रभावी तरीके से सोचना एक कला है और इस कला को जीवित बनाये रखने के लिये इसका नियमित अभ्यास और उपयोग करते रहना जरूरी है। जिस प्रकार चित्रकला या संगीत जैसी कला बिना अभ्यास के जीवित नहीं रह पाती, उसी प्रकार सोचने की कला को विकसित करने के लिये अभ्यास आवश्यक है।

HHH(१९०)HHH

१६९९) हमारी सोच पर अनेक परते चढ़ी हुई है जिनमें अस्पष्टता, आशंका, भय परिणाम की अनुकुलता अथवा प्रतिकूलता जैसे अनेक बिन्दु छिपे है। इन सभी बिन्दुओं को हम स्पष्ट तथा प्रभावी सोच के जरिये दूर कर सकते है।

१७००) प्रत्येक बीज अंकुरित होकर पौधा बन सकता है यह हमारी सम्भावना है पर सम्भावना वास्तविकता में बदलना अनिवार्य है।

१७०१) विदूषक यही काम करता है कि उपर से तो दुनिया को हंसाता है, समझदारों की नजरों मे हंसी का पात्र बनता है लेकिन दरसल में उसका छोटा सा दिल दुनिया भर के दु:ख दर्दों से लवरेज रहता है। **(मेरा नाम जोकर)**

१७०२) ये दुनिया बडी जालिम है, यहां पर राज छुपाना पडता है,

दिल मे दर्द हजारों हैं फिर भी महफिलों में मुस्कराना पड़ता है। **(मेरा नाम जोकर)**

१७०३) आज का पुरुषार्थ ही कल का भाग्य होता है और कल का किया गया पुरुषार्थ ही आज का भाग्य है। भाग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है कि हमे कुछ अनायास मुफ्त मे ही प्राप्त हो जाये। भाग्य सदैव हमारे अच्छे बुरे कार्यों का ही फल होता है। इनके बिना भाग्य का कोई अस्तित्व ही नही है।

१७०४) धर्म की प्रत्यक्ष अनुभूति हो सकती है। तुम उसे अवश्य प्राप्त कर सकते हो, और तभी तुम यथार्थ धार्मिक होंगे। जब तक तुम इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर लेते, तुममें और नास्तिकों में कोई अन्तर नहीं। नास्तिक ईमानदार हैं, पर वह मनुष्य जो कहता है वह धर्म में विश्वास रखता है। पर कभी उसे प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न नहीं करता है। ईमानदार नहीं है।

१७०५) अभ्यास अत्यावश्यक है। यदि तुम उसका अभ्यास नहीं करते, तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते। यह सब तो अभ्यास पर ही निर्भर है। जब तक हम इन बातों का अनुभव नहीं करते, तब तक इन्हें नहीं समझ सकते। हमें इन्हें देखना और अनुभव करना पड़ेगा। सिद्धान्तों और उनकी व्याख्याओं को केवल सुनने से कुछ न होगा।

१७०६) तुम अपनी ही चितवन से सारी वस्तुओं को चित्ताकर्षक बना देते हो। उन (प्रेमभरी) आंखों से जब तुम उनकी ओर देखते हो, तो तुम्हीं स्वयं अपनी चमक उन पर डाल देते हो और फिर तुम्हीं उनके प्रेम में फंस जाते हो। पहले दिल जीतो, फिर विवेक से अनुरोध करो। जहां से बुद्धि निराश लौट जाती है, वहां फिर भी प्रेम को आशा हो सकती है। ऐसी कहानी है कि यात्री के शरीर पर से आंधी कोट न उतरवा सकी थी, परन्तु गर्मी ने उसे उतरवा दिया था। वह कितना धन्य है और भाग्यवान है जिसका माल चोरी हो गया हो, वह कितना और अधिक भाग्यवान् है जिसकी स्त्री भाग गई हो; किन्तु एक शर्त है- यदि इन कारणों से प्रेमधन के साथ उसका सीधा संयोग हो जाए। भेंट हैं तुझको मेरे प्राण- हे प्रभु, ले लो इनको आन इस कविता में प्रभु शब्द से तात्पर्य कोई आकाश में बैठा हुआ बादलों में सर्दी खाने वाला अदृश्य हवा नहीं है; प्रभु का अर्थ है सर्वरूप परमात्मा-तुम्हारा सहवर्ती जन-समुदाय। प्रेम-मैं ही इस समस्त परिवर्तनशील संसार का आदि और अन्त हूं। मुझसे परे अन्य कुछ भी नहीं- जैसे माला के दाने धागे में पिरोए होते हैं, उसी प्रकार केवल एक (प्रेम स्वरूप) में यह सारा जगत् पिरोया हुआ है।

१७०७) आप कोई कर्तव्य करने के लिए बाध्य नहीं, आप किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं, आपको कोई ऋण नहीं चुकाना है, आप किसी से बंधे नहीं हैं। आप अपने व्यक्तित्व को सभी समाजों, सभी राष्ट्रों और प्रत्येक वस्तु के सामने प्रतिपादन करो। यही वेदान्तिक त्याग है। त्याग आपको हिमालय के घने जंगल में जाने का आदेश नहीं देता, त्याग आपसे कपड़े उतार डालने का आग्रह नहीं करता, त्याग आपको नंगे पांव और नंगे सिर घूमने के लिए नहीं कहता। त्याग के अतिरिक्त और कहीं वास्तविक आनन्द नहीं मिल सकता, त्याग के बिना न ईश्वर-प्रेरणा हो सकती है, न प्रार्थना। अहंकारपूर्ण जीवन को छोड़ देना ही त्याग है, और वहीं सौंदर्य है। कामना से रहित कर्म ही सर्वोत्तम त्याग अथवा पूजन है।

१७०८) विश्व की समस्त शक्तियां हमारी हैं। हमने अपने हाथ अपनी आंखों पर रख लिए हैं और चिल्लाते हैं कि सब ओर अन्धेरा है। जान लो कि हमारे चारों ओर अंधेरा नहीं है। अपने हाथ अलग करो, तुम्हें प्रकाश दिखाई देने लगेगा, जो पहले भी था। अंधेरा कभी नहीं था। कमजोरी कभी नहीं थी। हम सब मूर्ख हैं, जो चिल्लाते हैं कि हम कमजोर हैं, अपवित्र हैं। कमजोरी का इलाज कमजोरी का विचार करना नहीं, पर शक्ति का विचार करना है। मनुष्यों को शक्ति की शिक्षा दो, जो पहले से ही उनमें है।

१७०९) समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुष का

शास्त्रज्ञान और राख में किया हुआ हवन भी नष्ट ही है।

१७१०) जो आनेवाले दु:खों को रोकने का उपाय जानता है, वर्तमान-कालिक कर्तव्य के पालन में दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीत-काल में जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थ से हीन नहीं होता।

१७११) अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति ही शूरवीर, अधिक व्रत-नियमों का पालन करनेवाले और बुद्धि के घमंड में चूर रहनेवाले मनुष्य के पास लक्ष्मी भय के मारे नहीं जाती। यह न तो बहुत-से गुणों को चाहती है और न गुणहीन के प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौ की भांति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है।

१७१२) अधिक राह चलना देहधारियों के लिए दु:खरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतों का बुढ़ापा है, सम्भोग से वंचित रहना स्त्रियों के लिए बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणों का आघात मन के लिए बुढ़ापा है।

१७१३) अभ्यास न करना वेदों का मल है, ब्राह्मणोचित नियमों का पालन न करना ब्राह्मण का मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वी का मल है तथा झूठ बोलना पुरुष का मल है, क्रीड़ा एवं हास-परिहास की उत्सुकता पतिव्रता स्त्री का मल है, और पति के बिना परदेश में रहना स्त्रीमात्र का मल है। सोने का मल है चांदी, चांदी का मल है रांगा, रांगे का मल है सीसा और सीसे का मल है मल।

१७१४) सोकर नींद को जीतने की इच्छा न करे। कामोपभोग के द्वारा स्त्री को जीतने की इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आग को जीतने की आशा न करे और अधिक पीकर मदिरा की आदत को जीतने का प्रयास न करे।

१७१५) जिसका मित्र धन-दान के द्वारा वश में आ चुका है, शत्रु युद्ध में जीत लिये गये हैं और स्त्रियां खान-पान के द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है।

१७१६) जिनके पास हजार है, वे भी जीवित हैं, तथा जिनके पास सौ हैं, वे भी जीवित हैं, आप अधिक का लोभ छोड़ दीजिए, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही। इस पृथ्वी पर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब-के-सब एक पुरुष के लिए भी पूरे नहीं हैं- ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोह में नहीं पड़ता।

१७१७) जो सज्जन पुरुषों से आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्ति के अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुष को शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है। क्योंकि संत जिस पर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है।

१७१८) झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा के पास तक चुगली करना, गुरु से भी मिथ्या आग्रह करना- ये तीन कार्य ब्रह्महत्या के समान हैं।

१७१९) गुणों में दोष देखना एकदम मृत्यु के समान है, कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मी का वध है। सुनने की इच्छा का अभाव या सेवा का अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा- ये तीन विद्या के शत्रु हैं।

१७२०) जिसको बड़े कष्ट से पाला-पोसा था, वही पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरंत अपने घर से बाहर कर देते हैं। पहले तो इसके लिए बाल छितराये करुण स्वर में विलाप करते हैं, फिर साधारण काठ की भांति उसे जलती चिता में झोंक देते हैं। बिना फल-फूल के वृक्ष को जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेत को उसे जातिवाले सुहृद् और पुत्र चिता में छोड़कर लौट आते हैं। अग्नि में डाले हुए पुरुष के पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्म का ही संग्रह करे।

१७२१) प्रारब्ध का उल्लंघन करने की शक्ति किसी भी प्राणी में नहीं है। मैं तो प्रारब्ध को ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है।

१७२२) ऊंचे स्थान पर खड़े हो, हाथ में दो पैसे लेकर यह न कहो, ऐ भिखारी, यह ले, वरन् कृतज्ञ होओ कि वह बेचारा गरीब वहां है, जिसे दान देकर तुम अपनी ही सहायता करने का अवसर पाते हैं। सौभाग्य दान लेने वाले का नहीं, वरन् दान देनेवाले का है।

१७२३) धीरज रखो और मरते दम तक निष्कपट और सच्चे रहो। आपस में मत झगड़ो। पैसे के व्यवहार में बिल्कुल निष्कलंक रहो। जब तक तुममें विश्वास, सचाई और निष्ठा है, तब तक प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति होगी। जब तक तुममें आपस में अनमेल का भाव नहीं है, तब तक भगवान् की दया से तुम्हारे लिए कोई भय नहीं है। अपना हृदय तब तक न खोलो, जब तक तुम यह निश्चित रूप से न जान

लो कि उससे सचमुच भला ही होगा। अपने बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी अच्छे और उपकारी शब्दों का प्रयोग करो।

१७२४) विकास ही जीवन है और संकोच ही मृत्यु। प्रेम ही विकास है और स्वार्थपरता ही संकोच। अतएव प्रेम ही जीवन का एकमात्र नियम है। जो प्रेम करता है, वह जीता है, जो स्वार्थी है, वह मरता है। अतएव प्रेम के लिए ही प्रेम करो, क्योंकि प्रेम ही जीवन का एकमात्र नियम है।

१७२५) दूसरों के लिए किया गया तनिक-सा भी कार्य अन्त:स्थ शक्ति को प्रबुद्ध कर देता है, दूसरों के प्रति थोड़ी-सी भलाई का विचार भी क्रमश: हृदय में सिंह का बल संचारित कर देता है। मैं तुम सबसे इतना प्रेम करता हूं, किन्तु मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम सब लोग दूसरों के लिए कार्य करते-करते मृत्यु को प्राप्त होओ।

१७२६) कोई भी मनुष्य, कोई भी राष्ट्र दूसरे से घृणा करके नहीं जी सकता। भारत का भाग्य-सितारा तो उसी दिन अस्त हो गया, जिस दिन उसने म्लेच्छ शब्द का आविष्कार किया और दूसरों के साथ मेल-जोल बन्द कर दिया।

१७२७) मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और अथक प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें सौंपता हूं। इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथी के मन्दिर में, जो गोकुल के दीन-दरिद्र ग्वालों के सखा थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने से नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्ध-अवतार में अमीरों का न्योता अस्वीकार कर एक वारांगना का न्योता स्वीकार किया और उसे उबारा, जाओ उनके पास, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महाबलि दो, अपने जीवन की बलि दो- उन दीन, पतित और उत्पीडितों के लिए, जिनके लिए भगवान् युग-युग में अवतार लिया करते हैं और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं।

१७२८) प्रकृति सदैव गुलाम के मस्तक पर ईर्ष्या का जो दाग लगा देती है। किसी से ईर्ष्या मत करो। भले कार्यों में रत प्रत्येक व्यक्ति से हाथ बंटाने को तैयार रहो। इस विश्व-ब्रह्माण्ड के प्रत्येक जीव के लिए शुभ विचार भेजो। न बुद्धिभेदं जनयेत्- किसी की श्रद्धा को डांवाडोल करने का प्रयत्न मत करो। यदि हो सके, तो उसे कुछ उच्चतर भाव दो, यदि हो सके, तो जहां पर वह खड़ा है, वहीं से उसे ऊपर उठाने का प्रयत्न करो, पर देखना उसका भाव कहीं नष्ट न होने पाए।

१७२९) जब तक मत छुओ वाद तुम्हारा धर्म है और रसोई का बरतन तुम्हारा देवता है, तब तक तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। प्रत्येक कर्मफल भले और बुरे का मिश्रण है। ऐसा कोई भी शुभ कर्म नहीं है, जिसमें अशुभ का संस्पर्श न हो। आग के चारों ओर व्याप्त धुएं के समान कर्म में सदैव कुछ न कुछ अशुभ लगा ही रहता है। हमें ऐसे कार्यों में रत रहना चाहिए जिनसे भलाई अधिक से अधिक मात्रा में हो और बुराई कम से कम।

१७३०) क्या तुम सोचते हो कि तुम एक चींटी तक को अपनी सहायता से बचा सकते हो ? यह महान् अधार्मिक विचार है। ऐसा सोचना अधर्म है। दुनिया को तुम्हारी कतई जरूरत नहीं। धन्य हैं हम, जो हमें प्रभु के लिए कार्य करने का सौभाग्य मिला। इस सहायता शब्द को अपने मन से बिल्कुल निकाल दो। तुम सहायता नहीं कर सकते। तुम केवल पूजा-सेवा ही कर सकते हो। अतएव सारे संसार के प्रति इस प्रकार का श्रद्धापूर्ण भाव लेकर खड़े होओ। तभी पूर्ण अनासक्ति आएगी। जो मानव जाति की सहायता करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे पहले अपने सुख और दु:ख, नाम और यश, तथा सर्वविध स्वार्थी भावनाओं की एक गठरी बनाकर उसे समुद्र में फेंक दें और तब भगवान् के पास आएं। प्रत्येक पुरुष को, प्रत्येक स्त्री को- हर एक जीव को भगवत्-स्वरूप समझो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम केवल सेवा मात्र कर सकते हो, प्रभु की सन्तानों की सेवा करो, अवसर मिलने पर साक्षात प्रभु की सेवा करो। यदि प्रभु की इच्छा से तुम उनकी किसी सन्तान की सेवा करो, तो सचमुच तुम धन्य हो, अपने आपको बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो कि वह अवसर तुम्हें दिया गया- दूसरों को नहीं। उसे पूजा की ही दृष्टि से देखो। गरीब और दु:खी लोग तो हमारी ही मुक्ति के लिए हैं, ताकि रोगी, पागल, कोढ़ी और पापी के रूप में अपने सामने आनेवाले प्रभु की हम सेवा कर सकें।

१७३१) मानव-देह मन्दिर में प्रतिष्ठित मानव-आत्मा ही एकमात्र पूजा है, भगवान् है। अवश्य, समस्त प्राणियों की देह भी मन्दिर है, पर मानव-देह सर्वश्रेष्ठ है- वह मन्दिरों में भव्यतम है। यदि मैं उसमें भगवान् की पूजा न कर सकूं, तो और कोई भी मन्दिर किसी काम का न होगा।

१७३२) बल ही जीवन है और दुर्बलता मृत्यु। बल ही परम आनन्द है, शाश्वत और अमर जीवन है। दुर्बलता निरन्तर भारस्वरूप है,

दु:खस्वरूप है। दुर्बलता ही मृत्यु है। बचपन से ही तुम्हारे मस्तिष्क में रचनात्मक, बलप्रद और सहायक विचार प्रवेश करें। दु:खभोग का एकमात्र कारण है दुर्बलता। हम दु:खी हो जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, हत्या करते हैं, तरह-तरह के अपराध करते हैं। हम दु:ख भोगते हैं, हम मर जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। जहां हमें दुर्बल कर देनेवाली कोई चीज नहीं है, वहां न मृत्यु है, न दु:ख। बल ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है। बल ही भवरोग की एकमात्र दवा है। धनिकों द्वारा रौंदे जानेवाले निर्धनों के लिए बल ही एकमात्र दवा है। विद्वानों द्वारा दबाए जानेवाले अज्ञजनों के लिए बल ही एकमात्र दवा है, और अन्य पापियों द्वारा सताए जानेवाले पापियों के लिए भी वही एकमात्र दवा है।

१७३३) तुम्हीं सब कुछ हो- महान् कार्य करने के लिए इस धरती पर आए हो। गीदड़-घुड़कियों से भयभीत न हो जाना- नहीं, चाहे वज्र भी गिरे, तो भी निडर हो खड़े हो जाना और कार्य में लग जाना। तुम्हारे देश को वीरों की आवश्यकता है, अत: वीर बनो। पर्वत की भांति अडिग रहो। सत्यमेव जयते-सत्य की ही सदैव विजय होती है। भारत चाहता है एक नयी विद्युतशक्ति, जो राष्ट्र की नस-नस में नया जीवन संचार कर दे। साहसी बनो, मनुष्य तो एक बार ही मरता है। कायर न हों। कायरता से घृणा होती है। गम्भीर से गम्भीर कठिनाइयों में भी अपना मानसिक सन्तुलन बनाए रखो, क्षुद्र अबोध जीव तुम्हारे विरुद्ध क्या कहते हैं, इसकी तनिक भी परवाह न करो। आंखें दो हैं, कान भी दो हैं, पर मुंह केवल एक है। पर्वतकाय विघ्न-बाधाओं में से होते हुए ही सारे महान् कार्य सम्पन्न होते हैं। अपना पुरुषार्थ प्रकट करो। काम और कांचन में जकड़े हुए मोहान्ध व्यक्ति उपेक्षा की ही दृष्टि से देखे जाने योग्य हैं।

१७३४) तुम्हीं में तो सारी शक्ति निहित है। अपनी सर्वशक्तिमान प्रकृति की उद्‌बुद्ध करो; यह सारी दुनिया तुम्हारे पैरों पर लोटने लगेगी। एकमात्र आत्मा ही शासन करती है, जड़पदार्थ क्या शासन करेगा। अपने को शरीर से अभिन्न समझनेवाले मूर्ख व्यक्ति ही करुण स्वर से चिल्लाते हैं, हम दुर्बल हैं, हम दुर्बल हैं। आज देश को आवश्यकता है साहस और वैज्ञानिक प्रतिभा की। हम चाहते हैं प्रबल साहस, प्रचण्ड शक्ति और अदम्य उत्साह। स्त्रियोचित व्यवहार से काम नहीं बनने का। भाग्य-लक्ष्मी उसी के पास आती है जो पुरुषार्थी है, जिसके सिंह का हृदय है। पीछे देखने का काम ही नहीं। हम चाहते हैं अनन्त शक्ति, असीम उत्साह, अनन्त साहस और अनन्त धैर्य। तभी महान् कार्य सम्पन्न होंगे। वेदान्त पाप की बात नहीं मानता, वह केवल भूल की बात स्वीकार करता है और उसके मत से, तुम सबसे बड़ी भूल तो तब करते हो, जब तुम कहते हो, मैं कमजोर हूं, मैं पापी हूं, एक दु:खी जीव हूं, मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं- मुझमें कुछ भी करने की ताकत नहीं।

१७३५) प्राचीन धर्मों ने कहा, वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता। नया धर्म कहता है, नास्तिक वह है जो स्वयं में विश्वास नहीं करता।

१७३६) सारे समय अपने को रोगी सोचते रहना रोगमुक्ति का उपाय नहीं है, उसके लिए दवा की आवश्यकता है। दुर्बलता की बात मन में लाने से कोई लाभ नहीं होता। बल दो- शक्ति दो। और सारे समय दुर्बलता की बात सोचते रहने से बल नहीं आता। दुर्बलता पर सोच करते रहना दुर्बलता दूर करने का उपाय नहीं, बल्कि उपाय है बल की बात मन में लाना।

१७३७) इस संसार में हो या धर्म के संसार में, यह सत्य है कि भय ही पतन और पाप का निश्चित कारण है। भय से ही दु:ख-कष्ट होता है, भय से ही मृत्यु आती है, और भय से ही सारी बुराइयां उत्पन्न होती हैं। इस भय का कारण है अपने स्वरूप के सम्बन्ध में हमारा अज्ञान। हममें से प्रत्येक उस राजाधिराज का उस सम्राटों के सम्राट का निश्चित उत्तराधिकारी है।

१७३८) जान लो कि सारे पापों और सारी बुराइयों को एक ही शब्द द्वारा व्यक्त किया जा सकता है और वह है- दुर्बलता। समस्त असत् कार्यों के पीछे यह दुर्बलता ही एकमात्र प्रेरक शक्ति है। यह दुर्बलता ही सारी स्वार्थपरता की जड़ है। इस दुर्बलता के कारण ही मनुष्य में दूसरों पर आघात करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इस दुर्बलता के कारण ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट नहीं कर पाता। खड़े होओ, साहसी बनो, शक्तिमान होओ। सारा उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लो, और जान लो कि तुम्ही अपने भाग्य के विधाता हो। तुम्हें जो कुछ बल और सहायता चाहिए, सब तुम्हारे ही भीतर है। अतएव अपना भविष्य तुम स्वयं गढ़ो।

१७३९) मनुष्य तभी तक मनुष्य है, जब तक वह प्रकृति से ऊपर उठने के लिए संघर्ष करता रहता है। यह प्रकृति दो प्रकार की है- अन्तर और बाह्य। बाह्य प्रकृति को अपने वश में कर लेना बड़ी अच्छी और बड़े गौरव की बात है। ग्रहों और तारों का नियमन

करनेवाले नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेना गौरवपूर्ण है, पर मानवजाति की वासनाओं, भावनाओं और इच्छा का नियमन करनेवाले नियमों को जान लेना उससे अनन्तगुना अधिक गौरवपूर्ण है।

१७४०) मनुष्य सारे प्राणियों से श्रेष्ठ है, सारे देवताओं से श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ और कोई नहीं। देवताओं को भी फिर से धरती पर नीचे आना पड़ेगा और मनुष्य शरीर धारण कर मुक्ति प्राप्त करनी होगी। केवल मनुष्य ही पूर्णता प्राप्त करता है, देवताओं तक के भाग्य में यह नहीं है।

१७४१) आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियां और फौलाद के स्नायु-प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जिसका अवरोध दुनिया की कोई ताकत न कर सके, जो जगत् के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने लक्ष्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे समुद्रतल में ही क्यों न जाना पड़े- साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। हम काफी रो चुके, अब और रोने की आवश्यकता नहीं। अब अपने पैरों पर खड़े होओ और मनुष्य बनो। हम मनुष्य बनानेवाला धर्म ही चाहते हैं। हम मनुष्य बनानेवाले सिद्धान्त ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, मनुष्य बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं। और यह रही सत्य की कसौटी- जो कुछ तुम्हें शरीर से, बुद्धि से या आत्मा से कमजोर बनाए, उसे विष की भांति त्याग दो, उसमें जीवन-शक्ति नहीं है, वह कभी सत्य नहीं हो सकता।

१७४२) हम तोते के समान कई बातें बोल जाते हैं, पर उनमें से एक को भी कार्य में नहीं उतारते। केवल मुख से कह देना और आचरण में न लाना- यह हमारा एक स्वभाव ही बन गया है। इसका कारण है- शारीरिक दुर्बलता। इस प्रकार का दुर्बल मस्तिष्क कुछ भी नहीं कर सकता। हमें उसको शक्तिशाली बनाना चाहिए। सबसे पहले हमारे नवयुवकों को बली होना चाहिए। धर्म फिर बाद में आएगा। जब तुम्हारे खून में कुछ जोर आ जाएगा, तब तुम कृष्ण की महान् प्रतिभा और प्रचण्ड शक्ति को और भी अच्छी तरह समझ सकोगे। जब तुम अपने पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े रह सकोगे और अपने को मनुष्य अनुभव करोगे, तब उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को और अच्छी तरह जान सकोगे। आज हमें रजोगुण की अतीव आवश्यकता है। आज जिन्हें तुम सात्त्विक समझते हो, उनमें नब्बे प्रतिशत से भी अधिक लोग असल में घोर तमोगुण में डूबे हुए हैं। हमें आज जिसकी आवश्यकता है, वह है राजसीक शक्ति की प्रचुरता, क्योंकि सारा देश तमोगुण के आवरण में ढका हुआ है। यहां के लोगों को रोटी और कपड़ा दो- उन्हें जगाओ- उन्हें और भी अधिक क्रियाशील बनाओ। अन्यथा वे तो पत्थरों और वृक्षों के सदृश जड़ हो जाएंगे।

१७४३) अपने सामने एक आदर्श रखकर बढ़नेवाला व्यक्ति यदि हजार गलतियां करता हो, तो मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि बिना आदर्श का मनुष्य पचास हजार करेगा। अतएव आदर्श रखना श्रेष्ठतर है।

१७४४) क्या तुम पर्वतकाय विघ्न-बाधाओं को लांघकर कार्य करने को तैयार हो ? यदि सारी दुनिया हाथ में नंगी तलवार लेकर तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाए, तो भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो, उसे पूरा करने का साहस करोगे ? यदि तुम्हारे पत्नी-पुत्र तुम्हारे प्रतिकूल हो जाएं, भाग्यलक्ष्मी तुमसे रूठकर चली जाए, नाम-कीर्ति भी तुम्हारा साथ छोड़ दे, तो भी तुम उस सत्य से अलग तो न होगे? फिर भी उससे लगे रहकर अपने लक्ष्य की ओर सतत् बढ़ते रहोगे क्या ?

१७४५) यह संसार तो समुद्र-फुहार की बूंद के समान क्षणभंगुर और क्षुद्र है। इस संसार में क्या हम आपस में बदला लेने की बात कर सकते हैं- कैसी ओछी बात। उठो, और काम में लग जाओ। यह जीवन भला है कितने दिन जब तुम इस दुनिया में आये हो, तो कुछ चिन्ह छोड़ जाओ। अन्यथा तुममें और वृक्ष आदि में अन्तर ही क्या ? वे भी तो पैदा होते हैं, परिणाम को प्राप्त होते हैं और मर जाते हैं।

१७४६) शोलों से सजा हुआ अग्निपथ। आग ही आग यहां से वहां तक। उधर धधकते अंगारे, फूटती ज्वालाएं और इधर मोम का घोड़ा हिनहिनाता हुआ अलफ रहा है। है कोई प्राणों पर खेल जाने वाला दुस्साहसी अश्वारोही जो इस रास्ते से होकर उस पार पहुंच जाए? यही है प्रेम-पथ। यही है प्रेम का मार्ग। हर कोई इस मार्ग का निर्वाह नहीं कर सकता। बड़ा कठिन है यह रास्ता।

१७४७) मामूली आग की गति सीधी होती है। वह सुलगती है और सुलगकर बुझ जाती है। बुझने के बाद फिर नहीं सुलगती। यही सामान्य अग्नि का सामान्य लक्षण है। लेकिन एक आग ऐसी भी है जो बुझ जाने के बाद फिर सुलग उठती है। यह विलक्षण आग है- प्रेम अग्नि। यह आग जलती है, बुझती है और फिर जल उठती है। अग्नि चक्र निरन्तर चलता रहता है। आग्नेय व्यक्ति इसी चक्र में चकित रहता है। यह असाधारण आग है। यह आग बड़े भाग्य से लगती है। साधक, प्रेमी और भक्त इसी आग के अनुग्रहीत होते हैं।

१७४८) जुए के खेल में पासे तो अपने हाथ होते हैं किन्तु बाजी अपने हाथ नहीं होती। सच्चा खिलाड़ी पासे फेंकने में ही तन्मय दिखता है। खेल का आनन्द संघर्ष है, जय-पराजय का विराम-बिन्दु नहीं।

१७४९) अपने आप में विश्वास रखने का आदर्श ही हमारा सबसे बड़ा सहायक है। सभी क्षेत्रों में यदि अपने आप में विश्वास करना हमें सिखाया जाता और उसका अभ्यास कराया जाता, तो मुझे निश्चय है कि हमारी बुराइयों तथा दु:खों का बहुत बड़ा भाग आज तक मिट गया होता।

१७५०) असफलता की चिन्ता मत करो, वो बिल्कुल स्वाभाविक है, वे असफलताएं जीवन के सौन्दर्य हैं। उनके बिना जीवन क्या होता? जीवन में यदि संघर्ष न रहे, तो जीवित रहना ही व्यर्थ है। इसी संघर्ष में है जीवन का काव्य। संघर्ष और त्रुटियों की परवाह मत करो। मैंने किसी गाय को झूठ बोलते नहीं सुना, पर वह केवल गाय है, मनुष्य कभी नहीं इसलिए इन असफलताओं पर ध्यान मत दो, ये छोटी-छोटी फिसलने हैं। आदर्श को सामने रखकर हजार बार आगे बढ़ने का प्रयत्न करो। यदि तुम हजार बार भी असफल होते हो, तो एक बार फिर प्रयत्न करो।

१७५१) क्या तुम जानते हो, तुम्हारे भीतर अभी भी कितना तेज, कितनी शक्तियां छिपी हुई हैं ? क्या कोई वैज्ञानिक भी इन्हें जान सकता है ? मनुष्य का जन्म हुए लाखों वर्ष हो गए, पर अभी कि उसकी असीम शक्ति का केवल एक अत्यन्त क्षुद्र भाग ही अभिव्यक्त हुआ है। इसलिए तुम्हें यह न कहना चाहिए कि तुम शक्तिहीन हो। तुम क्या जानो कि ऊपर दिखाई देने वाले पतन की ओट में शक्ति की कितनी सम्भावनाएं हैं ? जो शक्ति तुमसे है, उसके बहुत ही कम भाग को तुम जानते हो। तुम्हारे पीछे अनन्त शक्ति और शान्ति का सागर है।

१७५२) जब बहरा बाज शिकार पर छोड़ दिया जाता है तो वह उड़ान भरते हुए आकाश पर चढ़ जाता है और अपने आखेट को खेलता है। देर तक आकाश में फड़कता-विहरता है। गगन-विहार करते हुए मालिक के बुलाने पर भी वह नहीं उतरता। लेकिन जब भूख आवाज देती है तो लाचार होकर मालिक की कैद में चला आता है। अधम पेट के कारण उच्च भाव-भूमि पर विचरण करने वाले व्यक्ति भी कैसे-कैसे पाशों और बन्धनों को विवशता के कारण स्वीकार कर लेते हैं।

१७५३) कभी-कभी जीवन पर प्रारब्ध का पूर्ण नियन्त्रण होता है। कहा जाता है कि पुरुषार्थ से ही संपत्ति-समृद्धि प्राप्त होती है। लेकिन देखा यह जाता है कि पुरुष कभी-कभी बन्दी नरेश की भांति नियति के समक्ष आत्म-समर्पण कर देता है। यदि पुरुषार्थ से ही कहीं संपत्ति मिलती तो फिर भीम जैसे बलवान को अपने पेट की खातिर अज्ञातवास की अवधि में महाराज विराट के यहां रसोइया बनकर न रहना पड़ता। बड़ी से बड़ी चट्टान भूकंप से हिल जाती है। लेकिन भीम का पुरुषार्थ ध्वस्त नहीं हुआ।

१७५४) भाग्य-नियति को न मानने वाला बड़े से बड़ा कर्मवीर भी अपमान, वैभवहीनता एवं पराजय के दौर से गुजर कर अकस्मात मन के किसी कोने में जीवन को नियति का खेल मानने लगता है। फिर भी प्रतिकूलताओं के विरुद्ध उसका संघर्ष स्थगित नहीं होता। नियति के अस्तित्त्व को न माननेवाला ही तो नियति-विद्रोही होगा।

१७५५) वह धन-दौलत वाला आदमी नहीं है। बस किसी तरह परिवार चला रहा है। बमुश्किल उसकी इज्जत ढकी हुई है। किन्तु समाज में उसकी प्रतिष्ठा अत्यधिक है, क्योंकि उसमें मानवीय मूल्य प्रतिफलित हुए हैं। उसके दर्शन मात्र से लोग रोमांच एवं जीवंत हो उठते हैं। धन्य है ऐसा समादृत इंसान। संभ्रान्त किन्तु निर्धन कुलवधू चिथड़ों में भी अपने नारीत्व की महिमा तथा अपने कुल की गरिमा किसी तरह संभाले रहती है। विपन्नता की इस पृष्ठभूमि में उसका शील और चरित्र अधिक प्रशस्त हो उठता है। समृद्धि बहुत पीछे है, मान-मर्यादा बहुत आगे।

१७५६) पोखर-तलैया का वह कीच-सना जल धन्य है, जिसको पीकर विधाता की अनोखी सृष्टि के लघुत्तम, निरीह एवं दीन-दुर्बल जीव तृप्त हो जाते हैं। दूसरी तरफ उस अगम-अनन्त जलराशि वाले महासागर की महिमा किस काम की, जिसके पास पहुंचकर संसार प्यासा ही लौट जाता है। समाज की छोटी-छोटी जिंदगियों पर पूरा ध्यान रखने वाले सेवा-भाव से ओत-प्रोत ये नगण्य लोग उन गणमान्य व्यक्तियों से कहीं अच्छे हैं, जिनका ऐसे लघुत्तमों से कोई लेना-देना नहीं। ये महात्तम होंगे, उनके लिए ही। छोटे-छोटे की पहुंच उन तक नहीं।

१७५७) समृद्धि की अतिशयता हो जाने में एक दोष यह भी है कि जब समृद्धि व्यक्ति को छोड़कर चली जाती है तो उसको दारुण

दुख भी दे जाती है, जिसको वह सह नहीं पाता। उसे चतुर्मुखी यातनाएं झेलनी पड़ती हैं। वह एकदम टूट जाता है। वैभवहीनता ऐसी भयानक हो जाती है कि वह व्यक्ति को उजाड़कर रख देती है। फिर जिन्दगी की इस पराजय की अपेक्षा मृत्यु को अंगीकार को स्वीकार करना श्रेयस्कर लगने लगता है।

१७५८) भवितव्यता ने अपने दाह से किसको नहीं दग्ध किया ? इस दुरात्मा ने तो अवतारी पुरुष भगवान् राम तक को नहीं छोड़ा। उनके जीवन के सारे कांड इसी ने करवाए। बड़ी प्रबल है यह कलमुंही। एक नहीं चलने देती अपने आगे किसी की। कितना बेबस कर देती है यह इंसान को। इसके सामने तुम्हारा भी कोई जोर नहीं चल पा रहा है। यह तुम्हें अकेले ही नहीं नचा रही है। बड़े-बड़ों को कठिन दौर से गुजरना पड़ रहा है। अत: अपने को समय की धार पर छोड़ दो। तैरने की अतिरिक्त कोशिश मत करो। कहीं कोई किनारा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भवितव्यता महाकाल की शक्ति है। इसमें न दया होती है और न ही करुणा। यह मानवीय संवेदनाओं से शून्य होती है। निर्मम से निर्मम कार्य करने में कोई झिझक नहीं करती। तभी तो इसने प्रतापी पांडवों को कितनी सहजता से वनवास दिलवा दिया। शिव जैसे जगदीश्वर की भार्या बंध्या ही रह गईं। कितनी क्रूर हो सकती है यह नियति नटी।

१७५९) अतिवृष्टि की मार से दुर्ग की भव्य प्राचीर का वह भाग अकस्मात अरराया और अरराकर ढह गया। सारे पाषाण इधर-उधर बिखर गए। गौरव-पद से च्युत होने पर गए-बीते बन गए। उन शिलाखंडों में कौन सा खंड कहां पहुंचता है और किस रूप में स्थापित होता है- अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। क्या हर एक पाषाण अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से प्राप्त कर सकेगा ?

१७६०) आत्मश्लाघा एक मनोविकार है जो व्यक्ति विकृत और निस्तेज कर देता है। यदि कोई मानव अपना गुणगान स्वयं करने लगता है, तो समझ लीजिए कि वह भीतर ही भीतर किसी महासन्ताप से सन्तप्त है, जिसकी अभिव्यक्ति आत्मप्रशंसा के रूप में हो रही है।

१७६१) अति विध्वंसक होती है। कहीं भी अति मत कीजिए। किसी क्षेत्र में भी उसकी सीमा का उल्लंघन मत कीजिए। मर्यादा के भीतर रहना चाहिए। लांघने-फांदने से कुछ मिलने वाला नहीं, अपितु कुछ खोना ही पड़ सकता है। बोझ जितना उठा सकें, उतना ही उठाइए। अपनी सामर्थ्य का अतिक्रमण करने वाला और अपनी शक्ति न पहचानने वाला सहिजन जब जरूरत से ज्यादा फूल जाता है तो उसकी कोमल डालियां कभी-कभी टूट जाती हैं। अति में विलोम का भाव छिपा होता है। अति में आसुरी शक्तियों का आवेश हो जाता है।

१७६२) अपनी अंतर्वेदना का पिटारा हर किसी के आगे मत खोलो। जिसके सामने आंसू नहीं निकलना चाहिए, उसी के सामने आंसू ढरक ही जाते हैं और मन का दुख प्रकट कर देते हैं। आंसुओं को तिरस्कृत करते हुए तुम्हें उचित-अनुचित का विचार करना चाहिए। घर का भेद जानने वाले को अपमानित करके बाहर नहीं निकालना चाहिए। नहीं तो वह प्रतिशोध की आग में जलता हुआ कोई बड़ा अनर्थ कर सकता है अर्थात् घर का भेदी लंका ढावे।

१७६३) गलत को चुनौती और सही को समर्थन वही दे पाता है जो पूरी तरह अपनी जमीन पर खड़ा हो, जो पूरी तरह अपने बूते पर निर्मित हो।

१७६४) समय का चूका व्यक्ति केवल पश्चाताप करता है। जैसे तेज धार वाली कुल्हाड़ी लकड़ी को दो टूक कर देती है, वैसे ही समय की चूक बुद्धिमानों के हृदय विदीर्ण कर देती है। चूक की हूक जीवन भर कसकती रहती है।

१७६५) जो वास्तव में छोटे होते हैं, उनसे किसी बड़े कार्य की आशा करना उचित नहीं है। उन बेचारों की अपनी एक सीमा होती है। उस सीमा से आगे वे लाख कोशिशों के बावजूद नहीं जा पाते। उनकी सामर्थ्य और क्षमता को पहचानना उचित होता है।

१७६६) आकाश-मण्डल में उमड़ते-घुमड़ते काले बादलों ने इस छोर से उस छोर तक जो गली बना दी है, वह उनकी कालिमा से काली हो गई है। आखिर क्यों न हो। ये बादल उसी समुद्र के बेटे हैं, जिसके यहां का पानी कोई भी व्यक्ति उसके दुराचरणों के कारण नहीं पीता। जिसका पिता कृपण, स्वार्थी, अनुदार और निष्करुण हो, उसकी संततियों पर पिता के कलुषित कार्यों का प्रतिबिंब पड़ेगा ही।

१७६७) काल-विजेता कोई नहीं हो सकता। कभी भी नहीं। किसी भी उपाय से नहीं। यदि कोई व्यक्ति औषधि-उपचार द्वारा कालजेता हो सकता तो फिर इस भूमंडल पर जितने भी प्रतापी लोग हुए, वे सभी काल-कवलित न होते और आज आपके बीच होते। वे स्मृतिशष भी नहीं हुए। कालजयी बनना है तो कोई अनूठा कार्य कर जाओ। तुम्हारी यश रूपी काया ही तुम्हें अरमत्व प्रदान कर सकती है। वह जरा-मरण से मुक्त होती है। वह कालातीत होती है।

१७६८) उन स्मृतियों का क्या कहना जो बार-बार आती हैं और जीवन को अलौकिक रस से भर देती हैं। वे बिछडे हुए को मिला देती हैं। इस प्रकार अपने वियुक्त प्रिय का पुनरागमन हो जाता है। दूरियां मिटाने वाली, सीमाएं तोड़ने वाली तथा काल के अनंत विस्तार में खोए हुए प्रियजनों को खोज निकालने वाली ये स्मृतियां पूज्य देवियां है। ये पराशक्तियां हैं जो दुखी एवं अकेले पड़ गए वियोगी को वियोग से उबारने के लिए अवतीर्ण होती रहती हैं।

१७६९) समर्थ लोग तीसरी आंख से अनागत भविष्यत् की झलक पा जाते हैं। इसलिए वे वर्तमान के विषय का घूंट चुपचाप पी जाते हैं। जीवन-संग्राम के लिए उनकी रणनीति सुविचारित और व्यूह-रचना पूर्णत: परिकल्पित होती है। समय-द्रष्टा अपराजेय होता है।

१७७०) वही कार्य स्मरणीय होता है जो महान होता है। ऐसा कार्य शताब्दियों में घटित होता है। ऐसे कृत्य का यश रूपी शरीर कालजयी होता है।

१७७१) जनाक्रोश और जनांदोलन राजव्यवस्था को झकझोर देते हैं। निरंकुश वित्तमन्त्री अर्थव्यवस्था चौपट कर देता है। चुगलखोर धीरे-धीरे शासन के स्तंभ-सरदारों और सामन्तों के आचरण भ्रष्ट कर देते हैं। अत: शासक को चाहिए कि वह राज्य में अराजकता का वातावरण ही न बनने दे। अर्थ-व्यवस्था पर उसका व्यक्तिगत नियन्त्रण हो। सामन्तों और सरदारों को सदैव विश्वास में लिए रहे। उनको चुगलखोरी का शिकार न होने दे। शासन की शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो, पर नियन्त्रण सब पर रखा जाए। सत्ता में कोई भी चुगलखोर न पहुंचने पाए। कुटुंब के लोग दण्ड व्यवस्था में अनाधिकार दखल न देने पाएं। चुगलखोर अपने ही लोग होते हैं।

१७७२) प्रेम कोई व्यापार की चीज नहीं, क्रय-विक्रय की वस्तु नहीं। इसमें सौदा नहीं होता, लेन-देन नहीं चलता। यह किसी तुला पर तोला नहीं जाता। इसमें समीकरण नहीं बिठाया जाता, अनुपात-समानुपात नहीं ढूंढे जाते। और अगर कहीं यह सब होता है तो यह समझ लेना चाहिए कि प्रेम में कहीं खोट है। फिर ऐसे प्रेम की कोई सराहना नही। वास्तव में प्रेम वीरता है। उसमें वीर-रस होता है। कहीं रणभूमि में सच्चा सूरमा जय-पराजय का ध्यान रख पाता है। वह तो बस प्राणों की बाजी लगा देता है। जूझ जाने में ही उसे सब कुछ मिल जाता है। त्याग-समर्पण प्रेमाधार है। उत्सर्ग प्रेम का प्राण तत्त्व है।

१७७३) संगीत-सम्राट तानसेन को पाकर स्वर-संगीत कृत-कृत्य हो गया। अपनी तान से उन्होंने विश्व को विमोहित कर लिया। विधाता ने पृथ्वी को अपने फणमंडल पर धारण करने वाले शेषनाग को कान नहीं दिए। क्योंकि यदि उन्हें कान दिए होते तो वे भी तानसेन की तान से झूम उठते और समस्त भूमण्डल आन्दोलित हो उठता। सुमेरु पर्वत एवं सागर आदि-सबके सब विचलित हो जाते। सार्वभौमिक हड़कंप मच जाता।

१७७४) अपने प्रिय के वियोग का दुख दुस्सहनीय होता है। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि व्यक्ति के जीवन में शून्यता भरने वाले इस दुख का भी अन्त होता है। दुख के अन्त का अर्थ है- प्रिय का पुनर्मिलन। वियोग से ही संयोग चमकता है।

१७७५) होनी होकर ही रहती है। उसके लिए वैसी ही परिस्थितियां बनती चली जाती है। वे परिस्थितियां या तो उसके पास आकर घटित होने लगती हैं या फिर वे उसे ही खींचकर वहां ले जाती हैं, जिसके साथ वह घटना घटित होनी होती है।

१७७६) दूसरों के प्रभाव में आए हुए शिष्य, मित्र, नौकर, मंत्री व स्त्री की जांच करके छोड़ देना चाहिए। यदि यह बात सुनने में आवे कि अपना शिष्य, मित्र, नौकर, मंत्री और सुंदरी स्त्री-ये पांचों मुझको छोड़कर दूसरे के मन को प्रसन्न करने लगे हैं तो पहले तो इसकी जांच करनी चाहिए (जांच करने पर यदि बात सत्य निकले तो) फिर इन्हें छोड़ देना चाहिए। यदि शिष्य, सखा, सेवक, सचिव और अपनी धर्मपत्नी के संबंध में यह संदेह हो जाए कि वे किसी अन्य के प्रभाव में आकर उसका मनोरंजन करने लगे हैं तो पहले परीक्षण करके उन्हें त्याग देना चाहिए, क्योंकि न त्यागने पर वे तुम्हें हानि पहुंचा सकते हैं।

१७७७) सरसता के रहते हुए ही शहर, स्त्री, भोजन, मंत्री, नौकर, मित्र और घर का त्याग कर देना चाहिए। सरसता नष्ट होने से पहले ही इन्हें छोड़ देने में शोभा और आनंद है। नीरस होने पर इनका त्याग करने में तो शोक और अशांति ही होती है अर्थात् जब तक नगर में सरसता है यदि हम उसी बीच नगर को छोड़ेंगे तो मधुर-मधुर स्मृतियां हमें प्रसन्न करती रहेंगी। इसी प्रकार स्त्री व भोजन की बात है, जब तक खाने में रुचि आए तब तक ही खाना ठीक हैं। मंत्री, नौकर, मित्र और घर जब तक तुम्हारे लिए आनंदप्रद हैं, सरल हैं तभी उन्हें छोड़ दोगे तो नीरसता में छोड़कर जो दुख होता, वह नहीं होगा।

१७७८) मुसीबत आने पर भरे खजाने भी खाली हो जाते हैं। जैसे प्रभात होते ही आकाश से तारागण विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार आपत्ति आने पर चाहे कई लाख-करोड़ धन भी पास हो, तो वह भी समाप्त हो जाता है। विपत्ति आने पर धन नहीं रहता। विपत्ति बीमारी की भी हो सकती है, मुकदमे की भी हो सकती है, अन्य कोई परेशानी भी हो सकती है। जब व्यक्ति पर विपत्ति आती है तो सारा सुख-चैन और सम्पत्ति भी धूल में मिल जाती है।

१७७९) होनी को कोई नहीं टाल सकता। भविष्य को कोई नष्ट नहीं कर सकता। केवल प्रभु ही भविष्य के प्रभाव को समाप्त कर सकते हैं। भविष्य बहुत बलवान है। भावी की प्रबलता से ही राम वन गए, हरिश्चंद्र को पत्नी तक को बेचना पड़ा, प्रतापी पांडवों की पत्नी द्रौपदी को दुष्टों की सभा में निर्वसना होना पड़ा।

१७८०) मांगने से आदर, मान, महत्व, सत्य यहां तक कि बचपन का प्यार भी समाप्त हो जाता है। इसलिए मनुष्य को स्वाभिमानी होना चाहिए। स्वयं आर्थिक कष्ट या अन्य किसी प्रकार की भी परेशानी सह लेनी चाहिए परंतु किसी से कुछ मांगना नहीं चाहिए। जब कोई किसी से कुछ मांगता है तो जिससे मांगता है उसकी दृष्टि में उसका सम्मान नहीं रहता। यहां तक कि पुरानी मित्रता का प्रेम भी जाता रहता है।

१७८१) न तो आकाश में, न सागर के मध्य में और न ही पर्वत की गुफा में घुसने से पृथ्वी का वह स्थल प्राप्त हो सकता है, जहां निवास करने से व्यक्ति दुष्कर्म के परिणामों से बच सके।

१७८२) क्रोध में उच्चारित शब्द सबसे तीक्ष्ण तलवार हैं, लोलुपता सबसे घातक विष है, वासना प्रचण्डतम अग्नि है, अज्ञान गहनतम रात्रि है।

१७८३) अज्ञान से संसार ध्वस्त होता है। ईर्ष्या और स्वार्थपरायणता मैत्री को तोड़ती है। द्वेष सर्वाधिक तीव्र ज्वर है और बुद्ध उत्कृष्टतम वैद्य है।

१७८४) अच्छा होना अच्छी बात है, फिर भी लिखे हुए लेख मिटते नहीं, वह तो भुगतने ही पड़ेंगे। अच्छे का अच्छा और बुरे का बुरा ये नियम काल ने बनाये हुए हैं।

१७८५) आज का मनुष्य बाहर से बड़ा किन्तु अन्दर से छोटा है इसलिए शान्ति के रास्ते को छोड़कर भौतिक सुखों की अंधी दौड़ में लगा है।

१७८६) बाँसुरी के तीन गुण इन्सान में आ जायें तो वह सर्वप्रिय बन सकता है- पहला बाँसुरी बिना बजाये नहीं बोलती, दूसरा जब भी बोलती है मीठा बोलती है और तीसरा बाँसुरी में कोई गाँठ नहीं होती।

१७८७) तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद अपनी मेहनत और पक्के इरादे से कोई भी व्यक्ति उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सकता है।

१७८८) प्रकृति को देखो, परिस्थिति को नहीं। परिस्थिति बदल जाती है, किन्तु प्रकृति स्थिर रहती है। इसी तरह यदि श्रेष्ठता सुसंस्कारित है, सद्गुणों का समुच्चय है, तो बहिरंग में दृश्यमान मलिनता सामयिक है। प्रकृति निश्चिय रूप से प्रबल है। वह जोर मारेगी और श्रेष्ठता स्वत: स्फूर्त उभर कर आ जायेगी।

१७८९) यदि आपको गहरे काले बादलों, बारिश और तूफान का अनुभव नहीं तो आप सूरज की खिली हुई धूप का आनन्द भी नहीं ले पाएँगे।

१७९०) दूसरों से प्रसन्नता से मिली हुई वस्तु दूध के समान होती है, माँगकर ली गई वस्तु पानी के समान और किसी को दु:खी करके ली वस्तु खून के समान होती है।

१७९१) वस्तु परिवर्तन होता रहता है। कोई भी वस्तु बहुत दिनों तक एक-सी प्रिय नहीं रहती। वस्तुमें नर्तन-परिवर्तन है, बदलना ही उसका स्वभाव है।

१७९२) अघोर चिन्ता जो पाताल से भी बढ़कर गहरी और आकाश से भी बढ़कर ऊंची होती है, जिसके साथ तुलना करते समय पूरा विश्व भी परमाणु के समान जान पडता है, जो भोग रूपी वस्त्रों के तारों को नाप कर जीव को अपरिमित कष्ट देती है और जो अपने जीव

रूपी प्रेमी को मरण काल तक भी छोडने का विचार अपने मन मे नही आने देती।

१७९३) एक सीमा तक पराश्रित होना विवशता माना जा सकता है परन्तु स्वयं को पंगु मान कर दूसरों के सहारे पर पूरे जीवन सफर को तय करने का प्रयास करना घोर लज्जा है।

१७९४) आत्मसंयम के बिना उत्साह बेलगाम घोडे की तरह है जो किसी गहरे गर्त मे गिरा कर सवार को नष्ट कर सकता है। सब सफल मनुष्य आत्म संयम का बहुत बडा मुल्य समझते है और विफल मनुष्य आत्म संयम का कुछ भी महत्व नही जानते।

१७९५) क्या कोई निरन्तर हिंसा करते रह सकता है ? क्रोधका आवेश या द्वेषकी जलन निरन्तर अपने हृदयमें बनाये रखना सम्भव है क्या ? परन्तु, अहिंसा तो सर्वदा रह सकती है। न तो उसका भार है, न कुछ करना है। हिंसासे सुगम अहिंसा? सहज-स्वभाव। इसीसे सत्य, अहिंसा सद्गुण हैं, असत्य तथा हिंसा दुर्गुण हैं। दु माने दुष्ट, दु:खदायी। जैसे गुण्डा घर में रखने योग्य नहीं होता, वैसे ही असत्य एवं हिंसा भी हृदयमें रखने योग्य नहीं होते। ये बाहरसे आते हैं। इनको स्थान न देना ही श्रेयस्कर है।

१७९६) जो मार्गमें चलता है, उसी के पाँव फिसलते हैं। कभी-कभी गिर भी पड़ता है। यह कोई अनहोनी नहीं है। यह कोई अपराध भी नहीं है। गिरके न उठना अपराध है। आगे न बढ़ना अपराध है। इसलिए आप बाधाओंसे घबड़ाइये मत। उदास-निराश मत होइये। भविष्यकी सम्भावना अत्यन्त उज्ज्वल है।

१७९७) अनुशासन पूर्ण जीवन ही वास्तविक जीवन है। एक विद्यार्थी का लक्ष्य केवल विद्या और अनुशासन ही होना चाहिये। जिस प्रकार शरीर के लिये पौष्टिक भोजन आवश्यक है उसी प्रकार जीवन के लिये अनुशासन है। अनुशासन उस दीपक के समान है जो भूले-भटकों को सही दिशा व मार्ग दिखाता है। अनुशासन से ही व्यक्ति के हृदय मे सत्यता, कर्तव्य परायणता, देश भक्ति, परोपकार आदि गुणों का समावेश होता है। अनुशासन से ही विद्यार्थी का बौद्धिक एवं मानसिक विकास होता है। हमारे पूरे जीवन की दिशा अनुशासन ही निर्धारित करता है। यदि मनुष्य के जीवन मे अनुशासन न रहा तो नींव कभी भी दृढ़ नहीं होगी और उस पर टिका राष्ट्र, समाज कभी भी पतन की और जा सकता है। अनुशासन ही देश को महान बना सकता है इसलिये अनुशासित व्यक्ति ही सदैव वांछनीय है।

१७९८) जीवन अनमोल है। इसे बनाये रखने के लिये जीवन संघर्ष का नाम है। सफलता-असफलता, उतार-चढ़ाव जीवन के दो पहलू है जो बदलते मौसम की तरह है। किसी भी परिस्थिति मे इसका डट कर सामना करना पडता है।

१७९९) आत्महत्या करने का फैसला करनेवाला बहुमूल्य जीवन को कुछ ही पलों मे गंवा देता है। आत्महत्या करनेवाला मानसिक अवसाद के कारण ही दुनिया से विदा लेना उचित समझता है। आत्महत्या करना या प्रयत्न करना दोनों ही महापाप और कायरतापूर्ण कृत्य है व फौजदारी अपराध है।

१८००) करुणा जब निरीह होती है तो आंसू बनकर छलक पड़ती है, किन्तु वही करुणा जब प्रतिकार की क्षमता से युक्त होती है तो विद्रोह बनकर चिन्तन हेतु बाध्य करती है।

१८०१) व्यक्तिगत स्वार्थ के मोहवश, बिना अपकार या शत्रुता के ही, दूसरोंके प्राणोंकी बलि देना, कदापि योग्य नहीं। क्षत्रियोंका प्रयोजन होता है- संकट में पडे प्राणियों की रक्षा करना, न कि अपने स्वार्थ के लिये उनकी हिंसा करना। बिना बैर के ही निरीह प्राणियों के प्रति क्रूरता पूर्ण व्यवहार, जगत में सबसे बड़ा पाप है।

१८०२) जिस प्रकार अंधकारपूर्ण कक्ष में दीप जलाने से अंधेरा दूर भाग जाता है, उसी प्रकार मन में आशापूर्ण विचारों को जगाने से निराशा की भावना दूर हो जाती है।

१८०३) निराशा हमारी प्रसन्नता, सुख और शांति को ही नष्ट नहीं करती, वह हमारे उन संकल्पों को भी नष्ट कर डालती है जो हमने कुछ सत्कर्मों को करने के लिए किए थे।

१८०४) निराशा की छोटी सी रेखा भी मानसिक यंत्र को उसी प्रकार बेकार और निकम्मा बना देती है, जिस प्रकार धूल का छोटा सा कण या छोटा सा बाल चलती हुई घड़ी को बंद कर देता है।

१८०५) जिस प्रकार एक क्षार दूसरे क्षार को निष्क्रिय कर देता है तथा जिस तरह सूर्य की किरणें कुहासे को नष्ट कर देती हैं, उसी प्रकार आशा और उत्साह के स्पर्श मात्र से निराशा और निष्क्रियता से भरी मन:स्थिति में परिवर्तन आ जाता है।

HHH(२००)HHH

१८०६) स्वस्थ चिंतन मनुष्य में आत्मविश्वास की शक्ति भर देता है और वह सफलता की ओर निरंतर अग्रसर होता रहता है। इसके विपरीत चिंताग्रस्त व्यक्ति रोगों से ग्रस्त, निराश और हताश होता है। उसका जीवन कष्टों से परिपूर्ण होकर नष्ट हो जाता है।

१८०७) चिंता तो चिता समान होती है जो मनुष्य को घुन की तरह अंदर ही अंदर खोखला कर देती है और उसकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है।

१८०८) हाथ में आए मौके को कभी नहीं खोना चाहिए। उस व्यक्ति के लिए अवसर का क्या महत्व है, जो उसका उपयोग करना ही न जानता हो। अवसर से लाभ उठाने में असाधारण रूप से वही व्यक्ति सफल हुए हैं, जिन्होंने प्राप्त अवसरों में सुधार लाकर उन्हें अपने अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया।

१८०९) जीवन में कितने ही अंधकारमय क्षण क्यों न आएं, सब थोड़ी देर ठहरकर चले जाते हैं और फिर नई आशा की किरणें चमकने लगती हैं।

१८१०) गाय के गले में बंधी घंटियों की रुनझुन हो या स्त्री के पायलों की छम-छम स्वर लहरियों में छिपा संगीत हर संवेदनशील मनुष्य के मन के तारों को झंकृत कर जाता है। मन प्रफुल्ल और प्रसन्न हो जाता है।

१८११) वाद-विवाद में शांति से काम लें, क्योंकि आवेश और तीव्रता के कारण छोटी सी बात अवगुण बन जाती है और सच्चाई भी अनैतिक हो जाती है।

१८१२) कुछ लोगों की आवाज में मधुरता होती है, मानो किसी बाग से पके हुए फलों की सुगंध आ रही हो। ऐसे लोगे जहां-कहीं भी जाते हैं, वातावरण में संगीतमय मधुरिमा बिखर जाती है। ऐसे व्यक्तियों को हर कोई अपने पास बिठाना चाहता है, उनसे बातचीत करना चाहता है।

१८१३) जो अपने मन को वश में कर लेता है उसमें शक्ति का अपार भंडार जमा हो जाता है। इस शक्ति के बल पर वह ऐसे आश्चर्यजनक कारनामे अंजाम दे देता है जिनकी पहले उसने कल्पना भी नहीं की होती। यदि आप सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी भावनाओं और इच्छा शक्ति को प्रबल बनाना चाहते हैं तो निम्न बातों को अपने पास न फटकने दें- क्रोध, चिड़चिड़ापन, ईर्ष्या, निराशा, मानसिक खिन्नता और चिंता।

१८१४) आलस्य का एकमात्र इलाज काम करना है- निरंतर काम करना। स्वार्थभावना का इलाज है त्याग। अविश्वास का इलाज है- दृढ़ विश्वास। कायरता का इलाज है- जोखिम भरे काम का बीड़ा उठाना और तन-मन-धन से उसमें जुट जाना।

१८१५) मैं उस व्यक्ति को बेवकूफ मानता हूं, जो किसी हानि या नुकसान के बाद उस पर पश्चाताप कर अपना समय गंवाता है। इसलिए जो हो गया उसे भूल जाओ।

१८१६) यदि पति-पत्नी, दोनों का ही स्वभाव उग्र हो तो जीवन नर्क तुल्य हो जाता है और यदि एक का उग्र और दूसरे का नर्म हो तथा मेल खा जाए तो जीवन सार्थक हो जाता है, किंतु यदि दोनों का स्वभाव नर्म हो, अच्छा हो तो जीवन स्वर्ग बन जाता है।

१८१७) उदारमना और दानशील होना शोभादायक है किंतु पिता की संचित पूंजी के कारण अपव्ययी, फिजूलखर्ची, असंयमी और अच्छृंखल होना- कलंकित होने के समान है।

१८१९) पश्चिम ने दूसरे ढंग से कर्म छोड़ने की कोशिश की है और वह यह है कि यदि यंत्र सारे काम कर दें तो आदमी कर्म से मुक्ता हो जाए। कर्म से मुक्त हो जाए तो परम आनंद को उपलब्ध हो जाए। लेकिन पश्चिम दूसरी मुश्किल में पड़ गया है और वह मुश्किल यह है कि जितना कम काम आदमी के हाथ में है उतना आदमी ज्यादा उपद्रव हाथ में लेता चला जा रहा है।

१८२०) वह जो कर्म की ऊर्जा है, वह प्रकट होना चाहती है। वह कर्म की ऊर्जा कहीं से प्रकट होगी ही। इसलिए पश्चिम में छुट्टी के दिन ज्यादा दुर्घटनाएं होती हैं, ज्यादा चोरियां होती हैं, ज्यादा बलात्कार होते हैं। क्योंकि छुट्टी के दिन कर्म की ऊर्जा का क्या करें ? अगर एक महीने के लिए पूरी छुट्टी दे दी जाए पश्चिम को, तो सारी सभ्यता एक महीने में नष्ट हो जाएगी और नीचे गिर जाएगी।

१८२१) मैं शिक्षा को पांच आयामों में बांटता हूं- पहला आयाम है सूचनात्मक- जैसे इतिहास, भूगोल और इस तरह के बहुत से विषय। लेकिन इतिहास के पन्ने केवल उन लोगों से भरे हुए होने चाहिए जिन्होंने इस ग्रह के सौंदर्य को बढ़ाने में योगदान दिया है-

HHH(२०१)HHH

गौतम बुद्ध, सुकरात, रविन्द्रनाथ टैगोर, मैक्सिम गोर्की, लियो टालस्टाय आदि। चंगेज खां, तैमूर लंग, हिटलर आदि हमारा इतिहास नहीं दु:स्वप्न हैं। हमारे बच्चों के भीतर क्रूरता के ऐसे खयालात नहीं डाले जाने चाहिए। दूसरा आयाम- वैज्ञानिक विषयों की खोज। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह वास्तविकता का आधा अंग है, बाह्य वास्तविकता का। तीसरा आयाम- जिसकी आज की शिक्षा में कमी है- जीने की कला, प्रेम, हंसी, जीवन के आश्चर्य और रहस्यों से परिचय, वृक्षों पर चहकते हुए पक्षियों का संगीत अनसुना न रह जाए। चौथा आयाम होना चाहिए- कला और सृजनात्मकता, चित्रकला, संगीत, कविता, हस्तकला, पत्थर तोड़ने का काम- जो भी सृजनात्मक है, वह सब। पांचवां आयाम होना चाहिए- मरने की कला। इस पांचवें आयाम में ध्यान की सब विधियां होंगी ताकि जान सको कि मृत्यु होती ही नहीं, ताकि अपने भीतर के शाश्वत जीवन से परिचित हो जाओ।

१८२२) संसार में प्रत्येक व्यक्ति को दो भाषाएं तो सीखनी ही चाहिए- एक उसकी मातृभाषा और दूसरी अंग्रेजी जो कि अंतर्राष्ट्रीय आदान-प्रदान की भाषा है। भाषा लोगों को जोड़ती है और भाषा तोड़ती भी है।

१८२३) एक-एक विचार तो अपने आप मर जाता है, पर विचार प्रवाह नहीं मरता है। एक विचार मर भी नहीं पाता है कि दूसरा उसका स्थान ले लेता। यह स्थानापूर्ति बहुत त्वरित है। यही समस्या है। विचार की मृत्यु नहीं, उसकी त्वरित उत्पत्ति, वास्तविक समस्या है।

१८२४) जो विचार के गर्भाधान के विज्ञान को समझ लेता है और वह उससे मुक्त होने का मार्ग सहज ही पा जाता है। इस जगत के प्रति हमारी प्रतिक्रिया ही हमारे विचारों की जन्मदात्री है।

१८२५) अनुभूति को शब्द देते ही विचार का जन्म हो जाता है। यह प्रतिक्रिया, यह शब्द देने की आदत, अनुभूति को दर्शन को विचार से आच्छादित कर देती है। अनुभूति दब जाती है, दर्शन दब जाता है और शब्द चित्त में तैरते रह जाते हैं। ये शब्द ही विचार हैं।

१८२६) एकाग्रता के हठाग्रह से बेहोशी आ जाती है। इस बेहोशी को समाधि समझना भूल है। समाधि का अर्थ जड़ता या मूढ़ता नहीं है। समाधि का अर्थ है परिपूर्ण चैतन्य का अनुभव। समाधि है- विचार शून्यता, पूर्ण चैतन्य।

१८२७) धार्मिक व्यक्ति की जीवन क्रांति के सूत्र- जीवन के प्रति आनंद का भाव, जीवन के प्रति अहोभाव, जीवन के प्रति अनुग्रह का बोध, यह धार्मिक व्यक्ति की जीवन क्रांति का पहला सूत्र है। दूसरा सूत्र है- जीवन के प्रति आश्चर्य का बोध।

१८२८) शिक्षा से ही समाज मे भाईचारा उत्पन्न होता है। यदि शिक्षित व्यक्ति ही अशिष्ट व्यवहार करे तो वह सबसे बड़ा मूर्ख है। शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही परिवार, समाज या देश का उत्थान कर सकता है।

१८२९) जहां एक दूसरे की इच्छा, आकांक्षा और विचारों को ध्यान मे रख कर कोई निर्णय लिया जाता है तो वही आदर्श परिवार होता है।

१८३०) स्पर्धात्मक वातावरण मे कठिन परिश्रम से ही हर व्यक्ति को सफलता प्राप्त होती है। सफलता आसानी से व जल्दी नही मिलती। जिन्हें सफलता हासिल करनी है, उन्हें सपने देखने चाहिये व सपनों को साकार करने के लिये सतत प्रयास रत रहना चाहिये क्योकि केवल सपने देखने से ही मंजिल नही मिलती उसे कडी मेहनत से साकार करना चाहिये।

१८३१) मितव्ययिता एक ऐसा गुण है जो देखने मे तो भले ही छोटा लगता हो लेकिन इसके परिणाम बहुत बडे होते है। छोटी-छोटी बचत ही जीवन मे कई बार बहुत काम की सिद्ध होती है।

१८३२) समझदार मनुष्य हर कहानीकार को एकदम से स्वीकार नहीं करते क्योकि वे जानते है कि आदमी कमजोर तबियत का होता है और दूसरी चीज उसके अन्दर जल्दी घर कर जाती है तथा जबान उसके काबू मे नही रहती है।

१८३३) जो विद्या अपना वैज्ञानिक पक्ष और आधार प्रस्तुत नही कर पाती, वह विद्या अथवा विषय समाज से अलग-थलग पड जाते है। अवैज्ञानिक और आधार हीन विषयों, विद्याओं में कोई बुद्धिमान व्यक्ति भला क्यो आस्था दर्शाये ?

१८३४) वो ही पुरुष महान बनते है जो जीवन मे बार-बार बाधाओं से घिर जाने पर भी अपने निर्धारित कार्य को बीच मे नही छोड़ते बल्कि उत्साह के साथ उसे उत्कृष्ट बनाने मे संघर्षशील बने रहते है। अधिकांशत: ऐसे लोग अभाव के गर्व से जन्मते है और अपने दृढ़ संकल्प, निश्चय तथा आत्मविश्वास के साथ एक दिन अपने जीवन को सुन्दर स्वर्णिम बना देते है।

१८३५) आज के जमाने का चलन हो गया है कि लड़के और लड़के के बाप की नजर कन्या की सुशीलता और गुणों पर नही बल्कि उसके पिता द्वारा दहेज दक्षिणा मे दिये जाने वाले माल पर रहती है।

१८३६) भारत मे जाति प्रथा का सृजन एवं पोषण करने वाले हिन्दू धर्म मे जातिविहीन समाज की कल्पना भी नही की जा सकती

क्योकि धर्म ग्रन्थों में जाति एवं वर्ण व्यवस्था कूट-कूट कर भरी हुई है।

१८३७) विवाह एक संयुक्त संकल्प है। इसका सम्यक निर्वाह तभी सम्भव है जब पति-पत्नी दोनों में ही एक दूसरे के प्रति उदारता व सहिष्णुता का भाव हो। विवाहित जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते है जब थोड़ी सी जल्दबाजी और असहिष्णुता से तिल का ताड बन जाता है। क्षण भर का असंयम लम्बे समय तक का क्षोभकारी हो जाता है।

१८३८) सहिष्णुता का अर्थ अनौचित्य को सहते रहना नहीं है और न ही सहिष्णु स्वभाव का अर्थ दब्बुपन समझना चाहिये। न ही उदारता का यह अभिप्राय है कि अन्यायमूलक गर्हित आचरण के प्रति उपेक्षा भाव रखा जाये।

१८३९) परिवार के वयोवृद्धों की बातों को आंख मूंद कर मानने में यदि हानि है तो उनके परामर्श की उपेक्षा में भी हानिकारक है क्योकि उनके जीवन के अनुभव जीवन का मार्ग प्रशस्त करने में धरोहर के रूप में सिद्ध होते है।

१८४०) आकाश के पक्षियों को देखो। वे न बोते हैं, न काटते हैं और न खत्तों में बटोरते हैं, तो भी तुम्हारा स्वर्गस्थ पिता उन्हें खिलाता है। क्या तुम उनसे अधिक मूल्य नहीं रखते ? इसलिए तुम चिन्ता करके यह न कहना कि हम क्या खाएंगे, या क्या पीएंगे या क्या पहनेंगे। तुम्हारा स्वर्गस्थ पिता जानता है कि तुम्हें ये सब वस्तुएं चाहिए। इसलिए कल की चिन्ता न करो, क्योंकि कल का दिन अपनी चिन्ता आप कर लेगा। क्योंकि मनुष्य का पुत्र छोड़कर दूर की यात्रा पर निकलनेवाला व्यक्ति है, जिसने अपने सेवकों को देखरेख करने तथा सभी लोगों के लिए निश्चित काम करने की व्यवस्था कर दी है।

१८४१) धनहीन होने और दरिद्र होने में अंतर है। धनहीन व्यक्ति श्रीमान हो सकता है और धनवान दरिद्र। क्योंकि दरिद्र तो वो है, जिसकी तृष्णा विशाल है, जिसकी और-और की भूख शांत नहीं होती।

१८४२) श्वास-प्रश्वास लेते हुए भी लोग मृत होते हैं। जो कर्म नहीं करता वह मृत है। जो धर्म का आचरण नहीं करता, वह मृत है। जिसका समाज में यश नहीं, वह मृत है। जो भोगों में लिप्त है, वह मृत है। जीवन का अर्थ है प्रगति और जो स्व धर्म-कर्म का आचरण न करते हुए, भोगों में लिप्त रहते हैं उनका स्पर्श पुण्यों का क्षय करने वाला होता है।

१८४३) जीव जन्म-जन्मांतरों से जिसकी तलाश, जहां कर रहा है, वह उसे वहां कभी नहीं मिलने वाला। कारण ? उसकी खोज का स्थान त्रुटिपूर्ण है। वह विषधर से अमृत की और रेगिस्तान की रेत से जल की कामना कर रहा है।

१८४४) तुम जगत् की ज्योति हो। जो नगर पहाड़ पर बसा हुआ है वह छिप नहीं सकता। न ही लोग दिया जलाकर पैमाने के नीचे रखते हैं बल्कि दीवट पर रखते हैं, और तब उससे घर के सब लोगों को प्रकाश पहुंचता है। तुम्हारा उजियाला मनुष्यों के सामने ऐसा चमके कि वे तुम्हारे भले कामों को देखकर तुम्हारे पिता की, जो स्वर्ग में हैं, बड़ाई करें।

१८४५) मनुष्य को आपत्ति आने पर किसी सबल पुरुष की बुरी सत्य बात कहने के लिये मूक बने, बुराई देखने के लिये अन्धा, बुराई सुनने के लिये बहरा एवं बुराई करने के लिये दौड़-धूप करने में लंगड़ा बन जाये अर्थात किसी भांति से बुरा लगने वाला व्यवहार न करे, यदि ऐसा नहीं करेगा तो दु:ख पायेगा और व्यवहार से गिर जायेगा।

१८४६) पराधीनता से बढ़कर दूसरा कोई दु:ख और स्वाधीनता से बढ़कर दूसरा कोई सुख नहीं है। प्रवास नहीं करने वाला तथा स्वाधीन होकर अपने ही घर में रहने वाला पुरुष सुख प्राप्त करता है।

१८४७) सुन्दर स्त्री (चांदी के रंग जैसी देह सोने जैसा सुनहरी बाल युक्त शरीर) देह पर मिटने वाले हे मूर्ख। क्यों मोहित होता है तू ? हर स्त्री का सुख मात्र एक साही होता है, इससे दिग्भ्रमित ना हो। (प्राय: पुरुष स्त्री का चेहरा, देह को देखकर उस पर मोहित (रूपजाल) हो जाता है। इसी मूल कारण एक स्त्री से सम्बन्ध कर दूसरी की ओर बंदर की तरह भटकता फिरता है। पर वह स्मरण योग्य इस बात को भूला देता है, कि हर स्त्री का सिर्फ एक ही सुख होता है। अत: हे पुरुष। इस भ्रमजाल में न फंस, केवल एक ही स्त्री से संबंध रखना ही उचित है।

१८४८) सर्प की नेवले से, बकरी की बाघ से, हाथी की चींटी से और शेरनी की कुत्ते से मैत्री कदापि नहीं हो सकती। इस प्रकार शत्रु के मित्र से कभी मित्रता नहीं हो सकती। तेल में जल नहीं मिल सकता। घी में जल समा नहीं सकता। पारा किसी में मिश्रित नहीं हो सकता। ठीक इसी प्रकार से विपरीत स्वभाव वाले एक-दूसरे से नहीं मिल सकते। (परस्पर विपरीत स्वभाव वाले व्यक्तियों की आपस

में मैत्री असम्भव है अगर है तो ढोंग मात्र है।)

१८४९) स्वार्थ के धरातल (आधार) पर की गई मित्रता-शत्रुता में परिवर्तित हो जाती है। अतएव मैत्री ग्रहण करने से पहले सोच-विचारकर (मंथन करके) साधुजनों जैसा कर्म कर लेना चाहिए। (सज्जन पुरुष मैत्री करने से पूर्व भली-भांति विचार मंथन कर लेते हैं, क्योंकि उनको ज्ञान है कि स्वार्थ पर आधारित मित्रता-शत्रुता में परिवर्तन होते क्षण भर भी देर नहीं लगती है।)

१८५०) मूर्ख या धूर्त शिष्य को उपदेश देना, कर्मशास्त्री का लालन-पालन करने से और दीन-दुखियों से अपना आचरण दान देकर बनाए रखने का मूल कारण एक से एक पंडित तो क्या बुद्धिमानों को भी दु:ख उठाना पड़ता है।

१८५१) एक ही मनुष्य जन्म पाता है, एक ही पुरुष दु:ख भोगता है, एक ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है और एक ही मनुष्य नरक में जाता है। इस प्रकार से सभी अकेले-अकेले का खेल रचा है। रचने वाले ईश्वर के लिए तो हमारे लिए शिक्षा है कि रिश्ते-नाते तो केवल मुंह बोले ही हैं।

१८५२) जो ब्रह्मज्ञानी होता है, उसके लिए स्वर्ग महत्त्वहीन है। वीर-पुरुष के लिए मृत्यु महत्त्वहीन है। इन्द्रियों को वश में रखने वाले को सुन्दर रूपवती स्त्री महत्त्वहीन है। वीतरागी को दुनिया से कोई सरोकार नहीं होता है।

१८५३) खर्राटे (कर्कश ध्वनि) मारकर शयन या सोनेवाली स्त्री और कपड़े खोलकर सोने (शयन) वाला पुरुष दोनों ही अल्पायु के होते हैं। दिन में सहवास और रात्रि में द्यूत क्रीड़ा जीवन के दिन कम अवश्य कर देते हैं। प्रत्येक कार्य (कर्म) का एक विधान (नियम) है। नियम की हानि जीवन की हानि होती है।

१८५४) कुत्ता अपनी पूंछ टेढ़ी ही रखेगा, सर्प लहराकर ही चलेगा, गधा दुलत्ती जरूर मारेगा, चींटी कितना ही हटाओ, पलटकर जरूर आएगी, मक्खी को कितना ही उड़ाओ बैठेगी वहीं पर, कुत्ते को कितना ही रोको वह उतना ही भौंकेगा, जिसकी जो आदत होती है। उससे वह लाचार होता है। मनुष्य अपनी आदतों का गुलाम (दास) है।

१८५५) सुरा सुन्दरी (रूपवती स्त्री) में बड़ा सुख है। इसका सुखपान करके जानते हो क्या होगा ? नाली का कीड़ा बनकर नाली में ही मरेगा। मूर्ख (धूर्त) यह सुरा-सुन्दरी तेरी शक्ति को निचोड़कर, तेरा धन चौपट करने आई है। इसमें सुख है, पर नरक द्वार (कपाट) सामने (समक्ष) है।

१८५६) सुन्दर रूपवती स्त्री, यौवनमयी विधवा, बूढ़ा, विधुर, सांड-सीढ़ी, ढोंगी, संन्यासी, तांत्रिक और गधा, इन सभी से बचकर चलना सबसे बेहतर है। इनके आसपास रहना कुछ न कुछ क्लेश को घर में जबरन घुसाना है या निमंत्रण देना है। बुद्धिमान इनसे हमेशा पचास हाथ दूर से निकल जाते हैं।

१८५७) भाग्य लिखा बिना कार्य (कर्म) के कैसा होगा ? आम खाना भाग्य में लिखा है, तो आम के पेड़ के नीचे मुंह बाए लेटने से आम मुंह की ओर टपकेगा उसके लिए तो हाथ से कार्य (कर्म) करना पड़ेगा। भाग्य लिखा पाने के लिए कर्म तो अवश्य करना पड़ेगा। भाग्य न लिखा प्राप्त करने के लिए कार्य ज्यादा करना होगा। निरा भाग्यवादी मनुष्यों ने ही ईश्वर और भाग्य दोनों को बदनाम कर रखा है। कर्म करने वालों ने भाग्य को पराजित कर रखा है।

१८५८) धर्म तत्परता, मुख में मधुरता, दान में उत्साह, मित्रों से निष्कपटता, गुरु के प्रति विनम्रता, चित्त में गम्भीरता, आचरण में पवित्रता, गुणों के प्रति आदर, शास्त्रों का विशेष ज्ञान, रूप में सुन्दरता तथा शिव में भक्ति ये सब गुण एक साथ परमपिता परमेश्वर में ही है।

१८५९) मुझे अपने जीवन की क्या चिन्ता, यदि श्री हरि को विशम्बर कहा जाए। यदि सच में ऐसा नहीं होता तो बच्चे के जन्म के समय मां के स्तनों में दूध कैसे आ जाता। क्योंकि वे तो समस्त जगत् की चिन्ता करने वाले हैं।

१८६०) कल्पवृक्ष काष्ठ है। सुमेरू पर्वत पहाड़ है। पारस केवल एक पत्थर है। सूर्य की किरणें तेज हैं। चन्द्रमा घटता रहता है। समुद्र खारा है। कामदेव का शरीर नहीं है। बलि दैत्य है। कामधेनु पशु है। हे प्रभु। मैं आपकी तुलना किसी से नहीं कर पा रहा हूं। आपको किसकी उपमा दी जाए।

१८६१) जैसे हजारों गायों में भी बछड़ा अपनी मां को पहचानकर उसके पास पहुंच जाता है। ठीक उसी प्रकार किया गया कर्म भी मनुष्य को पहचान कर उसके पीछे चलता है।

१८६२) यदि बसंत ऋतु में पेड़ में पत्ते नहीं आते तो इसमें बसन्त का क्या दोष ? यदि उल्लू दिन में नहीं देख पाता तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? चातक के मुख में वर्षा की बूंद नहीं जाती तो इसमें बादल का क्या दोष ? विधाता ने जो पहले ही भाग्य में लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है।

१८६३) जैसे गायें अनेक रंगों की होती हैं लेकिन उनका दूध सफेद ही होता है, उसी तरह सत्य प्रवर्तकों के कथन में भाषा भेद होता है भाव भेद नहीं। उसी तरह धर्म अलग-अलग होने पर भी उनमें तत्व एक ही होता है।

१८६४) अत्यन्त मद्य पीने वाले की बुद्धि का निश्चय लोप हो जाता है, मात्रा के साथ थोड़ा मद्य पीने वाले की प्रतिभा, बुद्धि में उज्ज्वलता, धीरता, चित्त की स्थिरता बढ़ती है और इससे भिन्न मात्रा से अधिक पीने से मद्य शरीर को नष्ट कर देता है। मद्य के समान काम तथा क्रोध भी चित्त को अत्यन्त मतवाला बना देने वाला होता है। अत: इन दोनों (काम-क्रोध) को भी यथोचित रीति से प्रयोग करना उचित होता है।

१८६५) विज्ञान हमें आकाश में पक्षियों की तरह उड़ना सिखा सकता है, पानी में मछलियों की तरह तैरना सिखा सकता है। लेकिन धरती पर इंसान की तरह चलना नहीं सिखा सकता धरती पर कैसे चले यह सिर्फ धर्म सिखाता है।

१८६६) जब मन में धर्म बसता है तो हम अपने जानी दुश्मन का भी अहित करने की नहीं सोचते, लेकिन जब मन से धर्म निकल जाता है तो हम अपने बाप की हत्या करने में भी नहीं हिचकते हैं। यही धर्म और अधर्म का फल है।

१८६७) तोड़ने वाला क्षुद्र है और जोड़ने वाला महान् होता है। कैंची तोड़ने का काम करती है इसलिये दर्जी के पैरों के नीचे (उपेक्षित) पड़ी रहती है और सुई जोड़ने का काम करती है इसलिए दर्जी अपनी टोपी में लगा कर रखता है।

१८६८) आज एक बाप अपने चार पुत्रों की परवरिश तो कर लेता है लेकिन चार पुत्र मिलकर भी अपने एक बूढ़े बाप की परवरिश नहीं कर सकते। आज अगर आप अपने नन्हें बालक को अंगुलि पकड़कर मन्दिर ले जाते हो तो वह कल (बुढ़ापे में) आपका हाथ पकड़ कर मन्दिर में वन्दना करायेगा।

१८६९) धर्म गरीब की झोपड़ियों में निवास करता है क्योंकि दीन दुखियों की सेवा ही धर्म है। जिस प्रकार केवल अर्थशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई करोड़पति नहीं हो जाता उसी प्रकार धर्मशास्त्र पढ़ लेने मात्र से कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता।

१८७०) बैर कब तक है ? जब तक दो दुश्मन एक दूसरे को देखकर मुस्कराते नहीं है। जिस दिन एक दूसरे को देखकर मुस्करा देंगे उसी दिन बैर का विनाश हो जाएगा।

१८७१) अगर मन में दीवार खिंच जाए तो फिर मकान में दीवार खींचने मे देर नहीं लगती। मन उस दरवाजे की तरह होता है जो भीतर की तरफ भी खुलता है और बाहर की तरफ भी खुलता है।

१८७२) मनुष्य तू बसन्त और पतझड़ को समान जान, यदि तू बसन्त में हर्षित न होवे, तो तुझे पतझड भी दुखी नहीं करेगा अर्थात् प्रत्येक दशा में समान रहना ही तेरे लिये उचित है।

१८७३) लोगों की मुसीबतों को दूर करो। सफर करते रहने से और लोगों से मिलते जुलते रहने से अनुभव बढ़ता है, दौलत कमाना और दुनिया मे नाम कमाना आसान हो जाता है।

१८७४) आभूषण लगभग सभी स्त्रियों की सबसे प्रिय वस्तु ही नही अपितु महिलाओं की कमजोरी भी माना जाता है। आभूषण मात्र साज-सज्जा श्रृंगार के लिये ही नहीं होते बल्कि आभूषण तो एक सुरक्षित निधि की तरह है जिनका उपयोग महिलायें आपतकालीन समय पर कर सकती है। इसलिये आभूषणों पर कुछ पैसा खर्च करना लाभप्रद होता है, इस बहाने थोडी बहुत बचत हो जाती है और स्त्री धन में रूपान्तरित होकर सम्पत्ति भी बन जाती है।

१८७५) अगर इन्सान के जिन्दा रहने के लिये फल-फूल, पेड-पौधे अनिवार्य है, जंगल के जानवर जरूरी है, बच्चे जरूरी है तो घर में बुड्ढों का होना भी जरूरी है। इनके बिना आत्मिक रूप से असन्तुलन होकर इन्सानी नस्ल हमेशा के लिये लुप्त हो जाना सम्भव है। इसलिये इन्सान को समझने की कोशिश मत करो सिर्फ महसूस करो जैसे हमने पत्थर से खुदा पाया है।

१८७६) सफलता, भाग्य, संयोग या सुविधाओं का परिणाम नहीं है बल्कि सफलता अपने दृढ़ इरादे और उद्यम पर निर्भर करती है।

सफलता पाने वाले कोई आसमान से तारे तोड कर नहीं लाते। अपना काम कर्मठता और अलग ढंग से सही दिशा में उचित प्रबन्धन से करते है। वे अपना लक्ष्य निर्धारित कर उसे पाने के लिये सतत परिश्रम कर दिनरात एक कर देते है।

१८७७) सफलता कभी अनैतिक रास्तों पर चलकर या अनुचित साधनों का प्रयोग कर प्राप्त नहीं की जाती है ऐसी प्राप्त सफलता तो चोरी है। आत्मविश्वास के साथ सावधानी पूर्वक निरन्तर प्रयास की हुई सफलता ही सच्चे अर्थों मे सही है।

१८७८) समाज में ज्ञान बढ़ने से धन मिलता है। धन से अधिकार, अधिकार से प्रतिष्ठा व प्रतिष्ठा से लोकप्रियता बढ़ती है। मन की शान्ति धर्म से मिलती है। धर्म से ज्ञान, नीति व आचार आते है। नीतिमान होगा तो ही मान्यता प्राप्त कर सकता है।

१८७९) कलियुग में पुत्र अपने माता-पिता को तब तक ही मानते हैं जब तक स्त्री का मुख नहीं दिखाई पड़ता। ससुराल प्यारी लगती है, कुटुम्बी शत्रु सम हो जाते हैं। वेदों को, पुराणों को नहीं माननेवाले ही कलियुग में हरिभक्त और संत कहलाते हैं।

१८८०) मेहनत और ईमानदारी की रोटी से सच्ची शान्ति मिलेगी। मेहनत और ईमानदारी का जितना होगा, उतना ही रह जायेगा, बाकी सब कुछ जिस रास्ते आया, उसी रास्ते चला जायेगा।

१८८१) कुसंग से किसी का भला नहीं हुआ है। गांव हो या घर, समाज हो या देश कुसंग से किसी का विकास नहीं होता। कुसंग करो तो पैसे के भी पैर आ जाते हैं और वह चारों ओर से जाने लगता है। प्रतिष्ठा और पैसा दोनों नष्ट हो जाते हैं।

१८८२) अगर धन खो गया तो कुछ नहीं खोया, अगर स्वास्थ्य खोया तो थोड़ा कुछ खोया, लेकिन अगर चरित्र खोया तो सब कुछ खोया।

१८८३) जीवन को अधिक खर्चीला नहीं बनाना चाहिये। ऋषि मुनियों का जीवन खर्चीला नहीं था। अधिक खर्चीला जीवन मनुष्य को रुपयों और दूसरे पुरुषों का दास बना देता है जिसके कारण अनेक पाप करने पड़ते हैं। और दर दर भटकना पड़ता है।

१८८४) कामी के साख नहीं, लोभी के नाक नहीं, क्रोधी के बाप नहीं, अज्ञानी के थाप नहीं, भक्त के शाप नहीं, नास्तिक के जाप नहीं, अर्थात् इन लोगों पर इन पदार्थों का प्रभाव नहीं पड़ता।

१८८५) आत्मा से कोई आदमी बुरा नही होता है। परिस्थितियां ही आदमी को गलत राह पर चलने को मजबूर करती है। यही विवशता जब स्वार्थ के बाहुपाश मे जकड जाती है तो आतंकवाद का रूप धारण कर लेती है।

१८८६) शमा इसलिये नही जलती कि वो अन्धेरों से अपनी कीमत तलब करे।

१८८७) लोग लडकी की खूबसूरती देख कर शादी करते है तो कुछ पैसा देखकर कर और कुछ लडकी की पढ़ाई या नौकरी देख कर शादी करते है लेकिन ऐसी लडकी से शादी करो जो ज्यादा मुहब्बत करने वाली और घर सम्भालनेवाली हो।

१८८८) इन्सान दुनिया मे अकेला आता है और अकेला ही चला जाता है। इन्सान अपनी जात मे बहुत तन्हा और अकेला है। उसके सबसे अधिक नजदीक सिर्फ तन्हाई है। अगर वह सोचे और महसूस करे तो वह तन्हा नही है। उसके साथ कोई तो है। वह जात, जो इन्सान को कभी तन्हा नही होने देती और उसका साथ कभी नही छोडती और वह जात है खुदा। खुदा जो इन्सान को तन्हाई मे भी सब्र सुकून और साथ का एहसास कराता है।

१८८९) **जीवन का अर्थ** - हर सुबह शाम की शरारत है, हर हंसी अश्रु की तिजारत है। मुझसे पूछो अर्थ जीवन का, जिंदगी मौत की इबादत है।

१८९०) हमारा जीवन जीने लायक तभी होता है जब वह दूसरों के दुख दर्द में शरीक हो। जैसा हम देते है वैसा ही पाते है। दूसरों से पाने के मुकाबले दूसरों को देना कही ज्यादा बडी बरकत है।

१८९१) धन दौलत की मुहब्बत इन्सान को इन्सानी जज्बात से खाली कर देती है।

१८९२) इज्जत का दुश्मन सवाल होता है।

१८९३) अगर कभी ऐसा विचार आता है कि कोई ऐसा दोस्त ढूंढा जाय जिसमे कोई एक बुराई न हो तो यह विचार सही नही है। इस तरह लाख प्रयत्न करने पर भी दोस्त जैसी बडी नैमत और दौलत से वंचित रह जावोगे।

१८९४) दुनिया जिसके लिये कैद खाना है कब्र उसके लिये आरामगृह है।

१८९५) मायूसी का दूसरा नाम मौत है।

१८९६) अधिक बदहाल और अधिक खुशहाल दोनों ही बुराई की तरफ ले जाते है।

१८९७) यदि आपको एक अच्छे दोस्त की तलाश है तो आप स्वयं एक अच्छा दोस्त बने।

१८९८) यदि तुम अपने दोष जानते हो और सबसे छिपा कर रखे हो तो दूसरों के दोषों को जाहिर करने की जुर्रत मत करो।

१८९९) जिन्दगी एक ऐसा नगीना है जो पलक झपकते ही गायब हो जाता है। जिन्दगी मे सदा इन्साफ करो ताकि तुम्हारा अपना जमीर तुम्हे न धिक्कारे।

१९००) जिन्दगी एक लम्हे की है अगर इसे नेकी से सर्फ किया जाय।

१९०१) वो गुनाह सबसे भारी है जो करनेवाले के नजदीक हल्का हो।

१९०२) दुनिया मे गलत चीजे देख कर गलत बातों को मंजूर कर लेना या इनसे लापरवाही बरतना या खुद को किनारे कर तमाशा देखते बैठना नीति से सही नही है।

१९०३) जिस तरह मिट्टी मे कतरे जज्ब हो जाते है और उनका एहसास भी बाकी नही रहता उसी तरह चन्द जुमले किसी के दिल मे नश्तर बन कर उतर सकते है और दूसरों के दिल मे दु:ख का अहसास पैदा कर सकते है। इसलिये जब भी किसी से बात करो यह सोच कर जुबान से शब्द निकालो कि जिस तरह पानी के कतरे रेत से निकाले नही जा सकते उसी तरह मुंह से निकली हुई बात का असर भी किसी के दिल से निकाला नही जा सकता।

१९०४) सृष्टि की रचना शिव शक्ति के संकल्प से हुई है। प्रकृति और पुरुष का साक्षी केवल परमात्मा है न कि कोई समाज या व्यक्ति। अहं की पुष्टि के लिये स्वयं की प्रतिष्ठा करने की प्रवृति समाज को दिशा हीन कर रही है। आज आवश्यकता है स्वयं शिव शक्ति का संकल्प मान कर जागृत होने की तभी समाज को जागृत करने का संकल्प पूरा हो सकता है।

१९०५) किसी की सूरत देख कर उस शख्स के भले या बुरे होने की राय नही बनानी चाहिये।

१९०६) जितनी मेहनत हम अपनी कमी छुपाने मे या झूठा दिखावा करने में करते है उतनी मेहनत उस कमी को दूर करने में करे तो जिन्दगी सफलता हासिल कर लेगी।

१९०७) दूसरों की खुशियों और आवश्यकताओं पर ध्यान रखना अपनी काबलियत का प्रमाण है।

१९०८) अपनी औलाद के साथ रहम का बर्ताव करो

१९०९) सच्चाई ईमान की निशानी है।

१९१०) जिसका एक सच्चा दोस्त हो वह दुनिया का सबसे बडा दौलतमन्द इन्सान है।

१९११) इन्सान की पहचान उसके फर्ज से है, उसके रिश्तों, उसके हक और फर्ज अदा करने से है।

१९१२) **निन्दा व निंदक** - दूसरों की निन्दा करने वालों मे यह आदत होती है कि वह दूसरों की तारीफ करने को सोचने के पहले उनकी बुराई करने की सोचता है। किसी के काम के गुणों की चर्चा मे सबसे पहला काम विपरीत मत देने का होता है। जिसमे यह आदत होती है तो देखेंगे कि किसी काम मे दूसरे लोग जितनी अधिक तारीफ करते है वह उतना ही अधिक उसके दोष निकालने की कोशिश करेगा। उसके अन्दर ऐसी कोई चीज या अहंकार है जो दूसरों की तारीफ के खिलाफ बगावत करती है। निंदक अपनी खूबी और मुस्तैदी इसी मे समझता है कि हमेाश खिलाफत जाये, इससे जाहिर हो जाता है कि उसकी दिलचस्पी सच्ची आलोचना मे नही है बल्कि अपनी और ध्यान आकर्षित करने मे।

१९१३) लोगों को जलील व रूस्वा करना छोडो।

१९१४) मौत आने के पहले मौत की ख्वाहिश करना गुनाह है।

१९१५) नेकी और भलाई इन्सान को उस बुलन्दी पर पहुँचा देती है जहां तक वह अपनी पहुंच की सोच भी नही सकता।

१९१६) ईमान इन्सान के इरादों को बुलन्द रखता है।

१९१७) अपनी औलाद के साथ अच्छा बर्ताव करना ईमान है।

१९१८) ताकत वर वह है जो क्रोध के, गुस्से के वक्त अपने ऊपर काबू रख सके।

१९१९) इरादे को मजबूत बनाती है परेशानियां। सफलता की उम्मीद, सब्र व चैन के साथ हालात का मुकाबला करने के लिये सलाह पैदा करती है परेशानी। परेशानी केवल नुकसान पहुंचाने के लिये नही आती। यदि मनुष्य परेशानी को अपनी ताकत बना ले तो उसमे हिम्मत, बर्दाश्त और सब्र की ताकत पैदा होगी।

१९२०) गुरुर करने से इन्सान के भीतर की सच्चाई और उसका ईमान खत्म हो जाता है।

१९२१) अपने को आलसी बनाना, मोहताज होने के समान है।

१९२२) हालात से मजबूर होकर कोई किसी से कर्ज लेता है। कर्ज न लौटाने कि स्थिति मे लेनदार सख्ती से पेश आता है तो कर्जदार बद से भी बदतर हालात मे जिन्दा रहता है। वह यदि सांस भी ले रहा है तो भी वह लेनदार के हक से और इस तरह के हालात ईश्वर को कतई मंजूर नही इसलिये कर्ज वसूली करने मे आसानी करे।

१९२३) थोडा मिला हो उस पर सब्र करो और जो नही मिला उसका मातम मत मनाओ।

१९२४) सबसे बडी दौलत है, इन्सान की खूबसूरती है। विद्या अमल मे नूर पैदा करता है और ईश्वर को पहचानता है, न ही इसे कोई चुरा सकता है, यह जिसके पास है वह खुशनसीब है। विद्या ही ईश्वर के पास जा सकती है। इसी से हराम और हलाल की पहचान होती है। इसे कोई खरीद नही सकता। विद्या प्राप्त करना हर स्त्री पुरुष का कर्तव्य है। ऐसी विद्या से दूर रहो जो कोई भला न करे। विद्या वही श्रेष्ठ है जो समय पर काम आवे।

१९२५) महजब, इन्साफ और अच्छे काम इन सबका आदर करना सीखो।

१९२६) जब जिस्म मौत के लिये है तो अल्लाह की राह मे शहीद होना सबसे बेहतर है।

१९२७) बेईमानी खैर व बरकत और खुशहाली से महरम कर देती है।

१९२८) हौसले मन्द वही है जो अपनी तकलीफों की परवाह किये बिना दूसरों की खुशी और सहूलियत का ख्याल करके अपनी सुविधाओं को कुर्बान कर दे।

१९२९) अपनी सलाह व राय वही दे जो नसीहत कबूल करने का तरीका जानता हो।

१९३०) ईश्वर हमारी कहानी को नही देखता वह तो हमारे जज्बात और दिल को देखता है।

१९३१) मुसीबते और बीमारियां इतनी खौफनाक नही होती जितनी की बुजदिली और कम हिम्मत की वजह से नजर आती है।

१९३२) अगर कभी इन्सान के मुतालिक बुरा सोचोगे या बुरा करोगे तो पता नही तुम्हें इतना समय, मुहल्लत मिल पायेगी या नही कि तुम उससे क्षमा मांग सकोगे या नही।

१९३३) जो शख्स इरादे का पक्का हो वह दुनिया को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाता है और कमजोर इरादे वाले दुनिया की मर्जी के मुताबिक चलते है।

१९३४) बडा बनने के लिये दूसरों को छोटा मत समझो। दूसरों की खुबियों को जाहिर न करना शराफत नही है। अपना दबदबा कायम करने के लिये दूसरों को झिडकियों से काम लेना ठीक नही है।

१९३५) जिस देश में योद्धाओं की तलवारें म्यानों में पड़ी रहती हैं, उसके निवासियों का भाग्य दासता के तहखानों में पड़ा सड़ता रहता है।

१९३६) ज्यादा बदहाली और ज्यादा खुशहाली दोनो ही बुराई की तरफ ले जाते है।

१९३७) कितने अन्धेरों मे घिरा है इन्सान, रात का अन्धेरा, गुनाहों का अन्धेरा, मायूसी का अन्धेरा और मौत का खौफनाक अन्धेरा। इन अन्धेरों को रोशनी दिखाता है नमाज (ईश्वर प्रार्थना)

१९३८) कमीने शख्स की दोस्ती कोयले की जैसी है, अगर जलता है तो हाथ जला देता है और बुझा हो तो हाथ काले कर देता है।

१९३९) आराम, सुकून, राहत जन्नत मे है और लोग इन्हे इस जहां मे ढुंढते है।

१९४०) शमा बनने से तो परवाना अधिक बेहतर है।

१९४१) जिस बदन की परवरिश हराम की कमाई से की गई हो उसका जन्नत मे प्रवेश नही हो सकता।

१९४२) ऐसी कोई तबजोह के तलबगार मत बनो जिसके तुम हकदार भी नही हो।

१९४३) इन्सान होकर ऐसे कोई काम न करो जिससे इन्सानियत का दामन दागदार हो जाये।

१९४४) लोगों के दिलों मे खुशी का खजाना भरना हजारों इबादतों से कही बेहतर है।

१९४५) धुंध हो या धुंधले कमरे और धुंधले खयालात के लोग यह सब जिन्दगी मे खुशी के बजाय एक अजीब सी घुटन और परेशानी का कारण ही बनते है और मन को भी अच्छे नही लगते है।

१९४६) जो किसी मकसद के लिये मरते है वो कभी भी मरते नही है और जो बेमकसद जीवन जीते है वे जीते भी नही है।

१९४७) कहनेवाला यकीन से दूर हो तो सुनने वाला वास्तविकता से दूर रहता है।

१९४८) जमीर की अदालत से बढकर दूसरी कोई अदालत नही है।

१९४९) जबान की हिफाजत हो तो आदमी मे उसके सारे ऐब ढके रहते है।

१९५०) जिन्दगी के आधे गम आप दूसरों से गलत उम्मीदे कायम करके खरीदते है।

१९५१) चिराग खुद नही जलते बल्कि जलाये जाते है उसी तरह जिन्दगी खुद नही बनती बल्कि बनाई जाती है।

१९५२) बन्दे की सारी फिक्र और परेशानियां अल्लाह उठाता है बशर्ते बन्दा अल्लाह को अपनी सारी परेशानियां सौप दे।

१९५३) सलामत है वह जो गुनाहों से बचता है और जो हराम की कमाई से परहेज करता है।

१९५४) दौलत हासिल कर लेने से कोई आदमी काबिल इन्सान नही बन जाता और न ही किसी को यह हक है कि किसी आदमी की दौलत देखकर उसकी इज्जत करे और गरीब को हिराकत की नजर से देखे।

१९५५) जाहिल है वे पढे लिखे लोग जिनका बर्ताव अच्छा नही है और आलिम है वे अनपढ जिनका सलूक सब के साथ अच्छा है।

१९५६) किसी से कोई वादा करो तो उसे पूरा करो क्योंकि इससे एक दूसरे पर यकीन पुख्ता होता है। यदि वादा पूरा न कर पाओं तो वादा निभाने की नीयत जरूर रखो। हर शख्स अपने जीवन मे ढेरों ख्वाब देखता है और फिर सपने पूरे न होने का रोना रोते रहता है लेकिन उनको पूरा करने के लिये प्रयत्न नही करता है।

१९५७) तोफे आपस मे लेने देने से आपसी मेल जोल बढता है और तालुकात रिश्ते मजबूत बनते है।

१९५८) इन्सान को इस बात की इजाजत नही है कि वह खुदा के बनाये इस कानून मे फेर बदल करे और इन्सान को उसकी हैसियत से आंके। उसके यहां पर सब इन्सान बराबर है।

१९५९) अपने अच्छे बर्ताव से दुनिया को दोस्त बनाओ। अच्छी जिन्दगी गुजारने के लिये अच्छा बर्ताव करना जरूरी है। लोगों की खुशियों मे शरीक हो जाओ और उनके गमों मे उनको तसल्ली दो, उनकी बीमारी का हाल पूछो, उनकी सहूलियत का ध्यान करो।

१९६०) गरीब, लाचार, यतीमों, नेक इन्सान, मां-बाप, मुसाफिर, हाजी, मजलूम और सितम रसीदा लोगों की दुआयें जल्दी कबूल होती है।

१९६१) विद्या हासिल करना इन्सान के दु:खों का इलाज है। ज्ञान देनेवाला खुदा के रास्ते मे नेकी करता है और जो इसे हासिल करता है वह अपने कल्याण के लिये करता है। जो ज्ञान बांटता है उससे ईश्वर प्रसन्न रहता है।

१९६२) पक्का इरादा रखनेवाले को अच्छी तालीम हासिल करनी चाहिये। अच्छी तालीम से मुरादें पूरी करने की तमन्ना होती है और ईमान अडिग होता है इससे मकसद अच्छे बर्ताव होते है और अच्छी विद्या प्राप्त होती है। जुल्मसे बचना भी विद्या है, लालच, ईर्ष्या और कंजूषी से बचना श्रेष्ठ विद्या धन है।

१९६३) खुदा की राह मे दौलत खर्च करना, बडे बूढों के काम आना, अपनी दौलत और ताकत नेक काम मे अमल मे लाना, खर्च करना ये सब नसीब से ही होते है।

१९६४) पडोसी से ताल मेल रखने से जिन्दगी मे सुकुन मिलता है। पडोसी को अपने परिवार का हिस्सा ही समझो। पडोसियों से कटे कटे रह कर जिन्दगी मत गुजारो उनसे अच्छे तालुक रखो। उनके मामलों में दिलचस्पी ले और अपने मामलों में उन्हें शरीक करे। पडोसी के हालात का खयाल करे यदि वो तंग दस्त हो तो उसको पैसों से मदद करे और भूखा हो तो खाना खिलाये।

१९६५) जो शख्स खुदा का नाम लेकर अपनी सीरत व किरदार को ऊंचा उठाये तो ही खुदा का नाम लेने मे बरकत है।

१९६६) अपने घर की दीवार इतनी बुलन्द मत करो कि पडोसी के घर की हवा ही रूक जाय। जब पडोसी के घर मे आग लगी हो तो अपना घर भी सुरक्षित नही होता।

१९६७) हकीकत मे एहसान करनेवाले लोग वो ही होते है जो कभी एहसान का सिला नही मांगते है।

१९६८) गुरूर से सदैव दूर रहो क्योकि सबसे पहला व बडा गुनाह अल्लाह के सामने किया गया गुरुर ही होता है।

१९६९) किरदार निभाने की पहली निशानी जुबान ही होती है।

१९७०) मुश्किलात इन्सान की रूह की आजमाइश होती है।

१९७१) गुनाह पर नदामत गुनाह को मिटा देती है। नेकी पर गुरुर नेकी को तबाह कर देता है। अपनों को गैरों की मदद से नुकसान मत पहुँचाओ।

१९७२) सबसे बेहतरीन लुकमा वो है जो अपनी मेहनत से हासिल किया जाता है।

१९७३) अल्लाह का बडा शुक्र है कि उसने हमे भूलने की सिफत दी वरना गम हमेशा के लिये गम बन जाता।

१९७४) झूठी बातों से अपने दिल को बहलाना, खुश करना सिर्फ नादानी है और नादान है वह लोग जो अपने ही लोगों को दु:खी करते है, अपने ही लोगों पर जुल्म ढाने वाले नादान है।

१९७५) जिन लोगों के दिल पर नसीहत का कोई असर नही होता उनकी आखों पर परदा है। यही वे लोग है जिन्होने सच्चे मार्ग के बदले भटकना मोल लिया है।

१९७६) भलाईयों की सिर्फ रस्म निभाना भलाई नही है, सब्र से मदद करना भलाई है।

१९७७) जो दिल मे खटके वह गुनाह है और जो बात दूसरों से भी छिपानी पडे वह भी गुनाह है।

१९७८) अपनी जुबान से मुकरने से, पलट जाने से शख्स घाटे मे रहता है।

१९७९) बदतरीन शख्स वो है जो तौबा की उम्मीद पर गुनाह और जिन्दगी की उम्मीद पर तौबा कर बैठता है।

१९८०) जब तक कुदरत साथ दे और अपनी ताकत हो तो एहसान करो क्योकि अहसान की कुदरत हमेशा नही रहती।

१९८१) अच्छी बातों के हुक्म की तालीम करो और बुराई करने वाले लोगों को मना करो। मुल्क व कौम मे पाई जाने वाली खराबियों को तस्लीम कर लेने की ख्वाहिश जाहिर करो।

१९८२) किसी से नेकी करते वक्त बदले की उम्मीद मत रखो क्योकि अच्छाईयों का बदला इन्सान नही बल्कि अल्लाह देता है।

१९८३) जो शख्स कुर्बानी करता है वह मर कर भी जिन्दा रहता है।

१९८४) इन्सान उस हाल मे परेशान होता है जब वह चांद को छूने की ख्वाईश तो करता है लेकिन उसकी क्षमता नही रखता।

१९८५) खुदा का नेक बन्दा वही है जो दूसरे लोगों से प्यार, मुहब्बत और उल्फत करता है और जो शख्स न दूसरे लोगों से प्यार मुहब्बत करता है और न ही दूसरे लोग ही उससे प्यार करते है वो खुदा से बहुत दूर है। नेक बन्दे न तो किसी पर ताने कसते है, न किसी को बद्दुआये देते है और न ही किसी से बद जबान व गाली देते है।

१९८६) हलाल व बन्दा है जिसे अल्लाह ने अपनी किताब मे लिख लिया है और हराम वह है जिसे अल्लाह ने अपनी किताब से निकाल दिया है।

१९८७) जबान से जब भी बोलो अच्छा बोलो, जो भी सोचो अच्छा सच्चा सोचो, जो भी करो अच्छा करो, लोगों की खिदमत करो, ऐसे बहुत से काम है जिससे नाम कमाया जा सकता है।

१९८८) खुदा की मदद सब्र से मिलती है और मजबूती से अटल रह कर अपने फर्ज मे लगे रहने की हालत को सब्र कहते है।

१९८९) जबान से बढकर खतरनाक कोई चीज नही होती। यदि अमन चाहो तो अपने कान और आखें खुली रखो मगर जबान बन्द रखो।

१९९०) जो शख्स सुबह शाम ईश्वर का नाम न ले और न ही उससे डरे वो तो फिर जालिम है, कुफ्र है।

१९९१) मुस्कुराता हसीन चेहरा मामूली खाने को भी दावत बना देता है।

१९९२) बडा वो ही शख्स है जो बच्चों जैसा खुश मिजाज हो और वो ही लोग जीत हासिल करते है जिन्हे अपने किये पर पूरी तरह

से यकीन हो। वो ही लोग समझदार होते है जो बडे काम काज आज तक उमंग के बिना उसे अन्जाम नही दिया हो।

१९९३) खुशनसीब है वे लोग जिनको लोग अच्छा आदमी कहते है और जो अपनी कही हुई बात पर अमल करता है उससे डिगता नही है। बेहतर है वे लोग जो यतीम के साथ अच्छा सलूक करते है।

१९९४) इन्सान सम्भल जाये तो अच्छा है क्योकि उस पर बहुत सारी मुसीबते उसके गलत खयाल और बद अमल की वजह से आती है।

१९९५) शाकिर है वो शख्स जो इनाम व इकराम व बक्षीस पर शुक्राना अदा करता है और मशकूर है वो जो मुसीबत पर शुक्र अदा करता है। वो उम्मा सब्र है कि आदमी किसी से गिला शिकवा न करे, तकदीर पर शाकिर रहे और जिसमे लब पर शिकायत न आये।

१९९६) सलाम का रिवाज अदा करो इससे आपस मे मुहब्बत बढती है।

१९९७) अल्लाह ने जो कुछ बन्दे की तकदीर मे लिख दिया है उस पर राजी रहने का हुक्म खुद खुदा अपने बन्दों को देता है।

१९९८) तालीम के साथ अमल और दौलत के साथ शराफत न हो तो दोनों बेकार है।

१९९९) आदमी की गुफ्तगु उसके दिल का आयना होती है। दूसरों के दु:ख दर्द को अपना दु:ख दर्द समझे।

२०००) जो कुछ मांगना है अल्लाह से मांगे। खुदा हर परिन्दे को रोजी देता है मगर घौसले मे नही डालता।

२००१) यह हकीकत है कोई चीज इतनी खुशगवार नही होती जितनी वह मिलने से पहले दिखाई देती है।

२००२) जिस शख्स के खयालात और नजरयात अच्छे हो वह कभी भी तन्हा नही होता।

२००३) जो खुदा से डरे और किसी पर जुल्म न करे न ही किसी का दिल दुखाये, जो सबके लिये आसानी पैदा करे यानि अपने वजूद से दूसरे लोगों को अधिक से अधिक मदद करे। दूसरों की मुश्किले कम करे और उनकी मुसीबतों को स्वयं झेलने के लिये तत्पर रहे ऐसे ही लोग भले कहलाते है। ये लोग नेकी से मुहब्बत करते है।

२००४) खुदा कि ऐसी कोई बात नही होती जो फितरत के खिलाफ हो और इन्सान को तकलीफ की वजह बने।

२००५) बेकार की ख्वाहिशों से अपने जिस्म और रूह को बचाओं। दिल और रूह की पाक आवाज जबान और निगाहों से प्रकट करो। दिल मे बुराई का ख्याल भी आवे तो उसे वही रोके रखो, व्यवहार मे सबके सामने प्रकट कर माहौल को मत बिगाडो।

२००६) लगावट, दिखावट और बुरे आमाल से बचो। अपने बेकार के जजबात और तकाजों पर बन्दिश लगाओ।

२००७) बन्द किवाडों को दस्तक देकर खुलवाया जा सकता है। दिमागों के बन्द दरवाजों को भी खुलवाने के उपाय है मगर दिलों के बन्द दरवाजे कैसे खुलवाये जा सकते है। इसकी कुंजी (चाबी) तो कुदरत के पास है।

२००८) जीवन मे जो भला है, जो अच्छा है, सच्चा है और सुन्दर है, दिल उसी को लेता है और जब जब बुरा लेने की इच्छा यह दिल करता है इन्सान का जमीर उसे टोक देता है। दिल से भी सुन्दर और सच्ची एक अनमोल चीज हर इन्सान के पास है, वह है उसका अपना जमीर।

२००९) आदमी का पूरा वजूद किन्ही अदृश्य शक्तियों द्वारा संचालित होता है और इन्सान का सारा अमल, उसका सब कुछ करना धरना इन शक्तियों द्वारा ही होता है।

२०१०) सबसे बडा शाहकार तो खुदा है। इन्सान कुदरत का सबसे बडा कारनामा है। इन्सान का कमाल तो यह है कि वह अल्लाह के रंग में रंग जाये और बन्दों के हक अदा करे, गुनाहों से बचे व यतीमों का मददगार बने।

२०११) चाहे सच बोलने मे खतरा ही क्यों न हो, सच बोलना नेकी का रास्ता दिखाता है और नेकी करने वाले का दिल बेचैन नही रहता है। सच्चा आदमी सभी से अच्छा बर्ताव करता है। सच बोलने मे निजात है।

२०१२) अपने आप को कम जाहिर करो। व्यक्ति अपने को न खोले अर्थात अधिक मत बोलो। क्योकि बडाई सिर्फ नेक कामों की होती है। कोई शख्स अपने पर घमंड न करे। माफ कर देनेवाला व झुककर चलनेवाला बडाई के योग्य होता है।

२०१३) जाहिल हाल से आदमी की परख मत करो क्योकि इसमें धोखा होता है।

२०१४) अच्छी आदत और अच्छा बर्ताव एक बहुत अच्छी नेकी है। वे लोग अच्छे है जिनकी आदते अच्छी होती है।

२०१५) खिदमत और अच्छे सलूक के सबसे अधिक हकदार मां बाप होते है।

HHH(२११)HHH

२०१६) कोई भी शीशा इन्सान की इतनी सच्ची और बढिया तस्वीर पेश नही कर सकता जितनी उसकी बातचीत और उसका अपना व्यक्तित्व।

२०१७) जबान की जरा सी भी भूल इन्सान को तबाह कर सकती है।

२०१८) इन्सान की खूबसूरती उसके कपडों से नही बल्कि उसके इल्म और अदब से होती है और इल्म वह है जो तुम्हे अमल करने पर मजबूर कर दो।

२०१९) जबान को शिकवे से रोक देने पर खुशी की जिन्दगी अदा होती है।

२०२०) सब मुसीबतों की जड की बुनियाद इन्सान की गुफ्तगू और छोटी सोच है।

२०२१) बात बात मे किसी की खामियों को मत निकालो। सबके साथ अच्छा सलूक करो और अपनी गलती हो तो मान लो और दूसरे की गलतियों को माफ करना सीखो। माफ कर देने वाला व्यक्ति हमेशा खुश रहता है। दुनिया में उसका कोई दुश्मन नही होता है। वह हमेशा गम्भीर रहता है। गुस्सैल व्यक्ति पर कोई भरोसा और यकीन नही कर सकता। बार बार जलाये और तपाये जाने पर भी सोना अपना खूबसूरती नही छोडता। गन्ना टुकडे टुकडे होने पर भी अपना मीठापन नही छोडता है। माफ कर देने वाले आदमी की शख्सीयत भी किसी भी हालत मे बिगडती नही है।

२०२२) जो शख्स इन्तकाम के तरीकों पर ही गौर करता है उसके जख्म सदा हरे रहते है।

२०२३) अपनी शान और बडाई दिखाने के लिये महंगे और आकर्षक लिबास पहनना बुरा है। लिबास मे सादगी हो खूबसूरती के साथ साथ आदमी के वजूद को भी चमकाये, विशेषकर कर सफेद रंग का लिबास प्रभावशाली होता है।

२०२४) जो लोग गुनाह कर बैठते है वह जाने अनजाने मे अपने उपर जुल्म करते है लेकिन जिसने भी गुनाहों से बचने की आदत डाल ली वह हर परेशानी से बचा रहेगा।

२०२५) जो अल्लाह की वफा का हकदार नही वही किसी से भी वफा नही कर सकता। वफा हर किसी के बस का रोग कहाँ होती है और बेवफाई का हौसला भी किसी किसी को मिलता।

२०२६) दुनिया अकलमंद की मौत पर और जाहिल की जिन्दगी पर हमेशा आंसू बहाती है।

२०२७) फौजों के हमलों को तो रोका जा सकता है मगर खयालत के हमलों को रोकना मुश्किल है।

२०२८) महफिल मे अपनी खामियों का बयान या प्रदर्शन मत करो। ये तो तुम्हारे महफिल छोडते ही सबको मालूम पड जायेगा। जो लोग अपनी तारीफ के भूखे होते है वे वास्तव मे सक्षम नही होते है।

२०२९) नेकी एक ऐसी शमा है जो दोस्त और दुश्मन दोनों को, उजाला देती है। नेकी उम्र बढाती है और दुखों से निजात दिलाती है।

२०३०) खुशनसीब है वो जिन्हे नेक शौहर, नेक बीवी, नेक दोस्त नेक औलाद और नेक पिता मिलता है।

२०३१) अपने आप को यह महसूस मत करो कि तुम तन्हा हो। तुम्हारी सांस तुम्हारे साथ है, तुम्हारी आत्मा तुम्हारे साथ है और तुम्हारा ईश्वर तुम्हारे साथ है। अपने आपको काम मे मशगूल करदो वर्ना गम और मायूसी तुम्हे बर्बाद कर देगी। वो लोग कभी भी अकेलेपन का शिकार नही होते जिनके साथ खूबसूरत खयालात होते है। बेवकूफ और मुर्दा लोग अपने खयालात बदलते नही है।

२०३२) अकलमन्द वह है जो अपनी उम्र को बेकार के कामों मे बर्बाद नही करता और जो इस बात से डरता है कि कही उसकी शिकस्त नही हो जाये वह अवश्य हारता है। किसी चीज को सीखने मे शर्म महसूस मत करो।

२०३३) सबसे बडा गुनाह अपनी कौम से ही गद्दारी करना है। गुनाह किसी न किसी सूरत मे दिल को बेचैन रखता है।

२०३४) कोई भी कौम या देश उस वक्त तक तरक्की नही कर सकता जब तक कि उस कौम की औरते भी मर्दों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर न चले।

२०३५) तजरबे और जज्बात के मिलन का नाम नजरिया है।

२०३६) तू अपनी जमीं, अपना आसमां पैदाकर, जीवन में एक नया विश्वास पैदाकर। मांगने से कब मिलती हैं, सौगाते ? पुरुषार्थ करने का नया इतिहास पैदा कर।

२०३७) मुसीबतों की शिकायतों से परहेज करो क्योंकि इससे अल्लाह नाराज, दुश्मन खुश और दोस्त गमगीन होता है।

२०३८) आश्चर्य है उस बन्दे पर जो तकदीर को पहचानता है और फिर भी जाने वाली चीज का गम करता है।

२०३९) आदमी की कामयाबी की एक सूरत यह है कि वह अच्छी बात सुने और जिसे सुन ले उसे लिखले और जिसे लिखले उस पर अमल करे और जिस पर अमल करे उसे आगे बयान करे।

२०४०) कुछ लोग इतने घनिष्ट और गहरे अपनों के जैसे होते है चाहे कितनी ही दूर क्यों न हो, दिल उनकी रूह मे सिमट जाने को बेचैन रहता है।

२०४१) जोश और होश बहुत कम एक साथ नजर आते है मगर जिस शख्स मे यह दोनो खूबियां मौजूद है वह कभी शिकस्त नही खाता।

२०४२) चाहे घर बाहर कितना ही तनाव हो, उदासी परेशानियों से मशगुल हो चाहे बुखार मे जल रहे हो, तडफ रहे हो या थक कर चूर हो फिर भी घर के मुखिया को अपने चेहरे को सदा खुशगवार रखना चाहिये तो घर का माहौल भी खुशगवार रहेगा। गमगीन चेहरे को देख कर घर मे भी उदासी का माहौल बना रहेगा।

२०४३) आयना हमेशा असली चेहरा दिखाता है, शायरी नही करता।

२०४४) इन्सान अपने किरदार से बनता है लेकिन किरदार भी तो इन्सान से ही बनता है।

२०४५) हर इन्सान आजादी चाहता है, मनमानी करना चाहता है पर दुनिया से मिलनेवाली सुविधाये, ऐशो आराम छूट न जाये इस डर से बन्धनों मे कैद रहता है। इसी तरह वह ईश्वर पर विश्वास रखे तो निसन्देह मुसीबतों से बचा रहेगा।

२०४६) हरेक को वह अमल और अवसर मिलता है जिसके लिये वो पैदा हुआ है।

२०४७) बदन की सफाई इन्सान की सेहत की हिफाजत करती है लेकिन आत्मा की स्वच्छता इन्सान को ऊंचे मुकाम तक ले जाती है।

२०४८) आपकी हर कामयाबी आपके यकीन की मोहताज है। यकीन जिस कदर दृढ़ और मजबूत होगा कामयाबी भी उतनी ही विश्वास के योग्य होगी।

२०४९) परिन्दे अपने पांव की वजह से जाल मे फंसते है और इन्सान अपनी जबान की वजह से।

२०५०) यादे मायूसियों में उम्मीद का जलता हुआ चिराग है। हर वक्त से पहले सोच तो सकता है पर देख नही सकता।

२०५१) इन्सान को गफलत वाली जिन्दगी से तौबा करना चाहिये। जब आलसी हो जाता है तो कुछ नही करता बल्कि सिर्फ सो कर दिन गुजार देता है और कभी कभी तो एक ही दिन मे इतना काम कर लेगा कि थक हार कर फिर से सुस्ती के आगोश मे चले जायेगा। रोज का काम रोज करे तो इन्सान यूं गफलत वाली जिन्दगी गुजारने से बचेगा।

२०५२) ईश्वर के नाम मे अथाह बरकते है। उसके नाम से पुकारने पर दु:ख और परेशानियां टल जाती है। उसके नाम से दिल मे वहम (शंका) नही रहती, मनुष्य सम्भ्रात नही होता। दिल बुरे खयालातों और गुनाहों से पाक हो जाता है। दिल नेक और कोमल हो जाता है तथा करुणा से भर जाता है।

२०५३) यदि आप गुनाह करने पर ही अडे हो, मजबूर हो तो कोई ऐसी जगह तलाश करो जहां भगवान न हो और वह देखता न हो।

२०५४) दोनों तरफ का झगडा सुनने से पहले निर्णय कर देना इन्साफ के साथ मजाक करने के बराबर है।

२०५५) वही इन्सान सही मायनों मे आजाद है जो ख्वाहिशों का गुलाम नही है।

२०५६) ज्ञान (इल्म) विद्या एक ऐसा लिबास है जो कभी पुराना या मैला नही होता है।

२०५७) खुदाई का दावा है कि ज्ञान से बंदे का हक अदा करना खुदा की इबादत है। मौत के दिन दौलत का तो हिसाब होगा पर ज्ञान का कोई हिसाब नही और न ही उसका कोई बंटवारा होगा।

२०५८) अच्छी चीज को हासिल कर लेना कोई खूबी नही है, उसे बेहतर सलीके से इस्तेमाल करना खूबी है।

२०५९) खूबियां कुर्बानियों से उत्पन्न होती है।

२०६०) खुदा को पहचानो और उसके खौफ से डरो क्योकि उसकी मोहलते हमेशा नही मिलती।

२०६१) तन्हाई और खामोशी मे सलामती है। खामोश रहो या ऐसी बात कहो जो खामोशी से बेहतर हो।

२०६२) दौलत और औरत से किसी हद से अधिक मुहब्बत खुद की अक्ल को अन्धा कर देती है।

२०६३) कोई भी जायज पेशा इन्सान को जलील नही करता है।

२०६४) अकलमन्द इन्सान बेवकूफ से कभी भी अपनी तकरार और शिकायत नही करता है।

२०६५) दूसरों को अच्छाई की नसीहत देने से पहले खुद पर अमल करो। हमेशा नेक बनने की कोशिश करो। दूसरों की कमजोरियां तलाश करने की बजाय अपनी खुद की कमजोरियों को देखो।

२०६६) इस जहांन की सबसे महंगी चीज इज्जत और सबसे कीमती चीज दोस्ती है।

२०६७) दानी पुरुष ईश्वर और जन्नत तथा महामानवों के करीब होता है लेकिन आग से काफी दूर होता है।

२०६८) नसीहत लेना और नसीहत देना, बुजुर्गों का काम है लेकिन नादान और पत्थर दिलों पर नसीहत की कोई भी बात असर नही करती।

२०६९) मेहनत से जन्नत है, जिस किसी ने भी मेहनत की उसने राहत पाली पर जिसने लापरवाही से काम लिया उसने मुसीबत को बुला लिया।

२०७०) हर छोटे से छोटे काम मे सावधानी रखना जरूरी है क्योकि इन्सान की हर हरकत का असर दूसरे की जिन्दगी पर असर करता है। इन्सान की आजमाइश उसके काम करने के सही तरीके से है।

२०७१) इन्सान सब्र करे और ईश्वर से डर कर चले तो बुराई से बचेगा और भलाई की तरफ अग्रसर होगा।

२०७२) लोगों की खताये माफ करना रहमदिल की निशानी है।

२०७३) जीवन को शमा की तरह बनाओ जो खुद पिघल कर दूसरों को रोशनी देती है।

२०७४) आंसू खून का वह कतरा है जो गम की वजह से पानी मे बदल जाता है।

२०७५) वही इन्सान खिजां की कद्र कर सकता है जिसने बहारों मे जख्म खाये हो।

२०७६) पहली नाकामी से कभी मत घबराओं। यही तो तुम्हारे उरूज की पहली सीढ़ी है।

२०७७) कुछ लोग हवा की तरह होते है। हौले से, चुपके से जिन्दगी मे आते है और चुपके से जिन्दगी को अपने साथ ले चल पडते है, वे मसीहा होते है।

२०७८) आरजू आसमान पर छाये हुये बादलों की तरह होती है जो सिवाय कुदरत के हुक्म के कभी नही बरसते। जब तक कुदरत को मन्जूर न हो कोई आरजू पूरी नही हो सकती।

२०७९) दुनिया अमल का घर है। यहां हर अच्छे और बुरे अमल का सिला मिलता है।

२०८०) किसी की खूबियों को गौबत मत करो। हराम की चीजों को देखने से भी परहेज करो। जबान से हमेशा सही और जायज बात ही निकालो।

२०८१) अपनी तदबीरों से ज्यादा अल्लाह पर भरोसा करना सीखो। अपनी जायज कमाई हकदारों पर खर्च करो।

२०८२) जब इन्सान के सितारे गर्दिश मे होते है तो उसका अपना प्रतिबिम्ब भी दुश्मन हो जाता है।

२०८३) बर्दाश्त बुजदिली नही है बल्कि जिन्दगी का एक उसूल है।

२०८४) ताकत से दुश्मन को जीतना आधी फतह है जबकि मुहब्बत से उस पर फतह पाना पूरी जीत है।

२०८५) इन्सान कामयाब होने के लिये पैदा होता है मगर अपनी गफलतों से वह अपने आपको नाकाम बना लेता है।

२०८६) अपनी हद से ज्यादा की उम्मीद मत करो। कम उम्मीद करना और उसे भी ज्यादा समझना कामयाबी की कुंजी है।

२०८७) अच्छी बातचीत अच्छे रास्तों की ओर ले जाती है और गलत बाते, बुरी आदतें गलत रास्तों पर ले जाती है। अच्छी बाते ऐसी ताकत है जो सच्चाई को लफ्जों का जामा पहनाती है।

२०८८) बहुत बड़ा गुनाह यह है कि तुम वह बात कहो जो खुद के लिये नही चाहते हो।

२०८९) मजबूत इरादे मुसीबतों से निजात दिलाते है। आदमी दूसरों के मशवरे का मोहताज न बने बल्कि खुद पुख्ता राय और मजबूत इरादा वाला बने।

२०९०) जाहिलों का तरीका है कि जब उनकी दलील दूसरों के आगे नही चलती तो वह झगडा करना शुरू कर देता है।

२०९१) तौबा कर लेना आसान है लेकिन गुनाह छोड़ना मुश्किल है।

२०९२) जो शख्स निगाहों की इल्तजा (भाषा) को न समझे तो उसके सामने जबान को शर्मिन्दा मत करो।

२०९३) हम इन्साफ को तो बहुत पसन्द करते है लेकिन इन्साफ करने वाले को बहुत ही कम।

२०९४) मौत की बेहोशी तो जरूर आकर रहेगी और उस वक्त इन्सान को मालुम पडता है कि यही वह हालत है जिससे वह दूर भागता है।

२०९५) खामोशी एक ऐसा दरवाजा है कि जिसके पीछे लियाकत भी हो सकती है और हिमाकत (मूर्खता) भी।

२०९६) अगर कोई शख्स तुम्हे अच्छा लगे तो अच्छा वह नही है, अच्छे तुम हो क्योकि तुम उसमे अच्छाई तलाश कर रहे हो। और अगर कोई शख्स बुरा लगे तो वह बुरा नही, बुरे तुम हो क्योकि तुम उसमे उसकी बुराईया और कमजोरियों को तलाश रहे हो।

२०९७) अकेलापन एक आयना है जिसमे आप अन्दर के इन्सान को देख रहे हो।

२०९८) अगर दिल मैला है तो सब कुछ मैला है। जिस्म के धोने से दिल पाकीजा नही होता।

२०९९) किसी को दोस्त बनाने से पहले अपने दिल मे एक कब्रिस्तान बना लो जिसमे उसकी बातों को दफन कर सको।

२१००) समझदार लोगों के लिये रात दिन के रद्दोबदल करना बडी मुश्किल है।

२१०१) नेअमत का मिलना आजमाईश है कि तुम शुक्र अदा करते हो या नाशुक्री।

२१०२) मजबूत इरादा बुजुर्गी है। एक अच्छी समझ और सूझ-बूझ बुजुर्गी है। जुर्म को माफ करना भी बुजुर्गी है।

२१०३) इल्म (विद्या) इन्सान के लिये उतना ही जरूरी है जितना कमल के लिये पानी।

२१०४) अच्छी बाते फूलों की तरह होती है, जहां तक हो सके उसे अपने दामन मे समेट लेना चाहिये। वफा का सबक फूलों से सीखो जो काटों से अलग होते ही मुरझा जाते है।

२१०५) अकलमन्द आदमी तभी बोलता है जब पूरी तरह खामोशी रहती है। हर अच्छा काम पहले अधुरा होता है। समझदार आदमी उसे बखुबियों से पूरा कर लेता है।

२१०६) अपने आप पर भरोसा करने वाले फतह हासिल कर लेते है।

२१०७) जो दूसरों को शक की नजर से देखता है वह हकीकत मे अपने किरदार की बुराइयों को दूसरों मे तलाश करता है।

२१०८) जिनके सरों पर छत नही होती वह जलजलों मे महफूज रहते है।

२१०९) अपनी तारीफ मत करो क्योकि यह हालातों की मेहरबानी है और हलाकत का बाइस है। जो शख्स अपनी अजमत होने के गुन गाये वह हरगिज अजीम नही हो सकता।

२११०) गुनाहों को छोड देना सबसे बडी हिजरत है। फर्ज की देखभाल सबसे बडा जिहाद है। नेकी से मेहरूम नही वे लोग जो नेक लोगों की मजलिस मे शामिल हो गये।

२१११) अपनी नेकी का सिला (बदला) दुनियां से मांगने वाला इन्सान नेक नही हो सकता।

२११२) जहां सच बोलने का वक्त हो उस समय खामोश रहना सच्चाई से महरूम कर देता है।

२११३) सभी के साथ अच्छा बर्ताव करो। यह नही कि एक के साथ अच्छा व्यवहार करो और दूसरे के साथ बुरा सुलूक करो। सबको बराबर समझने वाले की दुआ कुबुल होती है। सब पर रहम करने वाले की दुआ रद्द नही होती।

२११४) कोई दानिशमन्द (ज्ञानी, अकलमन्द) बोल रहा हो तो खामोशी रह कर उसकी सुनते रहो, इस अमल से तुम भी इल्म हासिल कर सकोगे।

२११५) जिन लोगों को दीन के नाम पर धोखा दिया है उनकी आकबत खतरे मे है क्योकि आकबत ही दीन है और दीन मे धोका नही है और जहां धोका है वह दीन नही है।

२११६) गरीबों की सोहबत मे रहने वाला घमंड से काफी दूर है। सबसे बेहतर अमल किसी के दिल को खुश करना है।

२११७) इन्सान के किरदार की पहचान इससे होती है कि वह किस चीज से खुश है।

२११८) इन ख्यालों से कभी भी एहसान मत करो कि इससे ज्यादा के तलबगार रहो।

२११९) बुढों का सम्मान करना सीखो। अल्लाह नौजवानों को सिखायेगा कि वह आपकी तारीफ सम्मान करे जब आप बुढ़े होंगे।

२१२०) इल्म (विद्या,ज्ञान) एक ऐसा पेड है जिसका फल न कभी सडता है और न कभी खुश्क होता है।

२१२१) जिन्दादिली एक ताकत है जिसे कभी मायुसियों से बर्बाद मत करो।

२१२२) दूसरों के मामले मे बिना इजाजत के दखल अन्दाजी मत करो।

२१२३) तुम औरों की मदद करो, खुदा तुम्हारी मदद करेगा। सबसे अच्छा वक्त वो है जो तुम्हारी दुवाओं और नमाज मे गुजरे।

२१२४) जो जख्म तुम्हें दुसरों ने दिये है उनको भूल जावो मगर जो जख्म तुमने दूसरों को दिये है उन्हें याद रखना। गलती करना इन्सान की फितरत है।

२१२५) तुम मे से अच्छा वो है जो सलाम करने मे पहल करे और माफ करना खुदा की फितरत।

२१२६) दु:ख व परेशानियों से घबराना कैसा ? जो दु:खों पर चीख उठते है और अपनी हार पर पेचोताब खाते है तो यह आदमी की हार की दलील है। सिर्फ तम्मनाये रखने से कुछ नही होता। उसके लिये संघर्ष और परेशानियों से दो चार होना अनिवार्य है। मुसीबत बरसने लगे तो पहले सोचे कि कही इसकी असल वजह आप खुद तो नही है। ऐसी सोच से हालातों पर काबू पाना आसान होगा। परेशानियों से घबरा कर हालात के आगे घुटने टेककर बैठ जाना दिलेरी नही है। मुश्किल घडी जिन्दगी के लिये एक अच्छा सबक होती है।

२१२७) कम बोलना अखरता है पर अधिक बोलना सिर दर्द पैदा करता है। बोलते वक्त लापरवाही बरतना ऐब पैदा करता है। बोलते वक्त एहतियाब बरते। झूठ, गाली, चुगली, फरेब, सख्त कलामी ये सारे गुनाह बोलने मे लापरवाही बरतने की वजह से हो जाते है। अपने कानों से सुनो कि सामने वाला क्या कह रहा है।

२१२८) दुनिया एक पूंजी है। बचपन, जवानी, मां, बाप, इस पूंजी मे शामिल है नेक बीबी, नेक औलाद और नेक रिश्तेदार सभी तो एक पूंजी की तरह होते है। अच्छी सेहत पूंजी है। नेक दोस्त, नेक अमल पूंजी है। और आखिर मे अमीरी भी एक पूंजी है।

२१२९) गुनाहगार वो है जो बेफायदा बात करे। जबान को काबू मे रखना छूटकारा यानि मुसीबत से बचने की सूरत है।

२१३०) दुश्मनी को जड से काटना अच्छा सलूक है। मेल मिलाप से रहना अच्छा अमल है। दूसरों के आराम की चीजे जुटाना नेक सलीका है।

२१३१) सलाम करने मे पहल करना अच्छा इल्म है।

२१३२) जब भी नाकामी का मुंह देखो तो कई बार अपनी किसी कामयाबी को भी याद करलो। मायूसी दूर हो जायेगी।

२१३३) तिजारत करो तो कसम न खाओ चाहे तुम्हे व्यापार मे घाटा ही क्यों न हो जाये।

२१३४) सब्र का फल मीठा भी होता है इसलिये बेसब्री लोगों को कडवाहट ही नसीब होती है।

२१३५) खुले आम बदनामी होने लगे तो समझे खराब दौर की शुरूआत हो गई है। लोगों की परेशानी और मुसीबतों के दौर की शुरूआत है।

२१३६) विश्वास ज्ञान, जानकारी और खोज के सारे द्वार ही बन्द कर देता है और मन एक अन्धेरी खोल मे बैठकर तसल्ली की झूठी चादर मे रोशनी के आने की प्रतीक्षा करता है जहां न तसल्ली है और न रोशनी सिर्फ भ्रम है।

२१३७) इरादे को मजबूती देती है परेशानी। कामयाबी की उम्मीद, सब्र व चैन के साथ हालात का मुकाबला करने की सलाहित पैदा करती है। केवल नुकसान पहुंचाने के लिये नही आती परेशानी। शायद इसीका तजुर्बा लेकर बुजुर्गों ने कहा कि कुछ खोकर ही कुछ पाना मुमकिन है। परेशानी को अपनी ताकत बना ले तो यह उसमे हिम्मत बर्दाश्त और सब्र की ताकत पैदा करेगी।

२१३८) किसी से नफरत या मुहब्बत करने के लिये उसके वुजुद को मानना जरूरी है।

२१३९) नेक है वे लोग जो तंगी और मुसीबत के हालात मे भी अपना फर्ज नही भूलते और सब्र व शुक्र से काम लेते है।

२१४०) हर इन्सान की कीमत उस काम से लगाई जाती है जिसको वह (दूसरों के मुकाबले मे) बेहतर तरीके से अंजाम देता है

अर्थात इन्सान की कीमत उसके खास हुनर से लगाई जाती है।

२१४१) गरीबी जहानत को खत्म कर देती है। एक गरीब आदमी अपने वतन मे रहकर भी परदेशी होता है।

२१४२) अखलाक (आचरण) व आदाब ऐसे जोडे है जो बार बार नये नये पहने जाते है। जहन एक साफ और शफ्फाफ आयना है।

२१४३) जब कोई बात आदमी दिल मे छुपाये रखता है तो जुबान से उसके इशारे मिल जाते है। चेहरे के उतार चढ़ाव से मालुम हो जाता है।

२१४४) किसी दूसरे के गुलाम बन कर मत जीओ जबकि अल्लाह ने तुम को आजाद पैदा किया है। अनुशासन से जीना कोई गुलामी नही है।

२१४५) कभी फिसली जबान से निकला हुआ एक लफ्ज सौ नेअमतों को छीन लेता है।

२१४६) खबरदार, होशियार, अल्लाह के सिवा कभी भी तुम मे से कोई किसी से उम्मीद कायम नही करे और अपने गुनाहों और जुर्म के सिवा किसी बात से नही डरे। अगर कोई चीज न आती हो तो सीखने मे शर्म महसूस मत करे और अगर उससे कोई ऐसी बात मालूम की जाये जिसको न जानता हो तो कह दे मुझे मालुम नही।

२१४७) दुसरों की मदद कर मेहरबानी का बर्ताव करो। अपने पेशे मे या हुनर मे महारत हासिल करो। हुनर इन्सान के लिये किसी जायदाद के समान है।

२१४८) जो शख्स अल्लाह पर और उसके रसूल पर यकीन रखता हो उसे सब कुछ मिल जाता है।

२१४९) जिन लोगों ने अपने ईश्वर की दावत कबूल कर ली उनके लिये दोनो जहां की सबसे बडी मिलकियत पा ली।

२१५०) अल्लाह के मकबूल बन्दे वो ही है जो ईमान से है और जिनका अखलाक (आचरण) अच्छा है।

२१५१) इन्सान के पहनने का लिबास ऐसा हो जो हुस्न व जमाल मे इजाफा करे और मर्दों के लिधये सदा सफेद रंग का लिबास अच्छा है। यह रंग इज्जत और शान मे इजाफा करता है। लिबास मौसमों की तकलीफ से बचाता है।

२१५२) जिसके दिल मे बेईमानी आ गई उसके दिलों मे खौफ और वहम बैठ जाते है नतीजन दिल कही किसी भी सूरत चैन नही पाता है।

२१५३) बहस करने से इल्म बढ़ता है, विद्वान (उलमा) की सोहबत से भी इल्म बढ़ता है। अपना इल्म जाहिलों को दो और - आलिमों का इल्म खुद हासिल करो। दीन का इल्म हासिल करना फर्ज है और जो यह इल्म नही हासिल करता वो गुनाहगारों की जिन्दगी बसर करता है। इल्म एक ऐसा फूल है जो जितना ज्यादा खिलता है उतनी ही अधिक खुशबू देता है।

२१५४) इबादत का मकसद इन्सान के अन्दर अच्छाई पैदा करना है। अगर इबादत गुजार इबादत करने के बावजूद अच्छा नही तो वह इबादत के जौहर से खाली है। जमीन पर इन्सान को नेकी के लिये उतारा गया है। मै कौन हूं, कहां से आया हूँ, किस मकसद से आया हूं इन सवालों के सोचने के बजाय बन्दा सिर्फ यही सोच ले कि मै धरतीपर अच्छे काम करने और बन्दों की मदद के लिये आया हूँ तो संसार के सारे मसले हल हो जाये। हर चीज के साथ खूबी का बर्ताव करे यानी अच्छा सलूक करे और हर मामले मे गौर करे।

२१५५) दौलत को इतना भी तलाश मत करो कि अपने आप को भी गंवा बैठो।

२१५६) इन्सान के जीने का असली मकसद उसका अखलाक है। नेक काम करो ताकि खुद तो फायदा हासिल करोगे साथ ही दूसरों को भी फायदा पहुंचाओगे। इन्सान का अखलाक इसी से आला (ऊंचा) बनता है कि वह किसी से जो वादा करता है उसे जी जान लगा कर भी पूरा करता है।

२१५७) सुनी सुनाई बात पर झट से यकीन कर लेना ठीक नही। बेवजह दिल मे शक व शुबह के महल खडा कर लेना एक बुरी आदत है। इसी वजह से आदमी अपनों को भी दुश्मन समझने लगता है। हर बात पर भी भरोसा मत करो, इसी वजह से हर बार आदमी मुश्किल मे फंसते चला जाता है और गलतियों पर गलतियां कर बैठता है। बात की जांच करना आवश्यक है इसके बिना किसी प्रकार का निर्णय ठीक नही होता है।

२१५८) कुछ लोगों की यह खराब आदत है कि जो भी काम करते है दिखावे के लिये करते है। ये सख्त गुनाह है। अपनी तारीफ सुन

कर खुश होना और अपनी बुराइयां सुन कर गुस्सा होना खराब आदत है। यह आदत बडी बडी गुमराहों और गुनाहों का चरचश्मा है।

२१५९) खुदा के साथ रहनेवाला कभी तन्हा नही होता है।

२१६०) हर तरह के खौफ से बचाती है तौबा। अपनी गलतियों पर रो लेना तौबा है। आंसू बहाने से दिल तो हल्का होता ही है, यह आगे की मुसीबतों, डर को भी दिल से धो देता है।

२१६१) अल्लाह की मेहरबानी से कोई शख्स बर्बाद नही होता मगर ज्यादातर इन्सान खुद बर्बादी का रास्ता इख्त्यिार कर लेता है। सीधा रास्ता इख्त्यिार करने मे बरकत और नेमत है। इसकी वजह से लोग कितने फसादों से महफूज रहते है।

२१६२) हर आदमी को वही हासिल होगा जैसी जिसकी नियत होगी। सब कामों का अन्जाम उनकी नीयत के मुताबिक होगा। इल्म है मगर धन नही पर बन्दा नीयत का सच्चा हो तो वह कामयाबी पर है।

२१६३) अच्छे काम का इरादा नेकी है और बुरे काम को छोड देना भी नेकी है। अच्छा खयाल सबसे अच्छी इबादत है।

२१६४) कामयाब है वो जिसने अपने दिल को साफ रखा। देखा देखी पहनावे मे मत करो अगर करनी ही है तो नेक अमल मे करो। अच्छे काम करने वालों को अच्छा सबब मिलता है और अच्छाई की हिफाजत करने वालों को भी सवाब है।

२१६५) घर बार छोडो तो अल्लाह के लिये छोडो, दुनिया हासिल करने के लिये नही।

२१६६) यदि हालात से छुटकारे की उम्मीद न हो तो खुदा से दुआ मांगो। वह बन्दा सबसे आले (ऊंचे) दर्जे का है जो खुदा से डरे और अपनी दौलत से दूसरे जरूरतमन्दों की खिदमत करे।

२१६७) नाम और पुण्य कमाने के खयाल से किया गया अमल अल्लाह को कबूल नही होता है। दिल की सच्चाई के साथ किये गये अमल पर ही अल्लाह राजी होता है।

२१६८) आदमी की खताओं से ये जमी भरी पडी है। खताओं को माफी करना ही अल्लाह की पनाह है।

२१६९) दुनिया उसी की है जिसके पास इल्म (ज्ञान, विद्या) और दौलत दोनो है और जो दोनों से सही फायदा उठाता है।

२१७०) दुनियां मे पाई जाने वाली खराबियों के साथ कभी भी समझौता मत करो बल्कि इन खराबियों को कबूल करने की बजाय इन्हे हटाने का ही भरसक प्रयत्न करो। दुनिया की खराबियों पर आखें मत बंद करो। मुल्क व कौम मे पाई जानेवाली खराबियों को तस्लीम कर लेना गलत है। दुनिया मे अच्छाईयां फैलाओ। अच्छी बातों का हुक्म फरमाओ और बुराई से लोगों को मना करो।

२१७१) किसी की ख्वाहिशें को कुचलना ईमान नही है बल्कि जब्त और सब्र से काम लेना ईमान है। अपनी औलाद के साथ अच्छा बर्ताव करना ईमान है।

२१७२) ईमान की कुब्वत है इन्सान की आजमाइशों (संघर्षों) मे ईमान की ताकत वडी अहमियत रखती है। मुश्किल से मुश्किल हालात मे भी इन्सान घबराता नही है। कामयाबी और राहत ईमान के कारण ही उसे हासिल होती है।

२१७३) अपने मुहताजों से सदा नर्मी का सुलूक करो। उन्हे कभी न झिड़के क्योकि वे परवश है। अगर आदमी न देने के हाल मे भी हो तो निहायत नर्मी से अपनी लाचारी बता दे ताषकि वह कुछ न पाने के बावजूद आदमी को दुआयें देता हुआ ही चला जाये।

२१७४) दुनिया के मुताबिक अपना अमल करो। जो इसके खिलाफ अमल करेगा वह मुश्किल मे पड सकता है। जिस पर नसीहत असर नही करती उसे भी मुश्किलों का सामना करना पडेगा।

२१७५) बेमकसद इन्सान ईमान से खाली होता है। ईमान इन्सान के इरादे को बुलन्द रखता है।

२१७६) अल्लाह अपने बन्दे को राजी व खुश रखता है। बन्दा तभी खुश रह सकता है जब वह अपने से जुडे बन्दों को खुश रखना सीख ले।

२१७७) सही अमल करने से हर एक को उसकी तौफीक मिलती है जिसके लिये वो पैदा हुआ है।

२१७८) अपने अन्दाज लगाने से बचो लेकिन तुम्हारी नजर दुनिया की हर शै और मात पर ऐतबार रखे।

२१७९) कभी गिला न करे, नेकी से पेश आये और सबके साथ अच्छा सलूक करे।

२१८०) मुसीबतों मे घबराना मुश्किलों को बढ़ाना है।

२१८१) अच्छे अखलाक पैदा करने का सबब ईमान है। इबादत है। बन्दो के हक अदा करना है। एक दूसरे के साथ ज्यादती करना कुफ्र है और एक दूसरे का हक मारना गुनाह है। बन्दों के हक अदा करने का काम अखलाक है। उनकी खिदमत करो और आपस मे अच्छे तालुकात रखो।

२१८२) अपना बच्चा गुमराही मे पडे अपनी औलाद को अच्छे काम करने के लिये उकसाओ, अच्छा काम करने की तालीम दो। औलाद की ख्वाहिशात को जिन्दगी दे उनके साथ उनके अमल को दुरुस्त कक्षर्रीने मे उनका साथ दे।

२१८३) नया लिबास पहनने के वक्त अल्लाह का शुक्र अदा करे। अपने पुराने कपडे नही बेचे बल्कि किसी जरूरत मन्द गरीब को पहनने के लिये दे दे।

२१८४) खुदा की राह मे कोई बेबसी नही होती। अपने लक्ष्य को पाने के लिये चाहे जितनी रुकावटें आ जाये, उनका सामना करने मे ईमान से सुस्ती नही करनी चाहिये। अल्लाह की रहमत उन मनुष्यों (बशर) के साथ है जो अपने मकसद सी दूसरों को फायदा करने का जज्बा रखते है।

२१८५) उनको कोई खौफ नही है जो अल्लाह के करीब है और जो हर लम्हे अल्लाह को याद रखते है उनको कोई गम भी नही होता है।

२१८६) भले आदमी की सोहबत तमाम कामों मे जीत दिलाती है। जो कोशिश करता है वह हासिल करके रहता है।

२१८७) इरादे नेक हो तो काम भी अच्छे होते है। इन्सान के काम उसकी नीयत से अच्छे या बुरे होते है।

२१८८) ईमान का कमाल वो ही है जो पडोसियों के साथ अच्छा सुलूक करे और दूसरों का भला वैसे ही चाहे जैसा खुद का भला चाहता हो।

२१८९) अल्लाह की तरफ से जो मिला है उसे अपना मुकद्दर समझो। मुकद्दर पर राजी रहो कि इससे बडा इत्मीनान और इतनी बडी बेफिक्री नसीब होती है। खुश अखलाक और खुदा का खौफ किसी जन्नत से कम नही होता है। अच्छी सूरत वाले अच्छा बर्ताव करे तो यह दुनिया जन्नत के बराबर है।

२१९०) जमीन पर नर्म चाल चलो। अल्लाह के बन्दे वो हो है जो किसी पर जुल्म नही करते और एक दूसरे का खयाल रख कर अपना हक अदा करते है।

२१९१) बिना किसी गरज के आपस मे मेल जोल करो। अपने फायदे के लिये किसी से ताल्लुक रखने से इन्सान उसके एहसान तले दब कर हमेशा डरा डरा रहता है।

२१९२) गुनाहों पर नादिम होना उनको मिटा देता है और नेकियों पर मगरूर होना उन्हें बर्बाद कर देता है।

२१९३) सोच विचार मुहब्बत करने और मरने की तरह है। यह काम हर शख्स को खुद अन्जाम देना पडता है।

२१९४) अकलमन्द अपने आपको छोटा बनाकर बुलन्दी हासिल कर सकता है और नादान अपने आपको बढ़ाकर जिल्लत उठाता है।

२१९५) इससे पहले कि तुम गिरफ्त मे आजाओ खुद अपना हिसाब किताब कर लो और इससे पहले कि तुम्हारे आमाल तोले जाये तुम खुद अपने आमाल तोल लो नर्मी एक ऐसा तना है जिससे हरी भरी शादाब और घनी शाखाये फूटती है।

२१९६) तिलावत सर झुका कर की जाती है और तराना सर उठा कर सुना जाता है।

२१९७) सही और सच्चे बन्दे वो है, जो उन चीजों को छोड दे जिनसे अल्लाह ने उन्हे रोका है।

२१९८) जो चीज तुम खाते हो उसमे सबसे बेहतर वह है जो तुम अपने हाथों से कमा कर खाओं और तुम्हारी औलाद भी तुम्हारी कमाई है।

२१९९) सबसे अधिक बा सलाहियत वो है जो अपनी बात अच्छी तरह साबित कर सके।

२२००) आदमी की काबलियत उसकी जबान मे है। सबसे बडी कमजोरी इन्सान का अपना बद अमल (बुरा आचरण) है।

२२०१) बेहतरीन कमाई उन ताजिरों की है जो झूठ नही बोलते, अमानतमे, खयानत नही करते, वादे खिलाफी नही करते और खरीदते वक्त उस चीज को खराब नही कहते। अच्छा सुलूक करना सोना और चांदी देने से बेहत्तर है। मुकम्मल इरादा हमेशा कामयाबी का जीना होता है।

२२०२) सिर्फ अपने काम मे मतलब रखने वाले और अपने घर मे दूरदर्शन इत्यादि देखकर अपना मनोरंजन करने वाले दूसरों के यहां

आना जाना पसन्द नही करते इस अमल से इन्सान के बीच एहसासों के लेन देन की गर्माहट रहती है वो खत्म हो जाती है और इन्सान अकेला मुसीबतों मे घिर जाये तो कोई उसकी मदद को नही आता है इसलिये एक दूसरे के घर आया जाया करो।

२२०३) इल्म दुनिया की वह बडी दौलत है जो खर्च करने पर घटती नही है बल्कि बढ़ती है। इल्म की बदौलत ही इन्सान चांद पर पहुंच पाया। इल्म से ही इन्सान सही मायनों मे इन्सान बन पाया। जो लोग इल्म हासिल नही करते है वे जाहिल रह जाते है और देश की तरक्की भी नही कर पाते है।

२२०४) धरती पर जन्नत लाना चाहते हो तो नेक अमल बजाओ।

२२०५) भलाई करना इन्सान के इख्तियार मे है और अगर कभी भूल चूक से इन्सान कोई गुनाह कर बैठे और अपनी जान पर जुल्म कर बैठे तो अल्लाह की याद और तौबा करके वह अपने दिल का चैन वापस पा सकता है।

२२०६) ज्यादा कसमे खाने से झूठी कस्मे खाने का रिवाज तरक्की पर बढ़ता है।

२२०७) रिश्वत लेने और देने वाले दोनों भी अल्लाह की नजरों मे गुनाहगार है। आदमी को जिन्दगी मे जब हराम का माल आता है तो आराम चला जाता है और वह बेचैन हो जाता है। उसकी जिन्दगी बेचैनी से भर जाती है। मुसीबतें और परेशानियों से घिर कर उसके जीवन का सुकून चला जाता है।

२२०८) दिल मे जो आये वो फैसले बिना विचारे कभी भी कुबूल मत करो क्योंकि वो हमेशा गलत और जज्बाती होते है।

२२०९) चुनौती इसलिये दो कि तुमसे हौसला पैदा हो जाये, इसलिये मत करो कि तुममे गरूर हो।

२२१०) अच्छाई अच्छे दिल की मोहताज होती है। अच्छी जबान की नही। सादगी को इन्तिहा तक ले जाते मे ही खूबसूरती है।

२२११) मांगने से पहले दो तो वह जरूरत मंद की खिदमत करने का आला तरीका है और तारीफे काबिल है। ऐसा करने से वह जरूरत मंद को शर्म की भी हिफाजत करता है।

२२१२) अल्लाह की इबादत के बदले कुछ न मांगो क्योंकि इबादत के बदले कुछ मांगना तिजारत है। अल्लाह सबसके दिलों का हाल जानता है और मांगने से पहले अदा करता है।

२२१३) भले बन्दे से भलाई का गुमान और बुरे बन्दे से बुराई का गुमान समझो। बुरे बन्दे शराबी-कबाबी को कोई भी खैरात नही देना पसन्द करता क्योंकि बुरा बन्दा उन पैसों से बुरे काम ही करेगा।

२२१४) विद्या है पर धन नही परन्तु नीयत का सच्चा है तो वह कामयाबी पर है। मजे उड़ाने के लिये खुदा से माल मांगना गुनाह है।

२२१५) इन्सान की तरकी और उसकी इज्जत भी इल्म की वजह से होती है। इल्म की वजह से ही उसका मर्तबा बुलन्द होता है।

२२१६) नमाज पढ़ने से चेहरे पर नूर, आब आता है, रोजी मे बरकत होती है, बन्दे को नेक चलन और नेक राह पर ले जाती है, दिल में सुकून पैदा करती है।

२२१७) इन्सान दरअसल आराम पस्तियों मे ही रहने को पसन्द करता है क्योकि वहां से गिरने का डर नही होता है।

२२१८) वफा का सबक फूलों से सीखों जो काटों से अलग होते ही मुरझा जाते है।

२२१९) जिस नारी में प्रगाढ़ स्नेह की प्रतिमा होती है, वह वास्तव में घर की रानी होती है। जो आदर्श नारी हो सकती है, वही आदर्श पत्नी भी हो सकती है। नारी नर की सहचरी, उसके धर्म की रक्षक, उसकी गृहलक्ष्मी तथा उसे देवत्व तक पहुंचाने वाली साधिका है। नारी की प्रेरणाओं से ही कवि अपनी भावनाओं में रंग भरता है।

२२२०) हजार दोस्तों की दोस्ती एक शख्स की दुश्मनी के बदले मत खरीदो।

२२२१) नफरत और जिद्द आकाश बेल की तरह इन्सान को बन्जर कर देते है।

२२२२) जल्दबाजी दानिश व हिकमत की दुश्मन है।

२२२३) जब तक किसी से बातचीत न ही करो तब तक उसे हकीर मत समझो। एक वक्त मे दो काम ढंग से नही हो सकते।

२२२४) कुरान शरीफ को समझकर पढ़ना अल्लाह से कलाम करने के बराबर है।

२२२५) जिनकी आखो मे हंसते वक्त आंसू आ जावे तो समझो वो सच्चे और पुर खुलूस होते है।

२२२६) अना और खुद्दारी बहुत अच्छी चीजे है लेकिन बेजा अना अक्सर आपको अकेला कर देती है।

२२२७) बन्दों के हक अदा करने का काम अखलाक है, उनकी खिदमत करना और आपस मे अच्छा ताल्लुकात रखना बेहतर है।

२२२८) सफलता और असफलता हर इंसान की जिंदगी का हिस्सा होता है।

२२२९) किसी को पाने की तम्मना मत करो बल्कि अपने आपको इस काबिल बनाओ कि दुनियावाले तुम्हे खुद होकर पाने की तमन्ना करे।

२२३०) जिनके ख्वाबों की ताबीर जमाना छीन ले वह उसका इन्तिकाम भी जमाने से लेना चाहते है लेकिन वे यह नहीं जानते कि नुकसान भी हर हाल मे उन्ही का है।

२२३१) जिस हुस्न को आप बगैर आयने के देख नही सकते उस पर कैसा गुरुर ?

२२३२) वक्त खामोश ही सही फिर भी दस्तक और आवाज देता है और समझदार इन्सान इसे सुन पाता है।

२२३३) खयालात की आमदनी कम हो तो लफ्जों की फिजूल खर्ची से परहेज करनी चाहिये।

२२३४) यदि नरक से बचना चाहते हो खुदा के बन्दों की खिदमत् करना अपनी आदत बनालो।

२२३५) जब मनुष्य जन्म लेता है उसी समय मरने का समय और स्थान भी निश्चित हो जाता है। जो शख्स मौत को हर वक्त याद रखता है उसके लिये मौत भी आसान हो जाती है।

२२३६) अगर किसी को आराम देने की तौफीक तुममे न हो तो किसी को तकलीफ देना भी तुम्हारा हक नहीं है।

२२३७) हर वह इन्सान कभी नही हार सकता जो मजबूत इरादों का मालिक हो।

२२३८) मुस्कुराहट जिन्दगी है, बेहतरीन इस्तकबाल है, जिन्दगी की अलामत है, जिन्दगी की गिजा है और पाक दिलों की जमानत है।

२२३९) हर काम को अल्लाह का काम समझ कर अमल किया जाये तो अपने लिये कुछ, औरों के लिये कुछ, जैसा भेदभाव उससे नही होगा। बन्दा हर काम को करने से पहले खुद गरज हो जाया करता है इसीसे उसकी जिन्दगी के साथ नेकी और बदी जुडी है। अगर वह हर काम को खुदा का मान कर करे तो उसकी जिन्दगी के सारे मसले ही हल हो जायेंगे।

२२४०) चुगली व्यभिचार से भी बुरी है। अल्लाह तब तक चुगलखोर को माफ नहीं करेगा, जब तक उसका साथी, जिसकी उसने बुराई की है, उसे माफी नहीं कर देता।

२२४१) गमों के आने से, उन्हे झेलने से रूह में ताकत आती है।

२२४२) सबसे बदतरीन वह शख्स है जिसकी बदजबानी से लोग उससे मिलना छोड दे।

२२४३) दोस्त की तारीफ सबके सामने करो मगर नसीहत सिर्फ तन्हाई मे करो।

२२४४) खुश रहना चाहते हो तो दूसरों को खुश रखने की कोशिश करो। कम बोलना हमारी सीरत का एक खुशगवार पहलू है। जबान से जब भी बोलो तो अच्छा बोलो। जो भी सोचो तो अच्छा सोचो और जो भी करो तो अच्छा करो। लोगों की खिदमत करो। आलसी व आरामतलब मत बनो। ऐसे अल्फाज जबान से न निकालो जिसे सुनकर फसाद और दिलों मे नफरत पैदा हो।

२२४५) बदजुबान एक आफत है। बेफायदा (बिना मतलब) गुफ्तगु (बातचीत) से बचो। जरूरत से अधिक मत बोलो न ही कोई बहस करो। हक से ज्यादा मजाक भी अच्छा नही होता है।

२२४६) दूसरों की चुगली करना, झूठे वादे करना, झूठी खुशामदे करना, किसी का राज जाहिर करना ये सब बदचलनी है इनसे बचो।

२२४७) इतमीनान सबसे बडा सुख है और बेइतमीनानी सबसे बडा दु:ख।

२२४८) बेहतरीन पेशा तिजारत है और सबसे अच्छी ताजिर वो है जो बातचीत मे कभी झूठ नही बोलते और कर्ज वसूल करने मे सख्तगीरी नही करते।

२२४९) खौफ किसी गलती, किसी गफलत, किसी गुनाह और किसी जुर्म की याद ही का नाम है। यह सिर्फ निशान देही है, किसी बुरे काम, किसी नामुनासिब रवय्ये का नतीजा है।

२२५०) दिल एक ऐसी सराय है जिसमे ठहरनेवाले दर्द की सूरत मे अदायगी करके जाते है।

HHH(२२१)HHH

२२५१) अच्छाई अच्छे दिल की मोहताज होती है, अच्छी जबान की नही।

२२५२) सादगी को इन्तिहा तक ले जाने मे ही खूबसूरती होती है।

२२५३) किसी का दिल मत दुखाओं, कहीं ऐसा न हो कि उसके आंसू तुम्हारी सजा बन जाये।

२२५४) अपने नफ्स पर भरोसा करना शैतान को गुमराह करने का मौका देना है।

२२५५) तजरबे से साबित हुआ कि वक्त सिर्फ पक्का इरादा हो तो मदद करता है।

२२५६) बदतरीन झूठ वह है जिसमे कुछ सच भी शामिल हो।

२२५७) अपने नौकरों व सेवकों से अच्छा सुलूक करो। जो खुद खाते हो, वही नौकरों को खिलाओ। नौकरों का वेतन समय पर दो। अपने पुराने कपडे नौकरों को पहनने के लिये मत दो।

२२५८) बदगुमानी गुनाह है। खुद को दूसरे से बढ़-चढ़कर दिखने की बेकार और बेजा हवस न करो और न ही एक दूसरे से मुंह फेरो। बदगुमानी वहम की वजह से पैदा होती है।

२२५९) तकलीफ देनेवाली चीजों को बीच राह से हटा देना चाहिये। हर अच्छी आदत सबाब है। दो लोगों के बीच फसाद मत डालो। जालिम को जुल्म से रोकना चाहिये।

२२६०) बे जरूरत किसी के मेहमान बनना अच्छी आदत नही है। मेजबान के लिये तकलीफ का सबब मत बनो कि वह तुम्हे बोझ समझने लगे। मेहमान की इज्जत और खिदमत करो। उससे जो कहो वह करो, कोई वादा किया हो तो उसे पूरा करो।

२२६१) यतीम के साथ ज्यादती मत करो और न ही दिल दुखाने वाली बात कहो।

२२६२) अल्लाह पर भरोसा रखने वाला हमेशा उसकी हिफाजत मे रहता है।

२२६३) फिजूलखर्ची करना अकलमन्दी नही है और कंजूसी करना भी फायदेमन्द नही है।

२२६४) एक कामयाब पुश्तैनी कारोबार पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता रहता है। कारोबार को महज कारोबार मत समझना। यह परिवार के सदस्यों के आपसी प्यार और झगडों के बीच फलता-फूलता है।

२२६५) नाम मे सब कुछ है। नाम की शोहरत मिलने से पूरा विश्व उसे जानने लगता है इससे इन्सान के अहम की तुष्टि होती है और इन्सान अपने जीवन को सफल मानने लगता है।

२२६६) ऐ इन्सान अपनी खुदी को तबाह न कर। जरा जरा सी खुदगर्जी लालच इन्सान को इन्सान के आगे हाथ फैलाने को मजबूर करती है और यह अमल उसको जलील करता है। इसलिये इन्सान को चाहिये कि किसी के बहकावे मे न आये। अपना इरादा अपना ईमान और अपना यकीन पुख्ता रखे।

२२६७) सिर्फ उम्र बडी होने से इन्सान की कोई तारीफ नहीं होती, सिर्फ पैसे से बडे होने से भी इन्सान की तारीफ नही होती है, नाम से बडे इन्सान की भी तारीफ कोई मायना नही रखती। इन्सान की हकीकती तारीफ वही है जब इन्सान हर हालात मे ईमान और खुदा पर अपने यकीन को पुख्ता रखे।

२२६८) पहले उन पर खर्च करो, जिनके खर्चे की जिम्मेदारी तुमने उठाई है यानि अपने मां बाप, अपने छोटे भाई बहन, बीबी और बच्चों को खर्चे के लिये तंग मत होने दो।

२२६९) भलाई इन्सान के इख्तियार मे हैं बशर्ते इन्सान लालच, जलन और खुदगर्जी से दूर रहे।

२२७०) परेशानी परेशान करती है तो आदमी को उस वक्त तक बेचैन रखती है जब तक आदमी अपने अन्दर पक्के अमल की हालत न पैदा कर ले। परेशानी से हल कभी कभी सिर्फ अपने अमल तक ही नही टिका रहता बल्कि दूसरों का अमल भी इसके हल होने मे अहम भूमिका निभाता है।

२२७१) आदमी अपने अन्दर बाहर की उथल पुथल को अच्छी तरह समझे और अपनी राह आप पैदा करे। परेशानी आदमी की हिम्मत बढ़ाती है, बर्दाश्त और सब्र की ताकत पैदा करती है। परेशानी आदमी के अन्दर रूहानी ताकत पैदा करती है।

२२७२) सिर्फ तमन्नाये करना फिजूल है। तमन्नाओं के साथ-साथ अमल और उनको हासिल करने के लिये जदोजहद (संघर्ष) भी

उतना ही जरूरी है।

२२७३) किसी मकसद को हासिल करने के लिये मुसलसल की जाने वाली कोशिश का नाम सब्र है। हाथ पर हाथ धरे बैठना सब्र नही है। मायूसी के आलम मे सब्र करने वाला न खुद को फायदा पहुंचाता है और न अपने होने से दूसरों को ही कोई फायदा करता है।

२२७४) जिस अमल मे बेगरजी हो और जो सिर्फ लोगों के भले के लिये हो उसी खालिश अमल को अल्लाह कुबूल करता है।

२२७५) गुस्सा होनेवाले के साथ मे तुम भी गुस्सा मत होओ क्योकि दोनों के गुस्से होने पर खून-खराबे का डर है। जाहिलों के साथ आप भी जाहिलों जैसा बर्ताव न करे।

२२७६) बुराई कर इन्सान खुद पर जुल्म ढहाता है। भलाई के काम कहना और बुराई के कामों से रोकना सदका है। खुद को और दूसरों को फायदा पहुंचाने वाली बात करे और अपनी जुबान से किसी को बुरा मत कहो।

२२७७) दु:ख तकलीफ मे ईश्वर का नाम ले। खुशनसीब है वो शख्स जिसके अमलनामे मे भलाईयां ज्यादा है। नेकी उम्र बढ़ाती है और दु:खों से निजात दिलाती है।

२२७८) गुनाहों को छोड देना सबसे बडी हिजरत है। फर्ज की देखभाल करना सबसे बडा जिहाद है। नेकी से मेहरूम नही वह जो नेक लोगों की मजलिस मे शरीक हो गया।

२२७९) इन्सान मे खूबियां जमी होती है जब किसी की गीबत न करे। किसी का मजाक न उडाये। हराम चीजों को देखने से भी परहेज करे। जबान से हमेशा हक बात निकाले। अपनी तदबीर से अधिक अल्लाह पर भरोसा रखे और अपनी जायज कमाई हकदारों पर खर्च करे।

२२८०) जो खुदा से बेपरवाह नहीं होते उनके दिलों पर कोई बोझ नही होता। खुदा को याद करने वालों ने तरक्की की है।

२२८१) ऐसे लोग की दुआये कबूल नही होती जिन्होने भलाई को माना पर अमल नही किया, दूसरों के ऐब देखे मगर अपने ऐब नही देखे, अपनी दुआओं मे दूसरे के हक मे बदख्याली हुई, ठोकर खाई पर उससे कोई सबक हासिल नही किया, जो कुछ मिला उसका खुदा का शुक्रिया अदा नही किया, अगर किसी भिखारी को झिडक दिया। किसी का दिल दुखाया और अपने दिल की खातिर दुआये की, ऐसी दुआये खुदा के दरबार मे नामंजूर होती है।

२२८२) जिसका लिबास बारीक और हल्का होगा उसका दिमाग भी कमजोर होगा।

२२८३) आदमी खुद को बातों से कम, अपने काम से अपने आप को ज्यादा जाहिर करे। अपने आपको बडा न समझे और ना ही बातों से या कपडों से या अपने अमीर से खुद को बडा दिखाने का प्रयत्न करे। ना ही अपने खानदान की बडाई करके खुद को बडा दिखाये।

२२८४) आदत तो बदल सकती है मगर फितरत (स्वभाव) नही। इसलिये शुरू से ही फितरत को अच्छाई की तरफ ले जाना चाहिये।

२२८५) कुछ लोग नमाज पढ़ते है, रोजा रखते है, हर वह काम करते है जिसका हुक्म खुदा ने दिया है मगर अपनी जबान से कहे अल्फाज पर कभी गौर नही करते जिससे न जाने कितने खुदा के घर टूट जाते है यानि पाक दिल टूट जाते है। दुआ के साथ अमल न हो, किरदार न हो, अखलाक न हो तो दुआये भी जमीन के किनारों से बाहर नही निकलती। अमल के बिना दुआ एक ऐसा जिस्म है जिसमे रूह निकल जाती है और उसकी हैसियत एक लाश जैसी होती है जो किसी के काम भी नही आती।

२२८६) तुम्हारा पडोसी अगर कर्ज मांगे तो उसे कर्ज दो, वह दावत करे तो उसे कबूल करो। वह बीमार हो जाये तो उसका हाल पूछो- वह मदद चाहे तो उसकी मदद करो, उसके हमदर्द बनो। मुसीबत मे हो तो उसकी खैर खबर लो। खुशी मे हो तो उसे मुबारकबाद पेश करो। उसके जनाजे मे शिरकत करो, उसकी गैर मौजूदगी मे उसके मकान और बीवी बच्चों की हिफाजत करो। उसकी मर्जी के बिना ऊंचा मकान न बनाओ। जब वह मिले तो पहले उसे सलाम करो।

२२८७) आपके पास हर चीज है। जाहिर है आप खुश खुर्रम है। मगर अन्दर रूह में हर दम एक बेचैनी रहती है तो उसकी दो ही वजह हो सकती है। किसी ने आपका दिल तोडा है या किसी का दिल आपसे टूटा है। खुश रहने के लिये जरूरी नही कि आपको खुशी मिले। दूसरों को खुश करके भी खुश रहा जा सकता है।

२२८८) ऐसे शख्स को आदर्श बनाकर उसके पीछे क्यो भागते हो जो तुम्हारे पास कभी आ ही नही सकता। इससे तो बेहतर है खुद

को इस काबिल बनाओ कि लोग तुम्हे अपना आदर्श बनाये।

२२८९) सबसे बडा जाहिल वो है जो गुनाह से बाखबर होते हुये भी गुनाह करता है।

२२९०) जिसने इल्म सीखा और फैलाया है वह आलिम है। बे जरूरत किसी को नसीहत मत दो।

२२९१) अपना नसबनामा याद रखो अर्थात अपने बाद दादा, पर दादा और रिश्तेदारों के नाम याद रखो।

२२९२) हिकमत एक ऐसा दरख्त है जो दिल से उगता है और जबान से फल देता है।

२२९३) जिन्दगी के तालाब से पानी पीते हुये यह खयाल रहे कि आपके बाद आने वाले के लिये पानी काबिले इस्तेमाल रहे।

२२९४) "बाहर चूर-चूर होकर नर बहुधा घर आता है। नारी का मुख वहां निरख वह फिर नवता पाता है।
पूरन सकल विलास रस, सरस पुत्र फलदान। अंत होय सहगामिनी, देह नारी को मान।।"

२२९५) कुछ वक्त के बाद हर इन्सान बीच बीच मे रुक कर अपनी जांच खुद करे कि वह कहां सही और कहां गलत है। इसका अनुमान लगा कर ही अगला कदम बढ़ाये। कम से कम दिन मे एक बार इसकी जांच आंकलन अवश्य करे।

२२९६) जिस पर नसीहत असर न करे वह जाने कि मेरा दिल ईमान से खाली है।

२२९७) अल्लाह का डर बनाये रखो ताकि दूसरे किसी का खौफ ना रहे।

२२९८) हसद के साथ राहत नही, इन्तिकाम के साथ सरदारी नही और बेअदबी के साथ बुजुर्गी नहीं।

२२९९) ने अमत को गलत जगह पर खर्च करना नाशुक्री है।

२३००) अल्लाह का बडा करम है कि उसने हमे भूलने की सिफत दी वरना एक गम हमेशा के लिये गम बन जाता।

२३०१) जमीन पर इन्सान को नेकी के लिये उतारा गया है। मै कौन हूँ, कहां से आया हूं, किस मकसद से आया हूं इन सवालों को सोचने के बजाय बन्दा सिर्फ यही सोच ले कि मै धरती पर अच्छे काम करने और बन्दो की मदद करने के लिये आया हूं तो सारे मसले ही हल हो जायेंगे।

२३०२) इन्सान के जीने का असल मकसद अखलाक है। नेक काम करो ताकि खुद तो फायदा हासिल करोगे ही, साथ ही दूसरों को भी फायदा पहुंचाओगे। बन्दों के हक अदा करने का काम अखलाक है। उनकी खिदमत करना और आपस मे अच्छे ताल्लुकात रखना अखलाक है।

२३०३) नेकी का नतीजा अच्छा होता है, यह बात सिर्फ सुन भर लेने से या अल्फाजों से कह भर देने से नहीं होता है बल्कि इसका तजुर्बा कर लेना आवश्यक है।

२३०४) एक दूसरे के साथ ज्यादती करना कुफ्र है और एक दूसरे का हक मारना गुनाह है।

२३०५) वे लोग कभी भी माफी के काबिल नही होते जो दूसरों की इज्जत पर पांव रखकर अपने अभिमान का महल तामीर करते है, जो किसी के सच्चे जज्बात और एहसासात पर ईमान लाने के बजाय खूबसूरत जिस्म और चेहरे की चमक दमक मे अन्धे हो जाते है।

२३०६) आज सबसे अमूल्य समय है पर इन्सान के पास समय ही नही बचा है। कब सुबह होती है और कब शाम होती है। जिन्दगी यो ही तमाम हो जाती है। आदमी के सिर पर एक ही जुनून सवार है सिर्फ पैसा। इसलिये व्यक्ति अपना हर दायित्व भूल गया है। समय को जिसने नही जाना उसे मिटना ही पडेगा। हमारी इच्छाये आकांक्षाये इतनी बढ गई है कि उनकी पूर्ति करने मे ही जिन्दगी गुजर जाती है इसलिये समय का अभाव रहता है।

२३०७) सच्ची खूबसूरती का चश्मा दिल है। अगर यह स्याह हो तो चमकती आंखे कुछ काम नहीं देती।

२३०८) किसी के लिए बुरा ख्याल भी दिल में मत लाओ। याद रखो कि इसका साया उसके दिल पर जरूर पड़ेगा।

२३०९) नादानों की बात पर जब्त अकल की जकात है।

२३१०) हमेशा मुस्कराते रहना चाहिये। हमारी मुस्कुराहट किसी के दर्द का इलाज बन सकती है। मुस्कुराहट दिल का दरवाजा खोल देती है।

२३११) खराब अक्ल गुनाह के वक्त मुखालिफत नहीं कर सकती।

२३१२) किसी से पूछा गया कि भाई बेहतर है या दोस्त ? जवाब मिला, भाई अगर दोस्त हो।

२३१३) किसी की कमअक्ली का अंदाजा उसके ज्यादा बोलने से होता है।

२३१४) जो शख्स दुनिया के सबक से सीधा रास्ता न अपनाए वह आखिरत के अजाब में भी गिरफ्तार होगा।

२३१५) खुदा के फजल और उसकी चाहत के बगैर कुछ नहीं हो सकता।

२३१६) जिन्दगी में तीन चीजें बहुत सख्त हैं- मौत का खौफ, मरज की तेजी और कर्ज की जिल्लत।

२३१७) गम कितना ही संगीन हो नींद आने से पहले तक है। कायनात का कोई गम ऐसा नहीं है जो आदमी बर्दाश्त न कर सके।

२३१८) सांस की मौत से पहले बहुत सी मौते हो चुकी होती है। हम सांस को मौत समझते है जब कि सांस तो ऐलान है उन तमाम मौतों का जो आप मर रहे है।

२३१९) दुश्मन घर में आजाये या दोस्त घर से चला जाये तो दोनो हालतों में ही एक अच्छा खासा जन्नत बना हुआ घर दोजख बन जाता है।

२३२०) जब इन्सान के दोस्त और उसके दुश्मनों मे कोई फर्क बाकी ना रहे तो उसे जीने और मरने के दरम्यान क्या मालूम होगा।

२३२१) आंसू कुर्ब का सुबूत है। जब रूह का रूह से मिलना होता है तो आखों में आंसू आजाते है।

२३२२) दुआ करने से बेहतर है कि दुआ करने वाले को ही पा लिया जाये।

२३२३) तिनके को भी कभी हकीर न समझो वर्ना वह तुम्हारी आंख में पड जायेगा।

२३२४) उस्ताद कभी बादशाह नहीं बनता मगर बादशाह बनाता है।

२३२५) दुआयें इबादत की जान है।

२३२६) अगर कोई तुमसे जुदा होना चाहे तो तुम उससे इत्तिफाक की कोशिश करो।

२३२७) गुनाह किसी न किसी सूरत में दिल को बेचैन रखता है।

२३२८) परहेज करो, परहेज नफा देता है। अमल करो, अमल कबूल किया जाता है।

२३२९) उस दिन पर आंसू बहाओ जो तुम्हारी जिन्दगी से कम हो गया और उसने नेकी नहीं करी।

२३३०) जो लोग खुदा की बख्शी हुई दौलत को गलत जगहों पर खर्च करते है उनके लिये कयामत के रोज दोजख की आग होगी।

२३३१) झूठे मुरव्वत और हासिद को राहत नहीं। बद मिजाज को सरदारी और सुलूक की भाई बन्दी नहीं।

२३३२) जो कोई खुदा से मुहब्बत रखता है उसको दुनिया के लोगों से वहशत हो जाती है।

२३३३) बदचलन से मुहब्बत मत रख कि तुझ पर बदकारी गालिब आजायेगी। मेल जोल ऐसे लोगों से कर जो खुदा को खूब याद करते हो।

२३३४) दूसरों के माल का लालच न करना भी सखावत में दाखिल है।

२३३५) दिल की आंख इबादत से खुलती है। उस तक पहुंचने की कोई हद नहीं है और दुनिया का कोई राज उससे छुपा हुआ नहीं है।

२३३६) इन्सान के पास एक ऐसी ताकत भी है जो मुस्तकबिल में झांक सकती है। यह उस वक्त बेदार होती है जब पांचों हवास सो रहे होते है और दिमाग हर चीज से आजाद हो।

२३३७) मदरसा वो ही श्रेष्ठ है जहां संघर्ष कर जीवन जीया जाता हो।

२३३८) तालीम एक सलाहियत है। तालीम के बगैर शख्सियत अधूरी है।

२३३९) मेहनत करो इससे पहले कि तुम किसी के मोहताज हो जाओ।

२३४०) अगर तुम नीचेवालों पर जुल्म कर रहे हो तो ऊपर वाले के इन्तिकाम का भी इन्तजार करो।

२३४१) जिस कुल में अपमानादि के कारण कुलवधुयें शोकाकुल रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

२३४२) छोटे छोटे गम बबाल करते है जबकि बडे गम खामोश रहते है।

२३४३) जिन्दगी में हमेशा इन्साफ करो ताकि तुम्हारा जमीर कभी मलामत (शर्मिन्दा) न करे।

२३४४) जिन्दगी बहुत छोटी है, अगर उसे मरने की निगाह से देखा जाये। जिन्दगी एक ऐसा नगीना है जो पलक झपकते ही गायब हो जाता है। जिन्दगी के आधे गम इन्सान दूसरों से गलत उम्मीदें बाबस्ता करके खरीदता है।

२३४५) गरूड (उकाब) कभी मक्खियों का शिकार नहीं करता।

HHH(२२५)HHH

२३४६) मेहरबानी से किसी से मिलना दावत देने से अच्छा है।

२३४७) ईमान एक ऐसा जौहर है जिसकी चाशनी और मिठास दुनिया की हर चीज से ज्यादा है मगर यह मिठास और चासनी उसी बन्दे को हासिल होती है जो दुनिया की हर चीज से ज्यादा खुदा के महबूब रखता है।

२३४८) खुदा की शान भी कैसी अजीब है कि जमीन एक है, हवा एक ही है और पानी भी एक ही है लेकिन जमीन पर उसकी हर तखलीक (रचना) एक दूसरे से मुख्तलिफ (अलग) है। पानी आम के पेड में दौडता है तो वह आम बन जाता है और अन्जीर के पेड में अन्जीर बन जाता है।

२३४९) जो दु:खों को अपने गले का हार बना लेते है वह कभी दु:खों से निजात नही पा सकते।

२३५०) पानी मुर्दों को तो अपनी सतह पर लिये फिरता है पर जिन्दों को नही, अगर वो तैरना नही जानते है तो पानी उन्हे डूबा देता है।

२३५१) इबादत का मकसद इन्सान के अन्दर अच्छाई पैदा करना है। अगर इबादत गुजार इबादत करने के बावजूद अच्छा नहीं तो वह इबादत के जौहर से खाली ही रहा।

२३५२) रहमत के साथ जिन्दगी बसर करो क्योकि रहमत के तारूफ से हमारा जहन अल्लाह की तरफ रूख करता है।

२३५३) जब मौत का वक्त आ ही जाये तो अकल पर पर्दा पड जाता है उस समय तो चान्द और सूरज भी बेनूर नजर आते है। भला मौत से कौन बचा सकता है ?

२३५४) ताज्जुब है उस पर जो दुनिया को फानी समझता है फिर भी दुनिया से मुहब्बत करता है। जो तकदीर को जानता है फिर भी जाने वाली चीज का गम करता है। ताज्जुब है ऐसे लोगों पर जो दोजख को हक जानता है फिर भी खौफ नही खाता। उन लोगों पर भी जो हिसाब जानते है फिर भी माल जमा करते है।

२३५५) हिकमत और अकलमन्दी गरीब को बादशाह बना देती है।

२३५६) कोई चीज तेरे नजदीक जन्नत की नेअमत से ज्यादा महबूब न हो।

२३५७) दुनिया के थोडे माल पर राजी रह। मुकद्दर के रिज्क पर राजी रह और दूसरों की रोजी पर आंखे मत डाल ताकि नफ्स मसाल से सलामत रहे।

२३५८) किसी को खुदा का शरीक नहीं ठहराना। जब दुनिया के पास जाओ तो जबान की हिफाजत करना।

२३५९) दौड धूप न करना मोहताजी का सबब होता है और मोहताजी दीन को तंग अक्ल को हल्का और मुरब्बत को खत्म करती है।

२३६०) दुनिया तलब करने में एहतियात बरतनी चाहिये। अपनी मनमानी और अपने ढंग से काम करने से नाकामयाबी हाथ लगेगी क्योकि दुनिया आपकी गुलाम नही है। दुनिया के हिसाब से चल कर ही इन्सान अपनी मंजिल तक पहुंचता है।

२३६१) सूरज उगने से पहले उठना बरकत है। रोजी कमाते वक्त अपनी इज्जत का खयाल करो। दूसरों के हक अधिकार का खयाल करो। अपने फर्ज का खयाल रखने में बरकत है। हलाल कमाई करने और हराम कमाई से बचने में बरकत है।

२३६२) ऐसा कुछ करो कि जिन्दगी दुरुस्त हो जाये। अगर इस पर गौर नहीं किया तो इतना जान ले कि बुरी बातों के नतीजे कभी अच्छे नहीं होते।

२३६३) जिनके दिल हिदायत से रोशन है वे हर अन्धेरे से बच निकलते है।

२३६४) अच्छी आदतों को जरूरतें बना लो। अगर मामला किसी दुश्मन से भी हो तो भी उसके साथ अखलाक (अच्छा बर्ताव) के साथ पेश आओ।

२३६५) हया शर्म में ही भलाई है। वक्त के साथ शर्म के भी अर्थ बदल जाते है। औरत की शर्म हया से भी अलग हद पार की हुई बेशर्मी है कि बेटा बाप के सामने जुबान खोलता है। हया शर्म को ईमान का दर्जा हासिल है इसलिये आदमी अपना बर्ताव अपने ताल्लुकात का खयाल करे तो इसमे ही उसका भला है। बहू सास का लिहाज नहीं करती और अपने शौहर से मनमानी करती है।

२३६६) दुनिया एक पूंजी है। बचपन, जवानी, मां-बाप इस पूंजी में शामिल है। नेक बीबी, नेक औलाद और नेक रिश्तेदार सभी एक पूंजी की तरह है। अच्छी सेहत पूंजी है और आखिर में अमीरी भी एक पूंजी है।

HHH(२२६)HHH

२३६७) आफताब और माहताब भी इतनी जल्दी नहीं डूबता जितनी जल्दी कोशिश करने पर गुस्सा उतर जाता है। जिनके दिल मे मुहब्बत हो या जिसका दिल रहम दिल हो तो उसके दिल में गुस्सा अधिक देर तक नहीं ठहरता। दिल दु:ख जाये तो गुस्सा आना बाजिब है लेकिन इसको अपनी जलन में ज्यादा देर तक कायम रखना गलत है इसलिये गुस्से से बार बार पनाह मांगो।

२३६८) अल्लाह अपने बन्दे को रोजी व खुश रखता है। बन्दा तभी खुश रह सकता है जब वह अपने से जुडे बन्दों को खुश रखना सीख ले।

२३६९) कयामत उस वक्त आयेगी जब जमीन पर कोई अल्लाह का नाम लेनेवाला नहीं होगा।

२३७०) जब बन्दा झूठ बोलता है तो इसकी बदबू से फरिश्ते मीलों दूर हट जाते है।

२३७१) जरूरत की एक हद होती है मगर हिर्स की कोई हद नही।

२३७२) बहादुरी ये है कि कमजोर होने के बावजूद भी दूसरों को अपनी कमजोरी का अहसास मत होने दो।

२३७३) कामयाबी पाने के लिये जरूरी है कि कामयाबी हासिल करने का अहसास दिल में जिन्दा रखा जाये।

२३७४) अल्लाह और खुदा के नाम पुकारने वाले बात बात पर अपनी तकलीफों का इजहार नहीं करते।

२३७५) सख्तियां इन्सान को ताकतवर बना देती है, अगर इन्सान को सब्र करने की ताकत हासिल हो।

२३७६) दुनिया में जिन्दगी की सांसे बहुत कम है और कब्र की जिन्दगी बहुत लम्बी है।

२३७७) नेकी उसके नसीब में आई जिसने अपनी ख्वाहिशात को छोडा और महरूम वही है जिस दुनिया के मुकाबले में आखिरत से मुंह मोडा।

२३७८) अस्ल कमाल इल्म और अमल दोनों को जमा करने में है।

२३७९) हर सांस एक खजाना है। ऐसा ना हो कही तुम्हारा कोई सांस बेकार जाये और कयामत के दिन अपने खजाने को खाली देखकर तुम्हे शर्मिन्दगी उठानी पडे।

२३८०) अधिक बातें वो ही करते है जिनके पास कहने को कुछ नहीं होता।

२३८१) पहाड पर चढ़ने से कोई बुलन्द नहीं हो जाता बल्कि अपने अजीम किरदार से वह पहाड़ को भी नीचा दिखा सकता है।

२३८२) जिस चीज को ठीक करने की सलाहियत अपने में न हो तो उसे खराब भी मत करो।

२३८३) बेवकूफ होते है वे लोग जो आज की खातिर अपने कल को भी दांव पर लगा देते है।

२३८४) मुस्कुराहट ही दिलों को करीब लाती है और दिल को इतमीनान दिला सकती है।

२३८५) जिसकी तालीम सही हो वह आंख से भी देखता है दिमाग से भी और दिल से भी।

२३८६) कहानी में नाम और तारीख के सिवा सब कुछ सच होता है और इतिहास में तारीख के सिवा कुछ भी सच नहीं होता है।

२३८७) लोग अल्फाज तो इस्तेमाल करते है लेकिन उनका अल्फाज से कोई तालुक नहीं होता। असल मे देखा यह जाता है कि दिमाग कितनी देर तक एक जगह ठहर सकता है।

२३८८) इन्सान को फरार की जरूरत है और वैसी ही जैसी गिजा और गहरी नींद की।

२३८९) लोगों पर अपना रौब मत जमाओ, बल्कि लोगों के भरोसे विश्वास को जीत लो ताकि लोग आपको पसन्द करने लगेगे।

२३९०) आदमी की खासियत इसी में है कि हमेशा सच का साथी बने। जो सोचे वह अच्छा ही सोचे फिर अच्छा बोले और फिर अच्छाई पर अमल करे। जो बोले उस पर अडिग रहे। ऐसी चीजों से बचे जो शक पैदा करती हो।

२३९१) सब्र के साथ जिन्दगी बसर करो। थोडी चीज पर गुजर करना वह खजाना है जो कभी खाली नहीं होता।

२३९२) हिदायत उन्ही लोगों के काम आती है जो ईमान वाले यानी सच्चे लोग है और जो सच्चाई को पसन्द करते है। जो दूसरों के हक की हिफाजत करते है और जो साबित कदम यानि खस्ता हालात में भी अपने फर्ज को अदा करते है।

२३९३) जिनका उद्देश्य ऊंचा हो उसे आराम तल्बी और हर दिल अजीजी से खौफ रहता है।

२३९४) जीतने वाले कोई अलग काम नहीं करते, वे हर काम अलग ढंग से करते है। सिर्फ एक चीज करने की होती है जिसे कहते है शुरूआत जो आदमी को सिकन्दर बनाती है। जो जीता वो ही सिकन्दर।

HHH(२२७)HHH

२३९५) हम उपदेश तो सुनते है मन भर, उपदेश देते है टन भर और ग्रहण करते है कण भर इसलिये लोगों की समझ शक्ति के अनुरूप ही उपदेश दो। जो नसीहते उपदेशों को नहीं सुनता उसे लानत-मलामत सुनने का शौक है ऐसा जानना चाहिये।

२३९६) हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई आदि सभी इस देश के रहनेवाले है। उनके मस्जिद, मंदिर, गुरुद्वारे अलग-अलग हो सकते है परन्तु महान भारत रूपी जो बडा मन्दिर है वह सबका है। सब मजहबों के लोग एक ही ईश्वर की इबादत करते है।

२३९७) अगर खुदा कंजूस आदमी की ख्वाहिश पूरी करने में लग जाये और अगर किस्मत उसकी गुलाम हो जाये, अगर कारुँ का खजाना उसके हाथ लग जाये और सारी दुनिया की दौलत भी उसके कब्जे मे आजाये तो भी कंजूस आदमी इस काबिल नहीं होता कि उसका नाम लिया जाये।

२३९८) दुनिया अपना फायदा देखती है, अपना कल्याण हो दूसरे जिये या मरे उन्हे इससे क्या लेना। दुनिया का काम मुरौवत और रवादारी से चलता है। अगर हम किसी से खिंचे रहे तो कोई कारण नहीं है कि वह भी हमसे खिंचा न रहे।

२३९९) सब्र जिन्दगी के मकसद का दरवाजा खोलता है क्योकि सब्र के उस दरवाजे की कोई कुंजी नही है। प्रकृति के चरण चिन्हों पर चलो उसका रहस्य है सब्र। लोहा जब गर्म होता है तब लाल सुर्ख हो जाता है और उस में से चिनगारियां उड़ने लगती है। शत्रु का लोहा भले ही गर्म हो जाये पर हथौडा तो ठंडा रहकर ही अपना काम दे सकता है। हथौड़ा गर्म हो जाए तो अपने दस्ते को जलाता है। लोहे को इच्छानुसार रूप देना हो, तो हथौड़े के गर्म होने से काम नहीं चल सकता। इसलिए कितनी ही विपत्तियों में भी हमें गर्म नहीं होना चाहिए।

२४००) अपने मित्र को एकान्त में नसीहत दो किन्तु उसकी प्रशंसा खुले आम करो। जो किसी उच्छृंखल और बद मिजाज आदमी को नसीहत करता है उसे खुद नसीहत लेने की जरूरत है।

२४०१) नेकी का इरादा बदी की ख्वाहिशों को दबा देता है। नेकी का उपहार नेकी है। सम्मान नेकी का उपहार है।

२४०२) जिसका कोई दोस्त नहीं वह गरीब है। अच्छा दोस्त खुदा की बेहतरीन नेअमत है।

२४०३) जाहिल की बातों को बर्दाश्त करना अक्ल की बात है।

२४०४) इन्सान की कद्र और कीमत इल्म के एतबार से होती है।

२४०५) कामयाबी हासिल करने के लिये जरूरी है कि कामयाबी हासिल करने का एहसास दिल में जिन्दा रखा जाये।

२४०६) अपने आपको सबसे बेहतर समझ लेना जहालत है।

२४०७) अपनी इस्लाह सबसे मुश्किल और दूसरों पर नुक्ता चीनी सबसे आसान।

२४०८) कयामत के दिन गरीब, पडोसी का दामन पकडेगा।

२४०९) खुदा जिसको बडा बनाता है उसको बहुत सारी खूबियां भी देता है।

२४१०) बेहतरीन दुआये अल्फाज की मोहताज नहीं होती।

२४११) अपना अच्छा काम दूसरों की नुक्ताचीनी से तंग आकर बन्द मत करो।

२४१२) उस शख्स से बचों, जो अपनी बुराइयां लोगों में बडे फखर से बयान करता है।

२४१३) जैसा तुम खुदा को कल के लिये चाहते हो तुम आज उसके लिये वैसे बन जाओ।

२४१४) जो शख्स अपना राज छुपाकर रखता है वह जैसे अपनी सलामती को अपने कब्जे मे रखता है।

२४१५) मजलूम की बद्दुआ से डरो क्योकि उसके और खुदा के दरम्यान कोई पर्दा नहीं।

२४१६) मांगना ही चाहते हो तो सिर्फ खुदा से मांगो। पढ़ना चाहते हो तो नमाज, कुराने शरीफ पढो। डरना चाहते हो तो अल्लाह से डरो। कुछ लेना चाहते हो तो दूसरों का गम लो। चलना चाहते हो तो हकीकत पर चलो। जीना चाहते हो तो दूसरों के लिये जियो।

२४१७) शेखी इन्सान के दिल में चुपके से पैदा होती है। उसे बर्बाद कर देती है और उसे पता भी नहीं चलता।

२४१८) आप जिस काम की जिम्मेदारी उठायेंगे तुम्हारा जहन उसके लिये ही काम करेगा।

२४१९) दुनिया में जिल्लत की हजारों सूरते है लेकिन उनमे कर्ज की जिल्लत सबसे ज्यादा सख्त है।

२४२०) तुम्हारा कर्ज ख्वाह तुम्हारी सेहत चाहेगा, तुम्हारा कर्जदार तुम्हारी मौत।

२४२१) दुनिया किसी के हाथ का खिलौना नहीं है बल्कि यहां का हर शख्स इस निजाम का हाकिम और हर शख्स इस राज्य का नागरिक है। हर शख्स जवाब देह है अपने अपने अच्छे बुरे अमलों का।

२४२२) कारोबार करने वाले की नीयत साफ हो और रवैया दीन के ताबे हो, क्योकि बेईमानी खैर व बरकत और खुशहाली से मेहरूम कर देगी।

२४२३) आपके अपने बदअमल दूसरों को दु:ख पहुंचा सकते है। दिल के रोग, जमीर की बीमारियां, अखलाक की कमजोरियां और रुह की खराबियां सब बद अमल का ही नतीजा है। इसके बुरे असर से दूसरे लोग भी इन बीमारियों की चपेट में आ जाते है। जमीर को जख्मी करने के जिम्मेदार वही है जिनका बर्ताव बुरा है और दिलों को दुखानेवाला है।

२४२४) अपने जाति फायदे के लिये दूसरों को परेशानी और मुसीबत में डालना गुनाह है।

२४२५) न तुम्हारी दौलत तुम्हे खुदा के नजदीक ला सकती है और न ही तुम्हारी औलाद। खुदा के नजदीक तो वो ही जा सकता है, जो बात मान ले और भलाई करे। पाप न करना दुनिया की भलाई करना है। भलाई में हर प्रकार के ज्ञान मौजूद है।

२४२६) गुनाह करने के साथ-साथ खुदा की रहमत की उम्मीद रखना बदकिस्मती की निशानी है।

२४२७) तन्हा जीने से है बेहतर कि खुदा बन के रहूं, मेरी हस्ती किसी पत्थर में दबा दी जाये।

२४२८) अभी तक ऐसा कोई व्यक्ति वास्तव में महान नही हुआ जो साथ ही साथ गुणवान न रहा हो। खुदा की नजर में अजीज वे लोग है जिनका इख्लाक बुलन्द है।

२४२९) खुदा की दर वो है जो मांगने पर कोई सवाल नहीं होता। यदि मांगना ही है तो खुदा से मांग। किसी से कुछ मांगने पर आब, आदर और स्नेह भी खत्म हो जाता है।

२४३०) गरीब कर्जदार को सहूलियत दो या उसका कर्ज ही माफ कर दो। खाने-पीने या कपडे बनवाने में कर्ज मत लो।

२४३१) किसी आफत या खराबी की वजह से जो कर्जदार हो जाये और अपनी जिन्दगी बचाने के लिये और कर्ज मांगे तो उसे दे देना फर्ज है।

२४३२) कर्ज मांगनेवाले को राजी करके भेजो, उसका कर्ज अदा करो। कर्ज अदा करने में देर भी हो गई तो भी कर्ज मांगनेवाले से अच्छा बर्ताव करके उससे वायदा करो।

२४३३) आज गरीब को माफ करो, खुदा कल तुमको माफ करेगा। खुदा उनकी मदद करता है जो खुद अपनी मदद करते है।

२४३४) कोई भी शख्स अपनी सलाहियतों का अन्दाजा उस वक्त तक नहीं लगा सकता जब तक कि वह उन्हे इस्तेमाल न करले।

२४३५) इल्म एक ऐसा फूल है जो जितना खिलता है उतनी ही खुशबू देता है। इल्म हासिल करने में शर्म मुनासिब नहीं क्योकि जहालत शर्म से बदतर है। इल्म दिल को इस तरह जिन्दा रखता है जैसे बारिश सूखी जमीन को।

२४३६) जमीर वह शय है जो गुनाह से नहीं रोकती। लेकिन गुनाह से लज्जत भी नहीं उठाने देती।

२४३७) दुनिया में सबसे कमजोर वह है जो अपनी ख्वाहिश पर काबू न रखता हो और मजबूत वह जो जब्त की ताकत रखता हो।

२४३८) सबसे बेहतर आदमी वह है जिसका दिल डावाडौल न होता हो। जो झगडे से बच कर दूर कौने मे जा बैठे। जिससे लोगों को कोई तकलीफ न पहुंचे। जो लोगों की पीठ पीछे बुराई ना करे। जो अपने कुसूर पर रो देता हो।

२४३९) शोहरत वह है जो मर्द और औरते हमारे बारे मे सोचते है और किरदार वह है जो खुदा और फरिश्ते हमारे बारे मे जानते है।

२४४०) सच्चाई दिल का ईमान है। सच बोलने का इरादा किया करो चाहे इसमे खतरा ही क्यो न हो। सच बोलने मे ही नजात है।

२४४१) मुसीबत उससे दूर रहती है जो अपने गुस्से को पी लेता है और जो अपनी जबान को काबू मे रखता हो।

२४४२) इन्सान को आसानी के लिये पैदा किया गया है मुश्किल में डालने के लिये नहीं। हर काम में नर्मी बर्तो। घरवालों से भी नर्मी का व्यवहार और बर्ताव रखो। दुनिया में अच्छाइयां और भलाइयाँ फैलाना चाहते हो तो नर्मी की नसीहत दो।

२४४३) जो मनुष्य अपनी विद्या और ज्ञान को कार्यरूप मे परिणित कर सकता है, वह दर्जनों कल्पना करने वालों से श्रेष्ठ है। तरुण, सुन्दर और उच्च कुल में जन्म लेकर भी विद्याहीन मनुष्य उसी प्रकार शोभित नही होते, जैसे गन्धहीन पलाश के फूल।

२४४४) उम्मीद जिन्दगी की लंगर है, उसका सहारा छोड देने से इन्सानी कश्ती गहरे पानी में डूब जाती है।

२४४५) नेक अमल वह है जो लोगों की तारीफ की उम्मीद से बेनियाज होकर किया जाये।

२४४६) धर्म दौलत की बराबर से तकसीम का कायल नहीं बल्कि इन्साफ से तकसीम का कायल है।

२४४७) जिस मानव में सिदक (सच) और सबूरी (संतोष) नहीं है तो वह हज करने क्या जाएगा। जिसका दिल ही साफ नहीं उन्हें खुदा कहां मिलेगा। अर्थात मन में अहंकार और विकार भरे पड़े हो और तन मक्का-मदीना जाकर हज करे। लेकिन इससे खुदा मिलनेवाला नहीं है।

२४४८) कामयाबी की एक सूरत है किअच्छी बाते सुने और जिसे सुन ले उसे कागज पर लिख ले और जिसे लिख ले उसे हिफ्ज कर ले और जिसे हिफ्ज कर ले उस पर अमल करे और जिस पर अमल करे उसे आगे बयान कर दे।

२४४९) अपने लफ्जों की हिफाजत करे क्योकि लफ्ज आपकी आदत बन जाते है। अपनी आदतों की हिफाजत करे क्योकि आदते आपका अमल बन जाती है। अपने आमाल (कर्म) की हिफाजत करे क्योकि आपके आमाल ही आपकी शख्सीयत बनते है।

२४५०) सितारे आसमान की जीनत है और एक तालीम याफ्ता शख्स जमीन का जेवर है।

२४५१) महफिल में किसी के सामने अपनी खामियों का बयान मत करो। तुम्हारे जाते ही यह काम तो अपने आप हो जायेगा।

२४५२) रोशनी की उम्मीदे अवश्य रखे मगर सिर्फ उम्मीदों पर तो जिन्दगी नहीं गुजारी जा सकती इसके लिये कुछ कर दिखाये।

२४५३) दुनिया में जिन्दगी गुजारने का वही तरीका अपनाये जो आपको पसन्द है। लोगों की पसन्द कभी आराम का बाइस नहीं बनती।

२४५४) कमजोर लम्हे हर इन्सान पर आते है। अगर हम इन कमजोर लम्हो की गिरफ्त से निकल जाये तो इन्सानियत की मिराज को छू लेंगे।

२४५५) किसी की बात सुनकर किसी को कह देना कि उन दोनों में लडाई हो जाये, यह एक खराब आदत है। अगर कोई बात दूसरों तक पहुंचाने में दीन व दुनिया का कोई फायदा होता हो तो जरूर उस बात की चर्चा सबसे करो।

२४५६) जो औरत घरवालों की खिदमत करे, वही उस घर की मालकिन होती है और शौहर के दिल की भी वही औरत मालकिन होती है।

२४५७) बुरों के साथ दोस्ती क्या इसलिये करी है कि उसके बिना काम रूक जायेंगे, तो इन्सान को यह सोच गुमराह करती है। हरगिज न दबो किसी ऐसे शख्स से जो बुरा है पर आप उसमे अपना फायदा देख रहे है।

२४५८) नेक अन्जाम की खुशहाली उन्ही के लिये है जिनमे ईमानदारी है और अपने फर्जों में कमी नहीं लाते, जिनमे ये खासियते पाई जाती है।

२४५९) बुराई सिर्फ खयालों तक ही रहे तो अच्छा है क्योकि जिसने भी इन खयालों पर अमल किया वह बदअमली में शरीक हो गया इसलिये बुरे खयालों को जुबान से बाहर निकालना मना है।

२४६०) वह सारी तदबीरे (उपाय) जो इन्सान की मुसीबतों और तकलीफों में बचाव के लिये इस्तेमाल होती है वह जायज और अल्लाह के रहमो-करम से है।

२४६१) जो चीज चलने से हासिल नहीं होती, वह ठहरने से हासिल हो जाती है। जो राज पैसे जमा करने में न पाया जाय, वह खर्च करने में जरूर पाया जायेगा। जिसे सोनेवाला दरयाफ्त न कर सके उसे जगानेवाला जरूर दरयाफ्त कर लेगा।

२४६२) दरिया पार करने के लिये कश्ती जरूर सबब है लेकिन भंवर से बचने के लिये दुआओं का सफीना चाहिये।

२४६३) इन्सानी अक्ल की तमाम ताकते मकडी के कमजोर जाले के समान बेबस है।

२४६४) वादा खिलाफी करने से बेहतर है कि सलीके से इनकार कर दिया जाये।

२४६५) जो चलते हुये एक बार भी मुड कर पीछे न देखे ऐसी मगरूर तमन्नाओं का पीछा मत करो।

२४६६) जिन्दगी हमारे बस में नहीं मगर दूसरों को खुश रखना हमारे इख्तियार में है।

२४६७) कितनी हसीन है वह सादगी जो आराइश के वगैर मुतास्सिर (प्रभावित) करे।

२४६८) सिर्फ उसकी जीत से मांगो जो किसी की मोहताज नहीं।

२४६९) दूसरों का दिल जीतने वाला जेवर इन्सान का अखलाक (चरित्र) ही होता है।

HHH(२३०)HHH

२४७०) शिकस्त चाहे कितनी ही बडी हो, वो हमेशा वक्ती होती है और दोबारा अधिक बेहतर मनसूबा बंदी (नियोजन) के जरिये फतह (विजय) मे तबदील करी जा सकती है।

२४७१) जिन्दगी एक सहरा है। जगह-जगह खारदार झाडियां, नुकीले पत्थर और तपती धरती है जहां कदम-कदम पर इन्सान लडखडा जाता है। इन राहों पर इन्सान एक बार भटक जाये तो हमेशा भटकते रहता है।

२४७२) जिन्दगी बाग की तरह है जहां फूलों के साथ-साथ काँटे भी होते है और गर्मी, सर्दी, बहार, खिजां सारे मौसम उस बाग को सहने पडते है।

२४७३) जिन्दगी नशे व फराज (उतार-चढ़ाव) का दूसरा नाम है जहां किसी के लिये दु:ख, आंसू और गुरबत है और किसी के लिये दौलत, खुशी और ऐश व इशरत है।

२४७४) जिन्दगी तपते सहरा की तरह है जहां से पांव को रेत की तपिश से बचा बचा कर चलना पडता है।

२४७५) दुनिया किसी के हाथ का खिलौना नहीं है बल्कि यहां का हर शख्स इस निजाम का हाकिम (राजा) और हर शख्स इस राज्य का नागरिक है। हर शख्स जबाब देह है अपने-अपने अच्छे बुरे अमलों का।

२४७६) अच्छी और नेक सोचे आदमी के जिस्म से खून साफ करती है, उसे हलाल कमाई करने पर उकसाती है। अच्छी सोचों पर अकीदत हो तो इन्सान को अच्छा नसीब, नसीब होता है।

२४७७) शमा बनने के दावे से परवाना बन जाना ज्यादा फखर की बात है।

२४७८) खुदाये तआला के लिये खिदमत कर। लोगों के दर से तुझे कुछ नहीं हासिल होगा।

२४७९) जो इश्क सिर्फ रंग रूप की खातिर होता है वह दरसल इश्क नहीं बल्कि झूठ है और उसका अन्जाम शर्मिन्दगी और रुसवाई के सिवा कुछ भी नही है।

२४८०) चमगादड सूरज के नहीं बल्कि हकीकत में खुद अपने आपके दुश्मन होते है।

२४८१) पत्थर मौसमे बहार में सर सब्ज नहीं होता। खाक बन जा कि तुझसे रंग बिरंगे फूल खिलेंगे।

२४८२) हमारे अन्देशे हमे धोखा देते है और हमे उन अच्छाईयों से महरूम करते है जिनको हम अपनी कोशिश से हासिल करते है।

२४८३) दो घूंट अल्लाह को बडे प्यारे है एक गुस्से का और दूसरा सब्र का।

२४८४) जब मौत हमे अपने वक्त में से एक लम्हा भी नहीं देती तो हमे क्यों मौत को अपनी जिन्दगी से कोई लम्हा दे।

२४८५) दो कदम खुदा को निहायत पसन्द है। एक जो फर्ज नमाज के लिये उठें और दूसरा जो किसी की अदायत (बीमार को देखने जाने) के लिये उठे।

२४८६) अगर आपको अपनी आमदनी से कम खर्च करने का तरीका आता है तो समझ ले कि आपको पारस पत्थर मिल गया। ईमानदारी और मुहब्बत को अपना साथी बना लो और अपनी आमदनी से कम खर्च करो, तब आपकी जेब भारी होने लगेगी। देनेवाला खुदा आपको और ज्यादा देगा। जरूरियात आपको परेशान नहीं करेगी। भूख आपको डंक नहीं मारेगी और सर्दी में आपको ठिठुरना नहीं पडेगा।

२४८७) पुरानी स्मृतियों को दिल में ही दबा रहने दे। स्मृतियां दिल को गुदगुदाती ही अच्छी लगती है। कई बार अतीत को वर्तमान में बदला देखकर कुछ अच्छा अहसास नहीं होता है। महकते हुये गुलशन को एक उजडे दयार के रूप में देखना बहुत अधिक कष्टकारी होता है।

२४८८) इल्म एक ऐसी रोशनी है जो जिहालत में चमकती है। हर एक चीज का रास्ता है और जन्नत का रास्ता भी इल्म ही है। इल्म एक ऐसा हथियार है जो हर बुराई को मार देता है। इल्म से मुहब्बत करना अल्लाह से मुहब्बत करना है। इल्म इन्सान को दुनिया में इज्जत और कामयाबी बख्शाता है। जिसके पास इल्म की दौलत है वह दुनिया का सबसे खुशनसीब इन्सान है।

२४८९) अगर दिल में सच्चाई हो तो किरदार में हुस्न पैदा होता है और किरदार में हुस्न हो तो घर में खुशगवार माहौल पैदा होता है। जब दिलों में बात का फर्क आ जाये तो रवय्यों में फर्क आ जाता है।

२४९०) जिसको गुस्सा देर से आता है वह बहुत ही अकलमन्द है और जो जल्दी नाराज हो जाता है वह अपनी बेवकूफी जाहिर करता है।

२४९१) मूर्ख जब तक खामोश रहे, अकलमन्द शुमार होता है। अपने खयाल में अपने आपको अकलमन्द मत समझो। खुदा से

डरो और बुराई से बाज रहो।

२४९२) अकलमन्द शख्स वह है जो अपने आमाल की तकमील नेकी से कर सकता है।

२४९३) जो लोग बीच का रास्ता इख्तियार करते है वे किसी के मोहताज नहीं होते।

२४९४) आंख दिल का दरवाजा है। तमाम आफतें इसी राह से दाखिल होती है।

२४९५) जो शख्स अपना राज पोशीदा रखता है गोया वह अपनी सलामती अपने कब्जे में रखता है।

२४९६) इन्सान की काबलियत उसकी जबान के नीचे पोशीदा है, उसकी पोशाक से नहीं।

२४९७) गम हमे सुनाये जाते है। हम किसी को अपना गम सुनाते नही बल्कि किताबों में लिख देते है।

२४९८) किसी के दिल को खुश करना अफजल अमल है। कोई उदास हो, बेचैन हो तो घडी दो घडी उसके पास बैठकर उसकी बात सुन लेनी चाहिये। कोई जरूरत मन्द हो और आपसे कह नही पा रहा हो तो उसे टटोल कर उसकी जरूरत मे काम आया करो।

२४९९) इन्सान गलतियों का पुतला है लेकिन जो गलती सुधार ले और उसे फिर से न दोहराये तो वह बेहतर है। उसके दर पर इन्सान की बडी से बडी गल्ती माफ हो जाती है यदि इन्सान पश्चाताप के आंसुओं से धुल कर पाक हो जाये।

२५००) लिबास में सादगी अपनाओ। अपनी शान और बडाई दिखाने के खयाल से लिबास धारण किया जाये तो वह बुरा है।

२५०१) रोजी कमाते वक्त अपनी इज्जत का खयाल करो। दूसरों के हक अधिकार का खयाल करो। अपने फर्ज का ख्याल रखने में बरकत है। हलाल कमाई करने और हराम कमाई से बचने में बरकत है।

२५०२) सब्र के साथ जिन्दगी बसर करना सीखो। थोडी चीज पर गुजर करना वह खजाना है जो कभी खाली नहीं होता है।

२५०३) कोई जुल्म करे या बुरा बर्ताव करे तो उसके साथ वैसा ही बुरा बर्ताव करना कोई काबिले-तारीफ नहीं है। दुनिया का दस्तूर है कि अच्छा बर्ताव करने वालों के साथ ही हम अच्छा बर्ताव करते है। तारीफ के काबिल वो ही है जो बुरा बर्ताव करने वालों के साथ भी अच्छा बर्ताव करे।

२५०४) नसीहते दवाई का काम करती है, इसलिये नसीहतों पर अमल करना अकलमंदी है और मुसीबतों से छुटकारा पाने की राह भी है।

२५०५) ईश्वर से डरो यह भी एक नसीहत ही है जो आम बोल चाल में बुजुर्गों द्वारा बोली जाती है लेकिन इससे नसीहत कोई नहीं लेता। अगर ले ले तो हर कोई बुराई से बाज आये, और औरों का दिल दुखाने से डरे।

२५०६) कोई शख्स तुमसे उस वक्त तक मुतास्सिर नहीं हो सकता जब तक तुम्हारे दिली जज्बात तुम्हारे लहजे में असर न दिखाये।

२५०७) ख्वाहिशात घने जंगल की तरह है जिनमे भटकते हुये उम्र बीत जायेगी। मगर मंजिले मकसूद का रास्ता नही मिलेगा।

२५०८) बेफिक्र लोगों की मजलिस में न बैठे क्योकि लापरवाह लोगों के साथ से आदमी के वजूद में भी लापरवाही की आदत पैदा होती है।

२५०९) हौसलेमन्द वही है जो अपनी तकलीफों की परवाह नही करे और दूसरों की खुशी और सहूलियत का खयाल करके अपनी सुविधाये कुर्बान कर दे।

२५१०) अपने लिये और उसूल, दूसरों के लिये उसूल अलग इन्साफ भरी सोच नहीं है।

२५११) हर काम सिर्फ उस वक्त तक मुश्किल लगता है जब तक कि उसे सर अन्जाम देने के लिये पहला कदम न उठा लिया जाये।

२५१२) हर छोडकर जानेवाला शख्स बेवफा नहीं होता और इसी तरह हर साथ देनेवाला शख्स आपका अपना नहीं होता।

२५१३) अच्छे अखलाक यानि अच्छा चरित्र हो तो अच्छी आदतें आदमी की जिन्दगी का हिस्सा बन जाती है जो आदमी को मुसीबतों और परेशानियों से बचाये रखती है।

२५१४) दूसरों की पसन्द का खयाल रखना नेकी है। जो बात अपने लिये पसन्द करते हो वो ही दूसरों के लिये भी पसन्द करो।

२५१५) अपने लिये महंगी और अच्छी चीज पसन्द करना तथा दूसरों को उपहार में खराब, न इस्तेमाल की चीजे सस्ते दामों में खरीदकर देना ईमान नही है।

२५१६) खुदा का नाम लें और अपने खयालात में नेकी लाये, अपना अमल अच्छा करें, अपने सीरत व किरदार को ऊंचा उठायें। यह सब कर पाये तो ही खुदा का नाम लेने में बरकत है और अपना बर्ताव सुधरता है।

२५१७) दर्द की हद तक प्रेम करो। सिर्फ वो ही प्रेम कामयाब हो सकता है जिसमे आप बिना किसी बदले के केवल अपनी तरफ से देते हो, बिना उम्मीद के, बिना मांग के। जब आप इतने खुले और उदार मन के साथ जीते है तो हर किस्म के तोहफे आपके पास स्वाभाविक रूप से आने लगते है।

२५१८) काम से गलती, गलती से तजुर्बा; तर्जुबे से अकल, अकल से खयाल और ख्याल से नई चीजे वुजूद में आती है।

२५१९) कोई शख्स तुमसे उस वक्त तक मुतास्सिर नहीं हो सकता जब तक तुम्हारे दिली जज्बात तुम्हारे लहजे में असर न दिखाये।

२५२०) इल्म की चाहत में शर्म करना मुनासिब नहीं क्योकि जहालत शर्म से बदत्तर है।

२५२१) अपनी खुशी दूसरे पर कुर्बान कर दो। इन्सान की जिन्दगी, उसका माल, उसकी औलाद, उसकी मौत ये सब खुदा के लिये है।

२५२२) बात को मान लेने में दुनिया के सारे मसले हल हो जाते है लेकिन बन्दा बन्दे की बात नहीं मानता, खुदा की बात नही मानता और अनगिनत परेशानियों में गिरफ्तार हो जाता है।

२५२३) जो शख्स लोगों से कनारा कशी करता हो उससे मिलो और जो शख्स लोगों से मिलने का आदी हो उससे कनारा कशी इख्तियार करो।

२५२४) हमेशा खुदा का खौफ रखो और बदी से बचो। इस अमल से इन्सान की जान व माल व इज्जत हर हाल के नुकसान से महफूज रहेगी।

२५२५) अगर तुम गुनाह पर आमादा हो तो ऐसी जमीं तलाश करो जहाँ खुदा न हो।

२५२६) तीन चीजें इन्सान को बरबाद कर देती हैं- हिर्स, हसद, गम।

२५२७) तीन चीजें कभी कोई नहीं चुरा सकता- अक्ल, इल्म, हुनर।

२५२८) खौफे खुदा जो अल्लाह तआला से डरता है खुदा उसके लिये आसानी पैदा कर देता है और ऐसी जगह से रिज्क देता है जिसके बारे में उसे गुमान तक नहीं होता।

२५२९) तुम सब में मुझको ज्यादा महबूब और आखिरत में सबसे ज्यादा करीब मेरे वह शख्स होगा जिसका अखलाक अच्छा होगा और तुम सब में मुझको सबसे ज्यादा बुरा लगनेवाला और आखिरत में मुझसे सबसे अधिक दूर रहनेवाला वह शख्स है जिसका अखलाक नहीं होगा।

२५३०) आपके बद अमल दूसरों को दु:ख और नुकसान पहुंचा सकते है। इसके बुरे असर से दूसरे लोग भी इन बीमारियों की चपेट में आ जाते है। जमीर को जख्मी करने के जिम्मेदार वही है जिनका बर्ताव बुरा है और दिलों को दुखानेवाला है।

२५३१) लोगों से नरमी का सुलूक करो। तुम जिस किसी से भी मिलते हो वह जिन्दगी की कसमकस जंग लड रहा होता है जो एक सख्त जंग है।

२५३२) कुदरत ने हर चीज में गुन्जाइश रखी है। किसी के होने या ना होने से हमे सिर्फ वक्ती फर्क महसूस होता है। हमेशा की कमी महसूस नहीं होती।

२५३३) सबसे अच्छा है सच्चा रास्ता। सत्य पर चलने वाला व्यक्ति किसी दुख-द्वंद में नहीं पड़ता, निश्चिंत होकर जीवन जीता रहता है।

२५३४) इन्सान की हलाकत तीन चीजों में है- १) गुरुर, २) लालच और ३) जलन हसद। गुरुर और घमन्ड से दीन की हलाकत है इसी वजह से शैतान पर फटकार व मार पडती है और लालच नफ्ज का दुश्मन है इसी वजह आदम जन्नत से जमीं पर आया। और हसद यानि जलन की वजह से ही काबिल ने हाबील का कत्ल किया।

२५३५) इल्म तलाश से बढ़ता और सवाल से हासिल होता है। इल्म खजाना है और सवाल इसकी कुंजी। सवाल से उकताओ नहीं क्योंकि इससे तुम पर इल्म के नये नये दरवाजे खुलेंगे। जिन बातों के बारे मे सवाल करने से शर्माओगे उनसे बुढ़ापे में जाहिल हो जावोगे। जो कोई तलबे इल्म में शर्माता है उसका इल्म हकीर रहता है।

२५३६) मैने जंग के औजारों को इस्तेमाल किया और पत्थरो को भी एक जगह से दूसरी जगह उठाकर ले गया मगर कर्ज से ज्यादा बोझिल मैने किसी भी चीज को नहीं देखा।

HHH(२३३)HHH

२५३७) गुनाह की शुरूआत मकडी के तार की तरह नाजुक होती है लेकिन जहाज के रस्से की तरह मजबूत और नाकाबिले शिकस्त होती है।

२५३८) बेहतरीन दोस्त खुदा के नजदीक वो है जो अपने दोस्तों के लिये बेहतरीन हो और बेहतरीन पडोसी खुदा के नजदीक वह है जो अपने पडोसियों के हक मे बेहतरीन हो।

२५३९) ईमानवालों मे सबसे काबिल ईमानवाला वो है जिसकी आदत व अखलाक सबसे अच्छे है और वह अपने घरवालों पर सबसे ज्यादा मेहरबान हो।

२५४०) रहम करनेवालों पर रहमान रहम करता है, तुम जमीन वालों पर रहम करो, आसमान वाला तुम पर रहम करेगा। वो शख्स हम में से नही जो हमारे छोटों पर रहम न करे और हमारे बडों की इज्जत भी न करे और बुराई करने से मना भी नहीं करे।

२५४१) कट्टरता, अलगाव वाद, फिरका परस्ती किसी भी मजहब में नहीं होनी चाहिए। वही धर्म महान है जो राष्ट्र रक्षा की प्रेरणा दे।

२५४२) अल्लाह के रसूल ने मुझसे (अन्नास से) कहा, बेटा, अगर तुम कर सको तो अपने दिल में सुबह से रात तक और रात से सुबह तक किसी के प्रति दुर्भावना न रखो। फिर उन्होंने कहा, ऐ मेरे बेटे। मेरी शरीअतों (विधानों) में से एक यह है कि जो मेरी शरीअतों से प्रेम करता है, वह वस्तुत: मुझसे प्रेम करता है।

२५४३) अल्लाह के सबसे बड़े दुश्मन वे लोग हैं, जो इस्लाम को कबूल करते हैं और भ्रष्टाचार करते हैं और जो बिना किसी वजह से आदमियों का खून बहाते हैं।

२५४४) उनसे प्रेम करना, जो अल्लाह से प्रेम करते हैं और उनसे नफरत करना, जो अल्लाह से नफरत करते हैं और अपनी जुबान से अल्लाह का नाम लेते रहना। सभी मनुष्यों के साथ वैसा ही व्यवहार करो, जैसा तुम अपने लिए चाहते हो और वह न करो, जैसा तुम नहीं चाहते।

२५४५) जकात (दान) देना प्रत्येक इंसान का फर्ज है। जिसके पास ऐसा करने की कुव्वत (क्षमता) नहीं है, उसे एक अच्छा काम करना चाहिए या एक बुराई से बचना चाहिए। यही उसकी जकात होगी।

२५४६) जब तुम बोलो तो सच बोलो, जब तुम वचन देते हो, तो उसे पूरा करो, अपने दायित्व का निर्वाह करो, व्यभिचार न करो, पवित्र बनो, बुरे विचारों को मन में मत लाओ, अपने हाथ को प्रहार करने से तथा उस चीज को ग्रहण करने से जो अवैध और बुरी है, बचाओ। अल्लाह के सच्चे खिदमतगार वे हैं, जिन्हें देखते ही अल्लाह की सुधि आ जाती है और अल्लाह के सबसे बुरे सेवक वे हैं, जिनके साथ शरारत करने की कहानियां जुड़ी हुई हैं और जो दोस्तों को अलग करते तथा भले लोगों की कमियां ढूंढ़ते हैं।

२५४७) जो एक अल्लाह और आखिरत पर ईमान लाता है, उस इंसान को अच्छा बोलना चाहिए या फिर चुप रहना चाहिए। जो एक अल्लाह और आखिरत पर ईमान लाता है, उस इंसान को अपने पड़ोसियों की हानि नहीं करनी चाहिए।

२५४८) भूखे को खाना दो, बीमार की देखभाल करो और अगर कोई अनुचित रूप से बन्दी बनाया गया है तो उसे मुक्त करो। आफत के मारे प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करो।

२५४९) सच्चा मोमिन खुशहाली में अल्लाह का शुक्रिया अदा करता है और जब वह मुफलिसी में होता है तो उसकी इच्छा के प्रति समर्पित होता है।

२५५०) सबसे अच्छा इंसान घर वह है, जहां यतीम पलता है तथा सबसे बुरा इंसान घर वह है, जहां यतीम के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है।

२५५१) बुरी जुबान की खराबी का प्रायश्चित मजहबी हिदायतों के पालन से नहीं हो सकता। एक व्यक्ति एक अच्छा इंसान तब तक नहीं हो सकता, जब तक उसका दिल और उसकी जुबान अच्छी न हो।

२५५२) वह व्यक्ति विवेकी और विचारवान् होता है, जो अपनी शारीरिक कामनाओं को प्रशमित करता है और नेमत (वरदान) की उम्मीद करता है तथा वह व्यक्ति अज्ञानी है, जो अपनी वासना की भूख के पीछे दौड़ता है तथा साथ ही अल्लाह से क्षमा-याचना करता है।

२५५३) वस्तुत: तुम लोगों में से मेरा सबसे प्यारा और कमायत के दिन मेरे सिंहासन के सबसे समीप रहने वाला व्यक्ति वह होगा जो तुम लोगों में से जकात देने में सबसे अच्छा हो और तुम लोगों में से उस पर मेरी नफरत सबसे अधिक होगी और आखिरत के दिन मेरे सिंहासन से वह सबसे दूर होगा, जो वाचाल होगा, जो बकवादी होगा और जो बड़बोला होगा और जो अहंकारी होगा।

२५५४) तुम्हारी मदद जरूर की जाएगी तथा तुम महान्, उच्चता को प्राप्त करोगे, और तुम विजयी होगे, जो भी इनमें यह जानता

है, उसे अल्लाह से डरना चाहिए और सुविचारित कार्य करना चाहिए तथा गलत काम से दूर रहना चाहिए और जो कोई जान-बूझकर अल्लाह के खिलाफ झूठ बोलता है, उसे जहन्नुम की आग में जगह मिलेगा।

२५५५) जो भी योग्य और सक्षम है, पर जो अपने लिए या दूसरों के लिए काम नहीं करता, अल्लाह उस पर इनायत (कृपा) नहीं करता। अल्लाह उस पर इनायत करता है, जो खुद अपनी मेहनत से अपनी जीविका उपार्जित करता है, न कि भीख मांगकर।

२५५६) अल्लाह अपने नबियों (धर्म प्रचारकों) के प्रति जो प्रेम करता है वह माता के द्वारा शिशु के प्रति किए जाने वाले प्रेम से अधिक होता है। अल्लाह की तू उसी प्रकार अभ्यर्थना कर जैसा कि तू उसे देखने पर करता, क्योंकि भले ही तू उसे नहीं देखता, पर वह तुझे देखता है।

२५५७) अल्लाह की नजर में सर्वोत्कृष्ट सहचर वह है, जो अपने सहचरों के लिए सर्वोत्कृष्ट हो, और अल्लाह की नजर में सबसे अच्छा पड़ोसी वह है, जो अपने पड़ोसियों के लिए सबसे अच्छा हो।

२५५८) जो मेरी आज्ञा मानता है, वह अल्लाह की आज्ञा मानता है और मेरी खिलाफत (विरोध) करता है, वह अल्लाह की खिलाफत करता है और जो कोई हाकिम की आज्ञा मानता है, वह मेरी आज्ञा मानता है और जो हाकिम की खिलाफत करता है, वह मेरी खिलाफत करता है।

२५५९) जो अल्लाह के लिये खुद को झुकाता है, अल्लाह उसे बहुत ऊंचा करता है, वह अपने मन में भले खुद को छोटा करे, पर वह लोगों की निगाहों में बड़ा होता है। और जो घमण्डी और उद्धत है, उसे अल्लाह तुच्छ समझता है, वह लोगों की निगाहों में छोटा होता है तथा अपने मन में खुद को बड़ा समझता है, इसलिए यह उनके लिए कुत्ते या सुअर से भी अधिक तुच्छ हो जाता है।

२५६०) जो रोजा (उपवास) रखने वाला आलस्य और प्रमाद का त्याग नहीं करता, अल्लाह उसके खाना-पीना छोड़ने की कोई परवाह नहीं करता, यानी अल्लाह उसके रोजे को कबूल नहीं करता।

२५६१) अल्लाह कहता है, जिसे मैं अपना बन्दा समझता हूं, मैं उसकी श्रुति हूं जिससे वह सुनता है, और मैं उसकी दृष्टि हूं जिससे वह देखता है, मैं उसका हाथ हूं जिससे वह पकड़ता है और मैं उसका पांव हूं, जिससे वह चलता है।

२५६२) तुम किसी बहरे को या गैरहाजिर को नहीं पुकार रहे हो पर दरअसल उसे, जो सुनता और देखता है और वह तुम्हारे साथ है और जिसकी तुम इबादत कर रहे हो वह तुम्हारे ऊंट की गर्दन से भी ज्यादा तुम्हारे नजदीक है।

२५६३) अल्लाह की नजर में वह व्यक्ति सर्वाधिक प्रिय और कयामत के दिन उसके सिंहासन के सर्वाधिक निकट होगा, जो एक न्यायी नेता होगा और अल्लाह की नजर में सभी से तुच्छ तथा आखरत के दिन उसके सिंहासन से सबसे दूर एक अत्याचारी नेता होगा।

२५६४) अल्लाह हाकिम (न्यायाधीश) के साथ तब तक रहता है, जब तक वह कोई गलती नहीं करता; परन्तु जैसे ही गलती करता है, अल्लाह उसे छोड़ देता है और शैतान उसकी जगह पर बैठ जाता है।

२५६५) अल्लाह था और उसके साथ कुछ नहीं था- और उसने पानी के ऊपर अपना सिंहासन बनाया और सारी चीजें उसकी स्मृति के पटल पर थीं।

२५६६) इस्लाम संयम और आज्ञापालन है। मनुष्य में सर्वोत्कृष्ट विनम्रतापूर्वक किया गया दान है। सबसे अच्छा हिज्र (वियोग) उसका त्याग करना जिसका अल्लाह ने निषेध किया है।

२५६७) एकाधिकार इस्लाम में गैरकानूनी है। प्रत्येक धर्म का एक विशिष्ट गुण होता है तथा इस्लाम का विशिष्ट गुण है विनम्रता।

२५६८) जो भी बुरे काम करने वाले के साथ इसलिए चलता है कि वह उसे सुधार लेगा और हमेशा यह जानता है कि वह बुरा है, वह इस्लाम से दूर हो जाता है।

२५६९) वह कभी जहन्नुम (नरक) में प्रवेश नहीं करेगा, जिसके दिल में राई के दाने के बराबर भी ईमान होगा और वह कभी जन्नत (स्वर्ग) में प्रवेश नहीं कर सकेगा, जिसके दिल में राई के एक दाने के बराबर भी गर्व होगा। तुम तब तक जन्नत में प्रवेश नहीं कर सकोगे, जब तक ईमान न लाओगे, और तब तक तुम्हारा ईमान पूरा नहीं होगा, जब तक तुम परस्पर प्यार न करोगे।

२५७०) ईमान (की निशानी) क्या है ? अगर तुझे अपने कामों से खुशी होती है और तेरा बुरा काम तुझे दु:ख पहुंचाता है, तो तू

ईमानवाला है। और गुनाह क्या है ? अगर कोई चीज तुझे अन्दर से काटे, तो वही गुनाह है।

२५७१) ईमान का सबसे अच्छा अंश यह कहना है, अल्लाह के अलावा और ईश्वर नहीं है, तथा इसका छोटे से छोटा रूप नुकसान पहुंचाने वाली चीजों को रास्ते से हटा देना है।

२५७२) निम्नलिखित तीन बातों को जो अपने भीतर धारण करता है, वह ईमान की मिठास को चखता है, जैसे-जो कोई अल्लाह और इसके रसूल को सबसे ज्यादा प्यार करता है, जो कोई (अल्लाह के) बन्दे को अल्लाह के लिए ही प्यार करता है, जिसे अल्लाह के विश्वासघात से बचा लिया, वह विश्वासघात की और पुन: उन्मुख होने से उसी प्रकार बचता है, जैसे वह (नरक की) आग में कूदने से बचेगा।

२५७३) ईमान सभी प्रकार की हिंसाओं का नियमन करता है। मोमिनों को हिंसा न करने दो। वह ईमानवाला नहीं है, जो अपनी अमानत को पूरा नहीं करता, और उसका कोई दीन (धर्म) नहीं है, जो अपने वादों को पूरा नहीं करता। तुममें से कोई तब तक ईमानवाला नहीं होगा, जब तक वह मुझे अपने बाप और अपने बेटे और सारी इन्सानियत से अधिक प्रिय नहीं समझता।

२५७४) तुममें से कोई अगर गलती देखे, तो उसे अपने हाथों से दूर करे और यदि वह (दूर) न कर सके, तो वह अपनी जुबान से (उसके विरोध में) बोले, और यदि वह (इतना भी) नहीं कर सके, तो वह अपने दिल में प्रायश्चित करे- और यह ईमान का छोटे से छोटा रूप है।

२५७५) अगर तुम अल्लाह पर ईमान रखते हो क्योंकि उस पर ईमान रखा ही जाना चाहिए, तो वह तुम्हें ठीक वैसे ही देगा, जैसे वह परिन्दों को देता है।

२५७६) अत्यधिक ज्ञान अत्यधिक इबादत से बेहतर है, दीन का आधार संयम है। रात को एक घण्टे ज्ञानदान करना रातभर इबादत करने से बेहतर है।

२५७७) जो भी ज्ञान की खोज करता है और उसे पा जाता है, उसे दो इनाम मिलेंगे, एक इनाम ज्ञान की कामना के लिए और दूसरा उसे पाने के लिए, इसलिए भले ही उसे वह न मिले, पर उसे एक इनाम तो मिलेगा ही।

२५७८) ज्ञान के द्वारा व्यक्ति नेक की ऊंचाइयों तक पहुंचता है, और प्रतिष्ठा पाता है, इस संसार में बादशाहों से मैत्री करता है तथा दूसरे (आखिरत या भविष्यत् जीवन) में परिपूर्ण आनन्द प्राप्त करता है।

२५७९) ज्ञान प्राप्त करो। वह व्यक्ति को सही और गलत में विवेक करने के योग्य बनाता है। वह जन्नत के रास्ते को उजाला करता है, वह रेगिस्तान में हमारा दोस्त है, एकाकीपन में हमारा समाज है, मित्रहीन का साथी है, वह हमें खुशियों का रास्ता दिखाता है, वह मुसीबतों में हमारी रक्षा करता है, वह दोस्तों के बीच एक आभूषण है और दुश्मनों के खिलाफ कवच है।

२५८०) जो कोई गुस्से को प्रकट करने की ताकत रखते हुए भी उसे दबाता है, उसे अल्लाह सभी प्राणियों के सन्मुख कयामत के दिन बुलाएगा और बहुत नेमतें देगा।

२५८१) अगर कोई फिजूल किसी गौरैया को मारे, तो वह गौरैया आखिरत के दिन अल्लाह के सामने जोरों से चीख कर कहेगी, ऐ मेरे मालिक। फलाने-फलाने आदमी ने मुझे फिजूल मारा है, उसने किसी भले के लिए मुझे नहीं मारा।

२५८२) चुगली व्यभिचार से भी बुरी है। अल्लाह तब तक चुगलखोर को माफ नहीं करेगा, जब तक उसका साथी (जिसकी उसने बुराई की है) इसके लिए उसे माफ नहीं कर देता।

२५८३) यदि किसी के सामने इंसान की चुगली की जाती है और उसमें उसकी सहायता करने की क्षमता है और वह उसकी सहायता करता है, तो अल्लाह उसकी इस दुनिया में और आखिरत में मदद करेगा और यदि वह उसकी सहायता करने की क्षमता के बावजूद उसकी सहायता नहीं करता, तो अल्लाह इसके लिए उसे इस दुनिया में और आखिरत में मुजरिम ठहराएगा।

२५८४) थके हुए के दिल को खुश करने और दु:खी व्यक्ति के कष्ट को दूर करने का विशिष्ट पुरस्कार मिलता है। आफत के दिनों में ऐसे काम की याद प्रचण्ड धारा के समान आती है और हमारे बोझ को बहाकर ले जाती है।

२५८५) जो अपने मित्रों की आवश्यकता के समय मदद करता है और जो सताए हुए की मदद करता है, उसकी अल्लाह आखिरत के दिन मदद करेगा।

२५८६) कौन-से काम सबसे बेहतरीन हैं ? एक आदमी के दिल को खुश करना, भूखे को खिलाना, मुसीबत में पड़े हुए की मदद

करना, दु:खी व्यक्ति के दु:ख को हल्का करना और पीड़ित व्यक्ति पर हुए अत्याचारों को दूर करना।

२५८७) जो अपने भाई के अभावों को दूर करने की कोशिश करता है, वह इसमें सफल हो या न हो, अल्लाह उसके गुनाहों को माफ करेगा।

२५८८) अल्लाह के सभी प्राणी उसका परिवार है और अल्लाह उसे सबसे अधिक चाहता है, जो अल्लाह के प्राणियों की ज्यादा से ज्यादा भलाई करता है।

२५८९) जो कोई उसके प्राणियों पर दया करताहै, उस पर अल्लाह भी दया करता है, इसलिए दुनिया में आदमी के प्रति दया करो, भले ही वह अच्छा हो या बुरा और बुरे के प्रति दया करने का अर्थ उसे बुराई से बचाना है ताकि वे जो जन्नत में हैं, तुम पर दया करें।

२५९०) वास्तव में मेरा हृदय अपने अनुयायियों के लिए करुणा और एकाकीपन से ढका हुआ है और वास्तव में मैं अल्लाह से दिन में एक सौ बार क्षमा की याचना करता हूं।

२५९१) वह हममें से नहीं है, जो बच्चों के प्रति स्नेहवान् नहीं होता और बुजुर्गों की प्रतिष्ठा का सम्मान नहीं करता, और वह हममें से नहीं है, जो भलाई का हुक्म नहीं देता और बुराई को नहीं रोकता।

२५९२) सूद लेनेवाला, और सूद देनेवाला और सूद के लिए कागजात लिखनेवाला तथा उसकी गवाही देनेवाला ये सब समान रूप से गुनहगार हैं।

२५९३) जो यह चाहता है कि अल्लाह उसे कयामत के दिन के गमों और आफतों से बचाए, उसे अपने गरीब कर्जदार के पास आने में देरी करनी चाहिए या उनके कर्ज कुछ या पूरा माफ कर देना चाहिए।

२५९४) मेरी प्रशंसा करने में हद से बाहर न जाओ, मैं तो अल्लाह का खिदमतगार हूं, इसलिए मुझे अल्लाह का खिदमतार या उसका नबी (सन्देशवाह) कहो।

२५९५) किसी आदमी के लिए भेंट या दान देना और बाद में उसे वापस ले लेना वैध नहीं है। यह तो केवल अभिभावक के लिए मुनासिब हो सकता है, जिसने अपने बच्चे को कुछ दिया हो। जो अपनी सौगात या दान को वापस लेता है, वह ऐसे कुत्ते के समान है, जो अपने वमन किए हुए को खुद खाता है।

२५९६) उस शख्स को बुरा समझो जिसका कोई दोस्त नही और उसे इससे भी ज्यादा बुरा समझो जिसे एक अच्छा दोस्त मिला हो और वह उसे खो दे।

२५९७) जो शख्स झूठ बोलता है उससे रहमत के फरिश्ते मीलों दूर हो जाते हैं, उस बदबू की वजह से जो झूठ से फैली है।

२५९८) अपनी औलाद को अदब सिखाना नेकी है। एक बाप का अपने बेटे पर अदब यानी अच्छे तौर तरीके सिखाने से बढ़कर और कोई मेहरबानी नही।

२५९९) गलती होने पर अफसोस करे। नेक कामों का दारोमदार नीयत पर है और नीयत दिल की सच्चाई से है।

२६००) नारी वह जादूगरनी है, जिसके जादू से आदमी का धर्म और ईमान समाप्त हो जाता है।

२६०१) अपने जाती फायदे के लिये दूसरों को परेशानी और मुसीबत मे डालना गुनाह है।

२६०२) हजरत मोहम्मद ने कहा, मेरे मालिक ने मुझे नौ बातों का हुक्म दिया है १) उस पर बाहरी और अन्दरूनी रूप से श्रद्धा करूं, २) अच्छे और बुरे दिनों में सावधानी से सच बोलूं, ३) अमीरी और गरीबी में संयम बरतू, ४) अपने रिश्तेदारों और सजातियों का फायदा करूं जिनसे मुझे कोई फायदा नहीं होता, ५) उसे भीख दूं, जिसने मुझे इनकार किया, ६) उसे माफ करूं, जिसने मेरा घात किया, ७) अल्लाह का ज्ञान प्राप्त करने में अपनी खामोष्ट रखूं, ८) जब भी बोलूं, तो उसका (अल्लाह का) हवाला दूं, ९) जब मैं अल्लाह के प्राणियों की ओर देखूं, तो वह उनके लिए एक मिसाल जैसा हो।

२६०३) ऐ अल्लाह, मुझे तू अपना प्यार दे, मुझे वर दे कि मैं उनसे प्यार करूं, जो तुझसे प्यार करते हैं, मैं वह काम करूं, जिससे तेरा प्यार मिले, तू अपना प्यार मेरे लिए अपने आपसे, परिवार या धन से अधिक प्यारा बना दे।

२६०४) सुबह और शाम को अल्लाह की इबादत करो और दिन को अपने व्यवसाय में लगाओ। इबादत जन्नत की कुंजी है और इबादत की कुंजी नमाज है।

२६०५) इबादत में अल्लाह के ख्यालों के अलावा दूसरे सब ख्यालों को हटा दे, बोलचाल में कोई ऐसा लफ्ज न बोला जाए, जिसके लिए बाद में अफसोस करना पड़े, दूसरों से लालच न रख या उनसे कोई उम्मीद न रख।

२६०६) ऐ अल्लाह। मुझे एक गरीब आदमी की तरह जिन्दा रख और मुझे गरीब ही मर जाने दे और मुझे गरीबों के बीच ही बढ़ा। ऐ आयशा, किसी गरीब को बिना कुछ दिए- कम से कम आधा खजूर ही सही- वापस जाने को मत कह।

२६०७) तुममें से कोई सिर्फ इसलिए मौत की आरजू न करे कि उस पर कोई आफत आ गयी है और कोई ऐसा करना ही चाहे तो वह कहे, ऐ अल्लाह, मुझे तब तक जीने दे, जब तक मेरे लिए जिन्दगी बेहतर है और मुझे तब मर जाने दे, जब मेरे लिए मौत बेहतर हो जाए।

२६०८) इबादत के अलावा (अल्लाह के) फरमान को कोई नहीं टाल सकता और आदमी की जिन्दगी को भलाई के अलावा कोई नहीं बढ़ा सकता, (आदमी को) जिन्दगी की नेमतें इसलिए हासिल नहीं होती कि वह गुनाहों में फंसा रहता है।

२६०९) पाखण्डी की तीन पहचानें हैं, भले ही वह रोजे रखे, नमाज अदा करे और सोचे कि वह इन्सान है- जब वह बोलता है, तब वह झूठा होता है, जब वादा करता है, तो उससे मुकर जाता है और जब उस पर अमानत सौंपी जाती है, तब वह खयानत (बेईमानी) करता है।

२६१०) क्या तुम नहीं जानते कि आकाशों और धरती का राज्य अल्लाह ही के लिए है और तुम्हारा अल्लाह के सिवा न कोई संरक्षक-मित्र है न ही सहायक।

२६११) निस्संदेह जो कोई भी अपने-आपको अल्लाह के आगे झुका दे और वह उत्तम रीति से कर्म करने वाला है, तो उसके लिए उसके रब के पास उसका प्रतिपादन है। ऐसे लोगों को न कोई भय होगा, न ही वे दुखी होंगे।

२६१२) वह तुम्हारे कामों को सुधार देगा और तुम्हारे गुनाहों को क्षमा कर देगा। जो कोई अल्लाह और उसके रसूक का कहना माने उसने बड़ी सफलता प्राप्त की और यह वह जन्नत है, जिसके तुम वारिस बनाए गए उन कर्मों के बदले जो तुम करते थे।

२६१३) जो बोलता है तो झूठ बोलता है, जो वादा करता है तब वादे को तोड़ देता है, और जो अमानत के सौंपे जाने पर उसें खयानत करता है, वह अल्लाह का नहीं है, बल्कि दिली विरोधी है।

२६१४) वह मोमिन (ईमानवाला) नहीं है, जो व्यभिचार करता है, या जो चोरी करता है, या जो शराब पीता है, या जो लूटता है, या जो गबन करता है।

२६१५) आंखों का व्यभिचार किसी दूसरे की पत्नी को कामना की दृष्टि से देखना है तथा जुबान का व्यभिचार निषिद्ध बातों को कहना है।

२६१६) अपने भाई की आफत पर मौज करते हुए न दिख, क्योंकि अल्लाह उस पर मेहरबान हो सकता है और तुझे आफत में डाल सकता है।

२६१७) किसी भी मादक द्रव्य का पान न करो, क्योंकि सभी बुरे कार्यों की जड़ में यह मादकता होती है और गुनाह करने से सावधान रहो।

२६१८) जिन्दगी मे बहुत से लोगों के नाकाम रहने की वजह आमतौर पर यह होती है कि वह जिन चीजों की तमन्ना करते है उसको पाने की सलाहियतों से महरूम होते है। अगर हर इन्सान अपनी सलाहियत के मुताबिक पाने की आरजू करे तो वह जरूर कामयाब होगा।

२६१९) मसरूफियत अपने अस्ल से फरार है। दुनिया नफ्स है और नफ्स के शोर मे खोकर रूह की पुकार पर क्यो ध्यान दिया जाये।

२६२०) जिस तरह खुद पसंदी जिन्दगी की राहों मे रुकावटें खडी कर देती है उसी तरह खुद एतमादी का न होना भी जिन्दगी को मुश्किल बना देता है। मगर इन दोनों में बहुत बारीक सा फर्क होता है जिसका खयाल लोग नहीं कर पाते।

२६२१) कामयाब वह नहीं जिसकी जीत पर लोग उसकी तारीफ करे बल्कि असल मे कामयाब वह है जो इस तरह जीते कि खुद उसका दिल उस जीत पर मुतमईन हो।

२६२२) इन्सान जिन्दगी में वो सब कुछ नहीं पा सकता जिसकी वो ख्वाहिशें करता है। हमेशा कुछ आरजुएं अधूरी रह जाती है।

२६२३) जो शख्स किसी को अपनी जिन्दगी का अपना दिली राज देता है गोया वह अपनी आजादी उसके हाथ मे देता है।

२६२४) औरत उसी को प्यार करती है, जो दिलावर हो, निडर हो, आग में कूद पड़े। औरत या तो प्यार करती है या घृणा, उसे इसके

अलावा और कोई बीच का रास्ता नहीं आता। सुन्दर औरत रत्न है, अच्छी औरत कोष है। यदि औरत स्वयं आत्म-त्याग और पवित्रता की मूर्ति नहीं है, तो वह कुछ भी नहीं है। औरत निर्बल है और इसीलिए उसे मान-अपमान का दु:ख भी ज्यादा होता है। नरक का द्वार कौन ? नारी।

२६२५) मेहनत से जिन्दगी आसान है। जो मेहनत से जी चुराते है और नसीब के पलटने के इन्तजार में खाली, आलसी और सुस्त बैठे रहते है। उनकी जिन्दगी परेशानियों से भरी रहती है।

२६२६) राज की बाते जानने की कोशिश कभी मत करो क्योकि अगर किसी ने पर्दे की बातें मालूम करने की कोशिश की तो उसका अन्जाम झगडा फसाद ही होगा।

२६२७) बडा बनने के लिये दूसरों को छोटा मत बनाओ यह आदत मर्ज के बराबर है।

२६२८) नसीब में जो है उसे खुशी-खुशी मान लो क्योकि हर शख्स के लिये नसीब जो रब ने तय कर दिया है वही उसकी जिन्दगी में आसानियां और खुशियां लायेगा।

२६२९) जल्दबाजी अच्छी नहीं, दिखावा अच्छा नहीं, फिजूल खर्ची अच्छी नहीं। बेअमल आलिम अच्छा नहीं। दूसरों को देखकर नसीहत हासिल करो।

२६३०) मेहनत में मकसद हो क्योकि बिना मकसद के मेहनत करने का कोई मोल नही। हमारी मेहनत का मकसद इन्सान की बेहतरी के लिये कोशिश हो और हक के लिये हो।

२६३१) किसी एक काम में लगन और दूसरे मे लापरवाही अच्छी नहीं। बेहतरीन अमल वही है जिसमे हर काम दिल लगाकर किया जाये।

२६३२) हर अमल जिन्दगी पर असर करता है। रोजमरा की बोल चाल सम्भल सम्भल कर करनी चाहिये। हासिले कमाल तो यही है कि सोते जागते भी इन्सान अपने हर अमल के प्रति सजग रहे।

२६३३) इन्सान का हर अमल इबादत हो। उसका सोना, जागना, बैठना, मिलना, कमाना, हर काम इबादत की तरह हो।

२६३४) जहां नजदीकियाँ है हक भी वहां पर जुडे होंगे। सभी इस बात की तमन्ना रखते है कि कोई भी रिश्ते मे नजदीकियां हो लेकिन फिर उन रिश्तों में फर्ज भूल जाते है और सिर्फ लेने की उम्मीद रखते है देने की नहीं। जब कि यह नजदीकी नहीं खुदगरजी हुई। नजदीकियों में हुस्ने सुलूक (अच्छा बर्ताव) बहुत बडी अहमियत रखता है।

२६३५) गैर फितरी कैफियत से बचो। न अपने फर्ज को फरामोश करो और ना ही अपने हक से मेहरूम हो। सख्ती ना करो, अपने अमल में आसानियां लाओ।

२६३६) तकलीफे इन्सान को सोचने के लिये मजबूर करती है। सोचने से आदमी अकलमन्द बनता है और अकलमन्दी इन्सान को जीने के काबिल बनाती है।

२६३७) मुबारकबादें देना सीखो। अक्सर लोग दूसरों की खुशियाँ बर्दाश्त नहीं कर पाते। मगर भले लोग वही है जो दूसरों की खुशियां देखकर खुश होते है और उन्हे मुबारकबाद देते है।

२६३८) परहेजगारी हिम्मत का काम है। ऐशो आराम में राहत नही बल्कि परहेजगारी में राहत है। काबिले रश्क वह मालदार शख्स है जो अपनी दौलत खुदा की राह में यानी नेक कामों में खर्च करता है।

२६३९) सब्र आजमाई के साथ नेकी और सच्चाई का दामन पकडे रहो। दुनिया के ऐशो आराम को हासिल करने में खुद को इस कदर भी न उलझाओ कि जिन्दगी का बेशतर हिस्सा उलझे मामलात सुलझाने में ही गुजर जाये।

२६४०) इन्तिहा पसन्द यानि शौक दिल का सुकून छीन लेती है। बुरे अमल तो एक तरफ रहे, अच्छे अमल में भी हद से ज्यादा शौक अच्छे नहीं। इस तरह से जिन्दगी बसर करो कि खुद भी सुकून से रहो और दूसरों के भी काम आते रहो।

२६४१) किसी भी काम को कमतर मत जानो कि जिस को करने में इन्सान को शर्म या झिझक महसूस हो।

२६४२) ईश्वर का न्याय ही अन्तिम न्याय है और वो ही सच्चा हाकिम है जो खुद न्याय करता है और उस दिन धरती पर किसी की बनावटी हुकूमत नहीं रहती।

२६४३) जालिम, मजलूम की दुनिया बिगाडता है और अपनी आखिरत।

२६४४) जिसकी जात से मखलूक को फायदा पहुंचे वह शख्स अल्लाह को पसन्द है।

२६४५) मौके को हाथ से जाने देना रंज व तकलीफ का बाइस होता है।

२६४६) हिकमत मोमिन ही की गुमशुदा चीज है, उसे हासिल करो।

२६४७) अल्लाह से डरो। उसने तुम्हारे गुनाहों को इस तरह छुपाया है कि गोया बख्श दिया।

२६४८) खुदा की इताअत अपनी जान पर जब्र किये बिना हासिल नही होती है।

२६४९) तन्हाई में जहनी सलाहियतें बेदार होती है।

२६५०) मुहब्बत हमेशा अना का मजबूत तरीन खोल तोडती है।

२६५१) दुनिया में सबसे मुश्किल काम अपनी इस्लाह है और सबसे सहज दूसरों की नुक्ताचीनी।

२६५२) अपनी परहेजगारी न जताया करो। अल्लाह परहेजगारों को खूब अच्छे से जानता है।

२६५३) तहरीर एक खामोश जबान है जब कि कलम हाथ की जबान है।

२६५४) तेज लहजा पुर फरेब और गुमराह कुन खुशामद से बेहतर है।

२६५५) आलिम से एक घंटे की बातचीत दस साल के मुताअले से बेहतर है।

२६५६) जुल्म कयामत के दिन अन्धेरों की वजह होगा।

२६५७) गीबत कत्ल से भी अधिक बुरी चीज है।

२६५८) दोस्तों से ही इन्सान पहचाना जाता है। क्योकि बुरे लोग हीबुरे लोगों के हमनशी होते है इसलिये दोस्त बनाने में बड़ी ही एहतियात करनी चाहिये। यह वह समाजी उसूल है जिससे जिन्दगी जन्नत भी बन सकती है और जहनुम भी।

२६५९) रिश्वत इन्सान को खा जाती है, तौबा करना गुनाह को खा जाता है। गीबत अमल को खा जाती है। नेकी बदी को खा जाती है। फिक्र उम्र को खा जाती है। क्रोध अक्ल को खा जाता है। सदका, बल को खा जाता है। इन्साफ जुल्म को खा जाता है और घमण्ड इल्म को खा जाता है।

२६६०) सडक में बीच राह में मत बैठो और अगर बैठो तो राह का हक अदा करो। मुसाफिर कोई रास्ता पूछे तो उसे पता बताओ। बीच सडक में कोई रोडा या पत्थर पडा हो तो उसे हटा दो, फुटपाथ पर कांच या कांटे बिखरे पडे हो तो वह हटा दे। सडक पर कोई दुर्घटना होती देखो तो उसकी मदद को दौड पडो। सडक के बीच किसी तरह की लडाई या दंगा फसाद होते देखो तो बीच बचाव करो और लोगों के बीच सुलह कराओ। सलाम करो और सबका जबाब सलाम से दो।

२६६१) दूसरों की दौलतमन्दी से हमे क्या लेना देना। आदमी को आदमी के दिल से काम पडता है। दिल में नर्मी हो तो ही आदमी दूसरे के काम आता है।

२६६२) अच्छी बात भी एक सदका है। अच्छी बात हर कोई नहीं कर पाता कि यह एक मुश्किल फन है। जो दूसरों का भला सोचे, उसके लिये यह मुश्किल फन आसान है। अगर अच्छी बात न कह पाओ तो सिर्फ मुस्करा ही दो।

२६६३) जो बात छुपाने की हो, उसे अवश्य छुपाओ। कोई राज की बात अगर कोई आपको अपना मान कर कह दे तो उसके राज को अमानत समझो। उस राज को उसकी इजाजत के बगैर किसी से भी मत कहो।

२६६४) अच्छा काम करने के लिये जिद्द करना जायज है। एक सूफी बुजुर्ग का इर्शाद है कि हक पर जोर देने के लिये जिद के लिये जिद के अलावा हर तरह की जिद बुरी है।

२६६५) बर्ताव का ताल्लुक सब पर असर करता है। बर्ताव अच्छा हो या बुरा उसका असर दूसरों की जिन्दगियों को जरूर प्रभावित करता है इसलिये बर्ताव के प्रति लापरवाह ठीक नहीं।

२६६६) अपनी मर्जी से अमल दिल को इत्मीनान देता है बशर्ते इन्सान की नेकनीयत, बामकसद और भरपूर कोशिश के साथ अपनी मर्जी पर अमल हो।

२६६७) दूसरों जैसा बनने की हसरत करता है इन्सान। दौलतमन्द को देख कर दौलत हासिल करने की चाहत इन्सान को होती है लेकिन वह यह बात भूल जाता है कि इसके लिये उसे अपने भीतर की कुव्वत को जगाना होगा। कई बार दूसरों की तरह नाम, शोहरत व इज्जत पाने की चाहत वह करता है लेकिन इसके लिये दूसरों के लिये कुछ करने का सेवा भाव इसके अन्दर नहीं होता है।

२६६८) दौलत को जिन्दगी का मकसद मत बनाओ। अगर दौलत को हासिल करना इन्सान की जिन्दगी का मकसद बन जाये तो फिर इन्सान के अन्दर लालच पैदा हो जाता है।

२६६९) हर आदमी खुद ही राजा है और खुद ही प्रजा। वह जैसा भी अमल करता है अच्छा या बुरा, उसका असर उसके आसपास की जिन्दगियों, उससे जुड़े लोगों पर पड़ता है। साथ ही उसकी खुद की जिन्दगी भी असर मे आती है क्योकि आदमी अच्छा या बुरा जैसा भी बर्ताव दूसरे से करता है उसका वैसा ही अच्छा या बुरा परिणाम उसे भोगना पड़ता है।

२६७०) इन्सान की हर चीज दूसरे के काम आने के लिये है। इन्सान की ताकत, उसकी दौलत, उसकी सेवा सभी बन्दों के काम आने के लिये है।

२६७१) मजमें में किसी को जलील करना ठीक नही है। जबानी हो या अपने किसी बुरे बर्ताव से किसी को भी मजमे में जलील करना मना है।

२६७२) खुशनसीब है वो जो दूसरों को देख कर नसीहत हासिल करे। दौलतमन्द होने में कोई बडाई नही, बडाई दिल की दौलतमन्दी से है। आदमी बडा नहीं बनता, अपनी उम्र बढ़ जाने से बल्कि आदमी अपनी अक्ल से बडा बनता है।

२६७३) जब किसी की आंख में खुलूस देखो तो उसकी कदर करो। किसी की आंख मे अपने लिये नफरत पाओ तो अपने खुलूस से उसकी नफरत मिटा डालो।

२६७४) दो लोग लडे तो उनमे सुलह कराओ और अगर उनमे से कोई एक दूसरे पर जुल्म करता हो तो उसे जुल्म करने से रोको।

२६७५) रिश्वत लेने और देने वालों पर अल्लाह की लानत है। आदमी की जिन्दगी में जब हराम का माल दाखिल हो जाये तो उसे फिर आराम कहां। उसकी जिन्दगी बेचैनी से भर जाती है। मुसीबतों और परेशानियों से उसका जीवन भरा होता है।

२६७६) भलाई इन्सान के इख्तियार में है और अगर कभी भूल चूक से इन्सान कोई गुनाह कर बैठे तो अल्लाह की याद और तौबा करके वह अपने दिल का चैन वापस पा सकता है।

२६७७) किसी को छोटा ना समझो। आदमी के बुरा होने के लिये यही काफी है कि वह किसी इन्सान को छोटा समझे और खुद को बेहतर समझ के दूसरे को हिकारत (घृणा) की नजर से देखो।

२६७८) चिन्तन करना - अपने विचार औरों को सुनाना ही संवाद क्षमता है। प्रकृति ने यह गुण सिर्फ मनुष्य को ही दिया है। मनुष्य के मन की बात वाणी द्वारा बाहर आती है और अपनी कही हर बात का असर मनुष्य के मनपर होता है। वाणी का कार्य अच्छी बातों के चिंतन के रूप में करना चाहिये। यही चिंतन मन में विचार बनाता है और शब्दों का रूप लेकर प्रकट होता है। व्यक्ति की बात के प्रसारण के ढंग से उसके विचारों का पता चलता है। संवाद दिल का दर्पण है। उसी तरह मन जो सोचता है वही शब्द बनते हैं इसलिये कहा है "तन्में मन: शिव संकल्पमस्तु" इससे मनुष्य के चरित्र का ज्ञान होता है।

२६७९) अच्छा विचार - दूसरों की नुक्ताचीनी या निन्दा या उनकी गलतियों का प्रदर्शन करने से इस संसार को नहीं बदला जा सकता। यह जरूरी है कि गलत काम की रोक होनी चाहिये व इसे सुधारने हेतु सदैव भावात्मक और रचनात्मक काम होने चाहिये न कि नकारात्मक और विनाशात्मक।

२६८०) भोग विलास के बीज यौवन के राग रंग द्वारा बोये जाते हैं किन्तु उनकी फसल वृद्धावस्था में दु:ख भोगकर काटनी पडती है इसलिये मर्यादापूर्ण जीवन ही बुढापे में शान्ति प्रदान करने वाला होता है। समस्त प्राणियों को नश्वर जगत की अनित्य वस्तुओं का मोह छोड कर स्थिर धर्म के सेवन में प्रवृत होना चाहिये।

२६८१) गायत्री मन्त्र और अर्थ :- मधुर वायु का संचारण होता रहे। नदी और समुद्र रसमय हो और सभी वनस्पति हमें सुख दायी हो। रात और दिन हमें सुख प्रदान करे। पृथ्वी की धूल, रज कण, हमारे लिये मंगलमय हो भूलोक हमें सुख प्रदान करे। सभी औषधि रसमय हो। सूर्य हमारे लिये सुखकारक हो। सूर्यकिरण हमारे लिये कल्याणकारी हो और हम सबके लिये मधुर स्वभाव के हों।

२६८२) वेद-विद्या का अध्ययन भी व्यर्थ हो जाता है बिना अग्नि होत्री के अनुष्ठान की शिक्षा के। धन कमाना, दान दक्षिणा के बिना निष्प्रयोजन है। कोई भी सिद्धि बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं होती। सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु और साध्य वस्तु में श्रद्धा होना अनिवार्य है। अपने निरन्तर अभ्यास से मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त कर लेता है लेकिन अभ्यास से ही सब गुण प्राप्त नहीं होते। कुछ गुण ऐसे भी होते है जो स्वभाविक होते है जैसे दानशीलता, मधुर बोलना, शौर्यता तथा पांडित्य ये चार गुण ऐसे होते है जिन्हे अभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता, ये किसी किसी मनुष्य में स्वाभाविक होते है। ये सहज गुण कहलाते है।

२६८३) मनुष्य में पशु और देव, दोनों के गुण एक साथ मिलते है। वह इसमें से किसी भी एक सिरे तक जासकता है। मनुष्य मरनेवाला जीव होकर भी, इसी शरीर से मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है। आदमी अपने शरीर से मोह माया के जंजाल मे फंस सकता है या परम शान्ति के राज्य में भी जासकता है। इसलिये आदमी को ईश्वर की दी हुई देन, बुद्धि को सूक्ष्म और प्रगत करना चाहिये। इसी को प्रतिभाशक्ति कहा जाता है। प्राण, मन एवम् बुद्धि के सही मिलाप से बुद्धि का तेज व शक्ति बढते है। ऐसी प्रगत बुद्धि के बल पर मनुष्य विश्व की व्यापकता को जान सकता है। नये-नये अविष्कार कर पाता हैं। आदमी की सम्वेदना शक्ति जैसे जैसे सूक्ष्म और व्यापक होते जाती है वैसे वैसे वह दिव्य बनती है। यही दिव्यता मनुष्य को देवत्व प्राप्त कराती है। जिन लोगों ने ऐसी दिव्यता और देवत्व प्राप्त किये लोग उन्हें संत, साधु सत्गुरु, साक्षात्कारी आदि नामों से पहचानते है।

२६८४) बुद्धिमान पुरुष को अपने आहार खाने पीने की जुटाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, उसे तो केवल धर्म के अनुष्ठान में ही लगे रहना चाहिये। क्योंकि उसका आहार तो मानव जन्म लेते ही उत्पन्न हो जाता है अर्थात परमेश्वर ने जिस प्राणी को जन्म दिया है आहार तो उसके भाग्य का उसे मिलता ही है। दाने दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम। यह उक्ति जगप्रसिद्ध है। अत: आहार के सम्बन्ध में चिंतित न होकर हमे अपने धर्म कार्यों में लगना चाहिये। धर्म ध्यान से ही मानव का इस लोक में कल्याण सम्भव है।

२६८५) परमात्मा से वही मांगो, जिसमें वासना न हो, निष्काम भाव से प्रार्थना करो, प्रार्थना पुकार बन जायेगी इससे भगवान का साक्षात्कार होगा।

२६८६) पूरे एक वर्ष तक नित्य प्रति मौन रह कर भोजन करनेवाला साधक करोडों कल्पों तक (सत्युग, द्वापर, त्रेता और कलयुग होते है इन चारों की अवधि क्रमश: बारह, दस, आठ और ६ हजार दिव्य वर्ष मानी गयी है।) स्वर्ग मे रहता है और वहाँ देवी देवताओं के लिये भी ऐसा साधक पूज्य होता है।

२६८७) भारतीय शास्त्रों में पुनर्जन्म के उल्लेख से निष्कर्ष होता है कि आवश्यकता पूर्ति, भोजन की सुलभता, भोग विलास की उपलब्धता, धन सम्पदा, का मिलना एवम् सुन्दर तथा गुणी स्त्री का मिलना पूर्वजन्मों के फल पर निर्भर करता है। कई बार देखा गया है जिस व्यक्ति के पास सुन्दर पत्नी होती है उसमे सम्भोग शक्ति का अभाव हो सकता है, जिस व्यक्ति के पास धन है उसमे दान वृति न हो, जिस व्यक्ति में दान वृति होती है उसके पास धन का अभाव हो सकता है। जिस व्यक्ति के पास सुस्वादु भोजन उपलब्ध है उसके पास भोजन का आनन्द लेने के लिये दाँत उपलब्ध न हो और जिसके पास उसकी पाचन शक्ति खराब हो। यही तो संयोग की बात होती है अर्थात इसे भाग्य की विडम्बना कहते है इसलिये पूर्वजन्मों का फल ही व्यक्ति को सुयोग या दुर्योग प्रदान करता है।

२६८८) क्रोध की अवस्था में भी जो व्यक्ति संयम बरत सके वही व्यक्ति मित्रता करने योग्य होता है। गुण और दोष का आंकलन करने के बाद ही व्यक्ति को मित्रता करने के लिये हाथ बढ़ाना चाहिये। वरना वह जीवनभर कष्ट ही भोगता है। पार्थिव अग्नि की ज्वाला से भी अधिक जलानेवाली अग्नि मानसिक अग्नि होती है, विशेषकर वृद्धावस्था में मिलनेवाला दर्द और भी अधिक कष्टकारी होता है। पत्नी के वियोग की अग्नि मनुष्य को जलानेवाली होती है। अपमान तो अपमान ही होता है किन्तु बन्धु बांधवों द्वारा किया गया अपमान तो दिल को जलाकर ही रख देता है। इसी प्रकार कर्ज अदा न कर पाने की चिन्ता भी मनुष्य को जलाती है।

२६८९) जब हमें कोई ऐसी दूकान का पता चल जाय जहाँ हमारी जरूरत की सभी आवश्यकतायें पूरी हो सकती है तो फिर बाजार की सभी दूकानों में भटकने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। यह तो सिर्फ समय की बर्बादी करनी होती है। इसी तरह सत्गुरु मिल जाय तो साधना करके लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिये।

२६९०) ईश्वर की परम सत्ता इस विषय का निश्चित रूप से विश्वास दिलाती है कि सृष्टि की प्रक्रिया अस्त व्यस्त नही है, अपितु

एक विशिष्ट योजना एवं प्रयोजन बद्ध है।

२६९१) ज्यादा अपने को सम्भालने की अपेक्षा मौन रहना अधिक बेहतर है। बाहर अपने आपको संभालने की अपेक्षा घर मे शान्त बैठना बेहतर है। आम जनता के सामने कुशलता से वही आ सकता है जिसको एकान्त पसन्द हो। कुशलता से वही बोल सकता है जिसे मौन पसन्द हो। वही बडा बन सकता जो सबके अधीन रहा हो। वही सबके सामने आदेश कर सकता है जिसने स्वयं पर हुक्म की पाबन्दी करनी सीख ली हो। कुशलता से मौज वही कर सकता है जिसके अन्दर से शुद्ध अन्त:करण गवाह देता हो।

२६९२) व्यावहारिक जीवन में सफलता अत्यन्त आवश्यक है। क्योकि उसी पर हमारा पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक सुख और सन्तोष निर्भर रहता है। उसके लिये व्यावहारिक सूत्र अपनाने चाहिये। हर काम ईमानदारी से किया जाय। क्योंकि बेईमानी एक न एक दिन अपनी मौत मरती है। दूसरों को दु:ख मत दो क्योंकि पर सुख में ही अपना सुख विहित है। धनार्जन शुद्ध साधनों से करें क्योंकि पाप कर्म से अर्जित धन एक दिन गर्त में डुबो देता है। ज्ञान और आचरण में समन्वय करे। कर्म अनासक्त और जागृत होकर करे।

२६९३) मन और माया से लिप्त प्राणी प्रभु के बारे में सोचता तक नही। वह लगातार कष्टों में जीते रहता है। अंधे और बहरे के समान वह इस दुनिया से परे कुछ नहीं जानता। वह मन का गुलाम बन कर पापों में डूबा रहता है।

२६९४) अनुशासन के बिना प्रगति असम्भव है। आदरणीय लोगों का सम्मान करे और नियमों का पालन करें तभी एक देश, संस्था परिवार या व्यक्ति उन्नति पा सकता है। विनयपूर्वक आज्ञापालन ही अनुशासन की ओर ले जाता है।

२६९५) जो अपने को सदैव दु:खी रखना चाहते है वे हमेशा अपने बारे में बात करेंगे जहाँ तक हो सके मैं मैं करते रहेंगे। अपने बारे में प्रशंसा लालच से सुनते रहेंगे। अपनी तारीफ की उम्मीद रखेंगे। अपने लिये मजे ही खोजते रहेंगे भले इससे दूसरों को कष्ट हो। जहां तक होगा अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करेगे। दूसरों के खातिर उपकार का काम नहीं करेंगे। अपने से ही लाड प्यार करते रहेंगे। अपने स्वार्थ को साधते रहेंगे। जो बुराई के बदले भलाई का रास्ता अपनाये वे लोग इस दुनिया में और परलोक में भी सुख से रहते है।

२६९६) जो इच्छा रहित पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त न किया जा सके। सब कुछ सदा ही, सबसे इस संसार में अच्छी भाँति किये गये पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जो जिस पदार्थ को पाने की इच्छा करता है और उसे प्राप्त करने के लिये क्रमश: यत्न करता है वह उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है।

२६९७) हाथों की सच्ची शोभा आभूषण पहनने से नहीं, दान देने से होती है। शरीर की वास्तविक शुद्धि स्नान करने से होती है। मनुष्य को सच्चा सुख मान-सम्मान करने से प्राप्त होता है, स्वादिष्ट भोजन करने से नहीं। मोक्ष की प्राप्ति भी ज्ञान से होती है बाहरी आडम्बरों के धारण करने से नहीं।

२६९८) अन्न ही पूर्ण ब्रह्म- मनुष्य अन्न पर जीता है। अन्न उसका जीवन है। इसलिये इसे अन्न ब्रह्म कहा जाता है। भोजन करना केवल स्वाद की तृप्ति ही नहीं है वह एक उपासना है। दो पैर, दो हाथ और मुँह ये पाँचों अंग पानी से धोकर फिर भोजन आरम्भ करना चाहिये। भोजन के आरम्भ में अन्न देवता को प्रणाम करें थाली में रक्खे अन्न का अनादर कभी नहीं करे। न ही कभी परोसी हुई थाली को बिना खाये छोडे। प्रसन्नता से खाना खाये। अन्न को ब्रह्म, अन्न रस को विष्णु और अन्न सेवन करने वाले को महेश्वर जाने। भोजन से पहले भगवान को नैवेद्य समर्पित करे। स्नान जाप, पूजा आदि नित्य धार्मिक कार्य किये बिना अन्न भक्षण न करे। इस विधि से भोजन करने पर अन्न ही पूर्ण ब्रह्म हो जायेगा।

२६९९) सभी जीवों के प्रति सम्पूर्ण दया भाव या निम्नतम क्रूरता पर आधारित जीवन ही सबसे ऊँची नैतिकता है।

२७००) अगर ईश्वर किसी व्यक्ति में अहम बनाये रखता है तो परमात्मा उस व्यक्ति में भेदभाव और पाप के भाव भी बनाये रखता है। लेकिन बहुत कम प्रसंगों में ईश्वर अहम समाप्त कर देता है। जब तक कोई व्यक्ति ईश्वर का अनुभव नहीं कर लेता, उसमे भेदभाव बना रहेगा।

२७०१) दु:ख किसी न किसी तरह से भाग्य में होता ही है दु:खी दुष्ट में और रंगीले मतवाले मस्त में अन्तर इतना ही है कि एक के चित्त में भक्ति ऊपर है और काम नीचे। एक यदि साक्षर है तो दूसरा इसके विपरीत राक्षस है।

२७०२) जिस इन्सान के अन्दर भरपूर आत्म विश्वास होता है वही जिन्दगी में कुछ कर पाता है। जिसमें आत्म विश्वास का अभाव

है वह सफलता की सीढ़ी नहीं चढ़ सकता। किसी ने भी यह नहीं सोचना चाहिये कि वह अमुक कार्य नहीं कर सकता उसमें हिम्मत और आत्म विश्वास हो कि कोई भी कार्य उसके लिये असम्भव नहीं है। जितने भी महापुरुष हुये है सभी में अदभुत आत्म विश्वास था। अपने विश्वास से अपने बाहुबल पर कि जो कुछ उन्होने करने का निर्णय लिया है वह करके दिखायेंगे और उन्होने यह भी सिद्ध कर दिया जो भी काम करो आत्मविश्वास से करो फिर कोई बाधा नहीं आती है जो सफलता को रोक सके।

२७०३) आत्म संयमी पुरुष किसी भी विषय के प्रति राग अथवा द्वेष रख कर उसे अपनी ओर से इतनी शक्ति नहीं प्रदान करता कि वह उसे ही पीडित करने लगे। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय के प्रति मन में राग-द्वेष रहते है जो कि मनुष्य के शत्रु है।

२७०४) व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या न हो, किसी भी अवस्था में जब मन में वास्तविक वैराग्य उत्पन्न हो जाये, उसी समय सन्यास की और अग्रसर हुआ जा सकता है। जो कुछ करने के लिये निकल पडता है वह सबकी सुनता हुआ चलते रहता है। लोग उसके बारे में जो कुछ कहते है उससे वह दु:ख क्यों करे, रोष क्यों उमडे, संसार की ताडना ही उसको स्वच्छ करती है। जो अपने मार्ग में उपयोगी हो उसी पर अमल करो। जीवनयापन का यही विवेक सम्मत मार्ग है जो जीवन का मार्ग निर्धारित करता है।

२७०५) सार्थक बोलना अच्छा है लेकिन मौन रहना उससे भी अच्छा है। ऐसी बात जो दूसरों को पीडा दे उसे न कहना ही अच्छा है। मुँह से निकली बात फिर कभी लौटती नहीं है।

२७०६) प्रेम की शक्ति दंड की शक्ति से कई गुना प्रभावशाली और स्थायी होती है। जहां प्रेम का सहज सम्पर्क है वहां बन्धन व्यर्थ है। प्रेम का अर्थ ही मुक्ति है। कृत्रिम प्रेम स्थायी नहीं होता है। स्वभाविक प्रेम की नकल नहीं की जा सकती।

२७०७) निन्दक दूसरों की तारीफ करने की सोचने के पहले उनकी बुराई करने की सोचता है। किसी के काम के गुणों की चर्चा में सबसे पहले वह अपना विपरीत मत जाहिर करता है। किसी काम की दूसरे लोग यदि तारीफ करते है तो निन्दक उतने ही ज्यादा उसमे दोष निकालने का प्रयत्न करेगा। उसके अन्दर का अहंकार जो दूसरों की तारीफ के विरुद्ध बगाबत करता है। निन्दक अपनी खूबी और मुस्तैदी इसी में समझता है कि हमेशा खिलाफत में जाय। उसकी दिलचस्पी किसी की आलोचना में नही है बल्कि अपनी और ध्यान आकर्षित करने में है। यदि किसी के गुण व दोष देखने पर खुशी होती है तो उसके गुण या पूर्णता दर्शन होने पर आपको रंज होगा। इसलिये निन्दक प्रवृति का त्याग करो।

२७०८) आपस में तुलना या स्पर्धा कभी भी नहीं करनी चाहिये। सभी मानव एक है यह जान कर जाति, वर्ण, भाषा, आदि क्षुद्र भेद भूला कर एकात्मता बढानी चाहिये।

२७०९) केवल स्वार्थ के लिये नहीं जीना चाहिये। दूसरे के कल्याण के बारे में भी सोचो। बस धन कमाना यह भी ध्येय नहीं होना चाहिये, साथ में अच्छा ज्ञान, कला भी प्राप्त करनी चाहिये।

२७१०) सिर्फ सत्ता का लालच नहीं रखना चाहिये, क्योकि उससे मानवता कम होती है। इन्द्रियों की तृप्ति के लिये आदमी को स्वार्थी भी नहीं बनना चाहिये। शरीर की इन्द्रियों के साथ मन और बुद्धि का समन्वय करना चाहिये। नशीले पदार्थों का सेवन, चोरी जारी, गुंडा गर्दी जैसे समाज और अपने स्वयं के लिये हानिकारक आदतों से दूर रहें।

२७११) भूत पिशाच प्रवृति और दैवी सदगुणों की प्रवृति ये दोनो ही मनुष्यों में होती है। व्यक्ति जब औरों से छीनता है, स्वार्थ में अन्धा होकर प्रेम, दया, परोपकार आदि नीति मानव मूल्यों को भूला देता है वह आसुरी प्रकृति का हो जाता है। श्मशान के भूतों से यह मानव रूपी भूत महाभयानक होते है। वे संसार में हमेशा अपने स्वार्थ के लिये बुरे काम करवाते है।

२७१२) व्यक्ति जब स्वार्थ से परे हट कर संसार के हित का प्रयास करता है, प्रेम, दया, परोपकार के मूल्य स्वीकारता है उसमें देवता तत्व अवतरित होता है। वे लोग साधु महात्मा के रूप में जाने जाते है। वही देव योनि है। भूत योनि मनुष्य से संख्या में कम होकर भी उनके प्रभाव से अनेकों का दु:ख मय जीवन आनन्द से भर जाता है। इसलिये देव योनि भूत योनि से सदैव श्रेष्ठ है।

२७१३) सौभाग्य व दुर्भाग्य व्यक्ति की दुर्बलता का प्रदर्शन है। पुरुषार्थ ही सबके लिये निर्णायक है। यदि भाग्यशाली बनना है तो पुरुषार्थ कीजिये। जिसके अन्दर भक्ति के संस्कार है उसको मुक्ति से सन्तोष नहीं होता भगवान की कृपा उसकी मुक्ति के रस को फीका करके प्रेम का अनन्त रस प्रदान कर देती है।

२७१४) मनुष्य का स्वभाव जन्म से लेकर शरीर की और झुका होता है। हम शरीर से एकाकार होकर अपने आपको शरीर मान बैठते है। इसलिये बचपन में शरीर के विषय मे चिन्ता, यौवन में प्रेम और वृद्धावस्था में आसक्ति होती है। इसके विपरीत असाधारण व्यक्ति गुणों को, गुणों के विकास को महत्व देते है। मनुष्य को कीर्ति मिलती है गुणों के कारण केवल शरीर सजाने से नहीं। गुण प्राप्त करने के लिये शरीर की भी परवाह नहीं करनी चाहिये। क्योकि शरीर मर जाता है और गुण अमर होते है। इसलिये गुण शरीर से श्रेष्ठ होते है।

२७१५) लाड प्यार बच्चे में दोष ही उत्पन्न करता है और प्रताडना सुधार का प्रतीक है। जो माता-पिता अपने पुत्र को व गुरु अपने शिष्य को केवल लाड़ प्यार ही करते है और गलत काम करने पर दंडित नहीं करते तो ऐसे बेटे व शिष्य बिगड जाते है। बच्चे का भविष्य देखते हुये, माता पिता का कर्तव्य बन जाता है उन्हें जहां अच्छा करने पर प्रोत्साहित करें उन्हे स्नेह दें वही गलत करने पर प्रताडित करे इससे उन्हें विकास का मार्ग प्राप्त होगा।

२७१६) नौका जल में रहे तो ठीक है पर नौका में जल नहीं रहना चाहिये उसी तरह साधक चाहे विश्व में रहे किन्तु साधक के मन में विश्व नहीं रहना चाहिये।

२७१७) आत्म शक्ति मानसिक विकारों से क्षीण होती है। काम प्रेरित लोग कामिनियों का चिन्तन करते है, उन्ही को देखते रहते है व उनके बारे में ही सोचते रहते है उससे आत्म शक्ति क्षीण होती है। उसी के साथ अधिक बोलने से, शब्दों के दुरुपयोग करने से, निन्दा करने से आत्म शक्ति क्षीण होती है। गलत आहार, अति मात्रा में भोजन, या बिल्कुल न खाना इससे शरीर पर असर होकर आत्मशक्ति क्षीण होती है। अति परिश्रम करने या बेकार बैठे रहने से भी ऐसा होता है। किसी भी बात में सन्तुलन न हो तो आत्म शक्ति कम होती है। इसलिये जीवन मे सन्तुलन साधकर आत्मशक्ति बनायी रखनी चाहिये।

२७१८) सच्ची उन्नति वही है जब जब प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में शान्ति हो, मनुष्य को स्वयं का बोध हो और सुख शान्ति का अनुभव हो। अशान्त मन, दुखी व बेचैन मन समस्त सुखों के रहते हुये सुख से वंचित हो तो फिर कैसी उन्नति ? आत्म चिन्तन द्वारा सन्तोष प्राप्त हो तो ही वास्तविक उन्नति है।

२७१९) विपत्ति ही परम सौभाग्य और भगवत कृपा का वास्तविक रूप है। सुख के दिन भी सदा नहीं रहते, उसी प्रकार दु:ख भी सदा नहीं रहता। भगवत आश्रय और भगवत स्मृति ही परम सुख है।

२७२०) आपकी सफलता निर्भर करती है आपसी सम्बन्धी की समझ से, सामाजिक व्यवहार, मधुर सम्प्रेषण, की कला पर, व्यक्ति के भीतर इन गुणों का समावेश कुशल नेतृत्व का प्रतीक है। विजेता वही होता है जिसमें वस्तुओं को उसी रूप में देखने की कुशलता हो जैसी वे हैं और कार्यों को उसी तरह करने की क्षमता हो जिस तरह उसे किया जाना चाहिये। अपनी ज्ञान इन्द्रियों को खुले रखते हुये चारों और से जो देखे जो भी संरक्षण योग्य हो उसे मस्तिष्क पटल पर अंकित कर ले। अपने अन्दर एक असीमित शक्ति है जो यह कर सकती है। साहस विजय है और आत्म विश्वास सफलता निर्भीकता से साहसी बन कर कार्य करना सफलता प्राप्त कराता है।

२७२१) जो वस्तु जहां है वही से प्राप्त होगी, सुख शान्ति अन्दर है बाहर नहीं तो वह अन्दर से ही प्राप्त होगी। आत्मा की बात सुनोगे तो जीवन सार्थक हो जायेगा, जीवन को सफल तो बहुत लोग बना लेते है उसे सार्थक बनाना हर किसी के वश की बात नहीं है। आत्मा उज्ज्वल, हृदय निष्कपट हो तभी जीवन सार्थक हो पाता है, जीवन उस वृक्ष के समान बनाओ जो दूसरों को मीठे फल प्रदान करे।

२७२२) किसी दूसरे को कुचल देने में या उसे नुकसान पहुंचाने से हमारा कोई निजी हित नहीं होता है। किसी भी चीज में बदल या सुधार नहीं हो सकता है यह जानते हुये हमें व्यर्थ की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जो काम हम नहीं कर सकते यह जरूरी नहीं है कि दूसरा भी नहीं कर सकता। महत्व की बातों को छोड कर जबरन फिजूल की बातों में बहस या उलझे नहीं रहना चाहिये।

२७२३) न्याय मार्ग से कमाया हुआ लाभ कहलाता है जबकि अन्याय मार्ग से कमाया गया अलाभ है। लाभ यानि सिर्फ धन या वस्तुओं की प्राप्ति ही नहीं है, मनुष्य जीवन के सूक्ष्म रूप में भी तथा आचरण से भी उसका दर्शन होता है। न्यायोजित मार्ग से मिली सुविधाओं को लाभ और अन्याय से प्राप्त सुविधाओं को अलाभ कहा गया है।

२७२४) आज के युग में व्यक्ति सांसारिक कर्मों में ही लिप्त रहता है जब कि वह जानता है कि शरीर नश्वर है। जब परिवार का एक सदस्य वैराग्य लेता है तो परिजन उसे विदा करके वापस लौटते है और पुन: सांसारिकता में लिप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत उस व्यक्ति

से अन्य परिजनों को प्रेरणा लेनी चाहिये और उसके आदर्शों का पालन करना चाहिये जिससे सदाचरण का पालन हो और परिवार का भविष्य उज्ज्वल हो।

२७२५) जो वेद और शास्त्रों को याद रखने में निपुण व तत्पर है किन्तु उनके यथार्थ तत्व को नही समझता तो उसका यह याद रखना व्यर्थ है। जिस चीज के बारे में वेद-शास्त्र और गीता मे वर्णन है उसके पठन-पाठन श्रवण से जब तक लाभ नहीं है तब तक उस चीज का अनुभव न कर न ही आत्मसात किया हो। विना ज्ञान, बिना अनुभव के सब निष्फल है अत: यथार्थ को जानना व ठीक से समझना चाहिये।

२७२६) प्रेम भोग नहीं है। प्रेम एकमेव से आया शक्तिशाली स्पन्दन है और केवल बहुत शुद्ध और मजबूत शक्ति ही उसे पाने और अभिव्यक्त करने के लिये योग्य होती है। पवित्र का अर्थ है और किसी के नहीं केवल परमप्रभु के प्रभाव के प्रति खुलना।

२७२७) मनुष्य संसार में जितनी वस्तुओं को अपनी मानता है उतना ही वह उनके पराधीन हो जाता है, पर परमात्मा को अपना मानने से वह स्वाधीन होता है।

२७२८) अपने को छोटा और दूसरे को बडा मानना असली बडप्पन है। अपने को बडा और दूसरे को छोटा मानना सबसे बडी भूल और नीच पन है।

२७२९) जीवन के प्रति नकारात्मक सोच के कारण अधिकांश व्यक्ति तनाव के महारोग से ग्रस्त है। जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। व्यक्ति को किसी भी विषय पर केवल नकारात्मक ही नहीं सोचना चाहिये। विषय के दोनो पहलू सकारात्मक व नकारात्मक पर विचार करना चाहिये। इसमे भी अधिकांश महत्व सकारात्मक पर देना चाहिये। सकारात्मक सोच रखनेवाला व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है।

२७३०) सम्भाषण करते समय इन दोषों को ध्यान में रखते हुये ही बातचीत करनी चाहिये क्योकि शब्द लोगों के सम्बन्ध जोडता और तोडता है। सतत विरोधी बातें न करे। संघर्ष को प्रेरणा देने वाली बातें न कहे। औरों को गुस्सा आजावे ऐसी बातें भी न करे। बातों के दौरान किसी का उपहास या मजाक न करे। किसी को नीचा दिखाने कि प्रवृत्ति से भी बात नहीं करनी चाहिये। ऐसी भी कोई बात नहीं कहे जिससे किसी के हृदय को ठेस पहुँचे। किसी चीज की बात का दुराग्रह न करे। अभिमान और छल कपट से बातें करना गर्त और पतन की ओर लेजाने का रास्ता है। किसी से भी लालच दिखानेवाली बाते, फंसाने वाली बातें या सन्देह उत्पन्न करनेवाली या संशयास्पद बातें न करे।

२७३१) जिस दिन यह हृदय प्रेम से, आनन्द से भर जायेगा वह स्वर्ग ही स्वर्ग हो जायेगा। स्वर्ग कोई कल्पना नहीं है बल्कि एक अनुभूति है ज्ञान की जिससे स्वर्गीय आनन्द प्राप्त होता है। स्वर्ग हमारे भीतर है और जीते-जी प्राप्त किया जा सकता है।

२७३२) गन्तव्य एक ही है पंथ अनेक है। राम कहो या कृष्ण, शिव कहो या शक्ति उस एक के ही अनेक रूप है नाम है। फिर आपस में भेद और अन्तर क्यों ? परस्पर टकराव क्यों ? अन्त में सारा नाम रूप सरिताओं की तरह शक्ति के महासागर में विलीन हो जाता है। राम कृष्ण हो या रमा उमा सभी उस महाशक्ति में समा जाते है और तब प्रकाशित होता है राधा भाव, राधा का तादम्य ही परम साधन और परम शान्ति का स्त्रोत है।

२७३३) कोई भी ध्येय प्राप्त करते हुये केवल मनोरथ करने से कुछ नहीं होता है उसकी पूर्तता हेतु प्रत्यक्ष कर्म करने अवश्य होते है। वह भी पूरी उत्कटता से किये से किये जाये, तभी लक्ष्य पूर्ति होती है। उत्कटता से ही व्यक्तित्व और इच्छा शक्ति, प्रखरता उत्पन्न होती है।

२७३४) मन से बुरे विचारों को निकाल दो और सदैव सत्य भाषण करो। यदि यह प्रवृति बन गई तो मनुष्य किसी का बुरा नहीं सोचेगा इस प्रकार के योग से मन, वाणी और कर्म पावन हो जायेंगे। पावन को कोई अपावन नहीं कर सकता है क्योंकि तब उसमे भी सभी को पावन करने की शक्ति आ जाती है।

२७३५) विवाह स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के प्रति भीतरी आकर्षण है। उनके भीतर कही रिक्तता है, अपूर्णता है, खालीपन है, असुरक्षितता है। कही परिपूर्ण होने की इच्छा है, महत्वकांक्षा है इसलिये विवाह है। स्त्री पुरुष का परस्पर आकर्षण है इसे मोह कहे या प्रेम कहे। दोनो में अन्तर यही है कि मोह तो शारीरिक सन्तुष्टि तक ही सीमित है और प्रेम हो तो दोनों के बीच कहीं गाढ़े गहरे, सम्वेदना पूर्ण सम्बन्ध रिश्ते बनते है और इसी का नाम विवाह है। प्रत्येक व्यक्ति या विश्व का प्रत्येक परमाणु अपने आप में परिपूर्ण है। पूर्णता

ही इस जगत की, परमात्मा की व्यवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष दोनो ही स्थिति में अपने भीतर अपने विपरीत लिंग के व्यक्ति को तलाश करता है क्योकि यह तलाश उथली है, बाहरी है और इसी प्रयास में होते है विवाह। विवाह बाह्य तल पर मिलन है, आत्यंतिक तल पर मिलन हो तो ही सच्चा विवाह है।

२७३६) छोटी-छोटी चीजों के प्रति सतर्क रहने से अवसर मिलने पर उनका उपयोग करना चाहिये। हर दिन सफलता के अवसर प्रस्तुत होते है लेकिन हम उन्हे महत्वहीन समझ कर छोड देते है। यदि हम उसे ठीक से समझकर उसका उपयोग करे तो जीवन हमारे सनातन लक्ष्य की और अग्रसर होता रहेगा। जो लोग प्रसन्नचित और नम्र होते है उनके लिये हर चीज मे सफलता है।

२७३७) कीर्तिवान मनुष्यों के लिये कीर्तिनाश की कल्पना भी मृत्यु से कही श्रेयस्कर है। काम, क्रोध और मोह आत्मा का पतन करने वाले है।

२७३८) श्राद्ध का पात्र जल दिये जाने पर भी शुद्ध नहीं माना जाता वैसे ही तीर्थ स्थान पर जाकर, वहां स्नान करने से कभी पाप नहीं धुलते।

२७३९) भोजन करते समय प्राणी को सदा मौन रहना चाहिये। मौन रह कर भोजन करना स्वास्थ्य के लिये लाभकारी है। जो एक वर्ष तक मौन रह कर भोजन करता है वह हजार कोटि तक स्वर्ग लोक में स्थान पाता है उसके लिये सारे सुखों के द्वार खुले रहते है।

२७४०) हृदय की पुकार क्या है ? हृदय की बात सुनोगे तो आनन्द ही आनन्द आयेगा। हृदय सदैव निष्कपट, पवित्र और प्रेम तथा आनन्द को चाहने वाला है, इसे दुनिया की सुख-सम्पत्ति से कोई सरोकार नहीं बल्कि एक शाश्वत प्रेम व आनन्द का प्यासा है और जब हृदय की पुकार सुनोगे तो उसकी प्यास बुझाने का प्रयत्न करोगे जिससे हृदय तृप्त होगा इससे जीवन को सार्थकता प्रदान होगी।

२७४१) पूर्ण पुरुष यह नहीं कहते कि मरकर ही तुम उसे पा सकते हो। वो कहते है मौत का इन्तजार करने की आवश्यकता नहीं है तुम जिन्दगी में उस हकीकत का अनुभव कर सकते हो। धर्म ग्रन्थों को खाली पढ़ छोडना या कथा कीर्तन कर लेना, यही काफी नहीं है उसे पाने के लिये। वहां तक पहुँचने की कोशिश करनी चाहिये जहाँ तक वो महापुरुष पहुंचे है जिन्होने अपने अनुभव धर्म ग्रन्थों में लिखे है। उनका अनुभव हमारा अपना अनुभव बने क्योकि जब एक आदमी ने किया तो वह दूसरा भी कर सकता है अगर उचित मदद और हिदायत उसे मिल जाय। इसी से हमारा आदर्श हो। इससे कम किसी बात पर हमे सन्तोष नहीं करना चाहिये।

२७४२) कई ने घर त्याग दिये, कई बनवास करने लगे। यदि चंचल मन नियंत्रित न हुआ तो यह सब करना विफल है, कही भी सुख नहीं मिलेगा।

२७४३) जीवन पर अभिमान करना बेकार है। जीवन पलाश के वृक्ष की तरह है, जो कुछ दिन के लिये फलता है फिर ठूंठ हो जाता है।

२७४४) हर व्यक्ति सदा काम में व्यस्त नहीं रह सकता। सामान्य व्यक्ति के नाते आराम और अवकाश की जरूरत पडती है। यह विश्राम सिर्फ शरीर के लिये नहीं है बल्कि मस्तिष्क और आत्मा के लिये भी इसकी आवश्यकता है। मानव स्वभाव ऐसा है कि वह सतत एक ही तरह निर्बाध एक रसता के काम में लगा नहीं रह सकता। रोज के जीवन में विविधताये लानी जरूरी है। मानव यन्त्र पूरे दिन रात एक ही धन्धे में लिप्त नहीं रह सकता। उसे विश्राम की आवश्यकता है। विश्राम के प्रति सही दृष्टिकोण का अभ्यास करना चाहिये। आराम कोई भोग विलास का चक्र नहीं है जो कभी खत्म ही न हो और उससे नसें तनने लग जाय। विश्राम को जिस रूप में ग्रहण करे चाहे वह टहलना हो या नसों को चैन देनेवाला व्यायाम जैसे तैरना इत्यादि। चाहे कुछ भी हो, जो ठोस और आरामदायक हो लेकिन निरा पापमय न हो। जो आराम करना जानता है वह कही ज्यादा बडा है जो नगरों, शहरो व ग्रामों पर कब्जा करना जानता है।

२७४५) इस दु:ख भरी दुनिया में स्वर्ग की शान्ति और व्यवस्था लाने में हम सब मदद कर सकते है। क्रोध को प्रेम से जीतो, बुराई को भलाई से, लालच को दान से और झूठ को सच से जीतो। ईश्वर हमेशा सत्य के पक्ष में है।

२७४६) दु:ख से मुक्ति के लिये दु:ख से होकर गुजरना जरूरी है। दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है। अन्धेरा है और उसके पार प्रकाश है तो प्रकाश को पाने उस अन्धेरे से होकर ही गुजरना पडेगा। हम अपने दु:खों व अपने अन्धेरों अपने बनाये नर्कों को जब तक स्वीकार नहीं करते तब तक उनसे मुक्ति नहीं मिल जाती।

२७४७) हम लोग अपने ही को मूर्ख बनाने के जाल में अक्सर एक एक मुश्किल में फंस जाते है। जो हम नहीं है वैसा अपने को दिखाने का लोभ हमेशा बना रहता है। यदि हम जैसे है वैसे बने रहे तो अनेक मुश्किलों से बच सकते है।

२७४८) आंखे प्राणी का सबसे महत्वपूर्ण अंग है इसके अन्दर मस्तिष्क का निवास है इसलिये उसकी विशेषता को सब और से

स्वीकार किया जाता है।

२७४९) जो मदिरा पान नहीं करता, पर निन्दा चुगली नहीं करता वह सदा ही सुखी है। घर पर आये प्राणी का अपमान करने वाला सदैव पतन के गर्त में अपने आपको ढकेल रहा है।

२७५०) अपने पडोसी के प्रति प्रेम करने की शिक्षा महज मजाक ही नहीं बल्कि एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। जब यह सुनने मे आता है संचार और यातायात के आधुनिक तौर तरीके व साधनों ने लोगों को एक दूसरे के निकट ला दिया है लेकिन लोगों को केवल शारिरिक और मानसिक दृष्टि से एक दूसरे के निकट लाने से सामंजस्य नहीं पैदा होगा। सबसे पहले तो अध्यात्मिक सम्पर्क होना चाहिये और यह समान रूप से महसूस हो कि हम सभी एक ही पिता की सन्ताने है और हमारे सब का एक ही उद्देश्य है। अपने शत्रु से भी प्यार करो, जो लोग नफरत करते है उनकी भलाई करो। जो तुम्हे दंडित और निंदित करते है उनके लिये भी प्रार्थना करो। ऐसा करने पर अपने उस पिता की सन्तान बन सकोगे जो अपने सूरज से हर भले बुरे पर सब पर अपना प्रकाश डालता है तथा न्यायी और अन्यायी सब पर समान रूप से पानी बरसता हे हवा समान रूप से सब पर बहती है।

२७५१) संसार की तरफ चलने वालों का कोई भी सच्चा साथी नहीं होता है परिस्थिति के अनुसार बदल जाते है लेकिन भगवान की तरफ चलने वाले के सभी स्वेच्छा से साथी हो जाते है।

२७५२) वीरता किसी की भलाई कर देने में नहीं है बल्कि किसी की भी बुराई न करने में है। किसी के अहित की भावना करना अपने अहित को निमन्त्रण देना है।

२७५३) भगवान को कभी भी मत भूलना, वह अच्छी बुद्धि प्रदान करता है। अपनी इन्द्रियों पर काबू रखना, वर्ना यह तुम्हारा विनाश कर देगी।

२७५४) जीवन में नियम व अनुशासन अवश्य हो। व्यसनी मत बनना। नित्य नियम से अपना प्राप्त व्यवसाय करना। अपनी संगति अच्छी रखने वाला सदा सुखी है और दूसरे को सुखी रख सकता है। सर्वथा निर्दोष कोई नहीं हो सकता। जीवन में सच्चरित्रता हो, उत्साही हो तो वह खुशी और प्रेम बांट सकता है व मधुर वाणी से बोल सकता है।

२७५५) सन्तोषी पुरुष सच्चा धनवान है, असन्तोषी ही गरीब है। गुणों से सम्पन्न पुरुष ही धनवान है। श्रेष्ठ धन ही धर्म है। दुरुपयोग होने पर पैसा जहर है, सदुपयोग होने पर पैसा भक्ति है।

२७५६) प्रतिष्ठा, प्रेरणा व विद्वता अन्तकाल में बिल्कुल काम नहीं आते। इसलिये सुख के अन्त मे, दु:ख के अन्त में, देह त्याग के अन्त में तथा प्रत्येक कार्य के आरम्भ में प्रभु स्मरण करो।

२७५७) जो सुख भोगता है उसे दु:ख भी भोगना पडता है। दूसरों के सुख में सुखी रहना सीखो। सूर्य की भाति परोपकार करो किन्तु अभिमान मत करो। दु:ख में साथ देनेवाला ईश्वर होता है, सुख में साथ देनेवाला मनुष्य। सुख और सम्पत्ति मिले तो भी भगवान का भजन मत छोड़ो।

२७५८) अपने विचार दूसरों पर बोझ मत बनाओ। जिस कर्म को पाप समझते हो वह मत करो। मन को आज्ञाकारी बनाओ। न उदास हो न निराश हो।

२७५९) निक्कमे मत रहो। उत्साह सदैव बना रहे। आलसी बनना अपने जीवन की कब्र में गिरना है। जीवन में अभिमान न आने पाये। जीवन सीधा सादा सरल हो यह इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने से ही होता है।

२७६०) जान बूझ कर किसी को कष्ट मत दो। छोटी छोटी बात के लिये किसी से बिगाड मत करो। सबको सम्मान दोगे तो तुम्हारा जीवन मिश्री से भी अधिक मीठा रहेगा। जिन्दगी कुछ घडी की होती है तब तक चमक कर जीओ, रो कर नही।

२७६१) मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ अक्रोध है। यह मनुष्य को देवत्व व दिव्यता प्रदान करता है। अक्रोधी मानव विश्व विजय करने में समर्थ होता है।

२७६२) सन्तोष को सुख का और तृष्णा को दु:ख का कारण कहा गया है। असन्तोषी व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता। जिसके पल पल में प्रतिपल नई नई इच्छाये जाग्रत और बलवती होती रहती है, ऐसे व्यक्ति भयंकर कुकृत्य भी कर डालते है। तृष्णा उन्हे सन्मार्ग से हटाकर विपथगामी बना देती है। असन्तोष पर विजय प्राप्त करने के लिये मन को वश में करना अनिवार्य है। अपने आप परिश्रम से जो भी हो उसी से अपने को सन्तुष्ट करना चाहिये।

२७६३) विद्या मनुष्य को रूपवान बनाती है। यह ढका हुआ वह गुप्त धन है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विद्या दान के समान कोई दान नहीं है।

२७६४) मनुष्य को तुच्छ विषयों पर विचार नहीं करना चाहिये। अगर वह उन्ही में उलझा रहेगा, तो करने के महान कार्य यो ही रह जायेंगे।

२७६५) मनुष्य की बुद्धि ही एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा उसका विकास होना सम्भव है। समाज में देखा जाता है कि मनुष्य का आकार प्रकार तो प्राय: समान है किन्तु बुद्धि में महान अन्तर है।

२७६६) शत्रु और रोग को कभी भी बढ़ाना नहीं चाहिये। ये विनाश के ही कारण बनते है। शत्रु और रोग की उपेक्षा की जाये तो धीरे-धीरे ये इतना प्रभावपूर्ण हो जाते है कि मृत्यु का कारण बन जाते है।

२७६७) वाणी और व्यवहार का माधुर्य ही समष्टिरूप से शील कहलाता है। अपने मन का सम्पूर्ण अहंकार निकाल कर ऐसी वाणी का प्रयोग करे जिसका प्रयोग स्वयं को भी अच्छा लगे और दूसरों को भी सुख दे। शीलवान पुरुष का मूल्य भी यही है कि वह अपनी करनी से कभी किसी को किसी प्रकार का मानसिक कष्ट नहीं पहुंचाता। कहा गया है, गुड न दे तो गुड सी बात अवश्य करे। दूसरे की भलाई करो और उस भलाई की बात नदी मे बहा दो। भलाई करके उसका डंका पीटना उस भलाई के महत्व को समाप्त कर देता है।

२७६८) जब अपने को किसी चीज में असत्य भाव पैदा हो जाता है तब त्याग हो जाता है। जब तक असत्य भाव पैदा नहीं होता, तब तक त्याग नहीं हो सकता।

२७६९) आदमी को कर्मशील और चरित्रवान होना चाहिये। वही मनुष्य वास्तव में मनुष्य है जिसका हृदय निर्दोष और पवित्र है, जिसने जीवन में बेईमानी और बुरा कर्म नहीं किया तथा जिसका मन अभिमान से रहित है।

२७७०) जीवन उपाय हीन, व्याधि ग्रस्त, शोकाकुल व्यक्ति की यथा शक्ति सहायता करनी चाहिये। जीवमात्र को अपने समान ही समझना चाहिये एवं उनको हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिये।

२७७१) देव द्विज, गौ, वृद्धत्रयी (वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध), जनहित रक्षक, शासक एवं अतिथि का सम्मान करना चाहिये। किसी भी समय गृह आगत एवं अतिथि व्यक्ति से कठोर वाणी नहीं बोलनी चाहिये और न ही उनको निराश करना चाहिये।

२७७२) बिना वैराग्य के भक्ति रीती है। भोग व्यक्ति मे बाधक है। संयम और सदाचार के बढ़ने से भक्ति में आनन्द मिलेगा। घर में ही वैराग्य की साधना करो। बिना वैराग्य के न ज्ञान की शोभा होती है और न ही भक्ति की।

२७७३) आपके हृदय तथा मन द्वेष भाव से रहित होकर समभाव को प्राप्त रहे। आप लोग आपस में इस प्रकार स्नेह का प्रदर्शन करे, जैसे गाय अपने बछडे के लिये करती है।

२७७४) कौन उन्नति करता है- विनम्र पुरुष। किस प्रकार के पुरुष को छोड देना चाहिये जो घमंडी हो अहंकारी हो, जिसे अपने ही भाइयों से बात करने में नफरत हो और जो सोचता हो कि इससे उसका स्वाभिमान गिरता है। कौन व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं है- जो निरन्तर असत्य बोलता हो और जो अपने सिद्धान्तों पर, विश्वास पर न टिकता हो।

२७७५) दूसरों की सम्पत्ति छीन लेने वाले गिद्ध प्रवृत्ति के होते है। यह लोलुप वृति है। प्रभु हमारी रक्षा करे इन अशुभ प्रवृत्तियों से। पाप वासना कभी भूल से भी यदि मन में आजावे तो जबरन उसे दूर भगाओ।

२७७६) जब तक हम बच्चे को अपना खयाल खुद करने नहीं देंगे, तब तक इस बारे मे उसे कुछ सिखाना व्यर्थ है। शुरु में वह गलती करेगा पर बाद में वह गलतियों से ही सीखेगा।

२७७७) मनुष्य प्रत्येक परिस्थिति में अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है। कर्तव्य का यथार्थ स्वरूप है- सेवा अर्थात संसार से मिले हुए शरीरादि पदार्थों को संसार के हित में लगाना।

२७७८) जो प्राणी सुख भोग करता है वही दु:ख पाता है। दूसरों को सुख देने का प्रयत्न करने वाला दूसरों के दु:ख से दु:खी होता है। दु:ख आ जाने पर ज्ञान का उदय होता है जो उन्नति का मूल है। संसार का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए दुखियों से प्रेम करना आवश्यक है। सुख देने से देने वाले की उन्नति होती है और दु:ख देने से देने वाले की अवनति होती है। सुख देने वाले के हृदय में सर्वदा रसीला दु:ख रहता है, नीरस नही। नीरस दु:ख तो दूसरों को दु:ख देने से होता है।

२७७९) मनुष्य में यह स्वाभाविक कमजोरी है कि जिस पर उसका ममत्व हो जाता है, उसको प्रसन्न करने के लिये वह उचित-अनुचित सभी काम कर डालता है। यह कमजोरी बड़े बड़े लोगों में देखी गई है।

२७८०) बाण का घाव कालान्तर में पुर जाता है। अस्त्र-शस्त्रों की चोट समय पाकर अच्छी हो जाती है, किन्तु वाक् बाण से हुआ घाव कभी पुरता नहीं। वह सदा एक-सा बना रहता है। अपने समान पुरुषों में अपमानित होना सबसे बड़ा दु:ख है।

२७८१) वीतरागी, संसार त्यागी, राग द्वेष से शून्य महात्मा धन्य हैं, जिन्हें न मान की इच्छा है न अपमान की चिन्ता, मानापमान में जिनके चित्त की वृत्ति समान रहती है, किन्तु सभी तो महात्मा नहीं हो सकते, संसारी लोगों के लिये तो मान ही सबसे श्रेष्ठ धन है मानो हि महंता धनम्। अपमान से ही मनुष्य के गुणों का प्रकाश होता है।

२७८२) जब मनुष्य के मन में माँगने की इच्छा होती है, तब उसके सभी गुण संकुचित हो जाते हैं। नीतिकारों ने भिक्षुक को तृण से भी हल्का बताया है। बलि के यज्ञ में माँगते समय भगवान् को भी अपना छोटा रूप धारण करना पडा था।

२७८३) लोभ का कारण मोह है। मोह से ही लोभ उत्पन्न होता है और समस्त पापों की जड लोभ ही है। लोभी पुरुष किसी की ओर निर्भय होकर देख नहीं सकता। उसे सदा सर्वदा, सर्वत्र शंका बनी रहती है।

२७८४) स्वार्थी को अपने प्रयोजन से काम। स्वार्थी निर्लज्ज हो जाता है। और अपने अर्थ के लिए कोई दोष भी नहीं देखता है। ऐसे स्वार्थी व क्षुद्र पुरुषों को सदा क्षुद्र बातें ही सूझती हैं।

२७८५) जिन मनस्वियों ने लोभ को तिलांजलि दे दी है, जो वचन के धनी हैं, शरणागत रक्षक और कृतज्ञ हैं जिनके लिये धर्म ही सब कुछ है, जो अपने वचनों के सामने संसार की सभी सम्पत्ति का त्याग कर सकते हैं, उन मनस्वी, तपस्वी, तेजस्वी महात्माओं के चरणों में हमारा बार-बार प्रणाम है।

२७८६) मनुष्य का असली रूप एकान्त में, अन्त समय या विपत्ति में प्रकट होता है। धन-ऐश्वर्य में या सबके सम्मुख तो सभी अपने भावों को छिपा सकते हैं। प्रेम एक ऐसी चीज है जो क्रोध में भी नहीं छिप सकता। आन्तरिक भाव थोडी देर भले ही छिपा लिये जायँ, किन्तु समय पर वे अवश्य प्रकट हो जायँगे।

२७८७) जिन्हें कार्य करने की सच्ची लगन है, वे पद, प्रतिष्ठा की परवाह नहीं करते। सच्चे कार्यकर्ता प्रतिष्ठा के समय तो दूसरों को आगे कर देते हैं और कार्य करने के समय स्वयं जुट जाते हैं। उन्हें उत्तम पद मिले इसके लिये वे कभी प्रयत्न नहीं करते। भरसक उससे बचते ही रहते हैं।

२७८८) पद प्रतिष्ठा कभी कभी तो कार्य में विघ्न स्वरूप हो जाती है। लोग पद-प्रतिष्ठा के चक्कर में पड़कर अकारण ही परस्पर में द्वेष करने लगते हैं। और आपस में ही एक दूसरे को नीचा दिखाने के उद्योग में लग जाते हैं। प्रतिष्ठित किसी के बनाने से नहीं बनते।

२७८९) अच्छे काम स्वयं ही पुरुष की प्रतिष्ठा बढ़ा देते हैं। जो दूसरों को प्रतिष्ठा देता है, उसकी प्रतिष्ठा और बढ़ती है। जो स्वयं ही प्रतिष्ठित बनना चाहता है, अभिमान के कारण उसकी प्रतिष्ठा घट जाती है। कोई बनावे चाहे न बनावे संसार में प्रतिष्ठा उसी की होगी, जिसने जान पर खेलकर कार्य किया हो जो प्रतिष्ठित बनना चाहते हैं वे किसी तरह षडयन्त्र से लोगों को मिलाकर प्रतिष्ठित पद पर आसीन तो हो जाते हैं, किन्तु काम पडने पर प्राणों के मोह से बहाना बना देते हैं और अन्त में उनकी निन्दा होती है। इसलिये सच्चे पुरुष जब तक विवश नहीं हो जाते, तब तक किसी पद को ग्रहण नहीं करते।

२७९०) मनुष्य अपना असली पुरुषार्थ तभी प्रकट कर सकेगा, जब वह प्राणों का मोह छोड़ देगा। जब तक मनुष्य मरने को उद्यत नहीं होता, तब तक उसे किसी भी काम में पूर्ण सफलता नहीं मिलती। सत्-कार्य के लिये हँसते-हँसते मरना ही जीना है। जो मरना नहीं जानता वह व्यर्थ जीता है। जिसे प्राणों का मोह है वह तो नारकीय जीव है।

२७९१) प्राणों का उपयोग ही यश, कीर्ति और आत्मज्ञान है। जिसने इस नश्वर शरीर से अक्षयकीर्ति लाभ नहीं की, जिसने प्राणों की बाजी लगाकर सत्-साधन नहीं किये वह तो व्यर्थ है। इसीलिये तो जंगल में घोर साधन करते हुए योग के द्वारा अपने आप शरीर को त्याग देना और समर में शत्रु के सामने हँसते-हँसते प्राण त्याग देना, ये ही दो श्रेष्ठ मृत्यु बताई गई हैं। इन्हीं दो का शरीर धारण करना सार्थक है। नहीं वैसे तो कौआ भी बुरी वस्तु से अपना पेट भर कर बहुत वर्षों तक जीता रहता है।

HHH(२५०)HHH

२७९२) जब मनस्वी पुरुषों पर विपत्तियों के ऊपर विपत्तियाँ आने लगती हैं, तो वे थोड़ी देर के लिये विचलित हो जाते हैं। क्षण भर में वे फिर अपने को सम्हालकर उस विपत्ति का सामना करने के लिये उद्यत हो जाते हैं।

२७९३) दैव अनुकूल हो तो बिगडे हुए काम बन जाते हैं। इसके विपरीत दैव की प्रतिकूलता में बने हुए काम भी नहीं बनते। सब साधन अनुकूल होने पर भी हम पिछड़ जाते है। मित्र शत्रु हो जाते हैं, अपने पराये बन जाते हैं। सहायक ही अपने पथ में कंटक का काम करते हैं।

२७९४) संसार में जिन्होंने अपनापन त्याग दिया है, उन्हें मान और अपमान समान हैं। किन्तु जिनमें थोड़ा भी अपनापन शेष है, वे अपने मान से सन्तुष्ट और अपने अपमान से असन्तुष्ट होते हैं। मैं, मेरा यही मान अपमान और सुख-दु:ख का कारण है। मेरा शरीर, मेरा कुल, मेरी जाति, मेरा सम्प्रदाय, मेरा देश यही ममत्व है। जिनमें ममत्व है मेरापन है उनकी अच्छाई से, उन्नति से हमें सन्तोष और सुख होता है। जिसमें परायापन है, उसके सम्बन्ध में हम उदासीन रहते हैं। जिसमें द्वेष बुद्धि है, उसकी अच्छाई से हमें असन्तोष और बुराई से सन्तोष होता है।

२७९५) वीरों की वीरता सम्मुख ही प्रकट होती है। पीठ पीछे तो निर्बल लोग भी अपनी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं, सभी को खरी-खोटी सुनाते हैं। जो सम्मुख लड़कर युद्ध में वीरता दिखावे वही यथार्थ में सच्चा वीर है। वीर हमेशा कर्तव्य करके दिखाते हैं वे बहुत बकते और बड़बड़ाते नहीं। वे दूसरे की निन्दा की भी परवाह नहीं करते। दूसरे कुछ भी कहते रहें, उन्हें अपने काम से काम।

२७९६) अपने आत्म सुहृद् की प्रशंसा सभी करते हैं, किन्तु आदर्श पुरुष वे ही कहलाते हैं जिनकी प्रशंसा शत्रु भी पीठ पीछे करें। स्वपक्षीय योद्धा के बल वीर्य की प्रशंसा तो उसे उत्साहित करने के लिये ही की जाती है, किन्तु माननीय वीर तो वही है कि विपत्ति भी जिसका लोहा मान लें। यह संसार सदा से वीरों द्वारा प्रशंसित है। संसार में वीर न रहें तो नरक में और इसमें अन्तर ही क्या है ? इस पृथ्वी की शोभा वीरों से ही है। उसका उपभोग वीर पुरुष ही कर सकते हैं। वीर भोग्या वसुन्धरा यह लोकोक्ति यथार्थ सत्य है। दान वीर, शूरवीर, धर्मवीर, कर्मवीर आदि वीरों से ही पृथ्वी सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। जब संसार में आत्माभिमानी वीर नहीं रहते, समस्त वीरों का जब नाश हो जाता है, तब क्षुद्र पुरुष छल, बल, कौशल, धूर्तता और नाना भाँति की कुटिल नीतियों का आश्रय लेकर बहुमत के बल पर जनता के अग्रणी बनकर पाप पूर्ण कार्यों के प्रचार से पाप कर्मों का प्रसार और पापियों को प्रोत्साहित करते है।

२७९७) जब मनुष्य की कामना पूर्ण नहीं होती, जिस चीज की जिससे हम आशा लगाये रहते हैं, वह आशा जब निराशा में परिणित हो जाती है, हमारी अभिलषित वस्तु हमें जब प्राप्त नहीं होती, तब हृदय में एक प्रकार की अग्नि-सी लग जाती है। जब उसे भीतर मन में नही रोक सकते तब वह वचनों द्वारा प्रकट हो जाती है। उलटी सीधी सुनाकर भी जब सन्तोष नहीं होता तो कर्म द्वारा हम अपने स्वार्थ में विघ्न समझने वाले का अनिष्ट करने को उतारू हो जाते हैं। इस हृदय की अग्नि को क्रोध कहते हैं। इसका पिता काम है और पुत्र संमोह है। मनुष्य को जब क्रोध चढ़ता है, तब उसकी विवेकवती बुद्धि विभ्रम में पड़ जाती है। उसे अपने पराये का ज्ञान नहीं रहता। उस समय उसे कर्तव्य का भी विचार नहीं रहता। जो समय पर अच्छा बुरा सूझ जाता है, वही करने लगता है। समस्त अनर्थों का मूल क्रोध है।

२७९८) काम क्रोध क्षण भर में मनुष्य को अपने से पराया कर सकता है और प्रेम पल भर में परायों को आत्मीय बना सकता है। क्रोध ही नाश है, प्रेम ही सुख है। क्रोध में पास रहने पर मनुष्य दूर हो जाता है, प्रेम में दूर होने पर भी सदा पास ही रहता है। प्रेम का बन्धन न होता, स्नेह की रज्जु में जगत् न बँधा होता तो इस संसार में सुख का लेश भी न रहता। यह रोरव नरक से भी गया बीता बन जाता। प्रेम ही बिछुडों को मिला देता है। भूले भटकों को राह पर लगा देता है, अपने से अपनों को मिला देता है और इस राग द्वेष पूर्ण संसार को स्वर्ग बना देता है।

२७९९) परस्पर सम्मिलन में ही सुख है। संयोग आनन्द लाने का उत्पाद है। एक मन के, एक स्वभाव के, एक इच्छाओं वाले जब दो मिल जाते है, तभी सुख का स्रोत, आनन्द का सागर उमड़ने लगता है।

२८००) धर्मात्मा सदा धर्म पर अटल रहकर अक्षय कीर्ति लाभ करते हैं और स्वार्थी सदा स्वार्थों में रत रहकर विश्व में अपनी अपकीर्ति छोड़ जाते हैं। इस छोटे से जीवन के लिये किसी का अपकार क्यों किया जाय। इस नश्वर शरीर से विनश्वर कीर्ति क्यों न कमाई जाय। किन्तु स्वार्थी इसे समझ नहीं सकते, द्वेषी इसका महत्व नहीं जानते। तभी तो धर्माधर्म का विचार न करके वे सदा अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही रत रहते हैं।

२८०१) धर्म सदा धर्मात्माओं की रक्षा करता है। अधर्मी सदा अधर्म के ही कारण मारे जाते हैं। जो जिसके साथ जैसा बर्ताव करता

है उसे उसका वैसा ही दंड मिलता है।

२८०२) मनुष्य भ्रम के वशीभूत होकर ही सब अनर्थ करता है। रज्जु को सर्प समझकर उससे डरता है। छाया को भूत समझकर उससे बचने को भागता है। सीपी में चाँदी समझकर उसे लेने दौडता है। समस्त अनर्थ भ्रम से होते हैं। जब तक मनुष्य भ्रमवश इस संसार को सत्य समझता है तभी तक इसमें सुख की इच्छा रखता है। जब उसे इसके मिथ्यात्व का बोध हो जाता है तब वह सर्वज्ञ एक शाश्वत सत्ता का अनुभव करके शान्ति लाभ करता है।

२८०३) वास्तव में किताबों की तुलना में दूरदर्शन सचाई के ज्यादा करीब है। दूरदर्शन का पागलपन दरअसल मानव जीवन का पागलपन है।

२८०४) सब ओर से प्रकाशमान तप से ऋत और सत्य प्रकट हुआ, उसी से रात्रि उत्पन्न हुई। उस तप से ही यह जल से युक्त महान समुद्र और सूक्ष्म जलों में व्याप्त आकाश प्रकट हुआ।

२८०५) सभी मनुष्य ईश्वर की संतानें हैं। ईश्वर के घर में अस्पृश्य, चांडाल व शूद्र का भेद नहीं होता। ईश्वर के घर का दरवाजा किसी के लिए बंद नहीं होता।

२८०६) नरक और पाप से डरने वाला कभी भी हिंसा, बेईमानी तथा भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं हो सकता। अत: बुरे कर्मों से हमेशा बचना चाहिए।

२८०७) सच्चा सुखी वही है जिसे किसी भौतिक सुविधाओं की चाह नहीं है। सात्विकता, सादगी तथा संतोष जैसे सद्‌गुणों से युक्त व्यक्ति कभी दुखी हो ही नहीं सकता।

२८०८) अपने हृदय और जीवन की खिड़कियां दूसरों के लिए खोल दो। लक्ष्य निर्धारित कर लो कि आज एक अच्छा कार्य करूंगा। ईश्वर पर भरोसा रखो, वह इसका पुरस्कार तुम्हें अवश्य देगा।

२८०९) सबको अपने प्राण प्यारे हैं। सबको सुख अच्छा लगता है और दुख बुरा। सबको वध अप्रिय है और जीवन प्रिय है। सब प्राणी जीवन चाहते हैं। अत: किसी भी प्राणी के साथ हिंसा मत करो।

२८१०) धर्म से ही राज्य प्राप्त करें और धर्म से ही उसकी रक्षा करें, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को न तो राजा छोड़ता है और न ही वह राजा को छोड़ती है।

२८११) बालक का मन बड़ा सरल और तरल होता है। इस मन में संस्कार ग्रहण करने की शक्ति होती है। बचपन में किये गये संस्कार बालकों को वर्तमान तथा भावी जीवन में बहुत काम आते हैं। बालक निर्दोष, निर्मल और निष्कपट होते हैं इसीलिए वे परमात्माके अधिक निकट भी होते हैं।

२८१२) संसार के लोग अनेक बार अपनी प्रतिक्रियाएँ स्वार्थ के कारण देते हैं। संसार के लोगों में अनेक प्रकार के विकार होते हैं। और कभी किसी के बारे में मत व्यक्त करते समय वे उसका विचार करते हैं। इसलिए लोग दूसरों को प्रसन्न करने के लिए झूंठ भी बोलते हैं।

२८१३) दो धर्मों में संघर्ष की स्थिति आनी ही नहीं चाहिए। लेकिन सम्भव है इस प्रकार का संघर्ष निर्माण हो गया तो बड़े धर्म के पालन के लिए छोटे धर्म का त्याग करना ही पड़ता है। बड़े धर्म के पालन के अन्तर्गत छोटा धर्म अपने आप महत्त्वहीन हो जाता है।

२८१४) मनुष्य का जीवन बुदबुदे के समान, बुल-बुले के समान है। और ऐसे क्षणभंगुर जीवन में हम अपने अहंकार के कारण यदि कोई गलत निर्णय लेते हैं और किसी कार्य का नाश करते हैं तो यह हमारा अपराध है।

२८१५) दो मार्गों पर एक साथ नहीं चल सकते। दो मुखों वाली सुई से कपड़ा नहीं सिल सकते। इंद्रिय सुख और मोक्ष, दोनों साथ-साथ प्राप्त नहीं हो सकते।

२८१६) एक अच्छा, स्वच्छ मन वाला व्यक्ति दूसरों की विशेषताएं देखता है। दूषित मनवाला व्यक्ति दूसरों में बुराई ही ढूँढता है। जितना आप दूसरों में अवगुण देखेंगे, उतना ही आप पर अवगुणों का असर पड़ेगा।

२८१७) सुख की दासता और दु:ख का भय, यही बंधन है, इसी से मुक्त होने पर पवित्र-प्रेम की प्राप्ति होती है। प्रेम का तत्व क्षति पूर्ति और निवृत्ति से विलक्षण है। अपने प्रिय के मन में यदि अलग होने की बात हो, तो प्रिय के वियोग जनित असह्य-वेदना को भी

सह सके-यही पवित्र प्रेम है। प्रेम का आदान-प्रदान, दोनों ही रसरूप है।

२८१८) प्रेम वह अलौकिक तत्व है जिसकी प्राप्ति करना ही जीवन की पूर्णता है। प्रेम-पथ मे अपना कुछ नहीं है। प्रेमास्पद की दी हुई सुन्दरता से ही उनको रिझाया जाता है। सच तो यह है कि प्रेमास्पद का दिया हुआ ही प्रेमतत्व है जिसे उन्ही को भेट करना है।

२८१९) न तो बिना पूछे उत्तर दें, न दूसरों के बीच में बोलें। न पीठ पीछे किसी की निंदा करें। न बोलने में कपट भरे झूठे शब्दों को काम में लाएँ।

२८२०) धर्म सबसे उत्तम मंगल है। अहिंसा, संयम और तप ही धर्म है। जो धर्मात्मा है, जिसके मन में सदा धर्म रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

२८२१) छोटे बड़े किसी प्राणी को न मारना, बिना दी हुई चीज न लेना, विश्वासघात रूपी असत्य व्यवहार न करना, यही है आत्मनिग्रही लोगों का धर्म। साधु लोग इसी धर्म का पालन करते हैं।

२८२२) चाहे शत्रु हो या मित्र, वैरी हो या मीत सभी जीवों पर, सभी प्राणियों पर समभाव रखना, सभी को अपने जैसे समझने को ही अहिंसा कहा है। जीवनभर किसी भी प्राणी को मन, वचन और काया से न सताना, किसी की हिंसा न करना सचमुच बहुत कठिन है।

२८२३) इस लोक में सदा जागने वाला वही है, जो संयमी जीवन बिताता है। जो पुरुष संयमी हो उसे इन चीजों को छोड़ना पड़ता है- हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, भोग की लिप्सा और लोभ।

२८२४) आत्मा स्वयं ही दु:ख तथा सुखों को उत्पन्न तथा नाश करने वाली है। सन्मार्ग पर चलने वाली सदाचारी आत्मा मित्र रूप है जबकि कुमार्ग पर चलने वाली दुराचारी आत्मा शत्रु।

२८२५) जो आदमी अपना भला चाहता है, उसे क्रोध, मान, माया और लोभ को सदा के लिए छोड़ देना चाहिए। ये चारों दोष पाप बढ़ाने वाले हैं।

२८२६) क्रोध से मनुष्य नीचे गिरता है। अभिमान से अधम गति को पाता है। माया से सत्गति का नाश होता है तथा लोभ से इस लोक में भी और परलोक में भी भय रहता है।

२८२७) काबू में न लाया गया क्रोध और अभिमान, बढ़ती हुई माया और लोभ, ये चारों नीच कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार वृक्ष की जड़ों को बराबर सींचते रहते हैं।

२८२८) पर्वत में पड़ी दरार जैसे जुड़ती नहीं, वैसे ही ऐसा क्रोध जीवनभर शांत नहीं होता। (अत्यंत ज्यादा क्रोध) पृथ्वी में पड़ी दरार जैसे वर्षा आने पर पट जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध एक-आध साल में शांत हो जाता है। (ज्यादा क्रोध) रेत में खींची रेखा जैसे वायु के झोंके से मिट जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध एक-आध मास में शात हो जाता है। (सामान्य क्रोध) पानी में खींची रेखा जैसे शीघ नष्ट हो जाती है, वैसे ही ऐसा क्रोध जल्दी शांत हो जाता है। (हल्का क्रोध)

२८२९) ऐसे ही इस दुनिया में कदम-कदम पर खतरा आएगा, हर जगह चिन्ताएँ उपस्थित होंगी और जीवन के हर क्षेत्र में परीक्षाओं से गुजरना पड़ेगा। लेकिन अगर तुमने उस मालिक के हाथ में अपना हाथ सौंप दिया तो कोई चिन्ता तुम्हें दबा नहीं सकती, कोई भय तुम्हें डरा नहीं सकता। उस प्रभु के सहारे को पाकर तुम भवसागरको पार कर सकते है।

२८३०) जब दूसरे गलतियां करते है तो उनको गिनते मत रहो। उनका विश्वास जीतिये ताकि आप कमजोरी को मिटाने मे सहयोग दे सके। गलतफहमी प्रेमपूर्ण व शुद्ध विचारों से तथा समुचित समय पर सही ज्ञान देकर दूर की जा सकती है।

२८३१) जो व्यक्ति दूसरों के साथ शिष्टाचार का व्यवहार करना जानता है, वह संसार मे कहीं भी पहुंच सकता है। बिना शिष्टाचार और नम्रता के जीवन का सौन्दर्य नहीं है।

२८३२) किसी का भी पाप न तो देखो और न सुनो अन्यथा वह पाप तुम्हे भी नष्ट भ्रष्ट कर देगा। दूसरों के पाप का विचार हमारे मन को भी पापी बनाता है।

२८३३) बालकों को संस्कार देने के लिये बडों को सावधान होकर सांस्कारिक जीवन यापन करना चाहिये। तुम्हारी सन्तान के जीवन में अच्छे संस्कारों का सींचन हो इस दृष्टि से ही सत्कर्म करो।

२८३४) ज्ञान की बातें करने से नही बल्कि उसका उपयोग करने से जीवन सफल बनता है। ज्ञान की बातें करने से ही शान्ति उपलब्ध नहीं होती, शान्ति तो ज्ञान को जीवन में उतारने से, उस पर आचरण करने से ही मिलती है।

२८३५) डन्डे की मार भूली जाती है। शस्त्र की चोट का उपचार हो जाता है लेकिन शब्दों की चोट का प्रहार इतना भयानक घाव कर जाता है जो कभी नही भूला जाता इसलिये किसी को भी कर्कश वाणी से मत बोलो। कर्कश वाणी कभी भी हृदय में मत रखो इससे हृदय जलेगा।

२८३६) मान अपमान में मन को शान्त रखना सबसे महान पुण्य कार्य है। मन उदार होगा तभी परिवार में, जीवन में सुख शान्ति बनी रहेगी। मान और प्रेम यदि दूसरों को देते रहोगे तो मन शान्त रहेगा।

२८३७) अन्न ब्रह्म का स्वरूप है उसे बिगाडना नहीं चाहिये और न ही उसका अनादर करो, यह तो प्रसाद है। थाली मे जूठा मत छोडो। जूठा छोडना महापाप है। तुम्हारे आंगन मे आया हुआ भिखारी प्रभु का स्वरूप है उसे कभी भी झूठा भोजन मत दो। भोजन के समय अन्न को सामने रख कर कभी भी क्रोध मत करना, यह अन्न की निन्दा है। इस प्रकार यह सबसे बडा महान पाप है।

२८३८) कुछ लोग अधिक खाने से दु:खी होते है तो कुछ लोग खाना न मिलने के कारण दु:ख का अनुभव करते है। कुछ को अज्ञान दु:खी करता है तो कुछ को ज्ञान का अभिमान दु:ख देता है।

२८३९) यदि तेरे हृदय में लगन लगी हुई है, तो अपने धर्म और विपरीत धर्मों को एक ही समझ। यह बुद्धिमानी की बात है और अच्छे स्वभाव से संबंध रखती है।

२८४०) सहिष्णुता, उदारता, विनम्रता जैसे गुण मनुष्य को देवतुल्य बना देते हैं, क्योंकि वे अहंकार शून्य होते हैं। ऐसे जीवन की संगति मे दूसरे लोगों की दुष्प्रवृत्तियां अपने आप विलुप्त हो जाती हैं।

२८४१) तृण से भी नम्र, वृक्ष से भी अधिक सहनशील और निरभिमानी होकर सबको मान देना ही मानव जीवन की श्रेष्ठता है। यही ईश्वर की भक्ति है।

२८४२) प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्य का कुशलता से संपादन करता हुआ ईशार्चन कर फल प्राप्त कर सकता है। उसी में सारी सिद्धियों का बीज है।

२८४३) जितनी उदारता हममें है उससे सहस्त्र गुना अधिक उदारता समाज में है और उससे असंख्य गुना अधिक उदारता परमात्मा में है।

२८४४) जो क्षण-क्षण जीता है वही सच्चे अर्थ में सुखी है। और वो ही धार्मिक है। यही सच्ची धार्मिकता है। उसके लिए न बीता समय है और न जीत की महत्वाकांक्षा ही है। वो रहस्य में होकर के जीता है। उसके लिए जीवन है।

२८४५) संसार के सभी संबंध अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए ही हैं, न कि अधिकार जमाने के लिए। सुख देने के लिए हैं, न कि लेने के लिए।

२८४६) शुद्धि का लक्ष्य तमाम विकृतियों से मुक्त होने का संकल्प लेना है। विकृतियां व अवगुण हो तो मानव के सच्चे विकास में अवरोध पैदा करते हैं।

२८४७) सच्चा धर्मी बनना अलग चीज है और धर्मी के दोष वेष का परिधान करना अलग वस्तु है। सिंह के चर्म को पहनने मात्र से जिस प्रकार सियार, सिंह नहीं बन पाता, उसी प्रकार धर्मी का वेष पहनने मात्र से व्यक्ति सच्चा धर्मी नहीं बन पाता है।

२८४८) अंतरिक्ष और उसके आगे की गवेषणा करने और ब्रह्मांड के रहस्यों को सुलझाने वाले वैज्ञानिकों को भी सर्वव्यापी सौहार्द की बातें सीखनी चाहिए।

२८४९) हर जीवन के प्रति श्रद्धा अपने प्रति श्रद्धा से शुरू होती है। इसके लिए पहले हमें अपने शरीर को गलत भोजन और अत्यधिक इच्छा से होनेवाले विनाश से बचाना होगा।

२८५०) कर्मठता में चाहे दोष ही हो, पर कर्मनष्टता तो महान पाप है। धर्मग्लानि के समय लोक कर्मनष्ट होते हैं और धर्मोद्धार के समय कर्म से आरम्भ होता है और भक्ति और ज्ञान में उसकी पूर्णता होती है।

२८५१) भागवती की यह श्रेष्ठता है कि वेदों के समान इसका प्रभुत्व है अर्थात् अधिकारयुक्त वाणी से यह आदेश देता है, पुराणों के समान मनोरंजक कथाएँ कहकर मित्र के नाते परामर्श देता है और काव्य के समान प्रिया के वचनों की मधुरता के साथ प्रेम से सद्बोध कराता है।

२८५२) धर्मप्रचार का असली काम विद्वानों द्वारा और धार्मिक पण्डितों द्वारा विशेष नहीं हुआ करता, इसके लिए ईश्वरी विभूति की ही आवश्यकता होती है और ऐसी विभूति के ऊपर से नीचे उतर आने के लिए पहले धर्मप्रेम की शुभेच्छा का संचार सामान्य जनों में होना आवश्यक होता है।

२८५३) संस्था के लिए अन्दर से जिस ईश्वरीय तेज की आवश्यकता होती है वह सन्तों से ही प्राप्त हो सकती है। किसी भी संस्था में प्राण डालने के लिए ईश्वरीय विभूतियों की ही आवश्यकता होती है।

२८५४) कठिन परीक्षा देने के लिए पहले तो कोई तैयार ही नहीं होता और जो कोई तैयार होते हैं उनमें से बिरला ही कोई अन्त तक ठहरता है। सच्चे भक्त ऐसी विपत्तियों से नहीं डरा करते, प्रत्युत इस तरह अपनी जाँच कराने की इच्छा किया करते हैं। शरीर को प्रारब्ध के भरोसे रखकर अच्छे-बुरे सभी अवसरों को सानन्द सहजकर भक्तजन सदा आत्मानुसंधान में ही लगे रहते है।।

२८५५) महात्माओं की सभी बातें अलौकिक होती हैं। ग्रन्थों को रटकर उन्हें विद्यार्जन नहीं करना पड़ता। उनका विद्यार्जन केवल स्मरण करना है।

२८५६) वैराग्य-ज्ञानसम्पन्न स्त्री-पुरुषों को किसी भी अवस्था में मोह के वश न होना चाहिए। पर सुकुमार बच्चों के, उसमें भी अपने बच्चों के निर्विकार, निर्मल और प्रसन्न मुखमण्डल देखकर बड़े-बड़ों को वैराग्य भूल जाता है।

२८५७) गुरु और शास्त्र को माननेवाले ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो तभी तक गुरु और शास्त्र के सामने शीश झुकाते हैं जब तक उनके सुख में कोई बाधा नहीं पड़ती। परन्तु सर्वस्व की हानि होती हो तब भी गुरु और शास्त्र को ही मानना अत्यन्त श्रेष्ठ विभूतियों से ही बन पड़ता है।

२८५८) शास्त्र की आज्ञा की कोई परवाह न कर जो मनमाना आचरण किया जाता है उसीको लोग मनोधैर्य या नैतिकबल कहने लगे हैं। यथार्थ में मनोधैर्य यह नहीं है बल्कि धर्म, समाज और देश के विधि-विधान अपने स्वार्थ के बाधक हों तो भी उन विधि-विधानों पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार होना ही सच्चा मनोधैर्य है और श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण से यही बात मालूम होती है।

२८५९) अहंकार मनुष्य के सद्गुणों को तिरोहित कर देता है पर उनका समूल नाश नहीं करता, जहाँ कहीं अधिक योग्यतावाले पुरुष मिले और उन्होंने अहंकार का वह परदा हटाया यहाँ उनका सहज मनोहर स्वरूप प्रकट हो ही जाता है।

२८६०) जिसे वेदान्त या अध्यात्मविषय का कोई परिचय ही न हो अथवा सत्संग से जिसका प्रवेश ही इस विषय में न हुआ हो उस परम्पराशून्य मनुष्य के लिए अवश्य ही ये ग्रंथ कठिन हो सकते हैं। आधुनिक शिक्षा पद्धति से तथा अपने कुल के पारमार्थिक आचार-विचारों का संसर्ग छूट जाने से भी परम्परागत विचार तथा प्राचीन शब्द भी आज अपरिचित हो गए है। पर यह दोष ग्रंथों का नहीं, परिस्थिति का है।

२८६१) यह मन ऐसा है जो बुद्धि को भरमाता है, निश्चय को भूलाता है, धैर्य को चकमा देकर निकल जाता है। यह विवेक को भरमाता है, सन्तोष को चसका लगता है, और चुप बैठ रहिए तो दशों दिशाएँ घुमाता है।

२८६२) राग के समान आग नहीं है, द्वेष के समान ग्रह नहीं, मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान नदी नहीं। सभी संस्कार अनित्य हैं। प्रज्ञा से देखने पर सारे दु:ख निर्वेद को प्राप्त होते हैं। यही निर्वाण का मार्ग है।

२८६३) केवल सुसंस्कृत वाणी पुरुष को भली प्रकार अलंकृत करती है। अन्य आभूषण तो नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वाणीरूपी आभूषण हमेशा बना रहता है।

२८६४) गुरु परीक्षा लेकर ऊपर-नीचे करके समानता में ला देता है। फिर कहीं भी जायें, एकबार समानता का बीज आ गया तो फिर कहीं नहीं टूटेगा।

२८६५) दोनों ही सपना है, दिन का भी और रात का भी। जगत मिथ्या है, न दिन का सपना सच्चा है और न रात का। आत्मा के सिवाय सब सपने हैं।

२८६६) अधिक धन, अधिक शिक्षा होने से चरित्र की शुद्धि नहीं होती। उससे मनुष्य का अहंकार बढता है और वह ज्यादा अनर्थ करता है।

२८६७) माया से नींद हराम होती है, सुख चैन चला जाता है। माया हमेशा गड्ढे में गिराती है, पर कोई कोई जागता है। भगवान सारी

सृष्टि के पालनहार हैं।

२८६८) भक्त और भगवान दोनों अपनी नम्रता का परिचय देते रहते हैं। नम्रता में ही अमरता है। ज्ञान को यदि शब्दों में बताना हो तो वे तीन शब्द हैं- नम्रता, नम्रता, नम्रता।

२८६९) सदाचार कल्याण उत्पन्न करनेवाला और कीर्ति बढाने वाला होता है। सदाचार से आयु बढती है तथा सदाचार ही बुरे लक्षणों को नष्ट करता है।

२८७०) वैर पांच कारणों से होता है, इस बात को विद्वान लोग अच्छी तरह जानते हैं। स्त्री के लिए, घर और जमीन के लिए, कठोर वाणी के लिए, जातिगत द्वेष के कारण और किसी समय किये अपराध के कारण।

२८७१) मुझे न तो राज्य की कामना है, न स्वर्ग की और न ही मोक्ष की। मैं तो दु:ख से सन्तप्त प्राणियों के कष्ट-निवारण की ही कामना करता हूँ।

२८७२) दान देने में उदारता से पहले भावना का अस्तित्व आवश्यक है तथा जरूरी है कि देते समय लेनेवाले के प्रति पूरे सम्मान का भाव हो बल्कि विनम्रता भी दिखाई जाए। दानदाता यदि अहंकार झलका देता है तो वैसा दान प्रशंसा का पात्र नहीं होता है। दानदाता जितनी अधिक आत्मलघुता की अनुभूति करेगा, उतना ही अधिक उसका दान महान बनेगा।

२८७३) उस आदमी पर प्रभु की कृपा अनन्त होती है जो कृतज्ञ बनकर रहता है। कृतज्ञ व्यक्ति का अर्थ है जो एहसान मानता है। दूसरों के उपकारों का बदला उपकार से चुकाता है।

२८७४) विनय को यदि विवेक का साथ मिल जाये तो वह दुगने प्रकाश से चमकता है। इसीलिये योग्य व विनम्र लोग किसी भी राज्य के बहुमूल्य रत्नों के समान होते है।

२८७५) यदि कोई आपसे नाराज है और बुरा भला कह रहा है उस समय उसे यह कहना वह यो क्यों कर रहा है तो यह आग में घी डालने जैसा है।

२८७६) एक अच्छा, स्वच्छ मन वाला व्यक्ति दूसरों की विशेषतायें देखता है। दूषित व ग्रसित मनवाला व्यक्ति दूसरों मे बुराईयां ही ढूंढता है। जितना आप दूसरों मे अवगुण देखेंगे, उतना ही आप पर अवगुणों का असर पडेगा।

२८७७) मानव शरीर का दुरुपयोग करने से जीव बंध जाता है और सदुपयोग करने से मुक्त हो जाता है। अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का अहित करना मानव शरीर का दुरुपयोग है और अपने स्वार्थ का त्याग करके दूसरों का हित करना उसका सदुपयोग है।

२८७८) यदि आप कुछ समय श्रेष्ठ कर्म करने मे लगाते हो तो उसका लाभ फल कई गुणा मिलेगा और यदि वही समय व्यर्थ कर्म मे गंवाते हो कई गुनी हानि हो जायेगी।

२८७९) ज्ञानी होने का अर्थ अभिमानी होना नहीं है। जैसे शरीर की भूख अन्न से शान्त होती है वैसे ही आत्मा को प्रार्थना से पौष्टिकता प्राप्त होती है। इसलिये प्रार्थना तो ज्ञानी-अज्ञानी सभी को ही करनी चाहिये।

२८८०) किसी विद्या को सीख लेने मात्र से ही कोई लाभ नही जब तक कि सही समय पर उस विद्या का सदुपयोग करने का ज्ञान न हो। अधूरा ज्ञान सदैव खतरनाक होता है।

२८८१) जो मृत्यु को जान लेगा, समझेगा उसका जीवन से मोह, जीवन के प्रति लगाव, प्रेम, आसक्ति आदि स्वभावत: नष्ट हो जायेगी। मृत्यु सनातन सत्य है। जो चीज बनी है उसे नष्ट होना ही है। जन्म और मृत्यु के बीच आसक्ति का बन्धन है। संसार का जो भी आकर्षण है वह मृत्यु से भयभीत कर देता है। जो मृत्यु को समझता है, मृत्यु का स्मरण करता है वह आसक्ति के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

२८८२) भले वे ही है जो दूसरों के बारे मे अच्छा सोचते है, जो दूसरों की मदद के लिये तैयार रहते है और दूसरों के दर्द को महसूस करते है और उनकी परेशानियों को दूर करने का प्रयत्न करते है।

२८८३) दृष्टि भ्रम संसार में सर्व व्याप्त है। जो व्यक्ति अभाव को सोचते है वे सदैव दु:खी व निराश होते है और जो उपलब्धि से जान कर पूर्णता प्राप्त करते है उन्हे सन्तोष व आशा का आधार मिलता है।

२८८४) ठीक ठीक जीवन गुजार लेना सन्तोषी के वश की बात है क्योकि सभी बेहतरीन जीवन गुजारने की चिन्ता में ठीक ठीक जीवन भी नहीं गुजार पाते।

२८८५) युद्ध स्थल पर सैकडों दुश्मनों को जीतने वाले से ज्यादा श्रेष्ठ व्यक्ति स्वयं पर विजय पाने वाला व्यक्ति होता है। इसके लिये स्नेह का ईन्धन व सद्गुणों की बाती ही सफलता की राह है।

२८८६) यह मनुष्य स्वभाव है कि वह दूसरों की गलतिया निकालना परन्तु स्वयं को जीतनेवाला सारी दुनिया को जीत सकता है इसके लिये निग्रहपूर्वक सबके सद्गुणों की ओर देखना चाहिये।

२८८७) बड़े महत्व का है दान को अपनाना। जिंदगी में कुछ देना सीखें। हाथ फैलाने की आदत न बनाए। हाथ उठाकर दूसरों को देने की कामना रखें।

२८८८) मनुष्य अकेला पाप करता है और बहुत-से लोग उससे मौज उड़ाते हैं। मौज उड़ाने वाले तो छूट जाते हैं, पर उसका कर्ता ही दोष का भागी होता है।

२८८९) क्रोध मानसिक दुर्बलता का चिन्ह है। इसका प्रारंभ मूर्खता से तथा अंत पश्चाताप में होता है। पर नियंत्रित क्रोध ऐसी आध्यात्मिक शक्ति में रूपांतरित हो सकता है, जो संसार को हिला सकती है।

२८९०) इस धरती पर कुछ बिखेरना ही चाहते हो तो आचरण की सुगंध के ऐसे बीज बिखरो ताकि चारों तरफ प्रेम और प्रसन्नता की बगिया लहलहा उठे।

२८९१) स्वीकृत को मध्य में त्यागने वाले नहीं। यही नीति सिद्धांत की बात है। या तो मन में सोचो नहीं, सोच लिया तो कहो मत। कह दिया तो उससे पीछे हटना कैसे और क्यों करो ? करो अथवा मरो। यही नीति है।

२८९२) धैर्य प्रत्येक समझदार मनुष्य के लिए उपयोगी हैं थोडे से दु:ख पर झट से आंसू बहाना और मामूली सुख पर उछल-कूद करना मनुष्य को धीरता से दूर कर देते हैं, अत: लोक-व्यवहार की दृष्टि से भी धैर्य मनुष्य का सुंदर आभूषण है।

२८९३) स्वार्थवश, स्वार्थ के लिए दिया गया द्रव्य, पदार्थ दान नहीं होता क्योंकि दान भावना स्वार्थमूलक है। श्रमिक से श्रम कराने पर उसका पारिश्रमिक देना दान नहीं, अपितु ऋण उतारने के समान है।

२८९४) शत्रु कोई भी हो, कैसा भी हो, उसे देखकर कभी भी अपना मनोबल नहीं गिराना चाहिए। साहस, लगन, शक्ति से आप बड़े-से बड़े शत्रु पर भी विजय पा सकते हैं।

२८९५) जो मनुष्य शरीर को ही आत्मा, स्त्री-पुरुष आदि को ही अपना, मिट्टी, काष्ठ, पत्थर आदि को ही इष्टदेव और जल को तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुष को नहीं, वह मनुष्य होकर भी पशुओं से बुरा है।

२८९६) क्षत्रियों को भीख नहीं मांगनी चाहिए। वे संग्राम में विजय प्राप्त करें या जान दे दें। यही उनका कर्तव्य और धर्म है। दीनता का सहारा लेने से क्षत्रियों की जीविका नहीं चलती।

२८९७) जो प्राणी अपनी शक्ति लगाकर, यदि किसी धर्म कार्य को करते हैं, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती, तब भी उन्हें पुण्य तो अवश्य प्राप्त होता है।

२८९८) अपने मन को बीती हुई बातों से बोझिल मत करो। अपने मन को मन्दिर बनाओ और उसमें प्रीति बसाओ। मन की दुर्बलताओं से अधिक भयानक कोई पाप नहीं।

२८९९) वासना मनुष्य को पशु से भी बदतर बना देती है जब कि साधना व्यक्ति को नर से नारायण और पशु से परमेश्वर बना देती है। वासना जहर है, दु:ख है, नर्क है जबकि साधना जीवन है, सुख है, अमृत है, स्वर्ग है। भोग खारे पानी की तरह होता है जो प्यास बुझाने के बजाय बढ़ा देता है। साधना से सिद्धि प्राप्त होती है इसलिये साधना का मार्ग ही अपनाकर अपना जीवन सफल बनाये।

२९००) धन के तीन रूप होते है। १) सामान्य २) साधन परक ३) आराधन। धन खर्च हो सकता है किन्तु उस धन से तरक्की के साधन विकसित कर लिये जाये तो धन की निरन्तरता बनी रहती है। इसी धन को साधन और आराधन के रूप में एक विशिष्ट संकल्प एवं उद्देश्य निर्धारित कर व्यय किया जाय तो वह अक्षय भंडार बन जाता है कभी भी समाप्त नहीं होता।

२९०१) विनम्रता ही धर्म का मूल है। विनम्र व्यक्ति ईश्वर के दरबार में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है। जिसका मन अहंभाव अहंकार से भरा हुआ है वह सब कुछ हो सकता है लेकिन धार्मिक नहीं हो सकता।

२९०२) अतिथि सत्कार मनुष्य का परम कर्तव्य है इससे मनुष्य को देवत्व प्राप्त होता है। अतिथि सत्कार से इन्कार करना ही सबसे बडी दरिद्रता है। यदि कुछ न भी हो तो प्रेमपूर्वक मिलकर ही अतिथि का स्वागत करना चाहिये। जो मनुष्य योग्य अतिथि का प्रसन्नतापूर्वक स्वागत करता है उसके घर में निवास करने से लक्ष्मी को प्रसन्नता होती है।

२९०३) जिस घर में सोने की वर्षा होती होगी लेकिन अतिथि के आने पर आतिथेय प्रसन्न न हो और उसकी आखों में प्रेम न छलके तो व्यक्ति को ऐसे घर मे नहीं जाना चाहिये। अतिथि को किसी के यहां भी उसी समय तक रूकना चाहिये जब तक आदर-सत्कार, मान सम्मान हो परन्तु जब ऐसे लगे कि आदर सत्कार, मान सम्मान में कमी आने लग गयी है तो तुरन्त वहां से उठकर चल देना चाहिये।

२९०४) बुरे के साथ सदैव बुरा व्यवहार करना चाहिए। काँटों काँटों से और लोहा सदा लोहे सेही कटता है। यह बात पूर्णरूप से सत्य है।

२९०५) धन से धर्म की रक्षा होती है, खाने पीने और आचरण से विद्या की रक्षा होती है, शक्ति से राज की रक्षा होती है, यदि पत्नी अच्छी पढ़ी-लिखी, गुणवान हो तो वह सारे घर की रक्षा कर सकती है।

२९०६) आस्था और विश्वास का आपसी संबंध बड़ा गहरा है। दोनों के बीच एक सूक्ष्म दीवार होती है जो इनमें अंतर को चिन्हित करता है जिसे आमतौर पर परखा नहीं जा सकता। लेकिन इनकी प्रकृति पर ध्यान देने से अंतर स्पष्ट हो जाता।

२९०७) हर व्यक्ति में दिव्यता का अंश है, कुछ विशेषता है और शिक्षा का यही कार्य है कि इसको खोज निकाला जाए, विकसित किया जाए और प्रयागे में लाया जाए।

२९०८) करना चाहते हो, तो सेवा करो, जानना चाहते हो, तो अपने-आपको जानो और मानना चाहते हो, तो प्रभु को मानो। तीनों का परिणाम एक ही होगा।

२९०९) भौतिक संपत्ति को महत्व देकर और संयोगजन्य सुख के प्रलोभन में फंसकर कभी अधर्म का आश्रय नहीं लेना चाहिए, क्योंकि इन दोनों से मनुष्य का कभी हित नहीं होता, अपितु अहित ही होता है।

२९१०) अपनी बुराइयों को स्वीकार करना साहस का काम है, पर उससे भी बड़ी हिम्मत यह है कि उन्हें छोड़ने का निश्चय किया जाए।

२९११) धर्म आंखे मूंदकर ध्यान करने में नहीं है, जीवन के हरेक काम में सच्चाई और ईमानदारी बरतना धर्म है। घर बनाता है, कुनबा जोड़ता है, पर अन्त समय कुछ भी काम नहीं आता। उसके भले-बुरे कर्म ही साथ जाते हैं।

२९१२) जिसकी माता पतिव्रता है और पिता धार्मिक है, ऐसे माता-पिता के उत्तम संस्कारों से जो सन्तति पलती है, उस सन्तान का मन इतना निर्मल हो जाता है कि फिर एकान्त में दुनिया का कोई भी आकर्षण क्यों न मिले, लेकिन ये आकर्षण उसके मन को विचलित नहीं कर पाते, उसे निर्मलता से डिगा नहीं पाते। ऐसे ही लोग पूजनीय हुआ करते हैं।

२९१३) ईश्वर जिसके अंत:करण में सुखी होने की शक्ति देता है, वही मनुष्य अपने जीवन तथा इस जगत में से सुख पा सकता है। बाकी तो कई लोग सुख के साधनों से परिपूर्ण होते हुए भी जीवन में कभी सुखी नहीं हुए। उनके अंत:पुर का अधिकार संकुचित हो चुका होता है अत: वे रस नहीं ले सकते।

२९१४) विषयी पुरुषों का मन गोबर के कीड़े की भांति होता है। यह कीड़ा गोबर में ही रहना अधिक पसंद करता है। यदि गोबर छोड़कर उसे कुछ भी दिया जाए, तो उसे अच्छा नहीं लगता। उसे कमल में रख दो, तो वह छटपटाएगा।

२९१५) अनुरक्ति की आंख से गुण दिखता है। विरक्ति की आंख से दोष दिखता है और मध्यस्थता की आंख से गुण और दोष, दोनों दिखाई देते हैं।

२९१६) बाह्य वस्तुओं से तुम क्यों व्यग्र रहते हो ? किसी अच्छे कार्य में मन लगाकर अपने दुख को भूलने का प्रयत्न करो। अपने आचरण को कर्त्तव्य धर्म से नियंत्रित करो। यही शांति का मार्ग है।

२९१७) ऐसा नहीं है कि कुछ आदतें अच्छी होती हैं और कुछ आदतें खराब होती हैं। सभी आदतें खराब होती हैं, क्योंकि सभी आदतें हमें गुलाम बनाती हैं।

२९१८) यह संसार परिश्रम का है। जो परिश्रम करने को तैयार नहीं है वह कुछ नहीं कर सकता। सतत परिश्रम ही हमें आगे ले जा सकता है। सुस्ती पीछे ही धकेलती है। हम लोग अपने काम से बहुत जल्द थक जाते हैं, परेशान होकर उसे छोड़ देते हैं, इसी कारण हम उन्नति नहीं कर पाते।

२९१९) हम जितना अधिक काम करते है, उतना ही और अधिक काम कर सकते है। हम जितने अधिक व्यस्त रहते है उतनी ही अधिक फुर्सत हमे रहती है।

२९२०) हमारा काम यह नहीं है कि हम सुदूर की अस्पष्ट वस्तु को देखने का प्रयत्न करे। हमारा काम तो यह है कि हम सामने स्पष्ट कार्य को पूरा करे।

२९२१) अपनी सफलता पर विश्वास करना सफल लोगों का एक बुनियादी व बहुत जरूरी गुण है। आप अपनी सफलता पर पूरा विश्वास करेंगे तो जरूर सफल होंगे।

२९२२) अध्ययन के प्रति प्रेम, जीवन में आनेवाले विषाद और कलान्ति के क्षणों को आनन्द और प्रसन्नता के क्षणों मे परिवर्तित करने की क्षमता प्रदान करता है।

२९२३) ईश्वर द्वारा निर्मित हवा पानी की तरह सब चीजों पर सबका समान अधिकार होना चाहिये। संसार मे सबसे बडा अधिकार सेवा और त्याग से है।

२९२४) अपराध करने के पश्चात डर पैदा होता है और यही उसका दंड है अपराध करने और दंड देने मे मनुष्य एक दूसरे का सहायक होता है।

२९२५) असन्तुष्ट व्यक्ति किसी वस्तु से सन्तुष्ट नहीं होता, उसके लिये सभी कर्तव्य नीरस होते है। फलस्वरूप उसका जीवन असफल होना स्वाभाविक है।

२९२६) जो धूल पैर से आहत होने पर उठकर सिर पर चढ़ जाती है, वह उस मनुष्य से बेहतर है जो अपमान होने पर भी शान्त बैठा रहता है।

२९२७) दम्भ का अन्त सदैव अहंकार में होता है और अहंकारी आत्मा सदैव पतित होती है। जिसने अहंकार को छोड दिया, वह भव सागर से तर गया।

२९२८) अशक्त मनुष्य अपमान के कारण अपने को नीचा समझने लगता है और उस समय वह दु:ख से भर उठता है। बुद्धिमान व्यक्ति धोखा और अपमान की बात किसी अन्य पर प्रकट नहीं करता।

२९२९) कई लोग असाधारण अवसरों की बाट देखते है किन्तु वास्तव मे कोई अवसर छोटा या बडा नहीं होता है। छोटे से छोटे अवसर का प्रयोग करने से, अपनी बुद्धि को उसमे लगाने से वही छोटा अवसर बडा बन जाता है।

२९३०) क्षणभर के लिये कोई हितकारी अवसर आता है और हम उसे खो देते है तो उससे महीनों तथा वर्षों तक का नाश हो जाता है।

२९३१) जन्म से ही सम्पन्न, यौवनपूर्ण, रूपवान और अथाह शक्ति सम्पन्न होना आदि बहुत बडी बाते है। यदि इनमे से किसी एक के कारण भी मनुष्य मे अहंकार उत्पन्न होता है तो इन सब चीजों के मेल की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। अहंकार का अर्थ ही संग्रह करना है, संचय करना है वह केवल लेता ही रहता है, देना उसने कभी जाना ही नहीं। जिसे यह सब होश होता है वह कभी घमंड नहीं करता।

२९३२) आत्मविश्वास जैसा कोई अन्य मित्र नहीं। आत्मविश्वास ही भावी उन्नति की प्रथम प्राप्त सीढ़ी है। अत: सर्वप्रथम आत्मविश्वास करना सीखो। आत्म विश्वास, आत्मज्ञान और आत्म संचय सिर्फ यही तीन जीवन को बल एवं शक्ति प्रदान करते है।

२९३३) सांसारिक आकांक्षाये मनुष्य को अपने पाश में बांधती है और घसीटती है। हमारी आकांक्षा जीवन रूपी भाप को इन्द्रधनुष का रंग देती है।

२९३४) निर्धन मनुष्यों की सबसे बडी पूंजी, धन और मित्र उनका आत्मविश्वास ही होता है। यह आत्मविश्वास रखो कि तुम पृथ्वी के सबसे आवश्यक मनुष्य हो।

२९३५) मानव आत्मा की कोई जाति नहीं होती है। आत्मा को आत्मा की ही आवाज जगा सकती है। आत्मा ही अपना स्वर्ग और नरक है।

२९३६) आनन्द की पूर्ति सौन्दर्य में दृष्टिगोचर होती है। आनन्द बाहरी हालात पर नहीं, आन्तरिक अवस्था पर निर्भर है। सभी लोगों

को जो आनन्द चाहते है आनन्द बांटना चाहिये क्योकि आनन्द जुडवा पैदा हुआ है।

२९३७) यो तो संसार में तरह-तरह के दारूण दु:ख है परन्तु जाति का अपमान सबसे कठिन दु:ख है। जो कोई भी माता, पिता, ब्राह्मण और आचार्य का अपमान करता है वह यमराज के फन्दे में पडकर उस पाप का फल भोगता है।

२९३८) यदि कोई मनुष्य को अपमान पूर्वक अमृत भी पिलावे तो वह सुखकारक और अच्छा नहीं लगता जबकि सम्मानपूर्वक दिया हुआ विष भी जिससे वह मर सकता है कभी भी उस अमृत से अच्छा लगता है।

२९३९) अहिंसा की भावना से ही अनुप्राणित रह कर ही प्राणियों पर अनुशासन करना चाहिये। अनेक को जो एक रखती है, भेदों मे से जो अभेद ढूंढती है वही अहिंसा है।

२९४०) जिस प्रकार किसी को घर से बाहर निकाल देने पर वह घर का सारा भेद उगल देता है उसी प्रकार ये आंसू आखों से बहने पर हृदय के दु:ख प्रकट कर देते है।

२९४१) आचरण एक शीशे के समान है जिसमे प्रत्येक मानव अपना प्रतिबिम्ब दिखाता है। जिसने ज्ञान को आचरण मे उतार लिया तो समझो उसने ईश्वर को ही मूर्तिमान कर लिया।

२९४२) इच्छा से दु:ख आता है और इच्छा से ही भय आता है। जो इच्छाओं से मुक्त है वह न दु:ख जानता है और न भय। विश्व में हमारी इच्छा ही तो मूल कर्ता है।

२९४३) वही उन्नति कर सकता है जो स्वयं को उपदेश देता है। हृदय की विशालता ही उन्नति की नींव है। बिना शारीरिक उन्नति के आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं।

२९४४) जो मनुष्य दूसरे का उपकार करता है वह अपना उपकार न केवल परिणाम में अपितु उसी कर्म में करता है क्योकि अच्छा काम करने का भाव ही स्वयं में उचित पुरस्कार है।

२९४५) जो किसी का उपकार नहीं कर सकते तो उनके जीवन को धिक्कार है। जिसने तुम्हारा उपकार किया हो यदि वह बडा अपराध भी कर दे तो भी उसके उपकार को याद करके उसके अपराध को क्षमा कर दो।

२९४६) सभी व्यक्ति कठिनाईयों पर विजय प्राप्त कर सके। सभी सबका भला सोचे। सबके कार्यों की पूर्ति का प्रयत्न करे और सब स्थानों पर सबकी प्रसन्नता का यत्न करे।

२९४७) हमे ऐसा प्रेम करना सीखना चाहिये जिससे हम स्वार्थ से अन्धे न हो जाये। हमारे गले से गले, कन्धे से कन्धे और पैर से पैर मिले लेकिन सिर से सिर न टकराये। जब हममे ऐसी एकता हो जायेगी तभी हमारे सपने साकार हो पावेगे।

२९४८) ईश्वर में ही ऐश्वर्य का परिपूर्ण सत्य और परिपूर्ण स्वरूप प्रकाशित होता है। जगत में नहीं, विषय में नहीं, अपने निजी अहंकार में नहीं।

२९४९) छोटे दानी पुरुष का भी सम्मान करना चाहिये परन्तु महान सम्पत्ति के स्वामी होने पर भी कंजूस का नहीं। कंजूस के पास जितना होता है उतना ही वह उसके लिये तरसता है जो उसके पास नहीं होता।

२९५०) हार्दिक एकता से रहित मानसिक एकता का उपदेश देना मानो आकाश के तारे तोडने के समान है। परस्पर विरोधी बातों में एकता कराने से बढ़कर दुष्कर कार्य और नहीं है।

२९५१) जब तक आशा लगी हुई है तब तक एकाग्रता नहीं हो सकती। जो व्यक्ति जीवन में एक बात खोजता है वह आशा कर सकता है कि जीवन समाप्त होने से पूर्व वह उसे प्राप्त हो जायेगी। एकाग्रता से ही विजय प्राप्त होती है।

२९५२) स्वयं को हीन मानने वाले को उत्तम प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त नहीं होते। ऐश्वर्य पद में नहीं अपितु इस चेतना में है कि हम उसके योग्य है।

२९५३) किसी भी तलवार का आघात इतना तीव्र नहीं होता, जितना कि कर्कश वाणी जिव्हा का। रूखी, कठोर और कटुतापूर्ण वाणी सुननेवालों के मर्मस्थलों, हड्डियों एवं हृदय को जला डालती है।

२९५४) यदि जीवन में बुद्धिमानी की कोई बात है तो वह एकाग्रता है और यदि कोई खराब बात है तो वह है अपनी शक्तियों को बिखेर देना।

२९५५) कर्म वह आईना है जो हमारा स्वरूप हमें दिखा देता है। अतएव हमें कर्म का अहसानमन्द होना चाहिये। अतीत में जैसा कुछ भी कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है।

२९५६) मानव की बहुमुखी भावनाओं का प्रबल प्रवाह जब रोके नही रूकता तभी वह कला के रूप में फूट पडता है। प्रत्येक राष्ट्र के गुणावगुण सदा उसकी कला में ही अंकित रहते है।

२९५७) जब मैं किसी काम मे लग जाता हूँ तो उस संसार की कोई बात मेरे सामने नहीं रहती। यही उपयोगी पुरुष बनने की सफल कुंजी है। परन्तु लोग इसे अपने मनोरंजन के समय साथ नहीं रख सकते। दौडना व्यर्थ है, मुख्य बात तो समय पर चल पडना है।

२९५८) संसार का संचालन करने के लिये मैं बन्धा हुआ नहीं हूँ लेकिन ईश्वर ने मेरे लिये जो काम बनाया है उसे अपनी सारी शक्ति लगा कर पूर्ण करने के लिये मैं बन्धा हुआ हूँ।

२९५९) जिस प्रकार श्रम शरीर को शक्ति प्रदान करता है उसी प्रकार कठिनाईयां मनुष्य को शक्ति सम्पन्न बनाती है। बहुत सी वस्तुयें आरम्भ में जितनी कठिन प्रतीत होती है, करने में उतनी ही सरल निकलती है।

२९६०) मनुष्य की सेवा मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। बुद्धि और हृदय को जो सत्य लगे वही कर्तव्य महान है। उसी कर्तव्य का पालन करो जो तुम्हारे निकटतम हो।

२९६१) बिना कर्म किये केवल सिद्धान्त बताना दिमागी ऐयाशी है। बिना सिद्धान्त को समझे कार्य करना अन्धे की टटोल है। कार्य को हाथों हाथ उसी समय कर ही डालना चाहिये वरना जो कार्य पीछे रह जाता है वो कभी हो नहीं पाता।

२९६२) वीर लोग युद्ध में अपनी वीरता दिखाते है पर अपने मुंह से अपनी वीरता का बखान नहीं करते जबकि युद्ध में शत्रु को सामने देखकर कायर लोग ही अपनी बहादुरी की अतिशयोक्ति पूर्ण बातें करते है।

२९६३) कालचक्र बडे वेग से घूम रहा है। उसका नियन्त्रण ईश्वर के अतिरिक्त किसी के हाथ में नहीं। प्रत्येक प्राणी के अन्दर बाहर रहते हुये परम शक्तिशाली प्रभु ही अपनी इच्छा से कालचक्र घूमा रहे है।

२९६४) काल सब प्राणियों के सिर पर सवार है इसलिये किसी से मिलने पर सर्व प्रथम उसकी कुशलता पूछनी चाहिये। कार्य कुशल आदमी के लिये यश और धन की कमी नहीं है।

२९६५) विवेकशील पुरुष दूसरों की गलतियों से अपनी गलती सुधारते है। गलतियों की सबसे बडी औषधि है उसको भूल जाना। अपनी गलती को स्वीकार कर लेने मे लज्जा की कोई बात नहीं।

२९६६) ऐसा कोई व्यक्ति आज तक महान कवि नहीं हुआ जो कवि होने के साथ-साथ प्रकांड दार्शनिक न हुआ हो। आधुनिक कवि अपनी मसि में पानी अधिक मिश्रित कर देते है।

२९६७) जो निडर होकर पिता के वचन का निरादर करता है और बुरे लोगों के साथ रहता है, वह पुत्र मूर्ख और अधम है। उसके जन्म लेने से किसी को सुख नहीं मिलता।

२९६८) अपनी उन्नति और शत्रु का विनाश यही दो बातें नीति की है। इन्ही दोनों को स्वीकार करके कुशल पुरुष अपनी वाक्चतुरता का विस्तार करते है। मनुष्यों के साथ व्यवहार करने की कुशलता उसी प्रकार प्राप्तव्य है जिस प्रकार चीनी या पेय।

२९६९) जो युद्ध क्षेत्र से भाग जाता है, वह दूसरे दिन लडने को जीवित रह सकता है। किन्तु जो अपने आपको युद्ध की भेट कर देता है वह कभी दुबारा उठ नहीं सकता है।

२९७०) जब मैं किसी निर्धन व्यक्ति को अधिक कृतज्ञ पाता हूं तो मुझे विश्वास हो जाता है कि यदि वह धनी होता तो उसमें उतनी ही दानशीलता होती।

२९७१) क्रोध एक प्रचंड अग्नि है। जो मनुष्य इस अग्नि को वश में कर सकता है वह उसको बुझा देगा। जो मनुष्य इस अग्नि को वश में नहीं कर पाता, वह स्वयं को जला देगा।

२९७२) गरीब वह इन्सान है जो अपने को गरीब मानता है। गरीबी स्वयं को गरीब समझने में है। गरीब वह है जिसका खर्च आमदनी से अधिक है।

२९७३) नाश होने के पूर्व व्यक्ति घमंडी हो जाता है किन्तु सम्मान सदैव व्यक्ति को नम्रता प्रदान करता है। घमंडी व्यक्ति अक्सर झक्की हुआ करता है।

२९७४) समुद्र में मिल कर गंगा की कोई बडाई नही हुई बल्कि उसका नाम और अस्तित्व भी मिट गया उसी प्रकार दूसरे के घर मे जा बसने पर अपनी प्रभुता भी घट जाती है।

२९७५) जो सच्चाई पर निर्भर है वह किसी से घृणा नहीं करता। घृणा हृदय का पागल पन है। घृणा करना शैतान का काम है। क्षमा करना मनुष्य का धर्म है और प्रेम करना देवताओं का गुण है।

२९७६) फल मानव के कर्माधीन है। बुद्धि कर्मानुसार आगे बढ़नेवाली है, तथापि विद्वान और महात्मा भली भाँति सोच विचार कर ही कोई कर्म करते है। हमारे दाये हाथ में कर्म है और बाये हाथ में जय।

२९७७) वही कार्य करना ठीक है जिसे करके बाद में पछताना नहीं पडे और जिसके फल को प्रसन्न मन से भोगा जा सके। यदि कोई कार्य नहीं करता तो उसे उस दिन खाना भी नहीं चाहिये।

२९७८) जिस बात का अभिमान करोगे, वह बात सात नहीं लाखों जन्म तक नहीं मिलेगी। इसलिए स्वोत्कर्ष मत करें, पराकर्ष करें। अंतर का निरीक्षण करते हुए विनम्र बन जीवनयात्रा को सफल करें।

२९७९) लोग हमें जितना अच्छा समझते हैं, उतने अच्छे हम नहीं होते और लोग हमें जितना बुरा समझते हैं, उससे हम अधिक बुरे होते हैं। इस वास्तविकता को समझकर लोग हमें अच्छा समझें। इस इच्छा का त्याग कर देना चाहिए। और अपनी दृष्टि में अच्छे-से-अच्छा बनने की चेष्टा करनी चाहिए।

२९८०) चिंता करने से हानि के सिवा कोई लाभ नहीं होता। चिंता करने से ही कठिनाइयां दूर हो जाती हों तो अवश्य कीजिए। पर होता यह है कि चिंता करने से गुत्थियां सुलझने की बजाय ऊलझती ही रहती है। जहां विचारवृत्ति का अंत होता है वहीं से चिंता आरंभ होती है। चिंता संहारकवृत्ति है, विचार सृजनात्मक। फिर विचार से ही काम क्यों न लिया जाए ? चिंता और चिता में शब्दसाम्य ही नहीं अर्थसाम्य भी है।

२९८१) किसी प्रकार की गरीबी हमारा ईश्वर से उचित सम्बन्ध जोड देती है जबकि मन या धन की अमीरी हमारा उससे विच्छेद करा देती है। गरीबी मेरा अभिमान है।

२९८२) जो जान गया है कि उससे गलती हो गई और उसे ठीक नही करता है तो वह एक और गलती कर रहा है। बहुत सी और बडी गलतियां किये बिना कोई व्यक्ति बडा और महान नहीं बनता।

२९८३) जो बहुत घमंड करते थे वही आज अपने घमंड के कारण गिरे। इसलिये किसी को बहुत घमंड नहीं करना चाहिये। घमंड ही हार का दरवाजा है।

२९८४) चापलूस व्यक्ति इसलिये आपकी चापलूसी करता है क्योकि वह आपको अयोग्य समझता है लेकिन आप उसके मुंह से अपनी प्रशंसा सुनकर फूले नहीं समाते।

२९८५) क्रुद्ध व्यक्ति का मुख तो खुला रहता है किन्तु नेत्र बन्द रहते है। सुबह से शाम तक काम करके आदमी उतना नहीं थकता जितना क्रोध या आवेश और चिन्ता से एक घंटे भर में थक जाता है।

२९८६) यदि हम संसार को चलाने वाली शक्ति यानि प्रभु के अस्तित्व पर शक करते हैं तो हम आकस्मिक घटनाओं और दुर्घटनाओं के डर से जीवन जीते है। झूठ भी डर की ओर ले जाता है। यदि हम झूठ बोलते हैं तो हमें पकड़े जाने का डर होता है। झूठ को छिपाने के लिए हमें सौ झूठ और बोलने पड़ते हैं।

२९८७) एक गुण समस्त दोषों को ढक लेता है। गुण सब स्थानों पर अपना आदर करा लेता है। रूप की पहुंच आखों तक है, गुण आत्मा को जीतते है। स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही मुख्य वस्तु है। इसके सिवा और सभी बाते गौण है।

२९८८) छोटी नदियां थोडा ही जल पाकर इतरा जाती है। चूहे की अंजुलि थोडी सी वस्तु से भर जाती है। इसी प्रकार कायर भी थोडे से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

२९८९) कायर अपने जीवन काल में अनेक बार मरते है, वीर लोग केवल एक ही बार मरते है। एक कायर कुत्ता उतनी तीव्रता से काटता नही, जितनी जोरों से वह भौकता है।

२९९०) कोई तपस्वी होकर अतिक्रोधी हो जाये तो समाज मे उसका सम्मान नहीं होता। क्रोध समझदारी को घर से बाहर निकाल कर दरवाजे की चटखनी लगा कर बन्द कर लेता है। क्रोध होने का अर्थ है दूसरों की त्रुटियों का प्रतिशोध स्वयं ले लेना।

२९९१) चरित्र का जो मूल्य है वह और किसी वस्तु का नहीं है। मानव चरित्र न तो बिल्कुल श्यामल होता है और न ही बिल्कुल श्वेत। उसमे दोनो रंगों का मिश्रण होता है। अनुकूल परिस्थिति मे वह ऋषितुल्य हो जाता है और प्रतिकूल परिस्थिति में नराधम।

२९९२) मैं कायरता को किसी भी हालात में सहन नहीं कर सकता। आप कायरता से मरे, इसकी बजाय बहादुरी से प्रहार करते हुये और प्रहार सहते हुये मरना कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

२९९३) यदि तू अपकार करनेवाले पर क्रोध करता है तो क्रोध पर ही क्रोध क्यों नही करता, जो सबसे अधिक अपकार करनेवाला है। जो मनुष्य क्रोधी पर क्रोध नहीं करता, क्षमा करता है वह अपनी और क्रोध करनेवाले की महासंकट से रक्षा करता है।

२९९४) धनी-निर्धन दोनों ही चरित्र के अधिकारी है। समाज की खातिर दोनों से सुन्दर चरित्र की अपेक्षा की जाती है। किन्तु धनी धन के घमंड में उसे खो बैठते है और निर्धन उसे ही अपना सर्वस्व समझकर संजोये रखता है।

२९९५) मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से शूद्र या ब्राह्मण होता है। भगवान जाति से नहीं बल्कि भक्ति से प्रसन्न होते है। हमारा एक मात्र जागृत देवता हमारी जाति है।

२९९६) जिज्ञासा तेज बुद्धि का एक स्थायी और निश्चित गुण है। जो पहली और सहज भावना हम मनुष्य के मस्तिष्क में पाते है वह जिज्ञासा की है। अधिक जिज्ञासु अधिक विद्वान नहीं होते।

२९९७) उडने की अपेक्षा झुकने के वक्त ज्ञान हमारे सबसे अधिक नजदीक होता है। ज्ञान सिर्फ सच्चाई में ही पाया जाता है। अपनी अज्ञानता का आभास हो जाना ही ज्ञान का प्रथम सोपान है।

२९९८) ज्ञानी वह है जो वर्तमान को ठीक से भली भाँति से समझ ले और परिस्थिति के अनुसार आचरण करे। ज्ञानी पाप नहीं कर सकता, यह उसकी अपूर्णता है, इस अपूर्णता में ही उसकी पूर्णता है। ज्ञानी में गुण ही गुण होते है और मूर्ख में दोष ही दोष इसलिये एक ज्ञानी सहस्त्र मूर्खों से भी बढ़कर है।

२९९९) थोडा सा झूठ भी मनुष्य का नाश कर देता है जैसे दूध को एक बूंद जहर। मनुष्य झूठ से मेल करके जीवन की कितनी महती सम्पदाओं को नष्ट कर देता है। झूठ बोलना तलवार के घाव की तरह है। घाव तो भर जायेगा लेकिन उसका चिन्ह हमेशा बना रहेगा।

३०००) जो सत्य ही झलक के स्नेही है वे ही सच्चे तत्वज्ञानी है। उसी मूल तत्व को अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, भास्कर, ब्रह्मा, जल और प्रजापति नामों से पुकारा जाता है। असत् से कभी सत उत्पन्न नहीं होता।

३००१) जो तर्क की सुने नहीं वह कट्टर है, जो तर्क न कर सके वह मूर्ख है और जो तर्क करने का साहस न कर सके तो वह गुलाम है। तर्क केवल बुद्धि का विषय है। हृदय की सिद्धि तक बुद्धि नहीं पहुंच सकती। जिसे बुद्धि माने और हृदय न माने तो वह तजने योग्य ही है। सौन्दर्य का तर्क लाजवाब है।

३००२) तिरस्कार दिखाने का सर्वोत्तम तरीका है मौन। तिरस्कृत होने का मार्ग तिरस्कारों के सामने सिर झुका देना है। मनुष्य का उतना ही सम्मान होता है, जितना वह दूसरों से प्राप्त करने में समर्थ होता है।

३००३) तर्क के द्वारा विश्व में कष्टों से मुक्ति नहीं मिलती। तर्क के कटु और कडे शब्द दुर्बल कारण को सूचित करते है। तर्क को पार कर डालना चाहिये या वह स्वयं अपनी सीमा पार कर डाले और दिव्यता का मार्ग बन जाये।

३००४) चिकित्सकों की सबसे बडी त्रुटि यह है कि वे बिना मन को आरोग्य किये शरीर को अच्छा करने का प्रयास करते है जब की मन और शरीर अभिन्न है इसलिये उनकी चिकित्सा पृथक पृथक नहीं होनी चाहिये।

३००५) अगर इन्सान सुख-दु:ख की चिन्ता से उपर उठ जाये तो आसमान की ऊंचाई भी उसके पैरों तले आ जाये। चिन्ता से ही चिन्ता दूर होती है। धोखा देकर इसे रोकने का प्रयास करने से इसके परिणाम उल्टे होते है। चिन्ता एक प्रकार की कायरता है और

वह जीवन को विषयमय बना देती है।

३००६) चोर केवल दंड से ही नहीं बचना चाहता, वह अपमान से भी बचना चाहता है। वह दंड से उतना नहीं डरता जितना अपमान से।

३००७) जिज्ञासा के बिना ज्ञान नहीं होता। दु:ख के बिना सुख नहीं होता। सब जिज्ञासुओं को एक बार धर्म संकट और हृदय मन्थन का सामना करना पडता है।

३००८) यह संसार दु:खों के जंजालों से भरा पड़ा है। आदमी सुखी होते हुए भी किसी भी अन्य प्रकार के दु:खों से ग्रसित है। कोई धन से दु:खी है कोई तन से दु:खी है, कोई परिवारवालों से दु:खी है। किसी को बेटे का दु:ख है किसी को बेटी की चिंता है। यह दु:ख कभी खत्म होनेवाला नहीं है। दु:ख में ही आपको हम सबको परमात्मा याद आते हैं। देवी-देवता याद आते हैं। यह तो प्रकृति का शाश्वत नियम है।

३००९) जो गरीबी पर दया करता है वह अपने कार्य से ईश्वर को भी ऋणी बना लेता है। धनहीन व्यक्ति को सभी छोड देते है। मित्र, घर की स्त्री, पत्नी, नौकर, स्नेही जन भी धन हीन व्यक्ति का आदर नहीं करते लेकिन ईश्वर ही एक ऐसा है जो उसे स्वीकार भी करता है और आदर भी देता है।

३०१०) हम जिस चरित्र का निर्माण करते है वह हमारे साथ भविष्य में भी रहेगा, जब तक कि हम ईश्वर का साक्षात्कार कर उसमें लीन नही हो जाते। श्रेष्ठ चरित्र ही उत्तम गुण है।

३०११) कुटुम्ब की चिन्ता से परेशान व्यक्ति को कुलीनता, शील और गुण कच्चे घडे में रखे हुये पानी की तरह है। यदि चिन्ता ही करनी है तो ऊंचे चरित्र की और सतत रहनेवाली उन्नति की चिन्ता करो।

३०१२) जितने से आदमी का पेट भरे, उतने पर ही उसका निजी अधिकार है। जो इससे अधिक एकत्र करता है वह तो चोर है। अनुकरण भी चोरी है, स्वीकरण चोरी नहीं है।

३०१३) मनुष्य के जीवन का अधिकांश भाग यही सोचते विचारते निकल जाता है कि मैं अब जीवन को नाश से बचाऊंगा। फलत: जीवन तो नष्ट होते जाता है और हम जीवित रहने के उपक्रम में ही व्यस्त रह जाते है।

३०१४) झूठे व्यक्ति की सजा यह नहीं है कि उसका विश्वास नहीं किया जाता, बल्कि वह स्वयं ही किसी का विश्वास नहीं कर सकता। यदि झूठ बोलने से किसी की जान बचती हो तो वह झूठ पाप नहीं है उसे पुण्य ही समझो।

३०१५) अगर तुझे निरर्थक तर्क-वितर्क में मजा आता हो तो हो सकता है कि तू मिथ्यावादियों से भिडने लायक हो और तुझे इसका अहसास भी न हो कि मनुष्यों से प्रेम किस तरह किया जाता है।

३०१६) मान त्याग देने पर मनुष्य सबका प्रिय बन जाता है। क्रोध छोड देने से शोक रहित हो जाता है, काम का त्याग कर देने पर धनवान बन जाता है और लोभ छोड देने पर सुखी हो जाता है। पर स्त्री, पर धन, परनिन्दा, परिहास और बड़ों के सामने चंचलता, इन सबका त्याग करना श्रेयस्कर है।

३०१७) त्रुटियां करना मानवीय स्वभाव है क्षमा कर देना स्वर्गीय। अपनी त्रुटियों के विषय में हम सदैव स्वयं को धोखा देते रहते है और अन्त में उन्हे भी अपना सद्गुण समझने लगते है।

३०१८) पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वध के योग्य अपराध करनेवाला ही क्यो न हो सबके ऊपर श्रेष्ठ पुरुष को दया करनी चाहिये, क्योकि ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो सर्वथा अपराध नहीं करता हो।

३०१९) जिसको प्रत्येक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने का जोश होता है, जिसको सदा जानने की इच्छा बनी रहती है और जो बिना जाने भी सन्तुष्ट नहीं होता, वही सच्चा दार्शनिक है।

३०२०) आत्मसम्मान की भावना ही दीन भावना की औषध है। दीनता सभी गुणों की दृढ़ आधार शिला है। यह अभिमान था जिसने देवों को दैत्यों में बदल दिया। यह दीनता ही है जो मनुष्यों को देवतुल्य बना देती है।

३०२१) चिन्ता ने आज तक कभी किसी कमी को पूरा नहीं किया। जिन व्यवसायी पुरुषों को ज्ञान नहीं कि चिन्ता से कैसे दूर रहना चाहिये वे शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते है। जीवन की असंख्य चिन्ताओं के सन्तुलन स्वरूप ईश्वर ने हमे आशा और निद्रा भी प्रदान की है।

३०२२) गोपियों के इससे बढ़कर और क्या सुकर्म होंगे कि पूर्ण अवतार श्रीकृष्ण ने उनका माखन चुराया। धन्य है वह जिसका सब कुछ चुरा लिया जाये, मन और चित्त तक बाकी न रहे।

३०२३) आदमी में शुभ गुण तभी तक है, जब तक वह तृष्णा से दूर है। चेहरे पर झुरियां पड गई, सिर के बाल पक कर सफेद हो गये और अंग प्रत्यंग ढीले हो गये परन्तु तृष्णा है जो तरूण होती जाती है।

३०२४) त्याग से पाप का मूल धन ही चुकता है और दान से पाप का ब्याज। जिस आदमी की त्याग की भावना अपनी जाति से आगे नहीं बढ़ती है वह स्वयं स्वार्थी है और अपनी जाति को भी स्वार्थी बनाता है। त्याग के सिवा इस संसार में कोई शक्ति नहीं। निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता इन अवगुणों को उन्नति के चाहने वाले पुरुषों को ये अवश्य त्याग देने चाहिये।

३०२५) गलतियों की सबसे बड़ी औषधि है उनको विस्मृत कर देना। त्रुटिया निकालना सरल है जब कि अच्छा कार्य करना कठिन है। यदि आपको अपने पडोसी की त्रुटियों को सहना है तो अपनी दृष्टि स्वयं अपनी त्रुटियों पर डालिये।

३०२६) लाड प्यार में बहुत से दोष होते है और ताडना में बहुत से गुण होते है। अतएव पुत्र और शिष्य को दंड देना चाहिये, बहुत लाड-प्यार नहीं करना चाहिये। कठोर दंड बरसों के प्रेम को मिट्टी में मिला देता है।

३०२७) दया स्वयं परमात्मा का गुण है और लौकिक शक्ति उस समय दिव्य शक्ति के बहुत समान मालूम होती है, जब न्याय में दया का सम्मिश्रण होता है। पाप को कोई इतना साहसी नहीं बनाता, जितना दया बनाती है।

३०२८) दरिद्र वे लोग है जो अपने को दरिद्र मानते है। दरिद्रता दरिद्र समझने में ही रहती है। दरिद्रता का भाव रख कर हम समृद्धि को अपने मानस क्षेत्र की ओर आकृष्ट नहीं कर सकते है।

३०२९) दर्शन का उद्देश्य जीवन की व्याख्या करना नहीं है, उसे बदलना है। जब जिन्दगी को अपने गीत सुनाने के लिये कोई गायक नहीं मिलता है तो उसे वह अपने मन के विचार सुनाने के लिये दार्शनिक पैदा कर देती है।

३०३०) दान देकर तुम्हे खुश होना चाहिये क्योकि मुसीबत दान की दीवार कभी नहीं फांदती। जो भाग्यवान है वह दानशीलता अपनाता है और दानशीलता से ही आदमी भाग्यवान बनता है। जो स्वयं भोग नहीं सकता, वह प्रसन्न मन से दान भी नहीं कर सकता।

३०३१) अमीर गरीब सबकी जरूरते होती है इसलिये वे सब गरीब होते है। अमीरों की जरूरते भी अधिक है इसलिये वे औरों की अपेक्षा दीन भी ज्यादा है।

३०३२) ज्ञान के दो कार्य है पहले असत्य को मालूम करना और दूसरा सत्य को जानना। ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य चरित्र निर्माण होना चाहिये। बिना ज्ञान के सही स्वतन्त्रता हासिल नहीं होती। ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

३०३३) त्याग का प्रेम के साथ गहरा सम्बन्ध है। ऐसा सम्बन्ध कि यह निश्चय करना कठिन है कि कौन आगे है और कौन पीछे। प्रेम के बिना त्याग नहीं होता और त्याग के बिना प्रेम असम्भव है।

३०३४) कोई दिन ऐसा नहीं जाता जबकि मुझसे कम से कम दस गलतियां नहीं होती होगी। व्यक्तियों की त्रुटियों में उसकी स्वार्थपरता निहित रहती है।

३०३५) उस मनुष्य से अधिक कोई दरिद्र नही, जिसके पास केवल पैसा है। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं अधिक सुखी है जिसे उसका धन सांप बनकर काटने दौडे।

३०३६) सभी प्राणी दान की प्रशंसा करते है। दान से बढ़कर अन्य कुछ दुष्कर नहीं है। सूर्य जैसे जल को खींचता और बरसाता है उसी तरह हमें द्रव्य लेना और देना चाहिये। थोडा रहने पर भी जो दान दिया जाता है वह हजार के बराबर है।

३०३७) दुर्भाग्य अकेला नहीं आता। दूसरों के दुर्भाग्य सहने के लिये भी हम सबमें पर्याप्त सहनशीलता होनी चाहिये। दूसरों के दुर्भाग्य से बुद्धिमान व्यक्ति यह शिक्षा ग्रहण करे कि उन्हे किस बात से बचना चाहिये।

३०३८) दर्शन का सम्बन्ध विचार के ऊंचे से ऊंचे स्तर और व्यवहार के नीचे से नीचे स्तर से है। आश्चर्य सारे दर्शन शास्त्र की आधार शिला है, अनुसन्धान उसका विकास एवं अज्ञानता उसकी समाप्ति है।

३०३९) दान का प्रत्येक कार्य स्वर्ग पथ पर गतिशील होने का एक चरण है। दान स्वयं को समृद्ध बनाता जाता है। लालसा,

विपन्नता का संचय करती चलती है, इससे पूर्व कि धन तुमको लोभी बनाये, दानी बन जाओ।

३०४०) सारे दुर्भाग्य यदि एक ही स्थान पर एक ढेर पर रख दिये जाये और उनमें से सबको समान रूप से भाग लेना पडे तो हमसे अधिकांश अपना ही भाग ले सन्तुष्ट होकर विदा हो जायेंगे।

३०४१) जीवन एक फूल है और प्रेम उसका मधु। धर्म रहित जीवन सिद्धान्त रहित जीवन है और सिद्धान्त रहित जीवन पतवार रहित नौका के समान है। मनुष्य का जीवन इसलिये है कि वह अत्याचार के खिलाफ लडे।

३०४२) शुद्ध न्याय में शुद्ध दया होनी चाहिये। न्याय का विरोध करने वाली दया दया नही बल्कि क्रूरता है। दया के छोटे-छोटे कार्य और प्रेम के जरा-जरा से शब्द हमारी पृथ्वी को स्वर्गोपम बना देते है।

३०४३) दान से ज्योंही जेब खाली होती है, हृदय समृद्ध होते जाता है। दान ही धर्म का पूर्णत्व और उसका आभूषण है। जो बिना दान दिये खाता है वह विष का पाचन करता है।

३०४४) जब दृढ़ता पर्याप्त है तो उतावलापन अनावश्यक है। दृढ़ता बडी प्रबल शक्ति है, पुरुष के सब गुणों की रानी है। ध्येय मे दृढ़ निश्चय कर्म के सदृश है।

३०४५) प्राणियों के लिये चिन्ता ही ज्वर है। यदि तुम्हारा स्वभाव ही है चिन्ता करके कष्टों का आह्वान करने का तो फिर कम से कम अपने पडोसियों को तो यह उधार मत दो।

३०४६) दु:खों को दूर करने की अमोघ औषधि है मन मे दु:ख की कभी चिन्ता नहीं करना। दु:ख छोटे मनुष्यों को वशीभूत कर उन्हे निस्तेज कर देता है। परन्तु महान पुरुष दु:ख से उपर उठ जाते है।

३०४७) दुष्ट व्यक्ति के पास न तो किसी को ठहरना चाहिये और न उसके साथ कहीं जाना चाहिये। दुष्ट लोगों को महान व्यक्तियों के कार्य कभी अच्छे नहीं लगते इसलिये वे उनसे द्वेष करते है।

३०४८) दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य संसार को अपनी इच्छा के अनुसार झुका लेता है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ मानव जो प्राणों का उत्सर्ग करने के लिये तैयार रहता है, ब्रह्मांड तक को वह हाथों पर उठा सकता है।

३०४९) दोष निकालना सरल है लेकिन उन्हे सुधारना कठिन। अपने ही दोष ढूंढ निकालना ज्ञान वीरों का काम है। जब कभी मुझे दोष देखने की इच्छा होती है तो मैं स्वयं से ही आरम्भ करता हूँ और इससे आगे नहीं बढ़ पाता हूं। तू दूसरों की आंख के तिनके को क्या देखता है, पहले अपनी आंख का शहतीर तो निकाल।

३०५०) कार्यशीलता की सौ गलतियां निकम्मेपन की एक अच्छाई से बढ़कर है, क्योंकि कार्यशीलता में अपनी गलती को दूर करने का भी सामर्थ्य है और निकम्मापन अपनी अच्छाई कायम नहीं रख सकता।

३०५१) जिस के पास मनोबल नहीं, उस के पास कुछ नहीं, यहां तक कि मनुष्यता भी नहीं। मनुष्य तो सामान्य रूप से क्षुद्र जीव होता है, एक मनुष्यता ही उसे महान बनाती है।

३०५२) दोस्ती धीरे-धीरे पैदा करो, परन्तु जब कर लो तो उसमें दृढ़ और अचल रहो। दोस्ती खुशी को दूगना करके और दु:ख को बांट कर खुशी को बढ़ाती है तथा मुसीबतें कम करती है।

३०५३) द्वेष बुद्धि को हम द्वेष से नही मिटा सकते, प्रेम की शक्ति ही उसे मिटा सकती है। जिसके प्रति मन मे द्वेष हो, उससे मधुर वाणी में ही सम्भाषण करो। जिनका हृदय द्वेष या वैर की आग में जलता है, उन्हे रात में नींद नहीं आती।

३०५४) तुम कुछ व्यक्तियों को सदा के लिये मूर्ख बना सकते हो और ज्यादा व्यक्तियों को कुछ समय के लिये मूर्ख बना सकते हो लेकिन तुम सभी को सदा के लिये मूर्ख नहीं बना सकते।

३०५५) यदि परिस्थितियाँ अनुकूल है तो सीधे ध्येय की ओर बढ़ो लेकिन यदि परिस्थितियां प्रतिकूल हो तो उस मार्ग का अनुसरण करो जिसमे कम से कम बाधा आने की सम्भावना हो।

३०५६) संसार में दुखियों में पहिला दु:खी निर्धन है। उससे अधिक दु:खी वह है जिसे किसी का ऋण चुकाना हो। इन दोनों से भी दु:खी वह है जो सदा रोगी रहता है और सबसे दु:खी वह है जिसकी पत्नी दुष्ट हो।

३०५७) ईश्वर मनुष्य को गहरे पानी में यानि कि दु:ख में डुबोने के लिये नहीं बल्कि स्नान के लिये लाता है। दु:ख एक देवदूत है जिसके शीश पर कंटक किरीट विराजमान है। विचित्र बात है कि सुख की अभिलाषा दु:ख का ही एक अंश है।

३०५८) दोस्त पाने की एक ही राह है खुद किसी का दोस्त बन जाना। जरूरत के वक्त काम आनेवाला दोस्त ही वास्तव में दोस्त है। सच्चे दोस्त वो ही होते है जिनकी देह दो पर आत्मा एक ही होती है। जिसने अपने दोस्त का काम करने का बीडा उठाया है वह देर नहीं किया करता।

३०५९) धैर्य सन्तोष की कुंजी है। धीरज सारे आनन्दों और शक्तियों का मूल है। धैर्य और परिश्रम से वह प्राप्त किया जा सकता है जो शक्ति और जल्दबादी से कभी नहीं। जिसके पास धैर्य है, वह जो कुछ इच्छा करता है उसे प्राप्त कर लेता है।

३०६०) अपने दु:ख का भार संसार के एहसान के भार से हल्का है। यद्यपि संसार में अनेक घोर दु:ख है तथापि जाति में अपना अपमान होना सबसे कठोर दु:ख होता है।

३०६१) संसार के व्यवहारों के लिये धन ही सार है। अतएव मनुष्य को युक्ति एवं साहस के साथ उसकी प्राप्ति के लिये काम करना चाहिये। धन की प्रधानता ने समस्त समाज को उल्टा पलटा कर दिया है।

३०६२) नशे में मदहोश आदमी की सूरत उसकी मां को भी बुरी लगती है। नशा तात्कालिक आत्महत्या है, उसका सुख केवल नकारात्मक है, दु:ख की क्षणिक विस्मृति। संसार की सारी सेनायें मिल कर इतने मानवों और इतनी सम्पत्ति को नष्ट नहीं करती जितनी शराब पीने की आदत।

३०६३) जो जिसके गुणोत्कर्ष को नहीं जानता, वह सदैव उसकी निन्दा ही करता है। निन्दकों का परिवाद करनेवाला मर कर गधा होता है और निन्दा करनेवाला श्वान होता है। निन्दक आखिर स्वयं ही निन्दित हो जाते है।

३०६४) बहुत ही विचित्र बात है कि उन्ही इन्द्रियों, कार्यों, बुद्धि और वाणी के रहते हुये भी व्यक्ति निर्धन हो जाये तो एक क्षण में ही उसमे परिवर्तन आ जाता है। वह बिलकुल ही दूसरा आदमी दिखाई देने लगता है।

३०६५) धन को द्रव्य कहा जाता है अर्थात बहने वाला। यदि वह स्थिर रहा तो रूके हुये पानी की तरह उसमें से बदबू आने लगेगी। धन की तीन गतियां होती है दान, भोग और नाश। जो मनुष्य न ही दान देता है और न ही उसे भोगता है तो उसके धन का नाश हो जाता है।

३०६६) शोक में, आर्थिक संकट में या प्राणान्तक भय उपस्थित हो जाने पर जो अपनी बुद्धि से दु:ख निवारण के उपाय करते हुये धीरज धारण कर लेता है उसे कष्टों का सामना नहीं करना पडता।

३०६७) अपने जीवन का ध्येय बनाओ और उसके बाद अपनी सारी शारीरिक और मानसिक शक्ति उसमे लगा दो। हमारा ध्येय सत्य होना चाहिये, न कि सुख।

३०६८) नम्रता और खुद के खौफ से ही इज्जत और जिन्दगी मिलती है। वास्तविक महान पुरुष की पहली पहचान उसकी नम्रता ही होती है। नम्रता प्रेमपूर्ण व्यवहार तथा सहनशीलता से मनुष्य तो क्या देवता भी तुम्हारे वश में हो जाते है। यदि ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो नम्र बन कर करो और जब ज्ञान प्राप्त कर लो तो और नम्र बन जाओ।

३०६९) अपने नाम को कमल की तरह निष्कलंक बनाओ। गुणों से रहित नाम निरर्थक होता है। नामों में देश काल की संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है।

३०७०) जो मानव अपनी निन्दा सुन लेता है, वह सारे जगत पर विजय प्राप्त कर लेता है। हर किसी की निन्दा सुन लो लेकिन अपना फैसला गुप्त रखो। दूसरों की निन्दा करने से पहले हमें आत्म परीक्षण करना चाहिये।

३०७१) जिसकी बुद्धि ने विश्व के व्यापार में नियम को नहीं पहचाना, वह जीवन के हर विषय में अशक्त, अकृतार्थ तथा पराभूत है। देव पुरुषों के नियम तोडकर सैकडो सिद्धियों वाला कोई भी मानव सौ वर्ष तक नहीं जी सकता।

३०७२) नम्रता बड़ों के प्रति कर्तव्य है, समवयस्कों के प्रति विनय की सूचक है। अनुजों केप्रति कुलीनता की द्योतक है और सबके प्रति सुरक्षा की सूचक।

३०७३) बुरे लोगों को दूसरे की निन्दा करने में ही आनन्द आता है। सारे रसों को चख कर भी कौआ गन्दगी से तृप्त होता है। यदि

कोई तुम्हारी निन्दा करता है तो भीतर ही भीतर प्रसन्न हो जाओ क्योंकि निन्दा करके वह तुम्हारे पाप अपने ऊपर ले रहा है।

३०७४) ऐसे भी व्यक्ति है जो अपने पास सब कुछ बताते है फिर भी उनके पास कुछ भी नहीं है। ऐसे भी है जो स्वयं को विपन्न बताते है फिर भी उनके पास अतुल सम्पदा है।

३०७५) सच्ची से सच्ची और अच्छी से अच्छी चतुराई निश्चय है। जो व्यक्ति निश्चय कर लेता है उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।

३०७६) जो उपकार करने वाले को नीच मानता है, उससे अधिक नीच दूसरा कोई नहीं। नीच दूसरे के यश रूपी अत्यन्त तीव्र अग्नि में जलकर और उसके पद को प्राप्त करने में असमर्थ होकर उसकी निन्दा करते है।

३०७७) जो एक बार प्रमाद करके दुबारा प्रमाद नहीं करता, जिसके दुष्कर्म उसके सत्य कर्मों में दब जाते है, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

३०७८) पछतावा हृदय की वेदना है और निर्मल जीवन का उदय। मुझे कोई पछतावा नहीं है क्योकि मैने कभी किसी का बुरा नहीं किया। सुधार के बिना पश्चाताप ऐसा ही है जैसे छेद बन्द किये बिना जहाज में से पानी निकालना।

३०७९) जो आपके सामने औरों की निन्दा करता है तो वह औरों के सामने आपकी भी निन्दा करेगा। झूठ बोलना पाप है, झूठी निन्दा करना और भी बडा पाप है और स्वजाति की निन्दा से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है।

३०८०) जो मनुष्य निश्चित कार्यों को छोडकर अनिश्चित के पीछे दौडता है, उसके निश्चित कार्य भी नष्ट हो जाते है, अनिश्चित तो नष्ट होते ही है।

३०८१) जिस समय हम समझते है कि हम नेतृत्व कर रहे है उस समय प्राय: हम स्वयं दूसरे के नेतृत्व में होते है। यदि नेत्र हीन व्यक्ति का नेतृत्व करनेवाला भी नेत्रहीन ही हो तो दोनो कुये में गिर पडेंगे।

३०८२) अगर कोई दृढ़ रहे तो पतन का गम नहीं, उठकर वह फिर आगे चल देगा। भोजन का अभाव ही हमारे नैतिक और आर्थिक पतन का मुख्य कारण है।

३०८३) अपने बहुमूल्य समय का एक-एक क्षण परिश्रम में व्यतीत करना चाहिये इसी में आनन्द है। ऐसा करने से कोई क्षण भी ऐसा नहीं बचता जिसके लिये हमें सोच या पछतावा हो। परिश्रम सभी पर विजयी होता है।

३०८४) हर अवसर और हर अवस्था में जो अपना कर्तव्य दिखाई दे, उसी को धर्म समझकर पूरा करना चाहिये। अन्य किसी धर्म की ओर नहीं जाना चाहिये।

३०८५) दूसरों पर शक मत करो, शक करना भी कभी-कभी गुनाह हो जाता है। दूसरों की बुराईयां मत ढूंढते बैठो और न ही किसी की पीठ पीछे निन्दा करो। पीठ-पीछे निन्दा करने वाला व्यक्ति तो अधम होता है, वह न तो इस लोक में अपना कल्याण कर पाता है और न ही परलोक में उसे सुख व शान्ति प्राप्त होती है।

३०८६) पति-पत्नी पक्के और सच्चे जीवन साथी है। वे दोनो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये सामूहिक प्रयत्न करते है। पत्नी पति की अर्धांगिनी और परम मित्र है। संसार में जिसका कोई सहायक न हो, उसको पत्नी जीवन यात्रा में साथ देती है।

३०८७) अगर मनुष्य निरन्तर सुखी रहना चाहता है तो उसे परोपकार के लिये जीवित रहना चाहिये। ज्यो-ज्यो परोपकार के लिये रुपये की थैली खाली होती है त्यौं-त्यौं हमारा हृदय भरता जाता है।

३०८८) पापी से घृणा मत करो, उसके पाप से घृणा करो क्योकि पूर्ण निष्पाप तुम भी न होगे। मरते समय तक गुप्त पाप चुभता है। संसार में प्रत्येक पाप के लिये प्रत्येक प्राणी जिम्मेदार है। संसार में दुर्बल और दरिद्र होना पाप है।

३०८९) जो लोग स्वर्ग मे रहते हैं या जिनके साथ स्वर्ग चल रहा होता है उनकी पहली निशानी दान है। वे दान करते हैं। धन देने का मतलब ही दान नहीं है।

३०९०) दुनिया में जितने दान हैं, उन सब में सबसे अच्छा दान है- किसी को ज्ञान देकर, किसी के अज्ञान का हरण कर, उसके दु:खों को मिटाना। यदि कोई किसी को जोश में होश देकर, उसे सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हुए, उसे उसकी मंजिल तक पहुँचाने में सफल हो जाता है तो समझ लेना वह दानवीर है। दानवीर वह होता है जो अभाव से लडे। कर्मवीर वह है जो आलस्य से लडे। धर्मवीर

वह है जो अज्ञानता से लडता है। अगर आप चारों चीजें अपना सकते हैं तो आप सबसे बढ़कर दानी हैं।

३०९१) यदि परिस्थितियां अनुकूल न रहे तो भगवान को दोष मत दो। अपना ही निरीक्षण करो। यदि गहराई से सोचोगे तो तुम्हे स्वयं ही अपनी कठिनाइयों के कारण ज्ञात हो जायेंगे। परिस्थितियों को स्वीकार करना सीखो।

३०९२) मै प्रजातन्त्र में इसलिये विश्वास करता हूँ कि वह प्रत्येक मनुष्य की शक्ति को उन्मुक्त करता है। प्रत्येक व्यक्ति की अच्छाई ही प्रजातन्त्रीय शासन की सफलता का मूल सिद्धान्त है।

३०९३) सदैव प्रसन्न रहो। इससे मस्तिष्क में अच्छे विचार आते है और चित्त शुभ कार्यों की ओर लगा रहता है। प्रसन्न चित्त व्यक्ति अधिक जीते है। प्रसन्नता को हम जितना बाटेंगे, उतनी ही अधिक वह हमारे पास आयेगी।

३०९४) लोक प्रसिद्धि भी इतनी अधिक मात्रा में आती है कि वह सिर दर्द और भार बन जाती है। प्रसिद्धि सफेद वस्त्र के सदृश है, जिस पर जरा सा भी धब्बा नहीं छिप सकता। प्रसिद्धि वीरता के कामों की महक है।

३०९५) प्रेम मानवता का दूसरा नाम है। प्रेम कभी भी दावा नहीं करता, वह हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट सहता है। न कभी झुंझलाता है और न कभी बदला लेता है। प्रेम भगवान का सर्वश्रेष्ठ वरदान है।

३०९६) बदला लेने में मनुष्य अपने दुश्मन जैसा हो जाता है लेकिन बदला न लेने से वह उससे श्रेष्ठ बनता है। जो बदला लेने की बात सोचता है, वह अपने ही उस घाव को हरा रखता है जो अब तक कभी का भर कर अच्छा हो गया होता।

३०९७) कोई कितना भी प्रयत्न कर ले लेकिन प्रकृति से हट कर कुछ नहीं हो सकता जैसे बल से जल को उपर तो चढ़ाया जा सकता है लेकिन अन्त में अपने स्वभाव के कारण फिर नीचे ही बहने लगेगा।

३०९८) जिस मनुष्य की अपनी बुद्धि नहीं होती, उसके लिये शास्त्र वैसे ही व्यर्थ है जैसे अन्धे के लिये दर्पण व्यर्थ होता है। लम्बी चौडी पढ़ाई के बीच प्रतिभा दब कर मर जाती है।

३०९९) किसी के गुणों की प्रशंसा करने में अपना समय नष्ट मत करो, उसके गुणों को अपनाने का प्रयत्न करो। यदि आप देखे कि कोई व्यक्ति प्रशंसा से किसी तरह प्रभावित होता है तो उस व्यक्ति का चरित्र बता सकते है। शत्रु द्वारा की गई प्रशंसा सर्वोत्तम कीर्ति है।

३१००) बल सब पर विजय प्राप्त करता है, परन्तु वह विजय क्षणिक होती है। बल से जो शत्रु को जीतता है, वह केवल उसको आधा ही जीत पाता है। सेवा के लिये अर्पण किया गया बल टिकेगा, अमर रहेगा।

३१०१) बालक की प्रशंसा या प्यार करने से हम उसकी प्रशंसा या प्यार नहीं करते बल्कि उस वस्तु की करते है, जिसकी हम उससे आशा करते है। बालकों की कर्तव्यशीलता ही सब गुणों की नींव है।

३१०२) पाप इसलिये दु:खद नहीं है कि वह मना है, बल्कि इसलिये मना है कि वह दु:खद है। कोई व्यक्ति पाप करके धन लाता है, उसका उपयोग घर के सब लोग करते है किन्तु पाप का फल वह अकेले ही भोगता है।

३१०३) दुनिया में प्रसन्न रहने का एक ही उपाय है और वह यह है कि अपनी जरूरतों को कम करो। चित्त की प्रसन्नता ही व्यवहार में उदारता बन जाती है।

३१०४) प्रेम के स्पर्श से हर कोई कवि बन जाता है। ज्ञान के शीतल प्रकाश में प्रेम का पौधा कभी नहीं उगता। प्रेम के लक्षण है पहले बाहरी संसार को भूल जाना दूसरा अपने आप को भी भूल जाना। प्रेम में हम सब समान रूप से मूर्ख है।

३१०५) बलवान होने में बडप्पन नहीं है, अपितु बल का सदुपयोग करने में बडप्पन है। समस्त महापुरुष मध्यम वर्ग में उत्पन्न होते है लेकिन बडा आदमी वही है जो कभी भी गुस्से में भी औल-फौल नहीं बकता।

३१०६) अपने शत्रु के लिये अपनी भट्टी को इतना गर्म मत कर कि वह तुझे ही भूनकर रख दे। बदला साहस नहीं है, परन्तु उसका सहना साहस है।

३१०७) शारीरिक क्षमता से बल प्राप्त नहीं होता। वह तो अदम्य इच्छा शक्ति से मिलता है। अधिक बलवान तो वे ही होते है, जिनके पास बुद्धि बल होता है। केवल शारीरिक बलवाला वास्तविक बलवान नहीं माना जाता।

३१०८) अगर किसी की कडवी बात न सुनना चाहो, तो पहले उसका मुंह मीठा करो। जो इन्सान तौल कर बात नहीं करता, उसे

सख्त बातें सुननी पडती है।

३१०९) बुरी बातों को भूल जाना चाहिये। बुरी बातों को देखते ही रहोगे तो इन्सान हैवान बन जायेगा। एक बुराई दुसरी बुराई को जन्म देती है। अच्छाई और बुराई तो ईश्वर के दाहिने और बाये हाथ है।

३११०) अपनी वर्तमान प्रसन्नताओं को इस प्रकार भोगो कि भावी प्रसन्नताओं को क्षति न पहुंचे। प्रसन्नता सभी गुणों की मां है। चित्त के प्रसन्न रहने से सब दु:ख नष्ट हो जाते है। जिसे प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, उसकी बुद्धि तुरन्त स्थिर हो जाती है।

३१११) छोटों के साथ सद्व्यवहार करके ही बडा मनुष्य अपने बडप्पन को प्रकट करता है। बडप्पन सूट-बूट और ठाठ में नहीं है, जिसकी आत्मा पवित्र है, वही बडा है।

३११२) कभी किसी पर कीचड मत उछालो। हो सकता है कि तुम अपने लक्ष्य से चूक जाओ, किन्तु तुम्हारे हाथ तो गन्दे हो ही जायेंगे। अपनी बुराइयों को अपने से पहले ही मर जाने दो। बुराई का सम्पर्क हमारी अच्छी आदतों को भी दूषित कर देता है।

३११३) अनावश्यक भय से डर कर किसी भी साहसिक कार्य में प्रवृत्त न होना अच्छा नहीं, किन्तु दैवी आपत्ति आने पर अथवा शत्रु के आक्रमण में या अतिवृष्टि अथवा अनावृष्टि के कारण या अकाल पडने पर तो आपत्ति ग्रस्त प्रदेश से चले जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

३११४) भूतकाल के अनुभव से समझदार व्यक्ति भविष्य का अनुमान लगा लेते है। सब कुछ लुट जाने के बाद भी भविष्य बाकी रहता है।

३११५) दूसरों के मन का भाव समझने में समय लगता है, परन्तु कभी-कभी यह बात अपने विषय में भी लागू होती है। बहुत से लोग अपने मन के भाव भी नहीं समझ पाते। मित्रता और शत्रुता के भाव तो बादलों के समान क्षण-क्षण में बदलते रहते है।

३११६) अपनी भूल अपने ही हाथों से सुधर जाये तो यह उससे कहीं अच्छा है कि कोई दूसरा उसे सुधारे। यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसकी प्रत्येक भूल उसे कुछ न कुछ शिक्षा दे सकती है।

३११७) बुद्धिमत्ता ज्ञान का उचित व्यवहार है। बहुत जानने वाले मूर्खों के समान मूर्ख और नहीं होता। अपनी जानकारी का उचित व्यवहार ही बुद्धिमत्ता है।

३११८) भय से ही दु:ख आते है, भय से ही मृत्यु होती है और भय से ही बुराइयां उत्पन्न होती है। भय केवल हमारी कल्पना की उपज है। धन, परिवार और शरीर का मोह तज दो, फिर देखो भय कहां रहता है।

३११९) जो भलाई से प्रेम करता है वह तो देवताओं की पूजा करता है, आदरणीय प्राणियों का सम्मान करता है और ईश्वर के निकट रहता है। भलाई जितनी अधिक की जाती है उतनी ही अधिक फैलती है। यदि हम भले है तो सारा संसार हमारे लिये भला है। जो दूसरों की भलाई करना चाहता है, उसने करने से पूर्व ही अपना भला कर लिया।

३१२०) अपनी भूख सहने वाले तपस्वी की शक्ति उतनी नहीं होती, जितनी कि दूसरों की भूख मिटानेवाले दानी की शक्ति। भूख पर नियन्त्रण स्वतन्त्रता का एक बडा भाग है।

३१२१) जान बूझ कर की गई भूल हमारी इच्छा पर निर्भर करती है, पर अनजाने में की गई भूल की भी कोई सीमा है। भूल करने मे पाप तो है ही परन्तु उसे छिपाने में उससे भी बडा पाप है।

३१२२) भोग को सीमित और कम करने में ही सम्पत्ति का यथार्थ गौरव है। भोग से आत्मा का शोषण होता है, त्याग से आत्मा को पोषण मिलता है।

३१२३) जो व्यक्ति आत्मनिर्भर है, वह सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये समस्त व्यवस्था कर लेता है और ऐसा ही व्यक्ति चरित्रवान एवं बुद्धिमान कहा जाता है। आत्मविश्वास के धनी व्यक्ति ही आत्मनिर्भरता को प्राप्त होते है। आत्म निर्भर बनने के लिये मुसीबतों का सामना जरूर करना पडता है लेकिन इससे मन को जो शान्ति मिलती है वह जीवन की सबसे बडी अमूल्य निधि है। स्वावलम्बन और सादगी से परिपूर्ण जीवन जीने की एक कडी और श्रृंखला है।

३१२४) धैर्य परीक्षण के सौपान- प्रलोभन, पराजय, परीक्षा व देह पीड़ा- अगर इन चार परिस्थितियों में जीव का धैर्य बना रहता है तो वह धैर्यवान है।

३१२५) बलवान का बल उसकी विनयशीलता मे है। बुद्धिमान व्यक्तियों का यह ऐसा शस्त्र है, जो उनके शत्रुओं का हृदय भी

परिवर्तित कर देता है।

३१२६) प्रेम-दोषों को भूलकर भाइयों पर केवल स्नेह करना चाहिए, बंधुओं से प्रेम स्थापित करना, लोक परलोक दोनों के लिए लाभदायक होता हैं।

३१२७) सज्जनों का लेना भी देने के लिए ही होता है, जैसे बादलों का। वह धरती की नदियों से पानी लेते है और फिर उसे ही वापस कर देते है।

३१२८) आदमी को रोज सुबह जो शक्ति दिनभर करने के लिए दी जाती है वह उसे सोने के समय तक खत्म कर डालनी चाहिए। अगर पूरी शक्ति श्रद्धापूर्वक खर्च न की जाए तो बची हुई शक्ति विकार का रूप धारण करती है।

३१२९) सब से शानदार विजय है अपने पर विजय प्राप्त करना और सबसे जलील और शर्मनाक बात है अपने से परास्त हो जाना।

३१३०) अवसर कोई ऐसी चीज नहीं है जो रोटीदाल की तरह सब के सामने परोसा जा सके। उसे पाने के लिए अपने गुणों का विकास करना होता है। तत्परता, मुस्तैदी और धीरता भी सीखनी होती है, और साथ ही उमर तथा अनुभवों का भी ध्यान रखना पडता है। अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाडता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है।

३१३१) व्यावहारिक पढ़ाई तो बच्चों की होती है, पर धार्मिक पढ़ाई भी होनी चाहिए। उन्हें ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए जो चरित्र को ऊंचा उठाकर आत्मा को शुद्ध करे। हमारे शास्त्रों में कहा भी है- सा विद्या या विमुक्तये। अर्थात् विद्या वही जो मुक्ति प्रदान करे। अगर आपने अपने बालकों को धार्मिक शिक्षण देकर संस्कारित नहीं किया तो वे आपकी प्रतिष्ठा, समाज की प्रतिष्ठा और धर्म की प्रतिष्ठा कैसे रख सकेंगे ? आप अपने बच्चों को संस्कार डालिए, उन्हें बताइए कि तुम्हें नीति पर चलना है, सच्चरित्र बनना है, व्यसनों से दूर रहना है, माता-पिता की तथा गुरु की आज्ञा माननी है एवं धर्म की रक्षा करनी है। ऐसे संस्कार डाले जाने पर ही तो आपके बालक सच्चे मनुष्य, सच्चे श्रावक तथा सच्चे महापुरुष बन सकेंगे।

३१३२) शिशु जन्म से कुछ सीखकर नहीं आता। वह जो कुछ भी सीखता है, अनुकरण के द्वारा ही सीखता है। माता-पिता तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों को जैसा करते देखता है, वह भी वैसा ही करने लगता है। चोर का पुत्र चोर बनता है और पुजारी का पुत्र पुजारी। इसलिए प्रत्येक पिता का कर्तव्य है कि वह स्वयं सुसंस्कारी, आचारनिष्ठ और ज्ञानवान बने तथा अपनी संतान को भी वैसा ही बनाये।

३१३३) शिक्षा का कार्य है, बालक में जो सद्गुण गुप्त रूप से विद्यमान होते हैं, उन्हें प्रत्यक्ष करना। चरित्र निर्माण करना तथा उसे सन्मार्ग बताना। शरीर तथा आत्मा में अधिक से अधिक जितने सौंदर्य और संपूर्णता का विकास हो सकता है, उसे हासिल करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य जीवन की परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता प्राप्त करता है।

३१३४) भलाई करना कर्तव्य नहीं आनन्द है क्योकि वह आपके स्वास्थ्य और सुख की वृद्धि करती है। जैसे एक छोटे दीपक की रोशनी बहुत दूर तक फैलती है, उसी प्रकार इस बुरे संसार में भलाई बहुत दूर तक चमकती है।

३१३५) भाग्य पर वह भरोसा करता है जिसमें पौरूष नहीं होता। जब मनुष्य दुर्भाग्य के कारण विपरीत स्थिति में पहुंच जाता है तो उस समय उसके मित्र भी शत्रु बन जाते है।

३१३६) केवल धन संचय द्वारा पूर्णत: सुरक्षित होने की कल्पना नहीं करनी चाहिये। धनबल से आत्मबल कहीं अधिक उपयोगी है। वह कौनसा कठिन कार्य है जिसे धैर्यवान एवं मनोबल युक्त मनुष्य सम्पन्न नहीं कर सकता।

३१३७) कोई कार्य तुच्छ नहीं है। यदि मनपसन्द कार्य मिल जाये तो मूर्ख भी उसे पूरा कर सकता है किन्तु बुद्धिमान पुरुष वही है जो प्रत्येक कार्य को अपने लिये रुचिकर बना ले। बुद्धिमान व्यक्ति ही अधिक बलशाली होता है।

३१३८) मन उस लाडले बच्चे के समान है। जैसे लाडला बालक सदैव अतृप्त रहता है, उसी तरह हमारा मन भी अतृप्त रहता है। अतएव मन का लाड करके उसे दबा कर रखना चाहिये। संकल्प के बिना सृष्टि नहीं और मन के बिना संकल्प नहीं।

३१३९) भयभीत और चंचल मत बनो। अपने हृदय में स्फूर्ति और शक्ति धारण करो। आत्मबल वाले मनुष्य बडे से बडे कार्य में भी अवसन्न नहीं होते।

३१४०) मनुष्य के इस दुबले पतले शरीर में मस्तिष्क एक ऐसी चीज है जो किसी बन्धन को नहीं मानती। यदि आप मस्तिष्क को शान्त रख सकते हो तो विश्व पर विजय प्राप्त कर सकते हो।

३१४१) सच्ची महानता हृदय की पवित्रता में है, इसमे नहीं कि कोई तुम्हारे बारे में क्या कहता है। जो महान होते है, वे अपनी शरण में आये हुये नीच लोगों से वैसा ही अपनापन बनाये रहते है जैसा सज्जनों के साथ।

३१४२) जो महापुरुष है, वे संसार के ज्ञान को अपने माहात्म्य से ही ग्रहण करते है और ग्रहण करने के पश्चात अपने जीवन में उतार कर जगत में उसकी सच्चाई का प्रकाश चमका देते है। महान पुरुष अवसर की कमी की शिकायत कभी नहीं करते।

३१४३) संसार में लोग मांगने वाले से बहुत चिढ़ते हे। धन हीन मनुष्य यदि अपने प्राणों को भी अग्नि में झोक दे तो अच्छा है पर मान को छोड कर उसका कृपण व्यक्ति से कुछ मांगना अच्छा नहीं।

३१४४) एक माता तीनों लोकों में मान्य ऐसे विरले ही पुत्र को जन्म देती है, जिसे विपत्ति पड़ने पर दु:ख न होता हो, सुख मिलने पर हर्ष नही होता हो और जो युद्ध में भीरू भी सिद्ध नहीं होता हो।

३१४५) तुच्छ चीटी को देखो जो सतत साधना कर जीती है। यह देखकर बुद्धिमान बनो। वह मनुष्य सचमुच बुद्धिमान है जो क्रोध की हालात मे भी बुरी बात मुंह से नही निकालता। खाली पेट कोई व्यक्ति बुद्धिमान नही हो सकता।

३१४६) मानव मस्तिष्क ठीक एक पैराशूट की तरह है- जब तक वह खुला रहता है तभी तक कार्यशील रहता है। मनुष्य का मस्तिष्क उस बंजर खेत की तरह है जब तक इसमे बाहर से मसाला नहीं आयेगा तब तक इसमें कुछ भी पैदा नहीं हो सकता।

३१४७) कर्म को स्वार्थ की ओर से परमार्थ की ओर ले जाना ही मुक्ति है, कर्म का त्याग मुक्ति नही है। मुक्ति शून्यता में नहीं, पूर्णता में है। पूर्णता सृष्टि करती है; विध्वंस नहीं करती।

३१४८) लाभदायक वस्तु को फेक देना और हानिकारक वस्तु को पकड़कर रखना, बस यही तो मूर्खता कहलाती है। मूर्खता बहुत से कष्टों की जननी है।

३१४९) ईश्वर ने जीवन दिया था और ईश्वर ने ही जीवन वापस ले लिया। धन्य है वह ईश्वर। थोडी सी निद्रा, जरा सी खुमारी, और निद्रा के उपक्रमों में अंगों का संकोचन यही मृत्यु जानी जाती है।

३१५०) मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नहीं मिलता और न उसे ढूंढने के लिये किसी दूसरे गांव को ही जाना पडता है। हृदय की अज्ञान ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।

३१५१) मनुष्य ठीक उसी मात्रा में महान बनता है, जिस मात्रा में वह मानव कल्याण के लिये श्रम करता है। संसार महान व्यक्तियों के बिना नहीं रह सकता किन्तु महान व्यक्ति कभी-कभी संसार के लिये बहुत दु:खदायी भी होते है।

३१५२) सच्ची व सही समय पर की गई प्रशंसा प्रोत्साहन देकर प्रसन्नता का स्रोत बनती है। प्रशंसा संतुलित शब्दों में, सही समय पर सहजता से व सच्चे दिल से ही करनी चाहिए।

३१५३) जहां भी तू है पूरी तरह वहीं हो। यह एक बड़ा भारी मंत्र है कि काम को सिर्फ एक बार में ही करो। जो काम हाथ में है उस में अपने सारे व्यक्तित्व को केंद्रित कर दो। परिणाम क्या होगा, यह मत सोचते रहो। काम खत्म करने पर कुछ भी हो पश्चाताप न करो। हमारे जीवन मार्ग में अनेक आकर्षक प्रकाश हमें अपनी राह से खींचने के लिए चमकेंगे, कर्तव्य मार्ग से विचलित करने का प्रयत्न करेंगे, लेकिन हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी प्रगति की सुई को अपने वास्तविक लक्ष्य के ध्रुव तारे की ओर से कभी टलने न दें।

३१५४) राजनीति विज्ञान बडा दुर्गम है। इसमें उतरने के लिये सीढ़ियों की उसी प्रकार आवश्यकता होती है, जैसे सरोवर में उतरने के लिये। परन्तु राजनीति में किस मार्ग पर चलना है, यह जान लेना बहुत कठिन है। राजनीति साधुओं के लिये नहीं है।

३१५५) फौजी और हथियारों की शक्ति पर विश्वास करना एक बहुत बडा रोग है। इस रोग ने संसार को बहुत कष्ट पहुंचाया है और लोगों को भयभीत कर दिया है।

३१५६) इस संसार में ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान और गुणवान सब मनुष्य लोभ के कारण उपहास के पात्र हुये है। ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों त्यों लोभ होता है। इस तरह लाभ से लोभ लगातार बढ़ता ही जाता है।

३१५७) यदि वहां मृत्यु का भय नहीं है तो यहां से कहीं अन्यत्र दूसरे स्थान पर भले ही चले जाये। परन्तु यदि जीव की मृत्यु आवश्यक है तो तुम कर्म भूमि से भाग कर अपने यश को धूमिल क्यों करते हो ?

३१५८) साधारण योग्यता को बुद्धिमानी से काम में लाने पर ही प्रशंसा प्राप्त होती है। उससे इतनी ख्याति होती है, जितनी वास्तविक चमक मे नहीं होती है।

३१५९) रहस्य के प्रकट हो जाने पर दु:खी मत हो बल्कि फूल की तरह सदा खुशी से खिलते रहो। इस बहुरूपी संसार में पद, प्रतिष्ठा, मान और मर्यादा ये सभी कुछ नष्ट होनेवाला है। ऐसा कोई भी रहस्य नहीं है जिसका उद्‌घाटन नहीं होता।

३१६०) किसी के प्रश्न किये बिना न बोले तथा कोई व्यक्ति अन्याय से कोई प्रश्न करता हो, तब भी न बोले। मेधावी विद्वान पुरुष मूर्ख के समान व्यवहार करे। मुझे कभी इसका खेद नहीं हुआ कि मैं मौन क्यों रहा, किन्तु इसका खेद अनेक बार हुआ कि मैं बोल क्यों पड़ा।

३१६१) मै इस बात से सहमत नहीं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नही। धर्म से अलग राजनीति मृतक शरीर के तुल्य है जो केवल जला देने के योग्य है। सभी राजनीतिक संस्थाये अपने झूठों के परिणाम स्वरूप ही अन्त में मिट जाती है।

३१६२) प्रत्येक व्यक्ति की रूचि एक दूसरे से भिन्न होती है। हमारी रुचि हमारे जीवन की कसौटी है और हमारे मनुष्यत्व की पहचान।

३१६३) लगन अपने से उल्टी दिशा मे मनुष्य को उसी प्रकार नही दौडा सकती, जिस प्रकार तेज बहती हुई नदी अपने प्रवाह के विरुद्ध नौका नही ले जा सकती। जिसको लगन है वह साधन भी जुटा लेता है। यदि जुटा पाता, तो वह उन्हें स्वयं बना लेता है। लगन से ज्ञान मिलता है, लगन के अभाव मे ज्ञान खो जाता है।

३१६४) विनम्रता समस्त गुणों की आधार शिला है। विनम्रता और श्रद्धा के सामने तर्क पेश नही की जाती। कष्ट और हानि के बाद मनुष्य अधिक विनम्र और ज्ञानी हो जाता है। विनम्रता स्वयं का ठीक ठाक मूल्यांकन है।

३१६५) व्यर्थ की लज्जा आवश्यक लज्जा को मार डालती है। केवल आदमी ही वह प्राणी है, जो लज्जित होता है या जिसे वैसा होने की जरूरत है।

३१६६) विरोधियों के सम्मुख विवाद करने को मै बाध्य हूं किन्तु उन्हे समझाने के लिये नही। जो व्यक्ति मुझसे सहमत हो जाते है तो मै सदा यही सोचता हूँ कि मै गलती पर हूं।

३१६७) मनोवृत्ति का परिवर्तन ही हमारी असली विजय है। अर्थ देकर विजय खरीदना तो देश की वीरता के प्रतिकूल है। विजय कितनी सुन्दर है और, किन्तु मूल्यवान भी। कतिपय पराजय भी ऐसी है, जो विजय से भी अधिक महत्व की है।

३१६८) कठिन विरह भी मिलन की आशा मे सह्य हो जाता है। दूरी मित्रता को प्रिय बना देती है और विरह उसे मधुर बना देता है। मिलन की प्रसन्नता विरह को सह्य बना देती है। यदि ऐसा न होता तो उसे कौन सहता ?

३१६९) यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है, तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा, यदि आचरण सुन्दर है तो तुम्हारे घर मे शान्ति रहेगी, यदि घर मे शान्ति है तो राष्ट्र मे सुव्यवस्था रहेगी और यदि राष्ट्र मे सुव्यवस्था है तो समस्त विश्व मे शान्ति और सुख रहेगा।

३१७०) राष्ट्रीयता का अर्थ है कि देश भर मे एकता हो, देशभर मे सब लोग अपने को एक परिवार का समझे, चाहे धर्म कोई हो, चाहे कोई हिन्दू हो, मुसलमान हो, बौद्ध हो, ईसाई हो, सिख हो, कोई भी हो सब लोग अपने को एक परिवार का समझे।

३१७१) तीव्र और कटु सत्य एक निर्बल कारण के द्योतक है। भोजन के समय विवाद कभी मत करो क्योकि जो बिल्कुल भूखा नही होता, उसी के विवाद सफल होते है।

३१७२) विजय ध्येय की प्राप्ति मे नही, वरन उसकी प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयास करने में है। जो शक्ति के बलबूते पर विजय प्राप्त करता है, वह अपने शत्रु पर पूर्णतया विजय नहीं प्राप्त कर पाता।

३१७३) विवेकी मनुष्य को पाकर गुण सुन्दरता को प्राप्त होते है। सोने से जडा हुआ रत्न अत्यन्त सुशोभित होता है। विवेक केवल सत्य से पाया जाता है। उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है, विवेकी होने से क्षणिक वस्तुओं से शोक और आनन्द ये दोनो नही होते।

३१७४) जो विश्राम कर सकता है, वह बडे-बडे नगरों के विजेता से कही महान है। कार्य के लिये विश्राम वैसा ही है जैसा नेत्रों के लिये पलकों का होना।

३१७५) जो मिट्टी से भी सोना बनाते है, वही व्यवहार कुशल है। उचित अथवा अनुचित जो भी काम हो उसे खूब सोच विचार कर करना चाहिये। सब लोग ऐसे व्यवहार को अच्छा कहते है। व्यवहार वह दर्पण है, जिसमें प्रत्येक का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है।

३१७६) व्यापार मे धर्म और धर्म में व्यापार होना चाहिये। जो व्यक्ति अपने धार्मिक जीवन को व्यापार का रूप नही देता, उसका जीवन शक्तिहीन होता है और जो अपने व्यापारिक जीवन को धार्मिक नही बना सकता, उसका व्यापारिक जीवन चरित्रहीन हो जाता है।

३१७७) जिनके पास अपनी शक्ति नहीं है, उसे भगवान भी शक्ति नहीं देता। शक्ति आत्मा के अन्दर से आती है, बाहर से नही। शक्ति द्वारा शत्रु पर विजय प्राप्त करना अधूरी विजय है। धैर्य और सज्जनता ही शक्ति है।

३१७८) विपत्ति वह हीरक रज है जिससे ईश्वर अपने रत्नों को चमकाता है। विपत्ति के समान कोई शिक्षा नहीं है। सुदिन अच्छी तुला नहीं है, विपत्ति ही केवल ऐसी तुला है जिस पर हम मित्रों को तौल सकते है।

३१७९) सभी के नेत्र होते है किन्तु किसी किसी को ही विवेक का वरदान होता है। विवेक जीवन का नमक और कल्पना उसकी मिठास है। एक उसको सुरक्षित रखता है और दूसरा उसे मधुर बनाता है।

३१८०) वास्तविक वीरता तो यह है कि जो कुछ कोई सम्पूर्ण विश्व को दिखाकर कर सकता है, वही बिना किसी को दर्शाये कर डाले। भौतिक वीरता एक पाश्विक प्रवृति है। नैतिक साहस उससे कही अधिक सत्य, साहस और वीरता का द्योतक है।

३१८१) जैसे मै वृद्धावस्था के कुछ गुणों को अपने में समाविष्ट करने वाला युवक चाहता हूं, उतनी ही प्रसन्नता मुझे युवाओं के गुणों से युक्त वृद्ध को देखकर होती है। जो इस नियम का पालन करता है, वह शरीर से भले ही वृद्ध हो जाये किन्तु मस्तिष्क से कभी वृद्ध नहीं हो सकता।

३१८२) यह हंसना और खुशी मनाना कैसा जबकि चारों ओर नित्य आग लगी है। अन्धकार से घिरे होकर भी तुम प्रकाश को क्यो नहीं खोजते ?

३१८३) किसी से भी शत्रुता करना अपने विकास को रोकना है। कोई शत्रु छोटा नहीं होता। शत्रु को कभी भी कमजोर नहीं समझना चाहिये।

३१८४) मनुष्य में जो सम्पूर्णता गुह्य रूप से विद्यमान है, उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षा का कार्य है। कभी कभी उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है जिन्हे हम अभिमानवश अज्ञानी समझते है।

३१८५) जो विचार कार्य रूप में परिणित नहीं होता, उसकी तुलना गर्भपात से की गई है। ऐसे कार्य की, जो विचार पर आधारित नहीं है, अस्त-व्यस्तता एवं अराजकता में गणना की जाती है।

३१८६) अपने सम्पूर्ण देश के शुभचिन्तकों की शीतल छाया में वीर कितने विश्राम से शयन करते है। भय पर आत्मा की शानदार जीत ही वीरता है।

३१८७) वृद्ध कैसे होते है यह जानना एक बुद्धिमता का कार्य है और वृद्धावस्था में जीवन यापन की कला एक क्लिष्टतम पाठ है। वह कौन है, जिसका मोटा पेट है, जिसका शरीर सांस लेने के साथ कांपता है। जिसके बाजू और कन्धे झुक गये है, जिसका शरीर पीला पड चुका है, जो चलते समय दूसरे आदमी का सहारा लिये है और दीनतापर्वूक पुकार रहा है।

३१८८) सबको एक साथ प्रसन्न करने की शक्ति सब मे नही होती। ज्ञान ही शक्ति है। शक्ति ही जीवन है, परम सुख है, जीवन अजर अमर है। प्रतिबन्ध रहित शक्ति की भूख उसके उपयोग के साथ साथ बढ़ती जाती है।

३१८९) न कोई किसी का मित्र है और न ही कोई किसी का शत्रु। शत्रुता और मित्रता केवल व्यवहार से ही होती है। तरह-तरह के कुविचार हमारी शान्ति, सुख और विजय के घोर शत्रु है।

३१९०) सुख दुख को कभी नहीं मिटा पाएगा। दुख का प्रभाव निष्प्राण तभी होता है जब मानव अपने अस्तित्व के आनंद को उपलब्ध होता है।

३१९१) बिना नींव के इमारत टिक नहीं सकती। इमारत की मजबूती नींव के आधार पर है, उसी प्रकार जीवन में विनय गुण जितना अधिक विकसित होता है, उतने ही अंश में सच्चा आत्मविकास होता है।

३१९२) जो पुरुष अपने इष्ट विषय की सिद्धि में ही लगे हुए हैं विशिष्ट व्यक्तियों में आसक्त नहीं हैं, उनको मैं पंडित, बुद्धिमान मानता हूं जो विशेष व्यक्तियों में आसक्त हैं उन्हें प्रसन्न करने में लगे हुए हैं, वे मूर्ख हैं क्योंकि विशेष व्यक्ति प्राय: संघर्ष में ही रत रहते हैं।

३१९३) प्रेम मे कुछ मान भी होता है, कुछ महत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। श्रद्धा हमारे आदर्शों की बाहरी रेखा है।

३१९४) धर्म कर्म, सत्य-सदाचार, शक्ति एवं लक्ष्मी सभी शील पर आश्रित है। शील ही इन सबकी जड है। बिना सेवकत्व लिये शील

प्राप्त नही होता जैसे बिना तेज के रूप का विकास नही होता। शीलद्वारा चरित्र का निर्माण होता है, शील हमारी गति के लिये सम्बल है।

३१९५) श्रम से स्वास्थ्य और स्वास्थ्य से सन्तोष पैदा होता है। श्रम सभी पर विजयी होता है। बिना श्रम के कोई भी प्रगति नही कर सकता। श्रम ईश्वर की उपासना है। श्रम और उद्योग चुम्बक के समान है जो सब अच्छे-अच्छे पदार्थों के पास खीच लाते है।

३१९६) श्रम पूंजी से पहले आता है और उससे स्वतन्त्र है। पूंजी तो केवल श्रम का फल है। यदि श्रम का अस्तित्व न होता तो पूंजी का भी अस्तित्व न होता। श्रम पूंजी से बढ़कर है और उससे अधिक ध्यान देने योग्य भी।

३१९७) जो सम्पूर्ण प्राणियों को शान्त रखने का प्रयत्न करता है, सर्वदा सत्य व्यवहार करता है, कोमल स्वभाव होकर सबका सम्मान करता है, सर्वदा शुद्ध भाव से रहता है, वह कुल में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

३१९८) तुच्छ विचारवालों की संगति से मनुष्य की बुद्धि तुच्छ हो जाती है। समान श्रेणी के मनुष्यों की संगति मे वह ज्यों की त्यो बनी रहती है। और उच्च विचारवालों की संगति से वह उत्कर्ष को प्राप्त होती है।

३१९९) जो कुछ मैने देखा है वह मुझे शिक्षा देता है कि जो कुछ मैने नहीं देखा, उसके लिये विश्व के सृष्टा पर विश्वास करूं। जैसे फल के पहले फूल होता है वैसे ही सत्कार्य के पहिले विश्वास होता है।

३२००) मनुष्य को चमत्कारिक शक्तियां कठिन कार्य करने से प्राप्त नहीं होती बल्कि इस कारण प्राप्त होती है कि वह कार्य शुद्ध हृदय से करता है। अन्याय, असत्य और कपट की बुनियाद पर स्थायी शक्ति स्थापित करना असम्भव है। ईश्वर से हम जितना सम्बन्ध जोडेंगे, उतनी ही शक्ति हमें प्राप्त होगी।

३२०१) मानसिक स्वास्थ्य के लिये जी भर कर हंसना अत्यधिक हितकर है। प्रकृति ने हमारे भीतरी अंगों के व्यायाम के लिये और हमे आनन्द प्रदान करने के लिये हंसी बनाई है।

३२०२) समय पर चूक जाना ही हानि है। बुद्धिमान कभी भी अपनी हानि पर शोक नहीं करते, बल्कि प्रसन्नतापूर्वक अपनी क्षति को पूरा करने का उपाय करते है।

३२०३) हार एक शिक्षा के अतिरिक्त कुछ नही जो एक अच्छी स्थिति के लिये पहला कदम है। जो महान उद्देश्य के लिये मरते है उनकी हार कभी नही होती। निर्लज्ज हार कर भी नही हारता, मर कर भी नही मरता।

३२०४) मुझे बताये आपके संगी साथी कौन कौन है, मै बता दुंगा कि आप कौन है। अगर तू अकलमन्द और होशियार है तो जाहिलों की संगत मत कर।

३२०५) सन्तोष को कभी भी नही छोडना चाहिये। इस मन्त्र से कठिन से कठिन समय में भी मन विचलित नही होता है। दूसरों से तुलना किये बिना अपना जीवन यापन करो यही परम सन्तोष है।

३२०६) हमे संगठित होकर प्राण देने को प्रस्तुत होना चाहिये अन्यथा हम अलग अलग तो प्राण दे ही बैठेंगे। बन्धुत्व की भावना से, सम्मिलित होकर, एक सूत्र में बंधकर रहने में कितना आनन्द है।

३२०७) मनुष्य को अपने समय का कुछ भाग अवश्य ही हंसने में बिताना चाहिये। हंसी मन की गांठ बडी आसानी से खोल देती है। हर बार जब कोई मनुष्य मुस्कुराता है या अधिक हंसता है तो वह अपने जीवन मे वृद्धि करता है।

३२०८) हम यदि सही तरीके से विचार करे कि वस्तुओं में कितना अंश प्राकृतिक है और कितना श्रमद्वारा उत्पादित तो हमे ज्ञात होगा कि सौ में से निन्यानवे अंश श्रम का ही परिणाम है।

३२०९) अपने द्वारा की गई अच्छी करनी (शुभ कर्म) कभी भी निष्फल नहीं रहती। यदि सात समुद्र रास्ता रोक लें तब भी हमारी करनी का फल हमें अवश्य ही मिलेगा। भले ही देर से मिले।

३२१०) सांसारिक प्रपंचों में लिप्त मानव इस शब्द (अनहद) से परिचित नहीं हो पाता। वैज्ञानिकों ने भी इस दिशा में अनुसंधान कर स्पष्ट किया है कि मानव शरीर में एक शब्द विशेष की ध्वनि सदैव ध्वनित होती रहती है। यदि मनुष्य एकांत में इसे एकाग्र होकर सुने तो वह स्वयं भयभीत हुए बिना नहीं रह सकता। चूंकि मानव जिस वातावरण में पलता-बढ़ता है, उसमें इतना अधिक कोलाहल व्याप्त है कि उसे अपने भीतर के कोलाहल (शब्द) को सुनने का अवसर ही नहीं मिल पाता।

३२११) पर्वत शिखर से गिरकर मरना अच्छा है, धरती के अंदर समाकर भी मरना अच्छा है। यहां तक कि अंधे कुएं में भी डूबकर भले ही मर जाओ किंतु कभी भी मूर्ख से मित्रता मत करो।

३२१२) किसी धनुर्धारी के द्वारा संधान किया तीर भले ही किसी को मारे या न मारे परंतु बुद्धिमान द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर डालती है।

३२१३) विष का रस मात्र पीनेवाले को ही मारता है, शस्त्र से एक बार में एक का ही वध होता है लेकिन मन्त्र (भेद) के फूटने से राष्ट्र-प्रजा और राजा सभी का विनाश हो जाता है।

३२१४) बहुत से सोये लोगों में अकेला जगनेवाला, अकेला स्वादिष्ट भोजन करनेवाला, किसी महत्त्वपूर्ण बात का अकेला निर्णय करनेवाला तथा अकेला रास्ता चलनेवाला सदैव घाटे में रहता है।

३२१५) क्षमाशील मनुष्य को एक ही दोष लगता है, दूसरे किसी दोष की सम्भावना भी नहीं होती और एकमात्र वह दोष है कि लोग उसे कायर समझते हैं। किन्तु क्षमाशील पुरुष का वह दोष मानना नहीं चाहिए क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा समर्थ मनुष्य का भूषण और असमर्थ का गुण है।

३२१६) स्त्री, पुत्र और दास-ये तीनों धन के अधिकारी नहीं होते बल्कि ये जो कुछ भी कमाते हैं, वह उसी का होता है जिसके अधीन वे होते हैं।

३२१७) जो राजा काम और क्रोध का त्याग करता है और सुपात्र को धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्तव्य को शीघ्र पूरा करने वाला है, उसे सब लोग प्रमाण मानते हैं।

३२१८) जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता हो, जो प्रमाणित अपराधी को ही दण्ड देता है, जो दण्ड देने की न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमा का उपयोग जानता है, उस राजा की सेवा में सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है।

३२१९) जो किसी दुर्बल का अपमान नहीं करता, सावधान रहकर शत्रु के साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों के साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आने पर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है।

३२२०) जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पड़ने पर कभी दुखी नहीं होता, बल्कि सावधानी के साथ उद्योग का आश्रय लेता है तथा समय पर दु:ख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं।

३२२१) जो निरर्थक विदेशवास, पापियों से मेल, परस्त्री गमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है।

३२२२) जो क्रोध या उतावली के साथ धर्म, अर्थ तथा काम का आरम्भ नहीं करता, पूछने पर यथार्थ बात ही बतलाता है, मित्र के लिए झगड़ा पसंद नहीं करता, आदर न पाने पर क्रुद्ध नहीं होता, विवेक नहीं खो बैठता, दूसरों के दोष नहीं देखता, सब पर दया करता है, दुर्बल होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवाद को सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है।

३२२३) जो कभी उद्दण्ड का-सा वेष नहीं बनाता, दूसरों के सामने अपने पराक्रम की भी डींग नहीं हांकता, क्रोध से व्याकुल होने पर भी कटु वचन नहीं बोलता, उस मनुष्य को लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं।

३२२४) जो शान्त हुई वैर की आग को फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा मैं विपत्ति में पड़ा हूं, ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुष को आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

३२२५) जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे के दु:ख के समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है।

३२२६) जो मनुष्य देश के व्यवहार, लोकाचार तथा जातियों के धर्मों को जानने की इच्छा करता है, उसे उत्तम, अधम का विवेक हो जाता है। वह जहां कहीं भी जाता है, सदा महान् जनसमूह पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है।

३२२७) जो बुद्धिमान दम्भ, मोह, मात्सर्य, पाप कर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूह से वैर और मतवाले, पागल तथा दुर्जनों से विवाद छोड़ देता है वह श्रेष्ठ है।

३२२८) जो दान, होम, देव-पूजन, मांगलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकार के लौकिक आचार- इन नित्य किये जाने योग्य

कर्मों को करता है, देवता लोग उसके अभ्युदय की सिद्धि करते हैं।

३२२९) जो अपने बराबरवालों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन मनुष्यों के साथ नहीं; और गुणों में बढ़े-चढ़े पुरुषों को सदा आगे रखता है। उस विद्वान् की नीति श्रेष्ठ है।

३२३०) जो अपने आश्रित जनों को बांटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा मांगने पर, जो मित्र नहीं है, उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुष को सारे अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं।

३२३१) जिसके अपनी इच्छा के अनुकूल और दूसरों की इच्छा के विरुद्ध कार्य को दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्य का ठीक-ठीक सम्पादन होने के कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

३२३२) न तो मुझे राज्य की कामना है, नही स्वर्ग की और न ही मुझे, पुनर्जन्म से छुटकारा पोन की। मेरी तो एक ही इच्छा है कि, मैं पीड़ित मानवता के दु:ख दूर करूं।

३२३३) जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतों को शान्ति प्रदान करने में तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरों को आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खान से निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्न की भांति अपनी जाति वालों में अधिक प्रसिद्धि पाता है।

३२३४) जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रता से युक्त होने के कारण कान्ति में सूर्य के समान शोभा पाता है।

३२३५) जैसे भंवरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनों को कष्ट दिए बिना ही उनसे धन ले।

३२३६) मनुष्यों को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट करनेवाली अच्छी अथवा बुरी, जो भी बात हो, बता दे।

३२३७) असत् उपायों (जुआ आदि) का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइए। अच्छे उपायों का उपयोग करके सावधानी के साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुष को उसके लिए मन में ग्लानि नहीं करनी चाहिए।

३२३८) किसी प्रयोजन से किये गये कर्मों में पहले प्रयोजन को समझ लेना चाहिए। खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिए, जल्दबाजी से किसी काम का आरम्भ नहीं करना चाहिए।

३२३९) धीर मनुष्य को उचित है कि पहले कर्मों के प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नति का विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे।

३२४०) अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुष को वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिए जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने) पर पच सके और पच जाने पर हितकारी हो।

३२४१) निरर्थक बोलनेवाले पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चे से भी सब ओर से उसी भांति तत्त्व की बात ग्रहण करनी चाहिए, जैसे पत्थरों में से सोना ले लिया जाता है।

३२४२) जो धातु बिना गरम किये मुड़ जाती हैं, उन्हें आग में नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकाने का प्रयत्न नहीं करता। बुद्धिमान् पुरुष को अधिक बलवान् के सामने झुक जाना चाहिए। जो अधिक बलवान् के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्र देवता को प्रणाम करता है।

३२४३) पशुओं के रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओं के सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियों के बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणों के बान्धव हैं वेद।

३२४४) सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है, सफाई से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है। तोलने से नाज की रक्षा होती है, फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारंबार देखभाल करने से गौओं की तथा मैले वस्त्र से स्त्रियों की रक्षा होती है।

३२४५) सदाचार से हीन मनुष्य का केवल ऊंचा कुल मान्य नहीं हो सकता क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न मनुष्यों का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है।

३२४६) न करने योग्य काम करने से, करने योग्य काम से प्रमाद करने से तथा कार्य सिद्ध होने के पहले ही मन्त्र प्रकट हो जाने से

डरना चाहिए और जिससे नशा चढ़े, ऐसा पेय नहीं पीना चाहिए।

३२४७) विद्या का मद, धन का मद और तीसरा ऊंचे कुल का मद है। ये घमंडी पुरुषों के लिए तो मद हैं, परंतु सज्जन पुरुषों के लिए दम के साधन हैं।

३२४८) बाणों से बींधा हुआ तथा फरसे से काटा हुआ वन भी पनप जाता है, किंतु कटु वचन कहकर वाणी से किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता। कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणों को शरीर से निकाल सकते हैं, परंतु कटु वचनरूपी कांटा नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धंस जाता है।

३२४९) विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धि मलिन हो जाती है, फिर तो न्याय समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदय से बाहर नहीं निकलता।

३२५०) हमारा मन ही सबसे अच्छा दर्पण है, वही हमारे अच्छे बुरे कर्मों का साक्षी देता है। हम दूसरों से भले ही बहुत कुछ छुपा ले परन्तु अपने मन से कभी कुछ छुपा नही सकते, यह एक निर्विवाद सत्य है।

३२५१) यदि आपको विद्या प्राप्त करना हो तो माता सरस्वती देवी की आराधना करनी चाहिये जो विद्या दाता है। माता सरस्वती देवी की आराधना उपासना से ही मस्तिष्क उर्जावान बनता है, ज्ञान कुम्भ को प्राप्त करने से ही सफलता प्राप्त हो सकती है।

३२५२) माया खोटे सिक्के जैसी है, इसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। माया राक्षसी है जो अनेक वर्षों का पुराना स्नेह भंग करती है। माया का बोझ मन पर लादने से मनुष्य की रातों की नींद हराम हो जाती है, उसके मन मे विचारों का तूफान उठता है।

३२५३) परिवर्तन का समय आने पर सख्त और न झुकनेवाले टूट जाते है लेकिन लचीले और झुकनेवाले अपना रास्ता बना लेते है और जीत भी जाते है।

३२५४) सार्थक बोलना अच्छा है लेकिन मौन रहना उससे भी बेहतर है। ऐसी बात जो दूसरों को पीडा दे, न कहना ही अच्छा है। मुंह से निकली बात कभी लौटती नही है।

३२५५) संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयतम की प्रथम सीढ़ी है वाक् संयम। जो वाणी का संयम नहीं रखता उससे जिव्हा अनावश्यक बोलती रहती है और अनावश्यक शब्द प्राय: विग्रह और वैमनस्य ही पैदा करते है जो हमारी प्राण शक्ति को सोख डालते है। वाणी के संयम से समस्त अनर्थ परम्परा दग्ध बीज हो जाती है इसलिये मौन की उपासना ही आवश्यक है।

३२५६) पुरुष के जीवन में तो कष्ट आते ही रहते है। परन्तु वह पुरुष महान है। जो कष्ट सह कर भी कभी कष्ट का तनाव अपने मन पर हावी नहीं होने देता।

३२५७) जानने जानने में बहुत अन्तर है। जानना वह है कि जिसका जन्म भीतर से होता है। बाहर से जो इकठ्ठा कर लेते है वह तो हमारा बन्धन हो जाता है, उससे हमारी जिन्दगी में कोई परिवर्तन होने वाला नही। वह हमें मुक्त नही कर सकता लेकिन जो भीतर से आता है वही हमें मुक्त करता है। तुम जरा भी नहीं बोलते, जो तुमने इकठ्ठा कर लिया उसी को बाहर निकालते हो। तुम्हारे भीतर से जो पढ़ा वो किताबे बोलती है, शास्त्र बोलते है।

३२५८) मन, वाणी, शरीर और कर्म से प्रजाजन की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है और यदि राजपुत्र भी प्रजाजनों को वाणी तथा कर्म द्वारा पीडित करता है तो उसे भी सहन न करके पुत्र को उचित दंड देना राज धर्म है।

३२५९) वैभव सम्पन्न होने का अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि हमारे पास धन और साधनों की प्रचुरता हो बल्कि उपलब्ध साधनों का समुचित एवं योग्य उपयोग अनिवार्य है।

३२६०) रिश्तों में पूरी तरह समर्पित रहना चाहिये लेकिन पुराना बोझ ढोने की जरूरत नहीं है। नये सम्बन्धों की तुलना पुराने सम्बन्धों से मत करो। हर अनुभव के लिये अपने आपको खुला रखो।

३२६१) अपने किये गये वायदों पर कायम रहो और समय का सम्मान करो। वक्त की पाबन्दी अनुशासन सिखाती है। अनुशासित होने पर जो चाहे वो कर सकते हो और जब तुम अपने मन की चीजे कर सकते हो तो आपका जीवन नियन्त्रण में आ जाता है। यही नियम है स्वस्थ कार्य और व्यक्तिगत जीवन का।

३२६२) अपने आप से दोस्ती करो। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे साथी के साथ होने पर भी अकेलापन महसूस करते है। अपने

तमाम हिस्सों को स्वीकार करो।

३२६३) पिता और पुत्र एक साथ एक आसन पर बैठ सकते हैं, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं किंतु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते।

३२६४) जो उल्टा निर्णय देता है, वह राजा नगर में कैद होकर बाहरी दरवाजे पर भूख का कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओं को देखता है।

३२६५) पशु के लिए झूठ बोलने से पांच पीढ़ियों को, गौ के लिए झूठ बोलने पर दस पीढ़ियों को, घोड़े के लिए असत्य भाषण करने पर सौ पीढ़ियों को और मनुष्य के लिए झूठ बोलने पर एक हजार पीढ़ियों को मनुष्य नरक में धकेलता है।

३२६६) देवता लोग चरवाहों की तरह झंडा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

३२६७) शराब पीना, कलह, समूह के साथ वैर, पति-पत्नी से भेद पैदा करना, कुटुम्बवालों में भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजा के साथ द्वेष, स्त्री और पुरुष में विवाद और बुरे रास्ते-ये सब त्याग देने योग्य बताये गये हैं।

३२६८) आदर के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौन का पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदर के साथ यज्ञ का अनुष्ठान-ये चार कर्म भय को दूर करनेवाले हैं, किंतु वे ही यदि ठीक तरह सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं।

३२६९) घर में आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतान की कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट- गर्भ की हत्या करेनवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौए की तरह कांय-कांय करनेवाला, नास्तिक, वेद की निन्दा करनेवाला, घूसखोर, पतित, क्रूर तथा शक्ति रहते हुए रक्षा के लिए प्रार्थना करने पर भी जो हिंसा करता है- ये सब के सब ब्रह्म हत्यारों के समान हैं।

३२७०) बुढ़ापा सुंदर रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, दोष देखने की आदत धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच पुरुषों की सेवा सत्स्वभाव को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

३२७१) दिन-भर में ही वह कार्य कर ले, जिससे रात में सुख से रह सके और आठ महीनों में वह कार्य कर ले, जिससे वर्षा के चार महीने सुख से व्यतीत कर सके। पहली अवस्था में वह काम करे, जिससे वृद्धावस्था में सुखपूर्वक रह सके और जीवन-भर वह कार्य करे, जिससे मरने के बाद भी सुख से रह सके।

३२७२) यदि दूसरा कोई इस मनुष्य को अग्नि और सूर्य के समान दग्ध करनेवाले तीखे वाग्बाणों से बहुत चोट पहुंचाए तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्यों को पुष्ट कर रहा है।

३२७३) जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाय वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोर की सेवा करता है तो वह उन्हीं के वश में हो जाता है- उस पर उन्हीं का रंग चढ़ जाता है।

३२७४) जो स्वयं किसी के प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरों से भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसी को मारता है और न दूसरों से ही मरवाता है, मार खाकर भी अपराधी को जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमन की बाट देखते रहते हैं।

३२७५) जैसे गौओं में दूध, ब्राह्मण में तप और युवती स्त्रियों में चपलता होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जाति-बन्धुओं से भय होना भी सम्भव ही है।

३२७६) वह बल नहीं जिसका मृदुल स्वभाव के साथ विरोध हो, सूक्ष्म धर्म का शीघ्र ही सेवन करना चाहिए। क्रूरतापूर्वक उपार्जन की हुई लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढ़ायी गयी हो तो पुत्र-पौत्रों तक स्थिर रहती है।

३२७७) बहुत दुखी होने पर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगल में रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बांधनेवाले और कृतघ्न से कभी सहायता की याचना नहीं करनी चाहिए।

३२७८) क्लेशप्रद कर्म करनेवाला, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्यभाषण करनेवाला, अस्थिर भक्तिवाला, स्नेह से रहित, अपने को चतुर माननेवाला इन छ: प्रकार के अधम पुरुषों की सेवा न करे।

३२७९) धन की प्राप्ति सहायक की अपेक्षा रखती है और सहायक धन की अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों एक-दूसरे के आश्रित हैं, परस्पर के सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती।

HHH(२७९)HHH

३२८०) जो मनुष्य का बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुष के साथ वैर ठानकर इस विश्वास पर निश्चित न हो जाय कि मैं उससे दूर हूं (वह मेरा कुछ नहीं कर सकता)।

३२८१) मनुष्य को चाहिए कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे, क्योंकि ये सब बड़े तेजस्वी होते हैं।

३२८२) जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्ति के प्राण ऊपर को उठने लगते हैं, फिर जब वह वृद्ध के स्वागत में उठकर खड़ा होता है और प्रणाम करता है, तो पुन: प्राणों को वास्तविक स्थिति में प्राप्त करता है।

३२८३) अन्त:पुर की रक्षा का कार्य पिता को सौंप दे, रसोई-घर का प्रबन्ध माता के हाथ में दे दे, गौओं की सेवा में अपने समान व्यक्ति को नियुक्त करे और कृषि का कार्य स्वयं करे। सेवकों द्वारा वाणिज्य-व्यापार करे और पुत्रों के द्वारा ब्राह्मण की सेवा करे।

३२८४) भूपति को चाहिए कि अपने राजा नाम से और राजोचित छत्र धारण से संतुष्ट रहे। सेवकों को पर्याप्त धन दे, सब अकेले ही न हड़प ले।

३२८५) वश में आए हुए वध योग्य शत्रु को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिए और बल होने पर उसे मार ही डालना चाहिए क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है।

३२८६) निरर्थक कलह करना मूर्खों का काम है, बुद्धिमान् पुरुष को इसका त्याग करना चाहिए। ऐसा करने से उसे लोक में यश मिलता है और अनर्थ का सामना नहीं करना पड़ता।

३२८७) जिसके प्रसन्न होने का कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजा को प्रजा उसी भांति नहीं चाहती, जैसी स्त्री नपुसंक पति को।

३२८८) बुद्धि से धन प्राप्त होता है और मूर्खता दरिद्रता का कारण है- ऐसा कोई नियम नहीं है। संसार-चक्र के वृत्तान्त को केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं।

३२८९) जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणों में दोष देखनेवाला अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ (संकट) टूट पड़ते हैं।

३२९०) जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्ति को कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घर में रहनेवाले मनुष्य की भांति रात में सुख से नहीं सो सकता।

३२९१) जो लोग जितना आवश्यक है, उतने की काम में लगे रहते हैं, अधिक में हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ, क्योंकि अधिक में हाथ डालना संघर्ष का कारण होता है।

३२९२) जो लोग अपने भले की इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जाति-भाइयों को उन्नतिशील बनाना चाहिए, इसलिए आप भली-भाँति अपने कुल की वृद्धि करें। जो अपने कुटुम्बीजनों का सत्कार करता है, वह कल्याण का भागी होता है। अपने कुटुम्ब के लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है। शुभ चाहनेवाले को अपने जाति-भाईयों के साथ कलह नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ मिलकर सुख का उपभोग करना चाहिए। जाति-भाईयों के साथ परस्पर, भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है, उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिए। इस जग में जाति-भाई तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं।

३२९३) विषैले बाण हाथ में लिये हुए व्याध्र के पास पहुंचकर जैसे मृग को कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धु के पास पहुँचकर दु:ख पाता है, उसके पाप का भागी वह धनी होता है।

३२९४) आशा धैर्य को, यमराज समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कृपणता यश को और सार-संभाल का अभाव पशुओं को नष्ट कर देता है। इधर एक ही ब्राह्मण यदि क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र का नाश कर देता है।

३२९५) मरे हुए मनुष्यों का धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीर की धातुओं को पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पाप से बंधा हुआ है, इन्हीं दोनों के साथ परलोक में गमन करता है।

३२९६) इस लोक और परलोक से ऊपर और नीचे तक सर्वत्र अज्ञान-रूप महान् अंधकार फैला हुआ है, वह इन्द्रियों को महान् मोह में डालनेवाला

है। यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मा से इसका उद्‌गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दया की लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है, क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है।

३२९७) यदि भारतपरमात्मा की खोज में लगा रहा तो वह अमर रहेगा, किंतु यदि वह राजनीति और सामाजिक संघर्ष में पड़ा तो वह नष्ट हो जाएगा।

३२९८) कुछ मत मांगो, बदले में कुछ मत चाहो। तुम्हें जो देना है, दे दो, वह तुम्हारे पास लौटकर आएगा- पर अभी उसकी बात मत सोचो। वह वर्धित होकर-सहस्त्रगुना वर्धित होकर वापस आएगा। दान से बड़ा धर्म और नहीं। सबसे नीच मनुष्य वह है, जिसके हाथ लेने के लिए फैल जाते हैं, और सर्वोच्च व्यक्ति वह है जिसके हाथ देने को बढ़ जाते हैं।

३२९९) हम सभी संसार के ऋणी हैं, संसार हमारा कुछ नहीं चाहता। हम सबके लिए यह तो एक महान् सौभाग्य है कि हमें संसार के लिए कुछ करने का अवसर मिले। संसार की भलाई करने में हम वास्तव में अपनी भलाई करते हैं।

३३००) जब तक लाखों लोग भूखे और अज्ञानी हैं, तब तक मैं उस प्रत्येक व्यक्ति को कृतघ्न समझता हूं जो उनके बल पर शिक्षित बना और अब उनकी ओर ध्यान तक नहीं देता।

३३०१) तुम सदा के लिए स्वार्थपरता, कलहप्रियता और ईर्ष्या का त्याग कर दो। तुम सबको धरतीमाता की भांति सर्वसहिष्णु होना चाहिए। यदि तुम ऐसे हो सको, तो सारी दुनिया तुम्हारे पैरों पर लोटने लगेगी।

३३०२) जो आज्ञापालन करना जानता है, वही आज्ञा देना भी जानता है। पहले आज्ञापालन करना सीखो। हम चाहते हैं संगठन। संगठन ही शक्ति है और उसका रहस्य है- आज्ञापालन।

३३०३) मरते दम तक कार्य करते रहो- मैं तुम्हारे साथ हूं और जब मैं चला जाऊंगा, तो मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन तो आता है और जाता है- धन, नाम-यश और सुखभोग तो केवल दो दिन के हैं। संसारी कीट की भांति मरने की अपेक्षा कर्तव्य के क्षेत्र में सत्य का प्रचार करते हुए मर जाना कहीं अधिक श्रेष्ठ है- लाखगुना अधिक श्रेष्ठ है।

३३०४) नीतिपरायण, साहसी व धुन के पक्के बनो- तुम्हारे नैतिक चरित्र में कहीं धब्बा न हो, मृत्यु से भी मुठभेड़ लेने की हिम्मत रखो। धर्म के सिद्धान्तों के बारे में माथापच्ची करने की कोई आवश्यकता नहीं, कायर ही पाप-कर्म करते हैं, साहसी कभी नहीं। हर एक के प्रति प्रेम की भावना लाने का प्रयत्न करो। अपना पुरुक्षार्थ प्रकट करो।

३३०५) यदि केवल तुम जान लेते कि तुम कौन हो। तुम आत्मा हो, तुम ईश्वर हो। यदि कोई अधार्मिक बात है, तो वह है तुमको मनुष्य कहना।

३३०६) यदि रोग थोडा भी आवे, तो उसका तुरन्त निदान करना चाहिए। उसको कभी भी छोटा नहीं गिनना चाहिये। थोड़ा-सा रोग भी बड़ा होकर जानलेवा हो सकता है। शीघ्रातिशीघ्र रोगका इलाज करवाना चाहिए।

३३०७) जब मनुष्यका स्वभाव बिगड़ जाता है, तब वह सरलतासे सुधरता नहीं है। शरीर और मनमें-कर्म और भोगमें अनजानमें ही कुछ ऐसा स्वभाव पड़ जाता है, जिसे छोड़ना आवश्यक होता है। बुरा स्वभाव छोड़नेमें थोड़ी लगनकी, थोड़े उत्साहकी आवश्यकता होती है। उत्तम स्वभाव डालनेमें थोड़ी आशाकी, प्रतीक्षाकी आवश्यकता होती है। जिस व्यक्तिका अभ्यास अन्यन्त दृढ़ बन जाता है, उसे अपना स्वभाव छोड़नेमें बहुत ही अधिक कठिनाई होती है।

३३०८) स्वभाव सर्वथा कर्मजन्य है। स्वभाव बनाया जाता है। इसलिए अपने उत्तम स्वभावका निमाण करो। सबसे बड़ा बहादुर व्यक्ति वही है, जो अपने स्वभावको उत्तम-से-उत्तम बनाये।

३३०९) उत्साहसे ओत-प्रोत होकर किये गये तपका प्रभाव अद्भुत होता है। उत्साह हमारे जीवनका सबसे शक्तिशाली अंग है। महापुरुषोंकी सिद्धि उत्साहमें निवास करती है।

३३१०) किसी भी व्यक्ति का निरादर नहीं करना चाहिए। निरादर करने में वास्तव में अपना ही निरादर होता है। कारण कि सम्पूर्ण जगत ईश्वररूप है।

३३११) भारतवर्ष में जन्म लेकर भी मनुष्य भगवान में न लगे- यह बड़े आश्चर्य और दु:ख की बात है। क्योंकि भारतवर्ष में जन्म

मुक्त होने के लिए ही होता है और इसीलिए देवता भी भारतवर्ष में जन्म चाहते हैं।

३३१२) मनुष्य खुद तो भोगी बनता है, पर दूसरों को त्यागी देखना चाहता है- यह अन्याय है। यदि उसे त्यागी अच्छा लगता है तो खुद त्यागी क्यों नहीं बनता ?

३३१३) संसार की जिस वस्तु को हम बड़ा महत्त्व देते हैं, उसका काम यही है कि वह हमें परमात्मप्राप्ति नहीं होने देगी और खुद रहेगी नहीं।

३३१४) अंत में अकेला ही जाना पडेगा, इसलिए पहले से ही अकेला हो जाय अर्थात् वस्तु, व्यक्ति और क्रिया से असंग हो जाय, इनका आश्रय न ले।

३३१५) जिसका मन पदार्थों और कर्मों में आसक्त नहीं होता, वही योगी है। क्रिया करता है पर आसक्त नहीं होता। स्फुरण हो पर आसक्ति नहीं, ऐसा सर्व-संकल्पों का त्यागी ही योगारूढ़ है।

३३१६) जो मनुष्य धर्म का आचरण करता है और लोककल्याण के कार्य में लगा रहता है, उसका दर्शन न हुआ हो तो भी मनुष्य केवल उसका नाम सुनकर उससे प्रेम करने लगते हैं।

३३१७) अधर्म से पहले उन्नति होती है, फिर सब प्रकार के वैभव दिखायी देते हैं, शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है; पर सब जड़-मूल से नाश हो जाता है।

३३१८) प्रेम की पूर्णता कभी होती ही नहीं। मुझे प्रेम प्राप्त हो गया, इस प्रकार का अनुभव प्रेमी कभी करता ही नहीं। प्रेमी को अपने प्रेम में सदा कमी का अनुभव होता है। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। प्रेम में सब कुछ अर्पण हो जाता है, यहाँ तक कि प्रेमी स्वयं भी प्रेमास्पद को अर्पित हो जाता है। सम्पूर्ण त्याग या सम्पूर्ण समर्पण ही प्रेम का स्वभाव है।

३३१९) प्रेम का ऋण चुकाने के लिये भगवान के पास कुछ भी नहीं रहता, पर प्रेमी उन्हें ऋणी नहीं बनाता। उन्हें ऋणी मानकर उनसे कुछ चाहे, ऐसा प्रेमी कभी नहीं करता।

३३२०) हमारे दु:ख से यदि प्रेमास्पद सुखी होता हो तो वह दु:ख हमारे लिए सुख है यह प्रेमी का हार्दिक भाव होता है। ऐसे दु:ख को, ऐसी विपत्ति को वह परम सुख, परम सम्पत्ति मानता है। मानता ही नहीं, सर्वथा ऐसा ही अनुभव करता है।

३३२१) दिनरात, मास तथा ऋतु अग्नि, वायु, जल तथा पाताल सब की रचना ईश्वर ने ही की है, इन सब के मध्य में पृथ्वी को धर्मखण्ड बनाया है जो कर्मक्षेत्र भी है और यहां अनेक प्रकार के, अनेक वर्ण के अनेक रूप से असंख्य प्राणी उत्पन्न किए हैं इन सबकी गणना नहीं हो सकती।

३३२२) प्रत्येक प्राणी का कर्म के अनुसार ही न्याय होता है, क्योंकि ईश्वर ही सत्य है और उनका नियम निर्दोष है। जो भगवान को प्रसन्न कर पाते हैं वे ईश्वर के दरबार में सम्मानित होते हैं और ईश्वर की दया से ही यह मान प्राप्त होता है।

३३२३) ईश्वर विचार और रचना करते हैं। वे अपनी महानता की मर्यादा के उपयुक्त नि:स्वार्थ रचना करते हैं। वे वही आज्ञा देते हैं जो उन्हें स्वीकार है। वहां और किसी की आज्ञा नहीं चलती। राजाओं के राजा ईश्वर की ही इच्छा से बुद्धिमान पुरुष का अस्तित्व है। सब कुछ उन्हीं की इच्छा और उन्हीं के नाम से होता है। यदि कोई स्वयं को महान् माने तो उसका वहीं अन्त हो जाता है, वह आगे नहीं बढ़ सकता।

३३२४) जो स्वयं को ईश्वर की सर्वोच्च इच्छा के अधीन कर देता है, वही विजयी होता है। इस दिशा में लक्ष्य प्राप्ति के लिए अन्य किसी भी कार्य का मूल्य नहीं।

३३२५) केवल असंख्य आडम्बर और रीति-रिवाज मानने से ही मोह और लिप्सा से मुक्ति प्राप्त नहीं की जा सकती। जो सर्व सुख चाहता है वह सर्वव्यापी आत्मा को खोजे।

३३२६) जब कोई स्वयं को कर्ता मानते हुए तुच्छ अहं पर बल देने लगता है, तो वह अपने द्वारा सतत किए जानेवाले सभी कार्यों के लिए उत्तरदायी बन जन्ममरण के चक्रव्यूह में फंस जाता है।

३३२७) कमल की तरह तू मृत्युलोक में शुद्ध और निर्लिप्त रह, कीचड़ से अपना सिर ऊपर रख। अथवा हंस की तरह रह जो जल से आकाश तक उड़ने पर अपने पंख भीगने से बचाए रहते हैं।

३३२८) बन्धु उस भोजन का आस्वादन बुरा है जो शरीर को हानि पहुंचाए तथा मन में कुविचार उत्पन्न करे। वे वस्त्र बुरे हैं जो शरीर

को हानि पहुंचाएं तथा मन में बुरे विचार पैदा करें।

३३२९) भूल करके आदमी सीखता तो है, पर इसका यह मतलब नहीं कि जीवन भर वह भूल ही करता जाए और कहता फिरे कि अभी वह सीख ही रहा है।

३३३०) जिसका बुद्धिरूपी सारथी चतुर हो और मन रूपी लगाम जिसके काबू में हो, वह विश्व को पार करके ईश्वरीय परमपद तक पहुंचता है।

३३३१) कार्य में लीन रहने से ही मन को प्रसन्नता मिलती है। मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता हूं, जो एक श्मशान-यात्रा से हर्षमस्त लौटा, केवल इस कारण कि उसका प्रबंध उसके अधीन न था।

३३३२) अपनी प्रशंसा सुनकर जो वास्तविकता को भूल जाते हैं, वे मूर्ख हैं। अपनी निंदा सुनकर मनुष्य अपने आपको संभालता है और प्रशंसा सुनकर स्वयं को खो देता है, प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना एक बड़ा अवगुण है।

३३३३) जीवन सुख-दुख का उतार-चढ़ाव है, जैसे सुख में डूब जाना बुद्धिमानी नहीं है वैसे ही दुख में अपने को भूल जाना भी कमजोरी की चरम सीमा है। मनुष्य के सामने एक ध्येय होना चाहिए। उसके पाने के मार्ग में जो भी दुख-सुख आए उनका तिरस्कार करते चलना ही समझदारी है।

३३३४) जिस प्रकार दिन के प्रकाश में रात्रि का अंधकार छिपा रहता है, उसी प्रकार सुख के अंदर दुख का अस्तित्व विलीन रहता है। उसका विश्वास था कि जिस प्रकार रात्रि का गहनतम अंधकार दिवस के आते ही छंट जाता है, उसी प्रकार दुख का भी समय समाप्त होकर सुख में परिणत हो जाता है। जिस प्रकार रात्रि का अपना सौंदर्य और उपयोगिता है, उसी प्रकार दुख की भी है।

३३३५) यदि आपको कोई कठिन काम करना है, या कोई कठिन परिस्थिति सामने आ गई है तो यह मत सोचिए कि आप उस काम को नहीं कर पाएंगे, या उस कठिन परिस्थिति का सामना करने में असमर्थ हैं, सिर्फ यह भी मत सोचिए कि मैं मुश्किलों से नहीं डरता यह कल्पना कीजिए कि आप उस कठिन कार्य को खुशी-खुशी और आसानी से कर रहे हैं, या कठिन परिस्थिति का सामना करते समय आपको कोई कठिनाई नहीं हुई है, और आपने हंसते-हंसते उसका सामना कर लिया है। देखिए, फिर वही होता है या नहीं, जिसकी कल्पना आपने की थी। विश्वासपूर्ण उत्कटता से कल्पनाएं करना और आत्मबोधन द्वारा उन्हें खुद को बेचना सीखिए। आप देखेंगे, जीवन का कठोर मार्ग अत्यंत सरल बन गया है और आप अत्युल्लास से उस पर सफलता की मंजिलें पार करते हुए चले जा रहे हैं।

३३३६) झील बनकर इतराने लगता है। फिर थोड़ी ही देर में उसकी वास्तविकता अनावृत हो जाती है। फिर अपनी लाज ढंकने के लिए वह मेहमेह पुकारने लगता है। फिर पानी बरसता है। फिर इतराता है। फिर-फिर वही दो मन:स्थितियां सामने आती रहती हैं। अभी आत्मविश्वास बढ़ा और अभी घट गया। उस घाटे को पूरा करने के लिए, कभी काम के लिए उमंगें, कभी शास्त्रविलास का सहारा लिया। यह मनुष्य की गति है या कोल्हू के बैल की ?

३३३७) जब कोई आदरणीय व्यक्ति अपने यहां आए तो हमें कुछ दूर आगे बढ़कर उनका स्वागत करना चाहिए और जब वे वापस जाने लगे तो हमें कुछ दूर आगे चलकर उन्हें पहुंचाना चाहिए।

३३३८) गुस्सा करने का मतलब है- आत्मा की शांति को खोना, अपने ऊपर काबू खोना, विचार की स्पष्टता खोना परिस्थिति की पकड़ खोना और निकटवर्ती लोगों का मान खोना।

३३३९) संसार में आधे से अधिक लोग तो इसलिए असफल हो जाते हैं कि समय पर उनमें साहस का संचार नहीं हो पाता और वे भयभीत हो उठते हैं।

३३४०) अज्ञानी आदमी केवल वर्तमान मे जीता है, इन्द्रियों के संकेतों पर नाचता है और विषयवासना के घेरों मे आबद्ध रहता है। बेहतर है इस अन्धेरे को मिटाने ज्ञान की ज्योत प्रज्ज्वलित करो।

३३४१) गलत या बुरी सोच के कारण स्त्रोत तथा अन्य बातों को जानना भी एक सकारात्मक सोच की प्रक्रिया है तथा इन कारणों को यदि हमने जानने का प्रयास किया तो फिर उन्हें दूर कर पाने में सफल भी होंगे।

३३४२) बाह्यप्रकृति पर विजय प्राप्त करना बहुत अच्छी और बहुत बड़ी बात है। पर अन्त:प्रकृति को जीत लेना इससे भी बड़ी बात

है। अपने भीतर के मनुष्य को वश में कर लो, मानव मन के सूक्ष्म कार्यों के रहस्य को समझ लो, और उसके आश्चर्यजनक गुप्त भेद को अच्छी तरह जान लो- ये बातें धर्म के साथ अच्छे भाव से सम्बद्ध है।

३३४३) जीवन और मृत्यु में, सुख और दु:ख में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है। समस्त विश्व ईश्वर से पूर्ण है। अपने नेत्र खोलो और उसे देखो।

३३४४) कोई भी जीवन असफल नहीं हो सकता, संसार में असफल कही लाने वाली कोई वस्तु है ही नहीं। सैकड़ों, बार मनुष्य को चोट पहुंच सकती है। हजारों बार वह पछाड़ खा सकता है, पर अन्त में वह यही अनुभव करेगा कि वह स्वयं ही ईश्वर है।

३३४५) एक विचार ले लो। उसी एक विचार के अनुसार अपने जीवन को बनाओ, उसी को सोचो, उसी का स्वप्न देखो और उसी पर अवलम्बित रहो, अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों स्नायुओं और शरीर के प्रत्येक भाग को उसी विचार से ओत-प्रोत होने दो और दूसरे सब विचारों को अपने से दूर रखें। यही सफलता का रास्ता है और यही वह मार्ग है, जिसने महान् धार्मिक पुरुषों का निर्माण किया है।

३३४६) ये महामानव असामान्य नहीं थे, वे तुम्हारे और हमारे समान ही मनुष्य थे। पर वे महान् योगी थे। उन्होंने यह ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर ली थी, हम और तुम भी इसे प्राप्त कर सकते हैं। वे कोई विशेष व्यक्ति नहीं थे। एक मनुष्य का उस स्थिति में पहुंचना ही इस बात का प्रमाण है कि उसकी प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्भव हे। सम्भव ही नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य अन्त में उस स्थिति को प्राप्त करेगा ही और यही है धर्म।

३३४७) परमात्मा के अनुभव के लिए आवश्यकता है अपने में सच्चा वैश्य भाव लाने की अर्थात अपने धन को सदैव राष्ट्र की धरोहर समझा जाए।

३३४८) सफलतापूर्वक जीवित रहने का रहस्य है अपना हृदय मातृवत् बना लेना, क्योंकि माता को तो अपने सभी बच्चे, छोटे या बड़े, प्यारे लगते हैं।

३३४९) आपके स्थापित किए हुए श्वेत, ऊंचे-ऊंचे मन्दिर और पाषाण के विष्णु आपके हृदय के ताप को शान्त नहीं कर सकते। इसके लिए पूजो, देश के इन भूखे नारायणों को और परिश्रम करने वाले विष्णुओं को।

३३५०) सर्वोपरि श्रेष्ठ दान जो आप किसी मनुष्य को दे सकते हैं, वह विद्या या ज्ञान का दान है। आप किसी मनुष्य को आज भोजन खिला दें, कल वह फिर उतना ही भूखा हो जायेगा। आप उसको कोई कला सिखला दें तो वह जीवन पर्यन्त अपनी जीविका प्राप्त करने के योग्य हो जाता है।

३३५१) लोग तथा अन्य वस्तुएं तभी तक हमें प्यारी लगती हैं जब तक वे हमारा स्वार्थ सिद्ध करती हैं, हमारा काम निकालती हैं। जिस क्षण हमारे स्वार्थ के सिद्ध होने में गड़बड़ होती है, उसी क्षण हम सब कुछ त्याग देते हैं।

३३५२) जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तु से दिल लगाता है, जब कभी मनुष्य किसी पदार्थ के साथ उसी के लिए प्रेम करने लगता है, जब कभी मनुष्य उस पदार्थ में सुख ढूंढने का प्रयत्न करता है, तभी उसको धोखा हो जाता है, इन्द्रियां उसे उल्लू बना देती हैं। आप सांसारिक पदार्थों में आसक्ति रखके सुख नहीं पा सकते। यह दैवी विधान है।

३३५३) सत्य के लिए तड़पना, आत्मा के परम वास्तविक आनन्द के लिए लालायित होना, अपने को ऐसी मानसिक स्थिति में रखना ही मुरली को मुरलीधर के होठों पर लगाना है।

३३५४) प्रेम का अर्थ है व्यवहार में अपने पड़ोसियों के साथ, उन लोगों के साथ जिनसे आप मिलते-जुलते हैं एकता और अभेदता का अनुभव करना।

३३५५) प्रेम कला भी है और विज्ञान भी। वैज्ञानिक आविष्कार तो केवल महान् सूर्य रूप, प्रेमाग्नि या एकता के भाव की चिनगारियां, स्फुल्लिंग मात्र हैं।

३३५६) सच्चा प्रेम सूर्य के समान आत्मा को विकसित कर देता है। मोह मन को पाले के समान ठिठुराकर संकुचित कर डालता है। प्रेम को मोह मत समझो। प्रेम और है, मोह और है। इन्हें एक समझना भारी भूल है।

३३५७) प्रेम ही एकमात्र दैवी विधान है और सब विधान केवल सुव्यवस्थित लूटमार हैं। केवल प्रेम को ही नियम भंग करने का

अधिकार है।

३३५८) प्रेम इस हद तक गलत समझा गया है कि प्रेम शब्द के उच्चारण मात्र ही से प्रिय जनों के हृदयों में दिव्य ईश्वरीय ज्योति की जगह कामुकता और मूर्खता के भावों का उद्रेक होने लगता है।

३३५९) प्रेम अन्त:प्रेरक होता है, मस्तिष्क उसकी व्याख्या करता है। जिस प्रकार वस्त्रों से पहले शरीर है, उसी प्रकार सोचने-विचारने से पहले सदैव भावना का उदय होता है।

३३६०) जब आप बिरह-वियोग और भेदभाव के दलदल में फंस जाते हैं, तभी आप आराम से वंचित होकर बिराम (बीमार) हो जाते हैं। जिस समय आप अपने को संपूर्ण और सर्वरूप अनुभव करते हैं, उसी समय आप पूर्ण और संपूर्ण हो जाते हैं।

३३६१) आधि-व्याधि क्या है ? प्रेम के अभाव में संकोचन अथवा संकीर्ण वृत्ति, केवल परछाईं के हिलने-डुलने से पर फड़फड़ाना और दिन के झूठे स्वप्नों के भय से चिल्लाना। जब कोई बात बिगड़ती दिखायी देती है, तब उस समय अपने आपको प्रेम के विधान से ठीक करने के स्थान पर अड़ोस-पड़ोस से झगड़ना ऐसा ही है जैसा कि दूरध्वनि के अदृष्ट सिरे पर बोलने वाले किसी मित्र से अशुभ समाचार मिलने पर दूरध्वनि के चौंगे को तोड़ने लगना।

३३६२) जिस प्रकार मधु में फंस जाने पर मक्खी अपनी टांगें धीरे-धीरे परन्तु दृढ़तापूर्वक मधु से मुक्त कर लेती है, उसी प्रकार व्यक्तियों, नाम-रूपों की आसक्ति का एक-एक कण हमें अपने से दूर करना होगा। एक-एक करके हमें अपने सम्बन्धों को काटना होगा, बन्धनों को यहां तक तोड़ना पड़ेगा कि जब अन्तिम अनुग्रह के रूप में मृत्यु सामने आए तब हम सभी अनिच्छित पदार्थों को त्यागकर विजयी हो जाएं।

३३६३) दैवी विधान का चक्र निर्दयतापूर्वक घूमता रहता है। जो इस विधान के अनुकूल चलता है, वह इस पर सवारी करता है; परन्तु जो अपनी इच्छा को ईश्वर-इच्छा, दैवी विधान के विरोध में अड़ाता है, वह अवश्य ही कुचला जाता है और उसे (यूनानी साहित्य में वर्णित स्वर्ग से आग चुराने वाले) प्रोमिथियस के समान पीड़ा भोगनी पड़ती है।

३३६४) जो ज्ञान त्याग का पर्यायवाची है वह सत्य का ज्ञान है, वास्तविक आत्मा का ज्ञान है, तुम्हारे वास्तविक स्वरूप का ज्ञान है। यही ज्ञान त्याग है, इस ज्ञान को प्राप्त करो और आप त्यागी हो जाओ।

३३६५) त्याग निश्चय ही आपके बल को बढ़ा देता है; आपकी शक्तियों को कई गुना कर देता है; आपके पराक्रम को दृढ़ कर देता है; नहीं आपको ईश्वर बना देता है। वह आपकी चिन्ताएं और भय हर लेता है। आप निर्भय तथा आनन्दमय हो जाते हैं।

३३६६) त्याग का अर्थ तपश्चर्या नहीं है। त्याग का अर्थ है प्रत्येक पदार्थ को पवित्र बना देना। बच्चे को त्याग देने का अर्थ बच्चे से सारे सम्बन्धों को तोड़ लेना नहीं है, वरन् पुत्र तथा पौत्र को ईश्वररूप समझ लेना है। स्वार्थपूर्ण और व्यक्तिगत सम्बन्धों को त्याग दो, प्रत्येक में और सब में ईश्वरत्व को देखो; प्रत्येक में और सब में ईश्वर के दर्शन करो।

३३६७) आप ही प्रत्येक वस्तु हैं, भूत और प्रेत, देव तथा देव-दूत, पापी तथा पुण्यात्मा, सब आप ही तो हैं। इस बात को जान लीजिए, इसे भान कीजिए, इसे अनुभव कीजिए और आप मुक्त हैं। यही त्याग का मार्ग है। त्याग क्या है ? अहंकार-युक्त जीवन को त्याग देना। निस्संशय और निस्सन्देह अमर जीवन तो व्यक्तिगत और परिछिन्न जीवन को खो डालने से मिलता है। केवल त्याग ही अमरत्व प्राप्त कराता है।

३३६८) अपने आपको सत्य से पृथक और भिन्न समझते रहना और फिर धर्म के नाम पर त्याग आरंभ करना- इसका अर्थ यह होता है कि जो चीज अपनी नहीं है आप उस पर अधिकार जमाना चाहते हैं। यह तो गबन है।

३३६९) कर्म करना बहुत अच्छा है, पर वह विचारों से आता है, इसलिए अपने मस्तिष्क को उच्च विचारों और उच्चतम आदर्शों से भर लो, उन्हें रात-दिन अपने सामने रखो, उन्हीं में से महान् कार्यों का जन्म होगा।

३३७०) संसार की क्रूरता और पापों की बात मत करो। इसी बात पर खेद करो कि तुम अभी भी क्रूरता देखने को विवश हो। इसी का तुमको दु:ख होना चाहिए कि तुम सब ओर केवल पाप देखने के लिए बाध्य हो। यदि तुम संसार की सहायता करना आवश्यक समझते हो तो उसकी निन्दा मत करो। उसे और अधिक कमजोर मत बनाओ। पाप, दुख आदि सब क्या है ? कुछ भी नहीं, वे

कमजोरी के ही परिणाम हैं। इस प्रकार के उपदेशों से संसार दिन प्रतिदिन अधिकाधिक कमजोर बनाया जा रहा है।

३३७१) बाल्यकाल से ही उनके मस्तिष्क में निश्चित, दृढ़ और सहायक विचारों को प्रवेश करने दो। अपने आपको इन विचारों के प्रति उन्मुक्त रखो, न कि कमजोर तथा अकर्मण्य बनाने वाले विचारों के प्रति।

३३७२) यदि मानवजाति के आज तक के इतिहास में महान् पुरुषों और स्त्रियों के जीवन में सबसे बड़ी प्रवर्तक शक्ति कोई है, तो वह आत्मविश्वास ही है। जन्म से ही यह विश्वास रहने के कारण कि वे महान होने के लिए ही पैदा हुए हैं, वे महान् बनें।

३३७३) तुम अपने जीवाणु कोष की अवस्था से लेकर इस मनुष्य शरीर तक की अवस्था का निरीक्षण करो, यह सब किसने किया? तुम्हारी अपनी इच्छा शक्ति ने। यह इच्छा शक्ति सर्वशक्तिमान है, क्या यह तुम अस्वीकार कर सकते हो ? जो तुम्हें यहां तक लायी वही अब भी तुम्हें और ऊंचे पर ले जा सकती है। तुम्हें केवल चरित्रवान होने और अपनी इच्छा शक्ति को अधिक बलवती बनाने की ही आवश्यकता है।

३३७४) जड़ यदि शक्तिशाली है, तो विचार, सर्व शक्तिमान है। इस विचार को अपने जीवन में उतारो और अपने आपको सर्वशक्तिमान महिमान्वित और गौरवसम्पन्न अनुभव करो। ईश्वर करे, तुम्हारे मस्तिष्क में किसी कुसंस्कार को स्थान न मिले। ईश्वर करे, हम जन्म से ही कुसंस्कार डालने वाले वातावरण में न रहें और कमजोरी तथा बुराई के विचारों से बचें।

३३७५) मुसीबत में साथ देने वाला मित्र ही सच्चा होता है। समृद्धि काल में तो कितने ही लोग कहां-कहां से कैसे नाते-रिश्ते निकालकर सगे बने रहते हैं। उनमें से सचमुच कौन अपना है और कौन पराया, इसका निर्धारण संकट की घड़ी कर देती है। झूठे सगे धीरे-धीरे खिसकते चले जाते हैं। बाकी रह जाते हैं दो-चार सच्चे सगे। ये अपने संपत्ति काल में कुछ कम ही दर्शन देते हैं। पर संकट काल में विकट साथी बनकर छाए रहते हैं। हितैषियों में सच्चा हितैषी कौन है ? इसकी पहचान तीन स्थितियों में की जा सकती है। जब व्यक्ति परवश हो गया हो और यातनाएं झेल रहा हो। जब व्यक्ति के पड़ोस में संयोग से हितैषी आ बसा हो और जब व्यक्ति किसी झगड़े-फसाद में फंस गया हो। सच्चा हितैषी उद्धारक होता है। वह मुक्ति-अभियान छेड़ देता है। सच्चा हितैषी समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा अधिक बढ़ा देता है। वह व्यक्ति परिवार का अभिन्न अंग बन जाता है। परिवार के सुख-दुख उसके अपने सुख-दुख हो जाते हैं। अन्याय से जूझते व्यक्ति की सहायतार्थ सच्चा शुभचिंतक न्यायालय के द्वार पर भी खड़ा मिलता है।

३३७६) सम्बन्ध बस काम निकलने तक होते हैं। फिर कौन पूछता है ? काम पड़ा तो कुछ और हो गए, काम बना तो कुछ और। वाह रे हमारा लोकजीवन। वाह रे हमारा लोक-व्यवहार। जीवन में कृतज्ञता का भाव मानो लोप हो गया। काम पड़ने पर हो गए हम आपके। काम हो जाने पर कौन हैं आप हमारे ?

३३७७) कुटिलों की कुटिलता का फल चाहे कुटिलों को बहुत देर से मिले, किन्तु उनके संसर्ग में आने वाले सज्जनों को अविलंब मिलता है। कार्य करता है कौन, फल भोगता है कौन? कुसंगति अवश्य दंड देती है।

३३७८) जिसकी जो सीमा अंकित हो चुकी है अर्थात् जिसकी जो मान-मर्यादा निर्धारित हो चुकी है जो सदा से वैसी की वैसी चली आ रही है, उसमें उलट-फेर करके युग-पुरुष बनने का स्वप्न देखना, मूर्खतापूर्ण प्रयास होगा। क्योंकि समय की कसौटी पर खरी उतरने वाली तथा किसी ठोस सत्य पर आधारित कालजयी मान्यताएं किसी भी परिवर्तन को अस्वीकार कर देती हैं। ऐसी मान्यताएं, धारणाएं और परम्पराएं अटल सत्य बन जाती हैं जो शाश्वत मूल्य ग्रहण कर लेती हैं। जिस प्रकार जो जल अपनी सीमाएं तोड़कर बह निकलता है, वह यूं ही अकारथ चला जाता है। वह बाढ़ के रूप में लोगों को हानि पहुंचाता है। मनुष्य को अपनी सीमा का ध्यान रखकर उसी में रहना चाहिए।

३३७९) यदि कहीं भवितव्यता राम के अपने हाथ में होती तो न उधर राम माया मृग के संग जाते और न इधर सीता रावण के साथ जाती। ऐसा होना था, इसलिए ऐसा हुआ। जब होनी को अनहोनी कर देने की शक्ति इस अवतारी पुरुष के साथ भी अवतरित न हो सकी, तो फिर सामान्य व्यक्ति की क्या औकात जो होनी को टाल दे ? जब इस काली नियति पर कोई वश नहीं है तो फिर इसे अपना खेल खेलने का अवसर क्यों न दिया जाए ? जीवन को ही क्यों न खेल मान लिया जाए ?

३३८०) देसी श्वान पालने योग्य नहीं होता। उसमें ऐसी कोई खासियत नहीं होती, जिसकी वजह से उसे गृह-पशु बनाया जाए। न रूप-सरूप, न गुण विशेष और न ही आखेट का शौक-कोई रीझे तो किस बात पर ? प्रहरी बनने की क्षमता नहीं। स्वामिभक्त होने का

माद्दा नहीं। ऐसा पशु भरे-पूरे घर की प्रतिष्ठित देहरी को छोड़कर भूख के निमित्त इधर-उधर घूमता फिरता है। उसे भक्ष्य-अभक्ष्य का भी ज्ञान नहीं होता। जिसमें न रूप हो न गुण हो, उसे पालने से क्या लाभ ? न तो कुछ रूप है, न कोई गुण है और न शिकार करने में प्रेम है। ऐसे देसी कुत्ते को घर में पालने से केवल उसके द्वारा क्षुधा शांति का ही भ्रम बना रहता है। यदि किसी को सौंदर्य के कारण पालते हैं तो उसकी सुंदरता से आनंद मिलता है, यदि किसी को गुणों के कारण पालते हैं तो वह लाभ देता है। परंतु रूप और गुण न होते हुए भी किसी को पालना व्यर्थ की कठिनाई झेलना ही है।

३३८१) यह बात अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि नाते-रिश्ते दूर होने पर ही अपनी चमक-दमक रख पाते हैं। बहुत अधिक निकट आ जाने पर प्रेम-स्नेह बिदकने लगता है। मेल-मिलाप की ऊष्मा मन्द पड़ जाती है। नैकट्य से नाते के लोग पूरी तरह खुल जाते हैं। उनका चाल-चलन, रुचियां-कुरुचियां, जीवन-शैलियां आदि प्रकट हो जाती हैं। कुछ भी दबा-ढका नहीं रहता। संबंध मन्द होते जाते हैं। निकटता में खिंचाव नहीं होता। अभाव से ही भावनाएं बनती हैं। मूलत: मानव वियोग-प्रिय है और संयोग ठहरा पानी। घर के पास स्थित अति उपयोगी तलैया वैसा मान-सम्मान कहां पाती है, जैसा जनजीवन से दूर-बहुत दूर के ताल-तलैया पाते हैं।

३३८२) मिलन-वेला में प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य से अभिभूत होकर प्रेमी उसके विदग्ध अंगों से क्रीड़ाएं कर रहा है। कभी वह सलोने नयन का आस्वादन कर रहा है तो कभी अधर-मधु का पान। नयन-लावण्य और अधर-माधुर्य में कौन किससे घटकर है ? नमकीन पर मीठा और मीठे पर नमकीन सुस्वादु होता ही है। अभिसार के मिलन-महोत्सव के उपलक्ष्य में परोसे गए व्यंजन का रस कुछ दूसरा ही होता है।

३३८३) पान की लता और रतिस्वरूपा पतिव्रता स्त्री समान धर्मा होती है-दोनों ही अति मृदु एवं अति संवेदनशील। पान की बेल हिम-तुषार के प्रहार नहीं सह पाती। वह झुलसकर सूख जाती है। पति वियुक्ता स्त्री तो सौ योजन दूर की वियोगाग्नि की आंच से ही मुरझा जाती है। ऐसी सती-साध्वी तपस्विनी पर कामुकों अर्थात् काम-पुरुषों की छाया नहीं पड़नी चाहिए। ऐसी जोगिन किसी प्रकार का काम-लांछन सहन नहीं कर पाती। भावावेश में वह प्राणों पर खेल जाएगी। उसे सत्पुरुषों की सुरक्षा चाहिए।

३३८४) उधर बिना परिश्रम के ही सब कुछ पाने की लालसा रखने वाला अशांत पति-जन्तर-मन्तर, झाड़-फूंक, जादू-टोने एवं तान्त्रिक शक्तियों की शरण में घूमता फिर रहा है और इधर यथा लाभ सन्तोष लिए, सरलमना पत्नी अपने घर में ही भगवान् राम को पूजती है। दोनों की दृष्टियों में ध्रुव अन्तर है। दोनों की गतियां अलग-अलग दिशाओं में हैं। जब गाड़ी में विपरीत स्वभाव वाले भैंसे और बैल जोत दिए जाते हैं तो गाड़ी एक दिशा में कैसे गतिमान रह सकती है।

३३८५) अपने विकास की प्रथम अवस्था में करौंदा राई के समान दिखाई देता है। परंतु कटहल अपनी किसी भी अवस्था में इतने नीचे नहीं आ सकता कि राई के समान छोटा नजर आए। छोटी बुद्धि के लोग जब निचले स्तर की बात करते हैं तो बहुत अधिक गिर जाते हैं। लेकिन उच्च बुद्धिवाले व्यक्ति कितना ही गिरकर बात करें, मान-मर्यादा का पूरा ध्यान रखते हैं। छोटे लोग घमंड करने लगते हैं जबकि बड़े नहीं इतराते। राई करौंदा हो जाती है, परंतु कटहल राई नहीं हो सकता। इसी भांति महान पुरुष अपनी गरिमा को नहीं त्यागते, जबकि छोटे व्यक्ति अहंकारी हो जाते हैं। जो स्वयं को छोटा मानता है, वह महान होता है तथा जो छोटा होते हुए भी स्वयं को बड़ा मानकर अहंकार करता है, वह छोटा ही रहता है, जैसे राई छोटी होकर भी करौंदा बन जाती है।

३३८६) शक्ति और वैभव से उन्मत्त राजा जान-बूझकर गुणियों एवं कलाकारों को उनकी हैसियत से घटाकर देखता है। गुणी कलाकार भी राजा को उसकी प्रभुता से कम करके देखते हैं। दोनों एक दूसरे के विलोम होते हैं और एक दूसरे के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं। दोनों यह नहीं समझते कि वे भी समाज के विशिष्ट अंग-उपांग हैं। वे उसी रचनाकार की सृष्टि हैं जिसने सबको रचा है। जब दोनों ही एक पिता की संतति हैं तो एक दूसरे से इतनी दूर क्यों ? क्या ऊंचे पर्वत शिखर और गहरी घाटियों वाली भूमियां एक ही उपग्रह पृथ्वी के खण्ड, उपखण्ड और अंग नहीं हैं, फिर क्यों एक दूसरे को ऊंचा-नीचा देखने की प्रवृत्ति है। इस संसार के सभी प्राणी एक ही परम पिता की संतान हैं।

३३८७) वैर, प्रीति, अभ्यास और यश- ये चारों भाव दो-चार दिन में पल्लवित-पुष्पित नहीं होते। इन बातों में समय लगता है। इनका क्रमिक विकास होता है। इनको कोई साथ लेकर पैदा नहीं होता। ये व्यक्ति के आचरण और साधना के परिणाम होते हैं। ये सब यहीं बनाने से बनते-बिगड़ते हैं। व्यक्ति चाहे तो इनको बढ़ा सकता है और चाहे तो घटा सकता है। धीरे-धीरे वैर-भाव भी घटता चला

जाता है। व्यक्ति को उदार, धैर्यशील एवं क्षमावान होना चाहिए। प्रीति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए त्याग और समर्पण चाहिए। लेने की नहीं, देने की इच्छा होनी चाहिए। अच्छे कार्य के लिए अच्छा धैर्य भी होना चाहिए।

३३८८) बड़े लोग सुख-दुख दोनों को जीवन की अनिवार्य अवस्थाएं मानते हैं और शान्त होकर उन्हें गृहीत करते हैं। वे दोनों दशाओं में सहज रहते हैं। उन पर उत्कर्ष में उन्माद और अपकर्ष में विषाद नहीं छाता।

३३८९) निशाकर जिस महिमा का बिम्ब लेकर उदय होता है, उसी महिमा-बिम्ब को लेकर अस्त भी होता है। उत्थान और पतन को समान भाव से धारण करनेवाला मनुष्य ही महान कहलाता है।

३३९०) आदि की हलचल अन्त तक पहुंचती है। दूरदर्शी को कार्य के आरम्भ में ही अपने दृष्टि-पथ में कार्य-परिणाम झलकने लगता है। ऐसी दृष्टि न्यूनाधिक रूप से हर कोई विकसित कर सकता है।

३३९१) अपने दिनों के फेर देखो और चुप हो जाओ। चुप होकर बैठ जाओ। खड़े मत रहो। इधर-उधर मत डोलो। व्यग्र-उग्र, क्षुब्ध-विक्षुब्ध मत हो। निस्तब्ध हो जाओ। अपने दुर्बल मुहूर्तों के चलचित्र देखते जाओ। अच्छे दिन आएंगे तो सब कुछ अपने आप बनता चला जाएगा और उसमें देर नहीं लगेगी। धैर्य, आशा और आस्था जीवन-पथ के प्रधान सहयात्री होते हैं।

३३९२) आज तुम्हारे दुर्दिन की नदी उग्र होकर बह रही है। तुम अपने को इसके आवर्त-विवर्त में फेंक दो। कदापि नहीं डूबोगे। घबराकर हाथ-पैर मत चलाओ। बस शव बन जाओ और प्लवन करो। बिछा दो स्वयं को वारि-धाराओं पर। कोई न कोई धारा सहयोग देना शुरू कर देगी। तिरते-तिरते चले आओगे उस कूल पर जहां तुमको जीवन की नई जमीन दिखने लगेगी।

३३९३) एक क्या, सौ चूहों के चमड़े मिलाकर यदि नगाड़े को मढ़ने की कोशिश की जाए तो वह व्यर्थ ही सिद्ध होगी। मूषक-चर्म नगाड़े के लिए है ही नहीं। समाज में छोटे-छोटे कार्य भी महत्त्वपूर्ण होते हैं जिनको छोटे-छोटे लोग बड़े प्रेम से कर लेते हैं। किन्तु महान कार्य के लिए इनको आमन्त्रित नहीं करना चाहिए।

३३९४) किसी के यहां तब तक ठहरना उचित है, जब तक वहां प्रेम स्थिर रहे और मान-सम्मान जस का तस बना रहे। जिस घड़ी लगे कि सेवा-सत्कार में, मान-प्रतिष्ठा में शिथिलता आ गई है, उसी घड़ी कोई बहाना बनाकर वहां से प्रयाण कर जाना चाहिए। किसी पर बोझ मत बनो। अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखो। प्रतिष्ठा व्यक्ति को तेजस्वी बनाए रखती है। ऐसी नौबत ही क्यों आए कि मान-सम्मान में ऱ्हास के लक्षण उभर आएं।

३३९५) भगवान् वामन ने याचक बनकर महाराज बलि को छला और उनका सर्वस्व हर लिया। वे छलते समय वामन से विराट हो गए। आकाश तक छा गए। इस कपट-लीला में उनको पूर्ण सफलता अवश्य मिली, किन्तु वे सदा-सदा के लिए लांछित होकर बावन अंगुल के वामन कहलाए। विराट भी कहे जा सकते थे, पर स्वीकृत नहीं हुए। क्यों ? याचकता ग्रहण करने पर बड़े लोग छोटे हो जाते हैं और उनका यश घट जाता है। भगवान् नारायण को भी याचना के लिए महाराज बलि के समक्ष बावन अंगुल की देह धारण करनी पड़ी थी।

३३९६) प्रिय बोलो। नम्र होकर चलो। फिर देखो, कोई भी देश पराया नहीं है। सज्जनता विश्वमोहिनी होती है। विनम्रता व्यक्ति को महान बना देती है।

३३९७) सुखद हो या दुखद, परिस्थिति जरूर बदलेगी। किसी की एक ही दशा नहीं रहती। फिर क्या पछताना। अच्छे दिन क्या नहीं आएंगे ? विषाद को चुनौती दो। आस्था एवं विश्वास से भरे रहो।

३३९८) रूप के फेर में पड़ने वालों को सिर्फ खोना ही खोना पड़ता है, चाहे वह चालाक व्यवसायी ही क्यों न हो। उसे मन के साथ-साथ धन भी गंवाना पड़ जाता है।

३३९९) रूप-सौन्दर्य में आसक्त होने वाले पुरुष को व्यर्थ में ही गांठ से धन खर्च करना पड़ता है; उसे प्राप्ति कुछ नहीं होती। प्राप्ति की इच्छा न करके मन को वश में रखना ही उत्तम प्रकृति की निशानी होती है।

३४००) नारी के सुन्दर रूप-यौवन के माया-जाल में उलझने से पुरुषों (युवकों) को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। समय की बर्बादी के साथ ही वे लोगों की निगाह में तिरस्कृत होते रहते हैं। सुन्दर नारी का तो स्वभाव ही बनाव-श्रृंगार करना है। उस पर व्यर्थ ही रीझने वाला पुरुष मूर्खता करता है। अपनी इस अल्हड़ता भरी जवानी को सरे-बाजार दिखाती हुई वह हजारों हृदयों पर आघात लगा रही है।

३४०१) अच्छे कुल-गोत्र के लोग अच्छे चरित्र और व्यवहार को दर्शाते हैं। निम्न कुल-गोत्र के लोगों के व्यवहार से नीचता प्रदर्शित हो ही जाती है।

३४०२) ओछे आदमी का साथ अंगारा है। तुरन्त छोड़ दो, नहीं तो जलते अंगारे से अंग जला लोगे और कालिख लगा लोगे ठंडे अंगारे से। ऐसे आदमी का मन व्यवस्थित नहीं होता। वह कहीं का क्रोध कहीं उतारकर चोट पहुंचा सकता है। कुछ ज्यादा नहीं होगा तो भी साथ होने का कलंक तो लग ही जाएगा।

३४०३) जैसे सज्जन को सत्य प्रिय होता है वैसे ही दुर्जन को असत्य प्रिय होता है। सज्जन पुरुष के लिए असत्य विष है और दुष्ट के लिए सत्य विष के समान है। सज्जन असत्य को और दुष्ट सत्य को छूते ही वैसे ही भाग जाते हैं जैसे अग्नि की आंच लगते ही पारा उड़ जाता है अर्थात् आग पर रखते ही जैसे पारे का नामोनिशान नहीं रहता उसी तरह यदि सज्जन का असत्य से पाला पड़ जाए तो वह पलायन कर जाता है तथा दुर्जन का सत्य से पाला पड़ जाए तो वह भाग जाता है।

३४०४) कलह से बड़े-बड़े अनिष्ट होने की संभावना रहती है। कलह को छोटी बात नहीं जानना चाहिए, कलह का परिणाम बहुत भयंकर होता है। जैसे गरीब की छोटी सी झोंपड़ी में लगी आग से उसके निकटस्थ बड़े-बड़े धनियों के धन-धाम जल जाते हैं अर्थात् जब झगड़ा प्रारंभ होता है तो वह छोटा सा लगता है परंतु बढ़ते-बढ़ते वही कलह भयंकर होती जाती है। चाकू, छुरे, गोली, बंदूक देखते ही देखते निकल आते हैं और भयंकर परिणाम हो जाते हैं।

३४०५) किसी महान कार्य को करने जाते हुए समय की प्रतीक्षा अवश्य करनी चाहिए। समय के साथ ही काम की गहनता का परिचय प्राप्त होता है। सरोवर और नदी की गहराई जानने के लिए एकदम से उसमें प्रवेश नहीं करना चाहिए। बल्कि उसके साथ-साथ चलते हुए उनकी गहराई का अनुमान लगाना चाहिए। दूसरों को उनमें प्रवेश करते देखकर गहराई का पता चल जाता है। तभी उसमें उतरना चाहिए अर्थात् कार्य को करना चाहिए।

३४०६) किसी बात को न समझने पर उसे बार-बार सोचना चाहिए। ऐसा करने से वह अपने-आप समझ में आ जाएगी। वह स्वयं समझ में नहीं आई तो (उसके अनुसार आचरण न करने से) क्षण-क्षण में दुख होगा अर्थात् यदि कोई बात हमारी तुरंत समझ में नहीं आती तो हमें उस पर बार-बार विचार करना चाहिए। बार-बार चिन्तन से हर उलझन सुलझ जाती है। अगर बिना सोचे-समझे हमने कार्य किया तो परिणाम में दुख होगा।

३४०७) स्वयं जान-बूझकर धोखा खाने में अपना एक विचित्र आनंद है। स्वयं धोखा खा लो, परंतु दूसरों को धोखा मत दो, क्योंकि दूसरों को धोखा देने से मनुष्य स्वयं भी दुखी होता है, जबकि स्वयं धोखा खाकर मनुष्य को सुख मिलता है। जो लोग अन्य लोगों को मूर्ख बनाते हैं, वे भीतर ही भीतर दुखी रहते हैं और जो स्वयं ठगे जाते हैं, उन्हें अपूर्व सुख मिलता है।

३४०८) पंथों के चक्कर में पड़ना व्यर्थ है। एक प्रभु को प्रेम करते चले जाना चाहिए। पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, दिवस-रात्रि, सूर्य और चंद्रमा का कौन सा पंथ है ? वे सभी को समान रूप से गंध, शब्द, रस, प्रकाश आदि बांटते रहते हैं। हमने सब जगह खोजकर देख लिया है कि चाहे हिंदू हो या मुसलमान, सभी के अंदर एक ही आत्मा है, दूसरा कोई और नहीं है।

३४०९) प्राण के निकलते ही शरीर मिट्टी बन जाता है। उसे श्मशान में ले जाकर जलाया जाता है। यह सब देखते और जानते हुए भी मनुष्य अज्ञानी बनकर इस झूठे शरीर और झूठे संसार से प्रेम करता रहता है।

३४१०) इस जीवन पर क्या अभिमान करना और इस शरीर से क्या प्रेम करना ? बात करते-करते बालू की दीवार की तरह जो पल भर में ढह जाती है। अज्ञानवश मनुष्य अपने शरीर से या अपने सगे-संबंधियें के शरीर से प्रेम करता है। जीवन पर गर्व करता है। वह यह भूल जाता है कि समय आने पर इस जीवन और तन के नष्ट होने में एक क्षण भी नहीं लगता। जैसे रेत की दीवार गिर जाती है, इसी प्रकार शरीर भी मृत हो जाता है।

३४११) जो बाहर से देखने में तो साफ-सुथरे उजले-उजले दिखाई देते हैं, परंतु अंदर से जिनके अंग मैले हैं, उनसे तो कौआ ही अच्छा है जो बाहर से भी काला है तथा अंदर से भी काला है। ऐसे लोगों से वह अच्छा है जो बाहर से सज्जनता का आवरण धारण किर रहते हैं परंतु मन में दुर्भावनाएं रखते हैं। जो मन से बुरे होते है और बाहर से भी बुरे ही होते हैं, वे अच्छे हैं, क्योंकि उनको बुरा

समझकर लोग उनसे सावधान तो रह सकते हैं जबकि मन के काले और वेश के उजले लोगों से तो धोखा ही धोखा मिलता है।

३४१२) उस मनुष्य को ही उपदेश देना चाहिए जो धीर-गंभीर प्रकृति का हो। यदि किसी को हींग खरीदना हो तो उसे हीरा दिखाने से कोई प्रयोजन नहीं। उसके लिए तो हींग ही उपयोगी है अर्थात् धैर्यवान गंभीरता से प्रेम करने वाला मनुष्य ही उपदेश को समझकर धारण कर सकता है। हल्के विचारों वाला व्यक्ति तो उपदेश को अनर्गल बात समझेगा।

३४१३) सब लोगों का दिन संसार के दुख-द्वंद्वों में ही बीत जाता है। सारा दिन मनुष्य संसार के द्वंद्व-फंद में फंसा हुआ इधर से उधर भटकता फिरता रहता है। इसी तरह आधा जीवन बीत जाता है। एक दिन और रात के कुल मिलाकर आठ पहर होते हैं, जिसमें से चार पहर सांसारिक कष्टों का सामना करने में व्यतीत हो जाते हैं। यदि रात्रि न होती तो मनुष्य सारा जीवन संघर्ष और कठिनाई में ही बिता देता, कभी विश्राम न पाता।

३४१४) अवसर के बिना अच्छी बात भी बुरी लगने लगती है। हर कार्य उचित समय पर ही अच्छा लगता है। बल्कि उचित समय पर न हो तो भला काम भी भला नहीं लगता, जैसे सुबह होने पर दीपक की लौ फीकी लगने लगती है।

३४१५) जो सुहागिन स्त्री अपने पति का विपत्ति के समय साथ छोड़कर अन्य पुरुषों के साथ रहती है, उस स्त्री का दुनिया के लोग उपहास करते हैं। पति का दुख में साथ वही स्त्री छोड़ती है जो अन्य पुरुषों को पति बना लेती है। ऐसी सुहागिन स्त्री की सब हंसी उड़ाते हैं। अन्य किसी का मजाक नहीं उड़ाया जाता।

३४१६) क्रोध महा चंडाल होता है, यह सभी जानते हैं। क्रोध में आदमी पागल हो जाता है। उस अंधे को आगा-पीछा कुछ दिखाई नहीं देता। जिसके हृदय में धूमधाम के साथ क्रोध प्रवेश करता है, उसी की बहुत हानि करता है। क्रोध करने वाले की प्रतिष्ठा खो जाती है। कोई उसका सम्मान नहीं करता। क्रोध बुद्धि का हनन करता है। क्रोध में मनुष्य को उचित-अनुचित का विवेक नहीं रहता। जिस स्त्री या पुरुष को क्रोध आता है उसकी समाज में न तो इज्जत रहती है न उसका दिमाग ठीक रहता है। इस प्रकार उसका बहुत नुकसान होता है।

३४१७) लोभ नीच होता है, यह महापाप की खान है। इसका मंत्री झूठ है। इसे बहुत अधर्मी समझना चाहिए। लालच के कारण मनुष्य झूठ बोलता है। झूठ से बहुत से अन्य पाप होते चले जाते हैं। इस प्रकार लोभ बड़े से बड़े पाप की जड़ है। मनुष्य को इस लालच की बुरी बला से बचना चाहिए।

३४१८) यह संसार सुबह के तारों की तरह क्षणभंगुर है। जैसे तारे दिन निकलने के बाद आकाश में नहीं ठहरते वैसे ही मृत्यु आने पर कोई जीवित नहीं रह सकता। जैसे ओस की बूंदे दूर से देखने पर मोती की तरह लगती हैं परंतु हाथ में लेते ही अंजुली में पानी रह जाता है। उसी तरह संसार की हर वस्तु नश्वर है।

३४१९) लंकापति रावण का यश नष्ट हुआ और राम की कीर्ति बढी यह सब आदि कवि महर्षि बाल्मिकि का प्रभाव था अत: राजाओं को चाहिये अपने राज दरबार में वे कवियों पर कोप न करे।

३४२०) ब्राह्मण यदि विद्यारहित हो तो उसे नगर में स्थान, सम्मान नहीं मिलेगा और यदि कुम्हार भी विद्वान हो तो वह सम्मान पाने का अधिकारी होगा।

३४२१) बुराई क्या है ?- हत्या बुरी है, चोरी बुरी है, कामवासना से युक्त होना बुरा है, झूठ बोलना बुरा है, निन्दा करना बुरा है, गाली देना बुरा है, मिथ्या कथन बुरा है, ईर्ष्या बुरी है, घृणा बुरी है, मिथ्या मत का पालन करना बुरा है ये सारी वस्तुएं बुरी हैं।

३४२२) बुराई के बारे में हल्के ढंग से सोचते हुए यह मत कहो कि यह मेरे समीप तक नहीं आएगी। एक घड़ा भी बूंद-बूंद से भर जाता है। इसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति भी थोड़ा-थोड़ा करके खुद को बुराई से भर लेता है।

३४२३) जिस प्रकार कम रक्षकों और अधिक सम्पत्ति से युक्त व्यापारी खतरनाक रास्ते पर से जाना छोड़ देता है या जिस प्रकार जीने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति विष से बचता है, उसी प्रकार व्यक्ति को बुराई से बचना चाहिए।

३४२४) यदि व्यक्ति पाप- भावना के साथ बोलता या कार्य करता है, तो पीड़ा उसका पीछा ठीक वैसे ही करती है, जैसे चक्का गाड़ी को खींचनेवाले बैल के पैरों का अनुसरण करता है।

३४२५) पापी व्यक्ति को पाप मधुरस के समान मीठा लगता है। जो मूर्ख अपनी मूर्खता से परिचित है, वह वहां तक तो बुद्धिमान है।

किन्तु जो मूर्ख अपने को बुद्धिमान समझता है, वह वस्तुत: मूर्ख होता है।

३४२६) दूसरों का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष) देखना कठिन है। व्यक्ति अपने पड़ोसी के दोषों को तो भूसे की तरह उड़ाता फिरता है, पर अपने दोषों को वह वैसे ही ढांकता है, जैसे एक धोखेबाज झूठे पासों को जुआरी से छिपाता है।

३४२७) जो दुष्ट व्यक्ति एक सज्जन का अपमान करता है, वह उसके समान है, जो ऊपर देखता है और आकाश पर थूकता है, थूक से आकाश दूषित नहीं होता, बल्कि वह वापस आता है उसी को दूषित करता है।

३४२८) जिस प्रकार स्वस्थ एवं दृढ़ जड़ोंवाले वृक्ष को काट डालने पर वह पुन: बढ़ने लगता है, उसी प्रकार जब तक प्रच्छन्न तृष्णा को निर्मूल नहीं किया जाता, तब तक दु:ख बार-बार पल्लवित होता है।

३४२९) जिस प्रकार जंग लोहे से उत्पन्न होते हुए भी पैदा होते ही लोहे को खा जाता है, वैसे ही पापी व्यक्ति के अपने कर्म ही उसे दुर्गति की ओर ले जाते हैं।

३४३०) जो अपने दीपक में जल भरता है, वह अन्धकार को दूर नहीं कर सकता और सड़ी लकड़ी से अग्नि उत्पन्न करना चाहता है, वह असफल होता है।

३४३१) बात साथ की नहीं संतुष्टि की होती है, कोई पास रहकर भी दूर हो सकता है और दूर होकर भी पास; यह सब मन की सोच पर निर्भर करता है।

३४३२) हमें यह कहने में शर्म महसूस नहीं होनी चाहिए कि जो मुझे नहीं मालूम उसके विषय में साफ-साफ कह दूँ कि इस बारे में मैं अज्ञानी हूँ।

३४३३) किसी सत्कार्य को करने के लिए जो कहते हैं कि हमारे पास समय नहीं है, वे वास्तव में आलसी हैं। समय हर मनुष्य के पास है पर उसका उपयोग करने के लिए हमें आलस्य त्यागना होगा।

३४३४) वस्तुएँ बल से छीनी जा सकती हैं अथवा धन से खरीदी जा सकती हैं। किन्तु ज्ञान केवल अध्ययन से प्राप्त हो सकता है जिसे कोई नहीं छीन सकता।

३४३५) अगर लोगों को यह पता चल जाए कि इस कुशलता को प्राप्त करने में मुझे कितनी मेहनत करनी पड़ती है तो उन्हें मेरा काम बिलकुल भी आश्चर्यजनक न लगे।

३४३६) सभी प्रेरणाएँ उन भिन्न-भिन्न विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो एक अच्छे आदमी के जीवन स्तर को ऊँचा उठा देने में पूर्ण सक्षम है।

३४३७) जानने-जानने में बहुत फर्क है। जानना वह है कि जिसका जन्म भीतर से होता है। बाहर से जो इकट्ठा कर लेते हैं वह हमारा बन्धन हो जाता है, उस से हमारी जिन्दगी में कोई परिवर्तन होने वाला नहीं। वह हमें मुक्त नहीं करता, जो भीतर से आता है वही हमें मुक्त करता है।

३४३८) अज्ञानी की दृष्टिसे जो सत्य है, ज्ञानीकी दृष्टिसे वह सत्य नहीं कहा जा सकता और ज्ञानीकी दृष्टिसे जो सत्य है, वह अज्ञानीकी दृष्टिसे सत्य नहीं कहा जा सकता।

३४३९) क्या आपका वर्तमान मर गया है ? इसको उज्ज्वल बनाइये, निर्मल बनाइये, चमकाइये। वही आपका जीवनकाल है। उज्ज्वल वर्तमान में-से पीछे जानेवाला भूत और सामनेसे आनेवाला भविष्य-दोनों ही रसमय, मधुमय, लास्यमय बन जायेंगे।

३४४०) आपके दु:खका कारण क्या है- भोगकी वासना, संग्रहमें लोभ-प्रवृत्ति, मनो-राज्यका जीवन और आदतोंकी गुलामी ? चारों ही आपको दु:खी बना रहे हैं।

३४४१) अभिमानको ही शोक, मोह, भय की प्राप्ति होती है। बीते हुए के लिए शोक, वर्तमानको पकड़ रखने का मोह और आनेवाले के लिए भय-अभिमानके ही आश्रित रहते हैं।

३४४२) पूर्णतामें ही समता होती है। उसमें अच्छाई-बुराई, पाप-पुण्य, राग-द्वेष, सुख-दु:ख, अहं-ममका भेदभाव नहीं होता। बिना ऐसा अनुभव हुए समता नहीं आ सकती। समता आये बिना दु:ख मिट नहीं सकता।

३४४३) कदाचित् सोने और चांदी के कैलास के समान असंख्य पर्वत हो जाएं, तो भी लोभी पुरुष को उनसे कुछ भी नहीं होता

(तृप्ति नहीं होती), क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है।

३४४४) आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु विद्याभ्यासी नहीं हो सकता, ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता, और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

३४४५) कोई भी कार्य करने से पूर्व सोचना बुद्धिमत्ता है। काम करते समय सतर्कता होनी चाहिये। काम करने के बाद सोचना मूर्खता है।

३४४६) जो बेचारा जन्म से अन्धा है वह किसी भी उपचार से समर्थ नही हो सकता। विषय वासना मे डूबा हुआ व्यक्ति भी अन्धा ही होता है। वस्तुत: वह भी नहीं देखता है अर्थात निर्लज्ज होता है। ऐसा व्यक्ति महापुरुषों को सामने देख कर भी काम वासना से विहल होने से लज्जा, संकोच, शालीनता और मर्यादाओं का पालन नहीं करता। मदिरापान से उन्मत व्यक्ति भी अन्धे हो जाते है। मदिरा के प्रभाव से विवेक हीन हो जाने के कारण वे नेत्र होते हुये भी अन्धे है। आवश्यकता से पीडित व्यक्ति भी अपने स्वामी के दोषों को पहचानते हुये भी अनदेखा कर देता है क्योकि उसकी जरूरते ही उसे अन्धा बना देती है।

३४४७) सच्चा संत वही है जो संपूर्ण विश्व को अपना परिवार समझे। मान-अपमान की परवाह न करे, मानवता के लिए समर्पित हो।

३४४८) ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को जीवन में ऐसा एक सुअवसर जरूर देता है, जिसका लाभ उठाकर वह धन, वैभव और सम्मान के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकता है। सवाल सिर्फ इतना है कि कौन कितनी सूझबूझ और परिश्रम से उस अवसर का लाभ उठाता है।

३४४९) धर्म शास्त्रों में लोभ, क्रोध और मोह को मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कहा गया है। इन्हीं कारणों से जीवन में हताशा, अवसाद और तनाव के पल आते हैं।

३४५०) जो व्यक्ति ईश्वर को सदा अपने समीप महसूस करता है, वह सभी दुष्कर्मों से बचा रहता है और सभी प्रकार की निराशाओं और कष्टों से मुक्त हो जाता है।

३४५१) क्रोध, घृणा, अहम्, मोह, आसक्ति ऐसे भाव हैं जो मनुष्य की सोचने-समझने की शक्ति समाप्त कर देते हैं और वह खुद अपना विनाश कर लेता है। इस विनाश से बचने के लिए मनुष्य को आत्म-मंथन करना चाहिए।

३४५२) जिस प्रकार अलमस्त हाथी पर काबू पाने के लिए महावत अंकुश का प्रयोग करता है, उसी प्रकार मनुष्य को अपनी दूषित भावनाओं पर काबू पाने के लिए आत्म-संयम रूपी अंकुश का इस्तेमाल करना चाहिए।

३४५३) यदि कष्ट को हंसते-हंसते सहन किया जाए तो वह भी सुखद हो जाता है, पर यह तभी हो सकता है जब काम को महान बना दिया जाए।

३४५४) जिसने अपने मन को वश में कर लिया समझो जगत जीत लिया। ऐसा व्यक्ति कभी असफल नहीं हो सकता। परिस्थितियां स्वत: उसके अनुकूल हो जाती हैं।

३४५५) इस दुनिया में किसी भी व्यक्ति का स्वभाव प्राकृतिक रूप से ऐसा नहीं है जिसे पूर्ण कहा जा सके। उसे आवश्यकता होती है-देखभाल की, आत्मसंयम की।

३४५६) यदि हम आत्मिक सुख चाहते हैं तो हमें हंसते-हंसते जीवन गुजारना होगा और इसके लिए आवश्यकता है स्वभाव को अनुकूल बनाने की।

३४५७) कामवासना, मानव की महानतम शत्रु है और इस पर काबू नहीं पाया तो क्रोध विकराल रूप धारण कर लेता है और बाकी अन्य सभी साथियों-लोभ, मोह, मद, मत्सर को बुलाकर आपके जीवन को नष्ट कर देता है और आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने वाले सारे रास्ते बंद हो जाते हैं।

३४५८) माया और चैतन्य को प्रकृति और पुरुष भी कहा जाता है। चैतन्य तो पवित्र गुफा है और जो गुफा के भीतर जाता है वह लौटता नहीं किंतु स्वयं गुफा ही बन जाता है। माया सारे असत्य भेदों का निर्माण करती है। जब तक आप माया में फंसे हैं, सत्य से परिचय नहीं होता।

३४५९) नीति से काम नहीं चलेगा क्योंकि नीति तो अहंकार पर ही खड़ी होती है। धर्म से काम चलेगा, क्योंकि धर्म कहता है- छोड़ो तुम मैं को- परमात्मा को करने दो- जो कर रहा है। तुम निमित्त मात्र हो जाओ।

३४६०) शूद्र का अर्थ है- प्रमादी। शूद्र का अर्थ है- सोया हुआ। शूद्र का अर्थ है- आलस्य, तमस से घिरा हुआ। शूद्र का अर्थ है-

जो कुछ भी नहीं कर रहा है, न बाहर जा रहा है न भीतर जा रहा है, जो प्रमाद में, अंधेरे में सोया रह गया है। मेरे देखे जन्म से सारे लोग दो तरह के होते हैं- शूद्र और वैश्य। उपलब्धि से दो तरह के हो जाते हैं- ब्राह्मण और क्षत्रिय। जो विकसित नहीं हो पाते, वे पिछली दो कोटियों में रह जाते हैं। वर्ण तो दो ही हैं।

३४६१) त्यागी कभी समर्पित नहीं होता। त्यागी आदमी कभी समर्पण नहीं करता। वह कहता है कि मेरे पास कारण है, मैंने इतना छोड़ा अब मुझे मिलना चाहिए।

३४६२) समर्पण वह करता है, जिसके ख्याल में यह आ जाता है कि मैं पूर्ण असहाय हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है- परमात्मा को देने को। मैं रो सकता हूं, चिल्ला सकता हूं, पुकार सकता हूं, दे तो कुछ भी नहीं सकता। जो इतना दीन, इतना दरिद्र, इतना असहाय, इतना बेसहारा होकर पुकारता है, वह समर्पित हो जाता है, वह साक्षात्कार को उपलब्ध हो जाता है।

३४६३) तुम सत्ता-लोलुप लोगों के हाथों में इतनी अधिक ताकत दे रहे हो। अपने ही हाथों से अपने गले में फांसी लगाने में तुम उनकी मदद कर रहे हो। यह लोकतंत्र नहीं है।

३४६४) मनुष्यों को एक-दूसरे से जोड़ने वाला एकमात्र कानून होना चाहिए- प्रेम। यदि वे एक-दूसरे के साथ रहना चाहते हैं तो उन्हें बांधने वाली शक्ति सिर्फ आनंद होनी चाहिए।

३४६५) सारे जगत में एक आध्यात्मिक पुनरुत्थान निकट है और एक नए मनुष्य का जन्म होने के करीब है। हम सब उसकी ही प्रसव पीड़ा से गुजर रहे हैं।

३४६६) जो स्वर्ग जाना चाहते हैं, उन्होंने इस पृथ्वी को नरक बना दिया है क्योंकि उनकी आंखें किसी काल्पनिक स्वर्ग में लगी हुई हैं और वास्तविक पृथ्वी उपेक्षित पड़ी रह गई है।

३४६७) मौन भी उत्तर हो सकता है। कुछ चीजों का तो केवल मौन ही उत्तर होता है। वस्तुत: जीवन के जितने महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, सभी मौन में ही सुलझाए जाते हैं।

३४६८) चुप रहने का नाम मौन नहीं है। चुप तो आदमी हजारों कारणों से रह जाता है। जब तक मन है मौन नहीं। मन की मृत्यु का नाम मौन है। भीतर विचार न चलें, तरंगे न उठें, तो मौन। बोलने, न बोलने से मौन का कोई वास्ता नहीं है। मौन का वास्ता तो है निर्विचार दशा से और वह अंतर्दशा बोलने से भी भंग नहीं होती।

३४६९) मौन का अर्थ है नि:शब्द होना। शब्द मन की खुराक हैं। वह तो शब्दों को पीने को कहेगा। शून्य को, मौन को पकड़ना और पीना। आत्मसात् कर लेना चुप्पी को।

३४७०) मुंह से निकलने वाले हर शब्द या मन मे उठनेवाली हर कामना पर विश्वास मत करे। हर मामले को ईश्वर के अनुसार सावधानी और धैर्य के साथ आंके।

३४७१) बुद्धिमानी का तकाजा है कि आदमी जो कहता फिरता है उस पर आंख बन्द कर भरोसा ना करे और दूसरों से सुनी सुनाई बात को हर किसी से कहते न रहे।

३४७२) अकलमन्द और अन्तरात्मा पर चलने वाले आदमी की सलाह ले और अपनी मन गढ़न्त भावनाओं के फेर मे रहने के बजाय अपने से अधिक अच्छे आदमियों की सम्मति लेने की कोशिश करे।

३४७३) क्रोध या आवेश क्षणिक है या बात छोटी सी है तो उस समय उग्र प्रतिक्रिया नही करनी चाहिये और छोटी-मोटी कमियों की कठोर भर्त्सना व आलोचना नही करनी चाहिये।

३४७४) इष्ट वस्तु के नाश या प्राप्त न होने से उत्पन्न शोक से रूप, बल और ज्ञान-स्मृति नष्ट हो जाती है और वह सन्तप्त पुरुष रोग को प्राप्त होता है, रोगी हो जाता है।

३४७५) शोक से कोई इष्ट वस्तु प्राप्त होने योग्य नहीं होती अर्थात् शोक-चिन्ता करने से इष्ट वस्तु प्राप्त नहीं होती, उलटा शरीर पीड़ित होता है, शत्रु लोग शोक-चिन्ता में डुबा हुआ जानकर प्रसन्न होते हैं। इसलिए शोक-चिन्ता में मन को मत लगाओ।

३४७६) मनुष्य पुन:-पुन: मरता है, उत्पन्न होता है, क्षीण होता है, बढ़ता है, याचना करता है अथवा उससे याचना की जाती है,

शोक करता है अथवा शोक किया जाता है अर्थात् मनुष्य कभी भी एक रूप में नहीं रहता, सुख-दु:ख लगे ही रहते हैं। अत: शोक करना व्यर्थ है।

३४७७) संसार में सुख-दुख, भाव-अभाव (होना-न-होना), लाभ-हानि और जीवन-मरण ये सब सभी प्राणियों को बारी-बारी से प्राप्त होते हैं। इसलिए धैर्यवान पुरुष को चाहिए कि वह न इष्ट को प्राप्त होकर प्रसन्न होवे और न अनिष्ट को प्राप्त होने पर शोक करे।

३४७८) वह मित्र नहीं है, जिसके कोप से डर लगता हो, अथवा जिससे शंकित होकर व्यवहार किया जाता हो। मित्र वही होता है जिसमें पिता के समान विश्वास होता है, अन्य तो संगत इकट्ठे हुए अर्थात् साथी मात्र कहलाते हैं।

३४७९) जो व्यक्ति किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने वाला भी मित्रभाव से व्यवहार करता है, वही वास्तव में बन्धु होता है, वही आश्रय रूप होता है, वही परमगति होता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति से ही आवश्यकता के समय सहयोग प्राप्त हो सकता है।

३४८०) जो पुरुष चंचल चित्तवाला है, वृद्धों (ज्ञानवृद्धों) और वयोवृद्धों का सेवन संग नहीं करता और अस्थिर मति वाला है, उसका मित्र संग्रह भी नित्य ही अध्रुव (अस्थिर) रहता है अर्थात् ऐसा पुरुष, जिनको आज मित्र समझता है, कल उन्हें शत्रु समझने लग जाता है।

३४८१) चंचल चित्तवाले अज्ञानी और इन्द्रियों के वशीभूत पुरुष को धन ऐश्वर्य घेरे तो रहते हैं, परन्तु स्पर्श नहीं करते, प्राप्त नहीं होते अर्थात् वह उनका भोग नहीं कर पाता, जैसे सूखे तालाब के ऊपर हंस मंडराते तो रहते हैं, परन्तु उसमें उतरते नहीं।

३४८२) जो व्यक्ति बिना कारण ही कुपित होते हैं और बिना कारण के प्रसन्न होते हैं, यह असत्पुरुषों का लक्षण है। जैसे पारिप्लव चंचल मेघ कहीं बरस जाता है तो कहीं सूखा डाल देता है। इस प्रकार का चंचल मेघ जैसे व्यर्थ होता है, वैसे ही उक्त पुरुषों का कोप और प्रसन्नता दोनों ही व्यर्थ होते हैं।

३४८३) मनुष्य को चाहिए कि धन हो या न हो मित्रों का आदर-सत्कार अवश्य ही करे। मित्रों से विशेष प्रयोजन की आकांक्षा न रखता हुआ अथवा याचना न करता हुआ मित्रों की सार-शून्यता को नहीं समझता अर्थात् मित्रों को लाभदायक ही मानता है अथवा मित्रों से साहाय्य की चाहना न करता हुआ उनके सार-असार की परीक्षा नहीं कर सकता।

३४८४) जो पुरुष अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे के दु:ख में प्रसन्न नहीं होता और दान देने के बाद सन्ताप नहीं करता है, उसे ही उत्तम पुरुष की संज्ञा दी गयी है।

३४८५) जो पुरुष विभिन्न देशों के व्यवहार, भाषा और जाति के धर्मों को जानता है, वह बहुज्ञानी होता है और वह सब पर सर्वदा स्वामीभाव को प्राप्त होता है, सबको वश में कर लेता है। वह सब पर अपना प्रभाव रखने वाला होता है।

३४८६) जो पुरुष दम्भ, मोह, मत्सरता, पाप कर्म, राजद्वेष, दुष्टता, चुगली करना, समुदाय से वैर, मत्त, उन्मत्त और दुर्जनों के साथ विवाद को छोड़ देता है, वही श्रेष्ठ मनुष्य माना गया। जो राजा पापी अत्याचारी प्रजाशोषक हो, उससे द्वेष, उससे विरोध करना मनुष्य का धर्म है। ऐसे राजा का विरोध मनुष्य को अपनी पूरी शक्ति से करना चाहिए।

३४८७) जो व्यक्ति दान, मोह, यज्ञ, शुभ कर्म, प्रायश्चित, विविध लोक व्यवहार इन नित्य करने योग्य कार्यों को करता है, उसकी उन्नति देव स्वयं करते हैं और उसे उन्नति की ओर ले जाते हैं।

३४८८) जो बुद्धिमान पुरुष अपने बराबर के कुलों के साथ ही विवाह सम्बन्ध करता है, हीन कुलों से सम्बन्ध नहीं रखता, जो बराबर के व्यक्तियों के साथ ही मित्रता, लौकिक व्यवहार, बातचीत करता है और अपने गुणों से श्रेष्ठ व्यक्ति को ही नेता बनाता है, पुरोहित स्वीकार करता है, उसी पुरुष की नीतियां इस समाज में सफल होती हैं।

३४८९) जो व्यक्ति अपने आश्रित को बांटकर स्वयं परिमित भोजन, वस्त्र आदि का उपयोग करता है, बहुत कार्य कर थोड़ा सोता है और मांगने पर शत्रुओं को भी देता है, ऐसे श्रेष्ठ पुरुष की सदा उन्नति होती है।

३४९०) जिस पुरुष के चाहे हुए कर्म और विरुद्ध किए गए कर्म को दूसरे लोग कुछ भी नहीं जानते और गुप्त विचार अच्छी तरह के कार्य रूप में परिणत होने पर ही दूसरे जान पाते हैं, उस पुरुष का कोई भी कार्य अल्प मात्रा में भी नष्ट नहीं होता है। अर्थात् वह अपने कार्य को पूर्ण रूप से करने में सदा समर्थ होता है।

३४९१) जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल को ग्रहण करता है, पर मूल से उनका उच्छेद नहीं करता, उसी प्रकार प्रजा से कर ग्रहण

करें। जिस प्रकार अंगारकारक पेड़ों को समूल नाश करके कोयला बनता है, वैसे प्रजा का समूल उच्छेद कदापि न करें।

३४९२) इस कार्य को करने से मुझे क्या लाभ होगा, इस कार्य को न करने से मुझे क्या हानि होगी। इस प्रकार कर्मों का विचार न कर या तो कार्य छोड़ दें या पूरा करें। द्विविधा ठीक नहीं है।

३४९३) जिस स्वामी व राजा की प्रसन्नता निष्फल हो और क्रोध निरर्थक हो, ऐसे स्वामी को भृत्य प्रजा नहीं चाहते, जैसे नपुंसक पति को स्त्रियां नहीं चाहती हैं।

३४९४) बुद्धिमान मनुष्य साधारण उपायों से सिद्ध होने वाले बड़े फल-वाले कर्मों को शीघ्र आरम्भ करता है, उस प्रकार के कर्मों को वह कदापि छोड़ता नहीं है।

३४९५) जो राजा सम्पूर्ण प्रजा को प्रीतिमय चक्षु से पीते हुए समान दया दृष्टि से देखता है ऐसे चुपचाप बैठे हुए राजा को प्रजा भी अपना अनुराग दिखाती है।

३४९६) जैसे पत्थर में से सोने को ग्रहण करते हैं, उसी तरह पागल, प्रलाप करने वाले, बालक और (बकवासी) से भी केवल सारभूत अंश को ग्रहण करें।

३४९७) शिलाहारी खेत काट लेने पर खेत में बिखरी हुई अन्न की मञ्जरी को उठाने वाला, जैसे इधर-उधर बिखरी हुई शिलाओं अन्न मञ्जरियों को चुनता है वैसे ही धीर पुरुष अच्छे कहे गए वचनों, अच्छी उक्तियों, अच्छे कर्मों को जहां-तहां से इकट्ठा करता है।

३४९८) गायें अपने खाद्य पदार्थ का ज्ञान गन्ध से प्राप्त करती हैं, ब्राह्मण वेदपाठी वेदों से ज्ञान प्राप्त करते हैं, राजा गुप्तचरों से जानते हैं, अन्य साधारण जन तो केवल आंखों से ही देखते हैं।

३४९९) विषयों का कुसंग करने वाले कामी मनुष्य की दशा जलते हुए दीपक के समान है, जो अपने आधारभूत तेल को भी चूस लेता है, जिससे वह आलोकित है। सन्त जन हीरे के समान होते हैं, जिसका सदा ही निज स्वाभाविक प्रकाश होता है। अत: वे अपने ज्ञान-प्रकाश से जिज्ञासु जनों के हृदयों को प्रकाशित करते हैं।

३५००) जलते हुए दीपक की सुन्दर-लुभावनी लौ (शिखा) को देखकर, पतंगे जल-जलकर मर जाते हैं। इसी प्रकार विषय-वासना का प्रबल प्रवाह बढ़ जाने पर, पामर-कामी मनुष्य, दारुण कष्ट भोगते हुए भी उस विषय को नहीं त्यागते अर्थात् अपने जन्म-मरण का उन्हें तनिक भी ध्यान नहीं होता।

३५०१) मूर्खता सदा कष्टदायक ही होती है। इसी तरह जवानी से भी कभी सुख की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन दोनों से भी अधिक कष्टदायक होता है किसी दूसरे के घर में निवास करना और किसी पर आश्रित होना।

३५०२) संकट प्रत्येक मनुष्य पर आते हैं, परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति संकटों और आपत्तियों से डरता है। उसे तभी तक डरना चाहिए जब तक वह सिर पर आ ही नहीं पड़तीं। जब संकट और दु:ख आ ही जाएं तो व्यक्ति को अपनी पूरी शक्ति से उन्हें दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

३५०३) धन से धर्म की रक्षा की जाती है। विद्या को योग द्वारा बचाया जा सकता है। मधुरता के कारण राजा को बचाया जा सकता है और अच्छी स्त्रियां घर की रक्षक होती हैं।

३५०४) जो पिता अपनी संतान पर ऋण छोड़ जाता है, वह बच्चों का शत्रु होता है। बुरे आचरण वाली माता भी शत्रु होती है। सुन्दर पत्नी भी शत्रु होती है और मूर्ख पुत्र भी शत्रु होता है।

३५०५) मनुष्य को अत्यन्त सरल और सीधे-स्वभाव का भी नहीं होना चाहिए। इससे उसे सब लोग दुर्बल मानने लगते हैं और हर समय उसे कष्ट देने का प्रयत्न करते हैं। जंगल में सीधे पेड़ काट दिए जाते हैं जबकि टेढ़े-मेढ़े वृक्षों को कोई हाथ भी नहीं लगाता।

३५०६) अर्जित अथवा कमाए हुए धन का त्याग करना, उसका ठीक ढंग से व्यय करना, उससे लाभ उठाना ही उसकी रक्षा है बिल्कुल वैसे ही जैसे तालाब में भरे हुए जल को निकालते रहने से ही उस तालाब का पानी शुद्ध और पवित्र रहता है।

३५०७) शान्ति से बढ़कर कोई तप नहीं, संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं। तृष्णा अथवा चाह से बढ़कर कोई रोग नहीं, दयालुता से बढ़कर कोई धर्म नहीं।

३५०८) जिस दुष्ट का अंत:करण कामवासना आदि मलों से भरा हुआ है, ऐसा मनुष्य बिल्कुल वैसे ही सैकड़ों बार भी तीर्थ-स्नान करे

तो भी वह पवित्र नहीं हो सकता, जिस प्रकार शराब रखने का बर्तन, आग पर जलाने से भी शुद्ध नहीं होता।

३५०९) जो देवताओं और गुरु के धन को चुरा लेता है, दूसरों की स्त्रियों के साथ सहवास करता है और जो सब प्राणियों के साथ जीवन के अपने दिन गुजार लेता है, उसे चाण्डाल कहा जाता है।

३५१०) मैं धर्म से रहित अधर्मी व्यक्ति को जीवित रहने पर भी मरे हुए के समान समझता हूं। धर्म से युक्त मनुष्य मृत्यु के बाद भी जीवित रहता है।

३५११) वेग से चलती हुई नौका में बैठे व्यक्ति को जिस प्रकार तटवर्ती वृक्ष विपरीत दिशा में भागते प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार पुनर्जन्म की अवस्था का सम्बन्ध आत्मा के साथ मान लिया जाता है।

३५१२) जिसकी प्राप्ति के बाद फिर अन्य कोई वस्तु प्राप्त करने को नहीं रह जाती, जिसके आनन्द के बाद फिर किसी अन्य आनन्द की कामना नहीं रहती और जिसके ज्ञान के बाद फिर कुछ भी ज्ञातव्य नहीं रह जाता- उसी को तू ब्रह्म जान। जिसके दर्शन के बाद फिर और कुछ देखने को शेष नहीं रह जाता, जिसके साथ तद्रूप हो जाने पर मनुष्य फिर जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है उसी को तू ब्रह्म जान। ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता जिस अखण्डानन्दस्वरूप के असीम आनन्द का केवल एक कण मात्र प्राप्त कर आनन्दित रहते हैं उसी को तू ब्रह्म जान।

३५१३) बीमारों को अच्छा करो, मरे हुओं को जिलाओ, कोढ़ियों को शुद्ध करो, दुष्टात्माओं को निकालो। अपने बटुओं में न तो सोना और न चांदी और न तांबा रखना।

३५१४) मार्ग के लिए न झोली रखो, न दो कुरते, न जूते और न लाठी, क्योंकि मजदूर को उसका भोजन मिलना चाहिए। और घर में प्रवेश करते हुए उसका आशीष देना और यदि उस घर के लोग योग्य होंगे, तो तुम्हारा कल्याण उन तक पहुंचेगा, परन्तु यदि वे योग्य न हों तो तुम्हारा कल्याण तुम्हारे पास लौट आएगा। और जो कोई तुम्हें ग्रहण न करे और तुम्हारी बातें न सुने, उस घर या उस नगर से निकलते हुए अपने पांवों की धूल झाड़ डालो।

३५१५) अपने लिए इस पृथ्वी पर धन इकट्ठा न करो, जहां कीड़े और काई बिगाड़ते हैं और जहां चोर सेंध लगाते और चुराते हैं। परन्तु अपने लिए स्वर्ग में धन इकट्ठा करो, जहां न तो कीड़ा और न काई बिगाड़ते हैं और जहां चोर न सेंध लगाते और न चुराते हैं। क्योंकि जहां तेरा धन होगा, वहां तेरा मन भी लगा रहेगा।

३५१६) यदि तुम मनुष्य के अपराध क्षमा करोगे, तो तुम्हारा स्वर्गस्थ पिता भी तुम्हें क्षमा करेगा। और यदि तुम मनुष्य के अपराध क्षमा न करोगे, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारा अपराध क्षमा न करेगा।

३५१७) पहले तुम ईश्वर के राज्य और धर्म की खोज करो, और ये सब वस्तुएं तुम्हें मिला दी जाएंगी। मांगों, तो तुम्हें दिया जाएगा, ढूंढो, तो पाओगे, खटखटाओ, तो तुम्हारे लिए खोला जाएगा। क्योंकि जो कोई मांगता है, उसे मिलता है, और जो ढूंढता है, वह पाता है। और जो खटखटाता है, उसे लिए खोला जाएगा।

३५१८) जब कोई तुझे ब्याह में बुलाए, तो मुख्य जगह न बैठना। कहीं ऐसा न हो कि उसने तुझसे भी किसी बड़े को न्योता दिया हो। और जिसने तुझे और दोनों को न्यौता दिया है, आकर तुझसे कहे कि इसको जगह दे तब तुझे कहीं लज्जित होकर सबसे नीची जगह में न बैठना पड़े। पर जब तू बुलाया जाए, तो सबसे नीची जगह जाकर बैठ कि जब वह जिसने तुझे न्यौता दिया है आए तो तुझसे कहे कि हे मित्र आगे बढ़कर बैठ। तब तेरे साथ बैठनेवालों के सामने तेरी बड़ाई होगी। क्योंकि जो कोई अपने आपको बड़ा बनाएगा, वह छोटा किया जाएगा और जो कोई अपने आपको छोटा बनाएगा, वह बड़ा किया जाएगा।

३५१९) संसार को सत्य मानते हुए जो दुखों से निवृत्ति पाना चाहते हैं, वे अज्ञानी हैं। क्या अग्नि का स्पर्श करके उसके सहज धर्म दाहकता व ऊष्मा से बचा जा सकता है ?

३५२०) इस संसार में अपनी मूर्खता (अज्ञान) से बढ़कर अन्य कोई शूल नहीं है। जब तक इससे मुक्ति नहीं मिलती आत्यंतिक सुख अर्थात् परमानंद की अनुभूति नहीं हो सकती।

३५२१) किसमें राग रखते हो ? सौंदर्य में। यह तो मांसादि विकारों के अलग-अलग नाम-रूप हैं। आयु ढलने के बाद क्यों

आकर्षण समाप्त हो जाता है ? और धन में ? वह आज तक क्या कभी किसी का हुआ है, जो आज तुम्हारा बनेगा।

३५२२) संसार की वस्तुओं के त्याग का अभिमान यह स्पष्ट संकेत देता है कि त्यागने वाले के मन में उन वस्तुओं की सार्थकता बनी हुई है। निरर्थकता के इस बोध को ही हेय बुद्धि कहते हैं। क्या कभी किसी ने मल-त्याग का अभिमान किया है ?

३५२३) तुम पृथ्वी के नमक हो, परन्तु यदि नमक का ही स्वाद बिगड़ जाए, तो फिर वह किस वस्तु से नमकीन किया जा सकेगा? फिर वह किसी काम का नहीं, केवल इसके कि बाहर फेंका जाए और मनुष्यों के पैरों तले रौंदा जाए।

३५२४) मल-मूत्रादि का वेग रोककर, किसी कार्य के करने में तत्पर न हों। इन उक्त वेगों को बलपूर्वक न रोकें तथा दुर्जनादि से दूर रहकर कल्याणकारी कार्य और मित्रों का भक्तिपूर्वक सेवन करें।

३५२५) अकेले सुखों का उपभोग नहीं करना चाहिये। सर्वत्र विश्वास या शमा रखना उचित नहीं है अर्थात् जो उसके योग्य हों उन पर विश्वास या शंका रखना उचित है।

३५२६) किसी को अपनी शत्रुता के विषय में नहीं बताना चाहिये तथा स्वामी द्वारा किया हुआ अपमान तथा स्नेहाभाव यदि हो तो उसे भी किसी को नहीं बताना चाहिये।

३५२७) दूसरे को प्रसन्न रखने में निपुण व्यक्ति को चाहिये कि वह लोगों के भावों को समझकर तदनुसार जो जैसे प्रसन्न हो उसके साथ वैसा व्यवहार करना चाहिए।

३५२८) इन शब्दादि विषयों में से उत्तम सुन्दरियों का स्पर्श सत्-असत् को विचारक मुनि के भी मन को हर लेता है। अत: असावधानी न रखते हुये यथोचित रीति से उक्त विषयों का सेवन करना चाहिये क्योंकि अधिक सेवन से विनाश होता है। माता, बहन या लड़की के साथ भी अधिकतर एकान्त स्थान में नहीं रहना चाहिये।

३५२९) अन्य पुरुषों के साथ अधिक सहवास रखना या सामने होकर भी बातचीत करना, क्षण भर के लिये भी स्वतन्त्रता देना या दूसरे घर में निवास करने देना ये सब स्त्रियों के लिये दोष हैं-इनसे दूर रखना उचित है।

३५३०) पति, पिता, राजा, पुत्र, ससुर व बान्धव इन सबको गृहकृत्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये थोड़ा भी समय स्त्रियों को नहीं देना उचित है।

३५३१) वस्त्र, अन्न, आभूषण, प्रेम तथा मृदु वचनों से यथाशक्ति व्यवहार करते हुए अपने अत्यन्त समीप रखकर स्त्री तथा पुत्र की रक्षा करे।

३५३२) नाक को अंगुली से नहीं कुरेदना चाहिये। अकस्मात् पृथ्वी पर रेखा आदि नहीं खींचना चाहिये अथवा खोदना नहीं चाहिये। अपने सिर को दोनों हाथों से एक साथ नहीं खुजलाना चाहिये। अङ्गों को टेढ़ा-मेढ़ा करके चेष्टा नहीं करे, कठिन आसन पर देर तक एक आसन से नहीं बैठना चाहिये। देह, वाणी तथा मन के व्यापार को थकान से पूर्व ही बन्द कर देना चाहिये अर्थात् थकावट जब तक न हो तभी तक कार्य करना चाहिये।

३५३३) ऊपर जानु करके देर तक नहीं बैठना चाहिये। रात्रि में पेड़ के तले नहीं रहना चाहिये एवं किसी देवता के चबूतरे या वृक्ष, चौराहा तथा देवमन्दिर में रात्रि निवास नहीं करना चाहिये और जङ्गल या गृह और श्मशान में दिन में भी नहीं रहना चाहिये, रात्रि में तो रहना ही नहीं चाहिये।

३५३४) किसी भी प्रकार से देर तक सूर्य की तरफ नहीं देखना चाहिये और सिर से बोझा नहीं उठाना चाहिये। निरन्तर सूक्ष्म, अत्यन्त चमक से युक्त, अपवित्र या अप्रिय वस्तुओं को देर तक नहीं देखना चाहिये।

३५३५) बुद्धिमान के प्रत्येक व्यवहार के लिये लोक (जनमानस) ही आचार्य है। अत: विवेचना पूर्ण कार्यकर्त्ता के लिये यही उचित है कि वह लौकिक कार्यों में लोक का ही अनुसरण करे।

३५३६) राजा, देश, कुल जाति और सज्जन इनके जो भी धर्म हों उनकी निन्दा न करें। सामर्थ्य रहते हुए भी लौकिक आचारों का मन से भी उल्लंघन न करें।

३५३७) किसी से जो अनुचित रूप से किया या कहा गया हो उसे बलपूर्वक या मिथ्या कारण दिखाकर उचित नहीं सिद्ध करना चाहिये। संसार में किसी के सामने उसके दुर्गुणों को कहने वाले विरले ही लोग होते हैं। इसलिये लोक तथा शास्त्र से त्याज्य विषयों

को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति को उन्हें छोड़ देना चाहिये। अनीति नीति के समान हैं- इसकी मन से कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

३५३८) यह दूसरा व्यक्ति तो हजारों अपराधों से भरा हुआ है फिर यदि मेरे में एक दोष है तो उससे क्या बिगड़ सकता है- ऐसा समझकर थोड़े से भी पाप का चिन्तन नहीं करना चाहिये क्योंकि जैसे बूंद-बूंद से घड़ा भर जाता है वैसे थोड़े-थोड़े पाप चिन्तन से व्यक्ति भी पाप से भर जाता है।

३५३९) इस समय प्रतिदिन किस ढंग से मेरे दिन या रात्रि बीत रहे हैं- इस तरह से जो नित्य अपने भले या बुरे कर्मों का स्मरण रखता है वह बुरे का त्याग एवं अच्छे को ग्रहण करने से कभी दु:खी नहीं होता है।

३५४०) अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र से उन्मत्त होकर मारने के लिये उद्यत, धन लूटनेवाला, खेत तथा स्त्री को छीनने वाला- इन छह व्यक्तियों को आततायी समझना चाहिये।

३५४१) स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु, धन, विद्याभ्यास, सज्जन पुरुषों की सेवा- इन सबके विषय में क्षणभर भी उपेक्षा नहीं रखनी चाहिये। सदा इनका ध्यान रखना चाहिये।

३५४२) जिस राज्य में नपुंसक, स्त्री, बालक, क्रोधी, मूर्ख-साहसी इनमें से कोई भी अधिकारी वर्ग का हो, वहां पर एक दिन भी नहीं ठहरना चाहिये।

३५४३) जहां पर राजा विवेकी न हो और राजसभा के सभासद् गण पक्षपात रखनेवाले हों, पण्डित लोग सदाचारहीन हों, गवाही देने वाले लोग झूठे हों और जहां दुष्टों, स्त्रियों एवं नीचजनों की प्रबलता हो वहां पर रहने से धन, सम्मान, घर और जीवन इनकी रक्षा होगी इसकी इच्छा भी न करे अर्थात् कल्याण नहीं है। अत: वहां रहना अनुचित है।

३५४४) यदि बचपन में माता पालन न करे, पिता शिक्षा न दिलाये और राजा प्रजा का धन हरण करे तो इसमें दु:ख करना वृथा है अर्थात् ऐसी स्थिति में बालक या प्रजा का अपना कोई दोष नहीं है। और यदि किसी ने विश्वस्त या हितैषी योग्य व्यक्ति की बात को अहंकारवश टालकर कोई कार्य करता है और उसका विपरीत फल पाता है तो उस पर उसका खेद करना वृथा है।

३५४५) तर्क को पार कर डालना चाहिए या वह स्वयं अपनी सीमा पार कर डाले और दिव्यता का मार्ग बन जाये। आदमी की वासना पहले है और तर्क केवल वासना को पुष्ट करने का साधन है। तर्क बड़ा कच्चा सवार है। कषायों के घोड़े उसे सरलता से पटक देते हैं।

३५४६) न दूसरे धर्म को स्वीकारें ना उसका विरोध करें और न ही नीचकर्म या दुर्गुणों वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठें।

३५४७) नित्य देर तक बातें सुननी चाहियें अर्थात् पूरी बातें सुननी चाहिये एवं शीघ्र कहने वालों की बातें समझनी चाहिये। समझकर किसी कार्य को करना चाहिये और कभी मनमानी नहीं करनी चाहिये।

३५४८) किसी वस्तु के क्रय-विक्रय में अत्यन्त आग्रह एवं हर किसी के सामने अपनी दीनता नहीं प्रकट करनी चाहिये क्योंकि इनसे क्रय से लाभ में हानि लथा लघुता होती है। बिना प्रयोजन एवं बिना जान पहचान के स्वयं किसी दूसरे के गृह के अन्दर नहीं घुसना चाहिये।

३५४९) बिना पूछे किसी से अपने घर के कार्य या बातों को नहीं बताना चाहिये। बहुत अर्थों से भरा हुआ एवं थोड़े अक्षरों (शब्दों) से युक्त कार्य को सिद्ध करने वाला सुन्दर वार्त्तालाप करना चाहिये।

३५५०) बिना अनुभव किये हुये किसी विषय में अपना विचार सदा प्रकट नहीं करना चाहिये और दूसरे के अभिप्राय को भलीभांति समझकर उससे अज्ञात उत्तर देना चाहिये।

३५५१) स्त्री-पुरुष या पिता-पुत्र के आपसी झगड़े में किसी की तरफ से साक्षी नहीं देनी चाहिये। अपने कार्य तथा विचार को गुप्त रखना चाहिये अर्थात् बिना कार्य पूर्ण हुये प्रकाशित नहीं करना चाहिये। शरण में आये हुये विपत्ति-ग्रस्त का त्याग नहीं करना चाहिये।

३५५२) यथाशक्ति प्रत्येक कार्य करने की इच्छा करनी चाहिये और कार्य करते हुये आपत्ति पड़ने पर विचलित नहीं होना चाहिये। किसी से हृदय में चुभने वाली बातें नहीं करनी चाहिये एवं किसी के सम्बन्ध में या किसी से झूठी बातें नहीं करनी चाहिये। अश्लील बातें नहीं करनी चाहियें एवं कोई अनर्थक वचन नहीं बोलना चाहिये।

३५५३) जो कार्य लोक में निन्दित होता है वह यदि धर्मयुक्त भी हो तो नरक में ले जाने वाला होता है, अत: उसे नहीं करना चाहिये। अपने कारण से किसी की बात को न काटें। खूब विचार करके उत्तर देना चाहिये और सहसा कभी नहीं बोलना चाहिये।

३५५४) उत्कर्ष (सुखावस्था) या अपकर्ष (दु:खावस्था) नित्य नहीं बना रहता है। प्राक्तन कर्मवश मनुष्य धनवान या निर्धन सदा होता है। अत: एक सी अवस्था सदा न रहने से सभी प्राणियों में मैत्रीभाव (सुख-से सुखी व दु:ख से दु:खी होना) रखना न छोड़े ऐसा करने से सभी लोग सन्तुष्ट रहकर दु:ख नहीं पहुँचायेंगे।

३५५५) सदा दूर तक सोचने वाला तथा समयानुसार तत्काल कर्त्तव्य स्थिर निभानेवाला और सहसा कार्य करने वाला, आलसी तथा देरी से धीरे-धीरे कार्य समाप्त करने वाला नहीं होना चाहिये।

३५५६) जो व्यक्ति किसी कार्य के अच्छे-बुरे फल या निष्फलता को विचार कर तदनुसार कार्य करने की चेष्टा करता है और जो कार्य करने के प्रथम शीघ्र ही दूर तक उसके परिणाम को जानने वाला होता है वह चिरकाल तक सुख भोगता है। अत: दीर्घदर्शी होना उचित है।

३५५७) जो आलसी होता है वह समय उपस्थित होने पर भी करने योग्य कार्य के करने में प्रयत्नशील नहीं होता है, उसके कार्य की सिद्धि कभी भी नहीं होती है और वह वंश-सहित या साथी सहित- नष्ट हो जाता है।

३५५८) जो साहसी व्यक्ति क्रिया के फल का बिना विचार किये हुये सहसा कार्य करने का प्रयत्न करता है वह क्रिया या उसके फल के कारण से केवल दु:खभागी ही होता है।

३५५९) जो मन्दबुद्धि यथार्थ रूप से मित्र के मन के अच्छे-बुरे भाव को समझे बिना उससे मित्रता करता है तो उसका वह मैत्री रूपी अर्थ नष्ट हो जाता है।

३५६०) किसी के मानसिक भाव को वस्तुत: नहीं जाना जा सकता है। इससे उसकी (अच्छे मित्र की) प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि मनुष्यों के लिये मित्र का पाना उत्तम बात है।

३५६१) सर्वदा विश्वासपात्र किसी भी व्यक्ति का यहां तक पुत्र, भाई, स्त्री, अमात्य या अधिकारी पुरुष का भी अत्यन्त विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि सभी लोगों को धन, स्त्री तथा राज्य का लोभ अधिक रूप से होता है। अत: विश्वस्त रूप से प्रामाणिक, सुपरिचित एवं हितैषी लोगों का सर्वत्र विश्वास करना चाहिये।

३५६२) अपने समान विश्वास करके भी छिपकर विश्वासपात्र के कार्यों की परीक्षा करें और परीक्षा करने के बाद विश्वासपात्र निकलने पर उसके वाक्यों में तर्क से अनर्थ होने से विरुद्ध जैसा विचार न करे अर्थात् उसके वचनों को नि:सन्देह सर्वतोभावने मान ले।

३५६३) विद्या के मद से उन्मत्त पुरुष अपने तर्कों से परम हितैषी जनों के उपदेशों को कुछ भी नहीं समझता है और अपने अनर्थकारी विचार को भी कल्याणकारी समझता है जिससे वह अच्छे पुरुषों से स्वीकृत मार्ग का हठात् परित्याग कर देता है।

३५६४) बल के मद से मत्त पुरुष एकाएक बिना सोचे-समझे युद्ध करने में लगाता है और मन के विरुद्ध चलने पर अपने बल से सबको कष्ट पहुँचाता है।

३५६५) अभिमान से मतवाला पुरुष सम्पूर्ण जगत् के लोगों को तृण के समान तुच्छ समझता है और स्वयं अयोग्य होकर भी सबसे अधिक श्रेष्ठ आसन पाने की इच्छा करता है।

३५६६) गर्वयुक्त लोगों के लिये ही पूर्वोक्त विद्या, शौर्य आदि ये सब मद उन्मत्त बनाने वाले होते हैं किन्तु सज्जनों के लिये ये विनय लाने वाले होते हैं।

३५६७) विद्या का फल ज्ञान और विनय है। लक्ष्मी (धन) का फल यज्ञ तथा दान करना है। बल का फल सज्जनों की रक्षा करना है। शूरता का फल शत्रुओं का सिर झुकाना तथा उनको कर देने वाली प्रजा बनाना है। अभिजन (कुलीनता) का फल यह है कि मन को शान्त रखना, इन्द्रियों का दमन करना एवं सरलता रखना। मान का फल तो यह है कि सबको अपने सदृश सम्मानीय समझना।

३५६८) अपने कार्य को सिद्ध करने वाला पुरुष अपने गौरव को त्यागकर अत्यन्त प्रयत्न के साथ सुन्दर विद्या, मन्त्र, औषध और स्त्रीरत्न (उत्तम गुणयुक्त सुन्दर स्त्री) यदि नीच कुल वाले के पास हो तो भी ग्रहण करे। बिना दिये तुच्छ भी दूसरे की वस्तु को न ग्रहण करे और दूसरे के छोटे भी पाप को किसी से न कहे। किसी स्त्री को दूषित न करें या दोष न लगायें।

३५६९) झूठी गवाही न दें और दी हुई गवाही से मुकरें नहीं। जब बहुत बड़ा कार्य सिद्ध करना हो या प्राण संकट उपस्थित हो तभी झूठ बोले अन्यथा नहीं।

३५७०) परस्पर बात-चीत करते हुये दो व्यक्तियों के बीच में से न निकलें और मित्र, भाई, बन्धु (स्वजन), इन सबों के साथ सदा अपने समान व्यवहार करना चाहिये।

३५७१) सदा स्त्री-संभोग, भोजन तथा मल-मूत्रादि का त्याग एकान्त में करना चाहिये। सदा उद्योग करने में निरत रहना और सुखपूर्वक व्यायाम करना चाहिये।

३५७२) अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिये एवं स्वस्थ रहने पर ही आमन्त्रित प्रीतिभोज में भोजन करना स्वीकार करना चाहिये। तिक्त, कटु, अम्ल, लवण, कषाय (कसैला), मधुर इन षट् रसों से युक्त एवं प्रधान रूप से मिठाईयुक्त जो भोजन होता है उसे सर्वोत्तम समझना चाहिये।

३५७३) अपनी स्त्री के साथ विहार करना उचित है, वेश्याओं के साथ कदापि नहीं उचित है। लोगों के साथ प्रणत होकर कुश्ती लड़ना उत्तम व्यायाम है, अत: इसे करना चाहिये।

३५७४) रात्रि में प्रथम तथा चतुर्थ प्रहरों को छोड़कर मध्य के द्वितीय तथा तृतीय प्रहरों में सोना उत्तम होता है। दीन, अन्धान, पंगु तथा बहरा ऐसे लोगों का कभी उपहास नहीं करना चाहिये।

३५७५) बुरे कार्य में नियुक्त करने वाले गुरु को भी समझाये कि आपने यह अनुचित आज्ञा दी है अत: मैं नहीं करूँगा और सत्कार्य का उपदेश करने वाले छोटे लोगों के भी वचनों का कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

३५७६) मद पैदा करने वाले द्रव्यों से अधिक मतवाला नहीं होना चाहिये और नालायक सन्तान पर यह मेरा पुत्र है ऐसी ममता नहीं करना चाहिये।

३५७७) जिसने कुटुम्ब का भरण-पोषण नहीं किया और शत्रुओं को नष्ट नहीं किया एवं प्राप्त वस्तु की भलीभांति रक्षा नहीं की, अर्थात् तो उसका जीवन व्यर्थ है।

३५७८) जो स्त्रियों के वशीभूत रहने वाला, ऋण लेने वाला, अत्यन्त दरिद्र, वाचक, गुणहीन और धन से रहित है, ऐसे लोग जीवित होते हुए भी मरे जैसे हैं।

३५७९) आयु, धन, गृह के दोष, मन्त्र, मैथुन, औषध, दान, मान, अपमान इन नौ विषयों को अत्यत्न गुप्त रखना चाहिये अर्थात् किसी से नहीं कहना चाहिये।

३५८०) अनेक शास्त्रों के तत्त्वों का चिन्तन करने से अहंकार तथा धर्मान्धता से युक्त नहीं होना चाहिये। एक शास्त्र का केवल अध्ययन करके किसी कार्य (तत्त्व) का निर्णय नहीं करना चाहिये क्योंकि बहुत शास्त्रों को जिसने अच्छी तरह से देखा है वही महान लौकिक व्यवहार का ज्ञाता हो सकता है। अत: बुद्धिमान मनुष्य आलस्यरहित होकर बहुत से शास्त्रों का नित्य अभ्यास करे।

३५८१) जैसे वेश्या किसी मनुष्य के धन को ग्रहण करके भी उसके अधीन नहीं हो जाती है और स्वयं अधीन न होते हुये भी उक्त मनुष्य को अपने वश में करने के लिये समर्थ होती है और स्वयं किसी के वश में नहीं होती है, वैसे ही जगत् के लोगों को अपने अधीन बनायें, पर स्वयं किसी के अधीन न हो।

३५८२) विद्वानों के साथ संगति करने से श्रुति, स्मृति तथा पुराणों के अर्थों का विशेष ज्ञान तथा सत्-असत् का विचार करने वाली श्रेष्ठ बुद्धि होती है।

३५८३) भोजन करते हुये रास्ता चलना, हंसते हुये बात करना, नष्ट हुई वस्तु या बीती हुई बात या मरे हुये व्यक्ति के विषय में शोक करना, अपने किये हुये कार्य की स्वयं प्रशंसा रूप में वर्णन इन सबको नहीं करना चाहिये।

३५८४) अपने ऊपर शंका रखने वालों तथा दुर्जनों के समीप में रहना एवं नीचों की सेवा त्याग देनी चाहिये। सर्वदा छिपकर किसी की बातें नहीं सुननी चाहिये।

३५८५) यदि श्रेष्ठ लोगों की अपने साथ कार्य करने की अनुमति न हो तो उनके साथ उस कार्य की करने की इच्छा न करे, क्योंकि देवताओं के साथ बिना अनुमति के अमृतपान करने से राहु का सिर काटा गया।

३५८६) सदा प्रेम, समीप में रहना, स्तुति, नमस्कार, सेवा, चतुरता, चौंसठ कलाओं, कथा कहना, ज्ञानोपदेश, आदर, सरलता,

शूरता, दान, विद्या, सामने आने पर अपने आसन से उठना या आगे जाकर ले आना, आनन्द तथा मुस्कुराहट के साथ वार्त्तालाप, उपहार, सुन्दर आशय-प्रदर्शन, इन सबको करने से जगत् को अपने वशीभूत कर सकते हैं। किन्तु उपर्युक्त कहे हुए सभी वश करने के उपाय दुर्जनों के विषय में प्रयोग करने पर निष्फल सिद्ध होते हैं, अत:बुद्धिमानों को उनकी (दुर्जनों की) संगति छोड़ देना चाहिये, यदि सामर्थ्य हो तो उन्हें दण्ड देकर अथवा बनावटी प्रेमादि रूप उपर्युक्त उपायों से वशीभूत करना चाहिये।

३५८७) सदा मृगया (शिकार) और अच (जुआ) खेलना, स्त्री-संभोग करना, मद्यादि पीना, ये चार मनुष्यों के लिये व्यसन कहे हुये हैं, इनका सदैव न करें, कभी-कभी कर लेना उचित होता है अन्यथा नहीं।

३५८८) किसी के साथ कपटपूर्ण व्यवहार या आजीविका की हानि नहीं करनी चाहिये एवं कभी किसी का अहित भी मन से नहीं सोचना चाहिये।

३५८९) जिस कार्य के करने से इह लोक और परलोक दोनों में स्थिर सुख मिले अर्थात् मरने पर स्वर्ग और जीवित रहने पर स्थिर तथा सुन्दर कीर्ति का लाभ हो उसी को करना चाहिये।

३५९०) जो चिन्ता से परेशान, आधि (मानसिक पीड़ा) तथा व्याधी से पीड़ित जार (व्यभिचारी), चोर, बलवान शत्रुवाला, विषय-लोलुप, धन-लोलुप होता है और बुरे साथियों वाला, विरक्त मन्त्री, मित्र तथा प्रजा गणों से युक्त कुत्सित विचार का राजा-ये सब रात्रि में भी सदा जागते रहते हैं। अत: मनुष्यों को उचित है कि विचार कर ऐसा कार्य करे जिससे बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रात्रि में सो सके।

३५९१) गुरुजनों के तथा राजा के आगे उनसे ऊँचे आसन पर या पैर के ऊपर पैर रखकर नहीं बैठना चाहिये और उनके वाक्यों का तर्क द्वारा खण्डन नहीं करना चाहिये।

३५९२) जो नीच मनुष्य होता है वह जो कर्त्तव्य करने योग्य है उसको नहीं जानता है, किन्तु केवल किये हुये को ही जानता है। जो उत्तम मनुष्य होता है वह कर्त्तव्य और कृत दोनों को नहीं कहता है।

३५९३) अपनी प्रिया स्त्री के कहने मात्र से ही माता, पुत्रवधू, भाई की पत्नी या सौत के अपराध को बिना स्वयं अनुभव किये सत्य नहीं समझना चाहिये।

३५९४) सोलह वर्ष की अवस्था के बाद पुत्र और बाहर वर्ष की अवस्था के बाद कन्या को नहीं मारना चाहिये और पुत्रवधू आदि को कटु वचनों से क्लेश नहीं पहुँचाना चाहिये।

३५९५) स्त्रियों में झूठ, साहस (बिना विचारे कार्य करना), मूर्खता और काम की अधिकता होती है, अत: बिना काम की अधिकता के स्त्री के साथ एक शय्या पर नहीं शयन करना चाहिये।

३५९६) धन, कुल, शील, रूप, विद्या, बल और आयु इन सबको देखकर जिस वर में ये सब उत्तम रीति से हों उसी को कन्या देनी चाहिये, क्योंकि यदि ये सब उत्तम होते हैं तभी उससे अपनी मैत्री या स्बन्ध करना उचित होता है।

३५९७) वर अवस्था (विवाह योग्य उम्र), विद्या तथा रूप से युक्त हो, किन्तु धन उत्तम न हो तो भी उसे बुलाकर कन्या दे देनी चाहिये। पर केवल रूप, अवस्था या धन देखकर कन्या नहीं देनी चाहिये।

३५९८) सर्वप्रथम वर के कुल, उसके बाद विद्या, उसके बाद अवस्था, उसके बाद शील, धन, रूप तथा देश की क्रमश: परीक्षा करने के पश्चात् उसके साथ कन्या का विवाह करना चाहिये।

३५९९) भार्या बनाने के लिये अपने से भिन्न ऋषि और गोत्र वाली, भाई से संयुक्त, अच्छे कुल में उत्पन्न हुई, योनि रोग से रहित अथवा निर्दोष माता से उत्पन्न कन्या का वरण करना वर के लिये उचित है।

३६००) विद्या तथा धन चाहने वाले को नित्य क्रम से क्षण तथा कण का त्याग नहीं करना चाहिये। क्षण-क्षण भर प्रतिदिन अभ्यास करके विद्या का एवं कण-कण भर कर संग्रह कर धन का अर्जन करना चाहिये।

३६०१) उत्तम भार्या, पुत्र या मित्र के लिये एवं दान के लिये तो नित्य धनार्जन करना हितकर है, अत: बिना इस सब भार्यादियों के धन और भृत्यादिजनों से क्या प्रयोजन है अर्थात् धनादि व्यर्थ है।

३६०२) भविष्यकाल में रक्षा करने में समर्थ धन की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। सौ वर्ष तक मैं तो जीऊँगा एवं इस धन से

आनन्द करूँगा-इस बुद्धि से धन और विद्या आदि का पच्चीस वर्ष पर्यन्त या उसका आधा साढ़े बारह वर्ष या उसका आधा सवा छह वर्ष पर्यन्त सदा संग्रह करना चाहिये।

३६०३) विद्यारूपी धन अत्यन्त श्रेष्ठ है, इससे अन्य धन विद्यामूलक है अर्थात् विद्या से ही अन्य धन का उपार्जन होता है। विद्या धन देने से नित्य बढ़ता है, अन्य धन घटता है। विद्या रूपी धन से भार नहीं होता है जबकि अन्य धन में भार होता है, इसे कोई उठाकर नहीं ले जा सकता है जबकि अन्य धन को उठाकर ले जा सकता है।

३६०४) जब तक मनुष्य धनयुक्त रहता है तब तक सब लोग उसकी सेवा करते हैं और जब वही धन से रहित हो जाता है तो भले ही गुणवान हो किन्तु उसे स्त्री-पुत्रादिक भी छोड़ देते हैं। अत: संसार में व्यवहार चलाने के लिये धन ही सारभूत कहा गया है और इसी से धन-प्राप्ति के लिये मनुष्य प्राणों को संशय में डालने वाले कठिन भी कार्यों के द्वारा प्रयत्नशील रहे।

३६०५) सुन्दर विद्या उपार्जन या सुन्दर सेवा, शूरता, खेती करके या ब्याज पर रुपया ऋण देकर दुकानदारी या संगीत आदि कला के द्वारा, जिस किसी वृत्ति का आश्रय लेकर मनुष्य धनवान बन सके और उसी के अनुकूल कार्य करे क्योंकि धनियों के द्वार पर गुणी लोग नौकर की तरह पड़े रहते हैं।

३६०६) धनवान पुरुषों के दोष भी गुण के समान हो जाते हैं, और निर्धनों के गुण भी दोष-तुल्य हो जाते हैं। इससे निर्धन की सभी लोग निन्दा ही किया करते हैं।

३६०७) धन के फेर में पड़कर कितने एक चिन्ता करते-करते पागल होजाते हैं, कितने एक शत्रुओं की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं और कितने एक-दूसरों की या शत्रुओं की नौकरी भी कर लेते हैं।

३६०८) व्यवसाय करने वालों के लिये लेख से बढ़कर दूसरा कोई स्मरणसूचक चिन्ह नहीं है, इसलिये बुद्धिमान को सदा बिना लेख के व्यापार हेतु लेन-देन नहीं करना चाहिये।

३६०९) लोभ से रहित धनी पुरुष या विश्वासपात्र या क्षमाशील (श्रेष्ठ पुरुष) अथवा राजा इनमें किसी एक के पास में अच्छी तरह से संचित धन को रखना चाहिये अथवा रखने के लिये एकत्र धन को लिख लेने के बाद चाहे जिसके पास रखना चाहिये।

३६१०) मित्रता के नाते मांगने पर मित्र के लिये बिना ब्याज पर धन सदा देना चाहिये और यदि उस मित्र के ऊपर वैसा बिना ब्याज धन शेष हो तो भी पुन: देना हानिकारक नहीं है।

३६११) ऋण लेने वाले को ब्याज देने में समर्थ देखकर सदा बन्धक था किसी के जमानत पर और किसी की गवाही के साथ लिखा-पढ़ी करके उचित मात्रा में सुखपूर्व लौटाने लायक धन देना चाहिये। ब्याज के लाभ से उपर्युक्त रीति से भिन्न अवस्था में धन नहीं देना चाहिये नहीं तो मूल धन नष्ट हो जाने की संभावना रहती है।

३६१२) हृदय के अन्दर उदारता रखकर और ऊपर से कृपणता रखकर समय आने पर उचित व्यय मनुष्य को करना चाहिये। इससे अन्यथा नहीं करना चाहिये।

३६१३) भार्या, पुत्र और मित्र ये सब यदि उत्तम हों तो इनकी रक्षा धन से करनी चाहिये और इन सबसे शरीर की रक्षा करनी चाहिये क्योंकि शरीर पुन: नहीं मिल सकता है और भार्या-पुत्रादि तो दुबारा भी मिल सकते हैं। यदि मनुष्य जीवित रहता है तो सैकड़ों कल्याण देखता है।

३६१४) अपना कल्याण का चाहने वाला पिता स्त्री-युक्त एवं कार्य करने में समर्थ हुये पुत्रों को शीघ्र आपस में विभक्त कर दे जिससे आपस में भविष्य में कलह न कर सकें और इसी प्रकार से सहोदर भाई लोग भी विवाह हो जाने एवं कार्य करने में समर्थ हो जाने पर आपस में विभाग कर लें अन्यथा परस्पर लड़कर निश्चय मिट जाते हैं।

३६१५) किसी पुरुष के पास दो स्त्रियों को साथ-साथ एवं किसी मादा पशु के पास दो नर पशुओं को एकत्र नहीं रखना चाहिये क्योंकि मनुष्य जाति में स्त्री एक से अधिक और पशु जाति में मादा एक से अधिक कभी नहीं रह सकते हैं।

३६१६) ब्याज पर या बिना ब्याज का ऋण देने वाला धन हो, वह जिस प्रकार से दोनों मित्रों को परस्पर क्लेश न पहुंचे तथा बिना साक्षी ऋणपत्र लिखें न दें।

३६१७) जो मनुष्य अपने, पिता तथा माता इन तीनों के गुणों से प्रख्यात होता है वह उत्तमोत्तम कहलाता है, जो ८केवल अपने ही

गुणों से प्रख्यात होता है वह उत्तम, पिता के गुणों से मध्यम, माता के गुणों से प्रख्यात नीच कहलाता है और भाई के गुणों से प्रख्यात पुरुष अधम कहलाता है। जो कन्या, स्त्री या बहन के भाग्य से उन्हीं के सहारे जीवन व्यतीत करता है वह अधमतम कहलाता है।

३६१८) विपुल धन से सम्पन्न होते हुए भी जो पालन करने के योग्य हैं उन्हीं का पालन करना चाहिये। बुद्धिमान को बिना कुछ दिये हुये कोई भी दिन व्यतीत नहीं करना चाहिये।

३६१९) दान तथा सरलता को छोड़कर संसार में अन्य कोई वशीभूत करने का उपाय नहीं है। अमृत दान करने से क्षीण हुआ किन्तु पुन: वृद्धि की इच्छा रखनेवाला शुक्लपक्ष की द्वितीया का चन्द्र वक्र होता हुआ भी शुभ होता है अर्थात् उससे पुन: अमृत-दान मिलने की संभावना रहती है।

३६२०) विचार करके किसी के साथ स्नेह या द्वेष करना चाहिये और करके पुन: उससे अन्यथा नहीं करना चाहिये। अत: स्नेही के साथ अपकार एवं द्वेषी के साथ उपकार नहीं करना चाहिये, क्योंकि ये दोनों अनर्थ पैदा करते हैं।

३६२१) अत्यन्त क्रूरता (निष्ठुरता), अत्यन्त शठता, अत्यन्त मृदुता, अत्यन्त बातचीत, अत्यन्त कार्यों में लवलीनता, अत्यन्त आग्रह (हठ) इन सबों को नहीं करना चाहिये।

३६२२) किसी विषय में अति करना नाश का कारण होता है, अत: अति को छोड़ देना चाहिये, अत्यन्त क्रूरता करने से लोग विरक्त हो जाते हैं और अत्यन्त कृपणता (कंजूसी) से अत्यन्त निन्दा करते हैं। अत्यन्त मृदुता से लोग उसे नहीं गिनते हैं अर्थात् उसे कुछ नहीं समझते हैं, अत्यन्त बोलने से अपमान करते हैं, अत्यन्त दान देने से दरिद्रता होती है, अत्यन्त लोभ करने से तिरस्कार होता है।

३६२३) अत्यन्त आग्रह करने से मनुष्य की मूर्खता प्रकट होती है, आचार-विचार करने से अथवा दुष्ट आचरण करने से धर्म की हानि एवं आचार के विरुद्ध आचरण करने से भी मूर्खता समझी जाती है।

३६२४) निज तरुणी स्त्री, धन या पुस्तक को किसी दूसरे के अधीन नहीं कर देना चाहिये, यदि कर दिया जाय तो देवतावश जब उनकी पुन: प्राप्ति होती है तो तरुणी स्त्री संभोग के द्वारा भ्रष्ट की हुई, धन नष्ट किया हुआ एवं पुस्तक फटी या मैली की हुई होती है।

३६२५) जिस वचन से मित्र लज्जित हो जाय या उसके मन में अन्तर आ जाए या दु:खी चित्त हो जाय, वैसे वचनों को मजाक में भी बुद्धिमान व्यक्ति को लेशमात्र भी नहीं कहना चाहिये।

३६२६) जिस व्यक्ति के सामने अच्छा या बुरा कहना दोनों ही यदि बराबर या निरर्थक हों तो उसे समक्ष बुद्धिमान व्यक्ति व्यर्थ बात न करे क्योंकि उसका बात करना बहरे के सामने गाने के समान है।

३६२७) जब तक शत्रु का बल अपने से अधिक रहे तब तक उसे कन्धे पर रखे अर्थात् उसका आदर करे और जब समझ ले कि वह निर्बल हो गया तब उसे घड़े के समान पत्थर पर पटक कर नष्ट कर दे।

३६२८) चुगुलखोरी, अत्यन्त क्रोध, चोरी, मत्सरता, अतिलोभ, असत्य भाषण, कार्य नष्ट करना, अत्यन्त आलस्य आदि सब दोष हैं, यदि ये गुणवानों को भी हों तो उनके सम्पूर्ण गुणों को ढांप लेते हैं अर्थात् इन दोषों से वे निन्दा के पात्र बन जाते हैं।

३६२९) धनवानों को पुत्र न होना, दरिद्रों को भूख, स्त्रियों को नपुंसक पति मिलना, प्रिय वस्तुओं का अलग हो जाना- ये सब बातें सुख के लिये नहीं होती हैं अर्थात् दु:खप्रद होती हैं।

३६३०) मूर्ख पुत्र, मूर्ख कन्या, अत्यन्त क्रोध करने वाली स्त्री, दरिद्रता, नीच जातिवालों अथवा नीच पुरुषों की सेवा तथा नित्य ऋण लेना ये छह बातें सुखकारक नहीं होती हैं अर्थात् इनसे नित्य मनुष्य दु:खी रहता है।

३६३१) जो पुत्र माता-पिता की आज्ञा का पालन करता है उनकी सेवा करने में आलस्य नहीं करता है बल्कि छाया की भाँति सदा उनका अनुगमन करता है, धन या विद्या का अर्जन करने के लिये नित्य प्रयत्नशील रहता है तथा सभी विद्याओं में निपुण होता है, वही (पुत्र) माता-पिता का आनन्द बढ़ाने वाला होता है। जो माता-पिता की आज्ञा के विपरीत व्यवहार करने वाला, दुर्गुणों से युक्त तथा धन नष्ट करने वाला होता है वह दु:खदायी होता है।

३६३२) जो स्त्री अपने पति में नित्य अनुराग रखने वाली, गृहकार्य में चतुर, पुत्र पैदा करने वाली, सुशीला और सुन्दर जीवन वाली होती है, वह पति की प्रिय होती है।

३६३३) जो माता पुत्रों के अपराधों को क्षमा करने वाली एवं उनका परिपोषण करने वाली है, वह नित्य आनन्द देने वाली होती है, इससे अन्य जो माता व्यभिचारिणी है वह अत्यन्त दु:ख देने वाली होती है।

३६३४) जो पिता पुत्र को विद्वान बनाने के लिये, उसकी स्थायी जीविका रखने के लिये प्रयत्न करता है, पुत्र को सदा अच्छी शिक्षा देता रहता है एवं अपने ऊपर किसी का ऋण नहीं रखता है- वह पिता आनन्ददायक होता है अथवा वह पिता पुत्र के ऋण से उऋण होता है।

३६३५) जो व्यक्ति सदा सहायता करे, कभी प्रतिकूल बात न कहे, सत्य व हितकर वचनों का उपदेश करे, धनादि दे तथा स्वयं प्रेमवश ले भी वही मित्र बन जाता है।

३६३६) नीच पुरुषों के साथ अत्यन्त घनिष्ठता, दूसरे के घर बराबर जाना, सजातीय लोगों के साथ अथवा जिस समूह में हो उसके साथ प्रतिकूल आचरण करना एवं दरिद्रता ये सब मानहानि करने वाले हैं अर्थात् इन सबसे मानहानि होती है।

३६३७) क्षत्रियों का तेज अधिक तमोगुणी, ब्राह्मणों का तेज अधिक सत्वगुणी, इससे अन्य वैश्यों का तेज अधिक रजोगुणी होता है। इनमें सत्त्वगुणी तेज ही श्रेष्ठ होता है।

३६३८) जिस आजीविका से अपने धर्म की हानि न हो वही आजीविका श्रेष्ठ है। जिस देश में अपने कुटुम्ब का भलीभांति पोषण हो वही देश सर्वोत्तम है।

३६३९) गुणवती सुशीला स्त्री, सुन्दर गुणवान सन्तान, उत्तम विद्या, उत्तम धन, अच्छा मित्र, अच्छे नौकर, अच्छी सुन्दर नौकरानी, रोगरहित शरीर, सुन्दर गृह, अच्छा राजा- ये दस बातें गृहस्थ पुरुषों के लिये सदा अत्यन्त सुखदायक होती हैं। इनसे विपरीत होने पर सुख के स्थान पर दु:खदायी होती हैं।

३६४०) जो दुर्गुण को गुण बतलाकर उसका बखान करता है वह सबका प्रिय होता है और जो गुण को बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा करता है वह क्यों न मित्र हो जाय, अर्थात् वह अवश्य मित्र हो जाता है।

३६४१) जो सत्य दुर्गुण को कहता है वह प्रिय होकर भी सुनने वाले का अप्रिय हो जाता है और जो गुण को दुर्गुण बताकर कहता है वह भला कैसे प्रिय हो सकता है।

३६४२) परिवार या समस्त जगत् के झगड़ों की जड़ में सम्मिलित है स्त्री। (परिवार या संसार में झगड़ों-फसादों रूपी वृक्ष की जड़ों में मुख्यत: तीन मूल कारण होते हैं- जर, जोरू, जमीन यानि धन, भार्या, जमीन अतएव विवेकवान पुरुष स्त्री के कहने पर कदापि नहीं चलते।)

३६४३) मित्रता वही है जो मित्र की मुसीबतों में ढाल का कर्म करे। मित्रता बंधु से बढ़कर मानी जाती है। (मित्रता का रिश्ता भाई से भी श्रेष्ठतम माना गया है, एक समय मनुष्य के मित्रता ही काम आती है, वास्तविक मित्रता भी वही कहलाती है, जैसे रामजी की विभीषण से दुर्योधन की कर्ण से, कृष्ण की सुदामा से)।

३६४४) मित्र, मित्र के बदले खून बहा दे, तब तो सच्चा श्रेष्ठतम मित्र, वरना मगरमच्छ के घड़ियाली अश्रु भले। (मित्र वही है जो बुरे समय में अग्नि परीक्षा दे और जान की बाजी भी लगाकर साथ दे, वर्ना उससे तो मगरमच्छ भला। कम-से-कम वह नकली आंसू तो बहा देगा।)

३६४५) प्रबल शत्रु से निर्बल (कमजोर) मित्र खतरनाक होता है। (शक्तिशाली शत्रु से कहीं अधिक हानि या पीड़ा देने वाला कमजोर मित्र (विश्वासघात दृष्टि रखने वाला) होता है।)

३६४६) अपने हृदय (मन) से बढ़कर विश्वास का पात्र किसी को नहीं कदापि नहीं बनाना चाहिए। (पुरुष को अपना सम्पूर्ण विश्वासपात्र किसी और को नहीं बनाना चाहिए, बस केवल सिर्फ एक मन को विश्वासपात्र बनाना ही हितकर है, इस प्रकार कार्य करने वाला मनुष्य सदैव सुखी रहता है। अपने विश्वास का भार (वजन) किसी और के कन्धों पर टिकाने में वह ही घातक बन जाता है)।

३६४७) संतान, पत्नी और साधु के आश्रय में जीवन की परिवर्तित अवस्थाओं में जाकर मनुष्य चैन अमन पाता है। जहां संसार के दुखों से उसे आजादी या सुख मिल जाता है। यह तीन वृक्ष हैं जो जीवनभर छांव (दोपहरी) में देते हैं।

३६४८) अपनों से बड़े से द्वेष (शत्रुता) करने पर निश्चित तौर पर हानि ही होती है। सम्राट से द्वेष करने पर मृत्यु का खतरा, दुश्मन से द्वेष करने पर धन का नाश, ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल का नाश होता है। इस कारण द्वेष कदापि नहीं करना चाहिए। द्वेष का फल सदैव हानिकारक तथा अपने से छोटों से भी द्वेष महंगा पड़ता है, विजय तो हासिल हो जाती है। पर उसमें प्रतिष्ठा का नुकसान (हानि)

ही होती है। द्वेष सदैव ही हानिकारक है। द्वेष न करना सबसे बेहतर है।

३६४९) ज्ञानी पुरुष वही होता है जो भोजन की चिंता कदापि नहीं करता। पेट तो कुत्ता भी भर लेता है। महत्त्वपूर्ण है कर्म (कार्य) करना भोजन कदापि नहीं।

३६५०) किसी का भी तप, दान, विज्ञान, शूरता, सुशीलता, नीति देखकर आश्चर्य चकित नहीं होना चाहिए, क्योंकि इस जग में एक से एक बढ़कर व्यक्ति हैं। बस देवों को देखने की दृष्टि चाहिए।

३६५१) धरा (पृथ्वी) पर ऐसा कौन है, जिसे धन पाकर घमंड (गर्व) न हुआ हो। ऐसा कौन है, जिसके मन को स्त्रियों ने खण्डित (तोड़ना) न किया हो ? कौन काल के भंवर में जाने से बच सका ? कौन दुष्टता से कभी न कभी बचा रह सका हो? कौन ऐसा है जो स्वादिष्ट भोजन (व्यंजन) देखकर ललचाया न हो ? असलियत (वास्तव) में हम सभी एक ही हैं जो कि हमाम (स्नानघर) में नंगे हैं।

३६५२) शक्तिहीन साधु बनता है। धनहीन ब्रह्मचारी बनता है। रोगी डॉक्टर या वैद्य भक्त बनता है। बूढ़ी स्त्री सबसे ज्यादा पतिव्रता बनती है। सभी इस जगत् में ढोंगी प्रपंची हैं। बलवान साधु नहीं बनता, धनवान ब्रह्मचारी नहीं होता। स्वस्थ पुरुष भगवान का जप नहीं करता और यौवनरूपी, मनसा, वाचा, कर्मणा से शायद ही पतिव्रता होती है। यह सब विवशता का नाटक है।

३६५३) बिना गुरुदेव के केवल पुस्तक के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने वाला, ज्ञानी पुरुष बताने वाला उस गर्भवती स्त्री के रूप समान होता है, जो अवैध संबंध के मूल कारण से गर्भवती हुई है।

३६५४) कहां गज (हाथी) कहां चींटी, इस जग में दोनों जीते हैं। आकार-प्रकार से कुछ भी नहीं होता। कार्य (कर्म) से सभी कुछ होता है। आकार मत देखो। गणेश जी सूंडधारी हैं, शंकरजी जटाधारी हैं, अम्बर का मुंह वेग है, अष्टावक्र की देह (शरीर) आठ स्थानों पर मुड़ी थी पर जगत् उनको उपासित करता है। रूप बनावट ढोंग से क्या होता है। कार्य और गुण देखना चाहिए। रूप आकार तो दिखावा, ढोंग, छल, प्रपंच मात्र है।

३६५५) गाय कुछ भी खाती है, पर दूध ही देती है। दूध से क्या नहीं बन सकता। इसी प्रकार विद्वान पुरुष कुछ भी करें। उसका ज्ञान रूपी अमृत अनुकरणीय है। विद्वान की एक-एक बात कैसी-कैसी जीवन उपयोगी है, इसे केवल बुद्धिमान ही समझ सकते हैं।

३६५६) सभी अंगुलियां बराबर कदापि नहीं होती। सभी लोग भी बराबर नहीं होते। जब हम सभी आपस में बंटे हैं, तो क्रियाकलापों में भी बंटवारा सर्वथा उचित है। हममें ईर्ष्या, द्वेष, विद्यमान रहता है, मन चिंताग्रस्त है, पर विकास के दृष्टिकोण को लेना, यह भावना निहित रखना है कि विनाश के भाव को भी नष्ट किया जा सकता है।

३६५७) इस जगत् में बहुत कम पुरुष ऐसे हैं, जो बाहर से और अन्दर से एक समान प्रकृति के होते हैं। ज्यादातर मनुष्य अंदर कुछ बाहर कुछ होते हैं। बाहर से दयालु, विनम्र, धर्मात्मा पर भीतर से महापापी प्रपंची साधारणत: मनुष्य दो चेहरे बनावट रखता है या लगता है। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और। इस कारण तो गणेशजी हमारे प्रथम देवता हो गए। उनके बिना कोई शुभ कार्य शुरू नहीं होता।

३६५८) महापुरुष के गुण देखो, कर्म नहीं। हर महापुरुष में कुछ न कुछ अवगुण अवश्य ही होता है। श्रीकृष्ण रासलीला करते थे, अर्जुन स्त्री बने थे, शान्तनु धीवर कन्या पर मोहित हो गए थे। महापुरुषों के गुण देखो और गुण ही ग्रहण करो, कर्म नहीं, कदापि नहीं। महापुरुष अवगुण के होते ही नहीं।

३६५९) पागल, कुंआरी कन्या, कोढ़ी, गुंडा, चांडाल और कनकटे साधु इनको दूर से ही नमस्कार करना चहिए। इनकी संगति बड़ी ही दु:खमयी होती है, गुणीजन इनसे सौ हाथ दूर रहते हैं।

३६६०) वेश्या को सवेरे (प्रात:काल), जुआरी को दोपहर में, पापी को मंदिर में, शव को कंधे पर दर्शन करने से किसी प्रकार दोष नहीं लगता। यह भली प्रकार से शुभ होता है। इस रूप में दर्शन करने से ज्ञान में वृद्धि या प्रेरणा ही मिलती है, यदि जगत् की वास्तविकता का अध्ययन होता है।

३६६१) ऐसा व्यक्ति जिसकी माता लक्ष्मी और पिता सभी देवों के स्वामी हों, जिसके मित्र भी ईश्वरभक्त हों। ऐसे व्यक्ति के लिए सभी लोक स्वदेश ही होते हैं।

३६६२) दुर्जनों की संगति का त्याग तथा साधुजनों की संगत में रात-दिन पुण्य कार्य करते हुए प्रत्येक दिन पतित पावन परमात्मा का स्मरण करते रहना चाहिए।

३६६३) द्विजातियों का देवता अग्नि है। ज्ञानी लोग अपने हृदय में ही ईश्वर को देखते हैं। परन्तु अल्पबुद्धि वाले प्रतिभा को ही ईश्वर समझते हैं तथा समदर्शी सर्वत्र ईश्वर को ही देखते हैं।

३६६४) शरीर अनित्य (नाशवान) है, वैभव आदि भी सत्य नहीं हैं और मृत्यु सदा साथ रहती है। इसी कारण सदा धर्म का संग्रह करना चाहिए।

३६६५) धर्म से हीन मनुष्य जीते जी मरे हुए के समान है। किन्तु धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति मरा हुआ भी दीर्घजीवी होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

३६६६) अपने मन की चाह अनुसार सुख भला किसको मिलता है। संसार में सब कुछ भाग्य (देवता) के अधीन है। अत: जो चीज अपने वश में नहीं है, उसके लिए दु:ख नहीं करना चाहिए; संतोष करना ही उचित है।

३६६७) पुरुषों की तुलना में स्त्रियों का आहार दो गुना, लज्जा चौगुनी, साहस छ: गुना तथा कामोत्तेजना आठ गुनी होती है। यानि उसकी इच्छाशक्ति आठ गुनी होती है।

३६६८) न तो दान करने से, सैकड़ों उपवास करने से, न तीर्थ यात्रा करने से स्त्री उतनी पवित्र नहीं होती, जितनी पति के पैरों के जल (धोवन) से होती है।

३६६९) मनुष्य को संसार के मोहजाल से छुटकारा पाने हेतु ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। स्वर्ग पाने के लिए धर्म के अनुकूल कार्य करने चाहिए।

३६७०) धनवान के पास बहुत से मित्र होते हैं। सारे मित्र उससे अपना काम निकालते हैं और उसे मूर्ख बनाते हैं। धनवान इसे अपना गौरव मानता है।

३६७१) संकट काल, बीमारी, कष्ट, अकाल, शत्रु का आक्रमण, राजद्वार व श्मशान के समय ही मित्र की परीक्षा होती है। उसी समय वह परखा जाता है।

३६७२) मित्र का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अत: जैसा मित्र होगा, वह प्रभाव पड़ेगा। मित्रता में यह बात नहीं भूलनी चाहिए। संगति का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है।

३६७३) स्वार्थ के बल पर की गई मित्रता-शत्रुता में बदल जाया करती है। अत: मित्रता करने से पूर्व भली प्रकार सोच-समझ लेना चाहिए।

३६७४) पांच वर्ष तक पुत्र को प्यार दें, पालन करे। दस वर्ष तक कठोर व्यवहार कर पढ़ाएं, ताड़न करे, तथा जब पुत्र सयाना हो जाए, सोलह वर्ष की उम्र पा जाए तब उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए।

३६७५) परिवार का वह सदस्य ही सच्चा बंधु होता है, जो दु:ख-सुख में, दुश्मन का संकट आने पर, तन-मन-धन से सभी प्रकार का सहयोग देता है।

३६७६) पुत्र वही है, जो पिता का भक्त है। पिता वही है जो पोषक है। मित्र वही है जो विश्वासपात्र हो। पत्नी वही है जो हृदय को आनन्दित करे।

३६७७) जिस घर में शुभ लक्षणों वाली स्त्री हो, धन-सम्पत्ति हो, विनम्र गुणवान पुत्र हो और पुत्र का भी पुत्र हो, तो स्वर्गलोक का सुख भी ऐसे घर से बढ़कर नहीं होता।

३६७८) जो घर विप्रों के पैरों के धूल की कीचड़ से नहीं सनते, जिनमें वेदशास्त्रों की ध्वनि सुनाई नहीं देती तथा यज्ञ की स्वाहा, स्वधा आदि ध्वनियों का अभाव रहता है। ऐसे घर श्मशान के समान होते हैं।

३६७९) पुत्र और शिष्य को कठोर नियंत्रण में रखना चाहिए। इससे उनमें अवगुण कम, गुण ज्यादा आते हैं। प्यार दुलार से पुत्र और शिष्य बिगड़ जाया करते हैं।

३६८०) जिस प्रकार एक ही सुगन्धित पुष्प वाले वृक्ष से सारा वन सुगंध से भर जाता है। उसी प्रकार एक ही सुपुत्र कुल का नाम

रोशन कर देता है।

३६८१) जिस प्रकार एक वृक्ष में आग लग जाने में सारा जंगल जलकर भस्म हो जाता है। ठीक उसी प्रकार एक कुपुत्र से सारा कुल कलंकित हो जाता है।

३६८२) अन्न और जल दान के समान कोई दान नहीं है। द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं है। गायत्री से बढ़कर कोई मंत्र नहीं है। मां से बढ़कर कोई देवता नहीं है।

३६८३) राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की मां तथा अपनी मां- ये पांच माएं हैं। जन्म देने वाला, उपनयन संस्कार करने वाला, विद्या देने वाला, अन्नदाता तथा भय से रक्षा करने वाला- ये पांच पिता के समान हैं।

३६८४) बुद्धिमान पिता का कर्तव्य है कि पुत्र को सदा अनेक प्रकार से सदाचार की शिक्षा दें। नीतिज्ञ सदाचारी पुत्र ही कुल में पूजे जाते हैं।

३६८५) गुणहीन सौ पुत्रों से गुणवान एक ही पुत्र श्रेष्ठ है, क्योंकि एक ही चन्द्रमा अंधेरा को समाप्त कर देता है। किन्तु तारे हजारों होने पर भी अंधेरा दूर नहीं कर पाते।

३६८६) उस गाय का क्या लाभ, जो दूध न देती हो और जो गर्भवती भी न हो। इसी तरह उस पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ, जो न विद्वान हो और न ईश्वर भक्त हो।

३६८७) मूर्ख पुत्र का दीर्घजीवी होने से मर जाना अच्छा है, क्योंकि ऐसे पुत्र के मरने से एक बार दु:ख होता है। जिन्दा रहने पर वह जीवन भर जलाता रहता है। दु:खी करता है।

३६८८) जिस घर में मूर्ख की पूजा नहीं होती, जहां अन्न का भंडार भरा रहता है। जहां पति-पत्नी में कलह नहीं होती है। लक्ष्मी वहीं पर विराजमान रहती है।

३६८९) विद्या कामधेनु के समान गुणों वाली है, बुरे समय में भी अच्छा फल देने वाली है, प्रवास के समय मां समान तथा गुप्त धन है। विद्या बिना जीवन कुत्ते की पूंछ के समान व्यर्थ है, जो न तो गुप्त अंगों को ढक सकती है और न मच्छरों को उड़ा सकती है। विद्वान की सर्वत्र प्रशंसा होती है, सर्वत्र गौरव प्राप्त होता है। विद्या से सब कुछ प्राप्त होता है और विद्या की सर्वत्र पूजा होती है। विद्या कामधेनु गाय के समान गुण वाली है। वह असमय में भी फल देती है। विदेश में भाई के समान सहारा देने वाली होती है। वह एक प्रकार से गुप्त धन है। इसलिए विद्या का संचय अवश्य करना चाहिए।

३६९०) आकाश में न तो कोई दूत ही जा सकता है और न उससे कोई बात ही हो सकती है। न तो पहले किसी ने बताया है और न वहां किसी से मिल ही सकते हैं। फिर भी विद्वान मनुष्य सूर्य और चन्द्र ग्रहण के विषय में समय से पहले ही बता देते हैं। ऐसे व्यक्तियों को कौन विद्वान नहीं कहेगा।

३६९१) यदि सुखों की इच्छा है, तो विद्या त्याग दो और यदि विद्या की इच्छा है तो सुखों का त्याग कर दो। सुख चाहने वालों को विद्या कहां और विद्या चाहने वालों को सुख कहां।

३६९२) काम, क्रोध, लोभ, स्वाद, श्रृंगार, कौतुक (खेल), अधिक सोना, अधिक सेवा करना, विद्यार्थियों को इन आठ कामों को छोड़ देना चाहिए।

३६९३) संसार के कष्टों से मुक्ति तर्क के द्वारा नहीं मिलती है। तर्क केवल बुद्धि का विषय है। हृदय की सिद्धि तक बुद्धि नहीं पहुंच सकती। जिसे बुद्धि माने मगर हृदय न माने, वह त्याज्य है।

३६९४) यदि अन्य व्यक्ति गुणहीन व्यक्ति की भी प्रशंसा करें, तो वह बड़ा हो जाता है। स्वयं अपनी प्रशंसा करने पर इन्द्र भी छोटा हो जाता है।

३६९५) मूर्ख व्यक्ति चारों वेद तथा अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़ते हैं। फिर भी अपनी आत्मा को नहीं जान पाते हैं। वैसे ही जैसे भोजन के रस को करछी नहीं जान पाती।

३६९६) दान देने में रुचि, मधुरवाणी, देवताओं की पूजा तथा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रखना, इन चार लक्षणों वाला व्यक्ति इस लोक में कोई स्वर्ग की आत्मा होता है।

३६९७) युग का अन्त होने पर भले ही सुमेरु पर्वत अपने स्थान से हट जाए और कल्प का अन्त होने पर भले ही सातों समुद्र विचलित हो जाएं, किन्तु सज्जन अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।

३६९८) योग्य व्यक्ति के पास आकर अयोग्य वस्तु भी सुन्दरता बढ़ाने वाली हो जाती है, किन्तु अयोग्य के पास जाने पर योग्य काम की वस्तु भी हानिकारक हो जाती है।

३६९९) अधम धन की इच्छा करते हैं, मध्यम धन और मान दोनों चाहते हैं, किन्तु उत्तम केवल मान ही चाहते हैं। महापुरुषों का धन मान ही है।

३७००) मूर्खों का प्रात:काल का समय जुए के प्रसंग में बीतता है। दोपहर का समय स्त्री-प्रसंग में बीतता है। रात्रि में उनका समय चोर प्रसंग में बीतता है। यही मूर्खों की जीवनचर्या होती है।

३७०१) विप्र वृक्ष है, सन्ध्या उसकी जड़ है, वेद उसकी शाखाएं हैं और धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं, इसलिए जड़ की हर सम्भव रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि जड़ के टूट जाने पर न तो शाखाएं रहती हैं और न पत्ते।

३७०२) ब्राह्मण नाव के समान है, जो व्यक्तियों को संसार-सागर के पार लगाता है। किन्तु इस नाव के ऊपर नहीं बैठना पड़ता; बल्कि इसके नीचे रहना पड़ता है। यह एक उल्टी नाव है। इसके नीचे रहने से यानि ब्राह्मण से दबकर रहने से व्यक्ति इस सागर से पार हो जाता है। उसे स्वर्ग मिलता है। इसके ऊपर बैठने से यानि ब्राह्मण का अपमान करने से व्यक्ति डूब जाता है।

३७०३) दिन में एक ही बार भोजन करने वाला, अध्ययन, तप आदि छ: कार्यों में लगा रहने वाला तथा ऋतुकाल में ही पत्नी से सम्बन्ध बनाने वाला ब्राह्मण द्विज कहा जाता है।

३७०४) जो ब्राह्मण बिना जोती भूमि से फल, मूल आदि का भोजन करता है, सदा वन में निवास करता है तथा नित्य प्रति श्राद्ध करता है। उसे ऋषि कहा जाता है।

३७०५) जो ब्राह्मण देवताओं या गुरुओं की वस्तुओं की चोरी करता है, परस्त्री से सम्भोग करता है और सभी प्राणियों के बीच में निर्वाह कर लेता है। उसे चाण्डाल कहा जाता है।

३७०६) दूसरे का काम बिगाड़ने वाले, दम्भी, स्वार्थी, छली-कपटी, द्वेषी, मुंह से मीठा किन्तु हृदय से क्रूर ब्राह्मण बिल्ला-बिलौटा कहा जाता है।

३७०७) लक्ष्मी ने कहा है- जिसने क्रुद्ध होकर मेरे पिता समुद्र को पी लिया, जिसने गुस्से में मेरे पति को लात मारी, जो बचपन से ही अपने मुंह से मेरी बैरिणी सरस्वती को धारण करते हैं और जो शिव की पूजा के लिए प्रतिदिन मेरे घर (कमलों) को तोड़ते हैं। इन ब्राह्मणों ने ही मेरा सर्वनाश किया है। अत: मैं इनके घरों को छोड़कर रहूंगी।

३७०८) जो प्रसंग के अनुसार बातें करना, प्रभाव डालने वाला प्रेम तथा अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है। उसे ही पंडित कहते हैं।

३७०९) मूर्ख शिष्य को उपदेश, कर्कशा स्त्री का पालन-पोषण, दु:खी लोगों से सम्बन्ध रखने पर सज्जन पुरुषों को भी दु:ख उठाना पड़ता है।

३७१०) सेवा के अवसर पर सेवकों की, दु:ख के समय बंधु-बांधवों की, संकट आने पर मित्र की, धन हानि होने पर पत्नी की परीक्षा होती है।

३७११) प्रत्येक पर्वत पर मणि फल नहीं होता, सब हाथियों के मस्तक में मुक्ता नहीं मिलती। सब स्थानों पर सज्जन व्यक्ति नहीं होते हैं और सब जंगलों में चन्दन नहीं होता है।

३७१२) राजा को सेवा शोभा देती है। बनिए को व्यापार और सुन्दर स्त्री से घर की शोभा होती है। योग्य पुत्र वही है, जो पिता का आज्ञाकारी हो। पिता वह योग्य कहलाता है जो बच्चों को विद्याध्ययन कराता है। मित्र वही है जो विश्वासी होता है। पत्नी वही है जो पति को रति-क्रीड़ा में आनन्द दे।

३७१३) दक्षिणा लेने के पश्चात् ब्राह्मण यजमान को, विद्या प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य गुरु को और जलते वन में हिरन छोड़कर चले जाते हैं।

३७१४) बुरे व्यवहार करने वाले कर्मचारी, बुरे स्थानों पर रहने वाले दुष्टों से मित्रता करने वाला व्यक्ति संकट में अवश्य पड़ता है।

उसका विनाश निश्चित है।

३७१५) पत्नी की मृत्यु, अपनों द्वारा अपमान, कर्ज का रहना, दुष्ट राजा की सेवा, गरीबी, दुष्टों का संग-साथ इनके होने पर मनुष्य का शरीर बिना आग के ही जलता है।

३७१६) दोष किसके कुल में नहीं होता, बीमारी से कौन पीड़ित नहीं होता, दु:ख किसको नहीं मिलता, सदा सुख कभी किसी को नहीं मिलता।

३७१७) कोयल का सौन्दर्य उसका स्वर है, स्त्री का सौन्दर्य उसका पतिव्रत धर्म है, पुरुष का सौन्दर्य उसकी विद्या और तपस्वियों का सौन्दर्य क्षमा है।

३७१८) अपने परिवार की रक्षा के लिए स्वयं को बलिदान कर देना चाहिए। ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए ग्राम का और अपनी रक्षा के लिए (आत्म-सम्मान) अपना बलिदान दे देना चाहिए।

३७१९) अत्यन्त सुन्दर होने के कारण सीताजी का हरण हुआ, अति गर्व के कारण रावण मारा गया, अतिदान देने के कारण बलि को बंधन में पड़ना पड़ा। अति अत्यन्त हानिकारक होती है।

३७२०) एक अकेले का तपस्या करना, दो का एक साथ मिलकर पढ़ना, तीन का गाना, चार का मिलकर यात्रा करना, पांच का खेती करना और बहुत जनों का मिलकर युद्ध में भाग लेना अच्छा होता है।

३७२१) बिना अभ्यास के शास्त्र विष के समान है, बिना पचा भोजन भी विष समान, दरिद्रों की सभा भी विष समान और बूढ़े के लिए युवा पत्नी भी विष समान होती है।

३७२२) ब्रह्मज्ञानी के लिए स्वर्ग, बहादुर व्यक्ति के लिए जीवन, इन्द्रियों पर वश रखने वाले के लिए परम सुन्दरी भी तिनके के बराबर मूल्य नहीं रखती है।

३७२३) जैसे मछली देखकर मादा कछुआ ध्यान देकर और चिड़िया स्पर्श से अपने बच्चों का पालन करती है। उसी प्रकार सत्संगति मनुष्यों का पालन करती है।

३७२४) साधु तीर्थ के समान होते हैं। साधुओं के दर्शन से पुण्य मिलता है। तीर्थों का फल कुछ समय पश्चात् मिलता है, परन्तु साधु समागम तुरन्त फल देता है।

३७२५) सत्संगति करने से दुष्टों में भी साधुता आ जाती है, किन्तु दुष्टों की संगति से साधुओं में दुष्टता नहीं आती है। जैसे-मिट्टी फूलों की सुगंध धारण कर लेती है, किन्तु फूल मिट्टी की गंध नहीं अपनाता।

३७२६) तालाब के जल को स्वच्छ रखने के लिए उसका बहते रहना जरूरी है। इसी प्रकार अर्जित धन का त्याग करते रहना ही उसकी रक्षा है।

३७२७) जो धन किसी को दु:ख पहुंचाकर, अवैध तरीके से कमाया जाता हो, देशद्रोही तरीकों से प्राप्त होता हो, ऐसा धन लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।

३७२८) जो व्यक्ति भविष्य में आने वाली विपत्ति के प्रति सावधान रहता है और जिसकी बुद्धि तीव्र होती है। ऐसा ही व्यक्ति सुखी रहता है। इसके विपरीत भाग्य के भरोसे बैठा रहने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है।

३७२९) मूर्ख व्यक्ति को दो पैरों वाला पशु समझकर त्याग देना चाहिए, क्योंकि वह अपने शब्दों से शूल के समान उसी तरह भेदता रहता है, जैसे अदृश्य कांटा चुभ जाता है।

३७३०) मांसाहारी, शराबी तथा मूर्ख पुरुष के रूप में पशु समान है। इनके भार से पृथ्वी दबी जा रही है। भले ही इनका शरीर मनुष्य का होता है। मनुष्य के आकार वाले ये पशु पृथ्वी के लिए भार जैसे हैं।

३७३१) जिसने हाथों से दान नहीं दिया, कानों से कोई ज्ञान नहीं सुना, नेत्रों से किसी साधु के दर्शन नहीं किए, पांवों से चलकर कभी तीर्थ स्थान में नहीं गए, अन्याय से कमाए गए धन से पेट भरता हों और घमण्ड से सिर तना रखतें हो, ऐसे मनुष्य भी पशु समान होते हैं।

३७३२) जिस नगर में विद्वान, बुद्धिमान, ज्ञानी पुरुष नहीं रहते, जहां के व्यक्ति दान करना नहीं जानते, जहां अच्छे काम करने में कोई

चतुर न हो, किन्तु दुष्कर्मों को करने में सभी एक से बढ़कर एक हों। ऐसे स्थान को गन्दगी का ढेर समझना चाहिए और वहां के प्राणी को गंदगी के कीड़े।

३७३३) भोजन, नींद, भय तथा मैथुन ये सब बातें मनुष्यों एवं पशुओं में समान रूप से पायी जाती हैं। परन्तु ज्ञान मनुष्यों में ही पाया जाता है। अत: ज्ञानरहित मनुष्य को पशु के समान समझना चाहिए।

३७३४) जिन मनुष्यों में विद्या, तपस्या, दान देना, शील, गुण तथा धर्म में से कुछ भी नहीं है, वे मनुष्य पृथ्वी पर बोझ हैं। वे मनुष्य के रूप में पशु हैं, जो पृथ्वी पर मनुष्यों के बीच में घूमते रहते हैं।

३७३५) उज्ज्वल कर्म करने वाला मनुष्य क्षणभर के लिए जिए तो भी अच्छा है, किन्तु दोनों लोकों के विरुद्ध कार्य करने वाला मनुष्य एक कल्प तक भी जिए तो उसका जीना व्यर्थ है।

३७३६) अत्यन्त क्रोध, कटुवाणी, दरिद्रता, स्वजनों से बैर, नीच लोगों का साथ, कुलहीन की सेवा नरक की आत्माओं के यही लक्षण होते हैं।

३७३७) ब्राह्मण भोजन से प्रसन्न होता है। मोर बादलों के गरजने पर आनन्दित होता है। सज्जन दूसरों की सम्पन्नता से सुखी होते हैं, किन्तु दुष्ट दूसरे की विपत्ति को देखकर खुश होता है।

३७३८) अनेक प्रकार से शिक्षा देने पर भी दुष्ट को सज्जन नहीं बनाया जा सकता है। जैसे दूध और घी से सींचे जाने पर भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता।

३७३९) हाथी का एक हजार हाथ से, घोड़े का एक सौ हाथ से, सींगवाले पशुओं का दस हाथ से तथा दुष्ट का देश छोड़कर त्याग कर देना चाहिए।

३७४०) उपकार करने वाले के साथ उपकार, हिंसक के साथ प्रतिहिंसा करनी चाहिए तथा दुष्ट के साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं है।

३७४१) कन्या का विवाह अच्छे घर में करना चाहिए, पुत्र को पढ़ाई-लिखाई में लगा देना चाहिए, मित्र को अच्छे कार्यों में तथा शत्रु को बुराइयों में लगा देना चाहिए।

३७४२) कौन समय है ? कौन मित्र है ? कैसा स्थान है ? आय-व्यय क्या है। मैं किसकी और मेरी शक्ति क्या है ? इनका बार-बार विचार करना चाहिए।

३७४३) जो लोग अपने लोगों से प्रेम, परायों पर दया, दुष्टों के साथ बहादुरी और गुरुओं का सम्मान करते हैं, जिन्हें स्त्रियों से लगाव नहीं होता, ऐसे व्यक्ति महापुरुष कहे जाते हैं। ऐसे ही व्यक्तियों के कारण यह दुनिया टिकी हुई है।

३७४४) जिस तालाब में पानी रहता है, हंस वहीं बसते हैं। पानी सूख जाने पर वे उसे छोड़ देते हैं। मनुष्य को फिर छोड़ देने वाले तथा फिर आ जाने वाले हंसों के समान नहीं होना चाहिए।

३७४५) शास्त्र अनन्त है, विद्याएं अनेक हैं, किन्तु मनुष्य का जीवन छोटा है। इसलिए हंस जिस प्रकार दूध मिले पानी में से दूध को पी लेता है और पानी छोड़ देता है। उसी प्रकार काम की बातें ग्रहण करनी चाहिए तथा व्यर्थ की छोड़ देनी चाहिए।

३७४६) भोजन वही है, जो ब्राह्मणों को खिला देने के बाद बच जाए। प्रेम वही है जो दूसरों पर किया जाए। बुद्धि वही है, जो पाप न करे। धर्म वही है, जिसे करने में घमण्ड न हो।

३७४७) बीती बात पर दु:ख नहीं करना चाहिए। भविष्य के विषय में भी नहीं सोचना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति वर्तमान समय के अनुसार ही चलते हैं। राजा, आग, गुरु और स्त्री, इनके अधिक समीप रहने पर विनाश होता है तथा दूर रहने से कोई फल नहीं मिलता। इसलिए मध्यम दूरी से इनका उपयोग करना चाहिए।

३७४८) बुद्धिमान व्यक्ति सिद्ध औषधि, धर्म, अपने घर की कमियां, मैथुन, खाया हुआ खराब भोजन तथा सुनी हुई बुरी बातों को गुप्त रखते हैं।

३७४९) सोने का हिरन न तो किसी ने देखा है न ही इसे किसी ने बनाया और न ही सुनने में आता है कि हिरण भी सोने का होता है। फिर भी रघुनन्दन की तृष्णा देखिए। वास्तव में विनाश का समय आने पर बुद्धि विपरीत हो जाती है।

३७५०) नाई के घर में और कर्म से, पत्थर में घिसे चन्दन आदि लगाने से तथा जल में अपना रूप देखने से इन्द्र की भी शोभा नष्ट हो जाती है।

३७५१) जहां कोई धनवान, वेदपाठी विद्वान, राजा और वैद्य न हो, जहां कोई नदी न हो- इन पांच स्थानों पर एक दिन भी नहीं रहना चाहिए।

३७५२) जिस स्थान पर आजीविका न मिले, लोगों में भय, लज्जा, उदारता तथा दान देने की प्रवृत्ति न हो- ऐसे पांच स्थानों से प्रेम नहीं करना चाहिए।

३७५३) जिस देश में सम्मान न हो, जहां कोई आजीविका न मिले, जहां अपना कोई भाई-बंधु न रहता हो तथा जहां विद्या अध्ययन सम्भव न हो, ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए।

३७५४) मन में सोचे हुए कार्य को मुंह से बाहर नहीं निकालना चाहिए। मंत्र के समान गुप्त रखकर उसकी रक्षा करनी चाहिए। गुप्त रखकर ही उस कार्य को करना चाहिए।

३७५५) पांव धोने के बाद, पीने के बाद तथा सन्ध्या करने के बाद बचे हुए जल को कुत्ते का मूत्र समझें। इसे पी ले ने पर चन्द्रायण व्रत करना चाहिए।

३७५६) दो ब्राह्मणों के बीच से, ब्राह्मण और आग के बीच से, मालिक और नौकर के बीच से, पति और पत्नी के बीच से तथा हल और बैलों के बीच से नहीं निकलना चाहिए।

३७५७) बाजुओं की शक्ति वाले राजा बलवान होते हैं। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण बलवान होता है। सुन्दरता, यौवन और मधुरता ही स्त्रियों का श्रेष्ठ बल है।

३७५८) किसी भी व्यक्ति को अधिक सीधा नहीं होना चाहिए। जंगल में जाकर देखने से पता चलता है कि सीधे वृक्ष काट लिए जाते हैं, जबकि टेढ़े-मेढ़े पेड़ छोड़ दिए जाते हैं।

३७५९) बलवान शत्रु को उसके अनुकूल चलकर, दुष्ट को उसके प्रतिकूल चलकर तथा समान बल वाले शत्रु को विनय से या बल से वश में करना चाहिए।

३७६०) साधु-महात्माओं से शत्रुता करने पर मृत्यु होती है। शत्रु से द्वेष करने पर धन का नाश होता है। राजा से द्वेष-शत्रुता करने पर सर्वनाश हो जाता है और ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल का नाश होता है।

३७६१) सामर्थ्यवान व्यक्ति को कोई वस्तु भारी नहीं होती। व्यापारी के लिए कोई जगह दूर नहीं होती। विद्वान के लिए कहीं विदेश नहीं हेाता। मधुर बोलने वाले का कोई पराया नहीं होता।

३७६२) बगुले से- इन्द्रियों को वश में करके देश, काल एवं बल को जानकर विद्वान अपना कार्य सफल करें। जैसे- बगुला सब कुछ भूलकर एकटक मछली को देखता रहता है और मौका लगते ही उसे झपट लेता है।

३७६३) मुर्गे से- समय पर जागना, लड़ना, भाइयों को भगा देना और उनका हिस्सा स्वयं झपटकर खा जाना। ये चार बातें मुर्गे से सीखनी चाहिए।

३७६४) कौए से- छिपकर मैथुन करना, समय-समय पर संग्रह करना, सावधान रहना, किसी पर विश्वास न करना और औरों को आवाज देकर इकट्ठा कर लेना। ये पांच गुण कौवे से सीखने चाहिए।

३७६५) कुत्ते से- अधिक भूखा होने पर भी थोड़े में ही संतोष कर लेना, गहरी नींद में होने पर भी सतर्क रहना, स्वामीभक्त होना और वीरता- ये छ: गुण कुत्ते से सीखने चाहिए।

३७६६) भली प्रकार संभाल कर रखने से अनाज की रक्षा होती है। फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं तथा बारबार देख-भाल करने से गौओं की रक्षा होती है।

३७६७) राजा को चाहिए कि मनुष्यों की परीक्षा करे। सत्य पुरुषों को सदा सम्मानित करे। दुष्टों को नियंत्रित करे। ऐसा राजा ही सभी राजाओं में श्रेष्ठ है।

३७६८) महापुरुषों का चित्त संपत्तिशील होने पर कमल के समान कोमल होता है और विपत्तियों में विशाल पर्वत के शिला समूह के

समान कठोर होता है।

३७६९) सुशील, धर्मात्मा, सब के मित्र और प्राणियों का हित करने में तत्पर बनो। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है, वैसे ही सम्पत्तियां ऐसे पात्र को आश्रय बना लेती हैं।

३७७०) जहां मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहां धान्य भविष्य के लिए संगृहीत किया हुआ है, जहां स्त्री-पुरुष में कलह नहीं-वहां मानो लक्ष्मी स्वयंमेव आई हुई है।

३७७१) सज्जनों के संपर्क से आधी अविद्या नष्ट हो जाती है। उसका चतुर्थांश शास्त्र के विचार से नष्ट हो जाता है और शेष चतुर्थांश अपने यत्न से नष्ट होता है।

३७७२) सत्य से धर्म की रक्षा होती है। योग से विद्या सुरक्षित होती है। सफाई से रूप की रक्षा होती है। सदाचार से कुल की रक्षा होती है। धन से धर्म की रक्षा होती है, कोमलता से राजा की रक्षा होती है और श्रेष्ठ स्त्री घर की रक्षा करती है।

३७७३) हम मनुष्य दूसरों की अपेक्षा और सुखी होना चाहते हैं, इसी से इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती क्योंकि दूसरों को वास्तविकता से भी अधिक सुखी समझते हैं।

३७७४) नीतिशास्त्र से अन्य जितने शास्त्र हैं वे सब व्यवहार के एक अंश को बताने वाले हैं किन्तु सभी लोगों के लिए हितकारी, समाज की स्थिति को सुरक्षित रखने वाला नीतिशास्त्र ही है क्योंकि यह धर्म, अर्थ तथा काम का मुख्य कारण और मोक्षदायक है। संपूर्ण लोक व्यवहार की स्थिति बिना नीति शास्त्र के उसी प्रकार नहीं हो सकती, जिस प्रकार भोजन के बिना प्राणियों के देह की स्थिति नहीं रह सकती।

३७७५) जिस प्रकार कुपथ्य भोजन करने वालों को कोई रोग शीघ्र और कोई देर में उत्पन्न होते हैं, जबकि पथ्य से रहने वालों को रोग नहीं उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार नीतिविहीन लोगों के शत्रु, कभी शीघ्र और कभी देर से बनते हैं, जबकि नीति से चलने वालों के शत्रु होते ही नहीं हैं।

३७७६) नीतिविहीन होना ही राजा के लिये महान् दोष है, जो सदा भय देने वाला, शत्रु की वृद्धि करने वाला तथा बल को क्षीण करने वाला है। अत: जो राजा नीति का त्याग कर उच्छृंफ्ल व्यवहार करता है वह दु:ख भोगता है और ऐसे राजा की सेवा करना तलवार की धार-चाटने के समान है।

३७७७) जो बुद्धिमान एवं प्रशंसनीय चरित्र वाले हैं वे पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं अर्थात् उद्योग करते हैं और जो पुरुषार्थ करने में असमर्थ व कायर पुरुष हैं, वे भाग्य की उपासना करते हैं अर्थात् भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं।

३७७८) भाग्य और पुरुषार्थ इन दोनों में से जो दुर्बल होता है उसको हटाने वाला सदा बलवान् होता है। सबल और दुर्बल का ज्ञान न तो फल-प्राप्ति से होता है और न ही किसी अन्य रीति से।

३७७९) यदि अवश्य होने वाले कार्यों का प्रतिकार होना संभव न होता तो अपने बुद्धि तथा बल के अनुसार दुष्टों का नाश करना कल्याणकारक न होता अर्थात् पुरुषार्थ से दुर्बल भाग्य को मिटाया जा सकता है।

३७८०) संतों ने कहा कि ओछे लोगों के साथ ओछा नहीं अच्छा व्यवहार करना चाहिए। ओछे लोगों के साथ ओछा बनना अपने आपको नीचे गिराना है।

३७८१) जिसके पास धन नहीं, मकान-दूकान नहीं, वह दरिद्र नहीं, बल्कि दरिद्र वह है जो साठ घड़ी में से दो घड़ी का समय अपने आत्म चिन्तन के लिये नहीं निकाल सकता।

३७८२) यदि कोई मनुष्य मुख द्वारा कह दे कि अमुक वस्तु पर मेरा अधिकार है, इसलिये मुझे मिलनी चाहिये तो इसका अधिकार कथन (दावा) व्यर्थ है।

३७८३) अच्छाई दिल का खोट कपट दूर कर देती है। अच्छों की पहचान यह कि जिसे देख कर दिल खुश हो जाये, जिसे देखकर दिल की बातें करने की इच्छा करे और जिसे देख कर रोना आये और दु:ख खुद-ब-खुद बाहर आ जाये।

३७८४) जिसमें दूसरे का छीन लेने की, दबाने की, दुष्ट भावना होती है वह दानव है और जो देता है वह देवता हैं सबका भला करेंगे तो हमारा भला होगा।

३७८५) अपनी आयु, योग्यता, धन, समय, स्थान और जातीय प्रतिमानों के अनुसार अपने आचरण, जीवन व्यवहार और प्रायश्चित का नियमन और समायोजन करो।

३७८६) किसी से यह नहीं पूछना चाहिए खाना खा लिया ? नाश्ता कर लिया ? इत्यादि-इत्यादि बल्कि यह कहना चाहिए खाना खा लीजिए, नाश्ता कर लीजिए इत्यादि-इत्यादि।

३७८७) मनुष्य जीवन के समय को अमूल्य और क्षणिक समझ कर उत्तम से उत्तम काम में व्यतीत करना चाहिये। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये।

३७८८) किसी सम्बन्धी की मृत्यु-सूचना मिलने पर, जहां आवश्यकता हो, वहां जाना चाहिये। किन्तु अपने घर में किसी के मरने पर, जहां तक हो, दूरस्थ कुटुम्बियों को आने के लिये सभ्यतापूर्वक निवारण कर देना चाहिये।

३७८९) दया के समान कोई धर्म नहीं, हिंसा के समान कोई पाप नहीं, ब्रह्मचर्य के समान कोई व्रत नहीं। ध्यान के समान कोई साधन नहीं, शान्ति के समान कोई सुख नहीं, ऋण के समान कोई दुख नहीं, ज्ञान के समान कोई दृष्टि नहीं, पापी के समान कोई दुष्ट नहीं, झूंठ से बचने के लिये जहां तक हो, भविष्य के निश्चित बचन नहीं कहने चाहिये।

३७९०) दूसरों को दुख पहुंचाने के समान कोई पाप नहीं है और सुख पहुंचाने के समान कोई धर्म नहीं है। इसलिए हर समय दूसरों के हित के लिए ही प्रयत्न करना चाहिये।

३७९१) किसी का उपकार करके उस पर अहसान न करें, न किसी से कहें और न मन में अभिमान ही करें, नहीं तो किया हुआ उपकार क्षीण हो जाता है। ऐसा समझें कि सब कुछ भगवान ही करवाते हैं, मैं तो निमित्त मात्र हूं।

३७९२) हमारा यह दायित्व है कि स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये धनार्जन करे जिससे अपने में आत्मविश्वास और स्वाभिमान पैदा होगा तो शरीर श्रम योग्य होगा।

३७९३) हम अपनी शक्तियों को इधर-उधर के बेकार के कार्यों में खर्च करते हैं, जिनसे जीवन में कोई विशेषता नहीं बन पाती। आत्मसंयम से बिखरी हुई शक्तियां एक स्थान पर एकत्रित होकर शुभ परिणाम के लिये वातावरण तैयार करता है।

३७९४) अपने भीतर की सुप्त शक्तियों को जागृत करके ही हम इस मानव जीवन को सार्थक बना पायेंगे और अपने अक्षय पुरुषार्थ से सौभाग्य को आमन्त्रण दे पायेंगे।

३७९५) जैसे बूंद-बूंद से घड़ा भरता है, ऐसे ही एक-एक दिन से जीवन बनता है। हर दिन एक वरदान है भगवान का। जीवन ऐसे बिताओ कि हर दिन उपहार बन जाय।

३७९६) जीवन में श्वास का, भविष्य के प्रति आस का, भजन में विश्वास का और घर में हास-परिहास का बहुत महत्व है-इसको बनाए रखना चाहिये।

३७९७) जिस तरह आग से जले व्यक्ति की चमड़ी में बहुत देर तक जलन होती है उसी तरह ईर्ष्या से जले आदमी के हृदय में कभी शान्ति नहीं होती। फफोले बढ़ते जाते हैं और जलन पैदा करते हैं।

३७९८) माया की अग्नि तो सबको लगी हुई है और सब जीव उसमें दिन-रात झुलस रहे हैं, और इस माया की अग्नि में से बचाकर निकालने वाला ही सतगुरु है।

३७९९) भगवान कहते हैं, मेरे हो जाओ। तुम्हारा मेरा होना जरूरी है फिर मैं तो तुम्हारा होने में देर तो लगाऊँगा नहीं, क्योंकि मैं तो तुम्हारा ही हूँ।

३८००) पुण्य नहीं कमा सकते तो घर में पाप लेकर मत आओ। जिस घर में पुण्य की कमाई आये, वहाँ से स्वर्ग की खुशबू आया करती है। सारी शक्तियाँ घर में आ जायेगी और जीवन में कोई कमी नहीं रहेगी।

३८०१) समझदार व्यक्ति नीतिशास्त्र को पढकर ही अपने कार्य बोध धर्म के प्रति जागरूक हो जाता। उसे अच्छे बुरे का ज्ञान हो जाता है। वह जान जाता है कि उसे क्या करना चाहिये और क्या नही। धर्म का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिये आवश्यक है, ऐसा होनेपर ही वह नीतिगत चल सकता है। सामान्यत: देखो तो कुछ सामान्य बातें धर्म विरुद्ध हो जाती है जब कि वे धर्म सम्मत होती है।

विशेषत: ऐसा कार्य करने से श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

३८०२) मन से बुरे विचारों को निकाल दो। यदि आपसे कोई पूछे कि इस समय क्या सोच रहे तो सही सही उत्तर दो। यदि यह प्रवृति हो गई तो मनुष्य न किसी का बुरा सोचेगा और न ही असत्य मिथ्या भाषण करेगा। इस प्रकार योग से हम मन, वाणी और कर्म से पावन हो जाते है। पावन को फिर कोई अपावन नही कर पाता है क्योकि तब उसमें सभी को पावन करने की शक्ति आ जाती है।

३८०३) पर उपकार की भावना से मनुष्य का अन्त:करण पवित्रता की ओर अग्रसर होता है। परोपकार किसी स्वार्थ वश करने से उसका महत्व ही समाप्त हो जाता है।

३८०४) परमात्मा सिर्फ शब्द मात्रा नही है। उसे सिर्फ सुन भर लेने की बात नही है। जिसके भीतर कुछ थोडी सी अभी भी जीवन की आग है, उसे परमात्मा झकझोर देगा।

३८०५) माता पिता एवं गुरुजनों का आदर करने से हमारे जीवन में दैवी गुण विकसित होते है, जिनके प्रभाव से जीवन दिव्य होने लगता है। हर व्यक्ति में निष्कामता, प्रसन्नता और असंगता का समावेश होना चाहिये।

३८०६) कोई भी काम आरम्भ करने के पश्चात उससे घबराना नहीं चाहिये और न ही उसे बीच में छोडना चाहिये। काम तो मानव की सबसे बडी पूजा का दूसरा नाम है जो मन प्राण से अपना काम करते है वे सदा सुखी रहते है।

३८०७) संसार में ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं है जिसमे मनुष्य का कल्याण न हो, कारण परमात्मा प्रत्येक परिस्थिति में समान रूप से विद्यमान है।

३८०८) प्रार्थना जीभ से नहीं हृदय से होती है। इसी से मूक, बधिर, तोतले, मूढ़ भी प्रार्थना कर सकते है। प्रार्थना आत्मा की खुराक है।

३८०९) इस संसार में बहुत कम ऐसे मिलेंगे जो बाहर अन्दर एक जैसे हो। हर आदमी के बाहर और अन्दर में अन्तर होता है। बाहर से भला, अन्दर से बुरा आदमी सदा ही चेहरे से लगता है। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते है।

३८१०) जब तक आप सुरक्षित है तब तक आप अपने दोस्तों की गिनती करेंगे। लेकिन जीवन में जब संकट के बादल छा जायेंगे तब आप अकेले हो जायेंगे।

३८११) सन्त महात्मा संसार में लोगों को अपनी तरफ लगाने नहीं आते, प्रत्युत भगवान की तरफ लगाने आते है। जो लोगों को अपनी तरफ अपने ध्यान, पूजन आदि में लगाता है, वह भगवद् द्रोही और नरकों में ले जानेवाला होता है।

३८१२) साहसी मनुष्य को अपने पराक्रम का पुरस्कार अवश्य मिलता है। मनुष्य किसी जगह साहस करता है तो तब ही कुछ महत्वपूर्ण प्राप्त होता है। खतरे से जूझकर बचाव की नीति पर आगे बढनेवाला कायर पुरुष कुछ भी प्राप्त करने में समर्थ नही होता। अत: बुद्धिमान व्यक्ति को साहसिक कार्य करते हुये ही महत्वपूर्ण उपलब्धि करने की सोचनी चाहिये।

३८१३) बुरी आदतों वाले पुरुष, बुरे स्थानों पर रहने वाले लोग इनसे जो भी मित्रता करता है संग करता है वह एक न एक दिन धोखा खाता है। राजा लोग खानदानी आदमी इसीलिये अपने साथ रखते है कि वह न तो राजा को मुसीबत में डालता है और नही कभी धोखा देता है। न ही राजा के वैभव को देख कर ईर्ष्या करता है।

३८१४) इच्छा वासनाओं के त्याग में सुख का अस्तित्व होता है। व्यक्ति कितना भी प्रगति कर ले वह सुखी नही है। सुख के स्वर्णमृग के पीछे व्यक्ति दौडता है लेकिन वह नहीं मिलता। अनेक वासनाओं, इच्छाओं को लोग पकडे रहते है। वास्तविक वहां सुख नहीं, सुख का आभास होता है। कोई इच्छा तृप्त न होकर, नई इच्छा जन्म लेती है और उस भागदौड में हाथ का सच्चा सुख निकल जाता है।

३८१५) मनुष्य अकेले पड जाने पर अपने आप में ही केन्द्रित हो जाता है और ईश्वर प्रदत्त गुणों को विकसित करने का अवसर उसे नहीं मिल पाता। कोई निकास न पाकर वह मंद पड जाता है और उसका क्षय होने लगता है, उसकी सारी प्रतिमा कुंठित हो जाती है और फिर अन्दर विस्फोट हो जाना अनिवार्य है। जिससे उसका सारा जीवन निस्तेज हो जाता है। लेकिन यदि कुछ लोग उसकी तरफ थोडा सा भी ध्यान देकर सहानुभूति दे तो ऐसी बहुत सी जिन्दगियां खिल उठेगी।

३८१६) क्रोध आने पर आप आत्म संयम के अलावा और भी बहुत कुछ गँवा देते हो। शान्ति सेवक होना कोई आसान नहीं है। इसमें अनेक असुविधायें और दु:ख भी उठाने पडते है किन्तु यह एक ऐसी तपस्या है जो हमेशा काम आती है।

३८१७) हम में बहुतों की तो भेड चाल जैसी होती है, जहां कोई एक जाता है उसके पीछे-पीछे सब हो जाते है और यह देखते नहीं कि कहां जाना है, हमारी मंजिल कहां है, हमारा लक्ष्य क्या है, बस चलते जाते है।

३८१८) इस संसार में उत्पन्न व्यक्ति को इस भू-लोक के सुख उठाते हुये अपना परलोक सुधारने के लिये धर्म कर्म में लिप्त रहना चाहिये इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

३८१९) अच्छे चाल चलन के लिये आवश्यक है कि आदमी विनम्र हो ऐसे आदमी की कभी कही बेइज्जती नहीं होती, सब उसकी इज्जत करते है।

३८२०) तब तक देते रहो जब तक ईश्वर तुम्हें देना बन्द नही कर देता। ईश्वर कभी भी हमें प्यार करना बन्द नहीं करता। वह लगातार हम पर अपने दानों की वर्षा करते रहता है। चाहे हम कितनी ही बार उसे अस्वीकार कर दे, वह सदा खुले हाथ और मन से हमारा स्वागत करने के लिये और सही रास्ते पर हमें अग्रसर करने के लिये तत्पर रहता है। उसी तरह से हमने भी दूसरों के साथ व्यवहार करना चाहिये। दूसरा आदमी कोई भी क्यों न हो उसके प्रति भी वही प्रेम प्रकट करो जिसे ईश्वर हमारे लिये प्रकट करता है। जीवन में चाहे उसकी स्थिति विश्वास, धर्म, जाति, वर्ण, रंग, प्रतिभा कुछ भी हो, वह कितना भी अच्छा या बुरा क्यों न हो लेकिन वह बनाया हुआ है उस परम पिता परमेश्वर का ही। लगातार उसे अपना विचार, समय, और भौतिक उपहार देते रह कर उस परमपिता परमेश्वर का अनुकरण करते रहो जो तुम्हे कभी देना बन्द नही करता। जितना अधिक दोगे उतना ही तुम्हारा भंडार अधिक भरते जायेगा। कभी खाली नहीं होगा।

३८२१) कन्या की विदाई :- अपने दादाजी दादीजी का आशीर्वाद पाकर नानाजी नानीजी का धार्मिक प्रभाव अनुभव कर, मां की ममता एवं पिता के प्रेम-प्यार में पलकर, भैया भाभी के लाड़ प्यार में सज धज कर, बहनों के दुलार के सुहाग की साडी पहन कर, मामा-मामी की स्नेह मयी एवम् प्यार भरी चुनड़ ओढ़कर, भुवा-मौसी के स्नेह की मेहन्दी रचा कर, बाबुल का आंगन छोडकर, सपनों की डोली में बैठ कर, हमारे बाग की कली, किसी के आंगन की शोभा बनने, धर्म और पवित्र अग्नि को साक्षी मान कर पावन परिणय सूत्र मे बंधने चली। एक आंख मे आँसू और एक आंख में खुशी का अनुभव कर इसे साजन के आंगन तक बिदा कर आये।

३८२२) जब मनुष्य में सर्व भाव या सर्वात्म सम भाव का विकास होता है तो व्यक्ति मानवता की सीढी पर चढ़ कर महात्मा या महामानव, महापुरुष बन जाता है।

३८२३) आप जितना सोचते है, आप उससे बडे है। इसलिये आप अपने सोच को भी अपने असली आकार के हिसाब से बना ले। उतना बडा ही सोचे जितने बडे आप है और कभी खुद को सस्ते में न बेचे।

३८२४) अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये जो हिंसा का सहारा लेते है, वे धर्म का पालन नहीं करते। धर्म का पालन तो वे लोग कर रहे है जो अहिंसा से दूसरों को रास्ता दिखा रहे है।

३८२५) जिसके भीतर त्याग की भावना नहीं है, धैर्य नहीं है, आत्म बल नहीं है, वह दूसरे के ऊपर श्रद्धा विश्वास कर ही नहीं सकता है।

३८२६) सत्संग के बिना विवेक नहीं होता है और ईश्वर कृपा से ही सत्संग सुलभ होता है। ईश्वर अनुग्रह से ही महान लोगों का सत्संग प्राप्त होता है और सत्संग से बुद्धि में विवेक जागृत होता है।

३८२७) जो यह समझता है कि वह दूसरे का उपकार कर रहा है वह अबोध है और जो कोई यह समझता है कि दूसरा कोई उसका उपकार कर रहा है तो वह बुद्धिहीन है।

३८२८) भेडों और बकरियों से वे मनुष्य कदाचित भी बेहतर नहीं है जो अपने दिमाग में अचेतन जीवन का पालन पोषण करते है और यदि ईश्वर को जानकर भी वे अपने और अपने दोस्तों की खातिर प्रार्थना के लिये हाथ नहीं उठाते।

३८२९) सरदी गरमी, भय-अनुराग सम्पत्ति अथवा दरिद्रता जिसके कार्य में विघ्न उत्पन्न नहीं करे वही पंडित कहलाने योग्य है।

३८३०) जो भी विचार करो, उसमें अपने विवेक का पूरी तरह से उपयोग करो। उतावलेपन की जरूरत नहीं है। सत्संगति रखो। ईश्वर में तुम्हारी श्रद्धा बनी रहे।

३८३१) जो कार्य हाथ में है वह सबसे महत्वपूर्ण व आवश्यक है। सहकर्मी सबसे महत्वपूर्ण प्रिय व सबसे उपयुक्त व्यक्ति है तथा

वर्तमान समय ही सर्वश्रेष्ठ व सर्वोत्तम शुभ मुहूर्त है। इसे कभी मत गंवाओ।

३८३२) इन्द्रिय निग्रह, राग द्वेष का त्याग, परमात्मा की प्राप्ति, उसके आनन्द में सन्तोष और कामनाओं का समूल नाश आध्यात्मिक विकास का क्रम है।

३८३३) महत्व की बातों को छोड कर महत्वहीन बातों में जबरदस्ती उलझे रहना। स्वाध्याय की आदत छोड देना चरित्र की शुद्धि और अपने दोषों को दूर करने के लिये स्वाध्याय बहुत मददगार होता है। दूसरे लोगों को मजबूर करना है कि जिस तरह हम चीजों को देखते है और काम करते है उसी तरह दूसरे भी देखे और करे।

३८३४) साक्षर होना, शिक्षित, पढ़ा लिखा होना बहुत आवश्यक है। पढ़ लिख कर ही धर्म के सच्चे स्वरूप को जाना जा सकता है।

३८३५) जिसने स्वयं को ईश्वर के समर्पित कर दिया वही चिन्ता मुक्त है और सन्यासी बन सकता है। आस्था, श्रद्धा, और विश्वास समर्पण से ही आते है।

३८३६) मनुष्य को चाहिये कि वह कोई भी काम तन-मन-धन से करने के साथ साथ थोडा धैय भी रक्खे तो उसे परिश्रम का फल अवश्य मिलेगा।

३८३७) सच्चा उपदेश वह है जो जीवन में उतारा जाये और सच्चा उपदेशक वह जो गुणों को आत्मसात कर उसका उपदेश करे। इसके बगैर न उपदेश की सार्थकता है और न ही उपदेशक की।

३८३८) सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिये भीतर से खाली होना पडेगा। पूर्व प्राप्त ज्ञान के अहंकार से जब तक मुक्त नहीं होंगे तब तक सच्चा ज्ञान हासिल नहीं होगा।

३८३९) आघात पहुंचाने वालों को त्याग देने से कुछ हल नहीं निकलता। न तो इससे आघात करने वाले को कोई लाभ होता है और न हमारा ही कुछ बनता है क्योकि हम निश्चित रूप से दु:खी ही रहते है। यदि किसी ने तुम्हें दु:ख दिया है तो तुम उसे क्षमा कर दो, सहानुभूति दिखावो, उसे तसल्ली दो नहीं तो अत्यधिक दु:ख में शायद वह खत्म ही हो जायेगा।

३८४०) आरम्भ में सिर्फ शब्द था। शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा है। जीवन में भूतकाल से बहुत कुछ सीखना चाहिये लेकिन जीवन को अग्रगामी ही होना चाहिये।

३८४१) यह जीवन उन लोगों के लिये सुखांत है, जो दिमाग से काम करते है लेकिन उनके लिये दु:ख भरा है जो दिल से काम करते है।

३८४२) इस लोक में जन्म लेने वाले नित्य जीवों के लिये मरण और जन्म अनिवार्य और स्वाभाविक है। उनके लिये वैराग्य और सद्धर्माचरण को छोड कर दूसरा कोई सहारा नहीं।

३८४३) व्यक्ति की आन्तरिक चाह मृत्यु नहीं जीवन है, अज्ञान नहीं ज्ञान है, दु:ख नहीं सुख है। जीवन तथा सुख के मध्य में ज्ञान है। मृत्यु तथा दु:ख के मध्य में अज्ञान है। अज्ञान का नाश ज्ञान बिना नहीं हो सकता अत: व्यक्ति को सदा ज्ञानार्थ प्रयत्न करने चाहिये।

३८४४) गुरु शब्द किसी व्यक्ति का सूचक नहीं है वह एक बडी भारी सत्ता का द्योतक है जो सभी का आदर्श है और किसी विशेष व्यक्ति के निर्देश से काम करता है। गुरु वह सत्ता है जो आध्यात्मिक मंजिलों पर आगे बढ़ने मे सहायक होता है।

३८४५) अगर दु:ख से बहुत दु:खी होते हो और सुख से अतिशय प्रसन्न तो इसका अर्थ है कि आप ईश्वर मे विश्वास नहीं रखते। होना तो यह चाहिये जब भी सुख या दु:ख आये सदैव ईश्वर का धन्यवाद अदा करना चाहिये।

३८४६) जीवन में समय का महत्वपूर्ण स्थान है, जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण होता है। जब तक व्यक्ति निरोगी है, तब तक मृत्यु करीब नहीं आती, तभी तक वह कर्म कर सकता है कर्म भी आत्म कल्याण अथवा मोक्ष प्राप्ति सम्बन्धी।

३८४७) मुंह से निकलने वाले हर शब्द या मन में उठने वाली हर कामना पर विश्वास न करे। हम घटना को ईश्वर के अनुसार सावधानी और धीरज के साथ जांच कर के ही निर्णय करे।

३८४८) प्रार्थना ईश्वर की तरफ आधे रास्ते तक ले जाती है, उपवास हमें ईश्वर के महल के द्वार तक पहुँचा देता है और दान हमे ईश्वर के महल में प्रवेश करा देता है।

३८४९) मानव देह बडे ही सौभाग्य से मिलती है। मानव देह मिलने के पश्चात भी जो व्यक्ति अपनी बुद्धि का उपयोग करके धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष, प्राप्त करने का प्रयत्न न करे उसका जन्म निरर्थक है। वह इस संसार में बारबार मरने के लिये जन्म लेता है और जन्म लेने के लिये ही मरता है। अभिप्राय यह है कि मनुष्य के जन्म की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में से किसी एक की प्राप्ति है, जो अपनी वृद्धि से एक की प्राप्ति भी नहीं कर पाता तो उसका जन्म तो मृत्युतुल्य ही है।

३८५०) दिल की बात या भेद हर किसी को बता देने वाले मनुष्य का नाश भी जल्दी ही हो जाता है। इसलिये यदि कोई मनुष्य अपनी भलाई चाहता है तो उसे चाहिये कि वह अपने मन की हर बात हर किसी को न बताये। यही सफलता का सबसे बडा गुरु मन्त्र है। जिस मनुष्य ने इसे अपने मन मे गांठ बांध कर रख लिया है वह जीवन में अवश्य ही सफलता प्राप्त करेगा।

३८५१) अपने मन की गुप्त बात का रहस्य किसी को भी न बताओ। मन का भेद दूसरों को प्रकट कर देने से मनुष्य धोखा खाता है।

३८५२) पागल बुद्धिहीन आदमी से सदा दूर रहो। ऐसे लोग पशु समान होते है। बुरी संगत से दूर रहो। अज्ञानी को पास मत फटकने दो।

३८५३) अनेक लोग जीवन जीते है पर अपने असली उद्देश्य को भूल जाते है। वे इधर-उधर की और मामूली बातों में इतना उलझे रहते है कि वे अपने उद्देश्य पर कोई ध्यान ही नहीं देते।

३८५४) निश्छल हृदय से प्रेम करने वाला किसी भी धर्म या जाति का व्यक्ति भगवान को प्राप्त कर सकता है। भगवान केवल प्रेम के वशीभूत होते है। जो छली, कपटी, हिंसक तथा दूसरों को कष्ट पहुंचाने वाले है, वे कदापि भगवान की कृपा नहीं पा सकते। ईश्वर या खुदा के आगे इस बात से कोई महत्व नहीं है कि कोई किस मजहब या जाति का है।

३८५५) प्रतिदिन कम से कम एक अच्छा काम करने का संकल्प करो। किसी के दु:ख दर्द में सहभागी बनो। अपने धर्म के अनुसार ईश्वर को याद करते रहो। तुम्हारा कल्याण होगा।

३८५६) मौन रहने पर कलह नहीं होता। कई बार वाद विवाद से, व्यर्थ सम्भाषण से, कलह, झगडे होते है, लेकिन मौन धारण करने पर यह सब नहीं होता है।

३८५७) सतर्क रहने पर भय नहीं होता। असावधान स्थिति में ही नुकसान होने का भय सबसे अधिक होता है। जो सतत सतर्क और जागृत होता है उसे भय नहीं रहता।

३८५८) जब आदमी अपने लक्ष्य की और अग्रसर होता है उसे सत्गुरु की प्राप्ति हो जाती है वह इसी जीवन मे संसार के संकल्पों-विकल्पों को भूल कर सदा के लिये आजाद हो जाता है।

३८५९) जिस काम के लिये जो चीज बनाई गई है उस काम को वह चीज ठीक तरह से पूरा करती है तब उसे अच्छी चीज कहा जाता है। घडी जब ठीक समय बताती है तब ही उसे अच्छी मानी जाती है अन्यथा वह घडी अच्छी नहीं है, क्योकि जिस काम के लिये वह बनी थी उसे वह पूरा नहीं करती इसलिये वह खराब घडी कहलायेगी। इसी तरह इन्सान किस लिये बना है ? न धन दौलत जमा करने के लिये और न ही शक्ति का संग्रह करने, न भोग विलास के लिये और न ही मान प्रतिष्ठा के लिये। आदमी बना है अपने विधाता की प्रार्थना स्तुति, परमपिता परमेश्वर का गुण गान करने, भजन कीर्तन सत्संग के लिये। ईश्वर की वन्दना करने के लिये। मनुष्य जब ही अच्छा कहलायेगा जब वह अपने रचयिता परम पिता परमात्मा की महिमा बढ़ायेगा। कोई तस्वीर जब तक कायम रहती है तब तक अपने चित्रकार या कलाकार की शान बढ़ाती रहती है। इसी तरह से आदमी जब तक जीवित रहे तब तक उसे अवश्य ही अपने सृष्टा की महिमा बढ़ानी चाहिये।

३८६०) मीठे बोल या नम्र वाणी जैसी ताकत किसी दूसरी चीज में नही है। वे वह काम कर सकते है जो केवल ईश्वर ही कर सकता है, लोगों के कठोर और क्रुद्ध दिलों को कोमल बना सकता है।

३८६१) जितनी मेहनत हम अपनी कमी छुपाने मे या झूठा दिखावा करने मे करते है उतनी मेहनत उस कमी को दूर करने में करे तो जिन्दगी सफलता हासिल कर लेगी।

३८६२) अहंकारी व स्वार्थी वही मनुष्य होता है जिसे आत्मा का सच्चा ज्ञान नहीं होता। अहंकारी व्यक्ति कदम कदम पर शत्रु पैदा कर लेता है तथा काल्पनिक भय से आतंकित रहता है।

३८६३) अच्छे और पुनीत कार्य को तत्काल कर लेना चाहिये। उसे कल तक या आगे तक टालने की भूल कभी नहीं करनी चाहिये।

३८६४) मै प्रेमी हूं, योगी हूं, मै ज्ञानी हूं इत्यादि यह जो अलग-अलग वर्णन आप स्वीकार करते है यह दार्शनिक मत है। किसी ने योगी मान कर सन्तोष किया तो किसी ने ज्ञानी मान कर सन्तोष किया, और उसी तरह उसका नाम हो जाता है। लेकिन दार्शनिक भेद से उस अभेद तत्व परमात्मा को देखना ही सही है।

३८६५) कामना का बीज वासना है और वासना का प्रथम अंकुरित रूप कामना है। कामना का उदय मन में उतर कर संकल्प और इन्द्रियों के स्तर पर विषय भोग बन जाती है। इन सबका पुंज ही संसार कहलाता है।

३८६६) आप अपने गुण व कमजोरियों के बारे में चिन्तन करे। मुख्यत: गुणों के बारे मे जिसके कारण आप कभी सफल हुये तथा उन कमजोरियों के बारे में जिनके कारण आप असफल हुये।

३८६७) जब हम अपने चारों तरफ वालों से भी नफरत करने लगते है तो इसका कारण यह नहीं हो सकता कि वे हमारे बैर के लायक है बल्कि हमारे अपने अन्दर ही किसी विशेष गुण की कमी है जो हम उनके अन्दर खोजते है और पाने पर उन्हें दोषी ठहराते है। दूसरे लोग तो आईने की तरह है उनके अन्दर हम जो देखते है वह हमारी अपनी तस्वीर होती है। इन्सान का अपने से बढ़ कर दूसरा कोई दुश्मन नहीं होता है।

३८६८) यदि मानव का शरीर पाकर भी अपना शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक एवं आत्मिक विकास नहीं किया और उन्नति के पश्चात देश तथा धर्म की सेवा नहीं की तो वह पशुओं से भी अधिक गया गुजरा है।

३८६९) जो अपना कर्म इसी जीवन में पूरा कर लेते है उन्हे दुबारा जन्म नहीं लेना पडता। जैसे भुना हुआ बीज खेत में डालने से फिर नहीं उगता उसी तरह ज्ञान की आंच मे तपा कर्म भी अच्छी प्रकार भुन जाता है। जो व्यक्ति ज्ञान ज्योति में मोह को जला कर अपना कर्म पूरा कर लेते है उन्हे इस दुनिया में फिर आने की आवश्यकता नहीं रहती।

३८७०) उतावली और असमंजस दोनो ही साधना मार्ग के विघ्न है। यदि धैर्य और विश्वास हो तो आत्मिक प्रगति होने में देर नहीं लगती है।

३८७१) हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने अन्दर यह आदत पैदा करे कि पहले तो दूसरे लोगों के अन्दर, किसी काम में या किसी भी आन्दोलन में अच्छी बातों पर गौर करे और फिर बाद मे दूसरे दर्जे पर उनकी कमजोरियों और दोषों पर विश्लेषण करे। इस सिद्धान्त का पालन करने से आदमी निंदक होने से बच सकता है। अगर दोष देखने पर आपको खुशी होती है तो गुण या पूर्णता दिखने पर रंज होगा।

३८७२) सब कुछ सदा ही, सबसे इस संसार में अच्छी भाति किये गये पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जो जिस पदार्थ को पाने की इच्छा रखता है और उसे प्राप्त करने के लिये क्रमश: यत्न करता है तो वह उसको अवश्य प्राप्त कर लेता है। यह इच्छा रहित पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता।

३८७३) मधुर वाणी, नियमयुक्त व्यवहार व सबको कुछ न कुछ देना, सेवा, परोपकार में तत्पर रहना, जिनके जीवन में ये गुण है वे परमात्मा की प्राप्ति के स्वत: अधिकारी बनते है।

३८७४) जो भक्त साधना करते करते भगवान के साक्षात्कार के लिये व्याकुल होकर रोने लगता है, तडफने लगता है तो प्रभु उसे स्वत: दर्शन देने के लिये लालायित हो उठते है।

३८७५) गुरु की अपने शिष्यों से यही इच्छा रहती है कि वह अपने जीवन को मानवता, राष्ट्रप्रेम, दया, क्षमा व प्रगतिशील बनाये जिससे जीवन में हमेशा सफलता हासिल कर सके वह साथ ही साथ गुरु का नाम रोशन कर देश को एक नई दिशा दे।

३८७६) शिक्षकों से शिष्य अपेक्षा रखते है कि वह अपने छात्रों मे, शिष्यों में अपने देश की परम्पराओं, रीति रिवाज को अपनाने का बढावा दे, साथ ही साथ शिष्य गुरु के सम्बन्ध को और मधुर बनाने में एक कडी का काम करे।

३८७७) लोग जो कुछ भी कहते है उससे डरने की आवश्यकता नहीं है। उनका अस्तित्व केवल तुम्हारे भय मे ही है। वास्तव में तुम क्या करते हो उसी का अर्थ है, वे जो कुछ कहते है उसका कोई अर्थ नहीं है।

३८७८) किसी की निन्दा करना अपनी प्रशंसा करने का ही एक ढंग है। हमने किसी के बारे में बुरा कहा कि इसका अर्थ है हम यह बताना चाहते है उसकी अपेक्षा हम अच्छे है। यह एक प्रकार से हीन भावना का सूचक है। जो हीन भावना से जितना ग्रस्त होगा वह दूसरों की उतनी ही निन्दा करके परोक्ष रूप से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न करेगा।

३८७९) जब मनुष्य शरीर के द्वारा परमात्मा का नित्य आनन्द प्राप्त किया जा सकता है, तो विषयों के मिथ्या सुख भोगने मे क्यों समय नष्ट किया जावे। बुद्धिमान पुरुष पूर्णत्व प्राप्ति से ही सन्तुष्ट होता है। वास्तविक शुद्ध, दिव्य, पूर्ण आनन्द केवल आत्मानुभूति के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

३८८०) प्रेम का व्यवहार, आध्यात्मिक जीवन की सम्पदा-बुद्धिमता, प्रसन्नता, शान्ति, शालीनता को आपकी झोली में डाल देगा।

३८८१) जो परमात्मा का सहारा लेकर परिश्रम करते-करते अपने लक्ष्य की और बढ़ता है वह कभी थकावट य निराशा महसूस नहीं करता।

३८८२) निद्रा, आलस्य, प्रमाद, दुराचार, विषयासक्ति ये सब मनुष्यता को नष्ट करने वाले दुर्गुण है। इनसे ग्रसित व्यक्ति मानवोचित कर्तव्यों से वंचित हो जाता है।

३८८३) पुन: पुन: प्रयत्न करने का ही नाम अभ्यास है। पहले बताई गई बाते फिर से याद करना, दोहराना, रटना इसे ही अभ्यास कहते है इसे दीर्घकाल और निरन्तर यह क्रिया करना भी अभ्यास है। अभ्यास की दो कसौटियां है। परीक्षा में अच्छे अंक पाने हेतु, योगी को सिद्धि प्राप्त करने हेतु, क्रिकेट के मैदान पर शतक बनाने वाले के लिये, दीर्घकाल और निरन्तर अभ्यास करना आवश्यक है। ईश्वर प्राप्ति करने वाले भक्त भी इसी प्रकार ईश्वर की भक्ति करते है। ऐसी कृतियों को अभ्यास कहते है।

३८८४) मन्दिर के भीतर जाते समय, शुभ कार्य के लिये जाते समय, घर में प्रवेश करते समय, बिस्तर को प्रात: त्यागते समय सदैव भूमि पर पहले दायां पांव रखे। लेकिन श्मशान में जाते समय बायां पांव पहले रखना चाहिये।

३८८५) बोलने से पहले विचारो, बोल कर मत विचारो। करने से पहले सोचो। करके मत सोचो। खुद को जीतो, दुनिया को नहीं।

३८८६) देवताओं को जिसका सर्वनाश करना होता है व उसके पीछे डंडा लेकर नहीं दौडते बल्कि उसकी बुद्धि का हरण कर नाश कर देता है। अपनी विकृत बुद्धि होने पर वह अपना सर्वनाश खुद ही कर लेता है। कहते हैं "विनाश काले विपरीत बुद्धि"। "जाको प्रभु दारूण दु:ख देई, बाकी मति पहिले हर लेई"।

३८८७) "हानि लाभ, जीवन मरण, यश अपयश विधिहाथ"। जय पराजय, प्रसिद्धि, बदनामी यह सब के सब भाग्य के अधीन है।

३८८८) वंश गुणवान पुत्र से ही ऊंचा उठता है। इसलिये गुण हीन अनेक पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणवान पुत्र होना अत्यधिक अच्छा है।

३८८९) कुछ दे कर कुछ लेना तो सौदा है। कुछ पाने की आशा किये बिना देना ही सेवा व त्याग है। यही हमारे जीवन का उद्देश्य है।

३८९०) हमारे पास सुगन्ध है, मधुरता है, मुस्कराहट है, कोमलता है और यह सब बांट कर ही हम जन जन का स्नेह और प्यार पाते है। यही हमारे जीवन की सार्थकता है।

३८९१) गुरु ज्ञान से निकला प्रकाश पुंज जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण और व्यक्तित्व के विकास की राह को रोशन करता है।

३८९२) बल का अहंकार, तपस्या का अहंकार, धन का अहंकार, ज्ञान इत्यादि का अहंकार मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है।

३८९३) सच्चे साधु सन्त फकीर मिलने अत्यन्त दुर्लभ है और दृढ़ता में उनका हाथ पकडनेवाले भी दुर्लभ है। जिन्होने ऐसे फकीरों का हाथ पकड लिया वे निहाल हो गये है।

३८९४) जो पुत्र पिता की आज्ञा के बिना ही उनका अभिष्ट कार्य सम्पादित कर दे वह उत्तम पुत्र है। जो पुत्र पिता के कहने पर कर दे वह मध्यम श्रेणी का होता है और जो कहने पर भी नहीं करे वो अधम श्रेणी का है मात्र विष्ठा ही है।

३८९५) जो मनुष्य अपने पिता के वचनों का उल्लंघन कर स्वेच्छापूर्वक वर्तन करता है वह जीता हुआ भी मृतक के समान है और शरीर छोडने पर नरक की प्राप्ति करता है।

३८९६) प्रेम में भारी शक्ति होती है। प्रेम से किसी को भी अपना बनाया जा सकता है। यहां तक कि परम शत्रु भी प्रेम के बन्धन में बंधकर परम मित्र बन जाता है।

३८९७) अपनी ही बात अपनी रीतिरिवाज व अपनी मान्यता ही सच है और बाकी लोग मूर्ख है, गलत है ऐसा माननेवाला व्यक्ति अनुदार होता है। कौआ केवल कूडेदान में गंदगी देखता है या गिद्ध को मृत जानवर का शव दिखता है। वैसे अनुदार प्रकृति का लक्षण है बुरी बातों को ही स्वीकारना। अपने लाभ के लिये दुनिया में विनाश हो तो भी ऐसे लोगों को परवाह नहीं होती। वे केवल अपनी सुख

सुविधा का विचार करते है। वे लोग हर्ष, दुराग्रही, अहंकारी, स्वार्थी एवं संकुचित भावनावाले होते है। धन या सत्ता आने पर इनका प्रभाव और बढता है। परिणामतया कईयों के शाप और हाय लग कर वे अपने पाप कर्म के कारण नष्ट हो जाते है।

३८९८) इस संसार में उत्पन्न व्यक्ति को इस भूलोक के सुख उठाते हुये अपना परलोक सुधारने के लिये धर्म कर्म में लिप्त रहना चाहिये। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

३८९९) व्यक्ति कर्त्तव्य और अकर्तव्य की उपेक्षा कर परिणाम रूप में दु:खी होता है। यह कर्त्तव्य हीनता मनुष्य को अकर्मण्य, आलसी बनाती है। कर्तव्यहीन मनुष्य कही नहीं पहुंच सकता।

३९००) किसी को कठोर वचन न कहना और दुष्ट जनों से दूर रहना इनका पालन करने से व्यक्ति लोक मे सबकी प्रशंसा का पात्र बनता है।

३९०१) सर्वप्रथम अपने आपको अच्छे मार्ग पर प्रशस्त करो बाद में औरों को उपदेश करो। ऐसा करने से बुद्धिमान व्यक्तियों को कष्ट नहीं होता।

३९०२) बाण को लुहार नुकीला बनाता है, लकडी को बढई आकार देता है, उसी तरह अच्छी तरह से व्रत पालन करने वाला मनुष्य स्वयं पर नियन्त्रण कर प्रगति के मार्गपर बढ सकता है।

३९०३) अहंभाव के कारण हम अपने को बहुत ऊंचा और उठा हुआ, बहुत समर्थ और शक्तिशाली समझने लगते है। इस गलत धारणा से दूसरे अनेक नैतिक दोष पैदा होने लगते है।

३९०४) जीवन व्यवहार में शान्ति और अहिंसा के लिये विनम्रता और सहिष्णुता का एक विशिष्ट तत्व है। ऐसे तत्व मन-मस्तिष्क को तथा विचार और विकास को आधार देते है इसके लिये सदा विवेक की आवश्यकता रहती है। जीवन में अहिंसा का प्रवेश अपेक्षित है जहाँ अहंकार और क्रोध है वहाँ अहिंसा और शान्ति का साम्राज्य नहीं हो सकता, अहम् पर जब चोट होती है तो बडे से बडा ज्ञानी व्यक्ति भी अकरणीय कार्य कर लेता है।

३९०५) अनर्थ - अतिनिद्रा :- शरीर के लिये आवश्यक निद्रा श्रेयस्कर है लेकिन अतिनिद्रा शरीर और लौकिक जीवन के लिये घातक होती है। **आलस :-** संसार में यदि आलस न होता तो सभी लोग सुखी और सम्पन्न होते। आलस मनुष्य का सबसे बडा शत्रु है। **भय :-** जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेकों प्रकार के भय अनर्थ को आमंत्रण देने के प्रकार है। **क्रोध :-** एक सीमा तक हो तो ठीक है। अकारण, क्रोध करनेवाले लोग व्यर्थ की शत्रुता मोल लेते है। **मृदुता :-** मनुष्य का स्वभाव सरल नम्र और मृदु हो पर इतना भी नहीं कि उससे लोग गैरफायदा उठाने लगे। **गप्पे हाँकना :-** तिल का ताड बना कर बोलने वाले की समाज में इज्जत कम हो जाती है।

३९०६) पर उपकार की भावना से मनुष्य का अन्त:करण पवित्रता की ओर अग्रसर होता है। परोपकार किसी स्वार्थवश करने से उसका महत्व ही समाप्त हो जाता है।

३९०७) हम धन के लिये खून-पसीना एक कर देते हैं, स्त्री-पुत्र आदि के लिये धर्म तक को छोड देते है। मान बडाई के लिये भाति भाति के ढ़ोंग करते है। उनकी प्राप्ति के लिये मन व्याकुल रहता है, यहां तक की खाना-पीना भी भूल जाते है, अपमान सहते है, खुशामदे व मिन्नतें करते रहते है परन्तु उस परमात्मा के लिये हम क्या करते हैं ? जो हमारा परम धन है। क्या कभी उसके लिये हमने सच्चे मन से एक भी आंसू बहाये है ? हमारी आखों में बहुत बार आंसू बहे है लेकिन वह बहते है संसारी पदार्थों तथा सम्बधियों के लिये, ईश्वर के लिये नहीं।

३९०८) इस जगत में दैव सबसे बडा बलवान है उसकी आज्ञा सबपर अनुशासित है वही सबको सुख दु:ख से संयुक्त करता है।

३९०९) पिता की सेवा करना कल्याण की प्राप्ति का जैसा प्रबल साधन है वैसा न सत्य है, न दान है न मान है और न ही पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञ ही है। गुरु जनों की सेवा का अनुसरण करने से स्वर्ग धन धान्य विद्या, पुत्र और सुख कुछ भी दुर्लभ नहीं है। माता पिता की सेवा में रहकर महात्मा पुरुष देवलोक, गन्धर्व लोक, ब्रह्मलोक, गोलोक तथा अन्य लोकों को भी प्राप्त कर लेते हैं।

३९१०) धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है धर्म से सुख का उदय होता है और धर्म से ही मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इस संसार में धर्म ही सार है।

३९११) विपत्ति में मित्र के समान रिश्तेदार कभी भी सहायक नहीं हो सकता। गणना करने पर गुणवान हो या गुणहीन, मित्र ही सहायक होता है।

३९१२) मन से उपकार को भूलानेवाला, प्रतिज्ञा भंग करनेवाला, न्यायानुकूल व नीति से अपने मित्र का कार्य न करनेवाला मानव अधम है।

३९१३) सुख और धर्म का नाश करने वाले दुर्व्यसन को छोड देना चाहिये व सुख और कीर्ति को सम्पन्न करने वाले सुरुचिर धर्म को नीतिज्ञ होकर ग्रहण करना चाहिये।

३९१४) जिसके विचार अधोगामी और आचरण निकृष्ट श्रेणी का होने लगे तो उसके दुर्दिन समीप है। श्रेष्ठ गुणों को अपनाने के लिये अपने को सुधारने का जो प्रयत्न करते है तो समझना चाहिये कि उनका भविष्य जल्द ही उज्ज्वल होगा।

३९१५) जीवन की हरेक घटना में किसी न किसी रूप से आपको लाभ ही होता है। परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से होनेवाले लाभ के बारे में ही सदैव सोचना चाहिये।

३९१६) हम अनावश्यक संग्रह करने की प्रवृति से बचे। संग्रह प्रवृति में आसक्ति होना ही सकाम प्रवृति को अपनाना है जो अहंकार जनित है, अहंकार का ही धर्म संग्रह करना है।

३९१७) त्याग का अर्थ स्त्री, परिजन को त्याग कर वन में चले जाना नहीं है, सच्चे त्याग का अर्थ है संसार में अनासक्त होकर रहना।

३९१८) ईर्ष्या मत करो पर ईश्वर का चिन्तन करो। ईर्ष्या करने से मन जलता है परन्तु ईश्वर चिन्तन से मन असीम शान्ति व शीतलता का अनुभव करता है।

३९१९) जिसे हम भाग्य की कृपा समझते है वह और कुछ नहीं वास्तव में हमारी सूझ बूझ और कठिन परिश्रम का फल है।

३९२०) तुम्हारा क्या गया जो तुम व्यर्थ में रोते हो, तुम लाये क्या थे जो तुमने खो दिया। खाली हाथ आये हो और खाली हाथ जावोगे।

३९२१) अन्याय और अत्याचार को सहन करनेवाला जीव पथभ्रष्ट कहलाता है। मृत्यु तो निश्चित है, इसलिये कर्तव्य पालन करते मर जाना मानव का सही धर्म है।

३९२२) जल्दबाजी व्यक्ति को संकट में फंसाती है। अनेक काम एक ही समय में वह भी जल्दबाजी में करने का प्रयास किया गया तो हानि हो सकती है।

३९२३) आयु का कोई भरोसा नहीं। महत्वपूर्ण काम कल की बजाय आज ही करलो क्योंकि कल हो न हो। जो आज है सो आज है।

३९२४) सुखी व सन्तुष्ट जीवन का रहस्य है कि आपके पास जो है उसी में सन्तोष रखे जो आपके पास नहीं है उसके पीछे न दौडे। पडोसी के पास जो है उस पर नजर न रखे। जो भी आपके पास है उसका प्रसन्नता से उपभोग करे।

३९२५) तलवार की ताकत धार में, वस्त्र की ताकत सूत्र में, शूरवीर की शक्ति युद्ध में तथा मनुष्य की ताकत प्रेम में होती है।

३९२६) आत्म बल सफलता की सबसे बडी कुंजी है। जिनके पास आत्मबल है भाग्यलक्ष्मी उनका सिर झुका कर स्वागत करती है।

३९२७) वासनाओं के वशीभूत होना सबसे बडा पाप है। अपनी परिस्थितियों से असन्तुष्ट रहने से बढ़कर कोई विपत्ति नहीं होती। परिग्रह से बढ़कर कोई दोष नहीं होता। इसलिये आत्मसन्तोष ही सर्वश्रेष्ठ और सार्थक है।

३९२८) जो बलवान होते हुये अपनी दुर्बलता में सन्तोष करता है वह मनुष्यों का प्रशंसा पात्र और आकर्षण का केन्द्र बन जाता है।

३९२९) जो पंजे के बल खडा होना चाहता हो वह ठीक से खडा नहीं हो सकता। जो अपने दोनों पैर फैला देता है वह यश नहीं प्राप्त कर सकता। अहंकारी मनुष्य में गुण नहीं पनप सकते। जो अपने को सबसे उपर समझता है वह ऊपर नहीं उठ सकता।

३९३०) जो विनम्र होता है वह अपने को पूर्ण सुरक्षित रख सकता है। जो झुकना जानता है वही तनकर खडा हो सकता है। जो सब कुछ त्याग करने की इच्छा रखता है वह पूर्णकाम है। जो जर्जर हो जाता है वही नवजीवन प्राप्त कर सकता है।

३९३१) रूप वैभव लावण्य प्रेम नहीं काम है, ये जीवनदान नहीं आत्म विनाश है। इससे जीवन में वास्तविक श्रेय का उदय नहीं हो सकता।

३९३२) यश, कीर्ति, लोकेषणा, प्रतिष्ठा, प्रशंसा, बडाई तथा पूजा आदि के पचडे में पडने से अहंकार उभरता है इसलिये मान बडाई से बचना ही श्रेयस्कर है।

३९३३) विष उसे ही मारता है जो उसका पान करता है, शस्त्र से वही मरता है जिस पर उसका प्रहार होता है पर गुप्त भेद या गुप्त मन्त्रणा प्रकट होने पर समूचे राष्ट्र और प्रजा का विनाश सम्भव है।

३९३४) सन्मार्ग से कमाया हुआ धन पात्र व्यक्तियों को दान करने से अर्जित पुण्य और जन सेवा दोनों प्राप्त होते है। बुरे मार्ग से

कमाया धन बुरे कारणों में उपयोग में आता है और उससे पाप कर्म ही उत्पन्न होते है।

३९३५) निद्रा, आलस्य, प्रमाद, दुराचार, विषयासक्ति ये सब मनुष्यता को नष्ट करने वाले दुर्गुण है। इनसे ग्रसित व्यक्ति मानवोचित कर्तव्यों से वंचित रह जाता है।

३९३६) ज्ञान और विद्या अनपढ से भी हासिल होती है। छोटे-बडे, अमीर-गरीब किसीसे भी ये हासिल हो तो अवश्य उससे हासिल करो।

३९३७) ईर्ष्या मत करो बल्कि ईश्वर का चिन्तन करो। ईर्ष्या करने से मन जलता है जबकि ईश्वर चिन्तन करने से मन असीम शीतलता का अनुभव करता है।

३९३८) केवल किसी को चोट पहुंचाना या किसी की जान ले लेना ही हिंसा नहीं है। किसी को अपशब्द कहना या उसकी भावनाओं को ठेस पहुंचाना भी हिंसा ही है। ईर्ष्यावश किसी के अशुभ की कामना करना भी हिंसा ही है। हमे हर प्रकार कि हिंसाओं से बचना चाहिये। हिंसा हमे ईश्वर से दूर ले जाती है।

३९३९) जो व्यक्ति अपनी आत्मीयता का विस्तार कर लेता है, दूसरों मे अपना रूप देख सकता है और उन्हें अपना बना सकता है, वही व्यक्ति आनन्द पा सकता है।

३९४०) जो व्यक्ति मनन, विवेक पूर्ण, कर्माणी क्रियाओं को जोडता है, जिस व्यक्ति का चलन ज्ञान पर आधारित है, जो समझकर तौल कर बोलता है और सोचकर कदम उठाता है वही मनुष्य कहलाने योग्य है।

३९४१) जो व्यक्ति परमपिता परमेश्वर मे ही जड चेतन, सुख-दु:ख और लाभ हानि का दर्शन करते है ऐसा दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति दूसरों की स्त्रियों को माता समान, किसी अन्य के धन को मिट्टी के समान और हर प्राणी को अपने समान देखते है व समझते है। ऐसे ही व्यक्ति महान कहलाने योग्य है।

३९४२) किसी की तारीफ न कर सको तो कोई बात नही लेकिन किसी की बुराई मत करो। सीधी और साफ बात करने से नुकसान नही बल्कि फायदा बहुत अधिक है।

३९४३) नर्मी में आसानी है- नर्मी से जो चीज आसानी से मिलती है वह सख्ती करने से नहीं मिलती। नर्मी से इंसान में खूबसूरती पैदा होती है। सख्ती बुरी चीज है। जो नर्मी से खाली रहा वह भलाई से भी खाली रह गया।

३९४४) पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण नहीं करें, पश्चिम में जाकर जो सूरज भी डूब जाता है। पाप और पारा कोई पचा नहीं सकता- ये बाहर फूटते ही है।

३९४५) धैर्य परीक्षण के सौपान: प्रलोभन, पराजय, परीक्षा व देह पीड़ा- अगर इन चार परिस्थितियों में जीव का धैर्य बना रहता है तो वह धैर्यवान है।

३९४६) किसी से लडाई झगडा करने मे उलझा रहे यह आदत अच्छी नही है। जो दिमाग भली और नेक बाते सोचे वही सबसे अच्छा है और जो दिमाग दूसरों की बर्बादी की योजनाये बनाने मे रहे वो तो सबसे बुरा है।

३९४७) जो शख्स अकेले मे हमारे ऐब (दोष) और कमजोरियों का बखान करे वह सचमुच मे हमारा हितैषी है, उसे अपना भला सोचने वाला जानो।

३९४८) जो पुरुष अपने को न चाहने वाले से प्रीति रखता है और चाहने वालों से ईर्ष्या करता है, बलवानों से द्वेष रखता है लोग उसे मूर्ख कहते है।

३९४९) जो पुरुष अत्यधिक धन सम्पत्ति विद्या अथवा ऐश्वर्य प्राप्त करने के बाद भी उदंड न होकर नम्रता पूर्ण व्यवहार करते है वही पंडित कहलाते है।

३९५०) तन और मन की दूरी ही पाप है, दु:ख है। पाप को अपने मन से दूर रखते हो इसलिये दु:खी होना पडता है। दु:ख को अपनाने पर दु:ख की बुराई परेशान नही करती।

३९५१) जल का स्वाभाविक गुण है शीतल रहना। आग या धूप के संयोग से वह गरम हो जाता है किन्तु उनका संयोग हटते ही वह तुरन्त ठंडा हो जाता है।

३९५२) दुष्ट व्यक्ति ज्ञान से स्वार्थ सिद्ध करता है, दूसरों को धोखा देता है लेकिन शिष्ट व्यक्ति ज्ञान से परामार्थ सिद्ध कर दूसरों का कल्याण करता है। ज्ञान वृद्धि, से मूर्ख व्यक्ति अहंकारी बन जाता है लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति ज्ञान से नम्र और विनीत हो जाता है।

३९५३) वह राजा नष्ट हो जाता है जो गुप्तचर, कोश, मन्त्रियों और सेना को अपने वश में नहीं रखता और जो शत्रु की ओर से उदासीन रहता है।

३९५४) अप्रिय सत्य बोलने और सुन लेने वाले संसार मे बहुत कम मिलते है लेकिन सब बातों का समर्थन करने वाले चाटुकार बहुत है।

३९५५) मरणासन्न व्यक्ति को हित की बात सुहाती नही है। जीव सब संसार का मोह त्यागे बिना उस परात्पर प्रभु के सन्मुख नही हो पाता है।

३९५६) जो कोई भी सम्यक सम्मान न देता हो, जो उपदेश के अनुकूल परिस्थिति का ध्यान न रखता हो ऐसे दुर्विनीत एवं प्रमत्त जिज्ञासु का परित्याग कर देना चाहिये, यह शास्त्र की मर्यादा है।

३९५७) शत्रु को सामान्य मान कर उसकी उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिये। किन्तु अपने को सचिन्त दिखला कर अपने अनुयायियों में भय के प्रवेश को अवसर नहीं देना चाहिये।

३९५८) जीवन के कोई महत्वपूर्ण कार्य करने की महत्वकांक्षा हो तो उसे सब सामान्य कार्य छोड़कर पूर्ण कर लेना चाहिये। उसे कल पर टालते रहने से वह कभी भी पूर्ण नही होगा।

३९५९) सृष्टि में कही ऐसा नहीं है जिससे कभी कोई अपराध न होता हो। पापी हो या पुण्यात्मा, चाहे मार देने योग्य ही हो, श्रेष्ठ पुरुष सबके साथ करूणा का ही व्यवहार करते है। पापी के साथ भी बुराई करना उचित नही है।

३९६०) सत्पुरुष मानवों और देवताओं में ही होंगे और असुरों में सदा अधर्मी ही होंगे ऐसी मान्यता या कोई नियम नहीं है। असुरों मे भी दानवेन्द्र, मय, दैत्येन्द्र, प्रहल्लाद, विरोचन, बलि, बाणासुर जैसे भगवत महापुरुष हुये है। ऐसे ही महात्माओं मे धर्म पुरुषार्थी महाप्राण दानव गय हुये।

३९६१) धर्म के लिये धर्म धर्माचरण का फल अर्थ अथवा भोग नही है न ही स्वर्गादि लोक और मोक्ष है। केवल धर्माचरण इसलिये कि वह प्रिय लगता है और वैसा करना स्वभाव बन गया है। ऐसे धन्य व्यक्ति धर्म पुरुषार्थी है जो अत्यल्प हुये है संसार मे। धर्म को भी पुरुषार्थ पुरुष का परम प्राप्य माना गया है।

३९६२) अर्थ पुरुषार्थी संसार मे सदा से होते रहे है। भोग अर्थात काम पुरुषार्थी तो सभी प्राणी है। इन्द्रियों का भोग तो सबको प्रिय है और इसी की प्राप्ति को अपना लक्ष्य मानते है। किन्तु ऐसे भी लोग समाज मे सब कही कुछ न कुछ मिलते ही है जो धन के लिये धन चाहते है। जिनका उपार्जन एवं संग्रह न दान के लिये है और न ही स्वजनों के काम आता है। न स्वयं उसका उपभोग करते है। लेकिन अर्थ जैसे भी आवे उसमे निरन्तर लगे रहते है। ये अर्थ पुरुषार्थी लोग होते है।

३९६३) मनुष्य बहुत समय तक केवल आन्तरिक शक्ति के आधार पर संयमित रह सकता है, यदि वह एकान्त सेवी हो अथवा परमार्थ कामी हो किन्तु अर्थ, धर्म, काम मे लगे लोगों से स्वत: मर्यादापालन की सम्भावना बहुत काल तक नही करनी चाहिये। उनको नियन्त्रण मे रखना आवश्यक है तभी नियन्त्रक शासक सफल होता है, जिसकी शक्ति से सभी भय भी माने और जिसके स्नेह तथा सेवा के कारण उस पर लोग श्रद्धा भी करे।

३९६४) कर्म से ही स्वर्ग प्राप्त होता है। कर्म से ही इस लोक मे धन, धान्य, स्त्री पुत्र मिलते है। सौ अश्वमेघ यज्ञ करने पर ही इन्द्र स्वर्गपति बना। ब्रह्मा को भी सृष्टि कर्ता पद कर्म करने से ही मिला है।

३९६५) अतिथि पूरे देश मे साक्षान्नारायण ही माना जाता है। गृहस्थ दैनिक आराधना में आराध्य से प्रार्थना करता है कि उसे अतिथि प्राप्त हो। अत: अपरिग्रही व्यक्ति के लिये कही की यात्रा मे कोई कठिनाई नही होती है।

३९६६) ज्ञानशून्य लोग ही दूसरों के गुणोंमें भी दोष देखते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष ऐसा नहीं करते। जो दूसरों के थोड़े से गुणोंको भी बहुत बड़े रूपमें देखना चाहते हैं वे ही सर्वश्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं।

३९६७) सच्चा प्रेम करनेवाला कभी निन्दासे नहीं डरता। जो महापुरुषों या बडोंकी निन्दा करते हैं, केवल वे ही पापके भागी नहीं होते, अपितु निन्दा सुननेवाले भी पापके सहभागी होते हैं।

३९६८) जहाँ व्यक्ति अकेला होता है वहां न कोई शब्द होता है, न कोई झंझट होता है, न कोई कलह होता है, न कोई संघर्ष होता है, कुछ भी नहीं होता। दूसरा मिलते ही सारी बातें शुरू हो जाती हैं। दो में सारी समस्याएं पैदा हो जाती हैं, यह एक सच्चाई है

३९६९) विषय भोग संसार के महाभोग हैं। विषयों की खोज में दुख है। उनकी प्राप्ति होने पर तृप्ति नहीं होती। उनका वियोग होने पर शोक होना निश्चित है।

३९७०) विवेक क्या है- विवेक का अर्थ है- सत्य क्या है, मिथ्या क्या है, शास्वत क्या है, नश्वर क्या है, यह बात ठीक से समझकर अपने जीवन में ढाल लें। एकमात्र परमात्मा सत्य है। शेष सब जो कुछ भी है सो पुत्र, परिवार, भवन, दुकान, मित्र, संबंधी, अपने, पराये आदि।

३९७१) हर इन्सान को अपना आंकलन करना चाहिये। कुछ वक्त के बाद इन्सान बीच बीच मे रूक कर अपनी जांच खुद करे कि वह कहां सही है और कहां गलत इसका अनुमान लगाकर ही अगला कदम बढाये।

३९७२) थोडी सी सुविधा है सुख। जन्म पीडा है, मृत्यु पीडा है। इसी बीच का जीवन भी दु:ख मे डोलता रहता है। कुछ अनुकूल घटनाये घटती है तो मनुष्य उसी को सुख मान लेता है पर सिवाय दु:ख के जीवन मे सुख जैसा कुछ होता ही नही है।

३९७३) जल्दबाजी और असंमजस ये दोनों ही साधना मार्ग के बडे विघ्न है, यदि धैर्य और विश्वास से काम लिया जाये तो आत्मिक प्रगति मे देर नही लगती है।

३९७४) बच्चों को नायक और नायिकाएं बनाइए। छोटे कार्यों के लिए उनकी पीठ थपथपाइए। किसी भी व्यक्ति के तीन नाम होते हैं। एक जो व्यक्ति को विरासत में मिलता है, दूसरा जो उसके माता-पिता रखते हैं, तीसरा जो वह खुद कमाता है।

३९७५) उपधा (तृष्णा) ही समस्त रोगों या दु:खों का कारण है। अत: सब प्रकार की तृष्णाओं का त्याग करना ही संपूर्ण दु:खों का नाश करना है। जिस प्रकार से रेशम का कीड़ा अपनी मृत्यु के कारणस्वरूप रेशम के जाल का स्वयं निर्माण करता है और अंत में दुख को प्राप्त करता है, उसी तरह मूर्ख लोग स्वयं तृष्णा करते हैं और दुख भोगते हैं।

३९७६) विवेक मनुष्य के लिए बड़ा भारी अवलंब है। मनुष्य का मन स्वाभाविक धर्म के विरुद्ध जब कभी चलने लगता है, तब विवेक ही उसका मार्गदर्शन करता है।

३९७७) भय को दूर भगाने के लिए ज्ञान व विवेक की प्राप्ति ही एकमात्र उपाय है। शांति का चुम्बक बन जाइये ताकि आप अपनी ओर आकर्षित होने वाली अशांत आत्माओं को शांति प्रदान कर सकें।

३९७८) अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत को सम्पत्ति। इन दोनों बातों को जिसने समझ लिया वही शांतिमय जीवन बिताता है।

३९७९) गृहस्थ मे अगर यह भाव रहे कि मेरे को सुख कैसे मिले तो आपके कारण सब दु:खी हो जायेंगे और यह भाव से आप रहो कि दूसरे को सुख कैसे मिले तो सब सुखी हो जायेंगे।

३९८०) आत्मबल सफलता की सबसे महत्वपूर्ण कुंजी है। जिनके पास आत्मबल है भाग्यलक्ष्मी उनका सिर झुकाकर स्वागत करती हैं।

३९८१) जब दूसरे गल्तियां करते हैं तो उनको गिनते न रहिए। उनका विश्वास जीतिए ताकि आप कमजोरी को मिटाने में सहयोग दें सकें। गलत फहमी प्रेमपूर्ण व शुद्ध विचारों से तथा समुचित समय पर सही ज्ञान देकर दूर की जा सकती है।

३९८२) ज्ञान की बहुत-सी परिभाषाएं की गई हैं। वास्तविक ज्ञान के स्वरूप के बारे में अनेक मत हैं, लेकिन सत्य सिर्फ इतना है कि जो जैसा है, उसकी वैसी ही अनुभूति ज्ञान है। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य ही ज्ञान है।

३९८३) जमा करने की भूख होना बुरी बात है। अपने समय को सर्वोत्तम ढंग से प्रयोग करने के लिए बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है। इसलिए धैर्यता, नम्रता और सहनशक्ति धारण करो।

३९८४) अगर आप सदा स्वयं की दूसरों के साथ तुलना करते रहते हैं तो आप अवश्य ही या तो अहंकार के अथवा ईर्ष्या के शिकार हो जाएंगे।

३९८५) किसी की आदतों या बुरे बर्ताव की वजह से आसपास का माहौल खराब हो जाता है। अच्छा बर्ताव माहौल को अच्छा रखने और जिन्दगी मे खुशियों और चैन अमन के लिये जरूरी है।

३९८६) हमारे सभी कर्मों के जिम्मेदार हम स्वयं है दूसरा कोई नही। कर्तव्य का पालन करना कर्म है। निष्काम भाव से कर्तव्य

करना कर्म योग हो जाता है।

३९८७) जब तक वासना है तब तक संसार का बन्धन है। लौकिक सुखों की वासनाओं से उपर उठना ही दृढ़ वैराग्य है। वासना मिटाने के लिये उपासना करना जरूरी है।

३९८८) नाशवान को महत्व देना ही बन्धन है। संसार बन्धन से मुक्त होना हो तो प्राप्त वस्तुओं मे ममता का और अप्राप्त वस्तुओं की कामना का त्याग कर दो।

३९८९) प्रेम उसे कहते है जिसमे प्यार और तृप्ति दोनो बनी रहती है। प्रेम मे तत्सुख का ही चिन्तन होता है। वासना अपने सुख का विचार करती है। प्रेम भक्ति ही विरागी को रागी बना देता है। प्रेम ही प्रभु को प्रकट करने मे समर्थ है। प्रेम मे स्मृति सदैव बनी रहती है।

३९९०) सभी सम्प्रदाय के आचार्यों ने अच्छी बाते बताई है। इतने सारे सम्प्रदाय है अर्थात इतने सारे रास्ते है हमारे पास एक ही लक्ष्य तक पहुंचने के लिये। यह तो हमारी स्मृधियां है।

३९९१) भलाई करने की उतनी आवश्यकता नही है जितनी बुराई का त्याग करने की आवश्यकता है, बुराई का त्याग करने से भलाई अपने आप हो जायेगी, भलाई करनी नही पडेगी।

३९९२) भगवान का विश्वास भगवान से भी बडा है क्योकि जो भगवान सदा सर्वदा जब जगह रहते हुये भी नही मिलते वे विश्वास से मिल जाते है। भगवान से विमुख होते ही जीव अनाथ हो जाता है। भगवान मे अपनापन सबसे सुगम और श्रेष्ठ साधन है।

३९९३) ब्राह्मण से चोरी करके लिया हुआ धन, धर्म का चोरी किया हुआ धन, इस प्रकार का धन जहर पहचाने से भी अधिक पातक व कठिन है।

३९९४) सन्त तो नदी की भांति बहते है, जो उनकी सत्संग की सरिता मे स्नान कर ले उसका कल्याण अवश्य होता है। जीवन के अन्तिम श्वास तक सत्संग, भजन कीर्तन, सत्कर्म करते रहना चाहिये।

३९९५) तीर्थयात्रा का महत्वपूर्ण कोई अंग है तो सत्संग। अन्यत्र किये हुय पाप तीर्थ मे जाने से नष्ट हो जाते है। तीर्थ मे जाकर भी पाप करने से तीर्थ करने का कोई उपयोग नही।

३९९६) मनुष्य के जीवन मे विषाद है क्योकि वह अपने स्वरूप को नही जानता। जीवन मे कष्ट क्यो है ? विवेक के अनादर के कारण या तो विवेक है ही नही।

३९९७) आत्मा श्लाघा मृत्यु के समान है। जिजिविषा जितनी प्रबल होती है मृत्यु उतनी ही तकलीफ दायक होती है। मृत्यु से डरो नही, लेकिन मृत्यु को भूलो भी नही। मै मै जो करता है वह तो मरता है। देह तो पतनशील है, मरणाधर्म है। मेरा मेरा करेगा तो मरेगा, तेरा तेरा कहेगा तो तैरेगा।

३९९८) जिसमे मोह होता है उसके दुर्गुण भी हमे सदगुण दिखाई देते है। मोह का स्वभाव है वे दुर्गुण को भी सदगुण ही दिखाते है। कीर्ति तो एक कैदखाना है।

३९९९) सन्तो के पास भगवान ने दिल रखा है। श्रीमन्तो, धनवानों को भगवान ने द्रव्य दिया है। सन्त और श्रीमन्त सब मिलकर यज्ञ कार्य सम्पन्न करे तभी सब प्रकार से समाज का विकास होगा और सर्व कल्याण होगा।

४०००) जीभ के रस को जिसने नही जीता उस जीव को अलौकिक रस का अनुभव नहीं होगा। मोह निशा में तो सभी सोते है लेकिन योगी और प्रेमी जागते है।

४००१) सन्त महापुरुषों के उपदेश के अनुसार अपना जीवन बनाना ही उनकी सच्ची सेवा है। बाहर का प्रकाश तो सूर्य करता है और भीतर का प्रकाश सन्त महात्मा करते है।

४००२) मिले हुये को अपना मत मानो तो मुक्ति स्वत: सिद्ध है। शरीर संसार का अंश है और हम स्वयं परमात्मा के अंश है। अत: शरीर को संसार के अर्पित कर दे अर्थात संसार की सेवा में लगा दे और स्वयं को परमात्मा के अर्पित कर दें तो फिर आज ही मुक्ति है।

४००३) जिस बुद्धि में अभिमान है उसमें काम, क्रोध और लोभ ये दोष उत्पन्न होते है। सच्चा कार्यकर्ता वो ही है जिसमें कर्तापन का अभिमान न हो और उसका सिर्फ कर्म और कृति दिखाई पडे।

४००४) ईश्वर की सत्ता प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से विद्यमान है, जो व्यक्ति जाति के आधार पर किसी को ऊंचा या नीचा समझता है, वह धर्म का मर्म नहीं समझता है।

४००५) संसार के सभी संबंध अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए ही हैं, न कि अधिकार जमाने के लिए। सुख देने के लिए हैं, न कि लेने के लिए।

४००६) कामनाओं के कारण ही मनुष्य दूसरों के सामने घुटने टेकता है। यदि कामना न हो, तो कैसा दुख, कैसा क्लेश, कैसा कष्ट, कैसी पीड़ा ? सब दुखों के मूल में कामनाएं ही हैं।

४००७) जब मन थका हुआ हो तब हर कार्य पूरा करने में बहुत मेहनत लगती है। यदि आप के चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं हैं तो आप दूसरों को भी चिन्तित कर देते हैं। क्या यह अच्छी बात है ? दूसरे जब गलतियाँ करते हैं तो उनको गिनते न रहिए। उनका विश्वास जीतिए ताकि आप उनकी कमजोरी को मिटाने में सहयोग दे सकें।

४००८) मनुष्य मिले हुए अवसर के सदुपयोग या दुरुपयोग करने मे स्वतंत्र है, परंतु उसके फल भोगने मे परतंत्र है। जिसको हम चाहते है, वह हमें नहीं चाहता, यही दु:ख है।

४००९) शरीर के लिए परिवार को, परिवार के लिए समाज को, समाज के लिए राष्ट्र को हानि मत पहुँचाओ। ममता रहित होकर शरीर की सेवा करने में शरीर का हित और अपना कल्याण है।

४०१०) संसार को पसंद करने से चार दु:ख मिलते है- अशांति, अभाव, पराधीनता, और नीरसता। परमात्मा को पसंद करने से चार सुख मिलते है- शांति, स्वभाव, स्वाधीनता और प्रेम।

४०११) परमात्मा ने दो ही तरह के चित्त बनाए- स्त्री और पुरुष, संकल्प और समर्पण। दो ही मार्ग हैं, उस तक जाने के। तुम जहां हो, वहीं से चलो। तुम जैसे हो वैसे ही चलो। प्रभु तुम्हें वैसाही अंगीकार करेगा।

४०१२) जीवन की जटिलताओं का मुकाबला करने के तथा उलझनों को सुलझाने के लिए भी बुद्धि, बल और मानसिक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है।

४०१३) अनुरक्ति की आंख से गुण दिखता है। विरक्ति की आंख से दोष दिखता है और मध्यस्थता की आंख से गुण और दोष, दोनों दिखाई देते हैं।

४०१४) सेवा से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जिसके हृदय में दूसरे का दुख देखकर दया पैदा होती है, उसके जीवन को ही सार्थक समझना चाहिए। दयाहीन व्यक्ति कभी भी भगवान की कृपा प्राप्त नहीं कर सकता।

४०१५) वे आत्मसंतोषी लोग धन्य हैं, जिनका हाथ ही पवित्र पात्र है। घूम-घूमकर भिक्षा में प्राप्त अन्न ही भोजन है, जो फल के विषय में आसक्तिहीन हैं; जो दीनता को छोड़ चुके हैं तथा जिन्होंने कर्म को समूल नष्ट कर दिया है।

४०१६) साधु, गुरु, शास्त्र, धर्म ग्रन्थ के उपदेश मानव कल्याण के लिये ही होते है। यह सच होकर भी हमे अपनी ही आत्मा को साक्षी रखकर जीवन-निर्वाह करना चाहिये।

४०१७) दिनचर्या की शुरुआत कुछ खास विधि से की जाय तो उसे धर्म कहते है और जो मन मे आये वह किया जाये तो उसे पाप कहते है।

४०१८) सकारात्मक दृष्टि से जो सोचता है, वह प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हुये कठिनाइयों से कभी हार नही मानता और संघर्षद्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति मे संलग्न रहता है। यदि आप जिन्दगी से प्रेम करते है और अपनी मुश्किलों से पीछा छुडाना चाहते है तो हमेशा चलते रहना चाहिये।

४०१९) माता-पिता बच्चों के शारीरिक लालन-पालन मे इतने व्यस्त रहते है कि वे पालन कर्ता की गरिमा उसी तरह खो देते है जैसे कोई भरा पूरा पेड अपनी पत्तियां।

४०२०) सोने को धोने से उसमें निर्मलता नहीं आती, उसे अग्नि में तपाना पड़ता है, तभी उसका मैल दूर होता है। इसी प्रकार प्रायश्चित से अपने अन्दर के गुनाहों को जलाना पड़ता है, नया संकल्प करना पड़ता है तो जीवन में शान्ति आती है।

४०२१) बहुत सारे लोग जीवन के चन्दनरूपी बगीचे को कलह-क्लेशों में जला-जलाकर राख कर रहे हैं। जीवन का एक-एक श्वास

बहुत मूल्यवान है इसका सही उपयोगी कीजिये।

४०२२) कर्म को यश बनाओ। परोपकार के लिये किया गया जो भी कर्म है-जनकल्याण के लिये, समस्त लोगों के कल्याण के लिये जो भी कर्म हम कर रहे हैं, वह यश है। कोई भी महान कार्य, जिसमें स्वार्थ नहीं जुड़ा होता, वह सब यश है।

४०२३) सज्जन मनुष्य बादलों के समान होते हैं। जिसको ग्रहण करते हैं, उसका दान भी करते हैं। बादल समुद्र से जल ग्रहण करते हैं और सूखी भूमि पर जल बरसाते हैं।

४०२४) कोई भी व्यक्ति सर्वगुणसम्पन्न, सर्वज्ञानसम्पन्न नहीं है, क्योंकि कोई न कोई कमी हर एक में है। यह आप पर निर्भर करता है कि आप गुण-ग्राहक हैं या दोष-दृष्टि रखते हैं।

४०२५) सब कुछ खो जाये तो उसकी परवाह मत करना, लेकिन आपका साहस खो जाये तो सचमुच चिन्ता की बात है; इसे अवश्य सँभालना और कंगाली से बचाना।

४०२६) संसार से भागने में दु:ख दूर नहीं होंगे और न घर-परिवार से भागने में बात बनेगी, और न संसार छोड़ने से बात बनेगी। संसार को समझो और समझकर उसे भोगोगे तो बात बनेगी।

४०२७) परमात्मा अगर हृदय में कर्म करने की प्रेरणा देता है तो उस कर्म को पूरा करने के लिये वह सहयोग भी करता है। इसलिए सदा उसका सहयोग मांगकर कार्य करें, सफलता निश्चित मिलेगी।

४०२८) व्यक्ति की वाणी भी एक तरह का भोजन है, जिसे दूसरों को पचाना ही पड़ता है। आपकी वाणी ऐसी स्वादिष्ट हो जिसे दूसरा पचा सके। वाणी के द्वारा वाणी को संशोधित करने का कार्य करना चाहिये।

४०२९) गाड़ी में बैठते हो तो वाहन चालक पर भरोसा करते हो, नौका में बैठते हो तो नाविक पर भरोसा करते हो, ऐसे ही जिसको एक बार गुरु मान लिया उस पर भरोसा करके चलो, पार जरूर हो जाओगे।

४०३०) कोई तुम्हारे सुख में पानी का सागर बहा दे, भले ही उसकी भलाई भूल जाना, मगर तुम्हारे दु:ख में अगर कोई दो घूँट पानी दे तो उसे भूलना नहीं, सदा याद रखना।

४०३१) सेवक सबसे अच्छा वही होता है जिसको अपने मान की कामना नहीं होती। वह अपने मालिक के मान में ही अपना मान समझता है।

४०३२) कर्मरत रहने से जीवनशक्ति आनन्द देने वाली बन जाएगी। कर्मरत रहकर आप अपनी आयु का एक-एक क्षण ठीक ढंग से बिता सकते हैं। परिश्रमी व्यक्ति सदा आनन्दित रहता है, चैन की नींद सोता है।

४०३३) एक विराट क्रांति की जरूरत है। जिस तरह वैज्ञानिकों ने कभी धर्म के खिलाफ बगावत की थी, धर्म से लड़ाई लड़ी थी अब उन्हें राजनीति के साथ, राष्ट्रवाद के साथ लड़ाई लड़नी है। उनका उत्तरदायित्व बड़ा है। नए मनुष्य को उनकी और उनकी क्रांति की आवश्यकता होगी।

४०३४) जीवन कला- परिवार व समाज में सहनशील बनो, जीवन के संग्राम में कर्मशील बनो। सत्य और प्रेम की महक हो जीवन में, मृदुभाषी, शालीन और विवेकशील बनो।

४०३५) असत्य और कटु बोलने से मौन श्रेयस्कर है। तूफान में आग नहीं चिराग जलाना दुष्कर है। लोह की जंजीर तोड़ना तो सरल है, मगर मोह के कच्चे धागे को तोड़ना महादुष्कर है।

४०३६) बड़ों को प्रणाम करना छोटों की महानता है। छोटों का सम्मान करना बड़ों की महानता है। एक विनम्रता है और एक वात्सल्य है। अपने अपने स्थान पर दोनों की प्रधानता है।

४०३७) जैसे किसी संख्या के आगे बिन्दु (शून्य) लगा देने से उसका मान दस-गुना हो जाता है, उसी प्रकार नायिका के मुख पर तिल के कारण उसका सौन्दर्य दस गुना हो गया है। पता नहीं, यह अमूल्य अंक (तिल) कहां से मिल गया है।

४०३८) भाग्य के अनुसार सिद्धि मिलती है, कर्म के अनुसार बुद्धि मिलती है। दान के अनुसार कीर्ति मिलती है, पुण्य के अनुसार लक्ष्मी मिलती है।

४०३९) जवानी पर ज्यादा मत इतराना क्योंकि जवानी सिर्फ चार दिनों की है। अत: कानों में बहरापन आवे, इससे पहले ही जो

सुनने जैसा है, उसे सुन लेना। पैरों में लंगड़ापन आवे, इससे पहले ही दौड़-दौड़ कर तीर्थ-यात्रा कर लेना। आंखों में अंधापन आवे, इससे पहले ही अपने स्वरूप को निहार लेना। वाणी में गूंगापन आवे, इससे पहले ही कुछ मीठे-बोल बोल लेना। हाथों में लूलापन आवे, इससे पहले ही दान-पुण्य कर डालना। दिमाग में पागलपन आवे, इससे पहले ही प्रभु के हो जाना।

४०४०) वहाँ लक्ष्मी स्वयं जाती है- जिस घर में रहने वाले सदाचारी होते हैं, सफाई से रहते हैं, कोमल और मधुर वाणी बोलते हैं और व्यापार या खेती जैसे कार्यों में मन लगाए रखते हैं, वहाँ लक्ष्मीजी स्वयं चलकर जाती है।

४०४१) वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती है- उदारता, आलस्य का अभाव, सहिष्णुता और परिश्रम, ये चारों जहाँ वीरता के साथ मिलकर निवास करते हैं, वहाँ लक्ष्मीजी स्थिर होकर रहने लगती है।

४०४२) जिन्हें लक्ष्मी छोड़ जाती है- जो मैले कपड़े पहनता है, दाँतों की सफाई नहीं करता तथा बहुत ज्यादा ठूँस-ठूँसकर खाता है, कठोर वाणी बोलता है, सूरज उगने और छिपने के समय सोता है, ऐसे व्यक्ति को लक्ष्मीजी छोड़कर चली जाती है, भले ही वह उसका पति स्वयं विष्णु भगवान ही क्यों न हो।

४०४३) किसी भी व्यक्ति की सच्ची पहचान या परख कुछ खास प्रसंगों से होती है। केवल नाटक कर हम किसी को फंसा सकते हैं, लेकिन वह नाटक ज्यादा दिन टिकता नहीं। खुद को विद्वान, ज्ञानी बतानेवाले को विद्वानों की सभा में बैठना तो चाहिए, पर मुंह नहीं खोलना चाहिए अन्यथा मजाक हो जाता है। कुछ लोगों की जेब में फूटी कौड़ी न होकर भी भारी कपड़े, पहनकर अपनी सधनता प्रदर्शित करने की आदत होती है, लेकिन पैसे खर्चने की बात आते ही उनका भंडाफोड़ हो जाता है। इसलिए कहा गया है कि सब नाटक कि जा सकते हैं पर पैसों का नाटक नहीं किया जा सकता, कोयल और कौए के बच्चे बचपन में एक जैसे होते हैं, लेकिन उनकी सच्ची परख वसंत ऋतु में होती हैं। कौआ कांव-कांव करता है जबकि कोयल कुहू-कुहू कहती है। इसलिए असली परख ऊपर के रूप से नहीं अंदर के गुणों से होती है।

४०४४) विश्व के सभी धर्म अच्छे हैं, कोई भी धर्म इंसानों के बीच द्वेष नहीं बल्कि प्रेम ही फैलाता है लेकिन सभी धर्मों में कुछ बुरी प्रवृत्तियों के लोगों ने प्रवेश करने से धर्मों में कुछ विकार निर्माण हो गए हैं। ऐसे ही गलत लोगों के प्रवेश कर जाने से निजी स्वार्थ के लिए मनुष्य समाज में फूट डालने लगा है। यह बड़े ही खेद की बात है।

४०४५) आज बुरी प्रवृत्ति वाली मंडली को धर्म का सही अर्थ बतलाते हुए उनके भीतर के छुपे हुए अवगुणों को बदलना जरूरी है। बुरे लोग संख्या में बहुत कम होते हैं लेकिन वे संगठित होते हैं। इसके विपरीत अच्छे लोग बहुत होते हैं पर असंगठित होते हैं। इसलिए अच्छे लोगों ने संगठित होकर बुरे लोगों की विचारधारा को बदलने का समय आ गया है। विश्व में हर मनुष्य सम्राट की तरह जन्म लेता है लेकिन भिखारी की तरह जीवन व्यतीत करता है। इसका एक ही कारण है कि वह आत्म परीक्षण नहीं करता। यदि मनुष्य सत्कार्य करें तो वह देवता समान बनता है। हर मनुष्य किसी न किसी समस्या से घेरा हुआ है लेकिन योग्य विचार, योग्य ज्ञान, हर स्थिति में प्रेरणा देता है। अपने घर के आईने में हम अपना चेहरा रोज देखते हैं लेकिन कभी चरित्र को नहीं देखते। पाप पुण्य के विचार किए बिना आत्म परीक्षण करते हुए उस परमेश्वर को आत्मसमर्पण करना ही सच्ची प्रार्थनी होती है।

४०४६) यह संसार भी ज्यादा बेहतर होता अगर लोग बेहतर होने की कोशिश करते। और लोग बेहतर तब होते जब वे धनी होने की कोशिश करना बन्द कर देते। क्योंकि जब हर आदमी धनी बनने की कोशिश करता है, तो कोई भी धनी नहीं हो पाता। लेकिन अगर हर आदमी बेहतर होने की कोशिश करे तो कोई सम्पन्न हो जाये। हर आदमी धनी होता, अगर कोई भी ज्यादा धनी होने की कोशिश न करता और कोई आदमी भी गरीब न होता, अगर हर आदमी ज्यादा गरीब होने की कोशिश करता। हर आदमी जैसा उसे होना चाहिये था वैसा हो जाता अगर हर आदमी वैसा ही बनने की कोशिश करता जैसा वह चाहता है कि दूसरा बने।

४०४७) अंतरात्मा की केवल एक नन्हीं-सी शांत आवाज होती है, और वह हमें बुलाती है तो आधे से ज्यादा दफा ऐसा होता है कि हमारे दरवाजे पर ताला पड़ा रहता है।

४०४८) यह एक विचित्र विरोधाभास है कि मनुष्य संसार का सबसे अधिक बुद्धिमान प्राणी है, इसके बावजूद वह अंधविश्वास के मकड़ीजाल में फंसा हुआ है। जरा-सा दुःख संकट या विपत्ति आने पर मनुष्य अपनी विचार शक्ति खो देता है और उसके निवारण के

लिए बेहूदा से बेहूदा हास्यास्पद उपाय अपनाने को तैयार हो जाता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि देवी-देवताओं को खुश करने के लिये लोग बलि देते हैं। भूत, प्रेत उतरवाने के लिए ओझाओं और तांत्रिकों की शरण में जाते हैं और धन गंवाकर लौटते हैं। अनिष्ट ग्रहों की शान्ति के यज्ञ आदि कराते हैं। गंडे, तावीज बांधते हैं। नाना तरह के भ्रम पालते हैं। महिलाओं को डायन बनाकर सरेआम हत्या कर दी जाती है और भी न जाने कितने अपकर्म इन अंधविश्वासों के कारण होते हैं, हो रहे हैं ? लोगों को चाहिए कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर अंधा विश्वासों से दूर ही रहें।

४०४९) यह देखकर बेहद दु:ख होता है कि आजकल के बेटे और उनकी बहुएं वृद्ध माता-पिता और सास-ससुर को बोझ समझने लगे हैं। यह लोग क्यों नहीं सोचते कि वह भी कभी बूढ़े होंगे और उन्हें भी ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है। ऐसा नहीं कि सारी गलतियां बच्चे ही करते हैं, कुछ कमी वृद्धों में भी होती है। देखा गया है कि वृद्ध लोग जिस बहू-बेटे के साथ रहते हैं। उन्हीं की बुराइयां और कमी निकालते रहते हैं। वे उनके निजी जीवन में भी अनावश्यक हस्तक्षेप करते हैं। वृद्धों को चाहिए कि वे अपने सभी बेटों के साथ समान रूप से रहें। जिसके भी साथ रहें बिना छल-कपट के शांति के साथ रहें। अपने बच्चों से बहुत ज्यादा अपेक्षा न करें। न ही उसके परिवार में अशांति फैलाने का कार्य करें। इतना पैसा तो साथ रखें कि जरूरत पड़ने पर अपना बोझ स्वयं उठा सकें।

४०५०) जिस आधुनिक दुनिया में हम जी रहे हैं इसे हम रंगमंच न समझें तो और क्या समझें ? यहां हर व्यक्ति अपनी-अपनी भूमिका निभा रहा है- कोई किसी के बेटे, भाई, पति होने की तो कोई मां, बेटी, बहन होने की। हम सब इस रंगमंच की कठपुतलियां है और इनकी डोर भगवान के हाथ में हैं। वह जैसे चाहते हैं हमें वैसे ही चलना होता है क्योंकि उनकी इजाजत के बिना तो पत्ता भी नही हिलता। भगवान ने इसलिए हर व्यक्ति के जन्म के साथ उस व्यक्ति के लिए रिश्ते भी बनाए हैं। हम इतने सारे बंधनों में बंधे होते है यह भी भगवान ने ही बनाए हैं। इन बंधनों में बंधकर ही तो हम इतने वर्ष जीवित रह पाते हैं। यदि हम अकेले ही इस दुनिया में रहें तो एक पल भी जीवित रहना मुश्किल हो जाएगा।

४०५१) दिमाग को ठंडा रखो, जेब को गरम रखो, आंख में शरम रखो, जुबान को नर्म रखो और दिल में नरम रखो। अगर तुम ऐसा कर सके तो फिर तुम्हें किसी स्वर्ग तक जाने की जरूरत नहीं। स्वर्ग खुद तुम तक चलकर आएगा।

४०५२) वर्तमान में धन ही सुख का पर्याय बन गया है। जिसके पास अपार धन-दौलत हैं वही सुखी है, धनवान व्यक्ति को ही समाज में बड़े सम्मान से देखा जाता है। धनवान व्यक्ति के बड़ी संख्या में मित्र होते हैं एवं लोग उनसे मित्रता करने को आतुर रहते हैं। धनवानों के मित्रों का हाल यह होता है कि वे अपने चहेतों के तनिक भी कष्ट में होते ही उन्हें देखने दौड़ पड़ते है लेकिन वास्तविकता यह है कि मित्र ही नहीं नाते-रिश्तेदार, सगे-संबंधी भी सुख (धन) के साथी होते हैं। जब तक धन है आपके पास भीड़ भी लगी रहेगी जिस दिन धन समाप्त हो जाएगा उसी दिन भीड़ घटना शुरू हो जाएगी, क्योंकि सुख के साथी आपको दुख में देखकर भाग खड़े होंगे। दुख में अपने भी पराए हो जाते है, इसलिए सच्चे मित्र एवं शुभचिंतकों की पहचान आवश्यक है।

४०५३) जब तक दुष्टता है तब तक दुष्टता होगी। क्योंकि दुर्बलता दुष्टता की जननी है। जहां दुर्बलता है वहां बलवान लोग स्वाभाविक रूप से अधिकार जमाते हैं। अधिकार चलाते समय उनसे अन्याय, अत्याचार आदि दुष्टता होती है। जब तक गंदगी, कूड़ा है, तब तक उसमें से बदबू आएगी ही। उसी तरह जब तक व्यक्ति दुर्बल है तब तक सबल लोग दुष्टता करेंगे ही। इसलिए जब सब लोग अपने-अपने क्षेत्र में सबल होंगे, हीनभाव का त्याग कर मन निर्मल नहीं करेंगे तब तक दुष्टता नष्ट नहीं हो सकती।

४०५४) नैतिकता और अनैतिकता का संबंध मानव-जीवन के सुख-दु:खों से होता है। मनुष्य सुख चाहता है दु:ख नहीं। यह कैसे संभव हो सकता है ? केवल इच्छा से यह हो सकता तो लोगों ने बैठे-बैठे मनचाहे बदलाव करवाए होते। तब इस संसार में काई दु:खी, दरिद्र, रोगी, अनाथ, असहाय नहीं दिखता। सबलोग सुखी, धनवान, स्वस्थ दिखते। केवल इच्छा से काम नहीं होता, इच्छा के साथ क्रिया होनी चाहिए। वह क्रिया नीतिवान है या अनीतिवान् इसके आधार पर सुख-दु:ख निर्धारित होते हैं। अध:पात, आत्मवंचन एवं हीनता अनैतिक क्रियाओं के परिणाम जबकि उर्ध्वगति, आत्मविकास और उच्च भावना नैतिक क्रिया के परिणाम हैं।

४०५५) प्रेम कहीं भी प्रदर्शित किया जा सकता है लेकिन अश्लीलता नहीं। प्रेमी युगल भावावेश में मंदिरों, बसों, बाग-बगीचों, उपहार गृहों जैसे सार्वजनिक स्थलों पर ऐसी हरकतें करने लग जाते हैं जो अशोभनीय होती हैं। हमारी संस्कृति, हमारा समाज इस बात

की अनुमति नहीं देता। हम चाहे जितने भी आधुनिक हो जाएं लेकिन अश्लीलता शोभा नहीं देती। इसे देखने पर शर्म से आंखें झुक जाती हैं। प्रेमी युगलों को चाहिए कि वे प्रेम की आड़ में अश्लीलता को सार्वजनिक प्रदर्शन की वस्तु न बनाएं अश्लीलता उस कचरे के समान है, जिसे घर में नहीं रखा जा सकता है।

४०५६) फकीर वह है जिसे आज और कल किसी भी दिन की परवाह नहीं और जो अपने और प्रभु के सम्बन्ध के समक्ष लोक और परलोक को तुच्छ समझता है।

४०५७) बहुत अधिक बोलने से व्यर्थ और असत्य शब्द निकल जाते हैं। इसलिए कर्मक्षेत्र में जितना कम बोलने से काम चले, उतना ही बोलना चाहिए।

४०५८) किसी भी परिवार के नष्ट होने के तीन कारण होते हैं- १) प्रेम की कमी, २) विश्वास की कमी, ३) त्याग की कमी। तीनों की कमी से विचार संकुचित होते हैं तथा संकुचित विचारों से प्रगति में बाधा पहुँचती है।

४०५९) जैसे गाय का तुरन्त जन्मा बछड़ा कई बार गिरने-उठने पर खड़ा हो जाता है वैसे ही साधना करते-करते साधक अनेक बार गिर पड़ने के बाद ही सिद्धि लाभ करता है।

४०६०) इस संसार की तुलना एक कड़वे वृक्ष से भी की जा सकती है जिस पर अमृत के समान दो फल भी लगते हैं- मधुर वचन और सज्जनों की संगति।

४०६१) मनुष्य दूसरे को तो बूढ़ा हुआ व मरणासन्न देखता है परन्तु यही बात वह अपने लिए नहीं सोचता, यही इस संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य है।

४०६२) एक साधारण अवगुण भी मनुष्य के सभी गुणों को कम्पायमान कर देता है जैसे एक छोटे से कंकड़ से सरोवर के सारे जल में हलचल हो जाती है।

४०६३) जिस तरह जल से मैला वस्त्र साफ हो जाता है उसी प्रकार तप साधना द्वारा आत्मा का अज्ञानावरण व अष्टविध कर्म के मल दूर हो जाते है।

४०६४) यदि मैं दुनिया का सारा ज्ञान-विज्ञान समझ लूँ लेकिन दान तथा दया का भाव, जो मनुष्य को परमात्मा की दृष्टि में ऊँचा बनाते हैं, न रखूँ तो मेरा सारा ज्ञान धूल के समान है।

४०६५) तुम्हारे पास धन हो तो गर्व न करो, बलशाली मित्रों पर गर्व न करो। गर्व उस परमात्मा पर करो जो तुम्हें सब कुछ देता है और तुम्हें स्वयं अपना बना लेना चाहता है।

४०६६) कहीं भी जाने से तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी जब तक तुम मन को शान्त नहीं करोगे। स्थानों की कल्पना तथा परिवर्तन ने बहुतों को धोखा दिया है।

४०६७) सन्त किसी से ईर्ष्या नहीं करता क्योंकि वह व्यक्तिगत लाभ की कोई कामना नहीं करता; वह तो निरन्तर परमाात्मा के आनन्द में मग्न रहता है।

४०६८) तुम्हारा काम सेवा करना है, शासन करना नहीं। कष्ट उठाने और परिश्रम करने के लिए ही तुम संसार में आए हो, आलसी होकर बातों में समय नष्ट करने के लिए नहीं।

४०६९) बुद्धिमान मनुष्य कभी जल्दबाजी नहीं करता, वरन् कभी-कभी चुप भी रह जाता है, परन्तु जब धर्म का काम आ पड़ता है तो उसे तुरन्त कर डालता है।

४०७०) जिस प्रकार स्नान आदि से प्रतिदिन शरीर को स्वच्छ रखना जरूरी है; उसी प्रकार मन को भी स्वच्छ रखना चाहिए। मन को धोने के लिए सत्संग ही स्वच्छ सरोवर है।

४०७१) जो विपत्ति से डरते हैं, वह उन्हीं पर ज्यादा आती है। जो मन को दृढ़ रखते हैं और आने वाले सुख-दु:ख को भगवान् की देन मानते हैं उनके लिए विपत्ति कुछ भी नहीं है।

४०७२) जो मनुष्य छोटे पापों को मामूली समझकर करता है, वह थोड़े ही समय बाद बड़े-बड़े पापों से और अन्त में महान् विपत्ति

से घिर जाता है।

४०७३) दो बातों पर सदा विश्वास रखना- १) तुम्हारे लिए जो कुछ रचा गया है वह तुम्हें ही मिलेगा। २) जो दूसरों के लिए बना है, वह उन्हें ही मिलेगा।

४०७४) ज्ञान जब इतना घमण्डी बन जाए कि वह रो न सके, इतना गम्भीर बन जाए कि हँस न सके, इतना आत्म केन्द्रित हो जाए कि अपने सिवाय किसी की चिन्ता न करे तो वह अज्ञान से भी ज्यादा खतरनाक होता है।

४०७५) महानता का अभ्यास जनसमुदाय के बीच रहकर ही हो सकता है। एकान्त के अवसर में किसी की वास्तविकता को किस प्रकार परखा जाए।

४०७६) यह मन बड़ा विचित्र है। यह उस लोमड़ी जैसा है जो अंगूर न मिलने पर कह देता है कि वे खट्टे हैं। किन्तु मिलने पर खट्टे होने पर भी कह देता है कि वे मीठे हैं। मन का निर्णय भरोसे योग्य नहीं है।

४०७७) सफलता प्राप्त करने के दो ही मार्ग हैं- पहली है दृढ़ इच्छाशक्ति तथा दूसरा है किसी काम से घृणा नहीं करना। सच्चाई और ईमानदारी से काम करने से किसी की जाति नहीं बिगड़ जाती।

४०७८) पुस्तकीय ज्ञान मनुष्य को श्रेष्ठ नहीं बनाता। उसका आचरण व व्यवहार ही उसे श्रेष्ठ बनाता है। भावना, विचार, आचरण व कर्म ही मनुष्य को उच्चता की ओर ले जाते हैं।

४०७९) वस्त्रों का उपयोग इस प्राण ऊर्जा को बाहर निकलने से बचाने के लिए किया जाता है। नग्न रहने से यह प्राण ऊर्जा अधिक निकल जाती है।

४०८०) जिस प्रकार बीज को वृक्ष बनने में समय लगता है उसी प्रकार कर्म और उसकी फल प्राप्ति में समय लगता है। इसे कर्म विपाक कहा जाता है।

४०८१) नीचे गिरने के लिए किसी शक्ति व सहयोगी की आवश्यकता नहीं है किन्तु ऊपर उठने के लिए उसे दूसरों के सहयोग व शक्ति की आवश्यकता होती है।

४०८२) जो जीने का तरीका नहीं जानता उसको ही यह जीवन भार स्वरूप ज्ञात होता है। जीने की उचित विधि से इसे फूलों की बगिया बनाया जा सकता है।

४०८३) किसी नासमझ को समझाने के प्रयास में अपनी बुद्धि का अपव्यय नहीं करना चाहिए। यदि उसमें थोड़ी सी भी समझ होती तो वह बहुत पहले समझ गया होता।

४०८४) मनुष्य अपने जीवन में कर्मों के फल ही नहीं भोगता बल्कि दूसरों के कर्मों का फल ही अधिक भोगता है। इसलिए अपनी उन्नति, सुख-सुविधा आदि के लिए वह सदा दूसरों का ऋणी ही है।

४०८५) बेमौके की हँसी भी दूसरों के दु:ख का कारण बन सकती है किन्तु मौके का रूदन दूसरों को सान्त्वना देता है। किस परिस्थिति में क्या करना चाहिए यह सिद्धान्त पर नहीं विवेक पर आधारित होना चाहिए।

४०८६) वास्तविक रूप से गुणवान और सक्षम व्यक्तियों के गुणों से आर्थिक लाभ उठाने की योग्यता वाले समाज में अधिक सम्मानित होते हैं, यह भी एक विडम्बना है।

४०८७) मनुष्य जितना कमजोर होता है उतना ही उसे दूसरों से कृपा मिलती है और जितना वह सक्षम होता जाता है या उसकी योग्यता बढ़ती जाती है उतनी ही दूसरों से ईर्ष्या व घृणा मिलती है, यह कैसी विडम्बना है।

४०८८) जिसको भूख ही नहीं, उसे भोजन कराना उसे और अधिक बीमार करना है। जिसे ज्ञान की भूख ही नहीं उसे ज्ञान देना उसकी बीमारी को और बढ़ाना है।

४०८९) जो नहीं है, वह अस्तित्ववान नहीं हो सकता और जो विद्यमान है, वह नष्ट हो नहीं सकता। जो नहीं है, उसका अस्तित्व कैसे और कहां से। किन्तु जो अस्तित्व में है अथवा अस्तित्व वाला है, उसका नाश नहीं होता। हां, पदार्थ का दूसरे पदार्थ में परिवर्तन हो जाता है। पहला रूप दूसरे रूप में बदल जाता है किन्तु नष्ट नहीं होता है।

४०९०) योगी की योग साधना, तपी की तपस्या एवं ज्ञानी का ज्ञान भी तो कर्म का ही फल है। कर्म साधना का परिणाम है। सूर्य का उदय और अस्त होना, ऐसे ही वायु का बहना, जल का अग्रसर होना तथा अग्नि का प्रज्वलित रहना या होना, सृष्टि का निर्माण और अन्त-यह सब कर्म ही है, अकर्म नहीं। तो बिना कर्म के संसार चक्र अथवा जीवन-चक्र कैसे घूम सकता है, इसीलिए मीमांसा दर्शन कर्म को ही जगत् का कारण और अन्त भी मानता है। यानी कर्म ही ब्रह्म है, अनन्त सत्तात्मक है। सब कुछ कर्म का चमत्कार है।

४०९१) बिना कर्म किए अकेला मनुष्य भी अपनी जीवन यात्रा को पूरा नहीं कर सकता क्योंकि शरीर की रक्षा के लिए भोजन, जल तथा वस्त्र आदि आवश्यक हैं और यह सब कर्म किए बिना मनुष्य कोई फल प्राप्त नहीं कर सकता।

४०९२) न केवल अकर्मण्य मनुष्य नष्ट हो जाता है अपितु समाज तथा राष्ट्र भी यदि अकर्मण्य हो जाता है, तो वह भी नष्ट हो जाता है, अत: कर्म के बिना किसी का भी अस्तित्व सम्भव ही नहीं।

४०९३) यदि एक बार हम अधर्म से समझौता कर लें, तो फिर कभी उससे हमारा उद्धार नहीं हो सकता। अब से बहुत वर्षों के पश्चात् हमें उसका भारी मूल्य चुकाना पड़ता है।

४०९४) यदि सीखने वाले में गहरी लगन हो तो अति सामान्य शिक्षक से भी प्रकाश मिल जाता है। यही नहीं, प्राय: यह किसी बुद्धिमान व्यक्ति की अपेक्षा एक साधारण नारी से मिल जाता है।

४०९५) जब युद्ध आरंभ होता है। तो लोग सुध-बुध खो बैठते हैं। वे उचित-अनुचित का विचार नहीं कर पाते। विजेता के रूप में विशेषत: दुर्बलों के रूप में हमारा इतिहास अच्छा नहीं है। किन्तु यदि मैं आपको वचन दूं कि मैं इस सृष्टि के हर दुर्बल की रक्षा करूंगा तो जाति का कल्याण होगा।

४०९६) शत्रु कोई भी हो, कैसा भी हो, उसे देखकर कभी भी अपना मनोबल नहीं गिराना चाहिए। साहस, लगन, शक्ति से आप बड़े-से बड़े शत्रु पर भी विजय पा सकते हैं।

४०९७) सत्य, धर्म, न्याय और नीति के लिए यदि किसी की मृत्यु भी आ जाती है तो वह अमर हो जाता है। सदा सत्य और धर्म का पालन करोगे। किसी निर्दोष प्राणी का खून नहीं करोगे। उस समय तक युद्ध नहीं करोगे, जब तक धर्म और सत्य को खतरा न हो।

४०९८) अधर्म से विजय प्राप्त करने वाले को वीर नहीं कहा जा सकता। धर्म के लिए झुकने में कोई अपमान भी नहीं है। वचन की रक्षा धर्म की रक्षा है।

४०९९) आर्य धर्म में नारी का अपहरण करने वाले के लिए मृत्युदण्ड की सजा है। यदि कोई नारी अपनी इच्छा से किसी पुरुष को अपना पति स्वीकार कर लेती है, उसे उस पुरुष के साथ जाने का पूरा अधिकार है।

४१००) जो लोग अपने इष्टदेव को सारे प्राणियों में न देखकर केवल मूर्ति विशेष में उनके दर्शन करते हैं- उन्हें महामुनियों के दर्शन का अवसर नही मिलता।

४१०१) केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते। पत्थर की प्रतिमाएं ही देवता नहीं होती। उनकी यदि बहुत समय तक सेवा की जाए, तब वे पवित्र होती हैं। वास्तव में सन्त पुरुष ही तीर्थ और देवता हैं। क्योंकि- वे दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं।

४१०२) देवता उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते। उनकी उपासना से भेद-बुद्धि का नाश नहीं होता। परन्तु यदि घड़ी दो घड़ी भी ज्ञानी पुरुष की सेवा की जाए तो वे सारे पाप और भेद-बुद्धि को मिटा देते हैं।

४१०३) जो मनुष्य शरीर को ही आत्मा, स्त्री-पुरुष आदि को ही अपना, मिट्टी, काष्ठ, पत्थर आदि को ही इष्टदेव और जल को तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुष को नहीं, वह मनुष्य होकर भी पशुओं से बुरा है।

४१०४) जो विद्याएं धर्म का सम्पादन करती हैं उन्हीं का कर्म फल दृष्टिगोचर होता है, विद्या का नहीं। प्राणी की प्यास तभी बुझती है जब वह जल पी लेता है। पानी को देखकर प्यास कभी नहीं बुझती। ज्ञान का विधान भी कर्म को साथ लेकर है, अत: ज्ञान से भी कर्म बलवान है।

४१०५) देवता कर्म से ही प्रभावित होकर स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं। सूर्यदेव कर्म द्वारा ही दिन-रात का विभाजन करते हुए प्रतिदिन उदित हैं। चन्द्रमा धर्म के द्वारा ही मास, पक्ष तथा नक्षत्रों का योग प्राप्त करते हैं। इन्द्र, कुबेर, यम, आदित्य, वसुओं के बल से ही देवताओं ने ऊंची स्थिति प्राप्त की है।

४१०६) जो जन्म से ही निर्धन पैदा हुआ हो, उसे दरिद्रता के कारण उतना कष्ट नहीं होता, जितना कि- कल्याणमयी सम्पत्ति को पाकर, फिर उससे वंचित होने पर होता है। निर्धन अवस्था में प्राणी को क्रोध आता है, ऐसे में वह अपने विवेक को खो बैठता है। फिर मोह के वशीभूत होकर वह क्रूर कर्म करने लगता है। इस प्रकार के पाप कर्म करने से वह नरक में जाता है।

४१०७) सभी प्रेरणाएँ उन भिन्न-भिन्न विचारों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो एक अच्छे आदमी के जीवन स्तर को ऊँचा उठा देने में पूर्ण सक्षम है।

४१०८) संयम ही समस्त सिद्धियों का आधार है और संयम का प्रथम सोपान है- वचोगुप्ति अर्थात् वाक् संयम। जो वाणी संयम नहीं रखता उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलने वाली जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है और अनावश्यक शब्द प्राय: विग्रह और वैमनस्य पैदा करते हैं, जो हमारी प्राण-शक्ति को सोख डालते हैं। वचोगुप्ति से यह समस्त अनर्थ परम्परा दग्धबीज हो जाती है, इसलिए मैं मौन का उपासक हूँ।

४१०९) क्षत्रियों को भीख नहीं मांगनी चाहिए। वे संग्राम में विजय प्राप्त करें या जान दे दें। यही उनका कर्तव्य और धर्म है। दीनता का सहारा लेने से क्षत्रियों की जीविका नहीं चलती।

४११०) जो प्राणी अपनी शक्ति लगाकर, यदि किसी धर्म कार्य को करते हैं, किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती, तब भी उन्हें पुण्य तो अवश्य प्राप्त होता है।

४१११) भाई-बन्धुओं में परस्पर फूट उत्पन्न होने पर, जो समय पर प्रयत्न करके, उनसे मेल करवाने के लिए मध्यस्थता नहीं करता, उसे विद्वान् मित्र नहीं मानते।

४११२) युद्ध छिड़ने पर तो महान संहार होता है। दोनों पक्षों का विनाश होने से तो किसी को भी धर्म और सुख नहीं मिलता। आप अधर्म द्वारा धर्म का और सत्य असत्य द्वारा सत्य का गला मत घोंटिए।

४११३) जादू-टोना, झाड़-फूंक, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, मृत्युभोज एवं जातिवाद के संकीर्ण दायरे में ग्रामीण समाज आज भी जकड़ा हुआ है। आज जरूरत है कि शिक्षित वर्ग, स्वयंसेवी संस्थाएं व देश का प्रशासन मिलकर, समन्वय व एकजुटता अपनाते हुए ग्रामीणों को शिक्षित व जागृत करें, जिससे ग्रामीण समाज भी अपना भला-बुरा समझते हुए अंधविश्वासों व कुप्रथाओं को तजकर अपने जीवन की समस्याओं से मुक्त कर सकें व हमारा भारत सही मायने में विकसित व खुशहाल बन सकें।

४११४) थोडे में गुजर बसर करना सीखो। किसी से कुछ मांगने से परहेज करो क्योकि कोई देता है और कोई नहीं देता। मांगने पर नहीं मिले तो मन बेचैन रहता है। दिलों के बीच दूरी बढ़ती है इसलिये जो शख्स कम चीज पर गुजर हासिल करने का हुनर जान ले, वही सही मायने मे बेहतर जिन्दगी है।

४११५) किसी के बोझ को उठाना शहादत है फिर चाहे वह बोझ किसी चीज का हो, या किसी काम का या किसी की जिम्मेदारी का बोझ हो मगर गुनाहों का बोझ उठाना ठीक भी नहीं है और मना है।

४११६) जो सखावत करे यानि अपनी खुशी को दूसरों की खुशी के लिये कुर्बान कर दे वह बड़ा नसीबों वाला है। जो अल्लाह की राह में खर्च करे वो भी बडे नसीबों वाला है।

४११७) हमेशा सच का साथी बनो। जो सोचो वो अच्छा ही सोचो, फिर अच्छा बोलो और फिर अच्छाई पर अमल करो। ऐसी चीजों से बचो जो शक पैदा करती हो और जो बोलो उस पर अडिग रहो।

४११८) सूरज निकलते ही जो कमाई को निकल पडे उसमें बरकत है, जो देर तक सोता रहे फिर काम करने बाहर निकले उसे अनेक तरह के नुकसान के साथ दिल की बेचैनी मिलती है।

४११९) अपनी औलाद के लिये कमाने में खुशी है। अपने मां-बाप के लिये कमाने में खुशी है। अपने लिये कमाने में खुशी है पर दिखावे के लिये कमाना शैतानी कमाई है।

४१२०) सबसे अच्छा दिन वो जिस दिन तुम गुनाह करने से बचे रहते हो और किसी का दिल नही दु:खाते हो। अपने बर्ताव को अच्छा बनाने की कोशिश करते रहो और जरूरत मन्द की मदद कर उसके काम आये।

HHH(३३३)HHH

४१२१) कर्ज देना सदका है। गरीब कर्जदारों को मोहल्लत देना सदका है। मालदार कर्जदारों पर सख्ती ना करना सदका है। गरीबों का कर्ज माफ कर देना सदका है।

४१२२) जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषों से माता-पिता को कष्ट नहीं पहुंचाते, प्रसन्न चित्त से धर्म का आचरण करते हैं तथा असत्य का परित्याग कर अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुल हैं।

४१२३) देवताओं के धन का नाश, ब्राह्मण के धन का अपहरण और ब्राह्मणों की मर्यादा का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं। गौओं, मनुष्यों और धन से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे अच्छे कुलों की गणना में नहीं आ सकते। थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचार से सम्पन्न हैं, तो वे अच्छे कुलों की गणना में आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं।

४१२४) हमारे कुल में कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरों के धन का अपहरण करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रद्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता, पिता, देवता एवं अतिथियों को भोजन कराने से पहले भोजन करनेवाला भी न हो।

४१२५) हम लोगों में से जो ब्राह्मणों की हत्या करे, ब्राह्मणों के साथ द्वेष करे तथा पितरों को पिण्डदान एवं तर्पण न करे, वह हमारी सभा में न जाए।

४१२६) छोटा-सा भी रथ भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बड़े-बड़े होने पर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते।

४१२७) जो मित्रों से सत्कार पाकर और उनकी सहायता से कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते।

४१२८) संताप से रूप नष्ट हो जाता है, संताप से बल नष्ट होता है, संताप से ज्ञान नष्ट होता है और संताप से मनुष्य रोग को प्राप्त होता है।

४१२९) मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मनुष्य दान के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, वेद के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, किंतु निष्काम भाव से राग-द्वेष से रहित हो इस लोक में विचरते रहते हैं।

४१३०) आपस में फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनों से युक्त पलंग पाकर भी कभी सुख की नींद नहीं सोने पाते, उन्हें स्त्रियों के पास रहकर तथा सूत-मागधों द्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती।

४१३१) जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा शान्ति की वार्ता भी नहीं सुहाती। हित की बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। भेदभाववाले पुरुषों की विनाश के सिवा और कोई गति नहीं है।

४१३२) सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण ये बारी-बारी से सबको प्राप्त होते रहते हैं, इसलिए धीर पुरुष को इनके लिए हर्ष और शोक नहीं करना चाहिए।

४१३३) बिल में रहनेवाले चूहे आदि जीवों को जैसे सर्प खा जाता है, उसी प्रकार यह धरती शत्रुओं से विरोध न करनेवाले राजा और परदेश-वास न करनेवाले ब्राह्मण दोनों को ही खा जाती है।

४१३४) किसी दूसरी स्त्री द्वारा चाहे गये पुरुष की कामना करनेवाली स्त्रियां तथा दूसरों के द्वारा पूजित मनुष्य का आदर करनेवाले पुरुष-ये दोनों ही प्रकार के जीव दूसरों के विश्वास पर जीते हैं।

४१३५) जो निर्बल होकर भी क्रोध करता है तथा निर्धन होकर बहुमूल्य वस्तुओं की कामना करता है, दोनों ही अपने देह को सुखानेवाले कांटे के समान हैं।

४१३६) शक्तिशाली होकर भी क्षमा करनेवाला तथा निर्धन होकर भी दूसरों को दान देनेवाला- ये दोनों ही स्वर्ग से भी उत्तम सुख को पाते हैं।

४१३७) न्यायपूर्वक कमाये धन के दो ही दुरुपयोग हैं जैसे सत्पात्र को न देना और अपात्र को दान करना। जो व्यक्ति धनी होकर भी दान नहीं देता और निर्धन होकर कष्ट सहन नहीं कर सकता- इन दोनों प्रकार के लोगों के गले में भारी पत्थर बांधकर नदी में फेंक देना चाहिए।

४१३८) जिस मानव का अपने ऊपर काबु नहीं, वह दुर्बल चरित्र वाला है वह उस सरकण्डे के समान है जो वायु के झोंके के साथ झुक जाता है।

४१३९) जीवन से मरण तक की यात्रा में यश और प्रताप छाया बनकर नहीं रहते। जीवन-भूमि आखिर कितनी दूर तक समतल रह पाएगी ?

४१४०) बीहड़ मुसीबतें झेलने वाला व्यक्ति न तो रात को चैन से सो पाता है और न ही दिन में जाग पाता है। कैसे-कैसे भय, कैसी-कैसी आशंकाओं से आक्रान्त होते हैं उसके रात-दिन। दु:स्वप्नों के कारण वह टुकड़ों में सोता है। रात के वही भयानक अशुभ-अमंगल सपने दिन के उजाले में उसके सिर पर चढ़े रहते हैं और अपना प्रभाव बनाए रखते हैं। पल-पल के जगने से कहीं ठीक से नींद आती है ? एक डरावनी गुफा में भटकता रहता है जीवन।

४१४१) बड़े लोग दुर्दिन में धैर्य और विवेक से काम लेते हैं। दुर्दिन से उत्तीर्ण होने के लिए यदि आवश्यक हुआ तो छोटे से छोटा कार्य करने में कोई संकोच नहीं करते। वे बड़े जतन से दुर्दिन से बाहर निकल आते हैं। वे दुर्दिन की उफनती नदी को चुनौती नहीं देते, वरन् अपनी कला से उस पार जा पहुंचते हैं। पांडवों ने अलग-अलग रूप धारण कर अपने अज्ञातवास की विकट अवधि को कैसी चतुरता से पार किया। महाराज नल ने भी ऋतुपर्ण का सारथी बनकर अपना अभिशप्त काल धीरज के साथ व्यतीत किया।

४१४२) भावुकता छोड़ो और व्यावहारिक बनो। भाव-प्रवाह में मत बहो। हर कोई अंतरंग नहीं होता। हर किसी को अपनी चोट मत दिखाओ। मन की व्यथा मन में ही रखो। उसे बाहर मत ले जाओ। तथाकथित तुम्हारे उपने लोग तुम्हारी व्यथा को तो ध्यान से सुनेंगे, मगर पीठ पीछे उपहास करेंगे। हंसी उड़ाने में उनको रस मिलेगा। तुम्हारी पीड़ा को बांटने वाला कोई नहीं है। उसे सार्वजनिक मत करो। भीतर ही भीतर सहो। दूर करने का रास्ता स्वयं खोजो। समय के साथ-साथ बड़े से बड़ा घाव भी भर जाता है। समय पाकर व्यथा भी अपने आप गलती चली जाती है। कभी-कभी वह गलकर ऊर्जा बन जाती है जिसके द्वारा व्यक्ति अप्रत्याशित करिश्मा कर गुजरता है।

४१४३) मनुष्य आरोग्य के लिए क्या-क्या नहीं करता, फिर भी वह नीरोग नहीं रह पाता। वह अपना उपचार करवाता है, औषधियों का सेवन करता है और पथ्य-अपथ्य का ध्यान रखता है। लेकिन इतने पर भी उसे रोगों से मुक्ति नहीं मिल पाती। दूसरी तरफ प्रभु की दया से अनाथ, निरीह, आरण्यक जीव-जन्तु एवं पशु-पक्षी निरामय होते हैं। उन्हें न तो चिकित्सा की जरूरत होती है और न कोई सेवा-शुश्रूषा की। वे स्वस्थ-प्रसन्न रहकर जीवन-यापन करते हैं। अरोग वन में अरोग लोग रहते हैं। क्योंकि अनाथों के नाथ उन सुन्दर लोगों के साथ होते हैं।

४१४४) कोई कितना ही प्रयास क्यों न करे, कितना ही रुपया-पैसा क्यों न खर्च कर डाले, अगर बात शुरू में ही बिगड़ गई तो बिगड़ी ही रहेगी। कभी बन नहीं पाएगी।

४१४५) क्यों रे पेट। तू आखिर पेट क्यों हुआ, पीठ क्यों नहीं हुआ। पीठ होता तो किसी के लिए भार ही ढोता तथा भूख के लिए व्यक्ति को अपमानित न करवाता। लेकिन तू तो ठहरा क्षुधाधारी पेट। विचित्र स्वभाव है तेरा। खाली रहता है तो उसे भरने के लिए अनाचार करवाता है और व्यक्ति को दुराचारी बना देता है। भरा होता है तो दृष्टि-दोष उत्पन्न कर देता है। व्यक्ति में काम-वासना का आवेश हो जाता है। फिर वह व्यभिचरण के लिए संचरण करने लगता है। दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति के आचरण पर धब्बा लगता है। जठराग्नि श्रेष्ठ मूल्यों को जला देती है। अन्नमय कोष से ऊपर बहुत ही कम लोग जा पाते हैं।

४१४६) परमात्मा स्वयं में पूर्ण है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों, मतों, पंथों के अनुयायी भ्रम की गांठ में उलझकर उसकी पूर्णता को टुकड़ों-टुकड़ों में अपने-अपने पक्ष में बांटने का व्यर्थ प्रयास करते रहते हैं।

४१४७) अक्सर ही यह देखने में आता है कि लोग अपने रहस्यों को अपने परिचितों, रिश्तेदारों आदि के समक्ष प्रकट कर देते हैं और जब वे रहस्य जगजाहिर हो जाते हैं तो मनमुटाव की स्थितियां पैदा हो जाती हैं। शर्मिंदगी झेलनी पड़ती है। किसी व्यंग्यकार ने राज शब्द की चुटीली परिभाषा देते हुए कहा कि राज की बात वह है जो हर किसी को बताई जाये। इस शर्त पर कि किसी तीसरे को पता न चले। जब आपका राज दूसरों पर खुल जाता है तब आप उनके गुलाम हो जाते हैं। अपना रहस्य अगर आप किसी के पास रखना चाहते हैं तो पहले आप अपने पास रखिए। कोई रहस्य जब प्रकट हो जाता है तो गलती उस आदमी की होती है जिसने भरोसा किया। तीन लोग किसी रहस्य को छिपाकर रख सकते हैं बशर्ते उनमें से दो जीवित न हों। रहस्यों को अपने तक रखने में जिनको कोई मतलब नहीं होता वे ही उनके बड़े प्रेमी भी होते हैं। पूरी तरह रहस्यमय रहने के लिए आदमी को स्वभाव से ही वैसा होना चाहिए, बाध्य होकर नहीं। कोई रहस्य हमें सौंप दिया गया है, इस घमंड को जताना ही उसे खोल देने का एक मुख्य उद्देश्य होता है। यह मानकर चलें कि कोई भी

रहस्यों को पचा नहीं सकता और न ही वह पचाएगा। अत: यह हमारे लिए श्रेयस्कर ही है कि हम अपने रहस्यों को स्वयं तक सीमित रखें क्योंकि कहावत भी है- बंद मुठ्ठी लाख की, खुल गई तो खाक की।

४१४८) अन्त:करण की भावमयता में से ही वाणी मुखरित होती है और अन्त:करण की संकुलता के पश्चात् ही हाथ भी कार्य करते हैं। अन्तरात्मा के मामले में बहुमत के नियम का कोई स्थान नहीं है। अन्तरात्मा हमें भीरु बना देती है।

४१४९) एक बार अन्त:करण की ओर आंख घुमाओ, तुरन्त ही समस्त अर्थ समझ में आ जायगा। कोई साक्षी इतना सुदृढ़ और कोई अभियोक्ता इतना शक्तिशाली नहीं है जितना कि अपना ही अन्त:करण। मानव का अन्त:करण ही ईश्वर की वाणी है।

४१५०) जिस प्रकार दीपक दूसरी वस्तुओं को प्रकाशित करता है और अपने स्वरूप को भी प्रकाशित करता है, उसी प्रकार अन्त:करण दूसरी वस्तुओं को प्रत्यक्ष करता है और स्वयं को भी प्रत्यक्ष करता है।

४१५१) जैसे नेत्रों में जरा सा भी कण पड़ जाने से कोई वस्तु ठीक-ठीक नहीं दिखाई पड़ती है, वैसे ही अन्त:करण में थोड़ी सी भी वासना रहने से आत्मा के दर्शन नहीं हो पाते। सन्देह की स्थिति में सज्जनों के अन्त:करण की प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है।

४१५२) जैसे मैले शीशे में सूर्य की किरणों का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, उसी प्रकार उन लोगों के हृदय में ईश्वर के प्रकाश का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता जिनका अन्त:करण मलिन और अपवित्र है। पापी अन्त:करण की यन्त्रणा जीवित मनुष्य के लिए नरक है।

४१५३) ज्ञात-अज्ञात पाप ही अन्त:करण की मलिनता है। जब तक अन्त:करण मलरहित, पापरहित नहीं होगा, तब तक वास्तविक दृष्टि-दिव्य दृष्टि- का उदय नहीं होता। सन्देह की स्थिति में सज्जनों के अन्त:करण की प्रवृत्ति ही प्रमाण होती है।

४१५४) मानव का अन्त:करण उसके आकार, संकेत, गति, चेहरे की बनावट, बोल-चाल तथा नेत्र और मुख के भावों से विदित हो जाता है। यदि कोई मनुष्य लगातार अशुभ कर्म करे तो उसका अन्त:करण बुरे संस्कारों से मलिन हो जायेगा।

४१५५) अंधकार का समय विकृति का समय है। अंधकार प्रकाश की ओर चलता है, परन्तु अंधापन मृत्यु की ओर। प्रभात होने से पूर्व घोर अंधकार होता है।

४१५६) अंधे कुछ नहीं भूलते। उनका कोई संसार नहीं है। वे तो केवल अपने मन को ही लिए हुए हैं। अंधे पेट के बड़े गहरे होते हैं, इन्हें बड़ी दूर की सूझती है। अंधों में मुरौवत नहीं होती। अंधों की आंखें न खुलें, पर मन तो खुल सकता है।

४१५७) कृपण अंधा होता है, क्योंकि वह धन के अतिरिक्त और किसी सम्पत्ति को नहीं देखता। अपव्ययी अंधा होता है, क्योंकि वह आज ही को देखता है, कल की नहीं सोचता। मोहित करने वाली स्त्री अंधी होती है, क्योंकि वह अपने बुढ़ापे की झुर्रियां नहीं देखती। विद्वान अंधा होता है, क्योंकि वह अपने अज्ञान को नहीं देखता।

४१५८) चंचल प्रकृति के बालकों के लिए अंधे विनोद की बात हुआ करते हैं। जिसे शास्त्रों का ज्ञान नहीं है, वह एक प्रकार से अंधा है।

४१५९) एक अंधता काली होती है जिसका पालन-पोषण प्रकाश से दूर होता है, अर्थात् एक अंधे का अंधापन होता है। दूसरी अंधता सफेद होती है जो ज्ञान के घमंड से चूर रहती है; अर्थात् दूसरा अन्धापन विद्वानों और ज्ञानियों के घमंड का होता है।

४१६०) पुरुषार्थी व्यक्ति सर्वत्र भाग्य के अनुसार प्रतिष्ठा पाता है, परन्तु जो अकर्मण्य है, वह सम्मान से भ्रष्ट होकर असह्य दु:ख भोगता है। अकर्मण्यता ही मृत्यु है। प्रकृति अपनी प्रगति और विकास में कभी नहीं रुकती और हर अकर्मण्य को वह शापित करती चलती है।

४१६१) अकृतज्ञ मनुष्य से एक कृतज्ञ कुत्ता बेहतर है। पशुओं ने अकृतज्ञता मनुष्य के लिए छोड़ दी है। अकृतज्ञता मानवता के प्रति विश्वासघात है।

४१६२) जो व्यक्ति अकृतज्ञ है, निरन्तर दूसरों के दोष देखा करता है, उसे अगर सारी धरती का राजा बना दिया जाये तो भी वह प्रसन्न नहीं होगा।

४१६३) अकेला विचरना अच्छा है, साथी अच्छा नहीं है। जो अकेले चलते हैं, वे शीघ्रता से बढ़ते हैं। संसार में सबसे शक्तिशाली मनुष्य वही है, जो एकदम अकेला खड़ा होता है।

४१६४) जिस प्रकार सूर्य, अकेला ही अपनी किरणों से समस्त संसार को प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार एक ही वीर अपनी शूरता

और पराक्रम से सारी पृथ्वी को अपने पैरों तले कर लेता है।

४१६५) बहुत सोच विचार कर इस नगर में प्रवेश करना, क्योंकि यहां पर अगुणज्ञ लोग रहते हैं। इन लोगों ने कोयल को विस्मृत कर दिया है और कौओं से प्रेम करने लगे हैं। अरे हाथी के व्यापारी। यहां से चले जाओ। यहां हाथियों का व्यापार करने वाला कोई नहीं है। यहां धोबी, गदहलदने और कुम्हार रहते हैं। तात्पर्य यह है कि गंवारों में महान् गुणों तथा बहुमूल्य वस्तुओं का सम्मान नहीं होता।

४१६६) अनित्य, अशुचि, दु:ख तथा जड़ विषयों में क्रमश: नित्यता, शुचिता सुख तथा आत्म-स्वरूपता की प्रतीति की अज्ञान है। अज्ञान ही पाप है। शेष सारे पाप तो उसकी छाया ही हैं। अपनी विद्वत्ता पर गर्व करना सबसे बड़ा अज्ञान है।

४१६७) जैसे हाथी स्नान करके फिर बहुत-सी धूल अपने ऊपर डाल लेता है, उसी तरह अज्ञानी साधक साधना करता हुआ भी नये कर्मफल का संचय करता जाता है। अज्ञानी मनुष्य बैल की तरह बढ़ता है। उसका मांस तो बढ़ता है, परन्तु उसकी बुद्धि नहीं बढ़ती। अज्ञानी साधक जब कभी असत्य विचारों को सुन लेता है, तो वह उन्हीं में उलझ कर रह जाता है।

४१६८) अज्ञान पाप है। सक्रिय अज्ञान से भयावह कुछ नहीं होता। अज्ञानी क्या करेगा ? वह पुण्य और पाप को कैसे परख पावेगा? अज्ञानी के कहने से अमृत भी नहीं पीना चाहिए। अज्ञानी जीव विवश अंधकारमय आसुरी गति को प्राप्त होते हैं।

४१६९) अज्ञानी साधक उस जन्मांध व्यक्ति के समान है, जो सछिद्र नौका पर चढ़कर नदी-तट पर पहुंचना तो चाहता है, किन्तु तट आने से पूर्व ही बीच प्रवाह में डूब जाता है। यदि अज्ञानी किसी कर्म में प्रवृत्त होता है, तो वह सिर्फ क्लेश ही पाता है।

४१७०) अतिदान से दरिद्रता और अति लोभ से तिरस्कार होता है। अति नाश का कारण है। इसलिए अति से सदा दूर रहें। अधिक हर्ष और अधिक उन्नति के बाद ही अधिक दु:ख और पतन की बारी आती है।

४१७१) समाज अव्यक्त है, अतिथि व्यक्त है। अतिथि समाज की व्यक्त मूर्ति है। यदि घरों में अतिथि-सत्कार न हो, तो वे श्मशान मात्र रह जायेंगे। पुष्प सूंघने से मुरझा जाता है, मगर अतिथि का दिल तोड़ने के लिए एक निगाह ही काफी है।

४१७२) अतीत चाहे दु:खद ही क्यों न हो, उसकी स्मृतियां मधुर होती हैं। भविष्य को समझने के लिए अतीत का अध्ययन कीजिए। मैं ऐसे भविष्य को नहीं चाहता, जो अतीत से मेरा सम्बन्ध विच्छेद कर दे।

४१७३) धन, स्त्री और भोजन के विषय में सब प्राणी अतृप्त रहकर गए, जाते हैं और जायेंगे। पतंगे की नक्षत्र के लिए, रात्रि की दिन के लिये और वर्तमान दु:ख के पार एक अज्ञात सुख की कामना-यही तो जीवन की चिर-अतप्त इच्छा है।

४१७४) अनाचार और अत्याचार को चुपचाप सिर झुकाकर वे ही सहन करते हैं, जिसमें नैतिकता और चरित्र का अभाव हुआ करता है। समस्त अत्याचार क्रूरता एवं दुर्बलता से उत्पन्न होते हैं। अत्याचारी के प्रति विद्रोह करना ईश्वरीय आदेश का पालन करना है। वह शासक अत्याचारी है, जो स्वेच्छा के अतिरिक्त कोई नियम नहीं जानता।

४१७५) मनुष्य में शक्ति है; मनुष्य में भक्ति है। मनुष्य परमेश्वर का अवतार है। वही मनुष्य यदि मन में ठान ले, तो सारा अत्याचार समाप्त हो जाये। मानव का मानव के प्रति अत्याचार असंख्य मनुष्यों को दु:ख में डाल देता है।

४१७६) अत्याचारी से बढ़कर भाग्यहीन कोई नहीं है, क्योंकि आपदा के समय उसका कोई सखा नहीं होता। जो अत्याचारी है उसका सोना जागने से श्रेयस्कर है, सत्य तो यह है कि उसके जीवन से उसका मरण ही श्रेयस्कर है।

४१७७) जब प्रजा सिद्धान्त के लिए विद्रोह करती है, तब राजा नीति से अत्याचारी हो जाता है। अत्याचारी मनुष्य कभी स्थिर, शान्त और चुप नहीं रह सकता है। वह अपने विनाश की स्वयं तैयारी करता रहता है। वह सबसे पहले अपना अविश्वास करता है। वह मूर्ख अन्य लोगों के विश्वासघात से व्यर्थ डरता रहता है।

४१७८) अत्याचार करने वाले भूल जाते हैं, किन्तु जिन पर अत्याचार होता है, वे आसानी से नहीं भूल सकते। हाथ से लाठी गिर जाने पर भी वे मन ही मन द्वेष करते हैं।

४१७९) अत्याचार-परायण राजसत्ता जब अपनी शक्ति बढ़ाती हुई अत्याचार की मात्रा बढ़ाती जाती है, तब उसकी गति को रोकना अनिवार्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में छल, बल और कौशल से काम लिए बिना काम नहीं चलता।

४१८०) जैसे बुढ़ापा सुन्दर रूप-रंग का नाश कर देता है, उसी प्रकार अधर्म से लक्ष्मी का नाश हो जाता है। जो अधर्म करते हैं उन्हें

उसका फल चाहे तत्काल न मिले, पर धीरे-धीरे वह उनकी जड़ काट डालता है।

४१८१) अधर्म की नींव पर खड़ा हुआ राज्य कभी नहीं टिकता। अधर्म की सेना का सेनापति झूठ है। जहां झूठ पहुंच जाता है वहां अधर्म राज्य की दुन्दुभी अवश्य बजती है। अधर्म साम्राज्य-लोलुपता की भांति बर्बर और स्वार्थमय है। न्यायी न होते हुए भी अपने आप को न्यायी दिखलाना सबसे बड़ा अधर्म है।

४१८२) अधिकार जताने से अधिकार सिद्ध नहीं होता। अधिकार की अपनी एक मर्यादा होती है। उस मर्यादा की रक्षा करने के लिए अधिकार-प्रयोग को संयत रखना पड़ता है।

४१८३) अधिकार में स्वयं एक आनन्द है जो उपयोगिता की परवाह नहीं करता। अधिकार योग्यता का मुंह ताकता है। यह समझ लो कि इन दोनों में फूल और फल का सम्बन्ध है। योग्यता का फूल लगा और अधिकार का फल आया। संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं।

४१८४) अधिकार सीमा में नहीं रहते। वे अपनी सीमा का शीघ्र उल्लंघन कर जाते हैं और वर्षाकाल के झरने की तरह बहने लगते हैं। अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। अधिकारों की सृष्टि और उनकी मोहमयी माया सामाजिक वर्गों में खाई बन गई है जो कभी पट नहीं सकती। अधिकार-सुख कितना मादक और सारहीन है।

४१८५) जिसका जहां अधिकार नहीं होता, उसके लिए वहां की निकटस्ट वस्तु भी दूर की हो जाती है। देखिए, मछली कमल के पास ही रहती है, परन्तु उसके रूप, रंग, रस और वस्तु का स्वाद नहीं ले सकती।

४१८६) अध्ययन उल्लास का, अलंकार का और योग्यता का कारण बनता है। अध्ययन तो मनन और परिशीलन के लिए करना चाहिए। जितना ही हम अध्ययन करते जाते हैं, उतना ही हमें अपने अज्ञान का आभास होता जाता है।

४१८७) मन के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है जितनी देह को व्यायाम की। आज अध्ययन करना सभी जानते हैं पर क्या अध्ययन करना चाहिए यह कोई नहीं जानता।

४१८८) जब तक नदियों को उनका प्यारा समुद्र नहीं मिलता तब तक उनकी धारा नहीं रुकती। जब तक देवताओं को अमृत नहीं मिल गया, तब तक वे समुद्र का मंथन करते नहीं थके। जो मूर्ख कार्य आरम्भ कर पीछे हट जायेगा, उसे भला सिद्धियां कैसे प्राप्त होंगी?

४१८९) अध्यापक के सामने बड़े से बड़े व्यक्ति ने सिर झुकाया है। सांसारिक ऐश्वर्य एवं प्रभुता उसके मानव के आगे तुच्छ हैं और शक्तिशाली हमेशा उसके आगे श्रद्धावनत हुए हैं।

४१९०) अध्यापक-जीवन का एक बहुत बड़ा अभिशाप यह है कि आपको ऐसी सैकड़ों बातों को पढ़ना-पढ़ाना होगा जिन्हें आप न तो हृदय से स्वीकार करते हैं और न साहित्य के लिए हितकर मानते हैं।

४१९१) अध्यापक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ों में खाद देते हैं और अपने श्रम से उन्हें सींच-सींचकर महाप्राण शक्तियां बनाते हैं।

४१९२) जो अध्यापक पद प्राप्त करके भी शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के उंगली उठाने पर भी चुप रह जाता है और केवल जीविकोपार्जन के लिए विद्या पढ़ाता है, वह पंडित नहीं बल्कि ज्ञान बेचने वाला बनिया कहलाता है।

४१९३) यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक- इनमें से प्रत्येक अनर्थ का कारण होता है, फिर जहां ये चारों मौजूद हों, वहां का क्या कहना है वहा तो अनर्थ ही है।

४१९४) अनाथ बच्चों का हृदय उस चित्र की भाँति होता है जिस पर एक बहुत ही झीना परदा पड़ा हुआ हो। पवन का साधारण झकोरा भी उसे हटा देता है। जो लोग असहाय और अनाथ हों, उनकी रक्षा करो, जिससे गरीब बालक शिक्षित हो जायें और वे गुदड़ी के लाल निकलें; अर्थात् दीन-हीन परिवार में जन्म लेकर भी वे देश के बहुमूल्य नागरिक बनें।

४१९५) अन्धानुकरण से आत्मविश्वास के बजाय आत्म-संकोच पनपता है। अभी तक कोई भी मानव अनुकरण करके महान नहीं बन सका है। अनुकरण एकदम कोरी चापलूसी है।

४१९६) उपदेश से कहीं अधिक हम अनुकरण करके सीखते हैं। मानव-अनुकरणशील प्राणी है। जो सबसे आगे बढ़ जाता है, वही समूह का नेतृत्व करता है।

४१९७) अनुग्रह दासता है और दासता घृणास्पद है। जिनका हम आदर करते हैं, उनके किसी अनुग्रह में रहना एक प्रकार रुचिर दासता है। किसी के अनुग्रह की याचना करना अपनी स्वतन्त्रता बेचना है।

४१९८) तुम्हें कब क्या करना है यह बताना बुद्धि का काम है, पर वह कैसे करना है यह अनुभव ही बता सकता है। दर्शन ज्ञान है, पर अनुभव प्रत्यक्ष सत्य है। स्वानुभव में सगुण-निर्गुण का भेद नहीं है। मेरे पास एक दिया है और वह है मेरा अनुभव।

४१९९) अनुभूति का सत्य वस्तुगत सत्य से कहीं अधिक सजीव होता है। जीवन की गहराई की अनुभूति के कुछ क्षण ही होते हैं, वर्ष नहीं। अनुभूति अपनी सीमा में जितनी सबल है उतनी बुद्धि नहीं। हमारे स्वयं जलने की हल्की अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है।

४२००) मानव जीवन आदर्शों और नियमों से बन्धा हुआ है और जब तक शरीर मे सांसे चल रही हो तब तक इसके नियमों मे व्यवधान नही होने देना ही उचित है।

४२०१) अनुराग पर ही यह सारा संसार ठहरा है। यह अनुराग स्नेह, श्रद्धा, प्रणय, प्रेमभक्ति इत्यादि भिन्न-भिन्न नामों से व्यवहृत है। मनुष्यों के हृदय में अनुराग ही जीवन का सुख और प्रफुल्लता का भाव प्रकट करता है। कष्टों से भरे संसार को स्वर्ग बनाने के लिए एकमात्र अनुराग ही चाहिए।

४२०२) अनुराग तो जवानी की दुनिया में बहती हुई बयार है। भला वह कभी मिट सकती है ? अनुराग यौवन, रूप या धन से नहीं उत्पन्न होता। अनुराग से अनुराग उत्पन्न होता है। अनुराग स्फूर्ति का भण्डार है। जब अनुराग प्रेम में परिणत होता है, तो विवेक गुरुजनों की भाँति उस स्थान से हट आता है। संसार में हमारा जन्म तभी एक सार्थक है, जब तक हम विश्व से अनुराग रखते हैं।

४२०३) अंधे, लूले और लंगड़े जो भी काम कर सकें, वह काम उनसे लेकर उन्हें रोटी देना चाहिए। इससे श्रम की पूजा होती है और अन्न की भी। यदि रोटी हो तो सभी दु:ख झेले जा सकते हैं।

४२०४) अधर्मी राजा का अन्न खाने वाले विद्वानों की बुद्धि मारी जाती है। प्राणी नित्य जैसा अन्न खाता है, उसकी वैसी ही सन्तति होती है।

४२०५) जो अपने कुल की कीर्ति नष्ट करके अपयश का जीवन जीते रहते हैं, वे कुत्ते के समान नीच हैं और जीवित भी मुर्दे के समान हैं।

४२०६) यदि हमें संसार में अपमानपूर्वक जीना पड़े, तो हमारा जीवन व्यर्थ है। परन्तु यदि वीरों को सम्मानपूर्वक मृत्यु भी मिले, तो वह प्रशंसनीय है।

४२०७) शक्तिशाली होकर भी जो अपनी शक्ति को प्रकट नहीं करता, वह दूसरों से तिरस्कृत होता है। प्रज्वलित अग्नि का उल्लंघन कोई नहीं करता, परन्तु काठ के भीतर रहने वाली अग्नि का उल्लंघन सब करते हैं।

४२०८) जो मनुष्य अपने कुल की कीर्ति का नाश करके अपयश प्राप्त करके जीवित रहते हैं, वे कुत्ते के समान नीच होते हैं, और जीते जी मुर्दे के समान होते हैं।

४२०९) हे नारी। तुम उन्नति की मूर्ति, जागृति की स्फूर्ति और स्वर्ग की लक्ष्मी हो। कौन कहता है कि तुम अबला हो ? वास्तव में तुम सबला ही नहीं, प्रबला हो।

४२१०) आग में क्या नहीं जल सकता, समुद्र में क्या नहीं समाता, प्रबल अबला क्या नहीं कर सकती और संसार में काल किसे नहीं खाता।

४२११) भयाकुल व्यक्ति ही भूतों का शिकार होता है। भयभीत व्यक्ति तप और संयम की साधना छोड़ बैठता है। भयभीत किसी भी गुरुत्तर दायित्व को नहीं निभा सकता है। भयभीत मनुष्य किसी का सहायक नहीं हो सकता। भय से डरना नहीं चाहिए। भयभीत मनुष्य के पास भय शीघ्र आते हैं।

४२१२) वे ही लोग एक समाज के घटक गिने जा सकते हैं, जो अन्दर-अन्दर एक-दूसरे से डरते नहीं। जहां डर आया, वहां द्वेष आ ही गया। जहां द्वेष आया, वहां आत्मीयता टूट गई। भयभीत व्यक्ति स्वयं दूसरों को भी भयभीत कर देता है।

४२१३) हम कभी परिश्रम से न डरें, कष्ट से न डरें, धन-नाश से न डरें, अकेले पड़ने से न डरें, निरपराध होने पर भी अगर राजदंड का भय आ पड़ा या सामाजिक निन्दा सहन करनी पड़ी, तो उससे न डरें और मृत्यु से भी न डरें। यही है अभय का स्वरूप।

४२१४) अभागा मनुष्य देवता का प्रसाद प्राप्त करके भी दु:खदायक पापकर्म में प्रवृत्त हो जाता है। अभागा वह है जो संसार के सबसे पवित्र धर्म कृतज्ञता को भूल जाता है।

४२१५) अभिभावक होने योग्य मनुष्य वही हैं जिन्हें कोई चट से न ठग सके और जो इंगित से ही समझ जायें कि वस्तु कहां है और कहां नहीं है।

४२१६) अभिमान को जीत लेने से नम्रता जाग्रत होती है। अभिमानी अपने अहंकार में चूर होकर दूसरों को सदा परछाईं के समान, तुच्छ मानता है।

४२१७) शत्रु पर आपत्ति काल में अभियान करना चाहिए यह जो नीति है, वह मानी जनों के लिए लज्जाजनक है। राहु के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा की भांति सुस्थिर शत्रु (अभियान के लिए) आनन्ददायक होता है।

४२१८) अभिलाषा तभी फलोत्पादक होती है जब वह दृढ़ निश्चय में परिणत कर दी जाती है। आपकी सबसे बड़ी अभिलाषा यह होनी चाहिए कि आप अपने मनुष्यत्व का विकास करें। जिसकी हम चाह करते हैं, जिसकी सिद्धि के लिए सम्पूर्ण अन्त:करण से अभिलाषा करते हैं उसकी हमें अवश्य प्राप्ति होती है। हमारी हार्दिक अभिलाषायें हमारे उत्पादक अन्तर्बल को उत्तेजित करती हैं।

४२१९) अमरता का लाभ प्राप्त करने की एक विशेष अवस्था होती है। जो अपने जीवन की बलि देता है, वही अमर बनता है। भला मनुष्य कभी नहीं मरता।

४२२०) जो आदमी हमेशा ही अमृत पीता है, उसको अमृत इतना मीठा नहीं लगता जितना कि जहर का प्याला पीने के बाद अमृत की दो बूँदें। बाजीगर के खेलों के समान जीवन न बांटे जा सकेंगे। जो लोग विष के घड़े को नहीं अपना सकेंगे, वे अमृत कैसे पा सकेंगे? अमृत की प्रशंसा की जाती है, क्योंकि वह पुनर्जीवित कर देता है, और विष की प्रकृति है कि वह मार डालता है। अमृत की ही उपासना करनी चाहिये। अमृत से ही मृत्यु को जीता जा सकता है।

४२२१) देशभक्ति हृदय में अंकुर ले चुकी थी, देश-सेवा की प्रेरणा भी हृदय में स्थान बना चुकी थी किन्तु देश-भक्ति का एक रूप यह भी होगा कि पढ़ना-लिखना छोड़ कर, घर-द्वार की चिन्ता भूलकर, फकीरी का बाना लेकर इस गांव से उस गांव, उस गांव से इस गांव, देश-माता की मुक्ति का अलख जगाना होगा, यह तो कभी सोचा ही नहीं था।

४२२२) अवतारी पुरुष देश के प्राण हैं, वे समाज में चेतना उत्पन्न करते हैं और अपने पवित्र आचरण तथा उपयोगी उपदेशों से देश का कल्याण-साधन करते हैं। जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझकर करता है, वही ईश्वर का अवतार है।

४२२३) अवसर को पकड़ने से लाभ होता है और समय पर चूक जाने से हानि होती है। इसलिए बुद्धिमान् लोग सदैव सुदिन और कुदिन दोनों पर विचार करते हैं।

४२२४) अब अविश्वास ही इस दुनिया का मंत्र बन गया है। छोटी-छोटी धन-राशि के लिए भाइयों में कलह होती रहती है। बात-बात पर हथियार उठ जाते हैं। इसलिए बेचारी मानवता रोती रहती है। अब हार्दिक व्यवहार कहीं देखने में नहीं आता है। उसमें बनावट भरी रहती हैं।

४२२५) अविश्वास से अर्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती, और अगर हो भी सकती है, तो जो विश्वास-पात्र नहीं है, उससे कुछ लेने को जी ही नहीं चाहता। अविश्वास के कारण सदा भय लगा रहता है और भय से जीवित मनुष्य मृतक के समान हो जाता है।

४२२६) अशान्ति के बिना शान्ति नहीं मिलती। लेकिन अशान्ति हमारी अपनी है। हमारे मन का जब खूब मन्थन हो जाएगा, जब हम दु:ख की अग्नि में खूब तप जाएंगे, तभी हम सच्ची शान्ति पा सकेंगे।

४२२७) असंतोषी से आनन्द दूर रहता है। काल्पनिक किलों में रहने से अधिक सुख और सन्तोष मिलता है, परन्तु असन्तोषी के बनाए महलों में सुख नहीं है।

४२२८) अनेक पाप मिलकर भी असत्य के बराबर नहीं हो सकते। झूठ सबसे बड़ा पाप है। करोड़ों घुंघचियां मिल कर भी पहाड़ के

बराबर नहीं हो सकतीं।

४२२९) असफल रह जाना कई तरह से संभव है जब कि सफल होना केवल एक ही तरह से संभव है; निशाना चूकना आसान है, सही चोट करना कठिन।

४२३०) कायरों और संशयशील व्यक्तियों के लिए प्रत्येक वस्तु असम्भव है, क्योंकि उन्हें ऐसा ही प्रतीत होता है। असम्भव से मत डरो। असम्भव को चुनने से ही भीतर सुसुप्त शक्तियां जाग्रत और सक्रिय होती हैं।

४२३१) अस्पृश्यों की अपवित्रता, जो केवल मानी हुई पुस्तकों में वर्णित है, मानवता का एक कलंक है। जिस क्षण हाथ बढ़ा कर अस्पृश्य का स्पर्श किया, समझो उसी क्षण यह समस्या (अस्पृश्यता) सदा-सदा के लिए हल हो गई।

४२३२) जिस प्रकार एक रत्ती संखिया से लौटा भर दूध बिगड़ जाता है, उसी प्रकार अस्पृश्यता से हिन्दू धर्म चौपट हो रहा है। शरीर किसी का हो वह स्पष्टत: गन्दगी की गठरी है, और आत्मा तो सर्वत्र एक और अत्यन्त शुद्ध है। ऐसी स्थिति में अस्पृश्य किसकी और किसके लिए ?

४२३३) दुनिया में रहकर दुनिया की लीक पर चलना आसान है, तो जंगल में रह कर मस्ती की जिन्दगी जीना अपनी पृथक् अस्मिता को बनाए रखना भी। पर महान् व्यक्ति वे हैं जो सबके बीच रह कर भी अपनी अस्मिता की स्वतंत्रता को बखूबी अक्षुण्ण बनाए रहते हैं।

४२३४) अहं का धर्म ही संग्रह करना है, संचय करना है, वह केवल लेता ही रहता है। घोड़े और हाथी के लिए व्ययसाध्य चारा चाहिए, किन्तु अहं भाव के लिए किसी रसद की आवश्यकता नहीं होती।

४२३५) अहंकार चुम्बक की तरह सदैव एक ही वस्तु का निर्देश करता है- स्व का, परन्तु चुम्बक की तरह वह अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, बल्कि अपने से दूर हटा देता है।

४२३६) अहंकारी मनुष्य में कृतज्ञता बहुत कम होती है, क्योंकि वह यही समझता है कि मैं जितना पाने योग्य हूं, उतना मुझे कभी प्राप्त नहीं होता। आदमी जितना छोटा होता है उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है।

४२३७) अहिंसा का मतलब इतना ही नहीं है कि किसी का बुरा हम नहीं चाहेंगे और नहीं करेंगे। नहीं, बलिक हर किसी का भला सोचेंगे और वह भला करने के लिए आगे बढ़ेंगे। अहिंसा की हार इसी में होती है कि वह व्यक्तिगत दायरे में अपना सन्तोष और मोक्ष ढूंढ़ती है।

४२३८) अहिंसा प्रचंड शास्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है, वह भीरु से दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। वह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। वह चेतन है। वह आत्मा का विशेष गुण है। अगर आप सोचते हों कि मेरी अहिंसा से कायरता ही पैदा होगी तो आपको उसे छोड़ देने में जरा भी हिचकना नहीं चाहिए।

४२३९) अहिंसा में ही सत्येश्वर के दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग दिखाई देता है। अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है। अहिंसा ही धर्म है, वही जिन्दगी का एक रास्ता है।

४२४०) अहिंसा है दूसरों के जीवन के प्रति, उनके व्यक्तित्व के प्रति आदर। जैसे हम अपने ढंग से सत्य के उपासक हैं, वैसे ही दूसरा भी अपने समझे हुए सत्य का उपासक है।

४२४१) हमें यह जानना चाहिए कि संसार में किसी को दुःख न देना ही अहिंसा है। जो कोई हमें दुःख दे, हमें प्रेम पूर्वक उसका भी सम्मान करना चाहिए। जो पुरुष अहिंसा के अटल सिद्धान्त को जानता है, उसका कोई शत्रु नहीं रहता, बल्कि सारा संसार उसे गुरु मानता है।

४२४२) प्राणिमात्र के प्रति समभाव या अनुकूल भाव रखना अहिंसा है। मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, कृमि-कीट आदि तमाम जानवरों के प्रति ऐसी भावना कायम रहे- यह है अन्तिम आदर्श।

४२४३) हरी डाल नहीं तोड़ना चाहिए। ऐसा करने से पेड़ को कष्ट होता है मानो छुरा या बाण लगा हो। मलूकदास कहते हैं कि हमें सब जीवों को अपना-सा जानना चाहिए।

४२४४) जिन लोगों का जीवन हत्या पर निर्भर है, समझदार लोगों की दृष्टि में वे मुर्दाखोरों के समान है। धर्म का निचोड़, धर्म का दूसरा नाम अहिंसा है।

४२४५) अहिंसा की शक्ति अमाप है, वैसी ही अहिंसक की है। अहिंसक स्वयं कुछ नहीं करता, उसका प्रेरक ईश्वर होता है। जो

अहिंसक है और ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, वही ब्रह्मा के आसन पर बैठने का अधिकारी होता है। जीव-मात्र की अहिंसा स्वर्ग को देने वाली है।

४२४६) अहिंसा की भावना से अनुप्राणित रहकर ही प्राणियों पर अनुशासन करना चाहिए। अहिंसा की पूर्ण स्थिति होने पर उसके सानिध्य में सब प्राणी निर्वैर हो जाते हैं। अहिंसा के लिये मरने की अपेक्षा उसके लिये जिन्दा रहना कहीं अधिक कठिन है।

४२४७) आंखों में जादू उत्पन्न करने की वैज्ञानिक कला है। आंखें हृदय की तालिका हैं। जो बात वाणी प्रकट कर पाती उसे आंखें आसानी से कह जाती हैं।

४२४८) नारी का अश्रु-जल अपनी एक-एक बूंद में एक-एक बाढ़ लिये रहता है। नारी, तूने अपने अथाह अश्रुओं से संसार के हृदय को उसी प्रकार घेर रखा है जिस प्रकार समुद्र पृथिवी को घेरे हुए हैं।

४२४९) आंख के आंसू अमूल्य वस्तु हैं। प्रेम के, कृतज्ञता के, आनन्द के, दु:ख के और पश्चात्ताप के आंसुओं से ही तो जीवन का बाग पनपता है। आंसू करुणा की बूंद है।

४२५०) आंसू प्राणों का गीत और गूंगों की भाषा है। यह असहाय लोगों का आश्रय और हताश लोगों की आशा है। आंसू गम्भीर प्रेम की व्याख्यायुक्त सरल टीका है। यह एक अद्वितीय रस है जिसके आगे साहित्य के नवरस तथा भोजन के षट्रस फीके पड़ जाते हैं।

४२५१) लोगों ने कह-कह कर बेकार उसका नाम समुद्र कर दिया। वास्तविकता यह है कि मेरी आंखों से बह-बह कर कुछ आंसू वहां एकत्र हुए थे।

४२५२) ईश्वर कभी-कभी अपने बच्चों के नेत्रों को आंसुओं से धोता है, ताकि वे उसकी प्रकृति और उसके आदेशों को सही-सही पढ़ सकें।

४२५३) जिन वस्तुओं में आकर्षण नहीं रहता, वे उपेक्षित रहती हैं। यदि पुरुष के जीवन-विकास में स्त्री का आकर्षण विनाशकारी होता, तो प्रकृति यह आकर्षण पैदा ही क्यों करती ?

४२५४) आत्मा को सर्वत्र उपलब्ध करना ही तो आत्मा की एकमात्र आकांक्षा है। जो प्रकाश अदृश्य रहता है, और जिसका अनुभव अंधकार में ही होता है, उसी के लिए मेरी आकांक्षा है। मनुष्य में उच्च होने की आकांक्षा की कोई सीमा नहीं है।

४२५५) जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया उसने ईश्वर को ही मूर्तिमान कर लिया। विचार का चिराग बुझ जाने से आचार अन्धा हो जाता है।

४२५६) सुन्दर आचरण, सुन्दर देह से अच्छा है, मूर्ति और चित्र की अपेक्षा वह उच्च कोटि का हर्ष प्रदान करता है, वह सभी कलाओं से श्रेष्ठ कला है।

४२५७) आचार से आयु बढ़ती है और कीर्ति भी। विचार जब प्रकृति के साथ घुल-मिलकर एक हो जाते हैं, तब वे आचार बन जाते हैं। समाज में सर्वसाधारण में प्रचलित व्यवहार-रीति को आचार कहते हैं।

४२५८) विचारों की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, अभावाओं से स्वतन्त्रता और भय से स्वतन्त्रता ये चार स्वतन्त्रताएं प्रत्येक व्यक्ति को मिलनी चाहिए।

४२५९) अपने विषय के लिए अपनी आत्म-कथा लिखना एक कठिन तथा नाजुक विषय है। यदि वह अपनी निन्दा करे तो उसके दिल में चोट-सी लगती है और यदि वह अपनी प्रशंसा करे, तो पाठकों के कानों में उसकी बातें खटकती हैं। प्रत्येक आत्म-कथा पीड़ा का इतिहास है, क्योंकि प्रत्येक जीवन छोटे तथा बड़े दुर्भाग्य का विकसित रूप है।

४२६०) दो प्रकार के व्यक्तियों की कोई कीमत नहीं। एक वे जो आज्ञापालन नहीं कर सकते। दूसरे वे जो सिवाय आज्ञापालन के कुछ नहीं कर सकते।

४२६१) मनुष्य आकाश में उड़कर वहां की बातों का पता लगाता है। वह पाताल की वस्तुओं की खोज-बीन करता है। वह पृथ्वी के भीतर की हड्डियों की पहचान करता है, परन्तु वह अपने आपको नहीं जानता है।

४२६२) उस आत्मा को ही जान लेने पर मनुष्य मृत्यु से नहीं डरता। वेद से उत्पन्न आत्मज्ञान संसार का हरने वाला है, और मोक्ष का कारण कहा गया है। न यहां कुछ है, न वहां कुछ है। जहां-जहां जाता हूं न वहां कुछ है। विचार करके देखता हूं तो न जगत ही कुछ है। अपने आत्मा के ज्ञान से परे कुछ भी नहीं है।

४२६३) स्वानुभव की बातें शब्दज्ञान हैं, स्वानुभव आत्मज्ञान है, किसी के अनुभव की बातें कहने-सुनने से कोई आत्मज्ञानी नहीं हो जाता, वह सिर्फ शब्दज्ञानी है।

४२६४) मनुष्य जीवन का उद्देश्य आत्म-दर्शन है और उसकी सिद्धि का मुख्य एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीव-मात्र की सेवा करना है।

४२६५) जब तक हमारे शरीर में एक सांस और एक धड़कन शेष हो, तब तक हमें अपनी आंखें, अपना सिर तथा अपना मन ऊंचा रखना चाहिए। हे शत्रुंजय। जब तक हमारी देह में एक बूंद भी खून शेष रहे, तब तक हमें अपने मुंह से दीन वचन नहीं बोलना चाहिए और न कभी मृत्यु का भय मानना चाहिए।

४२६६) तुम बहुत भोले बनकर दूसरे लोगों को उपदेश देते हो। दूसरों के नए दोषों को देखकर उनकी आलोचना करते हो। जरा भीतर झांककर देखो कि तुमने अपने में कितना विष घोल रखा है।

४२६७) हे भाई। जो स्वयं अपने पैरों पर नहीं उठना चाहते, उन निकृष्ट लोगों की भलाई संसार में कौन कर सकता है ? समस्त उन्नति का मूल आत्म-निर्भरता है।

४२६८) जिसकी प्रशंसा दूसरे लोग करें, यदि वह गुणहीन हो तो भी गुणी माना जाता है। अपने मुंह से बड़ाई करने से तो इन्द्र भी लघुता को प्राप्त होता है। जिन्हें कहीं से प्रशंसा नहीं मिलती, वे आत्म-प्रशंसा करते हैं।

४२६९) जो अपने आप को चाहने लगता है, उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं होता। आत्म-प्रेम उतना बुरा नहीं है जितना कि आत्मा की उपेक्षा करना।

४२७०) हे निष्ठुर। यदि तुमने किसी दीन-दुखिया को मार दिया, तो कोई बड़ा काम नहीं किया। तुम्हें अपने काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार और मात्सर्य को मारना चाहिए था। यदि तुमने ऐसा किया होता तो तुम पारस हो गए होते।

४२७१) आत्मबल की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि इतने युद्धों के बावजूद दुनिया अभी कायम है। आवेश और क्रोध को वश में कर लेने पर शक्ति बढ़ती है और आवेश को आत्म-बल के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

४२७२) आत्म-विश्वास बढ़ाने का ढंग यह है कि तुम वह कार्य करो जिसे करते हुए तुम डरते हो। इस तरह ज्यों-ज्यों तुम्हें कामयाबी मिलती जायेगी, तुम्हारा आत्म-विश्वास बढ़ता जायगा।

४२७३) आत्मविश्वास सरीखा दूसरा मित्र नहीं है। आत्मविश्वास ही भावी उन्नति की प्रथम सीढ़ी है। सर्वप्रथम आत्मविश्वास करना सीखो।

४२७४) आत्म-विश्वास ही वह अद्भुत, अदृश्य और अनुपम शक्ति है, जिसके बल पर आप अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते जाते हैं। वही आपकी आत्मा है, वही आपका पथ-प्रदर्शक है। निर्धन मनुष्यों की सबसे बड़ी पूंजी और मित्र उनका आत्म-विश्वास है। आप अमुक कार्य कर सकते हैं, इस विचार में ही शक्ति है।

४२७५) यह बात बहुत गौण है कि दूसरे लोग तुम्हारे विषय में क्या सोचते हैं और क्या कहते हैं। मुख्य बात यह है तुम स्वयं अपने विषय में क्या सोचते और क्या जानते हो।

४२७६) सारे संसार को तिनके के समान तुच्छ जानना आसान है, सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना आसान है, परन्तु आत्म-प्रशंसा को अपने हृदय से निकाल देना कठिन है। कितने लोगों की बोलती बन्द हो जाये अगर उन्हें आत्म-प्रशंसा और परनिन्दा करने से रोक दिया जाये।

४२७७) चित्त और इन्द्रियों को अपने वश में रखने ही का नाम आत्म-संयम है। परोपकार के लिए सुख-दु:ख की कुछ परवाह न करना ही आत्म-विसर्जन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य- यह जो आत्मा के छ: शत्रु हैं, केवल इन्हीं को दबाने का नाम आत्म-संयम नहीं है, बल्कि इन शत्रुओं के साथ ही साथ पंचेन्द्रियों का निग्रह करना आत्म-संयम का लक्षण है। ज्ञानेन्द्रियों में सबसे प्रधान जिह्वा है, इसलिए सबसे बढ़कर जिह्वा का शासन करना आवश्यक है।

४२७८) आत्म-स्वरूप में लगा हुआ चित्त बाह्य विषयों की चिन्ता नहीं करता जैसे कि दूध में से निकाला हुआ घी दुग्धभाव को प्राप्त नहीं होता।

४२७९) आत्म-सम्मान की रक्षा करना हमरा सबसे पहला धर्म है। सुख-भोग की लालसा आत्म-सम्मान का सर्वनाश कर देती है। हमें सबसे पहले आत्म-सम्मान की रक्षा करनी चाहिए।

४२८०) आत्म-हत्या करना कायरता है। आत्म-हत्या के विरुद्ध एक दिव्य निषेध है जो हमारे निर्बल हाथों को भयभीत कर देता है। आत्मा की हत्या करके स्वर्ग भी मिले तो नरक है।

४२८१) पाप, अनीति और अत्याचार के सम्मुख सिर झुकाना अपनी आत्मा का अपमान और हनन करना है। मृत्यु दु:खदायी मानी जाती है, परन्तु वह जीवन में एक बार ही दु:ख देती है, लेकिन आत्महीनता ऐसी मृत्यु है जो पल-पल पर आती है और तिल-तिल करके आन्तरिक शान्ति को जलाती रहती है।

४२८२) जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे जो कुछ हो, आदमी नहीं है। जिस देह में पवित्र और निष्कलंक आत्मा रहती है, वह देह भी पवित्र और निष्कलंक रहती है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश अलग-अलग घरों में जाकर भिन्न नहीं हो पाता, उसी प्रकार ईश्वर की महान आत्मा पृथक्-पृथक् जीवों में प्रविष्ट होकर विभिन्न नहीं होती।

४२८३) जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक आत्मा देह के नष्ट होने पर नष्ट नहीं होता।

४२८४) नित्य चैतन्य रूप आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है, न यह किसी से हुआ है और न इससे कोई हुआ है; अर्थात् इसका कारण या कार्य नहीं है। यह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है और पूर्ण है; शरीर के मारे जाने पर भी यह मरता नहीं है।

४२८५) निश्चय रूप से यह आत्मा अक्षय धन है, वह अनन्त परमात्मा की अग्नि का कण है। वह जड़ और चेतन सबमें गुप्त रूप से विराजमान रहता है।

४२८६) मैं तो आत्मा की अमरता पर विश्वास करता हूं। जीवन के सागर में हम सब बिन्दु-मात्र है और जीवन की वास्तविकता ही सत्य है, आत्मा है, परमात्मा है। सबकी आत्मा एक जैसी है। सबकी आत्मा की शक्ति समान है। मात्र कुछ की शक्ति प्रकट हो गई है, दूसरों को प्रकट होना बाकी है।

४२८७) अहंकार का नाश करके जिन्होंने आत्मानन्द प्राप्त किया है उन्हें और क्या पाना बाकी है ? वे आत्मा के सिवाय कुछ नहीं जानते। जिसे आत्मानन्द का अनुभव है वह विषयानन्द में नहीं फंसेगा। क्या कोई चक्रवर्ती सम्राट दो गांव की सीर की (मालिकाना) इच्छा कर सकता है ?

४२८८) आत्मीयता अन्तस्थ सहानुभूति को खोलती है। उसमें व्यक्ति खींचता और छीनता नहीं, देता और बरसाता है। आत्मीयता मिलाती है, अहंता काटती है।

४२८९) जिस आदत से आनन्द मिले वह आदत न डालो। नीम गुड़ के साथ खाने पर भी अपनी कड़वाहट नहीं छोड़ता। इसी तरह नीच सज्जनों के संग रहकर भी अपनी आदत से बाज नहीं आता।

४२९०) अपने आदर्श तक पहुंचने के लिए आपकी आस्था, आपकी श्रद्धा आपकी बड़ी सहायता करती है। जो आदर्श हमने सच्चे अन्त:करण से बनाया है; मन, वचन और काया एक करके जिस आदर्श की सृष्टि की है, वह अवश्य ही हमारे सामने सत्य के रूप में प्रकट होगा।

४२९१) आदर्श-आदर्श ही रहता है, यथार्थ नहीं हो सकता। आदर्श की धुन में व्यावहारिकता का विचार न करना ठीक नहीं है, कोरा आदर्शवाद ख्याली पुलाव है। जो आदर्श सत्य की हत्या करके पला हो, वह आदर्श नहीं, चरित्र की दुर्बलता है।

४२९२) यदि स्त्री और पुरुष के विचार और आदर्श एक-से हों, तो स्त्री पुरुष के कामों में बाधक होने के बदले सहायक हो सकती है। हमारे जीवन का आदर्श कुछ तो ऊंचा होना चाहिए, विशेषकर उन लोगों का जो सभ्य कहलाते हैं।

४२९३) यदि हमने किसी को बुरी दृष्टि से देख लिया, तो हम पाप कर चुके। यदि हमने किसी का दिल थोड़ा भी दुखा दिया, तो हम अभिशाप के भागी हो चुके। यदि हमारे चरित्र में जरा भी कलंक लग गया तो अनुताप ले चुके। यदि हम नीति के अनुसार नहीं चलते, तो हम दु:ख और पाप को ले चुके।

४२९४) जो परम्परागत और प्राचीन है, उसका उपहास आधुनिकता की शोभा हो गयी है। सब कुछ जो अतीत का है, उसका आदर और आग्रह करना अवश्य दुराशा होगी और कालचक्र के महत्त्व की अस्वीकृति। परन्तु समय जिस प्राचीनता को पोंछकर फेंक नहीं पाया है, उसे किसी भी तरह की बातों से मिटाया नहीं जा सकता।

४२९५) आनन्द का अन्तरंग सरलता है, बहिरंग सौदर्य है। इसी से वह स्वस्थ रहता है। आनन्द का मूल है, सन्तोष। आनन्द की तलाश में तुम दुनिया भर में भ्रमण करते हो। सन्तोष से उसे हर कोई पा सकता है।

४२९६) आनन्द का स्त्रोत अपने अन्दर है, और उसे अन्दर से ही ढूंढ़ निकालना होगा। आनन्द वृद्धि में दो चीजें सबसे अधिक सहायक होती हैं- परिश्रम और संयम। आनन्द की पूर्ति सौंदर्य में दृष्टिगत होती है। आनन्द बाहरी हालात पर नहीं अन्दरूनी हालात पर निर्भर है। आनन्द का लगातार और अबाधित उपभोग सच्चे ज्ञान का सबसे ज्वलन्त और सुस्पष्ट संकेत है।

४२९७) आनन्द स्वभावत: मुक्त है। उस पर जोर नहीं चलता, हिसाब भी नहीं चलता। आयु में आनन्द है। समस्त शरीर के मंगल में, स्वास्थ्य में एक आनन्द है। इसी आनन्द का भाग कर देने से दो वस्तुयें प्राप्त होती हैं- एक ज्ञान और दूसरा प्रेम। पीड़ा के परिमाण में ही आनन्द का परिमाण है।

४२९८) किसी ईश्वरीय यथार्थ से सम्मिलन, किसी स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति केवल धर्म के ही मार्ग से सम्भव नहीं है, प्रार्थना और उपवास के अतिरिक्त भी ऐसे मार्ग हैं, जिनसे वहां तक पहुंचा जा सकता है।

४२९९) झूठा आनन्द आदमी को कठोर और अहंकारी बना देता है और वह आनन्द दूसरों को नहीं दिया जा सकता। सच्चा आनन्द आदमी को दयालु और समझदार बनाता है और उस आनन्द का और लोग भी सदा लाभ लेते हैं।

४३००) सुख-दु:ख देने वाली बाहरी चीजों पर आनन्द का अधार नहीं है। आनन्द सुख से भिन्न वस्तु है। मुझे धन मिले और मैं उसमें सुख मानूं- यह मोह है। मैं भिखारी होऊं, खाने का दु:ख हो, फिर भी मेरे चोरी या किन्हीं दूसरे प्रलोभनों में न पड़ने में जो बात मौजूद है वह मुझे आनन्द देती है।

४३०१) दीपक जैसे घर को जगमगा देता है, उसी तरह आनन्द जीवन को उज्ज्वलता से भर देता हैं। आनन्द की अनुभूति जीवन की समस्त जड़ता मिटा देती है। आनंद हमारे लिए वह पारस है जिसके छूने से जीवन की प्रत्येक वस्तु सोना बन जाती है।

४३०२) आनन्द हर आदमी के अन्दर है और वह पूर्णता और सत्य की तलाश से मिलता है। क्षण भर भी काम के बिना रहना ईश्वर की चोरी समझो। मैं दूसरा कोई और रास्ता भीतरी या बाहरी आनन्द का नहीं जानता। आनन्द ही सच्ची लक्ष्मी है।

४३०३) आनन्द वह खुशी है जिसके भोगने पर पछतावा नहीं होता। उन सभी लोगों को जो आनन्द चाहते हैं, आनन्द बांटना चाहिए, क्योंकि आनन्द जुड़वां पैदा हुआ है। पशु का आनन्द इन्द्रिय तृप्ति में है, मानव का चिन्तन-मनन में।

४३०४) अग्नि स्वर्ण को परखती है, आपत्ति वीर को। आपत्तियों को पराजित करना ही जीवन के आनन्द की पराकाष्ठा है। मनुष्य को आपत्ति का सामना करने के लिए सहायता देने में मुस्कान से बढ़कर और कोई चीज नहीं है।

४३०५) आभूषणों से आत्मा ऊंची नहीं हो सकती। ऐश्वर्य का आभूषण सज्जनता, शूरता का वाक्-संयम, ज्ञान का शान्ति, कुल का विनय, धन का सुपात्र के लिए व्यय, तपस्वी का भूषण अक्रोध, बलवानों का क्षमा, धर्म का निश्छलता, और सब गुणों का आभूषण शील है। नम्रता और मीठे वचन ही मनुष्य के आभूषण होते हैं। शेष सब नाममात्र के भूषण हैं।

४३०६) नारी का सतीत्व ही उसका आभूषण है। लज्जा और विनय ही भारत की देवियों के आभूषण हैं। सुन्दर आकृति वालों के लिए आभूषण की आवश्यकता नहीं है।

४३०७) आमदनी पर सबकी निगाह होती है, खर्च कोई नहीं देखता। धर्म की कमाई में बल होता है। हराम की कमाई हराम में जायेगी। ऊपरी आय बहता हुआ स्रोत है, जिससे सदैव प्यास बुझती है।

४३०८) भरतजी कहते हैं कि मैं अपने जाति-धर्म का त्याग करके भिक्षा मांगता हूं, क्योंकि आरत मनुष्य सब कुकर्म करने पर विवश होते हैं। आरत लोग कुछ विचार नहीं करते हैं, क्योंकि जुआरी को अपना ही दांव सूझ पड़ता है। आरत मनुष्य के चित्त में सत् तथा असत् का विवेक नहीं रहता।

४३०९) जिस काम को तुम कर सकते हो या कल्पना करते हो कि तुम कर सकोगे, उसको आरम्भ कर दो। साहस में प्रतिभा, शक्ति और जादू है। सिर्फ काम में जुट जाओ, मस्तिष्क में वेग आ जायेगा। आरम्भ करो, कार्य समाप्त होगा।

४३१०) नीच लोग विघ्न के भय से कोई कार्य नहीं करते, मध्यम श्रेणी के लोग कार्य को आरम्भ करके विघ्न पड़ने पर बीच में ही छोड़ देते हैं, किन्तु उत्तम लोग बार-बार विघ्न पड़ने पर भी आरम्भ किए हुए काम को बीच में नहीं छोड़ते।

४३११) प्राचीन काल में संसार को केवल भारत के पुरुषों का ही गर्व नहीं था; हमारी स्त्रियां भी सब प्रकार से देवियां थीं। यदि वे अपने स्वामियों के कामों में समान भाग न लेतीं और प्रेमपूर्वक उसमें सदा सहयोग न करतीं, तो उन कुसुमारियों को अर्धांगिनियां क्यों कहते ? प्राचीन काल में स्त्रियां सर्वदा पुरुषों के अनुरूप हुआ करती थीं।

४३१२) आराम उनके प्रति विश्वासघात है जो इस संसार से चले गए हैं और जाते समय स्वतन्त्रता का दीप सदा प्रज्ज्वलित रखने के लिए हमें दे गये हैं। यह उस ध्येय के प्रति विश्वासघात है जिसे हमने अपनाया है और जिसे प्राप्त करने की हमने प्रतिज्ञा की है। यह उन लाखों के प्रति विश्वासघात है जो कभी आराम नहीं करते।

४३१३) आलस्य को अपना एकमात्र शत्रु समझनेवाला कर्तव्य-परायण व्यक्ति ही वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग करते हुए उसे अपने अनुकूल बना लेता है। आलस्य की कब्र में सब सद्गुण दफन हो जाते हैं। आलस्य जीवित मानव को दफना देता है।

४३१४) आलस्य दरिद्रता की कुंजी और सारे अवगुणों की जड़ है। आलस्य परमेश्वर के दिए हुए हाथ-पैरों का अपमान है। आलस्य में दरिद्रता का वास होता है। आलस्य से ही दरिद्रता और परतन्त्रता मिलती है।

४३१५) आलस्य, पत्नीसेवा, रोगी रहना, जन्मभूमि का स्नेह, सन्तोष और भीरुता- ये छ: बातें प्रगति में बाधक हैं। आलस्य मनुष्यों के शरीर में रहने वाला महान शत्रु है।

४३१६) अगर तुम आलसी हो तो अकेले मत रहो, अगर तुम अकेले हो तो आलसी मत बनो। आलसियों की तरह जीने से समय और जीवन पवित्र नहीं किये जा सकते। आलसी की कोई सदिच्छा कभी पूरी नहीं होती। आलसियों को खिलाना-पिलाना वास्तव में उन्हें जहर देना है।

४३१७) आलसी को सदा असन्तोष रहता है। आलसी मनुष्य सदा ऋणी और दूसरों के लिए भार-रूप रहता है। बरतने से कोई वस्तु इतनी जल्दी नहीं घिसती जितनी जल्दी मोर्चा लगने से घिसती है। इसी प्रकार आलस्य आदमी को निकम्मा कर देता है।

४३१८) आलोचना एक भयानक चिनगारी है- ऐसी चिनगारी है जो अहंकार रूपी बारूद के गोदाम में विस्फोट उत्पन्न कर सकती है और यह विस्फोट कभी-कभी मृत्यु को शीघ्र ले आता है।

४३१९) आलोचना व्यर्थ होती है, क्योंकि इससे दोषी प्राय: अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करने लगता है। आलोचना भयावह भी है, क्योंकि वह मनुष्य के बहुमूल्य गर्व पर घाव करती है, उसकी महत्ता के भाव को पीड़ा पहुंचाती है और उसके क्रोध को भड़काती है।

४३२०) किसी की आलोचना मत करो जिससे तुम्हारी कोई आलोचना न करे। बच्चों को आलोचना की अपेक्षा आदर्श की अधिक आवश्यकता होती है। कभी-कभी मौन रह जाना सबसे तीखी आलोचना होती है।

४३२१) जब तक तुममें दूसरों को व्यवस्था देने या दूसरों के अवगुण ढूँढ़ने, या दूसरों के दोष ही देखने की आदत मौजूद है तब तक तुम्हारे लिए ईश्वर का साक्षात् करना अत्यन्त कठिन है। दूसरों में दोष न निकालना, दूसरों को उन दोषों से उतना नहीं बचाता जितना अपने को बचाता है।

४३२२) आज आंधी की तरह आए हुए पैसे ने उसकी बदसूरती पर वैसा ही आवरण डाला था, जैसे कि कोई नवयुवती चेहरे के रंग और उसके दागों पर क्रोध और पाउडर का आवरण डाल लेती है।

४३२३) आवश्यकता कभी मुनाफे का सौदा नहीं करती। आवश्यकता के लिए कोई कानून नहीं है। आवश्यकता तर्क के सामने नहीं झुकती। आवश्यकता लाभप्रद कलाओं की जननी है, और विलासिता ललित कलाओं की।

४३२४) आवश्यकता का कम होना विद्वत्ता का सिद्ध है। आवश्यकता के सदृश कोई सद्गुण नहीं है। आवश्यकता बहुधा प्रतिभा को

प्रोत्साहित करती है। आवश्यकता भीरु को वीर बना देती है। जिस मनुष्य की जितनी कम आवश्यकता होती है, वह ईश्वर के उतना ही समीप होता है।

४३२५) आवागमन संसार का सहज धर्म है, इससे परमात्मा को भी अवकाश नहीं है। यदि मनुष्य आवागमन के चक्कर से छूटना चाहता है, तो उसे इच्छाओं का दमन करना होगा। परन्तु इन्द्रियों पर काबू पाना बहुत बड़ी तपस्या है। जन्म और मृत्यु जगत के दो निर्विवाद सत्य हैं। आवागमन की समस्या इन्हीं दो सत्यों का स्पर्श करती है।

४३२६) आवेश और क्रोध को वश में कर लेने से शक्ति बढ़ती है और आवेश को आत्म-बल के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। आवेश के प्रभाव से बुद्धि विपरीत हो जाती है। आवेश बुद्धि, बल, शक्ति, क्षमता-सबका दिवाला निकाल देता है।

४३२७) सब शरीर गल गया, बाल सब सफेद हो गए और सब दांत टूट गए। बूढ़ा हाथ में डण्डा लेकर चलता है तब भी उसकी आशायें अनन्त हैं।

४३२८) आशा और आत्म-विश्वास ही वे वस्तुएं हैं जो हमारी शक्तियों को जागृत करती हैं और हमारी उत्पादन शक्ति को दुगुना-तिगुना बढ़ा देती हैं।

४३२९) जो लोग आशा के सेवक हैं, उन्हें सब लोगों का सेवक बनना पड़ता है और आशा जिनकी सेविका है, उनके सभी लोग सेवक हो जाते हैं।

४३३०) मनुष्यों की आशा ऐसी आश्चर्यपूर्ण जंजीर है जिससे बंधे हुए लोग दौड़ते हैं तथा जिससे मुक्त होने पर पंगु के समान खड़े रहते हैं।

४३३१) मेरी राय मानो, अपनी नाक से आगे मत देखा करो। तुम्हें हमेशा मालूम होता रहेगा कि उससे आगे भी कुछ है, और वह ज्ञान तुम्हें आशा और आनन्द से मस्त रखेगा।

४३३२) यद्यपि अभी तक भारत से निराशा की निशा नहीं बीती है, तथापि हमारे मन में यह आशा बनी हुई है कि पूर्व दिशा अर्थात् भारत में फिर ज्ञान का प्रकाश होगा। हे आशा देवी। तुम धन्य हो। जगत में सर्वत्र तुम्हारी महिमा व्याप्त है। मनुष्य को तुम्हारे जैसा कोई दूसरा सहारा उपलब्ध नहीं है।

४३३३) आशा जीवन का लंगर है, उसका सहारा छोड़ने से आदमी भव-सागर में बह जाता है; लेकिन बिना हाथ-पैर हिलाए केवल आशा करने से भी काम नहीं चल सकता।

४३३४) आशा ही जीवन है और जीवन ही आशा है। हे आशे। हम सभी तुम्हारे ही भरोसे जी रहे हैं। हाय, हमारा सब कुछ चला गया, पर हम कभी तुमको नहीं छोड़ेंगे। हे आशे, यह पृथ्वी तुम्हारे ही सहारे पर टिक रही है। हम तुमसे यही प्रार्थना करते हैं कि अन्त में तुम हमें धोखा मत देना।

४३३५) महाभारत में भीष्म पराजित हो गए, द्रोण मारे गए और कर्ण स्वर्ग को चले गए फिर भी दुर्योधन को यह आशा बनी ही रही कि शल्य पाण्डवों को जीत लेगा। सचमुच, आशा बहुत बलवती होती है।

४३३६) आशावाद मनुष्यों के लिए अमृत है। जैसे सूर्य से बनस्पतियों को जीवन प्राप्त होता है, वैसे ही आशावाद से मनुष्यों में जीवन-शक्ति का संचार होता है। इसके विपरीत निराशावाद कभी भी आपकी उन्नति नहीं होने देता और सदा आपके लक्ष्य में बाधक सिद्ध होता है।

४३३७) मनुष्य की सब उन्नति, जीवन की सफलता और सृष्टि की चरितार्थता आशावाद में ही प्रतिष्ठित है। आशावादी परमात्मा का भक्त होता है, पक्का ज्ञानी, पूर्ण ऋषि।

४३३८) आशा अन्तिम श्वास तक साथ नहीं छोड़ती। आशा अमर है, उसकी आराधना कभी निष्फल नहीं होती। जब तक सांस तब तक आस।

४३३९) आशा उत्तम जलपान है, किन्तु वह रात्रि का निकृष्ट भोजन है। संसार में ऐसा कोई नहीं है जो आशा का पेट भर सके। मनुष्य की आशा समुद्र के समान है, वह कभी भरती ही नहीं।

HHH(३४७)HHH

४३४०) आशा जब भय से उत्पन्न होती है तब उज्ज्वलतम होती है। आशा निर्बलता से उत्पन्न होती है, पर उसके गर्भ से शक्ति का जन्म होता है। आशा में ही सुधा का वास है।

४३४१) आशा परम दुःख है, नैराश्य परम सुख है परवश दुखी स्ववश सुखी है। जो केवल आशा के बल पर जीता है, वह भूखों मरेगा। आशा सदा हमसे कहती रहती है, बढ़े चलो, बढ़े चलो और यूं हमें कब्र में ला पटकती है।

४३४२) आशा ही एक ऐसी चीज है जो सबके पास मिल सकती है। जिसके पास और कुछ नहीं होता, उसके पास आशा तो रहती ही है। प्रयत्नशील मनुष्य के लिए सदा आशा है।

४३४३) जहां कोई आशा नहीं होती वहां कोई उद्योग भी नहीं होता। जिस चीज से आशा बढ़ती है, उससे साहस भी बढ़ता है। हीरे परखने की आशा जौहरी से ही की जा सकती है।

४३४४) निरर्थक आशा से बंधा हुआ मानव अपना हृदय सुखा डालता है और आशा की कड़ी टूटते ही वह झट से विदा हो जाता है। व्यर्थ आशा केवल मूर्खों को ही प्रसन्न करती है। बुद्धिमान लोग ऐसी आशा नहीं करते। नरक के बीज बोकर स्वर्ग की आशा करना मूर्खता है।

४३४५) युवा काल की आशा पुआल की आग है जिसके जलने और बुझाने में देर नहीं लगती। आशा ही वह मधुमक्खी है जो फूलों के बिना मधु बनाती है। स्मृति पीछे दृष्टि डालती है, आशा आगे।

४३४६) आसक्ति हमारे चित्त को विषय में आबद्ध करती है। आसक्ति भय और चिन्ता की जड़ है। यदि तुमने आसक्ति का राक्षस नष्ट कर दिया है, तो इच्छित वस्तुएं तुम्हारी पूजा करने लगेंगी।

४३४७) कमजोर गरीब की दुःखभरी आह अभिमान को चूर्ण करने में समर्थ होती है। जहां तक हो, किसी के मन को मत दुखाओ। याद रखो, गरीब की आह से संसार उलट-पलट हो सकता है।

४३४८) जिस क्षण तुम इच्छा से ऊपर उठ जाओगे, इच्छित वस्तु तुम्हारी तलाश करने लगेगी, यही नियम है। पूर्ण सत्य की प्राप्ति के लिए तुम्हें सांसारिक इच्छाओं से छुटकारा पाना होगा।

४३४९) जब तक इच्छा का लेख भी विद्यमान है, तब तक ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। अतएव अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं और सम्यक् विचार एवं विवेक द्वारा बड़ी-बड़ी इच्छाओं का त्याग कर दो।

४३५०) जैसी हमारी इच्छायें होती हैं, जैसे हमारे हार्दिक भाव होते हैं, ठीक उन्हीं की झलक हमारे मुखमंडल पर दिखाई देने लगती हैं। यदि हमारी इच्छा-शक्ति क्षुद्र और कमजोर होगी, तो हमारी मानसिक शक्तियों का कार्य भी वैसा ही होगा।

४३५१) जो तमाम इच्छाओं से ऊपर उठ गया है, उसके द्वारा भलाई सदा इस तरह अनजाने, सहज और स्वाभाविक तौर से होती रहती है, जैसे फूल से खुशबू और सितारों से रोशनी निकलती रहती है।

४३५२) प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन प्रिय होता है, परन्तु महान पुरुष को अपनी इज्जत जीवन से कहीं अधिक मूल्यवान और प्रिय होती है।

४३५३) यह ज्यादा अच्छा है कि तुम इज्जत के लायक बनो और उसे न पाओ, बनिस्वत इसके कि तुम उसे पा जाओ मगर उसके लायक न बनो। दरिद्रता से जीवन बिताने वाला, संसार की नजर से गिरा हुआ मनुष्य भी यदि धर्म के पथ से नहीं डिगता, तो वही सच्चा इज्जतदार है।

४३५४) इतिहास के अध्ययन से मनुष्य बुद्धिमान बनता है। इतिहास के अनुभवों से हम सबक नहीं लेते, इसी से इतिहास की पुनरावृत्ति होती है। इतिहास स्वदेशाभिमान सिखाने का साधन है। इतिहास मनुष्यों के अपराधों, मूर्खताओं और अभाग्यों के पंजीकरण पुस्तक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

४३५५) जीवन-चरित ही सच्चा इतिहास है। जब मैंने इतिहास का अध्ययन किया, तो मुझे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि जिस व्यक्ति को मरना नहीं आया, उसे जीना भी नहीं आया। मानव-इतिहास प्रधानरूप से विचारों का इतिहास है।

४३५६) प्रेम पर किसी का जोर नहीं चलता। यह वह आग है जो लगाने से लगती नहीं और बुझाने से बुझती नहीं। जिसने अपना

दिल अपने प्रेम-पात्र को दे दिया, उसी को प्रतिफल में उसका प्रेम प्राप्त हुआ। हर प्रेमी ने इसी नुकसान में फायदा देखा है।

४३५७) ईश्वर की बही में हमारी करनी ही लिखी जाती है, हमारी पठनी-कथनी नहीं। जिस क्षण तुम सिवाय ईश्वर के और किसी का भरोसा नहीं रखते, उसी समय तुम शक्तिमान् बन जाते हो और तमाम निराशा गायब हो जाती है।

४३५८) जो बुद्धि में घिर जाय, वह असीम कैसे हो सकता है ? जो समझ में आ जाय, वह खुदा कैसे हो सकता है ? ईश्वर की इच्छा से कहीं-कहीं विष भी अमृत और कहीं-कहीं अमृत भी विष हो जाता है।

४३५९) मुझको इस संसार में जीवन ले आया, इसलिए मैं चला अया। मुझे मृत्यु ले जाती है, इसलिए चला जाता हूं। मैं न तो स्वेच्छा से आया और न स्वेच्छा से जाता हूं।

४३६०) उस अल्लाह की स्तुति करनी चाहिए जो समस्त संसार का चालक, दयालु, उदार और अन्तिम निर्णय के समय भी न्यायाधीश है। ईश्वर जीवात्मा का निर्माता है, और जब तक जीवात्मा फिर ईश्वर में लीन नहीं हो जाती, तब तक उसे विश्राम नहीं मिलता।

४३६१) प्रभु-कीर्तन और कथा मखमल का बिछौना है। उस पर नींद न आएगी, तो और कहां आएगी ? नाच-रंग कांटों की कटीली और नुकीली जमीन है, उस पर नींद कहां ?

४३६२) ईश्वर की कोई वैज्ञानिक परिभाषा नहीं दी जा सकती; हां, आत्मा के सहारे उसका अनुभव किया जा सकता है। ईश्वर की अनुभूति हृदय को है, मस्तिष्क को नहीं।

४३६३) ईश्वर की प्रार्थना करने से स्वयं को तो लाभ होता ही है; इससे सारे विश्व को भी लाभ पहुंचता है। प्रार्थना जीव का ईश्वर को कृतज्ञतापूर्वक याद करने का एक प्रयत्न है।

४३६४) जिस प्रकार बहती हुई नदियां नाम-रूप को छोड़कर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ज्ञानी-महात्मा नाम-रूप से रहित होकर परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

४३६५) ईश्वर के प्रेम की भी एक प्रणाली है जिसके अनुसार उसका प्रकाशन होता है। ईश-प्रेम के द्वारा जीवन का वास्तविक अर्थ सिद्ध होता है। हृदय के अन्तरतम से ईश्वर के प्रति सतत एवं अनन्य प्रेम करना ही भक्ति है।

४३६६) आइये हम ईश्वर से डरें ताकि आदमी से कभी न डरना पड़े। वही प्रथम है, वही अन्तिम है; वही प्रकट है वही रहस्य है। वही सब चीजों का ज्ञाता है।

४३६७) ईश्वर को हृदय जानता है, मस्तिष्क नहीं। हम जितना ईश्वर के समीप पहुंचते जाते हैं, उतना ही मनुष्य एवं ईश्वर के स्वरूप में एकरूपता बढ़ती जाती है।

४३६८) मैं केवल एक बूंद हूं और पता नहीं कैसे समूचा समुद्र (ईश्वर) मुझमें हिलोरें मारता है। मैं मान ही नहीं सकता कि घड़ी तो है पर इसका घड़ीसाज नहीं है।

४३६९) प्रकृति के उस ओर है ईश्वर, ईश्वर के इस ओर है प्रकृति। ईश्वर प्रकृति का प्राण मात्र ही नहीं है, वह तो उसके परे उसका सृष्टा, उसका स्वामी भी है।

४३७०) ईश्वर का दर्शन आंख से नहीं होता। ईश्वर के शरीर नहीं है इसलिए उसका दर्शन श्रद्धा से ही होता है। ईश्वर से लड़ा नहीं जा सकता, उससे तो बस प्रेम ही किया जा सकता है।

४३७१) ईर्ष्या अग्नि है, परन्तु अग्नि का गुण उसमें नहीं है। वह हृदय को फैलाने के बदले और भी संकीर्ण कर देती है। ऐसा कौन-सा प्राणी होगा जो ईर्ष्या की क्रीड़ा का आनन्द न उठाना चाहे ?

४३७२) ईर्ष्या करने वाले के पास लक्ष्मी नहीं रह सकती, वह उसको अपनी बड़ी बहन (दरिद्रता) के हवाले करके चली जायेगी। ईर्ष्या करने वाले के लिए ईष्या की बला ही काफी है, क्योंकि उसके शत्रु उसे छोड़ भी दें तो उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर डालेगी।

४३७३) कुछ लोग उच्च पदस्थ और वैभवशाली होते हैं। परन्तु उनके काम बहुत नीचतापूर्ण होते हैं। ईर्ष्या के कारण वह दूसरे लोगों

का ऐश्वर्य नहीं देख सकते। जो मूर्ख दूसरे का सुख और धन देख-सुनकर बिना आग के जलते हैं, वे कभी किसी की भलाई नहीं कर सकते।

४३७४) यदि हम में गुण न हों, तो ईर्ष्या ही क्या बुरी है ? ईर्ष्यालु व्यक्ति अपने को सबसे बड़ा मानता है। यह सत्य है कि दोपहर में दीपक की लौ नहीं चमकती, परन्तु उसको यह गर्व तो होता ही है कि वह निरन्तर जलती रहती है।

४३७५) अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधारक होता है। उत्तरदायित्व, योग्यता तथा शक्ति के साथ-साथ चलता है। उत्तरदायित्व से शिक्षा प्राप्त होती है।

४३७६) मानव मन बहुत दुर्बल और चंचल है। इस संसार में प्रलोभन बड़े प्रबल हैं। देवता बनना बहुत कठिन है परन्तु राक्षस बनना सरल है। पतन सहज है, परन्तु उत्थान कठिन है।

४३७७) उत्साह बलवान् होता है, उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं है। उत्साही पुरुष के लिए जगत् में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। उत्साह मनुष्य की भाग्यशीलता का मापदण्ड है।

४३७८) बिना उत्साह के कभी किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है। विश्व के इतिहास में प्रत्येक महान् और महत्त्वपूर्ण आन्दोलन उत्साह की सफलता है। प्रतिभाशाली व्यक्ति की हर रचना उत्साह की रचना होती है।

४३७९) उदासीनता बहुधा अपराध से भी भयंकर होती है। उदासीनता मृत्यु की शून्यता से भी अधिक विकराल है। उदासीनता वैराग्य का एक सूक्ष्म स्वरूप है जो थोड़ी देर के लिए मनुष्य को अपने जीवन पर विचार करने की क्षमता प्रदान कर देती है।

४३८०) उद्दण्डता सरलता का केवल उग्र रूप है। बाल्यावस्था के पश्चात् ऐसा समय आता है, जब उद्दण्डता की धुन सिर पर सवार हो जाती है। रोजमर्रा का ओछापन हमें उद्दण्डता की ओर खींच ले जाता है।

४३८१) मेरा उद्धार करो। मैं अपने साथ अनेकों अभिशापों तथा पापों को लेकर आया हूं। बोझिल होने के कारण मैं गिर-गिर पड़ता हूं। तुम्हीं मेरा उचित उपचार करो।

४३८२) भीरुता को छोड़कर उद्यम करो और सबके साथ बन्धुत्व स्थापित करो। भीख मांगना बन्द कर दो और आलस्य के बन्धन को तोड़ दो।

४३८३) सिंह रूपी उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है। कायर लोग कहते हैं कि भगवान् को जो देना होगा वह देंगे; अर्थात् कायर मनुष्य भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं। भाग्य को ठुकरा कर तुम अपनी शक्ति से पौरुष करो। यदि यत्न करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं होती, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है ?

४३८४) जहां उद्योग नहीं हैं, वहां सुख नहीं है। जिस देश से उद्योग गया उस देश को भारी घुन लगा। जिस घर में उद्योग की तालीम नहीं है, उस घर के लड़के जल्दी ही घर का नाश कर देते हैं।

४३८५) उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम- ये छ: गुण जिसमें होते हैं, देव उसी की सहायता करता है। उद्यम ही सफलता की कुंजी है। बिना उद्यम किए थाली की रोटी भी अपने मुंह में नहीं जाती। कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, मनोरथ या इच्छामात्र से नहीं। जो होनहार है वही होगा- ऐसा निकम्मे लोग कहते हैं।

४३८६) उधार देना ही पाप करना है। उधार मांगना भीख मांगने से अधिक अच्छा नहीं है। न उधार लो और न उधार दो, क्योंकि उधार प्राय: स्वयं को और मित्र दोनों को खो देता है। मित्र को उधार देना मित्रता को खोना है।

४३८७) सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए। प्रत्येक को अपनी उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

४३८८) जो प्रेम असहिष्णु हो, जो दूसरों के मनोभावों का जरा भी विचार न करे, जो मिथ्या कलंक आरोपण करने में संकोच न करे, वह उन्माद है, प्रेम नहीं।

४३८९) ज्ञान का उन्माद मदिरा के उन्माद से भयंकर है, क्योंकि ज्ञानोन्मादी अपने साथ दूसरों को भी हानि पहुंचाते हैं जबकि मदिरोन्मादी केवल अपनी ही हानि करते हैं।

४३९०) अपने ऊपर उपकार करने वाला मित्र यदि दैवयोग से अपने घर आ जाये, तो नीचात्मा भी भक्तिभाव-पूर्वक उसका आदर करते हैं, उससे विमुख नहीं होते। उच्चात्माओं का तो कहना ही क्या है ? सज्जनों के ऊपर किए गए सद्भावसूचक उपकार का फल मिलते कुछ भी देर नहीं लगती।

४३९१) इस संसार में वही मनुष्य धन्य है जो दूसरों के काम आता है, जो दूसरों की भलाई करता है। जो मनुष्य केवल धन एकत्र करता है, किसी का उपकार नहीं करता, उसे सुकीर्ति नहीं उपलब्ध होती।

४३९२) जो मनुष्य दूसरे का उपकार करता है, वह अपना भी उपकार न केवल परिणाम में अपितु उसी कर्म में करता है, क्योंकि अच्छा काम करने का भाव ही स्वयं उचित पुरस्कार है।

४३९३) मानव जीवन की सफलता इसी में है कि वह उपकारी के उपकार को कभी न भूले। उसके उपकार से भी बढ़कर उसका उपकार कर दे।

४३९४) उपकारी शत्रु से मेल करना चाहिए, अपकारी मित्र से नहीं, क्योंकि इन दोनों के उपकार और अपकार यही दो लक्षण जानना चाहिए, अर्थात् उपकार करे वह मित्र और अपकार करे वह शत्रु।

४३९५) दूसरे को उपदेश देने के समय सभी सज्जन हो जाते हैं, किन्तु जब स्वयं वैसा आचरण करने का अवसर आ पड़ता है, तो सब कुछ भूल जाते हैं। धर्म का उपदेश सुनने-सुनाने से कोई धर्मात्मा नहीं हो जाता, किन्तु उपदेशानुसार व्यवहार करने से मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है।

४३९६) जिसे हर एक देता है पर विरला ही कोई लेता है, ऐसी चीज क्या है ? उपदेश-सलाह। वही उन्नति कर सकता है जो स्वयं अपने को उपदेश देता है।

४३९७) हमारे देश में आदरणीय बनने का एक ही उपाय है। जो जोर-जोर से भाषण दे सकता है, वही हमारा नेता होता है। यदि देखा जाये तो शायद एक भी उपदेशक ऐसा नहीं मिलेगा, जो अपने उपदेशों के अनुसार काम करता हो।

४३९८) जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी घटनाओं से जो उपदेश नहीं ले सकते वे नीतिवान नहीं बन सकते। ये घटनायें ही हमारी सच्ची गुरु हैं।

४३९९) बचपन में अविवेक, जवानी में क्रोधोन्माद और बुढ़ापे में विकलता- इस प्रकार मनुष्य के पीछे सर्वदा एक न एक उपद्रव लगा ही रहता है।

४४००) उपन्यास अपने पाठक को पाप करने पर बाध्य नहीं करते, लेकिन केवल बताते है कि पाप कैसे किया जाता है। उपन्यास मिठाइयां हैं। साहित्य के भूखे स्त्री-पुरुष उनकी चाह में रहते हैं।

४४०१) किसी के प्रदान करने का ढंग उपहार से अधिक देने वाले के चरित्र की सूचना देता है। गर्व और आडम्बर के साथ दी हुई चीज उदारता की नहीं अपितु महत्वाकांक्षा की सूचक है। देने वाले का हृदय उपहार को प्रिय और मूल्यवान बना देता है।

४४०२) शत्रु को उपहार देने योग्य सर्वोत्तम वस्तु है क्षमा; विरोध करने वाले को सहनशीलता; सखा को अपना हृदय; बच्चे को श्रेष्ठ उदाहरण; पिता को सम्मान, जननी को अपना ऐसा आचरण जिससे वह तुम्हारे ऊपर गर्व कर सके; स्वयं को प्रतिष्ठा; और सभी जीवों को उपकार।

४४०३) उपाधि मनुष्य के सम्मान की सूचक नहीं है वरन मनुष्य ही उपाधि के सम्मान का सूचक है। तीन सबसे बड़ी उपाधियां जो मनुष्य को दी जा सकती हैं, वह हैं शहीद, वीर और सन्त।

४४०४) उपेक्षा-भाव मानव के लिए निकृष्टतम व्यवहार है। वह अपशब्द सहन कर सकता है, पिट सकता है, किन्तु उपेक्षा सहन नहीं कर सकता। प्रेम सब कुछ सह लेता है किन्तु उपेक्षा नहीं सह सकता।

४४०५) कर्ज आजाद आदमी को गुलाम बना देता है। कर्ज दी हुई पूंजी ही सारे अनर्थों की जड़ है और अन्यायमूलक युद्धों की जननी है। कर्ज मनुष्य के लिए वैसा ही है जैसा पक्षी के लिए सर्प। लोग झूठे और मीठे वचन कह कर कर्ज लेते हैं। कर्ज लेते समय बहुत सुख मिलता है, परन्तु वह वापस नहीं किया जाता।

४४०६) ऋण अथाह सागर है। ऋण देना ही पाप करना है। ऋण मांगना भीख मांगने से अधिक श्रेयस्कर नहीं है। ऋण लेने की प्रवृत्ति मितव्ययिता की धार को मोटी कर देती है। जो ऋण लेने जाता है, वह कष्ट मोल लेने जाता है।

४४०७) इस वक्त देश में जो सबसे आवश्यक और बुनियादी चीज है और जिसे हर कोई बुनियादी मानता है, वह है भारत की एकता।

४४०८) एकता चापलूसी से कायम नहीं की जा सकती। जब तक जीव-मात्र के साथ एकता महसूस न हो तब तक प्रार्थना, उपवास, जप-तप सब थोथी शर्तें हैं।

४४०९) तुम्हारे अभिप्राय एक-समान हों, तुम्हारे अन्त:करण एक-समान हों और तुम्हारे मन एक-समान हों, जिससे तुम्हारी सामुदायिक शक्ति का विकास हो।

४४१०) मनुष्य का जीवन इतना एकांगी नहीं है कि उसे हम केवल अर्थ, केवल काम या ऐसी ही किसी एक कसौटी पर परख कर सम्पूर्ण रूप से खरा या खोटा कह सकें।

४४११) एकांत प्राय: सर्वोत्तम संगति है। एकांत में रहना ही महान् आत्माओं का भाग्य है। एकान्तवास शोक ज्वाला के लिए समीर के समान है। एकान्त हमें बताता है कि हमें कैसा होना चाहिए, समाज हमें बताता है कि हम क्या हैं।

४४१२) एकाग्रता आवेश को पवित्र और शान्त कर देती है, विचारधारा को शक्तिशाली तथा कल्पना को स्पष्ट करती है। तुम एकाग्रता द्वारा उस अनन्त शक्ति के अटूट भंडार के साथ मिल जाते हो, जिससे इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। चित्त एकाग्र हुए बिना ध्यान और समाधि कठिन है। पवित्रता के बिना एकाग्रता का कोई मूल्य नहीं है। चित्त की एकाग्रता योग की समाप्ति नहीं है। यहां से योग शुरू होता है। एकाग्रता से ही विजय मिलती है।

४४१३) जब कभी मुझे ऐब देखने की इच्छा होती है, तो मैं अपने से प्रारम्भ करता हूं और इससे आगे बढ़ ही नहीं पाता। दूसरे के ऐब मत देखो, क्योंकि ऐबों के बीज अपने ही अन्दर हैं।

४४१४) ऐश्वर्य का मदिरा-विलास किसे स्थिर रहने देता है। ऐश्वर्य का सुख विहार और विलास तो नहीं, यह ऐश्वर्य का दुरुपयोग है। ऐश्वर्य के मद में डूबा हुआ मानव ऐश्वर्य के भ्रष्ट होने तक प्रकाश में नहीं आता। ईश्वर में ही ऐश्वर्य का परिपूर्ण सत्य और परिपूर्ण स्वरूप प्रकाशित होता है, जगत् में नहीं, विषय में नहीं, अपने निजी अहंकार में नहीं।

४४१५) छोटे लोगों के पेट में बड़ी बात नहीं पचती है, वे उसे अन्य लोगों को बता देते हैं; जैसे आधा सेर के बर्तन में एक सेर वस्तु नहीं समा सकती। क्षुद्र मनुष्य बड़े नहीं हो सकते, चाहे वे ऐंठकर आसमान से लग जायें और ऊंचे पद को प्राप्त करके कितना ही गर्व करें। देखिए, यदि किसी की आंखे छोटी हैं, तो वह चाहे कितना ही फाड़-फाड़कर देखे, तो वे बड़ी नहीं हो जातीं।

४४१६) जैसे पक्षीगण वृक्ष का आश्रय लेते हैं, नदियां समुद्र का आश्रय लेती हैं और युवतियां पति का आश्रय लेती हैं, उसी तरह सभी गुण कंचन का आश्रय लेते हैं।

४४१७) कंजूस के पास जितना होता है उतना ही वह उसके लिए तरसता है जो उसके पास नहीं होता। कंजूस मनुष्य एक पाई के लिए उतना ही उत्तेजित हो जाता है जितना कि एक महत्त्वाकांक्षी पुरुष एक राज्य की जीत के लिए। कंजूसी और सुख-शांति ने एक-दूसरे को कभी देखा नहीं, फिर कैसे वे एक-दूसरे से परिचित हों ?

४४१८) कनक और कामिनी को त्यागे बिना आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती। सब लोग चलने को कहते हैं, परन्तु विरले लोग ही ईश्वर तक पहुंचते हैं। इस संसार में सोना और स्त्रियां दो दुर्लघ्य घाटियां हैं।

४४१९) प्रकृति की मार, गर्मी की झुलसाहट, मौसम के थपेडों को देखे बिना ही उम्र के मात्र बढ़ जाने से ही परिपक्वता नही है, इनका अनुभव होना आवश्यक है।

४४२०) दिल एक आयना है जिसमे आदमी अपनी खुशी और गम देख लेता है। अपने दिल की हालत कभी न गिरने दो। किसी का दिल मत तोड़ो। जिन्दगी में अगर खुश रहना चाहते हो तो किसी से भी दिल सोच समझ कर लगाओ।

४४२१) खामोशी आलिम के लिये बाइसे जीनत और जाहिल के लिये पर्दा है। आलिम पानी के बिना सैराब है और जाहिल पानी की मौजों मे रह कर भी प्यासा होता है। जो अपने आपको आलिम बताये वह जाहिल है।

४४२२) आलिम जाहिल को इसलिये पहचानता है कि वह खुद जाहिल रह चुका है लेकिन जाहिल आलिम को नही पहचानता इसलिये कि वह खुद आलिम नही रहा।

४४२३) हर शख्स को यह ताकीद कर दी गई है कि नसीब मे जो है उसे खुशी-खुशी मान लो क्योकि हर शख्स के लिये जो नसीब रब ने तय कर दिया है वही उसकी जिन्दगी मे आसानियां और खुशियां लायेगा।

४४२४) बदइन्सान की खबर पर कभी भी यकीन मत करो। पहले उसकी लाई हुई खबर को छानबीन करो क्योकि बदकार की नादानी से किसी को कोई नुकसान न पहुंचे।

४४२५) हर हाल मे अच्छाई पर चले। अकेले मे हो या जलवत मे यानी लोगों की संग भीड मे, दोस्ती हो या दुश्मनी, खुशी हो या गम, राहत हो या मुसीबत, जिन्दगी के हर गोशे को अच्छाई से भर दो।

४४२६) जिद्द एक रवैया ना हो यानि जिद अगर आदत बन जाये तो बुरी है। अपनी बात मनवाने के लिये कभी जिद्द मत करो। जिद का अच्छा पहलू ये है कि जिद्द कोई बुलन्द उसूल के लिये हो। जिद से काम नही संवरते बल्कि जिद्दी शख्स दूसरों के लिये दिल आजारी की वजह बनता है।

४४२७) दया के छोटे-छोटे कार्य, प्रेम के जरा-जरा शब्द से हमारी पृथ्वी को स्वर्गोपम बना देते हैं। प्रभु भी उसी पर दया करते है जो दूसरों के प्रति दया व प्रेम का भाव रखता है। दया व प्रेमव्रत उपवास से बड़ा होता है अत: अपने अन्दर वह भाव पैदा करो कि वही भाव ईश्वर तुम्हारे बारे मे बनाये।

४४२८) कमजोरी कभी न हटने वाला बोझ और यंत्रणा है, कमजोरी ही मृत्यु है। कमजोरी का इलाज कमजोरी की चिन्ता करना नहीं, बल्कि शक्ति का विचार करना है।

४४२९) हमारी कुछ कमजोरियां पैदायशी होती हैं, और अन्य हमारी शिक्षा का परिणाम हैं। प्रश्न यह है कि इनमें से कौन सा अधिक दु:खदायी हैं। कमजोर होना दु:खी होना है।

४४३०) करुणा में शीतल अग्नि होती है जो क्रूर से क्रूर व्यक्ति का हृदय भी आर्द्र कर देती है। नए मनुष्य को सब कुछ मिला परन्तु उसे दयालु हृदय नहीं मिला जिसे करुणा की हल्की ठोकर तोड़ दे।

४४३१) जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दु:ख के परिज्ञान से होती है, वही करुणा हमें प्रिय जनों के सुख के अनिश्चयमात्र से होती है। सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिए करुणा का प्रसार आवश्यक है।

४४३२) यदि पहरों ईश-प्रार्थना करने के बदले हम क्षण भी दुखी लोगों के ऊपर करुणा करें तो मुझे विश्वास है कि वह सत्य आकर हमारा सम्मान करेगा। मानव सृष्टि करुणा के लिए है।

४४३३) आत्मज्ञान का सम्पादन करना और आत्मकेन्द्र में स्थिर रहना मनुष्यमात्र का सबसे प्रथम और प्रधान कर्तव्य है। उस कर्तव्य का पालन करो जो तुम्हारे निकटतम है।

४४३४) हमें अपना कर्तव्य करना चाहिए। एक न एक दिन ईश्वर की दया अवश्य होगी। किसी मनुष्य का समय एक-समान नहीं रहता। उसे कभी सुख और कभी दु:ख होता रहता है।

४४३५) कर्तव्य का पालन ही चित्त की शान्ति का मूल मंत्र है। कर्तव्य भाव से ऊंचा है। एक कर्तव्य-पूर्ति का पुरस्कार है दूसरे कर्तव्य को पूर्ण करने की योग्यता।

४४३६) जिस प्रकार दूसरों के अधिकार की प्रतिष्ठा करना मनुष्य का कर्तव्य है, उसी प्रकार अपना मान धारण करना भी उसका कर्तव्य है। बैर लेना या करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है- उसका कर्तव्य क्षमा है। वीर होने के लिए मनुष्य को कर्तव्य से अधिक श्रम करना होता है।

४४३७) जिन जातियों में सच्ची कर्तव्य-निष्ठा पाई जाती है, वे संसार में सदा संपन्न अवस्था में रहती हैं और सबसे सम्मान प्राप्त करती हैं। संसार में जो बड़े लोग हो गए हैं और जिनकी कीर्ति से मनुष्य जाति का इतिहास प्रकाशित है- वे सब कर्तव्य-निष्ठा से ही वैसे बने हैं।

४४३८) अतीत में जैसा भी कुछ कर्म किया गया है, भविष्य में वह उसी रूप में उपस्थित होता है। प्रत्येक प्राणी अपने ही कृत कर्मों से कष्ट पाता है।

४४३९) कर्म की सफलता के लिए धर्म की स्थिरता जरूरी है। कर्म के फल से बचना सम्भव ही नहीं है, कारण कि फल कर्म से अलग नहीं है, वह क्रिया के साथ ही है।

४४४०) कर्म चित्त की शुद्धि के लिए ही है, तत्त्वदृष्टि के लिए नहीं, वस्तुसिद्धि तो विचार से ही होती है। करोड़ों कर्मों से कुछ भी नहीं हो सकता।

४४४१) कर्म वह आईना है जो हमारा स्वरूप हमें दिखा देता है। अत: हमें कर्म का एहसानमंद होना चाहिए। कर्म ही मनुष्य के जीवन को पवित्र और अहिंसक बनाता है।

४४४२) कर्म से भाग्य बनता है, और भाग्य से कर्म होता है। दोनों में ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसे बीज और वृक्ष का होता है। भाग्य की बात भाग्य के हाथ छोड़ कर हमें पौरुष का साथ करना चाहिए।

४४४३) जिस व्यक्ति ने जैसा कर्म किया है, वह उसके पीछे लगा रहता है। यदि कर्त्ता पुरुष शीघ्रतापूर्वक दौड़ता है, तो वह भी उतनी ही तेजी से उसके पीछे दौड़ता है। जब वह सोता है, तो उसका कर्मफल भी उसके साथ ही सो जाता है। जब वह खड़ा होता है, तो वह भी पास ही खड़ा रहता है, और जब वह चलता है तो वह भी पीछे-पीछे चलने लगता है। इतना ही नहीं, कोई कर्म करते समय भी कर्मसंस्कार छाया के समान उसका पीछा करता है।

४४४४) प्रयोजन से या अभाव से हम जो भी कर्म करते हैं, वही कर्म हमारे बंधन का कारण है, आनन्द से जो करते हैं वह बन्धन का कारण नहीं हो सकता। वस्तुत: वही कर्ममुक्ति है। समस्त कर्म का लक्ष्य आनन्द की ओर है, एवं आनन्द का लक्ष्य कर्म की ओर है। अपने अनिवार्य कर्मफल के आगे कोई जोर नहीं चल सकता।

४४४५) फल मानव के कर्माधीन है, बुद्धि कर्मानुसार आगे बढ़ने वाली है, तथापि विद्वान और महात्मा अच्छी प्रकार से सोच कर ही कोई कर्म करते हैं। बुरे कर्मों का फल शीघ्र, अन्य कर्मों का फल देर से मिलता है।

४४४६) अनासक्त होकर कर्म करने से ही हमें कर्म पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है। निष्काम कर्म ईश्वर को ऋणी बना देता है और ईश्वर उसको ब्याज सहित वापस करने को बाध्य हो जाता है।

४४४७) अच्छे कर्म स्वर्ग के द्वार के अदृश्य कब्जे हैं। शुभ कर्मों के द्वार कभी बन्द नहीं होते। यह धरती ही हमारे कर्मों की भूमि हैं। कर्म सदैव भले ही सुख न ला सकें, पर कर्म के बिना भी सुख नहीं मिलता।

४४४८) कर्म की ध्वनि शब्दों से ऊंची होती है। कर्म में वाक्शक्ति होती है। खेल में हम सदा ईमानदारी का पल्ला पकड़ कर चलते हैं, पर अफसोस है कि कर्म में हम इस ओर ध्यान तक नहीं देते।

४४४९) संसार का रहस्य कर्म में ही निहित है। अपने कर्म से बढ़कर कोई सद्धर्म नहीं है। किसी काम को सुचारू रूप से करने के लिए मनुष्य को उसे स्वयं करना चाहिए। केवल दृढ़-इच्छा-प्रसूत कर्म ही सुन्दर हो सकता है। कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में और कर्म का मूल भक्ति अथवा सम्पूर्ण आत्मसमर्पण में है।

४४५०) जीवन में अपने किए हुए कर्म को परिवर्तित करने की पूर्ण असम्भाव्यता से अधिक दु:खमय और कुछ नहीं है। कर्म के बोझ से कोई नहीं मरता, मौत तो डर के कारण आती है।

४४५१) मनुष्य के कर्म ही उसके विचारों की सबसे सही व्याख्या है। कर्म हर मनुष्य का प्राण-रक्षक है। मैंने कर्म से ही अपने को बहुगुणित किया है। वही कर्म सर्वश्रेष्ठ है, जिससे बहुसंख्यक लोगों को अधिक से अधिक आनन्द की प्राप्ति हो।

४४५२) सच्चे मनुष्यों के ही कर्म मधुर सुगंध देते हैं, और मिट्टी में भी खिलते हैं। पुरुष ऋतुमय है, कर्ममय है। यहां इस लोक में जैसा भी कर्म किया जाता है, वैसा ही कर्म यहां से चलकर आगे परलोक में होता है।

४४५३) मैं ही करता हूं- यह मनुष्य का वृथा अभिमान है, क्योंकि विश्व के सभी प्राणी अपने-अपने कर्मों की डोरी में बंधे हुए हैं। जैसे फूल और फल किसी की प्रेरणा के बिना ही अपने समय पर वृक्षों में लग जाते हैं, उसी प्रकार पहले के किए हुए कर्म भी अपने फल-

भोग के समय का उल्लंघन नहीं कर सकते।

४४५४) यह मर्म समझने लायक है कि एक ही काम समय और परिस्थितिवश कहीं धर्म समझा जाता है तो कहीं अधर्म, जैसे युद्ध में किसी के प्राण लेना हिंसा नहीं समझा जाता, परन्तु वैसे किसी को मार डालना हिंसा और पाप समझा जाता है।

४४५५) अनेक लोग परिश्रम छोड़कर भाग्य को दोष देते हैं। उन लोगों को बहुत दु:ख मिलता है। जो लोग सदा परिश्रम करते रहते हैं, उनको कभी दु:ख नहीं सहना पड़ता। तुम लोग सदैव कर्म करते रहो जिससे तुम्हारा सम्मान हो। कर्म करने से ही सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। कर्म करना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है।

४४५६) जिस यत्न से शरीर के बंधन से आत्मा के छूटने का योग सधे वह कर्मयोग है। धृति और उत्साह से मिलकर कर्मयोग बनता है। इस संसार में बहुत कम ऐसे लोग हैं जो उन कामों को करते हैं जिन्हें वे कहते हैं और जो काम वे करते हैं उन्हें कहते नहीं।

४४५७) कर्मशील लोग शायद ही कभी उदास रहते हों- कर्मशीलता और उदासी दोनों साथ-साथ नहीं रहतीं। जीवन में रंग कर्मशीलता ही भरती है।

४४५८) कलंक मृत्यु का कारण होता है। कलंक दंड में नहीं, अपराध में है। कलंक स्त्री के लिए भयानक समस्या है। चन्द्रमा अपना प्रकाश सारे आकाश में फैलाता है, परन्तु अपना कलंक अपने ही भीतर रखता है।

४४५९) जिस वस्तु के देखने में कलंक लगता हो उसे न देखो, जिस तरह चौथे के चांद को कोई नहीं देखता। निर्मल से निर्मल चरित्र पर कलंक लगना कोई बड़ी बात नहीं है। वसंत ऋतु के नए फलों में भी घुन लग जाता है, और कलियां बहुधा खिलने के पहले ही समीर के झोकों से झड़ जाती हैं।

४४६०) कलम में चोट करने की शक्ति तलवार से सौगुनी होती है। दुनिया में दो ही ताकते हैं, तलवार और कलम; और अन्त में तलवार सदैव कलम से पराजित होती है।

४४६१) झगड़े को छोटा नहीं समझना चाहिए, झगड़े का फल बहुत बुरा होता है। देखिए, जब किसी छोटे मनुष्य के घर में आग लगती है, तब वह धनी लोगों के धन और घर को भी नष्ट कर देती है। कलह से मनुष्यों के घर नष्ट हो जाते हैं, कुवाक्य बोलने से मित्रता नष्ट हो जाती है, बुरे शासकों से राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं और कुकर्म से मनुष्य का यश नष्ट हो जाता है।

४४६२) अव्यक्त से व्यक्त की रचना, कला का एक कार्य है। कला अनुकरण नहीं करती बल्कि व्याख्या करती है। कला का अन्तिम और सर्वोच्च ध्येय सौंदर्य है।

४४६३) कला का रहस्य भ्रान्ति है, पर वह भ्रांति जिस पर यथार्थ का आवरण पड़ा हो। जो कला आत्मा को आत्मदर्शन करने की शिक्षा नहीं देती, वह कला नहीं है। कला प्रकृति से अनन्त की ओर ले जाने वाली एक सीढ़ी है। कला विचार को मूर्ति में परिणत कर देती है। कला की कीमत परिणाम से नहीं, उसके कलात्मक गुणों से आंकी जाती है।

४४६४) प्रकृति ईश्वर का प्रकट रूप है, कला मनुष्य का। सम्पूर्ण कला केवल प्रकृति का ही अनुकरण है। सच्ची कला दैवी सिद्धि का केवल प्रतिबिम्ब होती है। ईश्वर की पूर्णता की छाया होती है।

४४६५) प्रत्येक राष्ट्र के गुणावगुण सदा उसकी कला में अंकित रहते हैं। मानव की बहुमुखी भावनाओं का प्रबल प्रवाह जब रोके नहीं रुकता, तभी वह कला के रूप में फूट पड़ता है।

४४६६) समस्त कला अनुकरण-मात्र है। कला सुन्दर को सजीव और भीषण को निर्जीव करती है। पंडित कला का कारण समझते हैं, अपंडित उसका आनन्द लेते हैं।

४४६७) कलाकार की भाव-राशि अथाह एवं अचिन्त्य है। कलाकार के निर्माण में जीवन के निर्माण का लक्ष्य छिपा रहता है। कलाकार स्वयं एक साधक है, चाहे वह कला साहित्य हो, नृत्य हो, शिल्प हो अथवा और कुछ।

४४६८) कलाकार प्रकृति का प्रेमी है, अतएव वह उसका दास भी है और स्वामी भी। संसार का सबसे अरक्षित और असहाय जीव कलाकार है।

४४६९) जिसने उत्तम जीना चाहा, वही कलाकार है। जो अन्तर को देखता है बाह्य को नहीं, वही सच्चा कलाकार है। कलाकार

वस्तुओं को उनके रूप में नहीं अपने रूप में देखता है। महान कलाकार वह है जो सत्य को सरल बना दे।

४४७०) आह कल्पना का यह सुन्दर जगत कितना मधुर होता है। छाया में सुख-स्वप्नों का समूह पुलिकत होकर जगता-सोता रहता है। कल्पना में जो आनन्द है वह यथार्थ में नहीं है।

४४७१) हम चाहे कल्पना के कितने ही ताने-बाने बुनें तब भी स्वप्नों की सीमाओं को नहीं बांधा जा सकता और तर्क की कितनी ही सीढ़ियां लगा दी जायें तब भी अनेक प्रश्नों का समाधान शेष रह जाता है। कल्पना आत्मा की आंख, बुद्धि का पंख और मन की विमल चांदनी है।

४४७२) ईश्वरीय सौन्दर्य को, प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना कवि का कर्त्तव्य है। कवि जिस समय कविता करता है, वह अलौकिक मानव बन जाता है। जहां न जाय रवि, वहां जाय कवि।

४४७३) कवि केवल सृष्टि ही नहीं करता, सृष्टि की रक्षा भी करता है। कवि विश्व के अस्वीकृत व्यवस्थापक हैं। कवि जो कुछ आपद में सीखता है, उसकी शिक्षा कविता में देता है। कवि केवल देखते, जानते ही नहीं, प्रकाश भी करते हैं।

४४७४) कवि मन का स्वामी, विश्वप्रेम से पूर्ण, आत्मनिष्ठ, यथार्थभाषी और शाश्वत काल पर दृष्टि रखने वाला होता है। कवि की उंगलियों के स्पर्शमात्र से शब्द चमक उठते हैं।

४४७५) कवि सृष्टि के सौन्दर्य का एक मर्मज्ञ वक्ता, गायक और कलाकार होता है। वह एक ऐसा यन्त्र है जिसके माध्यम से सृष्टि का सौन्दर्य निहारा जा सकता है।

४४७६) कवि माने मन का मालिक। जिसने मन नहीं जीता वह ईश्वर की सृष्टि का रहस्य नहीं समझ सकता। पामर दुनिया विषय-सुख में झूमती है, कवि आत्मानन्द में डोलता है। लोगों को भोजन का आनन्द मिलता है, कवि को आनन्द का भोजन मिलता है।

४४७७) कवि का कर्म केवल मनोरंजन नहीं होना चाहिए। उसका काम उचित उपदेश देना भी होना चाहिए। जो महान् कवि बनने की महत्त्वाकांक्षा रखता है, उसे सबसे पहले एक छोटा बनना पड़ेगा। कवि आत्मा का चितेरा है।

४४७८) सच्चे कवि या दृष्टा तो वे माने जाते हैं जो मृत्यु में जीवन और जीवन में मृत्यु देख सकें। हमारी अन्तस्थ सुप्त भावनाओं को जागृत करने का सामर्थ्य जिसमें होता है। वह कवि है।

४४७९) कवि और चित्रकार में भेद है। कवि अपने स्वर में और चित्रकार अपनी रेखा में जीवन के सत्य और सौन्दर्य का राग भरता है। बाहरी सौन्दर्य सुचतुर चित्रकार के चित्र में भी देखने को मिल सकता है, परन्तु मन का सौन्दर्य कवि की वाणी में ही मिलता है।

४४८०) कविता अपनी मनोरंजन-शक्ति द्वारा पढ़ने या सुनने वाले का चित्त रमाये रहती हैं, जीवन-पट पर उक्त कर्मों की सुन्दरता या विरूपता अंकित करके हृदय के मर्म-स्थलों का स्पर्श करती है। कविता केवल वस्तुओं के रंग-रूप में सौन्दर्य की छटा नहीं दिखाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है।

४४८१) कविता कवि की कृति है। कविता में कवि की ही अनुभूति होती है। इसलिए कविता समझने के लिए हमें कवि को समझना कविता का महान् लक्ष्य है कि वह लोगों की चिन्ताओं को शान्त करने और उनके विचारों को उन्नत करने में मित्र का काम करे।

४४८२) कविता भावना से रंजित बुद्धि है। कविता मानवता की उच्चतम अनुभूति की अभिव्यक्ति है। कविता जीवन की समालोचना है। कविता वह कला है जिसमें कल्पना शक्ति विवेक की सहायक होकर सत्य और आनन्द का परस्पर सम्मिश्रण करती है। कविता वह मनीषा है जो हृदय को आल्हादित कर देती है।

४४८३) कविता सच्ची भावनाओं का चित्र है, और सच्ची भावनायें चाहे वे दु:ख की हों या सुख की, उसी समय उत्पन्न होती हैं जब हम दु:ख या सुख का अनुभव करते हैं।

४४८४) कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु में कविता है, विराट रूप में कविता है, बिन्दु में कविता है, सागर में कविता है, रेणु में कविता है जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्मांड एक अद्‌भुत महाकाव्य है।

४४८५) कविता ही मनुष्य-हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है

जहां जगत् की मान्य गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

४४८६) मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द-चित्र मात्र है जिसमें उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है।

४४८७) कविता आत्मा का संगीत है। केवल अभिव्यक्त अभिमत ही कविता नहीं है, प्रत्युत वह एक गीत है जो सस्मित मुख से प्रवाहित होता है।

४४८८) कविता सुखी और उत्तम मनुष्यों के उत्तम और सुखमय क्षणों का उद्‌गार है। सर्जनात्मक प्राण उसका बाहक है और हमारा बाह्य मन उसको व्यक्त करने का उपकरण।

४४८९) गद्य जहां असमर्थ है, वहां कविता जन्म लेती है। मुझे अरसिकों के सामने कविता पढ़नी पड़े ऐसा दुर्भाग्य हे भगवान। मुझे कभी न देना।

४४९०) सच्ची कविता तो प्रतिभा से उत्पन्न होती है और प्रतिभा शिव का तीसरा नेत्र है। सच्ची कविता सदैव चेतना के किसी सूक्ष्म स्तर से आया करती है। कविता सब मानवीय ज्ञान, विचारों, भावों, अनुभूतियों और भाषा की सुगन्धित कली है।

४४९१) कवित्व अंधकार में दीपक है; कवित्व दरिद्र का धन है; कवित्व भूख में अन्न और प्यास में शीतल जल है; केवल दु:ख में धैर्य और विरह का मिलन है। कवित्व वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से और बाह्य जगत् का अन्तर्जगत् से संबंध कौन कराती है ?

४४९२) जो मनुष्य मन, वचन या कर्म से दूसरों को कष्ट देता है उसके उस पर पीड़ा रूप बीज से ही उसके लिए बुराई पैदा होती है। हमारे कष्ट पापों का प्रायश्चित हैं।

४४९३) कहानी की सृष्टि बाजार में नहीं, उस निभृत गुहा में होती है जहां पीड़ा अपने लिए स्थान पाकर दबी-दुबकी रहती है। पढ़कर आनन्दातिरेक से नेत्र गीले न हो जायें, तो वह कहानी कैसी ?

४४९४) कहानी तथ्यों की प्रदर्शनी नहीं है, किसी एक मानव-परिचय की पूरी तस्वीर है, समग्र चित्र है, उसमें हमारे जीवन के अनुभवों ने पूर्णता पाई है। जैसे नदी जल-स्त्रोत की धारा है, वैसे ही मानव कहानी का प्रवाह है।

४४९५) कानून का फंदा बहुत लम्बा होता है। उससे बचना सरल काम नहीं है। कानून के झण्डे से अपराध का कौशल नए-नए आविष्कार की सूझ ही पाता है, मंद और परास्त तनिक नहीं हो पाता। कानून घोड़े को पानी दिखा सकता है, पिला नहीं सकता। यदि कानूनों की अपनी जुबान होती तो वे सबसे पहले वकीलों की शिकायत करते।

४४९६) कापुरुष और कुत्ता- दोनों केवल भोजन के प्रेमी होते हैं। थोड़ा भी स्नेह दिखाने से पास आ जाते हैं और फिर हटाने से भी नहीं हटते।

४४९७) काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं। दूसरों का मुंह ताकना शर्म की बात है। आदमी उसी काम में सफल होता है, जिसमें उसका मन लगता हो। अच्छे कामों की सिद्धि में देर लगती है, पर बुरे कामों की सिद्धि में यह बात नहीं होती। काम करने वाले को रोटियों की कमी नहीं।

४४९८) जब हम कोई काम करने की इच्छा करते हैं, तो शक्ति आप ही आ जाती है। जिस काम का प्रारम्भ ही अमंगल से हो, उसका अन्त मंगलमय नहीं हो सकता। काम सबको प्यारा होता है, चाम प्यारा नहीं होता।

४४९९) बाधाओं पर विजय पाना और अवसर देखकर काम करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। हम वह काम करना चाहते हैं जिसमें हमारा नाम प्राणी मात्र ही जिव्हा पर हो। हर काम के लिए एक अवसर होता है। दान के अवसर पर दान देना चाहिए, नाच के अवसर पर नाच।

४५००) काम को हाथों हाथ ही कर डालना चाहिए, वर्ना जो काम पीछे रह जाता है, वह हो नहीं पाता। वही काम करना ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और जिसके फल को प्रसन्न मन से भोग सकें।

४५०१) कामना वाले के लिए क्रोध अनिवार्य है, क्योंकि कामना कभी तृप्त नहीं होती। लोभी मनुष्य की कामना कभी पूर्ण नहीं

होती। विषय-सुख की कामना मनुष्य को अंधा बना देती है। कामना सागर की भांति अतृप्त है, ज्यों-ज्यों हम उसकी आवश्यकता पूरी करते हैं, त्यों-त्यों उसका कोलाहल बढ़ता है।

४५०२) जो परमात्मा के दर्शन करना चाहे, सदा सुख भोगना चाहे और भवबन्धन से छूटना चाहे, उसे कामिनी और कंचन में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। जो इसमें मन लगाये रहते हैं, उन्हें सिद्धि नहीं मिलती।

४५०३) उल्लू दिन में नहीं देख सकता, कौए को रात में नहीं दीखता। किन्तु कामी ऐसा अन्धा होता है जिसे न दिन में सूझता है और न रात में। कामी को न भय होता है और न लज्जा। कामी व्यक्ति अवसर-कुअवसर को नहीं देखता।

४५०४) संसार में जो कामी और लोभी लोग हैं, वे नीच कौवे की भांति सबसे डरते हैं। कामुक मनुष्य दूसरे प्राणियों को सन्ताप देता है। कामुक का शरीर मृत आत्मा का शव है।

४५०५) प्राण-भय से दुबक जाना कायरों का काम है। संसार में कायरों के लिए कहीं स्थान नहीं है। हम सबको किसी न किसी प्रकार कठोर परिश्रम करने, दु:ख उठाने और मरने के लिए तैयार रहना चाहिए।

४५०६) वीर लोग युद्ध में अपनी वीरता दिखाते हैं, अपने मुंह से अपनी वीरता का वर्णन नहीं करते। इसके विपरीत, युद्ध में शत्रु को वर्तमान देखकर कायर लोग अपनी बहादुरी की अतिशयोक्तिपूर्ण बातें करते हैं।

४५०७) मनुष्य जितना ही चाहता है, उतनी ही उसकी प्राप्त करने की शक्ति बढ़ती है। अभाव पर विजय पाना ही जीवन की सफलता है। उसे स्वीकार करके उसकी गुलामी करना ही कायरपन है। शीतल विचार कायरता का दूसरा नाम है। स्नेह के धन को क्रोध, द्वेष तथा ईर्ष्या के तूफान में बहाकर अपने गर्व की रक्षा करना कायरता है।

४५०८) बिना कार्य के सिद्धान्त मानसिक ऐश्वर्य है, बिना सिद्धान्त के कार्य अंधे की टटोल है। उचित कार्य विचार के अभाव से उत्पन्न नहीं हो सकता, उसके पहले विचार की जरूरत है।

४५०९) कार्य उसी का सफल होता है जो समय को विचार कर कार्य करता है। वह खिलाड़ी कभी पराजित नहीं होता जो दांव विचार कर खेलता है।

४५१०) किसी कठिन कार्य में सफल हो जाना आत्म-विश्वास के लिए संजीवनी के समान है। योग्यता से बिताये हुए जीवन को हमें वर्षों के नहीं, अपितु कार्यों के पैमाने से नापना चाहिए। विवेकपूर्ण कार्य उपयोगी होता है। उपयोगी होने पर कार्य की कठिनता की हम परवाह नहीं करते। आप अपना काम कीजिए, मैं आपको जान जाऊंगा। धर्म का कार्य मनुष्य को विशाल बनाता है।

४५११) अगर ठीक मौके पर साधनों का ध्यान रखकर काम शुरू करो और समुचित साधनों को उपयोग में लाओ तो ऐसी कौन-सी बात है जो असम्भव हो ?

४५१२) अनुचित स्थान में पाण्डित्य के प्रयोग से क्या लाभ होगा ? अंधकार से भरे घड़े के ऊपर रखा हुआ दीपक उसके भीतर का अंधकार दूर नहीं कर सकता। जिस प्रकार ढेर-के-ढेर एरंड, भिण्ड, आक, नल से काठ का काम नहीं निकलता, उसी प्रकार अज्ञों से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

४५१३) अर्थ के मूल की सदैव रक्षा करनी चाहिए, ऐसी पंडितों की नीति है। मूल से ही फूल-फूलादि सब गुण सिद्ध होते हैं। जो मनुष्य पराक्रम का अवसर उपस्थित होने पर विषादग्रस्त हो जाता है, उसका तेज नष्ट हो जाता है; फिर उससे पुरुषार्थ नहीं होता।

४५१४) आवश्यकता से अधिक चतुराई करने वाले, पद-पद पर शंका करने वाले और परापवाद से डरने वाले सम्पदा दूर चली जाती है।

४५१५) दूसरे की सहायता प्राप्त करने की आशा के हर्ष में उद्यम का कभी त्याग नहीं करना चाहिए। देखिए, बादल को आता हुआ देखकर कोई मनुष्य अपना घड़ा नहीं फोड़ देता।

४५१६) उस काम का करना अच्छा नहीं है, जिसे करके पीछे पछताना पड़े और जिसके फल को रोते हुए भोगना पड़े। जिस मनुष्य का दुष्कर्म उसके सत्कर्मों से दब जाता है, वह इस लोक को मेघ से मुक्त चन्द्रमा की भांति प्रकाशित करता है।

४५१७) छोटे लोगों से बड़ा काम निकलता है। यह पाठ मुझे आंख के तिल से मिला है। आंख का तिल बहुत छोटा होता है, परन्तु

उसी की सहायता से छोटी-बड़ी सब चीजें देखी जाती हैं।

४५१८) जिन लोगों ने गम्भीरतापूर्वक सत्य का अन्वेषण किया, उन्हें सत्य का ज्ञान हो गया। मैं बेचारा ऐसा साहस न करके एक छोर पर ही बैठ गया। इससे मुझे सत्य का ज्ञान नहीं हुआ।

४५१९) जो अपने आश्रितों को बांटकर स्वयं थोड़ा ही खा लेता है, अधिक काम करके थोड़ा ही आराम करता है और मांगने पर शत्रु को भी धन देता है, उस आत्मज्ञानी को अनर्थ स्पर्श नहीं करते। जो बुद्धिमान मनुष्य आत्म-सामर्थ्य, देश-काल, आय-व्यय को देखकर विचार स्थिर करता है, वह अन्त में दु:खी नहीं होता। जो वृक्ष साथ-साथ संघ रूप में खड़े होते हैं, वे एक-दूसरे के सहारे तेज आंधी के झोकों को भी सह लेते हैं- उखड़ते नहीं। बलवान लोगों को अपने निर्बल शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

४५२०) जो मनुष्य निश्चित कार्यों को छोड़कर अनिश्चित के पीछे दौड़ता है, उसके निश्चित कार्य भी नष्ट हो जाते हैं, अनिश्चित तो नष्ट हुआ ही रहता है।

४५२१) जो अलज्जा के काम में लज्जा करते हैं और लज्जा करने योग्य काम में लज्जा नहीं करते, मिथ्या धारणावाले ऐसे मनुष्य दुर्गति को प्राप्त होते हैं। जो एक बार प्रमाद करके फिर दुबारा प्रमाद नहीं करता, वह मेघ-मुक्त चन्द्रमा की भांति इस संसार को प्रकाशित करता है।

४५२२) बुद्धिमान मनुष्य ऐसे व्यक्ति की सेवा न करे जो उसके गुणों को नहीं जानता। ऐसे व्यक्ति की सेवा से कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता जैसे जोती हुई ऊसर भूमि में कुछ पैदा नहीं होता।

४५२३) बुरे और अहितकर कार्यों का करना सहज है, किन्तु अच्छे और हितकारी कार्यों का करना परम कठिन है। यदि थोड़े सुख के परित्याग से अधिक सुख की प्राप्ति होती दिखाई पड़े, तो अधिक सुख की ओर ध्यान देता हुआ बुद्धिमान मनुष्य थोड़े सुख को छोड़ दे।

४५२४) विपत्ति में, अधिक संकट में अथवा प्राणांतक भय उपस्थित होने पर जो अपनी बुद्धि से विचार करता हुआ धैर्य धारण करता है, वह अन्त में दु:खी नहीं होता।

४५२५) उतावली में कोई काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि बिना विचारे काम करना घोर अनर्थ का कारण होता है। जो लोग उतावली में काम करके पीछे पछताते हैं, वेद और बुद्धिमान लोग उनको बुद्धिमान नहीं कहते।

४५२६) यहां पर सब लोग परलोक में जाने के लिए तैयार बैठे हैं। बहुत-से लोग तो दिवंगत हो गए और शेष लोग स्वर्ग में जाने के लिए कमर कसे हुए हैं।

४५२७) सत्ता और सम्पत्ति की धुन्ध से अन्धे बने लोगों को मेरा कालदण्ड नहीं दीखता। कालातिक्रमण कार्य के ताजा रस को पी जाता है; अर्थात् कार्य को नष्ट कर देता है।

४५२८) जब अवैध ढंग से कमाया हुआ धन काफी मात्रा में इकट्ठा हो जाता है, तब वह एक प्रकार से काला धन होता है। फिर उसे खर्च करने के लिए उससे अनापशनाप वस्तुएं मनमाने भाव पर आवश्यकता से अधिक खरीदी जाती हैं जिसके कारण जमाखोरी को प्रोत्साहन मिलता है।

४५२९) जमाखोरी से बाजार में चीजों का अभाव हो जाता है और अभाव के कारण मांग अधिक हो जाती है। मांग अधिक होने से वस्तुओं के भाव बढ़ जाते हैं। जमाखोरी सामाजिक अपराध है।

४५३०) हमारे दिल की हरकत हमें बताती है कि हमारा कारवां धीरे-धीरे चल रहा है, अर्थात् हम धीरे-धीरे मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

४५३१) जब संसार में जीविका का कोई साधन न हो, तब मर जाना ही अच्छा है। जब जीवन बोझ हो जाय, तब जीते रहना बेकार है। धन, जन, यौवन का गर्व मत करो। क्षण मात्र में काल सब कुछ नष्ट कर देता है। इस परिवर्तनशील संसार में जीवन और मृत्यु अवश्यंभावी हैं। तथापि जो महापुरुष अपने प्रयासों से अपने समूह और समाज का कल्याण करते हैं, अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं।

४५३२) कला की सीमा काव्य है, अर्थात काव्य सब कलाओं में श्रेष्ठ है। काव्य साहित्य का उत्तम अंग है। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनंद प्राप्त होता है, वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नहीं होता। जैसे योगी समाधि में ब्रह्मानन्द सुधा के पान में तन्मय हो जाता है, और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है, वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है।

४५३३) काव्य सभी ज्ञान का आदि और अन्त होता है- वह उतना ही अमर है जितना कि मानव का हृदय। रसात्मक वाक्य काव्य होता है।

४५३४) पत्थर में ईश्वर के दर्शन करना काव्य का काम है। इसके लिए व्यापक प्रेम की आवश्यकता है। ज्ञानेश्वर महाराज भैंसे की आवाज में भी वेद श्रवण कर सके, इसलिए वह कवि हैं।

४५३५) दर्शन में चेतना के प्रति नास्तिक की भी स्थिति सम्भव है, परन्तु काव्य में अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असम्भव ही रहेगी।

४५३६) अन्न पैदा करने में किसान ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरीय प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में बिखर रहा है। किसान को अपने बैल अपने लड़कों की तरह प्यारे होते हैं। वह उन्हें पशु नहीं, अपना मित्र और सहायक समझता है। वृक्षों की तरह किसान का भी जीवन एक तरह का मौन जीवन है। किसान पत्ते में, फल में आहुत हुआ सा दिखाई देता है। यदि किसान न हो, तो सारा संसार क्षुणा-पीड़ा से व्याकुल हो जाये।

४५३७) कीर्ति, कविता और वैभव वही अच्छा है जिससे गंगाजी के समान सबका कल्याण हो। कीर्ति का नशा शराब के नशे से भी तेज है। शराब छोड़ना आसान है, कीर्ति छोड़ना आसान नहीं। कीर्ति जीवन-सरिता का झाग है। कीर्ति वीरोचित कार्यों की सुगंध है। धन्य है वह मानव जिसकी कीर्ति उसकी सत्यता से अधिक प्रकाशमान नहीं है।

४५३८) अपने कुकर्मों का फल चखने में कडुआ परन्तु परिणाम में मधुर होता है। कुकर्म मनुष्य के जीवन पर काला परदा डाल देता है। थोड़े भी कुकर्म बहुत-से गुणों को दूषित करने के लिए पर्याप्त है। यदि तुम वह करते हो जो तुम्हें नहीं करना चाहिए, तो तुम्हें वह भोगना पड़ेगा जो न भोगना पड़ता।

४५३९) बुरे कर्मों का परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। बुरे कर्मों के लिए पीड़ा और क्लेश अवश्य भोगना पड़ेगा। जिस प्रकार ताजा दुहा दूध एकदम नहीं बिगड़ जाता, उसी प्रकार कुकर्मों का फल तत्काल नहीं मिल जाता। राख में दबी आग की तरह वह सुलगता रहता है। प्रत्येक कुकृत्य उस तार को तोड़ देता है जो हमारे और ईश्वर के बीच में लगा हुआ है।

४५४०) मेरे जैसा कोई कुटिल, दुष्ट और कामी नहीं है। मैं ऐसा नमकहराम हूं कि जिस भगवान ने मुझे जन्म दिया है, उसे मैं भूल गया हूं।

४५४१) जो निडर होकर पिता के वचन का निरादर करता है और बुरे लोगों के साथ रहता है, वह पुत्र मूर्ख और अधम है। उसके जन्म लेने से किसी को सुख नहीं मिलता है।

४५४२) ईश्वर उस जीव के खून या मांस से संतुष्ट नहीं होता, जिसको तुम कुर्बानी कहते हो, अपितु वह तुम्हारी धर्म-निष्ठा से सन्तुष्ट होता है।

४५४३) दुर्बुद्धि ने सारे संसार को दु:खी बना दिया। यदि दुष्ट लोगों को सज्जनों के साथ रखा जाय, तब भी सज्जन नहीं बनते जैसे हींग को कपूर में मिला कर रखा जाय, तब भी वह सुगंधित नहीं होती।

४५४४) कुरूपता विधाता का ऐसा अभिशाप है, जिसे हम अपने सद्गुणों द्वारा दूर कर सकते हैं। मेरे दोस्त। किसी चीज को कुरूप न कहो, सिवा उस भय के जिसकी मारी कोई आत्मा स्वयं अपनी स्मृतियों से डरने लगे। कुरूपता सुशीलता से सुशोभित होती है।

४५४५) कुल की प्रतिष्ठा भी नम्रता और सद्व्यवहार से होती है। हेकड़ी और रुखाई से नहीं। कुल-मर्यादा में आत्म-रक्षा की बड़ी शक्ति होती है। कुल -मर्यादा संसार की सबसे उत्तम वस्तु है। उस पर प्राण तक न्यौछावर कर दिए जाते हैं।

४५४६) किसी के कुल का नहीं उसके गुणों का विचार करना चाहिये। भगवान की गति बड़ी विचित्र है। उन्होंने व्याध और अजामिल जैसे नीचों का उद्धार किया। भला विदुर कौन उच्च कुल के थे जिसके घर कृष्ण स्वयं गये और अपना राजसी गौरव त्याग

कर उसके यहाँ मांग कर भोजन किया।

४५४७) अपनी उन्नति और शत्रु का विनाश- यही दो नीति की बातें हैं। उन्हीं दोनों को अंगीकार करके कुशल पुरुष अपनी वाक्चतुरता का विस्तार करते हैं। कार्य-कुशल आदमी के लिए यश और धन की कमी नहीं है। कुशलता आई कि आज जो कार्य कठिन मालूम पड़ता है वही आनन्ददायक बन जायेगा।

४५४८) कुशासक के प्रति विद्रोह करना ईश्वर की आज्ञा मानना है। वह शासक अत्याचारी है जो अपनी इच्छा के अतिरिक्त कोई नियम नहीं जानता। अत्याचार और अराजकता में कभी अधिक पृथकता नहीं रहती। जहां कानून का अन्त होता है, वहां कुशासन प्रारम्भ होता है।

४५४९) जो मूर्ख दुष्टों का साथ करता है, वह अपने हाथ से अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारता है। कुसंगति में पड़कर किसका नाश नहीं होता, नीच बुद्धि अपना लेने पर चतुराई नष्ट हो जाती है। नीति शास्त्र यह कहता है कि दुष्टों के साथ दु:ख देता है। जिस दूध में पानी रहता है, वही अधिक औटाया जाता है।

४५५०) दुर्भाग्य में कोई किसी का साथी नहीं होता। मरते समय मनुष्य की आंख भी फिर जाती है। अंधेरे में मनुष्य का साया भी उससे अलग हो जाता है।

४५५१) कूटनीति मानवीय गुणों के विपरीत एक ऐसा दुर्गुण है, जिसने विश्व के बहुत बड़े भाग को दासता की श्रृंखला में जकड़ रखा है और जो मानवता के विकास में सबसे बड़ी बाधा बना हुआ है।

४५५२) कूटतीतिज्ञ वह है जो आपको नरक की ओर कूंच करने के लिये इतनी भद्रता और चतुराई से कह सकता है कि आप फौरन बिस्तर बांध लेते हैं।

४५५३) कूटनीति राजनीति का वह अंग है जो सतह पर नहीं आता गहराई में रहता है। घृणिततम बात को अति सुन्दर ढंग से कहना और करना ही कूटनीति है।

४५५४) चाहे कोई कितना ही यत्न करे, कृतघ्न कभी भी उपकार नहीं मानते। चाहे उनको अपना सर्वस्व दे दिया जाये तब भी वे अपने नहीं होते। कृतघ्न पुत्र का होना सांप के दांत से भी अधिक तेज होता है।

४५५५) मूसलधार वर्षा हो रही है, बादल गरज रहे हैं, और बिजली ऐसे जोर से कड़क रही है मानो घर से बाहर जाने को मना कर रही हो। फिर भी किसान अपने खेतों में लगातार काम करते हैं। पता नहीं, वह किस लालच से आज भी आराम नहीं करते हैं। घोर गरमी के दिन हैं सूर्य से मानो आग बरस रही है। पृथ्वी तवे की भांति जल रही है, सनसन-सनसन हवा चल रही है और शरीर से पसीना बह रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में भी किसान हल चला कर अपना खून सुखा रहे हैं। पता नहीं, वे किस लालच से ऐसी आंच में अपना शरीर जला रहे हैं।

४५५६) अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, अन्यथा ठोंकरे खाते रहोगे। आत्म-ज्ञान का सम्पादन करना और आत्म-केन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य मात्र का सबसे पहला और प्रधान कर्त्तव्य है।

४५५७) जब विद्रोह होता है तब अधिकतर लोगों को उसका पता नहीं होता। हर युग के आम लोग अपने अपने झमेलों में उलझे रहते हैं।

४५५८) जब आर्थिक परिवर्तन की आवश्यकता बहुत अधिक बढ़ जाती है, पर शासन-तंत्र जैसे का तैसा बना रहता है, तब दोनों के मध्य बहुत बड़ा अन्तर पड़ जाता है। बहुधा यह अन्तर एक आकस्मिक परिवर्तन से दूर होता है, जिसे क्रान्ति कहते हैं।

४५५९) एक नए समुज्जवल एवं मंगलाशापूर्ण भविष्य के लिए सब मठ और तोड़ने होंगे और दुर्गम पहाड़ों के उस पार जाना होगा जहां मनुष्य को स्वर्णिम उषा की प्राप्ति होगी और एक नई सुखमय सभ्यता का विहान होगा।

४५६०) क्रान्ति कभी पीछे की ओर नहीं जाती। क्रान्ति सभ्यता की जननी है। क्रान्तियां छोटी-छोटी बातों को लेकर नहीं होतीं, किन्तु छोटी-छोटी बातों से उत्पन्न होती हैं। क्रान्ति हमेशा द्रुतगामिनी होती है।

४५६१) समाज के निम्न वर्गों द्वारा की गई क्रान्तियां उच्च वर्गों के अन्यायों का परिणाम हुआ करती हैं। आन्तरिक जीवन की

क्रान्ति ही सामाजिक क्रान्ति की आधारशिला है।

४५६२) क्रूरता अत्याचारिणी है जो सदा भय के साथ रहती है। क्रूरता शैतान का पहला गुण है। शत्रु को दुखी देखने और घृणित उपाय से बल प्रयोग करने को क्रूरता कहते हैं।

४५६३) अनाथों का क्रोध पटाखे की आवाज है, जिससे बच्चे डर जाते हैं और असर कुछ भी नहीं होता। क्रोध को दुर्वचन से विशेष रुचि होती है। क्रोध को विनय निगल सकता है।

४५६४) क्रोध एक प्रचंड अग्नि है। जो मनुष्य इस अग्नि को वश में कर सकता है, वह उसको बुझा देगा, जो मनुष्य अग्नि को वश में नहीं कर सकता, वह स्वयं अपने को जला देगा।

४५६५) क्षत्रिय-क्षत्रिय कहने कोई क्षत्रिय नहीं होता। जो युद्ध में वीरतापूर्वक लड़ता-लड़ता प्राण दे देता है, वही क्षत्रिय होता है। क्षत्रिय का यही धर्म है कि बलवान से युद्ध करे। चाहे उसे मार डाले या स्वयं ही मर जाय, दोनों दशाओं में उसे यश प्राप्त होगा। क्षत्रिय का सनातन धर्म युद्ध करना है। युद्ध से भाग जाना कायर का काम है।

४५६६) क्रोधी के सामने अकार्य तथा अवाच्य जैसा कुछ नहीं रहता। अर्थात् वह कुछ भी कह सकता है और कुछ भी बोल सकता है। क्रोध की सर्वोत्तम औषधि विलम्ब है। क्रोध के सिंहासन पर बैठते ही बुद्धि वहां से खिसक जाती है। क्रोध मस्तिष्क के दीपक को बुझा देता है।

४५६७) कोई मुझे क्षति पहुंचाता है तो अपने आपको ही क्षति पहुंचाता है। क्या मैं उसे क्षति पहुंचाकर अपने आपको क्षति पहुंचाऊं।

४५६८) क्रोधी का मुंह खुला रहता है, पर आंखें बन्द हो जाती हैं। क्रोध से बढ़कर कोई चीज मनुष्य को कुरूप नहीं बनाती। क्रोध सागर की तरह बहरा और आग की तरह उतावला है। संसार में जितने बड़े-बड़े युद्ध हुए थे, वे सब अत्यंत भयंकर क्रोध के परिणाम थे। मनुष्य क्रोध को प्रेम से, पाप को सदाचार से, लोभ को दान से और मिथ्याभाषण को सत्य से जीत सकेगा।

४५६९) क्षमा असमर्थ मनुष्यों का गुण है और समर्थों का भूषण है। क्षमा यश है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा पवित्रता है। क्षमा धर्म है, क्षमा में ही चराचर जगत स्थिर है। क्षमा ने सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है। दो प्रकार के मनुष्य स्वर्ग के ऊपर स्थान पाते हैं- एक तो वह जो ऐश्वर्यशाली होकर भी क्षमावान् हों और दूसरे वह जो दरिद्र हो करके भी दानी हों।

४५७०) क्षमा वीर का आभूषण है। जिस मनुष्य के हाथ में क्षमा का शास्त्र बंधा हुआ है, सब सिद्धियां उसके घर में बनी रहती हैं। उसको कभी किसी से भय नहीं होता है। वह सदैव निर्भय होकर शान्ति और सुख के साथ सोता है। जो कुछ खो गया है उसे क्षमा के द्वारा पुन: प्राप्त कर लो, और रोते हुए को हंसा लो।

४५७१) क्षमा उस सांप को शोभा देती है जिसके पास विष हो। जो सांप दन्तहीन, विषरहित, विनीत और सरल हो, उसको क्षमा क्या शोभा देगी ?

४५७२) क्षमावान लोगों के लिए यह लोक है। क्षमावान् लोगों ही के लिए परलोक है। क्षमाशील मनुष्य इस संसार में सम्मान और परलोक में उत्तम गति पाते हैं। यदि मनुष्यों में पृथ्वी के समान क्षमाशील पुरुष न हों, तो उनमें कभी संधि हो ही नहीं सकती, क्योंकि झगड़े की जड़ तो क्रोध ही है।

४५७३) दूसरे का अपराध सह कर अपराधी पर उपकार करना, यह क्षमा का गुण पृथ्वी से सीखना और सदा परोपकाररत रहने वाले पर्वत और वृक्षों से परोपकार की दीक्षा लेना।

४५७४) मानव कभी इतना सुन्दर नहीं लगता जितना उस समय जब कि वह क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहा हो या जब किसी को क्षमा प्रदान कर रहा हो।

४५७५) क्षमा कर देना दुश्मन पर विजय कर लेना है। क्षमा से बढ़कर और किसी बात में पाप को पुण्य बनाने की शक्ति नहीं है। सबसे उत्तम बदला क्षमा कर देना है।

४५७६) क्षुधा और शीत से पीड़ित मनुष्य अपने आप को शत्रु के हवाले कर देता है। क्षुधा पत्थर की दीवार को भी तोड़ डालती है। चूसी जाने वाली पीड़ित प्रजा को लड़ाई में पिले रहने के लिए क्षुधा ही उनकी व्यायाम शिक्षक है। भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं कर बैठता। भूख से क्षीण व्यक्ति क्रूर हो जाता है।

४५७७) धन पैदा करने की अपेक्षा उसके खर्च करने का काम कहीं कठिन है। पांडित्य, चातुर्य तथा सुबुद्धि इसी में है कि मनुष्य अपनी आय से कम खर्च करे।

४५७८) जो व्यर्थ दूसरे लोगों के काम में अडंगा लगाते रहते हैं, दूसरों के हित की हानि ही जिनका लाभ है, दूसरों के उजड़ जाने पर जिन्हें हर्ष होता है और उनके बसने पर जिन्हें बहुत दु:ख होता है। खल लोग दूसरों के दोषों को हजारों आंखों से या इन्द्र के समान देखते हैं, परहित रूपी घृत को नष्ट करने के लिए उनका मन मक्खी के समान हो जाता है और स्वयं अपने आप को भी नष्ट कर देता है। दुर्जनों को वज्र समान कठोर वचन सदा प्रिय लगता है और वे हजार आंखों से दूसरों के दोषों को देखते हैं।

४५७९) खादी न खरीदना करोड़ों लोगों के मुंह का कौर छीन लेने के बराबर है। खादी पहनने से हम अपने नादान, गरीब, नंगे, भूखे भाइयों की झोंपड़ियों में उम्मीदों से भरी हुई झलक चमका सकते हैं।

४५८०) अज्ञानी आदमी के लिए खामोशी से बढ़कर कोई चीज नहीं होती है और अगर उसमें यह समझने की बुद्धि हो, तो वह अज्ञानी नहीं रहेगा।

४५८१) वाचालता चांदी है, खामोशी सोना है; वाचालता मनुष्यों के लिए उचित है, खामोशी देवताओं के लिए उचित है। वाचालता महान है, परन्तु खामोशी उससे भी महान है।

४५८२) जिस मनुष्य ने आत्म-संयम की साधना नहीं की है, वह कभी सच्ची खिदमत नहीं कर सकता। देश तथा समाज की सच्ची खिदमत वही करता है बदले तथा यश की आशा न रख कर नि:स्वार्थ भाव से खिदमत करता है।

४५८३) खिलाड़ी जीत कर हारने वाले खिलाड़ी की हंसी नहीं उड़ाता, उससे गले मिलता है। चतुर खिलाड़ी एक बांस की छड़ी से वह काम कर सकता है, जो दूसरे मशीन और बंदूक से भी नहीं कर सकते। पुराना खिलाड़ी मैदान में जाकर जितना नाम करेगा, उतना नया पट्ठा नहीं कर सकता, क्योंकि वहां बल का काम नहीं, साहस का काम है।

४५८४) खुद को जानना खुदा को जानना है। खुदा से डरने वाले को और किसी का क्या डर है ? जो खुदा को जानता है वह खुद अपनी प्रशंसा नहीं करता।

४५८५) तुझे इस बात का ख्याल बार-बार क्यों आता है कि फलां मुझसे खुश है या नहीं ? तू सदा यही देख कि तेरी अन्तरात्मा तुझसे खुश है या नहीं।

४५८६) खुशी का रहस्य त्याग है। खुशी तन्दुरुस्ती है, इसके विपरीत विषाद रोग है। खुशी न हमारे अन्दर है और न बाहर है, वरन् यह ईश्वर के साथ हमारा ऐक्य है।

४५८७) जो मनुष्य खुशामद करता है, संसार उससे प्रसन्न रहता है। सच्ची बात तो यह है कि खुशामद से ईश्वर भी प्रसन्न होते हैं। खुशामद करने से आमदनी होती है; खुशामद हजार नियामत है।

४५८८) "खून सिर पर चढ़कर बोलता है। वह खून कहो किस मतलब का, जिसमें उबाल का नाम नहीं।
वह खून कहो किस मतलब का, आ सके देश के काम नहीं।।"

४५८९) खूबसूरत वस्तु में सभी मनुष्यों की दृष्टि को आकर्षित करने की इतनी प्रबल शक्ति होती है कि कोई भी उससे प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

४५९०) खूबसूरती ऐसी जादूगरनी है कि जिसके जादू से धर्म-ईमान गलकर खून हो जाते हैं। खूबसूरती प्राय: शराब से भी बुरी होती है। वह स्वयं को और देखने वाले दोनों को मदमस्त कर देती है।

४५९१) संसार की यह विचित्रता है कि उसमें उसी व्यक्ति का सम्मान होता है जो स्वभाव से बुरा होता है। साधु स्वभाव वाले सज्जनों का कोई सम्मान नहीं करता, जैसे भला ग्रह तो भला कह कर छोड़ दिया जाता है परन्तु दुष्ट ग्रहों के आने पर जप, दान आदि

से पूजा होती है।

४५९२) ख्याति एक आवर्धक शीशा है। ख्याति की अभिलाषा वह पोशाक है, जिसे ज्ञानी मनुष्य भी सबसे अन्त में उतारते हैं। ख्याति महापुरुषों की अन्तिम दुर्बलता है।

४५९३) गंगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता की प्रतीक रही है, निशान रही है, सदा बदलती, सदा बहती, फिर वही गंगा की गंगा। मैंने सुबह की रोशनी में गंगा को मुस्कराते, उछलते, कूदते देखा है और देखा है शाम के साये में उदास, काली सी चादर ओढ़े हुए। यही गंगा मेरे लिए निशानी है भारत की प्राचीनता की, यादगार की, जो बहती आई है वर्तमान तक और बहती चली जा रही भविष्य के महासागर की ओर। जैसे गरुड़ को देखते ही सब सांप विषहीन हो जाते हैं, वैसे ही गंगा जी के दर्शन से मानव सब पापों से छुटकारा पा

४५९४) किसी प्रकार की भी गरीबी हमारा ईश्वर से उचित संबंध जोड़ देती है जब कि हर प्रकार की अमीरी, मन की या धन की, हमारा उससे विच्छेद करा देती है।

४५९५) अपनी गलती स्वीकार करने में लज्जा की कोई बात नहीं है। गलतियों की सबसे बड़ी औषधि है उनको भूल जाना। बहुत-सी तथा बड़ी गलतियां किए बिना कोई मनुष्य बड़ा ओर महान नहीं हो सकता। विवेकशील पुरुष दूसरे की गलतियों से अपनी गलती सुधारते हैं। हम प्राय: दूसरे के गुणों की अपेक्षा उसकी गलतियों से अधिक सीख लेते हैं। गलतियां करके, उनको मंजूर करके और उन्हें सुधार करके ही मैं आगे बढ़ सकता हूं।

४५९६) गहने ही स्त्री की सम्पत्ति होते हैं। एक-एक गहना मानो विपत्ति और बाधा से बचाने के लिए एक-एक रक्षास्त्र है। स्त्री का गहना ऊख का रस है जो पेरने ही से निकलता है।

४५९७) गाय अपने दूध से भोजन को मधुर बनाती है। गाय ही मेरा धन है, इन्द्र मुझे गाय प्रदान करें। देवराज इन्द्र ने कहा है कि गायों का दूध अमृत है। मैं इस संसार में गायों के समान दूसरा कोई धन नहीं समझता।

४५९८) मेरा सारा प्रयत्न गो-बध रोकने के लिए है। जो गाय को बचाने के लिए प्राण होम देने के लिए तैयार नहीं, वह हिन्दू नहीं है।

४५९९) भावना से प्रेम, प्रेम से आनन्द और आनन्दातिरेक से गीतों की सृष्टि होती है। सुख-दुख के भावावेशमयी अवस्था-विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। हमारे मधुरतम गीत वे होते हैं जिनमें हमारा सबसे अधिक दु:खपूर्ण विचार अभिव्यंजित होते हैं।

४६००) गुण सब स्थानों पर अपना आदर करा लेता है। गुणों का ही सर्वत्र सम्मान होता है, गुणी के वंश का नहीं। लोग वासुदेव (कृष्ण) की ही वन्दना करते हैं, उनके पिता वसुदेव की नहीं।

४६०१) उच्च या निम्न कुल में जन्म से कुछ नहीं होता है; केवल गुण से ही गौरव बढ़ता है। कमल का जन्म कीचड़ में होता है तथापि अपने गुण के कारण वह भगवान के सिर पर चढ़ाया जाता है।

४६०२) जहां बहुत-से गुण हों वहां यदि एक-आध अवगुण भी आ जाय, तो उसका वैसे ही पता नहीं चल पाता, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक।

४६०३) यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे गुण रोशन हों, तो दूसरे के गुणों को मान्यता दो। सज्जन लोग चाहे दूर भी रहें, पर उनके गुण उनकी ख्याति के लिए स्वयं दूत का कार्य करते हैं। केवड़ा पुष्प की सुगन्ध सूँघकर भ्रमर स्वयं उनके पास चले जाते हैं।

४६०४) समकालीन व्यक्ति गुण की अपेक्षा मनुष्य की प्रशंसा करते हैं, आने वाली पीढ़ियां मनुष्य की अपेक्षा उसके गुणों का सम्मान करेंगी।

४६०५) स्त्री हो या पुरुष, गुण और स्वभाव ही उसमें मुख्य वस्तु हैं। इनके सिवा और सभी बातें गौण हैं। स्पष्टवादिता मनुष्य का एक उच्च गुण है।

४६०६) मनुष्य के भीतर जो कुछ सर्वोत्तम है उसका विकास गुण-ग्राहकता एवं प्रोत्साहन द्वारा ही किया जा सकता है। सफलता का रहस्य निष्कपट गुण-ग्राहकता है।

४६०७) गुणहीन मनुष्य में बल-शौर्य आदि सभी (गुणों) का अभाव हो जाता है। बल-शौर्य से रहित मनुष्य सभी से अपमानित

होता है।

४६०८) गुणी पुरुष को उचित है कि जिस गुण के द्वारा उसकी जीविका चलती है तथा सभ्य समाज में प्रतिष्ठा होती है, उसकी वह रक्षा करे और वृद्धि करे।

४६०९) जब तक गुणवान मनुष्य चुपचाप बैठा रहता है, तब तक उसका गुण कोई नहीं जानता। जब तक कली कली रहती है तब तक उसकी सुगन्ध नहीं मालूम होती। परन्तु ज्यों ही वह पुष्प रूप में परिणत होती है, त्यों ही उसकी सुगन्ध फैल जाती है।

४६१०) एकमात्र ईश्वर ही विश्व का पथ-प्रदर्शक और गुरु है। गुरु की अवहेलना करने से सारा अभ्युदय नष्ट हो जाता है। गुरु को अगर हमने देह रूप में माना तो हमने गुरु से ज्ञान नहीं अज्ञान पाया।

४६११) गुरु के कठोर वचन सह कर ही शिष्य महत्त्व को प्राप्त करता है। सान घिसी जा कर ही मणी राजाओं के सिर पर चढ़ने के योग्य बनती है।

४६१२) गुलाम मनोवृत्ति वीर पूजा या नि:शंका होकर आज्ञा मानने की वृत्ती से अलग चीज है। जब गुलाम अपनी बेड़ी को आभूषण समझकर मुस्कराए, तब मालिक की पूरी जीत हुई मानी जाती है। देह से ही नहीं जो दिल से भी गुलाम हो गए हैं वे कभी आजादी हासिल नहीं कर सकते। गुलाम से भिखारी अच्छा है।

४६१३) माया नदी के प्रवाह में बहे जाने वाले काम-शास्त्र के अनुयायी प्रवाह-पतित वासनाओं के गुलाम होते हैं। स्वर्ग की गुलामी की अपेक्षा नरक का अधिराज्य श्रेयस्कर है।

४६१४) गुलामी अत्याचार और डकैती की प्रणाली है। गुलामी दुनिया का सबसे घृणित पाप है। गुलामी पूर्ण अन्याय की एक व्यवस्था है।

४६१५) जो मनुष्य अपने मन का गुलाम बना रहता है, वह कभी नेता और प्रभावशाली नहीं हो सकता। जिसकी संकल्प शक्ति स्वतंत्र है, वह परतन्त्र नहीं है।

४६१६) घर के आन्तरिक झगड़ों के लिए भारत भूमि रणचंडी बन गई है; अर्थात् अब घर-घर में कौटुम्बिक कलह प्रचंड रूप धारण किए हुए हैं। चाहे धनी हो चाहे निर्धन- सबके घर अशान्तिपूर्ण हो गये हैं। जब घर की यह दशा है, तब बाहर की बात क्या कहें ? यह दु:खद और दयनीय दशा देखकर सब सहृदय लोगों की आंखों में आंसू आ जाते हैं।

४६१७) गृहपति कर्तव्य के बन्धनों में बंधा हुआ है। जिस गृहस्थ में सत्य, धर्म, धृति और त्याग ये चार गुण हैं, उसे पछताना नहीं पड़ेगा। गृहस्थ का घर भी एक तपोभूमि है, सहनशीलता और संयम खोकर कोई इसमें सुखी नहीं रह सकता। गृहस्थ-जीवन की सफलता यही है कि उसके द्वारा अतिथि सेवा हो।

४६१७) सद्गृहस्थ प्राप्त धनराशि के एक अंश का स्वयं उपयोग करे, दो अंशों को व्यापार आदि कार्य-क्षेत्र में लगाए और चौथे अंश को आपद्काल के लिए सुरक्षित रख छोड़े।

४६१८) गृहस्थाश्रम परम पवित्र है, घर सदा तीर्थ के समान है। गृहस्थाश्रम ही सब धर्मों का मूल है। यह गृहस्थाश्रम सब तरह से परिपूर्ण और कभी ध्वस्त न होने वाली ऐश्वर्य की नौका है। हे गृहपत्नी। तू उस पर चढ़ और अपने प्रिय पति को जीवन संघर्षों के सागर से पार कर। कभी मत सोचो कि गृहस्थाश्रम आत्मोन्नति में बाधक है।

४६१९) जिस कुल में स्त्री-पुरुष परस्पर एक-दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं, उसका अवश्य कल्याण होता है। जिस भांति सब प्राणी माता के आश्रय से जीते हैं, उसी भांति सब आश्रम गृहस्थाश्रम के आधार पर स्थित है।

४६२०) काली गौ पुष्टिकारक एवं प्राणदाता अमृतस्वरूप सफेद दूध के द्वारा मनुष्यों का पालन करती है। जो सैकड़ों मनुष्यों को अन्न-भोजन देने वाली गौ को पालता है, वह अपने संकल्पों को पूरा करता है। दूध-दान आदि के द्वारा शोभायमान अदिति गौ को मत मारो।

४६२१) मेरे विचार के अनुसार गौ-रक्षा का सवाल स्वराज्य के प्रश्न से छोटा नहीं है। कई बातों में मैं इसे स्वराज्य के सवाल से भी बड़ा मानता हूं। मेरे नजदीक गो-बध और मनुष्य बध एक ही चीज है।

४६२२) कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनायें हो जाती हैं जो क्षण-मात्र में मनुष्य का रूप पलट देती है। जैसे तिनका हवा का रुख बताता है, वैसे ही मामूली घटनायें भी मनुष्य के हृदय की वृत्ति को बताती हैं।

४६२३) समय परिवर्तन का साधन है, परन्तु घड़ी उसका उपहास करती है। उसे केवल परिवर्तन के रूप में दिखाती है, साधन के रूप में नहीं।

४६२४) एक बार एक अंग्रेज ने बड़े घमंड से कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता। एक फ्रांसीसी ने तुरन्त हंसते हुए उत्तर दिया। क्योंकि ईश्वर अंग्रेजों के अंधकार में विश्वास नहीं रखता।

४६२५) जो बहुत घमण्ड करते थे वही अपने घमण्ड के कारण गिरे। इसीलिए किसी को बहुत घमण्ड नहीं करना चाहिए। घमण्ड ही हार का दरवाजा है। घमण्ड मत कर। घमण्ड एक दिन तुझे सिर के बल गिरा देगा। घमंडी आदमी प्राय: झक्की हुआ करता है।

४६२६) घर वही है जहां प्रेम और सत्कार मिले। जिस घर में कोई नहीं रहता, उसमें चमगादड़ बसेरा करते हैं। जीवन का केन्द्र घर है और घर है स्त्री का किला। घर के भीतर स्त्री का अधिकार सर्वोपरि है। स्त्री ही वास्तव में घर की सच्ची स्वामिनी है। पहले घर में दिया जलाकर तब मस्जिद में जलाते हैं। बिन घरनी घर भूत का डेरा।

४६२७) इस संसार में घृणा घृणा से कभी कम नहीं होती; घृणा प्रेम से ही कम होती है, यही सर्वदा उसका स्वभाव रहा है। घृणा और प्रेम दोनों अंधे हैं। जो सच्चाई पर निर्भर है, वह किसी से घृणा नहीं करता। घृणा राक्षसों की सम्पत्ति है, क्षमा मनुष्यों का लक्षण है और प्रेम देवताओं का गुण है।

४६२८) अपने प्राणों का बलिदान करके भी सज्जन इस प्रकार दूसरे लोगों का दु:ख दूर करता है, जैसे कट जाने पर भी चन्दन ताप-पीड़ित लोगों को शीतलता प्रदान करता है। सज्जन नि:स्वार्थ होता है, वह दूसरे लोगों को अपने समान सज्जन बना देता है, जैसे चन्दन स्वयं सुगंधित होता है और पूरे वन को सुगन्धित बना देता है।

४६२९) टेढ़ा जानकर सब लोग डरते हैं। टेढ़े चन्द्रमा को राहु नहीं निगलता है। चन्द्रग्रहण केवल पूर्णमासी को लगता है जब चन्द्रमा पूर्ण वृत्ताकार होता है, टेढ़ा नहीं होता है।

४६३०) चक्रवर्ती राज्य का उस समय तक नाश नहीं होता, जब तक कि आपस में फूट न हो। जिस देश को चक्रवर्ती राजा प्राप्त हो वह देश देवलोक हो जाता है।

४६३१) जैसे कायर लोग युद्ध में न जाकर अपने प्राण की रक्षा करते हैं, जैसे कंजूस अपने धन को छिपाते हैं और शूरवीर अपनी शक्ति छिपाते हैं, उसी प्रकार चतुर अपना नाम (ख्याति) छिपाते हैं। चतुराई दरबारियों के लिए गुण है, साधुओं के लिए दोष। कठिनाइयों को जीतने, वासनाओं का दमन करने और दु:खों को सहन करने से चरित्र उच्च, सुदृढ़ और निर्मल होता है।

४६३२) चरखा आनन्द का साधन है। चरखा तो लंगड़े की लाठी है, सहारा है। भूखे को दाना देने का साधन है। निर्धन स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करने वाला किला है। चरखा भूखे की रोटी, अन्धे की लकड़ी और विधवा का सहारा है। चरखे की पुकार दूसरी सब पुकारों से मधुर है, क्योंकि वह प्रेम की पुकार है।

४६३३) अपने चरित्र को दर्पण के समान सहेज कर रखो, जिससे दूसरों को भी उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखने की आकांक्षा हो। चरित्र जब एक बार गिर जाता है, तब मिट्टी के बर्तन की तरह चकनाचूर हो जाता है।

४६३४) चरित्र की शुद्धि ही सारे ज्ञान का ध्येय होना चाहिए। चरित्र के बिना ज्ञान बुराई की ताकत बन जाता है, जैसा कि दुनिया के कितने ही चालाक चोरों और भले मानुस बदमाशों के उदाहरण से स्पष्ट है।

४६३५) चरित्र जब तक उज्ज्वल रहता है, तब उसे सहेज कर चलने की इच्छा रहती है। जब दुर्भाग्यवश उस पर एक भी छींटा लग जाता है, तब हम गंदे वस्त्र की भाँति उसकी चिन्ता नहीं करते।

४६३६) भले-बुरे दिन मनुष्य के चरित्र पर सदैव के लिए अपना चिन्ह छोड़ जाते हैं। मानवीय चरित्र इतना जटिल है कि बुरे से बुरा आदमी देवता बन जाता है और अच्छे से अच्छा आदमी पशु।

४६३७) चरित्रोन्नति के लिए भी विविध प्रकार की परिस्थितियां अनिवार्य हैं। दरिद्रता को काला नाग क्यों समझें ? चरित्र-संगठन

के लिए यह सम्पत्ति से कहीं महत्त्वपूर्ण है।

४६३८) चरित्र बल पर ही मनुष्य दैनिक कार्य, प्रलोभन और परीक्षा के संसार में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहते हैं, और वास्तविक जीवन की क्षीणता को सहन करने योग्य बनते हैं।

४६३९) समाज के प्रचलित विधि-विधानों के उल्लंघन का दु:ख सिर्फ चरित्र-बल और विवेक-बुद्धि के बल पर ही सहन किया जा सकता है।

४६४०) श्वास की क्रिया के समान हमारे चरित्र में एक ऐसी सहज क्षमता होनी चाहिए जिसके बल पर जो कुछ प्राप्य है वह हम अनायास ग्रहण कर सकें तथा जो कुछ त्याज्य है वह बिना क्षोभ के त्याग सकें। चरित्र में परिवर्तन या उत्कर्ष वर्जन से नहीं, योग से आता है।

४६४१) कर्म को बोओ और आदत (की फसल) को काटो; आदत को बोओ और चरित्र को काटो; चरित्र को बोओ और भाग्य को काटो। गुण एकान्त में अच्छी तरह विकसित होता है; चरित्र का निर्माण संसार के भीषण कोलाहल में होता है। चरित्र का सुधारना ही मानव का परम लक्ष्य होना चहिए। चरित्र केवल एक स्थायी स्वभाव है।

४६४२) चरित्र को उज्ज्वल और पवित्र रखना चाहिए। महान् चरित्र का निर्माण महान् और उज्ज्वल विचारों से होता है। मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा नहीं, चरित्र है और यही उसका सबसे बड़ा रक्षक है। किसी पर विजय पा लेना विजेता का आभूषण नहीं है। मनुष्य का आभूषण तो केवल उसका उज्ज्वल चरित्र होता है।

४६४३) चरित्र जीवन में शासन करने वाला तत्त्व है। और वह प्रतिभा से उच्च है। चरित्र, बिना सफलता के भी रह सकता है। चरित्र मनुष्य के अन्दर रहता है, यश उसके बाहर। चरित्र वृक्ष है, प्रतिष्ठा छाया। चरित्र शुद्ध, ठोस शिक्षा की बुनियाद है।

४६४४) चापलूसी एक नकली सिक्का है और नकली सिक्के की तरह जब भी आप इसे चलाने का प्रयत्न करेंगे यह आपको कष्ट में डाल देगी। चापलूसी का जहरीला प्याला आपको तब तक नुकसान नहीं पहुंचा सकता जब तक कि आपके कान उसे अमृत समझकर नहीं पीएं। चापलूसी तीन घोर घृणित दुर्गुणों से बनी है असत्य, दासत्व और विश्वासघात।

४६४५) चिन्ता चिता समान है। चिन्ता से रूप, बल और ज्ञान का नाश हो जाता है। वासनाओं का त्याग करो, चिन्तायें स्वयं पीछा छोड़ देंगी।

४६४६) चिन्ता की माता चाह है और अविवेक उसका पति है। यदि तुम्हें विवेक प्राप्त करने की इच्छा है, तो राम-नाम का जाप करो, और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

४६४७) चिन्ता जब अधिक हो जाती है, तब उसकी शाखायें प्रशाखायें इतनी निकलती हैं कि मस्तिष्क उनके साथ दौड़ने में थक जाता है।

४६४८) चिन्ता एक काली दीवार की भांति चारों ओर से घेर लेती है, जिसमें से निकलने की फिर कोई गली नहीं सूझती। चिन्ता रोग का मूल है। भविष्य की भीषण चिन्ता आन्तरिक सद्भावों का सर्वनाश कर देती है।

४६४९) चिन्ता वहां तक वांछनीय है जहां तक रचनात्मक ध्येय की पूर्ति के लिए विविध उपायों का मनन करने तक सीमित हो; परन्तु जब चिन्ता इतनी बढ़ जाये कि वह शरीर को ही खाने लगे तो वह अवांछनीय हो जाती है, क्योंकि फिर तो वह अपने ध्येय को ही हरा बैठती है। यदि हम अपने को उसकी इच्छा पर छोड़ दें तो हमें एक क्षण भी चिन्ता न करनी पड़े।

४६५०) चिन्ताएं, परेशानियां, दु:ख और तकलीफें परिस्थितियों से लड़ने से नहीं दूर हो सकती, वे दूर होंगी अपनी अन्दरूनी कमजोरी दूर करने से जिसके कारण ही वे सचमुच पैदा हुई हैं।

४६५१) आलसी आदमी ही चिन्ता-ग्रस्त रहा करता है। वह आलस्य चाहे शारीरिक कष्ट से बचने के लिए हो या मानसिक। जो लोग अधिक सोचने-विचारने के आदी होते हैं, वे चिन्तित भी अधिक रहते हैं।

४६५२) व्यवसायी पुरुष जिनको यह ज्ञान नहीं है कि चिन्ता से कैसे दूर रहना चाहिए शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मुझे निश्चय है कि चिन्ता जीवन की शत्रु है।

HHH(३६७)HHH

४६५३) मैदान में तोपों की गर्जना जिन वीरों के दल को दहला नहीं सकती और तलवारों की चमक आंखों में चकाचौंध नहीं ला सकती, वे ही वीर स्त्री की चितवन के तीर खाकर अपने हथियार डाल देते हैं और शरणागत होने के लिए सफेद झण्डा उठा लेते हैं।

४६५४) एकाग्र हुआ चित्त ही पूर्ण स्थिरता को प्राप्त होता है। कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। चित्त के वशीभूत हो जाने पर ऋद्धियां स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं। चित्त से ही विश्व नियंन्त्रित होता है। जितनी भलाई माता-पिता अथवा भाई-बन्धु कर सकते हैं, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है। सुखी का चित्त एकाग्र होता है।

४६५५) चुगलखोर कुत्ते के समान है, क्योंकि दोनों ही अपनी जीभ से सत्पात्र (शुद्ध बर्तन या सज्जन मनुष्य) को दूषित करते हैं, कलह करने में पक्के होते हैं और दोनों ही सदा अशुद्ध रहते हैं। जैसे ऊंट को किसी वृक्ष के फूल-फल से अनुराग नहीं होता, उसे कांटों का ढेर ही अभीष्ट होता है, वैसे ही गुणियों में अनेक गुणों के वर्तमान रहने पर भी चुगलखोर उनमें दोष ही ढूंढता है और ग्रहण करता है।

४६५६) नेकी से विमुख हो जाना और बदी करना निस्सन्देह बुरा होता है, मगर सामने हंस कर बोलना और पीठ पीछे चुगलखोरी करना उससे भी बुरा है।

४६५७) चुनाव जनता को राजनीतिक शिक्षा देने का विश्वविद्यालय है। चुनाव युद्ध नहीं, तीर्थ है, पर्व है- वह पानीपत नहीं, कुरुक्षेत्र नहीं, वह प्रयाग है, त्रिवेणी है, संगम है, सिंहस्थ है, कुम्भ है।

४६५८) चेहरा हृदय का प्रतिबिम्ब है। सभी मनुष्यों के चेहरे असली होते हैं, उनके हाथ चाहे जैसे भी हो। सुन्दर चेहरा सबसे अच्छा प्रशस्ति-पत्र है। हंसमुख चेहरा रोगी के लिए लगभग उतना ही अच्छा है जितनी कि स्वस्थ ऋतु।

४६५९) जिसने तुम्हें चोट पहुंचाई है वह तुमसे प्रबल है या निर्बल ? यदि तुमसे निर्बल है, तो उसे क्षमा कर दो; यदि प्रबल है, तो अपने को कष्ट मत दो।

४६६०) चोर अपराधी बनकर छूट जाने से निर्दोष बनकर दण्ड भोगना बेहतर समझता है। चोर को चांदनी रात नहीं अच्छी लगती। चोर को पकड़ने के लिए बिरले ही निकलते हैं, पकड़े गए चोर पर पंचलत्तियां जमाने के लिए सभी पहुंच जाते हैं। बड़े चोर छोटे चोर को फांसी पर चढ़ाते हैं।

४६६१) जब भगवान् राम वन जाने के लिए तैयार हुए, तब धर्म और स्नेह दोनों ने उनकी बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा सांप-छछूंदर की सी हो गई। यदि सांप पकड़ी हुई छछूंदर को निगल जाता है, तो अन्धा हो जाता है और यदि उगल देता है, तो कोढ़ी हो जाता है। इसी प्रकार कौशल्या राम को न रोक सकती थीं और न वन जाने को कह सकती थीं।

४६६२) जिस सत्य में छल हो, वह सत्य नहीं है। स्पष्टवादी छली नहीं होता। सभी छलों में स्वयं अपने से किया हुआ छल प्रथम और निकृष्ट होता है। छल का बहिरंग सुन्दर होता है, विनीत और आकर्षक भी, पर दु:खदायी और हृदय को बेधने के लिए।

४६६३) देवताओं का काम करने के लिए भगवान ने बावन का रूप धारण करके बलि के साथ छल किया। उनको प्रभुता छोड़कर बलि के वश में होना पड़ा। आज तक यह ग्लानि उनके हृदय से नहीं गई।

४६६४) कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की निवृत्ति छायावाद की विशेषतायें हैं।

४६६५) पौराणिक रूपकों या छायाओं से परे जो सत्य है, वही हम रहस्यवादी या छायावादियों का लक्ष्य है। इन छायाओं के आधार से सत्य को प्राप्त करने वाले लोग छायावादी कहे जा सकते हैं, पर छाया उनका वाद नहीं- उनका वाद सत्य है, अत: वह सत्यवादी हैं।

४६६६) दुर्बल-जन तथा अज्ञानी लोग ही हमेशा सबसे अधिक छिद्रान्वेषण किया करते हैं। दूसरों में दोष न निकालना, दूसरों को इतना उन दोषों से नहीं बचाता जितना अपने को बचाता है।

४६६७) एक ही वायु है, एक ही पानी है, उससे बनाकर अपनी रसोई को दूसरों की रसोई से भिन्न समझते हो। एक ही पृथ्वी से मिट्टी

लेकर चौका पोता। फिर बताओ छूत कहां से लगी ?

४६६८) अछूत लोगों में छूत क्या है ? क्यों नहीं उनके अछूतपन को देखते हो ? अनाथों के सिर पर हाथ रखकर उनकी रक्षा करिए। अछूतों को छूत बनाने के नाम पर आप अपने कानों पर हाथ मत रखिए।

४६६९) जंजीरें जंजीरें ही हैं, चाहे वे लोहे की हों या सोने की, वे सब समान रूप से गुलाम बनाती हैं। यदि कुत्ते को सोने की जंजीर बांध दें, तब भी वह कुत्ता ही रहेगा, वह सम्मान नहीं प्राप्त कर सकेगा। परन्तु धूल में सने रहने पर भी हाथी सदा सम्मानित होता है।

४६७०) यह संसार धूप-छांह की तरह है। इसमें आशा के साथ निराशा घुली रहती है। यहां राग-द्वेष तथा सुख-दुख के साथ अमिट अभिलाषा बंधी रहती है। विरह-मिलन तथा संघर्ष-शान्ति को ही जग कहते हैं।

४६७१) जगत का प्रतीयमान रूप मायाजनित है, इसलिए असत्य है। जगत का वास्तविक रूप ब्रह्म है, इसलिए सत्य है। जगत कितना मिथ्या है। वह केवल स्वप्न है, केवल मरीचिका है। जगत का संसर्ग या तो दिल को तोड़ता है या उसे कठोर बनाता है। संसार एक रंगशाला है, सब स्त्री-पुरुष सिर्फ पात्र हैं।

४६७२) जगत के बिना ईश ईश नहीं है, सृष्टि नहीं तो ईश नहीं। आत्मा एक माया शून्य है। इस एक और शून्य के संयोग से असंख्य जग बनते हैं।

४६७३) जो लोग कहते हैं कि जगत माया है; भीषण भ्रम है, उनके इस विचार में ही धोखा और भ्रान्ति है। यह जगत जीवों की कर्मभूमि है। जो लोग अपने कर्तव्य से च्युत होते हैं, वे बहुत बड़े धोखे में पड़कर एक दुर्लभ अवसर से हाथ धोते हैं।

४६७४) जड़ता निर्दयता की जननी है। कठिन से कठिन रोग की भी दवा है, पर जड़ता की कोई दवा नहीं है। दूसरों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना, यहां तक कि वेश-भूषा, भोजन, आने-जाने, सोने-जागने, हंसने-रोने, कहने-सुनने तक में स्वतन्त्रता न रखना जड़ता, नहीं तो और क्या है।

४६७५) जनतंत्र सबका शासन होता है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने को दूसरे के समान पद और शक्ति वाला समझता है। इसलिए जन-तंत्र में कौन किसका अनुशासन माने ?

४६७६) जनता के लिये, जनता के द्वारा चलाई जाने वाली जनता की सरकार कभी नहीं मिट सकती। जनतंत्र वह है जहां नेता के पास जनता का भाग्य नहीं है, बल्कि जनता के हाथ में नेता के भाग्य का निर्णय है।

४६७७) दूसरों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना, यहां तक कि वेश-भूषा, भोजन, आने-जाने, सोने-जागने, हंसने-रोने, कहने-सुनने तक में स्वतन्त्रता न रखना जड़ता, नहीं तो और क्या है।

४६७८) जनतंत्र सबका शासन होता है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने को दूसरे के समान पद और शक्ति वाला समझता है। इसलिए जन-तंत्र में कौन किसका अनुशासन माने ?

४६७९) जिन पर सरस्वती की कृपा होता है वे अपने साहित्य के माध्यम से, सही पूंजी छोड़ जाते हैं जो अनेक पीढ़ियों तक जन-मानस को प्रेरित करती रहती है।

४६८०) जनता अत्यन्त क्षमाशील होती है। जनता की आवाज परमेश्वर की आवाज है। जनता की दृष्टि में एक बार विश्वास होकर फिर जमाना मुश्किल है। जनता की दृष्टि में विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का उतना मूल्य नहीं है, जितना चरित्र बल का। जनता क्रोध में अपने को भूल जाती है, मौत पर हंसती है। जनता सहनशील होती है; जब तक प्याला भर न जाय, वह जबान नहीं खोलती।

४६८१) जनता जो कुछ सीखती है; वह घटना-क्रम की पाठशाला में सीखती है और दु:ख-दर्द ही उसका शिक्षक है। बड़े-बड़े आन्दोलनों से, जो व्यक्तियों और श्रेणियों के असली रूप को प्रकट कर देते हैं, जनता राजनीति का पाठ पढ़ती है। राजमहलों की चालबाजियां, सभा-भवनों की राजनीति, समझौते और लेन-देन का जमाना उसी दिन खत्म हो जाता है जब जनता राजनीति में प्रवेश करती है।

४६८२) जनता तो धरती माता की तरह है, जिस पर कुदाली से घाव होता है, लेकिन गेंद का स्पर्श यों ही ऊपर से ऊपर उड़ जाता है। सर्वसाधारण जनता की उपेक्षा ही एक बड़ा राष्ट्रीय पाप है।

४६८३) जनता में बहुत शक्ति होती है। इसकी हुंकारों से बड़े-बड़े महल धराशायी हो जाते हैं। इसकी सांसों के वेग से राजाओं के मुकुट हवा में उड़ जाते हैं। समय में वह शक्ति नहीं है जो जनता का रास्ता रोके। मृत्यु भी इसके इशारे पर नाचने लगती है।

४६८४) कोमलता में जिसका हृदय गुलाब की कलियों से भी अधिक कोमल तथा दयामय है, पवित्रता में जो यज्ञ के धुएं के समान है और कर्तव्य में जो वज्र की तरह कठोर है- वही दिव्य जननी है।

४६८५) माता के चरणों के नीचे स्वर्ग है। जननी जननी है, जीवित वस्तुओं में वह सबसे अधिक पवित्र है। शिशु का भाग्य सदैव उसकी जननी द्वारा निर्मित होता है।

४६८६) जन्म-भूमि के समान जन्म-भूमि ही है, उसकी और कोई उपमा नहीं है। आप चाहे जितना भी खोजें उसकी उपमा नहीं पा सकते। हमारी माता हमारी जन्म-दात्री अवश्य है, पर वह नि:स्वार्थ नहीं है। इसलिए उसे जन्म-भूमि सी कहना व्यर्थ है।

४६८७) जिसकी मिट्टी में लोट-लोट कर खड़े हुए हैं, घुटनों के बल सरक-सरक कर हम खड़े हुए हैं, जाहे बालकपन में हमने परमहंस की भांति सब सुखों का भोग किया है, जिसके कारण हम धूल-भरे हीरे कहलाये, उस मातृभूमि को देख कर हम आनन्द विभोर क्यों न हो जाएं?

४६८८) तुलसीदास जी कहते हैं कि जहां अपनी जन्मभूमि हो, वहां कभी नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वहां के लोग अब के गुण नहीं जानते और पुराने नाम से पुकारते हैं।

४६८९) शरीरधारियों को ऐसा सुख स्वर्ग में भी नहीं मिलता, जैसा कि दरिद्र होने पर भी अपने देश, गांव और घर में मिलता है। यदि सरोवर का पानी खारा हो, तब भी हंस उसको नहीं छोड़ता, क्योंकि गढ़े-तलैया में घूमते रहने पर उसे कोई भला नहीं कहता।

४६९०) हे हंस। गंगा-तट जैसा पवित्र स्थान भी तेरे अनुकूल नहीं पड़ता है। मानसरोवर पहुंचे बिना तू नहीं मान सकता है। तेरा अनुराग धन्य है, तेरी शक्ति धन्य है, तेरी जन्म-भूमि धन्य है और तेरी भक्ति धन्य है।

४६९१) जो बुद्धिमान लोग धर्म को मानते हैं, वे जानते हैं कि माता पिता से दस गुनी मान्य होती है। जन्मभूमि माता से भी सौगुनी मान्य होती है, जिन व्यक्तियों का यह सिद्धान्त है, वे धन्य हैं।

४६९२) यह संसार नश्वर है, सब लोग थोड़े समय तक शान दिखला कर मर जाते हैं। कोई सदैव जीवित नहीं रहता। जो पैदा होता है, वह मर जाता है। जब मनुष्य मरता है, तब उसकी आत्मा अकेली ही परलोक में जाती है। उसके सब साथी यहीं मर जाते हैं।

४६९३) जय ईश्वर की मुस्कान है। जय उन्हीं की होती है जो अपने को संकट में डालकर कार्य सम्पन्न करते हैं। जय कायरों की कभी नहीं होती।

४६९४) दूसरों के निमित्त अपने हित को छोड़ने के लिए सदा उद्यत होते हुए भी जो स्वयं अभिमान से रहित होते हैं, संसार में उन्हीं की जय होती है। स्वयं वैराग्य की मूर्ति होते हुए भी जो स्वदेश के प्रेम से शोभित हैं और अपने कर्तव्य से भागकर वनवास के लिए उत्सुक नहीं हैं, संसार में उन्हीं की जय होती है।

४६९५) जल में अमृत है और जल में औषधियां हैं। जल ही औषधि है, जल रोगों का शत्रु है, यही सब रोगों को नष्ट करता है। अत: यह तुम्हारा भी रोग दूर करे।

४६९६) जवानी जोश है, बल है, साहस है, दया है, आत्मविश्वास है, गौरव है और वह सब कुछ है जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी दीवानी होती है। जवानी में कौन सुन्दर नहीं होता।

४६९७) जवानी हिम्मत और साहस का घर है। नदी की बाढ़ें, वृक्षों के फूल और चन्द्रमा की कलायें नष्ट होकर फिर से आती हैं, मगर देहधारियों की जवानी नहीं। जवानी की बहार पूरे जीवन भर नहीं रहती। वह फूल की सुगन्ध की भांति इधर से आती है और उधर से चली जाती है; अर्थात् जवानी अस्थायी होती है।

४६९८) यह सुज्ञात सत्य है कि जैसे बुढ़ापे में बुद्धिमत्ता होती है, वैसे ही जवानी में अविवेक होता है। यौवन का उन्माद बुढ़ापे को गमखाना बना देता है। जवानी का फूल एक बार खिलता है, दुबारा नहीं।

४६९९) जागरण का अर्थ है कर्मक्षेत्र में अवतीर्ण होना और कर्मक्षेत्र क्या है ? जीवन-संग्राम। रात व्यतीत हो गई, पौ फट गई है,

अंधकार का धुंधलका दूर हो गया है। उठो, बोलो और मन का दरवाजा खोलो। अपना कार्य आरम्भ कर दो। शीघ्र सोने वाला और प्रात: काल जल्द उठने वाला मनुष्य आरोग्यवान, भाग्यवान होता है।

४७००) वर्तमान काल में जाति-प्रथा जिस रूप से प्रचलित है उसका एकान्त रूप से विनाश करना ही होगा। यदि भारतीय जनता को नवीन जीवन प्राप्त करना है तो उसे वर्ण-भेद के वर्तमान स्वरूप को मिटा देना होगा, क्योंकि वह उन्नति के सभी विभागों में भयंकर रूप से बाधा समुपस्थित कर रहा है।

४७०१) हमारी जाति-प्रथा मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ श्रेणी-विभाजन है, क्योंकि हर एक जाति में शास्त्र ने नारायण का अंश बतलाया है। जाति की निन्दा भी कहीं नहीं की गई। जाति निन्दनीय नहीं।

४७०२) ऐसा जात्यभिमान हानिप्रद है जिसमें अपनी जाति के अवगुण भी सद्गुण लगें और दूसरी जाति के सद्गुण भी अवगुण लगें। यदि किसी जाति में कोई सद्गुण है, तो हमें उसे सहर्ष ग्रहण कर लेना चाहिए।

४७०३) कोई विशेष कुल उत्तम नहीं होता, जो भगवान् का भजन करता है, वह उत्तम होता है। इसलिय यदि किसी का जन्म उत्तम जाति में हुआ है, तो उसे इस पर गर्व नहीं करना चाहिए।

४७०४) जाति-सेवा में शरीर को घुलाना पड़ता है, रक्त को जलाना पड़ता है, यही जाति-सेवा का उपहार है। जाति-सेवा वही कर सकते हैं जिनके हृदय में भ्रातृ-भाव की भावना भरी है।

४७०५) संसार में जो कोई सुखी हुआ है, वह जातीयता प्राप्त करके सुखी हुआ है। नदियों और नालों से मेल करके समुद्र अनन्त रत्नों का भंडार हो गया है।

४७०६) भारत के मस्तक का यह कलंक है कि यहां के लोग जाति-पांति में विभक्त हैं। जहां मनुष्य अछूत और पैर की धूल के समान है, वह राष्ट्र कैसे जीवित रह सकता है ?

४७०७) आजकल हिन्दू समाज में वर्णों में आपस में युद्ध छिड़ा हुआ है और सब जातियां परस्पर लड़ रही हैं। सब लोगों को स्वार्थ ने व्यग्र कर दिया है। किसी को सुमति और कुमति दीख नहीं पड़ रही है।

४७०८) जिन्दगी एक कसौटी है। ईश्वर उस पर हमें कस लेता है। नेक काम करके हम कसौटी पर खरे उतरते हैं, तो भगवान की सच्ची भक्ति करते हैं।

४७०९) जिन्दादिली का नाम जिन्दगी है। जो मुर्दादिल हैं अर्थात् जिनके हृदय में जीवन के प्रति कोई उत्साह नहीं है, उनका जीवन व्यर्थ है।

४७१०) जो धार्मिक था और ईश-पूजक था, वह मरके जी उठा, वह सदा के लिए अमर हो गया। परन्तु जो केवल लौकिक पदार्थों पर ध्यान देता था वह जो धन-दौलत कमाई थी, वह सब, खोके मर गया। दुनिया में कोई हंस के मरा और कोई रोकर मरा। परन्तु जीवन उसी का सफल हुआ जो कुछ होकर मरा।

४७११) जिन्दगी की जिम्मेदारी कोई डरावनी चीज नहीं है। वह आनन्द से ओत-प्रोत है। मनुष्य को जिम्मेदारी के पद पर नियुक्त कर दो, वह परिस्थिति के अनुसार उन्नति करेगा।

४७१२) जिज्ञासा के बिना ज्ञान नहीं होता। दु:ख के बिना सुख नहीं होता। जिज्ञासा तेज बुद्धि का एक स्थायी और निश्चित गुण है। जो पहली और सहज भावना हम मनुष्य के मस्तिष्क में पाते हैं वह जिज्ञासा की है। अधिक जिज्ञासु अधिक विद्वान नहीं होते। सब जिज्ञासुओं को एक बार धर्म-संकट और हृदय-मंथन होता ही है।

४७१३) उत्तम कर्म से मनुष्य एक मुहूर्त्त भी जीवित रहे, तो वह अच्छा है परन्तु दोनों लोकों के विरोधी दुष्ट कर्म करने वाले का कल्प भर जीना भी अच्छा नहीं है। जिसके जीवित रहने से विद्वान, मित्र और बन्धु-बान्धव जीते हैं, उसी का जीना सार्थक हैं अपने लिए कौन नहीं जीता ?

४७१४) कीट को और इन्द्र को जीने की समान आकांक्षा है और दोनों को मृत्यु का भय भी समान है। आदि से अन्त तक हमारा जीवन एक प्रकार की मृत्यु है जिसका अर्थ है अधिक विशाल जीवन।

४७१५) जब तक पानी आकाश में था तब तक बहुत निर्मल था, परन्तु पृथ्वी पर पड़ते ही इस प्रकार मटमैला हो गया जैसे जन्म लेते ही जीव में माया लिपट जाती है।

४७१६) जीवन अस्तित्व से अधिक कर्म हैं। उन्नति, प्रगति, परिवर्तन आदि इसी जीवन की परिपूर्णता के अंग हैं। जीवन का उद्देश्य है समष्टि के प्राणों के साथ एक रस हो जाना। व्यक्ति अपने को छिटका हुआ अलग अनुभव न करे, समस्त के साथ अभिन्नता अनुभव करे, यही उसकी मुक्ति है, यही उद्देश्य है।

४७१७) जीवन एक कहानी के सदृश है। वह कितनी दीर्घ है, यह नहीं, वरन कितनी अच्छी है, यह विचारणीय विषय है। जीवन एक बाजी की तरह है। हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है, पर बाजी का खेलना हमारे हाथ में है।

४७१८) जीवन का पहला और स्पष्ट लक्षण है विस्तार। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो तुम्हें फैलना ही होगा। जिस समय तुम जीवन का विस्तार बंद कर दोगे, उसी क्षण जान लेना कि मृत्यु ने तुम्हें घेर लिया है, विपत्तियां तुम्हारे सामने हैं।

४७१९) जीवन को नियम के अधीन कर देना आलस्य पर विजय पाना है। जीवन को नियम के अधीन कर देना, प्रमाद को सदा के लिए विदा कर देना है।

४७२०) मनुष्य जीवन का उद्देश्य आत्म-दर्शन है और उसकी सिद्धि का मूल एवं एकमात्र उपाय पारमार्थिक भाव से जीव-मात्र की सेवा करना है।

४७२१) जीवन दायित्व का खेल है, पग-पग पर समझौता है। जीवन नाम चलने का है। जीवन पथ में एक बार उल्टी राह चलकर फिर सीधे मार्ग पर आना कठिन है।

४७२२) हम निरन्तर जीने की तैयारी करते रहते हैं, जीते कभी नहीं। जीवन को भूलों पर बलिदान नहीं करना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि जिन्दगी की अच्छी चीजें, जिन्दगी की सबसे अच्छी चीजों को खत्म कर दें। यशपूर्ण जीवन का एक व्यस्त घंटा कीर्ति रहित युगों से कहीं अधिक है।

४७२३) आश्चर्य की बात है कि लोग जीवन को बढ़ाना चाहते हैं, सुधारना नहीं। लटके रह कर जीते रहना कष्टदायी है। वह तो मकड़ी का जीवन है।

४७२४) जीवन-चरित्र ही सच्चा इतिहास है। महापुरुषों की जीवनियां हमें याद दिलाती हैं कि हम भी अपना जीवन महान बना सकते हैं और मरते समय अपने पदचिह्न समय की बालू पर छोड़ सकते हैं। वास्तव में इतिहास कुछ नहीं, केवल जीवन-चरित्र ही है।

४७२५) पानी और उसका बुलबुला एक ही चीज है। उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक ही चीज है, फर्क यह है कि एक परिमित है, दूसरा अनन्त; एक परतन्त्र है, दूसरा स्वतन्त्र।

४७२६) मनुष्य का महान सौभाग्य इसमें है कि वह कोई व्यावसायिक प्रवृत्ति लेकर जन्मे, जिससे उसे जीविका और आनन्द प्राप्त हो। वही जीविका श्रेष्ठ है जिसमें अपने धर्म की हानि न हो, और वही देश उत्तम है जहां कुटुम्ब का पालन हो।

४७२७) मरने में श्रेय है या जीने में श्रेय है, यह हम नहीं जानते। इसलिए जीने से प्रसन्न ओर मरने से भयभीत नहीं होना चाहिए। जीतेजी कौन मर चुका है ? उद्यमहीन।

४७२८) जुआ पारस्परिक फूट का मूल कारण है। जुआ लोभ का पुत्र, दुराचार का भाई और बुराइयों का जनक है। जुआ सुख, सम्पत्ति और समय इन तीनों का जो जीवन के लिए अति बहुमूल्य हैं- नाश करता है।

४७२९) मनुष्य को दो वक्तों पर जुआ नहीं खेलना चाहिए। एक उस समय जब वह खेल सकता हो और एक तब जब वह खेल नहीं सकता हो।

४७३०) जेल एक नई दुनिया है, जहां मनुष्य ही मनुष्य है, ईश्वर नहीं। जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है, आदमियों से काम लेने का बहाना अत्याचार का निष्कपट साधन।

४७३१) जोश मनुष्य से कितनी शपथें कराता है। यह वह आग है जिसमें चमक बहुत होती है, गरमी कम होती है और जो बहुत जल्द बुझ जाती है।

४७३२) ज्ञान की आराधना दिन का शयन है, क्लेश से निस्तार केवल कर्म से है; दर्शनों से सिद्धियां किसको मिली हैं ? जीव का उद्धार केवल कर्म से है।

४७३३) जो प्रसन्न और शुद्ध मन से ब्रह्मज्ञान रूपी जल के द्वारा मानस तीर्थ में स्नान करता है, उसका वह स्नान ही तत्त्वदर्शी ज्ञानी का स्नान माना गया है।

४७३४) मन रूपी उन्मत्त हाथी को वश में करने के लिए ज्ञान अंकुश के समान है। हमारी अपनी अज्ञानता का ज्ञान ही बुद्धिमत्ता के मन्दिर का स्वर्ण सोपान है।

४७३५) रात-रात भर पूजा-प्रार्थना करने के बदले एक घंटा भी दूसरों को ज्ञान देने में लगाना अधिक उत्तम है। ज्ञानी कौन है, वह जो अपने ज्ञान का उपयोग करता है।

४७३६) जैसे-जैसे पुरुष शास्त्रों का गहरा अभ्यास करता जाता है, वैसे-वैसे उनके रहस्यों को जानता जाता है और वे उसका ज्ञान उज्ज्वल और प्रकाशमान होता जाता है। जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। ज्ञान सत्व गुण है, रागद्वेष रजोगुण है और अज्ञान तमोगुण है। सब दानों मे ज्ञान का दान ही श्रेष्ठ दान है।

४७३७) अपनी अज्ञता की चेतना ज्ञान की तरफ जाने का एक बड़ा कदम है। ज्ञान की अग्नि सुलगते ही कर्म भस्म हो जाते हैं। ज्ञान से मुक्ति होती है, बाह्य उपकरणों (मण्डन) से नहीं।

४७३८) ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए। ज्ञान का लक्ष्य सत्य है, और सत्य आत्मा की भूख है। ज्ञान मानव जीवन का सार है। ज्ञान का मूल्य बहुमूल्य रत्न से भी अधिक है। ज्ञान ही वास्तविक सोना और हीरा है। ज्ञान सिर्फ सच्चाई में ही पाया जाता है।

४७३९) "जिसका जितना ज्ञान है वह है उतना ही मान्य। अधिक मान्य को ही मिला करता है प्राधान्य।
यह प्रधानता, योग्यता द्वारा होती प्राप्त। मिले योग्यता ही मनुज, बन पाता है आप्त।।"

४७४०) जिसने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उस पर काम और लोभ का विष नहीं चढ़ता। हम सब ज्ञान से युक्त हों, ज्ञान के साथ हमारा कभी वियोग न हो। ज्ञान अनन्त है। यदि तुम्हें मेरे सत्स्वरूप का ज्ञान हो जाये और अन्य किसी प्रकार का ज्ञान न भी हो तब भी तुम सुखी ही होगे। अंधकार मृत्यु है, प्रकाश अमृत है।

४७४१) ज्ञान का अर्थ है आत्मा से आत्मा को जानना। ज्ञान पाप बन जाता है यदि उद्देश्य शुभ न हो। ज्ञान में पुरुषार्थ न हो, शक्ति निर्माण करने का गुण न हो, तो ज्ञान अज्ञान में कुछ फर्क नहीं। जो यथार्थ मुक्ति का कारण है, वह यथार्थ ज्ञान है। पारमार्थिक कर्मों के आचरण से ही मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है। काम और क्रोध को आपस में लड़ा कर मारना, इसी में ज्ञान का कौशल है।

४७४२) अज्ञानी मूर्ख से शास्त्र पढ़ने वाला श्रेष्ठ होता है, पढ़ने वाले से शास्त्र को स्मृति में धारण करने वाला, धारण करने वाले से शास्त्र के मर्म को समझने वाला ज्ञानी और ज्ञानी से भी उस पर आचरण करने वाला श्रेष्ठ होता है।

४७४३) ज्ञानी मनुष्य इस जगत् को स्वर्ग में परिवर्तित कर सकता है। ज्ञानी ही सत्य को देख सकते हैं, अज्ञानी नहीं। जो दूसरों को जानता है, जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी है। ज्ञानी की बुद्धि दर्पण के समान है। वह स्वर्गीय प्रकाश को ग्रहण करती है और उसे परावर्तित कर देती है।

४७४४) झंडा राष्ट्र के गौरव का प्रतीक होता है। मृत्यु हो जाने पर भी वीर सेनानी उसे अपनी मुट्ठी में पकड़े रहता है कि कोई कहीं उसे छीन न ले। इसे अपने हाथों में पकड़ कर प्रण करो कि जब तक तुम्हारे शरीर में कुछ भी शक्ति शेष रहेगी, तब तक न तो बलिदानों का क्रम रुकेगा और न यह राष्ट्रध्वज झुकेगा।

४७४५) जब दो झगडें, तब दोनों गलती पर होते है। झगड़े से बचना श्रेयस्कर है। यदि उसमें पड़ भी जाएं तो शत्रु को अपना तेज, शक्ति और पौरुष दिखा दें। लोग गूदे की बजाय छिल्के पर अधिक झगड़ते हैं।

४७४६) जहां झूठ बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मंगलकारक हो अथवा जहां सत्य बोलने का परिणाम झूठ बोलने के समान अनिष्टकारी हो, वहां सत्य नहीं बोलना चाहिए। वहां झूठ बोलना ही ठीक है। जहां लुटेरों के चंगुल में फंस जाने पर झूठी शपथ

खाने से छुटकारा मिलता हो, वहां झूठ बोलना भी ठीक है, इसी को बिना विचारे सत्य समझो।

४७४७) झूठ कभी श्रेष्ठ पद को प्राप्त नहीं होता। मनुष्य झूठ बोलने वाले से उसी प्रकार भयभीत रहते हैं जैसे सांप से। विश्व में सत्य ही सबसे महान धर्म है। वही सबका मूल कहा जाता है। झूठ की सजा यह नहीं है कि उसका विश्वास नहीं किया जाता, बल्कि यह कि वह किसी का विश्वास नहीं कर सकता।

४७४८) ठोकरें केवल धूल उड़ाती है, धरती से फसले नहीं उगातीं। ठोकर लगे और दर्द हो, तभी मैं सीख पाता हूं। दूसरों के अनुभव से होशियारी सीखने की मनुष्य की इच्छा नहीं होती, उसको स्वतंत्र ठोकर चाहिए।

४७४९) जिसे पराजित होने का डर है, उसकी हार निश्चित है। डर प्रेम से अधिक शक्तिशाली है। डर हमें मानव प्रकृति का अनुभव कराता है।

४७५०) डरपोक डगमगाते हैं, परन्तु खतरे से प्राय: वही पार होते हैं जो साहस से उसका सामना करते हैं। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेन्ट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय तो मिट्टी हो जाता है।

४७५१) जीवन में, विशेषकर राजनीति में, कोई चीज इतनी हानिकर और खतरनाक नहीं है जितना कि डांवाडोल स्थिति में रहना। डावाडोल स्थिति में रहना दु:खदायी है, वह मकड़ी के जीवन के तुल्य है।

४७५२) वैद्य मृत्युपर्यन्त विद्यार्थी होता है और जब वह विद्यार्जन की इच्छा छोड़ देता है तो उसकी मृत्यु समझिए। भोजन, शान्ति और विनोद ही विश्व के सर्वश्रेष्ठ वैद्य हैं।

४७५३) अधजल गगरी छलकत जाय। जहां डींग खत्म होती है, वहीं से प्रतिष्ठा शुरू होती है। जो गरजते हैं वे बरसते नहीं। थोथा चना, बाजे घना।

४७५४) जैसे बांस के पिंजड़े में सिंह बन्द नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार तत्वज्ञ संसार में नहीं फंस सकता। जो सत्य की झलक के स्नेही हैं, वे ही सच्चे तत्त्वज्ञानी है।

४७५५) जो मनुष्य के साथ तो दयालुता का बर्ताव नहीं करता, किन्तु पाषाण मूर्ति की पूजा करता है, वह ढोंगी कहा जा सकता है। ढोंगी बनने की अपेक्षा स्पष्ट रूप से नास्तिक बनना अच्छा है।

४७५६) जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर छोड़ देता है। हम तकदीर के खिलौने हैं, विधाता नहीं, वह हमें इच्छानुसार नचाया करती है।

४७५७) तकरीर मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब है। तकरीर में सबसे बड़ी कला, कला का छिपाना है। तकरीर सभी के गुण हैं, परन्तु विचार थोड़ों ही के।

४७५८) अज्ञानपूर्ण तप से कभी मुक्ति नहीं मिलती। जिस तरह जलादि शोधक द्रव्यों से मैला वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है, उसी तरह आध्यात्मिक तप-साधना द्वारा आत्मा ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्म के मल से मुक्त हो जाता है। शास्त्र ज्ञान में कुशल साधक भी तप, संयम रूप पवन के बिना भव-सागर को पार नहीं कर सकता।

४७५९) अपनी शक्ति, योग्यता या समृद्धि को बढ़ाने के लिए जो कष्ट सहन किए जाते हैं, वे तप हैं। तप के द्वारा मनुष्य अपने दोष जलाता है, कमजोरियां हटाता है, अपने जीवन और अपनी परिस्थिति को शुद्ध करता है, प्रतिकूल परिस्थिति को हटाकर अनुकूल स्थान प्राप्त करता है और पुण्य रूपी पूंजी भी बढ़ाता है। ज्ञान और तप दोनों मिलकर मनुष्य के व्यक्तित्व की श्रेष्ठ पूंजी बनते है। ज्ञान प्राप्ति के लिए भी तप की आवश्यकता है। तप के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। तप दुर्लंध्य है। जो दुस्तर है, दुष्प्राप्य है, दुर्गम है और दुष्कर है, उसे सब प्राप्त नहीं कर सकते। देवताओं और मनुष्यों के सभी सुखों का मूल तप है। ब्राह्मण का तप ज्ञान है और क्षत्रिय का तप दुर्बल की रक्षा करना है।

४७६०) तप का आचरण तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है। तप के द्वारा पूजा-प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। तप के द्वारा ही हमारी दुर्बलता शक्ति में और अविद्या ज्ञान में परिणत हो सकती है। साधक करोड़ों जन्मों के संचित कर्मों को तपस्या के द्वारा क्षीण कर देता है।

ज्ञान गंगा

बीस दिन की बुरी संगति रावण बना सकती है मगर राम बनने के लिये तो कई जन्म चाहिये।

विद्वान की स्याही शहीद के खून से भी अधिक पाक होती है।

नदी के पीछे-पीछे चलने से सागर तक पहुंचा जा सकता है।

वही सितारे ज्यादा चमकते हैं, जिनके पीछे अंधेरा होता है।

१) देश की बातों के बादशाह नहीं, आचरण के आचार्य बनना सिखो।

२) चाहे तुम कोमल पंखों की लेखनी से ही लिखो, पर तुम्हारी बात में दम होना चाहिये।

३) शर्म की कशिश हुस्न से ज्यादा होती है।

४) खून की नदियां बहाने से वह शोहरत हासिल नहीं होती जो एक आंसू के पोंछने से मिलती है।

५) पेट कलाओं का शिक्षक और आविष्कारों का विधाता है।

६) वारिस तो सम्पत्ति वाले लोग खोजते हैं लेकिन आन्दोलन में वारिस पूरी पीढ़ी होती है।

७) संगीत अनुभव है, आवाज नहीं।

८) नारी शिक्षा वही श्रेष्ठ है जो गृहिणी को गरिमा दे।

९) मैं इतने हिस्सों में बंट चुका हूँ कि मेरे अपने लिये कुछ बचा ही नहीं।

१०) जिन्दगी से बढकर कोई सजा नही हैं और जुर्म क्या है पता ही नहीं।

११) मोम की शमा जलती भी है और पिघलती भी है।

१२) घर से निकलो तो पता जेब में रखकर निकलो हादसा चेहरे की पहचान मिटा देता है।

१३) जिन्दगी में कसम, कदम और कलम बहुत सोच समझ कर उठाना चाहिये।

१४) आपकी तदबीर आपकी तस्वीर को बदल देती है संवारती है और तकदीर के पासों को पलट सकती है।

१५) एक छोटी शाही बडे शेर को मार सकती है।

१६) पुरुषार्थ जीवन की अनिवार्य शर्त है। जीवन साफल्य-श्रम संस्कृति सर्वोपरि है।

१७) जीवन को सुन्दर बनाने वाला प्रत्येक विचार ही वेद है।

१८) दुखती आंखों वाले को सामने रखी दीपशिखा अच्छी नहीं लगती है।

१९) मुस्कुराने की तमन्ना तो हमें भी है मगर पहले ये रिसते हुये जख्म तो भर जाये।

२०) माता के आंचल और घर के कोने में बडा अन्तर होता है। एक शीतल जल का सागर है, दूसरा मरूभूमि।

२१) सितारे आसमान का नूर है और पढ़ा लिखा इन्सान जमीन की जीनत है।

२२) जिन्दगी के सफर में भी किसी से इतना प्यार मत करो कि कोई दिल की कसक बन जाये।

२३) बेवकूफ होते है वो लोग जो आज की खातिर अपने कल को भी दांव पर लगा देते हैं।

२४) किसी पर अन्धा एतमाद (विश्वास) मत करो क्योकि अक्सर वही लोग धोखा दे जाते हैं।

२५) बेवकूफ के सामने कहानियां मत कहो, वह उन्हे तुमसे ही जोड देगा।

२६) जरूरत शेर को भी लोमडी बना देती है।

२७) विनम्रता तथा शालीनता कभी पराजित नहीं होती।

२८) सहायता के हाथ प्रार्थना के होठों से ज्यादा पवित्र हैं।

२९) आग न बनकर दीपक बनो, रोशनी फैलेगी।

३०) रूप बदला जा सकता है पर स्वरूप नहीं।

३१) सज्जन तो धागे से बंध जाएगा पर दुर्जन रस्सी से भी नहीं बंधेगा।
३२) अविश्वास धीमी आत्महत्या है।
३३) पक्षपात ही सारी बुराइयों का प्रधान कारण है।
३४) ऐश्वर्य कृत्रिम दौलत है। सन्तोष कुदरती दौलत है।
३५) सृष्टि की रचना ही इस ढंग से हुई है कि मनुष्यों का जीवन दूसरों के लिए है, अपने लिए नहीं।
३६) बाह्य मौन से कोई आन्तरिक शान्ति नहीं पा सकता है, चाहे युगों तक वह मौन क्यों न बैठा रहे।
३७) अपने विरुद्ध शब्द सुनते ही किसी की नियत पर संदेह न करें।
३८) युद्ध समाधान नहीं, समस्या है- पर विवशता है।
३९) दु:ख मनुष्यत्व के विकास का साधन है।
४०) जहां प्रेम का प्रारम्भ होता है, वहीं त्याग की पराकाष्ठा होती है।
४१) क्षणिक सुख की तृष्णा विनाश का कारण बनती है।
४२) धन के मद में मतवाला मनुष्य गिरे बिना होश में नहीं आता।
४३) प्रतिभाशाली की प्रतिभा को मेहनत निखारती है।
४४) लगन के बिना किसी में भी महान् प्रतिभा उत्पन्न नहीं हो सकती।
४५) जो कर्ज आप पर है, उसे चुका दीजिए और तब आपको पता चलेगा कि आपके पास अपना क्या है।
४६) परोपकार के लिए मरने का सौभाग्य तो संस्कार वालों को ही प्राप्त होता है।
४७) नारी की उन्नति या अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति या अवनति आधारित है।
४८) स्पष्ट कहने वाला छली नहीं होता।
४९) गुण मनुष्य वश में है, प्रतिभा के वश में मनुष्य स्वयं होता है।
५०) यदि तुम भूलों को रोकने के लिए द्वार बंद कर दोगे तो सत्य भी बाहर ही रह जाएगा।
५१) वे ही व्यक्ति महान् और शक्तिशाली बनते हैं जिन्हें अपने आप पर विश्वास है।
५२) तुम कुछ प्राप्त करना चाहो तो अर्पित करना सीखो।
५३) हंसी जीवन का प्रभाव है, मुस्कान प्रेम की भाषा।
५४) सच्ची संस्कृति, हृदय और हाथ का अनुशासन है।
५५) खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाजत में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।
५६) महान् आदर्श महान् मस्तिष्क का निर्माण करती हैं।
५७) आवश्यकता ही प्राय: प्रतिभा की प्रेरक है।
५८) प्रथम और अंतिम वस्तु जिसकी हम प्रतिभा से अपेक्षा रखते हैं, वह सत्य प्रेम है।
५९) वार्तालाप बुद्धि को मूल्यवान बना देता है, परन्तु एकान्त प्रतिभा की पाठशाला है।
६०) अगर चिड़िया एकता कर ले तो शेर की खाल खींच सकती हैं।
६१) सौभाग्य हमेशा परिश्रम के साथ ही परिलक्षित होता है।
६२) जो भविष्य का भय नहीं करता वही वर्तमान का आनंद ले सकता है।
६३) वे व्यक्ति कभी अकेले नहीं हैं जिनके साथ सुन्दर विचार हैं।
६४) धन, वैभव, अधिकार सब स्वार्थ की भूमिकाएं है और सब छलना है।
६५) एक अच्छा अखबार स्वयं से बात करता राष्ट्र है।
६६) आशा भावी दिनों को चमका देगी और स्मृति अतीत को आकर्षक बना देगी।

६७) वृद्धावस्था विचार करती है, यौवन साहस करता है।

६८) संकट ही चरित्र को निखार कर नैतिक बल प्रदान करते हैं।

६९) विश्वासघात किसी के साथ मत करो यह जिन्दगी का पतन है।

७०) शोक करनेवाला मनुष्य न तो मरे हुए के साथ जाता है और न ही स्वयं मरता है।

७१) सत्य को न देखने के कारण ही यह संसार जला है, इस समय जल रहा है और जलेगा।

७२) रत्नजटित मुकुट इसलिये नहीं होता कि लाखों सिरों को पैरों से ठुकराओ।

७३) जो मनोरंजकता के साथ अपने विचारों को प्रगट करना जानता है उसको जन साधारण की रूचि विचित्रता से चिढ़ नहीं होती।

७४) मनुष्य के कर्म उसके विचारों के सर्वोत्तम व्याख्याता हैं।

७५) रात्रि प्रेमियों की सखी, एकान्तवासियों की सुखदात्री और असहायों का आतिथ्य करनेवाली होती है।

७६) मौत रिश्वत नहीं लेती क्योंकि कफन को जेब नही होती।

७७) खुले कुत्ते की तुलना में जंजीर से बन्धे कुत्ते के काटने की आशंका अधिक होती है।

७८) महान उद्यमों की शुरुआत अक्सर छोटे सुअवसरों से होती है।

७९) जिस राष्ट्र में शान्ति की स्थापना रहती है उस राष्ट्र को कोई गुलाम नहीं बना सकता।

८०) अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाली की न तो जबान रोकी जा सकती है और न ही उनके बढते कदम।

८१) अप्रत्याशित खतरे की आशंका हो जाये तो अपना रास्ता बदल लेना ही बेहतर है।

८२) जब कोई एक दरवाजा बन्द हो जाता है तो दूसरे कई दरवाजे खुल जाते है।

८३) किसी से इतनी भी मुहब्बत मत करो कि तुम उसे भूला न सको।

८४) कुछ लोग सारी उम्र किसी से मुहब्बत करते रहते है और उसे बताते तक भी नहीं।

८५) विपत्ति टालने पर भी नही टलती। भाग्य उसकी वैसी ही बुद्धि बनाकर उसे वहां ले जाता है।

८६) जिस आंचल ने अपनी आड़ करके दीपक को बुझने नहीं दिया, उसी दीपक ने आंचल वाले को जला दिया।

८७) मनुष्य का जीवन भाग्य के अधीन रहता है। यदि मनुष्य के हाथ में भविष्य होता तो वह कोई अनिष्ट होने ही नहीं देता।

८८) इच्छाएं, भोग-ऐश्वर्य की लिप्सा मनुष्य को पराधीन बना देती है।

८९) प्रारब्ध-परिकल्पित परिस्थिति से कभी-कभी समझौता करना ही पड़ता है।

९०) दूसरों के लिए मेहंदी पीसने वाले की अपनी हथेलियां अपने आप ही रच जाती हैं।

९१) यदि प्रेम की गति अबाध रखना है तो उस पर शंका और अविश्वास की छाया न पड़ने पाए।

९२) जो आदमी के वश में है वह क्षमता है, जिसके वश में आदमी है वह प्रतिभा है।

९३) यह विधान है कि मनुष्य को सदैव मनुष्य की आवश्यकता बनी रहेगी।

९४) जितनी प्रसन्नता और सन्तोष प्रयासों में है उतना उपलब्धियों में नहीं।

९५) मनुष्य अधिक पढ़ने से नहीं बल्कि पढ़े हुए का मनन करने से विद्वान होता है।

९६) आकाश के सितारों की चाह में इस तरह न बढ़ो कि धरती के फूल पैरों तले कुचल जाएँ।

९७) दुनिया एक महान ग्रन्थ है। जो लोग घर छोड़कर बाहर नहीं जाते वह केवल एक पृष्ठ ही पढ़ पाते हैं।

९८) जिन्दगी एक पहेली है जो कभी दुश्मन और कभी सहेली है।

९९) दूसरों के ऊँटों पर लदा हुआ बोझ, कपास से भी हल्का नजर आता है।

१००) जिन्दगी एक हीरा है जिसे तराशना इन्सान का काम है।

१०१) माँ और मुल्क कभी नहीं बदले जाते।

१०२) सन्तान सम्पत्ति से नहीं संस्कारों से महान बनती है।

१०३) पन्ने पलटने की बजाय मन को पलटें, इसी नासमझी के कारण मन दु:खी होता है।
१०४) स्वयं को प्रकाशित करें और पूछें खुद से कि आसमान में उड़ चलेगा कितने दिन।
१०५) भाग्य कभी दूसरों के सहारे विकसित नहीं होता।
१०६) जैसे खोटा सिक्का किसी दूकान में नहीं चलता वैसे ही खोटे व्यक्ति को समाज नकार देता है।
१०७) जीवन में परिवर्तन केवल अच्छी बातों से नहीं बल्कि सच्ची बातों से आता है।
१०८) किसी भी ऊँचे स्थान पर जाने के लिए टेढ़े-मेढ़े रास्ते की कठिनाइयों से होकर जाना पड़ता है।
१०९) ईंट-पत्थर के सब मन्दिरों से महान् हृदय का मन्दिर है।
११०) प्रखर प्रतिभा गुरु के उपदेश की प्रतीक्षा नहीं करती और पीड़ा समय की प्रतीक्षा नहीं करती।
१११) दुर्भाग्य में कोई किसी का साथ नहीं देता। जैसे अंधेरे में मनुष्य का अपना साया भी उससे अलग हो जाता है।
११२) सम्पन्नता मित्र बढ़ाती है और विपदा उनकी परख करती है।
११३) सस्ता साहित्य हवा में उड़ जाएगा, सत्साहित्य अमर रहेगा।
११४) बूढ़ा इंसान इस पृथ्वी का सबसे बड़ा शिक्षालय है क्योंकि उसे देखकर उगते सूरज की डूबती कहानी का बोध होता है।
११५) हमारी जिन्दगी के हर सवाल के जवाब भी हमारी जिन्दगी में छिपे हैं। फिर भी हम उन्हें समझ नहीं पाते हैं।
११६) किसी के गुजर जाने से किसी का गुजारा नहीं रुकता।
११७) प्रतिभा और अभिव्यक्ति के सामंजस्य से व्यक्तित्व का निखार बढ़ता है। निखरा हुआ व्यक्तित्व जीवन की अमूल्य निधि है।
११८) आंसू बहुत सस्ते होते है जो तोहफे में मिल जाते हैं।
११९) आंखे जो देख सकती है वह बोल नहीं पाती और वाणी जो बोल सकती है वह देख नहीं सकती।
१२०) साहसी के लिये शब्द कोष मे असम्भव शब्द होता ही नहीं है।
१२१) इस देश में जब तक मूर्ख आदमी मौजूद है बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी भूखा नहीं रह सकता।
१२२) हर चीर हरण को आमन्त्रण करनेवाली पीढ़ी विनाश को आमन्त्रित करती है।
१२३) इतिहास की अपेक्षा कविता सच के अधिक निकट होती है।
१२४) एक भाषा व्यक्तियों में एकता लाती है तथा दो भाषायें उन्हें बांटती है। भाषा ही संस्कृति है।
१२५) जब तक आदमी सृजन की कला नहीं जानता तब तक वह अस्तित्व का अंश नहीं बनता।
१२६) अब और न रुको दिन हैं बस चार, दो आरजू में बीत गए दो इंतजारी में।
१२७) अतीत ने भविष्य का ध्यान रखे बिना, मनुष्य का सिर्फ शोषण किया है।
१२८) मदिरा की बोतल में प्रेत निवास करता है, जिसकी भयानक छाया सैकड़ों परिवारों पर पडती है।
१२९) संगीत के पीछे अपार शक्ति छिपी है।
१३०) स्त्री में प्रतिभा होनी चाहिए ताकि वह अच्छे पति का निर्माण कर सके।
१३१) आचार का जो प्रेरक होता है अत: वही काल का भी कारण होता है।
१३२) ना उम्मीद लोगों का तो प्रकृति भी साथ नहीं देती।
१३३) प्रकृति अपनी प्रगति और विकास में रुकना नहीं जानती। हर अकर्मण्यता पर वह अपने शाप की छाप लगाती जाती है।
१३४) सदाचार वह स्रोत है जहां से सम्मान जन्मता है।
१३५) लोगों ने ईश्वर को तूफान या भूकंप में नहीं पाया है, अपने अंदर की शांत आवाज में पाया है।
१३६) लोमड़ियों की मांद और आकाश के पक्षियों के बसेरे होते हैं, पर मनुष्य के पुत्र को सिर धरने की भी जगह नहीं।
१३७) बड़े भारी कंजूस का सोना कोने में ही गढ़ा रह जाता है।
१३८) जगत् की बातें करने के लिए मन्दिर नहीं बनाये गये हैं, मन्दिर ध्यान एवं उपासना करने के स्थल हैं।

१३९) वस्त्र बदलने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है हृदय-परिवर्तन की।

१४०) एक गद्दार दोस्त से वफादार दुश्मन अच्छा होता है।

१४१) सच बोलना, हेरा फेरी से दूर रहना, चेहरे की सुन्दरता बनी रहेगी।

१४२) लडाई झगडों से, मुकदमेबाजी से दूर रहना, इनसे आज तक किसी को कोई लाभ नहीं हुआ।

१४३) एक छोटा सा छेद एक बडे भारी जहाज को डूबो सकता है।

१४४) कभी कोई किसी का दीया नही बुझाता। यह तो तेल की कमी होती है। जिससे दीया बुझ जाता है।

१४५) कुत्तों के भौंकने पर भी शेर खामोश ही रहते है।

१४६) किसी भी संस्था के सफल प्रबंधन मे गुणवत्ता वाकई एक तरीका है।

१४७) मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि मनुष्य में संस्कृति होती है पशु में नही।

१४८) जीवन में बच-बच कर चलने वाले ज्यादा आगे नहीं बढ़ पाते।

१४९) दान कर दिये गये धन पर अपना अधिकार मानने की भूल कभी मत करो।

१५०) "एक शहनशाह ने बनवा के हंसी ताजमहल, हम गरीबों की मोहब्बत का उडाया है मजाक"।

१५१) प्रत्येक व्यक्ति एक महान ग्रन्थ है यदि आप उसे पढना जानते हैं।

१५२) इस संसार में अनिश्चितता के सिवाय और कुछ भी निश्चित नहीं है।

१५३) जो वस्तु बांटी नहीं जा सकती, वह वस्तु नहीं हो सकती।

१५४) सूर्य की रोशनी को रोकने की किस में सामर्थ्य है ?

१५५) उद्योग करने से ही दरिद्रता का नाश होता है। उद्योगी व्यक्ति की मदद के लिये प्रकृति भी बाध्य होती है।

१५६) स्वाभिमान को छोडो नही और अभिमान को पास फटकने न दो।

१५७) मित्रता दूध और पानी की तरह गाढ़ी होनी चाहिये जो एक दूसरे मे घुल मिल जानी चाहिये।

१५८) बरसात में तालाब तो लबालब भरकर उफनने लगते है लेकिन समुन्दर कभी भी अपने आपे से बाहर नही होता।

१५९) ऊंचाई आजाने पर चौडाई घट जाती है शिखर की चौडाई कम होती जाती है। (Summit is always Narrow)

१६०) यदि सत्य जीवित रहता है तो सब लोग मृत्यु के बाद भी जीवित हैं।

१६१) जब तक हम है, मौत नहीं आती है और जब मौत आती है तो हम नहीं होते है इसलिये मृत्यु से कैसा भय ?

१६२) धार्मिक शक्तियाँ को आध्यात्मिक शक्तियों में रूपान्तर किया जा सकता है।

१६३) स्वयम् में विश्वास करना दूसरे लोगों को भी आप पर विश्वास करना सिखाता है।

१६४) यह जीवन पीपल के पत्ते के समान चंचल है। प्राण वायु में उडकर नष्ट होने वाले मेघ के समान है।

१६५) सुपात्र और विनम्र को सम्पतियां स्वत: प्राप्त हो जाती है।

१६६) महान होने के लिये कर्तव्य से ज्यादा काम करना होता है। कर्तव्य कभी भी आग और पानी की परवाह नहीं करता।

१६७) हजारों कदम की यात्रा भी शुरु करने से ही होती है।

१६८) तलवार की नोक के कारण कई लोग गिरे हैं लेकिन उससे अधिक लोग जबान की धार से गिर जाते हैं।

१६९) छोटी कृतज्ञतायें जीवन को सरस बनाती हैं, बडी वाली इसे ऊंचा उठा आयाम देती हैं।

१७०) जीवन की कोई अवस्था ऐसी नही है, चाहे वह सामाजिक हो या व्यक्तिगत, जिसमे आपके सामने कर्तव्य न हो।

१७१) माता-पिता के ऋण पैसे से नही वरन् प्रेम व अच्छे संस्कारों से चुकाये जाते हैं।

१७२) ईमानदारी हमारे चरित्र का प्रमाण है।

१७३) अपने जीवन को जो जला कर बना सकता है, वह कलाकार है।

१७४) कभी कभी हम जिन्दगी में इतने नकाब पहन लेते हैं कि स्वयम् को भी पहचान नहीं पाते।

१७५) अपशब्दों का प्रयोग करने का अर्थ ही यह है कि मुझ में सही शब्द इस्तेमाल करने की क्षमता व बुद्धि नहीं है।
१७६) यदि मै सच्चाई से सदा सर्वदा छिपता रहूँ तो इसका अर्थ है मुझे झूठ का संग अच्छा लगता है।
१७७) वे लोग कितने निर्धन हैं जिनके पास धैर्य नहीं है। आज तक जिन्दगी का कोई भी जख्म बिना धैर्य रक्खे ठीक नहीं हुआ है।
१७८) स्वर्ग भी व्यक्ति के लिये स्वर्ग नहीं होता जहां उसे उसकी अर्धांगिनी नहीं मिले।
१७९) शान्ति उपाय है, क्रान्ति दृष्टिकोण है और विकास उद्देश्य है।
१८०) मानवीय अज्ञता स्वाभाविक है और वह आशंका और संशय की जननी है।
१८१) अकाट्य लोभ का दुर्गुण अकेला ही अपरिमेय सदगुणों का नाश कर डालता हैं।
१८२) जो हाथ पलना झुलाते है वो ही दुनिया पर राज कर सकते हैं।
१८३) सुना हुआ झूठ हो सकता है लेकिन देखा हुआ सच है।
१८४) न्याय से अधिक महत्वपूर्ण शान्ति है। न्याय के लिये शान्ति नहीं हुई बल्कि शान्ति के लिये न्याय कायम हुआ है।
१८५) जहाँ इच्छा शक्ति प्रबल हो वहां कोई बडी मुश्किल, परेशानी, दिक्कत नहीं हो सकती।
१८६) आलस्य व्यक्ति को मौत के द्वार तक ले जाने में सहायक होता है। सक्रिय व्यक्ति जीवन अच्छी तरह से जीता है।
१८७) आपत्ति मानव बनाती है और दौलत दानव।
१८८) किसी व्यक्ति से समय मांगना उससे पैसा उधार मांगने के ही जैसा है।
१८९) जीवन का एक क्षण करोडों मुद्राएं देने पर भी नहीं मिल सकता।
१९०) जो धर्म और अर्थ का परित्याग करके क्रोध का ही अनुसरण करता है, उसे तो हर हाल में संकट में पड़ना पड़ता है।
१९१) संसार की सर्व सुन्दर से सुन्दर श्रेष्ठ वस्तु अपना घर है जहां उसे श्रद्धा, प्रेम और शान्ति मिलती है।
१९२) जो कुछ पढ़ा गया, वह भूल जाने के बाद जो कुछ बचता है, वास्तव में वही शिक्षा है।
१९३) आध्यात्मिक विकास मानवता की विरासत है।
१९४) सही समय पर पहुँचना, समय का नियन्त्रण करना अच्छे व्यक्तित्व की निशानी है।
१९५) यदि आप अच्छे विचार अपने जीवन में उतार लें तो आप एक बडे पुस्तकालय से भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।
१९६) वो मित्रता जिसमें दिल नहीं मिले होते है वो बडी ऊंची आवाज से टूटती है।
१९७) जिन्दगी को हमेशा दूर से देखो और मौत को एकदम करीब से।
१९८) कंजूस व्यक्ति का गडा हुआ धन जमीन से तब बाहर निकलता है जब वह स्वयं जमीन में गड जाता है।
१९९) कठिनाइयां मार्ग का व्यवधान तो हो सकती है लेकिन उसका अन्त नहीं।
२००) दूसरों की फसल रौंद कर आप ख्याति, मान, यश की सीढियों पर नहीं चढ़ सकते।
२०१) यश तो भाग्य से ही मिलता है। जब भाग्य में कुछ लिखा ही नहीं तो मिलेगा कहां से।
२०२) सितारे गिनने के लिये नहीं होते बल्कि उन्हें देख कर लोग स्वयं प्रकाशपूर्ण जीवन जीना सीखे।
२०३) वही समाज आगे बढ़ता है जो दूर के सपने देखता है, अहम और संकीर्णता विकास के मार्ग मे अवरोधक है।
२०४) प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।
२०५) रास्ते को तलाश करने से पहले हमसफर को तलाश करने की जरूरत है।
२०६) मौत और तकदीर जैसे नाजुक और गहरे मसलों पर बहस नहीं करनी चाहिये।
२०७) परिवार से अच्छी पाठशाला और अभिभावकों से अच्छे शिक्षक कहीं नहीं मिल सकते।
२०८) उत्साह वर्धन और चापलूसी में फर्क है। एक में ईमानदारी रहती है और दूसरे में बेइमानी।
२०९) गुरु, मन्दिर (देवता) और बेटी के घर कभी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये।
२१०) प्रोत्साहन मन के लिये अमृत है जब कि हतोत्साहित मन पराजय की पहली सीढ़ी है।

२११) समझौता- सामंजस्य का सूत्र ही जीवन का मुख्य सार है।
२१२) ईश्वर से इतनी उम्मीद रखो कि किसी और से उम्मीद ही न रहे।
२१३) परिस्थितियों को स्वीकार करो, परिस्थितियां हीं बदलती, अपने आपको उसके मुताबिक बनाओ।
२१४) शब्द कभी मरते नहीं, साहित्य कभी खत्म नहीं होता। साहित्य आत्मा की आवाज होता है।
२१५) मनुष्य सिर्फ रोटी से जीवित नहीं रहता उसे प्रशंसा और सहानुभूति भी चाहिये।
२१६) जिस मानव शरीर में बुद्धि नहीं है वह तो बाजार में खडी मूर्तियों की तरह है।
२१७) अतीत की परछाइयों को अपने भविष्य के उजाले की राह मे मत आने दो।
२१८) आसमान मे सितारे गिनने के लिये नही बल्कि उन्हे देखकर प्रकाशपूर्ण जीवन जीना सीखो।
२१९) वीणा के तार इतना भी मत कसो कि टूट जाय और इतना भी ढीला मत छोडो की सुर ही न निकले।
२२०) एक अच्छा पडोसी मकान की कीमत दुगुनी कर देता है।
२२१) जब तक कुएं सूख नहीं जाते पानी की अहमियत का पता नहीं चलता।
२२२) "खुदी को कर बुलन्द इतना कि खुदा खुद बंदे से पूछे कि बता तेरी रजा क्या है।"
२२३) अच्छा हुआ कि कफन को जेब नहीं होती। नहीं तो ऐ ऊपरवाले तेरी दुनिया हीरे जवाहरात से खाली होती।
२२४) अन्याय से प्राप्त सम्पत्ति को पाकर किसी भी नीच कुल के व्यक्ति में असह्य उग्रता आजाती है।
२२५) जरासी बात को लेकर वर्षों के याराने गये, लो अच्छा ही हुआ कुछ लोग तो पहचाने गये।
२२६) कुछ काम ऐसे करो, खुशहाल हो जिन्दगी आपकी, लोग सबक सीखे सुन कर कहानी आपकी
२२७) ज्ञान का वारिस शिष्य होता है पुत्र नही। **गुरु द्रोणाचार्य**
२२८) व्यक्ति की परख उसके वस्त्रों से, आभूषणों से व उसकी धन दौलत से मत करो बल्कि उसके चरित्र से उसे पहचानो।
२२९) कल की चिन्ता मत करो। कल अपनी चिन्ता अपने आप करेगा।
२३०) जिन्दगी के हम पर बहुत एहसान है कि वह सिर्फ एक ही बार रूठती है।
२३१) सृष्टिके सुन्दरतम प्राणियोंके चर्म पंफआदि अपने मनोरञ्जनके लिए प्राप्त करनेकी यह वासना बहुत निष्ठुर है।
२३२) वस्तु जहाँ खोती है, अन्वेषण वहीं से प्रारम्भ होता है।
२३३) जालिमों के साथ रहना भी जुर्म से कम नहीं है।
२३४) बुराई का बीज बोकर नेकी का फल चाहना सबसे बडी बेवकूफी होगी।
२३५) अगर आपको एक अच्छे दोस्त की तलाश है तो स्वयं एक अच्छे दोस्त बनने की कोशिश करें।
२३६) पत्थर के स्तम्भ के समान कभी न झुकनेवाला अहंकार मनुष्य को नरक की ओर ले जाता है।
२३७) हंसी मसखरी करने वालों से सिर्फ तबीयत बदलती है, मसले हल नहीं होते।
२३८) व्यवस्था घर की शोभा है, समझौता घर का सुख है।
२३९) पिछला कदम उठा कर ही अगला कदम बढाया जा सकता है। तुच्छ के त्यागने पर ही गौरव पाया जा सकता है।
२४०) देखते नहीं है कि सब मरते हैं तो क्या तुम अमर रह सकोगे ? कफन में जेब नही होती है तो धन को रखोगे कहां ?
२४१) जिन्दगी किराये का घर है आखिर तो इसको खाली करना ही है।
२४२) संसार के साथ नहीं संस्कार के साथ चलो।
२४३) जिस चिराग में जितना तेल होता है वह उतना ही जलता है।
२४४) सच कभी सामूहिक नहीं होता है वह तो व्यक्तिगत होता है।
२४५) बुजुर्ग फलों से लदा हुआ वह वृक्ष है जो पत्थर मारने पर भी सदैव फल ही देता है।
२४६) बेहतर हैं वो लोग जो जमीन और आसमान का अन्तर जानते हैं।

२४७) इच्छाओं पर दबाव पडने से वे कमजोर हो जाती हैं पर इरादों पर दबाव पडने से वे और मजबूत हो जाते हैं।
२४८) प्रत्येक शब्द, विचार और कर्म भाग्य का निर्माण करते हैं।
२४९) उनकी मृत्यु कभी नहीं होती, जो मानवता के लिये, मानव के उद्धार के लिये अपना बलिदान देते हैं।
२५०) समस्या में ही समाधान छिपा होता है।
२५१) लालची इन्सान दौलत पाकर भी इस प्रकार तडफता है जैसे पानी में पूरा डूबकर भी प्यासा रहता है।
२५२) सुख खुशी का नाम नहीं बल्कि गम और खुशी से बेनिजात होने का नाम है।
२५३) आज के नेता हमें जो मार्ग दिखाते हैं, उस पर, स्वयं कभी नहीं चलते इसलिए नेता मार्गदर्शक कहलाते हैं।
२५४) मुश्किलों को छोडकर आगे बढना पलायन है, किसी समस्या का हल नहीं।
२५५) सबसे पहले और सबसे आखिरी दुश्मन रिश्तेदार ही होते हैं।
२५६) जिसे रिश्ते निभाने का सहुर नहीं वह किसी से मुहब्बत नहीं कर सकता।
२५७) जिस दिल मे बर्दाश्त करने की क्षमता और ताकत हो वो जिन्दगी में कभी हारता नही है।
२५८) बादल सूरज को अधिक समय तक नहीं छिपा सकता।
२५९) हम दोस्तों के बिना तो रह सकते हैं लेकिन पडोसियों के बिना नहीं।
२६०) सबसे बडी कमजोरी मायूसी है।
२६१) शीशा तोडने से पहले यह सोच लो कि उसके टुकडे तुम्हें भी जख्मी कर सकते है।
२६२) लोग दोस्ती छोड सकते है लेकिन बहस करना नहीं छोडते।
२६३) अपनी हदों से आगे न बढो क्योंकि यह अनेक तरह के डर और मन में उदासी पैदा करेगा।
२६४) विश्वास से ही विश्वास बढता है। विश्वासघात से बडा कोई पाप नहीं है। विश्वास पर ही विश्व चल रहा है।
२६५) उस दोस्त की दोस्ती से हाथ खींच लो जो तुम्हारे दुश्मनों के साथ उठता बैठता हो।
२६६) बिना कुछ किये खुद को मशहूर कर देने वाले लोग जल्दी भूला भी दिये जाते हैं।
२६७) जवानी में बहके कदम आगे चलकर बुढापे में रूलाते हैं।
२६८) धागा टूट जाये तो उसे जोडा जा सकता है लेकिन उसमें गांठ जरूर पडती है।
२६९) सुंदर व्यवहार और आचरण खूबसूरत चेहरे से ज्यादा अच्छा होता है।
२७०) काटों से भरी शाख को एक फूल खूबसूरत बना देता है।
२७१) खामोशी गुस्से का बेहतरीन इलाज है।
२७२) कम जानकारी खतरनाक होती है लेकिन बिलकुल जानकारी न होना दर्दनाक है।
२७३) समझदार वह है जो एक रुपया बचा सके न कि वह जो एक रुपये को कमा सके।
२७४) वह जिसका मजबूत इरादा है, दुनिया को अपनी मर्जी के मुताबिक चलाता है।
२७५) जिस घर में मौत, मुकदमा और रोग घुस जाये तो वह बर्बाद हो जाता है।
२७६) जो चेहरा मुस्करा नहीं सकता वह कभी खिल नहीं सकता।
२७७) इस छोटी सी दुनिया में नफरत करने से बचो कारण कि जिन्दगी बहुत छोटी और कम समय की ही होती है।
२७८) संघर्ष में ही जिन्दगी का राज छुपा है। बिना लगन और कठिन परिश्रम के ऊंचाई हासिल नहीं हो सकती।
२७९) बलाओं से कोई नहीं बचता फिर संघर्ष करने के लिये बचना और कुछ नहीं सिर्फ बचकानी हरकते हैं।
२८०) आज यदि गलत को गलत नहीं कहा तो वो ही गलत कल हमारे सिर पर चढ़कर बोलने लगेगा।
२८१) जो व्यक्ति अपने अतीत को याद नहीं रखते, उन्हे उसे दुबारा भुगतना पडता है।
२८२) बहादुर बनो, आदमी सिर्फ एक बार मरता है।

२८३) कभी कभी प्रबल प्रवाह में प्रवाहित को साधारण सही हिलोर (लहर) भी दूसरी दिशा दे देती है।
२८४) जो स्वयं अपनी आहूति देने को तैयार है वह दूसरों को कैसे रोक सकेगा ?
२८५) अपशकुनों की सूचनाओं को कभी अभाग्य का मारा प्राणी नहीं देख सकता।
२८६) वियोग का महावाडव बुझता दीखने लगता है तो दूसरों के दु:ख की ज्वाला दग्ध करने लगती है।
२८७) अव्यवस्थित दिनचर्या अशान्त मानस एवं अपूर्ण व्यक्तित्व का प्रतीक है।
२८८) अज्ञात अनिष्ट की आशंका और भी अधिक व्याकुल करती है।
२८९) प्रयोजन न रहने पर भी प्रयत्नों के दीर्घ अभ्यास की स्थिति को नहीं समाप्त करना चाहिये।
२९०) अभीष्ट फलकी प्राप्तिसे पूर्वप्राप्त क्लेश मुरझाये मनको फिरसे हरा कर देता है।
२९१) प्रारब्ध को कोई मिटा नहीं सकता, दैव की गति को कोई अन्यथा नहीं कर सकता। भाग्य को कोई बदल नहीं सकता।
२९२) दुनिया उन्ही लोगों को पसन्द करती है जो अपनी राहें आप पैदा करते हैं।
२९३) व्यक्ति अपने कार्यों से महान बनता है न कि अपने आपको महान कहने से।
२९४) किसी युद्ध में हजारो लोगों को जीतने से अच्छा है स्वयं को जीतना। वही सच्चा विजेता है जिसने खुद को जीता है।
२९५) उत्कटता से ही प्रखरता उत्पन्न होती है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये उत्कटता न हो तो कर्म गतिमान नहीं होगा।
२९६) सब लोग खूबसूरत नहीं होते है न ही सारे परिन्दे हंस होते है। किसी किसी आदमी से ही बहारों की खुशबू आती है।
२९७) गुस्से में भी किसी को बुरा मत कहो जो दोबारा मिलने पर तुमको शर्म महसूस हो।
२९८) सीखने की प्रक्रिया से गुजरने वाली आत्मा निरन्तर जवान होती चली जाती है।
२९९) योजना बद्ध परिश्रम से शीघ्र प्रगति होकर लक्ष्य की सहजता से प्राप्ति हो जाती है।
३००) जिन्दगी वह आंख है जो मौत का इन्तजार करती है।
३०१) वर्तमान में जिये और इसे इतना सुन्दर बना दें कि याद रखने योग्य बन जाये।
३०२) सफलता मन की शीतलता से उत्पन्न होती है। ठण्डा लोहा गर्म लोहे को काट व मोड़ सकता है।
३०३) सहानुभूति ऐसी विश्व व्यापक भाषा है, जिसे सभी प्राणी समझते हैं।
३०४) बच्चा झूठ बोलता है, तो अभिभावक उसे डांटते है। यदि सच खतरनाक है तो झूठ बोलना बुरा नहीं है।
३०५) थोड़ी देर के गुस्से में आप उन महान पलों को खो देते हैं, जो आनंदपूर्वक जिए जा सकते थे।
३०६) कल्पना मानव जाति की सम्पन्नता का राज है।
३०७) शिष्टाचार की कोई कीमत नहीं होती, पर उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।
३०८) जो कुछ आंखों से नहीं दिखता, उसे चरित्र से देखना पड़ता है।
३०९) आकांक्षा और लोभ की चिनगारी को हवा देकर स्वयं का विनाश करना है।
३१०) मृत्यु अवश्यम्भावी और अटल है यह जानते हुये भी मरना कोई भी नही चाहता।
३११) इन्सान को सूर्य की भाँति बनना चाहिये जहां कोई छुट्टी नही है, न ही कोई भेदभाव है और न ही किसी प्रकार की अपेक्षा।
३१२) समर्पण प्रेम की शर्त नही है। समर्पण प्रेम का स्वभाव है।
३१३) नीति एक व्यवस्था है लेकिन नैतिक व्यवस्था भी बनी रहे इसके लिये धर्म अनिवार्य है।
३१४) प्रेम के बाप का नाम विश्वास है। मान लेना विश्वास नही है वो मान्यता है।
३१५) त्याग विवेकजन्य होना चाहिये, आवेश जन्य नही। आवेश में जो त्याग होता है वो शान्ति नही देता है।
३१६) समस्याओं का हल कानून और विधि नही बल्कि मनुष्य करता है।
३१७) धनी लोग तो दूसरों को नौकर बनाते है पर सन्त लोग दूसरों को सन्त ही बनाते हैं।
३१८) संकीर्ण दृष्टि व संकीर्ण सोच संघर्ष का कारण बनती है।

३१९) किसी भी वस्तु को फेंककर देने में तिरस्कार है और देने में आदर है।
३२०) जो अतिप्रिय हो वो दे देना वही त्याग है। जो प्रिय नहीं है, उसे छोड देना छुटकारा है वो त्याग नहीं है।
३२१) जो स्वयं तैर सकता है वह गुरु है। जो दूसरों को तारता है वह सतगुरु है।
३२२) जगत में ऐसा कोई ताला नहीं जिसकी चाबी ईश्वर के पास न हो।
३२३) आशा तृष्णा केवल सांसारियों को ही पकडती हो ऐसा नही है, वह बडे बडे त्यागियों को भी नहीं छोडती है।
३२४) रुढ़ि जडता जिस समाज में आजाती है उसको जगाने में बडा ही जोर लगाना पडता है।
३२५) सम्पत्ति हमारी भी नही, सम्पत्ति समाज व शासन की भी नहीं, सम्पत्ति तो परमात्मा की होती है।
३२६) बिना प्यास के प्रयास नहीं होता है।
३२७) मैनें अभावों में रहकर एकांत रूपी पाठशाला में एकाग्रता के साथ रहने का गहन अध्ययन किया।
३२८) मृत्यु का डर उन्ही को होता है जिन्होंने वर्तमान का दुरुपयोग किया है।
३२९) शांति यदि अपने मे नहीं है, तो कहीं भी नहीं है।
३३०) अशुभ संकल्पों के त्याग से शुभ संकल्पों की पूर्ति स्वत: होने लगती है।
३३१) मैं सफलता की चाभी के बारे में नहीं जानता, लेकिन सभी को खुश करने का प्रयास करना विफलता की चाभी है।
३३२) कु छ व्यक्ति बडे विशिष्ट ढंग से इतिहास की गति बदल देते है। बहुत कम लोग संसार के मानचित्र में परिवर्तन लाते है।
३३३) उनकी मृत्यु कभी नहीं होती, जो मानवता के लिये जीते है, मानव उद्धार के लिये अपना बलिदान देते है।
३३४) परिवार को जोडनेवाला बन्धन खून का नहीं बल्कि प्रेम और सम्मान का होता है।
३३५) दो बार रास्ता पूछना कहीं भटकने से अधिक बेहतर है।
३३६) एक दिन के लिये शेर बनना जीवन भर भेड बने रहने से बेहतर है।
३३७) बच्चे को अपने रास्ते पर खुद चलने देना ही सबसे बडी महान विरासत है।
३३८) अनुभव और ताकत मिलकर बड़े-बड़े कामों को अंजाम दे सकती है।
३३९) सद् विचार जीवन की नींव है और सदाचार भवन, यदि नींव मजबूत होगी तो ही भवन टिक पायेगा।
३४०) सतत उद्योग करने से ऋद्धि-सिद्धि घर में निवास करती है।
३४१) जिन्दगी एक ऐसा दीपक है जो हवा में रखा हुआ है और कभी भी बुझ सकता है।
३४२) चरित्र कोई उपहार नहीं है हासिल की हुई उपलब्धि है।
३४३) झूठ की उम्र लम्बी नहीं होती, असत्य कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है।
३४४) थोडे से प्रयत्नों से गयी प्रतिष्ठा लौट सकती है। बूंद से गई हुई प्रतिष्ठा तालाबों से नहीं निकाली जाती है।
३४५) किसी की निन्दा करना कोई चरित्र ही नहीं है।
३४६) बच्चों को गिनती नही बल्कि क्या गिने यह सिखाये।
३४७) भविष्य की अनभिज्ञता और भूत का विस्मरण हमारे जीवन को सुखी बनाता है, हमें अनेक आपत्तियों की चिन्ता से बचाता है।
३४८) प्रारब्ध को कोई मेंट नहीं सकता, भावी होकर ही रहती है।
३४९) भाग्यवान जहाँ जाते हैं वहाँ अभ्युदय ही होता है।
३५०) भावी को अपने पुरुषार्थ से अन्यथा करने में समर्थ कौन हो सकता है ?
३५१) केवल सुंदर पंखों से कोई पक्षी सुंदर नहीं बन जाता।
३५२) जंग लगकर नष्ट होने की अपेक्षा जीर्ण होकर नष्ट होना अच्छा है।
३५३) जिस संस्था में आप हैं, उसकी लय को ग्रहण कीजिए।
३५४) ईख कोल्हू में पेरे जाने पर भी अपनी मिठास नहीं छोड़ता।

३५५) सोना आग में डालने के पश्चात भी अपनी चमक नहीं खोता।

३५६) संकट में साहस का होना आधी मंजिल तय कर लेना है।

३५७) समर्पण को प्रचार और दिखावे से घृणा है।

३५८) जो शख्स अपनी जिन्दगी इल्म के नाम कर देता है वह कभी नही मरता।

३५९) प्रवीणता और आत्मविश्वास अविजित सेनाएं हैं।

३६०) धन किसी को भी अपना गुलाम नहीं बनाता है। मनुष्य खुद ही धन का गुलाम बनकर अपना पतन कर लेता है।

३६१) गुस्सैल, क्रोधी व्यक्ति दूसरों के इरादों पर विश्वास नहीं करते।

३६२) मुंह से निकली बोली और बन्दूक से निकली गोली कभी वापिस नहीं आती है।

३६३) किसी का भी दिल मत दुखाओ क्योकि तुम्हारे पास भी एक दिल है।

३६४) जिसके मां-बाप बच्चे को अदब, चरित्र, संस्कार नहीं सिखाते उसे ये सब जमाना सिखाता है।

३६५) तुम हंसते रहते हो तो सारी दुनिया तुम्हारे साथ हंसेगी, लेकिन रोना तो तुम्हे अकेले ही पडेगा।

३६६) सिर्फ सफेद परिधानों को धारण कर लेने से शान्ति का मसीहा नहीं बना जा सकता।

३६७) प्रतिभा अवसर मिलने पर अपने चमत्कार दिखा देती है।

३६८) आपका दिल हसीन है तो आप बेहद हसीन है।

३६९) रिश्ते बनाना कोई मुश्किल नहीं होता है उनको निभाना बहुत मुश्किल है।

३७०) बहस करने की जगह बहस करने से दूर रहना ही सबसे बडी जीत है।

३७१) यदि तुम ईश्वर की पहचान करना चाहते हो तो पहेलियों को हल करने के बजाय अपने इर्द-गिर्द पर गौर करो।

३७२) गुजरा हुआ दिन सिर्फ आज की याद है लेकिन आने वाला कल आज का ख्वाब है।

३७३) नैसर्गिक प्रतिभा के विकास में कभी बाधा नहीं डालनी चाहिए। जहां तक संभव हो उसके पल्लवित होने में मदद करनी चाहिए।

३७४) जो संयमित और मर्यादापूर्ण जीवन बिताते हुए सही रास्ते पर चलता है, वह कभी कष्ट में नहीं रहता।

३७५) कुमार्ग पर चलने वाले को देर-सबेर सहोदर भाई भी छोड़ देता है।

३७६) मधुर भाषा, प्रेम और प्रसन्नता से तो बलवान हाथी को एक बाल से खींचा जा सकता है।

३७७) हम अपना भविष्य खुद बनाते हैं और उसे भाग्य का नाम देते हैं।

३७८) उत्तम पात्र में उत्तम वस्तु ही शोभा देती है। गाय-भैसों को वाड़ों में ही बांधा जाता है। उन्हें महलों में नही रखा जाता।

३७९) बेचारे भारतीय, उनके अप्रशिक्षित दिमाग भगवान को बादलों में देखते हैं या हवा में भगवान की आवाज सुनते हैं।

३८०) समय पर वही सवारी कर सकता है, जो समय की लगाम पकड़े रहे।

३८१) युद्ध बर्बरता है और सैन्यवाद व्यावहारिक उपयोग में लाई गई बर्बरता है।

३८२) मत भूलो कि संघर्ष और पीड़ा तुम्हारी शक्तियों को विकसित करते हैं, तुम्हें मनुष्य बनाते हैं।

३८३) वैराग्य और भक्ति ने निवृत्ति, ज्ञान, सोपान और मुक्ति को जन्म दिया।

३८४) नमक जो समुद्र की थाह लेने चला तो अपने आपको खो बैठा।

३८५) भागते हुए मेघों के साथ आकाश नहीं दौड़ा करता।

३८६) नीति धर्म से रहित नहीं है और धर्मतत्व का कोई विचार न कर नीति का जो बोध होता है वह अधूरा और असमर्थ होता है।

३८७) जो औरों के लिए रोते हैं, उनके आँसू भी हीरों की चमक को हरा देते हैं।

३८८) सच्ची शिक्षा का प्रथम लक्षण यह होना चाहिए कि वह कभी युक्ति तर्क का विरोध न हो।

३८९) शब्द से बहुत विकार हो जाता है। मजाक में भी गलत शब्द न निकाले।

३९०) लोभ बुरी बला है। लोभी कभी जीत नहीं सकता। दौलत दो लात लगाती है- आए तो अंधा करे, जाए तो कमर चढ़े।

३९१) अहंकार भी बिन बुलाया मेहमान है; इसे पहचान लो तो यह नहीं रहता।

३९२) प्रकृति की हर चीज अमानत है, अपनी न समझें।

३९३) दिल बड़ा होना चाहिए, घर बडा हो या नहीं हो।

३९४) जब प्रेरणा आए उसी समय पूरी करना। मन बदलते देर नहीं लगती।

३९५) करामातों का संसार नहीं- सिद्धियों से दूर ही रहना चाहिए।

३९६) इच्छा-पूर्ति के लिए मूल्य चुकाना पडता है, और वह मूल्य है इच्छाओं का त्याग।

३९७) छोटी-छोटी वस्तुओं का समूह भी कार्यसाधक होता है। तिनकों से बनी रस्सी से मतवाले हाथी बांध लिये जाते हैं।

३९८) धीर पुरुष उद्यम प्रारंभ करने के बाद असफल होकर नहीं लौटते।

३९९) मानव का दानव होना उसकी हार है, मानव का महामानव होना उसका चमत्कार है और मनुष्य का मानव होना उसकी जीत है।

४००) जिस प्रकार भरी हुई नदी चलती ही जाती है रुकती नहीं, उसी प्रकार मनुष्यों की आयु चलती ही जाती है रुकती नहीं।

४०१) यह संसार एक बाजार है। जो जैसा व्यापार करता है, वैसा ही फल पाता है।

४०२) अपनी खेती अपने काम आए, अपनी मेहनत अपनी रोटी कमा लाए; इसी का नाम स्वराज है।

४०३) अभिमानी व्यक्ति स्वयं को ही खा जाता है।

४०४) अपने परों से उड़नेवाली चिड़िया के लिए कोई भी ऊंचाई बहुत ऊंची नहीं है।

४०५) चिन्तन की स्वतन्त्रता ही आत्मा का जीवन है।

४०६) मनुष्य मोह से मृत्यु को और सत्य से अमृत को प्राप्त होता है।

४०७) घर की कलह का घिनौना रूप अकसर वीभत्स रूप बन जाता है।

४०८) बीमारी तेज रफ्तार घोडे पर चढ़कर आती है और इलाज होनेपर पैदल ही वापिस चली जाती है।

४०९) अपने ख्वाहिशात की चादर इतनी भी मत तानो कि तुम्हें जमीन पर बिछाने के लिये जगह ही न मिले।

४१०) पहाड से गिरकर दोबारा उठा जा सकता है लेकिन नजरों से गिरकर दोबारा उठना सम्भव नहीं है।

४११) जब तुम शर्म न करो तो फिर जो तुम्हारा जी चाहे सो करो।

४१२) ऊँचे पहाड पर चढ़ने से पहले धीरे-धीरे चलना सीखना चाहिये।

४१३) खुद को सम्भालने के लिये दिमाग इस्तेमाल करें और दूसरों से पेश आने के लिये दिल।

४१४) दूसरों से पूछकर नहीं बल्कि खुद चलकर रास्ते जानने चाहिये।

४१५) जलयान बन्दरगाह पर सुरक्षित खडा रहने के लिये नहीं होता है बल्कि पानी पर चलते रहने के लिये बना है।

४१६) किसी का दिल मत दुखाओं, कहीं ऐसा न हो कि उसके आंसू तुम्हारी सजा बन जाये।

४१७) पहाड के शिखर बनो जो एक दूसरे को देखते रहे। गड्ढे मत बनना जो एक दूसरे को देख भी नही सकते।

४१८) बुद्धिमान लहर की दिशा बदल देगा, मूर्ख उसमें बह जायेगा।

४१९) मृत्यु एक शाश्वत सत्य है। मृत्यु जीवन का गम्भीर, भयावह किन्तु सुखद सत्य है।

४२०) कठिन परिश्रम से कभी मत डरो। बिना सीढ़ी चढ़े कोई भी मंजिल हासिल नहीं होती।

४२१) बेशक अतीत कैसा भी हो लेकिन भविष्य की आशाएं बनी रहनी चाहिये।

४२२) किसी सिद्धि का अहसास अथवा अपने अन्दर किसी चमत्कारिक शक्ति का विश्वास होना अहंकार उत्पन्न कर सकता है।

४२३) डरपोक पीछे की और भागता है, नई परिस्थितियों से दूर जब कि उत्साही आगे को दौडता है, नई परिस्थितियों के बीच।

४२४) यदि आप खुद को नहीं बदलेंगे तो जिन्दगी आपको बदल देगी।

४२५) जो हाथ डोर सम्भालता है वही दिशा भी बताता है। भौतिक प्रगति एक ऐसा शून्य है जिसके पीछे कोई अंक नही होता है।

४२६) सिमट के रह गये आखिर पहाड से कद भी, जमीं से हर कोई ऊंचा दिखाई देता है।

४२७) सबसे कमजोर वह शख्स है जो अपनी बात पर कायम नहीं रहता है।

४२८) कुछ गम हमें तकदीर की तरफ से मिलते है जबकि कुछ गम हम खुद पैदा करते है।

४२९) मातृभाषा का अनादर मां के अनादर बराबर है, जो कोई भी मातृभाषा का अपमान करता है वह देशभक्त कहलाने योग्य नहीं है।

४३०) अपने लक्ष्य को हासिल करने पर ही विजय का ताज मिलता है।

४३१) मुस्कुराहट ऐसा पर्दा है जिसके पीछे हर किस्म का राज छुपा है।

४३२) घर एक दूसरे को मनुष्यता सिखलाने की पाठशाला है।

४३३) व्यापार साईकल चलाने जैसा है या तो आप चलाते रहिये या फिर आप गिर जायेंगे।

४३४) खड़ा होने का सबसे बढ़िया धरातल हैं आपके अपने दो पैर।

४३५) थोडे से साहस के अभाव में संसार की बहुत सी प्रतिभा व्यर्थ चली जाती है।

४३६) संसार का ज्ञान संसार में ही प्राप्त किया जा सकता है, कमरे में नहीं।

४३७) जो कुछ आंखों से नहीं दिखता, उसे चरित्र से देखना पड़ता है।

४३८) खट्टा सत्य मधुर असत्य से अधिक अच्छा है।

४३९) शब्दों की अपेक्षा कर्म अधिक जोर से बोलते हैं।

४४०) इक चौराहे के जैसा है जिसको जीवन कहते हैं, राहों- सा मिल जाना भी है राहों-सा बंट जाना भी।

४४१) कोई भी राज्य अथवा साम्राज्य अर्थव्यवस्था के अभाव में स्थिर नहीं रह पाता।

४४२) लोक गति को संचालित रखने के लिए अथवा लोक गति को निरन्तर बनाए रखने के लिए कर्म करना अनिवार्य है।

४४३) समृद्धि और धर्म साथ-साथ नहीं चल सकते।

४४४) धर्म कालातीत है वह कुछ देर के लिए आंखों से ओझल हो सकता है, किन्तु कभी नहीं मर सकता।

४४५) युद्ध में सबकी ही जीत नहीं होती। इसमें किसी-न-किसी को तो हारना ही होता है।

४४६) इन्सान ऐसे लोगों से ऊब जाता है, जो सत्य का चमत्कार नहीं देख सकते। उसका संगीत नहीं सुन पाते।

४४७) लोग तुमसे प्यार करते हैं, उनके दु:ख की नींव पर तुम अपने प्यार का भवन खड़ा कर सकते हो ?

४४८) युद्ध शक्ति से कहीं अधिक नीति से जीते जाते हैं।

४४९) कहानी की तरह जिंदगी में भी देखा जाए कि वह कितनी अच्छी है, न कि कितनी लंबी।

४५०) क्षणभर की भावुकता मनुष्य जीवन को कहां से कहां खींच लाती है।

४५१) कांटे कांटों से और लोहा सदा लोहे से ही कटता है। यह बात पूर्णरूप से सत्य है।

४५२) खून की नदियां बहाने के बजाय लोगों के आंसू पोंछने में ही वास्तविक सुख और प्रसिद्धि है।

४५३) महानता जिस क्षुद्रता में पलती है, वह क्षुद्रता महानता को कभी नहीं समझती।

४५४) बडे सपने देखने से संकोच मत करो। एक छोटे से घर की नींव पर महल का निर्माण तो नहीं हो सकता।

४५५) दुनिया भी उसी को याद करती है जिसने अपने जीवन में अच्छे कर्म किये हैं।

४५६) साथ रहने से ही समस्याओं के समाधान की राह बनती है।

४५७) अगर तुम्हे बालियां पहनने का इतना ही शौक है तो फिर कान में सुराख तो होगा ही।

४५८) ईमान की कमाई में ही सुख है। संस्कार और चरित्र ही भविष्य की पूंजी है। धन से नहीं सत्कर्मों से यश प्राप्त होता है।

४५९) संकट की उन घडियों से उबरना ही बेहतर है जहां जीवन नष्ट होने की आशंका हो।

४६०) इतिहास हमारे गौरव का प्रत्यक्ष गवाह है।

४६१) कोई ऐसा दरवाजा न खोलो जिसे तुम बाद में बन्द ना कर सको।

४६२) अगर रास्ता भूल जाओ तो उसी सडक पर लौटो जिससे आये थे।

४६३) एक बचाया हुआ पैसा दो कमाये गये पैसों के समान होता है।
४६४) किसी भी पक्षी का एक पंख के सहारे उडना नितान्त असम्भव है।
४६५) कौओं को अपना रहनुमा बनावोगे तो कुत्तों की लाश के पास पहुंचोगे।
४६६) अज्ञान मन की रात है जिसमें न चांद है और न ही कोई सितारे। अपनी विद्वत्ता पर गर्व करना सबसे बडा अज्ञान है।
४६७) कट्टरता से सच्ची धार्मिकता काफी निष्प्राण हो जाती है। कट्टरता हरेक धर्म के लिए श्मशान भूमि है।
४६८) प्रारब्ध चिंता मिटाने के लिए है, निकम्मा बनाने के लिए नहीं।
४६९) जो व्यक्ति अहंकार से ग्रस्त होकर स्वयं को चमत्कारी गुरु या भगवान बताए, उस अहंकारी से दूर ही रहना चाहिए।
४७०) समृद्धियां पराक्रमी मनुष्य के साथ रहती हैं, अनुत्साही मनुष्य के साथ नहीं।
४७१) मृत्यु मनुष्य की पराजय नहीं, पराजय है उसका मृत्यु से डरना।
४७२) मौतवाले दफ्तर में छुट्टियां नहीं होती।
४७३) विपत्ति मनुष्य को विचित्र साथियों से मिलाती है।
४७४) मनुष्य जब एक नियम तोड़ता है, तो दूसरे नियम अपने आप टूट जाते हैं।
४७५) वाणी की मधुरता सच्चे मन की परिचायक है।
४७६) हे रात्रि, मैं तेरी तरह ही हूं और जब अरुणोदय होगा, तभी मेरा जीवन समाप्त होगा।
४७७) कोई भी मनुष्य इतना वृद्ध नहीं है कि जो एक वर्ष ज्यादा न जी सके। और कोई उतना युवा भी नहीं कि जो आज मर न सके।
४७८) समर्पण को प्रचार और दिखावे से घृणा है।
४७९) क्रोध मूर्खता से शुरू होता है और पश्चाताप पर खत्म।
४८०) कार्य की भाषा शब्द की भाषा से अधिक बलवान है।
४८१) जब नदी में नाव डूबने लगती है तो जान बचाकर दूसरी नाव पर सवार होना ही सच्चा मानव धर्म है।
४८२) जब दिल भर आये तो रो लो जैसे आसमान पर छाये बादल बरसते है और बाद में चमकता सूरज निकलता है।
४८३) तकलीफ से मत घबराओ क्योंकि सितारे अन्धेरे में ही चमकते है।
४८४) लोगों से बहुत अधिक नफरत करना वैसा ही है जैसे कि एक चूहे से बचने के लिये अपने ही घर को जलाना।
४८५) विश्वास ही जीवन की प्रेरक शक्ति है।
४८६) जिन्दगी मे एक छोटी सी गल्ती सम्पूर्ण जीवन को गलत मोड पर ला कर खडा कर सकती है।
४८७) विपत्ति व्यक्ति को स्वयं से परिचित कराती है।
४८८) भाग्य कर्मयोगी का साथ देता है और उसी का दरवाजा खटखटाता है। दूसरों को उसकी दस्तक भी सुनाई नहीं देती।
४८९) मानव का मानव के प्रति अत्याचार असंख्य मनुष्यों को दु:ख मे डाल सकता है।
४९०) पढ़ना सब जानते है पर क्या पढ़ना चाहिये, यह कोई नहीं जानता।
४९१) अधिकार भ्रष्ट करता है और पूर्ण अधिकार सम्पूर्णत: नष्ट कर देता है।
४९२) अध्ययन से सस्ता कोई मनोरंजन नहीं और न ही उसकी खुशी जैसी कोई स्थायी खुशी है।
४९३) बिना अनुभव के कोरा शाब्दिक ज्ञान अन्धा है।
४९४) सबसे बडा विश्व विद्यालय अनुभव है लेकिन इसकी बडी तगडी फीस देनी पडती है।
४९५) चुनौती स्वीकार करने से जीत ही जीत है। सफल हुये तो कामयाबी हासिल होती है और हारने पर अनुभव तो मिलता ही है।
४९६) किसी भी सुखान्त अभिनय में सबसे कठिन भूमिका मूर्ख की है और उस कलाकार को कदापि मूर्ख नही होना चाहिये।
४९७) कोई अभिलाषायें यहां अपूर्ण नही रहती। अभिलाषायें सब दुखों का मूल है।
४९८) हमारी अमरत्व की मधुर आशा किसी धर्म से उद्‌भूत नही होती बल्कि सारे धर्म इसी से उद्‌भूत होते हैं।

४९९) धनी को अपने धन का मद रहता है, घमंड रहता है परन्तु गरीब के झोपडे मे क्रोध और अहंकार के लिये स्थान नही रहता।
५००) आंसुओं से छलछलाता प्रेम अत्यन्त लुभावना होता है। आंसू करूणा की बूंद है।
५०१) जो नाविक अपनी यात्रा के अन्तिम बन्दरगाह को नहीं जानता उसके अनुकूल हवा कभी नहीं बहती।
५०२) अस्पृश्यता की खोज करने के लिये अपने हृदय को छोडकर योगशास्त्र तक दौडने की कोई आवश्यकता नहीं है।
५०३) ईमानदार व्यक्ति मनुष्य की सर्वोत्तम कृति है और ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है।
५०४) महान पुरुषों पर अधिकांश ईर्ष्यालु व्यक्ति भौंकते ही है जैसे कि किसी अजनबी को देख कर कुत्ते भौकते है।
५०५) विश्व इतिहास में प्रत्येक महान और महत्वपूर्ण आन्दोलन उत्साह द्वारा ही सफल हो पाया है।
५०६) गर्व और आडम्बर के साथ दिया उपहार उदारता का नही अपितु महत्वकांक्षा का सूचक है।
५०७) प्रकृति जब कठिनाइयां बढाती है तो बुद्धि भी बढ़ाती है। सत्य की ओर ले जानेवाला प्रथम प्रशस्त मार्ग कठिनाइयां ही है।
५०८) लिखत पढ़त करके लिया दिया कर्ज अमर होता है जब कि वचन बद्ध ऋण राशि निर्जीव और नश्वर होती है।
५०९) कठिनाइयों में ही सिद्धान्तों की परीक्षा होती है। बिना विपत्तियों में पडे मनुष्य नहीं जान पाता कि वह ईमानदार है या नहीं।
५१०) जिसने स्वयं को समझ लिया, वह दूसरों को समझाने नहीं जायेगा।
५११) कंजूसी को मैं भली भांती जानता हूँ यह विनाश करनेवाली और व्यथा देनेवाली है।
५१२) अनुग्रह लेने से व्यक्ति कृतज्ञ होता है और कृतज्ञता परतन्त्र बनाती है। कृतज्ञता एक कर्तव्य है जिसे पूरा करना चाहिये।
५१३) कीर्ति वीरोचित कार्यों की महक है। धन्य है वह मानव जिसकी कीर्ति उसकी सत्यता से अधिक प्रकाशमान नहीं है।
५१४) ख्याति वह प्यास है जो कभी नही बुझती। अगस्त्य ऋषि की तरह वह सागर को भी पीकर शान्त नहीं होती।
५१५) चरित्र वही है जो विपत्तियों की अभेद्य दीवारों में से भी मार्ग बना लेता है।
५१६) सबसे महान कलाकार वह है जो जीवन को ही कला का विषय बना लेता है।
५१७) जैसे तिनका हवा का रूख बताता है, वैसे ही मामूली घटनाये भी मनुष्य के हृदय की वृतियों को बताती है।
५१८) शिष्य के ज्ञान पर हस्ताक्षर करना यही गुरु का काम है बाकी के लिये तो शिष्य स्वावलम्बी होता है।
५१९) जीवन एक गतिशील छाया मात्र है। जीवन नम्रता का महान पाठ है।
५२०) दुर्वचन पशुओं तक को अप्रिय लगते है। दुर्वचन का सामना हमें सहनशीलता से करना चाहिये।
५२१) धन विश्व की प्रमुख वस्तु है। जो अधिक धनवान है वही सबसे अधिक मोहताज है।
५२२) निराशा निर्बलता का चिन्ह है। निराशा आशा के पीछे-पीछे चलती है।
५२३) बेवफा के लिये एक आंसू बहाना भी हराम है।
५२४) जरूरत की एक हद है मगर लालच की कोई हद नही।
५२५) रूके हुये लोगों का सहारा मत लो वर्ना वह तुम्हे भी रोक देंगे।
५२६) सफलता उसी को मिलती है जो लहर को अपनी दिशा में मोडना जानते है।
५२७) यदि हमारे भीतर शान्ति नहीं है तो उसे बाहर ढूंढना भी व्यर्थ है।
५२८) जो खुदकी पहचान खुद से करे वही सुखी होता है। अन्यथा जीवन के रहस्य को समझे बिना जगत से विदा होता है।
५२९) बिना आध्यात्मिक पतन हुए किसी राष्ट्र का किसी भी दृष्टि से पतन नहीं हो सकता।
५३०) धुआं दीवार को तो काला कर सकता है, पर आकाश को कुछ नहीं कर सकता।
५३१) पहाड पर चढ़ने से कोई बुलन्द नहीं होता बल्कि अपने अजीम किरदार से वो पहाड को भी नीचा दिखा सकते है।
५३२) प्रकृति अधिष्ठात्री है फिर कहीं विकृति का नाम नहीं प्रकृति के तमाम अर्थों और चेतनाओं को जितना हो सके, लाभ उठाएं।
५३३) क्रोधपूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर अनिष्टकर परिणाम ही प्रस्तुत करता है।
५३४) जैसे सूर्य आकाश में छिप कर नही विचर सकता वैसे ही महान पुरुष भी संसार में छिपकर नहीं रह सकते।

५३५) आदमी केवल रोटी से नहीं जीवित रहता। गरीब रोटी ढूंढता है और अमीर भूख।
५३६) लापरवाही प्राय: अज्ञानता से भी अधिक क्षति पहुंचाती है। एक लापरवाह व्यक्ति की पत्नी विधवा के समान है।
५३७) बडे आदमियों के रोग भी बडे होते है। वह बडा आदमी ही क्या जिसे कोई छोटा रोग हो ?
५३८) गिरे हुओं को ठोकर मत मारो। हो सकता है कल आप गिर पडे तो वह आपको सहारा देकर उठाये।
५३९) उद्योग से दरिद्रता नहीं रहती, जप से पाप नहीं रहता, मौन रहने से कलह नहीं होता और जागते रहने से भय नहीं होता।
५४०) व्यापार तो तेल की तरह है। वह व्यापार को छोडकर और अन्य किसी भी वस्तु से नहीं मिल सकता।
५४१) व्यंग्य और ताना मेरी समझ में शैतान की भाषा है। इसी से बहुत दिनों से मैने उसे छोड दिया है।
५४२) मूल्य तो प्रत्येक व्यक्ति घटा कर बेच सकता है किन्तु सुन्दर वस्तु उत्पन्न करने के लिये मस्तिष्क की आवश्यकता होती है।
५४३) भक्ति में विज्ञान की आवश्यकता नहीं विश्वास की आवश्यकता है।
५४४) शिक्षा विकास की अमूल्य कुंजी है इसलिये शिक्षित होना निहायत जरूरी है।
५४५) अच्छाई से बुराई पराजित हो जाती है। पराजित होना ही बुराई की नियति है।
५४६) उद्दण्डता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूप को बुढ़ापा।
५४७) संसार में धनियों को प्राय: भोजन करने की शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रों के पेट में काठ भी पच जाते हैं।
५४८) जो आदमी दूसरों पर विश्वास करता है, वह उस आदमी से कम गलतियां करता है जो दूसरों पर अविश्वास करता है।
५४९) कभी न गिरना उपलब्धि नही है। असली उपलब्धि है गिरकर फिर उठना।
५५०) एक बुद्धिमान व्यक्ति भाग्य से मिल जाने वाले अवसरों से कही ज्यादा अवसर खुद बना लेता है।
५५१) गम को कभी बुरा मत कहो। उसके बाद जो खुशियां मिलती है उसका तुम अन्दाजा भी नहीं कर सकोगे।
५५२) लक्ष्य निर्धारण करने से पहले अपने बुजुर्गों की कार्यशैली का अनुसरण करो।
५५३) बिना ज्ञान प्राप्त किये व्यक्ति उन्नति का शिखर तय नही कर सकता, विद्या और ज्ञान ही निर्माण का आधार स्तम्भ है।
५५४) हर रात के बाद दुबारा सुबह आती है, मगर सुबह को पानेवाला सिर्फ वो शख्स है जो सुबह के आने तक का इन्तजार करे।
५५५) वक्त के इन्तजार में वक्त को बेकार करना सबसे बडी बेवकूफी है।
५५६) जिन्हे बालकों के प्रति दिल में प्यार नहीं है वो बडों के साथ क्या मुहब्बत करेंगे।
५५७) अगर हर आदमी दूसरे आदमी के बराबर होता तो यह दुनिया उन्हे अपने में समा लेने के लिये इतनी बडी साबित नहीं होती।
५५८) जो रिश्ता टूट जाये वह जिन्दगी की शाख से गिरे पत्ते जैसा होता है। नीचे गिर गया और सूख गया फिर हरा कम ही रहता है।
५५९) शिक्षा मनुष्य की आत्मा के लिये उसी भांति है, जिस प्रकार संगमरमर के टुकडे के लिये शिल्प कला।
५६०) शुभ कर्मों से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, प्रगल्भता से वह बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमा लेती है और संयम से सुरक्षित रहती है।
५६१) सिंह से सूना हो जाने पर वन नष्ट हो जाता है और वन के बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं।
५६२) ब्राह्मण को ब्राह्मण जानता है, स्त्री को उसका पति जानता है, मन्त्री को राजा जानता है और राजा को भी राजा ही जानता है।
५६३) जो धन आदि पदार्थ स्त्री, प्रमादी, पतित और नीच पुरुषों के हाथ में सौंप दिए जाते हैं, वे संशय में पड़ जाते हैं।
५६४) किसी धार्मिक सम्प्रदाय का पतन उसी दिन से आरम्भ हो जाता है, जिस दिन से उसमें धनिकों की उपासना पैठ जाती है।
५६५) लोहे की मांसपेशियां और फौलाद के स्नायु, जिनके अंदर ऐसे मन का वास हो, जो वज्र के उपादानों से गठित हो।
५६६) यह संसार कायरों के लिए नहीं है। भागने का प्रयत्न मत करो। सफलता या असफलता की परवाह मत करो।
५६७) प्रेम से सत्य के प्रति तीव्र प्रेम से और अदम्य उत्साह से ही सारे कार्य सम्पन्न होते हैं।
५६८) गंगाकी धाराको बाँधकर बन्द नहीं कर सकते; किन्तु बाँधकर मोड़ दे सकते हैं, अन्यथा बड़े से बड़े बाँधको धारा तोड़ देगी।
५६९) बड़ा वास्तव में वही है, जो दूसरों को बड़ा बनाता है। जो दूसरों को छोटा बनाता है, वह खुद छोटा है; गुलाम है।
५७०) प्रेम का स्वभाव विचित्र है, इसमें त्याग-ही-त्याग, देना-ही-देना है।

५७१) फूल खिलने दो, मधु-मक्खियां अपने आप उसके पास आ जाएगी। चरित्रवान बनो, जगत् अपने आप मुग्ध हो जाएगा।
५७२) आंधी में कमजोर पेड़ टूट जाते हैं, मजबूत चट्टान की तरह स्थिर रहते हैं।
५७३) बेशक बहुत देर तक सोचो लेकिन सोचने के बाद तुम्हारा फैसला अटल होना चाहिए।
५७४) सचिव, गुरु और वैद्य यदि असत्य और झूठी प्रशंसा करते है तो धर्म, राज्य, राष्ट्र और तन का नाश होता है।
५७५) अपने को पुरुष अथवा स्त्री कहना, अपने को क्षुद्र, दीन-हीन जीव बतलाना असत्य और नास्तिकता है।
५७६) जंगलों में चले जाना उद्देश्य प्राप्ति का केवल एक साधन मात्र है, जैसे हम विश्वविद्यालय में पढ़ने जाते हैं।
५७७) हंकड़ने और गरजने से महानता प्रकट नहीं होती। उसके लिए तो विनम्रता एवं निरभिमानता अनिवार्य है।
५७८) जब तक दांपत्य जीवन में सारल्य अवतरित नहीं होगा, तब तक गार्हस्थ्य सुषमा प्रकट नहीं होगी।
५७९) कालिख लगे बर्तन को हाथ में लेने से कालिख लग ही जाती है।
५८०) अनागत दुर्दिन के निमित्त यत्किंचित भविष्य-निधि होनी ही चाहिए। यह पुरुषार्थ अर्थवान को ही सार्थक बनाता है।
५८१) हीनभाव पैदा करने वाली याचना आत्मा को बौना बना देती है। याचना पुरुषार्थ का अपमान है।
५८२) अधर्म की संपत्ति राख की ढेरी के समान होती है।
५८३) सुन्दर स्त्री का आकर्षण मन को भरमाने वाला होता है। उसके फेर में पड़कर कोई उसके मन की थाह नहीं पा सकता।
५८४) बुझे हुए तीर के समान होने वाले जख्मों की तरह उस बाला के तीर प्रेमियों के हृदय में गड़कर प्रेम-पीड़ा पहुंचाते हैं।
५८५) जो सच्चा मनुष्य होता है, उसे सत्यता का बखान नहीं करना पड़ता।
५८६) अपने घर में रहने से ही मनुष्य का गौरव रहता है।
५८७) ब्रह्मचारी कोठे पर और साधु बैंक में कभी शोभा नहीं देता।
५८८) बूढ़े अतीत में जीते हैं। बच्चे भविष्य में जीते हैं। युवा तो वह है जो वर्तमान में जीता है।
५८९) वाणी वीणा का काम करे तब तो ठीक है, मगर जब बाण का काम करने लगती है तो जीवन में महाभारत शुरू हो जाता है।
५९०) माँ तो वह है; जो अपनी संतान के सुख के साथ अच्छे संस्कारों की भी चिन्ता करती है।
५९१) वर्दी विश्वास की प्रतीक है। वर्दीधारी अगर भ्रष्टाचार को प्रश्रय देता है तो वह वर्दी की अस्मिता को खंडित करता है।
५९२) मृत्यु एक रहस्यमय चुनौती है, न जाने कब और कहां कौन सा श्वास अंतिम हो जाये।
५९३) जिस समाज और राज्य में अपराधियों को सम्मान और महिमा मंडित किया जाता हो उसकी दुर्गति सुनिश्चित है।
५९४) हमारी खूबियां कभी न गिरने में नही बल्कि हर बार गिर कर सम्भलने में, उठने में है। यही सही कामयाबी का राज है।
५९५) स्वभाव कच्ची मिट्टी की भांति होता है, जिसकी कोई शक्ल नहीं होती। इसे आकृति देने की आवश्यकता होती है।
५९६) परिन्दे सुबह खाली और भूखे पेट निकलते हैं और शाम को भरपेट होकर लौटते हैं।
५९७) उदारता प्रसंग आने पर ही शोभा देती है और संयम तो सदा ही शोभा देता है।
५९८) ऊंट का सूई के छेद में से निकल जाना सहज है, पर धनवान का परमेश्वर के राज्य में प्रवेश पाना कठिन है।
५९९) डुबकी लगाने वाले को ही समुद्र से रत्न मिल सकते है उपर तैरने रहने वाले के हाथ कुछ नहीं आता।
६००) स्त्री को कभी अकेला नहीं छोड़े, बार-बार शास्त्रों को देखें-युवती स्त्री, शास्त्र, राजा किसी के वश में नहीं रहते।
६०१) शेर के मुंह मे हाथ डालने से पहले बिल्ली के दांत गिनना सीखो।
६०२) जिस माता ने बचपन में पुत्र की सेवा अपने हाथ से नहीं की, वो बालक वृद्ध अवस्था में माँ की सेवा नहीं कर सकता।
६०३) जिस बालक ने मातृदुग्ध का पान नहीं किया, उस बालक में शुभ संस्कार नहीं आ सकते।
६०४) जो वास्तव में बड़े होते हैं, वो विनम्र होते हैं और जो गलती से बड़े हो जाते हैं, उनमें बड़प्पन आने में दो-चार पीढ़ी का समय लग जाता है।
६०५) आज व्यक्ति अपने अभाव से इतना दु:खी नहीं, जितना दूसरे के प्रभाव से दु:खी है।
६०६) चरित्रवान बनो, दुनिया स्वयं झुक जायेगी।

६०७) चरित्र से कभी न गिरना हो तो महापुरुषों के चरणों में, बड़े बुजुर्गों के चरणों में गिर, तेरा जीवन सुधर जायेगा।
६०८) किसी भी इन्सान का व्यक्तित्व और चरित्र उसके निजी गुणों एवं विशिष्टताओं से मिल कर बनता है।
६०९) चिन्ता से रूप, बल और ज्ञान का ऱ्हास होता है।
६१०) दूसरों को गिराने के प्रयत्न में तुम स्वयं गिर जाओगे।
६११) संसार में किसी का दिल दु:खाना सबसे महान पाप है।
६१२) धनी धन से, ज्ञानी ज्ञान से डराता है।
६१३) दुनिया में दीन बनना अच्छा नहीं, महान बनना अच्छा है।
६१४) लक्ष्यहीन जीवन जंगल में भटकने के समान है।
६१५) हंसी और क्रोध दोनों का आपस में बैर है।
६१६) जिस जिस चीज में मोह फँसा है, उसे दान कर दो।
६१७) दुनिया की न सुन, अंदर की सुन, तो ऊंचाइयों को छू सकोगे।
६१८) भाग्य कुछ भी नहीं करता है, वह तो केवल कल्पना है।
६१९) किसी की अधिक प्रशंसा करना उसे धोखा देना है।
६२०) कानून गरीबों पर शासन करता है और अमीर कानूनों पर शासन करते हैं।
६२१) बूढ़े की राय जवान की ताकत से बेहतर है।
६२२) मनुष्य का मन ही समूचा मनुष्य है। जिसने मन को जीत लिया, उसने जगत को जीत लिया।
६२३) माता और मातृभूमि का महत्व स्वर्ग से भी अधिक है। भूमि मेरी माता है और मै पृथ्वी पुत्र हूँ।
६२४) किसी का दिल मत दुखाओ हो सकता है कि उसके आँसू तुम्हारे लिये सजा बन जाये।
६२५) हिम्मत कभी मत हारो, हिम्मत हारने वाले इन्सान बुजदिल होते है।
६२६) ज्यादा बातें वो ही करते है जिनके पास कहने को कुछ भी नहीं होता है।
६२७) गलत कामों, बुरे कामों और ऐय्याशी के लिये कर्ज लेना बुरा है।
६२८) अच्छी दवाई अकसर कडवी होती है।
६२९) कल के दो से आज का एक भला।
६३०) कुछ न होने से कुछ होना बेहतर है।
६३१) अकलमन्द वह है जो कम बोले और ज्यादा सुने।
६३२) फूल की तरह पवित्र कर्मों की सुगंध दूर-दूर तक पहुंचती है।
६३३) निज पर शासन, फिर अनुशासन।
६३४) चैन से जीने के लिए बेचैन मत बनो।
६३५) कर्तव्य कठोर होता है, भाव प्रधान नहीं।
६३६) विपदा हर मानव-जन्म की सच्चाई है।
६३७) जा घर तुलसी जा घर गाय। ता घर वैद्य कबहुँ न जाय।
६३८) लेना व देना मानव जीवन के दो पहलू हैं।
६३९) चोरी का सुख लूटकर, मत कर ऊंची मूंछ।
६४०) माता कभी कुमाता नहीं होती। मां कृपा कर।
६४१) शत्रुता मार दो, शत्रु मर जायेगा।

६४२) सहायता के हाथ प्रार्थना के होठों से ज्यादा पवित्र हैं।
६४३) चाह गई चिंता गई, मनु वश कर हुआ बेपरवाह, जाको कुछ नहीं चाहिए जो जग शहनशाह।
६४४) विश्व में मानवता के अतिरिक्त और कुछ दिव्य नहीं है।
६४५) जो करके दिखाता है, वही पंडित है।
६४६) हम किसी से धोखा नहीं खाते, हम ही खुद को धोखा देते हैं।
६४७) जिससे श्रेष्ठाचार व सुख बढे, वही परोपकार है।
६४८) शरीर से बलवान बनने से अच्छा है, बुद्धि से बलवान बनो।
६४९) याद रहे मातेश्वरी नाम, बनते जायेंगे सब काम।
६५०) महान् कार्य महान् त्याग से ही सम्पन्न हो सकते हैं।
६५१) सार्वभौमिकता- इस एक भाव के लिए यदि सब कुछ त्याग देने की आवश्यकता हो, तो भी पीछे न हटो।
६५२) स्वार्थपरता ही अनीति है और नि:स्वार्थपरता नीति।
६५३) भारत को कम से कम अपने सहस्र तरुण मनुष्यों की बलि की आवश्यकता है, मनुष्यों की पशुओं की नहीं।
६५४) महात्मा उसी को कहते हैं, जिसका हृदय गरीबों के लिए रोता है, अन्यथा वह तो दुरात्मा है।
६५५) हमारा उद्देश्य है संसार का भला करना, न कि अपने नाम का ढोल पीटना।
६५६) विज्ञापनबाजी और यशलोलुपता से सावधान रहो। शान्त, मौन और धीर भाव से कार्य करो।
६५७) अत्याचार और गुलामी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गुलाम और अत्याचारी समानार्थी हैं।
६५८) सागर की ओर देखो, तरंग की ओर नहीं, चींटी और देवता में कोई भेद मत देखो।
६५९) मुझे अपने मानव-बन्धुओं की सहायता करने दो- मैं बस यही चाहता हूं।
६६०) दरिद्र वह नहीं है, जिसके पास धन-दौलत नहीं है। दरिद्र तो वह है, जिसकी तृष्णाकी सीमा नहीं है।
६६१) जीवनमें अभ्यासकी आवश्यकता है। अभ्यास कठिन-से-कठिन कार्यको सुगम-से-सुगम कर देता है।
६६२) संगका रंग बड़ा प्रबल होता है।
६६३) अपने लिये सुख चाहना आसुरी, राक्षसी वृत्ति है।
६६४) श्रद्धासे श्रद्धाका अविर्भाव होता है। श्रद्धासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है।
६६५) अपने सुख से सुखी होनेवाला कोई भी मनुष्य योगी नहीं होता।
६६६) घरवालों की सेवा करने से मोह होता ही नहीं। मोह होता है कुछ-न-कुछ लेने की इच्छा से।
६६७) जब हम सबकी बात नहीं मानते, तो फिर दूसरा कोई हमारी बात न माने तो हमें नाराज नहीं होना चाहिए।
६६८) शरीरधारियों के सब दु:ख अधर्म से होते हैं और अक्षय सुख का संयोग धर्म से होता है।
६६९) धन के रहते हुए तो मनुष्य संत बन सकता है, पर धन की लालसा रहते हुए मनुष्य संत नहीं बन सकता।
६७०) वहां दोषमुक्त भी दोषरहित हो जाता है, केवल वहीं यह रहस्य खुलता है।
६७१) घर में मिलकर रहना, पृथ्वी पर स्वर्ग समान है।
६७२) मंगलमय वाणी वाला मनुष्य प्राणियों को आनन्दित करता है।
६७३) पराये पापों की चिंता न कर, अपने पापों का प्रायश्चित करो।
६७४) अपनी स्वतंत्रता बचाने में दूसरों को परतंत्र बनाना अनुचित है।
६७५) मान चाहने वाले ही अपमान से डरा करते हैं।
६७६) हमारा विश्वास ही हमारी क्षमता है।
६७७) अपने हृदय को टटोलते रहो, उसमें क्रोध और ईर्ष्या घर न कर ले।

६७८) ऊपरी आचरणों को देखकर किसी को पापी मत मानो।
६७९) इस संसार में सभी सराय के मुसाफिर हैं, फिर लड़ाई क्यों ?
६८०) पाना है तो इज्जत पाओ।
६८१) कोई भी सारी जिंदगी खुश नहीं रहता।
६८२) सदाचार जीवन का सबसे बड़ा धर्म है।
६८३) बांटने से आनंद दुगना हो जाता है।
६८४) कमजोर को सताने में कैसी वाह-वाही।
६८५) जैसी फसल बोओगे, वैसा ही काटोगे।
६८६) पृथ्वी से भारी मां की ममता, आकाश से ऊंचा पिता का अरमान होता है।
६८७) गुण सभी स्थानों पर अपना आदर करा लेता है।
६८८) पाप किसी का बाप नहीं होता।
६८९) धन, मकान, मनुष्य शरीर के बल पर न इतराओ, यह पल भर में नष्ट हो सकता है।
६९०) कर्तव्य में प्रमाद न करना ही सफलता की कुंजी है।
६९१) याचना लाघवकरी होती है।
६९२) दूसरों के ऋण को चुकाने वाले महानपद प्राप्त करते हैं।
६९३) सद्-गृहिणीयुक्त स्थान ही गृह कहलाता है।
६९४) महान लोगों का ही साथ करना चाहिए।
६९५) आत्मश्लाघा कभी न करें।
६९६) पति को भार्या की अनुकूलता रखनी चाहिए।
६९७) सद्गुणों से ही महानता प्राप्त होती है, धन से नहीं।
६९८) छोटा भाई पुत्रवत् पालनीय होता है।
६९९) कपट व्यवहार न करें।
७००) सदा-सत्य भाषण करना चाहिए।
७०१) भाई के समान और कोई मित्र नहीं है।
७०२) अधर्म में मन नहीं लगाना चाहिए।
७०३) जिस दिन कोई शुभ कार्य बने उसे ही शुभ दिन समझना चाहिए।
७०४) दुष्टों के साथ ज्यादा मेल-जोल अच्छा नहीं।
७०५) अपनी मर्यादा का त्याग अपमान का कारण बनता है।
७०६) लोभ का फल बुरा होता है। लालच बुरी बला है।
७०७) करनी का फल भोगना पड़ता है।
७०८) पराधीनता में सुख कहाँ ?
७०९) उपकार का बदला हितकारी होता है।
७१०) झूठ बोलने का परिणाम अविश्वास होता है।
७११) मित्र की पहचान संकट में होती है।
७१२) हितैषी मित्र का त्याग न करें।
७१३) परिश्रम का फल मीठा होता है।

७१४) दुख से निराश न हों, दूसरे दुखी प्राणियों की ओर देखें।
७१५) कुसंग का फल बुरा होता है।
७१६) अति साहस करना ठीक नहीं।
७१७) जिसने इज्जत खो दी, उसने अपना सब कुछ खो दिया।
७१८) विनाश के समय मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है।
७१९) जिसे पराजित होने का भय है, उसकी हार निश्चित है।
७२०) कोई भी यथार्थत: मूल्यवान वस्तु ऐसी नहीं है जो श्रम के बिना खरीदी जा सके।
७२१) चाहे सूखी रोटी ही क्यों न हो परिश्रम के स्वार्जित भोजन से मधुर और कुछ नहीं होता।
७२२) परिश्रमी धीर व्यक्ति को इस जगत् में कोई वस्तु अप्राप्य नहीं है।
७२३) कष्ट सहने पर ही हमें अनुभव होता है और दर्द हो तभी हम सीख पाते हैं।
७२४) अनुभव बताता है कि आपातकाल में दृढ़ निश्चय ही पूरी सहायता करता है।
७२५) नम्रता और मीठे वचन ही मनुष्य का आभूषण है।
७२६) लज्जा और विनय ही भारत की देवियों का आभूषण है।
७२७) सदा अपने काम से काम रखो व्यर्थ के विवाद में न पड़ो।
७२८) अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाए वही सच्चा वीर है।
७२९) जब मनुष्य अपने अंदर युद्ध करने लगता है, तब वह अवश्य ही किसी योग्य होता है।
७३०) यश की प्राप्ति भले नहीं किन्तु अपयश होना उचित नहीं है।
७३१) अभिमानी व्यक्ति स्वयं को ही खा जाता है।
७३२) सबकी बात ध्यान से सुनो परन्तु अपनी सलाह केवल थोडे ही मनुष्यों को दो।
७३३) जीवन का रहस्य विलास भोग में नहीं बल्कि अनुभव के द्वारा शिक्षा प्राप्ति में है।
७३४) जो व्यक्ति जितना अशिक्षित है, वह उतना ही गरीब है।
७३५) आनन्द के अवसर पर हम अपने दुखों को भूल जाते हैं।
७३६) ईमानदार आदमी का सोचना लगभग हमेशा न्यायपूर्ण होता है।
७३७) जब हम कोई काम करने की इच्छा करते हैं तो शक्ति आप ही आप आ जाती है।
७३८) अपने से हो सके वह काम, दूसरे से नहीं करवाना चाहिए।
७३९) मानव के सभी गुणों में साहस पहला गुण है, क्योंकि यह सभी गुणों की जिम्मेदारी लेता है।
७४०) अग्नि स्वर्ण को परखती है, मुसीबत वीर पुरुषों को।
७४१) मर्द की सुन्दरता उसकी विनम्रता है।
७४२) अतिथि सत्कार से यश प्राप्त होता है।
७४३) दान से धन में कमी नहीं आती।
७४४) सबसे अच्छा नशा जनसेवा है।
७४५) सबसे अच्छा दान क्षमादान है।
७४६) सबसे बड़ा बहादुर बदला न लेने वाला है।
७४७) एकाग्रता से विनय प्राप्त होती है।
७४८) अपनी सभ्यता के प्रति वफादार रहें। सत्य की खोज करें, सत्य बोलें, सत्य का आचरण करें।
७४९) त्याग ही आध्यात्मिकता का प्रथम सोपान है।

७५०) जीवन कर्म का ही दूसरा नाम है। वह जो कभी कर्म नहीं करता उसका अस्तित्व है किन्तु वह जीवित नहीं।
७५१) कीर्तिमान मनुष्यों के लिए कीर्तिनाश की अपेक्षा मृत्यु कहीं श्रेयस्कर है।
७५२) आसक्ति ही मनुष्य को नीच और दुर्बल बनाने वाली है।
७५३) प्रेम के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिए।
७५४) लक्ष्य पूरा करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों का परित्याग करना ही पुरुषार्थ है।
७५५) अत्याचार करने वाला उतना दोषी नहीं है, जितना उसे सहन करने वाला।
७५६) हम जितना अध्ययन करते हैं उतना हमको अज्ञान का आभास होता है।
७५७) दूसरों के अनुभव जान लेना भी व्यक्ति के लिए एक अनुभव है।
७५८) अन्याय को मिटाओ लेकिन अपने आपको मिटाकर नहीं।
७५९) आंसुओं से छलछलाता प्रेम अत्यंत लुभावना होता है।
७६०) अपने अवगुण अपने को ही दुख देते हैं।
७६१) विश्वास प्रेम की पहली सीढ़ी है।
७६२) प्रेम आंखें से नहीं मन से दिखता है।
७६३) आत्मविश्वास सफलता का मुख्य रहस्य है।
७६४) विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण नैतिक शिक्षा से ही संभव है।
७६५) यदि किसी देशभक्त में मानवीयता कम है, तो समझना चाहिए कि उसकी देशभक्ति में भी उस हद तक कमी है।
७६६) देशभक्त, जननी का सच्चा पुत्र है।
७६७) देश की सेवा करने में जो मिठास है, वह और किसी चीज में नहीं है।
७६८) जिस घर में स्त्री जाति का अनादर होता हो, वहां से लक्ष्मी, धर्म और सुख का वास उठ जाता है।
७६९) जो मनुष्य अपनी स्त्री से किसी भी विषय में राय लेने में अपमान समझे, उसकी बुद्धि बिगड़ी हुई है।
७७०) एक अच्छी माता सौ शिक्षकों के बराबर होती है, इसलिए उसका हर हालत में सम्मान करना चाहिए।
७७१) देह से ही नहीं जो दिल से भी गुलाम हो गए हों वे कभी आजादी हासिल नहीं कर सकते।
७७२) धन संग्रह की अपेक्षा तपस्या का संग्रह श्रेष्ठ है।
७७३) ऊंचा आदर्श, क्षुद्र, स्वार्थी और मूढ़-ग्राहों को भुलावा देता है।
७७४) डूबने वाले के साथ सहानुभूति का अर्थ यह नहीं कि उसके साथ डूब जाओ, बल्कि तैरकर उसे बचाने का प्रयास करो।
७७५) दूसरों के स्वामी तो सभी बनना चाहते हैं, पर अपना कोई नहीं।
७७६) गुण सब स्थानों पर अपना आदर करा लेता है।
७७७) शिक्षा जीवन की विभिन्न योग्यताओं की निभाने की योग्यता है।
७७८) दूसरे से बदला लेने से पहले स्वयं को बदलकर देखो।
७७९) जिस प्रकार एक मछली सारे तालाब को गंदा कर देती है। उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति सारे समाज को दूषित कर देते हैं।
७८०) सच्चे राहगीर वहीं है जो प्रेम, शक्ति और त्याग की राह में चलें।
७८१) अगर आत्म-सम्मान पाना चाहते हो तो दूसरों का सम्मान करना सीखो।
७८२) हमारा अध्ययन तेजस्वी है।
७८३) कोई व्यक्ति बुरा नहीं होता सिर्फ उनके सोच-विचार बुरे होते हैं।
७८४) पलायन करने का प्रयास मत करो।
७८५) बुरी किताबें जहर हैं जो शरीर को नहीं आत्मा को खा डालती हैं।

७८६) कर्म ही मानव जीवन को पवित्र, अहिंसक और पूर्ण बनाता है।
७८७) संसार में न कोई तुम्हारा मित्र है और न शत्रु है। तुम्हारा अपना विचार ही शत्रु और मित्र बनाने के लिए उत्तरदायी है।
७८८) बुराई करने के अवसर तो दिन में सौ बार आते हैं। भलाई करने का वर्ष में एक बार आता है।
७८९) जो मनुष्य अपने क्रोध को अपने ही ऊपर झेल सकता है, वही दूसरों के क्रोध से बच सकता है।
७९०) महान् कार्यों के लिए पहली जरूरत है आत्मविश्वास।
७९१) कायर तभी धमकी देता है जब वह सुरक्षित होता है।
७९२) सुधार के बिना पश्चाताप ऐसा है जैसे छिद्र बंद किए बिना जलयान से जल निकालना।
७९३) ईश्वर प्रेम के नाम पर लोग कितने नीच और क्रूर कर्म करते हैं।
७९४) मित्र का हास-परिहास में भी मन नहीं दुखाना चाहिए।
७९५) बुद्धिमान और वफादार मित्र से बढ़कर कोई दूसरा संबंधी नहीं है।
७९६) शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण है।
७९७) प्रेम बिना तर्क का तर्क है।
७९८) अंधा वह नहीं जो देख सकता बल्कि अंधा तो वह है जो देखकर भी अपने दोषों पर परदा डालने का प्रयास करता हो।
७९९) दुश्मनी करना मेरे लिए मौत के बराबर है। मैं इससे घृणा करता हूं और तमाम शरीर आदमियों के प्रेम का अभिलाषी हूं।
८००) सत्य ही मानव का आभूषण है।
८०१) झूठ बोलकर मनुष्य जीवन की ढेर सारी सम्पदा खो देता है।
८०२) संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा व न्याय से मिलते हैं।
८०३) कृत्रिम प्रेम बहुत दिनों नहीं टिक सकता। स्वाभाविक प्रेम की नकल नहीं की जा सकती।
८०४) एक आदमी दूसरे के मन की बात जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यार से उम्र और बुद्धि से नहीं।
८०५) वह मनुष्य वास्तव में बुद्धिमान है, जो क्रोधावस्था में भी गलत बात मुख से नहीं निकालता है।
८०६) बुद्धिमान मनुष्य अपने अनुभवों से सीखता है किंतु और अधिक बुद्धिमान दूसरों के अनुभवों से सीखता है।
८०७) बुद्धिमान व्यक्ति बोलने से पहले सोचता है, मूर्ख बोल लेता है और तब सोचता है, कि क्या कह गया ?
८०८) बुद्धिमान को इशारा और मूर्ख को तमाचा काफी है।
८०९) बुद्धिमान व्यक्ति मूर्खों से जितनी शिक्षा लेता है, मूर्ख बुद्धिमानों से उतनी नहीं।
८१०) जिसके पास बुद्धि है उसके पास सब कुछ हैं, किंतु मूर्ख के पास सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है।
८११) शिक्षा में किसी प्रकार की भी संकीर्णता शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य का नाश कर देती है।
८१२) सम्पूर्ण सद्कर्मों का मूल सत्य है।
८१३) कर्म की जड़ें विचारों में होती हैं।
८१४) सच्चा प्रयास कभी निष्फल नहीं होता।
८१५) प्रतिरोध से बड़ी शक्तियां नहीं रुकती बल्कि उनका वेग और भी बढ़ जाता है।
८१६) खाने और सोने का समय जीवन नहीं है और जीवन नाम है सदैव आगे बढ़ने की लगन का।
८१७) जो बिना विचारे काम करता है, वह पछताता है।
८१८) सामर्थ्य ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु।
८१९) विनम्रता, जिज्ञासा और सेवा से ज्ञान प्राप्त होता है।
८२०) भाग्य को वही कोसते हैं जो कर्महीन हैं।
८२१) वही काम करना ठीक है जिसे करके पछताना न पड़े और प्रसन्न मन से भोग सके।

८२२) पंखहीन पक्षी पिंजराबद्ध रहने में ही अपनी कुशलता समझता है।
८२३) नाजायज चीज के मिलने की आशा करना पतन की प्रारंभावस्था है।
८२४) फूल अपने लिए नहीं खिलता। दूसरों के लिए तुम भी अपने हृदय कुसुम को प्रस्फुटित कर देना।
८२५) जैसा तुम्हारा लक्ष्य होगा, वैसा ही तुम्हारा जीवन भी होगा।
८२६) अपनी ताकत पर भरोसा करो, उधार की शक्ति तुम्हारे लिए घातक है।
८२७) बुरे विचार ही हमारी सुख-शान्ति के शत्रु हैं।
८२८) यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसकी हर भूल उसे कुछ शिक्षा दे सकती है।
८२९) धैर्य सब उल्लासों एवं शक्तियों का मूल है।
८३०) मानव जितना महान् होगा उतना ही नम्र होगा।
८३१) समय हाथ से निकल जाने के बाद केवल पश्चाताप ही हाथ लगता है।
८३२) प्रत्येक अच्छा कार्य पहले असंभव होता है।
८३३) ऊंच-नीच की मान्यता हिन्दू धर्म पर कलंक है। उसे हमें मिटा देना चाहिए।
८३४) वह मनुष्य जो गलतियां नहीं करता है। प्राय: कुछ नहीं कर पाता है।
८३५) शांति के अतिरिक्त दूसरा कोई आनन्द नहीं है।
८३६) क्रोध से सब काम वैसे नहीं बनते, जैसे शांति से बनते हैं।
८३७) मेरे दाहिने हाथ में कर्म है, बाएं हाथ में जय है।
८३८) वह मनुष्य ही क्या है जिससे उसके दोस्त भी भयभीत रहते हों।
८३९) हार्दिक उपकार से बढ़कर कोई चीज न तो इस संसार में मिल सकती है और न स्वर्ग में।
८४०) माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं।
८४१) आमदनी से कम खर्च करना ही चतुराई तथा बुद्धिमानी है।
८४२) मीठी बात करने से सभी जीव प्रसन्न होते हैं अत: हमें मीठी बात करने में कंजूसी नहीं करनी चाहिए।
८४३) लोभ पाप का कारण है।
८४४) आज का काम आज ही करो।
८४५) विद्या धन सभी धनों में उत्तम है।
८४६) देवता और राजा दोनो एक से ही। ये जब तक मन्दिर के बाहर न निकले तभी तक पूजा करने लायक है।
८४७) दस साधु एक कम्बल मे सो सकते है लेकिन दो राजा एक साम्राज्य में नहीं रह सकते।
८४८) राजाओं में वही दीपक है जिसमें दान, दया, धर्म, नीति, प्रजा संरक्षण ये चारों हो।
८४९) राजा अपने राज्य का प्रथम सेवक होता है।
८५०) मनुष्य की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।
८५१) बुराई तो व्यवस्था में ही है। व्यवस्था पगडी बांधे है या टोप लगाये इससे कोई अन्तर नहीं पडता।
८५२) सदाचार का उल्लंघन कर कोई कल्याण नहीं पा सकता।
८५३) धीर पुरुष उद्यम प्रारम्भ करने के बाद असफल होकर नहीं लौटते।
८५४) राजधर्म से विमुख होकर उत्तम राजा भी पतन को प्राप्त होता है।
८५५) सुबह को देखते ही शाम को भूल जाना है।
८५६) बलवान होकर भी यदि निस्तेज हो, तो वह सब लोगों के अनादर का पात्र बन जाता है।
८५७) शिष्टाचार का कभी उल्लंघन नही करना चाहिये।

८५८) कामना का दूसरा नाम है दरिद्रता, अपूर्णता-यही नहीं मृत्यु भी है।
८५९) मै हर बार हारा हूं फिर भी मै विजय के लिये जन्मा हूं।
८६०) निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है।
८६१) न ही मुझे राज्य की कामना है और न स्वर्ग की न मोक्ष की। मै दु:ख से संतप्त प्राणियों के कष्ट निवारण की कामना करता हूँ।
८६२) आप टिन की खान में चांदी की आशा मत करो।
८६३) संचय करना बुरा नहीं पर अतिसंचय कल्याणकारी नहीं है।
८६४) वृद्ध व्यक्ति दुगना बच्चा होता है।
८६५) विशिष्ट कार्य हेतु सारे पक्षों का एक हो जाना जिन्दे राष्ट्र का लक्षण है।
८६६) भेद और विरोध तो ऊपरी है, भीतर से मनुष्य एक है।
८६७) बुरा समाचार तेजी से दौडता है, अच्छा समाचार रूका रहता है।
८६८) ऋण मूर्खता और अपराध की उर्वर जमीन है।
८६९) यह संसार एक बाजार है, जो जैसा व्यापार करता है वैसा ही फल पाता है।
८७०) अभिमानी व्यक्ति स्वयं को ही खा जाता है।
८७१) स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।
८७२) अपनी खेती अपने काम आये, अपनी मेहनत अपनी रोटी कमा कर लाये, इसी का नाम स्वराज्य है।
८७३) यदि सब अपनी आवश्यकता ही संग्रह करे, तो किसी को तंगी न हो और सब सन्तोष से रहे।
८७४) नम्र व्यक्ति सदैव सबसे सन्माननीय है।
८७५) जो हानि हो चुकी उसके लिये शोक करना अधिक हानि को निमंत्रित करना है।
८७६) सुख तो स्वभाव से ही अल्पकालिक होते है और दु:ख दीर्घकालिक होता है।
८७७) जिस प्रकार भरी हुई नदी चलती ही जाती है, उसी प्रकार मनुष्यों की आयु भी चलती ही रहती है, रूकती नही।
८७८) असफलता अपने ही घर मे अपरिचित होती है।
८७९) कोई छोटा हो तो भी उसकी बात सुननी चाहिये। वे भी विशिष्ट गौरव प्रदान करेंगे।
८८०) बीस लोगों को उपदेश देना अधिक आसान है अपेक्षाकृत उन बीस में से एक बनकर उपदेश ग्रहण करने का।
८८१) भाई भाई का प्रेम देखो राम और भरत। भाई भाई की दुश्मनी देखो बाली और सुग्रीव।
८८२) स्वाभाविक मित्र बडे भाग्यों से मिलता है।
८८३) अपने भीतर ही यदि शान्ति मिल गयी तो सारा संसार शान्त प्रतीत होता है।
८८४) कीचड से सोना उठा लेना यह तो सज्जनों की प्रवृत्ति है।
८८५) सज्जन से निष्फल याचना भी अच्छी, नीच से सफल याचना भी अच्छी नहीं है।
८८६) सज्जनों के लिये कुछ भी दु:सह नहीं है और दुर्जनों के लिये कुछ भी अकार्य नहीं है। और सुन्दर वह है जो सुन्दर कार्य करे।
८८७) नीच को नम्रता दिखाना भी अत्यन्त दु:खदाई है।
८८८) नरक में रहना अच्छा है परन्तु दुष्ट का संग अच्छा नहीं है।
८८९) बैर और प्रेम कभी भी छिपाने से नहीं छिपते।
८९०) सदाचारी पुरुष सदा सुखी रहता है।
८९१) उन कामों को मत करो, जो दूसरों के लिये निर्धारित है।
८९२) परायी सम्पत्ति पर अवैध कब्जा मत करो।
८९३) हिलाने से पकती हुई खिचडी बिगडती है और लाड प्यार से पुत्र बिगडता है।

८९४) रत्न के चले जाने से केवल पात्र की रक्षा करने का कोई उपयोग नहीं।

८९५) एक ही सुलाभ सब ही की हानि हरता है।

८९६) सम्पूर्ण गुणों से युक्त राजा भी क्षमारहित हो तो उसकी शोभा नहीं होती।

८९७) जो राजा मूर्ख की तरह असत्य को सत्य, या सत्य को असत्य मानता है तो उसे सम्पत्तियां भी त्याग देती है।

८९८) कितने कष्ट की बात है कि राजा लोग अपने कर्मचारियों के आंतरिक मद को न जानने के कारण निरपराध राष्ट्र पर वज्रपात करते है।

८९९) राजा और दैव समान होते है ये जो करे सो देखते चलो। इनके बीच बोलने की तो जगह ही नहीं है।

९००) राजा होना चाहिये क्योकि मनुष्य परस्पर लडा करते है, तलवार चाहिये क्योकि न्याय से न डराते है न स्वयं डरते है।

९०१) प्रत्यक्ष कवि की कविता, कुल स्त्रियों का रूप, और घरेलू वैद्य की चिकित्सा किसी किसी को ही अच्छे लगते हैं।

९०२) पत्नी के चुनाव में युद्ध की योजना के समान एक गलती करना सदा के लिये बरबाद हो जाना है।

९०३) जो जिसे अच्छा लगे वही उसके लिये भला है।

९०४) गुण अवगुण सभी जानते है लेकिन जो जिस भाव से अच्छा लगे वही ठीक है।

९०५) सूर्य की तरह परोपकार करो किन्तु अभिमान मत करो।

९०६) सरस्वती और गंगा दोनों पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं।

९०७) बडे भारी कंजूस का सोना किसी कोने में ही गडा रह जाता है।

९०८) धूल के समान कोई नीच नहीं है वह भी लात मारने पर सिर पर चढ़ जाती है।

९०९) धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की विपत्ति में ही परीक्षा होती है।

९१०) छोटे भाई की पत्नी, बहिन, अपनी पुत्री, पुत्र वधू ये चारों समान होती है।

९११) शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को कभी भी छोटा मान कर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

९१२) पर स्त्री का चौथ के चन्द्र के समान त्याग कर देना चाहिये।

९१३) नरक में रहना बेहतर है लेकिन दुष्ट का संग अच्छा नहीं।

९१४) तू छोटा बन, गागर में सागर समा जायेगा।

९१५) लज्जा, शर्म रहित मनुष्य जो चाहे कुछ भी कर डालता है।

९१६) मन की शांति का मूल्य जीवन में बहुत है, सम्पत्ति एवं स्वास्थ्य से भी अधिक।

९१७) किसी मनुष्य का स्वभाव उसे विश्वसनीय बनाता है, न कि उसकी सम्पत्ति।

९१८) मर्म बेधक वाणी, उलझन भरी बातें मत करो। बिना सोचे समझे कभी कुछ मत बोलो।

९१९) क्रोध में अन्धा मानव, अपने मां, बहन, अपनी सन्तान तक को भी मार डालता है।

९२०) अधिक और अनैतिक सम्पत्ति ही सब बुराइयों की जड है और विनाश और पतन का कारण बनती है।

९२१) अतिशय सम्पन्नता को पाकर भी गर्व रहित सज्जन किसी को थोडा भी नही भूलते।

९२२) वीरों में सबसे बडा वीर वो ही है जो काम बाणों से भी पीडित और आहत नहीं होता है।

९२३) राजा प्रजा की रक्षा करता है और प्रजा राजा को उन्नत करती है।

९२४) यदि विद्वत्ता विनम्र है तो वह विद्वत्ता नही है।

९२५) वार्तालाप से बुद्धि विकसित होती है, किन्तु प्रतिभा की पाठशाला तो एकान्त ही है।

९२६) हमें अपने आप को नहीं, अपने उत्तरदायित्वों को गम्भीरता से लेना चाहिये।

९२७) सम्वेदनशील बनो परन्तु निर्मल भी। प्रेमी बनो परन्तु पवित्र भी।

९२८) जो घृणा और द्वेष के बल पर बढता है, वह शीघ्र ही पतन के गर्त मे गिरता है।

९२९) विनम्रता एक आध्यात्मिक शक्ति है।

HHH(४००)HHH

९३०) सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल निश्चित ही अपनी शोभा धारण नहीं कर सकता।
९३१) संख्याओं की शक्ति पर कायर प्रसन्न होते है। वीरात्मा तो अकेले युद्ध करने में गौरव का अनुभव करते हैं।
९३२) कभी कभी हमें उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है जिन्हे अभिमानवश हम अज्ञानी कहते है।
९३३) मनुष्य बिना वस्त्रों के शोभित हो सकता है पर लज्जा व धैर्य से रहित होने पर नहीं।
९३४) धन्य और धान्य के प्रयोग में, विद्या ग्रहण में आहार और व्यवहार में जो लज्जा का त्याग कर देता है वह सुखी होता है।
९३५) विवाह किये बिना, विकार एवं वासना का नाश नही होता।
९३६) विधवा स्त्री गंगा की तरह पवित्र है।
९३७) कठोर वाणी से जो पति का अपमान करे वह स्त्री तो कौवी है।
९३८) स्त्री स्त्री की मर्यादा मे रहे और पुरुष पुरुष की मर्यादा मे रहे तो ठीक है। मर्यादाओं का उल्लंघन करना अनुचित है।
९३९) स्त्री को स्त्री रूप में मत देखो-ब्रह्म रूप मे देखो, लक्ष्मी रूपमें देखो।
९४०) जीवन में कुछ पाने के लिये कष्टों को सहन करना ही पडता है।
९४१) यदि कोई आपका अपमान करता है तो उस पर खुशियों की और शुभ भावनाओं की वर्षा करे।
९४२) मां के आशीर्वाद और उसकी सेवा से तीनो लोकों का वैभव प्राप्त हो सकता है।
९४३) जिन्दगी मे आनेवाली हर समस्या का सामना करना ही है तो क्यों न प्रेम से किया जाये।
९४४) शान्ति उपाय है, क्रान्ति दृष्टिकोण है और विकास उद्देश्य है।
९४५) पलभर का क्रोध आपका भविष्य बिगाड सकता है।
९४६) सच्चाई किसी तेल की सतह पर आ जाती है।
९४७) औरत घर की रीढ़ की हड्डी की हैसियत रखती है।
९४८) यश का मार्ग स्वर्ग के मार्ग की तरह अत्यन्त कष्टमय है।
९४९) एक सत्य दूसरे सत्य का कभी विरोध नही करता।
९५०) प्रबल विरोध के अभाव में कोई भी सरकार टिकाऊ नही होती।
९५१) विश्व में केवल एक आत्म तत्त्व है, सब कुछ उसी की अभिव्यक्तियां है।
९५२) मुहब्बत और खांसी को छुपाया नहीं जा सकता।
९५३) जो शस्त्र उठाता है, उसका अन्त भी शस्त्र के द्वारा ही होता है।
९५४) बुरे साथी हमें नरक में ले जाने के लिये निमन्त्रित और प्रलोभित करते हैं।
९५५) अपनी गलतियों को खुले मन से स्वीकार करें और सुधारें।
९५६) हर सफल व्यक्ति अच्छा पालक नहीं हो सकता लेकिन हर अच्छा पालक एक सफल व्यक्ति होता है।
९५७) मौन बातचीत की महान कला है।
९५८) बिना सोचे बोलना, बिना निशाने की गोली चलाना है।
९५९) मुस्कान शत्रु को भी मित्र बना देती है।
९६०) हमारे कामों में सबसे बडा काम हमारे सन्तुलन को बनाये रखना है इसी वजह से हम गिरते नहीं है।
९६१) पर निन्दा में समय बर्बाद न कर उतना समय अच्छे कामों मे लगाना होता है।
९६२) कार्य को सही जानकर भी उसे न करना हिम्मत की कमी का सूचक है।
९६३) सीधी और साफ बात करने से नुकसान कभी नहीं मगर फायदा ज्यादा होता है।
९६४) जिसका मन सन्तुष्ट है, सभी सम्पत्तियां उसके निकट है।
९६५) जबान खोलने से पहले सोचें कि तुम क्या कहने वाले हो।

९६६) इज्जत चली गयी तो सब कुछ चला गया।
९६७) तुम्हारा चाल चलन इस बात से मालूम होता है कि तुम किस चीज को देखकर खामोश होते हो।
९६८) पहला अच्छा प्रभाव डालने का आपको दूसरा अवसर नहीं मिलेगा।
९६९) सही समय और सही जगह पर होने से ही सफलता नहीं मिलती लेकिन वह निर्भर है आपकी तैयारी पर।
९७०) बच्चों को बार-बार टोकने से वे कुंठाग्रस्त हो जाते है।
९७१) इन्सानों मे सर्वश्रेष्ठ वो ही है जो अपनी गलतियों को देखता है, दूसरों की नहीं।
९७२) जो किसी के साथ सफर नहीं करता है, अकेले ही सफर करता है वह तेजी से सफर कर जाता है।
९७३) अगर किसी के दिल मे जगह पैदा करना चाहते हो तो उसे पूरा नाम लेकर पुकारो।
९७४) खराब मूड में किसी के घर कभी मत जाना। खुशी से आना, खुशी से खाना, खुशी से बोलना, व खुशी से जीना ही मूलमन्त्र है।
९७५) जिन्दगी मे बोलना इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना की चुप रहना।
९७६) बोलना महान है, लेकिन मौन महानतम।
९७७) उस पेड को मत काटिये जो आपको छाया देता है।
९७८) सफर के दौरान अपने घर की परेशानी बयां न करे।
९७९) बडे आदमी जिन्दगी में कम और किताबों में ज्यादा मिलेंगे।
९८०) बडा बनने के लिये छोटा होना पडता है।
९८१) जो अपने राज को छुपाये रहेगा उसे पूरा काबू रहेगा।
९८२) जो बुरे काम को अच्छा समझता है वह उस काम में शरीक है।
९८३) हमारी शिक्षा तब तक अधूरी है जब तक उसमे धार्मिक विचारों का सामंजस्य नही होता।
९८४) शिक्षा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को निभाने की योग्यता है।
९८५) संसार मे जितने प्रकार की प्राप्तियां है, शिक्षा उनमें सबसे बढ़ कर है।
९८६) शिक्षा की जडे अवश्य कडवी होती है लेकिन उसके फल मीठे होते हैं।
९८७) शिक्षा देना बहुत आसान है पर उस पर अमल करना कठिन है।
९८८) लोग आपके खिलाफ नहीं है बल्कि वे पूरी तरह सिर्फ अपने लिये है, अपने खुद के साथ है।
९८९) संसार में सबसे बडा अधिकार सेवा व त्याग से प्राप्त होता है।
९९०) प्रतिक्षण सजग व संयमित रहना ही जीवन की सुरक्षा है।
९९१) जीवन हमारी सोच, हमारे विचारों का ही दूसरा नाम है।
९९२) जब आप किसी के अच्छे विचार को मारते हो तो आप थोडा सा उस व्यक्ति को भी मार देते हो।
९९३) पर निन्दा करने से पारिवारिक शान्ति नष्ट होती है।
९९४) मूल्यों मे कटौती कोई भी कर सकता है लेकिन एक बेहतर चीज का निर्माण करने में दिमाग लगता है।
९९५) घर की आय का साधन चाहे निश्चित हो या अनिश्चित अपने खर्च के आयाम निश्चित ही होने चाहिये।
९९६) एक बार भलाई करोगे तो उसे आपकी कृपा के रूप मे देखा जायेगा, दुबारा करोगे तो यह आपका कर्तव्य बन जायेगा।
९९७) दो इन्सानों का पेट कभी भी नहीं भरता एक धन की भूख वाला और दूसरा ज्ञान की भूख वाला।
९९८) हर किसी की निन्दा सुनो पर अपना फैसला गुप्त रखो।
९९९) विवेकपूर्ण विचार रखने से प्रत्येक परिस्थिति में सुखी और सन्तुष्ट रहा जा सकता है।
१०००) गुस्सा परिवार को टुकडों में बांटने का काम करता है इससे परिवार को टूटने से बचाये।
१००१) जब बहस करना बेकार लग रहा हो तो चुप होकर सन्तुष्टि से बैठ जाना ही बेहतर है।

१००२) अच्छा कहने से बेहतर है अच्छा किया जाये।
१००३) दूरस्थ सगे भाई से समीपस्थ पडोसी अधिक अच्छा होता है।
१००४) जीवन छोटा है लेकिन फिर भी शिष्टाचार के लिये हमेशा समय रहता है।
१००५) वृद्धावस्था मे घर के सदस्यों व धन सम्पत्ति के प्रति अपनी आसक्ति को कम करना चाहिये।
१००६) सच पर चलने वाले लोग कभी भी धोखा नहीं उठा सकते।
१००७) कुछ लोग अपने सिर की बलाये दूसरों के सरों पर थोपकर कितने शान्त हो जाते है।
१००८) कन्जूसी और ईमान एक साथ दिल में नहीं रह सकते।
१००९) बात किसने कही ये मत देखो बल्कि यह देखो बात कैसी है।
१०१०) जिन्दगी की सबसे बडी खुशी तब है जब तुम वह काम कर दिखाओ जो दूसरे समझते है कि तुम नहीं कर सकते।
१०११) भाई अगर दोस्त बन जाये तो सबसे बेहतर है।
१०१२) अपने निजी स्वार्थ के लिये दूसरों को परेशानी और मुसीबत में डालना गुनाह है।
१०१३) सुबह के वक्त देर से उठना व्यक्ति की उन्नति का अवरोध है।
१०१४) अपने आप को मत छुपाओ, लोग आपको खोज ही लेंगे।
१०१५) सभी सफलताओं का महानतम रहस्य है धैर्य और सभी विफलताओं का रहस्य है अधीरता।
१०१६) मान सहित मरना सबसे अच्छा होता है।
१०१७) उत्कृष्ट कोटि का प्रेम क्षणिक नहीं, अमर होता है।
१०१८) सच्चा प्रेम बलिदान मांगता है।
१०१९) अच्छी संगति से मनुष्य अच्छा और बुरी संगति से वही बुरा हो जाता है।
१०२०) कुसंग में रहने से अच्छों की भी स्थिति बुरी हो जाती है।
१०२१) भली-भांति सोच-विचारकर जीवन जीना अधिक श्रेयस्कर है।
१०२२) गुण-दोष सभी में होते हैं, परंतु किसी के भाग्य में यश होता है और किसी के भाग्य में अपयश।
१०२३) सज्जनों की सज्जनता सहज ही उन्हें सम्मानित करा देती है।
१०२४) बिना छल-कपट के मिलने वाली भीख भी उत्तम होती है।
१०२५) उत्कृष्ट चरित्र वालों का कुसंग कुछ नहीं बिगाड़ सकता।
१०२६) जो सोच-विचार कर कर्म करते हैं, उन्हीं को धन और यश मिलता है।
१०२७) विनम्रता और मृदुवाणी से स्वत: ही शत्रुता समाप्त हो जाती है।
१०२८) मधुर वचन से भाग्योदय होता है तथा कटु वचन से भाग्य फूटता है।
१०२९) महान लोगों की संगति से महान विचार आते हैं।
१०३०) जो मनुष्य संतोषी और निरभिमानी होता है, वह सराहनीय होता है।
१०३१) अपनी विजय होने पर भी पराजय समझने की विनम्रता रखने वाला बुद्धिमान प्रशंसा का पात्र होता है।
१०३२) समय पर उचित कार्य करना ही बुद्धिमानी है।
१०३३) शत्रुता और प्रेम में मनुष्य आंखें होते हुए भी अंधा हो जाता है।
१०३४) रिश्तों से बड़ा विश्वास, योग से बड़ा कल्याण, मालिक से बड़ा नौकर तथा नियमों से बड़ा प्रेम को मानते हैं।
१०३५) लंबी बीमारी, दरिद्रता, कडुवे बोल तथा लालच मनुष्य का मान कम करा देते हैं।
१०३६) बार-बार विचार करने से हर उलझी हुई गुत्थी सुलझ जाती है।
१०३७) भावी विपत्ति का अनुमान करके पहले ही आत्मरक्षा का प्रबंध कर लेना बुद्धिमानी है।

१०३८) जानते-बूझते गलत काम करने वाले को समझाने से कोई लाभ नहीं होता।
१०३९) सांसारिक ऐश्वर्य मनुष्य को अभिमानी बना देता है।
१०४०) स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट देना अधमता है।
१०४१) मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि संसार की सभी वस्तुएं नश्वर हैं, इसीलिए उनका अभिमान व्यर्थ है।
१०४२) भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वर्तमान के सुख को नष्ट मत करो।
१०४३) महानता मनुष्य के भौतिक रूप में बड़े होने में नहीं वरन् परोपकारी होने में है।
१०४४) उपलब्धियां विनम्र व्यक्ति को ही होती हैं।
१०४५) भावनाएं तो जल की भांति पवित्र होती हैं, परंतु संगति उन्हें दूषित भी बना सकती है और उत्तम भी।
१०४६) छोटों की लघुता के कारण ही तो बड़ों की गरिमा होती है।
१०४७) जहां छल-कपट होता है वहां प्रेम तो हो ही नहीं सकता।
१०४८) विधानों का विधान एकमात्र प्रेम है। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है।
१०४९) उचित-अनुचित तथा कर्तव्य-अकर्तव्य का निर्णय अपने विवेक के आधार पर होना चाहिए।
१०५०) प्रेम भाव से तरंगित आंखें भीतर का भेद खोल देती हैं।
१०५१) विपत्ति-कसौटी मित्र-कांचन को कसकर खरा-खोटा स्पष्ट कर देती है।
१०५२) प्राय: सायास से अभीष्ट नहीं मिलता, अनायास ही मिल जाता है।
१०५३) भूख इंसान को नीचे उतार लाती है। जो नीचे नहीं आता, वह गैर मामूली इंसान होता है।
१०५४) प्रवंचना जीवन का अभिशाप है।
१०५५) दिशा पकड़ो, गंतव्य मिल जाएगा।
१०५६) अनुकूल समय की प्रतीक्षा करो।
१०५७) अनर्गल प्रलाप मत करो।
१०५८) मृत जीवन-मूल्यों को त्याग दो। जीवंत जीवन-मूल्य संग्रहणीय है।
१०५९) गृहस्थ आश्रम की मंजु-लता तभी लहराती है, जब दांपत्य जीवन में सदैव सन्तुलन बना रहता है।
१०६०) शिखर बिखर जाते हैं और बिखरे हुए शिखर बन जाते हैं।
१०६१) वीर मनुष्यों का ही सदैव सम्मान किया जाता है।
१०६२) अराजकता की सारी जड़ चुगलखोरी है।
१०६३) तेजस्विता मान-सम्मान के बिना प्रादुर्भाव नहीं होती।
१०६४) महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के लिए याचना स्थायी कलंक एवं अमिट अपयश है।
१०६५) यदि एक बार कीर्ति डगमगाती है तो फिर संभल नहीं पाती।
१०६६) समय की जुल्मी बयार बह गई और सब ढह गया। रह गई हैं विह्वल करने वाली कुछ स्मृतियां मात्र।
१०६७) कृतज्ञता शिष्टाचार ही नहीं, श्रेष्ठ जीवन-मूल्य भी है।
१०६८) अतीत की छाया वर्तमान पर अवश्य पड़ती है।
१०६९) बड़े लोग दुर्दिन को पार करते हुए कभी-कभी परिस्थिति के अनुसार बहुत छोटे बन जाते हैं।
१०७०) गृहस्थ-जीवन विडम्बनाओं का कारागार है।
१०७१) संबंधों की जांच-परख होती रहनी चाहिए। यों ही किसी को अपना प्रिय बना लेना ठीक नहीं है।
१०७२) यौवन के उन्माद में आकर इन्सान अच्छे-बुरे की सोच भूल जाता है।
१०७३) अधर्म की दौलत कभी नहीं रह सकती। उसे जलकर राख होने में देर नहीं लगती।

१०७४) वह क्षुद्र लोगों की आलोचना पर ध्यान नहीं देता। वह अपने कर्तव्य-कार्यों में खोया होता है।
१०७५) विस्तार में जाने से सार नहीं रहता अत: संकल्पों का विस्तार छोड़ो।
१०७६) यह सत्य है कि विज्ञान की सुख व सुविधाओं के साथ मनुष्य का वास्तविक सुख और शान्ति भंग हो गई है।
१०७७) शान्ति और सुख बाहरी वस्तुएँ नहीं है, यह हमारे अन्दर ही निवास करती हैं, केवल उन्हें पहचानने की आवश्यकता है।
१०७८) दूसरों की खुशी के लिए अपनी खुशी का त्याग करना बाद में अत्यधिक सुखद होता है।
१०७९) किसी भी चीज को बरबाद करना अच्छा नहीं है क्योंकि प्रत्येक वस्तु का कुछ न कुछ उपयोग अवश्य है।
१०८०) अपने आप को महान् और मेहमान समझो।
१०८१) किसी से मेहरबानी माँग कर अपना अधिकार मत बेचो।
१०८२) दानशीलता हृदय का गुण है, हाथों का नहीं।
१०८३) यदि हम जीवन पथ पर फूल नहीं बिखेर सकते तो कम से कम मुस्कान तो बिखेर ही सकते हैं।
१०८४) बात सबसे बड़ा धन है, बात का धनी कभी निर्धन नहीं होता।
१०८५) जो आदमी के वश में है वह क्षमता है, जिसके वश में आदमी है वह प्रतिभा है।
१०८६) यदि मनुष्य सुख-दु:ख की चिन्ता से ऊपर उठ जाये तो आसमान की ऊँचाई भी उसके पैरों के नीचे आ जाये।
१०८७) धन से अच्छे गुण नहीं मिलते, धन अच्छे गुणों से मिलता है।
१०८८) जो केवल भाग्य पर भरोसा करता है उसमें पौरुष नहीं होता।
१०८९) चापलूस आपको हानि पहुँचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, इससे स्वयं को बचाकर रखें।
१०९०) दुनिया की चीजों में सुख की लालसा फिजूल है, आनन्द का खजाना तो हमारे अपने अन्दर ही है।
१०९१) आलस्य ईश्वर के दिये हुए इस सम्पूर्ण शरीर का अपमान है।
१०९२) संसार में सबसे अधिक भाग्यशाली वही है जो आत्म-निर्भर रहता है।
१०९३) आदमी के पास क्या है यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जबकि महत्त्वपूर्ण यह है कि आदमी स्वयं क्या है।
१०९४) काल पर विजय प्राप्त कर सकते हैं- अपने यश से, अपनी सुकीर्ति से, परोपकार से।
१०९५) सुबह से शाम तक काम करने से आदमी इतना नहीं थकता जितना क्रोध या चिन्ता के कारण एक घण्टे में थक जाता है।
१०९६) व्यवहार की छोटी-छोटी बातें ही मनुष्य के चरित्र का दर्पण होती हैं।
१०९७) सोचो ज्यादा, लिखो थोड़ा, बोलो कम।
१०९८) मुस्कान पाने वाला माला-माल हो जाता है पर मुस्कान बाँटने वाला कभी दरिद्र नहीं होता।
१०९९) पुरुषार्थ किए बिना भाग्य का निर्माण नहीं किया जा सकता।
११००) वास्तविक जीवन तो आनन्द की खोज ही है, शेष सब कुछ प्रतीक्षा मात्र है।
११०१) काम कभी भी असम्भव, गन्दा या नीच नहीं होता।
११०२) जिसमें आत्मविश्वास नहीं उसे अन्य चीजों में कैसे विश्वास हो सकता है।
११०३) दु:ख के बाद जो सुख आता है वह अधिक आनन्दमय होता है जैसे धूप से तपे हुए प्राणी को वृक्ष की छाया शान्ति देती है।
११०४) हर काम का समय होता और हर समय के लिए काम होता है।
११०५) आलस्य वह राजरोग है जिसका रोगी कभी स्वस्थ नहीं हो सकता।
११०६) हमारे विचार ही हमारे चरित्र का संगठन करते हैं।
११०७) जिसे पुस्तकें पढ़ने का शौक है वह सब जगह सुखी रह सकता है।
११०८) क्षणभर के लिए भी काम के बिना रहना समय की चोरी है जिसे ईश्वर देख रहा है।
११०९) ख्याति वह प्यास है जो कभी नहीं बुझती।

१११०) वाचालता महान् है पर मौन उससे भी महान् है।
१११९) मित्रता करने में शीघ्रता मत करो, परन्तु करो तो अन्त तक निभाओ।
१११२) जिन्दगी की मुसीबतें कम करना चाहते हो तो अपने आपको सदा व्यस्त रखो।
१११३) आनन्द वह खुशी है जिसे भोगने के बाद पछताना नहीं पड़ता।
१११४) मानव के सभी गुणों में साहस प्रथम गुण है क्योंकि वह सभी गुणों का दायित्व लेता है।
१११५) व्यक्ति की संगति से ही उसके चरित्र का पता लगता है।
१११६) जिन्दगी में छोटी बातों का महत्त्व भी बहुत अधिक होता है।
१११७) अच्छा स्वास्थ्य और अच्छी समझ जीवन के दो सर्वोत्तम वरदान हैं।
१११८) माँगने पर देना अच्छा है पर किसी की आवश्यकता अनुभव करके बिना माँगे देना और भी अच्छा है।
१११९) कष्ट वह शक्ति है जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और उसे आगे बढ़ाती है।
११२०) विचार हमारे चरित्र को दिशा देते हैं।
११२१) विपत्तियों से घबराकर कभी भी मनोबल नहीं छोड़ना चाहिए।
११२२) दो वचनों को सदा याद रखो-मालिक और मौत।
११२३) जीवन रोने के लिए नहीं, जीने के लिए है तो क्यों न रोये बिना जीवन का प्रवाह जैसे बहता है वैसे बहने दिया जाये।
११२४) मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से महान् बनता है।
११२५) अच्छी पुस्तकें जीवन्त देव प्रतिमाएँ हैं जिनकी आराधना से तत्काल प्रकाश और उल्लास मिलता है।
११२६) प्रसन्न रहने के दो उपाय हैं- पहला आवश्यकताएँ कम करें और दूसरा परिस्थितियों से तालमेल बैठाएँ।
११२७) असफलता यह सिद्ध करती है कि सफलता का प्रयत्न पूरे मन से नहीं हुआ।
११२८) अपना मूल्य समझो और विश्वास करो कि तुम संसार के सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हो।
११२९) किसी का सुधार उसे नये सिरे से सोचने और उसे बदलने का अवसर देने से होता है।
११३०) आय से अधिक व्यय करने वाले तिरस्कार सहते हैं और कष्ट भोगते हैं।
११३१) मनुष्य का जन्म तो सहज होता है पर मनुष्यता उसे कठिनाई से प्राप्त करनी पड़ती है।
११३२) आप अपना जो मूल्य आँकते हैं सफलता उसी का साकार रूप है।
११३३) जो काम से पहले हिचकिचाता है वह पिछड़ जाता है।
११३४) लोकप्रियता से बचो; इसमें बहुत फँसे हैं मगर सुखी कोई नहीं है।
११३५) मन की गति हवा से तेज होती है।
११३६) सही अर्थों में रूढ़िवादी वो है जो बैठा-बैठा केवल सोचता है, करता कुछ नहीं।
११३७) गुरु की डाँट, पिता के प्यार से बेहतर होती है।
११३८) बादलों की तरह रहो क्योंकि बादल फूलों पर ही नहीं काँटों पर भी बरसते हैं।
११३९) झूठ की उम्र कभी लम्बी नहीं होती।
११४०) मूर्खों से प्रशंसा सुनने की बजाय बुद्धिमानों से निन्दा सुनना कहीं श्रेष्ठ है।
११४१) प्रत्येक मनुष्य की बात सुनो, पर अपनी बात कम सुनाओ।
११४२) जीवन में इतना ज्यादा भी व्यस्त मत रहो कि एक वक्त का खाना भी परिवार के साथ बैठकर न खा सको।
११४३) जैसे शिखर पर बैठने भर से कौवा गरुड़ नहीं हो जाता वैसे ही मनुष्य ऊँची कुर्सी पर बैठने से नहीं गुणों से महान् होता है।
११४४) किस्मत उन्हीं का साथ देती है जो उसके लिए मेहनत करते हैं।
११४५) समस्या के दोनों पक्षों पर गौर किए बिना निर्णय कभी मत लो।

११४६) किसी को जाने बिना उसको घर के अन्दर न आने दो।
११४७) शालीनता बिना मोल मिलती है और उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है।
११४८) विद्वता के तीन स्तम्भ हैं- अधिक अध्ययन, अधिक मुसीबतें सहना और अधिक अनुभव।
११४९) अच्छा स्वभाव मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी है।
११५०) आदमी अकेला पैदा होता है और सारी जिन्दगी अकेला ही रहता है।
११५१) फायदा करो और फायदा उठाओ वरना मूर्ख कहलाओगे।
११५२) जब तक हम निरपराध न हों दूसरों पर कोई आक्षेप नहीं कर सकते।
११५३) स्वयं की चिता से तो निकल कर जाया जा सकता है पर चिन्ता से नहीं क्योंकि चिन्ता भीतर है और सदा साथ रहती है।
११५४) लोटा और बेटा जितना घर के बाहर काम में आयेगा उतना ही दमकेगा।
११५५) इधर-उधर कहने से दान फलहीन हो जाता है।
११५६) इसकी कल्पना मत करो कि गया हुआ अवसर दुबारा आयेगा, नया अवसर नये ढंग से आयेगा बस आप सतर्क रहें।
११५७) अपने अज्ञान का आभास ही ज्ञान होता है।
११५८) अहंकार में डूबे रहना अज्ञानता की निशानी है।
११५९) किसी के होठों पर हँसी ला देना ही बहुत बड़ा पुण्य है।
११६०) आज का अवसर व्यर्थ खो देना ही सबसे बड़ी मूर्खता है।
११६१) उनसे बचना चाहिए जिनका ईश्वर आकाश में हो।
११६२) मनुष्य के जीवन में माँ, महात्मा और परमात्मा से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है।
११६३) माँ बचपन सँवारती है, महात्मा जवानी और परमात्मा बुढ़ापा सुधारता है।
११६४) आदर्शों में आस्था रखने से ही काम नहीं चलता, आदर्शों पर चलना भी जरूरी है।
११६५) आदर्शों की प्रशंसा तो सभी करते हैं पर उनका पालन बहुत कम लोग करते हैं।
११६६) अधिक सुनें, कम बोलें तो बचेंगे कई बुराईयों से।
११६७) शेखी से सदैव बचें, सेर को सवासेर मिलता ही है।
११६८) पाठ करने की बजाय प्रार्थना करो, इसमें शब्दों की नहीं भाव की जरूरत होती है।
११६९) मुख से निकला वचन दूसरों को आश्वासन देता है पर अन्तर्मन से निकला शब्द आशीर्वाद होता है।
११७०) अर्थी उठने से पहले जीवन का अर्थ समझो।
११७१) दो व्यक्ति संसार में मुश्किल से मिलते है- एक तो सच कहने वाला और दूसरा सच सुनने वाला।
११७२) सुन्दरता ढकने में है, खुलेपन में नहीं; जीवन सँवारने में हैं, बिगाड़ने में नहीं।
११७३) वक्त से पहले और किस्मत से ज्यादा किसी को नहीं मिलता।
११७४) किसी भी समस्या का समाधान तपस्या (कठिन परिश्रम) के बिना सम्भव नहीं।
११७५) मुस्कराहट के बिना जीवन एक सजा है।
११७६) चिन्ता ने आज तक कभी किसी काम को पूरा नहीं किया।
११७७) धन से धन की भूख ही बढ़ती है, तृप्ति नहीं होती।
११७८) दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना ही बुद्धिमान है।
११७९) दान देकर मनुष्य धनवान बनता है और धन को जोड़कर लोभी व दु:खी।
११८०) ईमानदार आदमी की सोच हमेशा न्यायपूर्ण होती है।
११८१) समय को निरर्थक न जाने दें, यह लौटकर नहीं आयेगा।

११८२) संसार का ज्ञान संसार में रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है।
११८३) सादगी बनाने से नहीं बनेगी यह स्वभाव में होनी चाहिए।
११८४) मौत से जितने लोग मरते हैं, फिक्र से उससे अधिक मरते हैं।
११८५) जो स्वयं धन को भोग नहीं सकता वह प्रसन्न मन से दान भी नहीं कर सकता।
११८६) जब अपने ऊपर बीतती है, तभी आदमी को हर बात समझ में आती है।
११८७) आशा दु:ख की जननी है। अगर सुखी रहना है तो दूसरों से सुख की आशा करनी छोड़ दो।
११८८) मनुष्य में शक्ति की नहीं, संकल्प की कमी होती है।
११८९) असली शिक्षा ये है कि जो अपने को सुधारना और दूसरों को संभालना सिखाये।
११९०) वह मनुष्य सचमुच बुद्धिमान है कि जो क्रोध की हालत में भी बुरी बात मुँह से नहीं निकालता।
११९१) मनुष्य में उच्च होने की आकांक्षा की कोई सीमा नहीं है।
११९२) जिज्ञासा बिना ज्ञान नहीं होता और दु:ख बिना सुख नहीं होता।
११९३) ज्ञान का लक्ष्य सत्य है और सत्य को जानना आत्मा की भूख है।
११९४) भयभीत मनुष्य किसी का सहायक नहीं हो सकता।
११९५) चापलूसी बहुत लोग करना जानते हैं लेकिन प्रशंसा करना किसी-किसी को ही आता है।
११९६) मानव जाति को एकता का पाठ चीटियों से सीखना चाहिए।
११९७) विजेता असाधारण कार्य नहीं करते बल्कि वे साधारण कार्य को भी असाधारण रूप से सुन्दर व अच्छा करते हैं।
११९८) परिश्रमी और धीर व्यक्ति के लिए दुनिया में कुछ भी अप्राप्य नहीं है।
११९९) दूसरों को गिराने के प्रयत्न में तुम स्वयं गिर जाओगे।
१२००) महापुरुषों की असली पहचान उनकी नम्रता होती है।
१२०१) घर में मेल होना पृथ्वी पर स्वर्ग के समान है।
१२०२) जो पुस्तकें तुम्हें सबसे अधिक सोचने पर विवश करती हैं वही तुम्हारी सबसे अधिक सहायक हैं।
१२०३) यदि हमें आने वाले कल का भरोसा न हो तो किसी भी तरह की उन्नति असम्भव है।
१२०४) सफलता का और कोई रहस्य नहीं, वह केवल अति परिश्रम चाहती हे।
१२०५) आपत्तियों को पराजित करना ही जीवन के आनन्द की पराकाष्ठा है।
१२०६) यदि झूठ पवित्र हो तो बोलने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए।
१२०७) मनुष्य जब शरीर के साथ अनाचार करता है, तो प्रकृति गुरु शिक्षा देती ही है।
१२०८) भाग्य का बनना-बिगड़ना कर्म पर निर्भर है और कर्म से भाग्य बदला जा सकता है।
१२०९) हाथ आया अवसर-समय उड़ जाता है और कभी लौट कर नहीं आता।
१२१०) जो दूसरों को खोजता है, वह कुछ नहीं पाता। जो अपने को खोजता है, उसी को सब कुछ मिलता है।
१२११) सेवा दूसरों का भला करने के साथ-साथ अपना भी भला करती है।
१२१२) निर्णय की परिपक्वता और कर्मठता व्यक्ति को महान बना देती है।
१२१३) कभी-कभी छोटे व्यक्ति की राय भी आड़े वक्त काम दे जाती है।
१२१४) फूल खिलने दो, मधु-मक्खियां अपने आप उसके पास आ जाएगी। चरित्रवान बनो, जगत् अपने आप मुग्ध हो जाएगा।
१२१५) अगर लोगों को इल्म की कद्रों कीमत का पता चल जाये तो सारे काम छोडकर इल्म के पीछे लग जाये।
१२१६) सुख बाहर से मिलने की चीज नहीं, वह तो हमारे ही अंदर मौजूद है। मगर अहंकार छोड़े बगैर उसकी प्राप्ति नहीं होनेवाली।
१२१७) दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात। एक परदा यह झीना नील छिपाए है जिसमें सुख गात।

१२१८) जीने के पीछे कोई महान उद्देश्य न हो तो जीवन व्यर्थ होता है।
१२१९) सतत जागृत रहो। जो जागता है, उसकी बुद्धि बढ़ती है। जो सोता है वह धन्य नहीं है, धन्य वह है, जो सदा जागता है।
१२२०) खुजली का रोगी जैसे खुजलाने पर बहुत दु:ख को भी सुख मानता है, वैसे ही मोहातुर मनुष्य कामजन्य दु:ख को सुख मानता है।
१२२१) अधूरी मानवता पूर्णता प्राप्त कर सकती है और पूर्ण मानवता उस शिखर पर पहुँच सकती है जिसे महामानव कहा जाता है।
१२२२) किसी भी अच्छी चीज का गहन अभ्यास हमें बुराई करने से अंतत: रोक ही देता है।
१२२३) सत्यवादी मनुष्य माता की तरह विश्वसनीय, जनता के लिए गुरु की तरह पूज्य और स्वजन की भांति सबको प्रिय होता है।
१२२४) अनिर्वचनीय कारणसे हुए कर्मका अपनेको कर्ता बताना आकाशमें चमकते हुए तारोंको अपनी रचना बतानेके समान है।
१२२५) कल्पित सत्य वास्तविक सत्य नहीं होता। अकल्पित सत्य ही वास्तविक सत्य होता है।
१२२६) बुद्धिमें ज्यों-ज्यों सत्यके ज्ञानकी निकटता आती है, त्यों-त्यों भ्रम दूर होता है।
१२२७) आपके प्रयास का एक क्षण या कण भी व्यर्थ, नहीं जाता। वह आपको पूर्णतासे मिलता है।
१२२८) जिसके मनमें जितनी वासना, उतना ही दु:ख। वासनाकी न्यूनता उतना ही अधिक सुख।
१२२९) छोटी वस्तु महान्को दबा देती है। विनाशी वस्तु अविनाशीपर हावी हो जाती है।
१२३०) अगर वृक्ष प्रचण्ड ज्वाला से जल रहा हो, तो उसमें पक्षी कैसे बसेरा करेंगे ?
१२३१) जब किसी के बारे में लिखो तो यह समझकर लिखो कि वह तुम्हारे सामने ही बैठा है और तुमसे जवाब तलब कर सकता है।
१२३२) मनुष्य का मूल्य उसके काम या उसके कथन से नहीं, बल्कि वह जीवन में स्वयं क्या बन रहा है, उसे देखकर आंकना चाहिए।
१२३३) सभी प्रकार की बुराइयों से दूर रहना, सत्कर्मों को सम्पन्न करना तथा अपने मन को शुद्ध करना- यही बुद्धों का मत है।
१२३४) विनम्र बनो और अनुचित व्यवहारों का परित्याग करो, जो तुम्हारे मन को जड़ बना देते हैं।
१२३५) हम अपने विचारों को परखें ताकि हम पाप न करें, क्योंकि हम जैसा करेंगे वैसा ही भरेंगे।
१२३६) तुम लोग परस्पर भाइयों के समान प्रेम में एक, पवित्रता में एक और सत्य के लिए उद्यम में एक बनो।
१२३७)जो शिक्षा हमें प्राचीन संस्थाओं तथा प्राचीन विचारों में ही फांसे रखे, वह शिक्षा अर्वाचीन समय में शिक्षा कहलाने योग्य नहीं।
१२३८) सबसे बड़ी आवश्यकता स्नेहपूर्वक हृदय की है।
१२३९) कोई व्यक्ति किसी को धोखा न दे। दूसरे की अवमानना न करे, क्रोध या उग्रता में भरकर किसी की हानि करने की इच्छा न करे।
१२४०) जो श्रद्धा और सद्गुण से परिपूर्ण है, जो प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न है, वह जहां भी भ्रमण करता है, उसे सर्वत्र सम्मान मिलता है।
१२४१) ऐसा कोई व्यक्ति न तो हुआ है, न होगा और न है, जो पूरी तरह से निन्दित हो या पूर्णत: प्रशंसित।
१२४२) काम के समान कोई अग्नि नहीं है तथा द्वेष के समान कोई अपराध नहीं है और शांति (निर्वाण) से ऊंचा कोई आनंद नहीं है।
१२४३) किसी भी अच्छी चीज का गहन अभ्यास हमें बुराई करने से अन्तत: रोक ही देता है।
१२४४) सुख पूजा पाने में नही, पूजा करने में है।
१२४५) यदि झूठ पवित्र है और नेक काम के लिये हो तो बोलने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये। ऐसी झूठ सिर्फ मानवता के लिये ही होती है।
१२४६) धनार्जन में बहुत कष्ट होता और धन के चले जाने पर भी। अर्थ का आना भी दु:ख है, जाना भी दु:ख। धिक्कार है ऐसे अर्थ संचय को।
१२४७) सामूहिकता से जीवन में सीखने को मिलता है।
१२४८) जो जिसकी वस्तु है वह अगर वापिस लेना चाहता है तो देने वाले को दु:ख और संकोच क्यों ?
१२४९) जिस मनुष्य के पास जिस चीज की कमी होती है, वह उसी चीज की मांग करता है।
१२५०) जब तक जड़ रहेगी, पेड रहेगा। बुराई की जड काटो, शाखायें काटने से क्या होगा ?
१२५१) वह सर्व शक्तिमान सत्ता, पुण्यात्मा, आकाश, पाताल के प्रत्येक जीव में विद्यमान है।
१२५२) जो हुकुमत की गद्दी पर बैठता है उसे हर घडी चारों ओर से सावधान रहना चाहिये।
१२५३) छोटी चीजों से ही बडी चीजे बनती है, छोटी बुराई, बडी बुराई के लिये रास्ता खोलती है।

१२५४) जो दूसरों को खोजता है वो कुछ नहीं पाता, जो स्वयं को खोजता है उसको सब कुछ मिल जाता है।
१२५५) मानव भले ही अपने धर्म से विमुख हो जाये लेकिन सन्त पुरुष नहीं।
१२५६) पापाचरण करने वाले पापियों का अपकार सन्त पुरुष नहीं देखते।
१२५७) सज्जन पुरुषों को स्वयं के शील सदाचार का रक्षण करना चाहिये।
१२५८) अपने जीवन में निर्मल और साफ बनकर निरन्तर उद्यमशील बनकर दूसरों के लिये उपयोगी बनोगे तो ही आदर्श समझे जावोगे।
१२५९) भगवान तो घट-घट में व्याप्त है किसी स्थान विशेष में उनका निवास नहीं है।
१२६०) मस्तिष्क का सही उपयोग ही बुद्धिमान की पहचान है। मस्तिष्क के द्वारा सर्वगुण सम्पन्न भी बना जा सकता है और दुर्गुणयुक्त भी।
१२६१) अपनी उन्नति के लिये अपने ज्ञान की धार को लगातार तेज करते रहना चाहिए।
१२६२) सत्य से अधिक सर्वशक्ति शाली कुछ भी नहीं है।
१२६३) अस्थिरता व्यवहार का सबसे बडा शत्रु है।
१२६४) अपने मित्र के सिर पर से एक मक्खी को भी कभी भी चाकू से न हटायें कहीं दोस्त को घाव न हो जाये।
१२६५) भावनाओं का ज्वार वे ही लोग उठाते हैं जो अपनी बुजुर्गियत से भावना की आंधी लाते है।
१२६६) अकलमन्द आदमी दूसरों की गलतियों से सीख लेता है जबकि बेवकूफ तो अपनी गलतियों से भी नहीं सीखता।
१२६७) सबसे अकलमन्द वह शख्स है जो अपनी बात को अच्छी तरह साबित कर सके।
१२६८) एक अच्छी किताब जिन्दगी का सरमाया (नेक पूंजी) है।
१२६९) लोग समय को बर्बाद नहीं करते बल्कि वे इसे ऐसी चीजों को करने पर खर्च करते हैं जिन्हे इनको करने की जरूरत ही नहीं होती।
१२७०) जो आदमी छोटी-छोटी कठिनाइयों को झेल नहीं पाते वे कभी भी कोई बडा काम पूरा नहीं कर सकते।
१२७१) जिस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है वह प्रश्न कभी कठिन हो ही नहीं सकता।
१२७२) समस्त रोषों में सबसे भयंकर रोष (प्रकोप) जनता का रोष होता है।
१२७३) किसी भी कार्य के संबंध की हित-अहित संबंधी योजना को गुप्त रखने से ही कार्य सिद्ध हो पाता है।
१२७४) कर्तव्य में शक्ति संचार करने वाली वस्तु मंत्र (सुविचार) ही है।
१२७५) सच्चे मित्रों का साथ मिलने से मनुष्य को बल प्राप्त होता है।
१२७६) आलस्य मनुष्य के शरीर में रहने वाला महाशत्रु है।
१२७७) आलसी, मन्दबुद्धि, सुखासक्त, रोगी, निद्रालु तथा कामुक- ये छह लोग निंदित माने गए हैं।
१२७८) विद्या, अनुभव और धर्म ज्ञान सम्पन्न लोग ही तीर्थ कहलाते हैं।
१२७९) शत्रु, मित्र अकारण न होकर कारणवश होते हैं।
१२८०) बनिया (वैश्य) बिना लाभ के सीधे मुंह बात नहीं करता।
१२८१) शत्रु राजा की सासों तक का ज्ञान रखना आवश्यक है।
१२८२) जिस वेश को देखकर लोगों के मन में घृणा, कटुता उत्पन्न हो, वह वेश धारण न करें।
१२८३) व्यसन आसक्ति के कारण कार्य सफल नहीं हो पाते हैं।
१२८४) संपत्तियों को भी गुणों का लोभ होता है।
१२८५) आखेट (शिकार) प्रेमी के धर्म और अर्थ दोनों नष्ट हो जाते हैं। इस ओर मनुष्य को प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।
१२८६) कामी व्यक्ति सूक्ष्म कार्यों पर ध्यान नहीं दे सकता।
१२८७) कर्कश-अश्लील वाणी दुष्ट मन से ही निकलती है।
१२८८) मनुष्य की वृद्धि और विनाश उसके अपने व्यवहार पर निर्भर करता है।
१२८९) दंड का प्रयोग सोच-समझकर करना चाहिए।

१२९०) जिस प्रयत्न से कार्य सिद्धि हो वही उपाय करना चाहिए।
१२९१) सत्संग ही स्वर्ग निवास है।
१२९२) सुबुद्धि हीन व्यक्ति घृणा का पात्र होता है।
१२९३) पुत्र की स्तुति नहीं करनी चाहिए।
१२९४) भाग्य पुरुषार्थ के पीछे चलता है अर्थात् पुरुषार्थ के द्वारा भाग्य अनुकूल हो जाता है।
१२९५) कार्य के उचित समय को पहचानना ही मनुष्य के सीखने की सर्वोत्तम कला मानी गई है।
१२९६) अपने निर्धारित कर्तव्य को पूरा करने में एक क्षण की भी देरी न करो।
१२९७) कभी किसी पुरुष का अपमान मत करो।
१२९८) राजाज्ञा पालन में अकारण विलम्ब नहीं करना चाहिए।
१२९९) क्षमा करना मानव धर्म है।
१३००) ऐश्वर्य का फल आज्ञा है।
१३०१) व्याधि शत्रु से भी अधिक हानिकारक होती है।
१३०२) धनलोभ मनुष्य की बुद्धि को ढक देता है।
१३०३) धर्म-रक्षा (सत्य-रक्षा) मानव को विश्व विजेता बना देती है।
१३०४) अपने हितैषियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।
१३०५) दुष्ट होने पर माता भी त्याज्य होती है।
१३०६) चोरों का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।
१३०७) छोटा सा भी व्यसन मनुष्य के सर्वनाश का कारण बन जाता है।
१३०८) दरिद्रता रूपी जीवन मानव का अभिशाप है।
१३०९) धन से समाज-सेवा का कार्य करना चाहिए।
१३१०) संसार का कोई भी तप सत्य से श्रेष्ठ नहीं है।
१३११) गुरुजनों का छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए।
१३१२) जब तक ऋण, अग्नि, शत्रु तथा व्याधि को पूरा खत्म न कर डालो तब तक शांति से मत बैठो।
१३१३) सभा में शत्रु की निंदा नहीं करनी चाहिए।
१३१४) बुद्धिमानों के शत्रु नहीं होते।
१३१५) योग्य पात्र को दिया गया दान व्यर्थ नहीं जाता।
१३१६) अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करनी चाहिए।
१३१७) किसी भी काम में जल्दबाजी मत करें और न ही हठपूर्वक अपनी राय पर आग्रह करें।
१३१८) एक सुअवसर छूट जाये तो दूसरे अवसर अवश्य मिलते है।
१३१९) खुद को आम कर देने वाले लोग बड़ी जल्दी भूला दिये जाते है।
१३२०) इश्क-मजहब, जात-पात, रंग, उम्र और देश की सरहदों के बन्धन को नहीं मानता।
१३२१) दूसरों की शिकायत करना अपनी कमजोरियों को कबूल करना है।
१३२२) जाति विहीन समाज के बिना स्वराज्य प्राप्ति का कोई महत्व नहीं है।
१३२३) निराशा और अवसाद से भरा मनुष्य, जीवित होते हुए भी मृत समान होता है।
१३२४) निराशा से बचने का एकमात्र उपाय, आपके अंत:करण में आशा की चेतना जगाना है।
१३२५) निराशा हमारी आशाओं और आकांक्षाओं को नष्ट कर डालती है।

१३२६) चिंतन मनुष्य को शक्तिशाली और आत्मविश्वासी बनाता है।
१३२७) विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का गुण बहुत आवश्यक है।
१३२८) विश्वास ही जीवन है और संदेह मृत्यु।
१३२९) असफलता गिरने में नहीं असफलता गिर कर हार मान लेने में है।
१३३०) महापुरुषों ने असफलता को ही सफलता की सीढ़ी बताया है।
१३३१) जिस व्यक्ति में आत्मविश्वास हो उसे सफलता पाने से कोई नहीं रोक सकता।
१३३२) हमें साहसपूर्वक अंधकार के छंटने और प्रकाश के आने की आशा कभी नहीं छोड़नी चाहिए।
१३३३) साहसी मनुष्य परिस्थितियों के दास नहीं, स्वामी होते हैं।
१३३४) मनुष्य का व्यक्तित्व और चरित्र ही सफलता का आधार है।
१३३५) अपने आत्मविश्वास और चरित्र के बल पर एक साधनरहित व्यक्ति भी महान् सफलता प्राप्त कर सकता है।
१३३६) साहस के अभाव में कोई भी व्यक्ति आगे नहीं बढ़ सकता।
१३३७) साहस के साथ अंधेरे से प्रकाश की ओर बढ़ चलो।
१३३८) जो कोई हताश व्यक्ति को सान्त्वना देता है, उसे वैसा ही पुरस्कार दिया जाएगा।
१३३९) सबसे अच्छा आदमी वह है, जिससे मानवता की भलाई होती है।
१३४०) वह सच्चा है, जो अपने हाजिर और गैरहाजिर भाई की सुरक्षा करता है।
१३४१) समान परिस्थितियों में जब दूसरे लोग संघर्षों की मार से दब जाते हैं, तब ईश्वर पर भरोसा करने वाले विजय प्राप्त करते हैं।
१३४२) अपने आप से कहो- मेरे जीवन की सफलता मेरे अपने हाथ में है। मेरा ईश्वर में विश्वास है।
१३४३) जो ईश्वर की छत्रछाया में रहते हुए जीवन जीते हैं, ईश्वर उनकी रक्षा करता है।
१३४४) ईश्वर के संरक्षण में रहते हुए उस पर विश्वास करोगे तो विश्वास तुम्हारी रक्षा करेगा।
१३४५) अपने मन में सदा अच्छे विचारों को स्थान दो।
१३४६) प्रत्येक व्यक्ति को अपने को तौलकर मार्ग चुनना है।
१३४७) ज्ञान प्राप्त करने के लिए चीन भी जाओ, यानी दुनिया के छोर तक जाओ। पालने से लेकर कब्र तक ज्ञान की खोज करो।
१३४८) ज्ञानियों की बातों को सुनना तथा विज्ञान की सीखों को दूसरों को बताना बेहतर धर्माचरण है।
१३४९) ज्ञानार्जन प्रत्येक स्त्री और पुरुष का एक अनिवार्य कर्तव्य है।
१३५०) मजबूत और ताकतवर वही है जो गुस्से की हालत में खुद को सम्भाल ले। तू कभी क्रोधित न होना।
१३५१) परिवार विदा हो गए तो राष्ट्र विदा हो जाएंगे क्योंकि परिवार राष्ट्र की इकाई है।
१३५२) हम यहीं पर इस पृथ्वी पर स्वर्ग निर्मित कर सकते हैं।
१३५३) जिसने सुनना सीख लिया, जिसे श्रवण की कला आ गई, उसे तत्क्षण समझ में आना शुरू हो जाएगा, कहां मिलती है उपशांति।
१३५४) अगर कोई व्यक्ति तीन वर्ष तक बिल्कुल मौन रख ले, तो कुछ और करना न पड़ेगा, भीतर का विचार अपने आप टूट जाएगा।
१३५५) मौन में और करुणा में विरोध नहीं है। मौन से करुणा पैदा होती है और करुणावान व्यक्ति धीरे-धीरे मौन होता चला जाता है।
१३५६) मनुष्यता के जीवित बने रहने के लिए वैज्ञानिक सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोग हैं।
१३५७) हम इस धरती को प्रतिभासम्पन्न, मेधावी और स्वस्थ लोगों से आपूरित कर सकते हैं।
१३५८) शुद्ध चैतन्य की यात्रा व प्राप्ति ही जीवन का शुद्ध आनंद है, बाकी सब आनंद थोथे और नकली हैं।
१३५९) मनुष्य के विचार उसके व्यक्तित्व का दर्पण होते हैं।
१३६०) असन्तुष्ट ब्राह्मण तथा सन्तुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं। लज्जा करने वाली वेश्या तथा निर्लज्ज कुलीन घर की वधू नष्ट हो जाती है।
१३६१) प्रेम-प्रेम को जगाता है। घृणा-घृणा को जगा देती है। हम जो देते हैं हम पर वही वापिस लौट आता है। यही शाश्वत नियम है।

१३६२) प्रेम जोड़ देता है और अनेक को एक कर देता है।
१३६३) सत्य की साधना के लिए कुछ सूत्र है- वर्तमान में जीना। सहजता से जीना। अकेले जीना।
१३६४) इस पृथ्वी को आप वैसे ही पाएंगे जैसे आप हैं।
१३६५) अगर आज के कर्मों का फल नहीं मिल रहा तो वह अगले जन्म में मिलेगा।
१३६६) व्यर्थ समय जाया न करो, आलसी मत बनो, काम करो, प्रभु का नाम लो, शास्त्रों का वाचन करो।
१३६७) नैतिक कानून की मर्यादा का पालन करो, तुम्हें अपना लक्ष्य मिलेगा- प्रभु तो नीतिमत्ता का मूर्तिमंत्र रूप है।
१३६८) अपनी पत्नी के अलावा अन्य किसी पर काम की वासना न रखें।
१३६९) गुणहीन का रूप, दुराचारी का कुल तथा अयोग्य व्यक्ति की विद्या नष्ट हो जाती है। धन का भोग न करने से धन नष्ट हो जाता है।
१३७०) चांचल्य और अशांति एक संक्रामक रोग है।
१३७१) दीन-दुखियों के लिए सहानुभूति भाव रखो, उन्हें कष्ट न दो, उन्हें चिढ़ाओ मत।
१३७२) प्रारब्ध कर्मों की यातना से गुजर कर ही तुम मुक्त हो सकते हो।
१३७३) यह सुख और दुख केवल व्यक्तिगत मूल्यांकन है- भ्रममात्र है और विनाश करने वाला है।
१३७४) मन में जब कभी सुख-दुख की कल्पना उभरे, उसका विरोध करो। उसे घर मत करने दो। वह शुद्ध भ्रांति है।
१३७५) धन की जीवन में जरूरत है- जैसे पित्त की स्वास्थ्य के लिए, पर धन के प्रभाव में मदहोश नहीं होना चाहिए।
१३७६) क्या सत्य है, क्या असत्य है- इसकी जिज्ञासापूर्वक जांच करनी चाहिए।
१३७७) स्वभाव ही मनुष्य के जीवन का स्वर्ग या नर्क निर्धारित करता है।
१३७८) हमारे स्वभाव का प्रभाव हमारे परिवार के दूसरे किसी सदस्य की उन्नति या अवनति पर भी पड़ता है।
१३७९) मानव जीवन में इतना दुष्प्रभाव कोई अन्य भावना नहीं डालती जितना क्रोध।
१३८०) शांति और धैर्य जीवन के मूल-मंत्र हैं।
१३८१) व्यक्ति के स्वभाव पर उसका भविष्य निर्भर करता है।
१३८२) प्रसन्नता प्रकृति प्रदत्त एक अमूल्य उपहार है। प्रसन्नता से मनुष्य को शारीरिक और आर्थिक दोनों ही लाभ होते हैं।
१३८३) जिस प्रकार सूर्य की धूप वनस्पतियों के लिए लाभप्रद है, उसी प्रकार हंसी शरीर के लिए लाभप्रद है।
१३८४) जो स्त्रियां घर का उत्तमोत्तम प्रबंध करती हैं, वही सर्वाधिक सुखी और सर्वाधिक आनंदपूर्ण भी होती हैं।
१३८५) चाहे राजा हो या किसान, लेकिन सबसे अधिक सुखी व्यक्ति वही है जिसे अपने घर में शांति प्राप्त होती है।
१३८६) अपने विचारों पर अटल रहें, फिर देखें कैसे आपकी विजय पताका नहीं फहराती।
१३८७) आलस्य से बढ़कर आपका कोई दुश्मन नहीं। आलस्य आपको समूल नष्ट करने की क्षमता रखता है।
१३८८) संकल्प और सफलता एक-दूसरे के पूरक हैं।
१३८९) समृद्धि का रहस्य है- समृद्ध विचार।
१३९०) मनुष्य की सबसे बड़ी पूंजी उसका साहस और आत्मविश्वास होता है।
१३९१) घर की खुशहाली में स्वभाव का बड़ा महत्व होता है।
१३९२) वैवाहिक जीवन में तो पति-पत्नी का स्वभाव ही जीवन की बुनियाद है।
१३९३) जैसे विचार वह मन में रखेगा वैसे ही भाव उसके चेहरे पर उभर आते हैं।
१३९४) जिनका मन उत्साहपूर्ण, स्फूर्तिदायक, आध्यात्मिक विचारों से परिपूर्ण रहता है वे सदा युवा रहकर दीर्घायु को प्राप्त होते हैं।
१३९५) विचार मनुष्य के कर्म एवं भविष्य का लक्ष्य निर्धारित करने में अहम् भूमिका निभाते हैं।
१३९६) यदि विचारों में दृढ़ता नहीं होगी तो कोई भी व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता।
१३९७) सदैव सुनहरे भविष्य की कल्पना कीजिए क्योंकि अच्छा सोचना बहुत उत्तम है।

१३९८) सफलता तो तभी मिलती है जब आप अपनी कल्पना के ढांचे में कर्म का रंग भी भरें।

१३९९) अपने आदर्शों पर दृढ़ रहिए।

१४००) आत्मा इच्छाओं को बल और बढ़ावा देती है।

१४०१) यदि आप परिश्रम से घबराएंगे तो समझिए सफलता आपसे दूर चली गई है।

१४०२) आप अपने सबसे बड़े गुरु व निर्देशक हैं। पहले अपने अंदर मजबूती लाइए। अपने विचारों को दृढ़ कीजिए।

१४०३) आप अपनी जिम्मेदारियों पर विचार करके अपने कार्यक्रम बनाएं।

१४०४) पहले आदर्श सामने रखिए। फिर वैसे ही अपने विचार बनाकर प्रयास कीजिए।

१४०५) शक्तिशाली विचार ही साकार रूप लेते हैं।

१४०६) अच्छे विचारों के दरवाजे पर सफलता स्वयं दस्तक देती है।

१४०७) जिसने अपनी भावनाओं को वश में कर लिया उसने सब कुछ पा लिया।

१४०८) आत्मसंयमी केवल स्वयं पर ही नहीं अपितु दूसरों पर भी शासन करता है।

१४०९) ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं होता कि उसकी प्रकृति को उचित रूप से संवारा-सुधारा न जा सके।

१४१०) कौन ऐसी मां, बालक पर शासन करने की आशा रख सकती है जो स्वयं पर ही अंकुश नहीं रख पाती हो।

१४११) सफल व्यक्ति की सफलता का रहस्य है- स्वयं पर नियंत्रण।

१४१२) संगीत से जो कार्य शक्ति प्राप्त होती है, वह असंभव कार्यों को भी संभव बना देती है।

१४१३) मन में आशा तथा उत्साह का संचार करने के लिए संगीत को अपना साथी बनाइए।

१४१४) कोमल हृदयवाले व्यक्तियों की चित्तवृत्ति प्राय: करुणामयी होती है।

१४१५) जिसके घर में पत्नी अप्रिय भाषिणी हो उसे वनवासी हो जाना चाहिए। क्योंकि उसके लिए वन और घर बराबर हैं।

१४१६) बातचीत शुरू होने पर व्यर्थ ही शब्दों का अपव्यय रोकने की अपेक्षा मनुष्य के लिए मौन धारण कर लेना सदा ही अधिक सरल है।

१४१७) सच और दया धर्म के दो प्रहरी हैं जो धर्म की निगरानी करते हैं। इनके दूर होते ही धर्म लुट जाता है।

१४१८) क्षमा हृदय का धर्म है।

१४१९) जिस प्रकार ग्वाले के बिना गायें नष्ट हो जाती है उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा का नाश हो जाता है।

१४२०) संसार के प्राणियों के लिए उचित अनुचित के निर्णय में राजा प्रमाणभूत होता है यदि वह मिथ्या बोलता है तो नष्ट हो जाता है।

१४२१) श्रद्धा या आस्था के बिना जीवन दृष्टि तो नहीं होती, जीने का ढर्रा या नक्शा भर बन सकता है।

१४२२) श्रद्धा धर्म की अनुगामिनी है। जहां धर्म का स्फुरण दिखाई पड़ता है, वहीं श्रद्धा टिकती है।

१४२३) महत्वपूर्ण सिद्धान्त लचीले होने आवश्यक हैं ताकि सबके लिए सब समय उपयोगी रहें।

१४२४) बुरा व्यक्ति उस समय और भी बुरा हो जाता है जब वह अच्छे होने का ढोंग रखता है।

१४२५) यत्न व्यर्थ है जब तक कि लक्ष्य का पता न लगे।

१४२६) जैसे बिना नाविक की नाव और बिना सारथी के रथ की भांति सेनापति के बिना सेना भी जहां चाहे भाग सकती है।

१४२७) जैसा तुम्हारा लक्ष्य होगा, वैसा ही जीवन भी होगा।

१४२८) विवेक रहित लोगों का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

१४२९) राजनीति अब विश्व में ऊंचा उठने के साधन से अधिक कुछ नहीं है। राजनीति वेश्या की तरह अनेक रूपिणी होती है।

१४३०) मित्र की दी हुई कड़वी वस्तु भी मीठी हो जाती है।

१४३१) विद्वान सामने आए हुए युद्ध को उपायों द्वारा शांत कर दे। विजय के अनित्य होने के कारण युद्ध में तेजी से संलग्न नहीं हो।

१४३२) क्षमा दंड से बड़ी है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा पवित्रता है।

१४३३) जिसे अपनी जीत का दृढ़ विश्वास है वह प्राणी जिंदगी में कभी भी हार नहीं सकता।

HHH(४१४)HHH

१४३४) राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से वह नहीं बढ़ती।

१४३५) मनुष्य समझ कर बालक राजा भी अपमान करने योग्य नहीं हैं क्योंकि वह मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित बड़ी दैवी शक्ति ही है।

१४३६) प्रजा को प्रसन्न रखना, सत्य की रक्षा करना और व्यवहार में सरलता रखना राजाओं का सनातन धर्म है।

१४३७) तीन हाथ के शरीर में सम्पूर्ण शरीर छिपा है।

१४३८) गलत लोग हमेशा अनुपस्थित होते हैं।

१४३९) सुस्त लोग हमेशा चाहते रहते हैं कि कुछ करें।

१४४०) हमारी सारी गलतियों में सुस्ती ही एक ऐसी गलती है जिसे हम आसानी से माफ कर देते हैं।

१४४१) देखो कितना अच्छा व सुहाना लगता है भाई-बन्दों का एक साथ एकता में रहते देखना।

१४४२) राजनीतिज्ञ अगले चुनाव की बात सोचता है और राजनेता इसके विपरीत अगली पीढ़ी की चिंता करता है।

१४४३) राजनीति विज्ञान है, जिसका साध्य मनुष्य का कल्याण ही होना चाहिए।

१४४४) राजलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा की तरह चंचल होती है।

१४४५) जब राजा के बहुत से कर्मचारी देश में अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगते हैं तब उसका भारी पाप राजा को लगता है।

१४४६) राजचक्र सब को पीसता है। राजा की भाषा जीविका की कुंजी है।

१४४७) बिना विश्वास के कोई काम हो ही नहीं सकता।

१४४८) दस साधु एक कम्बल में सो सकते हैं, लेकिन दो राजा एक साम्राज्य में नहीं रह सकते।

१४४९) भली प्रकार संभाल कर रखने से अनाज की रक्षा होती है। फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं। बार बार देखभाल करने से गायों की रक्षा होती है।

१४५०) सच बोलने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि तुम्हें याद नहीं रखना पड़ता कि तुमने किस से क्या कहा था।

१४५१) हार क्या है ? शिक्षा के अतिरिक्त कुछ नहीं, एक अच्छी स्थिति के लिए केवल पहला कदम है।

१४५२) ज्ञान और विज्ञान तेरी रक्षा करें।

१४५३) पृथ्वी पर तीन रत्न हैं- जल, अन्न और सुभाषित। मूर्ख लोग ही पाषाण खण्डों को रत्न नाम देते हैं।

१४५४) सिर सलामत तो पगड़ी हजार।

१४५५) सज्जन अपनी उपयोगिता कार्य से दिखाते हैं, कंठ से नहीं बताते हैं।

१४५६) मनुष्य की उत्पत्ति और पालन-पोषण में माता-पिता जो कष्ट सहते हैं उनका सैकड़ों वर्षों में भी बदला नहीं चुकाया जा सकता है।

१४५७) ऐश्वर्य, लक्ष्मी, लज्जा, धृति और कीर्ति ये कार्यदक्ष पुरुष में ही निवास करते हैं, आलसी में नहीं।

१४५८) अच्छे या बुरे विचार ही कर्म या करतूत को जन्म देते हैं जिनसे इंसानी चरित्र या चित्र बनता है।

१४५९) हर व्यक्ति अपने स्वभाव के अच्छे बुरे होने का मूल्य हर जगह चुकाता या कमाता है।

१४६०) अशान्त को सुख कैसे हो सकता है ?

१४६१) कर्म क्या है और अकर्म क्या है- इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित होते हैं।

१४६२) सबसे अधिक शक्तिशालियों के भी क्षण आते हैं जब वे थक जाते हैं।

१४६३) यहां संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है।

१४६४) वैर का अंत मरने के साथ हो जाता है।

१४६५) वैभव की नश्वरता विलक्षण है।

१४६६) अपने समान ही दूसरों को भी देखो।

१४६७) साहस में ही सम्पत्ति निवास करती है।

१४६८) बिना त्याग के धन की शोभा नहीं होती और रसहीन वाणी की भी शोभा नहीं होती।

१४६९) विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

१४७०) प्रार्थी व्यक्ति को लक्ष्मी मिले या न मिले, किन्तु जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह लक्ष्मी के लिऐ कैसे दुर्लभ हो सकता है।
१४७१) ऐसा कोई नहीं है जिसे पहले अनुकूलता दिखाकर बाद में नीच की प्राप्ति सदृश इस लक्ष्मी ने सलप्त न किया हो।
१४७२) अकस्मात् प्राप्त लक्ष्मी किसको मत्त नहीं कर देती।
१४७३) किसके कुल में दोष है, कौन व्याधि से पीड़ित नहीं है, कौन कष्ट में नहीं पड़ता तथा लक्ष्मी निरंतर किसके पास रहती है ?
१४७४) लेने, देने और करने योग्य कार्य यदि तुरन्त नहीं कर लिया जाता, तो समय उसका रस पी जाता है।
१४७५) मांगोगे तो तुम्हें दिया जाएगा। ढूंढोगे तो तुम पाओगे। खटखटाओगे तो तुम्हारे लिए द्वार खोला जाएगा।
१४७६) एक दु:खरूपी समुद्र को पार ही नहीं कर पाता हूं कि दु:ख आ जाता है। विपत्तियों पर विपत्तियां आती ही रहती हैं।
१४७७) उन्नति की क्षमतावालों पर ही विपत्तियां आती हैं।
१४७८) विपत्ति में जिसके हृदय से सद्ज्ञान उत्पन्न न हो वह सूखा वृक्ष है जो पानी पा कर पनपता नहीं बल्कि सड़ जाता है।
१४७९) मान ही राजाओं का शरीर कहलाता है।
१४८०) लोग राजा के वचन का अनुगमन भयवश प्रतिध्वनि के समान करते हैं।
१४८१) पुरुष रूपी रत्नों का एक मात्र आधार राजा रूपी समुद्र ही है।
१४८२) लोग अन्धे के समान योगायोग्य एवं हिताहित नहीं देखते तथा उसी मार्ग से जाते हैं जिससे राजा ले जाते हैं।
१४८३) जिस प्रकार प्राणी उत्पन्न होकर गर्भवास की व्यथा विस्मृत कर देता है उसी प्रकार राजा राज्य प्राप्त कर पूर्व नियत चिंतन को भूल जाता है।
१४८४) आर्यत्व न तो रंग में ही है और न कुल में ही है। जहां देवों की शरण में जाने की शक्ति है, वहीं आर्यत्व है।
१४८५) मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।
१४८६) प्रतिक्षण यह शरीर नष्ट होता रहता है किन्तु दीखता नहीं।
१४८७) किसी को कार्य का आरंभ करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है और किसी का परम प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है।
१४८८) जो जिस वस्तु को पाने की इच्छा करता है, वह उसको अवश्य ही प्राप्त कर लेता है यदि बीच में ही प्रयत्न को न छोड़ दे।
१४८९) धीर पुरुष उद्यम प्रारंभ करने के अनंतर असफल हो कर नहीं लौटते हैं।
१४९०) जिसके जीने से संसार में बहुत से लोग जीवित रहें वही इस संसार में वास्तव में जीता है।
१४९१) उत्साह सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना- ये कार्य की सिद्धि कराने वाले गुण कहे गए हैं।
१४९२) हिन्दू धर्म एक महासागर है। जैसे सागर में सब नदियां मिल जाती हैं, वैसे हिन्दू धर्म में सब समा जाते हैं।
१४९३) किसी बात पर हठ करना नहीं चाहिए। हठ किया हो तो उसको अंत तक छोड़ना भी नहीं चाहिए।
१४९४) जब तक तुम्हारे अंदर धन कमाने और बचाने की शक्ति है तभी तक तुम्हारे आश्रित तुम से चिपके रहेंगे।
१४९५) जब राजा अन्याय करता है तो उसे रोकने में कौन समर्थ होगा।
१४९६) ज्ञान धन से उत्तम है, धन की तो तुम्हें रक्षा करनी पड़ती है, पर ज्ञान स्वयं तुम्हारी रक्षा करता है।
१४९७) राग तो सुख के संस्कार से उत्पन्न होता है और द्वेष, दु:ख के संस्कार से।
१४९८) लोग राजदंड के भय से अपने अपने धर्म के पालन में लगे रहते हैं। प्राय: राजा लोग अनियमित मन वाले होते हैं।
१४९९) हमें मौन में जाना चाहिए, अंदर ही उतरें, मौन में ही सुनें, मौन में ही देखें।
१५००) प्रत्येक वस्तु का जन्म अज्ञान से होता है। ज्ञान से उसका नाश हो जाता है।
१५०१) दुष्टों तथा काँटों का दो ही प्रकार का इलाज है। जूतों से कुचल देना या दूर से ही छोड़ देना।
१५०२) हाथी को अंकुश से, घोड़े को हाथ से, सींगों वाले पशुओं को लकड़ी से तथा दुष्ट को खडग् हाथ में लेकर पीटा जाता है।
१५०३) धर्म, धन, धान्य, गुरु की सीख तथा औषधि इनका संग्रह करना चाहिए। अन्यथा व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता।
१५०४) दान देने की आदत, मधुर बोलना, धीरज तथा उचित ज्ञान- ये चार बातें व्यक्ति के सहज गुण हैं; जो अभ्यास से नहीं आते।
१५०५) शेर से- छोटा हो या बड़ा, जो भी कार्य करना चाहे, उसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर करे। यह गुण शेर से सीखना चाहिए।

१५०६) आग, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कुंवारी कन्या, बूढ़े लोग तथा बच्चों को पांव से नहीं छूना चाहिए। ऐसा करना असभ्यता है।
१५०७) गलती हो जाने पर जो पछतावा होता है, यदि ऐसी बुद्धि पहले ही आ जाए, तो भला कौन उन्नति नहीं करेगा।
१५०८) धन और अनाज के लेन-देन, विद्या प्राप्त करते समय, भोजन तथा आपसी व्यवहार में लज्जा न करने वाला सुखी होता है।
१५०९) परिश्रम करने से दरिद्रता, जप से पाप दूर होता है। मौन (चुप) रहने से कलह और जागते रहने से भय दूर होता है।
१५१०) लड़ाई हो जाने पर, भयंकर अकाल पड़ जाने पर और दुष्टों का साथ मिलने पर भाग जाने वाला व्यक्ति ही जीता है।
१५११) भय से तभी तक डरना चाहिए, जब तक वह दूर हो, किन्तु जब पास आ जाए, तो फिर निडर होकर उससे लड़ना चाहिए।
१५१२) दरिद्रता, रोग, दु:ख, बन्धन और व्यसन ये सभी मनुष्य के अपराधरूपी वृक्ष के फल हैं।
१५१३) स्त्री-पुरुष, माता-पिता, भाई-भाई, स्वामी-भृत्य, बहिन-बहिन, मित्र-मित्र, गुरु-शिष्य इन सबके बीच परस्पर भेद न डालें।
१५१४) विदेश का मित्र विद्या, घर की मित्र स्त्री, रोगियों की मित्र औषधि तथा मृतक का मित्र धर्म होता है।
१५१५) समुद्र के लिए वर्षा, पेट भर के लिए भोजन, धनी के लिए दान और दिन में रोशनी के लिए दीपक जलाना व्यर्थ है।
१५१६) निर्धन धन चाहता है। पशु वाणी चाहता है। मनुष्य स्वर्ग चाहता है। देवता मुक्ति की कामना रखते हैं।
१५१७) पुरुषों में नाई, पक्षियों में कौवा, चौपायों में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन चालाक होती है।
१५१८) धन का उपयोग समाज कल्याण, परोपकार तथा जरूरतमंदों की सहायता में ही करना उचित होता है।
१५१९) बिना संतान के घर शून्य, बिना भाइयों के दिशा शून्य, मूर्ख का हृदय शून्य तथा निर्धन का सब कुछ शून्य होता है।
१५२०) जिस धर्म में दया न हो, जिस गुरु में ज्ञान न हो, क्रोध करने वाली स्त्री और स्नेह हीन भाइयों को छोड़ देना चाहिए।
१५२१) किसी भी मनुष्य की परख उसके त्याग, शील, गुण और आचार से होती है।
१५२२) मूर्ख पंडित से, गरीब धनी से, वेश्या भले घर की स्त्रियों से, विधवा सुहागिन से द्वेष रखती है।
१५२३) अभ्यास से विद्या का, सुशीलता से वंश का, गुण से मनुष्य का, आंखों से क्रोध का पता चलता है।
१५२४) धन से धर्म की, यम-नियम आदि से योग विद्या की, मृदुता से राजा की, अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है।
१५२५) काम के समान कोई रोग नहीं, अज्ञान के समान शत्रु नहीं, क्रोध के समान अग्नि और ज्ञान से बढ़कर सुख नहीं।
१५२६) कुमित्र पर भूलकर भी विश्वास न करें, क्योंकि नाराज होने पर वह सारी गोपनीय बातें प्रकट कर देगा।
१५२७) सच्चा मित्र वही है जो मित्र की रक्षा करे। मित्रता बंधु (भाई) से बढ़कर होती है।
१५२८) प्रत्येक मित्रता स्वार्थ पर आधारित होती है। बिना इसके कोई भी मित्रता नहीं करता।
१५२९) मित्र के परिवार की किसी भी स्त्री से सम्बन्ध स्थापित करने वाला सबसे बड़ा पापी होता है।
१५३०) जिसकी स्त्री दुष्ट, मित्र शठ हो, जवाब देने वाला नौकर हो, जिस परिवार में सांप रहता हो, वहां मृत्यु अवश्य होती है।
१५३१) मूर्खता दु:खदायी होती है। जवानी भी दु:ख देने वाली होती है पर किसी पराए घर में रहना सबसे ज्यादा दु:खदायी होता है।
१५३२) महापुरुषों का चरित्र भी विचित्र होता है। लक्ष्मी को तो मानते ही तिनके के समान हैं, किन्तु उसके भार से दब जाते हैं।
१५३३) बावड़ी, कुएं, तालाब, देवमंदिर, बाग-बगीचा आदि को नष्ट करने वाले को ब्राह्मण म्लेच्छ कहा जाता है।
१५३४) निश्चित वस्तु को छोड़कर जो व्यक्ति अनिश्चित की ओर भागता है, वह निश्चित वस्तु से भी हाथ धो बैठता है।
१५३५) नदियों, शस्त्रधारियों, नख-सींग वाले पशुओं, स्त्रियों और राजकुल के लोगों का कदापि विश्वास न करना चाहिए।
१५३६) धनहीन व्यक्ति हीन नहीं कहा जाता। उसे धनी ही समझना चाहिए। जो विद्या रत्न से हीन है। वह सभी वस्तुओं से हीन है।
१५३७) जिसके पास स्वयं अपनी बुद्धि नहीं है, उसके लिए शास्त्र क्या कर सकते हैं। आंखों के अंधे के लिए दर्पण क्या करेगा।
१५३८) जो जिसके गुणों को जानता ही नहीं, वह यदि उसकी निन्दा करे, तो इसमें आश्चर्य कैसा।
१५३९) गुणों की ही सर्वत्र पूजा होती है। धन अत्यधिक होने पर भी सब जगह नहीं पूजा जाता।
१५४०) गुण भी योग्य विवेकशील व्यक्ति के पास जाकर ही सुन्दर लगता है। क्योंकि सोने में जड़े जाने पर ही रत्न सुन्दर लगता है।
१५४१) संतान जल के समान होती है। उसको जैसा बनाओगे, वैसी वह बनेगी।

१५४२) जिसका पुत्र वश में हो एवं आज्ञाकारी हो, जो प्राप्त धन से संतोष कर लेता हो, उस परिवार में स्वर्ग का सुख होता है।
१५४३) एक ही मां के गर्भ से एक ही नक्षत्र में उत्पन्न दो संतान शील-स्वभाव से एक जैसी नहीं होती। जैसे-बेर और कांटे।
१५४४) उच्चकुल में पैदा होने पर भी विद्या हीन का सम्मान नहीं होता। परन्तु नीच कुल में उत्पन्न विद्वान भी पूजा योग्य होता है।
१५४५) आयु, कर्म, विद्या, सम्पत्ति और मृत्यु- ये पांच चीजें प्राणी को उसकी गर्भावस्था में मिल जाती हैं।
१५४६) भाग्य राजा को रंक तथा रंक को राजा बना देता है। धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बना देता है।
१५४७) झूठ, साहस, छल-कपट, मूर्खता, अधिक लोभ, अपवित्रता, निर्दयता ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं।
१५४८) धन से धर्म की, भोग से विद्या की, मृदुता से राजा की तथा अच्छी स्त्री से घर की रक्षा होती है।
१५४९) राजा, गुरु, मित्र की पत्नी तथा सास, मां के समान होती है। इनसे अवैध सम्बन्ध रखने वाला महापापी होता है।
१५५०) किसी के लिये दुर्वचन न कहें और न किसी को देखें। बड़े लोगों एवं राजा की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करें।
१५५१) जब शत्रु लोग भी दान से मित्र बन जाते हैं तब दूसरों के लिए अन्य तो मित्र बन ही जाते हैं।
१५५२) चतुर स्त्री प्रात:काल पति से माता, दोपहर में बहन और रात को वेश्या के समान व्यवहार करती है।
१५५३) चेला अपने गुरु से बड़ा नहीं और न दास अपने स्वामी से। चेले का गुरु के और दास का स्वामी के साथ होना ही बहुत है।
१५५४) एकाधिकार रखनेवाला पापी और अन्यायी है।
१५५५) धर्म के बिना सुख नहीं होता है, अत: धर्म में तत्पर होना चाहिये।
१५५६) सावधान-चित्त होकर राजा, देवता, गुरु, अग्नि, तपस्वी एवं धर्म या ज्ञान में वृद्ध लोगों की नित्य भली-भांति सेवा करनी चाहिये।
१५५७) विद्या, शूरता, धन, कुल और बल के मद से मतवाला एवं अत्यन्त मानी कभी नहीं होना चाहिये।
१५५८) शत्रुओं के भी गुणों को ग्रहण करना चाहिये या उनका अभिनन्दन करना चाहिये और गुरुजनों के भी दुगुर्णों को छोड़ देना चाहिये।
१५५९) पशु भी चारा देने एवं पुचकार कर बुलाने से वश में हो जाते हैं फिर मनुष्यों के विषय में क्या कहना है।
१५६०) माता, पिता, गुरु, स्वामी, भाई, पुत्र तथा मित्र इन सबका क्षण भर के लिये मन से कभी विरोध नहीं करना चाहिये।
१५६१) स्वजनों के साथ विरोध, बलवान के साथ स्पर्धा एवं स्त्री, बालक, वृद्ध या मूर्ख के साथ विवाद कभी नहीं करना चाहिये।
१५६२) सोसनों के पेड़ों पर ध्यान करो कि वे कैसे बढ़ते हैं, वे न परिश्रम करते हैं, न कातते हैं।
१५६३) पुराना व्यभिचारी, झूठा राजा और घमण्डी फकीर अभिशप्त होते हैं।
१५६४) मजदूर को उसका मेहनताना उसके पसीने के सूखने से पहले दे दें।
१५६५) दूसरों से ईर्ष्या करने के मामले में सावधान रहो, क्योंकि असल में वह भलाई को ठीक वैसे ही खाती है, जैसे आग ईंधन को।
१५६६) कोई व्यक्ति जब गुस्से में हो, तो वह दो पक्षों के मुकदमे का फैसला न करे।
१५६७) जो व्यक्ति मित्रों से सत्कार पाकर और प्रयोजन सिद्ध करके भी मित्रों के हितकारी नहीं होते, उन मरे हुए कृतघ्नों को गिद्ध भी नहीं खाते।
१५६८) भृत्य, भाई, पुत्र और पत्नी भी जिस कार्य को पूर्ण नहीं कर सकते, उसी को उसके मित्र-गण नि:स्सन्देह पूर्ण कर देते हैं।
१५६९) पति को धोखा देनेवाली, पराये पति से रति करनेवाली स्त्री कल्प तक रौरव नरक में पड़ी रहती हैं।
१५७०) शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्प को छोटा नहीं मानना चाहिये।
१५७१) बैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते।
१५७२) भला भलाई को ही और नीच नीचता को ही ग्रहण करता है। अमृत की सराहना अमर करने में तथा विष की मारने में ही होती है।
१५७३) भविष्य का विचार करके आय का पाँचवा भाग बचाना चाहिये।
१५७४) तुम्हारे पास पैसा होगा तो सभी सगे सम्बन्धी सेवा करेंगे।
१५७५) बुढ़ापे के लिये अपने भाग का संग्रह करो। लड़कों से न माँगना पड़ जाये, इसलिये भी संग्रह करो।
१५७६) वासना पहले शूर्पणखा के समान सुन्दर लगती है। बाद में अपना असली रूप दिखाती है।
१५७७) स्त्री को स्त्री रूप में मत देखो-ब्रह्मरूप में देखो।

१५७८) भगवान् संपत्ति दे तो गाय रखना। गो सेवा से अपमृत्यु टलती है।
१५७९) पुत्र सुख थोड़ा देता है, दु:ख अधिक देता है।
१५८०) घर में मतभेद हो जाये तो तीर्थयात्रा के लिये निकल जाओ।
१५८१) मनुष्य का बड़ा दोष यही है कि वह सदा स्वयं को निर्दोष समझता है।
१५८२) भूतकाल का विचार करने से कोई लाभ नहीं है, वर्तमान को सुधारो।
१५८३) जीभ सुधरे तो जीवन सुधरे। जीभ बिगड़े तो जीवन बिगड़े।
१५८४) चोरी और व्यभिचार महापाप है। सगा भाई भी ये पाप करे तो उसका भी साथ छोड़ देना चाहिए।
१५८५) कंचन एवं कामिनी में जो फँसा है, उसे माया में उलझा हुआ समझना।
१५८६) पुत्र तो केवल अपने कुल को तारता है। पुत्री लायक हो तो पिता और पति दोनों कुलों को तारती है।
१५८७) कठोर वाणी से पति का अपमान करे, वह कौवी है।
१५८८) स्त्री स्त्री की मर्यादा में और पुरुष पुरुष की मर्यादा में रहे।
१५८९) रास्ते चलती स्त्री में जिसका मन फँसे, वह राक्षस। परस्त्री का चिन्तन करे, वह भी राक्षस।
१५९०) दूसरे का धन हरण करनेवाला धृतराष्ट्र-तुल्य होता है।
१५९१) आमन्त्रण देकर किसी का अपमान करने वाला सदासर्वदा नरक का भागी होता है।
१५९२) शाम के बाद स्त्रियों को घर से बाहर नहीं भटकना चाहिए।
१५९३) सन्ध्या-समय लक्ष्मी घर आती है, उस समय घर बन्द हो तो लक्ष्मीजी भी जय श्रीकृष्ण कहकर लौट जाती हैं।
१५९४) मनुष्य की जैसी दृष्टि होगी, संसार उसे वैसा ही दीखेगा।
१५९५) जो व्यक्ति अनुपस्थित है, उसके दोषों की चर्चा करना निन्दा है।
१५९६) स्त्रियों की अधिक अधीनता पाप है।
१५९७) माता सुशिक्षिता हो तो बालक को हजार शिक्षकों से अधिक शिक्षण दे सकती है।
१५९८) सिनेमा देखने से आँख, शरीर, मन और अन्त में जीवन बिगड़ जाते हैं। पैसा खर्च करके अन्धेरे में बैठना अज्ञानता है।
१५९९) बच्चे को सिनेमा भेजनेवाली माता, माता नहीं बच्चे की शत्रु है।
१६००) घर छोड़ने की जरूरत नहीं है। किन्तु घर में सावधान होकर रहने की जरूरत है।
१६०१) रात में ग्यारह बजे के बाद का काल राक्षस-काल गिना जाता है इस निषेध-काल में भोजन मत करो।
१६०२) सब दोषों की जड़ अभिमान है।
१६०३) किसी से शत्रुता करना अपना विकास रोकना है।
१६०४) मित्र को सदा मित्र ही रहने दो।
१६०५) ऐसे मित्र से दूर रहो जो मुंह का मीठा हो और पीठ पीछे बुराइयां करता हो।
१६०६) भूखे को खाने के लिये कोई नहीं पूछता पर जिसका पेट भरा हो उसे हर कोई खाने के लिये पूछता है।
१६०७) इस संसार में गिरे हुये को उठानेवाले मिलने मुश्किल हैं।
१६०८) धनवान की हर कोई चापलूसी करता है, कमजोर के साथ कोई बात भी नहीं करता।
१६०९) ऋण लेने से पहले सौ बार सोचो क्योकि यह मनुष्य की नींद हराम कर देता है।
१६१०) व्यापार में जो मनुष्य आय आमदनी और व्यय का हिसाब नहीं रखता वह प्राय: नष्ट हो जाता है।
१६११) जब तक आपके पास धन है सब आपके मित्र बनते रहेंगे।
१६१२) बेसहारा-यतीम-विधवा स्त्री की सहायता करना, गाय को चारा देना इससे आप पर प्रभु कृपा बनी रहेगी।
१६१३) कम काम करने के बजाय बहुत अधिक काम करने में ज्यादा आनन्द मिलता है।

१६१४) हम सबतभी आजाद होंगे जब सब मिल कर भ्रष्टाचार और जातिवाद को समाप्त कर पायेंगे।
१६१५)) आपसी झगडों को मुस्कुराहट से निपटाये।
१६१६) स्वदेश प्रियता मछली से सीखनी चाहिये जो पानी के लिये तडफ-तडफ कर प्राण त्याग देती है।
१६१७) सहन शक्ति से बडा अमोघ अस्त्र कोई नहीं, सारी आक्रमकता सहनशीलता के समक्ष नतमस्तक हो जाती है।
१६१८) धैर्यशाली और साहसी व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त करके ही रहते हैं। लक्ष्य प्राप्ति ही शूरवीरों का अभिष्ट है।
१६१९) शत्रु और रोग से सावधान न रहने पर दृष्ट प्राणी भी एक न एक दिन अवश्य नष्ट हो जाता है।
१६२०) प्रिय क्या है करना और न कहना। अप्रिय क्या है कहना और न करना।
१६२१) कोई भी व्यक्ति मानवता से बडा नहीं होता है।
१६२२) लक्ष्मी, महत्ता, कीर्ति और वैभव सभी परिश्रमी को मिलते है, आलसी को नहीं।
१६२३) परेशानी में मौन रहना सबसे अच्छा होता है।
१६२४) सांसारिक अनुकूलता तभी तक बाधक है, जब तक सांसारिक सुख की इच्छा विद्यमान है।
१६२५) जो अन्त तक हंसता है उसी की हंसी सर्वोत्तम है।
१६२६) व्यक्तिगत स्वार्थ की बजाय समाज कल्याण करने की कोशिश करो।
१६२७) किसी व्यक्ति का उसका व्यवहार ही दर्पण है जिसमें वह अपनी छवि प्रदर्शित करता है।
१६२८) कोई भी राष्ट्र अधिक कर्ज से न दबा हुआ हो तो वह उसके लिये आशीर्वाद ही है।
१६२९) काम, क्रोध और लोभ सब सद्कार्यों के पुण्यों को नष्ट कर देते है।
१६३०) मैं तुम्हे एक हृदय वाला, मन वाला तथा विद्वेष रहित बनाऊंगा।
१६३१) भय उसी के आस पास मंडराता है जो भयभीत रहता है। भय कुछ भी नहीं है सिवाय एक भ्रम के।
१६३२) जब व्यक्ति के हृदय में दिव्य भाव की वृद्धि होती है तब मानवीय दुर्बलतायें स्वत: नष्ट हो जाती है।
१६३३) यदि किसी दुष्ट कुल में बुद्धिमान कन्या हो तो उससे शादी कर लेनी चाहिये। गुण ही सबसे बडी विशेषता है।
१६३४) गुणी मनुष्य अपने गुणों से कर्म से उच्चकीर्ति को प्राप्त करते हैं।
१६३५) माल सही दाम सही नीति सही (Right Price, Right Quality & Right Policy)
१६३६) हमारा समाज इसलिये असन्तुलित है कि धन साधनों का सही संतुलित वितरण नहीं है।
१६३७) भीतर और बाहर दोनों स्तर पर शान्त रहनेवाला सदैव प्रसन्न रहता है।
१६३८) ईर्ष्या असफलता का दूसरा नाम है। ईर्ष्या करने से अपना ही महत्व कम होता है।
१६३९) भाग्य में जो लिखा है वह कार्य होकर रहेगा, परन्तु कर्म और परिश्रम से ही फल की प्राप्ति होती है।
१६४०) प्रकृति के साथ सह कार्य करते हुये जीना जीवन का लक्ष्य है।
१६४१) तुलसी इस संसार मे पांच रत्न है सार साधु मिलन, हरिभजन और दया, धर्म, उपकार
१६४२) धैर्य समस्याओं का सर्वोत्तम उपचार है। अति कानून कई बार अति अन्याय कर देता है।
१६४३) जिन बातों को मनुष्य अपने लिये नहीं करना चाहता वैसे दूसरों के लिये भी न करे वही सच्चा धर्म है।
१६४४) विनय पात्रता (योग्यता) प्रदान करती है।
१६४५) हिन्दुत्व अब सिर्फ धर्म ही नही रहा बल्कि एक विराट दर्शन है जिसमें सबका समावेश है।
१६४६) जो प्रयत्नशील है वह कभी वृद्ध नही है योगी ही है।
१६४७) हम जीवन वैसे नहीं जीते जैसा हम चाहते है।
१६४८) सत्य पर अडिग रहने और क्रोध से बचने का जिसने अभ्यास कर लिया उसका तो जीवन धन्य हो गया।
१६४९) विभाजित घर में देवताओं को भी भोग नहीं मिलता।

१६५०) बैर से बैर शान्त नहीं होता है। प्रेम से ही बैर शान्त होता है।
१६५१) व्यक्तियों और राज्यों की कमियों की खोज उनके महत्व और मूल्यों की खोज से ज्यादा आसान होती है।
१६५२) राष्ट्रीय सम्मान सर्वोच्च मूल्य की राष्ट्रीय सम्पति है।
१६५३) चेहरे की मुस्कुराहट चिन्ताओं को ढ़कने में सक्षम होती है। प्रार्थना से अधिक शक्ति मुस्कुराहट में होती है।
१६५४) आपकी मनोवृति और दृष्टिकोण ही आपकी सफलता और प्रसन्नता को निर्धारित करता है।
१६५५) आत्म विश्वास आपके व्यक्तित्व के लिये अनिवार्य है।
१६५६) कठिन श्रम और कडी मेहनत से इच्छा शक्ति मजबूत बनती है।
१६५७) सकारात्मक सोच और नियोजित कार्य तथा स्पष्ट उत्साह सफल बनाने में सहायक होता है।
१६५८) अपनी शक्ति से आदमी कठिन से कठिन कार्य कर सकता है किन्तु उसमें विश्वास होना चाहिये।
१६५९) दिन में निद्रा, सोना व जुआ खेलना इन दोषों से दूर रहे।
१६६०) हमारे बोलने की शैली व मुद्रा को, विचारों को सदा तौल मौल कर ही बोलना चाहिये।
१६६१) अगर आपने किसी की कमजोरी को देख लिया है तो वह आपको कभी क्षमा नहीं करेगा।
१६६२) समय की पाबन्दी राजाओं की विनम्रता है।
१६६३) बुरे के साथ सदैव बुरा व्यवहार करना गलत है। वह सदा के लिये अपराधी नहीं होता है।
१६६४) काटें से काटां और लोहा से लोहा काटा जाता है, यह बात पूर्ण रूप सत्य है।
१६६५) जिस दिन मनुष्य बिन देवी देवताओं के जी पायेगा उसी दिन वह सही अर्थोंमे भयमुक्त हो जायेगा।
१६६६) शील ही कल्याणकारी है। लोक में शील से बढ़कर कुछ नहीं है।
१६६७) जो सदा मीठा बोलता है उसके लिये कोई पराया नहीं। व्यापार करने के लिये कोई देश दूर नहीं।
१६६८) आत्मविश्वास से बढ़कर इस संसार में कोई दूसरी ताकत नहीं।
१६६९) अपने मन को जीतना कठिन है लेकिन जब मन को जीत लिया तो सब कुछ जीत लिया।
१६७०) आत्म विश्वास सफलता का पहला रहस्य है।
१६७१) सच्चा, मजबूत और असली दिमाग वही है जो बडी और छोटी सभी तरह की चीजे समान रूप से ग्रहण कर ले।
१६७२) आज का दिन आपके बचे हुये जीवन का पहला दिन है।
१६७३) शान्ति को हर बार एक और मौका दीजिये।
१६७४) जिस जगह पर किसी के साथ बुरा हुआ हो वह उस जगह पर कभी अच्छी भावना के साथ नहीं लौटेगा।
१६७५) व्यक्ति के रूप में मृत्यु के सामने हम सब एक समान हैं।
१६७६) उस अज्ञान की पाश को ज्ञान की तलवार से काट तू सुखी हो जायेगा।
१६७७) जब हम सोचना बन्द कर देते हैं तब हम अवसर गंवाने लगते हैं।
१६७८) निर्धन वैश्य, शक्तिहीन राजा से प्रजा को, फल हीन वृक्ष इन सबसे कोई लाभ नहीं होता।
१६७९) इस पृथ्वी पर कोई ऐसा प्राणी नहीं हैं जो भय हीन हो।
१६८०) आवश्यकता, जरूरतों के विरूद्ध लडाई कभी कोई देवता भी नहीं लडता।
१६८१) मूर्ख प्राणी और पशु दोनो एक समान है। पशु चार पांव वाला होता है और मूर्ख प्राणी दो पांव वाला।
१६८२) अपनी शक्ति से आदमी असंभव से असंभव काम कर सकता है किन्तु उसमें दृढ़ विश्वास होना चाहिये।
१६८३) प्रत्येक मित्रता का मूल आधार इस जग में स्वार्थ है, इस बिना मैत्री होना असम्भव है।
१६८४) शिक्षा कामधेनु गाय के समान है इससे ही मनुष्य को बुद्धि प्राप्त होती है। शिक्षा के बिना मनुष्य और पशु बराबर होते हैं।
१६८५) स्वयम् की उन्नति में अधिक समय देंगे तो दूसरों की निन्दा करने का समय नहीं मिलेगा।

१६८६) यदि वर्तमान ठीक रक्खा जाय तो आनेवाले समय के ठीक होने की सम्भावनाये बढ़ जाती है।
१६८७) जो सदा झुकता है वास्तव में वही बडा और पूर्ण कहलाता है।
१६८८) जीवन में मधुरता का स्वाद आने हेतु बीते हुये कल को भूलने की शक्ति चाहिये।
१६८९) वही व्यक्ति अपने देश को सबसे अधिक प्यार करता है जो उसे सर्वोत्तम बनाने की कोशिश करता है।
१६९०) प्रमाण तीन प्रकार के माने गये है। १) अनुमान २) प्रत्यक्ष ३) आप्त वाक्य
१६९१) आप समय को नहीं बदल सकते, महसूस करें कि यह परिवर्तन का समय है।
१६९२) हमारा आत्म विश्वास ही हमारी जीवन धारा है।
१६९३) मुश्किलों का सामना करना ही वीरता का प्रमाण है।
१६९४) बुरे शब्द कहने के बजाय चुप रहना बेहतर है।
१६९५) समय पर कार्य करना ही सफलता की चाबी है।
१६९६) संघर्ष के बिना जीवन नीरस है।
१६९७) अधिकार की आवश्यकता पर दृढ़ रहे, उसे कार्यान्वित करते समय विनम्र और मधुर बने।
१६९८) आंसू पोंछे जा सकते है लेकिन गुप्त आँसू गहरा घाव बन सकते है।
१६९९) एक व्यक्ति को मार डालने वाला हत्यारा कहलाता है लाखों लोगों की हत्या करने वाला विजेता कहलाता है।
१७००) बुढापा सबसे अधिक अनपेक्षित घटना है जो हर व्यक्ति के जीवन में आती ही है।
१७०१) पैर फिसलने के बाद ठीक हो सकता है, लेकिन जबान फिसलने से गहरा घाव रह जाता है।
१७०२) सीखने की प्रक्रिया से गुजरने वाली आत्मा निरन्तर जवान होती जाती है।
१७०३) आखरी सांस तक अपने नियमों और आदर्शों का पालन करना चाहिये।
१७०४) "आशा तृष्णा न मिटे मर मर जाये शरीर"
१७०५) यदि आज एक झूठ बोलने के लिये विवश होना पडे तो उसके कारण कल और झूठ बोलना पडेगा।
१७०६) किसी भी व्यक्ति की समझ उसके कर्म से दिखाई देती है।
१७०७) डन्डे, पत्थरों, लाठी से हड्डियां टूट सकती है लेकिन शब्दों से अक्सर रिश्ते टूट जाने की आशंका रहती है।
१७०८) कर्तव्य यज्ञ से कहीं बडा होता है। अपना कर्तव्य पूरा करने वाले को एक नहीं सौ यज्ञों का फल एक साथ मिलता है।
१७०९) महता, गौरव, कीर्ति के सुमन में नम्रता का सौरभ ही शोभा पाता है।
१७१०) दान का प्रत्येक कार्य स्वर्ग पथ पर गतिशील होने का एक चरण है।
१७११) स्वतन्त्रता का मूल्य जिम्मेदारी है।
१७१२) जरूरतों के लिये धन कमाना अच्छा है पर अधिक धन कमाने की भूख मानवता का पतन है।
१७१३) आजादी उसी हद तक टिक सकती है जिस हद तक हमारे अन्दर संयम है।
१७१४) यदि मै अपने सभी कार्यों में ईमानदार हूँ तो मुझे कभी भी भय का अनुभव नहीं होगा।
१७१५) अधिक महत्व है आपके रहने के तरीके की बजाय सही तरीके से रहने का।
१७१६) जागृत होने के बाद ही महसूस होता है कि हम सो रहे थे।
१७१७) जहां पवित्रता नही है वहां स्नेह नहीं होगा और जहां स्नेह नहीं है वहां शान्ति नहीं हो सकती।
१७१८) चापलूसी करना आसान है, सच्ची तारीफ करना उससे कही मुश्किल है।
१७१९) हमेशा नम्रता का पोशाक पहनने से सबसे स्नेह और सहयोग मिलेगा।
१७२०) प्रेम, भक्ति, प्यार, विश्वास सहनशीलता, साहस आदि के बडे महत्वपूर्ण काम मनुष्य ने धर्म के नाम में किये है।
१७२१) संसार में जिनके पास सन्तोष है, त्याग भावना है, उसके पास सब कुछ है।

१७२२) धन से भी बडा पाप है अधिकार का लोभ इसी कारण मनुष्य पतन के गर्त में पडता है।
१७२३) दुनिया के लोगों की जेबे धन से भरी है और ईश्वर दिल से भरा होता है।
१७२४) कम आहार आप खाते है और अधिक आहार आप को खाता है।
१७२५) अगर आप धैर्य व साहस में अडिग चट्टान है तो आप के साथ टकराने वाला स्वयं चूर चूर हो जायेगा।
१७२६) तारीफ गालियों की ही बुनियाद है।
१७२७) यदि मानव सदैव सतर्क रहे तो उसके हृदय मे कुविचार नहीं आसकते।
१७२८) बार बार न खाना, हमेशा सादा खाना, समय पर खाना व मौसम के अनुसार खाना अच्छे स्वास्थ्य का रहस्य है।
१७२९) सही और सच्ची बात कडवी होती है पर जीवन की सच्चाई वही होती है।
१७३०) प्रकृति के साथ साथ चलने वाले लम्बी उम्र प्राप्त करते है।
१७३१) समय पर काम करने वाले, समय की कीमत समझने वाले सदा सुखी रहते है।
१७३२) कामना तो अग्नि है उससे बचना ही अच्छा होता है।
१७३३) सकारात्मक विचारों की शक्ति से सभी कार्यों मे सफलता प्राप्त करनी चाहिये।
१७३४) निर्धन मनुष्य की सबसे बडी पूंजी और मित्र उनका आत्मविश्वास ही है।
१७३५) घी से ओज और तेज बढ़ता है इसलिये भोजन में घी न हो तो उसे व्यर्थ भोजन कहा जाता है।
१७३६) अच्छा गणित शास्त्री है लेकिन भौगोलिक ज्ञान न हो तो पुस्तक की विद्या उसे जीवन में लाभ नही देती।
१७३७) जब वादे निभाये नही जाते है तो हम नजदीक के अच्छे दोस्त गंवा देते है।
१७३८) मानव जीवन आदर्शों और नियमों से बंधा है।
१७३९) भगवान भक्ति से ही नहीं कर्तव्य पालन से कहीं अधिक प्रसन्न होते है।
१७४०) क्रोध आने पर आत्म संयम् के अलावा और भी बहुत कुछ गंवा देते हैं।
१७४१) औरों की गलतिया सहन करना महानता है, परन्तु उन्हे क्षमा करना और भूल जाना उससे भी महान है।
१७४२) क्रोध को प्रेम से जीतो, बुराई को भलाई से। लालच को दान से और झूठ को सच से जीतो।
१७४३) इस दु:ख भरी दुनिया में स्वर्ग की शान्ति और व्यवस्था लाने में हम सब मदद कर सकते हैं।
१७४४) एक धनी व्यक्ति का धन चोरी या नष्ट हो सकता है परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति की खुशी व विवेक सुरक्षित रहते है।
१७४५) यदि मैं एक क्षण भी खुश रहता हूँ तो इससे मेरे अगले क्षण में भी खुशी होने की सम्भावना बढ़ जाती है।
१७४६) साक्षर होना, शिक्षित, पढ़ा लिखा होना बहुत आवश्यक है। पढ़ लिख कर ही धर्म के सच्चे स्वरूप को जाना जा सकता है।
१७४७) भाग्यशाली वह है जो दूसरों को देख उनकी विशेषताओं से कुछ सीखता है और ईर्ष्या नहीं करता है।
१७४८) दिव्य गुण भगवान के समीप ले जाते है, अवगुण मनुष्य को भगवान से दूर कर देते है।
१७४९) प्राण वायु में उड़कर नष्ट होने वाले मेघ के समान ही होते है। यह जीव लोग पीपल के पत्ते के समान चंचल है।
१७५०) सुपात्र और विनम्र को सम्पतियां अपने आप प्राप्त हो जाती है।
१७५१) जो मदिरा पान नहीं करता, चुगली या निन्दा नहीं करता वह सदा सुखी रहता है।
१७५२) घर पर आये प्राणी का जो अपमान करता है, समझो उसका पतन होने वाला है।
१७५३) हमें अपने बोलने का ढंग, हाव भाव एवं विचारों को सदा तौलते रहना चाहिये।
१७५४) समय को बचाओ समय तुम्हे बचायेगा।
१७५५) उदार मन वाले असम्भव को भी सम्भव कर सकते है।
१७५६) जो ईश्वर भक्त है वह जाति, धर्म, वंश आदि के समस्त अवरोधों को पार कर जाता है।
१७५७) उत्कृष्ट मन वाले अच्छे लोगों के प्रति किया हुआ उपकार कभी क्षीण नहीं होता है।

१७५८) सच्चा मित्र वोही हे जो मित्र से कभी विश्वासघात न करे।
१७५९) आपकी समझ आपके कर्म से ही दिखाई देती है।
१७६०) संसार में समस्याये बढने वाली है उनसे निपटने के लिये आप अपनी क्षमता अधिक बढ़ाये।
१७६१) समूचे संसार में केवल एक ही आत्म तत्व है। सभी कुछ केवल उसी आत्म तत्व की ही अभिव्यक्तियां है।
१७६२) हर कठिन काम शुरू में हमे डरावना प्रतीत होता है।
१७६३) अपनी जरूरतों को जितना कम किया जा सके घटाना चाहिये।
१७६४) उन्नत होना और आगे बढ़ना ही हर व्यक्ति के जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य होता है।
१७६५) श्रेष्ठ और स्वच्छ स्पर्धा तन्दुरुस्ती की निशानी है लेकिन ईर्ष्या घातक बीमारी है।
१७६६) जो व्यक्ति उपयोगी और अनुपयोगी बातों का अन्तर समझ लेते है वे कभी भी व्यर्थ शब्दों को व्यक्त नही करते।
१७६७) जो दूसरों को अपने से बडा समझता है वही वास्तव में बडा होता है। वही श्रेष्ठ है।
१७६८) व्यक्तिगत सुख सुविधाओं से कहीं अधिक महत्वपूर्ण युवा पीढ़ी को विद्यादान में सहयोग देना है।
१७६९) प्राण रक्षा से बढ़ कर चरित्र-पालन श्रेयस्कर है।
१७७०) यह शरीर मेघ से गिरने वाले जल के बुलबुले के समान नश्वर है।
१७७१) कृतज्ञता का माप किये हुये उपकार से नहीं, उपकृत व्यक्ति की भलमनसाहत से होता है।
१७७२) बुराई के आगे हथियार मत डालो बल्कि अच्छाई से उसको जीतो।
१७७३) प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे हुये स्थानों को देखकर हमें ईश्वर से निकटता का आभास होने लगता है।
१७७४) स्वयम् का श्रोता होना सफल वक्ता होने का हेतु है।
१७७५) सबसे प्रेम करो। कुछ ही लोगों पर विश्वास करो लेकिन अन्याय किसी भी व्यक्ति के साथ मत करो।
१७७६) धनवान होने के साथ-साथ चरित्रवान होना भी जरूरी है।
१७७७) देशभक्ति ही पर्याप्त नही होती है। हमें किसी के प्रति भी नफरत न करने की भावना पैदा करनी चाहिये।
१७७८) किसी की हत्या करना सही या सही नहीं हो सकता है लेकिन कई बार यह कर्म अवश्य हो जाता है।
१७७९) जब आपका सारा परिश्रम दूसरे के लिये होगा तो उसका परिणाम भी आपके ही हित में होगा।
१७८०) मनुष्य का स्वभाव दृष्टा का है। न तो इसे दृश्य बनना है और न दर्शक।
१७८१) जीवन एक लाइलाज बीमारी है।
१७८२) जो लोग सोचते है, उनके लिये यह दुनिया हास्य है लेकिन जो लोग महसूस करते है उनके लिये यह त्रासदी है।
१७८३) मैं सोया और मैने सपना देखा कि जीवन सुन्दर है। मैं जागा और मैने पाया कि जीवन कर्तव्य है।
१७८४) मानव जीवन हर जगह एक ऐसी दशा है जिसमें अत्याधिक सहना है और बहुत कम आनन्दित होना है।
१७८५) कोई भी अपने अलावा किसी के साथ भी पूर्ण सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता।
१७८६) दुनिया में इस तरह से रहो जैसे तुम एक मुसाफिर या एक राहगीर हो।
१७८७) सच्चा, मजबूत और वास्तविक दिमाग वही है जो बडी, छोटी, सभी तरह की चीजें समान रूप से ग्रहण कर ले।
१७८८) जो व्यक्ति बीते हुये समय में ही रहेंगे तो वर्तमान समय में भविष्य कैसे देख पायेगे।
१७८९) कई लोग इसलिये जीवन भर उदास रहते है कि कहीं कोई विपत्ति न आजाये।
१७९०) जो सरल और सहज रहेगा, मुसीबतें उसके नजदीक नहीं आ सकती।
१७९१) जिन्दगी बहुत छोटी है अगर उसे मरने की नजर से देखा जाये।
१७९२) छोटी कृतज्ञताये जीवन को सरस बनाती है, बड़ी वाली इसे ऊंचा उठा देती है।
१७९३) मित्रता स्वार्थ के कंधों पर टिकी होती है, बिना स्वार्थ के आधार पर मित्रता कदापि नहीं हो सकती, यह एक कड़वा सच है।

१७९४) सरलता के बिना कोई भी व्यक्ति अन्य आत्माओं का सच्चा स्नेह नहीं पा सकता।
१७९५) परिश्रम करने से इन्सान की गरीबी दूर हो जाती है। पूजा करने से पापों का निवारण हो जाता है।
१७९६) जागते हुये आदमी को कभी भी भय नहीं सताता।
१७९७) यदि दो प्राणी झगडा कर बैठते है तो उनमे से यदि एक खामोश हो जाये तो झगडा मिट जाता है।
१७९८) आपके हर संकल्प, वाणी, व्यवहार और कर्म खुशी के प्रकम्पन फैलाते है।
१७९९) निरन्तर प्रयत्नशील रहे कि कठिन परिस्थिति में भी अपने धर्म को नहीं छोडे अपना कर्म करते रहे।
१८००) जीवन की कोई अवस्था ऐसी नहीं है, चाहे व सामाजिक हो या व्यक्तिगत, जिसमें आपके सामने कर्तव्य न हो।
१८०१) वर्तमान में जियो और भूत भविष्य की चिन्ता मत करो।
१८०२) कुछ लोग मरने से इतना डरते है कि वे जीना शुरू ही नहीं कर पाते।
१८०३) हमे बोलने के ढंग को, हाव भाव एवं विचारों को सदा तौलते रहना चाहिये।
१८०४) दूसरों को गिरा कर कभी कोई ऊपर नहीं उठ सकता है। सदा सबको साथ लेकर चलो।
१८०५) उदार मन वाले असम्भव को भी सम्भव कर सकते है।
१८०६) दौलत के कम हो जाने से मत डरो। बल्कि ईश्वर से डरो और डर मानो कि किसी पर पुरुष पर जुल्म अत्याचार न हो।
१८०७) बडे कामों को करने के लिये तडक भडक की आवश्यकता नहीं बल्कि निष्ठा और लगन की आवश्यकता होती है।
१८०८) वही आदमी वास्तव मे बुद्धिमान है, जो क्रोध में भी अपनी वाणी पर नियंत्रण करने में समर्थ होता है।
१८०९) जो व्यक्ति अपने देश को सबसे ज्यादा प्यार करता है, वही उसे सर्वोत्तम बनाने को कोशिश करता है।
१८१०) चेतना के शुद्ध होने से मनुष्य परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध के प्रति पूर्णतया आश्वत हो जाता है।
१८११) जो व्यक्ति उपयोगी और अनुपयोगी बातों का अन्तर समझ लेते है, वो कभी भी व्यर्थ शब्दों को व्यक्त नहीं करते।
१८१२) पहले स्वयं को उपर उठाओ। जो व्यक्ति स्वयं ऊंचा है वही दूसरे को भी ऊंचा उठा सकता है।
१८१३) नम्रता मुंह से बोल कर नहीं कर्म करके दिखाई जाती है।
१८१४) संसार एक गहरा भ्रम जाल का नाम है। ज्ञान के प्रकाश से ही इस भ्रम जाल को काटा जा सकता है।
१८१५) प्रेम सहनशील है, मृदुल है। प्रेम सभी दिलों को खोलने की अचूक चाबी है।
१८१६) सहृदयता एक ऐसा गुण है जिससे मनुष्य बहुत जल्दी ईश्वर तक पहुंच सकता है।
१८१७) मीठे बोल द्वारा दूसरों पर प्रसन्नता छा जाती है और अपने अन्दर भी स्थायी प्रसन्नता होती है।
१८१८) सहृदयता और प्रसन्नता एक ही सिक्के के दो पहलू है और एक दूसरे के साथी है।
१८१९) जिसमें प्रेम की धारा और करूणा नही है, वह मानव शरीर धारी पशु है। ऐसा व्यक्ति चलता फिरता शव ही है।
१८२०) तुम दूसरों का जितना भला करोगे परमात्मा से तुम्हे उतना ही प्यार और अनुदान प्राप्त होगा।
१८२१) समाज की सेवा दिखाने के लिये नहीं अपितु स्वयं की सन्तुष्टि के लिये होनी चाहिये।
१८२२) महिलायें मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक स्तर पर पुरुषों के समान ही है।
१८२३) ईश्वर ने आपको जो प्रेम की विरासत दी है उसको दूसरों के बीच बांटना आपका काम है।
१८२४) जो लोग दु:खी होते है वे अपना दु:ख दूसरों पर लाद देते है।
१८२५) सच्चाई ईमान की निशानी है।
१८२६) जीवन कितना भी छोटा हो, समय के दुरूपयोग से वह और भी छोटा बन जाता है।
१८२७) जिसने नर की सेवा की उसने नारायण की प्राप्ति कर ली।
१८२८) जब तक दिल में तनिक भी अहंकार है, तो खुदा से जुदा हो। अहं गया तो खुद ही खुदा हो
१८२९) राष्ट्र का हित वृद्धिगत करने और राष्ट्र कल्याण का कार्य करना ही सच्ची ईश्वर पूजा है।

१८३०) मानसिक दासता, मानसिक गुलामी सबसे हानिकारक गुलामी है।
१८३१) मेरा देश ही मेरे लिये ईश्वर महिमा का साकार रूप है।
१८३२) पितृ सत्तात्मक व्यवस्था ही असमानता को जन्म देती है।
१८३३) अज्ञानी होना उतना लज्जास्पद नही है जितना सीखने के लिये तैयार न होना।
१८३४) अच्छा बर्ताव और भले लोगों का साथ बहुत सी मुसीबतों से बचाता है।
१८३५) पुण्य की महता मूल्य के आधार पर नहीं, कार्य की उपयोगिता के आधार पर होती है।
१८३६) वास्तव में देने का आनन्द लेने के आनन्द से बडा है।
१८३७) गम्भीर बातों को हल्केपन से देखो और हलकी बातों को गम्भीरता से।
१८३८) वही आदमी वास्तव में बुद्धिमान है, जो क्रोध में भी अपनी वाणी पर नियंत्रण करने में सक्षम होता है।
१८३९) बहुत साल जीने से या लम्बी उम्र पाजाने से ही बुद्धता नहीं आती।
१८४०) जिसकी इच्छा शक्ति हमेशा जागृत रहती है वह चिर युवा होता है।
१८४१) उत्साह हीनता होने के कारण आत्म निर्बलता आती है।
१८४२) जाति, वर्ण का भेदभाव करना ईश्वर का अपमान है।
१८४३) सफलता के लिये कृतज्ञता ही सही सीढी है।
१८४४) जो परिवार साथ साथ प्रार्थना करता है, वह हमेशा साथ साथ बना रहता है।
१८४५) जिनकी सोच अच्छी होती है, वे अच्छाई को ढूंढते है और जिनकी सोच बुरी होती है, वह बुराई को ढूंढते है।
१८४६) जहां प्रेमास्पद के सुख के लिये अपने सर्वस्व का परित्याग करने को हम तैयार हो वहां से प्रेम प्रारम्भ होता है।
१८४७) किसी भी कार्य को सफल एवं असफल बनने में व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार होता है।
१८४८) धर्म समाज में व्यक्ति को व्यक्ति से जोडता है और मानवता को दैविकता से मिलाता है।
१८४९) मानव का अधिकार युद्ध करने में है पर युद्ध के जीतने में नहीं।
१८५०) कठोर परिश्रम और दृढ़ संकल्प के बलबूते पर व्यक्ति कुछ भी कर गुजरने में सफल हो सकता है।
१८५१) झूठी शानो शौकत की जिन्दगी मत जियो।
१८५२) जिसमें विश्वास की कमी है उसमें आस्था की भी कमी होती है।
१८५३) अपने आप काबू रखना सबसे बडी जीत है।
१८५४) मुसीबतों की शिकायत मत किया करो, इससे आपके दुश्मन खुश होते है।
१८५५) तनाव को खत्म करने के लिये वर्तमान और भविष्य में भी उत्सुकता और रचनात्मक कार्यों की जरूरत होती है।
१८५६) किसी भी समस्या को सुलझाने का पहला कदम है शुरूआत करना।
१८५७) भाग्य, किस्मत तकदीर संयोग की बात नहीं होती बल्कि अपने कर्मों से बनती है।
१८५८) बुराई से न हारो बल्कि भलाई से बुराई को जीतो।
१८५९) आज्ञा देने की क्षमता प्राप्त करने से पहले प्रत्येक व्यक्ति को आज्ञापालन करना सीखना चाहिये।
१८६०) आप केवल एक बार जीते है लेकिन अगर आप ठीक से जी लिये तो एक बार जीना ही काफी है।
१८६१) आचार से स्वर्ग मिलता हैं। आचार से सुख मिलता है। आचार से मोक्ष मिलता है।
१८६२) आचारवान पुरुष ही आयु, धन, पुत्र, सौख्य, धर्म तथा शाश्वत शान्ति एवं विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते है।
१८६३) वासना का प्रारंभ बडा ही सुहाना व लुभावना होता है पर प्रत्येक वासना नरक के समान दु:खदायी है।
१८६४) खुशियां चाहने में कोई बुराई नहीं मगर अपनी खुशी के लिये किसी दूसरे का बुरा करना मानवता नहीं है।
१८६५) कमाई कम हो या अधिक हर हाल में दूसरों के हक को मत छीनो।

१८६६) अपने मनमाने ढंग से चल कर काम करने से असफलता ही प्राप्त होगी।
१८६७) सौत से अपमानित होकर रहने की अपेक्षा तो उसका त्याग कर देना ही अच्छा है।
१८६८) दैव ही प्रबल है, पुरुष का प्रयत्न असमर्थ है।
१८६९) बुद्धिमान लोग भ्रान्त पुरुषों के कथन वाक्यों का आदर नहीं करते।
१८७०) महापुरुषों को नरक की अपेक्षा असत्य से अधिक भय होता है।
१८७१) चिन्ता छोडो, चिन्ता तो कार्य बिगाडने वाली होती है।
१८७२) जो धर्म सृष्टि के समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम, भाईचारा और मैत्री भाव जगाये वही सच्चा धर्म है।
१८७३) सत्य पर दृढ रहने वालों का कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता।
१८७४) कीचड मे जन्म लेना गलत नहीं है लेकिन कीचड में मरना गलत है।
१८७५) स्वस्थ और दीर्घ जीवन के आकांक्षी व्यक्ति को सदैव आशावान और कर्मठ बने रहना चाहिये।
१८७६) स्वार्थ और परमार्थ का फर्क हर एक चीज के स्तर को गिराता या उठाता है।
१८७७) वीर वो नहीं है जो लडाई मे लड कर अपने शरीर को नष्ट कर देते है। असली वीर वही है जो मन को जीत लेता है।
१८७८) अगर आप बुद्धिमान और चतुर है, आपके आंख कान खुले है तो कोई भी आपका गैर फायदा नहीं उठा सकता।
१८७९) असफलता देखे बिना सफलता की कामना करना बेईमानी है।
१८८०) स्वयं को पहचानने के लिये मनुष्य को अपने से बाहर निकल कर तटस्थ बन कर स्वयं को देखना पडता है।
१८८१) जो हमारे बाद भी हमारी तारीफ करे, वही सच्चा दोस्त है।
१८८२) ऐसे लोग ही मित्रता करने के काबिल होते है जिनका नजरिया दूरगामी हो।
१८८३) अपनी स्त्री को किसी दूसरे के हाथ खोकर जीते रहने की इच्छा करना अच्छे पुरुष का लक्षण नहीं है।
१८८४) शरण में आये शत्रु की रक्षा करना नीति व धर्म है।
१८८५) "धूप छांव की जिन्दगी, सुख-दु:ख उसके खेल, वो खेले हर खेल को, करलो उससे मेल"
१८८६) प्रेम मांगने से कम होता है, देने से बढता है। हर व्यक्ति प्रेम चाहता है और प्रेम चाहने से नहीं, देने से होता है।
१८८७) आत्म विश्वास सफलता का पहला रहस्य है।
१८८८) उत्साहके बिना उद्योग नहीं बनता। उत्साही के लिए कुछ अलभ्य नहीं है।
१८८९) समय व्यतीत हो जानेपर किया गया कार्य अपना महत्त्व खो देता है।
१८९०) शत्रुको जितना अधिक समय मिलेगा, वह अपनी सुरक्षा उतनी दृढ कर सकेगा। अत: उसे समय नहीं देना चाहिए।
१८९१) क्रोध, गरज और अपनी जबान पर नियन्त्रण रखो।
१८९२) स्वास्थ्य से बढकर कोई नैमत नही।
१८९३) उस चीज के पीछे मत भागो जिसे तुम पा नही सकते या समझ नही सकते।
१८९४) दौलत पास मे रहने से इज्जत व आबरू कायम रहती है।
१८९५) किसी चीज की कामना सिर्फ बुरी ही नहीं खतरनाक भी होती है।
१८९६) जलील वो ही है जो कंजूस है।
१८९७) सच्चा इन्सान वही है जो बुराई का बदला भलाई से दे। सच्चाई ही बुराई को रोक सकती है।
१८९८) बडों को गलत साबित करना भी एक गलती है।
१८९९) अच्छी किताबे, अच्छे दोस्त और अच्छै काम को हमेशा बढाओ।
१९००) किसी को पा लेने में इतना अहम नही है जितना उसके दिल में अपनी जगह बना लेना होता है।
१९०१) लोगों को अपना बनाने का सबसे आसान तरीका है कि उनसे दिलसे अच्छा बर्ताव करो।

१९०२) अकलमन्द काम करने के पहले सोचता है और मूर्ख काम करने के बाद।
१९०३) मनुष्य की किस्मत उस दिन से साथ नहीं देती है जिस दिन से आदमी के हृदय से प्रेम और विश्वास निकल जाता है।
१९०४) कल्याण के मार्ग पर चलने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है।
१९०५) ऐसे ही मित्रों से दोस्ती बढानी चाहिये जिनकी नजर (दृष्टि) दूरगामी हो।
१९०६) अर्थ मनुष्य का दास नही बल्कि मनुष्य का अर्थ दास हो गया है।
१९०७) किसी को कुछ देना ही चाहते हो तो नीची निगाहें करके दो और भूल जाओ।
१९०८) दु:खी स्वजनों के आँसुओं को पोछो आपको निश्चित नींद आयेगी। सुखी स्वजनों की हंसी तो आपकी नींद उडायेगी।
१९०९) सुख की इच्छा का त्याग कराने के लिये ही दु:ख आता है।
१९१०) लक्ष्मी को माता की तरह रखोगे तो सुख पावोगे लेकिन उसके स्वामी बनना चाहोगे तो दु:ख ही मिलेगा।
१९११) किसी का पाप मत देखो न ही सुनो अन्यथा वह पाप तुम्हे भ्रष्ट कर देगा।
१९१२) अपने मन और दिल को सुधार लो दुनिया स्वयं सुधर जायेगी।
१९१३) जिस आदमी ने कभी कोई गल्ती नहीं की, समझो उसने कभी कोई काम ही नहीं किया।
१९१४) यदि जीतना ही चाहते हो तो अपने मन की तृष्णाओं को जीतो।
१९१५) जीवन मे सकारात्मक सोच और चीजों की तलाश करोगे तो आप उसे पा सकोगे।
१९१६) दूसरों की सेवा से ही उपासना सफल होती है।
१९१७) धर्म कर्म सब व्यर्थ ईश्वर किसने जाना है, आदमी ही आदमी की सबसे बडी पूजा है।
१९१८) बडा बनना चाहते हो तो अहंकार को त्याग कर विनम्र बनो।
१९१९) स्वार्थ व्यक्ति के विवेक को हर लेता है जिससे मान सम्मान की भावना मर जाती है।
१९२०) महापुरुषों की विनम्रता, उदारता और मानवता में ही उनकी महानता निहित है।
१९२१) भय माया का ही दूसरा नाम है।
१९२२) जब यश प्राप्त हो तो उसके प्रति अहंकार मत करो। अहंकार से मुक्त रहोगे तो यश सदा सुरक्षित रहेगा।
१९२३) जीवन में विनम्रता का साक्षात्कार ही मनुष्य को महान बनाता है।
१९२४) सफलतम व्यक्तियों का जीवन भी कभी भी समस्याओं से मुक्त नहीं होता है।
१९२५) दूसरों का बुरा चाहने में स्वयं का भी बुरा होता है।
१९२६) अकलमन्द कहता है कि मैं कुछ नहीं जानता और बेवकूफ कहता है कि मैं सब कुछ जानता हूं।
१९२७) दिल एक बच्चे की तरह होता है जो देखता है वही मांगने लगता है।
१९२८) सीखने की प्रक्रिया से गुजरने वाली आत्मा निरन्तर जवान होती जाती है।
१९२९) आखरी सांस तक अपने नियमों व आदर्शों का पालन करते रहना चाहिये।
१९३०) लालच से कोई आय नहीं बढ जाती बल्कि आदमी की कद्र घट जाती है।
१९३१) सदा सादे और उच्च विचार वाले रहे क्योकि विचारों का अच्छा होना ही व्यक्ति को महान बनाता है।
१९३२) प्रतिभावान को धन देना तो आसान है लेकिन धनवान को प्रतिभा देना लगभग असम्भव है।
१९३३) जिसके पास सन्तोष है, त्याग भावना है उसके पास सर्वस्व है।
१९३४) सच बोलने वाला दुश्मन झूठ बोलने वाले दोस्त से कहीं बेहतर है।
१९३५) जबान तलवार से भी ज्यादा तेज चलती है। जबान से बढकर आफत कोई नहीं है।
१९३६) जो जिन्दगी आराम से गुजारना चाहता है उसके दिल में लालच नही होता है।
१९३७) इन्सान उतना गलत नही होता है जितना गलत उसका रवैया है।

१९३८) सच्चाई में अच्छा आदमी वो है जो उन लोगों का साथ देता है जिन्हे लोग बुरा कहते है।
१९३९) दानी होना धन पर निर्भर नहीं है बल्कि यह तो दिल से होता है।
१९४०) ज्ञान के लिये हमेशा दिमाग खुला रखना चाहिये।
१९४१) अगर हर हाल में सच्चे हो तो अपने प्रमाण पेश करो। ईमान से ईश्वर की कृपा हासिल होती है।
१९४२) अपनों से ही अपमानित होना सबसे बडा अपराध और सजा है।
१९४३) बुराई अक्सर कामयाब हो जाती है लेकिन कभी जीत हासिल नहीं कर सकती।
१९४४) एक अच्छा दोस्त अगर सौ बार भी रुठ जाये तो उसे बार बार मना लो।
१९४५) एक दूसरे के विचारों को आदान प्रदान करना जीवन की आवश्यक क्रिया होनी चाहिये।
१९४६) ईश्वर पर भरोसा रखो, लेकिन अपने ऊंट को पेड़ से बांध कर रखो।
१९४७) जिन्दगी चार दिन की रोशनी होती है उसमे कुछ तो भलाई के काम करो।
१९४८) अगर तुम किसी को खुशी न दे सको तो गम भी मत दो।
१९४९) दिल तोडने के बाद दिल जोडने के लाख तरीक भी अपनाये जाये फिर भी उसका असर मिटाना मुश्किल होता है।
१९५०) अच्छे काम के लिये किसी खास वक्त का इन्तजार मत करो बल्कि फौरन शुरू कर दो।
१९५१) मुसीबत में आराम की तलाश मुसीबत को और बढा देती है।
१९५२) जिसका दिल तोड चुके हो उसे खुश रहने के लिये कहना राख मे दबी चिनगारी को हवा देने जैसा है।
१९५३) कुछ प्रार्थनाये बडी ही सख्त और मजबूत होती है कि अचानक ही दिल के मन्दिर में घंटियों की आवाज बजने लगती है।
१९५४) दुनिया में सबसे मुश्किल काम है खुद को सुधारना। सबसे आसान काम है दूसरों की नुक्ताचीनी करना, निन्दा करना।
१९५५) ज्ञान वह खजाना है जो कभी खाली नहीं होता, हमेशा सभी से हर वक्त हर तरफ से सीखने की आदत डाले।
१९५६) आशा विजेता की पहली सीढ़ी है, सभी के प्रति अपना व्यवहार अच्छा रखे।
१९५७) बुरे संग से दूर रहो और झगडे तथा मुकदमेबाजी से तौबा करो।
१९५८) कभी भी मौत को, लिये हुये कर्ज को, किसी के एहसान को और ईश्वर को मत भूलो।
१९५९) सुखी परिवार ही तीर्थ है। घर ही अपना देश है। यही अन्तिम छोर है।
१९६०) अनाथ वो नहीं है जिसके माता-पिता नहीं है बल्कि अनाथ वो है जो शिक्षित नहीं है।
१९६१) अभिवादन शील और नित्य वृद्धों की सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल ये चार बढते है।
१९६२) विपत्तियां न तो मनुष्य को दुर्बल बनाती है और न ही सबल। वे तो केवल यही प्रगट करती है कि वह क्या है ?
१९६३) दयालुता से दयालुता और विश्वास से विश्वास का जन्म होता है।
१९६४) मुक्ति तलाशने वाले कदमों को रोकना बहुत मुश्किल है।
१९६५) जो यह मानता है कि संसार में सुख है वह तो मूर्खों में से भारी मूर्ख है।
१९६६) जिस राज को दुश्मन से छुपाना चाहते हो उसे दोस्त पर भी जाहिर मत करो।
१९६७) नैतिकता से उपर उठने पर ही मानसिक शान्ति व निजी तरक्की सम्भव है।
१९६८) शिक्षा समाज को आगे बढाती है, व्यक्ति को योग्य और समझदार बनाती है।
१९६९) भय, चिन्ता, असन्तोष व दु:ख सभी ज्ञान के द्वारा नियंत्रित न किये गये जीवन के परिणाम है।
१९७०) सत्य पर दृढ़ रहने वालों का कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता है।
१९७१) मरणासन्न रोगी महा औषधि पाकर जीवित हो सकता है।
१९७२) शत्रु को जितना अधिक समय मिलेगा, वह अपनी सुरक्षा उतनी ही दृढ़ कर सकेगा अत: उसे समय नहीं देना चाहिये।
१९७३) शत्रु जब असावधान हो तब उस पर आक्रमण उचित होता है।

१९७४) मन्त्रणा, नीति, गुप्तचर योजना के बिना युद्ध में सफलता नहीं मिला करती।
१९७५) जो नीति और विनय का त्याग नहीं करता वह स्थिर ऐश्वर्य प्राप्त करता है।
१९७६) विजय सामान्य स्पन्दन से नही हुआ करती। शौर्य, धैर्य, साहस और धर्म का स्पन्दन विजयदायी होता है।
१९७७) सृष्टि में सदा ही दुलर्भ रत्नों के लिये संघर्ष होता आया है।
१९७८) सदा सफलता ही श्रेयस्कर नहीं होती है। कभी असफलता, पराजय, मृत्यु का भी आयोजन अनिवार्य है।
१९७९) आवेश मे आकर प्राण त्याग करना आत्मोसर्ग नहीं बल्कि आत्महत्या है।
१९८०) प्रजा तो शासक का अनुवर्तन करती है। लोक रुचि छिद्रान्वेषी होती है।
१९८१) सत्पुरुष से शत्रुता भी उत्तम है लेकिन कुपुरुष की प्रीति भी पतन का कारण बनती है।
१९८२) अरण्य किसी का अधिकृत प्रदेश या बपौती नहीं होती। तपोवनों पर किसी सम्राट का शासन स्वीकार नहीं किया जा सकता।
१९८३) क्षत्रिय बालक में धैर्य, पौरूष और पराक्रम नहीं हो तो उसका जीवन व्यर्थ है।
१९८४) भावना शीलता तो कवि, चित्रकार, प्रभृति कलाकारों की भव्य सम्पत्ति है। इसका सदुपयोग भगवान के समीप पहुंचा देता है।
१९८५) अनेक बार कर्तव्य मनुष्य को बहुत निष्ठुर होने को बाध्य करता है।
१९८६) उत्साह के बिना उद्योग नहीं बनता। उत्साही के लिये कुछ भी अलभ्य नहीं है।
१९८७) सच्चे प्रेम की पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है।
१९८८) पति, गुरु और माता पिता, मंदिर आदि के द्वारा, सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिए।
१९८९) किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।
१९९०) सत्य ब्रह्म है और असत्य ब्रह्मका दूषण है।
१९९१) अतिथिके घरसे निराश चले जानेसे गृहस्थधर्मकी महान हानि होती है।
१९९२) विपत्तियां मनुष्य को न दुर्बल बनाती हैं, न सबल। वे तो केवल यही प्रगट करती हैं कि वह (मनुष्य) क्या है।
१९९३) दयालुता से दयालुता और विश्वास से विश्वास का जन्म होता है।
१९९४) सिद्धान्तों के लिए लड़ना तो आसान है, पर उनको जीवन में उतारना आसान नहीं है।
१९९५) अच्छे लोगों का संग सुख पहुंचाता है। दुर्जनों का संग जीवन को बिगाड़ता है।
१९९६) जो समय पर प्रिय वाणी नहीं बोल सके वह गूंगे से भी बुरा है।
१९९७) वीर परोपकार की प्रतिज्ञा करके कभी नहीं मुकरते।
१९९८) कोशिशें नहीं करने वाले ही नाकाम रहते है।
१९९९) बहुत बोलना पंडित होने का लक्षण नहीं है। जो सदैव सब के हित की बात करता है, जो निर्भय होता है वही सच्चा पंडित है।
२०००) नम्रता मुंह से बोल कर नहीं, कर्म करके दिखाई जाती है। यही शिष्टाचार है।
२००१) वास्तव में अच्छे और पुनीत कार्य को तत्काल कर लेना चाहिये। कल तक के लिये टालना भयंकर भूल है।
२००२) आलसी और निठ्ठले व्यक्ति के सौ वर्ष जीने की अपेक्षा एक दिन दृढ़ उद्योग युक्त होकर जीना बेहतर है।
२००३) पर्वत जिस तरह वायु से कम्पित नहीं होता है उसी तरह निन्दा और स्तुति से पंडित (ज्ञानी, बुद्धिमान) विचलित नहीं होते है।
२००४) जज्बाती लोग दूसरों के लिये कम और अपने लिये अधिक खतरनाक साबित होते है।
२००५) तुम्हारा चाल चलन देखकर मालूम हो सकता है कि तुम किस प्रकार खुश हो सकते हो।
२००६) अगर वादा न करो तो अच्छा है लेकिन कर ही लो तो फिर निभाना मत भूलो।
२००७) पक्की दोस्ती भी वैसे ही साझे दु:ख में ही बनती है, जैसे लोहा आग की लपटों में मजबूती से जुडता है।
२००८) अविश्वास से अधिक अकेला और कोई अकेला पन नही है।
२००९) अच्छा काम वह है, जो दूसरों के चेहरे पर खुशी की मुस्कान ले आये।

२०१०) अपने आप के साथ कभी भी जबरदस्ती न करे वरना आप टूट जायेंगे।
२०११) लोग जिन बातों को नहीं जानते है, समझते है बेवजह उनके दुश्मन हो जाते है।
२०१२) जिसने अपने आपको पहचान लिया है उसके लिये कोई बडा खतरा या धोखे का अन्देशा नहीं है।
२०१३) अगर तुम किसी का भला कर रहे हो तो यह यकीन रखो कि तुम अपना ही भला कर रहे हो।
२०१४) कम सुननेवाले लाइलाज नहीं होते। उनकी तारीफ करो वो सुनने लगेंगे।
२०१५) साहस ही सब कुछ है। साहस गया, तो सब कुछ गया।
२०१६) एक शिखर पर पहुंचने के बाद मनुष्य पाता है कि अभी कई शिखर चढ़ने बाकी हैं।
२०१७) कामना छूटने से जो सुख होता है, वह सुख कामना की पूर्ति से कभी नहीं होता।
२०१८) व्यक्तियों और राज्यों की कमियों की खोज उनके महत्व और मूल्यों की खोज से ज्यादा आसान होती है।
२०१९) संसार एक यात्रा है और मनुष्य यात्री है। यहां पर किसी का विश्राम करना केवल एक धोखा है।
२०२०) बलवान का बल उसकी विनयशीलता में है। शत्रुओं को बदलने के लिए बुद्धिमान का शस्त्र यही है।
२०२१) जहां प्रेम नहीं, वहां शांति नहीं हो सकती। जहां पवित्रता नहीं वहां प्रेम नहीं हो सकता।
२०२२) जिस व्यक्ति ने प्रशंसा करना तो सीखा है परंतु ईर्ष्या करना नहीं, वह अत्यंत भाग्यशाली है।
२०२३) दूसरों की सफलता के प्रति भी उतना ही उत्साह दिखाएं, जितना दूसरों की सफलता के प्रति दिखाते हैं।
२०२४) मेरी एकांतप्रियता का तब जन्म हुआ, जब लोगों ने मेरी वाचाल त्रुटियों की प्रशंसा तथा मूक गुणों की निंदा प्रारंभ की।
२०२५) एक मधुर बातचीत के लिए दोनों व्यक्ति इस बात से अनभिज्ञ होने चाहिएं कि आगे कौन क्या कहेगा।
२०२६) किसी ने कहा, बच्चे-बच्चे ही होते हैं, पर वह भूल गया कि बच्चे भी कभी बड़े बनेंगे।
२०२७) जल्दी से वादा न करनेवाला, उसे निभाने में ज्यादा वफादार होता है।
२०२८) त्रुटियां देखनी हैं तो अपनी देखो। कमियां तो प्रत्येक में होती है। सम्पूर्ण गुण तो केवल ईश्वर में है।
२०२९) मीठा बोलने में एक कौड़ी भी खर्च नहीं होती, इसलिए सदा प्रेमयुक्त, मधुर व सत्य वचन बोलें।
२०३०) कर्म करने व सभी समस्याएं हल करने का समय अब है, अत: इसे बहानेबाजी में मत गंवाएं।
२०३१) किसी भी समय; किसी भी रूप में की गई प्रशंसा, किसी भी व्यक्ति का भाग्य चमका सकती है।
२०३२) व्यस्त रहना सबसे अच्छी दवाई है।
२०३३) ईमानदारी से आप और दूसरे कभी मुसीबत में नहीं फसेंगे।
२०३४) स्वयं को शुद्ध तथा निर्मल बनाए रखो और अपने वायदों को जिंदगी की कीमत पर भी निभाना सीखो।
२०३५) यदि आप बहुत अधिक लोगों पर निर्भर रहते हैं तो इससे आपके निराश होने के अवसर बढ़ जाते हैं।
२०३६) जब तक हम आत्म सम्मान की भावना जागृत नहीं करते, तब तक हम दूसरों के अधीन रहेंगे।
२०३७) सहृदय संख्या में थोड़े ही होते हैं, जो होते हैं, वे भी थोड़ी देर के लिए ही होते हैं।
२०३८) प्रेम से बोला गया एक शब्द भी अनेक दु:खी आत्माओं को शान्ति प्रदान कर सकता है।
२०३९) सबको सम्मान देनेवाला व्यक्ति सदा सम्मान में रहता है।
२०४०) यदि मैं यह समझ लूं कि मेरा असली गुण प्रेम करना है, तो मन में द्वेष आ ही नहीं सकता।
२०४१) समस्याएं चाहे कैसी भी हों, परंतु इनसे घबराइये मत, बल्कि इन्हें परीक्षा समझ कर उत्तीर्ण कीजिए।
२०४२) जिन चार बातों ने हमारे जीवन को बरबाद कर दिया है वे मैं व मेरा, तू व तेरा। अत: इन्हें भूल जाइये।
२०४३) ज्ञान सबसे बड़ा धन है। स्वयं से पूछें- मैं कितना धनवान हूं।
२०४४) यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह निरर्थक है। वास्तव में तो सत्पुरुषों का चरित्र ही पूजा के योग्य होता है।
२०४५) सेवा करने वाले हाथ स्तुति करने वाले मुंह से अधिक पवित्र होते हैं।

२०४६) यदि हम अपनी प्रशंसा व ख्याति सुनकर फूले नहीं समाते, तो निन्दा व अपमान में हम संतुलित नहीं रह सकेंगे।
२०४७) जो आदमी जितना अधिक बोलता है उतना ही कम अकल का होता है।
२०४८) जवान की फिसलन कदमों की फिसलन से कहीं अधिक खराब होती है इसलिये कम बोलो और सम्भल कर बोलो।
२०४९) लोगों पर इतना भी मत हंसो कि अपनी बात का वजन ही कम हो जाये।
२०५०) सभी क्रान्ति सबसे पहले हमेशा अपने घर से शुरू होती है।
२०५१) बहादुर आदमी कभी नीचे नहीं देखते। मुझे कुछ प्रतिबद्ध युवक युवतियाँ दो, मै सारी दुनिया को हिला दूंगा।
२०५२) परिश्रम करने से इन्सान की गरीबी दूर हो जाती है। पूजा करने से पाप नही लगता। जागते आदमी को डर नहीं लगता।
२०५३) यदि दो प्राणी झगड रहे हो तो उनमे से एक खामोश हो जाये तो झगडा मिट जाता है।
२०५४) जिस जगह झगडा हो रहा हो वहां पर कभी खडे नही होना चाहिये, कई बार ऐसे झगडों में बेवजह बेगुनाह मारे जाते है।
२०५५) दु:खी सुख की इच्छा करता है। सुखी और अधिक सुख चाहता है। वास्तव मे दु:ख के प्रति उपेक्षा भाव ही सुख है।
२०५६) किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता तब खत्म होनी चाहिये जब वह अपने पडोसी के लिये अभिशाप बन जाता है।
२०५७) सच्ची शिक्षा ही मनुष्य का वास्तविक धन है।
२०५८) अपराध क्षम्य है, लेकिन अपराध को छुपाने की कोशिश अक्षम्य है। अपराध में सहायता करना दंडनीय है।
२०५९) हमारी संस्कृति हमारे अध्यात्म का ही प्रतिबिम्ब है।
२०६०) घर नहीं बांधता, पत्नी नहीं बांधती, परिवार नहीं बांधता है। बांधती है इनमें जो आसक्ति है वो।
२०६१) प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करो और अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन छोडो।
२०६२) जैसे जैसे लाभ बढ़ता है वैसे वैसे लोभ बढता है। लोभ पाप का बाप है और असत्य स्वयं में एक महापाप है।
२०६३) शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसमें समझदारी का विकास हो जहां समझदारी आती है वहां सहनशीलता अपने आप आ जाती है।
२०६४) इस संसार में कुछ किये बिना कुछ मिलता नहीं और किया हुआ कभी निष्फल जाता नहीं।
२०६५) सत्कार्य और सत्संग का तो जीवन में सदा आरम्भ ही होना चाहिये, पूर्णाहुति कभी नहीं।
२०६६) अपने अधिकार का त्याग करो और दूसरे के अधिकारों की रक्षा करो।
२०६७) जीवन के लक्ष्य को भूल जाना यह प्रमाण है। लक्ष्य तो पता हो पर उसमें रस नहीं आता वो तो आलस्य है।
२०६८) आदमी सरल, सहज, सजग बने तो जीवन में हर समय सफलता मिलेगी।
२०६९) किसी का भी बुरा मत चाहो, बुरा मानो मत, बुरा करो मत, किसी की बुराई करोगे तो तुम स्वयं ही बुरे बन जावोगे।
२०७०) ममता का बन्धन कटता है वैराग्य के शस्त्र से। भोग नहीं भोगे जाते बल्कि भोगनेवाला स्वयं भोगा जाता है।
२०७१) प्रेम की नींव पर परिवार मन्दिर खडा हो तो प्रभु स्वयं आकर उसमें प्रतिष्ठत होते है।
२०७२) अपने लिये जैसा व्यवहार औरों से अपेक्षित है वैसा ही व्यवहार अन्य के साथ करना धर्म है।
२०७३) इन्सान जब तक दूसरे के इन्सान के दिल तक नही पहुंचेगा तब तक ईश्वर तक नहीं पहुंच सकता।
२०७४) वस्तु कभी अच्छी या बुरी नहीं होती, उपयोग करने वाले अच्छे या बुरे होते है।
२०७५) काम असुर नहीं है, कामदेव है, धर्म से विरुद्ध काम असुर है।
२०७६) पापों को मिटाने का प्रयास करना चाहिये, दोषों से बचना चाहिये। दोषी और पापी को मिटाया नहीं जा सकता।
२०७७) वस्तु का सदुपयोग करना सीखो और व्यक्ति की सेवा करना सीखो।
२०७८) जीव जगत का नहीं है, जीव जगदीश का है।
२०७९) राजनीति में धर्म हो सकता है लेकिन धर्म में राजनीति नहीं होनी चाहिये।
२०८०) हम संसार में रहे कोई बात नही, संसार हम में नहीं रहना चाहिये।
२०८१) सर्व समर्पण से ममता जायेगी लेकिन स्व समर्पण से अहंता जायेगी।

२०८२) देव बनने से मानव बनना ज्यादा बेहतर है।
२०८३) शान्ति व सहनशीलता वातानुकूलित कक्ष जैसी शीतलता प्रदान करती है, इनसे मनुष्य की कार्यक्षमता बढ़ती है।
२०८४) चिन्ताग्रस्त व्यक्ति मृत्यु से पहले कई बार मरता है।
२०८५) जल और अग्नि के समान धर्म और क्रोध का एक स्थान पर रहना स्वभाव विरुद्ध है।
२०८६) प्रसन्नता पीड़ा के विराम के अतिरिक्त कुछ नहीं है।
२०८७) समुद्र के समान धीर चित्त वाले मनस्वी धन्य हैं, जो असाधारण कार्य करके भी उसका उल्लेख नहीं करते।
२०८८) जो दिन हमें प्रसन्नता प्रदान करते हैं, वे हमें बुद्धिमान बनाते हैं।
२०८९) चार जगह सांसारिक बातें मत करो मंदिर, श्मशान, रोगी के पास और महात्मा के पास।
२०९०) अपनी कमी को अनुभव करना और उसे मिटाने का प्रयत्न करना, मानव जीवन का आरंभ है।
२०९१) अपना पेट भरने के कारण निंदित मैं इस लक्ष्मी को बहुत नहीं मानता।
२०९२) श्रेष्ठ पुरुषों की कीर्ति का मूल कारण धर्म ही है।
२०९३) हम इस संसार में क्या खोज रहे हैं, जहां किसी को कुछ नहीं मिला ? फिर भी रेत छान रहे हैं।
२०९४) भगवान ने गांव बनाया और आदमियों ने शहर बनाया।
२०९५) शांति के अतिरिक्त दूसरा कोई आनंद नहीं।
२०९६) कोई प्रार्थना नहीं, यह व्यापार को खराब करती है।
२०९७) कम खाने वाले का शरीर स्वस्थ रहता है और गम खाने वाले का मन स्वस्थ रहता है।
२०९८) सम्पन्नता सुख सुविधा के लिये होती है। यह कोई मोक्ष नहीं है जिसके के लिये साधना की जाये।
२०९९) विधिपूर्वक किया गया कर्म मनुष्य का अपना तथा औरों का कल्याण करता है।
२१००) जिसके भीतर अन्त:करण में किसी भी प्रकार की कोई इच्छा नहीं हो तो उसकी आवश्यकता की पूर्ति प्रकृति स्वयं करती है।
२१०१) हमारा स्वभाव तब सुधरेगा जब हम अपने प्रति न्याय करेंगे, अपने पर अनुशासन करेंगे और दूसरे को क्षमा करेंगे।
२१०२) भेद मत में होता है, प्रेम में नहीं। प्रेम सम्पूर्ण मतवादों को खा जाता है।
२१०३) सुख और समृद्धि में विवेक सोता है और दु:ख में विवेक जागता है।
२१०४) जो समझ सत्य को जीवन में उतारे वही समझ सच्ची समझ है और सब तो तो ना समझी ही है।
२१०५) सच्चे धर्म के क्षेत्र में कोरे किताबी ज्ञान का कोई स्थान नहीं।
२१०६) एक समय में एक ही काम करना चाहिये। दो के चक्कर में नहीं पडना चाहिये।
२१०७) जो माता-पिता बच्चों को कर्तव्य नहीं सिखाते वे उतने ही बडे दोषी है जितना कर्तव्य से मुंह मोडने वाला बच्चा।
२१०८) संयम, सदाचार, स्नेह एवं सेवा ये गुण सत्संग के बिना नहीं आते।
२१०९) मनुष्य को अपने अन्तिम श्वास तक मन का विश्वास नहीं करना चाहिये क्योकि मन दगाबाज है।
२११०) दूसरों के दोषों को देखने से अपने में अहंकार आता है। अहंकार से दूर रहना हो तो दूसरों के दोष मत देखो।
२१११) सुख को अकेले मत भोगो। दु:ख को बाटों मत, चुपचाप सह लो।
२११२) किसी का भी बुरा करोगे तो उसका बुरा होने वाला हो ही जायेगा लेकिन आपका एक और नया पाप हो जायेगा।
२११३) बडा बनने के लिये पहले छोटा बनना पडता है।
२११४) पानी को चाहे जितना गर्म कर दिया जाये पर कुछ देर बाद वह अपने स्वभाविक गुण से शीतलता को प्राप्त होगा।
२११५) पाप जल्दी हो जाता है, लेकिन उसके द्वारा की गयी क्षति की पूर्ति धीरे धीरे होती है।
२११६) मनुष्य स्वयं अपने चरित्र का दर्पण है, उसकी शैली ही मनुष्यत्व है।
२११७) मनुष्य जैसे विचारों का चिन्तन करता है, वह वैसा ही बन जाता है।

२११८) सदाचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।
२११९) टालमटोल करनेवाला व्यक्ति सदा दुर्भाग्य से भिडा रहता है।
२१२०) स्वजन से विरोध, बलवान से स्पर्धा और स्त्री, बालक, वृद्ध तथा मूर्ख से कभी भी विवाद नहीं करना चाहिये।
२१२१) स्वार्थ छोडकर त्याग पर आ जाओगे तो स्थायी सुख प्राप्त होगा।
२१२२) नम्रता और मीठे वचन ही मनुष्य के सच्चे आभूषण है।
२१२३) महान आदमी की महत्ता का पता इस बात से लगता है कि वह छोटे आदमियों से कैसे पेश आता है।
२१२४) अपकार-परायण शत्रु का भी उपकार ही करना चाहिये।
२१२५) जो श्रम नहीं करते उनके साथ देवता भी मित्रता नहीं करते। देवता उसी की सहायता करते है जो श्रम करता है।
२१२६) दुराचारी व्यक्ति लोक में निन्दा तो पाता ही है साथ ही दु:ख भोगी, रोगी तथा अल्पायु भी होता है।
२१२७) ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिये सद्वृत्त, सदाचारी, आचारवान और धार्मिक होना ही यथार्थ है।
२१२८) अपने आप पर निर्भर रहना सीखो। दूसरों के सहारे जीने से तो स्वप्न में भी सुख नही।
२१२९) निसन्देह माता पिता का काम बच्चों को सिखाना है, पर उन्हें बच्चों से भी सीखना चाहिये। बच्चे ज्ञान का भंडार है।
२१३०) परिवार से बढ़कर तपोवन कोई है नहीं। कहीं अन्यत्र भटकने की अपेक्षा अपना लक्ष्य ही खोजना चाहिये।
२१३१) यदि बच्चा आपकी मदद मांगे तो समझिये आपका जीवन सफल हो गया।
२१३२) सकारात्मक विचारों से ही जीवन में कामयाबी मिलती है।
२१३३) पापी खाने के लिये जीते है पर सज्जन जीने के लिये खाते है।
२१३४) इच्छा का परित्याग करने से ही मुक्ति संभव है।
२१३५) महाभारत के पढ़ने से चरित्र ज्ञान या स्वर्ग प्राप्ति ही नहीं होती, अपितु मोक्ष भी मिलता है। यह यथार्थ सत्य है।
२१३६) साधु महात्माओं के आशीर्वाद से असम्भव भी सम्भव हो जाता है।
२१३७) प्रतिस्पर्धा में कडवाहट आ जाती है और अन्त में वही प्रतिस्पर्धा द्वेष और शत्रुता का भी रूप धारण कर लेती है।
२१३८) जातिय अपमान सबसे दु:खद होता है। कुलीनता से अधिक लज्जाजनक बात सभा में दूसरी कोई नहीं।
२१३९) वीर की वीरता को सच्चा वीर ही जान सकता है। शत्रु की वीरता को देखकर जो प्रसन्न हो वही यथार्थ वीर है।
२१४०) संसार में संग्रह ही दुख का कारण है और त्याग में ही सुख, शान्ति और कीर्ति है।
२१४१) धैर्यवान पुरुषों के लिये ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसका वे त्याग न कर सके ?
२१४२) पुत्र की ममता दूसरी बात हैं और गुणों का आदर दूसरी वस्तु है।
२१४३) प्रशंसा करने से मनुष्यों का उत्साह बढता है और निन्दा करने से उत्साह क्षीण होता है।
२१४४) पतंग स्वयं ही दीपक की लोय में भस्म हो जाता है।
२१४५) जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता वह असभ्य निन्दनीय और उपेक्षणीय है।
२१४६) जो क्रूर हो, आततायी हो, सब प्राणियों का नाशक हो, प्रजा को पीड़ा देनेवाला हो, उसे जिस तरह भी मारा जाय वही धर्म है।
२१४७) कोई महान कार्य करने के प्रसंग में शत्रुओं से भी संधि कर लेनी चाहिए।
२१४८) जो सच्ची लगन से हर कार्य करते हैं उनके विचारों, वाणी व कर्मों पर पूर्ण आत्मविश्वास की छाप लग जाती है।
२१४९) दो सबसे महान चिकित्सक हैं- परमात्मा और समय।
२१५०) भूल करना मानवीय है, क्षमा करना दैवी है।
२१५१) प्रतिक्षण यह शरीर नष्ट होता रहता है, परंतु दीखता नहीं।
२१५२) किसी भी व्यक्ति का ज्ञान उसके अनुभव के आगे नहीं जा सकता।
२१५३) या तो आप समाधान के अंग हैं या फिर समस्या के अंग।

२१५४) आप अपने अधिकारों के प्रति ही जागरुक न रहें अपितु इस बात का भी ध्यान रखें कि आप सही मार्ग पर हैं या नहीं।
२१५५) चंदन का पेड कट जाने से उसकी खुशबू समाप्त नहीं हो जाती।
२१५६) हाथी बूढ़ा होने पर भी चंचल रहता है।
२१५७) अच्छे खानदानी लोग कहीं भी चले जाएं वे अपने गुणों को नहीं छोड़ते। गुण और अच्छाई सदा ही उनके पास रहते हैं।
२१५८) हजारों कीमती तोहफों की अपेक्षा एक महात्मा की यह भेंट हमारे लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।
२१५९) एक ऊंचाई पर पहुंचने के बाद मनुष्य अक्सर यह सोचता है कि अभी बहुत-सी चोटियों को फतह करना बाकी है।
२१६०) इस चलायमान संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है।
२१६१) राजनय दूसरे माध्यमों से युद्ध की निरंतरता ही है।
२१६२) न अपनी अवहेलना करो, न दूसरों की अवहेलना करो।
२१६३) प्रेरणावश आप कार्य शुरू कर देते हैं, पर स्वभाववश आप उसे करते रहते हैं।
२१६४) धन को हस्तान्तरित करने का एक ऐसा तरीका है जो इलेक्ट्रॉनिक बैंकिंग से भी तेज है और वह तरीका है- विवाह।
२१६५) मैंने सुना भूल गया, मैंने देखा याद रहा, मैंने किया मैं समझ गया।
२१६६) बिना कहे ही हित संपादन का भाव मन में स्थित स्वाभिमान को प्रकट करता है।
२१६७) यदि तुम स्वतंत्र नहीं हो सकते, तो जितने स्वतंत्र हो सकते हो, उतने ही हो जाओ।
२१६८) गलती करना मानव का स्वभाव है लेकिन अपनी गलतियों को सुधारकर उस पर अमल करना जीवन में सफलता का लक्षण है।
२१६९) हम कृतज्ञ हैं। और कृतज्ञता मानव जीवन का अलंकार है।
२१७०) मन सरसों की पोटली की तरह है। एक बार बिखर गई, तो सारे दानों को बटोर लेना असंभव-सा हो जाता है।
२१७१) जो बड़ा होता है, वह जहां भी रहता है, उसके कारण वह स्थान भी बड़ा माना जाता है।
२१७२) जो सचमुच मनुष्य है, वह विद्रोह करेगा, अन्याय के विरुद्ध विरोध।
२१७३) घर आए मेहमानों का आदर-सत्कार करना मत भूलिए, हो सकता है उनमें से कोई भगवान का दूत हो।
२१७४) व्यक्तित्व का आभूषण है शिक्षा। साथ ही यह अंतस के बंद कपाट खोलती और आचरण को भी परिष्कृत करती है।
२१७५) दस लाख शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से तो अच्छा है अपनी आत्मा पर ही विजय प्राप्त करें और यही श्रेष्ठ विजय भी है।
२१७६) खूबसूरती की तलाश में हम चाहे पूरी दुनिया का चक्कर लगा ले, अगर वह हमारे अन्दर नहीं है तो वह कही भी नहीं मिलेगी।
२१७७) कोई महान कार्य करने के प्रसंग में शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिये।
२१७८) प्यार मुहब्बत तो हर जगह बिखरा हुआ है लेकिन सच्चा प्यार कही नहीं है।
२१७९) दुनिया में सबसे बडा गुनाह किसी को तकलीफ देना है।
२१८०) भूखे पेट वाले शरीफ से और पेट भरे कमीने से सदा बचो।
२१८१) मन यदि साफ है तो महल में रहोगे तो भी सन्त बने रहोगे और यदि मन खराब है तो गंगा के किनारे भी तुम पापी बने रहोगे।
२१८२) किसी का आशीर्वाद न मिले तो कोई बात नही लेकिन किसी का अभिशाप न मिले इस बात की सावधानी रखो।
२१८३) कोशिश करके नाकाम हो जाना बेहतर है बजाय इसके कोशिश ही नहीं की जाये।
२१८४) दुनिया में किसी की याददाश्त इतनी तेज नहीं होती जितनी की कर्ज देने वाले की।
२१८५) मान अपमान में मन को शान्त रखनेवाला ही महान है।
२१८६) महापुरुषों को अपने घर बुलाना कठिन नहीं है पर उनके आने पर उनको सम्भाल करना, उन्हे रखना ही कठिन है।
२१८७) धर्म एक भ्रमपूर्ण सूर्य है, जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है, जब तक मनुष्य मनुष्यता के गिर्द नहीं घूमता।
२१८८) किसी के गुणों की प्रशंसा में अपना वक्त फिजूल में न गंवाओ। उसके गुणों को अपनाने का प्रयास करो।
२१८९) आपत्तिकाल में हमारी विचित्र-विचित्र लोगों से जान-पहचान हो जाती है, जो अन्यथा संभव नहीं।

२१९०) किसी से शत्रुता या बैर करना अपने विकास को रोकना है।
२१९१) केवल दो ही बातें मनुष्यों को एक दूसरे के करीब लाती हैं डर तथा स्वार्थ।
२१९२) प्रेम उदासी को भी दूर भगाने की शक्ति रखता है।
२१९३) बड़े लोगों के परिप्रेक्ष्य में यह स्वाभाविक सच्चाई है कि वे भूल गए हैं कि बच्चा होना कैसा होता है।
२१९४) बच्चे को भविष्य के लिए ऐसे प्रशिक्षित कीजिए कि वह बुढ़ापे में भी उससे अलग न हो पाए।
२१९५) मेहनती आदमी की नींद बहुत मीठी होती है।
२१९६) अनेक लोग क्रोध को एक हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। नम्रता का कवच पहने रहिए व सुरक्षा का अनुभव कीजिए।
२१९७) जल और अग्नि के समान धर्म और क्रोध का एक स्थान पर रहना स्वभाव विरुद्ध है।
२१९८) अहंकार एक न एक दिन मानव को पतन की गर्त में अवश्य धकेल देता है।
२१९९) अपने कल्याण के लिए किसी नई परिस्थिति की जरूरत नहीं है। प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग से ही कल्याण हो सकता है।
२२००) सफाइयां देने में होने वाले समय-नाश के समान जीवन में और कोई समय-नाश नहीं है।
२२०१) जीवन सागर की भांति गंभीर होना चाहिए, नदी की भांति छिछला नहीं।
२२०२) जननिन्दा की जितने जोर से बाढ़ आती है उतनी ही सघन शान्ति संतों के हृदय में उत्पन्न होती है।
२२०३) माँ-बाप के आचार-विचार जैसे होते हैं, उनकी सन्तति भी उसी श्रेणी की होती है।
२२०४) वर्षा करने के लिए सदा ही उत्सुक रहनेवाले मेघ वर्षाकाल आने पर क्षुब्ध हो उठते हैं।
२२०५) जो समर्थ है, जो सर्वज्ञ हो चुका वह तो कर्म का त्याग कदापि न करे।
२२०६) नमन वह नम्रता है जो गुण-दोष नहीं देखती और जिसके अन्दर आनन्द प्रकाशित होता है।
२२०७) बेलन जैसे नमता नहीं या पत्थर जैसे पिघलता नहीं, वैसे ही अहंकारी व्यक्ति का स्वभाव कडा हो जाता है।
२२०८) अच्छे गुरु शिष्य को सुधारते हैं और अच्छे शिष्य गुरु को भी सुधार लेते हैं; वैसे ही कच्चे गुरु शिष्यों को बिगाडते हैं।
२२०९) दूसरों की कीर्ति सुनकर अपने स्थान से कहीं जाना स्थान-भ्रष्ट होना, अपना महत्त्व कम करना और हीनत्व स्वीकार करना है।
२२१०) अच्छे वैद्य का यह काम है कि रोगी का रोग दूर करे और तब उसे पौष्टिक अन्न देकर बलवान् बनावे।
२२११) श्रीकृष्ण को देवकी ने नौ मास अपने उदर में रखा, यशोदा ने पाला-पोसा, पर अन्त में वह काम आए पाण्डवों के।
२२१२) अपने होठों पर नियंत्रण रखिये। आप जितना विचार करते हैं उससे कम बोलिये।
२२१३) प्रेम का वचन कहने के लिए कोई सुअवसर जाने मन दीजिये।
२२१४) आशीर्वाद और आशावाद मानव के लिए अमृत समान हैं।
२२१५) शंका और संदेह आपके मन की एकाग्रता के बाधक हैं।
२२१६) अपनी करनी हर एक आप भरे, तुम क्यों दूसरों का कर्म देखते हो ?
२२१७) श्रेष्ठ पुरुष नीच पुरुषों द्वारा कही गई कड़वी बातों का कभी उत्तर नहीं देते।
२२१८) गूंगा कौन है ?- जो समयानुकूल प्रिय वाणी बोलना नहीं जानता।
२२१९) अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य इन पाँच कारणों से व्यक्ति शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता।
२२२०) सच्ची शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा हम अपने को, आत्मा को, ईश्वर को और सत्य को पहचान सकें।
२२२१) कभी-कभी उन लोगों से भी शिक्षा मिलती है जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझते हैं।
२२२२) सज्जन अपनी उपयोगिता कार्य से दिखाते हैं, कंठ से नहीं बताते।
२२२३) जो किसी के काम आवे उसे इंसान कहते हैं।
२२२४) हर बात में भलाई है और प्रकृति के हर खेल में भलाई छिपी हुई है।
२२२५) मिठास सिर्फ परमात्मा के नाम में है, बाकी सब फीका है।

२२२६) सच्चे ज्ञान का पता परीक्षा के समय ही होता है कि उस समय कितनी नम्रता और प्रेम रहता है।
२२२७) कोई भी व्रत धारण करने से सच्ची शक्ति आ जाती है।
२२२८) ज्ञानी पहले ही अपना भविष्य सुधार लेता है। बुढ़ापा, बीमारी, दु:ख सबका सामना करने के लिए ज्ञानी पहले ही तैयार है।
२२२९) सृष्टि में रहो, पर रहो निश्चय में। खुश रहो, खुश रखो।
२२३०) ज्ञानी हर बात से भलाई उठा लेता है और खुश रहता है।
२२३१) व्रत लो कि मुस्कुराता ही रहूँगा, तो क्रोध नहीं आएगा।
२२३२) जितना आदमी बूढ़ा होता है, उतनी पदार्थ भावना बढ़ती जाती है और पक्की होती जाती है।
२२३३) जैसी मति वैसी गति। सब अपना संकल्प ही वापस आता है। अपने को अपने से जगाओ।
२२३४) लाख कोस तक भी अच्छा-बुरा संकल्प असर करता है, इसलिए सोच समझकर संकल्प करना चाहिए।
२२३५) एक चीज के पीछे दस इच्छाएं जुड जाती हैं, इसलिए पहली इच्छा का ही गला घोंट देना चाहिए।
२२३६) नम्रता से, न मिलने वाली चीज भी मिल जाती है।
२२३७) अच्छाई-बुराई अपने ही दृष्टिकोण का भेद है, वास्तविकता में नहीं है।
२२३८) सत्संग शक्तियों का खजाना है।
२२३९) मिथ्या कल्पित वस्तु को सत्य मानना और अपनी समझना ही सब उत्पात का कारण है।
२२४०) एक ज्ञानी दीया बनकर जलता है तो उसके कंपन का असर सब पर पड़ता है।
२२४१) माया ऐसी चीज है जो सावधान न होगा तो लालच में मरेगा।
२२४२) धन-दौलत के संग्रह में सच्चा आनंद नहीं।
२२४३) गृहस्थ आश्रम सबसे ऊँचा है।
२२४४) जैसे वाल्मीकि निरंतर जप-तप से शुद्ध होकर महान संत हो गये- निश्चय की जय है।
२२४५) सहज समाधि ही सच्ची है।
२२४६) सुख अकेला नहीं आता, साथ में दु:ख को भी लाता है।
२२४७) ज्ञान का दीया जलाओ तो अज्ञान का अंधकार खुद ही मिट जाता है।
२२४८) नम्रता में अमरता है। भगवान रामकृष्ण ने नम्रता का संदेश दिया था और अमर हो गए।
२२४९) सब अपने सुख से बंधे हैं, कोई किसी का नहीं है।
२२५०) जरूरत से कुछ भी खाया तो वह प्रसाद है, जरूरत के अलावा खाया तो सब इच्छा वासना है।
२२५१) अपने को बनाओ, जगत खुद बन जाएगा।
२२५२) जब-जब हो सके, मौन का सहारा लो।
२२५३) सच्चा संत मान और अपमान में समान रहता है।
२२५४) व्यवहार सच्चाई में चले तो कोई तकलीफ नहीं। जो सत्य पे टिका है वह राजा के आगे भी सिर नहीं झुकाता।
२२५५) गलत ख्याल से न केवल अपना, बल्कि दूसरों का भी नुकसान होता है।
२२५६) दृढ इच्छा-शक्ति से मनुष्य सबकुछ हासिल कर सकता है।
२२५७) काम-वासना बलवान है, परहेज अच्छा है।
२२५८) लोगोंको गलत मत समझो हर बात में सही अवलोकन से कर्म के मर्म को जानो।
२२५९) माया को भले ही प्रयोग में लाओ, पर उसके लोभ में न फंसो।
२२६०) संतोष अन्दर की तृप्ति ही सबसे बड़ा धन है। यह धन दूसरों पर बरसाएं।
२२६१) पढ़ाई से अधिक प्रेम, शांति और नम्रता की जरूरत है।

२२६२) किसी की कीर्ति बडे प्रेम से सुनें तो सारे गुण आप में आ जाएंगे।
२२६३) मान-अपमान से छूटना ही बडा काम है।
२२६४) बंधे को बंधा मिले, छूटे कौन उपाय। सेवा कर निर्बंध की, जो पल में देय छुडाय।।
२२६५) गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलत दांव, दोनों डूबे बाप रे, बैठे पत्थर की नांव।।
२२६६) नियम और सिद्धांत में बडी महिमा है।
२२६७) जब तक लक्ष्य और मन एक नहीं हो जाते तब तक किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त होना असम्भव है।
२२६८) अपने मन के विचार ही मनुष्य को सुखी-दु:खी करते हैं।
२२६९) दैत्य-बुद्धि से उलझन आती है, क्रोध आता है। देवता-बुद्धि से कठिनाई सुलझती है और प्रेम बढता है।
२२७०) इच्छा-पूर्ति के लिए मूल्य चुकाना पडता है, और वह मूल्य है इच्छाओं का त्याग।
२२७१) मनुष्य की सारी कठिनाइयां उसकी खुद की पैदा की हुई होती हैं।
२२७२) जिसने असली धन पा लिया उसके लिए दुनिया की हर चीज तुच्छ हो जाती है।
२२७३) जो चीज हमारी है ही नहीं, उसके जाने का दु:ख कैसा ?
२२७४) न कुछ अपना है और न कुछ पराया; पर मन जिसको अपना मान ले वह ही जीवन में दु:ख सुख का कारण बन जाता है।
२२७५) सावधानी से तौलो, और फिर कुछ बोलो।
२२७६) सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते।
२२७७) संवेदनशील बनो, परन्तु निर्मल भी; प्रेमी बनो, परन्तु पवित्र भी।
२२७८) कोई छोटा हो तो भी उसकी बात सुननी चाहिए। वे भी विशिष्ट गौरव प्रदान करेंगे।
२२७९) ऐश्वर्य, लक्ष्मी, लज्जा, धृति और कीर्ति; ये कार्यदक्ष पुरुष में ही निवास करते हैं, आलसी में नहीं।
२२८०) आर्यत्व न तो रंग में है और न ही कुल में। जहां देवों की शरण में जाने की शक्ति है, वहीं आर्यत्व है।
२२८१) एक सूर्य ही धन्य है जिसका सारा प्रयास परहित के लिए ही है।
२२८२) जिव्हा को जीतना सब वस्तुओं को जीतने के बराबर है।
२२८३) सदाचार का उल्लंघन करके कोई कल्याण नहीं पा सकता।
२२८४) दरिद्रों में दरिद्र वह है जो अतिथि का सत्कार नहीं करे।
२२८५) जो अन्य से आशा नहीं करता, वही शूर व बुद्धिमान है।
२२८६) जो पुरुष उदार स्वभाव तथा सत्कर्म के संपादन में कुशल है, वह जगत के मोहपाश से वैसे ही निकल जाता है जैसे पिंजरे से सिंह।
२२८७) वही बात बोलनी चाहिए जिससे न स्वयं को कष्ट हो और न दूसरों को। वस्तुत: सुभाषित वाणी ही श्रेष्ठ वाणी है।
२२८८) वैर का अंत मरने के साथ हो जाता है।
२२८९) जो हानि हो चुकी है उसके लिए शोक करना अधिक हानि को निमंत्रित करना है।
२२९०) साधु को दिन में देखना, रात में देखना और तब साधु पर विश्वास करना।
२२९१) बुढ़ापा तृष्णा रोग का अंतिम समय है जब संपूर्ण इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आ जाती हैं।
२२९२) काम करनेवाला व्यक्ति मरने से कुछ क्षण पहले ही बूढ़ा होता है।
२२९३) मित्र की दी हुई कडवी वस्तु भी मीठी हो जाती है।
२२९४) सत्य को असत्य ढँक लेता है।
२२९५) यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें तो किसी को तंगी नहीं हो और सब सन्तोष से रहें।
२२९६) बिना प्रयोजन के कहीं आना-जाना, कुछ देखना-सुनना, बोलना-चलना आदि कार्य न करें।
२२९७) काम की अधिकता से नहीं, वरन काम की अनियमितता से इन्सान थकता हैं।

२२९८) परिवार का सही ढंग से पालन पोषण ही एक अच्छे गृहस्थ का धर्म है।
२२९९) दूसरों का ऐश्वर्य देखकर ईर्ष्यालु होने वाले का नाश अनिवार्य है।
२३००) सादगी का जीवन संसार में मनुष्य का सुन्दरतम आभूषण है। सादगीपूर्ण व्यक्तियों का आचरण अनुकरणीय है।
२३०१) क्षमा तेजस्वी पुरुषों का तेज है, तपस्वियों का ब्रह्म है, सत्यवादियों का सत्य है। क्षमा ही यज्ञ है और क्षमा ही मनोनिग्रह है।
२३०२) सबका मालिक एक है। जातिधर्म यह तो सब इन्सानों की देन है पर ईश्वर तो अपने आप मे अनन्त है।
२३०३) एक अच्छे दोस्त को खोना अपने खुद को खोना है।
२३०४) अकलमन्द लोग बेवकूफ लोगों से तकरार, बहस नहीं करते।
२३०५) सुनी सुनाई बात देखी हुई चीज के बराबर नहीं होती।
२३०६) अपने अन्दर छिपे दिव्यता के अंश को ढूंढ निकालने का नाम ही शिक्षा है।
२३०७) यदि आपने तिल का ताड बना लिया है तो आपको उस पर चढ़ना ही पडेगा।
२३०८) अपने पोते पोतियों को सदैव पत्र लिखने चाहिये भले वे नजदीक ही क्यो न रहते हो। बच्चे पत्र पाकर बहुत खुश होते हे।
२३०९) सौ तरह के फूलों को अपने रंग बिखेरने दो, रंग वही रहेगा जो असली होगा।
२३१०) जिसने बच्चे का पालन-पोषण कर लिया है उसे तनिक भी सन्देह नही होगा कि प्रेम अमृत के समान होता है।
२३११) मानवीय गुणों से सम्पन्न व्यक्ति महान होते है, वे कभी अहंकारी नहीं होते।
२३१२) जो अधिक खुशी में रहते है, उन्हे कभी भी अन्दर से आलस्य नहीं आता। आलस्य बडा दुर्गुण है।
२३१३) मुझे तुम्हारे दोस्त बताओ फिर बताऊंगा कि तुम कौन हो।
२३१४) लोगों से कट कर जिन्दा तो रहा जा सकता है मगर खुश नही।
२३१५) हर कोई सपने देखता है। लेकिन यह ठीक नहीं है कि आप सपनों के भंवर मे फंस जाये।
२३१६) जब आप अपने को स्वीकार करते है तो दुनिया भी आप को स्वीकार करने लगती है।
२३१७) चुनौतियों पर विजय पाना सफलता है, किये गये प्रयासों की संख्या कोई मायने नहीं रखती।
२३१८) अच्छे काम के लिये धन की कम आवश्यकता पडती है पर अच्छे हृदय और संकल्प की अधिक।
२३१९) जब ईश्वर ने हमें हाथ दिये है तो काम करने की काबलियत भी दी है।
२३२०) मनुष्य का कर्तव्य शत्रुता लेना नहीं बल्कि क्षमा करना है।
२३२१) कर्तव्य कठोर होता है, भाव प्रधान नही।
२३२२) जिम्मेदारी क्षमता व शक्ति के साथ हाथ मिला कर चलती है।
२३२३) मूर्खों से अपनी प्रशंसा सुनने की अपेक्षा बुद्धिमानों की लताड सहना श्रेयस्कर है।
२३२४) कोई भी काम यदि किया जा सकता है तो उसे आप भी अवश्य कर सकते है।
२३२५) जो धर्म को पकड़कर जीता है वही अपने जीवन में सुख शान्ति एवं समृद्धि पा सकता है।
२३२६) मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने शरीर की चिंता छोड़ता है, त्यों-त्यों उसके शरीर की चिंता संसार करने लगता है।
२३२७) शिक्षा एक प्रकार की सामर्थ्य है। सामर्थ्य का दुरुपयोग न करने पर विकास स्वत:ही होने लगता है।
२३२८) जीवन और रूप बिजली की चमक की तरह चंचल है।
२३२९) जो कर्म विद्या, श्रद्धा और योग से युक्त होकर किया जाता है, यही प्रबलतर होता है।
२३३०) तगड़े और तंदुरुस्त आदमी को भीख देना, दान करना अन्याय है। कर्महीन मनुष्य भिक्षा के दान का अधिकारी नहीं हो सकता।
२३३१) स्वयं को शुद्ध तथा निर्मल बनाए रखो और अपने वायदों को जिंदगी की कीमत पर भी निभाना सीखो।
२३३२) नियम में स्थिर रहकर मर जाना अच्छा है, न कि नियम से फिसल कर जीवन धारण करना।
२३३३) ज्ञानी लोग आत्मतेजों से अपने व्रतों की रक्षा करते हैं।

२३३४) सुख तो स्वभाव से ही अल्पकालिक होते हैं और दुख दीर्घकालिक।
२३३५) संसार तो घाटी की गूंज है। जो बोलेंगे वह तुम्हारे पास वापस लौट आएगा। प्रेम दोगे, तो प्रेम पाओगे, घृणा दोगे, तो घृणा।
२३३६) अपने सुख के दिनों को स्मरण करने से बड़ा दुख कोई नहीं है।
२३३७) भाग्य का दूसरा नाम विचार है, जैसा आप सोचते है- वैसे ही बन जाते है।
२३३८) वह आदमी वास्तव में बुद्धिमान है जो क्रोध में भी गलत बात मुँह से नहीं निकालता।
२३३९) यदि बड़ा बनना चाहते हो, तो पहले अहंकार को त्यागकर विनम्र बनो।
२३४०) सम्मान ज्ञान का नही है, सम्मान है सदाचार का।
२३४१) जो दूसरों को भय दिखाता है वह खुद भी भयभीत रहता है।
२३४२) न बोले ही जहां काम चलता हो, वहां बोलने की बात ही कहां ? जहां सुई से काम चलता हो, वहां तलवार पागल उठाते हैं।
२३४३) मनुष्य द्वारा अपने कर्तव्य का पालन करना ही नीति का रूप है।
२३४४) यदि मनुष्य तथा समाज स्वस्थ रहना चाहता है तो उसे प्रमाद, आसक्ति एवं अज्ञान से स्वयं को दूर रखना ही होगा।
२३४५) आसानी से बिना परिश्रम से तथा छल-प्रपंच से प्राप्त सुख का अन्त दु:खदायी होता है, यह सुनिश्चित तथ्य है।
२३४६) अन्यायी राजा अराजकता का कारण होता है।
२३४७) बुरे से बुरे आदमी के मन में अच्छी भावनाओं के लिए कुछ स्थान होता है।
२३४८) युद्ध से नहीं, उसके विनाश से घृणा करो। शांति ही सच्ची जीवन की प्रतीक है।
२३४९) हर व्यक्ति को धर्म की रक्षा के लिए और यदि हो सके तो मृत्यु के लिए भी तैयार रहना चाहिए।
२३५०) जब तक धर्म मार्ग पर चलते हुए जीवित रहने का अवसर हो तब तक मरने की बात मत सोचो।
२३५१) यह जीवन उपयोगी है, तुम जीवन से भागकर इन दु:खों से बचने का प्रयास कर रहे हो। यह अधर्म है।
२३५२) श्रेष्ठ पुरुषों के सदाचार का अनुसरण करने वाले पहले आए हुए प्रार्थी की सहायता करते हैं।
२३५३) प्राणियों की उन्नति और अवनति भी काल के ही अधीन है।
२३५४) विचार शक्ति के नष्ट होने से उसकी लज्जा चली जाती है और लज्जा धर्म को नष्ट कर देती है।
२३५५) धर्मच्युत प्राणी का धन नष्ट हो जाता है। धन का अभाव ही प्राणी का वध है।
२३५६) जो धर्म और अर्थ का परित्याग करके क्रोध का ही अनुसरण करता है, उसे तो हर हाल में संकट में पड़ना पड़ता है।
२३५७) स्वयं शांति से रहना व दूसरों को शांति से रहने देना ही जीवन की सर्वोत्तम रीति-नीति है।
२३५८) कठोर से कठोर हृदय में भी माता के प्रेम की स्मृति संचित होती है।
२३५९) राजा, आग, गुरु, इन सबके निकट जाना अच्छा नहीं होता। इनसे दूर रहने में ही लाभ है, इससे इज्जत बनी रहती है।
२३६०) अपनी ताकत से आदमी कठिन से कठिन काम कर सकता है। किंतु उसमें विश्वास होना चाहिए।
२३६१) सच्ची शिक्षा का पहला लक्षण यही होना चाहिए कि वह कभी युक्ति-तर्क का विरोधी न हो।
२३६२) जो हानि हो चुकी है, उसके लिए शोक मनाना, और अधिक हानि को आमंत्रित करना है।
२३६३) मतभेद होना स्वाभाविक है, पर जिससे मतभेद हो, उसे नीचा न समझिए।
२३६४) ध्यान से सुनना सीखे क्योकि सुअवसर कई बार बहुत धीमे से खटखटाते है।
२३६५) जिये तो ऐसे जिये कि जब कभी ईमानदारी, न्याय और दायित्व की बात हो तो बच्चे आपका उदाहरण देकर जिक्र करे।
२३६६) याद रहे कारोबार और सम्बन्धों में विश्वास बहुत जरूरी है।
२३६७) माता-पिता, पत्नी या पति और बच्चों की कभी भी निन्दा करने से पहले अपनी जुबान ही काट ले।
२३६८) जीने के लिये मरना तो पडता ही है।
२३६९) अगर आप कुछ करना चाहते है तो बहुत कुछ करे तभी जाकर आप कुछ कर पायेंगे।

HHH(४४०)HHH

२३७०) सृष्टि का नियम है कि जो दूसरों का विनाश चाहता है उसका नाश पहले होता है।
२३७१) अपना स्वार्थ छोडकर परमार्थ के लिये तत्पर रहने वाला ही सच्चा विवेकी पुरुष है।
२३७२) काम करने से पहिले सोचना बुद्धिमानी है। काम करते वक्त सोचना सतर्कता है और काम हो चुकने पर सोचना बेवकूफी है।
२३७३) प्रकृति के विरुद्ध किया गया कोई भी कार्य अहितकारी होता है।
२३७४) मौके का इन्तजार न करो बल्कि अपने लिये मौका तलाश करो।
२३७५) गलतियों पर नौजवान और खरगोश को कान से पकडना चाहिये।
२३७६) काम शुरू तो करो, खत्म वह अपने आप हो जायेगा। अच्छी शुरुआत काम को आधा कर देती है।
२३७७) मीठी बातें हड्डियों को तोड सकती है।
२३७८) अगर चाहते हो कि धोखा न खाओ तो और तीन दुकानों से कीमत मालूम करो।
२३७९) जहां सारासार का विचार न हो वहां बिल्कुल अन्धकार ही समझना चाहिये। मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
२३८०) अज्ञान की सबसे बडी सम्पत्ति है मौन और जब इस रहस्य का ज्ञान हो जाता है, तब वहां अज्ञान नहीं रह जाता।
२३८१) प्रत्येक चीज जो जीवित है, न तो अकेली जीवित है और न सिर्फ अपने लिए ही जीवित है।
२३८२) यदि तुममें सहनशक्ति है, तो तुममें किसी बात की कमी नहीं है।
२३८३) सेवक उस राजा को त्याग देते हैं, जो उनके गुणों की उपेक्षा करता है।
२३८४) दूसरों को प्रसन्न रखने की कला स्वयं प्रसन्न होने में है। सौम्य होने का अर्थ है स्वयं से व दूसरों से संतुष्ट होना।
२३८५) संशय से पीड़ित व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति हो ही नहीं सकती।
२३८६) लोग कभी भी युद्धपसंद नहीं होते, नेता ही युद्धपसंद होते हैं।
२३८७) विद्या के समान नेत्र नहीं हैं।
२३८८) मनुष्य की जिह्वा छोटी होती है, परंतु वह बड़े-बड़े दोष कर बैठती है।
२३८९) संसार ही युद्धक्षेत्र है। इससे पराजित होकर शस्त्र अर्पण करके जीने से क्या लाभ ?
२३९०) श्रद्धा बीज है और तप वर्षा है। श्रद्धा और विश्वास का नाम ही ईश्वर है।
२३९१) पराजय, अपयश, कुटिल आचरण और द्वेष हमारे पास कभी न आएं।
२३९२) सागर के लिए वर्षा होना बेकार है। जिसका पेट भरा हो, उसके लिए बढिया से बढिया भोजन बेकार है।
२३९३) बड़ों की रीति है कि बिना मुख से बोले ही व्यवहार से छोटों को विनय सिखा देते हैं।
२३९४) मनुष्य केवल रोटी से नहीं, अपितु परमात्मा के मुख से निकले प्रत्येक वचन से जीवित रहेगा।
२३९५) सुख तो स्वभाव से ही अल्पकालिक होते हैं और दुख दीर्घकालिक।
२३९६) युद्ध अहंकार की संतान है और अहंकार धन-संपत्ति का पुत्र है।
२३९७) उदार हृदय वाले व्यक्ति भयभीत शत्रु के प्रति भी कृपालु होते हैं।
२३९८) यदि हम अपनी प्रशंसा व ख्याति सुनकर फूले नही समाते, तो निन्दा व अपमान में हम संतुलित नहीं रह सकेंगे।
२३९९) ब्रह्मांड ही निर्बाध सुखों का अखंड भंडार है।
२४००) मर्यादा में रहकर ही नीतिगत विषयों पर मंथन हो सकता है।
२४०१) सफलता श्रम का निष्कर्ष है।
२४०२) हितकर, किंतु अप्रिय वचन को कहने और सुनने वाले, दोनों ही दुर्लभ हैं।
२४०३) ध्यान देने की कमी से त्रुटियां होती है व तनाव पैदा होता है।
२४०४) स्वयं पर अधिकार ही वास्तविक सामर्थ्य है। दूसरों पर अधिकार असली शक्ति का परिचायक है।
२४०५) अल्पबुद्धि व्यक्ति थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेने ही स्वयं को महान विद्वान समझने लगता है।

२४०६) कोई भी कार्य करने से पूर्व एक क्षण रुकें उसके परिणाम के बारे में सोंचे फिर प्रारंभ करें।
२४०७) वृद्ध होना थोड़ा दु:खदायी होता है, परंतु ज्ञानवृद्ध होना श्रेष्ठ होता है।
२४०८) दु:ख-चिंता का कारण वस्तुओं का अभाव नहीं है, प्रत्युत मूर्खता है। यह मूर्खता सत्संग से मिटती है।
२४०९) श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान करके उन्हें अपना बना लेना दुर्लभ पदार्थों से भी अधिक दुर्लभ है।
२४१०) शांति के अतिरिक्त दूसरा कोई आनंद नहीं।
२४११) जो समय पर प्रिय वाणी नहीं बोल सके वह गूंगे से भी बुरा है।
२४१२) वीर परोपकार की प्रतिज्ञा करके कभी नहीं मुकरते।
२४१३) मनुष्य को उस सुख की आशा कभी नहीं करनी चाहिए, जिस की प्राप्ति दूसरों के दु:ख से होती है।
२४१४) सफलता का कोई रहस्य नहीं है। वह केवल अति परिश्रम चाहती है।
२४१५) व्यक्तियों और राज्यों की कमियों की खोज उनके महत्व और मूल्यों की खोज से ज्यादा आसान होती है।
२४१६) मैं भाग्य की गर्दन पकड़ना चाहता हूं।
२४१७) राष्ट्रीय सम्मान सर्वोच्च मूल्य की राष्ट्रीय संपत्ति है।
२४१८) कृतज्ञता का माप किये हुये उपकार से नही, उपकृत व्यक्ति की भलमनसाहत से होता है।
२४१९) यदि आपकी कोई मंजिल नहीं होगी तो आप किसी भी लक्ष्य मुकाम पर नहीं पहुंच पायेंगे।
२४२०) शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास के लिये खेलों से बढ़ कर अन्य कोई विद्या नहीं है।
२४२१) व्यक्तित्व का विकास उस वक्त रूकने लगता है जब इन्सान अपने आपको पूर्ण काबिल समझने लगता है।
२४२२) कोशिश करना मनुष्य का काम है फल देना ईश्वर के अधीन है।
२४२३) अधिक बातें वो ही करते हैं जिनके पास कहने को कुछ नहीं होता।
२४२४) हमेशा अच्छे चरित्रवाले दोस्त चुनो जो तुम्हारे जीवन को प्रकाशित कर सकते है।
२४२५) सुख न तो गांव में है और न शहर में, न धन में और और न निर्धनता में। सच्चा सुख तो सन्तोष में है।
२४२६) यह दुनिया उसी की है जिसे अपने आप पर भरोसा, विश्वास हो।
२४२७) डर से डरा नहीं जाता बल्कि उस पर विजय पाने के लिये प्रयत्न किया जाता है।
२४२८) जिन लोगों को आत्म विश्वास होता है उनकी बातें अधिक गौर से सुनी और समझी जाती है।
२४२९) अत्याचारी से बढ़कर अभागा व्यक्ति दूसरा नही, क्योकि विपत्ति के समय कोई उसका मित्र नहीं होता।
२४३०) अधिकार की अपनी मर्यादा होती है और उस मर्यादा की रक्षा करने के लिये अधिकार प्रयोग को संयत रखना चाहिये।
२४३१) किसी को भी अनुपस्थित व्यक्ति की निन्दा करने को उत्सुक नहीं होना चाहिये।
२४३२) गुलामों की अपेक्षा उन पर अत्याचार करने वाले की हालत अधिक खराब होती है।
२४३३) अनुपस्थिति में हृदय की उत्कंठा और भी तीव्र हो जाती है।
२४३४) अपमान का डर कानून के डर से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता है।
२४३५) अभिमान सब नरकों का मूल है। अभिमानी व्यक्ति प्राय: शक्की हुआ करता है।
२४३६) औरों ने तुम्हारे प्रति जो अपराध किये हो उनका उपाय है उन्हे भूल जाना।
२४३७) जब किसी एक अभिनेता के पास धन हो जाता है तब वह पत्र न भेजकर सीधे तार ही भेजता है।
२४३८) असन्तोष अपने ऊपर अविश्वास का फल है, यह कमजोर इच्छा का ही रूप है।
२४३९) उस जीवन को नष्ट करने का हमें कोई अधिकार नहीं जिसके बनाने की शक्ति हम में न हो।
२४४०) अपराध मनुष्य के मुख पर लिखा रहता है। अपराधी मन सन्देह का अड्डा है।
२४४१) असन्तोष ही किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र की उन्नति का प्रथम चरण है। असन्तोष ही लक्ष्मी प्राप्ति का मूल है।

२४४२) अहिंसा की पूर्ण स्थिति होने पर उसके सानिध्य में सब प्राणी निर्बेर हो जाते है।
२४४३) सम्पूर्ण आश्चर्य अज्ञान का फल है। आश्चर्य दर्शन का पहला चरण है। आश्चर्य आराधना का आधार है।
२४४४) अधिकार विनाशकारी महामारी के रोग के समान है, जिसे भी छूता है नष्ट कर देता है।
२४४५) अपराध या तो आवश्यकता का दूसरा नाम है या वह बीमारी का एक पक्ष।
२४४६) आलोचना करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृति है।
२४४७) आवश्यकता ही प्राय: प्रतिभा की प्रेरक होती है। यह आवश्यकता है आनन्द नहीं जो हमे बाध्य करती है।
२४४८) अविवेकी और चंचल आदमी की इन्द्रियां बेखबर सारथी के दुष्ट घोडों की तरह बेकाबू हो जाती है।
२४४९) अपना पराया ऐसा यह संकीर्ण हृदयवाले ही मानते है। उदार चित्तवाले तो सारे संसार को अपना एक कुटुम्ब ही समझते है।
२४५०) उद्योग से अपना मार्ग खोजो अथवा स्वयं अपना मार्ग बनाओ।
२४५१) अपने छोटे से जीवन में तृप्ति का एक कण भी न मिले परन्तु यह आपकी प्यासी आंखे आंसू के समुद्र से भरती रहे।
२४५२) मनुष्य का आचरण ही बताता है कि वह कुलीन है अथवा अकुलीन, शूरवीर है अथवा भीरू। पवित्र है या अपवित्र।
२४५३) दूसरों को उपदेश देने में कुशल लोग तो बहुत से होते है लेकिन उन उपदेशों पर स्वयं आचरण करें ऐसे लोग थोडे ही होते है।
२४५४) सच्चे उपवास का अर्थ है कि हम अपनी व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण इच्छाओं एवं क्रिया कलापों से मुक्त हो जाये।
२४५५) सुख और आनन्द ऐसे इत्र है, जिन्हे जितना छिडकोगे उतनी ही अधिक महक और सुगन्ध आपके अन्दर समायेगी।
२४५६) मनुष्यों में दूसरों के प्रहार से बचने के लिये कठोर और कुटिल होने का गुण भी होना चाहिये।
२४५७) पीडा तो स्वयं को सम्भाल पाती है परन्तु आनन्द का भार बांटने के लिये तो किसी अन्य मनुष्य का साथ होना आवश्यक है।
२४५८) संस्कारों में विश्वास करने के बजाय स्वाभाविक उन्नति में विश्वास रखो।
२४५९) एकान्त वास शोक ज्वाला के लिये समीर वायु के समान है। एकान्त से बढ़कर कोई योग्य साथी कभी नहीं है।
२४६०) हमेशा आगे बढते रहने और विश्वास करने से कठिनाइयां दूर हो जाती है और दिखाई देने वाली असम्भाव्यता नष्ट हो जाती है।
२४६१) वृक्ष अपने सिर पर गर्मी सहन करता है परन्तु अपनी छाया से दूसरों की गर्मी से रक्षा करता है।
२४६२) संसार की कटुताओं के सम्पर्क में आकर हृदय या तो सदा के लिये भग्न हो जाता है या फिर सदा के लिये कडा।
२४६३) जब करुणा के नेत्र खुले है तो पुरुष अपने को दूसरों में और दूसरों को अपने में जानने देखने में समर्थ हो जाता है।
२४६४) जो तुम आज कर सकते हो उसे कल के भरोसे पर कभी मत छोडो। आज नहीं कल यह आलसियों आदमियों का गान है।
२४६५) लोगों की रूचियां भिन्न भिन्न होती है। मिल कर चलो, एक स्वर में मिलकर बोलो, और अपने मनों से एक ही दिशा में सोचो।
२४६६) नये मनुष्य को सब कुछ मिला परन्तु उसे दयालु हृदय नहीं मिला जिसे करूणा की हल्की सी ठोकर तोड दे।
२४६७) कभी घमंड मत करो और ना ही किसी पर हंसो। अभी तो हमारी जीवन नैया भवसागर में ही है पता नहीं कब क्या हो जाय।
२४६८) वीर होने के लिये मनुष्य को अपनी कर्तव्य-निष्ठा से अधिक काम लेना होता है।
२४६९) उन सुकृति रस सिद्ध कवियों जिनके यशरूपी शरीर को बुढापे और मौत का भय नही है।
२४७०) जिस कार्य को दूसरे लोग जान जाते है उसमें सफलता नही मिलती। इसीलिये सोचे हुये कार्य की दूसरों से चर्चा न करे।
२४७१) काल पर हम विजय प्राप्त करते है अपनी सुकीर्ति से, यश से और व्रत से। परोपकार ही अरमत्व प्रदान करता है।
२४७२) चतुर तो वह है जो रामचरणों के आश्रित है। पर धन और पर मन हरने में तो वेश्या सबसे अधिक प्रवीण होती है।
२४७३) एक कष्ट के बाद दूसरे कष्ट आते है और समृद्धि के बाद समृद्धि आती है।
२४७४) दासता को कर्तव्य मान लेना कितना आसान है। ईश्वर कभी भी उस व्यक्ति की सहायता नहीं करता जो कर्म नहीं करता।
२४७५) जो काम अभेद भावना की ओर ले जाता है वह सत्कर्म है, कर्तव्य है, करने योग्य है।
२४७६) जन, धन, यौवन का गर्व मत करो। क्षणमात्र में काल सब कुछ नष्ट कर देता है।
२४७७) कोई भी कृति करते समय दिमाग और जबान पर लगाम बहुत जरूरी है। सहनशीलता ही उन पर काबू पा सकती है।

HHH(४४३)HHH

२४७८) किसी भी कार्य को खूबसूरती से करने के लिये मनुष्य को उसे स्वयं करना चाहिये।
२४७९) जब मनुष्य मरता है तब उसकी आत्मा अकेले ही परलोक जाती है। उसके सब साथी यही रह जाते है।
२४८०) अपनी ख्याति और स्मृति के लिये मैं दूसरों की दया और कृपा का मोहताज हूं।
२४८१) हम प्राय: दूसरे के गुणों की अपेक्षा उसकी गलतियों से अधिक सीख लेते है।
२४८२) आदमी घरवालों के लिये ही धन कमाता है और किसी के लिये नहीं। अपना पेट तो सुअर कुक्कर भी पाल लेते है।
२४८३) चापलूस आपको हानि पहुंचा कर स्वयं अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है।
२४८४) कर्म की परिसमाप्ति ज्ञान में और कर्म का मूल भक्ति अथवा सम्पूर्ण आत्म समर्पण में है।
२४८५) संसार मे ऐसे कितने मनुष्य है जो अन्य व्यक्तियों के छोटे से गुणों को पर्वत के समान महान मानकर हृदय में प्रसन्न होते है।
२४८६) ज्यादा से ज्यादा मुस्कुराहट बिखेरने वाले शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहते है।
२४८७) जिम्मेदारी स्वीकारने वाले लोग अधिकतर अपना जीवन संवार लेते है।
२४८८) क्रोध आने पर पहले दस तक गिनती गिनो और यदि बहुत अधिक क्रोध आये तो सौ तक इससे वह क्रोध के क्षण टल जाते है।
२४८९) जो दूसरों को जानता है वह विद्वान है और जो स्वयं को जानता है वह ज्ञानी है। ज्ञानी ही सत्य को देख सकते है, अज्ञानी नही।
२४९०) सफलता की विशेषता है कि इसकी परख दूसरे करते हैं, पर उसका एहसास हर व्यक्ति का अपना होता है।
२४९१) सहयोगिता का भाव हो, रहे परस्पर प्रेम देव तरसते जन्म को, जिस घर में हो प्रेम।
२४९२) संयम और परिश्रम मनुष्य के दो सर्वोत्तम चिकित्सक है। परिश्रम से भूख तेज होती है और संयम अतिभोग से रोकता है।
२४९३) पापी अन्त:करण का रोग संसार के सभी देशों के चिकित्सकों की चिकित्सा के परे है।
२४९४) तप का आचरण तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है। तप के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिये।
२४९५) सहयोग की वृत्ति व्यक्तित्व को समृद्ध व जीवन को सार्थकता प्रदान करती है।
२४९६) सफलता की उम्मीद के बिना प्रगति का कोई भी कार्य शुरू नहीं किया जा सकता है।
२४९७) दुनिया एक बुलबुला है। दुनिया के विरुद्ध उसका पूर्ण ज्ञान ही मानव का रक्षक है।
२४९८) सबसे अच्छा दान यही है कि आदमी को इस योग्य बना दे कि वह दान के बिना काम चला सके।
२४९९) दुनिया एक सांप की तरह है जो छू लेने में नर्म होता है मगर अन्दर से जहर भरा होता है।
२५००) दरिया की गहराई एक पांव से नाप कर देखनी चाहिये।
२५०१) बहादुरी यह है कि कमजोर होने के बावजूद भी दूसरों को अपनी कमजोरी का अहसास मत होने दो।
२५०२) धन दुर्गुणों पर पर्दा डाल देता है, किन्तु सद्गुण निर्धनता में ही आश्रय पाते है।
२५०३) निराशा में प्रतीक्षा अन्धे की लाठी है। जीवन में ऐसे अवसर भी आते है जब निराशा में भी आशा होती है।
२५०४) पुरुष किसी सुन्दरी के चरणों पर अपने जीवन को उसी प्रकार बलिदान कर देता है जैसे बन्दर अपने को शिकारी के चरणों पर।
२५०५) प्रभुता आते ही लोगों की निगाहे बदल जाती है, किसी को पहचानते तक नहीं, जमीन पर पांव तक नहीं रखते।
२५०६) कायर बहुसंख्यक होने में प्रसन्न होते है। बहादुर अकेले में ही लडने में अपना गौरव समझते है।
२५०७) दुष्टों का बल हिंसा है। राजाओं का बल दंड विधि है, स्त्रियों का बल सेवा है और गुणवानों का बल क्षमा है।
२५०८) भविष्य कैसा भी सुखमय हो उस पर विश्वास मत करो और भूत काल की बातों को भूल जाओ।
२५०९) तुम में ताकत बहुत भरी है, भीतर-भीतर दबी पडी है, तुम उस ताकत को पहचानो, अपनी हिम्मत को भी जानो।
२५१०) धन अधिक होने पर नम्रता धारण करो। उसके कम पडने पर अपना सिर ऊंचा बनाए रखो।
२५११) समुद्र का जल, सूर्य का तेज, चन्द्रमा की शीतलता तथा गंगा की पवित्रता सभी के लिये उपलब्ध है।
२५१२) आनंद का लगातार और अबाधित उपभोग सच्चे ज्ञान का सब से ज्वलंत प्रमाण एवं स्पष्ट संकेत है।
२५१३) बहुत सारे लोग सुअवसरों की बजाय सुरक्षा के बारे में सोच रहे हैं। ऐसे लोग मौत से ज्यादा जिंदगी से डरे हुए दिखते हैं।

HHH(४४४)HHH

२५१४) फूल को वृक्ष नहीं खाता और अनेक गुणों को फैलाता है- फिर मानव परोपकार न करे, न सोचें तो वह अक्षम्य है।
२५१५) मन को हर्ष और उल्लासमय बनाओ जिससे हजारों हानियों से बचोगे और लम्बी उम्र पा जावोगे।
२५१६) किसी राजा ने एक भक्त से पूछा कि क्या मै तुम्हे कभी याद आता हूं तो भक्त ने उत्तर दिया, जब मै ईश्वर को भूल जाता हूँ।
२५१७) रूप कोई अच्छी वस्तु नहीं है, वह मन को दबा देती है, हृदय को ढक देता है।
२५१८) लिखने में शीघ्रता मुंशी की योग्यता है, लेखक की नहीं।
२५१९) किसी का बडप्पन उस वक्त जाहिर होता है जब वह दूसरों की खुशियों की खातिर अपनी खुशियों को कुर्बान कर दे।
२५२०) शब्द पत्तों के समान है। जहां उनकी सर्वाधिक बाहुलता है, वहां उनके बीच बुद्धिमानी का फल कदाचित ही दिखाई पडता है।
२५२१) विश्राम क्या है, आलस्य भरी मदिरा का प्याला है और परिश्रम की मधुर चटनी है।
२५२२) जो मनुष्य निरूत्साह, दीन और शोकाकुल रहता है, उसके सभी काम बिगड जाते है और वह बडे संकट मे पड जाता है।
२५२३) जो मनुष्य इन्द्रियों को मनद्वारा नियमित करके राग रहित होकर कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्म योग का आरम्भ करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष है।
२५२४) जब अपने में विश्वास नहीं हो और न ही नेताओं में श्रद्धा तब हमारी हार अवश्य निश्चित है।
२५२५) जो खुश किस्मत है, सन्तोष रखते है। अगर तू खुशकिस्मत होना चाहता है तो सन्तोष के नूर से अपनी जान रोशन कर।
२५२६) कथनी को कथनेवाले तो यत्र-तत्र सर्वत्र मिल जाते हैं। लेकिन कथनी के अनुरूप करनी करनेवाले दुर्लभ ही होते हैं।
२५२७) प्राय: ऐसा देखा गया है कि लोग कथनी तो बहुत लुभावनी करते हैं लेकिन करनी विपरीत होती है।
२५२८) काल के प्राबल्य से सभी परिचित हैं तदपि लोग इसकी अवहेलना कर सांसारिकता में ही लिप्त रहते हैं।
२५२९) मूर्ख लोग भोग-विलास, वासना आदि की बातें तो बहुत करते हैं किंतु विषयरूपी बातें करते समय वह मृत्यु को भूल जाते हैं।
२५३०) मनुष्य माया का पूर्ण दास बन चुका है। वह रात-दिन प्यासे मृग की भांति मायारूपी जल का ही अभिलाषी है।
२५३१) स्वयं दोषी होकर भी जो दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है।
२५३२) जिस मनुष्य के कार्यों में सर्दी, गर्मी, भय, प्रीति, ऐश्वर्य अथवा दरिद्रता विघ्न नहीं डाल पाते, वही पण्डित है।
२५३३) जो मनुष्य अनधिकारी को उपदेश देता है, कृपण का आसरा लेता है तथा शून्य की उपासना करता है, वह मूढ़ चित्त वाला है।
२५३४) जैसे नदी पार जाने का एकमात्र नाव ही साधन है, वैसे ही स्वर्ग जाने का एकमात्र साधन सत्यपालन है, दूसरा नहीं।
२५३५) तृणरहित स्थान में गिरी आग अपने आप बुझ जाती हैं, क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना देता है।
२५३६) प्रपंच में लगा साधु तथा अकर्मण्य गृहस्थ- ये दोनों ही अपने विपरीत कर्म के कारण सम्मान नहीं पाते।
२५३७) पिता, माता, अग्निहोत्र, आत्मा और गुरु-इन पांच अग्नियों की मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिए।
२५३८) मित्र, शत्रु, उदासीन-आश्रय देनेवाले तथा पानेवाले, आप जहां-जहां जाएंगे, वहीं-वहीं ये पांच आप के पीछे लगे रहेंगे।
२५३९) क्षण भर भी देख-रेख न करने से गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा शूद्रों से मेल- ये छ: चीजें नष्ट हो जाती हैं।
२५४०) जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, कोष देश तथा दण्ड आदि की मात्रा को नहीं जानता, वह राज्य पर स्थिर नहीं रह सकता।
२५४१) मछली बढ़िया चारे से ढकी हुई लोहे की कांटी को लोभ में पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणाम पर विचार नहीं करती।
२५४२) जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म-इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है।
२५४३) जो यत्न दूसरे राष्ट्रों का नाश करने के लिए किया जाता है, वही अपने राज्य की रक्षा के लिए करना उचित है।
२५४४) गौएं गंध से, ब्राह्मण लोग वेदों से, राजा जासूसों से और अन्य साधारण लोग आंखों से देखा करते हैं।
२५४५) जो गाय बड़ी कठिनाई से दुहने देती है, वह बहुत क्लेश उठाती है, किंतु जो आसानी से दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते।
२५४६) जो दूसरों के धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मान पर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है।
२५४७) कभी किसी कार्य में सज्जनों द्वारा प्रार्थित होने पर दुष्ट लोग अपने को प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं।
२५४८) आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचन की रक्षा तथा दान-ये गुण अधम पुरुषों में नहीं होते।
२५४९) दुष्ट पुरुषों का बल है हिंसा, राजाओं का बल है दण्ड देना, स्त्रियों का बल है सेवा और गुणवाचकों-गुणवानों का बल है क्षमा।

२५५०) देवता लोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है।
२५५१) अधिकतर लोग जीव में सफल नहीं होते क्योकि वे जानते ही नहीं है कि वे क्या पाना चाहते है।
२५५२) किसी भी प्रकार के डर पर विजय पाने का एकमात्र तरीका है कि हम उससे निजात पाने की दिशा में काम करे।
२५५३) जीवन में परिवर्तन के रंग भरने का आसान और कारगर तरीका है समय समय पर यात्रा करना और मित्रों के संग आनन्द लेना।
२५५४) सुनी हुई बात देखी हुई बात की तरह नहीं होती है।
२५५५) श्रेष्ठता अहं के प्रदर्शन में नहीं है, विनम्र मूक सेवा में निहित होती है।
२५५६) सुख के विषय में कहते सभी है लेकिन जानते बहुत कम है।
२५५७) प्रसन्न मुख होना मोतियों के खजाने के दान से भी अधिक अच्छा है।
२५५८) मै किसी की बुराईयों के बारे में बात नहीं करूंगा और जिनकी जो अच्छाईयां है उनका ही बयान करूंगा।
२५५९) मनुष्य जब शरीर के साथ अनाचार करता है तो प्रकृति गुरु बन कर उसे उचित शिक्षा देती ही है।
२५६०) भाग्य का बनना बिगडना अपने किये हुये कर्म पर निर्भर करता है और कर्म से भाग्य बदला जा सकता है।
२५६१) पुस्तकों का ज्ञान शिक्षा नहीं है। संसार, मनुष्य और कार्य कलापों का पारस्परिक संयोग ही शिक्षा है।
२५६२) शिक्षा का ध्येय मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि करना ही नहीं बल्कि उसका ध्येय मनुष्य के मस्तिष्क को विकसित करना है।
२५६३) जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है।
२५६४) मनुष्य जैसे-जैसे कल्याण में लगता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं- इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।
२५६५) अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है।
२५६६) मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है।
२५६७) जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, देने की प्रतिज्ञा करके दे ही डालता है, दूसरों के दोषों को जानता है, वह मध्यम श्रेणी का पुरुष है।
२५६८) ब्राह्मणों के अनादर और निन्दा से तथा धरोहर रखी हुई वस्तु को छिपा लेने से अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं।
२५६९) जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेती से सम्पन्न होने पर भी उन्नति नहीं कर पाते।
२५७०) तृण का आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी सज्जनों के घर में इन चार चीजों की कभी कमी नहीं होती।
२५७१) पहले से कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो मित्रता का बर्ताव करे, वही बन्धु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है।
२५७२) जिसका चित्त चंचल है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुष के लिए मित्रों का संग्रह स्थायी नहीं होता।
२५७३) दुष्ट पुरुषों का स्वभाव मेघ के समान चंचल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं।
२५७४) धन हो या न हो, मित्रों का तो सत्कार करे ही। मित्रों से कुछ भी न मांगते हुए उनके सार-असार की परीक्षा न करे।
२५७५) जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओं पर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठल से पके हुए फलों की भांति नीचे गिरते हैं।
२५७६) ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत- ये अवध्य होते हैं।
२५७७) मनुष्य में धन और आरोग्य को छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है, क्योंकि रोगी तो मुर्दे के समान है।
२५७८) आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे।
२५७९) जिसमें बढ़ने की शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और निश्चय है, उसे अपनी जीविका के नाश का भय कैसे हो सकता है।
२५८०) महान् वृक्ष का आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती।
२५८१) जो मोहवश बुरे कर्म करता है, वह उन कार्यों का विपरीत परिणाम होने से अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है।
२५८२) देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगी पर होनेवाले क्रोध को प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए।
२५८३) मूर्ख मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुल में बड़े माननीय पुरुष का सदा अनादर किया करता है।
२५८४) जिनके ऊपर दोषारोपण करने से योग और क्षेम में बाधा आती हो, उन लोगों को देवता की भांति सदा प्रसन्न रखना चाहिए।
२५८५) जो अधिक गुणों से सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियों का तनिक भी संहार होते देख उनकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता।

HHH(४४६)HHH

२५८६) बृहस्पति के समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धों की सेवा किए बिना धर्म और अर्थ का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।
२५८७) नाना प्रकार की भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत-सत्कार के ढंग और भोजन तथा वस्त्र के द्वारा कुल की परीक्षा करे।
२५८८) जो दु:ख से पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता।
२५८९) उद्योग संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना-इन्हें उन्नति का मूल मंत्र समझिए।
२५९०) स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न, और नास्तिक का विश्वास नहीं करना चाहिए।
२५९१) विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्री-प्रसंग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजा के राष्ट्र के लिए शोक करना चाहिए।
२५९२) ईंधन से आग, नदियों से समुद्र, समस्त प्राणियों से मृत्यु और पुरुषों से कुलटा स्त्री कभी तृप्त नहीं होती।
२५९३) आलस्य, मद-मोह, चंचलता, गोष्ठी, उद्दण्डता, अभिमान और लोभ- ये सात विद्यार्थियों के लिए सदा ही दोष माने गये हैं।
२५९४) कामना से, भय से, लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करें।
२५९५) एक समय आता है, जब मनुष्य अनुभव करता है कि थोड़ी सी मनुष्य की सेवा करना लाखों जप-ध्यान से कहीं बढ़कर है।
२५९६) ईर्ष्या और अहंकार छोड़ दो। एक होकर दूसरों के लिए कार्य करना सीखो। यही हमारे देश की एक बड़ी आवश्यकता है।
२५९७) उदार बनो। ध्यान रखो, जीवन का एकमात्र चिन्ह है गति और विकास।
२५९८) बाहरी आडम्बर से कोई महान् कार्य नहीं होता।
२५९९) पहले, हम स्वयं देवता बनें और दूसरों को देवता बनने में सहायता दें। बनो और बनाओ- बस यही हमारा मन्त्र हो।
२६००) अश्रद्धालु व अविश्वासी से तो भगवान ही बचायें।
२६०१) समझदारीके बिना कोई साधन सफल नहीं होता है। सत्संगके बिना विवेक नहीं होता है। सत्संगसे बुद्धिमें विवेक जाग्रत् होता है।
२६०२) अज्ञानी भेद बनाता है। ज्ञानी भेद नहीं बनाता। ज्ञानीकी दृष्टिमें कोई भेद नहीं होता है। अभेद-दर्शन ही ज्ञान है।
२६०३) अन्त:करण में लोभ न हो तो आवश्यक वस्तु अपने-आप प्राप्त होती है; क्योंकि लोभ ही वस्तु की प्राप्ति में बाधक है।
२६०४) यदि सभी मनुष्य अपना-अपना सुख चाहेंगे तो सभी दु:खी हो जायेंगे और दूसरों का सुख चाहेंगे तो सभी सुखी हो जायेंगे।
२६०५) पहले पाप कर लें, पीछे प्रायश्चित कर लेंगे; इस प्रकार जान-बूझकर किए गए पाप प्रायश्चित से नष्ट नहीं होते।
२६०६) प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता है, निरन्तर बढ़ते रहना उसका स्वरूप है। प्रेम कहीं भी रुकता नहीं।
२६०७) जो प्रेम दूसरी-दूसरी वस्तुओं में बँटा हुआ है, वह प्रेम वस्तुत: प्रेम ही नहीं है। प्रेम वाणी का विषय नहीं है।
२६०८) प्रेम रहता है मन में और मन अपने वश में रहता नहीं,वह रहता है प्रेमास्पद के वश में। प्रेम का यह साधारण नियम है।
२६०९) प्रेम उत्पन्न हो जाने पर मन, बुद्धि अर्पण करने नहीं पड़ते; ये स्वत: अर्पण हो जाते हैं।
२६१०) प्रेम बड़ी दुर्लभ वस्तु है, यह सहज में नहीं मिलता; और जिसे मिल जाता है, उसके समान भाग्यशाली कोई नहीं।
२६११) जहाँ कुछ भी अपनी चाह है, वहाँ प्रेम नहीं है।
२६१२) प्रेमी का सुख इसी में है कि उसका प्रेमास्पद सुखी रहे-तत्सुखसुखित्वम्।
२६१३) शब्द के अभ्यास से व्यक्ति दु:ख और कष्ट से मुक्त हो जाता है और मृत्यु के बाद यम के पास नहीं जाता।
२६१४) शब्द के संवाद द्वारा मनुष्य संसार का रहस्य समझ जाता है। पृथ्वी, आकाश और पाताल का भेद उसके आगे खुल जाता है।
२६१५) शब्द के संवाद द्वारा मनुष्य मृत्यु के द्वार से भी बिना आंच लगे निकल जाता है।
२६१६) सृष्टि और प्रलय इसी शब्द के द्वारा होते हैं और शब्द द्वारा ही इसकी पुनर्रचना होती है।
२६१७) शब्द में से ही सृष्टि का उद्गम है और उसी में सृष्टि का विनाश। और पुन: शब्द में से ही सृष्टि की नई रचना होती है।
२६१८) दुख की पिछली रजनी बीच विकसता सुख का नवल प्रभात। एक परदा यह झीना नील छिपाए है जिसमें सुख गात।
२६१९) प्रतिभा और अभिव्यक्ति के सामंजस्य से व्यक्तित्व का निखार बढ़ता है। निखरा हुआ व्यक्तित्व जीवन की अमूल्य निधि है।
२६२०) मनुष्य का मूल्य उसके काम या उसके कथन से नहीं, बल्कि वह जीवन में स्वयं क्या बन रहा है, उसे देखकर आंकना चाहिए।
२६२१) ध्यान कामनाओं से ऊपर उठने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

२६२२) ॐ का उच्चारण करो, गायन करो किसी भी ध्वनि से, जो भी स्वत: स्वभावत: आपके चित्त में उठे।
२६२३) त्याग आपके स्थान, पद और शारीरिक काम-काज से कोई सम्बन्ध नहीं रखता; त्याग का इन बातों से कोई सरोकार नहीं।
२६२४) बड़ों की हीनताएं उनकी क्षमताएं हैं, जो अभिनंदनीय होती हैं और छोटों के दोष अपराध हैं, जो दंडनीय होते हैं।
२६२५) जिसका मन निरंकुश नहीं होता, वही जीवन-जयी होता है।
२६२६) यह जगत आसान और किरीट का अभिनन्दन करता है। विस्थापित होने की पीड़ा बड़ी मर्मांतक होती है।
२६२७) आरम्भ अच्छा तो अन्त अच्छा, आरम्भ बुरा तो अन्त बुरा। दुष्कृति के द्रुम पर दुख के फल ही देखने को मिलते हैं।
२६२८) अच्छे दिन में तो सब मित्र बन जाते हैं। बुरा दिन आते ही लोग दूर हट जाते हैं, अत: मित्र सोच-समझकर बनाना चाहिए।
२६२९) कर्म के आरम्भ में छोटापन तो कर्म की समाप्ति पर भी वही छोटापन।
२६३०) छोटा कार्य करते हुए छोटा बन जाने पर भी सज्जन या बड़े आदमी का तेज कम नहीं होता।
२६३१) सत्पुरुषों का शरीर परोपकार के निमित्त होता है। इससे बड़ा धर्म मानव-जाति के पास है ही नहीं।
२६३२) प्रेम-व्यवहार निश्चछ एवं निष्कपट लोगों के साथ होना चाहिए। वहां नहीं जाना चाहिए, जहां कपट का प्रेम हो।
२६३३) जिसका समय अच्छा है, दशा अच्छी है तथा कुल-परिवार अच्छा है, लोग उसी का आदर-सत्कार एवं मान-सम्मान करते हैं।
२६३४) सभी में परोपकार का भाव होता है और सभी उपकार करना भी चाहते हैं, किन्तु अपनी-अपनी सामर्थ्यसीमा के भीतर रहते हुए।
२६३५) उचित पात्र जब उचित बात नहीं कह पाता तो उसकी महत्ता उस सन्दर्भ में नहीं रह जाती।
२६३६) दुष्टों के साथ दुष्टता का ही व्यवहार करना चाहिए।
२६३७) दुष्ट प्रत्येक परिस्थिति में दूसरों की बुराई ही करते हैं।
२६३८) समाज में अशक्त लोगों को सशक्त लोगों से सदैव भय ही बना रहता है।
२६३९) अभाव में भी तृष्णा न रखने से मनुष्य पाप से बचा रहता है अन्यथा पाप कर सकता है ।
२६४०) जो जिसका चिंतन करता है स्वयमेव ही उसके भीतर उसके गुण आने लगते हैं।
२६४१) संसार में बुढ़ापा और भय कभी नहीं मरते।
२६४२) संसार को कोई राग-रंग, आनंद अमर नहीं है।
२६४३) मनुष्य को अपने जीवन की क्षणभंगुरता समझकर जीना चाहिए।
२६४४) संसार में गुणवान लोगों के अतिरिक्त समय की पहचान कोई नहीं कर पाता।
२६४५) इस संसार में सारी लाली (जलवा) उसी की है। जो उसे ज्ञानचक्षुओं से देखता है, वह भी उसी लाली का अंग बन जाता है।
२६४६) दूसरों को चिन्ता करने दे, तू क्यों दुखी होता है ? जिसके भंडारक राम जैसे हैं, उसे किस बात की परवाह होनी चाहिए?
२६४७) वाणी को लगाम दो, कारण कि जीवन में अधिकतर संघर्ष इसी से होते हैं।
२६४८) जिसका मन स्थिर नहीं है, जो सद्धर्म से अवगत नहीं है, जिसकी आस्था चंचल है, ऐसे व्यक्ति की प्रज्ञा कभी भी पूर्ण नहीं होती।
२६४९) जितनी हानि शत्रु शत्रु की और वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई झूठे मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।
२६५०) यदि कोई व्यक्ति पाप करता है, तो उसे पुन: पाप न करने दो, उसे पाप में आनन्द न लेने दो, बुराई का परिणाम पीड़ा होती है।
२६५१) मनुष्य प्रेम के द्वारा क्रोध को जीते, पुण्य के द्वारा पाप को हराएं, औदार्य से लोभी को पराजित करें तथा सच्चाई से झूठे को जीतें।
२६५२) संसार के सभी भागों में सत्य का प्रसार और सद्धर्म का प्रचार करो, ताकि अन्त में समस्त प्राणी धर्मराज्य के नागरिक हो जाएं।
२६५३) इस संसार में घृणा को घृणा के द्वारा नहीं रोका जा सकता। मात्र प्रेम के द्वारा ही उसका निरोध होता है। यह सनातन नियम है।
२६५४) प्रेम का जो पाश तुम्हें अपने खोए पुत्र के साथ बांधता है, वह समान तीव्रता के साथ तुम्हें अपने समस्त बन्धुओं के साथ बांधे।
२६५५) मनुष्य योनि की सार्थकता तभी है जब मनुष्य जड पदार्थों से मुक्त होकर सहज शान्ति स्वरूप में स्थित हो जाये।
२६५६) परिश्रम करने से गरीबी नहीं रहती। मौन रहने से झगडा नही होता। सावधान रहने से भय नहीं रहता।
२६५७) जब तक तुम अपने दिल को परेशान नहीं करोगे उस वक्त तक तुम दूसरों की परेशानियों को दूर नही कर सकोगे।

२६५८) क्षमता तभी पूज्य होती है जब हृदय में प्राणी मात्र के प्रति ममता का भाव विद्यमान हो।
२६५९) ऐसे व्यक्ति जो चिंता, भय और शंकाओं से घिरे होते हैं, कभी कामयाब नहीं होते और न ही उन्हें मानसिक शांति मिलती है।
२६६०) सामान्य स्थिति में पुरुष-नारी के जीवन में इतना दुष्प्रभाव कोई अन्य भावना नहीं डालती, जितना क्रोध या दहकता आवेश।
२६६१) परिस्थितियां अपने आप तनाव नही पैदा करती, ये तो आप की प्रतिक्रयायें है जो परिस्थितियों को ऐसा बना देती है।
२६६२) दो बैर करने वालों के बीच आप अपनी बात ऐसी कहो कि यदि वे मित्र बन जाये तो आपको लज्जित न होना पड़े।
२६६३) अपने दिल की गुप्त बाते किसी को मत बताओ। मन का भेद दूसरों को देने वाले धोखा खा जाते है।
२६६४) मनुष्य का अहंकार ऐसा ही है कि प्रासादों का भिखारी कुटी का अतिथि देव बनना भी स्वीकार नही करेगा।
२६६५) दुनिया मे भले कुछ भी होता रहे अगर इन्सान भलाई के रास्ते पर चले तो उसे कुछ भी खतरा नही है।
२६६६) जीवन की असंख्य चिन्ताओं के सन्तुलन स्वरूप ईश्वर ने हमे आशा व निद्रा भी प्रदान की है।
२६६७) यदि आप कम धन मे सुख का अनुभव करना नही चाहते तो अपार धनराशि भी आपको सुखी नही बना सकती।
२६६८) विजेताओं मे तेजी से आगे बढ़ने की अद्भुत शक्ति होती है जो उन्हे विजय दिलाती है।
२६६९) अगर हम बातचीत के लिये तैयार है तो हमे समझौतों के लिये भी तैयार होना चाहिये।
२६७०) आपकी छवि को कोई नही छीन सकता, बाकी सब कुछ छीना जा सकता है।
२६७१) दोस्ती अच्छे लोगों और नेक लोगों से किया करो वर्ना वे तुमको भी ले डूबेंगे।
२६७२) संतों का क्षण और अन्न का कण-उसे कभी बर्बाद मत करो।
२६७३) मानव का सबसे बड़ा दुर्गुण है ईर्ष्या। मानव के मन में ईर्ष्या रूपी विष जब आ जाता है, तो उसका चरित्र प्रदूषित हो जाता है।
२६७४) बताने वाले के प्रति सुनने वाले का जब तक आदर का भाव नहीं होगा, तब तक उसकी बतायी हुई बातों पर गौर नहीं कर सकता।
२६७५) जो अभिवादनशील होते हैं, हमेशा बड़ों को प्रणाम करते हैं, उनकी चार चीजें बढ़ती हैं, आयु, विद्या, यश और बल।
२६७६) बचपन में जो संस्कार हम अपने बच्चों में डालेंगे, वही संस्कार जीवन पर्यन्त रहेंगे।
२६७७) आंखों के सामने कभी पाप होते हुए नहीं देखना। शरण में शत्रु भी आ जावे, तो उसे क्षमा कर देना। अतिथि का सदा सत्कार करना।
२६७८) चिन्तन को बढ़ाओ और चिंता को मिटाओ। चिन्ता संसार की होती है, चिन्तन परमात्मा का होता है।
२६७९) अन्याय की बेल पर कभी अमृत का फल नहीं आ सकता, अन्याय की बेल कभी हरी-भरी नहीं हो सकती।
२६८०) भाव का भूखा हूँ मैं, भाव ही एक सार है। जो भाव से भजता है मुझे, भव से बेड़ा पार है।
२६८१) बिना मंदिर का घर श्मशान भूमि के समान होता है।
२६८२) प्रेम तो सबसे करो, पर ममता किसी से मत करो।
२६८३) संसार में रहना बुरी बात नहीं है, संसार को अपने ऊपर हावी कर लेना बुरी बात है।
२६८४) त्याग हमेशा अन्दर से होना चाहिए, बाहर से नहीं। बाहर से किया त्याग कभी भी डगमगा सकता है।
२६८५) कामनाओं की शान्ति कभी भी काम के उपभोग से नहीं हो सकती।
२६८६) अपना पेट तो सभी भरते हैं। जीना तो उसी का जीना है, जो दस का पेट भरकर अपना पेट भरे।
२६८७) करूणा जिसके जीवन में है, वही मानव सार्थक जीवन जी रहा है।
२६८८) कोई तन दु:खी, कोई मन दु:खी, कोई धन बिन रहत उदास। थोड़े-थोड़े सब दु:खी, सुखी राम के दास।।
२६८९) पति को पति कहलाने का अधिकार तभी है, जब हर प्रकार से पत्नी की सुरक्षा कर सके।
२६९०) पुरुषों की अपेक्षा माताओं का हृदय ज्यादा कोमल होता है। इनमें करुणा ज्यादा होती है।
२६९१) पति के आपत्तिकाल के जीवन में पत्नी जितनी सहायता कर सकती है, उतनी कोई नहीं कर सकता।
२६९२) अपने पैर की बिवाई जब-तक नहीं फटतीं, तब-तक दूसरे की पीड़ा का अनुभव नहीं होता।
२६९३) प्रत्येक परिस्थिति में एकरस रहने की आदत डालें।

२६९४) काजर से भी कारी कोई चीज है, वो व्यर्थ का कलंक है।
२६९५) स्वामी और सेवक का युद्ध होना मर्यादा के अनुकूल नहीं है।
२६९६) धन-ऐश्वर्य व्यक्ति को बिगाड़ देता है। विवेक तो साथ में होना ही चाहिए।
२६९७) संसार एक वहम है। इसलिए सत्य के द्वारा सत्य को पहचानो।
२६९८) कैसी भी परिस्थिति हो, विश्वास की जड़ को छोड़ना नहीं, कभी तो बात बनेगी और दिन जरूर बदलेंगे।
२६९९) जहाँ अहंकार है, वहाँ अज्ञान है। अहंकार और ज्ञान कभी एक जगह नहीं रह सकते।
२७००) जिसका अन्त:करण दोषयुक्त है, उसे अच्छाई-अच्छाई नहीं लगती, भलाई-भलाई नहीं लगती।
२७०१) जो बिना विचारे अथवा बुरी नियत से कार्य करता है वह दु:खों को निमंत्रित करता है।
२७०२) उन कामों को न करो, जो दूसरों के लिये निर्धारित हैं।
२७०३) प्रलोभन या स्वार्थ के लिये सदाचरण के मार्ग से विचलित न होओ।
२७०४) किसी धार्मिक अथवा कल्याणकारी कार्य के लिये भी चौर्य आचरण नहीं करो।
२७०५) ऐसे वचन न बोलो जिससे दूसरों को चोट पहुंचे।
२७०६) गलत सलाह मत दो।
२७०७) स्वार्थ-सिद्धि के लिये दूसरों पर झूठा आरोप न लगाओ।
२७०८) मालिक की पूर्व अनुमति के बिना पराये मकान या स्थान का उपयोग न करो।
२७०९) आय और व्यय का दैनिक हिसाब नियंत्रित रखो। आय से व्यय अधिक न करो।
२७१०) यदि कोई कर्जा चुका दिया गया हो तो उस बात को गुप्त न रखो।
२७११) योग्य पात्रों के प्रति दयालु और उदार रहो।
२७१२) दुर्जनों, धोखेबाजों और झूठों से किसी भी प्रकार का व्यवहार रखने से बचो।
२७१३) सामाजिक रीति-रिवाज के अनुसार लोगों को आदरपूर्वक सम्बोधित करो और आदरपूर्वक व्यवहार करो।
२७१४) ज्ञान और विद्या का दान अत्यन्त पुण्य का कार्य है।
२७१५) सम्भव हो तो किसी शैक्षणिक संस्था की सहायता या स्थापना करो।
२७१६) दैनिक जीवन में ईमानदार और नियमित रहो।
२७१७) रसना पर नियंत्रण रखो।
२७१८) निरर्थक बातों और गतिविधियों में अपने समय को व्यर्थ न गवाओ।
२७१९) यदि जीवन में संस्कार नहीं हो तो संपत्ति को राख होते देर नहीं लगती।
२७२०) अनीति का खूब मिले उसे बजाय नीति की सूखी रोटी मिले तो भी उसी में ही शान्ति है।
२७२१) वाणी को घी की तरह इस्तेमाल करना चाहिए, पानी की तरह नहीं। वाणी का संयम रखेंगे तो सुख आयेगा।
२७२२) एक-दूसरे के अवगुण देखने की आदत छोड़नी चाहिए और अच्छी वस्तु ग्रहण करनी चाहिए।
२७२३) सबका भला सोचना चाहिए, तभी आपका भला होता है। बुरा चाहोगे तो बुरा होगा।
२७२४) घर में बड़े लोग अच्छा आचरण रखेंगे तो घर के बालक भी सदाचारी बनेंगे।
२७२५) किसी की पड़ी हुई वस्तु नहीं लेनी चाहिए। वह ले लेंगे तो फिर किसी के घर की वस्तु लेने का मन हो जाएगा।
२७२६) झूठ-पाप-अन्याय की धन दौलत, व्यसन छोड़ना चाहिए लेकिन सत्संग नहीं छोड़ना चाहिए।
२७२७) अपने से बड़ों की मौजूदगी में हमें अपने से छोटों को डांटने-डपटने का अधिकार नहीं होता है।
२७२८) भाषा में कभी भी अशिष्ट व गंवारू शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
२७२९) यदि हमें किसी के खिलाफ बोलना पड़े तो यह समझ कर बोलें कि बात अमुक व्यक्ति तक पहुंचेगी।

२७३०) जहां व्याख्यानदाता बहुत हों वहां जहां तक हो व्याख्यान न दे।
२७३१) एकान्त में दो आदमी बात करते हों तो उनकी सम्मति के बिना उनके समीप न जाय।
२७३२) कर्तव्य का पालन न होने पर तथा अपने से बुरा काम बन जाने पर पश्चाताप करे, जिससे कि फिर कभी वैसा न हो।
२७३३) कल्याणकारी मनुष्य को उचित है कि मान और कीर्ति को कलंक के समान समझे।
२७३४) पैसे न्याय से ही पैदा करे, अन्याय से कभी नहीं चाहे भूखों ही मरना पड़े।
२७३५) पांडवों ने अपने से निम्न श्रेणी के राजा विराट की नौकरी स्वीकार कर ली, पर धर्म का किंचित्मात्र भी त्याग नहीं किया।
२७३६) स्वार्थ का त्याग समान व्यवहार से श्रेष्ठ है इसलिये निस्वार्थ भाव से सबकी सेवा करनी चाहिये।
२७३७) हमेशा याद रखना जरूरी है सच्चाई, मौत और काम।
२७३८) बात की कद्र करो क्योंकि वक्त हमेशा एक सा नहीं रहता।
२७३९) दौलत पर कभी घमंड मत करो क्योकि दौलत हमेशा पास नहीं रहती।
२७४०) अपना काम लोगों की नुक्ताचीनी से तंग आकर बन्द मत करो।
२७४१) ज्यादा बाते करके अपने आपको बेवकूफ मत साबित करो।
२७४२) दूसरों से कभी भी ऐसी बाते मत करो जो आप अपने बारे मे सुनना पसंद ही ना करो।
२७४३) सत्कर्म करनेवालों की भगवान भी सहायता करते है और असत्-मार्ग पर चलने वाले का साथ तो सगा भाई भी छोड देता है।
२७४४) दु:खी इन्सान के दु:ख के एक आंसू को पोंछना हजारो खून के आंसू बहाने से बेहतर है।
२७४५) सात्विक सोच तथा विचारों की ऊंचाइयां ही जड को चेतन एवं मानव को महामानव बनाने मे सक्षम है।
२७४६) चुगलखोरी और चापलूसी नहीं करो।
२७४७) जहां तक हो, पंच न बनना चाहिये। बने तो पक्षपात नहीं करना चाहिये।
२७४८) आलस्य दरिद्रता का मूल है।
२७४९) गरीबी दैवी अभिशाप नही, मानवीय सृष्टि है।
२७५०) सदियों की इबादत से बेहतर है, वह एक लम्हा, जो तूने बिताया किसी इन्सान की खिदमत में।
२७५१) पुत्र, धन, स्त्री, घर और परिवार जगत में बार-बार बन जाते हैं परन्तु जगत में सगा भाई बार-बार नहीं मिलता।
२७५२) जो पराई स्त्री, पराये धन, पराई निन्दा में आसक्त हैं, वे मानव नहीं राक्षस होते हैं।
२७५३) दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म और दूसरों को दु:ख पहुँचाने के समान कोई पाप नहीं है।
२७५४) विश्वासघात करके किसी को धोखा न दें।
२७५५) धर्म जीवन को पवित्र बनाता है।
२७५६) दूसरे की भलाई में ही हमारी भलाई है।
२७५७) धर्म सौन्दर्य में नहीं कर्तव्य में है।
२७५८) दोस्ती ऐसा दरिया है जिसमे सदा खुलूस का पानी बहता है।
२७५९) उतनी ही बाते रजा में रखो जितनी कि तुम उन्हे छुपा सको।
२७६०) हिकमत एक मुबारक पेड है जो दिल से उगता है और जबान से फैलता है।
२७६१) सादिक (सच्चा) का थोडा सा माल झूठे की बहुत सी दौलत से कई गुना अच्छा है।
२७६२) जब आपकी रोजी दूसरों से अले हो तो फिर बेसब्री और परेशानी किस लिये।
२७६३) लगन और एतमाद इन्सान को कामयाबी से हमकनार कर देते है।
२७६४) सौदा जहां में आके कोई कुछ न ले गया, जाता हूँ मैं एक दिले पुरे आरजू लिये।
२७६५) अपना फर्ज अदा करते रहना और खामोश रहना तोहमत का बेहतरीन जवाब है।

२७६६) हमारी किस्मत का फैसला अक्सर हमारी जबान की नोक पर ही होता है।
२७६७) अपने ऐब मालूम करना चाहते हो तो अपनी जान पहचान की औरत से दर्याफ्त करो।
२७६८) मसरूफियत और उदासी कभी एक साथ नही रहती।
२७६९) किसी भी नेकी को हकीर समझ कर बेकार मत करो।
२७७०) हालात से समझौता ही इन्सान को अपने हुकूक से महरूम करता है।
२७७१) सच्चाई का नाम हुस्न है और हुस्न का नाम सच्चाई है।
२७७२) हर अच्छा काम पहले नामुमकिन लगता है।
२७७३) मजहब दिल मे होता है सजदो में नही।
२७७४) मुस्कुराहट रूह का दरवाजा खोल देती है।
२७७५) बेवकूफ यकीन में और अकलमन्द शक में घिरे रहते है।
२७७६) इन्सान अन्दर से टूट जाये तो तामीरे हयात (जिन्दगी बनाने वाली) की किताबे मदद नहीं कर सकती।
२७७७) अध्ययन से दो फायदे है एक मालूमात में इजाफा होगा दूसरा तुम्हारी शख्सीयत भी दिलचस्प बन जायेगी।
२७७८) इल्म हासिल तो कर लिया जाता है लेकिन बहुत कम उस पर अमल किया जाता है।
२७७९) गम कितना ही संगीन क्यों न हो, नींद से पहले तक होता है।
२७८०) बेहतरीन अमल दूसरों को देना है न कि लेना।
२७८१) मकानों को बनाने में उम्र खत्म कर रहा है, उनमे बसेंगे तो दूसरे ही कोई और हिसाब तुझे देना पडेगा।
२७८२) तकब्बुर (गुरुर) करने वाले का सिर नीचे रहता है।
२७८३) सूफी वह है जिसका जाहिर व बाते एक है।
२७८४) तुम दुनिया के पीछे फिरते हो और दुनिया अल्लाहवालों के पीछे फिरती है।
२७८५) गुनाहों को छोड देना तौबा करने से आसान है।
२७८६) जब दुश्मन पर गलबा पाओ तो उसे मुआफ कर दो।
२७८७) खुदा के नजदीक बन्दे की वह गलती जो उसे तकलीफ दे, अच्छी है उस खूबी से जो उसे मगरूर बना दे।
२७८८) जिस अदालत मे मुजरिम ही मुन्सिफ हो तो उस अदालत से न्याय की आशा रखना व्यर्थ है।
२७८९) बेहतरीन अंजाम के लिये सिर्फ मेहनत से ही नही बल्कि लगन और चुस्ती से काम करे।
२७९०) वह शख्स अकलमन्द नही जो दुनिया की लज्जतों से खुश और मुसीबतों से बेचैन हो।
२७९१) बुराई को भलाई का जरिया बनाओ।
२७९२) बात को पहले देर तक सोचो, फिर मुंह से निकालो और फिर उस पर अमल करो।
२७९३) खुदा के बन्दे से इन्तिकाम लेने का मतलब खुदा को नाराज करना है न कि अपना गुस्सा निकालना।
२७९४) दुश्मन को मेहरबानी और अहसान से जीतो और दोस्त को नेक सुलूक से।
२७९५) साफगोई से नुकसान बहुत थोडा होता है मगर फायदा बहुत अधिक।
२७९६) जो शख्स ज्यादा गम बर्दाश्त कर सकता है वह अहम काम सर अन्जाम दे सकता है।
२७९७) तलवार, तोप और बन्दूक से इस कदर लोग नहीं मरते जितने कि अधिक खाने से मरते है।
२७९८) फसाद की जड है बढ़ते हुये अरमान।
२७९९) इन्तिकाम पर गौर करने वाला अपना जख्म ताजा रखता है।
२८००) किसी के अखलाक पर एतमाद मत करना जब तक कि उसे गुस्से की हालत में न देख लो।
२८०१) कुछ लोग सारी उम्र दोस्ती के नाम पर धोखा देते है और शर्मिन्दा भी नहीं होते।

२८०२) कुछ लोग इतने बामुरव्वत होते है कि एक ही जगह से धोखे खाकर भी वही पर जाते है।
२८०३) कुछ लोग इतने दिलनशीन होते है कि जिस राह से गुजरते है लोगों को अपना बना लेते है।
२८०४) कुछ लोग दूसरों के दिलों पर नकब लगा कर कितने मासूल दिखाई देते है।
२८०५) इन्सान को जो कुछ अता किया गया है उसमे सबसे बेहतर अच्छा अखलाक है।
२८०६) ईमानवालों मे ज्यादा कामिल ईमानवाले वह लोग है जिनका अखलाक अच्छा है।
२८०७) जिन लोगों के जहन मे अच्छे खयालात हो वे कभी भी अकेले नही रहते।
२८०८) अल्लाह के सिवा किसी और पर उम्मीद मत रखो और न ही किसी और पर भरोसा रखो।
२८०९) सबसे बडा गुनाह और पाप मां-बाप से सरकशी और उनका अपमान करना हे।
२८१०) जबान को शिकायत करने से रोको, खुशियां हासिल होगी।
२८११) दिल के रोग, जमीर की बीमारियां, अखलाक की कमजोरियां और रुह की खराबियां सब बद अमल का नतीजा है।
२८१२) कुछ गलतफहमियां इन्सान को अपनी जातके बारे मे होती है वह दूर हो जाना ही अच्छा है।
२८१३) बद अखलाकी दिलों से मुहब्बत खत्म कर देती है जिस तरह छत्ते से शहद निचोड लेते है।
२८१४) मन के कपटी और ऊपर से सज्जन बने हुए लोगों से सर्वथा अलग रहने में ही बुद्धिमानी है।
२८१५) मन, वचन, विचार और कर्म से कपटी कभी सुखी नहीं रहता।
२८१६) नीच की नम्रता से मुग्ध मत हो तथा समर्थ शत्रु से झगड़ा मत करो।
२८१७) मनुष्य को सदा मृत्यु और माया का ध्यान रखकर काम करना चाहिए।
२८१८) दुनिया में शक और वहम का कोई इलाज नहीं होता।
२८१९) जो साधु गांठ में दाम नहीं बांधता तथा नारी से प्रेम नहीं करता वैसे निर्लोभी और निष्कामी साधु पूजनीय होते हैं।
२८२०) जो नसीहत नहीं सुनता उसे लानत सुननी पड़ती है।
२८२१) शोहरत की बुलन्दी भी पल भर का तमाशा है, जिस डाल पर बैठे हो वह टूट भी सकती है।
२८२२) जीवन में ऊपर उठते समय सभी लोगों से अदब से पेश आयें क्योंकि नीचे गिरते समय आप इन लोगों से दोबारा मिलेंगे।
२८२३) आगाज का खयाल करो, अंजाम खुद बखुद बेहतर हो जायेगा।
२८२४) उस शख्स से बचने की कोशिश करो जो मजलिश से बेआबरू होकर निकले।
२८२५) इन्सान आंसुओं और मुस्कुराहटों के बीच का लटका हुआ लोलक है।
२८२६) सब में से मुझे वो शख्स प्यारा है जिसका अखलाक ऊंचा और अच्छा है।
२८२७) बुरी आदतवाला और सख्त बोलनेवाला शख्स जन्नत मे दाखिल नहीं हो सकता।
२८२८) ईश्वर अश्लील बकनेवाले को और बेहुदा को अपना दुश्मन समझता है।
२८२९) बहादुर वो है जो गुस्से के वक्त अपने नफ्स पर काबू रख सके।
२८३०) हद से ज्यादा तमन्नाये इन्सान को अन्धा कर देती है।
२८३१) औरत मर्द से ज्यादा अकलमन्द होती है क्योकि वह जानती कम है और समझती अधिक है।
२८३२) वही हकीकत मे आजाद है जो ख्वाहिशों के गुलाम नहीं है।
२८३३) बेहतरीन तजुर्बा वही है जिससे तुम नसीहत हासिल करो।
२८३४) जो दोस्त को पीछे से नसीहत करे वही उसका मोहसिन है।
२८३५) सबसे अखलाक से पेश आओ पता नहीं अल्लाह किस भेष मे मिल जाये।
२८३६) बुरी आदत जिस चीज मे होगी उसे बुरा बना देगी और हया जिस चीज मे होगी उसे जीनत देगी।
२८३७) बेहयाई हर चीज को भद्दा कर देती है और हया हर चीज को जीनत देती है।

२८३८) चुगलखोर जन्नत में दाखिल नहीं हो सकता।
२८३९) जो शख्स किसी पर रहम न करे, उस पर भी रहम नहीं किया जायेगा।
२८४०) बात कहो तो अच्छी कहो, वरना खामोश रहो।
२८४१) हया (शर्म) ईमान की एक शाख है।
२८४२) सबसे बडा सूद इन्सान की नाहक बेइज्जती है।
२८४३) तुम बदगुमानी से बचो क्योकि बदगुमानी सबसे झूठी बात है।
२८४४) जिसके दिल में राई के दाने के बराबर भी गुरुर व तकब्बुर होगा, वह जन्नत में दाखिल नहीं हो सकेगा।
२८४५) हिदायत दुनिया मे कामयाबी दिलाती है और इन्सान के भटके कदमों को रोकने की ताकत रखती है।
२८४६) अन्धेरों से निकाल कर रोशनी मे लाती है हिदायतें।
२८४७) इन्सान की आदतों मे बुजदिली और कंजूसी बहुत बुरी आदते है।
२८४८) बातचीत करने मे सफलता का राज है गुस्सा किये बिना ही असहमत होने मे सक्षम होना।
२८४९) जो जकात छिपी होती है, वह अल्लाह के गुस्से को शान्त करती है।
२८५०) जो धरती पर अल्लाह के नबी के साथ हिकारत भरा व्यवहार करता है, वह अल्लाह के साथ भी हिकारत भरा व्यवहार करता है।
२८५१) अल्लाह विनम्र है तथा वह विनम्रता से प्यार करता है।
२८५२) अल्लाह एकत्वमय है और वह एकता पसन्द करता है।
२८५३) जो भी अपने गुस्से को दबाता है जबकि उसमें इसे प्रकट करने की ताकत होती है, तो अल्लाह उसे बहुत बड़ा इनाम देगा।
२८५४) वह शख्स जन्नत में नहीं घुस सकेगा, जिसके दिल में घमण्ड का एक भी कण मौजूद है।
२८५५) विनीतता और विनम्रता ईमान की दो शाखाएं हैं और बकवास करना तथा लच्छेदार बात करना फरेब की दो शाखाएं हैं।
२८५६) जन्नत उसके लिए नहीं है, जो दान देने के बाद अनुग्रह के भाव के साथ दूसरों से मिलता है।
२८५७) जो अपने आप को जानता है, वह अल्लाह को जानता है।
२८५८) जो ज्ञान की खोज में घर-बार छोड़ देता है, वह अल्लाह के रास्ते पर चलता है।
२८५९) आदमी में लालच एक ऐसी बुराई है, जो उसे बेचैन बना देती है और कायरता (सभी सद्गुणों की) धज्जी उड़ा देती है।
२८६०) प्रभु की मर्जी के बगैर पत्ता भी नहीं हिल सकता है। अल्लाह रखेगा, वैसा रहना। फकीरी अव्वल बादशाही।
२८६१) निश्चय ही अल्लाह का डर रखने वाले ऐसे स्थान में होंगे, जहां कोई खटका न होगा।
२८६२) जो अल्लाह की राह पर खर्च करने में कंजूसी करता है, वह असल में अपने ही साथ कंजूसी करता है।
२८६३) लोगों को न तो अल्लाह का शाप दो, न उसके गुस्से का और न जहन्नुम की आग का शाप दो।
२८६४) अपनी औरतों को मस्जिद-मंदिर में आने से न रोको, मगर उनका घर ही उनके लिए बेहतर है।
२८६५) लोगों से नम्रता से पेश आओ और कठोर न बनो, उन्हें आनन्दित करो और उनका तिरस्कार मत करो।
२८६६) औरतों के हक पाक हैं। इस बात की व्यवस्था करो कि औरतों को उनके हकों के अनुसार रखा जाए।
२८६७) रोजा रखते हुए व्यक्ति को बुरी बात कहने से बचना चाहिए और नुकसान होने पर भी गुस्सा नहीं करना चाहिए।
२८६८) ऐ अल्लाह। जैसे तूने मेरे शरीर को अच्छा बनाया है, वैसे ही मेरी प्रवृत्ति भी अच्छी कर दे।
२८६९) मेरी सन्तुष्टि की खोज गरीब और जरूरतमन्द की सन्तुष्टि में कर।
२८७०) खड़े होकर अपनी इबादत कर, अगर तू इसके लायक नहीं, तो बैठकर कर, अगर बैठकर न कर सके तो बाजू के बल कर।
२८७१) अगर तू (अपने) लोगों के गुनाहों का अनुसरण करेगा, तो तू उन पर कहर बरसाएगा।
२८७२) जो इस संसार में दो चेहरेवाला है, उसे कयामत के दिन आग की दो जीभें मिलेंगी।
२८७३) लोगों, बंदगी करो अपने उस रब की जिसने तुम्हें और तुमसे पहले के लोगों को पैदा किया, ताकि तुम बच सको।

२८७४) नमाज कायम करो, जकात दो और अल्लाह के सामने झुकने वालों के साथ तुम भी झुको।
२८७५) प्रत्येक वस्तु में लगाने के लिए एक ऐसा रसायन है, जो उसमें जंग नहीं लगने देता और हृदय के लिए यह रसायन है अल्लाह की याद।
२८७६) आकाशों और धरती में जो कुछ है, अल्लाह का है। निस्संदेह अल्लाह अपेक्षा-रहित और आपसे-आप प्रशंसा का अधिकारी है।
२८७७) अमानत मे खयानत करना पाप है, जो करता है वह अपना दुश्मन आप है।
२८७८) दिलों पर जंग लग जाये तो इसे दूर करने वाली चीज तौबा है।
२८७९) इन्सान की शख्सीयत का निखार उसकी दौलत से नही बल्कि उसके किरदार से होता है।
२८८०) दिल की गहराईयों से उसे चाहो, जो तुम्हें भी शिद्दत से चाहता है।
२८८१) दूसरों की खूबियों को जाहिर न करना शराफत नही है।
२८८२) इन्सान को जिन्दगी मे एक बार मिलते है मां-बाप, हुस्न और जवानी।
२८८३) भाई को भाई का दुश्मन बना देते है जन, जर और जमीन।
२८८४) अगर आपको खुशामदी करने वाले दिल पसन्द नौकर की तलाश है तो पहले स्वयं अपना गुलाम बनो।
२८८५) वे लोग गलती पर है जो मां-बाप की सेवा नही करते और अपनी औलाद से इसकी उम्मीद रखते है।
२८८६) अपनी मुसीबतों का जिम्मेदार किसी दूसरे को न ठहराये।
२८८७) सिर्फ उम्मीदों के सहारे जीना अपने आपको धोखा देना है।
२८८८) हर हाल में खुश रहना खुशनसीबी है।
२८८९) हालात चाहे जैसे हो हमेशा नेकी के रास्ते पर चलो, सही कामयाबी मिलेगी।
२८९०) कामयाब वह इन्सान है जिसका आचरण अच्छा है।
२८९१) जो मौन (खामोश) रहता है वह सदा सुरक्षित और सलामत रहता है।
२८९२) किसी को मुसीबत मे पडा देख कर अपनी खुशी का इजहार मत करो।
२८९३) हर हाल मे खुश रहना जिन्दादिली है।
२८९४) जिस्म से निकली हुई रूह, जुबान से निकली बात और कमान से निकला तीर इन सबकी वापसी ना मुमकिन है।
२८९५) कामयाबी का जीना बहुत सी नाकामियों की सीढियों से बना हुआ है।
२८९६) पहली असफलता से कभी मत घबराओ यही तुम्हारी बुलन्दी की पहली सीढी है।
२८९७) तीन चीजों पर काबू रखो गुस्सा, जबान, दिल।
२८९८) इनका आदर करो मां-बाप, गुरु और कानून।
२८९९) बातचीत में सबसे कीमती चीज खामोशी के पल है।
२९००) जिन्दगी का कोई मकसद बना कर पूरी ताकत उस पर लगा देने से कामयाबी अवश्य हासिल हो जायेगी।
२९०१) दूसरों का हक छीन कर अपना ईमान मत खराब करो।
२९०२) किसी भी प्राणी मात्र को नुकसान मत पहुंचाओ, उसके साथ अच्छा सलूक करो।
२९०३) ईमान लाने के बाद फिर ईमान से भटक जाने से उतना ही उसे दु:ख होगा जितना आग में पडने से।
२९०४) इन्सान का पहनावा और उसकी संगति उसके चरित्र का पहला प्रमाण पत्र है।
२९०५) लोगों से अलग रह कर जिन्दा तो बेशक रहा जा सकता है लेकिन खुश नहीं।
२९०६) मुसीबत की जड इन्सान की बातचीत और बोलने का तरीका है।
२९०७) उस दिन के लिये रोना चाहिये जो बिना कोई नेक काम करे दिन गुजर गया।
२९०८) कभी कभी भलाई किसी और के साथ की जाती है और उसका सिला और कद्र कोई और करता है।
२९०९) वह नेक नहीं है जिससे लोग डरते हो।

HHH(४५५)HHH

२९१०) इन्सान खुद तो नहीं रहता है लेकिन जो काम कर जाता है वह रह जाता है।
२९११) खुदा से डर कर रहो और जबान सीधी चलाओ तो आदमी भी सीधा चलेगा।
२९१२) अपने किरदार को इतना बुलन्द करो कि छोटी छोटी तकलीफे तुम्हारा कुछ न बिगाड सके।
२९१३) खुदा के सामने झूठी बात कहना और झूठी गवाही देना सबसे बडा गुनाह है।
२९१४) इन्सान को ऊंचाई पर ले जाना काफी मुश्किल है मगर गिरा देना मुश्किल नही।
२९१५) कमाल तो उस शख्स का यह है कि हवा में उडने के बजाय हवाओं के साथ- साथ उडे विपरीत दिशा में न बहे।
२९१६) हम गलतिया करते है और कहते है यह तजुर्बा है।
२९१७) सबसे बडा इन्सान तो वो है जिसने इन्सानों की सबसे ज्यादा खिदमत की है।
२९१८) इन्सान का सबसे अच्छा काम इन्सानों को भली प्रकार से समझना है।
२९१९) गुस्सा एक ऐसी चीज है जो मुंह तो खोल देता है लेकिन आखें बन्द कर देता है।
२९२०) किसी पर भी अपने दिल का राज, किसी दूसरे का राज, किसी दूसरे के ऐब जाहिर मत करो।
२९२१) मुसीबत में आराम की तलाश मुसीबत को बढ़ा देती है।
२९२२) किसी का दिल मत दुखाओ क्योंकि तुम्हारे पास भी एक दिल है।
२९२३) किसी को इतना भी मत चाहो कि वह मगरूर हो जाये।
२९२४) मंजिल की तरफ बढ़ने से मंजिल अवश्य हासिल होती है।
२९२५) वफा करना उस फूल से सीखो जो टहनी से जुदा होते ही मुरझा जाता है।
२९२६) जिन्दगी के दु:ख तो आदमी को इन्सान बनाते है और दु:खों का मुकाबला आसुओं से नही बल्कि हौसले से करना चाहिये।
२९२७) इन्सान समन्दर मे डूब कर मर सकता है लेकिन आसुओं मे भीगकर मर जाता है।
२९२८) वक्त की कदर करने वाले वक्त नही खुद अपनी कदर करवाते है।
२९२९) जो ज्यादा पूछता है वह अधिक सीखता है। बेशक देर तक सोचो लेकिन सोचने के बाद जो फैसला करो वह अटल हो।
२९३०) इन्सान वास्तव में सम्भल कर रहने को ही पसन्द करता है क्योकि वहां से गिरने का खतरा नहीं होता है।
२९३१) अमीर हो तो गरीब की इज्जत करना सीखो। तुम भी कभी उस हालात में आ सकते हो।
२९३२) जो शख्स इसलिये अपना सुधार कर रहा है कि दुनिया उसकी तारीफ करे तो उसका सुधार नही हो रहा है।
२९३३) किसी के आंसू पोछो किसी का खून मत बहाओ।
२९३४) इसमे शक नहीं कि समन्दर में रहने से बेशुमार फायदे है लेकिन सलामती चाहते हो तो किनारे पर रहना ही बेहतर है।
२९३५) सच्चाई हर इन्सान को धोखे से बचाती है। एक झूठ सौ झूठ को जन्म देती है।
२९३६) अपने किरदार को पारे की तरह भारी बनाओ न कि रूई की तरह हल्का।
२९३७) शराफत से झुका हुआ सिर शर्म से झुके हुये सिर से कही अधिक बेहतर है।
२९३८) बेवकूफों को अपनी बात सुनाने के बजाय अकलमन्दों की बात सुन लेना कही अधिक बेहतर है।
२९३९) हर ठोकरें खाने के बाद इन्सान को एक नई नसीहत मिलती है।
२९४०) जिन्दगी मे अगर गम नही तो जिन्दगी में जीने का कोई मजा नही है।
२९४१) बडा बेवकूफ है वह जो दुसरों की बुराईयों को बुरा समझे और खुद उन पर ही बैठा हुआ हो।
२९४२) चेहरे को कोई नही देखता। सब तुम्हारे दिल को और नीयत को देखते है। नीयत मे सच्चाई दूसरे के दिल को छूती है।
२९४३) जिन्दगी का मक्सद वह चीज होती है जो इन्सान के साथ हर वक्त रहे।
२९४४) खराब माल को अच्छा बता कर बेच देना गलत व्यवहार है जो कारोबार वादों के खिलाफ है और गुनाह है।
२९४५) मुसीबतों मे घबराना मुश्किलों को बढ़ाना है।

HHH(४५६)HHH

२९४६) जैसा हम देते है वैसा ही पाते है। दूसरों से पाने के मुकाबले दूसरों को देना कही ज्यादा बडी बरकत है।
२९४७) आप किसी को यह यकीन करा दे कि वह गलत है तो वह लडखडा जायेगा।
२९४८) कुछ आंखे इन्तजार करते कभी भी नहीं थकती, बस पथरा जाती है।
२९४९) मुस्कुराहट दिल का दरवाजा खोल देती है।
२९५०) कभी किसी का दिल मत दुखाओ, कही ऐसा न हो कि उसके आंसू तुम्हारी सजा बन जाये।
२९५१) अच्छाई अच्छे दिल की मोहताज होती है। अच्छी जबान की नहीं। सादगी को इन्तिहा तक ले जाने में ही खूबसूरती है।
२९५२) अच्छे काम का इरादा नेकी है और बुरे काम को छोड देना भी नेकी है।
२९५३) आदमी के कमाल मे शामिल है कि वह बेकार बातों और बेकार कामों से अपना बचाव कर ले।
२९५४) इन्सान दरअसल आराम पस्तियों में ही रहने को पसन्द करता है क्योकि वहां से गिरने का डर नहीं होता है।
२९५५) जो आदमी इरादे कर सकता है उसके लिये कुछ भी नामुमकिन नहीं है।
२९५६) हमेशा हक बात कहो चाहे वह तुम्हारे खिलाफ ही क्यो न हो।
२९५७) कोई आयना हमारी इतनी हकीकी तस्वीर पेश नहीं कर सकता जितनी हमारी बातचीत।
२९५८) अल्लाह की नजर में सबसे प्यारी चीज मां बाप की खिदमत है।
२९५९) जिनका उद्देश्य ऊंचा हो उसे आराम तल्बी और हर दिल अजीजी से खौफ रहता है।
२९६०) सद्गुणशील, मुसिफ मिजाज और अकलमन्द आदमी तब तक नही बोलता जब तक पूर्ण तरह से खामोशी नही हो जाती।
२९६१) अपने पडोसियों को तकलीफ मत दो, बीबी को ताना मत मारो। किसी को गलत मशवरा मत दो।
२९६२) जवानी में बहका हुआ कदम बुढापे में रुलाता है।
२९६३) झूठ एक ऐसा रिश्ता है जिससे दूसरे रिश्ते टूट जाते है।
२९६४) खूबसूरत वो है जो खूबसूरत काम करे।
२९६५) अपने वालिद की कदर करो क्योकि वे हमेशा तुम्हारे पास नहीं रहेंगे।
२९६६) इल्म की कदर करो। इल्म से बढ़कर दूसरी कोई दौलत नहीं।
२९६७) दुनिया में किसी का दिल मत दुखाओ ताकि कब्र के अन्धेरों में परेशानी न हो।
२९६८) सब्र और ईमान से मदद करो। खुदा सब्र करने वालों के साथ है। मुसीबत के वक्त सब्र से काम लो क्योकि सब्र का फल मीठा होता है।
२९६९) नेक अन्जाम की खुशखबरी उन्ही के लिये है जो ईमानदार है और अपने फर्जों मे कोई कमी नहीं लाते।
२९७०) वे सारी तदबीरे जो इन्सान की मुसीबतों और तकलीफों में बचाव के लिये इस्तेमाल होती है वे जायज और अल्लाह के रहमों करम से है।
२९७१) अपनी औलाद में अदब सिखाना नेकी है। एक बाप अपने बेटे पर अदब यानि अच्छे तौर तरीके सिखाने से बढ़कर और कोई मेहरबानी नही।
२९७२) प्रेम की स्थिति सर्वोत्तम है।
२९७३) इन्सान को जलील करती है- चोरी, चुगली और झूठ।
२९७४) हर शख्स को प्यारी होती है- औरत, औलाद और दौलत।।
२९७५) गम में घिरे रहते है काहिल, वहमी और हासिद।
२९७६) वे अमल आलिम पारस पत्थर की तरह है जो औरों को तो सोना बना देता है मगर खुद पत्थर का पत्थर ही रहता है।
२९७७) अल्लाह के दिये हुये पर राजी रहो वर्ना कोई ऐसा मालिक तलाश करो जो उससे ज्यादा दे सके।
२९७८) धर्म तो एक विश्वास है, एक निष्ठा है, एक श्रद्धा है और एक आचरण है।
२९७९) कर्म के फल का नाम भाग्य है।
२९८०) प्राण शक्ति को संजोकर रखो, फिर चमत्कार देखो।
२९८१) स्वावलंबन की एक झलक पर, न्यौछावर कुबेर का कोष।

२९८२) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपति लक्ष्मी- उद्योगपारायण पुरुष को ही लक्ष्मी कृपा प्राप्त होती है।
२९८३) बैरी भी अद्‌भुत कार्य करके स्तुति के पात्र बन जाते हैं।
२९८४) जिससे बहुत लोग भयभीत रहते हैं, वह स्वयं भी बहुतों से भयभीत रहता है।
२९८५) आनंद का अक्षय स्त्रोत अपने अंदर ही है- अत: अंतर्मुखी बनिये।
२९८६) लंधनं परमं औषधम्- लंधन (उपवास) सर्वश्रेष्ठ औषध है।
२९८७) प्रेता जयता नर- आगे बढो और विजय प्राप्त करो।
२९८८) नित्य कृत्य पांच महा प्रज्ञ- देव यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ, अतिथि यज्ञ, पितृ यज्ञ और भूत यज्ञ।
२९८९) जो फल खाना चाहता है उसे पेड पर चढ़ना पडता है।
२९९०) कर्म तेरे अच्छे हैं तो किस्मत अपनी दासी है, मन शुद्ध तो घर में गंगा, काबा, काशी है।
२९९१) जितना ज्यादा दान, उतनी ज्यादा सम्पदा।
२९९२) राम राम सब कहते हैं ठग, ठाकुर और चोर, पर तुलसी बिन शुभ आचरण के ना रीझे नंद किशोर।
२९९३) वाणी से मिश्री एवं नेत्रों से स्नेह बरसाएं।
२९९४) सेवा को व्यवसाय नहीं, व्यवसाय को सेवा बनाओ।
२९९५) यह कलियुग नहीं, करयुग है, जैसा करोगे वैसा ही पाओगे।
२९९६) भगवान् पर कभी अविश्वास न करो, यह सबसे बड़ा पाप है।
२९९७) परमात्मा की प्राप्ति अनुग्रह से होती है, आग्रह से नहीं।
२९९८) यह प्रभु की ही लीला थी, रावण में कहां शक्ति कि सीता हरण कर ले ?
२९९९) भरत राजा नहीं संत थे। भरत बनो।
३०००) यह रामजी की ही कृपा थी, हनुमानजी ने लंका दहन किया।
३००१) शक्ति के दुरुपयोग से ही रावण का अंत हुआ।
३००२) शक्ति स्वरूपा सीता जी से जो मांगें मिलेगा।
३००३) सर्व सुखदाता राम दीनानाथों के नाथ तथा शक्तिहीनों की शक्ति है।
३००४) प्रभु की कृपा से पत्थर पानी पर तैर गये।
३००५) संत संगति से गुस्सा मर जाता है।
३००६) दु:ख आए तो समझ जाओ, भगवान परीक्षा ले रहे हैं।
३००७) सच्चे मार्ग पर चलेंगे तो परमात्मा मिलेंगे।
३००८) जिसका मन पवित्र नहीं उसका कोई काम पवित्र नहीं होता।
३००९) करुणावश दूसरों की भलाई करना अवश्य अच्छा है, पर शिवज्ञान से जीवसेवा सबसे उत्तम है।
३०१०) साधु का जीवन अमीर को अपरिग्रह-त्याग की प्रेरणा देता है और गरीब को सन्तोष-प्रसन्नता की प्रेरणा देता है।
३०११) भ्रान्ति चाहे अविद्याजन्य हो अथवा प्रेमजन्य, दु:खका ही कारण बनती है।
३०१२) संतोष से काम, क्रोध और लोभ तीनों नष्ट हो जाते हैं।
३०१३) भगवान् की तरफ खिंचाव का नाम भक्ति है। भक्ति कभी पूर्ण नहीं होती, प्रत्युत् उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती है।
३०१४) भगवान् के लिए उनमें अपनापन की जरूरत है और उनके दर्शन के लिए उत्कट अभिलाषा की जरूरत है।
३०१५) जो हमसे कुछ भी चाहते हैं, वे हमारे गुरु कैसे हो सकते हैं ?
३०१६) शब्द गुरु है, आत्मा शिष्य-यह मधुर गान है।
३०१७) जो शब्द की चर्चा से अपना सच्चा स्थान ढूंढ लेता है, नानक उसकी सच्ची सेवा करेगा।

३०१८) भगवान एक हैं, परन्तु उनके रूप अनेक हैं। ईश्वर ही सृष्टिकर्ता हैं और वे स्वयं मानव-अवतार लेते हैं।
३०१९) भगवान निर्भय हैं। उनका कोई शत्रु नहीं है, वे मृत्यु से परे हैं। वे पुनर्जन्म से मुक्त हैं।
३०२०) गुरु की दया से ही हमारी रक्षा हुई है और राम शब्द के योग से ही अहंकार का नाश हुआ।
३०२१) युगों तर्क तर्क-वितर्क करने से भी ईश्वर का कभी आकलन नहीं हो सकता।
३०२२) जो ईश्वर की इच्छा है वही होकर रहेगा। प्रारब्ध को कोई मिटा नहीं सकता।
३०२३) वे ही गुरु वे ही प्रभु और वे ही ईश्वर-तीनों मिलकर एक हैं।
३०२४) वाह ! प्रभु की कृपा से पत्थर पानी पर तैर गये !
३०२५) मंगलमय वाणी वाला मनुष्य प्राणियों को आनन्दित करता है।
३०२६) जो आत्मा को अमर नहीं मानते वे ही मृत्यु से काँपा करते हैं।
३०२७) परमात्मा की प्राप्ति के बिना मनुष्य का शरीर कुछ काम का नहीं है।
३०२८) सत्ता भोगने के लिए नहीं सेवा के लिए है।
३०२९) ममता भगवान से, समता संसार से।
३०३०) प्रेम ! पशु पक्षी और मनुष्य को ही नहीं; परमात्मा को भी अच्छा लगता है।
३०३१) कामना रूपी डाकिनी का आवेश उतरने पर शांति के दर्शन होते हैं।
३०३२) दिमाग का सबसे बड़ा हित ईश्वर का ज्ञान है।
३०३३) प्रभु के अलावा किसी से भी दिल लगाया तो पछताना पडेगा।
३०३४) गाय, गीता, चोटी, तुलसी चंदन देव दर्शन हिंदू धर्म के लक्षण हैं।
३०३५) बाहरी पवित्रता की अपेक्षा हृदय की पवित्रता चरित्र को उज्ज्वल बनाती है।
३०३६) पर निन्दा कभी न करें।
३०३७) उत्तम पदार्थ को अकेले कभी न खायें, बांटकर ही खायें।
३०३८) माता-पिता सदा ही वंदनीय हैं।
३०३९) शुभाशुभ कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।
३०४०) संतों को परोपकार में ही सुख मिलता है।
३०४१) निषिद्ध कर्मों को कदापि न करें भले ही वे सुखकर मालूम पड़ें।
३०४२) अच्छे कार्य में- धर्मकार्य में विलंब न करें।
३०४३) परूष (कषाय) बचन कभी न बोलें।
३०४४) संतों के दर्शन मात्र से विपत्ति दूर हो जाती है।
३०४५) गुरू को प्रणाम करने से देवताओं की कृपा प्राप्त होती है।
३०४६) सदाचारी ब्राह्मणों की अवमानना न करें।
३०४७) शरीर को रोगी और दुर्बल रखने के समान कोई दूसरा पाप नहीं।
३०४८) अपना हृदय पवित्र रखोगे तो दस प्राणियों की ताकत रखोगे।
३०४९) जो स्वयं नहीं भोग सकता, वह प्रसन्न मन से दान भी नहीं कर सकता।
३०५०) तप का फल है प्रकाश और ज्ञान।
३०५१) जिसका मन शुद्ध रहता है, वह सभी को शुद्ध समझता है।
३०५२) जो विनम्र स्वभाव तथा बूढ़ों की सेवा करता है उसके चार तत्व बढ़ते हैं- आयु, ताकत, यश और विद्या।
३०५३) अधिक योग्य बने बिना दूसरों से बराबरी का दावा मत करो।

३०५४) किसी का दिल दुखानेवाली बातें मत कहो।
३०५५) हर एक काम ईमानदारी व लगन से करो।
३०५६) कर्म ही कामधेनु है।
३०५७) परोपकार का प्रत्येक कार्य स्वर्ग की ओर एक कदम है।
३०५८) देह जल से अधिक पवित्र होता है मन सत्य से, आत्मा धर्म से और बुद्धिज्ञान से पवित्र होती है।
३०५९) निंदक के शुभ कार्य नष्ट हो जाते हैं।
३०६०) विद्या से बढ़कर कोई दौलत नहीं।
३०६१) मानव को सत्संग, संतोष, दान और दया का सेवन करना चाहिए।
३०६२) किसी सच्चे प्राणी को किसी प्रकार दुखित न करना ही अहिंसा है।
३०६३) जो अपने मुख और जिह्वा पर संयम रखता है वह अपनी आत्मा को संतापों से बचाता है।
३०६४) संतोष प्रयास में है उपलब्धि में नहीं।
३०६५) जीवन में कुछ पवित्र और धार्मिक है, स्त्रियां उसकी विशेष संरक्षिकाएं हैं।
३०६६) प्रेम असाध्य रोग है।
३०६७) सच्चे प्रेम में मनुष्य अपने-आपको भूल जाता है।
३०६८) जहां प्रेम और भक्ति नहीं, वहां परमात्मा नहीं।
३०६९) परमात्मा पूजा का नहीं, प्रेम का भूखा है।
३०७०) प्रार्थना करने वाले हाथ से कर्म का हाथ श्रेष्ठ है।
३०७१) पाप से डरो, पापी से नहीं।
३०७२) आलस्य से बढ़कर कोई रोग नहीं।
३०७३) ऐसा वचन न कहो जो खुद को पसंद न हो।
३०७४) माता-पिता की सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं।
३०७५) सत्य एक उपलब्धि है। जिस व्यक्ति ने आत्म ज्योति को नहीं जगाया वह अध्यात्म जगत् के दर्शन भी नहीं कर सकता।
३०७६) अल्पभाषी सर्वोत्तम मनुष्य है।
३०७७) ईश्वर ने हमें आंखें तो दो ही दी हैं, कान भी दो किंतु मुंह एक- यह इसलिए कि हम अधिक देखें, अधिक सुनें किंतु बोलें कम।
३०७८) प्राणी कर्म का त्याग नहीं कर सकता, कर्मफल का त्याग ही त्याग है।
३०७९) जो कर्म उचित और अवसर प्राप्त (युगानुसार) है, उसे तू हेतु रहित कर।
३०८०) पहली बात यह है कि एक क्षण के लिए भी खाली मत रहना।
३०८१) सच्चा मित्र वह है जो दर्पण के समान तुम्हारे दोषों को तुम्हें दर्शाए, जो तुम्हारे दोषों को गुण बताए वह तो चापलूस है।
३०८२) जब शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है, तो फिर भय किसका, और किसलिए ?
३०८३) प्रार्थना का अर्थ अमुक शब्दों का दोहराना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है दैविकता की अनुभूति और प्राप्ति।
३०८४) जो बिना प्रार्थना किए सोता है, हर दिन को दो राते बनाता है।
३०८५) प्रार्थना है एक देखनेवाली और उल्लास में मस्त रहनेवाली आत्मा का आत्म-निवेदन।
३०८६) हृदय की सच्ची प्रार्थना से हमें सच्चे कर्तव्य का पता चलता है। आखिर में तो कर्तव्य करना ही प्रार्थना बन जाती है।
३०८७) पवित्र हृदय से निकली हुई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।
३०८८) प्रार्थना करना कुछ शब्दों को दुहराना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है परमात्मा का मनन और अनुभव करना।
३०८९) प्रार्थना की खूबी है कि वह सब प्रलोभनों पर विजय दिलाती है।

३०९०) प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नहीं, वह तो शिशु से सरल हृदय की वस्तु है।
३०९१) प्रेम की शक्ति दंड की शक्ति से हजार गुनी प्रभावशाली और स्थायी होती है।
३०९२) जहां प्रेम का सहज संपर्क है, वहां बंधन तो व्यर्थ है। प्रेम के माने ही मुक्ति है।
३०९३) बुद्धि के बिना मनुष्य अपंग के समान है।
३०९४) वह व्यक्ति परम सुखी है, जिसे सुबुद्धि प्राप्त है और जिसके पास विवेक का वास है।
३०९५) उसी की बुद्धि ठीक अथवा स्थिर रह सकती है, जिसकी इंद्रियां उसके वश में हो।
३०९६) यदि विश्व में कोई ऐसा सद्‌गुण है, जिसकी प्राप्ति सदैव हमारा लक्ष्य होनी चाहिए तो वह मन की प्रसन्नता है।
३०९७) प्रसन्नता परम स्वास्थ्यवर्धक है, देह और मन दोनों के लिए मित्र तुल्य।
३०९८) प्रसन्नता में योगदान देने वाली वस्तुओं में स्वास्थ्य से बढ़कर और धन से घटकर कुछ नहीं।
३०९९) समस्त आचरण सिद्धांत का मूल तत्व यह है कि जो आचरण चिन्मुख है वह श्रेष्ठ है।
३१००) सत्य ईश्वर की आत्मा है और प्रकाश उनका शरीर।
३१०१) सबसे उत्तम तीर्थ अपना मन है जो विशेषरूप से शुद्ध किया हुआ है।
३१०२) अतिथि जिसका अन्न खाता है, उसके पाप धुल जाते हैं।
३१०३) शांति का सीधा संबंध हमारे हृदय से है, सहृदय होकर शांति की खोज कीजिए।
३१०४) अपने हिस्से आए हुए काम को हम भी निरंतर करते रहे, इसी में परमेश्वर की सच्ची उपासना है।
३१०५) जब हम कोई काम करने की इच्छा करते हैं, तो शक्ति आप ही आ जाती है।
३१०६) किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है।
३१०७) पाप, कर्म स्वयं न करें न दूसरों से कराएं।
३१०८) दानशीलता हृदय का गुण है, हाथों का नहीं।
३१०९) निश्चित ही शरीर धर्म का प्रथम स्थान है। अहिंसा श्रेष्ठ धर्म है।
३११०) अपने हृदय में गुरु का ध्यान करो और मुंह से गुरुमन्त्र का जप करो।
३१११) आंखों से गुरु को देखो और पुण्यनाम का अनादि गीत कानों से सुनते रहो।
३११२) रक्षा कर तू उन सबकी, करुणामय हे दयानिधि, कौन बचा सकता उनको यमयातना से छोड़ तुझे
३११३) नानक तुझको भुला न पाए ऐसी रक्षा करना है, दयादृष्टि हो, कृपादृष्टि हो, रक्षक मेरे जगत्‌पति
३११४) दर्शन देना, प्राणविधाता, जीवन के मम जीवन है, संत सभा में गान करूं तब नित्य निरन्तर कीर्ति प्रभु
३११५) हे नानक के प्रभु नानक पर दया कर, और उसके तन मन में घुल जा।
३११६) प्रेमनिधि मन देना ऐसा कभी न तुझको भूलूं मैं, बुद्धि प्रभो तुम देना ऐसी, चिन्तन में नित झूलुं मैं
३११७) श्वास-प्रश्वास करूं तव स्तुति, नित्य निरन्तर ध्यान रहे
३११८) पद-पंकज में गुरुदेव प्रभो शरणागति का शुभ ज्ञान रहे।
३११९) मम मन है तेरे अधीन, यह शरीर भी तेरे अधीन, क्योंकि तू ही मेरा एक मात्र है प्रभु
३१२०) मेरे अहं से मुझे छुटकारा दिलाकर, मुझे अपने आप में लीन कर ले।
३१२१) मन के पत्थर पर नाम का चन्दन घिस और सत्‌कार्य का रंग मिला। फिर ईश्वर की हृदय में पूजा कर।
३१२२) वे शुद्ध नहीं हैं जो शरीर स्वच्छ रखते हैं बल्कि वे शुद्ध हैं जो ईश्वर को अपने हृदय में बसाते हैं।
३१२३) मनुष्य जीवन दूसरे के भलाई के लिए है। दुसरे के दु:ख में सुख बाटना वही सच्चा सुख है।
३१२४) संसार में दो व्यक्ति दुर्लभ है उपकारी और कृतज्ञ।
३१२५) अहिंसा केवल बुद्धि का विषय नहीं है, यह श्रद्धा और भक्ति का विषय है।

३१२६) मन के कर्म के लिये प्रेम होना चाहिये और वह कर्म जिसके लिये करना हो, उसके लिये भी मन में अपार प्रेम होना चाहिये।
३१२७) परमेश्वर देखता है और छिपाता है। पडोसी देखता नहीं और चिल्लाता है।
३१२८) भगवान और भक्तों (वैष्णवों) की ओर पैर फैला कर कभी न बैठें।
३१२९) किस स्थान में जाकर तुम्हारी शरण लूं, यदि यही जानना चाहते हो तो, मैं तो तुम्हारे हृदय में हूं। जो हृदयस्थ है उसी की शरण लो।
३१३०) सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते।
३१३१) श्रेष्ठ पुरुष दूसरे की बुराई करनेवाले पापियों के पाप कर्म को नहीं अपनाते है।
३१३२) भूखे लोगों को अन्न तथा जल देना चाहिये।
३१३३) राम नाम भवसागर से पार करानेवाला पुल (बांध) है।
३१३४) रामजी की कृपा से सब दोष भी गुण बन जाते है।
३१३५) दूसरों की गोपनीय बातों और दोषों को प्रकट मत करो।
३१३६) अभिमान ही मनुष्य के पतन का कारण होता है।
३१३७) कोमल हृदय वाले व्यक्तियों की चितवृत्ति प्राय: करुणामयी होती है।
३१३८) हलाहल विष नही है, लक्ष्मी विष है। विष पीकर शिव सुख से जागते है तथा विष्णु लक्ष्मी का स्पर्श पाकर निद्रा से मूर्च्छाग्रस्त हो जाते है।
३१३९) सत्संगति पाकर दुष्टों का भी सुधार हो जाता है। सत्संग की महिमा से कौऐ कोयल बन जाते है और बगुले हंस।
३१४०) सन्तजन भौंरे की भांति गुण ही को ग्रहण करने वाले होते है।
३१४१) हनुमान जी अग्नि समान ज्ञान की मूर्ति है। रामकथा के वक्ता और श्रोता दोनो भी ज्ञान के भंडार बन जाते है।
३१४२) भगवान राम का निर्मल यश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का फल देनेवाला है।
३१४३) माता पिता के वचनों का पालन करने वाला ही पुत्र बड भागी होता है।
३१४४) पिता की आज्ञा पालन ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।
३१४५) श्रीराम ज्ञानरूपी अमृत का निरन्तर पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष धन्य है।
३१४६) मैं मेरा, तू तेरा यही माया है, सब जीव इसके ही वश में रहते है।
३१४७) राम नाम भवसागर से पार कराने वाला सेतु है।
३१४८) साधुजन दुर्लभ वस्तु प्राप्त करके भी स्वार्थ साधन में प्रवृत्त नहीं होते।
३१४९) लोगों द्वारा कहे हुये दुर्गुणों को गुप्तचरों से जानकर दुर्गुणों को त्याग दे और प्रजा का अपमान नहीं करे वही सच्चे अर्थों में राजा है।
३१५०) सत्ता मरते हुये राजा को भूला देती है।
३१५१) जिसमें विग्रह और अनुग्रह दोनों प्रतिष्ठित हो वह राजा इहलोक और परलोक में मनोवांछित फल प्राप्त करता है।
३१५२) भगवान नाम का आश्रय लेनेवाला भयमुक्त हो जाता है।
३१५३) गृहस्थाश्रम भक्ति करने में बाधक नही, साधक है।
३१५४) मन को पाप करने की छूट कभी मत दो।
३१५५) कर्म करो किन्तु कर्म फल भोगने की इच्छा मत करो क्योकि यह तुम्हारे वश में भी नहीं है।
३१५६) सब दोषों और अपराधों की जड अहंकार और अभिमान है।
३१५७) मधुर वचन बोलने में सबका कल्याण निहित है।
३१५८) मैं जो कुछ करता हूँ उसे भगवान देख रहे है ऐसा मान कर चलो।
३१५९) बुराई का बदला जो भलाई से दे वही सन्त है।
३१६०) ताली बजाना नादब्रह्म है। नादब्रह्म और नाम ब्रह्म एक हो जाये तभी परब्रह्म प्रकट होता है।
३१६१) जो तेरे सामने झुकता है, उसके सामने तू भी झुक जा।

३१६२) बीमारियों में बुरी दिल की बीमारी है और सबसे बुरी दिल आजारी है।
३१६३) बिना विचारे निंदा-स्तुति करने वाले की बात का कोई मूल्य नहीं होता।
३१६४) मन के कपटी और ऊपर से सज्जन बने हुए लोगों से सर्वथा अलग रहने में ही बुद्धिमानी है।
३१६५) मन, वचन, विचार और कर्म से कपटी कभी सुखी नहीं रहता।
३१६६) नीच की नम्रता से मुग्ध मत हो तथा समर्थ शत्रु से झगड़ा मत करो।
३१६७) मनुष्य को सदा मृत्यु और माया का ध्यान रखकर काम करना चाहिए।
३१६८) जो साधु गांठ में दाम नहीं बांधता तथा नारी से प्रेम नहीं करता वैसे निर्लोभी और निष्कामी साधु पूजनीय होते हैं।
३१६९) अच्छे गुणों द्वारा दूसरों के हृदय में अपने लिए प्रेम उत्पन्न करना चाहिए।
३१७०) ईश्वर कभी भी जाति-पांति का भेदभाव नहीं करता। उसके लिए सभी जीव समान हैं।
३१७१) ईश्वर की पूजा करना अन्तर्निहित आत्मा की ही उपासना है।
३१७२) विधानों का विधान एकमात्र प्रेम है। प्रेम में निवास करना ही अपने प्रति सच्चा रहना है।
३१७३) विषय-वासना-हीन प्रेम ही आध्यात्मिक प्रकाश है।
३१७४) प्रेम अथवा अभेदता की भावना जब दो प्राणियों में संचरित होने लगती है तब द्वैत का भ्रम मिट जाता है।
३१७५) जीवन के संघर्ष में किसकी विजय होती है ? प्रेम की। प्रेम का अर्थ है सौंदर्य का दर्शन करना।
३१७६) इच्छा मात्र प्रेम है और प्रेम ही ईश्वर है और वही ईश्वर तुम हो।
३१७७) प्रेम में न छुटाई है, न बड़ाई; न ऊंचाई है, न निचाई।
३१७८) जिस समय आप प्रेम में केन्द्रीभूत हो जाते हैं, तभी सारे चमत्कार सम्भव होने लगते हैं।
३१७९) जिस मनुष्य ने कभी प्रेम नहीं किया, वह कदापि ईश्वरानुभव नहीं कर सकता। यह एक तथ्य है।
३१८०) भय केवल घनीभूत प्रेम है, अन्यथा प्रेम भय पर कैसे विजयी हो सकता है ?
३१८१) दिखावटी प्रेम, झूठी भावनाएं और कृत्रिम भावुकता- ये सब ईश्वर के प्रति अपमान हैं।
३१८२) समय को तो प्रेम की स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ-साथ चलना पड़ता है।
३१८३) त्याग को ही हिन्दू ज्ञान कहते हैं; त्याग और ज्ञान एक ही वस्तु हैं, दो नहीं।
३१८४) त्याग तो आपको सर्वोत्तम स्थिति में रखता है; आपको उत्कर्ष की स्थिति में पहुंचा देता है।
३१८५) एक-एक में और सब में ईश्वरत्व का भान करना ही वेदान्त के अनुसार त्याग है।
३१८६) सेवा परमो धर्म: सत्पुरुषों का जीवन-आदर्श है।
३१८७) अपनी ही दृष्टि में गिर जाना और अपनी ही आत्मा द्वारा धिक्कारा जाना मृत्यु से बढ़कर है।
३१८८) परोपजीवी व्यक्ति उपजीव्य का चारण बनकर रह जाता है।
३१८९) दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ सकता।
३१९०) जीवन में आदर्श चलते-फिरते नहीं उतारे जाते। बड़ी साधना करनी पड़ती है।
३१९१) कर्मठ लोग बाधक तत्त्वों से नहीं उलझते।
३१९२) सज्जनों को दुर्जनों की छाया नहीं ग्रहण करनी चाहिए।
३१९३) लगन महासमाधि है। लगन में अष्टसिद्धि निवास करती है।
३१९४) अज्ञानी जीव सुख की खोज में यह भूल जाता है असली सुख क्या है।
३१९५) भौतिक सुविधाओं के पीछे अपना असली सुख कभी मत गँवाओ।
३१९६) जो गैर जरूरी है उसे मत करो क्योंकि ९९ प्रतिशत गैर जरूरी बातें करते हुए ही हम अपना जीवन बिता देते हैं।
३१९७) फूल चुनने के लिए रास्ते में मत रुको, आगे बढ़ते चलो; तुम्हारे रास्ते में हमेशा फूल खिलते रहेंगे।

३१९८) जो दूसरों की मदद करता है, ईश्वर उसकी मदद करता है।
३१९९) उठो और अपने लक्ष्य तक पहुँचे बिना आराम न करो।
३२००) ज्ञान, धन से सदैव ही श्रेष्ठ है क्योंकि धन की तो रक्षा करनी पड़ती है और ज्ञान मनुष्य की रक्षा करता है।
३२०१) शत्रु के गुण भी ग्रहण कर लें और गुरु के दोष भी छोड़ दें।
३२०२) संकट के समय धैर्य रखना मानो आधी लड़ाई जीत लेना है।
३२०३) जीवन का रहस्य भोग में नहीं, अनुभव के द्वारा ज्ञान प्राप्ति में है।
३२०४) मनुष्य का सच्चा गुरु उसका स्वयं का अनुभव है।
३२०५) सेवा हृदय से होती है, पैसों से नहीं, अपनी संकुचित मनोवृत्ति का त्याग करने पर ही सच्ची सेवा सम्भव है।
३२०६) ज्ञान से ही मुक्ति है और पीड़ा पाप का परिणाम है।
३२०७) दो बातों को सदा भूल जाओ- किसी के साथ की गई भलाई और अपने साथ की गई बुराई।
३२०८) उपदेश सभी के सुनो परन्तु करो वही जो तुम्हें उचित लगे।
३२०९) बुद्धि के बिना मनुष्य अपंग है।
३२१०) पालने से लेकर कब्र तक ज्ञान प्राप्त करते रहो।
३२११) सफल वही होता है जिसका काम उसे आनन्द देता रहता है।
३२१२) भगवान् का सान्निध्य वही पाता है जो नेक काम करे।
३२१३) किसी भी व्यक्ति को बिना पूछे सलाह मत दो।
३२१४) अधूरे या नकली ज्ञान से सावधान रहें क्योंकि वह अज्ञान से भी अधिक खतरनाक है।
३२१५) खाना खाते समय Hurry, Worry और Curry से परहेज करें।
३२१६) पुष्प धीरे-धीरे उगते हैं और घास जल्दी-जल्दी आती है।
३२१७) कार्य में लगे रहना ईश्वर की आराधना भी है और उपासना भी है।
३२१८) हृदय की अज्ञान ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है।
३२१९) दयालु और विचारवान बने, सबके हित की सोचें हरदम।
३२२०) लम्बा घूमें, अधिक हँसे, कम खायें, उम्र के दस साल अधिक जियेंगे।
३२२१) कर्म दूसरों के लिए और ध्यान-साधना अपने लिए करो।
३२२२) प्रसाद की बजाय इष्ट पर चिन्ता चढ़ाओ और चिन्तन माँगो।
३२२३) समाधि और शान्ति त्याग के बिना सम्भव नहीं।
३२२४) बुद्धिमान होना इतना जरूरी नहीं है, जितना धार्मिक होना। क्योंकि धार्मिक विचार वाला कोई बुराई नहीं कर सकता।
३२२५) नाम सिमरन का चस्का लगना है तो बड़ा कठिन, पर एक बार जहाँ चस्का लगा फिर एक पल भी खाली नहीं रहा जाता।
३२२६) भोजन और भजन अपने स्वभाव के अनुसार की करना चाहिए।
३२२७) बिना उत्साह के किए गए काम से धन और धर्म दोनों घटते हैं।
३२२८) अपने आपको इस योग्य बनाओ कि प्रभु कृपा आप पर बरसने लगे।
३२२९) जो देगा उसे बहुत मिलेगा; जो नहीं देगा वह उसे भी धोखा देगा जो उसके पास है।
३२३०) अपने अज्ञान को समझ लेना ही समझदारी है किन्तु लोग इसे ढाँपने में अक्ल गँवाते रहते हैं।
३२३१) जो आत्मा की आवाज को सुनता है वही श्रेष्ठ मार्ग पर चलता है।
३२३२) पवित्र आत्मा की कोई जाति नहीं होती।
३२३३) शुभ कर्म ही मनुष्य के जीवन को पवित्र और सार्थक बनाते हैं।

३२३४) जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया वह स्वयं ईश्वर रूप हो जाता है।
३२३५) उस सुख का भी त्याग करें जो किसी को दु:ख पहुँचाये।
३२३६) भूल का पता लगते ही उसे तुरन्त सुधारना चाहिए।
३२३७) जिस व्यक्ति का मन नियन्त्रित होता है वह शोक नहीं करता।
३२३८) अपनी ही आत्मा में ईश्वर दर्शन का उपाय है कि ईर्ष्या करनी छोड़ दो।
३२३९) जब हम शिकायत करना बन्द कर देते हैं तो कर्मठ हो जाते हैं तब सन्तोष भाव स्वयं आ जाता है।
३२४०) ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य चरित्र निर्माण है तथा धर्म और धार्मिकता भी यही है।
३२४१) दुनिया का एक भी सुख ऐसा नहीं जो दु:ख से सर्वथा मुक्त हो।
३२४२) जिज्ञासा तीव्र बुद्धि का स्थाई गुण है।
३२४३) सृष्टि रचना करके ईश्वर स्वयं अपने को ही प्रकट करता है।
३२४४) मनुष्य के कर्म ही उसके विचारों की अभिव्यक्ति हैं।
३२४५) एक गुण भी अनेक दोषों को ढक लेता है।
३२४६) संसार में जितने प्रकार की भी उपलब्धियाँ हैं ज्ञान उसमें सबसे बढ़कर है।
३२४७) दु:ख ईश्वर ने नहीं बनाया बल्कि मनुष्य अपने दुर्गुणों के कारण ही दु:खी होता है।
३२४८) जिस प्रकार साँप से साँपिन ज्यादा जहरीली होती है उसी प्रकार बाण से बाणी अधिक असरदार होती है।
३२४९) दु:ख है। दु:ख का कारण है। दु:ख का निदान है। वह मार्ग है, जिससे दु:ख का निदान होता है।
३२५०) प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) इस तरह छह प्रकार का आभ्यंतर तप है।
३२५१) व्रत, समिति, शील, संयम-परिणाम तथा इन्द्रिय-निग्रह का भाव, ये सब प्रायश्चित तप हैं, जो निरंतर कर्तव्य-नित्य करणीय हैं।
३२५२) (प्रत्युत्त) वह समता से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है और तप से तपस्वी होता है।
३२५३) समतारहित श्रवण का वनवास, कायक्लेश, विचित्र उपवास, अध्ययन और मौन व्यर्थ हैं।
३२५४) हिंसा करने के अध्यवसाय से ही कर्म का बन्ध होता है, फिर कोई जीव मरे या न मरे।
३२५५) सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं। इसलिए प्राणवध को भयानक जानकर निर्ग्रन्थ उसका वर्णन करते हैं।
३२५६) क्रोध प्रीति को नष्ट करता है, मान विनय को नष्ट करता है, माया मैत्री को नष्ट करती है और लोभ सब कुछ नष्ट करता है।
३२५७) क्षमा से क्रोध का हनन करें, मार्दव से मान को जीतें, आर्जव से माया को और संतोष से लोभ को जीतें।
३२५८) सजीव या निर्जीव स्वल्प वस्तु का भी जो परिग्रह रखता है अथवा दूसरे को उसकी अनुज्ञा देता है, वह दु:ख से मुक्त नहीं होता।
३२५९) जो परिग्रह की बुद्धि त्याग करता है, वही परिग्रह को त्याग सकता है। जिसके पास परिग्रह नहीं है, उसी मुनि ने पथ को देखा है।
३२६०) जो पुरुष सोते हैं, उनके जगत् में सारभूत अर्थ नष्ट हो जाते हैं। अत: सतत जागते रहकर पूर्वार्जित कर्मों को नष्ट करो।
३२६१) प्रमत्त को सब ओर से भय रहता है। अप्रमत्त को कोई भय नहीं होता।
३२६२) जन्म दु:ख है, बुढ़ापा दु:ख है, रोग दु:ख है और मृत्यु दु:ख है। संसार दु:ख ही है, जिसमें जीव क्लेश पा रहे हैं।
३२६३) इन पांच स्थानों या कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती। १) अभिमान, २) क्रोध, ३) प्रमाद, ४) रोग और, ५) आलस्य।
३२६४) मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं। सब जीव मुझे क्षमा करें। मेरे सब प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव है। मेरा किसी से भी वैर नहीं है।
३२६५) अपनेको कर्मका कर्त्ता मानना अज्ञान है। कर्मके फलका भोक्ता मानना भी अज्ञान है।
३२६६) मरनेवालेसे प्रेम, जड़-वस्तुसे प्रेम- आपके लिए घातक है, पातक है। यह तो अपने दु:खकी उपज बढ़ानेवाले बीजकी खेती है।
३२६७) ज्ञानका आदर ही परमार्थ सत्यके साक्षात्कार का मार्ग है।
३२६८) दु:खों से निवृत्त होने के लिए पवित्र जीवन बिताओ।
३२६९) हमारे शुभ और अशुभ कर्म छाया के समान हमारा अनुसरण करते हैं।

३२७०) चूंकि अपने कर्मों के फल से बचना असम्भव है, इसलिए सत्कर्म करें।

३२७१) क्रोध तो तात्कालिक पागलपन है।

३२७२) जिसके चित्त में कभी क्रोध नहीं आता और जिसके हृदय में सर्वदा परमेश्वर विराजमान रहता हो, वह व्यक्ति ईश्वर तुल्य है।

३२७३) जब शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है, तो फिर भय किसका, और किसलिए?

३२७४) जो व्यक्ति जागृत है, जिसका मन तृष्णा से रहित है, उस व्यक्ति के लिए कोई भय नहीं।

३२७५) ईश्वर मे आस्था रखो और उसके द्वारा दी गयी प्रेरणा को समझने का प्रयास करो। ईश्वर सबकी रक्षा करता है।

३२७६) सच्ची भक्ति स्वार्थ के लिये नहीं होती।

३२७७) भगवान की महिमा का वर्णन करने में भगवान स्वयं भी असमर्थ है।

३२७८) अच्छी बात याद रखने से गम और दु:ख कम हो जाते है।

३२७९) जिनका गुस्सा अधिक होता है उसके दोस्त कम होते है।

३२८०) अपनी आवश्यकताओं का नियमन करे। कम से कम साधनों से ही अपना काम चलाने का प्रयास करे।

३२८१) धर्म का पालन ही सुख का मूल है। धर्म का मूल अर्थ है।

३२८२) अपनी इन्द्रियों पर अपना आधिपत्य बनाए रखना राज्य की स्थिरता का सबसे बड़ा आधार है।

३२८३) विनय के द्वारा ही इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

३२८४) ज्ञान-वृद्धों (प्रकाण्ड विद्वान जो मान के कारण बूढ़े हो गए हैं) सेवा विनय का आधार है।

३२८५) वृद्ध पुरुषों की सेवा के द्वारा मनुष्य व्यवहार कुशलता का ज्ञान प्राप्त कर श्रेय की प्राप्ति कर सकता है।

३२८६) इन्द्रियों के इशारे पर चलने वाला राजा सब प्रकार के शक्तिशाली होने पर भी नष्ट हो जाता है।

३२८७) अपने साथ आत्मरक्षा के साधन (शास्त्रास्त्र) लिए बिना मार्ग में न चलें।

३२८८) मन, प्राण तथा इन्द्रियों को वश में रखने से रोगों पर विजय पाई जा सकती है।

३२८९) भोजन केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से करना चाहिए, स्वाद की दृष्टि से नहीं।

३२९०) गुरुजनों तथा ब्राह्मणों की भक्ति ही मनुष्य को सुशोभित करने वाला भूषण है।

३२९१) जैसा बीज-वैसा ही फल मिलेगा।

३२९२) मन में निराशा आने पर शरीर रुग्ण व शिथिल हो जाता है।

३२९३) रुग्ण शरीर में ही रुग्ण विचारों का जन्म होता है।

३२९४) चिंतन और चिता में वही अंतर होता है जो एक आत्म-विश्वास भरे स्वस्थ व्यक्ति और रोगी व्यक्ति में होता है।

३२९५) जब मनुष्य चिंताग्रस्त होता है तो उस समय वह किसी प्रकार का कोई रचनात्मक कार्य नहीं कर सकता।

३२९६) चिंताएं मनुष्य की शक्ति समाप्त कर देती हैं।

३२९७) कष्ट इतना कष्टकर नहीं होता जितनी कि उसकी चिंता कष्टकर होती है।

३२९८) मनुष्य का ध्येय होना चाहिए- चिंता छोड़ो, काम करो।

३२९९) बुद्धिमान प्राणी चिंता नहीं करते-चिंतन करते हैं।

३३००) जिसे परमात्मा पर विश्वास है उसके पास सब कुछ है।

३३०१) यह विश्वास ही है जो परमात्मा या एक अज्ञात शक्ति के रूप में चमत्कार करता है।

३३०२) समय के साथ सभी शारीरिक और मानसिक परेशानियां दूर हो जाती हैं।

३३०३) क्या तुम अपने सृष्टा से प्रेम करते हो ? पहले अपने साथ के प्राणियों से प्रेम करो।

३३०४) ईश्वर से भिन्नता की भावना ही हमारी समस्त चिंताओं का मूल कारण है।

३३०५) स्वयं को ईश्वर से अलग मानकर ही मनुष्य संसार में स्वयं को अकेला, अरक्षित और असहाय पाता है।

३३०६) कर्म नहीं बांधते, कर्ता बांध लेता है। कर्म नहीं छोड़ता है। कर्ता छूट जाए तो छूटना हो जाता है।

३३०७) जो अपनी जिन्दगी ज्ञानोपार्जन में लगा देता है, उसकी मौत नहीं होती।

३३०८) जो ज्ञानी का आदर करता है, वह मेरा आदर करता है।

३३०९) जो अपने आप को जानता है, वह अल्लाह को जानता है।

३३१०) प्रत्येक बच्चे को सिखाया जाए कि उसके क्रोध, घृणा, ईर्ष्या को प्रेम में कैसे रूपांतरित किया जाए।

३३११) हम सब मिश्रित व्यक्ति हैं- कुछ प्रतिशत बहिर्मुखी, कुछ प्रतिशत अंतर्मुखी।

३३१२) मृत्यु के समय अगर हमारा मन हमारे इष्ट या गुरु में मिल जाता है, तो मुक्ति मिल जाती है।

३३१३) प्रत्येक मनुष्य के अंदर उसका तेज और विशिष्टता सुप्तावस्था में रहती है। अवसर पाते ही वह जागृत हो जाती है।

३३१४) अपने जीवन की योजना बनाओ ताकि तुम्हारी सोई हुई महान् प्रतिभा और शक्ति, जो अब तक व्यर्थ पड़ी हुई है, जाग उठे।

३३१५) अपने को जानना और अंतर में बसे ईश्वर रूप को पहचानना-यही सफल जीवन का मूल मंत्र है।

३३१६) व्यक्तित्व ठीक से पहचान कर साधना में उतरें, यह जरूरी है।

३३१७) ब्राह्मण अंतर्मुखता की श्रेष्ठतम स्थिति है।

३३१८) जीवन और कर्म- एक ही चीज के दो नाम हैं।

३३१९) कर्म को बदलने की उतनी फिक्र मत करो, कर्ता को बदलने की फिक्र करो।

३३२०) जो कर्म छोड़कर भागता है, उसकी कर्म की ऊर्जा व्यर्थ के कर्मों में सक्रिय हो जाती है।

३३२१) मन उपद्रवी है। सतत प्रयास करना चाहिए कि वह एकाग्र हो।

३३२२) अपने मन को स्थिर और एकाग्र करने के लिए मूर्ति पूजा करो।

३३२३) मनन व ध्यान के लिए आध्यात्मिक साहित्य पढ़ो।

३३२४) ज्ञान में दो बातों की आवश्यकता होती है- एक तो मानसिक शक्ति और एक लक्ष्य पर पूर्ण एकाग्र होना।

३३२५) स्वयं को जान लेना ही ब्रह्म को जान लेना है।

३३२६) यह ब्रह्म वास्तव में सत, चित्त, आनन्द है और वह अखण्ड शुद्ध है और सारे अस्तित्व को प्रभावित करता है।

३३२७) संसार के जरा और मरण के वेगवाले प्रवाह में बहते हुए जीवों के लिए धर्म ही एकमात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और शरण है।

३३२८) वासना का ज्ञान वासना से मुक्त कर देता है, क्योंकि वासना का ज्ञान उसके दु:खस्वरूप को प्रकट कर देता है।

३३२९) ब्रह्म निराकार, अंतरिक्षीय, कभी न बदलने वाला तत्व है और इससे ही हर वस्तु का निर्माण हुआ है।

३३३०) ब्रह्म सर्व है और इसकी समाप्ति संभव नहीं है।

३३३१) ज्ञान मार्ग का अर्थ व्यक्ति के आध्यात्मिक अनुभवों से प्राप्त उच्चतम ज्ञान है।

३३३२) सत्य, ज्ञान प्राप्त व्यक्ति अपनी नियति नियंत्रित करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

३३३३) ज्ञान आत्मोद्धार का वह मार्ग है, जिसको केवल बौद्धिक विवाद करने से कोई तात्पर्य नहीं निकलता।

३३३४) दु:संग को टालो और सत्संग करो।

३३३५) सत्संग की महान महिमा है- वह दुख घटाता है और पापों को काटता है और जीवन को सुधारता है।

३३३६) कर्महीन नर कछु पावत नाहीं।

३३३७) षडरिपु (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सभी) एक भीषण भ्रांति हैं। वे असत्य को सत्य का जामा पहनाते हैं।

३३३८) आप गलत बातों पर क्रोध कर सकते हैं।

३३३९) सद्गुरु की शक्ति असीम होती है, वे स्वयं ही सब-कुछ कर देते हैं। आपको समर्पण के बाद कुछ करने की आवश्यकता नहीं।

३३४०) गुरु का प्रेम व सेवा सारी चिंताओं को दूर कर देती है और शिष्य पूर्णतया गुरु पर निर्भर रहता है।

३३४१) प्रभु कर्ता है, वह सार्वभौम है और हमारा अस्तित्व उस पर ही निर्भर करता है और हर चीज उसी के कारण घटित होती है।

३३४२) आप जीवन में सब जगह धोखा खा सकते हैं पर गुरु चरणों में नहीं।
३३४३) प्रभु और गुरु को वैराग्य बहुत पसंद है। वैराग्य कोई निषेध नहीं है। यह तो एक दिव्य सद्गुण है, एक उच्चतम प्राप्ति है।
३३४४) बालक जिस सहज भाव से अपनी माता पर विश्वास करता है, ठीक उसी भांति हमें अपने गुरु पर विश्वास करना चाहिए।
३३४५) सुखी होना है तो अपने कर्म को निष्काम भाव से करते हुए हमें सब कुछ प्रभु पर स्वेच्छा से, भक्ति से छोड़ देना चाहिए।
३३४६) मुक्ति केवल प्रभु की बाहों में है, गुरु के चरणों में है।
३३४७) गुरु के शब्द करोड़ों कर्मों का नाश कर सकते हैं।
३३४८) यह संसार तुम्हारा नहीं है, प्रभु का है।
३३४९) सदैव जिज्ञासु भक्त बनकर-मैं कौन हूं की तलाश करो।
३३५०) यश, अपयश, हानि, लाभ, जन्म-मृत्यु सब प्रभु की लीला विलास है।
३३५१) जीव पूर्व जन्म के कर्मों का भोग समाप्त करने के लिए ही जन्म लेता है।
३३५२) कोई भी मानव अहंकार के सम्पूर्ण नाश के बिना आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता है।
३३५३) गुरु में पूर्ण विश्वास करो यही साधना है- गुरु में सभी देवता निवास करते हैं।
३३५४) भक्ति सीताफल और ज्ञान रामफल है।
३३५५) सतत्, जप, नाम, स्मरण, ध्यान हमें अपने भीतर ले जाता है। जहां हमारी आत्मा और ईश्वर बसे हैं।
३३५६) कलियुग की विभीषिका में स्मरण भक्ति ही सबसे सरल रास्ता है- प्रभु से सम्पन्न होकर प्रबुद्ध बनने का।
३३५७) अहंकार की समाप्ति और मनोनाश, अपने व्यक्तित्व के चैतन्य को उभारता है और व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त होता है।
३३५८) साधना चातुष्टय, नित्य, अनित्य, विवेक, वैराग्य का अवलंबन करना चाहिए।
३३५९) हरि नाम का लोभ रख सकते हैं।
३३६०) मुक्ति का मोह कर सकते हैं।
३३६१) बुरी चीज का द्वेष कर सकते हैं।
३३६२) किसी भी अवस्था में अहंकार न होने दें।
३३६३) व्यक्ति के विचार जैसे होंगे वैसे ही रूप में वह भगवान के अस्तित्व को देखेगा।
३३६४) मजबूत विचारों से आत्मा की शुद्धि होती है। मन को एक नया उत्साह मिलता है।
३३६५) आत्म-संयम परम सुख की प्राप्ति का मुख्य स्त्रोत है।
३३६६) क्रोध आए तो मुंह बंद रखें ताकि क्रोध को बढ़ने का अवसर ही न मिले।
३३६७) आत्म संयम से मन मुक्त होता है और मुक्ति स्वयं में महान् शक्ति है।
३३६८) सविवेक-ज्ञान के बढ़ने से आत्मस्वरूप का चिन्तन होता है। इससे स्थिर शान्ति आती है और तब अन्त:करण मदर्पण होता है।
३३६९) राजनीति संसारी आदमियों का काम है, साधुओं का नहीं।
३३७०) हमें विश्वास करना चाहिए कि न्याय शक्ति का जनक है।
३३७१) जीवन यात्रा के पथिक। अपने पथ-प्रदर्शक को भूलकर तूने अपनी कैसी दुर्दशा कर ली ? संभलने का सदैव समय है, अभी भी।
३३७२) मुझे लोग पसंद करें, यह मैं कितना चाहता हूं, परन्तु लोग मुझे चाहें, इसके लिए मैं करता क्या हूं।
३३७३) राजा से अधिक राजनिष्ठ नहीं होना चाहिए।
३३७४) जो दु:ख रूप संसार के संयोग से रहित है। जिसका नाम योग है, उसको जानना चाहिए।
३३७५) मनुष्य निरहंकार और नम्र बनता है तो सारी सृष्टि उसके अनुकूल हो जाती है।
३३७६) धर्म हमारी रक्षा और कल्याण के लिए है।
३३७७) धर्म उसी तरह आवश्यक है, जैसे मकान के लिए नींव आवश्यक है।

३३७८) शरीर और मन साथ ही साथ उन्नत होने चाहिए।
३३७९) मनुष्य अपने कर्मो के द्वारा भगवान की पूजा करके मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।
३३८०) मानव जीवन नश्वर है, उसमें आयुष्य तो बहुत ही परिमित है। एक मात्र मोक्षमार्ग ही अविचल है। यह जानकर काम भोगों से निवृत्त हो।
३३८१) यह देह आत्मा रूपी अतिथि का विश्रामालय है। देह मृत्यु का कलेवा है।
३३८२) जाको राखे साइयां मार सके न कोय। बाल न बांका करि सकै जो जग बैरी होय।
३३८३) रक्षा का पहला साधन तो अपने हृदय में है। वह है ईश्वर में सरल, श्रद्धा, दूसरा है पड़ोसियों की सद्भावना।
३३८४) राजा को मंदबुद्धि, दीर्घ सूत्री, जल्दबाज लोगों और चारणों के साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिए।
३३८५) रात गवाई सोई कै दिवसु गवाया खाइ। हीरे जैसा जनम है कौड़ी बदले जाई।।
३३८६) आत्मा अमर है और देह के गिर जाने से आत्मा के अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती।
३३८७) कर्मफल की प्राप्ति तेरा लक्ष्य न हो, न अकर्मण्यता में तेरी आसक्ति हो।
३३८८) यह स्त्री है, यह पुरुष है- यह निरर्थक बात है। वास्तव में तो सत्पुरुषों का चरित्र ही पूजा के योग्य है।
३३८९) ब्रह्म ही रस है। इस रस को प्राप्त करके ही जीवात्मा आनन्द युक्त होता है।
३३९०) देव और पितृ कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता-पिता, आचार्य और अतिथि देवताओं के समान उपासना करने योग्य हैं।
३३९१) अन्य किसी वस्तु को हम उतनी अनिच्छा से नहीं स्वीकारते जितना उपदेश को।
३३९२) जो लोभ के प्रति अलोभवृत्ति के द्वारा विरक्ति रखता है, वह और तो क्या प्राप्त काम भोगों का भी सेवन नहीं करता।
३३९३) साधु संतों से मैत्री करो, सबसे पुराना परिचय (प्रेम) रखो, सबके श्रेष्ठ सखा बनो सबके साथ समान रहो।
३३९४) भक्ति मार्ग का सिद्धान्त है भगवान को बाहर जगत में देखना। मन के भीतर देखना- यह योग मार्ग का सिद्धान्त है, भक्ति मार्ग का नहीं।
३३९५) जिह्वा को जीतना, सब वस्तुओं को जीतने के बराबर है।
३३९६) संसार रूपी विषवृक्ष के दो फल अमृत तुल्य हैं- काव्यामृत के रस का आस्वाद और सज्जनों की संगति।
३३९७) रस का पूर्ण चमत्कार समरसता में होता है।
३३९८) कटा हुआ वृक्ष भी बढ़ता है। क्षीण हुआ चंद्रमा भी पुन: बढ़कर पूरा हो जाता है। यह समझ कर संत पुरुष विपत्ति में नहीं घबराते।
३३९९) शरणागत मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।
३४००) शरण में आए हुए नीच जनों के प्रति भी बड़े लोगों की ममता होती है।
३४०१) तेजस्वी व्यक्तियों पर शरणागत के साथ आनेवाली विपत्ति भी प्रशंसनीय है।
३४०२) शरीर को देवालय कहा गया है क्योंकि जीव केवल शिव है।
३४०३) अच्छी तरह सांत्वना भरे मीठे और प्रेमपूर्वक वचन बोलें और सदा हर तरह से प्रेम का ही पालन करें।
३४०४) एक-दूसरे को खूब प्यार करें। अपने को भूल जांय यही ब्रह्मविद्या का सार है।
३४०५) अपना कल्याण चाहने वाले को आत्मा का दर्शन करने की कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि आत्मदर्शन से सभी दुखों का नाश होता है।
३४०६) प्रणाम करने का जिसका स्वभाव है और जो रोज गुरुजनों की सेवा करता है, उसकी आयु और विद्या, यश और बल, ये चारों बढ़ते हैं।
३४०७) संतोष में सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।
३४०८) जप से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। सेवा धर्म का वास्तविक अनुष्ठान करने से संसार का बंधन सुगमता से कट जाता है।
३४०९) सेवा करने से हृदय शुद्ध होता है। अहंभाव दूर होता है। सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करने से अभ्यास से शांति प्राप्त होती है।
३४१०) भागवतों को एकवचन व्यंजक वाक्यों से कभी सम्बोधित न करें। अर्थात् आदरसूचक शब्दों का उनके प्रति व्यवहार करें।
३४११) सम्पूर्ण भाव से, सर्वस्व के साथ मुझ हृदयस्थ की शरण में आओगे तो मैं सर्वगत हूं वही तुम हो जाओगे।
३४१२) रक्षा का पहला साधन तो अपने हृदय में पड़ा है। वह है ईश्वर में सरल श्रद्धा, दूसरा है पड़ोसियों की सद्भावना।
३४१३) नाम-रूप-गुण-वार्ता माया है, उसके परे जो सत्ता स्फुरित होती है वही मुझ हृदयस्थ का स्वरूप है।

३४१४)कुछ कर्म स्वभाव से ही करने योग्य नहीं होते, उसी प्रकार वे भी करने योग्य नहीं होते, जिनमें किया गया पुरुषार्थ निष्फल हो।
३४१५) तो तुम मुझे याद रखो, मैं तुम्हें याद रखूंगा। मेरा कृतज्ञ बनना, कृतघ्नता न दिखलाना।
३४१६) मन जब दर्पण की भांति निर्मल हो जाता है तब उसमें ज्ञान प्रकट होता है। अत: मन को शुद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए।
३४१७) सांप के दांत में विष होता है, मक्खी के सिर में, बिच्छू की पूंछ में तथा दुष्ट के पूरे शरीर में विष होता है।
३४१८) एक ही वस्तु-स्त्री के शरीर को कामी लोग कामिनी के रूप में, योगी बदबूदार शव के रूप में तथा कुत्ते मांस के रूप में देखते हैं।
३४१९) राजा, वेश्या, यमराज, अग्नि, चोर, बालक, याचक और ग्राम कंटक- ये आठ लोग व्यक्ति के दु:ख को नहीं समझते।
३४२०) नदी किनारे के पेड़, दूसरे के घर जा बैठने वाली स्त्री, बिना मंत्री का राजा, यह सब शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।
३४२१) निर्धन को वेश्या, शक्तिहीन राजा को प्रजा, फलहीन वृक्ष को पक्षी, भोजन करने के बाद अतिथि घर को छोड़ देते हैं।
३४२२) ब्राह्मण का बल विद्या, राजा का बल सेना, वैश्या का बल धन, शूद्र का बल सेवा होती है।
३४२३) दुष्ट और सांप में से कौन अच्छा ? सांप तो केवल काल आने पर ही काटता है, परन्तु दुष्ट तो कदम-कदम पर काटता है।
३४२४) कुल का पता व्यवहार से, देश का पता बोली से, प्रेम का पता आदर से, शरीर का पता भोजन से चलता है।
३४२५) जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध, तिलों में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी, गन्ने में गुड़, उसी प्रकार शरीर में परमात्मा का निवास है।
३४२६) जिस प्रकार एक-एक बूंद डालने से घड़ा भर जाता है। इसी तरह विद्या, धर्म और धन का भी संचय करना चाहिए।
३४२७) सभी प्राणी, धन, जीवन, स्त्री तथा भोजन से सदा अतृप्त रहकर संसार से चले गए, जा रहे हैं और चले जाएंगे।
३४२८) सिंह से एक, बगुले से एक, मुर्गे से चार, कौवे से पांच, कुत्ते से छ: तथा गधे से तीन बातें सीखनी चाहिए।
३४२९) जिसके पास बुद्धि होती है, उसी के पास बल होता है। बुद्धिहीन के पास बल कहां होता है।
३४३०) ईश्वर न तो काष्ठ में, न मिट्टी में, न मूर्ति में। वह तो केवल भावना में ही रहता है। अत: भावना ही मुख्य है।
३४३१) बिना हवन किए वेद पढ़ना व्यर्थ है। दान न देने पर यज्ञ व्यर्थ है। बिना भावना के कोई भी सिद्धि नहीं होती। अत: आप ही कारक हैं।
३४३२) काष्ठ, पत्थर अथवा धातु की भी भावना और श्रद्धा से उपासना करने पर ईश्वर कृपा से सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है।
३४३३) लक्ष्मी चंचल है, प्राण, जीवन, शरीर सब कुछ चंचल और नाशवान हैं। इस संसार में केवल धर्म ही निश्चित है।
३४३४) कांसे का बर्तन राख से, तांबे का बर्तन इमली से, स्त्री रजस्वला होने से तथा नदी पानी की तेज धार से पवित्र हो जाते हैं।
३४३५) इस संसार रूपी वृक्ष पर अमृत के समान दो फल हैं- मधुर बोलना तथा सज्जनों की संगति करना।
३४३६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का गुरु अग्नि है। ब्राह्मण चारों वर्णों का गुरु है, स्त्री का गुरु उसका पति है, अतिथि सारे संसार का गुरु है।
३४३७) संतान, पत्नी और साधु की शरण में जाकर ही संसार के दु:खी व्यक्तियों को थोड़ा आराम मिलता है।
३४३८) राजा की आज्ञा, पंडितों का बोलना तथा कन्यादान यह एक ही बार होता है।
३४३९) आलस्य से विद्या, दूसरों के हाथ में चले जाने से धन, बीज की कमी से खेत, सेनापति के बिना सेना नष्ट हो जाया करती है।
३४४०) वेद के पंडित को, शास्त्रविहीन आधार को और शांत पुरुष को बदनाम करने वाला व्यक्ति व्यर्थ में क्लेश उठाता है।
३४४१) दान के द्वारा दरिद्रता नष्ट होती है। शील-दु:खों का हरण करता है। बुद्धि अज्ञान को मिटाती है तथा भावनामय का नाश करती है।
३४४२) जो ब्राह्मण सांसारिक कर्मों में लिप्त रहता है, पशु पालता है, व्यापार तथा खेती करता है। उसे वैश्य कहा जाता है।
३४४३) लाख तथा उससे बनी वस्तुएं, तेल, नील, फूल, घी, शहद, मद्य, मांस आदि वस्तुओं को बेचने वाला ब्राह्मण शूद्र कहा जाता है।
३४४४) जो एकाक्षर का ज्ञान देने वाले गुरु की वन्दना नहीं करता, वह सौ बार कुत्ते की योनि में जन्म लेकर फिर चाण्डाल बनता है।
३४४५) जिस प्रकार भूमि को खोदकर उससे जल निकाला जाता है, इसी प्रकार सेवा करने वाला शिष्य गुरु से विद्या प्राप्त करता है।
३४४६) जो गुरु एक अक्षर का भी ज्ञान कराता है। उसके ऋण से मुक्त होने के लिए, उसे देने योग्य पृथ्वी पर कोई पदार्थ नहीं है।
३४४७) जैसे सज्जनतारूपी भूषण मनुष्य को भूषित करता है वैसे अलंकार राज्य, पौरुष (पराक्रम), विद्या या धन नहीं भूषित करता है।
३४४८) मुक्ति की ओर अग्रसर करानेवाले साधनों में सर्वश्रेष्ठ स्थान केवल भक्ति का है। स्व-स्वरूप के अनुसन्धान का नाम भक्ति है।
३४४९) तुम मनुष्यों को दिखाने के लिए अपने धर्म के काम न करो, नहीं तो अपने स्वर्गस्थित पिता से कोई फल नहीं पाओगे।

३४५०) हमारे पापों को क्षमा कर, क्योंकि हम भी ऐसे हर एक को क्षमा करते हैं, जो हमारा ऋणी है।
३४५१) सांसारिक प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर वे अपने सत्स्वरूप को पा लेते हैं। उन्हें मोक्ष पद की प्राप्ति होती है।
३४५२) क्रोध यमराज के समान है। तृष्णा वैतरणी है। विद्या कामधेनु है और संतोष इन्द्र के उद्यान नन्दन वन के समान।
३४५३) अज्ञानी पुरुष फल की अभिलाषा से कर्म में प्रवृत्त होता है।
३४५४) अविद्या नश्वर फल उत्पन्न करती है जो क्षणिक होते हैं- मानो वे प्रात:काल उत्पन्न होते हैं और सायंकाल नष्ट हो जाते हैं।
३४५५) जगत् के सत् होने का आभास भ्रम के कारण ही होता है। वस्तुत: यह भ्रम चिरन्तन सत्य नहीं है।
३४५६) अविद्या अनिर्वचनीय और अनादि है- इसे कारण कहा जाता है। यह आत्मा पर आरोपित एक उपाधि है।
३४५७) आत्मा उपाधिरहित, अनिर्वचनीय, अवयवरहित, निर्गुण, शुद्ध-बुद्ध है जहां मन और वाणी का प्रवेश नहीं।
३४५८) केवल प्रकाश-स्वरूप होने के कारण सूर्य में अन्धकार नहीं है, उसी प्रकार नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा में अज्ञान नहीं है।
३४५९) तुममें से जो कोई अपना सब कुछ त्याग न दें, वह मेरा चेला नहीं हो सकता। अपने ही देश में मसीहा का कोई आदर नहीं होता।
३४६०) सुगति का मार्ग न जानने के कारण मैं मूढ़गति भयानक तथा घोर भव-वन में चिरकाल तक भ्रमण करता रहा।
३४६१) मिथ्यादृष्टि जीव तीव्र कषाय से पूरी तरह आविष्ट होकर जीव और शरीर को एक मानता है। वह बहिरात्मा है।
३४६२) अत्यन्त तिरस्कृत समर्थ शत्रु भी उतनी हानि नहीं पहुंचाता, जितनी हानि अनिग्रहित राग और द्वेष पहुंचाते हैं।
३४६३) इस संसार में जन्म, जरा और मरण के दु:ख से ग्रस्त जीव को कोई सुख नहीं है। अत: मोक्ष ही उपादेय है।
३४६४) धर्म, अर्थ, काम इनके वर्ग को त्रिवर्ग कहते हैं। इससे शून्य किसी कार्य को न करे।
३४६५) दान, मान और सेवा से अत्यन्त पूज्यों की सदा पूजा करे।
३४६६) भगवान सत्य है, उनका पवित्र नाम सत्य है, उनके प्रेम को असीम कहा गया है।
३४६७) ब्राह्म मुहूर्त के अमृतमय उषाकाल में तुम उस दैवी शब्द से एकरूप हो जाओ और भगवान की महिमा का ध्यान करो।
३४६८) जो भगवान का पूजन करते हैं, उनका सर्वत्र आदर किया जाता है। तुम उस सर्व-सद्गुणरूप सम्पत्ति का नित गुणगान करो।
३४६९) वह हममें से नहीं है, जो एक स्त्री को अपने पति से या एक लौंडी (स्त्री-दासी) को अपने मालिक से विमुख कर भ्रष्ट करता है।
३४७०) वस्तुत: नेता के लिए गलती को माफ करना गलती के लिए दण्ड देने की अपेक्षा अच्छा है।
३४७१) जिसके पास एक दिन और एक रात का भी खाना है, उसके लिए भीख मांगना मना है।
३४७२) श्रुतियों के कथानुसार आत्मा को ही साक्षात् ब्रह्म समझना चाहिए।
३४७३) यथा आत्मा यहां है और इसी क्षण है, हृदय की सब ग्रन्थियां कट जाती हैं, आदि-आदि।
३४७४) अपनी आत्मा को पाप-पुण्य, भूत-भविष्य एवं कार्य-कारण आदि बन्धनों से मुक्त परब्रह्म मानना चाहिए।
३४७५) ब्रह्म नित्य और शाश्वत है। उसका साक्षात्कार बिना अविद्या के नष्ट हुए अन्य किसी उपाय से नहीं हो सकता।
३४७६) जो आत्मतत्त्व है उसी को तू ब्रह्म जान। वह असीम, अनन्त परम सत्य है। वह महान् है, इसीलिए उसे ब्रह्म कहा जाता है।
३४७७) ब्रह्म जो निरुपाधि, परमशान्त, अनन्त, एकमेवाद्वितीय और असीम है, सरलता से नहीं जाना जा सकता।
३४७८) वह परब्रह्म मैं ही हूं, जो शाश्वत्, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त है, जो अखण्ड, असीम, एकमेवाद्वितीयम् है जो सत्यं ज्ञानमनन्तम् रूप है।
३४७९) आकाश के समान मैं अन्तर्बाह्य में व्याप्त हूं, मैं अविकारी और सर्वत्र सम हूं। मैं शुद्ध-बुद्ध, निर्लिप्त, निर्मल और अविनाशी हूं।
३४८०) मैं निर्गुण और निष्क्रिय हूं, मैं शाश्वत, निर्विकल्प, शुद्ध, निर्मल, निर्विकार, निराकार, अपरिवर्तनशील एवं नित्यमुक्त हूं।
३४८१) मैं देवाधिदेव हूं। मैं द्वेष और ईर्ष्या के स्पर्श मात्र से अलिप्त हूं। मैं वह हूं जो मुमुक्षु साधकों की कामना पूर्ण करता है।
३४८२) मैं सर्वव्यापी, सम, शान्त, निरपेक्ष, सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं। मैं यह शरीर नहीं हूं जो स्वयं असत् है। इसी को ज्ञानी सत्य ज्ञान कहते हैं।
३४८३) सत्यज्ञान अहंकार को समूल नष्ट करके समस्त कर्मों को भस्म कर देता है। तत्पश्चात् न कर्ता रह जाता है, न कर्मफलों का भोक्ता।
३४८४) मुक्ति के लिए कोई चाहे तीर्थयात्रा करते हुए, गंगासागर जाए या व्रत या दान-पुण्य करे, किन्तु ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।
३४८५) परब्रह्म परमात्मा परमानन्दस्वरूप होने के कारण उसमें ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भेद नहीं रहता। वह स्वयं परम प्रकाशमान है।

३४८६) समस्त शक्तिशाली तत्वों का मंगल मैं हूं, क्योंकि मैं उन सब में महान हूं। मैं कामजन्य संवेगों से मुक्त हूं।
३४८७) ईश्वर के द्वार पर याचना नहीं, प्रार्थना होती है। प्रार्थना जीवन की खुराक है, प्रार्थना सर्वोपरि ऊर्जा है।
३४८८) कोई भी आदमी मुक्त नहीं है, जो अपने आपका स्वामी नहीं है।
३४८९) कर्त्तव्य मनुष्य के सिर पर एक ऋण है, कर्त्तव्य का पूर्ण न करना पाप है। जैसे कि ऋण से उऋण न होना मनुष्य के लिये पाप है।
३४९०) प्राणी का प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय होना चाहिए।
३४९१) घर से बाहर निकलो तो भगवान का वन्दन करके निकलो।
३४९२) आय का पाँचवाँ हिस्सा दान करो। घर में आया हुआ सारा धन शुद्ध नहीं होता।
३४९३) राम अनंत है उनके गुण भी अनंत हैं, उनकी कथाओं का विस्तार भी असीम है।
३४९४) गुरु, माता, पिता तथा स्वामी की आज्ञा को शिरपर रखकर पालन करना चाहिये।
३४९५) श्रीहरि अनंत हैं और उनकी कथा भी अनंत है। रामजी के सुन्दर चरित्र करोड़ों कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते।
३४९६) मैं मेरा, तू तेरा यही माया है, सब जीव इसके ही वश में रहते हैं।
३४९७) कर्म, वचन और मन से प्रभु की गति हो, जो निष्काम भाव से प्रभु का भजन करे, उसी के हृदय में रामजी सदा विश्राम किया करते हैं।
३४९८) रामजी की कथा कलियुग के पापों को हरनेवाली कल्याण करनेवाली और बड़ी सुन्दर है।
३४९९) रामजी का निर्मल यश, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फलों का देनेवाला है।
३५००) गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करनेवाला समस्त ऐश्वर्य तथा समस्त सुख पा जाता है।
३५०१) माता-पिता के वचनों का पालन करनेवाला पुत्र बड़भागी है।
३५०२) पिता की आज्ञापालन ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है।
३५०३) रामजी की कृपा से दोष भी गुण बन जाते हैं।
३५०४) सत्संगती पाकर दुष्ट भी सुधर जाते हैं।
३५०५)) सत्संग की महिमा से कौए कोयल बन जाते हैं और बगुले हंस।
३५०६) संतों का बिछुड़ना तथा असंतों का मिलना मरने के समान दु:खदाई है। साधु अमृत के समान तथा असाधु मदिरा के समान है।
३५०७) संतजन भौंरे की भाँति गुण ही को ग्रहण करनेवाले होते हैं।
३५०८) श्रीहनुमानजी दुष्ट रूपी वन के भस्म करने वाली अग्नि के समान ज्ञान की मूर्ति हैं।
३५०९) सीतारामजी के चरण भक्तों की विपत्ति का नाश करनेवाले और उन्हें सुख देनेवाले हैं।
३५१०) आदि कवि वाल्मीकिजी राम नाम को उलटा (मरा मरा) जपकर पवित्र हो गये। एक राम नाम सहस्र नाम के समान है।
३५११) राम कथा के वक्ता और श्रोता दोनों ज्ञान के खजाने बन जाते हैं।
३५१२) ज्ञान के समान दूसरी कोई पवित्र वस्तु नहीं है।
३५१३) ताली बजाना नादब्रह्म है। नादब्रह्म और नामब्रह्म एक हों, तब परब्रह्म प्रकट होता है।
३५१४) अन्नदान और वस्त्रदान उत्तम है, किन्तु कथादान सर्वोत्तम है। बिना किसी आशा के जो कथा करता है, वह उत्तम भक्त है।
३५१५) अक्रूर की भाँति जिसे भगवान् के दरबार में मान मिलता है, वह धन्य है। बाकी जगत् के मान पत्र वहाँ काम नहीं आते।
३५१६) देवधन और ब्राह्मण का धन पचाने की इच्छा मत रखो।
३५१७) प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में भगवान् का स्मरण करो।
३५१८) भागवत का आश्रय लेनेवाला भय-मुक्त हो जाता है।
३५१९) भागवत की कथा ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य को बढ़ाती है।
३५२०) कथा सुनो, मनन करो एवं उसे जीवन में उतारो।
३५२१) वंदन सभी देवों का करो, किन्तु ध्यान एक ही देव का करो।

३५२२) भगवान् की कथा बार-बार सुनोगे तो प्रभु में प्रेम-भाव जागृत होगा।
३५२३) उत्तम से उत्तम वस्तु भगवान् को अर्पण करना ही भक्ति है।
३५२४) जो भगवान् के नाम को जपता है, भगवान् हर समय उसके साथ रहते हैं।
३५२५) जिसका स्वभाव सुन्दर होता है, वह भगवान् को अति प्रिय होता है।
३५२६) सत्कार्य का अपने मुख से बखान मत करो।
३५२७) मनुष्य विपदा आने पर ही भगवान् को पुकारता है।
३५२८) जीभ जो माँगे वह उसे न दो। जीभ को वश में रखो।
३५२९) यह संसार ब्रह्म-स्वरूप है। ऐसा मानने पर ही राग-द्वेष नष्ट होते हैं।
३५३०) जगत् की प्रत्येक वस्तु के साथ प्रेम करना ही भक्ति-मार्ग है।
३५३१) मैं जो करता हूँ उसे भगवान् देख रहे हैं ऐसा मान कर चलो।
३५३२) बुराई का बदला जो भलाई से दे-वह संत है।
३५३३) मैं कमाता हूँ, ऐसा अभिमान मत करो।
३५३४) संपत्ति आये तो उसका उपयोग परोपकार में भी करो।
३५३५) माता-पिता लक्ष्मीनारायण के रूप हैं। उन्हें वन्दन करो।
३५३६) सदाचारी पुत्र माता-पिता को सद्गति प्रदान करता है।
३५३७) लोभ और ममता पाप के माता-पिता हैं।
३५३८) सन्त मिले तो उनसे अपनी लौकिक बात पूछना नहीं।
३५३९) ज्ञानी पुरुष का पतन काम से नहीं, क्रोध से होता है।
३५४०) विवाह का अर्थ है दो शरीर एक मन।
३५४१) भगवान् के भक्त भगवान् से अधिक महत्वपूर्ण हैं।
३५४२) माता-पिता की सेवा करोगे तो बुढ़ापे में तुम्हारे बालक तुम्हारी सेवा करेंगे।
३५४३) मरने के बाद धन नहीं, धर्म साथ जाता है। अत: धन से धर्म श्रेष्ठ है। धर्म के अनुकूल धन का उपार्जन करो।
३५४४) दूसरों की निन्दा सुनने से पाप लगता है।
३५४५) याचक को न देना मृत्यु-समान है।
३५४६) अपने इष्टदेव में सम्पूर्ण भाव रखो एवं दूसरे देवों को अपने इष्टदेव का अंश मानकर उनका वन्दन करो।
३५४७) शरीर को सादा रखो। शरीर मात्र भस्म है- एक मुट्ठी राख। अत: इसका विशेष लाड़-प्यार एवं श्रृंगार मत करो।
३५४८) बालक-बालकृष्ण का रूप है। उसका कभी अपमान मत करो।
३५४९) भगवान् को प्रेम से पुकारो, वे दौड़ते आयेंगे।
३५५०) भागवत का आश्रय लेनेवाला भय-मुक्त हो जाता है।
३५५१) गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं, साधक है।
३५५२) मन को पाप करने की छूट मत दो।
३५५३) विवाह किये बिना, विकार एवं वासना का नाश नहीं होता।
३५५४) जीवन में दो ही त्रासदियां है, एक है मनचाही वस्तु का न मिलना, दूसरी है उसका मिल जाना।
३५५५) ऐसे वचन बोलो कि सबका कल्याण हो।
३५५६) त्याग का जीवन वास्तविक आनन्द से युक्त होता है।
३५५७) अपने राष्ट्र की वृद्धि व राष्ट्रकल्याण करना ही सच्ची ईश्वर पूजा है। अपना देश ही अपने लिये ईश्वर महिमा का साकार रूप है।

३५५८) क्रोधित व्यक्ति सत्य, शील, और विनय गुण का नाश कर डालता है।
३५५९) जो परमेश्वर के अनन्य भक्त है उनके चरणों का सेवक बन जाना, जाति से चाहे वे कोई भी हो, सब समान है।
३५६०) जो अपनी आत्मा पर शासन करता है, वह सर्व विजेता है।
३५६१) प्रभु भक्तों को सब वस्तुये शुभ और सुलभ हो जाती है।
३५६२) दूसरों की फिक्र करने वाला ही दयावान होता है और दया ही धर्म है।
३५६३) आत्मा के साथ ही परमात्मा है। मनुष्य हर शरीर के साथ ही अपने जन्म के कर्मों का फल भोगता है।
३५६४) निष्काम सेवा मन को शान्ति प्रदान करती है।
३५६५) जहां सुमति है वहाँ सम्पदा है और जहां कुमति है वहां नाना विपत्ति है।
३५६६) तीर्थ पर जाकर किसी दुर्गुण को त्याग करने का संकल्प करो। दुर्गुण की बलि से बढ़ कर कोई बलि नही है।
३५६७) गुरु को सीखने के लिये बुलाना उचित नही है। सीखने वाले का कर्तव्य बनता है कि वह गुरु के यहाँ जाकर सीखे।
३५६८) माता-पिता का कर्तव्य है कि बचपन से ही बच्चे को अच्छे संस्कार दे।
३५६९) राग और आसक्ति ही दु:ख का कारण है।
३५७०) बुरा काम आत्मा का शत्रु हे, अच्छा काम मित्र है।
३५७१) अपना स्वार्थ छोडकर परमार्थ के लिये तत्पर रहनेवाला ही सच्चा विवेकी पुरुष है।
३५७२) उन्नति का अर्थ है आत्मज्ञान
३५७३) जो परमात्मा से प्रेम करते है उनकी भलाई के लिये सभी दिशाओं से अच्छाइयां आती है।
३५७४) दैवी गुण वाले शुभ गुणों का विस्तार करते है, दुर्गुण वृति के लोग औरों को भी दुर्व्यसनी बनाने का प्रयास करते है।
३५७५) भगवान भक्ति से ही नहीं कर्तव्य पालन से कही अधिक प्रसन्न होते है।
३५७६) कर्मों मे आसक्ति ही विष है, फल की इच्छा उसके दांत है। अहंकार ही सांप है।
३५७७) ईश्वर की निगाह में अपराधी भी उसकी अपनी औलाद है।
३५७८) चेतना के शुद्ध होने से मनुष्य परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हो जाता है।
३५७९) ईश्वर भक्ति मे स्वयं का स्वर नही होता है, उसी का स्वर अन्त:करण से प्रकट होता है।
३५८०) भक्ति का सार है सेवा। जिसके हृदय मे करुणा तथा सेवा भावना है, वही भगवान की कृपा का अधिकारी होता है।
३५८१) शब्द क्रिया है और क्रिया ही परमात्मा है।
३५८२) सन्तों का सम्मान का अर्थ है प्रेम, एकता, अध्यात्म, शान्ति एवं अहिंसा के शाश्वत संदेश का सम्मान है।
३५८३) एक बार परमात्मा से प्रेम होने पर सारा संसार अपना लगने लग जाता है।
३५८४) माया से हमारी आत्मा प्रदूषित होने लगती है, माया के आवरण के हटने से आत्मा की स्वच्छता होती है।
३५८५) अपनी अन्तरात्मा की आवाज बार-बार सुने वह आपका अच्छा मित्र है।
३५८६) अगर परमात्मा का अस्तित्व नही है तो उसकी रचना करना आवश्यक है।
३५८७) हमे अपनी आत्मा के प्रतिकूल व्यवहार नही करना चाहिये।
३५८८) मानसिक उन्नति प्राप्त कर लेने के बाद शरीर भी अधिक शक्तिशाली और स्वस्थ हो जाता है।
३५८९) ज्ञान ईश्वर की रस्सी है, इसे मजबूती से पकड कर रखो इससे जीवन की शिक्षा ग्रहण करो।
३५९०) आज संसार मानो उन्मत्त हो चुका है, लेकिन परमात्मा ने प्रेम से उन्मत्त होना बुद्धिमत्ता है।
३५९१) प्रभु का नाम जाप निरन्तर, हर आयु मे और हर समय मे जपो।
३५९२) बुरा काम आत्मा का शत्रु है, अच्छा काम मित्र है।
३५९३) कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीनों का जहां उपयोग होता है, वही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है।

३५९४) मनुष्य जो भी काम लगन, श्रद्धा, तथा सात्विक तरीके से करता है वही सुदृढ़ और सही होता है।
३५९५) कर्म की सार्थकता कर्म से जुडने पर ही है अन्यथा वह केवल बोझ मात्र है।
३५९६) शुद्ध मन और सात्विक प्रवृति वाले ही परमेश्वर के दर्शन कर पाते है। कपटी मनुष्य को परमात्मा कभी दर्शन नहीं देते।
३५९७) भक्ति का सार है सेवा। जिसके हृदय में करुणा तथा सेवा भावना है वही भगवान की कृपा का अधिकारी होता है।
३५९८) चिन्ता, सन्देह, भय, निराशा ये सब विचार व्यक्ति को अध:पतन की और ले जाने वाले होते है।
३५९९) ताकतवर वह है जो क्रोध के, गुस्से के वक्त अपने ऊपर काबू रख सके।
३६००) बाहरी कर्मकांड, प्रभु प्राप्ति के लिये तडफते हृदय को शान्त नहीं कर पाते।
३६०१) जीवन का सबसे अमूल्य धन परमात्मा की और निरन्तर बने रहने की रूचि है।
३६०२) साधु जन सर्वदा क्षमाशील ही होते है।
३६०३) यदा दृष्टम् तथा नष्टम् - नाश न हो जिसका वह ब्रह्म कहलाता है।
३६०४) जो परमात्मा से प्रेम करते है उनकी भलाई के लिये सभी दिशाओं से अच्छाइयाँ आजाती है।
३६०५) शरीर आत्मा का वस्त्र है, इसलिये प्रेम आत्मा से करो उसके वस्त्र से नहीं।
३६०६) अपना स्वार्थ छोडकर परमार्थ के लिये तत्पर रहनेवाला ही सच्चा विवेकी पुरुष है।
३६०७) विश्व के जितने भी सुख है, उन सबमें अधिक सुख का साधन भोजन माना जाता है।
३६०८) भगवानमें प्रीति प्रेमयोग या भक्तियोग है। भगवतत्त्व का ज्ञान ज्ञानयोग है।
३६०९) जो समयानुसार मित्रसे व्यवहार नहीं करता, उसका सर्वस्व छिन जाता है।
३६१०) सत्पुरुष जिसे अपनाते हैं, उसका अचानक त्याग नहीं करते।
३६११) मरणासन्न रोगी महौषधि पाकर जीवित हो जाता है।
३६१२) नि:स्वार्थ भाव से किये गये कार्य अहंकारशून्य होते है। ऐसे ही कार्य सदकर्म बनते है जो पुण्य कहलाते है।
३६१३) ईश्वर ने बहुत प्रेम दिया है जितना बाटों उससे अधिक ही बढता है।
३६१४) प्रसन्नता परमात्मा की दी हुई औषधि है जिसको हरेक मनुष्य में इस्तेमाल करनी चाहिये।
३६१५) आवश्यकता से अधिक चिन्ता जीवन का कूडा है, इसे धोने के लिये हास्य की नितान्त आवश्यकता है।
३६१६) अशुद्ध साधनों द्वारा प्राप्त कैसी भी सफलता हो उसका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता।
३६१७) यह जीवन ईश्वर प्रदत्त अद्भुत संपदा है इसका श्रेष्ठतम उपयोग करने वाले महान होते हैं।
३६१८) दान से धन, सेवा से तन तथा भक्ति से मन पवित्र होता है।
३६१९) ईश्वर का प्रत्येक विधान आपके परम हित के लिये है।
३६२०) सत्संग, सन्तोष, दान व दया इनका सदैव सेवन करे।
३६२१) सत्संग जीवन का कल्पवृक्ष है, यह एक संजीवनी है। सुख और शान्ति केवल सत्संग का परिणाम है।
३६२२) प्रभु पर निर्भर रहने वाले पूर्ण श्रद्धा, आध्यात्म का प्रकाश और प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त करते हैं।
३६२३) सेवाव्रत करनेवाला मनुष्य ईश्वरोपासना करने वाले संत से अधिक ईश्वर के पास होता है।
३६२४) सुनना ही चाहते हो तो ईश्वर की प्रशंसा और दीन दुखियों की पुकार सुनो।
३६२५) जो व्यक्ति अपने मन से आनन्दमय होगा वही दूसरों के लिये भी आनन्दमय व कल्याणकारी होगा।
३६२६) हमेशा अच्छे विचार करते रहने से शारीरिक, मानसिक विकास होकर कर्मकुशलता भी आती है।
३६२७) शरीर का दीपक आंख है इसलिये जिसकी आंख (दृष्टि) निर्मल है उसका सारा शरीर प्रकाशमान होगा।
३६२८) संत धन के प्रति विरक्त होता है जब कि संसारी ऐश्वर्य व भौतिक वस्तुओं में ही जीवन का सार देखता है।
३६२९) उस व्यक्ति को क्या लाभ जो सम्पूर्ण विश्व को प्राप्त कर ले लेकिन स्वयं की आत्मा को खो दे ?

३६३०) दम्भ का अन्त सदैव अहंकार होता है और अहंकारी आत्मा सदैव पतित होती है।
३६३१) जिसने अपने आप को ईश्वर को सौप दिया और सत्कर्मी हो गया, वह हर तरह की मुसीबत से दूर हो गया।
३६३२) दीन दु:खी की सहायता से बढकर कोई तीर्थ, स्नान या पूजा संसार में नहीं है।
३६३३) क्षमा को बहादुर लोगों का आभूषण कहा जाता है।
३६३४) धीरज, धर्म, विवेक, साहित्य, सत्य, सत्संग व रामनाम असमय (दुर्दिन) के साथी बनो-
३६३५) ईश्वर की याद मुसीबतों से छुटकारा दिलाती है।
३६३६) तन और मन की दूरी ही पाप है, दु:ख है। पाप को अपने मन से दूर रखते हो इसलिये दु:खी होना पडता है।
३६३७) दु:ख को अपनाने पर दु:ख की बुराई परेशान नहीं करती।
३६३८) जैसा मनुष्य के लिये सौजन्य रूपी अलंकार है, वैसा न तो आभूषण है, न राज्य, न पौरूष, न विद्या और न धन है।
३६३९) श्रेष्ठ पुरुषों की कीर्ति का मूल कारण धर्म ही है।
३६४०) सद्गुरु की आज्ञा में रहने वाले शिष्य को आध्यात्मिक दौलत के साथ साथ बिन मांगे सांसारिक सुख भी प्राप्त हो जाते है।
३६४१) जो कर्म मन का प्रसारण ले आता है वही सुकर्म है और जिससे मन संकीर्ण होता है वही कुकर्म है।
३६४२) भगवान में प्रीति प्रेमयोग व भक्तियोग कहलाता है। भगवत तत्व का ज्ञान, ज्ञान योग ऐसा जाना जाता है।
३६४३) सत्पुरुष एक बार जिस किसी को अपना लेते है। तो उसका अचानक त्याग नहीं करते।
३६४४) सत्पुरुष के सद्गुण शान्ति, क्षमा, सरलता को हीन व्यक्ति उसकी दुर्बलता मानते है।
३६४५) कर्म से प्राप्त गति नित्य नहीं होती है सदा ही विनाशवान है लेकिन अविनाशी पद केवल ईश्वर के स्मरण से प्राप्त होता है।
३६४६) वास्तव में ज्ञानी और महात्मा पुरुष वे ही हैं, जिनका चित्त विकारके साधन उपस्थित रहनेपर भी विचलित न हो।
३६४७) प्रेमी का अन्त:करण प्रेमास्पदके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालता।
३६४८) जो महात्मा पुरुषोंकी निन्दा करता है, केवल वही नहीं पापी होता, जो उसके मुँहसे सुनता है, उसे भी पापका भागी होना पडता है।
३६४९) सच्ची प्रार्थना दिल की सफाई का सबब है। इसकी वजह से दिल में शैतानी खयाल नहीं आते।
३६५०) यदि चाहते हो कि तुम्हारा अंत:करण अच्छा हो तो दृष्टिकोण अच्छा बनाओ।
३६५१) धैर्य से काम लो। परिश्रम करते जाओ। प्रयत्न करते जाओ। सफलता अवश्य मिलेगी।
३६५२) जब परमात्मा मेरे पिता, गुरु, मार्गदर्शक आदि हैं तो इस दुनिया में मुझे किसका डर है।
३६५३) ईश्वर ने हमें बनाया है और हम अपनी प्रशंसा करते हैं।
३६५४) इस देह रूपी वस्तु को मनुष्य जीत ले, तो फिर संसार में कौन उस पर सत्ता चला सकता है।
३६५५) सभी के लिए हितकारी और धारण करने योग्य नियम ही धर्म है। धर्म ही सर्वदा कल्याणकारी होता है।
३६५६) संयमी पुरुषों को न तो विषयों में आसक्ति होती है और न वे विषयों के लिए युक्ति करते हैं।
३६५७) जब आप यह समझते हैं कि आपके सभी कार्य परमात्मा के लिए हैं तो हर कार्य एक सुखदायी अनुभव बन जाता है।
३६५८) सरदी गर्मी, भय अनुराग, सम्पत्ति दरिद्रता, जिसके कार्य में विघ्न नहीं डालते वही पंडित कहलाता है।
३६५९) जो भगवान से प्रेम करते है वे साधु है। पर भगवान जिससे प्रेम करते है वे सन्त है।
३६६०) भगवत दर्शनसे जीवन सफल होता है। भगवान शान्त है लेकिन भगवान के भक्त प्रशान्त है।
३६६१) साधक उसी को कहते है जो निरन्तर सावधान रहता है। साधक आंख वाला बन जावे तो ईश्वर पलक बन जाते है।
३६६२) ईश्वर हमें कभी भी अशुभ में प्रेरित नहीं करता है। भगवान के अनुग्रह का अनुभव करो, उपेक्षा मत करो।
३६६३) वाणी निरोग उसी की है जो सत्य, प्रिय, मीठा और थोडे शब्दों में बोलता है।
३६६४) इच्छा न होना ही योग है, निष्काम भाव से भगवान में प्रेम करना ही भक्ति योग बन जाता है।
३६६५) जिस प्रकार घी के बिना भोजन वन्ध्य है उसी प्रकार भगवान की कथा और भजन के बिना जो दिन बीत जाये वह दिवस वंध्य है।

३६६६) अधिकारी शिष्य को अधिकारी सदगुरु मिल ही जाते है। सद्गुरु की प्राप्ति के लिये अधिकारी शिष्य बना।
३६६७) संयम, समता और सेवा प्रभु प्राप्ति के साधन है। असंयम ही हमें असुर बनाता है।
३६६८) राग द्वेष से रहित स्थिति ध्यान है। ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान है।
३६६९) विषयों को जो अविवेक पूर्वक भोगता है वह व्यभिचारी होता है। वासना ही प्रेत बनाती है, उपासना करने से वासना मिटती है।
३६७०) रासलीला का अर्थ है जीव और शिव की एकता। केन्द्र में भगवान को रख कर जो भी क्रिया होगी वह भगवान की पूजा बन जायेगी।
३६७१) ब्रह्म में चरना ही ब्रह्मचर्य है। जिसमें रति होती है उसमें ही मति होती है।
३६७२) निर्गुण हमारा पिता है, सगुण हमारी माता है। दोनों में कोई भेद नही है थोडी भाव भिन्नता है।
३६७३) बुद्धि सत्संग से देवमय होगी और हृदय सत्कर्म से शुद्ध होगा। स्वच्छता शरीर है तो पवित्रता उसकी आत्मा है।
३६७४) भगवान तब ही पधारते है जब यज्ञ सम्पूर्ण होता है, पितरों की तृप्ति होती है और कुल पवित्र होता है।
३६७५) मुक्ति बाहर के त्याग से नहीं होती, प्रत्युत भीतर के त्याग, वैराग्य से होती है। मोह का क्षय ही मोक्ष है।
३६७६) अज्ञान, अन्धकार, स्वार्थन्धकार को, मोहान्धकार को मिटाने के लिये ही प्रभु का आगमन होता है।
३६७७) मन्दिर की मूर्ति मे भगवान को देखना यह दर्शन है लेकिन सब मे भगवान को देखना या सुदर्शन है।
३६७८) भगवान अपना अपमान सहन कर सकते हैं लेकिन अपने भक्त का, संत का कोई भी अपमान सहन नही करते है।
३६७९) किसी की भी निन्दा न करे और फिर सन्तों, ऋषियों की तो कभी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये।
३६८०) अनन्य का चिन्तन न करे, चिन्तनीय तो परमात्मा ही है। जब तक शरीर है तब तक कर्म होते ही रहते है।
३६८१) शासन करने का उसे ही अधिकार है जो भगवान के अनुशासन में रहता हो।
३६८२) चार महा वाक्य है- मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, सब कुछ प्रभु का है, केवल प्रभु मेरे अपने है।
३६८३) ईश्वर भक्त अक्रोधी होता है। वह सारे जगत में ईश्वर को ही देखता है, फिर किस पर क्रोध करे?
३६८४) सत्संग और अच्छा सहयोगी दल हमारे पुरुषार्थ से नहीं मिलता बल्कि केवल भगवत् कृपा से ही मिलता है।
३६८५) शरीर के साथ हमारा एक क्षण भी संयोग नहीं होता और परमात्मा के साथ हमारा कभी भी एक क्षण भी वियोग नहीं होता।
३६८६) धन से वस्तु श्रेष्ठ है, वस्तु से मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्य से विवेक श्रेष्ठ है और विवेक से परमात्मा श्रेष्ठ है।
३६८७) मै ज्ञानी हूं और मै अज्ञानी हूं- ये दोनों ही मान्यताये अज्ञानियों की है।
३६८८) अप्राप्त वस्तु की इच्छा करना और प्राप्त वस्तु की ममता ही बन्धन का कारण है, परतन्त्रता है।
३६८९) भगवत्प्रेम में जो विलक्षण रस है वो ज्ञान में नही है। ज्ञान में तो अखण्ड आनन्द है और प्रेम में अनन्त आनन्द है।
३६९०) जब तक तुम स्वयं अपने में विश्वास नहीं करते, तब तक परमात्मा में तुम विश्वास नहीं कर सकते।
३६९१) अगर स्वाद की इन्द्रियों को ढील दोगे तो सभी इन्द्रियां बेलगाम दौडने लगेगी।
३६९२) धन का संग्रह मत करो, दान करो। अति सम्पत्ति अनर्थकारी होती है।
३६९३) ईश्वर मनुष्य बना, मनुष्य भी फिर से ईश्वर बनेगा।
३६९४) अतिथि का स्वागत करने से अग्नि, आसन दान करने से इन्द्र, चरण धोने से पित्तर और अर्ध्य देने से शिवजी प्रसन्न होते हैं।
३६९५) गुरू धर्म पिता ही होता है।
३६९६) असल में त्याग ही सच्चा और संपूर्ण संन्यास है।
३६९७) जब तक मन नहीं मरता, माया नहीं मरती।
३६९८) ब्रह्मा के सहस्र शीष, सहस्र आंख और सहस्र पैर हैं।
३६९९) जिसका मन उसके वश में नहीं है, वह न तो योगी है और न ही संन्यासी।
३७००) भगवान विपत्ति नहीं सम्पत्ति देते हैं।
३७०१) पहले भगवान के साम्राज्य तथा उसकी पवित्रता को प्राप्त करो, तत्पश्चात अन्य सब कुछ तुम्हें स्वयं प्राप्त हो जाएगा।

३७०२) दीन के प्रति अहंकारी मत बनिए और अहंकारी के प्रति दीन मत बनिए।
३७०३) वास्तव में त्याग ही सच्चा और सम्पूर्ण सन्यास है।
३७०४) मरने से पहले बैर और वासना का त्याग अवश्य कर देना अन्यथा सद्गति प्राप्त नहीं होगी।
३७०५) गोरा कुम्हार को मटकों से और तुलाधार वैश्य को तराजू से ज्ञान प्राप्त हुआ।
३७०६) जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया, वे मुक्ति के मार्ग पर हैं, बाकी सब मोहजाल में फंसे हुए हैं।
३७०७) साधक को हर क्षण तपस्या का अभ्यास बनाए रखना चाहिए। भौतिक सुख सुविधाओं से बचने में ही उसका कल्याण है।
३७०८) हे साधु, संसार के दु:खों से संतप्त मनुष्यों के लिए शांति के निमित्त क्या सिर्फ संतान, माया और सज्जनों की संगति ही है।
३७०९) भगवान का आश्रय ले लेने वाले को किसी दूसरे के आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती।
३७१०) संवेदनाओं के आँसुओं से मन का पाप धुल जाता है और आत्मा निर्मल होती है।
३७११) हर मनुष्य में परमात्मा का अंश होता है, इसलिए हर मानव श्रद्धा के योग्य होता है।
३७१२) वह कुल पवित्र है, वह देश पावन है, जहाँ हरि के दास जन्म लेते है।
३७१३) विवेकयुक्त वैराग्य ही सच्चा वैराग्य होता है और वही ठहरता भी है। ज्ञान के बिना जो वैराग्य होता है वह अन्धा होता है।
३७१४) सकल-कामना-त्यागरूप जो संन्यास है उसीके उदर में ही तो ज्ञान उत्पन्न हो सकता है।
३७१५) सद्गुरु के प्रसन्न होने से शिष्य विद्या प्राप्त कर लेता है। पर उसका फल सम्प्रदाय की उपासना से ही प्राप्त होता है।
३७१६) अध्यात्म-विषय का जिसे कुछ ज्ञान है और जो प्रेमी है उसके लिए ग्रंथ कठिन नहीं हैं।
३७१७) अध्यात्म का विचार और अनुभव इस समय बहुत ही दुर्लभ हो गया है ऐसे-ही-ऐसे आगन्तुक कारणों से ग्रंथ दुर्बोध हो जाते हैं।
३७१८) सिद्धान्तों के द्वारा परमार्थ और दृष्टान्तों के द्वारा प्रपंच सिखाया जाता है।
३७१९) संसार मिथ्या, मायिक, अज्ञानकृत नहीं प्रत्युत श्री हरि का विलास है। जगत् केवल चिद्विलास है।
३७२०) शास्त्र का प्रमाण है, श्रुति का वचन है कि नारायण ही सब जपों का सार है।
३७२१) धर्म से अर्थ उत्पन्न होता है, धर्म से सुख प्राप्त होता है, धर्म से सबकुछ मिलता है, धर्म ही इस संसार का सार है।
३७२२) माया में चिन्ता छिपी है, सन्तुष्टि कभी नहीं होगी।
३७२३) गुरु ही भक्तों को अनुभव कराते हैं। निराकार ही सबका आधार है, अगर हम आज्ञानुसार चलें तो।
३७२४) संस्कारों को धो डालने की शक्ति ईश्वर ने सबको दी है। जो उस शक्ति का उपयोग करता है वह उन्हें मिटा सकता है।
३७२५) माया में चिन्ता छिपी है संतुष्टि कभी नहीं होगी। गुरु ही चिल्लाकर माया की झूठी जादूगरी का नशा उतारता है।
३७२६) सच्चा गुरु पहरेदारी करके हमेशा आत्मा में जागना सिखाता है।
३७२७) सन्त की करुणा और दिव्यता आगे वाले को पिघला देती है।
३७२८) जो ज्ञान से दिल लगायेगा ज्ञान उसका है; गुरु अपने पास कुछ नहीं रखता।
३७२९) सच्चा भक्त ही गुरु के ज्ञान को समझता है, बाकी सब शास्त्रों में फंसे रहते हैं।
३७३०) अन्दर विषय-रस है। बाहर से बोलना अपने को ठगना है।
३७३१) निरिच्छा के लिए भगवान सोचता है। अधूरा ज्ञान मार खाता है।
३७३२) निष्काम सेवा में ही सुख है।
३७३३) सच्चा ज्ञान है अद्वैत। जहां सब एक ही आत्मा है तो भाव ही नहीं है।
३७३४) नाम, रूप, आकार में न अटको। देखो, सब में मेरी ही आत्मा है।
३७३५) जगत मिथ्या ब्रह्म सत्यं- भगवान के साथ सम्बन्ध जुड गया तो उद्धार हो गया।
३७३६) मांगन से मरना भला, यह सत्गुरु की सीख, मांगन मरन समान है, मत कोई मांगे भीख।।
३७३७) जिसने पैदा किया वह शरीर की सम्भाल करता है, लेकिन गुरु हमारे ज्ञान की रक्षा करता है।

३७३८) विश्वास, प्रेम, धीरज, कुर्बानी से सत्गुरु को राजी करो।
३७३९) सच्चा ज्ञान चाहिए तो गुरु से गरीबी और निन्दा लो और कामिनी से दूर रहो।
३७४०) संत के लिए निन्दा स्तुति समान है।
३७४१) अहंकार मत करो। करन करावन आपै आप, मानुष के कुछ नाहीं हाथ।
३७४२) सबको खिलाने वाला भगवान है।
३७४३) गुरु का ज्ञान सबको मिलता है, पर उसका उपयोग कोई कैसे करता है, तो कोई कैसे।
३७४४) समता में अमरता है- जो कुछ होता है केवल ब्रह्म की सत्ता से ही होता है।
३७४५) गुरु के ज्ञान का मजा तब आएगा जब अज्ञान से थकान आएगी।
३७४६) संत के पास ही सच्चा धन होता है, जिसे पाकर फिर और कुछ पाना शेष नहीं रहता।
३७४७) भगवान हमें अपने आप देना चाहता है; हम मांगकर अपना प्रारब्ध खराब करते हैं।
३७४८) कोई ग्रन्थ साहब की आरती उतारता है, कोई उसका वचन लेकर कमाता है और कोई ग्रन्थ साहब को रख देता है।
३७४९) हमेशा शरीर रूपी गठरी बांध के रखो, भगवान कभी भी लेले तो शोक नहीं हो।
३७५०) जो कोई अपने हृदय का दरवाजा भगवान के लिए खोलता है, उसे भगवान पूर्णत: भरपूर कर देते हैं।
३७५१) भगवान को पाने के लिए पूरा मूल्य चुकाना पडता है। भगवान तो अमूल्य निधि है, उसके लिए कुछ भी देना पडे तो वह भी थोडा ही है।
३७५२) संत क्षमा करके सब में क्षमा भाव जगाते हैं। क्षमा उसके पास है जो भगवान के पास है।
३७५३) भगवान के लिए अपना प्रेम हृदय की तिजोरी में बंद ही रखना चाहिए। जो भगवान की शरण लेता है उससे राजा भी झुकते हैं।
३७५४) शरीर भक्त है, भगवान हृदय में विराजमान हैं।
३७५५) माया के खिलौने में न अटककर सीधा भगवान के पास पहुंचो।
३७५६) सूरदास की तरह हमको भी भगवान के साथ अंदर से एक होना है।
३७५७) ब्रह्मज्ञानी गुरु के सामने ही अपने अन्दर की ज्योति जगा लो, नहीं तो भटक जाओगे।
३७५८) इन्द्रियों के दरवाजे बंद करो, आत्म-निष्ठा खुद हो जाएगी।
३७५९) इन्द्रियों सहित इस शरीर में २४ नौकर हैं, जब तक गुरु नहीं मिलता अराजकता रहती है। गुरु के मिलते ही शान्ति आ जाती है।
३७६०) माया के गड्ढे से गुरु और संत ही खींचकर निकालते हैं।
३७६१) ब्रह्मज्ञानी के प्रेम से पापी भी पिघल जाते हैं। संत के संग से निंदक भी तर जाते हैं।
३७६२) जिन्हें भगवान चाहिए वे प्राय: लक्ष्मी को दूर ही रखते हैं।
३७६३) जीवन का धन, शक्ति और समय परमात्मा को जानने में लगाना चाहिए।
३७६४) सच्चा गुरु अपने स्वरूप की पहचान करवाता है।
३७६५) सबसे कीमती है गुरु और मां-बाप की आज्ञा।
३७६६) संतों के प्रेमभरे प्रवचनों को पाकर ही पापियों का दिल बदल जाता है।
३७६७) दिल से प्रभु का नाम लेते ही बेहद शक्ति आ जाती है।
३७६८) गंगा नहाने से नहीं, सत्गुरु के सत्संग से शुद्धि होती है।
३७६९) भगवान पर विश्वास हो तो जगत की सारी बातों से छूट जाता है और आत्म-बोध हो जाता है।
३७७०) प्रभु अपने सारे गुणों सहित भीतर ही विराजमान हैं, बस हमारे ही विश्वास की कमी है।
३७७१) क्यों न हम सारे वरदान इच्छा, बिना मांगे उस पर ही छोड दें जो हमारा सर्वोच्च हित चाहने वाला करुणानिधान परमात्मा है।
३७७२) सभी सम्प्रदायों में एक ही परमात्मा है, झगड़ा तो नाम रूप का है।
३७७३) आत्म-ज्ञान से मान, अपमान, कष्ट एवं पीडा झेलने की ताकत खुद ही आ जाती है।

३७७४) ईश्वर सर्वव्याप्त है। वह सभी दिशाओं में देखता है।
३७७५) हर रूप में निराकार का दर्शन करें तो सारे विकार खत्म हो जाते हैं।
३७७६) अहिंसा केवल बुद्धि का विषय नहीं है, यह श्रद्धा और भक्ति का विषय है।
३७७७) हे प्रभु। तुम्हारी वाणी सरल है, किन्तु उनकी नहीं जो तुम्हारे विषय में बताते हैं।
३७७८) मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।
३७७९) शांति जैसा तप नहीं है, संतोष से बढकर सुख नहीं है, तृष्णा से बढकर रोग नहीं है और दया से बढ़कर धन नहीं है।
३७८०) भगवत्कथा, संकीर्तन, कालक्षेप के बीच यथाशक्ति वाचक का पूजन किये बिना उठ जाना बड़ा अपराध है।
३७८१) भक्ति मार्ग का सिद्धान्त है भगवान को बाहर जगत में देखना। मन के भीतर देखना योग मार्ग का सिद्धान्त है, भक्ति मार्ग का नहीं।
३७८२) वह विलक्षण वस्तु, जिसकी छाया मात्र से ही अंधेरे हृदय में प्रकाश हो जाता है, साधुओं की सत्संगति में ही प्राप्त होती है।
३७८३) मानव के अन्तर्तम में कल्याण के देवता का निवास है- उसकी संवर्धना ही उत्तम पूजा है।
३७८४) तिलभर भी अभिमान रखकर यदि मेरी शरण में आओगे तो मुझे नहीं पाओगे, कारण मेरी प्राप्ति में अभिमान बाधक है।
३७८५) सदा प्रेमपूर्वक मीठी वाणी में ही बोलें।
३७८६) छल, कपट, चोरी आदि का व्यवहार कभी न करें।
३७८७) सद्गुरु एक दीप है। दीप का काम दीयों की बाती को प्रज्ज्वलित करना, उन्हे संजोना और आगे बढ़ जाना है।
३७८८) ईश्वर से प्रार्थना करें हमे पत्थर सा तन और मोम सा मन दे।
३७८९) आत्मशक्ति के जागरण से आध्यात्मिक शक्ति का जागरण होगा तभी चमत्कार सम्भव हो सकते है।
३७९०) निष्काम कर्म व साधना का पंथ सबसे अद्भुत और संजीव माना गया है।
३७९१) ईश्वर ने हमें बनाया है और हम अपनी प्रशंसा करते हैं।
३७९२) इस देह रूपी वस्तु को मनुष्य जीत ले, तो फिर संसार में कौन उस पर सत्ता चला सकता है।
३७९३) गुरु शिष्य को कोई नया ज्ञान नहीं देता, प्रत्युत उसके भीतर पहले से विद्यमान जो ज्ञान है, उसको ही जागृत करता है।
३७९४) प्रार्थना में हृदय-रहित शब्दों की बजाये शब्द-रहित हृदय का होना कहीं ज्यादा बेहतर है।
३७९५) चार चीजों का सदा सेवन करना चाहिए- सत्संग, संतोष, दान और दया।
३७९६) जो कर्म से कर्मों के त्याग को श्रेष्ठ मानता है। वह अज्ञानी है।
३७९७) धर्म में तत्पर रहने वाला प्राणी निरन्तर सत्कर्मों में ही लगा रहता है।
३७९८) किसी के घर में भोजन या तो प्रेम के कारण किया जाता है या फिर आपत्ति में पड़ने पर।
३७९९) पाप का अन्त अवश्य होता है, उसका दंड भी हर प्राणी को भोगना पड़ता है।
३८००) मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात मंदिर है, इसलिए साकार देवता की पूजा करो।
३८०१) बुरे के साथ सदैव बुरा व्यवहार करना चाहिए।
३८०२) हे साधु, संसार के दुखों से संतप्त मनुष्यों के लिए शांति के निमित्त क्या सिर्फ संतान, माया और सज्जनों की संगति ही है।
३८०३) भगवान का ध्यान करनेसे पता चलता है कि वह एक ही हैं, पर विचार करते ही नानात्व बुद्धि घेर लेती है।
३८०४) यदि इस देह रूपी वस्तु को मनुष्य जीत ले, तो फिर संसार में कौन उस पर शासन चला सकता है ?
३८०५) यदि कोई मनुष्य कहता है कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूं, परंतु वह अपने भाई से घृणा करता है, तो वह झूठा है।
३८०६) सत्य-जीवन का लक्ष्य, संयम जीवन की पद्धति, सेवा जीवन का कार्य।
३८०७) एक जैसे लोगों के बीच ही पुण्य फलीभूत होता है।
३८०८) सुख स्थायी तभी हो सकता है जब वह धर्म से उत्पन्न हो और धर्म से रक्षित हो।
३८०९) झूठा सबसे पहले अपने आपको नुकसान पहुंचाता है।

HHH(४८०)HHH

३८१०) यदि पहरों ईश प्रार्थना करने के बदले हम क्षणभर दु:खी लोगों के ऊपर करूणा करें तो सत्य आकर हमारा स्वागत करेगा।
३८११) ईश्वर ही हमारा आश्रय दाता है और शक्तिदाता भी। वही आपतकाल में हमारी सबसे बडी सहायता करता है।
३८१२) वास्तव में शरीर ही धर्म अर्थात स्व कर्तव्य पालन का सर्व प्रमुख साधन है।
३८१३) परमात्मा ने जो कुछ तुमको दिया है उसके लिये परमात्मा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करो।
३८१४) जो दूसरों से निर्भय है और दूसरों को भी अभय देता है, वही संन्यासी है, ऐसा स्मृति में कहा गया है।
३८१५) फलासक्ति से दूर रहकर किया गया कर्म ही सद्कर्म होता है। इसी को निष्काम कर्म कहते हैं।
३८१६) पाप से घृणा करो पापी से नही। घृणा घृणा से कभी नही होती, प्रेम से ही होती है। यही घृणा का सर्वदा स्वभाव रहा है।
३८१७) ज्ञानदाता गुरु की निन्दा करना तो दूर की बात, निन्दा सुननी भी नहीं चाहिये।
३८१८) जहां देह है वहां कर्म तो है ही, उससे कोई मुक्ति नही। तथापि शरीर को प्रभु मन्दिर बना कर उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त करनी चाहिये।
३८१९) मन का सत्य संकल्प तप है, सत्य तप है, शास्त्र श्रवण है, शान्ति तप है और दान तप है।
३८२०) स्वास्थ्य और सुख की कामना हो तो, ईश्वर में श्रद्धा रख गहरी नींद सोइये, जीवन के आनंद पक्ष का ही विचार कीजिए।
३८२१) चित्त की वृत्तियों को वश में रखना ही योग है। सभी चिन्ताओं का परित्याग कर निश्चिन्त हो जाना ही योग है।
३८२२) स्वयं दोषी होकर भी जो दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है।
३८२३) काम, क्रोध और लोभ- ये आत्मा के नाश करनेवाले नरक के तीन द्वार हैं अत: इन तीनों को ही त्याग देना चाहिए।
३८२४) इन्द्रियों पर अधिकार न होने के कारण बड़े-बड़े साधु भी कर्मों से तथा राजा लोग राज्य के भोग-विलासों से बंधे रहते हैं।
३८२५) कर्म शरीर के द्वारा की गई भगवान की सर्वोत्तम प्रार्थना है।
३८२६) शूर, विद्वान और सेवाधर्म को जाननेवाले- ये तीन प्रकार के मनुष्य पृथ्वी से सुवर्णरूपी पुष्प का संचय करते हैं।
३८२७) धर्म और अर्थ के नित्य ज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों की इच्छा करते हैं।
३८२८) यज्ञ न होने से, निन्दित कुल में विवाह करने से, वेद का त्याग और धर्म का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।
३८२९) पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों के यहां ये तृण आदि वस्तुएं बड़ी श्रद्धा के साथ सत्कार के लिए उपस्थित की जाती हैं।
३८३०) सम्यक् अध्ययन, न्यायाचित युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्या के अन्त में सुख की वृद्धि होती है।
३८३१) तपस्वियों का बल है तप, वेदवेत्ताओं का बल है वेद, असाधुओं का बल है हिंसा और गुणवानों का बल है क्षमा।
३८३२) जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छापूर्ति, गुरु का वचन और औषध- ये आठ व्रत के नाशक नहीं होते।
३८३३) वेदांत का आचरण सहज रूप से समस्त निराशाओं, चिंताओं, विषादों, तनावों से आपको सदा-सदा के लिए मुक्त करता है।
३८३४) हम साधु वेष का तो आदर करते हैं। हम को वेष के प्रति कोई दुर्भाव नहीं है। लेकिन, साधुता वेष में नहीं है।
३८३५) साधु का जीवन ही इस समाज को दुश्चरित्रता-दुराचरण, संग्रह-परिग्रह और द्वेष-हिंसादि दोष- दुर्गुणों से मुक्त करनेवाला है।
३८३६) तेरे ही घर में धनकोष है, बाहर कुछ भी है नहीं। गुरुकृपा से पा सकता है तू उसे, खुल जाता है तेरे लिए द्वार वह।
३८३७) किसी भी व्यक्ति को भ्रम में नहीं रहना चाहिए। बिना गुरु के कोई उस पार नहीं जा सकता।
३८३८) सन्तों के सत्य वचनों को सुनो, क्योंकि सन्त वही कहते हैं, जो वे प्रत्यक्ष देख चुके हैं।
३८३९) जो अपने शरीर में देवता का निवास करा देता है वही गुरु है। वही पंचमुखी शब्द उच्चारित करता है।
३८४०) जो जन्म और मृत्यु की पीड़ा से डरता है, उसे साधु की खोज करनी चाहिए।
३८४१) सन्तों के दर्शन और उनका संग करना ही सबसे बड़ा तीर्थ है। एक सन्त का दर्शन समस्त अड़सठ तीर्थों के पुण्य के बराबर है।
३८४२)) शब्द की चर्चा से व्यक्ति में विश्वचैतन्य जागृत हो जाता है, दृष्टिलाभ होता है और अन्तर्यामी दूरदृष्टि उत्पन्न होती है।
३८४३) शब्द द्वारा भगवान से संवाद करने पर मनुष्य सिद्ध, पीर, सूर और नाथ जोगी बन जाता है।
३८४४) सुख और शान्ति का स्त्रोत मैं हर स्थान पर पाता हूं। शब्द के द्वारा ईश्वर प्रकट होते हैं और शब्द से ही वे आविर्भूत होते हैं।
३८४५) शब्द के द्वारा मन पर विजय पाई जाती है और व्यक्ति मोक्ष पाता है तथा गृहस्थ सुखलाभ मिलता है।

३८४६) चमत्कार कर दिखाना है व्यर्थ और खोखला। योगवियोग होता ईश्वर-इच्छा से ही है। पाते हम बस वही जो ईश्वर देते हैं।
३८४७) जो कुछ हम पाते हैं, ईश्वर की ही आज्ञा से पाते हैं। ईश्वर ने ही सृष्टि की रचना की है और वे ही उस पर दृष्टि रखते हैं।
३८४८) गुरुचरणों का चिन्तन करो। उनका निरन्तर चिन्तन करने से मायासागर को पार किया जा सकता है।
३८४९) मन और शरीर से गुरु में-जो शब्द का मूर्तरूप है- आसक्त रहने वाले व्यक्ति को भगवान के पास सन्मानित स्थान प्राप्त होता है।
३८५०) आत्मोन्नति द्वारा ईश्वर तक पहुंचने के लिए तीन आवश्यक बाते हैं- सत्गुरु, सत्संग और सत्नाम।
३८५१) जो करता है एकनिष्ठ हो ईश्वर स्तुति हो जाता है वह भव-सागर पार ईश्वर की कर स्तुति तू हो जाएं जिससे तेरे पाप क्षीण।
३८५२) ऐसे लोग जिनका मुंह और जिह्वा स्वच्छ एवं शुद्ध है, वे अनेक अन्य व्यक्तियों को भी स्वच्छ और शुद्ध बना देते हैं।
३८५३) जिसके चित्त में कभी क्रोध नहीं आता और जिसके हृदय में सर्वदा परमेश्वर विराजमान रहता हो, वह व्यक्ति ईश्वर तुल्य है।
३८५४) आखिर तूने अपने सकल पाश एक ही झटके में तोड़ डाले और अब अपने सन्यस्त मन को एकनिष्ठ प्रेमी चकोर बना लिया।
३८५५) सुख बाहर से मिलने की चीज नहीं, वह तो हमारे ही अंदर मौजूद है। मगर अहंकार छोड़े बगैर उसकी प्राप्ति नहीं होनेवाली।
३८५६) साधु की संगति से मनुष्य को आनंद ही आनंद प्राप्त होता है।
३८५७) गुरु ही इन सांसारिक भव-बंधनों से मुक्ति दिलाकर प्रभु से मिला सकते है। वे ही मन में ईश्वर भक्ति की लौ जला सकते हैं।
३८५८) जब तक तूने तृष्णाओं को समाप्त नहीं किया है, तब तक तू सन्तुष्ट मत हो। पाप-भावना की समाप्ति ही सबसे बड़ा धर्म है।
३८५९) स्वास्थ्य उच्चतम लाभ है, सन्तोष महत्तम सम्पदा है, गोपनीय उत्कृष्टतम रिश्तेदार है, निब्बाण (निर्वाण) अत्युच्च आनन्द है।
३८६०) जिस पुरुष की निन्दा और स्तुति बराबर है और जो लोहे तथा सोने को एक जैसा समझता है, ऐसा पुरुष ही मुक्त कहलाता है।
३८६१) अमृत और मृत्यु दोनों ही इस शरीर में ही स्थित है, मनुष्य मोह से मृत्यु को और सत्य से अमृत को प्राप्त होता है।
३८६२) दीपक की लौ के समान स्त्री शरीर का पतंगा न बनकर काम, क्रोध छोड़कर रामजी का भजन और सदा सत्संग करना चाहिये।
३८६३) श्रीराम ज्ञानरूपी अमृत का निरन्तर पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष धन्य है।
३८६४) मानव की सबसे बडी भ्रांति है कि वो चिन्ता ज्यादा करता है, चिन्तन नहीं करता। जीवन में चिन्ता को मिटाओ और चिन्तन को बढ़ाओ।
३८६५) संत का मतलब साधना करने वाला। जो बिगडे हुए काम साधे, वह साधु है।
३८६६) बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती।
३८६७) बिना सत्संग के जीव को विवेक नहीं मिलता।
३८६८) दूसरे का हित करना ही सर्वोत्तम धर्म है। दूसरे को पीड़ा पहुँचाना ही सबसे बड़ा पाप है।
३८६९) उन संतों की सेवा करो, महापुरुषों का वंदन करो, जो मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।
३८७०) जीवन का लक्ष्य बनाओ परमात्मा चिंतन। जितना समय बन सके प्रभु के चिंतन में व्यतीत करो।
३८७१) हरि की स्मृति सब विपत्तियों से विमुक्ति दिलाती है।
३८७२) चमत्कार दिखाना तो बाजीगर का काम है, संत का तो दर्शन ही चमत्कार है, संत के जीवन की सरलता ही चमत्कार है।
३८७३) परमात्मा का आश्रय सर्व विघ्नों को दूर कर मुक्ति प्रदान करता है।
३८७४) छोटे से छोटा प्राणी, बड़े से बड़ा महापुरुष यदि आत्मिक दृष्टि से देखें, तो सब एक हैं।
३८७५) संत संग में ताकत होती है। सत्संग जीवन को परिवर्तित करता है।
३८७६) जब जब होहिं धर्म की हानी। बाढ़हि असुर अधर्म अभिमानी। तब-तब धरि प्रभु विविध शरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।
३८७७) बिना भक्ति के जो ज्ञान है, वो पंगु है और बिना ज्ञान के जो भक्ति है, वो अंधी है। दोनों को दोनों की जरूरत है।
३८७८) जो प्रकृति के वश में रहता है, वो जीव है। प्रकृति को जो वश में रखता है, वो ईश्वर है।
३८७९) आत्मबोध करा देना ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।
३८८०) भगवान के मंगलमय विधान में अमंगल के लिये कोई गुंजाइश ही नहीं है।
३८८१) भगवान् विष्णु और शिव की निन्दा सुननेवाले को गौ वध समान पाप लगता है।

३८८२) जगत में निस्वार्थ उपकार करनेवाले दो ही हैं एक रामजी दूसरा रामभक्त हनुमानजी बाकी सब स्वार्थ के मित्र हैं।
३८८३) अपने गुरु, देवता या विशिष्ट व्यक्ति के यहां दर्शन (मिलने) के लिये जाते समय खाली हाथ न जाओ। कुछ भेंट लेकर जाओ।
३८८४) राह चलते मार्ग में यदि कोई मन्दिर आ जाये तो वहां के देवताओं को अपना श्रद्धापूर्ण नमन अर्पित करो।
३८८५) धार्मिक ग्रन्थों का परम श्रद्धा के साथ नियमित अध्ययन करो और प्रवचनों का परम श्रद्धा के साथ श्रवण करो।
३८८६) शास्त्रोक्त विधि से पाप का प्रायश्चित कर डालना चाहिए।
३८८७) सच्चा भक्त, पहले परमात्मा को समर्पित किये बिना किसी भी वस्तु का उपभोग नहीं करता।
३८८८) शरीर कोई गटर नहीं है कि जो हाथ में आ जाए उसे पेट में डाला करे। युक्त आहार करना चाहिए।
३८८९) जीवन में संयम की बहुत जरूरत है। सारी दुनिया भले ही बिगड़े लेकिन हमें तो अच्छा लगता है- ऐसा ध्येय रखना चाहिए।
३८९०) धूपबत्ती खुद जलती है और दूसरों को सुगन्ध देती है। मनुष्य का जीवन वैसा ही होना चाहिए।
३८९१) स्नान और नित्यकर्म किये बिना दातुन और जल के सिवाय कुछ भी मुख में नहीं ले।
३८९२) विपत्ति में भगवान की स्मृति बनी रहे, इसीलिये कुन्ती ने भगवान से निरन्तर विपत्ति के लिये प्रार्थना की।
३८९३) यदि ईश्वर को हृदय में प्रतिष्ठित नहीं कर सके तो जीवन भर मन्दिर के दर्शन व परिक्रमा करने से भी कोई लाभ नहीं होगा।
३८९४) कट्टर से कट्टर नास्तिक भी किसी नैतिक सिद्धान्त की आवश्यकता स्वीकार करता है। नैतिक सिद्धांत भी ईश्वर का ही रूप है।
३८९५) सदा सर्वज्ञ तो केवल परमात्मा है। ऋषि, मुनि योगी ध्यान करके अभिष्ट जानने मे समर्थ हो सकते है।
३८९६) इंसान का मन सीखने के लिये तैयार न हो, वह सीख नहीं सकता।
३८९७) चाहतों के धागे बुनने में सारी जिंदगी बीत जाती है लेकिन रोशनी कहीं दिखायी नहीं देती।
३८९८) व्यस्त रहो, मस्त रहो, पर अस्त-व्यस्त मत रहो।
४३८९९) असफलता का दुर्भाग्य केवल मनोबल की कमी का ही परिणाम है।
३९००) थोड़ी-सी परेशानी ही व्यक्ति को विचलित कर देने के लिये काफी होती है।
३९०१) जिसका अन्त:करण दोषयुक्त है, उसे अच्छाई-अच्छाई नहीं लगती, भलाई-भलाई नहीं लगती।
३९०२) चरित्र से कभी न गिरना हो तो महापुरुषों के चरणों में, बड़े बुजुर्गों के चरणों में गिर, तेरा जीवन सुधर जायेगा।
३९०३) अध्यात्म का विचार और अनुभव इस समय बहुत ही दुर्लभ हो गया है ऐसे-ही-ऐसे आगन्तुक कारणों से ग्रंथ दुर्बोध हो जाते हैं।
३९०४) मनुष्य को परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर जीवन मे विनयशील रहना चाहिये। अपने ज्ञान का सबके लिये सदुपयोग करना चाहिये।
३९०५) समस्त भय और चिन्ता इच्छाओं का परिणाम है।
३९०६) कोई भी चीज बुरी नही होती बल्कि देखने वालों कि नजर और नियत बुरी होती है।
३९०७) नम्रता के सुमन मे नम्रता का सौरभ ही शोभा पाता है।
३९०८) यौवन और सौन्दर्य मे विवेक शायद ही होता है।
३९०९) अच्छे विचार भीतरी सुन्दरता है।
३९१०) विनम्रता धर्म का मूल है।
३९११) अहंभाव से भरा व्यक्ति ईश्वर के दरबार के दरवाजे से भगा दिया जाता है। विनम्रता अहंकारी को मारती है।
३९१२) अकेले रह लेना अच्छा, बुरे लोगों में नहीं बैठना।
३९१३) अगर आप कर्म के कारण पिछड़े हैं, तो सिर्फ शब्द आपको आगे नहीं ले जा सकते।
३९१४) इस भ्रम को उतार फेंको कि तुम भेड़ हो, मानो कि तुम सिंह हो। तुम जीने के लिये आये हो, जीवन में ऊपर उठने के लिये आये हो।
३९१५) संसार की वस्तु बार-बार दोहराने से मन पर असर करती है। तो क्या भगवान का नाम बार-बार दोहराने से असर नहीं करेगा?
३९१६) दुष्ट बाहर से सरल दिखता है, मगर अन्दर से कठोर होता है और सज्जन बाहर से भी सरल, अन्दर से भी सरल होता है।
३९१७) जितने अच्छे गुण ग्रहण करें, उतने ही दुर्गुण दूर करने की ओर ध्यान देना चाहिये; तभी जीवन में, प्रतिभा में निखार आयेगा।

३९१८) भगवान ने दुनिया में कोई समस्या दी है तो समाधान भी दिया है। नियत समय पर ही समाधान होगा, चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं।
३९१९) चिन्ता भोजन करती है आपके लावण्य का, प्रसन्नता का। यह भय की बेटी है और भय, भविष्य की चिन्ता से आता है।
३९२०) यदि ब्राह्मण निगुरा है तो वह भी अच्छा नहीं है, उससे तो ज्ञानी-ध्यानी चमार ही अच्छा है।
३९२१) कालिख लगे बर्तन को हाथ में लेने से कालिख लग ही जाती है।
३९२२) समाज में अशक्त लोगों को सशक्त लोगों से सदैव भय ही बना रहता है।
३९२३) तू हाथी पर चढ़कर डोल, हजारों कुत्ते भौंकते हैं तो भौंकने दे। हाथी पर चढ़े हुए व्यक्ति का छोटे-छोटे कुत्ते कुछ नहीं बिगाड़ सकते।
३९२४) रचना भी महत्त्वपूर्ण, रचनाकार भी महत्त्वपूर्ण- किन्तु श्रेष्ठ प्रयोक्ता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।
३९२५) जब कोई काम अपनी मर्जी का नहीं होता, तो उसके लिए समझ लेना चाहिए इसमें ही ईश्वर की मर्जी है।
३९२६) जब कोई आपको सदा के लिए छोड़कर चला जाता है, समझ लो ईश्वर को उसकी आपसे ज्यादा जरूरत है।
३९२७) सब कुछ हार जाने के बाद भी अगर हिम्मत है तो आपने सब कुछ नही खोया है।
३९२८) हर तरह के खौफ से बचाती है तौबा। अपनी गलतियों पर रो लेना तौबा है।
३९२९) आंसू बहाने से दिल तो हल्का होता ही है यह आगे की मुसीबतों, डर को भी दिल से धो देता है।
३९३०) जिक्रे इलाही दिल की सफाई का सबब है। जिक्रे इलाही की वजह से दिल मे शैतानी खयाल जमा नही होते।
३९३१) इल्म से बढ़कर कोई चीज बाइज्जत नही। बादशाह लोगों पर हुकूमत करते है और इल्म बादशाहों पर।
३९३२) उपलब्धियों का उत्सव तो मनाना लेकिन उनका अहंकार कभी मत करना।
३९३३) वाणी के अलावा आपका साकारात्मक व नैतिक जीवन एक बेहतर उपदेश दे सकता है।
३९३४) दूसरे के व्यक्तित्व को नियंत्रित करने की इच्छा हमारे अन्दर अपने अहंकार के कारण होती है।
३९३५) श्रद्धा पत्थर मे से भी भगवान प्रकट कर देती है। श्रद्धा मे सर्वोत्तम सौन्दर्य है और प्रेम मे सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य छिपा है।
३९३६) दीन का इल्म हासिल करना फर्ज है और जो यह इल्म हासिल नही करता वह गुनाहगारों की जिन्दगी बसर करता है।
३९३७) अनुशासन के बिना अच्छे लोगों का मोल कुछ नही है।
३९३८) सन्ध्या समय घर मे कलह करने से लक्ष्मी रुठ जाती है।
३९३९) राहत चाहते हो तो शिकवे से बाज आ जाओ
३९४०) दुनिया का गम दिल को काला करता है और मरने के बाद का गम दिल को रोशन करता है।
३९४१) नफरत नफरत से नही मुहब्बत से खत्म होती है।
३९४२) असल चीज अमल है जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे।
३९४३) अपने दिलो दिमाग को हमेशा अच्छे कामों मे मसरूफ रखो।
३९४४) जो मजहब अमीर और गरीब मे फर्क सिखाये वह दुनिया के लिये लानत है।
३९४५) अकलमन्द वह जो उम्र को जरूरी कामों मे लगाये।
३९४६) अपनों के साथ नाता मत तोडो, इससे घर आबाद रहता है और उम्र बढ़ती है। बुरी मौत से बचा रहता है।
३९४७) नेक दोस्त रखो जैसा कि अच्छे दोस्त से हमेशा फायदा होता है और बुरे दोस्त से नुकसान।
३९४८) दोनो तरफ का झगडा सुनने से पहले निर्णय करना कानून के साथ मजाक करने के बराबर है।
३९४९) नाकामी कामयाबी की पहली सीढ़ी है।
३९५०) वही सही मायने मे आजाद है जो ख्वाहिशों का गुलाम नही है।
३९५१) आंखे अपने आप पर यकीन करती है जबकि कान दूसरे लोगों पर।
३९५२) आदमी मुसीबतों से बचने की तदबीर करता रहे। तकदीर का लिखा मान कर हाथ पर हाथ धरे न बैठा रहे।
३९५३) खुशी जहां शुरू होती है वहां इच्छाये समाप्त हो जाती है।

HHH(४८४)HHH

३९५४) आज धर्म-ईमान कपडों की तरह बदलते है।
३९५५) मुसीबत हमे बताती है कि हम किस मिट्टी के बने है।
३९५६) अपने जाती फायदे के लिये दूसरों को परेशानी और मुसीबत मे डालना गुनाह है।
३९५७) मन्नत बस के बाहर न हो क्योकि मन्नत भी एक तरह की इबादत है।
३९५८) अल्लाह से डरने वाले किसी और से नही डरते।
३९५९) दुनिया मे सबसे बडी दौलत नेकी है।
३९६०) स्त्री, पुत्र, भाई, बहन, माता, पिता आदि प्रिय और सगे सम्बन्धी उसी समय तक हैं जब तक शरीर का नाश नहीं होता।
३९६१) इस दुनिया में कुछ भी अनमोल नहीं है, समय सबको मिट्टी बना देता है।
३९६२) यदि हम एक-दूसरे की जिन्दगी की मुश्किलें आसान नहीं कर सकते तो जीते किसलिए हैं।
३९६३) यदि तुम दुनिया की खोज में जाओगे तो दुनिया तुम पर चढ़ बैठेगी, उससे विमुख हो जाओगे तभी उसे पार कर सकोगे।
३९६४) अगर उस करुणासागर की एक बूँद भी तुम पर गिर जाए तो दुनिया में किसी से कुछ भी माँगने की जरूरत नहीं रहेगी।
३९६५) यदि तुम किसी का अनादर करते हो तो वह वास्तव में उसका नहीं, तुम्हारा खुद का अनादर हैं।
३९६६) यदि किसी का उपकार करने में अपयश मिलता है तो उसकी चिन्ता मत करो।
३९६७) आप कुछ-न-कुछ अवश्य करते रहो, यश नहीं तो अपयश ही सही, यश-अपयश तो कर्मों का फल है।
३९६८) नेकी बदी को खा जाती है, फिक्र उम्र को खा जाती है, सत्यता बला को खा जाती है।
३९६९) जिस प्रकार कच्चे घड़े को फूटते देर नहीं लगती उसी प्रकार शरीर का नाश होते देर नहीं लगती।
३९७०) आशा, उत्साह की जननी है। आशा में तेज है, बल है, जीवन है। आशा ही संसार की संचालन शक्ति है।
३९७१) कुदरत सबको अपनी नियामत बाँटती है, तुम्हें दिखलाई न पड़े तो क्या किया जाए।
३९७२) दु:ख अनुभवों का विद्यालय है।
३९७३) अपनी पीड़ा तो पशु-पक्षी भी महसूस करते हैं लेकिन मनुष्य वही है जो दूसरों की पीड़ा का अनुभव करे।
३९७४) आपत्तियों को पराजित करना ही जीवन के आनन्द की पराकाष्ठा है।
३९७५) गाफिल के लिए साईं का घर दूर है, परन्तु जो बन्दा उनकी हाजिरी में सदा मौजूद है, उसके लिए साईं हाजरा-हजूर है।
३९७६) सब्र बेहतरीन इन्तकाम है।
३९७७) इल्म जितना बाँटो उतना बढ़ता है।
३९७८) नेकी करने में देर न करो, बदला लेने में जल्दी न करो।
३९७९) आसमान सिर पर उठा लो, पर होगा वही जो विधाता ने रच रखा है।
३९८०) आत्मविश्वास का अभाव ही सभी अंधविश्वासों का जनक है।
३९८१) आत्मा जिस कार्य से सहमत न हो, उस कार्य को करने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए।
३९८२) अपने दोष को स्वीकारना कोई अपमान नहीं।
३९८३) अपराध करने के पश्चात् भय पैदा होता है, यही अपराधी का दण्ड है।
३९८४) जो मनुष्य परलोक की साधना न कर केवल सांसारिक साधना करता है वह लोक और परलोक दोनों में दु:ख पाता है।
३९८५) हमारा जीवन पानी के बुलबुले के समान है, एक उठता है तो दूसरा लुप्त होता है।
३९८६) अतीत या भविष्य की चिन्ता किए बिना वर्तमान को संवारो।
३९८७) न रगड़ के बिना रत्न पर चमक होती है, न कठिनाईयों के बिना मनुष्य में पूर्णता आती है।
३९८८) जिसे हर हाल में सन्तोष है, वह सदा सुखी है।
३९८९) उत्साह आदमी की पहचान का मापदण्ड है, उत्साह सफलता को निमन्त्रण देता है।

३९९०) जो अनुभव के स्रोत का जल पीने की उपेक्षा करता है, वह सम्भवत: अज्ञानरूपी मरूस्थल में प्यासा ही मर जाएगा।
३९९१) जुबान अगर तलवार नहीं, मगर तलवार से ज्यादा तेज है।
३९९२) सबसे ताकतवर वह शख्स है जो अपने गुस्से पर काबू पा ले।
३९९३) उसे कोई सुख नहीं, जिसकी इच्छाएँ अधिक हैं।
३९९४) सभी औषधियों में सर्वोत्तम है- विश्राम और मिताहार।
३९९५) सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक वही है जो अधिकांश औषधियों को व्यर्थ समझता है।
३९९६) प्रत्येक अच्छा कार्य पहले असम्भव नजर आता है।
३९९७) मन का सत्य संकल्प तप है, सत्य बोलना तप है, शास्त्र श्रवण तप है, शान्ति तप है और दान भी तप है।
३९९८) अमृत और विष कहाँ है ? तुम्हारी जिह्वा में जब चाहो अमृत वर्षा करो, जब चाहो विष डालो।
३९९९) जिस काम में तुम्हारी आस्था है, वही काम तुमको सफलता देगा।
४०००) पवित्र और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है।
४००१) तप के बल से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं और रुद्र संहार करते हैं। तप से संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।
४००२) जो इस पार या उस पार का संकल्प करते हैं वही पार होते हैं, मझधार वाला तो बीच में ही डूब जाता है।
४००३) हमारी आकांक्षाएँ जीवनरूपी भाप को इन्द्रधनुष का रंग देती हैं। आचरण भाव का प्रकट रूप है।
४००४) मनुष्य का उतना ही सम्मान होता है, जितना वह दूसरों से प्राप्त करने में समर्थ होता है।
४००५) जो मनुष्य अपने अवगुण व दूसरों के गुण देखता है, वही महान बन सकता है।
४००६) मनुष्य क्रोध को प्रेम से, पाप को सदाचार से, लोभ को दान से, मिथ्या भाव को सत्य से जीत सकता है।
४००७) काल पर हम विजय प्राप्त करते हैं अपनी सुकीर्ति से, यश से और व्रत से; और परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है।
४००८) निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना अथवा बिना काम किए हुए शुद्ध विचार का दावा करना मानो सोते-सोते खर्राटे भरना है।
४००९) तुम्हारे हृदय की असंख्य वासनाओं के अतिरिक्त तुम्हें कौन अधिक बाधा या कष्ट पहुँचाता है।
४०१०) वास्तव में बड़ा वह है जो उदारता में बड़ा है।
४०११) उस परमात्मा के आशीर्वाद पर विश्वास करो, जो विनम्र पुरुष की सहायता करता है और अभिमानी पुरुष को नम्र बना देता है।
४०१२) स्वयं को बड़ा न समझो, अन्यथा परमात्मा की दृष्टि में तुम सबसे नीच समझे जाओगे।
४०१३) यदि तुममें कोई अच्छाई हो तो यह समझो कि वह दूसरों में तुमसे कहीं अधिक है।
४०१४) सभी के सामने अपना हृदय मत खोलो, जो बुद्धिमान और परमात्मा से डरने वाले हैं उनसे अपने व्यवहार के सम्बन्ध बातें करो।
४०१५) सर्वोत्तम कीर्ति प्रतिद्वन्द्वी द्वारा की गई प्रशंसा है।
४०१६) प्रारम्भ से ही अपनी इच्छाओं को रोक लो, बुरी आदतों को छोड़ दो अन्यथा धीरे-धीरे ये तुम्हें बहुत बड़ी कठिनाई में डाल देंगी।
४०१७) कीर्ति वीरोचित कार्यों की सुगन्ध है।
४०१८) कोई भी कितना ही पूर्ण और पवित्र क्यों न हो, उसे प्रलोभन कभी-न-कभी घेर ही लेते हैं।
४०१९) घृणा करना शैतान का काम है, क्षमा करना मनुष्य का धर्म है और प्रेम करना देवताओं का गुण है।
४०२०) हम दूसरों को तो पूर्ण देखना चाहते हैं पर अपनी त्रुटियों का सुधार नहीं करते।
४०२१) कड़वा सच झूठी तारीफ से बेहतर है।
४०२२) विपत्ति के समय ही हमें पता चलता है कि कितना अधिक धर्म या शक्ति हममें है।
४०२३) जो सबसे छोटा और सबका सेवक होने का प्रयत्न नहीं करता वह चिरकाल तक अशान्त ही रहता है।
४०२४) संसार में तीन बातें बड़ा उपकार करने वाली हैं- १) निर्धनता में उदारता, २) एकान्त में इन्द्रिय निग्रह, ३) भय में सत्य।
४०२५) जो पास में धन रहने पर भी भाइयों की दीनता पर तरस नहीं खाता, उसके हृदय में प्रभु का प्रेम कैसे हो सकता है।

४०२६) प्रेम की एक चिंगारी हृदय पर पड़ जाए तो जीव निहाल हो जाए। धन्य है वह हृदय जहाँ ऐसी आग लगी हुई है।
४०२७) प्यार की कच्ची डोरी लोहे से भी मजबूत होती है।
४०२८) यह मत पूछो की यह किसने कहा ? जो कुछ कहा गया है उसी पर ध्यान दो।
४०२९) अपने शरीर के आकार अथवा अपने रूप की सुन्दरता की प्रशंसा मत करो क्योंकि यह थोड़ी सी बीमारी में कुरूप व नष्ट हो जाएगा।
४०३०) मनुष्य जितना अधिक नम्र होगा, उतना ही उसका परमात्मा में विश्वास होगा, उतना ही अधिक वह कार्य कुशल भी होगा।
४०३१) जब कोई तुम्हें कोसे तुम उसे कभी मत कोसो। स्मरण रखो क्रोधी के शाप से आशीष का फल मिलता है।
४०३२) हर एक श्वास के साथ यही समझो कि बस, यही अन्तिम श्वास है। ऐसा मन बन जाने से मनुष्य बना जा सकता है।
४०३३) गहरे उतरकर तुम उसकी खोज नहीं करते, इसीलिए तो उसे पा नहीं सकते।
४०३४) अहंकार एक तरह का उन्माद है, जो आदमी जितना अहंकारी होता है उतना ही अधिक दु:खी रहता है।
४०३५) जिस प्रभु के प्रेमी को लोग नाचीज, पागल, नासमझ समझते हैं, वह सबसे ऊँचा है।
४०३६) ईश्वर की सेवा से शरीर में श्रद्धा से प्राणों में ज्योति प्रकट होती है।
४०३७) ईश्वर का भय मन का दीपक है। इस दीपक के प्रकाश में मनुष्य अपने गुण-दोष भली-भाँति देख सकता है।
४०३८) दूसरों से लेने की अपेक्षा देने में जिसे अधिक सुख नहीं मालूम होता वह सच्चा सन्त नहीं हो सकता।
४०३९) दुनिया में घूमना बहुत आसान है, परन्तु उसमें से निकलना उतना ही मुश्किल है।
४०४०) अपनी शक्ति को कभी छोटा न समझो क्योंकि एक छोटी सी चिंगारी भी विशाल वन को जलाकर राख कर देती है।
४०४१) आदर सत्कार मिलने से तृप्ति होती है, केवल भोजन से नहीं।
४०४२) पापी से घृणा न करो, उसके पाप से घृणा करो क्योंकि पूर्णतया निष्पाप तो तुम भी नहीं हो।
४०४३) कार्य मनुष्य को अमर बनाता है।
४०४४) हमारे अमरत्व की आशा किसी धर्म से उद्‌भूत नहीं होती अपितु सारे धर्म इसी से उद्‌भूत होते हैं।
४०४५) ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए जो हित, मित और ग्राह्य हो।
४०४६) इस समग्र जगत् में जो भी दु:ख हैं, वे सब आसक्ति के कारण हैं। अनासक्त को कोई दु:ख नहीं भासता।
४०४७) जिसकी ऐसी इच्छा हो कि प्रभु सदा मेरे साथ रहें उसे सत्य की राह से कभी नहीं डिगना चाहिए।
४०४८) जो प्रशंसा सुनकर हर्षित नहीं होता और निन्दा सुनकर आत्म निरीक्षण करने लगता है वही बुद्धिमान है।
४०४९) जिसका भगवान् के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में अनुराग नहीं, वही सच्चा महापुरुष है।
४०५०) दूसरों का सुयश नाश करके जो आत्मयश चाहते हैं उन्हें ऐसा कलंक लगता है जो कभी नहीं मिटता।
४०५१) जिसके घर को बरबाद करना हो उसके पीछे कलह लगा दो और आराम से सो जाओ। तुम्हारा काम शत-प्रतिशत सफल होगा।
४०५२) सोऐ हुए कुत्ते से भोंकनेवाला ज्यादा उपयोगी होता है।
४०५३) अपार धनशाली कुबेर भी आय से अधिक व्यय करे तो निर्धन हो जाता है।
४०५४) चोरी से कोई धनी नहीं होता तथा दान से कोई निर्धन नहीं होता।
४०५५) वाणी मनुष्य का एक आभूषण है जो अन्य आभूषणों के सदृश कभी घिसता नहीं।
४०५६) आलसी मत बनो, सतत कार्यशील रहो, समय अनमोल है इसे नष्ट मत करो।
४०५७) किसी का सम्मान सफेद बालों से नहीं होता बल्कि उसके द्वारा किए गए कार्यों से होता है।
४०५८) बूढ़ों को बालकों की मति के अनुसार नहीं चलना चाहिए।
४०५९) खोया हुआ अवसर, नष्ट की हुई शक्तियाँ और गँवाया हुआ समय सदा हमें कोसते रहते हैं।
४०६०) दीप जलने पर पतंगों का अभाव नहीं होता।
४०६१) अपने पैरों पर खड़ा होने वाला दूसरों के सामने घुटने टेकने वालों से अच्छा है।

४०६२) यदि समय पर घर से निकल पड़े तो मार्ग में दौड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।
४०६३) जहाँ बहुत बातें होती है, वहाँ अपराध भी अवश्य होता है।
४०६४) सन्तों जैसा वेश बनाकर बैठ जाने वाले संतत्व को प्राप्त नहीं होते।
४०६५) समझदार मनुष्य ज्ञान को छिपाए रखता है, परन्तु मूर्ख अपने हृदय की मूर्खता का प्रचार करता है।
४०६६) उत्सव मनाने वाले के घर जाने की अपेक्षा शोक मनाने वाले के घर जाना अधिक अच्छा है।
४०६७) धार्मिक व्यक्ति जीवन से भागनेवाला नहीं होता। जीवन से वे भागते हैं जो कायर होते हैं। कायर कभी धार्मिक नहीं हो सकता।
४०६८) यहाँ संसार में सब दु:खों का क्षय करने के लिए पुरुषार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है।
४०६९) लालची फकीर ही धनवानों से जलता है।
४०७०) सारे धन कमाकर मनुष्य अतिशय भोगों को पाता है, लेकिन सबके त्याग के बिना सुखी नहीं होता।
४०७१) अनाड़ी के हाथों पड़कर हीरा भी उपेक्षित होता है।
४०७२) भाग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो ईश्वर ने हम पर लाद दी हो। हमारे कर्म, इच्छाएँ, वासनाएँ ही हमारे भाग्य का निर्माण करते हैं।
४०७३) यदि सन्तान को बिगाड़ना हो तो उसे मुफ्त का धन सौंप दो। फिर अन्य कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।
४०७४) सन्तान से सुख की आशा करना व्यर्थ है। मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार सुख-दु:ख भोगता है।
४०७५) ईर्ष्या मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणा नहीं है बल्कि मन की कुटिलता का परिणाम है।
४०७६) लहरों का आनन्द किनारे बैठकर ही लिया जा सकता है। बीच में कूदने पर थपेड़े ही लगेंगे।
४०७७) भाग्य का खेल एक मूढ़ मान्यता है जिससे जितना जल्दी पिण्ड छुड़ा सके, छुड़ा लेना चाहिए।
४०७८) पुरुषार्थहीन होने पर प्रारब्ध हावी हो जाता है तथा पुरुषार्थी प्रारब्ध को दबा देता है।
४०७९) जो अधिक जानता है वह कम बोलता है और जो कम जानता है वही अनावश्यक बकबक करता रहता है।
४०८०) जो जितना अहंकारी होता है वह उतना ही बड़ा मूर्ख भी होता है।
४०८१) भूखा यदि उठाईगिरी करे तो समझ में भी आता है किन्तु सम्पन्न भी यही कार्य करे तो लज्जाजनक ही कहा जाएगा।
४०८२) सीखने के लिए जिन्दा रहो और समय आएगा जब तुम जिन्दा रहना सीख जाओगे।
४०८३) उन्नयन के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा, जड़ता अपने आप आ जाती है।
४०८४) यौन इतना बुरा नहीं जितना यौन का चिन्तन। अधिक संयम से ही मनुष्य में कामुकता की वृद्धि होती है।
४०८५) ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। जो होते हैं वह हमारी ही कल्पना है।
४०८६) ज्ञानी बनना कठिन है, दीखना आसान है। विचार संग्रह ज्ञान नहीं है, स्मृति है। स्मृति ज्ञान नहीं है।
४०८७) मृत्यु का कोई दिन या मुहुर्त नहीं होता।
४०८८) हिन्दू धर्म जीवन को महत्त्व देता है, मृत्यु को नहीं।
४०८९) प्रतिमा चाहे कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, मनुष्य के मन की ही प्रतीक है। ईश्वर की प्रतीक कभी नहीं हो सकती।
४०९०) अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति होना चाहिए, पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं।
४०९१) जीवन दोषपूर्ण नहीं है, जीने का ढंग दोषपूर्ण है जिससे सारी सृष्टि ही दोषपूर्ण ज्ञात होती है।
४०९२) धन से ही धनी नहीं बनता। नैतिकता की पूँजी जिसके पास है वह सबसे बड़ा धनी है।
४०९३) अहंकार और समझ एक साथ नहीं रह सकते। अहंकार के प्रवेश होने पर समझ अपने आप बाहर हो जाती है।
४०९४) सुविधा और प्रगति में से यदि एक को चुनना हो तो असुविधा झेलकर भी प्रगति को ही चुनना चाहिए।
४०९५) शराब का नशा इतना बुरा नहीं जितना अहंकार का नशा जो मनुष्य को चौबीस घंटे व जीवनपर्यन्त बेहोशी में रखता है।
४०९६) दूसरों को दोष देना मूढ़ता है। अपने दोषों को देखना बुद्धिमानी की ओर बढ़ने वाला कदम है।
४०९७) मुसाफिर का सफर से लौटकर अपने वतन जाना, इसी को मौत कहते हैं,यही होता है मर जाना।

HHH(४८८)HHH

४०९८) अच्छा शिल्पी व कलाकार वही हो सकता है जो स्वयं को नहीं अपनी कृति को ही देखता है।
४०९९) गिरे हुए को लात लगाने में तुम्हारी बहादुरी नहीं, नीचता ही है।
४१००) हर मूर्ख निन्दा कर सकता है और कई मूर्ख यही करते हैं।
४१०१) अपात्र को शक्ति सौंपने की अपेक्षा उसे शक्तिहीन ही रहने देना मानवता के लिए अधिक कल्याणकारी है।
४१०२) भूतकाल को याद कर आंसु बहाना व्यर्थ है। आप अच्छे है, आप का भविष्य अच्छा, आने वाला हर पल तुम्हारा है।
४१०३) बिना नमक के भोजन बेस्वाद लगता है, आचरण के बिना भाषण उन्माद लगता है।
४१०४) अनीति का धन रहता है, बरस पांच या सात। तुलसी द्वादश वर्ष में, वो तो जड़मूल से जात।
४१०५) जहां में उसने बड़ी बात कर ली, जिसने अपने आपसे मुलाकात कर ली।
४१०६) आयु घटे, यौवन हटे, कट-कट जाये शरीर। आशा तृष्णा न मिटे, कह गये दास कबीर।
४१०७) परावलम्बी सदा दु:खी स्वावलम्बी सदा सुखी।
४१०८) धन बढ़े धर्म बढे तो विकास है। धन बढे धर्म घटे तो विनाश है।
४१०९) चले बिना रास्ता नही कटता, दिए बिना ऋण नही पटता। दवाई लिए बिना रोग नहीं मिटता।
४११०) जगत है सभी स्वार्थ का, जहाँ कौन किसका होता है। रिश्ते नाते जो भी बनते हैं, असल में वो ही सब धोखा होता है।
४१११) सुख नही किन्तु दु:ख भरा यह संसार है। जन्म जरा मृत्यु खड़ा मिथ्या सब व्यवहार है।
४११२) चढ़ उतंग जहाँ से पतन, शिखर नहीं वो कूप है। जिस सुख अन्दर दु:ख बसे, सो सुख भी दु:ख का रूप है।
४११३) सुख दु:ख अपने कर्म के अविचल विश्वविधान। तू तेरा यमराज है, तू तारक भगवान।
४११४) धैर्य बिना धन नहीं, बिना शौर्य के जश। ज्ञान बिना मोक्ष नहीं, बिना दान के यश।
४११५) दूध का सार मलाई है। जीवन का सार भलाई है।।
४११६) दान छपवाकर नहीं, छिपाकर दो।
४११७) ढोंग का नहीं ढंग का जीवन जीयें।
४११८) अन्त:करण सबसे बड़ी अदालत है।
४११९) सत्य शान्त होता है, असत्य शोर मचाता है।
४१२०) कर्म की गति न्यारी, पाप की सजा भारी।
४१२१) पाप छिपायो न छिपे, जो छिपे तो बड़ भाग। दाबी दूबी ना रहे रुई लपेटी आग।
४१२२) जैसे नाव में बढ़े पानी, घर में बढ़े दाम। दोनों हाथ उलीचिये, यही सज्जन का काम।
४१२३) जहाँ लघुता वहाँ प्रभुता। जहाँ सरलता वहाँ साधुता।
४१२४) पहले प्रारब्ध बना पीछे बना शरीर। संसार में अचरज यह बड़ी, कि मन में बांधे धीर।
४१२५) होनहार टले नहीं, लाख करो उपाय, हो जाओ नत्मस्तक, होनी होय सो होय।
४१२६) संसार के क्षणिक सुख कभी मधुर नहीं होते जैसे कि समुद्र का पानी कभी मीठा नहीं हो सकता।
४१२७) बुजदिल नहीं खुशदिल ही जीवन है।
४१२८) कर्म, सत्ता व काल के प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता।
४१२९) जिस को न निजगौरव तथा देश पर अभिमान है। वह नर नहीं और निरा पशु और मृतक समान है।
४१३०) आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सभी अज्ञान। विश्वशांति का मूल है, वीतराग विज्ञान।
४१३१) सत् मत छोडो साहिबा, सत् छोडियो पत जाय। सत् की बांधी लक्ष्मी, फिर मिलेगी आय।
४१३२) जीवन में आते रहे, पतझड़ और बसन्त। मन की समता न छूटे, तो सुख शान्ति अनंत।
४१३३) मनन करें चिंतन करें, यही मनुज का धर्म। आंख मूंद पीछे चले, यह पशुओं का कर्म।

HHH(४८९)HHH

४१३४) कुदरत का कानून है, जो सब पर लागू होय। विकृत मन व्याकुल रहे, निर्मल सुखिया होय।
४१३५) आत्म शुद्धि हित धर्म-ध्यान का चिंतन जो नर करता है। अशुभ कर्म को दूर हटाकर, मोक्ष मार्ग पर पग धरता है।
४१३६) जग में अकेला आया हूँ और यहां से अकेला जाऊंगा। कर्म शुभा-अशुभ संग में लेकर, यथा स्थान को पाऊँगा।
४१३७) देख-देख तन की सुंदरता, खुश होकरके फूल रहा। लुट गई तेरी रूप संपदा, सनत् चक्री को भूल रहा।
४१३८) स्वयं बांधता स्वयं भोगता, नहीं कोई शरण दाता। त्राहि-त्राहि करके रोता, कोई न दु:ख छुड़ावा पाता।
४१३९) विदाई-सफल पाणिग्रहण की हर्षानुभूति व अपरिहार्य अलगाव के सूत्रपात की दु:खानुभूति की नियति है विदाई।
४१४०) जिस घर में प्रात:काल और सायंकाल घर के सभी लोग हरिनाम का संकिर्तन करे तो, कलियुग उस घर मे आयेगा ही नही।
४१४१) संत समागम हरि भजन तुलसी दुर्लभ दोय, धन, दास और लक्ष्मी पापी के घर होय।
४१४२) न सुख अच्छा है, न दु:ख बुरा है, सुख भोगने से पुण्य व दु:ख भोगने से पाप क्षीण होते है।
४१४३) मोक्ष प्राप्ति का सरल व निश्चित साधन- सत्यं वद, धर्मं चर।
४१४४) संसार से समता व परमात्मा से ममता ही है, आवागमन से मुक्त हो जाने का महामंत्र।
४१४५) जीतनेवाले कोई अलग काम नहीं करते, वे हर काम को अलग ढंग से करते हैं।
४१४६) एक मित्र के लिए जान देना उतना मुश्किल नहीं है, जितना कि ऐसा मित्र खोजना जिसके लिए जान दी जा सके।
४१४७) यदि धन गया गया नहीं कुछ भी, स्वास्थ्य गया कुछ जाता है। सदाचार यदि गया मनुज का, तो सब कुछ लुट जाता है।
४१४८) प्रकृति नहीं डरकर झुकती है, कभी भाग्य के बल से।
४१४९) प्रसन्नता तब तक परिपूर्ण नहीं हो सकती, जब तक इसे बाँटा न जाए।
४१५०) मनुष्य की सोचने की क्षमता ही उसे पशुओं से अलग करती है।
४१५१) अगर आप सफल होना चाहते हैं तो असफलताओं को स्वीकार करने में भी पर्याप्त हिम्मत दिखाएं।
४१५२) सच्ची बात अच्छी नहीं लगती और अच्छी लगने वाली बात कभी सच्ची नहीं होती।
४१५३) अच्छाई कभी झगड़ा नहीं कराती और झगड़ा कभी अच्छा नहीं होता।
४१५४) बुद्धिमान कभी ज्यादा बकवाश नहीं करते और ज्यादा बकवास करने वाले कभी बुद्धिमान नहीं होते।
४१५५) आलस्य अभावों और कष्टों का पिता है, आलस्य में जीवन बिताना आत्महत्या के समान है।
४१५६) गरीब की सबसे बड़ी पूँजी उसका आत्म-विश्वास है।
४१५७) अभिमान करना तो अज्ञानी का लक्षण है।
४१५८) शर्म की अमीरी से तो इज्जत की गरीबी अच्छी।
४१५९) जब अपने आप में ही विश्वास नहीं तो अपनी हार निश्चित है।
४१६०) स्वच्छता और श्रम मनुष्य के सर्वोत्तम वैद्य है।
४१६१) हे मनुष्य ! तेरा स्वर्ग तेरी माँ के चरणों में है।
४१६२) एक बार जो विश्वास खो दे, फिर कभी उसका विश्वास न करो।
४१६३) जो खुशी तुम्हें कल दु:खी करने वाली है, उसे आज ही त्याग दो।
४१६४) जीने के लिए खाना अच्छा है परन्तु खाने के लिए जीना महापाप है।
४१६५) गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है।
४१६६) शान्ति के समान कोई बन्धु नहीं है।
४१६७) सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है।
४१६८) मोक्ष से बड़ा कोई लाभ नहीं है।
४१६९) लोक गति को संचालित रखने के लिए अथवा लोक गति को निरन्तर बनाए रखने के लिए कर्म करना अनिवार्य है।

४१७०) समृद्धि और धर्म साथ-साथ नहीं चल सकते।
४१७१) धर्म कालातीत है वह कुछ देर के लिए आंखों से ओझल हो सकता है, किन्तु कभी नहीं मर सकता।
४१७२) अन्यायी राजा अराजकता का कारण होता है।
४१७३) बुरे से बुरे आदमी के मन में अच्छी भावनाओं के लिए कुछ स्थान होता है।
४१७४) युद्ध से नहीं, उसके विनाश से घृणा करो। शांति ही सच्ची जीवन की प्रतीक है।
४१७५) हर व्यक्ति को धर्म की रक्षा के लिए और यदि हो सके तो मृत्यु के लिए भी तैयार रहना चाहिए।
४१७६) युद्ध में सबकी ही जीत नहीं होती। इसमें किसी-न-किसी को तो हारना ही होता है।
४१७७) इन्सान ऐसे लोगों से ऊब जाता है, जो सत्य का चमत्कार नहीं देख सकते। उसका संगीत नहीं सुन पाते।
४१७८) यह जीवन उपयोगी है, तुम जीवन से भागकर इन दु:खों से बचने का प्रयास कर रहे हो। यह अधर्म है।
४१७९) लोग तुमसे प्यार करते हैं, उनके दु:ख की नींव पर तुम अपने प्यार का भवन खड़ा कर सकते हो ?
४१८०) जो प्रतीत होता है, वह सदा सत्य नहीं होता।
४१८१) जब तक धर्म मार्ग पर चलते हुए जीवित रहने का अवसर हो तब तक मरने की बात मत सोचो।
४१८२) श्रेष्ठ पुरुषों के सदाचार का अनुसरण करने वाले पहले आए हुए प्रार्थी की सहायता करते हैं।
४१८३) युद्ध शक्ति से कहीं अधिक नीति से जीते जाते हैं।
४१८४) जो कर्म से कर्मों के त्याग को श्रेष्ठ मानता है। वह अज्ञानी है।
४१८५) प्राणियों की उन्नति और अवनति भी काल के ही अधीन है।
४१८६) विचार शक्ति के नष्ट होने से उसकी लज्जा चली जाती है और लज्जा धर्म को नष्ट कर देती है।
४१८७) धर्मच्युत प्राणी का धन नष्ट हो जाता है। धन का अभाव ही प्राणी का वध है।
४१८८) विपत्ति सह लेने में आचरण नहीं है, आचरण है वैसी हालत में भी शान्त और आनन्दमग्न रहना। यही ईश्वर पर विश्वास का लक्षण है।
४१८९) अपने शरीर के आकार अथवा अपने रूप की सुन्दरता की प्रशंसा मत करो क्योंकि यह थोड़ी सी बीमारी में कुरूप व नष्ट हो जाएगा।
४१९०) मनुष्य जितना अधिक नम्र होगा, उतना ही उसका परमात्मा में विश्वास होगा, उतना ही अधिक वह कार्य कुशल भी होगा।
४१९१) धार्मिक व्यक्ति जीवन से भागनेवाला नहीं होता। जीवन से वे भागते हैं जो कायर होते हैं। कायर कभी धार्मिक नहीं हो सकता।
४१९२) भाग्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो ईश्वर ने हम पर लाद दी हो। हमारे कर्म, इच्छाएँ, वासनाएँ ही हमारे भाग्य का निर्माण करते हैं।
४१९३) जन्म होता है, जीवन लाना पड़ता है। जन्म एक घटना है, जीवन प्रक्रिया है। जन्म लेना ही पर्याप्त नहीं है, जीवन जीना मनुष्य का गौरव है।
४१९४) अधूरी मानवता पूर्णता प्राप्त कर सकती है और पूर्ण मानवता उस शिखर पर पहुँच सकती है जिसे महामानव कहा जाता है।
४१९५) किसी भी अच्छी चीज का गहन अभ्यास हमें बुराई करने से अंतत: रोक ही देता है।
४१९६) धर्म में तत्पर रहने वाला प्राणी निरन्तर सत्कर्मों में ही लगा रहता है।
४१९७) युद्ध से कभी किसी को लाभ नहीं होता, युद्ध का दूसरा नाम विनाश है।
४१९८) पाप का अन्त अवश्य होता है, उसका दंड भी हर प्राणी को भोगना पड़ता है।
४१९९) जब हम अपने आपको शिक्षित करते है तब हम अपने उद्देश्यों को पूरा करने की योग्यता और क्षमता हासिल करते है।
४२००) अति सामान्य लोकोक्तियों और सूक्तियों में हर युग की बुद्धिमत्ता का सार होता है।
४२०१) मजबूरी इन्सान को बहुत कुछ सिखा देती है। पेट के आगे सारी इच्छायें खत्म हो जाती है।
४२०३) कल पूछती थी अपना पता हमसे जिन्दगी, अब पूछते है अपनी खबर जिन्दगी से हम।
४२०४) दो नायकों में वही महान है जो कि अपने प्रतिद्वन्दी का सम्मान करता है।
४२०५) जुल्म को माफ करने से रुतबा बढ़ता है। इतिहास गवाह है कि जुल्म को माफ करने वाला हमेशा महान कहलाया है।
४२०६) ताकत से दुश्मन पर फतह हासिल करना आधी फतह है जबकि मुहब्बत से उस पर फतह पाना पूरी फतह है।

HHH(४९१)HHH

४२०७) इन्सान कामयाब होने के लिये पैदा किया गया है मगर अपनी गफलत से वह अपने आपको नाकाम बना लेता है।
४२०८) जो आदमी दुनिया से अलग थलग हो जाता है उसे कडा संघर्ष करके अपनी दुनिया आप बनानी पडती है।
४२०९) इसमे शक नही कि समन्दर में बेशुमार फायदे है लेकिन अगर सलामती चाहते हो तो किनारे पर ही रहो।
४२१०) सच्चाई हर इन्सान को धोखे से बचाती है।
४२११) एक झूठ सौ झूठ को जन्म देती है।
४२१२) दूसरों के मुआमलात में बिना इजाजत दखल न दो।
४२१३) दोस्त से भी अपने राज की बात मत करो हो सकता है कल को वह तुम्हारा दुश्मन बन जाये।
४२१४) दु:ख में बद्दुआ मत दिया करो बल्कि सब्र से काम लो। दूसरों पर आसानियां करो
४२१५) जो विनम्रता से झुके होते हैं उन्हें ही कुछ प्राप्त होता है। अहंकार से सीना ताने लोगों के हाथ कुछ नहीं आता।
४२१६) सर्वोत्तम मनुष्य वो नहीं है जो अवसरों का इन्तजार करते है बल्कि वे है जो अवसर को अपना दास बना लेते है।
४२१७) झगडे के आसार हो तो मुस्कराने की कोशिश करो।
४२१८) निर्मल अन्त:करण को जिस समय जो प्रतीति हो वही सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।
४२१९) दयाशील अन्त:करण की पीड़ा जीवित मानव के लिए नरक है। वास्तविक आनन्द का स्त्रोत हमारे अन्त:करण में ही है।
४२२०) प्रभु का मानव में कोमल संलाप ही अन्त:करण है। मनुष्य के भीतर ईश्वरीय उपस्थिति ही अन्त:करण है।
४२२१) वही मानव ईश्वर के दर्शन कर सकता है जिसका अन्त:करण स्वच्छ एवं पवित्र है।
४२२२) नई बीवी पाकर आदमी अंधा हो जाता है।
४२२३) जैसे वासनाएं देह की वाणी हैं, वैसे ही अन्त:करण आत्मा की वाणी है। यदि वे एक-दूसरी का खंडन करती हैं।
४२२४) अज्ञान के समान दूसरा वैरी नहीं है। अज्ञान भय की जननी है। अज्ञान हठधर्म की माता है। अज्ञान ही अंधकार है।
४२२५) अज्ञान मन की निशा है, किन्तु वह निशा जिसमें न तो चन्द्र है और न नक्षत्र।
४२२६) अनपढ़ रहने से जन्म न लेना ही अच्छा है, क्योंकि अज्ञान विपदाओं का मूल है। अज्ञानी पाप करके भी अहंकार करता है।
४२२७) यदि कोई बहुत रगड़ करेगा, तो चन्दन जैसे शीतल पदार्थ से भी अग्नि हो जायेगी।
४२२८) प्रथम दिन अतिथि, दूसरे दिन भार और तीसरे दिन कंटक है। अतिथि-सत्कार से मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है।
४२२९) पक्षी चाहता है- मैं बादल होता बादल चाहता है- मैं पक्षी होता।
४२३०) अत्याचार जब निरंशुक होकर नग्न नृत्य करने लगता है, तब बलिवेदी पर चढ़ने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता।
४२३१) अधिकार और बदनामी का तो चोली-दामन का साथ है।
४२३२) सत्ताधिकार भ्रष्ट करता है, निरंकुश सत्ता पूर्ण रूप से भ्रष्ट कर देती है।
४२३३) अधिकार-प्रेम वृद्धजनों को कटु और कलह-प्रिय बना दिया करता है।
४२३४) विश्वविद्यालय ही देश के महापुरुषों का निर्माण करने वाला कारखाना है और अध्यापक उन्हें बनाने वाले कारीगर हैं।
४२३५) अनाथ बच्चों का चेहरा और मन का भाव बहुत कुछ बिना मालिक के राह के कुत्ते जैसा हो जाता है।
४२३६) अनाथ बच्चे का आंसू सीधा परमात्मा के हाथ पर जाकर गिरता है।
४२३७) अनादरपूर्ण जीवन से मृत्यु ही श्रेयस्कर है।
४२३८) बहुत अनादर करने से ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न होता है।
४२३९) कौन माया को पार करता है ? जो आसक्तियों का त्याग करता है, महानुभावों की सेवा करता है, और जो निर्मम होता है।
४२४०) देवों सहित समग्र जगत् में जो भी दु:ख हैं वे सब कामासक्ति के कारण ही हैं।
४२४१) सिर्फ अनासक्त व्यक्ति ऐसा है जिसकी जिन्दगी में दौरे नहीं पड़ते, क्योंकि न वहां विरक्ति है न वहां आसक्ति है।
४२४२) गुरु की कृपा तथा उसके अनुग्रह की सतत अनिवार्य आवश्यकता रहती है।

४२४३) अनुभव गलतियों के लिए चुना गया एक नाम है। दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने वाला ही बुद्धिमान कहलाता है।
४२४४) बिना अनुभव के कोरा शाब्दिक ज्ञान अन्धा है। दूसरों के अनुभव जान लेना भी एक अनुभव है।
४२४५) कष्ट सहने पर ही अनुभव होता है। ठोकर लगे और दर्द हो, तभी मैं सीख पाता हूं।
४२४६) अपने अधिकारों को खोकर चुपचाप बैठ जाना बहुत बड़ा दुष्कर्म है। न्याय के लिए अपने भाई को भी दण्ड देना हमारा कर्तव्य है।
४२४७) सेवक, पुत्र, शिष्य या कोई होय जो अनुशासन नहीं मानता है, वह करोड़ों जन्म नरक में जाता है।
४२४८) अन्याय का राज्य बालू की भीत है।
४२४९) अन्याय के आगे माथा टेक देने का परिणाम उतना ही भयंकर होता है जितना कि स्वयं अन्याय करने का।
४२५०) अन्याय सहने वाले की अपेक्षा अन्याय करने वाला अधिक दु:खी होता है।
४२५१) अन्याय के सामने जो छाती खोलकर खड़ा हो जाय, वही सच्चा वीर है। अन्याय को मिटाइए, पर अपने को मिटाकर नहीं।
४२५२) जो अन्यायी हैं उनकी ओर मत झुको।
४२५३) जब शत्रु में भगदड़ मची हो तो युद्ध बन्द कर देना, अपने ही सैनिकों से अन्याय करना होता है।
४२५४) अन्वेषक में दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए, विश्वास नहीं।
४२५५) जिसने एक यन्त्र का आविष्कार किया है उसने मानव की शक्ति और उसके कल्याण में वृद्धि की है ?
४२५६) पहिये का आविष्कार प्रकृति ने नहीं किया था ?
४२५७) अपनी अपकीर्ति का दायित्व हमारे ऊपर होता है। अपकीर्ति दण्ड में नहीं, बल्कि अपराध में है।
४२५८) अपयश मिलना करोड़ों मृत्युओं से भी अधिक दु:खदायी है।
४२५९) अपमान के हल्के झोंके से ही गर्व दावाग्नि बनकर वैभव रूपी नन्दनवन को क्षणभर में भस्म कर सकता है।
४२६०) अपमान को निगल जाना चरित्र-पतन की अन्तिम सीमा है।
४२६१) अपमानपूर्वक सहस्रों वर्ष जीवित रहने की अपेक्षा सम्मानसहित एक घड़ी भर जीवित रहना अच्छा है।
४२६२) अपराध मनुष्य के चेहरे पर लिखा रहता है।
४२६३) जब कभी मनुष्य अपराध करता है, ईश्वर उसका साक्षी होता है।
४२६४) अपराध स्वीकार कर लेने से वह आधा क्षम्य हो जाता है।
४२६५) किसी भी आदमी के लिये कोई भी जुर्म करना कठिन नहीं है।
४२६६) दैन्य को ही अपना भाग्य मानकर पुरुषार्थहीन बने रहना समाज से भी अधिक आत्मा के प्रति अपराध है।
४२६७) अपराधी का चित्त भीतर से भूकम्प से भर जाता है।
४२६८) जो किसी का अपराध नहीं करता वह निडर होकर जनपद में विचर सकता है।
४२६९) जिह्वा के बिना भी अपराध बोलता है।
४२७०) अपराधी अपने सिवा सभी को दोषी ठहराता है।
४२७१) अपराधी मन बिच्छुओं से भरा होता है।
४२७२) अपराधी मन आशंकाओं का घर है- चोर को हर झाड़ी में पुलिस का भय बना रहता है।
४२७३) अपरिग्रह तो जीवन धर्म है। इसलिये व्यवहार का धर्म भी वही हो सकता है।
४२७४) अपरिचित होने से देवता को भी तिरस्कृत होना पड़ता है।
४२७५) सत्ता समाज की है। वह जो चाहे करे। अबला की कौन चिन्ता करता है ? वह चाहे जीये या मरे।
४२७६) जो किसी तरह का अपराध नहीं करता, वह अभय होकर जनपद में भ्रमण कर सकता है।
४२७७) व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी।
४२७८) जो अहंकारपूर्वक प्रात: जलपान करता है उसको सायंकाल का भोजन तिरस्कार से मिलता है।

४२७९) अभिमान सौन्दर्य का कटाक्ष है। ज्यों-ज्यों अभिमान कम होता है, कीर्ति बढ़ती है।
४२८०) अभिमान अपने अपमान को नहीं भूलता। अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है। अभिमान हमेशा नीचता से दूर भागता है।
४२८१) अभिलाषा की पिपासा कभी नहीं बुझती, न पूरे तौर पर सन्तुष्ट होती है।
४२८२) अभिलाषा ही घोड़ा बन सकती, तो हर मनुष्य घुड़सवार हो जाता।
४२८३) अभिलाषाओं को शान्त करने से नहीं, बल्कि उन्हें परिमित करने से शान्ति प्राप्त होती है।
४२८४) जिस अभिलाषा में शक्ति नहीं उसकी पूर्ति असम्भव है। पवित्र और दृढ़ अभिलाषा सर्वशक्तिमान है।
४२८५) मनुष्य मात्र में बुद्धिगत ऐसा कोई दोष नहीं है, जिसका प्रतिकार उचित अभ्यास के द्वारा न हो सकता हो।
४२८६) जो व्यक्ति अमितव्ययी है, वह व्यय करने की प्रवृत्ति को संवरण नहीं कर पाता। शर्म की अमीरी से इज्जत की गरीबी अच्छी है।
४२८७) अवकाश को बुद्धिमत्ता के साथ भरने में समर्थ होना सभ्यता की अन्तिम देन है।
४२८८) यदि तुझे एक पल का भी अवकाश मिले तो तू उसे अच्छे कामों में लगा।
४२८९) अलंकार भावों के अभाव का आवरण है।
४२९०) अवगुण का पथ चिकना ही नहीं, ढालू भी होता है।
४२९१) अवगुण नाव की पेंदी के छेद के समान है जो चाहे छोटा हो या बड़ा, एक दिन उसे डुबो देगा।
४२९२) इस संसार में दुर्जनों के बीच गुण भी अवगुण समझे जाते हैं। अपने अवगुणों को अपने से पहले मर जाने दो।
४२९३) मदिरापान करना अवगुण की अपेक्षा बीमारी अधिक है।
४२९४) हे प्रभो। मेरे अवगुणों पर ध्यान न दो। तुम्हारा नाम समदर्शी है। यदि तुम चाहोगे तो मेरी नाव को संसार से पार कर दोगे।
४२९५) यदि शासक किसी अवगुण को पसंद करे, तो वह गुण हो जाता है।
४२९६) दूसरे के अवगुण देखना ही अवनति का कारण है। हर व्यक्ति से गुण ग्रहण करना ही उन्नति का कारण है।
४२९७) अवसर उनकी मदद कभी नहीं करता जो अपनी मदद नहीं करते।
४२९८) अवसर बुद्धिमान के पक्ष में लड़ता है।
४२९९) ऐसा न सोचो कि अवसर तुम्हारा दरवाजा दोबारा खटखटाएगा।
४३००) मुझे रास्ता मिलेगा, नहीं तो मैं बना लूंगा।
४३०१) जिस तरह आप युद्ध में अवसरों से लाभ उठाते हैं, उसी तरह आपको शान्ति के लिए अवसरों से लाभ उठाना है।
४३०२) बिना अवसर बोलना-करना निरर्थक है।
४३०३) बुद्धिमान मनुष्य को जितने अवसर मिलते हैं, उनसे अधिक वह स्वयं सिरज लेता है।
४३०४) मनुष्य के लिए जीवन में सफलता का रहस्य है, हर आने वाले अवसर के लिए तैयार रहना।
४३०५) समय और उचित अवसर पर कहा गया एक शब्द भी युगों की बात बन जाता है।
४३०६) कोई महान व्यक्ति अवसर की कमी की शिकायत नहीं करता।
४३०७) अविश्वास से बढ़कर एकाकीपन दूसरा कोई नहीं है।
४३०८) दरिद्रता और लगातार दु:खों से मनुष्य अविश्वास करने लगता है, यह कोई नई बात नहीं है।
४३०९) विश्वास करना एक गुण है। अविश्वास दुर्बलता की जननी है। अविश्वास मद्धिम आत्महत्या है।
४३१०) एक बार अविश्वस्त ठहराए गए का कभी विश्वास मत करो।
४३११) असंतोष अपने ऊपर अविश्वास का फल है, यह कमजोर इच्छा का रूप है।
४३१२) असत्य में शक्ति नहीं होती, उसे अपने अस्तित्व के लिए सत्य का आश्रय लेना पड़ता है।
४३१३) असत्य की जीत हो भी जाये तब भी वह अल्पकालिक ही होती है।
४३१४) असफलता निराशा का सूत्र नहीं है, बल्कि वह तो एक नई प्रेरणा है।

४३१५) पूंजी की कमी की अपेक्षा शक्ति की कमी से ही अधिकतर असफलता हाथ आती है।
४३१६) प्रारम्भिक जीवन में कुछ असफलतायें उठाने से बहुत बड़ा व्यावहारिक लाभ होता है।
४३१७) असावधान कभी सफल नहीं हो सकता।
४३१८) प्रत्येक अच्छा कार्य पहले असंभव नजर आता है।
४३१९) संभव असम्भव से पूछता है- तुम्हारा निवास-स्थान कहां है ? उत्तर मिलता है- निर्बलों के स्वप्नों में।
४३२०) अहं की भावना रखना एक अक्षम्य अपराध है। मनुष्य जितना छोटा है, उसका अहंकार उतना ही बड़ा होता है।
४३२१) अहंकार ने ही संसार में हाहाकार मचाया है और घमंड ने बहुत अत्याचार किया है।
४३२२) दूसरे लोगों का अहंकार असह्य इसलिए होता है कि वह हमारे खुद के अहंकार को आहत करता है।
४३२३) अहंकारी मनुष्य दूसरे के अहंकार से सदैव अत्यन्त उत्तेजित हो जाते हैं।
४३२४) अहंकारी मनुष्य केवल अपने ही महान् कार्यों का वर्णन करता है और दूसरों के केवल कुकर्मों का।
४३२५) अहंकार का बस इतना ही लाभ है कि उसके नीचे हम अपनी कमियों को छुपा लेते हैं। अहंकार ही पराजय का द्वार है।
४३२६) अहंकार छोड़े बिना सच्चा प्रेम नहीं किया जा सकता।
४३२७) मुर्गा समझता है कि सूरज उसकी बांग सुनने के लिये ही उगता है।
४३२८) अहिंसा वास्तविक शक्ति का प्रतीक है। सम्पूर्ण आत्म शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना, यह अहिंसा का शर्त है।
४३२९) अहिंसा सब आश्रमों का हृदय है, सब शास्त्रों का गर्भ-उत्पत्ति स्थान है।
४३३०) समूची सृष्टि को अपने में समा लेने पर ही पूर्ण अहिंसा सम्भव है।
४३३१) आंख का धर्म है देखना। देखने में ही आंख को आनन्द है, देखने में बाधा होते ही उसे कष्ट का अनुभव होता है।
४३३२) आंखें तो जीवन के अनुभवों से भरा हुआ भंडार है।
४३३३) हमारी आंखें इतनी अन्धी हैं कि सिवाय कपड़ों के और कुछ भी नहीं देखतीं।
४३३४) दुखियारों को हमदर्दी के आंसू भी कम प्यारे नहीं होते। स्त्रियों के आंसू पुरुषों की क्रोधाग्नि भड़काने में तेल का काम देते हैं।
४३३५) अश्रु-प्रवाह तर्क और शब्द-योजना के लिए निकलने का कोई मार्ग नहीं छोड़ता।
४३३६) अश्रुपूर्ण प्यार बहुत ही लुभावना होता है।
४३३७) मेरे छोटे से जीवन में तृप्ति का कण भी मत देना। मैं चाहती हूं कि मेरी प्यासी आंखें आंसू के समुद्र भरती रहें।
४३३८) सौन्दर्य के आंसू उसकी मुस्कराहट की अपेक्षा अधिक प्यारे होते हैं।
४३३९) जीवन में आकांक्षाएं होती हैं तो अपना सम्मान और आत्माभिमान भी होता है।
४३४०) सांसारिक आकांक्षाएं मनुष्य को बांधती और घसीटती हैं। आकांक्षा अयोग्यता का लक्षण है।
४३४१) जब तक हम स्वयं निरपराध न हों, तब तक दूसरों पर सफलता के साथ कोई आक्षेप नहीं कर सकते।
४३४२) कोई आचार सर्वहितकारी नहीं होता। किसी को वह लाभ देता है, तो किसी को वही बाधा भी पहुंचाता है।
४३४३) दिल की आग से दिमाग को धुंआ चढ़ता है। चकमक की आग तब तक प्रकट नहीं होती, जब तक उसे रगड़ा न जाये।
४३४४) किसी आघात के लिए पहले से तैयार रहना इससे कहीं अच्छा है कि वह आकस्मिक रीति से सिर पर आ जाय।
४३४५) आचरण एक शीशे के समान है, जिसमें प्रत्येक मानव अपना प्रतिबिम्ब दिखाता है। आचरण भाव का प्रगट रूप है।
४३४६) आचरण और सत्यता के लिए आर्य जाति पुरातन काल से प्रसिद्ध है।
४३४७) कितनी ही राजनीतिक आजादी हो, वह भूखी जनता को सन्तोष प्रदान नहीं कर सकती।
४३४८) हमें तब आजादी प्राप्त होती है, जब हम अपने जीवित रहने के अधिकार का पूरा-पूरा मूल्य चुकाते हैं।
४३४९) मैं अपनी इस अक्सर व्यक्त की गई इच्छा में कोई हेर-फेर नहीं करना चाहता कि सब मुल्कों के सब लोग आजाद हो सकते हैं।
४३५०) जो मानव शासन करना नहीं जानते, वे आज्ञा-पालन करना सीखें।

HHH(४९५)HHH

४३५१) दुष्ट स्वभाव के लोग भय से आज्ञा का पालन करते हैं और सद्प्रवृत्ति वाले लोग प्रेम से।

४३५२) आतंक सबसे अधिक नि:सत्व करनेवाली अवस्था है।

४३५३) कर्म आपको आत्मानुभव कराता है।

४३५४) आत्म-गौरव खोकर जीवित रहना मृत्यु से बुरा है।

४३५५) जिसे निज गौरव का भान रहता है, वह किसी चीज को मुफ्त पा जाने की बनिस्पत उसे अपने पौरुष से प्राप्त करता है।

४३५६) जो लोग संसार में आत्म-गौरव बनाए रहते हैं, वे सदैव सम्मान पाते हैं, कभी उनका अपमान नहीं होता।

४३५७) सुख भोग की लालसा आत्म सम्मान का सर्वनाश कर देती है।

४३५८) आत्म-ज्ञान का सम्पादन करना और आत्मकेन्द्र में स्थिर रहना मनुष्य-मात्र का सबसे प्रथम और प्रधान कर्त्तव्य है।

४३५९) जिसने अपने आपको समझ लिया, वह औरों को समझाने नहीं जायेगा।

४३६०) जैसे स्वप्न में काटे गए सिर का दु:ख बिना जागे दूर नहीं होता, इसी प्रकार हम संसार का दु:ख बिना आत्मज्ञान हुए दूर नहीं होता।

४३६१) मैं कौन हूं, यह जानने से पहले मैं क्या नहीं हूं, यह देखो। तब मैं कौन हूं इसका पता लग जायेगा।

४३६२) जिसने अपने को पहचान लिया, उसने खुदा को पहचान लिया।

४३६३) आत्मज्ञान शेष सभी विज्ञानों का विज्ञान है।

४३६४) आत्म-तत्व को प्राप्त करना अखिल विश्व का स्वामी बनना है।

४३६५) पीड़ा से दृष्टि मिलती है। अतएव आत्म-पीड़न ही आत्मदर्शन का माध्यम है।

४३६६) आत्म-बल सब बलों से श्रेष्ठ होता है, उसे किसी का छल नहीं जीत सकता है।

४३६७) जो मनुष्य लोगों के व्यवहार से ऊब कर क्षण प्रतिक्षण अपने मन बदलते रहते हैं, वे दुर्बल हैं, उनमें आत्म-बल नहीं हैं।

४३६८) हमें दूसरे लोगों की आशा छोड़ देनी चाहिएं जहां दूसरों की आशा नहीं होती वहीं स्वराज्य होता है।

४३६९) अगर तुम चाहते हो कि लोग तुम्हारी बड़ाई करें तो अपने मुंह से अपनी बड़ाई मत करो।

४३७०) देह का बल क्षणभंगुर है, आत्म बल चिर स्थायी है।

४३७१) ब्रह्मचर्य के पालन से आत्म बल की प्राप्ति होती है।

४३७२) आत्म-विजय अनेक आत्मोत्सर्गों से भी श्रेष्ठ है।

४३७३) जिसने अपने को वश में कर लिया है, उसकी जीत को देवता भी हार में नहीं बदल सकते।

४३७४) बढ़ई जैसे लकड़ी को सीधा करता है वैसे ही ज्ञानी अपने दोषों पर विजय पाते हैं।

४३७५) आत्मविश्वास, आत्म-ज्ञान और आत्म-संयम सिर्फ यही तीन जीवन को बल और सबलता प्रदान करते हैं।

४३७६) आत्म-विश्वास जिसके हृदय में हो, वह व्यक्ति अपने कार्य को पूरा करके ही छोड़ेगा।

४३७७) आत्म-विश्वास सफलता का प्रमुख रहस्य है। आत्म-विश्वास पराक्रम का सार है।

४३७८) जिस मनुष्य में आत्म-विश्वास नहीं है वह शक्तिमान होकर भी कायर है और पण्डित होकर भी मूर्ख है।

४३७९) महान कार्यों के लिए पहली जरूरत है आत्मविश्वास।

४३८०) आत्मविश्वास का अभाव ही समस्त अन्धविश्वासों का जनक है।

४३८१) लोक-सेवा व परिश्रम ही आत्म-शान्ति पाने का मार्ग है।

४३८२) जिसने दीनता को ठुकरा दिया है और जो आत्म-सन्तुष्ट रहता है, वही कर्मों को निर्मूल करता है।

४३८३) आत्म-सम्मान रखना सफलता की सीढ़ी पर पग रखना है।

४३८४) जिस प्रकार दूसरों के अधिकार को सम्मान देना मानव का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार अपना सम्मान रखना भी उसका कर्त्तव्य है।

४३८५) बिना अपनी स्वीकृति के कोई मनुष्य आत्म-सम्मान नहीं गंवाता।

४३८६) युवा पुरुष के लिए असफल प्रेम पर अपना जीवन बलिदान करना आत्महत्या करना है।

४३८७) आत्मा अनादि, अविनाशी, विकारहीन, शाश्वत और सर्वव्यापी है। हमारी आत्मा अमर है।
४३८८) आत्मा कुछ न कुछ अवश्य कहती है, उसकी सलाह मानना तुम्हारा धर्म है। आत्मा को आत्मा की ही आवाज जगा सकती है।
४३८९) आत्मा वह अक्षय और अमर तत्त्व है जो अपनी चिरन्तनता के कारण जन्म और मृत्यु की सीमा से परे है।
४३९०) आत्मा ही अपना स्वर्ग और नरक है।
४३९१) बलहीन पुरुष से आत्मा की प्राप्ति नहीं होगी।
४३९२) क्या तुम नहीं जानते हो कि तुम्हीं ईश्वर का मन्दिर हो और ईश्वर की आत्मा तुम में रहती है।
४३९३) पवित्र आत्मायें इस संसार में चिरकाल तक नहीं ठहरती। हमारी आत्मा ब्रह्म की ज्योति स्वरूप है।
४३९४) मानव आत्मा की कोई जाति नहीं होती।
४३९५) आदर्श-विहीन मनुष्य मल्लाह-रहित जहाज जैसा है।
४३९६) आदर्श विश्व के पथ-प्रदर्शक होते हैं।
४३९७) आदर्श को सदा यथार्थ में से उगना चाहिये।
४३९८) महान् आदर्श महान् मस्तिष्क की सृष्टि करते हैं।
४३९९) विचार या भाव ही मनुष्य को प्रेरित करते हैं, आदर्श ही लोगों को मृत्यु तक का सामना करने को तैयार करते हैं।
४४००) आदर्श पुरुष सत्कार्य का सदा समर्थन करता है और दुष्कार्य में कभी शरीक नहीं होता।
४४०१) ऊंचा आदर्शवाद स्वार्थों और मूढ़ाग्रहों का भुलावा देता है।
४४०२) आदर्शवादी सदैव आनन्द के ही स्वप्न देखा करता है, उसे आनन्द की प्राप्ति नहीं होती।
४४०३) पीड़ा तो स्वयं को संभाल पाती है, परन्तु आनन्द का भार बांटने के लिए तो किसी मनुष्य का साथ होना आवश्यक है।
४४०४) विज्ञान और आनन्द ब्रह्म ही हैं। संयम और त्याग के रास्ते से ही शान्ति और आनन्द तक पहुंचा जा सकता है।
४४०५) सुख और आनन्द ऐसे इत्र हैं, जिन्हें जितना ज्यादा छिड़कोगे उतनी ही ज्यादा सुगन्धि आपके अन्दर समाएगी।
४४०६) सिवाय पाप के हर चीज में कुछ न कुछ आनन्द है। वास्तविक और ठोस आनन्द वहां है जहां अति न हो।
४४०७) मानव अपने आनन्द का निर्माता स्वयं है। आनन्द से बेहतर सौन्दर्य प्रसाधन कोई नहीं है।
४४०८) सुख या आनन्द कर्म के रूप में रहता है।
४४०९) बीस वर्ष की आयु में संकल्प शासन करता है, तीस वर्ष में बुद्धि और चालीस वर्ष में विवेक।
४४१०) यदि आरम्भ अच्छा हुआ तो समझिए कि आधा काम पूरा हो गया।
४४११) बहुत अधिक आराम स्वयं दर्द बन जाता है। हमारे अधिकतर आरामों की उत्पत्ति विपत्ति के समय होती है।
४४१२) आलस्य आपके लिए मृत्यु है और केवल उद्योग ही आपका जीवन है।
४४१३) आलस्य वह रोग है जिसका रोगी कभी नहीं सम्भलता।
४४१४) आलस्य में जीवन बिताना आत्महत्या के समान हें
४४१५) आलस्य में निर्बलता का वास, किन्तु जो आलस्य नहीं करता, उसके श्रम में कमला बसती है।
४४१६) दुनिया में आलस्य बढ़ाने सरीखा दूसरा भयंकर पाप नहीं है।
४४१७) यदि तुमने स्वर्ग और नरक नहीं देखा है तो समझ लो कि उद्यम स्वर्ग है और आलस्य नरक है।
४४१८) देवता यज्ञकर्ता, पुरुषार्थी तथा भक्त को चाहते हैं, आलसी से प्रेम नहीं करते।
४४१९) कभी-कभी आलोचना अपने सखा को भी शत्रु बना देती है।
४४२०) स्वयं ईश्वर भी मनुष्य के कर्मों का विचार उसकी मृत्यु के पहले नहीं करते।
४४२१) यह आवश्यकता है, आनन्द नहीं, जो हमें बाध्य करती है।
४४२२) आलोचक प्राय: वे ही व्यक्ति बनते हैं जो कला और साहित्य के क्षेत्र में असफल रहते हैं।

४४२३) हाथी अपने रास्ते चलता जाता है, कुत्ते भौंकते हैं उन्हें भौंकने दो।
४४२४) आलोचना वृक्ष की शाखा से प्राय: फूल और कीड़े-दोनों को एक साथ ही पृथक कर देती है।
४४२५) जन्म तो मरण और पुनर्जन्म की परम्परा की गाथा हैं हमें पुनर्जन्म प्राप्त करने के लिए पहले मृत्यु को अंगीकार करना होगा।
४४२६) आवेग में हम उद्दिष्ट स्थान से आगे निकल जाते हैं। बड़े-बड़े महान् संकल्प आवेग में ही जन्म लेते हैं।
४४२७) आश्चर्य अनीच्छित प्रशंसा है। आश्चर्य दर्शन का पहला कारण है। आश्चर्य आराधना का आधार है।
४४२८) आश्चर्य ज्ञान का मूल है। सम्पूर्ण आश्चर्य अज्ञान का फल है। आश्चर्य अज्ञानता की बेटी है।
४४२९) आशा की भी कितनी सख्त जान है, वह मरते-मरते भी उठकर खड़ी हो जाती है। आशा बुद्धि को धोखा दे जाती है।
४४३०) आह्लाद वह चीज है जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह तो संगीत-लहरियों की तरह अनुभव करने की चीज है।
४४३१) इच्छा से दु:ख आता है, इच्छा से भय आता है, जो इच्छाओं से मुक्त है, वह न दु:ख जानता है न भय।
४४३२) जो भविष्य का भय नही करता वो ही वर्तमान का आनन्द उठा सकता है।
४४३३) इच्छा ही नरक है, सारे दु:खों का आगार। इच्छाओं को छोड़ना स्वर्ग प्राप्त करना है।
४४३४) इच्छाओं को त्यागने वाले यतियों का गुण गाना उतना ही असम्भव है जितना कि संसार में अब तक मरे हुओं की गिनती करना।
४४३५) इच्छाओं को शान्त करने से नहीं, बल्कि उन्हें परिमित करने से शान्ति प्राप्त होती है।
४४३६) हमारी इच्छाएं जितनी ही कम हों, उतने ही हम देवताओं के समीप हैं।
४४३७) विश्व में हमारी इच्छा ही तो मूलकर्ता है।
४४३८) इज्जत अमूल्य रत्न है जिसको खोकर इंसान के पास कुछ नहीं रहता।
४४३९) इज्जत को चोट पहुंचाने की अपेक्षा दस हजार बार मृत्यु उत्तम है।
४४४०) जो अपनी इज्जत करते हैं, उनकी सब इज्जत करेंगे ही।
४४४१) पंडित को भी सलाम है और मौलवी को भी। मजहब न चाहिए मुझे ईमान चाहिए।
४४४२) यदि आप का हृदय ईमान से भरा है तो एक शत्रु क्या, सारा संसार आपके सम्मुख हथियार डाल देगा।
४४४३) मैं जब यह कहता हूं कि मैं ईमानदार नहीं हूं, तब भी मैं ईमानदार नहीं होता। यदि आप मूर्ख भी नहीं है, तो ईमानदार होना खतरनाक है।
४४४४) यद्यपि स्वभाव से मैं ईमानदार नहीं हूं, तथापि संयोगवश कभी-कभी वैसा हो जाता हूं।
४४४५) आत्मपरीक्षण में ईमानदारी का बोध होने से बढ़कर कोई और सुख नहीं होता।
४४४६) ईमानदारी, वचन का पालन और उदारता-ये तीन ऐसे गुण हैं जो स्वाभिमान के साथ अनिवार्य रूप से रहते हैं।
४४४७) थोड़ी-सी ईमानदारी खतरनाक होती है, और बहुत ज्यादा होने पर वह निश्चित रूप से घातक होती है।
४४४८) ईश एक बार एक ही क्षण देता है, और दूसरा देने से पूर्व उस क्षण को ले लेता है।
४४४९) ईश का शत्रु कभी मनुष्य का सच्चा सखा नहीं हुआ।
४४५०) यदि ईश न भी होता, तो उसका आविष्कार करना हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता।
४४५१) ईश्वर क्या है ? एक शाश्वत वाटिका में, शाश्वत खेल खेलता हुआ एक शाश्वत बालक।
४४५२) ईश्वर की समस्त सृष्टि से, इसके कण-कण से प्रेम करो।
४४५३) मैं ईश्वर से डरता हूं, ईश्वर के बाद मुख्यत: उससे डरता हूं जो ईश्वर से नहीं डरता।
४४५४) ईश्वर की चक्की धीमे चलती है, लेकिन बारीक पीसती है।
४४५५) ईश्वर सब जीवों के हृदय में निवास करता है और अपनी माया से यंत्र पर बैठे हुए लोगों की तरह उनको घुमाता रहता है।
४४५६) ईश्वर सत्य है और प्रकाश उसकी छाया है। ईश्वर एक वृत्त है, जिसका केन्द्र सर्वत्र है, किन्तु परिधि-रेखा कहीं नहीं।
४४५७) हे भगवान। मुझे तेरा यह एक और भरोसा हुआ है। जो कुछ तुम्हें करना है, उसी में मेरा कल्याण है।
४४५८) प्रबन्धक तभी सही नेतृत्व कर पाते है जब वे श्रमिक दल के आने से पहले आ जाये और वो उनके जाने के बाद जाये।

४४५९) ईशकृपा यत्नशील पर होती है।
४४६०) जो अपने पेट का गुलाम है, वह ईश्वर की पूजा कभी नहीं कर सकता।
४४६१) लहर समुद्र की होती है, समुद्र लहर का नहीं।
४४६२) ईर्ष्या जन्म लेती है- दूसरों में नहीं, अपने में विश्वास के अभाव में।
४४६३) ईर्ष्यालु मनुष्य स्वयं ही ईर्ष्याग्नि में जला करता है। उसे और जलाना व्यर्थ है।
४४६४) ईर्ष्या करने वाले दूसरों को कष्ट देते हैं, पर अपने को तो महाकष्ट देते हैं।
४४६५) केवल गूंगे ही वाचालों से ईष्या करते हैं।
४४६६) ईर्ष्या अपनी हीनता के बोध में से जन्म लेती है और वह उस हीनता को दूर नहीं करती, सिर्फ दबाती है।
४४६७) उत्सव आपस में प्रीति बढ़ाने के लिए मनाए जाते हैं। जब प्रीति के बदले द्वेष बढ़े, तो उनका न मनाना अच्छा है।
४४६८) बहुधा उत्तेजित होने पर मानव अपना महत्त्व प्रदर्शित करता है।
४४६९) चंचल चमकने वाली बिजली पृथ्वी तल से थोड़े ही निकला करती है; अर्थात् उत्तम वस्तु की उत्पत्ति उच्च स्थान से ही होती है।
४४७०) उत्साही पुरुष कठिन से कठिन काम आ पड़ने पर भी हिम्मत नहीं हारते।
४४७१) उदार मन वाले विभिन्न धर्मों में सत्य देखते हैं। सबसे बड़ी उदारता है अनुदार के प्रति उदार होना।
४४७२) उदार व्यक्ति की सम्पत्ति गांव के चौक में उगे फलों से लदे पेड़ के समान होती है।
४४७३) उदार देकर धनवान बनता है, लोभी जोड़कर निर्धन। उदारता मानव के सब रोगों का इलाज है।
४४७४) हे प्रभो। कृपा करके मुझको ऐसी उदारता दो कि मैं सब लोगों को एक समान समझूं और तुम्हें कभी न भूलूं।
४४७५) उद्देश्य अच्छा रहने पर दृढ़ता के नाम से और बुरा रहने पर इसे हठधर्मिता के नाम से जाना जाता है।
४४७६) अवस्था और यौवन प्रतिपल बीता जा रहा है।
४४७७) आज निश्चित है। जो कल है वह अनिश्चित है।
४४७८) महान् सौभाग्य प्राप्त करने के लिए ऊंचे उठो।
४४७९) आज ही कर्म में जुट जाओ, क्या पता कल मृत्यु ही आ घेरे।
४४८०) सिंहो। उठो इस धोखे में मत रहो कि तुम-भेड़ हो।
४४८१) अपनी शक्ति को पहचान। अवसर देखकर यथोचित कर्त्तव्य का पालन कर।
४४८२) तुम स्वयं प्रकाशमान होकर समग्र दिशाओं को प्रकाशमान करो।
४४८३) कल कल की उपासना मत करो। मनुष्य का कल कौन जानता है ?
४४८४) आतुर न होना चाहिए; कुछ धैर्य धारण कर अभी, उद्योग करने से टलेंगे रोग शोकादिक सभी।
४४८५) उद्योग के बिना तिलों में से तेल नहीं निकलता।
४४८६) उद्योग में लगे रहना ही सच्ची भगवत्सेवा है।
४४८७) सतत उद्योग करने वाला अक्षय सुख प्राप्त करता है।
४४८८) आलसी और अनुपयोगी मनुष्य के सौ वर्ष के जीवन से दृढ़तापूर्वक उद्योग करने वाले का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है।
४४८९) उद्योगी मनुष्य की सहायता करने के लिए प्रकृति बाध्य है।
४४९०) उद्योगहीन मनुष्य शिथिल हो जाता है, उसका चित्त आलसी हो जाता है।
४४९१) उन्नति आगे की ओर ईश्वर का लम्बा डग है।
४४९२) कुदरत अपनी उन्नति और प्रगति में रुकना नहीं जानती और प्रत्येक अकर्मण्य को अभिशप्त करती है।
४४९३) तेरी उत्पत्ति के समय से ही तेरे सम्मुख उन्नति की सीढ़ी रखी हुई है।
४४९४) त्रुटियों के संशोधन का नाम ही उन्नति है।

HHH(४९९)HHH

४४९५) मेल-मिलाप उन्नति की आत्मा है।

४४९६) हमारी सबसे बड़ी शान कभी न गिरने में नहीं है, बल्कि जब-जब हम गिरें, हर बार उठने में है।

४४९७) जो आप न उठना चाहे अपने पैरों पर भाई। उन हीन जनों की जग में कर सकता कौन भलाई।

४४९८) उन्माद ज्ञान का नाश करता है, परन्तु बुद्धि का नहीं।

४४९९) उपकार करने के लिए यदि कुछ जाल भी करना पड़े, तो उससे आत्मा की हत्या नहीं होती।

४५००) जो दूसरों पर उपकार जताने का इच्छुक है, वह द्वार खटखटाता है। जिसके हृदय में प्रेम है, उसके लिए द्वार खुले हैं।

४५०१) मनुष्य मनुष्य के साथ केवल उपकार करके ही अपने को देव-तुल्य बनाते हैं।

४५०२) महापुरुष जो उपकार करते हैं, उसका प्रतिकार नहीं चाहते।

४५०३) चीटीं से अच्छा उपदेश कोई नहीं देता, और वह मौन रहती है। उपदेश देना सरल है, उपाय बताना कठिन है।

४५०४) जो उपदेश आत्मा से निकलता है, आत्मा पर सबसे ज्यादा कारगर होता है।

४५०५) पेट भरे पर उपवास का आदेश देना सरल है।

४५०६) प्रत्येक का उपदेश सुनो, परन्तु अपना उपदेश कुछ ही लोगों को दो।

४५०७) बिना मांगे किसी को उपदेश मत दो। लोगों की समझ की शक्ति के मुताबिक उपदेश दो।

४५०८) मनुष्य को चाहिए कि यदि दीवार पर भी उपदेश लिखा हुआ मिले, तो उसे ग्रहण करे।

४५०९) संस्कारों को उद्दीप्त करने के लिए हित तथा पथ्य का बारम्बार उपदेश देने में कोई दोष नहीं है।

४५१०) नीति का उपदेश दो, पर संक्षेप में।

४५११) उपदेशक यदि अपने कहे पर एक कदम चलेगा, तो श्रोता दो कदम चलेंगे।

४५१२) सम्प्रदाय में जो सबसे ओछा है, वही उपदेशक का काम करेगा।

४५१३) जिन मनुष्यों पर गम्भीर विश्वास किया जाता है, उनके द्वारा की गई उपेक्षा अपराध है।

४५१४) रात्रि का अंधकार एक थैला है जिसमें से उषा का स्वर्ण फूटकर निकल पड़ता है।

४५१५) परस्पर विरोधी बातों में एकता कराने से बढ़कर दुष्कर कार्य और नहीं है।

४५१६) पक्की, टिकाऊ एकता वहीं पैदा हो सकती है, जहां मन एक होते हैं।

४५१७) मित्रता और शान्ति से एकता सम्भव नहीं होती।

४५१८) दूब पृथ्वी पर अपनी सहचरियों की खोज करती है, वृक्ष आकाश में एकान्त का अनुसंधान करते हैं।

४५१९) जिसने कुछ एहसां किया, इक बोझ हम पर रख दिया। सर से तिनका क्या उतारा, सिर पे छप्पर रख दिया।।

४५२०) कचहरी-अदालत उसी के पास है जिसके पास पैसा है।

४५२१) सोने में धतूरे से बहुत अधिक नशा होता है। लोग धतूरा खाने से पागल होते हैं परन्तु सोने की प्राप्ति मात्र से पागल हो जाते हैं।

४५२२) जिस प्रकार कसौटी सोने को परखती है, उसी प्रकार सोना मनुष्यों को परखता है।

४५२३) जहां कपट का व्यवहार हो, वहां नहीं जाना चाहिए।

४५२४) अपने को खुश करने को भोजन करो, दूसरों को खुश करने के लिए कपड़ा पहिनो।

४५२५) अपने पुराने कपड़े भी मंगनी के कपड़ों से कहीं अच्छे होते हैं।

४५२६) भड़कीले कपड़ों से इन्सान बेवकूफों और औरतों के अलावा और किसी का आदर-पात्र नहीं बन सकता।

४५२७) एक साथ छलांग मार कर मंजिल पर पहुंचने वाले से अधिक सम्मान कदम कदम पर आगे बढ़ने वाले को मिलता है।

४५२८) पैसा ऐसी चाबी है जिससे कोई भी दरवाजा खोल सकते है और किसी का भी मुंह बन्द कर सकते है।

४५२९) अन्न (भोजन) को कभी भी भला-बुरा न कहे उसे आदर से ग्रहण करे तभी आपका पेट व मन तृप्त होगा।

४५३०) हर रिश्ते की मर्यादा पहचाने।

HHH(५००)HHH

४५३१) असफलता निराशा का सूत्र कभी नही है अपितु वह तो नई प्रेरणा है।
४५३२) यह दुनिया प्रतियोगिता की दुनिया है अगर आप दूसरों से आगे नहीं निकलेंगे तो दूसरे आप से आगे निकल जायेंगे।
४५३३) आपत्ति में भी जिसकी बुद्धि कार्यरत रहती है वही धीर पुरुष मानने योग्य है।
४५३४) शहर बदलने से तकदीर नहीं बदलती फिर क्यो अपने ही शहर से हिजरत करते हो।
४५३५) अधिकतर लोगों द्वारा सुअवसरों को न पहचानने के कारण ही ये कडे परिश्रम का रूप धारण कर सामने आते है।
४५३६) घर मे छोटे बड़ों के बीच दोस्ताना सम्बध अवश्य रखे तो भी बडे व छोटे होने का लिहाज हमेशा रखे।
४५३७) एक साथ आना शुरुआत है एक दूसरे की देखभाल करना प्रगति है, एक साथ काम करना सफलता है।
४५३८) सबसे ज्यादा आलिम वह है जो इताअत करे और सबसे ज्यादा जाहिल वह है जो न जाने और बेपरवाह रहे।
४५३९) दिल राजो का सन्दूक, होठ ताले और जबान चाबी है।
४५४०) हमदर्दी वो जबान है जिसे जानवर भी समझ लेते है।
४५४१) बे नमाजी को किसी अमल का सवाब न दिया जायेगा।
४५४२) हर काम के लिये और हर बात कहने के लिये मुनासिब वक्त होता है।
४५४३) एक व्यक्ति का सच्चरित्र इस बात से भी जाहिर होता है कि वह अपनी प्रशंसा किस रूप में स्वीकारता है।
४५४४) जब बदलाव की हवा बह रही हो तो आपको उसकी दिशा और उसकी तेजी जानने की जरूरत है।
४५४५) घर से बाहर जाते वक्त सबको हंस कर विदाई दे तभी वे और घर भी आपके आने की व्याकुल होकर राह देखेंगे।
४५४६) घर रहने वालों से बनता है, यहां प्रेम को रहने दे, द्वेष के मुंह पर दरवाजा बन्द करे।
४५४७) अच्छे नेतृत्व की शुरूआत लोगों के साथ अच्छी बातचीत से होती है।
४५४८) माता-पिता को कभी न रूलाये, उनकी आखों में आंसू आने पर आपका किया हुआ दान धर्म उसी मे बह जाता है।
४५४९) दूसरों को विश्वास दिलाने से पहिले अपने आपको विश्वास दिलाना होगा।
४५५०) जब हमारे करुणा के नेत्र खुल जाते हैं, तो पुरुष अपने को दूसरों में और दूसरों को अपने में देख सकने में समर्थ हो जाता है।
४५५१) स्त्री-हृदय में करुणा अमृत बनकर रहा करती है।
४५५२) ईश्वर शान्ति चाहता है और ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलना मनुष्य का परम कर्तव्य है।
४५५३) कर्तव्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसको नाप-जोखकर देखा जाये। दासता को कर्तव्य मान लेना कितना आसान है।
४५५४) केवल कर्महीन ऐसे हैं जो भाग्य को कोसते हैं और जिनके पास शिकायतों का बाहुल्य है।
४५५५) कर्म और ज्ञान में कोई संघर्ष, कोई वास्तविक विरोध नहीं है।
४५५६) कल्पना में मोहक और प्रिय प्रतीत होती हुई भी इसकी यथार्थ बातें सदा प्रिय नहीं होती।
४५५७) कल्पना विश्व पर शासन करती है।
४५५८) पागल, प्रेमी और कवि कल्पना से परिपूर्ण होते हैं।
४५५९) कवि और शब्द की विचित्र महिमा है। शब्द कवि को अमर बना देते हैं और कवि शब्द को भाग्यवान।
४५६०) कविता थोड़े शब्दों की महान् शक्ति बताती है।
४५६१) कविता शैतान की शराब नहीं, ईश्वर की मदिरा है।
४५६२) कविता के लिए विचार करना सबसे भारी अवरोध है।
४५६३) आज के कष्टों का सामना करने वाले के पास आगामी कल के कष्ट आते हुए झिझकते हैं। कष्ट हृदय की कसौटी है।
४५६४) छाले पर मक्खन लगाने से एक क्षण के लिए कष्ट कम हो जाता है; किन्तु फिर ताप की वेदना होने लगती है।
४५६५) कस्तूरी की पहचान उसकी सुगन्ध से होती है, गन्धी के कहने से नहीं।
४५६६) साहसहीन और आलसी मनुष्य दैव के भरोसे रहता है, परिश्रम नहीं करता।

HHH(५०१)HHH

४५६७) कान का कच्चा होना बुरा है। कानों के दुरुपयोग से मन बहुत अशान्त और कलुषित हो जाता है। कान हमारे गुरुदेव हैं।
४५६८) संसार में मौत के दिन तक रातों-दिन काम में लगा रहना भी तो सम्भव नहीं है।
४५६९) काम से जो मनुष्य पीड़ित हैं, वे जड़ और चेतन में भेद नहीं कर सकते।
४५७०) काम करने वालों को आराम मिले और आराम करने वालों को काम मिले तो इसी से बहुत-सी शिकायतें दूर हो जायें।
४५७१) कामदेव बड़ा छली है, जो उसका विश्वास करता है, वह धोखा खाता है।
४५७२) कामनाओं को इष्ट बनाना बंधन को स्वीकार करना है। कामनायें सांप के विषैले दांत के समान हैं।
४५७३) बड़प्पन, पांडित्य, कुलीनता और विवेक मनुष्य में उसी समय तक रहते हैं जब तक शरीर में कामाग्नि नहीं प्रज्वलित होती।
४५७४) कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते हैं, उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते हैं।
४५७५) मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य उसकी इच्छा के प्रतिबिम्ब होते हैं।
४५७६) कूटनीतिज्ञ वह है जो महिला-विशेष के जन्म दिन को तो याद रखता है, पर उसकी आयु को भूल जाता है।
४५७७) ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जो आसान न हो जाय। इसलिए मनुष्य को घबड़ाना नहीं चाहिए।
४५७८) ऐसी बहुत-सी बातें हैं जो धन से असाध्य हैं, किन्तु केवल पवित्रता के बल पर सिद्ध की जा सकती हैं।
४५७९) अपनी आंखों में पस्त हो जाना सबसे बड़ी भीरुता है। यदि थोड़ी-सी हिम्मत हो, तो क्या नहीं हो सकता ?
४५८०) कोई भी वस्तु निरर्थक और तुच्छ नहीं है। प्रत्येक वस्तु अपनी स्थिति में उत्कृष्ट है।
४५८१) कोरी नीति कायरता है और कोरी शक्ति हिंस्र पशु की चेष्टा के समान है।
४५८२) चतुर निशानेबाज तीर पीछे छोड़ता है, निशाना पहले ही अच्छी तरह साथ लेता है।
४५८३) जहां नीति और बल दोनों से काम लिया जाता है, वहां सब ओर से सफलता प्राप्त होती है।
४५८४) जो पहले के उपकार को भूल जाता है, उसे बाद में फिर काम पड़ने पर कोई उपकार करने वाला नहीं मिलता।
४५८५) बुद्धिमान मनुष्य अपमान को सहकर और अभिमान को त्यागकर अपना काम बना ले। काम बिगाड़ लेना मूर्खता है।
४५८६) मुखिया को मुख-सा होना चाहिए जो खाने-पीने को एक होता है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है।
४५८७) अधिकांश लोग उस काम को कल तक उठा रखते हैं, जिसे उन्हें कल कर डालना चाहिए था।
४५८८) काल पर हम विजय प्राप्त करते हैं अपनी सुकीर्ति से, यश से, व्रत से। परोपकार ही अमरत्व प्रदान करता है।
४५८९) मेरी मृत्यु सन्निकट है, जहाज किनारे पर आ लगा है। हे जीवन मैं तुम्हें विदाई का नमस्कार करता हूं।
४५९०) इन फूलों की किस्मत देखिए। इनकी जिन्दगी कांटों में पली है।
४५९१) श्रवण सुखों में हरि-कीर्तन सर्वोत्तम है।
४५९२) लीलापूर्वक शत्रुओं के ऊंचे मस्तक पर बिना पैर रखे ही निरालम्ब कीर्ति कैसे स्वर्ग तक चढ़ सकती है ?
४५९३) कुटिलता कभी-कभी सफल हो जाती है, पर सदा ही आत्म-घाती सिद्ध होती है।
४५९४) कुरीति के अधीन होना कायरता है, उसका विरोध करना पुरुषार्थ है।
४५९५) कुलीनता वहीं सबसे अधिक दीख पड़ती है, जहाँ मामूली आदमी को वह कम से कम दीख पड़े।
४५९६) खातिरदारी जैसी वस्तु में मिठास जरूर है, पर उसका ढकोसला करने में न तो मिठास है और न स्वाद ही।
४५९७) खामोशी आधी रजामन्दी है।
४५९८) अनुग्रह लेने से मनुष्य कृतज्ञ होता है। कृतज्ञता परतंत्र बनाती है। कृतज्ञता मित्रता को चिरस्थाई रखती है और नए मित्र बनाती है।
४५९९) कृतज्ञ और उल्लसित हृदय से की गई अर्चना भगवान को सबसे अधिक प्रिय है।
४६००) कृतज्ञता एक कर्तव्य है जिसे पूरा करना चाहिए।
४६०१) स्वर्ग की ओर कृतज्ञतापूर्ण भावना स्वयं ही एक प्रार्थना है।
४६०२) किसी विद्वान को शब्दों की उतनी कमी कभी नहीं हुई जितनी कि कृतज्ञ को होती है।

४६०३) कृतज्ञता समस्त गुणों की जन्मदात्री हैं।
४६०४) कृतघ्नता के बाद सबसे असह्य चीज कृतज्ञता है।
४६०५) हम सभी कैदी हैं- कुछ बन्द कारागृह के और कुछ उन्मुक्त कारा के।
४६०६) क्रान्ति शान्ति नहीं है। उसे हिंसा में चलना पड़ता है, वही उसका घर है और वही उसका अभिशाप।
४६०७) सारे दरिया स्याही बन जायें और सारे दरख्त कलम बन जाए, तो भी खुदा का पूरा बयान नहीं हो सकता।
४६०८) तुम खुदा को और दुनिया की दौलत दोनों को एक साथ पाने की आशा नहीं रख सकते।
४६०९) खुदी से आदमी फूल सकता है, परन्तु स्वयं अपने को सहारा नहीं दे सकता।
४६१०) खुश करने की तरकीब है स्वयं खुश रहना।
४६११) क्षमा के समुद्र को क्रोध की चिनगारी से गरम नहीं किया जा सकता।
४६१२) रत्नों से भरा रहने पर भी समुद्र मदविह्वल नहीं होता परन्तु एकाध मोती पा लेने से ही हाथी मदमत्त हो जाता है।
४६१३) छोटे-छोटे खर्चों से सावधान रहो। थोड़ा-थोड़ा जल रिसते रहने से बड़े-बड़े जलयान डूब जाते हैं।
४६१४) खतरे में हमारी चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है। कोई जगह खतरे से खाली नहीं है। हर जगह सज्जन को दुर्जन मिल जाता है।
४६१५) फूलों की खुशबू वायु के विपरीत नहीं जाती, परन्तु मानवी गुणों की खुशबू चारों दिशाओं में फैल जाती है।
४६१६) खुदा कहता है कि तुम खैरात करो, मैं तुमको और दूंगा।
४६१७) यदि आप खोटे इन्सान को देखते और उसकी बातों को सुनते हैं, तो यहीं से खोटेपन का आरम्भ हो गया समझिए।
४६१८) अपनी ख्याति और स्मृति के लिए मैं दूसरों की दया और कृपा पर निर्भर रहता हूं।
४६१९) किसी पूर्व ख्याति का उत्तराधिकार प्राप्त करना एक संकट मोल लेना है।
४६२०) ख्याति केवल जनता की सांस है और वह प्राय: अस्वास्थकर होती है।
४६२१) प्रसिद्धि वीरता के कार्यों की सुगन्धि है।
४६२२) ख्वाहिशों का पोषण विलम्ब से होता है।
४६२३) अपने को गधा बना दोगे तो हर एक अपना बोझ तुम पर लादता जायेगा।
४६२४) चार बातें सुनकर गम खा जाना, इससे कहीं अच्छा है कि तनाजा हो।
४६२५) उस मनुष्य से गरीब कोई नहीं हैं, जिसके पास केवल पैसा है।
४६२६) गरीबी स्वयं अपमानजनक नहीं है, केवल उस गरीबी के अतिरिक्त जो आलस्य, व्यसन, फिजूलखर्ची और मूर्खता के कारण हुई हो।
४६२७) गरीबों के सिवाय कुछ ही ऐसे इन्सान है, जो गरीबों के विषय में सोचते हैं।
४६२९) गरीब वे इंसान है जो अपने को गरीब मानते हैं, गरीबी गरीब समझने में ही है।
४६३०) जो गरीबों पर दया करता है, वह अपने कृत्यों से ईश्वर को ऋणी बनाता है।
४६३१) भगवान गरीब को गरीब रखकर आजमाता है कि वह हिम्मत रखता है या नहीं।
४६३२) मैं गरीब हूं यह कह कर किसी को पाप कर्म में लिप्त नहीं हो जाना चाहिए।
४६३३) गरीबी अनोखे मनुष्यों से घनिष्ठ संबंध करा देती है।
४६३४) गरीबी मेरा अभिमान है।
४६३५) गरीबी सब कलाओं के आविष्कार का कारण है।
४६३६) यदि गरीबी अपराधों की जननी है, तो बुद्धि का अभाव उनका पिता है।
४६३७) सभी महान् धार्मिक नेताओं ने जानबूझ कर गरीबी को अपने भाग्य की तरह अपनाया।
४६३८) आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन गरूर है।
४६३९) गर्व सन्तोष का घोर शत्रु है। जिसने गर्व किया उसका अवश्य पतन हुआ।

४६४०) दुनिया देख कर मैंने यह सीखा है कि दूसरों की गलतियों पर क्रोध नहीं अफसोस करना चाहिए।
४६४१) गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है।
४६४२) गांधीवाद आज भ्रष्ट राजनीति और शासन के गठजोड़ को ढकने का लबादा मात्र बनकर रह गया है।
४६४३) गुण मनुष्य के वश में होता है, प्रतिभा के वश में मनुष्य स्वयं होता है।
४६४४) गुणियों की जात-पात नहीं देखी जाती।
४६४५) रूप की पहुंच आंखों तक है, गुण आत्मा को जीतते हैं।
४६४६) विवेकी को पाकर गुण सुन्दरता को प्राप्त होते हैं, सोने में जड़ा हुआ रत्न अत्यन्त शोभित होता है।
४६४७) जो जिसका गुण जानता है, वह उसको आदर देता है। कोकिल आम को लेती है और कौवा नीम के फल से प्रेम करता है।
४६४८) अरबी घोड़ा अगर दुबला-पतला हो तो भी गधों के पूरे अस्तबल से अच्छा है।
४६४९) ऐरावत पर चढ़कर चलने वाला देवराज इन्द्र बूढ़े बैल पर सवार शिव के आगे मस्तक झुकाता है।
४६५०) गुणी मनुष्य अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते बल्कि दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनकर नम्र हो जाते हैं।
४६५१) अगर गुनाह से किसी की जान बचती हो, तो ऐसा करना सवाब है। गुनाह छिपा नहीं रहता। वह मनुष्य के मुख पर लिखा रहता है।
४६५२) किसी मित्र को भी अपना ऐसा भेद मत बताओ जिसके जाहिर हो जाने पर बदनामी हो।
४६५३) जो मनुष्य अपना गुप्त भेद नौकरों पर प्रकाशित करता है, वह उनको अपना मालिक बना लेता है।
४६५४) गुमान खोखली चीज है, स्वमान ठोस वस्तु है। हमारे सिवाय और कोई हमारा स्वमान नहीं कर सकता।
४६५५) वे गुलाम हैं जिनमें इंसाफ का साथ देने की हिम्मत नहीं हैं।
४६५६) एक घंटे के लिए भी गुलामी को रहने देना अन्याय है।
४६५७) कोई सही व्यक्ति हड्डी के लिये स्वयं को कुत्ता नहीं बनायेगा।
४६५८) मरे हुओं को रोते हो ? वे तो अपने घर गये। उन गुलामों को रोओ जो बाजार बाजार बिकते हैं।
४६५९) मैं अपने दु:ख को तुम्हारी गुलामी से नहीं बदलूंगा।
४६६०) गुस्सा इंजिन है, अविवेक और अज्ञान उसके पहिये हैं। गुस्सा करना दूसरे की गलती का अपने से प्रतिशोध लेना है।
४६६१) प्रकृति के समान गूंगे की भी अपनी महिमा होती है।
४६६२) जो गृहस्थ यथाशक्ति अपने आश्रम-धर्म का पालन करता है, वह मरने के पश्चात् अक्षय लोक प्राप्त करता है।
४६६३) गृहिणी को सदैव प्रसन्न एवं गृहकार्य में दक्ष रहना चाहिए।
४६६४) मर्द लज्जित करता है, तो हमें क्रोध आता है, स्त्रियां लज्जित करती हैं, तो ग्लानि उत्पन्न होती है।
४६६५) मनुष्य दुश्मन का सुदृढ़ गढ़ तोड़ सकता है, मगर अबोध बालक का मिट्टी का घरौंदा तोड़ने की शक्ति किसमें है ?
४६६६) दु:खी व्यक्ति की पीड़ा को केवल दु:खी आदमी ही जानता है, दूसरा कोई नहीं जानता।
४६६७) चंचलता निर्बलता से उत्पन्न होती है। इस दोष से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए।
४६६८) जो पुरुष पवित्र होकर जगत् के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, वह चक्रवर्ती से भी अधिक सत्ता भोगता है।
४६६९) घाव पर कपड़ा भी छुरी बनकर लगता है। दुखे हुए अंग को हवा भी दुखा देती है।
४६७०) पैसे वाले अपराधी न्याय को भी रास्ता बताते हैं और ऐसा भी देखा गया है कि घूस कानून को भी मोल ले लेती है।
४६७१) चरित्र सम्पत्ति है और यह सम्पत्तियों में सबसे उत्तम है।
४६७२) व्यक्तिगत चरित्र समाज की महान आशा है।
४६७३) उत्तम व्यक्ति शब्दों में सुस्त और चरित्र में चुस्त होता है।
४६७४) मन के सौन्दर्य और चरित्रबल की समानता करने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं है।
४६७५) तमाम उपदेशों में सबसे शरारतपूर्ण उपदेश यह है कि गरीबी चरित्र को निर्बल कर देती है। उत्तम चरित्र ही निर्धन का धन है।

४६७६) चरखे के द्वारा माता बच्चे को देश-प्रेम सिखा सकती है। मनुष्य की नग्नता को ढकना-यह चरखे का दावा है।
४६७७) अगर हम गिरते हैं तो अच्छी तरह चलने का रहस्य सीख जाते हैं।
४६७८) मनुष्य के अन्तरंग का श्रृंगार है चातुर्य, वस्त्र तो केवल बाहरी सजावट है।
४६७९) चापलूस अत्यन्त निकृष्ट प्रकार के शत्रु हैं।
४६८०) चापलूस आपको हानि पहुंचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है।
४६८१) चापलूस उन बिल्लियों की तरह है जो सामने से चाटती हैं और पीछे से खसोटती हैं।
४६८२) जब चापलूस मिलते हैं, तो शैतान भोजन के लिये चला जाता है।
४६८३) अनुकरण चापलूसी का सबसे सच्चा रूप है। चापलूसी दिखावटी मित्रता के समान है।
४६८४) जब निष्कपट व्यवहार को दरवाजे से बाहर धकेल दिया जाता है, तो चापलूसी बैठक में आ बैठती है।
४६८५) जो शत्रु तुम पर आक्रमण करते हैं, उनसे तुम मत डरो, उन मित्रों से डरो जो तुम्हारी चापलूसी करते हैं।
४६८६) चालाकी द्वारा कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं होता।
४६८७) एक निपुण शल्य-चिकित्सक के पास गिद्ध की आंख, शेर का हृदय और नारी-जैसा कोमल हाथ होना चाहिए।
४६८८) पापी अन्त:करण का रोग संसार के सभी देशों के चिकित्सकों की चिकित्सा के परे है।
४६८९) संयम और परिश्रम मनुष्य के दो सर्वोत्तम चिकित्सक हैं। परिश्रम से भूख तेज होती है और संयम अतिभोग से रोकता है।
४६९०) चिकित्सा-विज्ञान असीमित, अगाध जलधि-सदृश है, तथा उसका विवरण हजारों श्लोकों में भी नहीं किया जा सकता।
४६९१) हम अपने बारे में जो दृढ़ चिन्तन करते हैं, जिन विचारों में संलग्न करते हैं क्रमश: वैसे ही बनते जाते हैं।
४६९२) आत्मा का अपने साथ बातचीत करना ही मनन है। बिना मनन किए पढ़ना, बिना पचाये खाने के समान है।
४६९३) जिसमें सोचने की शक्ति खत्म हो गयी है, समझ लीजिए, वह व्यक्ति बरबाद हो चुका है।
४६९४) यदि उस अचिंत्य प्रभु की पूरी कृपा नहीं हुई, तो चिन्तित चित्त की चिन्ता दूर नहीं हो सकती है।
४६९५) कुटुम्ब की चिन्ता से परेशान व्यक्ति की कुलीनता, शील और गुण कच्चे घड़े में रखे हुए पानी की तरह है।
४६९६) चिन्ता शहद की मक्खी के समान है। इसे जितना हटाओ उतना ही और चिपटती है।
४६९७) मैं भूतकाल की और भूतकालिक सुख की जितनी अधिक चिन्ता करता हूं, उतनी ही मेरे दु:ख की वृद्धि हो जाती है।
४६९८) चिन्ता करना माने भगवान का भरोसा खोना। यदि चिन्ता करनी है, तो चरित्र की उन्नति की करो।
४६९९) चिन्ता ने आज तक कभी किसी कमी को पूरा नहीं किया। चिन्ता हर प्रकार की सुन्दरता और स्वास्थ्य की शत्रु है।
४७००) बिस्तरे पर चिन्ताओं को ले जाना, पीठ पर गट्ठर बांध कर सोना है। प्राणियों के लिए चिन्ता ही ज्वर है।
४७०१) यदि तुम्हारा स्वभाव है, तो चिन्ता करके कष्टों का आह्वान कर लो, परन्तु उसे अपने पड़ोसी को उधार मत दो।
४७०२) चित्र एक शब्दरहित कविता है।
४७०३) चित्र कविता के आभूषण नहीं, कल्पना के हृदय से चलनेवाली रक्तधारा के बिन्दु हैं।
४७०४) चित्रकला मुख्यत: अभिव्यक्ति का एक माध्यम है और एक दर्शन है।
४७०५) चित्रकारी मूक कविता है और कविता बोलती हुई तसवीर।
४७०६) जिस कमरे में बहुत-से चित्र लटक रहे हैं, वह ऐसा कमरा है जिसमें बहुत-से विचार लटक रहे हैं।
४७०७) चित्रकार अपने काम के लिहाज से यान्त्रिक है लेकिन अपने चिन्तन, भावना और उद्देश्य की दृष्टि से किसी कवि से कम नहीं है।
४७०८) हमारे लिए चींटी से बढ़कर और कोई उपदेशक नहीं है। वह काम करती है और खामोश रहती है।
४७०९) ईश्वर प्रत्येक मनुष्य को सच और झूठ में एक को चुनने का अवसर देता है।
४७१०) ईश्वर अपने प्रेम में सान्त को चूमता है, और मनुष्य अनन्त को।
४७११) मेरी मां के चुम्बन ने मुझे चित्रकार बना दिया।

४७१२) प्रेमियों के होंठ मिलते हैं, तो आत्मा आत्मा को मिलती है।
४७१३) चोरी-छुपे के चुम्बन मधुरतम होते हैं। हे भगवान् कैसा मूर्ख था वह जिसने चुम्बन का आविष्कार किया।
४७१४) चूल्हा गृहस्थ आश्रम का प्रतीक है आत्मीयता की दीक्षा है, कुटुम्ब परम्परा का संरक्षण है।
४७१५) जो मेरा धन चुराता है वह मेरी सबसे तुच्छ वस्तु ले जाता है। चोरी का माल खाने से छात्र शूर-वीर नहीं बनते, दीन बनते हैं।
४७१६) छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है।
४७१७) अपने ही अंग को अछूत करके लोग दूसरों द्वारा अछूत कर दिए जाते हैं। जो जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है।
४७१८) आड़ बड़े को लेकर छोटा, पलता भी है गलता भी है। योग हवा का पाकर दीपक, जलता भी है बुझता भी है।।
४७१९) इस संसार में मैंने किसी को मित्र नहीं देखा। सब लोग अपने-अपने सुख में लगे रहते हैं, दु:ख में कोई किसी का साथ नहीं देता।
४७२०) जनतन्त्र इस आस्था पर आधारित है कि साधारण लोगों में असाधारण सम्भावनायें छुपी हैं।
४७२१) राष्ट्र और व्यक्ति के लिए जवानी आशा, साहस एवं शक्ति का काल है।
४७२२) जो जाति जब तक मरना जानती रहेगी, उसको तभी तक इस पृथ्वी पर जीने का अधिकार रहेगा।
४७२३) जो रहती है जाति जगत में, मरने को तैयार। वही अमरता का पाती है, ईश्वर से अधिकार।।
४७२४) हमारा एकमात्र जागृत देवता हमारी जाति है। आखिरकार जाति केवल एक है- मानव जाति।
४७२५) जातिभेद राष्ट्र के बल-सम्बर्द्धन और अभ्युदय के लिए अपरिहार्य आवश्यकता न होकर उल्टे बाधास्वरूप है।
४७२६) हड्डी और चमड़े का बना हुआ शरीर है। ब्राह्मण, तुर्क और चमार सब एक ही प्रकार के मानव शरीर में रहते हैं।
४७२७) जिसमें जातीयता न हो, जिसमें जाति-ज्ञान न हो और जिसमें आत्मीयता न हो, वह जीवनकाल में ही मृतक के समान है।
४७२८) जालिम मिट जाता है पर जुल्म रह जाता है।
४७२९) मनुष्य की जिन्दगी एक सुन्दर पक्षी की भांति है, जो किसी डाल पर बैठा हुआ थोड़ी देर चहचहाता और फिर उड़ जाता है।
४७३०) जिन्दगी हमारे साथ किया हुआ एक मजाक है।
४७३१) दुनिया में अपने सिवाय किसी दूसरे पर भरोसा मत कीजिएगा। यह अपनी जिन्दगी का भेद है।
४७३२) जिन्दगी और मौत में कौन बदतर है, इसका ज्ञान परमात्मा को और सिर्फ परमात्मा को ही है।
४७३३) जिह्वा केवल तीन इंच लम्बी होती है। परन्तु वह छ: फुट लम्बे आदमी को कतल कर सकती है। जिह्वा कैंची-सी कतरती है।
४७३४) जीना भी एक कला है, बल्कि कला ही नहीं तपस्या है। जब तक जीवित हो, तब तक जीवन-कला सीखते हो।
४७३५) मौत जब तक नजर नहीं आती। जिन्दगी राह पर नहीं आती।।
४७३६) जीना केवल सत्य साधना के लिए, मरना भी बस सत्य दृष्टि के लिए।
४७३७) निज समाज को सीख मनोहर दो यही, आए हम सब सत्य दृष्टि ही के लिए।।
४७३८) जीवन नहीं व्यर्थ का सपना, बुद्‌बुद् जैसा ही क्षणभंगुर; चपला जैसा चंचल, अस्थिर, उषा की लाली सा नश्वर।
४७३९) जन्म-मरण है आंख-मिचौली, एक अनोखा खेल तमाशा; मर कर अमर कीर्ति से सुरभित, जग हो ऐसी अतुलित आशा।।
४७४०) जीवन विकास का सिद्धान्त है, स्थिर रहने का नहीं। लगातार विकसित होना स्थिर अवस्था में रहने की आज्ञा नहीं देता।
४७४१) जो दूसरों के जीवन के अंधकार में सूर्य का प्रकाश पहुंचाते हैं, उनका इस मृत्युलोक से कभी नाश न होगा, वे अमर हैं।
४७४२) जीवन की लम्बी यात्रा में, खोए भी हैं मिल जाते, जीवन है तो कभी मिलन है, कट जातीं दुख की रातें।
४७४३) आज ऐसे जियो जैसे यह अन्तिम दिन हो।
४७४४) हे जीवन। दुखी के लिये तू एक युग है, सुखी के लिये एक पल।
४७४५) खबरदार ऐ मुसाफिर। खौफ की जा राहे-हस्ती है। ठगों का बैठका है जा-बजा चोरों की बस्ती हैं।।
४७४६) इस सराय में हूं मुसाफिर, नहीं रहने आया। रह गया थक कर कि के अगर आज तो कल जाऊंगा।
४७४७) जीविका का अभाव विश्राम नहीं है, बिल्कुल शून्य मस्तिष्क एक पीड़ित मस्तिष्क है।

४७४८) ढूँढने पर आखिर मिल ही गयी, मनचाही मंजिल, आखिर ये कैसा इत्तफाक है, वो अपना ही घर निकला।
४७४९) सुन भव्य, मैं अनुभव कहूं अपना। सत्य प्रभु भजन, जगत सब सपना।
४७५०) फूल इतर, घी दूध में तिल में तेल छिपाय। यूं चेतन, जड़ कर्म संघ, बांध्या ममता पाय।
४७५१) लाख उपाय करो बुद्ध, कर देखो सब कोय। अन होनी होवे नहीं, होनी होय सो होय।
४७५२) बीती सो बिसारिये, आगे की सुध ले, जो बनी आवे सहज में, ताही में चित्त दें।
४७५३) राम किसी को मारे नहीं, सब से मोटा राम। आप ही मर जाते हैं, कर कर खोटा काम।
४७५४) जीवन में यदि धर्म का स्थान हो तो आबाद है और भूल गया धर्म, तो बरबाद है।
४७५५) धैर्य धरे, धीरज रखे, समझे धर्म का अर्थ। प्रमाद छोड़ पुरुषार्थ करें, जीवन न जावे व्यर्थ।
४७५६) हे दिल तुझे कसम है, तू कभी हिम्मत न हारना। दिन जिंदगी के जैसे भी गुजरें खुशी से गुजारना।
४७५७) मीठा बोलो, नम के चलो, सब से करो स्नेह। कितना दिन का जीवन कितने दिन की देह।
४७५८) चार वेद, छ:शास्त्र में, बात मिली है दोय। दुख दीन्हें दुख होत है, सुख दीन्हें सुख होय।।
४७५९) तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र किये दान। मन पवित्र जब होते हैं, भज ले सीताराम।
४७६०) कांच कटोरा, नयन, धन, मोती और मन। टूटे कभी नहीं संधे, लाख करो जतन।
४७६१) अनुभव चिंतामणी रत्न, अनुभव है रसकूप। अनुभव मार्ग मोक्ष को, अनुभव मोक्ष स्वरूप।
४७६२) त्यागी ममता, जागी समता, नश्वरता चित में लाया। अनित्य भावना भाकर के ही, भरत चक्री केवल पाया।
४७६३) रोग शत्रु जब तन को घेरे , नहीं किसी का दांव लगा। आत्मिक शांति जब ही पाता, मन में समता भाव जागा।
४७६४) जग का सुख शाश्वत नहीं होता, जैसे बादल की छाया। क्यों भरमाया भौतिक सुख में, बिजली सी चंचल माया।
४७६५) जिन्हे सुन्दर वार्तालाप करना नही आता वे ही सबसे अधिक बोलते है।
४७६६) एक औसत महिला एक औसत पुरुष से अधिक सुन सकती है क्योकि उसके कान तेज होते है।
४७६७) दान देकर तुम्हें खुश होना चाहिए, क्योंकि मुसीबत कभी दान की दीवान नहीं फांदती।
४७६८) दान की सफेद चादर के नीचे हम अपने असंख्य पाप छुपा लेते हैं।
४७६९) संसार में सबसे बुरा दिवालिया वह है जिसने अपना जोश खो दिया।
४७७०) पृथ्वी ही मेरा देश है, सम्पूर्ण मानव-जाति मेरी बन्धु है और भलाई करना ही मेरा धर्म है।
४७७१) देशभक्ति का दम भरने वालों के लिए जनता का खून चूसना बहुत बड़ा अपराध है।
४७७२) जो ज्यादा दौलतमंद है, वही ज्यादा मोहताज है। वही व्यक्ति सबसे अधिक दौलतमंद है जिसकी प्रसन्नता सबसे सस्ती है।
४७७३) उस धनवान का गम जिससे कोई कुछ नहीं लेता, उस भिखारी के गम से ज्यादा है जिसे कोई कुछ नहीं देता।
४७७४) भाग्यवान वह है जिसका धन गुलाम है और अभागा वह है जो धन का गुलाम हैं।
४७७५) जिसके जीवन को उसके इर्द-गिर्द की जनता चाहती है, वही सच्चा धनी है।
४७७६) वे धनी आपसे भी अधिक अन्यायी और धनहीन है, जो गरीबों को आलसी और कामचोर कह कर पुकारते हैं।
४७७७) धार्मिक विश्वास उसी सीमा तक ठीक होते हैं जहां उनमें और जीवन की घटनाओं में साम्य होता है।
४७७८) दो चेहरे वाले से होशियार रहो। धूर्तता तो निर्बलों का हथियार है। बलवान् कभी नीच नहीं होता।
४७७९) नगर मनुष्य की दुनिया है, परन्तु गांव ईश्वर की।
४७८०) नम्रता और खुदा के खौफ से जिन्दगी मिलती है।
४७८१) जो किसी स्वच्छन्द और बदमिजाज आदमी को नसीहत करता है उसे खुद नसीहत करने की जरूरत है।
४७८२) जब कोई मनुष्य एक बार नहीं कह देता है, तो फिर उसके व्यक्तित्व का सारा घमण्ड यह चाहता है कि वह हां न करे।
४७८३) नामों में देश काल की संस्कृति का प्रतिबिम्ब रहता है।

४७८४) बुरा कानून निकृष्ट तरह का जुल्म है। मर मिटना जुल्म के सामने सिर झुकाने से अच्छा है।
४७८५) जब जुल्मी चूमने का अभिनय करें, तो डरना चाहिए।
४७८६) जिस देश के लोग जितने ही मूर्ख होंगे, वहां जेवरों का प्रचार भी उतना ही अधिक होगा।
४७८७) वह जेहन किस काम की जो हमारे आत्म-गौरव की हत्या कर डाले ?
४७८८) मुहब्बत के जोश में आदमी अपने आप को भूल जाता है।
४७८९) महापुरुष मरने पर ऐसी ज्योति छोड़ जाते हैं जो उनकी मृत्यु के बाद भी कई युगों तक जगमगाती रहती है।
४७९०) ज्ञान में जो पुरुषार्थ न हो, शक्ति निर्माण करने का गुण न हो तो वह ज्ञान-अज्ञान में कुछ फर्क नहीं है।
४७९१) ज्ञानी किसी चीज के न मिलने का अफसोस नहीं करता।
४७९२) झूठ के अनेक संयोग होते है, परन्तु सत्य का केवल एक रूप होता है।
४७९३) "झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन। झूठ तितो ही बोलिए, ज्यों आटे में लौन।"
४७९४) झूठ बोलना तलवार के घाव की तरह है, घाव तो भर जायेगा लेकिन उसका चिह्न हमेशा बना रहेगा।
४७९५) झूठ बोलने वाले को न मित्र मिलता है, न पुण्य, न यश। झूठा आदमी कसमें खाने में उदार होता है।
४७९६) जब टका बोलता है, तब सच मौन रहता है। टके का प्रेम ही सब बुराईयों की जड़ है। टका ही माता-पिता है।
४७९७) हर रोज काफी टहलने से जिन्दगी बढ़ती है और जीवन की खुशियों में भी वृद्धि होती है।
४७९८) ठग किसी संबंध का ख्याल नहीं करते, वे सभी को ठग लेते हैं।
४७९९) ठगा जाना अच्छा है, किन्तु ठगना नहीं।
४८००) वैद्य उपचार करते हैं, प्रकृति अच्छा करती है। वैद्य प्रकृति के सहायक हैं। प्रकृति, समय और धैर्य ये तीन बड़े वैद्य है।
४८०१) गुरु की डांट-डपट पिता के प्यार से अच्छी है।
४८०२) हम अपनी तकदीर का निर्माण करते हैं और उसे होनी कहते हैं।
४८०३) सत्कर्म न करने वाले, वृथा भाषी, हिंसावादी, सूद लेनेवाले, श्रद्धाहीन, यज्ञ न करने वाले डाकुओं से दूर रहो।
४८०४) तजुर्बा अच्छा है यदि उसका अधिक मूल्य चुकाना न पड़े। तजुर्बा ज्ञान का जनक है और स्मरण-शक्ति उसकी जननी।
४८०५) कर्म से केवल मन की ही शुद्धि होती है, तत्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, उसके लिए मुख्य उपाय ध्यान है।
४८०६) कड़े और कटु शब्द दुर्बल कारण को सूचित करते हैं।
४८०७) कला का सबसे सुन्दर रूप छिपा है, दिखावा नहीं।
४८०८) गुरु की ताड़ना पिता के प्यार से अच्छी है।
४८०९) लेखक और सम्पादक को आत्म-मर्यादा के प्रश्न पर सब की तिलांजलि देने को सदा तैयार रहना चाहिए।
४८१०) कुछ व्यक्तियों की प्रधानता केवल स्थानीय होती है। वे बड़े इसलिए होते हैं क्योंकि उनके सहयोगी बौने होते हैं।
४८११) सत्यव्रती के लिए शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी सब तिनके के बराबर कहे गए हैं।
४८१२) इन्द्रियों से कभी तृप्ति मिलने वाली नहीं है, अन्तरात्मा से ही तृप्ति लाभ कर।
४८१३) अनशन से बढ़कर कोई तप नहीं है। जिस साधना से पाप कर्म तप्त होता है, वह तप है। सम्मान से तप का क्षय हो जाता है।
४८१४) मन का सत्य संकल्प तप है, सत्य तप है, शास्त्र-श्रवण तप है, शान्ति तप है, दान तप है। स्वाध्याय स्वयं एक तप है।
४८१५) जब तक जिनके पुण्य का पहुंचे नही करार, तब तक उसे माफ है गुनाह करे हजार।
४८१६) जिम्मेदारियाँ उस व्यक्ति की तरफ खिंची चली आती हैं जो उन्हें कंधे पर उठा सकता है।

सौन्दर्य का तर्क लाजबाब होता है।

सत्य से सत्य को सुन्दर से सुन्दर रूप देना ही कविता है। सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है।

ज्ञान गुरू

कुछ सीखो- उड़ता हुआ पंछी कह रहा है, मुझसे ऊँचा उड़ना सीखो। खिलता हुआ फूल कह रहा है, मुझसे महकना सीखो। कह रही है प्रकृति की हर मूर्त-अमूर्त दास्तानें हमको, इंसान होकर इंसान की तरह तुम जीना सीखो।

महावीर स्वामी का जीवन परिचय

अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा-पालन का सन्देश भारतीय संस्कृति की विश्व को अनमोल देन है। अहिंसा में बहुत बड़ी शक्ति है। इससे विश्व में सुख-शान्ति का साम्राज्य निर्माण हो सकता है। यह स्व-पर कल्याणकारी है। हर धर्म में इसे पहला स्थान प्राप्त है। कोई भी धर्म बचाने का ही सन्देश देता है, मारने का नहीं, अत: अहिंसा परमोधर्म: यह शाश्वत सत्य है। अहिंसा सब जीवों को सुख देने वाली है। इसके पालन से ही सब जीव सुखी हो सकते हैं, अत: इसका पालन हम सब का प्रथम कर्तव्य है।

जैन धर्म के २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी अहिंसा के मूर्तिमान प्रतीक थे। उनका जीवन त्याग और तपस्या से ओतप्रोत था। एक लँगोटी तक का परिग्रह नहीं था उन्हें। हिंसा, पशुबलि, जाति-पाँति के भेदभाव जिस युग में बढ़ गए, उसी युग में पैदा हुए महावीर और बुद्ध। दोनों ने इन चीजों के खिलाफ आवाज उठाई। दोनों ने अहिंसा का भरपूर विकास किया।

करीब ढाई हजार साल पुरानी बात है। ईसा से ५९९ वर्ष पहले वैशाली गणतंत्र के क्षत्रिय कुण्डलपुर में पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला के यहाँ तीसरी संतान के रूप में चैत्र शुक्ल तेरस को वर्द्धमान का जन्म हुआ। यह वर्द्धमान बाद में स्वामी महावीर बना। महावीर को वीर अतिवीर और सन्मति भी कहा जाता है। बिहार के मुजफ्फरपुर जिले का आज का जो बसाढ़ गाँव है वही उस समय का वैशाली था।

वर्द्धमान को लोग सज्जंस (श्रेयांस) भी कहते थे और जसस (यशस्वी) भी। वे ज्ञातृ वंश के थे। गोत्र था कश्यप। वर्द्धमान के बड़े भाई का नाम था नंदिवर्धन व बहन का नाम सुदर्शना था। वर्द्धमान का बचपन राजमहल में बीता। वे बड़े निर्भीक थे। आठ बरस के हुए, तो उन्हें पढ़ाने, शिक्षा देने, धनुष आदि चलाना सिखाने के लिए शिल्प शाला में भेजा गया।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि वर्द्धमान ने यशोदा से विवाह किया था। उनकी बेटी का नाम था अयोज्जा (अनवद्या)। जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय की मान्यता है कि वर्द्धमान का विवाह हुआ ही नहीं था। वे बाल ब्रह्मचारी थे।

राजकुमार वर्द्धमान के माता-पिता जैन धर्म के २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ, जो महावीर से २५० वर्ष पूर्वे हुए थे, के अनुयायी थे। वर्द्धमान महावीर ने चातुर्याम धर्म में ब्रह्मचर्य जोड़कर पंच महाव्रत रूपी धर्म चलाया। वर्द्धमान सबसे प्रेम का व्यवहार करते थे। उन्हें इस बात का अनुभव हो गया था कि इन्द्रियों का सुख, विषय-वासनाओं का सुख, दूसरों को दु:ख पहुँचा करके ही पाया जा सकता है।

महावीरजी की २८ वर्ष की उम्र में इनके माता-पिता का देहान्त हो गया। ज्येष्ठ बंधु नंदिवर्धन के अनुरोध पर वे दो बरस तक घर पर रहे। बाद में तीस बरस की उम्र में वर्द्धमान ने श्रामणी दीक्षा ली। वे समण बन गए। उनके शरीर पर परिग्रह के नाम पर एक लँगोटी भी नहीं रही। अधिकांश समय वे ध्यान में ही मग्न रहते। हाथ में ही भोजन कर लेते, गृहस्थों से कोई चीज नहीं माँगते थे। धीरे-धीरे उन्होंने पूर्ण आत्मसाधना प्राप्त कर ली। वर्द्धमान महावीर ने १२ साल तक मौन तपस्या की और तरह-तरह के कष्ट झेले। अन्त में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भगवान महावीर ने जनकल्याण के लिए उपदेश देना शुरू किया। अर्धमागधी भाषा में वे उपदेश करने लगे ताकि जनता उसे भलीभाँति समझ सके।

भगवान महावीर ने अपने प्रवचनों में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पर सबसे अधिक जोर दिया। त्याग और संयम, प्रेम और करुणा, शील और सदाचार ही उनके प्रवचनों का सार था। भगवान महावीर ने श्रमण और श्रमणी, श्रावक और श्राविका, सबको लेकर चतुर्विध संघ की स्थापना की। उन्होंने कहा- जो जिस अधिकार का हो, वह उसी वर्ग में आकर सम्यक्त्व पाने के लिए आगे बढ़े। जीवन का लक्ष्य है समता पाना। धीरे-धीरे संघ उन्नति करने लगा। देश के भिन्न-भिन्न भागों में घूमकर भगवान महावीर ने अपना पवित्र संदेश फैलाया।

भगवान महावीर ने ७२ वर्ष की अवस्था में ईसापूर्व ५२७ में पावापुरी (बिहार) में कार्तिक (आश्विन) कृष्ण अमावस्या को निर्वाण

प्राप्त किया। इनके निर्वाण दिवस पर घर-घर दीपक जलाकर दीपावली मनाई जाती है।

हमारा जीवन धन्य हो जाए यदि हम भगवान महावीर के इस छोटे से उपदेश का ही सच्चे मन से पालन करने लगे कि संसार के सभी छोटे-बड़े जीव हमारी ही तरह हैं, हमारी आत्मा का ही स्वरूप हैं।

महावीर स्वामी ने वैदिक मंत्रों और कर्मकाण्डों के स्थान पर सदाचारी जीवन पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार अच्छे कर्म करके मनुष्य जन्म-मरण के कष्ट से छुटकारा पा सकता है। शुद्ध आचरण के लिए महावीर स्वामी ने इन पांच बातों पर बल दिया-

१) सत्य- सदा सच बोलना चाहिए, २) अहिंसा- जीवों को मारना नहीं चाहिए, ३) अचौर्य- चोरी नहीं करनी चाहिए, ४) ब्रह्मचर्य- अपनी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए, ५) अपरिग्रह-धर्म सम्पत्ति का संग्रह नहीं करना चाहिए। महावीर स्वामी के पश्चात् जैन मत दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दो सम्प्रदायों में बंट गया।

स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद का जन्म दिवस १२ जनवरी के दिन सन् १८६३ ई. में इस पृथ्वी पर उन्होंने अवतरण लिया। अवतरण शब्द का इस्तेमाल इसलिए कर रहा हूं कि यह बात शास्त्रोक्त है कि वह सप्तऋषि मंडल के एक योगी थे और पूर्व जन्म की साधना को पूर्ण करनके के लिए ही पुन: अवतरित हुए थे। आज का दिन युवा शक्ति दिवस के रूप में भी मनाया जाता है। भारत की तरुणायी को जितना स्वामी जी ने उद्वेलित किया, उतना शायद ही किसी ने किया हो। स्वामी विवेकानंद द्वारा ११ सितम्बर, १८९३ को शिकागो की धर्म संसद में दिए गए अमृत संदेश की यह अंश गूंज रहा था। अमरीकावासी, मेरी बहनो और भाइयो, आज जितना मंगलमय स्वागत आपने हमारा किया है उसे प्रत्युत्तर में अपने हृदय की इस आनंद दायक अनुभूति को व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। मैं आपका आभार प्रकट करता हूं संन्यासियों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से। मैं आपका आभार प्रकट करता हूं विश्व के सभी धर्मों के जनक सनातन धर्म से। मैं आपका आभार व्यक्त करता हूं उन हिंदुओं की ओर से जो अनेको पंथों और मार्गों को मानने वाले हैं। यूं मुखरित हुए- मैं उस धर्म का प्रतिनिधित्व करता हूं जिसने विश्व को सहिष्णुता और सर्वकालिक अवधारणा का पाठ पढ़ाया। हम केवल सहिष्णुता पर ही विश्वास नहीं करते बल्कि हम इस बात को मानते हैं कि सारे मार्ग ही सत्य है। मुझे उस राष्ट्र के वासी होने का गर्व है, जिसने मुसीबत के समय और अत्याचारों से पीड़ित हर धर्म के शरणार्थियों को अपनी गोद में जगह दी है। मुझे इस बात का गर्व है कि इस्त्राइल से आए यहूदियों को दक्षिण भारत में उस समय शरण मिली जब वे रोमन अत्याचारों के द्वारा आक्रांत मारे-मारे फिर रहे थे। मुझे इस बात का गर्व है कि जरथुस्ट को मानने वाले इस राष्ट्र में आए और आज भी पुष्पित पल्लवित हो रहे हैं। मैं आपको शिवमहिम्मोस्त्रोत की वे पंक्तियां सुनाना चाहता हूं जो लाखों करोडों भारतवासी सदियों से उच्चारित करते हैं- जिस प्रकार विभिन्न नदियां, विभिन्न उद्गम स्थलों से निकल कर टेढ़े-मेढ़े रास्तों को लांघती एक विशाल समुद्र में समा जाती हैं ठीक उसी प्रकार विभिन्न पंथों और मार्गों के अनुयायी हर ओर से चल कर उस एक ही परमात्मा में विलीन हो जाते हैं जो शाश्वत और सनातन है। मैं उसी सनातन का प्रतिनिधि हूं। इकबाल के बारे में राष्ट्र में जितने भी पूर्वाग्रह हों, परंतु जब वह यह कहते हैं- यूनान ओ मिश्र ये मां, सब मिट गए जहां से, बाकी रहा है केवल नामोनिशां हमारा, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी, सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा। तो वह उसी कालजयी संस्कृति को इंगित करते हैं, जिस पर सदियों विदेशी आक्रांताओं के प्रहार होते रहे। किसने नहीं लूटा इस सोने की चिड़िया को। न जाने कितने चंगेज खान-नादिर शाह -अब्दाली और महमूद गजनवी आए, कभी शकों ने इस देश पर आक्रमण किया, कभी हुणों ने आक्रमण किया। कभी मुगलों के अत्याचार से यह धरती त्रस्त रही, पर हर बार कोई न कोई पुरू, कोई न कोई दाहिर दीवार बन कर खड़े हो गए। आततायियों को इस राष्ट्र में चंद्रगुप्त के शौर्य से वास्ता पड़ा, कभी शिवाजी की तलवार चमकी, कभी विक्रमादित्य का शौर्य सामने आया और कभी गुरु गोविंद सिंह तथा बन्दा बहादुर ने लुटेरों के विरोध में खडे हो सनातन मूल्यों की रक्षा की। भारत की संस्कृति पर जितने भी आक्रमण थे, वह भारत के उत्तरी भाग से हुए। कुछ काल तक अन्य स्थानों पर भी इनका असर हुआ, परंतु दक्षिण प्रांत तक यह आक्रांता नही पहुंच सके और दक्षिण ने हमारी मृत्युंजय संस्कृति के मूल्यों की सदा रक्षा की और इतने घातों और प्रत्याघातों को सहन करते जब हम जरा भी थके, दक्षिण की पुण्यभूमि से ही हमें अमृत संचार मिला।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, जो हमारे देश के प्रधान मन्त्री रहे, उन्होंने एक बड़ी सुन्दर बात लिखी है। भारत को जानना चाहते हो तो स्वामी विवेकानन्द को जानो। विवेकानन्दजी का अध्ययन करने से पूरी भारतीय संस्कृति का अध्ययन हो जाता है। जो भारत को जानना चाहे, उसे विवेकानन्दजी को जानना चाहिए। ऐसा जब पण्डितजी ने कहा तो उसका विशेष महत्त्व है। दूसरी एक बात, जो बड़ी अच्छी लगी। हमारे देश में जो अनेक प्रकार के दिन मनाये जाते हैं, जैसे बालदिन मनाया जाता है, शिक्षकदिन मनाया जाता है। इस प्रकार के दिनों में युवा दिन मनाने के लिए हमारे और एक प्रधानमन्त्री स्व. राजीव गांधी ने स्वामी विवेकानन्दजी के जयन्ती का चयन किया। आप लोगों को पता है, कि हमारे देश का युवा दिन कौनसा है ? १२ जनवरी, यह हमारे देश में युवा दिन के रूप में मनाया जाता है और १२ जनवरी, यह स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म दिन है। जिस प्रकार इस शताब्दि में मकर संक्रान्ति १४ जनवरी को आती है। उसी प्रकार पिछली शताब्दी में १२ जनवरी को आती थी। स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म मकर संक्रान्ति के दिन हुआ। स्व. राजीव गांधी ने यह जो कार्य किया वह हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और बड़ा अभिनन्दनीय कार्य है। अर्थात उनके जन्मदिन को युवा दिन के रूप में मनाया जायें, यह बात बाद में हुई। १० वर्ष पहले हमनें स्वामी विवेकानन्दजी को हमारे आदर्श के रूप में स्वीकार किया।

हम अपने जीवन में व्यक्ति पूजक नहीं रहे हैं, और न ही किसी को होने की भी आवश्यकता है। हम लोगों को अपने जीवन में सिद्धान्त की आराधना, सिद्धान्त की पूजा करनी चाहिए। और वे सिद्धान्त किसके जीवन में हमे दिखते है इसको सर्वदा जाँचते रहना चाहिए। स्वामी विवेकानन्दजी को हम लोग जब स्वीकार करते। स्वामी विवेकानन्दजी का स्वीकार हम व्यक्ति के रूप में नही अपितु एक विचार के रूप में करते हैं। अत्यन्त महान् सद्गुणों को हमने उनमें साकार देखा।

कौन-कौन से गुण हम स्वामी विवेकानन्दजी में देखते हैं ? सबसे पहली बात है, हमारी भारतीय संस्कृति का प्राण है आध्यात्मिकता। स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन में आध्यात्मिकता का प्राचुर्य है। पूरी तरह वे एक आध्यात्मिक जीवन है, आध्यात्मिक ज्वाला है। लेकिन इस आध्यात्मिकता के साथ-साथ और एक बात जुड़ी हुई है। इस प्रकार की आध्यात्मिकता और भी महापुरुषों में मिलती है। लेकिन स्वामी विवेकानन्दजी का जीवन जिस प्रकार एक ओर आध्यात्मिकता से भरा हुआ है, उसी प्रकार दूसरी ओर वह राष्ट्रभक्ति से भरा हुआ है। वे जब भारत के बारे में बोलते हैं, तो उनका आवेश अलग हो जाता है। ईश्वर की भक्ति में पूर्ण निष्ठावान, आध्यात्मिकता से भरपूर, लेकिन भारतमाता उनकी आराध्या है और इसलिए विदेशों से लौटने के पश्चात उन्होंने जो भाषण दियें हैं, उन भाषणों की पुस्तिका का नाम है From Colombo to America विवेकानन्दजी लौटकर आये और उन्होंने रामेश्वर में अपना पहला भाषण दिया और वहाँ से लेकर अलमोड़ा तक, कश्मीर तक, उन्होंने जो भाषण दिये हैं, उन सभी व्याख्यानों में, विवेकानन्दजी ने एक बात स्थान-स्थान पर कहीं- कुछ वर्षों के लिए भूल जाओ उन देवताओं को जिनको हमने देखा नहीं। मेरे देश के एक चमार में, मेरे देश के एक किसान में, मेरे देश के एक भूखे-नंगे भिखारी में पहले परमात्मा को देखना सीखो। भारतवासियों की सेवा करों और भारतमाता को अपना आराध्य बनाओ। यह राष्ट्रवाद की हुंकार है। यह देशसेवा का आवाहन है।

स्वामी विवेकानन्दजी की यह विशेषता है कि उन्होंने कभी भी केवल आध्यात्मिकता का चोला नहीं पहना। आध्यात्मिकता के साथ राष्ट्रवाद को, राष्ट्रीयता को, देशभक्ति को पूरी तरह जोड़ दिया। जब पहली बार स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिका से लौटकर आये तो उन्होंने अमेरिका का बड़ा सुन्दर वर्णन किया। मैने क्या-क्या देखा। कितने बड़े देश, कैसी समृद्धियाँ। दूसरी बार वे वहाँ से आये तो उन्होंने कहा, मैंने वह भी देखा और मैंने यह भी देखा कि इन देशों का भविष्य संकट में है। इसलिए मैं भारतीय महिलाओं को यह कहूँगा कि विदेश की ओर कभी मत देखियेगा। आपके आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती है। इस बात को भूलियेगा नहीं। विवेकानन्दजी में यह जो हुंकार है, यह हुंकार आपको अन्य लोगों में नहीं मिलेगी। और इसलिए आध्यात्मिकता के साथ देशभक्ति को जोड़ना, यह उनका एक चमत्कार है। स्वामी विवेकानन्दजी प्राचीन है या आधुनिक है ? वे प्राचीन भी हैं, क्योंकि समस्त प्राचीन सिद्धान्तो को उन्होंने स्वीकार किया है। वे जब बात करते हैं तो पुरुषार्थ की बात करते हैं। वे जब बात करते हैं तो वेदों की बात करते हैं। विवेकानन्दजीने जीवन के अन्तिम दिन, ४ जुलाई १९०२ को एक बात कही कि मैं चाहता हूँ कि एक सुन्दर वेदविद्यालय की स्थापना हो। उनकी निष्ठा हमारी प्राचीन आचार-विचार की प्रणाली में है। लेकिन उन्होंने इस बात का सर्वदा ध्यान रखा कि, ये मेरे प्राचीन शास्त्र, यह मेरी प्राचीनता, आधुनिकता के जरा भी विरुद्ध न हो। और इस कारण वे सर्वदा आधुनिकतम बने रहें। वे आधुनिक भी हैं और वे प्राचीन भी

हैं। बंगाल में जब उस समय अकाल पड़ा था तो उन्होंने कहा- हमने मठ के लिए जितना पैसा इकट्ठा किया है, वह पूरा का पूरा पैसा अकालग्रस्त लोगों की सेवा में समाप्त कर दो क्योंकि मुझे अकालग्रस्त लोगों को देखते हुए, उनकी कोई सेवा न करते हुए अपना मठ बनाना स्वीकार नहीं। ये विचार हम लोगों को उनके साहित्य से प्राप्त होते हैं। उनके जीवन में झंझावात की तरह यें विचार उमड़ते-घुमड़ते रहे। एक और आध्यात्मिकता के साथ राष्ट्रीयता का समन्वय उन्होंने दिखाया। दूसरी ओर प्राचीनता के साथ आधुनिकता का समन्वय उन्होंने दिखाया। जब प्राचीनता की बात करते तो आधुनिक लोग उनका विरोध करते थे। जब वे आधुनिकता की बात करते तो पुराने पण्डित उनका विरोध करते थे। अब ऐसे महापुरुषों को संघर्ष करना ही पड़ता है, उन्होंने वह किया और दोनों बातों का समन्वय अपनें जीवन में साकार करने का प्रयास किया। विचारधारा की दृष्टि से वे पश्चिम के हैं कि पूरब के हैं ? स्वामी विवेकानन्दजी ने एक बात कही। जो बात जहां पर अच्छी लगती है उसको स्वीकार करो। यह मेरे देश का है कि बाहर का यह विचार किये बिना स्वीकार करों। हमारे देश में उसको लाओ। क्योंकि उसमें देश भी भलाई है।

वेदों में भी यही बात कही- विश्वमानुषा:। पूरे विश्व में नागरिक बन जाऊँ और विश्व के उत्तमोत्तम विचारों को मैं स्वीकार करूँ, यह बात हमें विवेकानन्दजी में दिखाई देती है। आपने वेदका एक मन्त्र सुना होगा- आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:।

यह बात नहीं लाऊँ कि यह यहाँ का है कि वहाँ का है ? यदि वह अच्छा है, प्रगति करनेवाला है, मेरे देश की भलाई करनेवाला है, तो हमें उसको लाना ही होगा। परन्तु हमने इस दृष्टिकोण को समझा नहीं। हम विदेश से वस्तुएँ लाते रहते हैं। साडी लायी, गाड़ी लायी, परफ्यूम लाया, उलूलजलूल चीजें लाते रहते हैं। जापान का आदमी आयात करता है तो एक मशिन वहाँ से लाता है। किसलिए लाता है? मशिन को आयात करने की परम्परा अपने देश में स्थापित करने के लिए नहीं लाता। लेकिन मैं भी अपने देश में उस प्रकार की एक मशीन बनाऊँगा ताकि मेरे देशवासियों को उस प्रकार की मशीन भविष्य में वहाँ से लानी ही नहीं पड़े। वे कल्पनाएँ आयात करते हैं। तन्त्रज्ञान लेकर आते हैं। इस प्रकार, हमारे देश में हम अच्छे विचारों को स्वीकार करके, उन विचार को इतना अपना लें कि उन विचारों के कारण हमारे देश की प्रगति होने लग जाये। ये विचार हमें उस महात्मा ने दिये। यदि इस प्रकार का आयात हम लोग करते, तो हम भी जापान की तरह प्रगति कर लेते। हमने यह किया नहीं। छोटी-छोटी बातों के लिए हम विदेशों पर क्यों निर्भर होते हैं, पता नहीं। इसलिए अन्यों पर निर्भर रहने का भाव हम में आया और हमने स्वयम् कुछ करके दिखाने की हिम्मत नहीं रखी। हमारे भीतर पूरे संसार का एकत्व हो, लेकिन पूरे संसार का एकत्व भी मेरी भारतमाता की सेवा के लिए हो, मेरे समाज की सेवा के लिए हो, यह भाव जागृत होना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्दजी में हम लोग एक बात और देखते हैं। साधना की सभी पद्धतियों का समन्वय। आप उनके ज्ञानयोग पर प्रवचन सुन सकते हैं, कर्मयोग पर सुन सकते हैं, भक्तियोग पर सुन सकते हैं, राजयोग पर सुन सकते हैं। इन सभी प्रवचनों पर पुस्तकें उपलब्ध है। उन्होंने केवल किसी एक मार्ग का आग्रह कभी नहीं रखा। विवेकानन्दजी ने यह बात साफ-साफ शब्दों में कह दी कि सभी के भीतर परमात्मा है, उसको जागृत करना है।

ये सभी के सभी विचार सकारात्मक हैं। विवेकानन्दजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने कभी भी हम लोगों को नकारात्मक चिन्तन नहीं दिया। उन्होंने जहाँ-जहाँ हमारे देश में नकारात्मक विचार देखे उन पर करारा प्रहार किया। उन्होंने कहा, यह क्या धर्म है? अस्पृश्यता ही धर्म हो गया ? बस मुझे छुओं नहीं, केवल यही धर्म हो गया ? बाकी कुछ भी करों, कितनी भी चोरी करो, कितना भी भ्रष्टाचार करो; बस पूजा के समय, मुझे छुओं नहीं, मुझे स्पर्श नहीं करो, यह धर्म है क्या ? इस प्रकार की आलोचना करते समय वे जरा भी हिचकिचाते नहीं थे। लेकिन प्रहार करते समय भी उन्होंने कहा कि ये प्रहार मैं इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि मुझे देशवासियों की श्रद्धा को तोड़ना है। उनको तो मुझे सुधारना है, ठीक करना हैं। ऐसे समस्त अच्छे-अच्छे विचारों का एकत्रित रूप हमें उनमें मिलता है, और इन सिद्धान्तों के कारण हम विवेकानन्दजी को एक प्रतीक के रूप में स्वीकार करते हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी हमारे लिए एक व्यक्ति नहीं है, एक विचारों का साकार स्वरूप है। इसलिए हमने उनको एक साकार विग्रह के रूप में स्वीकार किया है।

भगवान् श्रीराम केवल व्यक्ति हैं क्या ? भगवान् श्रीराम सद्गुणों के प्रतीक हैं। संसार के समस्त गुणों को एकत्रित कीजिएगा और उनकी सूचि बनाकर फिर भगवान् के जीवन को जांचियेगा। आश्चर्य होगा आपको, सभी के सभी गुणों की पराकाष्ठा भगवान् श्रीराम

में हमें मिलती हैं। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा, धर्मशास्त्र की पुस्तकें पढ़ने की क्या आवश्यकता है ? राम के समान जीवन जीओं, धर्म तुम्हारे जीवन में अपने आप आ जाएगा।

राम धर्म के साकार रूप है। उसी प्रकार, हमें लगता है कि भारत के उत्थान के साकार रूप स्वामी विवेकानन्दजी हैं। इसलिए भारतीय उत्थान के विचारों के साकार रूप में हम लोगों ने विवेकानन्दजी की प्रतिमा को अपने सामने रखा है। किसी बाबा के रूप में नहीं, कि सी स्वामी के रूप में नहीं। स्वामी विवेकानन्दजी का दिव्य जीवन एक व्यक्तित्व के रूप में नहीं किन्तु एक विचार और आदर्श के रूप में हम अपने सामने रखते हैं।

आचार्य किशोरजी व्यास

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दूत्व को सही अर्थों में परिभाषित किया। उनकी प्रखर वाणी ने हमेशा समाज को नई दिशा दी। स्वामी विवेकानन्द समाजोन्मुखी सन्यासी थे। उन्होने हिन्दू धर्म से उपर उठकर धर्म को समाजोन्मुखी बनाया और उसे शिक्षा तथा विज्ञान से जोडा।

महापुरुषों की प्रेरक जीवनियाँ- कुछ ऐसी थी उनकी बानी, जग में कोई नहीं था सानी, ज्ञान शौर्य इस तेज पुंज पर, गर्व करे हर हिंदुस्तानी।

अखिल मानव की कल्याण कामना से, महान आदर्श को अपने जीवन में मूर्त रूप बनाकर अवतीर्ण होनेवाले युग पुरुष स्वामी विवेकानंद के बचपन का नाम नरेन्द्र नाम था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त था। उनके दादा दुर्गाचरण दत्त ने युवावस्था में ही वीतराग होकर संन्यास ग्रहण कर लिया था। विश्वनाथ दत्त एक प्रतिभाशाली वकील होने के साथ ही साहित्य और दर्शन के गहरे अध्येता थे। नरेन्द्र दत्त की माता भुवनेश्वरी देवी एक प्राचीन- पंथी हिंदू महिला थी। उनके तेजस्वी चरित्र का नरेन्द्र पर गहरा प्रभाव पडा था।

नरेन्द्र दत्त बचपन में बडे ही नटखट एवं चंचल थे। उनके विचित्र आचरण से कभी-कभी घर के सभी लोग परेशान हो जाते। कुछ बड़ा होने पर उन्हें ध्यान लगाने का अभ्यास स्वत: होने लगा। ध्यानावस्था में दोनों भौहों के मध्य एक गोलाकार पिंड का दर्शन करने लगे थे। पाँच वर्ष की आयु होने पर उनका अक्षरारंभ संस्कार संपन्न हुआ और उन्हें मेट्रीपोलिटन इंस्टीट्यूट में प्रवेश दिलाया गया। चौदह वर्ष की आयु में उनको पेट की बीमारी हुई अत: जलवायु परिवर्तन के लिए वे १८७७ ई.में रायपुर (म.प्र.) में आए और लगभग दो वर्ष यहाँ रहे। रायपुर में स्कूल में स्थान न था अत: पिता विश्वनाथ ने उन्हें घर पर ही शिक्षा दी। दो वर्ष रायपुर प्रवास के उपरान्त नरेन्द्र ने कलकत्ता आकर प्रथम श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। १८७९ ई. में नरेन्द्रनाथ ने प्रवेशिका परीक्षा पास कर कालेज में प्रवेश लिया। १८८१ में सुरेन्द्र नाथ मिश्र के घर पर नरेंद्र नाथ पहली बार रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आए। इस युवक में अपने मनोवांछित शिष्य को देखकर ही रामकृष्ण उसके भविष्य के विषय में सब कुछ जान गए। उन्होंने नरेन्द्र नाथ से दक्षिणेश्वर आने का अनुरोध किया।

प्रारंभ में नरेन्द्र रामकृष्ण को ईश्वरवादी पुरुष के रूप में मानने को तैयार न थे पर धीरे-धीरे उनका विश्वास जमता गया। रामकृष्ण जी समझ गए थे कि नरेन्द्र नाथ की देह में एक विशुद्ध चित्त साधक की आत्मा निवास कर रही है अत: उन्होंने इस युवक पर अपने एहेतुक प्रेम की अजस्र वर्षा कर, उन्हें उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति के पथ में परिचालित कर लिया। ई. १८८४ में अचानक ही इनके पिता का देहावसान हो गया। तभी १८८५ ई.में रामकृष्ण गले के कैंसर रोग से पीडित हुए। नरेन्द्र नाथ ने अनन्य चित्त से उनकी सेवा की। इससे प्रसन्न होकर रामकृष्ण ने उन्हें संन्यास की दीक्षा दी। संन्यास ग्रहण के पश्चात् नरेन्द्र नाथ को अब स्वामी विवेकानंद का नया नाम मिला। गुरू ने शक्तिपात कर अपनी संपूर्ण शक्तियाँ अपने नवसंन्यासी शिष्य को सौंप दी ताकि वह विश्व कल्याण कर भारत का नाम गौरवान्वित कर सके। १८८६ ई. की १५ अगस्त मध्य रात्रि अर्थात १६ अगस्त को श्री रामकृष्ण देव ने महासमाधि ले ली।

रामकृष्ण परमहंस ने अपनी समस्त साधना का फल अपने योग्य शिष्य को देकर महासमाधि ले ली। स्वामी विवेकानंद ने गुरु की इच्छा तो पूरी की ही, साथ ही विश्व को यह स्पष्ट अहसास कराया कि भारत ही जगद्गुरु का वास्तविक हकदार है। ११ सितंबर सन् १८९३ का दिन भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों मे अंकित है। इसी दिन अमेरिका के शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म परिषद मे भारतीय प्रतिनिधि के रूप मे स्वामीजी ने अपने अलौकिक तत्वज्ञान से पाश्चात्य जगत को चकित कर दिया। स्वामीजी ने १८९६ तक अमेरिका मे प्रवास किया। इस दौरान अनेक अमेरिकी विद्वानों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

राष्ट्रीयता, मानवता व आध्यात्मिकता जैसे गुणों का अद्भुत सामंजस्य था स्वामी विवेकानंद मे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इनके बचपन का नाम नरेंद्र दत्त था। इनका जन्म १२ जनवरी १८६३ ई. को हुआ था। बचपन से ही इनमे आध्यात्मिक पिपासा थी। जिज्ञासु

और सत्यान्वेषी होने के कारण नरेन्द्र ने धर्मशास्त्रों व दर्शनों का युवावस्था मे खूब अध्ययन किया। परंतु उनकी जिज्ञासा तब तक शांत न हो पाई जब तक महात्मा रामकृष्ण परमहंस से उनकी मुलाकात न हुई। परमहंस जी के दर्शन होते ही नरेद्र पर अद्‌भुत प्रभाव पड़ा। उस दिव्य महापुरुष के स्पर्श ने नरेंद्र दत्त को स्वामी विवेकानंद बना दिया। पच्चीस वर्ष की अवस्था मे संन्यास ग्रहण कर नरेंद्र दत्त स्वामी विवेकानंद बन गए। पैदल ही उन्होने संपूर्ण भारत की यात्रा की।

अमेरिका मे रामकृष्ण मिशन की अनेक शाखाएं स्थापित हुई। स्वामीजी की राष्ट्रभक्ति अद्वितीय थी। भारत की गरीबी से वे बराबर व्यथित रहा करते थे। मानवता के तो वे अनन्य पुजारी ही थे। वे कहा करते थे कि मै सच्चा महात्मा उसे ही कहूंगा, जिसका हृदय गरीबों के लिए तड़पता हो। ४ जुलाई, १९०२ को इस महान् विभूति ने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। स्वामीजी की गौरव गाथा भारत ही नही विदेशों मे भी खूब गायी जाती है।

कुछ ऐसी थी उनकी बानी, जग में कोई नहीं था सानी, ज्ञान शौर्य इस तेज पुंज पर, गर्व करे हर हिंदुस्तानी।

अपने सभी शिष्यों की देख-रेख करने तथा उनको ब्रह्मरूप की ओर प्रेरित करने का दायित्व रामकृष्ण परमहंस विवेकानंद को ही सौंप गए थे। सभी गुरू भाइयों के साथ वे वराहनगर मठ में रहने लगे।

१८८८ के पहले भाग में विवेकानंद तीर्थाटन की इच्छा से पहली बार वराहनगर मठ से बाहर निकले। काशी में उनको अनुभूति हुई कि संसार में धर्म प्रचा कर लोक कल्याण के लिए सभी गुरू भाईयों को प्रचार कार्य के लिए यात्राएँ करनी चाहिए। वे स्वयं भी अनेक नगरों, ग्रामों तथा तीर्थों का भ्रमण करते हुए एक दिन कन्याकुमारी पहुँचे। यहाँ श्री मंदिर के पास परस्तरासन में बैठकर उन्हें भारतमाता के भावरूप में दर्शन हुए और उस दिन से उन्होंने भारतमाता के पुरातन गौरव को पुनर्प्रतिष्ठित करने का संकल्प लिया। कुछ दिनों बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो नगर में विराट धर्मसभा का आयोजन हुआ। हिंदू धर्म के प्रतिनिधि के रूप में माँ शारदा देवी की आज्ञा से स्वामी जी ने ३१ मई १८९३ को अमेरिका के लिए प्रस्थान किया।

जहाज यात्रा में अमेरिका की एक वृद्ध महिला उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने ही अमेरिका में उने लिए निवास एवं भोजन की व्यवस्था की। ११ सितंबर १८९३ ई. को स्वामीजी ने इस विराट धर्मसभा में हिंदूत्व की महानता को प्रतिस्थापित कर पूरे विश्व को चौंका दिया। उन्होंने उद्‌घोष किया कि मुझको धर्मावलंबी होने का गौरव है जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सब धर्मों का मान्यता प्रदान करने की शिक्षा दी है। उनके अपनत्व पूर्ण व्याख्यानों से प्रभावित होकर पूरा अमेरिका ही उनकी प्रशंसा से मुखरित हो उठा। शिकागो से स्वामी जी न्यूयार्क आए। यहाँ उन्होंने ज्ञानयोग और राजयोग पर अनेक भाषण दिए।

स्वामीजी ने विदेशों में हिंदू धर्म की विजय पताका फहराने के बाद भारतभूमि में पदार्पण किया। ४ जुलाई १९०२ को इस महान तपस्वी ने अपनी इहलीला समाप्त की। स्वामी विवेकानंद का जीवन प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय है। उनके द्वारा दिए गए व्याख्यान अनेक पुस्तकों के रूप में संग्रहीत हैं जिनमें प्रमुख ग्रंथ है राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग।

संन्यास के उच्चतम आदर्श का निर्वाह करते हुए इस प्रखर राष्ट्रभक्त का अविर्भाव १९ वीं शताब्दी की एक अभूतपूर्व घटना है। मृतप्राय हिंदू समाज को उन्होंने नई संजीवनी देकर पुनर्जीवन प्रदान किया।

१२ जनवरी सन् १८६३ को कलकत्ता में जन्में स्वामी विवेकानंद के बचपन का नाम था नरेन्द्रनाथ। पिता श्रीराम विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के एक विद्वान वकील थे तो माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी एक आदर्श भारतीय महिला। बचपन में नरेन्द्र बहुत ही चुलबुले और कुछ-कुछ उत्पाती थें किन्तु आध्यात्मिकता के प्रति एक विशेष आकर्षण भी था। मां से समय समय पर सुनी गयी रामायण और महाभारत की कहानियों ने उनके मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ी। हृदय वत्सलता, साधुसंतों के प्रति आकर्षण, पैनी तर्क बुद्धि आकाट्य दलीलों की अपेक्षा करनेवाले परम ओजस्बी नवयुवक नरेंन्द्रनाथ अपने साथियों के निर्द्वन्द नेता थे। वह सन् १८८१ था जब नरेंद्र ने अपने फ्रोफेसर विलियम हेस्टी से प्रेरणा पाकर ईश्वरीय अवतरण स्वामी रामकृष्ण का प्रथम साक्षात्कार किया। नरेन्द्र ने उनसे पूछा- महानुभाव क्या आपने ईश्वर को देखा है ? श्री रामकृष्ण ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। हां, ठीक ऐसे ही जैसे तुम्हे देख रहा हूँ। नरेंद्रनाथ की सारी तर्क बुद्धि सारा संशय स्वाहा हो गया और यहीं से शिष्य की शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। १८८६ ईस्वी में श्री रामकृष्ण देवकी महासमाधि के बाद नरेंन्द्रनाथ के दृष्टिकोण में एक जबरदस्त परिवर्तन आया और वे समय-समय पर भारत भ्रमण के लिए अकेले ही

परिव्राजक के रूप में विभिन्न नामों से मठ से बाहर भी जाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी स्वमुक्ति की स्वाभाविक इच्छा विलुप्त हो गयी और उसकी जगह जन-जीवन-निर्माण की इच्छा बलवती हो उठी। स्वामी श्री रामकृष्ण परमहंस की भी तो यही इच्छा थी।

शिकागो के धर्म सम्मेलन में लगभग सात हजार श्रोताओं से भरे आर्ट इन्स्टिट्यूट के भव्य हाल में विवेकानंद का प्रथम सम्बोधन - अमेरिका निवासी भाइयों एवं बहनों ने सभी श्रोताओं के दिलों को तरंगित कर गया। पूरे दो मिनट तक तालियों की तुमुल बौछार होती रही और सभी श्रोता एवं वक्ता न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत अपनी जगहों पर इस अनाम संत के अभ्यनार्थ खडे हो गये। स्वामीजी के इन दो सरल शब्दों ने वहां के समाचार पत्रों ने उन्हें इस धर्म सम्मेलन का सर्वश्रेष्ठ एवं महानतम् व्यक्ति सिद्ध कर दिया। कल तक जो कमण्डलु लिए गेरूआ वस्त्रधारी एक सामान्य साधु थे वे आज सर्वोपरि हुए। अपने उसी यात्रा प्रवास में स्वामीजी ने विश्व विख्यात दार्शनिक मैक्समूलर से भी मुलाकात की।

स्वदेश वापस आने के पश्चात संपूर्ण भारत में विवेकानंद के स्वागतों और व्याख्यानों की एक श्रृंखला ही शुरू हो गयी। स्वामीजी का एक मात्र लक्ष्य रह गया भारत को विश्वगुरू के पद पर आसीन करना। ऐसा तभी संभव था जब इस देश की जनता धर्म के मर्म को समझे और उसे अपने जीवन में आत्मसात करे। श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना में उनका मूल उद्देश्य था सेवा का। ४ जुलाई सन् १९०२ की शाम को एक घंटा ध्यानावस्था में रहने के पश्चात स्वामी विवेकानंद ने दो गहरी सासें लीं और चिरशांति में लीन हो गये। स्वामी विवेकानंद का पार्थिव शरीर चला गया किंतु उनकी चिर अमरता का आश्वासन दिलानेवाले उनके शब्द स्थायी और चिरव्याप्त है। उन्होंने लंदन में कहा था- संभावत: मैं अपने इस शरीर से जल्दी ही बाहर निकल जाऊं और इसे जीर्णवस्त्र की भांति उतार फेंकू, किंतु फिर भी मैं कार्य करते रहने से रूकूंगा नहीं। मानव समाज में मैं तब तक सर्वत्र प्रेरणा प्रदान करता रहूंगा जब तक कि संसार यह भाव आत्मसात न कर ले कि वह ईश्वर के साथ एक है।

स्वामीजी बचपन से ही मेधावी थे। उनकी स्मरण शक्ति अलौकिक थी और वे अध्ययन में विलक्षण थे। विचारशील युवक नरेन्द्रनाथ ईश्वर की खोज में जगह-जगह भटकते रहे किंतु उन्हें कोई उचित समाधान नहीं मिला। इसी खोज-बीन में उनकी भेंट परमहंस रामकृष्ण देव से हुई। रामकृष्ण ने नरेन्द्र को मां काली के दर्शन कराए। नरेन्द्र, रामकृष्ण जी के शिष्य बन गए और विवेकानन्द के रूप में विश्वविख्यात हुए।

१५ अगस्त, १८८६ को परमहंस रामकृष्ण द्वारा समाधि लेने के बाद विवेकानंद पर उनके सौंपे गए कार्यों को पूरा करने का गुरुतर भार आ पड़ा था। मात्र २३ वर्ष की अल्पायु में स्वामीजी ने गृहत्याग करके धर्म की पताका विश्व में चारों ओर फहराने का लक्ष्य निर्धारित किया। स्वामीजी ने एक मठ स्थापित किया जो रामकृष्ण मठ कहलाया। फिर स्वामीजी हिमालय से कन्याकुमारी तक पैदल यात्रा की। यात्रा के दौरान जन हिताय कई योजनाएं बनाईं और कार्यान्वित की।

सितम्बर १८९३ ई. में स्वामीजी ने अमेरिका में, सर्व धर्म सम्मेलन में अपने ओजस्वी व सारगर्भित भाषण से सबको आश्चर्यचकित कर दिया था। वहां उनके बहुत से अनुयायी बन गए थे। वे चार वर्ष तक अमेरिका में रहे। १८९७ ई. में भारत लौटने पर स्वामीजी का अभूतपूर्व स्वागत किया गया। स्वामीजी ने रामकृष्ण मठ के अलावा रामकृष्ण मिशन की भी स्थापना की। स्वामीजी के प्रवचन और भाषण आज भी विश्व समुदाय में बल, पराक्रम और साहस का शंखनाद करते हैं। स्वामीजी का कथन- उठो। जागो। और जब तक ध्येय की प्राप्ति न हो, रुको मत। हम सभी के लिए प्रेरणा स्रोत है।

महात्मा गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध का जन्म ईसा से लगभग ५६३ वर्ष पूर्व कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी नामक स्थान पर वैशाख पूर्णिमा के दिन एक वन में हुआ था। महात्मा बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोधन था जो कपिलवस्तु के शाकवंशीय राजा थे। इनकी दो रानियां थीं। पहली का नाम मायावती था तथा दूसरी का प्रजापित गौतमी था।

रानी मायावती का स्वर्गवास बालक के जन्म के ७ दिन बाद ही हो गया था, जिससे बालक का पालन-पोषण उनकी विमाता गौतमी ने किया था। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। इनके गौत्र का नाम गौतम था जिससे आगे चलकर सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के नाम से विश्वविख्यात हुए।

HHH(५१५)HHH

सिद्धार्थ के जन्म के समय राज्य ज्योतिषी ने यह भविष्यवाणी की थी कि यह बालक या तो महान त्यागी, तपस्वी, योगी बनेगा या चक्रवर्ती सम्राट बनकर राजसुख भोगेगा, किंतु भविष्य के गर्भ में तो कुछ और ही लिखा था और सिद्धार्थ के ज्ञान से संपूर्ण जगत को लाभान्वित होना था। अतएव उस बालक को सांसारिक भोगविलास से विरक्ति होनी ही थी।

सिद्धार्थ ने ज्ञान की खोज के लिए तपस्या का कठोर मार्ग भी अपनाया किंतु उन्होंने पाया कि शरीर को तप द्वारा कमजोर बनाना उचित नहीं है अत:बिहार में गया नगर के पास एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न होकर बैठ गये जहां पर उन्हें सत्य का ज्ञान हुआ और उन्हें परम शांति की अनुभूति हुई। यह दिवस वैशाख पूर्णिमा का दिन था जब उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसे संबोधि (आत्मज्ञान) की प्राप्ति अथवा महाप्रबोधन कहते हैं। इस परम ज्ञान या बोध की प्राप्ति होने पर सिद्धार्थ बुद्ध या प्रबुद्ध कहलाए।

महात्मा बुद्ध ने अपने प्रज्ञारूपी अमृत रस का पान संपूर्ण मानव को कराने के उद्देश्य से अपने आपको प्रस्तुत किया और अपने मत का प्रचार करने के लिए, दुखी मानवता की भलाई के लिए, समाज से पंडितों का आडम्बर दूर करने के लिए उन्होंने ४५ वर्षों तक स्थान-स्थान पर भ्रमणकर अपने उपदेशों और संदेशों को पहुंचाया। महात्मा बुद्ध का अनुभव था कि शांति तो उनके मन में ही विद्यमान है बाहर नहीं।

महात्मा बुद्ध सर्वप्रथम काशी गये और सारनाथ में उन्होंने प्रथम धर्म उपदेश दिया। वहां उन्होंने पांच व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाया। इन शिष्यों को पांच गुरुजन कहते हैं। इन शिष्यों को लेकर महात्मा बुद्ध स्थान-स्थान पर उपदेश देते हुए घूमने लगे।

बौद्ध धर्म मानवों में कोई भेद नहीं मानता। ऊंच, नीच, गोरा, काला, अमीर, गरीब सभी समान हैं अत: गौतम बुद्ध समता के महान उपासक थे। ये मैत्री भाव, करुणा, दया के समर्थक थे और उनका उपदेश भी था कि सभी जीवों पर दया करो, प्रेम करो। उन्होंने मैत्री भाव रखने का उपदेश जन-जन तक पहुंचाया। गौतम बुद्ध के तेजस्वी व्यक्तित्व से अंगुलिमाल जैसा डाकू भी भगवान बुद्ध की शरण में आकर बौद्ध भिक्षु बन गया था तथा वैशाली की नगर वधू आम्रपाली भी गौतम की शिष्या बन गई थी।

बौद्ध धर्म का प्रचार व प्रसार इनकी सादगी, सरलता, कर्मकांड व जातिप्रथा का विरोध, राज्य संरक्षण और स्थानीय भाषाओं के प्रयोग से भारत और विदेशों में तीव्र गति से हुआ। सम्राट अशोक, हर्ष और कनिष्क आदि शासकों ने बौद्ध धर्म को फैलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। महात्मा बुद्ध का कुशीनगर (बलिया), सिद्धार्थनगर, जनपद उत्तरप्रदेश में अस्सी वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हुआ था जिसे महापरिनिर्वाण कहा जाता है। यह दिवस भी वैशाख पूर्णिमा थी।

बौद्ध अनुयायियों के लिए पवित्र तथा महत्वपूर्ण दिवस वैशाख पूर्णिमा है जिसे भारत तथा विदेशों में रहनेवाले बौद्ध अनुयायी बुद्ध पूर्णिमा या बुद्ध जयंती के नाम से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक मनाते हैं। महात्मा गौतम बुद्ध का वैशाख पूर्णिमा के दिन जन्म हुआ और वैशाख पूर्णिमा के दिन ज्ञान प्राप्त हुआ तथा इसी दिन महापरिनिर्वाण की प्राप्ति हुई थी।

भगवान बुद्ध ने उनतीसवें वर्ष की आयु में विलासी राजवैभव का त्याग किया सत्य की खोज के लिए। उनके इस गृहत्याग को महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है। लगातार छह वर्ष उन्होंने संन्यस्त जीवन बिताया। उस समय दो ब्राह्मण आचार्यों से उन्होंने अध्ययन किया किंतु शांति नही मिली उसके बाद गहन जंगल में शरीर को क्लेश देकर कठोर तपश्चर्या की फिर भी उन्हें सत्य की प्राप्ति नहीं हुई। उसके बाद उन्होंने तपस्वी जीवन छोड़ा, शारीरिक कष्ट बंद किए और निरंजन नदी में स्नान कर बोध गया में पीपल के वृक्ष के नीचे घास के आसन पर बैठे। वहीं सत्य की उन्हें प्राप्ति हुई। ब्रह्मज्ञान से उनका अंत:करण प्रकाशित हुआ और एक महान शांति उन्हें मिली। वे बुद्ध हो गए। उन्हें वह मिल गया जो वे खोज रहे थे। तबसे लोग उन्हें बुद्ध या तथागत कहने लगे। बाद में पैंतालिस वर्ष के शेष जीवन में उन्होंने धर्मोपदेश का महान कार्य किया। भगवान बुद्धका जीवन भारत वर्ष के इतिहास में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल में भारत में और आधुनिक काल में भारत के बाहर भगवान बुद्धका प्रभाव लक्षणीय है। सनातन धर्म में उन्हें भगवान महाविष्धणुका नवम अवतार मानकर उनके लिये परमोच्च श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। और इसलिए हर वैदिक कर्मकांड और पूजापाठ के आरंभ में संकल्प करते समय बौद्धावतारे... कहने की पद्धति सर्वत्र प्रचलित है।

प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित प्रामाणिक परिचय अल्प मात्रा में उपलब्ध हैं। मूल पाली ग्रंथ त्रिपिटक के आधार से हमें जानकारी मिलती है कि कपिलवस्तु नामक नगर में इ. पूर्व छ: सौ वर्ष के समय शाक्य-वंशीय क्षत्रियों का एक छोटा किंतु प्रभावसंपन्न राज्य रहा। उसके राजा शुद्धोदन महाराज की दो पत्नियाँ रही, मायादेवी तथा महाप्रजापती। गर्भवती मायादेवी प्रसूति के लिए

जब अपने पीहर देवदह नगरको जा रही थी तब मार्ग में ही लुम्बिनी नामक वन में प्रसूत होकर उसने जिस बालक को जन्म दिया, वही आगे चलकर भगवान बुद्ध नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया यह त्रिपिटक में नहीं, अन्य ग्रंथोंसे जाना जाता है।

बालक सिद्धार्थ के दिव्य लक्षणों को देखकर ज्योतिर्विद ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की कि यह जातक गृहस्थ रहा तो चक्रवर्ती राजा और प्रव्रजित हुआ तो बुद्ध होगा। बौद्ध ग्रंथोंमें भगवान बोधिसत्त्व के अनेक जन्मों का वर्णन उपलब्ध होता है और यह प्रतीत होता है कि अनेक जन्मों से लोकोद्धार का उनका कार्य अनवरत रूपसे चलता रहा था जातक कथाओं में इन अनेक जन्मों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। इन कथाओं में अनेक कथाएँ स्वयं भगवान बुद्धने कही है। मान्यता है कि बुद्धत्व प्राप्तीके पूर्व राजकुमार सिद्धार्थने चार पूर्वनिमित्त देखे जिनके कारण उन्हें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। वस्तुत: उस समय राजकुमार सिद्धार्थ विवाहित थे। उनकी श्रेष्ठ पत्नी यशोधरा ने पुत्र राहुल को जन्म दिया था और सभी दृष्टियों से वे सुखी, समृद्ध एवं भी तृप्त थे। किंतु अनेक जन्मोंसे साधन करते आये महापुरुषों के जीवन में विवेक एवं वैराग्य की जागृती के लिए एकाध निमित्त भी पर्याप्त हो जाता है। एक वृद्ध, एक रोगी, एक मृत व्यक्ती और एक संन्यासी ऐसे दृश्यों को हम लोग रोज देखते हैं किंतु फिर भी वह नहीं हो सकता जो भगवान बुद्धके साथ घटित हुआ उनके अंतरंग में प्रसुप्त ज्ञान की बारुद को वैराग्य की केवल एक चिंगारी आवश्यक थी जो इन दृश्योंके देखने पर महाभिनिष्क्रमणका प्रचंड विस्फोट कर गयी।

गृहत्याग के बाद सिद्धार्थ विभिन्न आचार्यों के पास जाकर ज्ञानार्जन करते रहे। उनके कथनानुसार उन्होंने तपस्या की भी किंतु उनको जब उसमें कोई सार नहीं दिखा तो इन्होंने स्वयंही अपनीही तपस्यासे ज्ञानप्राप्तीका निश्चय किया। मज्झिम त्रिकाय में इनकी दुष्कर तपस्या के विषय में कहा गया है कि वे तपस्वियोंमें तपस्वी, रुक्षाचारियों में परम रुक्षाचारी, जुगुप्सियोंमें परम जुगुप्सी तथा विवेकियों में परम विवेकी थे। उन्होंने अनुभव किया कि संसार घोर दु:खमें पड़ा है। जन्म लेना, प्रौढ एवं वृद्ध होना, मरना और फिर जन्म लेना यह सब दु:ख है। दु:ख के निवारण के ज्ञानको प्राप्त करने का निश्चय उन्होंने किया और वैशाख पूर्णिमा की रात्रि के प्रथम प्रहर में उन्हें पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त हुआ, द्वितीय प्रहरमें उनकी दिव्य दृष्टि विशुद्ध हुई और अंतिम प्रहारमें प्रतीत्य समुत्पाद के ज्ञान का साक्षात्कार होकर उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ।

भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश पंचवर्गीय भिक्षुओं को दिया। किसी भी बातका अतिरेक न करते हुए मध्यमवर्गीय अथवा मध्यम मार्गका सेवन ही श्रेष्ठ हे इसका प्रतिपादन उन्होंने किया। साथही आर्य सत्य एवं आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश उनके द्वारा हुआ। आगे चलकर बहुजनहिताय बहुजनसुखाय धर्मोपदेश करते हुए भ्रमणशील भिक्षुओंके संघका निर्माण हुआ और इन्ही भिक्षुओं के द्वारा समस्त भारतवर्ष तथा बृहत्तर भारत में भी भगवान बुद्ध के दिव्य उपदेश का प्रचार हुआ और अब तो सारे विश्व में भगवान बुद्धकी महत्ता अत्यंत आदर के साथ स्वीकृत है।

वस्तुत: भगवान बुद्ध ने जो कार्य किया वह वैदिक विचारों के प्रवाह में काल के प्रभाव से तथा मानवीय विकारों के कारण आयी हुई विकृतियों की शुद्धि का ही कार्य है। कर्मकांड़ी ब्राह्मण और उन्मत्त क्षत्रिय वैदिक धर्मांतर्गत यज्ञसंस्थाके नामपर भीषण हिंसा करने ले और उससे वैदिक धर्म दूषित होने लगा। इसलिए भगवान महाविष्णुनु ही बुद्धावतार ग्रहण किया, अहिंसाका उपदेश किया और नूतन पंथ के माध्यम से धर्मकी शुद्धि की यही हमारी श्रद्धा है।

वेदप्रामाण्य, ईश्वर का अस्तित्व आदि महत्त्वपूर्ण सिद्धांतोंके बारे में उन्होंने मौन रखा, खंडन नही किया। हिंसात्मक यज्ञविधियों की बौद्धों ने निंदा की किंतु ज्ञानकांडात्मक वेदमंत्रों की आलोचना नहीं की। जन्म से जातिव्यवस्था न मानने पर भी गुणकर्म से जातिव्यवस्था का स्वीकार उनके साहित्य में दिखता है। भगवान बुद्धका मध्यम मार्ग और गीताका युक्ताहारविहार पूर्णतया समान है। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा ये बौद्धों की चारों भावनाएँ योगदर्शनसे ग्रहण की गयी है। मुख्यतया जिस शून्यवाद के कारण उसकी वैदिक धर्म से पृथकता मानी जाती है वह शून्य वेदांतियों का ब्रह्मही है। योगवासिष्ठकार एवं स्वयं ज्ञानेश्वर महाराजने भी कहीं कहीं ब्रह्मको शून्य कहा है। वस्तुत: वैदिक सिद्धान्तों के कुछ अंशों को लेकरही बौद्ध मत खडा किया गया है। समाज के उद्धारार्थ अनेक महात्माओं ने ऐसा किया है और भगवान बुद्धसहित ये सभी महात्मा वंदनीय है।

भगवान के रूप में श्री बुद्धदेव की आराधना भारत का पूर्वोत्तर प्रदेश, नेपाल तथा तिब्बत में की जाती है। वैशाख पौर्णिमाके दिन बुद्धजयंती पर्वका महोत्सव अनेक स्थानों में मनाया जाता है। स्वागतार्ह होगा यदि सर्वत्र सभी के द्वारा यह मनाया जाए। इस विशेष

पर्वके उपलक्ष्य में करुणामूर्ति भगवान बुद्ध के चरणों में सादर नमन।

बौद्ध मत के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे। उनका जन्म कपिलवस्तु के निकट लुम्बिनी नामक स्थान पर ५६३ ई. पूर्व में हुआ था। कपिलवस्तु गोरखपुर जिले के उत्तर में नेपाल की तराइ में स्थित है। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनके पिता शुद्धोदन शाक्य वंश के राजा थे। एक बार टहलते समर्थ सिद्धार्थ ने एक वृद्ध को देखकर अपने सारथी से पूछा- यह झुककर क्यों चल रहा है ? सारथी ने कहा- राजकुमार यह वृद्ध है, सभी को एक दिन वृद्ध होना है। वृद्धावस्था की निर्बलता के कारण यह झुककर चल रहा है।

दूसरे दिन किसी रोगी को देखकर राजकुमार ने उसके दु:ख को जानने की जिज्ञासा की। सारथी ने बताया- यह रोगी है। शरीर रोगग्रस्त होता ही है। रोग के कारण पीड़ा होती है। सिद्धार्थ चिन्तित हो उठे।

एक दिन सिद्धार्थ ने मार्ग में शव यात्रा जाते देखकर सारथी से पूछा यह क्या है ? सारथी ने उत्तर दिया, राजकुमार यह एक मृत शरीर है, लोग उसे दाह-संस्कार के एिल ले जा रहे हैं। एक दिन सभी को शरीर छोड़ना है। राजकुमार सिद्धार्थ और चिंतातुर हो उठे। उनका मन उदास रहने लगा राजा शुद्धोदन ने उनके मन को बांटने के लिए तमाम सुख-साधन जुटा दिए। यशोधरा नामक राजकुमारी से विवाह कर दिया। राहुल नामक एक सुंदर पुत्र भी उन्हें प्राप्त हुआ। फिर भी उनका मन गृहस्थी में नहीं लगा। उन्हें संसार से वैराग्य हो गया, और एक दिन उन्होंने घर-बार त्याग दिया। ज्ञान प्राप्ति के लिए घोर-तपस्या की। अन्त में, गया में एक पीपल के वृक्ष के नीचे सात दिनों तक अखण्ड समाधि लगाने पर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। यहीं से उनका नाम बुद्ध पड़ा और उनका चलाया हुआ मत बौद्ध मत कहलाया।

ज्ञान प्राप्ति के बाद बुद्ध का पहला उपदेश काशी के पास सारनाथ स्थान पर हुआ था। उस स्मृति में अशोक का बनवाया हुआ स्तूप आज भी सारनाथ में है। लगभग ४८३ ई. पूर्व में महात्मा बुद्ध ने ८० वर्ष की आयु में अपना शरीर कुशीनगर नामक स्थान पर त्याग दिया।

महात्मा बुद्ध का कथन था कि संसार में दुख ही दुख है। इस दुख का कारण है मनुष्य का मोह। इससे छुटकारा पाने के लिए वे आठ नियमों पर बल देते थे, जो अष्टांग मार्ग कहलाता है। बौद्ध मत में अहिंसा का विशेष महत्व है। जाति-पांति के भेदभाव को नहीं माना जाता। सत्य बोलने और सेवा कार्य पर विशेष बल है। मन, वाणी और कर्म से सदाचारी बनने का आग्रह है। बौद्ध मत से सामान्य जन के अतिरिक्त अनेक राजा भी प्रभावित हुए। आगे चलकर सम्राट अशोक भी बौद्ध मत के अनुयायी हो गए थे। उन्होंने अपने पुत्र, पुत्री और अनेक भिक्षुओं को बौद्ध मत के प्रचार के लिए चीन, जापान, लंका आदि देशों में भेजा। यह मत भारत में नहीं बल्कि विदेशों में भी फैल गया।

कालान्तर में बौद्ध मत हीनयान और महायान दो शाखाओं में बंट गया। हीनयान के अनुयायी बौद्ध मत के मूल उपदेशों को ही मानते हैं। महायान शाखा वाले उपदेशों को कट्टरता से नहीं पालन करते बल्कि बुद्ध को भगवान का अवतार मानकर पूजा करते हैं।

महर्षि दयानंद सरस्वती

कुछ ऐसी थी उनकी बानी, जग में कोई नहीं था सानी, ज्ञान शौर्य इस तेज पुंज पर, गर्व करे हर हिंदुस्तानी।

महर्षि दयानंद सरस्वती महान संत और समाज सुधारक थे। उन्होंने वैदिक संस्कृति का पुनरुद्धार किया और समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों और आडम्बरों का खण्डन कर समाज को एक नई दिशा दी। महर्षि दयानंद सरस्वती ने दलितों का उद्धार करने के लिए ऊंच-नीच की भावना का खण्डन किया और शिक्षा की अलख जगाई। यही मूलशंकर आगे चलकर महर्षि दयानंद सरस्वती के नाम से विख्यात हुए।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद का जन्म फाल्गुन कृष्णा दशमी संवत् १८८१ (मार्च १८२३) मूल नक्षत्र में एक गुजराती ब्राह्मण परिवार में हुआ। मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण पिता ने उनका नाम मूलशंकर रखा। मूलशंकर बचपन से ही विचारशील एवं तर्कशील थे। आठ वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। इसी समय से इन्होंने यह यजुर्वेद संहिता पढ़ानी आरंभ की। १४ वर्ष की उम्र में इन्होंने यह संहिता कंठस्थ कर ली। जब मूलशंकर १६ वर्ष के थे, तभी इनकी छोटी बहन और चाचाजी का भी निधन हो गया। इन दोनों की मृत्यु के आघात के बाद मूलशंकर को सांसारिक मोह माया से विरक्ति हो गई आरैर वह संन्यासी बन गुरु बिरिजानंद के शिष्य बने। ढाई वष के अध्ययन के पश्चात् जब दयानंद ने जब अपने गुरु से विदा ली, गुरु ने कहा-वत्स-देश में दीन-हीन जन अनेक विध दु:ख पा रहे हैं- जाओ उनका उद्धार करो। आर्य जनता की बिगड़ी दशा को सुधारो-ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रंथों के पठन-पाठन में लोगों को प्रवृत्तिशील बनाओ।

स्वामी दयानंद ने गुरु को आश्वासन दिया और मृत्युपर्यंत तक इन वचनों का पालन किया। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया, स्त्री शिक्षा एवं विधवा विवाह का समर्थन किया। दुखियों एवं दरिद्रों के कष्ट निवारण के लिए उन्होंने अनेक कार्य किए। समाज सुधार के इन कार्यों को करते करते उनको समाज विरोधियों ने अनेकों बार विरोध सहने पड़े। स्वामी दयानंद का जन्म परमार्थ और परमात्मा की पूजा के पालनार्थ ही हुआ। वे सत्यमेव जयति नानृतम सत्येन पंथा विततो देवयान के सिद्धांत पर जीवन भर चले व इसी पर चलते-चलते अपने प्राणों को आहूत कर दिया। आज के युग में महर्षि दयानंद द्वारा बताया मार्ग हम सबके लिए अनुकरणीय एवं अनुसरणीय हैं।

इनके पिता का नाम श्री किरसन जी त्रिवेदी था। वे एक प्रतिष्ठित शिवभक्त ब्राह्मण थे। उनकी माता श्रीमती यशोदा बाई एक धर्मनिष्ठ एवं संभ्रांत महिला थीं। मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनका नाम मूलशंकर रखा गया। वे बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। कहा जाता है कि दो वर्ष की आयु में ही इन्होंने गायत्री मंत्र का शुद्ध उच्चारण सीख लिया था। १४ वर्ष की आयु तक इन्हें संपूर्ण संस्कृत व्याकरण, सामवेद एवं यजुर्वेद कण्ठस्थ हो गए थे। मूलशंकर बड़े शिवभक्त थे, पर एक बार शिवरात्रि के दिन ये रात्रि में मंदिर जागरण कर रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक चूहा शिवलिंग पर चढ़कर भगवान का प्रसाद खा रहा है। यहीं से उनके मन में मूर्तिपूजा के प्रति अनास्था पैदा हो गई। सन् १८४० में बहिन और १८४२ में चाचाजी की मृत्यु से उन्हें संसार की नश्वरता का आभास हुआ। वे वैराग्य लेकर मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के उपायों पर विचार करने लगे पर उनके पिता श्री करसन जी उन्हें वैवाहिक बंधनों में बांधना चाहते थे।

सन् १८४५ के जून माह में वे गृहत्याग कर आत्मज्ञान की तलाश में निकल पड़े। सायला नामक ग्राम में उन्होंने एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ली। ब्रह्मचारी ने उन्हें नया नाम दिया- शुद्ध चैतन्य।

सिद्धपुर मेले में भाग लेकर वे चैतन्य में गए। वहाँ उन्हें स्वामी पूर्णानंद जी का सान्निध्य मिला। इनकी दृढ़ जिज्ञासा एवं त्याग वृत्ति से प्रभावित होकर स्वामी जी ने इन्हें संन्यास की दीक्षा दी। तब से इनको नया नाम मिला। स्वामी दयानंद सरस्वती।

सन् १८५५ तक स्वामी जी ने माउंट आबू में एक तपस्वी के साथ योग साधना की। इसी समय वे वयोवृद्ध स्वामी संपूर्णानंदजी के संपर्क में आए। उनके परामर्श उन्होंने १८५७ की क्रांति के अग्रदूत नाना साहेब पेशवा से संपर्क किया। दयानंद सरस्वती ने क्रांतिकारियों के साथ मिलकर १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इस स्वतंत्रता संग्राम के विफल हो जाने पर स्वामीजी मथुरा गए। उन्होंने व्याकरण तथा वेदों का ज्ञान प्राप्त किया।

स्वामी विरजानंदजी ने गुरू दक्षिणा में अपने शिष्य से पाखंड का खंडन करने का वचन मांगा। अत: स्वामी जी संपूर्ण देश में अज्ञान, अंधकार और पाखंड को दूर करने तथा प्राचीन वैदिक आर्य सभ्यता का प्रचार करने निकल पड़े।

बदलते हुए परिवेश में जहां नैतिकता का कोई मूल्य समाज में दृष्टिगत नहीं हो रहा है वहां यह कहना असंगत नहीं होगा कि महर्षि दयानंद द्वारा रोपा हुआ वट-वृक्ष आर्य समाज आज भी अपनी नैतिकता के बीच जीवन्त है। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् आर्य समाज का मूल मन्त्र एवं लक्ष्य है। यह मन्त्र उस महान् आत्मा की देन है जिसका संकल्प था कि समूचे देश को, समूचे राष्ट्र को एक आर्यवर्त में बदल दिया जाए। इसके लिए उन्होंने देश को नई दिशा दी तथा वास्तविक आर्य ग्रन्थों से समाज का परिचय कराया। अविद्या का नाश व विद्या की वृद्धि हो, समाज में सबकी उन्नति ही अपनी उन्नति का आधार है, ऐसा कहकर जागृति का सन्देश दिया।

महर्षि के इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर राष्ट्र में अनेकों आर्य संस्थाएं खुलीं। आर्य समाज वह जीवित समाज है, जो सदैव ही आशावादी रहा है। महर्षि के सिद्धान्त अन्य सुधारकों के समान नहीं थे। वे एक ऐसा दीपपुंज थे। जिनके प्रकाश से आज भी आर्य संस्थाएं अपने कर्तव्यों को पूर्ण करने में संलग्न हैं। वेदों में समत्व का व्याख्यान है-

मनुज-मनुज सब एक हैं, उनमें न कोई भेद, ईश-पुत्र सम हैं सभी, यही बखानें वेद।।

वेदों की व्याख्या में कुछ मन्त्र ईश-प्रार्थना के हैं, कुछ में सृष्टि के नियम हैं तो कुछ कर्तव्यों की विधि, और अकर्तव्यों का निषेध है। यह सब आज के पर्यावरण में कितना आवश्यक है ? दूषित वातावरण में वेद ही एक ऐसा कल्पवृक्ष है जिसकी छत्र-छाया में बैठकर मानव अपने संस्कारों को जीवित रख सकता है। वेद शब्द के अर्थ से ही प्रकट होता है कि वेद ज्ञान का भण्डार हैं। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज के नियम निर्धारित करते हुए कहा था कि वेद सब सत्य विधाओं की पुस्तक है। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उन्होंने कहा

था कि वेद में परमेश्वर से लेकर तिनके तक सब पदार्थों का साक्षात् बोध हो जाता है। अत: आज के दूषित पर्यावरण में वेद के सिद्धान्त ही जीवन में यथार्थ में जीने की प्रेरणा देते हैं। आज देश, वातावरण, काल तथा समाज फिर कुरीतियों के शिकंजे में जकड़ता जा रहा है। ऐसे विकट समय में फिर एक बार ऋषि के रूप में किसी महामानव का अवतरित होना नितान्त आवश्यक है, लेकिन ऐसा कब होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

कुरआन शरीफ

अपव्यय मत करो। यह शैतान का काम है। कंजूसी भी मत करो, न कंजूसी सिखाओ। अनाथों की अमानत वापस करो। उनके माल के पास न फटको। उनका माल न खाओ, यह पाप है।

स्त्रियां अपने गुप्तांग ढंक कर रखें, निगाहें नीची करके चलें। दिखावे के लिए बनाव-शृंगार न करें, न पैर पटक कर चलें। रोजी के लिए गलत तरीके इस्तेमाल न करें, मुसीबत में धैर्य से काम लें। स्त्रियां व पुरुषों के अधिकार बराबर हैं, मगर पुरुष स्त्रियों के लिए उत्तरदायी हैं। अल्लाह ने उसे आगे रखा है। वह अपना माल खिलाता है। नेक स्त्रियां पति की भी आज्ञाकारी होती हैं।

इसी प्रकार की बहुत अच्छी-अच्छी शिक्षाएं हैं। तलाक-शुदा पत्नी के साथ सद्व्यवहार करना, इद्दत तक देख-भाल करना तथा उत्तराधिकार के संबंध में किस को क्या हिस्सा मिलेगा दिया गया है। कुरआन शरीफ में वसीयत का प्रावधान किया गया है, जो आदमी वसीयत लिखे सही सही लिखे। उस पर दो लोगों की गवाही हो।

कुरआन शरीफ में ब्याज का लेन-देन मना किया गया है, बल्कि अगेर तंग हाथ है तो मोहलत दो या ऋण का दान कर दो तो अच्छा है।

कुरआन शरीफ में व्यापार में बेईमानी का विरोध है, सही नाप-तोल पर बल दिया है। अपने काम के बारे में झूठा कथन करना गलत बतलाया गया है। कुरआन में स्पष्ट किया गया कि अल्लाह ने इंसान को मिट्टी से पैदा किया। उसने धरती का बिछौना और आकाश की छत तान दी। पानी बरसाया जिससे रोजी चली। फलदार वृक्ष और सब्जियां पैदा कीं। सूर्य, चंद्रमा, तारे उसी ने बनाए। पृथ्वी पर पहाड़ों के खूंटे गाड़ दिए, यानी जो चीज संसार में दिखती हैं, आदमी, चौपाए उसी ने बनाए। मिट्टी को बूंद में बदला। बूंद को एक सुरक्षित स्थान (गर्भ) में डाला, मांस का लोथड़ा बनाया, फिर हड्डियां फिर उसमें जान डाल कर नया इंसान बनाया।

कुरआन शरीफ में दोजख (नर्क) और जन्नत (स्वर्ग) का उल्लेख है। नेक इंसान जो खुदा की राह पर चलेंगे जन्नत में जाएंगे, बुरे काम वाले दोजख में। कुरआन शरीफ में कयामत का उल्लेख है जब धरती लपेट दी जाएगी, आसमान फट जाएगा और पहाड़ धुन दिए जायेंगे आदि- आदि। कुरआन शरीफ में परलोक पर भी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है कि यह संसारिक जीवन परीक्षा का घडी है, अस्थायी है। संसार धोखे की टट्टी है। इंसान को आखिरत की तैयारी करनी चाहिए। इसके अलावा कुरआन में आपराधिक दंड संहिता भी है। आंख के बदले आंख, दांत के बदले दांत। आपराधिक न्याय सिद्धांत है। जितना नुकसान पहुंचाया जाए, उससे ज्यादा बल प्रयोग न किया जाए। हत्या का दंड मृत्यु, जो हत्या करे, उसको ही दंड मिले। मालिक करे तो मालिक, गुलाम करे तो गुलाम, स्त्री करे तो स्त्री को दंड दिया जाए, मगर मृतक का वारिस हर्जाना स्वीकार करे तो खुशी से अदा करो।

जीवन का जो मार्गदर्शन करने वाली शिक्षाएं दी गई हैं, उनसे हर व्यक्ति लाभ उठा सकता है, केवल मुसलमान ही नहीं यह सभी के पढ़ने योग्य सामग्री उपलब्ध करता है।

विठ्ठल-भक्त संत तुकाराम

विठ्ठल-भक्त संत तुकाराम का जन्म पूना के देहू नामक ग्राम में एक समृद्ध और भगवद्भक्त परिवार में २० मार्च १६०८ में हुआ था। आपके माता-पिता का नाम कनकाई और बोल्होवा था। आपे दो भाई और भी थे। आपकी बाल्यावस्था में ही दो शादियां कर दी गई थी। पहली पत्नी का नाम रखमा और दूसरी का नाम जिजाई था। आपके पिता बोल्होवा ने अपना व्यापार ज्येष्ठ पुत्र को सौप दिया, जिनकी असावधानी के कारण सारा व्यापार चौपट हो गया। परिणामत: पूरे परिवार को बहुत कष्ट उठाने पड़े।

संत तुकाराम को १७ वर्ष की आयु में वैराग्य की अनुकूल परिस्थितियों में परिवार छोड़ना पड़ा। भागवत्-धर्म, प्रचार-प्रसार-यात्रा का शुभारम्भ तभी से हुआ। स्वामी एकनाथ द्वारा रचित नाथ भागवत का पारायण, भजन और नामस्मरण करना आपकी दिनचर्या हो

गई। भगवत्कृपा से संत तुकाराम के मुख से अभंगों के रूप में अजस्त्र काव्य-धारा प्रवाहित होने लगी। बताया जाता है कि आपकी भक्ति और धार्मिक प्रभाव को देखकर विरोधियों ने षडयंत्र करके आपके रचित अभंगों की पुस्तक को इन्द्रियाणी के दह मे डुबो दी, किंतु भगवान विठ्ठल की कृपा से वह डूबने से बच गई। हरिनाम संकीर्तन करते हुए संत तुकाराम सन् १६९९ मे ब्रह्मलीन हो गए। संत प्रवर तुकाराम ने भक्त पुण्डलीक को भगवान विष्णु की ही भांति विठ्ठल अथवा विठोबा मानने की परंपरा का पोषण करते हुए कृष्ण भक्ति को ही गति प्रदान करने के लिए अभंगो की रचना कर मराठी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। परवर्ती महिला संत बहिणाबाई के एक अभंग के आधार पर पूर्ववर्ती संतो द्वारा कृष्ण-भक्ति के जिस देवालय का निर्माण किया गया उसकी नीव भक्तराज पुण्डलीक ने डाली।

ज्ञानदेव महाराज ने ज्ञानेश्वरी की रचना कर उसके पाये स्थापित किए। संत नामदेव ने अपने भजनों द्वारा उसका विस्तार किया। संत एकनाथ महाराज ने भागवत की रचना कर उसकी पताका फहराई और संत तुकाराम ने अपने अभंगों और उपदेशों से उसके शिखर पर कलश के स्थापन से उस देवालय को और भव्यता प्रदान कर अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

लोकगायक तुलसीदास और उनका काव्य-विवेक

कवि कुल शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास का एक अनाथ बालक से महाकवि में रूपांतरण आश्चर्यचकित कर देने वाली घटना है। जिस बालक को चने के चार दाने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के समान प्रतीत होते थे, जो कुकर टूकन लागि ललाई की विषम परिस्थितियों से जूझता हुआ नरहरि स्वामी के संरक्षण तक पहुंचता है और राम नाम को अपने जीवन का आधार बनाकर लोकजीवन दर्शन का अप्रतीम व्याख्याता बन जाता है। इतना ही नहीं ऐसा अनाथ बालक गुरु के संरक्षण में अपनी काव्य प्रतिभा को संस्कारित कर पूरे संसार को चकित कर देने में समर्थ होता है। संसार के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण कवि के रूप में मान्य तुलसीदास ने अपने-आपको काव्य विवेक से शून्य मानते हुए मानस में कहा है- कबित बिबेक एक नहीं मोरे, सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे।

तुलसी का यह कथन, जहां एक ओर महाकवि की विनम्रता का परिचायक है, वहीं दूसरी ओर उनके भक्त रूप की स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी है। अहं को भक्त के मार्ग में एक बड़ी बाधा माना गया है और आध्यात्मिक सिद्धांतों के अनुसार अहं ईश्वर का भोजन है। कबीर का कथन जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहि। इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। तुलसीदास कवि बाद में हैं, वे भक्त पहले हैं। इसीलिए रामचरित मानस की रचना उनकी कवि प्रतिभा का परिणाम न होकर उनके आराध्य राम की कृपा का परिणाम है, ऐसी तुलसी की मान्यता है। कवितावली में तुलसी ने अपने बालजीवन की कष्टप्रद स्थितियों का वर्णन करते हुए कहा है-

मातु-पिता जग जाइ तज्यौ, विधि हूं लिखि भलि भाल भलाई- तुलसी का यह कहना तो उचित प्रतीत होता है कि मातु-पिता जग जाइ तज्यौ, परंतु विधि हूं न लिखि भाल भलाई, तुलसी की किसी क्षोभजन्य मन:स्थिति का परिणाम ही कहा जायेगा क्योंकि कालान्तर में तुलसी को अपने जीवनकाल में ही रामकथा के यशस्वी गायक एवं महाकवि के रूप में लोकजीवन में मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। ऐसी प्रतिष्ठा जो आज तक संसार का कोई कवि प्राप्त नहीं कर पाया। जन-जन तक ऐसी पहुंच रखने वाला कवि तुलसी के अतिरिक्त संसार में कोई दूसरा नहीं हुआ। तुलसी के भाल पर विधि ने ऐसी ही भलाई लिखी थी, जिसे पूरे संसार ने कालान्तर में पढ़ा और असंख्य लोगों ने उसी भलाई से प्रेरित होकर अपने जीवन को श्रेयस मार्ग की ओर मोड़कर जीवन को चरितार्थ किया।

तुलसी का समय विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में वैचारिक एवं कट्टरतावादी संघर्ष का समय था। लक्ष्य की एकता को भूलकर एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति का सम्बन्ध संसार से होता है ईश्वर से नहीं। तुलसी अपने युग के अनुभूत समन्वयकारी संत कवि सिद्ध हुए। जिन्होंने श्रेयस मार्ग की ओर लोकजीवन की गति मोड़ देने में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की। सत और असत, निवृत्ति और प्रवृत्ति यथार्थ और आदर्श का व्यावहारिक समन्वय समाज में किस प्रकार संभव है, इसका उदाहरण रामचरित मानस के माध्यम से तुलसीदास ने समष्टि जीवन में प्रस्तुत किया। मुहावरों एवं कहावतों का मणिकांचन प्रयोग रामचरित मानस के जीवन दर्शन को ऐसी शक्ति प्रदान करता है, जिसके कारण जनसामान्य भी मानस की चौपाइयों के माध्यम से जीवन की ऊर्जा और उत्साह को ग्रहण करने में समर्थ हो जाता है। काव्य कला की दृष्टि से तुलसी का मूल्यांकन समीक्षकों को सदैव ही चकित करता आया है। अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य शैलियों में तुलसी ने सफलतापूर्वक काव्य रचना की है एवं हर शैली पर अपना अधिकार सिद्ध किया है। दोहा

चौपाई, कवित्त, सवैया, सोरठा, वरवै आदि शैलियों के अतिरिक्त सोहर एवं नक्षु जैसी लोकजीवन में व्याप्त गीत पद्धति में भी तुलसी ने पूरी कुशलता से काव्य रचना कर अपने आपको भाव, रस एवं शिल्प की दृष्टि से सिद्ध कवि प्रमाणित किया है।

लोकजीवन के विभिन्न संदर्भों का व्यापक एवं समग्र चित्रण रामचरित मानस को शाश्वत महत्व प्रदान करता है। राजतंत्र और आधुनिक लोकतंत्र के संदर्भ में तुलसी की यह चौपाई संपूर्ण विश्व की शासन व्यवस्था के लिए उत्कृष्ट आदर्श हो सकती है-

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यता है कि तुलसीदास को रामकथा के भावुक स्थलों की सटीक पहचान थी। यही कारण है कि राम वनवास, केवट प्रसंग चित्रकूट में राम-भरत मिलन, लक्ष्मण पर शक्ति प्रहार जैसे प्रसंगों में तुलसी का चित्रण उदात्त भावनात्मक उत्कर्ष प्राप्त करता है।

जीवन मूल्यों की विशद एवं प्रभावपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करने वाले तुलसीदास की अक्षय कीर्ति का आधार रामचरित मानस अवश्य है, परंतु कवितावली एवं विनय पत्रिका का महत्व भी उनकी कवि प्रतिभा की दृष्टि से कुछ कम नहीं है।

कवितावली में अनेक कवित्त सूक्ष्म मनोविज्ञान एवं भावजगत के गूढ़ रहस्यों का इस प्रकार उद्‌घाटन करते हैं कि सुधी पाठक तुलसी की अद्वितीय प्रतिभा के समक्ष नतमस्तक हो जाता है।

तुलसीदास का जन्म बांदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम पं. आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। उन्होंने संवत् १५५४ की श्रावण शुक्ला सप्तमी को अभुक्त मूल नत्र में बारह माह माता के गर्भ में रहकर राम शब्द बोलते हुए जन्म लिया। जन्मते ही मां का स्वर्गवास हो गया और पिता ने अनिष्ट की आशंका से उनका त्याग कर दिया। माता ने मरते समय अपनी चुनिया नामक दासी को उन्हें सौंप दिया। पांच वर्ष की अल्पायु में अपनी धाय मां से भी वे वंचित होकर द्वार-द्वार पर भीख मांगकर पेट पालने लगे। तभी स्वामी नरहर्यानंदजी ने उन्हें शिष्य बनाकर अपने पास रख लिया।

संवत् १५८३ की ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी गुरुवार को उनका विवाह रत्नावली से हुआ। रत्नावली स्वयं संत स्वभाव की सुंदर महिला थीं। उनके इस कथन- अस्थि चर्ममय देह मम, या में ऐसी प्रीति। ऐसी जो श्रीराम में, होति न तो भव भीति।

ने तुलसी के जीवन की दिशा ही बदल दी और वे संत हो गए। संवत् १६३१ से संवत् १६३३ तक उन्होंने रामचरितमानस प्रसिद्ध और पवित्र ग्रंथ लिखा जिस पर स्वयं भगवान शिव ने सत्यं शिवं सुन्दरं लिखा।

संवत् १६८० की श्रावण कृष्णा तृतीया, शनिवार को उन्होंने असीघाट पर राम-राम करते हुए अपना नश्वर शरीर छोड़ा। जन्म से लेकर मरण तक उनका जीवन राममय रहा। उन्होंने अपने नीतिपरक दोहों में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि से बचने की प्रेरणा दी है। सतीप्रथा आदि का विरोध किया, सच्चे मित्र की पहचान बताई है।

संघर्ष के मूल में अति दृष्टि हुआ करती है। यही कारण है कि अतिवादी कभी सत्य की अनुभूति नहीं कर सकता। संत इसीलिए अतिवादी प्रवृत्ति से बचने का और विभिन्न में एकत्व के सूत्र को ढूंढने का प्रयास करते हैं। वे जानते हैं कि अति औषधि भी विष बन जाती है। संत शिरोमणि तुलसीदास ने इस मायने में अपने समय की दो अतियों के बीच सुदृढ़ सेतु का निर्माण किया। तुलसी के समय निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार, शैव-वैष्णव जैसी अतिवादी दृष्टियां समाज में व्याप्त थीं, जिन्हें तुलसी ने भाव और बुद्धि दोनों के स्तर पर ही एक माला में पिरोया। रामचरित को आम व्यक्ति की भाषा में कहकर तुलसी ने भारतीय समाज पर जो उपकार किया, उससे उऋण नहीं हुआ जा सकता।

संत कबीर दास

पुण्य सलिला गंगा के तट पर आज से लगभग ६०५ वर्ष पूर्व (इतिहासकारों ने १४५६-१५७५ ईस्वी के मध्य का समय माना है) वाराणसी की पावन भूमि पर लहरतारा ग्राम के सरोवर के निकट कबीरदास का प्राकट्य हुआ माना जाता है। किंवदंती है कि एक जुलाहे ने सरोवर किनारे बिलखते जिस नन्हे शिशु का पालन किया, वही आगे चलकर अपनी वाणियों द्वारा समाज को झकझोर देनेवाला कबीर बना और संत कबीर के नाम से जग-प्रसिद्ध हुआ।

कबीर मानवता-प्रेमी संत थे। वह भेदभाव की संकीर्णता से ऊपर उठकर उदात्त भावनाओं का संदेश अत्यंत सहज वाणी में देते थे। पाखंड और अंधविश्वास पर उन्होंने प्रखरतापूर्वक प्रहार किया और मानवीय भावनाओं का अपनी साखियों द्वारा जन-जन में प्रचार और प्रसार किया। कबीर ने अपनी साखियों में कर्म, भक्ति, गुरु-शिष्य, सत्य, मोह, कथनी-करनी, दया, काम व क्रोध आदि के नए अर्थों व परिभाषाओं से परिचित करवाया है। विनम्र समर्पण उस महान सूफी-संत, विचारक तथा दार्शनिक को, जिसने जात-पात की भावना से ऊपर उठकर समाज में फैली कुरीतियों पर अपनी सीधी-सरल सधुक्कड़ी वाणी में तीखा प्रहार किया; और ये वाणियां आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी तब थीं।

भक्तिकालीन इतिहास में कबीरदास को आध्यात्मिक क्रांति का जनक कहा जा सकता है। सद्गुरु कबीर की अनमोल वाणियां अज्ञान तिमिर का नाश कर एक नए सवेरे की ओर संकेत करती हैं। यह उनके ज्ञानोपदेश का ही चमत्कार था, जिसने सदियों से चली आ रही कुरीतियों तथा पाखंडों को खंड-खंड कर दिया, मानव जिस भाई-बंदगी को बिसरा चुका था, वही मानव-धर्म इस महापुरुष के संदेशों से पुन: जीवित हो उठा। कबीरदासजी निर्गुण उपासक थे। कुछ लोग उन्हें हिंदू कहते तो कुछ कहते कि वे मुस्लिम हैं, लेकिन कबीरदास का इन सबसे कुछ लेना-देना नहीं था। उनका तो यही कहना था कि सभी जन एक हैं, छोटा-बड़ा कोई नहीं। सर्वधर्म समभाव के जिस सूत्र का उन्होंने प्रतिस्थापन किया, वही आज के समय की मांग है। उनकी वाणियों को मात्र पढ़ लेना ही पर्याप्त नहीं, उनके जीवन-दर्शन को आत्मसात करना भी आवश्यक है। तभी आप उन शब्दों के मर्म से परिचित हो पाएंगे, जिन्हें कबीरदासजी इतनी सहजता से व्यक्त कर गए।

निर्गुण काव्यधारा की ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक संत कवि कबीरदास का जन्म सन् १३९८ ई. के लगभग हुआ था। इनका जन्मस्थान काशी बताया जाता है। इनके जन्म के विषय में कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। परंतु लोकलाज के भय से इनकी विधवा मां ने इन्हें लहरताना नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया था। सौभाग्यवश उसी समय नीमा और नीरू नाम के जुलाहा दम्पति, जो नि:संतान थे, उधर से जा रहे थे। एक नवजात अबोध शिशु को देखकर उन्होंने उसे उठा लिया तथा अपनी औरस संतान की भांति लाड़-प्यार से इनका पालन-पोषण किया। इनके जीवन का अधिक समय काशी में ही बीता। सन् १४९५ ई. के लगभग इस अद्भुत संत ने इस लोक से महाप्रयाण किया।

कबीर रुढ़ियों के विरोधी थे। वे अंधविश्वासों, आडम्बरों और पाखंडों को किंचितमात्र भी सहन नहीं कर पाते थे। जीवन और जगत की यथार्थता को इन्होंने करीब से देखा था और उसका बेबाक चित्रण किया था। इस अंधविश्वास को दूर करने के लिए कि काशी में मृत्यु होने से स्वर्ग मिलता है और मगहर में मरने से नरक, ये अन्तिम समय में काशी छोड़कर मगहर चले गए और वहीं इन्होंने शरीर छोड़ा।

सन्त कबीर ऐसे समय में पैदा हुए जब हमारे समाज में ऊंच-नीच और जाति-पांति का भेदभाव बहुत बढ़ चुका था। धर्म के नाम पर आडम्बर बढ़ गया था। सन्त कबीर ने अपनी सीधी-सादी भाषा में अपने उद्देश्यों को कविता का रूप दिया। इन्हें बानी कहा जाता है।

कबीर का जन्म करीब ६०० वर्ष पहले हुआ था। उनका पालन-पोषण काशी में नीरू नामक जुलाहे के परिवार में हुआ। नीरू के कोई सन्तान नहीं थी। बड़े होने पर कबीर का विवाह लोई से कर दिया गया। उनके दो सन्तानें कमला और कमाली पैदा हुईं। परिवार के भरण-पोषण के लिए कबीर ने जुलाहे का अपना पैतृक व्यवसाय अपनाया।

कबीर दास को साधु-सन्तों के साथ उठना-बैठना और उनकी बातों को सुनना बहुत अच्छा लगता था। घर का कामकाज करते हुए भी वे भगवान का नाम लिया करते थे। सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए वे वाराणसी के उस समय के प्रसिद्ध सन्त रामानन्द को अपना गुरु बनाना चाहते थे। वे अपनी धुन के पक्के थे। रामानन्द जी प्रतिदिन बहुत सवेरे अंधेरे में गंगा स्नान के लिए जाते थे। कबीर रात को ही जाकर सीढ़ियों पर लेट गए। जब रामानन्द जी सीढ़ियों पर उतर रहे थे तो उनका पांव कबीर के ऊपर पड़ा। राम-राम कहकर रामानन्द जी ने अपना पांव हटा लिया। राम-राम कहो बेटा, कहीं चोट तो नहीं लगी। बस फिर क्या था। कबीर ने स्वामी रामानन्द के पैर पकड़ लिए।

स्वामी रामानन्द कबीर की दृढ़ भक्ति और पक्की धुन से प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य बना लिया।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए कबीरदास ने गुरु को बहुत महत्व दिया है। उन्होंने गुरु को भगवान से भी अधिक माना है।

कबीरदास सच्चे धर्म को मानने का उपदेश देते थे। उन्होंने हिन्दू और इस्लाम दोनों ही धर्मों के मानने वालों को आडम्बरों व

पाखण्डों के कारण फटकारा और सच्चे धर्म का पालन करने का उपदेश दिया।

कबीर सभी के साथ प्रेम का व्यवहार करने पर बल देते थे। वे मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं मानते थे। वे सबको समान और एक परम-पिता परमात्मा की संतान मानते थे। उन्होंने ऊंच-नीच के भेदभाव को समाप्त करके सबको समान समझने और सच्चे धर्म के आचरण पर बल दिया। कबीर के सीधे-सादे उपदेशों के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उनके शिष्य बने।

महात्मा विदुर

महाराज पांडु व धृतराष्ट्र की तरह ही महात्मा विदुर का जन्म भी महर्षि व्यास के दृष्टिपात से हुआ था, ऐसी कथा है। उनकी माता दासी थी, लेकिन व्यास को देखकर न तो उन्होंने आंखें मूंदी, ना ही भयभीत हुईं, क्योंकि वे यह सोचकर कृतकृत्यता का अनुभव कर रही थीं कि व्यास उन पर अनुग्रह करेंगे। मां में श्रद्धा और भावातिरेक था, जिसने विदुर में भी धार्मिक निष्ठा और सत्य के प्रति आग्रह का भाव पैदा किया। विदुर हस्तिनापुर नरेश के मंत्री व पांडवों के हित रक्षक थे। महाभारत के दौरान आपने अनीति का कई बार विरोध किया व कृष्ण की कृपा के पात्र बने। विदुर नीति एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें आपके द्वारा अनेक विषयों पर गहराई से प्रकाश डाला गया है। विदुर न सिर्फ कुशल नीति-निर्माता थे वरन् वेद-पुराण-उपनिषद् के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। आपके द्वारा कही गई एक-एक बात, आपकी विद्वत्ता व चतुराई का अहसास कराती है। आज से पांच हजार से भी अधिक वर्ष पूर्व कहे गए आपके शिक्षाप्रद वचन आज भी मानवता के लिए ज्ञानरूपी अमृत की वर्षा कर रहे हैं।

धर्मराज महात्मा विदुर का समस्त जीवन लोक कल्याण की साधना में बीता। जब दुर्योधन पाण्डवों का अधिकार न देकर युद्ध की धमकी देने लगा तो महाराज धृतराष्ट्र अत्यधिक चिंतित हो उठे और संकट की इस घडी में उन्होंने महात्मा विदुर से मार्गदर्शन करने को कहा, तब विदुरजी ने धृतराष्ट्र को शास्त्र सम्मत नीति की जो बातें बताई-वही सब बातें विदुर नीति कही जाती हैं।

मानव जीवन की सुख शान्ति में नित्य ही जिन अनदेखे शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है और जिन्होंने समस्त प्राणी जगत की शान्ति भंग कर रखी है, उनसे समाज का बचाव तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक निर्दिष्ट धर्मनीति और उसके आधारभूत सिद्धान्तों को न समझा जाएगा। यही कारण है कि विदुर जी की नीतियों और सिद्धान्तों पर चलनेवाला प्राणी जीवन के किसी भी क्षेत्र में सहज ही हार स्वीकार नहीं कर सकता।

गुरुनानक

गुरुनानक का जन्म लाहौर जिले के तलवंडी ग्राम में सन् १४६९ की १५ अप्रैल को हुआ था। यह स्थान अब पाकिस्तान में है। आपने सिख धर्म की स्थापना का महान कार्य किया। आपके पिता का नाम मेहता कल्याणदास व माता का नाम तृप्ता था।

बचपन से ही आप विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। शिक्षा समाप्त होने पर उन्हें गायों को चराने का कार्य सौंपा गया। वह हर समय गूढ़ चिंतन में निमग्न रहते थे। एक बार पिता ने उन्हें बीस रुपए देकर कहा, कोई लाभदायक, सत्ययुक्त कार्य प्रारम्भ करो। आपने सभी रुपयों से साधु-संतों को भोजन करा दिया। कुछ समय बाद ही आपने दिव्य प्रेम के नए संदेश का प्रचार आरम्भ कर दिया। अनेकों सम्पन्न लोगों द्वारा आपका विरोध किया गया किंतु आप डिगे नहीं। उस समय आस-पास के क्षेत्रों में धार्मिक कार्यों का अभाव था। लोग इस ओर ध्यान नहीं देते थे। आपने लोगों के मन में धर्म की अलख जगाने का कार्य किया। गुरुनानक ने बाबर के अत्याचारों का भी जमकर विरोध किया और इस कारण कैद में भी रहे।

नानक ने सम्पूर्ण देश की वृहद् यात्रा की। आप मक्का, मदीना, ईरान और काबुल भी गए। हिन्दू व मुसलमान दोनों ने उनके संदेश को श्रद्धा व विश्वासपूर्वक ग्रहण किया। चालीस वर्ष की अल्पायु में ही आपको गुरु की पदवी प्राप्त हो गई थी। आप सिखों के प्रथम गुरु कहलाए। आप पद्यों के द्वारा उपदेश प्रदान करते थे। वे कहते थे- ईश्वर एक है, ईश्वर ही प्रेम है, ईश्वर संगठन स्वरूप है। वह मंदिर, मस्जिद में है और चारदीवारी के बाहर भी विद्यमान है। ईश्वर की दृष्टि में सारे मनुष्य समान हैं।

सन् १५३९ में जब आपका देहावसान हुआ तो हिन्दू व मुसलमानों ने उनका संस्कार अपने-अपने ढंग से करना चाहा। इस पर कोई निर्णय न हो सका और पार्थिव देह सफेद चादर से ढककर रख दी गई। अगले दिन चादर हटाने पर सभी आश्चर्यचकित रह गए-

क्योंकि पार्थिव देह गायब थी और सुन्दर फूलों का ढेर ही शेष दिखाई पड़ रहा था।

सिख धर्म के दो मुख्य सिद्धांत हैं- पहला यह कि जीवन शुद्धता से उत्पन्न होता है। जीवन का उद्‌गम मूलत: पापमय नहीं है। दूसरा यह कि इस पृथ्वी पर कोई भी ऊंची-नीची जाति नहीं है। सभी जातियां समान हैं। सिख धर्म एक परमेश्वर को मानता है। सिख धर्म की दृष्टि में परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सृष्टि का जनक व अनंत है। आज विश्व भर में हर जगह सिख धर्म के अनुयायी मौजूद हैं। सिर पर पगड़ी व कृपाण आपकी विशेष पहचान है।

गुरु नानक का जन्म १५ अप्रैल, सन् १४६९ को राइमोइ तलवण्डी में वेदी कालूचन्द पटवारी की धर्मपत्नी माता तृप्ताजी के गर्भ से हुआ था। संत नानक सिख धर्म के प्रवर्तक थे। जून, सन् १४८७ में मूलचंद जी की सुपुत्री सुलक्षणा देवी के साथ उनका विवाह हुआ। उनके दो पुत्र हुए बाबा श्रीचन्द और बाबा लक्ष्मीदास।

(संवत् १५५४) सन् १४९७ में ईष्या-द्वेष, वैर-विरोध, लोभ-मोह के जाल में तड़पते विश्व को शांति का संदेश देने के लिए उन्होंने देशाटन प्रारंभ किया। प्रथम यात्रा में ऐमनाबाद, हरिद्वार, दिल्ली, काशी, गया तथा श्री जगन्नाथपुरी गए।

दूसरी यात्रा में दक्षिण भारत में अर्बुदागिरि, रामेश्वर, सिंहलद्वीप की यात्रा की। तीसरी यात्रा सरमौर, टिहरी गढ़वाल, हेमकूट, गोरखपुर, सिक्किम, भूटान, तिब्बत आदि में हुई। चौथी यात्रा में वे बिलोचिस्तान होते हुए मक्का तक पश्चिम में गए। इस यात्रा में उन्होंने रूस, बगदाद, ईरान, कंधार, काबुल आदि की यात्रा की। पच्चीस वर्ष भ्रमण करके सन् १५२२ में करतारपुर में रहने लगे। उपदेशामृत के साथ यहां लोगों को अन्न भी वितरित करते हेतु लंगर प्रारंभ हुआ। यहीं इसी वर्ष गुरुजी के माता-पिता का शरीर छूटा। स्वयं गुरुदेव ने २२ सितंबर, सन् १५३९ को परधामगमन किया। अपनी गद्दी का अधिकारी अपने योग्यतम शिष्य अंगददेव जी को बनाया।

हम नहिं चंगे, बुरा नहिं कोई और दूसरों के दोष देखना छोड़कर अपने दोष देखने चाहिए, एक करतार और वही परम सत्य है, यही उनका आदर्श था। उन्होंने एकत्व, भ्रातृत्व, सेवा, सादगी, आत्मसंयम, आत्मालोचन एवं अन्तर्मुखता की प्रबल प्रेरणा अपने नीति के दोहों के द्वारा दी है।

स्वामी रामतीर्थ

आपका जन्म सन् १८७३ ई. में पंजाब के गुजरानवाला में हुआ था। आप २८ वर्ष की अल्पायु में गणित के प्राध्यापक का पद छोड़कर संन्यासी बन गए थे। आपने अमेरिका व जापान में भारतीय धर्म, संस्कृति एवं वेदांत का बखूबी प्रचार-प्रसार किया।

स्वामी रामतीर्थ ने टिहरी के समीप भागीरथी के तट पर कठोर तपस्या की तथा देशभक्ति का प्रचार कर राष्ट्र जागरण का महान कार्य किया। आपने ३३ वर्ष की अल्पायु में ही टिहरी के निकट भिलंगना नदी में जल समाधि ले ली थी। आपका जन्म व समाधि दोनों संस्कार दीपावली के ही दिन हुए थे।

महर्षि अरविंद

१५ अगस्त १८७२ को बंगाल में आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्रीकृष्णधन घोष थे। आप एक ऐसे कर्मयोगी थे जिसके पास ऋषियों-मुनियों का ज्ञान, भक्ति व तेज था। आपकी शिक्षा इंग्लैण्ड में हुई थी किंतु भारत वापस आते ही आप स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। इस कारण आपको कैद हुई। यहीं आपके मन में अध्यात्म भाव का उदय हुआ।

आपने पाण्डिचेरी में साधना की और यहीं अरविंद आश्रम की स्थापना भी की। आपके शिष्य लाखों की संख्या में थे जिन्हें आप भारतीय संस्कृति, धर्म एवं राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया करते थे। आपके हजारों अनुयायियों ने देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दिया। आपके द्वारा स्थापित विद्यालय व शिक्षा पद्धति आज भी विश्व के शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आप योग के प्रकाण्ड ज्ञाता थे और १९ वीं शताब्दी में गुरु गोरखनाथ के बाद योग विद्या के क्षेत्र में आपकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी।

रहीम

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। उनका जन्म सन् १५५६ ई.के लगभग लाहौर (अब पाकिस्तान) में हुआ था। ये

अकबर के संरक्षक बैरम खां के पुत्र थे। रहीम अकबर के दरबार के नवरत्नों में से थे। वे अकबर के प्रधान सेनापति और मंत्री भी थे। वे वीर योद्धा थे और बड़ी कुशलता से सेना का संचालन करते थे। उनकी दानशीलता की अनेक कहानियां प्रचालित हैं। सन् १६२७ ई. में इनका निधन हो गया।

अरबी, फारसी, तुर्की तथा संस्कृत के वे पंडित थे। उन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि का गहन अध्ययन किया। हिंदी काव्य के स्वयं भी मर्मज्ञ थे तथा हिंदी कवियों का बहुत सम्मान करते थे। गोस्वामी तुलसीदास से भी उनका स्नेह-संबंध था।

रहीम-सतसई, श्रृंगार-सतसई, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, रहीम-रत्नावली तथा बरवै नायिका भेद वर्णन उनकी रचनाएं हैं। रहीम बड़े लोकप्रिय कवि थे। उनके नीति के दोहे तो सर्वसाधारण की जिह्वा पर रहते हैं। उनके दोहों में नीरसता नहीं है। उनमें मार्मिकता तथा कवि-हृदय की सच्ची संवेदना भी मिलती है। दैनिक जीवन की अनुभूतियों पर आधारित दृष्टांतों के माध्यम से उनका कथन सीधे हृदय पर चोट करता है। उनकी रचनाओं में नीति के अतिरिक्त भक्ति तथा श्रृंगार की भी सुंदर व्यंजना हुई है।

रहीम जनसाधारण में अपने दोहों के लिए प्रसिद्ध हैं, पर उन्होंने कवित्त, सवैया, सोरठा तथा बरवै छंदों में भी सफल काव्य रचना की है। उनका ब्रज और अवधी भाषाओं पर समान अधिकार था। उनकी भाषा सरल, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण है।

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में रहीम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे राजदरबार में अनेक पदों पर कार्य करते हुए भी साहित्य सेवा में लगे रहे। रहीम का व्यक्तित्त्व बहुत प्रभावशाली था। वे स्मरण शक्ति, हाजिर-जवाबी और संगीत के मर्मज्ञ थे। वे युद्धवीर के साथ-साथ दानवीर भी थे। अकबर के दरबारी कवि गंग के दो छंदों पर रीझकर इन्होंने ३६ लाख रुपए दे दिए थे।

रहीम ने अपनी कविताओं में अपने लिए रहीम के बजाय रहिमन का प्रयोग किया है। वे इतिहास और काव्य जगत में अब्दुल रहीम खानखाना के नाम से प्रसिद्ध हैं। रहीम मुसलमान होते हुए भी कृष्ण भक्त थे। उनके काव्य में नीति, भक्ति-प्रेम तथा श्रृंगार आदि के दोहों का समावेश है। साथ ही जीवन में आए विभिन्न मोड़ भी परिलक्षित होते हैं।

रहीम अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने तुर्की भाषा के एक ग्रंथ वाक़यात बाबरी का. फारीस में अनुवाद किया। फारसी में अनेक कविताएं लिखीं। खेट कौतुक जातकम् नामक ज्योतिष ग्रंथ लिखा, जिसमें फारसी और संस्कृत शब्दों का अनूठा मेल था। इसके अतिरिक्त उनकी आठ रचनाएं इस प्रकार हैं- दोहावली, नगर शोभा, मदनाष्टक, फुटकर छंद तथा पद, श्रृंगार सोरठा एवं संस्कृत काव्य।

रहीम ने अपने अनुभवों को सरल और सहज शैली में मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की। उन्होंने ब्रज भाषा, पूर्वी अवधी और खड़ी बोली को अपनी काव्य-भाषा बनाया, किन्तु ब्रज भाषा उनकी मुख्य शैली थी। गहरी से गहरी बात भी उन्होंने बड़ी सरलता से सीधी-सादी भाषा में कह दी। भाषा को सरस, सरल और मधुर बनाने के लिए तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग किया।

चाणक्य

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में जब यूनान के राजा सिकंदर और उसके बाद सैल्यूकस ने भारत पर आक्रमण किया तो उस समय आचार्य चाणक्य की राजनैतिक विद्वत्ता ने ही इस देश की रक्षा की थी। मौर्य साम्राज्य के निर्माता आचार्य चाणक्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु भी थे और प्रधानमंत्री भी। वह बहुत बुद्धिमान और चतुर थे। गुप्त साम्राज्य को भारतवर्ष का स्वर्णिम काल कहा जाता है। यह सब चाणक्य की सूझ-बूझ का ही नतीजा था। आपने अनेकों पुस्तकें लिखीं चाणक्य नीति, चाणक्य सूत्र व कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रमुख हैं।

साईबाबा

शिरडी के साईंबाबा से कौन परिचित नहीं है। आपके गुरु का नाम वैंकुशा था। औरंगाबाद स्थित एलोरा की खुदलाबाद की छोटी सी गुफा में औलिया जर-जरी बख्श की मजार है। ये बाबा के पूर्व जन्म के मुर्शिद थे। यहां बाबा ने अन्न-जल त्यागकर कई वर्ष तक कठोर तपस्या की थी। तप से पूर्व ही बाबा एक बारात के साथ शिरडी पहुंचे थे। तप के बाद अक्कलकोट के स्वामी रामतीर्थ के अनुग्रह से बाबा पुन: शिरडी सन् १८५८ के आस-पास वापस आए। कुछ माह नीम वृक्ष की छाया तले निवास करने के बाद आपने एक मस्जिद को अपना स्थाई निवास बनाया जिसे द्वारकामाई नाम दिया, जो लाखों लोगों की दयामयी मां बन गई। बाबा के प्रारम्भिक सेवकों में म्हालसापति और तात्या कोते थे। बाबा ने शिरडी की सीमा पर पत्थरों की चक्की से पिसा गेहूं का आटा छिड़कवा कर प्लेग के

महाकाल से वहां के लोगों को बचाया था। यह बाबा का प्रथम चमत्कार था। इसके बाद तो अनेकों बार, हजारों लाखों लोगों को बाबा ने अपने चमत्कारों व कृपा से उपकृत किया था।

बाबा एक दिन में केवल पांच घरों से भिक्षा लेते थे और फकीरों की भांति ही जीवन-यापन करते थे। बाबा की दक्षिणा भक्तों के कुसंस्कार, कुविचारों को अपने पर लेने की एक क्रिया थी। बाबा दैवीय शक्तियों का समुच्चय, विराट व्यक्तित्वधारी महामानव थे। अल्ला अच्छा करेगा, अल्ला मालिक है, यह उनकी नित्यवाणी थी। दीपावली की रात दीप जलाने के लिए जब शिरडी के दुकानदारों ने तेल नहीं दिया, तो बाबा ने पानी के दीयों से ही शिरडी को जगमगाया था। यह किंवदंती नहीं, प्रामाणिक घटना है। बाबा के जन्म आदि के बारे में प्रामाणिक जानकारी नहीं है। बाबा ने स्वयं कहा है मैं आकारहीन हूं और हर जगह हूं। हर वस्तु में हूं और हर वस्तु में होकर भी, हर वस्तु से परे हूं। मैं अग्नि, आकाश में हूं और मुझ पर किसी भी स्थान और जगह का बंधन लागू नहीं होता।

कोपरगांव से बारह मील की दूरी पर स्थित शिरडी, उन्नीसवीं शताब्दी में एक अनजान नाम था जिसे आज दुनियाभर के लाखों-करोड़ों भक्त अपने हृदय में संजोए हुए हैं जो आज एक तीर्थस्थली बन गया है।

शिरडी वाले साईं बाबा एकेश्वरवाद के उन महान संतों मे है जिन्होने सर्वधर्म समभाव एवं मानवता की ऐसी अलख जगाई कि आज भी जो व्यक्ति शिरडी जाता है बस उन्ही का भक्त होकर रह जाता है। शिरडी के हर कण-कण में बाबा के चमत्कार एवं मानवता के लिए दिए गए संदेश का अहसास यहाँ पहुँचने वाले भक्त को अब भी होता है। महाराष्ट्र के अहमद नगर जिले का छोटा सा कस्बा साईं बाबा के श्रद्धालुओं के कारण एक बड़े धार्मिक स्थल का रूप ले चुका है। साई बाबा कहा करते थे जिस व्यक्ति ने हमे बनाया है जिसने हमे अपनी जिम्मेदारियों को निभाने के लिए इस संसार में भेजा है वह एक है सबका मालिक एक। सर्वधर्म की प्रेरणा देने वाले साईबाबा के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है। किन्तु ऐसा बताया जाता है कि सन् १८५४ मे लगभग १६ वर्ष की उम्र मे साईं बाबा शिरडी में एक नीम के पेड़ के नीचे देखे गए थे। जनश्रुतियों के अनुसार साईंबाबा बाल रूप मे एक सूफी संत को गोदावरी के तट पर मिले थे। उन्ही सूफी संत ने इन्हे सर्वधर्म उपासना तथा एक ईश्वर का स्मरण करने की प्रेरणा दी थी। गृहस्थी के नाम पर उनके पास लकड़ी का एक डंडा, सिर में बांधने के लिए कपड़ा, सूती धोती कुर्ता, एक टीन का डिब्बा तथा तकिये के नाम पर एक ईंट थी। साईं बाबा अपने भक्तों से कहते थे मैं फकीर हूँ, न मेरे घर-द्वार, मेरा मालिक एक, सबका मालिक एक। साईं बाबा समरूप, नित्य एक रस अखण्ड निर्गुण अमोघ शक्ति वाले दयावान थे। कहते है इनके दर्शन मात्र से असहाय रोगों से ग्रसित भक्त निरोगी हो जाते थे। बाबा के ज्यादातर भक्त इन्हे योगी मानते है। साईं बाबा के जीवन की अनेक घटनाएं चर्चित है। कहते है एक बार शिरडी में हैजा फैल गया। बाबा ने पत्थर की चक्की में आटा पीसा और उसे गोदावरी के तट पर बिखेर आये, उसी दिन से शिरडी हैजा मुक्त हो गया। शिरडी में बाबा एक पुरानी मस्जिद में रहा करते थे जिसे वह द्वारिका माई कहते थे। इस मस्जिद के बाहर खड़े नीम के पेड़ के नीचे बैठकर वह भक्तों को उपदेशित करते थे। इस पेड़ की पत्तियां स्वाद में आज भी मीठी होती है आज भी बाबा की समाधि पर पहुँचने वाले श्रद्धालु इस विचित्रता को आजमाते है। यद्यपि भीड़ को देखते अब इसे जाली से ढक दिया गया है। यहाँ बाबा के द्वारा प्रज्ज्वलित की गई धूनी आज भी है। शिरडी वह स्थल है जहाँ धर्म, संप्रदाय जैसे शब्दों के मायने नहीं रह जाते। यही प्रतिदिन लगभग ५०-६० हजार लोग मत्था टेकते हैं। रविवार एवं गुरुवार को यह संख्या १ लाख के आंकड़े को पार कर जाती है। १५ अक्टूबर १९१८ को विजय दशमी के दिन बाबा ने यही समाधि ली। इस दिन यहाँ दर्शनार्थियों की संख्या लगभग ३.५ से ४ लाख के मध्य होती है।

शिर्डी की महिमा है अपरंपार। अहमदनगर से ७५ किलोमीटर दूरी पर एक छोटा सा गांव है शिर्डी जिसकी ख्याति न सिर्फ आस-पास के क्षेत्र में बल्कि देश-विदेशों में फैली हुई है। यह स्थान संत श्री साईबाबा का लंबे समय तक निवासस्थान रहा है, इसलिए उनके भक्तगणों में शिर्डी को तीर्थस्थल का दर्जा प्राप्त है।

साईबाबा का जन्म कब और कहां हुआ, इसके बारे में कई मत है। वे लगभग ६० वर्षों तक शिर्डी में रहे और वर्ष १९१८ में शिर्डी में समाधिस्थ हो गए। वे किसी धर्मविशेष के अनुयायी नहीं थे। मस्जिद में रहते थे और मंदिर में पूजा करने जाते थे। उनके जन्म और उम्र के बारे में भी कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इस संबंध में सरकारी दस्तावेजों में एक घटना का वर्णन है। एक बार एक चोर ने पुलिस द्वारा पकड़ लिये जाने पर धुलिया कोर्ट में कहा कि जो कीमती वस्तुएं उसके पास हैं, वह उसे शिर्डी के साईबाबा से प्राप्त हुई हैं। धुलिया

कोर्ट ने एक आयुक्त बाबा का बयान लेने के लिए भेजा। आयुक्त ने जब बाबा से उनका और उनके पिता का नाम पूछा, तब उन्होंने अपना नाम साईबाबा बताया। गुरु का नाम वैकुन्सा बताया। अपना धर्म या वंश पूछे जाने पर उनका जवाब था कबीर। उन्होंने अपनी जाति लिखवाई परवर दिगार और आयु बताई लाखों वर्ष। इन उत्तरों से यह स्पष्ट है कि बाबा को किसी धर्म या जाति की परिधि में नही बांधा जा सकता। उनके नाम की यदि विवेचना करें, तो साई यानी रक्षक और बाबा यानी पिता। साईबाबा से जो लोग मिले थे, वे उनके चमत्कारिक किस्से सुनाते हैं। इन किस्सों से बाबा की अद्‌भुत शक्ति का हम सिर्फ अनुमान ही लगा सकते हैं। उनके प्रति उनके भक्तों की श्रद्धा इतनी दृढ़ है कि आज जब उनके भक्त प्रसाद चढ़ाते हैं तो उसमें उन्हें शहद की बूंदे दिखाई पड़ती है। कई भक्त अपने आस-पास बाबा की उपस्थिति महसूस करते हैं। साईंबाबा ने लगभग सारा जीवन शिर्डी में ही व्यतीत किया है। जब उन्होंने अपने भौतिक शरीर का त्याग किया, तब किसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। लेकिन उनके भक्तों ने उसी स्थान पर एक मंदिर का निर्माण करवाया जो शिर्डी के साईबाबा मंदिर के नाम से देश विदेश में मशहूर है। यह मंदिर लगभग ४० वर्षों से विभिन्न चरणों में बनकर तैयार हुआ। इस मंदिर के कई भाग हैं। इसमें पहला भाग है प्रांगण जिसमें बाबा के अनेक भक्तों की समाधियां, धर्मशालाएं, भंडार घर, सामूहिक भोजन कक्ष और एक उद्यान है, जिसमें बाबा पौधों को सींचते, टहलते और बैठते थे। साईबाबा का समाधि मंदिर पत्थरों का बना है और बाबा की समाधि सफेद संगमरमर की है। समाधि के सामने चांदी के दो खंभे हैं। समाधि के ठीक पीछे इटली के संगमरमर से बनी बाबा की छह फीट ऊंची, सिंहासन पर बैठी हुई मूर्ति है। स्वर्गीय बालाजी वसंत ने यह मूर्ति बनाई थी। ७ अक्टूबर १९५४ के दिन इस मूर्ति की स्थापना की गई। मूर्ति के सिर पर खुली हुई चांदी की छत्री है। मंदिर के सामने एक कक्ष है, जहां ६०० भक्तजनों के बैठने की व्यवस्था है। मंदिर की पहली मंजिल पर बाबा के कई चित्र मौजूद हैं। मंदिर में रस्मों की शुरुआत सुबह ५ बजे होती है। काकड़ आरती के बाद मंत्रोच्चारण के साथ सुबह ६ बजे साईबाबा की मूर्ति को गमछा पहनाकर उनका मंगल स्नान प्रारंभ किया जाता है। पहले शुद्ध दूध से और दूसरी बार गुलाबजल से स्नान होता है। इसके बाद प्रात:काल की आरती होती है। फिर सभी भक्तगणों को प्रसाद के रूप में मक्खन वितरित किया जाता है। दिन-भर संकल्प, पूजा आरती का आयोजन चलता है। ११ बजे रात में मंदिर बंद होता है। साल में केवल तीन बार गुरुपूर्णिमा, दशहरा और रामनवमी के दिन मंदिर दिन-रात खुला रहता है। हर गुरुवार और त्यौहार के दिन बाबा के फोटो की पालकी निकाली जाती है।

शिर्डी का एक अन्य दर्शनीय स्थल है द्वारकामाई। साईबाबा एक बारात के साथ शिर्डी आए थे और अपने जीवन के अंत तक यहां के द्वारकामाई में रह रहे थे। यह स्थान समाधि मंदिर के दाहिनी ओर है। इसी स्थान पर रहकर साईबाबा ने लोगों की समस्याओं को हल किया, उनकी बीमारियां ठीक कीं, उनकी चिंताएं दूर कीं। द्वारकामाई के पहले चरण पर बाबा का एक चित्र है और एक बड़ा पत्थर, जिसपर बाबा बैठते थे। यहां दो कमरे हैं। एक कमरे में रथ है और दूसरे में पालकी है। द्वारकामाई के दूसरे चरण पर एक चौरस चबूतरा है जो पत्थर का बना है। यहां पर बाबा स्नान किया करते थे। साईबाबा सबसे पहली बार बालयोगी बनकर शिर्डी आए थे। उन्हें पहली बार नीम के पेड़ के नीचे बैठा हुआ देखा गया था। इस स्थान का नाम पड़ा गुरुस्थान। ३० सितम्बर १९४१ के दिन गुरुस्थान का पुनर्निमाण हुआ। गुरुस्थान में एक छोटा स्मारक है, जहां साईंबाबा की तस्वीर रखी गई है। बगल में बाबा की संगमरमर की मूर्ति भी है। तस्वीर के सामने एक शिवलिंग और नंदी है। बारह ज्योतिर्लिंगों की तस्वीर मंदिर में रखी हुई है। नीम की डालियां मंदिर के भीतर से होकर निकली हैं। थोड़ी ही दूरी पर बाबा की छावड़ी है जहां बाबा हर दूसरे दिन सोने आते थे। छावड़ी के एक हिस्से में बाबा की बड़ी तस्वीर, एक लकड़ी का पलंग और सफेद कुर्सी है, जिसे बाबा इस्तेमाल करते थे। बाबा यहां पर सुबह और दोपहर में नीम के पेड़ के नीचे आराम करने आते थे। बाबा ने नीम के नीचे एक गड्ढा खोदकर उसमें दीपक जला रखा था। इसी की याद में आज भी यहां दीपक सदा जलता रहता है। करोडों लोगों के श्रद्धा का स्थान कहे जाने वाले देश के विभिन्न धार्मिक स्थलों पर श्रद्धालुओं की उमड़ती भीड़ को देखते हुए उन्हें ठगने वाले भोंदू बाबाओं की संख्या भी निरंतर बढ़ती जा रही है।

ऐसी ही एक घटना समूचे देश में सुप्रसिद्ध शिर्डी के श्री साईबाबा के मंदिर में घटी, यहां अपने आपको साईबाबा का अवतार बताकर श्रद्धालुओं को ठगने का प्रयास करने वाले भोंदू बाबा का एक जागरूक व्यक्ति की समय सूचकता के कारण पर्दाफाश हुआ है, जिसके कारण कई श्रद्धालु ठगी से बच गए। सर्वधर्मीय लोगों का श्रद्धास्थान बन चुके श्री साईबाबा का दर्शन करने के लिए देश के सभी प्रांतों

से रोजाना हजारों श्रद्धालु शिर्डी आते हैं। गुरुवार व रविवार को तो यहां श्रद्धालुओं की भारी भीड़ उमड़ती है। इस उमड़ती भीड़ का फायदा उठाने के लिए बड़े पैमाने पर भोंदू बाबा भी शिर्डी आने लगे हैं। साईबाबा की शाम की आरती होने के बाद श्रद्धालु मंदिर से बाहर निकल ही रहे थे कि तभी अचानक वहां साईबाबा के नाम का जयघोष करते हुए १० से १२ लोग हाथों में पालखी लेकर आ पहुंचे और देखते ही देखते उनमें से भगवा वस्त्र पहना हुआ एक व्यक्ति जय साईराम की चीख मारकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे गिरता देख वहां भीड़ जमा होने लगी। इससे पहले कि लोगों की समझ में कुछ आता, बाबा के चेले ने बाबा के भीतर साईबाबा समा गए, ऐसा बोलते हुए जमा भीड़ से बाबा से जल्दी-जल्दी पैर पकड़कर जो मांगना है, मांगो। बाबा भक्तों का उद्धार करने के लिए आए हैं। यह सुनते ही जमा भीड़ भावनाओं में बहकर बाबा के पैरों पर गिरने लगी, जिसमें ज्यादातर महिलाएं थीं, कोई बाबा के दर्शन कर रहा था, तो कोई पैसों के रूप में चढ़ावा चढ़ा रहा था। मंदिर के समीप भारी भीड़ को देखते हुए वहां उपस्थित पत्रकार को शक हुआ और उन्होंने जाकर देखा तो पाया कि एक भोंदू बाबा साईबाबा के नाम पर श्रद्धालुओं की भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर ठग रहा है, वे तुरंत मंदिर के जिम्मेदारों के पास गए और उन्हें सारी घटना बताई। घटना सुनते ही मंदिर के जिम्मेदार एक पुलिस व कुछ गार्ड लेकर घटना स्थल पर अविलंब पहुंचे। उन्हें देखते ही भोंदू बाबा के होश ठिकाने आ गए और वह वहां से भाग खड़ा हुआ। ऐसी घटनाएं केवल शिर्डी ही नहीं, बल्कि देश के विभिन्न धार्मिक स्थलों पर भी घटने लगी है। भोंदू बाबा श्रद्धालुओं की भावनाओं से खिलवाड करते हुए उन्हें ठगने लगे हैं। इसलिए लोगों को चाहिए कि वह ऐसे भोंदू बाबाओं से सावधान रहें।

ओशो (आचार्य रजनीश)

११ दिसम्बर १९३१ को मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में जन्में ओशो का बचपन का नाम रजनीश चन्द्र मोहन था। आपने सन् १९५७ में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में एम.ए. किया व गोल्ड मेडल प्राप्त किया। इसके बाद वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। इससे पूर्व २१ मार्च १९५३ को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि (परम जागरण) को उपलब्ध हुए।

सन् १९६६ में ओशो ने विश्वविद्यालय से त्यागपत्र दे दिया और परम भगवत्ता के खजाने को सम्पूर्ण मानवता में बांटने के लिए सक्रिय हो गए। ओशो के इस अवतार को जोरबा दि बुद्धा की संज्ञा दी जाती है- एक ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तरह से समृद्ध है। सम्पूर्ण देश का भ्रमण करने के बाद आप १९७० से बम्बई रहने लगे और मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में नव-संन्यास की दीक्षा देना आरम्भ किया। सन् १९७४ में पूना में आपने रजनीश आश्रम की स्थापना की और आचार्य रजनीश से भगवान् रजनीश के रूप में जाने लगे। ओशो ने जीवन के प्रत्येक आयाम पर, भारतवर्ष व विदेशों के प्रत्येक धर्म गुरु की शिक्षाओं पर विस्तृत प्रवचन दिए हैं। ओशो धाराप्रवाह बोलते थे। प्रत्येक विषय की उन्हें गूढ़तम जानकारी थी। आपके प्रवचन जो शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए थे- छह सौ पचास से सात सौ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। आपका प्रिय विषय ध्यान था। १९८१ में अपनी बीमारी का इलाज कराने अमेरिका गए। ओशो के अमेरिकी शिष्यों ने ओरेगन राज्य के मध्य में ६४००० एकड़ भूमि पर रजनीशपुरम् नाम से निगमीकृत शहर बनाया। १९८५ में अमेरिकी सरकार ने अप्रवास सम्बन्धी विभिन्न आरोप लगाकर ओशो को परेशान किया तो पुन: भारत लौट आए। फिर सम्पूर्ण विश्व का भ्रमण करके जुलाई १९८६ में बम्बई व जनवरी १९८७ में पुन: पूना के आश्रम में लौट आए। आपने अपने प्रवचनों में पंडितों, पुरोहितों व राजनेताओं के पाखण्डों तथा मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का अपनी क्रांतिकारी शैली में, प्रवचनों के माध्यम से बखूबी पर्दाफाश किया।

२६ दिसंबर १९८८ को अपने नाम के आगे से भगवान् शब्द हटा दिया। २७ फरवरी १९८९ को ओशो कम्यून इंटरनेशनल (पूना के आश्रम का वर्तमान नाम) के बुद्ध सभागार में आपके शिष्यगणों ने आपको ओशो के नाम से पुकारना आरम्भ किया। यह नाम विलियम जेम्स के शब्द ओशनिक से लिया गया है- जिसका अभिप्राय है सागर में विलीन हो जाना। सुदूर पूर्व में भी ओशो शब्द प्रयुक्त होता रहा है जिसका अर्थ है- भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति, जिस पर आकाश फूलों की वर्षा करता है। १९ जनवरी १९९० को ओशो ने महाप्रयाण किया। उनके अस्थि-पुष्प का कलश ओशो कम्यून (पूना) के ध्वांग्त्स् हॉल में निर्मित समाधि भवन में स्थापित है।

HHH(५२९)HHH

मोहम्मद पैगम्बर

हजरत मोहम्मद पैगम्बर का जन्म ५७० ई. में मक्का में हुआ था। आपके माता-पिता का बचपन में ही इंतकाल हो गया था। आपकी परवरिश आपके चाचा अबू तालिब ने की।

पच्चीस वर्ष की आयु में मोहम्मद को एक धनी विधवा महिला खादीजा की सेवा में ऊंटवान की नौकरी मिली। खादीजा, मोहम्मद के काम से प्रसन्न थी और उन तक शादी का पैगाम पहुंचाया। विवाह के बाद मोहम्मद व्यापार से अधिक एकांत में ध्यान-मग्न किया करते थे।

चालीस वर्ष की आयु में मोहम्मद को मक्का के समीप की पहाड़ी की गुफा में पहली ईश्वरीय अनुभूति हुई। इसके बाद मोहम्मद ने घोषणा की कि अल्लाह ने मानवजाति के लिए अपना रसूल (दूत) उन्हें ही बनाया है। उन्होंने अपनी अनुभूति के बारे में अपने घनिष्ठ मित्र अबू वक्र और कुछ घरवालों को बताया था। धीरे-धीरे उन्होंने अपना उद्देश्य मजबूत किया और महान् कार्यों के लिए कमर कस ली।

उस समय मक्का में अनेकों तरह के धर्म व्याप्त थे। मूर्ति-पूजा, भूत-प्रेत पूजा, ईसाई आदि अनेकों सम्प्रदाय के लोग थे। अंधविश्वास चरम पर थे। मोहम्मद ने मूर्ति-पूजा और अंधविश्वासों की आलोचना की। इस पर मक्कावासियों ने मोहम्मद को अपमानित किया। परंतु मोहम्मद अपने कार्य में लगे रहे। चार वर्ष की मेहनत के बाद चालीस लोगों ने मोहम्मद द्वारा चलाए गए इस्लाम धर्म को कबूल किया। मक्का में उनका विरोध होता रहा। इस कारण उन्होंने मदीने की यात्रा की जिसे हिजरत कहते हैं और वहां अनेक लोगों को इस्लाम धर्म कबूल करवाया। इसी घटना से हिजरी सम्वत् (मुसलमानी युग) का आरम्भ माना जाता है।

इसके बाद अरब के सभी देशों व फारस में अपने चेलों को भेजकर मोहम्मद ने इस्लाम को बढ़ाया। इसके बाद अपने हजारों अनुयायियों के साथ पैगम्बर ने मक्का की यात्रा की और वहां अपना धार्मिक साम्राज्य स्थापित किया। सामान्य कद-काठी किंतु आकर्षक व्यक्तित्व के धनी मोहम्मद इस्लाम के पहले नबी (प्रचारक) थे। आपके अंतिम शब्द थे- प्रत्येक इंसान को अपनी मुक्ति के लिए साधना करनी चाहिए।

आज इस्लाम विश्व का दूसरा बड़ा धर्म है किंतु इसके अनुयायी विश्वभर में आतंकवाद फैलाने, अनावश्यक जनसंख्या बढ़ाने जैसे गैर इस्लामिक कार्यों में लगे हुए हैं। अशिक्षा और धार्मिक कट्टरपंथियों से मुक्त होने पर यह धर्म और तरक्की करेगा।

आदि शंकराचार्य

आपका जन्म आठवीं शताब्दी में केरल राज्य के कालडी नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता शिवगुरु व माता विशिष्टा थीं। आपका परिवार सनातन धर्मी नम्बूदरी ब्राह्मण था। आठ वर्ष की अल्पायु में अपने उपनयन संस्कार से पूर्व ही आपने अनेक धर्मग्रंथों में प्रवीणता हासिल कर ली थी। आपने सोलह वर्ष की अल्पायु में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

आपने षट्दर्शन का सांग्तेचांग दर्शन किया और बाह्य जगत् से पूर्णतया विरक्त हो गए। मां आपके संन्यासी होने की पक्षधर नहीं थीं। किंतु आपकी लग्न-निष्ठा और समर्पण देखकर मान गईं। आपके बचपन का नाम शंकर था। आपने नर्मदा तट पर विख्यात गोविंद पाद की शिष्यता ग्रहण की। गुरु की आज्ञा से आपने भगवान वेदव्यास के वेदांतसूत्रों का भाष्य लिखा। इसके पश्चात् आपने हिमालय से कन्याकुमारी और कश्मीर से आसाम में कामरूप तक पैदल भ्रमण किया। इस यात्रा के दौरान आपने विभिन्न क्षेत्रों के प्रकाण्ड विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। अधिकतर पराजित विद्वान आपके शिष्य या अनुयायी हो गए।

आचार्य शंकर के चार प्रमुख शिष्य थे- पद्मपाद, तोटकाचार्य, हस्तामलक और सुरेश्वराचार्य। इनमें से सुरेश्वराचार्य का पूर्व नाम मण्डन मिश्र था। ये और इनकी पत्नी उभयभारती वैदिक कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन दोनों को शास्त्रार्थ में पराजित करना आचार्य शंकर की महान उपलब्धि थी। बाद में शास्त्रार्थ की शर्त के अनुसार मण्डन मिश्र, आचार्य शंकर के शिष्य बने सुरेश्वराचार्य कहलाए। आचार्य शंकर के प्रबल विरोधी बौद्ध अनुयायी थे, जिन्हें बाद में आचार्य शंकर के आगे नतमस्तक होना ही पड़ा। आचार्य शंकर ने वेदांत की महिमा और श्रेष्ठता प्रतिस्थापित की।

आपके जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य भारतवर्ष की चार दिशाओं में चार मठ स्थापित करना था जो बाद में भारत के प्रमुख धार्मिक केन्द्र बने। ये चार मठ हैं- पूर्व- जगन्नाथ पुरी में गोवर्धन मठ, पश्चिम- द्वारका में शारदा मठ, उत्तर-हिमालय के बदरिकाश्रम

में ज्योतिर्मठ (जोशीमठ) व दक्षिण-कर्नाटक राज्य के अंतर्गत श्रृंगेरी मठ। इन मठों पर अपने चारों प्रमुख शिष्यों को आपने पीठाधिपति नियुक्त किया। आपने संन्यासियों की दस श्रेणियां स्थापित कीं- गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती, तीर्थ, आश्रम, वन, अरण्य, सागर और पर्वत। आपने ब्राह्मसूत्र, ग्यारह प्रमुख उपनिषदों और भगवद्गीता पर भाष्य लिखा। आपके प्रमुख ग्रंथों में विवेक चूड़ामणि व अपरोक्षानुभूति हैं। आचार्य शंकर पूर्णतया अद्वैतवादी थे किंतु आपका अंत:करण भक्ति-भाव से ओत-प्रोत था। हिंदू धर्म में आपको भगवान के समकक्ष स्थान प्राप्त है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

आपका जन्म २० सितम्बर १९११ को आगरा नगर के ग्राम आंवलखेड़ा में हुआ था। आपके पिता पं. रूपकिशोर शर्मा थे।

आपने किशोरावस्था से ही समाज-सुधार की रचनात्मक प्रक्रिया आरम्भ करके छूआ-छूत मिटाने का आंदोलन चलाया। पंद्रह वर्ष की आयु में महामना पं. मदनमोहन मालवीय ने गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी। आपकी गुरुसत्ता ने पूजा के दिए की लौ से प्रकट होकर आपको गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लाख के चौबीस महापुरश्चरण करने की प्रेरणा दी थी। गुरुसत्ता के आदेश को पूरा करने के साथ ही १९२७ से १९३३ तक आप स्वतंत्रता सेनानी के रूप में भी कार्यरत रहे। आपको गायत्री की सिद्धि प्राप्त हुई थी व दर्शन भी हुए थे। आपके द्वारा सन् १९३८ की वसंत पंचमी से प्रकाशित होना शुरू हुई अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका अभी भी निर्बाध रूप से प्रकाशित हो रही है। इसके अलावा युग निर्माण योजना मासिक पत्रिका व प्रज्ञा अभियान पाक्षिक समाचार पत्र भी प्रकाशित होता है।

आपने मथुरा से अपना कार्य प्रारम्भ किया था जहां अभी भी युग निर्माण प्रैस स्थापित है। मथुरा में ऋषि दुर्वासा की तपोभूमि पर १९५३ ई. में गायत्री तपोभूमि की स्थापना की। यहां २४००० तीर्थों के जल व रज की स्थापना की गई, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहां स्थापित हुआ व अखण्ड अग्नि स्थापित हुई। १९७१ में हरिद्वार में महर्षि परशुराम की तपोस्थली पर शांतिकुंज की स्थापना के साथ ही १९७३ में ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की स्थापना अमर गणितज्ञ आर्यभट्ट की कर्मभूमि पर की। आपने हजारों छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखीं और जनसामान्य को वेद, स्वास्थ्य, शिक्षा, धर्म, व्यवहार, व्यक्तित्व, रहन-सहन, संस्कार, पूर्जा, यज्ञ आदि की अनेकों गूढ़ बातों को सरल-भाषा-शैली में समझाया। आपकी धर्म पत्नी वंदनीय माता जी भगवती देवी शर्मा ने भी आपके कार्यों में भरपूर सहयोग दिया।

आपने १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्त्रकुण्डी यज्ञ आयोजित किए। १९८० से १९९० के मध्य आपने देश भर में गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना करवाई। अपने अश्वमेध यज्ञ भी आयोजित कराए। शक्तिपीठों के अलावा स्वाध्याय मण्डल व प्रज्ञामण्डल भी स्थापित कराए। आपने ध्यान-साधना-मंत्र व यज्ञ द्वारा उपचार की पद्धति यज्ञोपैथी की खोज की व जनता को इसका ज्ञान उपलब्ध कराया। गायत्री मंत्रो को कान में कहने की परम्परा समाप्त कराकर जन-जन का मंत्र बनाया। करोड़ों अनुयायियों के साथ आज इस संस्थान की शाखाएं ७६ देशों में हैं।

ईसा मसीह

ईसा मसीह का जन्म लगभग दो हजार वर्ष पूर्व यहूदिया के बैतलहम में हुआ था। आपकी माता का नाम मरियम व पिता का यूसुफ था। यहूदिया के राजा हेरोदस को जब ज्योतिषियों ने बताया कि यहूदियों के नए राजा ने जन्म ले लिया है तो उसने उस समय पैदा हुए सभी बच्चों को मारने का आदेश दे दिया। पर ईसा के पिता उन्हें मिस्त्र लेकर भाग निकले। ईसा के जन्म के पूर्व ही मरियम को स्वप्न में स्वर्गदूत ने कहा था- तू पुत्र जनेगी उसका नाम ईसा रखना। वह अपने लोगों का उनके पापों से उद्धार करेगा।

राजा हेरोदस की मृत्यु के बाद ईसा गलील आए और बाद में मासरत में बस गए। आपको यरदन में यूहजा ने बपतिस्मा प्रदान किया। बपतिस्मा लेते ही उन्होंने परमेश्वर की आत्मा को कबूतर की तरह उतरते और अपने ऊपर आते हुए देखा। उसी समय यह आकाशवाणी हुई- यह मेरा प्रिय पुत्र है। जिससे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। बपतिस्मा लेने के बाद ईसा चालीस दिन तक अदृश्य रहे। ईसा के कुल बारह शिष्य हुए जिन्होंने गांव-गांव जाकर लोगों की सहायता करना व धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ किया। उनके कार्यो से लोग इतने प्रसन्न थे कि ईसा को यहूदियों का राजा कहकर पुकारते थे किंतु कुछ स्वार्थी व धर्म के स्वयंभू ठेकेदारों ने एक झूठा मुकदमा चलाकर ईसा को मृत्युपर्यंत सूली पर लटकाए जाने का निर्णय सुनवा दिया। करुणा, प्रेम और दया की मूर्ति ईसा ने सूली पर लटकते

समय भी यही कहा- हे पिता, इन्हें क्षमा कर दे, क्योंकि ये जानते नहीं कि ये क्या कर रहे हैं।

ईसा के उपदेश अत्यंत उदार थे। उन्होंने स्वयं कहा है- मैं नष्ट करने नहीं, सम्पूर्ण बनाने आया हूं। उनकी सोच धार्मिक संकीर्णतावाद अथवा पृथकतावाद से परे थी। ईसा हृदय की पवित्रता पर जोर देते थे क्योंकि हृदय शुद्ध होने पर ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। ईसवी सम्वत् आप ही के नाम पर पड़ा है। आज दुनियाभर में ईसा के मानने वाले ईसाई धर्म के अनुयायी सर्वाधिक हैं। बाइबल आप ही का ग्रंथ है जो ईश्वर के आदेश पर लिखा गया।

ईसा के बारह शिष्यों के नाम ये हैं- १) शमौन, जो पतरस (Peter's) कहलाता है और २) उसका भाई अन्द्रियास, ३) जबदी का पुत्र याकुब और ४) उसका भाई यूहन्ना ५) फिलिप्पुस और ६) बर तुल्मै ७) थोमा और ८) महसूल लेनेवाला मत्ती, ९) हलफै का पुत्र याकुब और १०) लेबियस जिसका उपनाम तद्दै था, ११) शमौन कनानी और १२) यहूदा इस्करियोती, जिसने उसे पकड़वा भी दिया। इन बारहों को ईसा ने यह आज्ञा देकर भेजा कि अन्य जातियों की ओर न जाना और सामरियों के किसी नगर में प्रवेश न करना। परन्तु इस्राइल के घराने की ही खोयी हुई भेड़ों के पास जाना और चलते-चलते प्रचार कर कहना, स्वर्ग का राज्य निकट आ गया है।

कृपाल संत राजिन्दर सिंहजी महाराज

संत राजिन्दर सिंह जी महाराज सुरत-शब्द योग के पूर्ण अनुभवी संत-सत्गुरु तथा सावन कृपालु रूहानी मिशन के जो कि एक सार्वभौमिक आध्यात्मिक संस्था है, अध्यक्ष है। सावन कृपाल रूहानी मिशन के ४० देशों मे १५०० केन्द्र हैं। यह मिशन बिना किसी लाभ के लोगों को ध्यानाभ्यास सीखने में सहायता करता है। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसा स्थान उपलब्ध कराना है, जहाँ लोग ध्यानाभ्यास में बैठ सकें और बाहरी एवं आंतरिक शांति पाएँ। महाराज जी ने सेमिनार (परिसंवाद), ध्यान-शिबिर, दूरदर्शन, रेडियो, पुस्तकों और पत्रिकाओं आदि के द्वारा, ध्यान-साधना की अपनी सरल किंतु शक्तिशाली प्रणाली को विश्व के करोड़ों लोगों तक पहुँचाया है। बाहरी और आंतरिक शांति पाने की इनकी इस प्रणाली को विश्व के राजनैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं सभी ने स्वीकारा है।

इन्होंने कई पुस्तकें लिखी है- जैसे आत्म शक्ति, ध्यान के द्वारा आंतरिक और बाह्य शांति इस पुस्तक का प्राक्कथन बौद्ध गुरु, दलाई लामा ने लिखा है। महाराज जी की अन्य पुस्तकें आत्मिक एकता तथा शांति के आयाम, आत्मा का पर्यावरण, शांति-पूर्ण जगत के लिए शिक्षा इत्यादि। इसी प्रकार हिन्दी में इनके आधुनिक युग में अध्यात्म, सच्चा सुख जैसे रूहानियत से संबंधित अनेक विषयों पर ऑडियो-वीडियो कैसेटस्, पुस्तकें वे लेख नियमित रूप से सैकड़ों की संख्या में विश्व भर के समाचार-पत्रों, दैनिक-पत्रों और पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित होते रहते हैं। इनकी साहित्य रचनायें विश्व की ५० से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं। महाराज जी ने अपनी विश्व यात्राओं के दौरान कई सेमिनार, ध्यान-शिबिर और प्रवचन किए हैं। संत राजिन्दर सिंह जी महाराज के प्रवचन दूरदर्शन और रेडियों के द्वारा पूरे विश्व में नियमित रूप से प्रसारित होते रहते हैं। इंटरनेट प्रणाली के जरिये महाराज के प्रवचन विश्व के विभिन्न देशों तक पहुँचाये जाते है।

संत राजिन्दर सिंह जी महाराज मानव एकता समाज एवं विश्व धर्म संघ संस्थाओं के अध्यक्ष है। महाराज जी शिकागो में १९९३ में हुई विश्व धर्म संसद और रोम, इटली में १९९४ में हुई विश्व धर्म और शांति संघ के एक मुख्य वक्ता थे। वे सातवें विश्व धर्म सम्मेलन (१९९४, भारत) तथा १६ वें, १७ वें, १८ वें, एवं १९ वें मानव एकता सम्मेलनों (१९९६-भारत, १९९७-कोलंबिया, १९९८- जर्मनी, १९९९-भारत) के भी अध्यक्ष चुने गए।

महाराज जी को अनेकों पुरस्कारों से सम्मानित किया गया- जैसे कि १९९७ में 'Interfaith Center of New York, व 'Temple of Understanding' द्वारा शांति पुरस्कार। बाल्टीमोर में एक दिन संत राजिन्दर सिंह दिवस के नाम से मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र की ५० वीं साल गिरह जो न्यूयार्क में मनायी गयी थी, उसमें महाराज जी ने हजारों लोगों को ध्यान पर बिठाया। उन्होंने एक सभा में संयुक्त राष्ट्र के Sec. General के सम्मान में प्रार्थना आयोजित की। महाराज जी को (National Prayer Breakfast) राष्ट्रीय प्रार्थना भोज में जो फरवरी १९९७ में स्थापित की गई थी, विशेष रूप से आमंत्रित किया गया, जो अमरीका के राष्ट्रपति क्लिंटन की अध्यक्षता में की गई थी। उन्हें संयुक्त राज्य अमरीका की तटरक्षक अकादमी द्वारा नेतृत्व की सदाचार द्वारा परिभाषा विषय पर वक्तव्य देने के लिये

आमंत्रित किया गया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेम्बली की धार्मिक तथा आध्यात्मिक नेताओं की सहस्त्राब्दिक शांति गोष्ठी के उद्घाटन समारोह में भी व्याख्यान दिया।

मानवता की सेवा के लिए महाराज जी हमेशा तत्पर रहते हैं। महाराज जी ने भारत में ऐसे १५ विद्यालय खोले हैं, जिनमें शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ ही आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जाती है। ये विद्यालय मजबूत शैक्षिक आधार के साथ ही रूहानियत पर भी जोर देते हैं। मिशन ने विभिन्न धर्मों के कई पुस्तकालय, देश-विदेश में ध्यान विकास केन्द्र और दूसरे देशों में मानव विकास कार्य जैसे मुफ्त ऐलौपैथिक, हौम्योपैथकि व आयुर्वेदिक औषधालय तथा नि:शुल्क नेत्र शिबिर लगवाये हैं। मिशन द्वारा समय-समय पर घटित प्राकृतिक विपदाओं-जैसे कोलम्बिया में आए ज्वालामुखी, मैक्सिको में आए भूचाल, दिल्ली में बाढ़ पीड़ित क्षेत्र और फ्लोरिडा में आए चक्रवात में फँसे लोगों की सहायता की जाती है। गुजरात में आए भूचाल के दौरान कई शहर क्षतिग्रस्त हो गए- मिशन द्वारा वहाँ एक शहर भी बसाया गया, जिसमें कई घर तथा स्कूल तथा मेडिटेशन हॉल, कम्यूनिटी सेंटर भी बनाये गये।

महाराज जी ने अपनी शिक्षा विज्ञान एवं तकनीकी में प्राप्त की है। उन्होंने मद्रास के प्रसिद्ध तकनीकी संस्थान आइ.आइ.टी. मद्रास से B.Tech. (Electrical Engg.) तथा आइ.आइ. टी. शिकागो की IIIionois Institute of Technology, Chicago से मास्टर ऑफ साईस (M.S.) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। IIIionois Institute of Technology ने संत राजिन्दर सिंह जी महाराज को उनके शांति और शिक्षा के क्षेत्रों में किए गए प्रयासों के लिए प्रतिष्ठित नेतृत्व पुरस्कार (Distinguished Leadership Award) के लिए चुना। महाराज जी ने (Electronics, Communications, Computer) इलेक्ट्रॉनिकी, दूरसंचार और संगणीकरण क्षेत्र में २० साल का सफल कार्यक्षेत्र बनाया और कई उपकरणों में महत्त्वपूर्ण नवीनीकरण किए।

संत मत के इतिहासमें प्रथम बार १० जनवरी २००४ को दक्षिण अमेरिका के पेरू देश के शिक्षा मंत्री व ७० विश्व विद्यालयों कि समितिने मिलकर संत राजिंदर सिंहजी महाराज को दो Doctorate की उपाधियों से सन्मानित किया जो एक महान गौरव की बात है।

सावन कृपाल रूहानी मिशन की अध्यात्मिक परंपरा सही मायनों में संत नामदेवजी महाराज से शुरू हुई है। संत नामदेवजी महाराज से यह परंपरा शुरू होकर, संत तुलसीदास साहेब, स्वामी शिवदयालजी, बाबा जयमलसिंहजी महाराज, हुजूर बाबा सावन सिंहजी महाराज, परम संत कृपालसिंहजी महाराज, दयाल पुरुष संत दर्शन सिंहजी महाराज तथा मौजूदा सरकार संत राजिंदर सिंहजी महाराज इसी परंपरा के जरिये भावप्रणाली के उत्थान हेतु कार्य कर रहे हैं।

रवीन्द्र नाथ ठाकुर

भारत के सांस्कृतिक एवं पौराणिक इतिहास में मन की उदार शक्तियों को जागृत करने वाले जीवन के संघर्ष में पथ को आलोकित एवं हृदय को झंकृत करने वाले कथानकों की कमी नहीं है। मूलत: साहित्य और कला दोनों ही जीवन की चेतना और अनुभूति की अभिव्यक्ति है। इसमें सौंदर्यपूर्ण, निर्दोष, साधुमना एवं वीर चरित्र की प्रचुरता है। यह चरित्र युगों से कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में आज भी उपलब्ध है।

आदि मानव ने प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों और उसके भयावह रूपों को देखकर उनमें परित्राण पाने के लिए ऐसी अदृश्य शक्ति की कल्पना की जो उसकी रक्षा कर सके। मानव के सामाजिक जीवन के साथ-साथ उसकी मानसिक शक्तियों का भी विकास हुआ और उसमें बौद्धिक प्रतिभा भी जागृत हुई। मानव के चिन्तन का केंद्र अमूर्त भाव है और कला का आरंभ वहीं से होता है। चित्रों के रंगों का वही महत्व है जो शरीर में हृदय का है। रंग, अग्नि और जल की भांति एक अनिवार्य वस्तु है। इसका प्रभाव क्षणिक न होकर स्थायी होता है। मनुष्य स्वभाव से ही कलाकार है और किसी भी माध्यम से वह अपने भावों को व्यक्त करने का साधन ढूंढ लेता है, इसलिए यह कहना कठिन है कि कब और किस माध्म से कला का उदय हुआ।

कलाकार की तूलिका आदर्श और कल्पना से परिचित है और वह उसी को रूप देती है। उसकी मान्यता है कि सूक्ष्मतम वस्तुओं से महान कृतियों का सृजन होता है, जो सजीव दृश्य से कहीं अधिक शक्तिशाली होती है। उनमें जीवन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलती है। कला के विकास में द्वंद्वात्मक प्रवृत्तियां भी प्रेरक होती हैं जिनमें से एक का लक्ष्य होता है सौंदर्य-दर्शन और दूरी का ज्ञानार्जन। इस दूसरी प्रवृत्ति ने भी अति यथार्थवाद को जन्म दिया और उसका लक्ष्य था मानव के अन्तर्मन की खोज।

कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने अमूर्त चित्रों में साहित्य एवं काव्य का सहारा लेकर अपनी भावनाओं को, रेखाओं द्वारा आकारों में परिणत किया और मानव संस्कृति को ऊंचा उठाने में ठीक उसी प्रकार अपना योगदान दिया जैसे रूस में जन्मे टालस्टाय ने अपनी आभा से संसार को चमत्कृत किया। कवि रवीन्द्र विलियम ब्लैक जैसे उन विरल साहित्यकारों में थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्‌भुत साम्य रहा है। रवीन्द्र नाथ के व्यक्तित्व को देखकर लगता है मानों काव्य की व्यापकता ही पूंजीभूत रूप में मूर्त हो गयी हो।

वे प्रख्यात लेखक, दार्शनिक, नाटककार, अभिनेता, संगीतज्ञ तथा कलाविद् थे। उनके काव्य में नाविक के तीर की सी मार्मिकता है जो सीधे हृदय में उतर जाती है। उन्होंने तूलिका द्वारा हृदय के उन भावों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, जिन्हें वे अपने काव्य साहित्य के माध्यम से व्यक्त नहीं कर पाए थे। वे शांत, सौम्य, सरल, निराभिमानी, विवेकशील और महान थे। कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के जन्म के समय बंगाल में पुनर्जागरण का सूत्रपात हो चुका था। उस समय वहां तीन धाराएं प्रवाहित थीं। राजाराम मोहन राय की धार्मिक चिन्तनधारा में पुनर्जागरण का सूत्रपात, वन्देमातरम् के रचयिता बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की साहित्यिक क्रांति एवं महर्षि विवेकानंद का उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत का संदेश देशवासियों को सचेत कर रहा था और उन्हें उनके अस्तित्व का बोध करा रहा था।

महर्षि देवेन्द्रनाथ के छोटे पुत्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर को पांच वर्ष की आयु में उनका अक्षरारंभ हुआ और सात वर्ष आयु में नार्मल स्कूल में प्रवेश दिलाया गया, परन्तु इस विद्यालय में मन न लगने के कारण उनकी अधिकांश शिक्षा घर पर ही हुई। तत्पश्चात १८७९ से उन्होंने लंदन यूनिवर्सिटी कालेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की। घर के सांस्कृतिक वातावरण के कारण काव्य, संगीत और चित्रकला की प्रेरणा उन्हें अपने कला-प्रिय परिवार से मिली। आरंभ से ही उनका सर्जनात्मक कार्यों एवं कविता लेखन के प्रति लगाव था। युग के महान संदेशवाहक के तीन विभिन्न परिवेश हैं और उनसे उत्पन्न अनुभूतियां सौम्य, प्रभात, प्रखर दोपहर और कोलाहल में शांति का संकेत देती हुई संख्या के समान है। कवि रवीन्द्र मानवीय महिमा के उद्‌घोषक और समर्थक थे, जिसे उन्होंने एई महामानवेर सागर तीरे में व्यक्त किया है। भारतीय संस्कृति के आदर्श का भाव उनके काव्य में ओत-प्रोत होने के कारण वे आज सार्वजनिक हो गए हैं। उन्होंने अपने विशिष्ट स्वर में जीवन की सर्वांगीण सार्थकता प्राप्त करने के आदर्श को बार-बार दुहराया है।

तीस वर्ष की आयु में बिखरी कला और उनका ध्यान आकृष्ट हुआ और कला-अभ्यास में रवीन्द्र घंटों व्यस्त रहने लगे। पुराने अभ्यास का सहारा लेकर रवीन्द्र ने रेखाओं तथा चित्रों में एक नवीन आभा प्रदान कर नई नई कला को सांकेतिक भावना प्रधान कृतियों का रूप दिया। उनके चित्रों में रंग-सामंजस्य भी अकारण उत्पन्न हुआ, जो उनके मानसिक प्रभाव का द्योतक है। रवीन्द्र नाथ के शब्दों में मनुष्य के चेहरे में केवल आकृति की ही सुन्दरता नहीं होती, उसमें चेतना की दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति और हृदय का लावण्य भी होता है।

भारतीय कला-जगत में कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर को, कलाकार के रूप में परम्परागत शैलियों से भिन्न आधुनिक शैली का जन्मदाता होने का श्रेय प्राप्त है। उनके सामने देश-विदेश का इतना विस्तृत क्षितिज खुल गया था जहां अनुभव के रंगों में पुरानापन संभव नहीं था। यह भी सत्य है कि कवि युग के अनेक अभावों की अभिशप्त छाया से मुक्त रहे। अपने आकस्मिक चित्र-सृजन में उन्होंने निजी शैली का विकास किया, जिसमें काव्य उनका आधार और रेखाएं उनकी अभिव्यक्ति के रूप में मुखरित हुई। रवीन्द्र नाथ की कला केवल सामान्य अभिव्यक्ति ही नहीं अपितु उनकी उस भावनात्मक अनुभूतियों का आधार भी है। इनके मूल में तकनीकी शिक्षा प्राय: बिलकुल नहीं है। पृथ्वीश नियोगी ने रवीन्द्र शताब्दी ग्रंथ में प्रकाशित अपने लेख में कहा है कि १८९३ में जब रवीन्द्र नाथ ने अपने चित्रों की असफलता पर खेद व्यक्त किया था। रवीन्द्र का मत था कि यदि उन्होंने कला को विधि-विधान से सीखा होता तो वे अवश्य ही अधिक सफल चित्रकार होते। रवीन्द्र के चित्र स्वछन्दतावादी कला की कोटि में आते हैं। उन्होंने एक अभिनव चित्र-सज्जा और अनुपातहीन नव्य चित्राकृतियों से देश के कला-भंडार को समृद्ध किया जिससे नवीन कलाकारों के लिए संभावनाओं के नए द्वार खुल गए। उन्होंने आह्वान स्वरूप अपनी एक पुस्तक में कहा है कि मैं जोरदार शब्दों में कहता हूं कि यदि कोई हमारे कलाकारों से जबरदस्ती चित्र बनवाकर उन पर प्राचीन कलाकारों की निपुणता का ठप्पा लगाकर उन्हें प्रसिद्ध करना चाहे तो उसे निश्चित रूप से अस्वीकार कर देना चाहिए।

अप्रतिम कृतिकार रवीन्द्र नाथ ठाकुर सदा सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् के ही उपासक रहे। उनकी अनवरत चिन्तन साधना केवल उपनिषदों की विचारधारा से भी प्रभावित हुई थी। रवीन्द्र भारत के उन प्राचीन ऋषियों के समान थे जो प्रतिदिन प्रात:काल उस सूर्य की उपासना किया करते थे जो परमात्मा के अनन्त ज्ञान और उनकी जीवनदायिनी शक्ति का एक प्रज्वलित प्रतीक है।

ज्ञान सरिता

संतवाणी, शब्द, साखियाँ

(कबीर की साखियाँ, गुरुनानक के शब्द, महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के उपदेश, ओशो की वाणी)

समूची पृथ्वी को कागज मानकर तथा समस्त जंगलों की लकड़ी की कलम बनाकर, सातों समुद्रों की स्याही द्वारा गुरु की महिमा लिखी जाए तब भी वह पूरी नहीं लिखी जा सकती। गुरु की महिमा असीम है, इसे कोई भी नहीं लिख सकता।

१) इस जीव सृष्टि की कोई भी जीवात्मा सुखी नही है। माया रुपी संसार के मान, प्रतिष्ठा, प्रभुता और शक्ति जीव के किसी काम के भी नहीं होते। प्रभु के द्वार पर न दु:ख है न भूख न ही तृष्णा और न ही कोई बीमारी। वहाँ पर न जन्म है न मरण और न ही आवागमन का चक्र। वहां जीव प्रभु की निश्चल शरण में जाकर हमेशा के लिये प्रेम में मग्न हो जाता है और उसे सांसारिक मोह, माया व्याप्त नहीं होती। संसार के विषय भोग ही विष के स्वरूप है, वे जीव को थोडी देर के लिये माया के भ्रम में भूला कर स्वयं विलीन हो जाते है और जीव रोगी व दु:खी हो जाते है, उनमें स्थायी आनन्द नहीं होता है।

२) अपने राष्ट्र की वृद्धि व राष्ट्रकल्याण करना ही सच्ची ईश्वर पूजा है। अपना देश ही अपने लिये ईश्वर महिमा का साकार रूप है।

३) मन की शान्ति अमूल्य सम्पत्ति है। हम तनाव पूर्ण संसार में रहते है। कई बातें ऐसी हो जाती है जिससे हम खीझ जाते है और मन की शान्ति खो देते है। हम शान्त, सहज और अविचलित बने रहे। यह सोचकर रक्खे जो कुछ होता है प्रभु इच्छा से हो रहा है यही हमारे लिये उत्तम होगा।

४) गुरुनानक कहते है सत्संग और धर्म ग्रन्थों के अध्ययन को अपना व्यवसाय करलो। सच्चाई और ईमानदारी से अपनी गांठ बांधे रक्खो। अपनी आय का अधिक से अधिक हिस्सा सेवा और परोपकारी कार्यों में लगाते रहो। मन में आने वाली बातों की चिन्ता न करके तनाव को घर मत करने दो। इससे मानव जीवन स्वत: सफल हो जायेगा। यही सात्विकता तथा भक्ति और सत्य का मार्ग है।

५) परमात्मा सनातन है अत: समस्त प्राणियों में उसी सनातन परमात्मा का निवास है। अहिंसात्मक वृति को त्यागने के लिये, इन सब विकृतियों के समाधान के लिये मानव को अपनी दुर्वृतियों को त्याग कर शुद्ध सात्विक तत्वों को ग्रहण करना चाहिये।

६) जब मनुष्य शरीर के द्वारा परमात्मा का नित्य आनन्द प्राप्त कर सकता है तो विषयों के मिथ्या सुख भोगने में समय नष्ट नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष पूर्णत्व की प्राप्ति से ही सन्तुष्ट होता है। वास्तविक शुद्ध, दिव्य और पूर्ण आनन्द केवल आत्मानुभूति के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

७) सीधे भगवान की प्राप्ति कठिन है इसलिये संसार में मनुष्य सरलता से भगवान तक पहुंचने का संत और भक्त ही निरापद आश्रय है। भक्त भगवान की और उन्मुख होता है और संत ब्रह्मवेता होता है।

८) जीवन हर क्षण भगवान के दर्शन कराता है। भगवान तो कण कण में व्याप्त है, केवल भगवान को पहचानने के लिये दृष्टि की आवश्यकता है।

९) आत्म संयमी पुरुष किसी भी विषय के प्रति राग अथवा द्वेष रख कर उसे अपनी ओर से इतनी शक्ति प्रदान नहीं करता है कि वह उसे पीडित करने लगे। प्रत्येक इन्द्रिय के विषय के प्रति मन में राग-द्वेष रहते है, जो कि मनुष्य के शत्रु है।

१०) सन्त महात्मा कहते है कि जीव पर चार कृपाये होती है, पहली कृपा परमात्मा की जिससे हमें यह मनुष्य शरीर मिला। दूसरी कृपा वेद-शास्त्रों की जो हमारा मार्गदर्शन करते है कि सतगुरु के बिना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान बिना मुक्ति सम्भव नही होती है। तीसरी कृपा सतगुरु की जिनके द्वारा निजत्व का आत्मबोध होता है, अज्ञान अंधकार का नाश होता है। चौथी कृपा निज की, अपनी खुद की होती है यानि गुरुद्वारा ज्ञान प्राप्त कर अभ्यास करना और सतत चिन्तन, मनन, सेवा, सत्संग से अपना उद्धार करना होता है। पहली कृपा तो ईश्वर की दया सबको प्रदत्त है शेष तीन कृपा प्राप्त करने के लिये प्रयास करना पडता है। वेद शास्त्रों का अध्ययन गहराई से करके सच्चे सद्गुरु की खोज करना और निजी ध्यान करना यह सब सहज है, सरल है पर दृढ़ निश्चय जरूरी है कि शेष तीन कृपाये

प्राप्त करनी है।

११) जो दीन दु:खी न्याय के लिये यातनाये पीडा सहते है वे ही स्वर्ग के राज्य के अधिकारी है। विनम्रशील मनुष्य धरती के स्वामी होंगे। शोक करने वालों को ही आराम मिलता है। न्याय के भूखे और प्यासे ही भविष्य में सन्तुष्ट होगे। दयालु मनुष्यों से ही दया प्राप्त होती है। निर्मल मन वाले ही ईश्वर का दर्शन कर सकेंगे। मेल मिलाप कराने वाले ही ईश्वर पुत्र कहलाते है।

१२) साधक अपने को भगवान का समझ कर संसार का काम करे तो संसार का काम भी ठीक होगा और भगवान का भी पर यदि अपने को संसार का समझ कर संसार का काम करेगा तो संसार का काम भी ठीक नहीं होगा और भगवान का काम तो होगा ही नहीं।

१३) जो परमात्मा का सहारा लेकर परिश्रम करते करते लक्ष्य की और बढता है वह कभी भी थकावट या निराशा महसूस नहीं करता।

१४) जहां भी, जैसी भी भिक्षा मिल जाय, उसी में संतोष मानना, मोटा-झोटा पहनना और मन के सारे विकारों को छोड़ देना, अपना निज पद, अपना सच्चा निज स्थान पहचान लेना, सबके साथ उदासीन-भाव से रहना और अपना मुद्दा पकड़ लेना और परिग्रह से कुछ भी वास्ता न रखना यही परम विरक्त की संपदा है। वेदान्त शास्त्र भी ऐसा ही कहता है।

१५) परमात्मा का स्मरण करके अन्तर्मुख होकर प्रभु के प्रकाश को देखते हुये धुन में लीन हो जाना ही अन्तर का अथवा समाधि का मार्ग है, ध्यान है। सन्त कबीर, गुरुनानक और सन्त सूफियों के जीवन से हम यही सीखते है सब बाहरी मुखी जीवन छोड कर हृदय अन्त:करण में उतर कर ध्यान की एकाग्रता प्राप्त कर दिव्य प्रकाश से सम्पर्क करो। जिज्ञासु की यह अवस्था एक सन्त, सत्गुरु के सम्पर्क से होती है, ताकि उसका अन्त:करण की ज्योति से मेल हो जाय। जब हमारी आखें खुलेगी हमे ज्ञान हो जायेगा। एक मात्र अन्त:करण का जीवन ही सत्य है। उस ज्योति को पाने के लिये हमारे अनेक प्रकार के प्रयत्न करने से भी हम उसे पा न सके, हम मन्दिर गये, तीर्थ स्थान में गये कई प्रकार के कर्मकाण्ड किये किन्तु वह ज्योति हमे दिखाई नही दी। लेकिन ध्यान से वह अन्त:करण मे प्रकट हो जाती है।

१६) आत्मा के साथ परमात्मा है। मनुष्य हर शरीर के साथ ही अपने जन्म के कर्मों का फल भोगता है। सबके बीच पुण्य ही फली भूत हो सकता है।

१७) दो तरह के महापुरुष इस दुनिया में आते है एक नकारात्मक सत्ता के प्रतिनिधि जो अवतार कहलाते है और दूसरे सकारात्मक सत्ता के प्रतिनिधि यानि की सन्त। दोनो भी उसी ईश्वर से ही शक्ति प्राप्त करते है लेकिन काम उनका अपना अपना है। अवतारों का काम है विश्व के हालात बिगड जाये, धर्म का ह्रास होने लगे तो आकर स्थिति परिस्थिति को ठीक करना, धर्मियों को उभारना, पापियों का दमन करना और व्यवस्था को ठीक करना। सन्त ईश्वर से बिछुडे हुये जीव को निज घर जाने के लिये तडफ रहा है उस अंशीसे जोडने के लिये संसार मे पदार्पण करते है वो मनुष्य तो होते ही है लेकिन कुछ और भी होते है।

१८) सबसे दुर्लभ मानव देह है। सबसे बडा दु:ख दरिद्रता है। संत समागम सबसे बडा सुख है। परोपकार सज्जनों का सहज स्वभाव है। पर पीडा ही दुर्जनों का गुण है, सहज स्वभाव है। पर निन्दा अत्यन्त घोर पाप है। अहिंसा ही परम श्रेष्ठ धर्म है। इसे ही सप्त प्रश्न गीता कहते है।

१९) कथा मनुष्य के बहिरंग जगत से अंतरंग में प्रवेश का मार्ग है। वस्तुत: कथा उस परमतत्व तक पहुंचने की शुरूआत है। कथा भक्ति सूत्र है जिसे पकडकर भक्त आगे की यात्रा में प्रवृत होता है। भक्ति मार्ग में भक्त प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि हे भगवान तू मुझे ज्ञानी नहीं बनाना क्योकि ज्ञान के पा जाने से मैं कही अहंकार से न घिर जाऊं वस्तुत: ज्ञान अहंकार मनुष्य को संसार की ओर उन्मुख करने लगता है इसलिये भक्त उस ज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता जो जीव के अन्त:करण में अहंकार उत्पन्न कर संसार की और आकर्षित कर ले।

२०) चरक सहिता में कहा है रितकारी परहेज और आहार-विहार करने वाले जितेन्द्रिय लोग सज्जनों की प्रशंसा पात्र बनते है और रोग रहित होकर सौ साल जीते है। स्वास्थ्य केवल औषधि सेवन से ही प्राप्त नहीं होता। औषधियों से रोग निवारण करने की बजाय रोग का प्रतिबन्ध करने के उत्तम उपाय आयुर्वेदाचार्य ने बताये है। वे युक्त आहार और शरीर के अनुकूल आहार-विहार। अपना आचरण, विचार और उच्चारण शुद्ध रखना। इन्द्रियों पर और मन पर नियंत्रण रखना इससे शतआयुषी बनना सम्भव है।

२१) मनुस्मृति में कहा है कि जिनका आचरण शास्त्र विरोधी हो, अनुचित वर्तन हो, ऐसे लोगों से सम्पर्क और बोलना नहीं चाहिये। जैसे शास्त्र विरोधी वेशभूषा करने वाले, गले में खोपडिया लटकाने वाले, गंदा भेष धारण करने वाले, बुरी जगह में जाकर बुरा कर्म करने वाले, भ्रान्ति फैलाने वाले, बिल्ली जिस प्रकार चूहे पकडने की ताक मे रहती है ऐसे घात लगाने वाले स्वार्थी लोग, बगुले की तरह साधु का भेष ओढकर लोगों को ठगनेवाले पाखण्डी ऐसे लोगों से बात करने के लिये मना किया गया है।

२२) पृथ्वी पर स्वर्ग से उतरे अवतारों के जन्म लेने पर उनकी पहचान चार गुणों से की जा सकती है। १) उदारतापूर्वक दान देने की प्रवृति, २) सदैव मीठी वाणी से मधुर वचन बोलना, ३) देवों की पूजा अर्चना करना, ४) ब्राह्मणों को भोजन वस्त्र आदि देकर तृप्त रखना अर्थात दान शील, मधुर भाषी, देवपूजक और ब्राह्मणों के प्रति सेवा भाव रखनेवाले व्यक्ति को ही पृथ्वी पर स्वर्गलोक से अवतरित दिव्य पुरुष समझना चाहिये। यही अवतारों के गुण होते है।

२३) भगवन प्राणों का प्राण है भुव: दुखों को समेटनेवाला, नष्ट करने वाला, दु:ख विनाशक है। स्व सुख का स्वरूप है, सुख देता है।

२४) दानव-मानव-देव क्रमश: विकसित होने वाली श्रृंखला है। इन तीनों का प्रकटीकरण मानव से ही होता है। तुम्हारा वह तुम्हारा, मेरा यह मेरा, ऐसा स्वार्थ परार्थ करनेवाला मानव और तुम्हारा वह तुम्हारा, मेरा वह भी तुम्हारा ऐसा निस्वार्थ भाव रखने वाला देव है। इनके साथ एक और प्रवृति है जिसका मन औरों की पीडा देख कर सुखी होता है वह मनुष्य दानव है। औरों के दु:ख से दु:खी होकर अधिक से अधिक खेद व्यक्त करता है वह साधारण मानव है। औरों का दु:ख दूर कर उन्हें सुखी करने का प्रयत्न कर, औरों के सुख से जो सुखी होता है वह देव मानव है।

२५) जिस व्यक्ति पर राम की अत्यन्त कृपा होती है, उसे कोई भी कर्म जचता नहीं- चाहे लौकिक हो, चाहे वैदिक। इसी प्रकार रमता अर्थात् विचरता हुआ साधु ही अच्छा होता है। उसे कहीं कोई दाग नहीं लगता, वह निष्कलंक रहता है। दुनियादारी से वह अलिप्त रहता है। राग और द्वेष- ये दोनों प्रेत उसके चित्त को अशान्त नहीं कर सकते। सर्दी और गर्मी का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और वह किसी में आसक्त नहीं होता। ऐसा रमता साधू तो मानो गंगा का बहता हुआ जल है।

२६) जब हम अपने चारों तरफवालों से नफरत करने लगते है तो इसका कारण यह नहीं होता कि वे हमारे बैर के लायक है बल्कि यह होता है कि हमारे अपने अन्दर ही किसी विशेष गुण की कमी है जो हम उनके अन्दर खोजते है और न पाने पर उसे दोषी ठहराते है अर्थात हम उनके अन्दर जो कुछ देखते है वह हमारा अपना ही प्रतिबिम्ब है। इन्सान का अपने से बढ़ कर दूसरा दुश्मन नहीं होता।

२७) यह सब कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं है १) माफी मांगना २) निस्वार्थ होना ३) अहंकार त्यागना ४) अपनी गलती स्वीकार कर लेना ५) क्षमा करके भूल जाना ६) किसी को प्रसन्न करना ७) प्रतिक्रिया न करते हुये उत्तर देना ८) सदैव ईमानदारी व सत्यवादी होना ९) आलोचना से दूर रहना १०) क्रोध व बदले की भावना से रहित होना ११) उकसाने पर उत्तेजित न होना १२) हस्तक्षेप किये बिना किसी की सुनना १३) हमेशा सहयोग, सहायता, एवम् सत्कार करते रहना १४) दूसरे के नजरिये का सम्मान करना १५) सभी से अच्छा व्यवहार करना १६) दूसरे के सराहनीय कार्यों की हृदय से प्रशंसा करना १७) सर्वदा आशावादी दृष्टिकोण अपनाना १८) ईश्वर, गुरु एवम् माता-पिता के प्रति कृतज्ञ होना १९) नेकी करके भूल जाना २०) अपने को हमेशा व्यस्त रखना २१) अपनी मदद स्वयम् करना २२) कम बोलना।

२८) जो भी आत्मा को शरीर से अलग समझ लेता है वह शरीर के कष्टों को वैसे ही अनुभव करता है जैसे वे उससे अलग हो। शरीर और आत्मा के तादात्म्य को तोड देने के बाद फिर संसार के कष्ट ज्ञानी को विचलित नहीं कर पाते।

२९) दिव्य शक्ति देवताओं की शक्ति है लेकिन यह हमारे अंग अंग मे विद्यमान है। इसके अलावा हमारे अन्दर असीम शक्ति यानि कि ईश्वर विद्यमान है। ईश्वर क्या है ? एक आस्था है, संवेदना है। हम अपनी चेतना को आस्था एवम् संवेदना से जोड ले तो हम सारी खुशियां प्राप्त कर सकते है।

३०) कर्म, ज्ञान और भक्ति ज्ञान इन तीनों का जहां उपयोग होता है, वही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। आपके हर संकल्प, वाणी, व्यवहार और कर्म खुशी के प्रकम्पन लाये।

३१) जिह्वा पर नियन्त्रण करने मात्र से ही मानव का कल्याण हो सकता है। अपनी जुबान से कभी असत्य तथा कटु न बोलने का

संकल्प लेना चाहिये। यदि सदैव सत्य भाषण करे, जिह्वा से विनम्र शब्दों का प्रयोग करे, भगवान का पावन नाम जपे, जिह्वा से किसी की निन्दा न करे, जिह्वा को स्वाद के प्रपंच में न डाले, सदा सात्विक भोजन करे तो न कोई शत्रु पैदा होगा, न चटपटे भोजन से स्वास्थ्य चौपट होगा। केवल जिह्वा पर नियन्त्रण करने से संसार के अनेक प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

३२) हर किसी भी समय निक्कमे न रहे, यदि मन में विचार आये तो सेवा, परोपकार तथा प्रभु शक्ति की बात सोचे। मन एवं शरीर को किसी न किसी सत प्रवृति में लगाये रक्खे। निठ्ठले मन में असद् विचार के प्रवेश के लिये बहुत अधिक तथा शुभ विचार के लिये बहुत कम सम्भावना रहती है।

३३) शरीर को स्वस्थ बनाये रखना कर्त्तव्य है, अन्यथा हम विवेक के दीप को जला कर और अपने मन को सशक्त व शुद्ध रखने में कामयाब नहीं हो पायेंगे।

३४) मनुष्य धर्म के बिना नहीं जी सकता। धर्म ही मानव को पशुता से दूर रख कर, उसे करूणा, भावना, सेवा व परोपकार के पालन की प्रेरणा देने वाला महान तत्व है।

३५) सभी प्रकार का भेदभाव मिटा कर सद्भावना की स्थापना करनी चाहिये। सद्भावना से ही स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकती है। संसार में सभी प्राणी शान्ति चाहते है। अत: सभी का यह कर्तव्य हो जाता है कि शान्ति के लिये कार्य करे। मन से घृणा और अहंकार को निकाल देना चाहिये क्योंकि इनके कारण ही अन्तर्द्वन्द परमात्मा से जोड लो। सभी विकारों से छुटकारा मिलेगा।

३६) किसी भी देश में शान्ति का वातावरण तभी बन सकता है जब उसका प्रत्येक नागरिक स्वयं शान्त हो। जब हम स्वयं अपने अन्दर शान्ति को प्राप्त कर लेंगे तो हमारे आस पास के वातावरण में शान्ति की किरणें स्वत:ही प्रसारित होने लगेगी।

३७) इस जीवन में अर्जित पुण्य घी है, यह अनोखा काल बाती है और कर्म विधि आग है, इनके सहारे जलनेवाला दीपक प्राण है। जब घृत और बाती जल जायेगी तो कोई संशय ही नहीं कि यह दीप बुझ जायेगा।

३८) जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की अनुभूति मात्र रह जाने की अवस्था रस-दशा कहलाती है। जो पूरी सृष्टि के साथ नाच सकता है, वह तत्काल वह सब पा लेता है, जिसे पाने के लिये अन्य साधकों को काफी श्रम करना पडता है।

३९) सद्विचार जीवन को सार्थकता प्रदान करते है, अभिमान से दूर रखते है और राग द्वेष से विरक्ति प्रदान करहे है। हमेशा संत महापुरुषों की अनमोल वाणी को आत्म सात करनी चाहिये।

४०) धन्य है वे लोग जिन्हे सही और सच्चा सुख प्राप्त होता है क्योकि स्वर्ग का राज्य उन्ही का है। धन्य है विनम्रता के पात्र वे ही धरती के स्वामी है। धन्य है शोक करनेवाले जिन्हे आराम मिलेगा। न्याय के प्यासे भूखेही सन्तुष्ट हो सकते है। धन्य है वे दयालु लोग जिन्हे दया प्राप्त हुई। मन जिनका निर्मल है वे ही ईश्वर के दर्शन करेंगे। जो मेल मिलाप करते है वे ही ईश्वर पुत्र कहलाने योग्य है। धन्य है वे लोग जो न्याय के लिये यातनायें सहते है क्योकि स्वर्ग का राज्य उन्ही के लिये है।

४१) एक भक्त और सांसारिक विद्वान में कोई समानता नहीं होती। जिस किसी ने भक्ति भाव को जाना नहीं वह सदगुरु के महत्व को नहीं पहचानेगा।

४२) इन्द्रिय निग्रह, राग द्वेष का त्याग, परमात्मा की प्राप्ति, उसके आनन्द में सन्तोष और कामनाओं का समूल नाश आध्यात्मिक विकास का क्रम है।

४३) भक्त श्रेष्ठ समस्त प्राणियों में भगवान को और भगवान में समस्त प्राणियों को देखता है। भक्त को सारी सृष्टि राम रूप ही दिखती है।

४४) जो भगवान का भक्त नहीं है वह धनवान होने पर भी कंगाल ही है। भगवान का भक्त बन कर कोई भी दु:खी नहीं रह सकता।

४५) ईश्वर अभी और यही मिल सकता है क्योकि परमात्मा कोई उपलब्धि नहीं है। परमात्मा ही मन का स्वभाव है तो समझना चाहिये कि वह मिला हुआ ही है।

४६) सभी साधक, सिद्ध, मुनि, योगी और तपस्वी यही कहते है कि इस संसार में आकर अपने को सुखी देखना चाहते हो तो सबसे पहले अपने में त्याग व समर्पण की भावना पैदा करो और दूसरे को सुखी बनाओ।

४७) सभी प्रकार का भेद भाव मिटा कर सद्भावना की स्थापना करे। सद्भावना से ही स्वतन्त्रता की रक्षा हो सकती है। संसार में सभी प्राणी शान्ति चाहते है। अत: सभी का कर्त्तव्य हो जाता है कि शान्ति के लिये कार्य करे। मन से घृणा और अहंकार को निकाल देना चाहिये क्योंकि इनके कारण ही अन्तर्द्वंद को परमात्मा से जोड लो तो सभी विकारों से छुटकारा मिल सकेगा।

४८) शरीर तो अलग-अलग है लेकिन तत्व की दृष्टि से सर्वत्र एक ही शक्ति व्याप्त है। इस सत्य का अहसास सहज ही किसी को नहीं होता। जब तक सतगुरु, सक्षम गुरु की कृपा दृष्टि नहीं होती तब तक इस भवसागर के बन्धनों से जीव बन्धा रहता है और कर्म के अनुसार फिर फिर जन्म लेते रहता है। ज्ञानी जन ही सदगुरू के सहारे प्रयासपूर्वक कर्मफल से विरक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होते है।

४९) सत्कर्म करने वाले अच्छे लोग तो स्वत: भगवान की दया और स्नेह के पात्र बन जाते है। अच्छे लोग अच्छे कर्म करके औरों को भीअच्छा बनाते रहते है। प्रार्थना तो बुरे लोगों को सद्बुद्धि प्रदान करने हेतु करनी चाहिये जिससे वे दुष्कर्म त्याग कर सदकर्मों में लग जाये।

५०) हृदय की निष्ठुरता व अपवित्रता मानव को नष्ट करती है, जबकि हृदय की सहजता व उदारता उसे महान बनाती है। जीभ के अनुचित व असंयमित प्रयोग से मनुष्य स्वास्थ्य व सहयोग खो बैठता है तथा मधुर व उपयुक्त सम्भाषण से जन समुदाय व परिजनों से श्रेय और स्नेह की भरपूर मात्रा हस्तगत होती है।

५१) प्रत्येक कर्म को यज्ञ की भावना से करो, कर्म नें निष्काम भावना होनी चाहिये और कर्म में कर्तव्य, भावना का होना आवश्यक है, अन्यथा कर्म स्वार्थ बन जाता है।

५२) सच्चा भक्त अपना हृदय, मन, बुद्धि, शरीर, परिवार, धन ऐश्वर्य सब कुछ भगवान के चरणों मे अर्पण कर निश्चिंत हो जाता है। वह सारे संसार में अपने स्वामी को व्याप्त देखता है इसलिये वह अखिल विश्व के सकल चराचर जीवों के साथ प्रेम करता है, उनकी सेवा के लिये तत्पर रहता है।

५३) जो शरीर की जगह आत्मा को महत्व देता है वही सच्चा महात्मा है। महात्मा के जीवन में सदैव आत्मा का प्रकाश रहता है। सच्चा साधु अहम से सर्वथा मुक्त होता है।

५४) सन्तोष धन ही सबसे बडा धन है। हमें अपनी पूरी क्षमता व ईमानदारी से कर्म करने चाहिये। सन्तोषी का अर्थ अकर्मण्यता बिल्कुल नहीं है।

५५) अपने मन को जीतना कठिन है लेकिन मन को जीत लिया तो सब कुछ जीत लिया। अपने मन पर राज करने के बजाय हम प्राय: उसे ढीला छोड देते है और उससे वह उत्तेजना, वासना या विकार का शिकार हो जाता है। दूसरों पर असर हम तब तक डाल ही नहीं सकते जब तक हम अपने नहीं हो जाते और हम अपने तभी होंगे जब अपने आप पर काबू पायेंगे।

५६) भिक्षा मांगकर खा लेना, और चाहे जहां सो जाना, किसी से वास्ता न रखना, फिर चाहे जो हो। विरक्त साधु का यही लक्षण है। वह ब्रह्मविद्या के सिवाय दूसरी कोई बात नहीं कहता। जो भी उसके पास आता है उसे वह ज्ञान की ही दीक्षा देता है। भिक्षा वह केवल क्षुधा-निवृत्ति के लिए ही मांगता है।

५७) भिक्षु, बालक, भार्या (पत्नी) और राजा, इन चारों को वास्तविक ज्ञान नहीं होता है कि कोई वस्तु असल में है या नहीं है। ये सदा अपनी देह का ही ध्यान रखते हैं, रात और दिन आठों पहर अपनी देह को संवारने और सुख पहुंचाने में व्यस्त रहते हैं।

५८) ज्ञान-अज्ञान से ढका हुआ है। परमात्मा के साथ प्रेम करने से अज्ञान का आवरण हटता है और परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्रकट हो जाता है।

५९) ईश्वर प्रत्यक्ष रूप में कभी दिखाई नहीं देता उसकी अनुभूति अन्तरात्मा को हर क्षण होती रहती है। अन्तरात्मा ईश्वर की प्रेरणा पर ही सत्य, असत्य के अन्तर की अनुभूति कराती है। ईश्वर हवा की तरह सर्व व्यापी है। हवा को बांधने के समान ईश्वर को भी साकार किया जा सकता है।

६०) शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य स्थिर बनाये रखने से लेकर मनुष्य को श्रेष्ठ महान बनाने के सारे आधार अध्यात्म मे विद्यमान है।

६१) हम किसी भी समय निकम्मे निठ्ठले नहीं रहे। यदि मन में विचार आये तो सेवा, परोपकार तथा प्रभु शक्ति की ही बात सोचे। मन एवं शरीर को किसी न किसी सत प्रवृति में लगाये रक्खे। निठ्ठले मन में असद् विचार के प्रवेश के लिये बहुत अधिक तथा शुभ

विचार के लिये बहुत कम सम्भावना रहती है।

६२) जाप करने वालों को पाप नहीं लगता। पवित्र और पावन ईश्वर के नाम का जाप करने पर मन की पाप प्रवृति नष्ट होती है।

६३) कथा को व्यवसाय बनाने की भूल नहीं करनी चाहिये। कथा तो संसार की व्यथा को दूर करने का माध्यम है। जिस पर भगवान कृष्ण की कृपा हो जाये वे तो संसार से कुछ भी नहीं चाहते। वस्तुत: यह संसार काम क्रोधादि दोषों के सिवाय किसी को क्या दे सकता है। अत: मन को संसार में नहीं अपितु परमात्मा में लीन करने का अभ्यास करे।

६४) भगवान को भोग लगा कर उनके प्रसाद के रूप में स्वीकार किया गया अन्न दिव्य होता है। भगवान को भोग लगाना आस्तिकता के प्रमुख लक्षण है। बिना भगवान के भोग लगाये मनुष्य जो कुछ खाता है वह तो चोर है और पाप को खाता है। परमात्मा की कृपा से जो कुछ अन्न जल प्राप्त होता है उसे प्रभु का प्रसाद मान कर प्रभु को अर्पित करना, कृतज्ञता ज्ञापन के साथ-साथ मानवीय सद्गुण भी है।

६५) हर परिस्थिति में समान व्यवहार ही सन्त जनों का लक्षण है। अनुकूल होने पर हर्ष नहीं और प्रतिकूल होने पर निराश नही। जिस प्रकार सूर्य उदय और अस्त होने के समय तक एक जैसा रहता है वैसे ही सन्त पुरुष हर हाल में एक समान आचरण करते है।

६६) परमात्मा उनकी मदद करते है जो स्वयं अपनी मदद करते है। ईश्वर में श्रद्धा रखने से जो शक्ति हमारे अन्दर आती है वह हमे अपने स्वावलम्बन पर भरोसा करने की हिम्मत देती है। ईश्वर शरण ही हमारी शक्ति है, मुसीबत कष्ट में उससे बढकर कोई दूसरा सहारा या मददगार नहीं है।

६७) जब मन सदविचारों से स्वच्छ होता है, सद्गुणों से प्रमुदित होता है और सत्संग से प्रबोधित होता है तब मनुष्य देवत्व की और बढ़ता है।

६८) भजन, पूजन, भक्ति, भोजन, स्वाध्याय, साधना, अभ्यास, निद्रा, शौच, स्नान एवम् मैथुन सदैव एकान्त में ही करे।

६९) बोलो कम और सुनो ज्यादा, देखो ज्यादा और गुनो ज्यादा। क्योकि जीभ एक है कान दो है आंखे दो है। मुंह एक है जबकि दांत बत्तीस है।

७०) इस संसार के अन्दर यदि कोई पदार्थ इतनी दूर हो कि उसे प्राप्त करना असम्भव दिखायी देता हो तो, तथा जो मनुष्य की सीमा सामर्थ्य से बहुत दूर हो, ऐसे दुर्लभ पदार्थों को भी तप के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। तप की शक्ति असीम है। इसलिये तप सर्वश्रेष्ठ है। तप द्वारा असम्भव को भी सम्भव किया जा सकता है। तप से न केवल सिद्धि ही प्राप्त होती है अपितु साक्षात परमेश्वर के भी दर्शन किये जा सकते है।

७१) भक्ति का सार है सेवा। जिसके हृदय में करूणा तथा सेवा भावना है, वही भगवान की कृपा का अधिकारी होता है।

७२) आत्मिक शान्ति किसी साधु सन्त के दर्शन से नहीं बल्कि अच्छे कार्य कर्मों से मिलती है। परोपकार व सेवा में समय बिताना, परमात्मा की स्मृति करते रहने से स्वत: आत्मिक शान्ति प्राप्त होगी।

७३) भक्ति हीन पुरुष जो कुछ करता है वह सब न किये हुये के समान है लेकिन भक्ति ही ज्ञान की जननी और मोक्ष को देनेवाली है इसलिये श्रद्धा सहित भक्ति करनी चाहिये।

७४) मन द्वारा नहीं बल्कि प्रज्ञाद्वारा अनुभव होता है कि अहंकार के अन्दर-बाहर सर्वत्र परमात्मा है, लहर के अन्दर बाहर सर्वत्र सागर है।

७५) तत्ववेताओं का मत है कि पूर्त, तप, यज्ञ, दान, योग और समाधि आदि साधनों से प्राप्त होनेवाला जो परम कल्याणमय फल है व ईश्वर कृपा का ही फल है।

७६) चिन्ता, इच्छा और वासनाओं को छोडे बिना बुद्धि का असली विकास नहीं होता। जब मन ईर्ष्या, घृणा, मत्सर से छूट जायेगा और सम्पूर्ण शुद्ध होगा तब कोई चीज नुकसान नहीं कर सकेगी। दुनिया की किसी भी चीज को ईश्वर से श्रेष्ठ न माने। देह का अभिमान त्याग कर ईश्वर के कार्य के लिये उसे समर्पित करो।

७७) देही अर्थात् आत्मा सदैव रोग-रहित है, रोग उसे छू नहीं सकता, और देह यह अनेक रोगों से भरी हुई है। जिसे यह पक्का निश्चय हो गया वही वास्तव में चतुर है और वही प्रवीण है। वही विवेकी है, और वही सच्चा पंडित है। वह अखण्ड आत्मा का एकाग्र होकर प्रतिक्षण दर्शन करता है। वह आपही अपना परम स्नेही मित्र है। वह परमानन्द-स्वरूप है। वह अन्यथा और कुछ भी नहीं।

७८) जबतक किसी मत-मजहब का जाल गले में पड़ा हुआ है, तबतक आत्मज्ञान होने का नहीं। मजहब का जाल टूट जाने पर ही

निर्वाण का पद प्राप्त होता है और निरंजन ब्रह्म में जीव का लय हो जाता है। जन्म और मरण का छुटकारा पा जाने से संसार-चक्र का अन्त हो जाता है। तब जीव किसी भी योनि में भटकता नहीं। आत्मज्ञान के बगैर चौरासी लाख योनियों से मुक्ति नहीं।

७९) आत्म विश्वास, आत्म ज्ञान और आत्म संयम केवल यही जीवन को परम शक्तिशाली व सम्पन्न बना देते है।

८०) केवल श्राद्ध अथवा पिंडदान से किसी को मुक्ति नहीं मिलती। शरीर ही पिंड है इसे परमात्मा को समर्पित करो। यदि मनुष्य स्वयं अपना कल्याण नहीं कर सकता तो पुत्र किस प्रकार कर पायेगा।

८१) धर्म रहित प्राणी जीवित होते हुये भी मृतक के समान है। इसके विपरीत धर्मात्मा मर जाने पर भी दीर्घजीवी रहता है अर्थात उसका यश अनन्तकाल तक इस संसार में व्याप्त रहता है। इसमे लेशमात्र भी संशय अथवा अतिशयोक्ति नहीं है। शरीर नाशवान है, धन सम्पत्ति भी सदा साथ देनेवाली नहीं होती। मृत्यु हर समय सिर पर सवार रहती है। अत: धर्म का संग्रह करना चाहिये। धर्म ही सबसे बडी वो सम्पत्ति है जो आपके साथ हर समय रह सकती है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि धर्मपरायण प्राणी परलोक में भी जीवित रहता है क्योकि उसका यश अजर अमर है। ऐसे धार्मिक प्राणी का जीवन ही सफल कहलाता है।

८२) अविद्या ने कितने गड्ढे बना डाले हैं- हाथी सरीखे बड़े-बड़े बलवान् कितने ही उनमें डूब गये। जो भी जिस गड्ढे में गिरा वह कानों तक धंस गया दलदल में। ऐसी दशा में न वह कुछ सुनता है, न कुछ देखता है। यद्यपि उसने शास्त्रों को पढ़ा और स्मृतियों को भी पढ़ा है, तो भी जिस किसी गड्ढे में अविद्या ने उसे धक्का देकर गिरा दिया, वह उसी में मगन है।

८३) मनुष्यों में आंखे होकर भी अन्धे की तरह पेश आते है। सिर्फ बाहरी आंखे खोलने से नहीं बल्कि मन की आंखे भी खोलनी चाहिये। यह विवेक की आंखे कोई महापुरुष या साधु पुरुष ही खोल सकता है। इसके लिये मनुष्य को गुरु की आवश्यकता होती है।

८४) मनुष्य के जीवन में सुख दु:ख तो आते रहते है उन्हें सहन करने की शक्ति स्वयं में निर्माण करे। दुनिया में सुख कम और दु:ख अधिक आते है। हर व्यक्ति को दु:खों का सामना करना पडता है। इन्सान जितना अमीर होगा उसका दु:ख भी उतना ही बडा होगा। गरीब व्यक्ति का दु:ख भी उतना ही छोटा होगा। हर मनुष्य में कुछ न कुछ अभाव तो होता ही है, उसे सभी कुछ तो प्राप्त नही हो सकता। अत: जितना सम्भव हो सत्कर्म व पुण्यकर्म करना चाहिये।

८५) लेकिन किन्तु, परन्तु, अगर, मगर इस तरह के ये पाँच शब्द मनुष्य की सहायता एवं आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग को रोकते है तो इन शब्दों पर विश्वास न करें और न ही इन्हें बीच में आने दे। ईश्वर बडे कृपालु है आप केवल ४ कदम ईश्वर की और बढाये वे हजारों कदम आपकी और बढायेंगे। आपकी इच्छा की अपेक्षा कई गुना ईश्वर आपसे प्रेम करता है सिर्फ आवश्यकता है तो सच्चे मन से उसे आवाज लगाने की।

८६) पापों की मुक्ति के स्वार्थ में की गई पूजा भगवान स्वीकार नहीं करते। अत: सबसे पहले मानव को अपना जीवन पवित्र बनाने का संकल्प करना चाहिये। तभी पूजा पाठ तीर्थयात्रा का प्रयोजन सफल होता है। पूजा पाठ किसी लालच के उद्देश्य से नहीं करनी चाहिये।

८७) वे भक्त जो सही ज्ञान और वास्तविक ज्ञान को जानने के लिये कदम उठाते है वे ही सदा सदा की खुशियां, सदा सदा का सुख चैन और आनन्द पाते है।

८८) संसार यात्रा में कभी कोई सुखी नहीं होता। परमार्थ यात्रा ही परम सुख का मार्ग है। जिसे सुख दु:ख की अनुभूति नहीं होती, वह व्यक्ति ही परमानन्द की प्राप्ति कर सकता है।

८९) जीवन का रहस्य अनन्त है। पहले जीवन को सुखमय बनाने के उपाय करो। यदि जीवन व्यावहारिक हो गया तो मृत्यु स्वयं सुखमय प्रतीत होने लगेगी। जिन लोगों का इहलोक कल्याणमय बन जाता है, वे परलोक की चिन्ता नहीं करते।

९०) अपने अज्ञान को जानना सबसे उत्तम कार्य है। अज्ञानी होते हुये अपने को बुद्धिमान समझना बहुत बडी बीमारी है। जब तक इस बीमारी को ठीक से नहीं जान लिया जाता, अज्ञानता से मुक्त नहीं हुआ जाता।

९१) सन्त अपनी प्रशंसा नहीं करता, उसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। अपने कार्य के प्रति जो अहंकार नहीं रखता, उसकी जगह सुरक्षित है। वह किसी का विरोध नहीं करता इसलिये कोई भी व्यक्ति उसका विरोध नहीं करता।

९२) जगत के कल्याण के लिये जो देह मन और वाणी से तपश्चर्या करते है, जो स्वार्थ त्याग कर जन कल्याण हेतु दिन रात्र परिश्रम

करते है वे ही तपस्वी है।

९३) जो असन्तोषी है वही दरिद्र है। जो इन्द्रियों के वश में है वही दयनीय है और जिसकी बुद्धि विषयों मे फंसी हुई है वह स्वतन्त्र नहीं है।

९४) पद प्रतिष्ठा, मान यश पाने पर हर व्यक्ति अहंकारी हो जाता है। इस स्थान पर पहुंचने पर भी जो अहंकार रहित है वही सच्चे अर्थों में मनुष्य है।

९५) दुष्ट व्यक्ति ज्ञान से स्वार्थ सिद्ध करता है, दूसरों को दिखा देता है, ज्ञान वृद्धि से मूर्ख व्यक्ति अहंकारी बन जाता है जबकि शिष्ट व्यक्ति ज्ञान से परमार्थ सिद्ध कर दूसरों का कल्याण करता है और बुद्धिमान, नम्र (विनीत) हो जाता है।

९६) साधु, गुरु, शास्त्र, धर्मग्रन्थ के उपदेश मानव कल्याण के लिये ही होते है यह सच होकर भी हमें अपनी ही आत्मा को साक्षी रखकर जीवन निवार्ह करना चाहिये।

९७) काम में बुद्धि और क्रिया का उचित सम्बन्ध न होने से कार्य बिगड जाता है। साथ ही काम में एकाग्रता होनी चाहिये।

९८) सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिये भीतर से खाली होना पडेगा। पूर्व प्राप्त ज्ञान के अहंकार से जब तक मुक्त नहीं होते तब तक सच्चा ज्ञान हासिल नहीं होगा।

९९) जो खुशी खुशी कष्ट उठाने को तत्पर रहता है उसे सदा सुखों की प्राप्ति होती है। दु:ख के समय को सहज आसानी के भाव से बिता देने वाले को दु:ख की अनुभूति कभी नहीं होती है।

१००) जीव की शक्ति स्वल्प है, ईश्वर की शक्ति अपार है। प्रार्थना से ईश्वर की शक्ति का अवतरण जीव की शक्ति को सौ गुना कर देता है।

१०१) जो लोग मिली हुई चीज को छोडकर यदि उस चीज के पीछे भागते है जिसके मिलने की कोई आशा ही न हो, ऐसे लोग मिली हुई वस्तु को भी खो देते है इसलिये कहते है "आधी छोड सारी को धावे, सारी छोड आधी न पावे"।

१०२) शोभा देते है- साधु को क्षमा, श्रावक को दया, बालक को संस्कार, स्त्री को शील, द्रव्य को दान, कुल को सुपुत्र, जीवन को धर्म से और विद्या की शोभा विनय व विवेक से होती है।

१०३) कर्म का आश्रय लिये बिना किसी को संसार में रहकर सुख शान्ति नहीं मिल सकती। पुरुषार्थ में लगकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना सर्वश्रेष्ठ है।

१०४) भौतिक और आध्यात्मिक दो ही मानव के विकास के पक्ष है। एक प्रेय मार्ग है तो दूसरा श्रेय मार्ग है। प्रेय मार्ग में वासना की प्रधानता होने से उसमें राग और द्वेष भरे हुये है और यहां राग द्वेष मानव के दु:ख के कारण बन कर जन्म, जरा, मृत्यु के बन्धन मे डालते है। परन्तु श्रेय मार्ग हमें परमात्मा की निकटता का आभास कराता है। श्रेय मार्ग का पथिक सांसारिक सम्बन्धों में शाश्वत सम्बन्ध खोजता है और वह कण कण में परमात्मा का दर्शन करता है।

१०५) कार्यों के परिणामों की चिन्ता न करने से ही निष्काम कर्म बनता है। परिणाम तो ईश्वर पर निर्भर करता है। व्यक्ति को केवल शुद्ध और नि:स्वार्थ भाव से कार्य सम्पन्न करना है। नि:स्वार्थ किये गये कार्य को सच्चा जमा खाता कहा जाता है जो शुभ कर्मों का संग्रह है और इसी से व्यक्ति के भावी जीवन का निर्माण होता है।

१०६) हमें सूप (छाज) की तरह होना चाहिये जो असार वस्तु को बाहर निकाल दे, ग्रहण न करे और सार वस्तु को ग्रहण करे। सार और असार क्या है ? ईश्वर इस जगत में सार है और शेष असार, अत: ईश्वर का चिन्तन मनन करना ही सार को ग्रहण करना है और संसार के मोह-माया के प्रति अलिप्त होना ही असार है इसलिये सूप की तरह बनो।

१०७) जन्म जन्मान्तर में प्राणी ने दान देने तथा शास्त्रों के अध्ययन करने का जो अभ्यास किया हुआ होता है वह नया शरीर प्राप्त होने पर उसी अभ्यास के कारण वह सत्कर्मों के अनुष्ठान का अभ्यास करता है।

१०८) आगम और निगमों के मार्ग ठीक है उससे उनका उद्धार होता है ये हीन सत्व प्राणियों के लिये है। धर्माचरण करने वालों को सद्गति प्राप्त होती है।

१०९) मोक्ष पुरुषार्थी लोग बहुत कम हुये है। अर्थ, धर्म और काम तीनों से मुख मोडकर परम पुरुषार्थ मोक्ष-जन्म-मरण के चक्र से परित्राण पाने के प्रयत्नों मे लगे लोग मोक्ष पुरुषार्थी है। ये समाज में बहुत ही अल्प होते है। किन्तु सर्वदा सब कहीं ऐसे पवित्र पुरुष होते आये है।

११०) धर्म पुरुषार्थी लोग सबसे कम हुये है। धर्म साधन है अर्थ और काम का। पुण्य प्रारब्ध का ही फल अर्थ तथा भोग है। ऐहिक ऐश्वर्य तथा सुख सम्पत्ति के लिये और स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये यज्ञ, दान, तप, प्रभृति धर्माचरण करने वाले संसार में बहुत अधिक लोग होते है। धर्म को अन्त:करण शुद्ध बनाता है। अर्थ, काम, मोक्ष तीनों पुरुषार्थों में धर्म साधन है, सहायक है। तीनों के अभीप्सु धर्म का आचरण करते है। अर्थ और काम पर धर्म का अंकुश अपेक्षित है और स्वयं धर्म को मोक्ष का साधन सोपान बनना चाहिये। धर्म की सफलता ही अन्त:करण को निर्मल कर मोक्ष का अधिकारी बना देती है।

१११) भगवान सर्व व्यापक, सर्वत्र, सर्व स्वरूप है यह सत्य होने पर भी यह तथ्य है कि जीव का कल्याण तब तक नही होता जब तक भगवान उसके स्मरण के विषय नहीं बनते। स्मृति मे अन्त:करण में आये भावमय भगवान ही भवसागर में भटकना निवृत कर सकते है। भगवत स्मृति का बहुत अधिक महत्व है। इसलिये भगवान के उन स्मारकों व स्थलों का भी महत्व है जो हमे भगवान का या भगवान की लीला का स्मरण कराते है।

११२) भगवतद्धाम पार्थिव होता है यह भ्रम है। भगवद्धाम भगवान से नित्य अभिन्न है। यह काल के प्रभाव से परे है, चिदघन है। सर्वत्र सर्व रूप भगवान के विद्यमान रहते भी कितने लोग उनका अनुभव कर पाते है। कितनों को उन सौन्दर्य माधुर्य का सान्निध्य प्राप्त होता है। उनके साक्षात्कार के लिये साधना, प्रीति और उनकी अनुकम्पा आवश्यक है या नही भगवद्धाम का प्रवेश, वहां का निवास, बिना भगवान की अनुकम्पा के नहीं होता है।

११३) जो दुष्ट इस मुर्दे शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे ईर्ष्यावश सदा ही महात्माजनोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि महापुरुषोंकी चरण-धूलि उन निन्दा करनेवाले पापियोंके तेजका नाश कर देती है; अत: उनके लिये यही उचित भी है।

११४) आचारहीन पुरुष का सब साधन निष्फल होता है। परम धर्म और परम तप आचार ही है। आचारयुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचारके पालन करनेसे पुरुष ऋषि और देवता तक बन जाते हैं।

११५) ध्यान, तप, शील और ज्ञान युक्त साधु जितना आत्मलाभ प्राप्त नहीं कर सकता उससे अधिक तो शांतचित्त का साधारण व्यक्ति प्राप्त कर लेता है। यदि मात्र मन में शांति ही हो तब भी सारा जगत वश में दिखाई देता है।

११६) अधमतम प्राणी ईश्वर स्मरण कर नाम उच्चारण करके समस्त पापों से पवित्र हो जाता है। ऐसा कोई भी महापाप नहीं है जो सिर्फ राम कहने मात्र से भस्म न हो जाता हो। कोटि कोटि जन्मों के पातकों के पाप समूहों का अविलम्ब संहारक राम का स्मरण है।

११७) जैसे भुना हुआ बीज खेत में नहीं उगता, उसी तरह ज्ञान की आंच में तपा कर्म भी अच्छी प्रकार भुन जाता है। जो व्यक्ति ज्ञान ज्योति में मोह को जला कर अपना कर्म पूरा कर लेता है उसे फिर इस संसार में नहीं आना पडता है।

११८) भगवान बुद्धने कहा है की हर एक विचार यथार्थ हो जाता है। इसलिए सजग रहो। हर चीज के कारण तुम स्वयं हो। तुम कारण हो, संसार तो बस दर्पण है। जब भी तुम्हे लगे की कोई चीज गलत है तो पहले उसका कारण अपने भीतर खोजो और कहीं मत जाओ। सौ में निन्यानवे मौकों पर तुम्हें अपने भीतर ही कारण मिल जायेगा, और जब सौ में से निन्यानवे कारण तुम्हारे भीतर होगे तो सौवां कारण अपने आप विदा हो जायेगा। अंतत: तुम स्वयं ही अपने चारों और का संसार निर्मित करते हो, तुम जो भी सोचते हो, वह तुम्हारा परिवेश बन जाता है, और तुम उसमें ही जीते हो। आनंद तुम्हारा सृजन है और दु:ख भी तुम्हारा सृजन हैं। तुम दु:ख को आनन्द में बदल सकते हो क्योकि वह तुम्हारा सृजन है। बुद्ध पुरूष न दु:ख में होते है और न आनन्द में, क्योंकि वे कार्यकारण से बाहर हो गये हैं। वे सिर्फ है।

११९) जिसने संसार की तमाम वस्तुएं संसार को अर्पित कर दी हैं, वही सांसारिक चिंतन से रहित होता है। जड़ वस्तुओं की आसक्ति त्याग कर ही भगवद् चिंतन संभव है।

१२०) इस मन के जैसा कोई दूसरा भूत-वैताल नहीं। एक क्षण में तो यह आकाश पर चढ़ जाता है, और दूसरे ही क्षण पाताल में जा धंसता है। इसकी गति कभी कम हो जाती है, तो कभी ज्यादा बढ़ जाती है। किसी क्षण शहर में बस जाता है, तो दूसरे ही क्षण जंगल का इरादा कर लेता है। बिना आत्मज्ञान के यह चित्त स्थिर नहीं हो रहा। बिना गुरु-कृपा के और बिना परिपक्व ज्ञान के स्थिर यह होने से रहा।

१२१) संसार-यात्रा में कभी कोई सुखी नहीं होता। परमार्थ यात्रा ही परम सुख का मार्ग है। जिसे सुख-दुख की अनुभूति नहीं होती, वह व्यक्ति ही परमानंद की प्राप्ति कर सकता है।

१२२) जो भी विचार करो उसमे अपने विवेक को सही इस्तेमाल करो, इसमे उतावलापन ठीक नहीं होता है। इससे ईश्वर में श्रद्धा बनी रहेगी।

१२३) यदि विश्वास रूपी बीज खेतों में बोओगे, विवेक रूपी हल चलावोगे नम्रता रूपी खाद डालोगे, ज्ञानरूपी जल से सींचोंगे तो परमात्म सुख व शान्ति रूपी फसल उगेगी।

१२४) जैसे अहं भाव से अहंकार पैदा होता है वैसे ही विभ्रम मोह का परिणाम है। धैर्यता व नम्रता नामक दो गुणों से व्यक्ति कही ईश्वर से समीपता बनी रहती है। अहं भाव से मानव में वे सारे लक्षण आ जाते है जिनसे वह अप्रिय बन जाता है।

१२५) सुदामा ब्रह्म को जाननेवाले ब्राह्मण है, मोह निशा में सोये हुये ब्राह्मण नही है अर्थात जागे हुये ब्राह्मण है। ब्राह्मण का धन-तप, विद्या, सदाचार सन्तोष है रुपये पैसे नही। ब्राह्मण को चाहिये की वह उसे बाटें। अपने पास जो है वो बेचे नहीं।

१२६) श्रीमद भागवत् कल्पवृक्ष है इसकी शीतल छाया में बैठने से संसार का पाप, सन्ताप, उसे संतप्त नहीं कर सकते बल्कि मिट जाते है। श्रीमद भागवत कथा उपनिषदों का सार है। मृत्यु के दु:ख से बचना चाहते हो तो श्रीमद भागवत का आश्रय लो। भागवत मरना सिखाता है। रामायण जीवन जीना सिखाता है। जिसने मरना सीख लिया उसकी मुक्ति होती है, मुक्ति मृत्यु के बाद नही, मुक्ति यदि है तो मृत्यु से पूर्व है। श्रीमद् भागवत भव रोग को मिटाने वाली औषधि है। कथा मनोमंथन के लिये होती है मनोरंजन के लिये नहीं। श्रीमद्भागवत वैष्णवों का धन है और यह परम हंसों की संहिता है। बार-बार कथा सुनना सत्य को दोहरानेवाली बात है। भागवत मृत्यु को महोत्सव मे बदल देता है तब मरना नहीं, मिलना हो जाता है।

१२७) कथामृत अभय प्रदान करता है। कथा राग द्वेष को मोडने का साधन है। राम कथा तो त्याग, समर्पण कही स्पर्धा है। रामायण में भरत मूर्तिमन्त प्रभु प्रेम का प्रतीक है और भागवत में गोपी मूर्तिमन्त प्रभु प्रेम है। श्रीराम का अनुसरण कठिन है, श्रीकृष्ण को समझना कठिन है। श्रीकृष्ण को समझने के लिये श्रीराम का अनुसरण करना जरूरी है। राम एक रत्न है कृष्ण एक हीरा है। भगवत कथा तो चरित्र का निर्माण करने वाला यज्ञ है। जीवन की शिक्षा देनेवाली भगवान की कथा है। भागवत-रामायण आदि सदग्रन्थों को पढने और समझने में फर्क है। समझने के लिये तीन चीजे आवश्यक है। १) श्रद्धा का बल, २) संतों का साथ ३) प्रभु में प्रेम।

१२८) जीवन में क्या करना चाहिये यह रामायण से सीखो और जीवन में क्या नहीं करना चाहिये यह महाभारत से सीखो। अमृत पीयोगे तो दीर्घ जीवी बनोगे और कथामृत का पान करोगे तो दिव्यजीवी बनोगे। रामायण महाभारत के पात्र मरे नही है, हमारे शरीर में वृत्ति के रूप में बैठे है। भगवद् कथा जीवन की शिक्षा है।

१२९) भगवान के वियोग में जो रोना होता है वहां पाप का नाश होता है। भगवान के वियोग का दु:ख यह तो भगवान की कृपा से होता है। पाप के कारण नहीं होता।

१३०) भगवान के लिये किया गया कर्म ही यज्ञ है। पाप कर्म से बचने के लिये, पुण्य कर्म में अपने को लगाये रखो। किसी भी कर्म के साथ स्वार्थ का सम्बन्ध जोड लेने से वह कर्म तुच्छ और बन्धन का कारण हो जाता है। मनुष्य कर्मों से नही बंधता प्रत्युत कर्मों मे वह जो आसक्ति और स्वार्थ भाव रखता है उनसे ही बंधता है।

१३१) अपना हित दूसरों के लिये कर्म करने से होता है। सबसे उत्तम साधक वह है जो अपने मुक्ति के लिये भी कोई कर्म न करके केवल दूसरों के हित के लिये ही कर्म करता है।

१३२) कर्म के पौधे को पुरुषार्थ के पानी से सिंचित करो, नीति निष्ठा की उसमें खाद डालो। कर्म के पौधे से फल प्राप्त हो वह भगवान को समर्पित कर दो।

१३३) इन्द्रियों में जो विष है वो विषय वासना का विष है। इन्द्रियों को मारना नहीं है उसका निग्रह करना है। इन्द्रिय सुख भलेही उत्तम लगे वो चिरकालीन नही तत्कालीन है।

१३४) ज्ञान मार्ग में साध्य सिद्ध हो जाने के बाद साधन छूट जाता है लेकिन भक्ति मार्ग में साध्य सिद्ध हो जाय फिर भी साधन नहीं छूटता।

१३५) भगवत् कार्य के लिये इच्छा जागना यह भी भगवान की कृपा से ही होता है। भगवान का दास कभी उदास नहीं होता है। भगवान का भक्त कभी चिन्ता नहीं, चिन्तन करता है।

१३६) ज्ञान की प्यास का नाम है जिज्ञासा, मुक्ति की प्यास का नाम है मुमुक्षा, भगवान की प्यास का नाम है भक्ति। जिज्ञासु और मुमुक्षु साधक है लेकिन भक्त सिद्ध है।

१३७) पल पल भगवान के अनुग्रह का अनुभव करना चाहिये क्योंकि इस जीव पर भगवान के अनन्त उपकार है। भगवान तो परम सत्य प्रकाश है। जीवन संसार से अन्धकार को मिटाने के लिये प्रभु आते है। अन्त:करण की हर वृत्ति को भगवान के साथ जोडे।

१३८) भगवत प्राप्ति का सरल उपाय है सच्ची लगन। परमात्मा की प्राप्ति मे भाव की प्रधानता होती है क्रिया की नहीं। मनुष्य मात्र भगवत प्राप्ति का अधिकारी है और वह हर परिस्थिति में भगवान को प्राप्त कर सकता है। परमात्मा की प्राप्ति में देरी नहीं लगती है, देरी है सम्बन्ध जन्य सुख की इच्छा का त्याग करने में।

१३९) भगवान, सन्त, सतशास्त्र (महाग्रन्थ) और सदविचार ये चारों भी साधक को कभी निराश नहीं करते उसकी उन्नति ही करते है।

१४०) भगवान की प्राप्ति के लिये निश्चयात्मक बुद्धि होनी चाहिये। भगवान का भक्त तो सभी परिस्थिति में भगवान की कृपा को ही देखता है।

१४१) भक्ति दीनता के सिंहासन पर विराजमान होती है, अहंता के शिखर पर नहीं रहती। समर्पण भक्ति के हाथ के कंगन है, सदाचरण भक्ति के चरण नुपूर है। संयम भक्ति की करधनी है, भगवान का नाम भक्ति का प्राण है, भगवान में विश्वास भक्ति का श्वास है, भगवान भक्ति के पति है और उसके दो बेटे है ज्ञान और वैराग्य। भक्ति महारानी है इसलिये उसकी मुक्ति दासी है।

१४२) ब्रह्मा हंसपर विराजमान है, शिवजी नन्दी बैल पर, विष्णु गरुड पर। ब्रह्मा बुद्धि के देव है, विष्णु यज्ञ है और शिव कल्याण है। नन्दी धर्म है, गरुड वेद है और हंस विवेक है।

१४३) न भोगना है, न भागना है। जागना है। जो भोगता है उसमे राग है। जो भागता है उसमे द्वेष है लेकिन जो जागता है वह साधु है। जागृति ही जीवन है। वही जीव जागा हुआ है जो परमार्थ में लगा हुआ है।

१४४) जब तक जीव को भगवान की सामर्थ्य का ज्ञान नहीं होता और अपने अज्ञान का भान नहीं होता तब तक जीव का अहंकार नहीं जाता। कई बार अहंकार नम्रता का कपडा पहना हुआ रहता है। अभिमान जीव और शिव के मिलन में बाधा देता है, अभिमान सदगुणों का भक्षण करता है।

१४५) जो पाप ताप सन्ताप हरे उसका नाम हरि। भगवान सबका त्राण, कल्याण निर्वाण करते है। भगवान की प्राप्ति के लिये ही यह मानव जीवन है।

१४६) भगवान के सिवा कोई अपना नहीं हो सकता और भगवान को छोडकर हम अन्य किसी के हो ही नहीं सकते। जो भगवदाश्रयी होता है उसकी चिन्ता, क्षेम वहन भगवान स्वयं करते है लेकिन जो अन्याश्रयी होता है उसे भगवदाश्रय नहीं प्राप्त होता है। मां के गर्भ में प्राणी मात्र की रक्षा भगवान ही करते है। भगवान से जो कुछ मांगते है उसको भगवान वह दे देते है। लेकिन जो भगवान को ही मांग लेते है, उसके पास भगवान चले आते है।

१४७) हमारे जीवन में तीन अवस्था है। बाल्य अवस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। तीनो अवस्थाओं में मंगलाचरण की आवश्यकता है। बाल्यावस्था में मंगलाचरण करने से युवावस्था मंगल होगी। युवावस्था में मंगलाचरण करने से वृद्धावस्था मंगल होगी और वृद्धावस्था में मंगलाचरण करने से मृत्यु मंगलमय हो जायेगी।

१४८) सब में प्रभु को देखो, प्रभु में सब को देखो। या तो मैं को ऐसा मिटाओ कि प्रभु ही बचे या मैं को इतना फैलाओं कि दूसरा बचे ही नहीं या तो पूर्ण हो जाओ या तो फिर शून्य हो जाओ।

१४९) यज्ञ समाज के आधिभौतिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक सब प्रकार के उत्थान के लिये अनिवार्य साधन है। इसलिये यज्ञ भगवान का स्वरूप है।

१५०) सभी प्राणियों में अन्नमय, प्राण मय और मनोमय कोश होते है लेकिन मनुष्य में विज्ञानमय और आनन्दमय कोश इन सबसे अतिरिक्त और अधिक है इसीलिये देह धारियों में सबसे श्रेष्ठ मानव को माना गया है।

१५१) आत्मा समस्त शरीरों में एक समान व्याप्त है- जैसे आकाश। जितने भी अचर और चर जीव सृष्टि में हैं, सभी परिछिन्न हैं आत्मा से। द्रव्य अर्थात् वस्तुएं जड़रूप हैं और विकारमान हैं। आत्मा दृश्यमात्र का दृष्टा है, और वह नित्य है और निर्विकार है। जब

अपरोक्ष आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है, तब न शोक रहता है और न कोई संताप।

१५२) शरीर को इसलिये स्वस्थ बनाये रखो कि इस शरीर का सदुपयोग करके भगवान की प्राप्ति के लिये प्रयास किया जा सकता है।

१५३) पुण्य का फल मुक्ति नहीं है लेकिन पुण्य कर्म का फल भगवान को समर्पित करते, पुण्य कर्म के बन्धन से छूट सकते है। चिन्तन ब्रह्म का करो।

१५४) दो बातें हैं- कर्म तथा कर्म का प्रभाव। कर्म भले ही साधारण हो परंतु इसका प्रभाव सकारात्मक, उत्पादक व रचनात्मक होना चाहिए।

१५५) मनुष्य की मौलिक आवश्यकतायें पूरी करने के उद्देश्य से ही अपने पास जो भी अच्छा है, उपयोगी है व जरूरत मंद और योग्य व्यक्ति को देना ही दान कहा जाता है। जो देने से बढ़ती है वह विद्या है। ज्ञान के प्रकाश मे व्यक्ति को मुक्ति का मार्ग मिलता है इसलिये विद्यादान को अतिदान कहा गया है।

१५६) प्रभु की प्रसन्नता के लिये किये गये व्यवहारिक कार्य ही प्रभु की भक्ति है। प्रभु को हमेशा साथ में रखोगे तो जीवन सफल बनेगा। मन से प्रभु के चरणों के समीप रहना ही सच्चा उपवास है। मनुष्य मालिक नहीं है, प्रभु का मुनीम है।

१५७) सत्संग जीवन का कल्पवृक्ष है। सत्संग का अर्थ है गुरु का सहवास। सत्संग के बिना मन ईश्वर की और नहीं मुडता। सन्त, महात्मा और सदगुरु के सत्संग का कोई भी अवसर मत चूको।

१५८) गुरु सेवा से ईर्ष्या और अन्य से उच्चतर होने का भाव नष्ट होता है। तुम्हारे बदले मे गुरु साधना नही करेंगे। साधना तो तुमको स्वयं करनी पडेगी। आजकल के शिष्य ऐश आराम का जीवन जीते है किन्तु गुरु की आज्ञा का पालन किये बिना ही उनकी कृपा की आकांक्षा करते है। अपने मन पर संयम रखकर जो योगाभ्यास नहीं कर सकते उनके लिये भक्तिपूर्वक गुरुदेव की सेवा करना ही एक मात्र उपाय है।

१५९) संसार का वैभव भोग छोडकर यदि वृत्ति प्रभु की और जाने लगे तो समझना चाहिये कि यह पूर्व के संस्कारों का शुभ फल उदय हो रहा है।

१६०) आज की अशान्ति का कारण है जीव का ईश्वर को भूल जाना। प्रभु से कुछ मांगना नही। प्रभु के उपकारों को अवश्य याद रखना।

१६१) सब प्राणियों के प्रति करूणा का भाव रखो। जो दु:ख में है उन पर दया करो। सब प्राणियों से प्रेम करो। किसी से भी ईर्ष्या मत करो। दूसरों के दोष मत देखो।

१६२) जिन्दगी में कभी कडुवा मत बोलो। जो बोलो हंसते हुये बोलो। क्रोध आये तो मुंह बन्द रखो। होठों पर मुस्कान और चितवन में प्यार हो।

१६३) मनुष्य जो शुभ या अशुभ आचरण करता है उसका वैसा ही फल भोगता है। बिना किये हुये कर्म का फल भोग के बिना नष्ट नहीं होता। जो शुभ कर्म का आचरण करता है उसे शुभ फल की प्राप्ति होती है और जो अशुभ कर्म करता है वह अशुभ फल का भागी होता है।

१६४) स्वाध्याय, अग्निहोत्र, श्राद्ध तर्पण, अतिथि सत्कार और गौ आदि को ग्रासदान, यह नित्य के यज्ञ है। अगर कुछ भी नहीं हो तो कम से कम अतिथि सेवा, जल और जलपान करा कर और मधुर वचनों द्वारा भी वैसा लाभ लेना चाहिये।

१६५) आत्म संयम, एकाग्रचित्त, सद्भावना और तन शुद्धि के लिये परम आवश्यक है कि विलासिता का शिकार न बने। अनावश्यक बातें न करें तथा कम बोले। किसी का जूठन न खाये और न ही प्रयोग मे लाये हुये पुराने वस्त्र पहने। अनावश्यक किसी को स्पर्श न करे। हल्का तथा सात्विक भोजन कर मिताहारी बने।

१६६) मन को सदैव अच्छी बातों के सोचने मे, सुन्दर भावनाओं की धारणा करने में, अच्छे ग्रन्थों के पठन पाठन में, भगवान का नाम लेने, उनके ध्यान व स्तुतियों में लगावे। नित्य कुछ समय भगवान की आराधना व उपासना करे। प्रतिदिन अपने सद्विचारों, आदर्श चरित्रों और नियमों का परीक्षण करे। प्रतिदिन सोते समय सभी चिन्ताओं को त्याग कर भगवान नाम का जप, स्मरण और ध्यान करे।

१६७) दान से दरिद्रता का, सदाचार से दुर्गति का, उत्तम बुद्धि से अज्ञान का तथा सद्भावना से भय का नाश होता है। सम्पन्न व्यक्ति द्वारा किये गये दान की अपेक्षा अभावग्रस्त व्यक्ति द्वारा स्वयं अभावों के झेलते हुये, दूसरों के सुख के लिये दान करना अधिक

महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों के कष्टों को दूर करने मे संलग्न रहता है, उसका त्याग वास्तव में ही उल्लेखनीय होता है। ऐसे उदार दरिद्र के प्रति भगवान सहज ही द्रवित होकर उसका दारिद्र्य शीघ्र ही नष्ट करते है।

१६८) आत्मा स्वयं नारायणस्वरूप है, वह स्वत: प्रकाशित है और स्वयं ही अध्यात्म-विज्ञान। कल्पित अज्ञान के कारण अपने स्वरूप को वह भूल गया है। और वही अज्ञान अनेक प्रकार का नाच नचा रहा है। कभी नीचे चला जाता है, और कभी ऊपर को, जैसे रहट की घड़ियां।

१६९) गुरु के बिना मिला हुआ ज्ञान अहंकारी होता है। गुरु के बिना विद्या आंकलन नहीं होती। विद्या के उपयोग का सामर्थ्य गुरु कृपा के मिलना सम्भव नहीं है। विनम्र होकर ही विद्या ग्रहण हो सकती है।

१७०) बुद्धि के अनुसार मन और मन के अनुसार इन्द्रियां होने से उत्थान होता है। परंतु इन्द्रियों के अनुसार मन और मन के अनुसार बुद्धि बनाने से पतन होता है।

१७१) कर्म हम अपनी इन्द्रियों तथा बुद्धि की ही सहायता से करते हैं। कर्म करने में हम स्वतन्त्र से ही दिखाई पडते हैं, किन्तु भाग्य वशात् और से और हो जाता है। जो काम हम सुख इच्छा से करते हैं, वही दुख का कारण बन जाता है।

१७२) जिन्होंने अपने रथ पर मधुसूदन को बैठा लिया है, जिसने अपने घोडे की डोरी श्यामसुन्दर के हाथों में थमा दी है वही निश्चिन्त है, निर्भय है, बेखटके और निद्वर्द्व है।

१७३) जिसे भगवान् दु:ख या संकट देते हैं, उसे सहनशक्ति भी प्रदान करते हैं। तभी तो बड़े सुकुमार पुरुष बड़ी-बड़ी व्याधियों को चिरकाल तक सहते रहते हैं। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा विचित्र है कि वह शक्ति भर किसी से दबना नहीं चाहता। मनुष्य क्या प्राणीमात्र का ही यही स्वभाव है।

१७४) सबसे पहले तो अपने भीतर के छिपे शत्रुओं को ही जीतना परम धर्म है, तभी बाहर के शत्रु जीते जा सकते हैं। नहीं तो घर का भेदिया लंका को ढाता है। यह लोकोक्ति अक्षरश: सत्य है।

१७५) वीर लोग वीरता के लिये लड़ते हैं। वे क्रोध के वशीभूत, द्वेष-बुद्धि से किसी का अहित नहीं करते हैं, कहना कुछ और करना कुछ। किन्तु इसे नीतिकारों ने भी गर्ह्य बताया है। कुटिल नीति का प्रयोग भी राजा तभी करते हैं, जब वे अन्य सभी उपायों से निराश हो जाते हैं। किन्तु जो कर्तव्य समझकर स्वर्ग की कामना से युद्ध करता है उसके लिये जय-पराजय दोनों समान हैं।

१७६) यदि हम भगवान को भूलकर उनके अस्तित्व का स्मरण न करके क्रोध करें, तो निश्चय ही हमारा सर्वनाश है। और यदि हमें यह स्मरण बना रहे कि घट-घट व्यापी प्रभु हमारे सम्मुख खड़े हैं, तब मनुष्य क्रोध करना भी चाहें, तो वे उसे सद्बुद्धि प्रदान करके अनर्थ करने से निवारण करते हैं।

१७७) पाप सदा वही करेगा जो भगवान् को भूल जायेगा। भगवत्-स्मृति जिसे सदा बनी रहती है, उससे न कभी पाप होता है और न उसे कभी भारी विपत्ति का सामना ही करना पड़ता है क्योंकि हरिस्मृति: सर्व विपद्विमोक्षणम् हरिस्मरण से सब विपत्तियों का नाश हो जाता है।

१७८) जिस समय मनुष्य समस्त प्राणियों में अपने को देखता है और अपने को सब प्राणियों में तो उसका शोक, मोह, भ्रम, अज्ञान सब दूर हो जाता है। परमार्थ विषय में ही यह बात नहीं लोक में भी देखा गया है। जब तक हम अज्ञानवश किसी को अपना शत्रु समझते है तब तक हमें उसमें सभी अवगुण-ही-अवगुण दिखाई देते हैं। जिस समय हमारा शत्रु भाव हट जाता है, तब उसके दोष भी गुण-ही-गुण प्रतीत होते हैं।

१७९) जिस व्यक्ति का हृदय निर्मल है, पवित्र है, करूणा से भरा हुआ है, वह सदा परम आनंदरूपी परमात्मा की भक्ति में डूबा रहता है। दूसरे के दुख में दुखी होने वाला, गरीबों और दुखी लोगों की सेवा करने वाला व्यक्ति ही परमात्मा का सच्चा भक्त होता है।

१८०) अधिक सांसारिक ज्ञान अर्जित करने से आप में अहंकार आ सकता है परन्तु अध्यात्मिक ज्ञान जितना अधिक अर्जित करते हैं उतनी नम्रता आती है।

१८१) आप किसी समस्या के बारे में कितनी भी चिंता करें परन्तु क्या आप का चिंतित मन उस समस्या का समाधान कर सकता है।

१८२) योग्यता, क्षमता, विशेषता, वरिष्ठता के बीजांकुर तो सभी में होते है, पर उन्हे सुविकसित करने के लिए हर किसी को बढ़ी-

चढ़ी प्रयत्नशीलता का परिचय देना पड़ता है। मनुष्य आरंभ से ही शिक्षार्थी रहता है और उसे अंतिम सांस तक वह सीखने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए, जो उपयोगी एवं आवश्यक है।

१८३) ज्ञान संपदा का संचय ही वस्तुत: सच्चे अर्थों में सुसंपन्न सुयोग्य बनाता है। सुसंस्कृत भी इसी रीति-नीति को अपनाने पर बना जाता है। सीखने में असमर्थ रहने पर व्यक्ति कूप-मंडूक के स्तर का संकीर्ण सीमाबद्ध ही बनकर ही रह जाता है। अनाड़ियों को ही अभावग्रस्त रहना पड़ता है और वे ही अशक्त, दुर्बल, अयोग्य समझे जाते है। इस अभिशाप से मुक्ति पाने और दिलाने के लिए सद्ज्ञान की उपासना आवश्यक है। मनीषियों के पदचिन्हों पर चलते हुए हर विचारशील को अधिक जानने, अधिक सीखने, अधिक अनुभवी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुतों के लिए यह संभव होता है कि संसार की दृष्टि मे बहुत कुछ भला-बुरा करते रहने पर भी अपने लिए मात्र उपयोगी वस्तुएँ ही चयन करते है।

१८४) भावना-मनुष्य की सब से बडी दुर्बलता यही है कि वह विचारों के धरातल को छोड़कर भावना के आकाश में उडता है और भावना प्राणी के जीवन के संघर्ष तथा विषमता में उसका साथ नहीं देती। वह छाया की भांति प्राणी का साथ छोड देती है। तब प्राणी विगत के क्षणिक परम सुख को स्मरण कर के अपने लिए कल्पनातीत दुख की सर्जना करता है।

१८५) मैं कितना क्षुद्र हूं। जब जीवन मुझे स्वर्ण देता है, मैं तुम्हारे प्रयत्नों को चांदी से ढक देना चाहता हूं। उस पर भी मैं स्वयं को उदार समझता हूं।

१८६) किसी भी कर्म का नेत्र ज्ञान होता है, ज्ञान यदि कर्म के साथ जुडता है तो कर्म की महत्ता बढ जाती है नहीं तो कर्म-कर्म ही रह जाता है।

१८७) राग है, द्वेष है और क्रोध भरा हुआ है। जिनके साथ बैठकर खाना है, अर्थात् जिनसे एकरस हो जाना है, तुम तो उन्हींसे पूछो कि उनकी जात क्या है, वर्ण क्या है और कुल क्या है ?

१८८) अदत्तदान (चोरी का धन) दूसरों के हृदय को जलाने वाला होता है। मरणभय, पाप, कष्ट और पराए धन की लिप्सा का कारण है और लोभ की जड़ है। वह अपयश देनेवाला है। करने लायक काम नहीं है। साधु लोग उसकी निंदा करते हैं। वह अपने प्रेमियों और मित्रों के बीच भेद डालने वाला है। विपत्ति का कारण है। तरह-तरह के राग-द्वेष बढ़ाने वाला है।

१८९) जो लोग संयमी हैं, वे मालिक से बिना पूछे न तो कोई सचित्त चीज लेते हैं, न अचित्त। फिर वह चीज कम हो चाहे ज्यादा। दाँत कुरेदने की सींक ही क्यों न हो, वे न तो खुद लेते हैं, न दूसरे से लिवाते हैं और न किसी दूसरे को उसके लिए अनुमति देते हैं।

१९०) मनोहर रूप ग्रहण करने वाला जीव कभी अघाता ही नहीं। उसकी आसक्ति बढ़ती ही जाती है। उसे कभी तृप्ति होती ही नहीं। इस अतृप्ति के दोष से दु:खी होकर उसे दूसरे की सुंदर चीजों का लोभ सताने लगता है और वह चोरी कर बैठता है।

१९१) माया के चार भेद निम्न हैं- १) बाँस की कठोर जड़ जैसी, जो किसी तरह टेढ़ापन नहीं छोडती। २) मेढ़े के सींग जैसी, जो बड़े प्रयत्न से अपना टेढ़ापन छोड़ती है। ३) बैल के मूत्र की धार जैसी, जो वायु के झोंके से मिट जाती है। ४) बाँस की चीपट के समान।

१९२) विवेक जल्दी ही नहीं मिलता। उसके लिए भारी साधना करनी पड़ेगी। साधक को कामभोग छोड़कर समभाव से संसार की असलियत को समझकर आत्मा को पापों से बचाना चाहिए और बिना प्रमाद के सदा विचरना चाहिए।

१९३) नारद जी का सबसे बडा गुण संतोष है। वह हर क्षण संतुष्ट रहते हैं। कोई भी कामना उन्हें कभी विचलित नहीं कर पाती। उनका दूसरा गुण शीलवान होना है। शीलवान होने के कारण वह अहंकार, भय, मोह संदेह आदि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं और वह अपना एकपल भी व्यर्थ नहीं गंवाते हैं। हर क्षण परोपकार में लगे रहते हैं।

१९४) जीवन कभी सुखी या दुखी नहीं होता। यह तो हमारे अपने कर्म होते है जो सुख और दु:ख का कारण बनते है। इसलिये प्रतिक्षण जीवन को शुद्धाचरण द्वारा सफल बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये, यही जीवन को सुखमय बनाने की चाबी है।

१९५) वैष्णव तो दया के सागर होते है, उनमे अभिमान का स्पर्श भी नहीं होता। वैष्णव कोई भी काम करते है तो ईश्वर की आज्ञा लेकर ही करते है। वैष्णव प्रेम से भगवान को बांधता है। जिस प्रकार लोभी के जीवन का लक्ष्य पैसा है उसी प्रकार वैष्णव के जीवन का लक्ष्य परमात्मा है। वैष्णव भगवान के पास मुक्ति नहीं मांगते सेवा मांगते है।

१९६) परमात्मा तत्व को चाहने वाला साधक प्राणियों को न देखकर उसमे रहने वाले परमात्मा तत्व को देखता है। परमात्मा सबके भीतर है, सब परमात्मा के है।

१९७) आदमी की किस्मत तो उस दिन फूटती है जिस दिन वह सम्यक-दर्शन-ज्ञान चरित्र से भ्रष्ट हो जाता है, जिस दिन उसके हृदय से प्रेम और विश्वास निकल जाता है।

१९८) वेदविहित और वेदविरुद्ध आचरण का सम्बन्ध आत्मस्वरूप के साथ नहीं है, क्योंकि आत्मस्वरूप में कोई भेदाभेद नहीं है। तथापि वेदभगवान् ने कहा है कि अवैध आचरण परम दूषण है। अपने स्वधर्म, अधिकार और जातिभेद के अनुसार जिसके लिए जो उचित अर्थात् शुद्ध कर्म है वह उसे अवश्य करना चाहिए। इसलिए सन्तों को तो अवश्य ही करना चाहिए, स्वयं करके लोगों को दिखाना चाहिए (जिससे वे उसका अनुकरण करें)। जिस कुल का जो कुलधर्म हो उसका वह अवश्य पालन करे, जिसमें किसी प्रकार भी अनाचार न हो। अपनी अवस्था चाहे जितनी पावन हुई हो तथापि शास्त्रविधि के त्यागने में दोष है। धर्मशास्त्र में जो कर्मपद्धति बतलाई है उसका अनुसरण करना चाहिए।

१९९) जिन्हें सब अर्थ प्राप्त हो चुके (अर्थात् जिनके लिए अब कुछ प्राप्तव्य नहीं रहा), जो निष्कामता को प्राप्त हो गए, उनके लिए भी, लोकहित का कर्तव्य रहता ही है। मार्ग में अन्धे के आगे जैसे आँखोवाला चलकर उसे रास्ता बताता है उसी तरह (सन्तों को) धर्म का आचरण करके, जो अज्ञानी हैं, उन्हें धर्म बताना चाहिए। यदि सन्त ऐसा न करें तो जो अज्ञानी हैं वे क्या समझ सकते है ? वे इस मार्ग को कैसे जान सकते हैं ? जो-जो कुछ बड़े करते हैं उसीको लोग धर्म कहते हैं और सभी सामान्य जन उसीका अनुष्ठान करते हैं। ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक है। इसलिए कर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। सन्तों को तो विशेष रूप से धर्म का आचरण करना चाहिए।

२००) योगाभ्यास से प्राप्त होनेवाली सिद्धियाँ भक्तियोग के बल से भक्त को भी सहज ही प्राप्त होती हैं। योगयागविधि से सिद्धि नहीं प्राप्त होती। यह व्यर्थ की उपाधि है, दम्भ-धर्म है।

२०१) सकाम भक्ति ऐसी ही होती है, सदा टिकनेवाली नहीं। भक्ति को भक्ति न कहकर सौदा कहें तो अधिक ठीक होगा। किसी ऐहिक कामना से भगवान् या गुरु की जो भक्ति की जाती है वह सदा अखण्ड बनी नहीं रह सकती। कारण, जिस कामना से यह भक्ति की जाती है उसके पूर्ण होते ही ऐसे भक्त के लिए भगवान् या गुरु का कुछ प्रयोजन नहीं रह जाता। निष्काम-प्रेम कोई दूसरी ही चीज है।

२०२) अहंकार पहले दूर करके तत्पश्चात् उन्हें आत्मबोध कराना गुरु का काम है। अहंकार जब तक नष्ट नहीं होता तब तक आत्मबोध गले नहीं उतर सकता और अहंकार को मारनेवाला गुरु ही होता है। और गुरु भी वही होता है जो शिष्य में जो-जो गुण हों उन गुणों में तो गुरु हो ही, साथ ही स्वात्मदानसमर्थ भी हो।

२०३) योग-याग-विधि से किसी को सिद्धि नहीं मिलती। ये व्यर्थ की उपाधियाँ और दम्भ-धर्म है। भाव के बिना देवदर्शन नहीं होते यह निश्चित है। गुरु बिना अनुभव की बात कैसे मालूम हो ? तप के बिना भगवान, दान बिना लाभ, एकान्त-प्रेम के बिना हित कौन बता सकता है ? सन्तों का संग ही तरण-तारण है।

२०४) भक्त को भगवान् के सिवा कोई सहारा नहीं और भगवान् को भी भक्त के बिना एक पल कल नहीं। भक्त-भगवान् के इस परस्पर प्रेम को स्वयं भक्त बनकर अनुभव किए बिना कोई भी नहीं जान सकता। यहाँ तर्क कुछ काम न देगा। तर्क यहाँ पंगु हो जाता है। संशय और कुतर्क से जिनका हृदय सूख गया है उनको इसका स्वाद नहीं मिल सकता। कुतर्की और संशय से ग्रस्त मनुष्य अभागे होते हैं। प्रेमामृत उनके गले जो नहीं उतरता इसका कारण यही है कि संशयराह उन्हें ग्रसे रहता है। परमार्थ साधन में संशय बड़ा विघ्न है।

२०५) तार्किकों का संग तज दो, नहीं तो सचमुच ही डूब जाओगे। इसलिए सब प्रकार के संशय और कुतर्क त्यागकर सन्तों के वचनों पर पूरा विश्वास रखे और उन्हीं के पदचिन्ह पर अपना पद रखकर चलने में ही अपना कल्याण समझे।

२०६) जीतेन्द्रिय और भगवद्ध्यानरत पुरुष के लिए कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है; तथापि जो उत्तमयोग (अर्थात् जीव और परमात्मा का योग यानी मिलन) का अभ्यास करनेवाले हैं उनके लिए ये सिद्धियाँ अन्तरायस्वरूप हैं और इसलिए इनकी इच्छा न करनी चाहिए; जो भगवान् के साथ तन्मय हो जाना चाहते हैं उनके लिए तो ये सिद्धियाँ समय व्यर्थ नष्ट करनेवाली होती हैं; इसलिए सब सिद्धियों के स्वामी, योग, ज्ञान, मोक्ष के निधान जो स्वयं श्री हरि हैं उन्हींकी शरण में अनन्य भाव से जाना चाहिये।

२०७) योग-प्रक्रिया सब के लिए सुगम भी नहीं है, विरला ही कोई शिष्य इस मार्ग पर चल सकने योग्य मिल सकता है। भक्ति मार्ग की यह बात नहीं है। सुजान-अजान, पढ़-अपढ़, छोटे-बड़े, पुण्यात्मा-पापात्मा, प्रज्ञावंत-मूढ़ सभी के लिए वह तारक है। भगवन् ने गीता में अर्जुन से और भागवत में उद्धव से कहा है कि भक्ति-मार्ग ही अत्यन्त श्रेयस्कर है।

२०८) जो कर्त्तव्य-कार्य तुम करना चाहते हो, उसमें देरी मत करो। कोई-न-कोई विघ्न आ जायेगा, तब काम पूरा न कर सकोगे। अदृष्ट की लीला को कौन जानता है कि क्या से क्या हो जाये। भाग्य का ग्रह टालने से भी नहीं टलेगा, प्रारब्ध का फल बिना भोगे किसी भी विधि से जाने का नहीं। पूर्वजन्म में जो कुछ भी दिया और लिया था, उसका फल भोगना ही होगा। जो कुछ किया था, वही दु:ख और सुख के रूप में मिलेगा।

२०९) सूक्ष्म में आसन लगाकर जो बैठता है वह स्थूल को यथातथ्य जानता है। उसे स्थूल का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

२१०) महाभारत को सकलकथाजन्मस्थान, प्रमेयमहानिधि, नवरससुधाब्धि, सर्वविद्यामूलपीठ, अशेष शास्त्रों का आश्रयस्थान महाभारत सब धर्मों का मातृस्थान, सन्त-सज्जनों का केवल हृदय और सरस्वती का लावण्य रत्न-भण्डार है, यहीं नहीं प्रत्युत विशाल व्यास-बुद्धि के द्वारा साक्षात् भारती (सरस्वती) ही भारतरूप से प्रकट हुई है और इसीलिए इस महाभारत-ग्रंथ में चातुर्य सयाना हुआ है, सिद्धान्त सुरुचिपूर्ण बना है, सुख सौभाग्य से हृष्ट-पुष्ट हुआ है, सर शानदार हुए हैं, कला-कौशल तेजस्वी हुआ है, शब्दश्री शोभायमान हुई है, विवेकतरु फूले हैं और महाबोध सुकुमार बनकर सबके लिए सुगेम और सुसेव्य हुआ है। पुराण भी अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा के लिए छोटे बनकर आख्यानरूप से भारत में प्रविष्ट हुए। इस प्रकार वेद, शास्त्र, पुराण सब का सार निकालकर भगवान् वेदव्यास ने यह अपूर्व भारताख्य पक्वान्न तैयार किया। इसलिए महाभारत में यदि कोई चीज नहीं है तो वह तीनों लोकों में कहीं नहीं है। इसीलिए कहते हैं कि जगत्रय व्यासोच्छिष्ट है। भानुतेज से प्रकाशमान त्रैलोक्य जैसे उज्ज्वल दिखाई देता है वैसे ही व्यास की बुद्धि में समाया हुआ होने से यह विश्व सजा हुआ है।

२११) अज्ञान यदि अपनी सत्ता से ज्ञानरूप आत्मा को पूर्ण अज्ञान नहीं बना सकता तो उसे अज्ञान कहते लज्जा आनी चाहिए। अज्ञान का यह स्वभाव प्रसिद्ध है कि जहाँ रहे वहाँ वह अपने आश्रय को ढाँक दे। पर आत्मा को वह नहीं ढाँक सकता इसलिए वह नहीं है, यह सिद्ध है।

२१२) मेरे मन। पाखंड़ छोड़ दे, छल-कपट त्याग दे और अपने हित में सच्ची बात सुन। अखण्ड ब्रह्म को पहचानने से ही तुझे अबाध तृप्ति प्राप्त होगी और तभी दृष्टि निर्मल हो जायेगी। सृष्टि में कर्त्ता, क्रिया और कर्म कुछ भी नहीं भायगा, सिवाय एक आत्मा के या ब्रह्म के। जिससे आत्मा का लाभ हो उसी सच्ची विद्या को तू जान ले, बाकी सारी ही करनी सच्ची है, मिथ्या है।

२१३) तूने ऐसी अतुलनीय और असंख्य और असीम रचना रची कि जब उसे देखने लगा तो तू अपने आपको भूल गया। मिथ्या को सत्य मान लिया, और सत्य को मिथ्या। देव को तूने देवालय मान लिया। यह सारी रचना स्वप्न-जैसी है, जाग जाने पर स्वप्न का सारा दृश्य विलुप्त हो जायेगा।

२१४) यह चंचल जीव स्थिर परमात्मा को अपने जीवन का आधार मान लेता है तो सब दु:ख और पीड़ा से बच जाता है। हर रूप में श्रद्धा और विश्वास के साथ भगवान को ही देखें तो जीवन अमृतमय हो जाता है।

२१५) ज्ञान समझना है तो गुरु से चमाट खानी होगी- जैसे राजा जनक को गुरु ने तीन चमाटें लागई थीं। राजा जनक ने अष्टावक्र को अपना गुरु स्वीकार किया था।

२१६) हर रूप में राम ही देखोगे तो दोषी कोई मिलेगा ही नहीं। हर रूप में भगवान को देखने से ही हम बुरे फलों से छुटकारा पा सकते हैं।

२१७) अहंकार रूपी हवा जो हमारे मस्तक में हैं, उसी के कारण हम संसार की थपेड़े खा रहे हैं और भटकते जा रहे हैं। अहंकार समाप्त तो सब शांत। युधिष्ठिर ने प्रभु की ओर देखा और चरणों में गिर पडा। वह समझ गया कि उसका अहंकार तोडने के लिए प्रभु ने लीला की है। अहंकार सब दु:खों की जड है।

२१८) भगवान के चरणों में ही रहो। भगवान के वचनों में श्रद्धा और प्रेम है, अक्ल खुद ही आ जाएगी। भगवान पास ही है; हम बाहर ढूँढ रहे हैं।

२१९) परमात्मा को इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। उसको केवल आत्म-ज्ञान द्वारा महसूस किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को आत्म-ज्ञान हो जाता है वह स्वयं ही स्वर्ग है और स्वयं ही नर्क है। वह स्वर्ग के आकर्षण और नर्क के भयों से ऊपरी उठ जाता है।

२२०) संदेह और भयवाली चीज को जिसने फेंक दिया, वह चाहे बाजार में रहे, चाहे उजाड़ के बीच। वह मौज में मस्त पड़ा है, या तो मौन है या फिर दिन-रात अपने आपसे बात करता हुआ घूमता है। पुत्र, स्त्री, धन और धाम ये चारों चीजें जिसने त्याग दीं, उसे अब किसका खटका, किसका भय ?

२२१) श्री वैष्णव के अशुभ जन्म, नीच जाति या निद्रा, आलस्य आदि दुर्गुणों को जानकर भी साधारण उसकी जनता में निन्दा न करे, प्रत्युत् उसके इन दुर्गुणों पर दृष्टि नहीं देकर, उसके गुणों का बखान करे। यही प्रभु को प्रिय है।

२२२) गंभीरता और बाल्यपन सरलता का आपस में योग करो। सबके साथ एक होकर रहो। अहंकार की समस्त भावना त्याग दो और किसी प्रकार की मतान्धता या साम्प्रदायिकता मत रखो। व्यर्थ की बकवास और लड़ाई- झगड़ा महापाप है। निराशा धर्म तो नहीं है और चाहे जो कुछ हो। सर्वदा प्रसन्न और हंसमुख रहना तुम्हें ईश्वर के अधिक निकट ले जाएगा।

२२३) जिसके हृदय में अथाह प्रेम है और जो सभी अवस्थाओं में अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार करता है, वही सच्चा ज्ञानी है और सच्चा भक्त वह है जो परमात्मा के साथ जीवात्मा की अभिन्न रूप से उपलब्धि कर यथार्थ ज्ञान सम्पन्न हो गया है, जो सबसे प्रेम करता है तथा जिसका हृदय सबके लिए रुढ़न करता है। ज्ञान और भक्ति में से किसी एक का पक्ष लेकर जो दूसरों की निंदा करता है वह न तो ज्ञानी है और न ही भक्त-वह तो ढोंगी और धूर्त है।

२२४) सच्चे साधक वही हैं जो सद्गुरुचरणों में समर्पित हैं, जो गुरुवचनों पर अपने आपको बेच चुके हैं, जो सद्गुरु के लिए अपना सर्वस्व दे चुके हैं।

२२५) जीते हुए ही जो शरीर को मुर्दे के समान समझता है वही मनुष्य जीवन्मुक्त है। अर्थात् जैसे प्राणविहीन होने पर शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वैसे ही प्राण रहते हुए भी जिसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं वही जीवन्मुक्त महाविदेही है।

२२६) सभी सम्प्रदायों के सन्त, महात्मा, ज्ञानियों का एक मात्र लक्ष्य आवागमन से मुक्ति पाना है परन्तु मुक्ति इतनी आसानी से नहीं मिलती। धन से वस्तुयें खरीदी जा सकती है, शान्ति नहीं। जब जीव को आवागमन से मुक्ति नहीं मिलती तब वह छटपटाता है। सद्गति प्राप्त होने पर मुक्ति सम्भव है। शान्त, निष्काम मन मुक्ति को उपलब्ध होता है।

२२७) हमारा अपना इष्ट है परमप्रेम। इसे छोड़कर जगत् में जो भी कुछ है वह सारा अनिष्ट है। जिसकी दृष्टि में परमप्रेम स्फूर्त हो गया वही पुरुष उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है और अत्यन्त भाग्यशाली है। यह अलौकिक रहस्य है, इससे बड़ा कोई दूसरा परम पुरुषार्थ नहीं।

२२८) तन से बढ़कर मन और मन से बढ़कर बुद्धि है जो मनुष्य को सम्पूर्णता प्रदान करती है। जल की शीतलता बर्तन की सुन्दरता पर निर्भर नहीं करती। उसी प्रकार बुद्धि भी शरीर की सुन्दरता पर निर्भर नहीं करती।

२२९) जिस व्यक्ति पर परमपिता भगवान विष्णु की कृपा दृष्टि हो जाये तो उसके लिये तीनो लोक भी अपने घर के समान है। जिस पर प्रभु का स्नेह रहता है उसके सभी कार्य स्वयं सिद्ध सम्पन्न हो जाते है। अत: लक्ष्मी जिसके लिये मातृ स्वरूप और ईश्वर के भक्त बन्धु बान्धव है उसके लिये तीनों लोक ही निवास स्थान हो जाते है।

२३०) मनुष्य का मन जितना संसार में प्रवृत्तिमार्ग में रमता है उतना निवृत्ति मार्ग में नहीं। निवृत्तिमार्ग पर चलने के लिये कठोर परिश्रम की अवाश्यकता होती है।

२३१) मनुष्य की कमजोरी यही है कि उसे खोल से लगाव है। संसार में जबतक मानव मृत्यु को प्राप्त नहीं होता वह अपने आप को इस खोल से छुडा नहीं पाता। इसलिए शरीर को ऐसा बनाओ जैसे इसकी कोई हस्ती नहीं है। जीवन मुक्त परमात्मा में निवास करता है और ऐसा महसूस करता है मानो उसका शरीर उत्पन्न ही नहीं हुआ हो।

२३२) ब्रह्मचर्य जीवन है जिसमे शक्ति का अद्भुत विकास होता है, शरीर तेजोमय शक्ति से स्वस्फूर्त रहता है तथा आत्मबल में बडे

वेग से वृद्धि हो जाती है। जीवन का ओज और जोश अपार हो उठता है।

२३३) बाह्य वस्तुओं से तुम क्यों व्यग्र रहते हो ? किसी अच्छे कार्य में मन लगाकर अपने दुख को भूलने का प्रयत्न करो। अपने आचरण को कर्तव्य धर्म से नियंत्रित करो। यही शांति का मार्ग है।

२३४) साधुता का अर्थ गूंगापन नहीं है। ईश्वरानुभूति का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। सद्गुणों के प्रत्यक्ष प्रकाश से अति तीक्ष्ण बुद्धि का विकास होता है।

२३५) खाना जब अपने प्रारब्ध से मिलता है, तो फिर क्यों किसीके आगे हम दीन बनें ? संसाररूपी सराय में रहकर क्यों चतुराई का दावा किया जाय ? जो किया है वही पाना है, भूलकर भी कभी बुरे काम का नाम नहीं लेना चाहिए। एक तिल भी अपने साथ जाने का नहीं, तब किसकी खातिर संग्रह किया जाय ? जितना जो बने वह दूसरों को देना और उतना पाकर संतुष्ट रहना जितना कि प्रारब्ध में लिखा है।

२३६) सिद्धियों के जो मनोरथ हैं वे सब केवल लोकरंजन के लिए हैं। उनमें कोई परमार्थ नहीं हैं। सब योगों का भाण्डार, वेदान्त का धाम और सिद्धियों का परम सार तो है भगवान् की आचारसंहिता भक्ति।

२३७) जो संतोष रूपी अमृत पीने से शांत और तृप्त हो जाते हैं, वे आत्मा में रमण करने वाले महात्मा ही परम पद को प्राप्त करते हैं।

२३८) छोड़ दे मेरी और तेरी की भेद भावना और फेंक दे पक्ष और अपक्ष को।

२३९) आत्मा की आवाज पर आचरण मनुष्य के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है, आत्मज्ञान अथवा आत्मा की पुकार पर किए गए आचरण पर (कर्म पर) यदि शरीर का अन्त होता है, तो वह दु:खदायी नहीं होता। परंतु जब मनुष्य आत्मा की आवाज को दबाकर पर-धर्म यानी मन-बुद्धि के संकेत पर आचरण करता है, तो वह अपयशकारी होने का कारण मृत्यु से अधिक दु:खदायी होता है क्योंकि मृत्यु एक बार ही होती है, किन्तु अपयश का लांछन जीवनपर्यन्त कचोटता रहता है।

२४०) इस संसार में जिन लोगों का मन समता-भाव में स्थिर हो जाता है, वे जीव जीवित संसार पर विजय प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि साम्य भाव में कोई किसी का शत्रु नहीं होता, अत: सारा संसार मित्र दृष्टिगत होता है। समता दोषहीन होती है, इसलिए ब्रह्म रूप होती है। ब्रह्म भी समता रूप है, अत: समता से युक्त लोग उस ब्रह्म में स्थित होते हैं, जो प्रकाश रूप है, ज्ञानमय है।

२४१) कर्म, गुणों के अभाव में मनुष्य उस वर्ण का नहीं रह जाता जिसमें वह उन कर्म-गुणों के कारण गिना जाता था, जो व्यवस्था ने निर्धारित कर रखे थे अथवा निर्धारित थे। यानी एक मनुष्य पढ़ता-लिखता था और अन्यों को भी पढ़ाता-लिखाता था, किन्तु कालान्तर में यदि वह उक्त कर्म को छोड़ देता है तो वह अध्यापक अथवा उपाध्याय नहीं रह जाता। यही बात परिकल्पित वर्ण-व्यवस्था पर लागू होती है तथा जन्म से सब समान हैं, अनन्तर ज्ञान, कार्य एवं व्यवहार से भिन्नता उत्पन्न होती है, जो शाश्वत नहीं। परिवर्तित होती रहती है।

२४२) निर्धारित समय पर भोजन करना तथा सैर को जाना और हर काम में अपनी रुचि को जोड़कर काम करना, निर्धारित समय पर सोना तथा जागना ही योग है। यानी अपने कामों से, अपनी चर्या से जुड़ने का नाम ही योग है। जो मनुष्य जीवन के कर्मों से जुड़ जाता है, योग (मेल) करता है, उसका वह योग जीवन में आने वाले सारे दु:खों का नाश कर देता है।

२४३) अहिंसा, प्राणिमात्र में दयाभाव, इसी प्रकार प्राणिमात्र के प्रति समता का भाव तथा स्वयं संतुष्ट होना, साधना-शक्ति का होना और दान देना यानी स्वार्थ भावना से रहित होकर दूसरों की सहायता करना, उन कार्यों को करना, जो मनुष्य को समाज में यशस्वी बनावें एवं अपयश से दूर रहना यानी उन कामों, तत्त्वों से दूर रहना, जो मनुष्य को अपयश का भागी बनाते हैं, आत्म-चेतना के ही गुण हैं।

२४४) दिन और रात घड़ियाल पुकार रही है कि तेरी आयु इतनी चली गई, इतनी चली गई और जा ही रही है। पर तू कुछ और ही समझ रहा है। चेतावनी की बात को सच नहीं मान रहा है। मति तेरी उल्टी हो गई है और तू देख नहीं रहा कि घड़ी-घड़ी करके तेरी सारी आयु घटती जा रही है।

२४५) योगी की योग साधना, तपी की तपस्या एवं ज्ञानी का ज्ञान भी तो कर्म का ही फल है। कर्म साधना का परिणाम है। सूर्य का उदय और अस्त होना, ऐसे ही वायु का बहना, जल का अग्रसर होना तथा अग्नि का प्रज्वलित रहना या होना, सृष्टि का निर्माण और अन्त-यह सब कर्म ही है, अकर्म नहीं। तो बिना कर्म के संसार चक्र अथवा जीवन-चक्र कैसे घूम सकता है, इसीलिए मीमांसा दर्शन

कर्म को ही जगत् का कारण और अन्त भी मानता है। यानी कर्म ही ब्रह्म है, अनन्त सत्तात्मक है। सब कुछ कर्म का चमत्कार है।

२४६) किसी को साथ नहीं रखना चाहिए, दूसरों की आशा छोड़ देनी चाहिए। भ्रांति का फंदा तोड़कर अकेला ही विचरा जाय। किसी में आसक्ति न रखकर चाहे जन के बीच रहा जाये चाहे निर्जन वन में। दिन और रात निरंतर आत्मा का चिन्तन किया जाय। जब आत्मा का रंग चढ़ गया, तब किसकी तो चाह और किसका संग ?

२४७) जो लोग अपने इष्टदेव को सारे प्राणियों में न देखकर केवल मूर्ति विशेष में उनके दर्शन करते हैं- उन्हें महामुनियों के दर्शन का अवसर नहीं मिलता।

२४८) केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते। पत्थर की प्रतिमाएं ही देवता नहीं होती। उनकी यदि बहुत समय तक सेवा की जाए, तब वे पवित्र होती हैं। वास्तव में सन्त पुरुष ही तीर्थ और देवता हैं। क्योंकि- वे दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं।

२४९) देवता उपासना करने पर भी पाप का पूरा-पूरा नाश नहीं कर सकते। उनकी उपासना से भेद-बुद्धि का नाश नहीं होता। परन्तु यदि घड़ी दो घड़ी भी ज्ञानी पुरुष की सेवा की जाए तो वे सारे पाप और भेद-बुद्धि को मिटा देते हैं।

२५०) देवता कर्म से ही प्रभावित होकर स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होते हैं। सूर्यदेव कर्म द्वारा ही दिन-रात का विभाजन करते हुए प्रतिदिन उदित हैं। चन्द्रमा धर्म के द्वारा ही मास, पक्ष तथा नक्षत्रों का योग प्राप्त करते हैं। इन्द्र, कुबेर, यम, आदित्य, वसुओं के बल से ही देवताओं ने ऊंची स्थिति प्राप्त की है।

२५१) गुरु की शरण मे किसी लौकिक फल प्राप्ति के लिये जाने की आवश्यकता नहीं है, केवल ज्ञान स्वरूप भक्ति की प्राप्ति के लिये ही गुरु वरण करने का विधान शास्त्रों ने किया है। गुरु का वरण औपचारिक नहीं कर गुरू के प्रति श्रद्धा रखते हुये अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य बनावे। भारतीय संस्कृति के अनुसार मनुष्य धर्म परायण होने पर जीवन के उत्कृष्ट तत्वों को प्राप्त करता है।

२५२) धार्मिक जीवन को अपना कर ही मनुष्य जीवन में सुख एवं शान्ति का अनुभव करता है क्योकि धार्मिक गुणों को धारण करके धर्मानुसार कार्य करके मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त होता है।

२५३) अज्ञान जैसा कोई दूसरा शत्रु नही है। अज्ञान को ज्ञान ही मिटा सकता है। अज्ञान ही मोह और स्वार्थ की जननी है अत: अज्ञानी ही दुष्ट या कायर होते है।

२५४) अज्ञानी होना मनुष्य का असाधारण अधिकार नहीं है बल्कि स्वयं को अज्ञानी जानना ही उसका विशेष अधिकार है। अनित्य, अशुचि, दु:ख और जड विषयों में नित्य, शुचि, सुख तथा आत्म स्वरूपता की प्रतीति ही अज्ञान है। सक्रिय अज्ञान से भयावह कुछ नही होता है।

२५५) परिपूर्ण ज्ञान हासिल करने पर मनुष्य को विनम्र होना चाहिये व अपने ज्ञान का सभी के लिये उपयोग करना चाहिये। विनम्र भाव का मन में निर्माण हुये बिना विद्या फलित नहीं होती। ज्ञान सम्पादित होने पर पात्रता और योग्यता हासिल होती है। जो मनुष्य ज्ञानी होगा वह कुछ क्षणों में अपने कर्म बन्धनों से मुक्त हो सकता है।

२५६) जिस दिन कोई सन्त अतिथि रूप में घर आता है उस दिन आतिथेय को उसके दर्शन से उतना पुण्य प्राप्त होता है, जितना करोडो तीर्थ करने से प्राप्त होता है। अतिथि जिसका अन्न खा लेता है उसके सब पाप धुल जाते है।

२५७) हमें ऐसी वस्तु अन्न के रूप में ग्रहण नहीं करनी चाहिये जो हमने अपने आये हुये अतिथि को भोजन के लिये अर्पण नहीं की हो। यदि घरों में अतिथि सत्कार न हो तो वे श्मशान स्थल मात्र रह जायेंगे।

२५८) जब जीव मनुष्य जन्म धारण करता है तब उसकी हर कृति से पाप व दु:ख भी साथ साथ जन्म लेते है। उससे कर्म बन्धन व अनन्त जन्मों का अटल है परन्तु एक धागा सुख का, सुनहरा है वह है आत्म साधना और आत्म चिन्तन। आत्मा के रंग मे रंगने से ही अक्षय आनन्द का जन्म होता है।

२५९) जो काम कल करना है, वह आज ही कर लिया जाय। अविद्या की गहरी निद्रा से तू अब शीघ्र जाग जा, और अपना काम पूरा कर डाल। मालूम नहीं, मनुष्य का यह उत्तम शरीर फिर कब मिलेगा। भ्रांति का जाल काटकर फेंक दे, और अपने आपको ब्रह्म-स्वरूप में देख, जो ब्रह्म काल का भी काल है।

२६०) सच्चे ज्ञानी के लिए सभी सांसारिक वस्तुएं एकसमान होती हैं। पत्थर, कोयला, रेत, लोहा और सोना, सबको वह तिनके के बराबर देखता है।

२६१) शांति का सीधा संबंध हमारे हृदय से है। सहृदय होकर शांति की खोज कीजिए। जीवन में अशांति तब पैदा होती है, जब हम उसे चुनौती की तरह लेते हैं। जीवन को सहजता से लीजिए। घटनाओं के प्रति सिर्फ दर्शक-भाव रखिए। मानसिक शांति का यह पहला पाठ है।

२६२) मूर्ख शिष्य को उपदेश देना, कर्म शास्त्र का लालन पालन करने से, और दुखियों से अपना व्यवहार बनाए रखने के कारण एक से एक क्लेश पंडित बुद्धिमानों को भी उठाना पड़ता है।

२६३) भगवान अनंत हैं, इसलिए उनका सब कुछ अनंत है। उनका प्रेम भी अनंत है, इसलिए प्रेम में अनंत रस है। अनंत रस का तात्पर्य है कि प्रेम प्रतिक्षण वर्द्धमान है।

२६४) ईश्वर सर्वशक्तिमान है। उसकी दया, उसकी अच्छाई तथा उसके न्याय का पार नहीं है। उसके अनुयायी नीति मार्ग का परित्याग कर ही नहीं सकते।

२६५) योगी तो अहंकार के कारण योग में डूब गये, और भोगी डूब मरे भोग में। स्वस्थ तो वह है, जिसने योग और भोग दोनों का बन्धन काट डाला है। किसीकी उसे चाह नहीं, मान-सम्मान का वह भूखा नहीं और सर्वथा अनासक्त है। भेद-भावना उसकी चली गई है, और एक आत्मा का ही रंग उसपर चढ़ गया है। बिना आत्मज्ञान के योगी और भोगी सभी रोगी ही हैं।

२६६) मनुष्य जब दुनिया के पदार्थों, धन, मान आदि का सहारा लेता है तो डूब जाता है। सत्संग की डोर पतली रस्सी जैसी है जो मनुष्य को भविष्य तक पहुंचा देती है।

२६७) जब-जब माया का डंक जिज्ञासु को असहनीय होता है तो वह संतों का संग करके फिर आता है और एक दिन संसार की पकड़ से मुक्त होकर परमानन्द में लीन हो जाता है।

२६८) संत क्षमाशील ही नहीं, दातार भी होते हैं। संत की दृष्टि में सदा भगवान बसते हैं। सबमें अपने आपको देखोगे तो जीवन आनन्दमय होगा।

२६९) किसी से तेरा वास्ता नहीं, और न था और न रहेगा। जिनके साथ तू प्रेम और मुहब्बत करता है, वे सभी सराय के मुसाफिर हैं। इस बात को तू गांठ में बांधले, इसी में तेरा फायदा है। किस्मत में जो लिखा होगा उतना ही तेरा है। जिस्मी यानी देही (आत्मा) का किसीसे कोई सरोकार नहीं।

२७०) जिस प्रकार गूंगा गुड खाकर उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष आत्मानुभव का वर्णन नहीं कर पाता।

२७१) मनुष्य अल्पायु है। संसार की सब वस्तुएं अंतत: निरर्थक और क्षणभंगुर हैं। इसलिए जीवन उन्हीं का धन्य है, जो दूसरों के लिए जीते हैं। शेष तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

२७२) जर (धन-दौलत), जोरू (स्त्री) और जमीन ये तीनों उपाधि की जड़ हैं। निरुपाधि वही है, जिसकी आसक्ति इन तीनों में नहीं। जिसके मन में कोई वासना नहीं, और जो भिक्षा पर गुजर करता है वह सबसे बड़ा सुखी है। एक आत्म-रस में ही वह सदा मगन रहता है। ऐसा संत इन तीनों उपाधियों को छोड़कर चाहे जहां निर्भय होकर विचरता है।

२७३) धन की दौड़ तो उस आदमी की है, जिसे भीतर बैठे परमात्मा का पता नहीं। जिसे भीतर बैठे परमात्मा का पता चल गया, वह तो धनी हो गया।

२७४) परिस्थिति हमें न रुलाय और न ही हमारे संबंधियों से इतने बंधे रहे कि हम उनका ही सोचते रहें। हमें अपने ढंग से जीना है। आखिर जीवन को हमें सफल करना है। दूसरे पर नजर टिकी हुई होगी तो हम सहज व सरल न हो सकेंगे।

२७५) जब मन मौन हो जाता है, तब हृदय का आनंद मुखरित होता है। शब्द हमें बाहर भटकाते हैं, मौन हमारा स्वयं से परिचय कराता है, अखंड से मिलन कराता है।

२७६) जब तक तुम मे दूसरों को व्यवस्था देने या दूसरों के अवगुणों को ढूंढने या दूसरों के दोष ही देखने की आदत है तब तक

तुम्हारे लिये ईश्वर का साक्षात्कार होना अत्यन्त दुर्लभ है।

२७७) भगवान ने भूख को ऐसा बनाया है कि इसके आगे किसी का भी गुमान नहीं रहता। इसे मिटाने को मनुष्य क्या-क्या नहीं करता, न देखता है उचित और न देखता है अनुचित। नहीं देखता कि क्या तो भक्ष्य है और क्या अभक्ष्य ? संसार में भूख के समान कोई दूसरा दु:ख नहीं और इसका राज तीनों लोकों में देखने में आता है।

२७८) मनुष्य जन्म से कोई यज्ञोपवीत धारण करके नही आता जो उसे ब्राह्मण समझा जाये। जो सत्कार्य करे वही द्विज है और जो कुकर्म करे वह नीच है।

२७९) अविद्या तभी दूर हो सकती है, जब श्रीराम की करुणा हो; कृपा हो और सद्गुरु का प्रताप हो और उसके बाद अपना स्वयं का पुरुषार्थ हो। इन तीनों के संयोग से अविद्यारूपी पाप का नाश हो सकता है। तब देह में, इन्द्रियों में, मन और प्रज्ञण में कोई रोग नहीं रहता। जन्म और मरण से छुटकारा मिल जाता है, और मनुष्य का जीवन कृत-कृत्य हो जाता है, और तब कुछ भी करने को शेष नहीं रह जाता।

२८०) तेरा ईश्वर तू ही है और तू ही तेरा शिव है, कोई दूसरा शिव नहीं। अपने महत्व को भूलकर अविद्या के कारण तू अपने को तुच्छ जीव मानने लगा। अपने ही हाथों तू अपना काम बिगाड़ बैठा। अब खुद ही अपने-आपको तू देख; कोई आधि-व्याधि नहीं रहेगी और तेरा सारा संदेहजनित दु:ख दूर हो जायेगा।

२८१) तुम्ही ईश्वर का मन्दिर हो और ईश्वर की आत्मा तुम में रहती है। सबकी आत्मा एक जैसी होती है। सबकी आत्मा की शक्ति समान है। कुछ लोगों में यह शक्ति प्रकट हो गई है और दूसरों में प्रगट होना बाकी है।

२८२) ईश्वर ही सर्वज्ञान सम्पन्न है, महान प्रेमी और संकल्प स्वरूप है। ईश्वर के अगणित नाम है क्योकि उसकी लीलाये अगणित है और कथाये अनन्त है।

२८३) इन तेरह जनों से कभी बैर नहीं बाँधना चाहिए- गुरु, विद्वान, कवि, संगी-साथी, पुत्र, पत्नी, द्वारपाल, यज्ञ करानेवाला पुरोहित, राज-मंत्री, ब्राह्मण, पड़ोसी, वैद्य और रसोई बनाने-वाला।

२८४) जब तक इच्छा का लेशमात्र भी विद्यमान है तब तक ईश्वर के दर्शन नहीं हो सकते। अतएव अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं और सम्यक विचार एवं विवेक द्वारा बडी-बडी इच्छाओं का त्याग कर दो।

२८५) जिसने धन और धरती छीन ली, उसे कभी साथ में नहीं रखना चाहिए। यदि साथ रखना ही है, तो उसे अपंग अर्थात् अशक्त कर दिया जाय, और भूलकर भी उसका विश्वास न किया जाय। भले ही वह सौ-सौ सौगन्ध खाये, पर उसकी एक भी बात न मानी जाये। जिसने धन और धरती छीन ली उसे शत्रु की तरह त्याग देना चाहिए।

२८६) एक सत्पात्री को दिया दान हजार लोगों को दिये जाने वाले दान से अधिक श्रेष्ठ है। लाखो लोगों के बजाय सन्त महात्माओं को दिया जाने वाला दान श्रेष्ठ है। दान देने वाले का स्वार्थ, अहंकार या नाम पाने की अपेक्षा आदि का त्याग करके नम्रता से झुक कर दान देना श्रेयस्कर है। एक हाथ से दिया दान दूसरे हाथ को भी पता नहीं चलना चाहिये।

२८७) आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते है। उत्पन्न होने पर आनन्द से ही जीवित रहते है और मृत्यु से आनन्द में ही समा जाते है।

२८८) मीठी बातें बना-बनाकर पैसा लेते हुए बड़ा सुख मिलता है। पर चुकाने के लिए कहा जाये, तो साफ मुकर जाता है और गाली-गलौज पर उतर आता है। मांगते ही मारने को दौड़ता है। रूठा हुआ रहता है, और जब बहुत दिन बीत जाते हैं, तो कहता है कि तेरा कागज, तेरा बहीखाता झूठा है। ऐसे व्यक्ति निकृष्ट होते है।

२८९) सभी वस्तुये उसी ईश्वर के आलोक से प्रकाशित अथवा आलोकित होती है। सारा संसार निश्चित रूप से ब्रह्म से व्याप्त है। यह सब निश्चय रूप से ब्रह्म है। मै ही ब्रह्म हूं ऐसा ही है।

२९०) ॐ एकाक्षर ब्रह्म है। ॐ समग्र विश्व को ढके हुये है। सारे संसार का एक भी पदार्थ ऐसा नही है जो ॐ से बाहर हो। ॐ की ध्वनि उस सुन्दर वृक्ष के समान है जो प्रचण्ड सूर्य के ताप से झुलसते हुये भी मनुष्य को शीतल छाया प्रदान करता है।

२९१) पति सोने का व्यापार परदेश करने क्या गये, सारा घर ही सूना हो गया। न सोना मिला और न प्रियतम ही लौटकर मिला। राह

जोहते-जोहते केश सफेद हो गये, जीवन का रंग चला गया और रूप भी। बिना प्रियतम के सूनी सेज पर सुख और चैन कभी नहीं मिला। जीवन अलोना हो गया, इसलिए मेरे स्वामी घर लौट आओ। सोना लादकर क्या करोगे ?

२९२) गुण के ग्राहक हजारों हैं, बिना गुण के कोई नहीं पूछता। कौवा और कोयल दोनों का रंग एक-सा है, पर कोयल का बोल जहां सब को सुहाता है, तहां कौवे का कांव-कांव कान को गंदा लगता है।

२९३) ब्रह्म निराकार, निराधार और निर्विकल्प है। वह निरामय, निराभास्, निरवयव, निरुपाधि, निरंजन, निरन्तर और निर्गुण है। वह अरूप, अलक्ष, अनन्त, अद्वैत, अदृश्य, अछेद्य और अदाह्य् है।

२९४) उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता ये आक्रान्त नही करते, ये अवगुण त्याग देने योग्य ही है।

२९५) अग्नि भोजन को पचाती है और उपवास दोषों को पचाता है अर्थात नष्ट करता है। उपवास शुद्धि का एक जबरदस्त साधन है और मानव समाज मे उपवास के लिये विशिष्ट स्थान अवश्य होना चाहिये। शारीरिक उपवास के साथ-साथ यदि मन का उपवास न किया गया हो तो वह दम्भपूर्ण और हानिकारक होता है।

२९६) झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि दुराचारी प्रवृत्तियों के नष्ट हुये बिना चित्त का एकाग्र होना बठिन है और चित्त एकाग्र हुये बिना ध्यान और समाधि भी कठिन है।

२९७) जो व्यक्ति इच्छाओं से मुक्त है वह सदैव स्वतन्त्र रहेगा। पूर्ण सत्य की प्राप्ति के लिये तुम्हे सांसारिक इच्छाओं से छुटकारा पाना होगा।

२९८) उपकारी शत्रु से मेल करना चाहिये, अपकारी मित्र से नहीं क्योकि जो उपकार करे वह मित्र और जो अपकार करे वह शत्रु होता है।

२९९) हम भगवान को अपने अंदर बैठने का न्योता देंगे तो वे खुद ही हमारे अंत:करण की सफाई और सजावट कर देंगे। भगवान सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ है, हमारे अंग संग हैं। असल में बंधन है नहीं, सब हमारे मन के बनाये हुए हैं।

३००) कष्ट पाने वाले की अपेक्षा कष्ट देने वाले को अधिक दु:ख सहना पडता है। कष्ट आने से पहले ही मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है। एक कष्ट के बाद दूसरे कष्ट आने लगते है और समृद्धि के बाद समृद्धि। ईश्वर जिसे प्यार करता है उसे कष्टों से रगड कर साफ करता है तब ही उसे समृद्धि प्राप्त होती है।

३०१) मित्र से वियोग कभी न कराना प्रभो। मित्र के गुण जब चित्त पर चढ़ जाते हैं, तब याद कर-कर आसुंओं की धार रुकती नहीं, लगता है जैसे सावन मास के मेघ ने झड़ी लगादी हो। हे दयालु स्वामी। मित्र से वियोग कभी न कराना।

३०२) मनुष्य को स्वयं के सत्कर्मों से ही सद्गति प्राप्त हो सकती है। मनुष्य चाहे अपने कर्तव्यों से चूक जाये पर ईश्वर कभी नही चूक सकता।

३०३) भगवान ने संसार को कर्म प्रधान बना रखा है। इसमे जो मनुष्य जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। कर्म करते करते इस संसार में सौ वर्ष जीने की इच्छा करो।

३०४) चित्त जिस रूप की कल्पना करता है वह वैसा ही हो जाता है। आज जैसा वह है, वैसी ही उसने कल्पना की थी। अपवित्र कल्पना भी उतनी ही बुरी होती है, जितना बुरा अपवित्र कर्म होता है।

३०५) काम से जो मनुष्य पीडित है वह जड और चेतन में भेद नहीं कर सकता। काम, क्रोध, लोभ और मद यह सब शक्तिशाली मोह की धार है उसमे माया रूपी काम देव सबसे अधिक दु:खदायी है। काम, क्रोध और लोभ तीनों भी अत्यन्त शक्तिशाली दुष्ट है। ये मुनियों के मन में भी क्षण भर में क्षोभ पैदा कर देते है।

३०६) लीलापूर्वक शत्रुओं के ऊंचे मस्तक पर पैर रखे बिना ही निरावलम्ब कीर्ति किस प्रकार स्वर्ग तक चढ़ सकती है ? कीर्ति जीवन सरिता का झाग है। सर्वोत्तम कीर्ति प्रतिद्वन्दी द्वारा की गई प्रशंसा है।

३०७) दुनिया में सारा व्यवहार मतलब का है। मित्र तभी तक साथ देता है और पीछे-पीछे घूमता है, जबतक उसका मतलब सधता है। पैसा पास में न रहने पर वह मुंह भी नहीं बोलता। दुनिया का यही नियम है। नि:स्वार्थ प्रीति करनेवाला तो कोई बिरला ही देखा गया।

३०८) हीरा बार-बार अपनी खान की याद करता है। खान से निकलकर वह ऐसी जगह बिक गया, जहां उसके जौहर को और मोल को कोई जानता नहीं। छेद करके कमर में उसे बांध लिया, यह दशा हुई बेचारे की। जैसे किसी फूहड़ स्त्री ने बिना हलदी और नमक के मांस को रांध लिया। हीरा बेचारा कहां तक धीरज धरै ? वह रो पड़ा देखकर कि उसके गुण और उसके मोल की, हाय, यह कैसी कम कदर हुई।

३०९) हंस कहता है, अब यहां रहना नहीं चाहिए, सरोवर सूख गया है; हो सकता है कि कल के दिन कोई बगुला हमारी पीठ पर बैठ जाय। यहां अब मान-सम्मान होनेवाला नहीं। दुनिया हँसेगी और मन में पछतावा ही रहेगा। दिन-पर-दिन निराशा ही बढ़ेगी। यह थोड़ा सा जो पानी रह गया है, वह भी सूख जायेगा। तब हंस का होगा क्या ?

३१०) प्रीति बड़ों से ही जोड़ी जाय, समय आने पर वे पार लगा देंगे। कायर, मूर्ख और कुपूत तो मझधार में डुबो देते हैं, उनकी प्रीति का मोल क्या ? पछताना हाथ लगता है, और दुनिया में बदनामी होती है। सिखावन सच्ची प्रीति से ली जाय; जो दिल का बड़ा हो उसे तन-मन और धन भी दे देना चाहिए।

३११) चारों युग इस बात की साक्षी देते हैं कि पुत्र प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है। राजा दशरथ ने पुत्र का भी परित्याग कर दिया, पर अपने दिये हुए वचन को रखा। यही तो बड़ों की बड़ाई है। चाहे सर्वस्व चला जाये, पर अपना वचन रखा जाय। राजा दशरथ ने यही तो किया। प्राणों से प्यारे पुत्र का त्याग कर दिया, पुत्र के वियोग में अपने प्राण भी त्याग दिये, तब भी दिया हुआ वचन नहीं छोड़ा।

३१२) वे मनुष्य अज्ञानी है जो गुरु को ईश्वर से भिन्न समझते है। यदि ईश्वर हमसे रूठ जाये तो हमे गुरु का आश्रय मिल सकता है परन्तु गुरु के रूठने पर हमें कही आश्रय नहीं मिल सकता।

३१३) बेटा और बाप के बीच में अनबन होने से निश्चय ही नुकसान होता है। उदाहरण है हिरण्यकश्यप और कंस का। दोनों को अपने-अपने राज्य से हाथ धोने पड़े। दुश्मनों की बन आई और जग हँसाई हुई। यह बात कुछ नई नहीं है, युग-युग से चली आई है कि पिता और पुत्र के बीच वैर होने से किसे लाभ हुआ ?

३१४) शरीर से पुष्ट दीखने से ही कोई व्यक्ति बलिष्ठ नहीं हो जाता। शक्तिवान वे है जिनमें मनोबल की अभीष्ट मात्रा मौजूद है। दुर्बल काया लेकर कार्यक्षेत्र में उतरे ऐसे महापुरुषों की संख्या अगणित है। जिन्होंने अपने मनोबल के कारण अपने को ऊँचा उठाया और आगणित लोगों के भविष्य का निर्माण किया।

३१५) मनुष्य की जड़े उसकी मनोवृत्तियां है। हिम्मत, निवन, लगन श्रमशीलता, स्फूर्ति ऐसी अन्तर्प्रकृतियों को जड़ों की संज्ञा दी जा सकती है। वे मजबूत होगी तो जीवन संग्राम में आए दिन आते रहने वाले तूफानों का आसानी से सामना किया जा सकता है। यदि विपरीत परिस्थितियों ने कुछ अवरोध या व्यवधान उपस्थित किए तो उस आगत विपत्ति को भी सहन किया जा सकता है।

३१६) अच्छा किया जाए तो पदार्थ अच्छा सिद्ध होगा बुरा किया जाए तो बुरा सिद्ध होगा। अच्छा उपयोग करने यानि उचित युक्ति और अनुकूल मात्रा में सेवन करने पर जहर भी औषधि का काम करता है और गलत ढंग से उपयोग करने पर भोजन भी जहर बन जाता है।

३१७) मौन का अर्थ कर्म का अभाव, जड़, अकर्मण्यता, आलस भाव नहीं है। वह विचार या वितर्क से खाली रहना नहीं है। वह विधेयात्मक भाव पदार्थ है। वह परा शांति है।

३१८) संग को हमेशा त्यागने का प्रयास करो। बुरे आदमी का संग मिले, ऐसा कभी प्रयास मत करो। संग करना है तो विद्वानों का करना, संतों का करना। संतसंग ही भवगसार से पार उतारने की एक नौका है, एक औषधि है।

३१९) उस प्रभु की हम पर असीम कृपा है वह जीवन देता है तभी तो हम जीवित रहते है। प्रभु जिस स्थिति में भी रखे उसी में सन्तोष मानोगे तो सुखी रह सकोगे। जो ईश्वर के उपकार को भूल जाता है, वह कभी भी सुखी नहीं हो सकता।

३२०) बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता। गुरुदेव कृपा के सागर है, मनुष्य के रूप मे भगवान है और माया मोह के घोर अन्धकार को नाश करने के लिये जिनके वचन सूर्य की किरणों के समूह के समान है, उन गुरुदेव के चरण कमलों की वन्दना करनी चाहिये।

३२१) क्या जमाना आया है कि घोड़ों के होते हुए गधे राज कर रहे हैं। कौए को पाल लिया और बाज को निकाल बाहर कर दिया गया।

३२३) परमात्मा मेरे हृदय में हैं, तो आपके हृदय में भी हैं। पर ना आपको दीखता है, ना मेरे को दीखता है, क्योंकि परमात्मा के और मेरे बीच में एक काला पर्दा पड़ा है अज्ञान का। ये काला परदा निकले तो परमात्मा दीखे।

३२४) सिंह को कैद कर लिया और सियार को हाथी पर सवार करा दिया गया। जहां ऐसी उलटी समझ हो यानी अन्धेर हो, वहां से सांझ पड़ते ही चल देना चाहिए। रातभर भला वहां कौन ठहरेगा।

३२५) ईश्वर ने आदमी को मेहनत करके खाने के लिये बनाया है और कहा है कि जो मेहनत किये बगैर खाते है वे तो चोर है। चोरी का धन कच्चे पारे को खाने के समान है। जैसे कच्चा पारा शरीर से फूट निकलता है वैसे ही चोरी का धन है।

३२६) ब्रह्म सत्य है और यह जगत सर्वथा मिथ्या है। यह केवल स्वप्न मात्र है, केवल मरीचिका है। सृष्टि की रचना करके ईश्वर स्वयं अपने को प्रकट करता है। जगत के बिना ईश ईश नही है, सृष्टि नहीं है तो ईश नहीं है।

३२७) जीव ब्रह्म ही है, ब्रह्म से पृथक नहीं है। जीव ईश्वर का अनश्वर अंश है। वह स्वाभाविक रूप से चेतन, निर्मल और सुख राशि है। किस पर दया की जाय और किसके साथ निर्दय बना जाय क्योकि चींटी और हाथी सभी तो उसी के ईश्वर के जीव है।

३२८) डर सदैव अज्ञान से पैदा होता है। डर हमें मानव प्रकृति का अनुभव कराता है। डर की स्थिति आने पर मनुष्य को उसका मुकाबला करने के लिये उचित प्रयास करने चाहिये।

३२९) मन्दोदरी रावण से कहती है, स्वामी, लंका का राज तो वैसे ही चला गया जैसे वसन्त ऋतु में पेड़ से पत्ते झड़ जाते हैं। नेक सलाह देनेवाले विभीषण को तुमने लात मारी थी। वह वहाँ से भागकर राम की सेना में जा मिला और उसे उसी क्षण लंका का राजा बना दिया गया।

३३०) एक बार जीव का मन निर्गुण ब्रह्म में लग जाये, तो भटकाव खत्म हो जाता है। इसलिये मन को ब्रह्ममय बनाओ, मन को ब्रह्म में लगाओ। यही जीवन का सार है।

३३१) जो मनुष्य पहले से बिना विचार किये कोई काम कर बैठता है, उसे बाद में पछताना पड़ता है। अपना काम बिगाड़ लेता है और दुनिया उसपर हंसती है। चित्त बेचैन रहता है, खाना-पीना सुहाता नहीं, और राग-रंग में लगाने पर भी मन नहीं लगता। बिना विचारे किये काम का दु:ख मनमें सदा सालता रहता है।

३३२) कर्म से केवल मन की शुद्धि ही होती है। तत्त्व वस्तु प्राप्त नही होती, उसके लिये प्रमुख साधन है ध्यान। ईश्वरी दैवी सत्ता है जिसमें सत्य, स्नेह और पूर्णता तथा ज्ञान, सौन्दर्य और शक्ति के तीन गुण विद्यमान है।

३३३) अपनी शक्ति योग्यता या समृद्धि को बढ़ाने के लिये जो कष्ट किये जाते है वे तप कहलाते है। ज्ञान और तप दोनो मिल कर व्यक्तित्व की श्रेष्ठ पूंजी बनते है। ज्ञान प्राप्ति के लिये भी तप की आवश्यकता है। तप के लिये कुछ भी असाध्य नही है।

३३४) जिसने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लिया उस पर काम और लोभ का विष नहीं चढ़ता। जो ज्ञान मन को शुद्ध करता है, वही ज्ञान है, शेष सब अज्ञान है।

३३५) तप के बल से ब्रह्मा सृष्टि करते है, तपोबल से विष्णु रक्षा करते है और तपोबल से ही शंकर संहार करते है। तप से संसार मे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। देवताओं और मनुष्यों के सभी सुखों का मूल तप है।

३३६) दंड सम्पूर्ण जगत को नियम के अन्दर रखने वाला है, यह धर्म की सनातन आत्मा है। इसका उद्देश्य प्रजा को उद्दंडता से बचाना है। यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान खो बैठे और कुकर्म पर चलने लगे तो उसे भी दंड देना आवश्यक हो जाता है।

३३७) जो बीत चुका उसे भूल जाओ और आगे जो काम करना है उसका ध्यान रखो। सहज-सहज जो बन पड़े, उसी में अपना चित्त लगादो। इससे तुम्हारे विरोधी तुम पर हसेंगे नहीं और तुम्हारी कुछ हानि होने की नहीं। भरोसा रखो कि जो होना था वह तो हो चुका, अब आगे का ध्यान रखना है।

३३८) ज्ञान की बाते सुनकर जो उन पर अमल करता है, उसी के हृदय में ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है। यदि उद्देश्य शुभ न हो तो ज्ञान पाप हो जाता है। ज्ञान सीखने से नहीं प्राप्त होता है। वह तो मनुष्य के लिये ईश्वरीय देन है।

३३९) जिस तरह जल आदि शोधक द्रव्य से मैला वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है, उसी तरह आध्यात्मिक तप साधन द्वारा आत्मा अज्ञानावरण आदि अष्टविध कर्म के मल से मुक्त हो जाती है।

३४०) हे प्रभो उस जगत को मिथ्या कैसे कह सकते है जहां आपका गुणगान करके तर जाते है। इस असार संसार से विरक्त होकर राम के चरणों की और उन्मुख रहो। हृदय से विचार कर देखो यही बुद्धिमानों का विचार है। इस जगत की तुलना एक कडुवे वृक्ष के समान है जिस पर अमृत समान दो फल लगते है मधुर वचन और सज्जन पुरुषों की संगति।

३४१) अपने मन की बात भूलकर भी नहीं कहनी चाहिए। जब तक काम पूरा न हो जाय, तब तक उसे मन में ही रखना चाहिए। विरोधी भले ही हँसी उड़ायें, अपने को तो शांत ही रहना चाहिए। बखान करना बेकार है, तुम्हारी करनी तो खुद ही बता देगी। चतुर जनों का यही स्वभाव है।

३४२) समय नहीं चूकना चाहिए। अतिथि का यथाशक्ति सम्मान करना ही है। कौन जानता है कि तेरे द्वार पर कौन कब आ जायेगा। अतिथि के आने की तिथि क्या ? किसी भी समय वह आ सकता है। दिल खोलकर उसे तू हृदय से लगा ले, और उस घड़ी ठंडा पानी और फल-फूल जो भी तेरे पास हो, उससे उसका सम्मान कर।

३४३) यदि किसी आदमी का काल न आया हो तो सैकडो बाणों से बिंधने से भी वह हताहत नहीं होता। किन्तु यदि उसका काल आ गया तो कुशा की नोक के स्पर्श मात्र से भी वह मर जाता है।

३४४) दीन व्यक्ति सबकी ओर अपेक्षा भरी दृष्टि से देखता है लेकिन उसकी ओर कोई नहीं देखता। जो दीनों की ओर देखता है वह दीन बन्धु के समान होता है।

३४५) अनिष्ट वस्तु से प्राप्त होने और इष्ट वस्तु के वियोग से अल्प बुद्धि वाले मनुष्य मानसिक दु:खों से जलने लगते है। दु:ख रहता है तो दुखियों के प्रति सहानुभूति रहती है और भगवान का निरन्तर स्मरण होता है।

३४६) जब कोई व्यक्ति अहिंसा की कसौटी पर पूरा उतर जाता है तो दूसरा व्यक्ति स्वयं ही उसके पास आकर बैर भाव भूल जाता है। अपने शरीर से किसी को पीडित मत करो। अहिंसा वास्तविक शक्ति का प्रतीक है, किसी भी प्रकार से कष्ट न पहुंचाना ही अहिंसा है।

३४७) प्राणी कर्म का त्याग नहीं कर सकता, कर्म फल का त्याग ही त्याग है। जिसने इच्छा का त्याग कर दिया उसे घर छोडने की आवश्यकता नहीं है और जो इच्छाओं से बन्धा है उसको बन में रहने से कोई लाभ नही। सच्चा त्यागी जहा रहे वही वन और वन कन्दरा घर है।

३४८) यदि मनुष्य पाप कर भी ले तो उसे पुन: न दोहराये, न ही उसे छिपाये और न ही उसमे रत व रमण हो। पाप का संचय ही सब दु:खों का मूल है। मन ज्यों ज्यों हिंसा से दूर हटता है त्यों त्यों दु:ख शान्त हो जाता है।

३४९) जो प्रसन्न और शुद्ध मन से ब्रह्म ज्ञान रूपी जल के द्वारा मानस तीर्थ मे स्नान करता है, वह स्नान ही तत्त्वदर्शी ज्ञान का स्नान माना गया है। जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है।

३५०) दूसरों का जो आचरण तुम्हे पसन्द नहीं, दूसरों के प्रति भी वैसा आचरण कभी मत करो। जो सबके लिये हितकर हो और अपने लिये भी सुखकर हो उसी का नित्य आचरण करो। यही स्वार्थसिद्धि का मूल मन्त्र है।

३५१) माता-पिता और गुरु ये सब प्रत्यक्ष देवता है। इनकी अवहेलना करके अप्रत्यक्ष देवता की विविध उपचारों से आराधना करना निष्फल ही होती है।

३५०) यथार्थ मुक्ति का कारण यथार्थ ज्ञान ही है। हम सब ज्ञान से युक्त हो, ज्ञान के साथ हमारा कभी वियोग न हो। ईश्वर का भय ही ज्ञान का प्रथम चरण है। अतीव ज्ञान भी दु:ख का मूल ही है। बहुत सी वस्तुओं का अपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा अज्ञानता में विचरना ही श्रेयस्कर है।

३५३) आत्मा एक चेतन तत्व है जो अपने रहने के लिये उपयुक्त शरीर का आश्रय ग्रहण कर लेती है और एक शरीर से दूसरे शरीर मे जाती है। भौतिक शरीर आत्मा को धारण करने के लिये विवश होता है।

३५४) इस देह का गर्व कभी न करना यह मिट्टी में मिल जाने वाली है। देह धरने का दंड सबको मिलता है। ज्ञानी उसे ज्ञानपूर्वक सहते है और मूर्ख रोकर सहन करते है। देह एक रथ है, इन्द्रियां उसके घोडे, बुद्धि सारथी और मन लगाम है। केवल देह पोषण करना आत्मघात करने के समान है।

३५५) वाह। यह खूब रहा, चले जा रहे हैं साथ में तमाखू लेकर, हुक्का बांध लिया है फेंट में और नैचा को ले रखा है हाथ में। किस काम को जा रहे हैं, राह चलते भूल गये। लेकिन जब आग को देखा, चिलम सुलगाने के लिए तब चिन्ता सारी काफूर हो गई और मन मौज से भर गया। इतने में यमराज का बुलावा आ पहुंचा, और हुक्का वैसा ही हाथ में रह गया।

३५६) आसक्ति हमारे चित्त को विषय में आबद्ध करती है। आसक्ति ही मनुष्य को नीच और दुर्बल बनाने वाली है। यदि आपने आसक्ति का राक्षस नष्ट कर दिया तो इच्छित वस्तुयें आपकी पूजा करने लगेगी।

३५७) सयानापन इसी में है कि नाव में जब पानी भर गया हो और घर में दौलत बढ़ गई हो, तो पानी को हाथ से उलीच देना चाहिए और दौलत को बांट देना चाहिए, नहीं तो, नाव डूब जायेगी और दौलत भी नहीं बचेगी। ऐसी घड़ी में राम को याद किया जाये और दूसरों की खातिर अपना सिर भी आगे रख दिया जाये। बड़ों के स्वभाव में यही बात होती है कि चाल नेक चली जाये और अपनी लाज को बचा लिया जाये।

३५८) अत्यन्त क्षुद्र व्यक्तियों का घमंड अत्यन्त महान होता है। दम्भ का अन्त सदैव नाश होता है और घमंडी आत्मा सदैव पतित होती है। पार्थिव घमंड उस नाशवान पुष्प के समान है जो झड जाने के लिये उत्पन्न हुआ और जो मुरझाने के लिये पुष्पित हुआ है।

३५९) जिस समय क्रोध उत्पन्न होनेवाला हो उस समय उसके परिणामों पर विचार करो। सज्जन पुरुषों का क्रोध जल पर खींची हुई रेखा के समान होता है जो शीघ्र ही विलुप्त हो जाती है।

३६०) राज-दरबार में समय देखकर जाना चाहिए, और उस जगह नहीं बैठना चाहिए, जहां से कोई उठा न दे। बिना पूछे मुंह से बोल नहीं निकालना चाहिए और ठहाका मारकर हंसना नहीं चाहिए। समय के अनुसार अपना काम साधना चाहिए। जल्दबाजी न की जाये, नहीं तो राजा नाराज हो जायेगा।

३६१) जो स्थिति दीपक की है वही कुपुत्र की होती है। दीपक जलाने से चारों तरफ उजाला हो जाता है और बुझाने से अन्धेरा हो जाता है। इसी प्रकार कुपुत्र, बाल्य अवस्था में तो बडा अच्छा होनहार लगता है लेकिन बडा होने पर दुष्ट और कुल कलंक बन जाता है।

३६२) जिस व्यक्ति से द्वेष हो जाता है वह न साधु जान पडता है, न विद्वान और न बुद्धिमान। जिससे प्रेम होता है, उसके सभी काम शुभ और शत्रु के सभी काम अशुभ प्रतीत होते है।

३६३) अहिंसा, सत्य, अचौर्य, पवित्रता और इन्द्रिय निग्रह धर्म का यह स्वरूप चारों वर्णों के लिये है। ये सब लोगों के लिये धर्म के साधन है। धर्म अन्त: प्रकृति है वह सारी वस्तुओं का ध्रुव सत्य है। धर्म ही वह चरम लक्ष्य है जो हमारे अन्दर काम करता है। प्रत्येक धर्म उतना ही सत्य है जितने दूसरे धर्म।

३६४) नरक में रहना अच्छा है परन्तु किसी दुश्चरित्रों के घर में रहना अच्छा नहीं है। नरक भोग से पापों का नाश होता है परन्तु दुश्चरित्र के घर मे रहने से पाप और बढ़ता है।

३६५) अपना नाम सदा कायम रखने के लिये मनुष्य बडे से बडा जोखिम उठाने, धन खर्च करने, हर तरह के कष्ट सहने यहां तक कि मरने के लिये भी तैयार हो जाता है।

३६६) जो चीज विकार को मिटा सके, राग द्वेष को कम कर सके, जिस चीज के उपयोग से मन सूली पर चढ़ते समय भी सत्य पर डटा रहे, यही सच्चे धर्म की शिक्षा है। धर्म वस्तुत: एक ही लक्ष्य की ओर जानेवाले विभिन्न मार्ग है। जब हम एक ही लक्ष्य पर पहुंचना चाहते है तो किसी भी मार्ग से जाने में क्या अन्तर पडता है।

३६७) कितना ही उपकार किया जाय, पर एहसान फरामोश राजी होने का नहीं। अपना सरबस आगे रख दिया जाय, तब भी वह अपना होने से रहा। भलाई को वह भला नहीं मानेगा। मतलब निकल जाने पर वह पहचानेगा भी नहीं। कृतघ्न को कोई डर नहीं। उसे परवाह नहीं कि कौन मित्र है और कौन शत्रु है, वह तो सिर्फ पैसे का लालची है।

३६८) नास्तिक पुरुष जोर जोर से चिल्लाकर कहते है कि ज्ञान और तर्क द्वारा प्रभु की विद्यमानता सिद्ध नहीं की जा सकती। विद्वान उनकी इस बात को मानते है कि केवल तर्क द्वारा संसार मे प्रभु का अस्तित्व सिद्ध नही किया जा सकता।

३६९) क्या तुम अपने बन्धुओं से प्रेम करते हो ? भगवान् को खोजने तुम कहां जाओगे ? - क्या ये गरीब, दु:खी और दुर्बल, भगवान्

नहीं हैं ? पहले उन्हीं की पूजा क्यों नहीं करते ? गंगातीर पर कुआं खोदने क्यों जाते हो ? प्रेम की सर्वशक्तिमत्ता में विश्वास रखो। इस सब नाम-यश की कौन परवाह करता है ? क्या तुममें प्रेम है ? - यदि है, तो तुम सर्वशक्तिमान हो। क्या तुम पूर्णत: नि:स्वार्थ हो ?- यदि हां, तो तुम अजेय हो। चरित्र ही सर्वत्र फलदायक है। यह ईर्ष्या और छल-कपट छोड़ दो। दूसरों के लिए संगठित होकर कार्य करना सीखो। यही हमारे देश की एक बड़ी आवश्यकता है।

३७०) नरक परवशता है। संसार मे प्रवंचना और हत्याओं को देखकर कभी कभी मान ही लेना पडता है कि यह जगत ही नरक है। काम, क्रोध, मद, लोभ यह सब के सब नरक के द्वार है।

३७१) निद्रा एक ऐसा अथाह सागर है कि जिसमें हम सब अपने दु:खों को डुबो देते है। निद्रावस्था जाग्रत अवस्था की स्थिति का आईना है। अर्ध्द रात्रि के पहले की एक घंटे की नींद उसके बाद के तीन घंटों की निद्रा के समान है।

३७२) अमीर और गरीब का फर्क इतना नगण्य है। एक ही दिन की भूख और एक ही घंटे की प्यास दोनों को समान बना देती है। आत्मा को किसी भी आवश्यक वस्तु को खरीदने के लिये धन की आवश्यकता नहीं होती है।

३७३) धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है, धर्म का रस सब रसों से बढ़कर है। एक श्रेष्ठ जीवन ही एकमात्र धर्म है। विश्वव्यापी धर्म तो एक ही है यद्यपि उसके सैकडो रूपान्तर है। सच्चा धर्म हमे आश्रितों का सम्मान करना सिखाता है और मानवता, निर्धनता, मुसीबत, पीडा एवं मृत्यु को ईश्वरीय देन मानता है।

३७४) भले ही धूप में लेटे रहो और सो जाओ, किसी तरह कष्ट में समय काट लो, पर जो कमजोर पेड़ हो, उसकी छांह तले न बैठो। किसी-न-किसी दिन वह धोखा देगा; तेज हवा चलने पर वह टूट कर गिर जायेगा। सो छाया तो बड़े की ही अच्छी, पत्ते झड़ जाने पर भी पेड़ तो रहेगा ही।

३७५) परमात्मा सर्वगुण सम्पन्न, सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता है। जिसे परम पिता परमात्मा की कृपा दृष्टि का लाभ मिला है, उनके लिये तीनो लोक अपने घर के समान है।

३७६) पवित्र वे नही है जो अपने शरीर को धोकर बैठ जाते है बल्कि पवित्र वे है जिनके अन्त:करण मे वह ईश्वर रहता है। जहां पवित्रता है वही निर्भयता हो सकती है। सरिता अपने उद्‌गम स्थान पर हमेशा अधिक पवित्र होती है।

३७७) हे देवी वसुधा, तुम ऐसे ऐसे दुष्ट धोखेबाज व्यक्तियों का भार कैसे सहन कर पाती हो जो भला करने वाले श्रेष्ठ व्यक्तियों से भी धोखा करते है।

३७८) बड़ों को योंही (मुफ्त में) बड़ाई मिल जाती है। बहुत बड़ा पर्वत उठा लाने पर भी हनुमान को किसी ने गिरिधर नहीं कहा। द्रोणाचल के लेखे गोवर्द्धन जरा-सी पहाड़ी है, जिसे उठाकर कृष्ण गिरिधर कहलाये जाने लगे। प्रलय-जैसी घनघोर वर्षा में गोवर्द्धन को छत्र तान करके ब्रजवासियों को बचा लिया। भाई, जो यशस्वी पुरुष होता है उसका यश थोड़े ही काम से चारों ओर फैल जाता है।

३७९) परमात्मा की देने की सीमा नही हो सकती। उनके द्वारा की गई रक्षा मे कभी क्षीणता नही आती। उस परमात्मा मे सम्पूर्ण लोक स्थित है। परमात्मा सत्य है और प्रकाश उसकी छाया।

३८०) परमेश्वर को कोई आखों से नही देख सकता, किन्तु हममें से प्रत्येक मन को पवित्र करके विमल बुद्धि से परमेश्वर को पा सकता है। परमेश्वर हमारी बुद्धि को प्रकाश देकर स्वयं हमारी बुद्धि के अन्दर गुप्त रूप से प्रकाशित है। इसलिये बहिरंग बुद्धि को अन्तरंग मे विमग्न करना ही परमात्मा का दर्शन है।

३८१) अधार्मिक गांव मे नही रहना चाहिये। अपनी सामर्थ्य ही श्रेष्ठ बल है। भाई भाई मे आपस मे द्वेष नहीं होना चाहिये। मरते दम तक अपने परिश्रम से रोटी कमा कर खाओ।

३८२) व्यक्ति की संगति उसे अच्छे या बुरे कार्य करने की प्रेरणा देती है। यदि एक व्यक्ति अच्छे लोगों की संगति में उठता बैठता है तो उसे उन सब कार्यों में रुचि होती है जिनसे किसी की हानि न हो और यदि सम्भव हो सके तो दूसरों का भला हो जाय। चाहे किसी व्यक्ति के अपने मन में कोई पाप की प्रवृत्ति न भी हो, अपने साथियों को देख सुन कर यह स्वाभाविक है कि उसके मन में भी उनके जैसा ही व्यवहार करने की लालसा जागे। इस प्रकार कुसंगति के प्रभाव से वह अपने आपको, अपने कर्म को, अपने धर्म को भूल जाता

है इसके विपरीत यदि वह अच्छे लोगों की संगति करता है तो उसे हर क्षण अच्छे कार्य करने की ही प्रेरणा मिलती है। यह बात और है कि बुरी संगति बडी आसानी से मिल जाती है जबकि अच्छी संगति को ढुंढने के लिये प्रयास करना पडता है।

३८३) हनुमान के जीवन को अपना आदर्श बनाओ। श्रीरामचन्द्र की आज्ञा मात्र से विशाल सागर को लांघ गए। उन्हें जीवन या मृत्यु से कोई नाता न था। वे सम्पूर्ण रूप से इन्द्रियजित् थे और उनकी प्रतिभा अद्‌भुत थी। अब तुम्हें अपना जीवन दास्य-भक्ति के उस महान् आदर्श पर खड़ा करना होगा। उसके माध्यम से, क्रमश: अन्य सारे आदर्श जीवन में प्रकाशित होंगे। गुरु की आज्ञा का सर्वतोभावेन पालन और अटूट ब्रह्मचर्य- बस यही सफलता का रहस्य है। हनुमान एक ओर जिस प्रकार सेवादर्श के प्रतीक हैं, उसी प्रकार दूसरी ओर सिंहविक्रम के भी प्रतीक हैं- सारा संसार उनके सम्मुख श्रद्धा और भय से सिर झुकाता है।

३८४) संसार मे बन्धनों की कमी नहीं, किन्तु प्रेम का बन्धन सबसे अनोखा दृढ़ बन्धन है। प्रेम वश प्राणी कितना बेबस हो जाता है। जो प्रिय वस्तुओं के बन्धन से मुक्त है उसे न शोक है और न भय। मनुष्य के हक को हडपना ही तो बन्धन है।

३८५) प्राण घात, चोरी और व्यभिचार ये तीन शारीरिक पाप है। झूठ, निन्दा, कटु वचन और व्यर्थ भाषण ये वाणी के पाप है। पर धन की इच्छा, दूसरे की बुराई की इच्छा, असत्य, हिंसा, दया-दान, मे अश्रद्धा ये मानसिक पाप है।

३८६) मनुष्य के लिये राज्य से बाहर रहना अच्छा है, किन्तु दुष्ट राजा के राज्य में रहना अनुचित है। मित्र का न होना ठीक है परन्तु कुमित्र का संग सदैव सर्वथा अवाञ्छनीय है। शिष्य न हो तो ठीक है लेकिन दुर्जन को शिष्य बनाना उपयुक्त नहीं। पत्नी विहीन रहना अच्छा है पत्नी के बिना भी जीवन चल जायेगा लेकिन किसी दुराचारिणी को अपनी पत्नी बनाना कदापि उचित नहीं होगा क्योंकि इन सबसे तो जीवन में अपयश, अपमान, लोक निन्दा इत्यादि सहन करने पडते हैं। अत: श्रेष्ठ राजा के राज्य में रहना, सज्जन की संगति करना योग्य पात्र को शिष्य बनाना और कुलीन पतिव्रता घराने की कन्या से ही पाणिग्रहण करना सद्‌पुरुष के लिये वाञ्छनीय व हितकर है।

३८७) समुद्र के ऊपर वर्षा को होना, तृप्त मनुष्य को भोजन करवाना, सूर्य के प्रकाश में दीपक जलाना और धन सम्पन व्यक्ति को दान देना निरर्थक है। जबकि सूखे में वर्षा का होना, भूखे को भोजन करवाना, अन्धकार मे दीपक का जलाना, अभाव पीडितों को दान करना सर्वथा वाञ्छनीय है।

३८८) प्रभुता पाते ही लोगों की निगाहे बदल जाती है, किसी को पहचानने तक नहीं, जमीन पर पांव तक नहीं रखते। प्रभुता भ्रष्ट करती है और पूर्ण प्रभुता पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है। प्रभुता विनाशकारी महामारी के रोग के सदृश है, जिसे स्पर्श कर जाती है उसे भ्रष्ट कर देती है।

३८९) महान् बनो। त्याग बिना कोई भी महान् कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इस जगत् की सृष्टि के लिए स्वयं उन विराट् पुरुष भगवान् को भी अपनी बलि देनी पड़ी। अपने ऐश-आरामों, नाम-यश, ऐश्वर्य, यहां तक कि अपने जीवन को भी निछावर कर, मानव-श्रृंखला का एक सेतु निर्माण कर डालो, ताकि उस पर से होकर लाखों जीवात्माएं इस भवसागर को पार कर लें।

३९०) देख तुझे कोई बन्धन मे न डाल दे। बन्धन मे कौन है ? विषयी। विमुक्ति क्या है ? विषयों से वैराग्य। यदि जीते जी तुम्हारे बन्धन न टूटे तो मरने पर आशा करना व्यर्थ है।

३९१) भोग विलास के बीज यौवन के राग रंग द्वारा बोये जाते हैं किन्तु उनकी फसल वृद्धावस्था में दु:ख भोगकर काटनी पडती है इसलिये मर्यादापूर्ण जीवन ही बुढापे में शान्ति प्रदान करने वाला होता है। समस्त प्राणियों को नश्वर जगत की अनित्य वस्तुओं का मोह छोड कर स्थिर धर्म के सेवन में प्रवृत होना चाहिये। परमेश्वर न तो काठ लकडी में है नहीं पत्थर की मूर्ति में। परमेश्वर तो मानव की भावना में है। हर प्राणी के हृदय की सच्ची श्रद्धा भावना में ही परमेश्वर का निवास है। श्रद्धापूर्वक कोई भी कल्याणकारी कार्य किया जाये, उस कार्य में परमेश्वर की कृपा से सफलता अवश्य प्राप्त होती है। अत: मनुष्य की श्रद्धा भावना ही प्रतिमा में देवता का वास मानती है और भावना का अभाव प्रतिमा को साधारण जड पदार्थ बना देता है। अनिर्वचनीय व अव्यक्त शक्ति को ही ईश्वर कहा जाता है।

३९२) जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्था में बड़े अपने बंधु को आदर-सत्कार से प्रसन्न करके उससे कर्तव्य-अकर्तव्य के विषय में प्रश्न करता है, वह कभी मोह में नहीं पड़ता।

३९३) जिसको बुद्धि नहीं है उसको शास्त्र से कोई लाभ नही। जैसे नेत्रहीन व्यक्ति के लिये दर्पण बेकार है। प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य,

अकार्य, भय-अभय तथा बन्ध-मोक्ष का रहस्य जो बुद्धि जानती है, वह सात्विक है।

३९४) शिश्न और उदर की धैर्य से रक्षा करें अर्थात् कामवेग और भूख की ज्वाला को धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैर की नेत्रों से, नेत्र और कानों की मन से तथा मन और वाणी की सत्कर्मों से रक्षा करे।

३९५) अच्छे गुणों को अपनाना यही श्रेष्ठता का लक्षण है। व्यक्ति विनम्र हो गया तो वीर कहलाता है। सच्ची वीरता विनम्रता से प्रकट होती है। देश के लिये शत्रु से लडनेवाला वीर जवान अपनी मातृभूमि के चरण में लीन, नत होता है। कम और उचित कारण से खर्चा करनेवाला ही सच्चा उदार बन सकता है। कहीं भी पैसा खर्चनेवाला उदार नही कहला सकता। उसके अविचार के कारण वह एक दिन कंगाल बन सकता है औरों के आगे अपना गुणगान न बखानने वाला, आत्म प्रशंसा न करनेवाला भक्त व नेता बन सकता है। इस तरह श्रेष्ठ बनने के लिये विभिन्न गुण, मूल्य अपनाने पडते है।

३९६) तपों मे सर्वोत्तम तप ब्रह्मचर्य है। एक ब्रह्मचर्य की साधना करने से अनेक गुण स्वयं अधीन हो जाते है। परमात्मा की प्राप्ति के इच्छुक ब्रह्मचर्य का पालन करते है। ब्रह्मचर्य रूपी तपोबल से ही विद्वानों ने मृत्यु पर विजय पाई है।

३९७) जो प्रतिदिन जल से स्नान-संध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितों का अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता है और गुरु की सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्राह्मणलोक से भ्रष्ट नहीं होता। वेदों को पढ़कर अग्निहोत्र के लिए अग्नि के चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकार के यज्ञों द्वारा यजन कर और प्रजाजनों का पालन करके गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्र से अन्त:करण पवित्र हो जाने के कारण ऊर्ध्वलोक को जाता है। वैश्य यदि वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनों को समय-समय पर धन देकर, उनकी सहायता करे और यज्ञों द्वारा तीनों अग्नियों के पवित्र धूम की सुगन्ध लेता रहे तो वह मरने के पश्चात् स्वर्ग लोक में दिव्य सुख भोगता है। शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्रम से न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें संतुष्ट करता है तो वह व्यथारहित हो पापों से मुक्त होकर देह-त्याग के पश्चात् स्वर्गसुख का उपभोग करता है।

३९८) जिन व्यक्तियों के पास विद्या, दान, शील, तप व गुण नहीं है वे व्यक्ति पृथ्वीपर भार स्वरूप पशु तुल्य ही जीवन व्यतीत करते है। मनुष्य रूप में केवल हिरण के समान विचरण करते है। जिनमे उक्त गुण नही है वे पशु तुल्य ही जानने योग्य है। मनुष्य के जीवन की सफलता विद्वान, तपस्वी, दानी, गुणवान, शीलवान अर्थात धर्मात्मा होने में है। इनमे से किसी भी गुण के अभाव में वह व्यक्ति मनुष्य नहीं पशु ही समझने के योग्य है।

३९९) वेद-विद्या का अध्ययन भी व्यर्थ हो जाता है बिना अग्नि होत्री के अनुष्ठान की शिक्षा के। धन कमाना, दान दक्षिणा के बिना निष्प्रयोजन है। कोई भी सिद्धि बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं होती। सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु और साध्य वस्तु में श्रद्धा होना अनिवार्य है। अपने निरन्तर अभ्यास से मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त कर लेता है लेकिन अभ्यास से ही सब गुण प्राप्त नही होते। कुछ गुण ऐसे भी होते है जो स्वभाविक होते है जैसे दानशीलता, मधुर बोलना, शौर्यता तथा पांडित्य ये चार गुण ऐसे होते है जिन्हे अभ्यास से प्राप्त नही किया जा सकता, ये किसी किसी मनुष्य मे स्वाभाविक होते है। ये सहज गुण कहलाते है।

४००) प्रत्येक व्यक्ति को सब कुछ उपलब्ध नहीं होता, यदि ऐसा होता तो व्यक्ति के लिये पृथ्वी पर ही स्वर्ग हो जाता, ऐसा व्यक्ति के भाग्य से ही सम्भव होता है। जिस व्यक्ति की पत्नी पति-परायण होती है उसके व्यवहारानुकूल होती है, जिसका पुत्र आज्ञाकारी होता है और पिता की आज्ञानुसार आचरण करता है; जो व्यक्ति उपलब्ध धन सम्पदा से सन्तुष्ट है वह व्यक्ति पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य भोगता है। इस पृथ्वी लोक में अन्य सब बाते व्यक्ति को कष्ट देनेवाली ही होती है। जिस व्यक्ति की पत्नी पति के अनुकूल होती है और जिसकी सन्तान अनुकूल होती है वह सुखी है इसके प्रतिकूल दुराचारिणी पत्नी और कुपुत्र जीवन को नरक बना देता है। व्यक्ति का सबसे बडा गुण सन्तुष्टि स्वभाव होता है, जो व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता वह सब कुछ होते हुये भी कष्ट ही पाता है। जो गुण मनुष्य अपने प्रयास द्वारा हासिल करता है वे यत्नज गुण कहलाते है और जो ईश्वर द्वारा प्रदत्त होते है वे जन्म जात गुण या सहज गुण कहलाते है।

४०१) सगुण और निर्गुण मे कुछ भेद नही है। जो भगवान निर्गुण, निराकार, आलख और अजन्मा है, वही प्रेम के वश मे होकर सगुण रूप धारण करता है। ब्रह्म सनातन, सत्य, अप्रमेय, ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त है।

४०२) उपार्जित संचित धन को दान देना ही उसका सही उपयोग एवं बचाव है। लक्ष्मी चंचल है। वह कभी भी स्थिर नहीं हो सकती, उपार्जित धन को नष्ट होना है, यह तो निश्चित है। अत: नष्ट होने से पूर्व उसे दान में देकर मनुष्य को अपने लोक व परलोक सुधार लेना चाहिये।

४०३) भक्ति स्वतन्त्र और समस्त गुणों की खान है। यह भक्ति सत्संग के बिना नही मिलती। बिना अत्यधिक पुण्य के सन्त नहीं मिलते। भगवान की कृपा बिना सन्त नहीं मिलते। सत्संगति से मनुष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

४०४) हम जितनी ही जल्दी लोगों की भावनाओं का अनुमान लगा सके, उतना ही दुनिया की भलाई के लिये एक अच्छा काम होगा। जहां जैसी हमारी मानसिक भावना रहती है, वहां परमेश्वर हमारे लिये उसी रूप मे प्रकट हो जाते है।

४०५) महापुरुषों का चरित्र वास्तविक जीवन में आश्चर्यजनक होता है। सामान्य व्यक्ति उनके जीवन चरित्र को नही समझ सकता। यह उनका स्वभाव है कि धन होने पर वे दान देते रहते है, सत्य होने पर क्षमाशील रहते है, दु:ख के समय कठोर हो जाते है और सदाचारी होने पर घमंड से दूर रहते है। वे धन को तिनके के समान तुच्छ समझते है, किन्तु धन मिलते ही महापुरुष उसके भार से नम्र हो जाते है। यही उनके चरित्र की आश्चर्यजनक विशेषताये है। वीतराग महात्माओं महापुरुषों को न तो धन सम्पति की इच्छा होती है, और न ही वे धन सम्पति पाकर उग्र होते है।

४०६) तप ब्रह्मचर्य आदि की साधना से जो फल सतयुग मे दस वर्ष मे मिलता है वह त्रेता मे एक वर्ष मे, द्वापर मे एकमास मे और कलियुग मे सिफ दिन रात मे ही प्राप्त हो जाता है। तप और ब्रह्म बिना जल का स्नान है। ब्रह्मलोक उनका है जो तप, ब्रह्मचर्य और सत्य मे निष्ठा रखते है। ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होने पर शक्ति बल का लाभ होता है।

४०७) जहां भगवान है और जहां भक्त है वहां सब कुछ है। लेकिन भगवान को तो हमने देखा नही, भक्त को हम देख सकते है, इसलिये हमारी निगाह मे भक्त की महिमा बढ़ जाती है। भक्त को आलोचना से प्रेम नही होता।

४०८) भारतीय शास्त्रों में पुनर्जन्म के उल्लेख से निष्कर्ष होता है कि आवश्यकता पूर्ति, भोजन की सुलभता, भोग विलास की उपलब्धता, धन सम्पदा, का मिलना एवम् सुन्दर तथा गुणी स्त्री का मिलना पूर्वजन्मों के फल पर निर्भर करता है। कई बार देखा गया है जिस व्यक्ति के पास सुन्दर पत्नी होती है उसमे सम्भोग शक्ति का अभाव हो सकता है, जिस व्यक्ति के पास धन है उसमे दान वृति न हो, जिस व्यक्ति मे दान वृति होती है उसके पास धन का अभाव हो सकता है। जिस व्यक्ति के पास सुस्वादु भोजन उपलब्ध है उसके पास भोजन का आनन्द लेने के लिये दाँत उपलब्ध न हो और जिसके पास उसकी पाचन शक्ति खराब हो। यही तो संयोग की बात होती है अर्थात इसे भाग्य की विडम्बना कहते है इसलिये पूर्वजन्मों का फल ही व्यक्ति को सुयोग या दुर्योग प्रदान करता है।

४०९) क्रोध की अवस्था में भी जो व्यक्ति संयम बरत सके वही व्यक्ति मित्रता करने योग्य होता है। गुण और दोष का आंकलन करने के बाद ही व्यक्ति को मित्रता करने के लिये हाथ बढ़ाना चाहिये। वरना वह जीवनभर कष्ट ही भोगता है।

४१०) मन मे जब एक भ्रम का प्रवेश हो जाता है, तो उसका निकलना कठिन हो जाता है। अशुभ की जड इस भ्रम मे है कि हम देह मात्र है। यदि कोई मूलभूत या आदि पाप है तो वह यही है।

४११) इस संसार में जिस प्राणी का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी निश्चित है फिर उसमे शोक और दु:ख किस बात का। जिस तरह रात्रि होने पर अनेक जातियों के विभिन्न रंग रूप वाले पक्षी एक ही वृक्ष पर आकर रात्रि विश्राम करते है और प्रात:काल होते ही दसों दिशाओंमे उड जाते हैं ठीक इसी प्रकार बन्धुबान्धव रूपी कुछ जीव एक परिवार रूपी वृक्ष पर आकर मिलते है, परमात्मा से मिला अपना निश्चित जीवन जीते है और अन्त समय आने पर मृत्युलोक के लिये विचरण करते है फिर इसमे रोना, शोक किस बात का। उत्पत्ति और मृत्यु, संयोग-वियोग तो जीव का नित्य धर्म कर्म है।

४१२) मूर्ख शिष्य को शिक्षा देने से कोई लाभ नहीं वह उस शिक्षा के विपरीत ही करेगा उसका सही उपभोग नहीं करेगा। दुष्ट और कुल्टा स्त्री का पालन करने से भी व्यक्ति कष्ट ही भोगता है। कुल्टा स्त्री सदैव धर्म विरुद्ध ही आचरण करेगी। उसे सदाचार से कोई लेना देना नहीं। ऐसी स्त्री से कोई लाभ नहीं जो विदुषी न हो साथ धर्म परायण भी न हो। दु:खी व्यक्ति का साथ सदैव कष्टकारी होता है। दु:खी व्यक्ति अपने दु:ख या स्वार्थ में ही निहित रहता है। उससे उसमें विवेक का अभाव होता है तब वह दूसरे का हित सोच नहीं सकता।

४१३) चार चीजें मनुष्य को बडे भाग्य से मिलती है- भगवान को याद रखने की लगन, संतों की संगति, चरित्र की निर्मलता और उदारता।

४१४) किसी भी महत्वपूर्ण या भेद भरी (गुप्त रहस्य) बात का उल्लेख स्त्रियों से न करने का विद्वानों का मत है क्योकि वे मन में गुप्त बात नहीं रख सकती। किसी न किसी से वह कह देती है। कामी यानी स्वार्थी व्यक्ति की प्रतिज्ञा व वचनों पर कभी विश्वास नही करना चाहिये वे कभी भी अपनी प्रतिज्ञा व वादों को भंग कर सकते हैं। आयु का भी कभी कोई भरोसा नहीं होता इसलिये महत्वपूर्ण कार्य कल की बजाय आज करें क्योकि कल का भरोसा नही होता है जो आज है।

४१५) जो पुरुष आकांक्षा से रहित, पवित्र, दक्ष, पक्षपात रहित और दु:खों से छूटा हुआ है, वह सब सुखों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। विष्णु की कथा का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनके चरणों की सेवा, उनकी अर्चना, वन्दना, दास्य, साख्य और आत्म निवेदन यही नवधा भक्ति है। अधिकार के कारण जो श्रद्धा भक्ति होती है वह सच्ची भक्ति नही होती।

४१६) भावपूर्वक प्रेम से, बुरे भाव से, झुंझलाकर अथवा आलस्य से चाहे जिस भाव से भी भगवान का जप करे तब भी दसो दिशाओं, सब ओर से उसका मंगल होगा।

४१७) एक में बडी शक्ति है, निर्माण का क्षेत्र हो या विनाश का, चारों तरफ एक ही शक्ति से दोनों कार्य सिद्ध हो जाते है। जिस प्रकार अग्नि से जलता हुआ वृक्ष सारे वन को जला कर राख कर देता है उसी प्रकार एक ही कलंकित पुत्र होने से सारा कुल कलंकित हो जाता है। माता-पिता को अपने सभी पुत्रों को योग्य बनाने का प्रयास करना चाहिये ऐसा करने से कुल कलंकित होने से बच सकता है। यदि परिवार में एक भी व्यक्ति विद्वान हो जाय और वह स्वभाव से शील व सज्जन हो तो पूरा परिवार आनन्दित व यशस्वी हो जाता है। जिस प्रकार एक ही चन्द्रमा रात्रि को जगमगा कर सुखदायक शीतलता प्रदान करता है उसी प्रकार एक विद्वान व सज्जन अपने वंश के सदस्यों को आनन्दित कर देता है उसके कारण वे अपने वंश पर गौरव अनुभव करने लगते है। अत: अधिक सन्तान पैदा करने की अपेक्षा एक ही पुत्र को अच्छे संस्कार देकर गुणी बना देना श्रेयस्कर है।

४१८) मनुष्य के जीवन की उपादेयता एक गुणवान पुत्र से हो सकती है। सैकडों गुण हीन पुत्र उसके लिये महत्वहीन ही होते हैं। एक चन्द्रमा रात के अन्धकार को हर लेता है जबकि असंख्य तारे मिल कर भी रात के अन्धेरे को दूर करने मे सक्षम नही होते।

४१९) आकार, इंगित, गति, चेष्टा, वाणी एवं नेत्र और मुख के बदलते हुये भावों से मन के विचारों का पता लग जाता है। जब तक मन अस्थिर और चंचल है तब तक अच्छा गुरु और साधु संगति मिल जाने पर भी कोई लाभ नही होता है।

४२०) जिस किसी से भी जितना भी ज्ञान मिले, उसे प्राप्त कर लेना चाहिये और बदले मे कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये। श्रद्धावान व्यक्तियों को ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान प्राप्त होने और अपनी इन्द्रियों को वश मे कर लेने पर उसे यथाशीघ्र शान्ति प्राप्त हो जाती है।

४२१) जिस परिवार में पिता भक्त पुत्र होता है जो माता व पिता का सहायक होता है वही सच्चा पुत्र कहलाने योग्य है। जो पिता, पुत्र का हर प्रकार से उचित भरण-पोषण करता है और उसके सुख-दु:ख का ध्यान रखता है वही सच्चा पिता कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति पर विश्वास नहीं किया जा सकता जिस व्यक्ति पर विश्वास किया जा सके वही मित्र कहलाने योग्य है। जो नारी अपने पति को हर प्रकार से सुख देने में भागीदार होती है वही सच्चे अर्थों में पत्नी कहलाने योग्य होती है। इस प्रकार से सुख व समृद्ध परिवार की परिभाषा उस परिवार के सदस्य अपने व्यवहार से गढते है।

४२२) जो माता पिता अपने पुत्र को शिक्षित नहीं करते वे उसके शत्रु के समान होने है। अशिक्षित व्यक्ति की बुद्धिमान समाज या सभा मे वैसी ही स्थिति होती है जैसे हंसो के बीच बगुले की। हंसों के मध्य बगुला शोभा नही देता है। वैसे ही शिक्षित समाज में अशिक्षित व्यक्ति की पूछ नही होती है। यह आवश्यक है कि माता पिता अपने पुत्र की सुख समृद्धि के लिये उसे शिक्षित करे इससे व उचित मान-सम्मान का भी अधिकारी होगा।

४२३) ज्ञान के समग्र प्रकाश से, अज्ञान एवं मोह के विसर्जन से तथा राग एवं द्वेष के क्षय मे आत्मा एकान्त सुख स्वरूप मुक्ति को प्राप्त करती है।

४२४) मोक्ष के चार द्वारपाल है, शम, विचार, सतसंग और सन्तोष। वेदों के अध्ययन का सार है सत्य भाषण। सत्य भाषण का सार है इन्द्रिय संयम और इन्द्रिय संयम का सार है मोक्ष।

४२५) योग मे प्रवृत्ति करने का फल यही होता है कि योगी की देह हल्की हो जाती है, निरोग हो जाती है, विषयों का लोभ समाप्त हो

जाता है, कान्ति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है, देह से सुगन्ध निकलने लगती है और मल-मूत्र कम हो जाता है।

४२६) स्वार्थ में अन्धे मूर्ख अनर्थ के बारे में विचार नही करते जैसे मधु के लोभी मधुमक्खियों के आक्रमण के बारे में नहीं सोचते। वंश गुणवान पुत्र से ही ऊंचा उठता है इसलिये गुण हीन अनेक पुत्रों की अपेक्षा एक ही गुणवान पुत्र होना अत्यधिक अच्छा है।

४२७) जब तक संसार मे कीट पतंग आदि की मुक्ति न हो जायेगी तब तक अपने स्वयं की मुक्ति की आशा आकांक्षा करना व्यर्थ है। अगर जीते जी तुम्हारे बन्धन न टूटे तो मरने पर मुक्ति की आशा कैसे करी जा सकती है।

४२८) इस संसार में हर मनुष्य के जीवन के लिये कुछ सिद्धान्त निश्चित है। अपने कुल या परिवार की रक्षा के लिये किसी एक का भी त्याग करना पडे तो तुरन्त कर दे, पूरे गांव की रक्षा के लिये अपने स्नेहीजनों का भी त्याग करना पडे तो निस्सन्देह कर देना चाहिये। पूरे देश के लिये यदि गांव भी छोडना पड जाय तो नि:संकोच छोड दे और यदि अपनी अन्तरात्मा की सच्चाई की रक्षा के लिये सर्वस्व भी त्यागना पडे तो त्याग देना चाहिये। सत्य की रक्षा करना ही सबसे महान कर्तव्य है।

४२९) किसी भी वस्तु की संख्या का उतना महत्व नहीं होता जितना गुणवता का, जिस प्रकार एक ही वृक्ष अपने पुष्प और सुगन्ध से सारी वाटिका को सुगन्धित और सुशोभित कर देता है, उसी प्रकार परिवार में एक ही पुत्र गुणवान और यशस्वी बन जाय तो अपने गुणों से अपने कुल को यशस्वी और प्रसिद्ध बना लेता है। अपनी शक्ति को व्यापक क्षेत्र मे व्यय न करके मनुष्य को एक ही दिशा में अपनी प्रतिभा का उपयोग करना चाहिये।

४३०) सज्जन लोगों ने अच्छे मित्र के ये लक्षण बताये है वह अपने मित्र को पापों से दूर रखता है, उसे अच्छे हितकर कार्यों में लगाता है, उसके गुप्त रहस्यों को छिपाये रखता है और उसके गुणों को उजागर करता है, आपत्ति मे उसका साथ नही छोडता और आवश्यकता पड़ने पर उसे धन भी देता है।

४३१) जिस व्यक्ति का मन उसके अधीन है, वही सच्चा मालिक, सच्चा स्वामी होता है। मन के अधीन जो है वह व्यक्ति गुलाम होता है। सदाचारी पुरुष ही अपनी स्त्री का पति बन सकता है जबकि कामान्ध व्यक्ति स्त्री का गुलाम होता है। अच्छे कार्य के लिये जो धन का उपयोग करता है उसे धन का मालिक समझना चाहिये और जो सिर्फ धन जमा करता है वह धन का गुलाम माना जाना चाहिये। जो जीने के लिये खाता है वह स्वतन्त्र है, जो खाने के लिये जीता है वह पराधीन है। जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया वह मालिक होता है और जो इन्द्रियों के वश में होकर इन्द्रियों का हुक्म मानता है वह गुलाम कहलाता है।

४३२) इन्द्रियों की स्थिरता को ही योग जाना जाता है। जिसकी इन्द्रिया स्थिर हो जाती है वह अप्रमत हो जाता है। योग का अभिप्राय है शुद्ध संस्कारों की उत्पत्ति और अशुद्धि का विनाश।

४३३) किसी को कठोर वचन न कहना और दुष्ट जनों से दूर रहना इससे मनुष्य लोक में प्रसिद्ध होता है, वह सबकी प्रशंसा का पात्र बनता है। संसार में धनहीन होकर राजमहल का सपना देखना और कमजोर होने पर भी बहुत अधिक क्रोध करना ये जीवन में शरीर को घोर कष्ट देने वाले कांटे है।

४३४) लक्ष्य को ही अपना जीवन कार्य समझो। हर समय उसका ही चिन्तन करो। उसी का स्वपन्न देखो और उसी के सहारे जीवित रहो। आत्मा मे परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करना ही जीवन का परम लक्ष्य है।

४३५) जहां पर नदी गहरी होती है, वहां जल प्रवाह अत्यन्त शान्त व गम्भीर होता है। जो अपनी जिव्हा को वश मे रखता है, वह जीवन पर नियन्त्रण रखता है, किन्तु जिसका जिव्हा पर काबू नही, वह नाश को प्राप्त होता है।

४३६) यदि देश की समृद्धि और देश वासियों की सन्तुष्टि अभिष्ट है, तो मूर्खों के स्थान पर गुणवानों का आदर करना चाहिये। बुरे दिनों के लिये धन कोष सुरक्षित करना चाहिये तथा घर-गृहस्थ मे वाद विवाद का वातावरण नही होना चाहिये तभी देश की समृद्धि होगी यह ही वास्तविक सत्य है।

४३७) मीठी बातों से सर्वत्र सुख प्राप्त होता है। कठोर वचन का त्याग करना एक वशीकरण मन्त्र है। लाभप्रद और चित्ताकर्षक वचन बहुत दुर्लभ होता है। विश्व रूपी वृक्ष के अमृत समान दो फल है सरस प्रिय वचन और सज्जनों की संगति।

४३८) माया ईश्वर की शक्ति है, फिर भी एक अनिर्वचनीय पदार्थ है। वेदान्त के अनुसार यह निद्रावस्था और जाग्रत अवस्था भी माया

या भ्रम के सिवा और कुछ नही है। वे अविवेकी मनुष्य पराजित होते है जो मायावियों के सामने मायावी नही होते।

४३९) इस संसार में ज्ञान के अतिरिक्त कोई वस्तु पवित्र नही। एक मात्र विद्या ही परम तृप्ति दायिनी है। विद्या एक अमूल्य निधि है जो कभी नष्ट नही होती। विद्या स्वयं ही एक शक्ति है। विद्या के अतिरिक्त और कोई श्रेष्ठ दान नही है।

४४०) लोभ लालच को त्यागकर ही सांसारिक वस्तुओं का उपयोग करो और किसी दूसरे व्यक्ति के धन की ओर लोलुप दृष्टि से न देखो। जिस व्यक्ति पर धन का लोभ छा गया, उसने अपनी जिन्दगी के खलिहान को हवा मे उडा दिया।

४४१) ब्रह्मा ने संसार को जड चेतन तथा गुण दोषमय बनाया है। हंस रूपी सन्त दूध रूपी गुण को ग्रहण करते है और पानी रूपी विकार को छोड देते है।

४४२) अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ। शब्दों का कर्म से और धर्म का शब्दों से मेल कराओ। भौतिक बन्धन से मुक्त होने का उपाय है पूर्ण विवेक से काम लेना।

४४३) विचार ही हमारे मुख्य प्रेरणा स्त्रोत होते है। मस्तिष्क को उच्चतम विचारों से भर दो। प्रतिदिन उनका श्रवण करो, प्रति मास उनका चिन्तन करो। बिन चिन्तन का अध्ययन तो परिश्रम का व्यर्थ जाना है।

४४४) जैसे पक्षी दिन में चारो तरफ इधर-उधर उडता फिरता है, लेकिन शाम के समय अपने घौसलें में जाकर स्थिर हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा सब तरह के कामों से थककर भटक जाता है, तब विश्राम के लिये परमेश्वर के पास पहुंच जाता है।

४४५) विषय के समान दूसरा कोई मद नही है। यह क्षण भर में मुनियों के मन में मोह पैदा कर देता है। जो मनुष्य भगवान की चरण सेवा छोडकर विषय भोग मे लिप्त हो जाते है, वे बडे अभागे है।

४४६) विषयों के सम्बन्ध मे सोचने से उनसे सम्पर्क हो जाता है। विषयों को हमने नही भोगा बल्कि विषयों ने ही हमे भोग लिया। हमने तप को नही तपा, विषयों ने हमे तपा डाला।

४४७) एक गुणी पुत्र कुलभूषण कहलाता है, जबकि सैकडों निक्कमे पुत्र इसके विपरीत कुल को कलंक ही लगाते है। दम्पतियों को चाहिये कि वे अपने एक मात्र पुत्र को गुणवान, संस्कारवान एवम् सद्पुरुष बनाने के लिये प्रयत्नशील रहे, न कि सैकडों पुत्रों के प्राप्त करने में। दीर्घ आयु वाले मूर्ख पुत्र की अपेक्षा उत्पन्न होते ही मर जाने वाला पुत्र श्रेष्ठ होता है, क्योकि मरा हुआ तो थोडे समय के लिये पीडित करने वाला होता है, परन्तु मूर्ख पुत्र तो जब तक जीवित रहता है कष्ट पीडा देते रहता है, सताते रहता है, कुल के अपयश का कारण बनता है।

४४८) जिस विषय वासना को सन्तों ने त्याग दिया, ऐ मूर्ख व्यक्ति तू उसी से इस प्रकार लिपट रहा है जैसे मनुष्य वमन कर देता है, उसे ही श्वान स्वाद से खाता है।

४४९) खुद को दीन हीन न समझे, मन में हीनता या ओछेपन की भावना उत्पन्न न हो और अपनी इच्छा व कामनाओं की उपेक्षा न करे। उच्च कल्पना करे और वे साकार होने पर होनेवाले आनन्द की मानसिक अनुभूति करे। सकारात्मक विचार करे। निराशावादी या नकारात्मक कल्पना न करे। असफल लोगों का चिन्तन न करे। हमारी इच्छाये जिन्होने सफल की है उन व्यक्तियों का स्मरण करे। दुनिया में असम्भव कुछ भी नही है। हिमालय का शिखर लांघना या सागर की तलहटी खोजना भी सम्भव हो गया है इसलिये उच्च ध्येय मन में रख कर ही व्यवहार के नियमों का पालन करे। अपनी इच्छा कभी नही भूलें। ध्येय का सतत स्मरण करे।

४५०) इस जगत या संसार में एक समानता नही है। इसमे ईश्वर का उद्देश्य जगत व्यवस्था टिकाने की है। जैसे दुनिया में एक जैसे दिखने वाले लोग नही होते, (जुडवां बच्चों को छोडकर) एक जैसी आवाज, एक जैसा स्वभाव न होना यानि खान-पान, रहन-सहन, विचारों में विविधता होना महत्वपूर्ण है। सभी प्राणी एक जैसे होते तो व्यवस्था चरमरा जाती। सभी वृक्ष-पौधे यदि एक जैसे होते तो विविधता में सुन्दरता न बन पाती। विचारों में भिन्नता न होती तो नये-नये शोध नही होते। संसार मे विषमता रख कर भी ईश्वर ने समानता कायम रक्खी है। हर का आकार, रूप, रंग, विचार, कृति, इच्छा, संकल्प एवम् पसन्द ना पसन्द में भिन्नता होने से संसार मे सुखदायक सुन्दरता बनी है इसलिये विषमता सभी के लिये आवश्यक है।

४५१) पुत्रहीन व्यक्ति के लिये उसका अपना घर भी सूना सूना लगता है। उसे अकेला पन घर में महसूस होते रहता है। जिसके कोई

सम्बन्धी नहीं हो उसे अपना घर परदेश जैसा पराया लगता है। मूर्ख व्यक्ति दूसरे के दु:ख से न तो द्रवित होता है और न ही सहानुभूतिवश किसी की सहायता करता है। इस प्रकार मूर्ख का हृदय उदार भावों से सर्वथा शून्य होता है। निर्धन व अभाव ग्रस्त व्यक्ति के लिये सब कहीं हर तरफ सूना सूना सा होता है क्योकि वह कही भी जाता है तो लोग उससे किनारा करने लगते है, दूर होने लगते हैं। अत: पुत्र हीन व्यक्ति, रिश्ते-नातेदारों से विहीन व्यक्ति व मूर्ख व्यक्ति व निर्धन अभावग्रस्त व्यक्ति का जीवन निरर्थक है।

४५१) स्वस्थ शरीर आत्मा के लिये अतिथिशाला के समान है और अस्वस्थ शरीर बन्दीगृह के समान। शरीर धर्म के रहने की जगह होने के कारण तीर्थ जैसा पवित्र है।

४५२) हर मजहब मे जितने सन्त हुये है, उन सबका हृदय एक सा है, उनमे आपस मे जो भेद दिखाई देता है, वे अन्य लोगों ने पैदा किये है। सन्तो ने नही। सच्चा सन्त लोकप्रतिष्ठा नही चाहता और भगवान के दिये मे सन्तोष मानता है।

४५३) सन्तोष सबसे बडा सुख है और असन्तोष सबसे बडा दु:ख। इसलिये सुख चाहनेवाले व्यक्ति को हमेशा सन्तुष्ट रहना चाहिये। सन्तोष तो प्रयास करने मे है उपलब्धियों मे नही। सबसे अधिक प्राप्ति उसी को होती है जो सन्तुष्ट होता है।

४५४) केवल मूर्ख और मृतक, ये दो ही अपने विचारों को कभी नही बदलते। विचार पुष्पों के समान है और सोचना उनको सुन्दर माला मे गुम्फित करने के समान है।

४५५) महापुरुष जन्म सिद्ध शिशु होते है। जब वह मरता है तो अपना शिशुत्व संसार को प्रदान कर जाता है। शिशुओं को अपने निकट आने दो रोको मत, क्योकि ईश्वर का साम्राज्य शिशुओं से ही निर्मित है।

४५६) यदि तुम अपवित्रता और संसार भर के पापों से बचना चाहो तो अपना कार्य खूब परिश्रम और चुस्ती से करो, चाहे तुम्हारा काम अस्तबल की सफाई करने का ही क्यो न हो। श्रम करने वाले ही समाज के उद्धारक होते है।

४५७) पूंजी श्रम का परिणाम है और श्रम ही इसे उन्नति के लिये उपयोग मे लाता है। श्रम ही सक्रिय और मूल शक्ति है, अत: यही पूंजी का उपयोगकर्ता भी है। श्रम और पूंजी अन्योन्याश्रित है। पूंजी श्रम के बिना नही पनप सकती और श्रम का पूंजी के अभाव मे कोई अस्तित्व नही।

४५८) दु:खी और दीन पुरुषों के लिये सन्त ही परम आश्रय है। सन्त समाज आनन्द और मंगलदाता होता है, वह संसार मे सचल तीर्थराज प्रयाग है। सन्त वह है जिसमे कोई इच्छा न हो, जिसमे क्रोध न हो, जिसकी इच्छाये आत्मा मे केन्द्रीभूत हो गई हो और जिसका खजाना सिर्फ नाम हो।

४५९) पूर्ण हर्ष में आनन्द की अपेक्षा गहनता अधिक होती है। हर्ष सर्वप्रथम स्वास्थ्य में है। अधिक हर्ष शान्त होता है और जिव्हा की अपेक्षा हृदय मे वास करता है।

४६०) सन्त स्वयं कष्ट सहकर समीप पास वाले को सुखी करते है जैसे दीप स्वयं जलकर चारो और प्रकाश कर देता है। सन्तजनों के समान चन्द्रमा भी शीतल नही है और न ही हिम।

४६१) मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिये सन्तोष एक सर्वोत्तम पथ्य है और रोगी व्यक्ति को नीरोग रखने के लिये सर्वोत्तम औषधि है। गाय, हाथी, घोडे, रत्न यह सब धन धूलि के समान है जब मनुष्य को सन्तोष रूपी धन प्राप्त हो जाता है।

४६२) बिना सत्संग के विवेक नही होता। अगर आदमी सम्मान चाहे तो सम्मानीय लोगों का संग करे। संगति के अनुरूप ही व्यक्ति अथवा वस्तुओं मे परिवर्तन आता है।

४६३) मनुष्य देह (शरीर) की प्राप्ति का उद्देश्य ही देना है अर्थात दान-पुण्य आदि करना है। यह मानव शरीर बार-बार नहीं मिलता और अगर मानव बनकर इस जग में आए हो तो जितना भी हो सके सत्कर्म कर लो। बाद में यह अवसर नहीं मिलेगा।

४६४) सदा दान करते रहो। जब मानव देह धारण की है तो दान करके कुछ पुण्य अर्जित कर लो। जब यह देह खेह (मिट्टी में मिल जाना) हो जाएगी तब कौन तुझसे दान मांगेगा। अत: जब तक जीवन है दान-पुण्य का नेक काम कर लो।

४६५) यदि शरीर ठीक-ठाक है, स्वस्थ है तो परमात्मा का सुमिरन करना चाहिए और यदि आपके पास धन-सम्पत्ति है तो दान-पुण्य करना चाहिए। अकल बड़ी हो अर्थात ज्ञान का असीमित भंडार हो तो उसे अज्ञानी लोगों में बांटकर उपकार करना चाहिए। यही

जीवन का वास्तविक फल है।

४६६) यह दुनिया तो दो ही दिन की है। इसलिए मोह-माय के चक्कर में मत पड़ो। यह सब सदैव साथ रहनेवाली चीजें नहीं हैं। अत: गुरु के श्रीचरणों में ही अपने को लगाओ। उन्हीं की ज्ञान-शिक्षा से तन-मन को पूर्ण सुख की अनुभूति मिलती है।

४६७) गांठ में जो है उसे हाथ में ले लो अर्थात जो भी कुछ दबाकर रखा है उसे निकाल लो और उसे दान-पुण्य कर कुछ परोपकार कर लो। आगे कोई हाट या बनिया नहीं है। जो कुछ भी लेना है यहीं ले लो अर्थात मनुष्य जन्म के बाद अगले जन्म का कोई भरोसा नहीं है। जो भी पुण्य करने हैं; इसी जन्म में कर लो।

४६८) ऐसी जगह पर कभी मत जाओ जहां पर कुल (पूर्वज) रहते हैं। यह सब तो मोह-माया के रिश्ते हैं। यह लोग संतजनों तथा उनकी साधुता को नहीं समझ सकते। यह लोग तो केवल बाप के नाम से पहचानते हैं और कुल, परिवार तक ही सीमित रहते हैं।

४६९) जहां अपना इष्ट (मन का भगवान) तथा मन मिल जाए वहां सभी रस-रीति भी मिल जाते हैं अर्थात जहां भक्ति और सेवा दोनों होते हैं, वहां सबकुछ मिल जाता है। ऐसी जगह पर जरूर जाएं क्योंकि यही वह जगह है जो संतजनों को प्रिय होती है।

४७०) हरिजन (हरि का भक्त) तो हारा हुआ ही भला है। यह संसार भले ही अपने को जीता हुआ समझे किंतु वास्तविकता तो यह है कि जिसे यह संसार जीता समझता है वह असल में हारा हुआ है। सत्कर्म से मिली हार तो विकारों से मिली जीत से बहुत ही अच्छी है। विकारों से मिली ऐसी जीत तो यम (मृत्यु) का द्वार है।

४७१) बंदे (ईश्वर भक्त) तू तो बंदगी (गुरु की सेवा, परमात्मा का काम) ही करता रह, तभी तुझे साक्षात प्रभु का दीदार (दर्शन) होगा। मनुष्य जीवन में यह अवसर बार-बार नहीं मिलता। इसलिए मनुष्य को एक ही बार मिले मानव जन्म को व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिए।

४७२) गाली से ही कलह (झगड़े), कष्ट और मीच (मार-पीट) पैदा होती है। जो गाली-गलौज से दूर रहता है वही संत है और जो इसे अपने साथ लगाकर रखता है वह तो नीच है, उसकी मृत्यु भी इन्हीं से उपजे झगड़ों के कारण हो जाती है।

४७३) केवल जन्म देने के कारण ही पिता अपनी सन्तान का हितैषी नही बन जाता। अपनी मृत्यु परान्त अगर वह कर्ज का भार छोड जाय तो वह सन्तान का शत्रु है। माता हो जाने से कोई स्त्री सती साध्वी नही हो जाती। यौन सुख को अन्यत्र पाने वाली स्त्री भी अपनी सन्तान की शत्रु होती है। पत्नी रूपवती हो तो कामान्ध लोगों का आकर्षण बन जाती है। काम तृप्ति के लिये वह भी परिवार के लिये शत्रु हो जायेगी और पुत्र मूर्ख हो तो वह परिवार का अहित कर देगा तो शत्रु ही कहलायेगा।

४७४) जैसा भोजन खाओगे मन भी वैसा ही होगा और जैसा पानी पीओगे वैसी ही वाणी होगी अर्थात शुद्ध आहार तन-मन को भी शुद्ध करता है। अत: सदैव शुद्ध व शाकाहारी भोजन ही करना चाहिए।

४७५) मैं तुझसे बार-बार कह रहा हूं कि अब तो सुन ले। नीच मन सुन और समझ। वरना बंजारे के बैल की भांति यूं ही मर जाएगा। अर्थात इस मन को कुरीतियों से मुक्त नहीं किया तो भटक-भटककर तू यूं ही मर जाएगा और उसके बाद भी मुक्ति नहीं मिलेगी।

४७६) जिस मोह-मायारूपी रस्सी से यह जग बंधा हुआ है, तुम उसमें मत बंधो। जैसे आटा नमक न मिलाने पर स्वादहीन होता है, वैसे ही यह सोने के जैसा अनमोल शरीर भी मोह-माया के बंधन में बंधने के बाद स्वर्णरूपी नहीं रहता।

४७७) जिस प्रकार बंजारे के बैल अपनी पीठ पर बोझा लादे चारों दिशाओं में फिरते रहते हैं, उसकी पीठ पर तो खांड (चीनी) होती है किंतु खाने को भूसा ही मिलता है। उसी प्रकार सत्गुरु के उपदेशों से वंचित रहनेवाले लोग भी दर-दर भटकते रहते है।

४७८) हे मनुष्य। तू चतुराई क्यों करता है और इस चतुराई से मिलेगा भी क्या ? सत्गुरु के शब्द (ज्ञान) को तो तूने हृदय से लगाया नहीं। तोता कई गुणों को सीखता हैं किंतु मौका पाते ही बिल्ली उस तोते को खा जाती है अर्थात मूर्ख और अज्ञानी लोग गुरु से ज्ञान लेकर भी उसे समझते नहीं। ऐसे लोगों का जीवन व्यर्थ ही चला जाता है।

४७९) पहले तो बहुत ही बुरे कर्म कर लिए, संतजनों के गान को भी हृदय से नहीं लगाया। अब पछताने से क्या होता है ? जब तूने पेड़ ही बबूल का बोया है तो आम कहां से खाने को मिलेगा अर्थात जैसे करम करेगा वैसा ही फल मिलेगा।

४८०) इस संसार में तीन तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) में बहुत ही ताप है जिसके विकारों से बचा जा सकता है। इसके अनेक उपाय हैं किंतु अति महाबली ताप (प्रचण्ड ताप) तो संतजनों के बिना जा ही नहीं सकता। इसके लिए तो उन्हीं के श्रीचरणों में शरण लेनी पड़ेगी।

४८१) राम नाम (परम परमेश्वर) का हृदय से सुमिरन करो तथा सत्गुरु के उपदेशों का ध्यान करो। आत्मपूजा (वास्तविक पूजा) तो जीव दया है अर्थात सभी जीवों के प्रति दया-दीनता का भाव रखो। यही मुक्ति (मोक्ष) का सबसे अच्छा उपाय है।

४८२) प्रभु का नाम जपो, सुमिरन करो, गुरु का ध्यान करो तथा अपने मन को अपने वश में करो। यही बात तंत (परम सत्य) है। कई-कई ग्रन्थों को पढ़-पढ़कर मरो। लेकिन सच्चा ज्ञान तो गुरु ज्ञान ही है।

४८३) मान-अभिमान मत करो। जो सिर संतजनों के आगे नहीं झुकता उसे काट देना चाहिए। संतजनों का सदैव मान-सम्मान करना चाहिए, उनसे घमंड किस बात का करना। अत: मन के अहंकार को पूर्णत: त्याग दो।

४८४) काम (वासना), क्रोध, तृष्णा (लालच) को त्याग दो। मान-अपमान की भावना को अपने हृदय में मत रखो। ऐसा करोगे तभी सत्गुरु की दया तुम पर होगी और तब सिर के ऊपर से यम का भय भी दूर हो जाएगा। अर्थात मृत्यु पर भी तुम विजय पा लोगे।

४८५) यदि नाव में जल भरने लगे और घर में दौलत बढ़ने लगे तो तुरंत ही दोनों हाथों से उलीचिए। बुद्धिमानों की यही परख है। अत: कभी भी धन-दौलत का संग्रह न करें, इसे दान-पुण्य में लगा दें।

४८६) विदेशों में विद्या, संकट मे सद्बुद्धि एवम् परलोक में पुण्य ही काम आता है। यही सहायक धन जाने जाते है। लेकिन जिसके पास सदाचार रूपी शील है वह उसे हर जगह काम आता है। सुखी जीवन के लिये विद्या, बुद्धि, धन के बल से ज्यादा सदाचरण की आवश्यकता होती है, क्योंकि धनवान, बलवान तथा विद्वान भी उसके अभाव मे उन्मक्त हो सकते है। उसी कारण वे अपमानित व द्ररिद्र भी बनते है। रावण शक्तिशाली और विद्वान था लेकिन शील न होने के कारण उसने पर स्त्री हरण क्रिया जिससे विनाश को प्राप्त हुआ। पर राक्षसकुल में ही जन्म लेकर भी विभीषण शीलवान होने से राम की शरण में जाकर लंकाधीश बना। इसलिये व्यक्ति का ऐश्वर्य धन से नही उसके शील से तौलना चाहिये।

४८७) जो मनुष्य नित्य दिन-रात ईश्वर की ही भक्ति में लीन रहता है तथा जिसके घर में भगवद्चर्चा, कथा-कीर्तन होते रहते हैं, ऐसे सज्जन मनुष्य से अवश्य ही मैत्री करनी चाहिए। इससे मैत्री करनेवाले को ज्ञान की प्राप्ति होगी।

४८८) जीवन का लाभ केवल सौंदर्य, ऐश्वर्य बाहरी वस्तुओं मे ही नही है। धन व ऐश्वर्य की कुछ सीमाओं तक आवश्यकता जीवन में हो सकती है, लेकिन बिना परमात्मा के कुछ भी संभव नहीं है। कोई दुख नही चाहता, कोई जीवन मे तनाव नही चाहता, सभी यह चाहते है कि मेरे जीवन मे सुख ही सुख हो और कभी दुख न आए।

४८९) जिनकी वाणी तो शक्कर के समान मीठी होती है किंतु कर्म विष के समान अत्यंत कष्टकारी होते हैं। ऐसे दोगले लोग बहुत ही कष्टकारी होते हैं लेकिन जिनकी जैसी कथनी हो वैसी ही करनी भी हो तो ऐसे लोग श्रेष्ठ होते हैं। अत: कथनी और करनी में अंतर नहीं होना चाहिए।

४९०) सोना यदि किसी गंदी जगह पर भी पडा हो तो उसे उठा लेते है उसी तरह शिक्षा यदि किसी घटिया या अनाधिकारी प्राणी से भी मिले तो लेने मे संकोच नही करना चाहिये।

४९१) कभी-कभी कथनी ही कच्ची (सारहीन) हो जाती है जब करनी को उचित व सही ढंग से न किया जाए। इस प्रकार की बेतुकी कथनी और करनी के चक्कर में पड़कर तो अनंत (कितने ही) मूर्ख श्रोता और वक्ता मारे गए। कथनी और करनी का आचरण सदा एकसमान होना चाहिए।

४९२) कहने को तो कई शूरवीर हैं जो खोखले तीर बांधे इतराते फिरते हैं। किंतु जिन्हें विरह का बाण लगता है उनका मन बहुत ही व्याकुल रहता है। वह कथनी से अधिक करनी की तरफ ध्यान देते हैं और ऐसे ही लोग सच्चे शूरवीर होते हैं।

४९३) पहले स्वयं को परखिये और अपनी त्रुटियों को दूर कीजिए। तत्पश्चात दूसरों को ज्ञान की बातें बताएं। तभी वह ध्यान लगाकर आपकी बातों को सुनेंगे भी। अन्यथा तो आपकी कथनी व्यर्थ ही जाएगी। केवल भूसी कूटने से परिश्रम तो व्यर्थ का होता ही है, साथ ही हमें भी कुछ प्राप्त नहीं होता।

४९४) जो ज्ञान को कहने में (उपदेश देने में) चतुराई का प्रयोग करते हैं उनकी इस तरह की चतुराई तो चूल्हे में डालने योग्य ही है। भावना और भक्ति के बिना कुछ भी नहीं कहना चाहिए। इसके बिना तो सारा ज्ञान-ध्यान व्यर्थ ही है।

४९५) खुद ही उल्टे सीधे-पद जोड़कर साखी (कविता, छंद) बनाकर कह तो डाली किंतु साधन तो रोस (सूखा) ही रह गया अर्थात अनुभव की तो कमी रह ही गई। वह शुद्ध जल तो पीता नहीं, तालाब से निकालकर पीने की चाहत रखता है अर्थात गुरु ज्ञान को छोड़कर अपनी ही बातों को कहता फिरता है।

४९६) जहां पर अमीर लोग, वेदों के पाठ करनेवाले पंडित, दयालु राजा न हो, बीमार होने पर दवा व देख भाल करने का प्रबन्ध न हो तो ऐसे स्थानों पर रहना बेकार ही है। मित्रता उस स्थान के लोगों से करनी चाहिये जहां पर डर, शर्म, हया, चतुरता, त्याग जैसी आदतें अवश्य हो अन्यथा उस देश अथवा उन लोगों के पास रहना भी उचित नहीं है। यदि जहर में अमृत मिला हो तो भी उसे प्रसन्नता से पी लेना चाहिये।

४९७) धन मनुष्य के लिये जीवन यापन का मुख्य साधन है। धन अभाव में जीवन कष्टपूर्वक बीतता है। मनुष्य को चाहिये कि जंगली आदम खोर जीवों के बीच रहना पडे तो रहले। जहां पत्तों का भोजन और नदी का जल पीकर रहना है। घास फूस ही का बिछौना व फटे वस्त्रों को ही पहनना है भले ही वृक्षों की छाल को ओढ़ कर शरीर ढांकना पडे तो ढ़ांक ले लेकिन धनहीन होने के पश्चात अपने रिश्तेदार या बन्धुबान्धवों के बीच मे रहना सर्वथा गलत है क्योकि इसमे अपमान का जो कडवा घूंट पीना पडता है वह अत्यन्त असहनीय है।

४९८) मनुष्य को कथनी भी करनी के अनुरूप ही करनी चाहिए। जिस कार्य को वह कर नहीं सकता उस संदर्भ में उसे कुछ कहना ही नहीं चाहिए। करनी से पूर्व कथनी को सुधार लेना चाहिए।

४९९) ईश्वर से प्रेम करना हो तो माया से दूर रहो। सुवर्ण और कामिनी माया के रूप हैं। इन दो वस्तुओं में मन न जाये, ऐसा निश्चय करो। शरीर से पाप करोगे तो सजा होगी। मन से पाप करोगे तो भी सजा होगी।

५००) शरीर खेत है तो मन किसान। पाप और पुण्य दोनों बीज रूप हैं। जो भी बीज बोया जाएगा उसी का फल काटने को मिलेगा अर्थात जैसा कर्म होगा वैसा ही फल मिलेगा। मोह-माया में पड़कर पाप किए जाएं तो जीव को कष्ट होता ही है।

५०१) अज्ञानी सदैव मोह-माया के झूठे बंधनों में ही जकड़ा रहता है। कई उपदेशक लोहार बनकर इन बंधनों को काटने की कोशिश भी करते हैं किंतु मोह-माया का लौहबंधन इतना सुदृढ़ होता है कि कटता ही नहीं।

५०२) वास्तव में वे ही लोग श्रेष्ठ है जिनके हदय मे सर्वदा दया और धर्म बसता है, जो अमृत वाणी बोलते है तथा जिनके नेत्र नम्रता से नीचे रहते है। सर्वश्रेष्ठ मनुष्य वही है, जिसने मन रूपी राक्षस को अपने वश मे कर लिया है।

५०३) हर तरह के सुख-दु:ख देने को, अंदर से हमारा मन ही आदेश देता है। इस सुख-दुख को भोगने के समय भी यही मन बाहरी आवरण चढ़ाकर आगे आता है अर्थात हमारा मन ही सबकुछ है। इसे समय कहो या फिर कर्म, नसीब कहो या कोई भी अन्य नाम रखो। इस कर्म के हजारों नाम हैं और इन सबका सृजनहार मन ही है। अत: मन को सदा संयमित करके रखो।

५०४) बिना किसी श्रम के भगवान भी किसी को कुछ नहीं देता। हमें जो कुछ भी मिलता है वह हमारे द्वारा किए गए परिश्रम का ही प्रतिफल है। यदि हम खेत में बीज ही न बोएं तो उसमें फसल कहां से उगेगी। अर्थात परिश्रम के द्वारा ही जीव उदरपूर्ति कर सकता है।

५०५) हे मन। तू अपने पूर्व कर्मों अर्थात भाग्य को विस्मृत मत कर। तुझे जो कुछ भी लब्ध हो, उसे तू पूर्व कर्मों का ही फल समझ। पूर्व कर्मों के प्रतिफल स्वरूप तुझे सुख-दुखादि जो कुछ भी मिलता है, वह तो निश्चय ही मिलेगा। इसका तू किसी भी प्रकार से विचार मत कर।

५०६) हमारे भाग्य में हमारे कर्मों का जो भी फल लिखा है वह मिटाया नहीं जा सकता। अत: हे मानव। फल की चिंता छोड़कर गुरु चरणों की शरण ले और हरि नाम का सुमिरन कर सदा सीधे मार्ग (सत्य के मार्ग) पर चल तथा दया-धर्म को जीवन का उद्देश्य बना।

५०७) इस संसार में कोई भी तेरा बैरी (शत्रु) नहीं है। वास्तव में तेरे अपने विकार (बुरी आदतें) ही तेरे बैरी हैं। अपने इन विकारों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दे। तब तुझे कोई कुछ भी नहीं कहेगा। गली-गली में स्वतंत्रता से कहीं भी और कैसे भी घूम-फिर, कोई रोक-टोक नहीं होगी।

५०८) सृष्टिगत जीव जो भी क्रिया करता है वह कर्म कहलाता है अर्थात कर्म में करने का भाव समाहित है। कर्म का स्वरूप भी व्यापक है। कोई व्यक्ति स्वार्थवश कोई कर्म करता है तो कोई परोपकार के निमित्त कर्म करता है। लेकिन उच्च श्रेणी का कर्म वही है

जो बिना किसी फल की आशा के अर्थात निस्वार्थ भाव से किया जाए।

५०९) जब जीव स्वार्थ, मोह या आसुरी वृत्ति के कर्म करता है तो वह बार-बार सांसारिकता के चक्र में आबद्ध होता है। लेकिन जब वह परोपकार, निष्काम भाव से कोई कर्म करता है तो मोक्ष का उपाय करता है; और ऐसे कर्मों के कारण उसे संसार चक्र के पाश से मुक्ति मिलती है।

५१०) मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। अत: उसे ऐसा कर्म करना चाहिए, जिससे भवबंधन से सदा-सदा के लिए मुक्ति मिल जाए। ऐसा कर्म निजबोध ही है। अर्थात अपने स्वरूप का ज्ञान हो, ऐसा कर्म मनुष्य को करना चाहिए। यह तभी संभव है जब मनुष्य श्रद्धाभाव से योग्य गुरु की शरण ले और उनसे स्वरूप बोध का ज्ञान देने की प्रार्थना करे।

५१३) बिना करनी (कर्म) के अज्ञानी लोग ही दिन-रात कथनी करते फिरते हैं। वह दूसरों की कही बातों को ही इधर-उधर बोलते फिरते हैं। उनकी बातें ऐसी होती हैं जैसे गली के कुत्ते अकारण ही भौंकते रहते हैं। ऐसे मूर्खों की कथनी पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

५१४) सद्कर्मों के मार्ग पर चलते हुए यदि कोई गिर भी जाए तो वह दोषी नहीं कहलाएगा। इस मार्ग पर तो वैसे भी कई ठोकरें लगती हैं। जो इन ठोकरों के डर से बैठा रहता है वह इस मार्ग पर नहीं चल सकता। वह तो बैठा कोस ही गिनता रहेगा।

५१५) आग, पत्नी, सांप, राजा यह कभी क्रोध में आकर प्राणी की जान भी ले सकते है। राजा, आग, गुरु, इनसे दूरी रखना ही अच्छा होता है।

५१६) संसार में कुछ वस्तुये ऐसी होती है जो बिना रगडे या बिना दबाये अपना सही आनन्द नही देती। जैसे मेहन्दी यदि इसे रगडा नही जाये तो यह अपना रंग नही देती। ईख को जब तक पेला न जाय उसका रस नहीं निकलता व गुड़ चीनी शक्कर तैयार नही किये जा सकते। धरती पर जब तक अच्छी तरह हल न चलाया जाय तब तक भूमि उपजाऊ नही बनती न ही अच्छी फसल उत्पन्न होती। प्राणी को जैसी भी समयानुसार परिस्थिति मिले उसमें अपना निर्वाह कर ले।

५१७) जो जैसी करनी करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। सत्गुरु की सच्ची भक्ति करो। हृदय से की गई भक्ति ही श्रेष्ठ करनी है। जो ऐसा नहीं करता वह जन्म-जन्म तक दुखों को ही झेलता रहता है।

५१८) वह करनी ही क्या है जो गुरु की सहायता के बिना की गई हो अर्थात बिना गुरु ज्ञान और आशीर्वाद के करनी लक्ष्य तक कैसे पहुंच सकती है। बिना गुरु ज्ञान के जो जिस भी डाली पर पैर रखता है, वह झुक जाती है। अर्थात उसके सभी कर्म (करनी) विफल हो जाते हैं।

५१९) करनी के मैदान में कथनी स्वयं ही आ जाती है अर्थात अच्छे आचरण व गुणी लोगों में कथनी का गुण भी आ जाता है। कथनी तो पिसाई करने के समान है किंतु रहनी (रहन-सहन) वास्तव में जीवन को जीने का तरीका है।

५२०) मनुष्य में कितना ही सामर्थ्य क्यों न हो बिना किसी उद्यम (उद्योग, रोजगार) के वह दुखों को ही पाएगा। आसन बिछाकर निकट (पास में) भोजन रख लेने से कुछ नहीं होता। उसे मुख तक ले जाने के लिए हाथों को श्रम करना ही पड़ता है अर्थात पेट को पालने के लिए रोजगार (श्रम) बहुत ही आवश्यक है।

५२१) रिश्तेदार दु:ख के समय ही पहचाने जाते है। दोस्ती का संकट पडने पर ही मालूम होता है। पत्नी के प्यार की परीक्षा उस समय होती है जब व्यक्ति निर्धन हो जाता है। जो दु:ख और गरीबी में साथ देते है वे ही अपने सच्चे साथी है।

५२२) कामी मनुष्य काम-वासना में लगा रहता है और कामिनी (कामुक स्त्री) को ही अपना गुरु मानता है। उसके लिए वही सबकुछ होती है, जैसे लोभी के लिए सबकुछ उसका दाम (धन) होता है। अच्छे और इस भोग, वासना आदि विकारों से दूर रहनेवालों का गुरु कोई संतजन ही होता है और उन संतों का गुरु राम (परमपिता परमात्मा) होता है।

५२३) जहां पर काम-वासना है वहां पर नाम (गुरु भक्ति, सुमिरन) नहीं है और जहां पर नाम नहीं है वहां पर काम बसेरा करता है। दोनों कभी भी एकसाथ नहीं रह सकते। यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे रवि (सूर्य, उजाला) और रजनी (रात्रि) एकसाथ नहीं हो सकते। दोनों का अपना-अपना ठाम (ठिकाना) होता है।

५२४) कामी मनुष्य कभी भी गुरु का नाम नहीं भजता, उसका सुमिरन नहीं करता। इसी कारण उसके अंदर संशय का जो शूल (कांटा) है, वह निकल नहीं पाता अर्थात वह अज्ञानता में ही पड़ा रहता है। उसके सभी दोष क्षमा किए जा सकते हैं किंतु काम-वासना

नामक अपराध के लिए तो उसे कभी भी क्षमा नहीं किया जा सकता। उसकी गिनती न डाल में होती है और न ही मूल (जड़) में।

५२५) मूर्खों की संगत से तौबा करनी चाहिये। मूर्खों का संग करने से कई बार मानसिक कष्ट होता है। मूर्ख व्यक्ति जिद पर उतर आने पर अपनी ही बात सही कह कर कहने लगता है। लाख समझाने पर भी वह अपना ही राग अलापता है। आग का निवारण पानी से होता है, धूप का निवारण छाते से होता है, बैल एवम गधे का निवारण काठी से होता है, रोगों का निवारण औषधि से एवम विष प्रयोग या भूत बाधा का निवारण तन्त्र-मन्त्र से होता है, लेकिन मूर्खों का निवारण किसी से भी नहीं होता है इसलिये मूर्ख को कभी भी मुंह नहीं लगाना चाहिये। उसे कुछ सिखाना मूर्खता ही है, वह सिखाने वाले को ही मूर्ख बतायेगा। शायद रेत को पीस कर तेल निकल जावे, लेकिन हठी एवम् अडियल मूर्ख को कभी सन्तुष्ट करना सम्भव नहीं है इसलिये यह कथन ठीक है कि मूर्खों की संगत की तौबा।

५२६) कामी व्यक्ति के तन-मन में बिल्कुल भी लज्जा नहीं होती, उसके हृदय को तो कामरूपी बाणों ने साल (भेद) दिया होता है। मात्र एक काम-वासना ने सभी को अपने वश में कर लिया है। इसके वश में होकर सुर (देव), नर (मानव) तथा मुनिजन भी व्यथित हैं।

५२७) गंवार और मूर्ख लोग इस बात को नहीं मानते। संतजन हों या गृहस्थ जीवन जीनेवाला मानव, अर्थात कोई भी हो यदि वह कामी प्रवृत्ति का है तो उसका इस संसार से बेड़ा पार नहीं लगेगा। वह जीवनभर आवागमन में ही फंसा रहेगा। अर्थात उसे मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है।

५२८) कामी मनुष्य जिस प्रकार कामी विषयों को ही भोगता रहता है, वह पुन: कामी विषयों द्वारा ही जन्म लेता है। अर्थात वह जो करता है उसे वैसा ही भोगना पड़ता है। काम-वासना में पड़ जाने के बाद इससे बच पाना बहुत ही कठिन है। जो काम-वासना आदि विषयों से बचकर भागने में सफल हो जाता है, वही सच्चा भक्त कहलाता है।

५२९) नर-नारी काम आवेग में आने के बाद जब स्खलित हो जाते हैं, तब आत्मघात जैसी स्थिति हो जाती है। अर्थात उन्हें बाद में पछतावा होता है किंतु अज्ञानी यह बात नहीं समझते। वह तो अपनी काम-वासना में ही मग्न रहते हैं और यही दुखदायी स्थिति भी है।

५३०) चावल से दस गुनी शक्ति इसके आटे मे है। आटे से दस गुनी अधिक शक्ति दूध मे है इससे दस गुनी अधिक शक्ति शुद्ध घी मे है। इसलिये अधिक शक्ति पाने के लिये घी व दूध का प्रयोग सर्वदा वांछनीय है।

५३१) जो ब्राह्मण प्राकृतिक रूप से पैदा हुये फलों और अन्य पदार्थों को खा पीकर, इस संसार से दूर जंगल मे रहते हुये भगवान की पूजा, अर्चना करता है वही सच्चा भक्ति, महापुरुष, सच्चा ब्राह्मण कहलाने योग्य होता है।

५३२) कामावेग के पश्चात निस्सृत द्रव्य को तेज भी कहा गया है। यदि कोई काम आवेग में प्राय: ही स्त्रीभोग में लिप्त रहता है तो उसकी कांति क्षीण होने लगती है। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने भी सदैव काम पर विजय पाने का ही संदेश दिया है। कामुक व्यक्ति में निद्रा, आलस्य, प्रमाद जैसी बुराइयां भी घर कर लेती हैं, काम के प्रति समर्पित जीव को कभी तृप्ति नहीं होती, उसका जीवन अशांत ही रहता है।

५३३) यह पृथ्वी उन महान विभूतियों के आश्रय पर स्थिर है जो अपने परिजनों के प्रति सज्जनता, दूसरों के प्रति दया, दुष्टों दुर्जनों के प्रति कठोरता का व्यवहार करते है। विद्वानों के प्रति सहजता, शत्रुओं के प्रति वीरता दिखाते है व अपने बडों के प्रति सम्मान, साधुओं के प्रति सहनशीलता दिखाते है।

५३४) काल हर समय हमारे संग ही है, हम इससे बच नहीं सकते तो फिर जीवन से आस (आशा) किसलिए करना। दस दिन का यह जीवन है उसमें राम नाम का सुमिरन कर लो। इस शरीररूपी पिंजरे में जब तक सांस है तभी तक जीवन है उस पर तो काल का प्रहार होना ही है। अत: राम नाम लेकर अपना जीवन सुधार लो।

५३५) मैं तो इस जग में बिल्कुल अकेला हूं किंतु काल तो दो रूपों में मेरे पीछे है। इन दोनों से ही बचने का कोई उपाय नहीं है। यदि कुछ समय के लिए कालरूपी यम से बच भी गया तो उसका दूसरा रूप बुढ़ापा शत्रु बनकर सामने तैयार खड़ा हो जाता है, जो अनेक कष्टों को भी साथ लाता है।

५३६) समय के साथ-साथ (आयु बढ़ने पर) इस शरीर का बल भी घट जाता है (शरीर कमजोर हो जाता है)। बाल भी अपने रंग से पलटकर सफेद हो गए। अब भी संभल जाओ और अपने बिगड़े काम बना लो और राम नाम का सुमिरन कर लो, संतों की संगत कर

लो। जाते-जाते ही संभव है मुक्ति मिल जाए।

५३७) इस जग में लोग झूठे सुख (मोह-माया, भोग-विलास आदि) को ही सच्चा सुख समझते हैं और इसी को पाकर मन में खुशियां मनाते हैं। किंतु यह सारा संसार तो काल का चबेना (चना अल्पहार आदि) है। कुछ उसकी मुट्ठी में है और कुछ उसने अपनी झोली (गोद) में रखा है, जिसे वह समय-समय पर चबाता रहता है।

५३८) जरा (बुढ़ापा) ने आते ही अपना जोर (शक्ति) दिखाना शुरू कर दिया। ऐसी स्थिति में आंखों ने भी पीठ दिखा दी अर्थात वह भी कमजोर हो गईं (कम दिखाई देने लगा) आंखों के ऊपर उंगलियों की छाया (ओट) करके देखने पर आंखें कम ही देख पाती हैं।

५३९) यह मानव तो पूरा जीवन टूक-टूक (भ्रम के जाल में) करके ही जीता है और पल-पल कर सारा जीवन ही बीत जाता है। जीव तो इस संसार के जंजाल में ही फंसा रह गया और देखते-ही-देखते काल ने भी उसकी मृत्यु की घोषणा कर डाली। अर्थात सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ में ही बीत गया।

५४०) सांसारिक मोह के कारण कुशल-मंगल तो सबसे पूछता है। पर भला इस जग में कुशल (ठीक-ठाक) कौन है ? जरा (बुढ़ापा) का न अंत है और न ही मृत्यु से बचा जा सकता है। ऐसे में कुशल क्या हो सकता है अर्थात काल के क्रूर चक्र में तो सभी को फंसना है, इससे कौन बच सकता है ?

५४१) यह संसार एक दिन निश्चित रूप से काल के गाल में समा जाएगा। लोग इस संसार में जन्म लेते हैं और फिर अपना समय पूरा कर मर जाते हैं। फिर भी वह काल के इस सत्य को स्वीकार नहीं करते।

५४२) जो प्रतिदिन प्रात: उठकर मंदिर जाता है, पूजा-पाठ करता है और श्मशान को देखकर डर जाता है, काल ने उसे भी उसी चौड़े मैदान (श्मशान) में डाल दिया अर्थात काल के हाथों से कोई नहीं बच सकता। भले ही वह कितना ही पूजा-पाठ कर ले, भक्ति कर ले।

५४३) माली को अपनी ओर आते देखकर कलियां पुकारने लगती हैं। वह उससे डर जाती है। क्योंकि माली उनके लिए काल होता है। माली खिले हुए पुष्पों को तोड़ लेता है। यही देखकर कलियां कहती हैं कि आज तो पुष्प गए, कल जब हम खिलकर पुष्प बन जाएंगी तो हमारी बारी भी आ जाएगी।

५४४) इस जग में हर चीज पर काल का पहरा है। यहां पर जो भी उगता है उसका अंत भी होता है, जो भी फलता है (फल-फूल आदि) वह कुम्हलाता भी है, जो भी चुना (निर्माण किया) जाता है वह ढह भी जाता है। इसी तरह जो भी जन्म लेता है, मरता भी है।

५४५) बढ़ई को अपने पास आते देखकर वृक्ष रोने लगता है। मैं तो अपंग होने के कारण इस बढ़ईरूपी काल के हाथ से बच नहीं सकता। वह मुझे अवश्य ही काटेगा किंतु मेरे ऊपर बसनेवाले पक्षियों का क्या होगा अर्थात यहां हर संसार जीव मोह के बंधन में बंधा है, तभी तो उसे बिछुड़ने का दुख होता है।

५४६) यह जीव बहुत ही दूर से आया है अर्थात न जाने कितने जन्म लेकर यह जीवन पाया है और इसे जाना भी बहुत दूर है अर्थात मोक्ष प्राप्त करने के लिए न जाने कितने और जन्म लेने पड़ेंगे। भले ही यह बीच में (सांसारिक बंधनों में बंधकर) कुछ समय के लिए बस गया हो किंतु काल तो इसके सिर पर ही है।

५४७) चारों दिशाओं में पक्का और सुदृढ़ कोट (मोटी दीवार) था और अपना मंदिर (घर) भी नगर के मझार (बीच) में था। घर की हर खिड़की पर पहरा था और द्वार पर हाथी बंधे थे अर्थात सुरक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध था। चारों दिशाओं में हाथ में हथियार लिये सूरमा (शूरवीर) तैनात थे। चारों तरफ बड़े-बड़े शूरवीर खड़े थे। पूरा पहरा था। सभी इस तन की देखभाल कर रहे थे किंतु फिर भी वह बच न सका। आस-पास वीर महाबली योद्धा खड़े हैं और अपनी वीरता के ढोल बजा रहे हैं अर्थात सम्पूर्ण सुरक्षा से उन्होंने अपने स्वामी को घेर रखा है। देखते-ही-देखते काल इस शरीर को मारकर ले गया। काल ऐसा महाबली है, जिसके आगे किसी का वश नहीं चलता। सभी बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे। जब काल आया तो सबके बीच से, भरे महल से उठाकर उन्हें ले गया। कोई कुछ नहीं कर सका। काल को इस सुरक्षा प्रबंधों से कोई अंतर नहीं पड़ता। कितना ही कोई प्रभुता सम्पन्न हो, मृत्यु से उसका बचना संभव नहीं है। समय पूरा होने पर तो काल को आना ही है।

५४८) सबसे बड़ा सुख तो बस, राम (आत्मज्ञान) है। बाकी सब तो दुख-ही-दुख है। सुर, नर (मानव), मुनि, असुर (राक्षस) आदि

सभी काल के फंदे में फंसते हैं और अपने कर्मों को भोगते है। अत: जब तक जीवन है उसे राम के ध्यान में बिता दो।

५४९) यह काया तो कच्ची है, कभी भी टूट सकती है अर्थात नाशवान है। किंतु इसके अंदर का मन अथिर (अस्थिर, चंचल है। यह तो मोह-माया लोभ आदि के कर्म में ही फंसा रहता है। जैसे-जैसे यह अपनी लालसा पूर्ण करने हेतु फिर रहा है, वैसे-वैसे ही काल इसकी (मानव की) मूर्खताओं पर हंस रहा है।

५५०) इस संसार में सदैव दाता का स्थान ग्रहण करो। सब कुछ दे डालो और बदले की कोई चाह न रखो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा अर्पित करो, जो कुछ थोड़ा तुमसे बन सकता है वही दो, पर दुकानदारी के भाव से बचे रहो। न कोई शर्त रखो और न कोई तुम पर शर्त डालेगा, न तुम पर कोई बन्धन आएगा। जिस प्रकार भगवान् हमें स्वेच्छा से देते हैं, उसी प्रकार हम भी स्वेच्छा से दें।

५५१) जब जीवरूपी सवार प्राणरूपी घोड़े पर बैठकर देह नगर से चला अर्थात देह से प्राण निकल गए तब घर-कस्बे में रोना-पीटना मच गया। शरीर के इंद्रियरूपी दरवाजे उस समय बंद थे। लेकिन प्राण तब भी निकल गए।

५५२) काल मानव को जलाकर भस्म कर देता है और भस्म होकर वह राख बन जाता है। यह जीवन ही आने-जाने का नाम है। जैसे कोयला जलकर राख बन जाता है और फिर वही राख पुन: कोयला बन जाती है, उसी तरह यह मानव भी जन्म-मरण के बंधनों में बंधा हुआ है।

५५३) जिसके साथ गुरु का नाम है उसके मार्ग को भला कौन रोक सकता है ? उसने तो ज्ञान-ध्यान और परमेश्वररूपी खजाने को प्राप्त कर लिया है। अत: उसका तो आवागमन ही मिट गया अर्थात उसने जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त होकर अपने जीवनकाल में ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

५५४) विषय काल (कठिन, बुरा समय) तो अभी बहुत दूर है। पहले मन के अंदर बैठे संशय काल (अज्ञानता) को तो देखो। इसे कोई भी देखने, पहचानने की कोशिश नहीं करता और यह सबकुछ जलाकर धूल (मिट्टी) कर देता है। अर्थात जीवन को व्यर्थ कर देता है। अत: गुरु के चरणों में जाकर इस संशय को दूर करो।

५५५) यदि सत्य पर विश्वास न हो तो (जन्म-मरण का सत्य) स्वयं तिलकी (तिल की लकड़ी) को देखो। जल-बलकर कोयला बनने के बाद भी उसे जमता (पुन: उगते हुए) देखा जा सकता है। अत: इस मानव को भी जल-बल कर भी जन्म-मरण के बंधनों में बंधना ही पड़ता है।

५५६) धर्मराज (यम) के घाट (दरबार) में हर जीव को अपना हिसाब देना पड़ता है। धर्मराज से कुछ भी छिपा नहीं होता। वह गुरु के प्रिय भक्तों को पहचान लेते हैं। किंतु जिन पर गुरु की छाप नहीं होती ऐसे अज्ञानी साकट (निगुरे) का कोई निदान नहीं। उसे तो धर्मराज से मिलनेवाली पापों की सजा को भुगतना ही पड़ता है।

५५७) अज्ञानता रूपी काल जब तक शरीर में होता है जीवन को कष्ट ही झेलने पड़ते हैं। यह जीवन को जलाकर धूल (मिट्टी) कर देता है। इस संशय काल से वही दास (भक्त) बच पाता है जिस पर उनके हजूर (सत्गुरु) अपनी दया करते हैं। अर्थात सत्गुरु से शिक्षा पाकर भक्तजन अपने संशय को दूर कर ले तभी मुक्ति संभव है।

५५८) इस संसार में मुक्त भाव से रहो। मोह-माया, लालसा में मत पड़ो। ऐसा करने पर तुम्हें कोई भी बांध नहीं सकेगा। घाटजगाती (घाट पर कर वसूलनेवाला) भी क्या करेगा जब तुम्हारे सिर पर पोटली ही नहीं होगी अर्थात यम भी तुमसे किस चीज का हिसाब मांगेगा जब तुम्हारे सिर पर पाप की गठरी ही नहीं होगी। मोह-माया, लालसा में बहकर लोग इसके (चक्की के) दो पाटों के बीच में फंसकर मर रहे हैं। कोई भी इससे बच नहीं पाया है।

५५९) काल तो हर समय हाथों में तीर कमान लिए हमारे सिर के ऊपर ही फिर (मंडरा) रहा है। तुम इसका चिन्तन मत करो। तुम तो केवल गुरु के नाम को स्मरण रखो और मन से सकल (सम्पूर्ण) अभिमान को त्याग कर गुरु की शरण में जाओ। वही तुम्हें काल के बंधन से मुक्ति (मोक्ष) का मार्ग दिखाएंगे।

५६०) मोह-मायारूपी काल की चक्की निरन्तर चल रही है और सारा संसार इसमें पिसा जा रहा है। गुरु के ज्ञान-ध्यानरूपी रोड़ा ही इस चक्की में नहीं पिसता बल्कि वह चक्की के दोनों पाटों को ही उखाड़ देता है। अर्थात अज्ञानी मूर्ख लोग तो इस संसार में यूं ही

मर जाते हैं किंतु गुरु के शब्दों का अनुसरण करनेवाले मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

५६१) जिन झरोखों पर फूलों की सेज बिछाकर सोते थे अर्थात सम्पूर्ण भोग-विलास के साथ रहते थे वह सुख, वह फूलों की सेज, वह भोग-विलास अब दिखाई नहीं देते। यह सब तो पलभर में छिन गए अर्थात काल की मार से कोई नहीं बच सकता। अत: समय रहते सचेत हो जाओ और सत्कर्म करके अपने जीवन को सुधार लो।

५६२) काल-काल तो सभी कहते हैं किंतु काल की वास्तविकता (सचाई) को कोई भी नहीं समझ पाता। जबकि मृत्यु जैसी एकमात्र सचाई को लोग अपनी आंखों से देख रहे हैं। मन में जितनी भी कोरी कल्पनाएं होती हैं और जो भोग-विलास, मोह-माया, लालसा, अभिमान से जुड़ी होती हैं, उसे ही काल कहा जाता है।

५६३) अभी तो पगरा (लक्ष्य) बहुत दूर है और शाम हो गई अर्थात अभी तक कोई सत्कर्म भी नहीं किया और जीवन की सांझ (वृद्धावस्था, बुढ़ापा) आ गई। जन-जन के मत केवल गुरु के मत का ही पालन करें। जेसे गणिका (वेश्या) जन-जन से मित्रता करके भी बांझ रह जाती है, उसी प्रकार उनके (लोगों के) मतों, सुझावों पर चलने से जीवन की साधना विफल हो जाती है।

५६४) यह सारा जग ही काल (मृत्यु) से डरता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी काल के प्रकोप से बच नहीं पाए हैं। सुर (देवता), नर (मानव), मुनि (संतजन), सम्पूर्ण लोक यहां तक कि सात रसातल तक रहनेवाले शेषनाग भी काल से डरते हैं। काल के आगे किसी का भी वश नहीं चल पाता।

५६५) जीवन में सुख-दुख के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वस्तुत: सुख-दुख का समन्वित रूप ही जीवन है। कल तक जो स्वयं को शूरवीर कहा करते थे और युद्ध में जिन्होंने अपने जौहर दिखाए थे, वही आज श्मशान में शांत लेटे हैं। भाव यह है कि जीवन का अंत ही जीवन है। इसके विपरीत कुछ नहीं है।

५६६) मुख से निकली गार (गाली) तो अंगार के समान है, क्रोध उस अंगार की तपन है तथा निंदा उस आग में से निकलते धुएं की तरह है। जो भी इन तीनों विकारों से पूर्ण रूप से दूर है, वही साधु (संत जन) कहलाता है।

५६७) सभी घर क्रोध की इस अग्नि में जल रहे हैं। कोई भी मानव इससे अछूता नहीं है। सकल संसार ही इस आग में जल रहा है, किंतु दीन (नम्र), लीन (ध्यानी), भक्त अपनी भक्ति साधना के कारण इससे बहुत ही दूर हैं और यदि कोई इस क्रोध अग्नि से उबरना चाहता है तो उसे संतजनों की शरण में ही जाना चाहिए।

५६८) यह जग (संसार) तो काठ (लकड़ी) की कोठी (महल) के समान है, जिसकी चारों दिशाओं में क्रोध की अग्नि भभक रही है। जो भी इसमें रहेगा वह इस अग्नि में जलकर भस्म हो जाएगा। किंतु संतजन इस मोहरूपी अग्नि से बचकर अपनी भक्ति में ही मग्न हैं। यदि संसार के लोगों को भी इससे बचना है तो उन्हें संतजनों की शरण में ही जाना पड़ेगा।

५६९) इस जगत में अहंकार, क्रोध और काल के कारण बहुत ही अधिक धोखा है। अर्थात विकारों की कमी नहीं है। जैसे ही विकार मन में पनपने लगें उनसे बचने की चेष्टा करें। यह तो यमजाल के तुल्य है। समय रहते ही इस जाल को काट दो अन्यथा पछताना पड़ेगा।

५७०) क्रोध की उत्पात्ति का कारक काम ही है। जब व्यक्ति किसी के प्रति आकर्षित होता है तो उसकी कामना करने लगता है और उसे प्राप्त करने के अथक प्रयास भी करता है। लेकिन जब उस वस्तु की उसे किसी भी तरह प्राप्ति नहीं हो पाती तब वह क्रोधित हो जाता है तथा क्रोध के वशीभूत होकर अनर्थ भी कर बैठता है।

५७१) काम-क्रोध मनुष्य के लिए महाविनाशक हैं। इन पर तभी नियंत्रण पाया जा सकता है, जब सद्गुरु से आध्यात्मिक ज्ञान (आत्मबोध) प्राप्त कर उसी रीति से जीवनयापन किया जाए। इस तरह जीवन जीनेवाला शनै:-शनै: साधुता की ओर उन्मुख होने लगता है। तब फिर वह स्वयं काम-क्रोध का दास नहीं रह जाता बल्कि काम-क्रोध ही उसके दास हो जाते हैं।

५७२) योनियां मुख्यत: दो हैं। भोग योनि और कर्म योनि। मनुष्य जाति के अतिरिक्त जितनी भी योनियां हैं, सभी भोग योनियां कहलाती हैं। जबकि मनुष्य योनि में ही जीव कर्म में प्रवृत्त होकर भावी जन्म सुधार सकता है। लेकिन यह तभी संभव है जब वह जीवन में सद्गुरु धारण कर उनसे ज्ञान प्राप्त करे। बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक मनुष्य के मुख्य तीन गुरु होते हैं- पहला गुरु माता, दूसरा गुरु शिक्षक। इन दो गुरुओं से दीक्षित होकर मनुष्य जीवन के भौतिक सुखों को प्राप्त कर पाने में समर्थ हो जाता है लेकिन परलोक सुधारने

के लिए उसके जीवन में आध्यात्मिक गुरु (सद्गुरु) का होना परम आवश्यक है।

५७३) आध्यात्मिक गुरु से ज्ञान (आत्मतत्त्व) प्राप्त किए बिना उसका कल्याण संभव नहीं है। जब मनुष्य को आत्मतत्त्व का ज्ञान हो जाता है तब उसे लौकिक जगत में ही प्रापंचिक जगत (माया, मोह, लोभ, काम, क्रोध) से विरक्ति की अनुभूति होने लगती है तथा वह शांत (मौन) हो जाता है। मौन होना ही उसकी परम लब्धि है।

५७४) गुरु और भगवान दोनों एक समान हैं। गुरु के शब्दों (उपदेशों) को ही अपने अंदर समाए रखिए। गुरु मिलन हो तो उन्हें दंडवत प्रणाम करें किंतु यदि न मिले तो भी गुरु का ही ध्यान लगाए रहें। जीवन में गुरु ही श्रेष्ठ हैं और कोई नहीं।

५७५) गुरु के चरणों में कोटि-कोटि दंडवत प्रणाम करें। जैसे कीट भृंग को नहीं जानता किंतु अपने प्रभाव से कीट को भी अपने ही जैसा आचरण वाला बना लेता है। उसी प्रकार गुरु भी अपने प्रभाव से अपने शिष्य को अपने समान बना लेते हैं। शिष्य कैसा भी हो इस बात से गुरु को कोई अंतर नहीं पड़ता।

५७६) गुरु को साधारण मनुष्य की भांति समझनेवाले आंखों के होते हुए भी दृष्टिहीन होते हैं। ऐसे लोग अज्ञानता से भरे होते हैं और गुरु की महिमा को नहीं जानते। ऐसे लोग जीवन में सदैव दुखी ही रहते हैं और यम (काल) के कुचक्र में ही आबद्ध रहते हैं।

५७७) गुरु और भगवान एकसमान हैं। उनके केवल बाह्य रूप, आकार में ही अंतर है, अंदर से दोनों ही समान हैं। अहंकार को भूलाकर हरि भजन से ही हरि साक्षात दर्शन देते हैं।

५७८) जो लोग गुरु के गुणों का गान करते हुए सदैव प्रमुदित मन से रहते हैं, वह संसारिक प्रपंच से मुक्त होकर ईश्वर के सत्य स्वरूप को पा लेते हैं। अर्थात उनका मोक्ष हो जाता है।

५७९) गुरु को नारायण रूप में माना गया है। गुरु ज्ञान के भंडार हैं। ऐसे सत्गुरु की पवित्र वाणी से ही मन के सभी विकार समाप्त हो जाते हैं तथा मन को असीम शांति की प्राप्त होती है।

५८०) गुरु के श्रीचरणों में स्वयं को समर्पित कर उनसे ज्ञान की प्राप्ति करो। ज्ञान के बदले यदि दानस्वरूप शीश भी देना पड़े तो कम है। जो लोग इस बात को नहीं मानते वह मूर्ख व अभिमानी जीव सदैव अभिशप्त जीवन ही जीते हैं।

५८१) सदैव गुरु की आज्ञा का पालन करे। उन्हीं की आज्ञा से आए और जाए। गुरु की आज्ञा माननेवाला ऐसा शिष्य भी संत जैसा ही है और वह आवागमन से मुक्त हो जाता है। अर्थात मोक्ष को प्राप्त करता है।

५८२) गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती और अज्ञानता के कारण मोक्ष भी नहीं मिलता। बिना गुरु के सत्य और असत्य को भी नहीं पहचाना जा सकता। हमारे जीवन का कोई भी दोष गुरु के बिना नहीं मिट सकता।

५८३) गुरु के समान कोई दाता नहीं है और शिष्य के समान कोई याचक नहीं है। तीनों लोकों में ज्ञान ही एक अनमोल है जो कि गुरु अपने में समेटे हुऐ हैं। होनहार शिष्य ही याचक बनकर गुरु से उस शिक्षा को ग्रहण करता है तथा गुरु भी अपने शिष्यों को ज्ञान देकर उन्हें अनुग्रहीत करते हैं।

५८४) अज्ञानी शिष्य कुमति लिए हुए होता है। इस कुमति के कीचड़ को गुरु अपने ज्ञानरूपी पवित्र जल से धोकर शिष्य को ज्ञानी बना देते हैं तथा उसके सभी जन्मों के अवगुणों को मिटा देते हैं और उसका भविष्य संवार देते हैं।

५८५) गुरु और पारस के भेद को सभी संत जानते हैं। जैसे पारस के स्पर्श मात्र से लोहा स्वर्ण हो जाता है, वैसे ही गुरु के श्रीचरणों में आकर शिष्य भी गुण-ज्ञान से भरपूर होकर महान बन जाता है।

५८६) गुरु यदि लाख कोस दूर हो तब भी अपने ध्यान (सुरति) को गुरु के प्रति समर्पित रखो। गुरु की अमृतवाणी का सदैव जाप करते रहो। गुरु मन में ही समाए मिलेंगे।

५८७) गुरु के प्रति अपनी प्रीति को सदैव बनाए रखें। अपनी सेवा भावना से गुरु को प्रसन्न रखें। बिना प्रेम के हम गुरु को अपने से दूर पाएंगे, किंतु गुरु प्रेम उन्हें हमारे निकट ला देता है।

५८८) गुरु को सदैव सिर-आंखों पर रखिए अर्थात उन्हें भरपूर मान-सम्मान दीजिए। वह जो भी आज्ञा दें उसका पालन करें और अपनी श्रद्धा और विश्वास को गुरु के प्रति कभी कम न होने दें। ऐसा शिष्य गुरु के ज्ञान बल के कारण ही तीनों लोकों में सदा भयहीन रहता है।

HHH(५७७)HHH

५८९) गुरु की सेवा, संतजनों की बंदगी, हरि का सुमिरन (आत्मचिंतन) तथा संसारिक भोगों से वैराग-यही जीवन की सफलता का मूलमंत्र है और यह तभी मिलता है जब मनुष्य अपने कर्मों से अच्छा बनता है।

५९०) गुरु को कुम्हार व शिष्य को कुंभ (घड़ा) कहा गया है। जिस प्रकार कुम्हार घडे के सही निर्माण के लिए भीतर से हल्के हाथ का सहारा देता है और बाहर से कठोरता से उसे रूप देता है, उसी प्रकार गुरु भी कठोर अनुपालनों के साथ-साथ प्रेम सहित शिष्य को अनुशासित व शिक्षित करते हैं।

५९१) गुरु की मूर्ति को चंद्रमा सम और शिष्य की आंखों को चकोर सम कहा गया है। जैसे चकोर भावविभोर होकर चंद्रमा को निहारता रहता है, उसी प्रकार शिष्य को भी आठों पहर गुरु के प्रति ही समर्पित रहना चाहिए।

५९२) जिस तरह जल के अनुसार ही छोटी-बड़ी मछलियां होती हैं। (तालाब में छोटी, नदी में कुछ बड़ी तथा समुद्र में बहुत बड़ी-बड़ी मछलियां होती हैं।) वैसे ही जैसा कुल होता है, मानव गुण भी वैसा ही होता है। इसी तरह जिसका गुरु जैसा होगा वैसी ही उसकी बुद्धि होगी।

५९३) जिस प्रकार व्यक्ति को अपने परिवार से मोह होता है, उसी तरह यदि वह गुरु के प्रति भी प्रीति निभाए तो निश्चित ही उसके सभी कष्ट दूर हो जाएंगे। ऐसे जीव का कोई भी किसी तरह के बंधन में नहीं जकड़ सकता, उसे अवश्य ही मोक्ष मिलता है।

५९४) संतों के ज्ञान समागम से सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। सभी के प्रति मन में दया भावना तथा गुरुभक्ति से ही सच्चे विश्वास को पाया जा सकता है। सद्गुरु की निस्वार्थ सेवा तथा उनके चरणों की शरण में जाकर सभी कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।

५९५) यदि सम्मुख गुरु न होकर उनकी प्रतिमा हो तो गुरु और प्रतिमा में भेद नहीं समझना चाहिए। गुरु प्रतिमा की पूजा, सेवा-वंदना, प्रणाम आदि करने से भी सभी प्रकार की अज्ञानता का निवारण हो जाएगा।

५९६) हर व्यक्ति अपने बच्चों का भविष्य बनाना चाहता है, चाहे उसमें कितनी भी त्रुटियां हों। ठीक उसी तरह सद्गुरु मनुष्य को ज्ञानरूपी रस पिलाते हैं और उसका उद्धार करते हैं।

५९७) जिस तरह विधि-विधान से अपने इष्ट देवता की पूजा करते हैं और प्रभु की भक्ति में रम जाते हैं, उसी तरह गुरु की भक्ति करने से आत्मा निर्मल होती है और मन पावन होता है। गुरु मन के विषरूपी विकारों को दूर कर सकते हैं।

५९८) मन से सभी तरह के भ्रमों को निकालकर बालक की भांति ज्ञानरूपी दूध का सेवन करो। अहं (अभिमान) को त्यागकर गुरु के श्रीचरणों में जाओ-यम से भी मुक्ति मिल जाएगी। अर्थात सद्गुरु की सेवा मात्र से भी कष्ट दूर हो जाते हैं और मन निर्मल हो जाता है।

५९९) यदि प्रभु को मनाना हो तो गुरु के चरणों में जाओ। गुरु तुम्हें इसका मार्ग अवश्य बताएंगे। गुरु के रूठने पर आपको कोई सहायता नहीं मिल सकती क्योंकि जिसका गुरु नहीं, उसका परमात्मा भी नहीं।

६००) सांसारिक वैरभाव को भूलकर तथा मोहरूपी संसार को त्यागकर प्रेम-भाव से अपना तन-मन उस गुरु को समर्पित करो, जो आत्मज्ञान का अनुभवी तथा विषय-विकारों से दूर हो। ऐसे व्यक्ति का तो साहिब भी रखवाला होता है।

६०१) गुरु को प्रसन्न करने के लिए उनके बताए मार्ग पर ही चलें, गुरु को जिससे आनंद मिले वही उपाय करो। क्योंकि संतजनों से मिलनेवाले आत्मज्ञान का एक यही उपाय है और यह हर मनुष्य का पहला उद्देश्य होना चाहिए।

६०२) अनेक लोग शास्त्रों का अध्ययन कर पंडित बन जाते हैं लेकिन गुरु ज्ञान का उनमें अभाव रहता है। मात्र शास्त्रज्ञज्ञन से मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। मुक्ति तो तभी मिलती है जब सद्गुरु से सत्य शब्द का ज्ञान प्राप्त किया जाए। सत्य शब्द से यहां तात्पर्य आत्मबोध से समझना चाहिए। आत्मज्ञान के बिना सांसारिक प्रपंचों से जीव मुक्त नहीं हो पाता। यह आत्मज्ञान गुरु की शरण ग्रहण करने पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

६०३) सदैव गुरु के स्वरूप का ही ध्यान किया जाना चाहिए और गुरु के श्रीचरणों की पूजा करनी चाहिए। गुरु से प्राप्त मंत्र अर्थात सत्य शब्द का नित्य सुमिरन व ईश्वर के सत्य स्वरूप का दर्शन करना चाहिए। इस प्रकार एक शिष्य के लिए गुरु ही सर्वस्व होता है।

६०४) सम्पूर्ण रूप से आत्मज्ञानी गुरु अपने प्रिय शिष्य को अपने में ही समाहित कर लेता है। अर्थात उसे अपने जैसा बना लेता है। शिष्य भी पुत्र समान ही है, फिर भी पुत्र से श्रेष्ठ शिष्य को माना जाता है।

६०५) यदि मनुष्य को सद्गुरु मिल जाए तो उसका जीवन सफल हो जाता है। अर्थात गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान (आत्मतत्त्व) को प्राप्त

कर लेने पर मनुष्य के भीतर की कलुषताएं नष्ट हो जाती हैं और वह अलौकिक सुख का अनुभव करने लगता है। इतना ही नहीं, ऐसे मनुष्य को जीवन में किसी भी प्रकार के अभाव, अभियोग से त्रस्त नहीं होना पड़ता। इसका मूल कारण तृष्णाओं का नाश होना है। जब तृष्णाएं ही नहीं रहेंगी तब वह आपाधापी या बाहरी चकाचौंध की ओर नहीं दौड़ेगा।

६०६) यदि मनुष्य सद्गुरु की शरण में जाए, उनकी निस्वार्थ भाव से सेवा करे और ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा व्यक्त करे तो गुरु कृपा से वह आत्म-ज्ञान का लाभ प्राप्त करता है। देव, दानव, मानव अर्थात कोई भी क्यों न हो जब तक सद्गुरु के प्रति उनमें समर्पण, सेवा, निष्ठा का भाव नहीं होगा तब तक कल्याण संभव नहीं है। क्योंकि सद्गुरु ही सर्वोपरि हैं, उनसे बढ़कर सात द्वीपों, नौ खंडों और तीन लोकों में कोई भी नहीं है।

६०७) सत्गुरु ही सच्चे सूरमा हैं। उनका किसी से कोई बैर भी नहीं है और न ही वह युद्ध करते हैं। किंतु फिर भी अपने ज्ञानरूपी बाणों से अपने शिष्य की सभी बुराइयों को दूर कर देते हैं और कोई घाव भी नहीं होता। अर्थात शिष्य भी बुराइयों को दूर होते देख खुश होता है।

६०८) सत्गुरु की महिमा अनंत है, उनके द्वारा किए गए उपकार भी अनंत हैं। उन्होंने अपने ज्ञान के भंडार से हमें अनंत ज्ञान (उपदेश) प्रदान किया है। हमें सदा उन्हीं के बताए मार्ग पर चलना चाहिए।

६०९) इस जगत् में सत्गुरु जैसा अपना कोई नहीं है। इसके अलावा सभी रिश्ते स्वार्थपरक हैं। संतजनों के जैसा कोई भी परोपकारी नहीं है। हरि (आत्मज्ञान) ही इस जीव का सच्चा हितैषी है। हरिजन जैसी कोई जात नहीं है।

६१०) सातों द्वीपों, तीनों लोकों, इक्कीस ब्रह्मांडों में सत्गुरु के जैसा गुण संपन्न कोई नहीं है। अर्थात उनकी महिमा अपरंपार है। गुरु कृपा से ही सृष्टि जीवों का कल्याण संभव है।

६११) नि:सन्देह सत्गुरु ही सच्चे सूरमा हैं तथा वह अपने शिष्य की बुराईयों को अपने ज्ञानरूपी बाणों से दूर करते हैं। अर्थात गुरु कठोरता से भी पेश आते हैं। शिष्य को यह कठोरता सहनी चाहिए, भागना नहीं चाहिए। जो शिष्य इससे डरकर भाग गया वह कभी भी सफल नहीं हो सकता।

६१२) सत्गुरु सत्य का रूप हैं और सत्य के भेद अपने में समाए हुए हैं। वह शिष्य सौभाग्यशाली है जो ऐसे सत्गुरु की संगत में रहकर ज्ञान की प्राप्ति करता है और मोह-माया को त्यागकर अभिभूत होता है।

६१३) जो सत्गुरु के श्रीचरणों में नहीं आते, उनकी बार-बार हानि ही होती है। हर तरह की दुविधा से केवल सत्गुरु ही बचा सकते हैं। जो उनके चरणों से दूर भागते हैं वह अपना सर्वस्व खो देते हैं। क्योंकि तीनों लोकों में काल का ही राज है।

६१४) यदि सत्गुरु के दर्शन हो जाएं तो समझ लें कि सभी के दर्शन हो गए। लेकिन सत्गुरु के दर्शन न हों तो समझ लें कि किसी के भी दर्शन नहीं हुए। माता, पिता, पुत्र आदि तो हर घर में होते हैं, अत: इनके दर्शन भी सुलभ हैं। वास्तव में दर्शन तो सद्गुरु के होने चाहिए।

६१५) जो सत्गुरु की आज्ञाओं को नहीं मानते और उनका अनादर करते हैं उनका कुछ नहीं हो सकता। वह विचारों से भटके हुए होते हैं और जीवन में कभी भी सफल नहीं होते।

६१६) सत्गुरु से मिलन तभी समझो जब मन में ज्ञान का उजाला भर जाए। हमारे मन के सभी भ्रम जब टूट जाते हैं, तब मन निराला हो जाता है अर्थात मन में भ्रमों के रहते हमें सच्चा ज्ञान व दर्शन नहीं मिल सकता।

६१७) मैं सांसारिक मोह-माया के पीछे पड़कर अपना जीवन व्यर्थ ही गंवा रहा था। सत्गुरु से जब साक्षात हुआ तो उन्होंने ज्ञान के दीपक द्वारा मेरे जीवन को उजाले से भर दिया, जिससे सभी सांसारिक मोह-माया पलभर में ही दूर हो गई।

६१८) कितने ही लोगों ने शास्त्रों को न जाने कितनी ही बार पढ़ा, कई बार योग व यज्ञ आदि भी किया किंतु फल की प्राप्ति न हो सकी। वह आत्मदर्शन को तरसते ही रहे। कोई कितने भी उपाय क्यों न कर ले, पर सत्गुरु के बिना कोई भी जाप पूरा नहीं हो सकता।

६१९) अगर सत्गुरु को मन अर्पण कर दिया जाए तो तन स्वयं ही अर्पित हो जाता है। क्योंकि मन तो तन के साथ ही है। जब तन और मन दोनों ही सत्गुरु के श्रीचरणों में अर्पित हो जाए तो शिष्य के पास अब देने के लिए कुछ भी नहीं है।

६२०) यह जीव चार खानि (जन्म-मरण का चक्कर) में जीवनभर भटकता रहता है लेकिन पार नहीं लगता। यह फेरा (भटकन) उसका तब पलभर में दूर हो जाता है जब सत्गुरु के उपकार उस पर हो जाते हैं। अर्थात सत्गुरु के मिलने से ही इस जीव का जीवन

सफल हो पाता है।

६२१) तुम सत्गुरु की तन-मन से सेवा करो, जिस मोक्ष की तुम्हें खोज है वह सरलता से मिल जाएगा। बिना सत्गुरु के मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं है।

६२२) सभी तरह के बंधनों से मुक्त होने का इस जग में एक ही उत्तम उपाय है, और वह उपाय है साधुओं का संग तथा गुरु से प्राप्त ज्ञान। किंतु इसमें भी सबसे अच्छी बात है सत्गुरु के प्रवचनों को ध्यान लगाकर सुनना। उनकी अमृतवाणी से जीवन के सभी बंधन टूट जाते हैं।

६२३) यदि किसी को सद्गुरु मिल जाएं और वह उनसे सत्य ज्ञान को प्राप्त कर ले तो ऐसे शिष्य के कई जन्मों के पापों का शमन हो जाता है तथा वह सुखों से परिपूर्ण हो जाता है।

६२४) सत्गुरु की कृपा के बिना जीव महामोहरूप भवसागर में डूब जाता है। संसार-सागर की विकटता से सत्गुरु ही बांह पकड़कर उबार सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। अत: मनुष्य को सत्गुरु की शरण में ही स्वयं को समर्पित कर देना चाहिए।

६२५) जो सत्गुरु के उपदेश को मानता है, उस पर विश्वास करता है, उसका सदैव भला होता है। सत्गुरु वाणी के अनुसार जो सांसारिक भ्रम को त्याग दे, वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है। वह इस भवसागर को जीत लेता है।

६२६) जिनका चित्त साफ और मन निर्मल होता है तथा जो बुद्धिमान व धैर्यवान होते हैं उन्हें ही सत्गुरु की संगत प्राप्त होती है। ऐसे लोग जीवन में कभी भी धोखा नहीं खा सकते। उन्हें निश्चय ही लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

६२७) जो सत्गुरु के श्रीचरणों में रहकर भी भटक जाए और फिर किसी अज्ञानी के चरणों में जाकर शरण ले तो उस मूर्ख को सही मार्ग कौन दिखा सकता है। अंधे को जब अंधा मिल जाए तो प्रतिकूल मार्ग पर चलना स्वाभाविक ही है।

६२८) गुरु शब्द तो एक ही है किंतु गुरु-गुरु में भी भेद है। हर गुरु के अपने-अपने विचार अपनी अपनी वाणी होती है, किंतु उसी गुरु की सेवा करो जो शब्द का दांव बताए। अर्थात जो सांसारिक मोह-माया से मुक्त कराकर यथार्थ के दर्शन कराए।

६२९) जिस गुरु से राम नाम पाया है उस गुरु की सदैव सेवा करो। क्योंकि उस गुरु ने राम नाम देकर तुम्हारे हृदय का अंधकार दूर किया है। जैसे दीपक बिन घर में अंधेरा रहता है, वैसे ही सत्गुरु के बिना जीवन का अंधकार दूर नहीं होता।

६३०) जिस शिष्य को सम्पूर्ण ज्ञानयुक्त सत्गुरु नहीं मिलता उसे शिक्षा भी अधूरी ही मिलती है और फिर वह साधु का वेश धरकर घर-घर जाकर भिक्षा ही मांग सकता है। अर्थात अधूरा ज्ञान कल्याणकारी नहीं होता है।

६३१) जो गुरु हमारे मन का भ्रम न मिटा सके, हमें अज्ञानता के अंधेरे में भटकाए रखे और हम विभिन्न प्रकार की भ्रांतियों में ही उलझे रहें। ऐसे गुरु को झूठा समझकर त्यागने में देर न लगाएं। उसकी संगत में रहकर जीवन नष्ट ही होगा।

६३२) झूठे गुरु के मत अर्थात झूठे ज्ञान को तुरंत त्याग देना चाहिए, क्योंकि ऐसे शब्द (ज्ञान) का कोई द्वार नहीं होता। ऐसा ज्ञान शिष्य को सदा भटकाता ही रहता है। अत: सदैव ज्ञानी गुरु के श्रीचरणों में ही शिक्षा ग्रहण करो।

६३३) ईश्वर अपने भक्त, सद्पुरुष अपने आश्रित और पिता अपने पुत्र के सद्व्यवहार से ही प्रसन्न होते है। इन्हे किसी भी तरह का लोभ नही होता और न ही वे किसी प्रलोभन के आग्रही होते है। बन्धु बान्धव अच्छे खान पान से खुश होते है। ये खुले हृदय से आवभगत करने व सेवा भाव से ही सन्तुष्ट होते है। सच्चे ब्राह्मण तो मधुर व्यवहार से ही खुश रहते है। अपने कर्तव्य पथ का निश्चय न कर सकने वाले व्यक्ति को न तो घर मे सुख मिलता है और न ही बन मे। घर उसे आसक्ति के कारण काटता है और बन परिवार को छोडने, अकेलेपन की पीडा से व्यथित करता है।

६३४) सच्चे गुरु के प्रति ही मन को स्थिर कर दो अर्थात सत्गुरु से ही सच्ची शिक्षा मिलती है और वही मन की सभी जिज्ञासाएं समाप्त करते हैं। वह मन को चंचलता से हटाकर निश्चल बनाते हैं। इसके बाद तो न कहीं आना है और न कहीं जाना है अर्थात सभी बंधनों से मुक्त हो जाओगे।

६३५) ऐसा सत्गुरु चुनिए जो लोभ-मोह-भ्रम से एकदम दूर हो अर्थात सांसारिक बंधनों से पूर्णत: मुक्त हो। ऐसा सत्गुरु सांसारिक मोह-माया के सागर में दिखाई तो अवश्य देता है किंतु फिर भी वह सभी तरह के बंधनों से पूर्ण रूप से मुक्त होता है।

६३६) गुरु उसका नाम है जो शिक्षा से शिष्य को पूर्ण बनाए और शिष्य उसका नाम है जो गुरु से शिक्षा लेकर सफल बने। गुरु और शिष्य के पद की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इसके बिना न तो कोई गुरु है और न ही कोई शिष्य। दोनों को अपने-अपने पद की मर्यादा में रहना चाहिए।

६३७) गुरु शब्द दो अक्षरों से बना है **गु** अंधियारे अर्थात अज्ञानता को प्रदर्शित करता है। **रु** प्रकाश अर्थात ज्ञान को दर्शाता है। जिनके ज्ञान से शिष्य की अज्ञानता मिट जाए और उसके जीवन का अंधेरा छट जाए वही गुरु है।

६३८) धन के लोभी तो कई गुरु मिल जाएंगे। ऐसे गुरु अपने शिष्यों को केवल लोभवश आधी-अधूरी शिक्षा देकर ठगते हैं। वह राम नाम को बेचकर कई-कई शिष्य बनाने की आस रखते हैं। शिष्यों को ऐसे धूर्त गुरुओं से बचना चाहिए। ऐसे गुरु गुरुमर्यादा को भी भंग करते हैं और शिष्यों का जीवन भी नष्ट करते हैं।

६३९) गुप्त स्थान पर रखी किसी वस्तु के बारे में भेदी ही बता सकता है। किसी दूसरे को इस बारे में क्या पता। केवल गुरु ही ज्ञान का सच्चे भेदी है, जो शिष्य को परख लेता है। अत: वह अपने शिष्य को लखा (पहचान) लेता है। कई जन्मों के पंथ को वह पल में पार पहुंचा देता है।

६४०) जो मनुष्य पहले से ही बंधनों में जकड़ा हुआ हो और उसे गुरु भी प्रपंची मिले तो शिष्य-गुरु दोनों का ही कल्याण कैसे संभव है ? इसलिए बंधन मुक्त गुरु की ही सेवा-संगत करो ताकि वह शिष्य को अपने ज्ञान से बंधन मुक्त कर सके।

६४१) गुरु की करनी को गुरु ही भोगेगा और शिष्य की करनी को शिष्य ही भोगेगा। अत: दोनों को अपनी-अपनी मर्यादा का पालन करना चाहिए।

६४२) गुरु व शिष्य में महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है परस्परता की। यदि दोनों में से किसी भी एक में स्वार्थ का भाव पनप जाए तो किसी का भी भला नहीं हो सकता। अध्यात्म में गुरु व शिष्य को समान महत्त्व दिया गया है। दोनों ही समाज के लोगों के लिए प्रेरणा के प्रतिबिंब भी होते हैं। इसलिए सद्गुरु को अपने शिष्य से स्वार्थवश किसी भी प्रकार की सेवा नहीं करानी चाहिए। इसी तरह शिष्य को भी सेवा करते समय प्रतिफल की कामना नहीं रखनी चाहिए। आधुनिक युग में प्राय: देखा गया है कि सद्गुरु दुर्लभ होते हैं। तथा पाखंड रचनेवालों की भीड़ जुटी है। ऐसे पाखंडी स्वार्थी की कीच में आकंठ डूबे रहकर न तो अपना उत्थान कर पाते हैं और न शिष्य का ही कल्याण कर पाते हैं।

६४३) हमें ऐसा कोई नहीं मिला जो ज्ञान उपदेश देकर शिक्षित कर सके, हम तो इस भवसागर में डूबते ही रहे। कोई हमारे बाल पकड़कर बाहर निकालने भी नहीं आया। अर्थात हम तो गुरु की शिक्षा से वंचित ही रहे।

६४४) इस जग में ऐसा कोई नहीं है जिसे अपनी कोई बात भयहीन होकर कही जा सकते। जिससे भी अपनी व्यथा कहने जाओगे वह आपको डसने को आ जाएगा। अर्थात किसी के पास भी इतना समय नहीं है कि वह किसी की पीड़ा को सुन सके।

६४५) मैं देश-देश में तो बहुत घूमा और देखा कि मनुष्यों की यहां कोई कमी नहीं है। किंतु मुझे ऐसा कोई मनुष्य नहीं मिला जिसे देखकर मन में सुख की अनुभूति हुई हो अर्थात निस्वार्थी, परमार्थी लोगों का यहां अकाल है।

६४६) गुरु के प्रति स्वयं को सम्पूर्ण रूप से समर्पित कर देना चाहिए तथा उनकी निस्वार्थ भाव से सेवा करनी चाहिए। भूख-प्यास की प्रताड़ना को सहते हुए भी उन्हीं की सूरत को निहारते रहना चाहिए अर्थात गुरु की बंदगी ही जीवन की सफलता का रहस्य है।

६४७) शिष्य को अपने गुरु की पूजा करनी चाहिए और गुरु को अपने साधु-संगत को पूजना चाहिए। गुरु शिष्य का मत अत्यंत ही गंभीर विषय है। यह सभी जनसामान्य के सोचने का विषय नहीं है। अर्थात गुरु और शिष्य दोनों को ही अपने-अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए।

६४८) गुरु को सदैव निस्वार्थी होना चाहिए, उसे कभी भी शिष्य से किसी भी प्रकार के दान-दक्षिणा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। किंतु शिष्य ऐसा होना चाहिए जो अपना सबकुछ गुरु के प्रति ही समर्पित कर दे। अर्थात गुरु को गुरु दक्षिणा के लालच में शिक्षा नहीं देनी चाहिए और शिष्य को गुरु दक्षिणा देकर धर्म का पालन करना चाहिए।

६४९) स्वामी और सेवक दोनों को तन-मन से मिलकर साथ रहना चाहिए। दोनों में से कोई भी किसी प्रकार की कोई चतुराई

दिखाकर एक-दूसरे को रिझाने का प्रयास करेगा तो दोनों के लिए हानिकारक होगा।

६५०) अगर हृदय में किसी भी प्रकार का कपट आ जाए तो न ऐसा गुरु भला लगता है, न ही ऐसा शिष्य किसी को भाता है। ऐसा होने पर केवल दुख ही मिलता है। पत्थर की नाव पर चढ़कर कोई भी पार नहीं लग सकता, वह निश्चित ही डूबेगा।

६५१) जैसा गुरु मैं ढूंढ रहा हूं वैसा अभी तक नहीं मिला। जो आत्मज्ञानी व तीन गुणों (सत्व, रज, तम) से रहित हो तथा निर्गुण का साधक हो। ऐसे ही गुरु शिष्य का सुयोग्य विकास कर पाते हैं।

६५२) अच्छी तरह परख किए बिना कभी भी गुरु धारण नहीं करना चाहिए। ठीक वैसे ही जैसे पानी को पीने से पूर्व छान लेना चाहिए, जिससे उसमें विकार न रहे। जो मनुष्य बिना सोचे-समझे गुरु धारण करता है, वह बार-बार आवागमन के भंवरजाल में फंसता रहता है।

६५३) इस देह की सुंदरता और अच्छी माया को देखकर अभिमान मत करो। इस शरीर से बिछुड़ने पर इससे दुबारा मेल (मिलन) नहीं होगा। जिस तरह सर्प अपनी केंचुली को त्याग देता है और उसे पुन: धारण नहीं करता, उसी तरह यह मानव शरीर भी एक ही बार मिलता है।

६५४) जीव ने इस धूल (मिट्टी) को एकत्र करके उसी से शरीररूपी पुड़ी बांध ली है। यह जीवन तो मात्र चार दिन का है। इसके बाद तो यह मिट्टी का शरीर पुन: मिट्टी में मिल जाएगा।

६५५) यह संसार तो सेमल के पुष्प की भांति है जिसमें न तो गंध होती है और न ही जिसका कोई रंग होता है। अल्पकाल की व्यावहारिकता से ही पता चल जाता है कि यह तो झूठा जगत है। सत्यता तो कुछ और ही है।

६५६) यह शरीर तो जर्जर जहाज के समान है और उसका खेवनहार (नाविक) कूड़ा (मूर्ख) है। जो हल्के थे अर्थात विकारों से मुक्त थे वह तो इस भवसागर से पार हो गए किंतु जो अहंकार, मोह, माया, वासना आदि के भार को अपने सिर पर लादे हुए थे वह डूब गए।

६५७) इस संसार में बहुत से लोग मतिहीन (मूर्ख, अज्ञानी) होते हैं। राम नाम (आत्मज्ञान, आत्मदर्शन) को तो जानते नहीं और साधना, भक्ति, गुरु सेवा भी नहीं करते। इस संसार में आकर बस, यूं ही भटककर अपना जीवन व्यर्थ कर रहे हैं।

६५८) ओ मूर्ख मानव। उस दिन को याद कर जब तेरे पांव ऊपर थे और सिर नीचे (मां के गर्भ में होने की अवस्था) किंतु इस मृत्युलोक में आकर अब तू जगदीश (परमपिता परमेश्वर, सत्यनाम) को ही भूल गया।

६५९) जो दिन आज है, आवश्यक नहीं कि कल भी वैसा ही हो अर्थात हर दिन एकसमान नहीं होता। सुख-दुख, भला-बुरा, कभी भी और किसी भी दिन हो सकता है। अत: समझ सको तो अभी भी समझ लो, वरना काल तो तुम्हारे सिर पर बैठा ही है।

६६०) पंच प्राणरूपी पक्षियों (जीवन) का मानव ने अच्छी तरह से देखभाल कर पालन-पोषण किया है। किंतु एक दिन शिकारी काल का रूप धारण करके आया और इन सबको उड़ाकर ले गया। अर्थात काल से तो बचा ही नहीं जा सकता। हम कितनी भी कोशिश कर लें सब व्यर्थ है।

६६१) यह शरीर तो जर्जरी नैया है, जिस पर मानव ने सांसारिक विकारों का बोझा लाद रखा है। इस पर भी खिवैया (नाविक) से मित्रता नहीं है। तब भला यह जर्जरी नैया कैसे पार लग पाएगी ? इसके लिए तो मानव को गुरु रूप खिवैया की शरण लेनी चाहिए।

६६२) यह मानव शरीर तो समय के साथ-साथ क्षीण होता जाता है। अत: जब तक जीवन (ठौर) है इसे सुधार लो, अपना कल्याण कर लो ताकि मनुष्य जीवन सफल हो जाए। इसके लिए संतजनों की सेवा-भक्ति करो या फिर अपने गुरु की अमृतवाणी का गान करो।

६६३) ओ मानव। तू केवल राम नाम (सत्य नाम) का ही सुमिरन कर और नम्रता को हृदय में रखकर सत्य के मार्ग पर ही चल। जो लोग अहंकार-बड़ाई, मोह-माया में फंसे पड़े हैं उन्हें यह बहुत भारी पड़ेगा। वह डूबकर मरेंगे। अर्थात उन्हें मोक्ष नहीं मिलेगा, उनका आवागमन नष्ट हो जाएगा।

६६४) गाफिल (आवारगी, मस्ती) रहकर यह क्या कर रहे हो ? मोह-माया-वासना में ही अपना जीवन व्यर्थ कर रहे हो। जबकि काल तो हर पल के साथ तुम्हारे निकट आता जा रहा है। एक दिन वह आ जाएगा जब तुम्हारे कान पकड़कर ले जाएगा। जैसे बधिर बकरे को काटने के लिए कान पकड़कर ले जाता है।

६६५) एक दिन ऐसा आएगा कि सबसे बिछुड़ना ही पड़ेगा अर्थात मृत्यु तो निश्चित है। काल (मृत्यु) के लिए तो सब बराबर हैं। वह चाहे राजा, राणा, अमीर, गरीब या कोई भी हो। इस सत्य को जानते हुए भी लोग सावधान नहीं होते। जब इस जग को छोड़कर

जाना ही है तो क्यों नहीं अपना आना सफल बना लेते।

६६६) जिनके पास सम्पूर्ण भोग-विलास है, हर तरह की सुख-सुविधा है और खुशी की नौबत बजती रहती है। जिनकी महिमा की पताका बांधे गजराज फिरते रहते हैं। पर वह एक गुरु के नाम (सत्य ज्ञान) के बिना पूरा मानव जीवन ही हार जाते हैं। उनके सभी सुख मिथ्या होते हैं और वह इसी झूठ को सत्य मानकर अपना जीवन व्यर्थ कर लेते हैं।

६६७) अच्छे-दिन (सुख के दिन) तो बीत गए किंतु गुरु की भक्ति, उनकी सेवा नहीं की। अब तो जीवन का अंतिम समय है, पछताने से क्या होगा। जब चिड़ियां सारा खेत ही चुग गईं तो बाद में सुरक्षा के उपाय करने का क्या लाभ ? अर्थात जीवन के रहते हुए सत्कर्मों को नहीं किया तब मृत्युशैया पर पड़ जाने के बाद कैसा पछतावा करना।

६६८) आज कहते हैं कि मैं कल से भजन-साधना करूंगा और जब कल आता है तो इसे पुन: कल पर टाल देते हैं और कल है कि कभी आता ही नहीं। इसी आज-कल करते-करते वह (मानव) अवसर को खो देता है और काल का ग्रास बन जाता है।

६६९) धर्म के लेन-देन, व्यापार के हिसाब, विद्या एवम साहित्य के संग्रह में खाने-पीने के व्यवहार में जो लोग संकोच नहीं करते वे सदा सुखी रहते है।

६७०) जो भी काम करना है उसे कल पर मत टालो, आज ही कर डालो। क्योंकि आज सबकुछ तुम्हारे साथ है। इस उत्तम समय को मत गंवाओ। कल करने का बहाना बनाकर आलसी मत बनो। कल तो काल के हाथ में है। कल किसने देखा है अर्थात कल का कोई भरोसा नहीं, जो करना है आज ही कर लो। पल भर का तो भरोसा नहीं है और मनुष्य कल (भविष्य) के लिए प्रबंध करता रहता है। जैसे तीतर को अचानक बाज आकर मार देता है, ऐसे ही न जाने कब काल हमें अचानक ग्रस लेगा।

६७१) रात सोते-सोते व्यतीत कर दी और दिन खा-पीकर, मौज-मस्ती में बिता दिया। अर्थात सारा जीवन यूं ही व्यर्थ गंवा दिया। यह मानव जीवन तो अनमोल हीरे की भांति था। किंतु मानव ने इसे अपने कर्मों (दुष्कर्मों, मोह-माया, भोग-विलास आदि) से कौड़ी का कर दिया।

६७२) जो अवसर (मौका) तुम्हारे पास था, उसमें तुम चेते (संभले) नहीं। बस, पशु की तरह इस देह (शरीर) को पालते रहे। (पशु के समान केवल खाते रहे) और एकमात्र सत्य नाम आत्मज्ञानरूपी राम नाम को नहीं पहचाना। अब अंत समय में मुंह में मिट्टी ही पड़ेगी अर्थातु दुख और कष्टों का अथाह भंडार मिलेगा।

६७३) जिसने अपनी जीभ को (अपने वचनों को, बोलों को) अपने वश में कर लिया, उसने तो सारे संसार को ही अपने वश में कर लिया। ऐसा न करने पर अर्थात उल्टा-सीधा बोलने पर मन में अवगुण पैदा होते हैं, यह बात सभी संत-सुजान, ज्ञानी-ध्यानी कहते हैं। उनका कहना कभी मत टालो और सदैव सत्य वचनों को बोलो।

६७४) क्या खाना और सोना ही जीवन है ? इसके अलावा कोई और बातें नहीं होतीं। बस, पशु के समान ही खाने और सोने में सारा जीवन बिता दिया। सत्गुरु के शब्दों (ज्ञान, उपदेश) को ही भुला दिया, जो आदि से अंत तक (जन्म से मृत्यु तक) एकमात्र सच्चा साथी है।

६७५) पांच तत्त्वों (पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल और आकाश) से बना यह पुतला जिसे मनुष्य नाम से जाना जाता है, ने चार दिन के जीवन के लिए ही मोक्ष मार्ग को रोक रखा है अर्थात यह मानव अपने छोटे-से जीवन में अपने भोगों के पीछे ही लगा रहता है और बिना मोक्ष के ही मर जाता है।

६७६) मानवरूप में जन्म लेने के बाद तूने एकमात्र सत्य राम नाम (आत्मदर्शन) को नहीं जाना। अब की बार तूने इस अवसर को खो दिया तो बहुत पछताएगा। तेरी वही हालत होगी जो कुम्हार मिट्टी की करता है। मिट्टी को कुम्हार के पास जाने के बाद उसकी खूब लातें खानी पड़ती हैं।

६७७) इस घर का रखवाला तो बहरा है तभी तो भेड़ सारा खेत खा गई। अर्थात इस मानवरूपी घर का रखवाला यह मन तो बहरा है कि जिसे ज्ञान-ध्यान उपदेश आदि सुनाई नहीं देते और वह विकारों में ही पड़ा रहता है। अब भी समय है जो कुछ बचा है उसे बचा ले और अपना जीवन संवार ले।

६७८) इस संसार में मानव बनकर जन्म लेने के बाद हमने क्या किया और आगे जाकर क्या करेंगे ? अब तो हम न यहां के रहे और

न वहां के। हमने तो अपना मूल (जड़, मोक्ष) भी खो दिया अर्थात इस संसार में आकर मोह-माया-वासना में ही लगे रहे। न इनका त्याग किया और न ही भक्ति साधना करके मोक्ष सुरक्षित किया।

६७९) इस संसार में तो मात्र धोखे ही हैं और यह जीव भी इन्हीं धोखों में पड़कर अपना जीवन समाप्त कर लेता है और जब तक जीवित रहता है तो कुटुंब और कुल के बंधनों में बंधकर रहता है। सोचो। तब इस कुल की क्या लाज रहेगी जब तुम्हारे कुल के ही लोग तुम्हें श्मशान ले जाएंगे।

६८०) सांसारिक बंधनों में पड़कर तू राम नाम (सत्य नाम) को तो पहचान न सका। बस, अपने परिवार को ही पालने में सारा ध्यान लगाए रहा और इन्हीं सब धंधों में पड़कर एक दिन तू मर भी गया। न तो मोक्ष मिल पाया और न ही परिवारवालों ने तुझे याद रखा (यश न मिला)।

६८१) यह तन तो कच्चे कुंभ (घड़े) के समान है जिसमें मानवरूपी यह जीव (आत्मा) वास करता है। इन नयनों से चारों तरफ निहार लिया (अच्छी तरह से देख, सुन, सोच लिया) और यह पाया कि इस जीवन की कोई आस नहीं है, यह तो कभी भी समाप्त हो सकता है और चारों तरफ से (दिशाओं से) यह चोट ही खाता रहता है जिस कारण यह कभी भी टूट सकता है। इसकी यह स्थिति केवल गुरु के नाम (ज्ञान) को ग्रहण न करने के कारण हुई अर्थात गुरु के बिना यह मानव जीवन व्यर्थ ही है।

६८२) कुल के अभिमान, मोह को त्याग दो तो सारा जीवन सुधर जाएगा। लेकिन कुल का अभिमान करने से तो यह जीवन यूं ही नष्ट हो जाता है। राम (आत्मदर्शन, ज्ञान) भी उन्हें ही प्राप्त होता है जो कुल के मोह और अभिमान से दूर होते हैं। ऐसे लोगों के लिए तो कुल, वर्ण आदि सब विलीन हो जाते हैं।

६८३) यह तन तो कच्चे कुंभ (घड़े) की भांति है, जिसे मानव अपने मोह-माया के स्वार्थी में साथ लेकर फिर रहा है। किंतु जब कालरूपी एक टपका (झटका) लगेगा तो यह तुरंत ही फूट जाएगा और तब हमारे हाथ में कुछ भी नहीं रहेगा।

६८४) इस दुनिया से दोस्ती और मेल-मिलाप रखने से भजन में भंग (विघ्न) पड़ता है। केवल एक अकेले राम (आत्मस्वरूप) से मित्रता करो और उसी के भजन में मगन रहो या फिर संतजनों की भक्ति करो, उनकी सेवा करो अर्थात सांसारिक मोह-माया में पड़कर अपनी भक्ति साधना को नष्ट मत करो।

६८५) स्वच्छ कपड़े पहनकर, भोग-विलासरूपी पान-सुपारी खाकर लोग अहंकार में डूबे रहते हैं किंतु यह सब तो व्यर्थ ही जाना है। गुरु की भक्ति बिना तो ऐसे अहंकारी अपने कर्मों (दुष्कर्मों) के बंधनों से बंधकर सीधे यमलोक ही पहुंचते हैं।

६८६) कुल-जाति के अहंकार में पड़कर, हंस के समान मिले इस मानव जीवन को तूने बिगाड़ दिया। इस कुल-जाति की तब क्या लाज रहेगी जब अपने दुष्कर्मों के कारण तू चार पैरों का हो जाएगा (यह मानव बिना गुरु भक्ति, सुमिरन के पशु के समान ही होता है)।

६८७) मोर-तोर (तेरा-मेरा) के स्वार्थों में ही इस संसार के लोगों के गले बंधे पड़े हैं। जो गुरु के सच्चे दास (भक्त) हैं, केवल वही इन बंधनों से मुक्त हैं। उन्हें अपने गुरु के नाम का सहारा मिला हुआ है।

६८८) एक घर तो इस संसार में शरीर के रूप में है और दूसरा घर (परम धाम) ही वास्तविक घर है। इस पृथ्वी पर जीवन पूरा करके तो हमें इसी घर में आना है। अत: इस बाजार (संसार) में अपने कर्मों को करते रहो। जब अपने धर्म, कर्म, भक्ति, साधना (सत्कर्म आदि) पूरे हो जाएं तो जल्दी से यहां से उठकर चल दो।

६८९) जो लोग (भोग-विलास, मोह-माया के कारण) सुगंधित द्रव्यों को अपने अंगों पर लगाते थे और बड़े-बड़े महलों पर मखमल के बिस्तरों पर सोते थे, वह लोग तो सपने में भी नहीं दिखाई देते। देखते-ही-देखते वह काल के गाल में समा गए। अर्थात मृत्यु पश्चात कोई (अपने भी) किसी को याद नहीं करता।

६९०) इस जग में आकर मानव मैं-मेरा, तू-तेरा के चक्कर में पड़ा रहता है और अपने मूल (मोक्ष) का विनाश कर देता है। मैं, मेरा आदि तो पैर की बेड़ियां हैं और यही बेड़ियां बाद में गले की फांसी भी बन जाती हैं।

६९१) जिन्हें इस वास्तविकता का पता होता है कि वह इस संसार में कुछ ही दिनों के लिए हैं, उन्हें तो उस घर में ही रहना है, (मृत्यु पश्चात मोक्ष ही प्राप्त करना है) वह लोग सांसारिक बंधनों में नहीं पड़ते। वह तो इस जग में ऐसे ही रहते हैं जैसे पराये घर में रह रहे हों

और उसके बावजूद अपने मन को वहां से उठा रखते हैं।

६९२) चित्त को संयमित कर अति महीन सूत कातो अर्थात भक्ति भाव से गुरु के ज्ञान को अर्जित करो। यह बहुत ही अनमोल है (बारीक सूत महंगा बिकता है) इसका ग्राहक तो राजा राम (परमपिता परमेश्वर, आत्मदर्शन) ही है, कोई और तो इसे ले भी नहीं सकता।

६९३) जिस तरह जुलाहा कपड़ा बुनते समय सूत को चलाता (पिरोता) है तो नली में लगे धागे का धीरे-धीरे अंत होता जाता है। उसी तरह इस मानव का भी समय बीतने के साथ-साथ अंत निकट आता जाता है। अत: जितना दौड़ सकते हो दौड़ लो।

६९४) यह मानव शरीर तो सराय की तरह है और मन इसका पहरेदार है। इच्छाएं, लालसाएं इसमें अतिथि की तरह हैं। (अच्छी-बुरी दोनों तरह की लालसाएं मन में जन्म लेती हैं किंतु यह मानव के ऊपर है कि वह किसको धारण करता है और किसको त्यागता है) मानव को इस मोह-मोया में नहीं फंसना चाहिए। इस संसार में कोई किसी का नहीं होता।

६९५) इस जग में मेरा कोई साथी नहीं है। यहां तो सभी लोग अपने-अपने स्वार्थों में पड़े हैं। मन में किसी के प्रति प्रतीति नहीं है और न ही हृदय में किसी के प्रति विश्वास है। सभी स्वार्थी हैं। केवल अपने-अपने लाभ की ही सोचते हैं।

६९६) काल चक्र की चक्की तो बहुत ही तेज दिन-रात लगातार घूम रही है। सगुन और अगुन (गुणवान और निर्गुण) इस चक्की के दो पाट हैं जिनमें सभी जीव पिसते जा रहे हैं अर्थात समय के साथ-साथ मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह संसार चक्की की तरह निरंतर सबको पीस रहा है। इसी प्रकार दिन और रात चक्की चलती रहती है जिसमें सारा संसार पिसता रहता है, कोई भी शेष नहीं रहता। चक्की में संसार का जो भी दाना जाता रहता है, पिसता जाता है। इसी प्रकार संसार का प्रत्येक प्राणी धीरे-धीरे नाश की ओर अग्रसर है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, तपस्वी, योगी भी काल से नहीं बचे। जिनकी एक आवाज से पर्वत फट जाते थे तथा जो एक घूंट में पूरा समुद्र पी लेते थे, ऐसे श्रेष्ठ मुनिवर भी पृथ्वी पर नहीं बचे फिर इस जीवन का क्या गर्व करना। साधारण मनुष्य के जीवन की तो बात क्या बड़े-बड़े मुनि भी अमर नहीं रहे।

६९७) जिस दुनिया के साथ रहकर तूने अपना दीन गंवा दिया (सत्कर्मों का समय गंवा दिया), आखिरी समय में वह दुनिया भी तेरे साथ नहीं रही। इस मूर्ख मानव ने स्वयं ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली अर्थात इस दुनिया के चक्करों में पड़कर अपने मोक्ष को भी नष्ट कर डाला।

६९८) भोगी और विलासी लोगों से मिले और खुद को भी वैसा ही बनाया और आपस में खूब बक्वास (इधर-उधर की बातें) की। लेकिन यह सब करके उन्हें क्या मिला ? यह तो वैसे ही है जैसे कोई बांझ खाली पालने को झूलाती रहती है। इसमें क्या स्वाद (आनंद) हैं ?

६९९) ओ बावले (पागल) मानव। तू ऐसा मत सोच कि यहां पर हर कोई तेरा अपना है। यह प्राण (जीव) जो हमारे शरीर से बंधा हुआ है वह तक हमारा नहीं है अर्थात इस जग में कोई किसी का नहीं होता। सभी स्वार्थ की डोरी से बंधे हैं और एक दिन साथ छोड़ देते हैं।

७००) राम भजना है तो अब भज लो, बाद में कब भजोगे अर्थात राम नामरूपी सत्य ज्ञान को समय रहते गुरु के श्रीचरणों में जाकर प्राप्त कर लो। बाद में तो काल ही आता है और इस काल की तो लीला ही अनूठी है। जो आज हरे-हरे वृक्ष हैं, वह कल सूखकर ईंधन (जलाने योग्य) बन जाएंगे।

७०१) जो इस मन को अपने ज्ञान-ध्यान में स्थिर कर लेता है (वश में कर लेता) वही सच्चा मानव कहलाता है और यही उसकी सबसे बड़ी पूंजी होती है। मृत्यु के बाद तो वह खाली हाथ ही जाता है। हाथी, घोड़े, महल, धन, दौलत आदि तो सब यहीं छूट जाते हैं। अर्थात साथ तो केवल कर्मपूंजी ही जाती है।

७०२) इस संसार में सभी लोग दुखों के भय से ही भक्ति करते हैं और इसी भय से पूजा-अर्चना (सुमिरन) भी करते हैं। वास्तव में यह भय तो जीवों के लिए पारस के समान है जिसके कारण मानव दास (भक्त) बन जाता है। अत: इस संसार में सभी निर्भय होने चाहिए ताकि इस भक्ति मार्ग से भटक न सकें।

७०३) ओ भंवरे। मैंने तुझे कितनी बार रोका है कि बार-बार वनों में जाकर पुष्पों की सुगंध मत ले। कभी-न-कभी किसी कली में बंद हो जाएगा और तड़प-तड़प कर अपने प्राण दे देगा अर्थात अपने मन को मोह-वासना से दूर रखो अन्यथा किसी कामिनी के रूप-जाल में फंस गए तो कहीं के भी नहीं रहोगे।

७०४) निद्रा, आलस्य, प्रमाद, दुराचार, विषयासक्ति ये सब मनुष्यता को नष्ट करने वाले दुर्गुण है। इनसे ग्रसित व्यक्ति मानवोचित कर्तव्यों से वंचित हो जाता है।

७०५) मनुष्य के हृदय में भय के बिना (दुख, कष्टों और मृत्यु का भय) भाव (श्रद्धा भाव) उत्पन्न नहीं होता और इसी भय से लोग पूजा-पाठ और भक्ति करते हैं। जब मनुष्य के हृदय से सभी किस्म के भय समाप्त हो जाएंगे तो सारा नैतिक रस, मान मर्यादाएं, भक्ति भावना सब समाप्त हो जाएंगी।

७०६) अन्न और जल का दान सभी दानों मे श्रेष्ठ माना जाता है। अन्न और जल ही जीवन का आधार है। अन्न बल और सुख का साधन है इसलिये सदपुरुष अन्न को अन्नदाता, प्राण दाता कहते है। जल भी जीवन है। तिथियों मे द्वादश तिथि सर्वश्रेष्ठ है और गायत्री मन्त्र से बढ़ कर दूसरा मन्त्र नहीं है। गायत्री मन्त्र से बढ़ कर जप, तप, ज्ञान और यज्ञ कुछ भी नहीं है। इस प्रकार जन्म देने वाली माता के समान किसी देव को नही माना गया। मां का स्थान देवताओं से भी ऊंचा होता है। अत: इस जीवन को सफल व सुखद बनाने के लिये अन्न, जल का दान करते हुये, द्वादशी का व्रत धारण करना, गायत्री मन्त्र का जाप करना तथा मां की सेवा-सुश्रूषा करने का नियम हर बुद्धिमान पुरुष को अपनाना चाहिये, इससे मुक्ति प्राप्त होती है।

७०७) उस परम परमेश्वर के नाम के कारण ही दीपक (शरीर) की बत्ती (जोत) जल रही है (अर्थात शरीर में प्राण हैं)। किंतु जब दीपक में तेल घट जाता है तो बत्ती बुझ जाती है अर्थात समय के साथ जब काल आता है तो यह प्राण शरीर से निकल जाते हैं और तब यह निर्जीव शरीर दिन-रात सोता ही रहता है।

७०८) यह संसार तो झूठा है। यहां सभी के अपने-अपने स्वार्थ हैं। कोई भी अपना मित्र-साथी नहीं है। अत: इस संसार के बंधनों से मुक्त हो जाओ और एकमात्र सत्य नाम (राम नाम) को पहचान लो। तभी इस भवसागर से तर सकोगे अर्थात मोक्ष पा सकोगे।

७०९) हे मतिहीन मछली। तू इस शरीर को बचा नहीं पाई, क्योंकि तू सरोवर की गहराई तक जा ही नहीं पाई। जहां तक कालरूपी जाल (मछली फंसानेवाला जाल) नहीं पहुंच सकता। अर्थात इस मूर्ख मानव ने कभी गहराई से ध्यान, साधना, भक्ति आदि नहीं की, इसलिए वह काल से बच नहीं सकता।

७१०) बारी-बारी से समय आने पर तेरे सभी मित्र-बंधु, रिश्तेदार आदि इस संसार को छोड़कर जा रहे हैं, अब जल्दी ही तेरी बारी भी आनेवाली है। इसलिए तू सचेत हो जा और अपना बचा हुआ जीवन सुधार ले।

७११) विषय वासना में उलझकर तूने अपना पूरा जन्म गंवा दिया, अब पछतावा करने से कोई लाभ नहीं है। जब समय था तब तो तूने कुछ सोचा नहीं, अब अपनी करनी को याद करके रोने से कुछ मिलनेवाला नहीं है। तेरा सुधरने का समय निकल चुका है।

७१२) अरे मछली। मोह के वशीभूत होने के कारण ही तू तालाब या सरोवर को नहीं छोड़ पाती किंतु धीमर (मछली पकड़नेवाला) ही तेरा काल है, वह तुझे पकड़ ही लेगा। तू जिस भी तालाब, सरोवर में अपना घर करेगी, धीमर तुझे वहीं पर जाल डालकर पकड़ लेगा अर्थात इस संसार में आकर मानव मोह-माया के चक्कर में पड़ेगा तो काल उसे छोड़ेगा नहीं।

७१३) मात्र एक बूंद की करनी से बने इस मानव के मर जाने पर यह संसार रोने लगता है (वीर्य की एक बूंद से ही मानव का जन्म होता है)। किंतु जब अनेक बूंदें यूं ही चली जाती हैं, उसका कोई विचार नहीं करता (वह भी तो मानव रूप धर सकती थीं) और व्यर्थ में ही संताप करते हैं।

७१४) यह नर (मानव) तो नारायण रूप है। यह देह जरूर तेरी है किंतु इस देह की वास्तविकता को समझ। स्वयं से आत्मदर्शन कर, वही एकमात्र सत्य है, बाकी सब तो भ्रम है। उनसे बच कर रह। इस शरीर का क्या गुमान करना ? यह तो पलभर में ही मिट्टी में मिल जाना है।

७१५) तू तो सांसारिक मोह-माया के फंदे में ही फंसा पड़ा है। अरे मूढ़ मनुष्य। तू इससे छुटकारा पाने की सोच। माया का मद (नशा) तुझे चढ़ा हुआ है, जिसके प्रभाव में तू सब कुछ भूल गया है। अरे मतिमन्द मानव। स्वयं को यूं मत भूला और इस फंदे से बचाने की कोशिश कर।

७१६) मरूं-मरूं तो सभी कहते हैं किंतु मेरे अंदर तो मेरा-तेरा, मोह-वासना आदि कुछ नहीं है। अत: यह मृत्यु मेरे लिए व्यर्थ है।

जो कुछ मरना था वह तो मर गए (अर्थात मेरे विकार तो मर ही गए) अब क्या मरना शेष रह गया है ? अर्थात शरीर से तो सब मरते हैं किंतु मन से तो मैंने मृत्यु पर विजय पा ली है।

७१७) क्या कर्म करें और क्या जोड़ें (संग्रह करें) ? यह जीवन तो बहुत ही थोड़े समय के लिए होता है। इस संसार में लोग अपना सबकुछ, मद-शरीर, धन-संपत्ति, राजपाट तो यहीं छोड़कर चले जाते हैं। अर्थात जब सब यहीं रह जाना है तो माया से मोह कैसा? इसका संग्रह किसलिए करना ?

७१८) मूर्ख मनुष्य गुरु के शब्दों (ज्ञान, वचन) को नहीं मानता, न ही वह धर्म विचार को सुनता है। अपने सत्य शब्द (सत्य का ज्ञान, आत्मदर्शन) को भी नहीं खोजता। वह तो सांसारिक मोह-माया में पड़ा रहता है, जिसके कारण यम के द्वार पर ही जाकर उसका जीवन समाप्त होता है।

७१९) जिसका मन मर गया (लालसाएं समाप्त हो गई), माया मर गई (धन का लालच नहीं रहा) और इस शरीर के सभी संशय भी दूर हो गए (कोई भ्रम नहीं रहा)। इस तरह वह तो अविनाशी हो गया। जीवन-मरण का बंधन ही नहीं रहा। अब उसे मृत्यु से किस बात का डर है ? वह तो मोक्ष को प्राप्त कर ही चुका है। अब तो उसे मात्र यह शरीर ही छोड़ना है।

७२०) मूर्ख लोग अपनी आंखों से इस संसार की अच्छाइयों को नहीं देखते और अपने कानों से शब्द, प्रवचन आदि भी नहीं सुनते। सिर के बाल भी उजले (सफेद) हो गए अर्थात जीवन की संध्या भी ढलनेवाली है। तब भी निपट मूढ़ ही बने हुए हैं। ऐसे लोगों का तो जीवन ही व्यर्थ है।

७२१) अरे मूढ़मति। अब तो जाग जा। अभी भी कुछ समय शेष है। जब यह समय भी निकल जाएगा तब तो सिर धुनेगा। लेकिन हाथ कुछ नहीं आएगा। तुझे जाना भी तो बहुत दूर है। इसलिए उठ। समय मत गंवा। मुक्ति का कुछ साधन ही कर ले।

७२२) किसी भी दीन-हीन को देखकर मन में जो भाव उपजता है वही दया है। दया ही धर्म का मूल भी है। जब तक सृष्टि में जीव का जीव के प्रति दयाभाव रहेगा धर्म का वर्चस्व रहेगा। धर्म क्या है ? जो धारण किया जाए या किसी के प्रति अपने दायित्वों की पूर्ति की जाए वही वास्तविक धर्म है। दयाभाव भी उसी में उपजता है जिसमें धर्म का भाव पनपता हो। यदि कोई धर्मभाव से हीन हो तो उसमें दया का उपजना प्राय: असंभव ही होता है।

७२३) जो कोई निराश्रित के प्रति दयाभाव न रखकर उसका उपहास करता है, वह धैर्यशील नहीं हो सकता। वह तो निपट अधर्मी आसुरी वृत्ति का होता है। दयाभाव वाला मनुष्य समदृष्टा होता है और समदर्शिता का यह भाव उसमें तभी जागृत हो सकता है जब उसने आत्मा या निजस्वरूप का बोध प्राप्त कर लिया हो। जब मनुष्य को निज का बोध हो जाता है, तब उसको सभी जीव अपने जैसे ही प्रतीत होते हैं।

७२४) जिसमें दया भाव जागृत हो जाता है, वह सामान्य जीवों से ऊपर उठकर संत प्रकृति का हो जाता है। संतों की दृष्टि में सभी दया के पात्र होते हैं। जीव के प्रति दयाभाव का जागृत होना ही श्रेष्ठ धर्म है। इसलिए सबके हृदय में दयाभाव अवश्य होना चाहिए। जो दयाभाव से रहित है और बातें ज्ञानपूर्ण करता है, उसका जीवन तो नरक तुल्य है।

७२५) आचारी (आचारवान) तो इस सृष्टि में अनेक मिल जाएंगे किंतु विचारी (विचार करनेवाला) नहीं मिलते। जिनके हृदय में गुरु नहीं, गुरु का ज्ञान नहीं, उनका तो जीवन ही व्यर्थ है।

७२६) भले ही बद्रीनाथ चले जाओ या फिर गया (धाम) चले जाओ। इस संसार में सबसे बड़ा पुण्य दया भावना है। हृदय में दया की भावना हो तो सभी धामों की यात्रा का पुण्य मिल जाता है।

७२७) लडकी की शादी सदा अच्छे घर में हो जाय, बेटे को शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। शत्रु सदा उलझन में फंसा रहे तो अच्छा होता है। मित्र को सदा धार्मिक ज्ञान देना उचित रहता है। समय के अनुसार ही अपना जीवन मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

७२८) दया-दया तो हर कोई कह देता है किंतु दया के मर्म (रहस्य) को कोई नहीं जानता। जब जीव को ही लोग जीव नहीं समझते तो उसके हृदय में दया की भावना कहां से आएगी ? अर्थात दया भावना के लिए दया के मर्म को भी समझना चाहिए तथा हर जीव के प्रति मन में सम्मान होना चाहिए।

७२९) पागल, बुद्धिहीन मनुष्य से सदा दूर रहना ही बेहतर है क्योकि इस तरह के लोग पशुतुल्य ही होते है। अज्ञानी व मूर्ख को पास

मत आने दो। बुरी संगत से दूर रहना अच्छा है।

७३०) जिस समाज में ऐसा सेवक जन्म लेता है वह समाज व कुल सौभाग्यशाली है। गुरु को भी सेवक तो अनेक मिल जाते हैं, जो उसकी सभी प्रकार से सेवा करते हैं लेकिन निष्ठाभाव से सेवा करनेवाला सेवक विरला ही मिलता है। ऐसा सेवक मोह, माया, रिश्ते-नाते को दरकिनार कर गुरु के प्रति एकनिष्ठ रहता है। ऐसे सेवक को पाकर गुरु का गुरुत्व सफल हो जाता है।

७३१) जिस सेवक के चित्त में गुरु सेवा का भाव प्रतिपल पोषित होता रहता है, वही धन्य है। ऐसे सेवक का जीवन साधना की साध से परिपूर्ण होता है तथा उसमें तेजस्विता का विशिष्ट गुण भी समाहित हो जाता है। यदि सेवक में वर्णित गुण हो तो वह गुरु, समाज, वंश सभी के लिए उत्थानकर्ता होता है।

७३२) गुरु सबको ही चाहते हैं। उनके लिए सभी एकसमान होते हैं किंतु गुरु को सभी लोग नहीं चाहते। कुछ अज्ञानी लोग भी होते हैं, जो गुरु की महिमा को कुछ भी नहीं समझते। जो शरीर से ही आस लगाए रखता है, वह कभी भी सच्चा दास (सेवक) नहीं हो सकता।

७३३) सम्पूर्ण रूप से समर्थ गुरु का जब सिर पर हाथ हो तो दास को क्या कमी हो सकती है। उसे तो इस जगत में सबकुछ मिल गया। रिद्धि, सिद्धि भी उसकी सेवा करेंगी और मुक्ति उसका कभी साथ न छोड़ेगी।

७३४) जिसके हृदय में दासातन (दासभाव) के भाव नहीं हैं किंतु नाम से वह स्वयं को दास बताता है, वह दास नहीं हो सकता। जैसे पानी पीए बिना प्यास नहीं बुझती, उसी प्रकार दासातन के गुण (सेवा-भाव) के बिना कोई दास नहीं हो सकता।

७३५) सच्चा शिष्य सभी सुख-दुख अपने ऊपर झेल लेता है और बिना किसी कष्ट के वह तब भी गुरु की संगत नहीं छोड़ता। यह गुरु की संगत का ही प्रभाव है कि उसे दुनिया का कोई भी अन्य रंग नहीं चढ़ता अर्थात मोह-माया, भोग-विलास से वह दूर रहता है।

७३६) निर्बन्ध तो बंधे रहते हैं अर्थात जो सांसारिक बंधनों से स्वयं को मुक्त बताते हुए भी सांसारिक विषयों में उलझे रहते हैं, वह बंधन मुक्त नहीं होते। किंतु सांसारिक बंधनों में बंधे हुए भी आत्मचिंतन और साधना से मनुष्य सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है। ऐसे ही बंधन मुक्त लोग कर्म करते हैं और सच्चे दास कहलाते हैं।

७३७) कुछ कार्य ऐसे भी होते है जो एक ही बार होते है। इसलिये उनका महत्व बहुत अधिक होता है। राजा लोग एक ही बार आज्ञा देते है और जो उनके मुख से निकल जाता है वह आदेश होता है। पंडित लोग एक ही बार बोलते है अर्थात यदि किसी कार्य की पूर्ति का वचन देते है तो उसको पूर्ण रूप से निर्वाह करते है। माता-पिता भी अपनी कन्या का कन्यादान एक ही बार करते है, जिसे कन्या देने का वचन दे दिया कन्या उसी की हो जाती है। उक्त सभी कार्य एक ही बार किये जाते है। इस प्रकार का आदेश, विद्वान तथा कन्याओं के विवाह सम्बन्धी माता-पिता का वचन अटल होता है। ये तीनो राजा, पंडित और कन्यादान के वचन कभी लौटाये नही जाते, अपितु निभाये जाते है। अत: राजाओं ने आदेश देते समय, पंडितों को आश्वासन देते समय तथा माता-पिता को अपनी पुत्री का विवाह सम्बन्ध स्थिर करते समय सोच विचार कर करना चाहिये। जल्दबाजी मे कोई निर्णय नहीं लेना चाहिये।

७३८) दासातन (सेवा भावना) जिसके हृदय में बसा हुआ है और जो संतजनों के अधीन उनके श्रीचरणों में रहते हैं, उनकी सेवा करते हैं। वही सच्चे दास हैं और वही सदा सेवा भक्ति में तल्लीन रहते हैं।

७३९) जग में वही कुल सबसे भला है जिस कुल में गुरु के सच्चे सेवक (दास) जन्म लेते हैं। किंतु जिस कुल में दास पैदा नहीं होते वह कुल तो आकड़े व पलाश के पेड़ों के समान है। अर्थात जैसे आकड़े व पलाश के वृक्ष अन्य वृक्षों से पृथक ही उपजते हैं, वैसे ही गुरु दास से हीन कुल भी समाज से पृथक होने के समान ही है।

७४०) स्वयं को दास कहलाना बहुत ही कठिन है। दास सदा कामनाओं (इच्छाओं) रहित तथा निर्मल दशा वाले होते हैं। उन्हें केवल प्रतिदिन अपने गुरु चरणों की ही आस होती है। तीर्थ स्थलों की भी यही इच्छा होती है कि गुरु के सच्चे दास उनकी यात्रा पर आएं ताकि उन तीर्थ स्थलों की मान-मर्यादा बढ़े।

७४१) उसको तो कभी भी कष्ट मत दो जो अहंकार के नशे में चूर है। उसकी तो प्यार से बार-बार बंदगी करो ताकि वह शर्मिन्दा हो और उसकी आंखें खुल जाएं। यही दास का सबसे बड़ा कर्तव्य भी है।

७४२) जो सदा सत्य ज्ञान में लगा रहे तथा सभी प्रकार के सांसारिक बंधनों को तोड़ डाले अर्थात उनसे नाता तोड ले ऐसे दास के सामने तो काल (मृत्यु) भी हाथ जोड़े खड़ा रहता है अर्थात ऐसे धैर्यवान और सहनशील दास से तो दुख और कष्ट भी दूर भागते हैं।

७४३) दीनता अर्थात विनयशीलता से ही मनुष्य में महानता आती है। दीनता के भाव से ही मनुष्य परोपकारी, अहिंसाचारी बनता है। यही मनुष्य का सौंदर्य भी है। दीनपुरुष संत समान धीरज वाला, गंभीर व क्षमाशील होता है।

७४४) जिस किसी में दीनता का भाव विद्यमान है, वह परमार्थी भी होता है। यही कारण है कि वह सभी का प्रिय पात्र हाता है। दीनता के भाव में ही वह अन्यों को भी अपनी ओर आकृष्ट करने में सक्षम होता है। जिसमें भी दीनता का भाव होता है, वह ज्ञान-मोती से परिपूर्ण होता है। ऐसा दीन स्वभावी ही गुरु कृपा का पात्र भी होता है। दीनस्वभावी ही ऐसा प्रतापी होता है, जिसे कहीं भी किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता। जो दीनता का भाव अपनाता है वही गुणी होता है। ऐसा ही मनुष्य सत्य का सरलता से साक्षात भी कर सकता है।

७४५) वेद-विद्या का अध्ययन भी व्यर्थ हो जाता है बिना अग्निहोत्र के, अनुष्ठान की शिक्षा के। धन कमाना, दान दक्षिणा के बिना निष्प्रयोजन है। कोई भी सिद्धि बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं होती। सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु और साध्य वस्तु में श्रद्धा होनी अनिवार्य है।

७४६) जो दीनता के भाव से रहित है वह क्रूर, विध्वंसी, आसुरी वृत्ति का होता है। अत: दीनता (विनयशीलता) को ही सर्वदा अपनाना चाहिए। दीनभाव से ही मोक्ष साधन भी सुलभ होता है। दीनता की महिमा अनंत है तथा दीनता के गुण से संपन्न मनुष्य जैसी महानता किसी की भी नहीं होती।

७४७) एक वाणी जो महत्वपूर्ण है वह बस दीनता ही है, जो दीनता को धारणकर लेता है उसे गुरु दरबार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। दीनवाणी ही गुरु को भेंट करने का सर्वोत्तम उपहार है। संतजनों का भी यही विचार है कि दीनता के स्वरूप को पहचान कर ही उसे अपने जीवन में स्वीकार कर लेना चाहिए।

७४८) जिसमें दीनभाव, सेवाभाव है वही संतजन की शरण में रह सकता है, और संतजन भी यही कहते हैं कि मैं भी उनके साथ ऐसे ही रहूं जैसे मछली पानी के संग रहती है। अर्थात संतजन और भक्तों में विनम्रता की भावना होनी चाहिए, तभी वह एक-दूसरे के साथ रह सकते हैं।

७४९) विनम्रता तो गरीब व दीन पुरुषों को ही भाती है (अच्छी लगती है)। दुंदुर (शरारती, उपद्रवी) तो सदा अभिमान (घमंड) में ही डूबा रहता है। इसलिए कहा गया है कि दुंदुर में तो सदा घमंडरूपी विष भरा रहता है और दीन पुरुष सदैव सादगी, सौम्यता तथा सभ्यता के लिए पहचाने जाते हैं।

७५०) जब मनुष्य का अहंभाव नष्ट हो जाता है तब उसे ईश्वर के दर्शन होते हैं। वह ईश्वर के दर्शन कर आनंद लाभ उठाता है तथा हर पल, हर घड़ी ईश्वर के ही दर्शनों में लीन रहता है। यदि वह उस अलौकिक आनंद का अन्य लोगों के समक्ष बखान करता भी है तो उस पर विश्वास कौन करेगा ? इसलिए जिसे ईश्वर के दर्शन हो जाएं तो उसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

७५१) दीन (नम्र स्वभावी) तो सभी के मुख की तरफ देखता है, किंतु उस दीन के मुख की ओर कोई भी नहीं देखता। सभी उसे हेय (निम्न कोटि का) समझते हैं। दीनता तो बहुत ही भली है जो मानव को भी देवता बना देती है।

७५२) इस जग में हम ही सबसे बुरे हैं, बाकी तो सभी हमसे भले ही हैं। जो भी हमारी ही तरह इस भाव को समझता है वही हमारा सच्चा मीत (मित्र) भी है अर्थात कभी भी दूसरों के विकारों (बुराइयों) को मत देखो बल्कि अपने विकारों को पहचानो और उन्हें दूर करने की कोशिश करो।

७५३) छोटी जाति के लोग, गरीब लोग आदि तो फिर भी नम्र भाव से संतजनों के चरणों में झुककर अर्पित हो गए तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त कर तृप्त हो गए। किंतु जाति के अभिमानी (उच्च कुल के) अपने ही अहंकार वश मोह-माया के बंधनों में पड़कर डूब गए अर्थात सकल कुल का नाश कर बैठे।

७५४) यदि दर्शन करने हों तो इसके लिए साधु ही श्रेष्ठ हैं और सुमिरन करना चाहें तो गुरु के वचनों को ही चुनें। इस जग से तरना (उद्धार, मुक्ति) चाहते हैं तो आधीनता (दीनता, नम्र) उत्तम है। लेकिन डूबकर मरनेवालों के लिए तो अभिमान ही पर्याप्त है। अर्थात कभी भी अहंकार (अभिमान) नहीं करना चाहिए।

७५५) मानव शरीर पाकर भी जिसने सद्गुरु की शरण नहीं ली या जीवन में योग्य गुरु धारण नहीं किया वह निगुरा कहलाता है। ऐसा निगुरा मानव तन को पाकर भी पशु वृत्ति का ही कहलाता है। धर्म-ग्रन्थों में भी गुरुहीन को तुच्छ माना गया है। यही कारण है कि न केवल मनुष्य बल्कि देवता, दानव भी जब-जब पृथ्वी पर आए हैं, उन्होंने गुरु धारण किया है।

७५६) निगुरा व्यक्ति सत्य ज्ञान से वंचित होने के कारण ही बकवादी, सौंदर्यहीन, भक्तिहीन होता है। भले ही वह अंधाधुंध धनार्जन कर जीवन के सभी सुखों को क्यों न भोगता हो। लेकिन नाशवान सुखों को भोगकर भी वह अशांत मना ही रहता है। जीवनभर उसको कभी आत्मिक शांति नहीं मिलती। वह मोह-माया में ही फंसा रहकर अनमोल मानव तन को व्यर्थ गंवा देता है। निगुरे का दर्शन करना भी उचित नहीं माना जाता।

७५७) जो स्त्री गुरु से भी परदा करती है और उनके उपदेशों को ध्यान लगाकर नहीं सुनती, वह निश्चित ही अगले जन्म में मादा श्वान (श्वान योनि) बनेगी और नंगे बदन ही घूमती-फिरती रहेगी। अर्थात गुरु से कभी भी परदा नहीं करना चाहिए।

७५८) जितना धैर्य रखा जाये गरीबी में सहन शक्ति उतनी ही अधिक बढ़ती है। फटे हुये वस्त्र भी स्वच्छ एवं अच्छे ढंग से धुले हो तो उन्हे भी पहना जा सकता है। ठंडा भोजन भी गर्म कर के स्वादिष्ट हो जाता है। कुरुप मनुष्य गुणवान व कुरुप स्त्री शीलवती हो तो अपनी शालीनता व गुणों के आधार पर उनका आकर्षण बढ़ जाता है। उनके सम्पर्क मे आने वालों को बुरा नहीं लगता है। अभिप्राय है कि धैर्य गरीबी का शुद्धता वस्त्र की साधारणता का उष्णता अन्न की क्षुद्रता का और गुण, सदाचार कुरुपता का आवरण (पर्दा) है। गरीब को धैर्य धारण करनेवाला होना चाहिये। घटिया कपडे को साफ सुथरा धोकर पहनना चाहिये। ठंडे भोजन को गरम करके खाना चाहिये। कुरुप स्त्री-पुरुष को अपने चरित्र व गुण की उच्चता से अपनी कुरुपता को ढक कर रखना चाहिये।

७५९) जो गुरु धारण किए बिना ही माला जपते हैं, पूजा-पाठ, दान आदि करते हैं उनके सभी कर्म अर्थहीन हैं। वेद-पुराणों में भी यही लिखा है कि गुरु बिना कोई भी शुभ कार्य सम्पन्न नहीं होता।

७६०) पानी के गुण को तो एक हरा-भरा वृक्ष ही जान सकता है। क्योंकि वह उस पानी के कारण ही हरा-भरा हुआ है। किंतु सूखा काठ (लकड़ी) पानी के गुण को क्या जाने। उसमें जितना भी पानी डालो वह पुन: हरा नहीं होगा। अर्थात योग्य शिष्य ही गुरु से ज्ञान अर्जित कर सकता है।

७६१) पशुओं जैसे मूर्ख लोगों के अनेक बार मिलने पर भी समझदार कभी व्यथित नहीं होता। क्योंकि उसे पता है कि ऊसर भूमि पर चाहे कितना भी बीज डाल दो वह फलेगा नहीं। अर्थात मूर्खों को बार-बार ज्ञान देने पर भी उन्हें कुछ भी समझ नहीं आता।

७६२) जिसने गुरु धारण नहीं किया वह निगुरा भले ही सुमेरु पर्वत के परिमाण का स्वर्ण व अनंत रत्नादि दान करे लेकिन उसका कभी भला नहीं हो सकता। अर्थात वह जन्म-जन्म तक चौरासी के फेर में ही पड़ा रहता है।

७६३) साकट (निगुरा) का मुख सर्प की बांबी के समान है जिसमें से केवल विषैले सर्प की भांति कठोर वचन ही निकल सकते हैं। इनसे बचने के लिए केवल मौन धारण किए रहो जिससे इन वचनों का विष हमारे शरीर को प्रभावित न कर सके।

७६४) शुकदेव जैसा ज्ञानी-ध्यानी भी निगुरा होने से फेर (मुकर) गया तो फिर आम आदमी गुरु के बिना कैसे पार जा सकता है। बिना गुरु के निगुरा रहने पर उसे सदा चौरासी के चक्कर काटने ही पड़ते हैं अर्थात उसे कभी भी मुक्ति नहीं मिलती।

७६५) साकट (निगुरा) तो कुछ भी बोल सकता है, जैसे कुकुर (कुत्ता) कुछ भी खा लेता है। इससे ज्ञानी को कोई अंतर नहीं पड़ता। कौआ मठ (मंदिर) में हग (बीट कर) दे तो मठ का कुछ नाश नहीं होता है।

७६६) साकट (निगुरा) भी संत बन सकता है, ज्ञानी ध्यानी बन सकता है। बस, उसे एक अच्छा और ज्ञानी गुरु मिलना चाहिए जो राम-नाम के पवित्र मंत्र से उसे संसार के चारों खानों से छुड़वा सके। अर्थात उसमें ज्ञान का इतना भंडार भर सके कि वह कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण कर सके।

७६७) आंखों से देखने पर तो घी भी अच्छा लगता है किंतु तेल मुख में डालने पर भी अच्छा नहीं लगता। ऐसे ही साधु से झगड़ा भी अच्छा है क्योंकि इससे भी हमें कुछ सीखने को ही मिलेगा किंतु साकट (निगुरा) से तो मेल-जोल करना भी अच्छा नहीं है।

७६८) साकट के संग कभी भी नहीं बैठना चाहिए। भले ही वह कर्ण जैसा दानी व कुबेर जैसा महाधनी ही क्यों न हो। उसके संग

चलने पर अंत में नरक ही भुगतना पड़ेगा। अत: निगुरे के साथ किसी भी प्रकार का कोई संबंध नहीं रखना चाहिए।

७६९) संकट के समय सोते साधु को जगा लीजिए, वह ब्रह्म का जाप करके आपको संकट से उबारने के उपाय ही बताएगा। कभी भी सोते से जगाने का क्रोध नहीं जताएगा, किंतु साकट (निगुरा) व सिंह और सांप को सोते से मत जगाओ। वह आपको हानि ही पहुंचाएंगे।

७७०) ओ मूर्ख मानव। तू मौत को ही भूल गया। तुझे किसने अचरज में डाल दिया। मृत्यु के बाद यह शरीर उसी तरह मिट्टी में मिल जाएगा, जैसे आटे में नमक। अर्थात जिस तरह आटे में मिलकर नमक दिखाई नहीं देता केवल आटा ही दिखाई देता है, उसी तरह मृत्यु के पश्चात इस मानव का भी अस्तित्व मिट जाएगा।

७७१) अगर हरिजन (भगवद्भक्त) किसी को लात मारे भी तो कोई बात नहीं, निगुरे (साकट) से तो बात करना भी ठीक नहीं। हरिजन की मारी लात भी सुख की अनुभूति प्रदान करेगी किंतु निगुरे से बात करके तो मान-सम्मान व इज्जत ही जाएगी।

७७२) हरिजन अर्थात संतजनों को देखकर उनकी सेवा से जो विमुख हो गया वह तो महामूढ़ है। क्योंकि उसने भक्ति के सुख को न समझकर भक्ति के सुख पाने का सुनहरा अवसर गंवा दिया।

७७३) संसार में जितने भी जीव हैं, उनमें मनुष्य ही श्रेष्ठ है। शास्त्रों में मनुष्य योनि को ही मोक्ष का द्वार भी कहा गया है। इतने पर भी मनुष्य का चोला धारण करनेवाला जीव परोपकार नहीं करता तो वह पशुवत ही है। मानव तन पाकर मनुष्य को (मानव) धर्म का ही पालन चाहिए। मानव द्वारा मानव व सभी जीवों को समान दृष्टि से देखना ही मानव धर्म है। बौद्धिक जीव मानव भी मानव धर्म से तभी च्युत होता है जब उसे अंतर्ज्ञान नहीं होता।

७७४) संत शिरोमणि तुलसीदास ने भी परहित सरिस धर्म नाहिं भाई कहकर परोपकार को ही सबसे बड़ा धर्म बताया है। वस्तुत: परोपकार का स्वरूप व्यापक है। जो मनुष्य परोपकार करता है, वही परमार्थी है। परोपकार में स्वार्थभाव कदापि नहीं होना चाहिए।

७७५) संतजनों का तो जीवन ही परोपकार के लिए होता है। परोपकार भी तभी संभव प्रतीत होता है, जब मानव मन में एक-दूसरे के प्रति दयाभाव हो। क्योंकि दयाभाव को ही धर्म का मूल कहा गया है। मानव को परोपकारी होना चाहिए। परोपकार ही महामंत्र है... परोपकार ही अनमोल रत्न है। जब तक जीवन है परोपकार की भावना को बिसराना नहीं चाहिए।

७७६) हंस केवल वही रहते है, जहां पर उन्हें पानी मिलता है। सरोवर सूख जाने पर वह अपनी जगह बदल देते है किन्तु प्राणी को ऐसा स्वार्थी नही होना चाहिये। उसे बार-बार अपना स्थान नहीं बदलना चाहिये।

७७७) सुख के समय हमारे साथ रहनेवाले, हमारा साथ देनेवाले स्वार्थी लोग ही होते हैं, वह सब जीवन में दुखों के आते ही हमसे अलग हो जाते हैं। जो सुख-दुख को नहीं देखते बल्कि हर समय सेवा को तत्पर रहते हैं, वह लोग ही परमार्थी (परोपकारी) होते हैं।

७७८) कोई किसी से काम करवाता है या कोई किसी का काम करता है तो इसमें दोनों के ही स्वार्थ होते हैं। किंतु जो बिना किसी स्वार्थ के जगहित में कार्य करता है वही शूरवीर और परमार्थी होता है।

७७९) परमार्थ तो पके रत्न के समान है, इसको कभी भी पीठ मत दिखाओ। अर्थात परमार्थ से मुंह मत फेरो। स्वार्थ सेमल के पुष्प के समान होता है जिसमें कोई सुगंध भी नहीं होती और उसकी कली भी उसे ही पींठ दिखाती है अर्थात स्वार्थी लोग सदैव मुंह की खाते हैं।

७८०) संसार में प्रेम व्यवहार का मूल कारण धन है, जिसका परोपकार से कोई सरोकार नहीं है। कलियुग में परोपकारी प्राणी दुर्लभ ही है।

७८१) स्वयं पृथ्वी भी स्वार्थी होती है स्वार्थवश सभी को अपनी ओर खींचती है। इसी तरह भक्ति भी दास को अपनी तरफ खींचती है। परमार्थी तो परमार्थ की खातिर अपने तन (शरीर) तक की आस (आशा) छोड़ देते हैं। अर्थात परोपकारी परोपकार करने के लिए स्वयं का भी उत्सर्ग कर देते हैं।

७८२) भले ही मुझे मृत्यु आ जाए किंतु अपने तन अथवा पेट भरने के लिए मैं कभी भी किसी से कुछ मांगूगा नहीं, लेकिन परमार्थ (परोपकार) के लिए किसी से कुछ मांगना भी पड़े तो इसमें लजजा कैसी। अर्थात परमार्थ तो जैसे भी करना पड़े करो, उससे पीछे मत हटो।

७८३) सामान्यत: एक-दूसरे के प्रति आकर्षण को ही लोग प्रेम की संज्ञा दे देते हैं। लेकिन यह प्रेम नहीं बल्कि वासना का भाव मात्र

होता है। प्रेम के मार्ग पर चलना और तलवार की धार पर चलना लगभग समान है। प्रेम में पूर्ण समर्पण भाव होना अति आवश्यक है। यदि कोई यथार्थत: प्रेम की डगर पर चलने में स्वयं को सक्षम समझता है तभी वह ईश्वर के दर्शन भी पा सकता है अन्यथा नहीं। प्रेम मार्ग में अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं।

७८४) प्रेम रस नामक रसायन पीने में बहुत ही रसीला होता है किंतु यह सभी को सुलभ नहीं होता। प्रेम रस बहुत ही दुर्लभ है। इसे पीने के लिए पहले गुरु के चरणों में शीश अर्पण करना पड़ता है। अर्थात पूर्ण रूप से गुरु के प्रति समर्पित होना पड़ता है।

७८५) यह तो प्रेम का घर है, तभी तो ऊंचा और एकान्त में है अर्थात सबसे अलग और सबसे न्यारा है। जो अपने शीश की बलि देकर अपने गुरु के चरणों में अर्पित कर सके वही संत इस घर में आ सकता है। अर्थात प्रेम के लिए हर प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहना चाहिए।

७८६) यदि कोई दुष्ट वंश मे बुद्धिमान कन्या हो तो उसके साथ पाणिग्रहण करने में कोई हर्ज नहीं क्योकि गुण ही सबसे बडी विशेषता है।

७८७) यह घर तो प्रेम का है जो बहुत ही पवित्र है। कोई ऐसा-वैसा आदमी मौसी का घर समझकर इसमें प्रवेश नहीं कर सकता। अर्थात प्रेम की प्राप्ति के लिए गुरु की भक्ति तथा समर्पण भावना का होना आवश्यक है।

७८८) साधु तो समुद्र में मिलनेवाली सीप के समान हैं तथा सत्गुरु स्वाति की बूंद जैसे हैं। मात्र इस एक बूंद से ही जब जीवन की सारी तृष्णा मिट जाती है तो फिर समुद्र की क्या आवश्यकता है अर्थात संतजनों तथा गुरुजनों की वाणी से जो आत्मशांति मिलती है, उसके बाद तो किसी चीज की भी चाहत शेष नहीं रह जाती।

७८९) जो सांस हम जागते हुए लेते हैं, वही सांस हमारे अंदर जाती है जब हम सुप्त अवस्था में होते हैं। उसी प्रकार जिस जन की जैसी भावना होती है उसे भी उसी भावना के लोग मिलते हैं अर्थात प्रेमी को सदा प्रेमी ही मिलता है। दो प्रेमी कभी अलग हो ही नहीं सकते।

७९०) इस जग में सबकुछ मिल जाता है किंतु गुरु का मिलना बहुत ही कठिन है। यदि भाग्यवश गुरु मिल जाएं तो उनका साथ कभी भी न छोड़ें। बिछुड़ा हुआ साजन (प्रेमी) तो तभी मिल पाता है, यदि भाग्य में ऐसा लिखा हो।

७९१) प्रेम-प्रेम तो हर कोई बोल लेता है। ऐसा कहना कठिन भी नहीं है किंतु प्रेम के आंतरिक रूप को हर कोई नहीं जानता। जिस मार्ग पर चलने से साहिब (ईश्वर) के दर्शन हो जाएं उसी को प्रेम कहते हैं। वही प्रेम का सच्चा स्वरूप है।

७९२) अपने नयनों को कोठरी के समान कर लो तथा इनकी पुतलियों को पलंग की तरह बिछा हो। इस पलकों का परदा डालकर अपने पिया (प्रेमी, गुरु, स्वामी) को रिझाओ (प्रसन्न करो) अर्थात आंखों को बंद करके सदा अपने गुरु की ही भक्ति करो।

७९३) प्रेम-प्रीति से जो भी मिले उसे हृदय से स्वीकार कर लो। ऐसे प्रेमी लोगों से मिलकर मन प्रसन्न होता है। किंतु जो मन में कपट रखते हैं, ऐसे लोगों से बचना चाहिए। ऐसे लोगें से मिलने पर केवल बलाएं ही मिल सकती हैं। अत: कष्टों को आमंत्रण मत दो, केवल सच्चे प्रेमी से ही मेल रखो।

७९४) संसार में प्रीति की रीत तो नानाविध हैं। लेकिन सभी अस्थायी हैं, क्षणिक हैं, समाप्त हो जानेवाली हैं। स्थायी, सच्ची प्रीत तो गुरु या ईश्वर के प्रति भक्ति ही है। ऐसी प्रीत का मूल परोपकार है।

७९५) संत सुजान की प्रीति बहुत ही गहरी (गूढ़) होती है तथा समय के साथ-साथ यह और भी बढ़ती है। किंतु अजान (मूर्ख) लोगों की प्रीति बहुत ही ओछी (निम्न स्तर की) होती है तथा यह समय के साथ घटती ही जाती है और एक समय ऐसा आता है जब यह पूरी तरह से समाप्त हो जाती है।

७९६) प्रेम रस का प्याला तो वही पी सकता है जो अपने गुरु के प्रति समर्पित हो। किंतु लोभी तो लोभवश ही प्रेम का नाम लेता है, उसमें समर्पण भाव नहीं होता। केवल सच्चे प्रेमी ही ऐसा साहस कर सकते हैं।

७९७) प्रेम की पायल पहनकर आंखों में धैर्य का काजल लगाओ। मांग में शील (नम्रता) का सिंदूर भरो-तभी पिया के प्रेम का सुख प्राप्त करो। अर्थात पति से प्रेम रस प्राप्त करने के लिए पत्नी को धैर्यवान व गुणवान होना चाहिए ताकि दोनों ही इस प्रेम रस का आनंद ले सकें।

७९८) प्रेम के बिना मन को धैर्य नहीं मिलता तथा विरह के बिना बैराग नहीं मिलता। उसी प्रकार सत्गुरु के बिना मन के विकार नहीं

जाते। अगर मन को उज्ज्वल और शांत बनाना है तो सत्गुरु के श्रीचरणों में जाकर उनकी प्रेमभाव से सेवा करनी चाहिए।

७९९) अगर मन में प्रेम-भावना नहीं है तो प्रेमी का रूप धारण करना व्यर्थ है। नाहक ही विवाद करके समय नष्ट न करें। जब तक मन में प्रेम की भावना न हो, प्रेम के लिए आदर न हो तब तक इस तरह का रूप धारण करके स्वयं को भ्रष्ट करनेवाली बात है।

८००) मन लगाकर सदा प्रेम भक्ति में रचे-बसे रहें तो मोक्ष का फल अवश्य ही मिलेगा। गुरु के शब्दों (पवित्र वाणी) का आदर करो और उनका पालन करो तो आने और जाने के सारे कष्टों से मुक्ति मिल जाएगी अर्थात लोग और परलोक दोनों ही सुधर जाएंगे।

८०१) मन में प्रेम-भाव एकसमान ही होना चाहिए, भले ही कोई भी रूप धारणकर लो। चाहे तो सांसारिक बंधनों में बंधकर गृहस्थ जीवन बिता रहे हों या फिर तन के एकान्त वातावरण में बैरागी जीवन-कैसा भी जीवन (रूप) हो, प्रेम-भावना नहीं बदलनी चाहिए।

८०२) हमने तो अपने गुरु के प्रेम रस को भरपूर पिया है, अब और कुछ भी पीने की कामना नहीं है। जिस तरह कुम्हार का कलश अग्नि की तपन में पक जाने के पश्चात पुन: चाक पर नहीं चढ़ता, उसी प्रकार एक बार गुरु से प्रेम रस की प्राप्ति हो जाने के बाद सारी तृष्णा मिट जाती है।

८०३) आठ पहर और चौंसठ घड़ी अर्थात हर समय, हर हाल में गुरु के प्रति अनुराग (प्रेम-भावना) बनाए रखो। हृदय (मन) से उनका ध्यान एक पल को भी नहीं हटना चाहिए। इसे ही सच्चा और समर्पित बैराग कहा जाता है; और जो इसे पाने में सफल होता है, वही गुरु के प्रेम का भी हकदार बनता है।

८०४) जब प्रेम के पथ पर पग रख ही दिया है तो फिर कैसा डर। अब तो अपने शीश की बलि भी देनी पड़ जाए तो पीछे मत हटो। सपने में भी मनुष्य को सांसारिक मोह-माया के बंधनों से दूर रहना चाहिए। यह सब प्रेम पथ के बाधक हैं। जो इन सभी बाधाओं को पार कर लेता है उस प्रेमी का जन्म सफल हो जाता है तथा वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है।

८०५) जिसके हृदय में अनुराग (प्रेम-भावना) है उसे ही ज्ञान भी मिलता है। बिना अनुराग के कोई कितने ही प्रयत्न कर ले, वह जीवन में कुछ भी नहीं पा सकता। अत: ज्ञान, ध्यान, सुख, शांति के लिए गुरु के प्रति अनुराग अति आवश्यक है।

८०६) भक्ति का मूल समर्पण भाव है तथा ज्ञान और वैराग्य भक्ति के ही दो पुत्र हैं। यदि किसी में समर्पण भाव नहीं है तो भक्ति उससे कोसों दूर रहती है। भक्ति ही वह मार्ग है जिस पर चलकर कोई भी मोक्ष तक पहुंच सकता है। भक्ति के आवश्यक तत्त्वों में सेवा और प्रेम भी है। भक्ति वही कर सकता है जिसमें स्वार्थभाव न हो।

८०७) भक्त ही वह वृक्ष है जिस पर कृपारूपी फल लगता है। जिसका रसास्वादन कर भक्त या सेवक स्वयं को कृतकृत्य कर लेता है। भक्ति करना कोई सामान्य बात नहीं है, भक्ति तो वही कर सकता है जिसने स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर दिया हो।

८०८) गुरु की भक्ति करना बहुत ही कठिन काम है। कायर लोग भक्ति नहीं कर सकते। यह तो वही साहसी कर सकता है जो अपना शीश उतारकर गुरु के चरणों में अर्पित कर सके, वही मोक्ष को पा सकता है।

८०९) भक्ति तो मुक्ति प्राप्ति का मार्ग है तभी तो संतजन इसी मार्ग पर चलते हैं। किंतु जो लोग मन में आलस रखते हैं और भक्ति मार्ग पर नहीं चलते, उन्हें जन्म-जन्मान्तर तक पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ नहीं प्राप्त होता।

८१०) भक्ति करना बहुत ही कठिन है तथा बहुत ही दुर्लभ भी। भक्ति के लिए रूप धारण करना और भक्ति करना अलग-अलग बातें हैं। यह तो कोई अज्ञानी भी समझ सकता है। अर्थात असली रस (आनंद) तो भक्ति में ही है।

८११) भक्ति भाव तथा भादो नदी (भाद्रपद महीने की नदी) उमड़कर बहती है। अर्थात भक्ति भाव का उमड़ना अलग बात है, उसमें तो वह ठहराव भी होना चाहिए जो कि जेठ माह की नदी में होता है। कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी भक्ति-भावना बनी रहे, वही सच्ची भक्ति होती है।

८१२) भक्ति नामक अनमोल पदार्थ तभी मिलता है जब गुरु का साथ हो, उनका ज्ञान हो तथा उनके विचार हों। प्रेम और प्रीति की भक्ति भी सहज ही मिल जाती है, जब गुरु पूर्ण रूप से कृपालु हो जाते हैं।

८१३) भक्ति तो उस सीढ़ी के समान है जिस पर चढ़ते हुए भक्त को हर्ष होता है। किंतु जिसके मन में भक्ति का भाव नहीं है, वह इस सीढ़ी पर कदापि नहीं चढ़ सकता।

८१४) भक्ति और भक्त का वेश धारण करने में बहुत अंतर है। यह बिल्कुल उसी तरह है जैसे धरती और आकाश। भक्त तो सदा अपने गुरु के चरणों में उनकी सेवा में लीन (मग्न) रहता है। किंतु केवल भक्त का वेश धारण करनेवाले भक्तिहीन लोग तो सांसारिक मोह-माया की आस में ही लगे रहते हैं।

८१५) भक्तिरूपी बीज कभी भी व्यर्थ नहीं जाता। चाहे कई युग बीत जाएं उसका फल अवश्य मिलता है। किसी भी कुल, जाति, वंश का घर ही क्यों न हो उसमें रहनेवाला भक्त संत के समान ही होता है। ऊंच-नीच के भेदभाव से वह ऊपर होता है।

८१६) निस्वार्थ भाव, एकाग्रता व प्रेम से की जानेवाली साधना ही भक्ति है। इसमें सत्य, शील का होना परम आवश्यक है। साथ ही मेरे-तेरे का भेद भी नहीं होता। सारत: भक्ति में मन का निश्चल होना अति आवश्यक है।

८१७) भक्ति द्वार तो बहुत ही संकरा होता है जिसमें राई का भी दसवां भाग ही समा सकता है। अगर मन मंगल (मस्त हाथी की भांति) है तो वह उस द्वार से कैसे जा सकता है ? अर्थात भक्ति वही कर सकता है जिसमें भक्ति का भाव हो तथा मन में किसी भी प्रकार का कोई मैल न हो।

८१८) सदा गुरु की भक्ति करो तथा विषय (मोह-माया) के रस को अपने मन से त्याग दो। भक्ति करने का अवसर बार-बार नहीं मिलता। जो भी भक्ति करता है वह जन्म-जन्म का आनंद पा लेता है।

८१९) भक्ति की मन में बहुत चाहत तो भले ही हो किंतु मन में तो कई विकार भरे पड़े है। मन के इन विकारों को दूर किए बिना कोई भी दास (भक्त) नहीं बन सकता। अत: पहले मन के जो मोह-माया लालसा आदि विकार हैं, उन्हें दूर करो फिर भक्ति मार्ग पर चलो।

८२०) बिना भक्ति के किसी का भी कल्याण नहीं हो सकता। भले ही कोई लाख चेष्टा कर ले। केवल गुरु के शब्दों के स्नेही ही अपने उद्देश्य में सफल हो पाते हैं।

८२१) गुरु की भक्ति के बिना तो यह सांसारिक जीवन व्यर्थ ही है। भक्ति के बिना तो जो कुछ भी धरोहर है, वह धुएं के महल के समान है। जब यह धुआं घट जाएगा तो भक्त स्वयं को नष्ट ही पाएगा।

८२२) जब मनुष्य के मन में जात-पात, ऊंच-नीच आदि का मोह आ जाता है तो भक्ति का भाव नहीं आ सकता और वह इन सब विकारों में डूबा भक्ति नहीं कर सकता। इन सब बंधनों को तोडकर जो गुरु की सेवा करे, उनकी भक्ति करे वही सच्चा भक्त कहलाता है।

८२३) जब तक कोई सांसारिक मोह-माया की ही भक्ति करता है तब तक वह भक्ति, वह सेवा निष्फल ही रहती है। ऐसी भक्ति से कभी भी मानव का कल्याण नहीं हो सकता। उसे वह सब (भक्ति का फल) किसलिए मिले जो निज देव की ही भक्ति में लगा रहता है।

८२४) मन में बिना किसी प्रेम-भाव के की गई भक्ति तो मात्र दिखावा होती है। उसमें कोई भी विचार (दर्शन) नहीं होता। भक्ति भाव तो प्रेम का ही एक रूप है तथा दोनों का स्वभाव भी एक जैसा ही होता है। अत: भक्ति के साथ-साथ मन में प्रेम की भावना का होना भी आवश्यक है।

८२५) जात-पात, कुल आदि के भेद को मिटाकर मन लगाकर सच्ची भावना से भक्ति करें। जब सत्गुरु से मिलन होता है तब उनके आशीर्वाद से आवागमन का नाश होता है अर्थात जन्म-मरण के दुखों से मुक्ति मिल जाती है।

८२६) किसी सच्चे भक्त की देखा-देखी की गई झूठी भक्ति कभी भी अपना रंग नहीं दिखाती अर्थात ऐसी भक्ति फलदायक नहीं होती। ऐसे नकली भक्त विपत्ति आने पर अपने ढोंग (झूठी भक्ति) वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे सांप समय-समय पर अपनी केंचुली उतार देता है।

८२७) जिस प्रकार सूर्य के उदय से अंधेरा मिट जाता है, उसी प्रकार गुरु के ज्ञान से कुमति दूर हो जाती है और सद्बुद्धि आती है। किंतु यदि अतिलोभ (लालच) में पड़ गए तो सुमति (सद्बुद्धि) भी नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार जब कोई अभिमानी (घमंडी) हो जाता है तो उसकी भक्ति भावना भी समाप्त हो जाती है। अत: भक्त को सदैव लोभ-मोह और अभिमान से बचना चाहिए।

८२८) दुखों एवं विपदाओं से मुक्ति के लिए गुरु के श्रीचरणों में अर्पित होकर सच्चे मन से भक्ति करो, सभी कर्म सिद्ध हो जाएंगे। गुरु का सच्चा भक्त कभी भी सांसारिक बंधनों के जाल में नहीं फंस सकता।

८२९) जात-पात, कुल आदि के बंधनों से मुक्त होकर ही भक्ति की जा सकती है तथा मोह-माया के लोभ को त्यागकर ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। निरद्वंद्वी (सामाजिक बंधन से मुक्त) को मोक्ष आसानी से मिल जाता है और जो लोभ-लालच से मुक्त होता है वह

सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो जाता है।

८३०) भक्तों की सदा यही रीति होती है कि वह अपने मन को बांधकर (वश में करके) गुरु की भक्ति करते हैं और परमार्थ (उपकार) करने के लिए तन से आगे रहते हैं। इस हेतु कितने ही कष्ट भी झेलने पड़ जाएं तब भी भक्त इसकी परवाह नहीं करते।

८३१) भक्ति पंथ (मार्ग) बहुत कठिन है। खोट करनेवाला रत्तीभर (थोड़ा भी) नहीं चल सकता। यह तो निराधार साधना है अर्थात बिना किसी लालच की भक्ति है। इसमें जो भी गलत भावना से आता है, अधर में गिरकर चोट ही खाता है। अर्थात उसे दुख ही प्राप्त होते हैं।

८३२) अन्य सभी कर्म तो ऐसे हैं जो सांसारिक बंधनों में बंधे जीव को करने ही हैं किंतु भक्ति कर्म ही ऐसा है जो इन सब बंधनों से मुक्ति दिलाता है। भ्रम (सांसारिक बंधन) त्याग दो और सदा भक्ति के मार्ग पर चलो।

८३३) भक्ति-भक्ति तो हर कोई कह लेता है किंतु भक्ति करना सभी के वश की बात नहीं है। भक्ति करना कोई साधारण बात नहीं है। पूर्ण रूप से भक्ति तो तभी मिलती है जब गुरुदेव की कृपा होती है। उन्हीं के आशीर्वाद से मानव में भक्ति भावना का संचार होता है।

८३४) भक्ति और भाव अलग-अलग होते हुए भी दोनों एक ही हैं। दोनों का स्वभाव, गुण भी एक जैसा है। आशय यह है कि भाव नहीं है तो भक्ति नहीं हो सकती और भक्ति नहीं है तो भाव उत्पन्न नहीं हो सकता। यहां भाव का तात्पर्य निष्काम भाव से है। जब मनुष्य में निष्काम भाव जागृत होता है तभी भक्ति भी चेतन होती है अन्यथा नहीं।

८३५) भीख मांगना तो मृत्यु के समान है, मैं तुम्हें यह सीख दे रहा हूं। जीवन में कभी भी किसी से भीख मत मांगो। किसी के सामने हाथ फैलाना मृत्यु को बुलावा देने के समान है। यदि उदर हेतु भीख मांगनी पड़े तो कोई बात नहीं अर्थात पेट की भूख मिटाने हेतु मांगी गई भीख से कोई दोष नहीं लगता। किंतु यदि कोई इस पूर्ति के बाद भी अधिक प्राप्ति के लालच में भीख मांगता है तो गलत बात है। ऐसे लालची लोगों को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

८३६) भगवा वस्त्र वैराग्यवृत्ति का प्रतीक है। पूर्वकाल से ही नाना-पंथों के गुरु अपने शिष्यों को दीक्षोपरांत भगवा वस्त्र, कमंडलु, माला व कुछ अन्य प्रतीक प्रदान किया करते थे। वही परंपरा आज भी साधु समाज में देखने को मिलती है। साधुओं का यह बाना लोगों में श्रद्धा-भक्ति का बीज रोपण करने में महत्ती भूमिका निभाता है। लेकिन आजकल ऐसा भी देखने को मिलता है कि साधु के वेश में ढोंगी लोग समाज के भावुक लोगों की भावनाओं से खेलने का काम ही अधिक करने लगे हैं। ऐसे लोगों ने ही पावनता के प्रतीक साधु-बाने को कलंकित किया है और आज भी निरंतर कर रहे हैं।

८३७) उल्टा सीधा बोलना, मसखरी करना, ठिठोली करना- यह सब संतजनों के लिए हराम है। मद (अहंकार), मोह-माया तथा स्त्री (वासना) भी संतजनों के काम नहीं हैं वह इन सब कुरीतियों से कोसों दूर होते हैं।

८३८) गृहस्थ जीवन जीनेवालों को सदा संतजनों की सेवा करनी चाहिए तथा भक्ति-भाव से परिपूर्ण रहना चाहिए। यही जीवन का सच्चा आनंद है। बैरागी को विवादों से दूर भक्ति भाव में ही मग्न रहना चाहिए।

८३९) बहुत भले और सीधा बन कर जीवन यापन नही किया जा सकता। भले और सीधे आदमी को हर कोई व्यक्ति दबाने का प्रयत्न करता है। उसकी शराफत और ईमानदारी को लोग पागलपन समझते है। जैसे जंगल मे सीधे पेडों को पहले काटा जाता है बाद में टेढ़े-मेढ़े पेडों को।

८४०) घर में रह रहे हो तो संतजनों की भक्ति अवश्य करनी चाहिए और न कर सकें तो बैराग (वैराग्य) ले लेना चाहिए और यदि बैरागी भी सांसारिक मोह-माया के बंधनों में बंधेगा तो वह बड़ा ही अभागा होगा।

८४१) संत को विरक्त एवं उन्मुक्त होना चाहिए तथा गृहस्थ का चित्त (मन) उदार होना चाहिए। यदि दोनों अपने-अपने गुणों में कमी रखते हैं तो ये लोग कभी भी पार नहीं लग सकते अर्थात इनका कल्याण नहीं हो सकता।

८४२) पूजा, सेवा, नाम, व्रत आदि तो किसी बच्ची की गुड़िया के खेल की तरह हैं। जब तक वह सयानी होकर अपने वास्तविक पिया से नहीं मिलती, तब तक वह उसे ही सत्य मानकर संशय में रहती है।

८४३) मानव तो मूर्ख है। वह मन-ही-मन इस अहंकार से भरा फिरता है कि उसने बहुत ही धर्म-कर्म (दान-पुण्य) किया है। किंतु उसके सिर पर जो कई-कई पाप कर्मों का भार है उसके प्रति वह नहीं चेतता। वह भूल जाता है कि इन कर्मों का फल तो उसे भुगतना

ही पड़ेगा। दिखावटी दान-पुण्य से उसके पाप नहीं धुल सकते।

८४४) बिना किसी मदद के चाकरी (नौकरी) नहीं होती तथा बिना बुद्धि के देह (शरीर) भी व्यर्थ ही होता है। इसी तरह बिना ज्ञान के योग ध्यान करना निरर्थक है। यह तो उसी प्रकार है जैसे ढोंगी साधु शरीर पर भस्म रमाए फिरते हैं। अर्थात अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करो, भ्रमजाल में मत फंसो।

८४५) यह संसार दु:खों का घर है। हर प्राणी चिन्ता मे डूबा रहता है। शान्ति के लिये साधु, मां, सन्तान, पत्नि की शरण मे जाना चाहिये। थका हारा इन्सान इनके पास जाकर ही अपने दु:ख दूर कर सकता है।

८४६) चींटी को चावल का एक दाना मिला और वह उसे लेकर चल दी। रास्ते में उसे दाल का दाना भी मिल गया। वह मोहवश उसे भी ले जाना चाह रही थी। वह दोनों चीजें एकसाथ नहीं ले जा सकती। उसे कोई एक चीज तो छोड़नी ही पड़ेगी। अर्थात राम (ज्ञान-भक्ति) तथा मोह-माया में से किसी एक को चुनना ही पड़ेगा। यह दोनों एकसाथ नहीं रह सकते।

८४७) राम (परम परमेश्वर, सत्य, ज्ञान) तो मानव के हृदय के अंदर ही हैं किंतु मोह-माया, अहंकार आदि विकारों ने मानव की बुद्धि रूपी आंखों पर परदा डाल रखा है। इसलिए वह उन्हें देख नहीं पाता। उन्हें देखने के लिए तो (सत्य, ज्ञान प्राप्त करने के लिए) दिल से दुविधा को हटाना होगा।

८४८) जिसके दिल में संशय है तथा वह यह नहीं समझ पाता कि आगे जाए या पीछे ? इतने पर भी वह सहज भाव से गुरु के चरणों में जाकर शरण नहीं लेता, तब तो वह निश्चय ही यमलोक का वासी बनेगा अर्थात मृत्यु को प्राप्त होगा और उसके कर्मों का फल उसे अगले जन्म में भी मिलेगा जब वह यमपुर (नीच योनि) में जन्म लेगा।

८४९) इस संसार में केवल राम नाम (आत्मज्ञान) ही निज मूल है अर्थात यही मोक्ष प्राप्ति का मूल मंत्र है। दोनों ही दीन (दो धर्म, हिन्दू और मुसलमान) उस सत्य को खोजते फिर रहे हैं। किंतु उस परम पुरुषरूपी सत्य ज्ञान को वह नहीं पा सके।

८५०) सभी लोग यहां लिखा-पढ़ी में पड़े हैं। अर्थात शास्त्र, ग्रंथ आदि पढ़कर ज्ञानी, ध्यानी बनना चाहते हैं। इस आदत को कोई भी नहीं छोड़ना चाहता। इसी कारण सभी भ्रम के जाल में फंसे हुए हैं और स्वयं को ही भूल गए हैं। यदि गुरु के चरणों में जाकर उनकी वाणी का अनुसरण करें तो यह समस्या ही न आए।

८५१) काम, क्रोध, लोभ, मोह के पश्चात मद अर्थात अहंभाव जीव में व्याप्त वह सबसे दुखदायी दोष है, जिसके कारण वह जीवनभर ऊहापोह, दुख व क्लेश में जकड़ा रहता है। लेकिन मद का कभी त्याग नहीं करता। मद के कारण ही वह स्वयं को सार्वभौम मानता हुआ अनैतिक आचरण करने लगता है।

८५२) मद के वश में होकर निर्बल का कभी उपहास नहीं करना चाहिए, न ही किसी को पीड़ित करना चाहिए। सबके प्रति मधुर व्यवहार करो तथा आत्मकल्याण का उपाय स्वयं भी करो और दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करो। आत्मकल्याण का मार्ग सद्गुरु ही बतला सकते हैं, अत: उन्हीं की शरण ग्रहण करो।

८५३) आपा (अहंकार) जब मनुष्य में घर कर जाता है तो उसके द्वारा किए गए सभी पुण्य कर्म निष्फल हो जाते हैं। सभी किया-कराया व्यर्थ हो जाता है। आपा त्याग कर हरि भजन करनेवाला तो लाखों में कोई एक ही परम भक्त होता है।

८५४) अभिमानी तो कुंजर (मस्त हाथी) के समान हो जाते हैं। उन्होंने मोह-माया में पड़कर अपना सिर उठा लिया है। किंतु जिस दिन यम (मृत्यु) के द्वार पर जाएंगे तब यमराज उन्हें जमकर यातना देगा। जैसे लुहार लोहे को पीटता है अर्थात उन्हें नरक से भी अधिक यातना भोगनी पड़ती है।

८५५) तप, भक्ति, पूजा केवल एकान्त में ही करना चाहिये वरना वो दम्भ है। विद्यार्थियों को इकट्ठे बैठ कर पढ़ना चाहिये। गीत गाने वाले मिल जुल कर गाये तो गाना अच्छा लगता है। सफर इकट्ठे मिल कर तय किया जाय तो सफर में थकावट नहीं आती।

८५६) समस्त विकारों का मूल भी मन ही है। अच्छे-बुरे जो भी कर्म मनुष्य करता है, उसका प्रेरक मन ही होता है। यदि यही मन विषय-भोगों से उपराम होकर सात्विकता अर्थात धर्म-कर्म में रम जाए तो मुक्ति का माध्यम भी बन जाता है। लेकिन इसके लिए आवश्यक है सत्संगरूपी गंगा में गोता लगाना। अर्थात संतजनों की संगत करने से मन में सात्विक विचार उत्पन्न होते हैं और जब संतों

के द्वारा ज्ञान की उपलब्धि होती है तब मन बहिर्मुखी से अंतमुर्खी हो जाता है और मनुष्य को असीम आत्मिक शांति प्राप्त होती है।

८५७) मन को नामरूपी रस्सी से बांध दिया जाए तो यह मनुष्य के नियंत्रण में रह सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए सद्गुरु से नाम का उपदेश अवश्य लेना चाहिए, तभी मानव का उत्थान संभव है।

८५८) मन तो पर्वत की तरह कठोर है, यह बात मैं अब अच्छी तरह से जान गया हूं। यदि इसमें प्रेम की टांकी लगा दी जाए तो उसमें से कंचन की खान निकलेगी अर्थात यह मन इतना बड़ा है कि उसमें प्रेम की भावना भर दी जाए तो इसमें से स्वर्णरूपी गुण निकलने लगते हैं।

८५९) यह मन तो मरकट (बंदर की तरह चंचल) है जो कहीं भी नहीं ठहरता। पलभर में कहीं से कहीं पहुंच जाता है। जब तक इसे राम नामरूपी ज्ञान-ध्यान से बांधा नहीं जाएगा तब तक यह इधर-उधर भटकता ही फिरेगा अर्थात मन को ज्ञान द्वारा अपने वश में करो न कि मन के वश में रहो।

८६०) बैरी (शत्रु) बहुत ही सबल (शक्तिशाली) है। एक जीव को पांच बैरी-आंख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा घेरे रहते हैं। यह सभी अपने-अपने स्वाद (रस) को पाने के लिए मनुष्य को बहुत ही नचाते हैं। अर्थात इन्हीं के लिए मनुष्य दुख भोगता है।

८६१) यह मन तो बहुत ही मसखरा है। हर समय मस्ती में रहता है। यदि इसे समझाओ तो यह बुरा मान जाता है। जिस मार्ग पर परमेश्वर के साक्षात् दर्शन होते हैं, उस मार्ग पर तो यह एक कोस भी चलने को तैयार नहीं होता। अर्थात मन को वश में करना बहुत ही कठिन है।

८६२) यह ज्ञान, ध्यान की बातें बहुत ही अटपटी (अजीब) हैं जो चटपट (झटपट, अतिशीघ्र) समझ में भी नहीं आतीं। किंतु यदि मन की खटपट (संशय, संदेह) दूर हो जाए तो यह मन एक स्थान पर ठहर जाता है अर्थात मन को एकाग्र कर उसे संशय मुक्त कर दो। तभी यह ज्ञान, ध्यान और भक्ति के मार्ग पर लगेगा।

८६३) यह मन बहुत लोभी है। समझाने से भी यह गंवार समझता नहीं है। राम नाम (सत्य नाम) का भजन करने में तो यह मन आलस दिखाता है और खाने-पीने के लिए यह हरदम तैयार रहता है अर्थात मन को संयम कर उसे लालच से मुक्त करो।

८६४) जिस तरह समुद्र में अनेक लहरें उठती व बैठती हैं उसी प्रकार इस मन में भी अनेक विचार, भ्रांतियां आती-जाती हैं किंतु उस दास (भक्त) पर बलिहारी (धन्य) है जो मन में उत्पन्न होनेवाली तरह-तरह की वृत्तियों को संयम में कर लेते हैं और अपने गुरु की भक्ति में ही मग्न रहते हैं।

८६५) यह मन तो मस्त हाथी की तरह है जिसे अंकुश मार-मारकर नियंत्रण में रखना पड़ता है। इसे साधनारूपी अंकुश से ही अपने वश में किया जा सकता है। तभी यह मन विष बेलरूपी विकारों को त्यागकर ज्ञान, ध्यान व साधना के अमृत फल को प्राप्त करेगा। इस अहंकारी मन को घर के अंदर ही घेरकर मार दो। जब भी यह आपकी बात अनसुनी कर पीठ दिखाकर चल दे तभी उस पर अंकुश लगाओ। जिस प्रकार हाथी अंकुश के वार से नियंत्रण में आ जाता है, उसी प्रकार मन भी ज्ञान के अंकुश सें नियंत्रण में आ जाता है। यह शरीर तो कजरी वन (केल के वृक्षों का वन) के समान है और इस वन में मनरूपी मदमस्त हाथी विचरण करता है। इसी तरह ज्ञान उस अनमोल अंकुश के समान है जिससे महावतरूपी संत मदमस्त हाथी (चंचल मन) को अपने वश में करके उसे सही मार्ग दिखाते हैं।

८६६) इस मन को पटक-पटककर इतना मारो कि इसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। पहले तो इसने दुष्कर्म (बुरे कर्म) रूपी विष की क्यारी (खेती) बो दी। जब उसे काटने (भोगने) का समय आया तो पछताने लगा। किंतु अब पछताने का लाभ भी क्या है ? जो बोया है उसे तो काटना ही पड़ेगा।

८६७) यह मन अपने अंदर उमड़ने वाली भावनाओं के कारण ही विभिन्न रूप दिखाता है। यदि मन में मंदा भाव हो तो मन दाता बन जाता है। यदि मोहमाया हो तो लालची, परोपकार से राजा तथा हीन भावना से गरीब बन जाता है। यदि यह मन गुरु से मिलना चाहे तो अवश्य ही उसे गुरु भी मिलेगा।

८६८) मन के कहने पर मत चलो। यह कभी भी एक बात पर दृढ़ नहीं रहता। मन को अपने वश में करके उसे ध्यान-साधना में लगाओ। जिस तरह सूत कातनेवाली सूत को उलटा अपनी ओर ही लपेटती है, उसी तरह मन को विषय वासना की बातों से हटाकर भक्ति में लगाओ।

८६९) कोयल का रंग काला होता है, किन्तु उसकी आवाज कितनी सुरीली होती है। इसी प्रकार से एक सुन्दर स्त्री की सुन्दरता उसके चेहरे से नहीं बल्कि उसके पति के प्यार से जानी जा सकती है। जो औरत अपने पति का मन जीत ले सुन्दर वही है।

८७०) यह मन तो पांचों इन्द्रियों (नाक, कान, आंख, जीभ (स्वाद) तथा त्वचा) के वशीभूत है। मन के वश में यह पांचों नहीं हैं, तभी तो मानव इन्हीं की आवश्यकताओं (भोग-विलास) को पूरा करने में लगा हुआ है। जहां देखो वहीं मोह-माया, भोग-विलास सभी विषयों की ही आग लगी हुई है। इससे बचने के लिए जितना दूर भागा जाए, इसकी तपन (आंच) से बचा नहीं जा सकता।

८७१) यह मन ही मानव को कठिन तप साधना से गोरखनाथ बनाता है तथा यही मन बल कौशल से लोगों को गोविंद (भगवान) के समान बना देता है। यही मन लोगों को औघड़ भी बनाता हे। जो मन को तप, ध्यान आदि से अपने वश में करके रखता है, वही स्वयं का स्वामी बन जाता है।

८७२) मन में भावनाओं के अनेक रंग विद्यमान हैं, जो क्षण-क्षण में (परिस्थिति अनुसार) बदलते रहते हैं। किंतु जो एक रंग में ही रहता है अर्थात जो मन भक्ति, साधना, ध्यान में ही रमा रहता है, वह संत सुजान कोई विरला (अनोखा) ही होता है।

८७३) स्वार्थ में अन्धे मूर्ख अनर्थ के बारे में विचार नहीं करते जैसे मधु के लोभी मधुमक्खियों के हमले के बारे में नहीं सोचते।

८७४) मन तो मोह-माया, वासना में फंसा पड़ा है और मन के वश में होकर मैं भी इन्हीं के चक्करों में पड़ा हुआ हूं। विषयरूपी इन कुसंगतियों में पड़कर इस संसाररूपी बाजार में हर दूकान, हर हाट पर बिकता फिर रहा हूं अर्थात इस संसार के आवागमन से मुक्त नहीं हो पा रहा हूं।

८७५) यदि कोई मन से ही स्वयं को हारा हुआ मान ले तो वह निश्चित रूप से हारता है और जो मन से जीता हुआ होता है वह हारकर भी जीत जाता है। यदि मन में लालसा हो, सच्ची लगन हो और गुरु के प्रति उत्साह हो तो उसे गुरु अवश्य ही मिलता है।

८७६) यह मन तो पक्षी बनकर तब तक ही विषय-वासना की उड़ान भरता है, जब तक ज्ञानरूपी बाज उस पर झपटता नहीं है। अर्थात ज्ञान की बातें मन में समा जाने पर मन से विषय-वासनारूपी सभी विकार बाहर हो जाते हैं और मन सत्कर्मों में लगता है।

८७७) यह मन ही तन को भी संचालित करता है। जब मन जहां लग जाता है तन भी वहीं चल देता है। इसलिए मन को अपने वश में करें। यदि तन-मन को अपने वश में कर लिया तो राई भी सुमेरु पर्वत के समान हो जाएगी अर्थात मन के संयम से प्राप्त होनेवाला छोटा-सा लाभ भी बहुत बड़ा होगा।

८७८) मन तो अहंकारी बनकर फूला (गर्व) फिरता है तथा यह कहता फिरता है कि मैं जो भी कर रहा हूं वही धर्म कर्म है, सत्कर्म है। किंतु इस मूर्ख को यह नहीं मालूम कि उसके सिर पर तो कई-कई दुष्कर्मों का भार चढ़ा हुआ है और वह अपनी ही मस्ती में है। वह तो इससे चेतना भी नहीं चाहता।

८८८) यह मन जब अपने वश में हो जाएगा तथा इसकी सभी लालसाएं समाप्त हो जाएंगी और मन में सत्य, ज्ञान, ध्यान की बातें आएंगी तब ही यह मन निहचल (संयमित, एकाग्र) होगा और इसे ठौर (ठिकाना) प्राप्त होगा अर्थात मन में असीम शांति और अपूर्व सुख की प्राप्ति होगी।

८८९) सिंह का गुण अपने शौर्य से मारे शिकार से पेट भरना। बगुले का विशिष्ट गुण है कि अपने सहवासियों को अपनी सज्जनता का विश्वास दिलाना। मुर्गे के गुण है अपनी प्रेयसी को दबा कर अपने अधिकार में रखना, जाति बन्धुओं से मिल कर रहना, नव प्रभात में जागना, युद्ध के लिये सदैव तत्पर रहना। कुत्ते के गुण है स्वामी भक्ति, सन्तोष, सहनशीलता, सावधानी, दृढ़ निश्चय, शत्रु पर आक्रमिक प्रवृति। गधे के गुण है भार ढोना, शान्त रहना और फल की कोई इच्छा न करना। कौवा अपने गुणों से सदैव जागरूक रहता है, किसी पर विश्वास नहीं करता, गुप्त रूप से मैथुन करना, अदभुत साहस और आक्रमकता। उक्त सभी गुण मानव जीवन में सार्थक है।

८९०) जो दूर से आये, भले सीधे-सादे प्राणी को विश्राम की जगह न दे, जो घर आये अतिथि को खाना न खिलाये और उसके सामने स्वयम् खा ले जो दूसरों का माल हडप ले ऐसे लोग तो महापापी और चोर होते है।

८९१) पहले तो मन काग (कौआ) अर्थात अज्ञानता की दशा में यह मन कौए की भांति भटक रहा था और यह जीवन पर घात करता था किंतु गुरु से ज्ञान प्राप्त करने के बाद यह मन हंस की तरह पवित्र हो गया है। अत: अब यह विकारों को छोड़कर सद्गुणरूपी मोती चुन-चुन कर खाता है।

८९२) जीवनरूपी कागज की नाव सांसारिक बंधनरूपी नदी में तैर रही है। यह कैसे पार लगाई जा सकती है, जब पांच कुसंगी (पांच इन्द्रियां) साथ हों। अर्थात मन में विकार हो तो इस भवसागर को पार नहीं किया जा सकता।

८९३) यह मन विषय-वासना में पड़कर कई-कई दुष्कर्म पल-पल में कर लेता है। यह सत्गुरु के शब्दों (ज्ञान-उपदेश) को नहीं मानता और अपना पूरा जन्म व्यर्थ गंवा देता है अर्थात यह मानव मोह-माया वासना में पड़कर अपना पूरा जीवन अर्थहीन कर देता है।

८९४) धन का लोभी ब्राह्मण असन्तुष्ट रहते हुये अपने धर्म का पालन नही कर पाता इसलिये उसका गौरव शीघ्र नष्ट हो जाता है। राजा सन्तुष्ट होनेपर नष्ट हो जाता है क्योकि वह अपने राज्य के प्रति सन्तुष्ट होने के कारण महत्वाकांक्षा से रहित व सुस्त हो जाता है और शत्रु उसे घेर लेता है। जो वेश्या लज्जा युक्त और संकोच युक्त हो जाय तो वह भी अपने ग्राहकों को प्रसन्न न कर पाने के कारण अपना व्यवसाय शीघ्र नष्ट कर बैठती है। लज्जा संकोच न करनेवाली कुलीन नारी अपनी चंचलता के कारण दुष्टों की वासना का शिकार हो कर नष्ट हो जाती है, वह पतिव्रता नहीं रह पाती। इन सबका अभिप्राय है कि ब्राह्मण को सन्तोषी, राजा को महत्वाकांक्षी, वेश्या को निर्लज्ज और पतिव्रता कुलांगना नारी को शील-संकोच के साथ ही जीवन व्यतीत करना चाहिये।

८९५) अति रूपसी पत्नी पति के लिये शत्रु से कम नही होती, क्योकि कोई भी उससे डाह कर सकता है, और उसका परिणाम घातक सिद्ध हो सकता है अत: गुणी युवती से विवाह करना ही बुद्धिमान लोगों का कर्तव्य है। जिस व्यक्ति का पत्नी से वियोग हो जाता है वह दु:खी रहता है, जो अपने परिजनों से अपमानित हो जाता है, और जो कर्ज से उनऋण न हो पाता है वह भी व्यक्ति समान रूप से ही दु:खी होकर कष्ट भोगता है। जिस व्यक्ति का स्वामी दुष्ट प्रवृति का हो वह भी कष्ट ही पाता है। साथ ही दरिद्र व्यक्ति मूर्खों के समाज में रहकर भी दु:ख ही पाता है। अत: व्यक्ति को हो सके जहां तक इन परिस्थितियों से बचना चाहिये।

८९६) इस मन की जितनी लालसाएं थीं उन्हें प्राप्त करने के लिए यह खूब दौड़ा और दौड़ता ही रहा और जब दौड़ते-दौड़ते थक गया और स्थिर हो गया तब उसे यह पता चला कि जिसे प्राप्त करने के लिए इधर-उधर दौड़ता फिर रहा था, वह वस्तु तो अपने ही पास है। अर्थात ईश्वर तो अपने मन में ही बसते हैं, उन्हें खोजने के लिए इधर-उधर भटकने की आवश्यकता नहीं है।

८९७) निश्चिंत होकर गुरु की भक्ति करो तथा मन से विकारों को त्यागकर सत्य को धारण करो। मन में उठनेवाले पांच विकारों (पांच इन्द्रियों) को अपने वश में कर लो तब किसी प्रकार की आंच नहीं आएगी। अर्थात गुरु की भक्ति और मन को अपने वश में कर लेने से सभी तरह के कष्टों से मुक्ति मिल जाती है।

८९८) यह मन तो बिना शीश के मृग समान है, जो बिना कुछ सोचे-समझे चारों दिशाओं में चरता रहता है। इसे तो गुरु ज्ञान के उपदेश से ही बांधा जा सकता है। ज्ञानरूपी डोरी से बांधकर इस चंचल मन को तत्त्व (ध्यान-साधना) में लगाओ।

८९९) इस मन को समझना बड़ा ही दुष्कर कार्य है। जो कोई मन को समझ लेता है, वह प्रपंचादि के कारण कभी भ्रमित नहीं होता और न ही उसे काल का भय रहता है। अर्थात वह मुक्त हो जाता है।

९००) यह मन तो सुर (देवता), नर (मानव) तथा मुनिजनों को भी ठगता है। यह मन ही जन्म-जन्म के बंधनों में बांधे रखता है। जो भी मन की इस ठगी से बच जाए वह तीनों लोकों में कोई न्यारा ही होगा। अर्थात मन को अपने वश में रखनेवाला कोई सत्गुरु का सच्चा साधक ही होगा।

९०१) यह काया (शरीर) मंदिर है और मन उस मंदिर के ऊपर लगनेवाली ध्वजा के समान है, जो सांसारिक विषयों की हवा के अनुसार लहराती है। हवा जिस दिशा को जाती है, मन भी उसी दिशा को चल देता है और मन के साथ-साथ यह तन भी उसी ओर चलने लगता है। इसी तरह सारा जीवन व्यर्थ हो जाता है अर्थात जो मन के आवेग में बह जाता है वह अपना सबकुछ खो देता है।

९०२) कुंभ (घड़ा) अपने अंदर जल को बांधे रखता है और जल के बिना कुंभ बन भी नहीं सकता। इसे बनाने के लिए मिट्टी में पानी भी मिलाना पड़ता है। इसी तरह इस चंचल मन को ज्ञान से बांधकर संयमित किया जा सकता है किंतु यह मन ही ज्ञान-शिक्षा में न लगे तो ज्ञान भी नहीं आ सकता।

९०३) कहते-सुनते तो सभी दिन यूं ही बीत गए किंतु यह मन तो उलझा ही रह गया, सुलझ न पाया। इतना सबकुछ हो जाने के बाद भी यह सावधान नहीं हुआ। इसे तो अभी भी ऐसा लग रहा है कि गुरु से ज्ञान प्राप्त करने का यह अभी पहला ही दिन है।

HHH(५९९)HHH

९०४) नदियों, शस्त्र धारियों, नख सीग वाले पशु, स्त्रियों और राज दरबार के लोगों का विश्वास करना घातक है। नदी कभी भी लहर पाकर जल ले सकती है, उफन सकती है; शस्त्र धारी कभी भी हमला कर सकता है। नख सींग वाले पशु कभी भी सींग मार कर जख्मी कर सकते है, स्त्रियां कभी भी झूठा लान्छन लगा सकती है, राज घराने के लोग जरा जरा सी बात पर बिगड सकते है डर दिखा सकते है, इसलिये इनसे कभी भी भय पैदा हो सकता है। इन सबसे दोस्ती और दुश्मनी दोनों ही बुरी है।

९०५) अगर तेरा मन शीतल है, इसमें द्वेष की कोई भावना नहीं है तो तेरे तन का भी कोई बैरी (शत्रु) नहीं है। तू अपने से अहंकार को त्यागकर सहज हो जा। सभी तेरे साथ दया, नम्रता और प्रेम का व्यवहार करेंगे, सभी तुझसे मित्रता करेंगे।

९०६) जब मन फटता है तो इसमें संदेह की दरार पड़ जाती है और ज्ञानदाता गुरु भी बुरा लगता है। इतना ही नहीं सभी प्रेम-भाव सगे संबंध मिट (टूट) जाते हैं। जैसे अच्छा दूध भी बिगड़कर आक का विषैला दूध हो गया हो वैसे ही सभी संबंध कटुतापूर्ण हो जाते हैं।

९०७) मेरा मन तो मकरंद (मस्त हाथी) समान था जो मेरे वश में नहीं था और मेरे सभी कर्मों को बिगाड़ देता था। किंतु संतजनों की संगत और उनके ज्ञान-उपदेश से सही मार्ग पर आ गया है। अब यह मन हरि (परमात्मा) के ध्यान सुमिरन में ही लगा रहता है।

९०८) हर पर्वत के अन्दर हीरे नहीं होते। हर हाथी के मस्तक पर माणिक मुक्ता नहीं होती। हर स्थान पर अच्छा आदमी नहीं मिलता। हर बाग व जंगल में चन्दन नहीं होता। हर चमकने वाली चीज सोना नहीं होती। यह सारा विश्व विवादों से घिरा हुआ है इसलिये अपना निर्णय लेने से पहले अच्छी तरह सोच विचार और परख कर लेनी चाहिये।

९०९) मोह-माया, वासनारूपी विकारों के बंधन से छूटकर यह मन हरि (सत्गुरु, परमेश्वर) के श्रीचरणों में लग गया है और अब यह आत्मतत्त्व में ही लीन रहता है। काल भी अब इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

९१०) मनुष्य ने उल्टी-सीधी बातों के द्वारा संसार के लोगों को ठगने में ही समय व्यतीत किया है। लेकिन मन को कभी नियंत्रित नहीं किया। इसी कारण मन शांत नहीं हो पाया। यही कारण है कि वह सांसारिक प्रपंचों में बार-बार पड़ता रहता है।

९११) दक्षिणा लेने के पश्चात ब्राह्मण यजमान को, विद्या प्राप्त करने के बाद शिष्य गुरु को छोडकर चले जाते है ऐसे ही यह संसार का नियम है कि हर जीव जन्तु, मनुष्य अपना काम होनेपर छोड जाता है। किसी जंगल के जल जाने पर या नष्ट हो जाने पर पशु पक्षी उस स्थान को छोड कर दूसरे वन में चले जाते है।

९१२) सृष्टि में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब त्रिगुणमयी माया की छाया मात्र है और भ्रमित मानव माया के पीछे-पीछे अंधी दौड़ लगाता हुआ भी कुछ विशेष प्राप्त नहीं कर पाता। वह दिन-रात जो कुछ भी सोचता है, वह माया के संदर्भ में ही है। अर्थात अधिक-से-अधिक धनार्जन कैसे किया जाए, कैसे सुख पाया जाए- मानव की सोच यहीं तक सिमट कर रह गई है।

९१३) यह माया सत्व, रज, तम गुणवाली; पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तत्त्वों से निर्मित और शब्द, रस, रूप, गंध, स्पर्श विषयों की पुतली मात्र है। मनुष्य को इसके पीछे नहीं भागना चाहिए। लेकिन मनुष्य मन से भ्रमित होने के कारण माया का ही पीछा करने में लगा रहता है।

९१४) एक अच्छा पुष्पयुक्त वृक्ष सारे बाग की शोभा बढा देता है एक अच्छा बेटा सारे वंश की शोभा बढा देता है। सौ मूर्ख बेटों से एक बुद्धिमान बेटा अच्छा होता है। केवल एक वृक्ष में आग लगने से पूरे जंगल में आग लग जाती है। एक सबसे महत्वपूर्ण है। एक चांद सारे जगत को प्रकाशित करता है। अनेक से एक भला यदि वह सपूत हो।

९१५) यह माया तो मोहिनी है जिसने सारे ही जग को मोह लिया है, सबको मोह लेती है। सबको अपने मोह जाल में फंसाती है। अर्थात सभी माया के पीछे भागते फिर रहे हैं। इससे बचने का कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता। इससे तो कोई संतजन ही बच सकता है जो अपने कुल, अहंकार को तोड़कर राम नाम के सुमिरन में ही लगा रहता है। यह मांगने से किसी के हाथ में नहीं आती किंतु जो इसे झूठ और लोभ मानकर अपने मन से त्याग देता है, यह उसी के आगे-पीछे डोलती रहती है अर्थात यह माया हमें हमारी इच्छा पर नहीं मिलती। यह तो उसे ही मोहने की कोशिश करती है जो इससे दूर भागता है। जैसे खांड (चीनी) मीठी होती है, वैसे ही माया भी भोगने में बहुत ही मीठी लगती है। यह तो सत्गुरु के ज्ञान उपदेश की कृपा थी कि हम इसके मोह से बच गए। अन्यथा इसके चक्कर में पड़कर तो भाण्ड (नौटंकीबाज) बनकर ही रह जाते।

HHH(६००)HHH

९१६) यह माया तो पापिनी है जिसने लोगों को लोभ जाल में फंसाकर उनके अंदर से सत्यनाम (राम नाम) को निकाल दिया (भूधला दिया) है। लोग भी इस माया के वश होकर इसे भोगना चाहते हैं किंतु वह इसे पूरा भोग भी नहीं पाते हैं और इसी मध्य उनका अंत भी हो जाता है अर्थात न माया मिलती और न ही राम मिल पाता है। यह माया दीपशिखा समान है और यह मानव पतंगे की भांति उस दीपशिखा के मोहवश उस पर मंडराता रहता है। मोह के भ्रम में पड़कर मानव स्वयं को जलाकर राख कर देता है। अनेक में कोई एक गुरु का भक्त होता है जो उनके ज्ञान उपदेश के कारण इस माया के मोह से बच जाता है। यह माया तो डाकिनी (डायन) की तरह है जो सभी को अपने जाल में फंसाकर खा रही है। किंतु मैं इस पापिनी डायन के दांत उखाड़ लूंगा यदि यह संतजनों के निकट चली गई। अर्थात साधारण लोग ही इस माया के मोह में फंसते हैं, संतजनों का माया से क्या काम। यह माया तो ठगनी है और यह सम्पूर्ण जग को ठगती फिर रही है। किंतु इस ठग ने इस ठगिनी को ही ठग लिया वह ठग तो महान है। उसे तो प्रणाम करना चाहिए अर्थात मायारूपी ठगिनी को तो संतजन ही अपने ध्यान और तप के बल पर ठग सकते हैं। यह माया तो पापिनी है जो लोगों को भोग-वासनारूपी फंदे में फंसाने के लिए अपना बाजार लगाए बैठी है। इस जग के सभी अज्ञानी और मूर्ख लोग तो इस फंदे में फंस जाते हैं। लेकिन जिसे अपने गुरु के शब्दों (अमृत-वाणी) का आशीर्वाद मिला हो वही इस मोह-माया के फंदे से बच पाता है।

९१७) यह जग तो एक बहुत बड़ा बाजार है और स्वाद इस बाजार में ठग बनकर खड़ा है। माया भी वेश्या के रूप में इस बाजार में है। किंतु मानव को इन दोनों ही से बचना चाहिए। राम नाम (सत्य नाम) को गहराई से जपते रहो अन्यथा तो यह मानव जन्म व्यर्थ हो जाएगा।

९१८) यह माया तो काल (दुख विकार) की खान (भंडार) है। यह तो निर्गुण रूप धारणकर मानव के लिए विपरीत बन जाती है। यह जहां भी जाती है, वहां सुख नहीं रह पाता। लोगों को दुख और कष्ट देना ही माया की रीत है। फिर भी लोग इस कष्टकारी माया के पीछे भागते फिरते हैं।

९१९) मैं जानता था कि मेरा हरि सत्य ज्ञान से मिलन होगा। मेरे मन में यह पूरी आशा थी कि ऐसा जरूर होगा। किंतु यह माया बहुत पिशाचिनी (भूत-प्रेत-डायन) है। इसने मेरे और मेरे हरि (आत्मतत्त्व) के बीच में अंतर (भेद) पैदा कर दिया है।

९२०) मोह-मायारूपी इस जग में खाने और व्यय करने में बहुत अंतर (भेद) है। इस बात को मन में रखकर अच्छी तरह से विचार करो। एक तो साधु को खिलाता है किंतु दूसरा उसे मिट्टी में मिला देता है अर्थात जो परिश्रम के धन से स्वयं भी खाता है और कुछ बचाकर संतजनों को भी खिलाता है, वह माया तो परोपकार की है किंतु माया का लोभी तो उसे अपने भोग-विलास में ही व्यय करके माया को धूल में मिला देता है।

९२१) जब माया (मोह) मर जाती है और मन की अशांति भी समाप्त हो जाती है, जीवन की सभी आशा और तृष्णाएं भी मन से निकल जाती हैं और यह मन स्थिर हो जाता है, तब यह शरीर अमर हो जाता है। लोग मरने के बाद भी उस शरीर को याद रखते हैं।

९२२) हर काम सीमा व मर्यादा के अन्दर ही करना चाहिये। सीमा लांघ कर किया हुआ हर काम नुकसान दायी होता है। बहुत सुन्दर होने के कारण सीता जी का हरण हुआ। अपनी क्षमता से अधिक गर्व करने के कारण रावण मारा गया। अपनी मर्यादा से बाहर आकर दान करने से राजा बलि को बन्धन में बंधना पडा।

९२३) जिसने झीनी (पतली सूक्ष्म) माया (मोह, अहंकार, वासना आदि) को अपने मन से त्याग दिया, उसके मन से मोटी माया (धन-सम्पत्ति, रिश्ते-नाते) का लोभ भी स्वयं ही चला गया। ऐसे जन (लोगों) के पास से सभी दुख दूर हो जाते हैं अर्थात सभी तरह की माया के लोभ से मुक्त होकर ही मानव सत्य ज्ञान, आत्मस्वरूप को पहचान पाता है।

९२४) साधु ऐसा होना चाहिए जो दान-अर्पण में आए हुए धन से मोह न करे। बल्कि उस धन को पुन: परोपकार में लगा दे। ऐसा करने से मन के सभी दोष (विकार) दूर रहेंगे और उनके सिर की सभी बलाएं भी टल जाएंगी। वह चिंता मुक्त होकर अपने धर्म-कर्म को करता रहेगा।

९२५) जब प्रेम की आंधी चली तो भ्रम की दीवार भी ढह गई और माया की टाटी भी उड़ गई। अब सबके मन में सत्य नाम की ही प्रीत लगी है। अर्थात सत्गुरु के प्रवचनों की आंधी से सभी भ्रम टूट जाते हैं, मन से माया का लोभ छूट जाता है और मन भक्ति साधना में लग जाता है।

९२६) जिन शिष्यों को सत्गुरु (सांई) ने अपने रंग में रंग दिया हो (ज्ञान का भरपूर भंडार दिया हो) वह तो कभी भी कुरंग (गुणहीन मैले) नहीं हो सकते। वह तो दिन-प्रतिदिन सुख की अमृतवाणी के जाप में ही मगन रहते हैं, जिसके कारण उन पर तो भक्ति का और भी रंग चढ़ता जाता है अर्थात उन्हें उनके पथ से डिगाया नहीं जा सकता।

९२७) यह माया तो विषैली सर्पिणी (नागिन) के समान है जो अपनी ही जनता (बच्चों) को खा जाती है। कोई ऐसा गरुड़ (पक्षी) रूपी संत नहीं मिला जो इस नागिनरूपी माया को पकड़कर ज्ञानरूपी पिटारे में बंद कर सके ताकि लोग इस मोह-माया से बच सकें।

९२८) माया-माया तो सभी लोग पुकारते हैं किंतु माया क्या है ? यह किसी को मालूम ही नहीं है। इसके सत्यरूप को तो कोई भी नहीं जानता। मन में उठनेवाली कल्पनाएं, इच्छाएं (धन-दौलत, वासना आदि) जो मन में गहरे पैंठ जाए वास्तव में वही माया का स्वरूप है। उसे ही माया कहा जाता है।

९२९) प्रेम की डाली तो बहुत ही ऊंची होती है जिस पर हरि का भक्त ही बैठ कर साधनारूपी फल खा सकता है। उस वृक्ष के नीचे तो बाघिनी बैठी है। यदि भक्ति में थोड़ी-सी भी चूक रह गई तो वह बाघिनी उसे खा जाएगी अर्थात माया के लोभ से मुक्त होकर ही साधना करनी चाहिए अन्यथा माया का मोह उस पर हावी हो जाएगा और उसकी साधना व्यर्थ चली जाएगी।

९३०) माया के वशीभूत होकर यह जीव (मनुष्य) भ्रमित होकर इधर-उधर भटकता फिरता है। भटके हुए जीव को माया से मुक्त करने के लिए ही समय-समय पर संतजन इस पृथ्वी पर आते रहते हैं। भ्रमित जीव यदि संतों की शरण में जाए तो उसका अवश्य ही कल्याण होता है।

९३१) इस माया का सुख तो मात्र चार दिन का है। ओ गंवार मानव। तू क्यों इसे ही पकड़े बैठा है। यह तो स्वप्न में पाए हुए राज्य के समान है, जो आंख खुलते ही लुप्त हो जाता है। इसी प्रकार पास के धन को जाते हुए जरा भी देर नहीं लगती। यह धन कभी भी किसी एक का नहीं होता।

९३२) संतजनों की तो यह माया दासी होती है, क्योंकि वह लोग माया का मोह नहीं करते। किंतु अज्ञानी लोगों के लिए तो माया सिर का ताज है। साकट (निगुरा-अज्ञानी) के सिर पर बैठकर ही यह माया मनमानी करती है, जबकि संतजनों की लाज रखती है।

९३३) इस जग में माया जैसी मोहिनी (मोहनेवाली) कोई भी नहीं है और इस मन के जैसा कोई चोर नहीं है। हरिजन (हरि का भक्त) के समान सत्य ज्ञान का पारखी भी इस जग में कोई नहीं है अर्थात भक्ति साधना, तपस्या करनेवाले संतजन ही इस जग में सबकुछ हैं। वह मोह-माया लालसा से भी परे हैं।

९३४) निरन्तर परिश्रम ही गरीबी हटाने का अचूक उपाय है। परिश्रमी व्यक्ति कभी निर्धन नहीं रह सकता। उद्यम करने वाले को प्रारब्ध में लिखा मिलता है, सोते सिंह के मुख में पशु अपने आप नहीं चला जाता, परिश्रम के बिना तो सिंह को भी भूखा मरना पडता है।

९३५) माया के लोभ को छोड़ने की बात तो सभी करते हैं किंतु माया का मोह मन से जाता ही नहीं। वह लोग बस, इसे छोड़ने की ही बात करते हैं। पर यही माया जिसे वह छोड़ना नहीं चाहते, बाद में उन्हीं को बहुत मारती है अर्थात बहुत कष्ट और दुख देती है।

९३६) बिना भक्ति भाव के जो पद्म शंख को रखता है अर्थात अज्ञानी और मूर्ख लोग कितनी ही माया (धन-सम्पत्ति) एकत्र कर लें, वह सब व्यर्थ ही है। वह तो निश्चित ही यम के निवाले बनेंगे, और जन्म-जन्मान्तर तक नरक ही भोगेंगे।

९३७) इस माया को छोड़े बिना तो यह छूटेगी नहीं। इसे छोड़ने के लिए तो राम (आत्मज्ञान) के सहारे की आवश्यकता पड़ती है। इस जीव ने बहुत प्रयास कर लिया किंतु उसका कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सका अथात हृदय से माया के लोभ को त्याग दो और उसे हरि साधना में लगाओ, तभी कार्य सिद्ध होंगे।

९३८) मन से माया त्याग दी और घर-बार सब छोड़कर साधुरूप धारण कर लिया। किंतु माया तो फिर भी लिपटी ही रही। अर्थात बिना सोचे-समझे और बिना गुरु आशीर्वाद के धन-दौलत तो त्याग दी और बैरागी भी बन गए किंतु मन का अहंकार नहीं गया।

९३९) ऐसी माया को जोड़ने से क्या लाभ जो अंतकाल में भी काम न आ सके। इससे तो उत्तम गुरुनाम का धन है जिससे सर्वत्र (इहलोक-परलोक में) सुख ही सुख मिलता है।

९४०) अभिमान तभी दूर होता है जब जीव में नम्रता का भाव जागृत हो। यह भाव भी तभी जागृत होता है जब जीव (मनुष्य) सच्चे

गुरु की शरण में जाकर निजबोध (आत्मज्ञान) की दीक्षा ग्रहण करे। आत्मबोध हो जाने पर जब जीव के सभी विकार नष्ट हो जाते हैं।

९४१) संतजनों की मान-बड़ाई देखकर लोग भी उसी लालच में भक्ति करने लग जाते हैं। किंतु ऐसी भक्ति का कोई लाभ नहीं होता और जब वह भी ऐसी भक्ति को निष्फल जाते देखते हैं तो भक्ति में अवगुण निकालने लग जाते हैं। अपनी भक्ति की भावना को नहीं देखते जिसमें समर्पण, लगन का भाव नहीं होता।

९४२) मान-अभिमान तो मन से त्याग दिया किंतु उसका क्या लाभ ? मन तो अभी भी लोभ-माया के पीछे भाग रहा हैं जो व्यक्ति संतों के वचनों को नहीं मानते उसे हरि के दर्शन कभी भी नहीं होते अर्थात वह आत्मज्ञान से वंचित ही रहता है।

९४३) मान-बड़ाई बहुत ही कष्टकारी है। यह तो इस जग के व्यवहार से ही पता चलता है। दीन (नम्रता), गरीबी, बंदगी (भक्ति) ही सुखी जीवन के साधन है। सत्गुरु के चरणों में जाकर स्वयं को समर्पित कर दो, वह अवश्य ही उपकार करेंगे।

९४४) जो वास्तव में बड़े होते हैं, मन के सच्चे होते हैं, वह कभी भी अपनी बड़ाई नहीं करते और न ही कभी कोई बड़ा बोल (अभिमान के शब्द) बोलते हैं। हीरा कभी भी स्वयं यह नहीं कहता कि उसका मोल तो लाखों में है, उसे तो जौहरी ही समझ सकता है। इसी तरह मानव को भी पारखी (संतजन) ही परख सकते हैं।

९४५) जब तक यह जीवन है अपने मन से दो बातों (मान-बड़ाई) को निकाल दो। मान-बड़ाई करने के चक्कर में जीवन के मूल उद्देश्य को न भूलो अर्थात मानव जीवन को परोपकार में लगाओ। इस जीवन को इन सब व्यर्थ की बातों में लगाकर मत गंवाओ।

९४६) मान-सम्मान, ज्ञान-ध्यान, धन-दौलत आदि पाकर यदि कोई बड़ा भी बन गया तो क्या हुआ ? अगर वह विचारों और बुद्धि से छोटा है तो सब व्यर्थ है। जंगल में यदि कोई पुष्प खिल जाए तो उसकी महक किसको मिलेगी, वह तो कुछ समय बाद स्वयं ही झड़कर गिर जाएगा।

९४७) ऊंचे कुल में जन्म लिया और देह (शरीर) भी अस्थूल (अच्छी कद-काठी) पाई। जैसे ब्रह्मा को सुगंधहीन पुष्प नहीं चढ़ाया जाता वैसे ही ऊंचा कुल, अच्छा शरीर व्यर्थ है यदि इन सबका अभिमान किया जाए। अत: अभिमान को त्यागकर अपने जीवन की सार्थकता को सिद्ध करें।

९४८) प्रभुता (सुख-सम्पन्नता) को तो सभी लोग पूजते हैं और उसकी चाहत भी रखते हैं किंतु प्रभु (ईश्वर) की पूजा करने से कतराते हैं, उनका ध्यान मनन नहीं करते। उस परमपिता परमेश्वर का ध्यान करो, उन्हीं की पूजा करो, तब प्रभुता भी तुम्हारी चेरी (दासी) हो जाएगी।

९४९) अहंकार में डूबे इस जग के सभी लोग स्वयं को गुरु कहते हैं। जब भी मिलेंगे अपने को गुरु कहेंगे। कभी भी कोई शिष्य (चेला) बनकर नहीं मिलता। जब किसी गुरु के सच्चे शिष्य को कोई शिष्य ही मिलेगा तभी कुछ हो सकता है अर्थात ज्ञान से ज्ञान बढ़ेगा।

९५०) मूढ़मति जीव मोहपाश में फंसकर अपने अनमोल जीवन का ह्रास करने में ही लिप्त है। अपने भविष्य का वह कभी विचार नहीं करता। समय रहते उसे मोक्ष का कोई साधन अवश्य कर लेना चाहिए। काल कब अपना पंजा उसकी ओर बढ़ा दे, कुछ कहा नहीं जा सकता। मोक्ष का साधन उसे संतजनों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

९५१) जब हृदय में मोह (सांसारिक विषयों का) समा जाता है तब चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई पड़ता है, जिसमें फंसकर मानव भटकता ही रहता है। निर्मोही (मोहमुक्त) ही अपने ज्ञान-विचार के कारण इस भवसागर से पार हो पाते हैं और ऐसे ही लोग संतजनों की श्रेणी में आते हैं।

९५२) अष्ट सिद्धियों तथा नौ निधियों को मोह की खान (भंडार) माना गया है। मोह की इस वासना (लालच) को अपने मन से पूर्णरूप से त्याग दो। जो इस बात को समझता है वही सुजान (समझदार) है, अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है।

९५३) इस संसार में सभी लोग मोह के जाल में फंसे हुए हैं। अज्ञानतावश वह इस जाल से छूट भी नहीं पा रहे हैं। कोई पारखी (ज्ञान, ध्यान से परिपूर्ण) संतजन ही इस जाल से मुक्ति पा सकता है और दूसरों को भी मुक्ति दिला सकता है। अत: मोहरूपी अज्ञानता को साधु के श्रीचरणों में जाकर दूर करें।

९५४) कोई भी जुगति (युक्ति, उपाय) को नहीं जान सका कि किस विधि (तरीका) से अपनी खेती (जीवन) को बचाया जाए। न

तो किसी में बंदगी (सेवा-भावना) है, न दीनता (विनम्रता) है और न ही संतजनों की संगत के प्रति कोई लगाव है। ऐसे में जीवन तो व्यर्थ होना ही है।

९५५) नाम का जाप करने वाले के सभी पाप नष्ट हो जाते है। शास्त्रों में पापों के प्रायश्चित के रूप में तप की महता है, जो व्यक्ति निरन्तर जप करता है उसके पाप तो रह ही नहीं सकते।

९५६) मोहरूपी नदी बहुत ही विकराल है, कोई भी इसके पार नहीं जा सकता। सत्गुरु रूपी केवट जब साथ हो तो भक्त सरलता से इस नदी को पार कर जाता है। अर्थात मोह का कोई अंत नहीं होता। मोह तो बढ़ता ही जाता है किंतु सत्गुरु से ज्ञान का अमृत मिल जाए तो इस मोह के जंजाल से मुक्ति मिल जाती है।

९५७) सम्पूर्ण पृथ्वी कुरुक्षेत्र (कर्म का स्थान) है, जिस पर रहनेवाले सभी जीव अपने-अपने कर्म की खेती करते हैं। किंतु जब मन में मोह आ गया तब यह मोहरूपी मृग सारे खेत को चर गया (कर्म निष्फल हो गया) और किसान का खलिहान खाली ही रह गया। अत: कभी भी अपने मन में मोह को जन्म न दें।

९५८) जोगी, जंगम, सेवड़ा, ज्ञानी, गुणी तो इस जग में अनेक हैं। षट दर्शन करके भी क्या होगा- यदि लोभ के चक्कर में पड़ गए। अर्थात लोभ मुक्त जीवन में ही आनंद है, लोभ में पड़कर मानव स्वयं को नष्ट ही करता है।

९५९) यदि मानव अंतर्मुखी हो जाए तो वह शांति का प्रतिरूप हो जाता है और उसकी वाणी में भी माधुर्य भर जाता है। ऐसा मनुष्य कभी भी किसी को कटुवचन नहीं बोलता। यह सब गुरु की कृपा से प्राप्त ज्ञानोपलब्धि होने पर ही सुलभ हो सकता है।

९६०) जो शब्द (गुरुवाणी) गुरुजनों ने कहे हैं, उन्हीं का अनुसरण करो। बहुत बोलनेवाले पाखंडी साधु तो कई मिल जाएंगे जो स्वार्थ के लिए जगह-जगह घूमते-फिरते हैं और लोगों को मूर्ख बनाते हैं। ऐसे साधुओं से बचो और सच्चे साधु की शरण लेकर उनके शब्दों का सुमिरन करो।

९६१) ईख गन्ना, तिल, स्त्री, सोना, धरती, चन्दन, दही और पान को जितना अधिक मसला जाय, रगडा जाय, या दबाया जाय, उतना ही उसके गुणों में अधिक वृद्धि होती है। गन्ने को अधिक पेलने से रस अधिक निकलता है। तिलों का अधिक पीडन से तेल अधिक निकलता है, मूर्ख स्त्री, पुरुष पिटाई होने के भय से ही कुछ सीधे हो जाते है। स्त्री को भोग के समय अधिक मसलने से प्रसन्न होकर पति के वश में रहती है। सोने को अधिक तपाने से उसमें अधिक चमक और शुद्धि आ जाती है। इसी प्रकार धरती को अधिक खोदने से अधिक उपजाऊ हो जाती है। चन्दन, दही और पान भी अधिक रगडने से स्वाद व गन्ध में अति उत्कृष्ट हो जाते है।

९६२) शब्द (ज्ञान) को दुराया (छिपाया) नहीं जा सकता। जो जन जौहरी (पारखी) होता है वही शब्द को शीश चढ़ाकर भी अपने अंदर (हृदय में) समा लेता है। अर्थात वह शब्द (गुरु वाणी, ज्ञान) के महत्त्व को समझता है।

९६३) सत्य ज्ञानरूपी शब्द को पाकर जो अपना मन संयमित कर ले वही दरबार (गुरु का दर) पहुंचता है। वहां पहुंचकर वह परमपिता परमेश्वर से साक्षात करता है। गुरु के चरणों पर ही मनुष्य का सर्वस्व (मोक्ष) होता है।

९६४) शब्द (सत्य वचन) किसी का मुलाहिजा (पक्षपात) नहीं करते। यह तो चारों दिशाओं में स्वतंत्र रूप से फिरते रहते हैं। अहंकार को अपने हृदय से त्याग दो और इन शब्दों को अपना लो। तभी गुरु और शिष्य में भी व्यवहार हो पाएगा अर्थात सत्य की राह पर चलनेवाले शिष्य ही गुरु को प्रिय होते हैं।

९६५) जिस शब्द (सत्य ज्ञान) का उपदेश मैं कहता हूं, यदि कोई उसका अनुसरण करे तो वह संत प्रकृति का हो जाता है। वही मनुष्य अपने परम परमेश्वर राम (ईश्वर) के दर्शन कर पाता है। अर्थात गुरु ज्ञान के अनुसार चलो, जीवन का कल्याण हो जाएगा।

९६६) शब्द (ज्ञान) का गुरु भी शब्द ही है, क्योंकि ज्ञान की गहराइयों को शब्दों में ही समझा जा सकता है। इसी तरह इस काया (शरीर) का गुरु भी यह काया ही है। शरीर से ही हमें शरीर के बारे में पता चलता है। सदा शब्द की भक्ति करो तभी शब्द की महिमा को समझ पाओगे।

९६७) हरिजन (हरि का भजन करनेवाले संतजन) वही हैं जो अपनी जीभ से कभी भी किसी को बुरा नहीं कहते, अपशब्द नहीं बोलते। वह तो आठों पहर गुरु के ज्ञान विचार में चित्त (ध्यान) लगाए रखते हैं। अर्थात सच्चा भक्त तो सदा भक्ति में ही लगा रहता

है उसे सांसारिक झमेलों में पड़ने का समय ही कहां मिल पाता है।

९६८) शब्द तो इस जग में बहुत हैं, लेकिन वही शब्द सत्य का सार है जो हमें गुरु के द्वारा प्राप्त हुआ है। उसी शब्द (ज्ञान) की महानता भी है। उस गुरु को तो सबकुछ बलिहारी (समर्पित) है। उनके द्वारा दिया गया ज्ञान कभी भी व्यर्थ नहीं जाता।

९६९) वह संतजन सदा संतोषी होते हैं, जो शब्दों की सत्यता के भेद को जानते हैं और उस पर विचार करते हैं। सतगुरु के प्रताप (आशीर्वाद) से वह सहज (शील) मन को धारण करते हैं अर्थात संतजनों के अमृत वचनों को हृदय में बसाकर उन्हीं के मतानुसार चलते हैं।

९७०) टीलों और ऊबड़-खाबड़ को ढहाकर मैदान को समतल कर दो अर्थात मन से भेदभाव और अहंकार को मिटाकर निर्मल कर दो। अगर यह बात समझ आती है तो ऐसा जरूर करो। अपने सभी विकारों को दूर कर दो, तभी शब्द ज्ञान को प्राप्त कर अपने जीवन को सफल कर पाओगे।

९७१) मानव देह बडे भाग्य से मिलती है। मानव देह मिलने के पश्चात भी जो व्यक्ति अपनी बुद्धि का उपयोग करके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न न करे उसका जन्म निरर्थक है। वह तो इस संसार में बार बार मरने के लिये जन्म लेता है और जन्म लेने के लिये ही मरता है। मनुष्य के जन्म की सार्थकता धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में किसी एक की प्राप्ति है, जो अपनी बुद्धि से एक की प्राप्ति भी नहीं कर पाता उसका जन्म लेना तो मृत्यु समान है।

९७२) रात के अंधेरे का नाश हो जाता है जब प्रात: सूर्य उगता (सूर्योदय) है। इसी सार शब्द (ज्ञान) को जानने से कर्म के भ्रम (अज्ञानता), सांसारिक मोह मिट जाते हैं अर्थात अज्ञानता के अंधेरे को जीवन से निकालकर ज्ञान के प्रकाश को अपना लो।

९७३) शब्दों के सार की जानकारी न होने पर अर्थात ज्ञान, ध्यान के बिना यह जीव प्रलय (विनाश) के चक्र में फंस जाता है। यह शरीर और माया (पास का धन) दोनों ही स्थिर नहीं हैं, यह तो कभी भी साथ छोड़ सकते हैं। जीवन के इस परम सत्य (शब्द) को अच्छी तरह से समझ लो।

९७४) मृत्यु सभी जीवों पर सदैव मंडराती रहती है। लेकिन मूढ़मति को इसका ज्ञान नहीं होता। इसका ज्ञान उसी को होता है जो सद्गुरु द्वारा उपदेशित हो तथा सत्य शब्द का ज्ञाता हो। इसलिए गुरु की शरण में जाकर तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए। तत्त्व ज्ञान या शब्द का सत्य ज्ञान ही जीव को मृत्यु जैसे कष्टों से उबारने में सक्षम है।

९७५) यदि जीवन में निज उत्थान करना है, कल्याण करना है तो सदैव संतजन की ही संगत करनी चाहिए। संग-कुसंग का भलीभांति विचार कर मनुष्य अपने जीवन को जिस प्रकार का ढालना चाहेगा वैसा ही उसका जीवन हो जाएगा।

९७६) संतजनों की संगत से यदि प्रसाद के रूप में जौ की भूसी ही मिले तो वह भी आदर के साथ ग्रहण करें। किंतु साकट (निगुरा) की संगति बिल्कुल भी न करें। भले ही वह खीर (मिष्ठान्न आदि) ही क्यों न बांटे। कहने का भाव यह है कि निगुरे की संगति कभी भी नहीं करनी चाहिए।

९७७) संतजनों की संगत प्रतिदिन नियम से करनी चाहिए। इससे दुरमति (कुमति) दूर होगी तथा सद्बुद्धि मिलेगी। अर्थात संतजन के दर्शन मात्र से ही जीवन के दुष्प्रभाव दूर हो जाएंगे।

९७८) संतजनों की संगत कभी भी निष्फल नहीं जाती। यह बिल्कुल उसी तरह है जैसे आप बीज को भूनकर भी बो देंगे तो वह फल-फूल जाएगा अर्थात आपके जितने पाप कर्म होंगे वह संतजनों के दर्शन से ही दूर हो जाएंगे।

९७९) एक पल को या आधे पल को या फिर आधे से भी आधे पल को ही संतजनों की संगत जरूर करें। संतजनों की संगत में जाने से कई-कई बार किए हुए अपराधों के पाप भी दूर हो जाते हैं।

९८०) मथुरा, काशी, द्वारका, हरिद्वार, जगन्नाथ आदि कितने ही तीर्थ स्थानों की यात्रा कर लो। किंतु संतजनों की संगत तथा हरि भजन (परमेश्वर नाम) के बिना तो सब व्यर्थ है। इनके बिना तो कुछ भी हाथ में नहीं आएगा।

९८१) साखी (अमृतवाणी) तो बहुत ही सुनी पर मन का दाग न मिट सका। संतजनों की संगत के बाद भी जो सुधर नहीं सका वह तो बहुत ही अभागा है। क्योंकि अब तो उसे सुधारने का कोई और तरीका भी नहीं है।

९८२) मानव के सभी कलह और कल्पनाएं (आशाएं) संतजनों के सत्संग में जाने से दूर हो जाती हैं। ऐसे मानव से दुख सदा दूर ही

भागता है और वह संतजनों के आशीर्वाद से सदा सुखी ही रहता है।

९८३) जीवन, यौवन, राजपाट, अभिमान कुछ भी अविचल (स्थिर) नहीं रहता, यह सब समय के साथ पीछे छूट जाता है। इसलिए इन सबसे मोह छोड़कर संतजनों की संगत में जाना चाहिए, यही जीवन का एकमात्र सत्य है।

९८४) चर्चा (संगत) आदि चौहट (खुला आंगन) में भी कर लो, ज्ञान की बातों को भी उनके चाहनेवालों के सामने ही करो किंतु जब ध्यान लगाना हो तो केवल एकान्त में लगाना चाहिए। अर्थात प्रत्येक विषय-वस्तु की अहमियत होती है, उसे उसी के अनुसार करना चाहिए।

९८५) सत्य से साक्षात कैसे हो ? इसके लिए सत्कर्म, सद्धर्म, परोपकार, आत्मज्ञाता गुरु की शरण, मानव-धर्म का पालन अति आवश्यक है। मानव-धर्म क्या है- इसको स्पष्ट समझना भी आवश्यक है। मानव द्वारा मानव की पूजा (सम्मान), परोपकार, दयाभाव, समदर्शिता ही मानव-धर्म है।

९८६) जीवन में समय का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योकि जीवन अपने में महत्वपूर्ण होता है। जब तक व्यक्ति निरोगी है तब तक मृत्यु करीब नही होती, तभी तक वह कर्म कर सकता है आत्मकल्याणी कर्म अर्थात मोक्ष प्राप्ति सम्बन्धी कर्म। दान, परोपकार, तीर्थ, सेवा, व्रत, सत्संग एवम् पूजा आदि से मनुष्य को अपना कर्तव्य निभाना चाहिये, क्योंकि पता नहीं कब मृत्यु वरण कर ले। व्यक्ति को सत्कर्मों में लिप्त रहना चाहिये, इसी से पुण्य की प्राप्ति होती है।

९८७) सामान्यत: साधु का अर्थ दर-दर भिक्षा मांगनेवाले भिक्षुओं से लिया जाता है। लेकिन यहां साधु का तात्पर्य उन सदाचारी, नम्र स्वभावी, समदृष्टा पुरुषों से है जो न केवल तन से पवित्र होते हैं बल्कि जिनका मन भी मोम के समान होता है। अर्थात जो परम दयावान, कृपालु भी होते हैं। ऐसे संत पुरुषों के कारण ही सृष्टि भी स्थिर है। वे सांसारिक प्रपंचों से दूर, तप में लीन रहनेवाले, मान-अपमान, जात-पात के भेदों से पृथक होते हैं।

९८८) संत पुरुषों के लिए सारा जगत ही घर होता है तथा वह संयमी, संतुष्ट, आत्मज्ञानी होते हैं। ऐसे संत पुरुषों की सेवा व दर्शन दुर्लभ ही हैं। इनका उद्देश्य कुमार्गगामी को सद्मार्ग का निर्देशन कर उसके जीवन का कल्याण करना होता है। वस्तुत: देखा जाए तो आध्यात्मिकता के विकास में ऐसे ही सत्पुरुषों (साधुओं) की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। संतपुरुषों की महिमा का बखान प्राय: सभी भक्त कवियों ने समय-समय पर किया है।

९८९) दिन में कई-कई बार साधुओं के दर्शन करो इससे मन प्रसन्न होगा। यह उसी प्रकार है जैसे आश्विन माह में बरसात कई बार बरसकर खेतों पर उपकार करती है। साधु दर्शन से ही मन प्रसन्न तथा आत्मा तृप्त होती है।

९९०) वह दिन चाहे कैसा भी हो, भला होता है, यदि उस दिन संतजन से मिलन हो जाए। भक्ति भाव से साधुओं से मेल-मिलाप व उनकी सेवा करने से तन-मन के सभी कलुष नष्ट हो जाते हैं।

९९१) यदि एक दिन साधु के दर्शन न भी हो सकें तो कोई बात नहीं दूसरे दिन साधु के दर्शन जरूर करने चाहिए। साधुओं के दर्शन मात्र से ही मानव को उत्तम देह प्रसाद के रूप में मिलती है। अगर दूसरे दिन भी किसी कारणवश साधु के दर्शन न हो सकें तो तीसरे दिन तो अवश्य प्रयास करना चाहिए कि उनके दर्शन हो जाएं। उनके दर्शन मात्र से ही मानव को आत्मिक शांति मिलती है। तीसरे-चौथे दिन भी आप साधु-दर्शन से वंचित हो गए हों तो उनके दर्शन के लिए बार-बार कोशिश करें। साधु-दर्शन में जरा भी विलंब मत करो। बार-बार कोशिश करने पर यदि सप्ताह में भी दर्शन न हो सकें तो पखवाड़े में दर्शन कर लेने चाहिए। जो भक्त ऐसा कर लेते हैं, उनका जन्म-जन्मान्तर सफल हो जाता है। पाख-पाख (एक पक्ष) में भी यदि साधु-दर्शन न हो पाएं तो मास में एक बार ही कर लीजिए। इसमें जरा भी देर न लगाएं-क्योंकि पहले ही बहुत देर हो चुकी है। यदि एक माह में भी साधु के दर्शन न हो पा रहे हों तो छह माह में तो जरूर ही साधु दर्शन कर लेने चाहिए। इसमें तो बिल्कुल ही ढील न कीजिए। किन्हीं कारणों से यदि छह मास में भी आपको साधु दर्शन सुलभ न हो पा रहे हों तो साल में एक बार जरूर साधु दर्शन करें। ऐसे लोग चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो जाते हैं। यदि साल में एक बार भी कोई साधु के दर्शन नहीं करता है तो वह अवश्य ही दोष का भागी बनता है। ऐसा जीव तो जीवन में कभी भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर पाता।

९९२) संतजनों के दर्शन करने में किसी भी प्रकार की आनाकानी नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार श्रम करने से लक्ष्मी (धन) की प्राप्ति होती है और आलस करने से क्षति होती है, उसी प्रकार संतजनों के दर्शन से जीवन सफल हो जाता है।

९९३) संतजनों के दर्शन भाग्यवान को ही सुलभ होते हैं। अगर मृत्युदंड हो तो साधु-दर्शन मात्र से वह ऐसा अनुभव करता है जैसे केवल कांटा ही चुभाया गया हो अर्थात साधु दर्शन ही संकटमोचक है।

९९४) कई लोग संतजनों के दर्शन कई बार नहीं कर सकते। अत: वह दिन में दो बार भी साधु-दर्शन कर लें तो उनका जीवन सुधर जाएगा। संतजनों के दर्शन मात्र कर लेने से मानव को काल भी दगा (धोखा) नहीं दे सकता। अर्थात मानव मृत्यु को भी जीत लेता है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दिन में दो बार संतजनों के दर्शन नहीं कर पाते। वह लोग यदि दिन में एक बार भी इन महात्माओं के दर्शन कर लें तो भी कल्याणकारी है। संतजन के दर्शन करने से ही यह मानव भवसागर के पार जा सकता है। अर्थात व्यावहारिक बंधनों से मुक्त हो सकता है।

९९५) संतजनों को आते देखकर जिसके मन में घमंड उत्पन्न होता है या उन्हें दान-दक्षिणा देने के भाव से वह उनसे मिलने से कतराता है तो वह निश्चित रूप से अगले जन्म चूड़ा बनेगा और लोग उसका गांव से बहिष्कार कर देंगे। संतजनों को आते देखकर यदि हमारा मन प्रसन्न होता है और हम उनका भरपूर मान-सम्मान करते हैं तो हमारे सिर के सभी बुरे ग्रह उतर जाते हैं और हमारी आंखों का स्नेह बढ़ जाता है।

९९६) संतजन अतिथि की भांति आते हैं और अपने भक्तजनों से चार रत्न मांगते हैं। ये अनमोल रत्न है; धूनी, पानी, साथरा (आसन) तथा भक्तिभाव से अन्न (भोजन)। भक्तों को उनकी यह मांग अवश्य पूरी करनी चाहिए।

९९७) संतजनों के मिलने पर सभी संकट दूर हो जाते हैं। काल (मृत्यु), जाल (दुविधाएं) चोट आदि का भय, सब मात्र साधु दर्शन से ही टल जाते हैं। उनके सम्मुख सिर झुकाकर आशीर्वाद प्राप्त करने से सभी पाप धुल जाते हैं।

९९८) संतजन सदैव प्यार के भूखे होते हैं, उन्हें धन की लालसा बिल्कुल नहीं होती। किंतु जो साधु धन-मोह-माया के पीछे भागते फिरते हैं, वह सच्चे साधु नहीं होते। ऐसे संतजनों से बचना चाहिए।

९९९) जो हमें सुख देकर हमारे सभी दुखों को दूर कर दे। हमारे सभी अपराध-पापों को पुण्य में बदल दे। ऐसे परम स्नेही साधु से कब मिलन होगा ? अर्थात सदा संतजनों की संगत करते रहो ताकि वह तुम्हें क्षमा कर सुखी जीवन प्रदान करें।

१०००) संतजन तो हरि के दरबारी हैं अर्थात हरि से आत्म साक्षात्कार करवाने वाले दूत हैं। इनकी संगत करने से सबकुछ प्राप्त हो सकता है। साधु में तो हरि स्वयं ही बसते हैं जो इनके श्रीचरणों में जाता है वह हरि (आत्मदर्शन) को पा लेता है।

१००१) संतजनों की तो कुटिया भी बहुत भली है, वहां जाकर आपको शांति मिलेगी। किंतु साकट का तो गांव भी भला नहीं होता। वहां बिल्कुल नहीं जाना चाहिए। चंदन का छोटा-सा टुकड़ा भी अच्छा है जो अपनी गंध से सबका मन मोह लेता है। पर बबूल के जंगलों से किसी को क्या लाभ हो सकता है।

१००२) नृपनारी की निंदा क्यों की जाती है अर्थात रानी (राजा की पत्नी) की लोग प्रशंसा क्यों नहीं करते जबकि पनिहारी (भगवान की भक्तन) को लोग मान-सम्मान देते हैं। ऐसा इसलिए है कि रानी तो अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए ही मांग भरती है, उसी के लिए सजती-संवरती है जबकि हरि (राम) की भक्तन तो केवल अपने राम के चरणों में ही अर्पित होती है।

१००३) तीर्थ यात्रा पर जाने से तो केवल एक ही फल मिलता है अर्थात यह तन पाप मुक्त हो जाता है किंतु गुरु के दर्शन से तो चार फल मिलते हैं। अर्थात पाप मुक्ति के साथ-साथ धर्म, सफलता और मोक्ष की प्राप्ति होती है। सत्गुरु के मिलने पर तो अनेक फल मिलते हैं।

१००४) जल में भी वैसी शीतलता नहीं होती और न ही हिम (बर्फ) उतनी ठण्डी होती है जितना कि संतजनों का जीवन शीतल होता है। क्योंकि संतजन स्नेही अर्थात राम भक्त होते हैं। यही कारण कि उनके जीवन को शीतल अर्थात शांत स्वभाव का कहा गया है।

१००५) जिस प्रकार चार विधि, घीसना, काटना, तपाना तथा पीटने से सोने के खरे खोटेपन की जांच की जाती है, उसी प्रकार मनुष्य के ऊंचेपन तथा श्रेष्ठता की जांच भी चार तरीकों उसकी त्यागवृत्ति, शील, गुण, तथा सत्कर्मों से होती है।

१००६) संतजनों की संगत अवश्य करनी चाहिए। चाहे मोह-माया, रिश्ते-नाते सबकुछ छूट जाएं। संतजनों की अमृतवाणी का

स्नेह न मिले तो मरकर भी पुनर्जन्म लो और संतजनों के संग की कोशिश करो। तभी जीवन सफल होगा और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

१००७) संतजन तो हर जनमानस में रम (घुल-मिल) जाते हैं, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण या धर्म का क्यों न हो। साधु किसी को कोई कष्ट भी नहीं पहुंचाते। वह केवल अपने मत (विचार) को ही रखते हैं। और उसी का पालन करते हैं।

१००८) कई-कई बार तीर्थ यात्रा कर लो, कई-कई बार धाम के दर्शन कर आओ। किंतु यह सब व्यर्थ ही जाएगा जब तक आप संतजनों की सच्चे मन से सेवा नहीं करते अर्थात साधु-सेवा ही करोड़ों तीर्थ यात्राओं के समान फल देनेवाली है।

१००९) बुद्धिमान गृहस्थ व्यक्ति को चाहिये वह अपने धन के नष्ट होने के मानसिक सन्ताप (किसी भी पारिवारिक घटना से होने वाली मानसिक व्यथा) को, धर्म पत्नी की दुश्चरित्रता का, किसी नीच व्यक्ति के द्वारा किये गये प्रहार की तथा अपने अपमान की चर्चा किसी से भूलकर भी न करे। इन समस्त बातों को यथा सम्भव गुप्त ही रखना चाहिये। इन्हें प्रकाश मे लानेवाला व्यक्ति समाज मे हंसी, अपमान, निन्दा का पात्र बनता है। लोग उसे घृणा और हितकारी भरी दृष्टि से देखने लगते है। यही बुद्धिमान पुरुष का कर्म है। यदि धन का नाश हो जाय, मन की शान्ति भंग हो जाय और औरत के चरित्रहीन होने का सन्देह हो जाय, बुद्धिमान लोग इन सब बातों को दूसरों को नहीं बताते। जो लोग ऐसा करने की भूल करेंगे तो लोग सुन कर उनका मजाक उडायेंगे। धर्म के लेन देन और व्यापार के हिसाब, विद्या व साहित्य के संग्रह में, खाने पीने के व्यवहार में जो लोग शील संकोच नहीं करते वे सदा सुखी रहते है।

१०१०) साधु ऐसा होना चाहिए जो किसी दुखी को और दुख न दे अर्थात उसे अपना व्यवहार ऐसा रखना चाहिए कि दुखी को सांत्वना मिले। जिस प्रकार माली बगीचे में रहते हुए भी उसके पुष्प नहीं तोड़ता, उसी प्रकार साधु को जग में रहते हुए किसी को सताना नहीं चाहिए।

१०११) स्वयं को साधु कहलवाना बहुत ही कठिन कार्य है। यह बिल्कुल तलवार की धार पर चलने के समान है। यदि पग जरा भी डगमगा जाए तो वह गिर जाएगा अर्थात उसका साधुत्व समाप्त हो जाएगा। जो साधु साधुत्व के नियमों को मानेगा वही सच्चा साधु होगा।

१०१२) साधुत्व एक बहुत ही गंभीर बात है। सभी के लिए साधु बनना बहुत ही कठिन है। यह बिल्कुल खजूर के पेड़ की तरह है, जो इस पर चढ़ गया उसे ही फल मिलेगा अर्थात साधुत्व प्राप्त होगा किंतु जो गिर गया वह चकनाचूर हो जाएगा अर्थात वह कहीं का भी नहीं रहता।

१०१३) संतजन और सूरमा (शूरवीर) परदे में रहनेवाले नहीं हैं। इनके कर्मों की पताका तो इनके माथे पर ही बंधी रहती है। अर्थात ये अपने सद्कर्मों से ही पहचाने जाते हैं। कोई इन पर कितनी ही चोट क्यों न करे। पर यह अपने विश्वास में दृढ़ रहते हैं।

१०१४) साधु तो सभी एक जैसे होते हैं, अफीम का खेत भी अन्य खेतों की तरह एक खेत ही है किंतु जैसे अफीम के खेत को बुरा माना जाता है, वैसे ही सभी श्वेत वस्त्रधारी साधु तो होते हैं किंतु सभी में साधुत्व नहीं होता। कोई-कोई ही ज्ञान संपन्न होता है।

१०१५) जो साधु की चाल में चलता है वही साधु कहलाता है अर्थात स्वयं को साधु कहलवाने से वह साधु नहीं बन जाता। इसके लिए संतजनों जैसे आचरण, ज्ञान व साधना की जरूरत होती है। बिना कठिन साधना के कोई मात्र भगवा वस्त्र धारणकर तथा भजन आदि गाकर साधु नहीं बन जाता।

१०१६) सच्चा साधु वही होता है जो साधुत्व की चाल में चलता है अर्थात उसका आचरण भी शुद्ध होना चाहिए। साधु को सदैव परमार्थ करते रहना चाहिए। लोभ, लालच, कपट तो उसके मन में बिल्कुल नहीं होना चाहिए। उसे अपने मधुर वचनों से सबको प्रभावित करना चाहिए।

१०१७) साधु तो सभी सम्माननीय हैं और सभी की अपनी-अपनी ठौर (स्थान, ठिकाना) है। अर्थात सभी के पास अपने स्तर का ज्ञान है। किंतु वही साधु सिर-आंखों पर बैठाने योग्य है जो तत्त्वज्ञानी तथा साधुत्व की भावना से परिपूर्ण हो।

१०१८) संतजनों के लिए दुख-सुख एक ही समान होते हैं। सुख से न तो वह प्रसन्न होता है और न ही दुख से दुखी। वह तो हर हाल में दूसरों के लिए उपकारी ही सिद्ध होता है। न ही वह किसी से क्रोधित होता है और न ही किसी को प्रसन्न देखकर उनके मन में ताप (जलन) होता है।

१०१९) साधु को ऐसा होना चाहिए जिसमें ज्ञान और विवेक दोनों ही समान रूप से हों। उनके द्वारा बाहर से तो भले ही सभी शिष्यों को समान प्रेम-भाव मिले या न मिले कोई बात नहीं। किंतु भीतर से (मन से) उसमें सबके लिए समान रूप से प्रेम-भाव होना चाहिए।

१०२०) संतजन सदा संतोषी प्रवृत्ति के होते हैं। उनके मन में कभी भी किसी प्रकार की लालसा नहीं होती। वह अपने धर्म के पालन में दृढ़ तथा अपने चित्त (मन) में केवल गुरुदेव की ही आशा रखते हैं। संसार की किन्हीं अन्य बातों (मोह-माया, लालसा) का उनके मन में कदापि विचार तक नहीं आता है।

१०२१) संतजन सदा कृपालु होते हैं। वह दूसरों के दुख दूर करते हैं। उनमें किसी के प्रति भी बैर (दुश्मनी) की भावना नहीं होती। क्षमा, ज्ञान और सत्य ही उनकी पहचान है तथा उनका जीवन हिंसारहित होता है।

१०२२) संतजन अपने धर्म पालन के प्रति सदैव सावधान रहते हैं और अपने स्वभाव में शीतलता (मधुरता) रखते हैं। वह सदा प्रसन्न मन से अपनी वाणी को कहते हैं (गाते हैं)। वह सभी विकारों से दूर अपने मत (विचारों) के प्रति गंभीर होते हैं। धैर्य और दया में वह किसी से भी कम नहीं होते।

१०२३) संतजन स्वभाव से शील (नम्र) तथा दृढ़ निश्चयी होते हैं अर्थात अपने ज्ञान मत पर अडिग रहते हुए साधु नियमों का कठोरता से पालन करते हैं। उनका चित्त (मन) दूसरों के प्रति सदा उदारवादी होता है। वह मन में लज्जा तथा हृदय में कोमलता को समेटे हुए होते हैं।

१०२४) संतजन कभी भी किसी से कोई बैर नहीं रखते और न ही उनमें किसी प्रकार की लालसा होती है। वह तो केवल अपने स्वामी (गुरु) के प्रति प्रेम में ही मगन रहते हैं। उन्हें यही विषय (प्रेम, ज्ञान, शील, दया) पसंद आते हैं और इन्हीं सिद्धान्तों पर चलना वह पसंद करते हैं।

१०२५) पत्नी जैसी भी हो, धन जितना भी हो, यह सब यदि समय पर मिल जाय तो सबसे अच्छा होता है। यह सब पा लेने के पश्चात उसे यह नहीं भूलना चाहिये कि उसे विद्या भी प्राप्त करना है। व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी स्त्री से ही सन्तोष करे, चाहे वह रूपवती हो या साधारण, वह सुशिक्षित हो या निरक्षर। व्यक्ति को जो भोजन प्राप्त हो जाये, उसी से सन्तोष प्राप्त करे। आजीविका से प्राप्त धन से भी सन्तोष करे। शास्त्रों के अध्ययन, प्रभु स्मरण और दान कार्यों में कभी भी सन्तोष नहीं करे।

१०२६) संतजन मान-सम्मान या अपमान को भी मन से नहीं लगाते अर्थात मान-अपमान से उनके स्वाभिमान को कोई अंतर नहीं पड़ता। पर वह सदा औरों को पूरा मान-सम्मान देते हैं। यदि कोई उनसे ज्ञान की आशा करे तो वह उनकी इच्छा को अवश्य पूरा करते हैं। उन्हें ज्ञान-उपदेश देकर अनुग्रहीत करते हैं।

१०२७) साधु के पास कोई श्रद्धा भाव तथा दान-दक्षिणा लेकर जाए या कोई खाली हाथ जाए, साधु के लिए दोनों ही एकसमान होते हैं। वह दोनों को ही प्रेम-भाव से आशीर्वाद देते हैं। वह न भाव (दान, दक्षिणा) देखते हैं न ही अभाव।

१०२८) साधु अपना मन देवताओं में नही लगाते। वह तो अपने मन में केवल अपने गुरु को ही बसाते हैं अर्थात उनके लिए देवी-देवता से भी बढ़कर गुरु होते हैं। वह अल्पाहार (हल्का भोजन) करनेवाले होते हैं। इसी से ही उनकी सारी तृष्णा दूर हो जाती है। अर्थात वह भोग-विलास की प्रवृत्ति से बहुत दूर होते हैं।

१०२९) बुद्धिमान पुरुष को तब तक ही भय से डरना चाहिये जब तक कि भय सामने नहीं आता। अगर एक बार भय सामने आ ही जाये तो उसका मुकाबला करना ही श्रेयस्कर है। भय के आने पर शंकित होना या उसकी शक्ति से डर कर छिपने की कोशिश करना समझदारी का काम नहीं। जब संकट सामने है तो जो होना है, वह होगा, देखा जायेगा ऐसा न सोच कर उस पर पहल करते हुये वार करना चाहिये। वस्तुत: आत्म विश्वास और साहस द्वारा व्यक्ति अनायास ही बडे-बडे संकट पर आसानी से काबू पा लेता है।

१०३०) साधु कभी भी अपने साधुत्व को नहीं छोड़ते, चाहे उन्हें कितने ही असंत (अज्ञानी) मिल जाएं। अथवा कोई मूर्ख उन पर कितने ही लांछन (आरोप) लगाए किंतु वह सदा अपनी मर्यादा में रहते हैं। जैसे चंदन के वृक्ष पर अनेक विषैले सर्प रेंगते रहते हैं किंतु वह अपनी गंध देना नहीं छोड़ता।

१०३१) अपने तन-मन के अहंकार को हृदय से निकालो और ऐसे विनम्र शब्दों को बोलो कि वह दूसरों को भी शीतलता प्रदान करे और अपने हृदय को भी सुख की अनुभूति हो। दूसरों की प्रसन्नता में ही स्वयं की प्रसन्नता छिपी होती है। अत: मधुर वचनों से दूसरों को प्रसन्न रखते हुए स्वयं भी प्रसन्न रहो।

१०३२) जो सदा राम नाम के ध्यान में मग्न रहते हैं, उनके लिए हंसी खेल (सांसारिक खेल-तमाशे, हास-परिहास) व्यर्थ की बात है। इसी प्रकार मोह-माया, मंदिर (महल आदि), स्त्री (वासनामय संबंध) संतजनों के काम के नहीं अर्थात संतजन इन सांसारिक बंधनों से दूर ही रहते हैं।

१०३३) संतजन तो कमल पत्र की भांति हैं। जो इस संसाररूपी कीचड़ में रहते हुए भी स्वयं को दाग नहीं लगने देते और न ही उसमें डूबते हैं। अर्थात संसार में रहते हुए भी मोह-माया में नहीं फंसते। जैसे बालक को पालनेवाली आया कभी भी उस बच्चे को अपने बच्चे जैसा प्यार नहीं देती।

१०३४) संतजनों का आचरण जिस तरह बाहर से शीतल और सौम्य होता है, उसी प्रकार भीतर से (हृदय से) भी वह उसी आचरण के होते हैं। भीतर से कुछ और तथा बाहर से दिखावे में साधु नहीं होना चाहिए। अगर कोई ऐसा करता है तो वह साधु नहीं बहुरूपिया कहलाएगा।

१०३५) जुआ, चोरी, मुखबिरी (जासूसी), सूदखोरी और परायी स्त्री पर नजर डालना-यह सब बहुत ही बड़ी सामाजिक बुराइयां हैं। यदि कोई संतजनों के दर्शन की इच्छा रखता है या उनकी संगति चाहता है तो उसे इन सब विकारों को तुरंत त्यागना होगा।

१०३६) दया (सबके प्रति दया भाव), गरीबी (धन से गरीब), बंदगी (पूजा पाठ), समता (सबके लिए समानता), शील (धैर्यवान) तथा सुभाव (विनम्रता) ही साधु के लक्षण हैं। इन्हीं मार्गों पर चलकर संतजन साधुत्व को प्राप्त करते हैं।

१०३७) संतजन एकांत वातावरण में आसन करते हैं तथा कामिनी (वासनामय स्त्री) की संगत से दूर ही रहते हैं। वह अपने शीतल स्वभाव के कारण ही शिरोमणि (सबके पूजनीय) कहलाते हैं और यही इनका नूर (तेजस्विता) होता है।

१०३८) हर आदमी को अपनी अपनी शक्ति का आभास होता है। वह उसी में आनंदित रहता है। ब्राह्मण की शक्ति शिक्षा, राजा की शक्ति उसकी सेना, वैश्य की शक्ति उसका धन। शूद्र की शक्ति सेवा मे रहती है।

१०३९) अब तो कलियुग (बुरा समय) आ गया है। तभी तो लोग संतजनों को नहीं मानते। कामी (वासना का लोभी), क्रोधी तथा मसखरों (ढोंगी, नाम के साधु) की ही पूजा की जाने लगी है।

१०४०) जो नीच प्रवृति के व्यक्ति दूसरों के दिलों को चोट पहुंचाने वाले मर्म वेधी वचन बोलते है, दूसरों की बुराई करने में खुश होते है, वे अपने विष भरे वचनों से कभी कभी स्वयम् भी घायल हो जाते है। अपने वचनों द्वारा बिछाये हुये जाल में स्वयम् भी घिर जाते है और उसी तरह नष्ट हो जाते है, जिस तरह बल्मीक (दीमक) के भीतर बाबी समझकर घुसा सांप बाहर नही निकल पाता और अन्दर ही अन्दर दम घुटने से मृत्यु को प्राप्त होता है। अत: किसी भी व्यक्ति को किसी को कष्ट पहुँचाने वाले वचन नहीं बोलने चाहिये न ही किसी की बुराई करनी चाहिये।

१०४१) संतजनों के दर्शन मात्र से ही महाफल की प्राप्ति होती है अर्थात कई-कई यज्ञों के बराबर फल प्राप्त होता है। एक मंदिर ही नहीं - इनके दर्शन, संगत तथा विचारों से तो पूरा नगर ही शुद्ध हो जाता है।

१०४२) संतजन पवित्र नदियों के समान हैं। जिस तरह नदियां अपनी विहंगम चाल में जहां- जहां से बहती हैं वहां-वहां के लोगों की तृष्णा मिटाती हैं। उसी प्रकार संतजन भी जिन गलियों से निकल जाते हैं वहां अपनी पवित्र वाणी से लोगों की तृष्णा मिटा देते हैं अर्थात उनका जीवन सफल कर देते हैं।

१०४३) अच्छे कुल (वंश) के कई मिल जाएं। ज्ञानी, ध्यानी, पंडित भी कई-कई मिल जाएंगे। किंतु भक्त यदि किसी छोटी जाति का ही क्यों न हो, उसके पैरों के बराबर भी किसी का शीश नहीं हो सकता। चाहे वह किसी भी कुल या वंश का क्यों न हो।

१०४४) वस्तुत: संत पुरुष वही है जो सांसारिक प्रपंचों को पार करके भी साधु दर्शन अवश्य करता है। क्योंकि सामान्यत: जब व्यक्ति साधु संग करना चाहता है तो कुटुंबीजन, धन, मोह आदि बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं। इन सब बाधाओं को जिसने पार कर लिया वही भवबंधन से मुक्त होता है।

१०४५) संतजनों की सेवा में लौंग, इलाइची, दातुन, मिट्टी, पानी सदैव अर्पित्त करो। इन आवश्यक उपादानों के समर्पण से संतजन निश्चय ही प्रसन्न होते हैं।

१०४६) सबसे बड़ी दौलत ज्ञान-सेवा है। इस सेवा के समक्ष धन, दौलत, उत्तम अश्व, गाय, भव्य, भवन, राजसी सामग्री आदि भी

तुच्छ है। इसी प्रकार संत सेविका ही सर्वोपरि है उसके आगे राजपत्नी भी संत सेवा करे तो वह भी अर्थहीन है। भाव यह है कि संतों की सेवा भावहीन द्रव्यादि के समर्पण से नहीं की जाती बल्कि इसके लिए साधनहीन होते हुए भी सेवा भावना की परम आवश्यकता है।

१०४७) जिस प्रकार सुन्दर पुष्प बिना महक के व्यर्थ होता है उसी प्रकार रूपवान, पूर्ण यौवन से भरपूर, कुल मे पैदा होने वाली स्त्री हो या पुरुष विद्या के बिना बिल्कुल बेकार होते है।

१०४८) मनुष्य योनि बड़ी दुर्लभ है। इसको पाने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं लेकिन यह जीवन मानव देह पाकर भी सद्गुरु से विमुख रहकर लोक गांव का वासी बनकर जीवन को व्यर्थ ही गंवा रहा है। सद्गुरु की शरण में जाकर उसे सुमिरन (अजपा जाप) का ज्ञान प्राप्त कर जीवन को सफल बनाना चाहिए।

१०४९) राम नाम का सुमिरन करने से अनेक पापियों का उद्धार हो गया। राम का नाम ही जीवन का आधार है, इसे कभी भी मत छोड़ो। राम का नाम ही एक सच्चा नाम है, इसे सदा हृदय में बसाए रखो। राम का नाम जपने वाला तो कुष्ठ रोगी भी श्रेष्ठ है, जिसकी चमड़ी (शरीर) से रक्त रिसता रहता है लेकिन राम के नाम का जाप वह निरंतर करता रहता है। किंतु वह कंचन देह किस काम की जिसके मुख में राम का नाम नहीं अर्थात भला-चंगा स्वस्थ आदमी भी चिंतन-मनन नहीं करता तो वह व्यर्थ ही है। राम से अधिक राम के नाम को महत्त्व है। नाम का तात्पर्य सुमिरन (ध्यान) से है।

१०५०) हरि मिलन (हरि दर्शन) के बारे में दो ही बातें सुनी हैं। जीवन में कुछ बनना है तो हरि का नाम लो अर्थात उस परमेश्वर की सच्चे मन से साधना करो या फिर निस्वार्थ भाव से सेवा, दान तथा सत्कर्म करो। यह भी हरि मिलन के समान ही हैं।

१०५१) इस जग में कोई भी यम (मृत्यु) से बचा नहीं रह सकता। मृत्यु तो एक अटल सत्य है। राम नाम (सत्य ज्ञान) के बिना मृत्यु के बाद भी कल्याण नहीं है। किंतु जो जन राम नाम के प्रेमी हैं उनसे तो यम भी डरता है, क्योंकि आत्मदर्शन के कारण ऐसे लोग जन्म-मरण की बाधा को पार कर लेते हैं।

१०५२) गुरु के आशीर्वाद से मिले ज्ञानरूपी अनमोल रत्न को पक्की गांठ में बांधकर रख लो। जब तक इस रत्न को परखनेवाला सच्चा जौहरी न मिले तब तक इस गांठ को न खोलें। जब ग्राहक ही नहीं है तो मोल कैसा। ज्ञान की सच्ची चाहत रखनेवालों को ही ज्ञान का उपदेश करना चाहिए।

१०५३) राम नाम को तो कभी जाना नहीं अर्थात सांसारिक बंधनों के चक्कर में पड़कर उस परमपिता परमेश्वर को ही भूल गए जो आध्यात्मिक ज्ञान के लिए जरूरी है। किंतु अगर मौका निकल गया तो फिर देर हो जाएगी। यह शरीर तो काठ की हांड़ी के समान है जो केवल एक बार ही आग पर चढ़ती है। अर्थात मृत्यु के बाद शरीर आग की भेंट हो जाएगा। जो भी करना है मृत्यु आने से पहले कर लो।

१०५४) राम नाम के रूप में एक बहुत ही उत्तम औषधि हमें सत्गुरु ने दी है। इस औषधि का नियम से सेवन करने पर रोग-शोक से मुक्ति मिलती है। अर्थात राम नाम को जपनेवाले सभी दुखों और दुविधाओं से मुक्त हो जाते हैं।

१०५५) नाम तो इस संसार में कई-कई हैं जिनका लोग जाप भी करते हैं किंतु इन असत्य नामों के जाप से मुक्ति नहीं मिल सकती। आदिनाम (राम-नाम, आत्मज्ञान) ही एक ऐसा गुप्त नाम है जिसे हर कोई नहीं जप सकता। इसे तो कोई विरला (गुरु का सच्चा शिष्य) ही जप सकता है।

१०५६) जब हृदय में राम नाम (सच्चे ज्ञान) को बसा लिया तब सभी पापों (विकारों) का नाश हो गया। बिल्कुल ऐसे ही जैसे आग की एक छोटी-सी चिनगारी सूखी घास के ढेर को जला देती है।

१०५७) मार्ग बहुत ही लम्बा है तथा घर (गुरु द्वार) बहुत ही दूर है। इस पथ में बाधाएं भी बहुत हैं, जिन्हें झेलना पड़ता है। हे संतजनो। तुम ही बताओ इस तरह तो गुरु के दीदार बहुत ही दुर्लभ हैं। अर्थात गुरु प्राप्ति बहुत ही कठिन है। गुरु को पाने के लिए संसार के मोह का त्याग करना पड़ता है।

१०५८) जिसने राम को गांठ में बांध लिया है अर्थात रामरूपी ज्ञान तथा दर्शन को अपने मन में बसा लिया है उसके सभी काम सिद्ध होते हैं। उसके सामने तो आठों सिद्धियां तथा नौ निधियां भी हाथ जोड़कर खड़ी हो जाती हैं अर्थात आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के बाद वह पूर्ण साधक बन जाता है।

१०५९) जिसने राम (आध्यात्मिक चिन्तन) को समझ लिया उसने तो शास्त्रों के भेद (गूढ़ रहस्य) को भी समझ लिया। किंतु जिसने राम नाम नहीं समझा वह चारों वेदों का ज्ञाता होकर भी नरक का भागी बनेगा। राम नाम का ज्ञान सभी शास्त्रों से ऊपर है।

१०६०) एक राम ही सबकुछ हैं। उसे ही अपने हृदय में बसा लो। बाकी सबको भूल जाओ। तीर्थ, व्रत, जप तथा तपस्या आदि राम नाम के ध्यान के आगे व्यर्थ हैं। इन सबको छोड़कर सत्गुरु के चरणों में स्वयं को अर्पित कर दो।

१०६१) मेरी पूंजी तो वही आध्यात्मिक ज्ञान है जिसे राम कहते हैं। जिन्होंने मुझे सदा निहाल (खुश) रखा है। यह पूंजी तो पुरुष बल से अर्जित धन के समान है जिसे न तो कोई चोरी कर सकता है और न ही यह काल के गर्त में समा सकता है।

१०६२) जिस प्रकार मोह-माया में मन रम (बस) जाता है, उसी प्रकार मग्न होकर राम में मन को लगाओ (रमाओ)- यही सच्ची साधना है। जब मन राम में रम जाएगा तो ब्रह्माण्ड को भी चीरकर अमरापुर (अमरस्थान, मोक्ष) को प्राप्त कर लोगे।

१०६३) आदि नाम (सत्यनाम, आत्मज्ञान) तो पारस के समान है तथा विकारों से भरपूर मैला मन लोहे के समान है। जो इस पारस का स्पर्श करता है कंचन (स्वच्छ) हो जाता है अर्थात सत्य नाम जपने से मन के सभी विकार (मैल) दूर हो जाते हैं।

१०६४) स्वयं भी राम नाम (परमेश्वर का नाम, सत्य का नाम) कहो (जपो) तथा औरों को भी राम नाम जपने के लिए प्रेरित करो। जो मुख राम का नाम न जपे उसे भी इसे जपने के लिए कहो। उसे राम नाम की महिमा का अर्थ समझाओ ताकि वह इस नाम से वंचित न रह जाए।

१०६५) अपने मन में ज्ञान का दीपक जलाकर प्रकाश कर दो ताकि अज्ञानरूपी अंधेरा छंट जाए। इसके बाद गुरु द्वारा दिए गए राम नाम (सत्य नाम, आत्मज्ञान) का सुमिरन करो तथा सहज समाधि लगाकर राम के ध्यान में मग्न हो जाओ।

१०६६) ऐसा सुख किस काम का है जो राम नाम (हृदयस्थ आत्मतत्त्व) के चिंतन को भी बिसरा दे। इससे तो उत्तम दुख है जो राम नाम की पल-पल में सुधि दिलाता है। आशय यह है कि सुख में जीव ईश्वर को भूल जाता है। जब दुख पड़ता है तभी वह ईश्वर को सुमिरता है। अत: दुख ही श्रेष्ठ है जिसके कारण हरि स्मरण तो होता है।

१०६७) पहले स्वयं जागिए। इस मोह-माया में पड़कर सोए न रहिए। न जाने किस पल में हाथ आया समय निकल जाए और कोई अन्य सुअवसर का लाभ उठा ले। अर्थात राम-नाम (आत्म-स्वरूप) के दर्शन जल्दी से कर लो, सोते न रहो अन्यथा अवसर हाथ से निकल जाने पर पछताना ही पड़ेगा।

१०६८) जो सदा एक चित्त से हरि नाम के ध्यान में रहते हैं उनके मुख से सदा मोती झरते हैं अर्थात उनके शब्दों (वाणी) में अत्यंत मिठास आ जाती है और मन को अपार शांति मिलती है।

१०६९) कई-कई जन्मों के कर्मों का ब्योरा पल में ही कट (समाप्त) जाता है, अगर हृदय से पलभर के लिए भी राम को याद कर लिया जाए। भले ही हम अनेक युगों तक पुण्य कर्म करते रहें, पर कहीं ठाम (स्थान) नहीं मिलेगा, यदि राम को याद नहीं किया। अर्थात आत्मज्ञान से मुक्ति मिलती है।

१०७०) वही मुख भला है जिससे राम नाम का सुमिरन किया जाए। जिस मुख से राम का नाम न निकले वह मुख भला किस काम का। अर्थात जात-पात, कुल, वर्ण आदि से मनुष्य की पहचान नहीं होती। मनुष्य तो वही भला है जो राम का नाम लेता है अर्थात आत्मचिंतन करता है।

१०७१) लेने को (भक्ति करने को) तो गुरु का नाम ही श्रेष्ठ है और दान देने के लिए अन्न को अच्छा माना जाता है। इस जग से तरना चाहते हो तो आधीनता (दीनता, नम्रता) से अच्छा कोई भी (भाव) नहीं है। डूबकर मरनेवालों के लिए तो अभिमान (घमंड) है अर्थात अभिमानी को कभी भी मुक्ति नहीं मिलती।

१०७२) सागर सदा शान्त और गम्भीर रहता है किन्तु प्रलयकाल में वह भी अपनी सीमा पार कर जाता है परन्तु अच्छे ज्ञानवान, बुद्धिमान एवम् साधु पुरुष कभी भी अपनी सीमा का उल्लंघन नही करते। वे सागर की तरह प्रलय में अपनी सीमा का बन्धन नही तोडते।

१०७३) जिस प्रकार आमिषाहारी व्यक्ति में दया, धन के लोभी में सत्य, व्यभिचारी में पवित्रता नहीं हो सकती ठीक उसी प्रकार घर के प्रति आसक्ति रखने वाले को विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। विद्या प्राप्ति के लिये मोह, दया, ममता के भावों को जगाने के लिये आमिष

आहार, सत्य को अपनाने के लिये लाभ और पवित्रता के लिये स्त्रियों में आसक्ति का परित्याग ही एक मात्र उपाय है।

१०७४) अपना मन (ध्यान) सुमिरन (राम-नाम) में इस तरह लगाइए जैसे मछली पानी से मन लगाकर रहती है। पानी से निकाल देने पर मछली तुरंत ही अपने प्राण त्याग देती है। यह बात सत्यता पर भी खरी उतरती है।

१०७५) प्रतिदिन प्रात:काल शास्त्रोक्त वनस्पतियों में से इच्छित कामनानुसार किसी भी वनस्पति की हरी ताजी दातून से दांतों को स्वच्छ, निर्मल व चमकदार बनाना चाहिये। इनके सेवन से सौ वर्ष की आयु तक दांत न हिलते है, न गिरते है।

१०७६) मनुष्य बनकर इस जग में जन्म लिया है, ऐसा अवसर पुन: नहीं मिलेगा। मन में राम नाम को धर लो (ध्यान कर लो), वही इस जग के पालनहार हैं। ऐसा करके तुम इस जग के भवसागर को पल में पार कर लोगे। अर्थात एक राम नाम ही सच्ची साधना है जिससे जीवन का कल्याण हो जाता है।

१०७७) राम नाम तो सबके लिए है जो भी इस नाम को लूट सकता है, लूट ले। अगर इससे वंचित रह गया तो पछताएगा। जब मर जाएगा तो कोई भी नहीं पूछेगा। अत: जब तक जीवन है तब तक राम नामरूपी सत्य ज्ञान को प्राप्त कर लो।

१०७८) यह नींद तो मीच (मृत्यु) की प्रतीक है। उठो, जागो और इस मोह-मायारूपी नींद को त्याग दो। इस जगत में सभी अन्य रसायनों (दवाइयों) को छोड़कर राम रसायन (प्रभु का नाम, आत्मज्ञान) को लो ताकि मोहरूपी निद्रा पास भी न फटक सके।

१०७९) शास्त्रकारों का कहना है प्रात: उठकर वेदपाठी, विद्वान पुरुष, सौभाग्यश्री स्त्री, गाय, यज्ञ, अग्नि, याज्ञिक व इष्ट देव के दर्शन करना शुभकारी होता है जबकि पापी पुरुष, दुराचारिणी स्त्री, शराबी, नंगा और नक़्टे व्यक्ति, अमांगलिक वस्तुओं को देखना अशुभकारी है।

१०८०) ईश्वर का थोड़ा भी सुमिरन कर लिया जाए तो मन को बहुत शांति मिलती है। इस बात को वही जानता है जो सुमिरन का अभ्यासी है। यह ठीक वैसे ही है जैसे हल्दी व फिटकरी न लगने पर भी अच्छा रंग आता है।

१०८१) मनुष्य को दुर्जनों से मित्रता छोड कर साधु स्वभाव के लोगों का सत्संग करना चाहिये। रात दिन शुभ कार्य करते हुये व्यतीत करने चाहिये और संसार के भोगों (मोह-माया) को क्षण भंगुर मान कर नित्य प्रति आनन्द देने वाले प्रभु का चिन्तन (भजन, उपासना) करना चाहिये अर्थात दुर्जनों की संगत दु:खदायी होती है, उसे छोड कर साधु की संगत करनी चाहिये। मोह माया त्याग कर सद्कर्म करते हुये ईश्वर उपासना मे लीन रहने वाले व्यक्ति का ही आत्म कल्याण सम्भव है।

१०८२) सुमिरन इस तरह करो जैसे कामी आदमी का ध्यान हर समय काम (कामुक विषयों) पर ही लगा रहता है अर्थात सुमिरन करना कोई कठिन नहीं है, बस मन को संयमित कर इसमें ध्यान लगा दो। इसमें एक पल भी व्यर्थ मत गंवाओ। प्रतिदिन आठों पहर बस, राम नाम को ही जपते रहो।

१०८३) वह जीवन छोटा ही भला है जिसे हरि का सुमिरन करके व्यतीत किया गया हो। इसके विपरीत सुमिरन किए बिना लाखों वर्षों जीवन व्यतीत करना व्यर्थ ही है। उसका लेखा-जोखा तो भगवान भी नहीं रखेगा। अर्थात जब तक जीवन है सुमिरन करो।

१०८४) जप, तप (तपस्या), संयम, साधना आदि तो सुमिरन के ही अंग हैं। इस बात को तो सुमिरन करनेवाले भक्तजन ही समझ सकते हैं। सुमिरन के समान तो कुछ भी नहीं है अर्थात सुमिरन ही सबसे बड़ी शक्ति है जिसके द्वारा मन को शांत किया जा सकता है।

१०८५) सुमिरन इस तरह करना चाहिए जैसे पनिहारिन (सिर पर मटकी रखकर चलनेवाली) का ध्यान सिर पर रखी मटकी पर होता है। वह हिलती-डुलती चलती है किंतु अपनी मटकी पर पूरा ध्यान देती है, न तो मटकी में से पानी छलकता है और न ही वह मटकी को गिरने देती है।

१०८६) मन को संयमित करके सुमिरन करो और मुख से कुछ भी न बोलो। बाहर के पट (द्वार) को बंद कर दो और अंदर के द्वार खोल दो अर्थात दिखावटी आडंबरों व मोह-माया को त्याग कर हृदय से (भीतर से) सारा ध्यान राम का नाम जपने में लगा दो। यही मुक्ति का मार्ग भी है।

१०८७) जिस प्रकार दूध न देने वाली, गर्भ न धारण करने वाली गाय सर्वथा निरर्थक है उसी प्रकार विद्याहीन और माता-पिता की सेवा न करने वाला पुत्र भी सर्वथा अवांछनीय है। ऐसे पुत्र से किसी को कोई लाभ नहीं हो सकता। गाय तो वही उत्तम होती है जो दूध दे और गर्भ धारण करे। पुत्र सन्तान वही वान्छनीय है जो विद्वान और माता-पिता का आज्ञाकारी हो।

१०८८) जो किसी कामना के वशीभूत होकर सुमिरन करते हैं वह उत्तम धाम (स्थान, फल) को प्राप्त करते हैं किंतु जो निष्काम भाव से सुमिरन करते हैं उन्हें तो साक्षात राम (परमेश्वर, आत्मतत्त्व) के दर्शन होते हैं।

१०८९) सुमिरन तो तू अपने घर (हृदय) में ही करता है और इसी घर में करतार (परमात्मा) भी बसते हैं। इसी घर के भीतर ही हम पाते हैं ज्ञान, ध्यान तथा शब्द (वाणी) का अपार भंडार। अर्थात सब कुछ हमारे हृदय में ही है यदि हम उसमें विकारों को जन्म न लेने दें।

१०९०) निज सुख (वास्तविक सुख) आत्माराम (आत्मदर्शन) हैं। बाकी सब तो इस जग में दुख और कष्ट ही है। सच्चे मन से राम नाम का सुमिरन करो। यही सुमिरन का सच्चा सार है। सुमिरन (राम नाम, आत्मदर्शन) ही जीवन का सच्चा सार है, बाकी सब तो छलावा ही है। आदि, अंत और मध्य पर तो बहुत शोध करके देख लिया किंतु सुमिरन के अलावा सब काल के चंगुल में हैं।

१०९१) तू-तू करते करते तो मैं भी तू जैसा हो गया अर्थात तेरा (परमेश्वर) सुमिरन करते-करते मैं भी तेरी तरह ही हो गया। अब मुझे किसी भी चीज की लालसा नहीं रह गई है। मैं तो तेरे नाम पर वारी (कुर्बान) जाऊं। मैं जहां-जहां भी देखता हूं मुझे तो बस तू-ही-तू नजर आता है। तुझसे हटकर तो इस जग में कुछ भी नहीं है।

१०९२) जो इस बात को जानता है कि उसकी पूंजी तो उसकी अपनी सांस ही है, जो पल में आती है और पल में जाती है। उसको सदा यही चाहिए कि वह राम नाम के सुमिरन में मगन रहे। इसी से उसके जीवन की लौ जलती रहेगी।

१०९३) सांस-सांस में राम-नाम का सुमिरन करते रहो। यह सांस व्यर्थ मत गंवाओ। पता नहीं इस सांस का आना हो या न हो। अर्थात जब तक मानव जीवन है उसे प्रभु के सुमिरन में लगा दो और मरने से पहले ही अपने मोक्ष को सुरक्षित कर लो। मृत्यु के पश्चात अवसर नहीं मिलेगा।

१०९४) जो मन में राम का सुमिरन करता है; उसे याद करता है तो राम (स्वयं प्रभु) उसके घट (हदय) में बस जाते हैं और अब तो मन में ही राम स्वयं विराजमान हो गए हैं। अत: इस शीश को अब कहां और किसके आगे झुकाऊं अर्थात प्रभु भक्ति के कारण भक्त भी महान हो जाता है, वह राम से अलग नहीं होता।

१०९५) जो भी सांस बिना सुमिरन के खाली चली जाती है वह व्यर्थ ही जा रही है। इसे किसी भी स्थिति में खाली मत जाने दो। यह तीनों लोक में सबसे अनमोल है। इसलिए हर सांस में परमात्मा का सुमिरन करो।

१०९६) विद्याध्ययन बिना मनुष्य का जीवन उसे कुत्ते की पूंछ जैसा होता है जो अपने शरीर के ऊपर से मक्खी को उडा नहीं सकता और न ही अपने गुप्तज अंगों को ढ़क सकता है। जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ न तो उसकी गुदा को ढक सकती है और न ही मच्छरें के डंक से उसका बचाव कर सकती है इसलिये वह निरर्थक है उसी प्रकार विद्यारहित मनुष्य का जीवन भी व्यर्थ है क्योकि वह मूर्ख होने के कारण न तो अपनी रक्षा करने में और न ही परिवार के गुप्त रहस्यों को छिपाने में समर्थ होता है और न ही अपने शत्रुओं के प्रहार को रोक पाता है इसलिये विद्याहीन व्यक्ति का जीवन सर्वथा निरर्थक है।

१०९७) उसी सांस को सफल मानिए जो सुमिरन में जाए अर्थात जिस सांस में प्रभु का नाम लिया गया हो वही सांस सार्थक होती है। बाकी सांसें तो बिना सुमिरन के व्यर्थ ही चली गईं क्योंकि हम तो सांसारिक उपायों में ही व्यस्त रहे। इन सांसों को कभी भी खाली मत जाने दो, हर सांस प्रभु के नाम कर दो। क्योंकि उसी की कृपा से हमें सांस भी मिलती है।

१०९८) सांस के आने और जाने की माला को तो प्रभु का कोई सच्चा भक्त ही फेर सकता है। ऐसा भक्त कभी भी चौरासी के चक्कर (सांसारिक चक्र) में नहीं फंसता और उसके सभी कर्मों की घास (जाल) कट जाती है।

१०९९) कोई क्रिया (योग साधना) करता है, कोई उंगली गिनता है (माला जपता है) किंतु मन में संयम नहीं है, वह तो चारों ओर दौड़ता रहता है। वास्तविक सुमिरन तो वही है जिसके करने से साक्षात सांई (परमेश्वर) के दर्शन हों; और इसके लिए मन को काठ की तरह कठोर करना पड़ेगा ताकि वह संयम में रहे।

११००) इस देह (शरीर) का क्या भरोसा करना, न जाने किस क्षण में इसका विनाश हो जाए। इसलिए समय का सदुपयोग करो और हर क्षण, हर सांस में सुमिरन करो। इसके अलावा कोई दूसरा उपाय भी नहीं है।

११०१) मनुष्य के जीवन की सफलता विद्वान, तपस्वी, दानी, शीलवान, गुणवान अथवा धर्मात्मा होने में है। इनमे से किसी भी गुण

के अभाव मे वह व्यक्ति मनुष्य नही पशु तुल्य है।

११०२) माला को हाथ में लेकर फेरते-फेरते तो युग बीत गया किंतु मन का फेर न मिट पाया अर्थात मन के विकार तो दूर हुए ही नहीं। अब इस माला को छोड़ दो और मन की माला को फेरो अर्थात मन से प्रभु की भक्ति करो, उनका सुमिरन करो।

११०३) माला फेरते रहने से क्या होता है यदि हृदय की गांठ ही न खुल पाए। अर्थात हमारे अंदर के विकार और अज्ञानता ही दूर न हो, ऐसे जाप-ताप का क्या लाभ ? यह सब छोड़-छाड़कर गुरु के श्रीचरणों में चित्त (मन) को लगाएं और अमरापुर (मोक्ष) को प्राप्त करें।

११०४) कभी भी वाद -विवाद मत करो। सदैव मन में एक अच्छे विचार को जन्म दो तथा चिंतन करो, चित्त को संयमित करके राम नाम का सुमिरन करो। सभी करनी (अच्छे कर्मों) का यही सार है और यही एकमात्र सत्य भी है।

११०५) अगर कोई वाद-विवाद करता है तो यह समझें कि वह निगुरा (बिना गुरु का) ही होगा। क्योंकि यह सब तो निगुरे के ही काम है। संतजनों और भक्तजनों को इतना अवकाश कहां है ? वह तो सुमिरन करने में ही अपना समय बिता देते हैं।

११०६) बिना सत्य के सुमिरन नहीं किया जा सकता और बिना भेदी (भक्ति का भेद बतानेवाला गुरु) के भक्ति भी संभव नहीं है। यदि पारस को परदे में रख दिया जाए तो लोहे को कंचन कैसे किया जा सकेगा अर्थात बिना गुरु के तो ज्ञान साधना मिल ही नहीं सकती।

११०७) विद्या धन ही ऐसा धन है जो अनजाने देश-विदेश मे भी विद्वान को सच्चा सहारा देता है, मित्र बनाता है। नारी का सतीत्व ही घर मे उसके आदर का कारण बना रहता है। रोगी का सच्चा मित्र उसकी औषधि होती है, और मृत्यु के बाद आत्मा को सदगति देने वाला मनुष्य का सच्चा मित्र केवल धर्म है। जीवन मे धर्माचरण करने वाला, व्यक्ति ही मृत्यु के बाद शान्ति और मोक्ष प्राप्ति करता है।

११०८) जब मन ही सांसारिक मोह-माया में फंसा हुआ हो तो गुरु की कृपा कैसे हो सकती है। यदि सुरति को संयमित कर लोगे तब आठों पहर ईश्वर आपके समक्ष उपस्थित रहेगा अर्थात मन को अपने वश में करो न कि मन के वश में हो जाओ।

११०९) जितने भी धर्म-संप्रदाय हैं, उनमें सेवा को ही सर्वोपरि माना गया है। सेवक भी वही होता है जिसमें सेवा भाव हो। सेवक के महत्त्वपूर्ण गुण सेवा भाव, नम्रतत्व तथा विनयशीलता हैं। यदि किसी सेवक में यह भाव न हों तो वह सेवक नहीं कहलाता। सेवक सबका भला ही चाहता है, न तो उसका कोई मित्र होता है और न ही कोई शत्रु।

१११०) सेवक समर्पणशील भी होता है, तभी तो वह सद्गुरु की ओर टकटकी लगाए रहता है कि कब गुरु सेवा करने को कहें और कब वह उनकी सेवा कर जीवन को धन्य करे। सेवक के मन में सदैव गुरु सेवा का ही भाव रहता है। यही कारण है कि सेवक व गुरु के नाते की डोर बहुत सुदृढ़ होती है और गुरु ऐसा सेवक पाकर कृतार्थ हो जाता है, साथ ही उस पर अपनी असीम कृपाओं की वर्षा भी करता है।

१११९) एक सच्चे सेवक में अहंभाव कभी भी जागृत नहीं होना चाहिए, सेवक को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि उसमें अहंभाव जागृत हो जाए तो वह सेवकपनरूपी बहुमूल्य रत्न को खो बैठता है। किसी भी सच्चे सेवक को अपना मन सदैव गुरु के श्रीचरणों में लगाए रचना चाहिए। साथ ही आचरण की पवित्रता भी बनाए रखनी चाहिए।

१११२) सेवक और स्वामी को विचारों से एक होना चाहिए ताकि दोनों के विचारों में कोई भेद न रहे-वह एक ही हों। चालाकी से स्वामी को प्रभावित नहीं किया जा सकता। स्वामी तो सेवक की सेवा-भक्ति से ही प्रसन्न होता है।

१११३) ज्ञान का भरपूर भंडार केवल गुरु के पास ही होता है। अपनी सेवा भक्ति से अपने हिस्से को प्राप्त कर लें। सेवक को तो बस, गुरु को ही अपना मन सौंप देना चाहिए और स्वयं को उनके चरणों में अर्पित कर देना चाहिए।

१११४) सच्चा सेवक वही है जो सदा सेवा-भक्ति में लगा रहे। जिसमें सेवा की भावना नहीं होती वह कभी भी सेवक होने का भागी नहीं हो सकता अर्थात उसे कभी भी गुरु के चरणों में उचित जगह नहीं मिल पाती।

१११५) जो फल प्राप्ति की लालसा से सेवा करता है, दिन-प्रतिदिन राम का नाम जपता है, वह कभी भी सेवक नहीं हो सकता। जो अपनी सेवा के बदले चार गुणा प्राप्ति की इच्छा रखे वह सेवक नहीं लोभी होता है।

१११६) सत्गुरु के उपदेशों का उल्लंघन कर यदि कोई सेवक स्वेछा से कहीं जाता है तो उसे समझाते हुए वह जहां भी जाएगा वहां उसे काल (मृत्यु) ही मिलेगा अर्थात सत्गुरु के उपदेशों का सदैव पालन करना चाहिए। उन्हें कष्ट देकर सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती।

१११७) साहिब (गुरु या स्वामी) के दरबार में किसी भी चीज की कोई कमी नहीं है। किंतु बंदा (सेवक) मौज (आनंद) की प्राप्ति नहीं कर पा रहा

है तो अवश्य ही उसकी सेवा भावना में कोई कमी है। यदि वह सच्ची लगन से सेवा करेगा तो उसे हर आनंद प्राप्त होगा।

१११८) जो सत्संग सुख का लाभ लिए बिना शयन करते हैं उनसे रातों की नींद दूर रहती है अर्थात उन्हें शांति नहीं मिलती। उनकी हालत जल बिन मछली की भांति होती है जो तड़प-तड़प कर जान दे देती है अर्थात मोह-माया, लालसा आदि विकारों से ग्रस्त लोग कभी भी सुख की नींद नहीं सो पाते। इसके लिए तो उन्हें सत्गुरु के श्रीचरणों में जाकर उनकी सेवा करनी पड़ेगी।

१११९) जो गुरु आज्ञा की अवहेलना करते हुए अपनी ही चलाता है वह तीनों लोकों में गिर जाता है तथा वेद-पुराण, धर्म आदि सभी से उसका नाता टूट जाता है और उसे सिर पर काल डेरा डाल देता है अर्थात वह गुरु की आज्ञा को न मानकर दुखों को आमंत्रित कर रहा है।

११२०) ज्ञान-ध्यान की शिक्षा उसे ही देनी चाहिए जो सेवा की भावना से परिपूर्ण हो। उसके सिर पर आरी भी चल जाए अर्थात कितने भी कष्ट आ जाएं तो भी उसके मन में कोई दूसरा भाव न आ पाए।

११२१) नम्र तथा धर्म ध्वज के समान धैर्यवान सेवक ही सेवा भाव के सच्चे प्रमाण हैं। ऐसे संतोषी और सुखदायक सेवक ही परम सेवक हैं। यह गुण भी सभी सेवकों में नहीं होते।

११२२) सच्चा सेवक सभी लक्षणों (सद्गुणों) को अपना लेता है और बुरे लक्षणों (विकारों) को त्याग देता है। वह इस बारे में पूर्ण रूप से सावधान रहता है कि कोई भी विकार (बुरी आदत) उसमें न समा पाए और वह सदा गुरु के चरणों में ही रहकर सेवा करता रहे।

११२३) सेवक शीलवंत (सहनशील), देव समान, ज्ञानी, विचारशील तथा उदार चित्तर (हृदय) वाले होते हैं। लज्जा तो अति निश्छल भाव से छलकनी चाहिए। उनका हृदय कोमल होना चाहिए। यह सभी गुण एक सच्चे सेवक के लिए जरूरी हैं। अन्यथा वह सेवक नहीं है बल्कि लोभी व चापलूस है। वह ज्ञान से तो परिपूर्ण होते हैं किंतु अभिमान (घमंड) उनमें जरा भी नहीं छलकता। वह सभी का हित सोचते हैं। सत्यवान (सत्य मार्ग पर चलनेवाले) तथा परमार्थी (परोपकारी) होते हैं। साथ ही सभी को आदर मान-सम्मान देते हैं।

११२४) राजा, योगी और ब्राह्मण घूमते हुये ही अच्छे लगते है। राजा अपने राज्य के दूसरे नगरों मे जाकर प्रजा से सम्पर्क बनाये रक्खे तो अच्छा है। प्रमादी राजा के सेवक कभी भी सही जानकारी नही देते वे तो सदैव चापलूसी करते रहते है। इसी प्रकार योगी एक स्थान पर रहने से आसक्ति में पड जाता है जिससे उसका विरक्त भाव लुप्त होने लगता है। मोह माया में न फंसने के भाव से ही शास्त्रों मे योगी को तीन रातों से अधिक एक स्थान पर न टिकने का निर्देश दिया है। ब्राह्मण भी यदि भ्रमण नही करता है तो उसे नये यजमान प्राप्त नही होते, पुराने यजमान भी उसके ज्ञान में नवीनता न पाकर तथा सदैव उसके मांगते रहने से परेशान होकर उससे विमुख हो जाते है। राजा को शत्रु व मित्र की जानकारी के लिये, ब्राह्मण को अपनी विद्या व कला प्रसार के लिये, योगी को अपने वैराग्य की रक्षा करने के लिये भ्रमणशील होना चाहिये। ये तीनों घूमते हुये ही शोभा पाते है वही स्त्री का घुमक्कड होना अवांछनीय एवम् वर्जित है। अपने घर परिवार में न रह कर इधर उधर घूमने की प्रवृति रखने वाली स्त्री शीघ्र ही दूसरे पर पुरुषों के जाल मे फंस जाती है और अनचाहे अपना जीवन नष्ट कर लेती है।

११२५) गुरुमुख सेवक को सदा गुरु को ही निहारते रहना चाहिए। जैसे सर्प मणि को ही देखता रहता है। अर्थात सेवक को सदा गुरु की वाणी का ही अनुसरण करना चाहिए। यह कभी भी मत भूलो यही सेवक अंग (कार्य) है।

११२६) यदि गुरु से सेवक को सच्चा प्रेम है तो इस बात से क्या अंतर पड़ता है कि वह दूर है या पास। सेवक तो बस, गुरु को अपने मन में ही बसा ले, वह सदा वहीं रहेंगे अर्थात गुरु का पास होना या न होना कोई बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात तो गुरु को मन में बसाकर उनकी आराधना करना है।

११२७) गुरु का सच्चा सेवक गुरु की आज्ञा का तुरंत ही पालन करता है। चाहे इसके लिए उसे अपने ही कई कार्य अधूरे छोड़ने पड़ें। गुरु की आज्ञा पर तुरंत उन्हें प्रणाम करो और कार्य को पूरा करो।

११२८) सदा गुरु की आज्ञा से ही आएं और गुरु की आज्ञा से ही जाएं। गुरुजनों को ऐसे शिष्य ही प्रिय होते हैं जो उनकी आज्ञा का पालन करते हैं और ऐसे ही शिष्य (सेवक) ज्ञान के अमृत को पाते हैं।

११२९) स्वार्थ की यह बेड़ी तभी कट सकती है जब जीव (मनुष्य) सच्चे गुरु की शरण में जाकर तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करे। गुरु के

कृपा प्रसाद से ही मनुष्य स्वार्थ की दलदल से उबरकर आत्मिक कल्याण कर पाने में समर्थ होता है।

११३०) इस जग में सभी स्वार्थ के चलते सगे (अपने) बनते हैं। सभी तरफ स्वार्थ का गंदा खेल दिखाई पड़ता है। हर कोई अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति करने में लगा रहता है, किंतु जो बिना किसी स्वार्थ के सबका आदर (मान) करे वही चतुर (बुद्धिमान) तथा सुजान (सज्जन) है।

११३१) इस संसार में जो भी किसी की सेवा अथवा भलाई करता है तो उसके पीछे उसके कुछ निजी स्वार्थ भी होते हैं। भले ही उसे धन का लालच न हो किंतु की गई सेवा के बदले नाम-सम्मान पाने की इच्छा तो रहती ही है। जो निस्वार्थ भाव से सेवा करता है उससे ईश्वर भी प्रसन्न रहता है।

११३२) माया के लोभी (स्वार्थी) जब आपस में मिलते हैं तो बाहों में बाहें डालकर बहुत प्यार से मिलते हैं, किंतु निस्वार्थी लोग इस बात की परवाह नहीं करते। उनके लिए तो यही खुशी की बात है कि उनका चाहनेवाला तो स्वयं दीनानाथ (परमपिता परमेश्वर) है।

११३३) तप अकेले और एकान्त स्थल पर होता है। पढाई अध्ययन दो लोगों मे होता है। दो से अधिक लोग होंगे तो बाते होंगी पढाई नही हो पायेगी। गाने के अभ्यास के लिये तीन पर्याप्त है और यात्रा के लिये चार अपेक्षित है। खेत बोने के लिये ५ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है पर युद्ध के समय बहुतों की संख्या वांछनीय है।

११३४) कर्म करने और फल भोगने में आत्मा प्राय: एकाकी होती है, किन्तु इसके अपवाद भी है। जैसे सन्तान द्वारा किये गये अपराध का फल माता-पिता को नैतिक दृष्टि से भोगना ही पडता है। ऐसे ही प्रजा द्वारा किये गये दुष्कर्मों का फल राजा को भुगतना पडता है और शिष्य की मूर्खता से उसके गुरु को अपमानित होना दण्ड भुगतना पडता है। इस प्रकार राजा, पुरोहित, पति, गुरु का कर्तव्य क्रमश: प्रजा, राजा, पत्नि और शिष्य को दृढ़ता से सदाचारण मे प्रवृत करना है इसी से सबका हित होता है।

११३५) बिना अग्निहोत्र के अनुष्ठान की शिक्षा के वेद-विद्या का अध्ययन भी व्यर्थ है। दान दक्षिणा के बिना धन कमाना निष्प्रयोजन है। कोई भी सिद्धि बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं होती। सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु और साध्य वस्तु में श्रद्धा होनी अनिवार्य है।

११३६) अहं भाव के कारण हम अपने को बहुत ऊंचा और उठा हुआ, बहुत समर्थ और शक्तिशाली समझते है। इस गलत धारणा से दूसरे अनेक अनैतिक दोष पैदा होते है।

११३७) व्यक्ति हो या समुदाय, दूसरों के साथ मिलकर काम करने की योग्यता पैदा करना ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है और यह तभी सम्भव है जब अपने मे मधुरता और नम्रता हो।

११३८) धीर पुरुष को चाहिए जब कोई साधु पुरुष अतिथि के रूप में घर पर आवे तो पहले आसन् देकर, जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी सिथति बताए, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन कराए।

११३९) राजा की पत्नी, गुरु पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता इन सबको अपनी माता के समान ही मानना चाहिये। इन्हे अपनी मां के समान ही आदर-सम्मान देना चाहिये। इनके रूप सौन्दर्य यौवन पर आसक्त होना, इनके प्रति कुदृष्टि रखना अथवा कामुकता की भावना को स्थान देना दोष एवम् पाप है जो व्यक्ति इस प्रकार करता है वह तो अपनी माता के साथ अनैतिक आचरण करता है। वस्तुत: राज पत्नी, गुरु-पत्नी, मित्र-पत्नी और सास आदि माता के समान ही श्रद्धेय है। इनका सदैव सम्मान करना चाहिये।

११४०) वास्तविक अधिकारी कथित बातकी सत्यता-असत्यताका विचार करके, अपनी भावनाके अनुकूल बातके द्वारा अपनी निष्ठा और भी अधिक दृढ़ बना लेता है। वास्तविक अधिकारी के लिये कोई भी व्यक्ति व वस्तु उसका गुरु हो सकता है।

११४१) सदपुरुष जैसा आचरण और व्यवहार करते है, इस संसार के साधारण मनुष्य भी वैसा ही व्यवहार करते है। जिस बात को सद्पुरुष आदेश मान कर चलते है, संसार के मनुष्य भी उसी आदेश रूपी बात का अनुकरण करते है। राजा के धार्मिक प्रवृति का होने पर प्रजा भी धर्म परायण, राजा के पापी होने पर प्रजा भी पाप कर्म में लिप्त तथा राजा के उदासीन हो जाने पर उसकी प्रजा व दरबारी गण भी उदासीन व आलसी हो जाते है। सिद्धान्त: प्रजा राजा का ही अनुकरण करती है जैसा राजा वैसी प्रजा। अर्थात जैसा राजा होता है उसकी प्रजा भी वैसी ही बन जाती है। जिस प्रकार सन्मार्ग दिखाने के लिये राजा को अपने चरित्र को आदर्श पुरुष (सद्कर्म करने वाला) बनाना अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार अपनी सन्तान को महान बनाने के लिये हर पुरुष को स्वयम् भी पापाचार का मार्ग छोड कर सन्मार्ग

अपनाना चाहिये।

११४२) यदि भगवत्प्राप्ति की इच्छा है तो वास्तविक त्याग कीजिए। हृदय से अपना सर्वस्व प्रभु का समझिए। प्रभु के लिए सारे काम कीजिए। ममता, अहं और आसक्ति को जड़ से उखाड़ डालिए।

११४३) भगवान् की दया के प्रभाव को जानने वाले पुरुषों के संग से मनुष्य को भगवान् की नित्य दया का पता लगता है, दया के ज्ञान से भजन का मर्म समझ में आता है, फिर उसकी भजन में प्रवृत्ति होती है और भजन के नित्य-निरन्तर अभ्यास से उसके समस्त संचित पाप समूल नष्ट हो जाते हैं तथा उसे परमात्मा की प्राप्तिरूप का पूर्ण लाभ मिलता है।

११४४) कोयल की मीठी वाणी अर्थात उसका कर्ण प्रिय स्वर ही उसका रूप है, कोयल भी कौवे के समन काली और कुरूप होती है, परन्तु उसका स्वर लोगों के कानों को इतना मधुर और प्रिय लगता है कि वे उसके कुरूप होने की उपेक्षा करके उसकी बुरी शक्ल पर ध्यान न देकर उससे स्नेह करने लगते है। इसी प्रकार स्त्रियों का सच्चा सौन्दर्य उनका पतिव्रता होना है, यदि रूपवती युवती चरित्रहीन है तो उसके रूप सौन्दर्य की दृष्टि से साधारण होने पर भी पतिव्रता स्त्री अपनी स्वामी भक्ति से पति की चहेती बन जाती है। विद्या रूप हीनों का रूप है, इसी प्रकार क्षमा तपस्वी का श्रृंगार है।

११४५) अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तपस्या है। अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है।

११४६) जो स्वयं मांस नहीं खाता, पर खाने वाले का अनुमोदन करता है, वह मनुष्य भी भावदोष के कारण मांसभक्षण के पाप का भागी होता है। इसी प्रकार जो मारने वाले का अनुमोदन करता है, वह भी हिंसा के दोष से लिप्त होता है।

११४७) प्रेम एक में ही होता है और वह भगवान् में ही होना संभव है। प्रेम का वास्तविक अर्थ ही है- भगवत्प्रेम। वस्तुत: प्रेम शब्द तभी सार्थक होता है, जब वह श्रीभगवान् में होता है। विशुद्ध प्रेम, नि:स्वार्थ प्रेम, उज्ज्वल प्रेम जब होगा, तब भगवान् में ही होगा और ऐसा होने पर सारा ममत्व सब ओर से सिमटकर एक भगवान् में ही लग जाता है।

११४८) जब भगवान के प्रति प्रेम होने लगता है, तब दूसरी समस्त वस्तुओं से प्रेम हटने लगता है- यह नियम है। और प्रेम हो जाने पर तो प्रेमी सबकी सुधि ही भूल जाता है। वह तो प्रेम ही कहता है, प्रेम ही सुनता है, प्रेम ही देखता है और चारों ओर से प्रेम-ही-प्रेम का अनुभव करता है।

११४९) प्रेमी के मन पर उसका कोई अधिकार नहीं रहता। मन, बुद्धि, प्राण, आत्मा-सब पर अधिकार हो जाता है प्रेमास्पद श्रीभगवान का।

११५०) रत्न, मणि, पद्मराग सब हृदय में हैं। यदि कोई उन्हें पाना चाहे तो गुरु की वाणी सुन-वही ईश्वर सबको देता है, उसी से याचना कर। ईश्वर का नाम सभी लेते हैं। परन्तु केवल ईश्वर का नाम लेने से ही ईश्वर को पाया नहीं जा सकता। जब गुरु की कृपा से ईश्वर मन में बस जाता है, तब फल मिलता है।

११५१) जो आदिकाल में भी था और जो अन्त में भी शेष रह जाएगा, वही मेरा गुरु है। जो अतिउदार है, जो इन्द्रियातीत है, जो परात्पर है, उस गुरु को नानक ने पा लिया है।

११५२) यह तेरा आलोक है, जो हृदय को करता आलोकित, गुरु के ज्ञान से ही यह आलोक होता दीप्तिमान, है यही जो करता तुझे प्रसन्न और पूजन करता है तेरा।

११५३) ईश्वर का नाम तो सभी लेते हैं, किन्तु कोई भी उनके रहस्य की थाह नहीं पा सकता। यदि कोई गुरु की कृपा से अपने भीतर ईश्वर का नाम बिठा ले तभी उसे फलप्राप्ति हो सकती है।

११५४) यदि कोई राजा से मिलना चाहे तो प्रथम उसे राजा के किसी कृपापात्र से मिलना पड़ता है। यदि कोई ईश्वर के दर्शन के लिए तरस रहा हो तो उसे पहले ऐसे व्यक्ति से मिलना चाहिए जो ईश्वर में लीन हो गया हो।

११५५) सारे क्षणभंगुर सम्बन्ध तोड़ दो और सदा संतों का संग करो। क्योंकि सब कोई तुम्हें इसी जीवन में छोड़ देंगे किन्तु वह एक ईश्वर तेरे से लगा रहेगा यहां भी और वहां परलोक में भी।

११५६) जो अपने आप को उपदेशक समझता है किन्तु दूसरों की भिक्षा पर गुजारा करता है, ऐसे मनुष्य के आगे अपना सिर नवा। जो अपने परिश्रम से जीविका चलाता है तथा अन्यों का पोषण करता है, वही पथ-प्रदर्शन कर सकता है।

११५७) प्रत्येक व्यक्ति जो भी अपने पुत्र को नीतिवान बनाता है, जो उसे श्रद्धालु बनाता है और जो उनमें शील का गुण पैदा करता है, वही व्यक्ति पूजनीय होता है अर्थात सन्माननीय होता है। माता-पिता का यह दायित्व बनता है कि बच्चों को संस्कारवान बनाये, उन्हे भले बुरे का ज्ञान कराये। ऐसा तब ही सम्भव है जब आप स्वयं संस्कारवान हो क्योकि बिना त्याग के फल प्राप्त नहीं होता। जो व्यक्ति बिना निज सुख त्यागे और बच्चों को संस्कारवान होने की कल्पना करे तो वह स्वप्नमात्र ही है। अत: आवश्यक है कि बच्चों को संस्कारित करे किन्तु साथ ही आत्मावलोकन भी करें।

११५८) यह संसार ही ईश्वर का मन्दिर है, परन्तु गुरु के बिना वहां अंधेरा ही दृष्टिगोचर होगा। इससे विपरीत विचार करनेवाला महान् अज्ञानी ही कहलाएगा।

११५९) गुरु के भक्तों को हृदय में सुख और शान्ति प्राप्त होती है। गुरु के भक्त को सही ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति होती है। गुरु के भक्त के हृदय में ईश्वर का निवास होता है। गुरु का भक्त ईश्वर के मन का दर्पण होता है।

११६०) शब्द के संवाद से मनुष्य सत्य, सन्तोष और सत्ज्ञान की खान बन जाता है और अड़सठ तीर्थस्थानों में स्नान करने का पुण्य पा जाता है। शब्द के संवाद से मनुष्य सारे सद्गुणों की खान बन जाता है, शेख बन जाता है और आध्यात्मिक ज्ञान का राजा बन जाता है। शब्द के संवाद से अन्धी आत्मा भी आत्मानुभूति का मार्ग पा जाती है और अनन्त मायाजाल काटकर निकल जाती है।

११६१) भगवान के भक्त सदानन्द रहते हैं क्योंकि शब्द उनके पाप और दु:ख धो देता है। शब्द के संवाद से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की शक्ति प्राप्त हो सकती है। व्यक्ति, उसका पिछला जीवन चाहे जो भी हो, शब्द-संवाद द्वारा सम्मान प्राप्त कर सकता है।

११६२) शब्द के संवाद से योगदृष्टि प्राप्त होती है। जीवन और आत्मा का सारा रहस्य खुल जाता है और शास्त्र, स्मृति तथा वेदों के ठीक-ठीक ज्ञान की उपलब्धि होती है।

११६३) इस सर्वव्यापी शब्द ने मेरा सारा ध्यान आकृष्ट कर लिया और सोचने के लिए मेरे पास है ही क्या ? शब्द और आत्मा का योग ही शाश्वत शान्ति देता है। शब्द और आत्मा के संयोग द्वारा ही मैंने सर्वोच्च सम्मान की गद्दी प्राप्त की है। -सर्वव्यापी शब्द ही प्रत्येक के हृदय में निवास करता है।

११६४) अज्ञानी शब्द और आत्मा के योग का तथ्य कैसे समझ सकते हैं ? शब्द के साथ योग के अभाव में आत्मा आती है और जाती है। जो स्वयं मुक्त हो चुका है। ऐसा पुरुष (गुरुमुख) दयालु भगवान की इच्छा से ही मिल जाता है।

११६५) पांच ध्वनियां गुरुमुख की दीक्षा के द्वारा सुनी जाती हैं। गुरुमुख शब्द का मानव रूप है। वह अति भाग्यवान है जो इसे सुनता है।

११६६) सुख और दु:ख में संसार फंसा हुआ है। अहं के निर्देशन में ही सारे कार्य होते हैं। शब्द के बिना अन्धविश्वास समाप्त नहीं होता और न अहं ही नष्ट होता है।

११६७) शब्द ही गुरु है, गुरु ही शब्द, समग्र अमृत है शब्द में ही घुला मंगलमय है शब्द वह जिससे होता भगवन्नाम व्यक्त, किन्तु व्यक्ति वह दुर्लभ है जो गुरुकृपा से जान पाता है शब्द को।

११६८) भगवान ब्रह्म हैं जो सृष्टिकर्ता हैं और सब कारणों के अनाकलनीय कारण हैं। उन्होंने सक्रिय इच्छा द्वारा समस्त जगत् की रचना की है। भगवान असीम हैं। हम सीमित हैं इसीलिए हम सीमित शब्दों में भगवान का गुणगान करते हैं। आपकी महानता को हम कैसे जानें?

११६९) जो अंक एक का रहस्य जान लेता है वह ईश्वर से एकरूप हो जाता है। स्वयं की कोई इच्छा न रखते हुए ईश्वर की इच्छा के अनुरूप आचरण करना ही ईश्वर को प्राप्त कर लेने का एकमात्र साधन है।

११७०) वह सर्वव्यापी ईश्वर नि:शब्द, निराकार और अनाम हैं। जब वे प्रकट हुए, तब उन्हें शब्द या नाम से सम्बोधित कि;या गया। वही समस्त सृष्टि की उत्पत्ति है।

११७१) जो अपने आपको ईश्वर की सर्वोच्च इच्छा के अधीन कर देता है वही विजय पाता है। अन्य किसी भी कर्म द्वारा विजय प्राप्त नहीं होती। दैवी इच्छा उसी पर प्रकट होती है जो भगवान से साधुनाम लेकर संवाद करता है।

११७२) जिसे सनातन सुख की खोज करनी है उसे उस सर्वव्यापी ईश्वर अर्थात् नाम का छन्द लगा लेना चाहिए। नाम में सच्चा आनन्द है।

११७३) सुख-दु:ख में समग्र संसार फंसा हुआ है। मनुष्य के सारे कर्म अहंकारजनित होते हैं। शब्द के बिना अन्धविश्वास से छुटकारा नहीं मिल सकता और न ही अहंकार का नाश हो सकता है।

११७४) सारे संसार का वैभव समर्पित करने के बावजूद कोई सन्तोष नहीं खरीद सकता है। आपका मन कितना भी कल्पक क्यों न हो, सारी कल्पकता दांव पर लगा देने के बाद भी भगवान को नहीं पाया जा सकता।

११७५) सत्य को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? मिथ्या के बादलों को किस प्रकार भेदा जा सकता है ?- उसके लिए एक ही मार्ग है और वह ईश्वर की इच्छा को ही अपनी इच्छा समझ। अपनी स्वयं कोई इच्छा न रख। उनकी इच्छा से ही अपना अस्तित्व है।

११७६) सत्पुरुष और दुरात्मा नहीं है केवल प्रतिध्वनि मात्र जैसी करनी, वैसी भरनी जैसा बीज, फसल हो वैसी ईश्वर-इच्छानुसार ही होता है आवागमन।

११७७) पराधीनता और मोक्ष ईश्वर के संकल्पाधीन है। अन्य किसी को इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। यदि कोई इसके विपरीत, अधिकार की चेष्टा करे तो शीघ्र ही उसे धृष्टता का दण्ड मिलेगा।

११७८) ईश्वर सर्वज्ञानी है और दान यथोचित देता है किन्तु क्वचित साधकजन ही जान रहस्य यह पाते हैं। जिस पर प्रभु स्वर्गीय गीत बरसाते हैं। वह तो राजाओं का राजा है, यह सभी जान हर्षाते हैं।

११७९) ईश्वर जैसा चाहते हैं, वैसा ही करते हैं। कोई भी उन्हें आज्ञा नहीं दे सकता। वे राजाओं के राजा और महाराजाओं के महाराजा हैं। उनकी आज्ञा और इच्छा के अधीन जीना ही जीवन है। उनकी इच्छा मानकर चलो। कोई ईश्वर से एकरूप हो जाता है तो कोई उससे दूर चला जाता है। उस प्रभु की जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा। दूसरा कोई क्या कर सकता है ? वही होता है जो ईश्वर की इच्छा है, अन्य कोई कुछ भी नहीं कर सकता।

११८०) मनुष्य संसार में नंगा आता है और नंगा चला जाता है। वही मनीषा फलित होगी जो ईश्वर की कलम ने मनुष्य के ललाट पर लिखी है।

११८१) गुरुमूर्ति का चिन्तन करो। उनकी वाणी को वेद वाक्य मानो। गुरु के पदचाप अपने हृदय के कोने-कोने में प्रतिध्वनित होने दो। गुरु अनन्तस्वरूप हैं। उन्हें प्रणाम करो।

११८२) आप स्वयं सर्वश्रेष्ठ हैं - आप अपने भीतर छिपे सर्वश्रेष्ठ की राह में स्वयं रोड़ा बने हैं। उस सर्वश्रेष्ठ को सामने आने दें। वास्तव में हर एक शख्स सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि ईश्वर इससे कम कुछ बनाता ही नहीं। तमाम लोग ऐसे हैं जो अपने भीतर के सर्वश्रेष्ठ को पहचान नहीं पाते। वे हमेशा किसी और सरीखा बनने की कोशिश करते रहते हैं। सच तो यह है कि किसी जैसा बनने का इरादा तज दें, क्योंकि आप स्वयं सर्वश्रेष्ठ हैं। अहं ब्रह्मासि।

११८३) खाली घर में घुसने का भगवान का स्वभाव है। जब तब अपने अंत:करण में हम कुछ छिपाकर रखते हैं तब तक भगवान आते हैं और झांक कर चले जाते हैं। इसलिए अपने हृदय को सर्वथा खाली कर दें- दीन-हीन हो जायँ, किसी भी साधन-गुण का अभिमान अपने में न रखें।

११८४) जिस पर उस प्रभु-कृपा की वर्षा होती है उसे ही दिव्यत्व प्राप्त होता है। किन्तु ऐसे बहुत कम लोग होते हैं। कुछ चुनिंदा व्यक्तियों को ही यह दान मिलता है।

११८५) ऐ मेरे कान, शीघ्रता कर, जिसे सुनने के लिए तुझे इस शरीर के साथ जोड़ा गया है, उस सत्य को सुन। उस अनन्त संगीत का, सत्यवचनों अर्थात् परमशब्द का श्रवण कर।

११८६) चित्त स्थिर रखो अन्यथा उसमें का सत्व इस शरीर के नौ द्वारों से निकल जाएगा। अरे मन यदि तू संयम बरत सका तो तुझे तेरे परमपिता के वास्तविक निवासस्थान पर पहुंचाने वाले दसवें द्वार से प्रवेश मिल जाएगा। वहां रात-दिन अनन्त संगीत प्रतिध्वनित होता रहता है।

११८७) सन्तोष तुम्हारे कानों की बाली हो ईश्वर से साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करो तप करो, जप करो साधना के सहारे आगे बढ़ो और परमात्मा के सम्बन्ध में आदर तेरी झोली बनने दे, परमात्मा के नित ध्यान-चिन्तन को ही तेरी भभूति बनने दे। मृत्यु के लिए

सदैव तत्परता को तेरा कफन बनने दे। तेरे शरीर को पवित्र कुमारी का आश्रय लेने दे। गुरु की दीक्षा को तेरे सहारे की लाठी बनने दे। विश्वबन्धुत्व का उदय होने देना ही सर्वोच्च धर्म है।

११८८) प्रत्येक प्राणी को समान मानो मन को जीतो, क्योंकि आत्म-विजय ही विश्व विजय है, भगवान का जयजयकार हो, जयजयकार हो जो मूल, शुद्ध और अनादि है, युगों तक अमर, अविकारी और अपरिवर्तनीय है, उस प्रभु का जयजयकार हो।

११८९) दिव्य ज्ञान को अपनी रोटी मानो दया को मानो अपना प्रबन्धक ईश्वरीय संगीत को गूंजने दो अपनी तुरही में कारण वे ही हैं एक अधिपति जिन्होंने गूंथी है सृष्टि।

११९०) जो प्रेम करते हैं और अपने हृदय में ईश्वर-नाम का बीज बोते हैं, वे मृत्यु और जन्म से मुक्ति पा जाते हैं और सदा के लिए बिना कष्ट किए मोक्ष पा जाते हैं।

११९१) सच्चे भक्त के हदय में अपवित्रता नहीं होती हैं। उसका मन ईश्वर में लीन रहता है। गुरु के द्वारा वह शब्द का अर्थ जान लेता है और डुबा लेता है अपने को ईश्वर के अमृतमय नाम में। गुरु की दीक्षा होती है उसके अन्तर में दीप्तिमान। फलत: अज्ञानान्धकार लुप्त हो जाता है।

११९२) भगवान के भक्त के पास केवल भगवान का धन होता है। अपने जीविकोपार्जन में वे गुरु की दीक्षा मानकर चलते हैं। वे सदा ईश्वर का गुणगान करते हैं। ईश्वर का नाम ही उनका मूलधन है।

११९३) जिनके हृदय में नाम है उनकी सारी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। वे भगवान का ध्यान प्रेम से करते हैं। ईश्वर होता है प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर उन्हें।

११९४) जो सत्नाम का सहारा लेते हैं केवल वे ही शान्ति और आनन्दमय जीवन पाते हैं। वे गुरु की वाणी द्वारा सत्य को पाते हैं और उनके पाप धुल जाते हैं। जो ईश्वर का गुणगान करता है और सत्नाम से प्रेम करता है, जिस पर ईश्वर की दया होती है वह भक्ति का खजाना पा जाता है।

११९५) अशुद्ध वस्त्र प्रभु को प्रसन्न नहीं करते। अत: ईश्वर के शुद्ध स्वच्छ बिस्तर पर कैसे जा सकता हूँ। हे दयानिधान, तुझ पर मेरा बलिदान हो, हे प्रेम, तुझ पर मेरा सदा के लिए बलिदान हो।

११९६) पांच प्रार्थनां हैं। प्रार्थना के पांच समय हैं और उनके पांच नाम हैं- प्रथम सत्य, द्वितीय यथार्थता, तृतीय ईश्वर के नाम पर दया, चौथे सद्विचार और पांचवा ईश्वर की स्तुति और गुणगान। हे ईश्वर, आप ही एकाधिपति हैं, सारा विश्व आपकी रचनाओं से परिपूर्ण हैं। निम्न से निम्न का ही साहचर्य नानक खोजता है। दम्भियों का संग व्यर्थ है क्योंकि जहां दुर्बल की रक्षा होती है वही आपकी दया की वर्षा होती है। हे प्रभु, अपनी शरण में मुझे, चाहे जिस अवस्था में हो, रख क्योंकि तेरी शरण के अतिरिक्त अन्य कोई मेरा आश्रय नहीं है। हर पल, प्रभु मैं तेरा ध्यान करता हूं और जितना तू हमारे निकट आता है उतने ही गुरु के बोल मधुर एवं अमृतमय लगते हैं। मेरा जीवन और मेरा शरीर तेरे अधीन है। तू दूर, निकट और मध्य में है। तू स्वयं को देखता है, तू स्वयं को सुनता है और स्वयम्भू है। केवल तेरी ही इच्छा पूर्ण होती है। मैं पथ के किनारे खड़ा होकर पथिकों से पूछता हूं- मुझे ईश्वर के पास पहुंचने का रास्ता बता दो। मैं उनका पथ अनुसरण करता हूं जिन्होंने ईश्वर का प्रेम पाया है। मैं उनसे याचना करता हूं, निवेदन करता हूं कि, मुझे उस कृपालु ईश्वर तक पहुंचा दे। सतकर्म तेरा काबा हो, सत्य तेरा पैगम्बर और अल्लाह का रहम तेरी इबादत और मालिक की मर्जी तेरी जपमाला, तब कहता है नानक, अल्ला तेरी इज्जत रखेगा।

११९७) जो नाम की स्तुति करते हैं वे सभी से शुभेच्छा प्राप्त करते हैं। हे प्रभु, मैं इसी आशीर्वाद की याचना करता हूं कि मुझे भी उन लोगों का संसर्ग प्राप्त हो। सौभाग्य की दृष्टि उन्हीं पर पड़ती है जिन्होंने संसार में आलोक को देखा है।

११९८) हम मांस के बने हुए हैं। मांस में जन्म लेते हैं। हम केवल मांस के ही पात्र हैं। पण्डितों को इसका ज्ञान नहीं है। वे तो केवल अपनी चतुरता और तर्क के दर्प में चूर हैं।

११९९) श्रद्धावान के लिए मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है और वह अपने सगे सम्बन्धियों के लिए कल्याण का साधन बन जाता है। वह स्वयं भी तर जाता है और उसे भीख मांगते हुए भटकना नहीं पड़ता। वह तो सीधे ईश्वर के द्वार पर जा पहुंचता है।

१२००) जो भक्ति में निष्ठा रखता है उसका मार्ग सुगम है। वह ससम्मान रहता है और ससम्मान ही जाता है। वह राजपथ पर सीधे चलता है, गलियों में नहीं भटकता। वह सदैव धर्म में निष्ठा रखता है।

१२०१) जब हाथ, पैर और शरीर अस्वच्छ हो जाता है, जल उन्हें धोकर शुद्ध कर देता है। जब वस्त्र अस्वच्छ हो जाते हैं, साबुन उन्हें अवश्य स्वच्छ कर देता है। जब मन पाप और लज्जा से अशुद्ध हो जाता है तब ईश्वरनाम के प्रेम से वह स्वच्छ हो जाता है।

१२०२) ईश्वर ने तुझे मानव शरीर दिया है। यही उचित समय है, जब तू भगवान को पा सकता है। तेरे अन्य सारे प्रयास व्यर्थ हैं। सत्संग में प्रवृत्त हो और केवल ईश्वर का ही नाम ले।

१२०३) जीवनसागर के पार उतरने के लिए स्वयं का उत्सर्ग कर दे। तेरा जीवन माया में फंसकर नष्ट हो रहा है। न तो तूने अपने आपको एकत्र किया है और न तूने ध्यान ही किया है, न तो तपस्या की है, न धर्मकार्य और न तुझे ज्ञान ही है, कि कैसे तू सेवा करे अपने प्रभु ईश्वर की।

१२०४) मृत्युपरान्त जिस ग्रह में प्रवेश करना है, वहां पहुंचने से पहले ही जीवनकाल में अहं को शरीर से निकाल दो। ऐसा योग का अभ्यास कर जिससे तेरे जीवनकाल में ही अहं इस शरीर से निकल जाए।

१२०५) केवल मौखिक सेवा से तू स्वर्ग नहीं पहुंच सकता। सत्य व्यवहार से ही तेरी मुक्ति होगी। मिथ्या से केवल मिथ्या तत्त्व ही उत्पन्न होते हैं।

१२०६) धर्म मतवाद या बौद्धिक तर्क में नहीं हैं, वरन् आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना, तद्रूप हो जाना- उसका साक्षात्कार, यही धर्म है।

१२०७) प्रत्येक जीव ही अव्यक्ति ब्राह्म एवं अन्त: प्रकृति, दोनों का नियमन कर, इस अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को अभिव्यक्त करना ही जीवन का ध्येय है। कर्म, भक्ति, योग या ज्ञान के द्वारा, इनमें से किसी एक के द्वारा या एक से अधिक के द्वारा या सबके सम्मिलन के द्वारा यह ध्येय प्राप्त कर लो और मुक्त हो जाओ। यही धर्म का सर्वस्व है। मतमतान्तर, विधि या अनुष्ठान, ग्रन्थ, मन्दिर-ये सब गौण है।

१२०८) परमानन्द रूप राम को इस लोक और परलोक में अनुभव करने के लिए और अपने निजी सूक्ष्म (विचारात्मक) धर्म को प्रत्यक्ष जीता-जागता व्यावहारिक बनाने के लिए तुम्हें अपने हाथों-पैरों से उस परिश्रम द्वारा जो कभी शूद्रों के जिम्मे छोड़ रक्खा गया था, इस सन्यास भाव को, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भाव की वीरता को आचरण में लाना होगा। हमें उक्त संन्यासी भाव का शूद्रों के उद्योग से संयोग करना होगा। आज इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

१२०९) जिस प्रकार अपने धर्म को छोडकर दूसरे के धर्म का सहारा लेने से राजा का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार जो मनुष्य अपने समुदाय (धर्म) को छोडकर दूसरे के समुदाय का आश्रय लेता है तो स्वयं भी राजा की तरह से नष्ट हो जाता है। दूसरे सम्प्रदाय के लोग अन्तत: वही सोचते है कि जो अपनों का नहीं हुआ तो वो हमारा क्या होगा। इस अविश्वास के कारण ही वह विनाश का पात्र बन जाता है। बुद्धिमान लोगों को अपने लोगों को छोड कर दूसरों को अपनाने की (सहारा लेना) मूर्खता नहीं करनी चाहिये।

१२१०) ओ तिरस्कार करने योग्य सत्कार-भावना। किसी देश में उस समय तक एकता और प्रेम नहीं हो सकता, जब तक लोग एक दूसरे के दोषों पर जोर देते रहेंगे।

१२११) तुम कौन हो ? अनन्त, निष्कलंक अमर सर्वात्मा ही तो तुम हो। ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है, नाम-रूपात्मक जगत मिथ्या है। असली मनुष्य, सच्चा मनुष्य ब्रह्म या परमात्मा है, ब्रह्म के अतिरिक्त वह और कुछ नहीं।

१२१२) लोग पूछते हैं- क्या आप ईश्वर का एक अंश हैं ? नहीं, नहीं ब्रह्मा के खण्ड नहीं हो सकते, ईश्वर तोड़ा-फोड़ा नहीं जा सकता। तुम ईश्वर के अंश नहीं हो। यदि ईश्वर अनन्त है, तो तुम अवश्य ही पूर्ण ईश्वर हो, तुम ईश्वर के अंशमात्र नहीं हो सकते। अनन्त ही परमानन्द है। किसी अन्तवान में परमानन्द नहीं होता। जब तक आप अन्तवान हैं, तब तक आपको परमानन्द, परम सुख नहीं मिल सकता। अनन्त ही परमानन्द है, केवल अनन्त ही परमानन्द है।

१२१३) शरीर से ऊपर उठो। समझो और अनुभव करो कि आप अनन्त हैं, परम आत्मा हैं, फिर आप मनोविकार या लोभ से कैसे प्रभावित हो सकते हैं ?

१२१४) भोजन का जो कौर आपके मुंह में जाए, उसके साथ आपको यह चिन्तन करना चाहिए कि यह कौर समस्त भूमण्डल का प्रतिनिधि रूप है। मैं यहां इसके द्वारा सारे ब्रह्माण्ड को अपने भीतर लीन कर रहा हूं।

१२१५) प्रत्येक रात्रि को मध्याह्न के समय सोने से पहले जब आंख बन्द होने लगे तब अपने मन में ऐसा दृढ़ निश्चय कीजिए कि जागने पर आप अपने को वेदान्तिक सत्य की साक्षात् मूर्ति पायेंगे।

१२१६) काम केवल तभी होता है, जब हम इस परिच्छिन्न स्वार्थी अहंकार से पल्ला छुड़ा लेते हैं। ज्यों ही आप इस स्वार्थी अहंकार को प्रतिपादित करते हैं; त्यों ही काम बिगड़ जाता है। सर्वोत्तम काम वह है जो अकर्तृत्व एवं अव्यक्तित्वभाव से किया जाता है। त्याग का अर्थ है इस क्षुद्र, व्यक्तिगत, स्वार्थी अहंकार को दूर करना अथवा आत्मा की इस झूठी भावना से पल्ला छुड़ाना।

१२१७) व्यावहारिक त्याग का अर्थ है कि हम हर समय सृष्टि का खोखलापन तथा अपनी ही वास्तविक आत्मा की व्यापकता अपनी दृष्टि के सामने रखें और इस प्रकार चिन्ता, भय, व्यग्रता और आतुरता तथा मन की व्याधियों को त्याग कर दूर फेंक दें।

१२१८) वेदान्त योग का साक्षात् करने के लिए जंगलों में जाने तथा असाधारण अभ्यास करने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस समय आप कर्म विशेष में खो जाते हैं अथवा किसी प्रवृत्ति विशेष में तल्लीन हो जाते हैं, उस समय आप स्वयं शिव के बाबा हो जाते हैं।

१२१९) हृदय की शुद्धता का अर्थ है अपने आपको सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से पृथक रखना। त्याग का अर्थ इससे रंचमात्र कम नहीं।

१२२०) भक्त ने भगवान को प्रकट किया है इससे भक्त भगवान से भी बढ़कर है। भक्तों के गुणगान भगवान के गुणगान से भी बढ़ कर है। भक्तों की स्थूल देखनेवाली क्रिया भी मानसिक अर्थ से भरी होती है। सच्चा भक्त वो है जिसने जान लिया कि वह और जगदीश्वर भिन्न नही है।

१२२१) कर्म धर्म अच्छे है, मगर पाखण्ड नहीं। जो पाने के रास्ते मार्ग को खन्डन करे उसी का नाम पाखण्ड है। महात्माओं की वाणी थोडे में ही सार गर्भित तथा तथ्यपूर्ण होती है। जितने ये ग्रन्थ है, जिसका ये पाठ पढ़ाते है, इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार जो दे सकता है उसी का नाम साधु संत महात्मा है। सिर्फ कपडे रंगने का, या साधु का वेश भूषा धारण कर लेने का या उसका अभिनय करने वाले का नाम साधु नहीं है। कर्म काण्ड का रास्ता लम्बा है। संतों का मार्ग, अनुभव का मार्ग परमात्मा तक जाने का सीधा मार्ग है इसमें यम भी रास्ते में लूट नहीं सकते।

१२२२) धर्म का सीधासा अर्थ है व्यवहार में आया हुआ सत्य। दान करना धर्म है, चोरी न करना भी धर्म है। तुम्हे प्रेम से दीक्षित करे वही धर्म है। धर्म दृष्टि देता है, अधर्म अन्धा बनाता है। हमारी इच्छानुसार धर्म चले तो उसका नाम दुर्योधन है। धर्म और सम्प्रदाय की संकीर्णता के नाम पर झगडा करने वालों ने धर्म की सेवा नही कुसेवा की है। हमारे धर्म में केवल अपने कल्याण की नहीं सबके कल्याण की भावना है। धर्म वह है जो जोडे। तोडे वो धर्म नहीं हो सकता। आप धर्म की रक्षा करो धर्म आपकी रक्षा करेगा। कर्तव्य का पालन ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है।

१२२३) ज्ञान कभी भी बेचा न जाय, ज्ञान बांटना चाहिये। बिना वैराग्य के ज्ञान टिकता नहीं है। ज्ञान का अमृत वैराग्य के पात्र में ही टिकता है। अज्ञान ही अन्धकार है, गुरु उससे ज्ञान प्रकाश की ओर ले चलते है। ज्ञान नम्रता की गोदी में बैठता है। मोक्ष की प्राप्ति में ज्ञान ही साधन है। ज्ञानी वही है जो नम्र है। भगवान की दृष्टि में ज्ञानी बडा लडका है, भक्त छोटा बालक। ज्ञान के समान अन्य कुछ पवित्र नहीं है। अपवित्र है वह अज्ञान है, अविद्या है। ज्ञानी को परमात्मा की सर्व व्यापकता का अनुभव हुआ है इसलिये ज्ञानी सुदर्शन यानि सब में भगवान का दर्शन करता है। केवल ज्ञान से कोई बात नहीं होती, ज्ञान के साथ भक्ति का पुट चाहिये और भागवत भक्ति प्रधान ग्रन्थ है।

१२२४) भक्ति पुरुषार्थ का फल नहीं है, भक्ति भगवान की कृपा का फल है। भक्ति दीनता के सिंहासन पर बैठती है। जहां अभिमान और अहंकार है वहां भक्ति नही होती। शिवजी भक्ति देते है। शिवजी भक्ति के परम आचार्य व आराध्य है। भक्ति चाहिये तो शिव की आराधना करें। भक्ति के पारसमणि का स्पर्श मानव को प्राप्त होता है तब वह स्वर्णमय हो जाता है। विरागी को रागी बनाने का तत्व है भक्ति। भक्ति स्वरुपा यमुना के किनारे भगवान दम्भ रूप बकासुर का नाश करते है। भगवान में लगे हुये राग का नाम है अनुराग और भगवान में हुई आसक्ति उसका नाम है तीव्र भक्ति। प्रीति जब व्यक्तियों से हुई तो उसका नाम हुआ मोह और प्रीति जब वस्तुओं से हुई

तो उसका नाम हुआ आसक्ति पर प्रीति जब परमात्मा से हुई तो उसका नाम है भक्ति। मोह और आसक्ति प्रीति के दूषित रूप है जबकि भक्ति प्रीति का विशुद्ध स्वरूप है। भगवान का मिलना दुर्लभ नहीं है, भक्ति दुर्लभ है।

१२२५) कोई दान से, तप से, ज्ञान से, पुण्य कमाने से भगवान को बांधना चाहे या बुलाना चाहे तो, लेकिन जब तक अहंता, ममता न मिटे भगवान बन्धन में नहीं आते है। भगवान को ढूंढना हो तो अन्त:करण तक जाना चाहिये।

१२२६) दान देने से मनुष्य समृद्धिशाली होता है, वृद्धों की सेवा करने से बुद्धिशाली होता है, अहिंसा से दीर्घायु होता है। धन की शुद्धि दान से, तन की शुद्धि स्नान से, मन की शुद्धि ध्यान से और गर्भ की शुद्धि संस्कारों से होती है।

१२२७) दूसरों की पीडा को जानने वाले, उसे हरने का प्रयास करने वाले ही असली साधु है। साधु वह है, जो दूसरों की सम्पत्ति, वैभव को देख कर प्रसन्न होता है। दुष्ट वह है जो दूसरों की विपत्ति देख कर प्रसन्न होता है, ऐसे लोग ही असाधु होते है।

१२२८) जहां भगवान की मनोहर कथा होती है, वह घर तो तीर्थ बन जाता है, और उसमे रहने वालों के सभी पाप नष्ट हो जाते है, वही गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि सभी तीर्थ आकर निवास करते है। जिस घर में परमात्मा की सेवा, अर्चना और कीर्तन होता है वह तो स्वर्ग से भी बढ़कर है।

१२२९) जब तक मनुष्य की करनी सुदृढ़ नहीं होगी तब तक कथनी का कोई औचित्य नहीं है। करनी कैसी होनी चाहिए- इसी बात को समझना चाहिए। वस्तुत: सत्य बोध का जीवन में यथावत आचरण ही करनी है।

१२३०) ऐसी ही करनी जनसामान्य के सम्मुख आदर्श स्थापित करती है। प्रत्येक जीव (मनुष्य) को चाहिए कि वह ऐसी करनी (कर्म) करे कि भावी पीढ़ी भी उसे युगों-युगों तक भुला न पाए तथा उससे शिक्षा ग्रहण कर उसी के आदर्शों पर चलकर जीवन का कल्याण कर सके।

१२३१) कुत्ता तो एक वर्ष में केवल तीस दिन (एक माह) तक ही कामी रहता है और शेष दिन वह काम-वासना आदि से प्राय: दूर ही रहता है। किंतु कामी नर छहों ऋतुओं और बारह मासों (पूरे वर्ष) तक काम-वासना विषय में ही पड़ा रहता है। कामी व्यक्ति तो सदा निर्भय रहता है, अर्थात लज्जाहीन होने के कारण वह किसी से नहीं डरता और न ही वह किसी शक (शंका) में पड़ता है। वह तो केवल अपनी इन्द्रियों के वश में होता है और काम विषयों पर ही ध्यान देता है। पलभर के सुख के पीछे भागनेवाले ऐसे कामी व्यक्ति बाद में दुख और नरक ही भोगते हैं।

१२३२) कामी व्यक्ति कभी भी लज्जा नहीं करता, उसके मन में तो सदैव कामुकता ही छाई रहती है। जैसे नींद को साथरा (बिस्तर आदि) की जरूरत नहीं होती तथा भूख लगने पर आदमी स्वाद नहीं देखता। उसी प्रकार कामी काम-वासना में पड़कर लज्जा को छोड़ देता है।

१२३३) काम-काम तो हर कोई कह लेता है। क्योंकि ऐसा कहना कोई कठिन नहीं है, किंतु काम के वास्तविक रूप को कोई नहीं समझता। इसे गंभीरता से सोचनेवाले बहुत ही कम हैं। कामी मनुष्य के मन में काम-वासना संबंधी जितनी भी कल्पनाएं आती हैं, उसके लिए वही काम कहलाती हैं। उसे काम के वास्तविक रूप से कोई तात्पर्य नहीं होता।

१२३४) कामी मनुष्य की दशा तो उस जलते हुए दीपक के समान है जो अपने दीये में पड़े तेल को भी सोख लेता है जिसके कारण वह प्रज्ज्वलित होता है। संतजन तो हीरे के समान होते हैं जिसके अंदर अपना स्वाभाविक प्रकाश (उजाला) होता है।

१२३५) जलते हुए दीपक को देखकर पतंगे उस पर आसक्त होते हैं और जलकर मर जाते हैं। इसी प्रकार जब कामी की काम-वासना बढ़ जाती है तो वह कष्ट भोगने को विवश हो जाता है किंतु फिर भी अपनी कामी प्रवृत्ति को छोड़ता नहीं है। काम के लोभ में पड़कर मानव केवल दु:खों को ही प्राप्त करता है।

१२३६) काम (वासना), क्रोध, मद (अहंकार) तथा लोभ आदि विकारों का भंडार जब हमारे हृदय में हो तो ऐसे में मूर्ख और पंडित दोनों ही एकसमान होते हैं। इन विकारों को साथ रखकर तो कोई भी पंडित नहीं हो सकता, वह मूर्ख ही कहलाएगा। किंतु यदि वह अपने हृदय से इन विकारों को निकाल देता है, तब वह पंडित कहलाने योग्य हो जाता है।

१२३७) काल (मृत्यु) तो इस जीव का ग्रास है अर्थात मृत्यु तो निश्चित है। यह बात तो बहुत बार कही और अच्छी तरह से लोगों को समझाया भी। कोई भी इस जीवन के एकमात्र सत्य को स्वीकार नहीं करता।

१२३८) बुढ़ापा कुत्ते और यौवन (जवानी) खरगोश की तरह है। काल ने यौवन (खरगोश) को खाने के लिए बुढ़ापे (कुत्ते) को बनाया है। अब इन दो बैरी (शत्रुओं) के बीच में अपना झोंपड़ा (बसेरा) है। अत: कुशल मंगल कैसे हो सकता है अर्थात काल ने अपने समय पर आकर घेरना ही है। इससे बचना असंभव है।

१२३९) समय के साथ यौवन ने अपनी सिकदारी (राज सिंहासन, रौबदाब) को त्याग दिया और अपने निशान को मिटाते हुए चला गया और तब चुपचाप बुढ़ापे ने आकर उसके सिर पर सफेद बालों की टोपी (पगड़ी, मुकुट) पहना दी। अर्थात काल ने उसके दर पर दस्तक दे दी।

१२४०) इस संसार में आकर सारा जीवन टाल-मटोल में ही बिता दिया। इस संसार के ऋणों को तो न उतार पाए उल्टे ब्याज ही बढ़ता चला गया अर्थात कुछ भी पुण्य कर्म नहीं किया। पर दुष्कर्मों के कारण पाप के भागी और बन गए। न तो हरि को भजा, न ही साधना उपासना की और न ही खेत काटा (सांसारिक कर्म) और समय पूरा होने पर काल भी आ गया।

१२४१) वृक्ष से झड़ता हुआ पत्ता अपने वृक्ष से कहता है कि इस वन के वृक्ष। सुनो मेरा तुमसे बिछुड़ने का समय आ गया है। तुमसे बिछुड़कर फिर कभी नहीं मिल पाऊंगा। कहीं दूर जाकर गिर जाऊंगा अर्थात इस जग से मोह मत करो। कालरूपी मृत्यु के कारण हम सबको एक दिन तो बिछुड़ना ही है और बिछुड़कर पता नहीं अगला जन्म किस रूप में होगा।

१२४२) वृक्ष ने अपने से अलग होते (झड़ते) पत्ते से कहा कि सुनो पात (पत्ते), एक बात ध्यान से सुनो। इस घर (संसार) की यही रीति है कि यहां एक आता है और एक जाता है अर्थात यहां लोग जन्म लेते और मरते हैं। सदैव के लिऐ यहां कोई भी नहीं आता। हर जन्म लेनेवाली चीज नष्ट होनेवाली है।

१२४३) अभी तो लक्ष्य बहुत दूर है। बीच में पूरी रात पड़ी है। न जाने क्या हो जाए प्रात:काल के सूर्य उदय तक। अर्थात काल का कोई भरोसा नहीं होता। अपने लक्ष्य को जितना जल्दी हो सके प्राप्त कर लो।

१२४४) जो सम्पूर्ण पृथ्वी को एक पग में नाप लेते थे (वामन), एक ही बार में उड़कर समुद्र पार कर लेते थे (हनुमान) और अपने हाथों पर पर्वत तक को उठा लेते थे (कृष्ण), उन्हें भी काल ने खा लिया अर्थात बड़े-बड़े महाबली और सिद्ध पुरुष भी काल के कुचक्र से बच नहीं पाए।

१२४५) ओ मूर्ख मानव। इतना गाफिल (बेपरवाह) क्यों फिर रहा है और सोता भी इतनी घनी नींद में है। तेरे सिरहाने यम (काल) वैसे ही खड़ा है, जैसे अंधेरे में अवसर की टोह में चोर खड़ा होता है। और तू मस्त है, तुझे कुछ मालूम ही नहीं अर्थात इस दुनिया में लोग मोह-माया में मृत्यु की सचाई को भी भूल जाते हैं।

१२४६) यह मानव एक पंथी (राहगीर) है जो सिर पर अपने कर्मों की गठरी का बोझ उठाए फिर रहा है। काल के रूप में मौत उसके आगे ही खड़ी है। यही एक सत्य है जीवन में, बाकी सब तो झूठ है। कोरी कल्पनाएं हैं।

१२४७) बेटा पैदा हुआ है तो क्या हुआ, क्यों थाल बजा-बजाकर शोर मचा रहे हो ? किस बात की खुशियां मना रहे हो ? इस जग में तो आना-जाना लगा ही रहता है। ठीक उसी तरह जैसे चींटियां कतार में आती जाती हैं तो फिर क्यों मोह करते हो? क्यों खुशियां मनाते हो ?

१२४८) हमारे पास बहुत भूमि है, बहुत धन-दौलत है और इसका हम भरपूर उपयोग करेंगे। किंतु जिस सम्पत्ति के अहंकार में हम यह सब सोच रहे थे वह सम्पत्ति ज्यों की त्यों यहीं पड़ी रह गई और काल हमें पकड़कर ले गया अर्थात जो कुछ भी हमारे पास होता है वह सब यहीं रह जाता है। मानव खाली हाथ आता है और खाली हाथ ही जाता है।

१२४९) बालपन (बचपन) तो भोलेपन में ही व्यतीत हो गया और युवावस्था हंसी (मौज, मस्ती) में बीत गई। वृद्धावस्था भी आलस में ही बीत गई अर्थात सारा जीवन व्यतीत हो गया और कोई भी पुण्य कर्म नहीं किया और अब तो अंत समय है और यह शरीर भी जलने के लिए ही (चिता में) तैयार बैठा है।

१२५०) फाल्गुन के मौसम को आते देखकर झूरे (उदास) मन से बनराय (वन वृक्ष) कहता है कि जिन डालियों के दम पर हम मस्ती में झूमा करते थे, अब वही हमसे दूर होने जा रही हैं अर्थात मानव अपने अंत समय में ही अपने सुखों को याद करता है और मन-ही-मन दुखी भी होता है। मानव को अपने पूर्व में हुए दुख-सुख को याद कर दुखी नहीं होना चाहिए। काल के अनुसार ही सबको जीवन जीना है।

१२५१) (पतझड़ काल के कारण) पत्तों को झड़ते देखकर कूपलियां (कोंपलें) हंसने लगीं। उन्हें हंसते देखकर झड़ते हुए पत्तों ने कहा कि हमें देखकर हंसो मत, आज हम जा रहे हैं पर कल जब तुम्हारा समय (काल) पूरा हो जाएगा, तुम्हें भी हमारी ही तरह जाना पड़ेगा। यह तो समय का चक्र है जिसे सभी को झेलना ही पड़ता है।

१२५२) काल की महाशक्ति से तो मूसा (पीर) भी डरते थे। काल के जोर के आगे तब साधारण मानव का क्या अस्तित्व है? स्वर्ग में, भूमि पर और पाताल में (जमीन के नीचे) अर्थात कहीं भी चले जाओ, वहीं काल पीछा करता हुआ आ जाता है, उससे बचना बहुत ही कठिन है।

१२५३) काल का महाचक्र सदैव अविराम गति से घूमता रहता है। काल के समक्ष सभी तुच्छ हैं। जो कोई भी इस काल रूप महाचक्र में जकड़ा जाता है, वह अवश्य ही पिसता है। अर्थात मृत्यु को प्राप्त होता है। मृत्यु ही शाश्वत सत्य है। इस सत्य से कोई भी विमुख नहीं हो सकता। सृष्टिगत दैनंदिन कार्य-व्यवहार भी काल के अनुसार ही संपादित होता है। काल के आगे सभी बौने हैं। यह किसी के प्रति दयाभाव भी नहीं रखता।

१२५४) जो जन्म लेता है, एक दिन वह मृत्यु को भी अवश्य ही प्राप्त होता है। जिसका निर्माण हुआ है, उसका विनाश भी निश्चित है। सृष्टि में स्थायी कुछ भी नहीं है। सृष्टि स्वयं भी परिवर्तनशील है। जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह स्वप्न ही तो है और स्वप्न कभी सत्य नहीं हुआ करता।

१२५५) दसों दिशाओं (सर्वत्र) में ही क्रोध की अपरबल (प्रबल, बहुत ही भयंकर) आग लगी हुई है। किंतु यदि कोई शीतल (ठण्डा) स्थान है तो वह केवल संतजनों की संगत ही है। अत: उन्हीं की शरण में जाओ, वहीं पर इस अग्नि से छुटकारा मिलेगा। अर्थात संतजनों की संगत से ही क्रोध की अग्नि से मुक्ति मिलती है।

१२५६) क्रोध तो केवल एक ही होता है किंतु उसके साथ कई अन्य अच्छे-बुरे कर्म भी जुड़े होते हैं जो हमें भोगने ही पड़ते हैं। अर्थात क्रोध ही कर्मों (पापों) को जन्म देता है और जब मन में अहंकार आ जाता है तब सभी किया-कराया व्यर्थ चला जाता है। सभी पुण्य-कर्म निष्फल हो जाते हैं।

१२५७) काम की भांति ही क्रोध भी अंधा होता है। क्रोधित व्यक्ति हानि-लाभ का तनिक भी विचार नहीं करता और ऐसे उलटे-सीधे कर्म कर बैठता है, जिससे उसके या अन्य के हितों पर कुठाराघात होता है। कभी-कभी तो ऐसी भी परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं कि कामी या क्रोधी जीव अपनी स्वार्थपूर्ति न कर पाने के कारण विक्षिप्त अवस्था को भी प्राप्त हो जाते हैं। काम की भांति ही अधिक क्रोध करने से भी शक्ति का ह्रास होता है और व्यक्ति वृद्धावस्था की ओर तीव्रता से अग्रसर होता है।

१२५८) गुरु और भगवान यदि दोनों एकसाथ हों तो पहले किसे सादर चरण-नमन किया जाए ? तब हमें गुरु के ही चरण स्पर्श करने चाहिए जिनके कारण ही हमें भगवान के दर्शन सुलभ होते हैं। अर्थात जीवन में प्रथम महत्त्व गुरु का ही है और हमें उन्हीं का नाम पहले लेना चाहिए।

१२५९) गुरु की संगत को छोड़कर कहीं और विश्वास करनेवाला सदैव ही भटकता रहता है। उसकी सुख-सम्पत्ति सब उससे छिन जाती है। स्वर्ग तो दूर की बात है, वह नरक का भागी भी नहीं बनता। अर्थात सदैव ही व्यग्र रहता है।

१२६०) वह लोग दृष्टिहीन हैं जो गुरु के महत्त्व को नकारते हैं और उन्हें कुछ नहीं मानते। यदि हरि रूठ भी जाएं तो समाज में स्थान मिल जाएगा। किंतु यदि गुरु रुष्ट हो जाएं तो पृथ्वी तो दूर आसमान में भी स्थान हीं मिल पाएगा।

१२६१) इस ब्रह्मांड में हजारों-करोड़ों सूर्य और चंद्रमा उग जाएं तब भी वह मनुष्य के अंदर के विकाररूपी अंधकार को दूर नहीं कर सकते। इनसे तो केवल दिखावटी प्रकाश ही मिलता है। मानव के अज्ञानरूपी अंधकार और विकारों को तो केवल गुरु ही मिटा सकता है।

१२६२) जब मनुष्य माया के पीछे दिन-रात दौड रहा है। आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव होने से ही उसकी मृगतृष्णा का अंत नहीं हो पा रहा।

१२६३) यदि गुरु ही अज्ञानी है तो उसका शिष्य भी महा-अज्ञानता में ही भटकता रहेगा। यह तो ऐसी बात हुई कि अंधे को अंधा मिल गया और दोनों ही मार्ग से भटक गए। ऐसे गुरु और शिष्य को शीघ्र ही काल अपना फंदा डालकर नष्ट कर देता है।

१२६४) यदि गुरु लोभी हो और शिष्य लालची तथा दोनों ही अपने-अपने दांव खेलने में व्यस्त हों तो निश्चित ही उनका कल्याण नहीं

हो सकता। दोनों ही अज्ञानता के कारण लकड़ी की नाव समझ, पत्थर की नाव पर सवार हो जाएंगे और अथाह सागर में डूब जाएंगे।

१२६५) अज्ञानी गुरु भ्रमित होकर कुएं में कूद जाता है और अपने शिष्य को भी अपने पास बुला लेता है। मूर्ख शिष्य भी उसी का अनुसरण करता है। अब दोनों ही कुएं में हैं। ऐसे में उन्हें कौन निकाले ? ऐसे गुरु-शिष्य सदैव भौतिकता में फंसकर अपना जीवन नष्ट कर देते हैं।

१२६६) जो गुरु अज्ञानता से भरा होता है वह शिष्य को शिक्षा कैसे दे सकता है ? वह तो शिष्य को पत्थर की पूजा करने की ही शिक्षा दे सकता है। शिष्य भी बिना सोचे-समझे उस गुरु की शिक्षा का अनुपालन करता है तो वह संसार से पार नहीं लग सकता।

१२६७) यदि लोहे की नाव पर लोहा ही लाद दिया जाए तो वह नाव पार कैसे पहुंचेगी, वह तो डूब जाएगी। ऐसे ही पापी का गुरु भी यदि पापी ही हो तो उस शिष्य का बेड़ा कैसे पार लगेगा। अर्थात जब दोनों ही पापी होंगे तो कल्याण कैसे होगा ?

१२६८) यह शरीर तो सांसारिक मोह-माया का विष समेटे हुए एक बेल है और गुरु इससे हटकर अमृत की खान है। ऐसा गुरु यदि अपना सबकुछ न्योछावर करने पर भी मिलता है तो अवसर नहीं खोना चाहिए। उसकी संगत से हमें सही मार्ग मिलेगा।

१२६९) गुरु बेचारा क्या करे जब शिष्य ही अयोग्य हो। गुरु के शब्दों को वह ग्रहण ही नहीं करता हो। जब चादर ही बहुत मैली हो तो उस पर रंग कैसे चढ़ सकता है। अर्थात गुरु से शिक्षा लेने के लिए शिष्य को भी योग्य होना चाहिए।

१२७०) जिसमें ज्ञान को प्राप्त करने की जिज्ञासा ही नहीं है और जिसका मन भी भटकता रहे तो ऐसे मनुष्य के लिए गुरु भी क्या कर सकता है। उसमें कभी भी शिक्षा का दीप नहीं जलाया जा सकता। घन को घिसकर क्या कुल्हाड़ी नहीं बनाई जा सकती है ?

१२७१) जो पानी में डूबने से डरते हैं उन्हें मोती कैसे मिल सकता है ? मोती को प्राप्त करने के लिए तो समुद्र की गहराइयों में जाना ही पड़ता है। अर्थात जिन्हें ज्ञान पाने की ललक होती है वही गुरु को खोजते हैं। ज्ञान का मोती प्राप्त करते हैं।

१२७२) एक मनुष्य के लिये अपने शरीर की रचना, उसके अंगों और उसके कार्यों से अधिक सन्तोष जनक कोई ज्ञान नही हो सकता। जिस प्रकार घौंघा अपने खौल से बद्ध है, उसी प्रकार हम भी अपने शरीर से बद्ध है। शरीर वीणा है और आनन्द संगीत। इसलिये आवश्यक है कि यन्त्र ठीक रहे।

१२७३) जो मनुष्य सब कामनाओं का त्याग कर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित होकर विचरता है, उसी को शान्ति प्राप्त होती है। युद्ध के लिये तत्पर रहना शान्ति स्थापित रखने के लिये एक बहुत प्रभावशाली साधन है।

१२७४) बुद्धि मे सद्विचार रखना श्रद्धा है। श्रद्धा मनुष्य को शक्ति देती है और जीवन को सार्थक बनाती है। श्रद्धा का अर्थ है आत्मविश्वास और आत्म विश्वास का अर्थ है ईश्वर पर विश्वास।

१२७५) सबकी श्रद्धा अपने स्वभाव का अनुसरण करती है। मनुष्य मे कुछ न कुछ तो श्रद्धा होती ही है। जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वैसा वह होता है।

१२७६) इस संसार में आकर तू ऐंठ (अहंकार) को छोड़ दे। यह मानव जीवन बहुत ही दुर्लभ है। इसमें जितना भी हो सके भले काम कर ले। संसाररूप इस बाजार में तो बहुत कुछ मिलता है। किंतु उसमें से अच्छाइयां ग्रहण कर ले, नहीं तो यह बाजार शीघ्र ही उठ जाएगा।

१२७७) यहां जो भी लेना है (ज्ञान-विचार आदि) जल्दी ले लो। किसी की कहा-सुनी को मत मानो, इससे मन भ्रमित होता है। इस तरह की कहा-सुनी और टोका टाकी करनेवाले लोग तो हर युग में होते हैं। इनके चक्करों में पड़कर मनुष्य आवागमन (मोक्ष-मुक्ति) के बंधन में बंध जाता है।

१२७८) काल तो काल ही है- यह कभी भी आ सकता है, इसलिए कभी भी कोई बुरा काम मत करो। जो नहीं बोया जाता वह पैदा भी नहीं होता और जो बोया जाएगा वही पैदा भी होगा अर्थात जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल भी मिलेगा।

१२७९) जो दूसरे के लिए भी सत्कर्म करता है तथा अपनी रोटी में से भी एक टुकड़ा किसी भूखे को दे देता है वह महान कहलाता है। ऐसे भक्त से कभी भी चूक नहीं हो सकती।

१२८०) पकाओ, खाओ और लुटा दो (दान-पुण्य कर दो)। यह मन तो अतिथि की तरह है। न जाने कब इसका स्वभाव बदल जाए और यह चल दे। इसलिए जो भी लेना हो जल्दी से ले लो। बाद में न जाने किस क्षण इस मैदान से यह खिलाड़ी (मानव) बाहर हो जाए।

१२८१) पकाओ, खाओ और लुटा दो (दान-पुण्य कर दो) तथा अपने सभी कामों (सत्कर्मों) को कर लो। जाते समय (इस दुनिया

से) तू (मानव) खाली हाथ ही जाएगा, तेरे साथ एक छदाम (पाई, पैसा) भी नहीं होगा। इसलिए मोह करने से कोई लाभ नहीं। दान करके पुण्य अर्जित कर ले।

१२८२) भले ही अपने आप को ठग जाने दो किंतु किसी दूसरे को कभी भी मत ठगो। अपने को ठगने पर सुख ही मिलेगा किंतु किसी दूसरे को ठगा तो उसके शाप से तुम्हें दुख और कष्टों का ही सामना करना पड़ेगा।

१२८३) यदि अपने मन में शीतलता (शांति) है तो इस जग में कोई भी अपना बैरी (दुश्मन) नहीं है और यदि हम अपने मन में घमंड को न आने दें तो सभी हमसे दया और दीनता का व्यवहार करेंगे। क्योंकि मन की अशांति और हमारा घमंड ही कलह (झगड़ों) को जन्म देता है।

१२८४) यह तन (शरीर) तो नाशवान है, एक दिन चला जाएगा। इसलिए जितना हो सके जन कल्याण कर लो। यहां से तो सभी खाली हाथ ही जाते हैं। अगर तुम्हारे पास लाख-करोड़ की धन-दौलत है तो वह भी यहीं रह जाएगी।

१२८५) कहनेवालों को कहने दो अर्थात तुम्हारे लिए कोई बुरा कहता है तो उसे कहने दो। तुम तो केवल गुरु की शिक्षा के अनुसार ही चलो। साकट (अज्ञानी, निगुरे) तो कुत्ते के समान होते हैं। यदि कुत्ता भौंकता है तो उसको प्रत्युत्तर नहीं दिया जाता।

१२८६) धर्म-कर्म (परोपकार, पुण्य कर्म) करने से पास का धन घटता नहीं है बिल्कुल वैसे ही जैसे नदी से पानी लेने पर उसका पानी घट नहीं जाता। यदि विश्वास न हो तो परोपकार करके अपनी आंखों से देख लो। सत्य की पहचान हो जाएगी।

१२८७) मन से अहंकार को त्यागकर ऐसी मधुर वाणी बोलिए कि औरों (दूसरों) का हृदय भी शीतल हो जाए और इसी से ही अपने हृदय को भी शीतलता मिलेगी। अर्थात आपकी वाणी ही आपके और दूसरों के व्यवहार को दर्शाती है जैसा बोलोगे वैसा ही उत्तर पाओगे।

१२८८) ज्ञान के हाथी पर अपने सहज व्यवहार का गलीचा डालकर सवार हो जाओ। यह संसार तो कुत्ते के समान है, जिसका काम भौंकना ही है। किंतु कुत्ते के भौंकने से हाथी को कोई अंतर नहीं पड़ता, वह तो अपनी ही मस्ती में रहता है। इसी तरह ज्ञानी लोग संसार के अज्ञानी लोगों की बातों की परवाह नहीं करते।

१२८९) आती हुई गाली तो एक ही होती है किंतु उलटने पर अनेक हो जाती है अर्थात जब कोई किसी को गाली देता है तो उसके उत्तर में दूसरी गाली देने पर बात बढ़ जाती है और गाली-गलौज का दौर शुरू हो जाता है। कभी भी कोई गाली दे तो उसे उत्तर में गाली न दें।

१२९०) यदि कोई बह रहा है तो उसे सहारा देकर बचा लो अर्थात अगर कोई बुराइयों के मार्ग पर चल रहा है तो उसे उस राह पर चलने से रोको। यदि वह आपके कहने पर नहीं मानता है तो दो शब्द (ज्ञान उपदेश की कुछ बातें) और कहो।

१२९१) जीवित रहते हुए जब मानव ज्ञान, ध्यान, उपदेश आदि की बातें नहीं सुनेगा, तब मर जाने के बाद कौन यह सब बताएगा और कौन-सा वह सुन ही लेगा। जिसका अपने ही तन-मन से परिचय न हो अर्थात अपने होश में ही न हो उसे उपदेश देने से लाभ भी क्या है।

१२९२) मन (मन को इंद्रियों का राजा कहा जाता है) तो नायक की तरह बन गया है जो अपने राज-पाट, भोग-विलास की वस्तुओं को अपने साथ ही रखता है। जिसे देखकर लगता है कि उसके पास बहुत कुछ है किंतु यह सब पूंजी तो व्यर्थ ही है। मनुष्य के साथ उसकी पूंजी नहीं जाती, उसके साथ तो उसके कर्मों का फल ही जाता है। अत: पूंजी को जोड़ना छोड़ो और सत्कर्म करो।

१२९३) जो मनुष्य गुरु को जैसा जानता है उसको वैसा ही लाभ मिलता है अर्थात गुरु तो सभी शिष्यों के लिए समान होते हैं किंतु जो शिष्य उनसे जितना ग्रहण करता है उसे उतना ही प्राप्त होता है। जैसे केवल ओस की बूंदों से प्यास नहीं बुझती, उसके लिए तो पानी पीना ही पड़ता है। इसी प्रकार गुरु से भी ज्ञान को स्वयं ही लेना पड़ता है।

१२९४) पढ़-पढ़कर पत्थर की तरह हो गए और लिख-लिखकर ईंट की तरह। अर्थात ज्ञान तो ग्रहण कर लिया किंतु साथ ही कठोर और घमंडी भी बन गए। ऐसे लोगों के अंतर (हृदय) में प्रेम व नम्रता का भाव नहीं होता। ऐसे लोग मानवता के प्रतीक नहीं होते।

१२९५) मांगनेवालों के लिए तो बोलना ही भला होता है। क्योंकि वह तभी मांग सकते हैं। किंतु चोरों के लिए चुप रहना ही भला होता है, बोलने पर वह पकड़े जाएंगे। माली के लिए वर्षा भली है जिससे बगीचे को पानी मिल जाए और धोबी के लिए धूप जिससे उसके कपड़े जल्दी सूख जाएं।

१२९६) चतुर को ही बहुत चिंता रहती है। क्योंकि वह ज्ञानी-ध्यानी होता है इसलिए वह अपने व्यवहार के प्रति चिंतित रहता है।

किंतु मुर्ख को कैसी चिंता ? उसे तो अपनी मूर्खता पर लज्जा भी नहीं आती। वह समय-असमय को भी नहीं समझता। बस, पेट भरने की चिंता ही रहती है।

१२९७) अति हठ (जिद) मत कर, हठ से बात नहीं बनती। जैसे-जैसे कम्बल भीगता जाता है वह अधिक भारी होता जाता है। उसी तरह हठ करने से बात की गंभीरता समाप्त हो जाती है। अत: ज्ञानी, ध्यानी लोगों की बातों को मान लेना चाहिए, उनसे विवाद नहीं करना चाहिए।

१२९८) बालू (रेत) जैसी किरकिरी कोई भी वस्तु नहीं होती और धूप के जैसा उज्ज्वल प्रकाश भी किसी का नहीं होता। ऐसा मीठा भी कुछ नहीं है जैसा मीठा चुप रहना है अर्थात मौन में ही शांति है। मौन ही सच्चा ध्यान है। बोलनेवाले तो साधक हो ही नहीं सकते।

१२९९) बसंत याचक बन गया और पेड़ों ने तुरंत उसे अपने पत्ते दे दिए। किंतु शीघ्र ही उनमें नए पत्ते पल्लवित हो गए और पेड़ों का दान व्यर्थ नहीं गया। अगर कोई भी दान-पुण्य करता है तो वह निष्फल नहीं जाता।

१३००) जिस गुणी मनुष्य से कोई गुण ग्रहण करनेवाला न हो उसे उस स्थान पर नहीं रहना चाहिए। जैसे दिगंबरों के देश में धोबी का क्या काम ? ऐसे देश में तो सभी निर्वस्त्र रहते हैं। अत: गुणी को उसी स्थान पर रहना चाहिए जहां उसका महत्त्व समझा जाए।

१३०१) सूर्यमुखी के फूल का ध्यान सदैव सूर्य की ओर रहता है, कमल का ध्यान सूर्य की ओर रहता है, ठीक उसी प्रकार शिष्य अपना ध्यान अगर सत्गुरु की ओर मोड़ ले और वहाँ से जो बरसता है, वह अपनी झोली में भर ले तो वह भी कमल की तरह खिलेगा।

१३०२) भगवान कोई देर नहीं लगाया करते, उनके यहाँ देर है ही नहीं। कितनी देर में तुम्हारी मैल गलेगी, यह तुम्हारे ऊपर है। वह तो दर्शन देने के लिये रात-दिन खड़े ही हैं। एक बार अर्पण तो करो।

१३०३) हमारे और परमात्मा के बीच बस एक ही दीवार है और वह दीवार है अज्ञानता की। जिस दिन अज्ञानता की दीवार टूट जाती है, अपने ही भीतर उस प्रभु से मिलन हो जाता है।

१३०४) पेड़ों पर फूल आते हैं तो वह यह नहीं देखते कि कोई लेनेवाला पात्र है या नहीं, वह तो फूल बाँटते ही जाते हैं। ज्ञानी के अन्दर परमात्मा के प्यार की खुशबू उठती है तो कोई मांग करे या न करे, वह सारी दुनिया को बाँटने निकल पड़ता है।

१३०५) नदी के तेज बहाव के कारण उसके तट पर खडे वृक्ष नष्ट हो जाते है। उसी प्रकार जो नारी किन्ही भी कारणों से दूसरों के घर रहती है, वह भी सदैव लांछित ही होती है क्योकि उसके लिये सतीत्व की रक्षा कठिन हो जाती है अर्थात नारी को दूसरों के घर मे नही रहना चाहिये। जिस राजा का कोई मन्त्री नही होता है वह भी विनाश के कगार पर रहता है। अत: उचित परामर्श एवम् सहयोग के लिये राजा के पास मन्त्री का होना आवश्यक होता है। ये सभी बाते मिथ्या नही वरन उपयोगी है जिनका पालन करना चाहिये।

१३०६) मन का सौन्दर्य आपकी वाणी से प्रकट होता है। आप शरीर को स्वच्छ रख भी लें, अगर आपकी वाणी निर्मल नहीं है तो स्वच्छ भी बुरा लगने लगता है, क्योंकि आपके कड़वे शब्दों ने जो घृणा पैदा की, उससे निकर्षण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

१३०७) अच्छाई की अपनी खुशबू होती है। जैसे फूल खिलता है तो उसकी खुशबू को तुम रोक नहीं सकते, ऐसे ही अच्छाई की सुगन्ध अपने आप फैलती है।

१३०८) जो व्यक्ति अपना सुख दूसरों के दु:ख मिटाने के लिये बलिदान करता है, अपनी मोह-ममता को त्यागकर, मन में वैराग्य भाव लाकर, अपनी समस्त भावनाओं को परमात्मा के समक्ष समर्पित करता है। ऐसा व्यक्ति परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

१३०९) जैसे रोज स्नान करके अपने तन को पवित्र करते हो, ऐसे ही अपनी बुद्धि को पवित्र करने के लिये सद्गुरु के वचनों से उसे स्नान कराते रहना चाहिये, नहीं तो दुनिया भर की धूल आपके अन्त:करण पर जमा होती जाएगी।

१३१०) लोभी का धन से, कामी का तन से, विषयों का मन से, मृत्युशैय्या पर पड़े व्यक्ति का क्षण-क्षण से प्यार होता है, इतना ही प्यार भक्त का भगवान से हो जाय तो उसका कल्याण हो जाता है।

१३११) अपने पास तो स्वयं के पीने के लिए पानी भी नहीं है किंतु दूसरों को दूध बांटते फिरते हैं। अपने मन में तो संयम है नहीं और दूसरे को धैर्य बंधाते हैं। अर्थात संसार में ऐसे मूर्ख लोग भी होते हैं जिनके पास खुद तो कुछ होता नहीं और दूसरों के लिए सुखी जीवन की बात करते हैं। उनकी कथनी और करनी में अंतर होता है।

१३१२) बिना दाने के खाली भूसी को कूटना और बिना करनी का ज्ञान एकसमान ही है। जिस तरह बिना गोली के बंदूक केवल

आवाज ही करती है, किसी की जान नहीं ले सकती, उसी प्रकार बिना अच्छे कर्मों के ज्ञान को कहना भी व्यर्थ है। उससे किसी का भला नहीं हो सकता।

१३१३) इधर-उधर से शब्दों में कांट-छांट करके एक नई साखी (कविता, छंद) तो बना ली किंतु इसका भेद तो खुल ही जाएगा। किसी दूसरे के जूठे पत्ते चाटकर कब तक कोई जिंदा रह सकता है। अर्थात जो भी काम करो वह स्वयं की योग्यता तथा चिन्तन से करना चाहिए।

१३१४) जिन्हें स्वयं कुछ भी नहीं आता किंतु दूसरों की लिखी बातें पढ़-पढ़कर ज्ञान का उपदेश देते हैं, ऐसे लोगों के मन में धैर्य नहीं होता। इन लोगों को तो सदा रोटी की (पेट पालने की) चिंता ही लगी रहती है।

१३१५) कथनी करने का घमंड छोड़कर करनी को ही हृदय से लगाए रखो। जगत में करनी ही महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई प्यासा है तो उसे पानी पिलाए बिना उसकी प्यास नहीं बुझ सकती। अत: पहले उस प्यासे को पानी पिलाने का कर्म करना जरूरी है।

१३१६) यदि कोई स्वयं तो मिथ्यावाचन करे और दूसरे से यह अपेक्षा करे कि उसे मिथ्या नहीं बोलना चाहिए, तो ऐसा कदापि संभव नहीं है। जो ज्ञानदाता स्वयं ही प्रपंचों से ग्रस्त हो वह दूसरे को क्या ज्ञान प्रदान करेगा ?

१३१७) चंदन का वृक्ष आग में जल रहा है और तभी उस पर तीतर ने आकर आश्रय लिया। तीतर को आश्रय लेते देख वृक्ष ने उससे कहा क हमारे पास तो पंख नहीं हैं अत: हम जल रहे हैं, किंतु तुम तो पंखविहीन नहीं हो, उड़ क्यों नहीं जाते ? क्यों स्वयं को जला रहे हो। पक्षी ने प्रत्युत्तर में कहा कि अपने द्वारा किए कर्म का फल अवश्य मिलता है। हम अपने कर्मों से भागकर सात समुद्र पार भी चले जाएं तब भी उनसे बच नहीं सकते। अर्थात बुरे कर्म के अधीन होकर जीव का ज्ञान रहते हुए भी प्राणी दुख भोगने को विवश है।

१३१८) मनुष्य जहां-जहां भी अपने पैर धरता जाता है, उसके कर्म उसके सान्निध्य में सदैव लगे रहते हैं। उसके भाग्य में जो कुछ लिखा हुआ है वह उसे अवश्य ही भोगता है। यह टाली जा सकनेवाली बात नहीं है। अत: मनुष्य को सदैव सत्कर्मों पर ही ध्यान देना चाहिए अन्यथा पृथ्वी पर उसका जीवन व्यर्थ ही है।

१३१९) मनुष्य को जो कुछ भी भोगना है उसका निर्धारण तो भगवान ने पहले ही कर दिया है। तत्पश्चात ही इस मानव शरीर की रचना हुई। यह सब कुछ जानते हुए भी लोगों के मन में धैर्य बिल्कुल भी नहीं है।

१३२०) चाहे आकाश की ऊंचाइयों पर चले जाओ या फिर पाताल की गहराइयों में जाकर छिप जाओ। या फिर भले ही ब्रह्मांड को चीरकर उससे भी आगे चले जाओ। इस देह को धारणकरने की सजा तो भुगतनी ही पड़ेगी। इसे तो हम मिटा ही नहीं सकते।

१३२१) दुख की प्राप्ति के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता। यह तो अतिथि की भांति अनायास ही स्वत: चला आता है और आने की पूर्व सूचना भी नहीं देता। लेकिन सुख रूप प्रहरी की उपस्थिति में यह दबे पांव स्वत: चला भी जाता है। भाव यह है कि प्रारब्धानुसार जीवन की डगर में सुख-दुख का आवागमन होता ही रहता है। सुख-दुख के इस आवागमन के भंवर में जीवन सदैव बंधनग्रस्त रहता है।

१३२२) श्रम (मेहनत) से ही सभी कर्म पूर्ण होते हैं। बिना श्रम के तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता। सीधी उंगली से जमा हुआ घी कभी नहीं निकल सकता। इसके लिए उंगली को टेढ़ा करना ही पड़ेगा। अर्थात श्रम ही जीवन का आधार है। आलसी और निकम्मे लोग जीवन में कुछ भी हासिल नहीं कर सकते।

१३२३) जैसी बातें मनुष्य के मुख से निकलती हैं, अगर वह उन्हीं का अनुसरण करते हुए नहीं चलता है तो वह मनुष्य के रूप में श्वान (कुत्ते) के समान है। वह सदा मोह-माया-लोभ के चक्करों में ही फंसा रहता है, कभी भी मुक्त नहीं हो पाता। अत: मनुष्य की करनी सदैव उसकी कथनी के अनुसार होनी चाहिए।

१३२४) श्रम (मेहनत) से ही सबकुछ होता है। श्रम से ही सफलता मिलती है। बस, अपने धैर्य (धीर) को बनाए रखें। श्रम करके जब हम कुआं खोदते हैं तो थल (पृथ्वी) से भी जल प्रकट हो जाता है अर्थात श्रम में बहुत शक्ति होती है।

१३२५) चोर टूंबरी (लकड़ी का बाजा) को चुराकर पानी में छुपाने की कोशिश करता है। लेकिन वह जितनी बार उसे पानी में छुपाता है, वह उछलकर पानी से बाहर आ जाती है। इसी प्रकार हमारी करनी भी कभी नहीं छिपती, भले ही हम उसे अच्छी कथनी करके छिपाने की कोशिश करें।

१३२६) जब तू इस जग में आया था अर्थात पैदा हुआ था तब लोग तेरे आने की खुशी में प्रसन्न थे, खुशियां मना रहे थे किंतु तू रो

रहा था। लेकिन अब ऐसी करनी मत करना कि लोग तेरे जाने के बाद तेरे पीछे हंसे अर्थात ऐसे कर्म करना कि लोग मरने के बाद भी तुझे याद रखें।

१३२७) दुनिया की चीजों मे सुख की तलाश व्यर्थ है। आनन्द का खजाना तो तुम्हारे अन्दर है। संयम और त्याग के रास्ते से ही आनन्द और शान्ति तक पहुंचा जा सकता है।

१३२८) आशा एक विलक्षण देवी है, जो कोई उसकी सेवा करता है उसे वह शोक प्रदान करती है परन्तु जो उससे विमुख हो जाता है उसके लिये वह बहुत आनन्द दायिनी होती है।

१३२९) उपकार करने के लिये यदि कुछ जाल बिछाना भी पडे तो उससे आत्मा की हत्या नहीं होती। सन्तो का यह सहज स्वभाव है कि वे मन, वचन और कर्म से दूसरों की भलाई, सेवा करते है।

१३३०) तृष्णा का प्याला पीकर आदमी अविचारी और पागल हो जाता है। तृष्णा चतुर को भी अंधा बना देती है। तृष्णा संतोष की वैरिन है। वह जहां पांव जमाती है, संतोष को भगा देती है। धैर्यनाशिनी तृष्णे देवि। तुम्हें नमस्कार है। जो विष्णु तीनों लोकों में पूज्य थे, उन्हें भी तुमने वामन बना दिया।

१३३१) जो लोग कहते है कुछ और करते कुछ और है उनसे तो जी जलता है क्योकि उनके कहने और करने का कुछ ठिकाना नहीं है। कथनानुसार कार्य करने वाले मनुष्य की सुभाषित वाणी सफल व फलित होती है।

१३३२) महापुरुष जो उपकार करते है, उसका प्रतिकार नहीं चाहते। जो दूसरों पर उपकार जताने का इच्छुक है, वह द्वार खटखटाता है। जिसके हृदय में प्रेम है, उसके लिये द्वार खुले है।

१३३३) वृक्ष अपने काटनेवाले को भी छाया प्रदान करते है। क्षमा कर देना दुश्मन पर विजय प्राप्त कर लेना है। क्षमा से बढ़कर और किसी बात मे पाप को पुण्य बनाने की शक्ति नही है। तपस्वी और त्यागी की शोभा उसके क्षमाशील होने मे है।

१३३४) असमय के आने पर अपने मित्र भी शत्रु हो जाते है। शिकारी हिरन को जब बाण मारता है तो हिरन का खून ही शिकारी को बता देता है कि हिरन किधर गया है। खून के निशानों के सहारे खोजता शिकारी हिरन को पकड लेता है।

१३३५) क्षमा यश है। क्षमा धर्म है। क्षमा मे ही यह चराचर जगत स्थित है। दुष्टों का बल है हिंसा, राजाओं का बल है दंड, स्त्रियों का बल है सेवा और गुणवानों का बल है क्षमा। सबसे उत्तम बदला भी क्षमा कर देना है।

१३३६) क्रोध मनुष्य का शत्रु है। वह अग्नि से भी अधिक तीव्र तथा घातक है। अग्नि बाहर से मनुष्य को जलाता है, लेकिन क्रोध इंसान को अंदर से भस्म करता है। क्रोध अपना जीवन तो नष्ट करता ही है, लेकिन दूसरों का जीवन भी नष्ट करता है।

१३३७) चतुराई दरबारियों के लिये गुण है किन्तु साधु पुरुषों के लिये दोष। चतुर लोगों की सभा मे मूर्ख लोगों की उसी प्रकार शोभा नही होती जैसे हंसों के बीच बगुले की।

१३३८) गुरु के आसन पर मनुष्य नहीं स्वयं परमात्मा आसीन होते है। एक मात्र ईश्वर ही विश्व का पथ प्रदर्शक और गुरु है। सच्चा गुरु अनुभव है।

१३३९) घमंड मत कर। घमंड तुझे एक दिन सिर के बल गिरा देगा। घमंडी व्यक्ति दूसरों के घमंड को घृणा की दृष्टि से देखते है। घमंडी का सिर सदैव नीचे रहता है।

१३४०) मैने निश्चित रूप से इस संसार को समझ लिया है कि यह संसार कच्चे शीशे की तरह असार है। इसमे एक ही परमात्मा का प्रतिबिम्ब अनन्त रूपों में भासता है अर्थात संसार के सभी पदार्थ एक ईश्वर के प्रतिबिम्ब मात्र है।

१३४१) गुण की सर्वत्र पूजा होती है, बडी सम्पत्ति की नही। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमा उतना वन्दनीय नही होता जितना द्वितीय का क्षीण चन्द्रमा।

१३४२) उसका जीवन अधम जीव सियार से भी गया बीता है जिसने अपने जीवन काल में कभी अपने हाथों से दान नहीं दिया। धन का दान अवश्य करो मगर सोच समझ कर करो। गुणवान पुरुषों को मुक्त हस्त से दो, गुणहीन को कदापि न दो। गुणवान को दोगे तो वह उसे बढ़ा कर पुन: किसी भी अन्य रूप मे तुम्हे प्राप्त हो जायेगा पर गुणहीन को दिया दान निरर्थक ही होगा।

१३४३) पत्तों पर नृत्य करती हुई ओस के कणों के समान अपने जीवन को भी समय के दलों पर नृत्य करने दो। इस बात का कोई महत्व नही कि मनुष्य मरता किस प्रकार है, महत्व की बात यह है कि वह जीवित किस प्रकार रहता है। आदि से अन्त तक हमारा जीवन एक प्रकार की मृत्यु ही है जिसका अर्थ है अधिक विशाल जीवन।

१३४४) दया चरित्र को सुन्दर बनाती है। बढ़ती आयु के साथ वह चेहरे को भी सुन्दर बनाती है। दया मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। केवल दया दिखानेवाला परमात्मा तो अन्यायी परमात्मा है, वास्तव मे वह तो परमात्मा ही नही है। जो निर्बलों पर दया नही करता, उसे बलवानों के अत्याचार सहने पडते है।

१३४५) इस दुनिया मे कोई चीज टिकने वाली नही है। तू इसमे गफलत से अपनी उम्र न गुजार। विचारकों के लिये दुनिया सुखान्त है और संवेदनशील लोगों के लिये दुखान्त।

१३४६) मन की दुर्बलता से अधिक भयंकर और कोई पाप नहीं। दुर्बल और अज्ञानी लोग ही सदैव सबसे अधिक नुकताचीनी करते है। दुर्बल व्यक्ति को कभी भी नहीं सताना चाहिये क्योकि उसके मुंह से निकली हाय विनाश कर देती है। लौहार की धौकनी से सख्त से सख्त लोहा भी भस्म हो जाता है।

१३४७) दुर्वचन कहनेवाला तिरस्कृत नही करता बल्कि दुर्वचन के प्रति हृदय में उठी भावना तिरस्कार करती है। इसलिये जब कोई मनुष्य तुम्हे उत्तेजित करता है तो यह आपके भीतर की आपकी अपनी भावना ही आपको उत्तेजित करती है।

१३४८) जब मुझे सूझ नहीं पडती कि क्या करूं या ना करूं तो हमेशा करता हूँ। चित्त में किसी प्रकार की दुविधा नहीं होती है तब समस्त पदार्थ ज्ञान विश्राम लेता है और तब दिव्य ज्ञान की प्राप्ति होती है।

१३४९) आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का दुश्मन है। जो आदमी मुसीबत में साथ न दे वह दुश्मन है ऐसों से तो दूर रहना ही अच्छा है। दुश्मनी दोस्तों से छिपकर आती है। जब तुम अपनी आंखे उस परमात्मा की तरफ से बन्द कर लेते हो तब दुश्मन आते है।

१३५०) दुष्ट व्यक्ति दूसरे के कार्य को सिर्फ नष्ट करना ही जानता है, उसे सिद्ध करना नहीं। जिस प्रकार वायु वृक्षों को उखाड ही सकती है उन्हे खडा करना नही जानती।

१३५१) भविष्य की भीषण चिन्ता आंतरिक सद्भावों का सर्वनाश कर देती है। चिन्ता चिता से भी कठिन होती है क्योकि चिता निर्जीव लाश को जलाती है परन्तु चिन्ता सजीव शरीर को जला देती है।

१३५२) बिना कारण शत्रुता दिखाने वाले दुष्ट व्यक्ति से कौन नही डरता जिसके मुंह मे सांप के विष के समान असह्य अपशब्द रहते है। दुष्ट बुद्धि के लोग दूसरों के उत्तम गुणों को जानने की वैसी इच्छा भी नही करते जैसी इच्छा उनके अवगुणों को जानने की करते है।

१३५३) विश्व मे केवल एक ही मन्दिर है और वह है मनुष्य शरीर। इस स्वरूप से अधिक पवित्र स्थान कोई नही है। देह आत्मा के रहने की जगह होने के कारण इस संसार मे कोई अन्य वस्तु पवित्र तीर्थ भी नही है जैसे देह है।

१३५४) हम दूसरों के दोषों को देखकर हंसते हंसते प्रसन्न होते है लेकिन अपने बारे मे कभी नही सोचते कि हममें भी आदि से अन्त तक कितने दोष भरे हुये है। मै बुरा देखने गया तो मुझे तो कोई खराब मिला ही नही। अपने दिल को टटोल कर देखा तो मुझे लगा कि मेरे समान तो दूसरा कोई बुरा ही नही है।

१३५५) दान की परीक्षा अकाल में, शूरवीर की युद्ध में, मित्र की आपतकाल में, पत्नी की निर्धनता में, अच्छे कुल की विपत्ति में, प्रेम की परोक्ष में और सत्य की संकट में होती है।

१३५६) धीरज, धर्म, मित्र और नारी इन सबकी परीक्षा आपतिकाल में ही होती है। धैर्य कछुआ होता है उसका फल मीठा होता है। धीरज धारण करने से हाथी मण भर खाना प्राप्त कर लेता है।

१३५७) यदि हम अपनी आय से कम में निर्वाह कर सकते है तो निश्चय ही पारस पत्थर हमारे पास है। हम तो ईश्वर से यही दुआ करते है कि हमें इतना दे जिसमे मैं मेरे कुटुम्ब का भरण-पोषण कर सकूं और मेरे द्वार पर आया हुआ अतिथि और साधु भी भूखे न लौटाये जाये।

१३५८) फल लगाने पर वृक्ष झुक जाते है, वर्षा के समय मेघ झुक जाते है, सम्पत्ति आने पर सज्जन भी नम्र होते है किन्तु परोपकारियों का तो नम्रता का स्वभाव ही होता है।

१३५९) नीच मनुष्य के साथ मैत्री और प्रेम कुछ भी नहीं करना चाहिये। कोयला यदि जलता है तो छूने पर जला देता है और यदि ठंडा है तो हाथ लगाने पर हाथ काला कर देता है।

१३६०) बडे लोगों का साथ मिलने पर छोटे लोगों का साथ नहीं छोड देना चाहिये। जहां सूई से काम होता है वहां तलवार कुछ भी नहीं कर सकती।

१३६१) बडों को छोटा बनकर रहना चाहिये, क्योकि जो अपने आप को बडा मानता है, वह छोटा बताया जाता है और जो छोटा बनता है वह बडा पद पाता है।

१३६२) उपवास करने और जोर-जोर से चिल्ला कर प्रार्थना अथवा कीर्तन करने ही का नाम पूजा नही है। हृदय का निवेदन ही सच्ची पूजा है। मनुष्य ही परमात्मा का सर्वोच्च साक्षात मन्दिर है, इसलिये साकार देवता की पूजा करो।

१३६३) हे कृपालु प्रकाश हमारा मार्गदर्शन करो। प्रकाश सच का प्रतीक है। प्रकाश प्रभु की छाया है। हे प्रभो हमे अन्धकार से प्रकाश की और ले चलो।

१३६४) अपनी प्रशंसा सुन कर हम इतने मतवाले हो जाते है कि फिर हम मे विवेक की शक्ति लुप्त हो जाती है। बडे से बडा महात्मा भी अपनी प्रशंसा सुनकर फूल उठता है। हम प्रशंसा, आशा और प्रेम से जीते है।

१३६५) सामर्थ्यवान तेजस्वी पुरुष भी अकेला कुछ नही कर सकता। वायु रहित स्थान मे प्रज्ज्वलित अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है।

१३६६) तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हारी गुरू है। मन के हाथी को बुद्धि के अंकुश में रखो। कष्ट सहने के फल स्वरूप ही हमे बुद्धि विवेक की प्राप्ति होती है। उडने के बजाय जब हम झुकते है तब बुद्धि के अधिक निकट होते है।

१३६७) नारी मे पुरुष की अपेक्षा दो गुना भोजन करने की क्षमता होती है जबकि लज्जा ४ गुनी अधिक पायी जाती है और साहस ६ गुना अधिक होता है। नारी पुरुष से उच्च ही होती है। नारी में काम वासना पुरुष की अपेक्षा आठ गुनी अधिक होती है।

१३६८) मन बहुत चंचल है, मनुष्य को मथ डालता है। जैसे वायु को दबाना बहुत कठिन है, वैसे ही मन को वश में करना भी अत्यन्त कठिन है। जैसे कच्ची छत मे पानी भरता है वैसे ही अविवेकी मन मे कामनाये धंसती है।

१३६९) सत्संग से मनुष्य की बुद्धि में प्रगल्भता आती है। वाणी मधुर और शीतल होती है। मनुष्य के यशोगान और कीर्ति में वृद्धि होती है। सदाचार से मनुष्य प्रतिष्ठित अच्छे और ऊंचे लोगों में उठने-बैठने लगता है तथा उसकी प्रतिमा और प्रतिबिम्ब अच्छा निर्भित होता है।

१३७०) कांट छांट करने पर भी वृक्ष बराबर बढ़ता रहता है, बार-बार क्षीण होने पर भी चन्द्रमा की कलाये बढ़ती रहती है, ऐसा सोच कर महान पुरुष आपत्तियों से नहीं घबराते।

१३७१) माया और छाया दोनो एक समान है क्योकि ये भागते हुओं के तो पीछे फिरती है और जो इनके पीछे पडता है कंजूसों व माया के लालची लोगों के यह आगे-आगे भागती है। माया दीपक की और मनुष्य पतंग की तरह है जिसमे वे बार-बार पडकर जलते है। गुरु के ज्ञान देने पर कोई-कोई मनुष्य ही माया से उबर पाते है। इस भेद को तो कोई विरला (समझदार) ही जान सकता है।

१३७२) बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह धन की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करे क्योकि संसार मे ऐसा कोई काम नहीं, जिसे धन के द्वारा सिद्ध न किया जा सके।

१३७३) जो मनुष्य साधु होते है उन्हे अहम् दिखाई नही देता, वे लोग आत्मा ही देखते है। उन्हे कहते है महात्मा। उनके जीवन में आत्मा का ही प्रकाश होता है। मनुष्य का मापदंड उसकी सम्पदा से नहीं बल्कि उसकी बुद्धिमत्ता से होता है।

१३७४) अत्यधिक सम्पन्न होने पर भी महान पुरुषों को अपने धन का उन्माद नहीं होता, उनमे यौवन मे भी चंचलता नहीं होती, अत्यन्त शक्तिशाली होनेपर भी वे उन्माद से नहीं भर उठते। महान पुरुषों की सम्पत्ति दुखियों के दुःख दूर करने के काम आती है।

१३७५) जो असन्तोषी है वही दरिद्र है, जो इन्द्रियों के वश मे है वही कृपण है। जिसकी बुद्धि विषयों में फंसी हुई नहीं है वही स्वतन्त्र है।

१३७६) शायद सबसे आनन्ददायक मित्रताये वे है, जिनमे बडा मेल है, बडा झगडा है और फिर भी बडा प्यार है। मूर्ख मित्र से बुद्धिमान शत्रु कभी भी अच्छा है। सच्चा प्रेम दुर्लभ है, सच्ची मित्रता उससे भी दुर्लभ।

१३७७) लोकोत्तर महापुरुषों के चित्त को जानने में कौन समर्थ हुआ है। वे वज्र से भी अधिक कठोर और फूलों से भी अधिक कोमल होते है। महान पुरुष परोपकारी होते है। ऐसी पुण्यात्माओं का भोग करने योग्य धन सदा दान के लिये ही होता है।

१३७८) व्यक्ति को ऐसे मित्र का परित्याग कर देना चाहिये, जो उसकी पीठ पीछे उसके कार्य को हानि पहुंचाता हो, बुरा भला कहता हो और सामने मीठी मीठी बाते करता हो सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखो।

१३७९) जब तक शरीर निरोग है, मन मे आये कल्याण कार्यों को पूरा कर लेना चाहिये न जाने कब मृत्यु का निमन्त्रण आ जाये और अच्छे पुण्य कार्य करने के श्रेय से आत्मा वंचित रह जाये।

१३८०) मोह का स्थान मन है। अतिशय मोह ही मनुष्य को कमजोर बना देता है। मनुष्य मोह जाल में ऐसे तडफता है जैसे पानी से निकल कर जमीन पर पडी मछली तडफती है।

१३८१) यदि अपना रहस्य शत्रु से छिपाकर रखना चाहते हो तो इसका जिक्र अपने किसी मित्र से भी मत करो। परम वास्तविक ईश्वर का रहस्य वही व्यक्ति समझ सकता है जिसे किसी से ईर्ष्या न हो।

१३८२) सब लोगों की रूचियां तो भिन्न-भिन्न होती है, एक आदमी की रूचियों में भी भिन्नता होती है। चकोरी एक तरफ चांदनी का पान करती है और दूसरी तरफ अंगार खाती है।

१३८३) अरे मूर्ख मृत्यु से क्यो डरता है ? क्या डरने वाले व्यक्ति को मृत्यु छोड देती है ? जीवधारियों की मृत्यु अवश्य होगी, आज हो या अनेक वर्षों बाद ? अब मैं गहन अन्धकार में अग्रसर होकर अपनी अन्तिम यात्रा को चलाने वाला हूं। ईश्वर की उंगली ने उसका कोमल स्पर्श किया और वह चिरनिद्रा लीन हो गया।

१३८४) ओंकार ही धनुष्य है, आत्मा ही बाण है और परमात्मा ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादहीन मनुष्यों द्वारा बन्धा जाने योग्य है। उसे वेध कर बाण की भांति उसमे तन्मय हो जाना चाहिये। उन्नत होना और आगे बढ़ना प्रत्येक जीव का लक्ष्य है।

१३८५) लज्जा मनुष्य की विशेषकर स्त्रियों की शोभा है। किन्तु कुछ बातों में लज्जा या व्यर्थ संकोच करना अव्यावहारिक है। धन और अन्न के लेन देन मे, विद्या के उपार्जन और संग्रह में, उदरपूर्ति के लिये भोजन करने में जो लज्जा या अनावश्यक संकोच करता है वह दु:खी होता है।

१३८६) जैसे-जैसे धन में वृद्धि होती है, लालच बढ़ता जाता है। बुद्धि और हृदय के लिये लालच वैसे ही है जैसे साधु वृत्ति के लिये इन्द्रिय सुख।

१३८७) जो कुछ भी करना है, उसे स्वयं पर और परमात्मा पर विश्वास रख कर वर्तमान काल मे ही करना चाहिये। बीती हुई बात का शोक नही करना चाहिये, शौक धैर्य को नष्ट कर देता है। भविष्य मे क्या होगा, इसकी चिन्ता भी नही करनी चाहिये। बुद्धिमान एवं ज्ञानी पुरुष वर्तमान को सफल बनाने के कार्य मे जुटे रहते है।

१३८८) वासना की दीवानगी थोडी देर रहती है किन्तु उसका पछतावा बहुत देर। जब तक वासना है, तब तक कर्म जारी रहेंगे। कर्म समाप्त करना हो तो वासना को मारना होगा और वह भगवान का नाम लेने से ही मरती है।

१३८९) लक्ष्मी के सात साधन है धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय दमन, पवित्रता, करूणा, कोमल वचन, तथा मित्रों से अद्वेष। लक्ष्मी शुभ कार्य से उत्पन्न होती है, चतुरता से बढ़ती है, अत्यन्त निपुणता से जड बांधती और संयम मे स्थिर रहती है।

१३९०) मुख पर झुरियां पड चुकी है, सिर के बाल सफेद हो चुके है, शरीर के अंग ढीले पडते जा रहे है, तो भी मनुष्य की वासना बढती जाती है।

१३९१) जितने दु:ख, जितनी विपत्तियां हमें प्राप्त होती है, उनका कारण यही है कि अनन्त ऐश्वर्य मुक्त सर्वशक्तिमान परमेश्वर की ओर हम भिन्नता का भाव रखते है। निरन्तर सफलता हमें संसार का केवल एक ही पहलू दिखाती है, विपत्ति हमें तस्वीर का दूसरा पहलू भी दिखाती है।

१३९२) विषय भोग में धन का ही सर्वनाश नहीं होता, इससे कही अधिक बुद्धि और बल का भी नाश होता है। विषयों के सुखों में घोर दु:ख भरा है। प्रारम्भ में वे मीठे लगते है लेकिन अन्त में उनके कारण सन्ताप ही होता है।

१३९३) वैराग्य के बिना कोई भी अपने सम्पूर्ण अन्त:करण को परोपकार में नही उडेल सकता। विरागी मनुष्य ही सबको समान दृष्टि से देखता है और सबकी सेवा में अपने को लगा सकता है।

१३९४) शान्ति के समान कोई तप नही, सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं, तृष्णा से बढ़कर कोई व्याधि नहीं और दया के समान कोई धर्म नहीं। अपने अन्दर ही यदि शान्ति मिल गई तो सारा विश्व शान्तिमय प्रतीत होता है।बहुधा वह उत्पन्न करता है जो असंग, अध्ययन और मन की प्रवृत्ति से भी सम्भव नही।

१३९५) रात का गहरा अंधेरा सूर्य के उदय होने पर नष्ट हो जाता है। अथवा यह अंधेरा, चिमनी या आधुनिक विद्युतीय उपकरणों के माध्यम से नष्ट किया जा सकता है। लेकिन अज्ञानरूपी अंधेरा तभी दूर होता है जब सद्गुरु की शरण में जाकर आत्मबोध रूपी प्रकाश को प्राप्त किया जाए। अज्ञानता का यह अंधेरा काम, क्रोध, मोह, मद के रूप में व्याप्त है। इसी के फेर में मानव भटकता फिर रहा है। अर्थात एक जन्म के पश्चात दूसरा जन्म पाता है। चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात यह मानव तन मिलता है। इस मानव तन को पाकर भी यदि जीव अपने आत्म-कल्याण का कोई उपाय नहीं करता तो उसके मानवपन को धिक्कार है।

१३९६) समय रहते अब भी महामोह की गहन निद्रा का त्याग कर जाग जाओ। न मालूम काल का फेरा कब, किसको अपनी दाढ़ तले दबा ले। यह संसार एक छलावा है। यहां जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, उसके मूल में कुछ और ही है अर्थात सुंदरता के पीछे कुरूपता छिपी है। एक-न-एक दिन सभी को निश्चित रूप से काल का ग्रास बनना ही है। इसलिए इसी जन्म में ज्ञान सुख का पान कर इहलोक व परलोक को सुधार लेना चाहिए।

१३९७) अपने ऊंचे और बड़े-बड़े मकान (भवन) को देखकर अभिमान न करें। कुछ ही दिन बाद जब काल आ जाएगा तब तुम्हें भूमि पर लेटना होगा और तुम्हारे ऊपर कोई चादर या बिछौना भी नहीं होगा बल्कि घास का ढेर डाला जाएगा अर्थात अर्थी सजाई जाएगी।

१३९८) कभी भी अभिमान मत करो। काल ने तुम्हें बालों से पकड़ रखा है, न जाने कब और कहां मार डाले। काल के लिए न कोई देश है और न ही परदेश, वह कहीं भी अपने चंगुल में ले सकता है। अर्थात काल के लिए दूरी कोई महत्त्व नहीं रखती। वह तो कर्म के आधार पर मानव को जीवन जीने की छूट देता है।

१३९९) हाड़-मांस से बने इस शरीर पर अभिमान मत करो। हाथी, घोड़े की सवारी हो, एकछत्र राज्य हो, सिंहासन हो अर्थात किसी राज्य के राजा क्यों न हों, काल के आने के बाद लोग भूमि में गाड़ देते हैं। काल के लिए तो सभी बराबर हैं। उसे राजा-महाराजा, गरीब-अमीर, छोटे-बड़े से कोई अंतर नहीं पड़ता।

१४००) कभी भी अपने यौवन पर मत इतराओ, इस यौवन का क्या भरोसा ? यह तो टेसू के पुष्प की तरह मात्र दस दिन का है। इसके बाद यह पुष्प झड़ जाता है और बाद में खंखर (ठूंठ) ही रह जाता है।

१४०१) यह अपनी नौबत मात्र दस दिन की है। इसे खुशी-खुशी बजा लो अर्थात इस जग में जो कुछ भी आपके पास है, वह मात्र आपके जीवन तक ही है। मृत्यु के बाद तो सब यहीं रह जाएगा। अत: उस पर अहंकार मत करो बल्कि सुख से जीवन व्यतीत करो। बाद में तो यह गांव, नगर, गली फिर नहीं देख सकोगे।

१४०२) रात को सपना देखते-देखते जब नींद खुल गई तो पता चला कि सपने में मैं जो लुटा हुआ था, वह तो झूठ था। अर्थात जो कुछ भी यथार्थ में होता है, वही जीवन का वास्तविक सत्य है। शेष सब तो मिथ्या है।

१४०३) यह जीवन बहुत ही थोड़ा है। पर लोग बहुत सारे सुख-आराम, वैभव की लालसा रखते हैं। सभी के सिर पर जाने का मार्ग भी है अर्थात सिर पर काल बैठा है। चाहे वह अमीर हो, गरीब हो या फिर सुलतान (राजा) हो। सभी मृत्यु मार्ग पर ही खड़े हैं।

१४०४) यह शरीर तो लाख के मंदिर के समान है, जिसे हीरे और लाल (गुण और रूप) से जड़कर खूबसूरत बनाया गया है। किंतु यह खूबसूरती मात्र चार दिन की है और तब तक ही लोग इसे देखते हैं। इसके बाद तो काल इसका विनाश (नष्ट) कर देता है अर्थात यह शरीर जैसा भी हो, नष्ट अवश्य होता है।

१४०५) किसान ने खेत में परिश्रम करके फसल उगाई। किंतु उस फसल को तो मृग खा गए। इसमें खेत बेचारे का क्या दोष? जब किसान ने ही उसमें सुरक्षा की बाड़ नहीं लगाई अर्थात सेवा, भक्ति, साधना तभी संभव है जब मन में मृगरूपी विकार न हों और मानव इन विकारों को मन में न पनपने देने का दृढ़ निश्चय कर ले।

१४०६) सभी के पैरों में कालरूपी रस्सी बंधी है। इससे बचकर कोई भी भाग नहीं सकता। फिर भी यह मानव सुख (भोग-विलास) की नींद में सो रहा है। जबकि यहां तो सांसों के जाने के लिए दिन-रात जोर-जोर से नगारा (बाजा) बज रहा है। उठो और अब भी संभल जाओ। अन्यथा समय बीत जाने पर हाथ कुछ भी नहीं लगेगा।

१४०७) जिस तरह बड़े हौज का पानी भी देखते-ही देखते समाप्त हो जाता है, ऐसे ही इस जीवन का भी अंत हो जाएगा। काल आएगा और शरीर को छोड़कर जीव को ले जाएगा।

१४०८) यह यंत्र (वाद्य यंत्र, सितार) अब नहीं बजेगा। क्योंकि इसके सभी तार टूट गए हैं। यह यंत्र तो ठीक भी हो जाएगा किंतु वह यंत्र बेचारा क्या करे जिसका बजावनहार (सितार बजानेवाला) ही चला जाए। अर्थात यह शरीर प्राण निकलने के पश्चात किसी काम का नहीं रहता। इसे सितार की तरह ठीक नहीं किया जा सकता।

१४०९) आज और कल के बीच में अर्थाथ कुछ ही दिनों में जब काल (मृत्यु) आ जाएगा तो जंगल में ही वास करना होगा। (जंगल में ही चिता जलेगी या दफनाया जाएगा) तब हमारे ऊपर से किसान हल जोतेगा और पशु वहां पर घास चरेंगे।

१४१०) मरना है और मरते ही जाना है और मरने के बाद कोई हमारा नाम भी नहीं लेगा (कुछ समय बाद तो नाम लेनेवाले भी नहीं रहेंगे)। इस मानव शरीररूपी सुंदर गांव को छोड़कर पता नहीं पुन: किस रूप में जन्म होगा (यह मनुष्य के कर्मों पर निर्भर करता है कि वह पशु योनि में जाएगा अथवा महान आत्मा की योनि में)

१४११) उजाड़ (जंगल) को जोतकर खेती करनेवाला किसान, मिट्टी खोद-खोदकर घड़ा बनानेवाला कुम्हार कोई भी काल से बच नहीं पाया। यहां तक कि लंका का सरदार (सम्राट) अहंकारी रावण भी इस जग को छोड़कर चला गया। अर्थात मृत्यु तो शाश्वत सत्य है, यह तो सभी को आनी है।

१४१२) इस मानव का जीवन तो पानी के बुलबुले की भांति है जो हल्की-सी हवा के झोंके से ही फूट जाता है। जिस तरह प्रात: होते ही आकाश के सारे तारे छिप जाते हैं, उसी तरह काल इस जीवन को छिपाकर अपने साथ ले जाता है।

१४१३) काल का क्या भरोसा ? यह तो पल के चौथे भाग में भी आ सकता है; और तू अपने कल को सजा (भविष्य की चिंता) रहा है। काल तो अचानक आकर मारता है, जैसे बाज तीतर को अचानक मारकर खाता है। अर्थात मौत का पलभर का भी कोई भरोसा नहीं। यह एक ही झटके में आकर मानव को दबोच लेती है।

१४१४) मृत्यु पश्चात श्मशान भूमि में यह शरीर जल जाता है। इसकी हड्डियां जल जाती हैं और जो लकड़ियों के साथ इस शरीर को जलाता है, एक दिन वह भी इसी तरह जल जाता है। श्मशान में दर्शक बनकर आए लोग भी एक दिन यहीं आकर जल जाते हैं अर्थात जब किसी ने बचना ही नहीं है तो किसके सामने पुकारें।

१४१५) यदि कोई मृत्यु भय से भयभीत होकर प्रेम की डगर पर चलना चाहे तो उसे लक्ष्य (प्रेम) की प्राप्ति नहीं हो सकती- इस बात को भलीभांति समझ लेना चाहिए। क्योंकि प्रेम डगर के पथ पर मृत्यु अल्प अंतराल पर पहरा देती हुई मिलती है।

१४१६) प्रेम कभी भी पुराना नहीं होता है यदि किसी उत्तम पात्र से किया जाए। बल्कि समय के साथ प्रेम और बढ़ता है। यह बिल्कुल उसी प्रकार है जिस प्रकार पत्थर वर्षों तक भी पानी में रहकर अग्नि को नहीं त्यागता (दो पत्थरों के टकराने से अग्नि उत्पन्न होती है।

१४१७) एक प्रेमी दूसरे प्रेमी से अलग नहीं है। दोनों एक ही हैं। भले ही शरीर अलग-अलग हों किंतु प्राण से एक ही होते हैं। दिल से ही दोनों एक-दूसरे की बात को जानते हैं। यह प्रेम की ही शक्ति होती है जो दोनों को एक ही डोर में बांधे रखती है।

१४१८) गुणवान तथा दौलतमंद से तो हर कोई प्रीति (प्रेम) करता है, क्योंकि सभी के अपने-अपने स्वार्थ होते हैं। सच्ची प्रीति तो उसे ही कहते हैं जो स्वार्थ की भावना से अलग हटकर की जाए। प्रेम कोई सौदा नहीं होता कि किसी से कुछ पाने की आशा में ही किया जाए।

१४१९) नेह (प्रेम) तो निभाने से ही निभता है। सोचनेवाले प्रेम नहीं कर सकते। सोचने से तो आन (मर्यादा) घटती है। तन दे दें,

मन दे दें, यहां तक कि शीश भी दे दें किंतु नेह (प्रेम) को न छोड़ें। प्रेम है तो आपके पास सबकुछ है।

१४२०) आग की आंच (गर्मी) को सहना अति सुगम है तथा तलवार की धार पर चलना भी कोई कठिन नहीं है किंतु नेह रस (प्रेम रस) को सदा निभाना एक महा कठिन कार्य है। यह हर किसी के वश की बात नहीं होती। केवल सच्चा प्रेमी ही इस कठिन मार्ग पर चल सकता है।

१४२१) प्रेम बिकता है- ऐसा मैंने भी सुना है। लेकिन इसको क्रय करने के लिए समर्पण भावरूपी मुद्रा की आवश्यकता होती है न कि धात्विक मुद्रा (रुपया, पैसा या धन-दौलत) की। ऐसे प्रेम व्यापार में मोल-भाव करके समय नहीं गंवाना चाहिए। बल्कि समर्पणरूपी मुद्रा देकर प्रेम क्रय कर लेना चाहिए। यह महंगा सौदा नहीं है।

१४२२) जिसको भी जो भाता है (अच्छा लगता है) वह उससे जब-तब मिल ही लेता है। किंतु यह प्रेम तो मात्र दिखावटी है। जिससे भी प्रेम करो उसे अपना तन-मन सौंप दो ताकि वह कभी भी बिछुड़ न सके, सदा प्रेम के बंधन में बंधा रहे।

१४२३) कुमुदिनी तो जल में रहती है और चंद्रमा दूर आकाश में। किंतु इन दोनों का प्रेम तो सभी जानते हैं। जो जिसको प्रेम करता है वह सदैव उसी के पास होता है, उसके तन-मन में बसा होता है। प्रेम दूरी को नहीं देखता, तभी तो कुमुदिनी-चंद्रमा की प्रीति प्रसिद्ध है। सभी को उनके जैसी प्रीति करनी चाहिए।

१४२४) इस जग में चाहनेवाले (प्रेम करनेवाले) अपने बहुत हैं जो सुख में सदैव हमारे साथ रहते हैं। किंतु जब विपत्ति आन पड़ती है तो उस समय दुखों को बांटने के लिए लाखों में से कोई एक ही होता है। तब कोई सच्चा प्रेमी ही साथ देने आता है, नाम के प्रेमी ऐसी स्थिति में साथ छोड़ जाते हैं।

१४२५) मैं इस जग में प्रेमी को ढूंढ रहा हूं किंतु कोई सच्चा प्रेमी नहीं मिल रहा है। यदि सच्चे प्रेमी को कोई सच्चा प्रेमी मिल जाए तो विष भी अमृत हो जाता है। अर्थात प्रेम से तो इस दुनिया का स्वरूप ही बदला जा सकता है। प्रेम से ही प्रेम बढ़ता है।

१४२६) सबसे अधिक स्नेही तो मछली है, उसके सामने तो दूसरों का प्रेम अल्प है। मछली जैसे ही अपने प्रेमी (जल) से बिछुड़ जाती है, अपने प्राणों को त्याग देती है। इसीलिए मछली को सबसे बड़ा प्रेमी कहा गया है। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो मछली की भांति अपने प्रेमी से बिछड़ जाने पर अपने प्राण त्याग देते हैं।

१४२७) प्रेम छिपाने से नहीं छिप सकता। जो भी प्रेमी प्रेम रस को पीता है उसके मन व हृदय में प्रेम छलकने लगता है। वह भले ही मुख से इसका वर्णन न करे किंतु उसकी आंखों के आंसू उसके प्रेम को प्रकट कर देते हैं।

१४२८) मन में जब प्रेम की भावना आई थी तो सभी ने देखा भी था। लेकिन अब वह प्रेम-भावना कहां चली गई ? पल में हंसना, पल में रोना... यह तो प्रेम नहीं है। सच्चा प्रेम जब हिय (हृदय) में एक बार समा जाता है तो उसके निकलने का प्रश्न ही नहीं उठता। अगर प्रेम-भावना मन से निकल जाती है तो वह प्रेम नहीं मात्र मोह है।

१४२९) जब मेरे मन में अहं था तब मुझे गुरु से प्रेम नहीं मिला किंतु जब से मैंने अपने मन से अहंरूपी विकार को निकाल दिया है तभी से मुझे गुरु का प्रेम और आशीर्वाद मिलने लगा है। प्रेम की गली इतनी संकरी होती है कि इसमें अहंकार और गुरु एकसाथ समा ही नहीं सकते। गुरु का प्रेम पाने के लिए अहंकार को त्यागना ही पड़ेगा।

१४३०) पल में किसी से प्रेम हो जाए और पल में ही यह प्रेम समाप्त हो जाए। इसे प्रेम नहीं कहते, यह तो मात्र छलावा है। प्रेम कभी भी घटता नहीं है। यह तो पूरी तरह से तन-मन में बस जाता है। इसको ही सच्चा प्रेम कहते हैं।

१४३१) जिसके मन में प्रेम की भावना नहीं होती उसे तो श्मशान ही समझना चाहिए। प्रेम-भावना के बिना तो जीवित भी मरे हुए जैसा ही है। यह तो उसी तरह है जैसे लोहार मरे हुए जानवरों की खाल से बनी धौंकनी द्वारा अपनी भट्ठी में हवा करता है अर्थात वह मृत खाल भी सांस लेने लगती है किंतु भाव विहीन होती है।

१४३२) जो सिंधु (समुद्र) में गोता मारेगा वही मोती प्राप्त करेगा। उसे मोती कैसे मिल सकता है जो डूब जाने के डर से किनारे पर ही बैठा रहे। अर्थात प्रेम को पाना है तो बिना किसी डर के प्रेम मार्ग पर चल देना चाहिए। डरनेवाला तो प्रेम से वंचित ही रह जाएगा।

१४३३) भक्ति तो उस गेंद की भांति है जिससे मैदान में चौगान (पोलो की भांति का एक खेल) खेला जाता है। जिसको भी यह गेंद

अच्छी लगे वही इसे ले जा सकता है अर्थात जिसमें भी भक्ति करने का भाव है वही भक्ति कर सकता है। इसमें किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। चाहे रंक (गरीब) हो या धनी, कोई भी भक्ति को पा सकता है।

१४३४) कामी (वासनामयी), क्रोधी तथा लालची लोगों से भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति तो वही शूरवीर कर सकता है जो इन सबके मोह से मुक्त हो तथा जाति वर्ण व कुल आदि के बंधनों को त्याग दे। बंधनों और लालचों में पड़कर कभी भी भक्ति नहीं की जा सकती।

१४३५) वित्तीय संकट के चलते भी जो गुरु भक्ति में मग्न रहे वही सपूत है, सच्चा भक्त है। मायाधारी (दौलतवान) तो मसखरे होते हैं, वह भक्त नहीं हो सकते। ऐसे दौलत के घमंडी भक्त तो न जाने कितने ही आए और चले गए। भक्ति एक ऐसी चीज है जो दौलत से नहीं खरीदी जा सकती।

१४३६) भक्ति का मंदिर तो बहुत ही ऊंचा होता है, जो लोगों को दूर से ही दर्शन दे देता है अर्थात सच्चा भक्त तो अपने गुणों से ही पहचाना जाता है। जो भी भक्त भक्ति करता है उसकी शोभा का बखान (वर्णन) ही नहीं किया जा सकता।

१४३७) विषयों (सामाजिक, सांसारिक बंधन) का त्याग करने पर बैराग मिलता है। समता (जात-पात के भेदभाव से दूर, समानता) से ज्ञान की प्राप्ति होती है। सभी जीवों के सुख की कामना करनेवाला ही भक्त है और यही उसकी भक्ति का प्रमाण भी है।

१४३८) भिक्षावृत्ति सदियों से चली आ रही है और यह समाज की एक कुरीति है। भिक्षावृत्ति को ऐसे लोगों के लिए उचित माना जो अपंग हैं या परिस्थितियों के वशीभूत हैं, लेकिन जो स्वस्थ हैं और मात्र आलस्य के कारण ही भिक्षावृत्ति को अपनाते हैं उनको धिक्कार है।

१४३९) आज भी समाज में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है जो साधु वेश धारण कर दर-दर भिक्षा मांगते फिरते हैं। ऐसे लोगों का जीना मरने के समान है। मांगने से मांगनेवाले की मान-प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। जिन्होंने भिक्षा को व्यवसाय बनाकर रखा है। ऐसी स्थिति भी थी और आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है।

१४४०) अगर कोई किसी के पास मांगने जाता है तो वह निश्चित तौर पर उसकी मृत्यु के समान है और अगर कोई भीख मांगने की सोच रहा है तो भी वह मौत के बारे में ही सोच रहा है किंतु इन सबसे पहले तो उसे मरा हुआ समझना चाहिए जो सबकुछ होते हुए भी कुछ देने से मना कर देता है।

१४४१) आज ही तेरे सब कष्ट, समस्या, दुख दूर हो जाएंगे यदि तू अपने गुरु की सीख पर चलेगा। जब तक तू गृहस्थ जीवन जी रहा है तब तक भीख मत मांगना अर्थात गुरु सदैव यही शिक्षा देते हैं कि कभी भी मानव को भीख नहीं मांगनी चाहिए।

१४४२) उदर (पेट) भरने के लिए अन्न तो मांग ले, तन को ढंकने के लिए वस्त्र आदि भी मांग ले किंतु लोभ में आकर अधिक-से-अधिक संग्रह न करे। सच्चा फकीर वही है जो भिक्षा के नियमों का पालन करता है और लालच में नहीं पड़ता।

१४४३) बिन मांगे सहज ही पानी भी मिल जाए तो वह दूध के समान है किंतु मांगने पर यदि दूध भी मिले तो वह पानी है अर्थात बिना मांगे जो भी मिले वह अनमोल है और मांगने पर हीरा भी मिले तो पत्थर के समान है। वह तो रक्त के समान है जो जोर-जबरदस्ती से अथवा आनाकानी से मिले।

१४४४) आब (मर्यादा) गई, आदर भी गया तथा आंखों का स्नेह भी समाप्त हो गया। मनुष्य ने इन तीनों को ही खो दिया जब कहा कि कुछ दे। अर्थात भीख मांगने पर आदमी का सर्वस्व खो जाता है, उसे हीन दृष्टि से देखा जाता है।

१४४५) यदि बिना मांगे ही कुछ मिल जाए तो यह बहुत ही उत्तम बात है और यदि मांगने पर भी पूर्ति हेतु मिल जाए तो इसे भी मध्यम ही कहा जाएगा अर्थात यह भी साधारण बात है। घर-घर जाकर ढीठता से मांगना तो सबसे निकृष्ट कार्य है।

१४४६) आज के समय में साधु कम और असाधु अधिक दिखाई देते हैं। इन असाधुओं के कारण ही समाज दिग्भ्रमित हो रहा है और साधु या संत की परख न होने के कारण समाज के लोग ऐसे ही पाखंडियों के चंगुल में फंसकर अपना इहलोक-परलोक नष्ट करने पर तुले हैं।

१४४७) पद प्रतिष्ठा पाने पर भी जिसे गर्व, मद नहीं होता, उच्च स्थान पर पहुंच कर भी जिसे अहंकार नहीं है वही सच्चे अर्थों में मनुष्य है।

१४४८) मन में कपट हो और तन सुथरा हो तो यह कपटी बगुले वाला ही गुण है। उससे तो कौआ ही भला, जिसका तन और मन एक ही समान होता है। अर्थात बगुले के समान लोग बहुत ही दुष्ट होते हैं, जिनके मन में कुछ होता है तथा बाहर से कुछ और। ऐसे लोगों से सदैव सावधान रहना चाहिए। डाकू-लुटेरे (कौए के समान) तो सामने से आकर लूटते हैं किंतु बगुले समान लोग तो पीछे से वार करते हैं।

१४४९) जो लोग सिंह का वेश धरकर भी भेड़ जैसी चाल चलते हैं तथा सियार की बोली बोलते हैं उनको कुत्ता पहचान लेता है और मारकर खा जाता है। अर्थात जो लोग चतुर और चालाक बनते हैं और कथनी-करनी में अंतर रखते हैं, वह लोग कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर पाते।

१४५०) बगुले की चाल चलकर स्वयं को हंस कहलानेवालों को कभी भी मोती नहीं मिलते। वह तो सदा काल के चक्र में ही फंसे रहते हैं अर्थात छल-कपट करके भले ही उजले कपड़े पहन लें किंतु ज्ञान दर्शन उन्हें फिर भी नहीं मिलता। वह लोग सांसारिक चक्करों में ही फंसे रहते हैं।

१४५१) तन को तो सभी जोगी बना लेते हैं किंतु मन को जोगी कोई नहीं बनाता। सभी सिद्धियां सहज ही प्राप्त हो जाएंगी यदि हम मन को भी जोगी बना लें। अर्थात बाहरी आडंबरों से कुछ नहीं होता। सच्चे दिल से तपस्या की जाए तो सबकुछ मिल जाता है।

१४५२) जो मानव अपने गृहस्थ धर्म को पूर्ण रूप से निभाता है और विनम्र वाणी रखता है तथा संतजनों की संगत कर उनके श्रीवचनों को सुनकर उनका पालन करता है, उनकी सेवा करता है वही अपना जीवन सफल करता है।

१४५३) नहाने-धोने से क्या होता है- अगर मन के मैल ही न धुलें अर्थात विकारों को तो दूर किया ही नहीं। मछली सदा जल में ही रहती है किंतु उसे कितना भी धो लो उसके शरीर की दुर्गन्ध नहीं जाती अर्थात मात्र नहाने-धोने से मानव के अवगुण नहीं जाते।

१४५४) यह मन ही पवित्र मक्का-मदीना है और हृदय द्वारिका नगरी। इसी तरह यह काया (शरीर) काशी है। दस द्वारों वाला यह मानव शरीर ही वास्तविक मंदिर है। इस शरीर में ही प्रकाशरूप आत्मा का निवास है, वही ईश्वर है। ईश्वर को ढूंढने की आवश्यकता नहीं है। जो कुछ है वह यह शरीर ही है।

१४५५) मुसलमान मस्जिद में तथा हिन्दू मंदिरों में भागते फिर रहे हैं अपने-अपने भगवान को खोजने के लिए। किंतु जिसकी खोज में वह लोग व्यग्र हैं वह देव तो उनके अपने हृदय (घर) में ही है। उसे बाहर नहीं पाया जा सकता।

१४५६) जप-तप थोथरा (खोखले, अर्थहीन) दिखाई देते हैं तथा तीर्थ, व्रत आदि भी मात्र विश्वास है। जिस तरह तोता सेमल पर चोंच मारकर निराश ही होता है। क्योंकि सेमल उसके लिए लाभकारी नहीं है। इस वृक्ष के फल में रूई ही निकलती है। उसी प्रकार यह जग इन सब आडंबरों में पड़कर निराश ही होता है।

१४५७) लोग भले ही तीर्थ स्थानों पर अपना घर बनाकर रहने लगें और वहां का निर्मल जल पीते रहें। किंतु हृदय में बसे सत्य नाम का सुमिरन नहीं किया तो इस संसार में मुक्ति संभव नहीं है।

१४५८) तीर्थ, व्रत करके तथा नदियों में स्नान करके इस जग के लोग ऐसे ही मर रहे हैं। राम नाम (सत्य नाम) के बिना ऐसे लोगों को काल युगों से खाता आ रहा है। इस जग के झूठे आडंबरों में न पड़कर हृदय में बसे सच्चे राम का नाम ही जपो।

१४५९) गुरु के निर्मल नाम को जपनेवाला ही निर्मल (पवित्र) साधु होता है। कोयला कभी भी उजला नहीं हो सकता, भले ही उस पर सौ मन साबुन लगा लो। अर्थात कोयले की भांति जिद्दी लोग कभी भी नहीं सुधर सकते। उन पर ज्ञान, ध्यान, विचार आदि बातों (उपदेशों) का कोई असर नहीं होता।

१४६०) बिना अकल के यह मनुष्य नासमझ और गंवार है। जिस तरह बंदर मदारी के अधीन होकर उसके संकेतों पर नाचता फिरता है, उसी तरह अपने मन के अधीन होकर लोभ-अहंकार में डूबा हुआ जीव अपना ही नाच नाचता रहता है अर्थात वह सबकुछ स्वयं को ही समझता है।

१४६१) अकल (बुद्धि) के बिना तो मनुष्य आंख होते हुए भी अंधा ही है। जिस तरह मोटी बुद्धि का हाथी इतना महाबली होते हुए भी फंदे में फंस जाता है, उसी तरह जग के जीव भी मोह-माया-लालसा के बंधनों में बंधे हुए हैं।

१४६२) दुविधा (संशय) जिसके मन में बसती है और जिसका हृदय दयावन्त (दया भाव) नहीं है अर्थात जो अभिमानी और क्रोधी स्वभाव का है, ऐसे व्यक्ति का तुरंत ही त्याग कर दो। भूल से भी उसे अपना हाथ मत पकड़ाओ (मित्रता मत करो)। ऐसे लोगों का साथ कष्टदायक ही होता है।

१४६३) पूरा वन ही तुलसी के समान हो जाएगा, सम्पूर्ण पर्वत भी सालिग्राम बन जाएगा और सभी नदियां गंगा के समान पवित्र हो जाएंगी, जब अपने सत्य ज्ञानरूपी आत्माराम (आत्मस्वरूप) को पहचान जाओगे। अर्थात आत्मदर्शन (आत्मज्ञान) से मनुष्य सभी

आडंबरों और अंधविश्वासों को भूल जाता है।

१४६४) बिना अक्ल के तो सिंह जैसा जानवर भी व्यर्थ ही है तभी तो वह एक छोटे-से जीव खरगोश के साथ चल दिया और जब खरगोश ने उसे कुएं में देखने को कहा तो उसमें अपने ही प्रतिबिंब को देखकर अपना तन भंग (नष्ट) कर लिया। अर्थात अहंकारी लोगों की बुद्धि पर भ्रम का परदा पड़ जाता है और वह लोग नाहक ही मारे जाते हैं।

१४६५) पांच तत्त्वों (पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि व आकाश) तथा रज और वीर्य से निर्मित यह मानव नामक पुतला एक ही जगह (गर्भ) से जन्म लेता है और यहा आकर इसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र आदि नाम दे दिया जाता है। वास्तव में तो हम सब एक ही हैं।

१४६६) पंख होते हुए भी पक्षी पराधीनता के बंधन में बंध जाता है क्योंकि वह बुद्धिविहीन होता है। इसी तरह मनुष्य भी बुद्धिविहीन है। क्योंकि वह भी मोह-माया के बंधनों में बंधा हुआ है। बुद्धि पर लालच और अहंकाररूपी धूल जमा होने के कारण वह इससे मुक्त होने की कोशिश भी नहीं करता है।

१४६७) आत्मज्ञान से अनभिज्ञ मानव यदि नित्य स्नान करे तो कोई लाभ नहीं है। वह हर समय लोक लाज को साथ लिए रहता है और सिर पर ढेर सारे भ्रमों का बोझ है। अर्थात सांसारिक बंधनों में बंधकर और नियम से स्नान आदि करने से कुछ नहीं होता। यदि आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं किया।

१४६८) इस संसार में आकर मानव ने बहुत कुछ (धर्म ग्रन्थ आदि) पढ़ा, सीखा और सुना। किंतु फिर भी मन से संशय का कांटा निकल नहीं पाया। मन की उलझनें मन में ही रह गईं। यही सब तो दुखों के मूल कारण हैं।

१४६९) मद के वशीभूत होकर जीव अपने से निर्बल को आक्रात करता है, उसकी दृष्टि में अन्य लोग हीन होते हैं। मदभाव से ग्रस्त जीव की आकांक्षाएं उच्च होती हैं। अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वह अपने ही संगे-संबंधियों के हितों पर कुठाराघात करने से भी नहीं चूकता। कैसे भी बन पड़े, अपने ही जीवन को सुखमय बनाने की प्रयत्न करते रहता है। इतना होने पर भी वह जीवन में शांति का अनुभव नहीं कर पाता।

१४७०) जहां पर आपा (अहंकार) होता है वहां पर आपदाएं और विपत्तियां भी होती हैं और जहां पर संशय होता है वहां पर शोक आ घेरता है। यह रोग कैसे मिटेगा ? यह चारों रोग (अहंकार, विपत्ति, संशय, शोक) मानव को गहरे पाताल में धकेल देते हैं। अत: इनसे जल्द-से-जल्द मुक्त होने की युक्ति सोचो।

१४७१) हृदय में तो अहंकार की अग्नि जल रही है और वह अहंकारी गुरु से भी मान (सम्मान) की आशा रखता है। ऐसा व्यक्ति तो समझो यम को अतिथि बनाकर मृत्यु को न्योता दे रहा है। अर्थात स्वयं अपने लिए ही विपत्ति को आमंत्रित कर रहा है।

१४७२) दीपक को बुझानेवाली पवन है और नर को पतन के मार्ग पर ले जानेवाली नारी है। किंतु ज्ञानी मनुष्य बचा रहता है परंतु यदि वह भी अहंकार में डूब जाए तो उसका सारा ज्ञान व्यर्थ चला जाता है।

१४७३) मनुष्य को कभी भी घमंड नहीं करना चाहिए। जिसको भी घमंड का मद चढ़ता है, वह भवरूपी भ्रमर में ही भटकता रहता है। ऐसे मनुष्य को मुक्ति मिलना असंभव ही है।

१४७४) अपने ऊपर कभी भी गर्व (अहंकार) मत करो और रंक (गरीब, दुखी) पर कभी भी हंसो मत। अभी तो तुम्हारी नाव बीच समुद्र में है और समय का कोई भरोसा नहीं। न जाने कब क्या हो जाए ? एक तूफान मात्र तुम्हारी नाव को डुबो सकता है।

१४७५) यह मन तो एक ही है। इसे कहीं भी लगा दो यह वहीं रम जाएगा। भले ही मन को गुरु की सेवा भक्ति में लगाओ या फिर इसे सांसारिक भोग-विलासरूपी विषयों में लगाओ अर्थात यह मन तो निर्मल है। यह आप पर निर्भर है कि आप इसे सत्कर्म में लगाते हैं या दुष्कर्म में।

१४७६) मन के वशीभूत होकर मत चलो। मन के तो अनेक विचार (मत) होते हैं। इससे तो मानव भ्रमित ही होता है। जो मन को अपने वश में करके उसे अपने अनुसार चलाए वही सच्चा साधु होता है और ऐसा सच्चा साधु दुर्लभ ही है।

१४७७) अपने जन्म और मरण पर विचार करो। जो कुछ मिला है उसे भोगना ही है। अत: अपने सभी बुरे कर्मों को त्याग दो। जिस मार्ग पर तुम्हें चलना है, उसी मार्ग को संवार लो अर्थात अधिक भ्रम में मत पड़ो और ज्ञान, साधना, भक्ति के कल्याणकारी मार्ग पर

चलकर अपने जीवन को सफल करो।

१४७८) अपनी पकी हुई फसल को देखकर किसान बहुत ही खुश होता है और उस पर गर्व करता है। किंतु उसका इस तरह खुश होना व्यर्थ है। अभी तो बहुत-सी परेशानियों (समस्याओं) को पार करना है। जब तक फसल पूर्णरूप से कटकर घर न पहुंच जाए तब तक तो किसी का कोई भरोसा नहीं। न जाने काल किस रूप में आ जाए।

१४७९) जंगल में तो राख के ढेर-ही-ढेर पड़े हैं (मृतकों को जलाने के बाद की राख)। हरियाली तो केवल ऊपर-ही-ऊपर है। मृत्यु की सचाई को जानकर भी यह मानव कुछ सोचता नहीं और अपनी रंगरलियों में ही मस्त रहता है। यह राख के ढेर भी कभी मानव थे, इन्हें देखकर भी मानव कुछ नहीं सीखता।

१४८०) जो भी इस संसार में जन्म लेता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। उसे यहां से जाना ही है। चाहे वह राजा हो, रंक हो या फकीर (संत)। किंतु कोई तो सिंहासन पर चढ़कर जाता है और कोई पैरों में बेड़ियां बांधकर अर्थात मृत्यु पश्चात उन्हें उनके कर्मों के अनुसार स्वर्ग अथवा नरक की प्राप्ति होती है।

१४८१) एक दिन ऐसा आएगा कि जब कोई किसी का नहीं होगा अर्थात एक दिन जब काल (मृत्यु) आ जाएगा तब कोई तुम्हारा नहीं रहेगा। सारे रिश्ते-नाते खत्म हो जाएंगे। नारी (पत्नी) की क्या बात करते हो, नारी (नाड़ी) भी तुम्हारी नहीं रहेगी। वह भी साथ छोड़ देगी।

१४८२) जो इस संसार से चले गए (मृत्यु हो गई) वो फिर नहीं मिलते। कोई भी यहां स्थायी रूप से नहीं आता, उसने तो जाना ही है। ऐसे में किसी से क्या बात की जाए ? माता-पिता, पुत्र-बंधु आदि सब रिश्ते यहां पर कुछ ही समय के लिए हैं जो झूठे, काल्पनिक हैं।

१४८३) पद्मिनी (गुण ज्ञानवाली स्त्री) सदा परदे में रहती है और अपने कुल की मर्यादा को बनाए रखती है। किंतु जब अपने नियत समय पर काल (मृत्यु) आया तो वह सभी परदे और मान-मर्यादाओं को छोड़कर मैदान में आ गई (मृत्युशय्या पर मैदान में सार्वजनिक रूप में पड़ी हुई है)।

१४८४) राजपाट, धन-दौलत, सुख-वैभव को पाकर तू इसका गर्व क्यों करता है ? पड़ोसी की जो दशा हुई है, वही दशा तेरी भी होनी है अर्थात तू राजा है तो क्या हुआ ? तेरे पड़ोसी (प्रजा) की भी मृत्यु होनी और तेरी भी। तेरा राजपाट, धन-दौलत सब तो यहीं रह जाना है।

१४८५) ओ मूर्ख मानव। तू चोरी तो अहिरन की करता है और दान में बस एक सूई देता है। अर्थात इस मानव को माया के लोभ में कुछ भी समझ में नहीं आता। वह तो बस ऊंचाई पर चढ़-चढ़कर यही देखता रहता है कि विमान कितना दूर है। अर्थात छोटा-मोटा दान करके वह स्वर्ग के सपने देखने लग जाता है।

१४८६) लोगों जागो। सोओ मत, नींद से इतना प्यार मत करो। यह संसार ऐसा ही है, जैसे रात में देखा गया सपना। सपने का वास्तविकता से संबंध नहीं होता। अत: इस अनमोल जीवन को यूं ही नष्ट मत करो। समय का सदुपयोग करो। अवसर निकल गया तो कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

१४८७) जो परोपकार से हीन है और ज्ञान-ध्यान की बढ़-चढ़कर बातें करता है वह तो नरक भोगने योग्य ही है। चाहे वह नित्य अमृतमयी वाणी का ही श्रवण क्यों न करता हो।

१४८८) धर्म का मूल (जड़) दया है और पाप का मूल केवल संताप (दुख) ही है। जहां क्षमा है, वहां धर्म है और जहां दया है, वहां तो स्वयं परमात्मा ही उपस्थित हैं। अर्थात दया-धर्म ही सबसे बढ़कर हैं और मनुष्यों में दया भाव जरूर होना चाहिए।

१४८९) जहां दया है, धर्म भी वहीं पर है और जहां लोभ-लालच है, वहां पर पाप का वास है। जहां क्रोध है, वहीं काल भी प्रकट हो जाता है। किंतु जहां क्षमा है वहां पर तो स्वयं परमेश्वर विराजमान रहते हैं।

१४९०) वही पीर (महान) है जो दूसरों की पीर (पीड़ा) को समझता हो। किंतु जो दूसरों की पीड़ा को समझने में असमर्थ है, वह तो काफिर है, बे-पीर है। अर्थात व महान नहीं हो सकता।

१४९१) भोजन करते समय यदि हाथी के मुख से अन्न के कुछ कण गिर जाएं तो उसका आहार घट नहीं जाता, किंतु उन्हीं कणों को यदि चींटी ले जाए तो उसके पूरे परिवार का पालन-पोषण हो जाता है। अर्थात किसी छोटे के प्रति दया भाव रखने से हमारा कुछ भी घटता नहीं है।

१४९२) जो दाता थे, दानी थे वह तो सब चले गए, अब तो केवल मक्खीचूस ही रह गए हैं। ये लोग दान की मर्यादा को नहीं समझते और न ही किसी के लिए इनके हृदय में मान-सम्मान होता है। यह लोग तो सिर्फ बात-बात पर लड़ने में ही विश्वास रखते हैं।

१४९३) शीश झुकाने से शीश झुकानेवाले का ही भला होता है, किसी अन्य का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जैसे तराजू के एक पलड़ें में कोई वस्तु रखकर तौली जाए तो वह पलड़ा झुक जाता है। वही स्थिति शीश झुकानेवाले या नम्र स्वभावी की होती है।

१४९४) जिसमें दीनता (नम्रता), गरीबी, बंदगी (सेवा भावना) तथा सबके प्रति मान-सम्मान का भाव होता है तथा जिसका स्वभाव शील होता है। अर्थात जो सर्वगुण सम्पन्न होता है वही सबसे महान होता है।

१४९५) जो न तो स्वयं ही दीन है और न ही उसमें दीनता जैसा कोई भाव है तथा संतजन भी जिसके यहां अतिथि बनकर नहीं आते और जो साधु-संतों की सेवा भी नहीं करता उसके घर में तो सदा यम का ही वास रहता है। वह स्वयं जीते हुए भी मृत के समान है। उसका घर भी श्मशान तुल्य ही है।

१४९६) रेत में मिसरी (चीनी) बिखर जाए तो उसे हाथी नहीं चुन सकता किंतु चींटी उसे चुन लेती है। अर्थात बड़े होने का अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकार से कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जबकि छोटा तो अपने नम्र स्वभाव के कारण साहिब (परमेश्वर) को भी पा लेता है।

१४९७) कठोर हृदय लोगों पर शब्दों का असर नहीं होता। अर्थात कठोर अभिमानी लोगों को ज्ञान की बातें समझ नहीं आती। जिन्हें सुध-बुध होती है, जिनका हृदय निर्मल होता है, वही ज्ञान को अर्जित करने में समर्थ होते हैं।

१४९८) चौंसठ कलाओं का ज्ञानी और चौदह विद्याओं का ज्ञाता भी अंधेरे घर में ही रहता है, यदि सत्गुरु उसके घर अपने श्रीचरण नहीं रखते। अर्थात सद्गुरु के बिना विद्वान भी अज्ञान के अंधेरे में भटकता रहेगा।

१४९९) गुरु की भक्ति न करने पर राजा भी अगले जन्म में गधा बनकर पैदा होगा। जो कुम्हार की मिट्टी लादता फिरेगा। पर उसे पेट भरने के लिए घास भी नहीं मिलेगी।

१५००) पर्वत, घाटी, मैदान सभी जगह वर्षा तो समान होती है किंतु वर्षा का जल सभी जगह एकत्र नहीं होता। वह तो मात्र तालाबों या गहरे स्थानों पर ही रुकता है। अर्थात गुरु का ज्ञान भी सभी के लिए समान होता है किंतु जिज्ञासु शिष्य ही उस ज्ञान को एकत्र कर पाता है।

१५०१) समुद्र की लहरें मोतियों को तट पर लाकर बिखेर देती हैं। बगुले तो मोती की परख कर नहीं सकते किंतु हंस उन मोतियों को चुन-चुनकर खाता है। अर्थात ज्ञान के मोती उसे ही मिलते हैं, जो गुरु से शिक्षा ग्रहण कर हंस समान समझदार बन गया हो।

१५०२) साकट (निगुरा), सूकर (सूअर) और कुकुर (कुत्ता) तीनों एक ही गति के हैं। अर्थात इनकी आदतें समान होती हैं। इन्हें कई-कई बार प्रयत्न करके ज्ञान और शिक्षा के मार्ग पर चलाना चाहें तब भी यह अपनी आदतें नहीं छोड़ते।

१५०३) स्वार्थ तो सूखी लकड़ी के समान है जो छांव देने योग्य भी नहीं होती। उससे तो शूल की चुभन का ही अनुभव होता है। किंतु पीपल का वृक्ष तो परमार्थी होता है- वह छांव भी देता है तथा उसे सुखी जीवन का आधार भी माना गया है। अर्थात पीपल के समान परमार्थी बनोगे तभी जग में सदा भरपूर मान-सम्मान मिलेगा।

१५०४) जब अंत समय आ जाएगा तब न तो हमारे पास धन होगा, न युवावस्था होगी, न ही गांव रहेगा और न ही अपना ठांव (रहने की जगह)। मृत्यु के बाद तो केवल यश, मान-सम्मान ही साथ रहता है। अत: सदैव अच्छे-कर्म करें, जिससे यश सदा बना रहे।

१५०५) यह प्रेम भक्त का भगवान के प्रति, शिष्य का गुरु के प्रति, प्रेमिका का प्रेमी के प्रति भी हो सकता है। मूल आवश्यकता है समर्पण भाव की। यदि समर्पण भाव नहीं है तो प्रेम की सफलता संदिग्ध ही होती है। ऐसे में प्रेमी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर पाता।

१५०६) इस जग में मिलनेवाले सभी रसायनों का स्वाद चखकर देख लिया। किंतु प्रेम रस ही ऐसा रसायन जो सबसे उत्तम है। प्रेम रस के समान तो कोई भी रस नहीं है। यह तन में रंचमात्र (थोड़ा-सा) भी चला जाए तो तन-मन कंचन (पवित्र) हो जाता है। सुखी और खुशहाल जीवन के लिए प्रेम रस ही एकमात्र उपाय है।

१५०७) प्रीति (प्रेम) उसी से करनी चाहिए जो अपने समान ही प्रेमी हो तथा प्रेम के महत्व को समझता हो। यदि किसी में कोई अवगुण भी दिखाई दे तो उसे अपने गुणों तथा प्रेम से अपने में समा ले ताकि उसके भी अवगुण दूर हो जाएं।

१५०८) प्रेम न तो खेतों में पैदा होता है और न ही यह बाजार में दुकानों पर मिलता है। इसे पाने के लिए तो समर्पण भाव की नितांत

आवश्यकता होती है। राजा हो या प्रजा- जो भी समर्पण भाव से परिपूर्ण होगा प्रेम की प्राप्ति भी उसे ही होगी।

१५०९) मन के वश में आकर व इससे दुखी होकर बैरागी बनकर वन (जंगल) में चले गए। किंतु वहां भी यही हाल रहा। मन को वहां संयम में न कर सके और वन को त्यागकर पुन: अपनी बस्ती में आ गए। अब क्या करें, यह मन बहुत ही चंचल प्रवृत्ति का है, कहीं ठहरता ही नहीं।

१५१०) यह मन कभी भी एकसमान नहीं रहता। कभी यह मन मोटा (अहंकारी) हो जाता है तो कहीं पतला (बहुत ही सीधा) हो जाता है। कभी यह पानी की तरह निर्मल हो जाता है तो कभी आग में जलता हुआ अंगारा बन जाता है। इस मन में जैसी भावना उत्पन्न होती है यह वैसा ही बन जाता है।

१५११) मन तो पक्षी की भांति है जो ऊंचे आकाश में उड़ता फिरता है। किंतु तुरंत ही ऊपर से नीचे गिर पड़ता है। वह जैसे ही मोह-माया लालचरूपी चीजों को देखता है तो उनकी ओर आकर्षित हो जाता है। उसे ध्यान और साधना से ही रोका जा सकता है।

१५१२) अरे मन। तू अपने सभी मनोरथों (उच्च आकांक्षाओं) को छोड़ दे। तेरे यह स्वार्थ कभी भी पूरे न होंगे। यदि पानी के मंथन से ही घी उत्पन्न हो जाए तो फिर कोई रूखा-सूखा भोजन किसलिए करेगा ? अर्थात केवल मन के सोचने से कुछ नहीं होता। कुछ पाने के लिए श्रम भी करना पड़ता है।

१५१३) यह मन बहुत ही नीच है और इसे नीच कर्म (मोह-माया, वासना) ही सुहाते हैं। किंतु जब मान-सम्मान करके इसे अमृतरूपी ज्ञान से भर दिया जाता है तब यह मन विषय विकारों को छोड़ देता है। अर्थात मन को ज्ञानरूपी अमृत से ही पवित्र किया जा सकता है अन्यथा यह विकारों से ही ग्रस्त रहेगा।

१५१४) जितनी समुद्र में लहरें उठती हैं उतनी ही मन में लालसाएं जन्म लेती हैं। इन सबको पाने के लिए यह मन दौड़ता रहता है। यह मन अगर सहज और शांत हो जाए तो ज्ञानरूपी हीरे की प्राप्ति होगी अर्थात यह मन अज्ञानता की दशा में ही भटकता है। यदि ज्ञानरूपी अनमोल खजाने को मन में बसा लिया जाए तो यह मन शांत और स्थिर हो जाता है।

१५१५) धरती फट जाए तो मेघ वर्षा करके उसे जोड़ (ठीक) कर देते हैं और कपड़ा फट जाए तो धागे से सिला जा सकता है। इसी तरह तन भी यदि फट जाए अर्थात चोट लग जाए तो औषधि से ठीक किया जा सकता है। किंतु यदि मन फट जाए तो उसे ठीक करने का इस जग में कोई उपाय नहीं है। ऐसे मानव को कहीं भी ठौर (ठिकाना) नहीं मिलेगा।

१५१६) अपने-अपने चोर को तो सब मार डालते हैं और जब मुझे मेरा चोर मिल जाएगा तो मैं उसके आगे सब कुछ डाल दूंगा अर्थात जो भी चोर को पकड़ता है उसे मारता है किंतु अपने मन के चोर को कोई नहीं देखता। मुझे यदि मन का चोर मिल जाए तो मैं उसे सबकुछ अर्पण कर दूंगा।

१५१७) मेरे मन में एक ऐसी दरार पड़ गई है (संशय की दरार) जो अब मिटाने से नहीं मिटेगी। बिल्कुल ऐसे ही जैसे किसी पाषाण (चट्टान) में दरार पड़ जाए तो उसे किसी भी तरह से जोड़ा नहीं जा सकता। अत: मन में संशय की दरार को पड़ने ही न दो।

१५१८) यह मन तो बिन पंख के पक्षी के समान है और फिर भी यह जहां-तहां उड़ता फिरता है। यह मनरूपी पक्षी जिससे चाहे मिल लेता है और अगले ही पल अपने घर (हृदय, तन) में समा जाता है।

१५१९) माया (धन-दौलत) व गणिका (वेश्या) की प्रकृति समान होती है। यह दोनों ही आगत का भरपूर स्वागत करते हैं। लेकिन जानेवाले के प्रति रूखा व्यवहार करते हैं।

१५२०) यह माया तो मोहिनी है जिसने सारे संसार को मोह रखा है। ज्ञानी, अज्ञानी, सुजान (सज्जन) सभी इसके मोहजाल में फंसे हुए हैं। लोभ के बाणों को यह अपने धनुष से ऐसे खींच-खींचकर मारती है कि कोई भागने से भी इससे बच नहीं पाता है।

१५२१) यह माया कभी किसी के साथ नहीं रहती और जाते-जाते यही कहती है कि जिन सुखी लोगों के घर संतजन आते हैं और जो उन संतों का मान-सम्मान करते हैं, वह सम्मान तो वास्तव में मेरे (माया) कारण ही होता है और इसी वजह से वह लोग पुण्य के भागी भी बनते हैं। किंतु सूम (कंजूस) तो मुझे (माया) दबाकर ही रखता है और अंत में चोर ही मुझ माया का हरण कर लेते हैं।

१५२२) यह माया तो मोहिनी है जो सभी लोगों के ऊपर घने अंधकार के रूप में छाई हुई है। जो लोग इस मोह को रात्रि समझकर सो

गए, वह तो सोते ही रह गए। उन पर तो माया के विकारों का आधिपत्य हो गया और अब वह लोग जीवनभर सत्य ज्ञान से वंचित ही रह जाएंगे।

१५२३) इस भवसागर (सांसारिक जीवन) में माया तो हड्डियों के ढेर के समान है और मूर्ख मनुष्य (अज्ञानी) सियार की तरह है, जो जीवनभर उन हड्डियों को खींचते, उठाते हुए ही मर जाते हैं और उन्हें कुछ भी नहीं मिलता अर्थात इस माया का लोभ जीव को कहीं का नहीं छोड़ता।

१५२४) यह माया तो वृक्ष के समान है जिस पर दो फल (स्वर्ग और नरक) लगे हुए हैं। जो कोई भी इन्हें तोड़कर खाता है और दूसरों को भी खिलाता है उसके लिए यह स्वर्ग है किंतु जो इसे तोड़कर जमा करता है, इससे मोह करता है उसे नरक ही मिलता है।

१५२५) इस संसार में माया का मोह झूठा है। यह माया जिस घर में जितनी अधिक है उस घर में उतना ही अधिक द्वेष, बैर तथा दु:ख है अर्थात यह माया कभी किसी की नहीं होती। जो भी इसका संग्रह करके रखता है उसके घर में इसी माया के कारण कलह भी उत्पन्न होता है।

१५२६) इस माया से बचकर रहो, इसे अपने पास मत आने दो और न ही इससे मिलो। भले ही यह स्वर्णरूप धारण करके आ जाए। नारद जैसे मुनिवर भी माया के चक्कर में पड़ कर भ्रमित हो गए, तब आपका क्या भरोसा अर्थात इस माय के लोभ से तो कोई विरला ही बच पाता है।

१५२७) माया के दो रूप हैं, जो कोई इस बात को समझता है वही इसका उपयोग कर पाता है। एक माया राम (सत्य ज्ञान) से मिलाती है और दूसरी माया नरक ले जाती है। अर्थात इस माया से दान-पुण्य जैसे सत्कर्म करने से जीवन का कल्याण होता है किंतु इसका संग्रह करने ये यह मानव को नरक के द्वार पर लाकर खड़ा कर देती है।

१५२८) न तो यह माया मरती है और न ही यह मन मरता है। बस, बार-बार यह शरीर ही मरता है और इसकी सभी आशाएं यहीं रह जाती हैं अर्थात यह शरीर बार-बार जन्म लेता है, मरता है किंतु मनुष्य मन से मोह-माया को नहीं भूला पाता।

१५२९) क्या आप ईश्वर-दर्शन की इच्छा करते हैं ? तो समझ लीजिए कि यह सारी सृष्टि उसका दर्पण है। यदि आप को स्वर्ग की इच्छा हो तो आप रूप का उत्थान कीजिए। यह मत समझिए कि प्रकाश-अंधकार, सत्-असत् तथा जड़ चेतन सब एक-दूसरे से भिन्न हैं। इस लोक से अमर लोक तक सब एक गति-कम या ईश्वर से व्याप्त है।

१५३०) लोग हजारों बरसों के लिए माया (धन) का संचय करने की जुगत में ही लगे रहते हैं। जबकि शाश्वत सत्य अर्थात मृत्यु को भूल जाते हैं। मृत्यु को एक दिन आना ही है, तब माया का साथ भी अवश्य ही छूट जाना है।

१५३१) यह माया तो उस वृक्ष के समान है जिसकी तीन शाखाएं (शोक, दुख और संताप) हैं। मायारूपी इस वृक्ष के नीचे सोने पर शीतलता स्वप्न की बात है तथा इसका फल फीका (स्वादहीन) व तन गरम होता है अर्थात माया का मोह करना सदैव कष्टदायक ही होता है।

१५३२) यह माया तो सभी के मन को मोह लेती है। वह चाहे सुर (देवता) हो या नर (मानव)। सभी इसके जाल में फंस ही जाते हैं। यह माया सभी को मारकर खा भी जाती है किंतु इस माया को मारकर खा जाए, ऐसा कोई नहीं है। अर्थात माया का पार पाना बहुत ही कठिन है।

१५३३) इस माया के मोटे रूप (धन-दौलत-रिश्ते-नाते, सम्पत्ति आदि) को तो लोग अपने-अपने स्वार्थवश त्याग भी देते हैं किंतु इसके झीने (पतले, सूक्ष्म) रूप (मान सम्मान, गौरव आदि) को लोग नहीं त्याग पाते। पीर, पैगम्बर, औलिया आदि भी मोटी माया को त्याग देते हैं किंतु सूक्ष्म माया से तो यह लोग भी नहीं बच पाए हैं, इन्हें भी उस सूक्ष्म माया ने खा लिया है।

१५३४) मीठा तो हर कोई खाता है किंतु इसके विषरूपी भयंकर परिणाम कोई नहीं समझता, जो कई बीमारियों के रूप में सामने आता है। इसके विपरीत नीम को कोई ग्रहण नहीं करता जो सभी रोगों को मिटाने में सहायक होता है अर्थात मायारूपी मिठाई कष्ट और दुख ही देती है किंतु साधनारूपी नीम कड़वा होते हुए भी कल्याणकारी है।

१५३५) संतजनों का धन सत्कर्मों में ही व्यय होता है और वही धन बढ़ता भी है। किंतु विमुख (निगुरा) का धन तो व्यर्थ ही जाता है। वह धन या तो भूमि के नीचे ही गड़ा रह जाता है या फिर उसे कोई दूसरा ही (चोर-डाकू आदि) खाता है।

१५३६) मानव का कंकाल मैदान में पड़ा हुआ है और लाखों-करोड़ों कुत्ते उसे हड़पने के लिए उस कंकाल के पास जमा हो गए हैं।

सभी उस पर अपना दावा जताने के लिए आपस में लड़-मर रहे हैं किंतु अंत में सबकुछ यूं ही छोड़-छाड़कर चले गए अर्थात जिस माया के लिए मानव आपस में लड़ता है वह तो यहीं रह जाती है और मानव इस जग को छोड़कर चले जाते हैं।

१५३७) चेला गुरु को विष देकर मार देता है यदि गुरु के पास धन-दौलत होती है। इसी तरह पुत्र अपने पिता को भी माया के लालच में मार देता है। अर्थात माया के आगे मानव रिश्ते-नाते भी भूल जाता है और इसे पाने के लिए कुछ भी कर बैठता है। परंतु इसके बाद भी यह माया उसे नहीं मिलती।

१५३८) मद का ही प्रतिरूप है मान और यह लगभग सभी में व्याप्त रहता है। किसी में अधिक तो किसी में कुछ कम। किसी को धन का, किसी को बुद्धिकौशल का, तो किसी को अधिपति होने का अभिमान होता है। अभिमान (मान) से कोई भी बचा नहीं रहता।

१५३९) अभिमानी जीव की तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती। तृष्णा का जैसा रूप होता है, उसी के अनुसार अभिमानता का स्वरूप भी बदल जाता है। अभिमानी सदैव स्वार्थी होता है। उसकी मित्रमंडली भी चापलूस प्रवृत्ति की होती है। अभिमानी जीव को उस वृक्ष की संज्ञा दी गई है जो न तो किसी को छाया ही दे पाता है और न ही फल। अभिमानी जीव स्वयं की बड़ाई का सदैव भूखा रहता है। अपनी बड़ाई की भूख मिटाने के लिए ही वह अपने अनुकूल मित्रों की टोली जुटाकर बड़ा प्रसन्न रहता है।

१५४०) मान-बड़ाई तो इस जग में कुत्ते से पहचानो, यह उसके स्वभाव में झलकता है। यदि उसे प्यार करो तो वह मुंह चाटता है, आगे-पीछे दौड़ता है किंतु यदि उसे प्रताडित किया जाए तो काटने को दौड़ता है अर्थात अहंकारी मनुष्य कुत्ते की भांति होता है, उसे मान-सम्मान दो तो वह मित्र बन जाता है अन्यथा वह बैरी हो जाता है।

१५४१) मान-अभिमान तो मन से त्याग दिया किंतु उसका क्या लाभ ? मन तो अभी भी लोभ-माया के पीछे भाग रहा हैं जो व्यक्ति संतों के वचनों को नहीं मानते उसे हरि के दर्शन कभी भी नहीं होते अर्थात वह आत्मज्ञान से वंचित ही रहता है।

१५४२) मान-बड़ाई (व्यर्थ का मान, अभिमान) तो कुतिया के समान है जो अपने कुकर्मों के कारण धर्मराज (यम) के दरबार में खड़ी है। उसने दीन-धर्म को तो त्याग रखा है और सारे संसार को फाड़कर खा लिया है अर्थात अहंकार में चूर लोग नम्रता खो देते हैं और लोगों को कष्ट पहुंचाते हैं।

१५४३) मान-बड़ाई रूपी कुतिया को संतजन ही पहचानते हैं, तभी तो वह उसे अपने दर पर आने से पहले ही खदेड़ देते हैं। पांडव भी मान-बड़ाई से दूर थे तभी उनके संसार को पावन माना गया है। इसीलिए उनकी यज्ञभूमि पर कई-कई भक्त आ जुटे थे। जब मान-सम्मान मिलता है तो मन हर्षित हो जाता है किंतु अगर अपमान मिलता है तो मन में दुख उत्पन्न होता है। मान-अपमान से अगर सुख-दुख मिलता है तो हमारा मन मोह-माया में लीन है। हमें तो मोह-माया से मुक्त होकर मान-अपमानरहित जीवन जीना चाहिए। मान-अभिमान का मुंह काला कर दो और आदर-सम्मान को आग लगा दो। इस मान और बड़ाई को छोड़कर केवल भक्ति साधना में ही ध्यान दो। मान-बड़ाई तो जीवन में कष्टों को ही आमंत्रित करती है।

१५४४) कंचन (स्वर्ण) को त्यागना भी बहुत ही सहज है। स्त्री के मोह को भी त्यागना सरल है किंतु इस जग में अज्ञानी और मूर्ख लोग भी हैं, जिनसे मान-बड़ाई, ईर्ष्या का त्याग नहीं हो पाता। इन्हें त्यागना कठिन है।

१५४५) बड़ा होने का अभिमान मत करो। ऐसा बड़ा होने का क्या लाभ ? जैसे खजूर का लम्बा वृक्ष हो। यह न तो पंथी (राहगीर) को छाया प्रदान करता है और न ही इसका फल आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि वह बहुत ऊंचाई पर फलता है। अत: बड़े होने का अहंकार मन से निकाल दो।

१५४६) ऊंट की बहुत ही बड़ाई की जाती है, फिर भी वह सारे जग का बोझ अपनी पीठ पर लादता फिरता है। उसके मुंह पर सलिता कसकर परास (ऊंट मालिक) भी उसके ऊपर चढ़ जाता है। अर्थात ऊंट की तरह ऊंची गरदन करके नहीं चलना चाहिए अन्यथा एक दिन अवश्य ही मान-अभिमान सब नष्ट हो जाएगा।

१५४७) जितनी बड़ी मान-बड़ाई है विपत्तियां भी उतनी ही बड़ी आती हैं। किंतु छोटा अपने कर्मों के कारण विपत्तियों से बचा रहता है। आकाश में कई तारे हैं जो कि न्यारे लगते हैं लेकिन चंद्रमा और सूर्य बडे होते हुए भी बच नहीं पाते, उन्हें ग्रहण लग ही जाता है।

१५४८) ऊंची जगह पर पानी कभी नहीं टिकता, वह तो नीचे ही जाकर ठहरता (रुकता) है। जो झुकेगा वही उस पानी को पीकर

अपनी प्यास बुझा सकता है। बिना झुके पानी स्वयं मुंह में नहीं जाएगा। ऐसा अहंकारी तो प्यासा ही रह जाएगा। अत: जल की तरह नम्र बनो अर्थात अहंकार को मन से निकाल दो।

१५४९) जो लोग लोभ, अहंकार के वश में होकर हाथी पर घूमते हैं और दासों से चंवर फिरवाते हैं (पंखा करवाते हैं) उन्हें देखकर लोग उन्हें सुखी जरूर समझते हैं किंतु वह अहंकारी अपने अहंकार के कारण सीधे दोजख (नरक) में ही जाएंगे। अत: अहंकार में आकर दिखावा नहीं करना चाहिए।

१५५०) लघुता में ही प्रभुता बसती है अर्थात विनम्रता से ही ईश्वर को पाया जा सकता है। किंतु जो मोह-माया की प्रभुता में दबे रहते हैं, उनसे सच्चा ईश्वर दूर ही रहता है। चींटी तो मिश्री (चीनी) चुनकर खाती है किंतु हाथी अपने सिर पर केवल धूल-मिट्टी ही डालकर रह जाता है।

१५५१) नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएं बहुत होने के कारण बहुत वर्षों तक नाना प्रकार के झोंके सहती हैं, यही बात सत्पुरुषों के विषय में भी समझनी चाहिए। वे दुर्बल होने पर भी सामूहिक शक्ति से बलवान् हो जाते हैं।

१५५२) जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर में दर्द पैदा करनेवाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनों द्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते- उस क्रोध को आप पी जाइए और शान्त होइए।

१५५३) रोग से पीड़ित मनुष्य मधुर फलों का आदर नहीं करते, विषयों में भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुखी रहते हैं। वे न तो धनसम्बन्धी भोगों का और न सुख का ही अनुभव करते हैं।

१५५४) जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिए- यही नीति धर्म है। कपट का आचरण करनेवाले के साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवाले के साथ साधु-भाव से ही बर्ताव करना चाहिए।

१५५५) अत्यन्त अभिमान, अधिक बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालने की चिन्ता और मित्रद्रोह- ये छ: तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। ये ही मनुष्यों का वध करती हैं, मृत्यु नहीं।

१५५६) जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले की स्त्री के साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्र की स्त्री से सम्बन्ध रखता है, शराब पीता है तथा जो बड़ों पर हुक्म चलानेवाला, दूसरों की जीविका नष्ट करनेवाला, ब्राह्मणों को सेवा कार्य के लिए इधर-उधर भेजनेवाला और शरणागत की हिंसा करनेवाला है- ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारे के समान हैं, इनकी संगति हो जाने पर प्रायश्चित करें- यह वेदों की आज्ञा है।

१५५७) बड़ों की आज्ञा माननेवाला नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न का भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्यों से दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है।

१५५८) सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहज में ही मिल सकते हैं, किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचन के वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं।

१५५९) जो धर्म का आश्रय लेकर तथा स्वामी को प्रिय लगेगा या अप्रिय-इसका विचार छोड़कर, अप्रिय होने पर भी हितकारी बात कहता है, उसी से राजा को सच्ची सहायता मिलती है।

१५६०) कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए गांव का और आत्मा के कल्याण के लिए सारी पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिए।

१५६१) पहले के समय में जुआ खेलना मनुष्यों में वैर डालने का कारण देखा गया है, अत: बुद्धिमान् मनुष्य हंसी के लिए भी जुआ, द्युतक्रीडा न करे।

१५६२) जो स्वामी सदा हित साधन में लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता, उस पर भृत्यगण विश्वास करते हैं और आपत्ति के समय भी नहीं छोड़ते।

१५६३) सेवकों की जीविका बंद करके दूसरों के राज्य और धन के अपहरण का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि अपनी जीविका छिन जाने से भोगों से वंचित होकर पहले के प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजा का परित्याग कर देते हैं।

१५६४) पहले कर्तव्य, आय-व्यय और उचित वेतन आदि का निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकों का संग्रह करे, क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकों द्वारा साध्य होते हैं।

१५६५) जो सेवक स्वामी के अभिप्राय को समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्यों को पूरा करता है, जो हित की बातें करनेवाला स्वामीभक्त, सज्जन और राजा की शक्ति को जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिए।

१५६६) जो सेवक स्वामी के आज्ञा देने पर उनकी बात का आदर नहीं करता, किसी काम में लगाये जाने पर इनकार कर जाता है, अपनी बुद्धि पर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्य को शीघ्र ही त्याग देना चाहिए।

१५६७) अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरों के बहकावे में न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला- इन आठ गुणों से युक्त मनुष्यों को दूत बनाने योग्य बताया गया है।

१५६८) सावधान मनुष्य विश्वास करके सायंकाल में कभी किसी दूसरे अविश्वस्त मनुष्य के घर न जाए, रात में छिपकर चौराहे पर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्री को ग्रहण करना चाहता हो, उसे प्राप्त करने का यत्न न करे।

१५६९) दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगों के साथ मंत्रणा समिति में बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बात का खण्डन न करे, मैं तुम पर विश्वास नहीं करता ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहां से हट जाए।

१५७०) अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया है, वह पुरुष-इन सबके साथ लेन-देन का व्यवहार न करे।

१५७१) नित्य स्नान करनेवाले मनुष्य को बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वणर्ध, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियां- ये दस लाभ प्राप्त होते हैं।

१५७२) थोड़ा भोजन करनेवाले को निम्नलिखित छ: गुण प्राप्त होते हैं- आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान सुंदर होती है तथा यह बहुत खानेवाला है ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते।

१५७३) अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगों से वैर करनेवाले, मायावी, क्रूर, देश-काल का ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्य को कभी अपने घर में न ठहरने दे।

१५७४) पुत्रों को उत्पन्न कर, उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके, उनके लिए किसी जीविका का प्रबन्ध कर दे, फिर कन्याओं का योग्य वर के साथ विवाह कर देने के पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करे।

१५७५) जो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए हितकर और अपने लिए भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पणबुद्धि से करे, सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूलमन्त्र है।

१५७६) जिनका मन पापों में लगा रहता है, वे लोग दूसरों के कल्याणमय गुणों को जानने की वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके अवगुणों को जानने की रखते हैं।

१५७७) जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता है, उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नहीं होता।

१५७८) जिसकी बुद्धि पाप से हटाकर कल्याण में लगा दी गयी है, उसने संसार में जो भी प्रकृति और विकृति है उन सबको जान लिया है।

१५७९) जो समयानुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में भी धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करता है।

१५८०) जो क्रोध और हर्ष के उठे हुए वेग को रोक लेता है और आपत्ति में भी धैर्य को खो नहीं बैठता, वही राजलक्ष्मी का अधिकारी होता है।

१५८१) धर्म सबसे ज्यादा शक्तिशाली है किन्तु बिना धन के धार्मिक अनुष्ठान भी पूरे नहीं होते। इसलिये धर्म की रक्षा के लिये धन भी वांच्छित है। विद्या की रक्षा प्राप्त ज्ञानानुसार बार-बार स्मरण करने से होती है। राज्य सत्ता की रक्षा के लिये नीतिवान व दयापूर्ण व्यवहार वांच्छित है तथा घर की रक्षा कुलीन स्त्री के द्वारा होती है। चरित्रहीन नारी तो घर का विनाश कर देती है। धन के अभाव में धर्मकार्य भी पूर्ण नहीं होते। अभ्यास के बिना विद्या कण्ठस्थ नहीं होती। राजा के कठोर व्यवहार से प्रजा रूष्ट हो जाती है तथा गृहपत्नी के चरित्रहीन हो जाने पर कोई आंख उठा कर उस घर की और नहीं देखता।

१५८२) ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो स्त्री, राजा, सांप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्यशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग, आयुष्य पर पूर्ण विश्वास कर सकता है।

१५८३) वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसके घर दाता के लोभ, भय या कंजूसी के कारण जल, मधुपर्क और गौ को नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषों ने उस गृहस्थ का जीवन व्यर्थ बताया है।

१५८४) वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्राह), ब्रह्मचर्यभ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भ-हत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता- ये यद्यपि पैर धोने के योग्य नहीं तथापि यदि अतिथि होकर आएं तो विशेष प्रिय यानी आदर के योग्य होते हैं।

१५८५) नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकार की गन्ध और गुड़ इतनी वस्तुएं बेचने योग्य नहीं है।

१५८६) जो क्रोध न करनेवाला, ढेला-पत्थर और सुवर्ण को एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रह से रहित, निन्दा-प्रशंसा से शून्य, प्रिय-अप्रिय का त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है।

१५८७) जो नीवार (जंगली चावल), कन्द मूल, इंगुद (लिसौड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है, मन को वश में रखता है, अग्निहोत्र करता है, वन में रहकर भी अतिथि सेवा में सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है।

१५८८) अच्छे कुल में उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठ में अग्नि की भांति शांतभाव से स्थित रहते हैं।

१५८९) जिस राजा के मन्त्री को उसके बहिरंग एवं अन्तरंग सभासद् तक नहीं जानते, सब ओर दृष्टि करनेवाला वह राजा चिरकाल तक ऐश्वर्य का उपभोग करता है।

१५९०) धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्यों को करने से पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करने से अपनी मन्त्रणा दूसरों पर प्रकट नहीं होती।

१५९१) जो मित्र नहीं, मित्र होने पर पण्डित न हो, पण्डित होने पर भी जिसका मन वश में न हो, वह अपना गुप्त मन्त्र जानने के योग्य नहीं है। राजा अच्छी तरह परीक्षा किए बिना किसी को अपना मन्त्री न बनावे। क्योंकि धन की प्राप्ति और मन्त्र की रक्षा का भार मंत्री पर ही रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और कामविषयक सभी कार्यों को पूर्ण होने के बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओं में श्रेष्ठ है। अपने मन्त्र को गुप्त रखनेवाले उस राजा को नि:संदेह सिद्धि प्राप्त होती है।

१५९२) उत्तम कर्मों का अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उन्हीं का अनुष्ठान न किया जाए तो वह पश्चात्ताप का कारण माना गया है।

१५९३) जैसे वेदों को पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय नामक छ: गुणों को जाने बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुनने का अधिकारी नहीं होता।

१५९४) जो सन्धि-विग्रह आदि छ: गुणों की जानकारी के कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और ह्रास को जानता है तथा जिसके स्वभाव की सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजा के अधीन पृथ्वी रहती है।

१५९५) जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो आवश्यक कार्यों की स्वयं देखभाल करता है और खजाने की भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है।

१५९६) ठगी न करना, दान देना, बात पर कायम रहना और अच्छी तरह कही हुई हित की बात-ये सब सम्पूर्ण भूतों को अपना बना लेते हैं।

१५९७) किसी को भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और सरल राजा खजाना खत्म हो जाने पर भी सहायकों को पा जाता है, अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं।

१५९८) धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्र से द्रोह न करना- ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ानेवाली होती हैं।

१५९९) जो अपने आश्रितों में धन का ठीक-ठीक बंटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोक में त्याग देने योग्य है।

१६००) जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश व बल- ये चारों बढ़ते हैं।

१६०१) संसार में कोई मनुष्य दान से प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलने से प्रिय है और तीसरा मन्त्र तथा औषध के बल से प्रिय

होता है, किंतु जो वास्तव में प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है।

१६०२) जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान और न बुद्धिमान ही जान पड़ता है, प्रियतम के तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और दुश्मन के सभी काम पापमय।

१६०३) कुछ लोग गुण के धनी होते हैं और कुछ लोग धन के धनीं जो धन के धनी होते हुए भी गुणों के कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिए।

१६०४) जो दूसरों की निन्दा में ही लगे रहते हैं, दूसरों को दु:ख देने और आपस में फूट डालने के लिए सदा उत्साह के साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोष से भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहने में भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगों से धन लेने में महान् दोष है और उन्हें देने में बहुत बड़ा भय है।

१६०५) दूसरों में फूट डालने का जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखने के अयोग्य-निन्दित माने गये हैं। उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्यों का त्याग कर देना चाहिए। सौहार्दभाव निवृत्त हो जाने पर नीच पुरुषों का प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्द से होनेवाले फल की सिद्धि और सुख का भी नाश हो जाता है। फिर वह नीच पुरुष निन्दा करने के लिए यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जाने पर मोहवश विनाश के लिए उद्योग आरम्भ कर देता है। उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती।

१६०६) वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषों से होनेवाले संग पर अपनी बुद्धि से पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूर से ही त्याग दे।

१६०७) जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगी पर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओं से समृद्ध होता है और अनन्त कल्याण का अनुभव करता है।

१६०८) इस जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। जिस कर्म के करने से अन्त में खाट पर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहले से ही नहीं करना चाहिए।

१६०९) जो धीर पुरुषों के वचनों के परिणाम पर विचार करके उन्हें कार्यरूप में परिणत करता है, वह चिरकाल तक यश का भागी बना रहता है।

१६१०) कुशल विद्वानों के द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्य का ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होने पर भी उसका अनुष्ठान न हुआ।

१६११) जो विद्वान पापरूप फल देनेवाले कर्मों का आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है, किंतु जो पूर्व में किए पापों का विचार न करके उन्हीं का अनुसरण करता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य अगाध कीचड़ से भरे हुए बीहड़ नर में गिराया जाता है।

१६१२) बुद्धिमान पुरुष मन्त्रभेद के इन छ: द्वारों को जाने और धन को रक्षित रखने की इच्छा से इन्हें सदा बंद रखे- नशे का सेवन, निद्रा, आवश्यक बातों की जानकारी न रखना, अपने नेत्र-मुख आदि का विकार, दुष्ट मन्त्रियों में विश्वास और मूर्ख दूत पर भी भरोसा रखना। जो इन द्वारों को जानकर सदा बंद किए रहता है, वह अर्थ, धर्म और काम के सेवन में लगा रहकर शत्रुओं को भी वश में कर लेता है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से जाँचकर अपने अनुभव से बार-बार उनकी योग्यता का निश्चय करे फिर दूसरों से सुनकर और स्वयं देखकर भली-भांति विचार करके विद्वानों के साथ मित्रता करे।

१६१३) विनय-भाव अपयश का नाश करता है, पराक्रम अनर्थ को दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोध का नाश करती है और सदाचार कुलक्षण का अंत करता है।

१६१४) देहाभिमान से रहित पुरुष के पास भी यदि न्याययुक्त पदार्थ स्वत: उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्य के लिए तो कहना ही क्या है।

१६१५) जो विद्वानों की सेवा में रहनेवाला, वैद्य, धार्मिक, देखने में सुन्दर, मित्रों से युक्त तथा मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद् की सर्वथा रक्षा करनी चाहिए।

१६१६) अधम कुल में उत्पन्न हुआ या उत्तम कुल में- जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, धर्म की अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है।

१६१७) जिन दो मनुष्यों का चित्त से चित्त, गुप्त रहस्य से गुप्त रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती।

१६१८) मेधावी पुरुषों को चाहिए कि दुर्बुद्धि एवं विचारशक्ति से हीन पुरुष का तृण से ढके हुए कुएं की भांति परित्याग कर दे, क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है।

१६१९) विद्वान पुरुष को उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषों के साथ मित्रता न करे। मित्र तो ऐसा होना चाहिए जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा के भीतर रहनेवाला और मैत्री का त्याग न करनेवाला हो।

१६२०) इन्द्रियों को सर्वथा रोक रखना तो मृत्यु से भी बढ़कर कठिन है और उन्हें बिल्कुल खुली छोड़ देना देवताओं का नाश कर देता है।

१६२१) सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का भाव, गुणों में दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना- ये सब गुण आयु को बढ़ानेवाले हैं- ऐसा विद्वान लोग कहते हैं।

१६२२) जो अन्याय से नष्ट हुए धन को स्थिर बुद्धि का आश्रय ले अच्छी नीति से पुन: लौटा लाने की इच्छा करता है, वह वीर पुरुषों का-सा आचरण करता है।

१६२३) मनुष्य, मन, वाणी और कर्म से जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुष को अपनी ओर खींच लेता है। इसलिए सदा कल्याणकारी कार्यों को ही करे।

१६२४) मांगलिक पदार्थों का स्पर्श, चित्तवृत्तियों का निरोध, शास्त्र का अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषों का बारंबार दर्शन-ये सब कल्याणकारी हैं।

१६२५) उद्योग में लगे रहना-उससे विरत न होना, धन, लाभ और कल्याण का मूल है। इसलिए उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अत्यन्त सुख का उपभोग करता है।

१६२६) समर्थ पुरुष के लिए सब जगह और सब समय में क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है।

१६२७) जो शक्तिहीन है, वह सब पर क्षमा करे ही, जो शक्तिमान् है वह भी धर्म के लिए क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है।

१६२८) जिस सुख का सेवन करते रहने पर भी मनुष्य धर्म और अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे, किंतु मूढ़व्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक) विषयसेवन न करे।

१६२९) दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलता से युक्त और सरलता के ही कारण लज्जाशील मनुष्य को अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं।

१६३०) जो पेड से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उन फलों से रस तो पाता नहीं, उल्टे उस वृक्ष के बीज का नाश होता है। जो समय पर पके हुए फल को ग्रहण करता है, वह फल से रस पाता है और उस बीज से पुन: फल प्राप्त होता है।

१६३१) जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उससे कर ले। कोयला बनानेवाले की तरह जड़ नहीं काटनी चाहिए।

१६३२) इसे करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। इस प्रकार कर्मों के विषय में भली भांति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे।

१६३३) कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य प्राप्त होने के कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते, क्योंकि उनके लिए किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है।

१६३४) जिसकी प्रसन्नता का कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती। जैसे स्त्री नपुसंक को पति नहीं बनाना चाहती।

१६३५) जिनका मूल (साधन) छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है, वैसे कामों में वह विघ्न नहीं आने देता।

HHH(६५०)HHH

१६३६) कुछ भी बोलने से पहले सोच-समझ लो। क्योंकि शब्द के हाथ-पांव नहीं होते। जैसा बोल बोलोगे उसका वैसा ही प्रभाव होगा। एक शब्द (प्यार के बोल) औषधि समान होता है और एक शब्द (कुविचार, गलत बोल) घाव करनेवाला होता है।

१६३७) जो राजा मानो आंखों से पी जायेगा, इस प्रकार प्रेम के साथ कोमल दृष्टि देखता है, वह चुपचाप बैठा रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है।

१६३८) राजा वृक्ष की भांति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने) पर भी फल से खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो), यदि फल से युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिस पर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुंच के बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होने पर भी पके (शक्तिसम्पन्न) की भांति अपने को प्रकट करे। ऐसा करने से वह नष्ट नहीं होता।

१६३९) जैसे व्याध से हिरन भयभीत होता है, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य पाकर भी प्रजाजनों के द्वारा त्याग दिया जाता है।

१६४०) अन्याय में स्थित हुआ राजा बाप-दादों का राज्य पाकर भी अपने ही कर्मों से उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है जैसे हवा बादल को छिन्न-भिन्न कर देती है।

१६४१) परम्परा से सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्म का आचरण करनेवाले राजा के राज्य की पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण होकर उन्नति को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है।

१६४२) जो राजा धर्म को छोड़ता और अधर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आग पर रखे हुए चमड़े की भांति संकुचित हो जाती है।

१६४३) धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजा को छोड़ती है।

१६४४) जैसे उच्छवृत्ति से जीविका चलानेवाला एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुष को जहां-तहां से भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मों का संग्रह करते रहना चाहिए।

१६४५) मनस्वी पुरुषों को सहारा देनेवाले संत हैं, संतों के भी सहारे संत ही हैं, दुष्टों को भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्ट लोग संतों को सहारा नहीं देते।

१६४६) अच्छे वस्त्रवाला सभी को जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है, जिसके पास गौ है, वह मीठे स्वाद की आकांक्षा को जीत लेता है, सवारी से चलनेवाला मार्ग को जीत (तय कर) लेता है और शीलवान् पुरुष सब पर विजय पा लेता है।

१६४७) पुरुष में शील ही प्रधान है, जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन धन, और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

१६४८) धनोन्मत्त पुरुषों के भोजन में मांस की, मध्यम श्रेणीवालों के भोजन में गोरस की तथा दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है।

१६४९) दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट ही भोजन करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजन में स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह (भूख) धनियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है।

१६५०) अधम पुरुषों को जीविका न होने से भय लगता है, मध्यम श्रेणी मनुष्यों को मृत्यु से भय होता है, परंतु उत्तम पुरुषों को अपमान से ही महान् भय होता है।

१६५१) यों तो पीने का नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्य का नशा तो बहुत ही बुरा है क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होश में नहीं आता।

१६५२) वश में होने के कारण विषयों में रमनेवाली इन्द्रियों से यह संसार उसी भांति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहों से नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं।

१६५३) जो जीवों को वश में करनेवाली सहज पांच इन्द्रियों से जीत लिया गया, उसकी आपत्तियां शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ती हैं।

१६५४) कोई भी व्यक्ति जन्म से ही अच्छा या बुरा नही होता। परिस्थिति, संगत का अच्छा बुरा परिणाम व्यक्ति की मानसिकता पर

पडता है। दुर्योधन मूलतया सुयोधन था लेकिन कपटी शकुनि मामा, दुराचारी मित्र, लोभी और अन्धा पिता के कारण वह दुष्ट दुर्योधन बन गया। रावण वेद वेदज्ञ और शिव भक्त था मगर वह ज्ञान किस काम का। साम्राज्य विस्तार और संसार की सभी वस्तुये प्राप्त करने की लालसा उसमें जाग उठी तो सीता अपहरण के कारण उसका विनाश हुआ। हमे स्वामी बनना है या गुलाम यह व्यक्ति स्वयं निर्धारित कर सकता है। मनुष्य अपने प्रयत्नों से देवत्व की और बढ़ता है। प्रयत्नों के बिना कोई भी उच्च पद प्राप्त नही कर सकता। इसलिये व्यक्ति को स्वयम् सिद्ध बनना चाहिये।

१६५५) जस तरह अग्नि के बिना भोजन बनाया नही जा सकता, ठंड भी दूर नही होती उसी तरह आदर्श सुदृढ़ करने के लिये, आदर्शों के प्रति ईमानदार होना आवश्यक है उनका सत्य-असत्य पक्ष देखना चाहिये। आग मे तपाये बिना सोना भी शुद्ध नही माना जाता। उसका सही मूल्यांकन नही होता। बाधाओं के कारण उपजनेवाली असुविधा से हर कोई दूर रहने का प्रयत्न करता है। इन प्रयासों के लिये मनुष्य को दूरदर्शिता अपनानी पडती है, हिम्मत करनी पडती है, जैसे उपाय खोजने पडते है जिनसे विपत्ति से छुटकारा मिले। कच्ची मिट्टी के मटके में पानी डालते ही वह फूट जाता है लेकिन भट्टी मे पकाये गये बर्तन मे पानी रह सकता है यानि प्रतिकूलता जीवन को प्रखर बनाती है।

१६५६) महान पुरुष अति परोपकारी होते है। ऐसी पुण्यात्माओं का भोग करने योग्य धन सदा निर्धनों को दान देने के लिये होता है। वे कभी भी उसका संचय नहीं करते। क्योकि दान की वजह से दानवीर कर्ण, विक्रमादित्य और राजा बलि की कीर्ति आज तक अक्षुण्ण है। इसके विपरीत मधु का संचय करने वाली मधुमक्खियों का संचित मधु (शहद) जब किसी कारण से नष्ट हो जाता है या मधु का व्यापार करने वाले लोग ले आते है तो वे दु:खी होकर स्वयं से कहती है कि बूंद बूंद कर मेहनत से जोडा गया हमारा सारा मधु नष्ट हो गया। हमने न तो स्वयं इसका उपयोग किया और न ही किसी और को दान में दिया। इसी पश्चाताप के कारण मधुमक्खी अपने छत्ते के रूप में मेहनत से संचित किये गये श्रम को सर्वथा निरर्थक जाते देखकर ग्लानि से प्राण त्याग देती है। एक और संग्रह का आदर्श मधुमक्खियां है जिन्हे पश्चाताप करना पडता है और दूसरी और दान के आदर्श स्तम्भ बलि, दानी कर्ण और महाराजा विक्रमादित्य है जिनकी कीर्ति आज भी विद्यमान, अजर अमर है। इसलिये खाद्य पदार्थों, रूपये पैसे धन दौलत इत्यादि के संचय से उचित है कि उसको दान करे।

१६५७) अपनी भुजाओं की शक्ति यानी कि पराक्रम एवं सेना राजाओं का वास्तविक बल है। तत्व ज्ञान ब्राह्मण (विद्वानों) की वास्तविक शक्ति है। सुन्दरता, यौवन और मधुर व्यवहार नारियों की सच्ची और प्रशस्त शक्ति तथा साधन है। सेना राजाओं की वास्तविक शक्ति और उनकी भुजाओं का बल होता है। ब्राह्मणों की सच्ची शक्ति जप तप न होकर ब्रह्म की अनुभूति (सत्य का दर्शन) है। इसी प्रकार स्त्रियों की सबसे अच्छी शक्ति उनकी खूबसूरती, मिठास और जवानी है। जिससे वे बडे-बडे यौद्धाओं व तपस्वियों को वश में कर लेती है। प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

१६५८) विज्ञान के इस युग मे यह इच्छा लगभग हर प्राणी की होती है कि वह सुखपूर्वक आनन्दमय जीवन बिताये। लेकिन विद्यापार्जन व सुख प्राप्ति यह दोनों चीजे ऐसी है जो साथ-साथ नहीं चल सकती। जिस व्यक्ति को सुख की इच्छा हो वह विद्या प्राप्ति की इच्छा न करे और इसी तरह जिसे विद्या प्राप्ति की कामना हो तो उसे सुख की इच्छा का त्याग कर देना चाहिये। यानी दोनों मे एक ही चीज प्राप्त हो सकती है। विद्या या सुख। सुख के लिये विद्या प्राप्ति मे प्रयत्नशील होना मूर्खता ही कहलायेगी।

१६५९) छोटा से छोटा पापकर्म भी व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को दु:ख बिषाद से विषाक्त कर सकता है। अत: सावधान रहना चाहिये। शत्रु, राजा, अग्नि और पाप को कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिये।

१६६०) बुद्धिमान व्यक्ति विवाह के लिये कुलीन घराने की युवती का ही चयन करते है। वे नीच कुल की रूपसी के पीछे नहीं दौडते और जो कोई इसके विपरीत करते है वे न तो बुद्धिमान है और न ही सुख भोगते। गुण की प्रधानता का ही महत्व है। यदि उच्च कुल की युवती रूप के दृष्टि कोण से सामान्य भी है तब भी वह नीच कुल की रुपसी से श्रेष्ठ है, क्योकि स्त्री का रूप और सौन्दर्य तो उसके गुण है।

१६६१) उच्च कुल व धनी घराने मे पैदा होकर भी विद्याहीन व्यक्ति से किसी को क्या लाभ हो सकता है ? सत्य तो यह है कि छोटे कुल मे उत्पन्न व्यक्ति यदि विद्वान है तो वह अपनी विद्वता द्वारा अन्य व्यक्तियों को लाभ पहुँचाता है और देवताओं द्वारा भी पूजित हो सकता है। महत्व विद्या का है वंश का नही। विद्या सम्पन्न व्यक्ति ही वांछित है। इस संसार में विद्वान का आदर सर्वत्र होता है। विद्वान की ही चारो और पूजा होती है। संसार में यश भी चारों ओर से प्राप्त होता है। अत: विद्या द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में व्यक्ति को कभी भी

प्रमाद नहीं करना चाहिये। वस्तुत: विद्या से संसार की सभी वस्तुये सुख, वैभव, ऐश्वर्य, वैभवशाली जीवन प्राप्त हो सकता है अत: विद्या ही सर्वत्र वांछनीय है।

१६६२) जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जाल में फंसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियां मिलकर जाल को काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध- दोनों विशिष्ट ज्ञान को लुप्त कर देते हैं।

१६६३) जो इस जगत् में धर्म तथा अर्थ का विचार कर विजय-साधन-सामग्री का संग्रह करता है, वही उस सामग्री से युक्त होने के कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है।

१६६४) मांसाहारी, शराबी और निरक्षर (अशिक्षित) मूर्ख व्यक्ति पृथ्वी पर भार समान ही होते है। ऐसे मानवीय गुणों से रहित मनुष्य का जीवन तो मृत्यु के समान ही है, वह पशु तुल्य है।

१६६५) पापाचारी दुष्टों का त्याग न करके उनके साथ मिले रहने से निरपराध सज्जनों को भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ी में मिल जाने से गीली भी जल जाती है, इसलिए दुष्ट पुरुषों के साथ कभी मेल न करें।

१६६६) ख्याति, विद्या, पैसा सब कुछ कमा कर भी जन्म देने वाले माता-पिता को भूला कर उनको जिस किसी ने भी वृद्ध आश्रम का रास्ता दिखाया हो, सज्जन प्रवृति के लोगों को जो कष्ट देता हो, केवल स्वार्थ के लिये लोगों का शोषण करता हो वह धन्य कहलाने का पात्र नही है। वे केवल नाम मात्र मनुष्य होते है। ऊपर से मानव और अन्दर से दानव होते है। इसलिये जिसके बारे मे माता-पिता को गर्व हो वह पुत्र सच्चा समाज सेवी और सच्चा सन्त सेवक धन्य कहलाने का पात्र है।

१६६७) गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रिय दमन, सत्य भाषण तथा अचंचलता- ये गुण दुरात्मा पुरुषों में नहीं होते।

१६६८) मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुंचाते हैं। गाली देनेवाला पाप का भागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से मुक्त हो जाता है।

१६६९) वाणी का पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परंतु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती।

१६७०) मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है, किंतु वही यदि कटु शब्दों में कही जाय तो महान् अनर्थ का कारण बन जाती है।

१६७१) वचनरूपी बाण मुख से निकलकर दूसरों के मर्म पर ही चोट करते हैं, उससे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है। अत: विद्वान पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करे।

१६७२) महिलाओं की हंसी मुस्कान है और पुरुष की हंसी ठहाका है। महिलाओं की तुलना मे पुरुष लम्बे समय तक और जोर से हंसते है।

१६७३) सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों के साथ कोमलता का बर्ताव ये दोनों एक समान हैं, अथवा कोमलता के बर्ताव का विशेष महत्त्व है। ऐसा करने से इस लोक में महान् सुयश प्राप्त करके मरने के पश्चात स्वर्गलोक में जायेंगे। इस लोक में जब तक मनुष्य की पावन कीर्ति का गान किया जाता है, तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है।

१६७४) जलती हुई आग से सोने की पहचान होती है, सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से साधु की, भय आने पर शूर की, आर्थिक कठिनाई में धीर की और कठिन आपत्ति में शत्रु एवं मित्र की परीक्षा होती है।

१६७५) आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं- बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना। मनुष्यलोक में ये आठ गुण स्वर्गलोक का दर्शन करानेवाले हैं, इनमें से चार तो संतों के साथ नित्य सम्बन्ध है- उनमें सदा विद्यमान रहते हैं और चार का सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं। यज्ञ, दान, अध्ययन और तप- ये चार सज्जनों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता- इन चारों का संत लोग अनुसरण करते हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ- ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं। इनमें से पहले चारों का दम्भ के लिए भी सेवन किया जा सकता है,

परंतु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह नहीं सकते।

१६७६) एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्य का सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणों से बढ़कर शोभा पाता है।

१६७७) दूसरों की प्रशंसा करने वाला अपनी मधुर वाणी से मित्र पैदा करता है, वह अपने लिये हितचिन्तक पैदा करता है। उसके मित्र और हित चिन्तक सदैव उसकी सहायता के लिये तत्पर रहते है, ऐसा व्यक्ति सदा सुखी रहता है।

१६७८) सत्य, विनय का भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना- ये दस स्वर्ग के साधन हैं।

१६७९) पाप-कीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फल को ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफल का ही उपभोग करता है। इसलिए प्रशंसित व्रत का आचरण करनेवाले पुरुष को पाप नहीं करना चाहिए, क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धि को नष्ट कर देता है।

१६८०) जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है। जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है, इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोक को ही जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदा एकाग्रचित्त होकर पुण्य का ही सेवन करे।

१६८१) गुणों में दोष देखनेवाला, मर्म पर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पाप का आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्ट को प्राप्त होता है।

१६८२) दोषदृष्टि से रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ महान् सुख को प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है।

१६८३) जो बुद्धिमान पुरुषों से सद्बुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुष ही धर्म और अर्थ को प्राप्त कर अनायास ही अपनी उन्नति करने में समर्थ होता है।

१६८४) अपने मन और इन्द्रियों को वश में करनेवाले शिष्यों के शासक गुरु हैं, दुष्टों के शासक राजा है और छिपे-छिपे पाप करनेवालों के शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं।

१६८५) ब्राह्मणों की सेवा-पूजा में संलग्न रहनेवाला दाता, कुटुम्बीजनों के प्रति कोमलता का बर्ताव करनेवाला और शीलवान् राजा चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता है।

१६८६) बुद्धि से विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल से किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणी के हैं, जिज्ञासा से होनेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोने का काम बहुत अधम है।

१६८७) धैर्य-धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य धर्मों का पालन ही कर्तव्य है, इसके द्वारा पुरुष को चाहिए कि हृदय की सारी गांठ खोलकर प्रिय और अप्रिय को अपने आत्मा के समान समझे।

१६८८) दूसरों से गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे। क्षमा करनेवाले का रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवाले को जला डालता है और उसके पुण्य को भी ले लेता है।

१६८९) दूसरे को न तो गाली दे और न उसका अपमान करे, मित्रों से द्रोह तथा नीच पुरुषों की सेवा न करे, सदाचार से हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणी का परित्याग करे।

१६९०) इस जगत् में रूखी बातें मनुष्यों के मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणों को दग्ध करती रहती हैं, इसलिए धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातों का सदा के लिए परित्याग कर दे।

१६९१) जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्म पर आघात करता और वाग्बाणों से मनुष्यों को पीड़ा पहुंचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिए कि वह मनुष्यों में महादरिद्र है और वह अपने मुख में दरिद्रता अथवा मौत को बांधे हुए ढो रहा है।

१६९२) धरती से निकलने वाला जल पवित्र व शुद्ध होता है। पतिव्रता नारी सदैव शुद्ध और पवित्र होती है। प्रजा का कल्याण करने वाला राजा पवित्र होता है और सन्तोष धारण करनेवाला ब्राह्मण भी शुद्ध व पवित्र होता है। अर्थात कुए से निकलने वाला जल, पतिव्रता

स्त्री, प्रजा कल्याणकारी राजा और सन्तोषी ब्राह्मण सदा वाच्छनीय है।

१६९३) जो न तो स्वयं किसी से जीता जाता, न दूसरों को जीतने की इच्छा करता है, न किसी के साथ वैर करता और न दूसरों को चोट पहुंचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसा में समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोक से परे हो जाता है।

१६९४) जो सबका कल्याण चाहता है, किसी के अकल्याण की बात मन में भी नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है। जो अपने ही ऊपर संदेह होने के कारण दूसरों से भी कल्याण होने का विश्वास नहीं करता, मित्रों को भी दूर रखता है, अवश्य ही वह अधम पुरुष है।

१६९५) जिस तरह अमृत पान करने के पश्चात भी देवताओं की इच्छा स्वर्ग की, अप्सराओं के होठों का रस पीने की रहती है, उनके अधर पान के लिये लालायित रहते है उसी तरह संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान होते हुये भी नीतिशास्त्र के विद्वान अन्य भाषाओं का ज्ञान पाने के लालायित रहते है। एक भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के बाद दूसरी भाषा के ज्ञान की इच्छा हर ज्ञानी को रहती है।

१६९६) जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषों की ही सेवा करे, समय आ पड़ने पर मध्यम पुरुषों की भी सेवा कर ले, परंतु अधम पुरुषों की सेवा कदापि न करे।

१६९७) मनुष्य दुष्ट पुरुषों के बल से, निरन्तर के उद्योग से, बुद्धि से तथा पुरुषार्थ से धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुष के सम्मान और सदाचार को पूर्णरूप से कदापि नहीं प्राप्त कर सकता।

१६९८) जिनमें तप, इन्द्रिय संयम, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार- ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं।

१६९९) जैसे जल के स्थिर होने पर उसमे मिली हुई मिट्टी अपने आप नीचे बैठ जाती है ऐसी ही वाणी मन बुद्धि से चुप, शान्त, क्रिया रहित होने पर सब विकार अपने आप शान्त हो जाते है। अहम का नाश होता है और वास्तविक तत्व का अनुभव होने लगता है।

१७००) जल से शरीर की शुद्धि होती है। सत्य से मन की शुद्धि होती है। विद्या और तप से भूतात्मा की तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है।

१७०१) जैसे थोडे से बीज बोने से कितनी सारी फसल उग आती है वैसे ही थोडे से पुण्यों के बीज बोने से अनेक सुख प्राप्त हो जाते है। जन कल्याण के मार्ग का अनुसरण करने पर कई गुना आपको बढ़ कर मिलता है।

१७०२) सज्जन सदा बुराई में भी अच्छाई देखते है। हमे भी व्यक्ति मे गुणों को देखना चाहिये और अवगुणों को छोड देना चाहिये। किसी भी व्यक्ति मे कितने ही अवगुण क्यों न हो, फिर भी उसमे कोई न कोई गुण अवश्य छिपा होता है। हम उसके गुणों को ग्रहण करना चाहिये और अवगुणों की तरफ ध्यान नही देना चाहिये।

१७०३) किसी भी पुरुष को वेश्याओं से सम्बन्ध नहीं रखने चाहिये। वेश्याये धन प्राप्ति के लिये धन देने वाले का मनोरंजन करने के लिये हंसती है, कामी पुरुष को अपनी और आकर्षित करती है, बातचीत किसी के साथ करती है, विलासपूर्वक देखती किसी और को है और मन में चिन्तन किसी और का करती है। धन लोभ के कारण उनका प्रेम प्रपंच किसी एक से नहीं अनेक से होता है। यह प्रेम-प्रीति स्थायी नहीं होती। किसी भी पुरुष को चरित्रहीन नारी के बतलाने और प्रेमपूर्वक देखने को उनका अपने प्रति झुकाव नहीं मानना चाहिये तथा उनकी निष्ठा पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

१७०४) यदि सफलता अर्जित करनी हो तो गोपनीयता सीखे। यदि आप किसी कार्य सिद्धि के लिये योजना बना रहे है तो उसके क्रियान्वयन व फलीभूत होने तक उसे गुप्त रखने का मन्त्र आपको आना चाहिये ऐसा नहीं करने से आपकी योजना विफल हो जाती है। जो व्यक्ति गोपनीयता नहीं बरत सकता वे नुकसान ही उठाते है क्योकि यह सम्भव है कि गोपनीयता भंग होने पर कोई आपकी योजना को विफल कर दे इसलिये योजना सदैव गुप्त रक्खे।

१७०५) जैसे हंस सूखे सरोवर के आस-पास ही मंडराकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चंचल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियों का गुलाम है, उसे अर्थ की प्राप्ति नहीं होती।

१७०६) यथा राजा तथा प्रजा लेकिन राज्य का नेता ही न हो तो प्रजा भटक जायेगी या शत्रुओं के कब्जे मे जायेगी। सही नेता के बिना भी राज्य व्यर्थ होता है। सभा में उपदेश करने वाला न हो और केवल सुननेवाले श्रोता ही हो तो बेकार बक बक के सिवाय और

क्या होगा इसलिये वक्ता के बिना सभा अर्थहीन है।

१७०७) पति की आज्ञा के बिना व्रत उपवास करने वाली नारी अपने पति की आयु को घटाती है इसलिये मृत्यु परान्त वह नर्कगामी होती है। पति के निर्देशानुसार उसे आचरण करना चाहिये, अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिये। महापुरुषों का, नीति का कहना है कदापि भूखों मरने वाला व्रत नहीं करना चाहिये। जो नारी इस तरह भूखे रह कर अपने शरीर को कष्ट देती है उसे फल प्राप्ति तो बहुत दूर, स्वयं कष्टों को भोगती रह अपने पति की आयु ही घटाती है। यदि पति अपनी पत्नी के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुये पत्नी को व्रत उपवास करने से मना करता है तो पत्नी को हठ नहीं करना चाहिये अन्यथा रोग आदि के बढ़ जाने से धनहानि व शरीर की हानि उठानी पडेगी।

१७०८) अभीष्ट वस्तु शोक करने से नहीं मिलती, उससे तो केवल शरीर को कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं इसलिए आप मन में शोक न करें।

१७०९) मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि उठाता और बढ़ता है, बार-बार स्वयं दूसरे से याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बारंबार वह दूसरों के लिए शोक करता है और दूसरे उसके लिए शोक करते हैं।

१७१०) बुद्धि से मनुष्य अपने भय को दूर रखता है, तपस्या से महत् पद को प्राप्त होता है, गुरु-शुश्रूषा से ज्ञान और योग से शान्ति पाता है।

१७११) मनुष्य जो भी छोटा या बडा कार्य करे उसे पूरी शक्ति लगा कर करे। आधे दिल व आधे उत्साह से किया हुआ कार्य कभी सफल नही होता। पूरी शक्ति लगा कर अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी काम करना शेर से सीखना चाहिये। शेर जब अपना शिकार करता है तो पूरी ताकत लगा देता है। काम करके सफलता पाने का एक ही उपाय है कि जो भी कार्य करो, मन से व पूरी शक्ति लगा कर करना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष को यह गुण बगुले से सीखना चाहिये कि अपनी सारी इन्द्रियों को वश मे करके तथा स्थान, समय और अपनी शक्ति का अनुमान लगा कर कार्यसिद्धि के लिये जुट जाना चाहिये यही वांछनीय है।

१७१२) हर पदार्थ के अपने-अपने गुण होते है। तुण्डी (कुन्दरू) के सेवन से बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाती है, किन्तु शरीर में असीम ताकत की वृद्धि होती है। इसके विपरीत वचा (एक जडी) के सेवन करने से शीघ्र ही बुद्धि विकसित हो जाती है। यह आयुवर्धक, वात, पित्त, कफ नाशक होती है। नारी शीघ्र ही शक्ति का हरण करनेवाली होती है और दूध पीने से तत्काल खोयी हुई ताकत वापस लौट आती है। नारी का अत्याधिक संग करने से शीघ्र ही बुढापा आ जाता है। अर्थात तुण्डी बुद्धि नाशक और वचा बुद्धिवर्धक है तथा नारी शक्ति नाशक है।

१७१३) इस संसार मे कोई भी नारी तरह-तरह के दान करने, सैकडों व्रत करने, तीर्थ स्थानों मे स्नान करने से भी वैसी पवित्र और शुद्ध नहीं होती जैसे अपने पति की हृदय से सेवा करने से शुद्ध हो जाती है। नारी के लिये उसका पति ही गति, मन, प्राण, सम्पत्ति, धर्म-कर्म, काम, और मोक्ष का साधन है। किसी भी नारी के लिये पति सेवा से बढ़कर दूसरा कोई फलदायक पुण्य कार्य नहीं है।

१७१४) जो व्यक्ति पीठ पीछे किसी की निन्दा करता है और मुख के सामने मीठी वाणी बोलता है, जो व्यक्ति उस घडे के समान व्यवहार करता है, जिसमें ऊपर दूध नजर आता है और अन्दर विष भरा है तो ऐसा व्यक्ति न तो विश्वसनीय होता है और न ही सच्चा मित्र ऐसे व्यक्ति को त्यागने में ही भलाई है। सामने कटु बोलनेवाला और पीठ पीछे बडाई करने वाला व्यक्ति ही सच्चा मित्र होता है। हितैषी होता है।

१७१५) ये छ: इन्द्रियां बहुत ही चंचल हैं, इनमें से जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषय की ओर बढ़ती है, वहां-वहां बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़े से पानी सदा चू जाता है।

१७१६) सुमिरन से इस प्रकार मन लगाओ जैसे दीपक के संग पतंगा मन लगाता है। पतंगा तुरंत अपने प्राण त्याग देता किंतु दीपक पर मंडराना नहीं छोड़ता और न ही जलकर मरने से डरता है। अर्थात सुमिरन करते समय मन में किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

१७१७) जिसने सोने में अपना समय गंवा दिया वह निष्फल ही रहेगा, जो जागता है उसे ही फल की प्राप्ति होती है। साहिब (परमेश्वर) पर किसी का वर्चस्व नहीं होता। उससे तो जो भी सच्ची भक्ति भावना से मांगेगा वह उसे ही सबकुछ देगा। वह (ईश्वर) तो सबके लिए होता है। जो भी जागकर उसे याद करेगा, वही जीवन में सफलता को प्राप्त करेगा।

१७१८) समय रहते हरि (परमेश्वर) का सुमिरन कर लो बाद में जब शरीर से प्राण छूट जाएंगे तब घर के अपने आदमी ही लूट लेंगे अर्थात मरने के बाद तो तन के वस्त्र तक उतारकर श्मशान ले जाया जाता है।

१७१९) दुख में तो हम उस प्रभु को याद करते हैं, उसका सुमिरन करते हैं किंतु सुख में हम उसे भूल जाते हैं। उसका सुमिरन बिल्कुल नहीं करते। यदि हम सुख में भी उस प्रभु को न भूलें जिसकी वजह से हमें सुख मिलता है तो हमें दुख होगा ही नहीं, हम कभी भी कष्टों में पड़ेंगे ही नहीं। अत: सुख और दुख दोनों समय में ही प्रभु को हृदय से स्मरीण करते रहना चाहिए।

१७२०) हाथ में तो माला फेर रहे हैं और मुख में जीभ चल रही है (बातचीत का व्यवहार जारी है) और मन भी संयम में नहीं है, वह दसों दिशाओं में फिर रहा है। इसको सुमिरन नहीं कह सकते। जब तक मन एकाग्र नहीं होगा तब तक सुमिरन नहीं किया जा सकता।

१७२१) जिस पल तन स्थिर, मन स्थिर, वचन स्थिर तथा सुरति, निरति (ध्यान, लगन) भी स्थिर हो तो उस पल का क्या कहना। यह तो आत्मदर्शन का एक ऐसा पल है जिसे कल्प (अनेक युगों) तक भी नहीं पाया जा सकता।

१७२२) सृष्टि के जितने भी जीव है; उन सबका एक-दूसरे से किसी-न-किसी रूप में स्वार्थ जुड़ा है। यह स्वार्थ ही है जो जीव को सांसारिक प्रपंचों की ओर आकर्षित करता है और जीव तृष्णाओं का दास होकर स्वार्थ के वशीभूत हो जाता है। स्वार्थ के कारण ही वह अनेक प्रकार के दुष्कर्म करने से भी नहीं चूकता। यहां तक कि रिश्ते-नातों को भी वह बिसरा देता है। उसका सर्वोपरि लक्ष्य केवल स्वार्थ साधन करना ही रहता है। वह यही चाहता है कि किसी भी तरह उसके स्वार्थ की पूर्ति हो जाए, भले ही परिणाम कुछ भी हो। इस स्वार्थ की दलदल में आकंठ डूबा जीव यदि कुछ धर्म-कर्म की बात सोचता भी है तो उसमें भी स्वार्थ की ही बू आती है।

१७२३) जब स्वार्थी को स्वार्थी मिल जाता है, अर्थात दो स्वार्थी जब आपस में मिलते हैं तो एक-दूसरे की अति प्रशंसा करते हैं। क्योंकि इसी से उनके स्वार्थ सिद्ध होते हैं। किंतु जो निस्वार्थी लोग होते हैं, जिनके मन में सेवा भावना होती है, उनसे स्वार्थी लोगों की नहीं बनती। क्योंकि ऐसे सज्जन लोग उनकी स्वार्थपूर्ति में बाधक होते हैं। इसलिए यह लोग स्वार्थी लोगों को नहीं भाते।

१७२४) मोह-माया में लिप्त स्वार्थी लोगों से नेह लगाने पर कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। क्योंकि इनके द्वारा न तो माया (सांसारिक सुख) की ही प्राप्ति होती है और न ही आत्मज्ञान की। अत: इनसे तो जितना दूर रहा जाए उतना ही अच्छा है।

१७२५) जिस व्यक्ति का बलवान के साथ विरोध हो जाये, जिस साधनविहीन मनुष्य का सब कुछ छीन लिया गया हो, जो काम-कुण्ठा से ग्रस्त हो, चोर हो, उसे रात में जागने का रोग लग जाता है। जिस मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, उद्योग, दु:ख सहने की शक्ति और धर्म में आस्था रहती है, उसे कौन पुरुषार्थ से च्युत कर सकता है। वस्तुत: वही पण्डित कहलाने का अधिकारी है। जो मनुष्य बुरे कर्मों को त्याग कर अच्छे कर्मों का कर्ता होता है, जो आस्तिक है, श्रद्धालु है, उसके यही गुण उसे पण्डित बनाते हैं। जिस मनुष्य को काम, क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्दण्डता तथा स्वयं को पूज्य समझना जैसे भाव पुरुषार्थ से च्युत नहीं करते, वही पण्डित है। दूसरे लोग जिसकी सलाह, कर्तव्य अथवा पहले से किये गये विचार को नहीं जान पाते बल्कि काम पूरा होने के पश्चात् जानते हैं वही पण्डित है। जो मनुष्य भोग को त्याग पुरुषार्थ का वरण करता है, जिसकी बुद्धि धर्म और अर्थ का ही अनुसरण करती है, वही पण्डित कहा जाता है। जो विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष हैं वे अपनी सामर्थ्यानुसार कार्य करने की इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करते। विद्वान् पुरुष किसी विषय को भले ही देर तक सुने मगर समझ शीघ्र ही लेता है, समझकर कर्तव्य बुद्धि से कार्य में लगता है, कामना से नहीं। बिना पूछे किसी के विषय में कोई टिप्पणी नहीं करता, यही पण्डित होने की पहचान है। जो मनुष्य पण्डितों जैसी बुद्धि रखता है, वह दुर्लभ वस्तु की कामना नहीं करता, खोई वस्तु के विषय में शोक नहीं करता तथा विपत्ति में कभी नहीं घबराता। जो व्यक्ति समय को व्यर्थ नहीं गंवाता, सर्वप्रथम निश्चय करके ही कार्य आरम्भ करता है तथा कार्य को बीच में नहीं छोड़ता, वस्तुत: वही पण्डित कहा जाता है। जो पण्डित जन हैं वे श्रेष्ठ कर्मों में ही रुचि रखते हैं, उन्नति की ओर ही अग्रसर होते हैं तथा जो लोग भलाई का कार्य करते हैं, उनके दोष नहीं निकालते। जो व्यक्ति अनादर होने पर संतप्त नहीं होता, आदर पाने पर गर्व से फूला नहीं समता, गंगाजी के कुण्ड के समान जिसके चित्त को क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित है। जो समस्त कार्यों को करने में कुशल है, तरीके जानता है, मनुष्यों में सबसे अधिक उपायों को जानता है, समस्त भौतिक पदार्थों की असलियत को जानता है, वही मनुष्य पण्डित कहलाने का अधिकारी है। जो विचित्र तरीके से बातचीत करता है, वाणी को विराम नहीं

देता, तर्क में निपुण और प्रतिभाशाली है, किसी ग्रन्थ के तत्त्वार्थ को शीघ्रता से बतला सकता है, वही पण्डित कहा जाता है। जिसकी बुद्धि विद्या का और विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है तथा जो शिष्ट और मान्य व्यक्तियों की बातों का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित कहा जाने योग्य है। दरिद्र होकर भी अमीरों जैसा आचरण करनेवाले, बिना विद्या प्राप्त किये ज्ञान पर गर्व करनेवाले, बिना पुरुषार्थ धन पाने की लालसा रखनेवाले मनुष्य को पण्डित जन मूर्ख कहा करते हैं। जिस मनुष्य को बहुत धन मिल जाये, विद्या प्राप्त हो जाये अथवा वह ऐश्वर्यशाली हो जाये लेकिन इतने पर भी गर्व न करे, वही पण्डित कहा जाता है।

१७२६) जो मनुष्य स्व कर्तव्य को त्याग अन्य के कर्तव्य का पालन करता है तथा मित्र के साथ असत् व्यवहार या घात करता है, वह मूर्ख कहा जाता है। जो न चाहनेवालों को चाहता है तथा चाहनेवालों को त्याग देता है तथा अपने से बलवान् के साथ वैर साधता है, वही मूढ़ विचारवाला मनुष्य कहा जाता है। जो मित्र को द्वेषवश कष्ट देता है तथा शत्रु से मित्रवत् व्यवहार करता है तथा सदैव बुरे कर्मों में ही लिप्त रहता है, उस मनुष्य को मूढ़ चित्त वाला जानो। जो सभी को सन्देह के घेरे में रखता है, अपने कर्मों का व्यर्थ फैलाव करता है तथा कार्य समाप्ति में व्यर्थ ही (जान-बूझकर) विलम्ब करता है, वह मूर्ख है। जो देवार्चन नहीं करता, अपने पितरों का श्राद्ध नहीं करता, जिसे सज्जन मित्र नहीं मिलता, उस मनुष्य को ही मूढ़ चित्त वाला कहते हैं। जो व्यक्ति बिना आज्ञा लिये किसी के घर में भीतर चला जाता है, तथा अविश्वसनीय लोगों पर विश्वास करता है, वही अधम मनुष्य मूढ़ चित्त वाला कहलाता है। जो व्यक्ति न पाने योग्य वस्तु को पाने की इच्छा करता है, अपने बल को न समझकर बिना पुरुषार्थ किये धर्म और अर्थ के विरुद्ध आचरण करता है, वह मूढ़ बुद्धि है।

१७२७) जो भी अपने द्वारा भरण-पोषण किये जाने योग्य हैं, उन्हें त्याग कर जो मनुष्य स्वयं सुस्वादु भोजन करता है, उत्तम वस्त्र धारण करता है, वह महान् क्रूर है।

१७२८) जो मनुष्य पाप कर्म से धनार्जन कर अनेक का भरण-पोषण क्यों न करता हो, तब भी उसे छोड़कर अन्य दूसरे लोग पाप के भागी नहीं होते अर्थात् पाप करनेवाला ही दण्ड का भागी होता है, अन्य नहीं।

१७२९) एक से दो अर्थात् बुद्धि से कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करके चार से तीन को अर्थात् साम-दाम-दण्ड-भेद से शत्रु-मित्र तथा उदासीन को वश में कीजिए। पांच को जीतकर छ: अर्थात् पांच इन्द्रियों को वश में कर सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधभाव और समाश्रयरूप गुणों को जानकर तथा सात (स्त्री-जुआ-आखेट-मद्य-कठोर वचन, दण्ड की कठोरता, अन्याय से धनोपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जाइए।

१७३०) इस संसार में क्षमा ही वशीकरण रूप है, क्षमा से क्या सिद्ध नहीं हो सकता ? जिस पुरुष के हाथ में शान्ति रूपी तलवार है उसका दुष्ट लोग क्या बिगाड़ लेंगे ?

१७३१) केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम सन्तोष को देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही से सुख मिलता है।

१७३२) नि:सन्देह वह व्यक्ति अविश्वसनीय है जो क्रोध होने पर सारे भेद उगल देता है। ऐसा व्यक्ति कदापि मित्रता के योग्य नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति निकृष्ट श्रेणी का होता है और जो भी ऐसे व्यक्ति को मित्र बनाता है, वह सदैव धोखा ही खाता है अर्थात क्रोध की अवस्था में भी जो व्यक्ति संयम बरत सके वही व्यक्ति मित्रता हेतु उपयोगी होता है। गुण और दोष के आंकलन करने के बाद ही व्यक्ति को मित्रता के लिये हाथ बढ़ाना चाहिये वरना वह जीवन पर्यन्त कष्ट ही भोगता है।

१७३३) जो व्यक्ति न तो कठोर सम्भाषण करता है, न ही दुष्ट पुरुषों का आदर करता है, वही इन दो कर्मों का कर्ता इस लोक में सम्मान प्राप्त करता है।

१७३४) इस संसार की रीति है कि धन सम्पन्न होने पर व्यक्ति के मित्र-बन्धु बान्धवों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। धन की प्रचुरता ही मनुष्य को समाज में अधिक यश, मान, कीर्ति प्राप्त कराती है। धनाढ्य व्यक्ति ही शान से रह सकता है। धन सब कुछ नहीं, किन्तु धन के बिना भी जीवन यात्रा पूर्ण नहीं होती। सत्य तो यह है कि इस संसार में केवल धनी व्यक्ति को ही विद्वान और सन्मानित व्यक्ति समझा जाता है। धनहीन व्यक्ति के गुण न केवल उपेक्षित हो जाते है, अपितु उसे तो मनुष्य ही नहीं समझा जाता उसकी बेइज्जती की जाती है। धनहीन व्यक्ति को सभी हीन दृष्टि से देखते है।

१७३५) सदाचार का परीक्षा काल संकट होता है। संकट के उपस्थित होने पर अपने सदाचार की सुरक्षा में तत्पर व्यक्ति दूसरों की दृष्टि में निश्चित रूप से ही बहुत ऊंचा उठ जाता है। उसका महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है, लोग उसका विशेष आदर करने लगते है और उसे इष्ट मित्रों का सहयोग सुलभ हो जाता है। इससे उसका संकट अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह पाता।

१७३६) संसार एक ही है पर व्यक्ति व्यक्ति में भिन्नता है। खासकर मनुष्य की मानसिकता एकदम अलग-अलग होती है। जुडवा भाई बहनों तक का स्वभाव अलग-अलग होता हे। मानसिकता के तीन स्तर है, उच्च मानसिकता, मध्यम मानसिकता और कनिष्ठ मानसिकता। उच्च मानसिकता उच्च संस्कारों से बनी होती है अथवा वह इस तरह से बनाई जाती है। ऐसे लोग गिने चुने होते है पर समाज पर उनकी गहरी छाप होती है। पराक्रमी व्यक्ति के रूप में ऐसे लोग ख्याति प्राप्त करते है। मध्यम मानसिकता में केवल स्वार्थ भरा होता है। वे लोग अपनी ही दुनिया में खोये रहते है। ऐसे लोग अधिक उपद्रवी नहीं होते पर किसी के कुछ काम भी नहीं आते। तीसरा प्रकार है कनिष्ठ मानसिकता का। ये लोग स्वार्थ और कपट से भरे होते है और पीडा दायक भी होते है। अपने दुष्कृत्यों के कारण उनकी छवि खराब होती है इसलिये उच्च मानसिकता मूल्यवान हे।

१७३७) सदैव गुणी व्यक्ति को ही दान के रूप में धन या अन्य पदार्थ देना चाहिये। गुणहीन व्यक्ति को दान नहीं देना चाहिये। समुद्र द्वारा गुणी मेघ को दिया गया खारा जल मेघ के मुंह में जाते ही मीठा जल बन जाता है और मेघ उस जल की वर्षा करके पूरे भूमण्डल के सभी जड चेतन प्राणियों को जीवन प्रदान करता है। वर्षा के रूप में मेघ द्वारा बरसाया गया जल, समुद्र द्वारा मेघ को दिये गये जल की अपेक्षा करोडों गुना बढकर फिर उसी समुद्र में पहुँच जाता है। इससे स्पष्ट है कि समुद्र ने गुणी मेघ को जल दान कर अपने खारे जल को मीठा बना लिया। जड चेतन को जीवन प्रदान करने का पुण्य अर्जित कर लिया तथा दिये गये जल से अधिक मात्रा में पुन: जल प्राप्त कर लिया। अत: गुणी को दिया गया दान अति फलदायक होता है।

१७३८) संग्राम में लड़ते हुए मारा गया योद्धा तथा योगयुक्त संन्यासी- ये दोनों ही प्रकार के लोग सूर्यमंडल को भेदकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं।

१७३९) निन्द्य उपायों से दूसरे के धन को छीन लेना, परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करना और सुहृद् मित्र का परित्याग-ये तीनों कर्म मनुष्य की आयु, धर्म और यश का विनाश करते हैं।

१७४०) राज्य की प्राप्ति पुत्र का जन्म, मनोअभिलषित पदार्थों का पाना- ये तीनों बातें एक ओर तथा शत्रु के कष्ट से मुक्त होना एक ओर, वे तीन और यह एक बराबर ही हैं।

१७४१) पूर्व के सेवक, भक्त तथा मैं मात्र आप ही का हूं ऐसा कहनेवाले- इन तीन प्रकार के मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

१७४२) अल्पज्ञ (थोड़ी बुद्धिवाले), दीर्घसूत्री, जल्दबाज और चापलूसी करने वालों के साथ गुप्त मन्त्रणा किसी भी बुद्धिमान राजा को नहीं करनी चाहिए, महाबली राजा को चाहिए कि इन चारों का त्याग कर दे।

१७४३) गृहस्थ धर्म में स्थित धन-धान्य से भरपूर आप के घर में चार प्रकार के व्यक्तियों को अवश्य ही आश्रय मिलना चाहिए- वृद्ध सम्बन्धी, कष्ट में लिप्त उच्च कुल का व्यक्ति, धनहीन मित्र और सन्तानहीन बहन।

१७४४) देव गुरु बृहस्पति ने देवराज इन्द्र के पूछने पर जिन चार बातों को तत्काल फल देनेवाली बतलाया था, वे हैं- देवों का संकल्प, बुद्धिमानों का वर्चस्व, विद्वानों की विनम्रता तथा दुर्गुणों का परित्याग।

१७४५) मनुष्य द्वारा किये गये चार कर्म-निष्ठा के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक किया गया मौनव्रत, आस्था और विश्वास से किया स्वाध्याय, शास्त्रानुसार किया गया यज्ञ अभय प्रदाता माने गये हैं परन्तु शास्त्र विपरीत अर्थात् दिखाने के लिए किये जाने पर ये भी महान् भय को देनेवाले अनर्थकारी हो जाते हैं।

१७४६) देवता, पितर, अकस्मात् आया अतिथि, मनुष्य एवं संन्यासी- इन पांचों की सेवा करनेवाला व्यक्ति संसार में महान् यश को पा लेता है।

१७४७) पांच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय दोषयुक्त हो जाये तो उसकी बुद्धि उससे इस प्रकार बाहर निकल जाती

है जैसे मशक से पानी।

१७४८) ऐश्वर्य या उन्नति चाहनेवाले व्यक्ति को निद्रा, तन्द्रा, डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता अर्थात शीघ्रता से होने वाले कार्य में अनावश्यक देरी करना- इन छ: दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए।

१७४९) उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाला होता, रक्षा करने में असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, गांव में रहने की इच्छा करनेवाले ग्वाले और वन में रहने की इच्छा करनेवाला नाई-इन छ: का साथ इसी प्रकार त्याग दें जैसे समुद्र की सैर करनेवाला व्यक्ति जीर्ण नौका को त्याग देता है।

१७५०) मनुष्य को इन छ: गुणों-सत्य, दान, कर्मण्यता, गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव (अनसूया), क्षमा तथा धैर्य का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए।

१७५१) धन की आय, नित्य नीरोगता, स्त्री का अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्र का आज्ञाकारी होना तथा धनार्जन की विधि में कुशल होना- ये छ: बातें मृत्युलोक में सुखदायिनी कही गयी हैं।

१७५२) मन में नित्य रहनेवाले छ: शत्रु-काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तथा मात्सर्य- को जो वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों से लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थों की तो बात ही क्या है।

१७५३) निम्नांकित छ: प्रकार के मनुष्य छ: प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं, सातवें की उपलब्धि नहीं होती। चोर असावधान पुरुष से, वैद्य रोगी से, मतवाली स्त्रियां कामियों से, पुरोहित यजमानों से, राजा झगड़ने वालों से तथा विद्वान पुरुष मूर्खों से अपनी जीविका चलाते हैं।

१७५४) ये छ: सदा अपने पूर्व उपकारी का अनादर करते हैं- शिक्षा समाप्त हो जाने पर शिष्य आचार्य का, विवाहित बेटे माता का, कामवासना की शान्ति हो जाने पर मनुष्य स्त्री का, कृतकार्य पुरुष सहायक का, नदी की दुर्गम धारा पार कर लेनेवाले पुरुष नाव का तथा रोगी पुरुष रोग छूटने के बाद वैद्य का तिरस्कार कर देते हैं।

१७५५) नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेस में न रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निडर होकर रहना- ये छ: मनुष्य लोक के सुख हैं।

१७५६) ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा शंकित रहनेवाला और दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करनेवाला- ये छ: सदा दुखी रहते हैं।

१७५७) स्त्री विषयक आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वचन की कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धन का दुरुपयोग करना- ये सात दु:खदायी दोष राजा को सदा त्याग देने चाहिए। इनसे दृढ़मूल राजा भी प्राय: नष्ट हो जाते हैं।

१७५८) विनाश के मुख में पड़नेवाले मनुष्य के आठ पूर्व चिह्न हैं- प्रथम तो वह ब्राह्मणों से द्वेष करता है, फिर उनके विरोध का पात्र बनता है, बाह्मणों का धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, बाह्मणों की निन्दा में आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-ज्ञानादि में उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ मांगने पर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषों को बुद्धिमान् मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे।

१७५९) मित्रों से समागम, अधिक धन की प्राप्ति, पुत्र का आलिंगन, मैथुन में प्रवृत्ति, समय पर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्ग के लोगों में उन्नति, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति और जनसमाज में सम्मान- ये आठ हर्ष के सार दिखाई देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुख के भी साधन होते हैं।

१७६०) बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-निग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक न बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता-ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

१७६१) जो विद्वान पुरुष (आंख, कान आदि) नौ दरवाजेवाले, तीन (वात, पित्त तथा कफरूपी) खंभोंवाले, पांच (ज्ञानेन्द्रिय रूप) साक्षीवाले, आत्मा के निवास स्थान इस शरीररूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

१७६२) दस प्रकार के लोग धर्म को नहीं जानते, उनके नाम सुनो- नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा,

जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी। ये दस हैं। अत: इन सब लोगों में विद्वान पुरुष आसक्ति न बढ़ावे।

१७६३) कौआ किसका धन चुराता है और कोयल किसको क्या देती है। वह तो अपने मीठे शब्दों को ही सुनाकर सारे संसार को अपना बना लेती है। अर्थात वाणी का ही महत्त्व होता है। विनम्र और मधुर बोलकर सभी को अपना बनाया जा सकता है अन्यथा कौआ क्यों नहीं ऐसा कर पाता। कौआ और कोयल एक जैसे लगते हैं। जब तक वे बोलते नहीं, उनमें भेद करना कठिन है। बसन्त ऋतु में इसका निर्णय स्वत: हो जाता है। काक अपने कर्कश स्वर से अपनी पहचान करा देता है और बसंत का दूत कोकिल अपने मधुर स्वर से सारा आम्रवन ही गुंजित कर देता है। बाह्य रूप-आकार भीतर को प्रकट करने में छल सकते हैं, लेकिन वाणी आन्तरिक सुषमा का प्रतीक है। मधुर बोलना और कड़वा बोलना बिना ही श्रम के भाग्य और अभाग्य को बुलाना (निमंत्रण देना) है। कोयल कुहू-कुहू की ध्वनि करती है (तो सब उसका आदर करते हैं) और कौवा कांव-कांव कर्राता है (तो लोग उसे पत्थर मारकर उड़ा देते हैं) अर्थात् जो लोग मीठी बोली बोलते हैं, वे सबके प्रेम और प्रशंसा के पात्र बन जाते हैं। जिधर भी जाते हैं वहीं उनको प्रेम करने वाले लोग मिल जाते हैं। परंतु कड़वी बोली बोलने वाले से कोई बोलना पसंद नहीं करता बल्कि उससे बोलने में सबको कटु वचन सुनने की आशंका रहती है।

१७६४) जिन शब्दों को बोलने से किसी को दुख न पहुंचे उन्हीं शब्दों को बोलो। जिन शब्दों के बोलने से तपता हृदय (क्रोध) भी शीतल हो जाए अर्थात क्रोध शांत हो जाए वही शब्द तत सार (न्यायसंगत) है अर्थात ऐसे ही शब्दों का उच्चारण सदा करें और किसी को भी गलत बोलकर कष्ट न पहुंचाएं।

१७६५) न केवल मनुष्यों पर बल्कि सृष्टिगत जितने भी जीव हैं उन पर संगत का विशेष प्रभाव पड़ता है। एक किंवदंति भी है कि एक सिंह शावक जब भेड़ों के समूह में रहने लगा तो उसका रहन-सहन, आचार-व्यवहार भी भेड़ जैसा ही हो गया। इसी तरह मनुष्य भी जैसी संगत करता है, उसके संस्कार भी वैसे ही हो जाते हैं। यदि कोई दुष्ट की संगत करता है तो वह दुष्ट स्वभाव का हो जाता है, इसके विपरीत संत की संगत करने पर साधु स्वभावी हो जाता है। सारत: संगत से ही संस्कार प्रभावित होते हैं।

१७६६) संगत का प्रभाव न केवल जीवों पर बल्कि अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता है। जब भी संगत करो तो संतजन की ही करो। इसी से जीवन कल्याणमय होगा। जबकि असंत की संगत करने से जीवन नारकीय बनता है।

१७६७) संतजनों की संगत करनेवाला ही उसके महत्त्व को समझ सकता है। जिस प्रकार चंदन का वृक्ष अपनी गंध से आस-पास के सभी वृक्षों में अपनी गंध फैलाकर उन्हें भी चंदन के वृक्ष होने जैसा आभास दिलाता है, वैसे ही संतजनों की संगत से जीव में उनके गुणों का प्रभाव आ जाता है। किंतु बांस के वृक्ष में यह गुण नहीं होता। वह ऊपर से जितना कठोर दीखता है, अंदर से उतना ही खोखला होता है।

१७६८) जिस घर में गुरु भक्ति को स्थान नहीं दिया जाता तथा संतजनों को अतिथि बनाकर घर नहीं बुलाया जाता अर्थात पूजा-पाठ, सत्संग आदि नहीं किया जाता उस घर में तो समझो सदा यम (मृत्यु देवता) का डेरा रहता है और वह घर जीवितावस्था में रहनेवाले लोगों के बाद भी श्मशान घाट की तरह है।

१७६९) चंदन के वृक्षों पर लिपटे रहने के बाद भी सांप के शरीर से चंदन की गंध न आए तो इसमें चंदन का दोष नहीं है। यह तो सांप के विष का प्रभाव है जो उस चंदन की गंध को सांप में समाने नहीं देता। आशय यह है कि यदि मानव संतजनों की संगत में जाने के बाद भी नहीं सुधरता है तो यह उसके अंदर के विष (दोष) का प्रभाव है।

१७७०) जो गुरु के देश में बसता है अर्थात गुरुज्ञान के अनुसार ही स्वयं को ढाल लेता है, उसे ही सफलता की सुखद अनुभूति होती है। वह कौए से हंस बन जाता है और जातिवाद, वर्ण आदि के भेदभाव से ऊपर उठ जाता है।

१७७१) केवल ऊंची जाति में जन्म लेने मात्र से ही कोई कुलीन नहीं हो जाता। मानव को समाज में कुलीनता उसकी करनी (कर्म) ही दिलाती है। यदि सोने के कलश में मदिरा (शराब) भरी हुई है तो वह संतजनों की दृष्टि में गिरा ही रहेगा, वह उन्हें हाथ भी नहीं लगाएंगे।

१७७२) कुसंगति कभी भी मत करो। पत्थर पर बैठकर नदी को पार नहीं किया जा सकता। स्वाति की एक बूंद केले पर गिर जाए तो वह कपूर बन जाती है। सीप में गिरे तो मोती तथा सांप के मुख में गिरे तो विष का रूप धारणकर लेती है अर्थात संगत मात्र के असर से ही बूंद का स्वभाव बदल जाता है।

१७७३) जब दो ज्ञानी मिलते हैं तो ज्ञान के अमृत रस की खूब बरखा होती है और लोग उस ज्ञान रस को लूट (अंगीकार) कर

लाभान्वित होते हैं। किंतु जब ज्ञानी को अज्ञानी मिल जाता है तो केवल माथा कूट (व्यर्थ की) बातें ही होती हैं।

१७७४) जिस प्रकार गंगा में स्नान करने से सभी पापों का क्षय हो जाता है। उसी प्रकार संतजन रूपी गंगा में गोता लगाने से जीवन की कलुषता दूर हो जाती है।

१७७५) संतजनों की संगत को छोड़कर जो विषय (बुरी) संगत करता है अर्थात सांसारिक मोह-माया के पीछे भागता फिरता है, वह उस मूर्ख की तरह है जो घर के पास बहती पवित्र गंगा का जल छोड़कर उसके बगल में ही कुआं खोदकर पानी निकालता है।

१७७६) सत्य की महिमा अकथनीय है। इसका वर्णन सामान्यजन के वश की बात नहीं। इसीलिए सांसारिक जीव सत्य से विमोहित होकर असत्य का ही आवलंबन लेते हैं। अर्थात जागतिक माया ही उसके लिए सत्य है।

१७७७) सच कहता हूं तो यह जग मारने को आता है और झूठ कहता हूं तो तुरंत विश्वास कर लेता है। वास्तव में यह जग तो उस काली कुतिया के समान है जिसे अगर कोई छेड़ता है तो वह उसे काटने को आती है। अर्थात कुछ स्वार्थी लोग झूठ का सहारा लेकर आगे बढ़ते हैं और भेद खुलने के भय से सत्य को नकारते हैं।

१७७८) तेरे अंदर जो सचाई की भावना है उसे बाहर निकालकर लोगों को मत दिखा अर्थात सत्य का प्रदर्शन मत कर। दिखावा तो केवल झूठे लोग ही करते हैं। जाननेवाले स्वयं ही जान जाएंगे कि तू कितना सत्यवान है। पारखी लोग अंतर्ज्ञान (सत्य) को स्वयं ही पहचान लेते हैं।

१७७९) हे मानव। जब तक जीवन है सत्य का ही अनुसरण कर। मिथ्या वाचन मत कर। सदैव सत्य का ही अनुशीलन करते रहने से भवबंधन से निश्चय ही मुक्ति मिलेगी।

१७८०) जब एक सत्यवादी से दूसरा सत्यवादी मिलता है तो उनमें परस्पर स्नेह की वृद्धि होती है। किंतु जब किसी झूठ बोलनेवाले से सत्य बोलनेवाले का मिलन हो जाता है तो उनमें प्रेम-भावना शीघ्र ही टूट जाती है अर्थात झूठ और सच का मिलन कभी नहीं हो सकता।

१७८१) संसार की लोक-लज्जा में पड़कर क्यों सचाई का साथ छोड़ रखा है ? सच बोलने से क्यों डरता है ? इस तरह तो तूने सबकुछ जानते हुए भी कंचन (स्वर्ण) को त्यागकर कांच को पकड़ रखा है। अर्थात सचाई के मार्ग को छोड़कर झूठे के मार्ग पर चलना तो मूर्खता है।

१७८२) सच कहने पर यह संसार मारने को आता है बिल्कुल तुरकानी जोर की भांति। जब भी मैं सतलोक की बातें करता हूं तो लोग चोर कहकर मुझे पकड़ लेते हैं। अर्थात मोह-माया के स्वार्थी लोगों के हित झूठ से ही जुड़े होते हैं इसलिए वह सत्य से दूर भागते हैं।

१७८३) यदि गुरु से सद्ज्ञान की प्राप्ति नहीं की तो सत्याचरण का कोई मोल नहीं है। इसलिए सत्याचरण के साथ ही सत्य का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए।

१७८४) सत्य का ज्ञान न होने से ही सचाई में कोई भी विश्वास नहीं करता जबकि झूठ पर सभी जल्दी से विश्वास कर लेते हैं। गाय का दूध तो गली-गली में घूमकर बेचना पड़ता है जबकि मदिरा (शराब) एक ही जगह पर बैठे-बैठे बिक जाती है। अर्थात सत्यरूपी दूध को तो अपने चाहनेवालों के पास जाना पड़ता है किंतु झूठरूपी मदिरा के चाहनेवाले उसके पास स्वयं आ जाते हैं।

१७८५) अब तो हम कंचन हो गए हैं किंतु पहले हम कांच के समान थे। जब सत्गुरु ने सत्य ज्ञान की किरण हमारे ऊपर डाली तो हमारा हृदय सच्चाई की रोशनी से जगमगा गया और तन कांच (झूठ) से कंचन (सत्यवादी) हो गया।

१७८६) कंचन तो केवल हरि भजन (परमेश्वर का ध्यान) है। बाकी सब तो कांच के समान है। संसार के सभी जंजाल (मोह-माया लालसा आदि) त्याग दो। यह सब झूठ के मार्ग पर ले जाते हैं। इन्हें छोड़कर केवल सच्चाई का दामन पकड़ लो।

१७८७) माता-पिता, भाई-बंधु, पत्नी आदि सांसारिक बंधन (रिश्ते) साधु दर्शन में गतिरोध पैदा करते हैं। इन मोह-माया के चक्करों में पड़कर मानव साधु-दर्शन से वंचित रह जाता है। उसे इस बात का भय होता है कि साधु-दर्शन से यह बंधन (रिश्तेदार, संबंधी) उसका सामाजिक बहिष्कार कर सकते हैं। मानव को इन सब बंधनों से मुक्त होकर निर्भय मन से साधु दर्शन कर लेने चाहिए।

१७८८) घर आए साधु को कभी भी खाली हाथ विदा न करें। उन्हें हर हाल में कुछ भेंट अवश्य देनी चाहिए। इस बात का संकोच मत करो कि घर में कम है या हम गरीब हैं। भक्ति भाव से दिया गया छोटा-सा दान भी साधु को प्रसन्न करेगा और आपका जीवन सफल होगा। साधु जब विदा होने लगे तो रो दीजिए अर्थात उन्हें इस बात का आभास कराइए कि उनके जाने से आप दुखी हैं। उनको

बहुत मान-सम्मान के साथ विदा करें। जो भी आपका सामर्थ्य है उसके अनुसार उन्हें दान अवश्य दें, खाली हाथ न भेजें।

१७८९) यदि इस संसार से पार पाना चाहते हो अर्थात मोक्ष की कामना करते हो तो संतजनों को कभी भी भोजन, वस्त्र आदि के लिए मना मत करो। भले ही स्वयं को उनके चरणों में त्यागना पड़े तो त्याग दो। यदि आपके पास एक ही रोटी है तो उसमें से भी आधी साधु को दे दो और आपके पास ओढने को एक ही कपड़ा है तो उसे भी आधा संतजनों को दान कर दो। संतजनों को कुछ भी देने में संकोच न करें। यदि अपने भाग्य का भी कुछ उन्हें देना पड़े तो नि:संकोच दान कर दो।

१७९०) साधु मात्र एक शब्द नहीं है। यह तो पूरा समुद्र है जिसमें अपार रत्नों का भंडार समाया हुआ। मूर्ख व अज्ञानी लोग संतजनों के मिलने पर भी कुछ अर्जित नहीं कर पाते। उनके हाथ में केवल कंकड़ (पत्थर) ही आते हैं।

१७९१) साधु एक वृक्ष के समान है और उनका ज्ञान फल के समान। उनके शब्द विचार (अमृतवाणी) शीतल छाया का अभास देते हैं। जो इस वृक्ष के नीचे आता है वही उसके फल और छाया को ग्रहण करता है। यदि जग में साधु नहीं होते तो यह जग अज्ञानता की आग में जलकर भस्म हो जाता।

१७९२) साधु बड़े ही परमार्थी होते हैं जैसे बादल घोर वर्षा कर औरों की तपन को शांत करते हैं वैसे ही साधु भी अपनी अमृतवाणी से लोगों के मन को शांत करते हैं। संतजन पारस बनकर लोगों को कंचन (सुखी) बना देते हैं।

१७९३) क्या आकाश के विस्तार का कोई माप है, क्या धरती का कोई भार ज्ञात है ? क्या साधु की कोई जाति है ? क्या पारस का कोई मूल्य है ? अर्थात हमें वास्तविकता से सरोकार रखना चाहिए। कभी भी साधु की जाति नहीं देखनी चाहिए, बल्कि हमें केवल उसके ज्ञान से मतलब होना चाहिए। साधु बनने के बाद मनुष्य का ज्ञान ही उसकी पहचान बन जाती है। साधु की जात पूछकर क्या करोगे ? उसका तो ज्ञान पूछो। तलवार का मूल्य पूछो, म्यान को पड़ा रहने दो। जैसे तलवार की तुलना में म्यान का कोई महत्त्व नहीं होता, उसी प्रकार साधु का ज्ञान के बिना कोई महत्त्व नहीं होता। उसकी जाति का भी कोई महत्त्व नहीं होता।

१७९४) साधु, सती (पतिव्रता स्त्री) तथा सिंह का व्रत जितना अधिक बड़ा (अधिक दिन का) होगा वह उतना ही अच्छा होगा। जिस तरह सिंह कभी मेंढ़क को अपना शिकार नहीं बनाता, उसी प्रकार साधु भी कभी लोभ- लालच में नहीं बंधता।

१७९५) साधु तो हीरे की तरह अनमोल रत्न होता है, क्योंकि हीरे पर कितनी भी गहरी चोट की जाए वह टूटता नहीं। उसी प्रकार साधु पर कितना भी गहरा संकट क्यों न आ जाए वह घबराता नहीं है। बल्कि संयत होकर उस संकट का समाधान खोज लेता है। वह कच्चे कुंभ (मटके) के समान नहीं होता जो जरा-सी चोट लगने पर भी टूट जाता है।

१७९६) जैसी चाल संसार चलता है वह संतजनों के चलने योग्य नहीं होती अर्थात संतजन सांसारिक व्यवहार तथा कर्मों से अपने आप को अलग ही रखते हैं। डिंभ (लालच, कपट) चाल चलनेवाले कभी भी साधु नहीं होते। भले ही वह साधु का आवरण ओढ़ लें।

१७९७) जिस समय बछड़ा अपनी मां (गाय) के थन से दूध पीता है तो वह केवल दूध ही पीता है, रक्त को नहीं पीता। ऐसे ही साधु भी अवगुणों को छोड़कर केवल गुणों को ही ग्रहण करते हैं। यही एक अच्छे साधु का लक्षण है।

१७९८) बहता हुआ पानी सदा निर्मल (साफ-सुथरा) होता है तथा बंधा पानी (एक ही जगह रुका हुआ पानी) गंदा होता है। इसी तरह संतजन भी रमते (घूमते-फिरते) ही भले होते हैं। इस तरह वह ज्ञान उपदेश को भी फैलाते रहेंगे तथा कोई उन पर दाग भी नहीं लगा पाएगा अर्थात मोह-माया में भी नहीं बांध पाएगा। यदि बंधा पानी गहरा हो तो वह निर्मल या पवित्र होता है। इसी तरह यदि साधु को गहन ज्ञान हो और वह एक ही स्थान पर रहने लगे तो उचित ही है। क्योंकि वह अपने ज्ञान के द्वारा जनकल्याण करता है।

१७९९) तारे और चंद्रमा जल में छाया के प्रतिरूप में मछलियों के साथ रहते जरूर हैं किंतु जाल में केवल मछलियां ही फंसती हैं। इसी तरह साधु इस संसार में साधारणजन के साथ रहते हुए भी सांसारिक मोह-माया, लालसा में नहीं फंसते।

१८००) ढोल, नगाड़े, शहनाई, तुरही (एक प्रकार का बाजा) आदि से निकलनेवाला स्वर जिस प्रकार उसमें वापस नहीं जा सकता उसी प्रकार संतजन, सती (पतिव्रता स्त्री) तथा शूरवीर कभी अपने मार्ग से भटकते नहीं हैं अर्थात अपने संकल्प के प्रति दृढ़ रहते हैं।

१८०१) नट की रस्सी यदि बीच आकाश में खेल दिखाते समय टूट जाए तो उसे कौन झेल सकता है ? किंतु संतजनों, सती और शूरवीर का खेल तो उनसे भी ऊपर का है अर्थात इनकी तपस्या तो इतनी कठिन है कि साधारण मानव तो इस बारे में सोच भी नहीं सकता।

१८०२) पूरे वन में सभी वृक्ष चंदन के नहीं होते तथा शूरवीर कभी भी दल-बल के साथ नहीं होते। इसी भांति पूरे समुद्र में सिर्फ मोती ही भरे हुए नहीं होते, मोती तो केवल ढूंढने से ही मिलते हैं। ऐसे ही साधु तो जग में बहुत होते हैं किंतु ज्ञानी, ध्यानी तथा परमार्थी साधु बहुत ही कम मिलते हैं।

१८०३) इस संसार में कोई भी किसी का नहीं होता। न कोई हमारा है, न ही हम किसी के हैं। जिस प्रकार नाव में बैठे यात्री कुछ पल को तो साथ होते हैं, किंतु नाव के किनारे लगते ही एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं अर्थात अपनी-अपनी राह चल देते हैं। अत: कभी भी मोह बंधन में नहीं बंधना चाहिए।

१८०४) संतजनों से जब मिलन होता है तो सुख की अनुभूति होती है किंतु दुष्टजन जब मिलते हैं तो दुख और कष्ट ही लेकर आते हैं। अत: उनसे दूर ही रहना चाहिए तथा संतजनों की सच्चे दिल से संगत करनी चाहिए। इससे हमारा जन्म (उनकी कृपादृष्टि से कटेगा) कृतार्थ हो जाएगा।

१८०५) आजकल के लोग तो ऐसे हैं कि जो मिलकर जरूर बिछुड़ जाएंगे। उनमें अपनापन तो बिल्कुल भी नहीं है। वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण ही ऐसा करते हैं। किंतु राम की झूठी कसमें भी खा लेते हैं कि उनमें अपनत्व की भावना है और वह मिलना चाहते हैं।

१८०६) संतजनों से समागम (मिलन) ही परम सुख है। बाकी सब तो व्यर्थ की बातें हैं। भोग-विलास आदि तो अल्प समय के सुख हैं। लोगों को इनके पीछे नहीं भागना चाहिए। हंस सदैव सरोवर में ही जाता है किंतु बगुले दर-दर की ठोकरें खाते हैं अर्थात सदैव हंस बनकर साधुरूपी सरोवर में ही जाना चाहिए।

१८०७) संतजनों की संगत अवश्य करनी चाहिए। उनकी संगत कभी भी निष्फल नहीं जाएगी। जिस तरह पारस के स्पर्श मात्र से लोहा कंचन (सोना) हो जाता है, उसी प्रकार संतजनों की संगत से जीव भी कंचन (पवित्र) हो जाता है।

१८०८) संतजनों में किसी प्रकार की कोई आशा नहीं होती। सांसारिक मोह-माया-आशा का वह त्याग कर देते हैं। उनके लिए मान-अपमान भी कुछ नहीं होता, वह इन सब से बहुत ऊपर होते हैं। वह न तो कुछ पाने पर हर्षित होते हैं, न ही कुछ खोने का शोक मनाते हैं। वह किसी की निंदा भी नहीं करते। यह सब गुण संतजनों में ही होते हैं।

१८०९) जब आप संतजनों के दर्शन को जाते हैं तो जितने पग (कदम) आप चलते हैं उसका फल आपको मिलता है। हर पग आपका एक अश्वमेध यज्ञ के समान फल देता है। अत: संतजनों के दर्शन अवश्य करने चाहिए।

१८१०) संतजनों की विचारधारा गजराज के समान होती है जो सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होता है। जिस प्रकार गजराज मुक्त भाव से मस्त होकर चलता है और भौंकनेवाले कुत्ते की भी परवाह नहीं करता। उसी प्रकार संतजन भी अपनी विचारधारा पर स्थिर रहते हैं। चाहे बुरी प्रवृत्ति के लोग कुछ भी बोलते रहें वह उनकी परवाह नहीं करते।

१८११) इस संसार में बढ़ते पापों से मुक्ति संतजन ही दिलाएंगे, वही इस जग को पार लगाएंगे। अब वह यह आज कल करें, पांच दिन में करें, पांच वर्ष में या पांच युग में- जब भी करेंगे साधु ही करेंगे, बाकी सब तो प्रपंच (पाखंड) है।

१८१२) जलाशय, वृक्ष, संतपुरुष, वर्षा आदि परोपकार के लिए ही हैं। जलाशय से अन्य लोग प्यास बुझाते हैं, वृक्ष फल प्रदान करता है, संतजन ज्ञानदाता हैं तथा वर्षा के कारण ही अन्नादि उत्पन्न होते हैं। सारत: इन चारों की प्रकृति परोपकार ही है।

१८१३) राम का नाम जपनेवाला वह दरिद्र भी भला है जिसके घर की छत टूटी हो। किंतु उस कंचन मंदिर (सोने का मंदिर) में आग लगा दो जहां सत्गुरु के ज्ञान का सत्संग नहीं होता। अर्थात मंदिर से तो वह झोंपड़ी अच्छी है जहां हृदय से भगवान को स्मरण किया जाता है।

१८१४) राम नाम तो केवल एक ही है किंतु यह हजारों पापों को भी धो डालता है अर्थात उस परमेश्वर का नाम लेने भर से हमारे सारे पाप धुल जाते हैं। जिस प्रकार आग की छोटी-सी चिनगारी भी बहुत बड़े अग्निकांड को जन्म दे सकती है। उसी प्रकार केवल राम का नाम ही जीवन को पार लगा देता है।

१८१५) ऊंचे कुल के अहंकार में लोग इस संसार को ही भूल जाते हैं। उन्हें यह सोचना चाहिए कि तब उनके ऊंचे कुल की क्या लाज रहेगी, जब यह शरीर छार (जलकर भस्म) हो जाएगा। अर्थात ऊंचे कुल का अहंकार क्या करना। मृत्यु पश्चात तो सभी को इस मिट्टी में ही मिल जाना है।

१८१६) लेने के लिए तो इस जग में हरि नाम ही सर्वोत्तम है और देने के लिए अन्न का दान सबसे अच्छा माना जाता है। इस भवसागर से पार पाना है तो दीनता (नम्रता) से बढ़कर कुछ भी नहीं है; और डूबकर मरने के लिए अभिमान ही पर्याप्त है। अत: कभी भी अपने मन में अभिमान को जन्म न लेने दे।

१८१७) बगुलेरूपी ढोंगी तो कई मिल जाएंगे। धन के लालची, अभिमानी भी अनेक मिलेंगे। लेकिन मान-अपमान से रहित सहज जीवन जीनेवाला लाखों में कोई एक ही होता है।

१८१८) माया अर्थात धन, दारा (पत्नी), सुत (पुत्र) व अन्य सुखोपभोग का त्याग करना तब तक व्यर्थ ही है जब तक अहंभाव का त्याग नहीं किया जाए। अहंभाव का त्याग विरला ही कर पाता है। इस अहंभाव ने तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक को भी पथच्युत कर दिया।

१८१९) तेरा-मेरा, अपना-पराया, व एक-दूसरे के प्रति आकर्षण का भाव ही मोह है। यह कैसी विडंबना है कि प्रत्येक जीव इस सत्य से भली-भांति परिचित है कि एक दिन वह मृत्यु का ग्रास अवश्य बनेगा तथा वह जीव जिसके प्रति वह मोहभाव रखता है, वह भी नहीं बचेगा, तब भी जीव मोहजाल में आबद्ध रहता है। सृष्टि में जो कुछ भी दृश्य-अदृश्य है वह भी नाशवान है। पर मोह का मकड़जाल दिनोदिन कसता ही जाता है।

१८२०) मोह के वशीभूत होकर जीव अनेक प्रकार के कृत्य-दुष्कृत्य करता रहता है। सद्मार्ग का त्याग कर असद् मार्ग का अनुसरण करता है। रिश्ते-नातों के एक ही झटके में टूट जानेवाले धागे को इस तरह कसकर पकड़े रहता है, मानो वह कभी नष्ट ही नहीं होगा।

१८२१) सुर, नर, मुनि सभी इस जग में मृगतृष्णा के मोह में फंसे हुए हैं, जिसमें से निकलने का उन्हें कोई भी मार्ग दिखाई नहीं दे रहा है। वास्तव में सारा संसार ही मोह का रूप धारण किए हुए है और सभी लोग इस मोह के अथाह समुद्र में गहराई तक डूबे हुए हैं।

१८२२) इस संसार में न तो कोई अपना है और न ही हम किसी के हैं। फिर भी लोग मोहजाल में फंसे रहते हैं। नाव में बैठे यात्री नाव के पार लगते ही बिछुड़ जाते हैं अर्थात यह जग तो आने-जाने, मिलने-बिछुड़ने के लिए ही है। फिर संसार से मोह किस बात का किया जाए।

१८२३) इस मोहरूपी नदी की तेज धारा में तो अच्छे-अच्छे कुशल और ज्ञानी, ध्यानी भी बह गए। किंतु छोटी-सी मछली तो धारा की विपरीत दिशा में भी तैर जाती है। अर्थात जो अपनी साधना से मोह पर विजय पा लेता है वह इस जग में सबकुछ पा लेता है।

१८२४) मात्र मोह के कारण ही भरत मुनि को दो देह धारण करनी पड़ी थीं। किंतु वह नर कैसे छूटेगा (मुक्त होगा) जिसके बहुत सारे स्नेह (मित्र, संबंधी) हैं। अर्थात जितना अधिक मोह बंधन होगा उतनी ही विपदाएं सिर उठाएंगी। अत: मोह की भावना से अपने हृदय को मुक्त रखो।

१८२५) इस जग में कोई भी अपना नहीं है। यह मैंने अच्छी तरह से ठोंक-बजाकर देख लिया है। अपना-अपना कहना व्यर्थ है। यहां कोई किसी का साथ नहीं देता है। व्यर्थ में ही मोह भ्रम में पड़कर लिपट रहे हो, जानेवाले ने तो छोड़कर जाना ही है।

१८२६) काम, क्रोध की भांति लोभ भी जीव का सबसे बड़ा शत्रु और नरक का पंथ है। जितना है उतने में संतुष्ट न रहकर और अधिक पाने की लालसा में लोभी जीव सदैव उलटे-सीधे कर्म करता रहता है। लोभ के वशीभूत हो वह हित-अहित को अनदेखा करता रहता है। उसका लक्ष्य अधिकाधिक प्राप्ति का रहता है। कलह का मूल कारण भी लोभ ही है।

१८२७) लोभी व्यक्ति की यह प्रवृत्ति रहती है कि दूसरे के पास जो कुछ है उसे भी हड़प ले। लोभ या लालच में लिप्त व्यक्ति सदैव अशांत मना, लज्जाहीन व क्रूर होता है। वह रात-दिन अधिकाधिक पाने की उधेड़बुन में ही लगा रहता है। इसी कारण वह रात की नींद व दिन का चैन भी गंवा बैठता है। इतने पर भी उसकी लोभवृत्ति शांत नहीं होती।

१८२८) लोभी सबकुछ संग्रहण करके भी उसका लाभ स्वयं नहीं उठा पाता। उसके द्वारा संग्रहीत धनादि का उपभोग अन्य लोग ही करते हैं। क्योंकि उसको तो लोभ करने से ही अवकाश नहीं। लोभ के फेर में एक दिन ऐसा भी आ जाता है जब वह काल का ग्रास बन जाता है। लोभ नरक का द्वार है इस द्वार में प्रविष्ट न होकर संतानुसरण करके जीवन का कल्याण करें।

१८२९) जब मनुष्य के मन में मोह-माया का लोभ आ जाता है तो वह विषय विकारों (काम-वासना) में पड़ जाता है और तब उसे किसी भी चीज का ध्यान नहीं रहता। वह व्यक्ति तो बस, इसी चक्कर में पड़ा रहता है कि किस प्रकार अधिक-से-अधिक धन अर्जित किया जाए।

१८३०) मानव की खोपड़ी (मस्तिष्क) ऐसी औंधी (उलटी) है कि इसमें धन का मोह सदा ही रहता है। मानव (लोभी) के मस्तिष्क में सदैव यही विचार रहता है कि किस तरह तीनों लोकों की संपदा उसके हाथ लग सकती है। जिस दिन उसकी यह सोच समाप्त हो जाएगी, वह संतों की श्रेणी में आ जाएगा अन्यथा लोभी ही रहेगा। कभी भी उसके धन संग्रह की प्यास नहीं बुझेगी।

१८३१) लोभी बहुत ही जतन (प्रयत्न) करके धन का संग्रह करता है किंतु अंत में उसे उस धन का फल प्राप्त नहीं होता। लोभी (कंजूस) कितना ही धन संग्रह कर ले-अंततोगत्वा में उसे चोर-उचक्के ही लूट कर ले जाएंगे और वह हाथ ही मलता रह जाएगा। अर्थात धन तो किसी का भी नहीं होता। अत: धन का मोह भी मत करो।

१८३२) शब्द के यहां दो अर्थ हैं। एक शब्द का अर्थ प्रिय वचन है और दूसरा अर्थ है आदिशब्द। आदिशब्द अविनाशी है और युगों-युगों से सर्वत्र व्याप्त है। सृष्टि समाप्त हो जाती है लेकिन इस शब्द का कभी विनाश नहीं होता। वही आदिशब्द घट-घट में व्याप्त है, जिसे अनहद नाद भी कहा जाता है। इस शब्द (अनहद नाद) का ज्ञान मनुष्य को तभी हो पाता है, जब वह सद्गुरु की शरण ग्रहण करता है।

१८३३) शब्द-शब्द तो हर कोई बोल लेता है किंतु शब्द क्या है ? इस पर कोई विचार नहीं करता। अर्थात शब्द की गंभीरता को कोई नहीं समझता। शब्द-शब्द में अंतर होता है। एक शब्द (अमृतवाणी) लोगों को शीतल करता है और एक शब्द (कुविचार, गाली-गलौज) लोगों को जार (जला देना) कर देता है।

१८३४) अगर ढंग से बोलना जानते हो तो शब्द के समान कोई भी धन नहीं है। हीरा खरीदने के लिए तो दाम (मूल्य) देना पड़ता है। किंतु शब्द अनमोल होते हैं, इनका सौदा नहीं किया जा सकता। अर्थात सदैव अच्छा बोलें और मान सम्मान प्राप्त करें।

१८३५) एक शब्द (सुविचार) तो सुख की खान (भंडार) है और एक शब्द (बुरे विचार, गलत बोलना) दुखों को आमंत्रित करता है। यही तो शब्द-शब्द का भेद है। जो अपने विवेक से ही सही शब्दों को चुनते हैं, ज्ञान, ध्यान, सुविचार को अपनाते हैं वह सभी बंधनों से मुक्त हो जाते हैं और बुरे शब्दों को पकड़कर उनके पीछे चलने पर वही शब्द उनके गले की फांसी बन जाते हैं।

१८३६) जो ज्ञानरूपी शब्दों को खोजता है, उनको अंगीकार करता है, वह संत जन धन्य है। जो शब्द को धारण करता है वह कभी भी गलत मार्ग पर नहीं जा सकता अर्थात वह सदा अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करता है।

१८३७) शब्द की यही महानता है कि उसमें चुम्बक जैसा गुण होता है। जिस तरह चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार शब्द लोगों को अपनी ओर खींचकर उन्हें सासांरिक बंधनों से मुक्त करते हैं। बिना सत्य ज्ञानरूपी शब्दों के उबरना (कल्याण) संभव नहीं है, भले ही कितने भी उपाय कर लिए जाएं।

१८३८) कभी भी कुटिल वचन मत बोलिए। शीतल (नम्र) वचनों को पहचानो और उन्हीं को बोलो, सदा सुखी रहोगे। गंगाजल को देखो कि कितना शीतल और पवित्र है। इसी शीतलता और पवित्रता के कारण गंगा नदी ने पहाड़ों को भी चीरकर अपना मार्ग बना लिया। अर्थात नम्र वचनों से हर कठिन कार्य को पूर्ण किया जा सकता है।

१८३९) लगी-लगी क्या करते हो, ठोकरें तो इस जग में लगती ही रहती हैं। किंतु लगी हुई इन ठोकरों से तो तभी लाभ है, जब इससे तुम्हारे अंदर के सभी विकार बाहर निकल जाएं। अर्थात इधर-उधर ठोकरें खाकर स्वयं को कष्ट पहुंचाने से अच्छा है कि ज्ञान की ठोकर खाओ ताकि जीवन सुधर जाए।

१८४०) जो सत्य ज्ञानरूपी शब्दों को सीखता, सुनता है तथा उस पर विचार करता है, उसको वह शब्द सुख देते हैं। किंतु जो बिना कुछ सोचे-समझे शब्दों को ग्रहण करता है, वह जीवन में पिछड़ जाता है और उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। अत: सोच- समझकर उचित शब्द ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

१८४१) अहंकारी और मूर्ख लोग जब अपनी कुबुद्धिरूपी कमान पर कुटिल वचनों (अपशब्द) के तीर चढ़ाकर मारते हैं तो वह कानों में बहुत ही तीव्र लगते हैं। उनके इन तीरों का प्रभाव सारे शरीर में होता है और सारा शरीर कष्ट झेलता है। अत: कभी भी अपशब्द बोलकर किसी को पीड़ा न पहुंचाएं।

१८४२) धरती को कितना ही खोदो और उस पर कितना ही प्रहार करो, वह सब सह जाती है। जंगल के पेड़ों पर कितनी ही कुल्हाड़ी मार लो, उन्हें काट-कूट डालो वह भी सबकुछ सह जाएंगे। इसी प्रकार कुटिल वचन (अपशब्द, कुविचार) को साधुजन तो सह जाएंगे किंतु

अन्य लोग यह सब सहन नहीं कर पाएंगे। साधुजन अपनी साधना से सहनशीलता को पा लेते हैं जबकि अन्य लोगों में यह संभव नहीं होता।

१८४३) दुर्जन लोगों के कुटिल और कड़वे वचन सबसे बुरे माने जाते हैं। वह शरीर को जलाकर छार (राख) कर देते हैं। इन वचनों से हृदय में उथल-पुथल मच जाती है और मन अशांत हो जाता हैं। किंतु साधु वचन तो जल के समान हैं जो अमृत धारा बनकर बरसते हैं और मन की इस अग्नि को बुझा देते हैं।

१८४४) मन में शीतलता को तभी जानिए जब सभी के प्रति समता का आचरण हो। मन में किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो। अपने अंदर के विष (विकार) को निकालकर शीतल बनो, भले ही दुखों के दिन देखने पड़ जाएं किंतुयह दुख अल्प ही होते हैं। सुविचार के कारण जल्दी ही सुखों की प्राप्ति हो जाएगी।

१८४५) दुर्जनों के वचन तो शूल बनकर शरीर में बहुत तेज चुभते हैं। किंतु संत जब उन वचनों को सुनकर भी शांत ही रहते हैं और उन वचनों को टाल देते हैं। अगर समुद्र में बिजली गिरे तो उसके प्रभाव से समुद्र जल नहीं जाता। इसी प्रकार संतजन भी इन सब बातों से बहुत ऊपर होते हैं।

१८४६) जिन्हें शब्दज्ञान होता है, उनकी जीभ से तो अमृत की ही वर्षा होती है। उनकी जीभ से निकलनेवाली अमृतवाणी के प्रभाव से तो विष का भी प्रभाव समाप्त हो जाता है अर्थात जो सर्प की भांति कुटिल होते हैं, वह भी इस वाणी के आगे विनम्र हो जाते हैं।

१८४७) जो अपने बोल (शब्द) सोच-विचार कर बोलता है तथा अपने बैठने के लिए सही स्थान का चयन करता है, ऐसा दास (भक्त) जीवन में कभी भी हार नहीं सकता। अर्थात अच्छे बोल और अच्छी संगत से मानव को सदैव सफलता ही मिलती है।

१८४८) इस जग के लोग कर्म (सांसारिक मोह-माया) के फंदे में फंसे हुए हैं। अपने-अपने स्वार्थ हेतु हर कोई जप-तप, पूजन-अर्चन तथा ध्यान आदि कर रहा है। किंतु जिस शब्द (सत्य ज्ञान) से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है, उस शब्द को लोग पहचानने का प्रयास ही नहीं करते हैं।

१८४९) मूर्ख लोग जो भी मुख में आता है उसे बोल देते हैं, उस पर जरा भी विचार नहीं करते। भले ही उन बातों से किसी को कष्ट पहुंचे, उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं रहता। उनकी वाणी (बोल) ऐसी होती है जैसे जीभ पर तलवार बांधी हो और उस तलवाररूपी शब्दों से वह दूसरों को भेद देते हैं।

१८५०) जंत्र-मंत्र-टोटका आदि तो सब झूठ हैं। इनमें पड़कर लोग अपनी मति (बुद्धि) को भ्रमित करते हैं। शब्दों का सार समझे बिना, उसे जाने बिना कौआ हंस नहीं बन सकता अर्थात शब्द ज्ञान के बिना मनुष्य मूर्ख ही होता है।

१८५१) अपने स्वभाव की सहज तराजू पर इस संसार के सभी रसों को तोलकर देख लो। सब रसों में जीभ का रस ही सबसे अधिक वजनदार है। जो जीभ का उपयोग ठीक से करना जानता है उसे बोलने की कला आती है।

१८५२) सत्य ज्ञानरूपी शब्द ज्ञान को जानकर जिसने उस पर विश्वास किया, उसके अनुसार आचरण किया तथा कौए जैसी कुमति को त्यागकर हंस की तरह निर्मल हो गया, उसी ने इस संसाररूपी भवसागर को पार कर लिया अर्थात उसका जीवन सफल हो गया।

१८५३) चार लोगों ने मिलकर चौपड़ खेलनी शुरू की, परंतु पासे भगवान के हाथ में रहे, हार और जीत ईश्वर के हाथ में ही रहती है। इसी प्रकार मनुष्य संसार में अनेक कार्य करता है, परंतु परिणाम विधि के हाथ में ही रहता है।

१८५४) हे मनुष्य। तू मेरी-मेरी क्यों करता है। यह दुनिया तो सराय की भांति है, जिसमें कितने ही लोग रहकर चले गए और कितने ही रहने के लिए आ रहे हैं अर्थात् इस संसाररूपी सराय में किसी का भी अपना कुछ नहीं है। जैसे सराय का सब सामान मुसाफिरों का नहीं होता। जब मुसाफिर सराय छोड़ते हैं तो वह सामान भी वहीं छूट जाता है। इसी प्रकार जब तक मनुष्य जीवित रहता है तभी तक उसका घर-बार, धन-दौलत उसके काम आता है। मृत्यु होने पर कुछ भी साथ नहीं जाता, इसलिए मनुष्य को इस झूठी धन-सम्पत्ति का लोभ, मोह और अहंकार करना श्रेयस्कर नहीं है।

१८५५) जब तक वृक्ष पर फल, फूल और पत्ते रहते हैं, तब तक ही पक्षी उन पर बसेरा करते हैं। पतझड़ आने पर जब पेड़ों में भी आग सी लगने लगती है तो पक्षी उन वृक्षों को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्य के पास सुख-सम्पत्ति रहती है, तभी तक उसके सगे-सम्बन्धी, बंधु -बांधव, मित्र आदि साथ देते हैं। विपत्ति के आने पर सब साथ छोड़कर चले जाते हैं।

१८५६) आगे के समय (भविष्य) और इस समय (वर्तमान) का इतना ही अंतर समझो जैसे लश्कर के चले जाने पर बाद में सूनापन रह जाता है अर्थात् जीवन जब तक रहता है तब तक ही सारे संसार में रौनक महसूस होती है। मृत्यु के बाद तो कुछ भी नहीं रहता, इसलिए मनुष्य को अपने जीवन का सदुपयोग करना चाहिए।

१८५७) युवावस्था में जो वस्तुएं, धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद सुख की खान, आनंदप्रद, कल्याणमयी लगती थीं। वही समय के साथ-साथ वृद्धावस्था आने तक नीरस लगने लगती हैं। जब मनुष्य के जीवन का अंतिम चरण आता है तो पिछले सारे मनोरंजन, आमोद-प्रमोद ऐसे निरर्थक महसूस होने लगते हैं जैसे विवाह से अगले दिन की सुबह को सूनापन होता है।

१८५८) शत्रु यदि मधुर वचन बोलने लगे तो तुम यह मत समझो कि वह तुम्हारे अनुकूल हो गया है। शत्रु मीठा बोलकर हो सकता है और भी अधिक शत्रुता कर रहा हो। वैशाख के गरम महीने में यदि अचानक सर्दी पड़ जाए तो बीमार होने का भय रहता है।

१८५९) जो संसार को प्रसन्न करने की चिंता छोड़ देता है, वही सुखी होता है। संसार को या तो खुश कर लो या स्वयं सुखी हो लो। दोनों में से एक ही काम हो सकता है। जैसे प्रेम करने वाला यदि प्रेम करते समय खाला से भी डरता रहेगा तो प्रेम नहीं निभ सकेगा। प्रेम में तो सारे भय, चिंता एक ओर रखने पड़ते हैं, संसार का डर और आशिकी दोनों का निर्वाह साथ-साथ संभव नहीं है।

१८६०) जो रात-दिन दूसरों के बारे में सोचते रहते हैं वे अपने जीवन में अपना भला नहीं कर पाते। जैसे वेश्या दूसरों को आनंद देने में सारा जीवन बिता देती है। वह अपने भविष्य का नहीं सोचती। यहां तक स्वयं को बांझ बना लेती है।

१८६१) निर्दयी व्यक्ति यदि किसी पर मेहरबानी या दया करता है तो सबको आश्चर्य होता है। दयालु व्यक्ति से दया की आशा होती है परंतु क्रूर से कृपा की आशा नहीं की जा सकती। क्रूर की कृपा में भी कठोरता का पुट होता है, जैसे पान खाते समय तम्बाकू की तिक्तता का स्वाद आता है।

१८६२) ज्ञान होते हुए भी अज्ञानी बनकर सबसे तत्व का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए क्योंकि छोटा बनकर, अज्ञानी बनकर सबसे ज्ञान लेने में लाभ है और स्वयं को बड़ा बुद्धिमान गुरु मानने में हानि है।

१८६३) मनुष्य सोचता है कि मैं ही परिवार का पालन-पोषण करने वाला हूं जबकि पालन-पोषण करने वाला तो कोई और है। जब अंत समय हे मनुष्य। तू कुशा की शय्या पर पैर पसारकर चिरनिद्रा में सो जाएगा तब तेरे कुटुम्ब का पालन-पोषण कौन करेगा ?

१८६४) जो वस्तु जिसके काम की होती है उसी को अच्छी लगती है, जिसको उस वस्तु से कोई काम नहीं होता वह अच्छी होते हुए भी बेकार लगती है। जैसे फल खाने वाले मनुष्य को अनाज से कुछ मतलब नहीं होता।

१८६५) जब मनुष्य को साथ के लोग भी अपनी विचारधारा के अनुकूल मिलते हैं तभी वास्तविक ज्ञान का प्रकाश होता है। जैसे बिना वायु के वृक्षों के फूलों की सुगंध नहीं फैलती।

१८६६) बाहर से देखने में सब लकड़ी एक जैसी लगती है। परंतु जब अगरबत्ती का धुआं वायु में मिलकर सब जगह सुगंध फैलाता है तब उसकी विशेषता पता चलती है।

१८६७) काम मनुष्य के अंदर ऐसी आग लगाता है कि उसका तन-मन जलकर भस्म हो जाता है तथा हृदय चंचल हो जाता है। धर्म और शरम खो जाते हैं तथा मनुष्य को निर्लज्ज बना देता है। जिस व्यक्ति पर काम सवार हो जाता है, उसका तन और मन कामाग्नि में दग्ध रहता है। उसका मन स्थिर नहीं रहता। कामी मनुष्य कभी कुछ सोचता है, कभी कुछ सोचता है। धर्म मर्यादा की सीमाओं का उल्लंघन करने लगता है। उसके मन में लज्जा नहीं रहती। बड़े-छोटे, मां-बहन सभी से अपने मन की बातें खोल-खोलकर बता देता है।

१८६८) जो परस्त्री या परपुरुष के साथ भोग करता है, वह सीधा नरक को जाता है। जो पुरुष अपनी स्त्री को छोड़कर दूसरे की स्त्री के साथ या जो स्त्री अपने पति के अलावा किसी अन्य पुरुष के साथ अपनी वासनापूर्ति करती है, उसे घोर नरक में जाना पड़ता है।

१८६९) जिस मनुष्य की जो तृष्णा होती है, वह उसे अंधा कर देती है। न तो उसे घटना-बढ़ना दिखाई देता है, न उसे काल का डर रहता है। वह तो अंधाधुंध अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहता है। जिसको जिस वस्तु की चाह होती है (धन, वस्त्र, भोजन, सौदर्य-प्रसाधन, आभूषण आदि), वह उसको प्राप्त करने के लिए अच्छे-बुरे सब प्रकार के कार्य मौत की परवाह किए बिना करता चला जाता है।

१८७०) दंभ, मकर, छल-कपट आदि लोभ के साथी हैं। ये जीवन भर मनुष्य को आतंकित करते हैं तथा मृत्यु के बाद नरक में ले

जाते हैं। लालच के कारण आदमी झूठ बोलता है, छल करता है, कपट करता है, मक्कारी करता है तथा प्राप्ति हो जाने पर अभिमान करता है। ये सब पाप मनुष्य को सारा जीवन कष्ट देते हैं, भयभीत रखते हैं तथा मरने पर भी सद्गति नहीं होने देते बल्कि नरक के द्वार तक ले जाते हैं।

१८७१) लोभ में डूबा हुआ मनुष्य चारों ओर भटकता फिरता है। इस भटकन में उसे अनेक कल्पनाओं का सामना करना पड़ता है। चलते समय लालच का खंभा दोनों हाथ फैलाकर उस मनुष्य के पैर में चोट लगाता रहता है। अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हेतु जब व्यक्ति छल, कपट, झूठ आदि का सहारा लेता है उससे क्लेश तो स्वाभाविक रूप से होगा तथा लोभ की अड़चन के कारण बार-बार मन को चोट भी पहुंचेगी।

१८७२) लोभ से मान-प्रतिष्ठा कम होती है तथा मनुष्य संसार के अधीन हो जाता है। लोभ धर्म की हानि करता है। मनुष्य को पथ से भ्रष्ट कर देता है तथा लोभ ही मनुष्य को बुद्धिहीन बना देता है। जो मनुष्य लालची होता है वह कुकर्म करके, छल-कपट करके,झूठ बोलकर भी धन कमाता है। बुरे काम करने से समाज उसे अपमानित करता है। बुरे काम करने से उसे लोगों के आगे झुकना पड़ता है। धर्म को तो छुड़ा ही देता है। अर्थात् धर्म के पथ से हट कर लालची आदमी अपनी बुद्धि को भी खो बैठता है। बुद्धि खोने का अभिप्राय है कि उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक नहीं रहता।

१८७३) जो लोभ पर विजय पा लेता है, उसे संतोष आ जाता है। उसके अंदर त्याग और सत्य का उदय हो जाता है। फलस्वरूप कलह और दुख का निवारण हो जाता है। लालच को छोड़ने से शक्तिशाली संतोष अपने साथ त्याग और सत्य को लेकर हृदय में प्रवेश कर जाता है, जिसके कारण मनुष्य के मन से कलह-क्लेश निकलकर शांति आ जाती है।

१८७४) जिस हृदय में संतोष आ जाता है उसको किसी सांसारिक भोग-ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रहती। वह तो स्वर्ग तक के सुखों को रोग समझने लगता है। जब तक मनुष्य के मन में लालच रहता है तब तक वह संसार के भोगों को ही सर्वोपरि मानकर उनकी चाह करता रहता है। परंतु लोभ के मन से निकलते ही मनुष्य महान त्यागी और संतोषी हो जाता है। उसे संसार के सुख तो क्या स्वर्ग के सुख भी तुच्छ लगने लगते हैं। यहां तक कि वह तो सुख-ऐश्वर्य को रोग एवं बाधा मानने लगता है।

१८७५) अभिमान करने वाला चढ़कर गिर जाता है। वासना के गड्ढे में ऐसा गिरता है कि चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद भी निकलता नहीं है। जो बहुत घमंड करता है, वह चढ़कर फिर ऐसा गिरता है कि उठ ही नहीं पाता। चौरासी लाख योनियों में बार-बार जन्म लेता है फिर मरता है, फिर जन्म लेता है फिर मरता है, इस तरह इस आवागमन के चक्कर से बाहर नहीं निकल पाता।

१८७६) जुआ नहीं खेलना चाहिए और न ही शिकार करना चाहिए। वेश्यागमन भी बहुत नीचता का कार्य है। जुआ खेलने से धनी से धनी व्यक्ति किसी दिन भी निर्धन हो सकता है। पांडवों ने इसी द्यूत क्रीड़ा में अपनी पत्नी तक को दांव पर लगा दिया था। इसी तरह मद्य पीने वाले व्यक्ति को सही और गलत का विचार ही नहीं रहता। उसे अपनी वाणी पर भी कुछ नियंत्रण नहीं रहता। शिकार खेलने से जीवों की हत्या होती है जो महापाप है। वेश्या का साथ करने से धन, तन और मान तीनों की हानि होती है। तन में असाध्य रोग लग जाते हैं, धन वेश्या हरण कर लेती है तथा समाज में अपकीर्ति फैलती है।

१८७७) मन की भावना या श्रद्धापूर्वक यदि लकडी, पत्थर, या धातु निर्मित मूर्ति की पूजा की जायेगी तो सर्वव्यापक परमात्मा अपने भक्त की भावना से प्रसन्न होगे। उस अटूट श्रद्धा से भक्त को कोई न कोई अच्छा फल अवश्य मिलेगा। जड वस्तु मे भी ईश्वर का निवास होता है, ईश्वर को ही वृति मान कर उसका आदर करना चाहिये। अत: जो मनुष्य जिस भावना से मूर्ति पूजन करता है, श्री विष्णु नारायण की कृपा से उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। शास्त्रों के अनुसार अभिष्ट सिद्धी के लिये साधक द्वारा श्रद्धापूर्वक मूर्ति पूजन करना वांछनीय है।

१८७८) विशुद्ध आचार के नियम ही चक्र-दण्ड हैं, इन चक्र-दण्डों की समान दीर्घता ही न्याय है, विवेक ही लोहवलय है, विनम्रता और चिन्तनशीलता ही वे नाभिक हैं, जिनमें सत्य की अटल धुरी जमी हुई है।

१८७९) नित्य धन का लाभ, आरोग्यता प्रियतमा और मधुर भाषिणी स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र और धन लाभ कराने वाली विद्या ये सब विश्व के सुख है।

१८८०) सभी प्राणियों की अपनी अलग-अलग इच्छाये, आकांक्षाये होती है। धनहीन धन की इच्छा करते है। पशु चार पैरों वाले वाणी की इच्छा करते है। मनुष्य सुख भोग की इच्छा करते है। साधारण मनुष्य अन्न व कर्म से मुक्त होने की प्रतीक्षा करते है। उससे भी आगे बढ़ने वाले साधक देवता लोग मोक्ष की आकांक्षा करते है। इस क्षण भंगुर संसार मे धन वैभव का आना जाना अस्थिर है। लक्ष्मी चंचल है। घर परिवार नश्वर है। बचपन, जवानी और बुढापा भी स्वयं आते है और चले जाते है। कोई भी मनुष्य उन्हे अपने बन्धन मे नही बांध सकता। इस अस्थिर संसार मे केवल धर्म ही अचल है। धर्म के नियम ही शाश्वत है उनकी रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य है। अत: समस्त प्राणियों को नश्वर जगत की अनित्य वस्तुओं का मोह त्याग कर स्थिर धर्म के सेवन मे प्रवृत होना चाहिये यही मानव के लिये हितकर है।

१८८१) मैं किसी प्रतिदान की आशा नहीं करता-न ही मैं स्वर्ग में पुनर्जन्म चाहता हूं- परन्तु मैं मनुष्यों के कल्याण की खोज करता हूं, उन लोगों को वापस लाना चाहता हूं जो पथविचलित हो गए हैं, उन लोगों को आलोकित करना चाहता हूं जो भ्रम की निशा में जी रहे हैं, संसार से समस्त पीड़ा और समस्त दु:ख को निकालना चाहता हूं।

१८८२) मैं स्वयं के कल्याण के लिए विश्व के हित-साधन का प्रयास नहीं करता, मैं हित से प्रेम करता हूं क्योंकि यह मेरी आकांक्षा है कि मैं प्राणिमात्र के आनन्द के लिए कार्य करूं। तुम्हारे कष्टों का कारण जो भी हो, पर दूसरों को आहत न करो।

१८८३) जो दयालु व्यक्ति दीन-दुखियों को दान देता है, अभाव पीडित ब्राह्मणों पर दया भाव करके उन्हें श्रद्धापूर्वक दान करता है और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है उसे परम पिता परमेश्वर की कृपा से अनन्त गुना अधिक मिल जाता है। उसके जीवन मे कभी भी अर्थाभाव नही होता, अर्थात जो व्यक्ति अभावग्रस्त पीडित ब्राह्मणों का तथा दीन दुखियों का यथा सम्भव दान देकर सम्मान करते है ईश्वर उन्हें उससे कई गुना देता है अत: ब्राह्मणों को उदारतापूर्वक दान देने मे ही मनुष्य का भला है। इस भू लोक पर सभी प्रकार के दान, यज्ञ, होम तथा बलि कर्म नष्ट हो जाते है, परन्तु सुपात्र को दिया गया दान तथा सभी जीवों को दिया गया अभयदान न कभी व्यर्थ जाता है और न नष्ट होता है। आत्म कल्याण के आकांक्षी को जीवनमात्र को अभय दान देने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये।

१८८४) समस्त प्राणियों के प्रति कल्याण-भावना ही सच्चा धर्म है। समस्त जीवित प्राणियों के प्रति अपने हृदय में अनन्त कल्याण-भावना का पल्लवन करो।

१८८५) तुम्हारा उत्साह विचलित न हो, तुम्हारे अधरों से कोई भी बुरे वचन न निकलें, तुम सदा परोपकार बने रहो, तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण तथा गुप्त द्वेष से रहित हो और तुम इन दुष्कर्मियों को भी अपने प्रेमपूर्ण विचारों से-उदार, गम्भीर, सीमाहीन तथा क्रोध और घृणा से पूर्णतया रहित विचारों से-आप्लावित कर दो।

१८८६) सद्धर्म के प्रमुख लक्षण हैं- सदिच्छा, प्रेम, सत्यनिष्ठा, पवित्रता, अनुभूति की उदात्तता और दया। सभी प्राणी आनन्द की आकांक्षा करते हैं, इसलिए समस्त प्राणियों तक अपनी करुणा का प्रसार करो।

१८८७) धैर्य के साथ सहनशीलता सबसे ऊंची तपस्या है। बुद्धों ने कहा है- निर्वाण सर्वोपरि है। वह विरागी नहीं है जो दूसरों को कष्ट देता है और न वह तपस्वी ही है, जो दूसरों का उत्पीड़न करता है।

१८८८) जो दूसरों को दु:ख पहुंचाकर स्वयं आनन्द पाना चाहता है, वह घृणा से नहीं बच सकता, क्योंकि वह स्वयं को घृणा के पाशों में फंसा लेता है।

१८८९) उसे सम्पूर्ण संसार के प्रति सदिच्छा विकसित करने दो, एक ऐसे मन का विकास करने दो जो सीमातीत (और बन्धुत्वपूर्ण) हो और जो ईर्ष्या और घृणा से विरहित होकर ऊपर नीचे और आरपार निर्विघ्न रूप से परिव्याप्त हो जाएगा।

१८९०) जिस प्रकार एक माता अपने जीवन को भी दांव में लगाकर अपने पुत्र की, अपने एकमात्र पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार जिसने सत्य को जान लिया है, उसे समस्त प्राणियों के मध्य अपनी सदिच्छा का अपरिमित विकास करने दो।

१८९१) जो बुद्धिमान मनुष्य अच्छे गुणों को अपने स्वभाव में समाहित करेगा और उन पर आचरण करेगा वह अपने सब कार्यों मे सफलता हासिल कर सकेगा व विजयी होगा। मनुष्य का सर्वोत्तम गुण तो यह है कि वह सभी गुणों को बुद्धिपूर्वक ग्रहण कर सकता है। जो बुद्धिमान व्यक्ति सिंह, बगुले, मुर्गे, कुत्ते, गधे व कौये के इन सबके (१+१+३+४+५+६=२०) गुणों को भली प्रकार ग्रहण कर लेता है, वह अपने जीवन मे कभी भी पराजय का मुंह नही देखता। उसे जीवन मे सदैव और सर्वत्र विजय की प्राप्ति होती है।

१८९२) परोपकारी व्यक्ति से सभी प्रेम करते हैं, उसकी मित्रता को बहुमूल्य माना जाता है, मृत्यु के समय उसका हृदय आनन्द से परिपूर्ण होकर विश्राम करता है, क्योंकि वह प्रायश्चित का दु:ख नहीं भोगता, उसे अपने पुरस्कार का विकसित फूल तथा परिपक्व फल प्राप्त होता है।

१८९३) इस तत्व को समझना कठिन है कि अपना भोजन दूसरों को देकर हम अधिक बल प्राप्त करते हैं, दूसरों को वस्त्र देने से हमें अधिक सुन्दरता की प्राप्ति होती है। पवित्रता और सत्य के प्रतिष्ठानों की स्थापना करने से हमें महान् कोषों की प्राप्ति होती है।

१८९४) दयालुता के कार्यों के निरन्तर सम्पादन से ही अमरत्व तक पहुंचा जा सकता है। करुणा और परोपकार के द्वारा पूर्णता की उपलब्धि होती है।

१८९५) झूठ बोलनेवाला अनुशासनहीन व्यक्ति सिर मुंडाने से ही तपस्वी नहीं बन जाता। जो कामना और लोभ से भरा हुआ है, वह भला तपस्वी कैसे हो सकता है?

१८९६) जिसने छोटी-बड़ी दोनों प्रकार की बुराइयों का दमन कर लिया है, उसे ही तपस्वी कहा जाता है, क्योंकि उसने सभी बुराइयों को पराजित किया है।

१८९७) यदि स्त्री वृद्धा हो, तो उसे अपनी माता समझ, यदि युवा हो, तो अपनी बहिन, और यदि बहुत छोटी हो, तो उसे अपनी पुत्री मानो।

१८९८) बुद्धिमान मनुष्य कौवे के ये पाँच गुण ग्रहण करते है १) छिपकर मैथुन करना २) चारो ओर अपनी दृष्टि रखना, अर्थात चौकन्ना रहना ३) उचित समय पर भविष्य के लिये संग्रह करना ४) कभी आलस्य न करना ५) किसी पर विश्वास न करना।

१८९९) अपने भीतर पाशविक विचार जगाने या स्त्री की ओर वासनापूर्ण इच्छा से देखने की अपेक्षा प्रदग्ध लोह शलाका से आंखों को निकाल फेंकना अधिक अच्छा है।

१९००) शरीर का संयम अच्छा है, वाणी का संयम अच्छा है, मन का संयम अच्छा है, सर्वत्र संयम अच्छा है। जो संन्यासी सभी में संयम करता है, वह समस्त प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

१९०१) साहसी मनुष्य को अपने पराक्रम का पुरस्कार अवश्य मिलता है। सिंह की गुफा में जाने वाले को सम्भव है कि कभी गजमुक्ता (काले रंग का मोती) मिल जाये परन्तु यदि मनुष्य गीदड की मांद में जायेगा तो उसे गाय की पूंछ और गधे के चमडे के टुकडे के अलावा और क्या मिलेगा ? मनुष्य किसी जगह साहस करता है तो तब ही कुछ महत्वपूर्ण प्राप्त होता है। खतरे से जूझकर बचाव की नीति पर आगे बढ़ने वाला कायर पुरुष कुछ भी प्राप्त करने में समर्थ नही होता। अत: बुद्धिमान व्यक्ति को साहसिक कार्य करते हुये ही महत्वपूर्ण उपलब्धि करने की सोचनी चाहिये।

१९०२) काम का ज्वर सबके लिए भयानक होता है, वह संसार को बहा ले जाता है। जो इसके भंवर में फंस गया है, उसके लिए कोई बचाव नहीं है। किन्तु विवेक एक छोटी नौका है तथा चिन्तन पतवार है। धर्म का सिंहनाद तुम्हें मार (शत्रु) के प्रहार से मुक्त होने के लिए पुकार रहा है।

१९०३) कार्य करनेका प्रयोजन होता है, वह कामसे विलक्षण है। प्रयोजन-पूर्तिका अर्थ है कि उससे जो वस्तु मिले वह अपने साथ रहे, वह अपने साथ मिल जाये। जो छूट जाता है सो काम है, जो अपने साथ मिलकर रहता है वह प्रयोजन है। अपने अधिकार, कार्यकी रूप-रेखा, सामर्थ्य, समझदारी, विहित और प्रयोजन पर ध्यान रखकर ही कोई कार्य करना चाहिए।

१९०४) आज्ञा-पालन धर्म है। आज्ञाका उल्लंघन अधर्म है। धर्मानुसार निश्चयकी स्थिरता जीवनको शक्तिशाली बनाती है। आज्ञाका पालन वासनाको नियमित करता है।

१९०५) आत्मचिन्तन जीवनका मुख्य साधन है। आत्म-चिन्तन व्यवहारका विरोधी नहीं है, निष्काम भावसे व्यवहार करते हुए भी आत्म-चिन्तन हो सकता है। आत्म-चिन्तनके बिना व्यवहारमें दीनता, हीनता, मलिनता का भाव नहीं मिटेगा; अशान्ति दु:ख और मूर्खता बनी ही रहेगी।

१९०६) युद्ध मे कभी भी इन व्यक्तियों पर शस्त्र चलाना वर्जित है :- स्त्री, बालक वृद्ध, ब्राह्मण, पागल, भयभीत मनुष्य आदि, जिस योद्धा का रक्षा कवच टूटा, जो श्रान्त हो गया, थक चुका, जिसके धनुष की प्रत्यंचा टूट गई, जो भूखा प्यासा है, जिसका रथ टूटा है ऐसे

योद्धा को शस्त्र से मारा नही जाता। जिसे पुत्र शोक प्राप्त हो, जो शरण मे आगया हो, जो असावध है, निद्रीस्त या दु:खी है, भजन भक्ति ईश्वर पूजा मे लीन है, सेना का दूत या नौकर है उन पर शस्त्र नही चलाया जाता। घायल शत्रु को उसके शिबिर या घर उपचार के लिये भेजना, पराजित शत्रु को एक वर्ष तक कैद मे रखना बाद मे उसकी रिहाई सम्पत्ति के साथ कर देना। अधर्म से युद्ध न करने की कडी चेतावनी दी जाना ये सब नियम महाभारत युद्ध काल मे पारित किये गये।

१९०७)जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना पाप नहीं है। शरीर को स्वस्थ बनाए रखना कर्तव्य है, अन्यथा हम विवेक के दीप को जलाकर और अपने मन को सशक्त एवं शुद्ध नहीं रख सकेंगे।

१९०८) ज्ञान तीन प्रक़ार से प्राप्त होता है- (क) अनुसरण से जो सरल होता है। (ख) अनुभव से जो सबसे कड़वा होता है। (ग) मनन से जो सबसे श्रेष्ठ होता है।

१९०९) एक व्यक्ति वह जो धन कमाता है पर उसे भोगता नहीं दूसरा वह जो ज्ञान प्राप्त करता है पर उसको उपयोग में नहीं लाता; दोनों ही जीवन में बेकार मेहनत करते हैं।

१९१०) अन्नदान महादान है लेकिन विद्यादान उससे भी बड़ा है क्योंकि अन्नदान से तृप्ति क्षणिक होती है तो विद्यादान से जीवन पर्यन्त तृप्ति होती है।

१९११) सदाचरण और बुद्धिमत्ता के द्वारा अपनी वास्तविक गुरुता का प्रकाशन करेा, सांसारिक वस्तुओं की निस्सारता पर गहन चिन्तन करो और जीवन की अस्थिरता को समझ जाओ।

१९१२) जिसका कामभाव नष्ट हो गया है, जो अहंकार से मुक्त है, जिसने वासनाओं के सभी पथों पर विजय पायी है, वह शान्त, पूर्णतया सुखी और दृढ़ मन वाला होता है। ऐसा व्यक्ति संसार में सम्यक् रूप से विचरण करता है।

१९१३) जैसा खाये अन्न, वैसा होये मन। अर्थात जो व्यक्ति जैसा अन्न खाता है वैसा ही उसका मन बनता है। दीपक की ज्योति अन्धकार को खाती है। काला अंजन काजल को खा जाता है तो काला धुआं पैदा करता है। इसी प्रकार सात्विक भोजन करने वाले की सन्तान मे सात्विक संस्कार आते है और तामसिक आहार (मछली, अण्डा) करने वाले के छल कपट, बेईमानी से धन अर्जित करने वाला, उसकी सन्तान वैसी ही उत्पन्न होती है। जहां सात्त्विक आहार वाले की सन्तान सद्गुण सम्पन्न होती है वही तामसिक भोजन करने वालों की सन्तान दुर्गुणों का भण्डार होती है। उत्तम सन्तान पैदा करने के लिये ईमानदारी से कमाये हुये तथा शुद्ध एवम् सात्त्विक अन्न से बने भोजन का ही सेवन करना चाहिये।

१९१४) विजय से द्वेष उत्पन्न होता है, पराजित दु:खपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। विजय और पराजय का त्याग करने पर ही सुखपूर्ण शान्त जीवन बिताया जा सकता है।

१९१५) स्वप्न से जाग और व्यर्थ कालक्षेप मत कर, तू अपना मन सत्य की ओर अनावृत्त कर। धर्माचरण कर और तू परम निर्वाण को पा लेगा।

१९१६) तू जीवन के अपने व्यवसाय में स्थित रह और अपने कर्म को परिश्रमपूर्वक सम्पन्न कर। जीवन, धन और शक्ति पुरुष को नहीं बांधते, बल्कि जीवन, धन और शक्ति के प्रति आसक्ति ही उसे बांध लेती है।

१९१७) जो व्यक्ति भ्रम से मुक्त नहीं है, वह न तो मछली छोड़ने से पवित्र हो सकता है और न मांस छोड़ने से, न नग्न घूमने से और न मुण्डित होने से, न जटा धारण करने से और न वल्कल पहनने से, न भस्म रमाने से और न ही अग्नि को आहुति देने से।

१९१८) जिस व्यक्ति के भ्रम का नाश नहीं हुआ है, वह वेदपाठ से, पुरोहितों को दान करने या देवताओं को बलि देने से, उत्ताप या शीत के द्वारा आत्मपीड़न करने से और अमर होने के लिए किए जाने वाले इस प्रकार के अनेक कष्टमय विधानों को सम्पन्न करने से पवित्र नहीं हो सकता।

१९१९) मांस-भक्षण से अपवित्रता का जन्म नहीं होता प्रत्युत्त क्रोध, प्रमाद, हठ, व्यभिचार, छल, ईर्ष्या, आत्मप्रशंसा, दूसरों की निन्दा, उद्धतता और अशुभ अभिप्रायों से अपवित्रता जन्म लेती है।

१९२०) मानो तो शंकर नही तो कंकर। परमेश्वर न काष्ठ (लकडी) में है और न ही पत्थर की मूर्ति में। परमेश्वर तो मानव मन की

भावना मे है। हर मनुष्य के हृदय की सच्ची श्रद्धा भावना मे ही परमेश्वर का निवास है। श्रद्धापूर्वक कोई भी कल्याणकारी कार्य किया जाये, उस कार्य मे परमेश्वर की कृपा से अवश्य सफलता मिलेगी। अत: मनुष्य की श्रद्धा भावना ही प्रतिमा मे देवता का वास मानती है और भावना का अभाव प्रतिमा को साधारण जड पदार्थ बना देता है।

१९२१) अफीम सर्पदंश से भी भयंकर होती है। अपने हृदय में अहिफेन (अफीम) को सांप (अहि) से भी अधिक भयंकर समझो। सांप के काटने से तो आदमी मरता ही है, परंतु अफीम को खाकर वह (जीता हुआ भी) प्राणहीन (मुर्दे की भांति) हो जाता है। अर्थात् एक बार मृत्यु को प्राप्त हो जाने से हर समय अचेत रहना और भी अधिक भयंकर होता है। सांप के काटने से जीवन समाप्त हो जाता है परंतु अफीम खाने से जीते जी मनुष्य मृत की तरह नशे में धुत्त पड़ा रहता है।

१९२२) सज्जन लोग सत्पथ पर चलते हुए भी कानून से डरते रहते हैं। जिस प्रकार (सर्वोत्तम धातु) सोना लोहे (के हथौड़े) से पीट-पीटकर संवारा जाने पर ही (गहना बनकर) सुंदर स्त्री और सुंदर राजा को भूषित करता है, उसी प्रकार राजा की (निष्पक्ष) आज्ञा, (स्वार्थरहित) नीति तथा (कड़ाई से बरते जाने वाले न्यायपूर्ण) कानून के कारण ही भले लोगों को भी बुरे मार्ग पर चलने में डर लगता है। अर्थात् सज्जन लोग सचाई के रास्ते पर चलते हुए भी राजा के आदेश, न्याय तथा नियमों से डरते रहते हैं। जैसे सोने जैसी उत्तम धातु भी निकृष्टतम लोहे के हथौड़े की चोटों से सुंदर गहनों का रूप लेती है।

१९२३) घर वही है, जहां साधुओं का आदर तथा प्रभु की भक्ति होती है। जिस घर में साधु का सम्मान और ईश्वर की भक्ति नहीं होती वह घर मरघट की तरह है। वहा भूतों का निवास ही रहता है। प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने घर में ईश्वर भक्ति और साधु सेवा करनी चाहिए।

१९२४) इस भू लोक पर सभी प्रकार के दान, यज्ञ, होम तथा बलि कर्म नष्ट हो जाते है परन्तु सुपात्र को दिया गया दान तथा सभी जीवों को दिया गया अभयदान न कभी व्यर्थ जाता है और न नष्ट होता है अर्थ यह कि आत्म कल्याण के आकांक्षी को जीव मात्र को अभय दान देने के लिये तत्पर रहना चाहिये। इसी में कल्याण होता है।

१९२५) साधु संगति से मनुष्य की मलबुद्धि स्वच्छ होकर शुद्धबुद्धि में परिवर्तित हो जाती है। साधुओं की संगति यथाशीघ्र करो, क्योंकि वह दुर्बुद्धि का नाश करके सुबुद्धि देती है। सज्जन लोग अपने सद्विचारों का मनुष्य में सम्प्रेषण करके उसे सज्जन बना देते हैं।

१९२६) बिना बाह्याडंबरों के सांसारिक लोगों की परवाह किए बिना सहज रूप से ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। संसार के लोग सांसारिक बातें करते हैं, उन पर ध्यान मत दो। जैसे संसार में अनेक कुत्ते भौंकते रहते हैं। तुम सहज रूप से ज्ञान को प्राप्त करते जाओ। स्वाभाविक रूप से सहजता से पाया हुआ ज्ञान वास्तविक ज्ञान होता है।

१९२७) क्रोध की प्रतिक्रिया न करने से विवाद बढ़ता नहीं है। जब तुम्हें कोई गाली देता है तो वह एक होती है। बदले में जब तुम भी गाली देते हो तो वे क्रमश: बढ़ती हुई अनेक हो जाती हैं। यदि तुम बदले में गाली नहीं दोगे तो देने वाले की गाली एक की एक ही रह जाएगी। जो लोग क्रोध करने वाले पर क्रोध करते हैं, वे मूर्खता करते हैं।

१९२८) सब एक दूसरे से कुशलता पूछते रहते हैं, फिर भी जग में कुशल कोई नहीं रहता। न तो बुढ़ापा आने से रुका और न मृत्यु का भय समाप्त हुआ फिर कुशलता कहां से हो सकती है ? जब मनुष्य जरा और मरण के भय से लापरवाह हो जाता है तभी उसकी कुशलता संभव है।

१९२९) जिन भवनों में कभी हर समय नौबत बजा करती थी तथा छत्तीसों राग गाए और बजाए जाते थे, वे भवन अब खाली पड़े हैं, उनमें केवल कौवे बैठें हैं। जिस समय वे भवन आनंद से पूर्ण थे, क्या कभी कोई उनकी वर्तमान दशा की कल्पना कर सकता था।

१९३०) मनुष्य का जीवन तो थोड़ा सा होता है परंतु वह प्रबंध बहुत दिनों का करता रहता है। सभी अंत में मौत के मुख के ग्रास बनते हैं, चाहे वो राजा हो या फकीर। सिकंदर जैसे राजा भी, जिन्होंने सारे संसार में अपनी विजय का डंका बजाया, काल के पाश से मुक्त नहीं रह सके।

१९३१) जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है। जो उदय होता है, वह अस्त भी होता है। जो फूल खिलता है, वो कुम्हलाता भी है। जो दीवार बनाई जाती है, वह ढह जाती है। इसी तरह जो व्यक्ति जन्म लेता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है। यह विचारकर मनुष्य को अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत करनी चाहिए।

१९३२) चौरासी लाख योनियों में मानव देह सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। यह बार-बार नहीं मिलता। जैसे पेड़ से पत्ता यदि झड़ जाता है तो पुन: डाली पर नहीं लगता। इसी प्रकार एक बार मृत्यु के बाद मनुष्य का जन्म मिलना दुर्लभ है।

१९३३) सिंह और साधु का स्वभाव एक समान होता है। सिंह को जीवित शिकार प्रिय है, और साधु को भी वही प्रिय लगता है, जिसमें जीवन हो। जिस प्रकार सिंह मृत शरीर के पास नहीं जाता, उसी प्रकार साधु पुरुष उससे कोसों दूर रहते हैं, जिनमें भावना नहीं होती- भावना ही तो जीवन हैं।

१९३४) मांगने से मनुष्य का आदर व स्नेह छिन जाता है। जब कोई किसी से कुछ मांगता है तो देने वाला उसे हेय दृष्टि से देखने लगता है। जो कांति उसे देखकर मुख पर आती थी, वो नहीं रहती, न पहले जैसा आदर रहता है और न ही नेत्रों में पहले की भांति स्नेह रहता है, अपितु याचक के प्रति दाता के मन में और नेत्रों में उपेक्षा का भाव आ जाता है।

१९३५) मनुष्य को सुख और दुख में समान भाव से रहना चाहिए। जैसी लालिमापूर्ण किरणों से युक्त सूर्य उदित होता है, उसी प्रकार की दीप्ति से अस्त भी होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य सुख-दुख को समान भाव से सहन करता है, वह जीवन में समभाव से ही प्रगति करता है। जैसे सुबह और शाम को सूर्य की रश्मियों का रंग समान ऐश्वर्य से लालिमा लिए हुए होता है, उसी प्रकार समझदार लोग ऐश्वर्य में अभिमान नहीं करते और विपत्ति में दुखी नहीं होते।

१९३६) मित्रता में प्रयास यह करना चाहिए कि बात बनी रहे। दूध के फटने से मक्खन नहीं निकल सकता । इस प्रकार जो बात एक बार बिगड़ जाती है, वह फिर से बन नहीं पाती। चाहे व्यक्ति कितने ही उपाय क्यों न कर ले? जब तक मित्रता में छल-कपट और स्वार्थ नहीं आता तब तक मित्रता बनी रहती हैं, परंतु जब किसी एक तरफ से दुराव-छिपाव होने लगता है तो बात बिगड़ जाती है और एक बार मन में बात आने से फिर बात नहीं बन पाती।

१९३७) जो मुसीबत में काम आता है। वही सच्चा मित्र होता है। जब दही को लगातार मथा जाता है तो उसमें से मक्खन अलग हो जाता है और दही मट्ठे में विलीन होकर मक्खन को अपने ऊपर आश्रय देती है। इसी प्रकार सच्चा मित्र वही होता है, जो विपत्ति आने पर भी साथ नहीं छोड़ता। सामान्य जन तो सुख-भोग, धन-सम्पत्ति और आनंद के समय ही मित्रता रखते हैं परंतु वास्तविक मित्र विपत्ति में भी कंधे से कंधा मिलाकर साथ देते हैं।

१९३८) काम भावनाओं में लिप्त रहने वाले अवगुणी व्यक्ति की मृत्यु के बाद भी कोई प्रशंसा नहीं करता। मृत्यु होने पर भी लोग उसके अवगुणों को ही गिनते हैं। वे उसकी प्रशंसा नहीं करते। जैसे ईश्वर व्यक्ति को संसार के भौतिक बन्धनों में बांधता है, तो वह और अधिक मरता जाता है। परंतु जो गुणी लोग होते हैं, उनके गुणों की उनके संसार से विदा होने पर भी प्रशंसा की जाती है।

१९३९) मन। तू इधर-उधर मत भटक। सीधे मार्ग पर ही दौड़ लगा, क्योंकि तेरे पीछे कामरूपी बाघ लगा हुआ है और तेरे आगे तृष्णारूपी अग्नि का तालाब है। मनुष्य का मन सांसारिक भोग-विलास में और अनन्त इच्छाओं को पूर्ण करने में लगा रहता है। हमें इनसे पीछा छुड़ाकर ज्ञान के सीधे मार्ग पर ही दौड़ लगानी चाहिए।

१९४०) काम-वासना मनुष्य को अंदर ही अंदर खाती जाती है। मनुष्य के मनरूपी घर में काम ऐसा चोर है, जो दिन-रात मनरूपी घर को फोड़ रहा है। फिर भी मनुष्य रूपी शाह अज्ञान निद्रा से जाग नहीं रहा है और कामरूपी चोर सब असली पदार्थ तत्व चुराता जा रहा है। समय रहते मनुष्य को कामरूपी चोर से सावधान हो जाना चाहिए।

१९४१) काम मनुष्य को धीरे-धीरे जर्जर कर देता है। जैसे घुन लकड़ी को तथा जंग लोहे को बेकार कर देता है, इसी प्रकार काम मनुष्य के शरीर को जर्जर कर देता है। मनुष्य का जीवन काम के चक्कर में पड़ने से बारह बाट हो जाता है अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाता है। वह किसी काम का नहीं रहता।

१९४२) लोभ और काम की आग में यह सारा संसार जल रहा है। हे मनुष्य। सोना और स्त्री कालस्वरूप हैं। तू इनका साथ छोड़ दे। सारा संसार इनकी अग्नि में इस प्रकार जलकर मर जाता है, जैसे दीपक की लौ पर पतंगा जलकर राख हो जाता है। जिसको अपना भला करना है, उसे लोभ और काम से दूर रहना चाहिए।

१९४३) संसार के बाह्याडंबर सम मिथ्या हैं, दिखावटी हैं। यह सब माया मृग तृष्णा की तरह झूठ-मूठ झिलमिलाती रहती है। मनुष्य

माया के मृगजल को देखकर भ्रमित हो जाता है। जैसे हिरण चमकती हुई रेत को देखकर पानी पीने के लिए दौड़ता हुआ उसके समीप जाता है, वैसे ही मनुष्य माया को सत्य समझकर उसमें लिप्त रहता है। संसार की चमक-दमक को सत्य समझकर उसमें खोना नहीं चाहिए।

१९४४) मनुष्य को लोभ और काम के विभिन्न रूपों से दूर रहना चाहिए। अरे पागल मन। तू मायारूपी घर के कुएं में डूब रहा है। तू सोने और स्त्री के विभिन्न रूपों पर मोहित होकर अपना विनाश क्यों कर रहा है ? जो कनक और कामिनी के चक्कर में पड़ा रहता है उसका उद्धार कभी संभव नहीं है।

१९४५) पुण्यात्मा मनुष्य अपने पुण्यों की कीर्ति से अमर हो जाता है। जैसे अमृत पीने वाला व्यक्ति कभी नहीं मरता, उसी तरह पुण्य कार्य करने वाले का कभी बुरा नहीं होता। जैसे अमृत की एक बूंद जीव को अमर बना देती है ऐसे ही पुण्य करने वाला कभी नष्ट नहीं होता।

१९४६) मनुष्य को झूठ और सच, विष और अमृत, दुख-सुख का अंतर ही मालूम नहीं है। संसार के लोग झूठ को सच और सच को झूठ समझते हैं। सांसारिक विषय-वासनाओं, भोग-विलास को मनुष्य सच्चा सुख समझता है। विष को अमृत मानकर पीता चला जाता है। संसार के लोग कितने पागल हैं जो विषयों के दुख को सुख समझकर आनन्दित होते रहते हैं। वे लोग मिथ्या संसार को सत्य संसार समझने लगते हैं।

१९४७) मनुष्य को दूसरों की निंदा से दूर रहना चाहिए। निंदा का नाम मत लो। सपने में भी निंदा न करो। न हमें किसी की निंदा करनी चाहिए और न हमें किसी की निंदा सुननी चाहिए, क्योंकि निंदा करने व सुनने से अपने अंदर भी अवगुणों का समावेश होता जाता है।

१९४८) निंदक दूसरों को उजला करता-करता स्वयं मैला होता जाता है। निंदक स्वयं अपना शत्रु है। वह तो अपने आप ही आत्मघात करता रहता है तथा दूसरों का भला अनजाने और अनचाहे ही करता रहता है, क्योंकि वह दूसरों की बुराई करके स्वयं बुरा होता जाता है तथा जिसकी बुराई करता है, वह सुधरता जाता है। बुराइयों का चिंतन करते रहने से मनुष्य में बुराइयां घर करती जाती हैं।

१९४९) ईश्वर के संबंध में पढ़ते-पढ़ते पंडित थक गए तथा मुनिजन उसका वर्णन करते-करते थक गए फिर भी वह निराधार ही रहा। ईश्वर को प्राप्त करना है तो उसे सच्चे हृदय के भावों से पाया जा सकता है। पढ़ने और कहने से कुछ नहीं होता।

१९५०) पतिव्रता तो केवल अपने पति से ही प्रेम करती है, वह अन्य पुरुष को नहीं जानती। परंतु व्यभिचारिणी के दो प्रेमी होते हैं। वह दोनों को समान समझती है। व्यभिचारिणी स्त्री के लिए तो प्रत्येक पुरुष ही उसके पति के समान होता है। उसे तो सभी घर अपने घर लगते हैं। वह दूसरों के घर पर भी अपना अधिकार जमाने लगती है।

१९५१) सांसारिक माया का सुख नश्वर है। केवल पांच दिन का है। इस पर हे मनुष्य। तू क्या अभिमान करता है ? अरे मूर्ख। यदि सपने में तू राजा बन जाएगा तो क्या आंख खुलने पर तेरा राजधन, राजगद्दी तुझसे छिनेगी नहीं ? इसी प्रकार समय आने पर मनुष्य के पास जो धन-दौलत आज है, वह समाप्त भी हो सकती है। अत: उसका गर्व क्या करना ?

१९५२) मनुष्य अपना जीवन व्यर्थ में ही खाने, खेलने और भोग-विलास मे बिताता रहता है। जीवन के कुछ दिन खाने में, कुछ खेलने में, कुछ सोने में तथा कुछ विषय-वासनाओं के विलास में व्यर्थ ही गंवा दिए।

१९५३) गुरु तो ज्ञान देता ही है परंतु शिष्य के अंदर भी पात्रता होनी चाहिए। चिकित्सक रोगी कि चिकित्सा तभी कर सकता है जब उसका रोगी उसके आदेश का पालन करे। यदि उसका रोगी मीठा, खट्टा और चटपटा अपनी जीभ के स्वाद के अनुसार खाता रहेगा तो क्या औषधि अपना प्रभाव कर सकेगी ? इसी प्रकार यदि शिष्य विषय-वासनाओं में फंसकर विरत होता रहेगा, तो गुरु का ज्ञान क्या करेगा ? अर्थात् सद्गुरु भी उसे ज्ञानी नहीं बना सकेंगे।

१९५४) जिनके हृदय में दया, धर्म रहते हैं, जो अमृतमय वचन बोलते हैं तथा जो नीचे नेत्र करके रहते हैं, उन्हें ही ऊंचा समझना चाहिए अर्थात् दया, धर्म, मृदुवचन तथा विनम्रता मनुष्य को ऊंचा बना देते हैं।

१९५५) कोई यदि तुमसे बहस करे तो तुम अज्ञानी बनकर उससे वाद-विवाद मत करो तथा क्रोध को बहा दो। यदि कोई तुझसे वाद-विवाद करेगा तो स्वयं ही बक-बक करके चुप हो जाएगा अर्थात् क्रोध को छोड़कर तर्क-कुतर्क से बचो।

१९५६) अभिमानी मनुष्य इस नश्वर शरीर की सुंदरता और बल पर अभिमान करता रहता है। बड़े परिश्रम से सजा-सजाकर पगड़ी बांधता है, जिससे उसका सिर सुंदर लगे। कौआ उस शरीर को देख-देखकर अपनी चोंच को संवारता रहता है कि इसके प्राण निकलने

के बाद मैं इसे नोच-नोचकर खाऊंगा। मनुष्य को तन की सुंदरता का अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि एक न एक दिन अवश्य इसे काल के गाल में जाना है।

१९५७) यदि तुझे सुंदर शरीर मिला है तो तू उसका अभिमान मत कर। बूढ़े और जवान सभी को काल खा लेता है। ऐसे सुंदर तन पर क्या इतराना, जिसका एक पल का भी भरोसा नहीं है। न जाने कौन से क्षण काल आकर इस शरीर को खा ले। काल तो किसी की आयु का भी लिहाज नहीं करता। जिसका समय आ जाता है चाहे वह युवा हो या वृद्ध हो, उसे मृत्यु के मुख में जाना ही पड़ता है।

१९५८) जब से हमने अपने चोगे में सत्य की गांठ बांध ली है। सत्य बोलने का संकल्प कर लिया है, तब से हम इस संसार में निर्भय होकर बिना किसी शंका के घूमते रहते हैं। इससे हमारी माता का नाम पवित्र रहता है और हमारे सम्मुख देवराज इन्द्र भी अब निर्धन फकीर के समान प्रतीत होते हैं। हमारे सभी मोह समाप्त हो गए हैं।

१९५९) शरीर को चकनाचूर करने वाला शूरवीर नहीं होता, बल्कि मन को जीतने वाला वास्तविक शूर होता है। जो दूसरों के शरीर को मार-मारकर बेकार कर दे या अपने शरीर को सुखा-सुखाकर पंजर बना दे, वह सच्चा-सूरमा नहीं है, बल्कि जो मन को अपने अधीन रखता है, जो मन के कहने में नहीं चलता, वही सच्चा शूर होता है।

१९६०) जैसे सामने रास्ता हो, परंतु उजाला न हो, तो रास्ते पर चलना संभव नहीं होता। उसी प्रकार जब तक मनुष्य के हृदय में ज्ञान का प्रकाश नहीं होता तब तक उसका परमात्मा से मिलन का मार्ग प्रशस्त नहीं होता। आत्मज्ञान के होते ही आत्मा स्वयं परमात्मा का स्वरूप हो जाती है। इस प्रकार उसकी आशा पूरी हो जाती है। आत्मा स्वयं शरीर धारण से पूर्व परमात्मा थी, जब आत्मज्ञान हो गया तो वह फिर से परमात्मा बन गई, यही उसकी जन्म-जन्म की साध थी, जो पूरी हो गई।

१९६१) मनुष्य सारा जीवन व्यर्थ की बातों में बहा देता है। दिन-रात निरर्थक बातों में मनुष्य लगा रहता है और जब उसे होश आता है तो मृत्यु सामने खड़ी होती है। समय रहते मनुष्य को सतर्क होकर सत्कर्मों में जीवन को लगाकर सार्थक कर लेना चाहिए। अन्यथा यमदूतों के आने पर बिना कुछ किए जाना पड़ेगा तथा यम की मार खानी पड़ेगी।

१९६२) बगुला और हंस दोनों का रंग सफेद होता है, परंतु प्रकृति दोनों की सर्वथा भिन्न होती है। हंस मोती चुगता है और बगुला मांस खाता है। इसी प्रकार मनुष्य बाहर से देखने में सब एक जैसे लगते हैं, परंतु प्रकृति-भेद से सज्जन और दुर्जन कहलाते हैं। जिनका स्वभाव अच्छा होता है वे सज्जन तथा बुरे स्वभाव वाले दुर्जन होते हैं। मनुष्यों के कर्मों के आधार पर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है।

१९६३) जो मनुष्य अपने लिए तो सुख के साधन जुटाता रहता है तथा दूसरे का अहित चाहता है। यहां तक कि उसकी मृत्यु तक चाहता है। ऐसे लोगों की इस अनुचित नीति से उन्हें कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि दूसरों को सुख देकर अपना मन भी सुखी होता है और दूसरों के दुख की कामना से अपना मन भी दूषित होता है।

१९६४) जहां झगडा होता है, वहां सुख नहीं होता। झगड़ा सुख में कांटे की तरह चुभता रहता है। सारा संघर्ष राजसत्ता, धन-वैभव के लिए होता है। इस तरह धन-सम्पत्ति, राजसत्ता यही कलह के मूल कारण हैं। यदि मनुष्य सुखी होना चाहता है तो उसे लोभ छोड़ देना चाहिए, क्योंकि राज्य कलह की जड़ है तथा कलह जहां होगी वहां सुख न होकर दुख ही दुख होगा।

१९६५) अधीम की बातों में आकर कौन यशस्वी जीवन व्यतीत कर सकता है ? दुर्जन का आश्रय लेना ताड़ की व्यर्थ छाया में बैठना है। नीच भले ही गलत माध्यमों से बहुत कुछ हासिल कर शक्तिमान हो गया हो, भले ही उसने समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया हो, फिर भी उसकी शरण ग्रहण करना अपने जीवन को अधोगति प्रदान करना है। दुष्ट दूसरों का अमंगल ही सोचता और करता है। उसके कर्म एवं वचन सज्जनों के लिए हितकर नहीं होते।

१९६६) छोटे आदमी भी बड़ों से अनुप्राणित होकर असाधारण कार्य कर जाते हैं। महानुभवों का सहयोग पाकर तथा उनके स्नेह-प्रेम से उल्लसित होकर कभी-कभी छोटे-छोटे लोग भी ऐसे असाधारण कार्य कर जाते हैं जिन्हें शायद वे सामान्य स्थिति में न कर पाते। कवि प्रसिद्ध है कि प्रेमी चकोर चन्द्रमा के प्रेम से अभिभूत होकर अंगारे खाकर पचा लेता है।

१९६७) वह बेगैरत इंसान जिसकी कर्ज लेने की आदत हो, वह अदूरदर्शी राजा जो अनागत काल की चिन्ता किए बिना अपनी आज्ञा मनवाने में अधीर हो गया हो, गया-बीता भिखारी तथा भ्रान्त-शिथिल चरित्र की कामातुर स्त्री-ये चारों अपनी इच्छापूर्ति में ऐसे

उतावले और बेसुध हो जाते हैं कि इनको किसी की बात ही सुनाई नहीं देती। समझ-बूझ खो देते हैं ये लोग। ये किसी की नहीं मानते, बस अपनी ही रौ में बहे चले जाते हैं।

१९६८) वस्तुत: भौतिकता और आध्यात्मिकता ये दोनों सहचर बनकर एक साथ नहीं चल सकते। दो ध्रुवान्तर भूमिकाओं को साथ-साथ निभाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। भौतिकता और आध्यात्मिकता में बहुत बड़ा अन्तराल है। दुनियादारी अध्यात्मिक व्यक्ति नहीं चला सकता और भक्ति रस का आस्वादन दुनियादार नहीं कर सकता।

१९६९) मान-सम्मान विहीन जीवन भी कोई जीवन है ? कारण कुछ भी रहा हो, किन्तु यदि तुम्हारे अव्यवस्थित चित्तवाले, कतिपय गलत प्रियजनों से घिरे, कान के कच्चे चाटुकार-प्रिय नरेश ने तुम जैसे निष्ठावान योग्य राजपुरुष को उपेक्षित कर दिया है और तुम्हें स्वयं लगने लगा है कि अब तुम प्रशासन के अवांछित अधिकारी हो गए हो, तो अब तुम्हें वहां नहीं बने रहना चाहिए। वहां से निकल जाना ही उचित है। क्यों न अब भी राजकीय सेवार्थ करोड़ों मिल रहा हो तो भी इस धिक्कारभरे जीवन से कोई लाभ नहीं है।

१९७०) ये दुष्ट बबूल अपनी दुष्टता से कभी बाज नहीं आते। खुद तो किसी काम के नहीं अर्थात् इनकी डालें, पत्ते, फल-फूल-सभी किसी काम के नहीं होते। दूसरे ये उद्यमी, अध्यवसायी, परोपकारी वृक्षों को भी बढ़ने से अवश्य रोकते फिरते हैं। यहां सीधे समाज के कुटिलों पर प्रहार हुआ है। ऐसे कुटिलों पर जो स्वयं तो निठल्ले-निकम्मे होते हैं, मगर दूसरों की प्रगति को अवरुद्ध करने में अत्यधिक सक्रिय देखे जाते हैं।

१९७१) विश्व मांगल्य-अभियान पर निकला प्रतापी सूर्य जिस प्रकार का आभाबिंब लेकर उदयाचल पर उदय होता है, उसी प्रकार के प्रभामंडल के साथ अस्ताचल में अस्त भी होता है। प्रकाश-पुरुष, सुख-दुख, प्रमाद-अवसाद तथा उत्कर्ष-अपकर्ष की अनिवार्य स्थितियों में प्रसन्न एवं धीर-वीर होते हैं और उच्च भाव-भूमि पर स्थिर रहते हैं।

१९७२) एक समय में तन्मय होकर एक ही कार्य करना चाहिए। एक समय में एक कार्य को सिद्ध कर लेने से दूसरे सभी कार्य उत्तम प्रकार से सिद्ध होते चले जाते हैं। इसके विपरीत सभी कार्य एक साथ करने से उनमें से एक भी कार्य अच्छी तरह पूरा नहीं हो पाता। सभी कर्म आधे-अधूरे से रह जाते हैं। यदि किसी वृक्ष को फल-फूल से समृद्ध देखना हो तो वृक्ष के मूल को ही सींचा जाना चाहिए।

१९७३) आपत्काल के लिए आपद्धर्म होता है। संकट गहराया हुआ हो, क्षुधा प्राणों से खेल रही हो, ऐसे में यदि किसी स्वाभिमानी व्यक्ति को जीवन-रक्षार्थ अन्न की याचना करनी पड़े तो उसे नि:संकोच याचक बन जाना चाहिए। ऐसी घड़ी प्राण-रक्षा की होती है स्वाभिमान-रक्षा की नहीं। सामान्य स्थिति के आचरण असामान्य स्थिति में नहीं चलते। विशेष परिस्थिति में की गई याचना से व्यक्ति याचक नहीं बन जाता। वनवास काल में राजकुमार लक्ष्मण, देवी सीता तथा भगवान् राम दु:ख भोग रहे थे। लक्ष्मण भूख मिटाने के लिए मुनि पराशन के आश्रम में भिक्षान्न मांगने गए थे। इससे वे भिक्षुक तो नहीं हो गए।

१९७४) जिस प्रकार पानी से भरे तालाब को बदबू और कीचड से बचाने के लिये उसका पानी निकालना ही एक मात्र मानव मन का ध्येय होता है उसी प्रकार उपार्जित संचित धन को दान देना ही उसका सही उपयोग एवं बचाव है। लक्ष्मी चंचल होती है। वह कभी भी स्थिर नही रह सकती, उपार्जित धन को नष्ट होना है यह तो निश्चित ही है। अत: नष्ट होने से पूर्व उसे दान मे देकर मनुष्य को अपना लोक व परलोक सुधार लेना चाहिये।

१९७५) क्षुद्र व्यक्ति अपने आंशिक वैभव पर ही मदांध हो उठता है। घमंडी एरेंड। आखिर तूने अपनी असलियत दिखा ही दी। तेरे दो-चार अच्छे चिकने पत्ते क्या हो गए, तू बौरा ही गया। ऐसा नशा। ऐसी ऐंठ इसी बात पर तू तन गया। दंभी एरंड मत भूल कि तू एक जंगली पौधा है, जिसे वानस्पतिक जगत में कोई नहीं पूछता। तुझको तो वामन वृक्ष कहने में भी संकोच होता है। तेरी गणना द्रुमदलों में कदापि नहीं हो सकती। उन महामना पादपों को देख, जो अपनी-अपनी ऋतु में श्यामल पत्तावलियों से छविमान हो जाते हैं, फूलों से सारा परिवेश ही गमका देते हैं और अमृतोपम फलों से समद्ध हो विनयावनत हो जाते हैं। कितने ही जीव-जन्तुओं एवं विहग-विहंगमों के वे रैन-बसेरा होते हैं। यात्रा-अभियान की कितनी ही थकानें उनकी छाया में विश्राम लेती हैं। उनके आचरण और संस्कार कुछ अलग ही होते हैं।

१९७६) विरह के मधुर रस का आस्वादन विरले ही पाते हैं। वियोगी के हृदय-कांतार में निरन्तर दावाग्नि धधकती रहती है। यह आग

बड़ी विलक्षण होती है। इसका धुआं प्रकट नहीं होता। घुटन की अनोखी वेदना भीतर ही भीतर चलती रहती है। लोग इस अनल की विदग्धता से अनभिज्ञ ही रह जाते हैं। इस वैश्वानर की दाहकता का आनन्द अनिर्वचनीय है। इसका अनुभव या तो वह करता है, जो इसके दाह को अन्दर ही अन्दर झेल रहा हो या फिर वह, जिस पर कभी बीती हो।

१९७७) अपसामान्य स्थिति में पहुंचकर कुछ लोग घातक हो जाते हैं। सांसत में पड़ा नाग, बहुत अधिक सताया गया अश्व, निर्ममतापूर्वक लांछित-प्रताड़ित नारी, भीतर ही भीतर क्रोधाग्नि में जल रहा नृपति, नीचता दिखने का अवसर पाया हुआ नीच श्रेणी का व्यक्ति तथा सक्रिय मारक शस्त्र-इन सबसे बचिए, अत्यन्त सावधान रहिए। क्योंकि यह नृशंस हो गए हैं। अभी इसी समय आपके प्राण हर सकते हैं।

१९७८) कार्य के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन होना चाहिए, न कि व्यक्ति के आधार पर कार्य का। अगर छोटा आदमी कोई बड़ा काम कर जाता है तो उसका नाम वैसा नहीं होता, जैसा उस बड़े आदमी का होता है जो यही काम करता है। ऐसा क्यों? समाज का झुकाव बड़ों की ओर होता है। लोकदृष्टि कभी निष्पक्ष नहीं होती। सेवाभाव से उद्वेलित महावीरों को इसका कोई मलाल नहीं होता।

१९७९) यदि गुणहीन व्यक्ति गुणज्ञों के समक्ष निपुणता दिखाने का प्रयास करता है तो उसका प्रयास विफल हो जाता है। उसकी गुणहीनता प्रत्यक्ष हो जाती है। वह अपनी मूर्खता पर लज्जित होता है और अपनी करनी पर पछताता है। मानो वह किसी ऊंचे पेड़ पर चढ़कर सबके सामने यह उद्घोष करता हो कि मेरे समान है कोई पाखंडी ? योग्यता स्वयंप्रभा-स्वयंसिद्धा होती है। उसे रार मचाकर प्रकाशित करने अथवा ठेल-पेलकर सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं।

१९८०) सब कोई जानते हैं कि कमला (लक्ष्मी, धन-दौलत) चंचल है- एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रहती। उसका स्वभाव चंचल क्यों न हो ? कहां विष्णु जैसे वृद्ध पुरुष और कहां कमला जैसी नवोढ़ा वधू ? ऐसे बेमेल विवाह नववधुओं के इधर-उधर आने-जाने का रास्ता खोल ही देते हैं। अर्थात् ऐसे में लक्ष्मी का चंचला होना स्वाभाविक ही है। लेकिन कुछ विवेकहीन उन्हें अपनी स्थायी सम्पत्ति मान बैठते हैं। वे ऐसा कार्य करते हैं कि उनका पतन और समाज का अहित होता है।

१९८१) कमला (लक्ष्मी, संपत्ति) चंचलमना है। वह कहीं स्थिर होकर रहने वाली नहीं। वह भगवान् विष्णु की समर्पिता परिणीता है। प्रभु द्वारा प्रेरित होकर ही वह अतिथि के रूप में किसी के यहां पर्दापण करती है और स्वामी के इशारे पर वहां से चली भी जाती है।

१९८२) यदि नीच स्वभाव का व्यक्ति लक्ष्मी पर रीझकर उसे अपने वश में करना चाहता है तो उसे अपमान का सामना करना पड़ता है। उत्तम स्वभाववाला व्यक्ति लक्ष्मी को उचित सत्कार देता है और समाज में सम्मान पाता है। उसे लक्ष्मी के जाने का दुख भी नहीं होता, क्योंकि वह उसे प्रभु की अमानत समझता है। लेकिन नीच स्वभाववाला व्यक्ति सम्पत्ति के चले जाने पर बहुत परेशान और व्याकुल होता है।

१९८३) उस चोर का दुर्भाग्य देखो जो बड़ी चोरी के लिए रात के गहन अंधेरे में एक अति संपन्न घर में जा घुसा और विपुल वैभव के बीच पहुंच भी गया। वह ऐश्वर्यों की चकाचौंध में चौंधिया गया। हवस उस पर चढ़ी और चढ़ती ही गई। वह लाभ, अतिलाभ, महालाभ और परमलाभ की चिंताधारा में बह चला। वह संवेगों एवं आवेगों से अभिभूत हो गया और थककर ढह गया। वह सम्मोहन की अवस्था में था। जब वह जागा तो उसे अमंगल प्रभात के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा। अपने प्रेम को मुझसे छिपाने का व्यर्थ प्रयास मत कर। एक ही दीया जल जाने से घर का कोना-कोना प्रकाशित हो उठता है और अंधेरे में अदृश्य सभी वस्तुएं प्रत्यक्ष हो उठती हैं। तन के निकेतन में एक नहीं दो नयनद्वीप प्रज्वलित हो रहे हैं। फिर कोई कैसे अपना प्रेम भीतर छिपाकर रख सकता है ?

१९८४) अमीर की दुनिया में ही धन-दौलत का बढ़ना-घटना एवं घटना बढ़ना होता रहता है। अगर धन-दौलत बढ़ने के बाद अचानक घटता है तो उसका धनी लोगों पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। लेकिन जो व्यक्ति घास काटकर बेचते हैं अर्थात् रोज कमाते, रोज खाते हैं, उन पर धन के बढ़ने-घटने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

१९८५) निश्चल-निस्वार्थ प्रेम जैसे गायब ही हो गया। इस स्वार्थी-छल-कपटी दुनिया में निराश होकर प्रीति कहीं दूर जाते हुए भी यही उद्घोष करती गई कि अब आदमी नीचता पर उतर आया है। उसके जीवन में अब स्वार्थ ही स्वार्थ बस गया है। ऐसी क्षुद्र-अभिशप्त दुनिया में अब मेरा ठिकाना कहां ? एक वेदना लेकर अब मैं यहां से जा रही हूं। अब जी भरकर खेलो, अपने-अपने खेल। दिखाओ फांस और फन्दों के तमाशे। और सचमुच मानवता की देवी हम मानवों को छोड़कर चली ही गई। दुनिया कितनी खोखली हो गई।

१९८६) अब बताओ, तुम्हारी जिन्दगी कितनी रह गई है और कितनी बरबाद हो गई है ? सब तो चली गई, अब रही क्या ? माया, ममता और मोह के पाश में बंधे ही रह गए। विधाता की अनमोल निधि को यों ही गंवा दिया। तुम्हारा दुखद अन्त तुम्हारे सामने है। अब पछताने से क्या होगा ? यदि भक्ति-धारा में पहले ही बहे होते तो आज निर्वाण की वेला में कितनी शान्ति मिलती। विजयी होकर यहां से निकलते। अब तो पराभूत होकर पछताते हुए ही जाना होगा।

१९८७) दुर्जनों के साथ सज्जनों का निर्वाह नहीं हो पाता। कहां कंटकाकीर्ण कठिन-विषम बेर और कहां सरल-सौम्य केला ? कोई बताए, दोनों का साथ निभे तो कैसे निभे ? दुर्बल बेर तो अपनी तरंग में डोलता है और केले के अंग ही फट जाते हैं। एक का स्वच्छन्द आनन्द दूसरे के लिए अकारण कष्ट बन जाता है। सहयोग-समझौते का कोई अवकाश नहीं दुष्टता का उत्तर भी तो नहीं दे सकता यह सत्पुरुष। है ऐसा कोई दंड-द्वीप जहां दुर्जनों को ले जाकर छोड़ दिया जाए ?

१९८८) जब अपना समय अच्छा नहीं होता तो फिर कैसे सब कुछ ठीक रह सकता है ? हर बात बनते-बनते रह जाती है। जो नहीं होना चाहिए, वही हो जाता है; जो नहीं घटना चाहिए, वही घट जाता है। लगता है, मैं अपने प्राप्तव्य को हस्तगत कर लूंगा, किन्तु वह मिलते-मिलते नहीं मिल पाता।

१९८९) जीवन क्षण-भंगुर है। कागज का पुतला पानी में सहज रूप से गल-घुल जाता है। अचरज तो यह देखकर होता है कि वह गलते-घुलते हुए भी उसी प्रकार वायु को अपने भीतर खींचता है, जिस प्रकार मानव-काया मृत्यु के मुहूर्त तक अहंकार को नहीं छोड़ पाती। मानव-जीवन भी पानी पर प्लवित कागज का पुतला है। फिर गर्व-दर्प किस बात पर ? अहंकार त्याग। जीवन को नम्रता से नम्र कर।

१९९०) क्या यह वही बाज है, जो कभी स्वामी के हाथ पर बैठकर नृपति को विशिष्टता प्रदान करता हुआ गौरवान्वित हो जाता था? क्या यह वही परिन्दा है, जो कभी सूर्य बिंब को काटता हुआ खगोल के शीर्ष पर जा चढ़ता था तथा फर्राटे भरना, तैरना, ऊपर जाना, नीचे आना, एक दिशा से दूसरी दिशा तक सीधी रेखा बनाना, क्षितिज के उस पार चले जाना आदि उड्डयन-कलाएं प्रदर्शित कर स्वामी के मन को हर्षित कर देता था ? क्या यह वही विहंगम है, जो इंगित पर अमोघ बाण की तरह छूटता था और आखेट-लक्ष्य पर जा पहुंचता था तथा विजेता सेनापति की तरह बन्दी पक्षी को नरेश के समक्ष आत्मसमर्पण हेतु प्रस्तुत कर देता था ? प्रसन्न स्वामी अपने हाथ से चारा देता था। समय की गति बलवान होती है, उसी बाज के जब बाजू टूट जाते हैं तो उसे कोई पूछने वाला नहीं होता। वह दाने-दाने को मुहताज हो जाता है। अच्छे दिन होने पर मनुष्य को शिकारी बाज की तरह नहीं इतराना चाहिए। उसे बुरे दिन का भी ध्यान रखना चाहिए।

१९९१) क्या कंबल और क्या चादर। जिससे हाड़ कंपा देने वाली जाड़े की रात कट जाए, वही सबसे बढ़िया कपड़ा है। जब भूख से जान जा रही हो, तब जो भी अन्न मिले, वही सर्वोत्तम है।

१९९२) शक्तिमानों से रार ठानकर निर्बल कैसे निर्वाह कर सकते हैं ? शक्तिशाली कभी भी दबोच लेगा। बसे हो सागर के पानी में और करते हो मगर से वैर। पानी ही मगर की असली ताकत है। शत्रुता मोल लेनी हो तो वज्रदेही बनो। नहीं तो सबल का अभिनन्दन करो।

१९९३) ऐसा कौन कुलीन, संभ्रान्त एवं स्वाभिमानी होगा, जो दूसरे के द्वार पर कुछ पाने के लिए जाते हुए नहीं संकुचाता ? संकोच तो बहुत होता है, आत्मधिक्कार भी कुछ कम नहीं होता। लेकिन किया क्या जाए, जाना ही पड़ता है। वैसे समर्थ के सिंह द्वार जाने में कोई गलती नहीं। संपत्तिवानों के यहां ही तो लोग जाते हैं। इसलिए ऐसों के यहां जाने में कोई हिचक-झिझक नहीं होनी चाहिए। सच तो यह है कि लोग सम्पन्न व्यक्तियों के यहां खुद नहीं जाते। उनकी विपत्ति उन्हें खींचकर वहां ले जाती है। यह बात समृद्धिशाली को भी मालूम है। इसीलिए वे आए हुए व्यक्ति को याचक नहीं, अभ्यागत मानते हैं और जो बनता है, सादर प्रेम देते हैं। सौभाग्य कि उनके द्वार पर ऐसा व्यक्ति आया।

१९९४) दुर्दिन आया। पद गया। अधिकार गए। अब प्रतिष्ठा बनाए रखना और इतने बड़े परिवार को चलाना मुश्किल हो गया। खर्च बढ़ गया। जीविका के सम्मानजनक स्त्रोत-साधन घट गए। आमदनी बन्द हो गई। स्वार्थी-ईर्ष्यालुओं ने मिलकर राजा के कान ऐसे भरे कि उसने निष्ठुरता धारण कर ली। मनुष्य को अच्छे दिनों में भी बुरे दिनों की कल्पना करके रखनी चाहिए। इससे बुरे दिनों में अधिक दुखी नहीं होना पड़ता।

१९९५) खीरा का मुंह काटकर उस पर नमक मल दिया जाता है, तभी उसकी कड़वाहट जाती है। कड़वे बोल बोलने वालों को यही सजा

देनी चाहिए। दुर्मुख तुम्हारे मर्म को बेध दें और तुम निश्शब्द रहो। नहीं, मुंह तोड़ जवाब दो। मुंह ही बन्द कर दो। कोई लिहाज मत करो।

१९९६) कुशल-क्षेम, हत्या, खांसी, खुशी, वैर प्रेम और मद्यपान- ये दबाए नहीं दबते, छिपाए नहीं छिपते। खुलकर सामने आ जाते हैं। सारी दुनिया जान जाती है। हाव-भाव तथा चाल-ढाल से व्यक्ति का अभ्यंतर प्रकट हो जाता है।

१९९७) बड़े लोग कष्ट झेलकर भी परोपकार करते हैं। कौन-सा अश्वारोही सैनिक किस अश्व पर आरोहण करेगा-यह सुनिश्चित करने हेतु तत्कालीन मुगल सेना की प्रथानुसार प्रत्येक अश्व को गरम लौह-मुद्रा से अंकित किया जाता था। इस प्रकार दारुण कष्ट सहकर अपने शरीर को दगवाता था अश्व और आरोहण का अधिकार एवं जीविका प्राप्त करता था सैन्य आरोही। बड़े लोग परमार्थ को परम धर्म मानते हैं। वे अपने धर्म निवार्ह के लिए दैहिक कष्ट भी सहर्ष सह लेते हैं।

१९९८) स्वाभिमानी व्यक्ति अपने किसी सगे के पास जाकर भी अपनी गरज नहीं कह पाता। दुविधा में पड़ जाता है वह। जैसे कुलवधू पड़ोसी के यहां किसी निवेदन हेतु जाते हुए लज्जा का अनुभव करती है। किन्तु विवशता के कारण जाना ही पड़ता है। कहां हैं ऐसे अपने लोग जो अपनों की गरज को बिना कहे ही सुन लेते हैं ? स्वत: स्फूर्त अनुग्रह का रस ही कुछ और है। ऐसे अयाचित अनुग्रह से अनुग्रह करने वाला तथा अनुगृहीत व्यक्ति-दोनों उच्चतर भाव से भर जाते हैं। अदीन बनाने वाला तथा मान-मर्यादा न खंडित करने वाला अनुग्रह ही वरण करने योग्य है।

१९९९) लोग तो प्यास बुझाने के लिए रस्सी की सहायता से गहरे कुएं से पानी निकाल लेते हैं और एक तुम हो जो उस व्यक्ति के मन की बात नहीं जान पा रहे हो। क्या किसी का मन कूप से भी अधिक गंभीर होता है, जहां पहुंचने के लिए कोई उपाय नहीं सूझता? तुम्हारी रणनीति तथा तुम्हारी व्यूह रचना ठीक नहीं लगती। गूढ़ से गूढ़ एवं निगूढ़ से निगूढ़ गर्भगृह में छिपे भेद को भी किसी न किसी उपाय से बाहर निकाला जा सकता है।

२०००) बड़प्पन बड़ों पर ही फबता है, छोटों पर नहीं। उसका एक निश्चित स्थान होता है। उसको विस्थापित करना तथा उसको पुन: स्थापित करना सरल नहीं है। जो धारणाएं, मान्यताएं एवं परम्पराएं समय की कसौटी पर खरी उतरती हों, उनको तोड़ने-मोड़ने का प्रयास कदापि नहीं करना चाहिए। गुरुता या बड़प्पन बड़े लोगों पर ही अच्छा लगता है, क्योंकि वह उनका प्राकृतिक गुण होता है। यदि छोटे लोग (मूर्ख) बड़ी-बड़ी बातें करने लगें तो उन्हें उनका पागलपन कहा जाएगा।

२००१) कितने ही स्वाभिमानों, कितने ही आदर्शों और कितने ही जीवन-मूल्यों को क्षुधा के सम्मुख विनत होते देखा जाता है। अन्नदाता जीविका के साधन देकर, ऊंचे-ऊंचे पद देकर अथवा मान-सम्मान देकर कितने ही सिद्धान्तवादी लोगों को अपना दास बना लेता है और उनसे उचित-अनुचित सब कुछ करा लेता है।

२००२) बड़े लोगों को क्षमाशील होना ही चाहिए। छोटे तो अज्ञानतावश उत्पात करते ही हैं। उनके उत्पात से बड़ों को बहुत कष्ट उठाना होता है। बड़ों को चाहिए कि वे छोटों को क्षमा कर दें। क्षमाशीलता की परीक्षार्थ महर्षि भृगु ने भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर पाद प्रहार किया तो वे बिल्कुल नहीं विचलित हुए। उल्टे उन्होंने प्रसन्न होकर महर्षि के चरण-चिह्न को सदा-सदा के लिए अपने वक्षदेश पर अंकित कर उसे भृगु-वल्लरी बना दिया। क्षमा करने से सुख मिलता है तथा क्रोध से दुख होता है, हे मन। क्षमा और क्रोध के गुण-दोषों को सुनकर उनसे शिक्षा ग्रहण करो। जैसे (भृगुमुनि (ब्राह्मण) की क्रोध से मारी हुई लात को छाती पर सहकर भगवान विष्णु ने उन्हें क्षमा कर दिया था)। क्षमा के कारण श्रीहरि तो अविचल लक्ष्मी के स्वामी हुए, परंतु (एक ब्राह्मण के क्रोध के परिणामस्वरूप) ब्राह्मणों को भीख भी मांगे नहीं मिली। जो मनुष्य किसी पर क्रोध करता है, उसे अंत में दुख मिलता है। जिस पर क्रोध किया जाता है वह बदले में क्रोध करके शाप भी दे सकता है, जबकि क्षमा करने वाले को आनंद ही मिलता है।

२००३) छोटा आदमी भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता। किसी को क्षुद्र, नगण्य, तुच्छ और व्यर्थ नहीं समझना चाहिए। समय और परिस्थिति छोटे को भी महत्त्वपूर्ण बना देती है। मानी हुई बात है कि छोटों से ही बड़ों की शोभा होती है। छोटे बड़ों के लिए पृष्ठभूमि होते हैं। पशु-मेले में अश्व-व्यापारी अपने हजारों के मोल वाले घोड़ों को दमड़ी में खरीदे गए खूंटे में बांधकर ही उन्हें विक्रय हेतु प्रस्तुत करता है। खूंटें में बंधा ऊर्ध्वमुखी अश्व लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। लघुतम के प्रति महत्तम का उपेक्षा भाव निंदनीय है। समय दृष्टि परिवर्तन की मांग करता है ताकि लघु मानव की भी पहचान बने।

HHH(६८०)HHH

२००४) आदमी को अकेला पाकर अथवा उसे अलग-अलग देखकर सारा दुख आक्रामक होकर उस पर टूट पड़ता है। इसलिए जब तक संसार में जीवित रहना है, तब तक आपस में मिल-जुलकर रहना चाहिए। साथ देखकर दुख आने का दुस्साहस नहीं करता। साथी का अभाव ही दुख आने का रास्ता खोलता है। चौपड़ में बंधे जुग की गोट नहीं मारी जाती। किन्तु जुग फूटते ही दोनों गोटें पिट जाती हैं।

२००५) याग-यज्ञ, प्रणाम-दण्डवत् और जप-जाप आदि धर्म नहीं हैं। वे वहीं तक अच्छे हैं, जहां तक वे हमें सुन्दर और वीरतापूर्ण कार्य करने की प्रेरणा देते हैं तथा हमारे विचारों को इतना उन्नत बना देते हैं जिससे हम दैवी पूर्णता की धारणा कर सकें।

२००६) हमें अपने में आशावादी प्रवृत्ति उत्पन्न करनी होगी और प्रत्येक वस्तु में स्थित शुभ को ही देखने का प्रयत्न करना होगा। यदि हम घुटनों पर सिर टेककर अपनी शारीरिक और मानसिक अपूर्णताओं पर रोते रहें, तो उससे क्या होगा ? वास्तव में विपरीत परिस्थितियों को दबा देने के लिए जो वीरतापूर्ण प्रयत्न है, वही एकमात्र ऐसा है, जो हमारी आत्मा को ऊपर उठाता जाता है।

२००७) जहां कहीं विकास दिखाई देता है, इसका अर्थ है कि वहां वेदांत के पवित्र सिद्धान्तों का आचरण किया जा रहा है। क्योंकि वेदांत ही वह व्यावहारिक उच्चतम नियम हैं, जिनमें समस्त संपदाएं (भौतिक व आध्यात्मिक) निहित हैं। वेदांत का तात्पर्य है उस ज्ञान से जिसके बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता। कारण को जानने के बाद कार्य का ज्ञान स्वत: हो जाता है।

२००८) निष्काम कर्म से अंत:करण की शुद्धि होती है, भक्ति से सद्भावना का अभ्युदय होता है। ये दोनों साधन इस योग्य बनाते हैं कि ज्ञानामृत टिक सके, आत्मसात हो। ज्ञान को आत्मसात् किए बिना मृत्यु को पार नहीं पाया जा सकता।

२००९) वेदान्त परमात्मा के सर्वव्यापक होने से भी आगे की बात समझाता है। वेदान्त के अनुसार, यह समूची सृष्टि परमात्मा का ही विभिन्न नाम-रूपों में प्रकट होना है। तभी तो सच्चा वेदांती सृष्टि के जड़-चेतन से आत्मवत् प्रेम करता है। धर्म-ग्रंथ जिन सद्गुणों को अपनाने की बात करते हैं, वे सभी अनायास उससे प्रवाहित होने लगते हैं, जो वेदांत का आचरण करता है। समूची सृष्टि के सारे प्रश्न, जैसे यह क्या है ? वह क्या है ? और मैं क्या हूं ? इन तीनों प्रश्नों में सिमट जाते हैं और इनका पूर्णरूप से समाधान देने की क्षमता वेदांत के अलावा और किसी में नहीं है।

२०१०) विश्वास ही प्रेमका जनक है। सेवा प्रेमकी सहचरी है। जहाँ धर्म-उपासना भक्ति-मूलक विश्वास-प्रेम-सेवा हो, वहाँ सुख-शान्ति-आनन्दका होना स्वाभाविक है।

२०११) इन्द्रियोंमें संयम-नियम-मर्यादा हो। आचरणमें धर्म हो। चरित्रमें पवित्रता हो। मनमें सद्भावना हो- सबका हित हो। बुद्धिमें वेदान्त-ज्ञान-प्रकाश हो। हृदयमें भगवद्भक्ति-भगवत्प्रेम हो। अहंमें निरहं हो। जीवनमें पूर्णता हो। आनन्दमें रहो। जिसका विचार पूर्ण हो गया-अज्ञान मिट गया, उसे शान्त होकर रहना चाहिए। जिसका अज्ञान बना है, उसे विचार करना चाहिए। समाधिसे अज्ञान नहीं छूटता है।

२०१२) एक सच्चा साधु बिना व्याख्यान दिये और बिना फावड़ा चलाये भी जगत्का कल्याण करता है। एक सच्चे साधु-हृदयमें उठनेवाला जो सत्-संकल्प है, वह सम्पूर्ण विश्वमें छा जाता है और विश्व-कल्याण हेतु व्याप्त हो जाता है। सचमुच, महात्माओंके सत्य-संकल्पसे ही यह पृथिवी धृत है और यह समाज धृत है। एक सच्चे साधुके मंगलमय जीवनसे इस समाजको एक श्रेष्ठ जीवनका उच्च आदर्श मिलता है।

२०१३) साधु समाज का बोझ नहीं है। साधु समाज का आधार-प्रेरक आदर्श है। साधुके जीवनसे समाजका मंगल होता है। साधुके संकल्प-मात्रसे ही समाजकी उन्नति-प्रगति होती है।

२०१४) अपना शरीर, मन, बुद्धि इन तीनों के साथ पूर्व संचित कर्म फल साथ लेकर पैदा होते है। शरीर, मन, और बुद्धि ही मानव को जीवन यात्रा हेतु ईश्वर द्वारा दिया गया महत्वपूर्ण साधन है। यही अपना सच्चा एवम् भरोसे का साथी है। हमे सभी तरह की सहायता करने के लिये ईश्वर द्वारा हमे प्रदान की गई है। यही तीन शक्तियाँ है जो अपनी है। इसलिये हम उन्हे जिस तरीके से बनाये उसी प्रकार वह बनेगी। हम उन्हें काम पर लगाने पर वह उद्योगी बनेगी। उन्हें बिना काम के आलस्य मे रखने पर वह सुस्त होगी और अनावश्यक कार्य करने लगेगी। आपको वह कल्याण की और भी ले जायेगी। अथवा अधोगति की और भी ले जा सकती है। अपने कल्याण के लिये उसे इस्तेमाल करना है कि दु:ख की गहरी खाई मे गिरने के लिये इसका इस्तेमाल करे यह अपने ही हाथ मे होता है। यह अपनी नौकर और हम मालिक यह सम्बन्ध होने पर अपना जीवन रथ निश्चय ही कल्याण की और अग्रसर होगा।

२०१५) शास्त्रका श्रवण करो। तदनुसार जीवनमें आचरण करो। आचरण ही सर्वस्व है। यदि आचरण और अध्ययनमें अभेद है, तो जीवनमें सौन्दर्य निखार है।

२०१६) जिसके भीतर त्यागकी भावना नहीं है, धैर्य नहीं है, आत्मबल नहीं है, वह दूसरेके ऊपर श्रद्धा-विश्वास कर ही नहीं सकता। यदि संशयालु आदमी किसी साधुके पास न जाये, तो साधुका मंगल ही है। साधुके पास तो उसको जाना चाहिए, जो त्याग-वैराग्य-सम्पन्न हो; जो श्रद्धा-विश्वास-सम्पन्न हो; जो जिज्ञासु-मुमुक्षु हो; और जिसके अन्दर बड़ा धैर्य एवं आत्मबल हो।

२०१७) अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त आत्मामें बन्धन और मोक्ष दोनों ही आरोपित हैं। अज्ञानसे बन्धन है। जो अज्ञानसे होता है, वह वास्तवमें होता ही नहीं है। ज्ञानसे मोक्ष है। जो ज्ञानसे होता है, वह पहलेसे ही विद्यमान रहता है। वस्तुत: न बन्धन है और न मोक्ष है। ज्ञानसे मुक्ति होती है। बन्धन अध्यासकृत है। यदि बन्धन आध्यात्मिक न होता, तो ज्ञानसे निवृत्त ही न होता। बद्धपनेके भ्रमकी निवृत्ति ही मुक्ति है। मुक्ति स्वत: कोई वस्तु नहीं है।

२०१८) अनियन्त्रित स्वच्छन्दता तो पशु-पक्षी, मछली-मक्खी, मच्छर-कीड़ोंको सदासे प्राप्त है। यदि तुम्हें इन्द्रिय भोग अनियन्त्रित अथवा अमर्यादित रूपसे स्वतंत्र ही रखना है, तो तुम साधनके क्षेत्रमें आये ही क्यों ? क्रिया इच्छानुसार नहीं होनी चाहिए। क्रिया बुद्धिके शासनानुसार होनी चाहिए। तुम्हारा जीवन केवल ऐन्द्रियक तुष्टिका जीवन नहीं है। तुम्हारा जीवन सद्भावनाका-प्रेमका जीवन है। यदि तुम अपने जीवन का ठीक-ठीक संयम नहीं करोगे, तो पशुकी भाँति पतनके मार्गपर जाओगे। मानवोचित उन्नत-जीवनके लिए उत्तम स्वभाव डालना पड़ता है। पूरी लगन-उत्साहसे, आशा-प्रतीक्षासे, अभ्यास-प्रयत्नपूर्वक उत्तम स्वभाव डालो। यह संसारकी वासना करोड़ों जन्मोंके अभ्याससे बनी है। अत: बिना बहुत दिनोंके साधनाभ्यासके यह कभी शान्त हो नहीं सकती है।

२०१९) कुत्ते की आदतों (गुणों) से भी मनुष्य को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। १) भूख लगने पर खूब डट कर खाये २) अधिक खाना न मिलने पर थोडे से ही मे सन्तोष कर ले ३) जरा सी आहट होते ही सजग सावधान हो जाय ४) स्वामी भक्ति ५) कृतज्ञता ६) अपने स्वामी के इशारे पर साहस पूर्वक शत्रु पर आक्रमण कर देना अर्थात अपनी शूरता का प्रदर्शन करना।

२०२०) जो संयोगमें बढ़े और वियोगमें घटे अथवा संयोगमें घटे और वियोगमें बढ़े, वह तो प्रेम ही नहीं है। प्रेमपर दूरी और देरीकी उपाधिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

२०२१) सत्य तो यह है कि ज्ञान किसी आकृतिकी अपेक्षा नहीं रखता। ज्ञान किसी व्यक्ति-विशेषके परीधान नहीं है। ज्ञान स्वयं प्रकाश ही है।

२०२२) महात्माका संग करनेसे बुद्धिमें निर्मल विवेक-प्रकाशका उदय होता है। महापुरुषका सान्निध्य बुद्धिको सूक्ष्मातिसूक्ष्म करता है। बड़े-बुजुर्गोंकी छत्रछाया ऐसी अनेकानेक युक्तियाँ प्रदान करती है, जिनसे हम दु:खको सुख बना सकते हैं। बड़ी-से-बड़ी मुसीबतको हँसकर टाल सकते हैं। अत: महापुरुषोंका सत्संग प्राप्त करके अपनी दृष्टिको बदलो और दु:खसे बचो।

२०२३) ब्राह्मण, गाय, राजा, वृद्ध पुरुष, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल और भारपीडित मनुष्य यदि सामने से आते हों तो स्वयं किनारे हटकर उन्हें जाने का मार्ग देना चाहिए। मार्ग में चलते समय अश्वत्थ आदि परिचित वृक्षों तथा समस्त चौराहों को दाहिने करके जाना चाहिए।

२०२४) गुणहीन मनुष्य ही अधिकतर अपनी प्रशंसा किया करते हैं। वे अपने में गुणों की कमी देखकर दूसरे गुणवान पुरुषों के गुणों में दोष बताकर उनपर आक्षेप किया करते हैं।

२०२५) जो व्यक्ति दूसरों के गुप्त भेद तुम्हारे सामने प्रकट करे उसे अपने गुप्त भेदों से अवगत न होने दो। क्योंकि जो व्यवहार वह दूसरों के साथ कर रहा है वही तुम्हारे साथ भी करेगा।

२०२६) परिवार, घर, मित्र या यह शरीर इन में कोई भी सदा आपके साथ नहीं रहता है। कोई भी नश्वर पदार्थ सदा किसीके भी साथ नहीं रह सकता है। इसलिये जो शाश्वत है उससे पहचानो, उससे अपना रिश्ता जोडो। वह शक्ति जो इस संसार होने का कारण है, जिसकी कृपा मात्र से सर्वत्र शुभ होने लगता है उस दयावान सर्वव्यापी शिव को पहचानो, जिसको पाने के बाद और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता है।

२०२७) शांति के समान कोई तप नहीं है, संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, तृष्णा से बढ़कर कोई व्याधि नहीं है, दया के समान कोई धर्म नहीं है।

२०२८) जैसे नमक के बिना अन्न स्वादरहित और फीका लगता है। वैसे ही वाचाल के कथन निस्सार होते हैं और किसी को रुचिकर नहीं लगते।

२०२९) कटा हुआ वृक्ष भी बढ़ता है। क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुन: बढ़कर पूरा हो जाता है। इस बात को समझकर संत पुरुष अपनी विपत्ति से नहीं घबराते।

२०३०) संसार में रहो, किन्तु संसार के माया-मोह से निर्लिप्त रहो, उसी प्रकार जिस प्रकार कमल कीचड़ में विकसित होता है, तथापि वह कीचड़ के स्पर्श से परे रहकर सदैव निर्मल बना रहता है।

२०३१) भूख-प्यास शरीर के धर्म हैं, और मन से भान होते हैं, सच्ची आत्मा को न दुख होता है और न घबराहट होती है। जो अपने परमात्मरूप परम भाव को अनुभव करता है उसे शारीरिक थकान, भूख-प्यास से न दुख होता है और न घबराहट ही होती है।

२०३२) जिस धर्म में दया नहीं, वह धर्म धर्म नहीं। ऐसे धर्म को अपनाये रखने से कोई लाभ नहीं। यह तो बोझे की गठडी सिर पर लादे रखने जैसा है। जिस गुरु के पास ज्ञान नहीं, उसकी सेवा करने से या उसका शिष्य बने रहने से कोई लाभ नहीं। निरन्तर झगडा करने वाली पत्नी को घर मे रखने से कोई लाभ नहीं उसे छोड देना ही श्रेयस्कर है। बन्धु बान्धव के मन में स्नेह न हो तो उनका परित्याग करना ही अच्छा है, श्रेष्ठ है, अर्थात सच्चा धर्म वही है जिसमें दया, करूणा हो। विद्या निपुण व्यक्ति ही गुरु बनाने योग्य है। शान्त और सहनशील पत्नी ही पत्नी बनने योग्य है और दु:ख मे द्रवित होने वाले बन्धु बान्धव परिजनों से सम्बन्ध रखना चाहिये।

२०३३) त्याग न तो अकर्मण्य लाचारी और नैराश्यपूर्ण निर्बलता है और न दर्पपूर्ण तपश्चर्या ही। ईश्वर के पवित्र मन्दिर अर्थात् अपने शरीर को बिना प्रतिरोध मांसाहारी निर्दयी भेड़ियों को खाने देना कोई त्याग नहीं है।

२०३४) जीवन में निश्छल खेल खेलने वाला अंतत: सम्मानित पद प्राप्त कर लेता है जबकि कपट का खेल खेलने वाला कहीं का भी नहीं रहता।

२०३५) प्रेम करने वाले को कौन रोक सकता है ? रोकने-मना करने पर वह कहां मानने वाला। समझाने-बुझाने का भी उस पर कोई असर नहीं होता। जिसके नयन कहीं लग गए हों, जिसका मन किसी के साथ चला गया हो, वह क्या किसी की सुनेगा? मानो उसने प्रेम-हाट में जाकर अपना बहुमूल्य सुख-चैन बेच दिया और खरीदकर ले आया वियोग-वेदना।

२०३६) यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमको सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-योनि प्राप्त हुई। जो व्यक्ति इस जीवन्त पिंड में मानवीय गरिमा प्रकाशित कर लेता है, उसी का जीवन सार्थक है। क्या पता, पुनर्जन्म होगा भी या नहीं। हो भी तो क्या मालूम, उस जन्म में अपने हितैषी, मित्र, बन्धु-बान्धव मिल पाएंगे या नहीं। अच्छा यही होगा कि इस जीवन को प्रथम और अन्तिम मानकर संपूर्ण बनाया जाए। मानवीयता की अनन्त संभावनाओं को महीतल पर ही अवतरित कर लिया जाए। यह बस हितैषियों, मित्रों, स्वजनों और कुटुंबियों के स्नेह-प्रेम तथा शुभेच्छा के बगैर नहीं हो सकता।

२०३७) रूपासक्ति बड़ी हठीली है। अप्रतिम रूप को देखते ही मन मोहित हो जाता है। मना करने पर नहीं मानता और रूप के साथ लग जाता है। फिर वह हाथ नहीं आता। आंखें भी उसी की तरह रूप से जा मिलती हैं। रूप देखते-देखते आंखे थक जाती हैं, फिर भी वे वहां से हटना नहीं चाहतीं। किसी तरह जब खींचकर उनको अपने पास लाया जाता है, वे छुड़ाकर फिर वहीं जा पहुंचती हैं।

२०३८) यह तलवार किसकी है ? इस तलवार पर किसका अधिकार है ? यह तलवार लोहे की है। इस तलवार पर लोहे का अधिकार है। नहीं, यह तलवार लोहार की है। इस तलवार पर लोहार का अधिकार है। नहीं, यह तलवार विजेता योद्धा की है। इस तलवार पर विजेता योद्धा का अधिकार है। यह उस जुझारु सूरमा की तलवार है, जिसने दुस्साहसी आक्रान्ता के शीश पर प्रहार कर उसे विजित किया।

२०३९) महाकाल का प्रयाण-सूचक नगाड़ा आठों प्रहर बज रहा है। मृत्यु-लीला नित्यप्रति देखी जा रही है। इस मृत्युलोक में आकर कौन स्थायी रूप से रह सका ? गर्व-दर्प छोड़ो। प्रेमपूर्वक रहो। जो करना है, अभी करो।

२०४०) यों तो सभी सैनिक कहे जाते हैं और सैन्यवाहिनी में सम्मिलित होकर युद्ध करते हैं। किन्तु जो योद्धा भाले-बरछी के प्रहार सहते हैं तथा अपने नरेश को विजेता बनाते हैं, वही अलंकृत किए जाते हैं। वही पुरस्कृत जागीरों के भोक्ता बनते हैं।

२०४१) अपना प्रतिकूल समय देखकर वीर पुरुष नीच से नीच वचन भी सह लेते हैं। ऐसे में विकट धैर्य धारण करते हैं। वे सब कुछ निस्तब्ध होकर सह जाते हैं। हस्तिनापुर की राजसभा में दु:शासन द्रौपदी का चीरहरण कर रहा था और महाबली भीम मूर्तिवत् गदा लिए

बैठे रहे। भीम के लिए यह दुर्बल मुहूर्त था। यह अपमान भीम की वीरता के लिए भूमि निर्मित करने आया था।

२०४२) सामान्य पक्षी सुविधा भोगी होते हैं। वे व्यावहारिक होते हैं। अपने जीवन-निर्वाह के लिए वे साधन और स्त्रोतों का विशेष ध्यान रखते हैं। इसीलिए उनका किसी एक सरोवर से स्थायी लगाव नहीं होता। वे अनासक्त होकर एक सरोवर से उड़ते हैं और चहकते हुए किसी संपन्न सरोवर पर अवतरित हो जाते हैं। किन्तु हंस ऐसा नहीं कर सकता। वह अनन्य भक्त की कोटि का प्राणी है। वह एकमात्र मानसरोवर की ही शरण में निवास करता है। वह गैर मामूली जीव है। उसकी यति-गति यही है उसके लिए यही एक ठौर है।

२०४३) जिस परिवार का पुरुष गृहस्थ आश्रम में होकर भी साधना की तुरीयावस्था (समाधि) में जा पहुंचा हो, जिसकी पतिव्रता पत्नी निश्चल चित्त की हो तथा जिसका योग्य पुत्र उसके यश को दिग-दिगंत तक फैला रहा हो, वह परिवार धन्य है। ऐसा परिवार हजारों-लाखों में कोई-कोई ही मिलता है। जिस परिवार में ऐसे लोग हों, वह परिवार हर प्रकार से आनन्द का सुख भोगता है। त्रिदेवों से पवित्र ऐसा परिवार दर्शनीय एवं अभिनंदनीय है।

२०४४) साधु-सज्जन ही साधुता-सज्जनता की सराहना करते हैं, दुष्ट-दुर्जन नहीं। योगी-यति ही ध्यान, योग, साधना एवं समाधि की प्रशंसा करते हैं, गृहस्थ तथा सामान्य जन नहीं। किन्तु सच्चे शूर के शौर्य का बखान उसके विजेता-पक्ष के वीर ही नहीं, अपितु विजित पक्ष के शत्रु सूरमा भी करते हैं। शौर्य सर्वप्रिय है।

२०४५) जिनके पास धन-संपत्ति है, ठोस आर्थिक आधार है तथा समृद्धि के विश्वसनीय स्त्रोत हैं, लोग उनको हर संभव सहायता देकर आर्थिक संकट उबार लेते हैं। लोगों को मालूम है कि आज वे जितना दे रहे हैं, कल उन्हें कहीं ज्यादा मिलेगा। दूसरी ओर समाज के दीन-दुखी लोगों पर कोई कृपा-दृष्टि नहीं करता। इनकी कोई सुधि नहीं लेता। ये समाज के अनचाहे लोग हैं। इनको कोई नहीं चाहता। इन्हें कोई नहीं पसंद करता।

२०४६) जो व्यक्ति अज्ञानतावश धन-दौलत के नशे में होकर दुर्व्यसनों में पड़ जाता है, वह अपना सर्वनाश कर लेता है। कुछ भी नहीं रह जाता उसके पास। सब कुछ निकल जाता है उसके हाथ से पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान आदि भी। फिर वह समाज में उसी प्रकार उपेक्षित होकर जीता है, जिस प्रकार दिवस के आकाश रूपी किसी कोने में पड़ा चन्द्रमा बुझा-बुझा, फीका, अनचाहा और अनदेखा रहता है।

२०४७) शशि से सुशोभित आकाश एवं शुभ्र शीतल चन्द्रिका- चर्चित निशा- सभी को सुन्दर, सुखद और सुहानी लगती है। मन निर्मल-सौम्य हो उठता है। किन्तु अंधेरे का सहारा लेकर चोरी करने वाले चोरों को यही दिव्य रात फूटी आंख नहीं सुहाती। उनके मन में खोट होती है।

२०४८) चन्द्रमा, सुन्दर केश, साहस, पानी, सम्मान और स्नेह- ये सभी धीरे-धीरे बढ़ जाते हैं तथा धीरे-धीरे घट भी जाते हैं। शशि, केश और सलिल की तरह साहस, स्नेह एवं सम्मान को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। इनके संवर्धन में प्रमाद आते ही ये सब शनैः-शनैः घटने लगते हैं।

२०४९) जो दिवाकर प्राणिमात्र की रक्षार्थ शीत हरता है, जगत पर छाए अंधकार को दूर करता है तथा विश्व के चराचर जीवन का प्रतिपालन करता है, उस परम प्रतापी प्रकाश-पुरुष की यदि रात के अन्धेरे में व्यभिचरण करने वाले उलूक अपना स्वार्थ सधता न देखकर निन्दा करते हैं तो सूर्य का क्या जाता है ?

२०५०) यदि कहीं शासन-तंत्र की जबरदस्त भूल के कारण किसी व्यक्ति को शासक का कोप-भाजन बनना पड़े और शासक द्वारा प्रदत्त पद और अनुकंपाएं छीन ली जाएं तो जीवन नारकीय हो जाता है। ऐसे नरक में जीने से अच्छा यही है कि प्राण त्याग दिए जाएं। ऐसा दुख कभी सहा नहीं जाता।

२०५१) प्रथा-परंपरा, शिष्टाचार-औपचारिकता एवं आदर-सम्मान के नाते लोग एक दूसरे का अभिवादन करके अपनापन दिखाते हैं। लेकिन उनमें से कितने व्यक्ति अपने हैं- इसका पता तब लगता है, जब उनके सामने कोई काम लेकर जाया जाए। इस कसौटी पर गिने-चुने लोग ही खरे उतरेंगे।

२०५२) धन्य हैं वे लोग, जिनके अंग-अंग में परोपकार के भाव उमड़ते रहते हैं। परोपकार ही उनका धर्म है। इस कार्य के लिए

उनको जो पुरस्कार मिलता है, वह है इस कार्य से प्राप्त होने वाला आनन्द। यही प्रत्युपकार है।

२०५३) अपने कुल-गोत्र को बढ़ते हुए देखकर वैसा ही सुख मिलता है, जैसे किसी युवती की बड़ी-बड़ी आंखे देखकर सजातीय पुरुष की आंखों को। विशालाक्षी के नयन इन आंखों को अपने लगते हैं। कुल-गोत्र वंश-वृक्ष की शाखा-प्रशाखा होते हैं। वृक्ष समग्रता में अपनी वृद्धि देखकर प्रसन्न होता है। आत्म-विस्तार से सुख-संतोष मिलता है।

२०५४) स्वाभिमान राजपूत नरेश की आत्मा है। यदि कभी कोई राजपूत नरेश विजित हो गया और विजेता शासक ने उसको अपने अधीन क्षत्रप बनाकर शासन करने का यत्किंचित अधिकार दे दिया तो भी वह इसे अपना पराभव मानेगा। वह इस अपमान को सहन नहीं कर सकेगा। वह अपने राजचिह्न, चामर, छत्र एवं सिंहासन की क्षीण प्रतिष्ठा कदापि नहीं देख सकता। ऐसी स्थिति में या तो वह आत्महंता बन जाएगा या फिर अपना देश ही त्याग देगा। आन-बान पर मर मिटने वाला ऐसा राजपूत ही सच्चा नृपति है।

२०५५) हर कोई सुसंस्कृत एवं मृदुभाषी नहीं हो पाता। जिसकी जैसी बुद्धि है, वह उसी के अनुसार बात करता है। वैसे हर व्यक्ति यथासंभव अच्छी बात करने का प्रयास करता है। किन्तु कुछ ऐसे संस्कार विहीन लोग भी होते हैं, जिनकी बात बन नहीं पाती बल्कि बिगड़ जाती है। उनकी बात अनजाने में ही अपमानजनक और हिंसक हो जाती है। ऐसे नासमझ लोग दया के पात्र हैं। ऐसे लोगों की बात का बुरा नहीं मानना चाहिए। वास्तव में उनका इरादा बातों से चोट पहुंचाने का नहीं होता। दिल में घर करने वाली बात को बेघर कर दो।

२०५६) बुद्धि की परख चिन्ताओं से घिर जाने पर, पत्नी की परीक्षा आर्थिक संकट के समय, सगे-संबंधियों की जांच दुर्दिन की घड़ियों में तथा स्वामी का मूल्यांकन कष्ट के दौर में करना चाहिए। बुद्धि वही है, जो चिन्ता से मुक्त करने की कोई राह निकाले। भार्या वही है जो आर्थिक संकट का पहाड़ टूटने पर पति को बचा ले जाए। सगे-संबंधी वहीं है जो दुर्बल-कष्टदायक मुहूर्त में साथ दें और स्वामी वही है जो परेशानियों से उबार ले। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ये चारों अधिक मनोज्ञ और प्रिय हो जाते हैं।

२०५७) सच्चा शहंशाह कौन है- विस्तृत भू-भाग पर राज करने वाला, संपत्ति एवं शक्ति-प्रदर्शन के लिए राजा-महाराजाओं को पराजित करके चक्रवर्ती कहलाने वाला, धरती पर कोलाहल मचाकर स्वर्ग उतार लाने की कामना रखने वाला, अपने गुणानुवाद हेतु कवियों को चारण बनाने वाला, अपनी यश-कीर्ति के निमित्त शिलालेख स्थापित कराने वाला अथवा अपनी ही प्रतिमाएं स्थान-स्थान पर प्रतिष्ठापित कराने वाला, कालजयी बनने के लिए भूमि में कालपात्र गड़वाने वाला, मांसल प्रेम का भूखा, चाटुकारों से सुशोभित, नवरत्नों के प्रभामण्डल से युक्त या सिंहासनारूढ़ गैर इन्सानी देह का एक अदद आदमी। नहीं, जिसको कोई चाह नहीं रही, जिसको कोई चिन्ता न हो, जिसका मन दुनिया से बेपरवाह हो, जिसको कुछ भी नहीं चाहिए, ऐसा वीतराग, अनासक्त, जितेन्द्रिय, स्थित प्रज्ञ एवं नरपुंगव ही सच्चा शहंशाह है।

२०५८) सरोवर की तट-कमलिनी की छाया में विश्राम कर रहे कारंडव जल के पक्षी। उदर-पूर्ति के सम्बन्ध में तुम कितने निश्चिंत दिख रहे हो। आखिर क्यों नहीं होगे, तुम्हें विधाता ने खाने के लिए दो चोंच जो दी हैं और भरने के लिए मात्र एक पेट। लेकिन यह तो सोचो कि यदि किसी के दो पेट और एक चोंच दी होती तो वह कैसे जीवित रहता ? जो विगत-वैभव हो गया है, जीविका के साधन छिन गए हैं। वह अपनी प्रतिष्ठा कैसे बचाए ? भोजन जुटाने वाला एक, परिवार के उदर अनेक। आर्थिक तनाव से व्यक्ति कैसे टूट जाता है।

२०५९) जो लोगों के सामने अपनी योग्यता दिखाने के लिए बड़ी-बड़ी बातें करता है और ऊंचे-ऊंचे आदर्श बोलता है, किन्तु उन बातों को अपने आचरण-व्यवहार में सम्मिलित नहीं करता। दंभ-दर्प से दरके हुए ऐसे मूल्यहीन व्यक्ति को समझाना, बुझाना और जागृत करना कदापि उचित नहीं है। वह समझाने से नहीं समझेगा और जगाने से नहीं जागेगा। ऐसा व्यक्ति जागते हुए भी सोया हुआ है। वह जाग रहा है। उसे पता है कि वह नकली जिन्दगी का आदमी है। उसकी जीवन-शैली आडम्बर और दिखावे की है। वह भीतर से बहुत खाली है। वह खोखला है।

२०६०) किसी भी विरहिणी स्त्री को अपने प्रीतम के बिछोह का दुख बहुत अधिक नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह दुख किसी को दिखाई नहीं देता। उसका घाव अस्पष्ट होता है। विरह की पीड़ा मन में समेटने से ऐसा लगता है, मानो हीरे की नोक गड़ रही हो। मन की पीड़ा अधिक से अधिक बढ़ती चली जाती है जिसका वह वर्णन भी नहीं कर पाती।

२०६१) सराय की मलिका, जिसका काम मुसाफिरों को अपने यहां ठहराना और उनकी आवभगत करना होता है की भी यही रीति

है। वह आते हुए मुसाफिर का तो दिल खोलकर पलक-पांवड़े बिछाकर स्वागत करती है, पर जब वह वापस जाने लगता है तो उससे कुशल-क्षेम भी पूछना गवारा नहीं करती। इसके माध्यम से स्वार्थी स्वभाव का चित्रण किया है। जब किसी को किसी से मतलब निकालना होता है तो उसे पूरा आदर दिया जाता है। लेकिन काम निकल जाने के बाद उसे पहचानने से भी लोग इन्कार कर देते हैं।

२०६२) नर्तकी दक्ष शिकारी की तरह अपने रूपजाल में बांधने के लिए बार-बार अपने हृदय पर हाथ रखकर प्रेम का संकेत देती है। लेकिन यह तो उसका पेशा है। उसके रूपजाल के फेर में दर्शक प्रेमी को नहीं फंसना चाहिए।

२०६३) प्रेम की अवस्था का पाठ तो दीपक और पतंगे से सीखना चाहिए। दीपक की चमक के प्रति आकर्षित होकर पतंगा उसकी ओर बार-बार जाता है और मिलन की चेष्टा करता है। हजारों पतंगे ऐसा करके जलते रहते हैं। वे अपना प्रेम दीपक पर निछावर कर जाते हैं। पंख के जल जाने के बाद भी वे अपने बचे हुए तन के साथ घर जाने की सुध नहीं रखते। उनका मन इस बात के लिए प्रेरित करता है कि सम्पूर्ण तन को दीपक पर कुर्बान करते हुए जला डालें।

२०६४) विरह की अग्नि में जलने वाले व्यक्ति को आगे-पीछे का पता नहीं रहता। वह तो सुध-बुध खोए हुए बावला सा हो जाता है। ऐसा मनुष्य कभी कुछ कहता है तो कभी कुछ। वह दूसरों के गाए गाने के बोल पर बड़बड़ाता है। थोड़ी देर के बाद कुछ और अलापने लगाता है।

२०६५) किसी किस्म की नोक गड़ने से जो घाव होता है, उस घाव का रक्त दूषित हो जाता है। वहां का रक्त निकालने के बाद पीड़ा से शान्ति मिलती है। कुछ चिकित्सक जोंक के माध्यम से गन्दे-दूषित खून को चुसवाने की क्रिया सम्पन्न कराते हैं।

२०६६) प्रेम की भावना कागज की बनी पतंग की तरह होती है। वह डोर का सहारा पाते ही प्रेममय होकर आकाश में तन जाती है। प्रेम का भाव ऐसा होता है कि सूरत देखकर दूर से ही चित्त को खींच लेता है, जैसे पतंग को डोर खींच लाती है।

२०६७) दधि-मंथन चल रहा है। मथते-मथते दही-मही छिन्न-भिन्न-अच्छिन्न हो जाता है, जैसे कहीं अन्यत्र चला जाता हो। सामने विशिष्ट होकर आ जाता है- मक्खन, एक मात्र मक्खन। वही मक्खन जो मंथन से पहले दिखाई नहीं देता था, लेकिन अब दिखने लगा। ऐसे ही सच्चे मित्र भी सुख के दिनों में कुछ कम ही दिखते हैं। लेकिन मुसीबत आई नहीं कि वे किसी देव-पुरुष की तरह आविर्भूत हो जाते हैं- स्नेह-प्रेमयुक्त नवनीत के समान। सच्चा मित्र संकट-मोचन होता है।

२०६८) कहां मन जैसा उदार स्वामी (राजा) और कहां दृग जैसा आशुतोष दीवान ? जो चतुर व्यक्ति दीवान का आदर-सत्कार करके उसे प्रसन्न कर लेता है, समझ लीजिए कि उसके हाथों राजा बिक गया। वस्तुत: राज-काज दीवान ही चलाता है। ऐसे योग्य दीवान के विरुद्ध राजा नहीं जाता।

२०६९) प्रेम-राज में यदि व्यक्ति के नेत्र किसी युवती पर विमोहित हो गए तो उसका हृदय भी उसके हाथ से गया। नेत्र ही तो काम की प्रशस्त भूमियां उन्मीलित करते हैं।

२०७०) विश्व-मांगल्य भाव से भरे शिव-शम्भू ने आदर-सम्मान पाकर हलाहल का पान किया और वे नीलकन्ठ जगदीश्वर हो गए। उधर कुटिल-स्वार्थी राहु को अमृत पीने पर अपमानपूर्वक अपना सिर गंवा देना पड़ा।

२०७१) जिस प्रकार दुर्दिन वन-गौरव पलाश को माघ के महीने में धकेलकर उसका सब कुछ छीन लेता है और उसे विपन्न-विरूप कर देता है, जिस प्रकार पानी की धार को तोड़ने वाली प्रभावती मीन पानी से निष्कासित होकर स्थल पर पड़ी दीन, गतिहीन, निष्प्रभ एवं निष्प्राण हो जाती है, उसी प्रकार वीर-प्रज्ञा पुरुष अपने स्थान से हटा दिए जाने पर अपनी गति, मति तथा चमक-दमक सर्वस्व गंवा देता है। फिर वह दुनिया का अनावश्यक प्राणी बन जाता है।

२०७२) मूर्खों की मंडली में या दुष्टों के साथ सज्जन व्यक्ति अधिक समय तक नहीं ठहर सकता। उसे वहां से हटना ही पड़ता है। यदि काले बालों के बीच में कोई सफेद बाल दिख जाए तो उसे तोड़कर निकाल दिया जाता है। दुष्ट या सज्जन व्यक्ति अपने सही स्थान पर ही ठहर पाते हैं।

२०७३) समाज दुर्जनों से मुक्त नहीं हो सकता। उल्टे दिनों-दिन दुर्जनताएं बढ़ती ही जाती हैं। लगता है कि दुष्टों के मर जाने से भी उनकी दुष्टता उनके साथ नहीं जाती। वह यहीं बनी रहती है और किसी दूसरे शरीर में प्रवेश पाने की प्रतीक्षा करती है। वरिष्ठ दुष्ट अपने

कनिष्ठ दुष्टों को उत्तराधिकार के रूप में अपने सकल गुण सौंप जाते हैं। फिर वे गुण गुणात्मक होकर अधिक शक्तिमान हो जाते हैं। लोक-प्रवाद के अनुसार नरभक्षी बाघ द्वारा अकाल मृत्यु को प्राप्त दुष्ट अपनी प्रेतयोनि में और अधिक उत्पात मचाने लगता है।

२०७४) हम इस बात को नहीं मानते कि जो सौम्य-सरल एवं नम्र-विनम्र दिखते हैं, वे सभी सचमुच विनयशील होते हैं। बहुत कम लोग हैं जो हृदय से विनम्र होते हैं। अधिकांश तो विनम्रता की प्रतिमूर्ति बनकर अनर्थ ही करते हैं। छल-कपट से मानव-जाति मुक्त नहीं है। चीता आखेट के समय, चोर सेन्ध लगाते हुए और धनुष शर-संधान के समय झुके होते हैं। इनके झुकाव में दूसरों का अमंगल ही है। अपकारी को अपने मुख-मण्डल पर विनम्रता की मुद्रा अंकित करने में कोई कठिनाई कभी नहीं होती।

२०७५) मैं जिस किसी से हृदय लगाता हूं, वही दगा दे जाता है। मेरा मन जल-भुनकर भस्म हो गया है। इसके भस्म होने का पता मुझे इसी बात से चल गया कि मैं जिस-जिसको अपना हृदय देता हूं, वही रूखा हो जाता है। ऐसे को कौन अपना हृदय देना चाहेगा जो ईर्ष्या से तप रहा हो और द्वेष से जल रहा हो। मन को जलाकर भस्म चूर्ण बना दो। जो उपचार चाहता हो, उसी को भस्म दो। प्रयोग के तौर पर उसे हर किसी को नहीं थमा देना चाहिए। अत: व्यर्थ के प्रयोग मत करो।

२०७६) कहीं भी परास्त मत हो। परम अभिभावक प्रभु के सदा-सर्वत्र होते हुए किस बात की चिन्ता ? कोई-रो रोकर क्यों मरे? यहां कोई भी अनाथ नहीं है। चाहे दुर्दांत शत्रुवाहिनी से आक्रान्त रणभूमि हो या कोई दुर्धर्ष पाशविकता से समन्वित वन भूमि, चाहे दुस्साध्य व्याधि की कष्ट-शय्या हो अथवा विपत्ति के टूट पड़े शैल-श्रृंग कहीं भी विकल-विह्वल होने की आवश्यकता नहीं है। तेरा सर्वशक्तिमान संरक्षक क्या तुझे यों ही असहाय छोड़ देगा ? वह भयानक संकट से बाहर ला देगा। जो जननी के गर्भ-गेह में तेरा रक्षक रहा हो, वह दुखहर्ता हरि क्या अब सो गया है ? पीछे मत देख। आगे बढ़ो। पराङ्मुख मत बनो।

२०७७) कौन अपने वंश की वृद्धि और उन्नति नहीं करना चाहता ? कौन अपने वंश-कुल के यशस्वी पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-भाव नहीं रखता ? कौन अपने सगोत्र के पुरखों के उच्च संस्कार की परंपरा का निर्वाह करते हुए आह्लादित नहीं होता ? हिरनों के झुंड चन्द्रमा के रथवाहक अपने सगोत्रीय मृगों के इस गौरव कार्य पर उल्लसित होकर आकाश की ओर उछलते रहते हैं, मानो वे अपनों के अभ्युत्थान पर उनका अभिनन्दन कर रहे हों।

२०७८) भुभुक्षा व्यक्ति को निस्तेज एवं निष्प्रभ कर देती हैं। मैंने अपने पेट को कितना कहा, कितना समझाया कि तू भुभुक्षु न बन। किन्तु उसने मेरी एक न सुनी। मैंने उसे प्रेम से समझाया-बुझाया कि यदि तू अपनी क्षुधा-वृत्ति पर पूर्ण नियंत्रण कर ले, निराहार हो जा तो फिर कौन तुझसे रुष्ट होगा, फिर कौन तुझे बुरा कहेगा ? सारी बुराइयों की जड़ तू है। तेरे भरण-पोषण के लिए व्यक्ति वह सब कर जाता है, जिसे वह कभी नहीं करना चाहता। नीच से नीच तथा क्रूर से क्रूर कर्म तेरी क्षुधा-पूर्ति के लिए ही किए जाते हैं।

२०७९) अब वे महामहिम वृक्ष कहां हैं जिनकी उदार, शांत, मंगल एवं निर्वाण दायिनी छाया होती थी। अब तो इन बाग-बगीचों में, जहां देखो वहीं बस उज्जड-उद्दंड, क्षुद्र-ओछे सेंहुड़ तथा कंजे-करील के कंटकाकीर्ण झाड़-झंकाड़ ही दिखाई देते हैं। कहां गए जीवन-जगत की धारा मोड़ देने वाले शलाका-पुरुष, जिनकी छाया में श्रांत-क्लांत, हताश-परास्त जीवन को शान्ति और विश्रान्ति मिला करती थी। आशीर्वाद की तरह छायांकित हो जाने वाले वे मनस्वी-गौरव पुरुष अब कहां रहे और उनके औदार्य एवं सदाशयता के छाया-वृत्त अब कहां हैं।

२०८०) कोई दुर्भाग्य से कहां तक बचेगा ? यदि किसी के बुरे दिन हों तो उसके हित की बात भी अहित की हो जाती है। ऐसे में देखते-देखते मित्र शत्रु और अपने पराए हो जाते हैं।

२०८१) चिंता मनुष्य को कहीं का भी नहीं छोड़ती। चिंता चिता से भी कहीं अधिक दाहक है। चिता तो केवल निर्जीव को जलाती है, किन्तु चिंता जीवित व्यक्ति के जीवन को ही जलाकर राख कर देती है। अत: चिंता को निर्मम समझते हुए चिंतामुक्त होने के उपाय ढूंढो।

२०८२) बड़े लोग अतिशय विनयशील होते हैं। उनमें गर्व का लेश मात्र भी नहीं होता। वे विनम्र, निरभिमान और निरहंकार होते हैं। वे अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण समर्पित होते हैं और उसका मूल्य जानते हैं। वे मान-अपमान, आदर-निरादर से उठे हुए लोग होते हैं। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य होता है- सर्वकल्याण। अपने फणमंडल पर भूमण्डल का भार धारण करने वाले परम दैवत शेष की अशेष महिमा है, पर वे शेष ही कहे जाते हैं। मानो वे नगण्य हैं। कुछ भी कह डालो, इस कल्याण देवता की कर्तव्य-निष्ठा पर कोई

अन्तर नहीं पड़ता। उसकी कर्तव्य-साधना ऐसी बातों से खंडित नहीं हो सकती।

२०८३) अन्धकार का भक्षण करने वाले दीपक को परिणाम स्वरूप कज्जल ही वमन करना होता है। इसलिए कोई भी कार्य करने से पहले उसके फलाफल का अनुमान अवश्य लगा लेना चाहिए।

२०८४) कृतज्ञता प्रदर्शित करना एक प्रसन्न संस्कार है। यह संस्कार ओछे व्यक्तियों में नहीं आ पाता। चलते रहंट की धड़िया (जलपात्र) जब पानी से खाली होती है तो उसका रुख सामने होता है और जब पानी से भरी रहती है तो उसकी पीठ सम्मुख होती है।

२०८५) यही आचरण करता है ओछा आदमी। जब कोई काम होता है, कोई गरज होती है तो सादर सामने आ जाता है और जब काम निकल जाता है, गरज नहीं होती तो वह देखकर भी अनदेखा कर देता है। पीठ दिखाकर निकल जाता है।

२०८६) यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे चाक से यह निवेदन करे कि कृपया मुझे एक दीया बनाकर दे दीजिए तो चाक उसकी बात नहीं सुनेगा। लेकिन जब उसको दण्डित करके चक्रित किया जाता है तो वह दीया क्या नांद बनाकर सामने रख देता है। यह है शक्ति का प्रताप। दुर्जन विनम्रता को निर्बलता समझता है। उसके लिए साम नहीं, दंड नीति बनाई गई है।

२०८७) जीवन का सबसे बडा धन परमात्मा की और निरन्तर बढ़ते रहने की रूचि है। ज्ञानी अपने ज्ञान से, दानी दान से और कर्मयोगी अपने कर्म से परमात्मा की अर्चना उपासना करता है। भगवान श्री कृष्ण ज्ञानी को बहुत अधिक चाहते है लेकिन वो ज्ञानी भक्त हो। क्योकि भक्ति के बिना ज्ञान सार हीन और नीरस होता है। भक्ति से रहित ज्ञानी नास्तिक और वर्णाश्रम धर्म का विरोधी होता है। वह शास्त्र सम्मत बातों का सदैव खंडन करता है। सनातन धर्म का आश्रय लेकर लोगों की भावनाओं का दोहन करता है। इस प्रकार के ज्ञानी का धर्म केवल परम्पराओं का खंडन ही होता है।

२०८८) शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते है, किन्तु जो शास्त्र के अनुसार आचरण करता है वही विद्वान वास्तव मे प्रशंसनीय है क्योकि रोगियों के लिये अच्छी तरह सोच कर निश्चित की हुई औषध भी नाम लेने मात्र से नीरोग नही करती है।

२०८९) वाणी पर संयम रखा जाए। नाप-तोलकर बोला जाए। क्योंकि शब्द ही कमल हैं और शब्द बाण भी हैं। बावली जिह्वा बिना सोचे-समझे न जाने क्या-क्या और न जाने कहां-कहां की कह गई। कहकर खुद तो भीतर जा रही। शब्द की प्रतिक्रिया भयंकर हुई। जूते खाने पड़े बेकसूर सिर को।

२०९०) समर्थ और शक्तिशाली व्यक्ति के लिये कोई भी काम करना मुश्किल नही होता, वे जो चाहते है कर गुजरते है। व्यापारी के लिये कोई भी दूरी उसके व्यापार कार्य मे बाधक नही बनती, बडे ही उत्साह के साथ वह हर दूरी को तय कर लेता है। विद्वान व्यक्ति के लिये कोई देश पराया नही होता। मधुर वचन बोलने वाले व्यक्ति का कोई भी शत्रु नही होता। उसके लिये सभी के द्वार हमेशा खुले रहते है। वे अपनी मधुर वाणी से सभी को अपना मित्र बना लेते है। अर्थात शक्ति कार्य सिद्धि का, व्यापारी दूर समीप के अन्तर मिटाने का विद्या देश-विदेश को समान रूप देने का तथा मधुर वचन शत्रुता मिटाने का व मित्रता बढ़ाने का साधन है।

२०९१) अब इस दुनिया में थोड़े दिन और रहना है। किन्तु इस ढलती उम्र में भी अतृप्त काम-वासनाएं जोर मारती रहती हैं। व्यक्ति धन-दौलत और पद-प्रतिष्ठा के बल पर अपनी दमित, निरंकुश तथा उच्छृंखल मांसल भूख मिटाने के लिए भ्रष्ट मार्ग अपनाता है।

२०९२) यदि कोई दानवीर अत्यधिक निर्धन हो जाए तो भी वह याचना योग्य है। वह कितना ही दरिद्र क्यों न हो जाए, उसके पास कुछ न कुछ तो शेष रहता ही है। अपनी दुरावस्था में भी वह यही प्रयास करेगा कि कोई पूरी तरह निराश न लौटे। जो सरिताएं ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं, उनको आसपास के लोग नहीं त्यागते। वे उनके पेट में कुएं खोदकर शीतल जल प्राप्त कर लेते हैं।

२०९३) दान, परोपकार, तीर्थ, सेवा, व्रत सत्संग एवं पूजा आदि से मनुष्य को अपना कर्तव्य निभाना चाहिये क्योकि पता नही कब मृत्यु का वरण करना पडे। अत: यह आवश्यक है कि व्यक्ति को सत्कर्मों में लिप्त रहना चाहिये। इसी से पुण्य की प्राप्ति होती है।

२०९४) नीच लोगों के साथ रहने से किसको कलंक नहीं लगता। मदिरा बनाने और बेचने वाली कलवारिन चाहे कलश में दूध ही क्यों न लिए जा रही हो लोग अपनी धारणानुसार उसे मदिरा ही समझेंगे। लोक धारणा रसीले-सजीले हाथों में मधुकलश ही देखती आ रही है। नीचों की संगति करने से सज्जनों को नित्यप्रति कोई न कोई हानि उठानी पड़ती है। पानी जलघड़ी की संपुटी चुराता है और चोरी का दंड मिलता है पास के घड़ियाल को।

२०९५) परोपकारी लोग परोपकार करते हुए जरा भी नहीं हिचकते। वे लाभ-हानि, जय-पराजय और जीवन-मृत्यु से ऊपर के लोग होते हैं। उन पर परोपकार का ऐसा उन्माद छाया रहता है कि उन्हें और कुछ नहीं दिखता। वे सावन की घटा की तरह बरस जाते हैं। भूपेन्द्र शिवि ने कपोत की रक्षार्थ प्रसन्न मुद्रा में अपने शरीर का मांस काटकर दे दिया और महर्षि दधीचि ने मानव जाति के कल्याण हेतु अपनी काया का ही अस्थिदान कर दिया। ऐसे होते हैं दानवीर और ऐसी होती है दानवीरता।

२०९६) अपना पानी (प्रतिष्ठा) बनाए रखिए। किसी भी तरह वह जाने न पाए। पानी के बिना सब कुछ बेकार है। पानी ही मानव का जीवन है। पानी (आशा) गया तो मोती गया। पानी (स्वाभिमान) गया तो मानुष गया। पानी गया तो चूना गया। हर हालत में, हर सूरत में अपना पानी होना चाहिए। बिना पानी के सब कुछ सूना है।

२०९७) खीरे जैसी प्रीति मत कीजिए-बाहर से कुछ और भीतर से कुछ और। ऐसी कपट वाली प्रीति कितने दिन चलेगी ? आज नहीं तो कल सच्चाई खुलकर सामने आ ही जाएगी। खीरा बाहर से सरल, हरा और प्रेम भरा लगता है। किन्तु भीतर से उसका अन्त:करण खाली रहता है। उसमें तीन फांकें होती हैं। प्रीति बाहर-भीतर दोनों में एकरूपता चाहती है। प्रेम कपट से बहुत घबराता है।

२०९८) प्रेम का मार्ग प्रशस्त नहीं है। मार्ग क्या बस एक फिसलन भरी, संकीर्ण लम्बी गली है। इस दुर्गम गली में चींटी तक नहीं संभल पाती जबकि लोग बैल लादकर ले जाना चाहते हैं। मानो वह हाट-बाट जाने और व्यापार करने का कोई सार्वजनिक मार्ग हो। इस पैंड़े (मार्ग) में दोनों ओर गहरी मृत्यु घाटियां हैं। इस पर कोई सूरमा ही जान हथेली पर लेकर अपने कदम रखता है। कृपया प्रेम-व्यापारी इधर न आएं।

२०९९) समर्पण प्रेम का केन्द्रीय भाव है। वह प्रीति प्रशंसनीय है जो मिलने पर दुगुना चटक रंग धारण कर ले। जब हल्दी और चूना-एक दूसरे से मिलते हैं तो हल्दी अपनी पीतिमा और चूना अपनी श्वेतिमा एक दूसरे को अर्पित कर देते हैं। हल्दी और चूना दोनों अपनी-अपनी अस्मिता खोकर रोचना बन जाते हैं जो विशिष्ट रंग धर कर सुशोभित होता है। सच्चे प्रेम में निजताएं अचेत रहती हैं। जिन प्रेमीजनों की अस्मिताएं मुखर होती हैं, उनका प्रेम बहुत गंभीर नहीं होता अर्थात् गहरे सागर का रंग गहरा होता है।

२१००) इन्सान जब अपने आपको पहचान लेता है तभी वह दुनिया के लिये कुछ कर पाता है। भय के सामने आजाने पर शंकित होना अथवा उसकी शक्ति से डर कर छिपने की कोशिश करना समझदारी का काम नही। जब संकट सामने है तो जो होना है सो होगा। देखा जायेगा ऐसा न सोचकर उस पर पहल करते हुये वार करना चाहिये। वस्तुत: आत्मविश्वास और साहस के द्वारा व्यक्ति बडे बडे संकटों पर आसानी से काबू पालेता है।

२१०१) सही व्यक्ति की सही समय पर प्रशंसा करनी चाहिये। महाभारत में कहा गया है कि खाये हुये अन्न की प्रशंसा अवश्य करे क्योंकि अन्न ब्रह्म है लेकिन वह अन्न ठीक से पाचन हो तभी प्रशंसा करने योग्य है। शूरवीरों की प्रशंसा करे क्योकि वह युद्ध में वीरता दिखाता है लेकिन वह युद्ध में जीते तभी प्रशंसा करनी चाहिये। प्रशंसा किसी तपस्वी की भी करे लेकिन तभी जब वह दीर्घकालीन तप करे। प्रशंसा की पात्र तो पत्नी भी है, उसकी भी प्रशंसा करनी चाहिये लेकिन युवावस्था में उसकी प्रशंसा अधिक करे क्योकि वृद्धावस्था में वही सच्ची मित्र होती है। इस तरह सही समय पर सही व्यक्ति की प्रशंसा अवश्य करे। अनुचित समय पर की गई प्रशंसा व्यर्थ या कष्टदायक होती है या वह चापलूसी जैसे लगने लगती है।

२१०२) याचना की वेला में बड़े आदमी की लघुता भी अनुपम होती है। वह अपनी लघुता में भी महानता लिए रहता है। राजा बलि की यज्ञशाला में याचना करते हुए प्रभु का बावन अंगुल का वामन रूप अनूप था।

२१०३) यह प्रेम का मार्ग है- बहुत ही खतरनाक। यह एक विशाल दीवार है। जिसके दोनों ओर अन्धे खड्ड-खाइयां है। इसी दीवार-पथ पर प्रेमी को इधर से उधर जाना है। कोई दुस्साहसी ही इस मार्ग पर उतर सकता है। इस रास्ते पर मत चलो। यदि डिग गए तो फिर पांव रखने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। सीधे रसातल में जा पहुंचोगे। प्राणों की बाजी लगा देने वाला ही इस मार्ग का पथिक होता है। ऐसे-वैसे के तो देखते ही प्राण छूट जाते हैं।

२१०४) यह जगत अन्न-राशि है और तुम्हारा शरीर सूप है। अन्न में विजातीय तत्त्व भी हैं और कुछ निस्तत्त्व भी। तुम्हें अन्न को पछोरकर साफ कर लेना चाहिए। जो हल्के-निस्सार हैं, उनको उड़ जाने दो और जो जीवन से भरे हैं, उनको बटोर लो।

HHH(६८९)HHH

२१०५) मान-सम्मान और प्रीति के प्रसन्न वातावरण में परोसी गई चने की रोटी मैदे की उस रोटी से कहीं भली है, जिसे परोसने से खाने वाले का मन मलीन हो जाए। अनादर-अपमान के बीच ऐसी रोटी कौन ग्रहण करेगा ? आत्म-गौरव खोकर ऐसा भोजन कोई कैसे स्वीकार करे ? मैदे की इस रोटी को आग में ही डाल देना चाहिए।

२१०६) क्रोध-क्षोभ त्यागो। कटुता और भेदभाव को प्रेम में रूपांतरित कर दो। ऐसी सादगी अपनाओ कि दीन-दुखी भी तुमको अपना समझें और तुम्हें देखकर सांत्वना पाएं।

२१०७) दुर्जनों के साथ लाख अच्छा बर्ताव करो, भलाई करो किन्तु उनकी दुर्जनता कभी नहीं जाती। उनके आचरण में कोई अन्तर नहीं आता। दुर्जनता उनका स्वभाव है और स्वभाव बदला नहीं जाता। बीन का मोहक स्वर सुनते-सुनते एवं दुग्धपान करते हुए नाग सपेरे को ही डस लेता है। विषदंत तोड़ दिए गए हों, फिर भी वह अपनी आदत से बाज नहीं आता।

२१०८) जिसके पास न विद्या, न बुद्धि, न धर्म, न यश और न दानशीलता है, वह व्यर्थ ही जीवन धारण किए हुए है। वास्तव में वह सींग-पूंछ विहीन पशु के समान है। केवल देह धारण करना निरर्थक है। देह में मानवीय गुण प्रतिष्ठित होना आवश्यक है। पृथ्वी पर व्यर्थ मत जीओ।

२१०९) अगर विपत्ति थोड़े दिन के लिए आई हो तो ठीक है। अल्पकालिक विपत्ति एक बहुत अच्छा काम कर जाती है। वह मित्रों की परख के लिए कसौटी बन जाती है। कौन असली मित्र है और कौन नकली-इसकी असलियत सामने आ जाती है। स्वागत योग्य है ऐसा अतिथि, आदर-सत्कार योग्य है ऐसा अभ्यागत।

२११०) वेदों का फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययन का फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्री का फल है रति-सुख और पुत्र की प्राप्ति तथा धन का फल है दान का उभयोग।

२१११) जो अधर्म के द्वारा कमाये हुए धन से परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् उसके फल को नहीं पाता, क्योंकि उसका धन बुरे रास्ते से आया होता है।

२११२) घोर जंगल में, दुर्गम मार्ग में, कठिन आपत्ति के समय, घबराहट में और प्रहार के लिए शस्त्र उठे रहने पर भी सत्त्व (मनोबल) सम्पन्न पुरुषों को भय नहीं होता।

२११३) जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरों के प्रति भी न करे। थोड़े में धर्म का यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामना से प्रवृत्ति होती है- वह तो अधर्म है।

२११४) अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को सद्व्यवहार से वश में करे, कृपण को दान से जीते और झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे।

२११५) जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल- ये चारों बढ़ते हैं।

२११६) जो धन अत्यन्त क्लेश उठाने से, धर्म का उल्लंघन करने से अथवा शत्रु के सामने सिर झुकाने से प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाएं।

२११७) बकरियां, कांसे का पात्र, चांदी, मधु, अर्क खींचने का यंत्र, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढ़ा, कुटुम्बी और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष-ये सब आपके घर में सदा मौजूद रहें। देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियों की पूजा के लिए बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, तांबे के बर्तन, शंख, शालिग्राम और गोरोचन- ये सब वस्तुएं घर पर रखनी चाहिए।

२११८) अपने भीतर की परम निधि को पाने के लिए और स्वर्ग के साम्राज्य का ताला खोलने के लिए इसी ॐ की ताली को काम में लाना होगा। ॐ यह ध्वनि उस सुन्दर वृक्ष के समान है जो प्रचण्ड सूर्य ताप से झुलसते हुए रोगी मनुष्य को शीतल छाया प्रदान करता है। ॐ समग्र विश्व को ढके हुए है, सारे संसार का एक भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो ॐ के बाहर हो।

२११९) धर्म नित्य है, किंतु सुख-दु:ख अनित्य हैं, जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है, आप अनित्य छोड़कर नित्यों में स्थित होइए और संतोष धारण कीजिए, क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है।

२१२०) धन-धान्यादि से परिपूर्ण पृथ्वी का शासन करके अन्त में समस्त राज्य और विपुल भोगों को यहीं छोडकर यमराज के वश में गए हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओं की ओर दृष्टि डालिए।

२१२१) काम-क्रोधादिरूप ग्राह से भरी पांच इन्द्रियों के जल से पूर्ण इस संसार नदी के जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की

नौका बनाकर पार कीजिए।

२१२२) मनस्वी दूध पानी को सप्रेम अपना अन्तरंग बना लेता है। पानी सहर्ष दूध में मिल जाता है। और जब दूध को आग पर चढ़ाया जाता है तो पानी आंच की सकल पीड़ा को स्वयं अंगीकार करते हुए दूध को पीछे ठेलकर सामने आ जाता है। पानी तब तक अपने मित्र दूध पर आंच नहीं आने देता, जब तक वह स्वयं मिट नहीं जाता। यही है मित्रता-समर्पण भाव से भावित मैत्री।

२१२३) संसार अच्छी तरह जानता है कि जहां गांठ होती है, वहां रस नहीं होता। जहां सम्बन्धों में दरार-अन्तर, दुराव-छिपाव अथवा मनो-मालिन्य होता है, वहां आनन्द नहीं होता। किन्तु विवाह मंडप के नीचे परिणय-ग्रंथियों की प्रत्येक ग्रन्थि में रस ही रस होता है। रसवन्ती ईख रस से भरी होती है, पर उसकी गांठ-गांठ में नीरसता विद्यमान रहती है। इस प्रकार रस-प्रवाह अपना ऐश्वर्य खोए रहता है। ऐसी ही गांठ यदि प्रेम-सम्बन्धों में पड़ जाती है तो सम्बन्ध अपना माधुर्य खो देते हैं- रसधारा खण्डित हो जाती है। यह गांठ छल, कपट एवं स्वार्थपरता की है। सम्बन्धों में आशंका का प्रवेश वर्जित है। विवाह-मंडप में बांधी जानेवाली गांठें प्रेम, विश्वास एवं समर्पण के संकल्प की गांठें होती हैं।

२१२४) बेचारे सुदामा क्या भगवान् कृष्ण की मित्रता के योग्य थे ? द्वारकाधीश ने इस निर्धन विप्र के साथ मित्रता का निर्वाह किया। सुदामा की सकल विपन्नता दूर हो गई। दीनबन्धुता ही सच्ची मानतवा है।

२१२५) कुलवधू जिस संझवाती (दीये) को अपने आंचल की ओट में ले जाकर दीवट पर रख आती है, उसी को वह सोने के समय अथवा प्रिय- मिलन की वेला में अपने उसी आंचल से प्रेमपूर्वक बुझा भी देती है। समय-समय की बात है। समय अच्छा तो मित्र अच्छा। समय बुरा तो मित्र बुरा और शत्रु हो गया।

२१२६) जिसने हमारा तन-मन ले लिया हो और हमारे हृदय को अपना भवन बना लिया हो, अब उससे अपना सुख-दुख क्या कहना? अब कौन-सी बात कहने को रह गई ? अब तो अपना प्रिय कहीं दूर नहीं। वह तो सब कुछ देख रहा है। कोई बात उससे छिपी नहीं है। उसको जो कुछ करना होगा, अपने आप करेगा। कहीं ऐसे व्यक्ति से कुछ कहा जाता है ? अब तो हम उसके हो गए। अपना सब कुछ रहा ही नहीं। अपना योग-क्षेम उसका हो गया। ताप-सन्ताप, अवसाद-विषाद तथा शाप-अभिशाप सब कुछ वही वहन करेगा। हम क्यों चिन्ता करें ? ऐसी शरण पाकर भक्त सकल द्वन्द्व से मुक्त हो जाता है। परम प्रिय की उपस्थिति की अनुभूति से व्यक्ति अदीन और वीर हो जाता है।

२१२७) जिसको विधाता ने ही बड़ा बना दिया है, उसमें दोष निकालने का दुस्साहस कौन कर सकता है ? उसके दूषण भी भूषण के रूप में स्थापित हो जाते हैं। दूज का चांद कितना दुबला और कुबड़ा होता है। परंतु है किसी में हिम्मत जो उसकी विकलांगता पर उंगली उठाए ? उलटे निशाकर के ये दोष गुण के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिए गए हैं। क्षीण रेखा-सा दिखने वाला यह क्षयी नक्षत्रों से कहीं अधिक पुष्कल और माननीय बन गया है। जन-सामान्य की दृष्टियां एवं धारणाएं बदल दी जाती हैं।

२१२८) गतिमान, संघर्षशील एवं थिरकती हुई जिन्दगी ही असली जिन्दगी है। हरे-भरे, लंबे-चौड़े तथा सुन्दर-सुकुमार पत्तों वाले सुडौल-सुरुप केले घर-आंगन में घुसे पड़े रहते हैं। इनसे कहीं अच्छे हैं- वे निपत्ते, निफूले, कांटों भरे, बेडौल-बेरूप रास्तों के करील, जो यात्राओं-अभियानों का अभिनन्दन करते हैं और जितना बन पड़ता है, राहत देते हैं।

२१२९) उजड्ड मैदान में खड़े, खुले आसमान के नीचे वे करील मौसम-बेमौसम से टकराते तो हैं। पंचतत्त्वों की विकरालताओं से भिड़ते तो हैं। वे अपने ढंग से जीते हैं। किसी का अवलंब नहीं लेते। यदि वे बहुत अधिक उपकार नहीं कर पाते तो किसी से उपकृत भी नहीं होते।

२१३०) छोटी-सी बात को गांठ बांध लेना और उस बात को प्रतिष्ठा का विषय बना लेना-कौन-सा बड़प्पन है ? बड़ा हर हालत में बड़ा ही रहता है। छोटा कहने से वह छोटा नहीं हो जाता। गोवर्धन धारण करके ब्रज की रक्षा करने वाले कृष्ण को गिरिधर कहना सर्वथा उचित है। किन्तु यदि कोई हीन ग्रन्थियों वाला व्यक्ति उनकी महिमा को घटाने के उद्देश्य से अधरों पर मुरली धारण कर गोपियों को विमोहित करनेवाला मुरलीधर कहता है तो कहे, इससे कृष्ण को कोई अन्तर नहीं पड़ता। इससे उनको कोई ठेस नहीं लगती। ठेस लगती है उन लोगों को जो छोटी-छोटी बात लेकर अपने लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न खड़ा कर लेते हैं। हीन भावना से ग्रस्त होने के कारण उनकी प्रतिष्ठा खतरे

में रहती है। कृष्ण के लिए ये छोटी-छोटी बातें व्यर्थ हैं। कुछ लोग अपनी तुला पर अकसर अपना वजन तोलते रहते हैं।

२१३१) ओछे का ओछापन कभी नहीं जाता। ओछा व्यक्ति जैसे-जैसे बढ़ता है, उसका ओछापन भी वैसे-वैसे बढ़ता जाता है। वह ज्यों-ज्यों उन्नति करता है, त्यों-त्यों अधिक इतराने लगता है। शतरंज में प्यादा फरजी (वजीर) होते ही टेढ़ी चाल चलने लगता है। इसके विपरीत सज्जन का हर एक पदोन्नति-सोपान उसकी सज्जनता को अत्यधिक विनम्र बना देता है। वह और भी अधिक सरल हो जाता है।

२१३२) यदि विधाता ने मानव को हानि-लाभ, यश-अपयश, जीवन-मृत्यु तथा होनी-अनहोनी जैसी घटनाओं को घटाने की सामर्थ्य प्रदान कर दी होती तो वह विद्रूप और भयावह जीव बन गया होता। फिर वह अपनी प्रभुता के आगे किसी अन्य की महिमा क्यों पूछता ? वह अपने बड़प्पन के समझ फिर किसको टिकने देता ? सबको दास बनाकर रख दिया होता। दंभ, अहंकार एवं आत्मश्लाघा के संघर्ष की ध्वनि से सारा आकाश गूंजने लगता। इसीलिए विधाता ने मानव में अनेक दुर्बलताएं प्रतिष्ठित कर दी हैं, जिससे सन्तुलन बना रहता है। फिर भी कुछ लोग स्वयंभू बनकर सन्तुलन बिगाड़ देते हैं।

२१३३) यदि मन अपने वश में है तो तन जहां चाहे; वहां जाए। उस पर तब तक किसी का प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक उसको मन का समर्थन नहीं मिल जाता। मन की संस्तुति के बिना तन कोई गलत काम नहीं करेगा। ठहरे पानी के विस्तार पर काया अपनी छाया अंकित कर देती है। किन्तु काया स्वयं नहीं भीगती। छाया के भीगने का प्रश्न ही नहीं उठता। काया पूर्णरूपेण निस्संग, निर्लिप्त और निर्विकार रहती है। इसी प्रकार मन के द्वारा सुसंचालित शरीर दोषमुक्त रहता है। चाहे वह दोषों के अड्डे पर ही क्यों न ठहरे।

२१३४) अपराध क्षमा के लिए उस महानीच के पैर मत पड़ना। नाक मत रगड़ना। सिर मत रखना। ऐसे निष्ठुर के आगे रोना और आंसू गिराना व्यर्थ है। उसका हृदय कुलिश-कठोर है। क्षमादान उससे मांगा जाता है, जिसमें दाक्षिण्य हो, क्षमाशीलता हो। वह इंसान नहीं, शैतान है। अपने को गिरने मत देना।

२१३५) यदि तुम सत्ता में बने रहना चाहते हो, यदि पद-प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहते हो तो समय के साथ चलो। वही कहो और वही करो जो तुम्हारा राजा चाहता है। उसके मन, उसकी अभिलाषा में परिणत हो जाओ। ऐसे में उचित परामर्श देना अपशब्द है। स्पष्टवादिता जहर उगलना है। छोड़ो इन सबको, पैंतरा बदलो। खेल खेलो। यदि तुम्हारा नृप साक्षात दिन को रात बता रहा है तो तुम झट से एक हाथ उठा दो और दिखा दो अपने नरेश को दिन-दहाड़े आकाश मंडल में झिलमिलाते कचपचिया के तारे। राजा खिल उठेगा और चाटुकार बुझ जाएंगे।

२१३६) जिसके पास देने के लिए कुछ हो तथा जिससे पाने की आशा की जाती हो, उसी उदार से कुछ पाया जा सकता है। उसी के पास जाना भी चाहिए। रीते सरोवर पर जाने से कैसे प्यास बुझ सकेगी ?

२१३७) जैसे क्वार मास के श्वेत-रिक्त बादल व्यर्थ ही गरजते हैं, वैसे ही कभी धनवान व्यक्ति निर्धन हो जाने पर अपने समृद्ध अतीत का गीत गाता फिरता है। चाहे कोई ध्यान से सुने या नहीं, उसे अपना विगुल सुनाने में तृप्ति मिलती है। ऐसे अनर्गल प्रलापों को कौन सुने ? अपने मुख से अतीत का गौरवगान करने से दूसरों को अरुचि हो जाती है। कोई दूसरा कहे तो बात और होती है। तुम्हारा रिक्त मेघ अंबर के किसी कोने में यों ही डोलता-खिसकता रहा। मानव-मन के चितेरे, तुम कैसे चूक सकते हो ? तुम क्यों मेघ-गर्जना करोगे? आत्मश्लाघा से तुम तो कोसों दूर हो।

२१३८) सर्वसाधारण बड़े लोगों के प्रति कुछ अधिक ही आदर-भाव रखता है। जब बड़े लोग थोड़ा-सा भी हित कार्य कर देते हैं तो उनकी बड़ाई चारों ओर फैल जाती है और वे श्रद्धेय बन जाते हैं। यदि वही कार्य छोटा आदमी करता तो उसका यश वैसा न फैलता। जनसामान्य की दृष्टि से कार्य की अपेक्षा कर्ता पर विशेष होती है। उसके भीतर एक ऐसी हीनभावना कार्य करती है जो उसे बड़े लोगों की ओर अनायास ही ले जाती है। अपने बीच का आदमी जाना-बूझा होता है। उसकी ओर वैसे भी खिंचाव कम होता है। हनुमान जी ने भी तो पर्वत धारण किया था। वे तो पूरा पहाड़ ही उखाड़कर रातों-रात हिमालय से लंका ले गए। लक्ष्मण को नवजीवन उन्हीं के कारण मिला, जबकि गोवर्धन धारण करने के उपलक्ष्य में भगवान् कृष्ण गिरिधर कहलाने लगे।

२१३९) वैसे तो दादुर, मोर और किसान- ये तीनों ही मेघों से प्रेम करते हैं। उनके आगमन की राह देखते रहते हैं। यदि मेघ के आने में देर हो गई तो ये अधीर हो उठते हैं। लेकिन अपने प्राणप्रिय स्वाति नक्षत्र के बादल के प्रति जैसा प्रगाढ़ प्रेम परम वियोगी चातक का

देखा जाता है, वैसा इन तीनों में से किसी को भी नहीं होता। चातक का प्रेम वियोग के ताप से दीप्त है। वह परम योगी-वियोगी है। वह अहर्निश प्रियदर्शन की रट लगाए फिरता है। उसका संपूर्ण जीवन ही प्रेम-साधना है। उसको वियोग का महारस पान करने में आनन्द आता है। अप्रतिम प्रेम-साधना के कारण चातक प्रेम का प्रतीक बन गया है।

२१४०) दीनता कितनी दिव्य है, दीनता कितनी भव्य है। उसमें कैसे-कैसे अलौकिक रस हैं। यह धनाढ्यों का अन्धा संसार क्या जाने ? अपनी धन-दौलत अपने ही पास रखो। मुझको तो अपनी बेचारी दीनता ही भली, जिसके कारण मुझे दीनबन्धु प्रभु जैसे बन्धु मिल गए हैं। अब मुझे और कौन सा स्वर्ग चाहिए ?

२१४१) बेचारा दीन-दुखी सबकी ओर कुछ पाने की आशा से देखता रहता है, किन्तु कुछ नहीं पाता। वह उपेक्षित ही रह जाता है। कोई उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। जो व्यक्ति अपने बृहत्तर जीवन में दीन-दुखियों को भी शामिल कर लेता है, उनकी यथाशक्ति सहायता करता है, उनका दैन्य-शाप मिटा देता है और उन्हें अदीन बना देता है, वह समाज में दीनबन्धु भगवान् के समान पूज्य बन जाता है। व्यक्ति को मानवीय गरिमा से मंडित करने वाला ही महान होता है। दीनों की सेवा ही सच्ची भक्ति है। ग्राह-ग्रस्त गजराज के प्राण संकट में थे । साथी साथ छोड़ गए थे। गजराज के मुख से हरि-हरि मर्मभेदी आर्तनाद उठ रहा था। जब गजराज का करुण स्वर बैकुंठ में गूंजता है तो भगवान् विचलित हो उठते हैं। वे उतावले से डग भरते हुए आ पहुंचते हैं और गजराज को मुक्त कराते हैं। बड़े लोग दीनबन्धु होते हैं। बड़े लोग दीन-दुखियों के दुख सुनते ही द्रवित हो उठते हैं। उनका हृदय करुणा से विगलित हो जाता है। वे दुख-सन्ताप हरने के लिए सक्रिय हो जाते हैं। ग्राह-गृहीत गजराज की भगवान् विष्णु से कब जान-पहचान रही थी? वे गजराज का आर्तनाद सुनते ही दौड़ पड़े थे और उसे ग्राह से मुक्त करा दिया था। बड़े लोग ऐसे होते हैं- भयत्राता, संकट-मोचन एवं कष्ट-विनाशक।

२१४२) देखने में दोहा-छंद बहुत ही छोटा है। उसमें थोड़े से शब्द होते हैं, किन्तु अर्थ-वैभव से भरा होने के नाते उसे छोटा छंद समझ लेना गलत है। नट-कौशल देखा। देह-संकोच और देह-विस्तार की कला देखो। करतब आरम्भ हुआ। नट को छोटी सी कुंडली से निकलना है। उसने अपनी काया संभाली। काया संभली। काया समेटी। काया सिमटी। काया चमकी और चक्र के अन्दर प्रवेश कर गई। फिर बड़ी शालीनता से चक्र का सम्मान करते हुए उस पार कूदकर खड़ी हो गई। दर्शक अचंभित। देह-सौष्ठव का पता तब चला। वामन विराट भी हो सकता है। अत: दोहा हो या व्यक्ति, लघु आकार-प्रकार देखकर प्रथम सृष्टि में ही उसका व्यक्तित्त्व-मूल्यांकन नहीं करना चाहिए।

२१४३) आपत्काल के लिए ही आपद्धर्म होता है। संकट की घड़ी में शुभाशुभ अथवा उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रखा जाता। किसी भी तरह संकट से बच निकलना ही आपद्धर्म है। संकट में लोग सब कुछ छोड़कर घर से बाहर वहां भाग खड़े होते हैं, जहां सामान्य स्थिति में ठहरना अशुभ माना जाता है। यदि सारा घर आग की लपेट में आ गया हो तो घर वाले अपनी जान बचाने के लिए पास के किसी अपवित्र स्थान या घूरे पर भी जा खड़े होते हैं।

२१४४) दुर्दिन के आते ही जान-पहचान के लोग यह भूल जाते हैं कि उनका भी कोई अपना है, जो जिन्दगी के कड़े दौर से गुजर रहा है। केवल धन की ही हानि हुई हो तो कोई बात नहीं। क्योंकि धन-दौलत तो आती-जाती रहती है। दुख तो इसबात का होता है कि वित्त की हानि के साथ ही मित्र की भी हानि हो गई। वित्त गया सो गया, मित्र भी चले गए। दो हानियां एक साथ सहनी पड़ रही है। साथी- हीनता कितनी वेदना प्रदान करती है।

२१४५) एक है अनन्य प्रेमिका मीन जो अपने प्राणाधार जल से बिछड़ते ही प्राण त्याग देती है। जल ही मीन का जीवन है। दूसरस है कपटी प्रेमी भ्रमर जो कमलिनी से प्रेम का स्वांग रचता है। वह स्वार्थसिद्धि के बाद अर्थात् रसपान के उपरान्त अन्यत्र जाकर किसी अन्य कमलिनी के हृदयकोष में निवास करता है। रस-लोलुपता के कारण यहां-वहां प्रेमपाश फेंकना ही मधुकरी वृत्ति है। यह वृत्ति शोषण की वृत्ति है। धिक्कार है ऐसे प्रेम धूर्त्तों को, जिनके प्रेम का गंतव्य स्वार्थसिद्धि है। धन्य है प्रिय समर्पित मीन। प्रेम का ऐसा आदर्श और कहां ?

२१४६) गजराज (हाथी) नित्य अपने सिर पर धूल धारण करता हुआ क्यों चलता है ? भगवान् राम के पदारविंद की जिस पतित पावनी रज के स्पर्श मात्र से मुनि गौतम की शापग्रस्त पत्नी अहिल्या का उद्धार हो गया था, उसी पावन रज को यह गजराज ढूंढ रहा है।

अहो भाग्य से कभी कहीं किसी धूल में छिपी वह पवित्र रज मिल ही जाए और उसका जीवन सफल हो जाए।

२१४७) हरिण अहेरी के वंशी-स्वर पर मुग्ध होकर उसका आखेट बन जाता है। इस प्रकार वह बांसुरी-नाद पर अपना जीवन ही निछावर कर देता है। कलाप्रिय व्यक्ति भी किसी कला पर रीझकर कलाकार को सप्रेम धन अर्पित करके पुरस्कृत करता है। किन्तु कुछ ऐसे भी व्यक्ति देखे जाते हैं, जो किसी के कला-कौशल पर रीझकर समर्थ होते हुए भी संस्कार जनित हृदय हीनता एवं कृपणता के कारण कलाकार को कुछ नहीं देते। उनकी दान देने की उमंग बैठ जाती है। ऐसे लोग पशु से भी अधिक निचले स्तर के होते हैं।

२१४८) अगति के गर्त में आजीवन ऐसे ही पड़े रहो। ब्रह्माण्ड के किसी एकान्त कोने में निस्तब्ध होकर मृत्यु का वरण कर लो। वक्ष पर पाषाण रखकर कठिन से कठिन क्लेश सह लो, पर किसी को मत छलो। मत प्रवंचित करो। धोखा मत दो। छल-छदम् से कुछ मत हड़पो। भगवान् वामन ने दानवीर बलि को छलकर उसका सर्वस्व हरण कर लिया था। किन्तु छलते समय वे कितने क्षुद्र, बौने और ओछे हो गए थे ?

२१४९) ग्रीष्म ऋतु में मार्तंड की प्रखर किरणों से जलाशय का जल कितना संतप्त हो गया होता, यदि जल के सुपुत्र-कमल ने अपनी पंखुड़ियां तथा पत्रावलियां फैलाकर पूरे जलाशय को आच्छादित न कर लिया होता। इतना ही नहीं, रात को भी कमल संकुचित होकर जल को अनावृत-सा कर देता है, ताकि उसे चन्द्रमा की कौमुदी की शीतलता प्राप्त करने में कोई व्यवधान न आए। जिस कुल में कमल जैसा उन्नतमना-पितृभक्त पुत्र हो एवं हृदयवान-वत्सल जल जैसा पिता हो, उस गौरवकुल के लिए न किसी की अमित्रता अर्थ रखती है और न ही किसी की मित्रता। कुल हो तो अरविंद जैसा।

२१५०) बड़े आदमी और छोटे आदमी में फर्क यह है कि बड़ा आदमी घमण्ड से दूर होता है और छोटा आदमी घमण्ड में चूर। बड़े लोगों का बड़प्पन उनकी विनम्रता में दमकता है। वे उसे कभी नहीं छोड़ते। वे अपनी निरभिमानता एवं शालीनता बड़ी खूबी से संभाले रहते हैं। सुख के दिन हों या दुख की घड़ियां-ऐसे लोगों की विनम्रता उनकी अलग पहचान बनाए रहती है। उनका गौरव-सिंह नीलम की चट्टान पर बैठा बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है।

२१५१) बड़े लोग अपनी बड़ाई नहीं करते। बड़े लोग बड़ी-बड़ी बातें नहीं करते। वे विनम्र, धीर और गंभीर होते हैं। स्वयंप्रभ हीरा कब कहता है कि मैं हीरा हूं। मेरा मोल लाखों में है। आत्मश्लाघा किसी दुरात्मा की दी हुई भभूत है। इसे वही धारण करता है, जो भीतर से खाली होता है। क्यों कर्ता बोले ? कर्म क्यों न बोले। वास्तव में बड़े लोग अपनी तारीफ खुद नहीं किया करते। महान पुरुष अपने मुख से स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते और न बड़ी-बड़ी बातें ही बोलते हैं। चाहे हीरे का मूल्य लाखों रुपए भी हो जाए, परंतु वह हीरा अपना मूल्य कभी स्वयं नहीं कहता। जैसे बहुमूल्य से बहुमूल्य हीरा कभी अपने मूल्य का आकलन करके किसी को नहीं बताता उसी तरह जो वास्तव में महान होते हैं, वे अपने मुख से अपनी महानता का ढिंढोरा पीटते नहीं फिरते।

२१५२) बड़ी विचित्र गति है समाज के आर्थिक जीवन की। जिस धन-दौलत का एक अच्छा खासा हिस्सा निर्धनों के पर्ण कुटीर तक पहुंचना चाहिए, वह हिस्सा न जाने किस तरह धनवानों के सिंहद्वार पर पहुंच जाता है। अमीर और अमीर तथा गरीब और गरीब हो जाता है। फिर कैसे कहा जाता है कि धन-दौलत तो आती-जाती है ? वह तो एक ही जगह ठहरी हुई है। जो बेचारे भीख मांगकर गुजर-बसर कर रहे हैं, उनको क्या चिन्ता कि कहां धन बढ़ रहा है और कहां धन घट रहा है।

२१५३) जंगल में जाकर बस जाना उचित है। जंगली फल आहार करना और वहां का पानी पीना अच्छा है। किन्तु अपने उन बन्धु-बांधवों के बीच धनहीन होकर गतिहीन जीवन बिताना कदापि उचित नहीं, जिनके बीच कभी वैभव के दिनों में गौरवपूर्ण जीवन बिताया गया हो। दूर चले जाने पर बन्धुओं के दर्शन तो नहीं होंगे। बस कहने के लिए ही बन्धु-बांधव होते हैं। वे अपनों की प्रगति से भीतर ही भीतर जलत रहते हैं और अगति देखकर अन्दर ही अन्दर खिल उठते हैं।

२१५४) अफसोस इस बात का है कि बसे हो कुसंग में और चाहते हो कुशल। यह संभव नहीं है। सकुशल रह ही नहीं सकते तुम। रावण जैसा दुरात्मा समुद्र के पड़ोस में आ बसा। फलत: समुद्र जैसे महात्मा को अपने ही ऊपर पत्थरों का पुल बनवाना पड़ा, क्योंकि श्रीराम की सेना समुद्र पर पुल बनाकर लंका विजय के लिए बढ़ी थी। दुराचारी के नैकट्य के कारण समुद्र की महिमा घट गई थी। बुरे के पड़ोस में बसने से पड़ोसी को भी दुर्गति सहनी पड़ती है। इसलिए बुरे लोगों से दूर-दूर ही रहना चाहिए।

२१५५) युवती की बंकिम दृष्टि काम-शर है। युवती के कटाक्ष-बाण हृदय में जाकर धंस गए। नुकीले तो थे ही, लगते ही टूट गए और तिरछे होकर अटक भी गए। अटक जाने से बहुत सालते हैं। सीधे और समूचे होते तो शायद इतना न सालते और निकालने से बाहर निकल भी आते। मन-प्राण बेध देने वाली इस बांकी चितवन की तरह दुर्जनों के व्यंग्य-बाण क्या कुछ कम मर्मांतक पीड़ा देते हैं ?

२१५६) बात बिगड़ी सो बिगड़ी। फिर लाख कोशिश करने पर भी नहीं बनती। बिगड़े-फटे दूध को मथने से कहीं मक्खन निकलता है ? मक्खन चाहते हो तो दूध को फटने मत दो। बात बिगड़ने ही न पाए। सोच-समझकर बात कहो। वाणी पर संयम आवश्यक है। वाणी निष्फल न हो, इसके लिए शब्द निकलने से पहले उसके दूरगामी परिणामों पर मन ही मन विमर्श करो। विमर्श के लिए तुम्हारे साथ तुम्हारा विवेक है तथा तुम्हारे निकट हैं। वाग्देवी तुम्हारा मनोरथ सफल करके ही रहेगी।

२१५७) विपत्ति और संपत्ति एक साथ नहीं रह पातीं। विपत्ति आती है तो संपत्ति चली जाती है। कुछ भी नहीं बचता। लाख-करोड़ जो भी हो, सब चला जाता है। ठीक वैसे ही, जैसे पौ फटते झिलमिलाते हुए तारे आकाश के विराट खड्ड में न जाने कहां चले जाते हैं।

२१५८) रणभूमि में धर्मयुद्ध लड़ते हुए किसी योद्धा का शीश धड़ से पृथक होकर धरती पर जा गिरा और हंसते हुए बोला-अच्छा हुआ, मुझे वीरगति मिल रही है। मेरा स्वाभिमान बच गया। यदि मैं सेना में न होता तो यह सौभाग्य कहां प्राप्त होता। तब तो दूसरों की तरह मैं भी विपन्न होता। पेट की खातिर न जाने कहां-कहां और किस-किसके समक्ष सिर को झुकाना पड़ता। उस शत्रु-शूर को भी धन्यवाद जिसके प्रहार से मुझे वीरगति मिली।

२१५९) यह पाषाण है। जड़ता ही तो इसकी खूबी है। जड़त्व नहीं तो फिर पाषाण कैसा ? पत्थर पानी में प्रेमपूर्वक डूब जाएगा, पर तिरेगा नहीं। ऐसे ही मूर्ख को समझना चाहिए। वज्रमूर्ख ज्ञान की बातें ध्यान से सुनेगा, समझ भी लेगा, लेकिन स्वीकार कदापि नहीं करेगा। वह अहंकारी-अभिमानी जो ठहरा। दुराग्रही जो हुआ। मूर्खता और जड़ता में कोई अन्तर नहीं। फिर ऐसे को सीख क्यों दी जाए?

२१६०) जिसको अच्छा लगता हो, उसको अच्छा लगे, लेकिन मुझको यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगता कि कोई मुझे बिना मान-सम्मान के अमृत पिलाए। मैं ऐसा अमृत नहीं पी सकता। इससे तो अच्छा यही होगा कि वह मुझको प्रेमपूर्वक अपने घर बुलाए और विष ही दे दे।

२१६१) आश्चर्य है कि बिन्दु में सिन्धु ही समा गए। यह कोई बताए तो कैसे ? वाणी तो अवरुद्ध हो गई। कोई बताए भी तो किसको बताए? कौन करेगा विश्वास ऐसी अनहोनी पर ? जो ढूंढने निकले थे, वही खो गया- वहीं, बिल्कुल सामने, आप ही आप, देखते ही देखते और जिसको खोजा जा रहा था, वही सामने था।

२१६२) समझ में नहीं आता, जिसके सिर पर दुखों का ऐसा भार हो, वह कैसे आराम से बैठा भाड़ झोंक रहा है। ऐसे व्यर्थ के कार्य से उसे कभी का मुक्त हो जाना चाहिए था। चिंता-दुश्चिंता, ताप-सन्ताप, शाप-अभिशाप यह सब कब तक लादे रहोगे? जंजाल से बाहर क्यों नहीं हो जाते ?

२१६३) बेकार ही इस कंटक-करील की सेवा कर रहे हो। उन डालों से सुन्दर एवं सुरभित फूलों की आशा करते हो, जिनमें पत्ते तक नहीं हैं। दुर्जनों के जीवन को संवारने का प्रयास मत करो। यह तुम्हारे मन की भूल है कि वे एक न एक दिन सज्जन पुरुष हो जाएंगे और उनका हृदय-निकुंज कोमल भाव-प्रसूनों से खिल उठेगा। वस्तुत: दुर्जनता अपरिवर्तनीय होती है।

२१६४) अहंकार मनुष्य का सबसे प्रबल शत्रु होता है। हम बड़े हैं और हमारा आचरण श्रेष्ठ है ऐसा अभिमान भारी बोझ के समान होता है। मूर्ख लोग इसे सिर पर रखकर ढोते, रेशम के कीड़े और बंदर के समान दूसरों के वशीभूत हो जाते हैं। दूसरों के वशीभूत होकर भी ये क्षुद्र जीव, अपने आचरण को ही श्रेष्ठ जताने का प्रयत्न करते हैं, जबकि यह उनकी मूर्खता ही है।

२१६५) सम्पत्ति शरीर की छाया के समान होती है। इसकी ओर से पीठ फेरकर चलने से यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलने से दूर भाग जाती है अर्थात् जो व्यक्ति धन-सम्पत्ति से मुंह मोड़ लेता है, धन उसके पीछे-पीछे आने लगता है और जिसका मन धन के प्रति चलायमान रहता है, धन उससे मुंह मोड़ लेता है। धन का लोभी कभी धन प्राप्त नहीं कर पाता।

२१६६) आशा नाम की एक ऐसी अद्‌भुत देवी है, जिसकी सेवा करने पर शोक अथवा दुख के अलावा कुछ प्राप्त नहीं होता। परंतु इससे विमुख होने पर सुख प्राप्त होता है। सामान्यत: देवी-देवताओं की सेवा करो तो वे प्रसन्न होकर सुख देने वाले होते हैं, परंतु जीवन

में आशारूपी देवी की सेवा करने पर दुख के सिवाय कुछ प्राप्त नहीं होता।

२१६७) बुरे वक्त में ही सच्चे मित्र की पहचान होती है। सुख के समय में कोई मित्र हो या न हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता अर्थात् उसका कोई महत्त्व नहीं है। सच्चा मित्र वही है जो विपत्ति के समय काम आता है। सूर्य अपने घर में चन्द्रमा की शोभा का हरण कर लेता है, फिर भी सब उसे मित्र (सूर्य) कहते हैं, क्योंकि वह अपने तेज से ही चन्द्रमा को प्रकाश देता है। भाव यही है कि जो लोग कठिन समय में साथ देते हैं, वे ही सच्चे मित्र कहलाने के अधिकारी होते हैं।

२१६८) मित्र अपने स्तर से छोटा हो या फिर बड़ा हो, वही ठीक रहता है। बराबर के स्तर वालों से मित्रता कभी ठीक नहीं रहती। बराबरी का प्रेम दुखदायी होता है। जैसे घी और मधु (शहद) के बराबर-बराबर मात्रा में मिलाने से भयानक विष बन जाता है, वैसे ही बराबर के लोग परस्पर प्रतिस्पर्धा का भाव रखते हुए सदैव दुख ही पहुंचाते हैं। वे सदैव यह सोचते रहते हैं कि कहीं मैं अपने मित्र से नीचा न हो जाऊं।

२१६९) मित्र से कपट करना घातक होता है। सम्मानपूर्वक सुख चाहने वाले को चन्द्रमा, त्रिशंकु और कैकेई की गति को मन में रखकर धोखे की छाया का स्पर्श नहीं करना चाहिए। भाव यही है कि जिस प्रकार चन्द्रमा की गति टेढ़ी होती है, त्रिशंकु आकाश और धरती के बीच में लटका रहता है और राम की विमाता कैकेई की कुटिल नीति के कारण राम को वनवास भोगना पड़ा, उसी कुटिल नीति और स्वरूप से यदि मित्र के साथ छल किया जाता है तो उसका परिणाम भयंकर होता है।

२१७०) सदा प्रेम करने वाले के घर ही जाना चाहिए। जो न तो कभी याद करते हैं और न कभी मिलने पर मीठे वचन बोलते हैं, उनके घर वे ही जाते हैं, जिनके हृदय की आंखें फूटी होती हैं अर्थात् जो महान-मूर्ख होते हैं। किसी के घर जाने से पहले बुद्धिमान लोग अच्छी तरह विचार करते हैं। जो उन्हें स्मरण किया करता है, जिसकी सूचना अन्य लोगों से मिलती रहती है, मिलने पर मधुर शब्दों से स्वागत करता है। वे उन्हीं के घर जाते हैं।

२१७१) उपयोग के समय जो वस्तु अच्छी लगती है वही काम पूरा होने पर फालतू हो जाती है। जब तक स्वार्थ है, तब तक सभी वस्तुएं पवित्र और हितकारी जान पड़ती हैं, बिना चाह की वही चीजें (जो स्वार्थ के समय पवित्र और हितकारी जान पड़ती थीं) अपवित्र और शत्रु के समान दिखाई देने लगती हैं। जैसे जब दांत अपने मुंह में रहते हैं, तब तक वे माणिक के समान मूल्यवान होते हैं, परंतु वही टूटकर जब जमीन पर गिर पड़ते हैं, तब (अस्पृश्य) हाड़ कहलाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य जब तक अन्य लोगों को अपने कार्य सिद्धि में सहयोगी समझते हैं, तभी तक उन्हें पूजनीय और प्रिय मानते हैं, काम निकलने पर छोड़ देते हैं।

२१७२) संसार में अधिकांश प्रेम करने वाले ढूंढने से भी नहीं मिलते। संसार में अधिकांश लोग तो मक्खी, कौए, उल्लू, बगुले और मेंढक के सदृश, बिना ही कारण हानि करने वाले, परनिन्दारूपी मल भक्षण करने वाले, भगवान की ओर से आंख मूंदे रखने वाले, ऊपर से सुंदर वेश धारण कर अंदर से छलने की इच्छा रखने वाले हैं, वे भी तोते, कोयल और मोर के सदृश देखने में अच्छे, पर पल में प्रेम तोड़कर भाग जाने वाले, बोलने में मधुर, परंतु स्वार्थी, शरीर से सुंदर परंतु कठोर हदय हैं, प्रेमपथ पर चलने योग्य तो कोई भी नहीं है अर्थात् अधिकांश लोग देखने में सुरूप, मृदुभाषी, प्रेम करने वाले, भक्ति करने वाले, अच्छे स्वभाव वाले लगते हैं परंतु निकटता होने पर उनके भीतर की कुरूपता, नास्तिकता, कठोरता और कपट का पता लगता है।

२१७३) अब मनुष्यों का चरित्र बाहर-भीतर से एक-सा नहीं है। आजकल के लोग तो मोर के समान हैं, वे सुंदर वेश धारण करते हैं (ऊपर से बहुत ही अच्छा, शिष्टतापूर्ण व्यवहार करते हैं) और अच्छी तरह बना-बनाकर बातें करते हैं, परंतु उनके हृदय में कपट भरा रहता है। ऐसे लोगों से दिल खोलकर कैसे मिला जाए।

२१७४) मनुष्य का असली चरित्र एक दिन सामने आ ही जाता है। बगुला चाहे अपने चरण, चोंच और आंखों को हंस की तरह रंग ले और हंस की सी चाल भी चलने लगे, परंतु जिस समय दूध और जल को अलग-अलग करने का अवसर आता है, उस समय उसकी पोल खुल जाती है। इसी प्रकार कोई बुरा मनुष्य यदि सज्जनों की तरह अपनी वेशभूषा, अपनी बोलचाल, अपनी चाल-ढाल बना भी ले तब भी समय आने पर उसकी वास्तविकता पता चल ही जाती है।

२१७५) बुरे लोग सज्जनता का ढोंग तो करते हैं, पर सज्जन होते नहीं। कुटिल मनुष्य अपने स्वभाव को नहीं छोड़ सकता। यदि वह किसी सरल हृदय पुरुष से सरल होकर मिलता भी है तो समझ लेना चाहिए कि उसके ऐसा करने में कोई न कोई हेतु अवश्य है। जैसे

सांप टेढ़ी चाल से बिल में नहीं घुस सकता (इसलिए बिल में घुसने के लिए वह टेढ़ी चाल छोड़कर सीधा हो जाता है। परंतु वास्तव में उसकी सहज स्वाभाविक टेढ़ी चाल नहीं मिटती) अर्थात् जैसे सांप बिल में घुसने के लिए अपनी स्वाभाविक टेढ़ी चाल को छोड़कर सीधा हो जाता है ऐसे ही बुरे लोग मनुष्य के दिल में प्रवेश करने के लिए कपटपूर्ण सज्जनता का व्यवहार करते हैं।

२१७६) सज्जन स्वयं कष्ट सहते हुए भी किसी से याचना नहीं करते। सज्जनों की स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे आग और पानी के बीच में रहना। वे थोड़ी पूंजी वाले मित्र से तो धन मांगकर उसे कष्ट नहीं देंगे क्योंकि ऐसा करने में उन्हें अग्नि में जलने के समान पीड़ा होती है। नीच धनी मनुष्य से तो वे मरने पर भी और अत्यंत विपत्ति में भी नहीं मांगेंगे, क्योंकि उससे मांगना उन्हें जल में डूब जाने के समान प्राणघातक प्रतीत होता है।

२१७७) सज्जन और दुर्जन की मित्रता निभनी कठिन होती है। सरल (सज्जन) और कुटिल (दुष्ट) का साथ हो जाने पर भगवान विष्णु और शिव ही निर्वाह (रक्षा) करते हैं। राहु के ग्रहों की गणना में गिने जाने पर चतुर ब्रह्मा ने उसको बिना पेट का बना दिया (यदि वह पेटहीन न होता तो उसका तथा अन्य ग्रह का संग निभता ही नहीं), क्योंकि वह दुष्ट ग्रह होने के कारण साथी सरल ग्रहों को कभी का खा जाता, यदि सरल जन कुटिलों से मित्रता करते हैं तो अन्तत: पछताना ही पड़ता है, क्योंकि दुर्जन लोग प्रतिपल उनको दुख देने की ही योजना बनाते रहते हैं। सरल लोगों को दुर्जनों से हानि ही उठानी पड़ती है।

२१७८) बुरे लोग सत्संगति में भी अपनी बुराई नहीं छोड़ते। सज्जन का संग होने पर भी नीच मनुष्य अपनी नीचता को नहीं छोड़ता। चन्दन के वृक्षों में निवास करके भी सांप विषरहित नहीं होते। चंदन के पेड़ कितने शीतल होते हैं, विषैले सर्प उनसे लिपटे रहते हैं, फिर भी जिस तरह वे अपना विष नहीं छोड़ते, इसी प्रकार नीच लोग सज्जनों की संगति में रहकर भी अपनी दुर्जनता नहीं त्यागते।

२१७९) भले को भलाई और नीच को नीचता ही अच्छी लगती है। भला आदमी अपनी भलाई से और नीच अपनी नीचता से ही शोभा पाता है। अमृत की प्रशंसा इसलिए की जाती है कि वह अमरत्व प्रदान करता है और विष वही सराहनीय है जिससे शीघ्र और सहज ही मृत्यु हो जाए अर्थात् जैसे अमृत वही अमृत कहलाएगा जो अमर करने की सामर्थ्य रखता होगा। उसी तरह असली विष वही होगा जो मारने की क्षमता रखता होगा। इसी प्रकार भले का गौरव भला होने में है और बुरे का बुरा होने में है।

२१८०) समय पर चूकने से जीवन भर पश्चात्ताप करना पड़ता है। आवश्यकता के समय मनुष्य यदि कौड़ी देने में भी चूक जाए तो फिर बिना मौके लाख रुपया देने से भी क्या होता है ? द्वितीया के चन्द्रमा को न देखा जाए तो फिर पक्ष भर चन्द्रमा उदय होता रहे, उससे क्या होगा ? जो द्वितीया के चंद्रमा के दर्शन का पुण्य है वह उसी दिन देखने से मिलता है। उस दिन न देखो तो शेष दिनों में देखने से कोई लाभ नहीं हेाता। इसी प्रकार किसी की आवश्यकता पड़ने पर उसे थोड़ा धन देना भी इतना महत्त्व रखता है, जितना बाद में बहुत देने का भी नहीं होता।

२१८१) सुबुद्धि से भलाई करने का ज्ञान मनुष्य को होता है। बुराई करने का ज्ञान तो सभी को है, परंतु भलाई का ज्ञान तो कभी किसी भले को ही होता है। मूर्ख जानवर (गैंडा, हाथी, सिंह, चैवरी गाय, बंदर आदि) अपने सींग, सूंड, दांत, पूंछ तथा नख इत्यादि से दूसरों को चोट ही पहुंचाते हैं (उनसे भलाई करना नहीं जानते) अर्थात् जो लोग विचारशील होते हुए भी अपने पास उपलब्ध शरीर और साधनों से परहित नहीं करते, वे मूर्ख गैंडे, हाथी, सिंह, चैवरी गाय और बंदर की भांति हैं, जो अपने सींगों, सूंड, दांतों, पूंछ तथा नाखूनों से दूसरों को कष्ट ही देते हैं।

२१८२) संसार में दूसरों को सुख देने वाले बहुत कम और दुखदायी अनेक हैं। जगत में जीवों का अहित करने वाले बहुत हैं, हित करनेवाला तो कहीं कोई एकाध ही जानो। सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, पवन सभी जल को सुखाने वाले हैं, देने वाला तो एक बादल ही है। जल का अर्थ है रस और रस ही आनंद है। अर्थात् संसार में सभी लोग दूसरों के आनंद की हानि करने का प्रयास करते हैं। दूसरों का लाभ करने वाला तो बादल जैसा कोई विरला ही होता है।

२१८३) देवता और राजा दोनों ही निर्बल को सताते हैं। बलिदान के बहाने देवताओं को और राज्य कर (दण्ड) के बहाने राजाओं को देख लिया। दोनों ही स्वार्थ साधने वाले विचारशून्य और मरे को ही मारने वाले हैं। देवताओं को जब बलि दी जाती है तो बेचारे निरीह पशु बकरा, मुर्गा आदि की बलि देते हैं, शेर जैसे सशक्त पशु की बलि नहीं दी जाती। इसी प्रकार राजा गरीब प्रजा पर ही कर

लगाता है। इस प्रकार वे दोनों दुर्बल को ही सताते हैं।

२१८४) सज्जन लोग बुरे कर्मों को बताते हैं, परंतु पापी ध्यान नहीं देते। कर्मनाशा और गंगाजी के बहाने जैसे वेदविधि और निषेध दोनों तरह के कर्मों का वर्णन करते हैं (कर्मनाश में नहाने का निषेध है और गंगा स्नान की विधि है) वैसे ही सत्पुरुष (ग्रहण और त्याग के लिए) भले-बुरे दोनों ही मार्ग बतलाते हैं, परंतु पापी मनुष्य इस भेद को नहीं समझते। वेद करणीय और अकरणीय दोनों कर्मों का वर्णन करते हैं। जैसे कर्मनाश नदी में नहाने से पाप लगता है और गंगा में स्नान करने से पुण्य मिलता है, उसी प्रकार अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में भी बताया गया है, परंतु पापात्मा लोग इस बात पर जानबूझकर ध्यान नहीं देते।

२१८५) नीच लोग अपमानित होकर और महान लोग सम्मानित होकर सुख देते हैं। नीच लोग निरादर करने से और बड़े लोग आदर करने से सुखदायी होते हैं। इस बात को समझने के लिए केले और बेर तथा कटहल और आम के पेड़ों की दशा देखो (केला तथा बेर काटे जाने पर अधिक फल देते हैं, परंतु कटहल और आम सींचने और सेवा करने पर ही फलते हैं।) जैसे केले का वृक्ष जितनी बार कटता है उतना ही अधिक फल देता है, बेर का पेड़ भी कटकर फल देता है, परंतु आम और कटहल के पेड़ को जितना सींचते हैं, उतना ही फल देते हैं। उसी प्रकार सज्जन लोग सम्मान से सुख देते हैं तथा दुर्जन लोग मार खाकर सुख देते हैं।

२१८६) संगति से मनुष्य अच्छा भी बन सकता है और बुरा भी। जो लोहा नाव में लगने से सबको पार उतारने वाला और सितार में लगने से मधुर संगीत सुनाकर सुख देने वाला बन जाता है, वही तलवार और तीर में लगने से जीवों का प्राणघातक हो जाता है। मनुष्य जैसे लोगों के साथ बैठता है, उनका प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। यदि सच्चे, भले, प्रभुभक्त लोगों की संगति में समय बीतेगा, तो अच्छी बातों की ओर ही मन आकृष्ट होने लगेगा, परंतु नीच, विलासी, कुकर्मी, लोभी लोगों के साथ रहकर कुकर्म ही अच्छे लगने लगते हैं।

२१८७) महान लोगों की संतान बुरी भी हो जाती है। जैसे पवित्र तेजोमय अग्नि से काला धुआं निकलता है, वैसे ही भले के यहां बुरा, दानी के यहां कंजूस और सुपात्र के यहां कपूत उत्पन्न हो जाता है। यज्ञ की पवित्र अग्नि में से जैसे काला धुआं निकलता है, उसी प्रकार अच्छे लोगों के कुल में भी कुपुत्र उत्पन्न हो जाता है। जैसे पुलस्त्य ऋषि के कुल में रावण ने जन्म लिया।

२१८८) नीच लोग स्वामी की कृपा पाकर घमंड से फूल जाते हैं। मालिक के अनुकूल होने पर नीच मनुष्य अभिमान के मारे एकदम भयंकर बन जाते हैं, जैसे दर्पण और स्फटिक सूर्य का रुख अपनी तरफ देखकर आग की लपटें उगलने लगते हैं। अर्थात् सूर्य की किरणों से शीशा और स्फटिक मणि जैसे आग ही बन जाते हैं, उसी प्रकार नीच लोग थोड़ा सा धन, सम्पत्ति या मालिक की कृपा पाकर घमंड के कारण क्रोध में जलने लगते हैं।

२१८९) सज्जन लोग मालिक का कृपापात्र बनकर दूसरों को सुख देते हैं अर्थात् मालिक के पास रहने से सज्जन पुरुष सबको सुख देने वाले हो जाते हैं। बादल का जीवन खारे समुद्र का जल है, परंतु वह दूसरों के लिए खारा जल न देकर सुंदर अमृत के समान जल बरसाता है। जैसे बादल सागर से खारा जल ग्रहण करके उसको अपने माधुर्य से मीठा बनाकर सबको देता है, वैसे ही सज्जन लोग अपने स्वामी को सबके हित के लिए प्रेरणा देते हैं।

२१९०) मांगने वाले बार-बार मांगते हुए भी देने वाले की बुराई करते रहते हैं। दाता अमर रहते हैं। उनकी कीर्ति संसार में बनी रहती है। याचक मरते हैं (मांगना मरने के तुल्य ही है) बार-बार मरते हैं और बार-बार दान लेते हैं फिर भी वे पापी याचक दाता को सदा दोष ही देते रहते हैं। मांगने वाला जब भी मांगता है अपने स्वाभिमान को मारकर मांगता है, इसलिए उसे बार-बार स्वयं को मारना पड़ता है, जबकि दानी का नाम देने से अमर होता जाता है, फिर भी याचक दानी की बुराई करता है।

२१९१) नीच लोग बड़े लोगों की महत्ता को नहीं समझते। हाथी को देखकर कुत्ता सूखे हाड़ को लेकर दौड़ जाता है। वह समझता है कहीं हाथी इस हाड़ को छीन न ले। वह मूर्ख हाथी के गुण, मूल्य, आहार और बल की महिमा को क्या जाने ? नीच लोग बड़े लोगों से होड़ करते हैं। उन्हें उनके गुणों का, उनके महत्त्व का तो ज्ञान होता नहीं परंतु उनकी नकल करते हैं। ठीक उसी तरह जैसे कुत्ता हाथी की कीमत, उसके भोजन और शक्ति को न समझकर उसे सूखी हड्डी का भूखा समझता है।

२१९२) महान लोग छोटे-मोटे सांसारिक लोगों की निंदा स्तुति की परवाह नहीं करते। कुत्ते और सियार सिंह का निरादर करें, चाहे आदर करें, हाथी को पछाड़ने वाले सिंह को इससे कोई हर्ष या शोक नहीं होता। वह कुत्ते-सियारों की ओर ताकता ही नहीं। यदि कुत्ते

और गीदड़ शेर की प्रशंसा करेंगे तो शेर प्रसन्न नहीं होगा तथा यदि वे निन्दा करेंगे तो वह क्रुद्ध नहीं होगा, क्योंकि वह तो हाथी तक को हरा देता है। वह छोटे-मोटे जानवरों की परवाह भला क्यों करेगा ?

२१९३) नीच लोग स्वयं भी अच्छा काम नहीं करते और अच्छों की निंदा भी करते हैं और कहते हैं कि कर्ण और दधीचि ने कौन सा बड़ा काम किया था ? अर्थात स्वयं कौड़ी भी दान न कर सकने वाले निकृष्ट जन कर्ण और दधीचि जैसे दानवीरों की दानवीरता को तुच्छ सिद्ध करते हैं। कर्ण ने मांगने पर अपने कवच-कुण्डल और दधीचि ऋषि ने अपनी अस्थियां दान कर दी थीं।

२१९४) जिन श्री गंगाजी की निर्मल और तरल तरंगें भगवान श्री शंकर के मस्तक पर शोभा पाती हैं, उन श्री गंगाजी की महिमा में कुत्ते और सरावगियों के कहने से कुछ कमी नहीं हो जाती अर्थात् गंगा की तरह निर्मल चरित्रवाले सज्जनों की यदि नीच लोग कुत्ते और सरावगियों की तरह बुराई भी करें तो उनकी सज्जनता पर कोई आंच नहीं आती, वे तो सदा पवित्र हैं। जिसको जो महत्व होता है वह किसी की निंदा-स्तुति से घटता-बढ़ता नहीं है। जंगली कोल लोग गजमुक्ता को परखकर फेंक देते हैं, इससे उसका गुण घट नहीं जाता। यदि कोई साधुजन की निंदा करता है तो उनकी सज्जनता कम नहीं होती, न ही उनका गौरव कम होता है और यदि कोई नीच की प्रशंसा करता है तो उसकी नीचता कम नहीं होती, न ही उसकी कीर्ति बढ़ती है।

२१९५) जो लोग बिना जाने-सुने किसी को भला बताने लगते हैं और बिना जाने ही किसी की निंदा करने लगते हैं, उन मनुष्यों को उसी मुख से खाने और उसी से मल त्याग करने वाले चमगादड़ समझकर उनके कहने से अपने मन में हर्ष-विषाद नहीं करना चाहिए अर्थात् जो लोग बिना सोचे-समझे किसी की बुराई या भलाई करते हैं, उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। वे तो उस चमगादड़ की तरह हैं, जो मुख से ही खाता है और उसी से मल त्याग करता है।

२१९६) दूसरों से ईर्ष्या करने वालों का कभी भला नहीं होता। दूसरे की सुख-सम्पत्ति को देख-सुनकर जो मूर्ख मनुष्य बिना ही आग के जलने लगते हैं, उनके भाग्य से भलाई भागकर चली जाती है (उनका कभी भला नहीं होता)। संसार में जो लोग दूसरों की धन-सम्पत्ति को देखकर जलते हैं, वे अभागे हैं। उनके भाग्य की सुख-सम्पत्ति स्वयं ही क्षीण होती जाती है और वे बिना आग के ही जलते रहते हैं।

२१९७) सुंदर शरीर, सद्गुण, पर्याप्त धन, बड़ाई और धर्म में निष्ठा- इनके न होने पर भी जिनको मिथ्या अभिमान है। उसका जीवन विडम्बना मात्र है (जीवनकाल में उसकी बदनामी ही होती है) और उसका परिणाम भी गया-बीता (बुरा) ही समझना चाहिए (मरने पर भी उसे सद्गति नहीं मिलती) अर्थात् जो न तो सुंदर है, न गुणी, न धनी और न ही धर्मनिष्ठ है फिर भी अभिमानी है, उसकी जिंदगी में सब उसकी निंदा ही करते हैं तथा मृत्यु के बाद भी उसकी दुर्गति ही होती है।

२१९८) बड़ा पद पाकर सब पर रोब रखना सभी चाहते हैं। सास, ससुर, गुरु, माता, पिता और मालिक इत्यादि होना (बड़े बनकर हुक्म चलाना और सेवा कराना) तो सभी चाहते हैं, परंतु जो लोग इनके दूसरी तरफ के अर्थात् बहू, दामाद, शिष्य, कन्या, पुत्र और सेवक बनना (नीचे पद पर रहकर आज्ञा मानना और सेवा करना) चाहते हैं, वही सज्जन सराहना योग्य हैं। अर्थात सास बनकर, ससुर बनकर, गुरु बनकर, माता बनकर, पिता बनकर तथा स्वामी बनकर सब दूसरों को अपने आदेश से चलाना चाहते हैं, परंतु महान लोग बहू, दामाद, शिष्य, पुत्र-पुत्री व सेवक बनकर सेवा करना चाहते हैं, वे ही सराहना के पात्र हैं।

२१९९) दुष्ट लोग बड़े-बड़े कष्ट सहकर तब कहीं प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, परंतु सज्जनों को (प्रतिष्ठा प्राप्ति में) कुछ भी शारीरिक क्लेश नहीं होता। जैसे साधारण पत्थर जब गढ़-छीलकर मूर्ति के रूप में आते हैं, तब पूजे जाते हैं, परंतु गण्डकी नदी के पत्थर (शालग्राम शिला) स्वाभाविक ही पूजनीय होते हैं अर्थात् दुष्ट लोगों का स्वभाव तो नीचता का होता है। नीच लोगों को कौन पसंद करता है ? इसलिए उन्हें सम्मान पाने के लिए प्रयास करने में कष्ट उठाने पड़ते हैं जबकि सज्जन स्वभावत: ही सद्कर्म करते हैं, इसलिए बिना कष्ट के ही कीर्ति पा लेते हैं।

२२००) किसी का मन दुखाकर किसी से कुछ लेना नहीं चाहिए। किसी को क्लेश पहुंचाकर भीख कभी नहीं लेनी चाहिए। भगवान ने वामन-रूप धरकर बलि से छल किया और इसी बहाने सबको उपदेश दिया (कि छल करना बहुत बुरा है, छल करने के कारण ही मुझे पाताल में बलि का द्वारपाल बनना पड़ा है)। विष्णु भगवान ने बलि के साथ कपट किया। भीख मांगते समय बावन अंगुल का शरीर रख लिया तथा भीख का आश्वासन मिलते ही विराट रूप धारण करके तीनों लोकों को नाप लिया। इस प्रकार भगवान ने सबको शिक्षा दी

कि छल से भीख मांगना उचित नहीं है।

२२०१) सज्जन को कभी किसी सज्जन से कपट नहीं करना चाहिए। भला आदमी यदि किसी भले आदमी से छल कर बैठता है तो उसे फिर जन्म भर उससे दबकर रहना पड़ता है। भगवान लक्ष्मीपति ने वृंदा से छल किया था, इससे वह तुलसी के रूप में भगवान के सिर पर विराजमान रहती है और भगवान वामनजी ने राजा बलि से छल किया, तो उनकी भी वही गति हुई (उन्हें उसका द्वारपाल बनकर रहना पड़ा)। भले व्यक्ति का स्वभाव दूसरों का हित करने का होता है, परंतु यदि परिस्थितिवश वह किसी भले आदमी से छल कर लेता है तो सारा जीवन उसके आगे सिर नहीं उठा पाता।

२२०२) संसार में सब सज्जनों को ही कष्ट देते हैं। सीधी-टेढ़ी (दोनों प्रकार की) चाल चलने वाले (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) पांच ग्रहों में से तो किसी को राहु जल्दी आंख उठाकर देखता भी नहीं, परंतु सीधी चाल वाले सूर्य और चन्द्रमा को समय पर वही राहु त्रास देता है। (भाव यही है कि टेढ़ों से सभी डरते हैं और सीधों को सभी खाने को तैयार रहते हैं) अर्थात् जैसे राहु मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि को निगलने का प्रयास ही नहीं करता क्योंकि सब कुग्रह हैं, जबकि सूर्य और चंद्रमा, जो सीधे ग्रह हैं, उनको अवसर पाते ही ग्रसता है।

२२०३) कभी किसी भी मधुर वाणी को बिना समझे मुग्ध नहीं होना चाहिए। दुष्ट की (कपट भरी) मीठी वाणी सुनकर अपने हृदय में अच्छी तरह विचारकर उसका मतलब समझना चाहिए (सहसा उस पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए)। मूढ़ दासी मंथरा छल भरी मीठी वाणी से ही (कैकेयी को निमित्त बनाकर) रामजी के राज्याभिषेक में बाधक हुई थी। यदि कैकेयी मंथरा की वाणी पर सहज विश्वास न करके विवेक से काम लेती तो निश्चित रूप से उस कपटी स्त्री का मन्तव्य समझ जाती और परिणामत: राम को राज्याभिषेक के समय वनगमन न करना पड़ता।

२२०४) दुष्टों के बाह्याचरण पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। जोंक की चाल टेढ़ी होती है, परंतु वह मन से सीधी होती है, क्योंकि वह हानिकारक रक्त को ही चूसती है। परंतु दुष्टों को इससे विपरीत समझना चाहिए (वे बाहरी चाल-ढाल से तो बड़े ही सीधे दिखते हैं, परंतु मन के अत्यंत कपटी होते हैं), क्योंकि वे तो दूसरों के हित का ही शोषण (नाश) करने वाले होते हैं अर्थात् दुष्टों की प्रकृति जोंक से सर्वथा विपरीत होती है। जोंक देखने में टेढ़ी होती हुई भी दूसरों के गंदे खून को चूसकर उन्हें स्वस्थ बना देती है, जबकि दुष्ट, दूसरों का बुरा करते हुए भी बाहर से सीधे लगते हैं।

२२०५) नीच लोगों से कभी स्नेहपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। नीच आदमियों को अच्छी तरह जान-सुनकर गुड्डी (पतंग) के समान समझना चाहिए। जैसे गुड्डी ढील देने से पृथ्वी पर गिर पड़ती है और खींचने से आकाश में चढ़ जाती है (इसी प्रकार दुरदुरा देने से नीच आदमी सीधे हो जाते हैं पर अपनाने से उल्टे सिर चढ़ते हैं) जैसे कागज की पतंग जब बच्चे उड़ाते हैं तो वह ढील देने से नीचे आ जाती है तथा ऊंची चढ़ाने के लिए उसकी डोर को कसना पड़ता है। इसी प्रकार नीच लोगों से सख्ती करने से वे ठीक रहते हैं, विनम्रता से सिर पर चढ़ने लगते हैं।

२२०६) दुष्ट, सज्जन और दुर्जन सभी की निंदा करते हैं। जो सौ कोस तक बरसती हुई घनी वर्षा में भी जल की बूंदों से बिना भीगे बच निकलते हैं, वे भी दुष्टों के वचन-बाणों से मारे जाते हैं। भाग नहीं सकते। (घनी वर्षा में बिना भीगे निकला जा सकता है, परंतु दुष्टों की निंदा से कोई नहीं बच सकता) अर्थात् घनी वर्षा में बिना भीगे निकलने जैसा कठिन कार्य तो संभव है, परंतु अच्छे से अच्छा काम करने पर भी दुष्टों की निंदा से रक्षा कर पाना संभव नहीं हैं।

२२०७) विश्वास करने वाले से कभी धोखा नहीं करना चाहिए। विश्वास करके जिसकी गोद में सिर रखकर सोया जाए वही (विश्वासघात करके) कुचाल करे तो फिर उस कुचाल से भगवान ही रक्षा कर सकते हैं अर्थात् मनुष्य विरोधी के प्रति तो सचेत रहता है क्योंकि उससे अनिष्ट की आशंका रहती है, परंतु जिस पर वह अंधविश्वास करता है यदि वही उससे छल करे तो उसकी रक्षा ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं कर सकता।

२२०८) नीच लोगों के कपटपूर्ण व्यवहार से मंदबुद्धि लोग नष्ट हो जाते हैं। जो शपथें खा-खाकर मित्र बन जाते हैं और फिर घर का भेद जानकर एकमत (आपस में साजिश करके) होकर मित्र को मार डालते हैं, जिन्हें अपने ऐसे कुकर्मों से न तो लज्जा आती है और न ही जिन्हें ईश्वर या धर्म का डर ही लगता है- ऐसे नीचों का जो विश्वास करते हैं, वे नीच (मंदबुद्धि) बिना मौत मारे जाते हैं। जिन

लोगों को अनुमान नहीं होता कि कौन सच्चा व्यवहार कर रहा है और कौन छल कर रहा है, उनकी रक्षा कौन कर सकता है, क्योंकि दुष्ट लोग तो बाहर से मीठा व्यवहार करके मनुष्य को मार भी डालते हैं।

२२०९) परद्रोही, दूसरे की स्त्री पर बुरी दृष्टि रखने वाले तथा लोभी महान पापी होते हैं। जो मनुष्य दूसरों से वैर रखते हैं तथा जिनकी परायी स्त्री में, पराये धन में और परनिंदा में आसक्ति है, वे पामर पापमय मनुष्य नर देह धारण किए हुए राक्षस ही हैं अर्थात् दूसरों से वैर रखना, दूसरों की पत्नी पर कुदृष्टि रखना, दूसरे के धन को हड़पना ये सब कार्य मनुष्य को शोभा नहीं देते। ये तो राक्षसी वृत्तियां है। जो उपरोक्त सब कुकर्म करता है, वह मनुष्य शरीर में राक्षस ही है।

२२१०) बाह्याचरण से किसी के वास्तविक चरित्र का पता लगाना कठिन होता है। किसी भी पुरुष या स्त्री के बाहरी वेश और वचन से कैसे पता लग सकता है कि इसका मन मलिन है ? शूर्पणखा, मारीच, पूतना और रावण आदि के उदाहरणों पर विचार करो (इनके हृदय में कपट भरा था, परंतु ऊपर से बड़े ही सुंदर वेशधारी और मीठी वाणी बोलने वाले थे, इसलिए ये पहचाने नहीं जा सके)। इस प्रकार संसार में कपटी लोगों को उनकी वेश-भूषा और बातचीत से पहचानना कठिन है अर्थात् कपटी लोग सुंदर रूप, सुंदर परिधान तथा मधुर वचनों से सज्जन ही लगते हैं। प्रत्येक प्राणी उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। उनके वास्तविक रूप का पता तब लगता है जब बहुत देर हो जाती है।

२२११) मनुष्य जैसे काम करता है, वैसा ही उसका नाम होता है। लोग सिंह का सा स्वांग रचकर कुत्तों के से काम करते हैं फिर भी कीर्ति, विजय और ऐश्वर्य चाहते हैं। अर्थात् जो लोग नीच काम करके बाहर से सज्जनता का नाटक करते हैं फिर भी अपनी मान, बड़ाई चाहते हैं, उनकी कीर्ति नहीं अपकीर्ति ही फैलती है।

२२१२) बड़े-बड़े पाप करके भी मनुष्य सुख की आकांक्षा करता है। जिसने बड़े-बड़े पाप तो बढ़-चढ़कर किए और छोटे पाप करने में लज्जाता है (सुई की चोरी को पाप समझ कर नहीं करता, परंतु दूसरे का धन व्यापार के नाम पर हरने में जिसे आपत्ति नहीं है, अथवा जो नहाए बिना खाने में तो पाप मानता है, परंतु दिन-रात कपट-छल, चोरी-हिंसा, वेश्यागमन आदि में रचा-पचा रहता है)। इस पर भी मनुष्य (अपने को धर्मात्मा मानकर) सुख चाहता है और (न मिलने पर) विधाता पर क्रोध करता है। अर्थात् जो महान पाप तो निश्चिंत होकर करते चले जाते हैं, परंतु छोटी-मोटी त्रुटि से बचने का नाटक करते हैं। वे बड़े-बड़े पाप करके भी सुख प्राप्ति की इच्छा रखते हैं तथा सुख नहीं मिलता तो विधाता को कोसते हैं।

२२१३) कपटपूर्ण कार्य करते हुए राज्य करने वाला समूल नष्ट हो जाता है। जो राजा राज्य करते हुए बिना ही कारण बुरी चाल चलते हैं तथा बुरे काम करने लगते हैं। वे रावण की तरह अपने समाज सहित नष्ट हो जाएंगे अर्थात् जैसे रावण ने सोने की लंका पर राज्य करते हुए भी परस्त्री पर कुदृष्टि डाली, साधु-संतों और भक्तों पर अत्याचार किए तो वह स्वयं तो नष्ट हुआ ही, साथ ही उसके सारे सगे-संबंधी भी नहीं रहे।

२२१४) बुरे लोग बुरे लोगों को ही श्रेष्ठ कहते हैं तथा सज्जनों की निंदा करते हैं, जैसे दुर्योधन की सभा में अत्यंत नीच स्वभाव वाला शकुनि ही श्रेष्ठ बुद्धिमान और सराहनीय माना जाता था और गुरु द्रोणाचार्य, महात्मा विदुर, पितामह भीष्म तथा भगवान श्रीकृष्ण को उस सभा के लोग प्रपंची कहते थे। इसी प्रकार दुष्ट लोगों के समूह में यदि कोई सज्जन आ जाता है तो वे उसे दुष्ट सिद्ध करने में कोई कसर नहीं छोड़ते तथा अत्यधिक नीच को श्रेष्ठतम सिद्ध करते हैं।

२२१५) भाग्य प्रतिकूल होता है तो मनुष्य शत्रु को मित्र और मित्र को शत्रु समझने लगता है। जब अपने हित करने वाले के प्रति शत्रुता और हित का नाश करने वाले पर प्रेम बढ़ जाता है, तब समझना चाहिए कि भगवान श्रीरामजी उसके विमुख हैं, विधाता की गति उसके प्रतिकूल है और यह उसके पूर्णरूप से अभागी होने का शकुन (चिन्ह) है। जो मनुष्य अपना भला करने वाले को दुश्मन और अपना बुरा चाहने वालों को भूल से अपना शुभचिंतक समझने लगता है तो समझना चाहिए कि उस पर से प्रभु ने अपनी कृपा का हाथ उठा लिया है।

२२१६) स्वभाव से ही हित करने वाले मित्र, गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर उसके अनुसार कार्य नहीं करता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की अवश्य ही हानि होती है। अतएव बुद्धिमान मनुष्य को सदा अपने शुभचिंतक मित्र, कृपालु गुरु तथा पालक पोषक स्वामी का सम्मान करते हुए, उनकी शिक्षा को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए जिससे उसका भला ही होता रहे।

२२१७) कभी किसी की उल्टी सीख से कोई काम नहीं करना चाहिए। भाटों के भड़काने से जोश में आकर यदि नट (नाचने वाले) लोग सहसा लड़ाई में चले जाएं तो उसका यही परिणाम होगा कि या तो वे रण से भाग आएंगे या कैद कर लिए जाएंगे अर्थात् कुछ लोगों का काम दूसरों को उकसाकर लड़वाने और फिर तमाशा देखने, हंसी उड़ाने का ही होता है। अत: मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिए।

२२१८) दूसरों को अपनी भलाई से वश में करना चाहिए दुर्वचन से नहीं। किसी को मोटे बोल न मारो (हृदय को छेद डालने वाले तीखे वचन न कहो) परंतु रोटी की मोटी मार मारो (उसका खूब पेट भरकर, सेवा और सहायता करके उसे वश में करो)। इस तरह की अपनी हार को हजारों जीत के समान समझो और उस तरह के वाक्य-बाणों के प्रहार से-गाली-गलौज से जीत जाने पर भी हार ही समझो। अर्थात् बुरे वचन कहने पर अपना मन भी खिन्न रहता है तथा दूसरे भी दुखी होते हैं। इसके विपरीत किसी का भला करने से स्वयं भी सुख मिलता है और दूसरों की दुआ भी मिलती है।

२२१९) अपने गुरुजनों से सोच-समझकर रूठना चाहिए। जिन माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों को उनके पैरों पर पड़कर मनाना कर्तव्य है, उनसे बहुत ही सोच-विचारकर रूठना चाहिए। जहां जीतने में भी हार ही होती है वहां जीतना नहीं चाहिए अर्थात् अपने माता, पिता, गुरु आदि के सामने झुकना मनुष्य का कर्तव्य है। उनके तो चरण पकड़कर उन्हें मनाना चाहिए। उनसे नाराज होने में भी अपनी ही हार होती है।

२२२०) जहां तक हो सके शत्रु से भी झगड़ा समाप्त ही कर देना चाहिए। जिस शत्रु से हारने में भी हंसी हो तथा जीतने में पाप और दुख हो, उससे मौका पड़ने पर स्वयं ही संभलकर झगड़ा मिटा लेना चाहिए। जिस दुश्मन से हारकर उपहास का पात्र बनना पड़े तथा जीतने से पाप बोध तथा संताप हो, ऐसे दुश्मन से अवसर मिलते ही अपना झगड़ा समाप्त कर देना चाहिए।

२२२१) भावुक लोगों को तो मीठी वाणी से भी घायल किया जा सकता है। जो शहद से ही मर जाए उसे जहर देकर कभी नहीं मारना चाहिए। परशुराम जी सारे जगत् को जीतकर श्रीरामचन्द्रजी की मधुमयी वाणी से हार गए और श्रीरघुनाथ जी परशुराम जी के सामने अपनी हार मानकर भी जीत गए। अर्थात् जिसको मीठे वचन से ही हराया जा सकता हो उसे विष देकर मारने से कोई लाभ नहीं। जैसे परशुरामजी ने धनुष भंग होने पर क्रोध किया और राम ने उनका क्रोध सहा। उस समय जीत राम की हुई न कि परशुराम जी की।

२२२२) हित के वचन वैर की जड़ को काटने वाले हैं और हित करना तो प्रेम की जड़ ही है एवं विचार करने पर जान पड़ता है कि हाहा करना (विनती करना) यह तो शुभ का समूह ही है। अर्थात् जब कोई किसी के भले की बात कहता है तो शत्रुता स्वत: ही लुप्त हो जाती है क्योंकि प्रेम करने वाला ही हित के वचन कहता है। साथ ही किसी से प्रार्थनापूर्वक विनम्रता का व्यवहार करने से तो अच्छा ही होता है।

२२२३) मनुष्य को सोच-विचारकर ही बोलना चाहिए, आवेश में नहीं। क्रोध में आकर जबान नहीं खोलनी चाहिए, इससे तो तलवार खींचना बल्कि अच्छा है । (तलवार का घाव मिट जाता है, पर जबान का कभी नहीं मिटता)। विचार-विचारकर ऐसे वचन बोलने चाहिए, जो सुनने में मीठी हों और परिणाम में हितकारी हों। जो लोग क्रोध में बुरी-बुरी बात कह देते हैं, वे सुनने वाले के मन को आहत कर देते हैं और वह चोट हमेशा के लिए रह जाती है। इसके विपरीत सोच-समझकर बोलने वाले के वचन सुनने वाले को प्रसन्नता प्रदान करते हैं जिसका परिणाम हितकारी होता है।

२२२४) जो भूख में (अभाव में) भी अपने को तृप्त के समान समझता है और जीत में भी अपनी हार मानता है- इस प्रकार जो खूब विचार-विचारकर मार्ग पर पैर रखता है- वह बुद्धिमान ही सराहने योग्य है। अभाव का अनुभव करने से ही कामना होती है और कामना ही पाप की जड़ है, अतएव जो सदा अपने को तृप्त और पूर्णकाम मानता है, उसके द्वारा पाप नहीं होते। इसी प्रकार अपनी विजय मानने से अभिमान बढ़ता है, जो पतन का हेतु होता है (अतएव जो पुरुष प्रत्येक क्रिया और फल में अभिमान का त्याग कर विचारपूर्वक दोषों से बचता रहता है, वही बुद्धिमान है और वही प्रशंसनीय है।)

२२२५) विपत्ति के समय धैर्य, धर्म, विवेक, साहस, सत्साहित्य और सत्य ही मित्र की तरह काम आते हैं अथवा श्रीराम का एक भरोसा ही बहुत है। भाव यही है कि विपत्ति के समय में न तो धैर्य खोना चाहिए, न धर्म, न सद्बुद्धि अथवा निर्णायक बुद्धि खोनी चाहिए। सत्साहित्य और सत्य का क्रमश: अध्ययन तथा पालन करते हुए एक श्रीराम का भरोसा यदि मन में हो तो सभी कष्टों का

निवारण स्वत: ही हो जाता है।

२२२६) अपनी हानि की आशंका से दूसरों का अहित नहीं करना चाहिए। दूसरे का हित करने में तो अपने अहित का केवल भय ही रहता है, परंतु दूसरे का अहित करने में अपने हित का नाश ही हो जाता है। पराए हित का ही काम करना चाहिए, अहित का नहीं।

२२२७) समझदार लोग आय-व्यय का व्यवहार सोच-समझकर ही करते हैं। वही पुरुष इस जगत् में बुद्धिमान, पुण्यात्मा, सामर्थ्यवान, साधु और सुकर्मी है, जो लाभ का अनुमान लगाकर ही अपनी आय को खर्च करता है अर्थात् वह जान लेता है कि कहां लाभ है और कहां हानि है।

२२२८) मंत्री, वैद्य और गुरु से निर्भय होकर सत्य कहना चाहिए। यदि ऐसा न करें और उनकी हां में हां मिलाते रहें तो राज्य, धर्म और शरीर तीनों नष्ट हो जाते हैं। मंत्री से कभी भी राज्य की वास्तविक स्थिति को नहीं छुपाना चाहिए। इसी प्रकार वैद्य से अपने रोग के विषय में खुलकर बताना चाहिए और गुरु के सामने नि:स्वार्थ भाव से अपनी जिज्ञासा प्रकट करनी चाहिए। तभी उसका निदान हो सकता है। अन्यथा परिणाम भयानक ही होता है।

२२२९) प्राण के समान प्यारे होने पर भी बहुत दिनों के रोगी, दरिद्र, कटु वचन बोलने वाले और लालची-ये चारों निरादर के योग्य हो जाते हैं अर्थात् जब कोई बीमार होकर लंबे समय तक ठीक नहीं होता तो उसके अपने रिश्तेदार भी ऊबकर उसका निरादर करने लगते हैं, निर्धन से भी सब दूर रहना पसंद करते हैं, कटुभाषी और लोभी मनुष्य भी निरादर के पात्र बन जाते हैं।

२२३०) दूर जाकर खेती करने से, अजनबी से प्रेम, अधिक ब्याज का ऋण, रास्ते का खेत, बड़ों से शत्रुता बहुत दुखदाई होती है। पाही खेती (जिस गांव में रहते हों उससे दूर जाकर दूसरे गांव में खेती करना), राह चलते मनुष्य में आसक्ति, बुरे (बहुत अधिक) ब्याज की कर्जदारी, रास्ते पर का खेत और अपनी अपेक्षा बड़े से वैर- ये पांचों काम (करने से) अवश्य ही दुख के कारण होते हैं। घर के पास ही व्यवसाय ठीक रहता है। रास्ता चलते अनजान व्यक्ति से प्रेम करना ठीक नहीं, धोखा मिल सकता है। बहुत ही अधिक ब्याज वाला कर्जा चुकाना कठिन हो जाता है तथा रास्ते के खेत को लोग हानि पहुंचाते चलते हैं। अपने से बड़ों से वैर करके दुख के अलावा क्या मिल सकता है ?

२२३१) जिस तरह लोहा चाव से दौड़कर चुम्बक से लग जाता है। उसी तरह नीच मनुष्य (कपट भरी) नम्रता प्रदर्शित कर दूसरे को अपनी ओर खींच लेता है। इसी प्रकार समर्थ पापी से वैर करने को खरीदी हुई मौत समझो। अर्थात् नीच लोग बाहर से इतने विनम्र होकर प्रेम दिखाते हैं कि सरल मन आकर्षित हुए बिना नहीं रहता तथा शक्तिशाली दुष्ट आदमी से लड़ाई करने पर तो जीवन की हानि की संभावना हो जाती है। ऐसा लगता है जैसे स्वयं ही मौत का सौदा कर लिया हो।

२२३२) बिना आंख वाली जूती पैर को देखकर पहचान लेती है, किंतु इन नर-नारियों के चार-चार आंखें (दो बाहर की ओर मन-बुद्धिरूप दो भीतर की) होने पर भी इन्हें मौत और माया नहीं सूझती। अर्थात् मनुष्य के पास दो चर्मचक्षु तथा दो ज्ञानचक्षु अर्थात् मन और बुद्धि होते हैं फिर भी वह जान-बूझकर मौत से आंख मूंदे रखता है। इसलिए माया में लिप्त रहता है। उससे अच्छी तो बिना आंख वाली जूती होती है, जो अपने मालिक के पैरों को छूते ही पहचानकर स्थान दे देती है।

२२३३) बुद्धिमान लोग समय रहते ही सब काम कर लेते हैं। जो लोग घर जलने पर कुआं खोदते हैं, शत्रु के चढ़ आने पर (किले की रक्षा के लिए चारों ओर) बबूल के वृक्ष रोपना शुरू करते हैं और स्वार्थ साधन के लिए भगवान को छोड़कर जहां-तहां सिर नवाते फिरते हैं, वे मूर्खों के शिरोमणि और निकम्मे दीर्घसूत्री और प्रमादी हैं। यदि पहले से ही घर के आस-पास कुआं खुदवा रखा होगा तो आग लगने पर बुझाई जा सकती है। चारों तरफ बबूल के पेड़ होंगे तो शत्रु से रक्षा की जा सकती है।

२२३४) नास्तिक बुद्धिमान को लोग गया-बीता ही मानते हैं। ईश्वर का डर छोड़कर चाहे कोई बीसों बिस्वे (निश्चय ही) रावण के समान (प्रभावशाली) कायें न हो जाए, बुद्धिमान लोग तो उस ईश्वर-विमुख को गया-गया ही (नष्ट ही हुआ) कहेंगे, कोई कुबुद्धि वाला ही उसे उन्नति को प्राप्त हुआ बतलावेगा। अर्थात् जो ईश्वर को नहीं मानता चाहे वह बीस भुजाओं वाले रावण की तरह बल बुद्धि वाला हो फिर भी बुद्धिमानी लोग उसे अच्छा नहीं मानते।

२२३५) जो (सब बात) सुन-समझकर भी (जान-बूझकर) अनीति में लगा रहता है और जागते हुए भी सोए रहता है, उसको उपदेश

देना या जगाना उचित नहीं है अर्थात् व्यर्थ है। जो लोग शास्त्रों की बात सुनकर, जानते-समझते हुए भी नीति के मार्ग को छोड़कर चलते हैं, वे जागते हुए भी निद्रामग्न की तरह होते हैं, वे लाख समझाने पर भी नहीं समझते।

२२३६) अधिक बेटों वाला, अधिक इच्छाओं वाले व्यक्ति का भला होना कठिन होता है। जिनके बहुत पुत्र हों, जिनकी (भांति-भांति की) अनेक इच्छाएं हों, जो तरह-तरह की बातें बनाते हों, जिनके आचरण और व्यवहार अनेक प्रकार के हों उनकी भलाई चाहना महान मूर्खता है (अर्थात् उनका कल्याण होना बहुत ही कठिन है), क्योंकि एक पुत्र होता है तो उसे अपने कर्तव्य का लोकनिंदावश भी अहसास होता है। बहुत सारे पुत्र एक दूसरे पर माता-पिता का दायित्व छोड़ते रहते हैं। अनेक इच्छाएं होने पर भी पूरी न हो पाने पर दुखी होना पड़ता है।

२२३७) संसार में सबको खुश रखना बहुत कठिन होता है। क्या श्री जानकीजी अपयश के योग्य थीं और क्या श्रीकृष्ण ने मणि की चोरी की थी ? कदापि नहीं। अतएव सब लोगों को प्रसन्न करना उतना ही कठिन है, जितना जोर से खींचकर बारीक सूत कातना। अर्थात् जैसे धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक रुई में से धागा खींचकर ही सूत काता जा सकता है, जल्दी से, जोर से खींचकर नहीं, उसी प्रकार संसार के सब लोगों को प्रसन्न करना बहुत मुश्किल होता है, तभी तो धोबी ने सीता पर दोष लगा दिया और कृष्ण पर स्यमंतक मणि की चोरी का आरोप लगा दिया गया।

२२३८) यदि लोगों के संदेह को दूर करने का कोई उपाय होता तो क्या श्री रघुनाथजी श्री जानकीजी को अपने मन में (सर्वथा निष्कलंक) जानते हुए भी उनका त्याग करते ? अर्थात् लोगों की बुद्धि में यदि किसी के प्रति संदेह बैठ जाए तो सही होने पर भी उनके संदेह को दूर नहीं किया जा सकता। इसीलिए तो अच्छी तरह सीता के निष्कलंक चरित्र का ज्ञान होने पर भी राम ने धोबी के संदेह के कारण (अग्नि परीक्षा के बाद भी) सीता को त्याग दिया था।

२२३९) मूर्ख लोग अपनी प्रशंसा सुनकर अभिमान करने लगते हैं और फिर पतित हो जाते हैं। मूर्ख जनता का सम्मान भेड़िया धंसान के समान है (जहां एक ने बड़ाई की, वहीं सब करने लगते हैं), परंतु इस सम्मान का मिलना शुरू होते ही अभिमान उत्पन्न हो जाता है, जिससे मूर्ख लोग अपनी स्थिति खो बैठते हैं (अभिमान के वश होकर गिर जाते हैं)। अर्थात् लोग तो एक दूसरे की देखा देखी भी प्रशंसा करने लगते हैं। परंतु दूसरों के तारीफ करने पर अभिमान नहीं करना चाहिए अन्यथा सम्मान खोने की संभावना हो जाती है।

२२४०) संसार में सुख-सम्पत्ति, पद आदि सब नश्वर हैं। स्वर्ग में जाकर जीव निर्भय हो जाता है (समझता है कि मैं बुढ़ापे और बीमारी से रहित होकर सदा ही भोग भोगता रहूंगा, क्योंकि स्वर्ग में बुढ़ापा और बीमारी नहीं है) परंतु ऐसी दशा तो यहां इस शरीर के रहते भी सुख-सम्पत्ति और ऊंचे पद को प्राप्त मनुष्य भी अभिमानवश अपने को निर्भय ही मानता हैं।

२२४१) गंगाजी भी बढ़ जाने पर अपने किनारे के (आश्रित) वृक्षों को तोड़ डालती हैं, बगुलों (दंभियों) के लिए हंसों को (सच्चे ज्ञानियों को) भगा देती हैं, कमल और भौरों से (सद्गुणों से) रहित और मलिन जल वाली (मलिन हृदया) हो जाती है। (अर्थात् पार्थिव ऐश्वर्य बढ़ जाने पर सज्जनों में भी दोष आ जाते हैं। वे अभिमान में भरकर पड़ोसी आश्रितों को मिटा देते हैं, मूर्खतावश सच्चे पुरुषों को अपने पास से हटाकर दंभियों को आश्रय देते हैं और कुसंगति के कारण सद्गुणों से रहित और पापजीवी हो जाते हैं)। अर्थात जैसे गंगा जैसी पवित्र नदी में भी जल अधिक हो जाने पर किनारे के वृक्षादि टूट जाते हैं, हंस भाग जाते हैं, जल गंदा हो जाता है ऐसे ही धर-मान के मद से मनुष्य सज्जन होते हुए भी पाप कर बैठते हैं।

२२४२) समय बदलने से अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। अर्थात् बुरा समय आने पर भले अधिकारियों को भी बुरा ही समझिए। चन्द्रमा अमृत का भण्डार होने पर भी आठवें, बारहवें और चौथे स्थान में पड़ने पर एवं भादों सुदी चौथ के दिन देखने पर हानिकारक हो जाता है। इसी प्रकार अवसर के वश में होकर (काल के वशीभूत होकर) सज्जन माने जाने वाले अधिकारी भी दुर्जनों जैसा व्यवहार करने लगते हैं, क्योंकि समय उनकी बुद्धि को खराब कर देता है।

२२४३) अनुचरों को रुष्ट कर देने पर वे सारा काम बिगाड़ देते हैं। अवसर पड़ने पर मालिक यदि एक प्रकार से बुराई करता है, तो उसके अनुगामी सेवक तीन प्रकार से व्यवहार करते हैं। वे सीधे सज्जनों से भी टेढ़ा बरताव करते हैं, समता में भी विषमता करते हैं और सब कामों को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, क्योंकि स्वामी के हाथ में कारोबार की डोर न होकर सेवकों के हाथ में ही होती है। इसीलिए स्वामी

यदि भूल से कोई एक काम बिगाड़ देता है तो सेवक उसके तीन काम बिगाड़ देते हैं।

२२४४) मालिक की अपेक्षा मालिक के परिचारक वर्ग विशेष दुखदायी होते हैं, इस बात को विचारकर राजा को चाहिए कि वह स्वयं अपनी प्रजा की देखरेख करे। हाथ में पकड़ी हुई तलवार की चोट बहुत ही कठिन और भयंकर होती है। जिस राजा का प्रजा से प्रत्यक्ष संबंध होता है उसकी प्रजा अधिक सुखी रहती है, क्योंकि राजा को प्रजा के सुख-दुख का ज्ञान रहता है। अन्यथा राजा के मंत्री और अन्य सेवक प्रजा को कष्ट देते हैं।

२२४५) हम देख सकते हैं कि एक तथा दूसरे मनुष्य के बीच अन्तर होने का कारण उसका अपने आप में विश्वास होना और न होना ही है। अपने आप में विश्वास होने से सब कुछ हो सकता है। मैंने अपने जीवन में इसका अनुभव किया है, अब भी कर रहा हूं और जैसे-जैसे मैं बड़ा होता जा रहा हूं, मेरा विश्वास और भी दृढ़ होता जा रहा है।

२२४६) योग में असीम शक्ति है। शरीर का मन से, मन का आत्मा से और आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है। योग से शरीर, मन व आत्मा की शुद्धि होती है। योग, ध्यान व समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है। क्रोध, लोभ, मोह, माया, अहंकार, ईर्ष्या पर काबू रखना भी योग है। योग, ईश्वर तक पहुंचने का वैज्ञानिक साधन है।

२२४७) यदि तुम्हारी अन्तरात्मा ऐसी किसी बात को उचित नहीं समझती, जिसको मानने के लिए सम्मानित लोगों की ओर से दबाव पर दबाव पड़ रहा है तो तुम्हारा परम कर्तव्य है कि सबकी सुनी-अनसुनी करके केवल अपने अन्तर्यामी के आदेश को सुनो और दूसरों की बात को ससम्मान अस्वीकार कर दो। यद्यपि वह बात किसी गुरुजन की विशिष्ट आज्ञा के रूप में सर्वथा हितकारी समझकर कही गई हो तो भी उसका परिपालन अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध जाकर कभी मत करो। तुम्हारे अन्तर्यामी से बढ़कर तुम्हारा कोई दूसरा हितैषी नहीं। अन्त:करण के देवगण उच्चतम नैयायिक होते हैं।

२२४८) अनन्य भाव से भगवान के प्रति समर्पित होकर ही जीवन का श्रेय प्राप्त किया जा सकता है। जो प्रभु अमरबेल जैसी मूलविहीन, विकलांग वल्लरी को भी उपेक्षित नहीं रखता, तुम ऐसे अद्वितीय अभिभावक को छोड़कर किसे खोजते फिर रहे हो? अपने ही अन्त:करण में विद्यमान परम वत्सल, विश्वंभर, सर्वशक्तिमान भगवान् जैसा अहेतुकी कृपा करनेवाला संरक्षक कहीं बाहर नहीं है।

२२४९) संत-महात्माओं का रोष भी शोभा-श्रृंग होता है। कतिपय क्रोधी स्वभाव वाले साधु-सन्तों की अमृतवाणी के जीवनदायी पौधे में रोष के फूटे हुए अंकुर ऐसे मनोहारी होते हैं जैसे मिश्री की डली में नीरस बांस की फट्टी शोभायमान लगती है।

२२५०) जहां पर आजीविका सुलभ नही तथा लोगों में सामाजिकता नहीं उस गांव में निवास करना, किसी नीच पुरुष की नौकरी करना, सडा गला, बासी तथा अरूचिकर भोजन करना, धर्म पत्नी का झगडालू होना, पुत्र का अशिक्षित तथा मूर्ख होना, लडकी का विधवा हो जाना ये सब तत्व मनुष्य को बिना आग के हर समय जलाते रहते है। इन तत्वों में प्रत्येक तत्व पुरुष को निरन्तर बहुत अधिक दु:ख और पीडित करते है। मन की सुख शान्ति चली जाती है। न वह कभी चैन से खा पाता है, न चैन से सो पाता है। न ही सुख से बैठ पाता है। उसका चित्त हर समय दु:खी और अशान्त सा रहता है।

२२५१) बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह बार बार यह सोचे उसके कितने मित्र है, उसका समय कैसा है, उसका निवास कैसा है, उसकी आय कितनी है, व्यय कितना है, वह कौन है आत्मा या शरीर, स्वाधीन है या पराधीन, उसकी शक्ति कितनी है इत्यादि। इन प्रश्नों पर विचार करते हुये अपना जीवन बिताना चाहिये अन्यथा वह पत्थर के समान निर्जीव हो जायेगा।

२२५२) बड़े लोगों की छोटी-छोटी जिन्दगियों के दुख-दर्द का पता तभी चलता है, जब कभी वे स्वयं किसी ऐसे गहरे अभाव से गुजरते हैं। जिसके जीवन-यापन की आवश्यकताएं नगण्य हैं और जो सन्तोष से समृद्ध है, वह सन्तों की श्रेणी का मानव है। ऐसा जीवन निर्मल और आनन्दमय होता है।

२२५३) राम की शरणागति ही भवसागर की नौका है। नौका किनारे लगी है, निश्चिंत होकर उसमें बैठ जाओ। वह काल-चक्र से बाहर है। न टूटेगी और न ही डूबेगी। इस विकराल-अपार पारावार को पार करने का कोई अन्य विकल्प नहीं है। राम भक्ति ही व्यक्ति को सांसारिकता से मुक्ति दिलाती है।

२२५४) माया से मुक्ति पाने के लिए हमने प्रभु की सेवा-उपासना की। मन्दिर में जाकर भगवान् के चरणविन्दों को छुआ। वन्दन,

पूजन एवं अर्चन- सब कुछ किया। फिर भी माया हमारे पीछे पड़ी रही। हमने ज्ञान मार्ग भी अपनाया। धार्मिक-अध्यात्मिक ग्रन्थों का पारायण किया और योग-साधना की भूमि पर तन-मन को भी स्थापित किया। किन्तु माया ने हाथ नहीं छोड़ा जब हमने सब कुछ छोड़कर, बस प्रेम-भाव से भरकर अश्रुविगलित नयन होकर प्रभु को पुकारा तो दयार्द्र प्रभु हमारे हृदय-मन्दिर में प्रत्यक्ष हो गए। ऐसी आनन्द-घटना के घटते ही माया हमको छोड़कर न जाने कहां चली गई।

२२५५) मानव-काया की अद्‌भुत महिमा सभी लोग नहीं जान पाते। उसमें सर्वताप तथा सर्वशाप सह लेने की अकूल क्षमता है। घात-प्रहार सहने की गजब की शक्ति है उसमें। अनन्त सिद्धियों से भरे अन्त:गृह को कम ही लोग देख पाते हैं। देह को साधारण भृंसिड मत समझो। इसमें ब्रह्माण्ड की विशिष्ट शक्तियां निहित हैं। इसमें सर्वभूमि की सहनशीलता और क्षमाशीलता जैसे महान मूल्य विद्यमान हैं। शीत, ताप और आवृष्टि के दुर्धर्ष प्रहार सहने वाली धरती के समान यह भी सब कुछ सह जाती है। ऐसा अनमोल-जादू भरा वरदान पाकर भी उद्विग्न, अशान्त और व्याकुल हो रहे हो। घबराकर इधर-उधर मत बहो।

२२५६) साधु-सन्त जिन विषय-वासनाओं को जीवन का अभिशाप समझकर परित्याग कर देते हैं, मूढ़ और असंत उन्हीं विषय-वासनाओं को जीवन का वरदान मानकर प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं। वे उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं।

२२५७) जिस प्रकार सूत्रधार के इंगित कर कठपुतली नाचती है, उसी प्रकार पूर्वजन्म के कर्म-कलाप शरीर को नचाते हैं। हाथ-पैर ऐसे निष्क्रिय हो जाते हैं, मानो यह अपने नहीं-किसी दूसरे के हों। संपूर्ण देह पर किसी प्रबल सत्ता का अधिकार हो जाता है। दुर्दिन से उबरने के सभी सकल प्रयास विफल हो जाते हैं।

२२५८) एक बार क्या, सौ बार भी तुम्हारा सुहृदय किसी कारणवश तुमसे रूठ जाए और अलग हो जाए तो भी उसे किसी तरह मना लेना चाहिए। उसको साथ ही रखना होगा, क्योंकि वह तुम्हारा अन्तरंग है। ऐसे सुजन को मनाने में न तो प्रतिष्ठा का प्रश्न होना चाहिए और न ही पराभव का भाव। अपने से क्या हारना और क्या जीतना। मनाने से छोटे नहीं हो जाओगे। मित्रता में कोई छोटा होता ही नहीं। ऐसा व्यक्ति बार-बार नहीं मिलता। उसका विकल्प भी नहीं ढूंढा जा सकता। अगर मुक्ताहार के मोती टूटकर बिखर जाएं तो क्या उन्हें फिर से पिरोकर हार नहीं बना लिया जाता ? एक नहीं, सौ-सौ बार उन्हीं मोतियों से हार बनाया जाता है। ये मोती हैं, कौड़ियां नहीं।

२२५९) तन को कर्माधीन माना जाता है। वह पूर्वजन्म के कर्मानुसार कार्य करता है। यदि ऐसा है तो होने दो। तन जैसा चलता है, वैसा चलने दो। उसे अपने किए का फल भोगने दो। मन तो किसी के अधीन नहीं है। उसको तो अपने वश में रख सकते हो।

२२६०) मन को प्रेमपूर्वक नियंत्रित करो। उसे भगवान् की ओर उन्मुख कर दो। धीरे-धीरे तुम्हारी काया भी पलट जाएगी। वह भी मन से अनुप्राणित होकर प्रभु की ओर चल पड़ेगी। जीवन की दिशा ही बदल जाएगी। कर्म बंधन से काया उन्मुक्त हो जाएगी। नदी के दुर्धर्ष प्रवाह में बह रही नाव को यों ही बह जाने अथवा डूब जाने नहीं दिया जाता। उसको रस्सी के जोर से धारा के विरुद्ध खींचकर किनारे पर लगा लिया जाता है।

२२६१) दानवीर दान देने में ही आनन्द पाता है। तभी तक जीवित रहना अच्छा लगता है, जब तक दान देने की सामर्थ्य बनी रहे। बिना कुछ दिए इस संसार में जीवित रहना दूसरों को अच्छा लगता हो तो लगे, कम से कम हमको तो बिल्कुल ही अच्छा नहीं लगता।

२२६२) लोग दुख सुनते हैं मगर दुख दूर करना तो दूर, धीरज भी नहीं बंधाते। उलटे पीठ पीछे दुख-कथा सुनाकर हंसते और रस लेते हैं। ऐसे होते हैं अपने लोग। छोड़ दो ऐसे लोगों को। तोड़ लो उनसे नाता। लेकिन निराश न हो। धीरज धरो। भगवान् राम को जाकर अपना दुखड़ा गाओ। वे सबकी सुनते हैं। सुनकर तुरन्त कार्यवाही करते हैं। कोई अनसुना नहीं रह पाता। ऐसे हैं कृपासिन्धु रघुवीर रामचन्द्र।

२२६३) हरि और हरि का सुमिरन ही सच्चा मित्र है। धन, संतान और स्त्री-इन्हीं में अपना मन लगाए रहते हो। माया-मोह में ही जीवन का इतना समय नष्ट कर दिया। इनसे जो सुख मिला, वह सच्चा नहीं निकला। समस्त आकर्षण तुम्हें अकेला छोड़ देंगे। सारा खिंचाव-लगाव स्वार्थ पर निर्भर है। तुम इहापाश में आबद्ध हो। मुक्ति के लिए कोई भरोसे का मित्र नहीं। अभी भी समय है। ज्यादा कुछ नहीं बिगड़ा। वृद्धावस्था में तथा जीवन के उपसंहार के समय तुम्हें अंतरंग साथी की आवश्यकता होगी। ऐसे साथी की खोज अभी से क्यों नहीं कर लेते ? मित्र के मिलते ही शेष जीवन आनन्दमय हो जाएगा। तुम निर्भय हो जाओगे। अपना सुख-दुख उसे सौंप दो और निश्चिंत हो जाओ। वह प्रेमपूर्वक तुम्हारा योग-क्षेम वहन कर लेगा।

२२६४) तुम अपना कर्म वीरतापूर्वक ईमानदारी से करते जाओ। कर्म सिद्धि की चिन्ता मत करो। वह तो अनागत देवता के हाथ है और उस दैवत पर किसी का कोई वश नहीं होता।

२२६५) यदि सराय पथिकों से भरी हो तो नया आने वाला पथिक अपने आप लौट जाता है। उसी तरह जब गोपियों के मन कृष्ण के प्रेमरस से भरे हुए हैं तो अपने निराकार ब्रह्म की बातें कहकर उद्धव स्वयं ही लौट जाएंगे, क्योंकि उसका असर गोपिकाएं लेने वाली नहीं। उनके मन में घनश्याम साकार रूप में समाए हुए हैं।

२२६६) रात का यह घना अन्धेरा अपने प्रिय श्याम का विरह ही तो है जो हम विरहिणियों के जीवन पर छाया हुआ है। ऐसे निबिड़ वियोगांधकार में मोहन के आने की आशा जब-तब ऐसे प्रकाशित होकर आनन्दित कर देती हैं, जैसे भादों की गहन रात में जुगनू चमक-दमक जाते हैं।

२२६७) भजूं तो किसको भजूं ? उसको जो मेरे अन्तरंग में विराजमान है ? जो पहले ही प्राप्त है, उसको क्या प्राप्त करूं ? मैं तो नित्य- निरन्तर प्रभुमय हूं। और तजूं तो किसको तजूं ? कौन पराया है ? इस चराचर जगत में कहीं कोई ऐसी वस्तु है, जिसमें प्रभु न हों ? प्रभु-सत्ता के नाते सभी तो अपने हैं। फिर किसे त्यागा जाए। तू इन धर्म-गुरुओं के फेर में मत पड़। तुझे न किसी को भजने की जरूरत है और न ही किसी को तजने की।

२२६८) मांगने पर कौन नहीं मुकर गया ? मांगने पर किसने नहीं साथ छोड़ा ? वे तो एकमात्र भगवान् राम ही हैं जो मांगने वाले को सामने पाकर प्रसन्न हो उठे। ऐसे उदार को छोड़कर और किसके पास जाया जाए ? प्राकृत जनों से याचना मत करो। भगवान् राम की शरण ग्रहण करो। जो भी याचना करो, उन्हीं से करो। वह तुम्हें अदीन और अयाचक बना देंगे।

२२६९) स्वाति नक्षत्र का जो मेघ-जल सागर के सीप में पहुंचकर मोती और केले में प्रवेश कर कपूर बन जाता है तथा जो अनन्य प्रेमी चातक का जीवनाधार है, वही महिमावान जल दुष्ट व्याल के मुख में जाकर विष हो जाता है। कौन कहता है कि कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ता ? सुसंगति और कुसंगति दोनों ही प्रभावित करती हैं। स्वाति जल जैसी विमल संततियों को व्याल के संसर्ग से बचाओ। संगति का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है। कवि-मान्यता है कि स्वाति नक्षत्र का मेघ-जल कदली में प्रवेश कर कपूर बन जाता है, समुद्र की सीपी में जाकर मोती का रूप धारण करता है और वही जल सर्प के मुंह में जाकर विष बन जाता है। इस प्रकार केला अपने संसर्ग से पानी को सुगन्धित कपूर, सीप अपने साहचर्य से पानी को मोती तथा भुजंग अपने प्रभाव से पानी को प्राणघातक विष बना देता है। जैसी संगति वैसा फल।

२२७०) अभिशप्त गौतम-पत्नी अहिल्या पाषाण थी, रामकी कपि-सेना स्वभाव से पशु थी और निषाद जन्मना चांडाल था। रामने इन तीनों पर कृपा-दृष्टि की और इनका उद्धार किया। ये तीनों मेरे भी अंग हैं। मेरा चित्त पाषाण है, मैं पूजन-अर्चन से अनभिज्ञ पशु हूं तथा कर्मणा चांडाल हूं। मुझे भी स्वीकार कीजिए। मेरे उद्धार में इतना विलंब क्यों, मेरे प्रभु ?

२२७१) यों तो इस अवनी पर न जाने कितने जलाशय, सरोवर, झीलें और सरिताएं हैं, किन्तु जो आनन्द मराल को मानसरोवर के जल-विहार में प्राप्त होता है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। वीतरागी महात्मा सांसारिक सुखों से आकृष्ट नहीं होते। वे परमानन्द माधव में ही तल्लीन रहते हैं। उच्च भाव के मानसरोवर में बिहरने वाला हंस क्षुद्र भावों के ताल-तलैया की ओर उन्मुख नहीं होता।

२२७२) सर्वसाधारण में उच्च जीवन-मूल्यों के प्रति उपेक्षा देखी जाती है। सांसारिक प्रवाह में प्रवाहित सामान्य जन भगवद् भजन में आलस्य दिखाते हैं और विषय-सुखों में लिपटे रहते हैं। पशु बेस्वाद खली को स्वाद से खाते हैं, किन्तु औषधि के रूप में खिलाया जाने वाला गुड़ अपने आप नहीं खाते। गुड़ को किसी तरह गुलियाकर उनके मुंह में ठेल दिया जाता है। चाव से खाने की बात तो दूर की है।

२२७३) यदि निर्मल-निश्चल, धवल-समुज्ज्वल हृदय वाले सत्पुरुष को कभी किसी नीच के संसर्ग में आने का संयोग न बने तो इसे सौभाग्य समझिए। अगर कहीं ऐसा संयोग आ गया तो उसका दुर्भाग्य होगा। क्योंकि नीच की संगति कोई न कोई कलंक अवश्य प्रदान करती है।

२२७४) है किसी में हाथी के समान बल ? है कोई हाथी के समान शक्तिमान ? ऐसा महाबली और इतना विनम्र दुनिया में शायद ही कोई मिले। यह मानवेतर प्राणी भी अपने पालनकर्ता और सर्वशक्तिमान प्रभु की प्रभुता को सदैव स्मरण रखता है। प्रभु की अनुकंपा से

अनभिज्ञ नहीं है वह। उसमें कृतज्ञता का भाव बना रहता है सर्वदा। वह इतना विनयशील है कि सर्वव्यापी प्रभु को अपने समक्ष अनुभव करते हुए दीन होकर दांत दिखाता चलता है और धरती पर नाक रगड़ते हुए बढ़ता है। मानो किसी मन्दिर में प्रतिष्ठापित भगवान् की परिक्रमा कर रहा हो।

२२७५) यह तुम्हारे अन्त:करण की गली है, प्रेम की वीथी है जो बहुत ही संकीर्ण है। इतनी संकरी कि इसमें दो आदमी न तो चल सकते हैं और न ही ठहर सकते हैं। इसलिए इस गली में या तो तुम अपने अहं को रखे रहो या फिर उसको निष्कासित करके प्रभु को प्रतिष्ठित करने के लिए पूरी गली ही खाली कर दो। प्रभु का आगमन तभी होगा, जब वहां कोई दूसरा नहीं होगा। ऐरे-गैरे इस गली में क्यों बिहरें ?

२२७६) अभी तक अपनी आंखों से इस जगत में किसी की अक्षत-अक्षुण्ण महिमा नहीं देखी। दशानन जैसे प्रतापी नरेश को भी पराभव देखना पड़ा। राम की वानर सेना ने उसका राजकोष लूट लिया और सब कुछ तहस-नहस कर दिया।

२२७७) ईख के खेत में उसके बीच उगने वाला रामसर पौधा ईख के प्रभाव से रस से क्यों नहीं भर जाता ? तात्पर्य यह है कि दुर्जन कभी नहीं बदल सकता ?

२२७८) यह लहकता-दहकता, चलता-फिरता अस्थि-पंजर क्या है ? यह एक धूल भरी गठरी है जिसमें जल, अनिल, अनल एवं आकाश-ये चार अन्य तत्त्व भी समाहित हैं। पंचतत्त्व संगठित होकर कैसा दीप्त हो उठा है। बड़े जतन से बांधी गई है यह गठरी। कमी कुछ है तो यही कि इसकी गांठ दुरूह नहीं है। यह बड़ी सरल है। इतनी सीधी कि कभी भी खुल सकती है। यदि यह खुल गई तो दुबारा इसे नहीं बांधा जा सकता। यही इस गठरी की विशिष्टता है।

२२७९) कहां चले गए थे तुम उस समय, कहां चली गई थी तुम्हारी मित्रता उस घड़ी, जब मैं घोर संकट से गुजर रहा था ? और अब तुम मेरे अच्छे दिन देखकर फिर आ गए हो। तुमने तो मुझे वैसे ही छोड़ दिया था, जैसे ग्राह-गृहीत गजराज को उसके संगी-साथियों ने छोड़ा था। अंतत: असहाय गजराज ने प्रभु का आह्वान किया। प्रभु दौड़ते हुए आए और उसे मृत्यु के मुख से निकाल लिया। अब मैं समृद्धि के दिनों के मित्र और गाढ़े दिन के मित्र को जान गया हूं। अब मैं तुम्हारे काम का नहीं रहा। सबको छोड़कर अब मैं गाढ़े दिन के मित्र की शरण ग्रहण कर रहा हूं।

२२८०) प्रेम का धागा बहुत ही नाजुक होता है। इसे ऐसे मत झटको कि टूट जाए। यदि यह टूट गया तो फिर नहीं जुड़ सकता। अगर जुड़ भी गया तो उसमें गांठ पड़ जाती है। यह गांठ मनोमालिन्य की होती है। प्रेम में कपट की ग्रन्थि नहीं होती। यदि कहीं ग्रन्थि आ गई तो प्रेम में पहले जैसी बात नहीं रहेगी। प्रेम के प्रति अतिरिक्त ध्यान रखो क्योंकि यह सुकोमल और संवेदनशील है।

२२८१) राम नाम में उद्धारक क्षमता है। यदि कोई भूल से भी अपने मुख से राम शब्द का उच्चारण कर दे तो उसको परम पद प्राप्त होगा। भले ही वह काम-क्रोध आदि षट रिपुओं का धाम क्यों न हो। अर्थात राम नाम का सुमिरन करना सरलतम भक्ति है।

२२८२) यदि तुम्हारे पास संपत्ति नहीं है, तो विपत्ति में तुम्हारी सहायता करने वाला कोई नहीं होगा। सामर्थ्य देखकर ही लोग सहायतार्थ आते हैं। सूर्य कमल का हितैषी है, मगर वह प्रयत्न करके भी सूखे सरोवर के कमल को नहीं बचा पाता। वह कमल को उसके भाग्य पर छोड़ देता है।

२२८३) विवाह व्याधि है। हो सके तो इस व्याधि से बचकर निकल जाओ। इस उत्सव में ढोल बजा-बजाकर पांवों में बेड़ियां डाल दी जाती हैं और आजन्म कारावास दे दिया जाता है।

२२८४) ईश्वर वर्णनातीत है। यह बात अगम्य की है, गूढ़ रहस्य की है तथा कहने-सुनने की नहीं है। जो भाग्यशाली उसे जानते हैं, वे किसी से कुछ कह नहीं कसते। वे ऐसे अलौकिक रस का पान कर लेते हैं कि उनकी वाणी मूक हो जाती है। प्रभु अनिर्वचनीय हो जाता है। और जो ईश्वर के बारे में कहते फिरते हैं, वे सचमुच उसको नहीं जानते। प्रभु का साक्षात्कार कर चुके लोग वे नहीं होते। फिर क्यों धर्म, ग्रन्थ और उनके व्याख्याता मानव-जाति को भरमा रहे हैं ?

२२८५) तन्मयता, तल्लीनता और आत्मविगलन से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। कोई मन लगाकर क्यों नहीं देख लेता कि सच्ची लगन से हर वस्तु मिल जाती है। इस बात में कोई सन्देह नहीं। किसी व्यक्ति को वश में क्या करना, नारायण ही वश में हो जाते हैं। यदि नारायण वश में हो गए तो फिर प्राकृत जनों को वश में करने की क्या जरूरत ?

२२८६) सच्चा प्रेमी किसी भी रूप में त्यागने योग्य नहीं होता। बड़े लोग प्रेमी का रोष-क्रोध तथा डांट-फटकार सह लेंगे, किन्तु उसकी चौख़ट नहीं छोड़ेंगे। वे लोग अपने प्रियजन से नींद जैसी अंतरंगता रखते हैं। घूंसे मार-मारकर नींद को हटाने-भगाने की कितनी ही कोशिश क्यों न की जाए, वह अपने स्वामी को त्यागकर कहीं नहीं जाती। प्रताड़ित होकर भी वहीं चक्कर लगाती है और मौका पाते ही दौड़ी चली आती है।

२२८७) कुए की जगत पर पड़े घड़े और रस्सी (गुण) का संकल्प है कि यहां से कोई भी प्यासा अपनी प्यास बुझाए बिना नहीं जाएगा। सेवा-भाव से भरे रहते हैं ये दोनों। पानी भरते समय कुएं की भीत से घट को चोट पहुंचती है और गुण को झटके-आघात लगते ही रहते हैं। किन्तु इनकी सेवा में कोई कमी नहीं आती। वे अपने कष्ट भुलाए रहते हैं। यही है सच्ची सेवा।

२२८८) लोग होलिका-दहन के लिए रातभर चोरी कर-करके लकड़ियां और लकड़ी के सामान इकट्ठा करते हैं, दूसरे को हानि पहुंचाकर हुलसित होते हैं। फिर होली रचाई जाती है। देखते ही देखते संचित वस्तुएं स्वाहा हो जाती हैं।

२२८९) अब पछताकर क्या करोगे, जो खोना था खो चुके। भौतिक सुखों की कामना लेकर इधर-उधर के देव-देवियों की सेवा में ही सारा जीवन लगा दिया। अगर हरि-स्मरण किया होता तो अच्छा होता। राम नाम की महिमा नहीं जानी। कहां-कहां भटकते रहे। प्रभु की कृपा से वंचित रहे। एक अच्छा इंसान बनने से रह गए। अब तुम्हें यम-मन्दिर में जाने से कोई नहीं रोक सकता। यमदूत तुम्हारी अनुनय-विनय नही सुनेंगे। वे यमराज के कठोर अनुशासन-प्रिय अनुचर हैं। वे तुम्हें यहां से अपमानित करते हुए ले जाएंगे। वहां भी यातना कम नहीं की जाएगी।

२२९०) जिसने राम नाम का माहात्म्य जानने का सुअवसर नहीं प्राप्त किया तथा जो आजीवन दूसरों को दुख देने वाली गतिविधियां चलाता रहा, वह निस्संदेह अपना अमोल जीवन व्यर्थ ही गंवा बैठा। प्रभु की उपस्थिति की अनुभूति से व्यक्ति श्रेष्ठ मूल्यों से संपन्न होता जाता है। उसका हृदय-शतदल खिल जाता है। वह चैतन्य हो उठता है। उसके आकाश पर आनन्दघन घुमड़ने लगते हैं। वह ज्योति-पर्व बन जाता है। लेकिन मानवी काया-गृह में ज्योति जगाने के लिए किसी प्रेरणा की आवश्यकता होती है।

२२९१) धार्मिक विश्वास है कि काशी में देह त्याग करने से मोक्ष प्राप्त होता है। इसी मोक्ष की कामना से वशीभूत होकर किसी अज्ञानी ने अपने हाथ-पांव कटा लिए, ताकि वह प्राणान्त के समय काशी में ही रहे। किन्तु उसके भाग्य में तो कुछ और ही लिखा था। इसलिए कुछ का कुछ हो गया। सन्निकट मृत्यु के समय न जाने कहां से एक अश्वारोही आ पहुंचा और उसे अश्व पर बैठाकर मगहर ले उड़ा। उसे जहां मरना था, वहीं मरा। ललाट-लेख मिटाया नहीं जा सकता। तीर्थ-धर्म मूर्खों के लिए नहीं होता।

२२९२) कपट का प्रेम कितने दिनों तक ठहरता ? आखिरकार उसे अपनी वास्तविकता पर आना था। कहां गए प्रेम के वे चटक रंग? कहां गए प्रेम निभाने के वे मुखर संकल्प ? कहां गए एक दूसरे के लिए अर्पण-प्रत्यर्पण के कथन ? प्रेम का नाटक क्यों खेला गया प्रेम था ही नहीं। प्रेम का स्वांग रचा गया था। दारुण सच सामने आ गया। प्रेम धीरे-धीरे घटता चला गया। मुट्ठी की रेत खिसकते-खिसकते खिसक गई। उसे खिसकना ही था। रेत जो थी। अब न प्रेम रहा, न प्रेम निभाने की रीति। जीवन ही रिक्त हो गया।

२२९३) सरोवर के सूखते ही पक्षी उड़कर किसी दूसरे सरोवर की शरण में चले जाते हैं, किन्तु बिना पंख की इस मीन का क्या होगा ? कहां जाएगी यह ? उड़ भी तो नहीं सकती। चल भी तो नहीं सकती। इसे इतना असमर्थ क्यों कर दिया ? यह कहीं नहीं जाएगी। यहीं रहेगी। यहीं जिदगी, यहीं मरेगी। अशरण-शरण। यह दीन भक्त तुम्हारी ही शरण में रहेगा। तुम्हीं उसकी आस हो। तुम्हीं उसका भरोसा हो।

२२९४) लोग अपने हित-अनहित पर ध्यान रखकर किसी में गुण-अवगुण ढूंढ लेते हैं। जो कभी अपना स्वार्थ साधने के लिए पथ में रुके रथ के हरसे की टेढ़ी-मेढ़ी छाया को अशुभ-अमंगल कहा करते थे, वही लोग अब उसी हरसे की छाया में बैठे हुए दिख जाते हैं। कभी रथकूबर की छाया अनिष्टकारी थी, अब नहीं। लेकिन लोग ऐसे लोगों की स्थापना को मान क्यों लेते हैं? लोकमन सरल, धर्मभीरु एवं अन्धविश्वासी होता है। वह लोकजीवन पर प्रभुत्व रखने वालों की ऐसी बातें मान लेता है।

२२९५) पेड बडे ही भाग्यशाली है वे केवल दूसरों के भले के लिये ही जीते है। वे धूप और हवा का, पानी और बर्फ का, सबका सामना करते हुये हमे बचाते और सुरक्षित रखते है और उनकी तारीफ यह है कि बदले में कुछ भी नही चाहते। हमारा भी जीवन जीने लायक तभी होता है जब वह दूसरों के दु:ख दर्द में शरीक हो। जैसा हम देते वैसा ही पाते है। दूसरों से पाने के मुकाबले में दूसरों को

देना कही अधिक बडी बरकत है।

२२९६) भाव-विह्वल व्यक्ति के मुख से एकान्त के क्षणों में कैसी-कैसी मर्मोक्तियां और कैसे-कैसे उद्‌गार यों ही फूट पड़ते हैं। ऐसे एकाकीपन में वह कभी अपने से और कभी अनुपस्थित व्यक्ति से अनायास ही बोल पड़ता है। उसके हृदय-कपाट पूरी तरह खुल जाते हैं।

२२९७) कवि कथा-वाचिका को कुसंग बनाते हुए कहता है कि वह धर्म आधारित कथा न कहकर प्रेम कथा कहने लगती है। जिसके मन में प्रेम का प्रसंग होता है, वह चाहे उसे प्रेमपत्र लिखकर व्यक्त न कर सके, पर उसके मन की भाषा संकेतों या व्यवहार से प्रकट हो जाती है।

२२९८) प्रेमासक्त मन अपने भाव-व्यवहार द्वारा प्रेम को प्रकट कर ही देता है। उसके लिए न तो शब्द की आवश्यकता होती है न भाषा की। उसके सजने, संवरने एवं श्रृंगार करने में भी प्रेम के भाव प्रकट हो जाते हैं।

२२९९) प्रेम का भाव गूंगे के गुड़ के स्वाद के समान होता है। गुड़ के स्वाद का आनन्द वह मन ही मन पाता है जिसका वर्णन कर पाने की भाषा उसके पास नहीं होती। इसी प्रकार प्रेम रस का आनन्द प्रेमी ही उठा सकता है। यदि उससे कोई पूछे कि प्रेम क्या है तो उसकी अभिव्यक्ति वह शब्दों द्वारा नहीं कर सकता। यदि प्राकृतिक रूप से सुन्दर और गुणी व्यक्ति को अधिक सुन्दर बना दिया जाए तो उसकी शोभा देखते ही बनती है।

२३००) यौवन रस की गगरी से भरी बनजारन इठलाती और झूमती हुई मस्ती में चलती है। उसके पैरों की पायल इस तरह बज उठती है कि विरह वेदना से व्याकुल प्रेमी के मन का चैन छिन जाता है। यौवन की तरुणाई से युक्त नायिका के मृगनयन प्रेम की भाषा प्रकट करते हैं। इससे प्रेमी उसके रूप-यौवन में आसक्त होकर उलझ जाता है। वह नैन-बाण का शिकार हो जाता है।

२३०१) आखिरकार सांसारिकता से तंग आकर मैंने उसको त्याग ही दिया। चूल्हा जला लिया। नाते-रिश्ते जो थे, उनको जलाकर राख कर दिया। सिर पर भारी बोझ था और होना था नदी पार। बोझ लादकर कैसे पार करता ? सो निर्णय लिया, निश्चय किया। सिर से भार उतारा और उसको बेझिझक भाड़ में झोंक दिया। इतना हल्का हो गया कि पार उतरने में कोई कठिनाई नहीं हुई। ताप-शाप की नदी के पार वहां जा पहुंचा, जहां से भक्ति की आनन्द-भूमि आरम्भ होती है।

२३०२) सत्संगति मुक्ति को तथा कुसंगति बंधन को देती है। संतों का संग मोक्ष अर्थात् भव-बंधन से छूटने का और विषयी पुरुषों का संग संसार बंधन में पड़ने का मार्ग है। इस बात को संत कवि ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद्‌ग्रंथ सभी कहते हैं। यदि संतों का साथ होगा तो मनुष्य को सद्‌ज्ञान प्राप्त होगा जिससे मोक्ष मिलेगा। सांसारिक लोग भव-बंधन में बंधने की शिक्षा देंगे।

२३०३) पुण्यवान लोग आजीवन पुण्य ही करते रहते हैं और पापी आजीवन पाप करते हैं। पुण्यात्मा पुरुष अपने पुण्य को और नीच, कपटी मनुष्य अपने कपट को मरते दम तक नहीं छोड़ते। जटायु और मारीच मरते-मरते इसी बात की सीख दे गए हैं (जटायु ने सीता के छुड़ाने के प्रयास में परोपकारार्थ प्राण छोड़े और मारीच ने मरते समय भी राम के-से स्वर में हा लक्ष्मण कहकर सीताजी को धोखा दिया) अर्थात् जो सज्जन होते हैं वे अंत समय तक दूसरों का भला करते हैं, जैसे जटायु ने मरते दम तक भी सीताजी को रावण के चंगुल से छुड़ाने का प्रयास किया तथा बुरे लोग मारीच की तरह मरते-मरते भी दूसरों से कपट ही करते हैं।

२३०४) सुमति वाले लोग स्वार्थहित दूसरों को कष्ट नहीं देते । भ्रमर और भील दोनों ही वृक्षों के सहारे जीते हैं, किंतु भ्रमर फलों का रस ही पीते हैं। कोल-भील वृक्ष को काटकर उसका फल खाते हैं। यह सुबुद्धि और कुबुद्धि की आत है अर्थात् जैसे भौरा रस लोभी है इसलिए वह फूलों के रस का पान तो करता है परंतु फूल को हानि नहीं पहुंचाता तथा भील वृक्ष से फल भी लेते हैं फिर भी उसे काट कर दुख देते हैं। इसी प्रकार सुबुद्धि लोग दूसरों से काम भी लेते हैं तो कष्ट नहीं देते, परंतु दुर्बुद्धि लोग इसके विपरीत करते हैं।

२३०५) दूसरों का अनिष्ट करने वाले बहुत हैं, परोपकारी अत्यल्प होते हैं। अमृत तो केवल सुनने में ही आता है, परंतु विष जहां-तहां प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता के सभी कार्य विकराल हैं। कौए, उल्लू और बगुले जहां-तहां अर्थात् सर्वत्र दिखाई देते हैं, परंतु हंस तो केवल एक मानसरोवर में ही मिलते हैं। भावार्थ दूसरों की बुराई करने वाले नीच सभी जगह मिलते हैं, परंतु परहित में लगे हुए संत तो सत्संग में ही मिलते हैं।

२३०६) इस संसार में अधम व्यक्ति धन को ही महत्व देते है। उन्हें जैसे तैसे भी धन मिलना चाहिये। केवल धन प्राप्त करना ही उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह किसी भी स्तर तक जा सकते है और मान सम्मान उनके लिये

कोई महत्व नही रखता है। शरीर बेचकर धन कमानेवाली वेश्या की श्रेणी में ही ऐसे लोगों को रक्खा जाना चाहिये। मध्यम स्तर के व्यक्ति धन के साथ ही साथ मान को भी महत्व देते है; उन्हे धन तो अवश्य चाहिये, किन्तु सम्मानसहित। इस प्रकार उनके जीवन का लक्ष्य धन और मान दोनों की प्राप्ति है। इन दोनों से भिन्न उत्तम श्रेणी के पुरुष होते है, इनके जीवन का लक्ष्य केवल सम्मान प्राप्त करना ही होता है। अत: उनका आचरण भी उसी प्रकार का होता है।

२३०७) शराब और अमृत की कीमत उसके बर्तन से नहीं उसके गुण से है। शराब से भरे हुए मणिमय पात्र और अमृत से पूर्ण मिट्टी के बर्तन को देखकर जरा विवेकपूर्वक विचार कर कहो कि इन दोनों में किसका त्याग करना चाहिए और किसका ग्रहण? अर्थात् यदि कोई मनुष्य साधु के वेश में आश्रम में रहकर भी पापकर्म करता है तो उसका संग नहीं करना चाहिए। इसके विपरीत यदि कोई सज्जन किसी बुरे स्थान पर भी है, तो उसका साथ करना चाहिए। उत्तम वस्तु सामान्य स्थान में हो तो भी उसे लेना चाहिए, परंतु बुरी वस्तु उत्तम स्थान में हो तो भी उसका त्याग ही करना चाहिए।

२३०८) प्रीति की परीक्षा में उत्तम, मध्यम और नीच-इतने तीनों की स्थिति क्रमश: पत्थर, बालू और जल के समान है अर्थात् उत्तम पुरुष की प्रीति पत्थर की लीक के समान अमिट है, मध्यम मनुष्य की प्रीति बालू की रेखा के समान-दूसरी हवा न लगने तक ही है और नीच की प्रीति तो जल की लकीर के समान है। जैसे उंगली से जल में लकीर उकेरिए, साथ ही साथ वह मिटती चली जाएगी, ऐसे ही नीच की प्रीति तत्काल नष्ट हो जाती है। परंतु पारम्परिक वैर-भाव इसके विपरीत उत्तम पुरुष का जल की लकीर के समान तत्काल नष्ट होने वाला, मध्यम का बालू की रेखा के समान कुछ समय तक रहने वाला और नीच का पत्थर की लकीर के सदृश चिरस्थायी होता है। जो सच्चा प्रेम करता है, वह किसी भी हद तक त्याग करने को तैयार रहता है, इसीलिए उसका प्रेम उत्तम और स्थायी होता है। मध्यम कोटि के प्रेम में लेन-देन का भाव रहता है तथा अधम कोटि के प्रेम में स्वार्थ होने से वह अस्थायी होता है।

२३०९) सज्जन लोग पुण्य, प्रेम, परमार्थ आदि से प्रतिष्ठा पाते हैं। पुण्य, प्रेम, प्रतिष्ठा, प्राप्ति (लौकिक लाभ) और परमार्थ का पथ- इन पांचों को सज्जनगण तो ग्रहण करते हैं और दुष्ट लोग त्याग देते हैं। जो लोग पुण्य करते हैं, पवित्र प्रेम करते हैं, दूसरों की भलाई करते हैं, उन्हें निश्चित रूप से प्रतिष्ठा मिलती है, प्रशंसा मिलती है। उन्हें संसार में भी लाभ होता है और परलोक में भी प्राप्ति होती है। दुर्जनों को कहीं कुछ नहीं मिलता।

२३१०) लोगों को अपने बुरे आचरण भी अच्छे लगते हैं। जो नित्य लहसुन खाता है, उसको लहसुन की दुर्गन्ध नहीं मालूम होती। जो कभी लहसुन नहीं खाता उसे खाने से पहले ही दुर्गन्ध आ जाती है। इसी प्रकार जो अच्छे काम करता रहता है, उसे बुरे काम अच्छे नहीं लगते परंतु जो निरंतर, कुकर्मों, झूठ, कपट, वैर, जुआ, शराब, आदि में लगते रहते हैं, उन्हें अपने ये ही कर्म अच्छे लगते हैं।

२३११) संतजन उसकी सराहना करते हैं, जो सबका भला करता है। स्वयं अपने लिए सभी भले हैं (सभी अपनी भलाई करना चाहते हैं) कोई-कोई अपनों की (मित्र-बान्धवों की) भी भलाई करने वाले होते हैं। जो सबकी भलाई करने वाला (सुहृद्) है, साधुजनों के द्वारा उसी की सराहना होती है अर्थात् अपनी-अपनी भलाई अर्थात् स्वार्थसिद्धि तो सभी करते हैं, कुछ लोग अपने सगे-संबंधी और बंधु-बांधवों की भलाई करते हैं, परंतु साधु उन्हीं को सुहृद कहकर पूजते हैं जो सबका भला करते हैं।

२३१२) नीच लोगों की संगति में रहने से सज्जनों की गणना भी नीच लोगों में होने लगती है। नीच मनुष्यों की संगति का यह परिणाम होता है कि बड़े महत्व वाले पुरुष भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं। नीच स्त्री-पुरुषों के नाम होने से देवी-देवता भी लघुता से ही पुकारे जाते हैं अर्थात् यदि किसी नीच पुरुष का नाम राम रख दिया जाए या किसी नीच स्त्री का नाम सीता रख दिया जाए तो राम और सीता के नाम उन नीच पुरुष-स्त्री के कारण नीच लोगों में गिने जाते हैं। यह संगति का ही प्रभाव है।

२३१३) कुसंगति में स्थित रहने से अच्छे भी बुरे हो जाते हैं। हरि, शंकर आदि भगवान के नाम परम कल्याणकारी हैं, परंतु वही नाम कंजूस और दुष्ट पुरुषों के रख दिए जाते हैं तो लोग उन नामों को कहते-सुनते सकुचाते हैं अर्थात् जो पापियों का उद्धार करने वाले नाम हैं, यदि उन्हें बुरे लोगों की संज्ञा बना दिया जाता है तो इन परमहितकारी नामों का उच्चारण करना भी कठिन हो जाता है, उसी प्रकार कुसंग में रहने पर मनुष्य की दशा हो जाती है।

२३१४) कुसंग में रहकर सज्जनता की आशा करना व्यर्थ है अर्थात् कुसंगति में निवास करके जो सज्जनता की आशा करता है,

उसकी आशा निराशा मात्र है। मगध के पास बसने से पवित्र विष्णुपद तीर्थ का नाम भी गया (गया-बीता) पड़ गया अर्थात् जो सज्जनता प्राप्त करना चाहता है या सज्जन लोगों की श्रेणी में अपनी गणना करवाना चाहता है, उसे सज्जनों की ही संगति करनी चाहिए। दुर्जनों की संगति से तो उसका भी दुर्जनों में ही नाम होगा।

२३१५) सत्संग गंगाजल की तरह दूसरों को भी पवित्र कर देता है। गंगाजी में कैसा भी जल पड़े और सत्संगति में कैसा भी दुर्जन मनुष्य जाए, उसको ये दोनों ही अपने समान पवित्र बना देते हैं, परंतु इनकी प्राप्ति श्रीराम कृपा से ही सुलभ है। सत्संग और गंगाजल उसी को प्राप्त होते हैं जिन पर प्रभु की महती कृपा होती है। जैसे गंगाजल प्रत्येक जल को गंगाजल बना देता है, उसी प्रकार सत्संग बुरे से बुरे मनुष्य को सज्जन बना देता है।

२३१६) सत्संगति से बुरे पदार्थ भी अच्छे बन जाते हैं। ग्रह, औषधि, जल, वायु और वस्त्र-ये सभी बुरा या अच्छा संग पाकर जगत् में अच्छे या बुरे पदार्थ बन जाते हैं। इस रहस्य को अच्छे लक्षण वाले बुद्धिमान लोग ही जान पाते हैं। जैसे अच्छे ग्रह के साथ संयोग होने से बुरा ग्रह भी अच्छा बन जाता है, या बुरे ग्रह का साथ पाकर अच्छा ग्रह भी बुरा हो जाता है, औषधि भी विभिन्न रसायनों के मिश्रण से अपना प्रभाव बदलती है। जल मीठा मिलने से मीठा, नमक से नमकीन हो जाता है, इसी प्रकार बुरे की संगति बुरा बना देती है तथा भले की संगति भला।

२३१७) विचार करके सुमार्ग पर चलो, ऐसा करने से आदि, मध्य और परिणाम में भला ही भला है। जैसे बिना विचारे उल्टा जपने से जो शब्द जारा और मरा हो जाता है, वही विचारपूर्वक सीधा जपने से राजाराम हो जाता है (जो कल्याणमय है), सोच-विचारकर सुमार्ग पर पैर रखते समय भी, उस पर चलते समय भी और लक्ष्य पर पहुंचकर भी भला ही होता है। बिना विचारे अच्छा काम करने में बुराई तो नहीं है, फिर भी विचारकर चलना और भी अच्छा है।

२३१८) संतों का स्वभाव दोषों को त्यागकर गुण ग्रहण करने का होता है। विधाता ने इस जड़-चेतन विश्व को गुण-दोषमय रचा है, परंतु संतरूपी हंस दोषरूपी जल को त्यागकर गुणरूपी दूध को ग्रहण करते हैं। संसार में बुराइयां भी हैं और अच्छाइयां भी। यदि संत बनना चाहो तो हंस की तरह गुणरूपी दूध को ग्रहण कर लो और दोषरूपी जल को छोड़ दो।

२३१९) प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुकूल रस लेता है। जो-जो जिस-जिस रस में मग्न होता है, वह उसी में संतोष मानकर आनन्दित होता है। परंतु रस के गुण-दोष का विचार करना तो रसिकों की रीति की पहचान है (अर्थात् रस के गुण-दोष का विचार तो रसिकजन ही करते हैं)। सामान्यतया जिसको जिस रस में रुचि होता है, वह उसी में आनंदित रहता है, परंतु रस के गुण-दोष का विश्लेषण केवल रसज्ञ जन ही कर सकते हैं।

२३२०) यद्यपि शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में उजियाला और अंधेरा बराबर रहता है, तो भी विधाता ने उनके नाम में भेद कर दिया है। शुक्लपक्ष को चन्द्रमा का पोषक (कला को बढ़ाने वाला) जानकर उसे जगत् में यश दिया अर्थात् यशरूपी शुक्लपक्ष नाम रखा और कृष्णपक्ष को चन्द्रमा का शोषक (कलाओं को घटाने वाला) जानकर उसे अपयश दिया अर्थात् कलंकरूप कृष्णपक्ष नाम रखा।

२३२१) सज्जन की पहचान तुरंत हो जाती है, दुर्जन की कठिनाई से होती है। संतों की परख तो हमारी रुचि के बिना ही हो जाती है। उनके सरल पवित्र स्वभाव से और उनकी कृपा से हमारे बिना ही प्रयत्न उनका परिचय मिल जाता है, परंतु दुष्ट मनुष्य की परीक्षा कुछ दिन पास रखकर करनी पड़ती है। सहज ही उसके कपट को पहचानना कठिन होता है। बड़वानल समुद्र में बहुत दिन रहने के बाद समुद्र के जल को सोखता है, परंतु चन्द्रमा दर्शन देते ही समुद्र के हर्ष को बढ़ाता है अर्थात् भले लोग तो अपनी सद्वृत्ति के कारण सहज ही पहचान लिए जाते हैं, परंतु दुर्जन लोग कपट वेशधारी होते हैं। वे ऊपर से सज्जनता की बोली, व्यवहार, शिष्टाचरण करते हैं तथा मन में मैल रखते हैं, जो कुछ दिन साथ रहकर ही पकड़ में आते हैं।

२३२२) सज्जन लोग सभी पर अपनी कृपा बरसाते हैं। नीच मनुष्य रसहीन (सूखे) वृक्षों को तो खेत से उखाड़ फेंकते हैं और रस वाले ऊख को सींचते हैं परंतु बादल (जल बरसाकर) विष और अमृत दोनों प्रकार के वृक्षों का समान रूप से पोषण करता है अर्थात् जो निम्न कोटि के लोग होते हैं, वे अपने काम में न आने वालों का अहित करते हैं तथा जो उनके काम आते हैं, केवल उन्हीं को प्रेम करते हैं, परंतु सज्जन बादलों की तरह सभी को समान रूप से प्रेम करते हैं।

२३२३) कुछ लोग ऐसे अभागे होते हैं, जो सज्जनों की सज्जनता का लाभ नहीं उठाते। बादल तो बरसकर समस्त विश्व को प्रसन्न करता है और सबके ताप (गरमी) दुख और प्यास का हरण करता है। यदी उसके जल से जवासा जल जाए तो इसमें बादल का कोई दोष नहीं है। बादल के जल से सभी पेड़ हरे-भरे हो जाते हैं, परंतु जवासे का पौधा उस जल से जल जाता है। इसी प्रकार दुष्ट लोग सज्जनों की सज्जनता से भी ईर्ष्या करते हैं।

२३२४) जो दूसरों की बुराई करके प्रतिष्ठा पाना चाहते हैं, वे मूर्ख हैं। जो दूसरे की कीर्ति को मिटाकर अपनी कीर्ति चाहते हैं, उनके मुख पर ऐसी कालिख लगेगी, जो चाहे वे उसे धो-धोकर मर जाएं, कभी नहीं छूटेगी, क्योंकि सत्य कभी छिपता नहीं है। जिस दिन उनकी वास्तविकता का लोगों को पता चलता है, उस दिन वे उसके नाम पर थूकते हैं। लोग समझ जाते हैं कि स्वयं में गुण न होते हुए भी वह व्यक्ति दूसरों का अनिष्ट करके प्रसिद्ध हुआ है।

२३२५) कमजोर प्राणी के जीवन को सभी जगह खतरा रहता है। बेचारे पक्षी, हिरन और मछली किसके साथ मिल-जुलकर अपना जीवन बितावें ? एक ही स्थान तथा एक ही वन में रहने वाले मृगों को सिंह और एक ही जल में रहने वाली छोटी मछलियों को बड़ी मछलियां या ग्राह आदि तो इन्हें कच्चे ही निगल जाते हैं और पुरजन (गांवों तथा नगरों के निवासी) पाक विद्या में निपुण होने के कारण इन्हें (पक्षियों तथा मछलियों को) पकाकर खा जाते हैं। (तात्पर्य यह कि दुर्बलों के लिए कहीं कोई जगह नहीं) जैसे हिरन आदि पशु को वन में सिंह का, छोटी मछलियों को जल में बड़े मगरमच्छों का तथा पक्षियों को मांसभक्षी लोगों का डर बना रहता है।

२३२६) बुद्धिमान लोग कपटी लोगों से सदा दूर ही रहते हैं। जिनका हंसना, मिलना और बोलना बड़ा ही मधुर है, परंतु जिनके मन में कडुवे कारनामे (कपटभरे कर्म) भरे हुए हैं। उन नीचों की छाया को छूने में भी जो सकुचाता है, वही बुद्धिमान है। लोगों के बाह्याचरण तथा वास्तविक चरित्र में अंतर होने पर उनसे दूर रहना चाहिए। जो लोग ऊपर से प्यार और माधुर्य का व्यवहार हृदय में कपट रखकर करते हैं, बुद्धिमान लोग उनकी छाया से भी दूर रहते हैं।

२३२७) दुष्ट लोग मन में दुष्टता रखते हुए मीठी वाणी बोलते हैं। जो कपटरूपी लोहे की हजारों सुइयों को वचनरूपी ऊपर के कपड़े (बेठन) में चतुराई से बांधकर छिपाना चाहता है, वे दुष्ट हैं। जैसे कोई हजारों सुइयों को अच्छी तरह कपड़े में लपेटकर अपने कपड़ों में छुपा ले, उसी प्रकार दुर्जन मुख से मीठी-मीठी बातें बनाकर, चापलूसी करके, मुख पर प्रशंसा करके मन के भेदभाव को चालाकी से छुपाते हैं।

२३२८) जिसके वचनों में, विचार में, आचरण में, मन में और कर्मों में छल की छूत लगी हुई है (अर्थात् जो सब प्रकार से कपटी है), वह अन्तर्यामी परमात्मा को ठगकर कैसे सुख पा सकता है ? जो मनुष्य मन में छल रखता है या वाणी से असत्य बोलता है अथवा विचार गलत रखता है तथा व्यवहार भी कपटपूर्ण करता है, वह रोम-रोम को जानने वाले ईश्वर से छल करता है, इसलिए दुखी रहता है।

२३२९) स्थान, समय, कर्ता, कर्म और वचन का विचार करके ही कर्म करना चाहिए। जिनमें देश, काल, कर्ता, कर्म और वचन का विचार नहीं है, वे कल्पवृक्ष के नीचे रहने पर भी दरिद्री और देवनदी श्री गंगाजी के तीर पर बसकर भी पापी बने रहते हैं अर्थात् जो इस बात का विचार नहीं करते कि किस स्थान में किसको कैसा कर्म करना चाहिए और कैसे वचन बोलने चाहिए, वे सदा दरिद्री और पापी ही बने रहते हैं। धन और यश प्राप्ति की चाह रखने वालों को किस स्थान पर, किस समय, क्या बोलना है, क्या करना है, यह सोचकर ही कर्म करना चाहिए।

२३३०) मनुष्य को समय रहते ही विपत्ति से रक्षा का उपाय कर लेना चाहिए। लोगों की यह रीति है कि व आंखों के फूटने का कष्ट तो सह लेते हैं, परंतु अंजन (सुरमा) लगाने का कष्ट नहीं सहते। जो अंजन लगाने का कष्ट सह लेता है, वह अंधा नहीं होता अर्थात् सद्कार्य, सद्व्यवहार, सदाचरण करते समय त्याग का कष्ट जो व्यक्ति भोग लेते हैं उन्हें परिणाम में आनंद ही आनंद मिलता है, उनका अनिष्ट नहीं होता।

२३३१) जिनका हृदय न तो युवतियों के कटाक्षों से घायल हुआ और न जिन्होंने विषयों में कठिन आसक्ति ही की, उनके शरीर को जगत् में अपनी रक्षा के लिए कवच बना लेना चाहिए (अर्थात् ऐसे महापुरुषों के चरणों में रहने वाले मनुष्य भी विषयों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं)। अर्थात् विषय-वासनाओं, कामादि से दूर रहने वाले महापुरुषों का संग करने से अपने शरीर, अपने मन, अपनी बुद्धि अपने जीवन की रक्षा होती है।

२३३२) अभिमान के बोल बोलने से अपमानित होना पड़ सकता है। एक समय (श्री रामचन्द्रजी कृत रामेश्वर के पत्थर के) सेतुबंध को देखकर अर्जुन ने अभिमान के वचन कहे कि श्रीरामजी ने इतना प्रयास क्यों किया ? मैं उस समय होता तो सारा पुल बाणों से ही बांध देता। इस अभिमान का फल यह हुआ कि भगवान श्रीकृष्ण के परिवार की स्त्रियों को (हस्तिनापुर ले जाते समय) नीच भीलों ने अर्जुन को लूट लिया, अर्जुन उनको जीत नहीं सके और इस अपमान से उनका मरण हो गया। (अतएव अभिमान के वचन किसी से नहीं कहने चाहिए) अर्थात् घमंड की बात कहने से मनुष्य को पछताना पड़ सकता है। जिस बात पर मनुष्य अभिमान करता है वह शक्ति (धन की, रूप की, बल की, ज्ञान की) समाप्त होने पर अपमान ही तो होगा।

२३३३) अनुकूल समय आने पर काम बना लेना ही लाभ है और समय पर चूक जाना ही हानि है। इसीलिए बुद्धिमान लोग इस बात का सदा विचार किया करते हैं, क्योंकि अच्छा और बुरा समय दो ही दिन का होता है। (अतएव समय पर चूक जाना बुद्धिमानी नहीं है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य-जीवन का यह अवसर भगवद्भजन के लिए ही मिला है इस समय जो चूक जाएगा-भगवान को नहीं भजेगा, उसे मनुष्य-जीवन के परमलाभ से वंचित होकर हानि सहनी पड़ेगी।) अत: समय पर ही सारे कार्य सम्पन्न कर लेने चाहिए। चूकने पर परिणाम विपरीत होता है।

२३३४) साधु, संत, देवता व सज्जन केवल मान के भूखे होते हैं। सूर्य स्वयं (पृथ्वी पर अपार) जल बरसाता और सोखता है, परंतु लोगों के दिए हुए अर्घ्य (थोड़े से जल) से बड़ा प्रसन्न होता है। साधु और देवता सब स्नेह और सम्मान ही चाहते हैं। सूर्य को जल की कुछ कमी नहीं होती, वह चाहे तो समुद्र का सारा जल सोखकर भाप बनाकर बादलों से धरा को सराबोर कर दे। परंतु उसे हर्ष होता है भक्तों की श्रद्धा के थोड़े से जल से। इसी प्रकार साधु व देवता सर्व समर्थ होते हुए भी श्रद्धालुओं से मान पाना चाहते हैं।

२३३५) शत्रुता और प्रेम चार आंखों (दो अन्तर्दृष्टि और दो बाह्यदृष्टि) के रहते भी दिखाई नहीं देता। इन्हें समझ पाने में आदमी अंधे जैसा व्यवहार ही करता है। प्रेम और शत्रुता अंधी होती है। शत्रु अपने शत्रु के गुणों को नहीं, अवगुणों को ही देखता है। यही दशा प्रेमी की होती है। वह दोषों को नहीं, गुणों को ही देखता है। उचित-अनुचित का उन्हें ज्ञान नहीं होता। जैसे सेवड़ा (वाममार्गी साधक) शराब को त्याज्य जानने पर भी आदर करता है और पवित्र गंगाजल की निंदा करता है। वाममार्गी साधक शराब का सेवन करते हैं।

२३३६) बाहरी ग्रन्थि-बंधन की अपेक्षा विश्वास बड़ा है। योग से क्षेत्र बड़ा है। स्वामी की अपेक्षा श्रेष्ठ सेवक बड़ा है और नियमों से प्रेम बड़ा है। अर्थात् विवाह में पति-पत्नी की परस्पर गांठ बांधी जाती है, जो आजीवन संबंध की प्रतीक होती है परंतु फिर भी बहुत से दम्पति सच्चे अर्थों में परस्पर बंधे नहीं होते, जबकि बहुत से लोग केवल मुख, वचन और आश्वासनों से ही बंध जाते हैं। योग साधना से परहित श्रेष्ठ है। स्वामी से भी अधिक अच्छा कई बार सेवक सिद्ध होता है तथा नीति के नियमों से बड़ा स्नेह होता है।

२३३७) जो स्वार्थ को छोड़कर प्रभु से प्रेम करता है वही ज्ञानी है। जो मनुष्य स्वार्थ के तो (सम्मुख) शरण हो रहा है और परमार्थ की ओर जिसने पीठ कर रखी है (अर्थात् भगवान से विमुख होकर जो केवल विषयों में रत है) वह अंधा कहने पर तो मन में दुख पाएगा, परंतु किस आंख को लेकर उसे आंख वाला कहा जाए (अर्थात् आंख हुए बिना उसे आंख वाला कहें भी कैसे ? हृदय में विवेकरूपी असली आंख होती तो वह भगवान के सम्मुख होने में ही अपना कल्याण देखता और भयंकर विषयों का मोह छोड़ देता) अर्थात् जो सौभाग्यशाली लोग होते हैं वे अपना विवेक जाग्रत रखते हैं और जिनका विवेक जाग्रत होता है वे स्वार्थ के वशीभूत होकर परमार्थ तथा ईश्वर से मुख नहीं मोड़ते अर्थात् परमार्थ और प्रभु को स्वयं कष्ट सहकर भी प्रेम करते हैं।

२३३८) आत्ममुग्ध लोग किसी के सदुपदेश का लाभ नहीं उठाते। अपनी ही समझ (बुद्धि) पर जिनकी प्रीति है और अपनी ही समझ को सबसे उत्तम मानते हैं तथा जिनका रोष नासमझी को लिए हुए होता है, वे मोह के महान समुद्र में मछली बने हुए रहते हैं। वे किसी का उपदेश नहीं मानते। अर्थात् जो लोग मोहरूपी महासागर में रहनेवाली मछली बनकर अपने आपको महान बुद्धिमान समझते रहते हैं, वे अन्य लोगों को नासमझ सोचकर किसी की सीख नहीं मानते।

२३३९) सोच-समझकर व्यवहार करना ही बुद्धिमानी होती है। काल (समय) ईश्वर का रुख देता है (ईश्वर की इच्छानुसार बदलता रहता है); सूर्य काल का अनुगमन करता है (यथासमय कार्य करता है), राजा सूर्य का अनुसरण करता है (सूर्य के यथायोग्य समय पर जल खींचने और बसाने की भांति राजा प्रजा से कर रूप में धन लेकर उसी के हित में लगा देता है), प्रजा राजा का अनुसरण करती है

(जैसा राजा वैसी प्रजा) और बुद्धिमान पुरुष सब व्यवहार विचारकर करते हैं (वे अपनी बुद्धि का ही अनुसरण करते हैं)। अर्थात् बुद्धिमान को किसी अन्य के अधीन रहकर काम नहीं करना पड़ता बल्कि वह स्वयं अपनी सुबुद्धि से ही सोच-विचारकर प्रत्येक व्यवहार करता है। जो बात उसकी बुद्धि को गलत लगती है, उसे नहीं करता और जिसे ठीक समझता है, उसे करता है।

२३४०) उत्तम वह है जो वृक्षों के पके फल लेता है। मध्यम वह है जो (पकने तक की बाट न देखकर) अधपके फल ही तोड़कर घर में पकाता है और नीच वह है जो अधीर होकर पत्तों को ही नोच डालता है। इसी प्रकार उत्तम राजा को भी मन में विचारकर तभी कर वसूल करना चाहिए, जब फसल पक जाए, जिससे कि किसान आसानी से दे सके, जो बिना ही फसल पके कर उगाहता है, वह मध्यम है और अकाल पड़ने पर भी पीड़ा पहुंचाकर किसान से कर उगाहने वाला स्वार्थी राजा नीच है। अर्थात् प्रजा की सुविधा-असुविधा का विचार करके जो राजा कर वसूल करता है उससे प्रजा प्रसन्न रहती है और उसी का राज्य उत्तम माना जाता है। जब प्रजा के पास धन होगा उस समय प्रसन्नतापर्वूक कर दे सकती है, इसलिए कर वसूली में धैर्य से काम लेना ही चतुराई है।

२३४१) गुरु, मित्र, अच्छे मालिक और साधुजन प्रसन्न होकर या (न मानने पर हमारे हित के लिए) क्रुद्ध होकर यही उपदेश देते हैं कि पका फल ही पेड़ से तोड़कर खाना अच्छा है। पेड़ को काट डालना अपराध है (राजा को कर उगाहने के समय यह उपदेश ध्यान में रखना चाहिए)। अर्थात् सद्गुरु, सच्चा मित्र, अच्छा स्वामी तथा साधु मनुष्य को प्रसन्न होकर या प्रतिकूल आचरण करने पर नाराज होकर यही शिक्षा देते हैं कि स्वार्थपूर्ति हेतु अन्य लोगों को सताना अच्छी बात नहीं होती।

२३४२) राजा को प्रजा के हित तथा धर्मयुक्त चरित्र का आचरण करना चाहिए। पृथ्वी रूपी गौर जब राजा के प्रजावत्सलता तथा धर्मयुक्त उत्तम चरित्ररूपी चारे को चरकर दुग्धवती होती है और जब प्रजारूपी सुंदर बछड़े के द्वारा चोखे जाने पर पेन्हाती है (तभी उत्तम और अधिक दूध मिलता है)। सिर्फ पैर बांधकर दुहने से कुछ भी दूर हाथ नहीं लगता। अर्थात् जैसे बलात् गाय से दूध दुहने पर पूरा दूध नहीं मिलता, इसी तरह राजा यदि अन्याय, अधर्म, दुष्टतापूर्ण व्यवहार से जनता से कर लेता है तो प्रजा में खुशहाली नहीं रहती। इसके विपरीत सदाचारी प्रजावत्सल राजा का राज्य सुखी और खुशहाल होता है।

२३४३) मनुष्य को भौतिक संसाधनों की उपलब्धि पर इतना गर्व नहीं करना चाहिए। ऊंचे महलों में रहने का क्या अभिमान करते हो, यह तो नश्वर है। कल जब मृत्यु हो जाएगी तो जमीन में ही लेटना पड़ेगा और तुम्हारी कब्र पर घास जम जाएगी

२३४४) अधिक बोलने से बने-बनाए काम बिगड़ जाते हैं। अधिक चुप रहने से भी हानि संभव है। अति किसी भी चीज की अच्छी नहीं होती। न तो अधिक बोलना अच्छा होता है और न आवश्यकता से अधिक चुप रहना ही ठीक है। जैसे न अधिक वर्षा ही अच्छी होती है और न अधिक धूप ही भली लगती है। कई बार मनुष्य के मुख से अधिक बोलने में अवांछित बात निकल जाती है। कई बार अधिक चुप रहने से भी काम बनते-बनते बिगड़ जाता है।

२३४५) मनुष्य को दूसरों के साथ प्रतिशोध की भावना नहीं रखनी चाहिए। जो तुम्हारे लिए कांटे बोता है, तुम उनके लिए भी फल उगाओ अर्थात् जो तुम्हारा बुरा करते हैं, तुम उनका भला करो। परिणाम यह होगा कि बुरा करने वाले को अपना दुष्कर्म स्वयं ही कांटे की तरह चुभता रहेगा तथा तुम अपने सत्कर्म के कारण आनंद में ही रहोगे। जो दूसरों का बुरा करते हैं, उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारती रहती है। जो दूसरों का भला करते हैं, वे सदा आनंद में रहते हैं।

२३४६) मनुष्य को यथाशीघ्र सत्कर्म कर लेने चाहिए। हे मनुष्य तू दस संसार में दस दिन अपनी नौबत बजा ले अर्थात् मौज मना ले, फिर मृत्यु के बाद यह संसार, यह नगर, ये गलियां तुझे देखने को भी नहीं मिलेंगी अर्थात् मृत्यु के बाद पुन: मानव देह मिलनी कठिन है, इसलिए जो कुछ करना है, जल्दी कर लो।

२३४७) संसार नश्वर है, अत: मिथ्याभिमान नहीं करना चाहिए। इस दुनिया में आकर तू ऐंठ (अभिमान) छोड़ दे। तुझे जो कुछ लेना है (पुण्य कर्म) उसे जल्दी से ले ले, नहीं तो जीवनरूपी यह पैंठ उठ जाएगी अर्थात् किसी भी क्षण काल तेरे जीवन को ले जाएगा। फिर तू सत्कर्म कब करेगा। अभी हाट में हो; जो चाहो सो खरीद लो, जो चाहो सो बेच लो। आगे न कोई हाट है और न वह वस्तु। रास्ता बहुत लम्बा है। दूर जाना है। यहां लौटकर आ भी नहीं सकता। जन्म-जन्मान्तर की यात्रा पर निकलते ही बड़े सौभाग्य से यहां पहुंचे हो। जो भी अच्छा कर सको, जल्दी कर डालो।

२३४८) ईश्वर की कृपा के सहारे जीने वाले को किसी का डर नहीं होता। जो मनुष्य ईश्वर को प्रेम करता है, उस पर ईश्वर की कृपा होती है। उसे संसार के लोगों की निंदा-स्तुति की परवाह नहीं करनी चाहिए। तेरे सिर पर सृष्टि को बनाने वाला है। इसी तरह ईश्वर प्रेमी जीव का सांसारिक लोग कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

२३४९) ईश्वर प्रेमी को एकनिष्ठता से उसी परमात्मा पर भरोसा रखना चाहिए। परमात्मा मनुष्य से कहता है कि यदि तू मुझे चाहता है तो और किसी से आशा मत कर। मेरे जैसा ही हो जा (सद्गुण सम्पन्न) तो सारे सुख तुझे मिल जाएंगे।

२३५०) मनुष्य को जीवन का कोई पल भी व्यर्थ नहीं करना चाहिए। तू सोता क्यों रहता है, जागकर ईश्वर के नाम को जप। एक दिन तो तुझे लंबे पैर पसारकर सोना ही है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाना है। अत: यथाशीघ्र ही तुझे ईश्वर भक्ति में लग जाना चाहिए।

२३५१) मानव को अपने अमूल्य जीवन को यथाशीघ्र गुरु को सौंप देना चाहिए। हे मनुष्य। तू सो मत, जागकर अपने गुरु को समर्पण कर दे, क्योंकि तेरे जीवन की हर सांस, हर घड़ी हीरे और लाल की तरह कीमती है। इसलिए गिन-गिनकर इन्हें तू गुरु को सौंप दें, जिससे वे तुझे ईश प्राप्ति के मार्ग पर लगा दें।

२३५२) संसार की कोई वस्तु यहां तक कि शरीर भी अमर नहीं है। मृत्यु के उपरांत हड्डियां लकड़ी की तरह तथा केश घास की तरह जलते हैं। जब हमारे शरीर का कोई भी अंग स्थायी रहने वाला नहीं है, तो हम व्यर्थ इन पर क्यों अभिमान करते हैं।

२३५३) संसार के सारे आनंद क्षणभंगुर होते हैं। संसार के झूठे सुख को मनुष्य सुख कहता है और मन ही मन प्रसन्न होता है। यह संसार काल का भोजन है। कुछ लोग काल के मुख में हैं और कुछ उसकी गोद में हैं अर्थात् कुछ मर गए हैं, कुछ मर रहे हैं और कुछ भविष्य में मर जाएंगे।

२३५४) संसार में कभी किसी के दिन एक से नहीं रहते। कुम्हार से मिट्टी कहती है कि आज तू मुझे क्या रौंद रहा है। एक दिन ऐसा आएगा (मृत्यु होने पर) जब मैं तुझे रौंदूंगी अर्थात् कभी किसी दुर्बल का शोषण नहीं करना चाहिए। जब उसके अच्छे दिन आएंगे तब तुम्हारा क्या होगा ?

२३५५) यह शरीर क्षण-क्षण क्षीण होता जाता है। मृत्यु आने पर यह शरीर चला जाएगा, तू इसे रख सके तो रख ले। संसार में जिनके पास लाखों-करोड़ों की संपत्ति थी, वे भी खाली हाथ ही संसार से चले गए अर्थात् इस शरीर से जो पुण्य कार्य हो सकें वो कर ले अन्यथा मृत्यु के उपरांत कुछ नहीं कर पाएगा।

२३५६) गुरु के संरक्षण में एकनिष्ठता से रहने वाला कभी नष्ट नहीं होता। जो जीव इधर-उधर भटकता रहता है वह चक्की में पिसने वाले दानों की तरह होता है, परंतु जो गुरुरुपी कीली के साथ एकनिष्ठता से चिपक जाता है, उसको कोई बाधा नहीं होती। जैसे बच्चा मां की गोद में निश्चिंत होकर सोता है, ऐसे ही मनुष्य को गुरु पर विश्वास रखना चाहिए।

२३५७) आत्मा परमात्मा के विरह में व्याकुल रहती है। विरहिणी आत्मा कहती है कि मांस सूख गया अस्थिपंजर रह गया है, जिसे कौए ताकने लगते हैं। फिर भी हमारा प्रिय परमात्मा आज भी नहीं आया है। यह हमारा दुर्भाग्य है। हम कितने अभागे हैं। शायद बिना उनसे मिले ही चिरवियोग हो जाएगा।

२३५८) साधु जिससे प्रसन्न हो जाते हैं, उस पर अपनी अपार कृपा करते हैं। ऐसे संत की संगति करो, जिनका पूरा मन है। वे तुम्हें बिना तोलमोल के अमूल्य नाम जैसा धन दे देंगे। संसार के लोग तो तुमसे प्रेम करने में भी अपने स्वार्थ का हिसाब लगाएंगे, परंतु साधु ऐसा नहीं करते।

२३५९) साधु की संगति ऐसी होती है, जो दूसरों की व्याधि (रोग) को हर लेती है तथा असज्जन की संगति से व्याधि और बढ़ जाती है अर्थात् विकार बढ़ जाते हैं। साधु की संगति ऐसी होती है जैसे गंधी (इत्र बेचने वाला) का निवास होता है। यदि गंधी किसी को कुछ भी न दे तो भी उसके निवास स्थान से सुगंधि आती रहती है। यदि इत्र बेचने वाले के घर के पास से भी गुजरते हैं तो सुगंध से मन खुश हो जाता है। ऐसे ही साधु के संग से मन प्रफुल्लित होता है।

२३६०) साधु को व्यर्थ की सांसारिक बातें न करके तत्व का ही ज्ञान कराना चाहिए। साधु सूप (छाज) की तरह होना चाहिए, जो सार-सार को ग्रहण कर लेता है तथा व्यर्थ के तिनकों को उड़ा देता है अर्थात् जैसे छाज से अनाज फटकने पर उसमें केवल अनाज रह

जाता है। उसी तरह साधु को मात्र ज्ञान की बात करनी चाहिए। यह जगत अन्न-राशि है और तुम्हारा शरीर सूप है। अन्न में विजातीय तत्त्व भी हैं और कुछ निस्तत्त्व भी। तुम्हें अन्न को पछोरकर साफ कर लेना चाहिए। जो हल्के-निस्सार हैं, उनको उड़ जाने दो और जो जीवन से भरे हैं, उनको बटोर लो।

२३६१) साधु को गुणग्राही तथा परमात्मा का प्रेमी होना चाहिए। साधु को अवगुण छोड़कर गुणों को चुन लेना चाहिए। उसकी संगत से प्रत्येक प्राणी मधु की तरह सुवासित हो जाए और परमात्मतत्व को पहचानने लगे। जो सच्चा साधु होता है उसी की संगति से मनुष्य का मन प्रसन्न हो जाता है।

२३६२) साधु को कभी कटुभाषी नहीं होना चाहिए, क्योंकि उससे हिंसा होती है। वह व्यक्ति भी साधु हुआ तो क्या हुआ, जो सोच-विचार कर नहीं बोलता। वो अपनी बोली से दूसरों की आत्मा का हनन करता है। उसकी जीभ तलवार की तरह तेज वार करती है अर्थात् जो कडुवा बोलकर दूसरों के हृदय पर आघात करता है, वह साधु होकर भी साधु नहीं है।

२६६३) ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम जिज्ञासा होनी चाहिए। जो मनुष्य कुछ पाना चाहता है, उसे गहरे पानी में नीचे गोता लगाकर ही हीरे-मोती लाना होता है। परंतु जो डूबने के डर से किनारे पर बैठ जाता है, उसे कुछ भी हाथ नहीं लगता। जो साधना पथ की कठिनाइयों की कल्पना से उस रास्ते पर चलते ही नहीं, उन्हें ईश्वर कैसे मिल सकता है ?

२३६४) मन की भूमि को साधु की संगति से पहले भावुकता की नमी देनी चाए। जिस प्रकार प्राणी का हृदय कठोर हो गया है, उसे सत्संगति से भी कोई लाभ नहीं होता। वह तो कितने ही गहरे पानी में प्रवेश करके भी सूखा रह जाता है अर्थात् बिना भावना वाले हृदय पर संत अपनी बातों से भी क्या असर करेंगे ?

२३६५) संसार के प्राणी व्यर्थ ही मन को छोड़कर इधर-उधर प्रभु को खोज रहे हैं। जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में होती है पर जिसका उसे ज्ञान नहीं होता, वह उस सुगंध से पागल सा होकर उस सुगंध को जंगल-जंगल ढूंढता फिरता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के अंदर परमात्मा का निवास होते हुए भी मनुष्य उन्हें स्थान-स्थान पर ढूंढता फिरता है। यदि सचमुच प्रभु को पाना है तो एकांत में बैठकर हृदय में ध्यान लगाओ।

२३६६) प्रभु रहते सभी के मन में हैं, परंतु प्रकट आत्मज्ञानी के मन में ही होते हैं। सभी के हृदय में मेरे प्रभु का निवास है। ऐसा कोई हृदय नहीं है, जहां वह न रहता हो। मैं उस हृदय पर बलिहारी जाता हूं, जिस हृदय में वो प्रकट हो जाते हैं अर्थात् जो मनुष्य आत्मचिंतन, ध्यान, धारणा, समाधि, तप आदि से प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है, वह वंदनीय है।

२३६७) भय से प्रेम उत्पन्न होता है और भय के निकलते ही भय की भावना समाप्त हो जाती है। डर के बिना मन में भाव नहीं उत्पन्न होता तथा भय के बिना प्रेम भी नहीं होता। जब हृदय से भय निकल जाता है तो रस की रीति ही समाप्त हो जाती है अर्थात् नीरसता आ जाती है। भय से हृदय में प्रिय के प्रति आकर्षण रहता है नहीं तो भाव ही समाप्त हो जाता है। भय होने पर ही हम परमात्मा को याद करते हैं, उससे पहले नहीं।

२३६८) डरते रहने से मनुष्य बुरे कामों से बचा रहता है। डर के कारण ही कर्म किया जाता है, डर ही परमगुरु है। डर वो पारस पत्थर है, जिससे छूकर लोहा सोना बन जाता है। डर ही सारे ज्ञान-भक्ति का सारतत्व है, जो ईश्वर से डरते रहते हैं, वे ही संसार सागर से पार हो जाते हैं। जो ईश्वर की परवाह नहीं करते, उन्हें अंत में यम की मार खानी पड़ती है (डरने वाले व्यक्ति को बुरे काम न करने के कारण अंत में कष्ट नहीं होता)।

२३६९) मनुष्य को काम करते समय उसके परिणाम को सोच लेना चाहिए। मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसे फल भोगना पड़ता है। जब तू काम कर रहा था तब तूने क्यों नहीं सोचा। अब कर्म करके पछताने से क्या लाभ ? जिसने बबूल का पेड़ बोया है, उसे आम के फल खाने को कैसे मिलेंगे ? जो लोग काम करने के बाद उसके परिणाम को सोचते हैं, उन्हें पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। बुरे कर्मों का बुरा फल ही प्राप्त होता है।

२३७०) दान मनुष्य की धन-सम्पत्ति को बढ़ाता है, घटाता नहीं। जैसे नदी सबको जल देती रहती है फिर भी उसका पानी कम नहीं होता, उसी प्रकार दान करने से धन नहीं घटता। यदि इसमें किसी को संदेह हो तो वह ऐसा अपनी आंखों से देख सकता है। नदी से

चाहे जितना जल निकाल लो, वह कभी समाप्त नहीं होता। इसी तरह दानी का धन दान से कम नहीं होता।

२३७१) प्रेम करने वाले से ही प्रेम करना चाहिए, कपटी से नहीं। जो तुमसे प्रेम से और हित से मिलता है, उससे दौड़कर मिलना चाहिए तथा जो मन में भेदभाव रखकर मिलता है, उससे मिलना श्रेयस्कर नहीं है। मन के कुटिल और मुख के मधुर वचन बोलने वाले व्यक्ति से मिलकर कभी भी मन को दुख हो सकता है।

२३७२) जो कुछ तुम्हारे पास है उसी में प्रसन्न रहो। दूसरों की वस्तुओं पर मन मत ललचाओ। ईश्वर ने जो तुम्हें दिया है उसी में संतोष रखना चाहिए। यदि प्रभु ने तुम्हें रूखी-सूखी रोटी दी है तो उसी को आनंदपूर्वक खाकर ठंडा पानी पी लो। दूसरों की घी से चुपड़ी हुई रोटी देखकर अपना मन मत ललचाओ, क्योंकि तुम्हें जब दूसरों जैसी घी की रोटी नहीं मिलेगी तो तुम्हें दुखी होना पड़ेगा।

२३७३) अभिमान नाश की जड़ है तथा संसार क्षणभंगुर है। मनुष्य को इस नश्वर जीवन पर अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि काल ने मनुष्य के केश पकड़ रखे हैं, वह उसे घर या बाहर किसी भी समय समाप्त कर सकता है। जो लोग इस झूठे शरीर पर घमंड करते हैं, वे मूर्ख हैं।

२३७४) प्रभु के भक्त को भक्ति से पूर्व काम, क्रोध और लोभ को जीतना चाहिए। जो मनुष्य कामी, क्रोधी और लालची होते हैं, वे भक्ति नहीं कर सकते, भक्ति तो कोई शूरवीर ही कर सकता है, ऐसा शूरवीर, जाति, वर्ण और कुल आदि की परवाह किए बिना प्रभु से प्रेम करता है। जिनका मन स्त्री में और धन में लगा रहता है, उन्हें इनके न मिलने पर क्रोध ही आता है।

२३७५) कामी तो सदैव स्त्री का ही ध्यान करता रहता है। कामी व्यक्ति कभी गुरु के पास सच्चा प्रेम लेकर नहीं जाता। इसलिए उसके मन से संशय का कांटा नहीं निकलता। ईश्वर स्वयं कहता है कि अन्य सब गुनाह तो मैं माफ कर देता हूं, परंतु कामी को मैं नहीं बख्शता। ऐसे व्यक्ति की न डाल है न मूल। कामना के पाश में बंधा मनुष्य गुरु को प्रेम कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसका चौबीसों घंटे काम में ही मन लगा रहता है।

२३७६) काम और राम एक साथ नहीं मिल सकते। जहां काम है, वहां राम नहीं और जहां राम हैं, वहां काम नहीं होता। जैसे सूर्य और रात एक समय में एक साथ नहीं रहते उसी प्रकार जिन्हें राम चाहिए उन्हें काम छोड़ना पड़ेगा और जिन्हें काम प्रिय है, उन्हें राम की चाह छोड़नी पड़ेगी।

२३७७) मूर्ख और पंडित में अंतर काम, क्रोध, लोभ और अहंकार का होता है। जब तक काम, क्रोध और लालच मनुष्य के मन में हैं, तब तक मूर्ख और पंडित दोनों एक समान ही हैं अर्थात् पंडित भी मूर्ख के समान ही माना जाएगा। अंतर है तो यही कि मूर्ख में उपरोक्त विकार होते हैं, जबकि पंडित में ये नहीं होते।

२३७८) क्रोध की भयंकर आग से केवल साधुओं की संगति ही रक्षा कर सकती है। दसों दिशाओं से क्रोध की भीषध आग उठ रही है। अर्थात् दुष्प्रवृत्तियों की अग्नि भीषण दिशाग्नि की भांति जल रही है। उस आग से बचने के लिए भाग कर साधु की शीतल संगति में पहुंचना चाहिए, क्योंकि साधु स्वयं ही शीतल होते हैं, इसलिए उनकी शरण में पहुंचने वाले को ही सद्कर्मों की ठंडक मिलती है।

२३७९) कुछ लोग भक्ति, दान तथा गुरु के प्रति निष्ठा का ढोंग करते हैं। ऐसे लोग भी संसार में हैं, जो भक्त कहलाते हैं, जबकि एक चुटकी भर आटा भी किसी को दान नहीं करते। ऐसे लोग गुरु से नाम लेकर भी सीख पत्नी की मानते हैं अर्थात् वे लोग लोभी और कामी होने पर भी भक्ति और शिष्यत्व का नाटक करते रहते हैं।

२३८०) मोह से मनुष्य के ज्ञानचक्षु बंद हो जाते हैं तथा निर्मोही के खुल जाते हैं। जब हृदय में मोह का समावेश हो जाता है तो चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा छा जाता है। जो साधु मोह छोड़कर ज्ञान से विचार करता है, वही इस संसार सागर से पार उतरता है अर्थात् जिसे संसार से पार उतरना है, उसे मोह छोड़कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

२३८१) लोभ, काम आदि सबसे बड़ा विकार अहंकार और ईर्ष्या है। सोने का लोभ छोड़ना आसान है, स्त्री का प्रेम छोड़ना भी आसान है, परंतु सम्मान, प्रशंसा और ईर्ष्या को छोड़ना अत्यंत कठिन कार्य है। बड़े-बड़े साधु, जो घर, धन, पत्नी आदि को छोड़ देते हैं, उन्हें भी अपनी तारीफ सुनना अच्छा लगता है और दूसरों से ईर्ष्या करते हैं।

२३८२) अहंकार से विपत्ति आती है और संदेह से दुख होता है। जहां मनुष्य के अंदर अहंकार है वहीं विपत्ति है, जहां संशय है वहीं शोक है। अहंकार, आपत्ति, संशय और शोक ये चारों भयंकर रोग हैं, इनसे कैसे छुटकारा मिल सकता है ? अहंकार को छोड़ने से

आपत्ति नहीं आएगी, पर संशय को छोड़कर शोक जरूर मिट सकता है।

२३८३) ओछे लोग थोड़ा सा धन, मान, पद पाकर बहुत घमंड करने लगते हैं। जो स्वयं महान होता है वह अपनी महानता को नहीं छोड़ता, परंतु जो छोटा (ओछा) होता है वो फिर भी इतराने लगता है अर्थात् छोटा होने पर भी घमंड करता है जैसे शतरंज के खेल में यदि प्यादा फरजी बन जाता है तो वह टेढ़ी चाल चलने लगता है। महान लोग जितने अधिक बड़े होते जाते हैं उतने ही विनम्र होते जाते हैं तथा छोटे विचारों के लोग बिना बात इतराते रहते हैं।

२३८४) जीवन का कोई भरोसा न होते हुए भी मनुष्य की तृष्णा बनी ही रहती है। जीवन का कोई भरोसा नहीं है कि कब काल उसे उठाकर ले जाए, फिर भी तृष्णारूपी डायन मनुष्य को सदैव और-और करके रात-दिन बेचैन रखती है। तृष्णा के कारण मनुष्य कभी संतोष नहीं करता, वह मांगता ही रहता है।

२३८५) तृष्णा की आग ने सुर, नर, मुनि और फकीरों तक को बेचैन कर रखा है। तृष्णा की आग इतनी भयंकर है कि उसने प्रलय मचा रखी है, फिर भी तृप्ति नहीं होती। देवता, मनुष्य, ऋषि और फकीर सभी को यह भस्मीभूत कर रही है। मनुष्य की तो बात ही क्या जब देव, ऋषि, मुनि, तपस्वी भी इच्छाओं पर विजय नहीं पा सके।

२३८६) मनुष्यों को अपने अवगुणों के देखने का होश नहीं रहता। सब लोग दूसरों के अवगुणों को देखकर हंसते रहते हैं, परंतु अपने दोष याद नहीं आते, जिनका न आरंभ है और न अंत है अर्थात् जो अनगिनत हैं। यदि मनुष्य दूसरों के गुण और अपने अवगुण देखे तो उसका कल्याण संभव है।

२३८७) लोभी व्यक्ति चारों तरफ से दुख में फंसता रहता है। मक्खी गुड़ (पिघले हुए) में गिर जाती है तो उसके पंखों में गुड़ चिपक जाता है, वह लाख सिर पटकती है, हाथ मलती है, पर उसमें से निकल नहीं पाती। लालच ऐसी ही बुरी बला है। लालची आदमी ठीक तरह से धन का आनंद भी नहीं ले पाता।

२३८८) जिस योगी को अनहद नाद की साधना करनी है, उसे मद त्यागना ही चाहिए। विद्या का अहंकार, गुणों का घमंड तथा राजमद तो पागल करने वाला होता है। इन सब मदों को जो नष्ट कर लेता है, वही अनहद नाद का आनंद पा सकता है। जो किसी भी तरह के मद में रहता है, उसे अनहद नाद का आनंद दुर्लभ होता है।

२३८९) जिसे उन्नति करनी है उसे झुकना आना चाहिए, जो स्वयं न झुककर दूसरों को झुकाना चाहते हैं, वे पतन की ओर जाते हैं। तराजू से सब कुछ तोलते हैं तो जिस पलड़े में भार अधिक होता है वही नीचे की ओर झुकता है। विनम्रता से मनुष्य नीच नहीं होता बल्कि उसका मूल्य कहीं अधिक बढ़ जाता है। तराजू का जो पलड़ा अधिक बोझ वाला होता है, वही अधिक झुकता है।

२३९०) पतिव्रता नारी की भांति मनुष्य को प्रभु के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। जैसे (पतिव्रता) पत्नी पीहर में रहती हुई भी पति के ध्यान में लीन रहती है, उसी प्रकार मनुष्यों को इस संसार में रहते हुए हरि को नहीं भूलना चाहिए। पतिव्रता नारी का प्रत्येक क्षण पतिचिंतन में बीतता है। ऐसे ही मनुष्य को हरिभक्ति में लीन रहना चाहिए।

२३९१) पतिव्रता के लिए शारीरिक सौंदर्य का कोई महत्त्व नहीं होता। पतिव्रता स्त्री तो मैली भी अच्छी है। चाहे पतिव्रता स्त्री कितनी ही काली-कुरूप हो फिर भी उसके रूप पर करोड़ों सुंदरता न्योछावर हैं। इसके विपरीत वह सुंदर स्त्री, जो पतिव्रता नहीं है, किसी की श्रद्धा और सम्मान की पात्र नहीं होती।

२३९२) पतिव्रता स्त्री कभी परपुरुष का ध्यान भी नहीं करती। पतिव्रता स्त्री सदैव अपने पति को ही प्रेम करती है, उसे अन्य कोई पुरुष अच्छा नहीं लगता। जैसे शेर को निराहार रहना मंजूर होता है परंतु वह घास नहीं खाता, उसी प्रकार सच्ची पतिव्रता स्त्री अकेले रहकर कष्ट भोगना पसंद करती है, परंतु अन्य पुरुष को प्रेम नहीं करती।

२३९३) संसार में सत्य से बड़ी कोई तपस्या नहीं है। सत्य के समान तप नहीं और असत्य के समान पाप नहीं है। जिसके हृदय में सत्य है, उसके हृदय में स्वयं परमात्मा निवास करते हैं।

२३९४) भगवान सच्चे भाव के भूखे हैं। उन्हें भक्त के बाह्य रूप से क्या मतलब। बाहरी वेशभूषा से कोई अंतर नहीं पड़ता चाहे आप लंबे केश रख लो, चाहे सारे बाल मुंडवा लो। परंतु ईश्वर के साथ सत्य व्यवहार करो। उसे सत्य ही प्रिय है। वह सच्चे व्यक्ति का ही साथी है।

२३९५) छोटा बनने से ही कुछ प्राप्त किया जा सकता है। लघुता सबसे अच्छी होती है। लघुता से सब कुछ संभव होता है। जो अपने आपको छोटा मानता रहता है, उसे सब बड़ा मानने लगते हैं। जैसे द्वितीया के चंद्रमा का आकार छोटा होता है फिर भी सब उसे प्रणाम करते हैं। जो वस्तु जितनी अधिक सूक्ष्म होती जाती है, उतनी ही उसकी शक्ति बढ़ती जाती है।

२३९६) मनुष्य को चींटी से लेकर हाथी तक सब पर दयालु होना चाहिए। अपने हृदय में सदैव दया रखो, निर्दयी मत बनो। क्योंकि चींटी से हाथी तक सभी जीव ईश्वर के हैं। सभी प्राणियों में प्राण हैं, सभी भगवान के बनाए हुए हैं, सब पर दया करो। जो समस्त प्राणियों से प्रेम करता है वही ईश्वर के सबसे अधिक निकट होता है।

२३९७) मनुष्य को अपनी वाणी के मूल्य को समझना चाहिए। बोली बहुत अनमोल होती है। व्यर्थ में ही अपनी वाणी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जब भी बोलना हो मन की तराजू में बात को तोलकर मुख खोलना चाहिए अर्थात् कभी निरर्थक बातें नहीं करनी चाहिए। कोई बात करने से पहले दस बार सोच लेना चाहिए।

२३९८) मरने के बाद हर मनुष्य से उसके कर्मों का हिसाब मांगा जाएगा। मुर्गी मुल्ला से कहती है कि तू मुझे क्या काटता है, जब भगवान तुझसे हिसाब मांगेगा तब तू संकट में पड़ जाएगा अर्थात् तेरे कर्मों का दंड तुझे अवश्य भोगना पड़ेगा।

२३९९) मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसे वैसे ही फल भोगने पड़ते हैं। तुम जिसका गला काट रहे हो, वही फिर तुम्हारा गला काटेगा अर्थात् आज यदि हमारे पास शक्ति है तो हम दूसरे को सता लेंगे, परंतु जब उसका अच्छा समय आएगा तो हमारे साथ भी वैसा ही व्यवहार होगा अर्थात् तुम्हारे पास जीवन के जितने भी क्षण हैं, उन्हें सत्कर्मों में लगा दो।

२४००) अहंकार के जंजाल से यथाशीघ्र बाहर निकल आओ। अहंकार बहुत बुरी चीज है। इससे जितना जल्दी हो सके निकल जाओ। जैसे रुई जरा सी चिन्गारी से आग पकड़ लेती है, उसी प्रकार अहंकार मनुष्य का सर्वनाश कर देता है। अहंकार के कारण मनुष्य स्वयं का सही मूल्यांकन नहीं कर पाता।

२४०१) प्रत्येक शरीरधारी की दान देने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। यह मनुष्य देह बड़े पुण्य कर्मों से मिलती है। इससे दूसरों की दान, धर्म आदि से सेवा करने में ही इस देह की सार्थकता है। हमें इस देह से जो हो सके वही दूसरों को देते रहना चाहिए। न जाने फिर यह देह मिले न मिले। यदि आगे मानव देह न मिले तो दान कैसे कर पाओगे ?

२४०२) साधना में शीघ्रता अच्छी नहीं होती। मनुष्य को कर्म करते हुए धैर्य धारण करना चाहिए। उसे फल के लिए उतावला नहीं होना चाहिए। माली चाहे सैकड़ों घड़े पानी से पेड़ को सींच लें परंतु फल तो तभी आएंगे जब फल का मौसम आएगा। मनुष्य का ध्येय धैर्यपूर्वक कर्म करना होना चाहिए, यथाशीघ्र फल प्राप्ति नहीं।

२४०३) संसार में रहकर दूसरों के काम आने वाला जीवन ही सार्थक होता है। जैसे ताड़ की छाया में बैठकर कोई फल नहीं मिलता, इसी प्रकार निंदनीय वचन फलदायी नहीं होते। जो मनुष्य संसार में आकर किसी के काम नहीं आते, वे मनुष्य संसार में रसहीन होते हैं, अर्थात् जिस प्रकार ताड़ के वृक्ष पर फल न होने से वह रसहीन होता है उसी प्रकार जो लोग दूसरों के सुख को देखकर सुखी नहीं होते तथा दूसरों का काम पड़ने पर काम नहीं आते, उनका जीवन नीरस और निरर्थक होता है।

२४०४) मनुष्य अपने मन की दशा को स्वयं ही जानता है, अन्य कोई नहीं जानता। मन में अग्नि धधकती रहती है, परंतु उसका धुआं बाहर प्रकट नहीं होता। जिस व्यक्ति के मन पर जो घटित हो रहा होता है, उसका अन्तर ही उसको जान सकता है, अन्य कोई नहीं अर्थात् जिसके हृदय को जो दुख सालता रहता है, जिस पीड़ा से जिसका मन व्यथित रहता है वही उसकी गहराई को जानता है, अन्य लोगों को उस वेदना की अनुभूति तब तक नहीं होती जब तक स्वयं को दुख की अनुभूति नहीं होती।

२४०५) जो जान-बूझकर मूर्खता करता है, उसे सीख देना बेकार है। जो व्यक्ति अकथनीय वार्तालाप करे और जाग्रत करने पर भी सोता रहे। उस मनुष्य को जाग्रत होने की शिक्षा देना उचित नहीं है अर्थात् जो लोग न कहने योग्य वचन कहते हैं तथा बार-बार सावधान करने पर भी होश में नहीं आते, अज्ञान निद्रा से नहीं चेतते उन्हें शिक्षा देना बेकार है, क्योंकि स्वयं शिक्षा देने वाले को दुख होता है।

२४०६) महान व्यक्ति की भी गलत बात को नहीं मानना चाहिए भले ही वह सामान्य रूप में कितनी भी गरिमामय व रहस्यभरी क्यों न हो। श्रीरामचंद्रजी से अधिक भरत को सुयश की प्राप्ति हुई, क्योंकि राम ने तो पिता के आदेश का पालन करके वन गमन किया था

परंतु भरत ने कैकेयी के अनुचित वचनों से प्राप्त राज्य को ठुकरा दिया और चौदह वर्ष तक वनवासी का जीवन बिताया, इसलिए भरत का यश राम से अधिक बढ़ गया।

२४०७) सत्य से संसार के कार्यों में बाधा पड़ती है तथा असत्य से ईश्वर नहीं मिलते। अब तो जीवन में ऐसी कठिनाई आ गई है कि दोनों कार्य करने दुष्कर हो गए हैं। सत्य बोलने से संसार का काम नहीं चलता और मिथ्या भाषण से भगवान का मिलना संभव नहीं है। संसार में इतना छल, कपट और असत्य का बोलबाला हो गया है कि सच्चाई से रहने पर सफलता नहीं मिलती और असत्य व्यवहार से भगवान नहीं मिलते।

२४०८) मधुर वचनों में जरा सा भी कडुवा बोल सारा रस समाप्त कर देता है। जैसे बांस की फांस मिश्री के स्वाद को बदमजा कर देती है, उसी तरह क्रोध करने वाले व्यक्ति के मीठे बोल भी कड़वे लगते हैं।

२४०९) यदि कोई व्यक्ति मधुर वचन बोलता है तो उसे क्रोध कभी नहीं करना चाहिए। उसे सदैव सावधान रहना चाहिए कि उसके गुस्से से किसी दूसरे के हृदय को ठेस न पहुंच जाए अर्थात् मृदुभाषी व्यक्ति की शोभा, उसका गौरव उसकी मीठी वाणी के कारण ही होता है, जो मधुर वचन बोलता है।

२४१०) मनुष्य को अपनी पहचान अलग से बनानी चाहिए। राजा के समीप सदा निवास करने से सम्मान में कमी आती है और कुछ प्राप्त नहीं होता। यदि व्यक्ति करोड़ों में सम्मिलित हो जाए तो उसकी कोई पहचान नहीं होती। ऐसे जीवन को धिक्कार है। जो लोग सम्राट के पास नित्य रहते हैं, उनका वह आदर नहीं रहता जो कभी-कभी मिलने पर रहता है। इसलिए स्वंय को किसी के सामने बहुत सस्ता नहीं बनाना चाहिए।

२४११) आलसी व्यक्ति सोचता ही रहता है, वह कोई काम नहीं करता। बिना प्रयास अथवा कर्म किए कोई भी व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सकता।

२४१२) इस संसार में मनुष्य के हृदय से प्रेम और संवेदना का भाव चला गया है। आजकल कोई किसी को प्रेम से नहीं पुकारता। नीच लोग केवल स्वार्थ की पूर्ति में ही लगातार लगे रहते हैं।

२४१३) माया के चक्कर में पड़कर सारा जीवन व्यर्थ चला जाता है। अब कितनी आयु शेष है और कितनी कुछ व्यतीत हो गई, परंतु इस संसार में माया, मोह और ममता के भ्रमजाल में पड़कर वे अंत समय आने पर पश्चात्ताप करते हुए परलोकवासी हो जाते हैं। सारा जीवन माया, मोह और ममता के चक्कर में फंसकर धन जोड़ने, झूठे संबंधों को सच्चा समझकर संबंधियों से प्रेम करने में बिता दिया। जब अंत समय आया तो पछताना पड़ा कि सत्कर्म नहीं किए।

२४१४) मित्रता में दुराव, छिपाव, दूरी से फर्क आ जाता है। जब अनहोनी हो जाती है तो बात नहीं बनती। मिलने पर भी जो व्यक्ति न मिले, अंतर रखे, उसके साथ कैसे निर्वाह हो सकता है ? जो लोग बाहर से तो एक दूसरे को मित्र कहते हैं, बहुत स्नेह का परस्पर प्रदर्शन करते हैं, परंतु मन में भेद रखते हैं, उनकी मित्रता ढोंग होती है, नाटक होता है।

२४१५) संसार के लोग स्वार्थपूर्ति होने तक ही प्रेम करते हैं। जैसे विवाह के उपरांत वर के शिरोभूषण मुकुट को नदी में प्रवाहित कर देते हैं, वैसे ही कार्य होने पर उस वस्तु की महत्ता नष्ट हो जाती है। कार्य समाप्ति के बाद वही वस्तु व्यर्थ हो जाती है। लोग काम निकल जाने पर संबंधी व मित्रों को भी त्याग देते हैं।

२४१६) महान से महान व्यक्ति भी मांगने पर छोटा बन जाता है। याचना करने से व्यक्ति का मान-सम्मान कम हो जाता है। जैसे राजा बलि से तीन पग भूमि मांगने के लिए भगवान का बावन अंगुल को छाटा रूप धारण करना पड़ा था। किसी को किसी से याचना नहीं करनी चाहिए।

२४१७) दूसरों का प्रेम पाने के लिए अपने गुणों में वृद्धि करनी चाहिए। जिस प्रकार रस्सी और डोर के द्वारा लोग कुएं से पानी निकाल लेते हैं, किसी का हृदय कुएं जैसा गहरा नहीं होता। जिस प्रकार बिना गुण (रस्सी) के कुएं से जल नहीं निकाला जा सकता, उसी प्रकार बिना सद्गुणों के किसी के अपनत्व भाव को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

२४१८) कमजोर को शक्तिशाली व्यक्ति का सहारा लेना ही पड़ जाता है। निर्बल व्यक्ति से बलवान व्यक्तियों को पराया समझकर

निर्वाह नहीं किया जा सकता। समुद्र में रहकर मगरमच्छ से वैर नहीं किया जा सकता। कमजोर आदमी यदि यह सोच ले कि हम बलिष्ठ लोगों से संबंध नहीं रखेंगे तो यह संभव नहीं है, क्योंकि उन्हें कभी न कभी उनके सहयोग की आवश्यकता पड़ ही जाती है।

२४१९) किसी के द्वार पर जाना पड़े तो पछताना नहीं चाहिए। कोई किसी के दरवाजे पर जाकर पश्चात्ताप न करे। धनवान के घर तो सभी जाते हैं। विपत्ति सभी को वहां ले जाती है। काम पड़ने पर यदि किसी के घर जाना पड़े तो दुखी नहीं होना चाहिए, क्योंकि जिसके पास धन-दौलत होती है उसके पास सब जाते हैं और जिस पर दुख आता है उसे दूसरों के पास जाना पड़ता है।

२४२०) दूसरों के घर जाने पर व्यक्ति के सम्मान में कमी आती है। समुद्र में समाने पर गंगा के नाम की महिमा मंद हो जाती है। दूसरों के घर जाने पर भला किसकी महिमा कम नहीं हुई ? जब तक गंगा गंगा रहती है तब तक उसका सब सम्मान करते हैं, परंतु सागर में मिल जाने पर उसका नाम भी मिट जाता है। बिना बुलाए दूसरे के यहां जाने से किसकी प्रतिष्ठा नहीं घट जाती ? त्रिभुवनतारिणी, महिमावती, यशस्विनी तथा पुण्यतोया गंगा भावावेश में आकर दौड़ती हुई सागर से जा मिली। ऐसे मुक्त हृदय से मिली कि समुद्र में समाहित हो गई। वह ऐसे तन-मन से समाहित हुई कि उसका अस्तित्व ही मिट गया। अपनी अस्मिता एवं अपनी पहचान मत खोओ। दूसरी ओर से भी मिलन-आतुरता होनी चाहिए। यों ही, दूसरे के हृदय को समझे बिना प्रवाहित हो जाना या उमड़ पड़ना ठीक नहीं है। यदि अनाहुत या अनामंत्रित पहुंचोगे तो अवश्य आहत होगे।

२४२१) जीने के लिए परिश्रम, मितव्ययता तथा स्वामी की कृपा चाहिए। व्यय अधिक हो गया, प्रयास भी घट गया और स्वामी (राजा) भी निष्ठुर हो गया। मछली इतने कम जल में कैसे जीवित रह सकती है ? यदि खर्च बढ़ जाए, श्रम करने की आदत न रहे तथा राजा का भी मन कठोर हो जाए, अर्थात् उसकी कृपा न रहे तो जीवन जीना दुर्लभ हो जाता है।

२४२२) स्वयं परिश्रम करके पाया हुआ भोजन हितकारी होता है। भोजन ही इस विश्व में सबको प्यारा है, अत: दूसरों की भूख के लिए कष्ट सहन करना चाहिए। जिस प्रकार मृदंग की थाप पर लगा हुआ आटा मधुर स्वर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार श्रम करके अपने हाथों में छाले बनाएं अर्थात् अपनी भूख मिटाने के लिए दूसरों के परिश्रम का सहारा न लेकर स्वयं उद्यम करना चाहिए। स्वयं मेहनत करने के बाद जो अन्न मिलता है, उसे खाने से अलग ही प्रकार का आनंद आता है। किसी के एहसानों-उपकारों से दबा व्यक्ति कभी उसके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता। वह मेरुदंड से रहित होता है। उसका कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता। वह अंधभक्त हो जाता है और सही-गलत सबका समर्थन करता है। जो व्यक्ति दूसरों की अनुकंपा पर होते हैं, वे अपने स्वामी के विरुद्ध जाने का दुस्साहस कर ही नहीं सकते। मृदंग जैसे वाद्ययन्त्र में मात्र आटे का लेप होता है। इतने पर ही वह प्रसन्न होकर दिन-रात अपने स्वामी की इच्छानुकूल स्वर दिया करता है।

२४२३) गुणी लोग ही समय की पहचान कर पाते हैं। चिंता के समय बुद्धि की परीक्षा होती है। नुकसान के समय स्त्री को परखा जाता है। परमात्मा ने जिसे गुणी बनाया है, वही बुरे समय की पहचान कर पाता है। चिंता के समय अच्छे से अच्छों की बुद्धि खराब हो जाती है तथा हानि के समय अच्छी से अच्छी स्त्री भी साथ छोड़ देती है।

२४२४) छोटों से ही बड़ों का महत्व बढ़ता है। दमड़ी की छोटी सी कील लेकर हजार घोड़े बांधे जाते हैं। छोटी आयु के बच्चों से ही बड़े लोगों की शोभा होती है। यही मर्यादा है। यदि छोटे लोग नहीं होंगे तो बड़ों का क्या महत्व रहेगा।

२४२५) सुख-दुख से जीवन में घबराना नहीं चाहिए। जब तक इस जगत में जीवन है, तब तक सुख-दुख प्रकट रूप से मिलते रहते हैं। जैसे चौसर की गोट को गोट पर मारने से दोनों के सिर पर चोट लगती है। जीवन के रहते जीवन में सुख भी आते हैं और दुख भी। यदि सुख ही सुख रहेगा तो उस सुख का भी महत्व नहीं रहेगा। दुख से सुख का सुख पता चलता है। इसलिए दुख से दुखी नहीं होना चाहिए।

२४२६) संसार में सब लोग अपने-अपने कर्मों के वश में रहते हैं। जैसे कठपुतली नाचती है, उसी प्रकार जगत में प्राणी के कर्म उसको नाच नचाते रहते हैं। अपने ही हाथ अपने हाथ में नहीं होते, वैसे ही सभी कर्म अपने अधीन नहीं होते। उन पर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता। परमात्मा हमारे कर्मों के अनुसार हमें उसी प्रकार नचाता है जैसे काठ की कठपुतली नचाने वाले के हाथों के धागों के अनुसार कठपुतली नाचती रहती है। मनुष्य भी अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवन जीते हैं। अपनी इच्छा से एक पल भी मनुष्य जी नहीं सकता।

२४२७) मानव का शरीर क्षणभंगुर होता है। जिस प्रकार जल दूध में मिलकर दूध बन जाता है, उसी प्रकार जीव का शरीर अग्नि में मिलकर अग्नि हो जाता है। जैसे दूध मिलकर पानी पानी नहीं रहता दूध ही बन जाता है, वैसे ही आग से मिलकर मानव तन आग ही बन जाता है अत: इस शरीर का मोह उचित नहीं है।

२४२८) संसार के लोग परस्पर ईर्ष्या-द्वेष से ग्रस्त रहते हैं। यह संसार खोजकर देख लिया है। जहां परस्पर ईर्ष्या आदि की गांठ है, वहां आनंद नहीं है। महुए के पेड़ की प्रत्येक गांठ में रस ही रस होता है, क्योंकि वे परस्पर जुड़ी रहती हैं। महुए के वृक्ष की प्रत्येक गांठ आपस में जुड़ी होने से रसीली होती हैं। परंतु मनुष्यों में आपस में ईष्या की गांठ होने से नीरसता रहती है। अत: प्रेम में ही रस है।

२४२९) जो जान-बूझकर पाप करता है वह किसी की सीख नहीं मानता। वह ऐसा ही है जैसे जागते को जगाना। समझ-बूझकर भी जो व्यक्ति अन्याय करता है, वह तो जागते हुए भी सोता है। ऐसे इन्सान को जाग्रत रहने की शिक्षा देना भी उचित नहीं है। यदि कोई अज्ञानतावश अनीति का आचरण करता है तो उसे समझाने पर वह अन्याय छोड़ सकता है, परंतु जो जानते-बूझते हुए भी अनीति करता है, उसे समझाने से कोई लाभ नहीं होता।

२४३०) दुर्दिनों में अपने भी पराए अर्थात् शत्रु बन जाते हैं। बुरा समय आने पर मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। ऐसे ही कुसमय में मित्र भी शत्रुता का व्यवहार करने लगते हैं, आस्तीन के सांप बन जाते हैं।

२४३१) प्रेम में दो व्यक्तियों में परस्पर भेदभाव नहीं रहता। जिस व्यक्ति ने तन-मन पर अधिकार कर लिया है, उसने हृदय में स्थान बना लिया है। ऐसे प्रेमी से, दुख-सुख कहने की अब कोई बात शेष नही रह जाती। जिसके प्रेम में अपने तन और मन का होश ही नहीं रहा। जिसने हृदय में घर कर लिया, उससे दुख-सुख बताने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि वह तो सब कुछ जानता है। अपना हो जाता है।

२४३२) सब अपनी-अपनी बुद्धि के हिसाब से बात करते हैं। जिस मनुष्य की जैसी बुद्धि होती है, वह उसके अनुरूप ही कार्य करता है। यदि कोई बुरी बात कह दे तो उसकी बुद्धि की वही सीमा समझकर बुरा नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह अल्पबुद्धि व्यक्ति, विवेक-बुद्धि कहां से लेने जाएगा ?

२४३३) मनुष्य को हर परिस्थिति का सामना करने की आदत होनी चाहिए। इस मानव काया पर जैसी परिस्थिति आती है वैसा ही वह सहन करती है। धरा पर ही सर्दी, गरमी और वर्षा ऋतु आती हैं और वह उन्हें स्वीकार करती है। यदि मनुष्य के जीवन में सुख आता है तो वह भी वही भोगता है तथा दुख आने पर भी वही सहता है जैसे-सर्दी, गरमी और वर्षा सभी को धरती सहन करती है।

२४३४) सांसारिक लोग सुख के तथा भगवान दुख के साथी होते हैं। जैसे नदी के तट पर बैठकर व्यक्ति विश्राम करता है, उसी प्रकार तुमने भी हमारे साथ व्यवहार किया। जैसे नदी किनारे थका हुआ व्यक्ति अपनी थकान उतारकर नदी तट को छोड़ जाता है। उसी तरह विपत्ति के समय लोग मित्रता करना भूल जाते हैं। विपत्ति के समय तो ईश्वर का ही सहारा रह जाता है।

२४३५) गलत काम करने से मनुष्य पर दोष लगता है। जो मनुष्य अनुचित कार्य करते हैं, उन्हें परिणाम में कलंक लगता है। बुरे काम करने वाले की प्रशंसा नही होती, जैसे स्त्री को बुरी दृष्टि से देखने वाले का मुंह काला हो जाता है।

२४३६) अपने में मस्त रहने वाले किसी को दुख नहीं देते। सुंदर पत्तों और सलोने अंग वाले केले के पत्ते के समान जो लोग घर में ही घुसे रहते हैं। वे मार्ग में लगे, बिना पत्तों वाले करील के वृक्षों से उत्तम हैं। जैसे केला किसी को कष्ट नहीं देता। ऐसे ही अपने घर-परिवार में मस्त रहने वाले लोग किसी को दुख नहीं देते। जबकि सब जगह घूमते रहने वाले लोग रास्ते के करील के कांटों की तरह दूसरों को परेशान करते हैं।

२४३७) संपत्ति पाने के लिए सभी को पुरुषार्थ करना पड़ता है। पुरुषार्थ करने से मनुष्य को धन-संपत्ति प्राप्त होती है। बिना परिश्रम किए सम्पत्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

२४३८) कोई किसी महान व्यक्ति पर कितने ही लांछन लगाकर उसे निकृष्ट सिद्ध करना चाहे फिर भी वह महान ही रहता है।

मर्यादा में रहने वाले लोग स्थिर रहते हैं। जो सदा-सर्वदा से मर्यादा चली आती है, वही स्थिर रहती है। नदी का जो पानी तट को पार करके प्रवाहित होता है। वह व्यर्थ बह जाता है। जो स्त्री-पुरुष नियमों में बंधकर जीवन जीते हैं, वे सम्मानित होते हैं। अमर्यादित का कोई सम्मान नहीं करता।

२४३९) संसार में ईश्वर का सहारा लेने पर ही रक्षा संभव है। इस संसार को जो व्यक्ति नेत्ररूपी बाण की चोट से आहत करता है, वही बच पाता है। जिन्होंने ईश्वर के चरण-कमलों की ओट का सहारा ले लिया है, केवल ऐसे भले-जन ही सांसारिक मोह-माया के जाल में फंसने से बच पाते हैं। वैसे तो सारा संसार मोह-माया के जाल में फंसा रहता है, परंतु जो संसार को खुली आंखों से देखकर वास्तविकता को समझ लेता है तथा प्रभु का नाम लेता है, वही बच पाता है।

२४४०) दीपक की तरह स्त्री को भी परदे में रखना चाहिए। दीपक की अवस्था समझकर अपनी स्त्री को आवरण में रखो। हवा लगने से जैसे दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार विपरीत परिस्थिति आने पर पुरुष द्वारा नारी को शक की दृष्टि से देखने पर उसका मन आहत हो जाता है। जैसे दीपक को बुझने से बचाने के लिए कपड़े की ओट करनी पड़ती है, उसी प्रकार अपनी स्त्री को अन्य पुरुषों की दृष्टि से बचाने के लिए आवरण में रखना पड़ता है।

२४४१) कठोर मन वालों पर आंसुओं का भी असर नहीं होता। निष्ठुर व्यक्ति के समक्ष रोने से अश्रुधारा प्रवाहित करना भी व्यर्थ हो है। जिनका मन माया ने पाषाण की तरह कठोर बना दिया है, उनके आगे कितना भी कोई गिड़गिड़ाए, हाथ जोड़े, पैर छुए, सिर झुकाए, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

२४४२) अपने तन को अपने वश में रखने से मन कहीं नहीं जा सकता। यदि शरीर पर अपना वश है तो मन कहां जाएगा ? जैसे-यदि पानी में अपना प्रतिबिंब दिखाई दे तो शरीर नहीं भीगता। शरीर को यदि मर्यादा में रहने की आदत है तो मन चंचल होते हुए भी वह उसे हिला नहीं सकता।

२४४३) विषय-वासना त्यागने के लिए ही होती है। जैसे व्यक्ति पृथ्वी पर वमन कर देता है और कुत्ता उसे स्वाद से चाटकर खाता है। उसी प्रकार सांसारिक भोग-विलास को सज्जन ऋषि-मुनियों ने तो त्याग दिया, किंतु मूर्ख मनुष्य उस विषय-वासना में लिप्त रहते है अर्थात् बुद्धिमान लोग विषय-वासनाओं के चक्कर में फंसकर अपना जीवन व्यर्थ नहीं खोते, वे उन्हें त्याग देते हैं तथा मूर्ख लोग विषय-वासनाओं में ही फंसे रहते हैं।

२४४४) अपने मन को ईश्वर के चरणों में लगाना ही श्रेयस्कर है। शरीर तो कर्मफल के अधीन है। मन को उस प्रभुभक्ति की ओर लीन करके रखिए। जैसे-जल में नाव के उलट जाने पर उसे रस्सी से खींचकर ही बचाया जाता है। मनुष्य का मन यदि ईश्वर चरणों में रत रहेगा तो शरीर कर्मफल के कारण होने वाले कष्टों से भी बचा रहेगा। जैसे अथाह जल में नाव उलट जाने पर रस्सी उसको बचा लेती है।

२४४५) श्रेष्ठ कार्य करते हुए जीना ही अच्छा है। संसार में तब तक ही जीवित रहना अच्छा है जब तक आत्मा का दीपक धीमा नहीं होता। इस जगत में कुत्सित स्वरूप से जीना उचित नहीं है। जो लोग अपनी आत्मा के दीपक की लौ को धीमा नहीं होने देते तथा श्रेष्ठ कार्यों में जीवन के क्षण व्यतीत करते हैं, उन्हीं का जीवन सार्थक होता है।

२४४६) महान लोग दूसरों की भलाई के लिए धन इकट्ठा करते हैं। वृक्ष स्वयं अपने फल नहीं खाते। तालाब भी अपने पानी को स्वयं नहीं पीता। इसी प्रकार सज्जनों का संपत्ति एकत्र करना दूसरों की भलाई के लिए ही होता है। जैसे पेड़ अपने फल स्वयं न खाकर दूसरों को देता है तथा सरोवर अपना पानी खुद न पीकर दूसरों को पिलाता है, ऐसे ही अच्छे लोग अपनी सम्पत्ति का स्वयं प्रयोग न करके परोपकार में लगाते हैं।

२४४७) समर्थ लोग ही किसी की आवश्यकता पूरी कर सकते हैं। सूखे तालाब पर जाने से प्यास शांत नहीं हो सकती। उसी से कुछ प्राप्त कर सकते हैं, जिसके पास कुछ है, जिसकी आप आशा करते हैं। मनुष्य को उससे ही आशा करनी चाहिए, जिसके पास उसकी आशा को पूरा करने की सामर्थ्य हो अन्यथा तो ऐसे ही खाली हाथ लौटना पड़ेगा, जैसे बिना पानी के तालाब से प्यासा व्यक्ति प्यासा ही लौटता है।

२४४८) अलौकिक दैन्यभाव की भक्ति के आनंद को साधारण लोग नहीं समझ सकते। भगवान के प्रति अलौकिक प्रार्थना दैन्यभाव में क्या आनंद है, अंधा हुआ संसार भला क्या समझ सकता है ? दीनता स्वयं अपने में सुंदर है, क्योंकि दीन-हीनों के सखा स्वयं ईश्वर उनके मित्र हैं। अहम् भाव को छोड़कर जो दीनता के साथ व्यवहार करता है, उसे उस विनम्र दीनता में जो सुख मिलता है, उसे यह अंधा संसार नहीं समझ पाता।

२४४९) मनुष्य के दुख की लोग हंसी उड़ाते हैं केवल ईश्वर सहायता देता है। मनुष्य के दुख को सुनकर सांसारिक लोग उपहास करते हैं और मन भी धीरज धारण नहीं करता। मानव के दुख-दर्द को सुनकर उसकी मदद करने वाले ऐसे केवल प्रभु ही हैं। जब कोई किसी मित्र या सगे-संबंधी को अपना दुख बताता है, तो लोग उसका मजाक उड़ाते हैं, परंतु जब कोई प्रभु से अपना दुख कहता है, तो वे उसकी सहायता करते हैं।

२४५०) दुख में व्यक्ति को बुरी से बुरी जगह पर भागकर जाना पड़ता है। बुरे दिन आने पर सब तिरस्कार कर अपने से दूर कर देते हैं। जब घर में आग लगती है तो कूड़े-करकट के ढेर पर खड़ा होना पड़ता है। जब आदमी का समय बदलता है और दुख के दिन आ पड़ते हैं तो उसे अपनी रक्षा के लिए बुरे से बुरे स्थान पर भी जाना पड़ता है।

२४५१) दुर्दिन आने पर धन हानि के साथ-साथ लोगों की मित्रता की भी हानि हो जाती है। जीवन में बुरे दिन आने पर सब लोग पहचानना भी भूल जाते हैं। ऐसे समय में यदि अपने मित्रों, सगे-संबंधियों की हानि न हो तो धन हानि का विचार मन को इतनी पीड़ा नहीं पहुंचाता। बुरा समय आने पर एक तो मनुष्य की आर्थिक क्षति होती है, उस पर लोग भी उससे बचने लगते हैं। ऐसे समय में धन के नुकसान से अधिक दुख लोगों के प्रेम की हानि का होता है।

२४५२) सच्चे दानी दान देकर भी घमंड नहीं करते। वे सोचते हैं कि देने वाला दाता तो ईश्वर है, वही रात-दिन धन भेजता रहता है। लोग हमारे विषय में भ्रम पाल लेते हैं। इसी कारण हमारे नेत्र झुक जाते हैं। कोई मनुष्य किसी को कुछ नहीं दे सकता। ईश्वर दिन-रात अपने बंदों को सहायता भेजता रहता है (किसी न किसी माध्यम से) परंतु लोग समझते हैं कि उन्हें मैं दे रहा हूं। यही सोचकर मेरी आंखें शरम से झुकी जाती हैं।

२४५३) सुख के समय भी व्यक्ति को सच्चे मित्र की खोज करते रहना चाहिए। व्यक्ति धन, स्त्री और पुत्र आदि के मोहजाल में सदा फंसा रहता है। विपत्ति के समय के लिए सच्चे मित्र की खोज कोई नहीं करता। जब तक मनुष्य के पास धन रहता है, सुख रहता है वह अपने धन, घर, स्त्री, संतान आदि में खोया रहता है और विपत्ति पड़ने पर सच्चे मित्र की जब आवश्यकता सामने आती है, तब उसे खोजने निकलता है। सुख में कोई विपत्ति में काम आने वाले मित्र को नहीं तलाशता।

२४५४) मनुष्य को दुख-सुख, मान-अपमान, सर्दी-गरमी में समान भाव से रहना चाहिए। धरती शीत, गरमी और वर्षा को सहन करती है। यह उसकी परम्परा है। जीवन में जैसा भी सुख-दुख का अवसर आए, मानव काया को उसे सहन करना चाहिए। सारी ऋतुएं बारी-बारी से पृथ्वी पर आती-जाती रहती हैं। पृथ्वी उन सभी का समान रूप से स्वागत करती है। ऐसे ही मनुष्यों को प्रत्येक परिस्थिति का हंसकर सामना करना चाहिए।

२४५५) संसार से प्रेम करना पत्तों को सींचना है, अच्छा तो यही है कि प्रभु से प्रेम करो। पत्ते-पत्ते को सींचना और जड़ में नमक डालना, ऐसी बुद्धि को कौन महत्व देगा ? जड़ में नमक डालने से वृक्ष गल जाएगा तथा पत्तों को सींचने से कोई लाभ नहीं होगा। यदि वृक्ष को पालना है तो जड़ को सींचना होगा। इसी तरह जीवन को धन्य करने के लिए ईश्वर से प्रेम करना चाहिए।

२४५६) पति-पत्नी का जीवन तभी सुखी होता है जब दोनों के विचार समान होते हैं। पुरुष तो देवता की अर्चना करे और पत्नी श्रीराम का पूजन करे। दोनों का साथ नपुंसक बैल के साथ जैसा हो गया। जिस परिवार में पति तथा पत्नी में परस्पर वैचारिक भिन्नता होती है, वह परिवार सदैव कलह-ग्रस्त रहता है।

२४५७) एकनिष्ठ प्रेमी की एकनिष्ठता देखकर अन्य कोई उससे प्रेम की आशा नहीं करता। जैसे सराय में लोगों की भीड़ देखकर, स्थान न पाकर राहगीर अन्यत्र चला जाता है, उसी प्रकार जिन नेत्रों में प्रियतम (परमात्मा) की छवि (सुंदरता) बसी हुई है, उनमें दूसरा व्यक्ति कैसे समा सकता है ? ईश्वर की छवि को, उसके सौंदर्य को नेत्रों में इस तरह बसा लो कि अन्य कोई दिखाई ही न दे। जब तुम उससे अनन्य प्रेम करोगे तो संसार स्वयं ही पीछे हट जाएगा।

२४५८) प्रेम के रास्ते में अनेक कठिनाइयां सामने आती हैं। प्रेम का मार्ग ऐसा दुर्गम है कि सब लोग प्रेम-पथ का निर्वाह नहीं कर पाते। कामदेव के घोड़े पर सवार होकर आग के मध्य चलना होता है। दूसरों को प्रेम करते हुए देखकर ऐसा लगता है जैसे यह मार्ग बड़ा सुखद है, परंतु जो इस मार्ग पर चलता है, वही जानता है कि इस रास्ते पर चलने वालों को काम के अश्व पर बैठकर आग में चलना होता है।

२४५९) प्रेम करने वालों को सरलता से व्यवहार करना चाहिए। प्रेम में वजीर के समान टेढ़ी चाल नहीं चली जाती। पैदल मोहरा (शतरंज में) जिस प्रकार सीधे चलते हुए अंत में वजीर बन जाता है, उसी प्रकार सरल हृदय से की गई भक्ति से परमात्मा का प्रेम प्राप्त हो जाता है। जो प्रेम में कपट रखकर व्यवहार करता है, उसे कभी सफलता नहीं मिलती, क्योंकि प्रेम की पहली शर्त निष्कपटता होती है, छल-कपट का व्यवहार प्रेम को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है।

२४६०) गरीबी का दुख झेलने से तो मृत्यु अच्छी है। यह चंचला माया का दोष है कि जीवन में यह कभी भी व्यक्ति के पास से कम हो जाती है। ऐसे समय में व्यक्ति की मृत्यु श्रेयस्कर है, क्योंकि धनहीन व्यक्ति का दुख असहनीय होता है। माया क्योंकि चंचला होती है, इसलिए धनी व्यक्ति कभी भी निर्धन हो जाता है। जब किसी के पास धन न रहे तो उस परेशानी का जीवन जीने से तो मरना ही अच्छा है।

२४६१) सज्जन लोगों को दीन पर दया करते समय उसकी पात्रता पर भी विचार करना चाहिए। महान पुरुषों के हृदय में दुखी व्यक्ति की कातर वाणी सुनकर दया का संचार हो जाता है, परंतु बंदर कब हाथी हो सकता है ? यह पहचानना चाहिए। महान लोग स्वभावत: ही फूल की तरह कोमल हृदय वाले होते हैं। इसीलिए वे किसी दुखी की पुकार सुनकर द्रवीभूत हुए बिना नहीं रहते। परंतु उन्हें दया करते समय दीन की पात्रता के बारे में अवश्य सोचना चाहिए।

२४६२) अधिक इच्छाएं रखने वाला बहुत दुखी रहता है। मोटे व्यक्ति की क्षुधा शांति हेतु प्रयास करने से दुख अधिक हो जाता है। इसी डर से हाथी के दो दांत बाहर निकाल दिए जाते हैं। जिसकी तृष्णाओं का पेट हाथी की तरह बड़ा हो जाता है और जो कभी भर ता ही नहीं है, वह व्यक्ति सदा अतृप्त ही रहता है और अतृप्ति से दुखी होकर दूसरों के आगे दांत निपोरता रहता है।

२४६३) धनी को धन के लाभ-हानि से फर्क पड़ता है निर्धन को नहीं। धनी व्यक्ति का धन कोष बढ़ता रहता है, क्योंकि धन भी धनी के पास ही ठहरता है, जो व्यक्ति भिक्षा मांगकर जीवन-यापन करता है, उसका धन कम या अधिक हो, उसको कोई अंतर नहीं पड़ता। पैसा अधिकतर पैसे वाले के पास ही जाता है, क्योंकि धन ही धन को कमाता है। धनी को धन के बढ़ने से बहुत खुशी होती है तथा घटने से दुख परंतु भिखारी को धन के बढ़ने-घटने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

२४६४) घर से निकलकर पेट भरने को जाने किस-किस से मांगना पड़ जाता है। घर से निकलकर भला ही हुआ, परंतु सिर पर जो रक्षक है, उसने उपहास किया, क्योंकि अपने पेट की खातिर परदेश में जाकर न जाने किस-किस के आगे झुकना पड़ा। अपने घर में रहकर भूखे रहना भी अच्छा है। घर छोड़ते ही मनुष्य का मान-सम्मान स्वयं ही खो जाता है। फिर तो उसे किसी-किसी के आगे हाथ फैलाना पड़ जाता है।

२४६५) संसार की माया-मोह छोड़कर ही मनुष्य का बेड़ा पार हो सकता है। इस संसार में भाड़ झोंक कर भवसागर से हमारा उद्धार हुआ, पंरतु जिनके मस्तक पर सांसारिक भार (उत्तरदायित्व) था वे बेचारे मझधार में ही डूब गए। जिन्होंने संसार को भाड़ में झोंक दिया, उसकी परवाह करनी छोड़ दी उन्हीं का उद्धार हुआ तथा जो अपने सिर पर संसार के रिश्तों का बोझ उठाए रहे, वे उस बोझ के कारण बीच मझधार में डूब गए।

२४६६) संसार में सभी परमात्मा का स्वरूप हैं फिर भी एक दूसरे को छोटा बताते हैं। राजा गुणीजनों को तुच्छ समझते हैं और गुणवान व्यक्ति राजा को अपने से छोटा समझता है। यदि पृथ्वी से लेकर पर्वत तक देखो तो समस्त प्राणी एक ही ईश्वर के स्वरूप हैं। सम्राट अपनी प्रभु सत्ता के कारण विद्वानों के महत्व को न समझकर उन्हें तुच्छ समझता है तथा गुणीजन अपने गुणों की गरिमा के कारण नृपति को छोटा समझते हैं, जबकि सभी परमेश्वर का अंश हैं।

२४६७) मन कहीं और, नेत्र कहीं और रहने से प्रेम नहीं होता। केवल मन से और मात्र नयनों से प्रभु कहां दीवाने होते हैं। नेत्रों से प्रभु का रूप निहारकर जो सम्मान करता है, मन उसी पर न्यौछावर हो जाता है। जब प्रेमी का मन तो कहीं रहता है तथा आंखें कहीं और लगी रहती हैं तब उसका प्रिय उसे कैसे प्रेम कर सकता है ? जब नेत्रों से देखकर मन में आदर किया जाता है तब कोई किसी से प्रेम करता है।

२४६८) पार्थिव अग्नि की ज्वाला से भी अधिक जलानेवाली अग्नि मानसिक अग्नि होती है। वह अग्नि तन, मन को जलाकर भस्म कर देती है। पत्नी के वियोग की अग्नि मनुष्य को जलानेवाली होती है, विशेष कर वृद्धावस्था में मिलनेवाला यह दर्द और भी अधिक कष्टकारी होता है। अपमान तो अपमान ही होता है, किन्तु बन्धु बान्धवों द्वारा किया गया अपमान तो दिल को जला कर ही रख देता

है। इसी प्रकार कर्जा अदा न कर पाने की चिन्ता भी मनुष्य को जलाती है। दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रों और मूर्खों की सभा मे जाने से भी जो अपमान होता है वह शरीर को जलाता है।

२४६९) ऐसे जन्म लेने से क्या लाभ, जब हरि भक्ति का भाव न हो। उसका जीवन व्यर्थ है, जिसका मन सदा खाने-पीने में ही लगा रहता है और ईश्वर भक्ति को छोड़कर सांसारिक भोग-विलास में ही लिप्त रहता है।

२४७०) दुर्जन और सांप दोनों ही एक समान कष्टदायी होते है लेकिन यदि दोनों मे किसी एक के साथ मजबूरी वश रहना पडे तो सांप के साथ रहना अधिक श्रेयस्कर है बजाय दुर्जन के साथ रहना। सांप तो अपने जीवन की रक्षा हेतु एक बार ही काटता है, किन्तु दुर्जन समय-असमय, कदम कदम पर अनेक प्रकार के कष्ट देता रहता है। दुर्जन व्यक्ति द्वारा पहुँचाई गई पीडा सर्प दंश से भी अधिक पीडित करनेवाली होती है। अत: दुर्जन से कतई कोई व्यवहार नही रखना चाहिये। वह कभी भी विश्वासघात करके हानि पहुंचा सकता है।

२४७१) वह स्वयं ही मछुआरा है, स्वयं ही मछली है, स्वयं ही पानी है और स्वयं ही चमकीला जाल है और वही उस कांटे में लगा चारा है। वह अकाल पुरुष परमात्मा स्वयं ही जीवों को उत्पन्न करता है और वही उन्हें मोहजाल में डालकर मृत्युरूपी कांटे में फंसाकर पकड़ लेता है। यह सब कार्य वही अकाल पुरुष करता है। अत: जीव को यह भली-भांति समझना चाहिए कि वह मोहजाल में न फंसे। यहां उसका अपना कुछ नहीं है। जो कुछ भी है सब उसी का है।

२४७२) ऋग्वेद में सूर्य की उपासना की गई है। वहां सूर्य को ही परम पुरुष माना है। सूर्योदय के समय ऋषिगण विद्वान (हंस) ज्ञान साधना करते हैं और सरोवर के कमल व केवड़े के पुष्प खिल जाते हैं।

२४७३) जिन्होंने सत्य को अर्थात् ईश्वर को पहचान लिया है अथवा सत्य के महत्व को समझ लिया है, वे मनुष्य चारों युगों (सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग, कलियुग) में सुख पाते हैं। अत: हृदय की तृष्णाओं (इच्छाओं) को वश में करके अथवा उन्हें मारकर, हृदय में सत्य को ही धारण करो।

२४७४) मनुष्य को यह जीवन बड़ी कठिनाई से चौरासी लाख योनियों में भटकने के उपरांत प्राप्त होता है। यह जीवन अमूल्य है, लेकिन मनुष्य अपना सारा जीवन भोग-विलास में नष्ट कर देता है। इस प्रकार वह अपने अमूल्य जीवन को निम्न और दूषित इच्छाओं की पूर्ति में ही गंवा देता है। जबकि उसे ज्ञान साधना द्वारा अपने जीवन को सद्कार्यों में ही लगाना चाहिए।

२४७५) जिन लोगों के हृदय में करुणा अर्थात् दया का भाव नहीं है, उन्होंने जीवन के सार तत्व को नष्ट कर दिया है। परमात्मा का आदेश जिसने नहीं माना, उसे सम्मान देने से क्या लाभ है। परमात्मा ने मनुष्य को जीवों पर दया करने का आदेश दिया है। परंतु लोग अपने स्वार्थवश जीवों पर दया नहीं करते। ऐसे क्रूर इंसानों को कभी भी सम्मान नहीं देना चाहिए।

२४७६) जो लोग दूसरे की स्त्री और धन पर लोभ करते हैं अर्थात् कुदृष्टि रखकर उसे पाना चाहते हैं, उनके हृदय में विषय-विकारों का डेरा पड़ जाता है। मन से ऐसे दुष्ट भावों को त्यागकर तथा दुसरों की निंदा न करने का संकल्प लेकर, काम-क्रोध रूपी चंडाल को दूर भगा दो। परायी स्त्री पर और पराए धन पर कभी लोभ न करो और अपने मन से दूषित मनोविकारों तथा हृदय से काम-क्रोध रूपी-चण्डाल को भगा दो और किसी की भी निंदा मत करो।

२४७७) इस संसार में सच्चे बादशाह परमात्मा का नाम ही है। इसीलिए सच्चे भाव को धारण कर सत्य का ही बखान कर। सत्य का पालन करने वाला सदा लाभ में ही रहता है। अत: इस संसार में मनुष्य को सच्चाई का साथ कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

२४७८) वह परमात्मा इतना ऊंचा है कि इन भौतिक आंखों से किसी को दिखाई नहीं देता। परंतु जब सच्चे गुरु ने ज्ञान का दीपक जलाकर उसे दिखाया तो जहां देखा वहां उसी का रूप दिखाई दिया। अर्थात् इस सृष्टि में उसी परमात्मा का सर्वांश निहित है।

२४७९) हे ईश्वर, हे अकाल पुरुष। एक तू ही निर्मल और शुद्ध है। तेरे अतिरिक्त अन्य सभी सांसारिक कर्म पैरों में बंधन डालने वाले हैं। जो प्राणी गुरु में पूरी आस्था रखता है, ईश्वर से लौ लगाने में वही सफल होता है।

२४८०) वह अकाल पुरुष परमात्मा स्वयं ही गुण है और स्वयं ही उन गुणों का बखान करता है। वह स्वयं ही सुविचार है, स्वयं ही रत्न है और स्वयं ही रत्न को परखने वाला जौहरी है और स्वयं ही उस रत्न का मूल्य है। इस संसार में क्षुद्र जीव का कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी अच्छा, भला, बुरा, गुण, अवगुण और अमूल्य धरोहर है, वह सब उसी की है। अत: इस पर अपना अधिकार जताकर

अपना अहंकार प्रकट मत कर।

२४८१) उस परमात्मा राम का नाम तक तू नहीं जानता और मूर्खों की भांति अन्त समय पर पछताता है। इस धरती को धारण करने वाला वह अनन्त ईश्वर धन्य है। वह सभी पदार्थों में अनन्त है, उस परमात्मा की चाहना तूने नहीं की। मूर्ख मनुष्य धन-वैभव को ही सब कुछ समझकर उसका संग्रह करता रहता है और उस अनन्त ऐश्वर्य को देने वाले परमात्मा के नाम को भूले से भी याद नहीं करता और अंत समय आने पर मूर्खों की भांति विलाप करता है। अत: भोग-विलास, धन-सम्पत्ति का मोह छोड़कर परमात्मा का स्मरण कर। क्योंकि वही इस धरती को धारण किए रहता है।

२४८२) यह मनुष्य यदि चारों युग जीए अर्थात् लंबी आयु प्राप्त करे या इससे भी दस गुणी इसकी आयु हो जाए और नवों खण्डों में यह विख्यात हो जाए और सारे लोग उसके साथ चलने लगें। उसका अनुसरण करने लगें, किंतु यदि उसने परमात्मा के प्रति ध्यान नहीं दिया या परमात्मा ने उस पर कृपा नहीं की तो उसका इतना लंबा जीवन और यश व्यर्थ है। लंबी आयु और यश ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती है।

२४८३) दुनिया भर के लोग उसे अच्छा कहें और उसके यश का बखान दुनिया भर में करते फिरें, पर यदि परमात्मा ने उस पर अपनी कृपा दृष्टि नहीं की तो कोई भी उसे पूछने वाला नहीं होगा और न कोई उसकी बात ही सुनेगा। उसका दुनिया में कोई मोल नहीं होगा।

२४८४) जिस व्यक्ति पर ईश्वर की कृपा नहीं है, ऐसा व्यक्ति कीट से भी तुच्छ कीट (कीड़ा) माना जाएगा। दोषी व्यक्ति भी उस पर दोष धरेंगे। वह अकाल पुरुष (परमात्मा) निर्गुणी अर्थात् मूर्ख को भी गुणी अथवा ज्ञानी बना देता है और जो पहले से ही ज्ञानी है उन्हें और भी ज्यादा ज्ञानवान और गुणी बना देता है। परंतु इस संसार में एक भी ऐसा दिखाई नहीं देता जो परमात्मा को गुण दे सके। मनुष्य को गुणों का संग्रह करके ही ईश्वर के गुण कोश में श्रीवृद्धि करनी चाहिए।

२४८५) कर्मों के अनुसार आदमी अपना चोला तो बदल लेता है, किंतु मोक्ष का द्वार उसी की कृपा से खुलता है। मनुष्य। तुम ऐसा जानो कि वह सत्य स्वरूप प्रभु ही सभी कुछ है, जो मनुष्य के कर्मों के अनुसार उसे नया जीवन प्रदान करता है। तू उसी की शरण में जा।

२४८६) संसार में वक्ता तो बहुत हैं, परंतु तत्वज्ञानी नहीं मिलते। जैसे दूध में घी रहता है परंतु उसको मथने पर ही घी निकलता है, इसी प्रकार प्रभु के संबंध में मनन-चिन्तन करने पर ही ज्ञान होता है। बिना मन्थन के कोरे उपदेश करने वाले तो संसार में बहुत हैं पर उनका प्रभाव नहीं पड़ता।

२४८७) ईश्वर संसार के प्रत्येक जीव के अंदर रहता है। मैंने पशु, पक्षी तथा जंगली प्राणी सभी को गुरु बनाया। सबसे कुछ न कुछ सीखा। मैंने अंत में यही जाना कि तीनों लोक पांच तत्वों से बने हैं, तथा सभी में ईश्वर का निवास है। प्रत्येक प्राणी में प्रभु का निवास है।

२४८८) मनुष्य के हृदय में ही ईश्वर का निवास है। जिस प्रकार परछाईं अपने साथ ही रहती है दूर नहीं रहती, इसी प्रकार तुम्हारा प्रिय परमात्मा तुम्हारे पास ही है। तुम उसे आत्मज्ञान द्वारा पहचान लो। जैसे कोई शरीर से अलग करके परछाईं को ढूंढ़ता फिरे तो वह मूर्ख कहलाएगा, इसी प्रकार ईश्वर को बाहर ढूंढना मूर्खता है।

२४८९) मनुष्य को मन का मैल दूर करने के लिए गुरु से शिक्षा लेनी चाहिए। मन से ही मल (बुराइयां) उत्पन्न होते हैं तथा मन से ही मल (बुराइयां) दूर होता है। यदि तुम गुरु और साधु की शिक्षा पर चलोगे तो निर्मल होते चले जाओगे। मन में ही मल उत्पन्न होता है। गुरु और साधुओं की संगति से, उनकी सीख मानने से, उनके आदेश का पालन करने से मन का मैल धुलता है।

२४९०) नाम जप और साधु संग इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। राम का नाम जपने से साधु संगति की रुचि बनती है तथा साधुओं की संगति करने से राम में रुचि पैदा होती है। ये दोनों (साधु संग तथा राम जप) एक ही हैं। यही आरंभ है और यही कार्य है। यदि साधु संगति में रहोगे तो स्वयमेव राम जपोगे। राम जपोगे तो स्वयं ही साधु संग अच्छा लगेगा।

२४९१) ईश्वर के प्रेम से सत्संग अच्छा लगता है तथा सत्संग से ईश प्रेम बढ़ता है। साधु संगति से ईश्वर प्राप्ति होंी है तथा ईश्वर की कृपा से साधु का संग प्राप्त होता है। जो प्रभु से प्रेम करते हैं उन्हें साधु भाते हैं जिन्हें साधु अच्छे लगते हैं वे प्रभुभक्त होते हैं।

२४९२) मन की विषय-वासना के विष को गुरु के बिना कोई नहीं हर सकता। यह मनरूपी सर्प विषय-वासनाओं के विष से भरा हुआ है। लाख चाहते हुए भी यह विष समाप्त नहीं होता। परंतु जब गुरुरुपी गरुड़ मिला तो उसने मन को सर्वथा विषरहित कर दिया। गुरु अपने ज्ञान और प्रेम से शिष्य के विकारों को सहज ही में दूर कर देते हैं।

२४९३) सच्चा साधु मान-बड़ाई की चाह छोड़कर राम को प्यार करता है। मन सदैव पूजा, सम्मान, यश, आदर मांगता है अर्थात् प्रत्येक मनुष्य का मन चाहता है कि लोग उसे पूजें, उसका मान-सम्मान तथा प्रशंसा करें। जो राम को पा लेता है, वह इन सब बातों को छोड़ देता है। वही सच्चा साधु होता है। जो अपनी प्रशंसा की इच्छा छोड़ देता है वही ईश्वर से प्रेम करता है और वही सच्चा साधु है।

२४९४) मन सदैव विषय-भोगों में रमा रहता है, माया में चित्त लगा रहता है। जो संतजन विषय-वासनाओं के आनंद को छोड़कर प्रभु के गुण गाते हैं, केवल वही इस संसार सागर से पार हो सकते हैं। जब वासनाओं में मन रमा रहेगा तो ईश्वर में कैसे लगेगा और कैसे वह इस संसार सागर से पार होगा।

२४९५) मन जब तक विषय-विकारों से ग्रस्त रहता है, तब तक भजन नहीं होता। जब तक मन विषय और विकारों में लगा रहता है तब तक मन में त्रिभुवन के स्वामी तथा तीनों लोकों के दाता प्रभु नहीं आ सकते। प्रभु तो विषय-वासना की गंदगी से रहित साफ मन-मंदिर में ही रहते हैं।

२४९६) विषय-वासनाएं विष की तरह विनाशक होती हैं। हे मनुष्य। तू विषय-वासनाओं के आनंदभोग को त्याग दे, क्योंकि विषय-वासनाओं का विष पीने से दिनोदिन रोग बढ़ता जा रहा है। यदि तूने उक्त विषपान को नहीं त्यागा तो दूख देखते-देखते ही समाप्त हो जाएगा। विषय विकार मनुष्य के मन को भीतर ही भीतर खोखला कर देते हैं और वह धीरे-धीरे समाप्त होता चला जाता है।

२४९७) मनुष्य संसार की मिथ्या काया, मिथ्या माया और मिथ्या परिवार पर घमंड करता रहता है। यह शरीर, यह घर, यह परिवार सब झूठे हैं। अरे मूर्ख मनुष्य। तू इस झूठी धन-दौलत को देखकर क्यों फूला-फूला रहता है ? मनुष्य को झूठी माया पर अभिमान नहीं करना चाहिए। संसार के सब पदार्थ यदि सत्य होते तो अमर होते। यह पूरा संसार ही मायावी और नाशवान है।

२४९८) मनुष्य झूठी माया को छोड़कर सच्चे प्रभु से लौ लगानी चाहिए। हे मनुष्य। तेरा जन्म झूठी माया के साथ लगे-लगे बीत गया। तूने अपना जीवन उस माया के प्रेम में बिताकर व्यर्थ कर दिया जो झूठी है। अब तू इस माया से अपना पीछा छुड़ाने के लिए सच्चे प्रियतम (परमात्मा) से भेंट करने के लिए जितनी जल्दी भाग सकता हो, भाग जा। जब तक भगवान कृपा नहीं करते, मनुष्य माया में लिप्त रहता है।

२४९९) मनुष्य को अपना अमूल्य प्रेम केवल ईश्वर को ही देना चाहिए। हे मनुष्य। अपने मनरूपी माणिक्य को तू सम्हालकर रख ले। हर किसी मनुष्य के हाथ में देता हुआ मत फिर। तू मनुष्यों को प्रेम करके अपने अमूल्य मन को दूसरों को दिए-दिए क्यों फिरता है ? तू किसी सच्चे गुरुरूपी पारखी जौहरी से मिल, जो तुझे राम रूपी सच्चा रत्न दे सकता हो। तू स्वयं भी साधक बनकर राम को प्राप्त कर सकता है। मन को संसार के प्रेम से खाली करेगा तभी तो ईश्वर का वास तेरे भीतर होगा।

२५००) मनुष्य अज्ञानवश अपने जीवनदाता को भूलकर दुनिया को प्रेम करता है। अरे मन। तू दुनिया के पीछे भाग रहा है परंतु उसको भूल गया है, जिसने तुझे पैदा किया है। तू दुनिया को छोड़कर उस मालिक में ध्यान लगा। हे मन। तू दुनिया को छोड़कर अपने पिता राम को प्रेम कर।

२५०१) मनुष्य को संसार से विरक्ति और ईश्वर से आसक्ति करनी चाहिए। हे मनुष्य। तूने काम, क्रोध, लोभ, मोह में अपने मन को लगा रखा है और सच्ची चिंतामणि ईश्वर को भूल गया है। तू व्यर्थ की बातों में अपना जीवन नष्ट करता हुआ भी अभिमान से फूला हुआ है। मनुष्य चाहे तो व्यर्थ के विकारों को छोड़कर सहज ही अमूल्य प्रभुरूपी चिंतामणि मिल सकती है।

२५०२) मुख से केवल राम का नाम रटने से राम नहीं मिलते। केवल मुख से राम-राम कहता रहता है, कहने से काम पूरा नहीं होता। कहने मात्र से राम की प्राप्ति नहीं होगी। राम को तो हृदय से प्रेम करना होगा। हृदय से प्रेम न करके मुख से तोते की तरह नाम जपने से कुछ प्राप्त नहीं होगा।

२५०३) जिस प्रकार अग्नि में भुना हुआ बीज खेत में नही उगता, वैसे ज्ञान की आंच में तपा कर्म भी नि:सत्व हो जाता है और वह जन्म नहीं लेता। हमारा मोह भी बार-बार जन्म लेता है, किन्तु ज्ञानाग्नि में मोह जब भस्म हो जाता है तो कर्म में उठने की क्षमता नहीं होती।

२५०४) ईश्वर तो सच्चे हदय से प्रेम करने वाले को मिलते हैं। हे मनुष्य। यदि तुझे प्रभु को प्राप्त करना है तो तू अपने मन का मैल साफ कर। यदि तेरे हृदय में सच नहीं है तथा बाहर से तू सत्य का पाखंड करता है, तो तुझे ईश्वर की प्राप्ति नहीं होगी। बाहर से दिखावा करने

वाला संसार के लोगों को तो मूर्ख बना सकता है, परंतु ईश्वर को नहीं, वह तो अंतर्यामी है। वह सच्चे प्रेमी को समझ जाते हैं।

२५०५) मनुष्यों को सबको छोड़कर एकमात्र ईश्वर को ही भजना चाहिए। मनुष्य यदि तू समझ सके तो मैं कहता हूं कि परमात्मा ही केवल सत्य है। यदि तू छापे तिलक और साधु वेश बनाकर भूत-प्रेत आदि की पूजा करता फिरेगा तो कोई लाभ नहीं है। तू डाल-पातों को छोड़कर मूल परमात्मा को पकड़, क्योंकि मनुष्य जिसकी पूजा करता है, अंत में उसी को प्राप्त होता है।

२५०६) मिथ्याडंबर से नहीं, सच्ची भक्ति से ईश्वर मिलता है। जिस स्त्री के मन में पति के प्रति प्रेम नहीं है, चाहे वह कितना ही श्रृंगार क्यों न करे, पति उसे नहीं मानेगा। इसी प्रकार जिस मनुष्य को आत्मज्ञान नहीं है, जो आत्मा में रत नहीं है, जिसने आत्मदर्शन की साधना नहीं की है, चाहे वह कितने ही वेश बनाए, आडंबर दिखाए, प्रभु का प्रेम उसे नहीं मिलेगा। अत: जिसे सचमुच ईश्वर को पाना हो, उसे आत्मचिंतन, आत्मदर्शन, ध्यान, तप आदि में अपने को लगाना चाहिए।

२५०७) जिसका मन राम में लगा रहता है, उसे संसार के दुख नहीं व्यापते। यदि शरीर संसार में रहे और आत्मा ईश्वर के पास रहे। मन ईश्वर के ध्यान में लगा रहे तो संसार का कोई भी दुख और भय मनुष्य को परेशान नहीं करता। ईश्वर के प्रेम का नशा ऐसा प्रबल होता है जिसमें संसार का कोई दुख अनुभव नहीं होता।

२५०८) मनुष्य व्यर्थ ही स्वयं को कर्ता समझता रहता है। हे मनुष्य। तेरे करने से कुछ नहीं होगा। तू व्यर्थ ही दुखी होता रहता है। संसार में धीरे-धीरे वही होता जाता है, जो ईश्वर ने रच रखा है। व्याकुल होने से क्या लाभ ? होना वही है जो ईश्वर की इच्छा है।

२५०९) जागरूक तथा सावधान व्यक्ति को किसी भी प्रकार के भय की आशंका नही रहती। प्राय: रोग, शत्रु, तथा चोर डाकू आदि असावधान और सोते व्यक्ति पर ही आघात करते है। जागते को देख कर तो सभी भाग जाते है। अर्थात उद्योग, समृद्धि का, तप-पाप नाश का, मौन शान्ति का तथा सावधानी-भय से बचने के लिये तय किये हुये निश्चित माध्यम है।

२५१०) मनुष्य को ईश्वर के दिए हुए दुख-सुख को समान समझना चाहिए। जो हमें प्रिय है, वह मधुर लगता है। उस प्रिय का दिया हुआ सब कुछ अच्छा लगता है। यदि वह विष भी दे तो कड़वा नहीं लगता। वह अमृत सा ही लगता है। इसी प्रकार प्रभु यदि हमें दुखरूपी विष भी देता है तो हमें उसे सुखरूपी अमृत की तरह प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए। यदि हम उसके दिए हुए दुख को भी आनंद से लेंगे तो वह सुख ही बन जाएगा।

२५११) मनुष्य का जीवन क्षण-क्षण क्षीण होता जाता है। मृत्यु ने हमारा हाथ पकड़ रखा है और वह निरंतन हमें अपनी ओर खींच रही है। फिर भी हम सावधान नहीं होते। अज्ञान की निद्रा में सोते हुए सारा जीवन बिता रहे हैं। हमें सावधान होकर ईश्वर चिंतन में लग जाना चाहिए।

२५१२) ईश्वर का ही अंश प्रत्येक प्राणी की आत्मा में है। हे मनुष्य। तू किससे शत्रुता कर रहा है ? पराया तो कोई भी नहीं है। जिस परमात्मा के अंग से तू उत्पन्न हुआ है, वही तो सबके अंदर निवास करता है। ईश्वर का अंश होने से सभी तेरे अपने हैं, इसलिए सबसे प्रेम कर।

२५१३) जो दूसरों को भी अपना मानता है, उसे दुख नहीं होता। जो व्यक्ति अपने समान ही दूसरों को भी देखता है, वह दुख नहीं पाता। जो दूसरों को पराया न समझकर अपने आप की तरह ही सबसे प्रेम करता है तो उसे दुख नहीं होता। उसे तो दूसरों के दुख में दुख और सुख में सुख का अनुभव होता है।

२५१४) संसार में सारा दुख अपने-पराए के अनुभव से ही है। सबको समान मानो चाहे वो हाथी हो या चींटी। यदि तुम अपने आपका अभिमान छोड़ दोगे तो सारी दुविधा दूर हो जाएगी। यदि अहंकार छोड़कर सबको समान रूप से अपना समझोगे तो सारी कठिनाई और द्वंद्व समाप्त हो जाएगा।

२५१५) मनुष्य को अजर, अमर, परमात्मा को ही साथी बनाना चाहिए। हमें उसे अपना साथी बनाना चाहिए जो अजर और अमर है। ईश्वर से प्रेम करना चाहिए, क्योंकि न तो वह मरता है न बिछुड़ता है। वह तो हमारे हृदय में ही निवास करता है। इसलिए उससे बिछुड़ने का दुख हमें भोगना नहीं पड़ेगा। जन्म लेने वाले और मरने वाले सांसारिक लोगों से प्रेम करके तो एक दिन वियोग का दुख भोगना ही पड़ेगा।

२५१६) जिस घर में साधुओं की निंदा होती है, वह घर मूल सहित नष्ट हो जाता है। उसकी नींव, नाम, स्थान यहां तक कि धूल भी नहीं रहती। उदाहरण के तौर पर रावण, कंस, दुर्योधन आदि को सामने रखा जा सकता है, जिन्होंने साधुओं पर अत्याचार किए, जिससे

उनका वंश ही समाप्त हो गया।

२५१७) कलियुग मे दस हजार व्यतीत होने पर भगवान विष्णु पृथ्वी को त्याग देते है पांच हजार वर्ष व्यतीत होने पर गंगाजल पृथ्वी को छोड देता है और ढाई हजार वर्ष व्यतीत होने पर ग्राम देवता ग्राम या पृथ्वी का त्याग कर देते है।

२५१८) मनुष्य को पूरी तरह ईश्वर को आत्मसमर्पण कर देना चाहिए। जिसने अपना सिर (अहंकार, जीवन) राम के चरणों में अर्पित कर दिया उसी पर राम ने रक्षा का हाथ रख दिया। वह व्यक्ति ईश्वर के ऋण से भी मुक्त हो जाता है, क्योंकि उसी ने जीवन दिया था उसी को वो सौंप देता है, जो व्यक्ति स्वयं को प्रभु को सौंप देता है, प्रभु फिर उसका सारा दायित्व अपने ऊपर ले लेते हैं। प्रभु के ऋण से उऋण होने के लिए उनका दिया जीवन उन्हीं को सौंप देना चाहिए।

२५१९) यह संसार स्वप्न की भांति झूठा है। जिस प्रकार स्वप्न में जो कुछ देखते हैं वह सब सत्य लगता है, परंतु जागने पर कुछ भी नहीं होता। उसी प्रकार यह संसार है। जब मन में ज्ञान उत्पन्न होता है तो समझ में आता है कि जिस संसार को हम सत्य समझकर उसमें लिप्त थे, वह तो नितांत असत्य है।

२५२०) संसार का सारा कार्य-कलाप ईश्वर की इच्छा से चलता है। हे प्राणी। उस प्रियतम परमात्मा को जो कुछ करना था, वह उसने कर दिया। जो होना था, वही हो रहा है। परमात्मा की इच्छा के बिना न पल बढ़ सकता है न क्षण भर भी घट सकता है। प्रत्येक प्राणी की जीवन सीमा भी उसने निश्चित निर्धारित की है, जिसे क्षण भर भी घटाया और बढ़ाया नहीं जा सकता। जब तक वो चाहेगा तब तक प्राणी जी सकता है अन्यथा एक पल भी जीना असंभव है।

२५२१) संसार में जो कुछ भी हो रहा है, वह सब ईश इच्छा के अधीन है। हे मनुष्य। जो कुछ परमात्मा ने रचा है, वही होगा। तू स्वयं को कर्ता मत समझ। तू तो प्रभु की शरण में रहकर उसके द्वारा रचित संसार के क्रिया-कलाप का तमाशा देखता रह। तू कुछ भी करने का अहंकार मन में मत पाल।

२५२२) संसार के सारे कार्य प्रभु ही करता है अन्य कोई नहीं। हे मनुष्य। कर्म करने वाला तू या मैं नहीं हैं वरन् कर्ता तो कोई और अर्थात् ईश्वर है। जो कर्ता है वही करेगा। तू कर्ता मत बन अर्थात् तू व्यर्थ ही कर्ता बनने का अहंकार मत कर। जब तक भगवान नहीं चाहेगा, तू कुछ भी नहीं कर सकेगा।

२५२३) जीवन की क्षणभंगुरता सोचकर सत्कर्म करते रहना चाहिए। जीवन के जो दिन चले जाते हैं, वे फिर वापस नहीं आते। धीरे-धीरे मनुष्य के मुख की कांति घटती जाती है तथा तन क्षीण होता जाता है। अब अंत समय निकट आ गया है। तू सत्कर्मों में ढील मत कर अर्थात् अच्छे कार्यों में लग जा। जीवन के प्रत्येक पल का मूल्य समझकर मनुष्य को उसका पुण्य कर्मों में सदुपयोग करते रहना चाहिए।

२५२४) मनुष्य को प्रतिपल मृत्यु को सामने रखकर जीना चाहिए। अरे मन। तू गाफिल होकर संसार में रम रहा है। अरे मूर्ख। तू उस दिन को भूल गया है जब तुझे पांव पसारकर सोना होगा। तू अपनी मृत्यु को प्राप्त होगा। अत: मृत्यु का ध्यान कर तू सांसारिक कार्यों से विरक्ति ला और सत्कार्यों की ओर प्रवृत्ति उत्पन्न कर।

२५२५) नित्य धन का लाभ, आरोग्यता, प्रियतमा और मधुर भाषिणी पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और धन अर्जित कराने वाली विद्या ये विश्व मे ६ सुख है।

२५२६) मेरा प्रियतम परमात्मा तो मेरे अंदर ही निवास करता है। यदि गुरु अज्ञान के परदे को हटा दे तो आत्मा को प्रकट रूप में देखकर परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। आत्मा के द्वारा ही परमात्मा से महामिलन हो सकता है। माया और अज्ञान के परदे से ही ज्योतिपुंज परमात्मा छिपा रहता है।

२५२७) दसों दिशाओं में जल से भरा हुआ सरोवर है, फिर भी पक्षी प्यासा ही घूमता रहता है। जब उसे कोई बता देता है कि अमुक स्थान पर पानी है, तभी वह पानी पीता है। इसी प्रकार संसार में चारों तरफ ज्ञान और भक्ति का भंडार भरा पड़ा है। परंतु जब तक मनुष्य पर गुरु की कृपा नहीं होती, वह अतृप्त ही भटकता फिरता रहता है।

२५२८) जब मनुष्य को सच्चा गुरु मिल जाता है तो वह सत्य परमात्मा के दर्शन करा देता है और फिर सच्ची आत्मा से सच्चे परमात्मा का मिलन हो जाता है। परिणामत: सच्ची आत्मा सच्चे परमात्मा में ही समा जाती है अर्थात् तद्रूप हो जाती है।

२५२९) संसार में सभी लोग अपने-अपने स्वार्थ के कारण मनुष्य को प्रेम करते हैं। कोई भी उसके जीवन को उसके प्रेम के कारण प्यार नहीं करता। इस कलियुग में यदि अपना कोई सगा है, तो केवल राम या साधु सगे हैं। साधु क्योंकि मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति की ओर लगाता है, इसलिए वही अपना है और प्रभु तो हैं ही सबसे अधिक नि:स्वार्थ संबंधी।

२५३०) जब ईश्वर ही समस्त संसार रूपी सृष्टि का पालन-पोषण कर रहा है तो मुझे अपने जीवन मे किस बात की चिन्ता होनी चाहिये। यदि परमेश्वर इस जगत का पालनहार न होता तो शिशु के जन्म लेते ही मां के स्तनों मे दूध कैसे आजाता। हे यदुपते, हे लक्ष्मीपते: त्रिभुवन के स्वामी आपके सृष्टि पोषक होने पर विश्वास करते हुये मै आपके चरण कमलों की सेवा मे अपना सर्वस्व जीवन समर्पित करता हूँ। मै आपकी सेवा मे सारा समय व्यतीत करता हूँ। मुझे पूरा भरोसा है कि मेरा भी यथोचित पालन-पोषण ईश्वर करेगा।

२५३१) यह जगत् दुख का दरिया है तथा राम सुख के समुद्र हैं। इसलिए हमें इस व्यर्थ के दुख के दरिया को छोड़कर सुखसागर ईश्वर के पास चले जाना चाहिए। जब हमें पता है कि संसार में दुख ही दुख है तो हम व्यर्थ ही क्यों इस संसार के जंजाल में उलझे रहें ?

२५३२) जैसे दूध में जल मिलकर दूध ही बन जाता है, पानी में नमक मिलकर पानी ही बन जाता है, इसी प्रकार अरे मनुष्य। तू अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ एकाकार करने के लिए अपने मन को क्यों नहीं साधता ? तू तप साधना द्वारा ईश्वर प्राप्ति के प्रयास में लग जा।

२५३३) परमात्मा से बिछुड़ी हुई आत्मा रात-दिन उसके वियोग की आग में झुलसती हुई रोती रहती है, परंतु प्रियतम नहीं मिलता। क्योंकि जब अवसर था तब तो उससे प्रेम किया नहीं, अब अवसर जाने पर तो पछताने के अलावा कोई उपाय शेष नहीं है। शरीर में जान रहते-रहते, युवावस्था में ईश्वर का भजन करने से सहज ही उसकी प्राप्ति हो जाती है, नहीं तो बाद में पश्चात्ताप के आंसू ही बहाते रहना पड़ सकता है।

२५३४) मालिक प्रभु मुख से बोलता ही नहीं, मौन रहता है, इसलिए सेवक उदास घूमता रहता है। यह पीड़ा उसके मन को दुखी करती रहती है। भक्त को अपने प्रियतम का सामीप्य ही सबसे बड़ा लगता है। जब तक वह अपने प्रिय से दूर रहता है, तब तक संसार के सारे सुख बेकार लगते हैं। उसे तो अपने प्रभु की कृपा में ही सच्चे आनंद की अनुभूति होती है। उसे यदि एक बार उसके ठाकुर दर्शन देकर मधुर वाणी में कुछ कह दें, तो वह फूला नहीं समाता।

२५३५) जैसे नशा करने वाले अमली (अफीमची) के लिए अमल अर्थात् अफीम है। उसमें उसकी रुचि रहती है, वैसे ही शूरवीर को युद्ध करना ही प्रिय होता है। निर्धन को जैसे धन से ही प्रेम रहता है। जैसे नशेबाज के हृदय में नशा, वीर के हृदय में युद्ध, निर्धन के हृदय में धन रहता है, उसी प्रकार भक्त के हृदय में राम रहते हैं।

२५३६) जैसे चातक के हृदय में जल, मछली के हृदय में भी जल तथा चकोर के हृदय में चंद्रमा का प्रेम रहता है, उसी प्रकार भक्त के हृदय में ईश्वर प्रेम रहता है। जैसे चातक स्वाति नक्षत्र की बूंद के बिना, मछली पानी के बिना तथा चकोर चन्द्रमा के बिना व्याकुल रहता है, उसी प्रकार भक्त प्रभु के बिना बेचैन रहता है।

२५३७) जैसे भौंरा सुगंध का लोभी होता है, हिरण नाद का प्रेमी होता है तथा पतंगा दीपक की ज्योति को प्यार करता है, ऐसे ही मेरा मन राम में रमा रहता है।

२५३८) जिस प्रकार कानों को सुंदर ध्वनि अच्छी लगती है, आंखों को सुंदर रूप अच्छा लगता है तथा जिह्वा को स्वाद से प्रेम होता है, उसी प्रकार भक्त को एक अनुपम ईश्वर से अनन्य प्रेम है।

२५३९) सारे संसार के सामान्य लोग आनंदपूर्वक सुख-चैन की नींद सोते हैं, परंतु साधु को पल भर भी परमात्मा के बिना इस संसार में सुख नहीं मिलता।

२५४०) जिसको चोट लगी है, जो घायल है वो वेदना के कारण चीखता-पुकारता रहता है, क्योंकि उसके शरीर की पीड़ा उसे बार-बार सालती रहती है। इसी प्रकार भक्त को अपने प्रिय प्रभु के वियोग की वेदना कचोटती रहती है। उन्हें एक पल भी चैन से नहीं रहने देती।

२५४१) जिसे एक से सच्चा प्रेम होता है वह अन्य को कुछ नहीं समझता। उसके लिए तो उसका एक प्रिय ही सर्वस्व होता है। उसे दूसरों से क्या लेना-देना।

२५४२) हमारा यह मन कागज की पतंग की तरह ऊंचा-ऊंचा आकाश तक उड़ता रहता है। जब परमात्मा के पावन प्रेमजल में भीग जाता है तभी यह हमारे पास आता है। जैसे पतंग वर्षा के जल से भीगकर बोझिल होकर वापस आ जाती है।

२५४३) जिसका प्रेम और ध्यान जहां लग जाता है, उसे वहीं आनंद आता है। जिसको सांसारिक माया-मोह अच्छा लगता है, उसे वहीं सुख मिलता है तथा जिसे आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और राम से प्रेम होता है, उसे उसी में अच्छा लगता है।

२५४४) सब कुछ मन से ही होता है। मन ही में तो माया उत्पन्न होती है। माया का मोह पैदा होता है और ज्ञान होने पर मन से ही माया चली जाती है। माया का आकर्षण समाप्त हो जाता है। मन में ही राम का प्रेम उत्पन्न होने पर राम से मन लग जाता है तथा पूर्णता आने पर मन ही राम के साथ तद्रूप हो जाता है। मन और ईश्वर एक हो जाते हैं।

२५४५) माया अति शक्तिशाली है। माया के बल को देखकर मनुष्य मद में अंधा हो जाता है। उसकी आंखों के आगे ऐसा मोटा परदा पड़ जाता है कि वह संसार के स्रष्टा ईश्वर को भी देख नहीं पाता, उसे विस्मृत कर बैठता है।

२५४६) जो मक्खन की तरह कोमल हृदय था, माया के प्रभाव में आने पर पत्थर की भांति कठोर हो गया और जो पत्थर की तरह कठोर मन था, राम के रस को चखने से मक्खन की तरह कोमल हो गया। धन-दौलत वाले लोगों का मन निर्धनों की पीड़ा को देखकर भी कठोरता के कारण द्रवित नहीं होता। रामभक्तों का हृदय दुष्टों की दुष्टता को देखकर भी प्रतिशोध नहीं करता।

२५४७) मैले कपडे पहनने वाला, दांत साफ न करने वाला, अति भोजन करने वाला, कठोर भाषण करने वाला, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सोने वाला व्यक्ति चाहे विष्णु भगवान ही क्यो न हो तो भी लक्ष्मी उसका साथ छोड जायेगी। अर्थात गृहस्थ व्यक्ति को हर कर्म मे सावधान रहना चाहिये। मैले वस्त्रों और शरीर की अशुद्धता से स्वास्थ्य बिगडता है। अति भोजन से रोग, आलस्य और तमोगुण के विकार बढते है। कठोर और निन्दायुक्त भाषण से अनावश्यक शत्रु उत्पन्न होते है।

२५४८) कितने ही ज्ञानी, पंडित, वेद-पुराणों और अन्य धर्मग्रंथों को पढ़-पढ़कर मर गए। यहां तक कि कितने ही ब्रह्माओं ने परमात्मा के संबंध में बताया। अंत में यही निष्कर्ष निकला कि राम के समान कोई नहीं है।

२५४९) जब किसी के पास विद्या रूपी धन है तो उसे सभी धन प्राप्त होते है, सभी धनों मे विद्या रूपी धन ही सबसे बडा धन है। यदि धनवान होते हुये भी किसी के पास विद्या रूपी धन नही है तो उसे दीन ही समझना चाहिये। जो मनुष्य धन से तो दरिद्र है लेकिन विद्या उसके पास है तो वह धनी ही है। तुच्छता और हीनता का आधार धन हीनता न होकर विद्या हीनता है। मनुष्य को धन की अपेक्षा विद्या अर्जित करने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये क्योकि विद्याहीन व्यक्ति धन को भी गवां देता है जबकि विद्वान अपनी विद्या शक्ति से पर्याप्त धन एकत्रित कर सकता है।

२५५०) इस संसार में सत्गुरु तो कम हैं, लेकिन कपटी वेषधारी साधु बहुत हैं, जो मनुष्य को भ्रम में डालते रहते हैं। जब मनुष्य को सच्चा गुरु मिल जाता है तो वह स्वयं ही परमात्मा बन जाता है।

२५५१) संसार में चारों तरफ झूठे और अंधे, कपटी गुरुओं की भरमार है, जो विषय-वासनाओं में स्वयं बंधे हुए हैं। सच्चे गुरु के मिलने पर साक्षात् ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं।

२५५२) परमात्मा की प्राप्ति के लिए आत्मा में तड़प होनी अनिवार्य है। मेरे मन में प्रभु से मिलने की पीड़ा पैदा नहीं हुई, इसीलिए मैंने उसको पुकारा भी नहीं। फिर मुझे वो कैसे मिलता ? बिना विरह-वेदना, पुकार के जीवन व्यर्थ ही बीत गया और प्रभु मिलन नहीं हो सका।

२५५३) वेषभूषा तो साधुओं की पहन ली परंतु मन को वश में नहीं किया, ऐसे लोगों पर प्रभु कृपा नहीं करते। जो मन से फकीर बन जाते हैं, परमात्मा उनके साथ रहते हैं। यदि प्रभु की कृपा चाहते हो तो साधु का वेश बनाने की अपेक्षा मन को वश में करो।

२५५४) जो लोग किसी के शरीर की सुंदरता देखकर उस पर मुग्ध हो जाते हैं, सुंदर शरीर वाले से प्रेम करने लगते हैं, सुंदर शरीर से प्रेम मत कर, क्योंकि इस खाल से ढके शरीर में मांस, खून, मज्जा, हड्डी आदि भरे हुए हैं। यदि यह खाल से ढका हुआ न होता तो जीते जी ही कौए इसे नोच-नोचकर खा जाते।

२५५५) यह शरीर अपना नहीं है यह मेरी समझ में आ गया है। अरे मन। तू अभी से इस शरीर को छोड़ दे, नहीं तो अंत में यह शरीर तुझे छोड़ेगा। हमें तन को अपना नहीं मानना चाहिए, क्योंकि यह नाशवान है। हमें इस शरीर का मोह इसकी इच्छाओं की पूर्ति करना

छोड़ देना चाहिए। यदि हम जीते जी समय रहते इसका मोह नहीं त्यागेंगे तो समय आने पर जब मृत्यु लेने आएगी तो बड़ा कष्ट होगा। यदि किसी अन्य शरीर को प्रेम करेंगे तो उसकी मृत्यु पर दुख होगा।

२५५६) प्रत्येक व्यक्ति प्रभुता के लिए मरता है, प्रभु को कोई प्यार नहीं करता। यदि मनुष्य प्रभु को प्रेम करने लगे तो प्रभुता तो स्वयं उसकी दासी बनकर सेवा करने लगे अर्थात् प्रभु की ही तो प्रभुता है। यदि प्रभु के लिए तुम अपना तन, मन, धन न्योछावर कर दोगे तो प्रभु अपनी प्रभुता क्या तुम पर नहीं वार देंगे ?

२५५७) एकनिष्ठ प्रभु पर विश्वास रखने वाले संत अपना सब कुछ उन्हीं के चरणों में सौंपकर निर्द्वन्द्व और निश्चिंत हो जाते हैं। अजगर क्या किसी की नौकरी करता है ? पक्षी क्या किसी का काम करते हैं। अजगर और पक्षियों को राम भोजन देता है, वह हमें क्या भूखा रखेगा ? राम के भरोसे पर रहने वालों का वो स्वयं ध्यान रखता है। सारी सृष्टि उसी ने रची है। वही सबके खाने-पीने और जीने का प्रबंध करता है। मनुष्य अज्ञानवश स्वयं को कर्ता समझता है।

२५५८) यह जीवन पानी से चुपड़ी रोटी से समान है। उस गली हुई रोटी के समान है, जो भीगने के बाद हो जाती है। यह कभी भी नष्ट हो सकती है। इस जीवन में एक दया भाव ही इस संसार का सार है। जिन लोगों ने अपनी आत्मा को पहचानकर समस्त जीवों पर दया भाव रखना प्रारंभ कर दिया है, ईश्वर उनका ही बेड़ा पार लगाता है। उन्हें ही मुक्ति प्राप्त होती है।

२५५९) जहां पर अथवा जिस घर में राम नाम का उल्लेख रंच मात्र भी न लिया जाता हो, वहां पानी तक नहीं पीना चाहिए। चाहे घर हो या परदेश। जहां पर ईश्वर के प्रति आस्था न हो, उस जगह का पानी भी नहीं पीना चाहिए।

२५६०) जिस घर में राम के नाम को जान लिया है, उसी घर में सुपुत्रों का जन्म होता है। राम नाम के भजन बिना दुष्ट कौवा कुपुत्र की भांति इधर-उधर भागता फिरता है।

२५६१) जब से हमने हरि अर्थात् भगवान का सहारा लिया है, तब से हम पैर फैलाकर सुख की नींद सोते हैं और भ्रम की पोटली हमने उठाकर फेंक दी है।

२५६२) जिन लोगों ने अपने जीवन में विषय-वासनाओं पर अंकुश लगाकर नियम से जीव मात्र के प्रति प्रेम करना प्रारंभ नहीं किया और उस परम पिता परमात्मा की भक्ति को अपने हृदय में नहीं जागृत किया, वे मोह से भरी धूल से अंधे हो जाते हैं।

२५६३) प्रेम करना साधारण कर्म नहीं है। प्रेम का प्याला बड़ा कठिन है। जो इस प्याले को ईश्वर के हाथों से पी लेता है, वह चारों युगों में जीवित रहता है और जीते जी इस भवसागर के पार उतरता है। हृदय में प्राणिमात्र के प्रति प्रेम भाव कठिनता से ही उत्पन्न होता है। परंतु जिनके हृदय में ईश्वर की कृपा से प्रेम का जन्म हो जाता है, वे युग-युगों तक यशस्वी होते हैं और जीते जी ही इस भवसागर के पार उतर जाते हैं अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

२५६४) जो पुत्र अपने हृदय में ईश्वर के प्रति भक्तिभाव रखता है, वह वृद्धावस्था और मृत्यु के फंदे से छूट जाता है, उसका नाम न तो कभी क्षीण होता है न लोग उसे भूला पाते हैं। वह अमर हो जाता है। जीवन-मृत्यु का प्रभाव उसके नाम पर नहीं पड़ता।

२५६५) यदि तुम्हारे हृदय में प्राणिमात्र के प्रति दया भाव अथवा प्रेम उत्पन्न हो गया है तो उसे बार-बार कहकर मत सुनाओ, क्योंकि वह अन्तर्यामी परमात्मा, जो तुम्हारे हृदय में बैठा है, तुम्हारे हृदय के भाव को अच्छी तरह जानता है कि तुम्हारे हृदय में क्या है।

२५६६) परमात्मा का स्मरण दिखावा करके मत कीजिए। मन ही मन में ईश्वर की आराधना ऐसे कीजिए कि दूसरा तुम्हारे ओठों को भी फड़कता हुआ न देख सके। प्रेम को सदैव गुप्त ही रखना चाहिए। किसी पर प्रकट मत कीजिए। प्रकट करने से उसकी गहनता नष्ट हो जाती है।

२५६७) गाय बछड़े के पीछे-पीछे घूमती रहती है। जहां-जहां बछड़ा जाता है, गाय भी वहां जाती है। इसी प्रकार जीव के साथ परमात्मा सदैव लगा रहता है, क्योंकि वह उसके हृदय में ही निवास करता है। इसी प्रकार जहां संतजनों का वास हो अर्थात् जहां सत्संगति हो, वहां-वहां मनुष्य को जाना चाहिए। सत्संगति में ही सद्विचारों का वास होता है और सद्विचारों से जीवन पवित्र होता है।

२५६८) विद्याध्ययन करने वाले व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उसे काम, विषय चिन्तन, क्रोध, लोभ (धन प्राप्ति की इच्छा), स्वाद जिव्हा को प्रिय लगने वाले पदार्थों का सेवन, श्रृंगार (सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग, सजना धजना),

कौतुक खेल तमाशे (सिनेमा, टी व्ही इत्यादि) अतिनिद्रा (बहुत अधिक सोना) और अति सेवा (किसी दूसरे की बहुत अधिक सेवा चाकरी करना) इन सब बातों का त्याग कर देना चाहिये।

२५६९) दुष्ट व्यक्ति सर्प से भी अधिक निष्ठुर होता है। सर्प को तो तन्त्र मन्त्र तथा औषधि से वश मे किया जा सकता है, लेकिन दुष्ट के काटे का तो कोई इलाज नही है। इसलिये दुष्ट का साथ कभी नहीं करना चाहिये। दुष्ट से दूरी रखना ही उसके विष से बचने का एक मात्र उपाय है।

२५७०) मैं तो न माला फेरता हूं, न हाथ जोड़ता हूं, न अपने मुख से राम का नाम लेता हूं, हरि अर्थात् ईश्वर का स्मरण तो मेरा हृदय करता रहता है। मैं तो सारे दिन आराम करता हूं। जिसके हृदय में राम होते हैं, उन्हें किसी दिखावे की जरूरत नहीं होती।

२५७१) साधुरूपी सरोवर में रामरूपी जल है। राग-द्वेष कुछ नहीं है। जो प्रेम के साथ इस जल को पीता है वही तृप्त हो जाता है। साधु की संगति में जाकर, राम सान्निध्य का रस पीने को मिलता है। राम के रस को पीकर जीवन को ऐसा आनंद प्राप्त हो जाता है, जो अमर होता है।

२५७२) साधु लोगों के लक्षण एक से ही होते हैं। चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। उनका लक्षण यही है कि वे निष्कपट और निष्पक्ष होते हैं। वे बाहर-भीतर से एक होते हैं। सज्जन गृहस्थ हो या विरक्त, उनके मन में जो होता है, वही उनके कार्यों में, व्यवहार में दिखाई देता है। वे मन में कुछ, बाहर कुछ व्यवहार नहीं करते। वे किसी से छल-छद्म नहीं करते तथा वे किसी से पक्षपात भी नहीं करते। उनका सबसे समान व्यवहार होता है।

२५७३) साधु का रहना और करना एक सा होता है। वह तो सदा राम के ध्यान में लीन रहता है। उसे बाहर के ज्ञान से कोई मतलब नहीं है। उसके भीतर आत्मज्ञान होता है अर्थात् साधु की कथनी और करनी में अंतर नहीं होता। वह मन में जैसा सोचता है जीवन में भी वैसा ही व्यवहार करता है। उसे संसार की बातों से कोई सरोकार नहीं होता। वो तो अपने अंदर आत्मा के दर्शन करने के लिए साधना में रत रहता हुआ एकनिष्ठतापूर्वक राम का ध्यान करता रहता है।

२५७४) साधु की संगति करने से आसानी से वंश पलट जाता है। हंस की भांति कीड़े खाना छोड़कर मोती चुगने लगता है। इस प्रकार वह कौए से हंस बन जाता है अर्थात् सत्संगति में बैठकर नीच प्रकृति का व्यक्ति भी सज्जन बनकर अपने वंश का उद्धार कर देता है।

२५७५) सच्चे साधु की संगति यदि कोई कर लेता है तो उसे ही उस संगति के सुख का अनुभव होता है, अन्यको नहीं। सत्संगति में वही बैठता है, जिसे अपने जीवन को सार्थक करना होता है। सत्संगति में बैठकर मनुष्य सत्कर्म करता है, सत्कर्म करने से व्यक्ति को अमर आनंद मिलता है तथा उसका जीवन भी गौरवमय हो जाता है।

२५७६) यह सारा संसार अज्ञान की निद्रा में सो रहा है, कोई जागता नहीं अर्थात् सावधान नहीं होता। जो जागता है वह फिर जागा ही रहे तो उसे जागा हुआ कहते हैं। अर्थात् जिसे संसार की नश्वरता का ज्ञान हो जाए उसे फिर मोह की नींद में सोना नहीं चाहिए, जागे ही रहना चाहिए।

२५७७) यह सारा संसार सपने की तरह झूठे है। जैसे सपने में जागना महसूस होता है परंतु जागना नहीं होता, ऐसा ही संसार सच्चा लगता है, परंतु होता झूठ है अर्थात् संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है, नाशवान है फिर भी मनुष्य अज्ञानवश उसे सत्य और अमर माने रहता है। जैसे सोते समय, मनुष्य सपने को ही सत्य समझता है, किंतु जब तक सपना नहीं टूटता तब तक सपना सत्य ही लगता रहता है। इसी तरह जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक संसार के मिथ्या होने का ज्ञान भी नहीं होता।

२५७८) जिसको ज्ञान की प्यास हो उसी को ज्ञान का उपदेश देना चाहिए। यदि बिना चाह के किसी को उपदेश दिया जाता है तो वह उसे व्यर्थ की बकवास ही समझता है अर्थात् वह उस उपदेश का सम्मान नहीं करता।

२५७९) किसी अन्य धर्म के पालन से न तो मन की शंका का समाधान ही होता है और न हृदय की पीड़ा ही नष्ट होती है। बस राम का नाम जपता रह। राम का नाम ही सभी धर्मों का सार है।

२५८०) रोज-रोज घर के दुख सहने पड़ते हैं, जिसमें अनेक कठिनाइयां हैं। जिस शरीर में बीमारी लग जाए उस शरीर को छोड़ देना चाहिए। घर की तो बात ही क्या। मनुष्य बड़ी-बड़ी बाधाओं के होते हुए भी संसार से मोह करता है। जहां कठिनाइयां हों, उससे प्रेम

करने से कोई लाभ नहीं है।

२५८१) जैसे चतुर भटियारी यात्रियों की आपस में लड़ाई करवाकर स्वयं लाभ उठाती है, उसी प्रकार संसाररूपी सराय के प्राणीरूपी यात्रियों को आपस में लड़वाकर माया लाभ उठाती है अर्थात् लोग माया (धन) के लोभ में पड़कर आपस में शत्रु बन जाते हैं।

२५८२) जिस तरह भी अब तक का जीवन बिताया, बिता दिया, अब थोड़ा सा जीवन बचा है। अरे मनुष्य। अब तो सावधान हो जा। अब तू सत्संग के बिना अपनी शेष आयु को नष्ट मत कर।

२५८३) जहां अधिक सयानापन अर्थात् चालाकी होती है, वहीं बुद्धि दुख की खान होती है। सबसे अधिक आनंद तो प्रेम में पागल होने में है अर्थात् प्रेम में बुद्धि की चातुरी कुछ काम नहीं आती, प्रेम में तो प्रिय के प्रति पागल होना पड़ता है, दीवाना होना पड़ता है और उस दीवानेपन में जो मस्ती, जो आनंद है वह बुद्धि की चतुराई में कहां ?

२५८४) संख्या में अधिक होने से क्या लाभ ? यदि उन लोगों में बुद्धि न हो फिर तो वे दुख का कारण ही बन सकते हैं। स्वामी के पास अनेक मनुष्य होते हैं, जैसे दीपक की लौ पर अनेक कीड़े होते हैं।

२५८५) इस संसार मे मानव प्रवृति की तरह सभी वस्तुओं के निर्मल शुद्ध होने की विधि भी अलग-अलग है। कांसे का बर्तन राख से मांजने पर चमक उठता है। ताम्बे का पात्र इमली के पानी से धोने से निर्मल हो जाता है। स्त्री की देह रजस्वला होने के पश्चात स्वच्छ हो जाती है। शास्त्रों के अनुसार रजोदर्शन के उपरान्त स्नान से शुद्ध स्त्री ही सम्भोग और गर्भधारण के योग्य हो जाती है। यह स्त्री की वास्तविकता शुद्धि (पवित्रता) है। नदी का पानी भी तेज धारा मे वहने के बाद स्वच्छ हो जाता है।

२५८६) संसाररूपी सागर के प्रवाह पर मनुष्य का कोई वश नहीं चलता। जैसे कोसी नदी में नीचे सिर और ऊपर पांव हो जाते हैं। सब कुछ उलट-पलट हो जाता है।

२५८७) निंदक हर समय सतर्क और चालाक होते हैं। नाखून से शिखा तक उनमें सयानापन भरा होता है। ऐसे लोगों के आगे प्रेम में मतवाले लोगों का जीना कठिन हो जाता है, क्योंकि निंदकों का तो काम ही दूसरों की निगरानी करके निंदा करना है। वे रात-दिन दूसरों के कार्यों की आलोचना करने की चिंता में लगे रहते हैं तथा प्रेम में पागल लोग हृदयवादी होते हैं। उन्हें अपने काम से काम होता है, फिर भी निंदक लोग उन्हें चैन से नहीं रहने देते।

२५८८) जो लोग दूसरों के दोष देखते रहते हैं तथा अपने आप ही तरह-तरह की बातें गढ़कर नए-नए नियम बनाते रहते हैं उनके आगे प्रेम करने वाले मस्त लोगों का रहना बहुत कठिन हो जाता है।

२५८९) अपने मन की इच्छाओं को मार कर शरीर को साधना के द्वारा वश में कर ले, फिक्र को फाड़कर कफन बना ले, उसी को फकीर कहते हैं। जो अपने मन के अधीन न होकर मन को अपने अधीन रखता है, जो शरीर को सुखों का आदी नहीं बनाता बल्कि कष्ट सहने की आदत डालता है। जो इच्छाएं न होने के कारण चिंताओं से मुक्त हो जाता है, उसी का नाम फकीर होता है।

२५९०) मोह स्वयं ही दुख रूप है। इसलिए मोह को मारकर हृदय से निकाल दो। संसार का प्रेम छोड़ने पर ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। संसार झूठा है, नश्वर है इसलिए संसार के लोगों या भौतिक पदार्थों के मोह के बंधन में नहीं फंसना चाहिए क्योंकि भौतिक बंधनों में फंसने से मनुष्य उनमें फंसता ही चला जाता है। उनमें से निकलना बहुत ही कठिन होता है।

२५९१) संसाररूपी सर में अम्बुज की तरह रहना चाहिए। जैसे अम्बुज अंबु से उत्पन्न होकर अंबु में ही रहता है परंतु अंबु को छूता तक नहीं है। (जैसे कमल तालाब के जल के सहारे जल में ही रहता है परंतु जल का स्पर्श नहीं करता) इसी प्रकार मनुष्य को सांसारिक वस्तुओं का भोग तो करना चाहिए पर उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

२५९२) लालच मनुष्य का धर्म छुड़ाकर उसे अधर्म की ओर ले जाता है। वह उसे भगवान और गुरु से भी विमुख कर देता है। लालची व्यक्ति को धन के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। उसे कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक भी नहीं रहता। वह अकरणीय कार्य करता है तथा कर्तव्यों से च्युत् हो जाता है। यहां तक कि जो गुरु उसे ईश्वर का मार्ग दिखाते हैं, उन गुरु तथा ईश्वर से भी वह विमुख हो जाता है।

२५९३) चींटी, बंदर और पक्षियों को लोभ ने बहुत दुख दिया है। इसलिए इसे छोड़कर हरि को भजने वाला ही समझदार होता है। चींटी मीठे के लालच में बार-बार मीठी वस्तुओं पर पहुंचने का प्रयास करती है। कई बार गरम-गरम चाशनी में गिरकर जान तक दे

देती है। बंदर छोटे मुंह के बर्तन में लोभवश गरदन फांस लेता है जिससे उसे बहुत परेशानी होती है। इन सबकी दुर्गति देखकर मनुष्य को लालच से बचने की शिक्षा लेनी चाहिए। जो लोभ को छोड़कर हरि भजन करता है, स्वामी जी की दृष्टि में वही बुद्धिमान होता है।

२५९४) संतोषी का मन सदा स्वच्छ रहता है वह राम में अपना मन लगाए रहता है, वह एक आसन पर दृढ़ता से बैठकर ध्यान साधना में लगा रहता है। उसका मन इधर-उधर नहीं दौड़ता। जो लोभ छोड़कर संतोषी हो जाता है, स्वाभाविक रूप से वह मलरहित होकर राम में मन को रमा लेता है। उसका ध्यान केन्द्रित हो जाता है। उसका मन चंचलता छोड़ देता है। लोभी का मन अनेक आकर्षणों के कारण इधर-उधर भटका करता है।

२५९५) किसी से भी किसी भी प्रकार की इच्छा मत रखो। परम संतोषी होकर मस्त हो जाओ अर्थात् जब मनुष्य लोभ नहीं करता तो वह किसी से भी कोई चाह, कोई इच्छा नहीं रखता। न तो वह किसी से धन, वस्तु, वस्त्र, भोजन आदि की इच्छा रखता है न ही स्वार्थ हेतु किसी काम की इच्छा रखता है। जब मनुष्य किसी से कुछ चाहता नहीं है तो उसे किसी की अधीनता भी नहीं रहती, फिर वह पूरी तरह संतोषी हो जाता है और उसे किसी बात की चिंता नहीं रहती।

२५९६) चाह संसार का दास बना देती है, चाह रखने वाले को प्रभु भी अपना नहीं मानते। चाह रखने वाला बाधाओं में घिरा रहता है। जो मनुष्य किसी वस्तु की इच्छा रखता है उसे उस इच्छा के अधीन रहना पड़ता है। जो उसकी चाह की पूर्ति करता है उस व्यक्ति को उसके अधीन रहना पड़ता है। उसके मन के अनुकूल चलना पड़ता है। उसे अपनी इच्छा के कारण अन्य कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है। इच्छा के दास को भगवान भी नहीं अपनाते।

२५९७) जो अभिमानी हुए उनका घमंड चूर करने के लिए उन्हें मारा गया, कुचला गया, उनका धन और स्त्री आदि लूट लिए गए। जिन्होंने अभिमान छोड़ दिया वे सीधे हरि के लोक पहुंच गए। रावण जैसे अभिमानी का सब कुछ, सोने की लंका जला दी गई, राज्य विभीषण को दे दिया गया तथा उसको बुरी तरह मारा गया इसके विपरीत निरभिमानी विभीषण को हरि का धाम मिला।

२५९८) भोग-ऐश्वर्य तो अधीनता के कारण हैं तथा अभिमान नरक का मूल है। लिप्सा के लिए उसे जिस-तिस की चापलूसी करनी पड़ती है तथा अभिमान के कारण व्यक्ति को नरक भोगना पड़ता है। अत: काम और दंभ को छोड़ना ही श्रेयस्कर है।

२५९९) मन में सोच-विचार करके गर्व को हृदय से निकाल दो। जब तुम स्वयं को छोटा समझने लगोगे तो विनम्र हो जाओगे और विनम्रता के आने से सब विकारों से मुक्ति मिल जाएगी अर्थात् मन से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार भी निकल जाएंगे।

२६००) हे मनुष्यों। तुम वेद-पुराण के विचार तथा साधुओं के उपदेश को समझकर सत्संगति में रहा करो, जिससे तुम्हारे कुल की मर्यादा नष्ट न होने पाए, क्योंकि बुरी संगति में बैठने वाले बुरे कार्य करते हैं जिससे उनके कुल को कलंक लगता है। जो नित्यप्रति सत्संग करते हैं वे सत्कार्य करते हैं। फलत: उनके कुल का गौरव बढ़ता है।

२६०१) मांस मत खाओ, मदिरा का पान मत करो, भांग का सेवन छोड़ दो, चोरी तथा छल-कपट को छोड़कर अधर्म के रास्ते से हट जाओ।

२६०२) हे मनुष्यों। झूठ-कपट और निंदा का त्याग कर दो। काम, क्रोध और अहंकार को भी छोड़ दो। दुर्बुद्धि से जो अज्ञान उत्पन्न होता है उसका त्याग करो तथा तृष्णा के अंधेरे को मिटाओ, क्योंकि एक झूठ बोलने से मनुष्य को उस झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। कपट करने वाले का कोई विश्वास नहीं करता। काम तो सारे झगड़े का मूल ही है। जब काम की अग्नि शांत नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध में व्यक्ति से बुरे से बुरा काम हो जाता है। अहंकार के बोल बोलने वाले को कोई अपने पास बिठाना भी पसंद नहीं करता। तृष्णा कभी बुझती नहीं है। जैसे अग्नि में घी डालने से अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है, इसी तरह तृष्णा को जितना बुझाने का प्रयास किया जाता है उतनी ही वह और अधिक प्रज्वलित होती है, उतनी ही वह और अधिक बढ़ती है।

२६०३) न तो किसी से प्रेम करो न किसी से द्वेष करो। अहंकार, कलह और कल्पना भी छोड़ दो। संकल्प-विकल्प अर्थात् द्वंद्व-दुविधा को मिटाकर सत्य के मार्ग पर चलो। प्रेम करने से व्यक्ति प्रिय के अधीन हो जाता है तथा जिससे भी प्रेम करोगे यदि वह छूटेगा तो असह्य दुख मिलने की संभावना है। द्वेष करने वाला तो वैसे ही दुखी रहता है। कलह से घर की लक्ष्मी चली जाती है। जो व्यक्ति दुविधा में रहता है वह आसानी से कोई निर्णय नहीं ले पाता।

२६०४) पूर्वजन्मों के पुण्य कर्मों के फल से यह अनमोल मनुष्य तन पाया है। इसलिए तू अब इस झूठे संसार का मोह छोड़कर अपनी

इस दुर्लभ देह की कद्र कर। चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद जीव को बड़ी कठिनाई से मानव का शरीर मिलता है। जन्म लेते ही जीव भूल जाता है कि इस शरीर को पाने के लिए उसे कितने कष्ट सहने पड़े थे। इसलिए वह फिर बुरे-बुरे कार्य करने लगता है। कुकर्म करने से उसे पुन: चौरासी लाख योनियों में घूमना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को मनुष्य का जीवन पाकर सत्कर्म करने चाहिए जिससे मोक्ष प्राप्ति हो जाए।

२६०५) कान तभी सार्थक होते हैं जब मनुष्य ज्ञान-विज्ञान की बातें सुनता है। ज्ञान प्राप्त करने के बाद आत्मसाधना करनी चाहिए। ज्ञानोपदेश सुनकर कानों को सार्थक बनाओ तथा उस ज्ञान से अपना ध्यान आत्मा में लगाओ जिससे तुम्हारे अंदर और बाहर ज्ञान का प्रकाश ही प्रकाश बिखर जाए।

२६०६) दंड की तरह भूमि पर लेटकर सबको प्रणाम करो। जिससे तुम्हें यम के दंड का भी भय न रहे। जो व्यक्ति सबको दंडवत प्रणाम करता है, उसे सबका शुभाशीष मिलता है। परिणाम यह होता है कि उसे मृत्यु का भी भय नहीं रहता। ऐसा मनुष्य निर्भय होकर सातों द्वीप और नवों खंडों में निर्द्वन्द्व घूमता है।

२६०७) धैर्य धारण करो, क्षमाशील बनो, सत्यव्रतधारी बनो, अपने इष्ट के नाम का सहारा रखते हुए संसार के जंजाल से मुक्त हो जाओ। जो धैर्यवान होता है उसके सब कार्य सुंदर ढंग से पूर्ण होते हैं। धैर्यवान व्यक्ति दूसरों के क्रोध करने पर भी विचलित नहीं होता। वही अपने प्रति अपराध करने वालों को भी क्षमा कर देता है। क्षमाशील व्यक्ति महान बन जाता है, उसका सभी लोग आदर करते हैं। सत्य का व्रत पालने वाले को किसी से भय नहीं रहता। संसार को जंजाल समझने वाला संसार के चक्कर में नहीं फंसता तथा नाम का सहारा लेकर जीने वाले का तो जीवन ही धन्य हो जाता है।

२६०८) सदैव अपनी दृष्टि दोनों की ओर रखो। दूसरों के दुखों पर अपनी दया की नजर रखो तथा परोपकार करते रहो। प्रभु के नाम पर धन का व्यय करो। इस तरह अपना हृदय उदार बना लो। जहां कहीं भी कोई दीन-दुखी दिखाई दे, उसका दुख दूर करने का प्रयास करना चाहिए। अपना तन, मन, धन दूसरों की भलाई में लगा देना चाहिए। स्वार्थ का त्याग करके अपना हृदय उदार बना लेना चाहिए तथा अपना धन दूसरों के भले के लिए व्यय कर देना चाहिए।

२६०९) जाति-पांति के चक्कर में न पड़कर कर्मों को देखना चाहिए। कर्म से व्यक्ति की सुपात्रता और कुपात्रता का निर्णय करना चाहिए। जिसके उत्तम कर्म हों, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु वेशधारी, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, उसी को सुपात्र समझकर पूजना चाहिए। यदि ब्राह्मण साधु नीच प्रकृति का, निकृष्ट कर्म करने वाला हो तो वह आदर का पात्र नहीं है।

२६१०) पानी को छानकर पीना चाहिए, मुख से वचन बोलते समय अपनी बोली को भी छान लेना चाहिए तथा पैर रखने से पहले दृष्टि को छान लेना चाहिए एवं जीवन जीते समय अच्छी तरह छानकर अपना मनोरथ तोल लेना चाहिए। जो लोग बिना छना पानी पीते हैं उन्हें रोग होने की संभावना रहती है, साथ ही साथ जीवहत्या भी होती है। मुख से वचन बोलते समय जो सोचते नहीं, वे बहुत सी बार बड़ा अनर्थ कर बैठते हैं। नीचे देखे बिना पैर रखने से कोई कीड़ा-मकोड़ा पैर के नीचे आ सकता है। नीचा-ऊंचा पैर पड़ने से चोट भी लग सकती है। इसी प्रकार सोच-समझकर जीवन का लक्ष्य निर्धारित किए बिना जीने वाले का जीवन व्यर्थ ही नष्ट होता रहता है।

२६११) कर्म रोग के कटे बिना जीव की मुक्ति नहीं होती। चौरासी लाख योनियों में उसे बार-बार भटकते फिरना पड़ता है। कर्मों के फलों को भोगने के लिए मनुष्य को बार-बार चौरासी लाख योनियों में जन्म लेना पड़ता है। मानव तन पाकर सत्कर्मों द्वारा जीव को ऐसा उपाय, ऐसी साधना करनी चाहिए जिससे उसे मोक्ष की प्राप्ति का सुख सदा के लिए प्राप्त हो जाए।

२६१२) कर्म रोग को काटने के लिए ये नाम की जड़ी को पंचतत्वों के शहद में मिलाकर पीने का उपाय है। जो मनुष्य कर्म के रोग से सदा के लिए मुक्ति चाहता हो उसे ईश्वर के नाम को अपने रोम-रोम में रमा लेना चाहिए। यह ऐसी औषधि है जिससे कर्म रोग जड़ से उखड़ जाता है अर्थात् नाम जपने वाले को बार-बार कर्म फल भोगने के लिए जन्मना-मरना नहीं पड़ता।

२६१३) जो नाम का जप करता है उसके हृदय में आनंद ही आनंद रहता है। उसे कोई पीड़ा नहीं रहती। वह तो पूरी तरह रोग रहित होकर स्वयं ब्रह्म का रूप हो जाता है। नाम जप स्वयं में आनंद है। जहां आनंद है वहां दुख का अस्तित्व कहां। आनंद से रोग भी नहीं रहता, इस प्रकार जीव परमानंद स्वरूप हो जाता है।

२६१४) ईश्वर नामरूपी अमर बूटी का सेवन करने वाले को बार-बार संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। नाम की अमृतमयी औषधि को पी लो जिससे तुम्हें बार-बार कर्म फल भोगने के लिए जन्म-मरण के बन्धन में न पड़ना पड़े, क्योंकि इस औषधि को पीने वाले की तो मुक्ति हो जाती है।

२६१५) न जीने की खुशी है, न मरने का दुख है, न किसी के प्रति वैर है, न किसी के प्रति प्रेम है। हमारा जीवन संसार में रहकर भी संसार से अलग है। दुख-सुख में वैरी और मित्र में हमारा भाव एक समान है।

२६१६) अहंकार करने से व्यक्ति का नाश होता है। अहंकार करने वालों का अहंकार एक दिन चकनाचूर हो जाता है। इसलिए मनुष्य को अभिमान नहीं करना चाहिए। अरे मन। तू होश में आ जा। तेरे सिर पर काल बैठा है। न जाने किस समय इस संसार को छोड़ना पड़ जाए। इसलिए सत्कार्यों में लग जा।

२६१७) हे मनुष्य तू एक-एक कदम देख-देख कर रख अर्थात् प्रत्येक कार्य सावधानी से कर जिससे तेरी अपकीर्ति न हो। जैसे किसी कच्चे रंग की वस्तु को हाथ लगाने से हाथ में दाग लग जाता है, ऐसे ही अनुचित कार्य को करने से बदनामी हो जाती है। जहां तक संभव हो कर्म में लगा रह। कर्म को त्यागना भी ठीक नहीं है।

२६१८) जो मनुष्य काम, क्रोध नींद, भूख सब पर विजय पा लेता है। जो न काम के अधीन है, न जिसे क्रोध आता है, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो शांत रहता है, जो भूख से व्याकुल रहने पर भी व्याकुल नहीं होता। जिसे भूख पर भी नियंत्रण है और जो नींद को भी मार लेता है, उस पर संसार के लोग विश्वास करते हैं।

२६१९) जब तक निंदक जीता है तब तक अपने अवगुणों का ज्ञान होता रहता है। परिणामत: आत्मसुधार में सहायता मिलती रहती है। इसलिए निंदक के तो युगों तक जीने की कामना करनी चाहिए।

२६२०) संसार में प्रत्येक मनुष्य जिसने जन्म लिया है, उसे मरना भी अवश्य होता है। धन्वंतरि वैद्य, जो सबका इलाज करते थे, वे भी अमर नहीं रहे। देवता, मनुष्य, मुनि, योगी-यति किसी का भी काल के आगे वश नहीं चलता। सभी काल के अधीन हैं।

२६२१) यह जीवन चार दिन का है, इस पर अभिमान नहीं करना चाहिए। मृत्यु आने पर सब धन-सम्पत्ति, हाथी-घोड़े, ध्वजा-पताका मिट्टी में मिल जाएगी।

२६२२) जिसे अपने सच्चे प्रियतम से मिलन का सौभाग्य मिल जाए उसे सारे संशय को छोड़कर प्रिय के ध्यान में लीन हो जाना चाहिए, फिर संसार की परवाह नहीं करनी चाहिए।

२६२३) जो मनुष्य किसी की निंदा-स्तुति की परवाह न करके एक मन से कार्य करता रहता है, एक दिन सारा संसार उसके आगे नतमस्तक हो जाता है।

२६२४) जो किसी से बराबरी नहीं करता, सबसे हार मान लेता है। सबके आगे झुक जाता है, ऐसे विनम्र व्यक्ति से बार-बार डरना चाहिए। निरभिमानी मनुष्य सम्मान का पात्र होता है।

२६२५) ऐसा साथ पकड़ना चाहिए जिससे कुछ ज्ञान में वृद्धि हो। ऐसी संगति में कभी नहीं बैठना चाहिए जहां अपने धन, मान, ज्ञान और चरित्र की हानि होती है। सत्संगति में बैठना चाहिए जिससे लाभ ही लाभ की संभावना रहती है।

२६२६) सदैव अच्छे लोगों के साथ बैठकर अपने मन को शुद्ध करना चाहिए। उस स्थान पर कदापि नहीं जाना चाहिए जहां बुरी बातें होती हैं। जहां जाकर अपनी बुद्धि खराब हो सकती है।

२६२७) संसार में लोग अपने गुण-दोषों का मूल्यांकन न करके दूसरों के दोष ढूंढते रहते हैं। उन्हें यह भ्रम रहता है कि दूसरों के छिद्रान्वेषण से हम प्रशंसा के पात्र बन जाएंगे। परंतु संत लोग इसके विपरीत सोचते हैं, मनुष्य दूसरों के दोष ढूंढने में अपना समय नष्ट करता है। दूसरे के अवगुणों के वर्णन से अपने अंदर भी दोष आने की संभावना रहती है। समझदार व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण करके स्वयं का सुधार करना चाहिए। दूसरों के सुधार की कोई आवश्यकता नहीं है।

२६२८) संसार की अनोखी रीति देखकर मुझे रोना आ गया। जहां देखता हूं वही कपट दिखाई देता है। समझ में नहीं आता कि इस कपटी संसार में किससे प्रेम करूं ? जिससे भी प्रेम किया उसी ने छल-छद्म किया तो अब किस पर भरोसा करके प्रेम किया जा सकता

है। बार-बार धोखा देखकर मनुष्य का पूरी दुनिया पर से ही विश्वास उठ जाता है।

२६२९) जो लोग जबान से तो मधुर बोलते हैं परंतु हृदय में कपट रखते हैं उनके साथ मत बैठो। सच्चे मन से प्रेम करने वाला जब संसार के लोगों से सच्चे प्रेम की आशा करता है तो निराशा ही उसके हाथ लगती है। क्योंकि दुनिया वाले मुख से मृदुभाषी होकर भी मन में भेद-भाव, दुराव-छिपाव और छल-कपट रखते हैं।

२६३०) वही स्त्री सच्ची सुहागिन है, सौभाग्यशालिनी है जिसके ललाट पर सौभाग्य की प्रतीक हीरे की बिंदी लगी रहती है। सौभाग्य को प्राप्त करने के लिए स्त्री को स्वयं त्याग करके पातिव्रत का पालन करना पड़ता है, विषय वासनाओं की धूल उड़ाकर मन के सूत को महीन-महीन कातना पड़ता है। जो नारी अपने पति का प्रेम पाकर सुहागिन बनना चाहती है उसे मन को महीन करना पड़ेगा। मन से छल-कपट के बोझ को हटाना पड़ेगा।

२६३१) मन मैला न हो। यदि तुम अपने मन की चादर को धो लिया तो दुष्ट दुर्भावनाओं को जन्म देनेवाला धोबी खुद ही मर जाएगा। यदि मन की चादर उजली हो तो किसी का आरोप-प्रत्यारोप आपके मन की चादर को मैली नहीं करेगा। अपना मन साफ है तो जग साफ है। अपना मन निर्मल है तो जग निर्मल है।

२६३२) जो व्यक्ति मीठे (मधुर) वचन बोलता है और ईश्वर की आराधना में लीन रहता है, उसके लक्षण पतिव्रता स्त्री के समान होते हैं, जो सबके अधीन रहती है। पति परमेश्वर की हर इच्छा का पालन करती है। परमेश्वर भी उसी पर कृपा करता है।

२६३३) गुनाह करने से ईश्वर भक्ति में बाधा पड़ती है। परंतु जिसने अपने को ईश्वर का दास बना लिया है, वह मनुष्य कभी अपराध नहीं करता।

२६३४) मनुष्य देह पाने के उपरांत भी, जो ईश्वर भजन में आलस करता है, वह व्यक्ति कुल्हाड़ी लेकर अपने ही पैरों में मारता है। अपना मनुष्य जीवन व्यर्थ करता है।

२६३५) जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है, उसी प्रकार हरि का भजन करने वाला हरि भक्त महान बन जाता है।

२६३६) इस संसार में क्षमा का महत्त्व सर्वोपरि है। जो मनुष्य गाली का जवाब गाली से देता है उसका मान-सम्मान और बड़प्पन खाक में मिल जाता है। परंतु जो गाली का जवाब गाली से न देकर उसे क्षमा करके चुप लगा जाता है, उसका मान-सम्मान और बड़प्पन बना रहता है।

२६३७) जैसे लुहार लोहे की संड़ासी को काम करते समय कभी पानी में डालता है और कभी आग में तपाता है, इसी तरह संसार के दुख-सुख हैं। कभी मनुष्य को दुख तपाता है और कभी सुख-आनंद देता है। हे मन। तू दुख-सुख के चक्कर में पागल मत बन। दुख और सुख में समान भाव रख।

२६३८) संसार के सगे-संबंधी न तो दुख को बांटते हैं और न ही मरने पर साथ चलते हैं। फिर ऐसे रिश्ते-नाते किस काम के हैं? सब बेकार के नाते हैं। इस जगत में जितने भाई, बंधु, सगे, स्नेही तथा मित्र हैं वे सुख के साथी हैं। विपत्ति तो व्यक्ति को अकेले ही सहनी पड़ती है तथा मरकर भी अकेले ही संसार से विदा लेनी पड़ती है। फिर इन रिश्ते-नातों के मोहजाल में फंसने से क्या लाभ ?

२६३९) दुनिया के सब लोग जीते जी के साथी हैं। मृत्यु होने पर कोई शरीर के पास नहीं जाता। मृत्यु के बाद यदि रोते भी हैं तो अपने-अपने स्वार्थ के कारण। अपने सुखों को याद कर-करके रोते हैं और मृत्यु के बाद यदि कोई सपने में दिखाई दे जाता है तो उससे डरते हैं। जब तक आदमी जीवित रहता है तब तक ही लोग उससे प्रेम करते हैं। मरने के बाद तो उससे बचते हैं। कोई मृत व्यक्ति के शरीर को हाथ भी लगा देता है तो फिर तुरंत ही स्नान करता है। सब उन सुखों को याद-कर करके रोते हैं जो उस मृत व्यक्ति ने उन्हें दिए थे, क्योंकि अब उसकी मृत्यु के बाद उन्हें उन सुखों से वंचित रहना पड़ेगा। यहां तक कि अपना सगा-संबंधी भी यदि मृत्यु के बाद स्वप्न में आ जाता है तो भय के कारण पंडितों से उस स्वप्न का अर्थ पूछते हुए घूमते हैं।

२६४०) विनम्रता धन्य है। अहंकार को धिक्कार है। छोटे होने से मनुष्य का बड़प्पन बढ़ता है, इसलिए गुरु के वचनों का स्मरण करके छोटा बन जाना चाहिए। जो लोग अहं भाव को जीतकर विनम्रता का व्यवहार करते हैं, महान होते हुए भी स्वयं को लघु मानते हैं, उनका जीवन सराहनीय तथा माननीय है। गुरु ने यही कहा है कि अहंकार को छोड़कर छोटे बन जाओ।

२६४१) अभिमानी के निकट कोई जाना नहीं चाहता तथा निरहंकारी को सब प्यार करते हैं। जो घमंड के बोल बोलता है उसकी

बोली से अन्य लोगों का मन दुखता है, इसलिए कोई उसके समीप नहीं जाना चाहता। परंतु मीठा बोलने वाले, अपने आपको छोटा कहने वाले से सब प्यार करते हैं, क्योंकि उसकी निकटता मन को अच्छी लगती है। ठीक उसी प्रकार जैसे जंगल का राजा होकर भी अहंकार के कारण सिंह वन-वन भटकता फिरता है, कोई उसके पास नहीं जाता जबकि छोटी सी बकरी जहां भी होती है, वहीं उसे सब प्यार करते हैं। चींटी छोटी सी होती है। वह पूरे घर में घूम-घूमकर रस लेती रहती है। हाथी बड़ा होने के कारण किसी घर में नहीं घूम सकता, वह तो बाहर खड़ा-खड़ा अपने सिर में धूल डालता रहता है। इसी प्रकार जो विनम्र होता है वह सबसे प्रेम पा लेता है, परंतु जो अहंकारी होता है उसको कोई पसंद नहीं करता।

२६४२) जैसे छोटा बालक राजा के महल के अंदर भी बिना रोक-टोक के जा सकता है उससे राजमहल की स्त्रियां घूंघट भी नहीं करतीं बल्कि उसे गोद में खिलाकर आनंदित होती हैं। उसी प्रकार जो मनुष्य स्वयं को छोटा कहता है उसे सब प्रेम करते हैं तथा अभिमानी व्यक्ति से कोई बात भी नहीं करता। बच्चे की तरह बड़ा राजदरबार में आसानी से प्रविष्ट नहीं हो सकता। यदि वह बच्चे की तरह बिना पूछे अंदर घुस भी जाएगा तो उसे बहुत मार खानी पड़ सकती है। इसी प्रकार जो मद और अहंकार में चूर होकर अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझता उसका प्रवेश भगवान के दरबार में नहीं हो सकता। यदि वह अभिमानी प्रभु के पास जाना चाहेगा तो दरवाजे से ही उसे मार पड़नी प्रारंभ हो जाएगी, क्योंकि भगवान अहंकारी लोगों से प्रेम नहीं करते।

२६४३) गरीबी इसलिए अच्छी है कि उसमें विनम्रता होती है। धनी लोग अभिमानी होते हैं जबकि गरीब तो स्वयं को छोटा समझकर झुकता ही रहता है तथा झुकने वाले को कोई नहीं मारता, अकड़ने वाले पर सब वार करते हैं।

२६४४) धनवान लोग अपने धन की रक्षा के लिए सदैव भयभीत रहते हैं परंतु निर्धन मस्ती से निश्चिंत होकर घूमते हैं। राजा को अपने खजाने, भूमि आदि पर आक्रमण का भय बना रहता है परंतु भिखारी के पास कोई पूंजी न होने से उसे कोई चिंता नहीं होती। हाथी क्योंकि मूल्यवान होता है इसलिए उसके पैरों में जंजीर पड़ी रहती है जबकि बिना कीमत वाली चींटी निर्भय होकर इधर-उधर घूमती फिरती है।

२६४५) संसार में धन, यौवन, सुख-सम्पत्ति इस तरह क्षणभंगुर हैं जैसे बादल की छाया। बादल एक क्षण को छाया देता है दूसरे ही क्षण धूप निकल आती है। जीव चौरासी लाख योनियों में अपने-अपने कर्मों के अनुसार कष्ट भोग फिरता है। इस तरह चौरासी लाख योनियों में कष्टों की धूप ही धूप है।

२६४६) इस संसार का मोह छोड़कर हरि का नाम स्मरण कर, क्योंकि इस संसार में अपना कोई नहीं है। यहां तक कि अपनी देह भी अपनी नहीं है। मृत्यु के उपरांत यह भी मिट्टी में मिल जाती है।

२६४७) इस सांसारिक मोह-माया का त्याग तब किया तो क्या किया जब तुम पूरी तरह से थक जाओगे, वृद्धावस्था आ जाएगी और तब तुम्हें पछताना पड़ेगा कि हाय। हमने इस मोह-माया से विरक्ति क्यों न ले ली ? तब आप फूट-फूटकर रोओगे कि इस नश्वर संसार से हमने व्यर्थ ही स्नेह किया। जो पहले ही इस मोह को त्याग देता है ऐसा व्यक्ति शूरवीर कहलाता है।

२६४८) संत दुरूह को अत्यंत सरल बनाने की विलक्षण युक्ति जानते हैं। यह भी संतों के सहज स्वभाव तथा उनकी कृपा का ही फल है, जो मां गंगा को पृथ्वी पर अवतरित होना पड़ता है। इतना ही नहीं, संतों की कृपा प्रसाद से ऐसे जीवों को भी भावन गंगा-जल की प्राप्ति घर बैठे ही हो जाती है, जो किसी कारण गंगा-तट तक पहुंच नहीं पाते।

२६४९) उन लोगों का जीवन व्यर्थ है जिन्होंने कभी अपने हाथों से दान नहीं किया, कभी अपने कानों से वेद नहीं सुने। अपनी आखों से सज्जन पुरुषों अर्थात साधु महात्माओं के दर्शन नहीं किये, जिन्होने कभी तीर्थ यात्रायें नहीं की, जो अन्याय से प्राप्त किये धन से अपना भरण-पोषण करते है, घमंड से जिनका सिर हमेशा ऊंचा रहता है। वे स्त्रियां अत्यन्त दुस्साहसी होती है जो अपनी विषय वासना के लिये कुछ भी कर गुजरती है। मदिरा के नशे में डूबे व्यक्ति का विवेक ठीक कार्य नहीं करता, वह कुछ भी उचित अनुचित बक देता है। कौवे भक्ष्य अभक्ष्य का विचार न कर कुछ भी खालेते है क्योकि इन सब में धैर्य नही होता। अर्थात दुस्साहसी स्त्री, नशा करने वाला व्यक्ति, इत्यादि ऐसे निन्दनीय प्राणियों का जीवन व्यर्थ है।

२६५०) दूसरे मुझसे घृणा करते हैं, अविश्वसनीय समझते हैं, मेरे बारे में गलतफहमी होती है तथा मुझे धोखा दिया जाता है- जो इस प्रकार के

विचारों का पोषण अपने मन में करता है, वह उन कारणों से मुक्त नहीं हो सकता, जो उस पर अपना विध्वंसात्मक प्रभाव डालते हैं।

२६५१) धन के लोभियों के लिये मांगने वाला शत्रु रूप है क्योकि याचक को देने के लिये उन्हें धन का परित्याग करना पडता है। मूर्खों को समझानेवाला व्यक्ति अपना शत्रु लगता है क्योंकि वह उनकी मूर्खता का समर्थन नही करता। पर पुरुष से सम्बन्ध रखनेवाली दुराचारिणी स्त्रियों के लिये उनका पति ही शत्रु है। क्योंकि उसके कारण ही उनकी स्वतन्त्रता और स्वच्छन्ता मे बाधा पडती है। चोर चन्द्रमा को अपना शत्रु मानते है क्योकि उनके लिये अन्धेरे मे छिपना, चोरी करना जितना सरल होता है वैसा चांदनी मे नही।

२६५२) जिसका मन बाहरी सौन्दर्य और वैभवों की खोज में भटकता है, जो अपनी इन्द्रियों पर स्वामी के समान नियन्त्रण रखने में समर्थ नहीं है, जो अशुद्ध भोजन खाता है, जो आलसी है तथा नैतिक साहस से हीन है, उस व्यक्ति को अज्ञान और दु:ख ठीक वैसे ही अभिभूत कर लेते हैं, जैसे आंधी सूखे वृक्ष को तहस-नहस कर देती है।

२६५३) जिस प्रकार वर्षा की बूंदें उस घर में टपकती हैं, जिसकी छप्पर ठीक नहीं होती, इसी प्रकार आसक्ति, घृणा और विभ्रम उस मन में प्रवेश करते हैं, जो आत्मनिष्ठ ध्यान से विरक्त होता है।

२६५४) जिसका मन काम से लिप्त नही हैं, जो घृणा से प्रभावित नहीं है, जिसने शुभ और अशुभ दोनों का परित्याग किया है, ऐसे जागरूक व्यक्ति को कोई भय नहीं होता।

२६५५) जो हृदय अज्ञान के पथ का अनुगमन करता है वह व्यक्ति को उसके सबसे घृणित एवं कट्टर शत्रु की अपेक्षा अधिक हानि पहुंचाता है।

२६५६) जिस प्रकार तीर बनानेवाला तीर को सीधा करता है, ठीक वैसे ही विवेकी व्यक्ति अस्थिर, चंचल, दुर्रक्षित और दुर्नियन्त्रित मन को सीधा कर लेता है।

२६५७) मन का वारण कठिन होता है। वह अत्यन्त सूक्ष्म, त्वरित तथा आकांक्षित स्थान पर तुरन्त दौड़ जानेवाला होता है। ऐसे मन का नियन्त्रण करना उत्तम है। संयमित मन आनन्द को उत्पन्न करता है।

२६५८) यह मन दूरगामी, अकेला विचरनेवाला, अशरीरी और गुहाशयी (चेतना का पीठ) है। जो इसका संयम करते हैं, वे ही मार (काम) के बन्धन से मुक्त होते हैं।

२६५९) जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे भाई-बन्धु नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई ठीक मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है और वह व्यक्ति का उन्नयन करता है।

२६६०) क्रोध से मनुष्य का विनाश होता है इसलिये क्रोध को साक्षात यमराज कहा गया है। तृष्णा को वैतरणी नदी कहा जाता है क्योकि तृष्णा का मिटना उतना ही कठिन है जितना वैतरणी को पार करना। विद्या सब प्रकार का फल देती है, इसलिये वह वंदनीय है, किन्तु सन्तोष का स्थान निर्बाध आनन्द देने वाला होने के कारण सर्वोपरि है। साथ ही सन्तोष इन्द्र के विहार स्थल नन्दन वन के समान मोहक और असीम सुखद भी होता है।

२६६१) मन का उन्नयन करो और दृढ़ संकल्प के साथ निष्ठापूर्ण श्रद्धा की खोज करो। सदाचरण के नियमों का उल्लंघन मत करो, तुम्हारा आनन्द बाहरी वस्तुओं पर आधारित न होकर तुम्हारे अपने मन पर निर्भर हो। इस प्रकार तुम्हारा यश-युगों तक बना रहेगा और तुम तथागत के स्नेह के पात्र होगें।

२६६२) पांच प्रकार के मनन होते हैं। पहला मनन प्रेम का मनन है, जिसके अन्तर्गत तुम्हें अपने हृदय को इस प्रकार समायोजित कर लेना चाहिए कि तुम समस्त प्राणियों की समृद्धि और कल्याण की कामना करो और जिसमें तुम्हारे शत्रुओं के लिए सुख की कामना भी समाहित हो। दूसरा मनन करुणा का मनन है, जिसमें तुम समस्त उत्पादित प्राणियों की पीड़ाओं का विचार उनके दु:खों और चिन्ताओं की स्पष्ट कल्पना के साथ इस प्रकार करते रहो कि तुम्हारी आत्मा में उनके लिए गहन करुणा का संचार हो जाए। तीसरा मनन आनन्द का मनन है, जिसमें तुम दूसरों की समृद्धि की आकांक्षा करते हो और उनको आनन्दित देखकर आनन्दित होते हो। चौथा मनन अपवित्रता का मनन है, जिसमें तुम व्यभिचार के दुष्परिणामों पर तथा पाप और रोगों के प्रभावों पर विचार करते हो। प्राय: क्षण का सुख भी कितना क्षुद्र होता है तथा इसका परिणाम भी कैसा मर्मान्तक होता है। पांचवा मनन प्रशान्ति का मनन है, जिसमें तुम प्रेम और घृणा, आतंक और उत्पीड़न, धन और दरिद्रता से ऊपर उठ जाते हो और स्वयं अपने भाग्य पर तटस्थ प्रशान्ति और पूर्ण धैर्य से विचार करते हो।

२६६३) किन ध्यानों की सहायता से मनुष्य अभिज्ञा (अलौकिक शक्तियों) तक पहुंचाता है ? - चार प्रकार के ध्यान होते हैं। प्रथम ध्यान एकान्त कहा जाता है, जिसमें तुम्हें अपने मन को इन्द्रियपरता से मुक्त कर लेना चाहिए। द्वितीय ध्यान आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण मन की स्थिरता है। तृतीय ध्यान आध्यात्मिक विषयों से आनन्द की उपलब्धि करना है। चौथा ध्यान पूर्ण पवित्रता और शान्ति की अवस्था है, जिसमें मन समस्त हर्ष और विषाद से परे उठ जाता है।

२६६४) चार प्रकार के साधनों की ऋद्धि (जड़ पर आत्मा का अधिकार) प्राप्त की जा सकती है। दुगुर्णों को पनपने मत दो। जो दुर्गुण उत्पन्न हो गए हैं, उन्हें दूर करो। उस अच्छाई को उत्पन्न करो, जो अब तक नहीं है। निष्ठापूर्वक खोजो और दृढ़ता के साथ अपनी खोज में लगे रहो।

२६६५) विद्या समस्त फल देनेवाली कामधेनु गाय के समान होती है। कामधेनु गाय सभी इच्छाये पूर्ण करनेवाली व सभी फलो की दाता है। आज के युग मे विद्या भी कामधेनु गाय के समान है। विद्या वह गुप्त धन है जो न दिखाई पडती है और न ही उसका कोई विभाजन कर सकता है न ही उसका हरण सम्भव है। प्रवास के समय यह व्यक्ति की सहायक होती है। यह माँ के समान है। विद्या जैसा आभूषण इस सम्पूर्ण जगत मे कही कोईसा नही हो सकता, इसलिये व्यक्ति को सर्वप्रथम विद्यार्जन पर ही बल देना चाहिये।

२६६६) वह व्यक्ति जो स्व के स्वभाव को जानता है और यह समझता है कि उसकी इन्द्रियां कैसे कार्य करती हैं, वह मैं के लिए कोई अवकाश नहीं देता तथा इस प्रकार वह अनन्त शान्ति प्राप्त करता है। संसार मैं के चिन्तन में लीन है और इससे मिथ्याबोध की सृष्टि होती है। कुछ कहते हैं कि मैं मृत्यु के बाद बचा रहता है, कुछ कहते हैं कि वह नष्ट हो जाता है। ये दोनों गलत हैं तथा उनकी भूल अत्यन्त घातक है। क्योंकि यदि वे मैं को नाशवान् कहें तब तो जिन फलों की प्राप्ति के लिए वे चेष्टारत हैं, वे भी नष्ट हो जाएंगे और कुछ समय बाद कोई भावी जीवन भी नहीं रहेगा। पापपूर्ण स्वार्थपरायणता से ऐसी मुक्ति पुण्यहीन हुआ करती है। दूसरी ओर, जब कुछ लोग यह कहते हैं कि मैं नष्ट नहीं होगा, तब तो जीवन और मृत्यु के बीच में केवल एक ही अस्तित्व अजन्मा और अमर होगा। अगर उनका मैं ऐसा है, तो वह पूर्ण है तथा कर्मों के द्वारा उसे पूर्ण नहीं बनाया जा सकता। यह चिरन्तन अविनाशी मैं कभी भी परिवर्तित नहीं होगा। स्व भगवान् और स्वामी हो जाएगा तथा तब पूर्ण को पूर्ण बनाने से कोई लाभ नहीं होगा, नैतिक उद्देश्य और निर्वाण अनावश्यक हो जाएंगे।

२६६७) बुद्धिमान पिता का कर्तव्य है कि बच्चों की ५ वर्ष की आयु तक खूब लाड प्यार करे क्योकि सन्तान का प्यार-दुलार से पालन करना माता-पिता की स्वाभाविक प्रवृति होती है। १५ वर्ष तक बुरा काम करने पर दंडित करना भी उचित है कारण यही अवस्था पढ़ने लिखने की, सीखने की तथा चरित्र निर्माण करने की, अच्छी प्रवृतियां अपनाने की होती है। बच्चे की आयु १६ वर्ष से उसके संग मित्रवत् व्यवहार करके कोई भी बात युक्तिपूर्वक समझानी चाहिये। कठोरता बरतने पर वह विरोध भी कर सकता है, विद्रोही बन कर कभी घर भी छोड सकता है। यही बाल मनोविज्ञान का विश्लेषण है।

२६६८) इन्द्रियां विषयों से मिलती हैं और उनके सम्पर्क से संवेदना का जन्म होता है। उससे स्मृति पैदा होती है। अत: जैसे आतशी शीशे के माध्यम से सूर्य की शक्ति अग्नि के रूप में प्रकट होती है, वैसे ही इन्द्रिय और विषय से उत्पन्न ज्ञान से उस विधाता का जन्म होता है, जिसे तुम स्व कहते हो। अंकुर बीज से उत्पन्न होता है, बीज अंकुर नहीं है, दोनों एक और समान नहीं हैं फिर वे भिन्न भी नहीं है। इस प्रकार प्राणी जीवन का जन्म होता है।

२६६९) निरन्तर अभ्यास से मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त कर लेता है लेकिन अभ्यास से ही सबगुण प्राप्त नहीं होते। कुछ गुण ऐसे भी होते है जो स्वाभाविक होते है जैसे-दानशीलता, मधुर बोलना, शौर्यता तथा पांडित्य- ये ४ गुण ऐसे होते है जिन्हे अभ्यास से प्राप्त नहीं किया जा सकता, ये किसी किसी मनुष्य में स्वाभाविक होते है। मनुष्य में दो प्रकार के गुण होते है यत्नज और सहज। जिन्हे मनुष्य अपने प्रयास द्वारा हासिल कर लेता है वे यत्नज कहलाते है और जो ईश्वर द्वारा प्रदत्त होते है, स्वभाव वश प्राप्त है वे सहज गुण अर्थात जन्मजात कहलाते है। इसी प्रकार उपयुक्त चार गुण सहज है जो प्रयास द्वारा प्राप्त नहीं किये जा सकते।

२६७०) जिस तरह पानी की एक एक बूंद से घडा भर जाता है उसी तरह अभ्यास करने से सभी विद्याओं की प्राप्ति हो जाती है। मनुष्य को अपने जीवन में थोडा-थोडा करके धर्म का भी संचय करना चाहिये। एक-एक बूंद गिरने से घडा, एक-एक अक्षर प्रतिदिन पढ़ने से विद्वान, एक-एक पैसा जोडने से धनवान तथा थोडा-थोडा धर्मानुष्ठान (धर्म का कार्य) करने से मनुष्य धार्मिक प्रवृति का बन जाता है।

अत: किसी भी चीज को थोडा समझ कर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये।

२६७१) बुराई की जड़ क्या है ? - इच्छा ही बुराई की जड़ है, द्वेष ही बुराई की जड़ है, भ्रम ही बुराई की जड़ है, ये सभी चीजें बुराई की जड़ हैं। बुरे कार्य को अधूरा छोड़ देना उत्तम है। क्योंकि एक कुकर्म इस जन्म के बाद व्यक्ति को पीड़ित करता है, सत्कार्य को पूरा किया जाना अच्छा है, जिसको कर लेने पर बाद में पछतावा नहीं करना पड़ता।

२६७२) प्राणियों के सारे कर्म दस बुराइयों से दूषित हो जाते हैं और यदि इन दस बुराइयों से दूर रहा जाए, तो वे अच्छे बन जाते हैं। इसमें तीन बुराइयां शरीर की हैं, चार जीभ और तीन मन की। शरीर की बुराइयां हैं- हत्या, चोरी और व्यभिचार, झूठ बोलना, निन्दा करना, गाली देना और बकवाद करना जीभ की बुराइयां हैं, लालच, द्वेष और त्रुटि मन की बुराइयां हैं। दस बुराइयों से बचने की सीख इसप्रकार है- हत्या मत करो, बल्कि जीवन का सम्मान करो। चोरी मत करो, न लूटपाट ही करो, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को उसके परिश्रम से प्राप्त फल का स्वामी बनने में सहायता दो। अपवित्रता से दूर रहो तथा ब्रह्मचर्य से पूर्ण जीवन व्यतीत करो। झूठ मत बोलो, सत्यवादी बनो। बिना भय किए, स्नेहपूर्ण हृदय से, विवेक के साथ सच बोलो। बुरी खबरों का आविष्कार मत करो और न ही उन्हें फैलाओ। छिद्रान्वेषण मत करो, बल्कि अपने साथियों के शुभ पक्ष का अवलोकन करो, ताकि तुम निष्ठापूर्वक उनकी उनके शत्रुओं से रक्षा कर सको। शपथ न लो, पर चारुता और मर्यादा के साथ बोलो। बकवाद में समय न गंवाओं, पर काम से लगे रहो या चुप रहो। लालच न करो और न द्वेष ही, बल्कि दूसरे लोगों के सौभाग्य पर हर्षित होओ। अपने हृदय को ईर्ष्या से मुक्त करो और अपने शत्रुओं के प्रति भी द्वेष-भाव न रखो, बल्कि समस्त प्राणियों को स्नेहभाव के साथ अपनाओ। अपने मन को अज्ञान से मुक्त करो और सत्य को सीखने के लिए जिज्ञासु बनो। विशेषकर यह एक बात अत्यावश्यक है, अन्यथा तुम नास्तिकता या भूल के शिकार हो सकते हो।

२६७३) वह जो दु:ख के अस्तित्व, दु:ख के कारण, दु:ख के निदान और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग को सम्यक् प्रज्ञा से जानता है, वह चार आर्यसत्यों को हृदयंगम कर लेता है। ऐसा व्यक्ति सम्यक् पथ पर विचरण करता है।

२६७४) सम्यक् दृष्टि उसके पथ को प्रकाशित करने वाली मशाल होगी। सम्यक् उद्देश्य उसके पथदर्शक होंगे। सम्यक् वचन पथ में निवास करने के लिए उसके आश्रय-स्थल होंगे। उसकी पद-गति सीधी होगी, क्योंकि यह सम्यक् आचार है। जीविका उपार्जन की विधि ही उसका अनुरंजन होगी। प्रयत्न उसके चरण होंगे, सम्यक् विचार उनकी सांस होगा और शान्ति उसके पदचिह्नों का अनुसरण करेगी।

२६७५) जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, वह फिर लीन होगा। अहं-भाव के सम्बन्ध में सारी चिन्ताएं निष्फल हैं, अहंकार तो मृगतृष्णा के समान है और इससे सम्बन्धित सारे मनस्ताप क्षणिक हैं। वे तो उस सपने के समान विलीन हो जाएंगे, जो जागने पर टूट जाता है।

२६७६) अगर व्यक्ति अकेला हो और सत्य का अनुगमन करने का संकल्प करे, तो वह दुर्बल हो सकता है और विचलित होकर फिर अपने पुराने रास्ते पर चल सकता है। इसलिए तुम लोग साथ-साथ खड़े होओ, एक दूसरे की सहायता करो और एक-दूसरे के प्रयासों को सशक्त करो।

२६७७) जिस प्रकार एक वीर योद्धा रणक्षेत्र को प्रस्थान करता है, इसी प्रकार वह व्यक्ति भी होता है, जिसमें देने की क्षमता होती है। स्नेह और करुणा से परिपूर्ण होकर वह श्रद्धापूर्वक दान करता है तथा समस्त घृणा, ईर्ष्या और क्रोध का परित्याग कर देता है।

२६७८) परोपकारी व्यक्ति मुक्ति के पथ को पा लेता है। वह एक ऐसे व्यक्ति के समान होता है, जो इसलिए बिरवा लगता है ताकि आनेवाले वर्षों में उसके लिए सुरक्षित रूप से आश्रय, फूल और फल प्राप्त हो सके। ठीक ऐसा ही फल परोपकार का भी होता है, ठीक ऐसा ही आनन्द उसे प्राप्त होता है, जो जरूरतमन्द की सहायता करता है, ठीक ऐसा ही महान् निर्वाण के सम्बन्ध में भी है।

२६७९) इस जीवन में जिसने पाप और पुण्य दोनों का परित्याग कर दिया है, जो पवित्र है, जो इस संसार में विवेकयुक्त होकर रहता है, वही वास्तविक रूप में भिक्षु कहा जाता है।

२६८०) जो आलसी और अज्ञानी है, वह केवल चुप रहकर साधु नहीं बन जाता। परन्तु जो विद्वान पुरुष तराजू में तोलने के समान उत्तम को स्वीकार करता और बुराई का परित्याग करता है, वस्तुत: साधु है। इसलिए कोई भी व्यक्ति मात्र इस हेतु भिक्षु नहीं बन जाता कि वह दूसरों से भिक्षा मांगता है। औपचारिक क्रियाओं को सम्पन्न करनेवाला व्यक्ति वास्तविक रूप से भिक्षु नहीं बनता।

२६८१) तू अपने प्रकाश को इस प्रकार विकिरित कर कि संसार का परित्याग कर जब तूने अपना सारा जीवन धर्म और धार्मिक

अनुशासन में लगाया है, तो तुझे शील के नियमों का अनुगमन करना चाहिए तथा तुझे अपने गुरुओं और बड़ों के प्रति सम्मानपूर्ण, स्नेहपूर्ण और सेवापरायण होना चाहिए।

२६८२) जो श्रमण स्त्री को दृष्टि से देखता है या उसका स्त्री के रूप में स्पर्श करता है, उसने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी है और वह शाक्यमुनि (बुद्ध) का शिष्य नहीं रह गया है। यदि अन्ततोगत्वा तुझे स्त्री के साथ बातचीत करनी ही पड़े तो स्वच्छ हृदय से कर और स्वयं विचार कर, मैं एक श्रमण के रूप में इस पापपूर्ण संसार में कमल की उस निष्कलंक पंखुड़ी के समान जीवन-यापन करूंगा, जो उस पंक में लिप्त नहीं होती, जिसमें वह विकसित होती है।

२६८३) वह व्यक्ति, जिसके हाथ, पैर, वाणी और मस्तिष्क संयमित हैं, वह व्यक्ति, जिसे ध्यान में आनन्द आता है और जो प्रशान्त है, वह व्यक्ति जो एकाकी और आत्मतुष्ट है, उसे वे भिक्षु कहते हैं।

२६८४) जिसका शरीर और मन के प्रति किसी भी प्रकार का मैं और मुझे का भाव नहीं है, जो उसके लिए शोक नहीं करता जो उसके पास नहीं है, वही विस्तृत भिक्षु कहलाता है।

२६८५) जो भिक्षु एकान्त स्थान में वास करता है, जिसने अपने मन को स्थिर कर लिया है, जो धर्म को स्पष्ट रूप से देखता है, वह मनुष्यों से परे के आनन्द का उपभोग करता है।

२६८६) दोनों पक्षों की धैर्यपूर्वक सुनो। जो व्यक्ति दोनों पक्षों को तोलता है, उसे मुनि कहा जाता है, जब दोनों पक्ष अपने मामले प्रस्तुत कर देते हैं, तब संघ को समझौता सम्पन्न करने दो और एकता की स्थापना की घोषणा करने दो। जब दो पक्ष तेरे पास फैसले के लिए आएं, तो दूसरे पक्ष की बात सुने बिना केवल पहले पक्ष की बात सुनकर फैसला मत दे, क्योंकि तेरे लिए वस्तुस्थिति को पूरी तरह से जानना बहुत मुनासिब है।

२६८७) अपनी प्रगति के लिये वृक्ष के गुण को देखना चाहिये। वृक्ष एक ही स्थान पर स्थिर रहता है लेकिन अपनी सैकडों शाखाओं से सभी तरफ से चारों और बढ़ता है, प्रगति के आकाश मे फैलता है। हम भी इसी तरह फैले। घर परिवार, समाज, देश और विश्व से प्रेम करना चाहिये। सर्वत्र आदर और सदभाव भर देना चाहिये। वृक्ष के जैसे किसी को सहारे की छांव देनी चाहिये। हमारा ऐश्वर्य, वैभव इस पर निर्भर है कि बाहरी जगत मे हम प्रेम और स्नेह के रूप में स्वयं को कितना फैलाते है।

२६८८) जो भी आर्य अष्टांगिक मार्ग पर चलते हैं, उनमें से प्रत्येक धार्मिक जीवन के आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। जो धन से लिपटा हुआ है, उसके लिए यही अच्छा है कि अपने हृदय को उससे विषाक्त करने के बदले उसका परित्याग कर दे, किन्तु जो धन से लिपटा हुआ नहीं है और जिसके पास सम्पदा है तथा जो उसका सम्यक् उपयोग करता है, वह अपने सहगामी बन्धुओं के लिए वरदानस्वरूप हो जाएगा।

२६८९) तथागत के धर्म के लिए व्यक्ति का अनिकेत होना, या संसार से विरत होना तब तक आवश्यक नहीं, जब तक स्वयं वह ऐसा करने की प्रेरणा नहीं पाता, परन्तु तथागत के धर्म के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्व के भ्रम से मुक्त हो जाए, अपने हृदय का परिमार्जन करे, सुख के प्रति अपनी तृष्णा का परित्याग करे और सदाचार का जीवन व्यतीत करे।

२६९०) पांच भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए भगवान् ने कहा- तथागत को उसके नाम से मत पुकारो, न उसे मित्र ही कहो, क्योंकि वह बुद्ध है। बुद्ध करुणापूर्ण हृदय के साथ समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है और इसलिए वे उसे पिता कहते हैं। पिता का अनादर करना अनुचित है, उसका अवमानना करना पाप है।

२६९१) तथागत तितिक्षा के द्वारा निर्वाण की खोज नहीं करता, किन्तु इस कारण तुम्हें यह भी नहीं सोचना चाहिए कि वह सांसारिक सुखों में लीन है और न यह कि वह प्रचुरता में जी रहा है। तथागत ने मध्यम मार्ग की प्राप्ति की है।

२६९२) जब तक अहं-भाव बना हुआ है, जब तक उसमें सांसारिक या पारलौकिक सुखों की वासना विद्यमान है, तब तक सारा शरीर पीड़न व्यर्थ है। परन्तु जिसमें अहं-भाव नष्ट हो गया है, वह काम से मुक्त होता है। ऐसा व्यक्ति न तो सांसारिक सुखों की कामना करता है, न स्वर्गिक सुखों की। तथा अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि से वह अपवित्र नहीं होता। उसे शरीर की आवश्यकता के अनुरूप खाने और पीने दो।

२६९३) कमल के चारों ओर जल होता है, किन्तु उसकी पंखुड़ियां नहीं भीगती। इसके विपरीत, सब प्रकार की इन्द्रियपरता हतवीर्य करने वाली होती है। इन्द्रियपर व्यक्ति अपने आवेगों का दास होता है तथा सुखेच्छा पतनकारी और प्राकृत होती है।

२६९४) पुण्यकर्म- सत्पात्र को दान कर। नैतिकता के नियमों का पालन कर। शुभ विचारों का अभ्यास और विकास कर। दूसरों की सेवा और देखभाल कर। माता-पिता और बड़ों का सम्मान कर और उनकी शुश्रूषा कर। अपने पुण्य का भाग दूसरों को दे। दूसरों के द्वारा दिए गए पुण्य को स्वीकार कर। सम्यकता के सिद्धान्त का श्रवण कर। सम्यकता के सिद्धान्त का प्रचार कर। अपनी त्रुटियों का सुधार कर।

२६९५) हत्या न करने का धर्मादेश ग्रहण करो। चोरी न करने का धर्मादेश ग्रहण करो। व्यभिचार न करने का धर्मादेश ग्रहण करो। असत्य न बोलने का धर्मादेश ग्रहण करो। मद्यपान न करने का धर्मादेश ग्रहण करो।

२६९६) बुद्ध की आज्ञाएं- हत्या न कर। चोरी न कर। व्यभिचार न कर। झूठ मत बोल। निन्दा न कर। कर्कश न बोल। व्यर्थ बात मत कर। दूसरों की सम्पत्ति का लोभ न कर। घृणा न दिखा। सम्यक् रूप से विचार कर।

२६९७) जल से शरीर शुद्ध होता है, सत्य से मन, विद्या एवं तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध हो जाती है- यही मोक्ष मार्ग की सीढ़ी है।

२६९८) वाणी, शरीर और कर्म से प्रजाजन की रक्षा करना और यदि राजा का पुत्र भी प्रजाजनों को वाणी तथा कर्म द्वारा पीड़ित करता है तो उसे भी सहन न करके पुत्र को उचित दंड देना राजधर्म है।

२६९९) जब तक व्यक्ति अहंकार युक्त होता है तब तक वह दु:ख भोगने के लिए बाध्य है और जब अहंकार नहीं रह जाता तब कोई कष्ट नहीं होता।

२७००) पापाचरण करने वाले पापियों का अपकार सन्त-पुरुष नहीं देखते। सज्जन पुरुषों को स्वयं के शील-सदाचार का रक्षण करना चाहिए।

२७०१) स्वास्थ्यदायक आहार का सेवन और नियमित व्यायाम से आयु बढती है। यह विचार सर्वमान्य है, लेकिन आयु बढाने के और भी कुछ मानसिक या आत्मिक स्तर के उपाय है। वे है कोमल स्वभाव, सबके कल्याण की कामना करना, किसी का बुरा न सोचना, क्षमा करना, धैर्य रखना, किसी से भी घृणा-नफरत न करना। इन सदगुणों से आयु बढती है। उचित आहार-विहार जैसे आरोग्यवर्धक उपायों को सद्गुण सहायता करते है।

२७०२) आज्ञा-पालन धर्म है। आज्ञाका उल्लंघन अधर्म है। धर्मानुसार निश्चयकी स्थिरता जीवनको शक्तिशाली बनाती है। आज्ञाका पालन वासनाको नियमित करता है।

२७०३) कितने बन्धन हैं अपने जीवन में ? अहंके बन्धन हैं, मनके बन्धन हैं, पाप-पुण्यके बन्धन हैं, राग-द्वेषके बन्धन हैं, सुख-दु:खके बन्धन हैं, ज्ञान-अज्ञानके बन्धन हैं।

२७०४) धर्म उत्कृष्ट मंगल है। अहिंसा, संयम और तप उसके लक्षण हैं। जिसका मन सदा धर्म में रमा रहता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं।

२७०५) वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा आदि भावों की अपेक्षा से वह दस प्रकार का है। रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र) तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है। उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य- ये दस धर्म हैं।

२७०६) कुत्ते से जागरूकता, बगुले से ध्यान, चींटी से लगन, गधे से श्रम, मछली से स्वदेश प्रियता, सिंह से निर्भरता, हंस से सार संग्रह, घोडे से कर्मठता, गाय से सादगी व सन्तोष, कौवे से प्रयत्न, चेष्टा और एकान्त में मैथुन करना, हाथी से आलोचना पर ध्यान न देना तथा सर्प से अपने स्वभाव व धर्म को न छोडना सीखना चाहिये।

२७०७) प्राकृतिक चमत्कार और मानव बुद्धि के परे घटित घटनाओं को स्वाभाविक रूप से काल महिमा कहा जाता है। पृथ्वी सर्वत्र समान यानि वृक्ष, पर्वत, नदियां, नाले के रूप में होकर भी काल महिमा के कारण उसके प्रत्येक खंड में भिन्नता आई है। पृथ्वी पर एक ही समय मे कहीं कडी सर्दी होती है तो कहीं पर तेज गर्मियां। यही काल महिमा है। लोग, प्राणी भी दीखने मे एक समान एक रंग रूप के नहीं है। प्रत्येक का आकार भिन्न है रंग भिन्न है। कहीं उर्वर जमीन तो कहीं रेगिस्तान मिलता है, कहीं सागर तो कहीं बन्जर भूमि

है। इसी काल महिमा ने लोगों की प्रवृतियां बदल डाली है। अलग-अलग धर्मों, पथों और रिवाजों में लोग बंट चुके है। यह सब विभिन्नता ही काल महिमा है।

२७०८) जो मुनि सब प्रकार के परिग्रह का त्याग कर नि:संग हो जाता है, अपने सुखद व दुखद भावों का निग्रह कर निर्द्वन्द्व विचरता है, उसके आकिंचन धर्म होता है।

२७०९) सच्चा अमीर कौन है ? जिस पर किसी का ऋण नही है वही सच्चा अमीर है चुकाने की क्षमता हो तभी ऋण लेना चाहिये। लेकिन ऋण, कर्ज लेने का अवसर ही न आये वही स्थिति सच्ची अमीरी है। ऋणरूपी ऊंट घर में लाया जा सकता है लेकिन व्याज की गति से वह बढ़ता है और घर डूबा कर ही बाहर निकलता है। केवल धन का ही ऋण होता है ऐसा नहीं है। किसी के उपकारों का भी कर्ज होता है। वे उपकार चुकाये बिना नहीं रहना चाहिये। लेनदार देनदार का शर्मिन्दा होता है जबकि देनदार लेनदार का शोषण करता है। कर्जदारी कितनी कष्टदायी होती है। कर्जहीन जीवन ही सच्ची अमीरी है।

२७१०) शत्रु द्वारा की गई प्रशंसा ही सच्ची कीर्तिदायक होती है। मनुष्य अपने कर्म और स्वभाव से शत्रु या मित्रता के सम्बन्ध बनाता है। हमारे स्वार्थ के अनुकूल व्यक्तियों को हम मित्र या हितैषी मानते है, इसके विपरीत स्वार्थ की आड आने वालों को शत्रु मानते है। वास्तव में हर व्यक्ति के जैसे कर्म वैसे उसके शत्रु या मित्र होते है। मित्र प्रशंसा तो करते है, लेकिन उसमे ऊपरी दिखावा होने की सम्भावना होती है, लेकिन शत्रु हमारी प्रशंसा करते है तो वह विशेष विचार करने योग्य होती है। हमारे कर्तृत्व से प्रभावित होकर ही शत्रु प्रशंसा करता है, वही प्रशंसा श्रेष्ठ होती है।

२७११) जीव जन्म, जरा और मरण से होने वाले दु:ख को जानता है, उसका विचार भी करता है, किन्तु विषयों से विरक्त नहीं हो पाता। माया (दम्भ) की गांठ कितनी सुदृढ़ होती है।

२७१२) संसारी जीव के (राग-द्वेष रूपी) परिणाम होते हैं। परिणामों से कर्मबन्ध होता है। कर्मबन्ध के कारण जीव चार गतियों में गमन करता है- जन्म लेता है। जन्म से शरीर और शरीर से इन्द्रियां प्राप्त होती हैं। उनसे जीव विषयों का ग्रहण (सेवन) करता है। उससे फिर राग-द्वेष पैदा होता है। इस प्रकार जीव संसार-चक्र में परिभ्रमण करता है। उसके परिभ्रमण का हेतुभूत परिणाम अनादि और अनन्त होता है।

२७१३) जाति, मित्र-वर्ग, पुत्र और बान्धव उसका दु:ख नहीं बंटा सकते। वह स्वयं अकेला दु:ख का अनुभव करता है। क्योंकि कर्म कर्ता का अनुगमन करता है।

२७१४) इन आठ स्थितियों या कारणों से मनुष्य शिक्षाशील कहा जाता है- १) हंसी-मजाक नहीं करना, २) सदा इन्द्रिय और मन का दमन करना, ३) किसी का रहस्योद्घाटन नहीं करना, ४) अशील (सर्वथा आचारविहीन) न होना, ५) विशील (दोषों से कलंकित) न होना, ६) अति रस लौलुप न होना, ७) अक्रोधी रहना तथा ८) सत्यरत होना।

२७१५) आहार, आसन तथा निद्रा पर विजय प्राप्त करते गुरुप्रसाद से ज्ञान प्राप्त कर जितात्मा का ध्यान करना चाहिए। गुरु तथा वृद्ध-जनों की सेवा करना, अज्ञानी लोगों के संपर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकांतवास करना, सूत्र और अर्थ का सम्यक् चिन्तन करना तथा धैर्य रखना ये (दु:खों से मुक्ति के) उपाय हैं। समाधि का अभिलाषी तपस्वी श्रमण परिमित तथा एषणीय आहार की ही इच्छा करे, तत्त्वार्थ में निपुण (प्राज्ञ) साथी को ही चाहे तथा विवेकयुक्त अर्थात विविक्त (एकान्त) स्थान में ही निवास करे।

२७१६) ज्ञान, ध्यान और तपोबली से इन्द्रिय-विषयों और कषायों को बलपूर्वक रोकना चाहिए। जैसे कि लगाम के द्वारा घोड़ों को बलपूर्वक रोका जाता है।

२७१७) ऋण को थोड़ा, घाव को छोटा, आग को तनिक, और कषाय को अल्प मान, विश्वस्त होकर नहीं बैठ जाना चाहिए। क्योंकि ये थोड़े भी बढ़कर बहुत हो जाते हैं।

२७१८) अपने असामाजिक या आचरणहीन कार्यों से हृदय को दुखित करने वाली सन्तान से क्या लाभ, इससे तो यही अच्छा है कि वह जन्म लेने के साथ ही माता-पिता से विमुख हो जाये। उस समय उसके वियोग का दु:ख क्षणिक होता है। एक भी पुत्र सद्गुणी कार्यकुशल विनम्र और आज्ञाकारी हो तो अपने पूरे परिवार की कीर्ति का कारण बन जाता है। उसके वृद्ध माता-पिता व परिवार जन

उसका आश्रय पाकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते है।

२७१९) जीव परिग्रह के निमित्त हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, मैथुन का सेवन करता है और अत्यधिक मूर्च्छा करता है। (इस प्रकार परिग्रह पांचों पापों की जड़ है।)

२७२०) जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियां (रोगादि) नहीं बढ़ती और इन्द्रिया अशक्त (अक्षम) नहीं हो जाती, तब तक (यथाशक्ति) धर्माचरण कर लेना चाहिए। (क्योंकि बाद में अशक्त और असमर्थ देहेन्द्रियों से धर्माचरण नहीं हो सकेगा)

२७२१) सांसारिक वस्तुओं को पाशरूप जानकर मुमुक्षु को बड़ी सावधानी से फूंक-फूंक कर पांव रखना चाहिए। जब तक शरीर सशक्त है तब तक उसका उपयोग संयम-धर्म की साधना के लिए कर लेना चाहिए। जब वह बिल्कुल अशक्त हो जाए तब बिना किसी मोह के मिट्टी के ढेले के समान उसे त्याग देना चाहिए।

२७२२) आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है- यह सिद्धान्त का निश्चय है। जो अप्रमत्त है, वह अहिंसक है और जो प्रमत्त है, वह हिंसक है।

२७२३) ज्ञानी होने का सार यही है, कि वह किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। इतना जानना ही पर्याप्त है, कि अहिंसामूलक समता ही धर्म है अथवा यही अहिंसा का विज्ञान है।

२७२४) जैसे तुम्हें दु:ख प्रिय नहीं है, वैसे ही सब जीवों को दु:ख प्रिय नहीं है- ऐसा जानकर पूर्ण आदर और सावधानीपूर्वक आत्मौपम्य की दृष्टि से सब पर दया करो।

२७२५) जीव का वध अपना ही वध है। जीव की दया अपनी दया है। अत: आत्महितैषी (आत्मकाम) पुरुषों ने सभी तरह की जीव-हिंसा का परित्याग किया है।

२७२६) जिसे तू हननयोग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है। राग आदि कि अनुपत्ति अहिंसा है और उसकी उत्पत्ति हिंसा है।

२७२७) परमपद की खोज में निरत साधु, सिंह के समान पराक्रमी, हाथी के समान स्वाभिमानी, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह, वायु के समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गंभीर, मेरु के समान निश्चल, चन्द्रमा के समान शीतल, मणि के समान कांतिमान, पृथ्वी के समान सहिष्णु, सर्प के समान अनियत-आश्रयी तथा आकाश के समान निरवलम्ब होते हैं। (साधु की ये चौदह उपमाएं हैं।)

२७२८) (कोई भी) गुणों से साधु होता है और अगुणों से असाधु। अत: साधु के गुणों को ग्रहण करो और असाधुता का त्याग करो। आत्मा को आत्मा के द्वारा जानते हुए, जो राग-द्वेष में समभाव रखता है, वही पूज्य है। वह लाभ और अलाभ में, सुख और दु:ख में, जीवन और मरण में, निन्दा और प्रशंसा में तथा मान और अपमान में समभाव रखता है।

२७२९) स्वाध्याय और ध्यान में लीन साधु रात में बहुत नहीं सोते। सूत्र और अर्थ का चिन्तन करते रहने के कारण वे निद्रा के वश नहीं होते। साधु ममत्वरहित, निरहंकारी, निस्संग, गौरव का त्यागी तथा त्रस और स्थावर जीवों के प्रति समदृष्टि रखता है। वह गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त अनिदानी और बन्धन से रहित होता है। वह इस लोक और परलोक में अनासक्त, बसूले से छीलने या चन्दन का लेप करने पर तथा आहार मिलने या न मिलने पर भी सम रहता है- हर्ष-विषाद नहीं करता।

२७३०) भूख, प्यास, दु:शय्या (ऊंची-नीची पथरीली भूमि), ठण्ड, गर्मी, अरति, भय, आदि को बिना दु:खी हुए सहन करना चाहिए। क्योंकि दैहिक दु:खों को समभावर्पूक सहन करना महाफलदायी होता है।

२७३१) प्रबुद्ध और उपशान्त होकर संयम भाव से ग्राम और नगर में विचरण कर। शान्ति का मार्ग बढ़ा। क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर। (संयम मार्ग में) वेश प्रमाण नहीं है, क्योंकि वह असंयमी जनों में भी पाया जाता है। क्या वेश बदलने वाले व्यक्ति को खाया हुआ विष नहीं मारता ?

२७३२) (फिर भी) लोक-प्रतिति के लिए नाना-तरह के विकल्पों की, वेश आदि की परिकल्पना की गयी है। संयमयात्रा के निर्वाह के लिए और मैं साधु हूं इसका बोध रहने के लिए ही लोक में लिंग का प्रयोजन है।

२७३३) भावों की विशुद्धि के लिए ही बाह्यपरिग्रह का त्याग किया जाता है। जिसके भीतर परिग्रह की वासना है, उसका बाह्य-त्याग निष्फल है।

२७३४) संघस्थित साधु ज्ञान का भागी (अधिकारी) होता है, दर्शन और चरित्र में विशेषरूप से स्थिर होता है। वे धन्य हैं जो जीवन-पर्यन्त गुरुकुलवास नहीं छोड़ते।

२७३५) जो कर्मों की निर्जरा के लिये एक दो दिन आदिका (यथाशक्ति) प्रमाण तय करके आहार का त्याग करता है, उसके अनशन तप होता है। जो शास्त्राभ्यास (स्वाध्याय) के लिए अल्प-आहार करते हैं, वे ही आगम में तपस्वी माने गये हैं। श्रुतिविहीन अनशन तप तो केवल भूख का आहार करना है- भूखे मरना है।

२७३६) वास्तव में वही अनशन-तप है, जिससे मन में अमंगल की चिन्ता उत्पन्न न हो, इन्द्रियों की हानि (शिथिलता) न हो तथा मन-वचन-कायरूप योगों की हानि (गिरावट) न हो। संक्षेप में इन्द्रियों के उपशमन को ही उपवास कहा गया है। अत: जितेन्द्रिय साधु भोजन करते हुए भी उपवासी ही होते हैं।

२७३७) जो जितना भोजन कर सकता है, उसमें से कम से कम एक सिक्थ अथवा एक कण अथवा एक ग्रास आदि के रूप में कम भोजन करना द्रव्य रूपेण ऊनोदरी तप है।

२७३८) आहार के लिए निकलने वाले साधु का, वह वृत्तिपरिसंख्यान नामक तप है, जिसमें वह ग्रहण का प्रमाण करता है, कि आज भिक्षा के लिए इतने घरों में जाऊंगा, अमुक प्रकार के दाता द्वारा दिया गया या अमुक प्रकार के बर्तन में रखा गया आहार ग्रहण करूंगा, अमुक प्रकार का जैसे माँड, सत्तू आदि का भोजन मिलेगा तो करूंगा, आदि आदि। दूध, दही, घी आदि पौष्टिक भोजन-पान आदि के रसों के त्याग को रस-परित्याग नामक तप कहा गया है।

२७३९) रोग की चिकित्सा में रोगी का न सुख ही हेतु होता है, न दु:ख ही। चिकित्सा कराने पर रोगी को दु:ख भी हो सकता है और सुख भी। इसी तरह मोह के क्षय में सुख और दु:ख दोनों हेतु नहीं होते। मोह के क्षय में प्रवृत्त होने पर साधक को सुख भी हो सकता है और दु:ख भी। (कायक्लेश तप में साधक को शरीरागत दु:ख या बाह्य व्याधियों को सहन करना पड़ता है। लेकिन वह मोहक्षय की साधना का अंग होने से अनिष्टकारी नहीं होता।)

२७४०) क्रोध आदि स्वकीय भावों के क्षय वा उपशम आदि की भावना करना तथा निजगुणों का चिन्तन करना निश्चय से प्रायश्चित तप हैं।

२७४१) जैसे बालक अपने कार्य-अकार्य को सरलतापूर्वक मां के समक्ष व्यक्त कर देता है, वैसे ही साधु को अपने समस्त दोषों की आलोचना माया-मद (छल-छद्म) त्यागकर करनी चाहिए।

२७४२) जैसे कांटा चुभने पर सारे शरीर में वेदना या पीड़ा होती है और कांटे के निकल जाने पर शरीर नि:शल्य अर्थात् सर्वांग सुखी हो जाता है, वैसे ही अपने दोषों को प्रकट न करने वाला मायावी दु:खी या व्याकुल रहता है और उनको गुरु के समक्ष प्रकट कर देने पर सुविशुद्ध होकर सुखी हो जाता है- मन में कोई शल्य नहीं रह जाता।

२७४३) गुरु तथा वृद्धजनों के समक्ष आने पर खड़े होना, हाथ जोड़ना, उन्हें उच्च आसन देना, गुरुजनों की भावपूर्वक भक्ति तथा सेवन करना विनय तप है।

२७४४) दर्शन-विनय, ज्ञान-विनय, चरित्र-विनय, तप-विनय और औपचारिक विनय ये विनय तप के पांच भेद कहे गए हैं, जो पंचमगति अर्थात् मोक्ष में ले जाते हैं।

२७४५) एक के तिरस्कार में सबका तिरस्कार होता है, और एक की पूजा में सबकी पूजा होती है। (इसलिए जहां नहीं कोई पूज्य या वृद्धजन दिखायी दें, उनका विनय करना चाहिए।) विनय जैन धर्म का मूल है। संयम तथा तप से विनीत बनना चाहिए। जो विनय से रहित है, उसका कैसा धर्म और कैसा तप ? विनय मोक्ष के द्वार है। विनय से संयम, तप तथा ज्ञान प्राप्त होता है। विनय से आचार्य तथा सर्वसंघ की आराधना होती है।

२७४६) एकान्त, अनापात (जहां कोई आता-जाता न हो) तथा स्त्री-पुरुषादि से रहित स्थान में शयन एवं आसन ग्रहण करना,

विविक्त शयनासन (प्रतिसंलीनता) नामक तप है।

२७४७) गिरा, कंदरा आदि भयंकर स्थानों में, आत्मा के लिए सुखावह, वीरासन आदि उग्र आसनों का अभ्यास करना या धारण करना कायक्लेश नामक तप है।

२७४८) सुखपूर्वक प्राप्त किया हुआ ज्ञान दु:ख के आने पर नष्ट हो जाता है। अत: योगी को अपनी शक्ति के अनुसार दु:खों के द्वारा अर्थात् कायक्लेशपूर्वक आत्म-चिन्तन करना चाहिए।

२७४९) मोक्षावस्था का शब्दों में वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि वहां शब्दों की प्रवृत्ति नहीं है। न वहां तर्क का ही प्रवेश है, क्योंकि वहां मानस व्यापार सम्भव नहीं है। मोक्षावस्था संकल्प-विकल्पातीत है। साथ ही समस्त मल कलंक से रहित होने से वहां ओज भी नहीं है। रागातीत होने के कारण सातवें नरक तक की भूमि का ज्ञान होने पर भी वहां किसी प्रकार का खेद नहीं है। जहां दु:ख है न सुख, पीड़ा है न बाधा, मरण है न जन्म, वहीं निर्वाण है।

२७५०) जहां न इन्द्रियां हैं न उपसर्ग, न मोह है न विस्मय, न निद्रा है न तृष्णा और न भूख, वहीं निर्वाण है। जहां न कर्म है न नोकर्म, न चिन्ता है न आर्तरौद्र ध्यान, न धर्मध्यान है और न शुक्लध्यान, वहीं निर्वाण है। वहां अर्थात् मुक्तजीवों में केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख, केवलवीर्य, अरूपता, अस्तित्व और सप्रदेशत्व ये गुण होते हैं। जिसे महर्षि ही प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है, अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है, क्षेम, शिव और अनाबाध है।

२७५१) अचौर्याणुव्रती श्रावक को न चोरी का माल खरीदना चाहिए, न चोरी में प्रेरक बनना चाहिए। न ही राज्य-विरुद्ध अर्थात् कर आदि की चोरी व नियम विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए। वस्तुओं में मिलावट आदि नहीं करना चाहिए। सिक्के या नोट आदि नहीं चलाना चाहिए।

२७५२) आहार, औषध, शास्त्र और अभय के रूप में दान चार प्रकार का कहा गया है। उपासकाध्ययन (श्रावणकार) में उसे देने योग्य कहा गया है।

२७५३) जो गृहस्थ, मुनि को भोजन कराने के पश्चात् बचा हुआ भोजन करता है, वास्तव में उसी का भोजन करना सार्थक है। वह जिनोपदिष्ट संसार का सारभूत सुख तथा क्रमश: मोक्ष का उत्तम सुख प्राप्त करता है।

२७५४) प्राणिवध (हिंसा), मृषावाद (असत्य-वचन), बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण (चोरी), परस्त्री-सेवन (कुशील), तथा अपरिमित कामना (परिग्रह) इन पांचों पापों से विरति अणुव्रत है।

२७५५) प्राणिवध से विरत श्रावक को क्रोधादि कषायों से मन को दूषित करके पशु व मनुष्य आदि का बन्धन, डण्डे आदि से ताड़न-पीड़न, नाक आदि का छेदन, शक्ति से अधिक भार लादना तथा खान-पान रोकना आदि कर्म नहीं करने चाहिए। (क्योंकि ये कर्म हिंसा जैसे ही हैं। इनका त्याग स्थूलहिंसा विरति है।)

२७५६) स्थूल (मोटे तौर पर) असत्य-विरति दूसरा अणुव्रत है। (हिंसा की तरह) इसके भी पांच भेद हैं- कन्याअलीक, गो-अलीक व भू-अलीक अर्थात् कन्या, गो (पशु) तथा भूमि के विषय में झूठ बोलना, किसी की धरोहर दबा लेना और झूठी गवाही देना। (इनका त्याग स्थूल असत्य-विरति है।)

२७५७) (साथ ही साथ) सत्य अणुव्रती बिना सोचे-समझे सहसा न तो कोई बात करना है, न किसी का रहस्योद्घाटन करता है, न अपनी पत्नी की कोई गुप्त बात मित्रों आदि में प्रकट करता है, न मिथ्या (अहितकारी) उपदेश करता है और न कूटलेखक्रिया (जाली हस्ताक्षर या जाली दस्तावेज आदि) करता है।

२७५८) स्व-स्त्री में संतुष्ट ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक को विवाहित या अविवाहित स्त्रियों से सर्वथा दूर रहना चाहिए। अनंग-क्रीडा नहीं करनी चाहिए। अपनी संतान के अतिरिक्त दूसरों के विवाह आदि कराने में दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिए। काम-सेवन की तीव्र लालसा का त्याग करना चाहिए।

२७५९) अपरिमित परिग्रह अनंत तृष्णा का कारण है, वह बहुत दोषयुक्त है तथा नरकगति का मार्ग है। अत: परिग्रह-परिणामाणुव्रती विशुद्धवित्त श्रावक को क्षेत्र-मकान, सोना-चांदी, धन-धान्य, द्विपद-चतुष्पद तथा भण्डार (संग्रह) आदि परिग्रह के अंगीकृत परिमाण

का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

२७६०) प्रयोजनवश कार्य करने से अल्प-कर्मबंध होता है और बिना प्रयोजन कार्य करने से अधिक कर्मबंध होता है। क्योंकि सप्रयोजन कार्य में तो देश-काल आदि परिस्थितियों की सापेक्षता रहती है, लेकिन निष्प्रयोजन प्रवृत्ति तो सदा ही (अमर्यादित रूप से) की जा सकती है।

२७६१) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच महाव्रत का स्वीकार करके विद्वान मुनि जैन धर्म का आचरण करे। अहिंसा सब आश्रमों का हृदय, सब शास्त्रों का रहस्य तथा सब व्रत और गुणों का पिण्डभूत-सार है। स्वयं अपने लिए तथा दूसरों के लिए क्रोधादि या भय आदि के वर होकर हिंसात्मक असत्य-वचन न तो स्वयं बोलना चाहिए न दूसरों से बुलवाना चाहिए। यह दूसरा सत्यव्रत है। ग्राम, नगर अथवा अरण्य में दूसरे की वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने का भाव त्याग देने वाले साधु के तीसरा अचौर्यव्रत होता है। वृद्धा, बालिका और युवती-स्त्री के इन तीनों प्रतिरूपों को देखकर उन्हें माता, पुत्री और बहन के समान मानना तथा स्त्री-कथा से निवृत्त होना ही चौथा ब्रह्मचर्य व्रत है। यह ब्रह्मचर्य तीनों लोकों में पूज्य है। निरपेक्षभावनापूर्वक चरित्र का भार वहन करनेवाले साधु का बाह्याभ्यन्तर, सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना, पांचवां परिग्रह-त्याग नामक महाव्रत कहा जाता है।

२७६२) मैथुन-संसर्ग अधर्म का मूल है, महान् दोषों का समूह है। इसीलिए ब्रह्मचर्यव्रती निर्ग्रंथ-साधु, मैथुन-सेवन का सर्वथा त्याग करता है।

२७६३) जो अनिवार्य है, असंयमी जनों द्वारा अप्रार्थनीय है, ममत्व आदि पैदा करने वाली नहीं है, ऐसी वस्तु ही साधु के लिए उपादेय है। इसके विपरीत अल्पमत परिग्रह भी उसके लिए ग्राह्य नहीं है।

२७६४) आहार अथवा विहार में देश, काल, श्रम, अपनी सामर्थ्य तथा उपाधि को जानकर श्रमण यदि बरतता है, तो वह अल्पलेपी होता है अर्थात् उसे अल्प ही बन्ध होता है।

२७६५) यतनाचार (विवेक या उपयोग) पूर्वक चलने, यतनाचारपूर्वक रहने, यतनाचारपूर्वक बैठने, यतनाचारपूर्वक सोने, यतनाचारपूर्वक खाने और यतनाचारपूर्वक बोलने से साधु को पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता।

२७६६) जैसे भ्रमर पुष्पों को तनिक भी पीड़ा पहुंचाए बिना रस ग्रहण करता है और अपने को तृप्त करता है, वैसे ही लोक में विचरण करनेवाले बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित भ्रमण दाता को किसी भी प्रकार का कष्ट दिए बिना उसके द्वारा दिया गया प्रासुक आहार ग्रहण करते हैं। यही उनकी एषणा समिति हैं।

२७६७) (भाषा-समिति परायण साधु) किसी के पूछने पर भी अपने लिए, अन्य के लिए या दोनों के लिए न तो सावद्य अर्थात् पापवचन बोले, न निरर्थक वचन बोले और न मर्मभेदी वचन का प्रयोग करे। तथा कठोर और प्राणियों का घात करनेवाली, चोट पहुंचाने वाली भाषा भी न बोले, ऐसा सत्य-वचन भी न बोले, जिससे पाप का बन्ध होता हो। इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, व्याधिग्रस्त को रोगी और चोर को चोर भी न कहें।

२७६८) पैशुन्य, हास्य, कर्क,-वचन, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, विकथा (स्त्री, राजा आदि की रसवर्धक या विकारवर्धक कथा) का त्याग करके स्व पर हितकारी वचन बोलना ही भाषा-समिति है।

२७६९) आत्मवान् मुनि ऐसी भाषा बोले, जो आंखों देखी बात को कहती हो, मित (संक्षिप्त) हो, सन्देहास्पद न हो, स्वर-व्यंजन आदि से पूर्ण हो, व्यक्त हो, बोलने पर भी न बोली गयी जैसे अर्थात् सहज हो और उद्वेगरहित हो।

२७७०) जीवन कभी सुखी या दु:खी नहीं होता। यह तो हमारे कर्म होते है जो सुख और दु:ख का कारण बनते है। इसलिये प्रति क्षण जीवन को शुद्धाचरण द्वारा सफल बनाने का प्रयत्न करो। यही जीवन को सुखमय बनाने की कुंजी है।

२७७१) जीवन के हर पल में यही विचार रहें- मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर की संतान हूं, इसलिए मुझे किसी से भय खाने की कोई जरूरत नहीं है। मैं संसार के रचयिता का अंश हूं, इसलिए मैं कर्म तो करूंगा लेकिन फल की इच्छा नहीं करूंगा। मेरे जीवन में कोई असफलता नहीं आ सकती क्योंकि मेरा नाता सफलता के उस अनंत स्रोत से है। मुझे कोई डर नहीं है क्योंकि मैं साहसी हूं-सत्य हूं।

२७७२) अशुभ विचार वाले मनुष्य योगी एवं दुष्कर्म करने वाले भोगी बनते हैं, जबकि शुभ विचार वाले स्वस्थ, सत्कर्म करने वाले योगी बनते हैं।

२७७३) वास्तव में तीन चीजें पाना अत्यंत विकट है और वे केवल प्रभु की कृपा से ही सम्भव है- मानव जन्म, मोक्ष की तीव्र इच्छा

और ख्यात नाम, सच्चे संत के साथ सत्संग।

२७७४) भक्ति और ज्ञानमार्ग में कोई विरोध या मतभेद नहीं है। ये दोनों मार्ग एक-दूसरे की सहायता करते हैं और एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इन दोनों मार्गों में मूलभूत तत्व एकत्व है- प्रभु को जानना, प्रभु से स्नेह करना, इसीलिए भक्ति व ज्ञान मार्ग का अर्थ एक ही है।

२७७५) हानि-लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस, विधि हाथ। जो जीवन भगवान का प्रसाद मानकर इस भाव से जीता है, वही आत्मनिवेदन भक्ति का साकार रूप है।

२७७६) कर्म, ज्ञान, भोग सभी मार्ग ईश प्राप्ति के उत्तम मार्ग हैं। भक्ति मार्ग सबसे सहज है। नवधा भक्ति से, जिसमें पूर्ण समर्पण के साथ एक ही भक्ति होती है, संसार तर जाते हैं।

२७७७) जिस देश मे मूर्खों का आदर सम्मान नही होता, अन्न संचित रहता है तथा पति-पत्नी मे किसी प्रकार का झगडा नही होता, वहां लक्ष्मी बिना बुलाये ही निवास करती है। यदि देश की समृद्धि और देशवासियों की सन्तुष्टि अभीष्ट है तो मूर्खों के स्थान पर गुणीजनों का आदर करना चाहिये। बुरे दिनों के लिये धन का भंडार बनाना चाहिये तथा घर गृहस्थ मे वाद विवाद का वातावरण नही होना चाहिये तभी देश की पूर्णतया समृद्धि होगी।

२७७८) मुझे श्रद्धा की अन्य दिखावे पसंद नहीं- केवल साईं-साईं कहो- ऐसे भक्त के हृदय में मैं वास करता हूं। जो मेरे नाम का सदैव अविरल स्मरण करते हैं, उन्हें उनका लक्ष्य प्राप्त हो जाता है।

२७७९) आत्म निवेदन का अर्थ अपने आपको प्रभु के हवाले करना है। आत्म-निवेदन में सम्पूर्ण अहंकार का नाश करके शरीर के भाव का लोप करना पड़ता है। यह अपना सिर काटकर प्रभु को चढ़ाने के समान है।

२७८०) सारी वासनाओं को त्याग देना चाहिए, इच्छा रहित बन जाना चाहिए, हृदय में समभाव स्थापित होना चाहिए। फिर आदमी मुमुक्षु बनता है और उसे मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता मिल जाता है।

२७८१) गुरु के चरणों में संशयहीन होकर, शुद्ध व सरल होकर अगर कोई पूर्ण समर्पण कर देता है तो उसे अन्य किसी साधना की जरूरत नहीं पड़ती। ऐसे व्यक्तियों को गुरु सिखाते नहीं है, वे शक्तिपात करते हैं। इस शक्तिपात से हमारी आत्मा निखर उठती है और हम जीवन के जंजाल से छूट जाते हैं।

२७८२) मन प्रभु की ओर मुड़ा हो, सारी क्रियाएं, विचार और भावनाएं प्रभु को अर्पित कर दी हों और अपने मैं का विलय कर दिया हो तो प्रभु निश्चित रूप से भक्त की हर अवस्था में रक्षा करते हैं।

२७८३) माया आत्मा को आवरण में रखती है और विक्षेप निर्माण करती है। अपने आपको शुद्ध चैतन्य मानो और माया की अपवित्रता को तिलांजलि दो। तब जो बचता है, वह केवल सत्य है- उसकी उपासना करो।

२७८४) मोक्ष, स्वर्ग, कैलास या बैकुंठ नहीं है- मोक्ष सम्पूर्ण संज्ञा है, शुद्ध व्यक्तित्व है, शुद्ध चैतन्य है। इसे प्राप्त करना ही मुक्ति है। यही मानव-जीवन का सर्वोच्च आदर्श है, बाकी आदर्श व्यर्थ हैं।

२७८५) आदमी अपनी इच्छा पर काबू पाकर मन को प्रभु पर एकाग्र करता है तो मन को समाधि अवस्था प्राप्त होती है और प्रभु मिल जाते हैं।

२७८६) साधना चातुष्ट्य है- नित्य-अनित्य, वस्तु-विवेक, वैराग्य समभाव और मुमुक्षुत्व:। मुमुक्षुत्व का अर्थ है मुक्ति की उत्कट इच्छा।

२७८७) सही और गलत का निर्णय लेना आवश्यक है, इसलिए कि आप वही बन सकते हैं जो आप जानते हैं और इसका कर्म के सिद्धान्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

२७८८) अगर कोई प्रभु का नाम लेकर ध्यान करता है, नाम जप करता है, प्रभु की लीलाओं को पढ़ता है, गुनगुनाता है और प्रभु में ही रम जाता है, प्रभु उसके कर्मों का नाश करते हैं और सदैव उसके साथ रहते हैं।

२७८९) सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है। स्नान से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

२७९०) घी के सेवन से बल वीर्य बढता है। मांस के सेवन से मांस बढ़ता है। दूध के पीने से शरीर की पुष्टि व वृद्धि होती है और सब्जी

के खाने से व्याधियां बढ़ती है। ऊंचाई, कद की वृद्धि के लिये दूध का और बल वृद्धि के लिये घी का सेवन करना चाहिये। मांस सेवन करने से तो शरीर पर केवल चर्बी बढती है और साग-सब्जी का लगातार प्रयोग शरीर को क्षीण बना देता है, व्यक्ति को दुर्बल बना देता है।

२७९१) कर्म नहीं छोड़ा जा सकता- फिर भी इस देश का संन्यासी हजारों साल से कर्म छोड़ने की असम्भव चेष्टा कर रहा है। कर्म नहीं छूटा, सिर्फ निठल्लापन पैदा हुआ है। कर्म नहीं छूटा, सिर्फ निष्क्रियता पैदा हुई है और निष्क्रियता का अर्थ है- व्यर्थ कर्मों का जाल, जिनसे कुछ फलित भी नहीं होता। लेकिन कर्म जारी रहते हैं। पाखण्ड उपलब्ध हुआ है। जो कर्म को छोड़कर भागता है, उसकी कर्म की ऊर्जा, व्यर्थ के कर्मों में सक्रिय हो जाती है।

२७९२) असली सवाल यह है कि भीतर तुम क्या हो ? अगर भीतर गलत हो, तो तुम जो भी करोगे, उससे गलत फलित होगा। अगर तुम भीतर सही हो, तो तुम जो भी करोगे, वह सही फलित होगा।

२७९३) वह जो भीतर व्यक्ति है, चेतना है, आत्मा है, कर्म उससे ही निकलते हैं, उससे ही फलते-फूलते हैं- उस चेतना, उस आत्मा का सवाल है। और वह आत्मा बीमार है- मैं के भाव से। मैं हूं- यही आत्मा की बीमारी है।

२७९४) सांख्य और योग में विरोध नहीं है, लेकिन सांख्य की दिशा जिस व्यक्ति के लिए अनुकूल है, उसके लिए योग की दिशा प्रतिकूल है। योग बहिर्मुखी व्यक्ति के लिए मार्ग है, सांख्य अंतर्मुखी व्यक्ति के लिए मार्ग है।

२७९५) जो व्यक्ति अंतर्मुखी हैं, उनके लिए योग जरा भी काम का नहीं है। जो व्यक्ति अंतर्मुखी हैं, उनके लिए सांख्य पर्याप्त है। जो व्यक्ति बहिर्मुखी हैं, सांख्य उनकी पकड़ में ही नहीं आएगा, कर्म ही उनकी पकड़ में आएगा, क्योंकि कर्म के लिए बाहर जाना जरूरी है और ज्ञान के लिए भीतर जाना जरूरी है।

२७९६) ध्यान तुम्हें एक नया व्यक्ति, एक नया मनुष्य, नई चेतना बना देगा जिसे भय, गंभीरता, लोभ, घृणा- कुछ भी स्पर्श नहीं करता।

२७९७) दु:ख का बोध दु:ख से मुक्ति है, क्योंकि दु:ख को जानकर कोई दु:ख को नहीं चाह सकता है। और उस क्षण जब कोई चाह नहीं होती है और चित्त वासना से विक्षुब्ध नहीं होता है और हम कुछ खोज नहीं रहे होते हैं- उसी क्षण, उस शांत और अकंप क्षण में ही उसका अनुभव होता है, जो कि हमारा वास्तविक होना है।

२७९८) वासना जब नहीं होती है, तब आत्मा प्रकट होती है। आत्मा को मत चाहो, चाह को जानो और उससे मुक्त हो जाओ, तो तुम उसे जान लोगे और पा लोगे जो कि आत्मा है।

२७९९) मैं शक्ति और शांति को अखण्डित रूप में देखना चाहता हूं। मैं विज्ञान और धर्म में सम्मिलन चाहता हूं। उससे पूर्ण मनुष्य का जन्म होगा और एक पूर्ण संस्कृति का भी, जो अंतर-बाह्य दोनों रूपों में समृद्ध होगी। मनुष्य न तो मात्र शरीर ही है, न मात्र आत्मा ही। वह दोनों का सम्मिलन है। इसलिए उसका जीवन किसी एक पर ही आधारित हो, तो अधूरा हो जाता है।

२८००) प्रकाश के आगमन पर अंधेरा चला जाता है। ऐसे ही ज्ञान के आगमन पर जीवन में जो भी कलुषित है, वह बह जाता है और तब जो शेष रह जाता है वह संन्यास है। संन्यास का अर्थ है- यह बोध कि मैं शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं। इस बोध के साथ ही भीतर आसक्ति और मोह नहीं रह जाता है।

२८०१) भारत है एक अभीप्सा, एक प्यास- सत्य को पा लेने की। भारत में सत्य की एक परिभाषा है- जो तीनों काल में टिके, त्रिकाल-अबाधित, कभी भी जिसका खण्डन न हो, जो पहले भी था, अभी भी है और फिर भी होगा, जो शाश्वत है- वही सत्य है। जो कल नहीं था, आज है, और कल फिर नहीं हो जाएगा- उसे भारत असत्य कहता है।

२८०२) योग कोई धर्म नहीं है, योग हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं। योग तो एक विशुद्ध विज्ञान है- गणित, भौतिक शास्त्र या रसायन शास्त्र की तरह। यह तो एक विशुद्ध गणित हुआ आंतरिक अस्तित्व का। इसलिए एक मुसलमान भी योगी हो सकता है, ईसाई भी योगी हो सकता है। इसी तरह एक जैन, एक बौद्ध भी योगी हो सकता है।

२८०३) पहले मौन को साधो। अपनी ऊर्जा को मौन में उतरने दो, गहराने दो मौन को। जब वाणी थका दे, जब बोलना ज्यादा बोझ बन जाए, तो मौन में उतरना ऐसे ही है, जैसे दिनभर का थका हुआ आदमी रात को सो जाता है।

२८०४) साधारण आदमी वासना से बोलता है, बुद्ध पुरुष करुणा से बोलते हैं। साधारण आदमी इसलिए बोलता है कि बोलने से शायद कुछ मिल जाए, जबकि बुद्ध पुरुष इसलिए बोलते हैं कि तुम भी साझीदार हो जाओ उनके परम अनुभव में।

२८०५) आत्म निर्भरता, स्वावलम्बन स्वास्थ्य और ईश्वर पर विश्वास जिन्दगी बसर करने के लिये सर्वश्रेष्ठ साधन है। परमात्मा उनकी मदद करते है जो स्वयं अपनी मदद करते है। ईश्वर मे श्रद्धा रखने से हमारे अन्दर शक्ति आती है वह हमे अपने में भरोसा करने की हिम्मत प्रदान करती है। हमारा ईश्वर हमारा शरण और शक्ति है। विपतियों मे उससे बढकर कोई सहायक नही।

२८०६) बिना विद्या व तप के, बिना इन्द्रिय-जय के, बिना लोभ के सर्वथा त्याग के तुम्हारी शान्ति नहीं देखता हूं अर्थात् इन्द्रियजय व लोभ के त्याग से ही तुम्हें शान्ति प्राप्त हो सकती है।

२८०७) बुद्धि- ज्ञान से भय को दूर करता है, तप से महत् ब्रह्म को प्राप्त होता है, गुरु की सेवा से ज्ञान को प्राप्त होता है और योग-सुख-दु:ख आदि में समभाव से शान्ति को प्राप्त करता है।

२८०८) दानरूपी पुण्य एवं वेदाध्ययनरूपी अथवा ज्ञानरूपी श्रेष्ठ कर्म का आश्रय न लेते हुए राग-द्वेष से रहित मोक्ष को प्राप्त अर्थात् जीवन्मुक्त इस लोक में विचरते हैं।

२८०९) सदाचार से मनुष्य को आयु प्राप्त होती है, सदाचार से लक्ष्मी प्राप्त होती है और सदाचार से ही उसे लोक और पर लोक में कीर्ति प्राप्त होती है।

२८१०) ईश्वर अपने भक्त, सत्पुरुष अपने आश्रित और पिता अपने पुत्र के स्वभाव सद्व्यवहार से ही प्रसन्न होते है। इन्हे किसी तरह का लोभ नही होता और न ही वे किसी प्रलोभन के आग्रही होते है। बन्धु-बान्धव अच्छे खान-पान से खुश होते है। ये खुले हृदय से आवभगन करने व सेवा भाव से सन्तुष्ट होते है, परन्तु सच्चे ब्राह्मण तो मधुर व्यवहार से ही खुश रहते है।

२८११) अपने कर्तव्य पथ का निश्चय न कर सकने वाले व्यक्ति को न तो घर में सुख मिलता है और न ही वन में। घर उसे आसक्ति के कारण काटता है और वन परिवार को छोडने और अकेलेपन की पीडा से व्यथित करता है। सच्चा सुख न गृहस्थ में हैं और न ही गृह परिवार के त्याग में, अपितु सच्चा सुख तो कर्तव्य पालन में है।

२८१२) जिस प्रकार अन्न को पकाने का प्रत्यक्ष कारण अग्नि है, उसी प्रकार ज्ञान ही मुक्ति का प्रत्यक्ष कारण है, अन्य कोई साधन नहीं। क्योंकि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती।

२८१३) सतत एवं निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप ज्ञान अविद्या से मलिन हुए जीव को शुद्ध करके स्वयं विलीन हो जाता है- जिस प्रकार कतक (निर्मली) का चूर्ण मटमैले जल को स्वच्छ करके फिर स्वयं लुप्त हो जाता है।

२८१४) इच्छा, द्वेष, आसक्ति आदि से पूर्ण यह संसार स्वप्नवत् है। यह उस समय तक सत्य प्रतीत होता है जब तक मनुष्य अज्ञान की अवस्था में रहता है। ज्ञान के उदय होते ही यह संसार मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

२८१५) ज्ञान की प्राप्ति केवल विचार से ही हो सकती है, अन्य किसी साधन से नहीं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे बिना प्रकाश की सहायता के कोई वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

२८१६) आत्मा का स्वत: अथवा किसी दूसरे के द्वारा न तो ग्रहण किया जा सकता है न त्याग और न आत्मा स्वयं किसी वस्तु का ग्रहण या त्याग की करती है। यही सम्यक् ज्ञान है।

२८१७) जिस प्रकार लकड़ी के दो टुकड़ों के लगातार घर्षण से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार लगातार ध्यान द्वारा ज्ञानाग्नि उद्दीप्त हो जाती है जो अज्ञानरूपी ईंधन को पूर्णतया भस्म कर देती है।

२८१८) सत्यानुभूति से उत्पन्न ज्ञान की अवस्था में, मैं और मेरे का आरोपित अज्ञान नष्ट हो जाता है- यह उसी प्रकार जैसे सूर्य दिशाभ्रम को दूर कर देता है।

२८१९) पूर्ण ज्ञानप्राप्त योगी अपने ज्ञानचक्षुओं से स्व-आत्मा में ही सम्पूर्ण जगत् को देखता है। उसे सर्वत्र स्व-आत्मा ही दिखाई देता है, अन्य कुछ नहीं।

२८२०) श्रवण आदि से उत्पन्न ज्ञानाग्नि से उत्तप्त हुआ जीव समस्त उपाधियों एवं दोषों से मुक्त हो जाता है और स्वर्ण की भांति

देदीप्यमान हो उठता है।

२८२१) वासना-त्याग से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से इन्द्रिय-सुखों का उपशम हो जाता है। इससे आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। आत्मानन्द से सहज शान्ति उपलब्ध होती है।

२८२२) गुरु की महानता असीम है। जिस प्रकार की कीड़ा भृंग को नहीं जानता, परन्तु भृंग अपनी कुशलता से उस कीड़े को अपने समान बना लेता है, अपने शब्द-स्वर की लय से भृंग कीट में अपने-सा गुण भर देता है, उसी प्रकार गुरु भी ज्ञान-प्रभाव से अपने प्रिय-शिष्य को अपने समान बना लेते हैं।

२८२३) गुरु और गोविन्द को एक समान समझिए, ये दोनों एक ही हैं। ऐसा जानकर गुरु ने जो ज्ञान-उपदेश दिया है, उसी के क्षेत्र में रहना चाहिए। जैसे ही गुरु का मिलन हो, दण्डवत बन्दगी करना चाहिए। परन्तु यदि ऐसा न हो तो गुरु का प्रतिक्षण ध्यान करना चाहिए। गुरु-स्मरण से ध्यान पवित्र रहेगा।

२८२४) गुरु और गोविन्द दोनों एक ही हैं, केवल नाम का अन्तर है। गुरु का बाहर से रूप-आकार भले ही कुछ हो, परन्तु भीतर से कोई अन्तर नहीं है। बाहर सब माया का आवरण है। अहंकार को त्यागकर, सहज-सरल हो आत्म-साधना करने से ही, हरि-स्वरूप सद्गुरु के दर्शन की फल-प्राप्ति होती है।

२८२५) जो गुरु को सामान्य मनुष्य की भांति ही जानते हैं, वे आंख रहते हुए भी अंधों के समान हैं। उन अज्ञानियों को गुरु का वह अलौकिक ज्ञान समझ में नहीं आता, जो सब बन्धनों से मुक्त करने वाला है। ऐसे व्यक्ति इस जीवन में तो दुखी रहेंगे ही, आगे भी काल (जन्म-मरण) के फंदे में फंसे रहेंगे।

२८२६) गुरु प्रत्यक्ष परमेश्वर नारायण का रूप है। सांसारिक विषय-विकारों का मल धोने के लिए, गुरु ही पवित्र ज्ञान-सरोवर का घाट है। ऐसे सद्गुरु के वचन-वाणी की शक्ति से भ्रमित मन के सब सन्देह दूर हो जाते हैं और हृदय को परम शांति मिलती है।

२८२७) गुरु-महिमा का कीर्तन करते हुए, सदैव उनके आदेशों का पालन करते हुए, जो मन से अति प्रसन्न रहते हैं, फिर उनका इस संसार में आना नहीं होता।

२८२८) बिना गुरु के ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। जीव अज्ञान-रूपी अंधकार में भटकते हुए सांसारिक बन्धनों में जकड़े रहते हैं, बिना गुरु के वे मुक्त नहीं हो सकते। बिना गुरु के सत्य और असत्य को भी नहीं जाना जा सकता और सत्य-असत्य, उचित-अनुचित का ज्ञान पाए बिना, इस दोषपूर्ण जीवन का उद्धार भी बिना गुरु के सम्भव नहीं।

२८२९) अज्ञान-दशा में, कुबुद्धि के कीचड़ से, शिष्य भरा होता है और गुरु पवित्र ज्ञान-रूपी जल के समान होते हैं। शिष्य के जन्म-जन्मान्तरों के ढेर सारे विकारों (बुराइयों) को गुरु क्षण-भर में नष्ट कर देते हैं, अर्थात् शिष्य को सद्बुद्धि देकर उसका जीवन उज्ज्वल कर देते हैं।

२८३०) सद्गुरु की शरण में जाकर ज्ञान-दीक्षा लो और उनकी भेंट-दक्षिणा में अपने सिर का दान कर दो, अर्थात् अपने आपको पूर्णरूप से समर्पित कर दो। गुरु-ज्ञान की तुलना में आपकी सेवा-समर्पण तो तुच्छ है। ऐसा न मानकर बहुत से मूर्ख अभिमानी संसार के माया-रूपी प्रवाह में बह गए, उनका उद्धार नहीं हो सका।

२८३१) संसार में गुरु के समान दाता और शिष्य के समान याचक कोई नहीं है। तीनों लोकों में ज्ञान-रूपी अनमोल सम्पदा (दौलत) के समान भी कुछ नहीं है और संत-महात्माओं के सत्संग (ज्ञान-चर्चा) में एक-दूसरे के प्रेम का प्रत्यक्ष सुख प्राप्त होता है। सभी प्राणियों के प्रति दया-भाव, अपने इष्ट की परम-पावनी भक्ति तथा सब सन्देहों का निवारण होकर, अटल विश्वास की प्राप्ति होती है। गुरु महाराज की निष्काम सेवा से, उनके श्रीचरणों में शरण पाकर इस सबकी प्राप्ति होती है।

२८३२) सोच-समझकर अपने तन-मन को उस गुरु को समर्पित करो, जो सांसारिक विषय-वासना से मुक्त हो, वैराग्यवान हो। जो पूरी तरह अहंकार रहित हो, आत्मज्ञान का अनुभवी हो और वह आत्म-साक्षात्कार करा सके।

२८३३) जैसी प्रीत (मोह) अपने कुल-परिवार से होती है, यदि ऐसी गुरु के प्रति (भक्ति) हो तो फिर सब बाधाएं मिट जाती हैं। ऐसे सेवकों को कोई बन्धन में नहीं बांध सकता, उन्हें मोक्ष-प्राप्ति निश्चित रूप से होती है।

२८३४) बहुत पंडित-विद्वान पढ़ते-गुनते यूं ही पच (थक) कर मर जाते हैं, किन्तु कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि बिना गुरु के ज्ञान

नहीं मिलता। जब तक ज्ञान नही होगा, तब तक सांसारिक बन्धनों से मुक्ति नहीं मिलती। यह सत्य-शब्द का प्रमाण (सार) है।

२८३५) ध्यान के लिए गुरु स्वरूप का सर्वोत्तम ध्यान है, पूजा के लिए गुरु चरणों की पावन पूजा है। सत्यनाम-ज्ञान के लिए गुरु का सुधामय सदुपदेश प्रवचन है तथा सत्य-साक्षात्कार के लिए परम-जिज्ञासा ही है, अर्थात् शिष्य-सेवकों के लिए एकमात्र गुरु ही सब कुछ है।

२८३६) चाहे करोड़ों चन्द्रमा उदित हो जाएं, हजारों-करोड़ों सूर्य उदय हों चमक उठें, परन्तु अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट नहीं हो सकता। चन्द्रमा और सूर्य से भौतिक जगत को प्रकाश मिलता है, परन्तु गुरु के पवित्र ज्ञान से हृदय का अंध:कार नष्ट हो जाता है। बिना गुरु के जीवन में गहन अंधेरा छाया रहेगा।

२८३७) भ्रम और सन्देह को त्यागकर, परम श्रद्धा से भरकर, नन्हे बच्चे की तरह गुरु-ज्ञान रूपी दूध को पियो। अहंकार का परित्याग कर, सहज भाव से गुरु-चरणों की शरणा लो, तभी तो यम के दुखों से यह जीव बच पाएगा।

२८३८) इस संसार में सद्गुरु के समान कोई नहीं है। सातों द्वीप, नौ खण्डों, तीनों लोकों और इक्कीस ब्रह्माण्डों में भी सद्गुरु के समान कोई नहीं पाओगे, अर्थात् सद्गुरु की गुण-महिमा सर्वोपरि है। उनके ज्ञानोपदेश से जगत का जो उपकार होता है, वह किसी अन्य से नहीं होता।

२८३९) सद्गुरु की महिमा का कोई वार-पार नहीं है। वह तो अनंत और अगम है। सद्गुरु ने हमारे (जिज्ञासु जन) ऊपर जो उपकार किया है, वह भी अनंत है, उसकी भी कोई सीमा नहीं है। उन्होंने आत्म-साक्षात्कार की हमें अनंत ज्ञान-दृष्टि प्रदान की है।

२८४०) सद्गुरु सच्चे शूर-वीर हैं, उनका कोई शत्रु नहीं है और न ही वे कहीं युद्ध करने जाते हैं। वे अपने प्रिय शिष्य की नख से शिखा तक की बुराइयों को दूर करने के लिए, अपने ज्ञान-रूपी शब्द बाण से हृदय को चूर-चूर (छलनी) कर देते हैं, लेकिन बाहर से उसके घाव दिखाई नहीं पड़ते। सद्गुरु सच्चे शूर-वीर हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। वे शिष्य की बुराइयों (अज्ञानता) पर ज्ञान-रूपी तीरों (शब्दों) को मारते हैं। शिष्य-सेवक को इन वारों (चोटों) को प्रेम से सहना चाहिए, भागना नहीं चाहिए।

२८४१) जो सद्गुरु की शरण में नहीं आते, उनकी बार-बार हानि ही होती है। बिगड़ी को बनाने वाले अर्थात् जीवन के क्लेशों को मिटाने वाले तो सद्गुरू ही हैं। जो उनकी शरण में नहीं आते, वे यूं ही नष्ट हो जाएंगे, क्योंकि तीनों लोकों में काल (मृत्यु) का राज्य है।

२८४२) सद्गुरु स्वयम् सत्य-स्वरूप हैं और सत्य को रहस्य बताने वाले हैं। वह शिष्य धन्य है और उसका भाग्य भी धन्य है, जो ऐसे सद्गुरु को पाकर अपने स्वरूप का ज्ञान पा लेते हैं। इस भौतिक-जगत में माया-मोह को पार कर अपने स्वरूप की अनुभूति होना बहुत ही कठिन है।

२८४३) सद्गुरु ने प्रसन्न होकर, एक ऐसा प्रसंग कहा कि उसका शब्दों में वर्णन करना कठिन है। उससे हृदय में प्रेम का बादल घुमड़कर बरसने लगा, सम्पूर्ण तन रोमांचित हो गया तथा अंग-अंग भीग गया। सद्गुरु का वह अलौकिक प्रसंग, आत्म-साक्षात्कार की साधना ही है जिसको जानकर जिज्ञासु भक्त खुशी से फूले नहीं समाते।

२८४४) यदि सद्गुरु मिल जाए तो जानो सब मिल गए, फिर कुछ मिलना शेष नहीं रहा। यदि सद्गुरु नहीं मिले तो समझो कोई नहीं मिला। क्योंकि माता-पिता, पुत्र और भाई तो घर-घर में होते हैं। ये सांसारिक नाते सभी को सुलभ हैं, परन्तु सद्गुरु की प्राप्ति दुर्लभ है।

२८४५) सद्गुरु का मिलना तब ही जानो, जब ज्ञान का उजाला हो जाए, अर्थात् अपने अन्त:करण का अज्ञान रूपी तिमिर नष्ट हो जाए। अपने अन्दर जो भ्रम है, उसका भांडा तोड़कर हम अपने अद्भुत स्वरूप को प्राप्त हो जाएं। जब तक हृदय में संशय-भ्रम होते हैं, तब तक आत्म-दर्शन नहीं होता।

२८४६) मन पांचों ज्ञानेन्द्रियों अथवा इनके पांचों विषयों के अधीन है, परन्तु मन के वश में ये पांचों नहीं है। जिधर भी देखता हूं, उधर ही विषयों की आग लगी है और इससे बचने के लिए जिधर भी दौड़ता हूं, वहीं पर आंच (तपन) लगती है।

२८४७) मन से हारकर, परेशान होकर हम जंगल-वन में गए, परन्तु वहां भी यही स्थिति रही। अत: जंगल छोड़कर फिर अपने गांव-बस्ती में आ गए। हम क्या करें ? यह मन बहुत प्रबल है, यह कहीं भी नहीं ठहरता।

२८४८) यह सारा संसार मन का दास है अर्थात् जैसा मन चाहता है, यहां के लोग वैसा ही करते हैं। परन्तु सद्गुरु के दास तो कोई विरले ही साधु-सन्त होते हैं। जो गुरु के सदुपदेश-ज्ञान प्रवचन को मानता है (गुरु सेवा-भक्ति करता है), उसका मत (सिद्धान्त) अथाह गम्भीर है।

२८४९) इस मन का क्या करूं। इसे पटक-पटककर ऐसा मारूं कि यह टुकड़े-टुकड़े हो जाए (सम्पूर्णतया मिट जाए)। इसने जो

दुष्कर्म विषय रूपी विष की क्यारी (खेत) बोई थी, उसका फल भोगने में अब क्यों पश्चाताप करता है। (जैसी करनी, वैसी भरनी)।

२८५०) मन को ही अपना शिष्य-सेवक बनाओ और इसे ही ज्ञान-उपदेश दो अर्थात् अन्य जनों को छोड़कर सर्वप्रथम अपने मन को ज्ञान-विचार से दीक्षित कर पवित्र बनाओ। इस प्रकार जो मन को अपने वश में कर लेता है, सारा संसार ही उसका शिष्य हो जाता है।

२८५१) जीवन में यह मन इतना महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली है कि मन के कठोर तप से ही लोग गोरखनाथ जैसे योगी बन जाते हैं। मन के पराक्रम से ही लोग भगवान तक कहलाते हैं और इस मन की दशा से ही औघड़ बन जाते हैं। जो अपने मन को वश में करके स्वाध्याय-साधना के यत्न में रखता है, वह स्वयम् ही अपना कर्त्ता (स्वामी) है।

२८५२) मन की स्थिति समान नहीं रहती, यह भिन्न-भिन्न रूपों में पल-पल परिवर्तित होता रहता है। यह मन कहीं बलवान-अहंकारी हो जाता है, कहीं बहुत ही सीधा-सरल बन जाता है। कहीं पानी के समान यह शीतल हो जाता है और कहीं आग की तरह जलता हुआ क्रोधी बन जाता है। इस मन के अन्दर जैसी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। यह वैसा ही बन जाता है।

२८५३) यह मन दया भाव के कारण दानी तथा कंजूस भाव के कारण लालची, निर्भीकता-पुरुषार्थ के कारण राजा औ रभय-हीन भाव से गरीब बन जाता है। यदि यह मन गुरु के मिलने का शुभ संकल्प ले, तो नि:संदेह इसे सद्गुरु का दर्शन-मिलन होगा। (ज्ञान होने पर गुरु पद पाकर मन गुरु होता है)।

२८५४) बहुरूपिया होने के कारण मन की भावनाओं के विभिन्न रूप हैं, जो क्षण-क्षण में बदलते रहते हैं (संसार के दृश्यों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है)।

२८५५) यह माया-मोहिनी है। सारे जगत को मोहकर लोभ रूपी कोल्हू में पीसती है अर्थात् इससे बचना बहुत कठिन है। इससे तो कोई विरला ही साधु-सन्त बच पाता है, जिसने अपनी कुल-मर्यादा तथा अभिमान को तोड़ दिया हो।

२८५६) माया-मोहिनी गहन-अंधेरी रात्रि के समान सबके ऊपर फैली हुई है। जो इसके (धन-वैभव) मोह की मस्त निद्रा में सो गए, समझो, वे मन के विकार (काम-क्रोध-लोभादि) रूपी डाकुओं द्वारा लुट गए और जो वास्तविक अनमोल वस्तु सत्य-ज्ञान है, उससे वंचित होकर रोते ही रह गए।

२८५७) माया महा-भयंकर डायन है, जो खोज-खोजकर सबको खा जाती है (सामान्य जन तो मोह में फंसकर इसके ग्रास बन जाते हैं) परन्तु यदि यह विरक्त साधु-सन्तों के निकट चली जाए, तो इस महा पापिन के दांत उखाड़ लूंगा।

२८५८) माया (धन-सम्पत्ति) रूपी यह वृक्ष दो फलों (परम सुख और नरक दु:ख) को देने वाला है। जो इसे संतोषपूर्वक खाते हैं तथा सेवा-दान, परोपकार आदि पुण्य कर्मों में खर्च भी करते हैं, उन्हें परम सुख मिलता है। लेकिन जो लोग लोभवश इसका संग्रह करते हैं, उन्हें महान् दु:ख रूपी नरक द्वार में गिरना पड़ता है।

२८५९) जाती हुई माया सबको अपना यह सन्देश देती है- उदार हृदय के सुखी सज्जनों के पास साधु-सन्त आते हैं। ऐसे में उनका सेवा-सत्कार मुझसे (माया) ही होता है और उसका परिणाम-सुख उन्हें मिलता है। परन्तु कंजूसों के घर में तो यदा-कदा चोर घुस आते हैं। उनके द्वारा मैं (माया) चली जाती हूं।

२८६०) इस संसार के लोगों का यह माया-मोह झूठा है। सुख-वैभव रूपी यह माया जिस घर में जितनी अधिक है तथा जिस घर में प्रसन्नता जितनी ही ज्यादा है, वहां उतनी ही विपत्ति भी है। उस घर में आपसी वैरभाव तथा दु:ख है।

२८६१) इस संसार-सागर में यह माया सूखी हड्डियों का बड़ा-सा ढेर (समूह) है और विषयी-अज्ञानी जीव सियार (गीदड़) का रूप है। जीवन भर उसे अपनी ओर खींचते-खींचते वे यूं ही मर जाते हैं अर्थात् इस माया के चक्कर में पड़े हुए जीव जीवन-पर्यन्त दु:ख पाते हुए मर जाते हैं।

२८६२) इस माया-मोहिनी से सावधान रहो। उससे मत मिलो, चाहे वह कितनी भी सुन्दर-स्वर्णिम देह वाली हो। इसके चक्कर में पड़कर तो देवर्षि नारद जैसे श्रेष्ठ मुनि भी गल गए। फिर सोचो और विचार करो कि तुम्हारा क्या होगा ? अर्थात् माया के संग-प्रभाव से बच पाना अति कठिन है।

२८६३) यह अनमोल मनुष्य-योनि का शरीर रीतता चला जा रहा है और न जाने कब इसका अन्त आ जाए। अत: इसके रहते हुए

अपने जीवन-कल्याण का कुछ न कुछ साधन अवश्य कर लो। साधु-सन्तों की सेवा-सत्संगति करो या फिर सद्गुरु के ज्ञान-गुणों का कीर्ति-गान करते हुए ध्यान-भजन करो।

२८६४) हे अज्ञानी मनुष्य। तू उस दिन को याद कर, जब तू माता के गर्भ में था। उस समय तेरे पांव ऊपर और सिर नीचे लटका हुआ था। परन्तु अब तू इस मृत्यु-लोक में आकर जगत के ईश्वर (आत्मा राम) को ही भूल गया है।

२८६५) आत्मज्ञान से तत्क्षण, तत्काल और यहीं आत्मानुभूति होती है। सब उपनिषदों का सार तत्व यही है कि पूर्ण मुक्ति ज्ञान से ही होती है।

२८६६) ज्ञान का फल तुरन्त नहीं (इसी जन्म में) प्राप्त हो जाता है, अत: उसके लिए किसी प्रकार के संशय की कि फल मिलेगा या नहीं अथवा भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं।

२८६७) सत्यज्ञान, जो वेदान्त का विषय है इस संकल्प को जन्म देता है कि आत्मा ही ब्रह्म है। इसकी उपलब्धि से व्यक्ति पुनर्जन्म के बन्धन से तुरन्त पूर्णत: मुक्त हो जाता है।

२८६८) चूंकि आत्मज्ञान प्रदान करने का अन्य कोई समान साधन नहीं है अत: साधक को अपने में शिष्य के गुण रखने चाहिए, वह ज्ञान प्राप्ति करे और पुनर्जन्म के सागर से पार हो जाए।

२८६९) दुष्कर्मों मे लिप्त व्यक्ति दूसरों के सद्गुणों को जानने की वैसी इच्छा नही करते जैसी उनके अवगुणों को जानने की करते है। अर्थ की कामना करने वाले व्यक्ति को धर्म का आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार स्वर्ग से अमृत अलग नही होता वैसे ही धर्म से अर्थ कभी दूर नही होता। जिस मनुष्य की प्रवृति पापों से हट कर धर्म मे लग चुकी है, वही प्रकृति तथा विकृति के भेद को जान सकता है।

२८७०) जब अज्ञान-तिमिर था, मुझे सारा जगत् सत्य दृष्टिगोचर होता था, किन्तु अब ज्ञान के सूर्योदय से मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। यह कैसा अद्भुत है।

२८७१) आत्मा पर आरोपित उपाधियों का विनाश केवल पूर्ण ज्ञान से ही होता है, अन्य किसी उपाय से नहीं। वेदों के अनुसार ब्रह्म और जीव के एकत्व की अनुभूति ही पूर्ण ज्ञान है।

२८७२) सतत चिन्तन से इस भाव की उत्पत्ति होती है कि मैं ब्रह्म हूं और वह अज्ञान एवं उसके कार्यों का नाश कर देता है। यह वैसे ही होता है जैसे रसायन (औषधि) रोग का नाश कर देता है।

२८७३) अज्ञान और कुछ नहीं, केवल आत्मा पर अनात्मा का अध्यारोपण मात्र है। अज्ञान का नाश ही मुक्ति है। अन्धकार से अन्धकार का नाश नहीं हो सकता। ज्ञान-अज्ञान का विरोधी है, अत: अज्ञान को भगा देता है।

२८७४) अज्ञानी पुरुष कर्मफल के लिए लालायित रहता है, फलत: वह इस भाव से कि वह भोक्ता एवं कर्ता है, कर्म में प्रवृत्त होता है। अज्ञानी मोहग्रस्त होकर यह सोचता है- मैं कर्ता हूं, मैं कर्म करवाता हूं, मैं भोक्ता हूं, अथवा मैं भोग करवाता हूं आदि।

२८७५) अज्ञानी पुरुष अपने पूर्व संस्कारों द्वारा शासित अपने सम्मुख एक दृश्य खड़ा कर देता है और उसी के मोह में शोक करता हुआ भटकता रहता है।

२८७६) अविद्या अथवा माया ईश्वर की शक्ति है। वह अनादि, त्रिगुणात्मिका तथा समस्त परिणामों (कार्यों) से श्रेष्ठ है। शुद्धबुद्धि व्यक्ति उसके परिणामों को देखकर ही उसकी कल्पना करता है। माया से ही समस्त सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

२८७७) माया न सत् है, न असत् और न सदसत् ही, वह न नित्य है, न अनित्य और न नित्यानित्य ही, वह न खण्ड है, न अखण्ड और न खण्डाखण्ड ही। वह अत्यद्भुत है, अवर्णनीय है।

२८७८) एकमेवाद्वितीय ब्रह्म की अनुभूति से माया या अविद्या को नष्ट किया जा सकता है- यह उसी प्रकार है जैसे रस्सी का ज्ञान हो जाने के उपरान्त फिर उसके सर्प होने का भ्रम मिट जाता है। माया के तीन गुण हैं- सत्व, रज और तम। इनके पृथक-पृथक कार्य हैं।

२८७९) देहसंघात आदि के साथ आत्मा की तद्रूपता मान लेना ही अविद्या या अज्ञान है। जिस प्रकार अंधेरे में पड़ी रस्सी में सर्प की कल्पना कर ली जाती है तथा शुक्ति या सीपी को चांदी का टुकड़ा समझ लिया जाता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष देह को ही आत्मा मान लेता है। लकड़ी के ठूंठ को आदमी तथा मृगमरीचिका को जल समझ लेने का जिस प्रकार भ्रम हो जाता है, उसी प्रकार

भ्रम से अज्ञानी पुरुष देह को ही आत्मा मान लेता है।

२८८०) आत्मा वस्तुत: एक और निरवयव है, इसके विपरीत देह अनेक अंगों की बनी है, फिर भी आश्चर्य। लोग दोनों को एक ही मानते हैं, भला इससे बढ़कर अज्ञान और क्या हो सकता है ?

२८८१) कर्म मात्र से अज्ञान का नाश नहीं हो सकता क्योंकि कर्म और अज्ञान में कोई विरोध नहीं है। जिस प्रकार अन्धकार का नाश प्रकाश से ही होता है, उसी प्रकार अज्ञान का नाश केवल ज्ञान से ही होगा।

२८८२) यह अविद्या के ही कारण है कि हमें आत्मा ससीम प्रतीत होता है। अविद्या के नष्ट हो जाने पर आत्मा जो नितान्त अभेद है, स्वस्वरूप हो अपने आप प्रकट कर देता है- यह उसी प्रकार है जैसे बादलों के छंट जाने से सूर्य स्वत: प्रकाशित हो जाता है।

२८८३) यह सारा जगत् राग-द्वेष से भरा हुआ है और स्वप्नवत् है, जब तक मनुष्य अज्ञान की अवस्था में रहता है उसे सब सत्य प्रतीत होता है किन्तु जागृत होते ही सब कुछ मिथ्या हो जाता है।

२८८४) जल के हिलने से उसमें पड़ता हुआ चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी हिलने लगता है, किन्तु अज्ञानी पुरुष ऐसा मान लेता है कि चन्द्रमा हिल रहा है। इसी प्रकार कर्तव्य, भोक्तृत्व एवं अन्य उपाधियों को, जो मन से सम्बन्धित हैं, भ्रमवश आत्मा से सम्बद्ध कर लिया जाता है।

२८८५) आत्मा चेतना की तीनों ही स्थितियों में- जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति में- विद्यमान रहती है। सर्वव्यापी आत्मा समस्त प्राणियों में एकरूप और सब का दृष्टा है। श्रुतियों का कथन है कि आत्मज्ञान हो जाने से हृदयग्रन्थि खुल जाती है, सम्पूर्ण संशय कट जाते हैं और समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं।

२८८६) इस प्रकार आत्मा अपरिवर्तनीय है क्योंकि यह उसका स्वभाव ही है- किसी प्रकार से भी परिवर्तनशील होने पर तो वह विनाशी हो जाएगी।

२८८७) आत्मस्वरूप के ज्ञान को शास्त्र तथा मीमांसा में सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि कहा है। भ्रमवश अहंकार आदि अनात्म विषयों को आत्मस्वरूप मान लेना कोई भी उपलब्धि नहीं है। अत: अनात्मा को आत्मा मान लेने के भ्रम का परित्याग कर देना चाहिए।

२८८८) आत्मा ज्ञान का विषय नहीं है। उसमें बहुत्व का कोई अध्यारोप नहीं है। अत: उसके अस्तित्व को न कोई मान्य कर सकता है, न अमान्य।

२८८९) जो व्यक्ति यह जान लेता है कि मैं जन्म-जरा-मरण से परे एवं अन्तर्बाह्य आत्मा हूं उसके लिए किंचित् मात्र भी भय का कारण क्यों होना चाहिए ?

२८९०) जो आत्मा और ब्रह्म के एकत्व को जान चुका है तथा यह भी जानता है कि अविद्यारूपी बीज का अस्तित्व ही नहीं है, उसका फिर जन्म ही कैसा ?

२८९१) आत्मा जो ज्ञानी के लिए नित्यशुद्ध है, अज्ञानी करो विकारयुक्त दृष्टिगोचर होती है- यह उसी प्रकार है जैसे एक ही रस्सी ज्ञानी और अज्ञानी को रस्सी और सर्प दो भिन्न रूपों में दिखाई देती है।

२८९२) मैं देवताओं को प्रणाम नहीं करता। जो सभी देवताओं से परे है वह किसी देवता को प्रणाम नहीं करता। उस स्थिति की उपलब्धि के उपरान्त फिर साधक शास्त्रविहित कर्म नहीं करता। मैं बारम्बार स्वयं अपनी आत्मा को, जो समस्त साधनाओं का मूल है, प्रणाम करता हूं।

२८९३) जागृत और स्वप्नावस्था की भांति सुषुप्ति में भी आत्मा जागृत रहती क्योंकि अपरिवर्तनशील होने के कारण इसकी चैतन्यशक्ति का कभी लोप नहीं होता। भेद तो केवल ज्ञेय वस्तुओं में ही होता है।

२८९४) जिस प्रकार लाल तपाए हुए लोहे के गोले में अग्नि भीतर और बाहर व्याप्त रहती हुई प्रकाशमान होती है, उसी प्रकार ब्रह्म जगत् के अन्तर्बाह्य में व्याप्त रहते हुए प्रकाशित होता है।

२८९५) ब्रह्म जगत् से पृथक है, परन्तु ब्रह्म से पृथक कोई वस्तु नहीं है। यदि ब्रह्म के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व प्रतीत हो तो वह मृगतृष्णा के जल की तरह असत् है।

२८९६) जो कुछ हम देखते हैं, जो कुछ सुनते हैं, वह ब्रह्म ही है, अन्य कुछ नहीं। परम तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर समस्त विश्व

सच्चिदानन्द अद्वय ब्रह्म ही दिखाई देता है।

२८९७) बुद्धिमान पुरुष को दुष्टा, कुलटा, स्वेच्छारिणी, पृंश्चला, व्यभाचारिणी स्त्रीयों का कभी विश्वास नही करना चाहिये जो बुद्धिहीन व्यक्ति इनका विश्वास करलेता है उसे दु:खी होना पडता है। इनकी वाणी तो अमृत के समान मधुर होती है लेकिन हृदय छूरे की धार के समान तीक्ष्ण होता है।

२८९८) जो सत्, चित्, आनन्द और अनन्त है, जो एकमेवाद्वितीय और असीम है, जो नित्य और सर्वव्यापी है उसी को तू ब्रह्म जान। जो अद्वितीय, अखण्ड, एक एवं आनन्दस्वरूप है, वेदान्त में जिसे अनित्य विषयों के परे जगत् का चिरन्तन अधिष्ठान बताया गया है, उसी को तू ब्रह्म जान। जो न सूक्ष्म है न स्थूल, न लघु है न दीर्घ, जो अजन्मा, अपरिवर्तनीय, निराकार और निर्गुण है, उसी को तू ब्रह्म जान। जिसके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र आदि आलोकित हैं, किन्तु जो उनके प्रकाश से प्रकाशित नहीं हो सकता, बल्कि जिसके कारण सभी प्रकाशित हैं, उसी को तू ब्रह्म जान।

२८९९) सभी वस्तुएं ब्रह्म से पूर्ण हैं। सभी व्यवहार ब्रह्म ही के कारण सम्भव हैं। अत: जिस प्रकार दूध में मक्खन व्याप्त है, उसी प्रकार ब्रह्म सर्वव्यापी है।

२९००) जागृत अवस्था में स्वप्न मिथ्या है और स्वप्न में जागरण की अवस्था नहीं रहती। फिर सुषुप्तावस्था में ये दोनों नहीं रह जातीं और न इन दोनों में सुषुप्तावस्था का ही अनुभव होता है। इस प्रकार ये तीनों ही अवस्थाएं असत्य हैं क्योंकि ये तीनों त्रिगुण से उत्पन्न हैं; किन्तु इनका साक्षी आत्मा तीनों गुणों से परे, निर्गुण, नित्य, एकरूप एवं चिरन्तन है।

२९०१) यह संसार यद्यपि हमारे दैनिक अनुभव का विषय है, जिससे सभी व्यावहारिक उद्देश्यों की पूर्ति होती है, किन्तु फिर भी यह स्वप्न-जगत् की भांति असत्- स्वरूप है, क्योंकि इसका प्रतिक्षण विरोध होता रहता है।

२९०२) ज्ञान और कर्म के बीच पर्वत-सदृश अडिग विरोध है। भगवान व्यास ने इस पर बहुत विचार करने के पश्चात् अपने पुत्र को इस प्रकार बोध कराया- इन दोनों मार्गों की वेदों में शिक्षा दी गयी है- एक है कर्म का मार्ग या प्रवृत्ति और दूसरा त्याग का मार्ग या निवृत्ति।

२९०३) परम अद्वैत की महानता की तुलना में देव-देवादि भी दैत्य जैसे प्रतीत होने लगते हैं और देवलोक दानवलोक जैसा प्रतीत होने लगता है।

२९०४) दु:ख व मोह उसके लिए हैं जो इच्छा और कर्म का कारण नहीं जानता- उसके लिए नहीं जो आकाशवत् सर्वव्यापी शुद्ध-बुद्ध आत्मा को सर्वत्र देखता है।

२९०५) ज्ञानी पुरुष को सदैव तल्लीनता से आत्मचिन्तन करना चाहिए। आत्मा यद्यपि अदृश्य है, किन्तु वही एकमात्र सत्य है और यद्यपि उसकी प्रतीति नामरूप के जगत् में होती है फिर भी वह चेतन और ज्ञानस्वरूप है।

२९०६) जो कुछ भी कामना-प्रेरित होती है, वह दु:ख का मूल कारण होता है और क्षण भर में ही नि:सार तथा फीका प्रतीत होने लगता है। केवल अज्ञानी ही उसके पीछे दौड़ता है।

२९०७) तीनों लोकों में प्रत्येक व्यक्ति सुख के लिए ही दौड़ता फिरता है, दु:खों के लिए बिल्कुल नहीं। किन्तु दु:ख के दो स्रोत हैं- एक है, देह के प्रति मैं का भाव और दूसरा, संसार की वस्तुओं के प्रति मेरे-पन का भाव।

२९०८) स्वप्न एक मानसिक कल्पना है, जो असत् है, क्योंकि दूसरे ही क्षण वह फिर दृष्टिगोचर नहीं होता। स्वप्न में व्यक्ति वस्तुओं को अच्छा-बुरा, ऊंचा-नीचा, रोचक तथा भयानक देखकर सोचता है कि वे वास्तव में सत्य हैं। उस समय वह एक क्षण के लिए भी नहीं सोचता कि वे सब मिथ्या हैं। इसी प्रकार आत्मज्ञानरूपी सूर्योदय होने तक यह संसार सत्य प्रतीत होता है।

२९०९) मुक्तिलाभ का अर्थ है- मैं और मेरा का सम्पूर्णतया त्याग तथा आत्मानुभूति के प्रति निष्ठा।परमात्मा अपनी सृष्टि के प्रति न्यायरहित तथा करुणारहित कभी नहीं है।

२९१०) इस संसार में तीन बातें अत्यन्त दुर्लभ हैं और वे केवल ईश्वर की अनुकम्पा से ही प्राप्त होती हैं, वे हैं- मनुष्य-जन्म, मुक्ति की इच्छा और महापुरुष की शरण। येन-केन-प्रकारेण मनुष्यजन्म और उसमें भी पुरुष शरीर मिल गया और वेदाध्ययन भी कर लिया। पर इसके बाद भी जो मनुष्य मुक्तिलाभ के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह बड़ा मूर्ख है। बल्कि कहना चाहिए कि असत् वस्तुओं के पीछे

भटककर वह मानो आत्महत्या ही कर रहा है।

२९११) **अनियति नाश के कारण**- संसार की सभी वस्तुयें नाशवान है। लेकिन कुछ चीजों का नष्ट होना अनुचित कारणों से होता है। जैसे बच्चों के अधिक लाड प्यार हुये तो बच्चे बिगड जाते है। ऐसे बिगडेल बच्चे भविष्य में पीडादायक बनते है। शरीर अनियमितता से नष्ट होता है। आहार विहार मे नियम न हो तो देह पर उसके प्रतिकूल परिणाम होने लगते है। बेटी मायके में रह कर बेकार हो जाती है। पुराने समय में लडकियों को ससुराल में ही रहने का नियम था। इच्छित कार्य का पहले ही ढिंढोरा पीटने पर उसकी पूर्तता में विघ्न आने की सम्भावना होने लगती है। दूध छाछ की संगत में बिगड जाता है। मोती मिट्टी के संगत से नष्ट होने लगता है। धन्धा, व्यापार आलस्य से और बुद्धि भाग्य से बेकार हो जाती है।

२९१२) सच्चा गुरु वह है, जो वेद-विद्या में पारंगत, निष्कलुष, निष्काम, उत्तम ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म में मग्न, भस्म हुई अग्नि के सदृश शान्त, दया का अपार सागर और उन समस्त सज्जनों का सुहृद् हो जो उनके सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते हैं। शिष्य को इस प्रकार के गुरु की भक्तिभाव से वन्दना करनी चाहिए। साष्टांग प्रणाम, सेवाभाव एवं विनम्रता से गुरु के प्रसन्न होने पर शिष्य को अपनी जिज्ञासा प्रकट करनी चाहिए। हे स्वामी, आप दया के सागर हैं, आप नतमस्तक होने वालों के मित्र हैं, मैं आपके सम्मुख प्रणत हूं, मैं जन्म-मरण के सागर में गिर गया हूं, अपनी सीधी, पैनी, अमृत-वर्षिणी कृपादृष्टि द्वारा मुझे बचा लीजिए। हे गुरुदेव, मेरी मृत्यु से रक्षा कीजिए। मैं जगदरण्य में लगी प्रचण्ड अग्नि से झुलस रहा हूं, दुर्दैव के प्रचण्ड झंझावात में झकझोरा गया हूं, मैं त्रस्त हूं, प्रपीड़ित हूं, आपकी शरण चाहता हूं। मैं और किसी को नहीं जानता, मेरा दूसरा कोई ठिकाना नहीं। मेरी रक्षा कीजिए।

२९१३) कर्म करने और फल भोगने मे आत्मा प्राय: एकाकी होती है किन्तु इसके अपवाद भी है। जैसे सन्तान द्वारा किये अपराध का फल माता-पिता को नैतिक दृष्टि से भोगना पडता है। प्रजाद्वारा किये गये दुष्कर्मों का फल राजा को भोगना पडता है। पत्नी द्वारा किये गये अविवेक पूर्ण कार्यों का दण्ड पति को भुगतना पडता है और शिष्य की मूर्खता से गुरु को अपमानित होना पडता है। इस प्रकार राजा, पुरोहित, पति व गुरुका कर्तव्य क्रमश: प्रजा, राजा, पत्नी और शिष्य को दृढ़ता से सदाचार मे प्रवृत करे इसी से सबका हित है।

२९१४) इस जगत् में अनेक उदार, शान्त और पवित्र व्यक्ति हैं, जो वसन्त की तरह दूसरों का हित करते हैं। वे जन्ममरण के इस भयावह समुद्र को स्वत: के प्रयास से पार कर चुके हैं और नितांत अहेतुक भाव से दूसरे की भी इसे पार करने में सहायता करते हैं। हे गुरुदेव, आप अपनी अमृतोपम वाणी द्वारा, जो ब्रह्मानन्दरूपी पीयूष की अनुभूति से मधुर हो चुकी है, मुझ पर वचनामृत की वर्षा कीजिए, जिससे मैं सांसारिक तापों से बच जाऊं, जो दावाग्नि की जिह्वाओं के सदृश मुझे झुलसा रहे हैं। असार संसार को कैसे पार किया जाए ? मेरे गति क्या है ? मुझे किसी उपाय का सहारा लेना चाहिए ? इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं जानता। हे गुरुदेव। मुझे बचा लीजिए, मेरी रक्षा कीजिए। प्रभो, बता दीजिए इस संसार के दु:खों का अन्त कैसे हो। दावानल के सदृश संसार के दारुण दु:खों से झुलसा हुआ शिष्य जब इस प्रकार प्रार्थना और आत्मरक्षा की याचना करता है तब महात्मा उसे कृपालु दृष्टि से देखते हैं और तुरन्त ही सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाने का आशीर्वाद देते हैं।

२९१५) हे गुरुदेव। मुझ पर अनुग्रह कीजिए। मेरे प्रश्नों को सुनने की कृपा कीजिए। अपने प्रश्नों का उत्तर आपके श्रीमुख से सुनकर मैं अपने को धन्य मानूंगा। बन्धन क्या है ? यह कहां से आया ? वह कैसे बना रहता है ? इससे मुक्ति किस प्रकार होती है ? अनात्मा क्या है ? और परमात्मा कौन है ? इन दोनों में भेद कैसे किया जा सकता है ? इन सबके बारे में कृपा करके मुझे बतलाइए।

२९१६) तू धन्य है। तूने अपने जीवन का लक्ष्य पा लिया है। तूने अपने कुटुम्ब का त्याग कर दिया है। तू अज्ञान के बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक है। अविद्या, काम, कर्म आदि द्वारा उत्पन्न बन्धनों से स्वयं अपने को छोड़कर और कौन छुटकारा दिला सकता है, चाहे करोड़ों जन्म-मरण के चक्कर क्यों न हों ?

२९१७) ब्रह्म के साथ आत्मा के ऐक्य की अनुभूति से ही मुक्ति सम्भव है। योग, सांख्य, कर्म, विद्या अथवा अन्य किसी उपाय से वह सम्भव नहीं।

२९१८) शब्द-बाहुल्य से पूर्ण शास्त्रग्रन्थ मानो सघन अरण्य हैं, जिनसे मनुष्य का चित्त विभ्रान्त हो जाता है, अत: ज्ञानी को आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राणपण से लग जाना चाहिए।

२९१९) अविद्यारूपी सर्प से डसे हुए व्यक्ति के लिए ब्रह्मज्ञान ही एकमात्र अमोघ औषधि है। ऐसे पुरुष के लिए वेद, शास्त्र, मन्त्र अथवा अन्य निदान किस काम के ?

२९२०) तू अपने प्रभु, अपने परमेश्वर से अपने सारे मन से और अपने सारे प्राण से और अपनी सारी बुद्धि से और अपनी सारी शक्ति से प्रेम करना। तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करना, इससे बड़ी और कोई आज्ञा नहीं। केवल एक को छोड़कर और कोई उत्तम नहीं और वह है परमेश्वर। पर यदि तू जीवन में प्रवेश करना चाहता है, तो आज्ञाओं को माना कर। हत्या न करना, व्यभिचार न करना, चोरी न करना, झूठी गवाही न देना।

२९२१) यदि तू सिद्ध होना चाहता है, तो जा, अपना माल बेचकर कंगालों को दे दे, तुझे स्वर्ग में धन मिलेगा और आकर मेरे पीछे हो ले। धनवान का स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन है।

२९२२) जिस किसी ने ईसा के लिए अपने घरों या भाइयों, बहनों या पिता, माता या लड़के-बच्चों, खेतों को छोड़ दिया है। उसको सौ गुना मिलेगा और वह अनन्त जीवन का अधिकारी होगा। परन्तु बहुतेरे जो पहले हैं, वे पिछले होंगे; और जो पिछले हैं वे पहले होंगे। क्योंकि बहुतों को बुलाया जाएगा, पर कुछ ही लोग चुने जाएंगे।

२९२३) इसलिए जब तू दान करे, तो अपने आगे तुरही न बजवा जैसा कपटी लोग सभाओं और गलियों में करते हैं, ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। मैं तुमसे सच कहता हूं कि वे अपना फल पा चुके। परन्तु जब तू दान करे, तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है, उसे तेरा बायां हाथ न जानने पाए, ताकि तेरा दान गुप्त रहे और तब तेरा पिता, जो गुप्त में देखता है, तुझे प्रकट में प्रतिफल देगा।

२९२४) निर्धन तथा आजीविका पैदा करने में असमर्थ व्यक्ति बाबा बन जाता है, शक्तिहीन पुरुष प्राय: ब्रह्मचारी बन जाता है। असाध्य रोगों से पीडित व्यक्ति ईश्वर का भक्त बनकर भक्ति साधक बन जाता है तथा बूढ़ी स्त्री पतिव्रता बन जाती है। जब कि सामर्थ्य होने पर भी ब्रह्मचार्य धारण करने, धन सम्पन्न होने पर भी विरक्त बनने, स्वस्थ होने पर ईश्वर भक्त बनने तथा रूपयौवन रहते पतिव्रता धर्म का पालन करने का ही महत्व है।

२९२५) परमेश्वर ने कहा, अरे मूर्ख, इसी रात तेरा प्राण तुझसे ले लिया जाएगा। तब जो कुछ तूने इकट्ठा किया है, वह किसका होगा? ऐसा ही वह मनुष्य भी है, जो अपने लिए धन बटोरता है, परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में धनी नहीं।

२९२६) जब बुद्धि तेरे हृदय में प्रवेश करेगी, तब ज्ञान तुझे मनभाऊ लगेगा। तब विवेक तुझे सुरक्षित रखेगा और समझ तेरी रक्षक होगी। हे मेरे पुत्र, मेरी शिक्षा को न भूलना, अपने हृदय में मेरी आज्ञाओं को रखे रहना। क्योंकि ऐसा करने से तेरी आयु बढ़ेगी और तू अधिक कुशल से रहेगा।

२९२७) हमारा यह जन्म हमारे गत कर्मों का फल है परन्तु निर्वाण केवल भगवान की कृपा से ही हो सकता है। तुम यह जान लो कि वह परमसत्य सबके अन्त:करण में व्याप्त है।

२९२८) उस सर्वव्यापी अधिपति की तुम कभी स्थापना नहीं कर सकते और न ही उसे हटा सकते हो। वह निराकर प्रभु असीम है, स्वत: स्वयंपूर्ण है।

२९२९) हम उस प्रभु का गुणगान करें: प्रेम-भक्तिमय हृदय से उस परम शब्द से एकरूप हो जाएं। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमारे सभी दु:खों का अन्त होगा और फिर हमें सानन्द अपने धाम को पहुंचाया जाएगा।

२९३०) मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म के आगमन-द्वारों आस्त्रवों का तथा इन्द्रियों का तीन कारण (मनसा, वाचा, कर्मणा) और तीन योग (कृत, कारित, अनुमति) से निरोध करो और कषायों का अन्त करो।

२९३१) गायत्री चारों वेदों की माता है। वेदों का समस्त ज्ञान-विज्ञान गायत्री से सन्निहित है। गायत्री छन्द सामहम्। वेद मंत्रों में गायत्री साक्षात् ब्रह्म हैं ब्रह्म का साक्षात् करने के इच्छुक गायत्री-उपासना करें। न गायत्री सम जाप्यं। गायत्री के समान और कोई जप श्रेष्ठ नहीं। सकाम-निष्काम उद्देश्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ मंत्र गायत्री ही है। गायत्री पाप नाशिनी। गायत्री-उपासना से पाप नष्ट होते हैं। आत्मा को निष्पाप बनाने के लिए गायत्री का आश्रय लेना चाहिए। गायत्री सर्व काम धुक्। गायत्री सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं गायत्री उपासक की कोई कामना अपूर्ण नहीं रहती।

२९३२) हिंसा (किसी की हत्या या कष्ट पहुँचाना), स्तेय (चोरी), अन्यथाकाम (अवैध रीति से मैथुन), पैशुन्य (चुगलखोरी), निष्ठुर भाषण, झूठा व्यवहार, भेद युक्त बातों से दिल को तोड़ना अविनय (अशिष्टता), नास्तिकता, अवैध आचरण ये दस प्रकार के पाप कर्म हैं। इन्हें शरीर, वाणी तथा मन से छोड़ देना उचित है।

२९३३) निरंकार होकर पहले स्वयं वार्तालाप करनी चाहिये, मुखमुद्रा अच्छी रखनी चाहिये, सुशील तथा करुणा से कोमल चित्त होना चाहिये और सुकाल जानकर थोड़े शब्दों में सुसङ्गत और मधुर वचन बोलना चाहिये।

२९३४) इन्द्रियों को उनके विषयों से बलपूर्वक अलग रखकर अधिक आसक्ति भी नहीं करनी चाहिये अर्थात् नियमपूर्वक रहकर समभाव से विषय भोग करना चाहिये और इन्द्रियाँ यदि अधिक प्रबल हो जायें तो वे जबरदस्ती मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं ऐसे में इनका दमन करना उचित हैं।

२९३५) जो मनुष्य प्रत्येक जन्म में जिस प्रकार का दान, तप व अध्ययन करता है। उसी का फल वह हर जन्म में पाता है। मनुष्य का जन्म उसके कर्मों के अनुरूप ही होता है।

२९३६) चित्त जब वृत्तियों से शून्य हो जाता है, तो वह भाव को त्याग देता है, तब वह अपने भीतर व्यापक मोक्षमयी आत्मसत्ता का अनुभव करता है।

२९३७) यदि यह शरीर परमार्थ में लगाया जाए, तब तो यह सार्थक होता है, और नहीं तो अनेक प्रकार के आघातों के कारण व्यर्थ ही मृत्यु-पथ में चला जाता है।

२९३८) जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममता-रहित, अहंकार-रहित और स्पृहारहित हुआ बर्तता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

२९३९) कर्ता ने जिस प्रकार जगत को पहले बनाया था, ठीक उसी प्रकार उसने अब भी सूर्य और चंद्रमा, आकाश और पृथ्वी, अंतरिक्ष और प्रकाश बनाएं।

२९४०) मनुष्यों को पूर्वार्जित कर्मों के फल भोगने के योग्य जब जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है तब उसके अनुसार पाप या पुण्य कर्म करने में मनुष्य समर्थ होता है, अन्यथा असमर्थ होता है। जैसे कर्मों का फल उदय होता है उसी के अनुसार वैसी बुद्धि होती है तथा जैसा भाग्य होता है उसी के अनुसार वैसे साथी भी होते हैं।

२९४१) धर्म है मन में, मन की सरलता में, मन की सहजता में, मनकी पवित्रता में, धर्म बाहर में नहीं, स्वयं के भीतर है-मन्दिर और शास्त्र धर्म नहीं, धर्म के साधन हैं। भगवान कहते हैं धर्म को मत खोजो, स्वयं को खोजो तो धर्म स्वत: मिल जाएगा। धर्म तो प्रतिबिम्ब की तरह है, प्रतिबिम्ब को पकड़ने जावोगे तो निराशा ही हाथ लगेगी। अपने आपको पकड़ लो तो प्रतिबिम्ब स्वत: पकड़ में आ जाएगा।

२९४२) जो अपने उदर का गुलाम है वह भगवान् की पूजा नहीं कर सकता अर्थात् जिसकी रुचि मात्र सांसारिक सुखों में है वह भगवान् की सच्ची पूजा नहीं कर सकता। अत: हमें बिना किसी प्रकार की लौकिक इच्छा के ही भगवान् की पूजा करनी है।

२९४३) शुभ कार्य, पूजन वगैरह करते समय मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा में रखना चाहिए, वैसे तो पूजा-हवन वगैरह के लिये प्रतिमा के समक्ष भी मुख करके खड़े हो सकते हैं। पूरब और उत्तर दिशा उत्तम मानी गई है। भगवान भास्कर (सूर्य) भी पूरब में उदय होते हैं। उत्तर दिशा में सुमेरू पर्वत है, विदेह क्षेत्र भी उत्तर दिशा में है।

२९४४) जिस पुरुष को सुख और दु:ख समान प्रतीत होते हैं और जिसको लोभ, मोह और अभिमान नहीं है, ज्ञानी कहते हैं ऐसे पुरुष को भगवान् की मूर्ति के समान जान समदर्शी पुरुषों के यही लक्षण हैं।

२९४५) भक्ति से मेरा मन गंगा के जल के सदृश निर्मल हो गया है अब प्रभु मेरे पीछे कबीर कबीर की रट लगाये फिरते हैं। भक्त यदि भगवान् की खोज में है तो भगवान भी भक्त की खोज में फिरते हैं।

२९४६) संतों का चरित्र सद्गुणों का भंडार है, संत स्वयं दु:ख सहन कर दूसरों के दोषों को ढकते हैं। संतों का समाज आनन्द और कल्याणमय है, चलते फिरते तीर्थराज प्रयाग है।

२९४७) जब तक हमारा जीवन शुद्ध और पवित्र नहीं होता, तब तक अच्छे विचार नहीं आते और अच्छे विचार नहीं आते तो फिर भगवान के निकट भला कहां से जायेंगे।

२९४८) देह को साबुन लगाने से देह शुद्धि होती है परन्तु मन में छल, कपट, प्रपंच रह जाता है, उसका क्या ? सत्संग मन को शुद्ध करने का साबुन है।

२९४९) मन से भगवान् का चिन्तन, वाणी से भगवान के नाम का जप, सबको नारायण समझ कर शरीर से जगज्जनार्दन की नि:स्वार्थ सेवा- यही उत्तम कर्म है।

२९५०) सोते समय भी भगवान के नाम, रूप का स्मरण विशेषता से करना चाहिये। जिससे शयन का समय व्यर्थ न जाय। शयन के समय को साधन बनाने के लिये सांसारिक संकल्पों के प्रवाह को भुलाकर भगवान के नाम, गुण, प्रभाव और चरित्र चिन्तन करते हुए ही सोना चाहिये।

२९५१) जीते हुए ही जो शरीर को मुर्दे के समान समझता है वही मनुष्य जीवन्मुक्त है। अर्थात् जैसे प्राणविहीन होने पर शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वैसे ही प्राण रहते हुए भी जिसका शरीर से कोई सम्बन्ध नहीं वही जीवन्मुक्त महाविदेही है।

२९५२) ज्ञान स्वामी है। सुख उसका सेवक है। जहाँ ज्ञानके अनुसार आचरण होगा वहाँ सुख साथ-साथ चलेगा। परन्तु, जब सुखके पीछे-पीछे ज्ञान चलने लगता है, तब ज्ञान अपने शुद्ध स्वरूपमें नहीं रहता, विपरीत हो जाता है, अर्थात् अज्ञान हो जाता है।

२९५३) संसारमें प्राय: सभी वस्तुएँ और उनकी श्रेष्ठता-कनिष्ठता, देश, काल, अधिकारी, अवस्था, शक्ति, परम्परा आदि के अनुसान मानी हुई हैं। वे अलग-अलग होती हैं, बदलती जाती हैं और स्थानान्तरित भी होती है।

२९५४) जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ होता है। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। दो माशा सोने से निष्पन्न (पूरा) होने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से भी पूरा नहीं होता।

२९५५) त्यागी वही कहलाता है, जो कान्त और प्रिय भोग उपलब्ध होने पर उनकी ओर से पीठ फेर लेता है और स्वाधीनतापूर्वक भोगों का त्याग करता है।

२९५६) नरेन्द्र-सुरेन्द्रादि (राजा-देवों के राजा) का सुख परमार्थत: दु:ख ही है। वह है तो क्षणिक, किन्तु उनका परिणाम दारुण होता है। अत: उससे दूर रहना ही उचित है।

२९५७) जीव कर्मों का बन्ध करने में स्वतंत्र है, परन्तु उस कर्म का उदय होने पर भोगने में उसके अधीन हो जाता है। जैसे कोई स्वेच्छा से वृक्ष पर चढ़ तो जाता है, किन्तु प्रमाद-वश नीचे गिरते समय परवश हो जाता है।

२९५८) जो मनुष्य हित-मित तथा अल्प आहार करते हैं, उन्हें कभी वैद्य से चिकित्सा कराने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वे तो स्वयं अपने चिकित्सक होते हैं। अपनी अंतर्शुद्धि में लगे रहते हैं।

२९५९) यह मेरे पास है और यह नहीं है, यह मुझे करना है और यह नहीं करना है- इस प्रकार वृथा बकवास करते हुए पुरुष को उठानेवाला (काल) उठा लेता है। इस स्थिति में प्रमाद कैसे किया जाए।

२९६०) केवल सिर मुंड़ाने से कोई श्रमण नहीं होता, ओम् का जप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, अरण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता, कुश-चीवर धारण करने से कोई तपस्वी नहीं होता।

२९६१) विनयपूर्वक प्राप्त की गई विद्या इस लोक तथा परलोक में फलदायिनी होती है और विनयहीन विद्या फलप्रद नहीं होती, जैसे बिना जल के धान्य नहीं उपजता।

२९६२) मांसाहार से दर्प बढ़ता है। दर्प से मनुष्य में मद्यपान की अभिलाषा जागती है और तब वह जुआ भी खेलता है। इस प्रकार (एक मांसाहार से ही) मनुष्य उक्त वर्णित सर्वदोषों को प्राप्त हो जाता है।

२९६३) गमन करते समय इस बात की भी पूरी सावधानी रखनी चाहिए, कि नाना प्रकार के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी आदि इधर-उधर से चारे-दाने के लिए मार्ग में इकट्ठा हो गए हों, तो उनके सामने भी नहीं जाना चाहिए, ताकि वे भयग्रस्त न हों।

२९६४) मुनिजन न तो बल या आयु बढ़ाने के लिए आहार करते हैं, न स्वाद के लिए करते हैं और न शरीर के उपचय या तेज के लिए करते हैं। वे ज्ञान, संयम और ध्यान की सिद्धि के लिए ही आहार करते हैं।

२९६५) मनुष्य मृत्यु के समय जैसा भी भाव करता है वैसी ही गति प्राप्त होती है। भगवान को स्मरण करने वाले भगवान को प्राप्त

होते है और संसार के भौतिक पदार्थों को स्मरण करने वाले मनुष्य पूर्व जन्म ग्रहण करते है। मनुष्य समस्त जीवन जैसा विचार और व्यवहार करता है वैसे ही संस्कार उसके मन मे संचित होते रहते है तथा अन्त समय मे मन पर उनका प्रभाव प्रकट होता है। अत: विवेकशील अनुरूप जीवन काल मे मृत्यु से भेट करने के लिये तैयारी रखो।

२९६६) धर्म समाधान है। समाधान का द्वार समाधि है। समाधि शून्य चैतन्य, चित्त शून्य हो पर जागृत उस शांत स्थित में सत्य के द्वार खुलते हैं। शून्य में ही सत्य का साक्षात होता है और परिणामस्वरूप सारा जीवन परिवर्तित हो जाता है। शून्य तक, समाधि तक ध्यान से पहुंचते हैं।

२९६७) विचार और ध्यान बिल्कुल विपरीत दिशाएं हैं- एक बहिर्गामी है, एक अंतर्मुखी है। विचार पर को जानने का मार्ग है, ध्यान स्व को जानने का। साधारणत: विचार को ही ध्यान समझ लिया गया है। यह भूल बहुत गहरी और बड़ी है।

२९६८) जो राजा व स्वामी वाणी और चक्षु से अनुग्रह दिखाता हुआ भी धन आदि भृत्य को न बढ़ाने वाला, धन आदि देने वाला हुआ भी दुरारुह भृत्यों के वश में नहीं होता है और अपक्वसं अर्थात् भीतर से बलरहित होता हुआ भी पक्वसंकाश बलवान के समान व्यवहार करता है, वह तो कभी नष्ट नहीं होता है।

२९६९) जो पुरुष धर्म-अर्थ-काम इन तीनों का समयानुसार सेवन करता है, वह इस जन्म और पर जन्म में धर्म-अर्थ-काम के संयोग को प्राप्त होता है।

२९७०) जो पुरुष क्रोध और हर्ष के उठे हुए वेग को ज्ञानपूर्वक रोकता है और आपत्तियों के आने पर जो मोह को प्राप्त नहीं होता, घबराता नहीं है, वही पुरुष सम्पत्ति का पात्र होता है अर्थात् ऐसे पुरुष को ही सम्पत्ति प्राप्त होती है।

२९७१) अति अभिमान, बहुत बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, आत्मपोषण की इच्छा और मित्र द्रोही ये छ: कारण हैं जिनसे पुरुष पूर्ण आयु तक जीवित नहीं रहता।

२९७२) कामी व्यक्ति लज्जाहीन होने पर किसी का भय नहीं खाता, वह निर्भीक हो जाता है। अपने विषय में वह किसी पर कोई शंका भी नहीं करता। वह तो केवल अपनी इन्द्रियों के वश में पड़ा लोक-परलोक में अनेक प्रकार के कष्ट-रोगों का घोर नरक ही भुगतता है। कामी मनुष्य को सदाचार व ब्रह्मचर्य रूपी अमृत अच्छा नहीं लगता। वह तो सदा काम-विषय रूपी विष को ही खोजता है। आचरणहीन-अज्ञानी मनुष्य की कुबुद्धि दूर नहीं होती, चाहे उसके कितना भी ज्ञानोपदेश करो (विषयी व्यक्ति की चित्त-चंचलता से उसकी बुद्धि जड़ हो जाती है, जिससे वह अच्छी बातों को ग्रहण नहीं कर पाता।

२९७३) इन्द्रियों के विषय-भोगों के स्वाद में पड़कर, मूर्ख-कामी मनुष्यों ने तो कल्याणमयी भक्ति को ही बिगाड़ दिया। अनमोल ज्ञान रूपी हीरे को खोकर, सारा मनुष्य-जीवन व्यर्थ में गंवा दिया अर्थात् जो समय पवित्र सद्ज्ञान को पाने का था, वह विषय-भोग में गंवा दिया।

२९७४) काम शब्द को कहना तो बहुत सरल है, इसीलिए सब कोई काम-काम कहते रहते हैं। परन्तु ऐसे लोग काम के वास्तविक रूप को नहीं पहचानते, उसका गम्भीर अर्थ-भेद नहीं समझते। मन की जितनी भी विषय सम्बन्धी कल्पनाएं हैं, वे सभी मिलकर काम कहलाती हैं।

२९७५) काम, क्रोध, लोभ, मद एवं मोह आदि दुर्गुणों से, जब तक हृदय भरा हुआ है, तब तक मूर्ख और पंडित दोनों एक समान हैं। अर्थात् जिसने भक्ति-ज्ञान से इन दुर्गुणों को अपने हृदय से दूर कर दिया, वही पंडित है और जिसने इसे नहीं छोड़ा, वह मूर्ख है।

२९७६) पहले भी बहुत कुछ कह दिया है, फिर कहता हूं और कहते हुए जाता हूं, फिर भी नामसझ लोग मेरी बात को नहीं मानते। चाहे कोई साधु-वैरागी के वेश में हो या गृहस्थ में, किसी भी रूप में कामी मनुष्य का कहीं ठिकाना नहीं है अर्थात् उसका उद्धार नहीं हो सकता।

२९७७) नारी-पुरुष के मिलन से रज-वीर्य के स्खलित हो जाने पर, दोनों ही आत्महत्यारे-सा अनुभव करते हुए पश्चाताप में डूब जाते हैं। परन्तु अज्ञानी लोग मानते ही नहीं, वे समझकर पहले ही अपना सुधार नहीं करते, बस यही उलझन की बात है (काम के आवेग में कामी स्वयम् को भूल जाता है और बाद में पछताता है)।

२९७८) जो भी सत्कर्म तुझे कल करने हैं, उन्हें आज ही कर ले। क्योंकि उत्तम मानव-तन और सभी कल्याण-साधन तेरे साथ हैं। कल-कल का तू क्या मिथ्या बहाना करता है। कल तो काल के हाथों में है, न जाने कल क्या हो जाए।

२९७९) मनुष्य का यह तन घर के समान है और इस घर का रक्षक सत्संग-ज्ञान-उपदेश सुनने में बहरा है। इसके जीवन रूपी खेत

को काम-विषयादि रूपी पक्षियों ने नोंच खाया। अब आधा-चौथाई जो भी शेष बचा है, बचा लो और सावधान हो जाओ।

२९८०) इस संसार में आकर हमने क्या किया और आगे क्या करेंगे ? न तो हम सांसारिक सुख-भोगों में स्थिर रह पाए और न इन सबको त्याग कर अपना मोक्ष-साधन कर पाए, बल्कि यह मनुष्य जन्म (मूल) यूं ही व्यर्थ में खो दिया।

२९८१) अहंकार की आग बहुत ही विचित्र होती है यदि अहंकार की आग हृदय में जल रही हो तो अहंकारी व्यक्ति गुरु से भी सम्मान (प्रतिष्ठा) चाहता है। ऐसे अभिमानी जनों को मृत्यु रूपी दु:ख-संकटों एवं कुवासनाओं ने खुला निमन्त्रण दिया है कि आओ तुम हमारे मेहमान बनो। अर्थात् वे विपत्तियों में घिरे रहेंगे।

२९८२) जो कोई ईसा की बात मानता है, वह उस बुद्धिमान मनुष्य की तरह ठहरेगा, जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया। और मेह बरसा और बाढ़ें आयीं और आंधियां चलीं और उस घर पर टक्करें लगीं, परन्तु वह नहीं गिरा, क्योंकि उसकी नींव चट्टान पर डाली

२९८३) शुद्धि- स्नान से देह की शुद्धि होती है, दान से धन की शुद्धि होती है। ध्यान से मन की शुद्धि होती है, चिंतन से विचारों की शुद्धि होती है। स्वर्ग और पृथ्वी नष्ट हो जाएंगे, पर ईसा के वचन नष्ट नहीं हो सकते।

२९८४) ईसा ने कहा भेड़ों की तरह भेड़ियों के बीच भेजता हूं, सो सांपों की तरह बुद्धिमान और कबूतरों की तरह भोले बनो। परन्तु लोगों से सावधान रहो, क्योंकि वे तुम्हें महासभाओं में सौंपेंगे और अपनी पंचायतों में तुम्हें कोड़े मारेंगे। जब वे तुम्हें पकड़वाएंगे तो यह चिन्ता न करना कि हम किस रीति से या क्या कहेंगे, क्योंकि जो कुछ तुमको कहना हो, वह उसी घड़ी बता दिया जाएगा। बोलनेवाले तुम नहीं हो, परन्तु तुम्हारे पिता की आत्मा तुममें बोलती है।

२९८५) जो शरीर को मारते हैं पर आत्मा को नहीं मार सकते, उनसे मत डरना; पर उससे डरो जो आत्मा और शरीर दोनों को नरक में नष्ट कर सकता है।

२९८६) जो माता या पिता को मुझसे अधिक प्रिय जानता है, वह मेरे योग्य नहीं और जो बेटा या बेटी को मुझसे अधिक प्रिय जानता है, वह मेरे योग्य नहीं।

२९८७) जो तुम्हें ग्रहण करता है, वह मुझे ग्रहण करता है, और जो मुझे ग्रहण करता है, वह मेरे भेजनेवाले को ग्रहण करता है। जो मसीहा को मसीहा जानकर ग्रहण करे, वह मसीहे का पुरस्कार पाएगा और जो धार्मिक जानकर धार्मिक व्यक्ति को ग्रहण करे, वह धार्मिक का पुरस्कार पाएगा।

२९८८) जो तुम्हें सुनता है, वह मुझे सुनता है, जो तुम्हारा तिरस्कार करता है, वह मेरा तिरस्कार करता है और जो मेरा तिरस्कार करता है, वह उसका तिरस्कार करता है जिसने मुझे भेजा है। यदि तुम्हारा विश्वास राई के दाने के बराबर भी हो तो इस पहाड़ से कह सकोगे कि यहां से सरककर वहां चला जा, तो वह चला जाएगा और कोई बात तुम्हारे लिए अनहोनी न होगी।

२९८९) अगर संसार तुमसे घृणा करे, तो तुम जानो कि उसने मेरे सामने तुमसे घृणा की है। अगर तुम संसार के होते, तो संसार अपनों को प्रेम करता। परन्तु तुम संसार के नहीं हो और मैंने तुम्हें संसार से बाहर के लिए चुना है। इसलिए संसार तुमसे घृणा करता है। मैंने तुमसे जो शब्द कहे हैं, उन्हें याद रखो। जिसके पास मेरी आज्ञा है और वह उन्हें मानता है, वही मुझसे प्रेम रखता है और जो मुझसे प्रेम रखता है, उससे मेरा पिता प्रेम रखेगा और मैं उससे प्रेम रखूंगा और अपने आपको उसके प्रति प्रकट करूंगा।

२९९०) और जब तुम उपवास करो, तो कपटियों की तरह तुम्हारे मुंह पर उदासी न छायी रहे, क्योंकि वे अपना मुंह बनाए रहते हैं ताकि लोग उन्हें उपवासी जानें।

२९९१) ऐ सब परिश्रम करनेवालों और बोझ से दबे हुए लोगों, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा। मेरा जूआ अपने ऊपर उठा लो, और मुझसे सीखो, क्योंकि मैं नम्र और मन में दीन हूं और तुम अपने मन में विश्राम पाओगे। क्योंकि मेरा जूआ सहज और बोझ हलका है। क्योंकि मनुष्य का पुत्र खोए हुओं को ढूंढने और उनके उद्धार करने आया है। मनुष्यों की सन्तान सब पाप और निन्दा जो वे करते हैं, क्षमा की जाएगी। भय मत करो, केवल विश्वास रखो। ईसा के नाम के कारण सब लोग तुमसे बैर करेंगे, पर जो अन्त तक धीरज धरे रहेगा, उसी का उद्धार होगा।

२९९२) जो कोई मनुष्यों के सामने मुझे मान लेगा, उसे मनुष्य का पुत्र भी परमेश्वर के स्वर्गदूतों के सामने मान लेगा। पर जो कोई

मनुष्यों के सामने मेरा इन्कार करेगा, उसका परमेश्वर के स्वर्गदूतों के सामने इन्कार किया जाएगा। जब वे तुम्हें पकड़कर महासभाओं, हाकिमों और राजाओं के सामने पहुंचाएं, तब तुम यह चिन्ता न करना कि तुम किस रीति से या क्या उत्तर दोगे या तुम क्या कहोगे, क्योंकि जो कुछ तुमको कहना होगा, वह उसी घड़ी तुम्हें पवित्र आत्मा सिखा देगा।

२९९३) जो मेरे वचनों को सुनता है और मेरे भेजनेवाले पर विश्वास करता है। वह अनन्त जीवन का अधिकारी होता है। उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं होती, क्योंकि वह मृत्यु के पार होकर जीवन में प्रवेश कर चुका है।

२९९४) तब ईसा ने उन यहूदियों से, जिन्होंने उसकी प्रतीति की थी, कहा, यदि तुम मेरे वचन में बने रहोगे, तो सचमुच मेरे चेले ठहरोगे और सत्य को जानोगे और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र करेगा। मैं तुमसे सच-सच कहता हूं कि यदि कोई व्यक्ति मेरे वचन पर चलेगा, तो वह अनन्त काल तक मृत्यु को नहीं देखेगा। जब तक मैं संसार में हूं, मैं जगत् की ज्योति हूं। मैं और मेरे पिता एक हैं। हे पिता, उन्हें क्षमा कर, क्योंकि वे यह नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।

२९९५) इसलिए अब प्रभु ने कहा कि अपने सारे हृदय से उपवास करते हुए, रोते हुए और शोक करते हुए मेरी ओर मन लाओ। और अपने कपड़ों को नहीं, पर अपने हृदय को सुधारो और अपने प्रभु अपने परमात्मा की ओर मोड़ो, क्योंकि वह कृपालु और दयालु है, धैर्यवान और करुणा से भरा है। जो उसे ऐसा जानता है तथा पापों के प्रायश्चित के लिए तैयार है, वह सुधरेगा और क्षमा प्राप्त करेगा। यदि कोई आदमी प्यासा है तो उसे मेरे पास आने दो और पीने दो। मैं जगत् में ज्योति होकर आया हूं।

२९९६) तुम्हारी कमर कसी रहे और तुम्हारे दिए जलते रहें और तुम उन मनुष्यों के समान बनों, जो अपने स्वामी की बाट देख रहे हों कि वह ब्याह से कब लौटेगा ताकि जब वह आकर द्वार खटखटाए, तो तुरन्त उसके लिए खोल दें।

२९९७) धन्य हैं वे दास, जिन्हें स्वामी आकर जागते पाएं, मैं तुमसे सच कहता हूं कि वह कमर बांधकर उन्हें भोजन करने को बैठाएगा और पास आकर उनकी सेवा करेगा।

२९९८) जब तू भोज करे तो कंगालों, लूलों, लंगड़ों और अन्धों को बुला; और तू धन्य होगा क्योंकि उनके पास तुझे बदला देने को कुछ नहीं, किन्तु तुझे धर्मियों के जी उठने पर इसका प्रतिफल मिलेगा।

२९९९) जो खराई से चलते हैं, वह उनके लिए ढाल ठहराता है। वह न्याय के पथों की देखभाल करता है। वह अपने भक्तों के मार्ग की रक्षा करता है।

३०००) कृपा और सच्चाई तुझसे अलग न होने पाएं, वरन् उनको अपने गले का हार बनाना और अपनी हृदयरूपी पट्टिका पर लिखना। ऐसा करने से तू परमेश्वर और मनुष्य दोनों का अनुग्रह पाएगा। तू अति बुद्धिमान होगा।

३००१) क्या ही धन्य है वह मनुष्य जो बुद्धि पाए और वह मनुष्य जो समझ प्राप्त करे क्योंकि बुद्धि की प्राप्ति चांदी की प्राप्ति से बड़ी उसका लाभ चोखे सोने के लाभ से भी उत्तम है और जितनी वस्तुओं की तू लालसा करता है, उनमें से कोई भी उसके तुल्य न ठहरेगी। जो बुद्धि को ग्रहण कर लेते हैं, उनके लिए वह जीवन का वृक्ष बनती है और जो उसको पकड़े रहते हैं, वे धन्य हैं।

३००२) खरी बुद्धि और विवेक की रक्षा कर। इनसे तुझे जीवन मिलेगा। तू अपने मार्ग पर निडर चलेगा। तेरे पांव में ठेस न लगेगी। जब तू लेटेगा, भय न खाएगा और तब सुख की नींद आएगी।

३००३) बुद्धि को प्राप्त कर समझ को भी प्राप्त कर। बुद्धि श्रेष्ठ है, इसलिए उसकी प्राप्ति के लिए यत्न कर। जो कुछ तू प्राप्त करे, उसे प्राप्त तो कर परंतु समझ की प्राप्ति का यत्न घटने न पाए। उसकी बड़ाई कर, वह तुझको बढ़ाएगी, जब तू उससे लिपट जाए, तो तब वह तेरी महिमा करेगी।

३००४) सबसे अधिक अपने मन की रक्षा कर, क्योंकि जीवन का मूल स्त्रोत वही है। देख, धर्मी को पृथ्वी पर फल मिलेगा, तो निश्चय है कि दुष्ट और पापी को भी मिलेगा। जो मनुष्य निरंतर प्रभु का भय मानता रहता है, वह धन्य है परंतु जो अपना मन कठोर कर लेता है, वह विपत्ति में पड़ता है।

३००५) गुनगुनाने का मन करे तो पवित्र धर्म-ग्रंथों के पावन श्लोकों को गुनगुनाओ, ध्यान ही करना चाहते हो तो लक्ष्मीपति विश्वपालक भगवान श्री विष्णु के कोमल रक्तकमल-सी आभा वाले चरण युगलों का ध्यान करो, यदि संग से नहीं बच पा रहे तो संतों

का संग करो और यदि तुम चाहते हो लोगों के बीच कुछ बांटना तो दीन-हीन को नारायण रूप मानते हुए उनको आवश्यक वस्तुएं दो। ऐसा करके तुम सभी प्रकार के पापों से सदा-सदा के लिए मुक्त हो जाओगे।

३००६) वे सर्वाधिपति शाश्वत गान अथवा दिव्य शब्द के अवतार हैं। वे ही वेद हैं और वे ही शास्त्र हैं। वे दिव्यत्व से परिपूर्ण हैं। वे ही शिव हैं, वे ही विष्णु हैं और वे ही ब्रह्मा हैं और साथ ही उनकी लीला-सहचरी पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती हैं।

३००७) प्रभु की महानता यदि ज्ञात हो भी जाए तो भी वाक्चातुर्य से उसका बखान नहीं किया जा सकता। मेरे गुरु ने मुझे एक पाठ पढ़ाया है कि वे ही सबके स्वामी हैं। उन्हें कभी न भूलो।

३००८) अच्छा क्या है ? चोरी से बचना अच्छा है, इन्द्रियपरता से बचना अच्छा है, झूठ से बचना अच्छा है, निन्दा से बचना अच्छा है, कठोरता का दमन अच्छा है, बकवाद से बचना अच्छा है, समस्त ईर्ष्या को निकाल देना अच्छा है, द्वेष का निराकरण अच्छा है, सत्यनिष्ठा होना अच्छा है, ये सभी बातें अच्छी हैं।

३००९) दु:ख क्या है ? जन्म दु:ख हैं, वार्धक्य दु:ख है, रोग-दु:ख है, शोक और विपत्ति दु:ख है, विपदा और निराशा दु:ख है, कुत्सित वस्तुओं के साथ संलग्नता दु:ख है, हम जिससे प्रेम करते हैं उसकी हानि और जिसकी हम आकांक्षा करते हैं उसे पाने की विफलता दु:ख है। ये सारी चीजें दु:ख हैं। दु:ख का उद्गम कौन-सा है ? काम, वासना और जिजीविषा ही, जो सर्वत्र सुख की कामना करते हैं तथा निरन्तर पुनर्जन्म के कारण होते हैं, दु:ख का उद्गम हैं। इन्द्रियासक्ति, इच्छा, स्वार्थपरायणता ये सारी वस्तुएं ही दु:ख का उद्गम हैं। दु:खों के नाश का पथ कौन-सा है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही दु:खों के नाश की ओर ले जाता है। जहां तक एक सदाचारी युवक इस प्रकार दु:ख को, दु:ख के उद्गम को और दु:ख से मुक्ति के मार्ग को समझता है और आमूलचूल रूप से वासना का उच्छेद करता, क्रोध का निग्रह करता, मैं हूं के झूठे दर्प का विनाश करता और बुद्धत्व की प्राप्ति करता है, वह इसी जीवन में समस्त दु:खों का अन्त कर लेता है।

३०१०) जो जीव मिथ्यात्व से ग्रस्त होता है, उसकी दृष्टि विपरीत हो जाती है। उसे धर्म भी रुचिकर नहीं लगता, जैसे ज्वरग्रस्त मनुष्य को मीठा रस भी अच्छा नहीं लगता।

३०११) राग और द्वेष कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। वह जन्म-मरण का मूल है। जन्म-मरण को दु:ख का मूल कहा गया है।

३०१२) जिससे विराग उत्पन्न होता है, उसका आदरपूर्वक आचरण करना चाहिए। विरक्त व्यक्ति संसार-बन्धन से छूट जाता है और आसक्त व्यक्ति का संसार अनन्त होता जाता है।

३०१३) यदि मनुष्य यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी धर्म कार्य का फल विघ्नों के कारण नहीं प्राप्त करता है तो वह इस संसार में दूसरे किसी समय में अवश्य उस पुण्यकार्य के फल को प्राप्त करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

३०१४) मन से पाप-कर्म की चिन्ता करता हुआ भी मनुष्य कभी उसे कार्य रूप में परिणत करने की इच्छा न करे क्योंकि पापकर्म करने पर उसके फल को वह अवश्य पाता है- ऐसा धर्मज्ञ कहते हैं।

३०१५) जीविका से रहित तथा व्याधि या शोक से आर्त्तलोगों की यथाशक्ति सहायता पहुँचाकर उपकार करना चाहिये एवं कीड़े तथा चीटियों तक के भी सुख-दु:खादि को अपनी ही भांति समझना चाहिये।

३०१६) अपने साथ अपकार करने में तत्पर शत्रु के संग भी मुख्यत: उपकार ही करना चाहिये और संपत्ति तथा विपत्ति पड़ने पर दोनों में एक सी मनोदशा रखनी चाहिये एवं उन्नति रूप फल के विषय में कभी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये अर्थात् यदि कोई धनी हुआ तो ऐसी ईर्ष्या करनी चाहिये- मैं भी प्रयास करके वैसा ही बनूँ किन्तु धन के साथ ईर्ष्या करना अनुचित है।

३०१७) हरिण, हाथी, पतंगा, भौंरे, मछलियां ये पांचों क्रम से शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध तथा रस इन पांचों विषयों का उपभोग करने से निश्चय मारे जाते हैं, जैसे हरिण-स्वर युक्त सुन्दर गान सुनने में फंसकर नहीं भागता हुआ शिकारी के हाथों मारा जाता है। हाथी-हस्तिनी के स्पर्श करने में आसक्त होने से न भागने से पकड़ा जाता है। पतंगा-दीपक की शिखा का सुन्दर रूप देखने से उन्मुक्त होकर उसी पर गिर जाने से मर जाता है। भौरा-गन्ध के लोभ से कमल के संकुचित होने पर उसी के पत्तों के अन्दर बन्द हो जाता है। मछली-मांस के रस का आस्वाद लेने में फंसकर कांटा चुभ जाने से तड़फड़ा कर मर जाती है।

३०१८) इस संसार में निद्रा (दिन में या अधिक सोना), तन्द्रा (अर्द्धनिद्रित अवस्था), भय, क्रोध, आलस्य, और दीर्घसूत्रता (कम

समय में होने योग्य कार्य को देर लगाकर करना) - इन छह दोषों को सुख चाहने वाले व्यक्ति त्याग दें, क्योंकि ये सब दोष कार्यनाशक हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

३०१९) अपनी भुजाओं की शक्ति पराक्रम एवं सेना राजाओं का वास्तविक बल है। तत्वज्ञान ब्राह्मण विद्वानों की शक्ति है। धर्म सबसे अधिक शक्तिशाली है। किन्तु बिना धन के धार्मिक अनुष्ठान भी पूरे नही होते इसलिये धर्म की रक्षा के लिये धनवांछित रहता है। विद्या की रक्षा प्राप्त ज्ञानानुसार बार बार स्मरण करने से होती है। राज्य सत्ता की रक्षा के लिये नीतिवान व दयापूर्ण व्यवहार वांच्छित है।

३०२०) कुछ व्यक्ति सामने तो प्रशंसा भरी बातें करते है किन्तु बाद में पीछे से निन्दा से बाज नही आते ऐसे लोग पीठ मे छुरा भौकनेवाले होते है। जो व्यक्ति इस प्रकार के लोगों पर विश्वास करता है उस व्यक्ति का मृत्यु योग निकट ही है। मुँह पर कटु बोलनेवाला और पीछे से मान बडाई करनेवाला ही व्यक्ति अपना हितैषी व सच्चा मित्र होता है।

३०२१) मनुष्य के लिये राज्य से बाहर रहना अच्छा है, किन्तु दुष्ट राजा के राज्य में रहना अनुचित है। मित्र का न होना ठीक है, परन्तु कुमित्र का संग सर्वथा अवाञ्छनीय है। शिष्य न हो तो कोई बात नही परन्तु दुर्जन पुरुष को शिष्य बनाना उपयुक्त नहीं है। पत्नी विहिन रहना अच्छा है, पत्नी के बिना भी जीवन चल सकता है, परन्तु किसी दुराचारिणी स्त्री को अपनी पत्नी मानना कदापि उचित नही है; क्योकि इससे तो अपमान अपयश और लोक निन्दा की ज्वाला में जलना पडता है। अत: श्रेष्ठ राजा के राज्य में रहना, सज्जन की संगति करना, योग्य पात्र को शिष्य बनाना और कुलीन पतिव्रता कन्या से ही शादी करना सद्पुरुषों के लिये योग्य है। यह सभी जन के लिये हित कर है।

३०२२) शोक धैर्य का नाश कर देता है। शोक शास्त्र ज्ञान को भी लुप्त कर देता है तथा शोक सब कुछ नष्ट कर देता है अत: शोक के समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है। शत्रु के हाथ से अपने ऊपर पडा हुआ शस्त्रों का प्रहार सह लिया जाता है परन्तु दैववश प्राप्त हुआ थोडा भी शौक सहन नहीं हो सकता।

३०२३) विवेकशील मनुष्य को जन्मदाता माता पिता, दीक्षा देकर ज्ञान देने वाले गुरु, रोजगार देने वाले मालिक एवं विपत्ति में सहायता करने वाले संरक्षक को सदा सम्मान देना चाहिये। जो व्यक्ति इन आदरणीय जनों का सम्मान नहीं करता है इनकी आज्ञा का पालन नहीं करता है और इनके प्रति कृतज्ञ नही होता है, उसका इस संसार मे कभी भला नहीं होता है।

३०२४) जिस देवता या प्रभु की आराधना करें उसे सबसे अधिक उत्कृष्ट कहें व उसकी न्यूनता को न करें एवं उसकी सेवा प्रसन्नता से करें।

३०२५) नवीन तथा प्राचीन व्यवहार में चतुर लोगों की बुद्धि से प्रतिक्षण नये-नये व्यवहार होते रहते हैं, अत: उन सबको कहना कठिन है इसी से प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा आप्त पुरुषों के उपदेश (शब्द प्रमाण) से उन सबों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

३०२६) निस्पृह किसी विषय का अधिकारी हो नहीं सकता। जिस देह में वासना का आधार नहीं, वह देह की शोभा में वृद्धि करने वाली वस्तुओं से मोह नहीं रख सकता, विद्वान रोचक भाषण नहीं दे सकता और पाक-साफ बातें करने वाला कपटी कदापि नहीं हो सकता।

३०२७) जो पुरुष जगत् से कोई वास्ता नहीं रखता है, वह किसी विषय विशेष का अधिकारी नहीं हो सकता। जिस देह में वासना विद्यमान नहीं होती, वह किसी प्रकार का श्रृंगार आदि का मोह नहीं कर सकता। विद्वान अच्छा श्रेष्ठ वक्ता नहीं हो सकता और जो साफ-साफ बात करता है, वह कपटी कदापि नहीं हो सकता।

३०२८) चालाक (चतुर) हमेशा (सदैव) मुख से राम-राम का जप करता है और बगल में छुरी छिपा रखता है। समय आते ही छुरी का कमाल दिखा देता है। किसी से अपना कार्य निकालना हो तो उससे प्रिय मृदु वचन बोले और पेट में घुस जाए। जब शिकारी मृग (हरिण) का शिकार करता है तो पूर्व में मधुर स्वर में गीत गाता है। अत: स्पष्ट है कि काम पड़ने पर गधे को भी बाप (पिताश्री) बना लेना चाहिए और बाद में दुलत्ती (लात) मार देनी चाहिए।

३०२९) मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसका वैसा ही फल उसको मिलता है। अपने कर्मों के कारण ही वह इन सांसारिक क्रियाओं में भटकता रहता है और मृत्यु हो जाने पर वह स्वयं ही इन सबसे मुक्त हो जाता है।

३०३०) मनुष्य को फल उसके कर्मानुसार ही मिलता है और बुद्धि भी कर्म के अधीन है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति विचार करके ही अपना कार्य किया करते हैं।

३०३१) सच्चे साधक वही हैं जो सद्गुरुचरणों के अंकित हैं, जो गुरुवचन पर अपने आपको बेच चुके हैं, जो सद्गुरु के लिए अपना

सर्वस्व दे चुके हैं।

३०३२) स्वधर्म-पालन करने के बिना सुख नहीं होता है और अपने धर्म का पालन करना परम तप है। अत: जिसने स्वधर्म-पालन के रूप तप को सदा बढ़ाया है, संसार में उसके देवता भी सेवक हो जाते हैं फिर मनुष्यों के विषय में क्या कहना है।

३०३३) अच्छे कार्यों से अच्छा फल होता है, उससे विपरीत अर्थात् कुकर्मों से बुरा फल होता है। अत: शास्त्र द्वारा शुभाशुभ कार्यों का ज्ञान प्राप्त करके अशुभ का त्याग शुभ का ग्रहण करना चाहिये।

३०३४) आदमी सुख को बाहर ढूंढता है, जबकि वह स्वयं सुख का भंडार है जिस प्रकार फूल की सुगन्ध फूल में, शक्कर का मिठास शक्कर में, दीपक का प्रकाश दीपक में रहता है उसी प्रकार आत्मा का सुख आत्मा में रहता है।

३०३५) वाणी मन की परिचायिका है। वाणी से आदमी की औकात और बुद्धि का पता चलता है। वाणी एक ऐसा चुम्बक है जो मनुष्य को मनुष्यता के प्रति आकर्षित करता है।

३०३६) मनरूपी घोड़ा निरन्तर दौड़ लगाता रहता है। इन्द्रियां वश में न रहने के कारण उसका कहा करती रहती हैं। यह मनरूपी अश्व तभी वश में हो सकेगा जब उसके ऊपर विवेक रूपी सवार बैठकर लगाम को अपने हाथ में थामेगा। बस, फिर हो जायेगा मन-इन्द्रिय-संयम, मिल जायेगा मार्ग मोक्ष का अपने आप।

३०३७) धन सम्पन्न होने पर मनुष्यों के मित्रों, बन्धु बान्धवों की संख्या बहुत बढ जाती है। धन की प्रचुरता ही मनुष्य को समाज में अधिक कीर्ति दिलवाती है। धनाढ्य व्यक्ति ही शान से रह सकता है। धन सब कुछ नहीं है किन्तु धन के बिना भी जीवन यात्रा पूर्ण नहीं होती। सत्य तो यह है कि इस संसार में केवल धनवान को ही विद्वान और सम्मानित व्यक्ति समझा जाता है। धनहीन के गुण ने केवल उपेक्षित हो जाते है बल्कि उससे तो मनुष्यों जैसा व्यवहार भी नहीं किया जाता। धनहीन व्यक्ति को सभी हीन दृष्टि से देखते है।

३०३८) भगवान श्रीकृष्ण ने कठोर भाष्य किया है कि जिनका जीवन औरों के लिए मृत्युसमान वेदना साबित होता है, उन्हें जिंदा शव मानना चाहिए। वे कहते हैं, जो बेटा वृद्ध मां-बाप की सेवा नहीं करता, उनका अपमान करता है, वह जिंदा होकर भी मरा हुआ मानना चाहिए। जो पति अपनी पत्नी की रक्षा नहीं करता, उस पर अत्याचार करता है, उसे दासीसमान मानता है; जो पिता अपने संतति का पालन नहीं करता, उनकी देखभाल नहीं करता; जो शिष्य गुरू की आज्ञा नहीं मानता; केवल स्वार्थ के लिए गुरू का उपयोग करता है; जो समर्थ व्यक्ति दुर्बलों की रक्षा नहीं करता; जो धनवान दान-धर्म नहीं करते वे सब जिंदा शव हैं।

३०३९) उपनिषद वेद का ज्ञान-काण्ड है। यह चिर-प्रदीप्त वह ज्ञानदीपक है, जो सृष्टि के आदि से प्रकाश देता चला आ रहा है। और प्रलय-पर्यन्त पूर्ववत् प्रकाशित रहेगा। इसके प्रकाश में वह अमरत्व है, जिसने सनातन धर्म के मूल का सिंचन किया। यह जगत-कल्याणकारी भारत की अपनी निजी निधि है। उपनिषदें हमारी युग-युग की सबसे मूल्यवान धरोहर है।

३०४०) उपनिषदें सनातन दार्शनिक ज्ञान के मूल स्त्रोत हैं। वे केवल प्रखतरम बुद्धि का ही परिणाम नहीं है, अपितु प्राचीन ऋषियों की अनुभूति के फल हैं।

३०४१) उपनिषदों के भीतर जो दार्शनिक कल्पना है वह भारत में तो अद्वितीय है ही, सम्भवत: सम्पूर्ण विश्व में अतुलनीय है। उपनिषदों में वे सिद्धान्त स्पष्ट रूप से दिए हुए हैं, जिनके आधार पर कोई भी विचारशील मनुष्य अपने लिए कर्त्तव्य का निश्चय कर सकता है। इस पथ पर चलने वाला अपने लिए तो नि:श्रेयस का द्वार खोल ही लेगा, उसके तप: पूत व्यक्तित्व के प्रकाश में मानव समाज भी अभ्युदय-पथ पर आरूढ़ हो सकेगा। उपनिषदें मृत्यु के पश्चात् भी हमारी आत्मा को शान्ति प्रदान करती हैं। उपनिषद् की यह परा विद्या हमारी एक अद्वितीय सम्पत्ति है। व्यक्तिगत रूप से मैं उपनिषदों को मानव चेतना का सर्वोच्च फल मानता हूं। सम्पूर्ण विश्व में उपनिषदों के समान जीवन को ऊंचा उठाने वाला कोई दूसरा अध्ययन का विषय नहीं है।

३०४२) अग्नि भोजन को पचाती है और उपवास दोषों को पचाता है, अर्थात् नष्ट करता है। उपवास शुद्धि का एक जबरदस्त साधन है और मानव समाज में उपवास के लिए विशिष्ट स्थान अवश्य होना चाहिए। उपवास सत्याग्रह के शस्त्रागार में महान् शक्तिशाली अस्त्र है। धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके समर्थकों की बौद्धिक शक्ति पर निर्भर नहीं करती, एकमात्र आध्यात्मिक शक्ति पर ही निर्भर करती है और उस शक्ति के बढ़ाने में उपवास ही अत्यन्त सुन्दर साधन है। यदि शारीरिक उपवास के साथ-साथ मन का उपवास न हो, तो वह दम्भपूर्ण और

हानिकारक होता है। सच्चे उपवास का अर्थ है कि हम अपनी व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण इच्छाओं एवं क्रियाकलापों से मुक्त हो जाएं।

३०४३) हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। यह धर्म सुख का मूल है यदि हम रात दिन अपने कर्तव्य पालन की बात सोचेंगे, तो वह हमारे लिए सुलभ और अनुकूल हो जाएगा। हमें सदैव भगवान् से डरना चाहिए और उसी का ध्यान करना चाहिए।

३०४३) नि:सन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता, क्योंकि सारा मानव-समाज प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य है।

३०४४) कलियुग के समान अन्य कोई युग नहीं है। यदि मनुष्य ईश्वर पर विश्वास करे, तो वह उसके विमल गुणों का गान करके बिना प्रयास ही भव-सागर के पार उतर जाता है।

३०४५) देवताओं में दैवी शक्ति नहीं रह गई, साधु लोग प्रपंच करने में चतुर हो गए, जनता झूठ बोलना पसन्द करने लगी, बादल कम पानी बरसाने लगे, लोग नीचों का संग अधिक पसंद करने लगे, राजा लोग दुष्ट हृदय के हो गए, लोग भ्रष्ट हो गए, नष्ट हो गए। यह कलिकाल अपना फल दिखा रहा है।

३०४६) काशी में मरने से मुक्ति होती है। यदि रूखा-सूखा भोजन और गंगा जल मिलता रहे तो काशी को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि वह विश्वनाथ जी का दरबार है। जैसे दिल्ली का इतिहास भारतवर्ष का इतिहास है, वैसे ही यदि काशी का इतिहास कभी लिखा गया होता, तो वह भारत के हिन्दू धर्म और दर्शन का इतिहास होता।

३०४७) जिनका स्मरण करने से सिद्धि प्राप्त होती है, जो भगवान् शंकर के सब गणों के नायक हैं, जिनका मुंह श्रेष्ठ हाथी के मुंह के समान है, जो बुद्धि की राशि हैं, और जो सब गुणों के भंडार हैं, वही गणेश मेरे ऊपर कृपा करें।

३०४८) हे जिह्वे मैं तुझी से एक भिक्षा मांगता हूं, तू ही मुझे दे। वह यह कि जब गदापाणि यमराज इस शरीर का अन्त करने आवें, तो बड़े ही प्रेम से गदगद स्वर में हे गोविन्द हे दामोदर हे माधव इन मंजुल नामों का उच्चारण करती रहना।

३०४९) अखिल ब्रह्मांड में जो कुछ भी है, वह सब ईश्वर से व्याप्त है। त्यागपूर्वक उसका भोग करो। किसी का धन मत लो। उस ईश्वर से ही सारा लोक स्थित है। उसी मूल तत्त्व को अग्नि, आदित्य, वायु, चन्द्रमा, भास्कर, ब्रह्म, जल और प्रजापति कहा जाता है। एक ही मूल तत्त्व को विद्वान अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से कहते हैं।

३०५०) असत् से सत् कभी उत्पन्न नहीं होता। अस्तित्व में परिणत होता है और अनस्तित्व अनस्तित्व में परिणत होता है, अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत्।

३०५१) काल में हाथी को पकड़ने वाले मगर, राहु-केतु आदि ग्रह और सर्प से भी अधिक निष्ठुरता है। उसकी चाल बाज और शेर से भी तेज होती है। वह सबके सिर पर खड़ा होकर घात में लगा रहता है। वह अचानक क्षण भर में हमको मार लेगा।

३०५२) बहुत अधिक समय से मनुष्य भगवान को लौकिक जीवन से पृथक् करके छाया की पूजा कर रहा है। परन्तु मुझ को ऐसा लगता है विराट ईश्वर स्वयं पृथ्वी पर लेटा हुआ सांस ले रहा है।

३०५३) क्षिति, जल, पावक, आकाश और वायु-ये पांचो तत्त्व अमर है और सबकी आत्मा अमर है। प्रकृति भी अनश्वर है। न जाने यह कैसे और कब की बनी हुई है। ऐसी दशा में यह बात समझ में नहीं आती कि कौन मरता है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि सृष्टि मृत्यु से भय खाती है।

३०५४) मैंने निश्चित रूप से यह सिद्धान्त समझ लिया है कि यह असत्य संसार शीशे के समान है। इसमें एक ही परमात्मा का प्रतिबिंब अनन्त रूप में प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ रहा है। तात्पर्य यह है कि संसार के सब पदार्थ एक ही परमेश्वर के प्रतिबिम्ब मात्र हैं।

३०५५) समुद्र में रहने वाला बिन्दु समुद्र की महत्ता का उपभोग करता है, परन्तु उसका उसे ज्ञान नहीं होता। समुद्र से अलग होकर ज्यों ही अपनेपन का दावा करने चला कि वह उसी क्षण सूखा। इस जीवन को पानी के बुलबुले के समान उपमा दी गई हैं।

३०५६) यदि तुम वास्तव में अपनी आंखें खोलकर देखो, तो तुम इन सब आकृतियों में अपनी ही आकृति पाओगे। और यदि तुम वास्तव में अपने कान खोलकर सुनो, तो विश्व की समस्त ध्वनि में अपनी ध्वनि को ही प्रतिध्वनित पाओगे।

३०५७) "गल सकता जल से, न ज्वलन से जल सकता है, काटे कटता नहीं, नहीं वह टल सकता है।

घटना बढ़ता नहीं कभी, यह जीव अमर है, आदि अन्त से अलग अमिट अज अजय अमर है।"

३०५८) "दिन गया संध्या हुई, संध्या गई तो रात है, रात भी जाती रही, तो सामने ही प्रात है।
ऐन्द्रजालिक खेल ये, इनमें न तुम भूले रहो, काल धोखा दे रहा है, व्यर्थ मत फूले रहो।।"

३०५९) "सत्य रहित से कभी धरा पर धर्म न होगा, धम-रहित से कभी यशस्कर कर्म न होगा।
कर्म करेगा वही धैर्य का धरने वाला, धैर्य करेगा वही सत्य पर मरने वाला।।"

३०६०) तुम्हारे घट में तीर्थ है, उसमें क्यों नही नहाते ? यात्री बन कर इधर-उधर जाते हो, भरम-भरम कर तुमने अपना जन्म गंवा दिया। सत्य यमुना है, संतोष सरस्वती है और धैर्य गंगा है। तुम झूठ को छोड़ दो और निर्लोभ होकर सब बोझ अपने सिर से उतार कर फेंक दो।

३०६१) शरीर आत्मा के रहने की जगह होने के कारण तीर्थ जैसा पवित्र है। सबसे उत्तम तीर्थ अपना मन है जो विशेष रूप से शुद्ध किया हुआ हो।

३०६२) आदमी में शुभ गुण तभी तक हैं जब तक वह तृष्णा से दूर है। तृष्णा का स्पर्श होते ही सब गुण गायब हो जाते हैं। जिसकी तृष्णा बढ़ी-चढ़ी है, वही दरिद्र है। जो कुछ भी दु:ख होता है, वह तृष्णा के कारण होता है।

३०६३) तृष्णा का कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है। वह सैकड़ों दोषों को ढोती फिरती है। उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं। अतएव तृष्णा का परित्याग कर देना चाहिए।

३०६४) चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी इतने शीतल नहीं हैं, कदली वृक्ष और चंदन भी इतने शीतल नहीं जितना तृष्णा रहित चित्त शीतल रहता है।

३०६५) अपनी पीड़ा सह लेना और दूसरे जीवों को पीड़ा न पहुंचाना, यही तपस्या का स्वरूप है। जीवन में सबसे बड़ी कला तपस्या है। तपस्या धर्म का पहला और आखिरी कदम है।

३०६६) दु:ख-वेदना ही मनुष्य जीवन में कठोर तपस्या का रूप धारण कर लेती है। यह तपस्या जिसकी सार्थक होती है उसकी आत्मा तपाए हुए सोने के समान निर्मल निष्कलुष और उज्ज्वल हो जाती है। धन-संग्रह की अपेक्षा तपस्या का संग्रह श्रेष्ठ है।

३०६७) हे मानव। तुम तार्किक हो, परन्तु तर्क असीम और अपरिमित नहीं है। उसकी भी सीमायें हैं किन्तु शायद तुम उनसे सुपरिचित नहीं हो। तुम तर्क का सहारा लेकर मत रहो, क्योंकि तर्क के सूत्र का कोई सहारा नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा सारा जीवन हेत्वाभासों में ही उलझ कर रह जायें।

३०६८) जो तिरस्कार को सहन करता है, वह अनिष्ट को आमंत्रण देता है। तिरस्कृत होने का मार्ग तिरस्कारों के सामने सिर झुका देना है। मनुष्य का उतना ही सम्मान होता है जितना वह दूसरों से प्राप्त करने में समर्थ होता है। तिरस्कार दिखाने का सर्वोत्तम तरीका है मौन।

३०६९) तलवार ही सब कुछ है, उसके बिना मनुष्य न अपनी रक्षा कर सकता है और न निर्बल की। कलम तलवार से अधिक शक्तिशाली होता है।

३०७०) जिस देश में योद्धाओं की तलवारें म्यानों में पड़ी रहती हैं, उसके निवासियों का भाग्य दासता के तहखानों में पड़ा सड़ता रहता है।

३०७१) तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोग बाण की भांति बहुत स्वल्प (स्थल में) स्पर्श करते हैं, किन्तु अन्त: प्रविष्ट हो जाते हैं, मन्दबुद्धि लोग पत्थर के टुकड़े की भांति बहुत (चौड़े स्थल में) स्पर्श करने पर भी बाहर ही रह जाते हैं।

३०७२) जैसे किसी संख्या के आगे बिन्दु (शून्य) लगा देने से उसका मान दस-गुना हो जाता है, उसी प्रकार नायिका के मुख पर तिल के कारण उसका सौन्दर्य दस गुना हो गया है। पता नहीं, यह अमूल्य अंक (तिल) कहां से मिल गया है।अपनी पीड़ा सह लेना और दूसरे जीवों को पीड़ा न पहुंचाना, यही तपस्या का स्वरूप है। जीवन में सबसे बड़ी कला तपस्या है। तपस्या धर्म का पहला और आखिरी कदम है।

३०७३) सत्संग कहते हैं, सत् के संग को। वह प्रभु सत् है। उसका संग अर्थात परिपूर्ण परमात्मा से जुडने का नाम ही सत्संग है। जब तक वह सत्संग न मिले तो जिस मानव घट में वह प्रभु प्रकट है, उसका संग भी सत्संग ही है। सत् कहते है अमर जीवन को। सत्गुरु अमर जीवन प्राप्त हस्ती है।

३०७४) गृहस्थ जीवन की सर्वोत्तम अवस्था वो है, जब सत्गुरु के प्रेम और भक्ति में पति-पत्नि एक जुट हो जाएँ, दोनों मिलकर तन-मन से, उत्साह और लगन से, गुरु आज्ञा का पालन करें। निष्काम सेवा और त्याग की भावना सहित सांसारिक कर्तव्यों और दायित्वों को पूरा करे और मानव जीवन के परम लक्ष्य एवं उद्देश्य को प्राप्त करे।

३०७५) जो प्रेम देह से शुरु होकर देह ही में खत्म हो जाता है, वो प्रेम नही हवस है। सच्चा प्रेम वह है जो देह से उभर कर आत्मा में जाग उठता है। गृहस्थ जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए क्योंकि यही एक तरीका है जिससे सत्गुरु के प्रेम में वो अपना आपा भूल सकते हैं।

३०७६) केवल प्रभु का भय ही हमें संसार में निर्भय कर सकता है। दुर्भाग्य वश हम सदैव दूसरों का भय अपने मन में बसाये रखते हैं। विभिन्न छोटे-मोटे कार्यों को पूरा करवाने के लिये हम इधर-उधर की चापलूसी का सहारा लेते रहते है। जब हमारे अंदर प्रभु-प्राप्ति की तीव्र लगन उत्पन्न होती है, तब सांसारिक मोह के समस्त बंधन टुट जाते हैं।

३०७७) प्रार्थना में विरह वेदना की पुकार होनी चाहिए। यान्त्रिक तौर पर दोहराई प्रार्थना, दिखावटी प्रार्थना व्यर्थ जाती है। प्रभु हमारे अन्तरीय विचारों और मन के क्रिया कलापों को अच्छी तरह जानता है। हमें उसकी उदारता पर पक्का भरोसा होना चाहिए।

३०७८) हमारी आत्मा अनेकों सूर्यों से अधिक रोशनी से चमकती है। क्या अद्भुत शक्ति और रोशनी होती है। परंतु यह काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के आवरणों से ढकी होती है। प्रभु प्रेम है, आत्मा परमात्मा का अंश है, अत: आत्मा भी प्रेम है, जहाँ प्रेम होता है वहाँ हिंसा और क्रोध का कोई काम नहीं हैं।

३०७९) जहाँ प्रेम है वहाँ बेईमानी, धोखा और झूठ नहीं होते तथा लालच और स्वार्थ नहीं होते, अहम् नहीं होता। जहाँ पवित्रता है वहाँ काम, वासना नहीं होती। यदि कुकर्म हमारी आत्मा पर चढ़ जाते हैं तो हमारा ध्यान चेतन अवस्था से दूर हो जाता है। आत्मा प्रेम से व्यवहार करती है।

३०८०) हमने सब कुछ नहीं देखा होता अत: हम कुएँ के मेंढक की भाँति सोचते हैं कि कुछ होता ही नहीं। हम इस संसार को ही सब कुछ मानते हैं और इस भौतिक जगत से आगे के मंडलों में विश्वास नहीं करते। जितना जीवन हम देखते हैं, उससे आगे भी कुछ है। शरीर में मन के अलावा आत्मा भी है।

३०८१) कामना पूर्ति के लिए हमें पुरुषार्थ करना चाहिए और साथ साथ ही प्रभु के आगे प्रार्थना भी करनी चाहिए। प्रार्थना सबसे आखिरी हथियार है, और यकीनन ऐसा है जो हमारी मदद को अवश्य आता है। जहाँ तमाम इन्सानी पुरुषार्थ निष्फल हो जाते है प्रार्थना ही काम आती है।

३०८२) जो लोग प्रभु के नियम को अनसुना कर देते है उनकी प्रार्थनाए भी उसी तरह ना पसन्द कर दी जायेगी। यदि हम कहते है कि प्रभु हमारे गुनाहों को माफ कर दे, तो हमें भी ऐसा बनना होगा कि हम दूसरों को आसानी से माफ कर सकें।

३०८३) जब भी हम बुराइयों पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और उनके जाल से अपने आप को बचाकर रखते हैं तो हमारी आत्मा फिर से इस शरीर को चलाने वाली बन जाती है। हम सद्गुणों से भरा जीवन व्यतीत करने लगते हैं। तब परमात्मा को पाना कठिन नहीं है।

३०८४) आत्मा और परमात्मा के बीच कोई और रूकावट नहीं केवल मन का पर्दा है। यदि यह पर्दा इच्छाओं की मंद हवा में लहराना बंद कर दे तो आत्मा सीधे अपने स्त्रोत से अलौकिक ऊर्जा प्राप्त कर सकती है। प्रेम और करुणा ऐसी शक्तियाँ हैं, जो सोते हुए हृदयों को भी जागृत कर देती है।

३०८५) सत्गुरु के पास आने वाली प्रत्येक आत्मा एक बर्तन की भाँति होती है, इस इंतजार में कि वह शब्दरूपी अमृत से भर जाये। यह मधुर अमृत हमारे रोम-रोम में समा जाता है वह हमारी आत्मा को जागृत कर रूहानी मण्डलों के प्रवेश द्वार पर ले जाता है। सत्गुरु की मदत से आत्मा सचखंड में पहुँच जाती है।

३०८६) परमात्मा सर्वज्ञ है। हमारे कुछ कहे बिना, प्रभु हमारी अवस्था से अवगत है। परमात्मा हमारे प्रत्येक विचार, वचन एवं कर्म से वाकिफ है। अंतर्मुखी होने पर नाम का रस तुम्हें ऊंचे रूहानी मण्डलों में ले जाता है जब तक तुम परमात्मा तक नहीं पहुँच जाते।

३०८७) ऐसा कोई भी कार्य जो हमें अपने परम लक्ष्य, परमात्मा से मिलाप के समीप ले जाता है वही स्वयं के प्रति सच्चाई है। ऐसे

कार्य जो हमें अपने परम लक्ष्य से दूर ले जायें स्वयं से धोखा है। स्थायी शांति प्राप्त करने के लिए हमें अपने अन्दर विराजमान प्रभु-सत्ता की शरण लेनी होगी।

३०८८) परमात्मा ने मानव का निर्माण इसलिए किया है कि वह दूसरों के लिए प्रेम और करुणा का भाव दिखाये। सच्चा इंसान वही है जो कि दूसरों के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखे। स्वाँसों का विवेकपूर्ण उपयोग यही है कि हम उन्हें दूसरों की सहायता करने में बितायें।

३०८९) आत्मा की मूल प्रकृति परम आनंद है। वास्तव में आत्मा आनंद स्वरूप है। जब हम अपने निज स्वरूप को जान लेते हैं तो हम धरती पर परमानंद की बूंदे बन जाते हैं। परमात्मा प्रत्येक मानव हृदय में निवास करता है, इसलिए सबसे प्रेम करो। अध्यात्म ईश्वरीय प्रेम का एक अनुभव है।

३०९०) सबसे बड़ा मौलिक अधिकार जो परमात्मा ने हमें दिया है वह है अंतरीय मण्डलों की यात्रा करना, देहा-भास से ऊपर उठना, दिव्य रूहानी मण्डलों में विचरण करना, अपने आप को जानना व प्रभु को पाना। मानव शरीर प्राप्त करना एक अलभ्य अवसर है। हम इस अद्‌भुत अवसर पर चिन्तन मनन करें।

३०९१) रूहानियत की क, ख, ग, आंतरिक शांति से शुरू होती है जिसके लिए एकांत एवं वैराग्य निहायत जरूरी है। शांति के इन दिव्य क्षणों में ही हम रूहानियत के गूढ़ सिद्धांतों और उनके अर्थ को सही रूप से समझ सकते हैं व उन्हें सच्चे रूप से अपने जीवन में ढाल सकते हैं।

३०९२) हम इस भौतिक दुनिया की सीमाओं से ऊपर उठ सकते हैं और अपने अंतर में स्थित आध्यात्मिक मंडलों का अनुभव कर सकते हैं। इतना ही नहीं हम इसी जीवन में प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं। हम अपने ईश्वरीय स्वभाव को ध्यान के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। ध्यान की एकाग्रता में हम अपने अंतर में स्थिति परमअमृत का पान करते हैं।

३०९३) समस्त प्राणी आत्मायें हैं, किन्तु मनुष्य शरीर में आकाश तत्व प्रबल होने के कारण से हममें यह विशेषता है कि हम विवेक रखते हैं और अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। हम चैतन्यमय जीवन बना कर प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

३०९४) सच्ची शांति तभी प्राप्त हो सकती है जब हम आत्मिक रूप से चैतन्य हो जायें। तब हम एक ऐसे मण्डल में पहुँच जाते हैं जहाँ कोई मृत्यु नहीं, कोई दु:ख नहीं, कोई पीड़ा नहीं। जगत् में गिनती के स्वाँस लेकर आये हैं। हम इसे विवेकपूर्ण अथवा अविवेकपूर्वक समाप्त कर सकते हैं।

३०९५) मनुष्य को इसलिए पैदा नहीं किया कि वह अपने लिये जीये, वरन् दूसरों के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दे। दूसरों के दिल का दर्द हलका करने के लिये इंसान को पैदा किया है। ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा को यदि अपनी आराधना करानी होती, उसके पास अनेकों फरिश्ते थे।

३०९६) हम अपने दिव्यत्व को अथवा श्रेष्ठत्व को खोज सकते हैं और उन शक्तियों के अनुसार जी सकते हैं, जो कि ईश्वरीय हैं। हम प्रभु के अंश हैं और इस प्रकार परमात्मा और हम दोनों ही चेतन तत्व हैं। चेतन होने के नाते हममें ईश्वरीय विशेषताएँ हैं। हम प्रेम, परमानंद, ज्योति, श्रुति, विवेक, चेतनता, खुशी और शांति से निर्मित हैं।

३०९७) ध्यान की एकाग्रता के द्वारा हमें यह बोध हो जाता है कि हम आत्मा हैं, चेतन स्वरूप। हम अमर हैं और इस देह की मृत्यु हो जाने के पश्चात् भी रहते हैं। हमारे अंतर में प्रेम और शांति का भंडार है, जो कि हमारे जीवन को वैभवपूर्ण बना सकता है। हमारे अंतर में परम् शांति का विश्रामगृह है, जिसमें उतरकर हम संसार के दु:खों और पीड़ाओं से मुक्त हो सकते हैं।

३०९८) जीवन किसी अस्त व्यस्त स्थिति का नाम नहीं। कर्म का विधान बड़ा ही सुव्यवस्थित है। चौरासी लाख योनियों में मानव जीवन सर्वोत्कृष्ट है। जीवन में मानव विधि के विधान (कर्म का विवेक और प्रभु की इच्छा) को जानकर उसके अनुसार अपना जीवन अनुभवी महापुरुष की देख-रेख, उसकी दया दृष्टि में बिताकर आत्मा एवं परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है।

३०९९) ब्राह्मण के लिये सम्पन्न व श्रद्धालु से निमन्त्रण पाना ही प्रसन्नता का विषय है उसके लिये यह शुभ अवसर होता है। ताजी हरी घास का अच्छी मात्रा मे मिल जाना गाय के लिये शुभ अवसर है। अपने पति की प्रसन्नता ही गृहिणी के लिये उत्सव अर्थात सौभाग्य है। परन्तु सच्चे सन्त के लिये तो भगवान के चरणों मे अनुराग ही उत्सव होता है।

३१००) वेद विद्या का अध्ययन भी व्यर्थ हो जाता है बिना अग्नि होत्र के अनुष्ठान की शिक्षा के। दान दक्षिणा के बिना धन कमाना

निष्प्रयोजन है। कोई भी सिद्धि बिना श्रद्धा के प्राप्त नही होती। सिद्धि प्राप्त करने के लिये गुरु और साध्य वस्तु मे श्रद्धा होना अनिवार्य है।

३१०१) गुरुजनों की प्रशंसा उनके सम्मुख की जाती है। मित्र की प्रशंसा पीठ पीछे की जाती है। पुत्र की प्रशंसा कभी नही करनी चाहिये। सेवक की प्रशंसा जब वह कार्य सम्पन्न करके आये तब करनी चाहिये।

३१०२) किसी भी व्यक्ति का सुन्दर होना अच्छा है किन्तु यदि वह साथ साथ गुणवान भी हो तो उसकी सुन्दरता और बढ़ जायेगी, उसकी मान बडाई, सराहना हर तरफ होगी। कुल अच्छा होने के साथ यदि वह स्वभाव से शील व भद्र व्यवहार कुशल हो तो कुलीन होने का फल कई गुना अधिक होगा। ज्ञानी के साथ साथ सिद्धिवान भी हो तो अति फलदायक है। धन की सार्थकता ही उपयोग करने मे है। यदि मनुष्य अपने द्वारा संचित धन का उपभोग न करे तो उसका धन संचित करना निरर्थक हो जाता है। अत: सुन्दरता के साथ सद्गुण, उच्चकुल के साथ शील स्वभाव, ज्ञान के साथ सिद्धि व संचित धन का सदुपयोग इन चारों से सम्पन्न व्यक्ति का जीवन बहुत ही प्रशंसनीय होता है। ऐसे सद्पुरुषों की ख्याति चारों ओर फैल जाती है।

३१०३) अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गाय, कन्या, वृद्ध पुरुष, स्त्री तथा ना समझ बच्चा या व्यक्ति इन सभी को कभी भी पैरों से स्पर्श नही करना चाहिये अर्थात पैर नही लगाना चाहिये। ऐसा करने से उनके प्रति उपेक्षित भाव दर्शाना है। जो कि मनुष्य की धृष्टता का परिचय देता है। उपरोक्त जनों का समाज मे पूज्य स्थान है इन्हे पैरों से छूकर अपमानित नही करना चाहिये।

३१०४) किसी पर भी आपत्ति देश काल देख कर नही आती। आपत्ति ग्रस्त, अपमानित, व्यक्ति, आर्त प्राणी देश काल देख कर शरण्य के समीप नही जाता। सत्पुरुष तो शरणागत की रक्षा की प्रशंसा सदैव करते है। शरणागत का त्याग सबसे बडा अधर्म है। स्वार्थ या मोह के कारण शरणागत का त्याग नही करना चाहिये। शरणागत रक्षा में तो मरना भी श्रेयस्कर है। वध के योग्य भी शरण में आगया हो तो उसकी भी रक्षा करना उचित है।

३१०५) जिस प्रकार मांसाहारी व्यक्ति मे दया, धन के लोभी मे सत्य और व्यभिचारी मे पवित्रता नही हो सकती, ठीक उसी प्रकार घर के प्रति आसक्ति रखनेवाले को विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। विद्या प्राप्ति के लिये मोह, दया, ममता के भावों को जगाने के लिये मांस भक्षण का, सत्य को अपनाने के लिये लाभ और पवित्रता के लिये स्त्रियों में आसक्ति का परित्याग ही एकमात्र उपाय है।

३१०६) दुष्कर्मों मे लिप्त व्यक्ति दूसरों के सद्गुणों को जानने की वैसी इच्छा नही करते जैसी उनके अवगुणों को जानने की करते है। धन की कामना करने वाले व्यक्ति को धर्म का आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार स्वर्ग से अमृत अलग नहीं होता है वैसे ही धर्म से अर्थ कभी दूर नहीं होता। जिस मनुष्य की प्रवृत्ति पापों से हटकर धर्म में लग चुकी है वही प्रकृति तथा विकृति के भेद को जान सकता है। भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर शान्त रहने वाला ही सदा प्रसन्न रहता है।

३१०७) सबसे बडा महान वह है जो सबसे बडी वस्तु का हँसते-हँसते त्याग कर सके। लोग माता, पिता, स्त्री, पुत्र को त्याग देते हैं। युद्ध में पैसों के लिये प्राणों को भी त्याग देते हैं, किन्तु जान बूझकर अपने शरीर में से ऐसी वस्तु को निकालकर दे देना जिसके निकालने से दाता की मृत्यु अवश्यम्भावी है, यह बहुत ही कठिन बात है। असावधानी में, चाहे मनुष्य का सर्वस्व चला जाय, किन्तु जान बूझकर धन का त्याग करने वाले कोई विरले ही होते है। अनजान में चाहे हमारे ऊपर वज्र भी क्यों न आकर गिर पडे किन्तु समझ सोचकर अपने आप शरीर में काँटा चुभाने से भी कष्ट होता है। और इसके लिये बडे बडे शूरवीर भी हिचकते हैं।

३१०८) जो बेचारा जन्म से अन्धा है, अर्थात् माँ के गर्भ से ही अन्धा उत्पन्न हुआ है, वह किसी भी उपचार से देखने में समर्थ नहीं हो सकता। विषय वासना में डूबा हुआ व्यक्ति भी अन्धा होता है। वह भी नहीं देख पाता अर्थात निर्लज्ज होता है। ऐसा व्यक्ति पूज्य पुरुषों को सामने देखकर भी काम वासना से विह्वल होने के कारण लज्जा, संकोच, शालीनता और मर्यादा का पालन नहीं कर पाता। मदिरापान से उन्मत व्यक्ति भी अन्धे हो जाते हैं। मदिरा के प्रभाव से विवेकहीन हो जाने के कारण वे नेत्र रखते हुए भी अन्धे हो जाते हैं। किसके सामने क्या कर रहे हैं, इसका उन्हें कतई ध्यान नहीं रहता। इसी प्रकार आवश्यकता से पीड़ित व्यक्ति भी अपने स्वामी के दोषों को देखता हुआ भी अनदेखा कर देता है, क्योंकि उसकी आवश्यकता उसे अन्धा बना देती है।

३१०९) स्वाति नक्षत्र की जब बूंद में मोती बनने की क्षमता रही हुई है, लेकिन इतने मात्र से ही वह बूंद मोती नहीं बन पाती। वह बूंद भूल से भी सींप के मुंह में गिर गई तो मोती बन जाती है। यदि वह बूंद भूल से भी सांप के मुंह मे गिर गई तो मोती बनना दूर रहा विष

में रूपान्तरित हो जाएगी। वही बूंद यदि गर्म तवे पर गिरे तो तत्काल झुलस कर समाप्त हो जाएगी। वास्तव में भीतर कितनी भी योग्यता होने पर भी जैसी संगति बनती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। नीच की संगति से एक उत्तम व्यक्ति भी अधम बन जाता है और एक अधम व्यक्ति भी उच्च संगति से दुनिया में अपना नाम रोशन कर जाता है। संगति में अपूर्व शक्ति है। सदा संत-संगति में रहो।

३११०) अच्छे उद्देश्य से अच्छे धन का और अच्छे कार्य के लिये किया गया दान कभी व्यर्थ नही जाता। वह दान ही मनुष्य की नैतिक, आध्यात्मिक प्रगति करता है। अपने किये गये दान का पुण्य मनुष्य को मृत्यु के पश्चात सुख या शान्ति के रूप मे मिलता है इसलिये अहंकार रहित होकर दिया गया दान मरनेवाले का सच्चा मित्र समझा जाता है।

३१११) जो व्यक्ति परमेश्वर मे ही जड, चेतन, सुख-दु:ख और लाभ हानि का दर्शन करते है, ऐसा दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति दूसरों की स्त्रियों को माता समान, पराये धन को मिट्टी के समान और हर प्राणी को अपने समान देखता है और समझता है ऐसी ही व्यक्ति महान कहलाते है।

३११२) सुन्दरता के साथ सद्गुण, उच्च कुल के साथ शील स्वभाव, ज्ञान के साथ सिद्धि व संचित धन का सदुपयोग, इन चारों से सम्पन्न व्यक्ति का जीवन बहुत ही प्रशंसनीय होता है। ऐसे सद्पुरुषों की कीर्ति चारो और फैल जाती है।

३११३) तुच्छता और दरिद्रता का आधार धन हीनता न होकर विद्याहीनता है। अत: हर मनुष्य को धन की अपेक्षा विद्या प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहना चाहिये क्योकि विद्याहीन व्यक्ति धन को भी खो बैठता है जबकि विद्वान अपनी विद्या की शक्ति से पर्याप्त धन एकत्रित कर लेता है।

३११४) किसी प्राणी के वंश का पता उसके व्यवहार से ही लग जाता है। ऊँचे वंश के लोगों की बोल चाल में सभ्यता मिलेगी, किंतु छोटी जाति के लोग भले ही बड़े हो जाएं, उनमें वह सभ्यता नहीं आ सकती।

३११५) थोड़ी बुद्धिवाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज और स्तुति करने वाले लोगों के साथ गुप्त सलाह नहीं करनी चाहिए, ये चारों महाबली राजा के लिए त्यागने योग्य बताए गए हैं। विद्वान पुरुष ऐसे लोगों को पहचान लें।

३११६) द्यूत क्रीड़ा से होने वाला विनाश तर्क शक्ति से भी दूर है। यानी द्यूत-क्रीड़ा बैठ-बिठाये, निरापद व्यक्ति को सहसा ही नष्ट कर देती है। उस विनाश की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। द्यूत-क्रीड़ा, मनुष्य के स्वभाव के रूप में परिवर्तित हो जाती है, आदत बन जाती है। किंतु द्यूत-क्रीड़ा के दोष जानने वालों ने विशेष रूप से द्यूत (जुआ) की निंदा की है, उसे निंदनीय बताया है। वे द्यूत में दोष ही दोष देखते हैं। द्यूत क्रीड़ा से एक ही दिन में सारे धन का नाश हो जाता है और यह एक व्यसन बन जाता है, जो छोड़े नहीं छूटता। द्यूत-क्रीड़ा धन-संपत्ति को बिना उपयोग के ही नष्ट कर देती है। वाणी में कटुता उत्पन्न करती है। लोगों में द्यूत करने वाला निंदनीय हो जाता है, यश, मान को नष्ट करती है द्यूत-क्रीड़ा। कलह को जन्म देती है- द्यूत क्रीड़ा।

३११७) स्त्री-अक्ष (पाशे), आखेट तथा पान (मदिरा) ये चारों आसक्तिमूलक होते हैं। इन्हें ही चार प्रकार का दु:ख कहा गया है। स्त्री पर आसक्त होना, द्यूत (जुआ) का व्यसनी (आदी) होना तथा शिकार का शौकीन, मदिरापान का लोभी लोग सदा ही श्री-संपत्ति, मान-सम्मान से हीन हो जाते हैं। शास्त्र के जानकारों ने जहां-तहां, सब जगह उक्त चार कामना जनित दु:खों की निंदा की है।

३११८) जो द्यूत धन-संपत्ति, यश एवं मान-मर्यादा, को नष्ट कर देता है। मनुष्यता का नाश कर देता है। द्यूत कुष्ठ रोग की तरह मनुष्य एवं समाज को विकृत करके अंतत: नष्ट कर देता है।

३११९) नरक यानी अध:पतन के द्वार तीन ही हैं, जिनके द्वारा आसानी से आत्मा का विनाश होता है, यानी आत्म तत्त्व क्षीण हो जाता है। काम-वासना (आसक्त होना), क्रोधी होना, तथा लोभी होना। आसक्ति लज्जा का नाश करती है। क्रोध का नाश करता है और लोभ मित्रता के नाश के साथ मनुष्य में हीन भावना भी पैदा करता है, अतएव बुद्धिमान को चाहिए कि इन तीनों को त्याग दे। अन्यथा उक्त तीनों ज्ञानी, सम्मानी जनों के ज्ञान, सम्मान को मिटा देते हैं और जीवन नरक बन जाता है। घृणा, तिरस्कार के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं होता।

३१२०) इस जगत मे कितनी ही ऐसी वस्तुये है जिनसे हमे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। पेड छाया के साथ हमे फल भी अर्पित करता है। दीपक स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है। नदियां स्वयं बहकर मनुष्य को जल देती है। मनुष्य जीवन परोपकार के लिये बना है। जो व्यक्ति तन, मन, धन से लोगों की सेवा करता है वह धरती पर देवता बन जाता है। पुण्य के बलबुते पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती

है उसे सद्कार्य मे लगाना चाहिये। परोपकारी व्यक्ति अपने कार्य से अमर हो जाता है।

३१२१) धन-सम्पत्ति पास होकर भी यदि वह दूसरों के पास पड़ी रहे और ऐन वक्त काम न आये तो ऐसे धनवान होने का क्या लाभ? इसी प्रकार पुस्तकों में लिखी विद्या भी किसी काम की जब तक उसका सदुपयोग न किया जाये। विद्या और धन का महत्व उसका सदुपयोग करने में है, संचय करने में नहीं। अभिप्राय: यह है कि पुस्तकों को पढ़कर काम चलाने वाला पंडित और दूसरों के पास अपना धन जमा करके उस पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति अपने जीवन में समय पडने पर धोखा अवश्य खाते हैं।

३१२२) मित्र शैतान होता है, बात-बात में उत्तर देनेवाला नौकर होता है, घर में साप रहता है, तो यह सब मिलकर भयंकर संकट अवश्य लाते है।

३१२३) बडे से बडे ज्ञानियों पर भी बुरा समय आता है, इसलिए ऐसे संकट काल के लिए धन अवश्य ही अपने पास रखें, लक्ष्मी को चंचल कहा गया है, इसलिए इनका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

३१२४) जिस देश में आदर न हो भाई बंधु नहीं, शिक्षा प्राप्त करने के साधन नहीं, ऐसे देश में रहने का कोई लाभ नहीं, वहाँ पर कभी बुद्धिमान लोग नहीं रहते।

३१२५) धन से धर्म की रक्षा होती है, खाने पीने और आचरण से विद्या की रक्षा होती है, शक्ति से राज की रक्षा होती है, यदि पत्नी अच्छी पढ़ी-लिखी, गुणवान हो तो वह सारे घर की रक्षा कर सकती है।

३१२६) अपने बड़ों के आगे कभी झूठ मत बोलो। राजा के आगे झूठ बोलने से मृत्यु दंड मिल सकता है। दुश्मन के साथ धोखा करने से धन का नाश होता है। ब्राह्मण के साथ धोखा करने से कुल का नाश होता है। इसलिए कभी झूठ मत बोलो। किसी को धोखा मत दो।

३१२७) ब्राह्मण एक वृक्ष के समान है। उसकी जड़ संध्या और दान शारदा है। पतै धर्म कर्म हैं। इसलिए जड़ की भी रक्षा बड़े ध्यान से करनी चाहिए। यदि हथियार भी आदमी के पास हो और उसे चलाने की बुद्धि न हो तो बिना हथियारों वाले प्राणी से वह हार जाएगा। इस तरह से बुद्धि बड़ी बलवान है।

३१२८) कही आग लग जाये तो पानी से बुझा जा सकती है, रोग उचित चिकित्सा से दूर किया जा सकता है, बलवान हाथी को भी महावत अंकुश से वश में कर लेता है। छाता लगाकर धुप और वर्षा से बचाव किया जा सकता है। सोए हुए को जगाया जा सकता है पर जो जाग कर भी सोने का नाटक कर रहा हो उसे जगाना मुश्किल है।

३१२९) मनुष्य क्रोध को प्रेम से, पाप को सदाचार से, लोभ को दान से और मिथ्या भाषण को सत्य से जीत सकता है। क्रोध से मनुष्य का विनाश होता है इसलिये क्रोध को यमराज कहा जाता है।

३१३०) भोजन की पराधीनता मृत्यु के समान दु:ख देने वाली है। संसार मे सात प्रकार के लोग दूसरों के दु:ख दर्द को नही जानते वे है राजा, वेश्या, यमराज, चोर, बालक, याचक और ग्राम कंटक। एक बात जो दिन की तरह स्पष्ट दिखाई देती है वह यह है कि दु:ख का मुख्य कारण अज्ञान है इसके सिवा कुछ भी नही।

३१३१) धन के द्वारा अमरत्व प्राप्ति असम्भव है। धन या तो अपने स्वामी की सेवा करता है या उस पर शासन। विपत्ति के लिये धन को बचाना चाहिये। धन से स्त्री को बचाना चाहिये। स्त्री और धन से अपने को बचाना चाहिये।

३१३२) विद्यार्थी, सेवक, यात्री, भूख से पीडित, भय से व्यग्र, भंडारी और द्वारपाल ये सातों यदि अपने नियत समय से अधिक सोये तो उन्हे जगा देना चाहिये।

३१३३) जो व्यक्ति दूसरों के भेद तुम्हारे सामने उगल देता है अर्थात प्रकट कर देता है उसे अपने गुप्त भेदों से कभी अवगत मत कराओ क्योकि जो व्यवहार वह दूसरों के साथ कर रहा है वह तुम्हारे साथ भी कर सकता है।

३१३४) अति क्रोध, कटु वाणी, दरिद्रता, स्वजनों से बैर, नीचों का संग और अकुलीनों की सेवा ये सब नरक मे रहने वालों के लक्षण है।

३१३५) जिस शरीर से धर्म नही हुआ, यज्ञ न हुआ और परोपकार न हो सका, उस शरीर को तो धिक्कार है। ऐसे शरीर को पशुपक्षी तक भी नही छूते। सज्जनों की विभूतियां परोपकार के लिये ही होती है।

३१३६) शरीर जल से पवित्र होता है, मन सत्य से, बुद्धि ज्ञान से और आत्मा धर्म से पवित्र होती है। साधन की सामग्री तो पवित्रता ही है। यदि मन पवित्र है तो तीर्थाटन का फल घर मे ही प्राप्त हो जाता है, कही बाहर जाने की आवश्यकता नही होती।

HHH(७७७)HHH

३१३७) खाने, सोने, डरने और मैथुन के विषय मे मनुष्य और पशु दोनो एक समान है। केवल धर्म ही मनुष्यों मे विशेष है। धर्म हीन मनुष्य पशु के समान होते है।

३१३८) ऐसी बहुत सी बाते है जिन्हे धन द्वारा सिद्ध करना असाध्य है किन्तु केवल पवित्रता के बल पर वे सिद्ध और शुद्ध की जा सकती है। जो बुद्धिमान मनुष्य आत्म सामर्थ्य, देश, काल, आय व्यय को देखकर विचार स्थिर करता है वह अन्त मे दु:खी नही होता है।

३१३९) बिना परिश्रम किये हुये कोई संसार मे पूज्य नही होता। अनेक बार रगड खा-खा कर पत्थर सालिग्राम ठाकुर जी बन जाता है। परिश्रम हमारा देवता है। बिना परिश्रम किये तो दैवों की मैत्री भी प्राप्त नही होती।

३१४०) परिश्रम करने से ही कार्य सिद्ध होते है, केवल इच्छा भर करने से नही। पशु कभी सोते हुये सिंह के मुख मे अपने आप प्रवेश नही करते। जो शारीरिक परिश्रम नही करता उसे खाने का कोई अधिकार नही। मनुष्य की सबसे अच्छी मित्र उसकी दस अंगुलियां है।

३१४१) शास्त्र और पुराण सुनने के बाद, श्मशान से लौटने के पश्चात तथा मैथुन के बाद जो बुद्धि जाग्रत होती है यदि वह सदा बनी रहे तो कौन मुक्त नही हो सकता। जो बुद्धिमान है, उसे सभी प्रकार के बल प्राप्त है। वह सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का मुकाबला सहजता से करते हुये उन पर विजय प्राप्त कर लेता है।

३१४२) विद्वता तथा राजत्व में कहीं कोई समानता नहीं है। राजा का अपने देश में ही सम्मान होता है, जबकि विद्वान सर्वत्र पूजा जाता है।

३१४३) विद्या, वीरता, बुद्धि, साहस, शक्ति और धैर्य-ये सभी गुण मनुष्य के सच्चे और स्वाभाविक मित्र होते हैं अत: इनका संग कभी नहीं छोडना चाहिए क्योंकि यदि इनको साथ रखा जाए और इनसे मदद ली जाए तो मनुष्य आपातकाल में भी मुसीबतों का सामना कर सकता है और विपत्ति को दूर भगा सकता है। ये सभी मित्र आपातकाल में सच्चे सहयोगी सिद्ध होते हैं। जो इनका साथ नहीं छोडता वह कभी भी असफल नहीं होता।

३१४४) जो सदैव अच्छी संगति में रहते है, दुसरे के सद्गुणों से प्रीति रखते हैं, अपने से बड़ों के प्रति आदर, समान आयुवालों के प्रति स्नेह और छोटों के प्रति करूणा का भाव रखते है, जो विद्या का व्यसन, अपनी ही स्त्री में रति, लोकलाज का मान और दुष्ट संगति का त्याग रखते हैं, मन को वश में रखने की शक्ति और ईश्वर के प्रति भक्ति रखते हैं, आपातकाल में धैर्य, बलवान और समर्थ होकर क्षमाभाव और बोलने में वाक्चातुर्य तथा माधुर्य रखते हैं ऐसे सज्जन श्रेष्ठ पुरुष इस मृत्यु लोक में देवता ही है।

३१४५) दान से दरिद्रता का, सदाचार से दुर्गति का, उत्तम बुद्धि से अज्ञान का तथा सद्भावना से भय का नाश होता है। सम्पन्न व्यक्ति द्वारा किये गये दान की अपेक्षा अभावग्रस्त व्यक्ति द्वारा स्वयं अभावों को झेलते हुए दूसरों के सुख के लिए दान करना अधिक महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों के कष्टों को दूर करने में संलग्न रहता है, उसका त्याग वास्तव में ही उल्लेखनीय होता है। ऐसे उदार के प्रति भगवान सहज ही द्रवित होकर उसका दारिद्र्य यथाशीघ्र दूर करते हैं।

३१४६) सदाचार का परीक्षाकाल संकट होता है, संकट के उपस्थित होने पर अपने सदाचार की सुरक्षा में तत्पर व्यक्ति दूसरों की दृष्टि में निश्चित रूप से ही बहुत ऊंचा उठ जाता है। उसका महत्व अत्यधिक बढ़ जाता है, लोग उसका विशेष आदर करने लगते हैं और रसे इष्ट मित्रों का सहयोग सुलभ हो जाता है, इससे उसका संकट अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह पाता।

३१४७) जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार एक साथ नहीं रह सकते उसी प्रकार से ज्ञान एवं अज्ञान का भी एक साथ रहना असम्भव है। यदि कोई बुद्धिमान अज्ञानी-सा व्यवहार करे तो वह बुद्धिमान नहीं रह जाता, तात्पर्य यह हुआ कि श्रेष्ठ बुद्धिजीवी का दायित्व अज्ञान का विनाश करना है, किन्तु यदि ऐसा नहीं हो पाता तो बुद्धिजीवी की सात्त्विकता संदिग्ध हो जाती है। नि:सन्देह किसी भी प्राणी में भय की आशंका का मूल अविश्वास और संदेह ही होता है, यदि परस्पर विश्वास की भावना जागृत है तो भय के लिये कोई स्थान ही शेष नहीं रहता। उदाहरण स्वरूप देखें तो सिंह आदि वन्य प्राणी भी सद्भाव के वशीभूत स्वामी भक्त व्यवहार करते देखे गये हैं।

३१४८) जैसे फूल में गन्ध, तिल में तेल, काष्ठ में अग्नि, दुध मे घी और ईख में गुड़ निराकार रूप में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सगुण शरीर में आत्मा विद्यमान रहती है।

३१४९) मछली का जीवन ही जल है, जल के बिना मछली तड़फ तड़फ कर मर जाती है, लोभी व्यक्ति के लिये धन ही सर्वस्व है। माता के लिये सबसे प्यारा उसका बालक है वैसे ही भक्त के लिये ईश्वर का नाम सर्व श्रेष्ठ है।

मेरे दोस्तों की प्रेरणा

हर पंछी कोयल नही होता, हर नदी गंगा नहीं होती,
हर बातचीत पहचान नहीं होती, हर पहचान दोस्ती नहीं होती।

मेरे चालीस वर्ष से भी अधिक सर्व पुराने दोस्त महेन्द्रसिंग दर्दी (तारा सेठ) जो हमेशा जीवन में आदर्श प्रेरणा देते आये है। मेरे सहकारी दोस्त श्री दिलीप सराफ, वेदप्रकाश अग्रवाल, राजेन्द्र अग्रवाल, रामविलास अग्रवाल जो समय-समय पर मेरे कार्य को पूर्ण रूप से सक्षम करने में, संचालन करने में तत्पर रहे। श्री विनोद मित्तल सौम्य स्वभाव व मिलनसार व्यक्ति सदैव तत्पर रहने वाले, अपने आपकी दुनिया में खोये हुए रहना व तल्लीनता से काम करते रहना यह इनका स्वभाव हैं। वैसे ही हमारे मित्र श्री श्रद्धानंदजी त्यागी शान्त शील स्वभाव वाले व सबको मान-सम्मान देना, सदैव खुशमिजाज रहना यह इनकी प्रेरणा है। श्री जगदीशजी अग्रवाल एक सौम्य व कुलीन व्यक्ति अपनी दूरदर्शी समझ से मुझे प्रेरणा देते रहे। मोहन व रेणु अग्रवाल एक आदर्श दाम्पत्य परिवार के साथ-साथ कला के बादशाह आदर्श व्यक्तित्ववाले खुशहाल जीवन से परिपूर्ण उनसे जीने का ढंग सीखा। बाबू अगरवाल आतिथ्य सत्कार में अव्वल, खिलाने-पिलाने के शौकीन, हंसमुख चेहरा, आनन्द गुणों से परिपूर्ण, अपने आप में जीवन की एक मिसाल है। अच्छी सोच और सही मार्गदर्शन की प्रेरणा मेरे योग्य भतीजे राकेश की सूझबूझ है। हमारे समधि श्री फूलचंदजी सूतवाला सौम्य स्वभाववाले, शान्त चित्त, शालीन व्यक्तित्ववाले, गृहस्थ सन्त है जिनसे गृहस्थ परिवार चलाने की जिम्मेदारी सिखने को मिली। अपनी कामनाओं को न बढ़ाना, पैसे सतत जोडते रहना यह प्रेरणा मैने अपने ज्येष्ठ भ्राता मनोहरलाल से प्राप्त की है। मेरे मित्र द्वारका जालान सही नेतृत्व में निपुण, एक सफल संचालक व्यक्ति, सफल आयोजनों का प्रबन्ध करने में माहिरता उपलब्ध है। श्री हीरालालजी मालू (काकाजी) से भी एक सही नेतृत्व करने की सीख मिलती है कार्यप्रणाली में एक आदर्श लोक पुरुष है। मेरे सर्व प्रिय आदर्श व्यक्ति श्री विष्णु चमडिया अपने आप में एक महान मिसाल, काम करने की स्फूर्ति, श्रम व लगन, आगे बढ़ने की सदैव उत्कंठा व प्रेरणा, स्पष्टवादी व्यक्ति, अपने जीवन में सुन्दर ढंग से जीना, निर्भयता से रहना इस व्यक्ति की शान है। कृष्णकुमार गोयल कॉसमॉस बँक के संचालक व कही संस्थाओं के नेतृत्व का कुशल प्रबन्धन में निपुण, अत्यन्त प्रेमी मित्रों में से एक है। सबसे भिन्न व मिलनसार, हंसमुख व्यक्ति की मिसाल मेरे मित्र श्री विजयकुमार चौधरी (महाराष्ट्र राज्य अग्रवाल सम्मेलन के अध्यक्ष) संस्थाओं को सही रूप से चलाने के लिए योग्य मार्गदर्शक मित्र हैं। इन सभी मित्रों के आलीशान व्यक्तित्वों का व चरित्रों का मैं आदर पूर्वक नमन करता हूँ व इनकी शिक्षा को ग्रहण कर अपने जीवन को यथायोग्य बनाने का प्रयत्न करता हूँ।

* हमने अपने लहू की बूंदों से लोग कहते है गमों को पाला है, कौन समझेगा दोस्तों गम ने दरसल हम को पाला है।
* जो आसानी से मिले वो गम है, जो मुश्किल से मिले वो धन है,
  जो किसी किसी को मिले वो प्यार है, और जो नसीब से मिले वो तुम्हारे जैसा यार है।
* दोनों आखों में आकाश लिये फिरते है, हम अपनी नींद आपके नाम करते है।
  जब भी पलके झपके तुम्हारी, समझ लेना दोस्त हम तुम्हे याद करते है।
* दुआ करते है हम सिर झुकाये, ऐ दोस्त आप अपनी मंजिल को पाये,
  अगर कभी आप की राहों में अन्धेरा आये, रोशनी के लिये खुदा हमें जलाये।
* ईश्क के समन्दर में डूबा नही करते, गम के प्याले पिया नही करते,
  वो तो हमे आप जैसा दोस्त मिला, वरना हम किसी से मुहब्बत किया नहीं करते।
* कब टूट जाये कसमें ही तो है, कब बदल जाये नजर ही तो है,
  तू मेरे साथ की आदत मत डाल, कब बिछुड जाये जिन्दगी एक सफर ही तो है।
* दोस्ती अच्छी हो तो रंग लाती है, दोस्ती गहरी हो तो सबको भाती है।
  दोस्ती नादान हो तो टूट जाती है, अगर दोस्ती हमसे हो तो इतिहास बन जाती है।।

* प्यार करने वालों की किस्मत बुरी होती है, हर मुलाकात जुदाई की होती है।
वक्त मिले तो रिश्तों की किताब जरूर पढ़ना, दोस्ती हर रिश्ते से बडी होती है।।
* दुश्मनी एक पल में होती है - दोस्ती को जमाने लगते हैं। दोस्ती अब नाम है उस चीज का- पहले कहते थे जिसे सौदागरी।
* सातों आसमान की सैर हम कर आये, तारों से दोस्ती हम कर आये,
एक तारा खास था जिसे हम अपने साथ ले आये वरना सोचो आप इस धरती पर कैसे आये।
* हाथ जिनकी तरफ हम बढ़ाते रहे, उम्र भर वो हमे आजमाते रहे। दोस्तों के सितम हम उठाते रहे, जख्म खाते रहे और मुस्कराते रहे।।
* रास्ते के मोड क्या चीज है कभी सोचा ही नही, हम सफर पर जबसे निकले मुड कर कभी देखा ही नहीं।
दो घडी रुक कर ठहर कर सोचते मंजिल की बात, जिन्दगी में कभी कोई ऐसा मोड कभी आया ही नहीं।।
* गाओ तो गीत जिन्दगी से उठे, मिलो तो मीत जिन्दगी से मिले, चलो तो हर राह मे आसानियां है, न चलो तो रह जायेंगे शिकवे गिले।
यह जिन्दगी जैसी भी है हमारी है, फिर दोस्तों क्यो यह गम की सवारी है, ढुंढते हो दर्दे दिल की दवा पता नहीं दर्द कहां दिल में बता।।
* इस नये मौसम में नये फूल खिलाते जाओ, गले मिले हो तो दिलों को भी मिलाते जाओ।
आपके इस खूबसूरत लब जो मुस्कराते है, दीये हमारी आखों में भी जल जाते है।।
* आसमान हमसे नाराज है, तारों का गुस्सा बेहिसाब है, वो सब हमसे जलते है, क्योंकि चांद से बेहतर आप जैसा यार हमारे पास है।
* महक मोहब्बत की कभी कम नहीं होती, मोहब्बत जिन्दगी से कम नहीं होती,
साथ जिन्दगी में आप जैसे दोस्तों का हो, तो जिन्दगी जन्नत से कम नहीं होती।।
* मौसम की बहार अच्छी हो फूलों की कलिया कच्ची हो, हमारी ये दोस्ती सच्ची हो।
भगवान से यही दुआ करते है कि मेरे दोस्त की हर सुबह अच्छी हो।।
* कश्तियां बह जाती है, तूफान चले जाते है, दोस्त बिछुड जाते हैं, सिर्फ उनकी यादें रह जाती है।
* दोस्ती कहो तो दो लफ्ज, मानो तो बन्दगी, सोचो तो जिन्दगी, डूबो तो गहरा समन्दर, करो तो आसमान,
निभाओ तो मुश्किल, बिखरते तो सारा जमाना, सिमटे तो सिर्फ तुम।
* बिना सावन बरसात नही, सूरज डूबे बिना रात नही। ये दोस्त मेरा दिल ना तोडना, टूटते दिल की आवाज नहीं।।
* होठों पर आते हो बात बन कर, दिल में आते हो याद बन कर।
आखों में आते हो सपने बन कर, हो सके तो मेरी जिन्दगी में रहना सच्चे दोस्त बन कर।।
* एक हंसी जो हंसा दे, एक आँसू जो रूला दे, इक आरजू जो जगा दे, एक चाहत जो समझ ले,
हर आहट जो जान ले, उसी रिश्ते का नाम है दोस्ती।
* इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा नहीं होता, सब जुदा हो जाये लेकिन गम जुदा नहीं होता।
* दोस्तों ने क्या क्या न हमें चकमें दिये, दुश्मनों ने क्या क्या सितम किये,
वो कौनसी बिजली थी जो हम पर ना गिरी, एक हम है जो हर हाल में हंस हंस कर जिये।।
* हम आपकी याद में उदास है, बस आपसे मिलने की आस है, चाहे दोस्त कितने ही हो लेकिन आप हमारे लिये तो खास है।
* जीवन की राहें फूल जैसी कोमल हो जाये, कि जीवन में इतनी खुशियां मिले आपको कि हर पल जीवन यादगार बन जाये।
* रातें गुमनाम होती है, दिन किसी के नाम होता है, हम जिन्दगी कुछ इस तरह जीते है कि हर लम्हा सिर्फ दोस्तों के नाम होता है।
* दोस्ती गजल है गुनगुनाने के लिये, दोस्ती नगमा है सुनाने के लिये।
यह वो जज्बा है जो सबको मिलता नहीं क्योंकि हौसला चाहिये दोस्ती निभाने के लिये।।
* ऐसा दिल जो कभी ना टूटे, ऐसी मुस्कान जो कभी मायूसी ना दे, ऐसा छूना जो दर्द ना करे, दोस्ती ऐसी आपकी जो कभी ना मिटे।
* ऐ दोस्त तेरी दोस्ती तो जन्नत का नूर है, तुझे मिलने को दिल चाहता है मगर सफर बहुत दूर है।
* हर कर्ज दोस्ती का कौन अदा करेगा, जब हम ही नहीं रहेंगे तो दोस्ती कौन करेगा।
ऐ खुदा मेरे दोस्तों को सलामत रखना, वर्ना मेरे जीने की दुआयें कौन करेगा।।

* एक आप लोगों का साथ ही तो मुझे दो जहां से प्यारा है, तू ही तो हर पल मेरा सहारा है।
* दिल की हस्ती बिखर गई होती और रूह के जख्म भर गये होते, जिन्दगी आप जैसे दोस्तों की अमानत है, वरना हम तो कब के टूट गये होते।
* कई राज ऐसे होते है जो कहे नहीं जाते, कई दिल ऐसे होते है जो तोडे नहीं जाते।
  कुछ रिश्ते आप जैसे दोस्तों के है, जो छोडे नहीं जाते।।
* तुमने मौसम बदलते देखा है, हमने इन्सान बदलते देखा है। डूब रही थी कश्ती मेरी, साहिल पर दोस्तों को हंसते देखा है।
* मत कर दोस्त मुहब्बत का रंज, बेवफा है सारा जहां।
  मिल भी जाते है तो कतरा के निकल जाते है, हाय मौसम की तरह दोस्त भी बदल जाते हैं।
* हर खुशी छोटी है तेरी खुशी के आगे, हर हंसी छोटी है तेरी हंसी के आगे।
  हमें कुछ और नहीं चाहिये बस आपका साथ हो इस जिन्दगी के आगे।।
* उम्मीद ऐसी हो कि जीने को मजबूर करे, राह ऐसी हो जो चलने को मजबूर करें।
  महक कभी कम ना हो हमारी दोस्ती की, दोस्ती भी ऐसी हो जो मिलने को मजबूर करें।।
* ऐसी दोस्ती हमारी कि दिल चाहे तू हर सफर हर डगर में मिलें।
  मर भी जाये तो प्यार रहे कायम कि तू साथ वाली कब्र में ही मिले।।
* हम बिगडते हैं तो भूचाल आ जाता है, हम मचलते है तो तूफान मचल जाता है।
  हम को ना कोशिश करना बदलने की, वर्ना दोस्ती का इतिहास बदल जाता है।।
* उगता हुआ सुरज दुआ दे आपको, खिलता हुआ गुलाब महक दे आपको।
  हम तो कुछ भी देने के काबिल नहीं, देने वाला हर खुशियां दे आपको।।
* आपको आशीर्वाद मिले बड़ों से, साथ मिले छोटों से, खुशियां मिले जग से, प्यार मिले सबसे,
  दौलत मिले रब से, यही दुआयें है दिल से।
* दो पल की जिन्दगी यूं ही बीत जायेगी, कल के बाद फिर नई सुबह आयेगी।
  अगर दोस्तों की याद आयेगी तो कसम से सबसे पहले आपकी याद आयेगी।।
* रूठ कर आप हमें भुलाने लगे, इतने दूर हुये कि बहुत याद आने लगे।
  कैसे भुलाऊं भी तो आपको इक पल में, जब आपसे दोस्ती करने के लिये हमें जमाने लगे।।
* दोस्त-दोस्त नहीं खुदा होता है, महसूस तब होता है जब वो जुदा होता है।
  बिना दोस्त के जिन्दगी एक सजा है और दोस्त आप जैसा हो तो जीने का कुछ और ही मजा है।।
* लिखने से पहले सलाम करते है, दर्दे दिल से पैगाम करते है,
  ये मत समझना कि भूल गये है, याद तो आपको सुबह-शाम करते हैं।
* हमें सलीका ना आया जहां में जीने का, कभी किया न कोई काम करीने का।
  तुम्हारे साथ ही डूब जाना है, यह जानता है मुसाफिर तेरे सफीने का।।
* ऐ बारिश जरा थम के बरस, जब मेरा दोस्त आ जाये तो जम के बरस।
  पहले ना बरस की वो आ ना सके, फिर इतना बरस की वो जा ना सके।।
* यह मत सोचना कि भूल जायेंगे तुम्हे, दूर रह कर भी चाहेंगे तुम्हे।
  अगर दोस्त बन कर रास न आये तो, अजनबी बन कर याद आयेंगे तुम्हें।।
* ऐसी दोस्ती है हमारी कि हर मंजिल हर डगर पर तुम्हे हम मिलेंगे, अगर मौत भी आ जाये तो हम तुम्हें साथ वाली कब्र मे मिलेंगे।
* बचपन में खेल की तरह, खेल में हार जीत की तरह, जीत में खुशी की तरह सदा जीवित रहे यह दोस्ती हमारी।

कुछ ऐसे कम नसीब भी है इस जहां में, प्यासे रह गये है समन्दर के पास भी।०००

सत्साहित्य और यह ग्रन्थ

सस्ता व असत् साहित्य हवा में उड जायेगा लेकिन सत्साहित्य अमर रहेगा।

अपना जीवन एक ऐसी खुली किताब होनी चाहिए,
जिसका प्रत्येक पृष्ठ खुला हुआ हो, जिसकी प्रत्येक पंक्ति स्पष्ट हो और पढ़ी जा सके।

अध्ययन के लिये हमेशा बेहतर सामग्री चुनें। यानि पढ़ने से आपके अंदर सकारात्मक विचार आएं, चेतना जगे, विवेकवान बनें, नीतिगत भावनाएं विकसित हों या फिर आपके कार्यक्षेत्र भवितव्य में सहायक हो, आपके ज्ञान में वृद्धि करे अर्थात आपको कुछ प्राप्त हो... वह आपको बांधे रखे।

यह युग सूचना-प्रधान है। सेलफोन व इंटरनेट के द्वारा सूचनाएं मिल रही हैं, इससे यह चिंता पैदा हो गई थी कि पुस्तकों के अध्ययन का समय अब गया। परंतु आश्चर्य है, प्रिंट मीडिया नित फल-फूल रहा है। बल्कि प्रतियोगिता के कारण बेहतर और बहुआयामी सामग्री पढ़ने को मिल रही है। यहीं नहीं अनुवाद की परंपरा पहले से ज्यादा विकसित हो गई है।

अध्ययन की आदत अच्छी और हमेशा लाभदायक होती है। मौसम खराब है, और कार्य किया नहीं जा सकता। तब किताबें आपका समय व्यर्थ नहीं होने देतीं। यही प्रिंट मीडिया की सबसे बड़ी ताकत है। कहीं भी, कैसी भी परिस्थिति हो, किताबें आपकी हमसफर हैं। बस पठन-पाठन की रूचि होना चाहिये।

पढ़ना नि:संदेह अच्छा व्यसन है, लेकिन निरर्थक अश्लील और भ्रमित करने वाली सामग्री नहीं पढ़नी चाहिये, आजकल व्यर्थ की पुस्तकें और पत्रिकाएं काफी मात्रा में छप रही हैं। तभी छप रही हैं जब उन्हें पढ़ने वालों की अच्छी-खासी तादाद है। लेकिन ऐसे पाठक अपने धन व समय का अनादर कर अंतत: अपना ही नुकसान कर रहे हैं। सत्साहित्य सदा हितकारी, प्रेरक, उद्देश्यपूर्ण तथा जीवन के प्रति सकारात्मक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण पैदा करने वाला होता है। वह उपयोगी होता है, समस्याएं सुलझाना उसका अभीष्ट है, परंतु यह उसकी आवश्यक शर्त भी नहीं है। सत्साहित्य विसंगतियों को दिखाता है, पर निराशाजनक या भयावह ढंग से नहीं।

व्यर्थ की कोरी भावुक व कल्पनावादी किताबें न पढ़े। तो अच्छा ही है। आत्ममुग्ध साहित्यकारों के स्वलाप पढ़कर भी कुछ हासिल नही होगा। आप सजग होकर पढ़ेंगे तो कुछ भी खोयेंगे नहीं। आपके पास समय है तो अध्ययन कीजिये, यदि नहीं है तो इसके लिये समय निकालिए। इसे अपनी कार्य संस्कृति का अंग बना लीजिये। दोनों सूरतों में आप लाभान्वित रहेंगे। साहित्य के मामले में जरा सावधान रहें, आधुनिक साहित्य में तर्क व यथार्थवाद के नाम पर अश्लीलता भी घुसती जा रही है।

हूण, कुशान तथा पहलव, यवन एवं मुगल-पठान आक्रमणकारियों द्वारा आर्यावर्त (भारतवर्ष) पर समय-समय पर किए गए आक्रमणों के कारण विशाल संस्कृत वाङ्मय की अपार क्षति के अनंतर भी हम भारतीयों का संस्कृत साहित्य, विश्व की समृद्ध भाषाओं में निर्मित साहित्य की तुलना में उत्कृष्ट एवं अति विशाल है।

मात्र चार वेद-ऋग्, यजु:, साम और अथर्व अथवा अठारह पुराण ग्रंथ, रामायण, महाभारत ही विश्व साहित्य से तुलनात्मक स्पर्धा में अग्रसर हैं। यदि उपनिषद्, सूत्र ग्रंथ तथा स्मृति रचनाएं, काव्य-नाटक एवं राजनीति, नीति ग्रंथ और व्याकरण, ज्योतिष ग्रंथों को भी उक्त वेद-पुराण आदि में सम्मिलित करके विश्व साहित्य से तुलना की जाए तो विश्व की समृद्धतम भाषा के साहित्य में वैसा विशाल जीवन-दर्शन तथा प्रकृति समीक्षा का दृश्य-अंकन नहीं मिलेगा, जैसा संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध है।

भारत के सप्त दर्शन शास्त्र-न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, योग तथा वेदांत, सांख्य एवं चार्वाक ही विश्व साहित्य से स्पर्धा करने के लिए पर्याप्त हैं। सत्य तो यह है कि उक्त दर्शन ग्रंथ विश्व साहित्य पर भारी पड़ते हैं, अत: समग्र संस्कृत वाङ्मय तो धरा पर अवस्थित सात समुद्रों की भांति व्यापक और गंभीरतम है, जिसमें अवगाहन सर्वथा असंभव नहीं, तो दुष्कर अवश्य है।

ग्रन्थ ऐसे अध्यापक हैं जो बिना बेंत मारे, बिना कटु शब्द एवं क्रोध के, बिना वस्त्र और धन लिये हमें शिक्षा देते हैं। ग्रन्थरहित कक्ष

आत्मारहित देह के सदृश है। ग्रन्थ समय के महानगर में प्रकाश-गृह के समान खड़े हुए हैं। पठनीय ग्रन्थों में प्राचीन लेखकों के ग्रन्थ सर्वोत्तम होते हैं। सद्ग्रन्थ महान् आत्मा का मूल्यवान् जीवन-रक्त है जो आनेवाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित और संचित रखा गया है।

अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें अपने भले मित्रों के साथ न रहने की कमी नहीं खटकती। जिसे पुस्तकें पढ़ने का शौक हैं, वह सब जगह सुखी रह सकता है। अच्छी पुस्तक एक महान् आत्मा का अमूल्य जीवन-रक्त हैं। पुस्तकों का मूल्य रत्नों से भी अधिक है, क्योंकि रत्न बाहरी चमक-दमक दिखते हैं जबकि पुस्तकें अन्त:करण को उज्ज्वल करती है। पुस्तक-प्रेमी सबसे अधिक धनी और सुखी होते हैं। पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है।

असभ्य राष्ट्रों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण विश्व पर पुस्तकों का ही शासन है। विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं। नेत्रों के सम्मुख जो वस्तु पड़ी हुई है, उसे जानने के लिए भी हमें पुस्तकों का मुंह ताकना पड़ता है। पुस्तकें वे विश्वस्त दर्पण हैं जो संतों एवं शूरों के मस्तिष्क का परावर्तन हमारे मस्तिष्क पर करती हैं। बुरी पुस्तकों का पठन विषपान के समान है।

जीवन में मित्र का होना परम आवश्यक है। जीवन काल में बहुत से मित्र मिलते रहते हैं लेकिन वह व्यक्ति बहुत सौभाग्यशाली होता है जिसका कोई सच्चा मित्र हो। मेरे विचार में पुस्तकों से अच्छा कोई मित्र हो ही नहीं सकता।

पुस्तकें ज्ञान राशि का अथक भंडार हैं। इनके अध्ययन से हम हर क्षेत्र में उन्नति कर सकते हैं। महात्मा गांधी भी चाहते थे कि हर घर में एक पुस्तकालय हो। साहित्य व ज्ञान से ओतप्रोत पुस्तकें हमें जीवन पथ पर सफल होने का मार्ग दिखाते हैं। पुस्तकें हम से कुछ न लेकर हमें ही आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।

हम अपने खाली समय का पुस्तकें पढ़कर सदुपयोग कर सकते हैं। पुस्तकों के द्वारा हम मनोरंजन भी कर सकते हैं। लेकिन हमें सस्ते साहित्य व अश्लील पुस्तकों से बचकर उच्च स्तरीय पुस्तकें ही पढ़नी चाहिए।

ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है। जीवन की सत्योन्मुखी स्फूर्ति जब भाषा द्वारा मूर्त और दूसरे को प्राप्त होने योग्य बनती है, तब वहीं साहित्य होता है। साहित्य सच्चिदानन्द की प्यास और खोज का प्रत्यर्पण है। साहित्य से ही साहित्य जाग उठता है।

जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हम में गति और शक्ति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो, जो हममें संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।

जो आनन्द देता है उसी को मन सुन्दर कहता है, और वही सत्य की सामग्री है। दुनिया में जो कुछ सत्य घटित होता है, उसी को बिना विचारे आंख मूंदकर साहित्य का उपकरण बनाने से वह सत्य तो हो सकता है, पर सत्साहित्य नहीं होता।

प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। महत् साहित्य का गुण है अपूर्वता, यानी मौलिकता। साहित्य जब अक्लान्त शक्तिमान रहता है, तब वह चिरंतन को भी नए रूप में प्रकाशित कर सकता है। यही उसका काम है; इसी का नाम है मौलिकता।

दुख-दग्ध जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। मृत हो कि जीवित जाति का साहित्य जीवन-चित्र है। वह भ्रष्ट है तो सिद्ध फिर वह जाति भी अपवित्र है। राजनीति क्षणभंगुर है, चंचल है, परन्तु साहित्य चिरस्थायी है, मंगलमय है, उसके आधारभूत मूल्य की क्षति नहीं होती। साहित्य का पतन राष्ट्र के पतन का द्योतक है, पतन की ओर वे परस्पर एक-दूसरे का साथ देते हैं। वर्तमान काल ही साहित्य का चरम उच्च न्यायालय नहीं है।

विशुद्ध साहित्य अप्रयोजनीय है, उसका जो रस है वह अहैतुक है। सच्चे साहित्य का निर्माण तो एकान्त चिन्तन और एकान्त साधनों में होता है। साहित्य का अध्ययन नवयुवकों का पालन-पोषण करता है, वृद्धों का मनोरंजन करता है, उन्नति का श्रृंगार करता है, मुसीबत में धीरज देता है, घर में प्रमुदित करता है और बाहर विनम्र बनाता है।

साहित्य का सहज अर्थ है नैकट्य, अर्थात् सम्मिलन। भाषा के क्षेत्र में साहित्य शब्द का तात्पर्य है, हृदय को योग कर देना, जहां योग ही अन्तिम लक्ष्य है। साहित्य के अन्तर्गत सारा वाङ्मय लिया जा सकता है जिसमें अर्थ-बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा

चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो तथा जिसमें ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा या व्याख्या हो।

साहित्य में अच्छा लगना और बुरा लगना ही चरम बाते हैं। साहित्य वह है जिसे पढ़ने से प्रतीत हो कि लेखक ने अन्तर में सब कुछ पुष्प की तरह प्रस्फुटित कर दिया है। साहित्यकार ही अपने साहित्य द्वारा समाज को आशा प्रदान कर उसे प्राणवान बनाता है।

साहित्य के साधारण रूप से दो प्रकार हैं : १) विचारप्रेरक और २) प्रेरणादायी

विचारप्रेरक साहित्य व्यक्ति को विचार करने के लिए बाध्य करता है, और नए विचार सुझाता है। ऐसा क्यों ? वैसा क्यों? जैसी जिज्ञासाएं व्यक्ति के मन में वह उत्पन्न करता है।

कुछ साहित्य प्रकार ऐसे भी होते हैं जिन्हें पढ़कर व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है और वह कृति करने तैयार होता है। श्रीमद्भगवद्गीता विचारप्रेरक और प्रेरणादायी दोनों प्रकार का ग्रंथ है। जीवन के संघर्ष की प्रेरणा तो उससे मिलती ही है, साथ ही आत्मज्ञान की प्राप्ति का विचार भी है।

पुस्तकें महान प्रतिभाओं द्वारा मानव जाति के लिए छोड़ी गयी पैतृक संपत्ति है जो पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपी जाने के लिए हैं। मानों वह अजन्में व्यक्तियों के लिए दिए गए उपहार हों। दरिद्रता से पीछा छुड़ने के लिए दु:ख दूर करने की और सन्मार्ग का पथ प्रशस्त करने की जितनी शक्ति पुस्तकों ग्रंथों में होती है, उतनी संसार की किसी और वस्तु में नहीं, एक बार बर्नाड शाह के पिता ने अपने पुत्र को प्यार से कहा- मुझे बिल्कुल बुरा नहीं लगता कि तु अपने दोस्तों के साथ नाचते-गाते और घूमते हो। मैं तो बस यही चाहता हूं कि जिन्दगी का मजा लूटो। तुम सब कुछ करो लेकिन इस बार अपने लिए नये और पक्के दोस्त जरूर बनाओ। ऐसे दोस्त जो जीवनभर तुम्हारा साथ दें, तुम्हारा मार्गदर्शन करें। क्या तुम जानते हो कि ऐसे दोस्त कौन होते हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूं कि पुस्तकों से अच्छा मार्गदर्शक दोस्त कोई दूसरा नहीं हो सकता। अपने पिता की बात पर बेटे ने अमल किया। उसका जीवन सार्थक हो गया और वह संसार का महान लेखक बन गया।

पुस्तकों से दोस्ती करें, संरक्षण करें और उनका लाभ अपने दोस्तों व परिजनों को हस्तांतरित करें। पुस्तकें व सत्संग दो ही स्रोत हैं जहां से श्रेष्ठ विचारों की परिणति होती है। पुस्तकों का ज्ञान होने पर ही सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। पुस्तकों के अध्ययन और पढ़ी हुई बातों पर चिंतन-मनन करने पर ही विचारों का उदय होता है। कहा भी जाता है कि जो पढ़ता है और उस पर चिंतन नहीं करता है, उसका कोई सार्थक भविष्य नही है, जो केवल चिंतन करता है, परंतु श्रेष्ठ पुस्तकें नहीं पढ़ता है, वह स्थायी संकट से ग्रसित रहता है।

सर फिलिप सिडनी ने कहा है- वे कभी अकेले नहीं हैं, जिनके साथी श्रेष्ठ विचार होते हैं। सच्चा मित्र वही है जिस पर हम पूरा विश्वास कर सकें, जो प्रत्येक परिस्थिति में हमारी सहायता के उद्देश्य से तत्पर रहे, अधिकांश मित्र स्वार्थी व अवसरवादी होते हैं। इनका साथ हमारी परिस्थिति व उनके स्वार्थ में निहित होता है। वे जब चाहे हमें अपने परामर्श व सहायता से वंचित कर सकते हैं, परंतु पुस्तकों के संदर्भ में यह बात खरी नहीं उतरती हैं, क्योंकि पुस्तकों में निहित ज्ञान सर्वकालीन, सार्वदेशिक उपलब्ध रहता है। पुस्तकें ऐसी मित्र हैं जिन पर हमेशा विश्वास किया जा सकता है। पुस्तकें मनोबल को पुष्ट करने के लिए तत्पर रहती हैं। पुस्तकें कई मायनों में हमारी सहायता करती हैं, कुछ पुस्तकें हमें इस संघर्षशील जीवन को जीने की कला सिखाती हैं, तो देश के लिए मर मिटने का संदेश देने वाली पुस्तकों की भी कमी नहीं है। विश्व में जितना भी ज्ञान है, सब पुस्तकों में ही निहित है, समस्त ज्ञानरूपी धाराएं इस ज्ञानसागर रूपी समुद्र से निकलती हैं। पुस्तकें तो हमारी ऐसी मित्र हैं जो बदले में हमसे कुछ नहीं चाहतीं, वे तो बस इतना भर चाहती हैं कि हम उन्हें संभाल कर रखें, सुरक्षित रखें व सहजभाव से हस्तांतरित करें, ताकि वे मानवमात्र के कल्याण में सहायक बनें। पुस्तकें हमें लोक-परलोक के निर्माण की शिक्षा देती हैं, उनके द्वारा हम विश्व के प्रत्येक पदार्थ, सभी विषयों एवं उनसे संबंधित घटना एवं ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अरबवासियों के मध्य एक कहावत है- ज्ञानवान व्यक्ति का एक दिन, मूर्ख व्यक्ति के जीवन के बराबर होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमारे लिए ज्ञान की प्राप्ति का माध्यम पुस्तकें हैं। इतिहास प्रसिद्ध अनेक ऐसे व्यक्ति हुए हैं जो धन-वैभव व राजसी सुख-सुविधाओं के बजाय एक अच्छे पुस्तकालय को महत्व देते थे। उनके लिए पुस्तकें तत्काल उपलब्ध सेवक, सहायक, मित्र, गुरू, मंत्री सभी कुछ होती हैं।

पुस्तक पढ़ते समय व्यक्ति अपने आपको भूल जाता है, वह वर्णित विषय व वर्ण्य पात्रों के साथ तादात्म्य अनुभव करते हुए मधुमती

अवस्था को प्राप्त करता है। पुस्तकों के सहचर्य से हम अपने चरित्र का निर्माण व व्यक्तित्व का विकास कर सकते हैं। तो आइए, सब मिलकर पुस्तकों से दोस्ती करें, उन्हें सहजकर रखें, सुरक्षित रखें, संरक्षण करें व उनको एकत्रित कर उनका लाभ अपने दोस्तों व परिजनों को हस्तांतरित करें।

ज्यों शरीर का स्वास्थ्य हमारे शरीर में जो रस है, उसका परिणाम है। किंतु शरीर का स्वास्थ्य तो पशु-पक्षी जीव-जंतु को भी उपलब्ध है। मनुष्य यदि वो शरीर को सुदृढ़ कर ले, तो उसने अपनी मनुष्यता खो दी। जो कलाकार होते हैं, वे शरीर की उपेक्षा करके मन के रस को तलाशते हैं। जैसे कि कवि। जितने भी महाकवि हुए हैं, वे मन के रस से भी आगे का महारस-आत्मानंद का रस तलाशते हैं। जैसे कि गीता, उपनिषद वा फिर गुरुनानक का जप जी वा महम्मद पैगम्बर का कुरान शरीफ। यदि अभी अभी हुए देवताओं की फेरिस्त बनाए, तो उसमें श्री समर्थ का दासबोध वा तुकाराम का अभंग या फिर माउली की ज्ञानेश्वरी-ये सभी महाग्रंथ को पढ़ने से अब भी ज्ञानेश्वर समाधि लेने के पूर्व ज्ञानेश्वरी की संरचना की होगी, तो उसके भीतर कितना व आत्मानंद का महारस झरा होगा। जिसमें निमिज्ज् होकर के अपने आप को मिटाकर के वो शिवानंद की रसना में सराबोर होकर के इसकी रचना की होगी। तो आप यदि शरीर के रस को ही यदि सब कुछ समझ रखा हो तो आप पशु ही हैं।

वास्तव में पुस्तकों की कमी नहीं है, लेकिन अनियोजित और असंगठित तरीके से पढ़ने का कोई लाभ नहीं होता। यदि कोई एक ऐसी वस्तु है जिसने सभ्यता में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और मानव जाति को आधुनिक बनाया तो वह है पुस्तक। पुस्तकें मुख्य रूप से व्यक्ति को बुद्धिमान बनाती है, उसके व्यक्तित्व को सशक्त करती हैं और आत्म-विकास के लिए अनिवार्य हैं।

यदि आप विस्तृत अध्ययन के इच्छुक हैं और अपने ज्ञान में वृद्धि करना चाहते हैं तो आपको ज्ञानसागर पढ़ना चाहिए जिनसे सकारात्मक रूप से आपको लाभ हो। इसलिए पढ़ने के लिए चुनिंदा पुस्तकें पढ़े, न कि जो पुस्तक सामने दिख जाए उसको।

सर्वोत्तम तरीका है कि अपने पठन को सुनियोजित किया जाए। इसके लिए तीन बातें आवश्यक हैं- पुस्तकों का चयन, पढ़ने में निरंतरता और पढ़ी गई सामग्री को स्मरण रखने और समय पर याद आने की क्षमता का विकास करना। पुस्तकों का चयन सरल नहीं है। असंख्य पुस्तकें प्रत्येक वर्ष छापी जाती हैं। प्रत्येक लेखक यह दावा करता है कि उसकी पुस्तक सर्वोत्तम है। परंतु ऐसा सत्य नहीं है। केवल कुछ पुस्तकें ही पढ़ने योग्य होती हैं। तब कैसे चुना जाए अच्छी पुस्तकों को ? सर्वप्रथम, वांछित पुस्तक की समीक्षा (बुक रिव्यू) को विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में पढ़ा जाए। समीक्षा भी व्यक्तिगत प्रसंग से प्रभावित होकर खिले जाते हैं परंतु २-३ अखबारों में एक ही पुस्तक के समीक्षा को पढ़कर अंदाजा लग जाता है कि पुस्तक कैसी होगी। अच्छे पुस्तकालयों में पुस्तकीय समीक्षा को एक स्थान पर रखा जाता है। दूसरे, जब आप किसी पुस्तक को हाथ में लें तो उसके पन्ने पलटकर जांचने का प्रयत्न करें कि पाठ्य-सामग्री किस प्रकार की है। अनुक्रमणिका को देखें और जानें कि किन विषयों पर लिखा गया है। बीच से पुस्तक के कुछ अंश भी पढ़ें। इससे पुस्तक की औकात का पता लग जाएगा। अपने ज्ञान भंडार तो बढ़ाने के लिए निरंतर पठन आवश्यक है। इसके लिए इरादा और प्रयत्न दोनों की आवश्यकता है। एक अच्छी योजना है कि आप महीने में दो पुस्तकें अवश्य पढ़े। यदि आप और अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो सप्ताह में एक पुस्तक पढ़े। अमेरिका में विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए यह अनिवार्य है।

केवल पढ़ना ही काफी नहीं है। जो कुछ पढ़ा है उसको समझना आवश्यक है। यदि आप ऐसा नहीं कर रहे तो बेकार में समय बर्बाद कर रहे हैं। इसलिए आप पढ़ते समय संक्षिप्त टिप्पणी जरूर बना लें। एक सूची भी बनाए कि आपने कौन-कौन सी पुस्तकें पढ़ी है। अपने पठन को अधिक प्रभावशाली और उपयोगी बनाने के लिए पढ़ने की गति को तीव्र बनाए। इसके लिए पढ़ने का एक समय निश्चित करें।

किताबों की दुनिया में डूबने के आनंद से साक्षात करा रहे हैं। जीवन संस्कृति के विकास में पुस्तकों का अविस्मरणीय योगदान है। बेहतर जीवन का रास्ता किताबों की दुनिया से होकर निकलता है। जैसे भारी-भरकम चिंतन से हटकर ये कहना ये कहना ज्यादा ठीक रहेगा कि बेहतर पढ़ना बिस्तर में लेटकर ही होता है। इस बात की पुष्टि कुछ दिनों पहले एक शोध से भी हुई, जिससे पता चला कि विश्व के अधिकांश पुस्तक प्रेमी सबसे बढिया पढ़ने का काम बिस्तर में ही करते हैं। इसीलिए इंटरनेट या ई-बुक पर जो पढ़ा जाता है वह ज्यादातर संदर्भ या ज्ञानवर्धन तक ही सीमित रह जाता है। उसे पढ़कर विचार या चिंतन का मूड नहीं बन पाता। मौसम कोई भी हो

बिस्तर में दुबक कर पढ़ने का मजा ही कुछ और होता है। बिस्तर में आरामदायक पढ़ने के साथ किताबें हमारे भीतर एक दूसरी ही दुनिया जगाती हैं। किताबों में वर्णित घटनाओं के साथ हम इस कदर जुड़ जाते हैं कि आसपास की खबर तक नहीं होती। ऐसे में कभी-कभी बिस्तर में पढ़ने की आदत खतरनाक भी हो सकती है। पर गंभीरतासे पढ़ने वाले इस बात को नहीं मानते। सवाल यह है कि हम पढ़ते किसलिए हैं- खुशी के लिए, ज्ञानवर्धन के लिए, समय गुजारने के लिए या फिर अपने प्रिय लेखकों से प्रभावित होकर। ऐसे अनेक पाठक मिल जाएंगे जो अपने पसंदीदा लेखक से प्रभावित होकर उसे ही पढ़ते हैं। और इस तरह अदृश्य पाठकों का एक समूह बन जाता है जो एक ही विचार रखते हैं। कई बार इसका उल्टा भी हो जाता है। ये अदृश्य पाठक अकेले हो जाते हैं। अलग-थलग रहने लगते हैं, क्योंकि वे अपनी ही तरह के पाठक ढूंढते हैं उनसे चर्चा करना चाहते हैं जो उन्हें नहीं नसीब हो पाता है।

पर कुछ पाठक इस बात की परवाह नहीं करते कि वे जो पढ़ रहे हैं दूसरा उसके बारे में कुछ जानना भी चाहता है या नहीं। ऐसे पाठक अपने एकांत के पल में बस अपनी किताबों के साथ ही शायद रहना चाहते हैं। हम जैसे पाठक उस पाठक की दुनिया में गए ही नहीं जो अपनी किताबों की दुनिया से बाहर ही नहीं हैं। पाठकों के लिए किताबी कीडा या पढ़ने की बीमारी जैसे विशेषण अक्सर प्रयोग किए जाते हैं। पर ये उनके लिए सांस लेने जैसा होता होगा। और जो लेखक है वह तो अग्रणी पाठक है तभी तो वह कहता है कि अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए पढ़ो और खूब पढ़ो। ये चेतना उसमें भी शायद बिस्तर में आरामदायक तरीके से पढ़ते हुए ही जागी होगी।

युग बदलने के साथ ही युगवाणी बदल गयी। नये-नये लेखकों की लेखनी बदल गयी, नये जमाने की नई सोच सिमट कर रह गई। आज उन विचारों में तेजस्विता, गंभीरता और नैतिकता का अभाव आ गया है। आज जो सस्ते साहित्य के रूप में प्रकाशित हो रहा है, उससे किसी का भला होनेवाला नहीं है। क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता का अस्थिर संपुट जो घर कर रहा है वह हिन्दी साहित्य के लिए विषम वेदना का प्रतीक है। वर्तमान समय में हिन्दी को जो स्थान प्राप्त होना चाहिए वह किन्हीं कारणों से प्राप्त नहीं हो पा रहा है। इसके पीछे हमारी राजनीति का भी प्रभाव परिलक्षित होता दिखाई देता है। अत: साहित्य में सुधार हेतु लेखकों की सोच में परिवर्तन लाना होगा।

इस सबको परिलक्षित करते हुये मैं तो यही कहना चाहता हूँ कि आप इस ज्ञान सागर का पूरे मन से अध्ययन करे। इससे आपके आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि होगी। इसका हर लेख आपके जीवन का रहस्य उद्घृत करेगा। इसमे दिये हुये विभिन्न महालेखकों के जीवन दर्शन सिद्धान्त, सम्बोधन उद्‌बोधन वाक्य व सन्तवाणी आपके जीवन को सुन्दर गढ़ने में सहायक सिद्ध होंगे। जीवन जीने की कला सिखाने वाला यह महाग्रन्थ पीढ़ी दर पीढ़ी तक आपके पास रहेगा जो कि अपरिवर्तनशील अमूल्य निधि आपकी होगी। यह ग्रन्थ आपकी आनेवाली भावी पीढ़ी और परिवार को सुसंस्कारित करेगा, इतना ही नहीं आपकी जिन्दगी की हर समस्या का समाधान इसमे कहीं न कहीं ढूंढ पावोगे, इसके बाहर कोई समस्या नहीं है। यह ग्रन्थ आप कभी भी, कहीं पर भी, कहीं से भी, चलते-फिरते, सफर करते वक्त, अकेले में पढ़ सकते है। हर समय आपका साथी बना रहेगा और आनन्द प्रदान करेगा व आपका मनोरंजन करेगा। इससे आप आपके जीवन में कभी भी अकेलापन या रिक्तता महसूस नहीं करोगे। इससे आपके विचारों में वृद्धि होगी, ज्ञान बढ़ेगा, चिन्तन मजबूत होगा। चिन्तन से शब्दों की अभिव्यक्ति होगी, आप सोचने पर मजबूर होंगे हो सकता है कल आप भी अपने विचारों को व्यक्त करने, लिखने के लिये विवश हो जावोगे जैसा मेरे साथ हुआ।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

लेखक की दो अधिकतम प्रभावी शक्तियां है। नई वस्तुओं को परिचित बनाना और परिचित वस्तुओं को नया बनाना।।

लेखनी तलवार से अधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली है। समस्त उत्तम लेखन का रहस्य सही निर्णय है।

कुछ मना लेते है जंगल में मंगल और कुछ बना देते है घर को भी जंगल।

कहते है कि आता है मुसीबत में खुदा याद लेकिन हम पर तो वो गुजरी कि खुदा भी ना रहा याद।

* उर्दू शब्द कोश *

सदियों की इबादत से बेहतर है, वह एक लम्हा, जो तूने बिताया किसी इन्सान की खिदमत में।

लेखन कला, पांडित्य, प्रसाद, पीडा, आश्चर्य व अल्फाजों का और हकीकतों का समझौता है
जिसे लिखने के लिये शब्द कोश पर आश्रित रहना पड़ता है।

अ

अखलाक = आचरण
अब्र = बादल
अब्बा = पिता
अबस = व्यर्थ
अहद = संकल्प
अमल = कर्म, काम, कार्यान्वित
अहले नजर = नजरवालों से
अस्रे-हाजिर = वर्तमान
अहम नक्काद = समीक्षक
अदीब = साहित्यकार
अदब = तहजीब, तौर तरीके
अफसुर्दा = दु:खी
असीर = कैदी
अहबाब = दोस्त
अदायत = बीमार को देखने जाना
अफजल = बेहतर
अहदे हाजिर = वर्तमान समय युग
अगयार = दुश्मन
अब्र = बादल

आ

आतिशी = ज्वालामुखी
आमाल = कर्म
आशना = दोस्त
आसूंदा = दु:खी
आखिरत = भविष्यत् जीवन
आबरूरेजी = बेईज्जती
आसीर = कैदी
आलिम = विद्वान

इ

इन्साफ = न्याय
इख्लास-ओ-मुहब्बत = निष्कपट प्रेम
इशाअत = प्रकाशन
इल्म = ज्ञान, विद्या
इन्तकाल = मृत्यु
इल्मे नजूम = ज्योतिष विद्या
इन्कलाब = सूचना क्रान्ति
इदारो = संस्थानों
इनायत = कृपा, मेहरवानी
इशाअत = प्रकाशन
इफ्तेताह = उद्घाटन
इश्तिहार = विज्ञापन

उ

उज्र = बहाना

ए

एतराफ = स्वीकृति
एतराफे जुर्म = इकबाले जुर्म
एतमाद = भरोसा, विश्वास
एहतिययात = सावधानी
एहतरामन = आदर सम्मान से
एतिदाल = सतर्कता

क

कयाम = ठिकाना
कयास = अटकल
कलाम = काव्य
कौम = जाति
कैद-ए-हयात = आजीवन कारावास
कयामत = प्रलय

कायनात = ब्रह्मांड
काफूर = गायब
कू-ब-कू = जगह-जगह
कफस = कैद
कश्तीबान = मल्लाह
कलाम = काव्य, कविता
कबाये = लिबास
कामिल = पूर्ण
कदूरत = नफरत
कमर बस्ता = कमर बांधे हुये
कैस = मजनूं
कतरा = बूंद
कातिब = लिखने वाला
कदूरत = नफरत
काफिर = अविश्वासी
करीना = ढंग
काशिद = दूत, सन्देश वाहक
किशकौल = फकीर का बर्तन
कलिम-ए-हक = सच्चे वचन

ख

खुमार = नशा, मस्ती
ख्वाब = सपना
खयाले दिल दोस्तां = दोस्तों के दिलों का खयाल
खाविद = पति
खैरात = दान
खिजां = पतझड
खुतून/खत = पत्र
खफी = महीन, छुपा हुआ
खफीफ = हल्का, कम, शर्मिन्दा
खुफिया = गुप्त, छुपा हुआ
खला = खाली स्थान, अन्तरिक्ष, शून्य
खुलासा = निचोड, सारांश, चुना हुआ
खलासी = छूटकार, निजात
खिलाफत = विरुद्ध में, खलीफा का पद
खिलाफे अकल = नामुमकिन, असम्भव
खिलाफ वर्जी = हुक्म न मानना
खिलाल = दांत कुरेदने का तरीका
खुल्द = स्वर्ग, जन्नत
खलीज = खाडी, खाई
खलीक = सुशील, शिष्ट
खलील = दोस्त, मित्र
खम = बाहें, बाजू
खुम = घडा, मटका
खुमार = नशे का उतार
खामियाजा = पश्चाताप, अंगडाई, बदला
खमीदा = टेढ़ा, झुका हुआ
खन्नास = वहम, भ्रम, भूत, शैतान
खन्जर = छोटी तलवार, कटार
खन्दक = खाई, प्रतिकूप
खन्दा = हंसी, हास
खन्दा पेशानी = हंसमुख
खिन्जीर = सुअर
खुनुक = शीतल, ठन्डा
खू = आदत, स्वभाव
ख्वाब = सपना, निद्रा, सोना
ख्वाबगाह = शयन कक्ष
खिलाफे जाब्ता = नियम के विरुद्ध
खलिश = खटक, चुभन, ईर्ष्या, हसद
खिलअत = बादशाह की तरफ से दिये जाने वाला इनाम, आदर
खलफ = बेटा, पुत्र
खल्क = संसार के लोग
खुल्क = मिलनसारी, शील
खिलकत = प्रकृति, पैदाइश, सृष्टि
खलकत = दुनिया, जन साधारण
खलल = रुकावट, बाधा, विघ्न
खलवत = एकान्त, तन्हाई, सोने की जगह
खुलूस = सच्ची दोस्ती, बेगरजी, निस्वार्थता
ख्वातीन = महिलायें
ख्वाजा = स्वामी, मालिक
ख्वाजासरा = द्वारपाल, दरबान, चौकीदार
ख्वास्तगार = अभिलाषी, ख्वाहिशमन्द
ख्वाहिश = अभिलाषा, इच्छा, कामना

खूब = अच्छा, उत्तम, हसीन, मनोहर
खूबानी = जर्द फल
खूबरू = हसीन, सुन्दर
खवास = खास लोग, प्रधान, गुण
ख्वाह = चाहे, या, अथवा
ख्वाहां = ख्वाहिशमन्द, इच्छुक
खूबी = अच्छाई, जौहर, गुण
खोद = फौलादी टोपी
खुद ब खुद = स्वयं अपने आप, स्वत:
खुद आराई = अपने का बनाना, संवारना
खुद परस्त = अभिमानी, अहंकारी, घमन्डी
खुद्दार = गैरतदार, स्वाभिमान
खुद रौ = अपने आप उगनेवाला
खुद सर = स्वेच्छाचारी
खुदमुख्तार = स्वतन्त्र, आजाद
खुदनविश्त = आत्म कथा
खुदी = गुरुर, अहंवाद
खातिरख्वाह = अपेक्षित
खुराक = आहार, गिजा
खुशीद = सूर्य, सूरज
खुशामद = चापलूसी
खुशहाल = दौलत मन्द सम्पन्न
खुशखत = अच्छा लिखा हुआ
खुशदामन = सास
खुशदिल = प्रसन्न चित्त
खुश गवार = रोचक, पसन्दीदा
खुशनवीस = अच्छा लिखने वाला
खुशकिस्मत = भाग्यवान, नसीब धारी
खुश जायका = स्वादिष्ट, मजेदार
खोशा = अच्छा
खंदा पेशानी = खुशमिजाजी
खिलाफत = विरोध
खयानत = बेईमानी
खौफनाक = भयंकर, डरावना
खूंबहा = धन जो किसी की हत्या करने पर उसके घरवालों को दिलाया जाय
खियानत = उपभोग, गबन
खैरियत = कुशलता, कल्याण, अच्छाई
खैमा = मन्डप, डेरा
खुनक आब = ठंडा पानी
ख्वाहिशे जर = दौलत की चाह
खलीफा = प्रतिनिधित्व
खातून = महिला

ग

गजालों = हिरनों
गो = यदपि
गुबारे वक्त = समय की धूल
गाहे-गाहे = कभी कभी
गोश-ए-गुलजार = बाग का कोना
गाम = कदम
गुलरूख = सुन्दरी
गौहर = मोती
गुजिस्ता = बीता हुआ काल
गीबत = चुगली

ज

जा-ए-पैदाईश = जन्म भूमि
जन्नत = स्वर्ग
जर्रा = कण
जकात = दान
जहन = बुद्धि
जज्ब-ऐ-दिल = हृदय की भावना, दिल से
जू = रोज नये बहाने बनाने वाला
जुर्मे बेगुनाही = बेगुनाह होने का जुर्म
जदीद = आधुनिक
जेब = शोभा
जहूर = उदय
जलजला = भूचाल
जियाला = बहादुर
जद = सीमा
जाहिल = अज्ञानी

त

तालीम = शिक्षा
ताईद = समर्थन

तबादला = स्थानान्तरण, बदली
तबार = खानदान, घराना, वंश
तबाह = उजाड़ ध्वस्त, बदहाल
तर्वरा = नफरत, गाली गलौज, अपशब्द
तबस्सुम = मुस्कान- मुस्कुराहट
तवर्रुक = प्रसाद
तगाफुल = लापरवाही
तजकिरा = चर्चा, बयान, जिक्र
तहजीबी = सांस्कृतिक मूल्य
तारवीर = देर
तने-तन्हा = अकेला
तज्किरे = चर्चे
तनावर = फैला हुआ, मजबूत
तिलिस्मी = जादू टोने वाला, जादूगर
तकीद = ताकीद, चेतावनी, आग्रह
तलाब = तालाब, सरोवर, पुष्कर, ताल
तालिफ = संकलन, सम्पादन, हासिल
तामुल = तम्मुल, संकोच, ढील, विलम्ब, साथ देना
तावान = तावान, जुरमाना, दंड
ताविल = तौजीह, वजह
ताइद = हां मिलना, समर्थन
तबादिला = तवादला, बदली, स्थानान्तरण, लेन-देन
तखलीक = रचना
तबखिर = पेट से भाप उठना, गैस होना
तिबलिग = तब्लीग, पहुंचाना, प्रेषण, प्रचार
तिप = ताप, गर्मी, बुखार
तिपाक = प्रेम, आवभगत, पुरजोश, अन्दाज, खातिर, जलन
ततबो = अनुसरण
तजाविज्र = हद से गुजरना, नाफरमानी
तजाहिल = जान बुझकर अनजान बनना
तबसरा = टीका टिप्पणी, आलोचना
तसकीद = आलोचना
तहकीक = शोध
तरजीहात = प्राथमिकतायें
तखलीकी = रचनात्मक
तसलुत = सत्ता, कब्जा, अधिकार
तशत = थाल, परात
तुरशी = खटास
तिरगीब = फुसलाना, प्रलोभन
तिरक्की = तरक्की, उन्नति
तरक = त्याग, छोडना
तिरकश = तरकश, तीर रखने की जगह
तिरकीब = तरकीब, युक्ति, उपाय
तिरमीम = कांट, छांट, संशोधन
तरन्निम = हल्का गाना, स्वर, माधुर्य
तिरवीज = तरवीज, रिवाज, प्रथा, प्रचार
तिरियाक = नाशक, जहर को नष्ट करना
तुजक = कानून, शान, विधान
तकब्बुर = गुरुर
तशवीश = खोज
तामीरे हयात = जिन्दगी बनाने वाली
तफहीस = ज्ञान
तिसल्ली = ढाढस, दिलासा, सांत्वना
तिस्लीम = मानना, स्वीकृति, प्रणाम
तिशबी = उपमा, तुलना, समानता
तिशखीस = मर्ज की जांच, परख
तशदुद = हिंसा, अत्याचार
तिशरीह = व्याख्या
तशफ्फी = दिलासा, सन्तोष, इतमीनान
तिशनगी = प्यास, ख्वाहिश, तृष्णा
तिशवीश = फिक्र, चिन्ता
तसादिम = टकराव, जंग
तिसदीक = सुबूत, प्रमाण, पुष्टि
तकरीब = कार्यक्रम
तकसीम = बंटवारा
तोहमत = आरोप, दोष
ता उम्र = उम्रभर
तक्सीम = बंटवारा
तदबीर = उपाय
तारीक = अन्धेरा
तखलीक = निर्माण
तारुफ = पहचान

तर्के-ताल्लुक = सम्बन्ध विच्छेद
तखत = चौकी, सिंहासन
तखत नशीनी = राजतिलक, अभिषेक
तखता = लकडी का चौडा और पतला टुकडा, फलक
तिखरीब = विनाश
तिखफीक = कमी, न्यूनता, आराम
तखलुस = उपनाम
तिखलीक = पैदा करना, उत्पत्ति, रचना
तखलीया = खाली करना, अकेलापन
तुखम = बीज, अंडा
तिखमीना = अन्दाजा
तिखफीफ = भय, डर, डराना, कमी
तिदारक = तदारुक, रोक थाम
तिदबीर = इलाज, उपाय, युक्ति
तक्सीम = विभाजन
तराब = मिट्टी, मृतिका
तिराश = तराशना, काटना, काटनेवाला
तिफ्ली = बचपन
तिदरीस = पढ़ाई, शिक्षा
तिदफीन = दफन करना
तोहमत = इल्जाम
तदबीर = उपाय
तहजीब = संस्कृति
तजकिया = सफाई शुद्धि
तजीन = सजावट, श्रृंगार
तसाहूल = कायरता, सुस्ती
तस्बी = खुदा का नाम रटने वाली मोती माला
तिस्खीर = विजय प्राप्त करना, फतेह करना
तिस्कीन = सन्तोष, शान्ति, ढाढस
तुसुलसुल = निरन्तर, लगातार
तिश्नालबी = प्यास
तरतीब = सिलसिला, अनुक्रम
तरजुमान = अनुवादक
तरजुमा = अनुवाद
तरजीह = प्रधानता देना
तरदुद = चिन्ता, उधेडबुन
तरदीद = खंडन, काट, प्रतिवाद
तिरसील = प्रेषण, भेजना
तुरश = खट्टा
तलब = चाहत
तीरगी = अन्धेरा
ताल्लुक = सम्बन्ध, लगाव
ताल्लुका = जागीर, जमींदारी
ताल्लुम = पढ़ना, अध्ययन
ताल्ली = शेखी, डींग
तामीर = निर्माण, बनाना, रचना
तामील = मानना, पूरा करना
तामिले हुक्म = हुक्म मानना, आज्ञा पालना
तदबीर = उपाय
तौकीर = आदर
तहरीर = लेखन
ताबीर = निर्माण
तिकजीब = खन्डन, झुटलाना
तिकरीम = आदर, स्वागत, आव भगत
तिकमील = पूरा करना
तलातिम = बाढ़ जोश
तिलाफी = बदला, क्षतिपूर्ति
तलख = कडवा, ना पसन्दीदा
तलफुज = बोलना, उच्चारण
तिलकीन = नसीहत, उपदेश
तलवुन = चपलता

द

देहर = संसार
दरहम-बरहम = अस्त-व्यस्त
दोजख = नर्क
दिल तन्हा = अकेला दिल
दैरो हरम = प्रार्थना की जगह, मस्जिद, मन्दिर
दीदा-ए-तर = रोती आंख
दियारे जां = प्राणों का क्षेत्र
दीन = धर्म
दाखिल = शामिल, प्रवेश, घुसना, गुजर, अन्दर आना

दार = सूली, फांसी
दाखिली = अन्दरूनी, मानसिक, रूहानी
दरमियां = दरम्यान, बीच मे
दाद = वाह वाह, प्रशंसा, न्याय
दारूल हुकुमत = राजधानी, शासन केन्द्र
दारूल सल्तनत = हुकुमत
दारुश शिफा = अस्पताल, चिकित्सालय
दारुल कजा = न्यायालय, कचहरी, अदालत
दारोगा = थानेदार, कोतवाल
दास्तान = कथा, कहानी
दाश्ता = उप पत्नी, रखैल, आशना
दालान = मैदान, बरामदा
दाम = जाल, फन्दा, कीमत, पैसा
दामन = छोर, पल्ला
दस्तयाब = उपलब्ध
दामने कोह = पहाड की गोद, पहाड की तराई
दाना = अकलमन्द, चतुर
दानाई = अकलमन्दी, बुद्धिमत्ता
दानिस्ता = जान बूझकर, ज्ञानपूर्वक
दानिश = अक्ल
दानिश्वर = अकलमन्द, बुद्धिमान, चतुर
दावर = इन्साफ करने वाला, न्यायी, ईश्वर
दाउ = छल, चाल, फरेब
दाइरा = घेरा, वृत, चक्कर
दाइम = सदा रहने वाला, स्थायी
दश्ते इमकां = जंगल की सम्भवनीयता
दश्त = जंगल
दरख्त = पेड

न

नीमकश = अध खुली
निकाह = शादी
नातवान = कमजोर
ना खुदा = मल्लाह, कश्ती खेने वाला
नवी = धर्मप्रचारक
नेमत = वरदान
नजूमी = ज्योतिषि
नदामत = शर्मिन्दगी
निफाज = लागू होना
नुशोनुमा = विकास
नाशर = प्रकाशक

प

पनाहगुजीन = शरणार्थी
पैकां = तीर
पामाली = दुर्दशा
पीरी = बुढ़ापा
पोशीदा = छुपा कर, पीछे से
पस-ए-गुब्बार = धूल के पीछे

फ

फनकार = अदाकार, कलाकार
फसाना = कथा, कहानी
फिक्र-फन = सोच और कला
फलक = आकाश
फरेब = धोखा
फआल = सक्रियता
फर्जद = सुपुत्र
फहश = अश्लील
फरिश्ता = देवदूत

ब

बयावां = जंगल
बिस्मिल = घायल
बन्द ए गम = दु:ख का बन्धन
बेनिंयाजाना = अलिप्त होना
बाम-व-दर = छत व दरवाजा
बे-सिम्त = दिशा हीन
बेदार करना = जगाना
बेसमर = बेकार, निष्फल, व्यर्थ
बेकिनार = असीम, विस्तीर्ण, फैला हुआ, अमर्यादित
बेदार = जागृत
बर्क = बिजली
बादबां = कश्ती का पाल
बेसूद = व्यर्थ
बाबे रहमत = दया का दरवाजा

बक्फे = अन्तराल
बज्म = महफिल
बहिश्त = स्वर्ग, जन्नत
बख्ली = कंजूसी

म

मकसद = इरादा, लक्ष्य
मुल्क = देश, राष्ट्र
मरहूम = स्वर्गीय
मेहरे मुनव्वर = चमकता हुआ सूरज
मक्तल = वध स्थल
मेहर-ओ-मुहब्बत = ममता और प्रेम
मजामीन = लेख
मजमून = भाग, अनुच्छेद, अन्तर्वस्तु, विषय
माहनामा = मासिक पत्रिका
महवश = चन्द्रमुखी
मजलिस = सभा, जश्न, महफिल
मरहले = कठिन काम
माली = दौलत
मुसलसल = लगातार
मरासिम = मेल जोल
मिकनातीसी = चुम्बकीय
मुतफिक = सहमत
मुस्तफीद = लाभान्वित
मुसन्निफीन = लेखक
मरहूम = स्वर्गीय
मेहर = दहेज
मुख्तलिफ = अलग
मलूल = उदास
मुतालिये = पढ़ने
मुख्तर सी = संक्षेप
मसायल = समस्यायें
मुब्तिला = घिरना
मौजू-ए बहस = चर्चा अथवा वार्ता का विषय
मसाफत = दूरी, फासला
मुतमुईन = सन्तुष्ट
मोतबर = महत्वपूर्ण
महाजरीन = निर्वासित
मुतालए = अध्ययन, पढ़ना
मकबूलियत = लोकप्रियता
महरूम = वंचित
महफूज = बचाना
मुनहसिर = निर्भर
मस्कन = घर

य

यखलख्त = अकस्मात्, अचानक

र

रस्मतन = रिवाज के मुताबिक
रिज्क = अन्न
रकाबत = नायिका के दो प्रेमियों के बीच की प्रतिद्वन्दता
रब्त = वास्ता, सम्बन्ध
रिसाले = नियम
रेजगार = रेगिस्तान
रिसायल = नियत कालिक
रसूल = दूत
रवायत = परम्परा
रुस्वा = बदनाम
राब्ता = सम्पर्क
रिदा = चादर

ल

लुगत = शब्द कोश
लतीफे = हंसी, मजाक

व

वजीरे आजम = प्रधान मन्त्री
वालिद = पिता
वजअ = वेशभूषा, हूलिया
वलीग = आलंकारिक
वहशत = आंतक, भय, डर
वाकिया = घटनायें
वजूद = अस्तित्व

श

शख्स = इन्सान, बन्दा

शजर = पेड
शौहर = पति
शफक = सुबह की लाली
शहरे वफा = प्रेम नगर
शख्सियत = व्यक्तित्व
शिकन = सिलवट
शामे हिजां = विरह की शाम
शोबा = शिक्षा विभाग
शरीअत = विधान
शाया = प्रकाशित

स

साहिल = ऊंचा नीचा किनारा
सुलूक = बर्ताव, व्यवहार
सदर = अध्यक्ष
साजगार = अनुकूल
सहाफी = पत्रकार
संजीदा = गम्भीर
सिफत = गुण
सरमाया = पूंजी
सवाब = नेकी का फल
सरगुजिश्त = आत्मकथा, आप बीती
सुकून = शान्ति
सहरा = जंगल
समर = फल
सामईन = सुनने वालों
सूरते हालात = हालात की स्थिति
सरपरस्ती = आश्रय
सरगर्म = सक्रिय
साकित = स्तब्ध
सफीना = कारवां, बेडा, सहारा
सलीका = ढंग से
सोहबत- संगति
सजदा = समर्पित, अल्लाह के आगे सर झुकाना
सदका = खैरात, मेहरबानी
सिम्त = दिशा, तरफ

ह

होशरुबा = माशूक
हमाम खाना = स्नान घर
हुक्मरानी-ए-शब = रात का राज
हिस-ए-मिजाह = विनोद की संवेदन शक्ति
हजूम/हुजूम = भीड, जन समुदाय
हदायत, हिदायत = हुक्म, निर्देश
हिजयान/हजयान = बकवास, बडबडाना
हब्बा नामा/ हिबा नाम = दान पत्र
हत्तक/हत्क = अनादर, अपमान, बेइज्जत
हिजरत/हिजत = प्रवास, कूच करना
हदायतकार/हिदायतकार = निर्देशक, हिदायत देनेवाला
हुरमत = गरिमा, सम्मान
हुनर = प्रतिमा
हबस = घुटन
हसूल = प्राप्ति
हाली = हल चलानेवाला, किसान
हिज्र = वियोग, जुदाई, विरह, फिराक
हया = शर्म
हुकूक = अधिकार
हमनशी = साथ उठने बैठनेवाले

"बरसात में तालाब हो जाते है कम जर्फ लेकिन समन्दर कभी आपे से बाहर नहीं होता।"

"ठीक है सितारों पर तो घूम आये हम, पर सलीका आया नहीं हमें जमीं पर चलने का।"

"ऐ खुदा तेरे जादू में भी क्या करिश्मा, मुहब्बत करता है यह मिट्टी से बना आदमी।"

"लबों पर हंसी की बहार रखना, जिन्दगी को गुल-ए गुलजार रखना।
गम के सायों से कभी कदम ना भटके, खुद पर इतना एतबार रखना।।"

राम अमृत वाणी

राम कृपा अवतरण

परम कृपा सुरूप है, परम प्रभु श्री राम। जन पावन परमात्मा, परम पुरुष सुख धाम ।।१।।
सुखदा है शुभा कृपा, शक्ति शान्ति स्वरूप। है ज्ञान आनन्द, मयी, राम कृपा अनूप ।।२।।
परम पुण्य प्रतीक है, परम ईश का नाम। तारक मंत्र शक्ति घर, बीजाक्षर है राम ।।३।।
साधक साधन साधिए, समझ सकल शुभ सार। वाचक वाच्य एक है, निश्चित धार विचार ।।४।।
मंत्रमय ही मानिए, इष्ट देव भगवान्। देवालय है राम का, राम शब्द गुण खान ।।५।।
राम नाम आराधिए, भीतर भर ये भाव। देव दया अवतरण का, धार चौगुना चाव ।।६।।
मन्त्र धारणा यों कर, विधि से ले कर नाम। जपिए निश्चय अचल से, शक्ति धाम श्री राम ।।७।।
यथा वृक्ष भी बीज से, जल रज ऋतु संयोग। पाकर विकसे क्रम से, त्यों मन्त्र से योग ।।८।।
यथा शक्ति परमाणु में, विद्युत् कोष समान। हे मन्त्र त्यों शक्तिमय, ऐसा रखिए ध्यान ।।९।।
ध्रुव धारणा धार यह, राखिए मन्त्र निधान। हरि-कृपा अवतरण का, पूर्ण रखिए ज्ञान ।।१०।।
आता खिड़की द्वार से, पवन तेज का पूर। है कृपा त्यों आ रही, करती दुर्गुण दूर ।।११।।
बटन दबाने से यथा, आती बिजली धार। नाम जाप प्रभाव से, त्यों कृपा अवतार ।।१२।।
खोलते ही जल जल ज्यों, बहता वारि बहाव। जप से कृपा अवतरित हो, तथा सजग कर भाव ।।१३।।
राम शब्द को ध्याइये, मन्त्र तारक मान। स्वशक्ति सत्ता जग करे, उपरि चक्र को यान ।।१४।।
दशम द्वार से हो तभी, राम कृपा अवतार। ज्ञान शक्ति आनन्द सह, साम शक्ति संचार ।।१५।।
देव दया स्वयंशक्ति का, सहस्र कमल में मिलाप। हो सत्पुरुष संयोग से, सर्व नष्ट हों पाप ।।१६।।

नमस्कार सप्तक

करता हूं मैं वन्दना, नत शिर बारम्बार। तुझे देव परमात्मन्, मंगल शिव शुभकार ।।१।।
अंजलि पर मस्तक किये, विनय भक्ति के साथ। नमस्कार मेरा तुझे, होवे जग के नाथ ।।२।।
दोनों कर को जोड़ कर, मस्तक घुटने टेक। तुझको हो प्रणाम मम, शत शत कोटि अनेक ।।३।।
पाप-हरण मंगल-करण, चरण शरण का ध्यान। धार करूँ प्रणाम मैं, तुझ को शक्ति-निधान ।।४।।
भक्ति-भाव शुभ-भावना, मन में भर भरपूर। श्रद्धा से तुझ को नमूँ मेरे राम हजूर ।।५।।
ज्योतिर्मय जगदीश हे, तेजोमय अपार। परम पुरुष पावन परम, तुझको हो नमस्कार ।।६।।
सत्यज्ञान आनन्द के, परम धाम श्री राम। पुलकित हो मेरा तुझे, होवे बहु प्रणाम ।।७।।
परमात्मा श्री राम परम सत्य, प्रकाश, रूप, परम ज्ञानानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान,
एकैवाद्वितीय परमेश्वर, परम पुरुष, दयालु देवाधिदेव है, उस को बार-बार
नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार ।।

अमृत-वाणी

रामामृत पद पावन वाणी, राम नाम धुन सुधा समानी। पावन पाठ राम गुण ग्राम, राम राम जप राम ही राम ।।१।।
परम सत्य परम विज्ञान, ज्योति-स्वरूप राम भगवान। परमानन्द, सर्वशक्तिमान, राम परम है राम महान् ।।२।।
अमृत वाणी नाम उच्चारण, राम राम सुखसिद्धि-कारण। अमृत-वाणी अमृत श्री नाम, राम-राम मुद मंगलधाम।।३।।

अमृतरूप रामगुण गान, अमृत-कथन राम व्याख्यान। अमृत-वचन राम की चर्चा, सुधा सम गीत राम की अर्चा।।४।।
अमृत मनन राम का जाप, राम राम प्रभु राम अलाप। अमृत चिन्तन राम का ध्यान, राम शब्द में शुचि समाधान।।५।।
अमृत रसना वही कहावे, राम राम जहाँ नाम सुहावे। अमृत कर्म नाम कमाई, राम राम परम सुखदाई।।६।।
अमृत राम नाम जा ही ध्यावे, अमृत पद सो ही जन पावे। राम नाम अमृत रस सार, देता परम आनन्द अपार।।७।।
राम राम जप हे मना, अमृत वाणी मान। राम नाम में राम को, सदा विराजित जान।।८।।
राम नाम मुद मंगलकारी, विघ्न हरे सब पातक हारी। राम नाम शुभ शकुन महान्, स्वस्तिशान्ति शिवकर कल्याण।।९।।
राम राम श्री राम विचार, मानिए उत्तम मंगलाचार। राम राम मन मुख से गाना, मानो मधुर मनोरथ पाना।।१०।।
राम नाम जो जन मन लावे, उस में शुभ सभी बस जावे। जहां हो राम नाम धुन-नाद, भागें वहां से विषम विषाद।।११।।
राम नाम मन-तप्त बुझावे, सुधा रस सींच शांति ले आवे। राम राम जपिए कर भाव, सुविधा सुविधि बने बनाव।।१२।।
राम नाम सिमरो सदा, अतिशय मंगल भूल। विषम-विकट संकट हरणा, कारक सब अनुकूल।।१३।।
जपना राम राम है सुकृत, राम नाम है नाशक दुष्कृत। सिमरे राम राम ही जो जन, उस का हो शुचितर तन मन।।१४।।
जिस में राम नाम शुभ जागे, उस के पाप ताप सब भागे। मन से राम नाम जो उच्चारे, उस के भागें भ्रम भय सारे।।१५।।
जिस में बस जाय राम सुनाम, होवे वह जन पूर्णकाम। चित्त में राम राम जो सिमरे, निश्चय भव सागर से तरे।।१६।।
राम सिमरन होवे सहाई, राम सिमरन है सुखदाई। राम सिमरन सब से ऊंचा, राम शक्ति सुख ज्ञान समूचा।।१७।।
राम राम ही सिमर मन, राम राम श्री राम, राम राम श्री राम भज, राम राम हरि नाम।।१८।।
मात-पिता बान्धव सुत दारा, धन जन साजन सखा प्यारा। अन्त काल दे सके न सहारा, राम नाम तेरा तारन हारा।।१९।।
सिमरन राम नाम है संगी, सखा स्नेही सुहृद् शुभ अंगी। युग युग का है राम सहेला, राम भक्त नहीं रहे अकेला।।२०।।
निर्जन वन विपद् हो घोर, निबड़ निशा तम सब ओर। जोत जब राम नाम की जगे, संकट सर्व सहज से भगे।।२१।।
बाधा बड़ी विषय जब आवे, वैर विरोध विघ्न बढ़ जावे। राम नाम जपिए सुख दाता, सच्चा साथी जो हितकर त्राता।।२२।।
मन जब धैर्य को नहीं पावे, कुचिन्ता चित्त को चूर बनावे। राम नाम जपे चिन्ता चूरक, चिन्तामणि चित्त चिन्तन पूरक।।२३।।
शोक सागर हो उमड़ा आता, अति दु:ख में मन घबराता। भजिए राम राम बहु बार, जन का करता बेड़ा पार।।२४।।
कड़ी घड़ी कठिनतर काल, कष्ट कठोर हो क्लेश कराल। राम राम जपिए प्रतिपाल, सुख दाता प्रभु दीनदयाल।।२५।।
घटना घोर घटे जिस बेर, दुर्जन दुखड़े लेवें घेर। जपिए राम नाम बिन देर, रखिए राम राम शुभ टेर।।२६।।
राम नाम हो सदा सहायक, राम नाम सर्व सुखदायक। राम राम प्रभु राम की टेक, शरण शान्ति आश्रय है एक।।२७।।
पूंजी राम नाम की पाइये, पाथेय साथ नाम ले जाइये। नाशे जन्म मरण का खटका, रहे राम भक्त नहीं अटका।।२८।।
राम राम श्री राम है, तीन लोक का नाथ। परम पुरुष पावन प्रभु, सदा का संगी साथ।।२९।।
यज्ञ तप ध्यान योग ही त्याग, बन कुटी वास अति वैराग। राम नाम बिना नीरस फोक, राम राम जप तरिए लोक।।३०।।
राम जाप सब संयम साधन, राम जाप है कर्म आराधन। राम जाप है परम अभ्यास, सिमरो राम नाम सुख-रास।।३१।।
राम जाप कही ऊँची करणी, बाधा विघ्न बहु दु:ख हरणी। राम राम महा-मन्त्र जपना, है सुव्रत नेम तप तपना।।३२।।
राम जाप है सरल समाधि, हरे सब आधि व्याधि उपाधि। ऋद्धि सिद्धि और नव निधान, दाता राम है सब सुख खान।।३३।।
राम राम चिन्तन सुविचार, राम राम जप निश्चय धार। राम राम श्री राम ध्याना, है परम पद अमृत पाना।।३४।।
राम राम श्री राम हरि, सहज परम है योग। राम राम श्री राम जप, दाता अमृत भोग।।३५।।
नाम चिन्तामणि रत्न अमोल, राम नाम महिमा अनमोल। अतुल प्रभाव अति प्रताप, राम नाम कहा तारक जाप।।३६।।
बीज अक्षर महा-शक्ति-कोष, राम राम जप शुभ सन्तोष। राम राम श्री राम राम मंत्र, तन्त्र बीज परात् पर यन्त्र।।३७।।
बीजाक्षर पद पद्म प्रकाशे, राम राम जप दोष विनाशे। कुंडलिनी बोधे शुष्मणा खोले, राम मंत्र अमृत रस घोले।।३८।।
उपजे नाद सहज बहु भांत, अजपा जाप भीतर हो शान्त। राम राम पद शक्ति जगावे। राम राम धुन जभी रमावे।।३९।।

राम नाम जब जगे अभंग, चेतन भाव जगे सुख-संग। ग्रन्थी अविद्या टूटे भारी, राम लीला की खिले फुलवारी।।४०।।
पतित पावन परम पाठ, राम राम जप याग। सफल सिद्धि कर साधना, राम नाम अनुराग।।४१।।
तीन लोक का समझिए सार, राम नाम सब ही सुखकार। राम नाम की बहुत बड़ाई, वेद पुराण मुनि जन गाई।।४२।।
यति सती साधु संत सयाने, राम नाम निश दिन बखाने। तापस योगी सिद्ध ऋषिवर, जपते राम राम सब सुखकर।।४३।।
भावना भक्ति भरे भजनीक, भजते राम नाम रमणीक। भजते भक्त भाव भरपूर, भ्रम भय भेद-भाव से दूर।।४४।।
पूर्ण पंडित पुरुष प्रधान, पावन परम पाठ ही मान। करते राम राम जप ध्यान, सुनते राम अनाहद तान।।४५।।
इस में सुरति सुर रमाते, राम राम स्वर साध समाते। देव देवीगण दैव विधाता, राम राम भजते गणत्राता।।४६।।
राम राम सुगुणी जन गाते, स्वर संगीत से राम रिझाते। कीर्तन कथा करते विद्वान, सार सरस संग साधनवान्।।४७।।
मोहक मंत्र अति मधुर, राम राम जप ध्यान। होता तीनों लोक में, राम नाम गुण गान।।४८।।
मिथ्या मन-कल्पित मत-जाल, मिथ्या है मोह कुमद बैताल। मिथ्या मन मुखिया मनोराज, सच्चा है राम नाम जप काज।।४९।।
मिथ्या है वाद विवाद विरोध, मिथ्या है वैर निंदा हठ क्रोध। मिथ्या द्रोह दुर्गुण दुःख खान, राम नाम जप सत्य निधान।।५०।।
सत्य मूलक है रचना सारी, सर्व सत्य प्रभु राम पसारी। बीज से तरु मकड़ी से तार, हुआ त्यों राम से जग विस्तार।।५१।।
विश्व वृक्ष का राम है मूल, उस को तू प्राणी कभी न भूल। साँस साँस से सिमर सुजान, राम राम प्रभु राम महान्।।५२।।
लय उत्पत्ति पालना रूप, शक्ति चेतना आनंद स्वरूप। आदि अन्त और मध्य है राम, अशरण शरण है राम विश्राम।।५३।।
राम नाम जप भाव से, मेरे अपने आप। परम पुरुष पालक प्रभु, हर्ता पाप त्रिताप।।५४।।
राम नाम बिना वृथा विहार, धन धान्य सुख भोग पसार। वृथा है सब सम्पद सम्मान, होवे तन यथा रहित प्राण।।५५।।
नाम बिना सब नीरस स्वाद, ज्यों हो स्वर बिना राग विषाद। नाम बिना नहीं सजे सिंगार, राम नाम है सब रस सार।।५६।।
जगत् का जीवन जानो राम, जग की ज्योति जाज्वल्यमान। राम नाम बिना मोहिनी माया, जीवन-हीन यथा तन छाया।।५७।।
सूना समझिए सब संसार, जहां नहीं राम नाम संचार। सूना जानिए ज्ञान विवेक, जिस में राम नाम नहीं एक।।५८।।
सूने ग्रंथ पन्थ मत पोथे, बने जो राम नाम बिन थोथे। राम नाम बिन वाद विचार, भारी भ्रम का करे प्रचार।।५९।।
राम नाम दीपक बिना, जन-मन में अंधेर। रहे, इस से हे मम मन, नाम सुमाला फेर।।६०।।
राम राम भज कर श्री राम, करिए नित्य ही उत्तम काम। जितने कर्तव्य कर्म कलाप, करिए राम राम कर जाप।।६१।।
करिए गमनागम के काल, राम जाप तो करता निहाल। सोते जगते सब दिन याम, जपिए राम राम अभिराम।।६२।।
जपते राम नाम महा माला, लगता नरक द्वार पै ताला। जपते राम राम जप पाठ, जलते कर्मबन्ध यथा काठ।।६३।।
तान जब राम नाम की टूटे, भांडा भरा अभाग्य भय फूटे। मनका है राम नाम का ऐसा, चिन्ता-मणि पारस-मणि जैसा।।६४।।
राम नाम सुधा-रस सागर, राम नाम ज्ञान गुण-आगर। राम नाम श्री राम महाराज, भव-सिन्धु में है अतुल जहाज।।६५।।
राम नाम सब तीर्थ स्थान, राम राम जप परम स्नान। धो कर पाप-ताप सब धूल, कर दे भय-भ्रम को उन्मूल।।६६।।
राम जाप रवि-तेज समान, महा मोह-तम हरे अज्ञान। राम जाप दे आनन्द महान्, मिले उसे जिसे दे भगवान्।।६७।।
राम नाम को सिमरिये, राम राम एक तार। परम पाठ पावन परम, पतित अधम दे तार।।६८।।
माँगू मैं राम-कृपा दिन रात, राम-कृपा रहे सब उत्पात। राम-कृपा लेवे अन्त सम्हाल, राम प्रभु है जन प्रतिपाल।।६९।।
राम कृपा है उच्चतर योग, राम-कृपा है शुभ संयोग। राम-कृपा सब साधन-मर्म, राम कृपा संयम सत्य धर्म।।७०।।
राम नाम को मन में बसाना, सुपथ राम-कृपा का है पाना। मन में राम-धुन जब फिरे, राम-कृपा तब ही अवतरे।।७१।।
रहूँ मैं नाम में हो कर लीन, जैसे जल में हो मीन अदीन। राम-कृपा भरपूर मैं पाऊँ, परम प्रभु को भीतर लाऊँ।।७२।।
भक्ति-भाव से भक्त सुजान, भजते राम-कृपा का निधान। राम कृपा उस जन में आवे, जिस में आप ही राम बसावे।।७३।।
कृपा-प्रसाद है राम की देनी, काल-व्याल जंजाल हर लेनी। कृपा-प्रसाद सुधा-सुख-स्वाद, राम नाम दे रहित विवाद।।७४।।
प्रभु-प्रसाद शिव शान्ति दाता, ब्रह्म-धाम में आप पहुंचाता। प्रभु-प्रसाद पावे वह प्राणी, राम राम जपे अमृत वाणी।।७५।।

औषध राम नाम की खाइये, मृत्यु जन्म के रोग मिटाइये। राम नाम अमृत रस-पान, देता अमल अचल निवाण।।७६।।
राम राम धुन गूंज से, भव भय जाते भाग। राम नाम धुन ध्यान से, सब शुभ जाते जाग।।७७।।
माँगू मैं राम नाम महादान, करता निर्धन का कल्याण, देव द्वार पर जन्म का भूखा, भक्ति प्रेम अनुराग से रूखा।।७८।।
पर हूँ तेरा- यह लिये टेर, चरण पड़े की रखियो मेर। अपना आप विरद विचार, दीजिए भगवन् नाम प्यार।।७९।।
राम नाम ने वे भी तारे, जो थे अधर्मी अधम हत्यार। कपटी कुटिल कुकर्मी अनेक, तर गये राम नाम ले एक।।८०।।
तर गये धृति धारणा हीन, धर्म-कर्म में जन अति दीन। राम राम श्री राम जप जाप, हुए अतुल विमल अपाप।।८१।।
राम नाम मन मुख में बोले, राम नाम भीतर पट खोले। राम नाम से कमल विकास, होवें सब साधन सुख-रास।।८२।।
राम नाम घट भीतर बसे, साँस साँस नस नस से रसे। सपने में भी न बिसरे नाम, राम राम श्री राम राम राम।।८३।।
राम नाम के मेल से, सध जाते सब काम। देव-देव देवे यदा, दान महा सुख धाम।।८४।।
आहो मैं राम नाम धन पाया, कान में राम नाम जब आया। मुख से राम नाम जब गाया, मन से राम नाम जब ध्याया।।८५।।
पा कर राम नाम धन-राशी, घोर अविद्या विपद् विनाशी। बढ़ा जब राम प्रेम का पूर, संकट संशय हो गये दूर।।८६।।
राम नाम जो जपे एक बेर, उस के भीतर कोष कुबेर। दीन दुखिया दरिद्र कंगाल, राम राम जप होवे निहाल।।८७।।
हृदय राम नाम से भरिए, संचय राम नाम धन करिए। घट में नाम मूर्ति धरिए, पूजा अन्तर्मुख हो करिए।।८८।।
आँखे मूँद के सुनिए सितार, राम राम सुमधुर झंकार। उस में मन का मेल मिलाओ, राम राम सुर में ही समाओ।।८९।।
जपूँ मैं राम राम प्रभु राम, ध्याऊँ मैं राम राम हरे राम। सिमरूँ मैं राम राम प्रभु राम, गाऊँ मैं राम राम श्री राम।।९०।।
अमृत वाणी का नित्य गाना, राम राम मन बीच रमाना। देता संकट विपद निवार, करता शुभ श्री मंगलाचार।।९१।।
राम नाम जप पाठ से, हो अमृत संचार। राम-धाम में प्रीति हो, सुगुण-गण का विस्तार।।९२।।
तारक मंत्र राम है, जिस का सुफल अपार। इस मंत्र के जाप से, निश्चय बने निस्तार।।९३।।

धुन

बोलो राम बोलो राम, बोलो राम राम राम।
श्री राम श्री राम श्री राम श्री राम।
जय जय राम, जय जय राम जय जय राम राम राम।
जय राम जय राम जय राम, राम राम राम राम, जय जय राम।
पतित पावन नाम, भज ले राम राम राम। भजले राम राम राम, भज ले राम राम राम।
अशरण शरण शान्ति के धाम, मुझे भरोसो तेरा राम। मुझे भरोसा तेरा राम, मुझे भरोसा तेरा राम।
रामाय नम: श्री रामाय नम:, रामाय नम: श्री रामाय नम:।
अहं भजामि रामं, सत्यं शिवं सुन्दरम्। सत्यं शिवं सुन्दरम्, सत्यं शिवं सुन्दरम्।।

लेखक - श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज

सर्वोच्च सौन्दर्य को पाना ही ईश्वर को पाना है।

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है।

* * *

HHH(७९८)HHH

उपसंहार

हे दिल तुझे कसम है, तू कभी हिम्मत न हारना। दिन जिंदगी के जैसे भी गुजरें खुशी से गुजारना।

देश भक्ति व आध्यात्मिक जागरण का लख जगाता। उत्कृष्ट पुरातन सांस्कृतिक धरोहर के उजागरार्थ तथा चारित्रिक क्रांति के लिए प्रयासरत।

भारत विश्व का धर्म गुरु रहा है तथा हमारी सभ्यता संस्कृति तकरीबन ५००० वर्ष पुरानी है। यह शून्य, बीजगणित, त्रिकोणमिती, केलकुलस, पाई व दशमलव, प्रणाली, आयुर्वेद, नौवहन व शल्य चिकित्सा का जन्मदाता देश है। इसकी भाषा संस्कृत सभी यूरोपीय भाषाओं की जननी तथा नालंदा विश्व का प्राचीनतम विश्व विद्यालय रहा है। विश्व में सबसे पहला जलाशय व बांध भारत के ही सौराष्ट्र में बना और विश्व की प्राचीनतम सभ्यता यहीं पनपी।

भारतीय संस्कृति व दर्शन की जानकारी वर्तमान पीढी को हो इसलिए देश की ये और अन्य स्वर्णिम व गौरवमयी उपलब्धियों का संकलन है ताकि प्रत्येक भारत वासी अपने को गौरवान्वित महसूस कर सके। आज हमारी संस्कृति से प्रभावित होकर विदेशों से लोग इसे जानने एवं समझने यहाँ आते हैं।

आज सारे संसार में जीवन की जटिलतायें बढ़ती जा रही है। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में संलग्न है। वे अपने क्षुद्र स्वार्थ की सिद्धि के लिए दूसरों का, यहां तक की देश का अहित करने में भी कोई संकोच नहीं करते। कलि का प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। भौतिक मूल्य प्रखर हो रहे हैं और नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मानवता लुप्त होती जा रही है तथा सद्भावना खत्म होती जा रही है।

इस विषम स्थिति का समाधान है आध्यात्म जागरण जो कि मनुष्य को कर्तव्य पारायणता का आभास कराके कल्याण पथ पर अग्रसर करता है। मूल्यपरक सदसाहित्य इसमें अत्यन्त उपादेय है जो जीवन के मूल्यों को उजागर करके ज्ञान वर्धन व चरित्र विकास करता है जिससे मनुष्य अपने जीवन में मानवोचित गुणों का समावेश करके अपने कर्तव्यों को पहचान कर उनका निष्ठापूर्वक पालन कर सके। नैतिक मूल्यों का प्रचार प्रसार मानव जीवन को नई चेतना तथा नवीन, स्वस्थ और मनोरम दिशा दर्शाता है ताकि वह अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति में उन मूल्यों का समावेश कर सके और लोक कल्याण व राष्ट्र कल्याण में अपना योगदान दे सके। गांधीजी का नया सिद्धान्त- सत्य ही ईश्वर है आज भी उतना ही प्रासंगिक है। आध्यात्मिक मार्ग ही ऐसा मार्ग है, जिस पर चलकर इन्सान देवता व भगवान भी बन जाता है।

बदलते परिवेश में लोगों को विशेषत: युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति से परिचय करवाना और उनमें अच्छे संस्कार पैदा कर उन्हें सन्मार्ग पर अग्रसर करना समय की आवश्यकता है। जनमानस में आपसी सहिष्णुता, सद्भाव का आविर्भाव व चरित्र निर्माण का मुख्य उद्देश्य है। देशवासियों में जीवन के मूल्यों के प्रति आस्था जगाकर देश भक्ति की और प्रेरित करता है तथा जीवन के सकारात्मक पक्ष को रेखांकित करके सकारात्मक जीवन की और अग्रसर करता है।

वर्तमानकाल में किशोर और बालकों को सदाचारी व संस्कारी बनाने की महती आवश्यकता है। भौतिकवाद की चकाचौंध एवं आकर्षण के इस युग में जब भारतीय धर्म व संस्कृति के तत्वदर्शन मेघाछन्न हो रहे है, धर्म संस्कार लुप्त प्राय हो रहे है तब नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा एवं सद्वृत्तियों से सुसांस्कृतिक संस्कारों की महती आवश्यकता प्रतीत होती है और आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अभ्युत्थान जरूरी हो जाता है तथा समाज में सात्विकता जागृत करने वाले साहित्य की मांग बढ़ने लगती है। अपने मन को सद् वृतियों में संलग्न कर अमृत्व-प्राप्ति की ओर सतत सचेष्ट होना जन-मानस का कर्तव्य है, सुकर्मों में ही जीवन का साफल्य है।

समाज को भगवतोन्मुखी बनाकर जन मानस को उर्ध्वोन्मुखी विकास तथा लोककल्याण के लिए प्रेरित कर सके तथा सामाजिक समरसता बनायी रखी जा सके। इससे मनुष्य को सकारात्मक जीवन जीने की भी प्रेरणा मिलती है। किसी भी जाति, समाज या राष्ट्र की उन्नति चरित्रवान मानवों पर ही निर्भर करती है। संस्कारित व्यक्ति राष्ट्र व समाज की धरोहर होता है। हम उच्च आदर्शों एवं

मानवीय मूल्यों को आत्मसात करके ही लोकमंगल व लोक कल्याण के प्रति समर्पित हो सकते हैं।

आध्यात्मिक साहित्य सम्यक मानवता को आध्यात्मिक प्रकाश व सांस्कृतिक पुनर्रूत्थान के अलावा व्यवाहारिक संदेश देने में समर्थ होता है। उसे कर्तव्य ज्ञान, धर्म, पुण्य और भक्ति के पथ पर चलने के लिये प्रेरित करते हैं तथा अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने के लिए भी निरंतर प्रेरित करते रहते है।

जीवन को सफल बनाने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान, सद्व्यवहार, सुसंस्कार व सदाचार की महती आवश्यकता है। समाज के आध्यात्मिक सांस्कृतिक व चारित्रिक उत्थान के लिए सदसाहित्य प्रकाश स्तम्भ की तरह उपयोगी सिद्ध होते हैं। ज्ञान, भक्ति व अध्यात्म के बिन्दुओं का संयोजन कर जीवन को अध्यात्म की ओर प्रेरित करने के उद्देश्य से सदसाहित्य का प्रकाशन तथा उसका प्रचार-प्रसार किया जाता है।

वंदन से बंधन छूट जाते है। भोग से योग की तरफ बढ़कर भक्ति से शक्ति व मुक्ति प्राप्त की जा सकती है और ठाकुरजी की शरण में जानेसें ठोकर नहीं खानी पड़ती है। प्रार्थना से आत्मबल की प्राप्ति एवं परमात्मा से संयोग होता है और मानव अपने लक्ष्य में सफल होता है तथा वासना छोड़कर उपासना का मार्ग अपना लेता है।

मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सब तेरा। तेरा तुझको सौंपते, क्या लागत है मोरा। रोजमर्रा की जिंदगी भौतिक संसाधनों को जुटाने और जीविका के लिए धन कमाने में लगी रहती है। आमतौर पर हमारी चाह और चिंता हमें हमेशा असंतुलित करती रहती है। लेकिन जिसने जीवन में अपनी जरूरतों यानी कितना चाहिए- को समझ लिया- वह बेखौफ प्रभु को सब समर्पित करते हुए कह उठता है- तेरा तुझको अर्पण। धरती की हर वस्तु और कण पर हमारा अधिकार केवल उतना है, जिससे हम सुखपूर्वक जिंदा रह सकें। इसलिए उसका उसे (प्रभु को) सौंपने में कैसा डर ? भगवत् गीता और उपनिषद में निष्काम कर्म करने की सलाह इसलिए दी गई है, जिससे हमारे अंदर लोभ, मोह, क्रोध, असत्य और स्वार्थवादी दुर्भावनाएं न पनप सकें। दरअसल हमें उतना ही चाहिए, जिससे हमारा व परिवार का ठीक से भरण-पोषण हो सके। आज मनुष्य हर वक्त अभाव में जी रहा है। इससे चाह और चिंता मन में हमेशा बनी रहती है। भौतिक वस्तुओं की चाह का बने रहने का मतलब चिंताग्रस्त होना। जाहिर है चिंता व्यक्ति को अंदर से कमजोर नहीं करती, बल्कि यह हमें शारीरिक रूप से भी कमजोर करती है। चिंता का अर्थ है सब कुछ दुरुस्त न होना। अब सवाल उठता है कि इसे दुरुस्त कैसे किया जाए ? इसका समाधान आध्यात्मिक रूप से ही किया जा सकता है। संत कबीर कहते हैं- चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह! यह संत स्वभाव है। चाह का कोई अंत नहीं है और भौतिक संपन्नता के लिए चाह और चिंता, हमें ईश्वरीय-चाह और ईश्वरीय-चिंतन से दूर हटाती है। अतिमहत्वाकांक्षा व्यक्ति के साधन और साध्य दोनों को प्रभावित करती है। इसलिए क्या चाहिए.. कितना चाहिए और किस तरह चाहिए... यह स्पष्ट होना जरूरी है। इन तीनों सवालों के हल के लिए अध्यात्म को समझना बहुत जरूरी है। संत परंपरा में सूफी परंपरा रहस्यवादी तथा निराली मानी जाती है। व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और जगत के रिश्तों का अद्भुत समन्वय सूफियों के पास पाया जाता है। जिस व्यक्ति ने आत्मा को समझ लिया और परमात्मा को हासिल कर लिया, उसे और कुछ भी नहीं चाहिए। संत कबीर की नजरों में वह ही शहंशाह है, जिसने भाव-अभाव, स्वभाव-दुरभाव और अपने-पराए के भेद को समझकर सार को (तत्व) अपना लिया, वह ही सच्चा प्रभुभक्त और संत माना गया है। माया को ठगिनी इसलिए कहा गया, क्योंकि इससे जो सुख मिलता है, वह शांतिदायक नहीं होता। हम खुद को बहुत बड़े शहंशाह समझते हैं, लेकिन रोजमर्रा की जिंदगी ठीक इसके खिलाफ होती है। वास्तव में ऐसी जिंदगी हमें मूल उद्देश्य यानी परम चेतना की प्राप्ति से दूर हटाती है। इसलिए वेदशास्त्रों तथा महापुरुषों ने सत्संग करने की सलाह दी है। इससे चाह और चिंता, तुम्हारा-हमारा के सारे भेद खत्म हो जाते हैं।

इस ग्रन्थ द्वारा वेदान्त और विज्ञान की प्रेरणा का समन्वय करते हुये अध्यात्म को जागरण करने का प्रयास किया है। इस ग्रन्थ से हर मानव को अध्यात्म की ओर प्रेरित करने के लिये तथा स्वयं को जानने के लिये व सुखपूर्वक आनन्दपूर्वक जीने के लिये, अपना जीवन सौन्दर्यपूर्ण रंगीन बनाकर सबको साथ लेकर प्रकृति के साथ-साथ चल कर जीवन जीने का प्रयास करना सिखाया है। हर वस्तु कि क्रिया में सौन्दर्य को देखो और आनन्द उठाओ तो ही जीवन का सही सत्य है।

- महेन्द्रकुमार पाटोदिया

HHH(८००)HHH

* ज्ञानसागर *

लेखक किसी विशेष जाति या सम्प्रदाय का नही होता है।

शमा बुझ जाए तो जल सकती है, कश्ती हर तूफां से गुजर सकती है।
मायूस ना हो, इरादे ना बदल, तकदीर किसी वक्त भी बदल सकती है।

* संग्रीकरण :- सौ. प्रगती प्रभाकर अकिम

* छायांकन :- श्री. परमानन्द चंचलानी
स्वर्णकला प्रिंटर्स अँन्ड अॅडव्हर्टायजर्स, २४८/३, रास्ता पेठ, पुणे - २

* कागज पूर्ती :- के. एन. कॉर्पोरेशन, अप्पा बळवंत चौक, पूना-२

* प्रकाशन :- १) पार्टस् कॉटेज, ६-ए, ताडीवाला रोड, दिवाडकर अपार्टमेंटस्, पुणे- ४११००१

* संशोधन, शुद्धिकरण:- श्री. अशोक चांदमल सिंहल

* प्रेषक व्यवस्था :- १) श्री मोहन तुलस्यान (तुलस्यान एक्सप्रेस कुरिअर) फोन नं.२६११९२९१,
३, सागर अपार्टमेंटस्, फ्लॅट नं.८, ताडीवाला रोड, पूना-४११००१
घर-२६०५०७६१ मो.९८२३०४४८३२

२) श्री शशी सराफ (ओरिजन कुरिअर) फोन नं. २६१११२३२
नरपतगिरी चौक, रंजित कॉम्प्लेक्स, शॉप नं.१४-१५,न्यु मंगलवार पेठ,पूना-२

३) श्री रामगोपाल केडिया (स्पीडमॅन एक्सप्रेस) फोन नं. २२०८७७५०,
१९१-बी, पहिला मजला, नाइन्थ कॅवेल एक्स-लेन,
डॉ. वेगाज स्ट्रीट, कालबादेवी रोड, मुंबई-४००००२

* संपादन व संग्रहकर्ता :- श्री. महेन्द्रकुमार अनन्तराम पाटोदिया
कोनार्क इन्क्लेव्ह, बी-८, बंड गार्डन रोड, पुणे - १
फोन नं. - २६१२२६७२, २६०५९६७४, २६०५९५०९

सत्य शाश्वत है, सत्य परेशान हो सकता है, लेकिन पराजित नहीं।

* मूल्य - आपकी शुभेच्छा

ग्रन्थ प्राप्ति का स्थान

सर्वश्रेष्ठ दान ज्ञानदान है। अन्य सभी दान निम्न श्रेणी के हैं। किसी को दो रोटी देकर तुम किसी की क्षुधा को चार घण्टे के लिए शान्त कर सकते हो किन्तु ज्ञानदान से तुम उसे अनेक जन्मों तक लाभ पहुँचा सकते हो।

१) महालक्ष्मी मंदिर,
नेहरू स्टेडियम के पास,
सारस बाग, पुणे- ४११०३७

२) नारायणी देवी सांस्कृतिक भवन ट्रस्ट, (राणी सती मन्दिर)
सर्व्हे नं. ७४/१-बी/२, प्लॉट नं. १८-१९,
कात्रज दूध डेअरी के पीछे, सातारा रोड,
पुणे- ४११ ०४६ फोन नं. २४३६५१५१

३) अमरनाथ अगरवाल
१०३१, बुधवार पेठ, जगोबादादा तालीम के पास,
पूना-४११००२ फोन नं. ऑ.२४४७३३१० घर-२५४३०२७४

४) श्री राधेलाल पाटोदिया (राधामंडल)
३१/२, कोरेगांव पार्क, राधाकुंज, आशियाना पार्क के सामने,
पूना-४११००१ फोन नं. घर-२६१२३८३८, मो. ९८९०००७४७

५) श्री राधेश्याम गोयल
गोयल डिपार्टमेंटल स्टोअर्स, ५००, नारायण पेठ,
पत्र्या मारूती चौक, पूना-४११०३०
फोन नं. ऑ.२४४५६७०८ घर-२४४५६१५६

६) श्री एस. सी नागपाल (आर्य समाज)
आर्य समाज, ए-१/१०१, ऑक्सफर्ड व्हिलेज,
वानवडी, पूना-४११०४० फोन नं. २६८५१६९०

७) श्री विजय अगरवाल
दि स्पेअर हाऊस, खामकर हाऊस,
माफको यार्ड, पूनित चेम्बर्स के बाजू में, वाशी,
नवी मुंबई-४००७०५ फोन नं. २७६८६६६३

८) श्री सिद्धार्थ सराफ
सराफ कोर्ट, यशवंत स्टेडियम के सामने, धन्तोली,
नागपूर-४४००१२ फोन नं. २५६११३८

९) श्री देवीप्रसाद सरावगी
गोकुलधाम, २९बी-२ रा मजला, ३२/१बी, रामकृष्ण समाधी रोड,
कलकत्ता-७०००५४ फोन नं. घर-२३२०१४१४ ऑ.२३५३८७६८

१०) श्री किशोरीलाल पाटोदिया
२९, नेपियन्सी रोड, मुंबई- ४०००३६
फोन नं. २३६३००३२, २३६१८८२१ मो. ९८२१७१८३७४

११) श्री प्रेमप्रकाश सूतवाला
नवशील अपार्टमेंटस्, ब्लॉक नं. ५, फ्लॅट नं. २, ५६ कॅन्टोंनमेंट,
कानपूर (उ.प्र.)- २०८००४ फोन नं. २३८११७०

❊ सहयोगी दल ❊

१) श्री राजकुमार बन्सीलाल अगरवाल
२) श्री ओमप्रकाश बलभद्रप्रसाद अगरवाल
३) श्री श्यामसुंदर बांकेलाल गोयल
४) श्री राधेश्याम गोयल

हर समस्या सुलझेगी, आप उलझना छोड़ दें। हर मंझिल मिलेगी, आप भटकना छोड़ दें।

जो भूल न करे वह भगवान, जो भूल करके माफी मांगे वह इन्सान। जो भूल को भूल न माने वह बेईमान।

ज्ञान सागर

(सत्यम् शिवम् सुन्दरम्)

सत्य ही शिव है शिव ही सुन्दर है

विश्व ज्ञान गुरु

ज्ञान की यह मशाल ही विश्व तम को हरती है और सम्पूर्ण जगत को अपनी दिव्य लौ से आलौकित करती है; यही इस सागर की प्रेरणा है

संग्रहकर्ता

महेन्द्रकुमार अनन्तराम पाटोदिया